हिन्दी

विश्वकोष

बंगला विश्वकोषके सम्पादक

श्रीनगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहार्णव,

सिद्धान्त-वारिधि, शब्दरत्नाकर, तत्त्वचिन्तामणि, एम, आर, ए, एस

तथा हिन्दीके विद्वानों द्वारा सङ्कलित

द्वाविंश भाग

वीरभूम—शाहजहान्

THE ENCYCLOPÆDIA INDICA

VOL. XXII.

COMPILED WITH THE HELP OF HINDI EXPERTS

BY

NAGENDRANATH VASU, Prāchyavidyāmahārnava,

Siddhānta-vāridhi, Sabda-ratnākara, Tattva-chintāmani, M. R. A. S.,

Compiler of the Bengali Encyclopædia; the late Editor of Bangiya Sāhitya Parish. n and Kāyastha Patrikā; author of Castes & Sects of Bengal, Mayurabhanja Archæological Survey Reports and Modern Buddhism; Hony. Archæological Secretary, Indian Research Society, Associate Member of the Asiatic Society of Bengal &c. &c. &c.

Printed by A. C. Sen. at the Visvakosha Press

Published by

Nagendranath Vasu and Visvanath Vasu

9, Visvakosha Lane, Baghazar Calcutta

1930.

हिन्दी

विश्वकोष

द्वाविंश भाग

वीरभूम—बङ्गालके अन्तर्गत वर्द्धमान विभागका एक जिला। यह स्थान अक्षा० २३° ३४′ और २४° ३५′ उ० तथा देशा० ८७° १०′ और ८८° २′ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १७५२ वर्गमील है। इसको उत्तर-पश्चिम-सीमा पर सन्ताल प्रगना, पूर्वभागमें मुर्शिदाबाद और वर्द्धमान तथा दक्षिणमें भी वर्द्धमान जिला है। इस जिलेकी दक्षिण-सीमा पर अजय नद प्रवाहित हो रहा है। यह अजय नद ही वीरभूमको वर्द्धमान जिलेके भूभागसे विच्छिन्न करता है। इस जिलेका प्रधान शासनकेन्द्र—सिउड़ी सहर है।

पहले वीरभूमके इलाकेका भूभाग परिमाणमें बहुत अधिक था। वीरभूमका शासनभार जब अङ्गरेजोंके हाथ आया तब इसका परिमाण ३८५८ वर्गमील था। विष्णुपुर जमीन्दारी भी उस समय इसी जिलेके अन्तर्भुक्त थी। उन्नीसवीं सदीके प्रारम्भमें विष्णुपुर बाँकुड़ा जिलेके अन्तर्गत हुआ। इसके बाद इसके पश्चिम भागका कुछ अंश सन्ताल प्रगनेमें शामिल कर इसको और भी छोटा बना दिया गया। इस तरह इसका भूपरिमाण कम होते होते सन् १८८३ ई०में केवल १७५२ वर्गमील रह गया।

१६वीं शताब्दीमें वीरभूम किसी श्रोत्रिय ब्राह्मणवंशके अधीन था। इसके बाद १७वीं शताब्दीके अन्तमें यह मुसलमानोंके अधिकारमें आया। १८वीं शताब्दीके आरम्भमें जाफर खांने असदुल्ला पठानके हाथ वीरभूमको जमींदारीका शासन-भार प्रदान किया। असदुल्लाके पूर्वपुरुष शताधिक वर्ष पहलेसे यहां रहते थे। सन् १७६५ ई० तक वीरभूमका शासनभार असदुल्लाके वंशधरोंके हाथमें था। सन् १७८७ ई०में वीरभूम ईष्ट इण्डिया कम्पनीके अधिकारमें आया। इसके पहलेसे ही वीरभूममें डाकुओंका उपद्रव प्रबलरूपसे वर्त्तमान था। पश्चिम प्रान्तके पहाड़ी प्रदेशसे पङ्गपालकी तरह डाकू आते और वीरभूम-वासियोंका धन आदि लूटपाट कर ले जाते थे। डाकू लोग कमसे कम ऐसे प्रबल हो उठे, कि वे वीरभूममें किलाबन्दी कर इस जिलेमें अपना प्रभुत्व विस्तार करने लगे। इन डाकुओंके उपद्रवसे सदरका खजाना राजकोषमें पहुंचने नहीं पाता था। व्यवसाय-वाणिज्यमें बाधा उपस्थित होनेके कारण ईष्ट इण्डिया कम्पनीके कई कारखाने बन्द हो गये। ये सब असीम साहससे चारों तरफ डाकेजनी किया करते थे। राजा और जमीन्दारोंके साथ

बाकायदा युद्ध चलता था। ये लूटनेवाली पहाड़ी जातिके लोग मुसलमान शासकोंके जमानेसे ही यहांके लोगोंको भयभीत कर धन लेते थे। सामान्य भय दिखलानेसे धन न देने पर ये तीर धनुष आदि अस्त्र-शस्त्रसे सज्जित हो आते और जो बाधा देते थे, उन्हें मार डालते थे। ये ग्राम नगर आदि लूट कर पहाड़में चले जाते थे। इन डाकुओंके भयसे वीरभूमके उत्तर प्रदेशमें गङ्गातट पर भी प्रायः एक सौसे अधिक मील तक रातको कोई नावके साथ अवस्थान न कर सकता था। डाकुओंके आक्रमणसे अधिवासियोंकी रक्षा करनेके लिये राजा और जमींदार बहुत चेष्टा करते थे। और तो क्या—इसके लिये चारों बगल प्राचीर परिखा आदि तक बनाये गये थे। इनका चिन्ह कहीं कहीं आज भी दिखाई देता है। भागलपुरके दक्षिण-पश्चिम प्रान्तमें इस तरहके प्राचीरका भग्नावशेष आज भी वर्त्तमान है।

सन् १७६६ ई०में ईस्ट इण्डिया कम्पनीने यद्यपि वीरभूम जिलेमें अपने प्रभुत्व-प्रचारकी चेष्टा की थी, तथापि उस समय तक अंग्रेजोंको कोई मानता न था। सन् १७७२ ई०में वीरभूम अङ्गरेजोंके शासनाधीनमें आ जानेकी स्वीकृति हो जाने पर भी वहांके राजा ही वहांके शासनकर्त्ता थे। राजा ही इस प्रदेशका शासन करते थे। ये ईष्ट इण्डिया कम्पनीको सामान्य कर देते थे। पश्चिम सीमान्तकी रक्षाका भार राजाके ऊपर ही था। किन्तु उस समय वीरभूम और मल्लभूम (विष्णुपुर)-के राजाओंका प्रभाव खर्व हो रहा था। राजाओंके बलकी सामरिक अवस्था शोचनीय हो रही थी। अन्तमें इनकी आत्मरक्षाका उपाय भी न रहा। इधर डाकुओंके उपद्रवसे प्रजा नित्य उत्पीड़ित हो रही थी। दुर्द्दान्त डाकुओंके हाथसे त्राण पानेकी जरा भी सामर्थ्य वीरभूम और मल्लभूमके राजाओंमें न थी।

सन् १७८४ ई०में डाकुओंका उपद्रव इतना बढ़ गया, कि अङ्गरेजोंसे चुपचाप बैठा न गया। उन्होंने डाकुओंके दमनके लिये बद्धपरिकर हुए। सन् १७८५ ई०में मई महीनेमें मुर्शिदाबादके कलेक्टर एडवर्ड अटोंबाइटने अपने इलाकेके दक्षिण भागके डाकुओंके उपद्रवोंको रोकनेके लिये सकाउन्सिल गवर्नर जनरलसे ४०० सैनिकोंके भेज देनेकी प्रार्थना की। किन्तु इसका कुछ भी फल नहीं हुआ। डाकुओंने इस समाचारसे अवगत हो कर अपने दलकी पुष्टि कर ली। इसके बाद पिछले वर्षमें डाकुओंने वीरभूमके समग्र जिले पर अपना प्रभुत्व विस्तार कर लिया। इस समय गवर्नर जनरल लार्ड कर्नवालिसने देखा, कि वीरभूम और विष्णुपुरके शासनका भार किसी प्रभावशाली चिन्ताशील व्यक्तिके हाथ देना चाहिये। इस समय डबल्यू पाई विष्णुपुर और वीरभूम इन दोनों स्थानोंके कलेक्टर बनाये गये। सन् १७८७ ई०में विष्णुपुर और वीरभूम उक्त कलक्टरके हाथ आये। किन्तु उन कलेक्टरसे भी काम न चला। वे तीन सप्ताह तक इस काममें रहे। सम्भवतः डाकुओंके भयसे भीत हो कर वे विष्णुपुरसे भाग गये। सरकारी कागजोंमें लिखा है, कि 'पाई' साहब पदोन्नतिका समाचार सुन कर शीघ्र और सहसा विष्णुपुरसे चले गये।

जो हो, मिष्टर सारबरण उनके स्थान पर अधिकार जमाया। इनके शासनके प्रारम्भमें ही विष्णुपुरसे सिउड़ीमें सदर स्थानान्तरित हुआ। मिस्टर सारबरणको यहांके लोग वीर ही समझते थे। इसके फलसे उनके शासनसे यहांके डाकुओंका उपद्रव कुछ शान्त हुआ था। किन्तु दूसरी ओर इनकी कृपासे विष्णुपुर और वीरभूमके देशीय राजाओंका प्रभाव सदाके लिये मिट गया। वे नाममात्रके राजा थे सही, किन्तु कार्य्यतः अति सामान्य वैभववान् भद्र पुरुषकी अवस्थामें आ पहुंचे।

जो हो, जिस उद्देशकी पूर्त्तिके लिये वे वीरभूममें भेजे गये थे, उसमें वे पूर्णरूपसे सफल न हो सके। सन् १७८८ ई०में कलकत्तेके समाचारपत्रमें प्रकाशित हुआ—"अजय नदके दक्षिण डाकू लोग भयङ्कर उत्पात मचा रहे हैं। उन्होंने सरकारी खजानेको लूट लिया है, सिपाहियोंको पराजित किया तथा पांच आदमियोंको मार डाला है। कोषागारसे ३०००० रुपये लूट लिये गये हैं।"

सन् १७८८ ई०में सरकारने इस विषयकी जांच करनी आरम्भ की। मिस्टर सारबरणके कार्य्य पर सन्देह कर वे यहांसे हटा दिये गये और उस जगह पर मिस्टर

क्रिस्टोफर किटिं भरती हुए। दो मास बीतते न वितते मिष्टर किटिं डाकुओंके उपद्रवको देख चकित और स्तम्भित हुए। मिष्टर किटिंने सोचा था, कि मिष्टर साग्वरणके शासनसे डाकू लोग सम्भवतः उत्पीड़ित हो गये हैं। यही सोच कर वे चुपचाप बैठे रहे। किन्तु एक दिन उनके पास हृदयविदारक एक समाचार पहुंचा, कि उनके वासस्थानके निकट ही पांच सौ डाकुओंने आ कर चालीस ग्रामके अधिवासियोंको धनविहीन और प्राणहीन कर दिया। इसके कई सप्ताह बाद ही सन् १७८८ ई०के फरवरी महीनेमें पहाड़ी डाकू वीरभूम और विष्णुपुरके थाने पर भी आक्रमण किया, टोलों, महल्लों या ग्रामोंकी तो बात क्या! ग्राम-ग्राममें मारामारी और खून खराबी होने लगी। मिष्टर किटिं सीमान्त प्रदेशमें सैन्य संरक्षणके निमित्त विविध व्यवस्थायें कीं। किन्तु दुर्द्दान्त डाकुओंका उत्पात किसी तरहसे कम न हुआ।

इसके बाद सकौन्सिल गवर्नर जनरलने वीरभूम और विष्णुपुरके डाकुओंके उपद्रव-निवारण करनेके लिये एक छोटे समरकी व्यवस्था की। उन्होंने निकटके सब कलक्टरोंको सूचित कर दिया, कि इस विषय पर सभी मिल कर एक साथ काम करें। केवल अपने इलाकेको ही लेकर चुप न बैठें। डाकुओंका जहां उपद्रव सुनाई दे, वहां अपने सैनिकोंके साथ उपस्थित हों। इस तरह सैन्य-संग्रह कर वीरभूममें डाकुओंके साथ अंग्रेजोंका एक खण्डयुद्ध हुआ था। इस युद्धसे डाकू लोग डर गये थे सही, किन्तु इससे भी इनका उपद्रव बिलकुल दूर न हुआ।

इधर उस समय वृटिश अफसरोंके दिमागमें एक और ही धुन लग रही थी। वह यह, कि यथासम्भव शीघ्र देशीय राजाओंके हाथसे शासनभार छीन लिया जाये। इसके लिये वे उस समय उन्मत्त हो उठे थे। विष्णुपुरके राजाके जिम्मे कुछ ही मालगुजारी बाकी पड़ी थी। इसी सामान्य अपराधमें अफसरोंने उनको पकड़के जेलमें ठूस दिया। दूसरे समय अफसरोंके ऐसा करने पर प्रजा और अंग्रेजोंमें युद्ध ठन जाता था। किन्तु नाना कारणोंसे उस समय देशके लोगोंने मनुष्यत्वको खो दिया था। सुतरां इस घटना पर भी कोई महाशान्ति नहीं मची। फिर प्रजा डाकुओंका साथ हो अंग्रेजोंके विरुद्ध चलने लगी।

इसके बाद फिर एक बार डाकुओंके उपद्रवने जोर पकड़ा। इस समय वृटिश सरकारके तोपखानेको लूट लेनेके लिये डाकू लोग अधिकतर चेष्टा करने लगे। मिष्टर किटिंने गवर्नर जनरलके पास सुशिक्षित सैन्य भेजनेकी प्रार्थना की। उनके प्रार्थनानुसार एक फौज भेजी गई। वे विभक्त हो नाना स्थानोंमें अन्यान्य सैनिकोंके साथ एकत्र हुए। किन्तु इससे भी डाकुओंका उपद्रव नहीं रुका। और तो क्या—दिन दहाड़े डाकुदल शहरमें घुस कर लूटपाट मचाने लगा। फलतः राजनगर पर डाकुओंका अधिकार हो गया। पांच सौ वर्षोंमें जैसी घटना न हुई थी, मिष्टर किटिंके शासनमें वैसी दुर्दशा हो गई। मिष्टर किटिं विष्णुपुरमें बैठे ही रह गये। इधर डाकू लोग वीरभूमके राजनगर पर प्रभुत्व विस्तार करनेमें मनोयोगी हुए। मिष्टर किटिं अप्रस्तुत हो क्रोधित हो उठे। वीरभूमसे डाकूलोगोंके भगानेके लिये विष्णुपुरसे दलके दल सैनिक भेजने लगे। इधर दूसरे डाकुदलने विष्णुपुरका अवरोध किया। निकटके ग्रामोंको वे लूटने लगे। देखते देखते वर्षाकाल आरम्भ हुआ। फलतः अंग्रेज उस समय किसी तरहसे डाकुओंको देशसे भगा न सके। डाकुओंके उत्पीड़न और शासकोंकी निश्चेष्टता तथा असमर्थताके कारण प्रजा व्याकुल हो उठी। प्रजा कहने लगी, कि हमारे राजाको दुर्बल जान कर फिरङ्गियोंने देश शासनका भार अपने हाथमें लिया था, किन्तु अब मालूम हुआ, कि हमारे राजोंकी अपेक्षा भी ये सहस्र गुणा अक्षम हैं। इनके ऊपर निर्भर करनेसे अब काम न चलेगा। प्रजा उस समय दुःसाहसी हो उठी। लोगोंने बांस काट बड़ी बड़ी लाठियां तय्यार कीं। अन्तमें उस लाठीके बलसे ही कृषक अपने गांवोंसे डाकुओंको भगाने लगे। अंग्रेजोंने तोपोंसे जो न कर सके, वह कृषक लाठियोंसे कर दिखाया। अंग्रेज अपने हाथ वीरभूमका शासन ले कर दो वर्ष तक बड़े सङ्कटमें पड़ गये थे।

इतिहास।

कहा गया है। कि उत्तर-पश्चिम प्रदेशसे वीरसिंह

और चैतन्यसिंह नामके दो भ्राता वीरभूममें आये। इनके शासनसे पहाड़ी लोग परास्त हुए। इन दोनों भाइयोंने वीरभूममें अपना प्रभुत्व स्थापित किया। वीरसिंहके नाम पर वीरसिंह नगर और चैतन्यसिंहके नाम पर चैतन्यपुर नगर वीरभूममें संस्थापित हुए। आज भी ये दोनों नगर वीरभूममें वर्त्तमान हैं। वीरसिंहके भाई फतेहसिंहने मुर्शिदाबादके कुछ अंशों पर भी अपना दखल जमाया था। उनके नाम पर फतेहपुर परगनेकी सृष्टि हुई।

वीरसिंह ही वीरभूमके प्रबल हिन्दूराजा हैं। वीरसिंहको यथेष्ट दैहिकबल था। प्रबल-पराक्रमशाली राजा वीरसिंह अपने बलके प्रभावसे वीरभूमके बहुत स्थानोंको अपने शासनमें मिला लिया था। इन्होंने अपने भाईको उसके राज्यसे भगाया और वहां भी अपना प्रभुत्व स्थापित किया। बहुतेरे राजा और जमीन्दार इनकी अधीनता स्वीकार कर इनको कर देते थे। सिउड़ीके पूर्वभागमें प्राचीन वीरसिंहपुरके ध्वंसावशिष्ट स्थानोंमें आज भी बहुतेरे दुर्ग, प्रासाद और तालाबोंके चिह्न पाये जाते हैं। राजा वीरसिंहने मुसलमानोंके साथ सम्मुख समरमें प्राण परित्याग किया था। इनके मर जानेके बाद इनकी रानी तालाबमें कूद कर अपने सती धर्मकी रक्षा की थी। जिस तालाब या पोखरेमें रानीने आत्मविसर्जन किया था, आज भी वह वर्त्तमान है। इस समय इसका नाम रानीदह हो गया है। वीरसिंहने एक कालीजीका मन्दिर बनवा कर उसमें श्रीकालीजीकी एक मूर्त्ति प्रतिष्ठित कराई थी।

इन्हीं राजाने वीरसिंहपुरके निकट एक गोपालमूर्त्तिको भी प्रतिष्ठा कराई थी। इस समय वह स्थान जङ्गलके रूपमें परिणत हुआ है। वहांके लोग उसको गुप्तवृन्दावन कहा करते हैं।

वीरभूमके राजनगरके इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि राजनगरमें किसी समय पालवंशकी राजधानी थी। पालवंशीय राजाओंके कीर्त्तिकलापका चिह्न राजनगरमें दिखाई देता है। पालवंशके बाद किसी समय राजनगरमें सेन राजाओंकी भी राजधानी थी, इसका भी यथेष्ट निदर्शन मिलता है। उस समय इस स्थानका नाम लक्ष्मणनगर तथा मुसलमानोंके जमानेमें उसका अपभ्रंश लखनौर हुआ।

जो हो, इसके बाद वीरभूममें वीरराजाके नामसे एक ब्राह्मण राजाने राजत्व किया। यही वीर राजा राजनगरमें रहते थे। ये प्रबल शौर्यवीर्यशाली थे। पार्श्ववर्त्ती राजा और जमीन्दार इनको चक्रवर्त्ती राजा मानते थे। जिस समय पठान अपने प्रभावसे इस देशमें अपना शासन-विस्तार कर समग्र देशको विध्वस्त कर डालने लगे, उस समय वीर राजा अपने पराक्रम प्रभावसे पठानोंके हाथसे इस देशका उद्धार किया। राढ़ीय ब्राह्मण कुलग्रन्थमें ये बसन्त चौधरीके नामसे परिचित हैं।

इस समय असदुल्ला खां और जुनैद खां नामके दो पठान उनके पास पहुंचे। इन दो पठानोंके रूप और सौन्दर्य्यको देख इनके प्रति वीरराजाका चित्त आकर्षित हुआ। उन्होंने इन दोनोंको अपने राज्यके प्रधान कर्मचारीके पद दिये। इनमें एकको प्रधान मन्त्री और दूसरेको प्रधान सेनापतिका पद दिया गया। इनके सुशासनमें वीरभूमकी यथेष्ट उन्नति हुई। किन्तु पठानका विश्वास करना बुद्धिमान्‌का कर्त्तव्य नहीं। वीरराजा शौर्यवीर्यशाली थे सही, किंतु वे दूरदर्शी तथा नीतिकुशल नहीं थे। इस लिये उनको विषमय फल भोगना पड़ा।

लोगोंने देखा, कि ये ही वास्तवमें देशके शासनकर्त्ता हैं। वीरराजा केवल नामके राजा हैं। वीरराजाको मार डाल कर ये सहजही इस देशके राजा हो सकेंगे। पठानोंके हृदयमें इस ऊंची आशाका आविर्भाव हुआ। ये दिन रात इसी चिन्तामें रहते थे, कि राजाका किस तरह विनाश किया जाये। असदुल्ला वीरराजाकी महिषीका सौन्दर्य देख विमुग्ध हुए थे। महिषीका सौन्दर्य्य राजाकी मृत्युका कारण हुआ।

एक दिन राजा अखाड़ेमें कुश्ती लड़ रहे थे। असदुल्ला वहां उपस्थित हुआ। राजाने अखाड़ेमें आनेसे उसको मना किया। इस पर क्रुद्ध हो असदुल्लाने भाई जुनैदके साथ बलपूर्वक अखाड़ेका दरवाजा तोड़ घुस गया और गुप्त भावसे राजा पर आक्रमण किया। जिस समय असदुल्ला और राजामें कुश्ती हो रही थी, उस समय दुरभिसन्धिशील जुनैद खांने इन दोनोंको निकटके

एक कुएंमें ढकेल दिया। फलतः ये दोनों मर गये। जुनीदकी इस अपारमार्थिक क्रियासे वीरराजाकी मृत्यु हो जानेके बाद राजमहिषीके सम्बन्धमें बहुतेरी बातें सुनी जाती हैं। जो हो, कुछ ही दिनके बाद राजमहिषीकी भी मृत्यु हो गई। यद्यपि राजाके सन्तान थे, किन्तु पठानोंके प्रभावसे उनको कुछ अधिकार नहीं मिल सका। जुनीदकी मृत्युके बाद बहादुर खाँ नामक एक पठानके हाथ राज्यका शासनभार आया। इसी जुनीदसे फुलियामेलमें हेड़ादोष हुआ।

बहादुर खाँका दूसरा नाम रणमत्त खाँ है। सन् १६०० ई०में उन्होंने शासनभार ग्रहण किया और वे ६५ वर्ष तक राज्यशासन करते रहे।

कहा गया है, कि उनके शासनमें वीरभूमकी यथेष्ट उन्नति हुई। राज्यमें सुखशान्ति सदा विराजमान थी। जनसंख्याकी भी वृद्धि हुई थी, कृषिकार्य्यकी उन्नति कम न हुई। इनकी मृत्युके बाद, इनका एकमात्र पुत्र ख्वाजा कमल खाँने पितृसिंहासन पर अधिष्ठित हुए। ख्वाजा कमल खाँके सम्बन्धमें कोई विशेष बात नहीं सुनी गई। सन १६९७ ई०में इनकी मृत्यु हुई। इनके बाद इनका पुत्र असदुल्ला खाँ सिंहासन पर बैठे। असदुल्ला ज्ञानी और धार्म्मिक थे। इन्होंने यथेष्ट परिमाणसे सैन्यसंख्याकी वृद्धि की और अनेक तालाब आदि खुदवाये थे। इससे राज्यका जलाभाव विदूरित हुआ। इनके जमानेमें बहुतेरी मसजिदें बनीं। इन्होंने अपने दो पुत्रोंको छोड़ परलोक गमन किया। एकका नाम बादियाजमा और दूसरेका अजमत खाँ था।

सन् १७१८ ई०में बादियाजमा राज्यके सिंहासन पर बैठे और इन्होंने मुर्शिदाबादके नवाब मुर्शिदकुली खाँसे सनद पाई थी। इस समय मुर्शिदाबादके नवाबके साथ वीरभूमके शासनकर्त्ताका नया बन्दोबस्त हुआ। इसके अनुसार बादियाजमा नवाबको ३४६०००रु० कर देने लगे। इनके शासनके समय भास्कर पण्डितके अधीनस्थ मराठोंके एक दलने आ कर बङ्गालमें लूट पाट करना आरम्भ किया। इन्होंने केन्दुडङ्गा या गञ्जमुरशिद नामक स्थानमें अपने खेमें खड़े किये।

बादियाजमा, इनके भाई अली नकी और वर्द्धमानके राजाके साहाय्यसे मुर्शिदाबादके नवाबने अपने देशसे डाकुओंको भगा दिया। बादियाजमाकी दो स्त्रियां थीं। पहली स्त्रीके गर्भसे इसके दो पुत्र हुए—एकका नाम अहमदजमा खाँ और दूसरेका महमदअली खाँ था। दूसरी स्त्रीके गर्भसे आसदजमा नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ। सिवा इसके बहादुर खाँ नामके उनके और भी एक अवैध पुत्र था। पिताकी मृत्युके बाद भ्राताओंकी सम्मतिसे आसदजमा पितृसिंहासन पर बैठे।

अली नकी खाँ और अहम्मदजमा खाँ वीर थे। ये मुर्शिदाबादके नवाब सिराजुद्दौल्लाके अधीन सामरिक कार्य्यमें नियुक्त हुए थे। अली नकी खाँ सिराजुद्दौल्लाका सेनापति बन कर अंग्रेजोंके साथ युद्ध करनेके लिये कलकत्ते आये थे और बागबजारमें आ कर उन्होंने अपना खेमा खड़ा किया था। इनके पराक्रमके प्रभावसे अङ्गरेज भागे और हबड़ेमें भागे। इस युद्धमें विजयलाभ कर अली नकी खाँने कलकत्तेके दक्षिणमें अपना आवास बनवाया था। वर्त्तमान अलीपुर ही वह स्थान है। अली नकीके नाम पर ही अलीपुर शहरकी सृष्टि हुई।

सिराजुद्दौलाके सैनिकोंमें अली नकी और उनका भाई अहमदजमा खाँ ये दोनों ही वीर और विक्रमशाली थे। वर्त्तमान वैद्यनाथ शहरके साथ अली नकी खाँका नाम इतिहासमें विजड़ित है। गिद्धौरके राजाकी फौजने जब वीरभूममें प्रवेश कर अली नकीके पिताको परास्त किया, तब अपने पिताके शत्रुको खदेड़नेके लिये अली नकी देवघर तक अग्रसर हुए थे। इन्होंने गिद्धौरके राजसैन्यको परास्त कर वैद्यनाथ नगर पर अधिकार जमाया। इन्होंने वैद्यनाथ-देवको पण्डोंके हाथ अर्पित कर उनसे कर लेनेकी व्यवस्था कर वे लौट गये। कहा गया है, कि उस समय वैद्यनाथके पण्डोंकी आय मासिक ५००००) थी।

अली नकी खाँ यद्यपि वीर थे, तथापि इनके हृदयमें राजपदलाभकी उच्चाशा कभी जागरित नहीं हुई। इनके पिताकी मृत्युके बाद भी आसदजमा खाँ सिंहासन पर बैठे। अली नकीने जरा भी इस कार्य्यमें बाधा न दी। राजपद बहुत समयमें ही मात्सर्य और मत्तभावके साथ

विजड़ित होता है। आसदज़मा भी राजवैभवसे प्रमत्त हो उठे। मुर्शिदाबादके नवाबकी सलाहसे वे वीरभूमके राजपद पर प्रतिष्ठित हुए थे। किन्तु नवाबके पुत्र मीरजाफर अलीकी मृत्युके बाद आसदज़मा सुयोग पा कर मुर्शिदाबादके नवाबका सर्वनाश करनेके लिये समरसज्जासे सज्जित हो चूनाखाली तक यात्रा कर चुके थे। नवाबने निरुपाय हो कर सन्धिकी प्रार्थना की। किन्तु उस पर भी आसदज़मा सन्तुष्ट न हो गङ्गा पार कर मुर्शिदाबादकी ओर अग्रसर हुए।

इस समय नवाबकी बड़ी भारी बेगमने विपदके प्रतिकारके लिये सहसा एक उपाय खोज निकाला। उन्होंने अङ्गरेजोंसे एक प्रस्ताव किया, कि यदि इस युद्धमें वे मदद करें, तो उनको एक बड़ा तालुका छोड़ दिया जायेगा। अङ्गरेजोंको मौका हाथ आया। वे चट युद्धके लिये तैयार हो गये। आसदज़मा उस समय राजनगरके दुर्गमें ठहरे हुए थे। अङ्गरेजोंने कुछ दिनों तक इसी दुर्गमें रोक कर आसदज़माको परास्त किया। इस युद्धमें आसदज़माका सेनापति अफजल खाँ मारा गया। इस युद्धके अन्तमें जो सन्धि हुई, उसका मर्म्म इस तरह है—

(१) वीरभूमके राजस्वका एकतृतीयांश अङ्गरेजोंको मिलेगा।

(२) अङ्गरेजोंका वीरभूममें किसी व्यापारसे सम्बन्ध न रहेगा।

(३) राजा सब प्रकारके प्रयोजनीय विषयोंमें अङ्गरेजोंका परामर्श ले कर कार्य करेंगे।

इस युद्धमें आसदज़माको अच्छी शिक्षा मिली। इसके बाद वे मुर्शिदाबादके नवाबको उचित रूपसे कर दिया करते थे। मुंशी अनूपमिश्रने उनको कर्ज दिया था। ऋण शोधन न करनेसे उनको राजाने १००० बीघा ज़मीन दी थी।

सन् १७३३ ई०में वातव्याधि रोगसे आसदज़माकी कलकत्तेमें मृत्यु हुई। आसदज़मा उदारहृदयके थे। वीरत्व तथा उनकी उच्चाशाकी बात पहले ही कही जा चुकी है। समूचे बङ्गाल पर अपना प्रभुत्व स्थापित करनेकी प्रबल आशा उनके हृदयमें जागरित हो उठी थी। उन्होंने २६ वर्ष तक वीरभूममें राज्यशासन किया था।

आसदज़माकी मृत्युके बाद उनका भाई बहादुर खाँ राजपद पानेका दावा किया। किन्तु आसदज़माकी विधवा बेगम उसमें बाधा दे न्यायपूर्वक अपने पुत्र लालबिहीको सिंहासन पर बैठानेकी प्रार्थना अंग्रेजोंसे की। लालबिही सिंहासन पर बैठे, फिर भी वे नाबालिग थे। राजकार्य उनकी माताको ही देखना पड़ता था। किन्तु कुचक्री बहादुरने नाना तरहसे कुचक्र चला कर राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया। सन् १७८६ ई०में बहादुरकी मृत्यु हुई। इसके बाद उनका पुत्र महम्मदज़मा खाँ सिंहासन पर बैठा।

सन् १७६० ई०में महम्मद ज़माने राज्यभार ग्रहण किया। उनकी नाबालिगीकी हालतमें दीवान लाला रामनाथ और मिष्टर किटिं वीरभूमका राजकार्य करते थे। पीछे बालिग हो कर उन्होंने स्वयं बड़ी योग्यताके साथ राज्यकार्य संभाला। उनके राजत्वकालमें वीरभूममें सात लाख मनुष्योंका वास था। इनमें हिन्दुओंकी संख्या एकतृतीयांश थी (सच पूछिये तो दो तृतीयांश)। लाला रामनाथकी भी यथेष्ट क्षमता थी। इन्होंने सिउड़ी शहरसे ६ मीलकी दूरी पर भाण्डीरवन नामक स्थानमें भाण्डीश्वर नामक शिवमन्दिरकी प्रतिष्ठा कराई थी।

महम्मदज़मा खाँने सन् १८०२ ई०में पितृसिंहासन और सन् १८१२ ई०में अंग्रेजोंसे सनद पाई थी। सन् १८५५ ई०में ज़हरज़मा नामक एक पुत्रको रख कर उन्होंने इहलोकसे प्रस्थान किया।

वीरभूमका प्राचीन राजवंश और राज्यशासनके सम्बन्धमें बहुतेरी ऐतिहासिक कहानियां हैं। किन्तु ऐतिहासिक आज भी इसके सम्बन्धमें उपादान संग्रह करनेमें प्रवृत्त नहीं हुए हैं।

सिउड़ीमें ही वीरभूमका जिला सदर प्रतिष्ठित है। यहां ही वीरभूमका प्रधान नगर है। मयूराक्षि नदी इसके तीन मीलकी दूरी पर प्रवाहित होती है। सिउड़ीसे ११ मीलकी दूरी पर सैंथिया रेलवेका स्टेशन है। यह शहर कलकत्तेसे १३१ मीलकी दूरी पर अवस्थित है।

वीरभूम कृषिप्रधान स्थान है। वर्द्ध मान विभाग कृषिके लिये चिरप्रसिद्ध है। वीरभूमके उत्पन्न द्रव्योंमें धान, ईख, यव और सरसों यथेष्ट परिमाणसे उत्पन्न होता है। अन्यान्य प्रगनोंमें रेशमका कार्य्य होता है।

वीरमणि (सं० पु०) पुराणके अनुसार देवपुरके एक प्राचीन राजाका नाम, जिसके पुत्र रुक्माङ्गदने भगवान् रामचन्द्रके यज्ञका घोड़ा पकड़ लिया था। इस पर शत्रुघ्न और हनुमान् आदिने इससे युद्ध किया था। कहते हैं, कि इस युद्धमें महादेवजीने भी वीरमणिका साथ दिया था और शत्रुघ्नको अपने पाशमें बांध लिया था। इस पर रामचन्द्रजीने आ कर उनको और अपना घोड़ा छुड़ाया था।

वीरमत्स्य (सं० पु०) एक जातिका नाम। (रामायण २।७१।५)

वीरमय (सं० त्रि०) वीरस्वरूपे मयट्। वीरस्वरूप, वीर। तन्त्रोक्त वीरभाव, वीराचार।

वीरमर्दन (सं० पु०) एक दानवका नाम। (हरिवंश)

वीरमर्दल (सं० पु०) प्राचीन कालके एक प्रकारका ढोल, जो युद्धके समय बजाया जाता था।

वीरमल्ल—संस्कृत साहित्यके सुपरिचित मानवधर्मशास्त्र-व्याख्याके रचयिता नन्दनके प्रिय मित्र।

वीरमहेश्वर (आचार्य)—संग्रह नामक वेदान्त ग्रन्थके रचयिता।

वीरमाता (सं० स्त्री०) वीराणां माता। वह स्त्री, जो वीर पुत्र प्रसव करती हो। वीरजननी। पर्य्याय—वीरसू, वीरप्रसू।

वीरमानिन् (सं० त्रि०) वीरं मन्यते वीर-मन-णिनि। वीराभिमानी, जिसको अपने वीर होनेका घमण्ड है। (भागवत ६।११।२५)

वीरमार्ग (सं० पु०) वीरस्य मार्गः। वीरका मार्ग, स्वर्ग।

वीरमाहेश्वरीयतन्त्र—एक तन्त्र ग्रन्थका नाम।

वीरमित्रोदय—एक सुप्रसिद्ध व्यवस्थाशास्त्र। मित्रमिश्र इसके रचयिता हैं। इस ग्रन्थमें दायभागादि विषयोंका और व्यवहारशास्त्रकी सुचारुरूपसे मीमांसा की गई है।

वीरमिश्र (सं० पु०) वीरमित्रोदयके प्रणेता मित्रमिश्रका दूसरा नाम।

वीरमुकुन्ददेव (सं० पु०) उत्कलके सुप्रसिद्ध राजा। प्राकृत-सर्वस्वके प्रणेता मार्कण्डेय कवीन्द्रके प्रतिपालक।

मुकुन्ददेव और उत्कल शब्द देखो।

वीरमुद्रिका (सं० स्त्री०) एक तरहकी अंगुठी या छल्ला, जो प्राचीन कालमें पैरकी बीचवाली उंगलीमें पहना जाता था।

वीरया (सं० स्त्री०) पुत्रेच्छा। (ऋक् ६।६४।४)

वीरयु (सं० त्रि०) युद्धेच्छु, रणदुर्मद।

वीरयोगवह (सं० त्रि०) मध्यस्थ।

वीरयोगसह (सं० त्रि०) मध्यस्थ।

वीररजस् (सं० क्ली०) सिन्दूर।

वीररस—नाटकोंमें वर्णनीय नवरसोंमें एक रस। रौद्रत्व, वीरत्व, ओजस्विता आदि जतानेके लिये इस रसका आविर्भाव होता है।

वीरराघव (सं० पु०) १ रामचन्द्र। २ अच्युतपारस्य-स्तोत्रके प्रणेता। ३ उत्तररामचरितटीका, महावीर-चरितटीका और मालविकाग्निमित्रटीकाके रचयिता। ४ प्रयोगचन्द्रिका, प्रयोगदर्पण, भागवतचन्द्रिका नामकी भागवतपुराणटीका और सच्चरितसुधानिधि नामक चार ग्रन्थोंके रचयिता। ५ विश्वगुणादर्शके प्रणेता। ६ प्रयोगमुक्तावलीके प्रणेता रामके पुत्र। ७ वाक्यार्थ-दीपिकाके प्रणेता हनुमदाचार्यके गुरु।

वीरराघव आचार्य—१ असम्भवपत्र नामक न्यायविषयक ग्रन्थके प्रणेता। २ तत्त्वसारव्याख्याके रचयिता।

वीरराघव शास्त्रिन्—तर्करत्न नामक ग्रन्थके रचयिता।

वीररेणु (सं० पु०) वीरा रेणव इव यस्य। भीमसेन।

वीरललित (सं० क्ली०) वीरकी तरह फिर भी कोमल स्वभाव। वृहत्संहितामें लिखा है, कि स्वयं भीरु होने पर भी अधीनस्थ शत्रुओंको "वीरललित" नामक शूर-चरित द्वारा शासन करे। (वराहपुराण १०४।४१)

वीरलोक (सं० पु०) वीरस्य लोकः। वीरका लोक, इन्द्रलोक, स्वर्ग।

वीरवक्षण (सं० त्रि०) ऋत्विगों द्वारा वहनीय। (ऋक् ५।४८।२ सायण)

वीरवत् (सं० त्रि०) वीर अस्त्यर्थे मतुप्। वीरविशिष्ट, वीरयुक्त, पुत्रयुक्त, पतियुक्त।

विजडित होता है। आसदज़मा भी राजवैभवसे प्रमत्त हो उठे। मुर्शिदाबादके नवाबकी सलाहसे ये वीरभूमके राजपद पर प्रतिष्ठित हुए थे। किन्तु नवाबके पुत्र मीरजाफर अलीकी मृत्युके बाद आसदज़मा सुयोग पा कर मुर्शिदाबादके नवाबका सर्वनाश करनेके लिये समरसज्जासे सज्जित हो चूनाखाली तक यात्रा कर चुके थे। नवाबने निरुपाय हो कर सन्धिकी प्रार्थना की। किन्तु उस पर भी आसदज़मा सन्तुष्ट न हो गङ्गा पार कर मुर्शिदाबादकी ओर अग्रसर हुए।

इस समय नवाबकी पत्नी मारी बेगमने विपदके प्रतिकारके लिये सहसा एक उपाय खोज निकाला। उन्होंने अङ्गरेजोंसे एक प्रस्ताव किया, कि यदि इस युद्धमें वे मदद करें, तो उनको एक बड़ा तालुका छोड़ दिया जायेगा। अङ्गरेजोंको मौका हाथ आया। वे झट युद्धके लिये तैयार हो गये। आसदज़मा उस समय राजनगरके दुर्गमें ठहरे हुए थे। अङ्गरेजोंने कुछ दिनों तक इसी दुर्गमें रोक कर आसदज़माको परास्त किया। इस युद्धमें आसदज़माका सेनापति अफज़ल खां मारा गया। इस युद्धके अन्तमें जो सन्धि हुई, उसका मर्म इस तरह है—

(१) वीरभूमके राजस्वका एकतृतीयांश अङ्गरेजोंको मिलेगा।

(२) अङ्गरेजोंका वीरभूममें किसी व्यापारसे सम्बन्ध न रहेगा।

(३) राजा सब प्रकारके प्रयोजनीय विषयोंमें अङ्गरेजोंका परामर्श ले कर कार्य करेंगे।

इस युद्धमें आसदज़माको अच्छी शिक्षा मिली। इसके बाद वे मुर्शिदाबादके नवाबको उचित रूपसे कर दिया करते थे। मुंशी अनूपमिश्रने उनको कर्ज दिया था। ऋण शोधन न करनेसे उनको राजाने १००० बीघा ज़मीन दी थी।

सन् १७७१ ई०में वातव्याधि रोगसे आसदज़माकी कलकत्तेमें मृत्यु हुई। आसदज़मा उदारहृदयके थे। वीरत्व तथा उनको उच्चाशाकी बात पहले ही कही जा चुकी है। समूचे बङ्गाल पर अपना प्रभुत्व स्थापित करनेकी प्रबल आशा उनके हृदयमें जाग्रत हो उठी थी। उन्होंने २६ वर्ष तक वीरभूममें राज्यशासन किया था।

आसदज़माकी मृत्युके बाद उनका भाई बहादुर खां राजपद पानेका दावा किया। किन्तु आसदज़माकी विधवा बेगम उसमें बाधा दे न्यायपूर्वक अपने पुत्र लालबिह्नोको सिंहासन पर बैठानेकी प्रार्थना अंग्रेजोंसे की। लालबिह्नो सिंहासन पर बैठे, फिर भी वे नाबालिग थे। राजकार्य उनकी माताको ही देखना पड़ता था। किन्तु कुचक्री बहादुरने नाना तरहसे कुचक्र चला कर राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया। सन् १७८६ ई०में बहादुरकी मृत्यु हुई। इसके बाद उनका पुत्र महम्मदज़मा खां सिंहासन पर बैठा।

सन् १७९० ई०में महम्मद ज़माने राज्यभार ग्रहण किया। उनकी नाबालिगीकी हालतमें दीवान लाला रामनाथ और मिष्टर किटिं वीरभूमका राजकार्य करते थे। पीछे बालिग हो कर उन्होंने स्वयं बड़ी योग्यताके साथ राज्यकार्य संभाला। उनके राजत्वकालमें वीरभूममें सात लाख मनुष्योंका वास था। इनमें हिन्दुओंकी संख्या एकतृतीयांश थी (सच पूछिये तो दो तृतीयांश)। लाला रामनाथकी भी यथेष्ट क्षमता थी। इन्होंने सिउड़ी शहरसे ६ मीलकी दूरी पर भाण्डीरवन नामक स्थानमें भाण्डीश्वर नामक शिवमन्दिरकी प्रतिष्ठा कराई थी।

महम्मदज़मा खांने सन् १८०२ ई०में पितृसिंहासन और सन् १८१२ ई०में अंग्रेजोंसे सनद पाई थी। सन् १८५५ ई०में अहरजमा नामक एक पुत्रको रख कर उन्होंने इहलोकसे प्रस्थान किया।

वीरभूमका प्राचीन राजवंश और राज्यशासनके सम्बन्धमें बहुतेरी ऐतिहासिक कहानियां हैं। किन्तु ऐतिहासिक आज भी इसके सम्बन्धमें उपादान संग्रह करनेमें प्रवृत्त नहीं हुए हैं।

सिउड़ीमें ही वीरभूमका ज़िला सदर प्रतिष्ठित है। यहां ही वीरभूमका प्रधान नगर है। मयूराक्षि नदी इसके तीन मीलकी दूरी पर प्रवाहित होती है। सिउड़ीसे ११ मीलकी दूरी पर सैंथिया रेलवेका स्टेशन है। यह नगर कलकत्तेसे १३१ मीलकी दूरी पर अवस्थित है।

वीरभूम कृषिप्रधान स्थान है। वर्द्धमान विभाग कृषिके लिये चिरप्रसिद्ध है। वीरभूमके उत्पन्न द्रव्योंमें धान, ईख, यव और सरसों यथेष्ट परिमाणसे उत्पन्न होता है। अन्यान्य परगनेोंमें रेशमका कार्य्य होता है।

वीरमणि (सं० पु०) पुराणके अनुसार देवपुरके एक प्राचीन राजाका नाम, जिसके पुत्र रुक्माङ्गदने भगवान रामचन्द्रके यज्ञका घोड़ा पकड़ लिया था। इस पर शत्रुघ्न और हनुमान् आदिने इससे युद्ध किया था। कहते हैं, कि इस युद्धमें महादेवजीने भी वीरमणिका साथ दिया था और शत्रुघ्नको अपने पाशमें बांध लिया था। इस पर रामचन्द्रजीने आ कर उनको और अपना घोड़ा छुड़ाया था।

वीरमत्स्य (सं० पु०) एक जातिका नाम।

(रामायण १।७१।१५)

वीरमय (सं० त्रि०) वीरत्वरूपे मयट्। वीरस्वरूप, वीर। तल्लोक वीरभाव, वीराचार।

वीरमर्द्दन (सं० पु०) एक दानवका नाम। (हरिवंश)

वीरमर्द्दल (सं० पु०) प्राचीन कालके एक प्रकारका ढोल, जो युद्धके समय बजाया जाता था।

वीरमल्ल—संस्कृत साहित्यके सुपरिचित मानवधर्मशास्त्र-व्याख्याके रचयिता नन्दनके प्रिय मित्र।

वीरमहेश्वर (आचार्य)—संग्रह नामक वेदान्त ग्रन्थके रचयिता।

वीरमाता (सं० स्त्री०) वीराणां माता। वह स्त्री, जो वीर पुत्र प्रसव करती हो। वीरजननी। पर्य्याय—वीरसू, वीरप्रसू।

वीरमाणिन (सं० त्रि०) वीरं-मन्यते वीर-मन-णिनि। वीराभिमानी, जिसको अपने वीर होनेका घमण्ड है।

(भागवत ६।११।१९)

वीरमार्ग (सं० पु०) वीरस्य मार्गः। वीरका मार्ग, स्वर्ग।

वीरमाहेश्वरीयतन्त्र—एक तन्त्र ग्रन्थका नाम।

वीरमित्रोदय—एक सुप्रसिद्ध व्यवस्थाशास्त्र। मित्रमिश्र इसके रचयिता हैं। इस ग्रन्थमें दायभागादि विषयोंका और व्यवहारशास्त्रकी सुचारुरूपसे मीमांसा की गई है।

वीरमिश्र (सं० पु०) वीरमित्रोदयके प्रणेता मित्रमिश्रका दूसरा नाम।

वीरमुकुन्ददेव (सं० पु०) उत्कलके सुप्रसिद्ध राजा। प्राकृत-सर्वस्वके प्रणेता मार्कण्डेय कवीन्द्रके प्रतिपालक।

मुकुन्ददेव और उत्कल शब्द देखो।

वीरमुद्रिका (सं० स्त्री०) एक तरहकी अंगुठी या छल्ला, जो प्राचीन कालमें पैरकी बीचवाली उंगलीमें पहना जाता था।

वीरया (सं० स्त्री०) पुत्रेच्छा। (ऋक् ६।६४।४)

वीरयु (सं० त्रि०) युद्धेच्छु, रणदुर्मद।

वीरयोगवह (सं० त्रि०) मध्यस्थ।

वीरयोगसह (सं० त्रि०) मध्यस्थ।

वीररजस् (सं० क्ली०) सिन्दूर।

वीररस—नाटकोंमें वर्णनीय नवरसोंमें एक रस। रौद्रत्व, धीरत्व, ओजस्विता आदि जनानेके लिये इस रसका आविर्भाव होता है।

वीरराघव (सं० पु०) १ रामचन्द्र। २ अच्युतपारम्य-स्तोत्रके प्रणेता। ३ उत्तररामचरितटीका, महावीर-चरितटीका और मालविकाग्निमित्रटीकाके रचयिता। ४ प्रयोगचन्द्रिका, प्रयोगदर्पण, भागवतचन्द्रिका नामकी भागवतपुराणटीका और सच्चरित्रसुधानिधि नामक चार ग्रन्थोंके रचयिता। ५ विश्वगुणादर्शके प्रणेता। ६ प्रयोगमुक्तावलीके प्रणेता रामके पुत्र। ७ वाक्यार्थ-दीपिकाके प्रणेता हनुमदाचार्य्यके गुरु।

वीरराघव आचार्य—१ असम्भवपत्र नामक न्यायविषयक ग्रन्थके प्रणेता। २ तत्त्वसारव्याख्याके रचयिता।

वीरराघव शास्त्रिन्—तर्करत्न नामक ग्रन्थके रचयिता।

वीररेणु (सं० पु०) वीरा रेणव इव यस्य। भीमसेन।

वीरललित (सं० क्ली०) वीरकी तरह फिर भी कोमल स्वभाव। बृहत्संहितामें लिखा है, कि स्वयं वीर होने पर भी अधीनस्थ शत्रुओंको "वीरललित" नामक शूर-चरित द्वारा शासन करे। (वराहपुराण १०४।४१)

वीरलोक (सं० पु०) वीरस्य लोकः। वीरका लोक, इन्द्रलोक, स्वर्ग।

वीरवक्षण (सं० त्रि०) ऋत्विगों द्वारा वहनीय।

(ऋक् ५।४८।२ सायण)

वीरवत् (सं० त्रि०) वीर अस्त्यर्थे मतुप्। वीरविशिष्ट, वीरयुक्त, पुत्रयुक्त, पतियुक्त।

विभाजित होता है। आसदज़मा भी राजवैभवसे प्रमत्त हो उठे। मुर्शिदाबादके नवाबकी सलाहसे वे वीरभूमके राजपद पर प्रतिष्ठित हुए थे। किन्तु नवाबके पुत्र मीरजाफर अलीकी मृत्युके बाद आसदज़मा सुयोग पा कर मुर्शिदाबादके नवाबका सर्वनाश करनेके लिये समरसज्जासे सज्जित हो चूनाखाली तक यात्रा कर चुके थे। नवाबने निरुपाय हो कर सन्धिकी प्रार्थना की। किन्तु उस पर भी आसदज़मा सन्तुष्ट न हो गङ्गा पार कर मुर्शिदाबादकी ओर अग्रसर हुए।

इस समय नवाबकी बड़ी मारी बेगमने विपद्के प्रतिकारके लिये सहसा एक उपाय खोज निकाला। उन्होंने अङ्गरेजोंसे एक प्रस्ताव किया, कि यदि इस युद्धमें वे मदद करें, तो उनको एक बड़ा तालुका छोड़ दिया जायेगा। अङ्गरेजोंको मौका हाथ आया। वे झट युद्धके लिये तैयार हो गये। आसदज़मा उस समय राजनगरके दुर्गमें ठहरे हुए थे। अङ्गरेजोंने कुछ दिनों तक इसी दुर्गमें रोक कर आसदज़माको परास्त किया। इस युद्धमें आसदज़माका सेनापति अफज़ल खाँ मारा गया। इस युद्धके अन्तमें जो सन्धि हुई, उसका मर्म इस तरह है—

(१) वीरभूमके राजस्वका एकतृतीयांश अङ्गरेजोंको मिलेगा।

(२) अङ्गरेजोंका वीरभूममें किसी व्यापारसे सम्बन्ध न रहेगा।

(३) राजा सब प्रकारके प्रयोजनीय विषयोंमें अङ्गरेजोंका परामर्श ले कर कार्य करेंगे।

इस युद्धमें आसदज़माको अच्छी शिक्षा मिली। इसके बाद वे मुर्शिदाबादके नवाबको उचित रूपसे कर दिया करते थे। मुंशी अनूपमिश्रने उनको कर्ज दिया था। ऋण शोधन न करनेसे उनको राजाने १००० बीघा ज़मीन दी थी।

सन् १७३३ ई०में वातव्याधि रोगसे आसदज़माकी कलकत्तेमें मृत्यु हुई। आसदज़मा उदारहृदयके थे। वीरत्व तथा उनकी उच्चाशाकी बात पहले ही कही जा चुकी है। समूचे बङ्गाल पर अपना प्रभुत्व स्थापित करनेकी प्रबल आशा उनके हृदयमें जागरित हो उठी थी। उन्होंने २६ वर्ष तक वीरभूममें राज्यशासन किया था।

आसदज़माकी मृत्युके बाद उनका भाई बहादुर खाँ राजपद पानेका दावा किया। किन्तु आसदज़माकी विधवा बेगम उसमें बाधा दे न्यायपूर्वक अपने पुत्र लालविहारीको सिंहासन पर बैठानेकी प्रार्थना अंग्रेजोंसे की। लालविहारी सिंहासन पर बैठे, फिर भी वे नाबालिग थे। राजकार्य उनकी माताको ही देखना पड़ता था। किन्तु कुचक्री बहादुरने नाना तरहसे कुचक्र चला कर राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया। सन् १७८६ ई०में बहादुरकी मृत्यु हुई। इसके बाद उनका पुत्र महम्मदज़मा खां सिंहासन पर बैठा।

सन् १७९० ई०में महम्मद ज़माने राज्यभार ग्रहण किया। उनकी नाबालिगीकी हालतमें दीवान लाला रामनाथ और मिष्टर किटिं वीरभूमका राजकार्य करते थे। पीछे बालिग हो कर उन्होंने स्वयं बड़ी योग्यताके साथ राज्यकार्य संभाला। उनके राजत्वकालमें वीरभूममें सात लाख मनुष्योंका वास था। इनमें हिन्दुओंकी संख्या एकतृतीयांश थी (सच पूछिये तो दो तृतीयांश)। लाला रामनाथकी भी यथेष्ट क्षमता थी। इन्होंने सिउड़ी शहरसे ६ मीलकी दूरी पर भाण्डीरवन नामक स्थानमें भाण्डीश्वर नामक शिवमन्दिरकी प्रतिष्ठा कराई थी।

महम्मदज़मा खांने सन् १८०२ ई०में पितृसिंहासन और सन् १८१२ ई०में अंग्रेजोंसे सनद पाई थी। सन् १८५५ ई०में ज़हरज़मा नामक एक पुत्रको रख कर उन्होंने इहलोकसे प्रस्थान किया।

वीरभूमका प्राचीन राजवंश और राज्यशासनके सम्बन्धमें बहुतेरी ऐतिहासिक कहानियां हैं। किन्तु ऐतिहासिक आज भी इसके सम्बन्धमें उपादान संग्रह करनेमें प्रवृत्त नहीं हुए हैं।

सिउड़ीमें ही वीरभूमका ज़िला सदर प्रतिष्ठित है। यहां ही वीरभूमका प्रधान नगर है। मयूराक्षि नदी इसके तीन मीलकी दूरी पर प्रवाहित होती है। सिउड़ीसे ११ मीलकी दूरी पर सैंथिया रेलवेका स्टेशन है। यह शहर कलकत्तेसे १३१ मीलकी दूरी पर अवस्थित है।

वीरवती (सं० स्त्री०) वीरवत्-ङीप्। १ मांसरोहिणी लता। (भावप्रकाश) २ विक्रमपुराधिपति विक्रमतुङ्ग नृपतिके कर्मचारी वीरवरकी कन्या। (कथासरित्सा० ५३।६०) ३ वीरविशिष्टा, वीरयुक्ता।

वीरवत्सा (सं० स्त्री०) वीरो वत्सः पुत्रो यस्याः। वीर जननी, वीरमाता।

वीरवर (सं० त्रि०) वीर-श्रेष्ठार्थे वर। वीरश्रेष्ठ, अतिशय वीर।

वीरवरप्रताप (सं० पु०) राजपुत्रभेद।

वीरवल्ली (सं० स्त्री०) देवदाली नामकी लता। (वैद्यकनि०)

वीरवर्मन् (सं० पु०) व्यक्तिविशेष।

वीरवह (सं० पु०) वीर-वह-णिच्। १ स्तोत्र द्वारा वहनीय। २ वह जो घोड़ों द्वारा खींचा जाये, रथ। (ऋक् ७।६०।५) ३ शूरवहनकारी।

वीरवाक्य (सं० क्ली०) वीरस्य वाक्यं। वीरकी उक्ति।

वीरवामन (सं० पु०) एक ग्रन्थकारका नाम। अभिनव गुप्तने इसका उल्लेख किया है।

वीरविक्रम (सं० पु०) १ राजपुत्रभेद। (त्रि०) २ वीरदर्प।

वीरविद् (सं० त्रि०) शक्तिसम्पन्न, कर्मठ। (अथर्व ११।६।२५)

वीरविद्रावक (सं० पु०) शूद्रद्रव्य द्वारा होमकर्त्ता, वह जो शूद्रोंके द्रव्यादिसे होम करता हो।

वीरविष्ट (सं० क्ली०) कृत्रिम श्लोकभेद। शूरश्लोक देखो।

वीरवृक्ष (सं० पु०) वीर नामको वृक्षः। १ भल्लातक, भिलावाँ। २ अर्जुन वृक्ष। ३ विद्यान्तर या विन्यांतर नामक वृक्ष। ४ सावाँ नामक धान्य। पर्याय—वीरतरु, वृक्षदात, भस्मरोहक।

वीरवृन्दभट्ट—वृन्द नामक वैद्यक ग्रन्थके प्रणेता। वृन्द देखो।

वीरवेतस (सं० पु०) अम्लवेतस, अम्लबेंत।

वीरव्यूह (सं० पु०) वीरों द्वारा रचित व्यूह। (रामायण ६।७०।१८)

वीरव्रत (सं० त्रि०) १ दृढ़संकल्प। 'वीरव्रतः दृढ़संकल्पः' (भाग० ५।१७।२ स्वामी) २ नैष्ठिक ब्रह्मचारी वह ब्रह्मचारी, जो बहुत ही निष्ठा तथा आचारपूर्वक रहता हो। (पु०) ३ पुराणके अनुसार मधुके एक पुत्रका नाम, जो सुमनाके गर्भसे उत्पन्न हुआ था। (भागवत ५।१५।१५)

वीरशय (सं० पु०) वीरोंके सोनेका स्थान, रणभूमि, युद्धक्षेत्र, लड़ाईका मैदान। (भागवत ३।१।७।१०)

वीरशयन (सं० क्ली०) वीराणां-शयनं। वीरोंकी शय्या, वीरशय्या, रणभूमि।

वीरशय्या (सं० स्त्री०) वीराणां शय्या। रणभूमि। (भागवत १०।४०।४४)

वीरशर्मन् (सं० पु०) पौण्ड्रभेद। (कथासरित्सा ४७।१०६)

वीरशाक (सं० पु०) बथुआका साग।

वीरशायी (सं० त्रि०) वीर-शी-णिनि। वीरशय, रणभूमि, वीर जहाँ सोते हैं। (भारत ११ पर्व)

वीरशुष्म, (सं० त्रि०) शत्रुओंके क्षेपण करनेमें समर्थ बलवाला, जो शत्रुओं पर शस्त्र चलानेमें बलशाली हो।

वीरशैव (सं० पु०) शिवोपासकभेद। शिव और लिङ्गायत शब्द देखो।

वीरसरस्वती—एक प्राचीन कवि।

वीरसिंह—१ तोमरवंशसम्भूत एक राजा। देववर्माका पुत्र और कमलसिंहका पौत्र। ये सन् १३७५ ई०में विद्यमान थे। दुर्गाभक्तितरङ्गिणी, नृसिंहोदय और वीरसिंहावलोक नामक तीनों ग्रन्थ इन्हींके द्वारा रचे बताये जाते हैं।

२ गङ्गादेशके सामन्त राजा। ३ गङ्गवंशीय एक राजा। ४ गुहिलवंशीय एक नृपति। ५ कच्छपघातवंशी एक राजा। ६ तोमरवंशीय एक राजा, जिनकी ग्वालियर (गोपाचल)में राजधानी थी।

७ वर्द्धमानके एक राजा। भारतचन्द्ररायने इनकी कन्याको विद्यारूपमें विद्यासुन्दरकी कल्पना की है।

८ देवपुरके राजा वीरमणिके भ्राता। इन्होंने राजा वीरमणिकी आज्ञासे रामचन्द्रके अश्वमेधीय अश्व हरण किया था। अतएव हनुमानके साथ इनका भयङ्कर युद्ध हुआ था। इस युद्धमें महादेवने स्वयं उपस्थित हो वीरसिंहका पक्ष ले कर युद्ध किया था। (पद्मपुरा० पातालख० २४, २५, २६ अ०)

वीरसिंहदेव—एक हिन्दू राजा। राजा प्रतापरुद्रका पौत्र और मधुकर साहका पुत्र। वीरमित्रोदयप्रणेता मित्रमिश्र इनकी सभामें विद्यमान थे।

वीरसिंहदैवज्ञ - ग्रन्थालङ्कार नामक ज्योतिः ग्रन्थप्रणेता।

वीरसिंहावलोकन (सं० क्ली०) वैद्यकग्रन्थभेद। वीरसिंहने यह ग्रन्थ प्रणयन किया।

वीरसुख (सं० क्ली०) वीरका आनन्द।

वीरसू (सं० स्त्री०) वीरान् पुत्रानेव सूते इति वीर सु-क्विप्। वह माता, जो वीर प्रसव करती है। २ पुत्रप्रसविनी। (ऋक् १०।८६।४४)

वीरसूत्व (सं० क्ली०) वीरप्रसवित्व।

वीरसेन (सं० पु०) वीर सेना यस्य। १ पुण्यश्लोक नल राजाका पिता। (भारत वनप० ५२ अ०) २ आरुक या आड़ नामकी जड़ी जो हिमालयमें होती है। ३ हस्तिवैद्यक नामक ग्रन्थके रचयिता। ४ पाटलिपुत्रराज द्वितीय चन्द्रगुप्तके मन्त्री। ये एक सुकवि थे। इनका दूसरा नाम शाव था। ५ दाक्षिणात्यके चन्द्रवंशीय एक राजा। इनका वंशधर ब्रह्मक्षत्रियकुलचूड़ा सामन्तसेनसे बङ्गालके सेनराजवंशकी प्रतिष्ठा हुई थी। ६ भालुसुखारा।

वीरसेनज (सं० पु०) वीरसेनात् जायते इति जन ड। वीरसेन राजाका पुत्र, नल राजा।

वीरसोम (सं० पु०) एक प्राचीन ग्रन्थकार।

वीरस्थ (सं० त्रि०) १ वीरकार्य्यमें प्रवृत्त। २ वह पशु, जो यज्ञके लिये लाया गया हो।

वीरस्थान (सं० क्ली०) १ वलवत्स्थान। २ साधकोंका एक तरहका आसन जो वीरासन कहलाता है। (भारत-वनप०) ३ स्वर्गलोक।

वीरस्थायिन् (सं० त्रि०) वीरस्थानस्थित।

वीरस्वामिन् (सं० पु०) एक दानवका नाम। (कथासरित्सा० ४७।१५)

वीरस्वामीभट्ट—मनुसंहिता-भाष्यकार मेधातिथिके पिता।

वीरहत्या—वीरस्य पुत्रस्य हत्या। १ पुत्रहत्या। (मनु ११।४१) २ वीरकी हत्या, वीरका नाश।

वीरहन् (सं० पु०) वीरान् हन्तीति हन-क्विप्। १ नष्टाग्निब्राह्मण, वह अग्निहोत्री ब्राह्मण, जिसकी अग्नि किसी कारणसे बुझ गई हो। २ विष्णु। (त्रि०) ३ वीरहन्ता, वीरहननकारी।

वीरहोत्र (सं० पु०) एक जनपदका नाम। मार्कण्डेयपुराणके अनुसार यह जनपद विन्ध्यपर्वत पर था।

वीरा (सं० स्त्री०) वीर टाप्। १ मुरा। २ क्षीरकाकोली। ३ आमलकी, आँवला। ४ एलवालुका, एलुवा। ५ पतिपुत्रवती, वह स्त्री जिसके पति और पुत्र हों। ६ रम्भा। ७ विदारीकन्द। ८ दुग्धिका, शतावर। ९ मलपू। १० क्षीरविदारी। (मेदिनी)

किसी किसी पुस्तकमें मुरा स्थानमें सुरा और विदारी स्थानमें गम्भारी देखा जाता है।

११ काकोली, महाशतावरी। १२ गृहकन्या। १३ ब्राह्मी। १४ अतिविषा। (राजनि०) १५ सोसमका वृक्ष, शिंशिपा वृक्ष। (रत्नमाला) १६ करन्धमराजपत्नी। (मार्कण्डेयपुराण १२३।१) १७ नदीविशेष। (भारत ६।९।२२) १८ विक्रमशालिनी। (मार्कण्डेयपुराण १२५।७) १९ घिकवार। २० जटामांसी। २१ भूम्यामलकी, भूँई आँवला। २२ भूमिकुष्माण्ड। २३ पृश्निपर्णी, पिठवन। २४ गृहकुला। २५ कृष्णातिविषा, काला अतिविषा।

वीराचारी (सं० पु०) एक प्रकारके वाममार्गी या शैव, जो अपने इष्टदेवताओंकी वीरभावसे उपासना करते हैं। ये लोग मद्यको शक्ति और मांसको शिवस्वरूप मानते हैं और इन दोनोंके भक्षोंको भैरव समझते हैं। ये लोग चक्रमें बैठ कर पूजन करते हैं और बीच बीच किसी स्त्रीको काली मान कर उस पर मद्य-मांस आदि चढ़ाते हैं। ये लोग प्रायः शव मुर्दा ला कर उसकी पूजा करते हैं और उसीसे अनेक प्रकारके साधन और पूजन करते हैं। विस्तृत विवरण पश्वाचारी शब्दमें देखो।

वीरान्तक (सं० पु०) १ वह जो वीरोंका नाश करता हो। २ अर्जुनवृक्ष।

वीराद्र (सं० पु०) अर्जुनवृक्ष।

वीरान (फा० वि०) १ उजाड़ा हुआ, जिसमें आबादी रह गई हो। जैसे—यह बस्ती वीरान हो गई है। २ जिसकी शोभा नष्ट हो गई हो, श्रीहीन।

वीरानक (सं० क्ली०) ग्रामभेद।

वीरापुर (सं० क्ली०) नगरभेद।

वीराम्ल (सं० पु०) अम्लवेत ।

वीरावतच्छदा (सं० स्त्री०) कदलीवृक्ष, केलेका वृक्ष ।

वीरादक (सं० पु०) आदक या आढ़ नामकी जड़ी, जो हिमालयमें होती है ।

वीराशंसन (सं० क्ली०) वीरान् प्रशंसयति अद्य हनिष्यामि वा नवेति चिन्तां जनयतीति वा शंस-णिच्-ल्यु । . अतिभयप्रद युद्धभूमि, वह युद्धभूमि जो बहुत ही भीषण और भयानक जान पड़ती हो ।

वीराष्टक (सं० पु०) स्कन्दानुचरभेद, कार्त्तिकेयके एक अनुचरका नाम ।

वीरासन (सं० क्ली०) वीराणां साधकानामासनं । १ साधकोंका एक आसन । इसी आसन पर बैठ कर साधक साधना किया करते हैं । २ वीरस्थान । ३ उद्वार-स्थान ।

वीरिण (सं० पु०) वीरणतृण, (Andropogon-muri-tons) ।

वीरिणी (सं० स्त्री०) १,वीरण प्रजापतिकी कन्या असिक्नी जो दक्षको ब्याही थी । वीरः पुत्रोऽस्यास्तीति वीर-इनि ङीप् । २ वह स्त्री जिसे पुत्र हों, पुत्रवती । (ऋक् १०।८६।९) ३ एक प्राचीन नदीका नाम ।

वीरुध (सं० स्त्री०) विशेषेण रुणद्धि वृक्षान्तरान् वि-रुध क्विप् । 'अन्येषामपीति दीर्घः, अथवा विरोहतीति वारुन्, विपूर्वस्य रुहेच क्विपि धकारो विधीयते (इति काशिका ७।३।५३) १ विस्तृता लता । पर्याय—गुल्मिनी, उलप, वीरुधा, प्रतना, कक्ष ।

२ ओषधि । (ऋक् १।६।७) (पु०) ३ वृक्षमात्र ।

(ऋक् ९।११३।२)

भागवतटोकामें लता और वीरुधका भेद इस तरह लिखा है—

"वनस्पत्योषधिलता त्वक्सारा वीरुधो द्रुमाः ।"

(भागवत ३।१०।१)

जो बिना फूलके फल देते हैं वह वनस्पति कहलाती है । फल पकने पर जो मर जाती है, वह ओषधि, जो आरोहणका अपेक्षा रखती है, वह लता और जो सब लताएं काठिन्य द्वारा आरोहणकी अपेक्षा नहीं करती है वह वीरुध कहलाती है । ४ जिरनी । ५ पत्ता । ६ कक्ष ।

वीरुधि (सं० स्त्री०) लताभेद । (ऋक् १० ५४।८७)

वीरेण्य (सं० त्रि०) अतिशय वीर । (ऋक् १०।४।१०)

वीरेश (सं० पु०) वीराणामोशः । शिव, वीरेश्वर ।

वीरेश्वर (सं० पु०) वीराणामोश्वरः । १ महादेव । काशीखण्डमें वीरेश्वर शिवके विषयमें वर्णन है ।

(काशीख० ७६-८३ अ०)

निःसन्तान व्यक्ति यदि संकल्प कर एक वर्ष तक वीरेश्वर महादेवका स्तव सुने, तो उनको पुत्रसन्तान पैदा होता है ।

२ मैथिलोंकी दशकर्मपद्धतिके कर्त्ता । ३ मैथिलोंकी दशकर्मपद्धति । ४ आनन्दीगो टोकाकर्त्ता । ५ ज्येष्ठा-पूजाविलासके रचयिता । ६ दिवाकरपद्धतिप्रकाश-विवरणके प्रणेता । ७ आह्निकमञ्जरी टीकाके रचयिता । ये हरिपण्डितके पुत्र और शिवपण्डितके पौत्र थे । पुण्यस्तम्भमें ये रहते थे । सन् १५६८ ई०में इन्होंने ग्रन्थ रचना की थी । ८ विवादार्णवभञ्जनसङ्कलयिता । ९ एक धर्मशास्त्रकार ।

वीरेश्वरपण्डित—१ रसरत्नावली नामक अलङ्कारशास्त्रके प्रणेता । २ जगन्नाथपण्डितराजके गुरु ।

वीरेश्वरभट्ट—१ संज्ञयनस्थनिरूपणके प्रणेता । विश्वनाथके पुत्र । २ ज्योतिश्चन्द्रोदयगृन एक कवि ।

वीरेश्वर मौद्गल्य—अन्योक्तिशतकप्रणेता । ये द्राविड़के रहनेवाले हैं । इनके पिताका नाम हरि है ।

वीरेश्वरसूनु—वामवापयावलीके रचयिता ।

वीरेश्वरानन्द—योगरत्नाकरके प्रणेता । हरिहरानन्दके पुत्र ।

वीरोज्भा (सं० पु०) होमकर्त्ता, होम कर्मैयाम्ना ।

वीरोपजीविक—जिनका उपजीविका अग्निहोत्र है । अर्थात् जो अग्निहोत्र द्वारा अपनी जीविका-निर्वाह करते हों ।

वीरुत्सा (सं० स्त्री०) स्पर्धयशोपेच्छा । (अथर्व ५।७।१)

वीर्य (सं० क्ली०) वीरे साधु तत्र साधुः इति यत्, यद्वा वीर्यतेऽनेनेति वीर विक्रान्ती (भ्वादि पर० । वा ३।१।९७) इति यत्, यद्वा वीरस्य भावः यत् । १ चरमधातु । पर्याय—शुक्र, तेजः, रेतः, बीज, इन्द्रिय । (अमर)

शुक्र देखो ।

२ द्रव्यगत शक्ति, पृथिव्यादि पाञ्चभौतिक पदार्थोंके सार-भागको वीर्य कहते हैं । यह दो तरहका है निश्चय-क्रियात्मक और अनिश्चयक्रियात्मक ।

भावप्रकाशमें लिखा है—द्रव्यमात्रका वीर्य्य दो तरहका होता है। क्योंकि त्रिभुवन आग्नेय और सोम-गुणात्मक है। वीर्यका गुण—उष्णवीर्य, वायु और कफ-नाशक है और पित्त तथा जीर्णताका उत्पादक है; शीत-वीर्य वातश्लेष्मिक रोगजनक और पित्तनाशक है। दूसरा—उष्णवीर्य, भ्रम, पिपासा, ग्लानि, घर्म तथा दाह उत्पादक है। शीतवीर्य सुखजनक, जीवन-प्रदायक, मलस्तम्भकारक तथा रक्तपित्तका प्रसन्नता-कारक है।

सुश्रुतमें लिखा है, कि कुछ लोगोंका कहना है, कि वीर्य ही प्रधान है। क्योंकि वीर्यसे ही औषधकी क्रियायें सम्पन्न होती हैं। जगत्, अग्नि और सोमगुणविशिष्ट होनेकी वजह उनसे उत्पन्न औषधका वीर्य दो तरहका होता है—उष्ण और शीत। कुछ लोगोंका यह कहना है, कि वीर्य आठ प्रकारका होता है। जैसे—उष्ण, शीत, स्निग्ध, रूक्ष, विशद, पिच्छिल, मृदु और तीक्ष्ण। ये सब वीर्य अपने बल और गुणके उत्कर्षके कारण रसको अभिभूत कर अपने काम किया करते हैं।

उष्ण और तीक्ष्णवीर्य द्वारा वायुका, शीत, मृदु या पिच्छिल वीर्य द्वारा पित्तका और तीक्ष्ण, रूक्ष या विशद वीर्यसे श्लेष्मका नाश होता है। गुरुपाकसे वातपित्त और लघुपाकसे श्लेष्मा प्रशमित होती है। मृदु, शीतल और उष्ण गुण स्पर्श द्वारा, स्निग्ध और रूक्ष गुण द्वारा और पिच्छिल तथा विशद गुण दर्शन और स्पर्शन द्वारा जाना जा सकता है। (सुश्रुत सूत्रस्था० ४१ अ०)

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है, कि दूसरेके वीर्य द्वारा अकामत उदरपात करने पर प्रायश्चित्तसे शुद्ध हो जाता है। किन्तु जो इच्छापूर्वक उदरपात करते हैं, उनकी कर्मभोग द्वारा ही शुद्धि होती। ये देव और पितृकार्य्यके अधिकारी नहीं होते और साठ हजार वर्ष नरकमें रहनेके बाद शुद्ध होते हैं।

(ब्रह्मवै० श्रीकृष्णजन्मख० ४७ अ०)

वीर्यकाम (सं० त्रि०) प्रमादकामनाकारी। (ऐतरेयब्रा०२।५)

वीर्यकृत् (सं० त्रि०) वीर्य कृ-क्विप्। वीर्यकारी, बलकारी। (शुक्लयजुः १०।२५ महीधर)

वीर्यकृत (सं० त्रि०) प्राप्तवीर्य। बलवन्त।

(तैत्तिरीयब्रा० २।७।१७।३)

वीर्यचन्द्र (सं० पु०) राजभेद। इनकी कन्या वीरा-राजा-करन्धमको ब्याही हुई। (मार्क०पु० १२३।१)

वीर्यज (सं० पु०) वीर्याज्जायते इति जन-ड। पुत्र।

(भाग० ३।५।१६)

वीर्यतम (सं० त्रि०) वीर्यवत्तम, श्रेष्ठवीर्यशाली, वह जो बहुत बड़ा बलवान् हो।

वीर्यधर (सं० पु०) वर्षपुरुषभेद। ये कुशद्वीपमें रहने-वाले क्षत्रिय हैं। (भाग० ५।२०।११)

वीर्यपन (सं० त्रि०) १ वीर्यशुल्क। २ विदर्भकन्या।

(भाग० ४।२८।२८)

वीर्यपारमिता (सं० स्त्री०) पारमिता देखो।

वीर्यप्रवाद (सं० क्ली०) जैनियोंके १४ पूर्ववादोंके अन्तर्गत तीसरा पूर्व।

वीर्यभद्र (सं० पु०) बौद्धभेद। (तारनाथ)

वीर्यमत्त (सं० त्रि०) १ बलदृप्त। २ तेजोन्मत्त।

वीर्यमित्र एक प्राचीन कवि।

वीर्यवत् (सं० त्रि०) वीर्यमस्यास्तीति वीर्य मतुप् मस्य वत्वम्। १ बलवान्, शूर, वीर्यशाली, वीर्ययुक्त। २ मांसल। (शब्दरत्नावली)

वीर्यवत्तरत्व (सं० क्ली०) अधिकतर वीर्यवत्त।

वीर्यवत्त्व (सं० क्ली०) वीर्यवानका भाव या धर्म। बलशालीका भाव या धर्म, वीरत्व। (भारत विराटपर्व)

वीर्यवाही (सं० त्रि०) वीर्यवहनकारी।

(शार्ङ्ग० स० १।५।२४)

वीर्यवृद्धिकर (सं० क्ली०) वीर्याणां वृद्धिकरं। शुक्र-वर्द्धक औषधादि। पर्य्याय—वृष्य, वाजीकरण, बीज-कृत्। (राजनिर्घण्ट)

वीर्यशुल्क (सं० त्रि०) वीर्यपण।

वीर्यशुल्का (सं० स्त्री०) प्रतिज्ञामें आबद्ध। राजा जनकने अयोनिजा जानकीको वीर्यशुल्का (अर्थात् जो इस धनुष पर ज्यारोपण आदि कर सकेंगे, वही इस कन्याको लाभ कर सकेंगे। इस तरहकी पणमें आबद्ध) रखा था।

वीर्यसत्त्ववत् (सं० त्रि०) वीरत्वयुक्त। मनुष्यत्व-विशिष्ट। (भारत० वन१०)

वीर्यसह (सं० पु०) राजा सौदासका एक पुत्र।

(रामा० ७।६५।१०)

वीर्यसेन—बौद्ध यतिभेद। ये वीरसेन नामसे भी परिचित थे।

वीर्यहारी—एक यक्षका नाम, जो दुःसह नामक यक्षकी कन्याके गर्भसे किसी चोरके वीर्यसे उत्पन्न हुआ था। कहते हैं, कि जो लोग कदाचारी होते हैं या बिना हाथ पैर धोये रसोई घरमें जाते हैं, उनके घरमें यह यक्ष अपने और भी भाइयोंके साथ रहता है। सिवा इसके जिसके घरमें रात दिन कलह विवाद होता है, वहां और गाय आदि पशुओंके चरागाहमें तथा खलिहानमें भी इसकी गतिविधि रहती है।

वीर्यान्तराय (सं० पु०) जैनधर्मके अनुसार वह पापकर्म जिसका उदय होने पर जीव हृष्टपुष्ट रहते हुए भी शक्तिविहीन हो जाता है और कुछ पराक्रम नहीं कर सकता।

वीर्या (सं० स्त्री०) वीर्याणि अनयेति वृ-यत् (अचो यत् इति यत् ततटाप्) वीर्य। (भरत)

वीर्यावत् (सं० त्रि०) वीर्यवत्।

वीवध (सं० पु०) १ धान्यतण्डुलादि, चावल आदि अन्न। (माघ २।६४) २ पथ। (भरत) ३ क्षीर आदिका भार। (शब्दरत्ना०) ४ वार्ता।

वीवधिक (सं० त्रि०) वीवधेन हरतीति विवध-ष्ठन् (विभाषा वीवधविवधात्। पा ४।४।१७) भारवाहक, काँवरि ढोनेवाला।

वीवर (Beaver)—स्तन्यपायी जन्तुविशेष।

वीसर्प (सं० पु०) विसर्प देखो।

वीहार (सं० पु०) विहरन्त्यत्रेति वि-हृ-घञ् उपसर्गस्य दीर्घः। १ महालय, बौद्धमन्दिर। २ विहार।

वुजन—१ मुद्रित होना। २ छिद्र या गड्ढेको भरवा देना।

वुहन—१ आलस्य, जमाना। २ सान्त्वना वाक्यसे शोकाभिभूत व्यक्तिको सुस्थ करना।

वृद्धि (सं० स्त्री०) वृध-क्तिन्। अष्टवर्ग गुणविशेष। वर्णनका वृद्धि शब्द देखो।

वृंहण (सं० त्रि०) वृंहि-ल्यु। पुष्टिकारक। (शब्दच०) २ एक प्रकारका धूमपान। (भावप्र०) (स्त्री०) ३ अश्वगन्धा। ४ कपिलद्राक्षा, मुनक्का। ५ भूमिकुष्माण्ड, भुंई कुम्हड़ा। (वैद्यकनि०) ६ वराहक्रान्तिसे पकाया यवागू। (चरक सूत्रस्था० २ अ०)

वृंहणवस्ति (सं० स्त्री०) निरूह वस्तिभेद। (भावप्र०)

वृंहणीयवर्ग (सं० पु०) वृंहणार्थ हितकर कषायवर्ग, द्रव्यगणभेद, यह गण जैसे—क्षीरलता, खोराई, बेड़ेला, काकोली, क्षीरकाकोली, श्वेतबेड़ेला, पीतबेड़ेला, वनकपास, भूमिकुष्माण्ड। (चरक सूत्रस्था० ४ अ०)

वृंहित (सं० क्ली०) वृंहि-क्त। हस्तिगर्जन, हाथीका चिंघाड़। पर्याय—करिगर्जित।

वृक (सं० पु०) वृणोतीति वृ (सृवृभूशुषिमुषिभ्यः कक्। उण् ३।४१) १ कुत्तेके आकारवाला हरिणको मारनेवाला जन्तुविशेष। हुंड़ार, भेड़िया। (राजनि०) २ काक। (जटाधर) ३ चातक। ४ बकवृक्ष। ५ शृगाल, स्यार, गीदड़। (मनु ८।२३५) ६ क्षत्रिय। ७ चोर। ८ वज्र। ९ अगस्तका पेड़। १० गंधाबिरोजा। ११ सरलद्रव।

वृककर्मन् (सं० पु०) एक असुरका नाम।

वृकखण्ड (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम।

वृकगर्त्ता (सं० स्त्री०) एक प्राचीन जनपदका नाम।

वृकग्राह (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम। मार्कण्डादि देखो।

वृकजम्भ (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम। मार्कण्ड[illegible] भी।

वृकताति (सं० स्त्री०) १ वृककी तरह हिंस्र[illegible]। (ऋक् २।३४।[illegible]) [illegible]

वृकति (सं० स्त्री०) भरपेट [illegible]। २ निष्ठुर, [illegible] कारी। ३ श्रीकृष्णके एक पुत्रका नाम। ४ [illegible] पुत्रका नाम। (हरिवंश)

वृकतेजस (सं० पु०) शिनिके एक पुत्रका नाम।

वृकदेव (सं० पु०) पुराणानुसार एक राक्षसका नाम। इसकी कन्या सानन्दिनी कुम्भकर्णको ब्याही थी।

वृकदंश (सं० पु०) वृकान् दशतीति दन्श-अण्। कुत्ता। (हेम)

वृकदीप्ति (सं० स्त्री०) कृष्णके एक पुत्रका नाम।

वृकदेव—वसुदेवके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश)

वृकदेवा (सं० स्त्री०) वृकदेवा, देवककी कन्या और वसुदेवकी पत्नीका दूसरा नाम।

वृकद्वरस् (सं० त्रि०) संवृतद्वार। (ऋक् २।३०।४ सायण)

वृकधूप (सं० पु०) वृकोऽनेकधूप एव धूपः। वृकः सरलद्रवस्तत्प्रधानो धूपो वा। वह धूप जो अनेक प्रकारके सुगन्धि द्रव्योंकी सहायतासे तय्यार किया गया हो, दशाङ्गादिधूप। २ सरल वृक्षका निर्यास, तारपीन।

वृकधूर्त्त (सं० पु०) धूर्त्तो वृकः। राजदन्तादित्वात् पूर्वनिपातः। स्यार।

वृकनिवृत्ति (सं० पु०) कृष्णके एक पुत्रका नाम।
(हरिवंश)

वृकबन्धु (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम।

वृकरथ (सं० पु०) कर्णके एक भाईका नाम।
(भारत द्रोणपर्व)

वृकल (सं० पु०) श्लिष्टिके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश)

वृकला (सं० स्त्री०) १ नाड़ी। २ एक रमणीका नाम।
(पा ४।१।६६)

वृकवंचिक (सं० पु०) एक वैदिक ऋषिका नाम।

वृकस्थल (सं० क्ली०) ग्रामभेद। (भारत उद्योगपर्व)

वृका (सं० स्त्री०) १ अम्बष्ट या पाढा नामकी लता। २ प्राचीन कालका एक परिमाण, जो दो सूर्पोंके बराबर होता था।

वृकाक्षी (सं० स्त्री०) वृकस्याक्षीव अक्षि चिह्नं यस्याः। १ त्रिवृत्। २ निसोथ।

वृकाजिन (सं० पु०) एक वैदिक ऋषिका नाम।

वृकायु (सं० त्रि०) १ जङ्गली कुत्ता। २ चोर।
(ऋक् १०।१२३।४ सायण)

वृकाराति (सं० पु०) वृकस्य अरातिः। कुत्ता।

वृकारि (सं० पु०) वृकस्यारिः। कुत्ता।

वृकाश्व (सं० पु०) एक ऋषिका नाम। बहुवचनमें इनके वंशधरोंका बोध होता है।

वृकाश्वकि (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक एक ऋषिका नाम।

वृकास्य (सं० पु०) कृष्णपुत्रभेद। इन्हें वृकाश्व भी कहते हैं।

वृकोदर (सं० पु०) वृकस्येवोदरो यस्य यद्वा वृकः वृक नामको अग्निरुदरे यस्य। भीमसेन।

कहते हैं, कि भीमके पेटमें वृक नामकी विकट अग्नि थी, इसीसे उनका यह नाम हुआ।
(मत्स्यपु० ६५ अ०)

वृकोदरवत् (सं० त्रि०) वृकोदरव्याप्त।

वृक्क (सं० पु०) १ गुरदा। २ आगेवाला महीना।

वृक्कक (सं० पु०) मुत्राशय। (Kidney)

वृक्का (सं० स्त्री०) हृदय।

वृक्त (सं० त्रि०) व्रश्च-क्त। छिन्न, कटा हुआ।
(अमर)

वृक्तबर्हिस् (सं० त्रि०) स्तीर्णबर्हिस्। (ऋक् १।३।५ सायण) जिसने बर्हिः परिष्कार कर दिया है या बिछा दिया है।

वृक्ति (सं० स्त्री०) बुनाई।

वृक्या (सं० स्त्री०) वृकपत्नी।

वृक्ष (सं० पु०) व्रश्च छेदने (स्नुव्रश्चिकृत्यृषिभ्यः कित्। उण् ३।६६) इति स-सच कित्, वृक्षवरणे, अतो ऋच्या वृणोति वृक्ष इति सिद्धे प्रपञ्चार्थं व्रश्चि ग्रहणम्। स्थावरयोनिविशेष। पेड़।

हेमचन्द्रने वृक्षलता आदिकी ६ प्रकारकी जातिका निर्देश किया है। कुरण्ट आदि वृक्ष अग्रबीज, उत्पलादि मूलक, ईख आदि पर्वयोनि, सल्लकी आदि स्कन्धज, शाली आदि बीजरुह और तृण आदि संमुर्च्छजात—ये छः प्रकारके वृक्ष हैं।

खास कर वृक्ष उसे कहते हैं, जिसका एक ही मोटा और भारी तना होता है और जो जमीनसे प्रायः सीधा ऊपरकी ओर जाता है।

वृक्षकंद (सं० पु०) विदारीकन्द।

वृक्षक (सं० पु०) वृक्ष-कन्। १ क्षुद्रवृक्ष, छोटा पेड़। २ पेड़, दरख्त। ३ कुटका पेड़।

वृक्षकुक्कुट (सं० पु०) जङ्गली कुत्ता।

वृक्षखण्ड (सं० पु०) कुञ्ज।

वृक्षचन्द्र (सं० पु०) राजभेद। (तारनाथ)

वृक्षचर (सं० पु०) वृक्षे चरतीति चर ट। वानर, बन्दर।
(धनञ्जय)

ये एक वृक्षसे दूसरे वृक्ष पर सदा घूमते रहते हैं, इसीसे इनका नाम वृक्षचर पड़ा है।

वृक्षच्छाय (सं० क्लो०) बहूनां वृक्षाणां छाया, बहुत्वे नपुंसकत्वं। बहु वृक्षकी छायाका अर्थ अनेक वृक्ष की छाया है। एक या दो वृक्षकी छाया समझनेसे वृक्षच्छाया होता है। 'वृक्षाणां छाया' बहुवचनमें यह क्लीवलिङ्ग हो जाता है।

वृक्षतक्षक (सं० पु०) गिलहरी।

वृक्षतल (सं० क्लो०) वृक्षका निचला हिस्सा।

वृक्षदल (सं० क्लो०) वृक्षशाखा।

वृक्षधुर (सं० पु०) वृक्षोऽपि धुवस्तत् साधनं। सरलद्रुम, शीशम।

वृक्षनाथ (सं० पु०) वृक्षाणां नाथः। वटवृक्ष, बरगदका पेड़। (राजनि०)

वृक्षनिर्यास (सं० पु०) वृक्षस्य निर्यासः। वृक्षका निर्यास, वृक्षनिर्गत रस, पेड़का लासा या गोंद।

वृक्षपर्ण (सं० क्लो०) वृक्षस्य पर्णं। वृक्षका पत्ता, पेड़की पत्ती।

वृक्षपाक (सं० पु०) वटवृक्ष, बरगदका पेड़।

वृक्षपाल (सं० पु०) जङ्गली जाल।

वृक्षपुरी (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नगरका नाम।

वृक्षप्रतिष्ठा (सं० स्त्री०) स्मृतिशास्त्रविहित अश्वत्थ (पीपल) आदि वृक्षकी प्रतिष्ठा।

वृक्षभक्षा (सं० स्त्री०) वृक्षं भक्षयतीति भक्ष-अच् सत-टाप्। १ परगाछा नामका पौधा। २ वंदाक, बंदा।

वृक्षभवन (सं० क्लो०) वृक्षस्थितं भवनं। वृक्षकोटर, पेड़का खोढ़रा।

वृक्षभिद् (सं० स्त्री०) वृक्षं भिनत्तीति भिद्-क्विप्। वासी, बसूला, बढ़ईका अस्त्र।

वृक्षभेदिन् (सं० पु०) वृक्षं भिनत्तीति भिद्-णिनि। १ वृक्षाभन। २ कुल्हाड़ी।

वृक्षमय (सं० त्रि०) वृक्ष मयट् स्वरूपार्थे। वृक्षात्मक।

वृक्षमर्कटिका (सं० स्त्री०) वृक्षस्य मर्कटिका। अन्नु-लिलेप, काठविडाल।

वृक्षमूल (सं० क्लो०) वृक्षस्य मूलं। वृक्षका मूल, पेड़की जड़।

वृक्षमूलिक (सं० त्रि०) वृक्ष या पेड़के मूलमें रहकर रहनेवाला।

वृक्षरुह् (सं० पु०) वृक्षमुद्दिश्य भवतीति भू-क्विप्। अल-येतस, अन्धेत।

वृक्षराज् (सं० पु०) वृक्षाधिप, पीपलका पेड़।

वृक्षराज (सं० पु०) वृक्षाणां राजा, समासान्त टच्। १ वृक्षोंका राजा, श्रेष्ठ वृक्ष। २ पारिजात।

वृक्षरुहा (सं० स्त्री०) वृक्षे रोहतीति रुह-क, ततष्टाप्। १ कदम्बती, बन्दा, बंदाक। २ अमृतबेल। ३ जतुका नामकी लता। ४ विदारीकन्द। ५ कलही या बांदी नामका पौधा। ६ पुष्करमूल।

वृक्षवाटिका (सं० स्त्री०) वृक्षस्य वाटिका। १ अमात्य-गणिकागेहोपवन, उपवन, निकुञ्ज, बाग, बगीचा।

वृक्षवाटी (सं० स्त्री०) अमात्यगणिकाका उपवनयुक्त गृह।

वृक्षवास्यनिकेत (सं० पु०) एक पक्षीका नाम।

वृक्षशय (सं० पु०) गिरगिट।

वृक्षशायिक (सं० पु०) एक प्रकारका बन्दर।

वृक्षशायिका (सं० स्त्री०) काठबिडाल, गिलहरी।

वृक्षसंकट (सं० क्लो०) १ वृक्षराजियुक्त पतला या तंग चौड़ा पथ। २ वह पगडंडी जो घने वृक्षोंके बीचसे गई हो।

वृक्षसर्पी (सं० स्त्री०) वृक्ष पर रहनेवाली सांपिन या नागिन।

वृक्षस्वादक (सं० पु०) क्षीणपुण्यी, घुना।

वृक्षस्नेह (सं० पु०) वृक्षस्य स्नेहः। वृक्षनिर्गत रस, पेड़का लासा या गोंद।

वृक्षाग्र (सं० क्लो०) वृक्षका अग्रभाग या शिखरदेश।

वृक्षादन (सं० पु०) वृक्षमत्ति भक्षयतीति अद्-ल्यु। १ वृक्ष-भेदी। २ अश्वत्थवृक्ष, पीपलका पेड़। ३ पियालका वृक्ष। ४ कुल्हाड़ी। ५ मधुछत्र।

वृक्षादनी (सं० स्त्री०) वृक्षादन-स्त्रियां ङीप्। १ बांदा, बंदा। २ विदारीकन्द, भूंई कुम्हड़ा।

वृक्षाधिरूढक, वृक्षाधिरूढक (सं० क्लो०) आलिङ्गन।

वृक्षाम्ल (सं० क्लो०) वृक्षस्याम्लं। १ महाम्ल, इमली। २ तुक नामकी खटाई। ३ आम्रपुष्प। गुण—कटु,

कषाय, उष्ण और कफ, अर्श (बवासीर), तृष्णा, वायु, उदर, गुल्म, अतीसार और व्रणदोषनाशक है।

(पु०) वृक्षे अल्ला वस्य। ४ अमड़ा। ५ अम्लवेत।

वृक्षायुर्वेद (सं० पु०) वृक्षस्यायुर्वेदः। वृक्षोंका चिकित्सा-शास्त्र। मनुष्योंकी तरह वृक्षोंको विकृति आदि होने पर औषध द्वारा उनको भी चिकित्सा की जाती है।

वृहत्संहितामें वृक्षोंके रोपने, रखने और चिकित्सा आदिका विषय इस तरह लिखा है—किसी भी जला-शयके वृक्ष न रहनेसे यह मनोहर दिखाई नहीं देता, इस-लिये जलाशयके निकट वृक्ष आदि लगाना उचित है। नम्र मिट्टी सब तरहके वृक्षोंके लिये हितकारी है। इसमें तिल बोना चाहिये। अरिष्ट, अशोक, पुन्नाग, शिरीष और प्रियंगु आदि वृक्ष मङ्गलजनक हैं, इससे इनको गृहके निकट या बागमें लगाना चाहिये। कटहल (पनस), अशोक, केला, जामुन, अनार (दाड़िम), द्राक्षा (अंगूर), पालीवत, बीजपूरक और अतिमुक्तक, इन सब वृक्षोंका काण्ड या मूल गोबर द्वारा लेपन कर रोपण करना चाहिये। अथवा यत्नके साथ मूल काट कर केवल स्कन्ध हीको रोपना उचित है। जिन वृक्षोंकी शाखायें नहीं हैं, उनको शिशिर ऋतुमें, शाखा पैदा होने पर हिमागममें और सुन्दर स्कन्धसम्पन्न वृक्ष वर्षाऋतु-में किसी ओर प्रति रोपण करना चाहिये। घृत, उशीर, तिल, मधु, विड़ङ्ग, क्षीर और गोबर द्वारा मूलसे स्कन्ध तक लेप कर उनको पुनः रोपना और संक्रामण करना चाहिये। इस तरह रोपण करनेसे वृक्ष पनप जाता है।

ग्रीष्मकालमें सायं और प्रातःकालमें, शीत या जाड़ेमें दिनके मध्यभागमें और बरसातमें मिट्टी सूख जानेसे रोपे हुए वृक्षमें जल डालना चाहिये। जामुन, बेंत, वाणीर, कदम्ब, उदुम्बर (गूलर), अर्जुन, बीजपूरक, मृद्वीका, लकुच, दाड़िम, वञ्जुल, नक्तमाल, तिलक, पनस, तिमिर और आम्रातक, ये १६ प्रकारके वृक्ष अनूपज नामसे विख्यात हैं। उक्त वृक्ष २० हाथकी दूरी पर रोपण करनेसे उत्तम, १६ हाथकी दूरी पर मध्यम, १२ हाथकी दूरी पर रोपित होनेसे निकृष्ट होते हैं।

जो वृक्ष इससे कम दूरी पर रोपे जाते हैं, वे परस्पर स्पर्श तथा मूलमें मिश्रित हो जानेके कारण सम्यक् फल नहीं देते। शीत, वात और आतप आदि द्वारा भी वृक्षोंको रोग होता है। इससे उनके पत्ते पीले और पत्तोंमें इसकी वृद्धि नहीं होती और शाखाशोष और रसस्राव होता रहता है। पहले शस्त्र द्वारा इनका विशोधन कर विड़ङ्ग, घृत और पङ्क (पांक) द्वारा प्रलेप कर क्षीरजलसे सिंचना चाहिये, जिस वृक्षका फल नष्ट हो जाता हो, उसकी जड़में कुलथी, उड़द, मूंग, तिल और शीतल जलसे सिंचनेसे उसके फल और पुष्पकी वृद्धि होती है।

बकरी और भेड़की विष्ठाका चूर्ण दो आढ़क, तिल एक आढ़क, शक्तु एक प्रस्थ और सर्व तुल्य परिमाण गोमांस, ६४ सेर जलमें अच्छी तरह पर्यूषित कर वनस्पति, वल्ली, गुल्म और लतादिकी जड़को सिंचना चाहिये। इससे फल भी अधिक लगता है।

किसी बीजको दश दिनों तक दूधमें भावित कर पीछे हाथमें घी लगा कर मलने और पीछे गोबर बहुत बार रखने तथा सूअर और हरिणके मांससे विशेषरूपसे सुगंधित करना चाहिये। इसके बाद उसे मछली और शूकर-का वसासमन्वित कर मिट्टीमें गाड़ना या रोपना चाहिये। क्षीरसंयुक्त जल द्वारा अवसेचित होने पर यह कुसुम युक्त होगा। जौ, उड़द और तिलचूर्ण, शक्तु और पूतिमांसके जलसे सिंचन और हल्दीसे धूपित होनेसे इमली वृक्षमें फल निकल आते हैं। धन्याल्फोता, धात्री, धव और वासिकाका मूल और पलाशिनी, वेतस, सूर्य्य वल्ली, श्यामा, अतिमुक्तक और अष्टमूली—ये सब कपित्थ वृक्षमें फल उत्पन्न करनेके उपादान हैं। शुभ नक्षत्रमें वृक्षोंको रोपना चाहिये। रोहिणी, उत्तरफल्गुनी, उत्तरा-षाढ़ा और उत्तरभाद्रपद, मृगशिरा, चित्रा, अनु-राधा, रेवती, मूला, विशाखा, पुष्या, श्रवणा, अश्विनी और हस्ता—इन्हीं सब नक्षत्रोंमें वृक्ष रोपना उचित है। (वृहत्सं० ५५ अ०)

अग्निपुराणमें लिखा है, कि भवनके उत्तर प्लक्ष, पूर्व ओर वट, दक्षिणमें आम्र और पश्चिममें अश्वत्थ वृक्ष रोपण करनेसे कल्याणकर होता है। गृहके निकट दक्षिण ओर उत्पन्न कण्टकद्रुम सबके लिये मङ्गलदायक है। गृहके समीप उद्यान रखना उचित है। द्विज और चन्द्रकी

ये एक वृक्षसे दूसरे वृक्ष पर सदा घूमते रहते हैं, इसीसे इनका नाम वृक्षचर पड़ा है।

वृक्षच्छाय (सं० क्ली०) बहूनां वृक्षाणां छाया, बहुत्वे नपुंसकत्वं। यह वृक्षकी छायाका अर्थ अनेक वृक्षकी छाया है। एक या दो वृक्षकी छाया समझनेसे वृक्षच्छाया होता है। 'वृक्षाणां छाया' बहुवचनमें यह क्लीवलिङ्ग हो जाता है।

वृक्षतक्षक (सं० पु०) गिलहरी।

वृक्षतल (सं० क्ली०) वृक्षका निचला हिस्सा।

वृक्षदल (सं० क्ली०) वृक्षनाला।

वृक्षधुर (सं० पु०) वृक्षोऽपि धुवत्वात् साधनं। सरलद्रुम, शीशम।

वृक्षनाथ (सं० पु०) वृक्षाणां नाथः। वटवृक्ष, बरगदका पेड़। (राजनि०)

वृक्षनिर्यास (सं० पु०) वृक्षस्य निर्यासः। वृक्षका निर्यास, वृक्षनिर्गत रस, पेड़का लासा या गोंद।

वृक्षपर्ण (सं० क्ली०) वृक्षस्य पर्णं। वृक्षका पत्ता, पेड़की पत्ती।

वृक्षपाक (सं० पु०) वटवृक्ष, बरगदका पेड़।

वृक्षपाल (सं० पु०) जङ्गली जाल।

वृक्षपुरी (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नगरका नाम।

वृक्षप्रतिष्ठा (सं० स्त्री०) स्मृतिशास्त्रविहित अश्वत्थ (पीपल) आदि वृक्षकी प्रतिष्ठा।

वृक्षभक्षा (सं० स्त्री०) वृक्षं भक्षयतीति भक्ष-अण् मत- खाप्। १ परगाछ नामका पौधा। २ पंदाक, बंदा।

वृक्षभवन (सं० क्ली०) वृक्षनिर्मितं भवनं। वृक्षकोटर, पेड़का खोंड़ता।

वृक्षभिद् (सं० स्त्री०) वृक्षं भिनत्तीति भिद्-क्विप्। खारी, कुल्हाड़ा, काटनेका अस्त्र।

वृक्षभेदिन् (सं० पु०) वृक्षं भिनत्तीति भिद्-णिनि। १ वृक्षा- दन। २ कुल्हाड़ी।

वृक्षमय (सं० त्रि०) वृक्ष मयट् स्वरूपार्थे। वृक्षस्वरूप।

वृक्षमर्कटिका (सं० स्त्री०) वृक्षस्य मर्कटिका। अत्थु- लिङ्ग, कठगिलहरी।

वृक्षमूल (सं० क्ली०) वृक्षस्य मूलं। वृक्षका मूल, पेड़की जड़।

वृक्षमूलिक (सं० त्रि०) वृक्ष या पेड़के मूलसे सम्बन्ध रखनेवाला।

वृक्षरूह् (सं० पु०) वृक्षारूढ़ि भवतीति भू-क्विप्। अल- मेलस, अलबेल।

वृक्षराज (सं० पु०) वृक्षाधिप, पीपलका पेड़।

वृक्षराज (सं० पु०) वृक्षाणां राजा, समासान्त टच्। १ वृक्षोंका राजा, श्रेष्ठ वृक्ष। २ पारिजात।

वृक्षरुहा (सं० स्त्री०) वृक्षे रोहतीति रुह-क नमटाप्। १ बन्दयन्गो, बन्दाक, बंदाक। २ मधुपर्णी। ३ अमृता नामकी लता। ४ विदारीकन्द। ५ कमही या कंघी नामका पौधा। ६ पुष्करमूल।

वृक्षवाटिका (सं० स्त्री०) वृक्षस्य वाटिका। १ अमात्य- गणिकागेहोपवन, उपवन, निकुञ्ज, बाग, बगीचा।

वृक्षवाटी (सं० स्त्री०) अमात्यगणिकाका उपवनवेष्टित गृह।

वृक्षशाख्यनिकेत (सं० पु०) एक यक्षका नाम।

वृक्षशा (सं० पु०) गिरगिट।

वृक्षशायिक (सं० पु०) एक प्रकारका बन्दर।

वृक्षशायिका (सं० स्त्री०) कठबिडाल, गिलहरी।

वृक्षसंकट (सं० क्ली०) १ वृक्षादिवेष्टित पतला या कम चौड़ा पथ। २ वह पगडंडी जो घने वृक्षोंके बीचसे गई हो।

वृक्षस्था (सं० स्त्री०) वृक्ष पर रहनेवाली नागिन या मालिन।

वृक्षसारक (सं० पु०) श्रोणपुष्पी, गूमा।

वृक्षस्नेह (सं० पु०) वृक्षस्य स्नेहः। वृक्षनिर्गत रस, पेड़का लासा या गोंद।

वृक्षाग्र (सं० क्ली०) वृक्षका अग्रभाग या शिखरदेश।

वृक्षादन (सं० पु०) वृक्षमपि नाशयतीति अद-ल्यु। १ वृक्ष- भेदी। २ अश्वत्थवृक्ष, पीपलका पेड़। ३ पियालका वृक्ष। ४ कुल्हाड़ी। ५ मधुछत्र।

वृक्षादनी (सं० स्त्री०) वृक्षादन-स्त्रियां ङीप्। १ बन्दा, बांदा। २ विदारीकन्द, भुंई कुम्हड़ा।

वृक्षादिरुहक, वृक्षाधिरूढक (सं० क्ली०) मालिङ्गन।

वृक्षाम्ल (सं० क्ली०) वृक्षस्याम्लं। १ महाम्ल, इमली। २ वृक्ष नामकी खटाई। ३ आम्रवृक्ष। गुण—कटु,

कषाय, उष्ण और कफ, अर्श (बवासीर), तृष्णा, वायु, उदर, गुल्म, अतीसार और व्रणदोषनाशक है।

(पु०) वृक्षे अस्ते यस्य। ४ अम्मड़ा। ५ अम्लवेंत।

वृक्षायुर्वेद (सं० पु०) वृक्षस्यायुर्वेदः। वृक्षोंका चिकित्सा-शास्त्र। मनुष्योंकी तरह वृक्षोंको विकृति आदि होने पर औषध द्वारा उनकी भी चिकित्सा की जाती है।

वृहत्संहितामें वृक्षोंके रोपने, रखने और चिकित्सा आदिका विषय इस तरह लिखा है—किसी भी जलाशयके वृक्ष न रहनेसे यह मनोहर दिखाई नहीं देता, इसलिये जलाशयके निकट वृक्ष आदि लगाना उचित है। नम्र मिट्टी सब तरहके वृक्षोंके लिये हितकारी है। इसमें तिल बोना चाहिये। अरिष्ट, अशोक, पुन्नाग, शिरीष और प्रियंगु आदि वृक्ष मङ्गलजनक हैं, इससे इनको गृहके निकट या बागमें लगाना चाहिये। कटहल (पनस), अशोक, केला, जामुन, अनार (दाड़िम), द्राक्षा (अंगूर), पालोवत, बीजपूरक और अतिमुक्तक, इन सब वृक्षोंका काण्ड या मूल गोबर द्वारा लेपन कर रोपण करना चाहिये। अथवा यत्नके साथ मूल काट कर केवल स्कन्ध हीको रोपना उचित है। जिन वृक्षोंकी शाखायें नहीं हैं, उनको शिशिर ऋतुमें, शाखा पैदा होने पर हिमागममें और सुन्दर स्कन्धसम्पन्न वृक्ष वर्षाऋतुमें किसी ओर प्रति रोपण करना चाहिये। घृत, उशीर, तिल, मधु, विड़ङ्ग, क्षीर और गोबर द्वारा मूलसे स्कन्ध तक लेप कर उनको पुनः रोपना और संक्रामण करना चाहिये। इस तरह रोपण करनेसे वृक्ष पनप जाता है।

ग्रीष्मकालमें सायं और प्रातःकालमें, शीत या जाड़े में दिनके मध्यभागमें और बरसातमें मिट्टी सूख जानेसे रोपे हुए वृक्षमें जल डालना चाहिये। जामुन, बेंत, वाणीर, कदम्ब, उदुम्बर (गूलर), अर्जुन, बीजपूरक, मृद्वीका, लकुच, दाड़िम, वञ्जुल, नक्तमाल, तिलक, पनस, तिमिर और आम्रातक, ये १६ प्रकारके वृक्ष अनूपज नामसे विख्यात हैं। उक्त वृक्ष २० हाथकी दूरी पर रोपण करनेसे उत्तम, १६ हाथकी दूरी पर मध्यम, १२ हाथकी दूरी पर रोपित होनेसे निकृष्ट होते हैं।

जो वृक्ष इससे कम दूरी पर रोपे जाते हैं, वे परस्पर स्पर्शों तथा मूलमें मिश्रित हो जानेके कारण सम्यक् फल नहीं देते। शीत, वात और आतप आदि द्वारा भी वृक्षोंको रोग होता है। इससे उनके पत्ते पीले और पत्तोंमें इसकी वृद्धि नहीं होती और शाखाशोष और रसस्राव होता रहता है। पहले शस्त्र द्वारा इनका विशोधन कर विड़ङ्ग, घृत और पङ्क (पांक) द्वारा प्रलेप कर क्षीरजलसे सिंचना चाहिये, जिस वृक्षका फल नष्ट हो जाता हो, उसकी जड़में कुलथी, उड़द, मूंग, तिल और शीतल जलसे सिंचनेसे उसके फल और पुष्पकी वृद्धि होती है।

बकरी और भेंड़की विष्ठाका चूर्ण दो आढ़क, तिल एक आढ़क, शक्तु एक प्रस्थ और सर्व तुल्य परिमाण गोमांस, ६४ सेर जलमें अच्छी तरह पर्यूषित कर वनस्पति, वल्ली, गुल्म और लतादिकी जड़को सिंचना चाहिये। इससे फल भी अधिक लगता है।

किसी बीजको दश दिनों तक दूधमें भावित कर पीछे हाथमें घी लगा कर मलने और पीछे गोबर बहुत बार रखने तथा सूअर और हरिणके मांससे विशेषरूपसे सुगंधित करना चाहिये। इसके बाद उसे मछली और शूकरका वसासमन्वित कर मिट्टीमें गाड़ना या रोपना चाहिये। क्षीरसंयुक्त जल द्वारा अवसेचित होने पर यह कुसुमयुक्त होगा। जौ, उड़द और तिलचूर्ण, शक्तु और पूतिमांसके जलसे सिंचन और हल्दीसे धूपित होनेसे इमली वृक्षमें फल निकल आते हैं। वन्ध्यास्फोता, धात्री, धव और वासिकाका मूल और पलाशिनी, वेतस, सूर्य्यवल्ली, श्यामा, अतिमुक्तक और अष्टमूली—ये सब कपित्थ वृक्षमें फल उत्पन्न करनेके उपादान हैं। शुभ नक्षत्रमें वृक्षोंको रोपना चाहिये। रोहिणी, उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा और उत्तरभाद्रपद, मृगशिरा, चित्रा, अनुराधा, रेवती, मूला, विशाखा, पुष्या, श्रवणा, अश्विनी और हस्ता—इन सब नक्षत्रोंमें वृक्ष रोपना उचित है। (वृहत्सं० ५५ अ०)

अग्निपुराणमें लिखा है, कि भवनके उत्तर प्लक्ष, पूर्व और वट, दक्षिणमें आम्र और पश्चिममें अश्वत्थ वृक्ष रोपण करनेसे कल्याणकर होता है। गृहके निकट दक्षिण और उत्पन्न कण्टकद्रुम सबके लिये मङ्गलदायक है। गृहके समीप उद्यान रखना उचित है। द्विज और चन्द्रकी

पूजा कर वृक्ष ग्रहण या रोपण करना उचित है। वायव्य, हस्त, प्रजेश, वैष्णव और मूल इन पांच नक्षत्रोंमें वृक्ष रोपण करना चाहिये। नदीके प्रवाह उद्यानमें या क्षेत्रमें प्रवेश कराना चाहिये। नदी आदि न रहनेसे पोखरेका जल जिससे उसमें प्रवेश कर सके, ऐसा उपाय करना उचित है।

अरिष्टाशोक, पुन्नाग, शिरीष, प्रियङ्गु, अशोक, कदली, जामुन, बकुल, दाडिम, इन सब वृक्षोंको रोपण कर ग्रीष्ममें सायं और प्रातःकाल, शीत ऋतुमें एक दिनके बाद और वर्षा ऋतुमें मिट्टी सूख जाने पर जलसे सिंचना चाहिये। एक स्थानमें वृक्षको रोप कर उसके बीस हाथ दूरी पर दूसरा वृक्ष रोपना चाहिये। इस तरह रोपण करनेसे उत्तम होता है, १६ हाथ दूरी पर रोपनेसे मध्यम और १२ हाथ दूरी पर रोपनेसे निकृष्ट और फलहीन हो जाते हैं। वृक्षका फल जब सब झड़ जाये, तब उसको शस्त्र द्वारा काट छांट कर विड़ंग, घृत और पङ्क लेप कर शीतल जलसे सिंचना चाहिये और कुलथी, उड़द, मूंग, जौ और तिलके साथ घृत और शीतल जलसे सिंचनेसे सर्वदा फलफूल लगता है। बकरी और भेड़की विष्ठा-चूर्ण, जौका चूर्ण, तिल, गोमांस और जल सात रात प्रोषित करनेसे सब तरहके वृक्षोंमें फलपुष्प होता है। विड़ंग और चावल धोया पानी, मत्स्यमांस वृक्षोंका रोगनाश और वृद्धिसाधन करता है।

(अग्निपुराण २६ अ०)

सुरपालने 'वृक्षायुर्वेद' नामकी एक पुस्तक भी लिख गये हैं।

वृक्षादनी (सं० स्त्री०) वृक्षे अदनं यस्याः अद-ल्युट्। महा-मेदा।

वृक्षालय (सं० पु०) वृक्ष आलयो यस्य। पक्षी, चिड़िया।

वृक्षावास (सं० पु०) वृक्षे आवासो यस्य। वृक्षकोटर-वासी, गिलहरी।

वृक्षाश्रयिन् (सं० पु०) वृक्षमाश्रयतीति आ-श्रि-णिनि। क्षुद्रोलूक।

वृक्षीय (सं० त्रि०) वृक्षसम्बन्धीय।

वृक्षेशय (सं० त्रि०) वृक्षशायी।

वृक्षोत्पल (सं० क्ली०) कर्णिकारी या कनकचम्पाका पेड़।

वृक्ष्य (सं० क्ली०) वृक्षका फल।

वृगल (सं० क्ली०) पिण्ड।

वृच—१ वृति, वरण। २ वर्जन।

वृचया (सं० स्त्री०) एक रमणीका नाम। (ऋक् १।५१।१३)

वृचीवत् (सं० पु०) वरशिख कुलोत्पन्न व्यक्तिभेद। (ऋक् ६।२७।५)

वृज—१ त्याग। २ वृति या वरण। ३ वर्जन। ४ गति।

वृजन (सं० क्ली०) वृज्यते वर्जने वृज-क्यु। (उण् २।८१) १ अन्तरीक्ष, आकाश। २ पाप। ३ निराकरण। ४ संग्राम, युद्ध, लड़ाई। ५ बल, ताकत, शक्ति। (ऋक् १।१६६।१४) ६ प्राणिजात। (ऋक् १।४८।४ सायण) (पु०) ७ केश, बाल। (त्रि०) ८ कुटिल, वक्र। ९ बाधक, शत्रु। (ऋक् ६।११।५) (क्ली०) १० अपराध, कसूर। ११ रंगा चमड़ा।

वृजन्य (सं० त्रि०) साधुबल, साधुश्रेष्ठ, परमसाधु। (ऋक् ६।६७।२२)

वृजि (सं० स्त्री०) १ मल्लभूमि। २ मिथिला, तिरहुत।

वृजिक (सं० क्ली०) वृजौ भव वृजि-कन् (पा ४।२।१३१) वृजिभूमिजात, वृजोत्पन्न।

वृजिन (सं० क्ली०) वृज्यते वर्ज्यते वृज इनच् वृजेः किच्च। (उण् २।४७) १ पाप। (भागवत १०।२६।२८) २ दुःख, कष्ट, मनःक्षोभ। (त्रि०) ३ पापविशिष्ट। ४ कुटिल, टेढ़ा, वक्र। ५ रक्तवर्ण। (पु०) ६ बाल, केश।

वृजिनवत् (सं० पु०) यदुके पौत्र, क्रोष्टु का पुत्र। (भागवत ९।२३।३०)

वृजिनवर्त्तनि (सं० त्रि०) विरुद्धमार्गी, सदाचाररहित। (ऋक् १।३१।६)

वृजिनायत् (सं० त्रि०) पापकारी, जो पाप करनेकी इच्छा करता है। (ऋक् १०।२७।१)

वृजिनीवत् (सं० पु०) वृजिनवत् देखो।

वृण—१ भक्षण। २ प्रीणन।

वृत—१ वरण। २ वर्त्तन, विद्यमानता, स्थिति।

३ यापन। ४ पागल। ५ जीवन, जीविका-निर्वाह। ६ वर्णन। ७ वरण। ८ सेवा।

वृत (सं० त्रि०) वृ-क्त। १ कृतवरण, जो किसी कामके लिये नियुक्त किया गया हो, मुकर्रर किया हुआ। पर्याय—वृत्त, वावृत्त। २ आवृत, आच्छादित, छाया हुआ। ३ जिसके सम्बन्धमें प्रार्थना की गई हो। ४ स्वीकृत, जो मञ्जूर किया गया हो। ५ गोल।

वृतपत्रा (सं० स्त्री०) वृतं आवृतं पत्रं यस्याः। पुत्रदात्री नामकी लता।

वृता (सं० स्त्री०) आवरका, आच्छादका। (ऋक् ५।४८।२)

वृताक्ष (सं० पु०) कुक्कुट, मुर्गा।

वृताधिवंस (सं० स्त्री०) रात्रि, रात।

वृति (सं० स्त्री०) वृ-क्तिन्। १ वेष्टन, वह जिससे कोई चीज घेरी या ढकी जाये। २ प्रार्थनाविशेष। ३ नियोग, नियुक्त करनेकी क्रिया, नियुक्ति। ४ गोपन। ५ आवरण। ६ वरण।

वृतिङ्कर (सं० पु०) १ विकङ्कत नामका वृक्ष। २ वृतिकारक

वृत्त (सं० क्ली०) वृत्-क्त। १ चरित, चरित्र। (कथासरित्सा० ३।१४) २ वृत्ति। (मेदिनी) ३ वेदशास्त्रके अनुसार आचार रखना। ४ वार्त्ता। (कथासरित्सा० ५८।११६) ५ आचार, चाल, चलन। (मनु ४।२६०) ६ स्तनके आगेका भाग। (पु०) ७ भंजीर। ८ सतिवन। ९ कछुआ। १० समाचार, वृत्तान्त, हाल। ११ महाभारतके अनुसार एक नागका नाम। १२ बड़ोंके आदर, इन्द्रिय निग्रह और सत्य आदिकी होनेवाली प्रवृत्ति। १३ वह छन्द जिसके प्रत्येक पदमें अक्षरोंकी संख्या और लघु, गुरुके क्रमका नियम हो, वार्णिक छन्द। जैसे—इन्द्रवज्रा, मालिनी आदि।

१४ जो चार पद या चरणोंमें पूर्ण हो, उसका नाम पद्य है। यह वृत्त और जातिभेदसे दो प्रकारका है। अक्षर संख्यामें निर्णय पदका नाम वृत्त और जो पद्य मात्रा द्वारा निर्णीत होता हो, उसको जाति कहते हैं। सम, अर्द्धसम और विषम भेदसे वृत्त तीन तरहका होता है। जिस वृत्तके चारों पद समान, समसंख्यक अक्षर हों, वह समवृत्त कहलाता है; जिसमें चारों पदोंकी अक्षर-संख्या असमान हो, वह विषमवृत्त कहलाता है और जिसके पहले और तीसरे तथा दूसरे और चौथे पद समान हों, उसे अर्द्धसमवृत्त कहते हैं।

१५ एक प्रकारके छन्द, जिसके प्रत्येक चरणमें दोवर्ण होते हैं। इसे गंडका और दंडिका भी कहते हैं। १६ वह क्षेत्र जिसका घेरा या परिधि गोल हो, मण्डल। १७ वह गोल रेखा, जिसका प्रत्येक विन्दु उसके अन्दरके मध्य विन्दुसे समान अन्तर पर हो। १८ बीता हुआ, गुजरा हुआ। १९ दृढ़, मजबूत। २० जिसका आकार गोल हो, वर्त्तुल। २१ मृत, मरा। २२ जो उत्पन्न हुआ हो, जात। २३ निष्पन्न, सिद्ध। २४ ढका हुआ, आच्छादित।

कविकल्पलतामें वृत्ताकार वस्तुओं इस तरह वर्णन हैं—बाहु, नारङ्ग, कदम्ब, धम्मिल्ल, मोदक, शाङ्ग, लावक, ककुद्, कुम्भिकुम्भ और अण्डकादि, कर्णपाश, मुक्तापाश, आकृष्टचाप, षडानन, मुद्रिका, परिखा, वागपट्ट, हार और सभादि इन सब वस्तुओंको वृत्त कहते हैं।

वृत्तक (सं० पु०) १ श्रावक। (हे० ह० ८६।६८) २ वह गद्य, जिसमें अकठोर अर्थात् कोमल तथा मधुर छोटे छोटे समासोंका पद व्यवहार किया गया हो। ३ छन्द। (साहित्यद० ५४६)

वृत्तकर्कटी (सं० स्त्री०) वृत्ता वर्त्तुला कर्कटी, गोल ककड़ी अर्थात् खरबूजा।

वृत्तकोशा (सं० स्त्री०) देवदाली नामकी लता। (राजनि०)

वृत्तकोष (सं० पु०) पीली देवदाली। (भावप्र०)

वृत्तखण्ड (सं० पु०) १ किसी वृत्त और गोलाईका कोई अंश। २ मेहराब।

वृत्तगन्धि (सं० क्ली०) वृत्तस्य पद्यस्य गन्ध इव गन्धो यस्य। वह गद्य जिसमें अनुप्रासों और समासोंकी अधिकता हो, वह गद्य जिसमें पद्यका आनन्द आता हो।

वृत्तगुण्ड (सं० पु०) दीर्घनाल और गोंदला नामकी घास। यह पतली और मोटी दो तरहकी होती है। इसका गुण—मधुर, शीतल, कफ, पित्त, अतीसार, दाह और रक्तनाशक है। इन दोनोंमें मोटी घास अधिक गुण-युक्त होती है।

वृत्तचेष्टा (सं० क्ली०) १ स्वभाव, प्रकृति। २ आचरण, चालचलन।

वृत्ततण्डुल (सं० पु०) वृत्तस्तण्डुलः। यावनाल, जयनाल।

वृत्ततस् (सं० अव्य०) वृत्त तसिल्। वृत्त द्वारा।

वृत्तनिष्पाविका (सं० स्त्री०) मटर, केराव।

वृत्तपत्र (सं० पु०) उत्तम शाकविशेष, नीलीशाक।

वृत्तपत्रा (सं० स्त्री०) पुत्रदात्री।

वृत्तपर्णी (सं० स्त्री०) वृत्तं वर्त्तुलं पर्णं यस्याः ङीष्। १ महाशणपुष्पिका। २ पाठा। (राजनि०)

वृत्तपुष्प (सं० पु०) वृत्तं वर्त्तुलं पुष्पं यस्य। १ शिरिष। २ कदम्ब। ३ अम्लवेत। ४ भुइँ कदम्ब। ५ सदा गुलाब, सेवती। ६ मोतिया। ७ मल्लिका।

वृत्तपुष्पा (सं० स्त्री०) १ नागदमनी। २ सदा गुलाब, सेवती।

वृत्तफल (सं० क्ली०) वृत्तं वर्त्तुलं फलं यस्य। १ काली या गोल मिर्च। २ गोलफल। (पु०) ३ दाड़िम। ४ बदर। ५ कपित्थ वृक्ष। ६ रक्त अपामार्ग। ७ करञ्जका पेड़। ८ तरबूज।

वृत्तफला (सं० स्त्री०) १ वार्त्ताकी। २ अलाबुकी, कड़वी कद्दू। ३ आँवला।

वृत्तबन्ध (सं० पु०) वृत्तेन बन्धः। वह जो वृत्त या छन्दके रूपमें बाँधा गया हो।

वृत्तमोशन (सं० पु०) मंडोर या लिहसो नामका शाक।

वृत्तमल्लिका (सं० स्त्री०) १ सफेद साग। २ त्रिपुरमल्लिका। महाराष्ट्रमें इसको वाटोगी, कर्णाटमें कुन्नुमिमल्लिका और बम्बईमें घटमोगरी कहते हैं। गुण—कटु, उष्ण, व्रणनाशक, बहुगन्ध और नेत्ररोगनाशक है।

वृत्तवत् (सं० त्रि०) वृत्त अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। वृत्तयुक्त, जिसका आचरण शुद्ध हो, सदाचारी।

वृत्तवीज (सं० पु०) वृत्तं वीजं यस्य। १ लिटटाशुर, लिटटी, लरोंई, बतरी, राजमाष, लोबिया।

वृत्तवीजका (सं० स्त्री०) वृत्तं वर्त्तुलं वीजं यस्याः कप् टाप्। १ पाण्डुफली। २ अरहरका पेड़।

वृत्तवीजा (सं० स्त्री०) वृत्तं वीजं यस्याः। अरहर।

वृत्तशाली (सं० त्रि०) वृत्तेन शालते शाल-णिनि। वृत्तयुक्त, वह जिसका आचरण उत्तम हो, सदाचारी।

वृत्तस्थायी (सं० त्रि०) १ जिसके अपने कामकी जरूरत या मतलब हो। (पु०) २ सज्जन।

वृत्तमानी (सं० त्रि०) वृत्त-मद्-णिनि। कुलमानकारी, चरित्रमानी।

वृत्तसङ्क (सं० पु०) १ वह जिसका चरित्र शुद्ध हो, सदाचारी। २ वह जो दूसरोंका उपकार करता हो, परोपकारी।

वृत्तस्थ (सं० त्रि०) वृत्ते तिष्ठति स्था-क। जो वृत्तमें अवस्थित रहते हों, सच्चरित्र, सदाचारी। गुरुपूजा, घृणा, शौच, सत्य, इन्द्रियनिग्रह और लोकहितकर कार्योंमें जिनकी प्रवृत्ति रहती है।

वृत्ता (सं० स्त्री०) वृत्त-टाप्। १ मांसधारिणी। २ प्रियङ्गु लता। ३ सफेद सेम। ४ म्भिरीट नामका क्षुप। ५ रेणुका। ६ नागदमनी। ७ हस्तिकोशातकी।

वृत्ताक्षेप (सं० पु०) अलङ्कारविशेष, प्रयोगकालमें यथार्थमें निषिद्ध न होने पर भी यदि कोई वाक्य आपाततः निषेधोक्ति मालूम हो, तो उसे ही आक्षेप कहते हैं। यह आक्षेपवृत्त भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान भेदसे तीन प्रकारका है।

वृत्ताध्ययनर्द्धि (सं० स्त्री०) वृत्ताध्ययनयोर्ऋद्धिः। प्रज्ञोत्साह, ब्रह्मवर्चस, वृत्त और अध्ययनके लिये मनोज्ञ, वेदोचित आचार पालनेवालेका नाम वृत्त, मनमें कर गुरुके मुखसे वेदाभ्यासका नाम अध्ययन, वृत्त और अध्ययनका नाम ऋद्धि है। अर्थात् मनुष्यादिवालक्षण्य तेजका उपाय है।

वृत्तानुवर्त्तिन् (सं० त्रि०) वृत्तमनुवर्त्तते वृत्त-अनु-वृत-णिनि। वृत्तस्थ, वृत्ताचारी, सद्वृत्त।

वृत्तान्त (सं० पु०) १ संवाद, किसी बीती हुई घटनाका विवरण, समाचार, हाल। जैसे,—(क) इस घटनाका सारा वृत्तान्त समाचारपत्रोंमें छप गया है। (ख) अब आप अपना वृत्तान्त सुनाइये। पर्याय—वार्त्ता, प्रवृत्ति, उदन्त, श्रुति, वहानक। (शब्दरत्ना०) २ प्रक्रिया। ३ कार्त्स्न्य। ४ वार्त्ताप्रकार। ५ प्रस्ताव। ६ इतिहासाख्यान। (मनु १।२४) ७ अवसर, मौका। ८ भाव। ९ एकान्तशासन। (त्रिका०)

वृत्ति (सं० स्त्री०) वृत-क्तिन्। १ वह कार्य, जिसके द्वारा जीविकाका निर्वाह होता हो, जीविका, रोजी।

वृत्तिके साधनकी विष्णुधर्मोत्तरमें लिखा है—प्राकृत

का याजन और प्रतिग्रह, क्षत्रियका राज्यपालन, वैश्यका खेती, वाणिज्य, गोपालन, कुसीदग्रहण और धान्यादिको बीजरक्षा तथा शूद्रका सब तरहके शिल्पकार्य्योंका करना नियत वृत्ति है। किन्तु आपत्कालमें अर्थात् जब पूर्वोक्त निर्दिष्ट वृत्ति द्वारा जीविका निर्वाह न हो, तब प्रत्येक जाति ही निम्नश्रेणीकी वृत्तिका अवलम्बन कर सकेंगे। अर्थात् ब्राह्मण राज्यपालन, क्षत्रिय कृषि आदि। इससे भी जीविका-निर्वाह न हो तो ब्राह्मण कृषि आदि द्वारा भी जीविका चला सकता है। (विष्णुसंहिता २ अ०)

३ विवरण, सूत्रके अर्थके विवरण विशदरूपसे व्यक्तीकरणका नाम वृत्ति है। "सूत्रस्यार्थविवरणं वृत्तिः।" (कातन्त्र) सूत्र सब लघु हैं अर्थात् बहुत बड़े नहीं, अल्प अक्षर और अल्प पदयुक्त हैं, सुतरां यह व्याख्यासापेक्ष हैं। व्याख्या न रहनेसे सूत्रादिका यथार्थ तात्पर्य हृदयङ्गम नहीं होता। यह व्याख्या वृत्ति, भाष्य, वार्त्तिक, टीका, टिप्पनी आदि अनेक शाखाओंमें विभक्त है।

४ विभूति। (धरणी) नाटकमें पांच प्रकारकी वृत्ति कही गई है।

वृत्ति चार प्रकारकी है, श्रृङ्गाररसमें कौशिकी वृत्ति वीर रसमें सात्त्वती वृत्ति, रौद्र और वीभत्स रसमें आरभटी, इनके सिवा अन्य सब स्थानोंमें भारती वृत्ति नाटकमें इस चार प्रकारकी वृत्ति जननीस्वरूपा है। अर्थात् उक्त रसके वर्णन करनेके समयमें निर्दिष्ट वृत्तिका अवलम्बन कर रचना करनी चाहिये।

इन सब वृत्तियोंके कई भेद हैं। इन भेदोंमें कौशिकी वृत्ति एक है। यह कौशिकी वृत्ति भी नर्म, नर्मस्फूर्ज, नर्मस्फोट और नर्मगर्भ भेदसे चार तरहकी है।

सब नायिकायें उत्तम वेशभूषासे विभूषिता, स्त्रीबहुल प्रचुर नृत्यगीतयुक्त, कामोपभोगका उपचार द्वारा परिवेष्टित और मनोज्ञ विलासयुक्त, इन सब विषयोंका वर्णन कौशिकीवृत्तिमें उत्तम रूपसे किया जाता है। श्रृङ्गार रसका वर्णन करनेके समय इस कौशिकी वृत्तिका अवलम्बन कर वर्णन करना चाहिये।

सत्त्व, शौर्य, दानशक्ति, दया और सरलतादि बहुल, सर्वदा सहर्ष अल्प श्रृङ्गारभावयुक्त, शोकरहित और साद्भुत अर्थात् आश्चर्य भावसे वर्णनका सात्त्वती वृत्ति कहते हैं। यह वृत्ति भी चार प्रकारकी है—उत्थापक, संहात्य, संलाप और परिवर्त्तक।

माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध, उद्भ्रान्त आदि चेष्टाओं द्वारा संयुक्त और बन्धनादि द्वारा उद्धत—इन सब विषयोंकी वर्णना आरभटी वृत्ति कही जाती है। यह भी चार तरहकी है—वस्तुत्थापन, सम्फेट, संक्षिप्ति और अवपातन।

जिस जगह संस्कृतबहुल वाक्योंका प्रयोग होता है, उसको भारती वृत्ति कहते हैं। इन चार तरहकी वृत्तियोंको नाटकके उक्त रसोंमें वर्णन करना चाहिये।

५ व्यवहार (मनु २।२०५) वर्त्ततेऽस्मिन्निति। ६ आधेय। "साध्याभाववद्वृत्तित्व" (व्याप्ति० १)

७ चित्तकी अवस्थाविशेष। पातञ्जलदर्शनमें चित्तकी अवस्थाको भी वृत्ति कहा है। क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्धभेदसे चित्तकी वृत्ति पांच तरहकी है। चित्त और योग शब्द देखो। ८ व्यापार। ९ युक्तार्थ। १० उपजीविका। जैसे—किसीका वृत्तिहरण नहीं करना चाहिये अर्थात् किसीकी उपजीविका नष्ट करना या रोटी मारना उचित नहीं।

वृत्तिक (सं० पु०) वृत्ति स्वार्थे कन्। वृत्ति देखो।

वृत्तिकर (सं० त्रि०) कर्मकार।

वृत्तिकार (सं० पु०) वृत्तिं करोतीति अण्। वृत्तिकारक, वृत्ति ग्रन्थके प्रणेता। वह जिसने किसी सूत्रग्रन्थ पर वृत्ति लिखी हो।

वृत्तिता (सं० स्त्री०) वृत्तेर्भावः तल्-टाप्। वृत्तिका भाव या धर्म, वृत्तित्व।

वृत्तिद (सं० त्रि०) वृत्तिं ददातीति दा-क। वृत्तिदानकारी, जो वृत्ति प्रदान करते हैं।

वृत्तिदातृ (सं० त्रि०) वृत्तेर्दाता। वृत्तिदान करनेवाला।

वृत्तिमत् (सं० त्रि०) वृत्तिरस्त्यस्येति-मतुप्। वृत्तिविशिष्ट, वृत्तियुक्त।

वृत्तिदशना (सं० स्त्री०) स्कन्दकी एक पत्नीका नाम। (भारत० ९।४६।११)

वृत्तिस्थ (सं० पु०) वृत्तौ तिष्ठतीति स्था-क। १ गिरगिट। २ वह जो अपनी वृत्ति पर स्थित हो।

वृत्तिहन् (सं० त्रि०) वृत्तिं हन्ति हन् क्विप्। वृत्तिनाश-कारी, जो वृत्तिनाश करता हो, वृत्तिच्छेदक।

वृत्तिहरण (सं० क्ली०) वृत्तेर्हरणं। वृत्तिनाश, वृत्तिहरणकारी। वृत्तिका हरण कदापि नहीं करना चाहिये। अपनी वृत्ति या परदत्ता वृत्ति हरण करनेसे नरकगामी होना पड़ता है।

वृत्तेर्वारु (सं० पु०) वृत्तो वर्त्तुल इर्वारुः। गोल ककड़ीकी बेल।

वृत्त्यनुप्रास (सं० पु०) काव्योक्त शब्दालङ्कारभेद। पांच प्रकारके अनुप्रासोंमेंसे एक प्रकारका अनु प्रास जो काव्यमें एक शब्दालङ्कार माना जाता है।

वृत्त्युपाय (सं० पु०) अपने शरीर या कुटुम्बोंके भरण-पोषणका उपाय।

वृत्य (सं० त्रि०) वृ-क्यप्। वरणीय।

वृत्र (सं० पु०) वृत (स्फायितञ्चीति। उण् २।१३) इति रक्। १ अन्धकार २ शत्रु। (मेदिनी) ३ त्वष्टाका पुत्र एक दानवका नाम। इन्द्रने इसका विनाश किया था। (हरिवंश १२७।१७)

देवीभागवतमें वृत्रासुरका वृत्तान्त इस तरह लिखा है:—विश्वकर्माने इन्द्रके प्रति विद्वेषवशतः महा बलवान् त्रिशिरस्, विश्वरूप नामक एक पुत्रकी सृष्टि की। ये एक मुखसे वेदाध्ययन, दूसरेसे सुरापान, तीसरेसे युगपत् समस्त दिशाओंका निरीक्षण करते थे। कुछ दिनोंके बाद मुनिवर त्रिशिरा विषयवासना परित्याग कर अद्भुत तपस्यामें निरत हुए। उन्होंने ग्रीष्म कालमें पञ्चाग्निसाधन, वर्षामें ऊपर पाद बांधनेके बाद अधोमुख हो अवस्थान, हेमन्त, शिशिर और शीतमें जलमें रह कर आहार निद्रापरित्याग और इन्द्रियोंको वशीभूत कर इस कठिन तपस्याका अनुष्ठान किया था। शचीपति इन्द्र इस अमिततेजा तपस्वीका तपोवीर्य और विचार कुशल देख कर अतिशय चिन्ताकुलित हुए। इसके तपोभङ्गके लिये उन्होंने उर्वशी, मेनका, रम्भा, घृताची और तिलोत्तमा आदि रूपवती अप्सराओंको नियुक्त किया। इन्होंने नाना प्रकारोंसे सुसज्जित हो विश्वरूपके समीप समुपस्थित हो कामशास्त्रोक्त विविध हावभाव प्रकाश करना आरम्भ किया। किन्तु मनो-निग्रह तपःप्रभाव-सम्पन्न जितात्मा महर्षि त्रिशिरा इन दिव्य वाराङ्गनाओंके नाच गान-हावभाव कटाक्षसे किञ्चिन्मात्र विचलित न हो, मूक, बधिर और अन्धेकी तरह रहने लगे। यह देख कुछ दिनोंके बाद इन सबोंने लौट कर इन्द्रके सामने शोक और सम्भ्रम भावसे हाथ जोड़ कर निवेदन किया, महाराज! आप हमारी रक्षा कीजिये। हम लोग किसी तरह भी उस दुर्द्धर्ष जितेन्द्रिय मुनिवरकी धैर्यच्युति करनेमें समर्थ नहीं हो सकीं। और क्या कहा जाये—हम लोग भाग्यवश ही उस अग्निसदृश तेजःसम्पन्न महात्मा विश्वरूपके अभिशापमें पतित नहीं हुई हैं। अप्सराओंके वाक्योंको सुन कर पाकशासन पुरन्दर अत्यन्त भीत हो कर लोक-लज्जा तथा न्यायपथको तिलाञ्जलि दे अन्याय रूपसे त्रिशिराके वधका उपाय सोचने लगे।

इसके बाद एक बार स्वयं इन्द्र ऐरावत पर चढ़ कर मुनिके समीप आ पहुंचे। वहां उन्होंने देखा, कि मुनिके शरीरसे सूर्य और अग्निकी तरह तेज बाहर निकल रहा है। उनकी ऐसी अवस्था देख इन्द्रको पहले ही अत्यन्त विषाद उत्पन्न हुआ। उन्होंने सोचा, कि मुनिवर जितक्रोधी और महातपोबलसम्पन्न हैं। इनके साथ कालमें वैर अङ्गीकार करना समीचीन नहीं जंचता है। किन्तु हाय! ये मेरे सिंहासनके इच्छुक हुए हैं, अतएव ऐसे शत्रुकी उपेक्षा भी कैसे की जा सकती है। यह सोच कर देवराज इन्द्रने उस तपस्यानिरत निष्कलुष वीर्यवान मुनिवर त्रिशिराके प्रति अपने भीषणास्त्र अमोघ वज्रास्त्रको चलाया। तपोनिरत त्रिशिरा इस तरह कुलिशाहत हो वज्राहत गिरिशिखरकी तरह जमीन पर गिर पड़े। किन्तु उनके शरीरसे तथा जीवितकी तरह निकल रहा था। यह देख सुरपतिके चित्तमें फिर चिन्ताका और भीतिका आविर्भाव हुआ। उन्होंने तक्षा नामक शिल्पीको यज्ञमें भाग प्रदान करनेको अङ्गी-कार किया अर्थात् "आजसे लोग यज्ञमें पशुका मस्तक तुम्हें भाग प्रदान करेंगे" तक्षाने अधीन इस प्रकार अङ्गीकार कर इन्होंने त्रिशिराके तीनों मस्तकको कटवाया।

जब इस बीभत्स समाचारको विश्वकर्माने सुना, तब वे क्रोधसे अधीर हो उठे और अत्यन्त दुःखके साथ कहने लगे, कि इन्द्रने जब मेरे ऐसे गुणवान् और तपस्यानिरत पुत्रको निरपराध मार डाला है, तब मैं उसके विनाशके लिये फिर एक दूसरे पुत्रकी सृष्टि करूंगा। विश्वकर्मा क्रोधसन्तप्त हृदयसे इस तरह नाना प्रकारसे विलाप कर पीछे अथर्ववेदोक्त विधान द्वारा पुत्रोत्पादनके लिये अनलमें आहुति देने लगे। आठ रात होम करनेके बाद उस प्रदीप्त अग्निसे द्वितीय पावककी तरह दीप्तिमान् एक पुरुष आविर्भूत हुआ। विश्वकर्माने अनलसम्भूत तेजोबलसमन्वित प्रदीप्त अनल सदृश पुत्रको सामने देख कर कहा, "इन्द्रशत्रो! तुम मेरे तपोबल द्वारा बढ़ो।" क्रोधोद्दीप्त विश्वकर्माकी इस उक्तिके बाद अनलतुल्य दीप्तिशाली वह पुत्र आकाश-मण्डलको स्तब्ध कर बढ़ने लगे। और तो क्या, क्षण भर-में ही उन्होंने पर्वताकार धारण किया और अत्यन्त शोकसन्तप्त पितासे कहा,—प्रभो! आप मेरा नामकरण संस्कार कीजिये। तात! आप आज्ञा दीजिये, कौन काम करूं? आप किस लिये इतने शोकसन्तप्त और अधीर हो उठे हैं शीघ्र ही कहिये, मैं आज ही आपके इस शोकको दूर करनेका प्रयत्न करूंगा। हे पिता! जो पुत्र पिताके दुःखका मोचन नहीं करता है, उसका जन्म वृथा है। पितृप्रीत्यर्थ मैं आज ही समुद्रको पी, पर्वतमालाको चूर्ण, मेदिनीको उत्पाटन कर सारे जीवोंको समुद्रमें फेंक तिग्मतेजा तपन देवको रोक, और तो क्या यम, इन्द्र, या अन्यान्य किसी भी देवतासे विरोध कर सकता हूं।

विश्वकर्माने पुत्रके ऐसे परम प्रीतिकर सुललित वाक्य सुन हृष्टचित्त हो उससे कहा,—पुत्र! तुम इस समय वृजिन अर्थात् दुःखसे परित्राण कर सकते हो। अतएव जगत्में वृत्र नामसे तुम्हारी ख्याति होगी। हे प्रियतम! वेदवेदाङ्गपारग, सर्वविद्याविशारद नियत तपस्यानिरत, परम तत्त्वज्ञ त्रिशिरस्क विश्वरूप नामसे प्रख्यात तुम्हारे एक बड़े सहोदर था। पापात्मा इन्द्रने उसके तीनों मस्तक ही काट डाले हैं। वह भी निरप-राध! अतएव तुम उस कृतापराध ब्रह्महत्यापातकी निर्लज्ज, शठ, दुष्टमति पापरूप सुरपतिका संहार कर मेरे शोककलुषित हृदयकी निर्मलताका सम्पादन करो। शिल्पिप्रवर विश्वकर्माने यह बात कह खड्ग, शूल, गदा, शक्ति, तोमर, शार्ङ्ग, धनु, बाण, तूणीर, कवच आदि यावतीय युद्धोपकरण प्रस्तुत कर वृत्रको दे इन्द्रको वध करनेके लिये उसको समरसज्जासे सुसज्जित किया।

महाबली वृत्र वेदपारग ब्राह्मण द्वारा स्वस्त्ययन करा रथारोहण कर इन्द्रके विनाशके लिये चला। इसके पूर्ववर्ती कालके देवनिगृहीत दनुतनयोंने भी आ कर उसका साथ दिया। वृत्रासुर भी इन दानवोंसे परिवृत हो दलबलके साथ सगर्व मानसरोवरके उत्तरी किनारे तरुराजिपरिशोभित सुरम्य पर्वत पर उपस्थित हुआ। उस मनोहर स्थानमें देवताका आवास था। देवताओंने असुरवरकी इस भीषण यात्रासे अत्यन्त भीत हो कर देवराजके समीप जा कर देखा, कि इन्द्रके दूत सुरपतिसे यह भयावह संवाद कह रहे हैं।

शचीपति इन्द्रने दोनों पक्षके प्रमुखात् नाना रूप दुर्घटनाका विषय सुन कर अकस्मात् भावी महान् अत्याहित संघटनकी सम्भावना देख किंकर्त्तव्यविमूढ़ा-वस्थामें सुबुद्धिसम्पन्न सुरगुरु बृहस्पतिसे सत्परामर्श पूछा। इस पर बृहस्पतिने उत्तर दिया,—"सहस्र लोचन! मैं इस विषयमें क्या परामर्श दूं। अबसे पहले तुमने उस निरपराध मुनिवरको निहत कर जो घोर पाप अर्जन किया है, उसका कुत्सित फल अवश्य ही भोग करना पड़ेगा। उग्रतर पापपुण्यका फल शीघ्र ही फलता है। अतएव कल्याणकामुक लोगोंको विचार कर काम करना नितान्त कर्त्तव्य है। शक्र! तुमने लोभ और मोहके वशवर्त्ती हो कर अकारण ही ब्रह्महत्या की है, अतएव उस पापका फल सहसा ही उपस्थित हुआ। यह वृत्रासुर सभी देवताओंके लिये अवध्य है। तीनों लोकोंमें ऐसा कोई नहीं, जो उसका विनाश कर सके।" बृहस्पतिकी यह बात समाप्त न होने ही वहां ऐसा एक भयानक कोलाहल शब्द हुआ, कि गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, रक्ष, मुनि, ऋषि, नर, अमर सभी अपने अपने घर छोड़ भागने लगे। देवराज देवताओं-को इस तरह भागते देख अत्यन्त चिन्तान्वित हुए।

और तुरन्त लोकसन्तापितके ध्वंसके लिये उन्होंने वीरोंको आज्ञा दी, कि तुम लोग वसुगण, रुद्रगण, अश्विनीकुमार, आदित्यगण, पूषा, वायु, कुबेर, वरुण और यम आदि देवताओंको बुला लाओ। शत्रु पहुंच चुका है अतएव सभी अपने अपने वाहनों पर चढ़ कर शीघ्र आवें।

सुरराज देवताओंके प्रति इस तरह आज्ञा दे कर स्वयं ऐरावत पर सवार हुए और गुरुदेव वृहस्पतिके पुत्रों सह अपने भवनसे बाहर निकले। अमरोंने भी देवराजके आज्ञानुसार अपने अपने वाहनों पर चढ़ कर युद्धके लिये युद्धोपयुक्त ही अस्त्र शस्त्र ग्रहण किया। इन्द्रके साथ सभी सरोवरके उत्तरी किनारे पर युद्धकी अभिलाषासे खड़े वृत्रासुरसे जा कर युद्ध करने लगे। यह भयानक लोमहर्षण घोरतर युद्ध मनुष्य परिमाणसे एक सौ वर्ष तक लगातार चला था। इसके बाद पहले वरुण, पीछे वायुगण, इसके बाद यम, विश्वावसु और इन्द्र आदि सभी एक एक कर रणसे भाग गये।

वृत्रासुर देवताओंको इस तरह भागते देख हृष्टचित्तसे पिताके आश्रममें गया और साष्टांग प्रणाम कर उनसे कहने लगा—पिता! मैंने आपके आज्ञानुसार सारे संग्राममें इन्द्रादि देवताओंको एक एक करके पराजित किया है। वे सबके सब भाग गये हैं। मैंने देवराजके वाहनको छीन लिया है और भीरु व्यक्तिको मारना अनुचित समझ उन सबोंका विनाश नहीं किया है। इस समय आज्ञा दीजिये, कि आपके सोचमें मुझको कौनसा कार्य करना पड़ेगा।

विश्वकर्मा अपने पुत्रके मुखसे ऐसी विजयकी बात सुन हर्षगद्गदस्वरसे पुत्रसे कहने लगे, "आज मैं वास्तवमें पुत्रवान् हुआ, मेरा चिरन्तन विश्वासज्वर सारा निवृत्त हुआ, देह पवित्र हुई और जीवन सार्थक हुआ है। दुरन्तविक्रम! इस समय मैं कह रहा हूं, उसे ध्यान दे कर सुनो। शान्तचित्त हो स्थिर आसन पर बैठ कर सहस्राब्दि विष्णु सेवा करो। अन्यथा साम्राज्य भयङ्कर है; इसमें राज्य, लक्ष्मी, पद और संपत्तिमें विलक्षण हेतु देता है। अतएव तुम त्रिलोकनाथको आराधना कर उनके पर ध्यान करो और ब्रह्मकुलमाताप्रतिष्ठित दूरगामी इन्द्रका वध करो। तुष्टिलाभविश तथा साधु धर्मोंसे परितुष्ट मनकामना करेंगे ये मनवांछित फल प्रदान करेंगे। हे पुत्र! यद्यपि तुम्हारे इस समयके कार्योंसे कुछ मैं स्वस्थ हुआ हूं, तथापि पुत्रहत्याजनित वैरभाव मेरे मनमें सदा ही जागरित है, मैं भुला नहीं सकता और मुझे किसी तरह शान्ति नहीं मिल रही है। और अधिक क्या कहूं, मैं नित्य ही दुःखसागरमें प्रवाहित हो रहा हूं। तुम मेरा उद्धार करो।"

वृत्रासुर पितृवचनका मान गन्धमादन पर्वत पर जा कर कठोर तपस्या करने लगा। देवराज इन्द्र वृत्रासुरको इस तरह कठोर तपस्या करते देख बहुत भयभीत हुए और उन्होंने उसके तपको भङ्ग करनेके लिये अमित प्रभाववाली गन्धर्व, यक्ष, पन्नग, किन्नर, विद्याधर, अप्सरा और अन्यान्य देवताओंको उसके निकट भेजा। देवदूत गये किन्तु वे किसी तरह उसकी तपस्याको भङ्ग न कर सके। तपस्यानिरत वृत्रासुर बिन्दुमात्र भी अपनी तपस्यासे विरत न हुआ। इससे सभी लौट आये।

इसी तरह ध्यानमें रत रह कर वृत्रासुरने १०० वर्ष बिता दिये। इसके बाद सर्वलोकपितामह ब्रह्मा उसके प्रति अतिशय सन्तुष्ट हो हंस पर चढ़ कर उसके समीप पहुंचे और उससे वर मांगनेके लिये कहा। वृत्रासुर सामनेमें जगत्कर्त्ता ब्रह्माको देख और उनकी सुधासदृश वाक्यावली सुन कर आनन्दाश्रु बहाते हुए सहसा खड़ा हो कर उनके चरणयुगल पर गिर, फिर हाथ जोड़ कहने लगा,—"प्रभो! मेरे मनमें एक दुःसाध्य वासना जग गई है। आप सर्वज्ञ हैं, सभी जानते हैं, फिर भी मैं कहता हूं, सुनिये। हे नाथ! शीत, वायु, सूख, आर्द्र, लकड़ी और पत्थर तथा अन्य अस्त्र शस्त्रोंसे मेरी मृत्यु न हो और युद्धमें मेरे बलवीर्यकी वृद्धि हो।" ब्रह्मा इस प्रार्थना पर 'तथास्तु' कह उसके मनोवांछित वर प्रदान कर ब्रह्मलोकको चले गये। असुरवर भी वर लाभ कर हर्षित चित्तसे घर लौट आया और पिताके पास पहुंच कर उनसे आद्योपान्त सब बातें कह सुनाई। विश्वकर्मा परम

आह्लादित हुए और पुत्रको शत शत धन्यवाद और आशीर्वाद दे कर कहने लगी, "वत्स ! तुम्हारा सर्वार्थमें मङ्गल हो। तुम मेरे उस परम वैरी त्रिशिराविनाशकारी पापात्मा पुरन्दरको मार कर और त्रिदशोंका एकाधीश्वर बन मेरे पुत्रशोकसे प्रदीप्त हृदयमें शान्तिवारिसे सिञ्चन करो। तुम निश्चय जानना, त्रिशिरा मेरे मानसक्षेत्रसे कभी हट नहीं रहा है, वह सुशील, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, तपस्वी, और वेदविदोंमें अग्रगण्य था। हाय ! मेरे उस गुणवान् प्रिय पुत्रको पापमति पुरन्दरने निरपराध ही मार डाला है।"

वृत्रासुर पिताका इस तरह शोककातरतापूर्ण वाक्य सुन कर इन्द्रके प्रति मन ही मन अत्यन्त क्रोधित हो शीघ्र ही समरसज्जा कर दलबलके साथ इन्द्रको मारनेके लिये चला। निरन्तर दुन्दुभियोंका निर्घोष और शङ्खनाद होने लगा। असंख्य सेना-निनादसे अमरावती कांपने लगी और देवता भयभीत हो भाग जाने पर उद्यत हुए। देवराज भी चिरन्तन शत्रुको सन्निहित जान आसन्न विपद्की आशंकासे भयभीत हुए और युद्धके लिये सेनासमागमका आयोजन कर लोकपालोंको बुला गृध्रव्यूह (गृध्रपक्षीकी तरह सेनानिवेश)-की रचनाके बाद समरकी प्रतीक्षामें खड़े रहे। इधर वृत्रासुर भी तेजीसे आ वहां उपस्थित हुआ। देवदानवोंका तुमुलसंग्राम होने लगा। परस्पर विजयकी कामनासे वृत्रासुर और वासवमें घोर युद्ध होने लगा। उस भयङ्कर युद्धानलके प्रज्वलित होने पर दैत्य प्रसन्न और देवगण विमर्ष भावको प्राप्त हुए। वृत्रने इन्द्रको सहसा कवच और वस्त्रादि विरहित कर अपने मुखमें डाल लिया और पूर्व वैरताका स्मरण कर हृष्टचित्तसे अवस्थान करने लगा।

इन्द्रके वृत्र द्वारा इस तरह निगृहीत होने पर देवगण अतिशय कातर और त्रासित हो, हा इन्द्र ! हा इन्द्र ! चिल्लाने लगे तथा दीन और व्यथित मनसे सुरगुरु वृहस्पतिको प्रणाम कर सबोंने उनसे निवेदन किया, "हे द्विजेन्द्र ! आप हम सबोंके गुरु हैं, ऐसा परामर्श दीजिये, जिससे इस महाविपद्से उत्तीर्ण और वृत्रासुरके हाथसे इन्द्रका छुटकारा हो। अभिचारक्रिया द्वारा उसका उपाय कीजिये। विना इन्द्रके हम सभी निर्बल तथा हतोत्साह हो गये हैं।"

देवताओंकी ऐसी कातरोक्ति सुन सुराचार्यने कहा,—हे अमरगण ! तुम लोग सहसा भयभीत न हो। देवराज वृत्रके मुखमें आ कर अवसन्न हुए हैं सही; किन्तु उनके कोष्ठमें जीवित ही हैं। अतएव जीवितावस्थामें ही उसको निकालना उचित है। यह बात सुन कर देवताओंने उनकी मुक्तिका उपाय खोजना आरम्भ किया। सभीने गम्भीर चिन्ताके साथ मन्त्रणा कर अन्तमें महासत्वसम्पन्ना जृम्भिका (जंभाई)की सृष्टि की। इससे वृत्रासुरने भी जंभाई ली। इस अवसरमें इन्द्र अपने शरीरको सङ्कुचित कर वृत्रके मुंहसे बाहर निकले।

इन्द्रने इस तरह बाहर निकल फिर उसके साथ अयुत वर्षव्यापी निदारुण लोमहर्षण भीषण संग्राम जारी किया। पीछे जब वरमदसे मत्त वृत्रासुर क्रमशः रणमें वर्द्धित होने लगा तब उसके तेजसे धर्षित और पराजित इन्द्र अत्यन्त व्यथित हो रण छोड़ भागे। सुरपतिको भागते देख अन्यान्य देवता भी धीरे धीरे उनके अनुगामी हुए। इस अवसरमें वृत्र समस्त स्वर्गराज्य पर अधिकार कर समस्त देवउद्यान, गजराज ऐरावत, हयवर उच्चैःश्रवा, कामधेनु, पारिजात, वायवीय विमान और अप्सरायें आदि स्वर्गरत्नोंका उपभोग करने लगा। विश्वकर्मा भी पुत्र सुखसे सुखी हो वहां ही अवस्थान करने लगे।

इधर सुरगण अपने अपने स्थानोंसे भ्रष्ट हो गिरिदुर्ग पर अवस्थान करने लगे। यज्ञभागसे वञ्चित रहनेके कारण उनको अत्यन्त कष्ट होने लगा। पीछे मुनियोंसे वे मिल कर इन्द्रके साथ कैलाशशिखर पर महादेवके पास गये और हाथ जोड़ कर अति विनीत भावसे उनके चरणोंमें गिर कर कहने लगे—"भगवन् ! आप अपार करुणानिधि हैं। आप हम लोगोंको बचाइये। हम लोग वृत्रासुर द्वारा पराजित और स्थानभ्रष्ट हुए हैं और अत्यन्त क्लेशके साथ दिन बिता रहे हैं। हे दयामय ! आप दया प्रकाश कर उस वरमदसे मत्त दुर्वृत्त वृत्रासुरका ध्वंस कीजिये और हम लोगोंको दुःखसे बचाइये।

देवताओंके इस तरह दुःखपूर्ण विनीत वाक्यावसानपर शङ्करने कहा—हे सुरगण ! ब्रह्माको आगे कर हरिके

आह्लादित हुए और पुत्रको शत शत धन्यवाद और आशी-
र्वाद दे कर कहने लगे, 'वत्स ! तुम्हारा सर्वार्थमें मङ्गल
हो । तुम मेरे उस परम वैरी त्रिशिराविनाशकारी पापात्मा
पुरन्दरको मार कर और त्रिदशोंका एकाधीश्वर क्या
मेरे पुत्रशोकसे प्रदीप्त हृदयमें शान्तिवारिसे सिञ्चन शान्ति-
तुम निश्चय जानना, त्रिशिरा मेरे मानसक्षेत्रोंका विशेष
नहीं रहा है, वह सुशील, सत्यवादी, जितेन्द्रिय कर जगत्के
और वेदविदोंमें अग्रगण्य था । हाय ! और भी कहते
वान् प्रिय पुत्रको पापमति पुरन्दरने निहत कर सकोगे ।
डाला है ।' ते उत्पन्न हो, हम
वृत्रासुर पिताका इस तरह शोक करा देंगे ।
सुन कर इन्द्रके प्रति मन ही मन वचन सुन कर पहले तो
शीघ्र ही समरसज्जा कर दलबल र इन्द्र निर्लज्ज, शठ, लंपट
लिये चला । निरन्तर दुन्दु ऊंका विश्वास कदापि नहीं
नाद होने लगा । असंख्य लोग साधु और सद्गुणसम्पन्न
कांपने लगी और देवता मतिबुद्धि दूसरेकी बुराईकी ओर
हुए । देवराज भी आप लोगोंका चित्त शान्त है, इससे
आसन्न विपद्को भा हा पता आप लोग नहीं पा सकते ;
लिये सेनासमागम ग्रहण करना आप लोगोंको कदापि
गृध्रव्यूह (गृध्रपक्षी सुरकी इस उक्ति पर, इन्द्र किसी तरह
समरकी प्रतीक्षामें ता न करेंगे, इस मर्मको नाना प्रकारको
आ वहां उपस्थित ऋषियोंके फिरसे विशेष अनुरोध करने
लगा । परस्पर तमन सन्धि स्थापन पर सम्मत हुआ सही;
में घोर युद्ध उन लोगोंसे कहा, कि मुनियो ! इन्द्र यदि
लित होने रु और आर्द्र वस्तु द्वारा अथवा काष्ठ, प्रस्तर
प्राप्त हुए रात्रि दिन या रातको मुझे मार डालनेकी चेष्टा
हित कर तो मैं इस शर्त्त पर उससे सन्धि कर सकता
स्मरण
तथा इसके अन्य किसी शर्त्त पर नहीं ।
इस
ऋषियोंने वृत्रकी यह शर्त्त स्वीकार की और इन्द्रको
अग्नि ला कर अग्निको शपथ दे दोनोंमें सख्य स्थापित करा
दिया । इसके बाद दोनों एक साथ रहने लगे । एक
साथ सोना, एक साथ बैठना आदि कार्य होने लगा ।
सच बात तो यह है, कि यह कपट-सम्मेलन होने पर
असुरराजके मनमें किसी तरहका कपट न रहनेके
उसने इन्द्रके साथ प्रीति कर ली । दूसरी ओर
के वधके लिये उत्सुक रहा करते थे ।

इन्द्रके साथ यह सम्मेलन और उसके प्रति वृत्रके अकपट विश्वासका विषय जान कर विश्वकर्माने वृत्रसे कहा, 'वत्स ! जिसके साथ एक बार शत्रुता उत्पन्न हुई है, उसका विश्वास करना कदापि सङ्गत नहीं । देखो, वह इन्द्र सदा लोभी, द्वेषी, परायेके दुःखमें उत्सवान्वित, परदारलम्पट, पापी, प्रतारक, छिद्रान्वेषी, हिंसक मायावी और गर्वित है ; अधिक क्या कहें, उस पापीष्ठने अवलीलाक्रमसे पापमय परित्याग कर माताके गर्भमें प्रवेश कर उसके गर्भस्थित रोते हुए बालकोंको सात सात भागोंमें विभक्त कर ४९ अंशोंमें काट दिया है । अतएव वत्स ! सोचो जरा, ऐसे निर्लज्ज लोगोंको पापकार्य्यमें निरत रहनेमें लज्जा ही क्या ?'

वृत्रासुरका मरणकाल निकट था, इससे पिताके इस उपदेशभरे वाक्यसे प्रबोधित हो कर भी उसने उसे शुभकर नहीं समझा । सुतरां विपद् भी उसके पीछे आ उपस्थित हुई । एक दिन तिमिरमयी सन्ध्या-मुहूर्त्तमें वृत्रासुरको निर्जनमें देख इन्द्रके मनमें ब्रह्माके वरदानका विषय याद आ गया । उन्होंने सोचा, कि यही मेरा चिरानुसन्धित यथार्थ समय है । क्योंकि यह दिन भी नहीं रात भी नहीं, अतएव अब देर न कर शीघ्र ही काम करना चाहिये । कैसे क्या करें, इसको सोचमें कातर तथा भीतत्रस्त हो वे अच्युतात्मा हरिका स्मरण करने लगे । हरि भी पूर्व मन्त्रणाके अनुसार स्वयं आ अदृश्य-भावसे उनके वज्रमें घुसे, इससे इन्द्रके चित्तमें जरा स्थिरता आई । इस समय फिर सामनेमें सागरवारिके पर्वत प्रमाण फेनको देख कर, यह सूखा भी नहीं और आर्द्र भी नहीं और शस्त्र भी नहीं ऐसा स्थिर किया । उस समय शक्तिसञ्चयके लिये पराशक्ति भुवनेश्वरी महामाया देवी भगवतीने इस फेनमें अपना अंश संस्थापन किया । इसके बाद नारायणाधिष्ठित वज्र भी उस फेनपिण्ड द्वारा आवृत हुआ । इन्द्रने उस फेनावृत वज्र वृत्रके प्रति फेंका । असुर अकस्मात् वज्राहत हो क्षणकालमें अचलेय पर्वतको तरह निपतित हुआ और चिर दिनके लिये उसने इस जीवनको यावतीय सुख समृद्धिको तिलाञ्जलि दे दी ।

ऊपरमें जो पौराणिक आख्यायिका उद्धृत की गई,

यह वैदिक विश्वासका रूपमात्र है। ऋग्वेदके कई स्थानोंमें वृत्र शब्द पारम्परिक अर्थमें प्रयुक्त देखा जाता है। वृत्र धातुका अर्थ आवरण है। अन्धेरा मेघ आकाशको ढकता है, इस कारण वृत्र शब्दके कालान्तर (१।३२।१, ५२) मेघरूपमें गृहीत हुआ है। (ऋक् १।५२।८, ४।१७।२, ८।१२।२६) इसी कारणसे वृत्र मनुष्योंके अपकार करने वाला और शत्रु स्थानीय है। उक्त संहिताके ७।४८।२, ८।६।१८, १।७०।५, ११५२।१, १।४८।१३, ३।४९।१, ४।१७।२३, ४।२०।११, ५।३४।१०, ६।१९।२, ६।१९।१३, ६।२६।२, ६।३३।२, ६।६०।१, ७।८३।१, ७।९३।३ आदि स्थलोंमें वृत्र अमङ्गलविरोधी, शत्रु, अमित्र, अरि, रिपु, दस्यु और मनुष्योंके अहितजनक, उपद्रव आदि अर्थोंमें प्रवर्तित है। ये सब प्रतिकूल उपद्रव या रिपुदलके नाशमें समर्थ ऋषियोंने इन्द्रकी उक्त मन्त्रोंमें स्तुति की है।

वे बतलाते हैं—वज्रहस्त इन्द्र मानवकुलके प्रतिकूल स्वभाव और अमङ्गलकर आदिम उपद्रवोंका ध्वंस करते हैं, इसीसे शत्रुओंके प्रति वज्रधारी "तुभ्यं वृत्रेषु वज्रिणम्" (१।७।५) कह कर वर्णित हुए हैं। फिर ऋक्संहिताके ८।७८।१ और १०।९८।३ मन्त्रोंमें वे वृत्रहा कहके पूजित हुए हैं। वैदिक समयके भाष्यमें सायणाचार्यने लिखा है—

"वृत्रहत्याय पापरूपस्यावरकस्य शत्रोर्वधाय वृत्रः पापं। तस्य हननाय मनुष्याणामुपद्रवनाशायेत्यर्थः महान्तं शक्रं वज्रवन्तं इन्द्रं हवाम यजन्ति"

इससे स्पष्ट मालूम होता है, कि प्राचीनकालके आर्योंकी बुद्धिके अनुसार किसी नैसर्गिक तम या शक्ति होती थी धारक वृत्र है। उसका हनन करनेके लिये इन्द्र पैदा हुआ था। इन्द्र वज्रपाणि हो कर वृत्रको पुरुषोंके अन्धकार द्वारा आच्छादित किया। पहला मन्त्र (१०।१५।८) में इन्द्रने वृत्रको अहियोंका विनाश किया था। यह देखा मालूम होता है, कि पौराणिक कालमें वृत्रको असुर मानने का विश्वास मालूम नहीं होता।

स्पष्ट ही रहा है, कि पुराणमें वृत्र नामक असुरके साथ इन्द्रके युद्ध वर्णन ही अवतार है, ऋक्संहिताके १।३२ सूक्तमें उसकी उत्पत्ति और पूर्णाहुति देखी जाती है। मेघका नाम वृत्र या अहि है। इन्द्रदेवने वज्र द्वारा आघात कर वृष्टि प्रवर्तित किया था। वैदिक ऋषियोंकी इस कल्पना और उपमाने पुराणकारके वृत्रसंहारको गढ़ा है।

ऋक्संहिताके १।३२।५ मन्त्रसे हम जान सकते हैं कि किस प्रकार अपने जगत्के आवरणकारी वृत्रको इन्द्रने महाध्वंसकारी वज्रसे भुजा काट कर उसका विनाश किया। कुठारछिन्न वृक्षस्कन्धकी तरह अहि पृथ्वी स्पर्श कर गिरा हुआ है। यहां वृत्र और अहि दो असुर नहीं, किन्तु एक ही अर्थमें मेघके पर्यायमें व्यवहृत हुआ है। उक्त ऋक्के १।३२।१ और ४ थे मन्त्रमें अहियोंको हराने अथवा मेघ निर्मुक्त कर आकाशके प्रकाशकी बात है। १।३२।६ ठे मन्त्रमें लिखा है, कि दर्पयुक्त वृत्रने अपने समान योद्धा नहीं समझ कर महावीर, विजयी और शत्रुविजयी इन्द्रको युद्धके लिये बुलाया। किन्तु इन्द्रके हाथसे उसकी रक्षा न हुई। नदीमें गिर कर नदियोंको ढांचा तोड़ कर दिया। (क्योंकि वृष्टि होनेसे नदीतट जलप्लावनसे प्लावित हुआ था।) इस तरह हाथ पैर हाथ या छिन्नभिन्नावस्थ हो कर भी जब वृत्रने इन्द्रको फिर युद्धके लिये ललकारा, तब इन्द्रने उसके पीठ पर वज्रसे वज्राघात किया था। जिस तरह पुरुषत्वहीन पुरुष बलवान् बैलोंकी बराबरीका इच्छा करनेवाला वृथा कामना करते हैं, वृत्रने भी उसी तरह अपनी जितनेके लिये वृथा यत्न किया। अन्तमें शत्रु छिन्न हो कर पुरु भूमिमें गिर गया। वृत्रने जीवित दशामें अपनी महिमा द्वारा जिस जलको आबद्ध रखा था, उसकी मृत्यु पर वह जल वृत्रदेहको उल्लंघन कर प्रवाहित हुआ। (१।३२।८) नित्यस्थित, विश्राम रहित, जलकी निहित, मानशून्य इस नदियोंके जलमें यह जाता है, इन्द्रशत्रु सदा निद्रामें सो रहा है (१।३२।१०, १।१२१।११, ५।३०।१)

इन्द्रने जब वज्र द्वारा वृत्रको निहत किया, तब वृत्रकी माता दनुने पुत्रकी रक्षाके लिये अपनी देहके ओटमें रक्खा था। इस समय पुत्र माताकी अहितकारी हो कर निश्चल थी। वृत्रको मार कर इन्द्रने उसी दानवको भी मार दिया। (ऋक् १।३२।९

और ११) ऋक् ३।४३।३ मन्त्रमें इन्द्र द्वारा वृत्रको घेरनेकी बात लिखी है।

फिर १।३२।१२-१४ मन्त्रमें लिखा है, कि 'एक देव वृत्रने इन्द्रके वज्रके प्रति जब भीमप्रहरण प्रहार किया, तब इन्द्रने अश्वपुच्छकी तरह बन कर उस अस्त्राघातका निवारण किया था। अहिको हनन करनेके समय इन्द्रके हृदयमें भयका सञ्चार हुआ था। उसमें उन्होंने वृत्रके दूसरे हन्ताकी प्रतीक्षा की थी; अन्तमें वे ९९ नदियों और जलाशयोंको पार कर श्येन पक्षीकी तरह भागे थे।' सायणाचार्य्यका कहना है, कि वृत्रको हनन करनेसे पहले इन्द्रके हृदयमें वृत्रको मारना उचित है या नहीं यह भय समाया था; किन्तु मूल पढ़नेसे मालूम होता है, कि इन्द्र शत्रुके भयसे ही भागे थे। इसी बातके आधार पर पौराणिकोंने लिखा है, कि इन्द्र वृत्रके भयसे झीलमें छिपे थे।

सिवा इसके ऋग्वेदके ३।३०, १।५२।१०-१५।८।६।६, ६५।२, ८।६६।३, मन्त्रमें इन्द्र द्वारा वृत्रके हाथ पैर, मुख मस्तक घुटना आदि छिन्न भिन्न होनेकी बात है। युद्धकालमें वृत्रने भी इन्द्रके प्रति विद्युत्वर्षण, विकट गर्जन, और जल वर्षण आदि किया था। (१।८०।१२, १।३२।१२) इस समय वृत्रने नाना तरहके भयावह शब्दोच्चारण कर आकाशको कम्पित किया था। (८।८५।७, ५।२९।४, १।६१।१०, ६।१७।१०) जो वृत्र जलबन्द कर अन्तरीक्षके ऊपर सोया था और अन्तरीक्षमें जिसकी असीम व्याप्ति थी, उसी वृत्रके दोनों घुटनेको इन्द्रने शब्दायमान वज्रसे काट कर जमीनमें गिरा दिया। (१।५२।६)

१।८०।५ मन्त्रमें वृत्रको उग्रसांनुभ्य कह कर वर्णना की गई है। ८।३।१६ मन्त्रमें इन्द्र द्वारा उसको ऊंचेसे नीचेमें गिरा कर और ७।१९.५ और ८।८२।२, १०।८९।७ मन्त्रोंमें इन्द्र द्वारा उसके ९९ पुरियोंके ध्वंसकी बात लिखी है।

ऋक् १।३३।४ ८ मन्त्रको पढ़नेसे मालूम होता है, कि वृत्र धनवान् डाकुदलपति और उसके अनुचर सनकगण यज्ञविरोधी थे। इन्होंने इन्द्रके साथ घोर युद्ध किया था। उक्त वृत्रानुचरने (भुजाके बलसे) पृथ्वीको आच्छादन किया था और वे हिरण्य और मणि द्वारा शोभमान हुए थे। वे वर्द्धमान शत्रु इन्द्र द्वारा विजित हो भागे, इत्यादि वृत्तान्त पौराणिक आख्यानोंका पोषक है, यह कौन अस्वीकार करेगा?

वृत्रके साथ वृत्रहन्ताके युद्धको गल्प प्राचीन आर्य्योंमें प्रचलित थी। अतएव हिन्दुओंके सिवा अन्यान्य आर्य्य जातियोंमें भी इस कहानीका कुछ अंश पाया जाता है। इरानियोंके 'अवस्ता' शास्त्रमें वृत्रहन्ताकी उपासना लिखी है। निम्नोक्त विवरणमें उसका आभास मिलता है—

"अहुरके सृष्ट वेरेथ्रघ्नको (संस्कृत वृत्रघ्न) हम लोग यज्ञ प्रदान करते हैं"

जरथुस्त्रने अहुर मजदसे पूछा, कि हे सदयचित्त अहुरमज्द! हे जगत्के सृष्टिकर्त्ता पवित्रात्मा! स्वर्गीय उपास्योंमें कौन सर्वोत्कृष्ट अस्त्रधारी है? अहुर-मज्दने उत्तर दिया—हे स्पितम जरथुस्त्र! अहुरके सृष्ट वेरेथ्रघ्न (सर्वोत्कृष्ट अस्त्रधारी) हैं।"

(जन्द अवस्ता, बहराम यस्त)

फिर उक्त ग्रंथमें अहिविनाशके सम्बन्धमें अनेक बातें पाई जाती हैं, हम उनका कुछ अंश उद्धृत करते हैं—

वीर्य्यवान् आप्त्यकुलके उत्तराधिकारी थ्रएतनने भी (संस्कृत आप्त्य त्रित या त्रैतन) चौकोन वरुण प्रदेशमें एक सुवर्ण सिंहासन प्रदान किया। उन्होंने उससे एक वर प्रार्थना कर कहा, 'हे ऊर्द्ध्वविचारी वायु! मुझको यह वर दो, कि मैं तीन मुख और तीन मस्तक युक्त अजिदहको (संस्कृत 'अहि' 'दहक') परास्त कर सकूं'।

(जन्द अवस्ता, रामयस्त)

इरानियोंके अवस्तामें वृत्र और अहिका परिचय जैसा है, यूनानी ग्रंथोंमें वैसा ही विवरण दिखाई देता है—

"Ahi reappears in the Greek Echis, Echidna, the dragon which crushes its victim with its coil" (Cox's Introduction to mythology and folklore. p. 34 note) "But besides Kerberos (ऋग्वेदोक्त यमका कुकुर सरमा) there is another dog conquered by Hercules, and he (like Kerberos is born of Typhaon and Echidna (ऋग्वेद-

वृत्रहन्तृ (सं० पु०) वृत्रस्य हन्ता। वृत्र हननकारी, वृत्रनाशक, इन्द्र।

वृत्रारि (सं० पु०) इंद्र।

वृथक् (सं० अव्य०) पृथक्। "यतन्ते वृथगग्नयः" (ऋक् ८।४३।४)

वृथा (सं० अव्य०) निरर्थक, निष्फल, व्यर्थ, फजूल।

वृथाजन्मन् (सं० क्ली०) वृथा निरर्थकं जन्म। निरर्थक जनम, निष्फल जन्म। अग्निपुराणमें चार प्रकारके वृथा जन्मके विषयोंका उल्लेख किया गया है। जिसके पुत्र न हो, जो अधार्मिक हैं, जो सर्वदा परपाकभोजनकारी अर्थात् नियत परान्नयाशी हैं और जो पराधीन हैं—इन चार तरहके लोगोंका वृथा है।

वृथात्व (सं० क्ली०) मिथ्यात्व, वृथा होनेका भाव या धर्म।

वृथादान (सं० क्ली०) वृथा निरर्थकं दानं। निष्फल दान। अग्निपुराणमें १६ प्रकारके वृथादानकी बात कही गई है। देवपितृविहीनदान, अर्थात् जो दान पितृ और देवके उद्देशसे न किया जाये, वह वृथा है।

वृथामांस (सं० क्ली०) वृथा निरर्थकं मांसं। जो मांस देवता और पितृगणको चढ़ाया न गया हो, वह मांस वृथा है। ऐसे वृथामांसके भक्षणका निषेध किया है। अग्निपुराणमें लिखा है, कि जो वृथामांस भक्षण करता है, उसे प्रेतत्व प्राप्त होता है।

मनुसंहितामें वृथामांस भोजन विशेषरूपसे निषिद्ध है। प्राणिहिंसा न करनेसे किसी तरह मांस उत्पन्न नहीं होता। प्राणिवध कार्य्य किसी तरह स्वर्गजनक नहीं हो सकता। अतएव मांस भोजन निषिद्ध है। मांसकी उत्पत्ति, जीवधारियोंका वध, और बन्धन-यन्त्रणा इन सबकी विशेषरूपसे पर्यालोचना करने पर यह स्पष्ट है, कि वैध या अवैध सब तरहके मांसका खाना उचित नहीं।

शास्त्रविधिका त्याग कर जो निशाचरोंकी तरह मांसभक्षण नहीं करते, वे लोकसमाजमें प्रिय गिने जाते हैं और कभी किसी व्याधि या रोग द्वारा वे पीड़ित भी नहीं होते। पशुहनन करनेकी आज्ञा देनेवाला, मरे हुए पशुके मांस भाग लगानेवाला, स्वयं पशुहन्ता, मांस क्रय विक्रयकारी, मांस पकानेवाला, मांस परोसनेवाला, और मांसभक्षक, ये आठ आदमी ही घातक कहे जाते हैं। जो आदमी पितृ और देवोंकी अर्चना न कर दूसरेके मांससे अपना मांस बढ़ाना चाहते हैं उनके समान जगत्‌में पापकारी और कोई नहीं। जो मनुष्य सौ वर्ष तक वार्षिक अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करते हैं। और जो यावज्जीवन मांस भोजन न करे वे दोनों ही समान पुण्यफलके अधिकारी हैं।

वैध मांसभक्षणमें, वैध मद्यपान करनेमें, वैध मैथुन करनेमें दोष नहीं। क्योंकि भक्षण, पान, मैथुन आदि विषयमें जीवकी प्रवृत्ति स्वाभाविकी है। किन्तु जो भाग्यवान् व्यक्ति इनसे सम्पूर्णरूपसे पृथक् रहते हैं, वह महापुण्यवान् हैं।

वृथापाद (सं० त्रि०) अनायास ही शत्रुको अभिभवकारी।

वृद्ध (सं० त्रि०) वृध-क्त, (यस्य विभाषा। पा ७।२।१५) इति नेट्। गतयौवन, बूढ़ा। पर्याय—प्रवर, स्थविर, जीन, जीर्ण, जरन्, जर्जर, पलित। राजनिर्घण्टके मतसे इक्यावन वर्षके बाद मनुष्य बुड्ढा होता है। अवस्था तीन हैं—बालक, युवा और वृद्ध। इनमें सोलह वर्षसे कम उम्रकी बाल अवस्था है। यह बाल अवस्था भी तीन प्रकारकी है दुग्धपायी, दुग्धान्नभोजी और अन्नभोजी। एक वर्षकी अवस्था तक दुग्धपायी, दो वर्ष तक दुग्धान्नभोजी, इसके बाद अन्नभोजी है।

१६से सत्तर वर्षकी अवस्था तक मनुष्यको युवक या मध्य वयस्क कहते हैं। यह युवा चार प्रकारको है—वर्द्धनशील, युवापूर्णवीर्य और क्षयशील। इनमें २० वर्ष तक वर्द्धनशील अवस्था, युवा, पूर्णवीर्य, और क्षयशील। इनमें २० वर्ष तक वर्द्धनशील अवस्था, ३० वर्ष तक युवा और ४० वर्ष तक पूर्णवीर्यादि सम्पन्न है अर्थात् वीर्य रसरक्त आदि समस्त धातु इन्द्रिय बल और उत्साह आदि स्थिर भावसे पूर्ण रहता है। इसके बाद ७० वर्ष तक क्रमसे समस्त धातु इन्द्रिय, बल, उत्साह आदि किञ्चित् क्षीण होता रहता है। ७० वर्षके बाद रस रक्त आदि धातु, इन्द्रिय और बल क्षीण होने लगता है तथा वलि, पलित, खालित्य युक्त हो

समस्त शरीरमें व्याप्त हो जाता है। खांसी, तृषा, आदि रोग द्वारा आक्रान्त हो मस्तिष्क क्रोध वाले मनुष्य हैं। इस अवस्थाके रोगीको मूढ़ कहते हैं। तामसीके कारण शरीरमें कफ, मस्तकमें पित्त और पक्वाशयमें वायु वर्द्धित होती है। रोगादिके कारण कुछ लोगों-को अवस्थामें ही मार्द्दव प्राप्त हो जाता है। इस तरहसे मार्द्दव प्राप्त होने पर भी उपरोक्त लक्षण दिखाई देते हैं।

२ पण्डित। मनुने लिखा है, कि मस्तकके केश पक जाने पर ही वृद्ध कहना चाहिये, ऐसी धारणा बिलकुल गलत है। किन्तु जो युवा हो कर भी विद्वान् है वह वृद्ध नामसे पुकारा जाता है। (मनु २।१५६)

ज्ञानवृद्ध ही यथार्थमें वृद्ध कहने योग्य है। हितोप-देशमें लिखा है, कि आपत्काल उपस्थित होने पर वृद्धके वचनानुसार चलना आवश्यक है। ऐसा करनेसे मनुष्य संकट से विपद्से उद्धार पाते हैं। (क्ली०) २ शैलज नामक गंधद्रव्य। (स्त्र० (पु०) ३ वृद्ध दारक।

वृद्धक (सं० त्रि०) वृद्ध स्वार्थे कन्। वृद्ध।

वृद्धकण्ट (सं० पु०) दुष्कुन्दका पेड़।

वृद्धकोल (सं० पु०) वराहभेद।

वृद्धकाक (सं० पु०) वृद्धः काकः। काला कौआ। पर्याय—द्रोणकाक, काकोल, दण्डकाक, पर्वतकाक, वनाश्रय, काकोल।

वृद्धकाल (सं० पु०) वृद्धः कालः। वृद्धावस्था, बुढ़ापा काल, प्राचीनावस्था।

वृद्धकुमारी (सं० स्त्री०) एक प्रकारका साग।

वृद्धकृच्छ्र (सं० क्ली०) कृच्छ्रभेद।

वृद्धकेशव (सं० पु०) पुरीमें एक मूर्तिका नाम।

वृद्धक्षत्र (सं० पु०) पौराणिक सिन्धुराजके पिता।

वृद्धगन्ध (सं० पु०) एक राजाका नाम।

वृद्धगङ्गा (सं० स्त्री०) वृद्धा गङ्गा, बूढ़ी गङ्गा।

ब्रह्मपुराणके ७८वें अध्यायमें इस गङ्गा नदीके माहात्म्यका वर्णन किया है—

गौतमी नदी पर सत्यलोकवासी गौतम महर्षिके मणिपुर नामक एक बड़ा आश्रम था। वहां इन्द्रादि देवता अवलोकन करते थे। इसके पश्चिम, उत्तर और पूर्व भागमें यथाक्रम विष्णुतीर्थ, वृद्धगङ्गा और ब्रह्मतीर्थ नामकी तीन नदियां उत्पन्न हो सागरमें आ मिली हैं। इसी त्रिगङ्ग-द्वार सिन्धुसङ्गम, वृद्धगङ्गाको और उस तीर्थके पूर्व ओरसे स्पर्श मिलनेवाली कपिलतीर्थ नदीसे उत्पत्ति हुई है। ये तीनों नदियां गङ्गाकी तरह पापनाशिनी हैं।

वृद्धगङ्गाधर (सं० पु०) चूर्ण औषधभेद।

वृद्धगर्ग—ज्योतिःशास्त्रवित्, वैदिक ऋषि और वृद्धगार्गीय नामके ज्योतिर्ग्रन्थ प्रणेता।

वृद्धगार्गीय (सं० त्रि०) वृद्धगर्ग सम्बन्धीय।

वृद्धगार्ग्य (सं० पु०) १ एक ऋषिका नाम। २ एक संहिताका नाम।

वृद्धगिरि—एक प्राचीन तीर्थका नाम। ब्रह्मवैवर्तपुराण-में इसका माहात्म्य लिखा है।

वृद्धगोनस (सं० पु०) अजगरकी जातिविशेष, सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका सांप।

वृद्धगौतम (सं० पु०) एक धर्मशास्त्रकार नाम और उनके ग्रन्थ।

वृद्धचाणक्य (सं० पु०) १ एक नीतिशास्त्रकारका नाम। २ एक ग्रन्थका नाम।

वृद्धता (सं० स्त्री०) वृद्धस्य भावः वृद्ध-तल् टाप्। वृद्धके भाव या धर्म।

वृद्धतिक्ता (सं० स्त्री०) पाठा, पाढ़।

वृद्धत्व (सं० क्ली०) वृद्धस्य भावः वृद्ध त्व। वार्द्धक्य। वृद्धता, वृद्धका भाव या धर्म। पर्याय—स्थाविर, वार्द्धक, वार्द्धव।

वृद्धदार (सं० पु०) वृद्धदारक।

वृद्धदारक (सं० पु०) वृद्धो दारको बालक इव यस्मात्। १ छागलान्त्री वृक्ष। २ स्वनामख्यात लताविशेष, विधारा नामक पौधा। यह कटु, तिक्त और उष्ण होता है। पर्याय—जुङ्गक, छगलान्त्री, मेषा, जुङ्ग, ऋष्यगन्धा, आवेगी, वृद्धदार, वृद्ध-कोटरपुष्पी। गुण—कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, रसा-

यन और कफ, वात, खाँसी, सूजन और आमदोष-नाशक।

३ नीलवुह्ना।

वृद्धदारकादिलौह (सं० क्लो०) ऊरुस्तम्भरोगाधिकारोक्त औषधविशेष। इस प्रस्तुत-प्रणाली इस तरह है—वृद्धदारक, इमली और दन्तीमूल, हस्तीकर्ण, चितामूल, मानकच्चू, सोंठ, पिपर, मिर्च, आँवला, हरीतकी, बहेड़ा, चिता, मोथा, विडङ्ग, इन सब द्रव्योंके प्रत्येकको चूर्ण कर जितना चूर्ण होगा, पहले उसे अच्छी तरह मिला कर एक कर देना होगा। पीछे जलसे सान कर २ रत्तीके प्रमाण गोली तय्यार करनी होगी। यह गोली ऊरुस्तम्भ तथा आमवात आदि रोगोंमें भी विशेष उपकार करती है।

वृद्धदारु (सं० क्लो०) वृद्धत्वनाशकं दारु यस्य। वृद्धदारक वृक्ष।

वृद्धद्युम्न (सं० पु०) अभिप्रतारि वंशीय एक ऋषिका नाम।

वृद्धधूप (सं० पु०) १ सिरिसका पेड़। २ सरलका पेड़।

वृद्धधूमा (सं० स्त्री०) श्लेष्मातक वृक्ष।

वृद्धनगर सं० क्लो०) वड़नगर। नागर देखो।

वृद्धनाभि (सं० त्रि०) वृद्धः प्रवृद्धो नाभिर्यस्य। उन्नत नाभि, जिसका पेट निकला हो, तोंदवाला, तोन्दैल।

वृद्धपराशर (सं० पु०) एक धर्मशास्त्रकारका नाम।

वृद्धप्रपितामह (सं० पु०) प्रपितामहात् वृद्धः। प्रपितामहतात, दादाका दादा, परदादाका पिता।

वृद्धबला (सं० स्त्री०) वृद्धे बला। १ महासमङ्गा, कंगही या कंघी नामका वृक्ष।

वृद्धवृहस्पति (सं० पु०) १ एक प्राचीन धर्मशास्त्रकारका नाम। २ उनके बनाये ग्रन्थका नाम।

वृद्धभाव (सं० पु०) वृद्धस्य भावः। वृद्धका भाव।

वृद्धभोज (सं० पु०) एक धर्मशास्त्र संग्रहकारका नाम।

वृद्धमनु (सं० पु०) १ एक धर्मशास्त्रकारका नाम। २ एक ग्रंथका नाम।

वृद्धमहस् (सं० त्रि०) वृद्धं महो यस्य। वृद्ध तेजाः अतिशय तेजोयुक्त। (ऋक् ६।२०।४)

वृद्धयवनाचार्य (सं० पु०) यवनजातक नामक ज्योतिष ग्रंथके रचयिता।

वृद्धयमेश्वर—हिमालय शिखरस्थ एक तीर्थका नाम।

वृद्धयाज्ञवल्क्य (सं० पु०) एक धर्मशास्त्रकारका नाम।

वृद्धयुवती (सं० स्त्री०) १ कुटनी, धात्री, दाई।

वृद्धराज (सं० पु०) अमलवेंत।

वृद्धबदरी—हिमालय शिखरस्थ एक तीर्थका नाम।

वृद्धवयस (सं० क्लो०) वृद्धं वयः। प्राचीन वयस, बुढ़ापा। (त्रि०) वृद्धं वयो यस्य। २ वृद्ध, बुड्ढा। ३ प्रभुतान्न, प्रचुर अन्नविशिष्ट। (ऋक् १।१२७।११)

वृद्धवशिष्ठ (सं० पु०) १ एक धर्मशास्त्रकारका नाम। २ वशिष्ठसिद्धान्त या विश्वप्रकाश नामक ज्योतिर्ग्रंथके प्रणेता।

वृद्धवाग्भट (सं० पु०) १ एक वैद्यकग्रंथके रचयिता। २ ग्रंथभेद।

वृद्धवादिसूरि (सं० पु०) एक जैनाचार्यका नाम।

वृद्धवादिन् (सं० पु०) वृद्धवादी, एक जैनाचार्यका नाम।

वृद्धवाशिनी (सं० स्त्री०) शृगाल, स्यार, गीदड़।

वृद्धवाहन (सं० पु०) आमका पेड़।

वृद्धविभीतक (सं० पु०) वृद्धः प्रवृद्धो विभीतक इव। आम्रातक, आमड़ा।

वृद्धविष्णु (सं० पु०) एक धर्मशास्त्रकारका नाम।

वृद्धवृष्ण (सं० त्रि०) वृद्ध वृष्णि-सम्बन्धीय।

वृद्धवृष्णिय (सं० त्रि०) वृद्ध वृष्णि-सम्बन्धीय।

वृद्धशङ्ख (सं० पु०) एक धर्मशास्त्रकारका नाम।

वृद्धशर्मन् (सं० पु०) भारतीय एक राजाका नाम। (महाभारत)

वृद्धशवस (सं० त्रि०) प्रवृद्धबल, अत्यन्त बलविशिष्ट। (ऋक् ४।८७।६)

वृद्धशाकल्य (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

वृद्धशातातप (सं० पु०) एक धर्मशास्त्रकारका नाम।

वृद्धशोचिस् (सं० त्रि०) अतिशय तेजोयुक्त, अति तेजस्वी।

वृद्धश्रवा (सं० पु०) वृद्धश्रवस्, इन्द्र।

वृद्धश्रावक (सं० पु०) कापालिक।

वृद्धगङ्ग (सं० पु०) वृद्धाया: गंगा । वृद्धगङ्गा, बूढ़ी गंग, गोदावरी ।

वृद्धगौतम (सं० पु०) १ आदि स्मृतिशास्त्रके रचयिता । २ एक ग्रन्थका नाम ।

वृद्धगृध्रक (सं० पु०) [illegible] ।

वृद्धनृत्य (सं० स्त्री०) वृद्धका नृत्य, जरा आयी वय । [illegible], बूढ़ेका नृत्य ।

वृद्धशीर (सं० त्रि०) वृद्ध अवस्थित ।

(ऋक् १।१८४।८)

वृद्धसेना (सं० स्त्री०) देवताजित्‌की माता । भरत-वंशीय राजा सुमतिके औरस और इनके गर्भसे देवताजित्‌ने जन्म लिया था । (भागवत ५।१५।१)

वृद्धहारीत (सं० पु०) १ एक प्राचीन धर्मशास्त्रकार-का नाम । २ एक धर्मशास्त्र ।

वृद्धा (सं० स्त्री०) वृद्ध टाप् । १ गतयौवना, बुड्ढी । पर्याय—पलिक्नी, पलिता, स्थविरा, निष्कला, जरती, गतार्त्तवा । ५० वर्षके उपरान्त स्त्रियां वृद्धा कही जाती हैं ।

"आषोडशाद् भवेद् बाला तरुणी त्रिंशता मता ।
पञ्चपञ्चाशता प्रौढा भवेद् वृद्धा ततः परम् ॥"

(शब्दरत्न)

१६ वर्ष तक बाला, ३० वर्ष तक तरुणी, ५५ वर्ष तक प्रौढ़ा और इसके बाद वृद्धा कहलाती है । भावप्रकाशमें लिखा है, कि ५० वर्षके बाद स्त्रियां वृद्धा कही जाती हैं । वृद्धाका स्त्रीसंसर्ग निषिद्ध है । इससे मृत्यु होती है । २ अंगुष्ठ । ३ महाश्रावणिका ।

वृद्धाङ्कुश—पञ्जाब जिलेके उत्तर भागमें प्रवाहित एक नदीका नाम ।

वृद्धाङ्गुलि (सं० स्त्री०) वृद्धा चासौ अङ्गुलिश्चेति । हाथ पैरकी सबसे मोटी अंगुली, अंगूठा ।

वृद्धाचल (सं० स्त्री०) एक तीर्थका नाम । मद्रास प्रेसिडेन्सीके अर्काट जिलेका एक नगर । वर्तमान नाम—विरुद्धाचलम्, विरुदाचलम् भी ।

वृद्धार्क (सं० पु०) एक आदित्य मूर्त्ति ।

वृद्धाचार्य (सं० पु०) [illegible] ।

वृद्धादित्य (सं० पु०) आदित्यका दूसरा नाम ।

वृद्धाल (सं० पु०) १ [illegible] । (त्रिका०) ज्ञानवृद्धकी सम्पत्ति ।

वृद्धायु (सं० त्रि०) वृद्ध आयुयुक्त ।

(ऋक् [illegible])

वृद्धावधिर (सं० पु०) एक ज्योतिःशास्त्रकार ।

वृद्धि (सं० स्त्री०) वृध क्तिन् । अष्टवर्गान्तर्गत एक ओषधि । मोरङ्गदेशमें हिमालयप्रदेशके भागमें प्रसिद्ध है । पर्याय—योग्या, ऋद्धि, सिद्धि, लक्ष्मी, युग्मा, वृद्धि-दात्री, मङ्गल्या, श्री, जनेष्ट, आशीः, श्रेया, भूति, सुख, सुत, आशम्भरा । गुण—मधुर, शुक्रजनक, लिंग, शीतल, रुचि, और मेधावर्द्धक, कफघ्न, कुष्ठ और कृमिनाशक है ।

ऋद्धि और वृद्धि—ये दो मादक कन्द कोचपाका पर्वतमें उत्पन्न होते हैं । ये दोनों कन्द शुक्लवर्ण रोम-युक्त, लिङ्गसमविरुद्ध, और मनोहारि हैं । ऋद्धि कन्द पाडके समान है, किन्तु फल वामावर्त्त है और वृद्धिका फल दक्षिणावर्त्त है । ऋद्धिके गुण—बलकारक, त्रिदोष-नाशक, शुक्रवर्द्धक, मधुर, गुरु, रस, और प्राणवर्द्धक, मूर्च्छा और रक्तपित्तनाशक । वृद्धिके गुण—गर्भप्रद, शीतवीर्य, बलवर्द्धक, मधुररस, शुक्रवर्द्धक रुचिकर, कास और क्षयरोगनाशक ।

वर्तमान समयमें ऋद्धिके अभावमें बला और वृद्धि-के अभावमें महाबला देना होता है ।

२ ज्योतिर्विदोंके मतसे विष्कुम्भादि योगोंके अन्तर्गत योगविशेष । ध्रुव आदि सत्ताईस योगोंके अन्तर्गत ग्यारहवाँ और इसका नाम वृद्धि है । कृत्यचिन्तामणि यथा—कृषि, वाणिज्य, दुर्ग, सेतु (पुल), गृहारम्भ, वनरोपण, अलङ्कार, और औषधसेवन प्रभृति कार्य इस योगमें करनेसे वृद्धि होती है । पर्याय—वर्द्धन, स्फाति ।

३ जिनका जन्म २७ योगोंके अन्तर्गत ११वाँ योग । इस योगमें जन्म होनेसे मनुष्य गुणशाली, विनयी, धन-धान्यसे युक्त और अर्थोपार्जनमें विचक्षण होते हैं ।

४ कलान्तर, सूद । पूंजी का सूद लेनेका जो नियम है । इसके अनुसार सूद लिया जा नहीं सकता । जैसे

करनेवाला समाजमें निंदित होता और राजाके यहां दण्ड पाता है। इसके संबंधमें याज्ञवल्क्यसंहितामें लिखा है—जब बन्धक रख कर कर्ज लिया जाता है, तब हर महीनेमें सैकड़े अस्सी भागका एक भाग सूद या वृद्धि और जब कोई चीज बन्धक नहीं रखी जाती, तब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन वर्णों के अनुसार क्रमसे सैकड़े सौ भागका २, ३, ४ और पांच भाग सूद लिया या दिया जाना चाहिये। अर्थात् ब्राह्मणको एक सौ पण कर्ज देने पर २ पण और क्षत्रियको इस तरह कर्ज देने पर तीन पण वृद्धि या सूद देना पड़ता है।

जो वाणिज्यके लिये परदेशमें जाते हैं, वे यदि कर्ज ले तो उनको सैकड़े दश भागका एक भाग अर्थात् सैकड़े दश रुपयेके हिसाबसे और समुद्र पार जानेवाले वणिक्को एक सौ भागमें बीस भाग वृद्धि देंगे। सब जातियां ही ऋण ग्रहण करते समय सबको अपनी अपनी निर्दिष्ट वृद्धि दें।

नारदसंहितामें वृद्धि चार प्रकारकी कही गई है—कायिका, कालिका, कारिता और चक्रवृद्धि।

"कायिका कालिका चैव कारिता च तथा परा।
चक्रवृद्धिश्च शास्त्रेषु तस्य वृद्धिश्चतुर्विधा॥"

प्रतिदिन वृद्धि देनेके नियमसे जब कर्ज लिया जाता या दिया जाता है, तब उसका नाम कायिका, मासिक सूदको कालिका और ऋणकारी जिस नियमसे कर्ज लेता है, उसको कारिता तथा जब सूदका सूद लिया जाता है, तब उसका नाम चक्रवृद्धि हो जाता है।

कृणादान शब्द देखो।

वृद्धिक (सं० त्रि०) वृद्धि स्वार्थे कन्। वृद्धि।

वृद्धिकर्मन् (सं० क्ली०) नान्दीमुखश्राद्ध, वृद्धिश्राद्ध।

वृद्धिका (सं० स्त्री०) वृद्धिरेव स्वार्थे कन् टाप्। १ ऋद्धि नामकी ओषधि। २ शङ्खपुष्पा, श्वेतापराजिता। ३ अर्कपुष्पी।

वृद्धिजीवक (सं० त्रि०) सूदखोर।

वृद्धिजीवन (सं० क्ली०) वह जो सूद ले कर अपना जीवन निर्वाह करता हो।

वृद्धिजीविका (सं० स्त्री०) वृध्या जीविका। ऋणादानजीविका, वह जो सूदखोरीसे अपना जीवन निर्वाह करता है। पर्याय—अर्थप्रयोग, कुसीद, कलाम्बिका।

वृद्धिद (सं० पु०) वृद्धिं ददातीति दा-क। १ जीवक नामका छोटा क्षुप। २ शूकरकन्द। (त्रि०) ३ वृद्धि देनेवाला। (वृहत्स० ५३।३७)

वृद्धिपत्र (सं० क्ली०) वह शस्त्र जो सात उंगली प्रमाणका होता है। यह शस्त्र चीर फाड़के काममें व्यवहृत होता है।

सुश्रुतकी टीकामें लिखा है, कि यह शस्त्र दो तरहका है। अग्रिताग्र और प्रवताग्र। ये दोनों ही शस्त्र सात अंगुल प्रमाणके होंगे। अद्धर्ध पञ्चांगुल वृन्त और सार्द्धांगुलफल। इनमें पहलेको क्षुर कहते हैं।

इसी क्षुरके आकारवाले शस्त्रका नाम वृद्धिपत्र है। चीरफाड़की सुविधाके लिये इसका अग्रभाग ऋजु और गहरा दूसरी ओर झुका हुआ रहता है।

(वाग्भट २६।६)

वृद्धिभूत (सं० त्रि०) वृद्धि-भू-क्त। वृद्धिप्राप्त।

वृद्धिमत् (सं० त्रि०) १ उत्थित, वर्धित, अंकुरित। २ वर्द्धनशील।

वृद्धियोग—फलितज्योतिषके २७ योगोंमें एक योगका नाम।

वृद्धिश्राद्ध (सं० क्ली०) वृद्धये यत् श्राद्धं। वृद्धिनिमित्तक श्राद्ध, अभ्युदयके निमित्त पितृादिके उद्देशसे श्राद्धादि पूर्वक अन्न आदिका दान। अभ्युदयके लिये ही इसका अनुष्ठान होता है, इससे इसको आभ्युदयिक श्राद्ध भी कहते हैं। दश तरहके संस्कार कार्योंमें अर्थात् गर्भाधानसे विवाह तक इन दश संस्कारोंमें से प्रत्येकमें यह श्राद्ध करना होता है। इसके सिवा देवप्रतिष्ठा, वृक्षप्रतिष्ठा, जलाशय आदिकी प्रतिष्ठा और तीर्थयात्राकालमें तथा तीर्थसे लौटने पर भी यह वृद्धिश्राद्ध करनेकी विधि है। प्रेतके उद्देशके सिवा अन्य वृषोत्सर्गके समय और वास्तुयागमें भी इस श्राद्धका विधान देखा जाता है।

वृद्धिश्राद्धमें सामवेदियोंको ६ पुरुषोंका अर्थात् पिता, पितामह, प्रपितामह और मातामह, प्रमातामह और

वृद्धसङ्घ (सं॰ पु॰) वृद्धानां संघः। वृद्धसमूह, बहुतेरे वृद्ध, वार्द्धक।

वृद्धसुश्रुत (सं॰ पु॰) १ आदि सुश्रुतसंहिताके रचयिता। २ एक ग्रन्थका नाम।

वृद्धसूत्रक (सं॰ पु॰) करपास।

वृद्धसूत्रक (सं॰ क्ली॰) वृद्धस्य सूत्रं, ततः स्वार्थे कन्। इन्द्रतूला, बुढ़ीका सूता।

वृद्धसेन (सं॰ त्रि॰) प्रवृद्ध बलविशिष्ट।

(ऋक् १।१८६।८)

वृद्धसेना (सं॰ स्त्री॰) देवताजित्‌की माता। चन्द्रवंशीय भरतात्मज सुमतिके औरस और इनके गर्भसे देवताजित्‌ने जन्म लिया था। (भागवत ५।१५।२)

वृद्धहारीत (सं॰ पु॰) १ एक प्राचीन धर्मशास्त्रकारका नाम। २ एक धर्मशास्त्र।

वृद्धा (सं॰ स्त्री॰) वृद्ध टाप्। १ गतयौवना, बुड्ढी। पर्याय—पलिक्नी, पलिता, स्थविरा, निष्कला, अरत्नी, गतार्त्तवा। ५५ वर्षके उपरान्त स्त्रियां वृद्धा कही जाती हैं।

"आषोड़शाद् भवेद् बाला तरुणी त्रिंशता मता।
पञ्चपञ्चाशतः प्रौढ़ा वृद्धा भवति तत्परम्॥"

(काशिदास)

१६ वर्ष तक बाला, ३० वर्ष तक तरुणी, ५५ वर्ष तक प्रौढ़ा और इसके बाद वृद्धा कहलाती है। भावप्रकाशमें लिखा है, कि ५० वर्षके बाद स्त्रियां वृद्धा कही जाती हैं। वृद्धा स्त्रीका संसर्ग निषिद्ध है। इससे मृत्यु होती है। २ अंगुष्ठ। ३ महाश्रावणिका।

वृद्धागङ्गा—बङ्गाल त्रिपुरेके उत्तरी भागसे प्रवाहित एक नदीका नाम।

वृद्धाङ्गुलि (सं॰ स्त्री॰) वृद्धा अङ्गुलिः। हाथ पैरकी मोटी उंगली, अंगूठा।

वृद्धाचल (सं॰ क्ली॰) एक तीर्थका नाम। मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके अर्काट जिलेका एक नगर। वर्त्तमान नाम—विद्धाचलम्। विद्धाचलम् देखो।

वृद्धाति (सं॰ पु॰) एक ऋषिका नाम।

वृद्धात्रेय (सं॰ पु॰) आत्रेय ऋषि।

वृद्धादित्य (सं॰ पु॰) आदित्यका दूसरा नाम।

वृद्धान्त (सं॰ पु॰) १ सम्मानका पात्र या स्थान। (त्रिका॰) कामवृद्धकी चरमदशा।

वृद्धायु (सं॰ त्रि॰) प्रवृद्ध आयुयुक्त।

(ऋक् १।१०।१२)

वृद्धार्यभट (सं॰ पु॰) एक ज्योतिःशास्त्रकार।

वृद्धि (सं॰ स्त्री॰) वृद्ध-क्तिन्। अष्टवर्गके अन्तर्गत एक ओषधि। गौड़देशमें दक्षिणावर्त्तफला नामसे प्रसिद्ध है। पर्याय—योग्या, ऋद्धि, सिद्धि, लक्ष्मी, पुष्टिदा, वृद्धिदात्री, मङ्गल्या, श्री, सम्पद्, आशीः, जनेष्टा, भूति, मुत्, सुख, जीवभद्रा। गुण—मधुर, सुस्निग्ध, तिक्त, शीतल, रुचि, और मेधावर्द्धक, श्लेष्मा, कुष्ठ और कृमिनाशक है।

ऋद्धि और वृद्धि —ये दो तरहके कन्द कोषयामल प्रदेशमें उत्पन्न होते हैं। ये दोनों कन्द शुक्लवर्ण रोमयुक्त, छिद्रसमन्वित, और लताजात हैं। ऋद्धि रूईकी गांठके समान है, किन्तु फल वामावर्त्त है और वृद्धिका फल दक्षिणावर्त्त है। ऋद्धिके गुण—बलकारक, त्रिदोषनाशक, शुक्रवर्द्धक, मधुररस, गुरु, बल, और वेश्वर्द्धक, मूर्च्छा और रक्तपित्तनाशक; वृद्धिके गुण—गर्भप्रद, शीतवीर्य, मांसवर्द्धक, मधुररस, शुक्रवर्द्धक रक्तपित्त, क्षत, कासी और क्षयरोगनाशक।

परिभाषा मतसे ऋद्धिके अभावमें बला और वृद्धिके अभावमें महाबला देना होता है।

२ नीतिवेदियोंके मतमें क्षयादि त्रिवर्गके अन्तर्गत वर्गविशेष। कृषि आदि अष्टवर्गके अपचयका नाम क्षय और उपचयका नाम वृद्धि है। कृष्याद्यष्टवर्ग यथा—कृषि, वाणिज्य, दुर्ग, सेतु (पुल), कुञ्जरबन्धन, खन्याकर, बलादान, और सैन्यसन्निवेश इस वर्गके उपचयको वृद्धि कहते हैं। पर्य्याय—वर्द्धन, स्फीति।

३ विष्कम्भ आदि २७ योगोंके अन्तर्गत ११वां योग। इस योगमें जन्म होनेसे मनुष्य सुभोगी, विनयी, धनप्रयोगमें दक्ष और क्रयविक्रयमें विचक्षण ज्ञानी होते हैं।

४ कलान्तर, सूद। वृद्धि या सूद लेनेका भी नियम है। इच्छानुसार सूद लिया जा नहीं सकता' ऐसा

करनेवाला समाजमें निंदित होता और राजाके यहां दण्ड पाता है। इसके संबंधमें याज्ञवल्क्यसंहितामें लिखा है—जब बन्धक रख कर कर्ज लिया जाता है, तब हर महीनेमें सैकड़े अस्सी भागका एक भाग सूद या वृद्धि और जब कोई चीज बन्धक नहीं रखी जाती, तब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन वर्णोंके अनुसार क्रमसे सैकड़े सौ भागका २, ३, ४ और पांच भाग सूद लिया या दिया जाना चाहिये। अर्थात् ब्राह्मणको एक सौ पण कर्ज देने पर २ पण और क्षत्रियको इस तरह कर्ज देने पर तीन पण वृद्धि या सूद देना पड़ता है।

जो वाणिज्यके लिये परदेशमें जाते हैं, वे यदि कर्ज ले तो उनको सैकड़े दश भागका एक भाग अर्थात् सैकड़े दश रुपयेके हिसाबसे और समुद्र पार जानेवाले वणिक्को एक सौ भागमें बीस भाग वृद्धि देंगे। सब जातियां ही ऋण ग्रहण करते समय सबको अपनी अपनी निर्दिष्ट वृद्धि दें।

नारदसंहितामें वृद्धि चार प्रकारकी कही गई है—कायिका, कालिका, कारिता और चक्रवृद्धि।

"कायिका कालिका चैव कारिता च तथा परा।
चक्रवृद्धिश्च शास्त्रेषु तस्य वृद्धिश्चतुर्विधा॥"

प्रतिदिन वृद्धि देनेके नियमसे जब कर्ज लिया जाता या दिया जाता है, तब उसका नाम कायिका, मासिक सूदको कालिका और ऋणकारी जिस नियमसे कर्ज लेता है, उसको कारिता तथा जब सूदका सूद लिया जाता है, तब उसका नाम चक्रवृद्धि हो जाता है।

ऋणादान शब्द देखो।

वृद्धिक (सं० त्रि०) वृद्धि स्वार्थे कन्। वृद्धि।

वृद्धिकर्मन् (सं० क्ली०) नान्दीमुखश्राद्ध, वृद्धिश्राद्ध।

वृद्धिका (सं० स्त्री०) वृद्धिरेव स्वार्थे कन् टाप्। १ ऋद्धि नामकी ओषधि। २ शङ्खपुष्पा, श्वेतापराजिता। ३ अर्कपुष्पी।

वृद्धिजीवक (सं० त्रि०) सूदखोर।

वृद्धिजीवन (सं० क्ली०) वह जो सूद ले कर अपना जीवन निर्वाह करता हो।

वृद्धिजीविका (सं० स्त्री०) वृध्या जीविका। ऋणादानजीविका, वह जो सूदखोरीसे अपना जीवन निर्वाह करता है। पर्याय—अर्थप्रयोग, कुसीद, कलान्तिका।

वृद्धिद (सं० पु०) वृद्धिं ददातीति दा-क। १ जीवक नामका छोटा क्षुप। २ शूकरकन्द। (त्रि०) ३ वृद्धि देनेवाला। (वृहत्स० ५३।३७)

वृद्धिपत्र (सं० क्ली०) वह शस्त्र जो सात उंगली प्रमाणका होता है। यह शस्त्र चीर फाड़के काममें व्यवहृत होता है।

सुश्रुतकी टीकामें लिखा है, कि यह शस्त्र दो तरहका है। ऋज्वग्र और नताग्र। ये दोनों ही शस्त्र सात अंगुल प्रमाणके होंगे। अद्धर्ध पञ्चांगुल वृन्त और साद्धर्धांगुलफल। इनमें पहलेको क्षुर कहते हैं।

इसी क्षुरके आकारवाले शस्त्रका नाम वृद्धिपत्र है। चीरफाड़की सुविधाके लिये इसका अग्रभाग ऋजु और गहरा दूसरी ओर झुका हुआ रहता है।

(वाग्भट २६।६)

वृद्धिभूत (सं० त्रि०) वृद्धि-भू-क्त। वृद्धिप्राप्त।

वृद्धिमत् (सं० त्रि०) १ उत्थित, वर्धित, अंकुरित। २ वद्धर्धनशील।

वृद्धियोग—फलितज्योतिषके २७ योगोंमें एक योगका नाम।

वृद्धिश्राद्ध (सं० क्ली०) वृद्धये यत् श्राद्धं। वृद्धिनिमित्तक श्राद्ध, अभ्युदयक निमित्त पित्रादिके उद्देशसे श्राद्धादि पूर्वक अन्न आदिका दान। अभ्युदयके लिये ही इसका अनुष्ठान होता है, इससे इसको आभ्युदयिक श्राद्ध भी कहते हैं। दश तरहके संस्कार कार्योंमें अर्थात् गर्भाधानसे विवाह तक इन दश संस्कारोंमें से प्रत्येकमें यह श्राद्ध करना होता है। इसके सिवा देवप्रतिष्ठा, वृक्षप्रतिष्ठा, जलाशय आदिकी प्रतिष्ठा और तीर्थयात्राकालमें तथा तीर्थसे लौटने पर भी यह वृद्धिश्राद्ध करनेकी विधि है। प्रेतके उद्देशके सिवा अन्य वृषोत्सर्गके समय और वास्तुयागमें भी इस श्राद्धका विधान देखा जाता है।

वृद्धिश्राद्धमें साग्निवेदियोंको ६ पुरुषोंका अर्थात् पिता, पितामह, प्रपितामह और मातामह, प्रमातामह और

वृद्धप्रमातामह इन ६ पुरुषोंका और यजुर्वेदीयोंको ६ पुरुषों अर्थात् पूर्वोक्त ६ पुरुष और माता, पितामही और प्रपितामही इन नौ पुरुषोंका श्राद्ध करना होता है। नान्दीमुख देखो।

वृद्धीभूत (सं० त्रि०) अवृद्धो वृद्धो भवति या अवृद्धिम् भवति। वृद्धीकृत।

वृद्धोक्ष (सं० पु०) वृद्धश्चासौ उक्षा चेति (अचतुरेत्यादिना। पा ५।४।७७) इत्यादिना अच्। वृद्ध वृष। पर्य्याय—जरद्गव। (अमर)

वृद्ध्याजीव (सं० त्रि०) वृद्ध्या आजीवतीति आ-जीव-अच्। वृद्ध्युपजीवी, जो सूदसे जीविका चलाते हैं, सूदखोर।

वृद्ध्युपजीवी (सं० त्रि०) वृद्ध्या उपजीवितुं शीलमस्य उप-जीव णिनि। वृद्धि द्वारा जीविका निर्वाहकारी, सूदखोर।

वृधन् (सं० त्रि०) वद्धंनकर्त्ता।

वृधसान (सं० पु०) वृध (वृधिवपिभ्यां ... उण् २।८७) इत्यनेन असानच्, स च कित्। १ मनुष्य। (त्रि०) २ वद्धंनशील।

वृधसानु (सं० पु०) वृध-बाहुलकात् असानुच् स च कित्। १ पुरुष। २ पत्र। ३ कृति।

वृधस्नु (सं० त्रि०) अन्नक्षरणशील, अन्नक्षरणकारी।

वृधीक (सं० त्रि०) वद्धंनकर्त्ता।

वृधीय (सं० त्रि०) वृद्धिसंबंधीय।

वृधु (सं० पु०) एक सूत्रधारका नाम। मनुमें लिखा है, कि भरद्वाज मुनिने वृधु नामक सूत्रधारसे अनेक गो ग्रहण किये थे। (मनु १०।१०७)

वृध्य (सं० त्रि०) वृध-(मृदुग्यायाद् ... । पा ३।१।१२५) इति ण्यत्। वद्धंनीय।

वृन्त (सं० क्ली०) १ प्रसवबन्धन, फल पुष्प और पत्रादि जिसमें अवस्थित हो। पर्य्याय—प्रसवबन्धन। २ गर्भोपाय। ३ कुचाग्र।

वृन्ताक (सं० पु० क्ली०) १ वार्त्ताकी, बैंगन। (पु०) २ शाकश्रेष्ठ, उत्तम शाक। ३ उपोदिका, पोईका साग।

वृन्ताकी (सं० स्त्री०) वार्त्ताकी, बैंगन, भण्टा।

वृन्तिका (सं० स्त्री०) कटुका।

वृन्द (सं० क्ली०) वृञ् (वृन्दादयश्चेति। उण् ४।९८) इति दन् नुम् गुणाभावश्च निपात्यते। १ समूह। (पु०) २ अर्बुद, सौ करोड़। दश कोटिका एक अर्बुद और दश अर्बुदका एक वृन्द होता है—१००००००००।

(ज्योतिष)

वृन्द—१ वृन्द टीकाके रचयिता एक आयुर्वेदाभिज्ञ। ये वीर वृन्दभट्टके नामसे परिचित हैं। वासुदेव भानुभाव और भावप्रकाशमें इनका उल्लेख है। २ वृन्दसिन्ध सिद्धयोग। ३ सिद्धयोगसंग्रह नामक वैद्यक ग्रंथके रचयिता।

वृन्दर (सं० त्रि०) वृन्दे भवः वृन्द-रक। वृन्द संकोत्पन्न।

वृन्दशस् (सं० अव्य०) वृन्द शस्। दलका दल।

(भागवत १०।२५।५)

वृन्दा (सं० स्त्री०) १ तुलसी, तुलसीका दूसरा नाम वृंदा है। वृन्दावन देखो। २ केदारराजकी कन्या। ३ राधाके सोलह नामोंमें एक नाम। ४ वृक्षोपरिजात लता, परगाछा।

वृन्दाक (सं० स्त्री०) परगाछा।

वृन्दार (सं० त्रि०) मनोज्ञ।

वृन्दारक (सं० पु०) वृन्दमस्यास्तीति वृन्द-(शृङ्ग वृन्दाभ्यामारकन् वक्तव्यः। पा ५।२।१२२) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या आरकन्। १ देवता। २ श्रेष्ठ। ३ मनोज्ञ।

वृन्दारण्य (सं० क्ली०) वृन्दावन।

वृन्दावन (सं० क्ली०) स्वनामख्यात तीर्थ। वृन्दावन भगवान् श्रीकृष्णकी क्रीड़ाभूमि है। इसीलिये यह एक बहुत प्रधान तीर्थ है। इस तीर्थका विवरण ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें इस तरह लिखा है, कि श्रीकृष्णका बालचरित प्रतिपद पर नये नये भावोंका आगमन है। श्रीकृष्णने पहले गोकुलमें रह कर दानवेन्द्रोंका विनाश किया। पीछे नंद प्रभृतिके साथ वे वृंदावनमें पहुंचे। ऋषिश्रेष्ठ नारदने एक दिन नारायण नामक ऋषिसे पूछा कि श्रीकृष्णकी क्रीड़ाभूमि इस काननका नाम वृंदावन क्यों हुआ? और इस नाममें कोई सार्थकता है या नहीं? इस पर उक्त ऋषिने कहा

था, कि प्राचीन सत्ययुगमें केदार नामके एक राजा थे। राजर्षि केदार नित्य नैमित्तिक कार्य केवल श्रीकृष्णको प्रीतिके लिये करते थे। केदार जैसे राजा कोई जन्मा नहीं और न जन्मेगा। कुछ दिनोंके बाद जैगीषव्यके उपदेशके फलसे राजा राज्य और त्रैलोक्यमोहिनी प्रियतमाओंका भार पुत्रके हाथमें दे कर तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये। राजा श्रीहरिका एकान्त भक्त हो कर अविरत उन्हीं श्रीहरिका ध्यान करने लगे। उस समय उनका सुदर्शनचक्र वहां उपस्थित रह कर उनकी रक्षा करने लगा। इस तरह बहुत दिनों तक तपस्या कर वे गोलोकधाममें चले गये। उनके नामानुसार यह तीर्थ केदारके नाम पर प्रसिद्ध हुआ।

केदारराजके कमलाकी अंशस्वरूप अति तपस्विनी और योगशास्त्रविशारदा वृन्दा नामकी एक कन्या थी। वृन्दाने विवाह नहीं किया था। दुर्वासा ऋषिने उनको हरिका मन्त्र दिया। पीछे वृन्दाने गृहत्याग कर वनमें जा इस हरिमन्त्रका साधन किया। भगवान् कृष्ण उनकी तपस्यासे सन्तुष्ट हो वर देनेके लिये उनके समीप आये। वृन्दाने उस सुन्दरकाय शान्त मूर्त्ति राधाकान्त हीको अपना पति बनानेकी प्रार्थना की। कृष्ण तथास्तु कह उस निर्जन प्रदेशमें वृन्दाके साथ रहने लगे। इसके बाद वृन्दा परमानन्द श्रीकृष्णके साथ गोलोकधाममें जा राधिकाकी तरह सौभाग्यशालिनी और गोपियोंमें श्रेष्ठ हुई। उस वृन्दाने जहां तपस्या की थी, वह स्थान वृन्दावनके नामसे विख्यात हुआ।

वृन्दावन नाम होनेका और भी एक पुण्यप्रद इतिहास है।—पहले कुशध्वज नामक राजाको तुलसी और वेदवती नामकी धर्मशास्त्रविशारदा दो कन्यायें थीं। इन दोनों कन्याओंने संसारवियोगिनी हो कर तपश्चाचरण किया। पीछे वेदवतीने नारायणको पतिरूपमें प्राप्त किया, वही जनककन्या सीताके नामसे सर्वत्र प्रसिद्ध हुई।

तुलसीने भी हरिको पतिरूपमें पानेके लिये तपस्या की। दैवात् दुर्वासाके शापसे उन्होंने शङ्खासुरको पतिरूपमें पाया और पीछे कमलाकान्तको पतिरूपसे प्राप्त किया। वह सुरेश्वरी तुलसी ही हरिके शापसे वृक्षरूपा और हरि भी उनके शापसे शालग्राम हुए। किन्तु सुन्दरी तुलसी फिर उस शिलारूपी हरिके वक्षस्थल पर निरन्तर अवस्थित करती हैं। उसी तुलसीका दूसरा नाम वृन्दा है। तुलसीने यहां तपस्या की थी, इसीलिये यह वृन्दावन कहलाया। उन्होंने कहा, नारद! और भी एक कथा कहता हूं, जिसके द्वारा इसका नाम वृन्दावन हुआ, सुनो! श्रीमती राधिकाके षोड़श नामोंमें वृन्दा नाम प्रसिद्ध है। उन्हींका रम्य क्रीड़ावन होनेसे इसका नाम वृन्दावन हुआ। पहले श्रीकृष्णने गोलोकधाममें राधिकाको प्रसन्न करनेके लिये वृन्दावनका निर्म्माण किया। पीछे पृथ्वीतलमें भी उनकी क्रीड़ाके लिये यह वन वृन्दावनके नामसे परिचित हुआ।

वृन्द शब्द सखीसमूह और आकार शब्द सत्तिबोधक है, इसीलिये उनके सखीसमूह हैं, इससे वृन्दा नामसे वे अभिहित हुई हैं। उन्हींकी क्रीड़ाके लिये सुन्दर वन होनेसे इसका नाम वृन्दावन हुआ है।

(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण)

पद्मपुराणके पातालखण्डमें लिखा है, कि इस पृथ्वीमें वृन्दावनधाम स्वर्गीय गोलोकधामके तुल्य है। गोलोकमें भगवान् विष्णु अपने पूर्ण ऐश्वर्यके साथ रहते हैं और इस स्थानमें भी अपने सभी ऐश्वर्योंके साथ उन्होंने क्रीड़ा की थी और वे यहां सर्वदा अवस्थान करते थे, इसीलिये यह स्थान परम पवित्र और प्रधानतम तीर्थ समझा जाता है।

इस वृन्दावन धाममें १२ प्रधान वन हैं—भद्रवन, लोहवन, भाण्डीरवन, महावन, तालवन, खदिरवन, बकुल कुमुद, काम्य, मधु, और वृन्दावन ये बारह वन भगवान् कृष्णकी विहारभूमि है। (पद्मपु० पातालख० ३८ अ०)

इस पृथ्वी पर विष्णुपासकोंकी वासभूमियोंमें सर्वश्रेष्ठ परम दुर्लभ एक स्थान है, उसका नाम है वृन्दावन। गोलोकमें जो ऐश्वर्य है, वह गोकुलमें प्रतिष्ठित है। वैकुण्ठका वैभव द्वारकामें प्रकाशित है। भगवान्‌के जो कुछ परम ऐश्वर्य हैं, वह वृन्दावनमें है और उनमें कृष्णधाम ही सर्वापेक्षा श्रेष्ठ है। त्रैलोक्यमें पृथ्वी एकमात्र धन्य है क्योंकि वृन्दावन पृथ्वीमें मौजूद है यह स्थान माथुरमण्डल नामसे भी अभिहित है।

माथुरमण्डलकी आकृति सहस्रदल कमलकी तरह है। इसका परिमाण विष्णुके चक्रके समान है। ये सब स्थान कर्णिकादलकी तरह फैले हुए हैं। इनमें पूर्वोक्त बारह प्रधान वन हैं जिनमेंसे यमुनाके किनारे पश्चिमकी ओर ७ और पूर्वकी ओर ५ हैं। ये सब वन श्रीकृष्णकी क्रीड़ाभूमि है।

सिवा इसके कदम्ब, खण्डिक, नन्दवन, नन्दीश्वर, नन्दनानन्दखण्ड, पलाश, अशोक, केतक, सुगन्धि, मादन, कैल, अमृत, भोजनस्थान, सुखप्रसाधन, वत्सहरण, शेषशायन, श्यामपुर, दधिग्राम, चक्र, भानुपुर, संकेत, द्विपद, बालक्रीड़, धूसर, कैलिद्रुम, सुललित, उत्सुक और नन्दन ये तीस उपवन हैं। पूर्वोक्त १२ वन ही सबसे श्रेष्ठ और नाना प्रकारकी भगवल्लीलाकी भूमि है।

मथुरा और ब्रज देखो।

वृन्दावन अति मनोहर स्थान है। इसने यमुना नदीको चारों ओरसे दक्षिणावर्तमें घेर रखा है। गोपीश्वर नामक शिव यहांके अधिष्ठातृ देवता हैं। इसके बहिर्देशमें श्रीविशिष्ट षोड़श दल हैं प्रथम दलका माहात्म्य कर्णिकाके तुल्य है। उक्त दलमें मधुवन विराजित है। इस स्थानमें ही चतुर्भुज महाविष्णु प्रादुर्भूत हुए थे। द्वितीय दल लीलारमणका स्थान है और यह खदिरवनके नामसे प्रसिद्ध है। श्रीकृष्णने इस गोवर्द्धन पर्वतकी महालीला सम्पन्न की और वे वृंदावन-पति बने। तृतीय दल परम पवित्र और अतिशय पुण्यतम स्थान है। चतुर्थ दलमें नंदीश्वर वन और नंदालय अवस्थित हैं। पञ्चम दलमें धेनुपालनका स्थान है। षष्ठ दलमें नंदनवन अवस्थित है। सप्तम दलमें मनोहर बकुलवन है। अष्टम दलमें तालवन है। इसी स्थानमें भगवान्‌ने धेनुकका वध किया था। नवम दलमें कुमुदवन और दशम दलमें काम्यवन अवस्थित है। ग्यारहवां दल कदम्ब है। इस स्थानमें पुल बांधा गया था। बारहवें दलमें भाण्डीरवन है, इस वनमें भगवान् श्रीकृष्ण श्रीदाम आदिके साथ क्रीड़ामें रत रहते थे। तेरहवें दलमें भद्रवन, चौदहवें दलमें लोहवन, पन्द्रहवें दलमें गोकुल और सोलहवें दलमें महावन अवस्थित है। इस महावनमें श्रीकृष्ण बलरामादिके साथ मिल कर बाललीला किया करते थे। इस स्थानमें ही पूतना आदि राक्षसोंका वध और यमलार्जुनका भग्न किया गया था। पञ्चम वर्षीय बालगोपाल इस स्थानके अधिष्ठाता हैं। इस स्थानमें श्रीकृष्ण दामोदर नामसे परिचित हुए। उक्त दल ही किशलकविहार है। इस स्थानमें ही श्रीकृष्णने क्रीड़ा की थी।

वृन्दावनधाम शुद्धसत्त्व भक्त वैष्णवों द्वारा आश्रित और पूर्ण ब्रह्मसुखमें मग्न है। इस स्थानमें कोकिल और भ्रमर सदा अत्यन्त मधुर और मनोहर शब्द करते रहते हैं। कपोत और शुक चिड़ियां सदा अपने सङ्गीतसे लोगोंको मुग्ध करती रहती हैं और सहस्र सहस्र उन्मत्त अलि विराजित हैं। इस स्थानमें मयूर नृत्य करते रहते हैं। सब तरहके आमोद और विभ्रम पूर्णमात्रामें विद्यमान है। इस स्थानमें पूर्ण चन्द्र सदा उदय होते हैं। किन्तु सूर्यदेव अपनी मन्द मन्द किरणों होको फैलाते रहते हैं। यह स्थान दुःख, जरा और मरणवर्जित हैं। यहां क्रोध, मात्सर्य, भेदज्ञान और अहङ्कार नहीं है, सर्वदा इस स्थानमें आनन्दामृत रसका प्रभाव रहता है और पूर्ण प्रेमसुख-समुद्र विराजित है। यह महत् धाम त्रिगुणातीत और पूर्ण प्रेम स्वरूप है। और तो क्या— यहां वृक्षोंके शरीरमें भी पुलकोद्गम होता है और वे प्रेम और आनन्दसे विभोर हो कर मधुवर्षण किया करते हैं। यहांके पादपोंकी जब ऐसी अवस्था है, तब वैष्णवोंका क्या कहना है। गोविन्दके चरणरज स्पर्शसे वृंदावन पृथ्वीमें नित्य रह कर प्रतिष्ठित है।

भूमण्डलमें वृन्दावन गुह्यसे भी गुह्यतम, रमणीय, पवित्र, अक्षय, परमानन्दमय और गोविन्दका अव्यय स्थान है। वृन्दावन गोविन्ददेहसे अभिन्न है और पूर्णब्रह्म सुखाश्रित है। इसका माहात्म्य और क्या कहूं! इस स्थानकी धूलि स्पर्श करनेसे भी मुक्ति होती है। हे देवि! वृन्दावन विहारके समय वहां पदाके साथ वृन्दावन और कैशोरविग्रहधारी श्रीकृष्णको हृदयमें स्थापित करो। कालिन्दी इस वृन्दावनको कमलकर्णिकाकी तरह प्रदक्षिण करके विराजमान है। इस यमुना नदीके दोनों किनारे रमणीय और पवित्र है। इसका जल स्पर्श करनेसे गङ्गाजलकी अपेक्षा कोटि गुण अधिक

पुण्य होता है। इस स्थानमें ही भगवान् क्रीडामें रत थे।

रमणीय वृन्दावनके मध्य मनोहर भवनमें समुज्ज्वल योगपीठ विद्यमान है। यह अठकोना और नाना प्रकारकी द्योतियोंसे मनोहर दिखाई देता है। इस पर मणिमाणिक्य-खचित रत्नमय मनोहर सिंहासन विराजित है। उस पर आठ दलका पद्म बैठाया गया है। इस पर ही हरिका कर्णिकास्थ सुखमय भवन अवस्थित है। इस परम स्थानमें वृन्दावनेश्वर श्रीकृष्ण दिव्य व्रजवेशधारी और नियत सकलैश्वर्यशाली और व्रजबालकोंके एकमात्र प्रिय हो कर अवस्थान करते हैं। यौवनाविर्भाववश इस समय उनका कैशोर उद्भिन्न हुआ है और उन्होंने अपूर्व मूर्त्ति धारण की है। उन अनादि फिर भी सभीके आदिभूत भगवान् श्रीकृष्णने यहां ही वास कर गोपियोंके मनको मुग्ध किया था।

भगवान् कृष्ण यहां ही नन्दनन्दन रूपसे सदा विराजमान रहते हैं। यह कृष्ण पूर्णब्रह्म निश्चल जगत्के आदिकारण हैं। उनकी प्रियतमा कृष्णवल्लभा श्रीमती राधा ही आद्या प्रकृति हैं। उन्हीं राधिकाके कोटानुकोटि कलांशसे त्रिगुणमयी दुर्गा आदि देवियोंकी उत्पत्ति हुई है। यह वृन्दावनधाम श्रीकृष्णकी लीलाभूमि है।

(पद्मपुराण पातालख० ३८।३० अ०)

पुराणवर्णित श्रीवृन्दावनवैभव इस समय कवि वर्णित काव्य राज्य ही मालूम होता है।

"वनं कुसुमितं श्रीमन्नदच्चित्रमृगद्विजम्।
गायन्मयूरभ्रमरं कूजत्कोकिलसारकम्॥"

श्रीभागवतके वर्णित श्रीवृन्दावनकी ऐसी शोभा इस समय अब दिखाई नहीं देती।

श्रीजयदेव वर्णित वसन्तशोभा इस समय केवल कविकल्पनामें रक्षित है। पौराणिक वर्णना-वैभव वर्त्तमान समयमें दिखाई न देने पर भी हम श्रीवृन्दावनधामको आज भी पुण्यमय महातीर्थके रूपमें देखते हैं। किन्तु अबसे साढ़े चार सौ वर्ष पहले श्रीवृंदावन यथार्थमें महारण्यमें परिणत हुआ था।

देवद्वेषी गजनीके सुलतान महमूदने आ कर व्रजधामकी जो दुर्दशा की थी, उसका आज भी सुधार नहीं हो सका है। इसके बाद भक्त वैष्णव अपने प्राणके भयसे फिर अपने प्रिय स्थान वृंदावनधाममें नहीं आना चाहते थे। सुलतान महमूदके लौट जानेके बाद सैकड़ों वर्ष तक हिन्दुओंका शासन रहने पर भी जहां तक हम जानते हैं, इस वृंदावनके नष्टगौरवका उद्धार न हो सका। इस ओर किसी भी राजाका ध्यान आकर्षित नहीं हुआ। मुसलमान-गुलाम राजाओंके आधिपत्यकालमें क्रमसे यह बहुजनाकीर्ण व्रजधाम जनमानवशून्य हो गया था। केवल दो एक व्रजवासी उस विजन निभृत निकुञ्जमें [redacted] कर भगवान्की लीला भूमि पर अश्रु बरसा रहे थे। कहना न होगा, कि कई शताब्दके बाद भागवतोंकी लीलास्थली एक समय विलुप्त हुई थी। बारह योजनमें फैली हुई यह पवित्र हिन्दूकीर्त्ति भीषण अरण्यमें परिणत हुई थी। एक तो पथ ही दुर्गम था उस पर मुसलमानोंके अत्याचार और डाकुओंके डर आदि कई कारणोंसे गृहस्थ तीर्थयात्री इन पवित्र और प्राचीन स्मृतियोंके देखनेके लिये यहां आनेमें साहसी न हुए। निर्भीक भक्त संन्यासी कभी कभी दल बांध कर भगवान्के चिह्नोंका दर्शन करने आते थे।

मुगलवंशके साम्राज्य शासनके आरम्भमें हिन्दू मुसलमानोंके अत्याचारसे वञ्चित हुए थे। बङ्गालके गौड़देशमें हुसेनशाहकी तरह दिल्लीमें भी प्रजारञ्जक मुसलमान नरपतियोंका अधिष्ठान हुआ था। हिन्दुओंने इस सामान्य सुविधाके समय ही भगवान श्रीकृष्णकी लीला भूमिके उद्धार करनेके लिये उद्योग किया था। किन्तु व्रजधाममें आ कर वे भगवान्के सभी निदर्शनोंके ढूंढ निकालनेमें समर्थ हुए। यदुवंशके ध्वंसके बाद श्रीकृष्णके पौत्र (अनिरुद्धके पुत्र) व्र-नाभने मथुराका राजा बन श्रीकृष्णकी लीलाके नामानुसार ग्राम बसाये थे। वे सब पिछले समयमें प्रधान-प्रधान वैष्णव तीर्थके रूपमें गिने गये थे। और तो क्या— मुसलमानोंके दौरात्म्यसे उन मर्मप्रधान भागवततीर्थके अधिकांश ही बिल्कुल विलुप्त हुए। कृष्णप्रेमसे व्याकुल हो कर गौराङ्गदेवने जब व्रजमण्डलको प्रस्थान किया, तब वे भगवान्के लीलास्थान खोज न सकने पर पहले तो

रो कर व्याकुल हो उठे। पीछे अपनी ऐसी शक्तिके प्रभावसे उन्होंने लीलास्थानके उद्धारका पथ बना लिया। मुरारिगुप्तके श्रीचैतन्यचरित काव्यमें और श्रीकृष्णदास कविराजके श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थमें उसका कुछ आभास मिलता है। अन्तमें गौराङ्गके पार्षद श्रीरूप और सनातन गोस्वामीने व्रजमण्डलमें रह कर लुप्त तीर्थका उद्धार कर महाप्रभुके अभिप्रायको पूर्ण किया था।

विभिन्न सम्प्रदायके वैष्णवोंका अभ्युदय।

गोस्वामीप्रवर रूप, सनातन, जीव, गोपालभट्ट, लोकनाथ, भूगर्भ, रघुनाथ, नरोत्तम ठाकुर, श्रीनिवास आचार्य आदि श्रेष्ठ गौड़ीय भागवत प्रेमिक बहुत दिनों तक वृन्दावनमें रह गये थे। उनके रहते समय व्रजधाम वैष्णवतत्त्वशिक्षाके सर्वप्रधान केन्द्रके रूपमें गिना जाता था। व्रजमण्डलमें रहते समय उक्त गोस्वामियों ने सैकड़ों वैष्णव शास्त्रोंकी रचना कर प्रेमभक्तिकी पराकाष्ठा दिखाई थी। उनके श्रीमुखसे अपूर्व भगवत्तत्त्व सीखनेके लिये भारतके नाना देशोंसे साधुओं और पण्डितोंका यहां समागम हुआ और तो क्या—स्वयं दिल्लीश्वर अकबर अपने राजपूत सामन्तोंके साथ रूप सनातनके मुखसे वैष्णवधर्मका सारतत्त्व सुननेके लिये सन् १५७३ ई०में वृन्दावन पहुंचे थे। उन कौपीनधारी वैष्णवोंका इतना प्रभाव था, कि दिल्लीश्वरकी आंखों पर कपड़ा बांध कर वे निधुवनमें लाये गये थे। दिल्लीश्वरने यहांका अलौकिक देवप्रभाव देख इस स्थानको अत्यन्त पूर्ण तीर्थ स्वीकार किया था। उनके साथी सामन्तोंने यहां एक देवालय स्थापित करनेकी आज्ञा मांगी। दिल्लीश्वरने गुणीके नाम एक देवालय स्थापित करनेके लिये आज्ञा प्रदान की थी। इस तरह गौड़ीय वैष्णवोंके प्राधान्य विस्तार और लुप्ततीर्थोंके उद्धारके साथ साथ क्रमशः हिन्दू राजाओंके यत्नसे फिर मथुरामण्डलमें नाना देवालयोंकी प्रतिष्ठाका सूत्रपात हुआ।

व्रजवासियोंका कहना है, कि गौड़ीय गोस्वामियोंने वृन्दावनमें आ कर सबसे पहले जिन वृन्दादेवीके मन्दिरका उद्धार किया था, उसका अब कहीं नामोनिशान नहीं मिलता। किन्तु कुछ लोग रासमण्डलके निकटवर्ती सेवाकुञ्जमें उस मन्दिरका होना साबित करते हैं।

गोविन्दजीका मन्दिर।

रूप सनातनके तत्त्वावधानमें जो सब मन्दिर बनाये गये, उनमें गोविन्ददेवका मंदिर ही सर्वप्रधान और स्थापत्यशिल्प या कारीगरीका अपूर्व निदर्शन है। मथुराके पुरावृत्त-लेखक ग्राउस साहबने इस मंदिरको देख कर लिखा है, कि "इस मंदिरका आकार प्रकार गिरजासे मिलता जुलता है। इससे मालूम होता है, कि जिस कारीगरने इस मंदिरको बनाया था, उसने (यूरोपीय) जेसुइट धर्म-प्रचारकोंका साहाय्य-प्राप्त किया था। वास्तवमें उस समय अकबर बादशाहके दरबारमें बहुतेरे जेसुइट उपस्थित थे। किन्तु अकबर बादशाहकी सभामें जेसुइटोंके रहने पर भी उन्होंने कारीगरीमें हिन्दुओंको साहाय्य किया है, इसका कहीं कुछ भी प्रमाण नहीं मिलता। विशेषतः इस तरहके मंदिर जेसुइटोंके आनेसे बहुत पहले भारतवर्षमें कई जगहोंमें दिखाई देते हैं।

गोविन्दजीके मंदिरमें एक अस्पष्ट शिलाफलक दिखाई देता है। उसके पढ़नेसे मालूम होता है, कि अकबर शाहके ३४ राज्याङ्कमें श्रीरूपसनातनके तत्त्वावधानमें अम्बराधिपति मानसिंहने गोविन्दजीके मंदिरको बनाया था।

गोविंदजीका मंदिर एक समय पांच शिखरोंसे विभूषित था। उनमें सर्वोच्च शिखर बहुत दूरसे दर्शकोंकी दृष्टि आकर्षित करता था। प्रवाद है, कि उस शिखरका प्रकाश दिल्लीमें बैठे औरङ्गजेबको दिखाई देता था। एक दिन विस्मयके साथ औरङ्गजेबने अपने वजीरसे पूछा, कि कहांसे यह आलोक या प्रकाश आ रहा है? इसके उत्तरमें वजीरने कहा, कि मथुरामें काफरोंका जो बड़ा मंदिर है, यह उसी मंदिरका प्रकाश है। देखते ही औरङ्गजेब तुरत ही एक फौज भेज कर उस मंदिरको तुड़वाने तथा उस पर मसजिद बनवानेका हुक्म दिया। मंदिरके पुजारी गोविंदजीको ले कर जंगलमें भाग गये। मुसलमानोंने मंदिरके कई शिखरोंको तोड़ कर उसीमें उसीके मसालेसे मसजिद बनायी। औरङ्गजेबने स्वयं आ कर उस मसजिदमें नमाज पढ़ी। इसी समयसे गोविंददेव जयपुरमें आये। उनके सेवा-

हत वहांके गोविंददेवकी सम्पत्तिके अधिकारी हैं।

मदनमोहनका मन्दिर।

भक्तिरत्नाकरमें लिखा है, कि सनातनकी कृपा प्राप्त कर मूलतानवासी कृष्णदासने मदनगोपाल या मदनमोहनके मंदिरकी प्रतिष्ठा कराई। इस मंदिरके निर्माणके सम्बन्धमें एक प्रवाद है, कि कृष्णदास नाव बोझाई कर आगरेकी ओर जा रहे थे। कालीदहके निकट एक बालूके चट्टान पर नाव चढ़ गई। तीन दिन अनवरत चेष्टा करनेसे भी बालूसे नाव निकल न सकी। अन्तमें वे देवताके अनुग्रहलाभ की आशासे ऊपर आ कर सनातन गोस्वामीके शरणापन्न हुए। सनातनकी प्रार्थनासे मदनगोपालका अनुग्रह हुआ। कृष्णदासकी नाव बह चली। पीछे वे आगरेमें आ कर नावमें लदी चीजोंको बेच कर लौट आये और उन्होंने सब रकम सनातनके हाथमें रख दी। उसी रकमसे मदनमोहनका मंदिर बना। इस मंदिरको भीतरी भाग ५७ फुट लंबा, उसके साथ नाटमण्डप प्रायः २० फुट चौड़ा था। मंदिरकी ऊंचाई २२ फुट थी। इस मंदिरको आय प्रायः १०१००) रुपये हैं।

मंदिरमें इस समय मदनमोहनकी मूर्त्ति नहीं है। औरङ्गजेबके दौरात्म्यसे यह श्रीमूर्त्ति भी जयपुर भेज दी गई थी। पीछे जयपुरके राजाने अपने साले करौलीके राजा गोपालसिंहको वह मूर्त्ति दे दी थी। राजा गोपालसिंहने अपनी राजधानीमें मदनमोहनके लिये प्रायः १७४० ई०में एक सुंदर मंदिर बनवाया था। जयपुरके गोविंदजीके मंदिरके पुजारीको तरह यहांके पुजारी भी गौड़देशके गोस्वामी या गोसांई हैं।

जब मदनमोहन वृंदावनमें थे, तब प्रसिद्ध वैष्णव-कवि सुरदास इनके प्रधान भक्त हो गये थे। अकबरके अधीन सुरदास शाण्डिलके अमीनका काम करते थे। प्रवाद है, कि वे जो कुछ वसूल करते थे वे सब मदनमोहनजीके मंदिरमें खर्च कर देते थे। इसी तरह एक बार दिल्ली रुपये न भेज सकने पर उन्होंने एक सन्दूकमें पत्थरके टुकड़े बन्द करके भेजे। शीघ्र ही इस अमितव्ययिताके लिये सुरदास दिल्लीमें कैद किये गये। अंतमें भक्तवत्सल मदनमोहन भक्तकी मुक्ति दिलानेके लिये दिल्लीश्वरको स्वप्न दिया था, उसीसे कृष्णदास कैदसे रिहा हुए थे।

गोपीनाथका मन्दिर।

गोविन्दजी और मदनगोपालकी मन्दिर-प्रतिष्ठाके कुछ समय बाद ही गोपीनाथका मन्दिर प्रतिष्ठित हुआ। दिल्लीश्वर अकबर जिस समय गोस्वामीके दर्शनके लिये वृन्दावन गये थे, उस समय कच्छवाहके ठाकुर वंशीय रायसिंह भी साथ गये थे। ये शेखावाटीके कच्छवाह ठाकुर वंश प्रतिष्ठाताके पौत्र थे। राणा प्रतापके विरुद्ध ये भी मानसिंहके साथ भेजे गये थे। ये वृन्दावनके गोपीनाथकी भक्तिसे आकृष्ट हुए थे। अन्तमें इन्होंने गोस्वामियोंके तत्त्वावधानमें गोपीनाथके एक बहुत बड़े मंदिरकी प्रतिष्ठा करवाई। यह मंदिर इस समय नितान्त भग्नावस्थामें पड़ा है। इस प्राचीन मंदिरके मध्य-मण्डप और तीन कलसे एक समय नष्ट हुए थे। इसको बगलमें सन् १८२१ ई०में बहुनिवासी नन्दकुमार वसु नामक एक बङ्गाली कायस्थने वर्त्तमान मदनमोहनका मंदिर बनवा दिया है।

केशीघाटमें युगलकिशोरका एक प्राचीन मंदिर है। यह मंदिर सन् १६२१ ई०में बना था। कुछ लोगोंका अनुमान है, कि यह मंदिर उक्त कच्छवाहके ठाकुर रायसिंहके बड़े भाई नूनकरणकी कीर्त्ति है। इस मंदिरका गर्भगृह भी एक ही समय नष्ट हुआ था। इसके मण्डपमें प्रचुर कारीगरोंकी निपुणता दिखाई देती है। इस मण्डपके नीचे गोवर्धनधारीकी गोवर्द्धन-लीला खुदी हुई है। दुःखका विषय है, कि यह मंदिर भी इस समय परित्यक्त हुआ है। यह इस समय कबूतरों तथा उल्लू पक्षियोंका आवास बन गया है।

राधावल्लभजीका मन्दिर।

राधावल्लभजीका मंदिर भी जहाङ्गीर बादशाहके राजत्वकालमें ही बना था। राधावल्लभी सम्प्रदायके प्रवर्त्तक हरिवंश गोसाईं इस मंदिरके प्रतिष्ठाता हैं। सुन्दरदास नामक एक कायस्थके धनसे सन् १६४१ संवत्में हरिवंशने मंदिर तैयार कराना आरम्भ किया। हरिवंशके दो पुत्र थे व्रजचांद और कृष्णचांद। व्रजचांदके वंशधरगण आज भी राधावल्लभके अधिकारी हैं। कृष्ण-

न्होंने राधारमणका मंदिर बनवाया था। उनके वंश-धर आज भी राधारमणके ही अधिकारी हैं।

पूर्व ही लिखा जा चुका है, कि जो कुछ प्राचीन कीर्तियाँ थीं, ११वीं सदीसे १५वीं सदीके मध्यमें एक समय ध्वंसको प्राप्त हुईं। इसके बाद १६वीं शताब्दीके पहले व्रजमण्डलमें कोई एक भी मन्दिर निर्माण करनेका साहसी नहीं हुआ। बङ्गालके गौड़देशके वैष्णव गोस्वामियोंके वृन्दावनमें वास और उनके असाधारण परमभक्ति गुणसे मुसलमान-सम्राट् अकबरके मन विचलित होनेसे फिर हिन्दू वृन्दावनमें देवकीर्त्तियों-के जगानेमें साहसी हुए थे। गौड़ीय गोस्वामियोंके प्रभावसे व्रजधामका पुनरुद्धार हुआ। इसीसे आज भी वृन्दावनमें गौड़ीय गोस्वामी प्रधान सम्मानलाभके अधिकारी हुए हैं। और तो क्या—भगवान् लीलास्थला बङ्गालियों द्वारा उद्धार हुआ है, यह बङ्गालियोंके लिये कम गौरवकी बात नहीं। गौड़ीय वैष्णवोंकी चेष्टासे ही वृन्दावनके सर्वप्राचीन गोविन्द, गोपीनाथ, मदन-मोहनके मन्दिर निर्मित हुए थे। इन सब मंदिरोंमें १६श शताब्दीकी हिन्दू मुसलमान कारीगरियां आज भी विद्यमान हैं। इस समय इनके अधिकांश नष्ट होने पर भी कारीगरोंकी दृष्टिसे बड़े गौरवकी चीज और एक दृष्टान्तरूपमें आदृत होगा।

अकबर, जहांगीर और शाहजहांके राजत्व तक व्रज-मण्डलमें गोवर्द्धन और गोकुलमें नाना स्थानोंमें देवमंदिर प्रतिष्ठित हुए थे। हिन्दुओंके दुर्भाग्यसे पूर्वोक्त मंदिरों-की तरह देवालय औरङ्गजेबके दौरात्म्यसे परित्यक्त और नष्ट हुए थे। औरङ्गजेबके कराल कवलसे रक्षा करनेके लिये नाना प्राचीन मूर्त्तियां ही अन्यत्र भेजी गई थीं। उसी मेवाड़के राणा राजसिंहने मथुराके सुप्रसिद्ध केशवदेवको ला कर नाथद्वारमें प्रतिष्ठित किया। सिवा इस मूर्त्तिके नाथद्वारमें मथुराके उपकण्ठसे लाई मूर्त्ति, कोटामें मथुरा-के मथुरानाथ, वृंदावनके मदनमोहन और गोकुलके गोकुलनाथ और गोकुलचन्द्रमूर्त्ति तथा सूरतमें महा-वनके प्रसिद्ध बालकृष्णकी मूर्त्ति मंगवा कर प्रतिष्ठा कराई गई थी।

मथुरा और वृंदावनकी बहुतेरी कृष्णमूर्त्तियां

देवालय देखने पर सहज ही मालूम होता है, कि यहां वैष्णवोंके पुनरभ्युदय-कालमें पहले चैतन्य सम्प्रदायने प्राधान्यलाभ किया था। और तो क्या, दिल्लीश्वरको भी उनकी महिमा पर आकृष्ट होना पड़ा था। यह बात पहले ही कही गई है। इस सम्प्रदायका प्रभाव आज भी वृंदावनसे लुप्त नहीं हुआ है।

चैतन्य-सम्प्रदायके बाद यहां राधावल्लभी सम्प्रदाय-का आविर्भाव हुआ। युक्तप्रदेशके सहारनपुर जिलेके देवबन्धवासी गांवके रहनेवाले एक गौड़ब्राह्मण हरिवंश इसके प्रवर्त्तक हैं। आगरेमें सन् १५५९ संवत्में इनका जन्म हुआ था। यथासमय इन्होंने अपने पुत्र कन्याओं-का विवाह किया था। इसके बाद वैराग्यका इन्होंने आश्रय लिया और वृन्दावनके लिये प्रस्थान किया। हौदलके निकटवर्ती चर्थावल नामक गांवमें एक ब्राह्मण दो कन्याओंके साथ उन्हें दिखाई दिया। उस ब्राह्मणने हरि-वंशसे कहा, कि भगवान्का प्रत्यादेश हुआ है, कि तुमको इन दोनों कन्याओंसे विवाह करना होगा। जो हो, वृद्धावस्थामें विवाह कर वे कुछ अधिक रसिक हो गये। विवाहके बाद उनके नये ससुर उनको राधावल्लभकी मूर्त्ति दे गये। उसी राधावल्लभके नामसे किशोरीभजन और कामसाधन मतका प्रचार उन्होंने किया था। क्रमसे उनके बहुतेरे शिष्य हो गये। राधावल्लभका मन्दिर उनकी ही कीर्त्ति है।

तुजुक नामक मुसल्मानी इतिहासमें लिखा है, कि उस समय उज्जयिनीसे मथुरामें यदुरूप नामक एक साधु आये। अकबर और जहांगीर दोनों ही उनके दर्शनके लिये आये थे। उनके भी कितने ही शिष्य थे। किन्तु इस समय उनके शिष्य सम्प्रदायका नामोनिशान नहीं।

अकबरके शासनकालमें वृन्दावनमें और एक साधु-का आगमन हुआ था। इनका नाम था स्वामी हरिदास। कोल ग्रामके निकट वर्तमान हरिदासपुरमें ब्रह्मधीरके पुत्र ज्ञानधीर नामक एक धनाढ्य ब्राह्मणका वास था। वे गिरिधारीके उपासक थे। इनके पुत्रका नाम आशाधीर था। इन्हीं आशाधीरके पुत्र साधु हरिदास हैं। हरि-

...थे। उनकी ...

देख कर मुग्ध हो बहुतेरे मनुष्य उनके शिष्य हुए थे। उनके एक क्षत्रिय-शिष्यने उनको स्पर्शमणि अर्पण को थी, किन्तु वे अकिञ्चित्कर समझ कर उसको फेंक दिया था। क्योंकि कामिनीकाञ्चनमें उनको जरा भी आसक्ति न थी। अकबरके प्रिय गायक मियां तानसेनने अपूर्व सङ्गीतशक्ति प्राप्त की थी। ये तानसेन हरिदासके ही शिष्य थे। उक्त हरिदासके प्रभावसे ही तानसेनको गायनविद्याकी इतनी बड़ी शक्ति प्राप्त हुई थी। इन तानसेनके मुखसे हरिदासको असाधारण शक्तिका पता पा कर स्वयं अकबर उनके दर्शनके लिये आये थे। इस समय तानसेन भी साथ थे। हरिदासने तानसेनका बड़ा आदर किया था; किन्तु बादशाह अकबरकी ओर दृष्टिपात तक नहीं किया। यहां अकबरने स्वामीजीकी कितनी ही अलौकिक शक्तियोंको देख कर सन्तुष्ट हो उनकी इच्छा न रहते हुए भी उनकी सेवाके लिये कुछ सम्पत्ति दान की थी।

कुञ्जविहारी हरिदासके उपास्य इष्ट देवता थे। पहले उनके शिष्योंके व्ययसे कुञ्जविहारीका मन्दिर प्रतिष्ठित हुआ। कुछ दिन बीते स्वामी हरिदासके वंशधर गोसाइयोंकी चेष्टासे और बहुत दूर देशवासी शिष्योंके अर्थानुकूल्यसे ७० हजार रुपयेके व्ययसे कुञ्जविहारीका वर्त्तमान मन्दिर निर्मित हुआ है। इससे यह मन्दिर विहारीजी वा बाँकेविहारी नामसे ख्यात हुआ है। इस मन्दिरका कारुकार्य्य तथा शिल्पनैपुण्य बहुत ही अच्छा है। इसमें सन्देह नहीं, कि वृन्दावन में यह भी एक दर्शनीय वस्तु है। भारतवर्षके बहुत दूरदेशसे भी स्वामी हरिदासके भक्तगण इस मन्दिरके दर्शनके लिये वृन्दावन आते हैं।

वृन्दावनके केशीघाटमें रामजीका मन्दिर दिखाई देता है। यहां मलूकदासी सम्प्रदायका एक पाट है। औरङ्गजेबके राजत्वकालमें इस सम्प्रदायका उद्भव हुआ था। स्वामी हरिदास द्वारा प्रवर्त्तित भक्ति और शान्ति भावके माननेवाले होने पर भी मलूकदासी श्रीकृष्णके बदले रामचंद्रकी उपासना करते हैं।

मथुराके ध्रुवशैल पर निम्बार्क सम्प्रदायका एक अति प्राचीन मन्दिर है। इस मन्दिरको देखनेसे मालूम होता है, कि गौड़ीय वैष्णवोंके अभ्युदयके साथ साथ यहां निम्बार्क सम्प्रदायका आगमन हुआ था। मथुरामण्डलमें उनकी बहुतेरी कीर्त्तियां और बहुतेरे धर्मग्रन्थ थे। औरङ्गजेबके दौरात्म्यके कारण वे अब नष्ट हुए। वृन्दावनके नाना स्थानोंमें निम्बार्क सम्प्रदायके लोग दिखाई देते हैं। धाधी और कोकिलवनमें इस सम्प्रदायके साधुओंकी गुफा है।

रामानुज-प्रवर्त्तित श्रीसम्प्रदायका प्रभाव सारे दक्षिण-भारतमें बहुत दिनोंसे फैले रहनेसे भी उनका व्रजधाममें कोई पूर्व निदर्शन नहीं दिखाई देता। श्रीसम्प्रदायी प्रधानतः वड़गले और तेङ्गलई इन दो शाखाओंमें विभक्त हैं। उनमें कुछ दिन पूर्व तेङ्गलई शाखा वृन्दावनमें दिखाई पड़ी थी। प्रसिद्ध धनकुबेर सेठ लखमीचाँद तेङ्गलई गुरुकी महिमासे मुग्ध हुए। उन्होंने जैनधर्म परित्याग कर गुरुसे वैष्णवी दीक्षा ग्रहण की। वृन्दावनके अपूर्व श्रीरङ्गजीका मंदिर सेठ लखमीचाँदकी विशाल कीर्त्ति है। साधारणतः यह "सेठका मंदिर" के नामसे प्रसिद्ध है। यह मंदिर उत्तर भारतमें बने होने पर भी इसमें दाक्षिणात्य स्थापत्यनिपुणताका कुछ आभास परिलक्षित होता है। वृन्दावनकी पूर्व समृद्धि कुछ भी नहीं है सही, किन्तु इस सेठके मंदिरने पूर्व स्मृतिका कुछ आभास जागरित कर रखा है।

इस समयकी और एक कीर्त्ति कृष्णचन्द्रका वृहत् मंदिर है। उत्तरराढ़ीय कायस्थकुलतिलक कृष्णचन्द्रसिंह उर्फ लाला बाबूने २५ लाख रुपये खर्च कर सन् १८१० ई०में उक्त प्रकाण्ड काण्ड सम्पादन और राधाकुण्डका संस्कार किया। लाला बाबूके संसार-वैराग्य और धर्मप्राणताका परिचय केवल बङ्गालमें हो नहीं, वृंदावन, मथुरा आदिमें भी कीर्त्तित हो रहा है। महातीर्थ समझ बहुत दूर देशसे वैष्णवगण लाला बाबूका कुञ्ज देखने जाया करते हैं। यहां अतिथिसेवाके लिये लालाबाबू लाखों रुपयोंकी सम्पत्ति दान कर गये हैं। उस सम्पत्तिकी आयसे यहांकी देवसेवा, सैकड़ों अतिथियों तथा तीर्थयात्रियोंके राजभोगका बंदोबस्त किया

गया है। ऐसी सेवाका बन्दोबस्त दूसरी जगह विरल है।

इस समय और भी अनेक देवमंदिर निर्मित हुए। इनमें वृंदावनमें प्रतिष्ठित जयपुरका नव मंदिर और राधाकुण्डके राय वनमाली राजर्षि बहादुरके प्रतिष्ठित राधाविनोदका मंदिर और वृंदावनमें राधाविनोदबाग और उसमें स्थित श्रीमंदिर उल्लेखनीय है। राय वनमाली बहादुरने भी उक्त देवसेवाके लिये यथेष्ट भूसम्पत्ति दान की है।

गीतगोविन्दमें जो वृन्दावनधामका वर्णन है, वह योगियोंका ध्येय विषय है। ध्यानबलसे ही वह वृन्दावन दिखाई देता है। फलतः श्रीवृन्दावनधाम नित्य है, सुतरां मायाके अतीत है। गोकुलमें गोप गोपीके साथ ही भगवान् श्रीकृष्णने लीला की थी। श्रीवृन्दावनमें भगवान् श्रीकृष्णकी जो मधुर लीलायें हुई हैं, दूसरी किसी जगह भी वैसी लीलामाधुर्यकी वर्णना दिखाई नहीं देती। अलिकुलगुञ्जित कोकिलकूजित कुञ्ज-कानन और उस मधुमय लीलाका आधार सैकड़ों कलियों-के कान्तारोंके भ्रमर उस श्यामल यमुना-पुलिनकी वर्णना आज भी श्रीकृष्णलीलाकी स्मृति, कवि और भक्तके हृदयमें जागरित कर रही है। श्रीराधिकाकी आरामस्थली, ब्रह्मकुण्ड, केशीतीर्थ, वंशीवट, चीरघाट, निधुवन, निकुञ्जकुटीर, रासस्थली, धीरसमीर, मुञ्जाटवी, भ्रमाटवी, दावानल, ब्रह्मह्रदतीर्थ, कालीदह, केलिकदम्ब, द्वादशादित्यतीर्थ, सूर्यघाट, गोविन्दघाट, वेणुकूप, कामलीतला, कदम्बखानके अक्रूर स्थान, गोविन्दकुञ्ज, यशोकूप, भोजनस्थान, नन्दघाट, गोचर्ण, भूषणघाट, मधुवन, तालवन, राधाकुण्ड, श्यामकुण्ड, ललिताकुण्ड, कुसुमसरोवर, गोविन्दकुण्ड, कुमुदवन, वामनन्द इत्यादि बहुतेरे दर्शनीय पुण्यस्थानों-का नाम 'श्रीवृन्दावन-परिक्रमा' ग्रंथमें लिखा है। भक्त श्रीवृंदावन-परिक्रमाके समय इन सब स्थानोंका दर्शन कर पुण्यसञ्चय किया करते हैं।

२ मगधमें एक तीर्थका नाम। इस स्थानका आधुनिक नाम राधा है।

"पश्चिमो द्वारवत्यान्तु राधा वृन्दावने वने।"

(देवीभा० ७।३०।६६)

वृन्दावन—गोपालस्तवराजभाष्यके प्रणेता।

वृन्दावनगोस्वामी—भागवततत्त्वदीपके रचयिता।

वृन्दावनचन्द्र तर्कालङ्कारचक्रवर्ती—कविकर्णपूर रचित अलङ्कारकौस्तुभके अलङ्कारकौस्तुभदीधिति-प्रकाशिका नामकी टीकाके रचयिता। ये राधाचरण कवीन्द्र चक्रवर्तीके पुत्र थे।

वृन्दावनदास—एक वैष्णव। कृष्णकर्णामृतटीका, नित्ययुगलाष्टक, रासकल्परसास्तव, रामानुजगुरुपरम्परा आदि कई संस्कृत काव्योंकी रच कर इन्होंने कविसमाजमें यश अर्जन किया था।

वैष्णव साहित्यमें चैतन्य भागवतके रचयिता वृंदावन दासका उल्लेख पाया जाता है। ये श्रीनिवासकी भ्रातृकन्या नारायणीके पुत्र थे। नवद्वीपमें उनका जन्म हुआ था। महाप्रभुके अस्त होने पर उन्होंने 'चैतन्य-भागवत' और 'नित्यानंदवंशमाला' प्रणयन किया। वर्द्धमान जिलेके मंतेश्वर थानेके अन्तर्गत देनुड़ ग्राममें वृंदावन दासके प्रतिष्ठित मंदिर और विग्रह है। यह वैष्णव समाजमें "देनुड़श्रीपाट" नामसे परिचित है।

खेतुरीके महोत्सवमें निकट वृंदावनमें उपस्थित थे। स्वयं कृष्णदास कविराज वृंदावनदासको 'चैतन्य लीलाका व्यास' कह कर आदर कर गये हैं। वृंदावन-दासके रचित गोपीकामोहनकाव्य भी वैष्णव समाज-की आदरणीय वस्तु है।

बङ्गला साहित्य देखो।

वृन्दावनदेव—निम्बार्क सम्प्रदायके एक गुरुका नाम। ये नारायणदेवके शिष्य और गोविन्ददेवके गुरु थे।

वृन्दावनशुक्ल—एक विख्यात पण्डितका नाम। इन्होंने आद्यश्राद्ध-विधि, उपाकर्म, कुण्डपोलिन, कृष्णस्मार-वर्णन, केशवोपदनिर्णय, कोटिहोमविधि, गणेशाष्टोत्तर दीपिका, गुणसंहारमन्त्रोद्दिपन, गोदोहरित, चण्डिका-पञ्चकवचमन्त्रिका, चन्द्रोन्मीलनमन्त्रिका, ज्ञानप्रदीप मीमांसा, तत्त्वबोधमाहात्म्य, तालचन्द्रिका, दान-मयूखटीका, प्रतिष्ठाप्रयोग, प्रयोगचूडामणि, प्रायश्चित्त,

भावसयुदाहरण, मथुरा-माहात्म्यसंग्रह, मलमासतत्त्व टीका, मार्कण्डेयचरित, योगचन्द्रिका, योगविवेक, योगसूत्रटिप्पन, लीलावती टीका, वाल्मीकिचरित, षोड़शीपटल, शाम्बचरित, प्रभृति ग्रंथोंका प्रणयन किया था।

वृन्दावनेश्वर (सं० पु०) वृन्दावनस्य ईश्वरः। श्रीकृष्ण।

वृन्दावनेश्वरी (सं० स्त्री०) वृन्दावनस्य ईश्वरी। श्रीमती राधा।

वृन्दिन (सं० त्रि०) वृन्दसंख्याविशिष्ट।
(भारत उद्योगपर्व)

वृन्दिष्ठ (सं० त्रि०) अयमनयोरेवाम्भ्या अतिशयेन वृन्दारक इति वृन्दारक-इष्ठन् (प्रियस्थिरेति। पा ६।४।१५७) इति वृन्दारकस्य वृन्दादेशः। श्रेष्ठ।

वृन्दीयस् (सं० त्रि०) अयमनयोरेवाम्भ्या अतिशयेन वृन्दारकः, वृन्दारक ईयसुन् प्रियस्थिरेत्यादिना वृन्दादेशः। वृन्दिष्ठ, दो या बहुतोंमें श्रेष्ठ।

वृश (सं० पु०) वृ-शक् (जनिदाच्यु सृहमदिति। उण् ४।१०४) १ अड़ूसा। २ चूहा।

वृशी (सं० स्त्री०) एक ओषधिका नाम।

वृश्चन (सं० पु०) वृश्चिक, बिच्छू।

वृश्चि (सं० पु०) लाल गदहपुरना, रक्त पुनर्नवा।

वृश्चिक (सं० पु०) व्रश्चु छेदने (वृश्चकृष्योः किकन्। उण् २।४०) इति किकन्। १ शूककीट। २ बिच्छू। पर्याय—अलि, द्रोण, वृश्चन, द्रुण पृदाकु, अरुण, अली।

हमारे देशमें खास कर दो तरहके बिच्छू देखे जाते हैं। एक तरहके बिच्छूको अंग्रेजीमें Scorpion कहते हैं और दूसरेको शतपदी श्रेणिभुक्त साधारण बिच्छू। प्राणितत्त्वविदोंने शेषोक्त जातीय बिच्छुओंको Caterpillar जाति रूपसे निर्देश किया है। इन दोनों तरहके बिच्छुओंके डूंङ होता है। इस डूंङसे जब विशेषरूपसे मनुष्यों पर आक्रमण करता है, तब डूंङसे एक तरहका विष निकलता है। इस विषसे जीवके शरीरमें भयानक जलन पैदा होती है। प्राचीन कवियोंने निदारुण मानसिक पीड़ाकी बिच्छूके डंककी ज्वालासे तुलना की है।

इस समयकी तरह प्राचीन-भारतमें भी सांप और बिच्छुओंका अत्याचार प्रबलरूपसे था। ऋक् संहिताके १।१९१।१०-१६ मन्त्रमें अगस्त्य ऋषिने विष दूर करनेके लिये सर्पशत्रु सूर्य, शकुन्त, अग्नि, नदी, मयूर और नकुलको स्मरण किया है। उक्त सूक्तके ७वें मन्त्रमें लिखा है, कि बिच्छूका विष रसशून्य नहीं अर्थात् असार या प्राणके व्याघातकर नहीं है। सायणाचार्यका कहना है, कि अगस्त्यने विष शङ्कायुक्त हो कर विषपरिहारके लिये इस सूक्तकी आवृत्ति की थी। शौनकके मतसे विषग्रस्त व्यक्तिके इस सूक्तके उच्चारण करने पर उसका विष उतर जाता है।

अथर्ववेदके १०।४।६, १५ और १२।१।४६ मन्त्रोंमें बिच्छूके विषप्रभावका परिचय मिलता है। गोबरसे इस कर्कट जातीय बिच्छूका उद्भव होता है, इससे इसको गोबर कीट कहते हैं। (अमरटीका भरत)

यह कर्कट जातीय बिच्छू Arachnida श्रेणीके Scorpionidea दलके अन्तर्भुक्त है। इसकी मूलदेह कर्कटाकृति है। इसके आठ पैर होते हैं। खाद्य द्रव्य और मनुष्य आदि शत्रुओंको काट कर पकड़नेके लिये दो "दोहुआ" और पीछे गांठदार एक लम्बी पूंछ रहती है। इस पूंछके अग्रभागमें टेढ़ा डूंङ होता है। अंग्रेजीमें इसको Sting कहते हैं। जब कोई आदमी स्वेच्छाक्रमसे या अज्ञात अवस्थासे इसकी गति रोकता है, तब ये कुपित हो अपने प्रतिपक्ष शत्रुको दोहुआ द्वारा आक्रमण और डूंङसे डंक मारता है, उस स्थानमें ज्वाला होने लगती है। यह ज्वाला सारे शरीरमें बढ़ने लगती है।

उत्तर और दक्षिण गोलार्द्धके उष्णप्रधान स्थानमें इस जातिके बिच्छू देखे जाते हैं। साधारणतः मैले या टूटे मकानके खण्डहरमें और घरमें जहां ऐसी आवर्जना है, ऐसे अन्धकारपूर्ण ठण्डे स्थानमें बिच्छू छिपे रहते हैं। ये श्वासप्रश्वासग्राही और झिङ्गुरकी तरह एक प्रकारका शब्द करते हैं। आठ पैरोंसे ये बहुत तेज चल सकते हैं। दौड़नेके समय ये अपनी पूंछको वृत्ताकारमें परिणत कर डूंङको अपने सिर पर रखते हैं।

हमारे देशके और मध्य एशियाके लोगोंका विश्वास है, कि पहाड़ी कर्कटवृश्चिक या बिच्छूका डंक मारात्मक है। किन्तु वर्त्तमान समयमें विषविज्ञानको

आलोचनासे मालूम हुआ है, कि यह विष वैसा प्रबल नहीं है। फिर भी कहीं कहीं देखा गया है, कि बिच्छूके डंक मारे हुए रोगी शारीरिक दुर्बलता, अनुत्साह और निराशाकी दुर्बलताके कारण मृदु रोगी हो जाते हैं और इससे उनकी मृत्यु हो जाती है। यह विष वैद्यक शास्त्रमें निमूत्रशार नामसे परिचित है।

इस समय बिच्छूके डंकसे उत्पन्न यन्त्रणाको दूर करनेके लिये डाक्टर डंकस्थानमें क्लोरोफार्म, या क्षार लेपन करनेका आदेश देते हैं। कभी कभी स्वल्पमात्रामें क्लोरोफार्म सुंघानेको भी दिया जाता है। इपिकाकका प्रलेप भी विशेष फलप्रद है। अमेरिकाके संयुक्त राज्यमें ह्विस्की नामक शराब ही बिच्छूके डंकको दूर करनेकी एकमात्र औषध है। इस कारण लोग इसे Whisky cure कहते हैं। इस ह्विस्की अर्कके साथ चर्वित तम्बाकूकी पुलटिस देनेसे जल्द आराम होता है।

सिंहलद्वीप (सिलोन)के दीर्घकाय काले बिच्छुओंको वहांके लोग Buthus afer कहते हैं। इनके डंकसे मनुष्योंको विशेष क्षति नहीं होती। किन्तु छोटी छोटी चिड़ियां जब इन बिच्छुओंके डंकसे पीड़ित होती हैं, तब शीघ्र ही इनके शरीरसे प्राण निकल जाते हैं। सुनते हैं, कि बिच्छू जब अग्नि द्वारा चारों ओरसे घेर दिये जाते हैं, तब यह स्वयं आत्मघात कर मृत्युमुखमें पतित होते हैं।

भारतमें सब जगह बिच्छू होते हैं। किन्तु पूनेके पास और नदीके किनारेवाले मैदानमें बहुतायतसे बिच्छुओंका वास देखा जाता है। वहांके बालक बिच्छुओंके रहनेकी भूमिको खोद कर उसमें बालू या धूलि फेंकते हैं। इससे अस्थिर हो कर बिच्छू अपने स्थानसे बाहर निकलते हैं। तब लड़के बिच्छूके पिछले हिस्सेमें हरिण सींग छुआ देते हैं, जिससे बिच्छू फिर उस बिलमें समा न सके। इस तरह लड़के कई बिच्छुओंको एक डोरेमें बांधते हैं और बिच्छू परस्पर एक दूसरेको डंक मार मरते हैं। बाइबिल ग्रन्थके Numbers xxxiv 4; Joshua xv 3, Judges 36, Maccabees v. 5 आदि स्थानोंमें फिलिस्तीन और मेसोपोटामियाके बिच्छुओंकी अधिकताका पता लगता है।

नर बिच्छुओंकी अपेक्षा मादा बिच्छू लम्बी होती है। नरबिच्छुओंके दो लिङ्ग होते हैं जो इनके माथे पर होते हैं। स्त्रीबिच्छुओंके भी इसी तरह उसी स्थान पर दो योनि दिखाई देती है। संसर्गके समय स्त्रीबिच्छूकी पीठ पर पुरुषबिच्छू सवार हो जाता है। एक वर्ष तक गर्भधारण कर ४०से ६० तक अण्डे देती है। और अपने शरीरसे रस कर ही इन अण्डेमें बच्चा पैदा करती है। मकड़ेका अण्डा इनके खानेकी उत्तम सामग्री है।

भारतकी आलोच्य बिच्छुओंमें 'तेतुले' बिच्छू ही आकृतिमें एक बित्ता या उससे कुछ अधिक लम्बा होता है। दोनों पार्श्वमें पक्षकी ओर पीठे इसके मेरुदण्डकी चौड़ाई आध इञ्चसे भी अधिक दिखाई देती है। पट ले कर इसकी चौड़ाई ३॥ इञ्चसे कम नहीं होती। बाल्यावस्थामें यह काला होता है; किन्तु वयोवृद्धिके साथ साथ देहकी गांठें स्याह हो जाती हैं। लेकिन इसकी बीचकी गांठ कुछ पीली रङ्गकी होती है। इसकी ग्रन्थिविशिष्ट गठन और हरिद्रा वर्णके शरीरके साथ इमली फलका सादृश्य रहनेसे इसको बङ्गालमें 'तेतुले बिच्छा' कहते हैं। इसके मुखकी दोनों पार्श्वमें दो डंक होते हैं। इन्हीं डंकोंसे यह मनुष्य आदि प्राणियोंको डंसता है। पूंछकी ओर भी दो डंक रहते हैं। लोगोंका विश्वास है, कि उस पूछके डंकोंमें ही बिच्छुओंका विष रहता है। किन्तु यथार्थमें ऐसी बात नहीं है। यदि मुंहवाले डंकोंको काट दिया जाये, तो वे दो डेढ़ महीनेमें फिर निकल आते हैं। ये पेटके बल चलते हैं, इससे सर्प जातिमें इनकी गणना की जाती है। घरकी दीवार तथा पेड़ों पर यह सहज ही चढ़ जाते हैं। पैरके बल पर जैसे प्राणी चलते हैं, वैसे ही यह पीठके बल भी चल सकते हैं। इनके काटनेसे विशेष कष्ट अथवा पीड़ा होती है। इस श्रेणीसे अपेक्षाकृत छोटे कदके दो तरहके और बिच्छू देखे जाते हैं। उनमें जो [illegible] होते हैं, उनको [illegible] बिच्छू कहते हैं। ये बहुत काटते नहीं हैं। दूसरी जो काले रङ्गका बिच्छू होता है, यह काटता है सही, किन्तु इसकी जलन अन्यान्य बिच्छुओंकी तरह अधिक नहीं

होती। इसके टूँड़का विष प्याजका रस मलनेसे दूर हो जाता है। काटे हुए स्थान पर पेशाब कर देनेसे जलन नहीं देने पाती। चाहे हुक्केके जलसे धोनेसे भी उपकार होते दिखाई देता है। अलगदी देखो।

बिच्छूके डंक मारने पर तुरत ही अग्निदाहवत् ज्वाला उपस्थित होती है। डंकके स्थान पर कटनेकी तरह पीड़ाका अनुभव होने लगता है। बिच्छूका विष अतिशीघ्र ही देहके ऊपरी भागमें चढ़ने लगता है। हृदय, नाक, जिह्वामें यदि बिच्छू डंक मारे और मारे हुए स्थानसे मांस खसक जावे और रोगी वेदनासे अत्यन्त पीड़ित हो, तो यह असाध्य हो जाता है। ऐसी अवस्था होने पर उस व्यक्तिके प्राणवियोगकी आशङ्का हो जाती है।

बिच्छूके विषमें घृत और सेंधा नमक द्वारा स्वेद और अभ्यङ्गकी व्यवस्था करनी चाहिये। गर्म जलसे और गर्म भोज्य भोजन तथा घृत पान करना लाभदायक है। पांशु द्वारा प्रतिलोमभावसे उद्वर्त्तन एवं घन आच्छादन अथवा उष्ण जलसे डंक स्थानको उन्नत कर उसी तरहसे आच्छादन करनेसे भी विशेष उपकार होता है। कबूतरकी विष्ठा, निम्बू, सिरिसके फूलका रस, चोरपुष्पी, आकन्दका लासा, सोंठ, करञ्ज और मधु—इन चीजोंका प्रयोग करनेसे बिच्छूका विष प्रशमित होता है। फिर इसमें वातपित्त नामक क्रिया भी करनी होती है। इन्द्रयव, तगरपादुका, शालिनी (घोषाविशेष), कटकी और तितलौकी—इस योगको पान तथा नस्य लेनेसे बिच्छूका विष दूर होता है। कण्डू, सूईके चूमनेकी सी पीड़ा, विवर्णता, शून्यता, क्लेद, शरीरका शोषण, विदाह, लौहित्य, ज्वाला, यन्त्रणा, पाक, शोथ, ग्रन्थिकुञ्चन, दंशावदरण, स्फोटोत्पत्ति, गात्रमें पद्मकी पंखड़ियों समान मण्डलकी उत्पत्ति और उग्र विषके शरीरमें रहने पर उपर्युक्त लक्षण दिखाई देते हैं। निर्विष होने पर उसके विपरीत लक्षण दिखाई देते हैं। (चरक चिकित्सास्था० विषचि० २३ अ०)

२ मेषादि बारह राशियोंमें आठवीं राशिका नाम। इसका अधिष्ठात्री देवता वृश्चिकाकार है। विशाखा नक्षत्रके शेष पादमें अर्थात् विशाखा नक्षत्रकी स्थिति परिमाण को चार भागोंमें बांट देने पर उसके अन्तिम भागमें तथा अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्रके स्थितिकाल तक वृश्चिकराशि और उसमें जिसका जन्म होता है, उसकी वृश्चिकराशि होती है। यह राशि शीर्षोदय, श्वेतवर्ण, जलचर, बहुपुत्र, बहुस्त्रीसङ्गम, चित्रतनु और विप्रवर्ण होती है। इसकी विशेष संज्ञा सौम्य, अङ्गना, युग्म, सम, स्थिर, पुष्कर, सरीसृपजाति मान्य है। वृश्चिकराशि मङ्गल ग्रहका क्षेत्र है और चन्द्रके निम्न स्थान अर्थात् वृश्चिक राशिमें चन्द्र रहनेसे नीचस्थ होते हैं।

वृश्चिक राशिमें जन्म होने पर अनेक धनजनमान्यसम्पन्न, यशोभाग्ययुक्त, चलबुद्धि, राजसेवानुरक्त, सदा पराधनाभिलाषी, सर्वदा उत्साही, दृढ़बुद्धिविशिष्ट और अत्यन्त वीर होता है। सिवा इनके पहले इस राशिकी जितनी संज्ञायें बता चुके हैं जातक वैसे ही गुणशाली होता है।

राशिके ये ही साधारण गुण हैं। इसके सिवा इस राशिमें रवि आदि ग्रहोंकी अवस्थिति होनेसे उसके फलकी विभिन्नता होती है।

४ लग्नभेद। दिनरातमें सूर्योदयकी तरह पूर्व ओर जिस समय राशिचक्रमें वृश्चिक राशिका उदय होता है, उसी समयको वृश्चिकलग्न कहते हैं। अग्रहायण मासके प्रत्येक दिनको सूर्योदयके साथ ही वृश्चिक राशिका उदय होता है। इससे इस महीनेके हरेक दिन को सबेरे वृश्चिक लग्नका होना निश्चित है। मेषादि १२ लग्नोंमें यह आठवां लग्न है। वृश्चिक लग्नका फल—जो बालक वृश्चिकलग्नमें जन्म लेता, वह बड़ा मोटा, लम्बा शरीरवाला, व्ययशील, कुटिल, पितामाताका अनिष्टकारी, गम्भीर तथा उग्र स्वभाववाला, पिङ्गल नेत्रवाला, स्थिरप्रकृतिक, विश्वासी, सदा हास्यपरायण, साहसी, गुरु और सुहृद्को शत्रुतामें निरत, राजसेवापरायण, दुःखी, लावण्यविशिष्ट, सदा परितापयुक्त, दानकरनेवाला और पित्तरोगका रोगी होता है।

इसका साधारण लग्नफल इस तरह है—लग्नमें यदि कोई ग्रह या उसकी दृष्टि न पड़ती हो, तो उक्त फल होता है। किन्तु यदि लग्नमें कोई एक ग्रह, या दो तीन ग्रह एकत्र हों, या ग्रहान्तरकी दृष्टि हो, तो उन ग्रहोंके शत्रु, मित्र और स्वभावके अनुसार आदिका विधान कर उसके फलकी कल्पना करनी चाहिये। पहले जो फल कहा

गया है, रवि प्रभृति ग्रह रहनेसे यह फल होता है। जिसकी राशि और लग्न एक है, अर्थात् एक वृश्चिक लग्नमें जिसका जन्म हुआ हो, उसको राशि और लग्न दोनोंका फल मिला कर फलनिरूपण करना होता है।

वृश्चिकलग्नका परिमाण ५।४०।५३, पांच दण्ड चालीस पल तिरपन विपल, होरा २।५०।२८।३०, द्रेक्काण १।५३।२४।०, नवांश ०।३३।५३।०, द्वादशांश ०।२८।२४।४५।०, त्रिंशांश—०।११।२१।५४ इसी तरह वृश्चिक लग्नका षड्वर्ग स्थिर करना होगा। यह लग्नकी अपेक्षा सूक्ष्म है। इसके बाद और भी सूक्ष्म कालमें लग्नस्फुट गणना करनी होती है। इस षड्वर्गके फल भिन्न भिन्न हैं।

(बृहज्जातक कोष्ठीप्र०)

५ एक ओषधिका नाम। ६ हालिक। ७ हाल। ८ मदनवृक्ष। ९ अग्रहायण मास।

वृश्चिकपत्रिका (सं० स्त्री०) पूतिका, पोईका साग।

वृश्चिकप्रिया (सं० स्त्री०) वृश्चिकस्य प्रिया। पूतिका।

वृश्चिकर्णी (सं० स्त्री०) आखुकर्णी लता, मूसाकानी लता।

वृश्चिका (सं० स्त्री०) छोटा क्षुपविशेष। महाराष्ट्रमें इस क्षुपको विछु-ल, कलिङ्गमें ... , बम्बईमें विच्छुका कहते हैं। संस्कृत पर्याय—अलवणी, पिच्छिला, अल्पपत्रिका। गुण—पिच्छिल, अम्ल, मलपूर्त्ति आदि दोषनाशक।

वृश्चिकाली (सं० स्त्री०) वृश्चिकालताविशेष। क्षुपविशेष, बिछुआ। (Tragia involucrata) महाराष्ट्र वृश्चिकाली, कलिङ्ग इलिसुली, तैलंग दुल-गोंडी, तामील कञ्चूरि, बम्बई ... । पर्याय—वृश्चिपत्री, विषघ्नी, नागदन्तिका, सर्पदंष्ट्रा, करभा, काली, युग्म, धूसरपुच्छिका, विषाणी, मेषशृङ्गी, अस्थिका, दक्षिणावर्त्तकी, कालिका, अपामार्गा, देव-लाङ्गुलिका, करभी, भूमिपुष्प, कर्कशा, स्वर्णाङ्गा, शुभ्र-पत्रा, शीतविषाणिका, आखुपुष्पा। इसके गुण—कटु, तिक्त, उष्ण और मलशोधनकारक, कफपित्त, विषघ्न और अतिसारनाशक, वातकर। (राजनि०) राजवल्लभके मतसे यह कांसी और वायुका नाश करने-वाली है।

२ कहरहित विच्छूके आकारका फल। गुण—वातनाशक। (सुश्रुत इ० १८ अ०) ३ उष्ट्रधूसक, मेष-शृङ्गी। गुण—वातनाशक। (वाभट चरक १५ अ०)

वृश्चिकादिविषापहा (सं० स्त्री०) नाकुली, गन्धनाकुली। (वैद्यकनि०)

वृश्चिकेश (सं० पु०) वृश्चिकराशिका अधिष्ठात्री देवता।

वृश्चिपत्री (सं० स्त्री०) १ वृश्चिकाली, बिछुआ। २ लघु मेषशृङ्गी, छोटा मेढ़ासिंगी।

वृश्ची (सं० स्त्री०) वृश्चिक क्षुप, पुनर्नवा, गदह-पुरना। (वाभट)

वृश्चीर (सं० पु०) सफेद गदहपुरना।

वृश्चीव (सं० पु०) गदहपुरना।

वृष (सं० पु०) १ सेचन, सींचना। २ हिंसा। ३ क्लेश। ४ गर्भग्रहण। ५ ऐश्वर्य। ६ शक्तिबन्ध।

वृष (सं० पु०) वर्षति सिञ्चति रेतः इति वृष-क। १ बैल, सांढ़। पर्याय—उक्षा, भद्र, बलीवर्द, ऋषभ, वृषभ, अनड्वान्, सौरभेय, गोश्रेष्ठ, ककुद्मान्, शिविन, गन्धमैथुन, पुङ्गव।

शास्त्रोंमें लिखा है, कि अशौचान्तके दूसरे दिन मृत व्यक्तिके उद्देशसे वृषोत्सर्ग करना होता है। क्योंकि, वृषोत्सर्ग करनेसे उसकी प्रेतयोनिसे गति न हो कर स्वर्गलोकमें गति होती है। सिवा इसके काम्य-वृषोत्सर्गकी भी विधि है। शुभाशुभ लक्षण देख कर वृष स्थिर करना होता है।

वृषोत्सर्ग और वृषभ शब्द देखो।

२ राशिभेद। मेषादि १२ राशियोंमें दूसरी राशि। इसकी विशेष संज्ञा—सौम्य, अंगना, शुभ, सम, स्थिर, मुख। इस राशिके चार पाद होते हैं। निवासभूमि ग्राम्य, दिनमें बली, ... , श्वेत वर्ण, मिला और पृष्ठोदयाख्य है। इसके अधिष्ठात्री देवता वृषाकृति है।

कृत्तिका नक्षत्रके शेष तीन पादों और समूचे रोहिणी तथा मृगशिरा नक्षत्रके प्रथम दो पादोंमें यह राशि होती है। यह राशि सुंदर मूर्ति, त्यागी, ... , ... , ... , ... , ... , ... और ... होती है। इस राशिजात व्यक्ति भी इसी

तरहका होता है। वृषराशि चन्द्रके तुङ्ग स्थान है। यदि चंद्र यहां हो, तो सब ग्रहों से बली हो कर रहता है।

वृषराशिका फल—वृष राशिमें जन्म होने पर कमनीय मूर्त्ति, टेढ़ी चालवाला, ऊरु और वदन मोटा; पृष्ठ, मुख और पार्श्वदेशमें चिह्नविशिष्ट, दाता, क्लेश सहनेवाला, प्रभु, ककुत् अर्थात् गरदनका निचला हिस्सा ऊंचा, कन्यासन्ततिवाला, श्लेष्म प्रकृतिका, प्रथमावस्थामें धन, बंधु और सन्ततिहीन, सौभाग्ययुक्त, क्षम शील, दीप्ताग्नि-सम्पन्न, प्रमदाप्रिय, स्थिरमित्रवाला, मध्य और अन्त्य उम्रमें सुखी होता है। (बृहज्जातक)

कोष्ठीप्रदीपके मतसे वृषराशिमें जन्म होनेसे उत्तम स्थूलजघन और कपोलयुक्त, प्रशान्त चक्षु, कम बोलने वाला, पवित्र, अत्यन्त दक्ष, मनोहर देहवाला, सुखी, देव, द्विज और गुरुभक्त, श्लेष्मवातप्रकृति, केशका अग्रभाग भी शुभ्र, कुटिल और रोमयुक्त होता है। यही राशिका साधारण फल है। इसके सिवा इस राशिमें रवि आदि ग्रहोंके रहने पर उसका फल भिन्न रूप हो जाता है।

वृषलग्न—वृषलग्नमें जन्म होने पर गाल, होंठ और नासिका मोटी होती है, ललाट चौड़ा, अत्यन्त वातश्लेष्म प्रकृति, त्यागशील, अधिक खर्च करनेवाला, अल्प पुत्रवाला और अधिक संख्यक कन्यायुक्त, पितामाताको कष्टदायक, धनभागी, सब कर्मोंमें आसक्त और सर्वदा आत्मीय हन्ता होता है। वृषलग्नजात पुरुष अस्त्र या पशु द्वारा अथवा अन्य स्थानमें देहश्रम, जलमें डूब कर या शूल, पर्यटन, मिरशन, चौपाये जानवर या बलवान् मनुष्य द्वारा मृत्युमुखमें पतित होता है।

वृषलग्नके परिमाण ४।४६।५०, (चार दण्ड, छ'यालिस पल, और पचास विपल), होरा, २।२४।५५ विपल, द्रेक्काण —१।३५।३६।४०, नवांश ०।३२।१२।१३।३३, द्वादशांश—०।२४।६।१०, त्रिंशांश ०।६।३६।४०।

लग्नका उक्त परिमाण स्थूल और लग्न स्फुट द्वारा सूक्ष्म होता है। इन सब होरा द्रेक्काण प्रभृतिका फल भी भिन्न रूपका होता है।

वृषलग्नके प्रथम होरामें जन्म होनेसे उन्नत शरीर; चक्षुः ललाट, और वक्षःस्थल चौड़ा, धार्म्मिक और स्थूल शरीर, द्वितीय होरामें जन्म होनेसे स्थूल और छोटा शरीर, उदार प्रकृति और कटिदेश (कमर) मनोहर होता है।

वृषके प्रथम द्रेक्काणमें जन्म होनेसे पानभोजनप्रिय, नारीवियोगसन्तापयुक्त, स्त्रीकर्मानुसारी, वस्त्रालङ्कारयुक्त, द्वितीय द्रेक्काणमें जन्म होनेसे अति धनी, बन्धुयुक्त, भोक्ता, भूषणरत, बलवान्, स्थिरप्रकृति, मनस्वी, लोभी, और स्त्रीप्रिय तृतीय द्रेक्काणमें चतुर, अल्पभाग्ययुक्त और मलिन होता है।

लग्न और राशि दोनों यदि एक हो, तो मिश्रित रूपमें जातकके शुभाशुभ फल निर्णीत होते हैं। लग्न, राशि या रवि आदि ग्रहका अवस्थान और उनकी दृष्टिके सम्बन्धमें—इन सबोंका मिलित रूपसे फल निर्देश करना होता है। (बृहज्जातक और कोष्ठीप्र०) इस राशिका आकार वृष (बैल)की तरह है, इसीलिये इसका नाम वृष पड़ा है।

४ चार प्रकारके पुरुषोंमें एक पुरुष। बहुगुणशाली और बहुत तरहसे रतिधर्ममें अभिज्ञमत, शरीर, सुन्दर देह, और सत्यवादी—इन गुणोंवाला पुरुषका नाम वृष है। इस पुरुषको शङ्खिनी नारी बहुत प्रिय होती है।

(रतिमञ्जरी)

५ ग्यारहवें मन्वन्तरके इन्द्र। (गरुड़पुराण ८७ अ०) कामान् वर्षतीति वृष-क। ६ धर्म, वृषरूपी चतुष्पाद धर्म। ७ शृङ्गी। यह शब्द उत्तर पदस्थ होनेसे श्रेष्ठार्थवाचक होता है। ८ मूषिक, चूहा। ९ शुक्ल। १० वास्तुस्थानभेद। (मेदनी०) ११ वासक, अडूसा। (विश्व) १२ श्रीकृष्ण। १३ शत्रु। १४ काम। १५ बलवान्। १६ वृषभ नामकी औषध। १७ पति। १८ नदी भल्लातक, नदीमें होनेवाला भिलावां। १९ गोधूम, गेहूं। २० वासामूल, धमासेकी जड़। २१ पहुं, मोरका पंख।

वृषक (सं० पु०) १ वृष, सांड़। गान्धारराजके एक पुत्रका नाम। २ सामभेद। वृष देखो।

वृषकर्णी (सं० स्त्री०) १ सुदर्शन नामकी लता। २ एक प्रकारकी विधारा।

वृषकर्मा (सं० त्रि०) धर्मकर्मा।

वृषका (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नदीका नाम।

वृषकाम (सं० त्रि०) १ धर्मकाम। २ जो वृषकी कामना करे।

वृषकृत (सं० त्रि०) वृषयुक्त।

वृषकेतन (सं० त्रि०) वृषध्वज।

वृषकेतु—१ वृषध्वज, शिव। २ कर्णके एक पुत्रका नाम।

वृषक्रतु (सं० त्रि०) वर्षा करनेवाले, इन्द्र। (ऋक् ५।३६।६)

वृषखादि (सं० त्रि०) १ सोमपायी, यह जो सोमपान करता हो। २ इन्द्र जिसके अस्त्र अकाट्य है। (ऋक् १।६४।१० सायण)

वृषगण (सं० पु०) एक ऋषिसमूहका नाम। (ऋक् ९।९७।८)

वृषगन्धा (सं० स्त्री०) १ कनही या कंघी नामका पौधा। २ अतिबला, एक प्रकारकी [illegible]।

वृषगन्धिका (सं० स्त्री०) वृषगन्धा देखो।

वृषचक्र (सं० क्ली०) वृषाकार चक्र। ज्योतिषोक्त वृषाकारचक्रविशेष। सर्वांगयुक्त एक वृषकी प्रतिमूर्ति अंकित कर उसका मुख, आँख, कान, सींग, शीश और स्कन्धदेशमें यथाक्रम कृत्तिकादि दो दो नक्षत्र रखे जाते हैं। पीछे उसकी पीठमें स्वाती, विशाखा, और अनुराधा; पूंछमें ज्येष्ठा और मूला, प्रत्येक पार्श्वमें पूर्वाषाढ़ा तक यथाक्रमसे दो दो कर अभिजित् सहित उत्तरभाद्रपद तक चार और उसके उदरमें रेवती, अश्विनी और भरणी। इन सब नक्षत्रोंको यथायथ स्थानमें रख कर उससे हलप्रवाह और बीज वपनादि कार्य्योंके फलका शुभाशुभ निर्णय किया जाता है। अर्थात् अंकित वृषके मुखस्थितप्रभृति नक्षत्रमें चन्द्रके अवस्थान कालमें हल-प्रवहनादि करनेसे कार्यकी हानि, शिरस्थ नक्षत्रमें चन्द्रके अवस्थानमें ये सब कार्य करनेसे सुख, कर्णस्थित नक्षत्रमें चन्द्रकी अवस्थिति कालमें भिक्षा और भ्रमण; सींगमें पुष्टि; स्कन्धस्थमें सौख्य, कार्यकालमें स्कन्धदेशस्थ नक्षत्रमें कष्ट, पूंछमें मङ्गल, पार्श्वमें भ्रमण, चन्द्र रहनेसे सुख, पृष्ठस्थित नक्षत्रमें कष्ट, पूंछमें कुशल, पार्श्वमें भ्रमण और उदरस्थितनक्षत्रमें चन्द्र रहते समय कार्य करनेसे सुख होता है। (ज्योतिस्तत्त्व)

वृषच्युत (सं० त्रि०) सोमद्वारा संसिक्त, द्वारा परिच्युत।

वृषच्युति (सं० त्रि०) वर्षणगमन, वर्षाकी गति।

वृषण (सं० पु०) अण्डकोष, रक्त, मांस, कफ और मेदके सार अंशसे वायुके संयोगसे इसकी उत्पत्ति है। (सुश्रुत)

गरुडपुराणमें लिखा है,—एक वृषण व्यक्ति अल्पायु दुःखी होता है। जिसके दोनों अण्डकोष बराबर समान होंगे, वही व्यक्ति राजा होगा। कोष दोनों असमान होनेसे मनुष्य स्त्रीचपल होता है। जिस मनुष्यके दोनों अण्डकोष लम्बे भावसे लटकते रहते हैं, वह अल्पायु और निर्धन समझा जाता है।

वृषणकच्छू (सं० स्त्री०) वृषणस्य कच्छूः। क्षुद्ररोग विशेष। स्नान अथवा पानीसे धुई कपड़ा इत्यादिकी मालिन्यसे शरीरका मल साफ न करनेसे यदि वह मल मुष्कदेशमें जम जाता है, तो वह स्थान सरस स्वेदयुक्त और क्लिन्न होता तथा वहाँ खाज उत्पन्न हो जानेसे उससे स्फोटक या फुंसियां और उनसे पीब या मवाद निकलने लगता है। श्लेष्मा और रक्तके प्रकोपवशतः रोगोंके ये सब लक्षण दिखाई देनेसे उन्होंको वृषणकच्छु या वृषणकच्छू कहते हैं।

चिकित्सा—हिराकस (कसीस), गोरोचन, तुंतिया, हरताल और रसाञ्जन, कांजीके साथ पीस कर प्रलेप करनेसे अथवा रेवंदा चिरायता, सैंधा नमकके साथ पीस कर लेप करनेसे अहिपूतनक और वृषणकच्छु रोगकी शान्ति होती है। रसौत, मोथा, कूट, सैंधा नमक, [illegible] सरसों [illegible] पीस कर उबटन लगानेसे वृषणकच्छु रोगकी समाप्ति होती है। तूतिया या जली मिट्टी अथवा कपड़ेको चूर्ण कर छिड़कनेसे भी यह रोग दूर होता है।

वृषणाश्व (सं० पु०) १ इन्द्रका घोड़ा। २ एक [illegible] राजाका नाम। (ऋक् १।५१।१३) (त्रि०) ३ सेचनसमर्थ अश्वयुक्त, जो घोड़ा सिंचन कार्य्यमें निपुण हो। (ऋक् ८।२०।१०)

वृषण्वत् (सं० त्रि०) सेचनसमर्थयुक्त, सेचनकारी सम-न्वित।

वृषणवसु (सं० क्ली०) १ इन्द्रका धन। (त्रि०) २ वर्षण कर्ता। (ऋक् ५।३१।८)

वृषत्व (सं० क्ली०) सेचनसामर्थ्य। (ऋक् १।५४।२)

वृषदंशक (सं० पु०) वृष-दन्श अच् वा ण्वुल्। जो वृष अर्थात् चूहेका दंशन करे, बिल्ली।

वृषदञ्जि (सं० त्रि०) वर्षणकारी पदार्थ द्वारा जो सिञ्चन करे।

वृषदन्त (सं० त्रि०) वृषस्य मूषिकस्य दन्त इव दन्तो यस्य। जिसके दांत चूहेके दांतकी तरह हों।

वृषदर्भ (सं० पु०) १ काशीराजके एक पुत्रका नाम। २ शिबिके एक पुत्रका नाम। ३ श्रीकृष्णका एक नाम।

वृषदेवा (सं० स्त्री०) वसुदेवकी एक पत्नीका नाम। (वायुपुराण)

वृषद्गु (सं० पु०) एक राजपुत्रका नाम।

वृषद्वीप (सं० पु०) देशभेद।

वृषधूत (सं० त्रि०) प्रस्तर द्वारा अभियुत।

वृषध्वज (सं० पु०) वृषो वृषभो मूषको धर्मो वा ध्वजो चिह्नं यस्य। १ शिव। २ गणेश। ३ वह जो पुण्यवान् हो, पुण्यात्मा। ४ एक राजपुत्रका नाम। ५ एक पर्वतका नाम। ६ तांत्रिक मंत्र-रचयिताभेद। स्त्रियां टाप्। वृषध्वजा, दुर्गा।

वृषध्वाङ्क्षा (सं० स्त्री०) नागरमोथा।

वृषन् (सं० पु०) वृष-कनिन्। (वृष वृषीति। उण् १।१५६) १ इन्द्र। २ कर्ण। ३ वेदनाज्ञान अथवा उससे उत्पन्न अचेतनता। ४ वृष। ५ अश्व। ६ विष्णु। ७ वृक्ष।

वृषनाभि (सं० त्रि०) वर्षणक्षम नाभि अर्थात् चक्रछिद्रयुक्त जिसे नाभि या चक्रच्छिद्रकी वर्षणयोग्यता है।

वृषनामा (सं० क्ली०) वर्षण और नमन अर्थात् नत या अधोगति होना। (ऋक् ६।६७।५४)

वृषनाशन (सं० पु०) वृषान् मूषिकान् नाशयति नश-णिच् ल्यु। १ विडङ्ग, वायविडङ्ग। २ श्रीकृष्ण, अरिष्ट रूपी वृषको श्रीकृष्णने नाश किया था, इससे भगवान् वृषनाशन कहे जाते हैं।

वृषन्तम (सं० त्रि०) अत्यन्तवर्षणकारी। (ऋक् १।१०।१०)

वृषपति (सं० पु०) वृषस्य पतिः। १ षण्ड, क्लीव, ध्वजभङ्ग। २ शिव, महादेव।

वृषपत्रिका (सं० स्त्री०) वस्तांत्री, छागलांत्री नामकी ओषधि जो विधाराका एक भेद है।

वृषपत्नी (सं० स्त्री०) वह जिसके पतिमें वर्षण करनेकी क्षमता है।

वृषपर्णिका (सं० स्त्री०) भारङ्गी, ब्राह्मणयष्टिका।

वृषपर्णी (सं० स्त्री०) वृषस्य पर्ण इव पर्णमस्याः। १ आखुपर्णी, मूसाकानी। २ पुत्रतिका वृक्ष। ३ कृष्ण-दन्ती।

वृषपर्वन् (सं० पु०) वृषे पर्व उत्सवो यस्य। १ शिव, महादेव। २ दैत्यका नाम। ३ एक वृक्षका नाम। ४ केशर, कसेरू। ५ विष्णुका एक नाम। ६ एक राजाका नाम। ७ भंगरा। ८ एक प्रकारका तृण।

वृषपाण (सं० क्ली०) परिसेचनक्षम पदार्थोंका पान, जो पदार्थ सेचन कार्यमें समर्थ है उसका पान। (ऋक् १।५१।१२)

वृषपाणि (सं० त्रि०) वृषा सेचनसमर्थाः पाणिर्यस्य। जिसका हाथ परिसेचन कार्यमें निपुण है। (ऋक् ६।७५।७)

वृषप्रभर्मन् (सं० त्रि०) वर्षणशीलके प्रहर्त्ता। (ऋक् ५।३२।४)

वृषप्रयावन् (सं० त्रि०) जिसमें सेचन और गमनकर्त्ता हो। (ऋक् ७।२०।६)

वृषप्रिय (सं० पु०) विष्णु।

वृषभ (सं० पु०) वृष-अभच् (ऋषिवृषिभ्यां कित्। उण् ३।१२३।१) वृष, बैल, वर्द, सांढ़। २ वीर, बहादुर, श्रेष्ठ। ३ साहित्यमें वैदर्भी रीतिका एक भेद। ४ आदिजिन। ५ कर्णछिद्र, कानका छेद। ६ ऋषभ नामकी ओषधि। ७ विष्णु। ८ चार तरहके पुरुषोंमें एक पुरुष, जिसके लिये शंखिनी स्त्री उपयुक्त कही गई है। वृष शब्दमें विशेष देखो।

स्त्रियां ङीष् वृषभी। ९ विधवा स्त्री। १० कर्ण-शष्कुली, कानके भीतरका वह सूक्ष्म चमड़ा जिस पर शब्दोंका टक्कर लगता और उससे वर्णज्ञान होता है। ११ हाथीका कान। १२ औषध। १३ द्रव्यविशेष।

१४ सूरज। १५ महाविन्ध्य सुहृत्सिंह। १६ एक असुरका नाम। विष्णुने इसको मारा था। १७ मनुके एक पुत्रका नाम। १८ एक योद्धा। १९ कुन्तीपतिके एक पुत्रका नाम। २० अवसर्पिणीके प्रथम अर्हत्। २१ गिरिव्रजके अन्तर्गत एक पर्वत। २२ कार्त्तवीर्यके पुत्रका नाम। २३ महानद सरोवरके उत्तरस्थ एक पर्वत। यह नन्दीश्वरके नामसे पूजित है।

(लिङ्गपुराण ४९।५४)

वृषभकेतु (सं० पु०) शिव।

वृषभगति (सं० पु०) वृषभेण गतिर्यस्य। १ शिव, महादेव। २ वह सवारी जो बैलके द्वारा खींची जाती है।

वृषभचरित (सं० त्रि०) ज्योतिषशास्त्रोक्त दोषविशेष। जन्म राशिसे बारहवीं राशिमें चन्द्रके अवस्थान कालमें जो पशु यह कष्ट होता है अर्थात् जातके आठ और उस समय जब सब दोषपूर्ण कार्यों को करना है।

(वृहत्सं० १०४।१०)

वृषभतीर्थ—एक प्राचीन तीर्थका नाम। वृषभतीर्थ माहात्म्य और वृषभाद्रिमाहात्म्यमें इसका परिचय दिया गया है।

वृषभत्व (सं० स्त्री०) वृषभका भाव या धर्म, वृषभता।

वृषभध्वज (सं० पु०) वृषभः ध्वजो यस्य। १ शिव। (मनु ९।२१) स्त्रियां टाप्। वृषभध्वजा। २ वृषके मूलो वृषभ, बड़ा बैल। ३ एक पर्वतका नाम। ४ शिवका वाहन।

वृषभस्कन्ध (सं० पु०) वृषभका कन्धा।

वृषभवीथि (सं० स्त्री०) सूर्यको विथिमें एक वीथिका नाम। वीथि शब्द देखो।

वृषभस्वामी (सं० पु०) इक्ष्वाकुवंशीय राजपुत्रभेद।

वृषभसेन—जैनतीर्थ।

वृषभा—एक प्राचीन नदीका नाम।

वृषभाक्ष (सं० पु०) विष्णु।

वृषभाक्षी (सं० स्त्री०) इन्द्रवारुणी लता, महाकालकलता।

वृषभाङ्क (सं० पु०) शिव।

वृषभानु (सं० पु०) सुरभानुके पुत्र। इनकी कन्याका नाम राधावती था। यह व्रजगोपके अंशसम्भूत तथा श्रीनन्दके सखा तथा श्रीराधिकाके पिता थे।

(ब्रह्मवै० श्रीकृष्णज० ख० १७।१०७,१११)

वृषभानुपुर—मथुरामण्डलके अन्तर्गत एक ग्राम। संकेत-ग्रामसे एक कोस पर यह अवस्थित है।

वृषभानुनन्दिनी (सं० स्त्री०) श्रीराधिका।

वृषभानुसुता (सं० स्त्री०) वृषभानुकी सुता श्रीराधिका।

वृषभासा (सं० स्त्री०) वृषेण इन्द्रेण आभाति आ-भा-क्विप् तत्ष्टाप्। अमरावती।

वृषभेक्षण (सं० पु०) वृषभो वेदः ईक्षणं ज्ञापको यस्य। वेद ही जिसका ज्ञापक है, विष्णु।

वृषमनस् (सं० त्रि०) कामाभिवर्षणमनस्क, जिसका मन कामाभिवर्षण करे। (ऋक् ५।६१।४)

वृषमण्यु (सं० त्रि०) जो अभिमत वर्षणके लिये मन्यु करे। (ऋक् १।१२२।१२)

वृषमूल (सं० स्त्री०) वासकमूल, अडूसेकी जड़।

वृषय (सं० पु०) वृ-कयन् वृषोः गुणश्च वा। (उणा० ४।१००) आश्रय।

वृषयु (सं० त्रि०) वृषन् शब्दकारी, जो 'वृषन्' ऐसा शब्द करे। (ऋक् १।७१।५)

वृषरथ (सं० त्रि०) वर्षणकारक रथयुक्त, जिसको वर्षणकारक रथमें जुता गया हो। (ऋक् १।१७७।२)

वृषरवि (सं० पु०) वृषभानु देखो।

वृषरश्मि (सं० त्रि०) जिसकी रश्मि अर्थात् प्रग्रह कामाभिवर्षणकारी हो।

वृषराजकेतन (सं० पु०) वृषकेतन, शिव।

वृषाङ्क (सं० पु०) शिव, महादेव।

वृषल (सं० पु०) वृष-कलच् वृषादिभ्यश्चित्। (उणा० १।१०८) १ शूद्र। २ दृढम अर्थात् ज्ञानमत, मज्जत। ३ घोटक, घोड़ा, अश्व। ४ राजा चन्द्रगुप्तका एक नाम। पुष्ट प्राणो पुत्रवान्तिन। ५ अधार्मिक, पाप या कुकर्म करनेवाला। मनुने कहा है, कि जो वृष अर्थात् भगवान् धर्मका अर्थ अर्थात् नाश या विच्छेद करता है, उसको देवता लोग (वृष + अर्थ = वृषल) वृषल कहते हैं। (मनु ८।१६)

वृषलक (सं० पु०) वृषल एव स्वार्थे कन्। वृषल।

वृषलक्ष्मन् (सं० पु०) वृषो वृषभः स एव लक्ष्म चिह्नं यस्य । वृषलांछन, महादेव, जिनको वृष पर देख कर पहचाना जाये ।

वृषलता (सं० स्त्री०) वृषलका भाव या धर्म ।

वृषलत्व (सं० क्ली०) वृषलता ।

वृषलाञ्छन (सं० पु०) महादेव, वृषभाङ्क ।

वृषलात्मज (सं० पु०) शूद्रोद्भव, शूद्रजात । २ अधार्मिकोत्पन्न, पापोत्पन्न ।

वृषली (सं० स्त्री०) १ अविवाहिता रजस्वला कन्या, जिस कन्याका विवाह न हुआ हो पर रजस्वला हो चुकी हो । अत्रि और कश्यपका कहना है, कि पिताके घर अविवाहिता अवस्थामें जो कन्या रजोदर्शन करती है, वह वृषली कही जाती है। ऐसी कन्याके पिता पातकी होता है और उसको भ्रूणहत्याका दोष लगता है। (उद्वाहतत्त्व) २ वह स्त्री जो अपने पतिको त्याग दूसरे पुरुषसे प्रेम करती हो। काशीखण्डमें लिखा है, कि केवल शूद्राको ही वृषली नहीं कहते, वरं चाहे जिस वर्णकी हो, जिसने अपने पतिको त्याग दूसरे पुरुषको प्रेमी बनाया, वह वृषली कही जायगी ।

"स्वपतिं या परित्यज्य परपुंसे वृषायते ।
वृषली सा हि विज्ञेया न शूद्री वृषली भवेत् ॥"

(काशीखण्ड)

३ शूद्रा । ४ वृषल जातियां स्त्री अर्थात् अधार्मिका, पापिष्ठा, या दुष्कर्म करनेवाली स्त्री । ५ नीचकी स्त्री । ६ ऋतुमती स्त्री । ७ मृतसन्तानप्रसवकारिणी, वह स्त्री जो मरी हुई सन्तान उत्पन्न करती हो।

वृषलीपति (सं० पु०) वृषली कन्याका विवाह करने वाला, वह जिसने वृषली कन्याका विवाह किया हो। वृषली कन्याका विवाह करनेवाला शास्त्रानुसार श्राद्धादि कर्मोंके अधिकारी नहीं होता । अपनी जाति में वह पंक्तिमें भोजन करनेका अनधिकारी होता है।

(उद्वाहतत्त्व)

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें लिखा है, कि ब्राह्मण यदि शूद्रा स्त्रीसे सहवास करे, तो उसको भी वृषलीपति कहते हैं।

"यदि शूद्रां व्रजेत् विप्रो वृषलीपतिरेव सः।" (ब्रह्मवै० पु०)

वृषलोचन (सं० पु०) वृषस्य लोचने इव लोचने यस्य । १ चूहा । २ वृषके नेत्र, बैलकी आंख ।

वृषवत् (सं० पु०) एक पर्वतका नाम ।

वृषवासी (सं० पु०) केरलदेशके वृषपर्वत पर बसनेवाले, शिवजी । २ शङ्कर ।

वृषवाह (सं० त्रि०) वृषारोही ।

वृषवाहन (सं० त्रि०) वृषो वाहनं यस्य । १ शिव, महादेवजी । २ वृषरूपवाहन अर्थात् साम ।

वृषवीभत्स (सं० पु०) एक प्रकारकी कौंछ या केवांच ।

वृषवृष (सं० क्ली०) एक प्रकारका साम ।

वृषव्रत (सं० त्रि०) वृषकर्मा, वर्षणकारी ।

(ऋक् ६।६८।११)

वृषव्रात (सं० त्रि०) सेचनसमर्थ, जो सेचन करनेमें समर्थ हो । (ऋक् १।८५।४)

वृषशत्रु (सं० पु०) १ विष्णु । २ वृषका शत्रु ।

वृषशिप्र (सं० पु०) वैदिककालका एक असुर ।

वृषशील (सं० त्रि०) वृषल । (निरुक्त ३।१६)

वृषशुष्ण (सं० पु०) वातायन महर्षिके अपत्य ।

वृषशुष्म (सं० त्रि०) १ वृषकी तरह बलशाली, बलवानोंके शोषणकारी । २ एक प्राचीन ऋषिका नाम, जो जतुकर्णके पोते थे । (ऐतरेयब्रा० ५।२९)

वृषषण्ड (सं० पु०) एक ऋषिका नाम । (प्रवराध्याय)

वृषस्न (सं० पु०) वह जिसने यज्ञ करनेके लिये मंगल स्नान किया हो । (ऋक् १०।४२।८)

वृषसार (सं० पु०) १ शुक्लवट, सफेद बड़ । २ देवकुम्मी, बड़ा गूला ।

वृषसाह्वया (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नदीका नाम जिसका उल्लेख महाभारतमें मिलता है ।

वृषसाह्वा (सं० स्त्री०) एक नदीका नाम ।

वृषसृक्की (सं० पु०) भृंगरोल नामका कीड़ा, वृषशृङ्गिन् ।

वृषसेन (सं० पु०) १ कर्णके पुत्रका नाम । २ सह्याद्रि वर्णित एक राजा । (सह्याद्रि ३४।६)

वृषस्कन्ध (सं० पु०) वृषस्य स्कन्ध इव स्कन्धो यस्य । १ जिसका कंधा बैलके कंधेके समान हो । (रघु १।१३) २ शिव । (भारत शान्तिपर्व)

वत्सतरीको कोई अङ्गहानि न हो, जो जीववत्सा गौसे उत्पन्न हुई हो, जिसका रङ्ग, खुर और सींग स्निग्ध हो, जिसकी आकृति मनोहर हो, जो सौम्या अरोगिणी, अनुद्धता, [illegible], रक्तजिह्वा, [illegible] हो, ऐसी वत्सतरी ग्रहण करनी चाहिये। इस पर यदि वृषभका, पार्श्वांगसुन्दर [illegible], [illegible] वत्सतरी मिल सके, तो और भी उत्तम हो। उरः, पृष्ठ, शिर, शृङ्ग और [illegible] जिसके उन्नत हों वह वृषभ अच्छा कहा जाता है। जिसके दोनों कान, दोनों नेत्र और ललाट ये पांच स्थान और [illegible] तथा पूँछ, [illegible] और [illegible] लिखे हुए हैं [illegible] और शिर तथा [illegible] आयत होने पर भी उत्तम नहीं कहा जाता है।

वृषलक्षण—जिसके कन्धा और ककुद् उन्नत हों, पूँछ और कम्बल [illegible], वैदूर्यमणिकी तरह लोचन, प्रवाल मणिकी तरह शृङ्गाग्र, खुरोंसे और पृष्ठ [illegible] और जिसके ६ या ८ दांत हों, वह बैल ही उत्तम कहा जाता है। [illegible] या श्वेत, रक्त, कृष्ण, गौर या पाटलवर्णका बैल ब्राह्मणोंके लिये उत्तम है। उपरोक्त लक्षणयुक्त वृष या बैल तथा वत्सतरी या [illegible] वृषोत्सर्गमें प्रशस्त है। सामवेद, ऋग्वेद और यजुर्वेदियोंके वृषोत्सर्गकी पद्धति भी भिन्न तरहकी है।

वृषोत्सर्गमें अधिवासनके बाद [illegible] आरम्भ करना होता है और [illegible] [illegible] पाठ किया जाता है। वृषोत्सर्गके लिये निम्नलिखित वस्तुओंकी आवश्यकता होती है। यहाँ पहले गोशाला, या किसी पुण्यभूमिमें [illegible] और चार हाथका एक मण्डप प्रस्तुत करना होता है। [illegible] (१ [illegible]), नवग्रह, ५ [illegible], १ [illegible] [illegible], [illegible] ५ [illegible], शालिग्रामशिला [illegible] १ [illegible], [illegible] और [illegible], [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible], १ [illegible], ५ [illegible], [illegible], [illegible], या [illegible] और [illegible] और भी [illegible] [illegible] [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] ([illegible]) [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible]—१ [illegible], २ [illegible], ३ [illegible], ४ [illegible] और ५ [illegible]। [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] आदि। इन सब द्रव्योंको एकत्र कर वृषोत्सर्ग करना चाहिये। [illegible] पद्धतियोंमें विशेष विवरण लिखा गया है।

यजुर्वेदी और ऋग्वेदी श्रेणीको वृषोत्सर्गकी [illegible] प्रायः एक तरहकी है। [illegible] [illegible] मन्त्रोंका भेद है। यजुर्वेदियोंके वृषोत्सर्गमें वृषके कानोंमें समग्र [illegible] पाठ करना होता है। सब में भी कहीं कहीं भेद है। ऋग्वेदियोंके वृषोत्सर्गमें [illegible] और [illegible] बाद [illegible] और [illegible] [illegible] पाठ करना होता है। पद्धतियोंमें विशेष विवरण देखना चाहिये।

[illegible] अर्थात् जब कोई वृषोत्सर्ग करता हो, तब [illegible], [illegible] और [illegible] आदि तिथियोंमें भी [illegible] विधान है।

वृषोत्सर्ग (सं॰ पु॰) विष्णुका नाम। 'वृषोत्सर्ग' भी होता है।

वृषोदर (सं॰ पु॰) विष्णुका एक नाम।

वृष्ट (सं॰ पु॰) [illegible]।

वृष्टि (सं॰ स्त्री॰) वृष-क्तिन्। मेघोंसे जल बरसना। पर्याय,—वर्षा, [illegible], [illegible], [illegible]।

मनुने कहा है,—

"अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।

आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥"

अग्निमें आहुति देने पर वह सबके [illegible] सूर्य देवको यह आहुति [illegible] प्राप्त होता है। सूर्यसे वही जल वृष्टि रूपसे पतित होता है। वृष्टिसे अन्न उत्पन्न होता है और उस अन्नसे प्रजा उत्पन्न होती है। अत एव [illegible] ही वृष्टिके कारण हैं। बहुत [illegible] यज्ञ करनेसे बहुत वृष्टि भी होती है।

[illegible] लिखा है, कि सूर्य [illegible] [illegible]

लेते और उस रसको सहस्र गुणामें अर्पण कर देते हैं।
"सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः।" (रघु १ सं)

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें लिखा है, कि नन्द आदि गोपोंने इन्द्रके लिये महोत्सव और पूजा करनेका आयोजन कर श्रीकृष्णसे कहा था,—वत्स कृष्ण! महेन्द्रकी यह पूजा हमारी पुरुषानुगत और सुवृष्टिकरण है। वृष्टिसे ही इस जगत्‌की रक्षा होती है। इन्द्रदेव यह वृष्टि किया करते हैं। सुतरां उनकी पूजा करना सर्वतोभावसे कर्त्तव्य है। कृष्णने यह सुन कर कहा था, कि पितः! आपके मुखसे आज बड़ी विचित्र तथा आश्चर्यजनक बात सुनी। इन्द्रदेवकी वृष्टि करनेकी बात लोक और शास्त्र दोनों मतोंसे उपहासास्पद और वेदविगर्हित है। कहीं ऐसा विधान नहीं, कि इन्द्र द्वारा वृष्टि होती है। आपके मुखसे आज यह अपूर्व नीतिवाक्य सुना। आप फिर इस तरहकी बात न कहें। इस समय पण्डितोंको नीति-के वाक्य सुनिये। भगवान् सूर्यसे वृष्टि हुआ करती है और इसी वृष्टिसे शस्य (फसल) और वृक्ष, पीछे वृक्षसे फल, और शस्यसे अन्नकी उत्पत्ति होती है तथा अन्न और फलों द्वारा ही जीवधारी जीवधारण करनेमें समर्थ होते हैं। समय पर सूर्य ही जलग्रास करते हैं और समय पर उन्हीं सूर्यसे उसका उद्भव होता है। सूर्य मेघादि सभी विधाताने निरूपण किये हैं। इस्ती अपने शुण्ड द्वारा समुद्रसे इच्छानुरूप जल ग्रहण कर मेघको देता है। मेघ वायु द्वारा चालित हो कर समय समय उसी जलको पृथ्वी पर चारों तरफ बरसाता है। यह सब घटना ईश्वरकी इच्छाके अनुरूप हुआ करती है। इसमें कुछ भी प्रतिबन्धक नहीं होता। भूत, भविष्यत वर्त्तमान, महत्, क्षुद्र और मध्यम चाहे जो हो, सभी एकमात्र भगवान्‌की इच्छासे ही होता है।

(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण श्रीकृष्णजन्मख० २१ अ०)

बृहत्संहितामें लिखा है—मार्गशीर्ष महीनेकी शुक्ला प्रतिपदासे जिस दिन चन्द्र पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रमें संयुक्त होता है उसी दिनसे वृष्टिके गर्भके लक्षण दिखाई देते हैं। चन्द्रके जिस नक्षत्रमें आनेसे मेघका गर्भ होता है, चन्द्रयगर्भ अर्थात् चन्द्रके दिनानुसार १९५वें दिन उस गर्भका प्रसवकाल है अर्थात् उसी दिन वृष्टि होती है।

सितपक्षजातगर्भ कृष्णपक्षमें, कृष्णपक्षसम्भव गर्भ शुक्लपक्षमें, दिवाजात गर्भ रात्रिकालमें और रात्रिप्रभव सन्ध्याकालमें प्रसवकाल होता है अर्थात् उसी समय वृष्टि होती है।

मार्गशीर्ष मासजात गर्भ और पौष शुक्लपक्षजात गर्भ मन्दफलयुक्त होता है। माघमासके शुक्लपक्षका गर्भ श्रावणके कृष्णपक्षमें, माघमासके कृष्णपक्षके गर्भका प्रसवकाल भाद्रमासके शुक्लपक्षमें अर्थात् इसी समय वृष्टि होती है। फाल्गुन शुक्लपक्ष जात गर्भमें भाद्रमासके कृष्णपक्षमें और फाल्गुन कृष्णपक्षीय गर्भ आश्विनमास-के शुक्लपक्षमें, चैत्रके सितपक्षजात गर्भ आश्विनके कृष्ण पक्षमें और कृष्णपक्षजात गर्भ कार्त्तिक मासके शुक्लपक्षमें प्रसूत होता है अर्थात् उसी समय वृष्टि होती है।

पूर्वसे उठा हुआ मेघ पश्चिम दिशामें आता और पश्चिमसे उठा हुआ मेघ पूर्व दिशामें आता है। उत्तर और दक्षिणमें वायुका भी इसी प्रकार विपर्य्यय होता है। ईशाण कोण और पूर्वकी वायुसे आकाश साफ, आनन्दकर और मृदु मृदु वृष्टि होती है। चन्द्र और सूर्य स्निग्ध और बहुल शुक्लमण्डलोंसे परिव्याप्त होते हैं। मार्गशीर्षमें अति शीत और पौषमें अत्यन्त हिमपात होनेसे गर्भकी पुष्टि नहीं होती। फाल्गुनमें यदि हवा तेज और रूखी बहती हो, मेघ सञ्चय स्निग्ध, परिवेष असम्पूर्ण, सूर्य अग्निकी तरह पिङ्गल और ताम्रवर्ण हो, तो मेघका गर्भ शुभ सम-झना चाहिये। चैत्रमें गर्भ यदि पवन, मेघ, वृष्टि और परिवेषयुक्त हो, तो शुभ जानना चाहिये। वैशाखमासमें यदि मेघ वायु, जल और अशनि विद्युत्युक्त हो, तो गर्भ द्वारा शुभ होता है।

मुक्ता या रौप्यसन्निभ या तमाल, नीलोत्पल और अञ्जनकी द्युतिविशिष्ट या जलचर प्राणियोंकी तरह आकारवाले मेघ बहुत वृष्टि करनेवाले होते हैं। फिर गर्भ सूर्यके तीव्रकिरणमें अतितापित और मन्दमारुत समन्वित होने पर मेघ मानो प्रसवकालमें अत्यन्त कुपित हो बहुत वृष्टि करते हैं।

अशनि, उल्का, पांशुपात, दिग्दाह, भूमिकम्प, गन्धर्व नगर, कीलक, केतु, ग्रहयुद्ध, निर्घात, रुधिरादि वृष्टि-विकृति, परिघ, इन्द्रधनु और राहुदर्शन—इन सब उत्पात

और अन्य विविध उत्पात द्वारा गर्भ नष्ट होता है।

ऋतुस्वभावजनित जिन सब समान लक्षणों द्वारा भी गर्भ वृद्धिप्राप्त होता है, उसके विपरीत लक्षणों द्वारा उसका विपर्यय होता है। सब ऋतुओंमें पूर्वभाद्रपद, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा और रोहिणी आदि नक्षत्रमें धारित गर्भ बहुत जल प्रदान करता है। शतभिषा, अश्लेषा, आर्द्रा, स्वाति और मघा नक्षत्रका गर्भ शुभप्रद है। यह बहुत दिनों तक पोषण करता है और विविध उत्पातों द्वारा हत होने पर भी हनन करता है।

चन्द्र इन पांचों नक्षत्रोंके किसी एकमें जब अवस्थान करते हैं, तब कार्त्तिकसे वैशाख तक ६ मासमें यथाक्रम ८, ६, १६, २४, २० और तीन दिन उत्तरोत्तर वर्षण करता है। क्रूर ग्रहयुक्त होनेसे गर्भ करका, अशनि और मत्स्यवृष्टि होती रहती है। चन्द्र वा सूर्य शुभ ग्रह वीक्षित होने पर गर्भ बहु वृष्टिकर होता है। गर्भके समयमें अकारण जब बहुत वृष्टि होती है तब गर्भका नाश होता है। द्रोणपरिमाणके चतुर्थांशसे अधिक वर्षण होने पर भी गर्भ नष्ट हो, तो प्रसवकालमें करका मिश्र वृष्टि होती है।

जो गर्भ पांच प्रकारके निमित्तोंसे युक्त होता है, वही गर्भ शत योजन विस्तृत भूमिमें वर्षण करता है। इन पांच निमित्तोंमें यदि एक-एक निमित्तका अभाव हो, तो शत योजनको आधा कम कर देता है। जैसे—चार निमित्तोंमें ५० योजन, तीन निमित्तोंमें २५ योजन और दो निमित्तोंमें १२½ योजन और एक निमित्तमें ६½ योजन तक वर्षा करता है। पञ्चनिमित्तक गर्भ १ द्रोण परिमित जल, पवन निमित्तक गर्भ ३ आढ़क और विद्युन्निमित्तक ६ आढ़क जल वर्षण करता है।

पवन, सलिल, विद्युत्, गर्जित और मेघरूप इन पांचों निमित्तोंका गर्भ बहुत जल बर्षाता है। यदि गर्भकालमें अतिवृष्टि हो, तो प्रसवकाल अतिक्रम कर जल कणा वर्षण करता है।

ज्येष्ठमासके शुक्ल पक्षमें अष्टम्यादि चार दिन वायु द्वारा मेघका गर्भ स्थिर करना होता है। इन दिनोंमें शुभ वायु वा स्निग्ध मेघाच्छन्न आकाश हो तो शुभ है। इन चार दिनोंमें यदि स्वाति आदि चार नक्षत्र हों, तो श्रावण आदि मासोंमें उत्तम वृष्टि होगी।

ज्येष्ठ पूर्णिमा पार कर जाने पर यदि पूर्वाषाढ़ा आदि नक्षत्रोंमें वृष्टि हो, तो उसके द्वारा शुभाशुभ निरूपण करना आवश्यक है। एक हाथ परिमित परिधि-विस्तृत कुण्ड खोदकर जलका परिमाण निर्देश करना होता है। उक्त जलका परिमाण १ आढ़क है। जितने दूरकी भूमिमें वा वृक्षोंमें बिन्दु पड़े, उतनी वृष्टि द्वारा जलका प्रथम परिमाण निरूपण करना होता है। कुछ लोगोंका कहना है, कि जितना देखा जाता है, उतनी दूर अतिवृष्टि और कुछ लोग दश योजन मण्डलमें अतिवृष्टि होना कहते हैं। किन्तु गर्ग, वसिष्ठ और पराशरके मतसे एक मेघ १२ योजनसे अधिक दूर वृष्टि नहीं कर सकता। जिन सब नक्षत्रोंमें बहुत वृष्टि होती है, प्रायः उन्हीं सब नक्षत्रोंमें ही वृष्टि होती है। किन्तु यदि पूर्वाषाढ़ासे मूला तक सब नक्षत्रोंमें वृष्टि न हो, तो सब नक्षत्रोंमें अनावृष्टि ही होती है। यदि निरुपद्रव चन्द्र पूर्वाषाढ़ा, मृगशिरा, हस्ता, चित्रा, रेवती और धनिष्ठामें हों तो १६ द्रोण परिमाण वृष्टि होती है। शतभिषा, ज्येष्ठा और स्वातिमें ४ द्रोण, कृत्तिका आदिमें १० द्रोण, फल्गुनीमें ६५ द्रोण, पुनर्वसु, विशाखा, और उत्तराषाढ़ामें २० द्रोण, अश्लेषा नक्षत्रमें १३ द्रोण, उत्तराभाद्रपद, उत्तर फल्गुनी और रोहिणीमें २५ द्रोण, पूर्वभाद्रपद, पुष्या और अश्विनी नक्षत्रमें १२ द्रोण और आर्द्रा नक्षत्रमें १८ द्रोण परिमाण वृष्टि होती है। सब नक्षत्र यदि सूर्य, शनि वा केतु द्वारा पीड़ित और मङ्गल द्वारा विविध अद्भुत द्वारा आहत हों, तो वृष्टि नहीं होगी। किन्तु शुभयुक्त और निरुपद्रव होने पर पूर्वोक्त फल होता है।

सद्योवृष्टि लक्षण—जिस समय वृष्टिविषयक प्रश्न किया जाये, उस समय यदि चन्द्र सलिलाश्रय (अर्थात् जल सम्बन्धवाली) राशिको अर्थात् कर्कट, कुम्भ, मीन, कन्या और मकरको अन्तांशमें राशिका आश्रय कर यदि लग्नमें वा शुक्लपक्षमें केन्द्र और शुभग्रह द्वारा दृष्ट हो, तो शीघ्र ही बहुत वृष्टि होगी। पापग्रह द्वारा दृष्ट होने पर अल्प वृष्टि होती है। शुक्र भी चन्द्रकी तरह जो

फल देनेवाला है। यदि प्रश्नके समय प्रश्नकर्त्ता आर्द्र द्रव्य या जल या जलवत् कोई वस्तु स्पर्श करे अथवा जलके निकट या जल सम्बन्धीय किसी काममें लगा हो और पूछनेके समय जल या जलवाचक शब्द श्रुत हो तो समझना चाहिये, कि शीघ्र ही जल होगा।

वर्षाकालमें जिस दिन सूर्य दीप्ति द्वारा द्रुतिसन्तापक, द्रवीभूत कनक सदृश या वैदूर्यकी तरह स्निग्ध कान्ति विशिष्ट हों, उस दिन वृष्टि होगी। विरस जल, गोनेत्र सदृश गगन, विमल दिक् लवण, जलकी तरह विकृति, काकाण्डसदृश वर्णविशिष्ट मेघोदर, निश्चल पवन, मछलियोंका जल-जल कूदना और मण्डुकों (मेढ़कों)की बार-बार ध्वान आदि लक्षण शीघ्र वृष्टिकारक हैं। इन लक्षणों को देखनेसे समझना चाहिये, कि शीघ्र ही वृष्टि होगी। बिल्लीके नख द्वारा मिट्टी कोड़ने, लोहारके मलोद्भवमें कच्चे मांसकी तरह गन्ध निकलने और राहमें लड़कोंके पुल बनानेकी क्रीड़ा देखनेसे शीघ्र ही वृष्टि होती है ऐसा जानना चाहिये।

पहाड़ यदि अञ्जनपुञ्जसदृश या वाष्पनिरुद्ध कन्दर और चन्द्रके परिवेष मुर्गेकी आँखकी तरह हो, तो शीघ्र ही वृष्टि होगी। उपघातके सिवा चींटियोंके अण्डे, सर्पोंका स्त्रीप्रसंग, भुजङ्गोंका वृक्ष पर चढ़ना और गौओं-का कूदना शीघ्र वृष्टिकारक है। यदि छकलास वृक्षकी चोटी पर उड़ कर गगनकी ओर देखे और गौयें ऊर्द्ध्व-नेत्रसे सूर्य देखें, तो शीघ्र ही वृष्टि होती है। यदि पशु घरसे बाहर निकलनेकी इच्छा न करे तथा कान और खुर कंपाते हों और कुत्ते भी इन पशुओंकी तरह कार्य करें, तो शीघ्र ही वृष्टि होगी, समझना चाहिये।

जब गृहपटलमें कुत्ते अवस्थान करें, या ऊपरको मुख करें और जब दिनको ईशाणकोनमें तड़ित् उत्पन्न हो, तो अतिवृष्टि होती है। जब चन्द्र शुक या कपोतलोचन सदृश और मधुसन्निभ हो और जब आकाशमें प्रतिचन्द्र विराजित हों, तब आकाशसे शीघ्र ही वारिपात होता है। रातको जब विद्युत्का शब्द हो और दिनमें रुधिरसदृश या दण्डवत् विद्युत् हो और पवन पहले शीतल हो जाय तो उसी समय वृष्टि होती है। लताओंके पत्तोंका मुख यदि गगनतलकी ओर हो, विहङ्गम यदि जलमें स्नान करे, सरीसृप तृणके अग्र भागमें विचरण करे, तो शीघ्र वृष्टि होती है। जब ग्रामके मेघ मयूर, शुक, नीलकण्ठ या गौरेया पक्षीकी तरह वर्णके हों अथवा जवाकुसुम और पद्मकी द्युतिको हरण करनेवाले हों, तो शीघ्र वृष्टि होती है।

यदि सूर्यके उदय या अस्तकालमें इन्द्रधनु, परिघ, प्रतिसूर्य, दण्डाकृति इन्द्रधनु या विद्युत्का परिवेष प्रकाशित हो, तो शीघ्र वृष्टि होगी। सूर्यके उदयास्तके समय यदि गगन तित्तिरके पांखका रङ्ग धारण करे और पक्षी आनन्दित हो कलरव करें, तो दिनरात प्रचुर वृष्टि होती है।

वर्षाकालमें चन्द्र यदि शुभ ग्रहदृष्ट शुक्रसे सप्तम राशिगत या शनिसे नवम, पञ्चम, या सप्तम राशिगत हो, तो वृष्टि होती है। ग्रहोंके उदयास्त समयमें मण्डलके संक्रमण और समागम होने पर तथा दो पक्षमें अयनान्तमें और सूर्य आर्द्रानक्षत्र गत होने पर नियमके अनुसार प्रायः वृष्टि होती है। जब सूर्यावलम्बी ग्रह सूर्यके पूर्व और पश्चिममें हों, तब प्रभूत वृष्टि होती है। इसके सिवा स्वातियोग, रोहिणी योग, आदि योगोंमें भी अति वृष्टि होती है। (बृहत्स० २१-२५ अ०)

वृष्टिजलके गुण आदि विषयोंमें वैद्यकमें यह लिखा है, कि जल दो तरहका है—आन्तरीक्ष जल और भौम जल। इनमें जो आन्तरीक्ष जल है, वह चार प्रकारका है। यथा—धाराभव, करकाजात, तौषार और हैम। वृष्टिका जो जल धारावाही रूपसे स्फीत वस्त्र पर या सुधौत प्रस्तर या भूमि पर पतित होता है, सुवर्ण, रौप्य, ताम्र, स्फटिक, कांच या मट्टीके वर्त्तनमें रखनेसे उसको धाराभव जल कहते हैं। यह जल त्रिदोषनाशक है, फिर लघु, सौम्य, रसायन, बलकारक, तृप्तिकर, आह्लादजनक, प्राणधारक, पाचक, बुद्धिजनक और मूर्च्छा, तन्द्रा, भ्रान्ति, क्लान्ति और पिपासानाशक भी है। वर्षाकालमें यह जल विशेष उपकारक है।

वृष्टिका धाराजात जल फिर दो तरहका है, गाङ्गेय और सामुद्र। मेघाम्बरस्थ दिग्गज आकाशगङ्गा-सम्बन्धीय जल, ग्रहणपूर्वक वर्षण करते हैं। इससे इसका नाम गङ्गाजल है। मेघ प्रायः आश्विन मासमें

हो कर जल पतित हुआ करते हैं। वह जल सब प्रकारके हितकारक है। सुवर्ण, रौप्य या मृण्मयपात्रमें स्थापित करनेके ऊपर वृष्टिका जल पतित होने पर यदि वह जल क्लिन्न या विवर्ण न हो, तो उसको ही गाङ्गजल कहना चाहिये। इस जल सर्वथा दोषनाशक है। इसके विपरीत लक्षण दिखाई देने पर समझना होगा, कि वह समुद्रका जल है। वह जल क्षारयुक्त, लवणरस, शुक्रनाशक, नेत्रहानिकारक, रक्तपित्तकारक, आमवर्द्धक, दोषप्रकोपक और तीक्ष्ण है। वह सब कार्मोंके लिये अहितकारक है। वह समुद्रजल आश्विन मासमें गाङ्गजलके समान गुणकारी हो जाता है। अगस्त्य नक्षत्रके उदय होने पर जो वृष्टिका जल पतित होता है, वह सभी निर्मल, निर्विष, मधुररस, शुक्रजनक और दोषप्रकोपक नहीं।

दूसरे ग्रन्थमें लिखा है, कि गगनविहारी मेघोंके [illegible] लिये [illegible] वायुसंस्पृष्ट हो पतित होने पर आश्विनमासके जलको छोड़ अन्य सभी ऋतुका वृष्टिजल विकारक होता है।

हिम प्रपातमें जो जल पतित हैं वह समस्त देहधारियोंके लिये त्रिदोषप्रकोपक कहलाते हैं। अगहन महीनेसे पौष, माघ, फाल्गुन, चैत्र ये चार मास समझना होगा। इस चार मासोंका वृष्टिजल त्रिदोषप्रकोपक है। ओले या शिलाका जल जो हिमवायु और मेघसंघर्षणसे उत्पन्न हो आकाशसे शिलाके आकारमें गिरते हैं उसको शिलाजल या ओलेका जल कहते हैं। यह जल अमृततुल्य गुणकारक, रूक्ष, अपिच्छिल, गुरु, स्थिर गुरुयुक्त, अतिशय शीतल, कठिन, पित्तनाशक, और कफ तथा वायुवर्द्धक है।

[illegible] अन्तरीक्षसे रहता और ओसके जल [illegible] पतित होता है, उसको तुषारजल कहते हैं। यह जल प्राणियोंके लिये अहितकर है। किन्तु वृक्षोंके लिये विशेष हितकारी है। वह शीतल, रूक्ष, वायुवर्द्धक, पित्तनाशक, कफ, ऊरुस्तम्भ, कण्ठरोग, मन्दाग्नि, और मेदःप्रभृतिके दोषनाशक है।

हिमालयके शृङ्ग आदि हिमाच्छन्न प्रदेशोंसे गल कर जो जल पतित होता है, उसको हैमजल कहते हैं। यह जल शीतल, पित्तनाशक, गुरु और वायुवर्द्धक है। वृष्टिके इन चार तरहके जल अलग गुणविशिष्ट होते हैं।

पाश्चात्यमत।

पाश्चात्य मतसे पार्थिव जलराशि सूर्यकिरणसे उत्तप्त हो कर बाष्पमें परिणत होता है। भूभागसे प्रतिदिन जो यह अतीव बाष्प निर्गत होता रहता है। जलभाग और समुद्रसे सब समय ही इस तरहका बाष्प उठता है। बाष्पोत्पादन प्रणालीको एक नियत किया है। हम जहां उसका पैमाना अनुभव नहीं कर सकते, सूक्ष्मक्रियावली [illegible] परीक्षा प्रकृति देवी वैसे स्पष्टरूपसे ही बाष्पोत्पादनपूर्वक भूभागसे निःसृत कर रखती है। मैदान, रास्ता, बाजार, जङ्गल, कानन, मरुभूमि, कूप, नद नदी, समुद्र, सब स्थानोंसे ही बाष्प निकलता है। वर्त्तमान पाश्चात्य वैज्ञानिकोंका कहना है कि बाष्प कभी द्रवभाव या अदृश्य भावसे वायुराशिका आश्रय ले कर कुछ देरमें विचरण करता है। ओस, कुहासा, तुषार, मेघ और वृष्टि इसी बाष्पोद्गम घटनाकी परिणति है। ऊर्द्ध्व आकाशमें वह बाष्पराशि मेघाकारमें परिणत हो जाती है। आकाशके जिस प्रदेशमें संचित अतीव घनजलपूर्ण कुज्झटिका नामसे पुकारा जाता है। मेघसे भूपृष्ठ पर जो जलधारा पतित होती है, उसीका नाम वृष्टि है। भारतीय आर्यऋषियोंने भी सहस्राधिक वर्ष पूर्व इस तरह वृष्टिकी उत्पत्तिका पोषण की है—

विज्ञानकी उन्नतिके साथ मेघसे जलधारा गिरनेके कारणोंके सम्बन्धमें भी बहुतेरे गवेषणायें चल रही हैं। आणविक पदार्थविद्यामें (Molecular physics) और सूक्ष्म वायवीय विज्ञानशास्त्रमें (Dynamic meteorology) मेघ वृष्टिके सम्बन्धमें अद्भुत रूप तत्त्व विचारोंकी वैज्ञानिक आलोचना चल रही है।

मेघसे वृष्टिबिन्दुओंके पतन तथा वृष्टिपातके समय के कारणमें वायवीय विज्ञान बहुत दिनोंसे कई प्रकारका अनुसन्धान कर रहा है। सूक्ष्म बाष्पाणु घनीभूत हो कर वृष्टिबिन्दुका आकार धारण करता है। परन्तु कभी कभी

भूत होती है इसके सम्बन्धमें भी बहुतेरे सिद्धान्त दिखाई देते हैं। जैसे—

(१) मेघसे तापराशि विकीर्ण हो जाने पर शीतल हो जाती है। यह शीतलता ही घनकी कारण है।

(२) वायु द्वारा मेघाकार वाष्पराशि विभिन्न शीतातप प्रदेशमें परिचालित होती है और भिन्न भिन्न प्रदेशकी वाष्प राशिके साथ मिश्रित हो जाती है। इसके फलसे भी घनत्व साधित होता है।

(३) उष्ण देशके वाष्प स्वभावतः ही ऊपरकी ओर या शीतप्रदेशमें परिचालित होता है। ऊपर शीतल वायुके स्पर्शसे वाष्पराशि घनीभूत हो कर वृष्टिबुन्दके रूपमें परिणत होती है।

(४) भूवायुके अधिक दबावसे भी वाष्प घनीभूत हो जाता है।

(५) वाष्पराशिके सञ्चयाधिक्य अथवा पर्वतादि द्वारा इसकी गतिके रोकनेमें भी वे सत्वर घनीभूत हो जाते हैं।

कई वर्ष पहले ये सब सिद्धान्त प्रचलित थे, किन्तु आधुनिक वैज्ञानिक इससे और भी आगे बढ़ गये हैं। वाष्पराशिमें जब तक ताप वर्त्तमान रहता है, तब तक अणु आयतनमें छोटे और लघु होते हैं। इस अवस्थामें ये गगनपथमें स्वच्छन्दभावसे विचरण कर सकते हैं। किन्तु शैत्यसंस्पर्शादि या जब इनका क्षुद्रत्व दूर होता है, अथवा ये घनीभूत हो कर परस्पर मिल कर वृहदाकार धारण करते हैं, तब भूवायु इनको अपने दबावमें रख नहीं सकती। ये माध्याकर्षणसे आकृष्ट हो भूपृष्ठ पर पतित होते हैं। वृष्टिबिन्दु गठन और वृष्टिपातके सम्बन्धमें आधुनिक विज्ञानमें अभी भी कोई निश्चयात्मक सिद्धान्त स्थिर नहीं हुआ है। इस समय इसके सम्बन्धमें जो कई सिद्धान्त प्रचलित हैं, नीचे उनके सार मर्म प्रकाशित किये जाते हैं।

(क) सूक्ष्म सूक्ष्म वाष्पकणा वायुराशिमें प्रवाहित होते रहते हैं। वायु द्वारा ये आकाशपथमें परिचालित होते रहते हैं और ये आपसमें मिल जाते हैं। यही वायुका वेग ही विच्छिन्न वाष्पाणुसमूहके मिल जानेका कारण है। इस तरह सम्मिलित हो कर वाष्पबिन्दुका आयतन बड़ा हो जाता है। इस अवस्थामें ये आकाशकी वायुराशिमें घूमनेमें असमर्थ हो जाते हैं और ये भारी वृष्टिबिन्दु नीचेकी ओर पतित होते हैं। अधःपतित होनेके समय इनकी प्रबल गतिमें निम्नस्थ वाष्पबिन्दु भी इनके साथ मिल जाते हैं। इससे ये आकारमें और बड़े हो जाते हैं। इस तरह ये बड़े बड़े वृष्टिके बुन्दोंमें परिणत हो पृथ्वी पर गिरते हैं।

(ख) विकिरणवशतः हो हो या दूसरी वाष्पकणाओंके साथ मिल जानेके कारण हो—मेघके उपरांशकी वाष्पकणा निम्नभागकी वाष्पकणाओंकी अपेक्षा बहुत जल्द शीतल हो जाती है। छाया या रात्रिकालकी ऐसी शीतलतासाधनी प्रक्रियाकी प्रधानतम हेतु है। शीतल वाष्पकणा संस्पृष्ट भूवायु-स्तर भी शीतल होता है। इसी शैत्यके फलसे वाष्पकणाओंकी अन्तर्भूत वायु अपसृत हो जाती है। ये आपसमें मिल कर वृष्टिबिन्दुमें परिणत होते हैं। इसी तरह बड़े बड़े वृष्टिबिन्दु गठित होते रहते हैं।

(ग) वृष्टिबिन्दुगठनमें तड़ितका भी यथेष्ट प्रभाव है। तड़िद्‌शक्तिके स्पर्शका प्रभाव दो तरहका होता है। एक तरहके प्रभावका नाम 'पोजिटिव' (Positive) और दूसरी तरहके प्रभावका नाम 'निगेटिव' (Negative) है। मेघका एक स्तर वाष्प पोजिटिव भावसे तड़ित्स्पृष्ट होता है। और दूसरा एक स्तर वाष्प निगेटिव भावसे। इससे दोनों स्तरोंमें एक प्रबल तड़िताकर्षण संघटित होता है। इस आकर्षणके फलसे वाष्पबिन्दु परस्पर सम्मिलित हो कर वृहदाकार धारण करते हैं।

(घ) नाना कारणोंसे वायुराशिमें तरङ्ग उठ सकती है। वज्रध्वनि निमित्त शब्दतरङ्गें वायुराशि आन्दोलित होती है, तोपोंकी ध्वनिसे भी वायुराशिमें भीषण तरङ्ग आदि उठ सकते हैं। इन्हीं सब कारणोंसे वायुराशिस्थित जलीय वाष्प आन्दोलित हो कर आपसमें मिल जाते हैं। इस तरह परस्पर मिल कर क्षुद्र क्षुद्र वाष्पबिन्दु वृहदाकार धारण कर वृष्टिबिन्दुमें परिणत होते हैं।

(ङ) कुज्झटिका या मेघकी अन्तर्निहित वाष्पराशि साधारणतः ही साधारण वाष्पकी अपेक्षा अधिकतर

शुरू होता है। वे कण ऊपरमें उड़ कर अधिक शीतल होते हैं; इन अवस्थाओंमें वे अपने अपने आणविक पार्थक्यके संकुचनवश (Molecular strain) स्थिर नहीं रह सकते। अतएव वे अपने गुरुत्वसे दूसरे देशमें चल जाते हैं; अणुसमष्टिका इनका गुरुत्व-धारण न कर सकनेसे उनको देशमें ही आत्मविसर्जन करना है। इसमें शैत्यता और मात्राका परिमाण भिन्न कर शीघ्र ही वृष्टिबिन्दुमें परिणत होती है। विपक्व-अतिशय्य अधिकतामें (Super saturation) इसी तरह वृष्टिबिन्दु बनते हैं।

(ख) वृष्टिबिन्दुके उत्पादनके सम्बन्धमें वैज्ञानिक प्रोफेसर जिटर और० सी० आर० विल्सनने बहुत गवेषणा की है। इनका कहना है, कि वायुराशिमें बहुत सूक्ष्म धूलिकणा वर्त्तमान रहती है। वायुके शीतल होने पर इस धूलिकणा पर सूक्ष्मतम जलीयवाष्पकणा घनीभूत और संश्लिष्ट होती है। सूक्ष्मवायुमें धूलिकणा विभिन्न न रहने पर जलीय सूक्ष्म वाष्पकणा सहसा घनीभूत नहीं हो सकती। किंतु अधिकतर स्थानस्थायी वायुराशि यदि अधिकतर शीतल हो, तो ऐसी अवस्थामें वाष्पीय पदार्थका घनीभूत होना आवश्यक हो जाता है। धूलि-सम्मिश्रित वायुराशि धूलिकी अपेक्षा छह गुणा अधिक विस्तृत न होनेसे विशुद्ध वायुमें वाष्प घनीभूत नहीं हो सकता। विल्सन विज्ञानने परीक्षा कर देखा है, कि विद्युत् शक्तिके द्वारा वायुको इस अवस्थाको परीक्षा कर जाना है। इसी शक्तिमें रश्मि-आकर्षकत्व, पुरे-लियन विकिरणी अतिवायलेट अथवा सूर्यालोक प्रभेदन द्वारा वायुराशिका जलीय वाष्पमें घनीभूत बनानेके लिये प्रयुक्त बनाया जा रहा है।

विल्सनने इसके सम्बन्धमें और भी बहुत सूक्ष्म-परीक्षण की है। उन्होंने इससे सिद्धान्त किया है, कि वायुराशिके अवस्थित धूलिकणा विद्युत मात्रासे तड़ित् अधिविकसित होनेसे इस जलीय वाष्पको घनीभूत करनेका बहुत बड़ा हेतु (Ions) होता है। तड़ित्‌युक्त मात्राके अतिरिक्त धूलिकणाका इस अवस्थामें ऐसी शक्ति दृष्टिगोचर नहीं होती। इनका और भी कहना है, कि वह सूक्ष्म अणुपरमाणु विद्युत्‌के तड़ित्‌युक्त अणुको और वृष्टि है। वृष्टिबिन्दु आकाशके विद्युत् तड़ित्‌युक्त (Positive Electricity) से कम ही परिमाण पर सम्बन्धमें होता है।

वृष्टिका स्थानभेद।

भिन्न भिन्न स्थानमें भिन्न परिमाणमें वाष्प उत्पन्न होता है, उन स्थानोंमें उतनी ही वृष्टि होती है। ग्रीष्म मण्डलमें जैसी वृष्टि होती है, समशीतमण्डलमें वैसी वृष्टि नहीं होती। फिर समशीतमण्डलकी अपेक्षा शीतमण्डलमें वृष्टिका परिमाण बहुत कम है। वृष्टितत्त्वविदोंने गणनाकर स्थिर किया है, कि ग्रीष्ममण्डलमें कुल प्रति-वर्ष ८० इञ्च गभीर जल वाष्पमें परिणत होता है, और इस प्रदेशमें वृष्टि प्रति वर्ष कुल १००।११० इञ्च होती है। किन्तु उत्तर समशीतमण्डलमें ३० इञ्चसे अधिक वाष्प नहीं उड़ सकता। इसमें वहां वृष्टिका परिमाण ३६ इञ्चसे अधिक नहीं। किन्तु इसके ग्रीष्ममण्डलमें वृष्टिका जैसा समय निर्दिष्ट है, वैसा और कहीं दिखाई नहीं देता। समुद्रमें वाणिज्यवायु नियमित रूपसे प्रवाहित होता है, अतएव समुद्रमें बहुत कम ही वृष्टि होती है। समशीतमण्डलमें समय समय पर जैसी वृष्टि हुआ करती है, वैसे तूफान भी आया करता है। ग्रीष्म-मण्डलमें ग्रीष्मवर्षादि ऋतुओंका नियमपूर्वक आविर्भाव तथा तिरोभाव दिखाई देता है। युरोपखण्डकी दक्षिण अमेरिकाका नाम उल्लेख किया जा सकता है। यहां शीतकालमें आकाशमण्डल साफ रहता है, वायुमण्डलमें सूखापन आई होती है। साथ साथके मानसून बहते रहते हैं। अधिक मात्रा विषुव रेखाके निकट वर्ती स्थानोंमें अनेक प्रदेशोंमें वर्षाकालका आगमन होता है। इसके उत्तरमें सूर्यके उत्तरायण तक समान रहना दिखाई देता है। भारतवर्षमें वायुकी गतिके साथ वृष्टिपातका सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ है।

हिमालयके समुद्र तटोंमें तथा पर्वतमालाओंमें अधिक वर्षा होती है, किन्तु अधित्यकामें वैसी वृष्टि नहीं होती। इसका भी इसका दृष्टान्त है। इसका देशमें प्रायः ही ठीक दिखाई नहीं देते। फिर भी इसके निकटके अन्य-स्थान प्रदेशमें प्रचुर परिमाणसे वृष्टि होती है। समुद्रकी ओर जल अधिक परिमाणसे उत्थित होता है और वृष्टि

भी अधिक परिमाणसे होती है। सुवृहत् भूखण्डके मध्य-भागमें अधिक वाष्पोत्पत्तिकी सम्भावना नहीं; ऐसे स्थलोंमें वृष्टि भी अधिक नहीं होती। सममण्डलमें भूमिके पश्चिम पार्श्वमें और ग्रीष्ममण्डलमें भूमिके पूर्वपार्श्वमें अधिक वृष्टि होती है। वायुकी गतिके भेदसे ही वृष्टिका ऐसा परिमाणभेद हुआ करता है।

किसी किसी स्थानमें बारह महीने ही कुछ न कुछ वृष्टि हुआ करती है। कहीं तो वर्ष भरमें न हो २ या ३ मास खूब जोरोंकी वृष्टि होती है। कहीं शीतकालमें, कहीं ग्रीष्मकालमें, कहीं हेमन्तमें, कहीं वर्षा कालमें वृष्टिपात होता है। ग्रीष्ममण्डलमें निरक्षवृत्तके उत्तर उत्तरायण समयमें और उसके दक्षिण दक्षिणायन समयमें वृष्टि होती है। फलतः पृथ्वीके स्थान स्थानमें जिस नियमसे वृष्टि होती है वह देख कर वर्षाकालकी एक ऋतुमें गणना की नहीं जाती। ऋतु-विभागमें शीत और ग्रीष्म ही प्रधान विभाग है और यह विभाग अति सुस्पष्ट है। स्पेन, पुर्त्तगाल और इटली प्रभृति देशोंके दक्षिण भागमें तथा सिसिली और मेसिना द्वीपमें अमेरिकाके उत्तरी भागमें समग्र यूनानमें और एशिया भूभागके उत्तर-पश्चिम अञ्चलमें भयानक शीतके समय भी प्रबल वृष्टिपात होता है। फिर अलप्स पर्वतके उत्तर-भागस्थ जर्मनी देशमें, फ्रान्सके पूर्व भागमें, नेदरलैण्ड प्रदेश, स्वीजरलैण्ड देशके उत्तरी भाग, डेनमार्क और ओराल पर्वतके पूर्व साइबेरिया देश तकके स्थानोंमें ग्रीष्म कालमें वृष्टि होती है। इन सब स्थानोंमें शीतके मौसममें कुछ भी वृष्टि नहीं होती। युरोपखण्डके पश्चिम पार्श्वस्थ देशोंमें और वृटिशद्वीपपुञ्ज प्रभृति स्थानोंमें वर्षाकालमें वृष्टि होती है। अफ्रिकाके दक्षिण भागमें और अष्ट्रेलिया द्वीपमें वर्षा और शीतकाल वृष्टिका समय है।

ग्रीष्ममण्डलमें दो मास जिस परिमाणसे वृष्टि होती है, शीतमण्डलमें दो वर्षमें भी वैसी वृष्टि नहीं होती। जुटलैण्डके निकट सिटका द्वीपमें सारे वर्षमें ४० दिन ही आकाशमण्डल परिष्कृत देखा जाता है। यहां नित्य वृष्टि होती है। किन्तु इससे पता होता है, कलकत्तेमें एक वर्षमें जितनी वृष्टि होती है सिटका द्वीपकी वृष्टिका परिमाण इसका एकचतुर्थांश भी नहीं। जगत्‌में वृष्टिपातका प्रधानतम स्थान चेरापुञ्जी है। चेरापुञ्जीमें जितनी वृष्टि होती है इतनी अधिक वृष्टि और कहीं नहीं होती। चेरापुञ्जीमें प्रायः तीन मासमें २५०से ५५० बुरुल परिमित वृष्टि होती है। फिर भी समूचे वर्षमें नौ महीनेसे अधिक समय तक चेरापुञ्जीका आकाश निर्मल और सुनील सौन्दर्यकी लीलास्थली है।

सेण्टपिटर्सवर्ग (पेट्रोग्राड)-में प्रतिसप्ताह ही कुछ न कुछ वृष्टि होती है। यहां वर्षमें ६ माससे अधिक समय वृष्टि होती है। किन्तु वृष्टिका परिमाण १७ बुरुलमात्र है वृष्टितत्त्वविदोंने इसी तरह वृष्टिका स्थान निर्देश किया है। उनके मतसे कोई प्रदेश "शीतवृष्टिमण्डल" कोई प्रदेश "ग्रीष्मवृष्टिमण्डल" कोई स्थान "प्रावृट् वृष्टि-मण्डल" कोई स्थान "सामयिक वृष्टिमण्डल" और कोई स्थान "चिरवृष्टिमण्डल" कहा जाता है।

भारतवर्षमें मौसमी वायु (Monsoon) का प्रभाव अत्यधिक है। इसीलिये भारतवर्षमें अयनभेदसे वृष्टि-का तारतम्य नहीं होता। मौसमके अनुसार ही वृष्टि हुआ करती है। अग्निकोणके मौसममें मलवारके तट पर, ईशाणकोणके मौसममें चोरमण्डलतटमें वर्षाका प्रादुर्भाव होता है। घाटपर्वतकी बाधासे समुद्रकी वाष्प-पूर्ण वायु दक्षिण देशमें सर्वत्र प्रवाहित नहीं होती। इसीलिये भिन्न भिन्न ऋतुओंमें इन सब स्थानोंमें वर्षा उपस्थित होती है। नीचे कई स्थानोंके वार्षिक वृष्टि-परिमाणकी एक फिहरिस्त दी जाती है।

स्थानका नाम	बुरुल।
चेरापुञ्जी	५००
अराकान	१५०
दार्जिलिङ्ग	१२५
बम्बई	८०
मन्द्राज	४८
काशी	४३
मथुरा	२७
कलकत्ता	६५
दिल्ली	२३
सानगुस्मारनहो	४८०

वृष्य (त्रि०) १ बलवर्धक वस्तु, शुक्रवर्धक, जिन सब पदार्थोंके सेवन करनेसे शुक्रकी वृद्धि होती है। जैसे मांस आदि। २ जिससे इन्द्रियशक्ति बढ़े, जिसके सेवनसे जितेन्द्रिय होता है, मोदक आदि। ३ पीत वर्ण मूंग, जिससे बल और वीर्य बढ़े। (भाव प्र०)

चरकमें जो द्रव्य मधुर, स्निग्ध, जीवनीय, बृंहण, गुरु और मनके लिये हर्षजनक हैं, उनको वृष्य कहते हैं। इन द्रव्योंके साथ जो सब औषध प्रस्तुत होता है, उसको वृष्य योग कहते हैं। जैसे—

वृष्यक्षीर—चर्मदलका मक्खन, उड़द, और काकोली, क्षीरकाकोली, अर्जुन, मौलफूल, शिरीष, और शालफूलोंका फल—इनमें प्रत्येक १०२ पल। पाकार्थ जल ११ सेर। इसके चतुर्थांश बाद शेष रहते उतार लेना और दुग्धावशेष रहने पर उतार लेना। इसमें यथायुक्त मात्रामें चीनी मिलानी चाहिये। इस क्षीर का दूधके साथ पूर्णरूप यदि ठाक सेवन करना चाहिये। यह अतिशय वृष्य है।

वृष्यघृत—गायका घृत ४ सेर। कल्कार्थ जीवक, ऋषभक, मेदा, काकोली, आत्मगुप्ता, (हंसराज और बड़ी हंसराजी), अर्जुन, मुलेठी (यष्टिमधु), द्राक्षा (अंगूर), त्रिफला, ४ तोले, शतावरी या विदारी और मूंग कुल्थी, ये सब मिला कर १ सेर। दुग्धशेष रह जाने पर उतार लेना चाहिये, पीछे उसको छान कर उसमें चीनी आध सेर मिलाना होगा। इस घृतके सेवनके साथ उपयुक्त मात्रामें खाने पर अत्यन्त वृष्य होता है। यह बलवर्द्धक, बलदायक शुक्रवर्धक और बृंहण है।

वृष्यचूर्णविधान—ईख भरती या ताजा दोनों घृतमें भून कर वृष्यचूर्णविधान कहलाता है।

वृष्यक्षीरादि—शिरीष और हैमवर्णिक वृष्य ले कर उसमें यथोपयुक्त चीनी मिला कर मधु, घी, ब्रांसलोचन और इलायचीका चूर्ण मिलाना चाहिये। पीछे इसे ठंढा कर सदैव नियमसे सेवन करना चाहिये। वृषपुष्प आदिके साथ इसका सेवन कर पीछे शयन करना अत्यन्त करना चाहिये। इस वृष्यक्षीरादिके सेवनसे बल, वर्ण, और काम शक्ति वर्द्धित होता है।

वृष्यपुष्पादि—दूधके साथ चीनी और मधु मिला कर पुष्पके काढ़ेके साथ सेवन करनेसे अतिवृष्य होता है।

मत्स्य, हंस, मयूर या मुर्गेका अण्डा, इन्हें अच्छी सिद्ध कर घृतमें तल कर भक्षण करनेसे भी वृष्य होता है।

वृष्यवटी—चीनी १०० पल, घृत ५० पल, मधु २५ पल और दूध २५ पल इन सब द्रव्योंके साथ पिप्पली का चूर्ण २५ पल मिला कर इसे चिकने बरतनमें रख कर उत्तमरूपसे मर्दन करना होगा। इससे वटि प्रस्तुत होगी। यह अग्निके बलके अनुसार सेवन करनेसे अतिशय वृष्य होगा।

यह सब वृष्ययोग स्वस्थ शरीरको छोड़ दुर्बल शरीरमें सेवन करना न चाहिये। अस्वस्थ शरीरमें सेवन करनेसे नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। अतएव शरीरमें संशोधन द्वारा शरीरके स्वाभाविक दोषादिसंयुक्त अर्थात् मल निःशेष हो कर शरीर शुद्ध होनेसे उस समय यदि पूर्वोक्त सब वृष्ययोग सेवन कराया जा सके तो शरीर दृढ़, बलवान् और वृषवत् मैथुनमें समर्थ हो सकता है। शुद्ध शरीरमें सेवित वृष्ययोग ही बृंहण और बलकर होता है। अतएव वृष्य सेवनसे पहले यथायुक्त संशोधन कर्तव्य है। मलिन वस्त्रमें जैसे रङ्ग देनेसे वह जिस प्रकार चढ़ता, उसी प्रकार अशुद्ध शरीरमें या अपरिशोधित शरीरमें इन सब योगोंका प्रयोग करनेसे वे कार्यकारी नहीं होते। (चरक-चिकित्सा २ अ०) (पु०) ४ जल। ५ उड़द। ६ कुष्माण्ड आदि औषधि।

वृष्यकन्दा (सं० स्त्री०) वृष्यो कन्दो यस्याः। १ विदारीकन्द, भुइंकुम्हड़ा। २ मूसली।

वृष्यगन्धा (सं० स्त्री०) वृष्यो गन्धो यस्याः। १ वृद्धदारक, विधारा। २ अतिबला नामकी लता। ३ ककही, अतिबला।

वृष्यगन्धिका (सं० स्त्री०) ककही, अतिबला।

वृष्यवल्ली (सं० स्त्री०) भूमिकूष्माण्ड, भुइंकुम्हड़ा।

वृष्यस्कन्धा (सं० स्त्री०) भुइंकुम्हड़ा।

वृष्यस्कन्धा (सं० स्त्री०) असगन्ध।

बृष्यवल्लिका (सं० स्त्री०) विदारीकन्द, भुइंकुम्हड़ा।
बृष्यवल्ली (सं० स्त्री०) विदारीकन्द।
बृष्या (सं० स्त्री०) १ ऋद्धि नामकी ओषधि। २ शतावर। ३ आंवला। ४ भुइंकुम्हड़ा। ५ आंतवला। ६ बृहद्दन्ती, बंगडेरा। ७ केवांच, कौंछ। ८ विदारीकन्द।
बृह—१ बृद्धि। भ्वादि० परस्मै० सक० सेट्। लट् बर्हति। लुङ् अबर्हीत, अबृहत। बृह—२ उद्यम। तुदादि० परस्मै० अक० सेट्। लट बृहति लिट् बबर्ह। ३ शब्द। ४ ऋद्धि। भ्वादि० परस्मै० अक० सेट्। लट् बृहति। बृद्धि अर्थमें यह धातु आत्मनेपदी भी होता है। लट् बृंहते चुरादि० परस्मै० अक० सेट्। लट् बृंहयति।
बृंह,—१ ध्वनि। २ हाथीकी चिंघाड़। ३ बृद्धि, भ्वादि० परस्मै० अक० सेट्। लट् बृंहयति। लुङ् अबबृंहत्।
बृहच्चञ्चु (सं० पु०) बृहतीचञ्चुः शाकविशेषः। १ महाचञ्चुशाक। (त्रि०) २ दीर्घचञ्चुयुक्त, लम्बी चोंचवाला।
बृहच्चर्मभेद (सं० पु०) अमन्ती, जैत।
बृहच्चित्त (सं० पु०) फलपुर, बिजौरा नीबू।
बृहच्छद (सं० पु०) अखरोट।
बृहच्छतावरीघृत (सं० क्ली०) प्रदररोगाधिकारोक्त घृतौषध विशेष।
बृहच्छद (सं० पु०) अक्षोट वृक्ष, अखरोटका वृक्ष।
बृहच्छफरी (सं० स्त्री०) महाप्रोष्ठी, मत्स्यविशेष, सफरी नामकी मछली। इसका गुण—स्निग्ध, सुख और कण्ठरोगनाशक।
बृहच्छल्क (सं० पु०) बृहत् शल्को यस्य। झिंगा नामकी मछली।
बृहच्छालपर्णी (सं० पु०) महाशालपर्णी, बड़ी सरिवन, इसे बम्बईमें तोड़ोला कहते हैं।
बृहच्छिम्बी (सं० स्त्री०) सेम।
बृहज्जीरक (सं० क्ली०) मोटा जीरा, मंगरैला।
बृहज्जीवन्ती (सं० स्त्री०) स्वनामख्यात औषधविशेष, बड़ी जीवन्ती। पर्याय—पत्तभद्रा, प्रियङ्करी, मधुरा, जीवपुष्पा, बृहज्जीवा, यशस्करी। गुण—बहुवीर्यप्रद, भूतविद्रावणकारी अर्थात् भूतोन्मादादि रोगमें ग्रहादिका अपसारक रसनियामक अर्थात् पारद आदिसे होनेवाली विकृतिका विनाशक है।
बृहज्जीवा (सं० स्त्री०) बड़ी जीवन्ती।
बृहड्ढक्क (सं० स्त्री०) वाद्ययन्त्रविशेष, ढक्का, ढाक।
बृहत् (सं० त्रि०) बृह-अति (वर्त्तमाने पृषद्बृहन्महज्जगच्छतृवच्च। उण् २।८४) निपातनात् साधु। महत्, विपुल, बड़ा, प्रकाण्ड, भारी, महान्। जैसे—आपने यह बहुत बृहत् कार्य्य उठाया है।
बृहतिका (सं० स्त्री०) बृहती देखो।
बृहती (सं० स्त्री०) बृहती-कन-बृहत्या आच्छादन (पा ५।४।६।१) उत्तरीयवस्त्र, चद्दर, दुपट्टा। २ कण्टकारी, छोटी कटाई। ३ वनभण्टा, बड़ी कटाई। ३ बैंगन। ४ वैद्यकके अनुसार एक मर्मस्थान, जो छातियोंके ठीक पीछे पीठमें दोनों ओर होता है। इस मर्मस्थानमें चोट लगनेसे अधिक खून गिरता है और मृत्यु भी होनेका डर रहता है। ५ विश्वावसु नामक गन्धर्वकी वीणाका नाम। ६ वाक्य। ७ एक प्रकारका छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें नगण, नगण और सगण होता है। जैसे—भाव सुयुक्ता कारज जू। प्रात गई सोता सरजू। कण्ठमणि मध्ये सुमला। टूट परी खोजै अवला। (काव्यप्रभाकर) ८ महती। ९ वारिधानी।
बृहतीकल्प (सं० पु०) चिकित्साका कल्पभेद।
बृहतीद्वय (सं० पु० क्ली०) १ बृहती और कण्टकारी। २ मोटे और पतले फलोंके अनुसार दो तरहकी बृहती।
बृहतीपति (सं० पु०) बृहतीनां वाचां पतिः। बृहस्पति।
बृहतीफल (सं० क्ली०) वनभण्टा, बृहतीका बीज।
बृहत्क (सं० त्रि०) बृहत्कन (अन्यद्दर्शोवार्थल्यानम्। पा ५।४।३ वार्त्तिक) बृहत् देखो।
बृहत्कट्फलतैल—ज्वराधिकारोक्त औषध विशेष।
बृहत्कन्द (सं० पु०) १ गृञ्जन, गाजर। २ विष्णु।
बृहत्कस्तूरीभैरव रस—ज्वराधिकारोक्त रसौषधविशेष। इसका सेवन करनेसे ज्वर आदि विविध पीड़ाओंका उपशम होता है।
बृहत्कालशाक (सं० पु०) महाकासमर्द नामका क्षुप, कसौंदी।

संग्रह) २ वाजीकरण वस्तु, शुक्रवर्द्धक, जिन सब द्रव्योंके सेवन करनेसे शुक्रकी वृद्धि होती है। जैसे—क्षीर आदि। ३ जिससे हर्षोत्पादक वस्तु, जिसके सेवनसे लिंगमें हर्षोत्पत्ति होती है, जैसे मांस आदि। ४ [illegible] द्रव्य, जिससे बल और वीर्य बढ़े। (चरक चि॰)

वाग्भटमें जो द्रव्य मधुर, स्निग्ध, जीवनीय, बृंहण, गुरु और मनके लिये हर्षजनक हैं उनको वृष्य कहते हैं। इन चीजोंके साथ जो सब औषध प्रयुक्त होता है, उसको वृष्य योग कहते हैं। जैसे—

वृष्यक्षीर—[illegible] दलाक, उड़द, छोटी [illegible], [illegible], [illegible], जीवक, [illegible], और [illegible] फल—इनमें प्रत्येक १-१ पल। पाकार्थ जल १६ सेर। इसके चतुर्थांश बाद सेर [illegible] और दुग्धावशेष रहे तो उतार लेना। उसमें उपयुक्त मात्रामें चीनी मिलानी चाहिये। इस क्षीर या दुग्धके साथ पुरपुट [illegible] सेवन करना चाहिये। यह अतिशय वृष्य है।

वृष्यघृत—गायका घृत ४ सेर। कल्कार्थ आंवला, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], (छोटी और बड़ी [illegible]), [illegible], [illegible] ([illegible]), [illegible] ([illegible]), [illegible], २ [illegible], [illegible] या [illegible] और [illegible], ये सब मिल कर १ सेर। दुग्धावशेष रह जाने पर उतार लेना चाहिये, पीछे इसको छान कर उसमें चीनी [illegible] और [illegible] मिलाना होगा। इस घृतको [illegible] साथ उपयुक्त मात्रामें [illegible] वृष्य होता है। यह बलवर्द्धक, [illegible] पुष्टिदायक और बृंहण है।

वृष्यपुत्तलिकायोग—[illegible] [illegible] या [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वृष्यपुत्तलिका योग कहलाता है।

वृष्ययवागू—[illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मिला कर मधु [illegible], [illegible] और [illegible] [illegible] मिलाना चाहिये। पीछे [illegible] [illegible] कर [illegible] [illegible] [illegible] चाहिये। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सेवन कर पीछे [illegible] [illegible] [illegible] करना चाहिये। इस [illegible] सेवनसे बल, [illegible], [illegible] [illegible] वर्द्धित होता है।

वृष्यपूपादि—[illegible] [illegible] [illegible] और मधु मिला कर [illegible] [illegible] साथ सेवन करनेसे अतिवृष्य होता है।

[illegible] [illegible] या [illegible], [illegible], [illegible] या [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] मिला कर [illegible] [illegible] कर [illegible] करनेसे भी वृष्य होता है।

वृष्यप्रयोग—चीनी १०० पल, घृत ५० पल, मधु २५ पल और जल २५ पल इन सब द्रव्योंके साथ [illegible] का चूर्ण २५ पल मिला कर [illegible] [illegible] [illegible] रख कर [illegible] मर्दन करना होगा। इससे अति उत्कृष्ट [illegible] (मोहनभोगवत् पदार्थ) प्रस्तुत होगा। यह अग्निके बलके अनुसार सेवन करनेसे अतिशय वृष्य होगा।

यह सब वृष्ययोग स्वस्थ शरीरको छोड़ दुर्बल शरीरमें सेवन करना न चाहिये। अस्वस्थ शरीरमें सेवन करनेसे नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। स्वस्थ शरीरमें संशोधन द्वारा शरीरके [illegible] [illegible] अर्थात् मल निर्गत होनेसे शरीर शुद्ध रहनेसे उस समय यदि पूर्वोक्त रूपसे वृष्ययोग सेवन कराया जा सके तो शरीर दृढ़, बलवान् और वृषवत् मैथुनमें समर्थ हो सकता है। शुद्ध शरीरमें सेवित वृष्ययोग ही बृंहण और बलकर होता है। [illegible] वृष्य सेवनको [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। मलिन वस्त्रमें [illegible] [illegible] [illegible] जिस प्रकार [illegible], उसी प्रकार अशुद्ध शरीरमें या [illegible] शरीरमें इस सब वृष्यप्रयोग करनेसे वे कार्यकारी नहीं होते। (चरक-चिकित्सा २ अ॰) (पु॰) ४ [illegible]। ५ [illegible]। ६ [illegible] [illegible] [illegible]।

वृष्यकन्दा (सं॰ स्त्री॰) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। १ विदारीकन्द, भुंइकुम्हड़ा। २ मूली।

वृष्यगन्धा (सं॰ स्त्री॰) वृष्णो [illegible] [illegible]। १ वृद्धदारक, विधारा। [illegible] [illegible] [illegible]। ३ ककही, अतिबला।

वृष्यगन्धिका (सं॰ स्त्री॰) ककही, अतिबला।

वृष्यपर्णी (सं॰ स्त्री॰) मूसाकानी, आखुकर्णी।

वृष्यवल्ली (सं॰ स्त्री॰) भुंइकुम्हड़ा।

वृष्यलता (सं॰ स्त्री॰) [illegible]।

वृष्यवल्लिका (सं० स्त्री०) विदारीकन्द, भुइँकुम्हड़ा।

वृष्यवल्ली (सं० स्त्री०) विदारीकन्द।

वृष्या (सं० स्त्री०) १ ऋद्धि नामकी ओषधि। २ शतावर। ३ आँवला। ४ भुइँकुम्हड़ा। ५ अतिबला। ६ बृहद्दन्ती, बंगडेरा। ७ केवांच, कौंछ। ८ विदारीकन्द।

वृह—१ वृद्धि। भ्वादि० परस्मै० सक० सेट्। लट् वर्हति। लुङ् अवर्हीत, अवृहत। वृह—२ उद्यम। तुरादि० परस्मै० अक० सेट्। लट् वृहति लिट् ववर्ह। ३ शब्द। ४ वृद्धि। भ्वादि० परस्मै० अक० सेट्। लट् वृहति। वृद्धि अर्थमें यह धातु आत्मनेपदी भी होता है। लट् वृंहते चुरादि० परस्मै० अक० सेट्। लट् वृंहयति।

वृंह,—१ ध्वनि। २ हाथीकी चिंघाड़। ३ वृद्धि, भ्वादि० परस्मै० अक० सेट्। लट् वृंहयति। लुङ् अवृंहत्।

वृहच्चञ्चु (सं० पु०) वृहतीचञ्चुः शाकविशेषः। १ महाचञ्चु शाक। (त्रि०) २ दीर्घचञ्चुयुक्त, लम्बी चोंचवाला।

वृहच्चक्रभेद (सं० पु०) जयन्ती, जैत।

वृहच्चित्त (सं० पु०) फलपुर, बिजौरा नीबू।

वृहच्छद (सं० पु०) अखरोट।

वृहच्छतावरीघृत (सं० क्ली०) प्रदररोगाधिकारोक्त घृतौषध विशेष।

वृहच्छद (सं० पु०) अक्षोट वृक्ष, अखरोटका वृक्ष।

वृहच्छफरी (सं० स्त्री०) महापोठो, मत्स्यविशेष, सफरी नामकी मछली। इसका गुण—स्निग्ध, मुख और कण्ठरोगनाशक।

वृहच्छल्क (सं० पु०) वृहत् शल्को यस्य। झिंगा नामकी मछली।

वृहच्छालपर्णी (सं० पु०) महाशालपर्णी, बड़ी सरिवन, इसे बम्बईमें तीड़ोला कहते हैं।

वृहच्छिम्बी (सं० स्त्री०) सेम।

वृहज्जीरक (सं० क्ली०) मोटा जीरा, मंगरैला।

वृहज्जीवन्ती (सं० स्त्री०) स्वनामख्यात ओषधिविशेष, बड़ी जीवन्ती। पर्याय—पत्रभद्रा, प्रियङ्करी, मधुरा, जीवपुष्पा, वृहज्जीवा, यशस्करी। गुण—चक्षुर्वीर्यप्रद, भूतविद्रावणकारी अर्थात् भूतोन्मादादि रोगमें भूतादिका अपसारक रसनियामक अर्थात् पारद आदिसे होनेवाली विकृतिका विनाशक है।

वृहज्जीवा (सं० स्त्री०) बड़ी जीवन्ती।

वृहड्ढक्क (सं० स्त्री०) वाद्ययन्त्रविशेष, ढक्का, ढाक।

वृहत् (सं० त्रि०) वृह-अति (वर्त्तमाने पृषद्वृहन्महज्जगच्छतृवच्च। उण् २।८४) निपातनात् साधु। महत्, विपुल, बड़ा, प्रकाण्ड, भारी, महान्। जैसे—आपने यह बहुत वृहत् कार्य्य उठाया है।

वृहतिका (सं० स्त्री०) वृहती देखो।

वृहती (सं० स्त्री०)-वृहती-कन्-वृहत्या आच्छादन (पा ५।४।६।१) उत्तरीयवस्त्र, चद्दर, दुपट्टा। २ कण्टकारी, छोटी कंटाई। ३ वनभण्टा, बड़ी कंटाई। ३ बैंगन। ४ वैद्यकके अनुसार एक मर्मस्थान, जो छातियोंके ठीक पीछे पीठमें दोनों ओर होता है। इस मर्मस्थानमें चोट लगनेसे अधिक खून गिरता है और मृत्यु भी होनेका डर रहता है। ५ विश्वावसु नामक गन्धर्वकी वीणाका नाम। ६ वाक्य। ७ एक प्रकारका छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें भगण, मगण और सगण होता है। जैसे—भाव सुपूजा कारज जू। प्रात गई सीता सरजू। कण्ठमणि मध्ये सुअला। टूट परी खोजै अबला। (काव्यप्रभाकर) ८ महती। ९ वारिधानी।

वृहतीकल्प (सं० पु०) चिकित्साका कल्पभेद।

वृहतीद्वय (सं० पु० क्ली०) १ वृहती और कण्टकारी। २ मोटे और पतले फलोंके अनुसार दो तरहकी वृहती।

वृहतीपति (सं० पु०) वृहतीनां वाचां पतिः। वृहस्पति।

वृहतीफल (सं० क्ली०) वनभण्टा, वृहतीका बीज।

वृहत्क (सं० त्रि०) वृहत्-कन् (अन्यत् दृशीयाभस्यानम्। पा ५।४।३ वार्त्तिक) वृहत् देखो।

वृहत्कट्वरतैल—ज्वराधिकारोक्त औषध विशेष।

वृहत्कन्द (सं० पु०) १ गृञ्जन, गाजर। २ विष्णु।

वृहत्कस्तूरीभैरव, रस—ज्वराधिकारोक्त रसौषधविशेष। इसका सेवन करनेसे ज्वर आदि विविध पीड़ाओंका उपशम होता है।

वृहत्कालशाक (सं० पु०) महाकासमर्द नामका क्षुप, कसौंदी।

बृहत्कन्द (सं० पु०) [illegible] मोटाकन्द मूल, गाजर।

बृहत्कुक्षि (सं० त्रि०) तुन्दिल, वह जिसका पेट आगे-को निकला रहता है, तोंदल।

बृहत्कोशातकी (सं० स्त्री०) तरोई, कड़ुवी।

बृहत्क्षार (सं० पु०) [illegible] या हिंगोटका वृक्ष।

बृहच्छिम्बा (सं० स्त्री०) [illegible]।

बृहज्जीवन (सं० पु०) [illegible]।

बृहच्छद (सं० पु०) [illegible] या [illegible] पीपल।

बृहद्दल (सं० पु०) [illegible] वृक्ष।

बृहत्पञ्चमूल (सं० क्ली०) बेल, सोनापाठा, गम्भारी, पाढ़र और अरणी इन पाँचोंका समूह।

बृहत्पत्र (सं० पु०) बृहत् पत्र वाला। १ हस्तिकन्द। २ श्वेतलोध्र, पठानी लोध। [illegible]। ३ तिन्दुक। ४ [illegible]।

बृहत्पत्री (सं० पु०) [illegible], पठानी लोध।

बृहत्पर्णी (सं० पु०) [illegible]।

बृहत्पाटली (सं० स्त्री०) धतूरा।

बृहत्पाद (सं० पु०) बृहत् पादो यस्य। वटवृक्ष।

बृहत्पीलु (सं० क्ली०) बृहत् महत् [illegible]। [illegible], बड़ा [illegible]।

बृहत्पुष्पी (सं० पु०) [illegible], [illegible]।

बृहत्पूर्णचन्द्रोदय रस—रसायनसारोक्त औषधविशेष। इस रसको सेवन करनेसे कई प्रकारके [illegible] नष्ट होते हैं।

बृहत्प्रमाण (सं० पु०) बृहत् प्रमाणं [illegible]। [illegible] वृक्ष, बड़ा [illegible]।

बृहत्फल (सं० पु०) १ [illegible], [illegible]। (क्ली०) २ बड़ा फल। (स्त्री०) [illegible]।

बृहत्फली (सं० स्त्री०) [illegible], [illegible]।

बृहद्भानु (सं० पु०) बृहत् भानुर्यस्य। १ [illegible]। २ [illegible]। ३ [illegible], [illegible]। ४ [illegible]।

बृहद्वला (सं० स्त्री०) १ [illegible]। २ [illegible]। ३ [illegible]। ४ [illegible], [illegible]। ५ [illegible]।

बृहद्रस (सं० पु०) [illegible]। [illegible]—

[illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible]—इन सात द्रव्योंको [illegible] [illegible] कर [illegible] सेवन करना चाहिये। यह रसायन सेवन करने पर [illegible] प्रशमित होता है।

बृहद्भट्ट (सं० पु०) बृहत्भट्ट वत्। [illegible]।

बृहद्वल्क (सं० पु०) बृहत् वल्को यस्य। [illegible], [illegible]।

बृहद्गङ्गाधरचूर्ण—चक्रदत्तोक्त चूर्णौषधविशेष।

बृहद्गुडूच्यादिकषाय—[illegible] और [illegible]-कषाय विशेष।

बृहद्गृह (सं० पु०) बृहत् गृहं [illegible]। [illegible]। यह देश [illegible] पश्चात् भारतके [illegible] अवस्थित है। कहीं कहीं यह बृहद्गृहके नामसे भी प्रसिद्ध है।

बृहद्गोल (सं० क्ली०) बृहत् [illegible] [illegible]। [illegible], [illegible]।

बृहद्गन्धकपोटलिका—[illegible] [illegible]।

बृहदग्निमुखोदक—यह [illegible] औषध। इसके सेवनसे [illegible], [illegible] और [illegible] नाश होते हैं।

बृहद्ग्रन्थि (सं० स्त्री०) [illegible] और [illegible] [illegible], [illegible], [illegible]।

बृहद्दल (सं० पु०) बृहद्दलं यस्य। १ [illegible], पठानी लोध। २ [illegible], [illegible]। ३ हिंताल वृक्ष। ४ [illegible]। ५ [illegible], [illegible]।

बृहद्दली (सं० स्त्री०) [illegible]।

बृहद्दन्ता (सं० स्त्री०) बृहत् दन्तं यस्य। बड़ा [illegible]।

बृहद्धात्र्यादि—[illegible] [illegible]।

बृहद्धात्र्यादि घृत—[illegible], औषध विशेष। इस [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] आदि विनष्ट होते हैं।

बृहद्धान्य (सं० पु०) [illegible], [illegible]।

बृहद्बदर (सं० पु०) बड़ी बेर। गुण—[illegible] और [illegible], [illegible]।

बृहद्बला (सं० स्त्री०) १ [illegible], [illegible]। २ [illegible]। ३ [illegible]।

बृहद्वासावलेह—यक्ष्मारोगाधिकारोक्त अवलेहभेद। इसके सेवन करनेसे राजयक्ष्मा, रक्तपित्त और श्वासादि नाना रोग नष्ट होते हैं।

बृहद्वीज (सं० पु०) बृहत् बीजं यस्य। आम्रातक, आमड़ा।

बृहद्भट्टारिका (सं० स्त्री०) दुर्गा।

बृहद्भण्डी (सं० स्त्री०) त्रायमाणा नामकी लता।

बृहद्भानु (सं० पु०) १ अग्नि। २ चित्रकवृक्ष, चीता। ३ सूर्य। ४ सत्यभामाके एक पुत्रका नाम। ५ सत्रायणके एक पुत्रका नाम। ६ पृथुलाक्षके एक पुत्रका नाम। (त्रि०) ७ बृहत्‌रश्मिविशिष्ट, प्रवृद्ध रश्मियुक्त।

बृहद्रथ (सं० पु०) बृहन् रथो यस्य। १ इन्द्र। २ यज्ञपात्र। ३ मन्त्रविशेष। ४ सामवेदका अंश। ५ वसुदामके पिता, तिग्मका पुत्र। (मत्स्यपु० ५०।८५) ६ शतधन्वाका पुत्र। (भागवत १२।१।१३) ७ देवरातका पुत्र। ८ तिमिराजपुत्र। ९ पृथुलाक्षके एक पुत्रका नाम। १० मौर्यराजवंशका अन्तिम राजा। (त्रि०) ११ प्रभूत रथविशिष्ट, जिसके पास अनेक रथ हों। (ऋक् ८।८०।२) स्त्रियां टाप् बृहद्रथा। १२ एक नदीका नाम।

बृहद्राव (सं० पु०) उल्लू पक्षी।

बृहद्वर्ण (सं० पु०) सोनामक्खी।

बृहद्वल—आतर्चराजभेद।

बृहत्‌वल्क (सं० पु०) बृहन् वल्कः वल्कलं यस्य। १ पठानी लोध। २ सप्तपर्ण, छतिवन।

बृहद्वल्ली (सं० स्त्री०) करेला।

बृहद्वात (सं० पु०) बृहन् वातो यस्मात्। देवधान्य, यह अश्मरीरोगनाशक है।

बृहद्वारुणी (सं० स्त्री०) महेन्द्रवारुणी लता, इनारू।

बृहन्नल (सं० पु०) १ बाहु, बांह। २ अर्जुन।

बृहन्नला (सं० स्त्री०) १ अर्जुन, अर्जुनका उस समयका नाम जब वे वनवासके उपरान्त अज्ञातवासके समय राजा विराट यहां स्त्रीके वेशमें रह कर उसकी कन्या उत्तराको नाच गान सिखाते थे।

बृहन्निम्ब (सं० पु०) महानिम्ब, बकायन।

बृहन्नारायणोपनिषद्—एक उपनिषद्का नाम। यह याज्ञिकी उपनिषद् नामसे विख्यात है।

बृहन्मरिच (सं० पु०) काली मिर्च, गोलमिर्च।

बृहन्मेथीमोदक—ग्रहणीरोगकी एक औषधका नाम। इस दवाके सेवन करनेसे अग्निमान्द्य और ग्रहणी प्रभृति बहुतेरे रोग दूर होते हैं।

बृहस्पति—१ बृहस्पतिसंहिता नामक ग्रन्थके रचयिताका नाम।

बृहस्पति (सं० पु०) बृहतां वाचां पतिः। (पारस्करेति। पा ६।१।१५७ इति सुट् निपात्यते) अङ्गिराके पुत्र। ये देवोंके गुरु हैं, धर्मशास्त्र प्रयोजक और नवग्रहोंमें पञ्चम ग्रह हैं। पर्याय—सुराचार्य, गीष्पति, धीषण, गुरु, जीव, आङ्गिरस, वाचस्पति, चित्रशिखण्डिज, उतथ्यानुज, गोविन्द, चारु, द्वादशरश्मि, गिरीश, दिदिव, पूर्वफल्गुनीभव, सुरगुरु, वाक्‌पति, वचसाम्पति, इन्द्रेज्य, देवेज्य, बृहताम्पति, इज्य, वागीश, जज्ञा, दीदिवि, द्वादशकर, प्राक्‌फाल्गुन और गोरथ।

यह ग्रह पीला, सूर्यास्य, चतुर्भुज और पद्मस्थ है। इसका शरीर ६ अंगुल लम्बा है। चार हाथोंमें क्रमसे अक्ष, वर, कमण्डलु, और दण्ड धारण किये हुए हैं। ब्रह्मा इनके अधिदेवता और इन्द्र प्रत्यधिदेवता हैं। ये ईशानकोण, पुरुष, ब्राह्मण जाति, ऋग्वेद, सत्त्वगुण, मधुररस, धनु और मीनराशि, पुष्यानक्षत्र, वज्र, पुष्परागमणि और सिन्धुदेशके अधिपति हैं। प्रातःकालमें ये प्रबल शुभग्रह, देवगृहस्वामी, वृद्ध, रक्तद्रव्यस्वामी, वातपित्तकफात्मक और वणिक् कर्मकर्त्ता रूपसे फलदाता हैं।

पुराणादिमें बृहस्पतिको देवगुरु, देवकुल, पुरोहित, मन्त्रपालक और त्रिदशाचार्य कहा है। इस कारण दानव द्वारा सुरनिग्रहकालमें उन्हें भी यथेष्ट कष्ट भुगतना पड़ा था।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणादिमें लिखा है, कि अङ्गिरामुनिपत्नी अपने कर्मके दोषसे मृतवत्सा हुई थीं। उन्होंने ब्रह्माके आदेशानुसार सनत्कुमारके द्वारा श्रीकृष्णके उद्देशसे पुंसवन नामका व्रत किया। इस पर सन्तुष्ट हो सर्वेश्वर हरि उस व्रतक्षीणा मुनिपत्नीके समीप

[illegible] एक पुत्र होगा। [illegible] [illegible] और [illegible] होगा। [illegible] [illegible] द्वारा पूजित है। [illegible] बृहस्पति [illegible] होता है [illegible] है। [illegible] बृहस्पति और [illegible] है। [illegible] बृहस्पति [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] है। [illegible] बृहस्पति [illegible] [illegible]

बृहस्पति [illegible] [illegible]

[illegible] बृहस्पति [illegible] है। [illegible]

बृहस्पतिका वैदिक [illegible] है [illegible] बृहस्पति [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] है [illegible] है। [illegible]

[illegible] है। [illegible] है [illegible] बृहस्पति [illegible] है। [illegible] है [illegible]

[illegible] है। [illegible]

मन्त्रमें लिखा है, कि "जैसे पिङ्गलवर्ण घोड़ेको विविध भूषणोंसे सज्जित करते हैं, उसी तरह पितास्वरूप देवताओंने गगनको सुसज्जित किया। उन्होंने अन्धकारको रात्रिमें रखा था और आलोकको दिनमें कर दिया। वृहस्पतिने पर्वत तोड़ कर गोधन प्राप्त किया।" तैत्तिरीय संहितामें (४।४।१०) ये तिष्यनक्षत्रके अधिष्ठातृ देवता रूपसे गृहीत हैं। वैदिककालके वृहस्पति जुपिटर ग्रहके प्रतिनिधित्वमें कल्पित हुए हैं। ये ही वृहस्पति ग्रहके (Jupiter) नेता हैं और कभी कभी स्वयं ग्रहरूपसे कीर्त्तित होते हैं। ग्रहपरिचालनके लिये उनके नीतिघोष नामका एक रथ है। यह रथ आठ घोड़ोंसे परिचालित होता है। वृहस्पति ग्रहका एक राशिमें भ्रमण करते करते ६० वर्ष (60 Year's cycle of Jupiter) अतिवाहित होता है। ज्योतिषशास्त्रमें यह वृहस्पतिचक्र नामसे विदित है। ग्रह देखो।

पौराणिक युगमें वृहस्पति ऋषिरूपसे वर्णित हैं। अङ्गिरा ऋषिके पुत्र होनेके कारण वे आङ्गिरस नामसे विख्यात हैं। देवताओंके उपदेष्टा आचार्य होनेसे वे अनिमिषाचार्य, वक्षा, इज्य और इन्द्रेज्य आदि नामोंसे पूजित हैं। सोम कौशलसे उनकी पत्नी तारादेवीको हरण कर ले गये। इसके लिये "तारकामय" युद्धका आरम्भ हुआ। उशना, रुद्र और दैत्य दानव सोमको पक्ष और इन्द्रके अधीन देवोंने वृहस्पतिका पक्ष अवलम्बन किया। उस युद्धमें वसुन्धरा कम्पित होने लगी। उन्होंने ब्रह्मासे जा कर अपनी दुरवस्थाकी बात कही। ब्रह्माकी मध्यस्थतामें तारा स्वामीके पास लौट आई। किन्तु तारा इस समय गर्भवती थी। वृहस्पति और सोम दोनोंने ताराके गर्भसे उत्पन्न बालकको पानेका दावा किया। फिर विरोधकी सम्भावना देख ब्रह्मा वहां आये और उन्होंने तारासे पुत्रके प्रकृत पिताकी बात पूछी। उस समय ताराने सोमको ही गर्भज सन्तानका पिता कहा। इसी पुत्रका नाम बुध है। बुध देखो।

स्कन्दपुराणमतसे वृहस्पति पीले हैं। ये देवोंके पुरोहित हो एक बार देवोंको विपद्ग्रस्त करनेमें कुण्ठित नहीं हुए। मत्स्यपुराण, भागवतपुराण और विष्णुपुराण आदिमें वृहस्पतिके पृथ्वीदोहनको बात है। उतथ्यवनिता ममताके गर्भमें उनको भरद्वाज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। भरद्वाज देखो।

द्वितीय मन्वन्तरमें वृहस्पति नामक और ऋषिका नाम मिलता है। यह एक धर्ममतका प्रवर्त्तक है।

अन्यान्य विवरण पर्याके वृहस्पति शब्दमें देखो।

वृहस्पतिचक्र (सं० क्ली०) वृहस्पतेश्चक्रम्। लोगोंके शुभाशुभके निर्णयार्थ वृहस्पतिके सञ्चारकालीन अश्विन्यादि २७ नक्षत्रयुक्त नराकृति चक्रविशेष। सञ्चार अर्थात् एक राशिसे दूसरी राशिमें या नक्षत्रसे दूसरे नक्षत्रमें जानेके समय वृहस्पति पहले जा कर जिस नक्षत्रमें अवस्थित होते हैं, उन नक्षत्रोंको ले कर चार नक्षत्र चक्रांकित पुरुषके शीर्षदेशमें विन्यास करना होगा। उसके बादके चार उसके दक्षिण हाथमें, उसके उपर कण्ठमें, उसके बाद पांच वक्षमें, इस तरह यथाक्रम दक्षिण और वाम पैरमें तीन तीन करके छः, इसके बाद वाम' हाथमें चार और नेत्रमें तीन यथायथभावसे विन्यस्त करना।

वृहस्पतिचार (सं० पु०) वृहस्पतिग्रहका सञ्चार।

वृहस्पतिसूत्र (सं० क्ली०) चार्वाकोंका मूलशास्त्र।

वृ, वरण या आवरण करना। क्यादि० उभ० सक० सेट्। लट् वृणाति, वृणीते।

वे—'वे' हिन्दीमें बहुवचन सर्वनाममें व्यवहृत होता है। 'वह' एकवचन, इसका बहुवचन वे होता है। आधुनिक हिन्दीजगत्में वे की जगह कुछ लोग वह ही व्यवहार करते हैं। जैसे हिन्दी बङ्गवासी, यह पत्र बहुत पुराना है। इसमें सभासे वे की जगह यह ही व्यवहृत किया जाता है। ऐसे ही और भी कितने ही लोग हैं, कि 'वे' को 'वह' ही लिखा करते हैं।

वेआवर (ब्यावर)—राजपूतानेके अजमेर मेरवाड़विभागका एक नगर।

यहांके लोग इसको नया नगर भी कहते हैं। अजमेर मेरवाड़ा विभागके अंग्रेज कमिश्नरने सन् १८३५ ई०में इस नगरको सेनानिवासके सन्निकट बसाया था। मेवाड़ राजधानी उदयपुर और मारवाड़ राजधानी योधपुरके मध्य स्थानमें रहनेसे यह स्थान बहुत जल्द एक प्रधान वाणिज्यकेन्द्रमें परिणत हो गया और धनजनसे पूर्ण हो कर शीघ्र ही श्रीवृद्धिसम्पन्न हो उठा।

[illegible] और [illegible] है [illegible]

[illegible] है [illegible] और [illegible] है [illegible]

[illegible] है [illegible]

[illegible] है [illegible]

[illegible] और [illegible] है [illegible]

[illegible] है [illegible]

मन्त्रमें लिखा है, कि "जैसे पिङ्गलवर्ण घोड़ेको विविध भूषणोंसे सज्जित करते हैं, उसी तरह पितास्वरूप देवताओंने गगनको सुसज्जित किया। उन्होंने अन्धकारको रात्रिमें रखा था और आलोकको दिनमें कर दिया। वृहस्पतिने पर्वत तोड़ कर गोधन प्राप्त किया।" तैत्तिरीय संहितामें (४।४।१०) ये तिष्यनक्षत्रके अधिष्ठातृ देवता रूपसे गृहीत हैं। वैदिककालके वृहस्पति जुपिटर ग्रहके प्रतिनिधित्वमें कल्पित हुए हैं। ये ही वृहस्पति ग्रहके (Jupiter) नेता हैं और कभी कभी स्वयं ग्रहरूपसे कीर्त्तित होते हैं। ग्रहपरिचालनके लिये उनके नीतिघोष नामका एक रथ है। यह रथ आठ घोड़ोंसे परिचालित होता है। वृहस्पति ग्रहका एक राशिमें भ्रमण करते करते ६० वर्ष (60 Year's cycle of Jupiter) अतिवाहित होता है। ज्योतिषशास्त्रमें यह वृहस्पतिचक्र नामसे विदित है। ग्रह देखो।

पौराणिक युगमें वृहस्पति ऋषिरूपसे वर्णित हैं। अङ्गिरा ऋषिके पुत्र होनेके कारण ये आङ्गिरस नामसे विख्यात हैं। देवताओंके उपदेष्टा आचार्य होनेसे वे अनिमिषाचार्य, वक्ता, इज्य और इन्द्रेज्य आदि नामोंसे पूजित हैं। सोम कौशलसे उनकी पत्नी तारादेवीको हरण कर ले गये। इसके लिये "तारकामय" युद्धका आरम्भ हुआ। उशना, रुद्र और दैत्य दानव सोमको पक्ष और इन्द्रके अधीन देवोंने वृहस्पतिका पक्ष अवलम्बन किया। उस युद्धमें वसुन्धरा कम्पित होने लगी। उन्होंने ब्रह्मासे जा कर अपनी दुरवस्थाकी बात कही। ब्रह्माकी मध्यस्थतामें तारा स्वामीके पास लौट आईं। किन्तु तारा इस समय गर्भवती थी। वृहस्पति और सोम दोनोंने ताराके गर्भसे उत्पन्न बालकको पानेका दावा किया। फिर विरोधकी सम्भावना देख ब्रह्मा वहां आये और उन्होंने तारासे पुत्रके प्रकृत पिताकी बात पूछी। उस समय ताराने सोमको ही गर्भज सन्तानका पिता कहा। इसी पुत्रका नाम बुध है। बुध देखो।

स्कन्दपुराणमतसे वृहस्पति पीले हैं। ये देवोंके पुरोहित हो एक बार देवोंको विपद्ग्रस्त करनेमें कुण्ठित नहीं हुए। मत्स्यपुराण, भागवतपुराण और विष्णुपुराण आदिमें वृहस्पतिके भ्रातृवधूरोहनकी बात है। उतथ्यवनिता ममताके गर्भमें उनको भरद्वाज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। भरद्वाज देखो।

द्वितीय मन्वन्तरमें वृहस्पति नामक और ऋषिका नाम मिलता है। यह एक धर्ममतका प्रवर्त्तक है।

अन्यान्य विवरण पवर्गके वृहस्पति शब्दमें देखो।

वृहस्पतिचक्र (सं० क्ली०) वृहस्पतेश्चक्रम्। लोगोंके शुभाशुभके निर्णयार्थ वृहस्पतिके सञ्चारकालीन अश्विन्यादि २७ नक्षत्रयुक्त नराकृति चक्रविशेष। सञ्चार अर्थात् एक राशिसे दूसरी राशिमें या नक्षत्रसे दूसरे नक्षत्रमें जानेके समय वृहस्पति पहले जा कर जिस नक्षत्रमें अवस्थित होते हैं, उन नक्षत्रोंको ले कर चार नक्षत्र चक्रांकित पुरुषके शीर्षदेशमें विन्यास करना होगा। उसके बादके चार उसके दक्षिण हाथमें, उसके उत्तर कण्ठमें, उसके बाद पांच वक्षमें, इस तरह यथाक्रम दक्षिण और वाम पैरमें तीन तीन करके छः, इसके बाद बाएं हाथमें चार और नेत्रमें तीन यथायथभावसे विन्यस्त करना।

वृहस्पतिचार (सं० पु०) वृहस्पतिग्रहका सञ्चार।

वृहस्पतिसूत्र (सं० क्ली०) चार्वाकोंका मूलशास्त्र।

वृ, वरण या आवरण करना। क्र्यादि० उभ० सक० सेट्। लट् वृणाति, वृणीते।

वे—'वे' हिन्दीमें बहुवचन सर्वनाममें व्यवहृत होता है। 'वह' एकवचन, इसका बहुवचन वे होता है। आधुनिक हिन्दीजगत्में वे की जगह कुछ लोग वह ही व्यवहार करते हैं। जैसे हिन्दी बङ्गवासी, यह पत्र बहुत पुराना है। इसमें सदासे वे की जगह वह ही व्यवहृत किया जाता है। ऐसे ही और भी कितने ही लोग हैं, कि 'वे' को 'वह' ही लिखा करते हैं।

वेमावर (ब्यावर)—राजपूतानेके अजमेर मेरवाड़विभागका एक नगर।

यहांके लोग इसको नया नगर भी कहते हैं। अजमेर मेरवाड़ा विभागके अंग्रेज कमिश्नरने सन् १८३५ ई०में इस नगरको सेनानिवासके सन्निकट बसाया था। मेवाड़ राजधानी उदयपुर और मारवाड़ राजधानी योधपुरके मध्य स्थानमें रहनेसे यह स्थान बहुत जल्द एक प्रधान वाणिज्यकेन्द्रमें परिणत हो गया और धनजनसे पूर्ण हो कर शीघ्र ही श्रीवृद्धिसम्पन्न हो उठा।

[illegible] किया गया है।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

(३) जुपिटर और सिमिलिके पुत्र थेबिसका वेकास। सिसरोके लिखे अनुसार (१) प्रसार्पाइनके पुत्र, (२) नेसुसके पुत्र, (३) केप्रियासके पुत्र। इन्होंने भारतमें अपना प्रभुत्व विस्तार किया था। (४) थिओनो और नेसुसके पुत्र, (५) जुपिटर चन्द्रके पुत्र।

वर्त्तमान मिस्रकी राजधानी कायरो नगरसे ३ सौ मील दक्षिण-उत्तर मिस्रके जिदा नामक ओयसिसमें अनुमान १८०० ईसासे पूर्व प्रतिष्ठित जुपिटर (वृहस्पति)-के मन्दिरका ध्वस्तनिदर्शन निपतित है।

पाश्चात्य-जगत्‌में नानारूपसे लिङ्गरूपकी उपासना होती है। कभी तो ये भीरु रमणीजनोचित सुकुमार युवक, मस्तकमें द्राक्षा या आइभि लताका किरीट, हाथमें त्रिशूल रहता है। व्याघ्र और सिंह उनके प्रियवाहन और मागदाई पक्षी उनकी अतिप्रिय वस्तु है। उन्होंने व्याघ्रचर्मसे आवृत हो कर भारतविजयके लिये यात्रा की थी। कभी तारकामण्डित भूगोल पर उपविष्ट मूर्त्तिमें ये सूर्य या ओसिरिस कह कर पूजित होते हैं। भारत-भ्रमणकारी अनेक यूनानी ग्रन्थकारोंने हिन्दू जातिके उपास्य एक वेकासका उल्लेख किया है। हो सकता है, कि ये भारतवर्षमें महादेवकी लिङ्गपूजाके साथ यूनानी वेकासकी लिङ्गमयी देवमूर्त्तिका सादृश्य देख कर ऐसा निर्णय कर गये हों।

वेकासी (मौलाना)—एक मुसलमान-कविका नाम। ये सम्राट् अकबरके समय जीवित थे।

वेकुफ—मुसलमानोंके एक फिर्केका नाम। धर्मप्रतारक एक मुसलमान नकली फकीर इसके चलानेवाले थे। १८वीं सदीके पहले भागमें इस व्यक्तिने दिल्ली राजधानी-में उपस्थित हो कर जनसाधारणमें घोषणा प्रचारित की, कि मैंने ही यह अभिनव कुरान पायी है। इसमें धर्मका सार लिपिबद्ध है। इस कुरानका भाव स्वयं ईश्वरने व्यक्त किया है, इत्यादि। लोग यह बात सुन और ग्रंथके मर्म और मूलतत्त्वसे अवगत हो कर शीघ्र उसके चेले बन गये। देखते देखते इस नये कुरानवालों-का एक सम्प्रदाय कायम हुआ। इस सम्प्रदायके गुरु या आचार्य यहांके मौलवी वेकुफ नामसे पुकारे जाते हैं और इनके चेले फरायुद। उक्त नकली मुसलमान फकीरने प्राचीन फारसीकी एक किताबसे कितने ही वचन उद्धृत कर जो अपने मतके अनुकूल थे, अपनी कल्पनासे इस नकली कुरानकी सृष्टि की थी।

वेक्षण (स० क्ली०) अव-ईक्ष-ल्युट्। अवस्याद्विलोपः। अवेक्षण, अच्छी तरह खोजना या ढूंढ़ना।

वेग (सं० पु०) विज-घञ्। १ प्रवाह। पर्याय—ओघ, वेणी, धारा, जव, रंह, तर, रय, स्यद। २ महा-कालफल। ३ रेतः, शुक्र। (हेम) ४ मलविष्ठादिकी निर्गम प्रवृत्ति। ५ न्यायके अनुसार २४ गुणान्तर्गत गुणविशेष, संस्कार गुण, वेगाख्य संस्कार। क्षिति, जल, तेज, वायु और मनः इनमें वेगाख्य संस्कार-की विद्यमानता देखी जाती है। (भाषापरिच्छेद)

वेग शब्दका साधारण अर्थ गति है। न्यायके अनुसार भी द्रव्योंमें उक्त क्षित्यादि पांच ही गतिशील है अर्थात् जगत्‌में जितने प्रकारके गतिविशिष्ट पदार्थ दिखाई देते हैं, उन सबोंमें उल्लिखित पांच द्रव्योंका वेग अन्यतम अंश है। यह वेग स्थूलदृष्टिमें कुछ तो जागतिक पदार्थमें स्वतःप्रवृत्त और कुछ काल और कारणान्तर सापेक्ष अवस्थामें विद्यमान देखा जाता है। ग्रहनक्षत्रादिका वेग मूलमें स्वतःप्रवृत्त है। किन्तु कारणान्तरमें इनमें किसी किसीके वेगकी ह्रास-वृद्धि होती रहती है। क्षिति, जल, वायु और अग्नि आदि तेजः हैं, इन सबोंका वेग कारणान्तरसापेक्ष है। शरीर, मन और मनका वेग काल और कारणान्तरसापेक्ष है। जलका वेग साधारणतः नीचेकी ओर, कारणान्तरमें ऊपर-की ओर तिर्य्यग्‌भावसे भी हो सकता है। मूल बात है, कि कारणान्तरसे जिन वेगोंकी उत्पत्ति होती है, उनकी ह्रास-वृद्धि और दिक्‌विदिक्‌के सम्बन्धमें कुछ निर्देश नहीं है। वे नियत ही तत्प्रवर्त्तक कारणके अनुवर्त्ती हैं।

सुविधाके अनुसार सांसारिक और शारीरिक कार्य्य-के उन्नतिसाधनके लिये हमें कितने वेगोंकी परिपुष्टि और कितने ही वेगोंका निरोध करना पड़ता है। सोच-विचार कर देखनेसे जगत्‌की उन्नतिका कारण भी वेग है और अवनतिका कारण भी है। यथार्थ दिग्निर्णय कर वेगके प्रवर्त्तन कर सकने पर ही जगत्‌में उन्नति-

चक्षुका लाल होना, हृद्रोग, अरुचि और भ्रमघूर्णन आदि लक्षण दिखाई देते हैं। इसमें निद्रा, मद्य और प्रिय वाक्य हितकर हैं। निद्राका वेग संवरण करनेसे जमाई, अङ्गमर्द, तन्द्रा, शिरोरोग और नेत्रमें भारीपन, ये लक्षण दिखाई देते हैं। ऐसी अवस्थामें निद्राको चेष्टा और हाथ पैर पर हाथ फेरना, या सब अङ्गोंको मर्दन करना उचित है। श्रमजनित निश्वासवेग धारण करनेसे गुल्म, हृद्रोग और सम्मोह उत्पन्न होता है। इसमें विश्राम और वातघ्न क्रिया हितकर है।

जिनका वेग धारण करना आवश्यक है, अब उनका उल्लेख किया जाता है। यथा—अनिष्टकर साहस, लोभ, शोक, भय, क्रोध, द्वेष, अभिमान, परनिन्दा, निर्लज्जता, किसी विषयके प्रति अत्यन्त आसक्ति, परधनविषयक स्पृहा, अतिकर्कश, दूसरेके विशेष अनिष्टसूचक, मिथ्या और अनुपयुक्त स्थलमें वाक्यप्रयोग, समावतः या परपीड़नार्थ चौर्य, परस्त्रीसम्भोगेच्छा, और हिंसादिकी प्रवृत्ति, इन यथानिर्दिष्ट कायिक, वाचिक और मानसिक वेगोंको ऐहिक और पारत्रिक सुखाभिलाषी व्यक्ति मात्रको यथायथ भावसे मनको क्रम क्रमसे संयत कर धारण करना चाहिये।

(चरक सू० ७ अ०)

धृतकीड़ा आदिका परित्याग, शिक्षाके लिये उत्साह, परोपकार आदि सदनुष्ठानमें प्रवृत्ति आदि मानसिक वेगकी यथोचित परिवृद्धि करना आवश्यक है। क्योंकि, ऐसा होनेसे इहकालमें क्यों, परकालकी उन्नतिका पथ लोगोंके लिये साफ होता है।

विज्ञानमें वेग गतिके शक्तिपर्याय रूपसे निरूपित हुआ है। इससे वेगके बलाबलका वर्णन करनेसे पहले गति और उसकी शक्तिका न्यूनाधिक जानना आवश्यक है। विज्ञानमें प्रत्येक पदार्थकी एक स्थिति और गति निर्धारित है। एक स्थानसे दूसरे स्थान जानेको गति कहते हैं और उसका अभाव ही स्थिति है। किसी निर्दिष्ट वस्तुके सम्बन्धमें किसी वस्तुकी स्थिति परिवर्त्तित हो तो उसको सचल कहा जाता है। यदि कोई वस्तु एक स्थानमें ही जड़की तरह निश्चेष्ट भावसे रहे, तो उसको निश्चल समझा जाता है।

सापेक्ष और निरपेक्ष भेदसे गति और स्थिति दो तरहकी है। किसी एक वस्तुके साथ तुलना कर अन्य किसी वस्तुकी गतिका अनुभव किया जाता है। यदि वस्तु वास्तविक निश्चल हो, तो उस वस्तुकी गति निरपेक्ष गति है और इसके विपरीत यदि किसी वस्तुको निश्चल समझ अन्य किसी वस्तुकी निरूपण किया जाय, वह यदि यथार्थमें निश्चल न हो, तो उक्त गतिको सापेक्ष गति कहते हैं।

यदि कोई वस्तु अनन्त आकाशके सम्बन्धमें नियत एक स्थानमें ही स्थिर हो, तो उसकी उस स्थितिको निरपेक्ष स्थिति और यदि किसी वस्तुको चारों ओरसे वस्तुसम्बन्धमें निश्चल समझने पर भी अनन्त आकाशके सम्बन्धमें उसकी अवस्थितिका हमेशा परिवर्त्तन होते देखा जाय, तो ऐसी दशामें उसकी वैसी निश्चलता या स्थितिको सापेक्ष स्थिति कहते हैं। निरपेक्ष गति या निरपेक्षस्थिति कहीं भी देखा नहीं जाता। क्योंकि हम लोग जहां जहां स्थिति और गति देखते हैं, वे सभी आपेक्षिक कही जाती हैं।

रेलगाड़ीमें इधर उधर आने जानेके समय हम गाड़ीके गति निरूपण करनेमें गाड़ीको निश्चल समझ कर ही इसके गमनागमनकी धारणा करते हैं और इस गाड़ीमें जो सब मनुष्य, बैल तथा वस्तुएं रखी रहती हैं, वे जो वास्तविक स्थिर नहीं हैं, यह भी हम समझ सकते हैं। क्योंकि, गाड़ीकी गतिके साथ उसकी अन्तर्गत वस्तु या व्यक्तिकी भी गति सिद्ध समझी जाती है।

पर्वत, वृक्ष और अट्टालिका आदि स्थावर पदार्थ गाड़ीकी गतिके सम्बन्धमें निश्चल हैं ऐसा प्रतीत होने पर भी वे यथार्थमें निश्चल नहीं। क्योंकि पृथ्वी उनको वक्ष पर धारण कर नियत ही पूर्वकी ओर दौड़ रही है। सूर्य भी पृथ्वी आदि ग्रहोंके साथ एक दूसरे विशाल सूर्यके चारों ओर तथा वह सूर्य भी सम्भवतः हमारे इस सौरजगत् और अन्यान्य जगत् ले कर एक महान् सूर्यके चारों ओर परिभ्रमण कर रहे हैं। मालूम होता है, कि इसी कारणसे इस विश्व संसारमें किसी पदार्थको एक मुहूर्त्तके लिये भी निरपेक्ष गति या स्थिति प्राप्त नहीं होती।

सर्वदा सत्कर्म किया करते थे। एक दिन एक वेदा-न्तिक ब्राह्मण इनके घर आये। इन्होंने परम भक्ति और प्रीतिसे पाद्य अर्घ्य आदि द्वारा उनका स्वागत किया। किन्तु उक्त वेदान्तविद् ब्राह्मणने उस घरमें किसी विष्णु-भक्तको तुलसी द्वारा पूजा करते देख देवव्रतके दिये हुए फलमूलादिको बड़ी अश्रद्धासे ग्रहण किया। इसी पापके कारण वे वेणुत्वको प्राप्त हुए। ३ नृपभेद।

वेणुक (सं० क्ली०) वेणुरिव वेणोर्विकारो वा कन्। गवादिताड़नदण्ड, वह लकड़ी या छड़ी जिससे गौओं, बैलों आदिको हांकते हैं। २ अंकुश, आंकुस। (पु०) ह्रस्वो वेणुः संज्ञायां कन् (पा ५।३।८७) ३ क्षुद्र वेणु, छोटी वंशी। ४ पला, इलायची। किसी किसी ग्रन्थमें वैणुक पाठ भी देखा जाता है।

वेणुकर्कर (सं० पु०) कर्कारवृक्ष, कनेरका पेड़।

वेणुका (सं० स्त्री०) १ वंशी, बांसुरी। २ एक प्रकारका वृक्ष। इसका फल बहुत जहरीला होता है। ३ हाथी-को चलानेका प्राचीन कालका एक प्रकारका दंड जिस-में बांसका दस्ता लगा होता था।

वेणुकार (सं० पु०) वंशीनिर्माणकारक, वंशी बनाने-वाला।

वेणुकीय (सं० त्रि०) वेणुकाज्जातं वेणुक-छ नड़ादीनां कुक् च। (पा ४।२।९१) वेणुसे उत्पन्न, वेणुका।

वेणुगढ़—विहारके पूर्णिया जिलान्तर्गत कृष्णगञ्ज उप-विभागका एक दुर्ग और तत्संलग्न एक नगर। इस-की पूर्व समृद्धि जाती रही। वर्त्तमान समयमें उस दुर्गके प्राकार और प्राचीरादिका ध्वंसावशेष मात्र देखा जाता है। दुर्गभित्तिका कुछ अंश तथा ध्वस्त अट्टालिकादिका निदर्शन नगरकी अतीत स्मृतिको आज भी दिखा रहा है। किन्तु दुःखका विषय है, कि किस समय यह दुर्ग बनाया गया और कौन इसके निर्माता हैं इसका आज तक पता नहीं लगा है। स्थानीय प्रवाद है, कि राजा विक्रमादित्यके शासनकालमें ५७ वर्ष ईसा-जन्मके पहले पांच भाइयोंने एक रातके मध्य जो पांच दुर्ग बनवाये, यहां उनमेंसे एक दुर्ग है।

वेणुगोपालपुर—मन्द्राज प्रदेशके गञ्जाम जिलान्तर्गत मन्दसा जमींदारीका एक बड़ा ग्राम। यह सोम्पेटसे ६ मील दक्षिण-पश्चिम तथा बड़े रास्तेसे २ मील पश्चिम-में अवस्थित है। मन्दसा जमींदारवंशके किसी व्यक्तिने प्रायः ४०० वर्ष पहले यह मंदिर बनवाया।

वेणुगोपालस्वामी—दाक्षिणात्यका एक सुप्रसिद्ध विष्णु-मंदिर। यह मन्द्राज प्रदेशके कड़ापा जिलेके सिद्ध-वट्टम तालुकके सदरसे ७ मील उत्तरमें अवस्थित है। यह मंदिर दाक्षिणात्यवासियोंका एक पवित्र पुण्यतीर्थ समझा जाता है। मंदिर बहुत पुराना है। यहांके लोग इसे गोपालस्वामीका घागोड़ा कहते हैं।

वेणुग्रन्थ (सं० पु०) एक प्रकारकी औषधि।

वेणुग्राम—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत एक स्थान। अभी यह वेलगाम् नामसे मशहूर है। प्राचीन शिलालिपिमें यह प्रदेश वेणुग्रामसतति नामसे उल्लिखित देखा जाता है। ११६६ ई०में सौन्दत्तिके रट्ट सरदार ४र्थ कार्त्तवीर्य यहां राज्य करते थे। गोआके कादम्ब वंशीय राजा ३य जयकेशी इस स्थानके शासनकर्त्ता थे। उन्हें परास्त कर रट्ट लोगोंने यह स्थान दखल किया।

वेणुज (सं० पु०) वेणोर्जायते जन ड। १ वेणुयव, बांसके फूलमें होनेवाले दाने जो चावल कहलाते हैं और जो पीस कर ज्वार आदिके आटेके साथ खाये जाते हैं, बांसका चावल। २ मरिच, गोलमिर्च। (त्रि०) ३ वंश-जात द्रव्यमात्र, जो बांससे उत्पन्न हुआ हो।

वेणुजमुक्ता (सं० स्त्री०) वंशजात मुक्ताभेद, बांसमें होनेवाला एक प्रकारका गोल दाना जो प्रायः मोती कहलाता है।

वेणुजङ्घ (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक मुनिका नाम।

वेणुतण्डुल (सं० पु०) वेणुयव, बांसका चावल।

वेणुथली—वन्थलीका प्राचीन नाम। वन्थली देखो।

वेणुदत्त (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

वेणुदारि (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक राज-कुमारका नाम।

वेणुध्म (सं० त्रि०) वेणुं धमतीति ध्मा-श। वेणु-वादक, वंशी बजानेवाला।

वेणुन (सं० क्ली०) मरिच, गोल मिर्च। किसी किसी ग्रन्थमें वैणुन पाठ भी देखा जाता है।

[illegible] (सं० पु०) [illegible]

[illegible] (सं० स्त्री०) [illegible]

[illegible] (सं० पु०) [illegible] देखो [illegible] कहते हैं।

[illegible] (सं० स्त्री०) [illegible]

[illegible] (सं० पु०) [illegible]

[illegible] (सं० स्त्री०) [illegible] पर्याय— [illegible]

[illegible]

इस बार भी इन्होंने सेनाविभागके संस्कारमें ध्यान दिया। इससे सेनादलमें असन्तोषका लक्षण दिखाई दिया सही, पर पहलेकी तरह विद्रोहवह्नि धधक न उठी। ये भारतवासीके पूज्य हुए थे। और तो क्या, सतीदाह तथा भारतके अन्यान्य स्थानोंमें हिन्दू ललनाओंको बलपूर्वक जीतेजी जला देनेकी निष्ठुर प्रथाको इन्होंने महात्मा राममोहन राय आदिकी सहायतासे भारतवर्षसे बिलकुल उठा दिया। राममोहन राय देखो।

१८२९ ई०की १७वीं दिसम्बरमें सहमरणप्रथाको नीतिविरुद्ध बतला कर राजविधिमें विघोषित किया। सहमरण देखो।

मुद्रायन्त्रकी स्वाधीनता तथा ठगी डकैती आदि अत्याचारनिवारण इनके भारतशासनकालकी प्रधान घटना है। मुद्रायन्त्र और ठगी देखो।

इसके सिवा कुर्गपतिको युद्धमें परास्त कर इन्होंने उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली और अंगरेज साधारणको भारतवर्षमें उपनिवेश स्थापन करनेका अधिकार दिया। शिक्षाविषयकी उन्नति करना, अंगरेजीविद्यालय खोलना और देशी शिक्षित व्यक्तियोंके हाथ धर्माधिकार देना, ये सब महान् कार्य इन्हीं महात्मा द्वारा किये गये हैं। इनके समय प्रत्येक प्रेसिडेन्सीमें एक एक व्यवस्थापक सभा (Legislative Council) हुई थी। १८३० ई०में इनका स्वास्थ्य खराब हो गया और भारत-राजप्रतिनिधित्वका पद स्वच्छासे परित्याग कर वे उसी सालकी २०वीं मार्च तक भारतका शासन कर स्वदेशको लौट गये।

उनके भारत छोड़नेसे देशी प्रजा बहुत दुःखित और कातर हुई थी। उन लोगोंने इनके सुशासनका स्मरण रखनेके लिये एक अश्वारोही प्रतिकृतिकी प्रतिष्ठा की।

स्वदेश जा कर १८३६ ई०में ये ग्लासगो नगरवासीकी ओरसे पार्लियामेण्ट महासभाके हाउस आव कामन्सके सभ्य चुने गये। इस पद पर रह कर १८३९ ई०को १७वीं जूनको इन्होंने इस लोकका परित्याग किया।

वेण्णा (सं० स्त्री०) नदीभेद। इसका दूसरा नाम कृष्णवेण्णा वा वेण्या है।

वेण्णिकल्लु—मन्द्राज प्रदेशके बेल्लरी जिलान्तर्गत कुड़लिगि तालुकका एक ग्राम। यहां भास्कर्यशिल्पसमन्वित एक प्राचीन शिवमन्दिर विद्यमान है।

वेण्णिहल्ली—मन्द्राज प्रदेशके बेल्लरी जिलान्तर्गत हर्पणहल्ली तालुकका एक बड़ा ग्राम। यहांके विरूपाक्षेश्वर मन्दिरमें पांच शिलाफलक देखे जाते हैं।

वेण्य (सं० स्त्री०) विन्ध्यपर्वतसे निकली हुई एक नदी। (मार्क०पु० ५७।२४)

वेण्या (सं० स्त्री०) पारियात्र पर्वतसे निकली हुई एक नदी। (मार्क०पु० ५७।१९)

वेण्वातट (सं० क्ली०) १ वेण वा वेण्वानदीकी तीरभूमि। २ उसके किनारे अवस्थित एक देश। (भारत ३।३१।१२)

वेण्वातीर्थ—वेण्वा नदीतीरस्थ तीर्थभेद।

वेत (सं० पु०) वेतसलता, बेंत। वेत्र शब्द देखो।

वेतचेरुवु—मन्द्राज प्रदेशके कर्नूल जिलान्तर्गत नन्द्याल तालुकका एक बड़ा ग्राम। मानचित्रमें यह वैभूमचेल्लू नामसे उल्लिखित है। यहांके आञ्जनेय मन्दिरमें १४७० शक और १५६७ ई०में उत्कीर्ण दो शिलाफलक देखे जाते हैं। ये फलक विजयनगरराज सदाशिवके राज्यकालमें किसी राजवंशीय द्वारा दिये गये थे। इसके सिवा ग्रामके अन्यान्य स्थानोंमें और भी कितनी शिलालिपियां हैं।

वेतङ्गा—बङ्गालके फरीदपुर जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० २३° उ० तथा देशा० ८९°५७´ पू०के मध्य मन्ना-नदीके किनारे अवस्थित है। यहां चावल और उड़द आदि अनाजोंका जोरों कारबार चलता है।

वेतण्ड (सं० पु०) १ हस्ती, हाथी। २ वह व्यक्ति जो ताड़नेके योग्य हो।

वेतन (सं० क्ली०) वी-तनन् (वीपतिभ्यां तनन्। उण् ३।१५०) १ कर्मदक्षिणा, वह धन जो किसीको कोई काम करनेके बदलेमें दिया जाय। २ वह धन जो बराबर कुछ निश्चित समय तक, प्रायः एक मास तक, काम करने पर मिले, तनखाह, दरमाहा। २ जीवनोपाय, जीवनका सहारा। ३ रौप्य, चाँदी।

वेतनभुज् (सं० त्रि०) वेतनभोगी, जो तनखाह ले कर काम करता हो।

शस्तं षड़गुलं पूर्वोक्तफलं तच्च क्षपने योज्यम्'
(मदनपाल)

वेतसाम्बु (सं० पु०) वेतसप्रधानोऽम्बुः । अम्लवेत ।

वेतसिनी (सं० स्त्री०) नदीभेद । (वायुपुराण)

वेतसी (सं० स्त्री०) वेतस ।

वेतसु (सं० पु०) असुरभेद । (ऋक् ६।२०।८ सायण)

वेतस्वत् (सं० त्रि०) वेतसाः सन्त्यत्र (कुमुदनड्वेतसेभ्यो ड्मतुप् । पा ४।२।८७) इति ड्मतुप्, मादुपधायाः, इति मस्य वत्वं (पा ८।२।६) । १ वेतसलताबहुल देश, यह देश जहां वेत बहुत होता है । २ नगरभेद ।
(पञ्चविंशब्रा० २१।२४।२०)

वेता (सं० स्त्री०) वेतन, तनखाह । (हलायुध ४।४३)

वेतागड़ि—बङ्गालके रङ्गपुर जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम । यह स्थानीय उत्पन्न द्रव्योंका वाणिज्यकेन्द्र है तथा २५° ५२´३०´´ और देशा० ८६° ११´ पू०के मध्य पड़ता है । यहां प्रधानतः चावल, तमाकू और पटसनकी आमदनी होती है ।

वेतागांव—अयोध्या प्रदेशके रायबरेली जिलेका एक ग्राम । यह भितरगांव नगरका एक अंश है । यहां अन्नदादेवीका मन्दिर है । प्रति वर्ष देवीमन्दिरके सामने एक मेला लगता है । भितरगांव देखो ।

वेताल (सं० पु०) १ द्वारपालक, संतरी । २ भूताधिष्ठित शव, वह शव जिस पर भूतोंने अधिकार कर लिया हो । ३ मल्लभेद । ४ शिवगणाधिप विशेष । ५ छप्पयके छठे भेदका नाम । इसमें ६५ गुरु और २२ लघु कुल ८७ वर्ण या १५२ मात्राएं अथवा ६५ गुरु और १८ लघु कुल ८३ वर्ण या १४८ मात्राएं होती हैं ।

वेताल—पुराणोक्त भूतयोनिविशेष । वेताल भूतोंमें प्रधान है । समाधिस्थलमें या जहां मुर्दा रखा जाता है वहीं वेतालका आगमन होता है । प्रवाद है, कि महाराज विक्रमादित्य किसी योगीके उभाड़नेसे प्रान्तरस्थित वृक्ष पर स्थापित राजा चन्द्रकेतुका शव लानेके लिये गये । वहीं वेतालके साथ राजाकी भेंट हुई । वेतालके कुछ प्रश्नोंका सदुत्तर देनेके कारण वेताल राजा पर बड़ा प्रसन्न हुआ और बोला, 'राजन्! विपद्में पड़ कर आप जहां भी मेरा स्मरण करेंगे वहीं मैं आपको सहायता करूंगा । इस घटनाके बादसे राजा तालवेताल सिद्ध हुए और उनको सहायतासे अनेक अलौकिक कार्य किये ।

वेतालकवच—धारणीय मन्त्रौषधभेद ।

वेतालग्रह (सं० पु०) भूतग्रह विशेष । वेतालग्रहाविष्टको गन्धमाल्यादिमें अत्यन्त आसक्ति होती है । ये सत्यवादी, कम्पयुक्त और बहुदोषदुष्ट होते हैं ।

वेतालपञ्चविंशति (पचीसी)—एक अति उपादेय संस्कृत ग्रन्थ । वेताल और राजा विक्रमादित्यके प्रश्न २५ विभिन्न गल्पाकारोंमें लिखे गये हैं, यही वेतालपचीसी नामसे मशहूर है । लोगोंका विश्वास है, कि जम्भलभट्टने पहले पहल इसकी रचना की । क्षेमेन्द्र (बृहत्कथामञ्जरीमें), वल्लभ, शिवदास और सोमदेव (कथासरित्सागरमें) इस गल्पकी स्वतन्त्र रचना कर गये हैं । भारतवर्षकी प्रायः सभी भाषाओंमें इस गल्पका अनुवाद हुआ है । वेङ्कटभट्टविरचित वेतालवीसी नामक एक और ग्रन्थ मिलता है ।

वेतालभट्ट (सं० पु०) राजा विक्रमादित्यके नवरत्नोंमेंसे एक । आप एक कवि कह कर परिचित हैं । नीतिप्रदीप नामक ग्रन्थ आप हीका बनाया हुआ था ।

वेतालभैरवरस—वैद्यकोक्त रसौषधविशेष । यह ज्वरादि रोगमें विशेष फलप्रद है ।

वेतालरस (सं० पु०) रसौषधविशेष । प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गन्धक, विष, मिर्च, हरिताल, समान भागमें मर्दन कर कज्जली करे और १ रत्तीकी गोली बनाये । इस गोलीका सेवन करनेसे साध्यासाध्य ज्वर और दुदारुण सन्निपात ज्वर नष्ट होता है ।

दांतमें दर्द होने, आंख आने, इन्द्रियोंके विचल होने तथा विषम अज्ञानावस्थामें यह वेतालरस शरीरमें लगाने या इससे स्नान करानेसे विशेष उपकार होता है ।
(रसेन्द्रसारस० ज्वरचि०)

वेतावाद—बम्बई प्रदेशके खान्देश जिलान्तर्गत भूसावाल उपविभागका एक नगर । यह अक्षा० २१° १४´ उ० तथा देशा० ७५° ५५´ पू०के मध्य अवस्थित है । यहां पहले उपविभागका सदर था । म्युनिस्पालिटी रहनेके कारण नगर खूब साफ सुथरा है ।

शस्तं वह्गुल्मं पूर्वोक्तफलं तथा व्यधने योज्यम्'

(भवप्रदत्त)

वेतसाम्ल (सं० पु०) वेतसप्रधानोऽम्लः। अम्लवेत।

वेतसिनी (सं० स्त्री०) नदीभेद। (वायुपुराण)

वेतसी (सं० स्त्री०) वेतस।

वेतसु (सं० पु०) असुरभेद। (ऋक् ६।२०।८ सायण)

वेतस्वत् (सं० त्रि०) वेतसाः सन्त्यत्र (कुमुदनड़वेतसेभ्यो ड्मतुप्। पा ४।२।८७) इति ड्मतुप्, मादुपधायाः, इति मस्य वत्वं (पा ८।२।९)। १ वेतसलताबहुल देश, वह देश जहां बेंत बहुत होता है। २ नगरभेद।

(पद्मविराजा० २११२४१२०)

वेता (सं० स्त्री०) वेतन, तनखाह। (हलायुध ४।४३)

वेतागढ़ि—बङ्गालके रङ्गपुर जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह स्थानीय उत्पन्न द्रव्योंका वाणिज्यकेन्द्र है तथा २५° ५२' उ० और देशा० ८९° ११' पू०के मध्य पड़ता है। यहां प्रधानतः चावल, तमाकू और पटसनकी आमदनी होती है।

वेतागांव—अयोध्या प्रदेशके रायबरेली जिलेका एक ग्राम। यह भितरगांव नगरका एक अंश है। यहां अन्नदादेवीका मन्दिर है। प्रति वर्ष देवीमन्दिरके सामने एक मेला लगता है। भितरगांव देखो।

वेताल (सं० पु०) १ द्वारपालक, संतरी। २ भूताधिष्ठित शव, वह शव जिस पर भूतोंने अधिकार कर लिया हो। ३ मल्लभेद। ४ शिवगणाधिप विशेष। ५ छप्पयके छठे भेदका नाम। इसमें ६५ गुरु और २२ लघु कुल ८७ वर्ण या १५२ मात्रायें अथवा ६५ गुरु और १८ लघु कुल ८३ वर्ण या १४८ मात्राएं होती हैं।

वेताल—पुराणोक्त भूतयोनिविशेष। वेताल भूतोंमें प्रधान है। समाधिस्थलमें या जहां मुर्दा रखा जाता है वहीं वेतालका आगमन होता है। प्रवाद है, कि महाराज विक्रमादित्य किसी योगीके उकसानेसे प्रान्तरस्थित वृक्ष पर स्थापित राजा चन्द्रकेतुका शव लानेके लिये गये। वहां वेतालके साथ राजाकी भेंट हुई। वेतालके कुछ प्रश्नोंका सदुत्तर देनेके कारण वेताल राजा पर बड़ा प्रसन्न हुआ और बोला, 'राजन्! विपद्में पड़ कर आप जहां भी मेरा स्मरण करेंगे वहीं मैं आपकी सहायता करूंगा। इस घटनाके बादसे राजा तालवेताल सिद्ध हुए और उनकी सहायतासे अनेक अलौकिक कार्य किये।

वेतालकवच—धारणीय मन्त्रौषधभेद।

वेतालग्रह (सं० पु०) भूतग्रह विशेष। वेतालग्रहाविष्टको गन्धमाल्यादिमें अत्यन्त आसक्ति होती है। वे सत्यवादी, कम्पयुक्त और बहुदोषदुष्ट होते हैं।

वेतालपञ्चविंशति (पचीसी)—एक अति उपादेय संस्कृत ग्रन्थ। वेताल और राजा विक्रमादित्यके प्रश्न २५ विभिन्न गल्पाकारोंमें लिखे गये हैं, वही वेतालपचीसी नामसे मशहूर है। लोगोंका विश्वास है, कि जम्भलभट्टने पहले पहल इसकी रचना की। क्षेमेन्द्र (वृहत्कथामञ्जरीमें), वल्लभ, शिवदास और सोमदेव (कथासरित्सागरमें) इस गल्पकी स्वतन्त्र रचना कर गये हैं। भारतवर्षकी प्रायः सभी भाषाओंमें इस गल्पका अनुवाद हुआ है। वेङ्कटभट्टविरचित वेतालवीसी नामक एक और ग्रन्थ मिलता है।

वेतालभट्ट (सं० पु०) राजा विक्रमादित्यके नवरत्नोंमेंसे एक। आप एक कवि कह कर परिचित हैं। नीतिप्रदीप नामक ग्रन्थ आप हीका बनाया हुआ था।

वेतालभैरवरस—वैद्यकोक्त रसौषधविशेष। यह ज्वरादि रोगमें विशेष फलप्रद है।

वेतालरस (सं० पु०) रसौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गन्धक, विष, मिर्च, हरिताल, समान भागमें मर्दन कर कज्जली करे और १ रत्तीकी गोली बनाये। इस गोलीका सेवन करनेसे साध्यासाध्य ज्वर और सुदारुण सन्निपात ज्वर नष्ट होता है।

दांतमें दर्द होने, आंख आने, इन्द्रियोंके विचल होने तथा विषम अज्ञानावस्थामें यह वेतालरस शरीरमें लगाने या इससे स्नान करानेसे विशेष उपकार होता है।

(रसेन्द्रसारस० ज्वरचि०)

वेतावाद—बम्बई प्रदेशके खान्देश जिलान्तर्गत भूसावाल उपविभागका एक नगर। यह अक्षा० २१° १४' उ० तथा देशा० ७५° ५५' पू०के मध्य अवस्थित है। यहां पहले उपविभागका सदर था। म्युनिस्पलिटी रहनेके कारण नगर खूब साफ सुथरा है।

आदि बनाये जाते हैं। नागा लोग बेंतके छिलकोंको तरह तरहके रंगोंसे रंगाते और उसीको हाथ और पैरमें अलङ्कार स्वरूप पहनते हैं। नागा, कुकी आदि असभ्य जातियां तथा प्राचीन बङ्गालकी ढाली सेना बेंतका बना हुआ ढाल व्यवहार करती थी। बेंतके ऊपरकी छाल अलग कर भीतरमें जो गूदा या तन्तुमय दण्ड रहता है उससे शीतप्रधान देशोंमें एक तरहकी चटाई बनती है। इन सब कारणोंसे बेंत पण्यद्रव्यरूपमें नाना स्थानोंमें भेजे जाते हैं। बेंतका अग्रदण्ड तीता और पका फल खट्टा होता है।

२ असुरविशेष, वेत्रासुर।

वेत्रक (सं० पु०) रामशर, सरपत।

वेत्रकार (सं० पु०) वेत्र द्वारा द्रव्य प्रस्तुतकारी, वह जो बेंतके सामान बनाता हो। (राम० २।६०।२६)

वेत्रकीय (सं० त्रि०) वेत्र-छ (नडादीनां कुक् च। पा ४।२।९१) इति कुक् च। वेत्रसमूहयुक्त देशादि, वह देश या स्थान जहां बेंतकी अधिकता है। यह स्थान शाहाबाद जिलेमें अवस्थित है। अभी यह बिहुता कहलाता है।

वेत्रकूट—पुराणानुसार हिमालयकी एक चोटीका नाम।

वेत्रगङ्गा—हिमगिरिपादसे निकली हुई एक नदीका नाम। (हिम० ख० ४५।२६)

वेत्रग्रहण (सं० क्ली०) १ दण्डधारण। २ दौवारिकत्व। (रघु ६।२६)

वेत्रग्राम—बङ्गालके चन्द्रद्वीपके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। (भविष्य ब्रह्मख० ११।१८)

वेत्रधर (सं० पु०) वेत्रस्य धरः। १ द्वारपाल, संतरी। २ यष्टिधारक, लठैत, छड़ीदार।

वेत्रधारक (सं० पु०) वेत्रस्य धारकः। द्वारपाल, संतरी।

वेत्रनगर—चम्पारणके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। (भविष्य ब्रह्मख० ४१।४६) उक्त ग्रन्थमें यहांके राजवंशका परिचय है। (ब्रह्मख० ४१।५७)

वेत्रमूला (सं० स्त्री०) मयशिखा, शंखिनी।

वेत्रवत् (सं० त्रि०) वेत्र अस्त्यर्थे मतुप्-मस्य वः। वेत्रविशिष्ट, वेत्रयुक्त।

वेत्रवती (सं० स्त्री०) नदीविशेष। यह नदी मालवदेशसे निकल कर कालपी नामक नगरमें यमुनानदीके साथ मिली है। (मार्कण्डेयपु० ५७।२०)

इसका वर्त्तमान नाम बेतवा नदी है। यह अक्षा० २२° ५´ से २५° ५५´ उ० तथा देशा० ७७° ४०´ से ८०° १६´ पू०के मध्य बुन्देलखण्ड राज्यमें बहती है। मध्यभारतको भूपाल राजधानीसे ११० मील दक्षिणमें अवस्थित पड़े हुए से निकल कर दक्षिण-पूर्वको ओर २० मील तक बहती हुई शतपुरमें आई है। पीछे उत्तर-पूर्व गतिसे ३५ मील प्रवाहित हो ग्वालियरराज्य अतिक्रम कर ललितपुर, झांसी और हमीरपुर जिलेमें चली गई है। इसके बाद ३६० मीलका रास्ता तै कर नगरसे ३ मील दक्षिण यमुना नदीमें मिली है। यमुना, दशान, फोलाद, पाथन और प्रधान् नदी नामकी शाखायें इसके कलेवरको पुष्ट करती हैं। उत्पत्तिस्थानसे वेत्रवती नदी पहले विन्ध्यगिरिके बालुकामय प्रस्तरखण्डको धोती हुई झांसी जिलेमें दानेदार पत्थरोंके ऊपर बह गई है।

निमाच, कानपुर और गुणासे इस नदीके ऊपरसे एक रास्ता सागरमें, झांसीसे नन्दगांवमें और बांदासे कालपीमें चला गया है। उन सब स्थानोंमें नदीको पार करना असंभव और विपज्जनक है। ग्रीष्म ऋतुमें पहाड़ी नदियोंमें प्रायः जल नहीं रहता। यह सूक्ष्म जलरेखा जब पहाड़ी देशका परित्याग कर समतल भूमिमें आती है, तब उसके जलका वेग प्रति सेकेण्डमें २ लाख घनफुट होता है। अत्यन्त बाढ़के समय यह वेग प्रति सेकेण्डमें ५ लाख फुट हो जाता है। झांसी जिलेमें इस नदीसे एक नहर काटी गई है।

२ वेत्रासुरकी माता। (वराहपुराण)

वेत्रराज्य—जनपदभेद। बेतनगर देखो।

वेत्रशङ्कुपथ—जनपदभेद। (मत्स्यपुराण १२१।५६)

वेत्रहन् (सं० पु०) वेत्रं हतवान्, हन-क्विप्। इन्द्र। (अमर)

वेत्रावती (सं० स्त्री०) वेत्रवती नदी। इस नदीका जल मधुर, कान्तिप्रद, पुष्टिकारक, बलकर, पथ्य और पाचन है। (राजनि०)

वेत्रासन (सं० क्ली०) वेत्रस्यासनं। वेत्रनिर्मित आसन, बेंतका बना हुआ किसी प्रकारका आसन। पर्याय—आसन्दी।

आदि बनाये जाते हैं। नागा लोग वेंतके छिलकोंको तरह तरहके रंगोंसे रंगाते और उसीको हाथ और पैरमें अलङ्कार स्वरूप पहनते हैं। नागा, कुकी आदि असभ्य जातियां तथा प्राचीन वङ्गालको ढाली सेना वेंतका बना हुआ ढाल व्यवहार करती थी। वेंतके ऊपरको छाल अलग कर भीतरमें जो गूदा या तन्तुमय दण्ड रहता है उससे शीतप्रधान देशोंमें एक तरहकी चटाई बनती है। इन सब कारणोंसे वेंत पण्यद्रव्यरूपमें नाना स्थानोंमें भेजे जाते हैं। वेंतका अग्रदण्ड तीता और पका फल खट्टा होता है।

२ असुरविशेष, वेत्रासुर।

वेतक (सं० पु०) रामशर, सरपत।

वेत्रकार (सं० पु०) वेत्र द्वारा द्रव्य प्रस्तुतकारी, वह जो वेंतके सामान बनाता हो। (राम० २।८०।१६)

वेत्रकीय (सं० त्रि०) वेत्र-छ (नड़ादीनां कुक् च। पा ४।२।६१) इति कुक् च। वेत्रसमूहयुक्त देशादि, वह देश या स्थान जहां वेंतकी अधिकता है। यह स्थान शाहाबाद जिलेमें अवस्थित है। अभी यह विहिता कहलाता है।

वेत्रकूट—पुराणानुसार हिमालयकी एक चोटीका नाम।

वेत्रगङ्गा—हिमगिरिपादसे निकली हुई एक नदीका नाम। (हिम० ख० ४५।३६)

वेत्रग्रहण (सं० क्ली०) १ दण्डधारण। २ दौवारिकत्व। (रघु ६।२६)

वेत्रग्राम—वङ्गालके चन्द्रद्वीपके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। (भविष्य ब्रह्मख० ११।१८)

वेत्रधर (सं० पु०) वेत्रस्य धरः। १ द्वारपाल, संतरी। २ यष्टि धारक, लठैत, लठबंद।

वेत्रधारक (सं० पु०) वेत्रस्य धारकः। द्वारपाल, संतरी।

वेत्रनगर—कम्पारण्यके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। (भविष्य ब्रह्मख० ४१।४६) उक्त ग्रन्थमें यहांके राजवंशका परिचय है। (ब्रह्मख० ४३।८७)

वेत्रमूला (सं० स्त्री०) वर्मासिका, शांखिनी।

वेत्रवत् (सं० त्रि०) वेत्र अस्त्यर्थे मतुप्-मस्य वः। वेत्रविशिष्ट, वेत्रयुक्त।

वेत्रवती (सं० स्त्री०) नदीविशेष। यह नदी मालवदेशसे निकल कर कालञ्जी नामक नगरमें यमुनानदीके साथ मिली है। (मार्कण्डेयपु० ५७।२०)

इसका वर्त्तमान-नाम वेतवा नदी है। यह अक्षा० २२° ५' से २५° ५५' उ० तथा देशा० ७७° ४०' से ८०° १६' पू०के मध्य बुन्देलखण्ड राज्यमें बहती है। मध्यभारतकी भूपाल राजधानीसे ११० मील दक्षिणमें अवस्थित चट्टानसे निकल कर दक्षिण-पूर्वकी ओर २० मील तक बहती हुई शतपुरमें आई है। पीछे उत्तर-पूर्व गतिसे ३५ मील प्रवाहित हो ग्वालियरराज्य अतिक्रम कर ललितपुर, झांसी और हमीरपुर जिलेमें चली गई है। इसके बाद ३६० मीलका रास्ता तै कर नगरसे ३ मील दक्षिण यमुना नदीमें मिली है। यमुना, दशान, कोलाहु, पावन और महान् नदी नामकी शाखायें इसके कलेवरको पुष्ट करती हैं। उत्पत्तिस्थानसे वेत्रवती नदी पहले विन्ध्यगिरिके बालुकामय प्रस्तरखण्डको धोती हुई झांसी जिलेमें दानेदार पत्थरोंके ऊपर बह गई है।

निमाच, कानपुर और गुनासे इस नदीके ऊपरसे एक रास्ता सागरमें, झांसीसे नन्दगांवमें और बांदासे काल्पीमें चला गया है। उन सब स्थानोंमें नदीको पार करना असम्भव और विपज्जनक है। ग्रीष्म ऋतुमें पहाड़ी नदियोंमें प्रायः जल नहीं रहता। यह सूक्ष्म जलरेखा जब पहाड़ी देशका परित्याग कर समतल भूमिमें आती है, तब उसके जलका वेग प्रति सेकेण्डमें २ लाख घनफुट होता है। अत्यन्त बाढ़के समय यह वेग प्रति सेकेण्डमें ५ लाख फुट हो जाता है। झांसी जिलेमें इस नदीसे एक नहर काटी गई है।

२ वेत्रासुरकी माता। (वराहपुराण)

वेत्रराज्य—जनपदभेद। वेत्रनगर देश।

वेत्रशङ्कुपथ—जनपदभेद। (मत्स्यपुराण १२१।५६)

वेत्रहन् (सं० पु०) वेत्रं हतवान्, हन-क्विप्। इन्द्र। (अमर)

वेत्रावती (सं० स्त्री०) वेत्रवती नदी। इस नदीका जल मधुर, कान्तिप्रद, पुष्टिकारक, बलकर, वृष्य और पावन है। (राजनि०)

वेत्रासन (सं० क्ली०) वेत्रस्यासनं। वेत्रनिर्मित आसन, वेंतका बना हुआ किसी प्रकारका आसन। पर्याय—आसन्दी।

बेतुर—महिसुर राज्यके हुंदनगर तालुकान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह अक्षा० १४° १६´ ३० तथा देशा० ७५° पू०के मध्य अवस्थित है। किंवदन्ती यह है, कि १४वीं सदीमें यहां देवगिरिके यादव राजाओंकी राजधानी थी।

बेत्या——मध्यभारत एजेन्सीके बुन्देलखण्डके अन्तर्गत एक नदी। इसका प्राचीन नाम वेत्रवती है।

वेत्रवती देखो।

बेत्तृ (सं० त्रि०) वेत्तीति विद-तृच्। ज्ञाता, जाननेवाला।

बेत्र (सं० पु०) वी (गु-वृ-वी-पदीति। उण् ४।१६६) इति त्र। लताप्रधान वृक्ष, बेंत। पर्याय—वेत, योगिदण्ड, सुदण्ड, मृदुपर्वक। यह पांच प्रकारका है। गुण—शीतल, कषाय, मूत्र और पित्तहर। इसका अगला भाग वेताग्र कहलाता है। गुण—शीतल, रुचिकर, तिक्त, पित्त और कफनाशक। फलका गुण—वातपित्तनाशक और अम्ल।

इस सर्वजनप्रसिद्ध वृक्षको अंगरेजीमें Canes या Rattans कहते हैं। उद्भिद्विद्यामें इसको तालवृक्ष जाति (Calamus)में माना गया है। भिन्न भिन्न देशमें यह भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध है। यथा,—फरासी—Canne, roseau; Baton, Raton; जर्मनी—Rohrt, मलय रोतन; इटली—Canna, bastone, स्पेन—Canao, Junco de Indias, तामिल—पिरम्बुगम्, तैलगू—पेम्बु; पारस्य—बेद, गुजरात—नेतुर, संस्कृत—वेत्र; बङ्गाल—बेतु, बेत, बेत।

भारतीय द्वीपपुञ्ज, मलय प्रायोद्वीप, मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके अन्तर्गत भूभागमें तथा करमण्डल उपकूलमें, चट्टग्राम, श्रीहट्ट, आसाम और पूर्वबङ्गके वनोंमें तथा छोटे जंगलोंमें, हिमालय पर्वतके देहरादून प्रान्तमें नाना श्रेणीके बेत हुए जाते हैं। चीनदेशमें एक प्रकारका मोटा बेंत मिलता है जो व्यवसायके हिसाबसे 'नीना बेंत' नामसे प्रसिद्ध है। इसी प्रकार 'मलाका बेंत' भी अत्यन्त परिचित हुआ है। वाणिज्यके व्यवहारसे 'Dragon's blood' और 'Malacca' जातिका बेंत विशेष आदरणीय है।

इन लोगोंके देशमें 'कृष्ण बेंत' नामक एक जातिका बेंत है जिसका मध्यभाग पाचनादिमें व्यवहृत होता है।

इसके पत्ते बांसके पत्तोंके समान और कंटीले होते और उन्हींके सहारे यह लता ऊंचे ऊंचे पेड़ों पर चढ़ती है। इसके डंठल बहुत मजबूत और लचीले होते हैं और प्रायः छड़ियां, टोकरियां तथा इसी प्रकारके दूसरे सामान बनानेके काममें आते हैं। डंठलोंके ऊपरकी छाल कुर्सियां, मोटे पलंग आदि बुननेके काममें भी आती है। हमारे यहांके प्राचीन कवियों आदिका विश्वास था कि बेंत फूलता या फलता नहीं। पर वास्तवमें यह बात ठीक नहीं है। इसमें गुच्छोंमें एक प्रकारके छोटे छोटे फल लगते हैं जो खाए जाते हैं। इसकी अंखुए और कोमल पत्तियां भी तरकारीकी तरह खाई जाती हैं।

चट्टग्राम, ब्रह्म और भारतीय द्वीपपुञ्जमें बेंतका बहुत व्यवहार देखा जाता है। पर्वतगात्रस्थ नदीको पार करनेके लिये जगह जगह केवल बेंत या बांसका बना हुआ पुल है। बेंतके छिलकेसे बनी हुई रस्सी श्रीहट्ट, खोसिया, चट्टग्राम और महाराष्ट्रके उपकूलवर्ती देशोंमें व्यवहृत होती है। जहां खारे जलके कारण लौहवन्धनी द्वारा नावकी लकड़ी आपसमें नहीं जोड़ी जाती वहां बेंतके बन्धनसे नाव बनाई जाती है। मलक्काकी बड़ी बड़ी नावोंके एक मस्तूलसे दूसरे मस्तूल बांधनेकी रस्सी बेंत ही की होती है। मलका द्वीपमात्र C. Rudentum जातिके बेंतसे एक प्रकारका मोटा रस्सा बनाया जाता है। इससे स्टीमरके साथ मोटी लकड़ी और बड़े बड़े पत्थर खींचे जाते हैं। उन मोटे रस्सोंसे कभी कभी जंगली हाथी भी बांधा जाता है।

मलक्काके वनभागमें नाना प्रकारका बेंत उत्पन्न होते देखा जाता है। करीब जातियां प्रायः १७ प्रकारके बेंतोंके नाम जानती हैं। जो सब बेंत लताकी तरह बढ़ते हैं उनमें Calamus Verus प्रायः १०० फुट तक, C. Oblongus ३००से ४०० फुट, C. Rudentum ५०० फुटसे भी अधिक, Extensus ६०० फुट तक बढ़ती है। रम्फियसने अपने ग्रन्थमें १२०० फुट लंबे एक प्रकारके बेंतका उल्लेख किया है।

यूरोपमें बेंतकी छड़ी, हण्टर, टोप, स्त्रियोंकी टोपी, घोड़ेका साज, घरका असबाब, बच्चोंके खिलाड़

आदि बनाये जाते हैं। नागा लोग बेंतके छिलकोंको तरह तरहके रंगोंसे रंगाते और उसीको हाथ और पैरमें अलङ्कार स्वरूप पहनते हैं। नागा, कुकी आदि असभ्य जातियाँ तथा प्राचीन बङ्गालकी ढाली सेना बेंतका बना हुआ ढाल व्यवहार करती थी। बेंतके ऊपरकी छाल अलग कर भीतरमें जो गूदा या तन्तुमय दण्ड रहता है उससे शीतप्रधान देशोंमें एक तरहकी चटाई बनती है। इन सब कारणोंसे बेंत पण्यद्रव्यरूपमें नाना स्थानोंमें भेजे जाते हैं। बेंतका अग्रदण्ड तीता और पका फल खट्टा होता है।

२ असुरविशेष, वेत्रासुर।

वेत्रक (सं० पु०) रामशर, सरपत।

वेत्रकार (सं० पु०) वेत्र द्वारा द्रव्य प्रस्तुतकारी, वह जो बेंतके सामान बनाता हो। (राम० २।८०।२६)

वेत्रकीय (सं० त्रि०) वेत्र-छ (नडादीनां कुक् च। पा ४।२।९१) इति कुक् च। वेत्रसमूहयुक्त देशादि, वह देश या स्थान जहाँ बेंतकी अधिकता है। यह स्थान शाहाबाद जिलेमें अवस्थित है। अभी यह बिहटा कहलाता है।

वेत्रकूट—पुराणानुसार हिमालयकी एक चोटीका नाम।

वेत्रगङ्गा—हिमगिरिपादसे निकली हुई एक नदीका नाम। (हिम० ख० ४५।३६)

वेत्रग्रहण (सं० क्ली०) १ दण्डधारण। २ दौवारिकत्व। (रघु ६।२६)

वेत्रग्राम—बङ्गालके चन्द्रद्वीपके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। (भविष्य ब्रह्मख० १३।१८)

वेत्रधर (सं० पु०) वेत्रस्य धरः। १ द्वारपाल, संतरी। २ यष्टि धारक, लठैत, लठबंद।

वेत्रधारक (सं० पु०) वेत्रस्य धारकः। द्वारपाल, संतरी।

वेत्रनगर—चम्पारण्यके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। (भविष्य ब्रह्मख० ४१।४६) उक्त ग्रन्थमें यहांके राजवंशका परिचय है। (ब्रह्मख० ४३।८७)

वेत्रमूला (सं० स्त्री०) वनशिम्बा, शिम्बिनी।

वेत्रवत् (सं० त्रि०) वेत्र अस्त्यर्थे मतुप्-मस्य वः। वेत्रविशिष्ट, वेत्रयुक्त।

वेत्रवती (सं० स्त्री०) नदीविशेष। यह नदी मालवदेशसे निकल कर कालपी नामक नगरमें यमुनानदीके साथ मिली है। (मार्कण्डेयपु० ५७।२०)

इसका वर्त्तमान नाम वेतवा नदी है। यह अक्षा० २२° ५´ से २५° ५५´ उ० तथा देशा० ७७° ४०´ से ८०° १८´ पू०के मध्य बुन्देलखण्ड राज्यमें बहती है। मध्यभारतकी भूपाल राजधानीसे ११॥० मील दक्षिणमें अवस्थित बड़े हदसे निकल कर दक्षिण-पूर्वकी ओर २० मील तक बहती हुई शतपुरमें आई है। पीछे उत्तर-पूर्व गतिसे ३५ मील प्रवाहित हो ग्वालियरराज्य अतिक्रम कर ललितपुर, झांसी और हमीरपुर जिलेमें चली गई है। इसके बाद ३६० मीलका रास्ता तै कर नगरसे ३ मील दक्षिण यमुना नदीमें मिली है। यमुना, दशान, फोलाहु, पाधन और ब्रह्मन् नदी नामकी शाखायें इसके कलेवरको पुष्ट करती हैं। उत्पत्तिस्थानसे वेत्रवती नदी पहले विन्ध्यगिरिके बालुकामय प्रस्तरखण्डको धोती हुई झांसी जिलेमें दानेदार पत्थरोंके ऊपर बह गई है।

निमाच, कानपुर और गुणासे इस नदीके ऊपरसे एक रास्ता सागरमें, झांसीसे नन्दगांवमें और बांदासे कालपीमें चला गया है। उन सब स्थानोंमें नदीको पार करना असम्भव और विपज्जनक है। ग्रीष्म ऋतुमें पहाड़ी नदियोंमें प्रायः जल नहीं रहता। यह सूक्ष्म जलरेखा जब पहाड़ी देशका परित्याग कर समतल भूमिमें आती है, तब उसके जलका वेग प्रति सेकेण्डमें २ लाख घनफुट होता है। अत्यन्त बाढ़के समय यह वेग प्रति सेकेण्डमें ५ लाख फुट हो जाता है। झांसी जिलेमें इस नदीसे एक नहर काटी गई है।

२ वेत्रासुरकी माता। (वराहपुराण)

वेत्रराज्य—जनपदभेद। वेत्रनगर देखो।

वेत्रशङ्कुपथ—जनपदभेद। (मत्स्यपुराण १२१।५६)

वेत्रहन् (सं० पु०) वेत्रं हतवान्, हन-क्विप्। इन्द्र। (अमर)

वेत्रावती (सं० स्त्री०) वेत्रवती नदी। इस नदीका जल मधुर, कान्तिप्रद, पुष्टिकारक, बलकर, वृष्य और पावन है। (राजनि०)

वेत्रासन (सं० क्ली०) वेत्रस्यासनं। वेत्रनिर्मित आसन, बेंतका बना हुआ किसी प्रकारका आसन। पर्याय—आसन्दी।

वेत्रासुर (सं॰ पु॰) वेत्रवत्याकोऽसुरः। मध्यमपदलोपी असुर। इस असुरकी उत्पत्तिका विवरण इस प्रकार लिखा है—पूर्व समयमें सिन्धुद्वीप नामक एक प्रताप-शाली राजा थे। वरुणके अंशसे इनका जन्म हुआ था। उन्होंने एक ऐसे पुत्रके लिये तपस्या आरम्भ कर दी जो किसी समय इन्द्रका वध कर सके। जब वे घोरतर तपस्यामें नियुक्त थे, उस समय वेत्रवती नदी रमणीका रूप धारण कर वहां आई। राजाने उस स्त्रीको देख कर बड़े क्रोधसे कहा, 'तुम कौन हो? यहांसे चली जाओ, मेरी तपस्यामें बाधा न डालो।' वेत्रवतीने जवाब दिया, 'राजन्! मैं जलपति महात्मा वरुणकी पत्नी हूं। मेरा नाम वेत्रवती है। मैं आपको पानेके लिये यहां आई हूं, मुझे निराश न लौटावें। जो पुरुष कामिनियां और भजमाना स्त्रियोंका परित्याग करते हैं, वे पाप पुरुष कहलाते हैं तथा ब्रह्महत्याका उन्हें पाप लगता है।' राजाने नीतिमद् वाक्य सुन कर उसके साथ सहवास किया। इससे उसी समय वेत्र-वतीके गर्भसे बारह सूर्यकी तरह कान्तियुक्त, शक्तिमान् और तेजस्वी एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उस पुत्रका नाम वेत्रासुर रखा गया। यह प्राग्ज्योतिषपुरका अधिपति था। वेत्रासुरने पहले समस्त मनुष्यराजोंको जीत कर पीछे इन्द्र, अग्नि और यम आदिको पराजित किया। (वराहपु॰ देवोत्पत्तिनामाध्याय)

इसके बाद इन्द्रने उस असुरका वध किया।

वेत्रिक (सं॰ पु॰) १ महाभारतके अनुसार प्राचीनकाल-का एक जनपदका नाम। २ इस जनपदका निवासी। ३ वेंतधारी, द्वारपाल, संतरी।

वेत्री (सं॰ पु॰) वेत्रोऽस्त्यस्येति वेत्र-इनि। १ द्वार-पालक, संतरी। २ चोबदार, असा बरदार।

वेत्रीय (सं॰ त्रि॰) १ वेंत सम्बन्धीय, वेंतका। (पु॰) २ ब्रह्मभूमिके अन्तर्गत ग्रामभेद। यह सिन्धुनदीके किनारे रमपूरसे ७ कोस पश्चिममें अवस्थित है। यहां सर्वमङ्गला देवीमूर्ति है।

वेनिसा—वेनिस देखो।

वेदिसिद् (सं॰ अव्य॰) मानभेद।

वेद (सं॰ पु॰) विद् ज्ञान वा विद-घञ्। १ विष्णु। २ कुश। ३ वित्त। ४ यज्ञाङ्ग। ५ धर्म ब्रह्मप्रतिपादक अपौरुषेय वाक्य। (वेदान्त) ६ [illegible] (न्यायशास्त्र) ७ ब्रह्मप्रतिपादक धर्म-ज्ञापक शास्त्र। (पुराण) पर्याय—श्रुति, आम्नाय, छन्दः, ब्रह्म, निगम, प्रवचन। (जटाधर)

अमरकोषके अनुसार इसके तीन पर्याय हैं—श्रुति, वेद, आम्नाय। 'श्रूयते धर्मोऽनया इत्यतो श्रुतिरिति श्रुतिः। आम्नायते उपदिश्यते धर्मोऽनेनेति आम्नायः।'

तथा शब्दोंमें फिर पृथक् ऋक्, साम और यजु इन तीन वेदोंका अर्थ समझा जाता है। यथा—

"श्रियामृक्सामयजुषी इति वेदास्त्रयस्त्रयी।" (अमर)

किन्तु शतपथ-ब्राह्मणमें लिखा है—

"त्रयी वै विद्या ऋचो यजूंषि सामानि ॥" (४।६।७।१)

त्रयी।

कुछ लोगोंका कहना है, वेद रचनामें गद्य, पद्य और गान ये तीन तरहकी प्रणाली अवलम्बित है, इससे इसका नाम "त्रयी" है। जो सब अंश पद्यमें रचे गये थे, पुराकालमें उनको ऋक्, जो अंश गद्यमें रचा गया था उनको यजुः और जो सब रचनायें गानोंमें हुईं, उनका साम कहा गया। अब गद्य, पद्य और गानातिरिक्त रचनाकी दूसरी कोई प्रणाली नहीं, तब ऋक्संहितामें सामसंहिताका अथवा अथर्वसंहितामें इन ऋक्, यजु और सामके सिवा दूसरा किसी तरहका वेदमन्त्र नहीं है। गद्य, पद्य और गानके अतिरिक्त दूसरी किसी तरहकी रचनाप्रणाली पहले भी न थी और अब भी नहीं है। ऋक्, यजु और साम ये तीन नाम केवल वैदिकी मन्त्ररचनाप्रणालीके नामान्तर हैं। भगवान् जैमिनीकी उक्ति ही इस विषयका प्रमाण है। यथा—

"तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था। गीतिषु सामाख्या शेषे यजुः शब्दः।"

(मीमांसादर्शन २।१।३५, ३६, ३७)

अर्थात् इन तीनों वेदोंके मध्य जहां अर्थवश पाद-व्यवस्था होती है, उसे ऋक्, जहां जहां गान है, उसको साम और अवशिष्टको यजुः कहते हैं। माधवाचार्यने न्यायमालाविस्तर नामक ग्रन्थमें इस विषयकी सविस्तार आलोचना की है।

मन्त्रोंकी रचनाके नियमानुसार ही त्रयी नामकी उत्पत्ति हुई है। सुतरां प्रचलित वेदके मन्त्रभागको ही त्रयी कहा गया है। ब्राह्मणभाग मुख्य अर्थमें त्रयी नहीं है। तैत्तिरीयब्राह्मणमें लिखा गया है—

"अहे बुध्नीय मन्त्र मे गोपाय य मृषय स्त्रैविदा विदुः। ऋचः सामानि यजुंषि।" (१।२।१।२६)

माधवाचार्यने अधिकरणमालाके उद्धृतांशकी व्याख्या कर प्रमाणित किया है,—मन्त्रभाग ही त्रयी शब्दका वाच्य होने पर भी मन्त्रभागानुगत ब्राह्मणांश व्यवहारिक भावसे त्रयीशब्द वाच्य है। ब्राह्मणभाग भी वेदसंज्ञासे संज्ञित हुआ है। क्योंकि, संज्ञा चिर दिन ही व्यवहारनियमके अधीन है। किन्तु सच पूछिये, तो मन्त्रभागका ही वेदत्व, श्रुतित्व, आम्नायत्व या त्रयीत्व मुख्यार्थ सिद्ध है। ब्राह्मणभागको वेद या त्रयी कहा जाता है सही; किन्तु वेदसंज्ञाधिकारमें इसका प्राधान्य नहीं है। त्रयी ही वेद है। यह वेदका अर्थान्तर नहीं है।

वेद शब्दकी व्युत्पत्ति।

प्राचीन पण्डितोंने बहुत स्थलोंमें बहुत तरहसे वेदशब्दका व्युत्पत्त्यर्थ प्रकाश किया है। कुछ लोगोंका कहना है, "विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते वा एभि धर्मादि पुरुषार्था इति वेदाः।" अर्थात् इसके द्वारा धर्मादि पुरुषार्थ समूह जाना जाता या लाभ किया जाता है, इसीसे ये वेद नामसे ख्यात हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान और आगमविषय समूहमें जो अन्तिम या चरम स्थानीय है वही सर्वविषय मूल वेदशास्त्र है। अथवा "समयबलेन सम्यक् परोक्षानुभवसाधनं वेदः।" अथवा "अपौरुषेयं वाक्यं वेदः"। सायणाचार्य ऋग्वेदके भाष्यमें वेदकी ये सब निरुक्तियां लिख गये हैं। यहां और भी एक व्युत्पत्तिका उल्लेख किया जाता है। यथा—

"इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो वेदयति स वेदः।" अर्थात् जिससे इष्ट प्राप्ति और अनिष्ट परिहारके सम्बन्धका अलौकिक उपाय ज्ञान जाये, वही वेद है; यह भी सायणोक्त व्युत्पत्ति है। सायण और भी कहते हैं—

"प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एवं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥"

अर्थात् प्रत्यक्ष या अनुमान द्वारा जो उपाय नहीं जाना जाता, वेद द्वारा वह उपाय लाभ किया जाता है। यही वेदका वेदत्व है।

आपस्तम्ब यज्ञपरिभाषासूत्रमें वेदके स्वरूप सम्बन्धमें कहते हैं—"मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्" अर्थात् मन्त्र और ब्राह्मण ये दोनों ही वेद नामसे अभिहित होते हैं। सर्ववेदभाष्यकार सायणाचार्यने और भी आपस्तम्बकी उक्तिकी प्रतिध्वनि कर कहा है—

"मन्त्रब्राह्मणात्मकशब्दराशिर्वेदः।"

अर्थात् मन्त्रब्राह्मणात्मक शब्दराशि ही वेद है। सर्वानुक्रमणीवृत्तिकी भूमिकामें षड्गुरुशिष्यने लिखा है—

"मन्त्रब्राह्मणयो राहुर्वेद शब्दं महर्षयः।
विनियोक्तव्यरूपो यः ॥ मन्त्र इति चक्ष्यते ॥
विधिस्तुतिकरं शेषं ब्राह्मणं कथयन्ति हि।
विनियोक्तव्यरूपश्च त्रिविधं सम्प्रदर्श्यते ॥
ऋक् यजुःसामरूपेण मन्त्रो वेदचतुष्टये।
अहे बुध्नीय मन्त्रं मे गोपायेत्यभिधीयते ॥"

इसके बाद एक टीका है, यथा—

"ऋक् पादबन्धो गीतस्तु साम गद्यं यजुर्मतम्:"

ग्रन्थकारने इसके बाद लिखा है—

"चतुर्ष्वपि हि वेदेषु त्रिधैव विनियुज्यते।
वेदेरशून्य इत्यादौ मन्त्रे त्रैविध्यमुच्यते ॥
सर्वमग्नेति (यं यं २२) सूक्तेऽपि चतुर्भिरिति निर्णयः
प्रस्तुतर्कादिकाचित्स्यौ यामन्त्रे पृथकारणं।
ऋग्रूप मन्त्र बाहुल्याद् ऋग्वेदः स्यात् तथेतरौ।
शान्तिपुष्ट्यादिकर्मसवर्या अथर्व विधया।
ऋचाञ्च यजुषां तूर्यो बाहुल्येन विधायकः ॥"

इसका अर्थ यही है, कि मन्त्र और ब्राह्मण इन दोनोंको ही महर्षिगण वेद शब्दसे अभिहित कर गये हैं। जो विनियोगका विषय है, वही मन्त्र तथा जो विधि और स्तुतिकर है वह ब्राह्मण है। विनियोक्तव्यरूप मन्त्र तीन हैं—ऋक्, साम और यजुः। अर्थात् वेदचतुष्टयमें जो जो स्थल पद्यबद्ध या पद्यमय हैं वे सभी ऋक् हैं, जो

जो छन्दः गीतरूप है, उस रूपमें साम, दूसरे जो गद्यरूप हैं उसे यजुः समझना चाहिये। वेदोंके तीन प्रकारको समझाते हैं। मन्त्रोंके विभागकी मूलव्याख्या यह है, कि जिसमें पद्यांश अधिक है, वह ऋक्, जिसमें गानका अंश अधिक है, वह साम और जिसमें गद्यांश अधिक है, वह यजुर्वेद नामसे अभिहित है।

कुछ लोगोंका कहना है, कि प्राचीन कालमें वेद-शब्द विद्या शब्दके दूसरे पर्यायरूपसे व्यवहृत होता था। सब मन्त्र सर्वविद्याके निधान हैं। वे मन्त्र तीन प्रणालियोंमें रचे जाते थे, इससे वेद त्रयी नामसे ख्यात होते थे। मन्त्रसंकलनकालके समयमें त्रिविध प्रणालीसे रचित मन्त्र त्रयी नामसे ख्यात हुए। ब्राह्मणरचनाके समय ब्राह्मणने भी वेद या त्रयी नाम प्राप्त किया। सूत्रकालमें मन्त्र और ब्राह्मण ये दोनों ही वेद या त्रयी संज्ञासे संज्ञित होते थे। इससे तीन मतकी सृष्टि हुई।

(१) मन्त्र और ब्राह्मण—इन दोनोंके वेदत्व।

(२) ब्राह्मण ग्रन्थोंके ही मुख्यभावसे वेदत्व।

(३) सर्वविद्याविधान मन्त्रोंका वेदत्व।

बहुत प्राचीन कालमें मंत्र ही वेद नामसे विख्यात थे।

वेद शब्दका प्राचीनत्व।

शुक्लयजुर्वेदकी माध्यन्दिना शाखामें इसका उल्लेख है, कि वेद शब्द त्रयी शब्दार्थवाचक है। जैसे—

"वेदेन रूपे व्यपिबत् सुतासुतौ प्रजापतिः।" (१९।७८)

यहां महीधरने वेद शब्दके दो अर्थ लिये हैं—एक सर्वज्ञान और दूसरा त्रयीविद्या। शेषोक्त अर्थ ही सुसङ्गत है। पाणिनिके उक्थादिगणमें भी (पा ४।२।६०) वेद शब्द पठित हुआ है। वृषादिगणमें भी (पा ६।१।२०३) वेद शब्द है। इन सब स्थानोंमें भी त्रयी अर्थमें वेद शब्द व्यवहृत हुआ है। तैत्तिरीय-संहितामें भी त्रयी शब्दार्थवाचक वेद शब्दका उल्लेख देखा जाता है। यथा—"यविन् वेदा अङ्गिरा विश्वरूपाणीमौद्गेयानि ऋचांसि प्रापुवन्" (४।३।९६) अब संहिताओंमें ही त्रयी शब्दार्थवाचक वेद शब्दका उल्लेख है।

इसके ब्राह्मण-ग्रंथोंमें "त्रयी" अर्थमें ही वेद शब्दका व्यवहार देखा जाता है। षड्‌विंश-ब्राह्मणमें "त्रयो वेदा अशृज्यन्त ऋग्वेद एवाग्नेरजायत यजुर्वेदो वायोः सामवेद आदित्यात् तान् वेदानभ्यतपत्" (ऐतरेय ब्राह्मण ५।३२।१) तैत्तिरीय-ब्राह्मणके तृतीय काण्डमें (१०।११।३) उक्त अर्थमें वेद शब्दका उल्लेख है।

छान्दोग्य ब्राह्मणमें भी वेद शब्दका उल्लेख दिखाई देता है—"स होवाचर्ग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदं आथर्वणं चतुर्थम्" (८।१।२) अथर्व ब्राह्मणमें भी वेद शब्द दिखाई देता है। यथा—"इमे सर्वे वेदाः" (गोपथब्राह्मण १।२।१) इस तरह सब ब्राह्मण-ग्रंथोंमें ही त्रयी अर्थवाचक वेद शब्द दिखाई देता है।

आपस्तम्बादि सूत्रकारोंके समय ब्राह्मण-ग्रंथादि भी वेद नामसे अभिहित होना आरम्भ हुआ। जैसे—"मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्" (यज्ञ० परि० ३८ सू०)। इसी समयसे धर्मसंहिता ग्रंथोंमें ही मंत्र और ब्राह्मण वेदसंज्ञासे संज्ञित होते आ रहे हैं।

श्रुति।

इसके पहले त्रयी शब्दकी आलोचना की गई है। वेद शब्दकी भी आलोचना हुई। अब श्रुति शब्दकी कुछ आलोचना की जाती है। श्रुति वेद शब्दका ही नामान्तर है। श्रवणात् श्रुतिः। जो श्रुत होता आ रहा है, वही श्रुति है। श्रुति शब्द श्रुधातुनिष्पन्न है। श्रु + क्तिन् = श्रुति। वेद सदासे गुरुपरम्पराके अनुसार श्रुत होता आ रहा है। कोई भी आज तक इसके एक मन्त्रके प्रणयनकालके निर्णय करनेमें समर्थ नहीं हुआ। इसीलिये वेदको अनादि और अपौरुषेय कहा जाता है।

वेदार्थवाचक श्रुति शब्द किस समयसे प्राचीन संस्कृत साहित्यमें व्यवहृत हो रहा है, उसका स्पष्ट इतिहास नहीं मिलता। किन्तु यह निश्चित है, कि ब्राह्मणकालमें इस अर्थमें श्रुति शब्दका प्रयोग दिखाई नहीं देता था। मन्त्रसंहितामें भी वेदके अर्थमें श्रुति शब्दका प्रयोग दिखाई नहीं देता है। वैदिक साहित्य कालका विभाग करके निम्नलिखित भागोंमें श्रेणी-विभाग किया जाता है। यथा—

प्रथमस्तर—मन्त्रकाल।

द्वितीयतः—यज्ञादिमें मंत्रका व्यवहारकाल।

तृतीयतः—तादृश प्रवादका श्रुतिकाल।

चतुर्थतः—गाथाकाल।

पञ्चमतः—ब्राह्मणकाल, गाथामूल बहुल ब्राह्मण-वचन।

ऐतरेय-ब्राह्मणमें इस श्रेणी-विभागका बीजस्वरूप प्रमाण मिलता है। यथा—

"तस्मादपत्नीकोऽप्यग्निहोत्रमाहरेत्। तदेषाभियज्ञगाथा गीयते,—यजेत् सौत्रामण्या अपत्नीकोऽप्यसोमपः। मातापितृभ्यामनृणार्थमिति वचनाच्छ्रुतिः इति। तस्मात् सौम्यं याजयेत्।" (ऐ०ब्रा० ७।४।८)

ब्राह्मणकालान्तरमें मंत्र और ब्राह्मण इन दोनोंके प्रवाद अर्थमें श्रुति शब्दका व्यवहार दिखाई देता है। यास्क अपने निरुक्तग्रन्थमें लिखते हैं—

"सैव' धियाश्रुतिमतिबुद्धिः।" (१३।२।१३)

इसके बाद हम मनुस्मृतिमें वेदार्थश्रुति शब्दका प्रयोग देखते हैं, यथा—

"श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् हि मानवः।"

(मनुस० २।९)

मनुने और भी स्पष्ट भाषामें लिखा है—"श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयः।" (मनु २।१०) मनुका और भी कहना है—

"उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा।
सर्वथा वर्त्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः॥"

(मनु २।१५)

दर्शनादि शास्त्रोंमें "अनुश्रव" शब्दका प्रयोग है। वह भी वेदार्थवाचक श्रुति शब्दमूलक है। यथा—सांख्यकारिकामें—

"दृष्टवदानुश्रविकः"

इसकी टीकामें वाचस्पतिमिश्र महाशयने लिखा है—

"गुरुमुखादनुश्रूयते इत्यनुश्रवः वेदः इति" अर्थात् गुरुके मुखसे अनुश्रुत हुआ, इसलिये इस विद्याका नाम अनुश्रव अर्थात् वेद है।

लौकिक प्रवादवाक्य भी "श्रुति" आख्यासे अभिहित होता है।

१। द्वे चास्य भार्ये गर्भिण्यौ बभूवतुरिति श्रुतिः।
(रामायण १।११०।१८)

२। एष मे कृष्ण सन्देशः श्रुतिभिः ख्यातिमेष्यति।
(महाभारत १।५०)

३। इति सत्यवती श्रुतिः।
(श्रीमद्भागवत ४।२१।४५)

इसी तरह बहुत स्थलोंमें श्रुतिशब्दका प्रयोग दिखाई देता है। इसका फलितार्थ यह है, कि जिन सब वाक्योंका प्रचारकाल निर्णीत नहीं होता, किस समय किसने कहा है, यह भी नहीं मालूम होता, फिर भी, यावत् प्रामाणिकरूपसे गुरुपरम्परासे उपदेशरूपमें चले आ रहे हैं, वे ही वैदिक या तान्त्रिक वचन श्रुति नामसे अभिहित होते हैं।

इसीलिये मनुकी टीकामें कुल्लूकने उद्धृत किया है।—

"वैदिकी तान्त्रिकी चैव द्विविधा श्रुति कीर्तिताः।"

एतद्देशीय स्मृतिनिबन्धमें ऐसे अनेक विधान दिखाई देते हैं, कि साक्षात् सम्बन्धमें उन सब विधानोंके वैदिक प्रमाण नहीं मिलते। किन्तु ऐसा न होने पर भी वे सब विधान श्रुतिमूलक हैं, इसलिये इनको "स्मृति" कहा जाता है। जिन सब प्रामाणिक श्रुति-वचनोंके मूलस्वरूप साक्षात् वैदिकवचन नहीं मिलते, उनके मूलमें वैदिकवचन प्रकल्पित होते हैं। वे कल्पित वचन भी श्रुति कह कर रघुनन्दन आदिने ग्रहण किये हैं। वेदके मन्त्रभागका श्रुतित्व सर्ववादिसम्मत है—ब्राह्मणभागका श्रुतित्व मन्वादि स्मृतिनिबन्धकारों द्वारा स्वीकृत है। प्रवादवाक्य और लौकिक वाक्यका श्रुतित्व व्यावहारिक मात्र है। रघुनन्दन प्रभृति बहुतेरे कल्पित श्रुतिके द्रष्टा और समर्थक हैं।

आम्नाय।

वेद शब्दका और एक पर्याय है—"आम्नाय"। आम्नाय शब्दका दूसरा एक प्रति शब्द "समाम्नाय" है। नागेशभट्टने लघुशब्देन्दुशेखरमें लिखा है—"आम्नायसमाम्नायशब्दौ वेदे एव रूढ़ौ" अर्थात् आम्नाय और समाम्नाय ये दोनों शब्द रूढ़ भावसे 'वेद' शब्दार्थवाचक हैं। सूत्रकालसे मन्त्र और ब्राह्मण वेद शब्दके वाच्य हैं। भगवान् जैमिनीकृत मीमांसादर्शनके बहुत स्थानोंमें वेदार्थमें आम्नाय शब्दका प्रयोग दिखाई देता है। यथा—

१। "आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम्।" (१।२।१)

२। "उक्तं समाम्नायैदमर्थ्यम्।" (१।४।१)

वाजसनेय संहिताके प्रातिशाख्यसूत्रकी व्याख्यामें एक जगह लिखा है—"आम्नायो वेदः।"

अथर्ववेदीय कौशिकसूत्रमें और भी स्पष्टतर प्रमाण पाया है—यथा—

"आम्नाय पुनर्मन्त्राश्च ब्राह्मणानि च"

यास्कीय निरुक्तमें "आम्नाय" शब्दसे मन्त्र और ब्राह्मण ये दोनों गृहीत हुए हैं और बहुत स्थानोंमें वेद अर्थमें आम्नाय शब्दका प्रयोग है। निरुक्तकारने वेदाङ्गको भी आम्नाय कहा है। यथा—

"समाम्नायेषु वेदेषु वेदाङ्गानि च।" (१।६।५)

इन वचनोंमें देखा जाता है, कि मन्त्र, ब्राह्मण और वेदाङ्ग ये तीनों ही आम्नाय पदवाच्य हैं। माधव-भट्टने पाणिनि व्याकरणको भी वेदाङ्गके अन्तर्गत कह कर इसका आम्नायत्व प्रमाणित किया है। भट्टोजी दीक्षित आदि "आम्नाय" शब्दका प्रचार और भी बढ़ा गये हैं।

छन्दः।

वेदका बहुत प्राचीन दूसरा नाम छन्दः है। प्राचीन संस्कृत साहित्यमें हम अथर्ववेदसंहितामें सबसे पहले छन्दः शब्दका प्रयोग देखते हैं। यथा—

'यानि छन्दांसि [illegible] ● ● [illegible] धाता मोचयतु।' (१८।१।२।७)

यहां छन्दका अर्थ आच्छादन है। निरुक्तकार कहते हैं—"छन्दांसि छादनात्।" (७.३.६)

छादन अर्थात् बन्धन। विश्व मात्र ही बन्धन है। शाङ्खायनगृह्यकारने लिखा है—

'विश्वरूपाणि विश्वविधानुरूपाणि [illegible] [illegible] विश्वरूपाणि [illegible] विश्वानि पृथिव्यादयः [illegible] [illegible]।' (५ खण्ड)

जो विश्वजीवोंका अनुरूप अर्थात् स्वीय स्वरूप निरूपण करता है, वह विश्व कहलाता है। जैसे, पृथिव्यादि और हमारे सुख दुःख आदि। [illegible] प्राचीनतम संस्कृत साहित्य आदिमें इस तरह विश्वव्यापक और पृथिव्यादि अर्थमें ही छन्दका प्रयोग दिखाई देता है।

किन्तु कहीं कहीं केवल सामवेदीय मन्त्रोंको ही छन्दः कहा है। अथर्ववेदसंहितामें—"ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह। उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे" इत्यादि। (अ० सं० ११।७।२४)

"तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत॥"

(ऋक् सं० १०।९०।९)

इन सब स्थानोंमें "छन्दांसि" पदका अर्थ सामवेद ही है। सामवेदियोंका संहिताग्रन्थ दो भागोंमें विभक्त है,—साम और छन्दः। सामभाग भी फिर चार श्रेणियोंमें विभक्त है, गेय, आरण्यक, ऊह और ऊह्य।

छन्दोग्रन्थ दो भागोंमें विभक्त है, योनि और उत्तरा, ये दोनों ही आर्चिक कहलाते हैं। इस मन्त्रका अर्थ यह है, कि उस यज्ञसे ऋग्वेदीय, सामवेदीय, अथर्ववेदीय, गुणगीतविवर्जित यजुर्वेदीय वाक्य तथा छन्दः समूह उत्पन्न हुए थे। यहां छन्दः शब्दका अर्थ है—सामवेदीय गानादि मूलीभूत छन्दो नामक मन्त्र समूह।

स्वाध्याय।

वेदका दूसरा नाम "स्वाध्याय" है, यथा—

"स्वाध्यायोऽध्येतव्यः" (तै० आ० २।१५।७)

श्रुति और स्मृतिमें कई जगह "स्वाध्याय" शब्दका प्रयोग देखनेमें आता है। वेदशास्त्रका सम्यक् अध्ययन करना ब्राह्मणोंके लिये अति कर्त्तव्य है, इस कारण वेद 'स्वाध्याय' शब्दवाच्य है।

वेदका दूसरा नाम "आगम" है। पाणिनिके वार्त्तिककार कात्यायनने लिखा है—"रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम्।"

भाष्यकार पतञ्जलि मुनिने लिखा है—"आगमः—खल्वपि ब्राह्मणेन षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च।"

कुमारिलभट्टने स्वरचित श्लोकवार्त्तिकमें आगमको प्रतिपा-दित किया है—

"आप्तवचनम्" आगमः [illegible]"

सांख्यकारिकाकार ईश्वरकृष्णने लिखा है—

"तस्मादपि चापिदं पौरुषमाऽऽगमात् विदम् ।"

इससे साबित होता है, कि वेदका यह 'आगम' नाम भी अति प्राचीन है। इसका दूसरा नाम 'निगम' है।

यास्कीयनिरुक्तमें निगम शब्दका बहुत उल्लेख है तथा वेदसे इनके अनेक उदाहरण दिये गये हैं। यथा—

१। "तत्र खलु इत्येतस्य निगमा भवन्ति खलेन पर्षान ।"
(ऋक्सं० ८।२१।१२)

२। "अथापि नैगमेभ्यो भाविकाः उष्णं घृतमिति ।"
(ऋक्सं० २।१।२)

प्रथमतः निगम शब्द मन्त्रभागके दूसरे नामरूपमें व्यवहृत होता था। निरुक्त ग्रन्थमें सभी मन्त्र निगम नामसे अभिहित हुए हैं, ब्राह्मण निगम नहीं कहलाते। यथा—

"निघण्टवः कस्मात् ? निगमा इमे भवन्ति" (१।१।१)

मनु कहते हैं, "निगमांश्च वैदिकान्" इसकी व्याख्यामें कुल्लूकने लिखा है-"तथा पर्यायकथनेन वेदार्थावबोधकान् निगमाख्यांश्च ग्रन्थान्" इति। परवर्ती कालमें ब्राह्मण भी निगम कहलाने लगे।

हमने उल्लिखितांशमें वेदके कई पर्यायोंकी आलोचना की है। आलोचित पर्यायके नाम ये हैं—(१) वेद, श्रुति, (३) आम्नाय (४) समाम्नाय (५) छन्दः (६) स्वाध्याय (७) आगम और (८) निगम।

संहितालक्षण

अभी संहितालक्षणके सम्बन्धमें कुछ आलोचना की जाती है। श्रीभागवतने वेदको निगमकल्पतरु कहा है। वेद यथार्थमें निगमकल्पतरु हैं। गद्य, पद्य और गान त्रिविध रचनात्मक होनेके कारण वेद त्रयी नामसे प्रसिद्ध है। किन्तु त्रयी होने पर भी वेदसंहिताके चार भेद हैं, ऋक्संहिता, यजुःसंहिता, सामसंहिता और अथर्व-संहिता। प्रातिशाख्यादिमें संहिता लक्षणका उल्लेख इस प्रकार है—

१। पद-प्रकृतिः संहिता (ऋक् प्रा० २।१)

२। वर्णानामेकप्राणयोगः संहिता।
(यजुःप्रा० १।१५८)

३। परः सन्निकर्षः संहिता। (पा १।४।१०८),

यद्यपि चारों संहितामें ऋग् लक्षण पद्यात्मक मन्त्रका उल्लेख देखनेमें आता है, किन्तु जिस ग्रन्थमें इस ऋग्लक्षण (मन्त्रात्मक) मन्त्रको छोड़ दूसरे कोई लक्षणविशिष्ट अर्थात् पद्य भिन्न गद्य या गीतात्मक एक मन्त्र भी नहीं देखा जाता उसका नाम ऋक्संहिता है।

अन्य प्रकारकी रचनाप्रणाली रहने पर भी जिस संहितामें केवल गद्यकी प्रधानता है वही यजुर्वेद-संहिता है तथा जिस संहितामें केवल गानकी ही प्रधानता है उसीका नाम सामवेदसंहिता है। पहले कहा जा चुका है, कि त्रिविध रचनाप्रणालीके भेदसे ही त्रिविध संहिताका नामकरण हुआ है। चतुर्थसंहिताका नाम अथर्वसंहिता है। किस प्रकार अथर्व्वसंहिताका नाम-करण हुआ, उसकी कुछ आलोचना करना आवश्यक है। कोई कोई कहते हैं, कि अथर्व्वा नामक ऋषिके नामानुसार अथर्व्वसंहिता नाम रखा गया है। अथर्व्वाऋषि ही यज्ञक्रियादिके प्रथम प्रकाशक हैं। इन्होंने ही होत्रादि कार्यके सौकर्यार्थ सबसे पहले यज्ञादि क्रियाका सूत्रपात किया।

ऋक्संहितामें लिखा है—

१। यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते।
(ऋक्सं १।६ ४।५)

२। अग्निर्जातो अथर्व्वणा। (ऋक्सं ७।७।४।५)

३। त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत।
(ऋक्सं ४।५।२३।३)

इन सब मन्त्रोंसे स्पष्ट है, कि अथर्व्वा ऋषि ही यज्ञ प्रक्रियाके आदि आविष्कर्त्ता हैं।

इससे साफ साफ मालूम होता है, कि यज्ञकार्यके सौकर्यके लिये वेद विभागकी जरूरत होती है। ऋग् द्वारा होत, यजुः द्वारा अध्वर्यु और साम द्वारा यज्ञको उद्गीथ क्रियाका विधान किया जाता है तथा समस्त त्रयी ही ब्रह्मत्वकरणमें साधिकारूपसे निर्दिष्ट होते हैं। अथर्व-संहिताका अध्ययन नहीं करनेसे समस्त त्रयीमें ज्ञानलाभ नहीं होता। होता, अध्वर्यु और उद्गाताके व्यवहारको छोड़ कर उसमें ऋक् और यजुःके अनेक मन्त्र हैं। अथर्व-वेद ही ब्रह्मा होते हैं। वे ही यज्ञकी रक्षा करते हैं। यास्क का कहना है, "ब्रह्मा सर्वविद्यः सर्वं वेदितुमर्हति।" (१।३।२) गोपथब्राह्मणमें यह अधिकतर परिस्फुटरूप-से दिखलाया गया है। यथा—"तस्माद् ऋग् विदमेव

१। "अन्नाद्यस्य त्रिवार्षिकाद्यान्नादीक्षणमनर्थकानाम् ।" (१।२।१)

२। "तस्य समाम्नायादिसन्ततम् ।" (१।७।१)

काशकृत्स्न संहिताके प्रातिशाख्यसूत्रकी व्याख्यामें एक जगह लिखा है—"समाम्नायो वेदः ।"

अथर्ववेदीय कौशिकसूत्रमें और भी स्पष्टतर प्रमाण पाया है—यथा—

"आम्नाय पुराणेतिहास कल्पानि च"

यास्कीय निरुक्तमें "आम्नाय" शब्दसे मन्त्र और ब्राह्मण ये दोनों गृहीत हुए हैं और बहुत स्थानोंमें वेद अर्थमें आम्नाय शब्दका प्रयोग है; निरुक्तकारने वेदाङ्गको भी आम्नाय कहा है। यथा—

"समाम्नासिषु वेदञ्च वेदाङ्गानि च ।" (१।२।५)

इन वचनोंसे देखा जाता है, कि मन्त्र, ब्राह्मण और वेदाङ्ग ये तीनों ही आम्नाय पदवाच्य हैं। भगवान् शङ्करने पाणिनि व्याकरणको भी वेदाङ्गके अन्तर्गत कह कर इसका आम्नायत्व प्रमाणित किया है। भट्टोजी दीक्षित आदि "आम्नाय" शब्दका प्रचार और भी बढ़ा गये हैं।

छन्दः।

वेदका बहुत प्राचीन दूसरा नाम छन्दः है। प्राचीन संस्कृत साहित्यमें इस ऋग्वेदसंहितामें सबसे पहले छन्दः शब्दका प्रयोग देखते हैं। यथा—

"यानि छन्दांसि कवयो ० ० वाचो धारा सोमपवाः।" (१०।१।३।७)

यहां छन्दका अर्थ छन्दोबद्ध है; निरुक्तकारने कहा है—'छन्दांसि छादनात् ।' (७।३।६)

छादन अर्थात् ढकना। किस बात से ढकना है। सायणाचार्यने लिखा है—

"छादयन्ति पापाद्यनुष्ठानानि कर्मेण बलेन विघ्नान्तराय कुर्वन्तीति च यत् छिद्यते पुरुषार्थसाधनादनुष्ठानाम् ।" (१ अध्याय)

जो विघ्नदोषोंसे अनुष्ठान अर्थात् कर्म करनेवाले विघ्नदोषोंको ढक लेता है, वह छन्द कहलाता है। जैसे, गायत्री आदि और इसके कुछ दूसरे भाग। पहला अति प्राचीनतम संस्कृत साहित्य ऋग्वेदमें इस तरह त्रिष्टुबाद्य और पुंक्त्यादि अर्थमें ही छन्दका प्रयोग दिखाई देता है।

किन्तु कहीं कहीं केवल सामवेदोक्तवाक्यको ही छन्दः कहा है। अथर्ववेदसंहितामें—"ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह। उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे" इत्यादि। (अ० सं० ११।७।२४)

"तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत॥"
(ऋक् सं० १०।९०।८)

इन सब स्थानोंमें "छन्दांसि" पदका अर्थ सामवेद गया है। सामवेदीय संहिताके दो भागोंमें विभक्त है,—साम और छन्दः। सामवेद भी फिर चार भागोंमें विभक्त है, गेय, आरण्यक, ऊह और ऊह्य।

छन्दोग्रन्थ दो भागोंमें विभक्त है, योनि और उत्तरा, ये दोनों ही आर्चिक कहलाते हैं। अतएव ऋक्का अर्थ यह है, कि उस यज्ञसे ऋग्वेदीय, सामवेदीय, अथर्ववेदीय, कृष्णशुक्लविभागीय यजुर्वेदीय वाक्य तथा छन्दः समूह उत्पन्न हुए थे। यहां छन्दः शब्दका अर्थ है—सामवेदीय गानादि भूमिभूत ऋग्रूपी आर्चिक भाग समूह।

दूसरा नाम।

वेदका दूसरा नाम "स्वाध्याय है, यथा—

"स्वाध्यायोऽध्येतव्य" (तै॰ आ॰ २।१५।७)

श्रुति और स्मृतिमें कई जगह "स्वाध्याय" शब्दका प्रयोग देखनेमें आता है। वेदशास्त्रका सम्यक् रूपसे अध्ययन करना ब्राह्मणोंके लिये अति कर्त्तव्य है, इस कारण वेद 'स्वाध्याय' शब्दवाच्य है।

वेदका दूसरा नाम "आगम" है। पाणिनिके वार्त्तिककार कात्यायनने लिखा है—"रक्षोहागम लघ्वसन्देहाः प्रयोजनम् ।"

भाष्यकार पतञ्जलि मुनिने लिखा है—"आगमः—खल्वपि ब्राह्मणेन षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च ।"

कुमारिलभट्टने तन्त्रवार्त्तिकमें इसका पूर्णरूपसे लिखा है—

"आगमत्वादनादित्वात् ..."

सांख्यकारिकाकार ईश्वरकृष्णने लिखा है—

"तस्मादपि चाविद्ध' पौरुषमातागमात् विद्मः ।"

इससे साबित होता है, कि वेदका यह 'आगम' नाम भी अति प्राचीन है। इसका दूसरा नाम 'निगम' है।

यास्कीयनिरुक्तमें निगम शब्दका बहुत उल्लेख है तथा वेदसे इसके अनेक उदाहरण दिये गये हैं। यथा—

१। "तत्र खल्विवेतस्य निगमा भवन्ति स्वलेन पर्याने ।"
(अृक्सं० ५।१।६।२)

२। "अथापि नैगमेभ्यो भाषिकाः उष्ण' घृतमिति ।"
(ऋक्सं० २।१।३)

प्रथमतः निगम शब्द मन्त्रभागके दूसरे नामरूपमें व्यवहृत होता था। निरुक्त ग्रन्थमें सभी मन्त्र निगम नामसे अभिहित हुए हैं, ब्राह्मण निगम नहीं कहलाते। यथा—

"निघण्टवः कस्मात् ? निगमा इमे भवन्ति" (१।१।१)

मनु कहते हैं, "निगमांश्च वैदिकान्" इसकी व्याख्यामें कुल्लूकने लिखा है-"तथा पर्यायकथनेन वेदार्थावबोधकान् निगमाख्यांश्च ग्रन्थान्" इति। परवर्ती कालमें ब्राह्मण भी निगम कहलाने लगे।

हमने उल्लिखितांशमें वेदके कई पर्यायोंकी आलोचना की है। आलोचित पर्यायके नाम ये हैं—(१) वेद, श्रुति, (३) आम्नाय (४) समाम्नाय (५) छन्दः (६) स्वाध्याय (७) आगम और (८) निगम।

संहितालक्षण

अभी संहितालक्षणके सम्बन्धमें कुछ आलोचना की जाती है। श्रीभागवतमें वेदको निगमकल्पतरु कहा है। वेद यथार्थमें निगमकल्पतरु हैं। गद्य, पद्य और गान त्रिविध रचनात्मक होनेके कारण वेद त्रयी नामसे प्रसिद्ध हैं। किन्तु त्रयी होने पर भी वेदसंहिताके चार भेद हैं, ऋक्संहिता, यजुःसंहिता, सामसंहिता और अथर्व-संहिता। प्रातिशाख्यादिमें संहिता लक्षणका उल्लेख इस प्रकार है—

१। पद-प्रकृतिः संहिता (ऋक् प्रा० २।१)

२। वर्णानामेकप्राणयोगः संहिता।
(यजुःप्रा० १।१५८)

३। परः सन्निकर्षः संहिता। (पा १।४।१०८)

यद्यपि चारों संहिताओंमें ऋग् लक्षण पद्यात्मक मन्त्रका उल्लेख देखनेमें आता है, किन्तु जिस ग्रन्थमें इस ऋगलक्षण (मन्त्रात्मक) मन्त्रको छोड़ दूसरे कोई लक्षणविशिष्ट अर्थात् पद्य भिन्न गद्य या गीतात्मक एक मन्त्र भी नहीं देखा जाता उसका नाम ऋक्संहिता है।

अन्य प्रकारकी रचनाप्रणाली रहने पर भी जिस संहितामें केवल गद्यकी प्रधानता है वही यजुर्वेद-संहिता है तथा जिस संहितामें केवल गानकी ही प्रधानता है उसीका नाम सामवेदसंहिता है। पहले कहा जा चुका है, कि त्रिविध रचनाप्रणालीके भेदसे ही त्रिविध संहिताका नामकरण हुआ है। चतुर्थसंहिताका नाम अथर्वसंहिता है। किस प्रकार अथर्व्वसंहिताका नामकरण हुआ, उसकी कुछ आलोचना करना आवश्यक है। कोई कोई कहते हैं, कि अथर्व्वा नामक ऋषिके नामानुसार अथर्व्वसंहिता नाम रखा गया है। अथर्व्वऋषि ही यज्ञप्रक्रियादिके प्रथम प्रकाशक हैं। इन्होंने ही होत्रादि कार्य्यके सौकर्य्यार्थ सबसे पहले यज्ञादि क्रियाका सूत्रपात किया।

ऋक्संहितामें लिखा है—

१। यज्ञैरथर्व्वा प्रथमः पथस्तते।
(ऋक्सं १।६ ४।५)

२। अग्निर्जातो अथर्व्वणा। (ऋक्सं ७।७।४।५)

३। त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्व्वा निरमन्थत।
(ऋक्सं ४।५।२३।३)

इन सब मन्त्रोंसे स्पष्ट है, कि अथर्व्वा ऋषि ही यज्ञ-प्रक्रियाके आदि आविष्कर्त्ता हैं।

इससे साफ साफ मालूम होता है, कि यज्ञकार्यके सौकर्यके लिये वेद विभागकी जरूरत होती है। ऋग् द्वारा होत्र, यजुः द्वारा आध्वर्य्यु और साम द्वारा यज्ञको उद्गीथ क्रियाका विधान किया जाता है तथा समस्त त्रयी ही ब्रह्मत्वकरणमें साधिकारूपसे निर्दिष्ट होते हैं। अथर्व-संहिताका अध्ययन नहीं करनेसे समस्त त्रयीमें ज्ञानलाभ नहीं होता। होता, अध्वर्य्यु और उद्गाताके व्यवहारको छोड़ कर उसमें ऋक् और यजुःके अनेक मन्त्र हैं। अथर्ववेद ही ब्रह्मा होते हैं। वे ही यज्ञकी रक्षा करते हैं। यास्कका कहना है, "ब्रह्मा सर्वविद्यः सर्वं वेदितुमर्हति।" (१।३।१) गोपथब्राह्मणमें यह अधिकतर परिस्फुटरूपसे दिखलाया गया है। यथा—"तस्माद् ऋग् विदमेव

होतारं वृणीष्व यजुर्विदमध्वर्युं सामविदमुद्गातारं अथर्वाङ्गिरोविदं ब्रह्माणम् ।"

(गोपथब्राह्मण १।१।१, ३)

अतएव अथर्वसंहिता सर्वतोभावसे आदरणीय है ।

वेदविभाग ।

प्रयोग होत्रादि कार्यानुसार ही चार वेदका विभाग सम्पन्न होता है । सर्वानुक्रमणीवृत्तिकी भूमिकामें लिखा है—

"विनियोगे मन्त्रो वा न मन्त्र इति कथ्यते ।
विनियुक्तं स्तुतं मन्त्रं कथयन्ति हि ॥"

वेदकी जो सब उक्तियां विनियोगके योग्य हैं वही मन्त्र हैं तथा जिसमें विधानादि हैं वही ब्राह्मण है । फलतः यथार्थमें एक वेद ही चार भागोंमें विभक्त है । होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा, ये चारों यज्ञ-पुरोहित हैं । होताके व्यवहार्य मन्त्र मात्र ही ऋक् हैं । इन ऋक् मन्त्रोंका संकलन या एकत्र कर जो ग्रन्थ बनाया गया है, उसका नाम ऋक्संहिता है । ऋक्-मन्त्रके विनियोगादि अभिधायक ग्रन्थका नाम ऋग्ब्राह्मण है । ऋक्संहिता और ऋग्ब्राह्मण ये दोनों ही एकत्र ऋग्वेद नामसे प्रसिद्ध हैं । अध्वर्युके व्यवहार्य मन्त्रोंका अधिकांश यजुः है, परन्तु इसमें ऋक् भी है । इस ऋग् यजुके एकत्र निबद्ध ग्रन्थका नाम यजुःसंहिता है । इसके विनियोगादि अभिधायक ग्रन्थका नाम यजुर्ब्राह्मण है । ये दोनों ग्रन्थ एकत्र यजुर्वेद नामसे प्रसिद्ध हैं । उद्गाताके व्यवहार्य मन्त्र हैं, ऋक्, यजुः और साम । इनके संग्रहसे निबद्ध ग्रन्थका नाम सामसंहिता है । इसके ब्राह्मण और मन्त्र दोनों ही एकत्र सामवेद संहिता नामसे प्रसिद्ध हैं । जो ऋग्वेदका अध्ययन करते हैं, ऋग्वेदका कार्य करते हैं, वे बह्वृच हैं ।

जो यजुर्वेदमन्त्रका अध्ययन करते हैं तथा यजुर्वेदमन्त्रका कार्य निष्पन्न करते हैं वे यजुर्वेदी हैं । यजुर्वेदमें ऋक् और यजुः ये दोनों ही वेद रहनेसे यजुर्वेदी द्विवेदी भी कहलाते हैं । बङ्गालमें इन्हें "दूबे" कहते हैं । जो केवल सामवेदका अध्ययन करते हैं और सामवेदोक्त कार्य करते हैं वे सामवेदी हैं । सामवेदमें ऋक्, यजु और साम ये तीनों ही वर्तमान हैं, इस कारण सामवेदियोंको "त्रिवेदी" या तिवेदी कहते हैं । बोलचालमें ये तिवाड़ी कहलाते हैं ।

अथर्ववेदसंहिता अधिकांश मन्त्रोंका [illegible] है । अथर्ववेदसंहितामें ऋक् और यजुः दोनों ही हैं । अथर्वमन्त्रके प्रयोग और अभिधायक ग्रन्थका नाम अथर्वब्राह्मण है । अथर्वमन्त्र और अथर्वब्राह्मण इन दोनोंको एकत्र निबद्ध संहिताका नाम अथर्ववेदसंहिता है । यज्ञमें ब्रह्मत्व कार्यमें अथर्वमन्त्र और अथर्वब्राह्मणका ज्ञान रहना आवश्यक है । अतएव ऋक्, यजुः और सामवेदसंहिता पढ़ जाने पर भी यदि अथर्ववेदका ज्ञान न रहे, तो वेदविषयमें सर्वाङ्गपूर्णत्व सम्भवपर नहीं होता । होतृकार्यमें ऋग्वेदका ज्ञान, अध्वर्युके कार्यमें यजुर्वेदका ज्ञान और उद्गातृ कार्यमें सामवेदका ज्ञान प्रयोजनीय है । इस कारण ऋग्वेद होतृवेद, यजुर्वेद अध्वर्युवेद और सामवेद उद्गातृवेद नामसे पुकारे जाते हैं । इसी प्रकार ब्रह्मकार्यके निर्वाहार्थ अथर्ववेद प्रयोजनीय है । इसी कारण अथर्ववेद 'ब्रह्मवेद' कहलाते हैं । बोलचालमें इन्हें 'ओझा' कहते हैं । अथर्वसंहिताभाष्यमें सायणने लिखा है—

"ऋग्भ्यः शंसिता विद्युः । सुषः सामानि यजूंषि ।"

(तै० ब्रा० १।२।१।२६)

इस तैत्तिरीयका यही तात्पर्य है कि वेदत्रय विभक्त ही अभिप्रेत है । जैमिनिने स्पष्ट कहा है, "तच्चोदकेषु मन्त्राख्या । शेषे ब्राह्मणशब्दः । तेषामृक् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था । गीतिषु सामाख्या । शेषे यजुः शब्दः ।"

(जै० सू० २।१।३२, ३५, ३६, ३७)

गोपथब्राह्मणमें लिखा है—

"चत्वारो वा इमे वेदा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ब्रह्मवेद इति ।" चत्वारो वा इमे होत्राः । होतृकाध्वर्यवमौद्गात्रं ब्राह्मणत्वमिति । अङ्गिरसोऽङ्गुष्ठमात्रम्—ऋग्वेदादि यज्ञमूर्तयोऽस्य पादाः प्रोक्ताः, ताः इत्यादिकस्य । विधये यज्ञो पुरुषो देवयानि सदो देवो यज्ञाङ्गानि विधीयते । (अथ० ४।८।३) चत्वारि शृङ्गाणि त्रयो अस्य पादाः ।"

(१।२।१०)

गोपथब्राह्मण और अथर्ववेदसंहिताके मत प्रमाणों

द्वारा चार वेदका विषय सायणने स्पष्टरूपसे प्रमाणित किया है। अतएव चारों ही वेद "त्रयी" हैं।

मन्त्र।

पहले ही कहा जा चुका है, कि चतुर्वेद मन्त्र और ब्राह्मणके भेदसे दो भागोंमें विभक्त है। यज्ञपरिभाषा-सूत्रमें आपस्तम्बने कहा है—

"मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्।" मन्त्र किसे कहते हैं? यास्कने कहा है—

"मन्त्रा मननात्।" (७।३।६)

दुर्गाचार्यने इसकी वृत्ति कर लिखा है—

"तेभ्यः (मन्त्रेभ्यः हि अध्यात्माधिदैवाधियज्ञादि-मन्तारो मन्यन्ते तदेषां मन्त्रत्वम्।" अर्थात् मन्त्रप्रयोग-कारी मन्त्रोंसे अध्यात्म, अधिदैव और अधियज्ञादि मनन करते हैं, इस कारण इनका नाम मन्त्र हुआ है। यास्कने और भी कहा है—

"यत्कामऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद् दैवतः स मन्त्रो भवति।"

(निरुक्त ७।१।१)

अर्थात् कामनावान् ऋषिने किसी देवताके निकट अर्थापत्य प्रभृतिके लिये जो स्तुति-पाठ किया वही देवताका मन्त्र है।

भाष्यकार उवटने यजुर्मन्त्रभाष्यकी भूमिकामें तेरह प्रकारके मन्त्रभेदकी बातोंका उल्लेख किया है। यथा—

१। विधिवाद (परमेष्ठ मिदिनः) अभ्यस्तूपरो गो मृगास्ते। (वा० ध० २४।१)

२। अर्थवाद—देवा यज्ञमतन्वत। (वा०स० १६।१२)

३। याच्ञा—तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि। (वा० सं० ३।१७)

४। आशीः—आ वो देवास ईमहे।

५। स्तुति—अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्।

६। प्रैष—होता यक्षत् समिधाग्निम्।

७। प्रवह्लिका—इन्द्राग्नी आपादियम्।

८। प्रश्न—कः स्विदेकाकी चरति।

९। व्याकरण—सूर्य एकाकी चरति।

१०। तर्क—मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।

११। पूर्ववृत्तानुकीर्तन—औपपक्षसमवदन्त।

१२। अवधारण—तमेव विदित्वातिमृत्युमेति।

१३। उपनिषत्—ईशावास्यमिदं सर्वम्।

शबरभाष्यमें भी तेरह प्रकारके मन्त्रभेद स्वीकृत हुए हैं। किन्तु वे सब दूसरे प्रकारके हैं।

यास्कने सूक्तोंको इसके तीन भागोंमें विभक्त किया है—

१ परोक्षकृत, २ प्रत्यक्षकृत, ३ आध्यात्मिक।

परोक्षकृत और प्रत्यक्षकृत मंत्रकी संख्या अनेक है, आध्यात्मिक मन्त्रकी संख्या बहुत थोड़ी है।

संहिताभेद।

संहिता साधारणतः दो प्रकारकी है, निर्भुजसंहिता और प्रतृणसंहिता।

यथायथ पाठ ही निर्भुजसंहिताका पाठ है। इस निर्भुजसंहिताको आर्षीसंहिता भी कहते हैं। इसमें यथा-यथ पाठ रहता है। जैसे "अग्निमीळे पुरोहितम्।"

प्रतृणसंहिता दो प्रकारकी है—पदसंहिता और क्रम-संहिता। पदसंहिताका पाठ इस प्रकार है—अग्निम्, ईळे, पुरःऽहितम्।

क्रमसंहिताका पाठ अन्य प्रकार है, यथा—"अग्निम्, ईळे,. ईळे पुरोहितम्, पुरोहितमिति पुरःऽहितम्।"

इस क्रमसंहिताका अवलम्बन कर आठ प्रकारकी विकृति पाठका विषय विकृतिवल्ली नामक ग्रंथमें लिखा है। जैसे—

"जटा माला शिखा लेखा ध्वजो दण्डो रथोघनः।
अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वं मनीषिभिः॥"

वेदशाखा-परिगणना।

एक एक मंत्रके ग्यारह प्रकार संहिता-पाठ हैं। संहिताएं बहुत प्राचीन हैं। इस कारण कालभेद, देश-भेद और व्यक्ति आदि भेदोंसे तथा अध्यापक और अध्या-पनीयके उच्चारणादि भेदसे पाठभेद हुआ है। पाठमें कुछ कुछ कमीवेशी भी हुई है। आचार्योंके प्रकृतिपन्थ-के कारण तथा उनके अपने अपने देश और समयभेदके कारण बहुत अनुष्ठेय भेद तथा प्रयोगभेद भी हुआ है। इस प्रकार एक एक संहिता अनेक शाखाओंमें विभक्त हुई है। षड्गुरुशिष्य कहते हैं—

ऋग्वेद विंशतिशाखायुक्त, सामवेद सहस्रशाखा-

युक्त, यजुः एकशतशाखायुक्त और अथर्ववेद नवशाखा-युक्त है। कोई कोई कहते हैं, कि अथर्ववेद पन्द्रह शाखाओंमें विभक्त है।

शौनकीय प्रातिशाख्यके मतसे यह वेद शाकल, बाष्कल, आश्वलायन, शांखायन और माण्डूक नामक पांच शाखाओंमें विभक्त है।

मालूम पड़ता है, शाकलमुनिने पहले पहले ऋग्वेदका अध्ययन किया था। शांखायन, आश्वलायन, माण्डूक और बाष्कल, ये सभी भी ऋग्वेदियोंके आचार्य तथा शाकके सब एक ही थे। शौनकके मतसे ये ऋषि थे, किन्तु आश्वलायनगृह्यके मतसे ये आचार्य थे, ऋषि नहीं। आश्वलायनने जहां देवता, ऋषि और आचार्यों-का तर्पण सूचना किया है, वहां इन्हें आचार्य ही माना है।

ऋग्वेदकी उल्लिखित पांच शाखा प्रधान है। इन-के सिवा ऐतरेय, कौषीतक, शैशिर, पैङ्ग इत्यादि और भी कई शाखाएं देखी जाती हैं, पर प्रधान शाखा नहीं है। प्रातिशाख्यके मतसे ये अवान्तर शाखा मानी गई हैं। विष्णु-पुराणमें भी ऐसा ही आभास मिलता है। यथा—

"शुङ्गवो विदुरः शाखा शैशिरः शिशिरस्तथा।
पञ्चैते शाकलाः शिष्याः शाखाभेदप्रवर्तकाः॥"

मुद्गल, गोखुल, वात्स्य, शैशिर, (शिशिर) ये सब शाकल्यके शिष्य तथा शाखाविशेषके प्रवर्तक हैं। चरण-व्यूह विवरणके अनुसार ऋग्वेद २१ शाखाओंमें विभक्त है।

"यजुर्वेदस्य षडशीतिर्भेदा भवन्ति। तत्र चरका नाम द्वादश भेदा भवन्ति—चरकाः, आह्वरकाः, कठाः, प्राच्यकठाः, कपिष्ठलकठाः, चारायणीयाः, वारायणीयाः, वार्तान्तवेयाः, श्वेताश्वतराः, औपमन्यवाः, मैत्रायणीयाः।"

इनमेंसे मैत्रायणीय भी फिर सात शाखोंमें विभक्त है, यथा—मानव, दुन्दुभ, ऐकेय, वाराह, हारिद्रवेय, श्याम, श्यामायनीय।

वाजसनेय पन्द्रह शाखोंमें विभक्त है—जाबाल, बौधेय, काण्व, माध्यन्दिन, शापेय, तापनीय, कापाल, पौण्ड्रवत्स, आवटिक, परमावटिक, पाराशरीय, वैणेय, वैधेय, औधेय, गालव, वैजव और कात्यायनीय। इन-के सिवा ८६ उपभेद भी हैं।

यह मैत्रायणीय शाखा छः प्रकार की है—मानव, वाराह, दुन्दुभ, छागलेय, हारिद्रवीय और श्यामायनीय। चरक शाखाके ये भेद किये हैं, औपीय और कालाकीय। यह हारिद्रवीय शाखा भी फिर ५ शाखाओंमें विभक्त है, यथा—आसुरायणी, वाल्पायनी, वातायनी, प्रियवेदी और शाट्यायनी।

चारायणीय, औपेय तथा हारिद्रवीय और तैत्तिरीय ये सब यह पाणिनिसूत्रके "तित्तिरि वरतन्तु-खण्डिक-उखाच्छण्" द्वारा निष्पन्न होते हैं। आत्रेयाः इत्यादि पांच शब्द भी "छगलिनो ढिनुक्" निपातन द्वारा निष्पन्न हैं।

शुक्ल यजुर्वेदकी १५ शाखाएं हैं। काण्व, माध्यन्दिन, जाबाल, बुधेय, शाकेय, तापनीय, कपोल, पौण्ड्रवत्स, आवटिक, परमावटिक, पाराशरीय, वैणेय, वैधेय, औधेय और गालव इन सब शाखाओंके साथ वैजवी शाखा भी रहती है।
ये दशनके भी मत एक मत वाजसनेय अर्थात् शुक्ल यजुर्वेदके हैं। पाणिनिके शाखाका भी यही परिणाम है। देशोंमें ४ मुख्य अधिक इनके प्रमाण हैं।

सामवेद—पौराणिक मतसे पहले सामवेदकी हजार शाखाएं थीं। इनमें वज्रपातसे बहुतोंका ध्वंस किया। अब कुछ जो बच रहा है वह इस प्रकार है—राणायनीय, शाट्यमुग्र्य, कालीप, महाकालीप, लाङ्गलिक, शार्दूलीय, कौथुम। इस कुथुम शाखाके छः उप-शाखाएं हैं। यथा—आसुरायण, वातायन, प्राञ्जलीय, वैनधृत, प्राचीनयोग्य, नैगेय।

सामवेदकी शाखा—राणायनीय, शाट्यमुग्र्य, कौथुम, इनसे फिर शाखाओंके प्रकार देखे जाते हैं। यथा—राणायनीय, शाट्यायन, सात्यमुग्र, मुद्गल, खल्वल, महाखल्वल, लाङ्गल, कौथुम, गौतम, जैमिनीय।

इनमेंसे कौथुम शाखाओंके मध्य अभी सिर्फ तीन शाखा विद्यमान है—गुजरातमें कौथुमी शाखा, कर्णाटकमें जैमिनीय शाखा और महाराष्ट्र देशमें राणायनीय शाखा।

अथर्ववेद—९ शाखोंमें विभक्त है। यथा—

पैप्पलाद, शौनकीय, दामोद, तोत्तायन, जामल, ब्रह्मपालास, कुनखा, देवदर्शी, चरणविद्या। एक दूसरे ग्रन्थके मतसे अथर्ववेदकी ६ शाखाएं हैं, यथा—पैप्पलाद, आन्ध्र, प्रदात्त, स्नात, स्नौत, ब्रह्मदावन, शौनक, देवदर्शति, चारणविद्या। इनके सिवा तैत्तिरीयक नामक दो प्रकारके भेद देखे जाते हैं। यथा—औख्य और काण्डिकेय। काण्डिकेय भी फिर पांच भागोंमें विभक्त हैं। यथा—आपस्तम्ब, बौधायन, सत्याषाढ़ी, हिरण्यकेशी, औधेय।

वेदकी किस प्रकार अनेक शाखाएं हुईं? इस सम्बन्धमें सभी पुराणोंमें थोड़ा थोड़ा प्रसङ्ग देखनेमें आता है। परन्तु ब्रह्माण्डपुराणमें कुछ विस्तृत विवरण लिखा है।

पराशरके पुत्र व्यासने ब्रह्माके कथनानुसार वेद-विभागके लिये चार शिष्य ग्रहण किये। इनमेंसे पैलको ऋग्वेदके, वैशम्पायनको यजुर्वेदके, जैमिनिको सामवेदके और सुमन्तुको अथर्ववेदके कर्त्तारूपमें नियुक्त किया। उन लोगोंने यजुर्वेदसे अध्वर्यु, ऋक्से होत, सामसे उद्गात और अथर्ववेदसे यज्ञमें ब्रह्मत्वका निर्देश किया था। इसने सभी ऋक् उद्धृत कर ऋक्संहिता की गई, उससे जगत्‌हितकर यज्ञवाह होता कल्पित हुआ था। सामसे सामवेद और उससे उद्गात रचा गया था तथा अथर्ववेदके अनुसार राजाओंको यज्ञ कर्ममें नियुक्त किया गया।

यजुर्वेदके अनेक पद उठा दिये गये थे, इस कारण यह विषम अर्थात् छन्दोहीन हुआ। उससे वेदपारग ऋषियों द्वारा उद्धृतवीर्य अश्वमेधयज्ञ प्रयुक्त हुआ। अथवा अश्वमेध यज्ञ द्वारा ही वेदयुक्त हुआ है।

पैलऋषिने मन्त्रोंको ले कर दो भागोंमें विभक्त किया। इसके बाद उन्होंने फिर उन्हें दो भागोंमें विभाग तथा पुनः संयोग कर दोनों शिष्योंको अर्पण कर दिया था। इन्द्रप्रमति नामक शिष्यको पहला और वास्कलको दूसरा अर्पण किया गया। द्विजश्रेष्ठ वास्कलने चार संहिता करके शुश्रूषानिरत हिताकाङ्क्षी शिष्योंको उन्हें पढ़ाया था। बोध नामक शिष्यको प्रथम शाखा, अग्निमाठरके शिष्यको द्वितीय शाखा, पराशरको तृतीय शाखा और याज्ञवल्क्यको चतुर्थ शाखा पढ़ाई गई।

ब्राह्मणश्रेष्ठ इन्द्रप्रमतिने महाभाग यशस्वी मार्कण्डेयको एक संहिता पढ़ाई। महायशस्वी मार्कण्डेयने ज्येष्ठ पुत्र सत्यश्रवाको, सत्यश्रवाने सत्यहितको, सत्यहितने अपने पुत्र सत्यतरको तथा विभु सत्यतरने महात्मा सत्यधर्मपरायण सत्यश्रीको अध्ययन कराया था। तेजस्वी सत्यश्रीके शाकल्य, रथीतर, वास्कलि और भरद्वाज ये चार विद्वान् शिष्य थे। ये सभी अध्ययन-निपुण और शाखाप्रवर्त्तक हैं। शब्दशास्त्रज्ञ देवमित्र और महात्मा शाकल्यने पाँच संहिता प्रकाशित कीं। महर्षि शाकल्यके मुद्गल, गोलक, खालीय, मत्स्य और शैशिरेय ये पांच शिष्य थे।

द्विजवर शाकपूणी रथीतरने तीन संहिता और एक निरुक्तकी रचना की। उनके केतव, दालकि, धर्मशर्मा और वेदशर्मा ये चार व्रतधारी ब्राह्मणशिष्य थे।

भारद्वाज, याज्ञवल्क्य, गालकि, सालकि और धीमान् शतवलाक, ये लोग भी संहिताकर्त्ता हैं। द्विजोत्तम नैगम, वास्कलि और भरद्वाजने तीन संहिता प्रणयन कीं। रथीतरने पुनः चतुर्थ निरुक्तकी रचना की थी। उनके गुणवान् तीन शिष्य थे। धीमान् नन्दायनीय प्रथम, बुद्धिमान् पन्नगारि द्वितीय और आर्ज्जव तृतीय थे। ये सभी तपस्वी व्रतधारी विरागी, महातेजस्वी और संहिताज्ञानमें विशेष पारदर्शी थे। ये संहिता-प्रवर्त्तक बहृच् कहे जाते हैं।

महर्षि वैशम्पायनके शिष्योंने यजुर्वेदके भेदकी कल्पना की। उन्होंने ८६ अच्छी अच्छी संहिता प्रणयन कर शिष्योंको प्रदान की थी। शिष्योंने भी उनका विधिपूर्वक अध्ययन किया। इनमेंसे महात्मा याज्ञवल्क्य परित्यक्त हुए थे। अतः शिष्योंने उपरोक्त ८६ संहिताओंका भेद किया था। ये सभी संहिताएं तीन भागोंमें विभक्त हुईं। इन तीनोंमेंसे प्रत्येक फिर तीन तीन भागमें विभक्त हो नौ प्रकार हुए हैं।

उत्तरदेश, मध्यदेश और पूर्वदेशमें पृथक् पृथक् यजुःसंहिता पढ़ी जाती हैं। इनमेंसे उत्तर प्रदेशमें श्यामायनि, मध्यदेशमें आरुणि और पूर्वदेशमें आलम्बि प्रधान

भागोंमें बंट गया। नक्षत्रकल्प, वैतान, तृतीय संहिता-विधि, चतुर्थ अङ्गिरसकल्प तथा पञ्चम शान्तिकल्प अथर्व्ववेदशों के मध्य इन सब संहिताओं के प्रभेदकारक ऋषिगण ही प्रधान हैं।

इसके सिवा यजुर्वेदको लोमहर्षिका प्रथम, काश्यपिका द्वितीय और सावर्णिका तृतीय शाखा कहलाती है। अन्य प्रकार शांशपायनिका है। आठ हजार छः सौ, अन्य प्रकार पन्द्रह और फिर दश प्रकारकी ऋक् कही जाती हैं। इनके सिवा वालखिल्य, समर्पण और सावर्ण कहे गये हैं। आठ हजार साम और चौदह साम तथा सहोम आरण्यक ये सब सामग ब्राह्मण गान करते हैं। व्यासदेवने यजुः और ब्राह्मणके आरण्यकको तथा मन्त्रकरणकके साथ बारह हजार आध्वर्य्यव वेदका विभाग किया। ऋक् ब्राह्मण और यजुः ये तीन प्रामारण्य हैं तथा समन्त्रके भेदसे दो प्रकारके हैं। फिर हारिद्रवीयसमूहके खिल और उपखिल ये दो प्रकारके प्रभेद हैं। तैत्तिरीय समूहके बाद भी दो भेद कल्पित हुए हैं पर और क्षुद्र। (ब्रह्माण्डपु० पूर्व ६१।६६ अ०)

यथार्थमें ऋग्वेदको दो ही शाखा प्रधान हैं शाकल और शाङ्खायन। यह शाकल शाखा ही शिष्योंके उच्चारणादि भेदसे पांच भागोंमें विभक्त हुई है। विकृतिकौमुदीकारने लिखा है, कि शैशिरीय, वाष्कल, सांख्य, वात्स्य और आश्वलायन,—शाकलशाखाकी यही पांच उपशाखा हैं। व्याडि प्रणीत 'विकृतिवल्ली' नामक ग्रन्थमें इन पांच शाखाओंकी अटादि आठ प्रकारकी पाठप्रणाली लिखी है। शाङ्खायनके भेदसे दूसरी सोलह शाखाएं हैं। इनके भी पाठनियामक ग्रन्थ हैं। उक्त ग्रन्थ माण्डूकेयका बनाया है।

यजुःसंहिता भी पहले तीन भागोंमें विभक्त थी। पीछे यह चरक अध्वर्यु उन्नीस शाखाओं में, वाजसनेय सत्तरह शाखाओंमें तथा तैत्तिरीय ६ शाखाओंमें विभक्त हुई। वेदका शाखाभेद मन्वादि ग्रंथके अध्ययनभेद जैसा नहीं है। प्रत्युत यह भिन्न कालमें लिखित भिन्न देशियोंके उच्चारणादि भेद-जनित तथा अनेक आदर्श पुस्तकोंके पाठादि भेदजनित हैं। शाखाप्रवर्त्तकोंके प्रवचनमें कुछ कुछ स्वतन्त्रता है।

ऐसा होने पर भी यजुर्व्वेदके वाजसनेय और तैत्तिरीय शाखामें सचमुच पृथक्ता है। इस कारण प्राचीनोंने इस भेदको शुक्लयजुर्वेद और कृष्णयजुर्वेद नामसे अभिहित किया है। जाबाली आदि सत्तरह वाजसनेय शाखा शुक्लयजुर्वेद तथा औख्यादीय तैत्तिरीय छः शाखा कृष्णयजुर्वेद नामसे पुकारी जाती है। वैदिक मन्त्रभाग ऋक्, यजुः और साम यह त्रिविध रचनात्मक होने पर भी होत्र, आध्वर्य्यव, औद्गात्र और ब्राह्म यह चतुःसंहितात्मक है। पीछे यजुःसंहिता शुक्ल और कृष्ण इन दो भागोंमें विभक्त होनेके बाद वेद पांच शाखाओंमें विभक्त हुआ—यथा, ऋग्वेदसंहिता, शुक्लयजुर्व्वेदसंहिता, कृष्णयजुर्व्वेदसंहिता, सामवेदसंहिता और अथर्व्ववेदसंहिता।

इन पांच वेद संहिताओंमें कौन पहले और कौन पीछे प्रकाशित हुई, पाश्चात्य अध्यापकोंने यह ले कर अपना बहुत दिमाग लड़ाया है।

जगत्सृष्टिके पहले ब्रह्माके चारों मुखसे चार वेदोंकी सृष्टि हुई थी, यही पौराणिकोंका अभिप्राय है। सायणने भी पौराणिकमतको ही ग्रहण किया है। अतएव आधुनिक अध्यापकोंकी विचारप्रणालीकी ओर ध्यान देना भी सायणके लिये असम्भव है। वरं पुराणका मत लेनेसे यजुर्वेदको ही आदि मान सकते हैं तथा उसीके आगे चल कर चार भागोंमें विभक्त होनेसे चार वेदोंकी उत्पत्ति हुई।

"एक आसीत् यजुर्वेदस्तचतुर्धा सं व्यकल्पयत्।"

(विष्णुपु०)

फिर एक बात यह है, कि जो सब गवेषणापरायण सूक्ष्मदर्शी पण्डित कहते हैं, ऋक्संहिता ही वेदका प्रथम ग्रन्थ है, साम और यजुः इसके पीछेका है वे क्या ऋक्संहितामें यजुः और सामका उल्लेख देख नहीं पाते? साम और यजुः यदि ऋक्संहिताके बादका है, तो ऋक्संहितामें इन दोनों नामोंका उल्लेख क्यों आया? ऋक्संहितामें क्या है निम्नलिखित ऋचाओंसे उसका पता चलेगा —

१। "यजुस्तस्मादजायत। (१०।९०।९)

२। गायत्रसाम नवन्यम्। (१।१७३।१)

रूपमें गिनी जाती हैं। ये संहितावादी सभी विप्र चरक कहलाते हैं। अथवा जिन्होंने ब्रह्मवध्या व्रतका आचरण किया था वे ही "चरक" कहलाये। इसी कारण वैशम्पायनके शिष्य चरक नामसे विख्यात हैं।

अश्वरूपमें याज्ञवल्क्यको यजुः दिया गया था, इस कारण जिस किसीने यजुःका अध्ययन किया था वे वाजी कहलाये। अतएव वाजिगण याज्ञवल्क्यके शिष्य हैं; कण्व, वैधेय, शाली, मध्यन्दिन, शापेयी, विदिग्ध, उद्दाल, ताम्रायण, वात्स्य, गालव, शैशिर, आटव्य, पर्ण, वीरण और परायण ये पन्द्रह वाजी कहलाते हैं। इस प्रकार एक सौ एक यजुर्वेदके विभागकर्त्ता हुए।

जैमिनिने अपने पुत्र सुमन्तुको, सुमन्तुने अपने पुत्र सुत्वाको और सुत्वाने अपने पुत्र सुकर्माको संहिता पढ़ाई थी। सुकर्माने सहस्र संहिताको शीघ्र अध्ययन कर सूर्यवर्च्चा सहस्रको अध्ययन कराया। अनध्याय-के दिन अध्ययन किया था, इस कारण देवराज इन्द्रने उन्हें मार डाला। अनन्तर सुकर्माने शिष्योंके लिये प्रायोपवेशनव्रत अवलम्बन किया। उन्हें क्रुद्ध देख कर इन्द्रने वर दिया और कहा, 'आपके ये दोनों महाभाग महावीर्य्य शिष्य सहस्र संहिताका अध्ययन कर महाप्राज्ञ और अनलतुल्य तेजस्वी होंगे, अतएव हे द्विजसत्तम! आप क्रोध न करें। देवराजने यशस्वी सुकर्माको इतना कह कर उनका क्रोध शान्त किया और पीछे आप अन्तर्हित हो गये। उनके शिष्य धीमान् पौष्यञ्जी थे। पौष्यञ्जीके हिरण्यनाभ और कौशिल्य नामक दो शिष्य थे (दोनों ही राजपुत्र थे)। पौष्यञ्जीने उन्हें पांच सौ संहिता पढ़ाई थी, इस कारण पौष्यञ्जीके उदीच्य-सामान्य शिष्य हुए थे।

कौशिल्यने पांच सौ संहिता की थीं। हिरण्यनाभ-के शिष्य प्राच्य सामग नामसे प्रसिद्ध हैं।

लोकाक्षी, कुथुमि, कुशीती और लाङ्गलि, पौष्यञ्जीके ये चार शिष्य संहिताकर्त्ता हैं।

राणिडपुत्र राणायनीय, सुविद्वान्, मूलचारी, सकेतिपुत्र, सहसात्य पुत्र, ये सब लोकाक्षीके शिष्य हैं। कुथुमिके तीन पुत्र थे। औरस, रसपासर और तेजस्वी भागवित्ति। ये सभी कौथुम कहलाते हैं।

शौरिद्यु और शृङ्गिपुत्र इन दोनोंने व्रतका आचरण किया था। राणायनीय सौमित्रि ये दोनों सामवेदमें विशेष पारदर्शी थे।

महातपस्वी शृङ्गिपुत्र तीन संहिता प्रणयन की। चैल, प्राचीनयोग और सुराल इन द्विजोत्तमोंने छः संहिता बनाई थीं। पाराशर्य्य कौथुम थे। आसुरायण और वैशाख्य ये दोनों द्विज वेदपरायण और वृद्धसेवी थे। प्राचीन-योगके बुद्धिमान् पुत्रका नाम पातञ्जलि था। पाराशर्य्य कौथुमके छः प्रकारके भेद हैं। लाङ्गलि और शालिहोत्रने छः संहिताएं प्रणयन कीं।

भालुकि, कामहानि, जैमिनि, लोमगायनि, कण्ड और कोहल ये छः लाङ्गल कहलाते हैं। ये सभी लाङ्गलिके शिष्य और संहिताके संस्कारक हैं।

हिरण्यनाभके शिष्य नृपात्मज थे। उन्होंने चौबीस संहिताएं प्रकाशित कीं। उन्होंने जिन सब शिष्योंको उसका पाठ कराया था उनके नाम ये हैं—

राड़, महावीर्य्य, पंकुम, वाहन, तालक, पाण्डक, कालिक, राजिक, गौतम, आजवस्त, सोमराज, अपतस्त, पृथुघ्न, परिकृष्ट, उलुखलक, यवीयस, वैशाल, अंगुलीय, कौशिक, सालिमञ्जरी, सत्य, कापीय, कानिक और धर्म्मात्मा पराशर। ये २४ व्यक्ति २४ संहिताका पाठ कर सामग हुए थे।

सामगोंके मध्य सभी संहिताओंके प्रभेदकारक पौष्यञ्जि और कृति ये दोनों सर्वापेक्षा प्रधान हैं।

सुमन्तुने अथर्व्ववेदको दो भागोंमें विभक्त कर कबन्धको प्रदान किया। उन्होंने यथाक्रम उनका अध्ययन किया था।

फिर कबन्धने भी उसके दो भाग कर एक भाग पथ्यको और दूसरा भाग वेदस्पर्शको प्रदान किया। वेदस्पर्शने उसे चार भागोंमें बांट कर चार शिष्योंको दे दिया। महावरायण मोद, पिप्पलाद, धर्मज्ञ शौक्वायनि और तपन ये चारों वेदस्पर्शके शिष्य थे।

पथ्यने फिर उसे तीन भागोंमें विभक्त कर जाजलि, कुमुदादि और शौनकको प्रदान किया। शौनकने उसे दो भाग करके बभ्रु और धीमान् सैन्धवायनको पढ़ाया। सैन्धवने मुञ्जकेशको प्रदान किया। इसमें यह दो

भागोंमें बंट गया। नक्षत्रकल्प, वैतान, तृतीय संहिताविधि, चतुर्थ अङ्गिरसकल्प तथा पञ्चम शान्तिकल्प अथर्व्ववेदकों के मध्य इन सब संहिताओंके प्रभेदकारक ऋषिगण ही प्रधान हैं।

इसके सिवा यजुर्व्वेदको लोमहर्षिका प्रथम, काश्यपिका द्वितीय और सावर्णिका तृतीय शाखा कहलाती है। अन्य प्रकार शांशपायनिका है। आठ हजार छः सौ, अन्य प्रकार पन्द्रह और फिर दश प्रकारकी ऋक् कही जाती हैं। इनके सिवा वालखिल्य, समर्थ और सावर्ण कहे गये हैं। आठ हजार साम और चौदह साम तथा सहोम आरण्यक ये सब सामग ब्राह्मण गान करते हैं। व्यासदेवने यजुः और ब्राह्मणके आरण्यकको तथा मन्त्रकरणके साथ बारह हजार आध्वर्य्यव वेदका विभाग किया। ऋक् ब्राह्मण और यजुः ये तीन ब्रामारण्य हैं तथा समन्त्रके भेदसे दो प्रकारके हैं। फिर हारिद्रवीयसमूहके खिल और उपखिल ये दो प्रकारके प्रभेद हैं। तैत्तिरीय समूहके बाद भी दो भेद कल्पित हुए हैं पर और क्षुद्र। (ब्रह्माण्डपु० पूर्व ६५।६६ अ०)

यथार्थमें ऋग्वेदकी दो ही शाखा प्रधान हैं शाकल और शाङ्खायन। यह शाकल शाखा ही शिष्योंके उच्चारणादि भेदसे पांच भागोंमें विभक्त हुई है। विकृतिकौमुदीकारने लिखा है, कि शैशिरीय, वाष्कल, सांख्य, वात्स्य और आश्वलायन,—शाकलशाखाकी यही पांच उपशाखा हैं। व्याडि प्रणीत 'विकृतिवल्ली' नामक ग्रन्थमें इन पांच शाखाओंकी जटादि आठ प्रकारकी पाठप्रणाली लिखी है। शाङ्खायनके भेदसे दूसरी सोलह शाखाएं हैं। इनके भी पाठनियामक ग्रन्थ हैं। उक्त ग्रन्थ माण्डूकेयका बनाया है।

यजुःसंहिता भी पहले तीन भागोंमें विभक्त थी। पीछे यह चरक अध्वर्यु उन्नीस शाखाओंमें, वाजसनेय सत्तरह शाखाओंमें तथा तैत्तिरीय ६ शाखाओंमें विभक्त हुई। वेदका शाखाभेद मन्वादि ग्रंथके अध्ययनभेद जैसा नहीं है। प्रत्युत यह भिन्न कालमें लिपित भिन्न देशियोंके उच्चारणादि भेद-जनित तथा अनेक आदर्श पुस्तकोंके पाठादि भेदजनित हैं। शाखाप्रवर्त्तकोंके प्रवचनमें कुछ कुछ स्वतन्त्रता है।

ऐसा होने पर भी यजुर्व्वेदके वाजसनेय और तैत्तिरीय शाखामें सचमुच पृथकता है। इस कारण प्राचीनोंने इस भेदको शुक्लयजुर्वेद और कृष्णयजुर्वेद नामसे अभिहित किया है। जाबाली आदि सत्तरह वाजसनेय शाखा शुक्लयजुर्वेद तथा औख्यादीय तैत्तिरीय छः शाखा कृष्णयजुर्वेद नामसे पुकारा जाती है। वैदिक मन्त्रभाग ऋक्, यजुः और साम यह त्रिविध स्वभावात्मक होने पर भी होत्र, आध्वर्य्यव, औद्गात्र और ब्राह्म यह चतुःसंहितात्मक है। पीछे यजुःसंहिता शुक्ल और कृष्ण इन दो भागोंमें विभक्त होनेके बाद वेद पांच शाखाओंमें विभक्त हुआ—यथा, ऋग्वेदसंहिता, शुक्लयजुर्व्वेदसंहिता, कृष्णयजुर्व्वेदसंहिता, सामवेदसंहिता और अथर्व्ववेदसंहिता।

इन पांच वेद संहिताओंमें कौन पहले और कौन पीछे प्रकाशित हुई, पाश्चात्य अध्यापकोंने यह ले कर अपना बहुत दिमाग लड़ाया है।

जगत्सृष्टिके पहले ब्रह्माके चारों मुखसे चार वेदोंकी सृष्टि हुई थी, यही पौराणिकोंका अभिप्राय है। सायणने भी पौराणिकमतको ही ग्रहण किया है। अतएव आधुनिक अध्यापकोंकी विचारप्रणालीकी ओर ध्यान देना भी सायणके लिये असम्भव है। परंं पुराणका मत लेनेसे यजुर्वेदको ही आदि मान सकते हैं तथा उसीके आगे चल कर चार भागोंमें विभक्त होनेसे चार वेदोंकी उत्पत्ति हुई।

"एक आसीत् यजुर्वेदस्तच्चतुर्धा सं व्यकल्पयत्।"

(विष्णुपु०)

फिर एक बात यह है, कि जो सब गवेषणापरायण सूक्ष्मदर्शी पण्डित कहते हैं, ऋकसंहिता ही वेदका प्रथम ग्रन्थ है, साम और यजुः इसके पीछेका है वे क्या ऋक्संहितामें यजुः और सामका उल्लेख देख नहीं पाते? साम और यजुः यदि ऋक्संहिताके बादको है, तो ऋक्संहितामें इन दोनों नामोंका उल्लेख क्यों आया? ऋक्संहितामें क्या है निम्नलिखित ऋचाओंसे उसका पता चलेगा —

१। "यजुस्तस्मादजायत। (१०।९०।९)

२। गायत्रसाम नमन्यम्। (१।१७३।१)

३। यशुपा रक्षमाणः। (५।२।२५)

४। तमु सामानि यन्ति। (५।४४।१४)

इस प्रकार और भी कितने उदाहरणका उल्लेख किया जा सकता है। फलतः जो इस प्रकार ऐतिहासिक कालनिर्णय करनेकी कोशिश करते हैं, उनकी उक्तियाँ स्वकपोलकल्पित मात्र हैं।

इन लोगोंने और भी कहा है, कि ऋग्वेदका द्वितीय-मण्डल अपेक्षाकृत अर्वाचीन है। ऋक्‌संहिताके द्वितीय-मण्डलके सायणभाष्यमें लिखा है—

"य आङ्गिरसः शौनहोत्रः भूत्वा भार्गवः शौनकोऽभवत् स गृत्समदो द्वितीयं मण्डलमपश्यत्।"

इन लोगोंने इस अनुक्रमणी वचनको उद्धृत किया है। किन्तु इनकी बात पर थोड़ा विचार करना उचित है। इन लोगोंका कहना है, कि द्वितीयमण्डल जो शौनकीय है यह इस उक्तिसे स्पष्ट मालूम होता है। पाणिनिसूत्रमें भी इसका उल्लेख है। यथा—

शौनकादिभ्यश्छन्दसि। (पा ४।३।१०५)

पाणिनिके सूत्रमें जो शौनककी बात लिखी है, शौनक प्रोक्तग्रन्थ ही उक्त सूत्रका विषय है। शौनकप्रोक्त अथर्व-वेदीय संहिता ग्रन्थ जो अध्ययन करते हैं वे शौनकिन कहलाते हैं। शौनकदृष्ट ग्रन्थ इस सूत्रका विषय नहीं है।

अनुक्रमणिकामें लिखा है—

"द्वितीयमण्डलमपश्यत्।"

यहां "अपश्यत्" लिखा है, "अवोचत्" लिखा नहीं अतएव द्वितीय मण्डल शौनकप्रोक्त है ऐसा अर्थ लगाना गलत है।

वे लोग द्वितीयमण्डलसे ही एक यशोय शब्द उद्धृत कर प्रमाणित करना चाहते हैं, कि इस मण्डलमें यज्ञीय शब्द है। अतएव यह पीछेके समय विरचित हुआ है। यह एकदेशदर्शिताका भ्रान्तिमय फल मात्र है। ऋक्‌संहिताके प्रत्येक मण्डलमें ही यज्ञीय शब्दका उल्लेख देखनेमें आता है। यथा—

१। होतारम्, पोतम्। (१।७६।४) २ ऋत्विजम्। (८।४०।११) ३ नेष्टः। (१।१५।३) अग्निधम्। (१०।९१।१०) ५ प्रशास्ता। (१।९४।६) ६ अध्वरीव-ताम्। (१।२३।१५) ७ ब्रह्मा। (१।८०।१) ८ गृहपति। (१।१३।६) ९ इमे। (१।१।८)

ये लोग दशम मण्डलको भी परिशिष्ट मानते हैं। उनकी युक्ति यह है, कि दशम मण्डलकी भाषा पृथक् है। किन्तु जो वेदाध्ययनमें निपुण हैं, संस्कृत भाषा जिनकी मातृभाषा स्वरूप है, वे अन्यान्य मण्डलोंकी भाषासे दशम मण्डलकी भाषामें जरा भी पृथकता देख नहीं पाते। पाश्चात्य संस्कृत पण्डितोंने इस भाषाकी पृथकता किस प्रकार की उसे इस देशके सुपण्डित भी समझ नहीं सकते हैं।

सामवेदियोंके ग्रन्थका मन्त्र ऋग्वेदसे उद्धृत नहीं है।

पाश्चात्य वैदिक गवेषणाकारियोंका और भी एक भ्रमसिद्धान्त यह है, कि सामवेदीयार्चिक ग्रन्थके मन्त्र ऋग्वेदसे उद्धृत हैं। यह पाण्डित्यदम्भमात्र है। क्योंकि, ऋक्‌सूक्तमें स्पष्टतः सामवेदीय छन्दोंका पृथक् उल्लेख है। यथा—

"तस्मात् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात् यजुस्तस्मादजायत॥
(ऋक्‌संहिता १०।९०।९)

इस ऋक्‌में "छन्दांसि" कह कर जो पद है यह सामवेदीयार्चिक भिन्न और कुछ नहीं है। सामवेदी-यार्चिक ही छन्दशब्दका वाच्य है, यह पहले ही लिखा जा चुका है। पाणिनिने भी सामवेदीय छन्दोग्रन्थके मंत्रोंको छन्द कहा है। यथा—

औऽस्थोदि छन्दसः प्रगाथेषु। (४।१।५५)

प्रगाथ केवल सामवेदमें ही देखा जाता है, अन्यत्र नहीं। सामवेदीय ताण्ड्यमहाब्राह्मणमें प्रगाथका उल्लेख है। सामवेदियोंको छन्दोग कहा जाता है। इन्हें कभी भी कोई "ऋग्ग" नहीं कहते। सामवेदीय ब्राह्मणग्रन्थ और उपनिषद् ही छान्दोग्य कहलाते हैं। पाणिनिने छान्दोग्य शब्दकी जो व्युत्पत्ति की है यह इस प्रकार है—छन्दोगौक्थिक। (४।३।१२९)

इन सब उक्तियों द्वारा उद्धृतपदीयादि मतभी ही निरस्त होता है। पाश्चात्यने स्वकपोलकल्पनाके बल इसी प्रकार वेदके पौर्वापर्य सम्बन्धमें अनेक प्रकारकी कल्पना कर रखी है। किन्तु सारसिद्धान्त यह है, कि

ऋक् और यजुर्वेद एक ही समयमें उत्पन्न हुए हैं। यथा अथर्ववेदमें—

"ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रिताः॥"

(११।७।२४)

पूर्वकालमें मन्त्रसमूह इधर उधर बिखरे हुए थे। पीछे उनका संग्रह और विभाग किया गया।

सायणने कहा है, कि ब्राह्मण दो प्रकारके हैं—विधि और अर्थवाद। अन्यान्य मतसे भी अर्थवाद ब्राह्मण-काण्डके अन्तर्गत है। आपस्तम्बने अर्थवादको चार भागोंमें विभक्त किया है, यथा—निन्दा, प्रशंसा, परकृति और पुराकल्प। निरुक्तकारने भी अर्थवादका ब्राह्मणत्व स्वीकार किया है। यथा—"प्राशित्र मस्याक्षिणी निर्घातेति च ब्राह्मणम्" (१२।२।१)

जैमिनिका कहना है—

"शेषे ब्राह्मणशब्दः।" (२।१।३३)

भाष्यकार शबरस्वामीने लिखा है—

"मन्त्राश्च ब्राह्मणानि च वेदः। तत्र मन्त्रलक्षणे उक्ते परिशेषसिद्धत्वात् ब्राह्मणलक्षणमवचनीयम्। मन्त्रलक्षणेनैव सिद्धम्। यस्यैतल्लक्षणं न भवति तद्ब्राह्मणमिति परिशेषसिद्धं ब्राह्मणम्।"

अर्थात् मन्त्र और ब्राह्मण इनको समष्टि ही वेद है। मन्त्रके लक्षण कहे जानेसे यदि परिशेषसिद्धताके कारण ब्राह्मण लक्षण न कहा जाय, तो कोई हर्ज नहीं। मन्त्रके लक्षण कहे जाने पर उसके बाद जो अवशिष्ट रहता है, वही ब्राह्मण है।

हेतु, निर्वचन, निन्दा, प्रशंसा, संशय, विधि, परकृति, पुराकल्प, व्यवधारणकल्पना और उपमान यही ब्राह्मण ग्रन्थके लक्षण हैं। नीचे उनके उदाहरण दिये जाते हैं—

१ हेतु—"शूर्पेण जुहोति, तेन ह्यन्नं क्रियते"

२ निर्वचन—"तद्दध्नो दधित्वम्।"

३ निन्दा—"उपवीता वा एतस्याग्नयः।"

४ प्रशंसा—"वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता।"

५ संशय—"तद्व्यचिकित्सन् जुहवानीमा हौषाम्।"

६ विधि—"यजमानसम्मिता औदुम्बरी भवति।"

७ परकृति—"माषानेव मह्यं पचति।"

८ पुराकल्प—"पुरा ब्राह्मणा अभैषुः।"

९ व्यवधारण-कल्पना—"यावतोऽश्वान् प्रतिगृह्णीयात् तावतो वारुणांश्चतुष्कपालान् निर्वपेत्।"

उपमानका उदाहरण जैमिनिभाष्यकार शबरस्वामी द्वारा दिखलाया नहीं गया। फलतः ब्राह्मणग्रंथों उपमानका उदाहरण इतना स्पष्ट और अधिक है, कि उसके उदाहरणका उल्लेख करना उन्होंने कुछ भी प्रयोजनीय न समझा।

इतिहास और पुराण।

ब्राह्मणग्रंथमें इतिहास और पुराणको उल्लेखनीय कुछ घटनाओंका विवरण देखा जाता है। वह इतना अपरिस्फुट है, कि उससे कोई विशेष तत्त्व सङ्कलन नहीं किया जा सकता। परन्तु इतिहास और पुराणका उल्लेख देखनेसे मालूम होता है, कि प्राचीन ऋषियोंमें भी इतिहास पुराणका प्रचलन था। यथा—

१। "स होवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि * * इतिहासपुराणम्।" (छान्दोग्य ७।१।२)

२। "अथाष्टमेऽहन् * * तानुपदिशतीतिहासो वेदः सोऽयमिति किञ्चिदितिहासमाचक्षीतैवमेवाध्वर्युः सम्प्रेष्यति।" (शतपथ-अश्वमेधप्रकरण १३।४।३।१२)

३। "अथ नवमेऽहन् * * तानुपदिशति पुराणं वेदः। सोऽयमिति किञ्चित् पुराणमाचक्षीतैवमेवाध्वर्युः सम्प्रेष्यति।" (शतपथब्रा० १३।४।३।१३)

४। "यद् ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथानाराशंसीर्मेदाहुतयः।" (तैत्तिरीय आर० २।९।२)

नाराशंसी।

ब्राह्मणग्रंथमें एक और विषयका उल्लेख है, उसका नाम है "नाराशंसी"। नरस्तुति-विषयक श्रुतियां नाराशंसी या नाराशंस्य कहलाती हैं। नाराशंसी तीन प्रकार की है—मन्त्रात्मिका, गाथात्मिका और ब्राह्मणात्मिका।

गाथा।

ब्राह्मणग्रंथमें गाथा भी दिखाई देती है। गाथा श्लोकपद और प्रवादवाक्यस्वरूप है। गाथा ब्राह्मणग्रंथसे भी बहुत प्राचीन है। ब्राह्मणग्रंथके अनेक

ख्यानोंमें गाथाका उल्लेख है। यह पूर्वकालमें गाई जाती थी। यथा—

१। "यमगाथाभिः परिगायति।" (तै०ब्रा० ५।१।८।२)

२। "तदेषाभिर्यज्ञगाथा गीयते—यजेत् सौत्रामण्या सपत्नोकोऽप्यसोमपः। मातापितृभ्यामनृणार्थायजेति वचनाच्छ्रुतिः।" (ऐतरेयब्रा० ७।२।६)

ब्राह्मण-ग्रन्थ।

प्रत्येक शाखाके भिन्न भिन्न ब्राह्मणग्रंथ हैं। फिर सभी शाखाओंका भी एक ब्राह्मणग्रंथ नहीं है। किन्तु ऋग्वेदके शैशिरीय, वाष्कल, सांख्य, वात्स्य और आश्वलायन शाखाका सिर्फ एक ब्राह्मणग्रंथ है। उसका नाम है ऐतरेयब्राह्मण। इसे बह्‌वृच-ब्राह्मण भी कहते हैं। फिर कौषीतकी आदि सोलह शाखाओंका एक ब्राह्मण है। उसका नाम कौषीतकी-ब्राह्मण है। उसे शाङ्खायन या साङ्ख्यायन भी कहते हैं। यजुर्वेदकी मैत्रायणी आदि उन्नीस चरकाध्वर्यु शाखाका एक ब्राह्मण है जिसका नाम मैत्रायणी-ब्राह्मण है। यह काठयुर्व-ब्राह्मण नामसे प्रसिद्ध है। वाजसनेयादि १७ शाखाओंका एक ब्राह्मण है। वाजसनेयक-ब्राह्मण उसका नाम है। इसका दूसरा नाम शतपथब्राह्मण भी है। तैत्तिरीय छः शाखाओंका एक ब्राह्मण है। उसका नाम है तैत्तिरीय-ब्राह्मण। साम वेदकी इसमी जैमिनि, कौथुम और राणायनीय ये तीन शाखायें पढ़ी जाती हैं। इन तीन शाखाओंके ब्राह्मण का नाम छान्दोग्य-ब्राह्मण है। वर्त्तमान सामवेदके ८ ब्राह्मण देखे जाते हैं। यथा—सामविधान, मन्त्र, आर्षेय, वंश, दैवताध्याय, संहितोपनिषद्, तलवकार और ताण्ड्यब्राह्मण। अथर्ववेदका सिर्फ एक गोपथ-ब्राह्मणग्रन्थरूप देखनेमें आता है। इसके अन्यान्य ब्राह्मण शायद लुप्त हो गये हैं।

प्राचीन भाष्यकारोंने स्वीकार किया है, कि आरण्यक अति प्राचीन और वेदके अन्तर्भुक्त है।

उपनिषद्।

यूरोपीय पण्डित उपनिषदोंको भी अप्राचीन मानते हैं। उपनिषद् वेदांशवाचक है। पाणिनिमें इसका कोई प्रयोग देखनेमें नहीं आता, अतएव पाणिनिके पूर्व उपनिषद् बिलकुल न था, यही पाश्चात्य पण्डितोंका सिद्धान्त है। परन्तु यह सिद्धान्त वैदिक साहित्याभिज्ञ व्यक्तियोंके लिये बड़ा ही विस्मयजनक है।

उपनिषद्के सम्बन्धमें यास्क क्या कहते हैं, यही देखना चाहिए। यास्कने एक ऋक्‌का भी विचार किया है। वह ऋक् यह है—

"यत्र सुपर्णा।" (ऋक् १।१।२८।१)

यास्क इसकी व्याख्या करके कहते हैं,—"इत्युपनिषद्वर्णो भवति।" (१।२।६)

दुर्गाचार्यने भी इसके भाष्यमें कहा है—"यया ज्ञानमुपगतस्य सतो गर्भजन्मजरामृत्यवो निश्चयेन सीदन्ति। सा रहस्य विद्या उपनिषदित्युच्यते। उपनिषद्भावेन वर्ण्यत इति उपनिषद्वर्णः।"

अतएव उपनिषदोंको आधुनिक या अप्राचीन नहीं कह सकते।

वेदोत्पत्तिकालका विचार।

वेदोत्पत्ति-कालनिर्णयके सम्बन्धमें यूरोपीय पण्डित अनेक प्रकारकी कल्पना कर गये हैं। किन्तु पहले हम लोगोंके हृदयमें इस बातका प्रश्न न उठा, कि हम वेदोत्पत्तिके काल निर्णयमें समर्थ हैं या नहीं?

१। अपौरुषेयोऽयं वेदः।

२। नित्यावागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।

३। अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग् यजुःसामलक्षणम्॥

(मनु १।२३)

ये सब वचन देखनेसे मालूम होता है, कि प्राचीन गण वेदको अपौरुषेय और नित्य समझते थे। उनके इन सब सिद्धान्तोंसे जाना जाता है, कि वेद मनुष्यरचित ग्रन्थ नहीं है। अतएव ग्रन्थमें व्यक्तिनिर्णयकी आशा करना विडम्बना मात्र है। किन्तु यह बात निश्चय है, कि वेद आर्योंका आदि धर्मग्रन्थ है।

मीमांसादर्शनका अभिप्राय।

मीमांसकोंने वेदको ले कर यथेष्ट परिश्रम किया है। उनका सिद्धान्त यह है—

"न केन विदधि पुरुषेण प्रणीतो वेदः।"

अर्थात् कोई मनुष्य वेदके प्रणेता नहीं हैं। वेद

अपौरुषेय है। यह सिद्धान्त स्थिर रखनेके लिये मीमांसा दर्शनके प्रणेताने यथेष्ट प्रयत्न किया है।

"वेदांश्चैके सन्निकर्षं पुरुषाख्याः। अनित्यदर्शनात्" वादिपक्षके इस पूर्वपक्षका विचार करते हुए उन्होंने लिखा है, कि यह उक्ति युक्तिसंगत नहीं है। क्योंकि—"उक्तन्तु शब्दपूर्वत्वम्। आख्या प्रवचनात्। परन्तु श्रुतिसामान्यमात्रम्। कृते वा विनियोगस्यात् कर्मणः सम्बन्धात्।" (मीमांसादर्शन १।१।२६—३२)

इन सब सूत्रोंका अवलम्बन कर शास्त्रदीपिकामें वेदके अपौरुषेयत्वविषयमें यथेष्ट विचार है।

वेदान्तदर्शनका अभिप्राय।

भगवान् बादरायणने वेदान्तदर्शनमें भी वेदको "अपौरुषेय" अभिप्राय कहा है। कोई भी व्यक्ति वेदके प्रणेता नहीं हैं, इस बातकी उन्होंने स्पष्टरूपसे घोषणा कर दी है। वेदान्तसूत्रमें लिखा है,—

"शास्त्रयोनित्वात्।" (१।१।३)

इसका अर्थ यह है, कि ब्रह्म ऋग्वेदादि शास्त्रके कारण स्वरूप हैं, अतएव वे सर्वज्ञ हैं। इस सूत्रके अनुसार वेदका मनुष्यप्रणेतृत्व सूचित नहीं होता। वेद अपौरुषेय है, ब्रह्मसूत्र भी इसे स्वीकार करता है। अतएव वेदका काल निर्णय करना कठिन है। कालनिर्णय उसीका हो सकता है जो मनुष्यकृत है, अपौरुषेय ग्रन्थका कालनिर्णय हो नहीं सकता।

वैशेषिक, न्याय, सांख्य और पातञ्जलदर्शनमें भी वेदका प्रामाण्य स्वीकृत हुआ है। किन्तु वेद अकर्त्तृक या ईश्वरकृत हैं, ऐसी कोई बात नहीं कही गई है। कोई कोई कहते हैं, कि इन्होंने वेदको ऋषिकृत कहा है। किन्तु हम लोग इसे विश्वास नहीं करते। ऋषिगण ही वेदके कर्त्ता हैं, यह बात किसी भी दर्शनमें देखी नहीं जाती। ऋषियों द्वारा वेद प्रकाशित हुए, यही दार्शनिकोंका अभिप्राय है। वेदको सबोंने "सिद्ध" कह कर स्वीकार किया है। पतञ्जलि कहते हैं—

"नित्यपर्यायवाची सिद्धशब्दः।"

अर्थात् सिद्धशब्द नित्यपर्यायवाची है। अतएव पतञ्जलिकी उक्तिमें भी वेदको नित्य माना है।

किसी किसी मन्त्रमें ऋषिकृत निरुक्त और ऐतरेयब्राह्मणमें उसका प्रमाण मिलता है। यथा—

१। "विश्वामित्रऋषि * * नदीस्तुष्टाव गाथा भवतेति।" (निरु० २।७।८)

२। "ऋषिपुत्रा विलपितं वेदयन्ते।" (निरु० ५।१।१२)

३। "गृत्समदमर्थमभ्युत्थितं कपिञ्जलोभिववाशे तदभिवादिन्येषग् भवति।" (निरु० ६।१।१४)

निरुक्तके इन सब वचनों द्वारा कोई कोई कहते हैं, कि वेद ऋषि-प्रणीत ग्रन्थ है। इसके सिवा ऐतरेय ब्राह्मणमें भी ऐसे प्रमाण देखनेमें आते हैं। यथा—

"सर्व ऋषिर्मन्त्रकृत्।" (ऐतरेयब्रा० ६।१।१)

उनका यह भी कहना है, कि मन्त्रोंकी समालोचना करनेसे देखा जाता है, कि वेद धीमत्पुरुषकृत है। वेदमन्त्रके कर्त्ता एक हैं, यह भी प्रतीत नहीं होता। वेदमन्त्रमें ही उसका प्रमाण है। यथा—

"सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वा मक्रत।
अत्र सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि॥"

(ऋक्० ८।२३।२)

ये सब वचन देख कर इन्होंने यह स्थिर किया है, कि वेद ऋषि-प्रणीत है। दूसरे पक्षका कहना है, कि आदि कविके हृदयमें नित्य सत्य ब्रह्मने वेद प्रकाश किया था। वेद अपौरुषेय है।

जो हो, वेद ऋषिप्रणीत ग्रन्थ होने पर भी अब देखना चाहिये, कि हम लोग उसके कालनिर्णयमें समर्थ हैं या नहीं। आधुनिक लोगोंने बड़े कष्टसे पाणिनिकालका निर्णय किया है। यास्क पाणिनिसे भी पहलेके हैं। वाक्यादि क्रमकारगण यास्कसे प्राचीन हैं। पदकार शाकल्यादि उससे पूर्वतन हैं। ऋक्तन्त्रके प्रणेता शाकटायनादि इनसे भी पहले विद्यमान थे। कल्पसूत्रकार लाट्यायनादि शाकटायनादिके भी पूर्वतन हैं। इनके भी पहले कुसुरविन्दादि ऋषियोंने अनु-ब्राह्मण ग्रन्थ प्रकाश किया। इसके भी पूर्व समयमें महीदासादिने श्लोकानुश्लोकगाथादिका संग्रह कर तदनुसार ऐतरेयब्राह्मणादि लिखे। इसके भी पहले प्रवादका अवलम्बन कर श्लोकानुश्लोक गाथा प्रकाशित हुई। उसके पूर्व समयमें इसी प्रकार विकीर्ण भावमें विद्यमान थे। वे सब विकीर्ण प्रवाद आज

भी श्रुति नामसे प्रसिद्ध है। इसके भी पहले यज्ञप्रयोग आरम्भ हुआ। इसके भी बहुत पहले अथर्व या व्यास द्वारा चार संहिताएं संगृहीत हुईं। इसके पूर्व समयमें सूक्तमण्डलादि संगृहीत हुए। इसके भी बहुत पहले भिन्न भिन्न समयमें भिन्न भिन्न ऋषियोंने वैदिक मन्त्र धीरे धीरे प्रकाश किये। अतएव वेद कब रचा गया, इसका पता लगाना बहुत कठिन है। व्यक्तिनिर्णय द्वारा कालका निर्णय होता है। यहां पर व्यक्तिनिर्णय बिलकुल असम्भव है। जहां ऋषि-विशेषको किसी मन्त्रका द्रष्टा कहा गया है, वहां द्रष्टा शब्दका अर्थ यदि प्रणेता लिया जाय, तो कालनिर्णय सम्भवपर नहीं होता। किसी मन्त्रके द्रष्टा अग्नि हैं। इस प्रकार नाम द्वारा क्या कालनिर्णय हो सकता है?

इसके सिवा मनुने स्पष्ट लिखा है—

"अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्" (१।२३)

इस वचन द्वारा जाना जाता है, कि अग्नि, वायु और रविसे ही वेद प्रकाशित हुए हैं।

ऐतरेय-ब्राह्मणमें जनमेजय परीक्षित् आदि नामोंका उल्लेख है। इसे देख कोई कोई समझते हैं, कि यह ग्रन्थ अवश्य ही महाभारतके पीछे वर्णित हुआ है। ऐसी उक्ति बिलकुल अयौक्तिक है। जनमेजय परीक्षित आदि नामविशेष हैं। ये सब नाम महाभारतके पहले थे या नहीं, इसका भी क्या परिमाण है? फिर ऐतरेय आदि ग्रन्थोंमें ये सब नाम देख कर ही परवर्त्तीकालमें ऐसे नाम नहीं रखे जाते थे, इस पर फिर अविश्वास ही क्यों किया जाये? पाणिनिके व्याकरणमें भी ब्राह्मण ग्रन्थके प्राचीनत्वका प्रमाण मिलता है। जनमेजय परीक्षित नाम देख कर ही पाश्चात्त्य पण्डितोंने जो काल-निर्णयका उपाय निकाला है, उस पर भी विश्वास किया नहीं जा सकता।

हम ऋग्वेदसंहितामें "भोज" नाम देखते हैं। यथा—

"भोजस्येदं पुरुकृतीव मेन्य" (ऋक् ८।६।४८)

इससे हम ऐसे ही पण्डित समझ सकते हैं, कि सुविख्यात भोजराजके बाद ही वेद रचा गया है। इस भोजराजके समयमें ही वेदभाष्यकार उव्वटका जन्म हुआ। दूसरे उव्वट भी वेदरचनाके समसामयिक थे कि हैं। इस प्रकार नाम देख कर कालनिर्णयका उपाय आविष्कार करना जो उपहासका विषय है यह सब कोई समझ सकते हैं।

वेद अति गम्भीर है। इसका अर्थबोध सहजमें नहीं होता। वेदका अर्थ समझनेके लिये ही षडङ्गकी सृष्टि हुई है। यह चतुर्वेदके साथ षडङ्ग "वेदका षडङ्ग" और अपरा विद्या कहलाता है। मुण्डक उपनिषदमें लिखा है—

"द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च। तत्र परा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।"

(१।१।४-५)

अर्थात् ब्रह्मविद्गण कहते हैं, कि अपरा और परा ये दोनों विद्या ही ज्ञेय हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ये चारों वेद तथा शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दः और ज्योतिष यह षडङ्ग है। ये सब अपरा विद्या कहलाते हैं। जिस विद्या द्वारा वह अक्षर पदार्थ जाना जाता है वही परा विद्या है। मंत्र और ब्राह्मणसंहिताकारमें ग्रथित होनेके बाद इस षडङ्गकी सृष्टि हुई। षडङ्ग शब्द देखो।

वेदका मंत्र समझनेमें पहले ऋषि, छन्दः और देवता इन तीन विषयका ज्ञान होना आवश्यक है।

ऋषि, छन्दः, देवता और विनियोगके विषयमें ज्ञान रहना यथाविधि ब्राह्मणके लिये नितान्त प्रयोजनीय है। वैदिक निबन्धकारोंने इस सम्बन्धमें बहुत अनुशासन किया है।

वेदपाठकोंको मंत्रादिके ऋषि, छन्द, देवता और विनियोगके विषयका ज्ञान न रहना दुःखकी बात है। शास्त्रकार कहते हैं, कि वैदिक मंत्रादिके ऋषि, छन्दः, देवता और विनियोगका विषय जाने बिना जो वेदका अध्यापन, अध्ययन या मंत्रादिका जप करते हैं उन्हें प्रत्यवायग्रस्त होना पड़ता है। किंवा केवल ऋषि, छन्द, देवता और न्यासादिको न जान कर यदि ब्राह्मण मंत्रका प्रयोग करें, तो वह प्रयोग मंत्रकण्टक कहलाता है। महाभाष्य भी इस बातको समर्थन करते हैं। यथा—

"मन्त्रोहीनः स्वरतो वर्णतो वा ।"

इस सम्बन्धमें और भी शास्त्रीय विधिवाक्य हैं। यथा—

"स्वरो वर्णोऽक्षरं मात्रा विनियोगोऽर्थ एव च ।
मन्त्रजिज्ञासमानेन वेदितव्यं पदे पदे ॥"

अर्थात् मंत्रपाठार्थके लिये स्वर, वर्ण, अक्षर, मात्रा, विनियोग और अर्थ पद पदमें वेदितव्य है।

ऋषि ।

यहां ऋषि प्रभृतिके सम्बन्धमें कुछ आलोचना की जाती है—"ऋषि ऋषगतौ सर्वधातुभ्य इन् ।" (उणा ४।११) "इगुपधात् कित् ।" (उणा ४।१२१) इसी प्रकार "ऋषि" शब्द "इगुपधावित" हुआ है। तैत्तिरीय आरण्यकमें लिखा है—"अजान् ह वै पृश्नींस्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भ्वभ्यानर्षत्तदृषयोऽभवन् ।" (२।९।१)

जिन्होंने ईश्वरकी कृपासे पहले पहल अतीन्द्रिय वेदके दर्शन पाये थे, वे ही ऋषि हैं। यथा स्मृति—

"युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः ।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयम्भुवा ॥"

युगान्तमें इतिहासके साथ जब समस्त वेद अन्तर्हित हुए, तब स्वयम्भुके कहनेसे महर्षियोंने तपस्या द्वारा इतिहासके साथ समस्त वेदोंको पाया था।

मन्त्रकृत् ऋषिगण ।

ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है, कि ईश्वरगण, ऋषिकगण और उन्हींकी तरह जो हैं, वे ही मन्त्रकृत् ऋषि हैं।

"ईश्वरा ऋषिकाश्चैव ये चान्ये वै तथा स्मृताः ।
एते मन्त्रकृतः सर्वे कृत्स्नशस्तान्निबोधत ॥"
(मनुपव्र ६४।६५)

ब्रह्माके मानससे जो स्वयं उत्पन्न हुए हैं वे ही ईश्वर हैं। इनकी संख्या १० है। यथा—भृगु, मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा पुलह, क्रतु, मनु, दक्ष, वशिष्ठ और पुलस्त्य।* उक्त १० ईश्वरके पुत्र ही ऋषि।† तथा ऋषिपत्नियोंके गर्भसे उत्पन्न ऋषिपुत्रगण ऋषिक नामसे प्रसिद्ध हैं।‡ शुक्र, वृहस्पति, कश्यप, उशना, उतथ्य, वामदेव, अपोज्य, उशिज, कर्दम, विश्रवा, शक्ति, वालखिल्यगण और धरगण ऋषि हैं। वत्सर, नग्नहू, भरद्वाज, वृहदुक्थ, शरद्वान्, अगस्त्य, औशिज, दीर्घतमा, वाजश्रवा, सुचित्त, सुवाश्वेय, परायण, दधीच, शङ्खवान् और राजा वैश्रवण ये सब ऋषिक हैं। ब्रह्माण्डपुराणकारने इन सब ऋषियों और ऋषिकों तथा दूसरे जिन सब वेदमंत्रकारकोंका उल्लेख किया है, उनके नाम ये हैं—

भृगु, काव्य, प्रचेताः, आत्मवान्, और्व, जमदग्नि, विद, सारस्वत, आर्ष्टिषेण, अरूप, वीतहव्य, सुमेधाः, वैण्य, पृथु, दिवोदास, प्रश्वार, गृत्समद और शमः ये उन्नीस ऋषि मंत्रवादी हैं। अङ्गिरा, वेधस, भारद्वाज, वाष्कलि, अमृत, गार्ग्य, शैनी, संकृति, पुरुकुत्स, मान्धाता, अम्बरीष, आहार्य, आजमीढ़, ऋषभ, बलि, पृषदश्व, विरूप, कण्व, मुद्गल, युवनाश्व, पौरुकुत्स, त्रसद्दस्यु, सदस्युमान्, उतथ्य, वाजश्रवा, आयास्य, सुचित्त, वामदेव औशिज, वृहदुक्थ, दीर्घतपा और कक्षीवान् ये तेंतीस अङ्गिरसके पुत्र हैं। ये श्रेष्ठ ऋषिपुत्रगण मंत्रप्रणयनकर्त्ता हैं।

कश्यपपुत्रगण, यथा—काश्यप, वत्सार, विभ्रम, रैभ्य, असित और देवल ये छः काश्यप हैं। ये सभी ब्रह्मवादी हैं। अत्रि, अर्चिर्नस्, श्यावश्वान्, निष्ठुर, बल्गूतक, धीमान् और पूर्वातिथि ये सभी अत्रिके पुत्र हैं, महर्षि और मंत्रद्रष्टा हैं।

वशिष्ठ, शक्ति, पराशर, चतुर्थ इन्द्रप्रमति, पञ्चम भरद्वसु, षष्ठ मैत्रावरुण, सप्तम कुण्डिन, अष्टम सुद्युम्न, नवम वृहस्पति और दशम भरद्वाज; इन्होंने मंत्र और ब्राह्मणका संकलन किया। ये ही मंत्रादिके कर्त्ता और विधानके प्रवर्तक हैं। इन्होंने मिल कर मन्त्र (वेद) और वेदशाखाका लक्षण किया है।
(ब्रह्माण्डपु० ६४—६५ अ०)

* "भृगुर्मरीचिरत्रिश्च अङ्गिराः पुलहः क्रतुः ।
मनुर्दक्षः वशिष्ठश्च पुलस्त्यश्चेति ते दश ॥
ब्रह्मणो मानसा ह्येते उद्भूताः स्वयमीश्वराः ॥"
(ब्रह्माण्डपु० अनु० ६४।८८)

† "ईश्वराणां सुतास्त्वेते ऋषयस्तान्निबोधत ।"
(ब्रह्माण्डपु० अनु० ८६ श्लोक)

‡ "ऋषिपुत्रान् ऋषिकांस्तु गर्भोत्पन्नान्निबोधत ।"
(ब्रह्माण्डपु० अनु० ९२ श्लोक)

वैदिक देवता।

ऋक्, साम, यजुः और अथर्ववेदमें हम मंत्रात्मक अनेक देवताओंका उल्लेख पाते हैं। उनकी शक्ति कैसी कार्यकारी है तथा मानवजातिमें उनका प्रभाव कैसा पड़ता है, मंत्र पढ़नेसे ही उसका पता चलेगा।

किन्तु वेदका देवतत्त्व एक प्रकाण्ड घटना है। सब प्रकारके यज्ञों और यज्ञाङ्गोंमें फलदानके लिये जिस किसी पदार्थकी स्तुति की जाती है, वे ही उस मंत्रके देवता हैं।

वेदमें आकाशमण्डलवासी देवताओंको ही अधिक प्रधानता तथा गुणकीर्तन देखा जाता है। देवतत्त्व इस प्रकार विशाल होने पर भी इसमें यथेष्ट विशिष्टता है। यास्कका कहना है, कि देवगण त्रिस्थानवासी हैं—अग्नि पृथिवीवासी, वायु अन्तरीक्षवासी और सूर्य द्युस्थानवासी। कोई कोई वायुको ही इन्द्र कहते हैं, यथा "वायुर्वै इन्द्रः।" किन्तु ये सब पदार्थ जब वैदिक मन्त्र द्वारा घोषित होते हैं, तब वे देवता कहलाते हैं; देवता मन्त्रमयी हैं, यही मीमांसकोंका सिद्धान्त है।

यद्यपि तेंतीस कोटि देवताओंका प्रवाद है, तथापि वेद पढ़नेसे मालूम होता है, कि वेदमें प्रधानतः तेंतीस देवता कल्पित हुए हैं।

ऐतरेयब्राह्मणमें तेंतीस देवताओंका विभाग इस प्रकार है, ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, १ प्रजापति, और १ वषट्कार यही तेंतीस देवता हैं।

अब प्रश्न होता है, कि उक्त अष्ट वसु कौन कौन हैं? निरुक्तकारका कहना है, रश्मियोंके वसु ही वसु कहलाते हैं। फिर निघण्टुके दूसरे स्थानमें (४।६।१२८) लिखा है, कि द्युस्थानवासी देवताओंके वसु ही वसु नामसे प्रसिद्ध हैं।

निरुक्तके मतसे पार्थिव अग्निशिखासमूह, वैद्युताग्निप्रभा और सूर्यरश्मि वसु कहलाते हैं तथा पृथ्वी, अन्तरीक्ष और द्यु ये त्रिविध स्थान इनके वासस्थान कल्पित हुए हैं। शतपथब्राह्मण कहते हैं कि अग्नि, पृथ्वी, वायु, अन्तरीक्ष, आदित्य, द्यौ, चन्द्रमा और नक्षत्र ये ही वसु हैं। इन सबोंके मध्य जगत्के सभी पदार्थोंका वास है, अतएव ये वसु हैं। (शतपथब्राह्मण १४।६।९।४)

अष्टविध अग्नि ही अष्ट वसु हैं, यही सार वैदिक सिद्धान्त है।

कहीं कहीं अग्निको भी रुद्र कहा है, फिर कहीं कहीं इन्द्रको ही रुद्रकी कल्पना की गई है। शतपथ ब्राह्मणमें रुद्रगणको वायु कहा है। यथा—

"कतम रुद्रा इति, दशमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशस्ते यदस्माच्छरीरान्मर्त्यादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति तद्यद् रोदयन्ति तस्माद् रुद्रा इति।" (१४।५।७।५)

तैत्तिरीय आरण्यकमें वायुके ग्यारह भेद कहे गये हैं।

आदित्यसमूह—आदित्यगण द्युस्थानस्थित देवता हैं। निरुक्तकारने आदित्य शब्दका जो निर्वचन किया है वह विज्ञानसिद्धान्तसम्मत है। यथा—"आदत्ते रसान्, आदत्ते भासं ज्योतिषाम्, आदीप्तो भासा इति वा अदितेः पुत्र इति वा"—(२।४।१२)

इस निरुक्ति द्वारा जाना जाता है, कि जो रस ग्रहण करते हैं अथवा ज्योतिर्मय पदार्थकी प्रभा ग्रहण करते हैं अथवा जो अदितिके पुत्र हैं वे ही आदित्य हैं।

इसके सिवा इसका और भी एक निर्वचन है जिसका अर्थ है, जो द्युनिवासी देवताओंके अग्रगामी हैं वे ही आदित्य हैं। शतपथब्राह्मणमें लिखा है—

"कतमे आदित्या इति, द्वादश मासाः, संवत्सरस्यैत आदित्याः, एते हीदं सर्वमाददाना यन्ति, तस्मादादित्याः इति।" (१४।५।७।६)

शतपथब्राह्मणमें जिस प्रकार द्वादश आदित्योंका उल्लेख है, अन्यान्य वैदिक ग्रन्थमें भी वैसा ही देखा जाता है। वैदिक साहित्यमें द्वादश आदित्यके द्वादश नाम देखनेमें आते हैं। यथा—

सविता, भग, सूर्य, पूषा, विश्वानर, विष्णु, वरुण, केशी, वृषाकपि, यविता, यम, अजैकपाद और समुद्र।

द्वादश मासके लिये द्वादश आदित्यकी कल्पना की गई थी। अभिधानभेद और कर्मभेदसे देवताभेदकी कल्पना होती है, यह निरुक्तसम्मत है। अतएव एक मात्र पदार्थ ही अभिधानभेद और कर्मभेदसे अग्नि, विद्युत् और सूर्य इन तीन नामोंसे अभिहित हुए हैं। फिर एक अग्नि ही अग्नि, जातवेदा, द्रविणोद और

वैश्वानर इन चार देवतारूपमें विभक्त हुए हैं।

वेदमें प्रजापति देवताका नाम ब्राह्मणकाण्डमें विवाहस्थलमें कई जगह आया है। निरुक्तकार कहते हैं—

"प्रजापतिः प्रजानां पाता वा पालयिता।"

ऐतरेयब्राह्मणमें लिखा है—"प्रजापति र्वा इदमेक एकाग्र आस, सोऽकामयत प्रजायेय भूयान्त्स्यामिति।"

(ऐतरेयब्राह्मण २।५।७)

यह श्रुति पढ़नेसे मालूम होता है, कि प्रजापति देवताको वेदमें परमेश्वर कहा है। इसके सिवा अन्यान्य स्थानोंमें और भी अनेक अर्थोंमें प्रजापति शब्दका व्यवहार है। यास्कने इस सम्बन्धमें एक विशद व्याख्या की है। यथा—

"यस्यै देवतायै हविर्गृहीतं स्यात् तां मनसा ध्यायेद्वषट्करिष्यन्निति ह विज्ञायते।" (निरुक्त ८।२।७)

ऐतरेय ब्राह्मणमें इसकी और भी सुस्पष्ट और पूर्ण व्याख्या देखनेमें आती है। यथा—"यस्यै देवतायै हविर्गृहीतं स्यात्, तां मनसा ध्यायेद्वषट्करिष्यन् साक्षादेव तद्देवतां प्रीणाति प्रत्यक्षाद्देवतां यजति।"

(३।१।८)

अर्थात् जिस देवताके लिये हविः गृहीत होता है, यजमान वषट् ध्वनि करके साक्षात् सम्बन्धमें उन्हें परितुष्ट करते हैं तथा प्रत्यक्षमें देवताको यजन करते हैं। (अध्वर्युनिको "वौषट्" कहते हैं।) वही उच्च ध्वनि वषट्कार देवता है।

शतपथब्राह्मणमें लिखा है—

"प्राणो वै वषट्कारः।" (४।२।१२६)

यद्यपि शतपथब्राह्मणमें वषट्कारकी कथा उल्लिखित है, किन्तु ऐतरेयब्राह्मणकी तरह शतपथब्राह्मणमें वषट्कारको तेंतीस देवताओंके अन्तर्भुक्त नहीं किया गया है। शतपथब्राह्मणमें वषट्कारकी जगह "इन्द्र" शब्द देखनेमें आता है। यथा—

"अष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्या स्तु एकत्रिंशत् इन्द्रश्च प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिंशौ।"

(११।६।३।५)

शतपथब्राह्मणमें वैदिक इन्द्र देवताकी भी संख्या की गई है। शतपथब्राह्मण कहते हैं—

"स्तनयित्नुरेव इन्द्रः"

अर्थात् स्तनयित्नु ही इन्द्र है। यहां पर स्तनयित्नु शब्दका अर्थ मेघचालक वायु विशेष है।

वेदमें इन ३३ देवताओंको "सोमपा" अर्थात् सोमरस-पानकारी देवता कहा है। किन्तु इनके सिवा वेदमें और भी अनेक देवताओंका उल्लेख है। वे 'सोमपा' नहीं कहलाते हैं।

वह्नि, इध्म, ऊषा, नक्ता, त्वष्टा, तनूनपात्, इड़ा, स्वाहाकृत्, नराशंस, वनस्पति और त्रिएष्टत् ये ग्यारह असोमपा देवता कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त तैत्तिरीयमें उपयाजदेवताओंका नामोल्लेख देखनेमें आता है। यथा—समुद्र, अन्तरीक्ष, सविता, अहोरात्र, मित्रावरुण, सोम, यज्ञ, छन्दः, द्यावापृथिवी, दिव्य, नभः और वैश्वानर। इन सब देवताओंकी संख्या ६४ या ६५ है। इनके अतिरिक्त वेदमें जिन सब पारिभाषिक देवताओंका उल्लेख देखनेमें आता है उनकी गणना करना यद्यपि बिलकुल असम्भव नहीं है तो सहजसाध्य भी नहीं।

यास्कने स्वर्गीय, अन्तरीक्ष और मर्त्य इन त्रिविध देवताका उल्लेख किया है। यथा—

१ द्यौः, २ वरुण, ३ मित्र, ४ सूर्य, ५ सवितृ, ६ पूषा, ७ विष्णु, ८ विवस्वत्, ६ आदित्यगण, १० दस्र ११, ऊषा, १२ अश्विद्वय ये स्वर्गीय देवता कह कर पूजित हैं, १३ इन्द्र, १४ त्रित आप्त्य, १५ अपांनपात, १६ मातरिश्वा, १७ अहिर्बुध्न्य, १८ अजएकपाद, १६ रुद्र, रुद्रगण, २० मरुद्गण, २१ वायु-वात, २२ पर्जन्य, २३ आपः, ये आन्तरीक्ष हैं तथा २४ नदी और जल, २५ पृथिवी, २६ अग्नि, २७ बृहस्पति २८, सोम ये मर्त्य हैं।

एतद्भिन्न विश्वकर्मा, प्रजापति, मन्यु, श्रद्धा, अदिति, दिति, विश्वदेवा, सरस्वती, सुनृता और इला आदि देवियाँ, ऋभुगण, त्वष्टा, इन्द्राणी आदि देवियाँ, पृश्नि, यम, आप्त्यगण, वसुगण, उशना, वैश्वानर, ३३ देवता, आप्रीदेवता, रोदसी, ऋभुक्षा, राका, सिनीवाली, गुङ्गू, रात्रि, धिषणा आदि देवताओंके नाम भी ऋग्वेदमें देखे जाते हैं। ऋग्वेदमें कहीं कहीं द्यावापृथिवी, मित्रावरुण आदि कुछ देवद्वयकी शक्तिपूजा भी एकत्र प्रचलित देखी जाती है। विशेष विशेष गन्धर्व और अप्सरोगण तथा

वैदिक देवता।

ऋक्, साम, यजुः और अथर्ववेदमें हम मंत्रात्मक अनेक देवताओंका उल्लेख पाते हैं। उनकी शक्ति कैसी कार्यकारी है तथा मानवजातिमें उनका प्रभाव कैसा पड़ता है, मंत्र पढ़नेसे ही उसका पता चलेगा।

किन्तु वेदका देवतत्त्व एक प्रकाण्ड घटना है। सब प्रकारके यज्ञों और यज्ञाङ्गोंमें फलदानके लिये जिस किसी पदार्थकी स्तुति की जाती है, वे ही उस मंत्रके देवता हैं।

वेदमें आकाशमण्डलवासी देवताओंको ही अधिक प्रधानता तथा गुणकीर्त्तन देखा जाता है। देवतत्त्व इस प्रकार विशाल होने पर भी इसमें यथेष्ट विशिष्टता है। यास्कका कहना है, कि देवगण त्रिस्थानवासी हैं— अग्नि पृथिवीवासी, वायु अन्तरीक्षवासी और सूर्य द्युस्थानवासी। कोई कोई वायुको ही इन्द्र कहते हैं, यथा "वायुर्वै इन्द्रः।" किन्तु ये सब पदार्थ जब वैदिक मन्त्र द्वारा द्योतित होते हैं, तब वे देवता कहलाते हैं; देवता मन्त्रमयी हैं, यही मीमांसकोंका सिद्धान्त है।

यद्यपि तैंतीस कोटि देवताओंका प्रवाद है, तथापि वेद पढ़नेसे मालूम होता है, कि वेदमें प्रधानतः तैंतीस देवता कल्पित हुए हैं।

ऐतरेयब्राह्मणमें तैंतीस देवताओंका विभाग इस प्रकार है, ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, १ प्रजापति, और १ वषट्कार यही तैंतीस देवता हैं।

अब प्रश्न होता है, कि उक्त अष्ट वसु कौन कौन हैं? निरुक्तकारका कहना है, रश्मियोंके अंशु ही वसु कहलाते हैं। फिर निघण्टुके दूसरे स्थानमें (५।६।२८) लिखा है, कि द्युस्थानवासी देवताओंके अंशु ही वसु नामसे प्रसिद्ध हैं।

निरुक्तके मतसे पार्थिव अग्निशिखासमूह, वैद्युताग्निशिखा और सूर्यरश्मि वसु कहलाते हैं तथा पृथ्वी, अन्तरीक्ष और द्यु ये त्रिविध स्थान इनके वासस्थान कल्पित हुए हैं। शतपथब्राह्मण कहते हैं कि अग्नि, पृथ्वी, वायु, अन्तरीक्ष, आदित्य, द्यौ, चन्द्रमा और नक्षत्र ये ही वसु हैं। इन सबोंके मध्य जगत्‌के सभी पदार्थोंका वास है, अतएव ये वसु हैं। (शतपथब्राह्मण १४।६।९।४)

अष्टविध अग्नि ही अष्ट वसु हैं, यही सार वैदिक सिद्धान्त है।

कहीं कहीं अग्निको भी रुद्र कहा है, फिर कहीं कहीं इन्द्रको ही रुद्रकी कल्पना की गई है। शतपथ ब्राह्मणमें रुद्रगणको वायु कहा है। यथा—

"कतमे रुद्रा इति, दशमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशस्ते यदस्मान्मर्त्याच्छरीरादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति तद्यद्रोदयन्ति तस्माद्रुद्रा इति।" (१४।५।१।५)

तैत्तिरीय आरण्यकमें वायुके ग्यारह भेद कहे गये हैं।

आदित्यसमूह—आदित्यगण द्युस्थानस्थित देवता हैं। निरुक्तकारने आदित्य शब्दका जो निर्वचन किया है वह विज्ञानसिद्धान्तसम्मत है। यथा—"आदत्ते रसान्, आदत्ते भासं ज्योतिषाम्, आदीप्तो भासा इति वा अदितेः पुत्र इति वा"—(२।४।२)

इस निरुक्तिके द्वारा जाना जाता है, कि जो रस ग्रहण करते हैं अथवा ज्योतिर्मय पदार्थकी प्रभा ग्रहण करते हैं अथवा जो अदितिके पुत्र हैं वे ही आदित्य हैं।

इसके सिवा इसका और भी एक निर्वचन है जिसका अर्थ है, जो द्युनिवासी देवताओंके अग्रगामी हैं वे ही आदित्य हैं। शतपथब्राह्मणमें लिखा है—

"कतमे आदित्या इति, द्वादश मासाः, संवत्सरस्यैत आदित्याः, एते हीदं सर्वमाददाना यन्ति, तस्मादादित्याः इति।" (१४।५।१।६)

शतपथब्राह्मणमें जिस प्रकार द्वादश आदित्योंका उल्लेख है, अन्यान्य वैदिक ग्रन्थमें भी वैसा ही देखा जाता है। वैदिक साहित्यमें द्वादश आदित्यके द्वादश नाम देखनेमें आते हैं। यथा—

सविता, भग, सूर्य, पूषा, विश्वानर, विष्णु, वरुण, केशी, वृषाकपि, यविता, यम, अजैकपाद और समुद्र।

द्वादश मासके लिये द्वादश आदित्यकी कल्पना की गई थी। अभिधानभेद और कर्मभेदसे देवताभेदकी कल्पना होती है, यह निरुक्तसम्मत है। अतएव एक मेव पदार्थ ही अभिधानभेद और कर्मभेदसे अग्नि, विद्युत् और सूर्य इन तीन नामोंसे अभिहित हुए हैं। फिर एक अग्नि ही अग्नि, जातवेदा, द्रविणोद और

वैश्वानर इन चार देवतारूपमें विभक्त हुए हैं।

वेदमें प्रजापति देवताका नाम ब्राह्मणकाण्डमें विवाह-स्थलमें कई जगह आया है। निरुक्तकार कहते हैं—

"प्रजापतिः प्रजानां पाता वा पालयिता।"

ऐतरेयब्राह्मणमें लिखा है—"प्रजापति र्वा इदमेक एकाग्र आस, सोऽकामयत प्रजायेय भूयान्त्स्यामिति।"

(ऐतरेयब्राह्मण २।५।७)

यह श्रुति पढ़नेसे मालूम होता है, कि प्रजापति देवताको वेदमें परमेश्वर कहा है। इसके सिवा अन्यान्य स्थानोंमें और भी अनेक अर्थोंमें प्रजापति शब्दका व्यवहार है। यास्कने इस सम्बन्धमें एक विशद व्याख्या की है। यथा—

"यस्यै देवतायै हविर्गृहीतं स्यात् तां मनसा ध्यायेद् वषट्करिष्यन्निति ह विज्ञायते।" (निरुक्त ८।२।७)

ऐतरेय ब्राह्मणमें इसकी और भी सुस्पष्ट और पूर्ण व्याख्या देखनेमें आती है। यथा—"यस्यै देवतायै हविर्गृहीतं स्यात्, तां मनसा ध्यायेद्वषट्करिष्यन् साक्षादेव तद्देवतां प्रीणाति प्रत्यक्षाद्द देवतां यजति।"

(३।१।८)

अर्थात् जिस देवताके लिये हविः गृहीत होता है, यजमान वषट् ध्वनि करके साक्षात् सम्बन्धमें उन्हें परितुष्ट करते हैं तथा प्रत्यक्षमें देवताको यजन करते हैं। (वषट्ध्वनिको "वौषट्" कहते हैं।) वही उक्त ध्वनि वषट्कार देवता है।

शतपथब्राह्मणमें लिखा है—

"प्राणो वै वषट्कारः।" (४।२।१२६)

यद्यपि शतपथब्राह्मणमें वषट्कारको कथा उल्लिखित है, किन्तु ऐतरेयब्राह्मणकी तरह शतपथब्राह्मणमें वषट्कारको तैंतीस देवताओंके अन्तर्भुक्त नहीं किया गया है। शतपथब्राह्मणमें वषट्कारको जगह "इन्द्र" शब्द देखनेमें आता है। यथा—

"अष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्या स्तु एकत्रिंशत् इन्द्रश्च प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिंशौ।"

(११।६।३।५)

शतपथब्राह्मणमें वैदिक इन्द्र देवताकी भी संख्या की गई है। शतपथब्राह्मण कहते हैं—

"स्तनयित्नुरेव इन्द्रः"

अर्थात् स्तनयित्नु ही इन्द्र है। यहां पर स्तनयित्नु शब्दका अर्थ मेघचालक वायु विशेष है।

वेदमें इन ३३ देवताओंको "सोमपा" अर्थात् सोमरस-पानकारी देवता कहा है। किन्तु इनके सिवा वेदमें और भी अनेक देवताओंका उल्लेख है। वे 'सोमपा' नहीं कहलाते हैं।

वर्हि, इध्म, उषा, नक्ता, त्वष्टा, तनूनपात्, इडा, स्वाहाकृत्, नराशंस, वनस्पति और स्विष्टकृत् ये ग्यारह असोमपा देवता कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त तैत्तिरीयमें उपयाजदेवताओंका नामोल्लेख देखनेमें आता है। यथा—समुद्र, अन्तरीक्ष, सविता, अहोरात्र, मित्रावरुण, सोम, यज्ञ, छन्दः, द्यावापृथिवी, दिव्य, नभः और वैश्वानर। इन सब देवताओंकी संख्या ६४ या ६५ है। इनके अतिरिक्त वेदमें जिन सब पारिभाषिक देवताओंका उल्लेख देखनेमें आता है उनकी गणना करना यद्यपि बिलकुल असम्भव नहीं है तो सहजसाध्य भी नहीं।

यास्कने स्वर्गीय, अन्तरीक्ष और मर्त्य इन त्रिविध देवताका उल्लेखःकिया है। यथा—

१ द्यौः, २ वरुण, ३ मित्र, ४ सूर्य,५ सवितृ, ६ पूषा, ७ विष्णु, ८ विवस्वत्, ९ आदित्यगण, १० दक्ष ११, उषा, १२ अश्विद्वय ये स्वर्गीय देवता कह कर पूजित हैं, १३ इन्द्र, १४ त्रित आप्त्य, १५ अपांनपात, १६ मातरिश्वा, १७ अहिर्बुध्न्य, १८ अजएकपाद्, १९ रुद्र, रुद्रगण, २० मरुद्गण, २१ वायु-वात, २२ पर्जन्य, २३ आपः, ये आन्तरीक्ष हैं तथा २४ नदी और जल, २५ पृथिवी, २६ अग्नि, २७ बृहस्पति २८, सोम ये मर्त्य हैं।

एतद्भिन्न विश्वकर्मा, प्रजापति, मन्यु, श्रद्धा, अदिति, दिति, विश्वदेवा, सरस्वती, सुनृता और इला आदि देवियाँ, ऋभुगण, त्वष्टा, इन्द्राणी आदि देवियाँ, पृश्नि, यम, आप्त्या, वसुगण, उशना, वैश्वानर, ३३ देवता, ग्नादेवता, रोदसी, अनुमति, राका, सिनीवाली, गुङ्गू, रात्रि, धिषणा आदि देवताओंके नाम भी ऋग्वेदमें देखे जाते हैं। ऋग्वेदमें कहीं कहीं द्यावापृथिवी, मित्रावरुण आदि कुछ देवद्वयकी शक्तिपूजा भी एकत्र प्रचलित देखी जाती है। विशेष विशेष गन्धर्व और अप्सरोगण तथा

ब्रह्मणस्पति और वास्तोष्पति आदि होम एवं पूजनके देवताओंने भी वैदिक ग्रन्थादिमें अपेक्षाकृत निम्नस्तरमें स्थान पाया है। इन सब देवताओंका विवरण यथास्थानमें लिपिबद्ध हो चुका है, इस कारण यहाँ उनका उल्लेख करना निष्प्रयोजन है।

यद्यपि वेदमें इस प्रकार असंख्य पारिभाषिक देवताओंका उल्लेख देखनेमें आता है, तथापि वेदके मन्त्र भागमें अग्नि, वायु, इन्द्र और सूर्यके ही अनेक स्तोत्र देखे जाते हैं। किन्तु निरुक्तकारने तीन मुख्य देवताओं का नाम लिखा है। यथा—"तिस्रो देवता इति"

ये तीन देवता अग्नि, वायु और सूर्य हैं। इसी कारण निरुक्तकारने कहा है—

"अग्निः पृथिवीस्थानो वायुर्वा इन्द्रो वान्तरीक्षस्थानः सूर्यो द्युस्थानः।" (७।२।१)

इससे जाना जाता है, कि पृथिवीमें अग्नि ही मुख्य देवता है। यहाँ उमादि अप्रधान देवता हैं। अश्वादि चेतनदेवता तथा दृषदादि अचेतनदेवता यहाँ पर पारिभाषिक देवता माने गये हैं। अन्तरीक्षमें वायु या इन्द्र ही मुख्य देवता, पर्जन्यादि अप्रधान देवता, श्येनादि अन्तरीक्षचर चेतन देवता तथा ग्रावादि अचेतन देवता अन्तरीक्षके पारिभाषिक देवता हैं। फिर द्युलोकमें सूर्य ही मुख्य देवता, अश्वि प्रभृति अप्रधान देवता हैं। द्युलोकमें पारिभाषिक देवताकी बात देखी नहीं जाती।

वैदिक साहित्य।

वैदिक साहित्य अतिप्राचीन आर्योंकी विशाल ज्ञानगरिमाका विपुल भाण्डार है। वैदिक साहित्यकी आलोचना करनेसे जाना जाता है, कि प्राचीनकालमें इस विभागकल्पनाकी जो सैकड़ों शाखाएं थीं, उनका अधिकांश विलुप्त हो गया है। इस महा विलुप्तिके बाद आज भी वैदिक साहित्यके जो सब ग्रन्थ वर्त्तमान हैं उनकी सम्यक् आलोचना करना भी असम्भव है। हम नीचे कुछ प्रधान प्रधान वैदिक ग्रन्थोंका परिचय देते हैं।

ऋग्वेद।

ऋग्वेदसंहिता एक वृहत् ग्रन्थ है। प्राचीन वैदिक साहित्यके पण्डितोंने इस ग्रन्थके दो भाग कर लिये हैं। इस प्राचीन विभागका फिर दो भाग रखा जा सकता है। यथा—अतिप्राचीन और अनतिप्राचीन। अनतिप्राचीनके मतसे ऋग्वेदसंहिता प्रथमतः आठ अष्टकमें विभक्त हुई है। प्रत्येक अष्टक प्रायः समपरिमित है। फिर एक एक अष्टक आठ अध्यायमें विभक्त है, प्रत्येक अध्यायमें ३३ वर्ग हैं। वर्गोंकी कुल संख्या २००६ है। पांच पांच ऋक्का एक एक वर्ग कल्पित हुआ है। यह विभाग केवल ग्रन्थका बाह्य विभागमात्र है। ग्रन्थगतविषयके विचारसे यह विभागकल्पना नहीं होती। किन्तु अति प्राचीन विभागकल्पना अन्य प्रकारकी है। इस विभागके अनुसार ऋग्वेदसंहिता दश मण्डलोंमें विभक्त हुई है। इसमें ८५ अनुवाक (परिच्छेद) तथा १०१७ सूक्त हैं। प्रचलित सभी ग्रन्थोंकी ऋक्-संख्या १०५८० है। ऋग्वेद देखो।

मण्डलोंका श्रेणीविभाग, ऐतरेय आरण्यकमें तथा आश्वलायन और शाङ्खायन इन दो गृह्यसूत्रोंमें सबसे पहले दिखाई देता है। प्रातिशाख्य और निरुक्तमें इसके सिवा और कोई विभाग कल्पित नहीं हुआ है। शेषोक्त दो ग्रन्थोंमें ऋग्वेदसंहिताका अध्याय विभाग 'दशति' नामसे अभिहित हुआ है। समागमग्रन्थमें भी ऋग्वेदकी यह आख्या देखनेमें आती है। कात्यायनकी अनुक्रमणिकामें मण्डलविभागका उल्लेख नहीं है। कात्यायनने अनतिप्राचीन विभागका अनुसरण कर अष्टक और अध्यायकी बात लिखी है। शुक्लयजुर्वेदके ब्राह्मणखण्डके द्वितीय भागमें हम 'सूक्त' शब्दका प्रयोग देखते हैं। ऐतरेयब्राह्मण और ऐतरेय आरण्यक आदिमें भी "सूक्त" शब्दका प्रयोग है। वर्त्तमान कालमें ऋग्वेदकी शाकल शाखाके अन्तर्गत शैशिरीय उपशाखा ही प्रचलित है। जगह जगह बाष्कल शाखाका भी उल्लेख है। इन दोनोंका पार्थक्य उतना अधिक नहीं है। एक प्रधान पार्थक्य यह देखा जाता है, कि बाष्कल शाखाके ८म मण्डलमें आठ सूक्त अधिक हैं, किन्तु बहुतेरोंकी धारणा है, कि यह वालखिल्य भी है। शाकल्य एक ऋषिका नाम है। ब्राह्मणखण्ड और सूत्रादिमें यह नाम देखा जाता है। यह शाकल्य ही ऋग्वेदसंहिताके 'पदपाठ' के प्रवर्त्तक हैं।

(पदपाठ और क्रमपाठादिका विषय इसके पहले लिखा जा चुका है।) शतपथब्राह्मण शुक्ल यजुर्वेदका एक ब्राह्मण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थमें शाकल्यका दूसरा नाम विदग्ध लिखा है। ये विदेहराज जनकके सभापण्डित थे। शाकल्य याज्ञवल्क्यके प्रतिद्वन्द्वी कह कर प्रसिद्ध हैं।

ऋग्वेदसंहिताके क्रमपाठके प्रवर्त्तक पञ्चाल बाभ्रव्य हैं। ऋक्प्रातिशाख्यमें (११।३३) ये केवल 'बाभ्रव्य' नामसे ही अभिहित हैं। इससे जाना जाता है, कि कुरुपञ्चालगण जिस प्रकार क्रमपाठके प्रवर्त्तक थे, कोशलविदेहगण अर्थात् शाकलगण भी उसी प्रकार पद पाठके प्रचारक।

ऋग्वेदसंहितामें अग्निका स्तोत्र ही सर्वापेक्षा अधिक है। अग्नि पार्थिव देवता हैं। ये देवता और मनुष्यके मध्यवर्ती हैं। अग्निकी सहायतासे ही दूरस्थ अन्यान्य देवताओंका आह्वान होता है। अग्निके बाद ही ऋग्वेदमें इन्द्रस्तोत्रका बाहुल्य देखा जाता है। इन्द्र अति शक्तिशाली हैं, ये मेघचालक और वज्री हैं। मेघद्वारा वृष्टि होनेसे ही धरा शस्यशालिनी होती है। इन्द्र वृष्टिके कर्त्ता हैं। वृत्रासुरके युद्धव्यापार और मेघवृष्टि वज्रपात आदि वर्णनासूचक अनेक ऋक् हैं। ऊषाका स्निग्धमधुर कनककिरण देख कर आर्योंके हृदयमें जिस कोमल कवित्व भावका सञ्चार होता था, तथा वे ऊषाके उस तरुण सौन्दर्य्य पर मुग्ध हो जिस भावमें पद्य लिखते थे, ऋग्वेदमें उसका यथेष्ट परिचय है। इस सम्बन्धमें काव्यसुधारसमय अनेक ऋक् देखनेमें आती हैं। ऊषा सूर्यके आगमनकी सूचना करती है। सूर्य अंधकारको विनष्ट करते हैं, प्रकाश देते हैं, आत्यन्तिक शैत्यको विनष्ट कर ओषधादिको फलोंमें प्रवर्त्तित करते हैं, सूर्य द्वारा शस्यवीज अङ्कुरित होता है, सूर्य ही प्राणशक्तिके मूल निदान और बुद्धिवृत्तिके प्रेरक हैं, यही सब जान कर आर्य ऋषियोंने सूर्यके अनेक स्तोत्र प्रकाश किये हैं।

ऋग्वेदके आलोच्य विषय।

इसके सिवा मित्र, वरुण, अश्विद्वय, विश्वदेवगण, सरस्वती, सुनृता, मरुद्‌गण, अदिति और आदित्यगण, ऋभुगण, ब्रह्मणस्पति, सोम, ऋभुगण, त्वष्टा, इन्द्राणी, होता, पृथिवी, विष्णु, पृश्नि, नदी, अज, यम, पर्जन्य, अर्यमा, पूषा, रुद्रगण, वसुगण, उशना, त्रित, वैश्वानर, मातरिश्वा, इला, आप्री, रोदसी, अहिर्बुध्न, अजएकपाद्, अनुमति, राका, सिनीवाली और गुंगु आदि देवताओंका स्तोत्र है। कृषिकार्य, मेषपालन, देशभ्रमण, वाणिज्य, समुद्रगमन, नदी आदिका भौगोलिक विवरण, मास, सौरवत्सर, चान्द्रवत्सर, देवताओंको गायों और अश्व, पशुबलि, प्राचीन कालके मनुष्यकी परमायु, अविवाहिता कन्या, तन्तुवाय और वस्त्रनिर्माण, नापित, वर्म, शिरस्त्राण, तनुत्राण, वाद्ययन्त्र, अनार्योंके साथ युद्ध, सर्पोंका उत्पात और सर्पका मन्त्र, पक्षीको शमकुन, कृमिका मन्त्र, सूर्यको दैनिक गति, शस्यादिका विवरण, खदिर और शिंशपाकाष्ठकी गाड़ी, रथनिर्माता शिल्पी, सुवर्णसज्जा विशिष्ट अश्व, युद्धका अश्व, अमात्यवेष्टित गजस्कन्ध पर आरूढ़ राजा, प्रस्तरनिर्मित नगर, सरयूके पूरब आर्यराज्यका विस्तार और आर्यराजाओंका युद्ध, दृषद्वती, आपया, यमुना, रसा, कुभा, सरस्वती, परुष्णी, सिंधु, गोमती, हरियूपिया या यव्यावती, विपाशा और शतद्रु नदी, शर्य्यणावती, अङ्कन्या या अञ्जसी, आर्जीकीया नदी, अनार्य्य वर्वरजाति, कीकटदेश (दक्षिण मगध) वर्षागम, सूर्यग्रहण, पैतृविक बलकी एकता, एक ईश्वरका अनुभव, सर्पनागकी कथा, दिति और अदिति, स्वर्ग और पृथ्वीकी सिर्फ एक बार सृष्टि, ऋषियोंकी प्रतिद्वन्द्विता, ऋषियोंका संसार और युद्धव्यापारसे प्रवृत्ति, ऋषियोंको वंशानुक्रमसे मन्त्ररक्षा, युद्धका प्रस्थान, लौहकलस, स्वामीके साथ स्त्रीका यज्ञसम्पादन, विवाहके समय वरका वेश, कर्मकारका भस्त्रायन्त्र, शिलानुका गृह, वसन्त उत्सव, दीर्घसुरा आदि रत्नोंका वर्णाचार, हिरण्मय कवच, विविध आभरण, भाषारहित और नासिकारहित अनार्योंका विवरण, युद्धमें अश्व व्यवहार, गो-चर्म द्वारा आवृत युद्धरथ, युद्धदुन्दुभि, नदीकूल और उर्वरा भूमि ले कर विवाद, मरुभूमि, भेकस्तुति, पर्वत, नदी, वृक्ष, गो और अश्व आदिकी स्तुति, सर्पविषका मन्त्र, सुदासराजाका विवरण, युद्धास्त्र और आयोजन, स्वर्ग और अमरत्वलाभ, कृष्ण नामक अनार्य योद्धा, सोमरस प्रस्तुत करनेकी पद्धति, विविध वैदिक उपाख्यान,

समुद्रमन्थनसे अमृतलाभ, गरुड़कर्तृक अमृत आहरण, अमृतपानमें देवताओंका अपराध, मदन मण्डलके देव-मानमें ऋतुकी वर्णना, यमयमीका जन्म, यमयमीका कथोपकथन, अन्त्येष्टिक्रियाका मन्त्र, (पुण्यात्मा) पूर्व-पुरुषोंका स्वर्गमें वास और यज्ञभाग ग्रहण, सरमाका उपाख्यान, पञ्चजनगणकी कथा, दासोंका, द्यूत, कृषि आदिका भिन्न भिन्न व्यवसाय, कन्याविवाहमें अलङ्कार-दान, अग्निदाहप्रथा, मृतदेह मृत्तिकामें स्थापन, कूप खनन, पशुपालन, मेषलोमका वस्त्रवयन, सिंह, हरिण, वराह, श्रृगाल, शशक, गोधा, हस्ती और सर्पादिका उल्लेख, अन्यान्य ऋषियोंकी उत्पत्ति, सृष्टिकी कथा, प्राचीनकालमें आर्योंका निवासस्थान, आकाशमण्डलकी कथा, ताराकी आलोचना, चन्द्रज्योतिषकी कथा, सप-त्नियोंके ऊपर प्रभुत्वलाभका मन्त्र, गर्भनिःस्राव और गर्भरक्षाका मन्त्र, रोगारोग्यका मन्त्र, अमङ्गलनाशका मन्त्र, पैतृक शापके अमङ्गलनाशका मंत्र, राज्याभिषेक-का मन्त्र इत्यादि अनेक सामाजिक, वैज्ञानिक, युद्ध और धर्मविषयक विविध विषय न्यूनाधिक परिमाणमें ऋग्वेदमें देखनेमें आता है।

वेदार्थप्रकाशक ग्रन्थ।

ऋग्वेदार्थप्रकाशकके मध्यमें निघण्टु और यास्क-कृत निरुक्त ये दोनों ग्रन्थ अति प्राचीन हैं। देवराज यज्वा निघण्टुके टीकाकार हैं। दुर्गाचार्यने निरुक्तकी सुप्रसिद्ध वृत्ति प्रणयन की। निघण्टुकी टीकामें वेद भाष्यकार स्कन्दस्वामीका नाम देखा जाता है। सायणा-चार्य वेदके प्रामाणिक भाष्यकार हैं। यास्कके समयसे ले कर सायणके समय तक वेदके किसी भी भाष्यकार-का नाम सुननेमें नहीं आता। शङ्कराचार्य और उनके शिष्योंने उपनिषद्का भाष्य और व्याख्या की। वेदके भाष्य या टीकाकी रचनाके लिये वेदान्ताचार्योंकी प्रवृत्ति दिखाई नहीं देती। परन्तु शङ्करशिष्य आनन्दतीर्थने ऋक्संहिताके कुछ अंशोंका श्लोकमय भाष्य किया था। रामचन्द्रतीर्थने फिर श्लोकमय भाष्यकी टीका की। इस सायणकृत विस्तृत प्रामाण्य देखते हैं। इस भाष्यमें भट्टभास्कर मिश्र और भरतस्वामीको द्वितीय भाष्यकार बताया है। स्कन्दस्वामिन्, चतुर्वेदस्वामी, युवराज, रावण और वररुचिप्रणीत भाष्यका कुछ अंश पाया गया है। इनके सिवा गुहदेव, कपर्दी, आत्मानन्द और कौशिक आदि कुछ भाष्यकारोंके नाम सुननेमें आते हैं। कोई कोई कहते हैं, कि भट्टभास्कर कृष्ण यजुर्वेदके भाष्यप्रणेता हैं। निघण्टुके टीकाकार देव-राजने भी अपनी टीकामें भट्टभास्कर मिश्र, माधवदेव, भवस्वामी, गुहदेव, श्रीनिवास और उवट आदि भाष्य-कारोंका नामोल्लेख किया है। उवटने ऋक्संहिताका कोई भाष्य किया है या नहीं, कह नहीं सकते। किन्तु उवट-कृत शुक्लयजुर्वेद-संहितामें एक भाष्य देखनेमें आता है। इसके अतिरिक्त इन्होंने ऋक्प्रातिशाख्यका भी भाष्य किया है।

ब्राह्मणात्मक ग्रन्थ।

ऋग्वेदके दो ब्राह्मण ग्रन्थ हैं। इनमेंसे एकका नाम ऐतरेयब्राह्मण और दूसरेका नाम शाङ्खायन ब्राह्मण है। शाङ्खायनका दूसरा नाम कौषीतकि ब्राह्मण है। इन दोनों ग्रन्थोंका सम्बन्ध अति घनिष्ठ है। दोनों ग्रन्थोंमें जगह जगह एक ही विषयकी आलोचना की गई है, किन्तु कहीं कहीं उन्होंने एक ही विषयको एक दूसरेके विपरीत अभिप्रायका प्रकाश और प्रचार किया है। कौषीतकि ब्राह्मणमें जैसी सुश्रृङ्खलासे आलोच्य विषयकी आलोचना की गई है, ऐतरेयब्राह्मण-में वैसी सुश्रृङ्खला दिखाई नहीं देती। ऐतरेयब्राह्मण के अन्तिम दश अध्यायमें जिन सब विषयोंकी आलो-चना की गई है, शाङ्खायन ब्राह्मणमें उनका कुछ भी उल्लेख नहीं है। किन्तु इस अभावकी शाङ्खायन ग्रन्थमें पूर्ति हुई है। प्रचलित ऐतरेय ब्राह्मणमें ४० अध्याय हैं। ये चालीस अध्याय ८ पञ्चिकामें विभक्त हैं। शाङ्खायन ब्राह्मण-में सिर्फ ३० अध्याय हैं जिनमें ऐतिहासिक घटना अच्छी तरह जानी नहीं जाती। किन्तु ऐतरेय ब्राह्मण पढ़नेसे ऐतिहासिक विवरण अच्छी तरह जाना जाता है। इसमें अनेक भौगोलिक विवरण हैं। भारतवर्षका उत्तरी प्रदेश जिस किसी समय आर्यावर्त्तका केन्द्र-स्थल था, कौषीतकि या शाङ्खायन ब्राह्मण पढ़नेसे इसका भी विवरण जाना जाता है। शुक्लयजुर्वेदीय

पैङ्ग्य ऋषिका नामोल्लेख है। अन्यान्य ग्रंथोंमें भी यह नाम देखनेमें आता है। निरुक्त और महाभाष्यमें पैङ्गि-कल्प ग्रंथका नाम दिखाई देता है। सायणके समय भी पैङ्गिब्राह्मण प्रचलित था। कौषीतकका नाम शाङ्खायन ब्राह्मणमें बार बार आया है। फलतः शाङ्खायन-ब्राह्मणमें कौषीतकियोंका ही सिद्धान्त आलोचित हुआ है। शाङ्खायन ब्राह्मणके भाष्यकारने इसीलिये इस ग्रंथका कौषीतकि-ब्राह्मण नाम रखा है।

शाङ्खायन और ऐतरेय-ब्राह्मणमें अनेक प्रकारके आख्यान वर्णित हुए हैं। किस प्रकार किस मंत्रका आविर्भाव हुआ यह इन सब आख्यानोंसे मालूम हो गया है।

गोविंदस्वामी और सायणाचार्यने ऐतरेय ब्राह्मणका भाष्य किया है। माधवपुत्र विनायक नामक एक पण्डित कौषीतकि ब्राह्मणके एक भाष्यके प्रणेता हैं।

आरण्यक।

इन दोनों ब्राह्मणके ही आरण्यक ग्रंथ हैं। निर्जन निभृत अरण्यकी निस्तब्धतामें रह आर्यऋषिगण जो शास्त्र अध्ययन कर गम्भीरभावसे ब्रह्मचर्चामें निमग्न रहते थे वही आरण्यक नामसे प्रसिद्ध है। आरण्यक ग्रंथमें उपनिषद्का अंश ही अधिक है। हम यहां सब-से पहले ऐतरेय आरण्यककी आलोचना करते हैं।

ऐतरेय आरण्यक।

ऐतरेय आरण्यकके पांच ग्रंथ प्रचलित देखे जाते हैं, प्रत्येक ग्रंथ "आरण्यक" कहलाता है। द्वितीय और तृतीय आरण्यक एक स्वतन्त्र उपनिषद् है। द्वितीय भागका अवशिष्ट परिच्छेद-चतुष्टय वेदान्तग्रंथके अंत-र्भुक्त है, इस कारण यह ऐतरेय उपनिषद् कहलाता है। द्वितीय और तृतीय भाग महीदास ऐतरेय द्वारा सङ्कलित हुआ है। महीदासने विशालके औरस और इतराके गर्भसे जन्मग्रहण किया। माताके नामानुसार इन्हें ऐतरेयकी उपाधि दी गई।

कौषीतकि आरण्यक।

कौषीतकि आरण्यकके तीन खण्ड हैं। प्रथम दो खण्ड कर्मकाण्डसे परिपूर्ण है। इसका तृतीय खण्ड उपनिषद् ग्रंथ है। यह ग्रंथ कौषीतकि उपनिषद् कह-लाता है। कौषीतकि उपनिषद् एक सारगर्भ उपादेय ग्रंथ है। किस प्रकार आनन्दमय ध्यानमें प्रवेश किया जाता है तथा किस प्रकार यह आनन्द उपभोग किया जाता है इस ग्रंथके प्रथम अध्यायमें उसकी आलोचना की गई है। गुरुतर पारिवारिक बंधनादिके लिये उस समयके सामाजिकोंके हृदयमें किस प्रकार कुसुम-कोमला हृदयवृत्तियोंका विकाश हुआ था, द्वितीय अध्याय-में उसका परिस्फुट चित्र देखनेमें आता है। तृतीय अध्यायमें ऐतिहासिक वृत्तान्त, इंद्रके युद्धादिका उपा-ख्यान लिपिबद्ध हुआ है। चतुर्थ अध्याय भी आख्यान-से परिपूर्ण है। काशीराज और दृप्तबालाकि ब्राह्मणको जो उपदेश दिया था इस अध्यायमें यह भी लिखा है। इसमें नाना प्रकारके भौगोलिक विवरण हैं। हिमवत् और विन्ध्य आदि पर्वतोंके नाम तथा पहाड़ी जातिके लोगोंके नाम इस ग्रंथमें दिखाई देते हैं। सायणाचार्यने ऐतरेय आरण्यक और कौषीतकि आरण्यकका भाष्य किया है।

श्रीमच्छङ्कराचार्य कौषीतकि उपनिषद् और ऐतरेय उपनिषद्के भाष्यकर्ता हैं। शङ्करशिष्य आनन्दज्ञान, आनन्दगिरि और आनन्दतीर्थ, अभिनवनारायण, नारायणेन्द्र सरस्वती, नृसिंहाचार्य और बालकृष्णदास, शाङ्करभाष्यको टीका लिख गये हैं।

इनके सिवा वाष्कल-उपनिषद् और मैत्रायणी-उप-निषद् भी ऋक्-उपनिषद् कहलाता है। वाष्कल श्रुति-की कथाका सायणने भी उल्लेख किया है। ऋग्वेदकी वाष्कल शाखा विलुप्त होने पर भी वाष्कल उपनिषद्-ने उस विलुप्त शाखाकी अन्तिम स्मृतिको आज भी कायम रखा है।

श्रौतसूत्र।

ऋग्वेदीय श्रौतसूत्र ग्रन्थोंमें सबसे पहले आश्वलायन श्रौतसूत्रकी बात ही उल्लेखनीय है। यह ग्रंथ बारह अध्यायमें विभक्त है। शाङ्खायन-श्रौतसूत्रकी अध्याय संख्या १८ है। ऐतरेयब्राह्मणके साथ आश्वलायनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। फिर उधर शाङ्खायनब्राह्मणके साथ शाङ्खायनश्रौतसूत्रका सम्बन्ध अति स्पष्ट है। आश्वल ऋषि विदेहराज जनकके होता थे। कुछ लोगोंका कहना

है, कि सुयज्ञसे यह श्रौतसूत्र प्रकाशित हुआ है, इस कारण इसका नाम शांखायनसूत्र पड़ा है।

शांखायन-श्रौतसूत्रका १७वां और १८वां अध्याय ब्राह्मण ग्रन्थकी भाषामें लिखा है। इसकी रचना ग्रन्थकोंको बहुतसे प्राचीन समझते हैं। इसका सत्रहवां और अठारहवां अध्याय स्वतन्त्र है। इसकी भाषा भी स्वतन्त्र है। कौषीतकि आरण्यकके प्रथम दो अध्यायके साथ इन दोनों अध्यायोंका सम्बन्ध अति घनिष्ठ है। आश्वलायन श्रौतसूत्रमें शांखायन ब्राह्मणका उल्लेख है। आश्वलायन श्रौतसूत्रके ११वें भाष्यका सन्धान पाया गया है। भाष्यकारोंके नाम ये हैं—नारायणगार्ग्य, देवत्रात, सिद्धान्त मुनि, कर्णाध्यक्ष, दयाशङ्कर, मधुसूदन, गार्ग्यनारायण सुत, महादेव, मतङ्गसुत, षड्गुरुशिष्य और सिद्धान्ती। वाजपेय, राजसूय, अश्वमेध, पुरुषमेध और सर्वमेध यज्ञ शांखायन और आश्वलायन दोनों ही सूत्रोंमें दिखाई देता है। किन्तु इन सब यज्ञोंका विषय शांखायनमें ही सविस्तार वर्णित है। नारायण नामक एक दूसरे सुपण्डितने शांखायन-श्रौतसूत्रका भाष्य किया है। यह नारायण और आश्वलायनके भाष्यकार नारायण दो भिन्न भिन्न व्यक्ति थे। नारायणगार्ग्य कृष्णजीके पुत्र और आंवलिके पौत्र थे। किन्तु शांखायनके भाष्यकार नारायणके पिताका नाम पशुपति शर्मा था। नारायणका ग्रन्थ शांखायनका भाष्य नहीं है, पद्धति मात्र है। ब्रह्मदत्तके आधार पर यह ग्रंथ रचा गया है। गोविन्दपुत्र विष्णुने भी कर्मप्रदीपिका नामक इस श्रौतसूत्रका एक भाष्य किया है। गदाधरचन्द्रानन्द वरदत्तसुत पण्डित आनर्तीयने शांखायनसूत्रका एक भाष्य प्रणयन किया। इसके तीन अध्याय (९वां, १०वां और ११वां) का भाष्य नष्ट हो गया। रामचन्द्रने मधुकर लिख कर इन तीन अध्यायोंका भाष्य पूर्ण किया। १७वें और १८वें अध्यायका भाष्य गोविन्दकृत है।

गृह्यसूत्र।

ऋग्वेदके गृह्यसूत्रके मध्य आश्वलायन गृह्यसूत्र तथा शांखायनगृह्यसूत्रका नाम ही विशेष उल्लेखनीय है। कौषीतकगृह्यसूत्र है, इस कारण ऋग्वेदके एक दूसरे गृह्यसूत्रका भी नाम सुननेमें आता है। किन्तु यह अभी कहीं भी नहीं मिलता। आश्वलायन गृह्यसूत्र चार अध्यायमें विभक्त है, शांखायनका छः अध्यायोंका है। इन सब गृह्यसूत्रोंमें विवाह, गर्भाधान, जातकर्म, चूड़ा, उपनयन, समावर्तन और श्राद्धादि कृत्योंका विधान सूत्रभावमें लिखा है। फलतः मनुष्यके संस्कारोंके विषयकी आलोचना ही गृह्यसूत्रका आलोच्य विषय है। शांखायनगृह्यसूत्रके इस अनेक भाष्यकारोंके नाम सुनते हैं। यथा—सुयज्ञसुतभाष्य, जैमिनीयसूत्रभाष्य, कौशिक शांखायनसूत्रभाष्य और वैजयन्ती गृह्यसूत्रादि अनेक वैदिक ग्रन्थ हैं। रामचन्द्र नामक एक सुपण्डितने नैमिषारण्यमें रह कर शांखायनगृह्यसूत्रका एक भाष्य किया है। कुछ लोगोंका खयाल है, कि नैमिषारण्यमें ही ये सब सूत्र संगृहीत हुए हैं। इसके अतिरिक्त दयाशङ्करने गृह्यसूत्रप्रयोगदीप नामसे, रघुनाथने अर्थदर्पण नामसे, रामचन्द्रने गृह्यसूत्रपद्धति नामसे, वासुदेवने गृह्यसंग्रह नामसे तथा कृष्णजीपुत्र नारायणने भी एक शांखायनगृह्यसूत्रका भाष्य रचा।

प्रातिशाख्यसूत्र।

ऋक्संहिताका एक प्रातिशाख्यसूत्र है। प्रातिशाख्यसूत्र शौनकप्रोक्त कह कर प्रसिद्ध है। ये शौनक आश्वलायनके गुरु समझे जाते हैं। ऋक्प्रातिशाख्यसूत्र एक बड़ा ग्रन्थ है। यह तीन काण्डोंमें विभक्त है। प्रत्येक काण्डमें छः छः पटल हैं। इसमें कुल १०३ कण्डिका देखी जाती है। इस ग्रन्थके प्रधान भाष्यकार विष्णुपुत्र हैं। इसके बाद उवटने इस भाष्यका संस्कार कर अभिनव भाष्य प्रणयन किया। प्रातिशाख्यसूत्रके आधार पर उपलेख नामक प्रातिशाख्यसूत्रका एक संक्षिप्त ग्रंथ रचा गया। यह ग्रंथ प्रातिशाख्यसूत्रका परिशिष्ट भी कहलाता है। प्रातिशाख्य और वेदाङ्ग देखो।

अनुक्रमणी नामक एक दूसरा ग्रन्थ वैदिक साहित्यके अन्तर्गत है। इसमें छन्द, देवता और मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंके सम्बन्धमें आलोचना की गई है। ऋक्संहिताकी अनेक अनुक्रमणिका हैं। शौनक प्रणीत अनुवाकानुक्रमणी तथा कात्यायन प्रणीत एक सर्वानुक्रमणी प्रधान है।

इन दोनों ग्रन्थोंकी अति विस्तृत और सुलिखित

टीका है। इस टीकाकारका नाम षड्गुरुशिष्य है। षड्गुरुशिष्यका प्रकृत नाम क्या है अथवा किस समय उन्होंने यह ग्रन्थ लिखा, कह नहीं सकते। षड्गुरुशिष्यका असल नाम प्रकाशित नहीं रहने पर भी इस ग्रन्थकारने अपने ग्रन्थमें षड्गुरुका नामोल्लेख किया है। जैसे—विनायक, त्रिशूलाङ्कक, गोविन्द, सूर्य, व्यास और शिवयोगी, इनके सिवा ऋग्वेद सम्बन्धीय और भी एक ग्रन्थ है। उसका नाम है वृहद्देवता। वृहद्देवता ग्रन्थमें वैदिक आख्यानादि विस्तृतरूपमें वर्णित हैं। यह ग्रन्थ शौनकरचित कह कर प्रसिद्ध है। इसकी प्राचीनता भी सर्वसम्मत है। यह ग्रन्थ श्लोकोंमें लिखा है। ऋग्वेदसंहिताके साथ साक्षात् सम्बन्धमें इसका परिस्फुट सम्बन्ध है। ऋक्संहिताकी प्रत्येक ऋक्‌का देवता निर्देश करना ही इस ग्रन्थका उद्देश्य है। किन्तु यह कार्य करनेमें वृहद्देवताके ग्रंथकारको देवता सम्बन्धीय विचित्र आख्यानोंसे यह ग्रंथ पूर्ण करना पड़ा है। यह ग्रंथ निरुक्तके बाद रचा गया है, ऐसा बहुतोंका विश्वास है। अतएव एक श्रेणीके पण्डित इस ग्रंथको शौनक प्रणीत नहीं मानते। उनका कहना है, कि वृहद्देवता ग्रन्थ शौनक सम्प्रदायके किसी व्यक्ति द्वारा रचा गया है। इसमें भागुरी और आश्वलायनका नाम है। इसमें वल्भी-ब्राह्मण तथा निदानसूत्रका नाम भी पाया जाता है। वृहद्देवता ग्रंथ शाकल शाखाके आधार पर नहीं लिखा गया है। उसमें शाकल शाखाका नाम अनेक बार आया है। वर्त्तमान कालमें प्रचलित शाकल शाखाके साथ कई जगह उसका मेल नहीं है। इसके सिवा शौनक सङ्कलित ऋग्विधान आदि नामोंके और भी कितने ग्रंथ हैं। इसके बाद बह्वृच परिशिष्ट, शाङ्खायनपरिशिष्ट और आश्वलायनगृह्यपरिशिष्ट नामके और भी अनेक ग्रंथ हैं।

सामवेदसंहिता।

गीतामें भगवान्‌ने कहा है, "वेदानां सामवेदोऽस्मि" अर्थात् वेदोंमें मैं सामवेद हूं। श्रीपाद रामानुजने इस भगवदुक्तिके भाष्यमें लिखा है, "वेदानां ऋग्यजुःसामाथर्व्वणां मधुरस्वरः सामवेदस्तोऽहमस्मि" अर्थात् ऋग्, यजुः, साम और अथर्ववेदके मध्य सामवेद ही उत्कृष्ट है तथा मैं ही वह सामवेद हूं। सामवेद उत्कृष्ट क्यों है, टीकाकार श्रीमधुसूदन सरस्वती महोदयने उसका कारण इस प्रकार बताया है—

"वेदानां मध्ये सामो माधुर्य्येणातिरमणीयः।"

अर्थात् वेदोंमें सामवेद माधुर्यके कारण अति रमणीय है। इसका कारण यह है, कि सामवेदके संहिताग्रंथ गीतसे भरे हैं, गीतिमाधुर्य्यं स्वभावतः ही रमणीय होता है। गीतके उद्देशसे ही गाने योग्य ऋक् सामवेदमें सङ्कलित हुई हैं। शबरस्वामीने कहा है, कि आभ्यन्तर प्रयत्नके लिये क्रियाविशेष ही गीति है। इन गीतोंके आश्रयस्वरूप कुछ अगीत वाक्य द्वारा भी सामवेदसंहिताका कलेवर पूर्ण किया गया है। इन अगीति वाक्योंमें गद्य और पद्य दोनों ही है। उक्त पद्योंको ऋक् तथा गद्योंको यजुः कहते हैं। इस प्रणालीमें संगृहीत ऋक् मंत्र "आर्च्चिक" कहलाते हैं। पूर्वमीमांसाकी अधिकरणमालाके नवम अध्यायके द्वितीय पादमें एकादशाधिकरणमें "स्तोभ"की एक संज्ञा लिखी है। उसका मर्म यह है, कि सामके आश्रय ऋगतिरिक्त अध्यागीतिका साधक जो शब्द है वही स्तोभ कहलाता है। यह स्तोभ तीन प्रकारका है—वर्णस्तोभ, पदस्तोभ और वाक्यस्तोभ। सामवेदके स्तोभका स्वतंत्र ग्रंथ है। न्यायमालाविस्तर ग्रंथकारका कहना है, कि ऋक्‌का वर्ण विकृत हो कर यद्यपि रूपांतरित नहीं होता, तो वर्णकी संख्या बढ़ सकती है। इन बढ़े हुए वर्णोंको 'स्तोभ' कहते हैं। यह वर्णस्तोभका लक्षण है। पदस्तोभ दो प्रकारका है। अनिरुक्त और निरुक्त। पदस्तोभ सर्व साधारणमें पञ्चदश और वाक्यस्तोभ भी प्रकारका है। यथा।

"माताश्विः स्तुतिर्वल्पाने प्रणयः परिदेवनम्।
प्रैषमन्वेषणञ्चैव सृष्टिराख्यानमेव च॥"

साम आर्चिक ग्रन्थ प्रधानतः दो भागोंमें विभक्त है। द्वितीय भाग "उत्तरा" या उत्तरार्च्चिक नामसे प्रसिद्ध है। कुछ लोगोंका कहना है, कि आगका कोई नाम नहीं है। यह साधारणतः छन्दः आर्चिक और छन्दसिका नामसे परिचित है।

सामवेदकी शाखासंख्या एक हजार होने पर भी अभी सिर्फ तेरह शाखा प्रचलित हैं। कोई कोई कहते

हैं, कि वेदको यागमें भेद ज्ञापक हैं। ये अपनी इसलिये प्रमाण स्वरूप कहते हैं, कि 'सहस्रवर्त्मा सामवेदः' अर्थात् सामवेदके गीति उपाय हजार प्रकारके हैं, इस कारण सामवेद हजार शाखाओंमें विभक्त है। जो हो, सम्प्रति इन शाखाओंमेंसे तीन ही शाखाका अध्ययन और अध्यापना देखनेमें आती है। काशी, कान्यकुब्ज, गुर्जर, बंगाल और बहुतमें कौथुमी शाखा तथा द्राविड़में राणायनी शाखा ही प्रचलित है।

पहले कहा जा चुका है, कि सामवेद दो भागोंमें विभक्त है, पूर्वार्च और प्रपाठक। प्रत्येक प्रपाठकमें दश करके 'दशत्' है। प्रत्येक दशत् दश करके मन्त्र की समष्टि है। शतपथब्राह्मणके मतसे सामवेदके भाष्यकार सायणाचार्यने कहीं भी 'प्रपाठकों पदका व्यवहार नहीं किया। उन्होंने 'प्रपाठक' पदकी जगह 'अध्याय' पदका व्यवहार किया है। अब प्रपाठक नामक जो वेदसंहिता-प्रणयनका अन्यविध भेद है यह भी सायणभाष्य पढ़नेसे मालूम नहीं होता।

आर्चिक भागमें जो 'दशत्' नामक भेदकी बात पहले लिखी जा चुकी है, सायणने उसी दशत्की जगह 'खण्ड' शब्दका प्रयोग किया है। अधिकांश ग्रन्थोंका प्रथम दो छन्द आर्चिक और प्रपाठकमें विभक्त है तथा आरण्यक ग्रंथ भी इससे पृथक् समझा जाता है। किन्तु सायणभाष्यमें लिखा है, कि उन्होंने छन्द आर्चिकके पांच भागोंमें विभक्त किया है तथा आरण्यकको उस आर्चिक ग्रन्थके ही छठे अध्यायमें माना है। प्रथम द्वादश दशत्में अग्निका तथा आग्नेयके दशत्में सोमका और अवशिष्ट ३६ दशत्के अधिकांश मन्त्रोंमें इन्द्रका स्तव किया गया है।

द्वितीय भाग भी प्रपाठकोंमें समाप्त है। प्रत्येक प्रपाठक दो या तीन अध्यायोंमें विभक्त है। इसका प्रत्येक अध्याय एक एक करके सूक्तमें विभक्त हो गया है। प्रत्येक सूक्तमें तीन या तीनसे अधिक ऋक् हैं। सामवेदसंहितामें जो सब ऋक् हैं, उनका अधिकांश ऋग्वेदसंहितामें दिखाई देता है। किन्तु सामवेदगृहीत ऋचोंके वर्ण और शब्दमात्रमें उच्चारणका लक्षण भिन्न है।

छन्दः वा आर्चिक।

आर्चिक ग्रन्थकी संख्या तीन है, छन्दः, आरण्यक और उत्तरा। छन्द आर्चिकमें जितनी ऋक् हैं उनमेंसे प्रत्येकके साथ और भी दो ऋक् उससे लेकर उत्तरा आर्चिकमें सुनी जाती हैं। उत्तरार्चिकमें एक छन्दकी, एक स्वरकी और एक आरण्यकी तीन तीन ऋचोंसे एक एक सूक्त गठित हुआ है। यह सूक्त "तृच" नामसे भी प्रसिद्ध है। इस प्रकार सामगानमें भी दो तृचोंकी एक एक समष्टि "प्रगाथ" कहलाती है। जैसा तृच, वैसा प्रगाथ इनमेंसे प्रत्येककी प्रथम ऋक् छन्द आर्चिकसे मिलती है। उस छन्द आर्चिककी एक ऋक् लेकर एक "तृच" होता है। फिर इसी प्रकार प्रगाथकी भी सृष्टि होती है। यही कारण है, कि इसकी प्रथम ऋक् योनिऋक् कहलाती है। यह योनि ऋक् सभीकी वेदिकास्वरूप है। "आर्चिक" योनिग्रन्थ नामसे भी प्रसिद्ध है।

योनि ऋक्के ऊपर हो उसी तरहकी दो या एक ऋक् जिस ग्रन्थमें देखी जाती है, उसीका नाम उत्तरा है। अरण्यमें अध्येय वनवासविहित गान आरण्यक कहलाता है। सभी वेदोंमें एक एक आरण्यक है। योनि, उत्तरा और आरण्यक इन तीन ग्रन्थोंका साधारण नाम आर्चिक अर्थात् ऋक्समूह है। छन्दोगानके आधार पर जो सब साम हैं उनका गान करनेके कारण सामवेदोपासक छन्दोग कहलाते हैं। इन छन्दोगोंके कर्मकाण्डके लिये स्वतन्त्र ब्राह्मण ग्रंथ छान्दोग्य नामसे प्रसिद्ध है। इनके आरण्यक ग्रंथ भी छान्दोग्यारण्यक कहलाते हैं।

गानरूप।

इन तीन छन्द ग्रंथके आधार पर जो सब साम गाये जाते हैं वह सामगान नामसे प्रसिद्ध है। सामवेदीय संहिता चार भागोंमें विभक्त है, यथा—गेय, आरण्य, ऊह और ऊह्य। गेय संहिताका दूसरा नाम "प्रकृतिगान" है। गेय शब्द अपभ्रष्ट हो कर "गे गान" नामसे भी प्रचलित है। गेय गानको गुर्जरवासी 'वेगगान' भी कहते हैं। गुर्जरवासियोंका इस प्रकार कहनेका एक कारण भी है। ये लोग यद्यपि सामगान वेद पढ़ते-

में समर्थ नहीं हैं, फिर भी ब्राह्मण पढ़नेमें एकान्त यत्नवान् हैं।

ग्राम्यगेय गान।

ब्रह्मचर्यका मन्त्र आरण्यगानमें है। अतएव उन्होंने पहले आरण्यगानका अध्ययन किया। पीछे समर्थ होने पर वे गेय गानके अध्ययनमें प्रवृत्त हुए। गुर्जरवासियोंके लिये इसी कारण गेयगान द्वितीय है। अतः वे लोग उसे "येयगान" कहते हैं। 'येय' शब्द गुर्जर भाषामें द्वियाचक है। येयगान शब्दका अर्थ द्वितीय गान है। आरण्यगानके विपरीत होनेके कारण इसका दूसरा नाम "ग्राम्यगेय गान" है। गेयगान ग्रंथमें योनिऋकोंका व्यवहार हुआ है। अतएव ब्राह्मणग्रंथमें यह ग्राम्यगेय गान "योनिगान" नामसे भी अभिहित हुआ है। किन्तु सायणने इसका 'वेदसाम' नाम रखा है। छन्द आर्चिकमें जिस ऋक्के बाद जो ऋक् है, गेय गानमें भी उस ऋङ्मूल गानके बाद ही वही ऋङ्मूल गान है।

सामवेदका आरण्यक सामसंहिताके अन्तर्मुक्त है। आरण्यक आर्चिक तथा आनुषङ्गिक अन्यान्य ऋकोंके आधार पर जो सब साम गाये गये हैं वह प्रपाठकषट्कमें और द्वादश प्रपाठकार्द्धमें विभक्त है। आरण्यक अरण्यगान नामसे अभिहित हुआ है। आरण्यक आर्चिक और उसके अवलम्ब पर गीत अरण्यगान ही सामवेदका आरण्यक है। सामवेदी ब्राह्मण छन्दोमय मंत्रोंका गान करते हैं, इस कारण उनका "छन्दोग" नाम हुआ है तथा उसीके अनुसार उनका व्यवहार्य्य यह आरण्यक ग्रंथ "छन्दोगारण्यक" कहलाता है। ब्रह्मचर्यावस्थामें अरण्यमें रह कर यह साधित होता है, इसीसे आरण्यक नामकी उत्पत्ति हुई है। तैत्तिरीय आरण्यक भाष्यमें लिखा है—

"अरण्याध्ययनादेतदारण्यकमितीर्य्यते।
अरण्ये तदधीयीतेत्येवं वाक्यं प्रवक्ष्यते॥"

यह ग्रंथ छन्द आर्चिकमें गाया जाता है और गेयगानसे सम्पूर्ण विभिन्न है। इस कारण इसको द्वितीय गानग्रंथ कहा जा सकता है। प्रथम गानग्रंथ जिस प्रकार प्रथम आर्चिक ग्रंथका अनुसारी है वह वैसा नहीं है। इस आरण्यक ग्रंथके ऋक्सन्निवेश क्रमके साथ सामसन्निवेशक्रमका अधिकांश स्थलोंमें ही अनैक्य दिखाई देता है। और तो क्या, इस आरण्यक गानमें ऐसे अनेक साम हैं जो सबोंके मूलस्वरूप ऋक् आरण्यक नामक द्वितीय आर्चिक ग्रंथमें बिलकुल दिखाई नहीं देते। छन्दो नामक एक प्रथम आर्चिक ग्रंथ है। सामवेदका आरण्यक तथा आरण्यकगान यथार्थमें पृथक् होने पर भी ये दोनों ही ग्रंथ मिल कर सामवेदका आरण्यक कहलाते हैं। यह आरण्यक गान छः प्रपाठकोंमें विभक्त है।

ऊह और ऊह्यगान।

छन्द आर्चिकके साथ गेयगानका सम्बंध जिस क्रमसे विद्यमान है, आरण्यकके साथ अरण्यगान या उत्तरार्चिकके साथ ऊह और ऊह्यगानका उसी क्रमानुसार संबंध दिखाई देता है। अधिकन्तु अरण्यगानमें ऐसे अनेक गान देखे जाते हैं जिनका मूल ऋक् आरण्यकमें दिखाई नहीं देता। किंतु छन्द आर्चिकमें दिखाई देता है। फिर ऐसे अनेक गान हैं, जो ऋक्से उत्पन्न हुए हो नहीं, किंतु स्तोमग्रंथमें उसकी उत्पत्तिका बीज देखनेमें आता है। ऊह और ऊह्य गानमें जो सब गीत हैं उनकी मूलस्थिति यद्यपि आरण्यगानकी तरह विकीर्ण नहीं है और यह एक उत्तरार्चिकमें ही सीमाबद्ध है, तथापि उत्तरार्चिकके ऋक्सन्निवेश क्रमानुसार इन सब गानोंमें सामसन्निवेशक्रम नहीं है; वह उसके सम्पूर्ण विपरीत है। गेयगानकी तरह तीन तीन सामोंको एकत्र कर सबसे पीछे एकतान नियमके योगसे एक एक स्तोत्र सम्पन्न होता है। ऊह गानमें प्रायः सभी इसी प्रकारके स्तोत्र हैं। उत्तरार्चिकके प्रत्येक तृचकी प्रथम ऋक् छंद आर्चिकसे उद्धृत है। उसी प्रकार ऊह और ऊह्य गानके भी प्रत्येक स्तोत्रका प्रथम साम गेय गानसे उद्धृत माना जाता है। इसी कारण ताण्ड्यब्राह्मणमें लिखा है—

"यद्योन्यां तदुत्तरयोर्गायति"

अर्थात् उत्तरार्चिकके तृचमूलकी प्रथम ऋक् पूर्वपरिचित है। परवर्ती दो ऋक् उत्तरा कहलाती है। इस योनि ऋक्के आधार पर गेय गानसे जो सब

निकलता है, ऊह और ऊह्य गानके दोनों खण्डोंमें भी उसी कदरसे गान करना होगा, सम्भव ऊह और ऊह्य इन दोनों गानोंके प्रथम वाहिक स्तोत्रका ही प्रथम गान पूर्वनिर्दिष्ट है, यही टीकाकारोंका अभिप्राय है। ऊह-गान २३ प्रपाठकमें अथवा ऊहगान ६ प्रपाठकमें विभक्त है। ऊह्यका दूसरा नाम रहस्यगान है। ऊह और ऊह्य गान गेय गानकी तरह आर्चिकके क्रमानुसार सजाये गये नहीं हैं। ये दोनों गान मिलनेसे गेय और आरण्यक गान समस्त प्रायः पूर्ण होते हैं। यहां यह भी कह देना आवश्यक है, कि यद्यपि समस्त गान गेय ही गेय हैं, तथापि प्रथम गान ग्रन्थका विशेष नाम न रहनेके कारण यह साधारण "गेय" नाम नामसे पुकारा जाता है। हम इसके पहले इसका दूसरा नाम भी निर्देश कर चुके हैं। यथा "ग्रामगेय" गान। आरण्यक गानके साथ पृथक्ता दिखलानेके लिये इस गेयोक्त गान "ग्रामगान" नामसे अभिहित हुआ है। सुप्रसिद्ध सायणाचार्यको छोड़ भरतस्वामी, महास्वामी और नारायणपुत्र माधवने भी एक एक सामसंहिताभाष्यकी रचना की है।

सामवेदीय ब्राह्मण।

सामवेदीय ब्राह्मण ग्रन्थोंमें सबसे पहले ताण्ड्य महाब्राह्मणका नाम उल्लेखनीय है। जिसमें पच्चीस अध्याय हैं, इस कारण इसका दूसरा नाम पञ्चविंश-ब्राह्मण है। इसके प्रथम अध्यायमें यजुर्मन्त्रक प्रति-मन्त्र सन्निविष्ट है। द्वितीय और तृतीय अध्यायमें अनेक स्तोत्रविषय, चतुर्थ और पञ्चममें गवामयन नामक संवत्सर सत्रवर्णन और षष्ठाध्यायमें अग्निष्टोमकी प्रशंसा लिखी गई है। इस तरह अनेक प्रकारके याग यज्ञका विवरण इस ताण्ड्यमहाब्राह्मणमें वर्णित है। ज्योतिष्टोम, अह्निविहृत द्वादशाह, गुणकर्मविचार, सायना वा द्वादशाहादि याग, षोडशिस्तोत्र, परिणय, सोम-प्रवाहसंविधेय, महाव्रतमहासत्र विश्वसृज यागादि याग किस प्रकार अनुष्ठेय हैं इन विषयोंके विचार आदि ताण्ड्यमहाब्राह्मणमें दिखाई देते हैं। इसके सिवा इसमें अनेक प्रकारके उपाख्यान तथा वैदिक ऋषियोंके आश्रम अनेक विषयोंका उल्लेख है। इस ग्रन्थमें सामगानकी कथा तथा अनुष्ठानीय सामगान-का उल्लेख विशेषरूपसे किया गया है। विशेष सामयागी यज्ञोंकी व्यवस्था भाष्य ग्रन्थमें दिखाई देती है। कोई सत्र एक दिन ठहरता, कोई सौ दिन ठहरता, कोई वर्ष भर ठहरता, कोई सत्र सौ वर्ष, यहां तक कि हजार वर्ष ठहरता इत्यादि अनेक प्रकारके सत्रोंकी प्रणाली और व्यवस्था है। इस प्रकार सभी सत्रोंमें सामगानकी विविध प्रकारके उपयोगी विवरण ताण्ड्यब्राह्मणमें आलोचित हुए हैं। सायणाचार्यने ताण्ड्यब्राह्मणके भाष्यकी तथा हरिस्वामीने वृत्तिकी रचना की है।

सामवेदीय द्वितीय ब्राह्मणग्रन्थका नाम षड्विंश ब्राह्मण है। सायणने ब्राह्मण ग्रन्थके भाष्यके प्रारम्भमें लिखा है, कि पञ्चविंश ब्राह्मणमें जिन सब क्रियाओंका उल्लेख नहीं है, इसमें उन सब कर्मोंका भी उल्लेख है तथा उसमें जिन सब कर्मोंका उल्लेख है, यदा यदा पृथक्ता है, वह भी इस ग्रन्थमें दिखलाया गया है। सुब्रह्मण्य, सवनस्तव, ब्रह्मवर्चस, व्याहृति होमादि, नैमित्तिक प्रायश्चित्त, सौम्य चरुविधि, दक्षिणादान कर्म, होमादि उपाय, अभिचारादि विधान, नैमित्तिक होम, अध्वर्युकी प्रशंसा, देवयजनमें विशेष कर्म, अद्भुत, अभि-चार संबंधीय विधान, ब्राह्मणादिस्तुति, वेदादि विधि, [illegible], अद्भुत वस्तुकी शान्ति, इन सब विषयोंका उल्लेख है।

तृतीय ब्राह्मणका नाम सामविधान है। साम-विधानब्राह्मण सामवेदीय तृतीय ब्राह्मण कहलाता है। इस ब्राह्मणमें अधिकारयुक्त और सकल लोगोंकी शुद्धिके लिये कृच्छ्रादि प्रायश्चित्त और काम्याय [illegible] अग्नि-होत्रादिका सामविधान संगृहीत हुआ है।

आर्षेय ब्राह्मण सामवेदका चतुर्थ ब्राह्मण है, सायणा-चार्यने इसका भी भाष्य किया है। इस ग्रन्थमें ऋषि-सम्बन्धीय बातोंका विवरण है। ऋषिनामधेय गोत्र छन्दोदेवतादि ज्ञापक शब्द द्वारा सामगानका पारम्पर्य-ज्ञान होता है, इस ग्रन्थका आलोचित विषय है।

पञ्चम—देवताध्यायब्राह्मण है। इस ग्रन्थमें देवता सम्बन्धीय आलोचनादि हैं, इस कारण इसका नाम देवताध्याय हुआ है। इसके साथ सायणकी

सामवेदीय देवताओंका विविध देवताओंतिकीर्त्तन है। द्वितीय अध्यायमें वर्ण और वर्णदेवताकी तथा तृतीय अध्यायमें इनकी निरुक्तिकी आलोचना की गई है।

सामवेदीय षष्ठ ब्राह्मणका नाम मन्त्रब्राह्मण है। इस ब्राह्मणमें सिर्फ १० प्रपाठक हैं। गृह्यकर्म्म विहित प्रायः सभी मन्त्र इस ग्रन्थमें संगृहीत हुए हैं। यह उपनिषद् और संहितोपनिषद् ब्राह्मण वा छान्दोग्य ब्राह्मण नामसे भी परिचित है। इसमें सामवेदाध्येतृगणकी प्रकृति उत्पादनके लिये सम्प्रदायप्रवर्त्तक ऋषियोंकी बातें लिखी गई हैं। इस ब्राह्मणका ८मसे १०म प्रपाठक ही छान्दोग्योपनिषद् नामसे प्रसिद्ध है।

सामवेदका ब्राह्मण ग्रन्थ आठ भागोंमें प्रकाशित हुआ है, किन्तु प्रत्येक शाखाका एक एक ब्राह्मण ग्रन्थ ही दिखाई देता है, यथा—शाकलोंका ऐतरेयब्राह्मण, वाजसनेयोंका शतपथब्राह्मण, तैत्तिरीयोंका तैत्तिरीय ब्राह्मण, इसी प्रकार कौथुमोंका ताण्ड्य ब्राह्मण है। महर्षि तण्डि द्वारा सङ्कलित होनेके कारण इसका ताण्ड्य-ब्राह्मण नाम हुआ है। यह छन्दोगोंका ब्राह्मण है, इससे इसका दूसरा नाम छान्दोग्यब्राह्मण भी है। पहले कह आये हैं, कि ताण्ड्यब्राह्मण पचीस अध्यायमें विभक्त है, किन्तु यथार्थमें यह चालीस अध्याययुक्त है। षड्विंश ब्राह्मणका पञ्चाध्याय तथा पञ्चविंश-ब्राह्मणका पञ्चविंशाध्याय, इनके मिलनेसे कौथुमशाखीय ब्राह्मणका श्रौतकर्मविषयक एकविंशाध्यायात्मक जो भाग प्रकाशित हुआ है, वही ताण्ड्य ब्राह्मणका प्रथम वा श्रौत भाग है। यद्यपि षड्विंश-ब्राह्मणमें षष्ठ अध्याय नामका एक और अध्याय है, पर दूसरी जगह इस अध्यायका उल्लेख देखनेमें नहीं आता। यह अध्याय अद्भुतब्राह्मण नामसे प्रसिद्ध है। सायणने सामवेदीय सभी ब्राह्मणोंका भाष्य किया है। उन्होंने ब्राह्मणभाष्य भूमिकामें अन्यान्य जिन सब ब्राह्मणोंका नामोल्लेख किया है, उन सब मन्त्रों और उपनिषदोंकी समष्टिको ताण्ड्यब्राह्मणका द्वितीय भाग कह सकते हैं। श्रौत और गृह्य दोनों प्रकारके विषय द्वारा जो ब्राह्मणग्रन्थकी पूर्णता सिद्ध होती है, उसके प्रमाणका भी अभाव नहीं है। जैसे—ऐतरेय ब्राह्मणके पूर्व भागमें श्रौतविधि और द्वितीय भागमें अन्यान्य विधि है। तैत्तिरीयब्राह्मणमें भी ऐसी ही व्यवस्था देखी जाती है। उसके प्रथम भागमें श्रौतविधिकी अवतारणा की गई है, द्वितीयमें गृह्य, मन्त्र और उपनिषद् भाग है। इस ग्रंथोंका विभाग कल्पनाकारियोंने सामविधिको अनुब्राह्मण संज्ञामें शामिल किया है। उनका कहना है, कि पाणिनि सूत्रमें (अनुब्राह्मणादिनिः। ४।२।६२) अनुब्राह्मणका उल्लेख है। किन्तु सायणीय विभागव्याख्यामें अनुब्राह्मणका उल्लेख नहीं है। किन्तु अनुब्राह्मण नामक और किसी भी ग्रन्थका उल्लेख देखने नहीं आता। अतएव 'विधान' ग्रंथोंका अनुब्राह्मणके अंतर्भुक्त होना सुसङ्गत है।

उपनिषद्।

सामवेदीय उपनिषद् ग्रंथके मध्य छान्दोग्य उपनिषद् और केनोपनिषद्का नाम दिखाई देता है। छान्दोग्य उपनिषद् एक प्रधान उपनिषद् है। यह उपनिषद् आठ अध्यायमें विभक्त है। यह छान्दोग्य ब्राह्मणका अंश विशेष है। छान्दोग्य-ब्राह्मण दश अध्यायमें विभक्त है। इसके आदिके दो अध्यायोंमें ही ब्राह्मणका विषय आलोचित हुआ है। अवशिष्ट आठ अध्याय ही छान्दोग्य-उपनिषद् कहलाता है। छान्दोग्य-ब्राह्मणके प्रथम अध्यायमें आठ सूक्त उद्धृत हुए हैं। इन सब सूक्तोंका जन्म और विवाहकी मङ्गल प्रार्थनाके लिये छान्दोग्य प्रमाणमें व्यवहार हुआ है। इस उपनिषद्का पारसी, फरासी, अङ्गरेजी, जर्मन आदि अनेक विदेशीय भाषामें अनुवाद किया गया है।

सामवेदका दूसरा उपनिषद् केनोपनिषद् है। 'केन' पदसे इस उपनिषद्का प्रारम्भ है, इसलिये इसको केनोपनिषद् कहते हैं। इसका दूसरा नाम तलवकारोपनिषद् है। सामवेदका तलवकार शाखासम्भव है, इसी कारण इस उपनिषद् भी है। यह उपनिषद् तलवकार-ब्राह्मण ग्रन्थके अन्तर्भुक्त है। डाक्टर बुर्नेल्‌ने तञ्जोरमें जो तलवकार ब्राह्मणग्रन्थ पाया है, उसे देख उन्होंने कहा है, कि तलवकार ब्राह्मणके १३से १४५ अर्थात् इस खण्ड तक तलवकार उपनिषद् वा केनोपनिषद् है। अन्यान्य पाण्डुलिपिमें परिच्छेद और अध्याय

विकृतगान है, ऊह और ऊह्य गानके दोनों भाग ही भी इसी प्रकारसे गान करना होगा, अतएव ऊह और ऊह्य इन दोनों गानोंके द्वारा प्रत्येक स्तोत्रका ही प्रयत गान पूर्वार्चिक है, यही छन्दोगोंका अभिप्राय है। ऊहगान २३ प्रपाठकों तथा ऊह्यगान ६ प्रपाठकोंमें विभक्त है। ऊह्यका दूसरा नाम रहस्यगान है। ऊह और ऊह्य गान गेय गानकी तरह आर्चिक क्रमानुसार प्रकाश नहीं है। ये दोनों गान मिलनेसे गेय और आरण्यकगान प्रायः पूर्ण होते हैं। यहां यह भी कह देना आवश्यक है, कि यद्यपि आरण्य गान ग्राम हो गेय है, तथापि प्रथम गान ग्रामका विशेष नाम न रहनेके कारण यह साधारण "गेय" नामसे पुकारा जाता है। हम इसके पहले इसका दूसरा नाम भी निर्देश कर चुके हैं। तथा "आरण्यक" गान। आरण्यक गानके साथ पृथक्ता दिखलानेके लिये इस ग्रामका नाम "ग्रामगान" नामसे अभिहित हुआ है। सुप्रसिद्ध सायणाचार्यको छोड़ भरतस्वामी, महास्वामी और नारायणपुत्र माधवने भी एक एक सामसंहिताभाष्यकी रचना की है।

सामवेदीय ब्राह्मण।

सामवेदीय ब्राह्मण ग्रन्थोंमें सबसे पहले ताण्ड्य-महाब्राह्मणका नाम उल्लेखनीय है। जिसमें पचीस अध्याय हैं, इस कारण इसका दूसरा नाम पञ्चविंश-ब्राह्मण है। इसके प्रथम अध्यायमें यजुरात्मक प्रतिगर सन्निविष्ट है। द्वितीय और तृतीय अध्यायमें अनेक स्तोमविष्टुति, चतुर्थ और पञ्चममें गवामयन नामक संवत्सर सत्रयाग और षष्ठ अध्यायमें अग्निष्टोमकी प्रशंसा लिखी गई है। इस तरह अनेक प्रकारके सोमयज्ञका विवरण इस ताण्ड्यमहाब्राह्मणमें वर्णित है। पर्वैकाह, षड्विंशति सत्र, सूतदर्शनविचार, सामगा-का स्तम्भादि ग्रास, पांचरात्रिक परिमाण, सोम-स्कन्दादिप्रायश्चित्त, महाव्रतादिसम्बन्धीय विस्तृत साम-गान किस प्रकार मनुष्यके उपयुक्त हैं इस विषयमें विचार आदि ताण्ड्यब्राह्मणमें दिखाई देते हैं। इसके सिवा इसमें अनेक सत्रके अनुष्ठान तथा दीक्षादिकोंके सम्बन्ध अनेक विषयोंका उल्लेख है। इस ग्रन्थमें सामगानोंके कर्त्ता तथा मनुष्यसम्बन्धीय आख्यान-का उल्लेख विशेषरूपसे किया गया है। विशेष सत्र-यागोंमें सत्रोंकी व्यवस्था ताण्ड्यब्राह्मणमें दिखाई देती है। कोई सत्र एक दिन चलाओ, कोई सौ दिन चलाओ, कोई वर्ष भर चलाओ, कोई सत्र सौ वर्ष, यहां तक कि हजार वर्ष चलाओ इत्यादि अनेक प्रकारके सत्रोंका प्रमाण और व्यवस्था है। इस प्रकार सभी सत्रोंमें सामगानकी पवित्र ध्वनिसे उत्सवपूर्ण विवरण ताण्ड्यब्राह्मणमें आलोचित हुए हैं। सायणाचार्यने ताण्ड्यब्राह्मणके भाष्यके तथा हरिस्वामीने वृत्तिकी रचना की है।

सामवेदीय द्वितीय ब्राह्मणग्रन्थका नाम षड्विंश ब्राह्मण है। सायणने ब्राह्मण भाष्यके प्रारम्भमें लिखा है, कि पञ्चविंश ब्राह्मणमें जिन सब क्रियाओंका उल्लेख नहीं है, इसमें उन सब कर्मोंका भी उल्लेख है तथा उसमें जिन सब कर्मोंका उल्लेख है, पर उनकी पृथक्ता है, यह भी इस ग्रन्थमें दिखलाया गया है। सुब्रह्मण्य, स्वनमय, प्रातरनुवाक, व्याहृति होमादि, नैमित्तिक प्रायश्चित्त, सौम्य चरुविधि, वहिष्पवमान कर्म, होमादि वर्णन, अभिचारादि विधान, नैमित्तिक होम, अभ्युदय प्रशंसा, देवयजनमें विशेष कर्म, अद्भुत, अभिचार सम्बन्धीय विधि, ब्राह्मणादिस्तुति, स्तोमादि विधि, देवदैवत, अद्भुत समूहकी शान्ति, इन सब विषयोंका उल्लेख है।

तृतीय ब्राह्मणका नाम सामविधान है। सामविधानब्राह्मण सामवेदीय तृतीय ब्राह्मण कहलाता है। इस ब्राह्मणमें अविज्ञातपुण्य और ज्ञात पापोंकी शुद्धिके लिये कृच्छ्रादि प्रायश्चित्त और काम्यफल अभिहोत्रादिका सामविधान संगृहीत हुआ है।

आर्षेय ब्राह्मण सामवेदका चतुर्थ ब्राह्मण है, सायणाचार्यने इसका भी भाष्य किया है। इस ग्रन्थमें ऋषिसम्बन्धीय प्रदेशीय विवरण है। ऋषिनामधेय ज्ञान छन्दोदेवतादि ज्ञानके साथ द्वारा सामसमूहका आर्षेयज्ञान रखना ही इस ब्राह्मणका आलोचित विषय है।

पञ्चम—दैवताध्यायब्राह्मण है। इस ग्रन्थमें देवता सम्बन्धीय प्रकरणादि हैं, इस कारण इसका नाम दैवताध्याय हुआ है। इसके प्रथम अध्यायमें

सामवेदीय देवताओंका विविध देवताप्रीतिकीर्त्तन है। द्वितीय अध्यायमें वर्ण और वर्णदेवताको तथा तृतीय अध्यायमें इनकी नियक्तिकी आलोचना की गई है।

सामवेदीय षष्ठ ब्राह्मणका नाम मन्त्रब्राह्मण है। इस ब्राह्मणमें सिर्फ १० प्रपाठक हैं। गृह्यकर्ममें विहित प्रायः सभी मन्त्र इस ग्रन्थमें संगृहीत हुए हैं। यह उपनिषत् और संहितोपनिषत् ब्राह्मण या छान्दोग्य ब्राह्मण नामसे भी परिचित है। इसमें सामवेदाध्येतृगणकी प्रकृति उत्पादनके लिये सम्प्रदायप्रवर्त्तक ऋषियोंकी बातें लिखी गई हैं। इस ब्राह्मणका ८मसे १०म प्रपाठक ही छान्दोग्योपनिषद् नामसे प्रसिद्ध है।

सामवेदका ब्राह्मण ग्रन्थ आठ भागोंमें प्रकाशित हुआ है, किन्तु प्रत्येक शाखाका एक एक ब्राह्मण ग्रन्थ ही दिखाई देता है, यथा—शाकलोंका ऐतरेयब्राह्मण, वाजसनेयोंका शतपथब्राह्मण, तैत्तिरीयोंका तैत्तिरीय ब्राह्मण, इसी प्रकार कौथुमोंका ताण्ड्य ब्राह्मण है। महर्षि ताण्ड्य द्वारा सङ्कलित होनेके कारण इसका ताण्ड्य-ब्राह्मण नाम हुआ है। यह छन्दोगोंका ब्राह्मण है, इससे इसका दूसरा नाम छान्दोग्यब्राह्मण भी है। पहले कह आये हैं, कि ताण्ड्यब्राह्मण पचीस अध्यायमें विभक्त है, किन्तु यथार्थमें यह चालीस अध्याययुक्त है। षड्विंश ब्राह्मणका पञ्चाध्याय तथा पञ्चविंश-ब्राह्मणका पञ्चविंशाध्याय, इनके मिलनेसे कौथुमशाखीय ब्राह्मणका श्रौतकर्मविषयक एकविंशाध्यायात्मक जो भाग प्रकल्पित हुआ है, वही ताण्ड्य ब्राह्मणका प्रथम या श्रौत भाग है। यद्यपि षड्विंश-ब्राह्मणमें षष्ठ अध्याय नामका एक और अध्याय है, पर दूसरी जगह इस अध्यायका उल्लेख देखनेमें नहीं आता। यह अध्याय अद्भुतब्राह्मण नामसे प्रसिद्ध है। सायणने सामवेदीय सभी ब्राह्मणोंका भाष्य किया है। उन्होंने ब्राह्मणभाष्य भूमिकामें अन्यान्य जिन सब ब्राह्मणोंका नामोल्लेख किया है, उन सब मन्त्रों और उपनिषदोंको समष्टिको ताण्ड्यब्राह्मणका द्वितीय भाग कह सकते हैं। श्रौत और गृह्य दोनों प्रकारके विषय द्वारा जो ब्राह्मणग्रन्थकी पूर्णता सिद्ध होती है, उनके प्रमाणका भी अभाव नहीं है। जैसे—ऐतरेय ब्राह्मणके पूर्व भागमें श्रौतविधि और द्वितीय भागमें अन्यान्य विधि है। तैत्तिरीयब्राह्मणमें भी ऐसी ही व्यवस्था देखी जाती है। उसके प्रथम भागमें श्रौतविधिकी अवतारणा की गई है, द्वितीयमें गृह्य, मन्त्र और उपनिषद् भाग है। इस ग्रन्थोंका विभाग कल्पनाकारियोंने सामविधिको अनुब्राह्मण संज्ञामें शामिल किया है। उनका कहना है, कि पाणिनिसूत्रमें (अनुब्राह्मणादिनिः। ४।२।६२) अनुब्राह्मणका उल्लेख है। किन्तु सायणीय विभागकल्पनामें अनुब्राह्मणका उल्लेख नहीं है। किन्तु अनुब्राह्मण नामक और किसी भी ग्रन्थका उल्लेख देखनेमें नहीं आता। अतएव 'विधान' ग्रन्थोंका अनुब्राह्मणके अन्तर्भुक्त होना सुसङ्गत है।

उपनिषद्।

सामवेदीय उपनिषद् ग्रन्थके मध्य छान्दोग्य उपनिषद् और केनोपनिषद्का नाम दिखाई देता है। छान्दोग्य उपनिषद् एक प्रधान उपनिषद् है। यह उपनिषद् आठ अध्यायमें विभक्त है। यह छान्दोग्य ब्राह्मणका अंश विशेष है। छान्दोग्य-ब्राह्मण दश अध्यायमें विभक्त है। इसके आदिके दो अध्यायोंमें ही ब्राह्मणका विषय आलोचित हुआ है। अवशिष्ट आठ अध्याय ही छान्दोग्य-उपनिषद् कहलाता है। छान्दोग्य-ब्राह्मणके प्रथम अध्यायमें आठ सूक्त उद्धृत हुए हैं। इन सब सूक्तोंका जन्म और विवाहकी मङ्गल प्रार्थनाके लिये छान्दोग्य प्रमाणमें व्यवहार हुआ है। इस उपनिषद्का पारसी, फरासी, अङ्गरेजी, जर्मन आदि अनेक विदेशीय भाषामें अनुवाद किया गया है।

सामवेदका दूसरा उपनिषद् केनोपनिषद् है। 'केन' पदसे इस उपनिषद्का प्रारम्भ है, इसलिये इसको केनोपनिषद् कहते हैं। इसका दूसरा नाम तलवकारोपनिषद् है। सामवेदका तलवकार शाखासम्मत है, इसी कारण इस उपनिषद् भी है। यह उपनिषद् तलवकार-ब्राह्मण ग्रन्थके अन्तर्भुक्त है। डाक्टर बुर्नेल में तञ्जोरमें जो तलवकार ब्राह्मणग्रन्थ पाया है, उसे देख उन्होंने कहा है, कि तलवकार ब्राह्मणके १३से १४५ अर्थात् दश खण्ड तक तलवकार उपनिषद् या केनोपनिषद् है। अन्यान्य पाण्डुलिपिमें परिच्छेद और अध्याय

निर्देशनके प्रसङ्गमें प्रचलित हैं। इस ग्रन्थका भी पाठक्रम, परम्परा, प्रपंच और अनुष्ठान आदि मातृकाओंमें अनुवर्त्त हुआ है।

छान्दोग्योपनिषद्के अनेक भाष्य और भाष्यटीका देखी जाती हैं। इनमेंसे शङ्कराचार्यका भाष्य ही प्रधान है। आनन्दगिरि, ब्रह्मानन्द, नित्यानन्दाश्रम, बालकृष्णानन्द, रामकृष्णानन्द, शङ्करानन्द, माधव, शुद्ध वैशायाचार्य तथा हरिनारायणकी वृत्ति और मोक्षम भाष्य मिलता है। आनन्दगिरिके संदीप्त भाष्यके ऊपर भैरव मिश्र और ब्रह्मानन्दने आनन्दगिरिकी विस्तृत टीका की है।

सामवेदीय केनोपनिषद् वा तलवकार उपनिषद् पर शङ्कराचार्यकृत भाष्य, आनन्दगिरिकृत भाष्यटीका और एक अज्ञात वृत्ति, पैङ्ग और ब्रह्मानन्दकी एक वृत्ति भी होकर, इसके सिवा दामोदराचार्य, बालकृष्णानन्द, भूसुरानन्द, मुकुन्द, नारायण और शङ्करानन्द रचित वृत्ति वा दीपिका पाई जाती है।

सामसूत्र।

सामवेदके जितने सूत्रग्रन्थ हैं, उतने और किसी भी वेदका देखनेमें नहीं आते। पञ्चविंशब्राह्मणके एक श्रौतसूत्र तथा एक गृह्यसूत्र है। सामवेदीय पहले श्रौतसूत्रका नाम मशक है। लाट्यायनमें इसका कल्पसूत्र नाम रखा है। कोई कोई इस ग्रन्थको आर्षेयकल्प नामसे पुकारते हैं। सोमयागके अन्तर्गत पाठादिक्रमसे सूक्तमें संगृहीत हुए हैं। पञ्चविंशब्राह्मणको प्रथाके अनुसार प्रार्थनाओंको श्रेणीबद्ध किया गया है। अन्यान्य ब्राह्मण और क्रियाकाण्डको बातें कुछ कुछ इस सूत्रग्रन्थमें दिखाई देती हैं। इस ग्रन्थमें 'क्षुद्रसामानि' शब्द भी उल्लेख है। इस अध्यायकी एकाहयागविवरण प्रथम पांच अध्यायमें तथा कुछ दिवसव्यापी यागोंका विवरण छठेसे नवें तक चार अध्यायोंमें दिया गया है। अहीनयागमें अधिक कालव्यापी याग सब बतलाये हैं। फिर दो अध्यायमें सत्रोंका विवरण देखा जाता है। वरदराजने इस ग्रन्थका भाष्य किया है।

क्षुद्रकल्पसूत्र ही द्वितीय श्रौतसूत्र है। यह श्रौतसूत्र ताण्ड्य शाखाके अन्तर्गत है। यह ग्रन्थ भी पञ्चविंश ब्राह्मणके अनुगत है। उक्त ब्राह्मणसे अनेक वचन इस ग्रन्थमें उद्धृत किये गये हैं। इस ग्रन्थके प्रथम अध्यायमें सोमयागका साधारण नियम सन्निविष्ट किया गया है। द्वितीय और तृतीय अध्यायके कुछ अंशोंमें एकाहयागकी प्रणाली देखी जाती है। तृतीय अध्यायके शेषमें कुछ दिवसव्यापी (अर्थात् अहीन) यज्ञोंका सविवरण लिपिबद्ध किया गया है। चतुर्थ अध्यायमें सत्रका विवरण दिखाई देता है। इस ग्रन्थके रामकृष्ण दीक्षित, माधव और अग्निस्वामिकृत एक उत्कृष्ट भाष्य है।

तृतीय श्रौतसूत्रका नाम द्राह्यायण है। लाट्यायन श्रौतसूत्रसे इसका प्रभेद बहुत थोड़ा है। यह सूत्र ग्रन्थ सामवेदकी राणायनी शाखाके अन्तर्भुक्त है। इसका दूसरा नाम वसिष्ठसूत्र है। धन्वीने इसका भाष्य किया। रुद्रस्कन्दस्वामीने औद्गात्रसारसंग्रह नामक निबन्धमें फिर इस ग्रन्थका संस्कार किया है। अग्निस्वामीने भी फिर द्राह्यायण श्रौतसूत्रकी छान्दोग्यसूत्रदीप नामकी एक वृत्तिकी रचना की।

चतुर्थ श्रौतसूत्रका नाम है अनुपदसूत्र। यह ग्रन्थ १० प्रपाठकोंमें विभक्त है। अनुपदसूत्र किसके द्वारा संकलित हुआ है, मालूम नहीं। पञ्चविंशब्राह्मणके दुर्बोध वाक्योंकी व्याख्या इस ग्रन्थमें देखी जाती है। इसमें षड्विंशब्राह्मणका भी उल्लेख है। इस ग्रन्थमें अनेक ऐतिहासिक प्रसङ्ग और अन्यान्य अनेक प्राचीन ग्रन्थोंके नाम उद्धृत हो सकते हैं।

इसके सिवा अनेक नामोंमें और भी कुछ सामवेदीय श्रौतसूत्र प्रचलित हुए थे। उनमेंसे निदानसूत्र एक है। यह ग्रन्थ १० प्रपाठकोंमें विभक्त है। इसमें भिन्न भिन्न सामवेदीय छन्द, स्तोम और गानके सम्बन्धमें पर्यालोचना दिखाई देती है। उक्थ और अनुस्तुति, ये दोनों ही निदान शास्त्रके वैदिक पर्याय हैं। इस ग्रन्थमें अनेक वैयाकरणों और वैदिकाचार्योंका विविध सिद्धान्त संगृहीत हुआ है। इसके शब्दमें अनुपदसूत्रके साथ इसका प्रभेद मालूम होता है। इस ग्रन्थमें लाट्यायन और द्राह्यायणके अतिरिक्त धनञ्जय, शाण्डिल्य और गौतमपुत्र आदि प्राचीन आचार्योंके नाम दिखाई देते हैं; परन्तु अनुपदसूत्रमें इन सब नामोंका कुछ भी उल्लेख दिखाई नहीं देता।

इसी प्रकार एक श्रौतसूत्रका नाम पुष्पसूत्र है। यह पुष्पसूत्र गोभिलकृत कह कर प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थके प्रथम चार प्रपाठक नाना प्रकारके पारिभाषिक और व्याकरणशब्दसे भरे हैं, इस कारण इसका मर्म सहजमें हृदयङ्गम करना कठिन है। इन चार प्रपाठकोंकी वैसी टीका देखनेमें नहीं आती, किन्तु अवशिष्टांशका एक बड़ा भाष्य है। भाष्यकारका नाम है अजातशत्रु। ऋक्-मन्त्रकलिका किस प्रकार सामरूप पुष्पमें परिणत हुई, इस ग्रन्थमें यह सङ्केत दिखलाया गया है। इसी कारण इसका नाम पुष्पसूत्र है। दाक्षिणात्यमें इसे फुल्लसूत्र भी कहते हैं। वहां यह ग्रन्थ वररुचिप्रणीत समझा जाता है। किन्तु यह उक्ति अप्रामाणिक है। इसका शेष अंश श्लोकोंसे भरा हुआ है। दामोदर-पुत्र रामकृष्णरचित पुष्पसूत्रकी एक वृत्ति पाई गई है।

इस तरहका एक और भी ग्रन्थ देखा जाता है, उसका नाम सामतन्त्र है। यह ग्रन्थ तेरह प्रपाठकोंमें विभक्त है। किस प्रकारसे सामगान करना होता है, इसमें उसका सङ्केत और प्रणाली दी गई है। ग्रन्थके शेषमें जो परिचय दिया गया है उससे जाना जाता है, कि यह सामवेदका व्याकरणविशेष है। कैयटने लिखा है, कि यह ग्रन्थ "सामलक्षणं प्रातिशाख्यशास्त्रम्" है। ऋक्मन्त्र साममें परिणत करनेकी प्रणालीके सम्बन्धमें सामवेदीय अनेक सूत्रग्रन्थ हैं। इनमेंसे एकका नाम पञ्चविधिसूत्र और दूसरेका नाम प्रतिहारसूत्र है। यह ग्रन्थ कात्यायन कृत समझा जाता है। मशकसूत्रके वृत्तिकार वरद-राजने इसकी एक वृत्ति की, उसका नाम दशतयी है। इसके सिवा 'ताण्ड्यलक्षणसूत्र', 'उपग्रन्थसूत्र', 'कल्पानुपदसूत्र' 'अनुस्तोत्रसूत्र' और 'क्षुद्रसूत्र' आदि सामवेदीय सूत्रग्रंथ हैं। ऋग्वेदकी अनुक्रमणिकाके षड्गुरु शिष्यने कात्यायनको उपग्रन्थसूत्रका प्रणेता बताया है। पञ्चविध सूत्र दो प्रपाठकमें विभक्त है। कल्पानुपद सूत्रके भी सिर्फ दो प्रपाठक हैं। क्षुद्रसूत्र तीन प्रपाठकमें विभक्त है। उपग्रन्थसूत्रमें प्रायश्चित्तकी व्यवस्था देखी जाती है। दयाशङ्कर और पूर्वोक्त रामकृष्ण दीक्षित ने भी इस सामतंत्रकी वृत्ति की है।

साम-गृह्यसूत्र।

अभी सामवेदीय "गृह्यसूत्र"की बातें लिखी जाती हैं। गोभिलकृत गृह्यसूत्र ही विशेष उल्लेखयोग्य है। यह ग्रन्थ चार प्रपाठकोंमें विभक्त है। कात्यायनने इस ग्रन्थका एक परिशिष्ट लिखा है। उसका नाम है कर्म-प्रदीप। यद्यपि इस ग्रन्थकारने इसको गोभिलगृह्य-सूत्रका परिशिष्ट बताया है, किन्तु यह ग्रन्थ द्वितीय गृह्य-सूत्र और स्मृतिशास्त्ररूपमें समादृत होता आ रहा है। आशादित्य शिवरामने इस कर्मप्रदीप ग्रन्थकी टीका लिखी है। वे कहते हैं, कि गोभिलगृह्यसूत्र सामवेदके कौथुम शाखीय और राणायनी शाखीय इन दोनों ब्राह्मणों-का अनुमोदित है। भट्टनारायण, सायण और विश्राम-सुत शिवने 'सुबोधिनीपद्धति' नामक गोभिलगृह्य-सूत्रकी वृत्ति लिखी है। इसके सिवा खादिरगृह्यसूत्र नामक और एक गृह्यसूत्र देखनेमें आता है। कुछ लोगोंका कहना है, कि खादिर ही द्राह्यायणगृह्यसूत्रके कर्त्ता हैं। रुद्रस्कन्दस्वामीने इसकी वृत्ति की है।

खादिरगृह्यसूत्रकी एक कारिका भी देखी जाती है। यह वामनकी बनाई हुई है। 'पितृमेधसूत्र' नामक साम-वेदीय और भी एक गृह्यसूत्र है। इसके प्रणेता गौतम हैं। इस ग्रन्थके टीकाकार अनन्तयज्वाका कहना है, कि न्यायसूत्रके प्रणेता महर्षि गौतम ही इस गृह्यसूत्रके प्रणेता हैं। इसके अतिरिक्त गौतमका बनाया हुआ एक और धर्मसूत्र है, जो 'गौतमधर्मसूत्र' कहलाता है।

साम पद्धति।

सामवेदीय विविध पद्धति ग्रंथ हैं। ये सब पद्धतियां सूत्रग्रन्थके साथ घनिष्ठ सम्बंध रखते हुए क्रियाके प्रमाणके सम्बन्धमें शिक्षा और व्यवस्था देती हैं। फिर सामवेदीय परिशिष्ट ग्रंथकी संख्या भी उससे कम नहीं है। पद्धति-कार गण सूत्रग्रंथका अनुसरण कर चलते हैं। किंतु परिशिष्टमें वार्त्तिक ग्रंथकी तरह बहुत-सी नई नई बातें जोड़ी गई हैं। यहां 'ताण्ड्यपरिशिष्ट' ग्रंथका नाम भी उल्लेखयोग्य है। इसके अतिरिक्त सामवेदीय और भी अनेक ग्रंथ हैं।

यजुर्वेद संहिता ।

माध्यन्दिन-संहिताके वेददीप भाष्यके प्रारम्भमें अनुक्रम शौनकऋषिपादके लिखा है,—महर्षि वेदव्यासने ब्रह्म-परम्परासे प्राप्त वेदको मन्द बुद्धिवाले मनुष्योंके प्रति कृपा कर ऋक्, यजुः, साम, अथर्व इन चार भागोंमें विभक्त किया तथा क्रमशः पैल, वैशम्पायन, जैमिनि और सुमन्तु इन चारोंको उपदेश दिया। विष्णुपुराणमें भी इसका समर्थन किया है।

महीधर वाजसनेयके ये सब बात लिख चुके हैं, भागवतादि पुराणोंमें भी प्रायः आलोचित है।

विष्णुपुराणके मतसे वैशम्पायन ही यजुर्वेदके प्रथम प्रवर्त्तक हैं। इन्होंने तैत्तिरीय-संहिता नामकी यजुर्वेदसंहिता प्रवर्त्तन की। इसका दूसरा नाम कृष्ण-यजुः है। तैत्तिरीयसंहिता २७ शाखाओंमें विभक्त है। वैशम्पायनने याज्ञवल्क्यादि शिष्योंको वेदाध्ययन कराया। किन्तु इस समय एक विषम घटना उपस्थित हुई। महीधरने अति संक्षेपमें उसका उल्लेख किया है। उसका मर्म इस प्रकार है,—किसी कारणवश वैशम्पायन अपने शिष्य याज्ञवल्क्यके प्रति क्रोध करके बोले, "मुझसे पढ़ी हुई जो विद्या है, उसे छोड़ दो।" याज्ञवल्क्य बड़े योगी थे। उनके योगका प्रभाव भी अधिक था। गुरुका आदेश पाते उन्होंने योगके बल पढ़ी हुई विद्याको मूर्तिमती करके वमन कर दिया। उस समय वहां वैशम्पायनके अन्यान्य शिष्य भी उपस्थित थे। वैशम्पायनने शिष्योंसे सम्बोधन कर कहा, "तुम लोग इस वान्त अर्थात् उगले हुए यजुओंको ग्रहण करो।" वैशम्पायनके शिष्योंने तित्तिर पक्षी बन कर उन्हें (यजुओंको) चुग लिया। इसी कारण यजुर्वेदसंहिता का तैत्तिरीयसंहिता नाम हुआ है। बुद्धिमालिन्यवशतः वे सब यजुः काले हो गये; अतः यह यजुःसंहिता कृष्णयजुर्वेद नामसे या कृष्ण नामसे प्रसिद्ध हुई। किन्तु योगी याज्ञवल्क्य वेद छोड़ कर निश्चिन्त बैठनेवाले व्यक्ति नहीं थे। उन्होंने सूर्यदेवको प्रसन्न करनेके लिये तपस्या आरम्भ की। अनन्तर सूर्यदेवकी कृपासे वहाँ दूसरी यजुर्वेद प्रकट हुआ। उसके बाद कण्वादि पन्द्रह शिष्योंने इस वेदका अध्ययन किया। सूर्यने घोड़े बन कर अति शुद्ध यजुः दिया था, इस कारण यह शुक्लयजुर्वेद नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसका दूसरा नाम वाजसनेयसंहिता है। महीधरने वाजसनेय शब्दका इस प्रकार अर्थ किया है, यथा—

'वाजस्य अन्नस्य सनिर्दानं यस्य'—वाजसनिः तस्य पुत्र अन्नदान ही जिसका व्रत है वे वाजसनि हैं। उनके पुत्रने इस अर्थमें गठित शब्द "वाजसनेय" पद सिद्ध किया है। याज्ञवल्क्यके पिताका नाम वाजसनि था। वे अपने पिताके नामसे भी वैदिक साहित्यमें परिचित होते आ रहे हैं। इसी कारण शुक्लयजुर्वेद वाजसनेयसंहिता नामसे प्रसिद्ध है। याज्ञवल्क्यके प्रधान शिष्योंमें माध्यन्दिन एक थे। माध्यन्दिनसे ही यजुर्वेदकी माध्यन्दिन शाखा प्रचलित हुई। हम अभी वाजसनेयसंहिताकी माध्यन्दिन शाखा ही सर्वत्र देखते हैं।

कृष्णयजुर्वेद या तैत्तिरीयसंहिता तथा शुक्लयजुर्वेद या वाजसनेयसंहिता यद्यपि एक होने पर भी दोनोंमें पृथक्ता है। इससे मालूम होता है, कि आपसमें विरोध अवश्य था। कृष्णयजुर्वेदके मंत्रोंके साथ साथ क्रियाकलापोंका विवरण हुआ है तथा जिस यज्ञमें जो मंत्र व्यवहार होता है, उसका भी उल्लेख है। कृष्णयजुर्वेदके ब्राह्मणभागको उसका परिशिष्ट भी कह सकते हैं। फलतः यह संहिता एक प्रकारके ब्राह्मणकी सहायतासे ही प्रचलित है। वाजसनेयसंहिता वैसी नहीं है। इसमें मंत्र और आनुषङ्गिक क्रियाकलापका एक ही स्थानमें समावेश नहीं हुआ है। मंत्रभाग स्वतंत्र है। यही मंत्रभाग वाजसनेयसंहिता कहलाता है। इसमें क्रियाकलापोंका संधान नहीं किया गया है। ऋग्वेद संहिताकी जिस प्रकार मंत्र और ब्राह्मणभाग पृथक् है, वाजसनेयसंहिताके ब्राह्मणभाग वैसे ही अलगसे प्रकाशित हुए हैं। इन दोनों संहिताओंके पृथक् होनेका कारण सुननेमें आता है, कि कृष्णयजुर्वेदमें ही होता और अन्यके कार्यके व्यवस्थाकी अधिक आलोचना देखी जाती है, शुक्लयजुर्वेदमें इस विषयकी आलोचना बहुत कम है। कृष्णयजुर्वेदके आख्यायिका केवल शुक्लयजुर्वेदसे अवश्य ही नहीं बढ़ गये, बल्कि उनकी विस्तृति भी हो गई है।

कृष्णयजुर्वेद या तैत्तिरीय-संहिता।

तैत्तिरीय शब्द कृष्णयजुर्वेदके प्रातिशाख्यसूत्र तथा सामसूत्रमें दिखाई देता है। पाणिनिका कहना है, कि तित्तिरी ऋषिके नामसे ही तैत्तिरीय शब्दकी उत्पत्ति हुई है। आत्रेय शाखाकी संहितानुक्रमणिकामें भी यही व्युत्पत्ति देखनेमें आती है। किन्तु पहले हमने महीधरके भाष्य-प्रारम्भसे देखा है, कि वैशम्पायनके शिष्योंने तित्तिर पक्षी बन कर याज्ञवल्क्यके उगले हुए यजुओंको ग्रहण किया था। परवर्त्ती साहित्यमें इसी आख्यायिकाका प्रचार देखा जाता है। कृष्णयजुर्वेदकी शाखाओंमें एक चरक सम्प्रदायकी ही बारह शाखाएं थीं। यथा—चरक, आह्वरक, कठ, प्राच्यकठ, कपिष्ठल-कठ, आष्टलकठ, चारायणीय, वारायणीय, वार्त्तान्तवेय, श्वेताश्वतर, औपमन्यु और मैत्रायणि। शेषोक्त मैत्रायणिसे फिर सात शाखाओंकी उत्पत्ति हुई है। यथा—मानव, दुन्दुभ, एकेय, वाराह, हारिद्रवेय, श्याम और श्यामायनीय। कृष्णयजुर्वेदका एक सम्प्रदाय खाण्डिकीय कहलाता है। पाणिनिका कहना है, खण्डिक ऋषिसे ही खाण्डिकीय सम्प्रदाय उत्पन्न हुआ है। कुछ लोगोंका कहना है, कि कृष्ण यजुर्वेद काण्डशः विभक्त है, इसी कारण कृष्णयजुर्वेद-संप्रदायियोंको खाण्डिकीय कहते हैं। कृष्णयजुर्वेद या तैत्तिरीयसंहिता ७ काण्डोंमें विभक्त है। प्रत्येक काण्ड फिर अनेक प्रपाठकोंमें विभक्त है। सभी काण्ड समभागमें विभक्त नहीं हैं, किसी काण्डमें सात, किसीमें आठ, इस प्रकार प्रपाठक हैं। ऋग्वेदीय दर्शकर्मके मन्त्र और विधिकी इस संहितामें आलोचना हुई है। कृष्ण यजुर्वेदके एक और सम्प्रदायके ग्रन्थका नाम आपस्तम्ब यजुःसंहिता है। यह ग्रन्थ ७ काण्डोंमें विभक्त है। ये काण्ड ४४ प्रश्नमें, ये प्रश्न फिर ६५१ अनुवाकोंमें और ये अनुवाक २१९८ काण्डिकामें विभक्त हैं। साधारणतः ५० शब्दोंमें एक एक काण्डिका गठित हुई। आत्रेय शाखाका यजुर्वेद काण्ड, प्रश्न और अनुवाक इन तीन प्रकारके परिच्छेदोंमें विभक्त है। काठकोंकी संहिताका विभाग अन्य प्रकारका है। यह पांच भागोंमें विभक्त है। प्रथम तीन भाग ४० स्थानकोंमें विभक्त हैं। पञ्चम भागमें अश्वमेधयज्ञका विवरण है। चरक शाखाके प्रथम तीन भागका नाम इथिमिका, मध्यमिका और ओरिमिका है। आत्रेय ऋषि पदकर्त्ता थे। कुण्डिन वृत्तिकार कहलाते हैं। उक्त आत्रेयके गुरु माने जाते हैं।

इसके सिवा यजुर्वेदकी मैत्रायणी शाखा भी मिलती है। इसमें ५ काण्ड हैं। सम्भवतः यजुर्वेदके और भी भिन्न भिन्न शाखाके संहिताग्रन्थ हो सकते हैं। यजुर्वेद यागयज्ञक्रियाबहुल है। इसी कारण यजुर्वेद सर्वदा अति प्रयोजनीय समझा जाता था और इसकी भिन्न भिन्न शाखाके अनेक संहिताग्रन्थ प्रचारित थे। सायणाचार्यने तैत्तिरीयसंहिताका भाष्य किया है। इसके अतिरिक्त बालकृष्णदीक्षित और भास्कर मिश्र रचित छोटे भाष्य भी मिलते हैं।

यजुर्ब्राह्मण।

सामवेदीय ब्राह्मणग्रन्थमें आपस्तम्ब ब्राह्मण और आत्रेय ब्राह्मण ही विशेष प्रसिद्ध हैं। अनुक्रमणिकामें संहिता और ब्राह्मणकी कुछ भी विभिन्नता नहीं की गई है। कोई कोई शाखा जो संहिताग्रन्थमें नहीं है, ब्राह्मणमें उसका उल्लेख है। जैसे पुरुषमेध यज्ञका विवरण संहितामें नहीं दिखाई देता, किन्तु ब्राह्मणोंमें दिखाई देता है।

तैत्तिरीयब्राह्मण आपस्तंब और आत्रेय शाखाका ब्राह्मण ग्रन्थ कहलाता है। तैत्तिरीयब्राह्मण-ग्रंथका भी भाष्य है। इस भाष्यकी भूमिकामें संहिता और ब्राह्मणका पार्थक्य विचार किया गया है। ब्राह्मणग्रंथमें स्पष्टरूपसे मन्त्रका उद्देश और व्याख्या की गई है। सायणाचार्य और भास्करमिश्र तैत्तिरीय ब्राह्मणके भाष्यकार हैं। तैत्तिरीयब्राह्मणका शेषांश तैत्तिरीयआरण्यक है। यह आरण्यक ग्रंथ दश काण्डोंमें विभक्त है। काण्डमें परिकीर्त्तित आरण्यीय विधि भी इसमें आलोचित हुई है। इसका प्रथम और तृतीय प्रपाठक यज्ञाग्निस्थापनके नियमसे लिया गया है। द्वितीय प्रपाठकमें स्वाध्याय नियम, चतुर्थ, पञ्चम और षष्ठमें दर्शपूर्णमासादि तथा पितृमेध आदि विषयोंकी आलोचना की गई है।

उक्त सायण, भास्करमिश्र और वरदराजने तैत्तिरीय

पुरूरवा तथा उर्वशीके प्रेम और विरहकी कथा, अश्वि-द्वय कर्तृक च्यवनऋषिके युवकत्व प्राप्तिकी कथा इत्यादि उपाख्यान भी शतपथब्राह्मणमें संक्षेपसे वर्णित हैं। उग्रसेन और श्रुतसेन आदि नामोंका उल्लेख है। कुरु-पाञ्चाल आदि ऐतिहासिक नामादि भी इस ग्रन्थमें दिखाई देते हैं।

माध्यन्दिन शाखाके शतपथब्राह्मणके तीन भाष्य देखनेमें आते हैं। एक हरिस्वामिकृत, दूसरा सायणकृत तथा तीसरा कवीन्द्राचार्य सरस्वती-रचित है। माध्यन्दिन शाखाके बृहदारण्यक उपनिषद्के भाष्यकार द्विवेद गङ्ग हैं। ये गुजरातके रहनेवाले थे। श्रीमच्छङ्कराचार्यने जो बृहदारण्यक उपनिषद्का भाष्य लिखा है, वह काण्वशाखाके अन्तर्गत है। शङ्करके शिष्योंने शाङ्कर भाष्यकी कुछ टीकाएँ प्रणयन की हैं। उनमेंसे आनन्दतीर्थ, रघुत्तम और व्यासतीर्थका नाम उल्लेखनीय है। सिवा इसके गङ्गाधरकी दीपिका, नित्यानन्दाश्रमकी मिताक्षरा वृत्ति, मथुरानाथकी लघुवृत्ति, राघवेन्द्रका खण्डार्थ, रङ्गरामानुज और सायणका भाष्य है।

श्रौतसूत्र।

शुक्लयजुर्वेदीय श्रौतसूत्रोंमें "कात्यायन श्रौतसूत्र" का नाम ही उल्लेखनीय है। यह ग्रन्थ २६ अध्यायमें विभक्त है। शतपथब्राह्मणके प्रथम नौ काण्डोंमें जिन सब क्रियाओंकी आलोचना हुई है, इसके प्रथम १८ अध्यायमें उन सब क्रियाओंकी आलोचना है। नवें अध्यायमें सौत्रामणी, विंश अध्यायमें पुरुषमेध, सर्वमेध और पितृमेध, बाईसवें, तेईसवें और चौबीसवें अध्यायमें एकाह, अहीन और सत्र आदि यज्ञिकक्रिया, पचीसवें अध्यायमें प्रायश्चित्त तथा छब्बीसवें अध्यायमें प्रवर्गकी आलोचना की गई है।

कात्यायनसूत्रके अनेक भाष्यकार या वृत्तिकार हैं। उनमेंसे यशोगोपी, पितृभूति, कर्क, भर्तृयज्ञ, श्रीअनन्त, गङ्गाधर, गदाधर, गर्ग, पद्मनाभ, मिश्राग्निहोत्री, याज्ञिकदेव, श्रीधर, हरिहर और महादेवका नाम ही विशेष उल्लेखयोग्य है। यजुर्वेदीय श्रौतसूत्रको अनेक पद्धति और परिशिष्टग्रंथ हैं। इन सब ग्रंथोंका अधिकांश कात्यायनके नामसे ही परिचित है। इनके अनेक टीकाकारके नाम भी सुननेमें आते हैं। यहां निगमपरिशिष्ट और चरणव्यूहग्रंथका नाम भी देखा जाता है।

बैजवापश्रौतसूत्र नामक एक सूत्रग्रन्थ है। बैजवापकृत गृह्यसूत्रका भी एक ग्रन्थ देखनेमें आता है।

कातीयगृह्य ग्रन्थ ३ काण्डोंमें विभक्त है। यह ग्रन्थ पारस्करकृत है। वासुदेवने इसकी पद्धति प्रणयन की है। जयरामकृत उसका एक टीकाग्रन्थ है। किन्तु रामकृष्ण उर्फ शङ्करगणपतिने इसकी जो टीका की है, वह टीका सम्पूर्ण पाण्डित्यपूर्ण। इस ग्रंथकी भूमिकामें वेदसम्बन्धमें विशेषतः यजुर्वेद सम्बन्धमें विशेष आलोचना है। रामकृष्णने यजुर्वेदीय काण्व शाखाको ही श्रेष्ठ बताया है। इसके सिवा कर्क, गदाधर, जयराम, मुरारिमिश्र, रेणुकाचार्य, वागीश्वरी दत्त, वेदमिश्र आदिके भाष्य भी प्रचलित हैं। पारस्कर स्मृति भी इस देशमें प्रचलित है। यह पारस्करगृह्यसूत्रका ही पदानुयायी है। याज्ञवल्क्य स्मृतिसंहिता आदि और भी कितने यजुर्वेदीय गृह्यसूत्रानुयायी स्मृति-संहिताशास्त्र प्रचलित हैं।

प्रातिशाख्यसूत्र।

शुक्लयजुर्वेदीय प्रातिशाख्यसूत्र और इसका अनुक्रमणी ग्रंथ कात्यायन-कृत समझा जाता है। इस प्रातिशाख्यसूत्रमें वैयाकरण शाकटायन, शाकल्य, गार्ग्य और काश्यपके नाम हैं। दाल्भ्य, जातुकर्ण्य, शौनक और औपशिवीका नाम भी देखनेमें आता है। यह ग्रंथ आठ अध्यायमें विभक्त है। इसके प्रथम अध्यायमें "संज्ञा" और "परिभाषा" की आलोचना, द्वितीय अध्यायमें "स्वर" और "उच्चारण", तृतीय, चतुर्थ और पञ्चममें "संस्कार", षष्ठमें क्रियापदका स्वरविनिर्णय, अंतमें स्वाध्यायका क्रम और नियम आलोचित हुआ है। उपसंहारमें कुछ श्लोकोंमें वर्ण और शब्दके देवताओंकी कथा उल्लिखित हुई है। उवटने इस ग्रन्थकी एक सुन्दर टीका लिखी है। कात्यायनकृत अनुक्रमणी ग्रंथ पांच अध्यायमें विभक्त है। श्रीहलधरकृत इस अनुक्रमणीकी एक उपादेय पद्धति है।

अथर्ववेद।

अथर्ववेदसंहितामें बीस काण्ड हैं। ये बीस

अध्याय, ३०३ अनुवाक और १९७५ कण्डिकायें विभक्त हैं। अध्याय अनुवाक तथा अनुवाक कण्डिकामें विभक्त हुए हैं। पहलेसे अठारह अध्यायमें दर्शपूर्णमासादि विविध प्रकारका यज्ञमन्त्र, अग्निष्टोमादि और सोम यागका मन्त्र, सौत्रामणके आतिथ्यमें इष्टका होम-आदिके लिये मैत्रायणी मंत्र आदि और अश्वमेध यज्ञका मन्त्र लिखा हुआ है। कात्यायनकी अनुक्रमणिका, परिशिष्ट तथा महीधरका भाष्य पढ़नेसे मालूम होता है, कि अठारह अध्यायसे पैंतीस तक अर्थात् १५ अध्याय 'खिल' अर्थात् परवर्त्ती कह कर प्रसिद्ध है।

१५ अध्यायके प्रथम चार अध्याय पूर्ववर्ती अध्यायमें आलोचित यज्ञादिका मन्त्र लिखे हुए हैं। तत्परवर्ती चार अध्यायमें पुरुषमेधयज्ञ, सर्वमेधयज्ञ, पितृमेधयज्ञ और प्रायश्चित्त आदि विषयके मन्त्रादि लिखे हुए हैं। अन्तिम अध्यायके साथ यज्ञक्रियादिका कोई सम्बन्ध नहीं है। यह अध्याय ईशोपनिषद् है। "ईशावास्यमिदं सर्वं" इत्यादि सुविख्यात ईशोपनिषद् वाक्यसे इस अध्यायका आरम्भ है। यहां यह भी कह देना उचित है, कि सोलहवें अध्यायको शतरुद्रीय, इकतीसवें अध्यायको पुरुषसूक्त और बत्तीसवें अध्यायको सर्वमेध कर्मकाण्डीय नहीं कह सकते। कर्मकाण्डीय विषय प्रायः इसी तरह तैत्तिरीय संहितामें भी आलोचित हुए हैं। शुक्ल यजुर्वेदमें ब्राह्मणके प्रणालीके अनुसार कहीं भी अनेक कण्डिका देखा जाता है, किन्तु वे सब काण्डका भागको व्याख्या नहीं है, स्वतन्त्र मन्त्र हैं। यजुर्वेदमें भी ऐसी अनेक ऋक् हैं, जो ऋग्वेदसंहिताके मन्त्रोंसे बिलकुल मिलती जुलती हैं। वाजसनेयसंहिताका माध्यन्दिन और काण्वशाखीय संहिता दूसरा तथा प्रचलित है।

वाजसनेयसंहिताके कुछ भाष्यकारोंके नाम प्रसिद्ध हैं। यथा—उवट, माधव, अनन्तदेव, आनन्द भट्ट और महीधर। अभी महीधरका भाष्य ही पूर्णाङ्ग देखनेमें आता है।

शतपथब्राह्मण।

वाजसनेयसंहिताके ब्राह्मणमें शतपथब्राह्मण सुप्रसिद्ध है। यहां तक, कि समस्त ब्राह्मणोंके शतपथ मुख्य ही सर्वापेक्षा प्राचीन और सुविख्यात है। माध्यन्दिन और काण्व इन दोनों ही शाखाओंका शतपथब्राह्मण मिलता है। माध्यन्दिन शाखाका शतपथब्राह्मण चौदह काण्डोंमें विभक्त है। ये चौदह काण्ड फिर १०० अध्याय (या ६८ प्रपाठक) में विभक्त हुए हैं। इसमें आलोचित सभी ब्राह्मणोंकी संख्या ४३८ है। ये ब्राह्मण फिर ७६२४ कण्डिकामें विभक्त हुए हैं। किंतु काण्वशाखाके शतपथब्राह्मणमें सत्रह काण्ड हैं। उसका पहला, पांचवां और चौदहवां काण्ड दो दो भागोंमें विभक्त है। आज तक उसके सात तेरह काण्ड मिले हैं। इसमें ८५ अध्याय, ३६० ब्राह्मण और ४९६५ कण्डिका हैं। किंतु एक दूसरी पाण्डुलिपि से जाना जाता है, कि इस ग्रंथमें कुल १०४ अध्याय, ४४६ ब्राह्मण और ५८६६ कण्डिका विद्यमान हैं। शतपथब्राह्मणके प्रथम नौ काण्डोंमें, संहिताके १८ काण्डोंके यजुः उद्धृत किये गये हैं तथा भिन्न भिन्न क्रियाओंमें इनका व्यवहार होता है, उसे व्याख्या करके अच्छी तरह समझा दिया गया है। दशम काण्डमें अग्निरहस्य विवृत हुए हैं। इसमें बहुतसे छोटे छोटे उपाख्यानोंके साथ अग्निहोत्रयज्ञादि आलोचित हुई हैं। ग्यारहवां काण्ड ८ अध्यायमें विभक्त है। इस अध्यायके पूर्ववर्णित क्रियाकाण्डोंके, संक्षिप्त विवरण छोटे छोटे वाक्यांश उपाख्यान आदि विवृत हुए हैं। बारहवें काण्डमें प्रायश्चित्त और सौत्रामणी क्रियाकी आलोचना, तेरहवें काण्डमें अश्वमेध और दोनोंमें पुरुषमेध, सर्वमेध और पितृमेधका उल्लेख किया गया है। चौदहवां काण्ड 'आरण्यक' कहलाता है। इसके प्रथम तीन अध्यायमें 'प्रवर्ग्य' क्रियाका उल्लेख है। इसके सिवा संहिताके ३०वें ३९वें अध्यायकी संहिताकी भांति अच्छी तरह उद्धृत की गई है। किन्तु जो सभी देवताओंमें श्रेष्ठ हैं, यहां उनका भी उल्लेख है। इसके अवशिष्ट छः अध्याय सुविख्यात बृहदारण्यक उपनिषद् हैं। इस ब्राह्मणमें १२००० ऋक्, ८००० यजुः तथा ४००० सामसंपूर्ण हुए हैं। महाभारतके अनेक आख्यानोंका संक्षिप्त विवरण तथा महाभारत वर्णित अनेक नाम तथा राजाओंका नाम शतपथब्राह्मणमें देखा जाता है। कद्रू और सुपर्णीके युद्धकी कथा,

पुरूरवा तथा उर्वशीके प्रेम और विरहकी कथा, अश्वि-द्वय कर्तृक च्यवनऋषिके युवकत्व प्राप्तिकी कथा इत्यादि उपाख्यान भी शतपथब्राह्मणमें संक्षेपसे वर्णित है। उग्रसेन और श्रुतसेन आदि नामोंका उल्लेख है। कुरु-पाञ्चाल आदि ऐतिहासिक नामादि भी इस ग्रन्थमें दिखाई देते हैं।

माध्यन्दिन शाखाके शतपथब्राह्मणके तीन भाष्य देखनेमें आते हैं। एक हरिस्वामिकृत, दूसरा सायणकृत तथा तीसरा कवीन्द्राचार्य सरस्वती-रचित है। माध्य-न्दिन शाखाके बृहदारण्यक उपनिषद्के भाष्यकार द्विवेद गङ्ग हैं। ये गुजरातके रहनेवाले थे। श्रीमच्छङ्करा-चार्यने जो बृहदारण्यक उपनिषद्का भाष्य लिखा है, वह काण्वशाखाके अन्तर्गत है। शङ्करके शिष्योंने शाङ्कर भाष्यकी कुछ टीकाएं प्रणयन की हैं। उनमेंसे आनन्द-तीर्थ, रघुत्तम और व्यासतीर्थका नाम उल्लेखनीय है। सिवा इसके गङ्गाधरकी दीपिका, नित्यानन्दाश्रमकी मिताक्षरा वृत्ति, मथुरानाथकी लघुवृत्ति, राघवेन्द्रका खण्डार्थ, रङ्गरामानुज और सायणका भाष्य है।

श्रौतसूत्र।

शुक्लयजुर्वेदीय श्रौतसूत्रोंमें "कात्यायन श्रौतसूत्र" का नाम ही उल्लेखयोग्य है। यह ग्रन्थ २६ अध्यायमें विभक्त है। शतपथब्राह्मणके प्रथम नौ काण्डोंमें जिन सब क्रियाओं की आलोचना हुई है, इसके प्रथम १८ अध्यायमें उन सब क्रियाओंकी आलोचना है। १९वें अध्यायमें सौत्रा-मणी, २०वें अध्यायमें पुरुषमेध, सर्वमेध और पितृमेध, बाईसवें, तेईसवें और चौबीसवें अध्यायमें एकाह, अहीन और सत्र आदि याज्ञिकक्रिया, पचीसवें अध्यायमें प्राय-श्चित्त तथा छब्बीसवें अध्यायमें प्रवर्गकी आलोचना की गई है।

कात्यायनसूत्रके अनेक भाष्यकार वा वृत्तिकार हैं। उनमेंसे यज्ञोपवीती, पितृभूति, कर्क, भर्तृयज्ञ, श्रीअनन्त, गङ्गाधर, गदाधर, गर्ग, पद्मनाभ, पित्र्याग्निहोत्री, याज्ञिकदेव, श्रीधर, हरिहर और महादेवका नाम ही विशेष उल्लेख योग्य है। यजुर्वेदीय श्रौतसूत्रकी अनेक पद्धति और परिशिष्टग्रन्थ हैं। इन सब ग्रन्थोंका अधिकांश कात्या-यनके नामसे ही परिचित हैं। इसके अनेक टीकाकारके नाम भी सुननेमें आते हैं। यहां निगमपरिशिष्ट और चरणव्यूहग्रन्थका नाम भी देखा जाता है।

बैजवापश्रौतसूत्र नामक एक सूत्रग्रन्थ है। बैज वापकृत गृह्यसूत्रका भी एक ग्रन्थ देखनेमें आता है।

कातीयगृह्य ग्रन्थ ३ काण्डोंमें विभक्त है। यह ग्रन्थ पारस्करकृत है। वासुदेवने इसकी पद्धति प्रण-यन की है। जयरामकृत उसका एक टीकाग्रन्थ है। किन्तु रामकृष्ण उर्फ शङ्करगणपतिने इसकी जो टीका की है, वह टीका सम्पूर्ण पाण्डित्यपूर्ण। इस ग्रन्थकी भूमिकामें वेदसम्बन्धमें विशेषतः यजुर्वेद सम्बन्धमें विशेष आलोचना है। रामकृष्णने यजुर्वेदीय काण्व शाखाको ही श्रेष्ठ बताया है। इसके सिवा कर्क, गदा-धर, जयराम, मुरारिमिश्र, रेणुकाचार्य, वागीश्वरी दत्त, वेदमिश्र आदिके भाष्य भी प्रचलित हैं। पारस्कर स्मृति भी इस देशमें प्रचलित है। यह पारस्करगृह्य-सूत्रका ही पश्चानुयायी है। याज्ञवल्क्य स्मृतिसंहिता आदि और भी कितने यजुर्वेदीय गृह्यसूत्रानुयायी स्मृति-संहिताशास्त्र प्रचलित हैं।

प्रातिशाख्यसूत्र।

शुक्लयजुर्वेदीय प्रातिशाख्यसूत्र और इसका अनु-क्रमणी ग्रन्थ कात्यायन-कृत समझा जाता है। इस प्रातिशाख्यसूत्रमें वैयाकरण शाकटायन, शाकल्य, गार्ग्य और काश्यपके नाम हैं। दाल्भ्य, जातूकर्ण्य, शौनक और औपशिविका नाम भी देखनेमें आता है। यह ग्रन्थ आठ अध्यायमें विभक्त है। इसके प्रथम अध्यायमें "संज्ञा" और "परिभाषा" की आलोचना, द्वितीय अध्यायमें "स्वर" और "उच्चारण", तृतीय, चतुर्थ और पञ्चममें "संस्कार", षष्ठममें क्रियापदका स्वरविनिर्णय, अंतमें स्वाध्यायका क्रम और नियम आलोचित हुआ है। उपसंहारमें कुछ श्लोकोंमें वर्ण और छन्दके देवताओंकी कथा उल्लिखित हुई है। उवटने इस ग्रन्थकी एक सुन्दर टीका लिखी है। कात्यायनकृत अनुक्रमणी पांच अध्यायमें विभक्त है। श्रीहलधरकृत इस अनुक्रमणीकी एक उपादेय पद्धति है।

अथर्ववेद।

अथर्ववेदसंहितामें बीस काण्ड हैं। ये बीस

काण्ड फिर ३८ प्रपाठकोंमें विभक्त है। इसके ७६० सूक्त और ६००० मन्त्र हैं। किसी किसी ग्रन्थके मतमें अनुवाक विभाग भी देखनेमें आता है। अनुवाकोंकी संख्या ८० है। गोपथब्राह्मणमें अथर्ववेदके 'पर्व' विभागका उल्लेख है। किन्तु अभी जो हस्तलिपियां मिली हैं, उनमें कहीं भी पर्व-विभाग देखा नहीं जाता। शौनकशाखाकी संहिता और पिप्पलाद-शाखाके संहिताग्रन्थकी हस्तलिपि अभी भी प्रचलित है। वाजसनेयसंहिता, शतपथब्राह्मण, छान्दोग्य-उपनिषद् तथा तैत्तिरीयआरण्यकमें अथर्ववेदका उल्लेख दिखाई देता है। ऋग्वेदमें भी जो अथर्ववेदका आभास है, वह इसके पहले वेदत्रय-प्रसङ्गमें लिखा जा चुका है।

होत्र, आध्वर्यव और उद्गात्र इन तीनोंका द्वारा तीन वेदोंके प्रति यथायथ होत्रादि कर्तव्य प्रतिपादन पर-रूप ही माना जाता है। इनका ब्रह्म कर्तव्य प्रतिपादन तात्पर्य स्थापित नहीं होता। होत्रकर्मके विषयमें जिस प्रकार दूसरे विषय-सूचक यजुर्वेदका तात्पर्य नहीं है, अग्निहोत्र जिस प्रकार ऋग्वेदका तात्पर्य नहीं है, उसी प्रकार ब्रह्मत्व भी वाकी तीन वेदोंका तात्पर्य नहीं समझा जाता। परन्तु ब्रह्मत्वविषयमें दूसरे वेदमें भी उसका कुछ न कुछ उल्लेख अवश्य है। किन्तु ब्रह्मत्वको [illegible] तीन वेदोंका तात्पर्य नहीं मान सकते। अथर्ववेद तीन वेदोंमें जो ब्रह्मत्व विषयका उल्लेख देखा जाता है, वह उन तीन वेदोंका तात्पर्य विषयत्व और आत्मस्वरूपविश्लेषण आदरणीय नहीं है। अनुष्ठानमें एक प्रधान योग है। आपस्तम्बका कहना है, कि अनुष्ठान वेदपुरुष आम्नायोक्त होम-में अनुक्रेय नहीं है, यथा—सामवेद या यजुर्वेदमें होमकर्मके जो मन्त्र हैं, उन्हें नहीं करना चाहिये। क्योंकि, वे मन्त्र नहीं हैं। (आप० ३।१३) आपस्तम्ब कि विशेष अनुष्ठानका यही तीन वेद द्वारा ही निष्पन्न होता है। किन्तु ब्रह्मीत्वका व्यवस्था अथर्ववेद द्वारा ही कही गई है। गोपथब्राह्मणमें—"प्रजापतिने यज्ञ विस्तार किया, ऋग्वेद द्वारा होत्र, यजु द्वारा आध्व-र्यव, सामवेद द्वारा औद्गात्रका तथा अथर्ववेद द्वारा ब्रह्मत्व निष्पन्न किया।"

इस प्रकार प्रकाश करके गोपथब्राह्मण यह भी कहते हैं, कि वेद द्वारा यज्ञका अन्यतर पक्ष संस्कृत होता है किन्तु मन द्वारा ब्रह्मा यज्ञके दूसरे पक्षका संस्कार करते हैं। (गोपथ ११२)

इस वेदके सभी मन्त्र ब्रह्मवेदीय आख्यायिकायुक्त हैं। अन्यान्य दो वेदोंमें भी उपदेशोंसे ये भरे हुए हैं। यह वेद अथर्वाङ्ग ऋषि द्वारा देखा गया है, इस कारण इसका नाम अथर्ववेद है। फिर कोई कोई ब्रह्मकार्य-के लिये इस वेदकी प्रयोजनीयता बतलाते हुए इसे ब्रह्मवेद भी कहते हैं। अथर्व ऋषिके द्वारा मन्त्रोंको देख कर इस वेदकी सृष्टि हुई, इस सम्बन्धमें एक पौराणिक किंवदन्ती इस प्रकार है। पुराकालमें स्वयम्भु ब्रह्माने सृष्टिके लिये कठिन तपस्या आरम्भ कर दी। उसी समय उनके लोमकूपोंसे स्वेदधारा बह चली। इस स्वेदजात जलमें अपनी छाया देखनेसे उनका रेतःस्खलित हो गया। उस रेतके साथ जल दो भागोंमें विभक्त हुआ। एक भागसे भृगु नामक महर्षि उत्पन्न हुए। वह भृगु अपने उत्पादक ऋषिवरको न पाकर उनके दर्शनके लिये बड़े उत्सुक हुए। उसी समय आकाश वाणी हुई। "अथर्वान् एनं एतास्वेवाप्स्वन्विच्छ" (गोपथब्रा० ११४) इसी कारण उन्हें अथर्वाभिधानकी प्राप्ति हुई। अवशिष्ट रेतोयुक्त जलसे आवृत ब्रह्माकार-वाला समस्त ऋषिके सारे अंगका रस टपक गया जिससे अङ्गिरा नामक महर्षिकी उत्पत्ति हुई। इसके बाद उन स्वयम्भू ब्रह्माने अथर्वा और अङ्गिराको अध्यक्ष किया था। उससे क्रमशः एक दो आदि मन्त्रसंख्यक बीसवां अथर्वाङ्गिरस उत्पन्न हुआ।

तदनन्तर उन ऋषियोंके समीप स्वयम्भु ब्रह्माने जो मन्त्र प्राप्त किये थे वे ही 'अथर्वाङ्गिरस' नामधारक वेद कह-लाये। अथर्वादि ऋषियोंके संख्या बीस रहनेके कारण इस वेदके बीस काण्ड हुए। सभी वेदोंका सारभूत यह वेद है, इस कारण यह सभी वेदोंमें श्रेष्ठ माना जाता है। यथा—गोपथब्राह्मणमें लिखा है, "श्रेष्ठो हि वेदस्तपसोऽधि जातो ब्रह्मज्ञानां हृदये सम्बभूव।" (१।९)

"एतद्वै भूयिष्ठं ब्रह्म यद् भृग्वङ्गिरसः। येऽङ्गिरसः स रसः। येऽथर्वाणस्तद्भेषजम्। यद्भेषजम् तदमृतम्। यदमृतं तद्ब्रह्म।" (३।४)

सभी वेदोंका सारभूत ब्रह्मात्मिक और ब्रह्मकर्त्तव्यता का प्रतिपादक है, इस कारण यह ब्रह्मवेद नामसे प्रसिद्ध हुआ।

"चत्वारो इमे वेदा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ब्रह्मवेदः।" (गोपथ २।१६)

सारवत्त्वके कारण इसके मन्त्र भी सिद्धमंत्र समझे जाते हैं। यथा—

"न तिथि र्न च नक्षत्रं न ग्रहो न च चन्द्रमाः।
अथर्वमन्त्रसंप्राप्त्या सर्वसिद्धिर्भविष्यति॥"
(अथर्वपरि० २।५)

इस वेदके पांच अङ्ग हैं। ब्रह्मा ही उसके स्रष्टा हैं। वे यथाक्रम सर्पवेद, पिशाचवेद, असुरवेद, इतिहासवेद और पुराणवेद नामसे प्रसिद्ध हैं। (गोपथब्रा० १।१०)

गोपथ-ब्राह्मण।

अथर्ववेदके ब्राह्मण ग्रन्थमें गोपथब्राह्मण ही प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ पूर्व और उत्तर इन दो भागोंमें तथा समस्त ग्रन्थ ग्यारह प्रपाठकमें विभक्त है। पूर्वार्द्धमें ६ और उत्तरार्द्धमें ५ प्रपाठक हैं। पूर्वार्द्धमें नाना प्रकारके आख्यान और अन्यान्य विषयकी आलोचना है। उत्तरार्द्धमें कर्मकाण्डकी आलोचना देखी जाती है।

अथर्ववेदका प्रतिपाद्य विषय।

अविविहित दर्शपूर्णमासादि कर्मका अपेक्षित ब्रह्मत्व अन्य वेदमें अलभ्य है, केवल अथर्ववेदका ही समधिगम्य है। शान्ति और पुष्टिकर्म, राजकर्म और तुलापुरुष महादानादि तथा पौरोहित्य और राज्याभिषेकादि विषय देखे जाते हैं।

इस अथर्ववेदकी नौ शाखाएं हैं। यथा—

"पैप्पलादाः स्तौदाः मौदाः शौनकीया आजला जलदा ब्रह्मवदा देवदर्शा चारणवैद्याश्चेति।"

इन सब शाखाओंमें शौनकादि चार शाखाओंको अनुमोदित अथर्ववेदसंहिताके अनुवाक्, सूक्त और ऋगादिके कर्मकाण्डीय विनियोगके लिये गोपथब्राह्मण का अवलम्बन कर पांच "सूत्रग्रन्थ" कल्पित हुए हैं। यथा—कौशिकसूत्र, वैतानसूत्र, नक्षत्रकल्पसूत्र, आङ्गिरसकल्पसूत्र और शान्तिकल्पसूत्र।

आथर्वण सूत्र।

कौशिकसूत्रको जगह "संहिताविधि" नामका उल्लेख किया गया है। सायणाचार्यने संहिताविधि नामकी व्याख्या कर लिखा है,—"तत्र साकल्येन संहितामंत्राणां शान्तिपौष्टिकादिषु कर्मसु विनियोगविधानात् संहिताविधिर्नाम कौशिकसूत्रम्।"

अर्थात् शान्ति और पुष्टि कर्मादिके सम्बन्धमें संहिता मन्त्रोंके साकल्यमें विनियोग-विधान, इस सूत्रग्रन्थमें आया है। इससे इसका नाम संहिताविधिसूत्र या कौशिकसूत्र हुआ है। अनेक सूत्रग्रन्थोंमें अथर्ववेदके प्रतिपाद्य कर्मोंका विधान विप्रकीर्ण भावमें व्यवहित हुआ था। उनमें वे सब विषय यथार्थमें दुर्बोध्य समझे जाते थे। उन सब कर्मकाण्डीय विधानकी सुविधाके लिये सभी इसी ग्रन्थमें संगृहीत हुए हैं। यह कौशिकसूत्र ग्रन्थ बहुतसे दूसरे दूसरे सूत्रग्रन्थोंके कोशवत् उपजीव्य स्वरूप है, इसलिये यह सूत्रग्रन्थ अथर्ववेदीय सूत्रग्रन्थोंमें प्रधान है।

इस कौशिक सूत्रग्रन्थमें जो जो कर्म करनेका विषय लिखा है, वह ६ प्रकार है,—

१ स्थालीपाकविधानमें दर्शपूर्णमासविधि, २ मेधाजनन, ३ ब्रह्मचारिसम्पद्, ४ ग्रामदुर्गोद्यानादि लाभविषय, ५ पुत्र-पशु-धनधान्य-प्रजा स्त्री-करि-तुरग रथान्दोलिकादि सर्वसम्पत्साधन, ६ मानवोंके ऐकमत्य सम्पादक साम्मनस्यादि।

इसके बाद सभी राजकर्म कहे गये हैं; यथा—राजुहस्तिशासन, संग्राम-विजयसाधन, इषु अर्थात् बाणनिवारणार्थ खड्गादि सर्वशस्त्रनिवारण, शत्रुपक्षीय सेनाका मोहन, उद्वेजन, स्तम्भन और उच्चाटन, अपनी सेनाका उत्साहवर्द्धन और अभयरक्षा, संग्राममें जय और पराजयकी परीक्षा, सेनापति आदि प्रधान नायकोंको जीतना, दूसरी सेनाके सञ्चरण प्रदेशमें अभिमन्त्रित पाशाग्नि-काशादि फेंकना, अपकामी राजाका रथ पर आरोहण और रणक्षेत्रमें अभिमन्त्रित भेरी पटहादि सभी प्रकारके बाजे बजाना, सपत्नक्षयकर्म, शत्रु कर्तृक

काण्ड फिर ३८ प्रपाठकोंमें विभक्त है। इसमें ७६० सूक्त और ६००० मन्त्र हैं। किसी किसी शाखाके ग्रन्थमें अनुवाक विभाग भी देखनेमें आता है। अनुवाककी संख्या ८० है। गोपथब्राह्मणमें अथर्ववेदके 'पर्व' विभागका उल्लेख है। किन्तु अभी जो हस्तलिपियां मिली हैं, उनमें कहीं भी पर्व-विभाग देखा नहीं जाता। शौनकशाखाकी संहिता और पिप्पलाद-शाखाके संहिताग्रन्थकी हस्तलिपि अभी भी प्रचलित है। वाजसनेयसंहिता, शतपथब्राह्मण, छान्दोग्य-उपनिषद् तथा तैत्तिरीयआरण्यकमें अथर्ववेदका उल्लेख दिखाई देता है। ऋग्वेदमें जो जो अथर्ववेदका आभास है, वह इसके पहले वेदवर्णन-प्रसङ्गमें लिखा जा चुका है।

होम, आच्छादन और अनुष्ठान इस त्रयीके द्वारा तीन वेदोंके प्रति सर्वदा होमादि कर्तव्य प्रतिपादन परत्व हो जाता जाता है। इसका मन्त्र कर्तव्य प्रतिपादन तात्पर्य स्वाभाविक नहीं होता। हौत्रकर्मके विषयमें जिस प्रकार दूसरे द्विपद सूक्त यजुर्वेदका तात्पर्य नहीं है, अग्निहोत्र जिस प्रकार ऋग्वेदका तात्पर्य नहीं है, उसी प्रकार प्रस्तर भी बाकी तीन वेदोंका तात्पर्य नहीं समझा जाता। परन्तु प्रस्तरविषयमें दूसरे वेदोंमें भी उसका कुछ न कुछ उल्लेख अवश्य है। किन्तु प्रस्तरको इन तीन वेदोंका तात्पर्य नहीं मान सकते। अथर्ववेदमें जो प्रकृत विषयका उल्लेख देखा जाता है, वह उन तीन वेदोंका अभिप्रायसे विपरीत और आत्मस्वरूपप्रतिपादक आह्लाद नहीं है। ब्रह्मत्व एक प्रधान दोष है। ब्रह्मज्ञानका कहता है, कि ब्रह्मत्व वेदचतुष्टय ज्ञानाधीन होता है भी अनुचित नहीं है, यथा—सामवेद वा यजुर्वेदमें ऋग्वेदके भी एक मात्र है, उन्हें नहीं करना चाहिये। क्योंकि, वे सम्पूर्ण नहीं हैं। (गोपथ० २।२।३) ब्रह्मत्व कहता है तीन वेद द्वारा ही विषय होता है। किन्तु ब्रह्मत्वको अथर्ववेद द्वारा ही करते गये हैं, गोपथब्राह्मणमें—"प्रजापतिने यज्ञ विस्तार किया, ऋग्वेदसे होतृ द्वारा हौत्र, यजु द्वारा अध्वर्यव, सामवेद उद्गाताका तथा अथर्ववेद द्वारा ब्रह्मत्व निरूपण किया।"

इस प्रकार प्रकाश करके गोपथब्राह्मण यह भी कहते हैं, कि वेद द्वारा यज्ञका अन्यतर पक्ष संस्कृत होता है, किन्तु मन द्वारा ब्रह्मा यज्ञके दूसरे पक्षका संस्कार करते हैं। (गोपथ १।३)

इस वेदके मन्त्र मनन द्वारा घोर, शान्त युक्त। अन्यान्य तीन वेदोंके भी उपदेशोंसे वे भरे हुए हैं। यह वेद अथर्वाङ्गिरस ऋषि द्वारा देखा गया है, इस कारण इसका नाम अथर्ववेद है। फिर कोई कोई ब्रह्मवर्धके लिये इस वेदकी प्रयोजनीयता बतलाते हुए इसे ब्रह्मवेद भी कहते हैं। अथर्वश्रुतिके इस मन्त्रोंको ले कर इस वेदकी सृष्टि हुई, इस सम्बन्धमें एक पौराणिक किंवदन्ती इस प्रकार है। पुराकालमें स्वयम्भु ब्रह्माने सृष्टिके लिये कठिन तपस्या आरम्भ कर दी। उसी समय उनके लोमकूपोंसे स्वेदधारा बह चली। वह स्वेदजात जलमें अपनी छाया देखनेसे उनका रेतःस्खलित हो गया। उस रेतके साथ जल दो भागोंमें विभक्त हुआ। एक भागसे भृगु नामक महर्षि उत्पन्न हुए। यह भृगु अपने उत्पादक अधिपतिको न पा कर उनके दर्शनके लिये बड़े उत्सुक हुए। इसी समय आकाशवाणी हुई। "अथर्वाद् एवं एतमन्वेष्व" (गोपथब्रा० १।४) इसी कारण उन्हें अथर्वाणको प्राप्ति हुई। अवशिष्ट रेतोयुक्त जलसे आवृत ब्रह्माका सब अवस्थान मुखसे रस जिससे अङ्गिरा नामक महर्षिकी उत्पत्ति हुई। इसके बाद उन ब्रह्मपुत्र ब्रह्माने अथर्वा और अङ्गिराको अध्ययन किया था। उससे बतलाया यह है। आदि अथर्वाङ्गिरस उत्पन्न हुआ।

तत्पश्चात् उन ऋषियोंके उत्पन्न स्वयम्भु ब्रह्माने जो सब मन्त्र देखे थे वे ही 'अथर्वाङ्गिरस' नामक वेद कहलाये। पहलेसे ऋषियोंकी संख्या बीस रहनेके कारण उस वेदके बीस काण्ड हुए। सभी वेदोंका सारस्वरूप इस वेदमें है, इस कारण यह सभी वेदोंमें श्रेष्ठ माना गया है। यथा—गोपथब्राह्मणमें लिखा है, "श्रेष्ठो हि वेदानामथर्ववेदो हृदये आसन्नपूरु।" (१।१)

"एतद्वै भूयिष्ठं ब्रह्म यद् भृग्वङ्गिरसः। येऽङ्गिरसः स रसः। येऽथर्वाणस्तद्भेषजम्। यद्भेषजम् तदमृतम्। यदमृतं तद्ब्रह्म।" (३।४)

सभी वेदोंका सारभूत ब्रह्मात्मिक और ब्रह्मकर्त्तव्यता का प्रतिपादक है, इस कारण यह ब्रह्मवेद नामसे प्रसिद्ध हुआ।

"चत्वारो इमे वेदा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ब्रह्मवेदः।" (गोपथ २।१६)

सारवत्त्वके कारण इसके मन्त्र भी सिद्धमंत्र समझे जाते हैं। यथा—

"न तिथिर्न च नक्षत्रं न ग्रहो न च चन्द्रमाः।
अथर्वमन्त्रसम्प्राप्त्या सर्वसिद्धिर्भविष्यति॥"

(अथर्वपरि० २।५)

इस वेदके पांच अङ्ग हैं। ब्रह्मा ही उसके स्रष्टा हैं। वे यथाक्रम सर्पवेद, पिशाचवेद, असुरवेद, इतिहासवेद और पुराणवेद नामसे प्रसिद्ध हैं। (गोपथब्रा० १।१०)

गोपथ-ब्राह्मण।

अथर्ववेदके ब्राह्मण ग्रन्थमें गोपथब्राह्मण ही प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ पूर्व और उत्तर इन दो खण्डोंमें तथा समस्त ग्रन्थ ग्यारह प्रपाठकमें विभक्त है। पूर्वार्द्धमें ६ और उत्तरार्द्धमें ५ प्रपाठक हैं। पूर्वार्द्धमें नाना प्रकारके आख्यान और अन्यान्य विषयकी आलोचना है। उत्तरार्द्धमें कर्मकाण्डकी आलोचना देखी जाती है।

अथर्ववेदका प्रतिपाद्य विषय।

श्रुतिविहित दर्शपूर्णमासादि कर्मका अपेक्षित ब्रह्मत्व अन्य वेदमें अलभ्य है, केवल अथर्ववेदका ही समधिगम्य है। शान्ति और पुष्टिकर्म, राजकर्म और तुलापुरुष महादानादि तथा पौरोहित्य और राज्याभिषेकादि विषय देखे जाते हैं।

इस अथर्ववेदकी भी शाखाएं हैं। यथा—

"पैप्पलादा स्तौदा मौदाः शौनकीया जाजला जलदा ब्रह्मवदा देवदर्शा चारणवैद्याश्चेति।"

इन सब शाखाओंमें शौनकादि चार शाखाओंसे अनुमोदित अथर्ववेदसंहिताके अनुवाक्, सूक्त और ऋगादिके कर्मकाण्डीय विनियोगके लिये गोपथब्राह्मण का अवलम्बन कर पांच "सूत्रग्रन्थ" कल्पित हुए हैं। यथा—कौशिकसूत्र, वैतानसूत्र, नक्षत्रकल्पसूत्र, आङ्गिरसकल्पसूत्र और शान्तिकल्पसूत्र।

आथर्वण सूत्र।

कौशिकसूत्रको जगह "संहिताविधि" नामका उल्लेख किया गया है। सायणाचार्यने संहिताविधि नामकी व्याख्या कर लिखा है,—"तत्र साकल्येन संहितामंत्राणां शान्तिपौष्टिकादिषु कर्मसु विनियोगविधानात् संहिताविधिर्नाम कौशिकसूत्रम्।"

अर्थात् शान्ति और पुष्टि कर्मादिके सम्बन्धमें संहिता मन्त्रोंके साकल्यमें विनियोग-विधान, इस सूत्रग्रन्थमें आया है। इससे इसका नाम संहिताविधिसूत्र वा कौशिकसूत्र हुआ है। अनेक ब्राह्मणग्रन्थोंमें अथर्ववेदके प्रतिपाद्य कर्मोंका विधान विप्रकीर्ण भावमें व्यवहित हुआ था। उसमें ये सब विषय यथार्थमें दुर्बोध्य समझे जाते थे। उन सब कर्मकाण्डीय विधानकी सुविधाके लिये सभी इसी ग्रन्थमें संगृहीत हुए हैं। यह कौशिकसूत्र ग्रन्थ बहुतसे दूसरे दूसरे सूत्रग्रन्थोंके कोशवत् उपजीव्य स्वरूप है, इसलिये यह सूत्रग्रन्थ अथर्ववेदीय सूत्रग्रन्थोंमें प्रधान है।

इस कौशिक सूत्रग्रन्थमें जो जो कर्म करनेका विषय लिखा है, वह १४ प्रकार है,—

१ स्थालीपाकविधानमें दर्शपूर्णमासविधि, २ मेधाजनन, ३ ब्रह्मचारिसम्पद्, ४ ग्रामदुर्गराष्ट्रादि लाभविषय, ५ पुत्र-पशु-धनधान्य-प्रजा स्त्री-करि-तुरग रथान्दोलिकादि सर्वसम्पत्साधन, ६ मानवोंके ऐकमत्य सम्पादक सांमनस्यादि।

इसके बाद सभी राजकर्म कहे गये हैं; यथा—शत्रुहस्तित्रासन, संग्राम-विजयसाधन, इषु अर्थात् बाणनिवारणार्थ खड्गादि सर्वशस्त्रनिवारण, शत्रुपक्षीय सेनाका मोहन, उद्वेजन, स्तम्भन और उच्चाटन, अपनी सेनाका उत्साहवर्द्धन और अभयरक्षा, संग्राममें जय और पराजयकी परीक्षा, सेनापति आदि प्रधान नायकोंको जीतना, दूसरी सेनाके सञ्चरण प्रदेशमें अभिमन्त्रित पाशाग्नि-कालादि फेंकना, जयकामी राजाका रथ पर आरोहण और रणक्षेत्रमें अभिमन्त्रित भेरी पटहादि सभी प्रकारके बाजे बजाना, अपरमहाकर्म, शत्रु कर्त्तृक

इन्द्रादिका राजाका आत्मरक्षोपाय और राज्याभिषेक, पाकयज्ञ, पितृमेधमें पिण्डदानादि, सीमन्तकर्म, गोसमृद्धि कर्म, अन्नोत्पन्न कार्य, वृष्टिके लिये मन्त्रप्रयोगादि इन्द्रियशक्ति कर्म। सन्तानोत्पत्तिकर कार्य, गृहनिर्माण कार्य, नक्षत्रादिनिर्मितविघ्न, पुत्रोत्पत्ति, आयुष्य होम कर्म, नानाप्रकार व्याधिका दूरीकरणके लिये विविध औषधोंकी चिकित्सा (उनमेंसे ज्वर, अतिसार, मूत्रकृच्छ और सर्पविष आदि विशेषरूपसे वर्णित है), इत्यादिके बाद बालकके जातकर्मादि संस्कार निरोगकरण, युद्धमें विजयार्थ शत्रु-नाशकादि विधान, नाना दिक् अमंगलोंके शान्त्यर्थ कर्म, दुःस्वप्न और वातादि विघ्न विधान, मन्त्र द्वारा, दर्शादिमासादि विधानसूत्र, राज्य रक्षा और मरणादि विधान, मंगलादिका प्रतिवचन, कल्पसूत्र, मन्त्रप्रतिपादक आदि व्याधि और अद्भुत विषयविधान, कृषि, वाणिज्य, कुसीद, शिल्प, कर्म और दीक्षादिविषयके बीजभक्षणता, आख्यानादिका आलोक विधान, गन्धमाल्यादि विविधविषयकी चिकित्सा, पुत्रादिकार्यमें, गुप्तधन कर्म विधान, मन्त्रहवन और पुत्रजन्मादि कर्म, सीमन्तोन्नयन, संस्कारादिका अंग विधान, अग्निरक्षणविधिप्रतिपादित विधान, वृष्टिकामका वृष्टिविधान, मन्त्रादि, इत्यादि, और समन्वय, श्राद्धरूपमें कई अन्यविधान, गृहप्रवेश, अन्नोत्पादन कर्म, पुंसवनकर्म, निःसन्तानोंका विधान, सम्पादित प्रतिनियमका कर्म, स्त्रीका गर्भाधान विधान, आयुष्करणार्थ, गृहप्रवेशकर्म, जीवन धनादि कर्तृक प्रत्यन्त दुःखके प्रतिविधि पुष्टिविधि और शान्तिकर्मादि दैवविधान, पुंसवन विधान, पुत्रके जातकर्मादिका प्रारम्भ, अन्नप्राशन, चूडाकर्मादि, कर्णवेधादि कर्म, उपनयनादि विधान, समावर्तनादि, अन्तेष्टि कर्म, आवसथ्य, गृहस्थकर्म और अन्त्येष्टिकर्म प्रभृति, प्रायश्चित्तादि कल्पविधानसमूह; अनन्तर अनेकविध उल्लिखित अद्भुत, अनेकविध, अस्थिसंचय, पितृमेध, पिण्डपितृयज्ञकर्म, पितृविसर्जन, मधुपर्क, गोपूजाविधान, गृहारम्भादि कर्म, मूल्य, पुरोहित और आग्निहोत्रिकादि कर्म शान्तिक मुनाका अग्नि, अन्यान्यविधान, मधुपर्क, प्रायश्चित्त आदि कर्म इत्यादि।

वैतानसूत्रमें अथर्ववेदविहित यज्ञोंका वर्णन है। इसमें मासादि कर्मके ब्रह्मा, ब्राह्मणाच्छंसी, अग्नीध्र और पोता इन चार ऋत्विक् कर्मोंको कर्तव्य प्रतिपादित हुए हैं। इस विषयमें अनुष्ठान प्रभृति प्रधान, ब्रह्मा ब्राह्मणाच्छंसीका, अध्वर्युप्रतिप्रस्थाता प्रभृति अग्नीध्रका तथा होतृ प्रभृति पोताका, ये चार विभाग देखे जाते हैं। इस विषयमें कर्तव्य दिया है यहां पीछे यथाक्रम वर्णित हुआ है। यथा—प्रथम दर्श पूर्णमास, इसके बाद अग्न्याधान, अग्निहोत्र, चातुर्मास्य, आग्रयण, पिण्डपितृयज्ञ, पशुबन्ध, सौत्रामणी, अग्निष्टोम, अग्निष्टोमविकृति, अतिरात्रादि, ज्योतिष्टोम और अनुष्ठेय सोमयाग, वाजपेय, अप्तोर्याम, अश्वमेध, पुरुषमेध, सर्वमेध, पुरुषविधान, सोमयागादि प्रकार, सोमयाग, अनुविधिविधान, प्रकृति और विकृति एवं सामिधेनसमूह, सान्नाय्यादि याग, गवामयनादिसत्र।

अथर्वपरिशिष्टमें उक्त ग्रहादि नक्षत्रोंकी पूजा और होम, इसके बाद अद्भुत महाशान्ति, पितृमेधमें, बहुतसे आथर्वणिक और महाशान्तिका विविधविषय कर्तव्यता है। यथा—दिव्यान्तरिक्षभूमिमें उत्पातमें अद्भुत महाशान्ति। वरुणकी पुष्टिकामनाके लिये ऐन्द्र देवी। अनिष्ट निवृत्ति और सर्वकामना प्राप्तिके लिये आग्नेयी। अमृत और सर्वोपद्रव नाशमें रोगोंको शान्ति मुक्तिके लिये प्राजेशी। ब्रह्मवर्चसकामीके यजमान और अभिचारणके लिये ब्राह्मी। राज्यश्री और श्रद्धा बलकामनाओंके लिये बार्हस्पत्यां। प्रजा, पशु और अन्नलाभ तथा उपद्रव निवृत्तिके लिये प्राजापत्य। पुष्टि कामीके लिये सावित्री। बल और प्रजावर्धकामोंके लिये गायत्री। सम्पद्लाभ और अनिष्टकारक शत्रुके अभिचारनाश शान्तिके लिये आङ्गिरसी। विजयकामी और पराक्रमोत्कर्षकामके लिये ऐन्द्री। अद्भुतविकारनिवृत्ति करनेमें रौद्र और राज्यकामनाओंके लिये माहेन्द्री। धनकामी या धनधान्य निवृत्तिकामीके लिये कौबेरी। विजय, तेज और बलपुष्टिकामोंके लिये आदित्य, अन्नकामोंके लिये वैष्णवी। भूमिलाभ और वास्तुदोषनाश शान्तिके लिये वास्तोष्पत्या। हिंसार्थी और आयुष्कामके लिये

रौद्री। विजयकामनाकारीके लिये अपराजिता। यमभयमें याम्या। जलभयमें वारुणी। वात्याभयमें वायवी। कुलक्षयनिवृत्तिके लिये सन्तति। पशुक्षयनिवृत्तिके लिये त्वाष्ट्री। बालककी व्याधिनिवृत्तिके लिये कौमारी। निर्ऋतिग्रस्तके लिये नैर्ऋती। बलकामीके लिये मारुद्गणी। अश्वक्षयनिवृत्तिके लिये गान्धर्वी। गजक्षयशान्तिके लिये पारावती। भूमिकामनाकारीके लिये पार्थिवी और भयार्तोके लिये अभया नामक महाशान्ति।

आङ्गिरसकल्पमें—अभिचार-कर्मकालमें कर्त्ता और कारयिता सदस्योंकी आत्मरक्षाकरण विधि कीर्त्तित हुई है। इसके बाद अभिचारके उपयुक्त देश, काल, मण्डप, कर्त्ता और कारयिताके दीक्षादिधर्म, समिध् और आज्यादिसम्भारके निरूपण आदि विषय वर्णित देखे जाते हैं। अनन्तर अभिचारकर्म तथा परकृताभिचार निवारण और अन्यान्य कर्मादि हैं।

शान्तिकल्पके आरम्भमें वैनायकग्रहगृहीत लक्षण है। उसकी शान्तिके लियेद्रव्यसम्भारके आहरणकी व्यवस्था है। अभिषेक और वैनायक होमादि, तत्पूजाविधान और आदित्यादि नवग्रहयज्ञादि कर्म इस कल्पमें सन्निविष्ट हैं।

इन सब कल्पोंमें जो राज्याभिषेकका व्यापार वर्णित हुआ है उससे उपयुक्त द्रव्य-प्रकृति, द्रव्यपरिमाण और पुरोहितवरणादि शेष पर्यन्त सभी कार्य समझे जाते हैं। पहले राज्याभिषेक—प्रातःकालमें प्रातर्वस्त्र, गंध, अलङ्कार, सिंहासन, अश्व, गज, आन्दोलिका, खड्ग, छत्र, चामरादि तथा मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित कर राजाको देना ही पुरोहितका कर्म है। सुवर्णधेनु, तिल और भूमिदानादि राजाकी दैनिक कर्त्तव्य है। पूजित पिष्टमय सदीप रात्रिप्रतिमा द्वारा राजाका नीराजन है। रक्षाकरण इत्यादि पुरोहितका रात्रिकर्म है। राजाका पुष्याभिषेक, रात्रिमें राजाका आरात्रिकविधान, प्रातःकालमें प्रातघृत दर्शन, कपिलादान, तिलधेनुदान, रसादि धेनु, कृष्णाजिन दान, तुलापुरुषविधि, आदित्यमण्डलाकार अपूपदान, हिरण्यगर्भविधि, हस्तिरथदान, वृषोत्सर्ग, कोटिहोम, लक्षहोम, अयुतहोम, पृथक्स्थलविधि, तडागप्रतिष्ठा, पाशुपतव्रत इत्यादि अन्यान्य दानव्रत हैं।

किस प्रकार, किस ओर और कहां पर ये सब कार्य करने होते हैं यह भी उक्त ग्रन्थमें लिखा है। नित्य नैमित्तिक और काम्य भेदसे यह तीन प्रकारका है। यथा—जातकर्मादि नित्य, दुर्दिनाशनिनिवारणार्थ शान्त्यद्भुत कर्म नैमित्तिक तथा मेधाजननप्रासनप्रभृत्यादि काम्य है। यह नित्य और नैमित्तिक कार्य ग्रामके बाहर पूर्वोत्तर महानदी वा तडागके उत्तरीकिनारे करना होता है।

"पुरस्तादुत्तरतोऽरण्ये कर्मणां प्रयोग उत्तरत उदकान्ते"

(कौशिकसूत्र ११७)

पुंसवनादि नित्य कर्म गृहमें तथा आभिचारिक कर्म ग्रामके दक्षिणदेशमें कृष्णपक्षमें कृत्तिकानक्षत्रमें होता। (कौशिकसू ८६।१)

शुभ नित्यकर्मोंका काल दोनों पर्व और पुण्य नक्षत्रयुक्त तिथि है।

"अमावस्या पौर्णमासी पुण्यनक्षत्रयुक् तिथिः।
एतएव त्रयः कालाः सर्वेषां कर्मणां स्मृताः॥
अद्भुतानां यदाकालं आरम्भः सर्वकर्मणाम्॥'

(भद्रभाष्य)

आथर्वणीय उपनिषत्।

दूसरे सभी वेदोंसे अथर्ववेदीय उपनिषद्की संख्या ही अधिक है। ब्रह्मतत्त्वप्रकाश ही उपनिषद्का उद्देश है।' अतएव अधिकांश उपनिषत् अथर्ववेदका अङ्ग समझा जायेगा, इसमें सन्देह ही क्या! विद्यारण्य स्वामीने सर्वोपनिषदर्थानुभूति प्रकाश" नामक ग्रन्थमें मुण्डक, प्रश्न और नृसिंहोत्तर तापनीय इन तीन उपनिषदोंको ही अथर्ववेदीय आदि उपनिषद् कहा है। किंतु शङ्कराचार्यने मुण्डक, माण्डूक्य, प्रश्न और नृसिंहतापिनी इन चारोंको ही प्रधान आथर्वण उपनिषद् कहा है। यहां तक कि बादरायणने अपने वेदान्तसूत्रमें इन चार उपनिषदोंके प्रमाण अनेक बार उद्धृत किये हैं। मुण्डित मस्तक एक श्रेणीके भिक्षुसे ही मुण्डकोपनिषद्का नामकरण हुआ है। कोई कोई पाश्चात्य पण्डित इसको छांदोग्योपनिषद्का पूर्ववर्ती तथा श्वेताश्वतर और बृहदारण्यकका समकालीन मानते हैं। ब्रह्म क्या है, किस प्रकार उसका ज्ञान होता है और किस उपायसे

पुनः पुनरुद्भवतीत्याख्यायन्ते।" "आर्य्यः ईश्वरपुत्रः" (यास्क ६।५।३) वेदके शाखाविभागप्रसङ्गमें लिखा जा चुका है, कि ब्रह्माण्डपुराणानुसार आदि ऋषिगण ही ईश्वर कहे गये हैं। उनके पुत्रगण ही यास्कके मतसे आर्य हैं। जहां ये आर्यगण जन्मग्रहण और वास करते थे वही स्थान आर्यावर्त्त है।

यह आर्यावास कहां है? ऋक्संहितासे हमें मालूम होता है, कि हिमवत्पृष्ठके दक्षिण भागमें बसा हुआ सुवास्तु जनपद प्रकृत आर्यावर्त्त पूरबमें अवस्थित था। यास्कने लिखा है, "सुवास्तुर्नदी तुग्र तीर्थं भवति तूर्णं मेनद्यावति।" (४।२।७)

प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि भी "सुवास्त्वादिभ्योऽण्" (४।२।७७) सूत्रमें सुवास्तुजनपदका परिचय दे गये हैं। पाणिनिके समय यह जनपद जो आर्योंका वासस्थान कह कर प्रसिद्ध था उक्त सूत्र ही उसका प्रमाण है। आर्य्यावर्त्त शब्दमें दिखला चुके हैं, कि वर्त्तमान स्वात् या सुवात् नदी ही वैदिक सुवास्तु है।

ऋक्संहिताके ५।५३।९ मन्त्रमें लिखा है, कि रसा, अनितभा, कुभा, सिन्धु और जलमयी सरयू जिससे जलप्लावनादि द्वारा विहरणमें बाधा न पहुंचावें। उक्त मन्त्रोक्त नदियोंका संस्थान निर्णय करके हम पूर्वतन आर्यावर्त्तकी एक सीमा निर्देश कर सकते हैं। उज्जिहान प्रदेशकी सुवास्तु नदीनीरस्थ सुवास्तु जनपदसे बहुत दूर उत्तर रसा नदी बहती है। यही नदी आर्यावासकी उत्तरी सीमा, वर्त्तमान समयमें काबुल नदी नामसे प्रसिद्ध होनेवाली कुभा पश्चिमी सीमा, तक्षशिला प्रदेशीय सरयू नदी पूर्वी सीमा और कुभाके दक्षिण क्रुमु सिन्धु-संङ्गम ही इसकी दक्षिणी सीमा है।

इस सुवास्तुप्रदेशके पश्चिममें अवस्थित निषध पर्वत पर भी आर्यगण वास करते थे। १।१०७।२ मन्त्रके "योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि"से निषधमें आर्याधिकार साबित होता है। शतपथब्राह्मणके ३।३।२।१-२ मन्त्रमें "नड़ो नैषिध" पदका उल्लेख है। फिर १।१०४।४ ऋक् मन्त्रमें अञ्जसी, कुलिशी और वीरपत्नी नामकी तीन नदियोंके प्लावनसे राजाकी नाभि (अर्थात् प्रधानावास या राजधानी)-रक्षा करनेकी कथा है। ये सब नदियां कहां बहती थीं? अञ्जसी सुवास्तुसे ईशानकोणमें और कुलिशी सुवास्तुसे वायुकोणकी दक्षिणकी ओर तथा वीरपत्नी अग्निकोणसे दक्षिणकी ओर बहती थी।

इस प्रकार क्रमशः सुवास्तुसे पूर्वकी ओर बहुत दूरमें अवस्थित धौकलहौलसे निकली हुई अद नुगुनिकी गाथमतलवाहिनी जाह्नवी नदीके तट पर्यन्त आर्यावास विस्तृत था। ऋक्संहिताके "पुराणमोकः सख्यं शिवं वां युवोर्नरा द्रविणं जह्नाव्याम्।" (३।५८।६) मन्त्रोक्त जाह्नवी प्रदेश जाह्नवीके किनारे अवस्थित था। यह वञ्चकोराके पूर्व, सिन्धुके पश्चिम और वन्नूके उत्तर तथा सुवास्तु जनपदके समीप था।

आर्य और आर्यावर्त्त देखो।

इसके बाद यहांसे आर्यावास क्रमशः सारस्वतप्रदेशमें फैल गया। यह शस्यबहुल उत्कृष्ट प्रदेश यज्ञभूमिके लिये प्रशंसनीय था। आर्य ऋषिगण यहां बहुतसे यागयज्ञ कर गये हैं। अनेक ऋङ्मन्त्रोंमें इस स्थानकी यागविषयक परिपुष्टिका उल्लेख है। ऋक् ३।२३।४ मन्त्रके "दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि" वचनमें दृषद्वती तीरसे ले कर सरस्वती तीर तक तीन नदीका तट सारस्वतक्षेत्र नामसे प्रसिद्ध था। इस स्थानका दूसरा नाम ब्रह्मावर्त्त है। हम मनुसंहितामें उसका उल्लेख देखते हैं—

"सरस्वती दृषद्वत्यो र्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्त्तं प्रचक्षते॥" (मनु २।१७)

इसके बाद ही मनुने लिखा है, ब्रह्मावर्त्तके बाद कुरुक्षेत्रादि आर्य जनपद महापुण्य देश है।—

"कुरुक्षेत्रञ्च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनकाः।
एषो ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्त्तादनन्तरम्॥"
(मनु० २।१९)

अभी पाठकोंको मालूम होगा, कि आर्यावास किस प्रकार धीरे धीरे उत्तरभारतमें फैल कर ब्रह्मर्षिदेश नामसे प्रसिद्ध हुआ था। आश्वलायन शाखा १।३।१०-१२, ९।३७।८, २।३२।१६-१८, ६।६१, ८।८७।१-३, १०।१।३।६ ऋक् आदिकी आलोचना कर देखते हैं, कि यथार्थमें यह

लयपादसे निकली हुई सिन्धु नदी ही प्राचीन आर्य्यावर्त्तको दो खण्ड करके बह रही है। उसीके उत्तर पास हीमें और भो सात नदियोंका उल्लेख ऋक्संहिताके १०।७५।७-८ मंत्रमें देखा जाता है—

"सुसोमेनी रयाती महित्वा परिज्मयासि भरते रजांसि।
अदब्धा सिन्धुरप सामपस्तमाश्वा न चित्रा वपुषीव दर्शता।
स्वश्वा सिन्धुः सुरथा सुवासा हिरण्ययी सुकृता वाजिनीवती।
ऊर्णावती युवतिः सीलमावत्युताधि वस्ते सुभगामधु वृधम्॥

(ऋक् १०।७५।७-८)

उन नदियोंमें ऊर्णावती कैलासनिम्नस्थ ऊर्णा प्रदेशमें बहती है। हिरण्मयी, वाजिनीवती और सीलमावती नामकी तीन नदियां उत्तरदेशमें बह गई हैं। यना नदी आज भी निलयेलुचिस्तानमें मौजूद है। चित्रा निम्नल प्रदेशसे निकल कर कुभामें मिलती है। सुसोमा एक समय उसीके आस पास बहती थी।

इन ७३ नदियोंका उल्लेख हम ऋक् १०।७।१ मन्त्रमें पाते हैं। उन नदियोंमें सिंधु ही प्रधान है तथा उन सब नदियोंसे इसका कलेवर पुष्ट होता है। (ऋक् १०।७५।४) अतएव उक्त २१ नदियां सिंधुशिशु हैं। उनके माता धयण हैं, यह सोच कर ऋक् १०।६४।८-९ मंत्रमें "त्रिः सप्त सस्रा नद्यः" इत्यादि वाक्योंसे उनकी स्तुति की गई है।

अभी देखा गया, कि सिमस नदियोंसे परिवृत्त सिन्धु मध्यप्रदेश ही प्राचीन कालकी आर्यभूमि है। इस आर्यावासमें कहां क्या मिलता था तथा किस किस विशेष विषयके साधनके लिये कौन कौन स्थान निर्दिष्ट था, यह ऐतरेयब्राह्मणके "यस्तेजो ब्रह्मवर्चसमिच्छेत् * * प्राङ् स इयात्। योऽन्नाद्यमिच्छेत् * दक्षिणा स इयात्। यः सोमपीथमिच्छेत् * * उदङ् स इयात्।" (१।२।२) मंत्रमें लिखा है।

ऋक्संहिताके वर्णनानुसार सिंधुको ही प्राचीन आर्यभूमिका मध्यकेन्द्र माननेसे देखा जाता है कि सिन्धुके पूर्वमें ही सरस्वत्यादि तीरभूमि है। यही स्थान यज्ञानुष्ठान द्वारा ब्रह्मवर्चस्य तेज लाभ करनेके योग्य है। शतद्रु और सिंधुसङ्गमके दक्षिण हिम-प्राचुर्य्य न रहने तथा प्रबल तापके कारण यहां काफी फसल लगती है। अतएव जिन्हें अन्नलाभ करनेकी इच्छा हो वे दक्षिण दिशामें ही जायें। सिंधुके पश्चिम बहुतसे जंगल हैं, इस कारण यहां पशुलाभकी अधिक सम्भावना है तथा शतद्रु सिंधुसङ्गमके उत्तर शीतकी अधिकता रहनेसे सोमवल्लीकी वृद्धि और बाहुल्य सूचित होता है।

ऊपरमें लिखित नदी सप्तकके अन्तर्गत जिस रसा नदी का उल्लेख किया गया है वह आर्यावासकी उत्तरी सीमा है। ऋक्संहिताके १०।१०८ सूक्तके ग्यारहवें मंत्रमें सरमा और पणियोंके कथोपकथनप्रसङ्गमें अनार्यों द्वारा आर्यों का गोहरण-वृत्तान्त सूचित हुआ है। पणिगण वणिक् जातिके थे। ये आर्योंके साथ ही रहते थे, इस कारण उनकी भी गिनती आर्यों में की गई है। असुर या बलनामी अनार्यगण आर्योंकी गौ चुरा कर ले गये थे, पीछे कुत्तोंकी सहायतासे उनकी पुनः प्राप्ति हुई थी। इस समय अनार्यावासमें उन्हें रसा नदीको पार करना पड़ा था। (ऋक् १०।१०८।१) ऋक्संहिताके ८।४१।२ मन्त्रमें तथा १०।१२१।४ मन्त्रमें दो विभिन्न रसा नदियोंका उल्लेख है। निरुक्तके मतसे रसा नदी शब्दकारिणी है। पर्वतपक्षको भेद कर कलकल-नादसे बहती है अथवा पर्वतगात्रसे प्रपाताकारमें गिरती है। १०।७५।६ मन्त्रमें एक रसाको सिन्धुसङ्गत तथा १०।१२१।४ मन्त्रमें दूसरी रसाको समुद्रसङ्गत कहा है। यह आर्यावर्तके बाहर और वर्तमान गोराशान राज्यके अन्तर्गत है। अवेस्ता ग्रन्थमें रंहा नामसे यह वर्णित है।

ऋक्संहिताके ८।९६।१३-१५ मन्त्रमें अंशुमती नदीके किनारे आर्यप्रभाव फैलनेकी कथा है। उक्त अंशुमती नदी यमुनामें गिरती है और दृषद्वतीके पूर्वमें अवस्थित है। १०।५३।८ मन्त्रमें अश्मन्वती नदीतीरको छोड़ कर और नदीको पार कर आर्योंके दूसान्तर जाने-का उल्लेख देखा जाता है। यह अश्मन्वती शतद्रुके पूर्व और घर्घराके पश्चिम हिमगन प्रदेशसे बहती थी। इस-से प्रमाणित होता है, कि पूर्वतन आर्यगण मध्यएशिया-से नहीं आये, वे हिन्दूकुश पर्वतके समीपवर्ती विस्तृत स्थानमें ही रहते थे।

१।१०४।१३ मन्त्रमें शिफा नदी निषद प्रदेशमें बहती थी, निषध शब्दके सादृश्यसे ही इसका अनुमान

लयपादसे निकली हुई सिन्धु नदी ही प्राचीन आर्य्यावर्त्तको दो खण्ड करके बह रही है। उसीके उत्तर पास होमें और भी सात नदियोंका उल्लेख ऋकसंहिताके १०।७५।७-८ मन्त्रमें देखा जाता है—

"ऋजीत्येनी रुशती महित्वा परिज्रयांसि भरते रजांसि।
अदब्धा सिन्धुरपसामपस्तमाश्वा न चित्रा वपुषीव दर्शता।
स्वश्वा सिन्धुः सुरथा सुवासा हिरण्मयी सुकृता वाजिनीवती।
ऊर्णावती युवतिः सीलमावत्युताधि वस्ते सुभगामधुवृधम्॥
(ऋक् १०।७५।७-८)

उन नदियोंमें ऊर्णावती कैलासनिम्नस्थ ऊर्णा प्रदेशमें बहती है। हिरण्मयी, वाजिनीवती और सीलमावती नामकी तीन नदियां उत्तरदेशमें बह गई हैं। युना नदी आज भी निम्नबेलुचिस्तानमें मौजूद है। चित्रा चित्रल प्रदेशसे निकल कर कुभामें मिलती है। ऋजीती एक समय उसीके पास पास बहती थी।

इन ३१ नदियोंका उल्लेख हम ऋक् १०।७।१ मन्त्रमें पाते हैं। उन नदियोंमें सिंधु ही प्रधान हैं तथा उन सब नदियोंसे इसका कलेवर पुष्ट होता है। (ऋक् १०।७५।४) अतएव उक्त २१ नदियां सिंधुशिशु हैं। उनके मानो ध्रुवण हैं, यह सोच कर ऋक् १०।६४।८-९ मन्त्रमें "त्रिः सप्त सस्रा नद्यः" इत्यादि वाक्योंसे उनकी स्तुति की गई है।

अभी देखा गया, कि निसत नदियोंसे परिवृत्त सिन्धु मध्यप्रदेश ही प्राचीन कालको आर्यभूमि है। इस आर्यावासमें कहां क्या मिलता था तथा किस किस विशेष विषयके साधनके लिये कौन कौन स्थान निर्दिष्ट था, यह ऐतरेयब्राह्मणके "यस्तेजो ब्रह्मवर्चसमिच्छेत् * * प्राङ् स इयात्। योऽन्नाद्यमिच्छेत् * दक्षिणा स इयात्। यः सोमपीथमिच्छेत् * * उदङ् स इयात्।" (१।२।२) मन्त्रमें लिखा है।

ऋकसंहिताके वर्णनानुसार सिंधुको ही प्राचीन आर्यभूमिका मध्यकेन्द्र माननेसे देखा जाता है कि सिन्धुके पूर्वमें ही सरस्वत्यादि तीरभूमि है। यही स्थान यज्ञानुष्ठान द्वारा ब्रह्मण्य तेज लाभ करनेके योग्य है। शतद्रु और सिंधुसङ्गमके दक्षिण हिम प्राचुर्य्य न रहने तथा प्रबल तापके कारण वहां काफी फसल लगती है। अतएव जिन्हें अन्नलाभ करनेकी इच्छा हो वे दक्षिण दिशामें ही जायें। सिंधुके पश्चिम बहुतसे जंगल हैं, इस कारण यहां पशुलाभकी अधिक सम्भावना है तथा शतद्रु सिंधुसङ्गमके उत्तर शीतकी अधिकता रहनेसे सोमयज्ञोंकी वृद्धि और बाहुल्य सूचित होता है।

ऊपरमें द्वितीय नदी सप्तकके अन्तर्गत जिस रसा नदीका उल्लेख किया गया है वह आर्यावासकी उत्तर सीमा है। ऋकसंहिताके १०।१०८ सूक्तके ग्यारहवें मन्त्रमें सरमा और पणियोंके कथोपकथनप्रसङ्गमें अनार्यों द्वारा आर्योंका गोहरण-वृत्तांत सूचित हुआ है। पणिगण वणिक् जातिके थे। वे आर्योंके साथ ही रहते थे, इस कारण उनकी भी गिनती आर्यों में की गई है। असुर या बलशाली अनार्यगण आर्योंकी गौ चुरा कर ले गये थे, पीछे कुत्तोंकी सहायतासे उनको पुनः प्राप्ति हुई थी। इस समय अनार्यधाममें उन्हें रसा नदीको पार करना पड़ा था। (ऋक् १०।१०८।१) ऋकसंहिताके ८।४१।२ मन्त्रमें तथा १०।१२१।४ मन्त्रमें दो विभिन्न रसा नदियोंका उल्लेख है। निरुक्तके मतसे रसा नदी शब्दकारिणी है। पर्वतपक्षको भेद कर कलकलनादसे बहती है अथवा पर्वतगात्रसे प्रपाताकारमें गिरती है। १०।७५।६ मन्त्रमें एक रसाको सिन्धुसङ्गत तथा १०।१२१।४ मन्त्रमें दूसरी रसाको समुद्रसङ्गत कहा है। यह आर्यावर्तके बाहर और वर्त्तमान मीराशाग राज्यके अन्तर्गत है। अवस्ता ग्रन्थमें रंहा नामसे यह वर्णित है।

ऋकसंहिताके ८।९६।१३-१५ मन्त्रमें अंशुमती नदीके किनारे आर्यप्रभाव फैलनेकी कथा है। उक्त अंशुमती नदी यमुनामें गिरती है और दृषद्वतीके पूर्वमें अवस्थित है। १०।५३।८ मन्त्रमें अश्मन्वती नदीतीरको छोड़ कर और नदीको पार कर आर्योंके दूरागमनका उल्लेख देखा जाता है। यह अश्मन्वती शतद्रुके पूर्व और घर्घराके पश्चिम हिमालय प्रदेशमें बहती थी। इससे प्रमाणित होता है, कि पूर्वतन आर्यगण मध्यएशियासे नहीं आये, वे हिन्दूकुश पर्वतके समीपवर्ती हिमावृत स्थानमें ही रहते थे।

१।१०४।३ मन्त्रमें शिफा नदी निवह प्रदेशमें बहती थी, निवह शब्दके व्याख्यानसे ही इसका अनुमान

संहिताके ७।१८ सूक्तमें इन्द्रको सम्राट्, सुदास राजाके यज्ञकी कथा, तृत्सुगणका इन्द्रके साथ युद्धमें पराजय हो निम्नगामी जलकी तरह धावन तथा बाधा पा कर सुदासको समस्त भोग्य वस्तु देनेकी कथा है। ७।१८।१७ मन्त्रमें इन्द्रने दरिद्र सुदासकी सहायतासे एक कार्य किया था। उन्होंने सूची द्वारा सुपादिका कोण काट डाला और सुदास राजाको समस्त धन दान किया था। ७।१८।१९ मन्त्रमें लिखा है; "यमुना" "तृत्सवः" "अजास" "शिग्रवः" "यक्षवः" आदि यामुनप्रदेशादि निवासी सामन्तराजोंने घोड़े या मनुष्यके शिर पर उपढौकन लाद कर इन्द्रको उपहारस्वरूप भेजा था। यहां इन्द्रको सम्राट् कहा जा सकता है तथा अज, शिग्रु, यक्ष और यामुन जनपदादिके सामन्तराजोंने उसकी अधीनता स्वीकार कर यज्ञमें बलि भेजी थी।

उक्त यामुनादि जनपद पूर्वतन या अधुनातन आर्यावर्त्तके बहिर्भागमें था। यह यमुना गङ्गाके पश्चिम पार्श्ववाली है या दूसरी? अभी इसी पर विचार करना चाहिये। जहां सारी प्रदेश वर्त्तमान गाङ्गेय प्रदेशमें जिस प्रकार बहुत दूरी अवस्थित था, उसी प्रकार यह यामुन प्रदेश भी संहिताकालमें उसकी सीमा पर ही वर्त्तमान था। शिग्रु जनपद चन्द्रभागा-प्रवाहित देशके ऊर्ध्वदेशका एक करदराज्य था।

ऐतरेय कालमें अर्थात् ब्राह्मण-युगमें इस आर्यावर्त्तका आयतन कहां तक फैला था यह उक्त ग्रन्थके अभिषेकप्रकरणमें लिखा है, "प्राच्यां दिशि ये के च प्राच्यानां राजानः ✱✱ दक्षिणस्यां दिशि ये के च सत्वतां राजानः ✱✱ प्रतीच्यां दिशि ये के च नीच्यानां राज्ञो येऽपाच्यानां ✱✱ उदीच्यां दिशि ये के च परेण हिमवन्तं जनपदा उत्तरकुरव उत्तरमद्रा ✱✱ ध्रुवायां मध्यमायां प्रतिष्ठायां दिशि ये के च कुरुपञ्चालानां राजानः सवशोशीनराणां राज्यायैव तेऽभिषिच्यन्ते।" (ऐतरेयब्रा० ८।३।१४)

यहां "प्राच्यानां राजानः" इस सामान्योक्ति द्वारा अनुमान किया जाता है, कि उस समय पूर्वदेशमें बहुतसे छोटे छोटे राजाओंमें एक प्रबल पराक्रान्त राजा भी थे। अन्य मंत्रमें भी (३।४।६) "प्राच्यो ग्रामता बहुलाविष्टाः" उक्ति द्वारा भी इसका समर्थन किया गया है। संहिताकालमें पूर्वदेशीय जो सब बड़ी बड़ी नगर विद्यमान थे, वही अभी प्रसिद्ध नेपालादि किरात नगरी है। पाणिनिके (१।१।७५) सूत्रसे भी हमें मालूम होता है, कि प्राच्यभूममें कान्यकुब्ज, अहिच्छत्रादि प्रसिद्ध पुरी विद्यमान थी। ऐतरेय-ब्राह्मणकालमें ये सब स्थान ग्रामरूपमें थे, ऐसा ही प्रतीत होता है।

उस समय दक्षिण देशमें जो बलवत्तम सत्वत् राज्य था, वह परवर्त्तिकालमें द्वारपुरी नामसे प्रसिद्ध हुआ। ऐतरेयब्राह्मणमें तथा शतपथब्राह्मणके "आदत्त यज्ञं काशीनां भरतः सत्वतामिव" (शतपथब्रा० १३।५।४।२१) गाथावचनमें भरताधिकृत इस प्राचीन राज्यका अस्तित्व दिखाई देता है। दौष्मन्ति भरत तथा उनके वंशधरगण जो इस प्रदेशके राजा थे यह ऐतरेयब्राह्मण (८।४।६)के निम्नोक्त श्लोकसे स्पष्ट मालूम होता है। यथा—

"अष्टासप्ततिं भरतो दौष्मन्तिर्यमुनामनु।
गङ्गायां वृत्रघ्नेऽबध्नात् पञ्चपञ्चाशतं हयान्॥
त्रयस्त्रिंशच्छतं राजाश्वान् बद्धाय मेध्यान्।
दौष्मन्तिरत्यगाद्राज्ञो मायां मायवत्तरः॥"

शतपथब्राह्मणके १३।५।११-१४ मंत्रमें यह विषय अच्छी तरह समझाया गया है।

प्रतीच्यदेश बहुत सी नदियोंसे परिपूर्ण था। वहां एक भी सुसमृद्ध राज्य न था। इसके उत्तरी भागमें पर्वतपार्श्वस्थ भूमिपगण 'नीच्य' कहलाते थे। दक्षिण भागमें अपाच्य और मध्यभागमें केवल आरण्यदेश था। यहां अपाच्य और नीच्यगण रहते थे। यह मरुप्रदेश भी अरण्यमय था, ३।४।६ मंत्रमें उसका उल्लेख है।

उत्तरदेश अर्थात् हिमालय पृष्ठदेशके उत्तरी भागमें और प्राचीन आर्यावर्त्तके बहिर्देशमें आर्यनिवास जनपद उत्तरमद्र और उत्तरकुरु विद्यमान था। मालूम होता है, कि हिमालयके दक्षिण आर्यावर्त्तके अन्तर्गत मद्रदेश और कुरुदेश उस समय दो भागोंमें विभक्त हुआ था तथा आर्यावर्त्तके अन्तर्गत मद्रदेशके ऊपर जो देश था वही उत्तरमद्र और कुरुदेशका उत्तरी देश उत्तरकुरु था। आर्यावर्त्तके प्रत्यन्तदेशके बाद जो सब देश और महादेश हैं, वहां आर्य या अनार्यका कोई विचार न था।

उस समय भी दक्षिण मगध आर्यावर्त्तके अन्तर्भुक्त न हुआ। परवर्त्ती कालमें पतञ्जलिकृत महाभाष्यसे मालूम होता है, कि दक्षिण मगध आर्यावर्त्तकी सीमाके अन्तर्गत हुआ था।

पतञ्जलिने आर्यावर्त्तकी जो सीमा निर्देश की है वह इस प्रकार है,—

"कः पुनरार्य्यावर्त्तः? प्रागादर्शात् प्रत्यक्कालकवनात् दक्षिणेन हिमवन्तं उत्तरेण पारियात्रम्।" (२।४।१०) टीकाकार कैयटके मतसे आदर्श नामका एक पर्वत था। यह आर्यावर्त्तकी पश्चिमी सीमा तथा पूर्वोक्त श्वेत पर्वतका दक्षिणांश सीमापर्यंत था। इसे लोग अञ्जन पर्वत भी कहते थे। वर्त्तमान कालमें यह सुलेमान पर्वतश्रेणी कहलाता है। आर्यावर्त्तकी पूर्वी सीमा पर कालकवन था। यही कालकवन धर्मारण्यके पूर्व और दक्षिण मगधके पश्चिममें अवस्थित बकासुर (वर्त्तमान बक्सर) प्रदेशका सुप्रसिद्ध ताड़कवन है। प्राचीन कालमें यह वन कालयवनके अधिकारमें रहनेसे कालवन या कालकवन कहलाता था। हरिवंश और विष्णुपुराणमें (५।२३।५) कालयवनके साथ मगधराज जरासन्धकी मित्रताकी बातें लिखी हैं। उससे कालकवन और मगधका सामीप्य ही समझा जाता है। उस समय पूर्व मगधमें अनार्यगण रहते थे। पतञ्जलिने लिखा है—

"कुम्भतिः सुराष्ट्रेषु रंहतिः प्राच्य मगधेषु। गमिमेव त्वार्य्याः प्रयुञ्जते।" (महाभाष्य पस्पशा०)

इससे जाना जाता है, कि सौराष्ट्रजनपद और प्राच्यमगधीय कुसुमपुर आर्यावर्त्त सीमाके बहिर्भूत था। इसके सिवा शतपथमें वाहीक (१।१।४।१२) और कम्बोज (२।१।३।४) शब्दका उल्लेख है। पाणिनिके ५।३।११७। ४।१७५ और ४।३।९३ सूत्रों तथा महाभारतके द्रोणपर्व—११७वें और १५५वें अध्यायमें कम्बोज और बाह्लीकोंका विवरण वर्णित है। यह जनपद पहले आर्यावर्त्तके अन्तर्गत था।

प्रोक्त भृगुसंहितामें मनुने आर्यावर्त्तकी सीमा इस प्रकार निर्दिष्ट की है—

"आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्राच्च पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्य्यावर्त्तं विदुर्बुधाः॥"

(मनु २।२२)

अर्थात् उत्तर और दक्षिणमें विन्ध्यागिरिका मध्यवर्त्ती भूभाग आर्यावर्त्त है। यह आर्यभूमि ब्रह्मावर्त्त, ब्रह्मर्षिदेश, मध्यदेश और यज्ञिय देश नामक चार भागोंमें विभक्त है। उसकी प्रान्तभूमि म्लेच्छभूमि कहलाती है।

"सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्त्तं प्रचक्षते॥
कुरुक्षेत्रञ्च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनकाः।
एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्त्तादनन्तरम्॥
हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग् विनशनादपि।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्त्तितः॥
कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः।
स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्ततः परम्॥"

(मनु २।१७, १९, २१, २३)

यही तो आर्यावर्त्त है। इसके बहिर्भागमें अनार्य और यवनोंका वास है। वामनपुराणमें लिखा है, "पूर्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्मृताः। आन्ध्रा दक्षिणतो वीर तुरुष्कास्त्वपि चोत्तरे।" (वामनपुराण १३।४०) अतएव उस समय कोशाभाग, तुरुष्क, आन्ध्र आदि प्रदेश म्लेच्छदेश हुए थे। उसके साथ साथ दक्षिणवङ्ग, अङ्ग, पूर्वमगधादि देश भी ब्राह्मणाचारविहीन अपवित्रत्वके कारण म्लेच्छदेश समझा जाता था।

इसी कारण—

"अङ्गवङ्गकलिङ्गेषु सौराष्ट्रमगधेषु च।
तीर्थयात्रांविना गच्छन् पुनः संस्कारमर्हति॥"

इस स्मृति वचनसे यहां अवैदिक प्रभावका होना साबित होता है। इन सब देशोंमें जन्म होने पर भी द्विजके यज्ञार्थ उक्त ब्रह्मावर्त्तादि चार देशोंका आश्रय लेना कर्त्तव्य है। (मनु २।२४)

प्राच्यमगध अर्थात् पटना अञ्चलमें, अङ्ग प्रदेश अर्थात् भागलपुर-आदि स्थानोंमें पीछे शाकद्वीपिब्राह्मण बहुत

वेदगुह्य (सं० पु०) विष्णु ।

वेदघोष (सं० पु०) ब्रह्मघोष, वेदध्वनि ।

वेदचक्षुस् (सं० क्लो०) ज्ञानचक्षु ।

वेदजननी (सं० स्त्री०) वेदस्य जननी माता । वेद-माता, सावित्री ।

वेदज्ञ (सं० त्रि०) वेदं जानातीति ज्ञा-क । १ वेदवित्, वेदविहित कर्म जाननेवाले । २ ब्रह्मज्ञ, ब्रह्मज्ञानी । (मनु १२।१०१)

वेदतत्त्व (सं० क्लो०) वेदस्य तत्त्वं । वेदका तत्त्व, वेद विहिततत्त्व ।

वेदतत्त्वार्थ (सं० पु०) वेदविहित विषयोंका तात्पर्य-ज्ञान । (मनु ४।१९२)

वेदता (सं० त्रि०) स्तुतिकारक । (ऋक् १०।६०।११)

वेदतीर्थ—पुराणानुसार एक प्राचीन तीर्थका नाम ।

वेदत्व (सं० क्लो०) वेदका भाव या धर्म । (हरिवंश)

वेददर्श (सं० पु०) पुराणानुसार एक प्राचीन ऋषिका नाम । अथर्ववेदवित् मुनि सुमन्तुने वेददर्शको अथर्व-वेद पढ़ाया था । (भागवत १२।७।१)

वेददर्शन (सं० क्लो०) १ वेदमन्त्रदृष्टि । २ वह जो देखनेमें वेदोंका स्वरूप ज्ञान पड़े ।

वेददर्शी (सं० त्रि०) वेदं वेदार्थं पश्यति दृश-णिनि । वेदार्थद्रष्टा, वह जो वेदोंका ज्ञाता हो ।

वेददान (सं० क्लो०) वेदविषयक उपदेश, दान, वेद पढ़ाना ।

वेददीप (सं० पु०) महीधरकृत शुक्लयजुर्वेदका भाष्य ।

वेदधर (सं० पु०) वासवदत्तावर्णित व्यक्तिभेद ।

वेदधर्म (सं० पु०) वेदविहितः धर्मः । १ वेदोक्त या वेदविहित धर्म । २ पैलके एक पुत्रका नाम ।

वेदध्वनि (सं० पु०) वेदस्य ध्वनिः । वेदघोष ।

वेदन (सं० क्लो०) वेदना देखो ।

वेदना (सं० स्त्री०) विद-युच्, टाप् (घट्टिवन्दिविदिभ्य उपसंख्यानं । पा ३।३।१०७) १ दुःख या कष्ट आदिका होनेवाला अनुभव, व्यथा, तकलीफ । पर्याय—अनुभव, संवेद, ज्ञान, दुःख । २ बौद्धोंके अनुसार पांच स्कन्धोंमें से एक स्कन्ध । ३ विवाह । ४ चिकित्सा, इलाज । ५ स्वक्, चमड़ा ।

वेदनावत् (सं० त्रि०) वेदना-अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वत्वं । वेदनायुक्त ।

वेदनिन्दक (सं० पु०) वेदं निन्दतीति निन्द-ण्वुल् । १ वह जो वेदोंकी निन्दा करता हो, वेदोंको बुराई करने-वाला । २ नास्तिक । ३ भगवान् बुद्धका एक नाम । ४ बौद्धधर्मका अनुयायी ।

वेदनिधितीर्थ—आनन्दतीर्थ-प्रवर्त्तित सम्प्रदायके एक गुरु । वे पहले प्रद्युम्नाचार्य नामसे प्रसिद्ध थे । विद्याधीश तीर्थके बाद इन्होंने आचार्यपद पाया ।

वेदनिर्घोष (सं० पु०) वेदस्य निर्घोषः । वेदघोष, वेद-पाठ ध्वनि ।

वेदनीय (सं० त्रि०) १ ज्ञातव्य, जानने योग्य । २ वेदनायोग्य, कष्टदायक ।

वेदनूर—दाक्षिणात्यके महिसुर राज्यान्तर्गत एक नगर । यह समुद्रकी तहसे ४ हजार फुट ऊंचेमें अवस्थित है । इसका दूसरा नाम हैदर नगर भी है । एक समय यह नगर धनजनसे परिपूर्ण था । १७६३ ई०में हैदर अलीने इस नगरको अधिकार किया और लूटा । प्रवाद है, कि उसने इस नगरसे १२० करोड़ रुपयेका धनरत्न संग्रह किया था । हैदरने यहां टकसाल घर खोला और अपने नाम पर सिक्का चलाया । यह सिक्का हैदरी-पगोडा कहलाता था । १७८३ ई०में अङ्गरेज सेनापति जेनरल माथियसने यह स्थान दखल किया । किन्तु कुछ समय बाद ही टीपूसुलतानकी सेनाने नगरको आक्रमण कर तहस नहस कर डाला । उस समय सभी नगरवासी टीपूके हाथ बन्दी हुए थे । तभीसे यह नगर क्रमशः श्रीहीन होता जा रहा है । यहांकी जनसंख्या डेढ़ हजारसे ऊपर है ।

वेदनूर—राजपूतानेके आरावल्ली पर्वतपादमूलस्थ एक सामन्त-राज्य और नगर । यह मेवार राज्यकी सीमाके अन्तर्गत है । यहांके एक प्राचीन सरदारका नाम राव-सुरतान था । राजस्थानका इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि राव सुलतान सोलङ्की वंशीय राजपूत तथा अनहलवाड़के सुविख्यात बलहरा राजवंशके वंशधर थे । १३वीं सदीमें वे विलुराजसे विताड़ित हो मध्य-भारत आये और टङ्क थोड़ प्रदेश तथा दूनाम् नदी तीर-

[illegible]

[illegible] (सं० पु०) [illegible]
[illegible] (सं० पु०) [illegible]
[illegible] (सं० पु०) [illegible]
[illegible] (सं० पु०) [illegible]
[illegible] (सं० पु०) [illegible]
[illegible] (सं० स्त्री०) [illegible]
[illegible]
[illegible] (सं० पु०) [illegible]
[illegible] (सं० स्त्री०) [illegible]
[illegible] (सं० पु०) [illegible]
[illegible] (सं० पु०) [illegible]

[illegible] (सं० पु०) [illegible]
[illegible] (सं० स्त्री०) [illegible]
[illegible] (सं० पु०) [illegible]
[illegible] (सं० पु०) [illegible]
[illegible] (सं० पु०) [illegible]
[illegible] (सं० स्त्री०) [illegible]
[illegible] (सं० पु०) [illegible]
[illegible] (सं० पु०) [illegible]
[illegible] (सं० पु०) [illegible]

[illegible] (सं० पु०) [illegible]
[illegible] (सं० स्त्री०) [illegible]
[illegible] (सं० पु०) [illegible]
[illegible] (सं० स्त्री०) [illegible]
[illegible] (सं० पु०) [illegible]
[illegible] (सं० पु०) [illegible]
[illegible] (सं० पु०) [illegible]
[illegible] (सं० पु०) [illegible]
[illegible] (सं० पु०) [illegible]
[illegible]

[illegible] (सं० पु०) [illegible]
[illegible]

[illegible]

वेदरक्षण (सं० क्ली०) वेदकी रक्षा ।

वेदर बख्त—दिल्लीश्वर अहमदशाहके पुत्र । १७८८ ई०में गुलाम कादर शाहने आलमको कैद किया और १ली सितम्बरको वेदरको सम्राट् बनाया । उन्होंने सिर्फ एक मास बारह दिन राज्य किया था । उसी सालकी १२वीं अक्टूबरको मराठा सेना जब दिल्ली पहुंची, तब वेदर बख्त भयसे भाग गये । पीछे शाह आलमके हुकुमसे ये पकड़े और मार डाले गये ।

वेदर बख्त्—दिल्लीश्वर आजिम शाहके पुत्र । १७०७ ई०की ८वीं जूनको आजिम शाहके सिंहासनाधिकार ले कर सम्राट् बहादुरके साथ युद्ध छिड़ गया । आगरा और ढोलपुरके मध्यवर्त्ती अजोवान नामक स्थानमें दोनों दलोंमें मुठभेड़ हुई । इस रणक्षेत्रमें वेदर और उनके भाई वलाजा पिताके साथ यमपुरको सिधारे ।

वेदरहस्य (सं० क्ली०) वेदानां रहस्यं । उपनिषद् ।

वेदराशि (सं० पु०) वेदानां राशिः । वेदसमूह । (मनु १२।२१ कुल्लूक)

वेदराजस्वामी—महाभारत तात्पर्य निर्णयके प्रणेता ।

वेदवत् (सं० त्रि०) वेदं ज्ञानं अस्त्यस्य मतुप् मस्य व । ज्ञानयुक्त, ज्ञानी । २ वेदविशिष्ट ।

वेदवती (सं० स्त्री०) वेदवत् स्त्रियां ङीप् । १ कुशध्वज राजकन्या । यही दूसरे जन्ममें सीतादेवीके रूपमें अवतीर्ण हुई थी । ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है, कि राजा कुशध्वजने लक्ष्मीको कन्यारूपमें पानेके लिये कठोर तपस्या की । इस तपोबलसे कुशध्वजकी पत्नी मालावतीने कालक्रमसे लक्ष्मीकी अंशरूपिणी एक कन्या प्रसव की थी । यह कन्या भूमिष्ठ होनेके बाद ही सूतिकागृहमें वेदध्वनि करने लगी, इसलिये इनका वेदवती नाम हुआ । बालिकाने उत्पन्न होते ही स्नान कर तपस्याके लिये वनमें जा कर पुष्करतीर्थमें एक मन्वन्तर काल कठोर तपस्या की । इस तपस्यामें उनको जरा भी क्लेश नहीं हुआ; वरं नवयौवनसम्पन्ना हो उनका शरीर हृष्ट पुष्ट हो गया । उस समय वेदवतीने एकाएक आकाशवाणी सुनी—तुम जन्मान्तरमें हरिको पतिरूपमें पाओगी । यह दैववाणी सुन कर वेदवती गन्धमादनपर्वत पर जा कर फिर कठोर तपस्यामें प्रवृत्त हुई । इसी अवस्थामें लङ्केश्वर रावण एक दिन अकस्मात् उनके समीप आया । वेदवतीने अतिथिके ख्यालसे उसकी अर्घ्यपाद्यादिसे पूजा की । रावणने वेदवती द्वारा दिये हुए फलमूलका भोजन न कर उनके निकट जा उनसे पूछा, 'कल्याणि ! तुम कौन हो ? किसकी पुत्री हो ?' यह कह कर पापिष्ठ रावण कामबाणसे पीड़ित और मूर्च्छितप्राय हो कर उन मनोहारिणी पीनोन्नतपयोधरा वेदवतीको पकड़ कर उसी जगह विहार करने पर उद्यत हुआ ।

सती वेदवतीने क्रोध दृष्टिसे रावणको स्तम्भित कर दिया । इससे रावणका हाथ, पैर, मुख आदि सभी जड़ीभूत हुए । उस समय रावण उनका मन ही मन स्तव करने लगा । देवीने उसके स्तवसे सन्तुष्ट हो उसको पुनः प्रकृतिस्थ कर यह अभिशाप दिया, कि तुम मेरे लिये ही सवान्धव विनष्ट होगे । तुमने मेरा शरीर स्पर्श किया है, मैं इस देहको त्याग करती हूं, देखो । यह कह कर सतीने योगबलसे देहको परित्याग कर दिया । फिर रावण उस देहको उठा कर गङ्गामें डाल अपने स्थानको चल दिया ।

कालान्तरमें यह साध्वी जनकात्मजा रूपमें जन्म ग्रहण कर सीता नामसे ख्याता हुई । रावण इनके लिये सवंश नष्ट हुआ । देवीके अभिप्रायसे प्रकृत सीता अग्निके समीप रहीं और रावण छाया-सीताको हरण कर लङ्कामें ले गया । रावण-वधके बाद अग्निपरीक्षाके समय अग्निदेवने प्रकृत सीताको अर्पण किया ।

राम और अग्निके उपदेशानुसार इसी छाया सीताने भी पुष्करतीर्थमें तीन लाख वर्ष तक तपस्या की । इस तपोबलसे ये यज्ञकुण्डसे उत्पन्न हो पाण्डव-रमणी द्रुपदात्मजा द्रौपदी नामसे प्रसिद्ध हुई । (ब्रह्मवै०पु० प्रकृति० ११-१४) २ पारियात्रपर्वतस्थ नदीविशेष । ३ एक अप्सराका नाम ।

वेदवती—दक्षिणभारतमें प्रवाहित एक नदी । इसके ऊपर और कारातु नामक निम्नस्थ जनपद है । यहांके ब्राह्मण कारातु ब्राह्मणके नामसे परिचित हैं ।

(बृहत्सं० १४।१)

किसीको कोई देख नहीं सकता था। इसके बाद महर्षि द्वारा सृष्ट इस अन्धकारको देख कर तपस्विनी कन्या विस्मित और लज्जित हुई। धीरे धीरे सत्यवतीने ऋषिवरसे कहा, 'भगवन्! मेरा विवाह नहीं हुआ है। आपके समागमसे मेरा कन्याभाव दूषित होगा। ऐसा होनेसे मैं किस तरह पितृकुलमें अवस्थान कर सकूंगी। आप इन सब बातों पर विचार कर जो उचित समझें, करें।'

सत्यवतीके ऐसे कहने पर पराशर परम सन्तुष्ट हो कर कहने लगे—मेरे सहयोगसे तुम्हारा कन्याभाव दूषित नहीं होगा। तुमको जो इच्छा हो, वरकी प्रार्थना कर सकती हो। मेरी प्रसन्नता कभी निष्फल नहीं जाती। इस पर सत्यवतीने अपनी देहमें सौगन्ध्य होनेकी प्रार्थना की। मुनिवरने तथास्तु कहा।

इसके बाद सत्यवतीने ऋतुमती और वरलाभसे सन्तुष्ट हो कर पराशर मुनिके साथ संगम किया। उसी समयसे उसका नाम गन्धवती हुआ। मनुष्य चार कोससे ही उसके शरीरकी गन्धको अनुभव करने लगे। इससे इसका दूसरा नाम योजनगन्धा भी है।

सत्यवतीने इस तरह उत्तम वर पा कर पराशरके मनोरथको पूर्ण किया और आप उसी समय गर्भवती हो गई। उचित समय पर उसने प्रसव किया। उस गर्भसे पराशरनन्दन उत्पन्न हुए। यह पुत्र कृष्णकाय थे और यमुनागर्भस्थ द्वीपमें जन्मे थे, इससे कृष्ण द्वैपायन कहलाये। ये जन्मते ही माताकी आज्ञासे तपस्या करने लगे। जाते समय ये मातासे कह गये थे, कि जब तुमको कोई जरूरत हो, मुझे स्मरण कर लेना। तुम्हारे स्मरण करते ही मैं आ जाऊंगा।

द्वैपायनने इसी तरह पराशरके औरस तथा सत्यवतीके गर्भसे जन्म लिया था। इन्होंने देखा, कि प्रत्येक युगमें धर्मका एक पैर कम होता जा रहा है और परमायु क्षीण हो रही है। तब उन्होंने वेदकी रक्षा और ब्राह्मणोंके प्रति अनुग्रह दिखलानेके लिये वेदका व्यास अर्थात् विभाग किया। इसीसे उनका नाम वेदव्यास पड़ा। उन्होंने सब वेदोंका विभाग कर शिष्य सुमन्तु, जैमिनी, पैल, वैशम्पायन और पुत्र शुकदेवको अध्ययन करा कर महाभारतका उपदेश दिया था। उन्होंने महाभारतकी एक संहिता प्रकाशित की थी।

(भारत आदिपर्व ६२ अ०)

कालक्रमसे सत्यवतीके साथ चन्द्रवंशीय क्षत्रिय राजा शान्तनुसे विवाह हुआ। कुरुकुल पितामह भीष्मने इस विवाहको स्वार्थ त्याग कर किस तरह सम्पन्न किया था, महाभारतके पढ़नेवालोंसे यह छिपा नहीं है। इसके बाद शान्तनु-तनय विचित्रवीर्यकी मृत्यु हो जाने पर सत्यवतीने व्यासको बुलाया और उन्हें विधवा पुत्रवधुओंसे नियोग करा कर धृतराष्ट्र और पाण्डुको उत्पन्न कराया था। धर्मात्मा विदुर भी व्यासनन्दन कहलाते हैं। भीष्म, पाण्डु और शान्तनु देखो।

हम पुराणोंसे जान सकते हैं कि वेदव्यासके पहले भिन्न भिन्न कल्पोंमें भिन्न भिन्न व्यास आविर्भूत हुए थे। कूर्म, वायु, और विष्णुपुराणमें २८ व्यासोंका उल्लेख है। ये विष्णु और ब्रह्माके स्वरूप कहे गये हैं। कल्प कल्पमें धर्मका लोप देख कर धर्मरक्षाके लिये स्वयं भगवान् ब्रह्माने कई व्यास रूपमें अवतीर्ण हो वेदकी रक्षा और विभाग किया था। व्यास व्यक्तिविशेषका नाम नहीं है। यह वेदविभागकारी ऋषियोंकी सम्मानजनक एक उपाधि है।

हमारे देशमें वेद-विभागकारियोंके लिये जैसे व्यास उपाधि है, वैसे ही यूनानियोंमें ग्रामणिकारवर्ग: होमरस (Homoros) उपाधि विद्यमान है; किन्तु हमारे व्यास शाश्वत हैं। वेदान्तदर्शनकार, महाभारतकार, अष्टादश महापुराणकार और चारों वेदोंके विभागकर्त्ता व्यासदेवको एक व्यक्ति समझना भूल है। किन्तु इतना जरूर स्वीकार किया जा सकता है, कि किसी एक कल्पमें एक व्यास जो सम्पादन कर गये, दूसरे कल्पमें उसे लुप्तप्राय देख एक दूसरे ऋषिने उस शास्त्रकी मर्यादारक्षा करनेके लिये व्यास उपाधि धारण कर उस शास्त्रकी रक्षा की थी। वेदान्त, पुराण या महाभारत शास्त्र इनमेंसे एकका प्रणयन है।

नीचे २८ व्यासोंके नाम दिये जाते हैं—ये ब्रह्मादि द्वापरमें एकके बाद एक समुद्भूत हुए थे। जैसे—१ स्वयम्भू। २ प्रजापति या मनु। ३ उशना। ४ बृहस्पति।

प्रकार शास्त्र, वेदोंके अङ्ग या शास्त्र जो छः हैं, और जिनके नाम इस प्रकार हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द।

"शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषां गणः।
छन्दोविचितिरित्येतैः षडङ्गो वेद उच्यते॥" (शिक्षा)

इनमेंसे व्याकरणको लोग वेदोंका मुख, शिक्षाको नाक, निरुक्तको कान, ज्योतिषको आँख, कल्पको हाथ और छन्दको पैर मानते हैं। वेद देखो।

२ सूर्यदेव। (भारत वनपर्व) ३ द्वादश आदित्य-भेद, बारह आदित्योंमेंसे एक आदित्य।

वेदाङ्गतीर्थ—मध्वविजयटीकाके प्रणेता।

वेदाङ्गराय—१ अशौचचन्द्रिकाके रचयिता। २ महारुद्र-पद्धतिके प्रणेता। ३ पारसीप्रकाश और श्राद्धदीपिका-के रचयिता। ये गुजरातप्रदेशके औदुम्बरवासी तिरुमल-भट्टके पुत्र थे। मुगल-सम्राट् शाहजहांके आदेशसे इन्होंने १६४३ ई०में पारसीप्रकाशकी रचना की।

वेदाचार्य (सं० पु०) वेदशास्त्रोपदेष्टा।

वेदाचार्य आचरयिक—स्मृतिरत्नाकरके प्रणेता।

वेदात्मन् (सं० पु०) १ विष्णु। २ सूर्यदेव।

वेदादि (सं० क्ली०) वेदानामादि, क्वचिदीपधारिकाः शब्दाः स्वलिङ्गमपि त्यजन्ति इति न्यायादस्य क्लीवत्वं। १ प्रणव, ओङ्कार। २ वेदका आदि।

वेदादिबीज (सं० क्ली०) वेदस्य आदौ प्रयुक्तं बीजं। प्रणव।

वेदाद्रि—मन्द्राज प्रदेशके कृष्णा जिलान्तर्गत नन्दीग्राम तालुकका एक बड़ा ग्राम। यह कृष्णा नदीके किनारे अवस्थित है। यहां एक प्राचीन दुर्ग तथा अन्यान्य अट्टालिकाओंका ध्वंसावशेष दिखाई देता है।

वेदाधिगम (सं० पु०) वेदस्य अधिगमः। वेद स्वीकरण, वेदविद्यालाभ। (मनु २।२)

वेदाधिदेव (सं० पु०) ब्राह्मण।

वेदाधिप (सं० पु०) वेदानामधिपः। चतुर्वेदका अधि-पतिग्रह। ऋग्वेदके अधिपति वृहस्पति, यजुर्वेदके अधिपति शुक्र, सामवेदके मङ्गल और अथर्ववेदके अधि-पति बुध हैं।

वेदाध्यक्ष (सं० पु०) श्रीकृष्ण। (हरिवंश)

वेदाध्ययन (सं० क्ली०) वेदस्य अध्ययनं। वेदपाठ, वेद पढ़ना।

वेदाध्याय (सं० पु०) वेदोपदेश।

वेदाध्यायिन् (सं० त्रि०) वेदमध्येति वेद अधि-इ णिनि। वेदपाठकारी, वेद पढ़नेवाला।

वेदानुवचन (सं० क्ली०) वेदपाठ।

वेदान्त (सं० क्ली०) वेदानां अन्तः वेदान्तः। वेदका अन्त अर्थात् शेष भाग ही वेदान्त है। इस प्रकार अर्थ करके कोई कोई वेदके अवशिष्ट अंशको ही वेदान्त कहते हैं। उनका कहना है, कि ब्राह्मणग्रन्थके साथ जो उपनिषद् अंश है, वही वेदान्त है। आभिधानिक हेम-चन्द्रका यही अभिप्राय है। फिर वैदान्तिक लोग कहते हैं, "वेदस्यान्तः चरमोद्देश्यः प्रदर्शितो यत्र स एव वेदान्तः।" अर्थात् जिसमें वेदका चरम उद्देश दिखाया गया है, वही वेदांत है। परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीसदानन्द योगीन्द्रने स्वरचित सुविख्यात वेदांतसार ग्रंथमें लिखा है, "वेदांतो नाम उपनिषत्प्रमाणं तदुप-कारिणि शारीरकसूत्रादीनि च।"

श्रीमन्नृसिंह सरस्वतीने इस वेदांतसारकी टीकामें उक्त उद्धृत अंशकी जो व्याख्या की है, उसका अर्थ इस प्रकार है।—"उपनिषद् ही प्रमाण है" इस अर्थसे उपनिषद् प्रमाण अथवा उपनिषद् ही प्रमाणस्वरूप व्यवहृत हुआ है जिस शास्त्रमें वही उपनिषद् प्रमाण है। तदुपकारक शारीरकसूत्रादि भी वेदांत कहलाते हैं। अतएव उपनिषद् और शारीरकसूत्र ही वेदांत-शास्त्र है। अतएव वेदांतके सम्बन्धमें आलोचना करते समय उपनिषद् और ब्रह्मसूत्रकी आलोचना करना कर्त्तव्य है। उपनिषद्के सम्बन्धमें दूसरी जगह आलोचना की गई है। उसमें उपनिषद्के प्रतिपाद्य विषयका कुछ कुछ उल्लेख है। ब्रह्मविद्या ही उपनिषद् का विषय है। उप पूर्व नि पूर्व षद गति और अव-सादनार्थ सद् धातुके उत्तर क्विप् प्रत्यय करके यह शब्द बना है। धातुगत व्युत्पत्तिके अनुसार उपनिषद् शब्दका निम्नलिखित अर्थ प्रतिपन्न होता है। यथा—

(१) जो ब्रह्मविद्यामें आसक्त रहते, उपनिषद् द्वारा उनके संसारकी मारात्मक बुद्धि विनष्ट होती है, इसीलिये

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

सूत्र' आधुनिक उपनिषद्ग्रन्थकी बात कहो है, वे प्राचीन तम उपनिषद्की बात अच्छी तरह जानते थे, इसमें जरा भी संदेह नहीं।

पाणिनिका और भी एक सूत्र है। यथा—

"पाराशर्य्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः।" (४।३।११०)

पाणिनि जो भिक्षुसूत्रका विषय जानते थे, यह सूत्र ही उसका प्रमाण है। यह भिक्षुसूत्र ही वेदान्तदर्शनका बीजभूत है। भिक्षुसूत्र उपनिषद्के आधार पर लिखा गया है।

यास्कके निरुक्त ग्रन्थमें भी हम "उपनिषद्" शब्द देखते हैं। ऋग्वेदमें "यत्रा सुपर्णा" (ऋ० सं० २।३।१८।१) इत्यादि एक मन्त्र है। इस मन्त्रके अधिदैवता व्याख्यामें यास्कने लिखा है—"इत्युपनिषद्वर्णो भवति।" (निरुक्त ३।२।६)

निरुक्तके भाष्यकार दुर्गाचार्यने इसीकी व्याख्या करनेमें उपनिषद् शब्दका व्युत्पत्तिगत अर्थ किया है। इसके पहले उसका उल्लेख हो चुका है। अतएव वेदोपनिषद्ग्रन्थोंकी प्राचीनतामें सन्देह करनेका कोई भी कारण नहीं।

वैदिक उपासना और उपनिषद्।

उपनिषद् जो आधुनिक या अनतिप्राचीन नहीं है, यह पूर्वलिखित युक्तियोंसे अच्छी तरह जाना जा सकता है। हम लोगोंका विश्वास है, कि वैदिक मन्त्रयुगके समय भी औपनिषदी शिक्षा तथा औपनिषदी उपासना इस देशमें प्रचलित थी। बहुत पहलेसे ऋषिगण सूक्तमन्त्रसे उपास्य देवताकी उपासना करते थे। संहितायुगके बहुत पहले वैदिक मन्त्र प्रचलित और प्रचारित था। उन सब मन्त्रोंमें भी उपनिषद्का मूलबीज निहित देखा जाता है। अतएव वेदान्तके उद्भवकालका निर्णय करना सहज नहीं है।

ऋक्संहितामें उषाकी स्तुति यथार्थमें ही कवित्वमयी है। जिन्होंने वेदान्तशास्त्रका उपनिषत्-अंश पढ़ा नहीं केवल ब्रह्मसूत्र मात्र पढ़ा है, वे समझ सकते हैं, कि वेदान्तमें उषा और अग्नि आदि देवताओंके नामका बिलकुल उल्लेख नहीं है अथवा वे सब देवता कह कर स्वीकृत नहीं हुए हैं। किन्तु यह सिद्धान्त सम्पूर्ण भ्रमात्मक है। उपनिषद् वेदान्त शास्त्र होने पर भी इसमें वैदिक देवताओंकी मर्यादा अस्वीकृत नहीं हुई है। ब्रह्मज्ञानलाभ जीवकी मुक्तिका उपाय होने पर भी उषा और अग्निकी कथा उपनिषद्में भी आई है। उपनिषद् और वेदका बाह्यावयव भिन्न होने पर भी दोनोंके अभ्यन्तर एक महान् अखण्ड उपास्य पदार्थ स्वीकृत हुए हैं, वेदके साथ यह भी एक ही सम्बन्धमें सूचित है, इसमें जरा भी संदेह नहीं। वेदमें जिन सब देवताओंके स्तोत्र दिखाई देते हैं, वेदान्त या उपनिषद्में भी उन सब देवताओंके नाम आये हैं। प्रथम उषाकी बात ही लिखी जाती है। यथा—बृहदारण्यकोपनिषद्में—

(१) "ऊषा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिरः"

(बृ० अ० उ० १।१।१)

(२) "मधुनक्तमुतोषसः" (बृ० अ० उ० ६।३।६)

वेदान्तमें सूर्यकी गायत्रीमें स्तुति की गई है, वेदसंहितामें भी उनके सैकड़ों स्तोत्र देखनेमें आते हैं। वेदके इन प्रधान देवताका उपनिषद्में भी बड़े आदरसे पूजित देखते हैं। यथा—

१। देवो यत्नेः प्रजापतिः सविता।

(छा० ३।१२।५)

२। तत्सवितुर्वृणीमह इत्याचामति।

(छा० ५।२।७)

३। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।

(बृ० आ० ६।३।६, मैत्रा० ६।७)

श्वेताश्वतर प्रभृति उपनिषद्में भी इस देवताका उल्लेख है। सूर्य प्रभृति अन्यान्य पर्यायका उल्लेख छान्दोग्य, बृहदारण्यक, तैत्तिरीय, कठ, मुण्डक, महानारायण और प्रश्नोपनिषद्में कई जगह दिखाई देता है। सामवेदीय ब्राह्मण संध्यावन्दनके समय इस प्रकार पढ़ते हैं—"सूर्ये ज्योतिषि परमात्मनि स्वाहा।"

यह वैदिक उपास्यदेव उपनिषद्में भी उपासित हुए हैं। यथा—"सूर्यं ज्योतिर्जुहोमि।" इस मन्त्र द्वारा भी सूर्यमण्डलस्थित परमात्माकी ही उपासना की गई है।

इसका नाम उपनिषद् है। यहां "सद्" धातुका "नाश" अर्थ लिया गया।

(२) इससे परम श्रेयःस्वरूप ब्रह्मज्ञान प्रत्यगात्मस्वरूप-की उपलब्धि होती है, इसीसे इस शास्त्रका नाम उपनिषद् हुआ है। यहां गत्यर्थी (प्राप्त्यर्थ) सद् धातुका अर्थ गृहीत हुआ है।

(३) यह शास्त्र दुःख-जन्म-प्रवृत्तिमूलक अज्ञानको नष्ट करता है, इसीसे इसका नाम उपनिषद् है। यहां अवसादन अर्थ लिया गया है।

(४) सद् धातुके अवसादन अर्थमें यास्ककृत निरुक्तके भाष्यमें दुर्गाचार्यने भी उपनिषद् शब्दका एक व्युत्पत्ति-गत अर्थ इस प्रकार किया है। यथा—"यथा ज्ञानमुप-गतस्य सतो गर्भजन्मजरामृत्यवो निरवशेषं सीदन्ति सा रहस्यं विद्या उपनिषदित्युच्यते।"

अर्थात् जिस विद्या द्वारा ज्ञानियोंके गर्भजन्मजरा-मृत्यु दोष सम्पूर्ण अवसन्न होते हैं, वही विद्या उपनिषद् कहलाती है।

यह औपनिषदी विद्या बहुत पुरानी है। किन्तु पाश्चात्य पण्डितोंमेंसे कोई कोई उपनिषदोंको पाणिनिके पीछेके ग्रन्थ बतलाते हैं। उनका कहना है, कि उपनिषद् पद पाणिनिके व्याकरणमें साधित नहीं हुआ है, इसलिये पाणिनिके समय उपनिषद् या वेदान्तसाहित्यका बिल-कुल प्रचार न था।

पाश्चात्य पण्डितोंका यह अनिश्चय सिद्धान्त हम लोगोंके लिये सचमुच बड़ा ही विस्मयजनक है। जिन्होंने पांच वैदिक संहिता और ब्राह्मणग्रन्थका बड़े ध्यानसे पढ़ा है, उन्होंने अच्छी तरह देखा है, कि उन सब साहित्योंमें जगह जगह उपनिषद् शब्दके बहुत निदर्शन हैं। फिर यह भी जाना जाता है, कि बहुतसे उपनिषद् ही ब्राह्मण और आरण्यकग्रन्थके अन्तर्गत हैं। पाश्चात्य पण्डित ब्राह्मण-ग्रन्थको पाणिनिके पहलेके मानते हैं।

पाणिनीय गणपाठमें उपनिषद् पदका उल्लेख देखनेमें आता है—

(१) ऋगयनादिभ्यः (४।३।७३)

(२) वेतनादिभ्यो जीवति (४।४।१२)

इन दोनों सूत्रोंके "ऋगयनादि" गणमें तथा "वेतनादि" गणमें उपनिषद् शब्दका पाठ भी देखा जाता है। यह गणपाठ आज कल प्रचलित है, यह पाणिनीय नहीं है, यदि इस बातको स्वीकार किया जाय, तो पहले कोई भी पाणिनीय गणपाठ था, इसे अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। अन्यथा "ऋगयनादिभ्यः" तथा "वेतनादिभ्य" इत्यादि सभी जगह जो 'आदि' शब्दका व्यवहार देखा जाता है, उसकी सार्थकता नहीं रहती।

उपनिषद् शब्दसाधनप्रक्रिया केवल पाणिनीयोंकी नहीं है, ऐसा नहीं कह सकते। वार्त्तिक या महाभाष्यमें भी यह शब्द नहीं है। यहां तक कि, आधुनिक अनेक व्याकरणों-में भी इस शब्दका उल्लेख नहीं है। इससे क्या समझा जायेगा, कि उपनिषद् शब्द आधुनिक समयमें भी अप्रा-चीन है?

पर हां, इतना जरूर है, कि अभी हम जो सब साहित्यमें २३५ उपनिषद्ग्रन्थके नाम पाते हैं, वे सबके सब वेदोपनिषद् नहीं हैं। किन्तु नहीं होने पर भी वेदज्ञगण शिष्योंके लिये वेदार्थबोधक अनेक उपनिषद् प्रथित कर गये हैं। परवर्ती सभी उपनिषद् वेदोपनि-षद् नहीं होने पर भी वे उपनिषद्के समान हैं, इसीसे उनका उपनिषद् नाम हुआ है। रामतापनी आदि कुछ साम्प्रदायिक उपनिषद् उन्हीं सब सम्प्रदायोंके प्राप्त हैं। अल्लोपनिषद् नामक एक अति आधुनिक उपनिषद्का विषय दूसरी जगह विस्तृत भावसे आलोचित हुआ है जो नितान्त अप्रमाण है। उपनिषद् शब्द देखो।

परन्तु मन्त्ररूप और ब्राह्मणरूप उपनिषद् पाणि-नीयके बहुत पहले थे, इसमें सन्देह नहीं। इसके बाद उपनिषद्के समान अनेक उपनिषद् प्रथित हुए। यह बात पाणिनीय सूत्रपाठसे भी जानी जाती है। यथा—

"जीविकोपनिषदावौपम्ये।" (१।४।७९)

भट्टोजि दीक्षितने इस सूत्रकी जो व्याख्या की है उससे जाना जाता है, कि पाणिनिके समयसे पहले भी एक श्रेणीके वेदविद् पण्डित उपनिषदुपम प्रथित कर जीविका निर्वाह करते थे। भट्टोजि दीक्षितने लिखा है "उपनिषत्कृत्य" इसका अर्थ है "उपनिषद् [illegible]"। पाणिनिके इस सूत्रका यह अर्थ सब वैयाकरणसम्मत है। जिन्होंने आगे सूत्रमें 'उपनिष-

सूत्र' आधुनिक उपनिषद्‌ग्रन्थकी बात कही है, वे प्राचीन तम उपनिषद्‌की बात अच्छी तरह जानते थे, इसमें ज़रा भी संदेह नहीं।

पाणिनिका और भी एक सूत्र है। यथा—

"पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः।" (४।३।११०)

पाणिनि जो भिक्षुसूत्रका विषय जानते थे, यह सूत्र ही उसका प्रमाण है। यह भिक्षुसूत्र ही वेदान्तदर्शन-का बीजभूत है। भिक्षुसूत्र उपनिषद्‌के आधार पर लिखा गया है।

यास्कके निरुक्त ग्रन्थमें भी हम "उपनिषद्" शब्द देखते हैं। ऋग्वेदमें "वना भुरण्यो" (ऋ० सं० १०।१४२।१) इत्यादि एक मन्त्र है। इस मन्त्रके अधिदैवता व्याख्यानमें यास्कने लिखा है—"इत्युपनिषद्वर्णो भवति।" (निरुक्त १३।२६)

निरुक्तके भाष्यकार दुर्गाचार्यने इसीको व्याख्या करनेमें उपनिषद् शब्दका व्युत्पत्तिगत अर्थ किया है। इसके पहले उसका उल्लेख हो चुका है। अतएव वेदोपनिषद्‌ग्रन्थोंकी प्राचीनतामें सन्देह करनेका कोई भी कारण नहीं।

वैदिक उपासना और उपनिषद्।

उपनिषद् जो आधुनिक या अनतिप्राचीन नहीं है, यह पूर्वलिखित युक्तियोंसे अच्छी तरह जाना जा सकता है। हम लोगोंका विश्वास है, कि वैदिक मन्त्रयुगके समय भी औपनिषदी शिक्षा तथा औपनिषदी उपासना इस देशमें प्रचलित थी। बहुत पहलेसे ऋषिगण ऋक्‌मन्त्रसे उपास्य देवताकी उपासना करते थे। संहितायुगके बहुत पहले वैदिक मन्त्र प्रचलित और प्रचारित था। उन सब मन्त्रोंमें भी उपनिषद्‌का मूलबीज निहित देखा जाता है। अतएव वेदान्तके उद्भवकालका निर्णय करना सहज नहीं है।

ऋक्‌संहितामें ऊषाकी स्तुति यथार्थमें ही कवित्वमयी है। जिन्होंने वेदान्तशास्त्रका उपनिषत्-अंश पढ़ा नहीं केवल प्रसंगयुक्त मन्त्र पढ़ा है, वे समझ सकते हैं, कि वेदान्तमें ऊषा और अग्नि आदि देवताओंके नामका बिलकुल उल्लेख नहीं है अथवा वे सब देवता कह कर स्वीकृत नहीं हुए हैं। किन्तु यह सिद्धान्त सम्पूर्ण भ्रमात्मक है। उपनिषद् वेदान्त शास्त्र होने पर भ इसमें वैदिक देवताओंकी मर्यादा अस्वीकृत नहीं हुआ है। ब्रह्मज्ञानलाभ जीवकी मुक्तिका उपाय होने पर भी ऊषा और अग्निकी कथा उपनिषद्‌में भी आई है। उपनिषद् और वेदका वाक्यावयव भिन्न होने पर भी दोनोंके अभ्यन्तर एक महान् अखण्ड उपास्य पदार्थ स्वीकृत हुए हैं, वेदके साथ वह जो एक ही सम्बन्धमें सूचित है, इसमें ज़रा भी संदेह नहीं। वेदमें जिन सब देवताओंके स्तोत्र दिखाई देते हैं, वेदान्त या उप-निषद्‌में भी उन सब देवताओंके नाम आये हैं। प्रथम ऊषाकी बात ही लिखी जाती है। यथा—बृहदारण्यकोपनिषद्‌में—

(१) "ऊषा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिरः"

(बृ० अ० उ० १।१।१)

(२) "मधुनक्तमुतोषसः" (बृ० अ० उ० ६।३।६)

वेदान्तमें सूर्यकी गायत्रीमें स्तुति की गई है, वेद-संहितामें भी उनके सैकड़ों स्तोत्र देखनेमें आते हैं। वेदके इस प्रधान देवताका उपनिषद्‌में भी बड़े, आदरसे पूजित देखते हैं। यथा—

१। देवो वरुणः प्रजापतिः सविता।

(छा० ३।११।५)

२। तत्सवितुर्वृणीमह इत्याचामति।

(छा० ५।२।७)

३। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।

(बृ० आ० ६।३।६, मैत्रा० ६।७)

श्वेताश्वतर प्रभृति उपनिषद्‌में भी इस देवताका उल्लेख है। सूर्य प्रभृति अन्यान्य पदार्थका उल्लेख छान्दोग्य, बृहदारण्यक, तैत्तिरीय, कठ, मुण्डक, महा-नारायण और प्रश्नोपनिषद्‌में कई जगह दिखाई देता है। सामवेदीय ब्राह्मण संध्यावन्दनके समय इस प्रकार पढ़ते हैं—"सूर्ये ज्योतिषि परमात्मनि स्वाहा।"

यह वैदिक उपास्यदेव उपनिषद्‌में भी उपासित हुए हैं। यथा—"सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि।" इस मन्त्र द्वारा भी सूर्यमण्डलस्थित परमात्माकी ही उपासना की गई है।

वेदमें जो अग्नि माहात्म्य सम्बन्धमें एक पार्थिव देवता कह कर पूजित होते थे, वेदान्तके ब्रह्मज्ञानके प्रथम प्रचारके समय भी उस अग्निका अनादर या परित्याग नहीं हुआ। औपनिषद्-ब्रह्मज्ञानपरायण ऋषियोंने उस अग्निमें भी ब्रह्मसत्ताका अनुभव कर उच्चैःस्वरसे कहा है—

(१) "एतद्वै ब्रह्म दीप्यते यदग्निर्ज्वलति"

(कौषीतकिब्राह्मणोपनि० १२)

(२) "अग्निर्वा अहमस्मि।" (केन १७)

यहां 'अहं' शब्द परमात्मवाचक है। किन्तु फिर दूसरी जगह देखा जाता है, कि उपनिषद्वक्ताओंने अग्निमें ही ब्रह्मकी सत्ताका अनुभव कर अग्निपरिच्छिन्न ब्रह्मकी उपासना की है। ऐतरेय, कौषितकी, केन, तैत्तिरीय, कठ, श्वेताश्वतर और प्रश्न, विशेषतः छान्दोग्य और बृहदारण्यक उपनिषद्में कई जगह इसी प्रकार अग्निमें परिच्छिन्न ब्रह्मका उल्लेख कर अग्निको ही आत्मा और अग्निको ही ब्रह्म कहा गया है। अन्यान्य देवताओंके सम्बन्धमें भी इसी प्रकार उल्लेख देखनेमें आता है।

असल बात यह है, कि वेदमें ब्रह्मतत्त्व विकीर्ण था, परवर्ती ऋषियोंने उन श्रोतोभूत मन्त्रोंका अवलम्बन कर प्रायः वैदिक देवताओंके मध्य उस "एकमेवाद्वितीयम्" पदार्थके अधिष्ठानकी उद्घोषणा कर वेदान्तशास्त्रका प्रचार किया है और उसके कलेवरको नये भावमें संक्षिप्त और परिपुष्ट कर डाला है। हम क्रमशः वेदान्तकी उत्पत्ति, विकास और विवर्त्तनका इतिहास लिखते हैं।

वेदमें एकेश्वरवाद।

वैदिक मन्त्रकी पर्यालोचना करनेसे देखा जायेगा, कि वैदिक युगके ऋषियोंकी उपासनामें भी एकेश्वरवाद है। जब जिस देवताके निकट प्रार्थना की गई तब उसी देवताको प्रधान समझ कर सर्वशक्तिमत्ताकी बातोंकी प्रार्थनाका मन्त्र ऋक्संहितामें दिखाई देता है। ऋग्वेदके ७म मण्डल ३२वें सूक्तमें लिखा है—

"न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे॥"

(३२ सू०)

अर्थात् हे इन्द्र! तुम्हारे सिवा मेरे और कोई मित्र नहीं है, न सुख है और न कोई ज्ञानदाता ही है। स्वर्गमें या पृथिवी पर तुम्हारे जैसे शक्तिशाली कोई भी दिखाई नहीं देता।

"इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि॥"

अर्थात् हे शक्तिशाली इन्द्र! पिता जिस प्रकार पुत्रको ज्ञान देते हैं, तुम भी उसी प्रकार हम लोगोंको ज्ञान देते हो। तुम भी दुष्टोंके हाथसे बचाओ। हम लोग तुम्हारे हैं, तुम्हें छोड़ कर हमारे और कोई भी नहीं है। फिर हम लोगोंके कोई बल भी नहीं है। उपनिषद्के ब्रह्मकी और वेदके इन सब स्तुतिग्राही देवताओंकी जगह जगह एक ही प्रकारसे स्तुति की गई है। १म मण्डलके दशम सूक्तकी नवम ऋक्में लिखा है—

"आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवं नू चिद्दधिष्व मे गिरः।
इन्द्र स्तोममिमं मम कृष्वा युजश्चिदन्तरम्॥"

अर्थात् हे इन्द्र! तुम्हारे कान सभी विषय सुननेमें समर्थ हैं। तुम हमारी प्रार्थनाकी रक्षा करना।

फिर १म मण्डलके ११०वें सूक्तमें सूर्यके स्तोत्रमें कहा गया है, "सूर्यने द्युमण्डल और पृथ्वीको उत्पादन किया है, वे सभी जीवोंके उपकारी हैं। वे अनन्त ब्रह्माण्डके परिमापक हैं, हम उनका स्तव करते हैं।"

इस प्रकार अन्यान्य देवताके स्तोत्र भी ऋग्वेदमें देखे जाते हैं। वे सब मन्त्र पढ़नेसे मालूम होता है, कि ऋषिगण ब्रह्मके साथ विश्वप्रपञ्च और विश्वके साथ ब्रह्मतत्त्वको विजड़ित करके ही उपासना करते थे। किन्तु ऐसा होने पर भी वे ब्रह्मके उपासक न थे। मन्त्रोंका "मन्त्र" नाम रखा जाता था। शास्त्रमें कहा है, "मननात् मन्त्रः" अतएव मन्त्र मानसिक व्यापार है। आर्यऋषिगण इस विराट् विश्वब्रह्माण्डके प्रत्येक पदार्थमें ही चैतन्य और ज्ञानका प्रभाव देख कर विस्मित होते थे तथा मन्त्र द्वारा उनकी उपासना करते थे। सुतरां हम वैदिक उपासनाको सिर्फ प्राकृत उपासना नहीं कह सकते और न वैदिक स्तुतियोंकी अच्छी तरह आलोचना करनेसे हम लोगोंकी ऐसी धारणा हो ही सकती है, कि केवल स्वार्थ या अभावको पूरण करनेके

लिये ही वे वैदिक देवताओंके निकट भिक्षाके लिये जाते थे अथवा यज्ञमें घृतके आहुतिरूप उत्कोच प्रदान कर देवताओंको वशीभूत करनेकी चेष्टा करते थे। नीलाकाशमें ऊषाकी उज्ज्वल किरण देखनेसे वे फूले न समाते थे। उनका हृदय आनन्दसे विह्वल हो जाता था, उसी आनन्दके मारे वे बहुत स्तव किया करते थे। प्रकृतिके सौन्दर्य पर विमुग्ध हो वे आह्लादसे नाच उठते थे। इस प्रकार ऋषियोंके हृदयमें क्रमशः औपनिषदी प्रतिभाका आविर्भाव होने पर एक दिन उन्होंने सारे संसारके सामने एक महासत्य उद्घोषित कर कहा—

"ओं सत्यं शिवं सुन्दरम्"

इसके स्वार्थ नहीं है, कामना नहीं है और न किसी भी स्वरागका आभास ही है, केवल सौन्दर्यप्रियता और सौन्दर्यानुराग है। इस उपासनाका मर्म बड़ा ही गम्भीर है। इसके माधुर्यसे इस मर्त्यलोकमें रह कर मनुष्य भूमानन्द लाभ करते हैं, इसी कारण ऋषियोंने अनुभवानन्दकी ओर गम्भीर भाषामें कहा है—

"सत्यं ज्ञानमनन्तमानन्दरूपं यद्विभाति।"

वेदके मन्त्र और उपनिषद्वाक्यमें जगह जगह इसी तरह आनन्द-ध्वनि सुनाई देती है।

वेदकी स्तुति पढ़नेसे मालूम होता है, कि वैदिक ऋषिगण जो अनेक देवताओंके नाम करते थे, वह केवल नाममात्र है। किन्तु सर्वत्र ही वे देवशक्तिका अनुभव करते थे, भक्ति और श्रद्धाका भाव सर्वत्र ही उनके हृदयमें जागरूक रहता था। समस्त प्रकृति उनके सामने सजीव और सामर्थ्यशील मालूम होती थी। इस महाशक्तिका भिन्न भिन्न प्रकाश देख कर वे कभी अग्नि, कभी इन्द्र, कभी सूर्य, कभी विष्णु, कभी मरुत् नाम रख कर भिन्न भिन्न मन्त्रसे स्तव करते थे। किन्तु उनके स्तोत्र मन्त्रमें सभी जगह एकेश्वरवाद झलकता था। अग्निसे वे लोग जिस विषयके लिये प्रार्थना करते थे, सूर्य, वायु, इन्द्र आदिसे भी उसी विषयकी प्रार्थना की जाती थी। इन्द्रकी प्रार्थनाके समय जिस प्रकार सर्वस्व कह कर उनकी स्तुति करते थे, दूसरे दूसरे देवताओंके गौरवकीर्तनमें भी वहां किसी भी अंशमें त्रुटि नहीं होती थी।

किसी एक देवताकी प्रार्थनाके समय वे अन्य देवताकी बात भूल कर एक मनसे एक प्राणसे एक ही भावसे स्तूयमान देवताका गुणकीर्तन करते थे। उनके उपास्य सभी देवता सत्यसङ्कल्प, उदार, परोपकारी, सर्वदर्शी और सर्वशक्तिमान्, दानदाता, सत्य, नित्य, जगत्स्रष्टा और समुज्ज्वल थे। सभी जीवोंके हितकारी थे। यहां तक, कि जब एक देवता दूसरे देवताके प्रतिद्वन्द्विरूपमें प्रतिभात होते हैं, तब जगत्के जीवोंकी भलाईके लिये कार्यतः उनका एकत्व ही सूचित होता है। इन्द्रने जब मरुत्को निहत किया, तभी इस एकत्वका भाव ही प्रदर्शित हुआ। यथा—

"किं न इन्द्र जिघांससि भ्रातरो मरुतस्तव" (१।१७०।२)

हे इन्द्र! मरुत्गण तुम्हारे ही भाई हैं, अतएव हम लोगोंके प्रति हिंसा न करो।

फिर दूसरी जगह देखिये। ऋषि कहते हैं, कि हे देवगण! तुम लोगोंमें कोई छोटा बड़ा नहीं है तुम सभी समान हो, सभी प्रधान हो।

हम यद्यपि वेदमें प्रधानतः तैंतीस देवताओंका परिचय पाते हैं, परन्तु उपासनाका मन्त्र और भाव देख कर यह सहज ही स्थिर कर सकते हैं, कि वैदिक ऋषियोंने ज्ञानशक्तिके दिव्यचक्षुसे इन सब देवताओंको "एकमेवाद्वितीयम्" कह कर ही उनका स्तव किया है। एक देवतामें ही उन्होंने सर्वदेवाधिष्ठानकी कल्पना की है। यथा—ऋक्संहितामें—

"त्वमग्ने इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णुरुरुगायो नमस्यः।
त्वं ब्रह्मा रयिविद्‌ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्तः सचसे पुरन्ध्या ॥३
त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस्त्वं मित्रो भवसि दस्म ईड्यः।
त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य सम्भुजं त्वमंशो विदथे देव भाजयुः ॥४
त्वमग्ने त्वष्टा विधते सुवीर्यं तव ग्नावो मित्रमहः सजात्यम्।
त्वमाशुहेमा ररिषे स्वश्व्यं त्वं नरां शर्धो असि पुरूवसुः ॥५
त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस्त्वं शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे।
त्वं वातैररुणैर्यासि शङ्गयस्त्वं पूषा विधतः पासि नु त्मना ॥"६

(ऋक् २।१।३-६)

अर्थात् हे अग्ने! तुम इन्द्र हो, तुम विष्णु हो, तुम वरुण हो, तुम मित्र हो, तुम ही रुद्र हो, इत्यादि। द्वितीय मण्डलके इस सूक्तके सभी ऋचोंमें इसी प्रकार

अभिन्नता स्पष्ट किया गया है। यह एकेश्वरवादका ही प्रतिपादक है।

फिर एक अग्निको ही और कार्यभेदसे भिन्न भिन्न देवताके रूपसे नाम रक्खा गया है, जैसे ऋग्वेदका भी आशय यही है। यथा—

"त्वमग्ने वरुणो जायसे यत्त्वं मित्रो भवसि यत्समिद्धः।
त्वे विश्वे सहसस्पुत्र देवास्त्वमिन्द्रो दाशुषे मर्त्याय॥
त्वमर्यमा भवसि यत्कनीनां नाम स्वधावन्गुह्यं बिभर्षि।
अञ्जन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर्यद्दम्पती समनसा कृणोषि॥
तव श्रिये मरुतो मर्जयन्त रुद्र यत्ते जनिम चारु चित्रम्।
पदं यद्विष्णोरुपमं निधायि तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम्॥"

(ऋक्० ५।३।१-३)

इसमें इस "एकं बहुस्याम" इस औपनिषदी श्रुतिकी स्पष्ट व्याख्या पाते हैं। वैदिक मन्त्रके साथ उपनिषद्‌का सम्बन्ध कितना घनिष्ठ है, इससे सहजमें मालूम होता है। नवम मण्डलके ८६ सूक्तमें भी सोमस्तुतिके बहाने भी आध्यात्मिक प्रसंग प्रकट किया गया है। "सोम ही अनन्त जगत्‌में व्याप्त है, सोमसे ही अन्यान्य देवताओंकी उत्पत्ति हुई है" ऐसी स्तुति भी देखी जाती है।

इससे जाना जाता है, कि वैदिक ऋषियोंने यद्यपि भिन्न भिन्न देवताका नाम उल्लेख किया है, किन्तु जब वे भक्तिभावसे किसी देवताकी उपासनामें प्रवृत्त होते थे, तब विशुद्ध एकेश्वरवादसे ही उनका उपासना-कार्य सम्पादित होता था, इसी कारणसे वे "एकमेवाद्वितीयम्" कहा करते थे। सुतरां वेद विहित उपासना-प्रणालीमें जो मूलतः बहुदेवोपासना था, उसका अनुमान नहीं होता। परन्तु स्वाभाविक रूपमें उपासनाका प्रणाली-भेद वर्तमान था, यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा; किन्तु वैदिक मन्त्र या उपनिषद् वाक्यके मौलिकमूल तथा वैदिक उपासनाके मूलसूत्र हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। ऋग्वेदादिमें वैदिक उपासनाकी आलोचना करनेसे देखा जाता है, कि एक देवता ही अनेक नामों और अनेक भावोंसे उपासित हुए हैं। महर्षियोंने उसकी भी स्पष्ट व्याख्या की है, उसी एकत्वको ही वेदोंका प्रतिपाद्य बताया है।

एक उपास्य देव ही जो अनेक नामोंसे प्रसिद्ध और अनेक प्रणालियोंसे उपासित हैं, यह हम केवल कल्पित या आनुमानिक कथा नहीं है। ऋग्वेदमें इसका प्रमाण स्पष्ट देखनेमें आता है। यथा—

"इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥"

(ऋक्० १।१६४।४६)

अर्थात् ऋषिगण ही एक देवताको इन्द्र, मित्र, वरुण, वायु, यम आदि नामोंसे पुकारते हैं।

ऋग्वेद—१०म मण्डलके १२९ सूक्तमें ठीक उपनिषद्‌की ध्वनिकी तरह मन्त्र देखनेमें आते हैं। यह सृष्टितत्त्व और परमकारणतत्त्वके सम्बन्धमें वैज्ञानिक युक्ति और दार्शनिक तत्त्व प्रतिष्ठित तथा गम्भीर भावद्योतक है। यह विद्वानोंसे छिपा नहीं है कि हमारे दर्शनशास्त्र केवल तत्त्वज्ञान (Metaphysics) नहीं हैं, उनमें पदार्थविज्ञानकी भी आलोचना है। क्योंकि, प्रत्येक दर्शनमें ही सृष्टितत्त्वके सम्बन्धमें थोड़ी बहुत आलोचना की गई है। वेदान्तशास्त्रमें भी वैज्ञानिक और दार्शनिक तत्त्वका समावेश है। वेदान्तशास्त्रके बीजस्वरूप वेदसंहितामें भी वैज्ञानिक और दार्शनिक तत्त्वके मन्त्र देखनेमें आते हैं। यहां ऋग्वेदके १०म मण्डलका १२९-वां सूक्त उद्धृत किया जाता है। यथा—

"नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्॥१॥
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास॥२॥
तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतैकम्॥३॥
कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा॥४॥
तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासीदुपरि स्विदासीत्।
रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात्॥५॥
को अद्धा वेद क इह प्र वोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव॥६॥
इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद॥७॥"

१। उस समय जो नहीं, वह भी नहीं था। जो है, वह भी नहीं था। पृथ्वी भी नहीं थी, बहुत दूर तक विस्तृत आकाश भी न था। आवरण करनेवाला ऐसा कौन था? कहां किसका स्थान था? दुर्गम और गंभीर जल क्या उस समय था?

२। उस समय मृत्यु भी न थी, अमरत्व भी न था, रात्रि और दिनका प्रभेद न था। केवल वही एकमात्र पदार्थ बिना वायुकी सहायताके आत्मामात्र अवलम्बन कर निश्वास प्रश्वासयुक्त हो जीवित थे। उनके सिवा और कुछ भी न था।

३। सबसे पहले अन्धकारके द्वारा अन्धकार आवृत था। सभी चिह्नवर्जित था और चारों ओर जलमय था। अविद्यमान वस्तु द्वारा वह सर्वव्यापी आच्छन्न थे। तपस्याके प्रभावसे वे उत्पन्न हुए थे।

४। सबसे पहले मनके ऊपर कामका आविर्भाव हुआ, उससे सर्व प्रथम उत्पत्ति-कारण निकला। बुद्धिमानोंने बुद्धि द्वारा अपने हृदयमें पर्यालोचना कर अविद्यमान वस्तुमें विद्यमान वस्तुकी उत्पत्तिका स्थान निरूपण किया।

५। रेतोधा पुरुष उत्पन्न हुए। उनकी रश्मियां बगल और नीचे तथा ऊपरकी ओर फैल गई है।

६। कौन प्रकृत जानता? कौन वर्णन करेगा? कहांसे इस सबकी सृष्टि हुई? देवगण इन सब सृष्टिके पीछे हुए हैं। कहांसे हुआ, इसे कौन जानता?

७। यह विविध सृष्टि कहांसे हुई, किसीने सृष्टि की, क्या नहीं की, यह वे ही जानते हैं, जो इसके प्रभुस्वरूप परमधाममें हैं। अथवा वे भी नहीं जानते होंगे।

परमात्माको ही इस सूक्तका देवता कहा गया है। यह सूक्त देख कर प्रतीत होता है, कि अति प्राचीन ऋक् वेदसंहितामें भी उपनिषदुका भाव विस्तृत रूपसे विद्यमान था।

कुछ लोगोंका कहना है, कि ऋग्वेदके दशम मण्डलका कोई कोई सूक्त संयोजित हुआ है। इस प्रकार आपत्तिका खण्डन 'वेद' शब्दमें लिखा जा चुका है। वस्तुतः समग्र ऋग्वेदमें ही औपनिषदी श्रुति निकाली भावमें दिखाई देती है। यहां इस मण्डलके १६४वें सूक्तसे तीन ऋक् उद्धृत कर वैदिक अध्यात्मका निदर्शन दिखलाया जाता है—

"को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति।
भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित्को विद्वांसमुप गात् प्रष्टुमेतत् ॥४
पाकः पृच्छामि मनसाविजानन्देवानामेना निहिता पदानि।
वत्से बष्कयेऽधि सप्ततन्तून्वि तत्निरे कवय ओतवा उ ॥५
अचिकित्वाञ्चिकितुषश्चिदत्र कवीन् पृच्छामि विद्मने न विद्वान्।
वि यस्तस्तम्भ षळिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम् ॥६

अर्थात् प्रथम जायमानको किसने देखा था? अस्थिहीनाने अस्थियुक्तको धारण किया। भूमिसे प्राण और शोणित निकला, लेकिन आत्मा कहांसे निकली? कौन विद्वानोंके निकट यह बात पूछनेके लिये गया? (४)

मैं अपक्व बुद्धिवाला हूं, कुछ भी समझ न सकनेके कारण पूछता हूं। यह सब संवृतरूप देवताओंके निकट भी निगूढ़ है। एक वर्षके बछड़ेको घेरनेके लिये मेधावियोंने जो सात तन्तु फैलाया है वह क्या है? (५)

मैं अज्ञान हूं, कुछ भी ज्ञान न रहनेसे ही मेधावियोंसे पूछता हूं। जिन्होंने इन छः लोकोंका स्तम्भन किया है, क्या वही एक हैं जो अजन्मरहित रूपमें निवास करते हैं? (६)

यहां भी हम उपनिषदुके भावापन्न गूढ़गम्भीर अभावकी देखते हैं। यहां उस उपनिषदुके भावकी तरह एक "एकमेवाद्वितीयम्" पदार्थ ही व्यक्त हुए हैं।

द्वितीय मण्डलके १२वें सूक्तमें जहां इंद्रका स्तवकीर्तन है, वहां इंद्रको ही सूर्यका उत्पादक कहा है तथा इस सूक्तको २।३।६ और १३ ऋक्में एकेश्वरवादका भाव प्रतिफलित हुआ है।

तृतीय मण्डलके ५५वें सूक्तमें समस्त देवोंके महत् वस्तु का ऐश्वर्य एक है, यह बार बार प्रदर्शित हुआ है। यह सूक्त भी वेदान्तशास्त्रके योग्य मानकर यहां इसके सम्बन्धमें कुछ आलोचना की जाती है। इस सूक्तके २२ ऋक्के प्रत्येकके अन्तमें ही "महद्देवानामसुरत्वमेकम्" लिखा है।

इस सूक्तमें प्राकृतिक कार्य-परम्परामें जो ईश्वरका एक अद्भुतमय भाव अनुस्यूत है वही दर्शित हुआ है।

१। उस समय जो नहीं, यह भी नहीं था। जो है, यह भी नहीं था। पृथ्वी भी नहीं थी, बहुत दूर तक विस्तृत आकाश भी न था। आवरण करनेवाला ऐसा कौन था? कहां किसका स्थान था? दुर्गम और गभीर जल क्या उस समय था?

२। उस समय मृत्यु भी न थी, अमरत्व भी न था, रात्रि और दिनका प्रभेद न था। केवल वही एकमात्र पदार्थ बिना वायुके सहायताके आत्मामात्र अवलम्बन कर निश्वास प्रश्वासयुक्त हो जीवित थे। उनके सिवा और कुछ भी न था।

३। सबसे पहले अन्धकारके द्वारा अन्धकार आवृत था। सभी चिह्नवर्जित था और चारों ओर जलमय था। अविद्यमान वस्तु द्वारा वह सर्वव्यापी आच्छन्न थे। तपस्याके प्रभावसे वे उत्पन्न हुए थे।

४। सबसे पहले मनके ऊपर कामका आविर्भाव हुआ, उससे सर्व प्रथम उत्पत्ति-कारण निकला। बुद्धिमानोंने बुद्धि द्वारा अपने हृदयमें पर्यालोचना कर अविद्यमान वस्तुमें विद्यमान वस्तुको उत्पत्तिका स्थान निरूपण किया।

५। रेतोधा पुरुष उत्पन्न हुए। उनकी रश्मि दोनों बगल और नीचे तथा ऊपरकी ओर फैल गई है।

६। कौन प्रकृत जानता? कौन वर्णन करेगा? कहांसे इस सबकी सृष्टि हुई? देवगण इस सब सृष्टिके पीछे हुए हैं। कहांसे हुआ, इसे कौन जानता?

७। यह विविध सृष्टि कहांसे हुई, किसीने सृष्टि की, क्या नहीं की, यह वे ही जानते हैं, जो इसके प्रभुस्वरूप परमधाममें हैं। अथवा वे भी नहीं जानते होंगे।

परमात्माको ही इस सूक्तका देवता कहा गया है। यह सूक्त देख कर प्रतीत होता है, कि अति प्राचीन ऋग्वेदसंहितामें भी उपनिषद्का भाव विस्तृत रूपमें विद्यमान था।

कुछ लोगोंका कहना है, कि ऋग्वेदके दशम मण्डलका कोई कोई सूक्त संयोजित हुआ है। इस प्रकार आपत्तिका कारण 'दिद' शब्दमें लिखा जा चुका है। वस्तुतः समग्र ऋग्वेदमें ही औपनिषदी श्रुति विकीर्ण भावसे दिखाई देती है। यहां १म मण्डलके १६४वें सूक्तसे तीन ऋक् उद्धृत कर वैदिक ब्रह्मतत्त्वका निदर्शन दिखलाया जाता है—

"को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति।
भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित्को विद्वांसमुप गात्प्रष्टुमेतत् ॥४
पाकः पृच्छामि मनसाऽविजानन्देवानामेना निहिता पदानि।
वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून्वि तत्निरे कवय ओतवा उ ॥५
अचिकित्वाञ्चिकितुषश्चिदत्र कवीन् पृच्छामि विद्मने न विद्वान्।
वि यस्तस्तम्भ षळिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम् ॥६

अर्थात् प्रथम जायमानको किसने देखा था? जब अस्थिहीनने अस्थियुक्तको धारण किया। भूमिसे प्राण और शोणित निकला, लेकिन आत्मा कहांसे निकली? कौन विद्वानोंके निकट यह बात पूछनेके लिये गया? (४)

मैं अपक्व बुद्धिवाला हूं, कुछ भी समझ न सकनेके कारण पूछता हूं। यह सब संवृतपद देवताओंके निकट भी निगूढ़ है। एक वर्षके बछड़ेको घेरनेके लिये मेधावियोंने जो सप्ततन्तु फैलाया है वह क्या है? (५)

मैं अज्ञान हूं, कुछ भी ज्ञान न रहनेसे ही मेधावियोंसे पूछता हूं। जिन्होंने इन छः लोकोंका स्तम्भन किया है, क्या वही एक हैं जो जन्मरहित रूपमें निवास करते हैं? (६)

यहां भी इस उपनिषद्के भावापन्न गूढ़तत्त्व प्रभावली देखते हैं। यहां उस उपनिषद्के प्रसंगकी तरह एक "एकमेवाद्वितीयम्" पदार्थ ही व्यक्त हुए हैं।

द्वितीय मण्डलके १२वें सूक्तमें जहां इन्द्रका स्तवकीर्त्तन है, वहां इन्द्रको ही सूर्यका उत्पादक कहा है तथा इस सूक्तको २।३।१ और १२ ऋक्में एकेश्वरवादका भाव प्रतिफलित हुआ है।

तृतीय मण्डलके ५५वें सूक्तमें समस्त देवोंके महत् बल या ऐश्वर्य एक है, यह बार बार उद्घोषित हुआ है। यह सूक्त भी वेदान्तशास्त्रके पोषोमुख कह कर यहां इसके सम्बन्धमें कुछ आलोचना की जाती है। इस सूक्तके हर ऋक्के प्रत्येकके अन्तमें ही "महद्देवानामसुरत्वमेकम्" लिखा है।

इस सूक्तमें प्राकृतिक कार्य-परम्परामें जो ईश्वरका एक अद्भुतमय भाव अनुस्यूत है वही दर्शित हुआ है।

अग्नि मेघोंमें विराजते हैं, वनोंमें प्रज्वलित होते हैं, आकाशमें गमन होते हैं, पृथ्वीमें विचलित होते हैं (४ सूक्त), वे जलवर्षाके जन्म (कारण) उत्पादन करते हैं; (५ सूक्त) सूर्य द्वारा पश्चिम दिशामें अस्त होकर पूर्व दिशामें उदित होते हैं (६ सूक्त), आकाशमें विचरण करते हैं, भूमिमें गमन करते हैं (७ सूक्त), रात दिन आकाशमें स्थित कर भागे जाते हैं (११ सूक्त), आकाश और पृथ्वी परस्परकी वृद्धि और धारण करते सबको आश्रय प्रदान कर रहे हैं (१२ सूक्त), जिस नैसर्गिक नियमसे एक ओर वृद्धि हो रही है, फिर उसी नैसर्गिक नियमसे दूसरी ओर वृद्धि हो रही है (१७ सूक्त)। एक ही निर्माणकर्ताने मनुष्य, और पशु पक्षियोंकी सृष्टि की है (१९ और २० सूक्त), वे ही शस्य उत्पादन करते हैं, वृष्टि करते हैं, धनधान्य उत्पन्न करते हैं (२२ सूक्त)। प्रकृतिके समस्त कार्य परम्परासे ही भिन्न भिन्न देवोंके नामसे स्तुति की गई है। इसी कार्य-परम्पराकी एकता देख इस सूक्तमें कहा गया है, कि भिन्न देवोंके कार्य भिन्न नहीं, उनका महदैश्वर्य एक है। प्राकृतिक कार्योंमें प्रभुत्वके दर्शनके इस तरह एक उद्देश्य और एक शासनका अस्तित्व अनुभव करना आधुनिक विज्ञान और दर्शनका विषय सिद्धान्त है। यह सूक्त वैज्ञानिक तत्त्वका भी द्योतक है। हम पहले ही कह आये हैं, कि उपनिषद्में एक ओर जैसे सृष्टितत्त्वकी आलोचना हुई है, वैसे ही दूसरी ओर इस विशाल विश्वब्रह्माण्डके अवयवसूत्र और समानताको परस्पर देख इस सब द्रव्य और क्रियाओंके कारणतत्त्व-का निरूपण किया गया है। किन्तु उपनिषद् शास्त्रका मुख्य प्रयोजन है—जीवके मोक्ष कर्त्तव्योंका विचार कर परम श्रेय साधन।

ऋक्संहितामें जिन विश्वकर्माका नाम आता है, आप्तवाक्यानुसार वे ही प्रजापति या परमात्मा समझे जा सकते हैं। ऋग्वेदके १० मण्डलके ८१ और ८२ सूक्तमें इन विश्वकर्माके स्वरूप और कार्य भली विवृत हुए हैं। जो इस विशाल विश्वब्रह्माण्डके कर्त्ता और नियन्ता हैं, जो सर्वद्रष्टा और सर्वज्ञ हैं, वे ही विश्वकर्मा हैं। ऋषि कहते हैं—

"य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत्
पिता नः।
स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ
आविवेश ॥ १ ॥
किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्
स्वित्कथासीत्।
यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना
विश्वचक्षाः ॥२॥
विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत
विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी
जनयन्देव एकः ॥३॥
किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी
निष्टतक्षुः।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवना
नि धारयन् ॥४॥
या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्व
कर्मन्नुतेमा।
शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं
वृधानः ॥५॥
विश्वकर्मन्हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवी
मुत द्याम्।
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा
सूरिरस्तु ॥६॥
वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्या
हुवेम।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे
साधुकर्मा" ॥७॥

१। अर्थात् हम लोगोंके पिता यह ऋषि हैं, जो विश्व भुवनको होम करते बैठे थे, उन्होंने आशिर्वादके साथ धनकी कामना कर प्रथमागत वस्तुओंको आच्छादन कर पीछे आनेवालोंमें प्रवेश किया।

२। सृष्टिकालमें उनका अधिष्ठान, अर्थात् आधार स्थान कहां था? किस स्थानसे किस तरह उन्होंने सृष्टिकार्य आरम्भ किया? उन विश्वकर्मा, विश्वद्रष्टा-कर्त्ता देवने किस स्थानसे यह पृथ्वी निर्माण कर समस्त आकाशको विस्तारित किया।

३। ये ही एक प्रभु हैं, उनकी सब दिशाओंमें आंखें हैं, सब ओर मुख, सब ओर हाथ, सब ओर पैर हैं, उन्हों-ने दो हाथोंसे और विविध पक्ष सञ्चालन कर निर्माण किया, उससे वृहत् द्युलोक और भूलोक रचित हुए।

४। यह कौन वन है? किस वृक्षकी लकड़ी है? जिससे द्युलोक और भूलोक गठित हुआ है। हे विद्वान्‌गण! तुम लोग एक बार अपने अपने मनसे पूछो और देखो, कि वे किस वस्तु पर खड़े हो कर विश्व-ब्रह्माण्डको धारण करते हैं।

५। हे विश्वकर्ता! हे यज्ञभाग लेनेवाले! तुम्हारे जितने उत्तम, मध्यम और निम्नवर्ती धाम हैं, यज्ञके समय उन सबोंका वर्णन करो, तुम स्वयं अपने ही यज्ञ कर अपने शरीरको पुष्ट करो।

६। हे विश्वकर्ता! पृथ्वी या स्वर्गमें तुम स्वयं यज्ञ कर अपने शरीरको पुष्टि करो। चारों ओरके तावत् लोक निर्बोध हैं। इन्द्र हम लोगोंके प्रेरणकर्त्ता हो अर्थात् बुद्धिस्फूर्ति कर दें।

७। आज इस यज्ञमें उन विश्वकर्माको रक्षाके लिये पुकार रहा हूं। वे वाचस्पति हैं, अर्थात् वाक्यके अधिपति हैं, मन उनमें संलग्न होता है। वह सब कल्याणोंके उत्पत्तिस्थान हैं, उनके कार्यमात्रमें ही चमत्कार है, वे हम लोगोंके तावत् यज्ञ स्वीकार कर हमलोगोंकी रक्षा करें।

इस श्लोक द्वारा भी हम विश्वके आदि कारणका तत्त्व जान रहे हैं। ऋग्वेदके ऋषियोंने प्राकृतिक कार्यों-का पर्यवेक्षण करते करते जड़ प्रकृतिमें विभिन्न शक्तिकी लीला देखी, अन्तमें उनकी यह ज्ञानविज्ञानमयी धारणा उत्पन्न हुई, कि ये सब भिन्न भिन्न शक्तियां एक ही परम पुरुषकी शक्ति हैं। वे प्राकृत जगत्‌के चम-त्कार कार्य देखते देखते इस विश्वकार्यके परमकर्त्ताका अस्तित्व अनुभव करने लगे। ऋग्वेदके ऋषिने एक दिन इस सत्यको जिस तरह तत्त्वानुसंधान किया था, आधुनिक पाश्चात्य कवि अपने काव्यमें उसी बात-की घोषणा कर रहे हैं।

"From Nature to Nature's God"

सूक्तसे जो ऋक् उद्धृत की गई है, उनकी तृतीय ऋक्‌के अनुरूप और एक ऋक् १०म मण्डलके ९०वें सूक्तमें है। ९०वें सूक्त पुरुषसूक्त कह कर परिचित है। यह सूक्त कर्मकाण्डमें समधिक आदरके साथ व्यवहृत हुआ है। अहिन्दू समालोचक इसे अनादर कर इसके प्राचीनत्वमें संदेह करने पर भी वेदाधिकारी वैदिक ब्राह्मणसमाज चिरदिनसे ही इसका आदर और व्यवहार करता आया है। इस पुरुषसूक्तकी प्रथम ऋक् और इसी मंडलके ८१वें सूक्तकी तृतीय ऋक् एक ही भावात्मक हैं। इसमें सगुण ब्रह्मके सविशेषत्वकी आलोचना हुई है। इस सूक्तके पढ़नेसे मालूम होता है, कि यह विशाल विश्व-ब्रह्माण्ड उनका अवयवमात्र तथा वे असीम शक्तिशाली और असीम प्रभावशाली हैं। ऋग्वेदमें एकेश्वरवादका यथेष्ट प्रमाण है। उनमें यह सूक्त भी अन्यतम है। जैसे,—

"सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१॥
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२॥
एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३॥
त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि ॥४॥
तस्माद्विराळजायत विराजो अधिपूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥५॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥१२॥
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥१३॥
नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन्" ॥१४॥

(१०।९०)

१। पुरुषके सहस्र मस्तक, सहस्र नेत्र और सहस्र चरण हैं। वे पृथ्वीको सर्वत्र व्याप्त कर दश अंगुल परि-माण अतिरिक्त हो कर अवस्थान करते हैं।

अग्नि मेघोंमें छिपते हैं, उनसे प्रज्वलित होते हैं, आकाशको उत्पन्न होते हैं, पृथ्वीसे विकसित होते हैं (४ मन्त्र), वे इस आकाशमें शब्द (गर्जन) उत्पन्न करते हैं। (५ मन्त्र) सूर्य रूपसे पश्चिम दिशामें अस्त होते और पूर्व दिशामें उदित होते हैं (६ मन्त्र), आकाशको विस्तृत करते हैं, भूमिको धारण करते हैं (७ मन्त्र), हम हिम आकाशसे गिर कर आते जाते हैं (११ मन्त्र), आकाश और पृथ्वी परस्परकी वृद्धि और धारण करते हुए आदान प्रदान कर रहे हैं (१२ मन्त्र), जिस मैत्रावरुण नियमसे एक ओर वृद्धि हो रही है, फिर उसी मैत्रावरुण नियमसे दूसरी ओर वृद्धि हो रही है (१७ मन्त्र)। एक ही नियन्त्रणसे मनुष्य, और पशु पक्षियोंकी वृद्धि की है (१९ और २० मन्त्र), वे ही सबको उत्पन्न करते हैं, वृद्धि करते हैं, अन्नपान्य उत्पन्न करते हैं (२२ मन्त्र)। प्रकृतिके अनन्त कार्य परम्पराके ही भिन्न भिन्न देवोंके नामसे स्तुति की गई है। इसी कार्य-परम्पराकी एकता देख इस सूक्तमें कहा गया है, कि भिन्न देवोंके कार्य भिन्न नहीं, उनका महदेवत्वं एक है। प्राकृतिक कार्योंमें बहुत्वमय दिखाई पड़ रहा है और एक सत्ताका अस्तित्व अनुमान करना आधुनिक विज्ञान और दर्शनका विषय सिद्धान्त है। यह गूढ़ वैज्ञानिक तत्त्वका भी बीजांकुर है। हम पहले ही कह आये हैं, कि उपनिषद्की एक ओर जैसे शुद्धचैतन्यकी आलोचना हुई है, वैसे ही दूसरी ओर इस विशाल विश्वब्रह्माण्डके आकारप्रकार और कार्यकारी शृङ्खला देख इन सब द्रव्य और क्रियाओंके कारणतत्त्व-का निरूपण किया गया है। किन्तु उपनिषद् ग्रन्थका मुख्य उद्देश्य है—जीवके अन्तिम कल्याणोंका विकास कर परम श्रेय साधन।

ऋग्वेदमें जिन विश्वकर्माकी बात आई है, वह ब्राह्मणानुसार ये ही प्रजापति या परमात्मा माने जा सकते हैं। ऋग्वेदके १० मण्डलके ८१ और ८२ सूक्तमें इन विश्वकर्माके स्वरूप और कार्य आदि विवृत हुए हैं। जो इस विशाल विश्वब्रह्माण्डके कर्ता और नियन्ता हैं, जो सर्वान्तर्यामी और सर्वद्रष्टा हैं, वे ही विश्वकर्मा हैं। ऋषि कहते हैं—

"य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत् पिता नः।

स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ आविवेश॥१॥

किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत् स्वित्कथासीत्।

यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः॥२॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।

सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः॥३॥

किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः।

मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन्॥४॥

या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा।

शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः॥५॥

विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम्।

मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु॥६॥

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्य हुवेम।

स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा"॥७॥

१। अर्थात् हम लोगोंके पिता जो ऋषि हैं, जो विश्व भुवनमें होम करते बैठे थे, उन्होंने आशीर्वादके साथ धनकी कामना कर प्रथमागत व्यक्तियोंको आच्छादन कर पीछे परवर्तियोंमें अनुप्रवेश किया।

२। सृष्टिकार्यमें उनका अधिष्ठान, अर्थात् आश्रय स्थान कहां था? किस उपायसे किस तरह उन्होंने सृष्टिकार्य आरम्भ किया? उन विश्वकर्मा, विश्वद्रष्टा देवने किस स्थानमें रह पृथ्वी निर्माण कर आकाश महिमासे विस्तारित किया।

श्वेताश्वतरमें भी यह प्रमाण-वचन मुण्डककी भाँति लिया है। बृहदारण्यकोपनिषद्में भी लिखा है—

"तानिन्द्रो सुपर्णो भूत्वा वायवे प्रायच्छत्।" (३।३।२)

इसका अर्थ यह है, कि इन्द्रने (अश्वमेध यज्ञकी अग्नि) पक्षीका रूप धारण कर पारीक्षितोंको वायुके निकट समर्पण किया था।

इस उपनिषद्का "सुपर्ण" परमात्मा अर्थबोधक शब्द नहीं होता, इस उपनिषद्के दूसरे स्थानमें भी (४।३।१०) "सुपर्ण" शब्दका प्रयोग है। इसका भी
ऋग्वेदके मतानुयायी मुण्डकमें और श्वेताश्वतरमें
यह सुपर्ण शब्दकी तरह परमात्मा अर्थमें व्यवहार
हुआ। किन्तु मुण्डककी उक्त श्रुति परवर्तीकाल
रुद्रागमनमें भी गृहीत हुई है। ऋग्वेदमें इसका
परमात्मा अर्थमें ही व्यवहार हुआ है। सुतरां
"एक सुपर्ण" कहा गया है। उपनिषद्में
कर सकते
निर्णय है
जीवात्मा दोनों ही अर्थोंमें "सुपर्ण" शब्दका
बुद्धिस्फूर्ति
संहिताके दशम मण्डलका १२१वां सूक्त
७। का
हिरण्यगर्भ है। 'क' नामधारी प्रजापति
पुकार रहा
इन सूक्तोंके देवता हैं। इस सूक्तमें दश
अधिपति हैं,
एक सूत्रमें एकेश्वरवाद सूचित हुआ है
कल्याणोंके उ.
द्वितीय देवताकी महिमा कीर्तन की गई
नमस्कार है, ये
श्रुतिकी तरह इस सूक्तके ऋषि कहते
हमलोगोंको दर
हैं केवल हिरण्यगर्भ ही विद्यमान थे।
इस कौशल
के अधीश्वर हैं। यह पृथ्वी और आकाश
तत्त्व ज्ञान दे
उनसे अपने स्थानमें स्थापित हुआ।
का पर्यवेक्षण
दान किया है, मन दिया
सोला देखो

है। उन्हींका आश्रय कर सूर्यादि आकाशमें प्रकाश है। इस सूक्तके हिरण्यगर्भने ही उपनिषद्में ब्रह्मत्वको प्राप्त किया है।

ऋग्वेदके अनन्तभाण्डारमें वेदान्ततत्त्वका इस प्रकार कितने असंख्य बीज छिपे हैं, कि वेदाध्ययननिपुण सूक्ष्मदर्शी सुपण्डितोंको भी उसका पता न लगा है। यहां एक बहुत छोटा उदाहरण दिया गया। अन्यान्य संहितासे भी वेदान्तकी बीजीभूत वैदिक श्रुति उदाहरणरूपमें उद्धृत की जा सकती है। किन्तु विस्तार हो जानेके भयसे यहां उसका जिक्र नहीं किया गया।

कहनेका तात्पर्य यह, कि सुप्राचीन वैदिक युगके ऋषियोंके हृदयमें जिन परम तत्त्वोंका सूक्ष्मभाव आविर्भूत हुआ था, उपनिषद्में उसीका विवरण है, वही अनेक प्रकारसे कहा गया है। इन्द्र, अग्नि, वायु, वरुण आदि विविध देवता भिन्न भिन्न नामोंसे उपासित होने पर भी उनमेंसे प्रत्येक ही कार्य-भेदसे दूसरे दूसरे नामोंसे अभिहित होते थे अर्थात् एक इन्द्र ही जिनको कभी वायु, कभी अग्नि आदि नामोंसे स्तुति की जाती थी, ऋग्वेदसे उसका यथेष्ट प्रमाण दिखलाया गया है। बृहदारण्यकोपनिषद् आदिमें भी एक देवता दूसरे देवताके नाम पर संज्ञित होनेका विषय देखा जाता है। एक परम तत्त्व ही जो कार्य-भेदसे भिन्न भिन्न नामों पर अभिहित होते थे, ऋग्वेदसे इसका भी प्रमाण दिखलाया गया है। यह देवता जो अनन्त शक्तिशाली हैं तथा इनसे किस प्रकार यह विशाल विश्वब्रह्माण्ड प्रादुर्भूत हुआ है, ये दो तत्त्व भी ऋग्वेदमें आलोचित हुए हैं। जीवतत्त्वके सम्बन्धमें भी दशममण्डलके १२१वें

२। जो हो गया है अथवा जो होगा, वे सब यही पुरुष हैं। वे अमृतत्वके अधिकारी होते हैं क्योंकि वे अन्न द्वारा अतिरोहण करते हैं।

३। इनकी ऐसी महिमा है, किन्तु वे इससे भी बढ़कर हैं, विश्वब्रह्माण्ड इनका एक पाद मात्र है, आकाशमें अमर अंश इनके तीन पाद हैं।

४। पुरुष अपना तीन पाद (या अंश) ले कर ऊपर चले गये। इनका चतुर्थ अंश यहीं रह गया। तदनन्तर वे भोजनकारी और भोजनरहित (चेतन और अचेतन) नाना वस्तुओंमें व्याप्त हुए।

५। इनसे विराट् तथा विराट्से यही पुरुष उत्पन्न हुए। उन्होंने जन्म ले कर पश्चाद्भाग और पुरोभागसे भूमिको अतिक्रम किया।

१२। इनका मुख ब्राह्मण हुआ, दो बाहु राजन्य हुईं, जो ऊरु था वह वैश्य हुआ, दो चरणोंसे शूद्र उत्पन्न हुआ।

१३। मनसे चन्द्र, चक्षुसे सूर्य, मुखसे इन्द्र और अग्नि तथा प्राणसे वायु उत्पन्न हुए।

१४। नाभिसे आकाश, मस्तकसे स्वर्ग, दो चरणोंसे भूमि, श्रोत्रसे दिक् और ऐसे ही भुवन बनाये गये।

ऋग्वेदके यह पुरुष कहीं 'विश्वकर्मा', कहीं हिरण्यगर्भ, कहीं इन्द्र, अग्नि और वरुण आदि नामोंसे अभिहित हुए हैं। ऋग्वेदमें किस प्रकार सृष्टिविज्ञान है,—ऋग्वेदके केवल एक सूक्तमें नहीं—अनेक सूक्तोंमें नाना प्रकार सृष्टिका विवरण लिखा है। यहां भी हम इस सम्बन्धमें एक ऋक् उद्धृत करते हैं—

"[illegible]

[illegible]"

([illegible])

इस सूक्तमें [illegible] पृथिवी करके तब ही [illegible] [illegible] सम्मिलित [illegible] पृथिवी सृष्टि की। अब इसकी [illegible] दूर हो गई, तब द्युलोक और भूलोक पृथक् हो गया।

इससे [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुआ है। [illegible]

[illegible] है। यहां भी [illegible] हुआ है। इस सूक्तमें तृतीय ऋक् [illegible] [illegible] है, यथा—

"यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद [illegible]

यो देवानां नामधा एक एव तं सम्प्रश्नं भुवना [illegible]"

अर्थात् जो हम लोगोंके जन्मदाता [illegible] विधाता हैं, जो विश्वभुवनके सभी धा[illegible] जो एक हो कर भी सभी देवोंका नाम [illegible] दूसरे भुवनके लोगोंमें भी उनका [illegible] होता।"

"जो अनेक देवोंके अनेक नाम [illegible] एक" ये ही वेदवाक्योंके [illegible] हैं। [illegible] वैदिक समाजके [illegible] इससे [illegible] क्या हो सकता? इस सूक्तकी छठी [illegible]

"[illegible]

अर्थात् उसी 'अज' पुरुषके [illegible] भुवनको अवस्थान किया था।

यह सब ऋक् [illegible] एक [illegible] भी कहलाता है। यथा—

"[illegible]

[illegible]"

यह उसी वस्तुसे हुआ, उससे [illegible] भुवनको देखा। परिणत सृष्टि द्वारा [illegible] है। यह विश्वपतिको [illegible] [illegible] करते आदतो हैं।

यह यहां एक है, उसका [illegible] [illegible] सबसे प्राचीन है। [illegible]

"[illegible]"

यह यहां एक ही है, जो नहीं, [illegible] [illegible] द्वारा इसके बहुत्वको कल्पना [illegible]

इस सूक्तमें या [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

श्वेताश्वतरमें भी यह प्रमाण-वचन मुण्डककी भाषा
में लिखा है। बृहदारण्यकोपनिषद्‌में भी लिखा है—

"तानिन्द्रो सुपर्णो भूत्वा वायवे प्रायच्छत्।" (३।३।२)

इसका अर्थ यह है, कि इन्द्रने (अश्वमेध यज्ञका अग्नि) पक्षीका रूप धारण कर पारीक्षितोंको वायुके निकट समर्पण किया था।

इस उपनिषद्‌का "सुपर्ण" परमात्मा अर्थबोधक मालूम नहीं होता, इस उपनिषद्‌के दूसरे स्थानमें भी (४।३।१०) "सुपर्ण" शब्दका प्रयोग है। इसका भी ... ऋग्वेदके मतानुयायी मुण्डकमें और श्वेताश्वतरमें ... प्रयुक्त सुपर्ण शब्दकी तरह परमात्मा अर्थमें व्यवहार ... हुआ। किन्तु मुण्डककी उक्त श्रुति परवर्तीकाल ... ब्राह्मणग्रन्थमें भी गृहीत हुई है। ऋग्वेदमें इसका ... परमात्मा अर्थमें ही व्यवहार हुआ है। सुतरां ... में "एक सुपर्ण" कहा गया है। उपनिषद्‌में ... जीवात्मा दोनों ही अर्थमें "सुपर्ण" शब्दका ...

... संहिताके दशम मण्डलका १२१वां सूक्त ... स्तोत्रमय है। 'क' नामधारी प्रजापति ... ही श्लोकके देवता हैं। इस सूक्तमें देव ... एक सूक्तमें एकेश्वरवाद सूचित हुआ है ... अद्वितीय देवताकी महिमा कीर्तन की गई ... श्रुतिकी तरह इस सूक्तका ऋषि कहते ... केवल हिरण्यगर्भ ही विद्यमान थे। ... के अधीश्वर हैं। यह पृथ्वी और आकाश ... उन्होंने अपने स्थानमें स्थापित हुआ। ... दिया है, बल दिया है, उनकी आज्ञा ... पालन करते हैं। उनकी छाया अमृत है। उन्हींका आश्रय कर सुवर्णादि आकाशमें चमकते हैं। इस सूक्तके हिरण्यगर्भने ही उपनिषद्‌में ब्रह्मपद प्राप्त किया है।

ऋग्वेदके अनन्तभाण्डारमें वेदान्तशास्त्रका इस प्रकार कितने असंख्य बीज छिपे हैं, कि वेदाध्ययननिपुण सूक्ष्मदर्शी सुपण्डितोंको भी उनका पता न लगा है। यहां एक बहुत छोटा उदाहरण दिया गया। अन्यान्य संहितासे भी वेदान्तका बीजीभूत वैदिक श्रुति उदाहरणरूपमें उद्धृत की जा सकती है। किन्तु विस्तार हो जानेके भयसे यहां उसका जिक्र नहीं किया गया।

कहनेका तात्पर्य यह, कि सुप्राचीन वैदिक युगके ऋषियोंके हृदयमें जिन परम तत्त्वोंका सूक्ष्मज्ञान आविर्भूत हुआ था, उपनिषद्‌में उसीका विवरण है, वहां अनेक प्रकारसे कहा गया है। इन्द्र, अग्नि, वायु, वरुण आदि विविध देवता भिन्न भिन्न नामोंसे उपासित होने पर भी उनमेंसे प्रत्येक ही कार्य-भेदसे दूसरे दूसरे नामोंसे अभिहित होते थे अर्थात् एक इन्द्र ही जिनको कभी वायु, कभी अग्नि आदि नामोंसे स्तुति की जाती थी, ऋग्वेदसे उनका यथेष्ट प्रमाण दिखलाया गया है। बृहदारण्यकोपनिषद् आदिमें भी एक देवता दूसरे देवताके नाम पर संज्ञित होनेका विषय देखा जाता है। एक परम तत्त्व ही जो कार्य-भेदसे भिन्न भिन्न नामों पर अभिहित होते थे, ऋग्वेदसे इसका भी प्रमाण दिखलाया गया है। यह देवता जो अनन्त शक्तिशाली है तथा इनसे किस प्रकार यह विशाल विश्वब्रह्माण्ड प्रादुर्भूत हुआ है, ये दो तत्त्व भी ऋग्वेदमें आलोचित हुए हैं। जीवतत्त्वके सम्बन्धमें भी ऋग्वेदके दशम मण्डलके १२१वें सूक्तमें इसमें संक्षिप्त ... ...

यह यथार्थ वक्ता जो कहते हैं, वह सफल भी होता है। आत्माकी ही प्रिय बुद्धिसे उपासना करेगो। जो आत्माको ही प्रियबुद्धिसे उपासना करते हैं, उनकी प्रियवस्तु कभी भी मरणशील हो नहीं सकती।

इसके बाद जो लिखा गया है, उसका मर्म इस तरह है—'ब्रह्मविषयिणी ब्रह्मविद्या द्वारा सब मनुष्य सफल होंगे अर्थात् सर्वभूतमें आत्माका दर्शन करें, ऐसा ही साधारणगण समझते हैं, वह ब्रह्म क्या है? और वे क्या वह ज्ञानलाभ कर चुके हैं, जिस ज्ञानसे वे सफल हुए हैं?' ॥९॥

"सृष्टिके पहले ये सभी ब्रह्ममय थे। ब्रह्म अपनेको मैं ब्रह्म हूं अर्थात् सर्वशक्तिसमन्वित जानते थे। जो अपनेको ऐसा ब्रह्म समझते हैं, इसलिये वे सर्वमय होते हैं। देवताओंमें भी जो अपनेको उसी ब्रह्मकी शक्ति कह कर विदित होते हैं, ऋषियों और मनुष्योंमें भी आत्मतत्त्वका सर्वमयत्व सिद्ध होता है। अतएव उसी ब्रह्मका दर्शन कर तदात्मत्वसिद्धित्व प्रयुक्त होता रहता है। अतएव उसी ब्रह्मको दर्शन कर तदात्मत्वसिद्धिकत्व प्रयुक्त अर्थात् अपनी भिन्नवृत्तिका लयीभावप्राप्त उनसे अभेदज्ञानमें वामदेव ऋषिने 'मैं मनु हुआ था, मैं सूर्य' इस तरह वाक्य प्रयोग किया था। मनुष्य तत्त्वज्ञ हों। किन्तु उनको अवज्ञा न कर ब्रह्मशक्तिज्ञानसे यदि कोई यथायोग्य श्रद्धा करें, वे भी उनके कार्यमें किसी तरहका विघ्न न डाल तत्त्वज्ञानोपयोगी उपदेश दे कर अभीष्ट सिद्धिके लिये साहाय्य करते हैं' ॥१०॥

"ब्रह्म वा इदमग्र आसीदेकमेव" इत्यादि बृहदारण्यक श्रुतिका भाव हमने इससे पहले ऋग्वेदमें बहुत बार उद्धृत किये हैं। फिर इसके बाद ही कहा गया है "आत्मैवेदमग्र आसीदेक एव" सुतरां जो ब्रह्म है, वे आत्मा हैं। आत्मतत्त्व और ब्रह्मतत्त्व एक ही है, ऐसा उपनिषद्का सिद्धान्त है। "अहं ब्रह्म अस्मि" ऐसा ज्ञान ही आत्मा और ब्रह्ममें अभेददर्शनका मूल साधन है। उल्लिखित छन्दोंमें इन उपनिषद् तत्त्वकी संक्षिप्त व्याख्या की गई है। बृहदारण्यक उपनिषद् शुक्लयजुर्वेदके अन्तर्गत है। इसका सविशेष परिचय वेद शब्दमें देखना चाहिये। फिर ईशोपनिषद्में भी हम ऐसी ही भावात्मक श्रुति देखते हैं। इस उपनिषद्का सोलहवां मन्त्र यह है—

"पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह तेजो।
यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः
सोऽहमस्मि ॥"

वर्णन देखनेमें [illegible] वैदिक ऋषि [illegible] इनके अनुरूप [illegible] करते हुए दृष्टान्त देते थे। इस प्रकार वह कुछ काल तक नहीं चलने। किन्तु [illegible] एक [illegible] "एकमेवा-द्वितीयम्" तत्त्वके अनुसन्धानमें प्रवृत्त हुए। इस अनुसन्धानके फलसे ऋषियोंके हृदयमें जो तत्त्व प्रति-भासित हुआ, वही अद्वैत है, [illegible] [illegible] है। ऋषियोंके हृदयमें जब यह ब्रह्म [illegible] प्रकट हुआ, तब वे अद्वैत तत्त्वके एक [illegible] कहने लगे।

१। "यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥४॥

२। यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥५॥

३। यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥६॥

४। यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥७॥

५। यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥८॥
(केनोपनिषद् प्रथम खण्ड)

अर्थात् जो वाक्य द्वारा वाणीरूपसे प्रकट नहीं हुए, किन्तु जिनसे प्रकाशित हो कर पुरुष वाक्योच्चारण करते हैं, तुम उन्हींको ब्रह्म जानना, जिसकी उपासना की जाती है, वह ब्रह्म नहीं है। (४)

मन द्वारा जिनका मनन नहीं होता, किन्तु जिनसे मनका विषय जाना जाता है, उन्हींको ब्रह्म जानना, जिनकी उपासना की जाती, वह ब्रह्म नहीं है। (५)

जिनको चक्षु द्वारा देखा नहीं जाता, किन्तु जो चक्षुको भी देखते हैं, उन्हींको ब्रह्म जानना, जिनकी उपासना होती है, वे ब्रह्म नहीं हैं। (६)

जो कानोंसे [illegible] नहीं, किन्तु जो श्रवणेन्द्रियके भी [illegible] हैं, उन्हींको ब्रह्म जानना, जिनकी उपासना होती है, वह ब्रह्म नहीं। (७)

जो प्राणके [illegible] नहीं, किन्तु जो प्राणको [illegible] हैं, उन्हींको ब्रह्म जानना; जिनकी उपासना की जाती है, वे ब्रह्म नहीं हैं। (८)

केनोपनिषद्में अद्वैत निर्दिष्ट हुआ है। ईशो-पनिषद्में श्रुतिने कहा है, "[illegible]" [illegible] [illegible] [illegible] अर्थात् जो [illegible] और [illegible] है, उनको ब्रह्म [illegible] इस [illegible] अनुभव करते हैं।

बृहदारण्यक कहते हैं—

"योऽन्यां देवतामुपास्ते अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेवं स देवानाम्। यथा ह वै बहवः पशवो मनुष्यं भुञ्ज्युरेवमेकैकः पुरुषो देवान् भुनक्ति [illegible] (बृ० आ० उ० १।४।१०)

अर्थात् जो एक एक भिन्नभिन्न [illegible] एक एक [illegible] कर उनकी उपासना करते हैं, वे परम तत्त्वके ज्ञानसे वञ्चित हैं। क्योंकि [illegible] विशिष्ट परिच्छिन्न आत्मा एक एक विशेषताके विशि-ष्ट होता है। [illegible] उपाधि [illegible] परित्याग कर केवल एक आत्माकी ही उपासना करना चाहिए। आत्मा ही सबोंका [illegible] है। आत्मामें ही सभी प्रति-ष्ठित हैं। जिस प्रकार [illegible] पशुका [illegible] जाता है, उसी प्रकार [illegible] [illegible] अनु-[illegible] कर लिया देता है। [illegible] प्राप्त करते होते [illegible] होते हैं। जो ऐसा जानते हैं, वे [illegible] करते हैं और [illegible] होते हैं।

बृहदारण्यक और भी कहते हैं—"तदेतत् प्रेयः पुत्रात् प्रेयो वित्तात् प्रेयोऽन्यस्मात् सर्वस्मादन्तरतरं यदयमात्मा। स योऽन्यमात्मनः प्रियं ब्रुवाणं ब्रूयात् प्रियं रोत्स्यतीतीश्वरो ह तथैव स्यादात्मानमेव प्रियमुपासीत स य आत्मानमेव प्रियमुपास्ते न हास्य प्रियं प्रमायुकं भवति।" (बृ० आ० उ० १।४।८)

यह आत्मा सब वस्तुओंसे अन्तरतम है, [illegible] यह पुत्रसे, वित्तसे [illegible] अन्यान्य सब वस्तुओंसे प्रियतर है। जो आत्मासे अन्यको प्रिय [illegible] करते हैं, वे [illegible] करते हैं, कि [illegible] [illegible] यह प्रिय वस्तु तुम्हारे [illegible] [illegible] है अर्थात् [illegible], [illegible] है, वह [illegible] [illegible] है।

यह यथार्थ वक्ता जो कहते हैं, वह सफल भी होता है। आत्माको ही प्रिय बुद्धिसे उपासना करेगो। जो आत्माको ही प्रियबुद्धिसे उपासना करते हैं, उनकी प्रियवस्तु कभी भी मरणशील हो नहीं सकती।

इसके बाद जो लिखा गया है, उसका मर्म इस तरह है—'ब्रह्मविद्यिणो ब्रह्मविद्या द्वारा सब मनुष्य सफल होंगे अर्थात् सर्वभूतमें आत्माका दर्शन करें, ऐसा ही आचार्यगण समझते हैं, वह ब्रह्म क्या है? और वे क्या वह ज्ञानलाभ कर चुके हैं, जिस ज्ञानसे वे सफल हुए हैं?' ॥६॥

"सृष्टिके पहले ये सभी ब्रह्ममय थे। ब्रह्म अपनेको मैं ब्रह्म हूं अर्थात् सर्वशक्तिसमन्वित जानते थे। वे अपनेको ऐसा ब्रह्म समझते हैं, इसलिये वे सर्वमय होते हैं। देवताओंमें भी जो अपनेको उसी ब्रह्मको शक्ति कह कर विदित होते हैं, ऋषियों और मनुष्योंमें भी आत्मतत्त्वका सर्वमयत्व सिद्ध होता है। अतएव उसी ब्रह्मका दर्शन कर तदात्मस्वरूपित्व प्रयुक्त होता रहता है। अतएव उसी ब्रह्मको दर्शन कर तदात्मस्वरूपित्व प्रयुक्त अर्थात् अपनी निखिलरूपिता तद्धीनत्वयशतः उनसे अभेदज्ञानमें वामदेव ऋषिने 'मैं मनु हुआ था, मैं सूर्य हुआ था' इस तरह वाक्य प्रयोग किया था।

'अतएव इस समय भी जो ब्रह्मशक्तिरूप मैं शक्तिमत् ब्रह्मसे अभिन्न हूं', इस प्रकार विदित होते हैं, वे अपनेको सर्वमय देखते हैं। उनके सामने देवता भी महायोगी नहीं विवेचित होते और उनके किसी कार्यमें विघ्न और बाधा डालनेमें समर्थ नहीं होते। क्योंकि वे सर्वात्माके साथ मिल कर इन सबको आत्मा हो जाते हैं। जिसमें मैं, दूसरा इस तरहका भेदज्ञान है और इसी ज्ञानसे जो देवान्तरकी उपासना करते हैं, वह अतत्त्वज्ञ व्यक्ति है। मनुष्यके लिये जैसे गाय आदि पशु हैं, वैसे ही देवताओंके लिये अतत्त्वज्ञ व्यक्ति हैं। पशु जैसे मनुष्योंके कार्यसाधक हैं, अतत्त्वज्ञ व्यक्ति भी देवताओंके वैसे ही कार्यसाधक हैं। एक पशुको नाशसे जैसे अनिष्ट होता है, वैसे ही एक मनुष्यके तत्त्वज्ञ होनेसे देवताओंका अनिष्ट होता है। इसीलिये देवगण अपने अप्रिय बोधसे ऐसा नहीं चाहते, कि मनुष्य तत्त्वज्ञ हों। किन्तु उनकी अवज्ञा न कर ब्रह्मशक्तिज्ञानसे यदि कोई यथायोग्य श्रद्धा करें, वे भी उनके कार्यमें किसी तरहका विघ्न न डाल तत्त्वज्ञानोपयोगी उपदेश दे कर अभीष्ट सिद्धिके लिये साहाय्य करते हैं" ॥१०॥

"ब्रह्म वा इदमग्र आसीदेकमेव" इत्यादि बृहदारण्यक श्रुतिका भाव हमने इससे पहले ऋग्वेदमें बहुत बार उद्धृत किये हैं। फिर इसके बाद ही कहा गया है "आत्मैवेदमग्र आसीदेक एव" सुतरां जो ब्रह्म है, वे आत्मा हैं। आत्मतत्त्व और ब्रह्मतत्त्व एक ही है, ऐसा उपनिषद्का सिद्धान्त है। "अहं ब्रह्म अस्मि" ऐसा ज्ञान ही आत्मा और ब्रह्ममें अभेददर्शनका मूल साधन है। उल्लिखित छत्रोंमें इस उपनिषद् तत्त्वकी संक्षिप्त व्याख्या की गई है। बृहदारण्यक उपनिषद् शुक्ल यजुर्वेदके अन्तर्गत है। इसका सविशेष परिचय वेद शब्दमें देखना चाहिये। फिर ईशोपनिषद्में भी हम ऐसी ही भावात्मक श्रुति देखते हैं। इस उपनिषद्का सोलहवां मन्त्र यह है—

"पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्यव्यूहरश्मीन् समूह तेजो।
यत्ते रूपं कल्याणतमन्तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः
सोऽहमस्मि॥"

अर्थात् हे पूषन्, हे यम, हे सूर्य, हे प्रजापते, आलोक का विस्तार करो। मुझको उसी आलोकमें प्रविष्ट करो। मानो मैं तुम लोगोंमें ही प्रविष्ट होऊं। जिससे मैं तुम्हारी मङ्गलमयी मूर्त्ति देख सकूं। वहां जो पुरुष हैं, वे पुरुष ही मैं हूं।

यहां आत्मा या ब्रह्मके परिवर्त्तनमें पुरुषकी बात कही गई। हम ऋग्वेदके दशम मण्डलके ९० सूक्तमें इस पुरुषका परिचय पाते हैं। सुविख्यात भाष्यकार रामानुजने भी इस उपनिषद्को "मन्त्रविद्या" कहा है। उन्होंने कहा है, कि यद्यपि "ईशावास्य" उपनिषद्में सिर्फ मन्त्रमें १८ श्लोक ही श्रीमद्भगवद्गीताके १८ अध्यायके बीजस्वरूप हैं। जिस प्रकारसे वेदोक्त परमपुरुषको माना जाता है और जिस तरह उसको प्राप्त किया जा सकता है, इस उपनिषद्में उसका वर्णन है। ईशोपनिषद् वाजसनेय-संहिताके अन्तर्भुक्त

श्वेतकेतुके पिताने कहा, 'श्वेतकेतो ! तुम बारह वर्ष तक वेद पढ़ कर सर्ववेदविद् कह कर अहङ्कृत होते आ रहे हो। तुमसे मैं आज एक बात पूछता हूं। तुमने क्या अपने गुरुसे प्रकृत शिक्षा पाई है जिस शिक्षासे अश्रुत-श्रुत, अननुभूत, वस्तु अनुभूत और अज्ञात ज्ञात होते हैं ?' जैसे—

"येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातमिति ?"

इस पर श्वेतकेतुने विस्मित हो कर कहा—"वह क्या भगवन् ! वह शिक्षा कैसी है ?"

इस प्रश्नके उत्तरमें श्वेतकेतुके पिताने कहा—मृत्पिण्ड देखते ही मृत्तिका द्वारा प्रस्तुत सब द्रव्योंका तत्त्व जाना जाता है। मृत्तिका द्वारा प्रस्तुत भिन्न भिन्न नामों द्वारा जितनी वस्तुएं चाहे क्यों न हो, वे सब पदार्थ मृत्तिकाके सिवा कुछ नहीं है। नाम केवल वाचारम्भण-विकार है—केवल मृत्तिका ही सत्य है।

"यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्याद्वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्।" (छा० उ० ६।१।४)

इसी तरहके और भी तीन उदाहरण दे पिताने पुत्रको सारतत्त्व समझा दिया। पुत्र श्वेतकेतु इस विषय पर और भी सुननेके लिये उत्सुक हुए। इस पर पिताने कहा,—

"सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।

तद्धैक आहुरसदेवेदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तस्मादसतः सज्जायते।"

अर्थात् आदी वह एक अद्वितीय वस्तु थी। कुछ लोग कहते हैं, पहले कुछ भी न था। इसके बाद असत्से सत् हुआ। इसके बाद कहा जाता है, कि यह किस तरह सम्भव हो सकता है, कि असत्से किस प्रकार सत्की उत्पत्ति होती है। असल बात यह है, कि इसमें सन्देह नहीं, कि सृष्टिसे पहले एक अद्वितीय पदार्थ ही विद्यमान था। इसके बाद यह "एकमेवाद्वितीयम्" पदार्थसे किस तरह इस विश्वकी सृष्टि हुई। छान्दोग्य उपनिषदमें इसकी आलोचना की गई है। जैसे—

"तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत तत्तेज ऐक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तदपोऽसृजत। तस्माद्यत्र क्व च शोचति स्वेदते वा पुरुषस्तेजस एव तदध्यापो जायन्ते।"

छठे प्रपाठकमें हमने यहां जो श्रुतियां उद्धृत की हैं, वे ही ब्रह्मसूत्रके प्रथम कई सूत्रकी अवलम्बन हैं। इससे "जन्माद्यस्य यतः" और "ईक्षतेर्नाशब्दम्" इन दो सूत्रोंका अनुसन्धान मिल रहा है।

"आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत् किञ्चन मिषत् स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति" इस तरहकी श्रुति अन्यान्य उपनिषदोंमें भी दिखाई देती है। ये सब श्रुतियां उपनिषदोंमें विकीर्ण भावसे वर्तमान हैं। भगवान् ब्रह्मसूत्रकारने इन सब श्रुतियोंको सूत्राकारमें संग्रह किया था। इसके बाद इस विषयमें विस्तृत रूपसे आलोचना की जायेगी। इस प्रपाठकके आठवें खण्डके अन्तमें श्वेतकेतुके पिता कहते हैं,—

"स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं तत् सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति।"

यही औपनिषद् ब्रह्मतत्त्व है, यही औपनिषद् आत्म-तत्त्व है। छान्दोग्य औपनिषदमें वेदान्तके गूढ़ गम्भीर अनन्त तत्त्व निहित हैं। नीचे कई श्रुतियां उद्धृत की गई,—

१। "यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखम्" (७म प्र० २३ खण्ड। १)

अर्थात् भूमा ही सुखस्वरूप है, अल्पमें सुख नहीं है, भूमा ही सुख है।

२। "यत्र नान्यत् पश्यति नान्यत् शृणोति नान्यद् विजानाति, स भूमाऽथ यत्रान्यत् पश्यत्यन्यत् शृणोत्यन्य-द्विजानाति तदल्पम्। यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यम्।" (७म प्रपाठक २४ ख० १)

अर्थात् जहां जिसके सिवा अन्य कुछ दिखाई नहीं देता, अन्य शब्द सुनाई नहीं देता, जिसके सिवा और कुछ जाना नहीं जाता, वही भूमा है। इसके विपरीत अल्प है। भूमा ही अमृत और अल्प ही मर्त्य है।

३। "स एवाधस्तात् स उपरिष्टात् स पश्चात् स पुरस्तात् स दक्षिणतः स उत्तरतः स एवेदं सर्वमित्यथातोऽहङ्कारादेश एवाहमेवाधस्तादहमुपरिष्टादहं पश्चादहं पुरस्तादहं दक्षिणतोऽहमुत्तरतोऽहमेवेदं सर्वमिति।" (७म प्र० २५ खण्ड। १)

श्वेतकेतुके पिताने कहा, "श्वेतकेतो ! तुम बारह वर्ष तक वेद पढ़ कर सर्ववेदवित् कह कर अहङ्कृत होते आ रहे हो। तुमसे मैं मात्र एक बात पूछता हूं। तुमने क्या अपने गुरुसे ऐसी शिक्षा पाई है जिस शिक्षासे अश्रुत-श्रुत, अननुभूत, अनुभूत और अज्ञात ज्ञात होते हैं ?' जैसे—

"येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातमिति ?"

इस पर श्वेतकेतुने विस्मित हो कर कहा—"वह क्या भगवन् ! वह शिक्षा कैसी है ?"

इस प्रश्नके उत्तरमें श्वेतकेतुके पिताने कहा—मृत्-पिण्ड देखनेसे ही मृत्तिका द्वारा प्रस्तुत सब द्रव्योंका तत्त्व जाना जाता है। मृत्तिका द्वारा प्रस्तुत भिन्न भिन्न नामों द्वारा जितनी वस्तुएं क्यों न हो, वे सब पदार्थ मृत्तिकाके सिवा कुछ नहीं है। नाम केवल वाचारम्भण-विकार है—केवल मृत्तिका ही सत्य है।

"यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्याद् वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्।" (छा० उ० ६।१।४)

इसी तरहके और भी तीन उदाहरण दे पिताने पुत्रको सारतत्त्व समझा दिया। पुत्र श्वेतकेतु इस विषय पर और भी सुननेके लिये उत्सुक हुए। इस पर पिताने कहा,—

"सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।
तद्धैक आहुरसदेवेदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तस्माद-
सतः सज्जायते।"

अर्थात् आदि यह एक अद्वितीय वस्तु थी। कुछ लोग कहते हैं, पहले कुछ भी न था। इसके बाद असत्से सत् हुआ। इसके बाद कहा जाता है, कि यह किस तरह सम्भव हो सकता है, कि असत्से किस प्रकार सत्की उत्पत्ति होती है। असल बात यह है, कि इसमें सन्देह नहीं, कि सृष्टिसे पहले एक अद्वितीय पदार्थ ही विद्यमान था। इसके बाद यह "एकमेवाद्वितीयम्" पदार्थसे किस तरह इस विश्वकी सृष्टि हुई। छान्दोग्य उपनिषद्में इसकी आलोचना की गई है। जैसे—

"तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत तत्तेज ऐक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तदपोऽसृजत। तस्माद्यत्र क्वच शोचति स्वेदते वा पुरुषस्तेजस एव तदध्यापो जायन्ते।"

छठे प्रपाठकमें हमने यहां जो श्रुतियां उद्धृत की हैं, वे ही ब्रह्मसूत्रके प्रथम कई सूत्रकी अवलम्बन हैं। इससे "जन्माद्यस्य यतः" और "ईक्षतेर्नाशब्दम्" इन दो सूत्रोंका अनुसन्धान मिल रहा है।

"आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत् किञ्चन मिषत् स ऐक्षत लोकान्नु सृजा इति" इस तरहकी श्रुति अन्यान्य उपनिषदोंमें भी दिखाई देती है। ये सब श्रुतियां उपनिषदोंमें विकीर्ण भावसे वर्त्तमान हैं। भगवान् ब्रह्मसूत्रकारने इन सब श्रुतियोंका सूत्राकारमें संग्रह किया था। इसके बाद इस विषयमें विस्तृत रूपसे आलोचना की जायेगी। इस प्रपाठकके आठवें खण्डके अन्तमें श्वेतकेतुके पिता कहते हैं,—

"स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं तत् सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति।"

यही औपनिषद् ब्रह्मतत्त्व है, यही औपनिषद् आत्म-तत्त्व है। छान्दोग्य औपनिषदमें वेदान्तके गूढ़ गम्भीर अधगम तत्त्व विवृत हैं। नीचे कई श्रुतियां उद्धृत की गईं,—

१। "यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखम्" (७म प्र० २३ खण्ड। १)

अर्थात् भूमा ही सुखस्वरूप है, अल्पमें सुख नहीं है, भूमा ही सुख है।

२। "यत्र नान्यत् पश्यति नान्यत् शृणोति नान्यत् विजानाति, स भूमाऽथ यत्रान्यत् पश्यत्यन्यत् शृणोत्यन्य-द्विजानाति तदल्पम्। यो वै भूमा तदमृतं अथ यदल्पं तन्मर्त्यम्।" (७म प्रपाठक २४ ख० १)

अर्थात् जहां जिसके सिवा अन्य कुछ दिखाई नहीं देता, अन्य शब्द सुनाई नहीं देता, जिसके सिवा और कुछ जाना नहीं जाता, वही भूमा है। इसके विपरीत अल्प है। भूमा ही अमृत और अल्प ही मर्त्य है।

३। "स एवाधस्तात् स उपरिष्टात् स पश्चात् स पुरस्तात् स दक्षिणतः स उत्तरतः स एवेदं सर्वमित्य-थातोऽहङ्कारादेश, एवाहमेवाधस्तादहमुपरिष्टादहं पश्चादहं पुरस्तादहं दक्षिणतोऽहमुत्तरतोऽहमेवेदं सर्वमिति।" (७म प्र० २५ खण्ड। १)

श्वेतकेतुके पिताने कहा, 'श्वेतकेतो! तुम बारह वर्ष तक वेद पढ़ कर सर्ववेदवित् बन कर अहङ्कृत होते आ रहे हो। तुमसे मैं मात्र एक बात पूछता हूं। तुमने क्या अपने गुरुसे प्रकृत शिक्षा पाई है जिस शिक्षासे अश्रुत श्रुत, अननुभूत, वस्तु अनुभूत और अज्ञात ज्ञात होते हैं?' जैसे—

"येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातमिति?"

इस पर श्वेतकेतुने विस्मित हो कर कहा—"वह क्या भगवन्! वह शिक्षा कैसी है?"

इस प्रश्नके उत्तरमें श्वेतकेतुके पिताने कहा—मृत्पिण्ड देखते ही मृत्तिका द्वारा प्रस्तुत सब द्रव्योंका तत्त्व जाना जाता है। मृत्तिका द्वारा प्रस्तुत भिन्न भिन्न नामों द्वारा जितनी वस्तुएं चाहे क्यों न हों, वे सब पदार्थ मृत्तिकाके सिवा कुछ नहीं है। नाम केवल वाचारम्भण-विकार है—केवल मृत्तिका ही सत्य है।

"यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्याद्वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्।" (छा॰ उ॰ ६।१।४)

इसी तरहके और भी तीन उदाहरण दे पिताने पुत्रको सारतत्त्व समझा दिया। पुत्र श्वेतकेतु इस विषय पर और भी सुननेके लिये उत्सुक हुए। इस पर पिताने कहा,—

"सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।
तद्धैक आहुरसदेवेदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तस्मादसतः सज्जायते।"

अर्थात् आदी वह एक अद्वितीय वस्तु थी। कुछ लोग कहते हैं, पहले कुछ भी न था। इसके बाद असत्से सत् हुआ। इसके बाद कहा जाता है, कि यह किस तरह सम्भव हो सकता है, कि असत्से किस प्रकार सत्की उत्पत्ति होती है। असल बात यह है, कि इसमें सन्देह नहीं, कि सृष्टिसे पहले एक अद्वितीय पदार्थ ही विद्यमान था। इसके बाद वह "एकमेवाद्वितीयम्" पदार्थसे किस तरह इस विश्वकी सृष्टि हुई। छान्दोग्य उपनिषद्में इसकी आलोचना की गई है। जैसे—

"तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत तत्तेज ऐक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तदपोऽसृजत। तस्माद्यत्र क्वच शोचति स्वेदते वा पुरुषस्तेजस एव तदध्यापो जायन्ते।"

छठे प्रपाठकसे हमने यहां जो श्रुतियां उद्धृत की हैं, वे ही ब्रह्मसूत्रके प्रथम कई सूत्रका अवलम्बन है। इससे "जन्माद्यस्य यतः" और "ईक्षतेर्नाशब्दम्" इन दो सूत्रोंका अनुसन्धान मिल रहा है।

"आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत् किञ्चन मिषत् स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति" इस तरहकी श्रुति अन्यान्य उपनिषदोंमें भी दिखाई देती है। ये सब श्रुतियां उपनिषदोंमें विकीर्ण भावसे वर्त्तमान हैं। भगवान् ब्रह्मसूत्रकारने इन सब श्रुतियोंको सूत्राकारमें संग्रह किया था। इसके बाद इस विषयमें विस्तृत रूपसे आलोचना की जायेगी। इस प्रपाठकके आठवें खण्डके अन्तमें श्वेतकेतुके पिता कहते हैं,—

"स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं तत् सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति।"

यही औपनिषद् ब्रह्मतत्त्व है, यही औपनिषद् आत्मतत्त्व है। छान्दोग्य उपनिषद्में वेदान्तके गूढ़ गम्भीर अपरम तत्त्व निहित हैं। नीचे कई श्रुतियां उद्धृत की गई,—

१। "यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखम्" (७म प्र॰ २१ खण्ड। १)

अर्थात् भूमा ही सुखस्वरूप है, अल्पमें सुख नहीं है, भूमा ही सुख है।

२। "यत्र नान्यत् पश्यति नान्यत् शृणोति नान्यद् विजानाति, स भूमाऽथ यत्रान्यत् पश्यत्यन्यत् शृणोत्यन्यद् विजानाति तदल्पम्। यो वै भूमा तदमृतं अथ यदल्पं तन्मर्त्त्यम्।" (७म प्रपाठक २४ ख॰ १)

अर्थात् जहां जिसके सिवा अन्य कुछ दिखाई नहीं देता, अन्य शब्द सुनाई नहीं देता, जिसके सिवा और कुछ जाना नहीं जाता, वही भूमा है। इसके विपरीत अल्प है। भूमा ही अमृत और अल्प ही मर्त्य है।

३। "स एवाधस्तात् स उपरिष्टात् स पश्चात् स पुरस्तात् स दक्षिणतः स उत्तरतः स एवेदं सर्वमित्यथातोऽहङ्कारादेश, एवाहमेवाधस्तादहमुपरिष्टादहं पश्चादहं पुरस्तादहं दक्षिणतोऽहमुत्तरतोऽहमेवेदं सर्वं सर्वमिति।" (७म प्र॰ २५ खण्ड। १)

दिये गये हैं। इनके सिवा "एष आदेशः। एष उपदेशः। एषा वेदोपनिषत् इत्यादि।" नाना प्रकारके गृह्यान्तरके उपदेशकी दृढ़ता प्रदर्शित हुई है।

इस उपनिषद्में सर्वत्र सुप्रसिद्ध कई ब्रह्मनिरूपणलक्षणश्रुति देखते हैं। जैसे—

"यतो वाचा निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान न बिभेति कदाचन॥"

विस्तार हो जानेके भयसे अधिक नहीं लिखा गया। फलतः तैत्तिरीय उपनिषद्के ब्रह्मानन्दवल्ली और भृगुवल्ली ये दोनों ही अंश उच्चतम औपनिषदी श्रुतिसे परिपूर्ण हैं। इस उपनिषद्की आनन्दतत्त्व श्रुति अति उपादेय है। हम नीचे दो श्रुतिको उद्धृत कर इस उपनिषद्का विशेषत्व दिखलाते हैं।

१। "रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।"

२। "आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, आनन्देन जातानि जीवन्ति, आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति।"

तैत्तिरीय उपनिषद्की ये दो उत्कृष्ट श्रुतियां वेदान्त ग्रन्थमें अनेक बार आई हैं। ब्रह्मसूत्रका "आनन्दमयोऽभ्यासात्" सूत्र इस आनन्दश्रुतिकी ही प्रतिध्वनि है। ये दो श्रुतियां वैष्णव धर्मकी मूल बीज हैं। इन्हीं दो श्रुतियोंसे वैष्णवोंके रसिकशेखर आनन्दमय श्रीभगवान् हैं; इन्हींसे उनका रास है और इन्हींसे उनकी आनन्दलीलाकी सैकड़ों उत्ताल तरङ्ग हैं! वेदान्तसूत्रके वैष्णव भाष्यकारोंने कई जगह ये दो उपनिषद्वाक्य उद्धृत किये हैं। मूलतत्त्वाभिव्यञ्जक प्रणवके माहात्म्यकीर्त्तनसे इस उपनिषद्का प्रारम्भ है, किन्तु ऋषि, अनुभवानन्दके गम्भीर, गम्भीरतर और गम्भीरतम स्तरमें जहां तक गये हैं, वहीं प्राकृतिक अभिव्यक्तिसे प्रगाढ़तर भावरसमें निमज्जित हो आनन्दलीलारसके चिर सुधास्वादके आस्वादनमें विभोर हुए हैं। इस अवस्थामें ब्रह्मपृच्छा स्वभावतः ही तिरोहित हो जाती है, केवल आनन्द-आस्वादनके लिये ही प्राण व्याकुल हो उठते हैं। साधनाके अनुसार ही सिद्धि है। ब्रह्मानन्दवल्लीमें ऋषि सचमुच आनन्दसागरमें निमज्जित हैं। अन्यान्य स्थानोंमें हम ब्रह्मको विविध नामोंसे अभिहित देखते हैं, कहीं वे पुरुष, कहीं हिरण्यगर्भ, कहीं वैश्वानर इत्यादि विविध नामोंसे अभिहित हुए हैं। किन्तु ऋषिगण जब ब्रह्मतत्त्वके गभीर स्तरमें पहुंचे, तब उन्होंने "ब्रह्मैव सुखम्" "आनन्दं ब्रह्म" "रसो वै सः" इत्यादि अनुभूतिमयी श्रुति द्वारा ब्रह्मशब्द अभिव्यक्त करनेकी चेष्टा की। साधक जगत्से किस प्रकार अन्तर्जगत्के गभीरतर प्रदेशमें प्रवेश कर ब्रह्मानन्दका उपभोग करता होता है, किस प्रकार वैदिक जगत्के सुखभोगकी कामनाका परित्याग कर रससुधानिधिके आनन्दरसमें निमज्जित होना पड़ता है, वैदिक साहित्यकी आलोचनाके बाद औपनिषद साहित्यके आलोचना-क्षेत्रमें प्रवेश करनेसे उस ब्रह्मानन्दकी विमल प्रतिच्छवि सहसा मानसनेत्रके सामने प्रतिभात होती है। वैदिक उपासनासे वेदान्तकी उपासनाके अनन्त आकाशमें हम उपास्यके जो अभिनव वस्तु देखते हैं, वह अभिनववत् प्रतीयमान होने पर भी वैदिक मन्त्रके अभ्यन्तर हमने उसका अति सूक्ष्म बीज देखा है; एकेश्वरवादका विपुल तत्त्व वैदिक ऋषियोंके हृदयमें नित्य प्रतिष्ठित था। सुतरां वैदिक उपासना और वेदान्तकी उपासनामें यह पार्थक्य आकस्मिक नहीं है। बहुत दिनोंसे तत्त्वज्ञ ऋषियोंके हृदयमें ब्रह्मतत्त्वकी प्रतिच्छवि धीरे धीरे समुद्भासित होती थी। उपनिषद् युगमें वह प्राकृतिक नियमकी तरह क्रमविकाशकी प्रणालीसे क्रमसे भारतीय ऋषिसमाजमें धीरे धीरे अभिव्यक्त होता था। हम तैत्तिरीय उपनिषद्में ही उसका पूर्ण विकाश देखते हैं।

बृहदारण्यकसे हम लोगोंने सुना है, "वे हमारे वित्तसे प्रिय हैं, पुत्रसे प्रिय हैं, जगत्में हम लोगोंका प्रियतम जो कुछ है, सभीको अपेक्षा वे हमारे प्रिय हैं।" मुण्डकका कहना है, "सत्यकी ही जय है, ब्रह्म उसी सत्यका परम निधान है। सूक्ष्मसे सूक्ष्मतर, दूरसे दूर, फिर निकटसे भी सन्निकट, वे आत्मारूपसे हम लोगोंके अति निकटवर्त्ती हैं, इनके समान निकटवर्त्ती और कुछ भी नहीं है।" मुण्डकने सत्यकी महिमा घोषित करते हुए कहा है—

इस सर्वभूतमें विराजमान कूटस्थ पुरुष चर्मचक्षुके अगोचर होने पर भी घोर प्रशान्त ध्यायमान ऋषियोंने ज्ञानचक्षुसे उन्हें प्रत्यक्ष साक्षात् पाया। इस प्रकार प्रत्यक्ष करके उन लोगोंने शिष्योंको उपदेश दिया—

"तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीराः
आनंदरूपममृतं यद्विभाति।" (मुण्डक २।२।७)

धीरगणने विज्ञाननेत्रसे देखा, कि यह आनन्द रूप अमृत वस्तु ऊपर, नीचे, बायें, दाहिने, आगे, पीछे सभी जगह विराजमान हैं। इस प्रकार ब्रह्मदर्शन होनेसे ही हृदयग्रन्थि भिन्न होती है, सभी संशय जाता रहता है, कर्मराशि क्षय होती है, यहां तक कि अविद्या या कर्मबीज सदाके लिये विनष्ट हो जाता है।

उपनिषद् मात्रसे ही हम इस प्रकार शिक्षा पाते हैं। उपनिषद्के इन सब सारतत्त्वके आधार पर ही वेदान्त-सूत्र ग्रथित हुआ है। ब्रह्मसूत्रकी आलोचना करनेमें सबसे पहले उसके मूलावलम्बन उपनिषद् शास्त्रकी आलोचना करना कर्त्तव्य है। हम इसके पहले कुछ सुप्रसिद्ध उपनिषदोंकी बात लिख चुके हैं। अभी कठोपनिषद्की दो एक बातोंकी आलोचना की जाती है। मृत्यु और नाचिकेत संवादप्रसङ्गमें कठोपनिषद्का उपदेश दिया गया है। अचिन्त्यपरैश्वर्य ब्रह्मके अद्भुत प्रभावका विषय इस उपनिषद्में दिखाई देता है। ऋषि कहते हैं—

"आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः
कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति।" (२।२१)

वे बैठे रहने पर भी बहुत दूर तक जाते हैं, शयन करने पर भी सभी जगह उनकी गतिविधि है, वे हर्षा-हर्ष उभय भावविशिष्ट हैं, "मद्" छोड़ कर कौन उन्हें जानेगा? इस शरीरमें जो अशरीरी हैं, अनवस्थित अनित्य पदार्थोंमें जो अवस्थित और अनित्य हैं, ऐसे ब्रह्मतत्त्वका ज्ञान हो जानेसे किसीको भी शोक नहीं [illegible] सकता। पाश्चात्य दार्शनिक पण्डित हार्बर्ट स्पेन्सर-ने अनेक वैज्ञानिक युक्तिकी सहायतासे यह साबित करने-की चेष्टा की है, कि इस अनन्त परिवर्त्तनमय विश्वके अन्तरालमें एक अद्वितीय अपरिवर्त्तनीय महाशक्ति अवश्य है। उस शक्तिके अवलम्बन पर ही इस विश्वजगत्का अस्तित्व है, यह विश्वजगत् उसी शक्तिका प्रकाश है तथा उसी शक्ति पर इस विश्वका विश्राम है। हार्बर्ट स्पेन-सरने यह कह कर अज्ञातसारसे कठोपनिषद्के वाक्योंको प्रतिध्वनित किया है। हम कठोपनिषद्में इन वाक्योंको परिस्फुट श्रुति उद्धृत कर वेदान्तशास्त्रकारोंकी गम्भीर गवेषणाका उदाहरण प्रकट करते हैं। ऋषि कहते हैं—

"एकोवशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्॥"

"नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनाना-
मेको बहूनाम् यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं येऽनु पश्यन्ति धीराः
स्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्॥" (५।१०-११)

आधुनिक विज्ञान सभी जगह शक्तिका एकत्ववाद स्थापन करनेकी चेष्टा करता है। हम इस उपनिष-द्वाक्योंमें इसका सुदृढ़ सिद्धान्त सूत्राकारमें देखते हैं। इस बालूके कणमें जिस शक्तिका अस्तित्व नित्यरूपसे प्रतिष्ठित है, वह विशाल हिमगिरि भी उसी शक्तिकी अभिव्यक्ति है। एक बिन्दु जलमें जिसकी सत्ता विद्य-मान है, उत्तालतरङ्गमालामय असीम अनन्त महासागर भी उन्हींकी सत्ताका साक्ष्यप्रदान करता है, तथा पता-में यह नक्षत्रमें कीट पतङ्गमें जड़ और चेतनमें इस एक ही शक्तिका भिन्न भिन्न प्रकाश है। कोकिलके कल कूजनमें, शिशुकी कोमल कलध्वनिमें जिस शक्तिके श्रवणहारि माधुर्य पर हम विमुग्ध होते हैं, वज्रके गर्जनसे भी उसी शक्तिकी लीला प्रकट होती है। जो शक्ति कुसुममें कोमलता कह कर अनुभूत होती है, वह शक्ति वज्रकी भी कठिनताका हेतु है। जो "आनन्दममृतरूपं विभाति" हैं, वे ही फिर "महद्भयं वज्रमुद्यतम्" हैं, अवनीत शिशुके अन्तर जो भयकी सङ्गीन मूर्त्तिके रूपमें प्रकाश होते हैं, वे फिर "भयाभां भयम्" "भयादग्निस्तपति, भयात्तपति सूर्यः। भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः" है। प्रत्यक्षमें जो अचिन्त्य रूप हैं,—मानव हृदयमें वे ही ज्ञानशक्तिरूपसे विराजमान हैं। दार्श-निक पण्डित हार्बर्ट स्पेन्सरने इन ब्रह्मविमुग्ध ज्ञानका [illegible] मात्र कर कहा है, कि शक्ति और विश्वके

ब्रह्म या आत्माका स्वरूप ।

वाजसनेय-उपनिषद् कहते हैं,—आत्मा सर्वव्यापक अखण्ड, अशरीरी, विशुद्ध, अपापविद्ध, कवि, त्रिकालज्ञ, मनीषी, सर्वदर्शी, विभु, सर्वोत्तम और स्वयम्भू हैं। बृहदारण्यक-उपनिषद् कहता है, कि वे सबसे प्रियतम हैं, ज्योतिके ज्योति हैं। विश्वब्रह्माण्ड उन्हीं पर स्थिर हैं। मुण्डक इस प्रकार कहते हैं—वे अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अव्यय, अरस, नित्य अगन्धवत्, अनादि अनन्त और परात्पर हैं। इन्हें जान लेनेसे मनुष्य मृत्युमुखमें पतित नहीं होते। श्वेताश्वतर उपनिषद्ने कहा है,—वे बृहत् होने पर भी बृहत्तर हैं, महत् होने पर भी महत्तर हैं, पूर्ण आनन्दमय हैं, विश्वके कर्त्ता और गोप्ता हैं। विश्वमें कोई भी उनसे बड़ा नहीं है और न कोई उनके समान ही है। वे अंगुष्ठके सदृश हैं। उनके हाथ पैर नहीं हैं, किन्तु वे ग्रहण कर सकते हैं। उनके कान नहीं है, पर सुनते हैं, चक्षु नहीं है, पर देखते हैं, वे सर्वज्ञ हैं, फिर भी उन्हें कोई देख नहीं सकता। वे अक्षय अज और सर्वव्यापी हैं। जो उन्हें जानते हैं, वे ही अनन्तशान्तिलाभ करते हैं, दूसरा कोई भी शांति लाभ नहीं कर सकता।

साक्षात्कारका साधन।

अन्यान्य वेदोपनिषदोंमें इसके स्वरूपको जो वर्णना की गई है तथा इन्हें लाभ करनेका जो उपाय दिखलाया गया है, पहले तो इसकी आलोचना हो चुकी है। किस प्रकार मनुष्य विमल आनन्दपथके पथिक होंगे, उसके लिये क्या उपाय अवलम्बन करना उचित है, बृहदारण्यकमें उसका एक उपदेशवाक्य कहा गया है। ऋषि कहते हैं, पवित्र कार्य द्वारा ही मनुष्य पवित्र होते हैं, कुत्सित कार्यसे अन्तरात्मा कुत्सित और कलुषित हो जाती है। जिसकी जैसी वासना है उसका वैसा ही सङ्कल्प है; जैसा सङ्कल्प वैसा ही कार्य और जैसा कार्य वैसा ही फल है; यथा—"यथाकारी यथाचारी तथा भवति काममय एवायं पुरुष इति, स यथाकामो भवति तत्क्रतुर्भवति यत् कर्म कुरुते। यत् कर्म कुरुते। तदभिसम्पद्यते।" (४ अ० ४ ब्रा० ५)

कठोपनिषद्में लिखा है—

"नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्॥" (२।२४)

अर्थात् कुकर्मोंसे अनिवृत्त, अशांत, असमाहित, अशांतमानस (सकाम द्वारा उद्विग्नचित्त) व्यक्ति आत्मज्ञान लाभ नहीं कर सकते।

ब्रह्मदर्शन ही जीवका पुरुषार्थ है—उपनिषद्ज्ञान उसका प्रधान है। किन्तु सूर्यकी किरण अंधकारको दूर करनेमें समर्थ होने पर भी जिस प्रकार प्रतिबंधकता-के लिये हम लोगोंको अंधकारका भोग करना पड़ता है, इस प्रकार उपनिषद्वाक्यके आधार पर साधन-पथसे पदार्पण करने पर भी पद पदमें हम लोगोंके सामने बाधा उपस्थित होती है। जिससे कुत्सित कर्मोंकी वासना त्याग नहीं करनेसे, ब्रह्मसाधनामें यत्न नहीं होनेसे, केवल शास्त्र पढ़नेसे विमल ब्रह्मज्ञान लाभ नहीं हो सकता। इस कारण साधनप्रिय ऋषिगण सरल प्राणसे देवताके निकट कातरकण्ठसे प्रार्थना करते थे—

"असतो मा सद्गमय, तमसो मा
ज्योतिर्गमय मृत्योर्माऽमृतं गमय।" (बृहदा० उ० १।३।२८)

अर्थात् 'हे देव! तुम मुझे असत् पथसे सत्-पथमें ले जाओ। अंधकारसे उजालेमें ले जाओ तथा मरण-के शासनसे अमृतके पथ पर ले जाओ।' फलतः वेदांतके सच्चिदानन्दमय राज्यमें घुसनेके लिये इस प्रकार विषयवैराग्यजनित व्याकुल प्रार्थना ही प्रधानतम प्रथम साधन है। शिष्यगण इस प्रार्थनाका अव-लम्बन करके ही आगे बढ़ते थे।

औपनिषदी उपासना।

उपास्यके स्वरूपके अनुसार ही उपासनाविधि होती है। उपासकके भाव और आत्मोत्कर्षके अनु-पातसे उपास्यदेव उपासकके हृदयमें प्रकट होते हैं। उपनिषद् युगके ऋषियोंको ज्ञाननेत्रके सामने जो उपास्य प्रतिभात हुआ, उनकी उपासनाविधि स्वभाव ही उठी। नाना प्रकारके बलिदान, होमाग्निकी पवित्र आहुति अथवा कल्पनाकी स्तुतिमय वाक्यावली उपासनाका अंग न समझी गई। एक ऋषिने इन्हें "अवाङ्-मनसगोचर" कह कर मौन हो गये, उनका स्पष्ट

निवृत्ति रूपमें प्रकाशित है।* अभिव्यक्ति अनन्त हैं, किन्तु शक्ति एक है तथा यह सभी शक्तिकी ही अभिव्यक्ति है। वेदमार्गेसवेन्द्रियुक्त यह विशाल विश्व ब्रह्माण्ड अनन्त आनन्द हृदयका विपुल रङ्गालय है, किन्तु इसका प्रत्येक पदार्थ एक अद्वितीय शक्तिकी क्रीड़ापुत्ली है। समग्र विश्व उन्हींकी मूर्त्ति है, किन्तु वे इससे पृथक् है। शिष्योंने इस पदार्थका तत्त्व जाननेके लिये श्रीगुरुके चरणतलमें बैठ कर प्रार्थना की थी—

"अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात् कृताकृतात्।
अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत् पश्यसि तद्वद ॥"

(कठवल्ली २।१४)

यही पदार्थ वेदान्तका आलोच्य है तथा वेदान्तका उपास्य है, इसीमें ही समस्त विश्व प्रतिष्ठित है। इससे कोई भी पदार्थ स्वतन्त्र नहीं रह सकता। सूर्य जिस प्रकार हम लोगोंके नयन हैं, किन्तु नेत्रकी त्रुटि या दोषसे जिस प्रकार सूर्य कलुषित नहीं होते, उसी प्रकार विश्वकी मलिनता भी विश्वेश्वरको स्पर्श नहीं कर सकती।" इस दृष्टान्तपर उपनिषदोंमें भी इसी प्रकार प्रज्ञानरूप देखते हैं। श्रीमद्भगवद्गीतामें इस तरहका वेदान्त सिद्धान्तात्मक सारतत्त्व अनेक प्रमाणोंमें दिखाई देता है।

वस्तुतः स्वरमें जैसे शब्द हैं और तिलमें जैसे तैलका अस्तित्व विद्यमान है, ठीक भी हम विश्वमें वैसे ही भावसे विद्यमान हैं। जगत्में अनन्त परिवर्त्तन प्रतिमुहूर्त्तमें साधित होता है, किन्तु वे स्थिर अपरिवर्त्तनीय हैं। जिस प्रकार इस नित्य परिवर्त्तनके कालचक्रके हाथसे जीव बच सकता है, जिस प्रकार जीव शोक और मृत्युसे छुटकारा पा सकता है, उपनिषद् युगमें आर्य्य ऋषि महर्षियोंके हृदयमें यह वासना बहुत बलवती हुई थी। उस समय जीवन-मरणका रहस्य जाननेके लिये कौतूहल ज्ञानियोंका हृदय अधिकार कर बैठा था। मृत्यु क्या है, मृत्युके पीछे आत्माकी क्या गति होती है, इत्यादि विषयमें ज्ञान लाभ करनेके लिये गार्गी आदि महिलायें भी उपनिषद्का प्रश्न उठाती थी। उपनिषदोंमें हम इन सब प्रश्नोंकी ही मीमांसा देखते हैं।

उपनिषद् ही ब्रह्मविद्या है। यह विद्या सभी विद्याका सार है। मुण्डकोपनिषद्में ऋषि कहते हैं, कि दो ही विद्या हम लोगोंको ज्ञातव्य है—एक अपरा और दूसरी परा। ऋग्वेदादि आदि अपरा विद्या और वेदान्त या ब्रह्मविद्या ही परा विद्या है। इस ब्रह्मविद्यामें सभी विद्या निहित है। इस कारण आर्य्यगण वेदान्तका इतना आदर कर गये हैं। उपनिषत्कारोंने इस ब्रह्मविद्याके शिक्षाप्रचारके लिये अधिक नहीं कहा है,—उपनिषद्वाक्य सूत्राकारमें रचित नहीं होने पर भी यह सूत्रकी तरह सारगर्भ है, सूत्रकी तरह विश्वतोमुख है। वेदान्तकी शिक्षा अति उदार है। शिष्य बड़े, नम्रसे गुरुसे कहते हैं,—गुरुदेव, आप उपनिषद् कहिये। परम कारुणिक गुरुदेवने उसी समय कहा, "तुम लोगोंसे ब्रह्मविषयिणी उपनिषद् कहता हूं"—इतना कह कर वे ब्रह्मतत्त्व समझाने लगे। दो चार बातोंसे ही शिष्योंके चित्तमें ब्रह्मज्ञान उमड़ आया, उनका हृदय प्रसन्न हो गया, सभी भूतोंमें ब्रह्मज्ञान फैल गया। शिष्योंने समझा, कि यह विशाल विश्वब्रह्माण्ड ब्रह्ममय है। उन्हें बड़े छोटे ब्राह्मण शूद्र आदिका भेदज्ञान है। गुरुदेवने समझा दिया—

"यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥
यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥"

(ईशोपनिषद् ६,७)

वे स्वयंभूको अपनी आत्मामें देखते हैं, इस जगत्का कोई भी पदार्थ उस समय उनके निकट तुच्छ होनेके कारण हेय नहीं समझा जाता था। सबोंको जो अपनी आत्मामें देखते हैं तथा सभी जगह जो एकत्वका अनुभव करते हैं, उन्हें शोक मोहादि कहां ?

---

* "The Power manifested throughout the universe, distinguished as material, is the same Power which in ourselves wells up under the form of consciousness" (Religion, a Retrospect and Prospect.)

ब्रह्म या आत्माका स्वरूप।

वाजसनेय-उपनिषद् कहते हैं,—आत्मा सर्वव्यापक अकाय, अव्रण, अस्नाविर, विशुद्ध, अपापविद्ध, कवि, त्रिकालज्ञ, मनीषी, ज्ञानपरायण, विभु, सर्वोत्तम और स्वयम्भू हैं। बृहदारण्यक उपनिषद्का कहना है, कि वे सबसे प्रियतम हैं, ज्योतिके ज्योति हैं। विश्वब्रह्माण्ड उन्हीं पर स्थित है। मुण्डक इस प्रकार कहते हैं—वे अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अव्यय, अरस, नित्य अगन्धवत्, अनादि अनन्त और परात्पर हैं। उन्हें जान लेनेसे मनुष्य मृत्युमुखमें पतित नहीं होते। श्वेताश्वतर उपनिषद्ने कहा है,—वे बृहत् होने पर भी बृहत्तर हैं, महत् होने पर भी महत्तर हैं, पूर्ण आनन्दमय हैं, विश्वके कर्त्ता और पाता हैं। विश्वमें कोई भी उनसे बड़ा नहीं है और न कोई उनके समान ही है। वे चर्मचक्षुके अदृश्य हैं। उनके हाथ पैर नहीं हैं, किन्तु वे ग्रहण कर सकते हैं। उनके कान नहीं हैं, पर सुनते हैं, चक्षु नहीं हैं, पर देखते हैं,...वे सर्वज्ञ हैं, फिर भी उन्हें कोई देख नहीं सकता। वे अक्षय, अज और सर्वव्यापी हैं। जो उन्हें जानते हैं, वे ही अनन्तशान्तिलाभ करते हैं, दूसरा कोई भी शान्ति लाभ नहीं कर सकता।

साक्षात्कारका साधन।

अन्यान्य वेदोपनिषदोंमें इसके स्वरूपकी जो वर्णना की गई है तथा इन्हें लाभ करनेका जो उपाय दिखलाया गया है, पहले तो इसकी आलोचना हो चुकी है। किस प्रकार मनुष्य विमल आनन्दपथके पथिक होंगे, इसके लिये क्या उपाय अवलम्बन करना उचित है, बृहदारण्यकमें उसका एक उपदेशवाक्य कहा गया है। ऋषि कहते हैं, पवित्र कार्य द्वारा ही मनुष्य पवित्र होते हैं, कुत्सित कार्यसे अन्तरात्मा कुत्सित और कदर्य हो जाती है। जिसकी जैसी वासना है उसका वैसा ही सङ्कल्प है; जैसा सङ्कल्प वैसा ही कार्य और जैसा कार्य वैसा ही फल है। यथा—"यथाकारी यथाचारी तथा भवति कामयमयः पुरुष इति, स यथाकामो भवति तत्क्रतुर्भवति यत् क्रतुर्भवति तत् कर्म कुरुते। यत् कर्म कुरुते। तदभि सम्पद्यते।" (४ अ० ४ ब्रा० ५)

कठोपनिषद्में लिखा है—

"नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्॥" (२।२४)

अर्थात् कुकर्मोंसे अनिवृत्त, अशान्त, असमाहित, अशान्तमानस (सकाम द्वारा उद्विग्नचित्त) व्यक्ति आत्मज्ञान लाभ नहीं कर सकते।

ब्रह्मदर्शन ही जीवका पुरुषार्थ है—उपनिषद्ज्ञान उसका प्रधान है। किन्तु सूर्यकी किरण अंधकारको दूर करनेमें समर्थ होने पर भी जिस प्रकार प्रतिबंधकताके लिये हम लोगोंको अंधकारका भोग करना पड़ता है, इस प्रकार उपनिषद्वाक्यके आधार पर साधनपथमें पदार्पण करने पर भी पद पदमें हम लोगोंके सामने बाधा उपस्थित होती है। जिससे कुत्सित कार्योंकी वासना त्याग नहीं करनेसे, ब्रह्मसाधनामें एकाग्र नहीं होनेसे, केवल शास्त्र पढ़नेसे विमल ब्रह्मज्ञान लाभ नहीं हो सकता। इस कारण साधनप्रिय ऋषिगण सरल प्राणसे देवताके निकट कातरकण्ठसे प्रार्थना करते थे—

"असतो मा सद्गमय, तमसो मा
ज्योतिर्गमय मृत्योर्माऽमृतं गमय।" (बृहदा० उ० १।३।२८)

अर्थात् 'हे देव! तुम मुझे असत् पथसे सत्-पथमें ले जाओ। अंधकारसे उजालेमें ले जाओ तथा मरणके ग्राससे अमृतके पथ पर ले जाओ।' फलतः वेदान्तके सच्चिदानन्दमय राज्यमें घुसनेके लिये इस प्रकार विषयवैराग्यजनित व्याकुल प्रार्थना ही प्रधानतम प्रथम साधन है। शिष्यगण इस प्रार्थनाका अवलम्बन करके ही आगे बढ़ते थे।

औपनिषदी उपासना।

उपास्यके स्वरूपके अनुसार ही उपासनासिद्धि होती है। उपासकके भाव और आत्मोत्कर्षके अनुसार उपास्यदेव उपासकके हृदयमें प्रकट होते हैं। उपनिषद् युगके ऋषियोंको ज्ञाननेत्रके सामने जो उपास्य प्रतिभात हुआ, उनकी उपासनाविधि तदनुरूप ही रही। नाना प्रकारके बलिदान, होमाग्निकी पवित्र आहुति अथवा कल्पनाजनित स्तुतिमय वाक्यावली उपासनाका बोध न समझी गई। एक ब्रह्मोपासक ऋषि उन्हें "अवाङ्मनसगोचर" कह कर मौन हो गये, उनका कहना

रुक गया, आँखें बंद हो गईं, शरीर निस्पन्द हो उठा, वे ब्रह्मानन्दके ध्यानसागरमें निमज्जित हो गये। उन्होंने महावाक्योदित चिद्वृत्ति द्वारा ब्रह्ममहासागरमें आत्म निर्झरिणीको एकदम विनिर्मिलित कर दिया। निर्झरिणी जिस प्रकार गिरिकन्दराओंमें अपना रूप अभिव्यक्त करके विशाल आयतन धारण करती है तथा मरुद्रुमों कलकल निनादसे सागरकी ओर दौड़ती है, आखिरको अपना नाम रूप छोड़ कर अनन्त असीम सागरके साथ मिल जाती है, इस श्रेणीके साधकगण भी इसी प्रकार उपासनाके रसमें दिनों दिन संपुष्ट हो कर आखिर ब्रह्मसागरमें आत्मविसर्जन करते हैं तथा अपनी निखिल उपाधि छोड़ कर ब्रह्ममें लीन हो जाते हैं। इसी कारण श्रुति कहती है—

"यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान् नामरूपाद् विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥"
(तृतीय मुण्डक २।८)

अर्थात् जिस प्रकार स्यन्दमान नदियाँ नामरूप त्याग कर समुद्रमें मिलती हैं, उसी प्रकार ब्रह्मसाधक विद्वान पुरुष नामरूपादि उपाधिका परित्याग कर परात्पर ब्रह्ममें विलीन होते हैं। इसके बाद ही कहा गया है—

"स यो ह वै तत् परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति।
तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति॥"

इससे जाना जाता है, कि वह ब्रह्मविद् ब्रह्मरूपको प्राप्त होते हैं। वे शोकमोहपापादिसे विमुक्त हो अमृत भावमें आते हैं। वे पुनः पुनः जन्ममृत्युके शासनसे छुटकारा पा कर मुक्तिलाभ करते हैं, केवल ध्यान ही उसकी प्राप्तिका साधन है। यथा—

"न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति॥"
(कठवल्ली ६।९)

अर्थात् ये चक्षुके अगोचर हैं, इन्हें चक्षुसे देखा नहीं जाता, बुद्धिपूर्ण निश्चयात्मक ध्यान-द्वारा ये मानसनेत्रके सामने प्रकाशित होते हैं। जो इन्हें जानते हैं, वे अमरत्वको प्राप्त करते हैं।

जो चाहे जिस तरह ब्रह्मलाभ क्यों न करे, उपासना सबोंके लिये प्रयोजनीय है। बिना उपासनाके इस अवाङ्मनसगोचर निर्गुण पदार्थकी धारणाके निमित्त चित्तभूमि बिलकुल प्रस्तुत नहीं होती। निर्विशेषमें अद्वैतवादियोंके मतसे "सोऽहम्" ध्यानमें ही प्रयोजनीय साबित होते हैं, परन्तु एक दूसरी श्रेणीके वेदान्ती इस ब्रह्मको "सत्यं शिवं सुन्दरम्" कह कर ही विश्वास करते हैं।

शतपथब्राह्मणमें भी इन दृश्यादिविवर्जित अक्षरब्रह्मको ध्येयताका कीर्तन देखते हैं। ब्रह्मसम्बन्धी उपासनाको शतपथब्राह्मणमें वेदवृत्तिका प्रयोजन कहा है। चित्तसंयम, चित्तकी समवृत्तिका उत्कर्ष साधन और शम दम आदि द्वारा चित्तकी एकाग्रता साधन करनेका उपदेश प्रायः सभी उपनिषदोंमें दिखाई देता है। नैतिक वृत्तियोंके उत्कट साधन द्वारा चित्तशोधनके आवश्यक बताया जो कर्मकाण्डीय कार्योंकी अपेक्षा अधिक प्रयोजनीय है। उपनिषद्युगमें ऋषियोंने इसके अनेक उपदेश दिये हैं। श्रद्धा, सत्य, दम और शम द्वारा चित्तवृत्तिके उत्कर्ष साधनके सम्बन्धमें श्रीभगवद्गीतोपनिषद्में बहुतसे मत प्रकाशित हैं। मुण्डकमें साफ साफ लिखा है—

"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥
नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिङ्गात्।
एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वान् तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम॥" (मुण्डक ३।२।३-४)

फलतः इस आत्माको वक्तृता द्वारा और मेधा (ग्रन्थार्थधारणाशक्ति) या अनेक श्रुत (अध्ययन) द्वारा लाभ नहीं किया जाता। वह आत्मा केवल आत्मादि-दर्शनपर निष्काम तपस्या द्वारा तथा यथार्थ वासना त्याग द्वारा एकनिष्ठ समझने ही सकते हैं। आत्मगुण संपन्न कृतात्मा अनासक्त शुद्धात्मा वेदान्तविज्ञान-सुनिश्चितार्थ संन्यासीगण ही ब्रह्मज्ञानके अधिकारी हैं। यथा—

"संप्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः।
ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीरा युक्तात्मानः सर्वमेवाविशन्ति॥
वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे।"
(तत्रैव ५।६)

मुण्डकोपनिषद्के बहुत पहले भी 'वेदान्त' शास्त्र था, अभी यह जाना जाता है। वस्तुतः प्राचीन वेदान्ती किस प्रकार ब्रह्मसाधना करते थे तथा ब्रह्मसाधनाके लिये वे अपनी चित्तभूमिको किस प्रकार उपयुक्त करते थे, इन दो श्रुतिवाक्योंसे उसका स्पष्ट प्रमाण मिलता है। मुण्डकोपनिषद्के प्रथम मुण्डकके द्वितीय खण्डमें ज्ञानियोंके कर्मकाण्डीय विधि छोड़नेका उपदेश दिखाई देता है। इस काण्डकी एक श्रुतिमें इन सब कार्योंके समूहको "अध्ययनीयमान कर्म" कहा है। ब्रह्मचर्य, सत्य, शान्ति वैराग्य, औदार्य, शम, दम, स्वाध्यायोंकार, श्रद्धा, ब्रह्मनिष्ठा और ध्यान धारणा आदि द्वारा ब्रह्मोपासनाके लिये चित्त उपयुक्त हो जाता है। श्रद्धा और निष्ठादि भी ब्रह्मसाधनाका विशेष अङ्ग है, छान्दोग्य उपनिषद्में यह साफ साफ लिखा है।

प्रस्थान-त्रयभाष्य।

हम पहले लिख चुके हैं, कि ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, कौषितकी और श्वेताश्वतर ये सब उपनिषद् ही इस देशमें अधिकतर प्रचारित हुए थे। इन सभी उपनिषदोंको वेदान्तीगण अधिक आदर करते हैं। ये सब उपनिषद् 'प्रस्थानत्रय"-के अन्तर्गत हैं। "प्रस्थानत्रय" किसे कहते हैं, यहां उसका आभास देना प्रयोजनीय है। उपनिषद्, वेदान्तसूत्र और श्रीमद्भगवद्गीता इन तीनोंकी समष्टि ही वेदान्तशास्त्र नामसे प्रसिद्ध है। ये सब "प्रस्थानत्रय" भी कहलाते हैं। उपनिषद् श्रुतिप्रस्थान, ब्रह्मसूत्र न्यायप्रस्थान और श्रीमद्भगवद्गीता स्मृतिप्रस्थान नामसे परिचित है। भिन्न भिन्न वेदान्ति सम्प्रदायने इस "प्रस्थानत्रय"-का भिन्न भिन्न भाष्य किया है। इन तीन ग्रन्थोंके साथ भिन्न वेदान्तकी पूर्णता नहीं होती। अतएव भिन्न भिन्न सम्प्रदायके पण्डितोंने अपने अपने सिद्धान्तके अनुयायी उपनिषद् या "श्रुतिप्रस्थान", ब्रह्मसूत्र या "न्यायप्रस्थान" तथा भगवद्गीता या "स्मृतिप्रस्थान"-का भाष्य किया है। एक ही ब्रह्म जिस प्रकार उपासकोंके साधनानुसार भिन्न भिन्न रूपमें प्रकाश पाते हैं, उसी प्रकार एक ही वेदान्त भिन्न भिन्न सम्प्रदायप्रवर्तकोंके ज्ञान, बुद्धि और पाण्डित्यकौशलसे भिन्न भिन्न रूपमें विकसित हुआ है तथा भिन्न भिन्न दार्शनिक सिद्धांतोंद्भावनासे वेदांत वैचित्र्यको भिन्न भिन्न प्रतिच्छवि ऐतिहासिक द्रष्टाके सामने प्रतिभात होती है। उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीताके अनेक भाष्य हैं। अति प्राचीन भाष्यकारोंका नाममात्र सुननेमें आता है, किंतु उनका एक भाष्य आज भी हम लोगोंके नयनगोचर नहीं हुआ है। इन सब भाष्यकारोंमें हमें भगवान् श्रीरामानुज-कृत वेदार्थसंग्रह ग्रंथमें बौधायन, टङ्क, द्रमिड़, गुहदेव, कपर्दी और भारुची आदि पूर्वाचार्योंके नाम दिखाई देते हैं। इनके सिवा बादरभाष्यकी बात भी सुनी जाती है। इन सब भाष्यकारोंने प्रस्थानत्रयका भाष्य किया था अथवा एक ब्रह्मसूत्रका, यह अच्छी तरह मालूम नहीं। किंतु परवर्ती भाष्यकारोंने पूर्वभाष्य देख कर "प्रस्थानत्रय" का भाष्य कर रखा है। इससे मालूम होता है, कि इन्होंने भी सम्भवतः पूर्वाचार्यगणका ही पदानुसरण किया था। भिन्न भिन्न वेदांति सम्प्रदायके प्रवर्तकोंने वेदांतभाष्य कर अपने सम्प्रदायका सिद्धांत वेदांतसम्मत कर लिया है। इसमें उन्होंने कुछ पूर्वाचार्योंका नामोल्लेख किया है, उनके भाष्यको छोड़ कर दूसरे और कोई पूर्वाचार्य थे या नहीं, कह नहीं सकते। गौड़पादमुनि और शङ्कराचार्य श्रीरामानुजके पूर्ववर्ती थे। इनके अभेदवादके साथ श्रीमद्रामानुजके मतकी एकता नहीं है, इसीसे शायद श्रीमद्रामानुजने इन्हें पूर्वाचार्य न कहा हो। कुछ लोगोंका कहना है, कि सूत्रकारके समयसे ले कर शङ्करके समय तक वेदांत एक ही भावमें व्याख्यात होता आ रहा था, यह बात भी युक्तिसंगत नहीं है, उसका प्रमाण श्रीरामानुज-कृत

वेदान्तशास्त्रसंबद्ध है। इसी ग्रंथमें भिन्न भिन्न सम्प्रदायोंके पुराने पुराने आचार्यों और वृत्तिकारोंके नाम देखनेमें आते हैं। शङ्करके पहले जो सब आचार्य थे उनमेंसे अधिकांश शङ्करके मतावलम्बी नहीं थे, रामानुजाचार्यने इसे भी प्रमाणित करनेकी चेष्टा की है। फलतः शङ्करसे भी बहुत पहले, यहां तक कि ब्रह्मसूत्र संग्रहसे भी बहुत पहले वेदान्तशास्त्र ले कर ऋषियोंमें भी बड़ा मतभेद था, ब्रह्मसूत्रमें भी उसका स्पष्ट प्रमाण है। ऋषियोंका जो मतभेद था, वह केवल साधारण विषय ले कर नहीं, प्रधान प्रधान वैदान्तिक सिद्धान्त समूहमें भी मतद्वैधता यथेष्ट परिलक्षित पाया जाता है। आत्रेय, आश्मरथ्य, औडुलोमि, कार्ष्णाजिनि, काशकृत्स्न, जैमिनि और बादरि आदि ऋषियोंके वैदान्तिक सिद्धान्तमें प्रचुर मतभेद देखा जाता है।

चतुर्थ अध्यायके चतुर्थपादमें यहां इस विषयके दो एक उदाहरण दिये जाते हैं—

१। ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः ।५

२। चितितन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलोमिः ६

३। एवमप्युपन्यासात् पूर्वभावादविरोधं बादरायणः ।७

यहां पर मुक्तात्माके स्वरूपके संबंधमें औडुलोमि कहते हैं, मुक्तात्मा चितिमात्रमें अवस्थान करता है, क्योंकि जीवात्मा तदात्मक है। जैमिनि कहते हैं, कि मुक्तात्माके अपहतपाप्मत्व आदि कुछ ब्राह्म गुण हैं। बादरायणका कहना है, कि मुक्तात्मा चिन्मय है और ऐश्वर्य-सत्यसंकल्पादि ब्राह्म गुणमय भी है।

वैदान्तिकोंके मध्य ऐसे मतभेदका विषय ब्रह्मसूत्रमें और भी देखनेमें आता है। यथा—चौथे अध्यायके तृतीय पादमें (७-१४ सूत्रमें) जैमिनिने कहा है, कि ब्रह्मोपासकगण परब्रह्मको प्राप्त करते हैं। ("परं"—जैमिनिर्मुख्यत्वात् ४।३।१२—"परं ब्रह्म प्रापयति" जैमिनिराचार्यः) किन्तु बादरि कहते थे, कि इसका कार्य ब्रह्मगति है। शङ्करने बादरिका सिद्धान्त ही ग्रहण किया है।

"स एनान् ब्रह्म गमयति" उपनिषद्के इस श्रुतिके विचारमें हम दो प्रधान सिद्धान्तका मतभेद पाते हैं।

प्राचीन वैदान्तिकोंके और भी एक विवादका ब्रह्मसूत्रके प्रथम अध्यायके चतुर्थ पादमें इस प्रकार देखा जाता है—

१। प्रतिज्ञासिद्धेर्लिङ्गमाश्मरथ्यः। (१।४।२०)

२। उत्क्रमिष्यत एवंभावादित्यौडुलोमिः। (१।४।२१)

३। अवस्थितेरिति काशकृत्स्नः। (१।४।२२)

जीव और ब्रह्मका सम्बन्ध निर्णय करनेमें यहां पर तीन प्राचीन वेदान्तीका मतभेद दिखलाया गया है। इनके नाम ये हैं—आश्मरथ्य, औडुलोमि और काशकृत्स्न। शङ्कर कहते हैं, कि आश्मरथ्यके मतसे ब्रह्मके साथ जीवका भेदाभेद सम्बन्ध है अर्थात् जीव ब्रह्मसे बिलकुल अभिन्न भी नहीं है। अर्थात् अग्निके साथ अग्निके स्फुलिङ्गका जैसा सम्बन्ध है ब्रह्मके साथ जीवका भी वैसा ही सम्बन्ध है। औडुलोमि कहते हैं, कि जब तक जीव मोक्ष पा कर ब्रह्ममें एकदम मिल नहीं जाते, तब तक जीव ब्रह्मसे अवश्य पृथक् है। काशकृत्स्नका कहना है—जीव ब्रह्मसे सम्पूर्ण अभिन्न है, लेकिन न मालूम पृथक् क्यों प्रतीत होते हैं।

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है, कि वेदान्तसूत्र रचे जानेके बहुत पहलेसे उपनिषद्की व्याख्या ले कर ऋषियोंमें भिन्न भिन्न सिद्धान्त प्रचलित था तथा भिन्न भिन्न रूपसे उपनिषद्की व्याख्या की जाती थी। शङ्कर स्वयं भी अपने भाष्यमें कई जगह उनके स्वोक्त सिद्धान्तके विरुद्ध प्रतिवादियोंके अभिमतको मान स्वीकार कर गये हैं। यथा—"अपरे तु वादिनः पारमार्थिकमेव जैवमिति मन्यन्ते अस्मदीयाश्च केचित्।" (१।४।२२ सूत्र भाष्य) फिर कई जगह शङ्करने प्राचीन वैदान्तिकोंके साथ मतभेदका प्रमाण भी दिखलाया है। सुतरां शङ्कर या रामानुजको भिन्न भिन्न वैदान्तिक सम्प्रदायका आदिप्रवर्तक नहीं कहा जा सकता। परन्तु इतना अवश्य है, कि शङ्कराचार्यने जिसे अपना बहुत दूर तक विस्तार और प्रचार किया था।

रामानुजके बहुत पहले एक प्रकारके प्राचीन वैदान्तिक भिन्न भिन्न सिद्धान्तोंको सूत्ररूपमें अभिव्यक्तिको प्रचार किया था, रामानुज भी शङ्करकी तरह उसी प्राचीन सिद्धान्त

का प्रचार कर गये हैं। रामानुजने ब्रह्मसूत्रको बौधायन वृत्तिके आधार पर भाष्य लिखा था। उन्होंने स्वयं लिखा है, "भगवद् बौधायनकृतां विस्तीर्णां ब्रह्मसूत्रवृत्तिं पूर्वाचार्याः संचिक्षिपुः तन्मतानुसारेण सूत्राक्षराणि व्याख्यास्यन्ते" अर्थात् भगवद् बौधायन कृत विस्तीर्ण ब्रह्मसूत्र वृत्तिको पूर्वाचार्योंने संक्षेप किया था। तदनुसार सूत्राक्षरोंकी व्याख्या की जाती है। श्रीभाष्यमें कई जगह बौधायनवृत्तिका स्थलविशेष उद्धृत हुआ है। शङ्करने वृत्तिकारके मतका खण्डन किया है, यह वृत्तिकार कौन है? ये क्या बौधायन हैं या उपवर्षाचार्य कोई कहते हैं, कि ये बौधायनका मतखण्डन करनेमें ही प्रयासी हुए थे। वेदार्थसंग्रह नामक ग्रंथमें श्रीरामानुजाचार्यने भी बौधायन, टङ्क आदि पूर्वाचार्योंका नामोल्लेख किया, इसके पहले यह लिखा जा चुका है। भाष्यके कई स्थानोंमें द्रमिड़ाचार्य भाष्यकार और टङ्क वाक्यकार कह कर अभिहित हुए हैं। द्रमिड़ाचार्य भी शङ्कराचार्यके पूर्ववर्ती थे, शङ्करशिष्य आनन्दगिरिके वचनसे यह जाना जा सकता है। शङ्कराचार्यने छान्दोग्य उपनिषद्का जो भाष्य किया है, उसके ३।१०।४ भाष्यकी टीकामें आनन्दगिरिने लिखा है, कि श्रीमच्छङ्कराचार्य उपनिषद्के श्रुतिका तत्त्व और स्मृतिके स्मृतितत्त्वका सामञ्जस्य करनेमें प्रयासी हुए हैं। उनके पहले द्रमिड़ाचार्यने इस प्रणालीका अवलम्बन किया। श्रीमच्छङ्कराचार्यने उनकी प्रणालीका ही अनुसरण किया है। इससे स्पष्ट जाना जाता है, कि रामानुज या शङ्करके पहले बहुतोंने उपनिषद्का भाष्य लिखा था, किन्तु अभी वे सब भाष्य नहीं मिलते। शङ्कर, रामानुज और मध्वाचार्यके प्रस्थानत्रयका भाष्य देखनेमें आता है। ये तीनों ही उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीताके भाष्यकार हैं। गीता और ब्रह्मसूत्रके भाष्यकारकी संख्या भी अनेक है। श्रीगौड़ीय सम्प्रदायके सुविख्यात दार्शनिक पण्डित बलदेव विद्याभूषण महाशयने भी प्रस्थानत्रयका भाष्य किया है। निम्बार्क सम्प्रदाय तथा वल्लभाचार्य सम्प्रदाय भी प्रस्थानत्रयके भाष्य हैं। किन्तु इनके उपनिषद् भाष्यका बहुत कम प्रचार है, केवल ब्रह्मसूत्रभाष्य और गीताभाष्य अभी जगह प्रचलित है। रामानुजका ब्रह्मसूत्रभाष्य 'श्रीभाष्य', वल्लभाचार्यका भाष्य 'अणुभाष्य', निम्बार्काचार्यका भाष्य 'वेदान्तपारिजातसौरभ' और बलदेव विद्याभूषणका भाष्य 'गोविन्दभाष्य' कहलाता है। इनके सिवा विज्ञानभिक्षुका भी ब्रह्मसूत्र भाष्य है, इसमें सांख्यकी प्रधानता बतलाई गई है। श्रीकण्ठाचार्यका एक और भाष्य है जो शैवमतका पोषक है। इन सब भाष्यादिका विशेष परिचय 'ब्रह्मसूत्रभाष्य' प्रकरणमें आलोचित होगा।

भिक्षुसूत्र।

वेदान्तप्रस्थके सूत्रयुगके मध्यमें केवल एक मात्र सूत्रका नाम ही सुप्रसिद्ध है। किन्तु इसके पहले भी वेदान्त सम्बन्धीय सूत्रग्रन्थ प्रचलित था। फलतः ब्रह्मसूत्रकी आलोचनासे ज्ञात होता है, कि प्राचीनोंने वेदान्तशास्त्रके सम्बन्धमें अनेक भिन्न भिन्न सिद्धान्त किये थे। ब्रह्मसूत्रकारने साक्षात् सम्बन्धमें सबमुच उनके मुखसे ये सब अभिप्राय संग्रह नहीं किये। शायद इस सम्बन्धमें बहुतसे छोटे छोटे सूत्रग्रन्थ थे। जिस प्रकार सूर्योदय होने पर आकाशके अगण्य तारे बिलकुल अदृश्य हो जाते हैं, शायद ब्रह्मसूत्ररूप वेदान्त सूर्यके उदय होने पर ये सब छोटे छोटे सूत्र उसी प्रकार अदृश्य हो गये हैं। किन्तु 'भिक्षुसूत्र' नामक एक वेदान्तसूत्र ग्रंथका नाम मात्र भी विद्यमान है। भिक्षुसूत्रकी एक टीका भी है। भिक्षुसूत्र प्राचीन ग्रंथ है, इसका प्रमाण भी मिलता है। पाणिनिने कहा है—

"पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः" (४।३।११०)

काशिकावृत्तिमें लिखा है—"सूत्रशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते।"

अर्थात् भिक्षु और नट इन दोनों शब्दोंके साथ सूत्र शब्दका सम्बन्ध है। अतएव 'भिक्षुसूत्र प्राचीन ग्रंथ है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं। भिक्षुके पर्याय परिव्राट, कर्मन्दी, मस्करी और पाराशरी हैं।

"कर्मन्दी स्यात् भिक्षुसूत्र' पाराशरि तद्यात्मे पाराशरी।"

इससे जाना जाता है, कि पराशर और कर्मन्द दोनोंने पृथक्-पृथक् भिक्षुसूत्रकी रचना की थी। श्री-

वेदान्तसारोंमें है। इसी ग्रन्थमें भिन्न मतावलम्बी दूसरे दूसरे भाष्यकारों और वृत्तिकारोंके मत देखनेमें आते हैं। शङ्करके पहले जो सब भाष्यकार थे उनमेंसे अधिकांश शङ्करके मतावलम्बी नहीं थे, रामानुजाचार्यने इसे भी प्रमाणित करनेकी चेष्टा की है। फलतः शङ्करसे भी बहुत पहले, यहाँ तक कि ब्रह्मसूत्र बननेसे भी बहुत पहले वेदान्तशास्त्रमें कई ऋषियोंमें जो बड़ा मतभेद था, ब्रह्मसूत्रमें भी उसका स्पष्ट प्रमाण है। ऋषियोंका जो मतभेद था, वह केवल नगण्य विषयमें ही नहीं, प्रधान प्रधान वैदान्तिक सिद्धान्त सम्बन्धमें भी उसका यथेष्ट परिचय पाया जाता है। आत्रेय, आश्मरथ्य, औडुलोमि, कार्ष्णाजिनि, काशकृत्स्न, जैमिनि और बादरि आदि ऋषियोंके वैदान्तिक सिद्धान्तोंमें प्रचुर मतभेद देखा जाता है।

चतुर्थ अध्यायके चतुर्थपादमें यहाँ इस विषयके दो एक उदाहरण दिये जाते हैं—

१। ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः ।५

२। चितितन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलोमिः ६

३। एवमप्युपन्यासात् पूर्वभावादविरोधं बादरायणः ।७

यहाँ पर मुक्तात्माके स्वरूपके सम्बन्धमें औडुलोमि कहते हैं, मुक्तात्मा चितिमात्रमें अवस्थान करते हैं, क्योंकि जीवात्मा तदात्मक है। जैमिनि कहते हैं, कि मुक्तात्माके सर्वज्ञत्व आदि कुछ ब्राह्म गुण हैं। बादरायण कहता है, कि मुक्तात्मा चिन्मात्र है और सत्यसं-कल्पादि अन्य गुणयुक्त भी है।

वैदान्तिकोंके मध्य ऐसे मतभेदका विषय ब्रह्मसूत्रमें और भी देखनेमें आता है। यथा—इसी अध्यायके तृतीय पादमें (७-१४ सूत्रमें) जैमिनिने कहा है, कि मुक्तात्मागण परब्रह्मको प्राप्त करते हैं। ("परं"—जैमिनिर्मुख्यत्वात् ४।३।१२—"स एनान् ब्रह्म गमयति" श्रुतिविषयकत्वात्) किन्तु बादरि कहते थे, कि इसका कार्य ब्रह्मप्राप्ति है। शङ्करने बादरिका सिद्धान्त ही ग्रहण किया है।

"स एनान् ब्रह्म गमयति" श्रुतिस्थित इस ब्रह्मशब्द लेकर ही उक्त सिद्धान्तकी व्याख्या की गई है।

प्राचीन वैदान्तिकोंके और भी एक विवादका ब्रह्मसूत्रके प्रथम अध्यायके चतुर्थ पादमें इस प्रकार देखा जाता है—

१। प्रतिज्ञासिद्धेर्लिङ्गमाश्मरथ्यः। (१।४।२०)

२। उत्क्रमिष्यत एवंभावादित्यौडुलोमिः। (१।४।२१)

३। अवस्थितेरिति काशकृत्स्नः। (१।४।२२)

जीव और ब्रह्मका सम्बन्ध निर्णय करनेमें यहाँ तीन प्राचीन वेदान्तियोंका मतभेद दिखलाया गया है। इनके नाम ये हैं—आश्मरथ्य, औडुलोमि और काशकृत्स्न। शङ्कर कहते हैं, कि आश्मरथ्यके मतसे ब्रह्मके साथ जीवका भेदाभेद सम्बन्ध है अर्थात् जीव ब्रह्मसे बिलकुल अभिन्न भी नहीं है। अर्थात् अग्निके साथ अग्निके स्फुलिङ्गका जैसा सम्बन्ध है ब्रह्मके साथ जीवका भी वैसा ही सम्बन्ध है। औडुलोमि कहते हैं, कि जब तक जीव मोक्ष पा कर ब्रह्ममें एकदम मिल नहीं जाते, तब तक जीव ब्रह्मसे अवश्य पृथक् है। काशकृत्स्नका कहना है—जीव ब्रह्मसे सम्पूर्ण अभिन्न है, लेकिन न मालूम पृथक् क्यों प्रतीत होते हैं।

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है, कि वेदान्तसूत्र रचे जानेके बहुत पहलेसे उपनिषद्‌की व्याख्या ले कर ऋषियोंमें भिन्न भिन्न सिद्धान्त प्रचलित था तथा भिन्न भिन्न रूपमें उपनिषद्‌की व्याख्या की जाती थी। शङ्कर स्वयं भी अपने भाष्यमें कई जगह अपने स्वीकार्य सिद्धान्तके विरुद्ध प्राचीनवादियोंके अभिप्रायकी बात स्वीकार कर गये हैं। यथा—"अपरे तु वादिनः पारमार्थिकमेव जैवं रूपमिति मन्यन्ते अस्मदीयाश्च केचित्।" (१।३।१९ सूत्रका भाष्य) फिर कई जगह शङ्करने प्राचीन वेदान्तियोंके ऐसे मतभेदका प्रमाण भी दिखलाया है। सुतरां शङ्कर या रामानुजको भिन्न भिन्न वैदान्तिक सम्प्रदायका आदिप्रवर्त्तक नहीं कहा जा सकता। परंतु स्पष्ट है, कि शङ्कराचार्यने जिसे, उसका बहुत दूर तक विस्तार और प्रचार किया था।

ब्रह्मसूत्रके बहुत पहले एक प्रकारके प्राचीन वेदान्ति जिन सब सिद्धान्तोंको मुक्तकण्ठसे अंगीकार करके प्रचार किया था, रामानुज और शङ्करने भी उसी

का प्रचार कर गये हैं। रामानुजने ब्रह्मसूत्रका बौधायन वृत्तिके आधार पर भाष्य लिखा था। उन्होंने स्वयं लिखा है, "भगवद् बोधायनकृतां विस्तीर्णां ब्रह्मसूत्रवृत्तिं पूर्वाचार्याः संचिक्षिपुः तन्मतानुसारेण सूत्राक्षराणि व्याख्यास्यन्ते" अर्थात् भगवद् बोधायन कृत विस्तीर्ण ब्रह्मसूत्र वृत्तिको पूर्वाचार्योंने संक्षेप किया था। तदनुसार सूत्राक्षरोंकी व्याख्या की जाती है। श्रीभाष्यमें कई जगह बोधायनवृत्तिका स्थलविशेष उद्धृत हुआ है। शङ्करने वृत्तिकारके मतका खण्डन किया है, यह वृत्तिकार कौन हैं? वे क्या बौधायन हैं या उपवर्षाचार्य? कोई कहते हैं, कि वे बौधायनका खण्डन करनेमें ही प्रयासी हुए थे। वेदार्थसंग्रह नामक ग्रंथमें श्रीरामानुजाचार्यने भी बोधायन, टङ्क आदि पूर्वाचार्योंका नामोल्लेख किया, इसके पहले यह लिखा जा चुका है। भाष्यके कई स्थानोंमें द्रमिडाचार्य भाष्यकार और टङ्क वाक्यकार कह कर अभिहित हुए हैं। द्रमिडाचार्य भी शङ्कराचार्यके पूर्ववर्ती थे, शङ्करशिष्य आनन्दगिरिके वचनसे यह जाना जा सकता है। शङ्कराचार्यने छान्दोग्य उपनिषद्का जो भाष्य किया है, उसके ३।१०।३ भाष्यकी टीकामें आनन्दगिरिने लिखा है, कि श्रीमत्शङ्कराचार्य उपनिषद्के श्रुतिका तत्त्व और स्मृतिके सूचितत्वका सामञ्जस्य करनेमें प्रयासी हुए हैं। उनके पहले द्रमिडाचार्यने इस प्रणालीका अवलम्बन किया। श्रीमत्शङ्कराचार्यने उनकी प्रणालीका ही अनुसरण किया है। इससे स्पष्ट जाना जाता है, कि रामानुज वा शङ्करके पहले बहुतोंने उपनिषदका भाष्य लिखा था, किन्तु अभी वे सब भाष्य नहीं मिलते। शङ्कर, रामानुज और मध्वाचार्यके ब्रह्मसूत्रका भाष्य देखनेमें आता है। वे तीनों ही उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीताके भाष्यकार हैं। गीता और ब्रह्मसूत्रके भाष्यकारकी संख्या भी अनेक है। श्रीगौराङ्ग सम्प्रदायके सुविख्यात दार्शनिक पण्डित बलदेव विद्याभूषण महाशयने भी ब्रह्मसूत्रका भाष्य किया है। निम्बार्क सम्प्रदाय तथा 'वल्लभाचार्य' सम्प्रदाय भी ब्रह्मसूत्रके भाष्य हैं। किन्तु इनके उपनिषद् भाष्यका बहुत कम प्रचार है, केवल ब्रह्मसूत्रभाष्य और गीताभाष्य सभी जगह प्रचलित है। रामानुजका ब्रह्मसूत्रभाष्य 'श्रीभाष्य', वल्लभाचार्यका भाष्य 'अणुभाष्य', निम्बार्काचार्यका भाष्य 'वेदान्तपारिजातसौरभ' और बलदेव विद्याभूषणका भाष्य 'गोविन्दभाष्य' कहलाता है। इनके सिवा विज्ञानभिक्षुका भी ब्रह्मसूत्रभाष्य है, इसमें कर्मकी प्रधानता बतलाई गई है। श्रीकण्ठाचार्यका एक और भाष्य है जो शैवमतका पोषक है। इन सब भाष्यादिका विशेष परिचय 'ब्रह्मसूत्रभाष्य' प्रकरणमें आलोचित होगा।

भिक्षुसूत्र।

वेदान्तप्रसङ्गके सूत्रयुगके मध्यमें केवल एक व्यास सूत्रका नाम ही सुप्रसिद्ध है। किन्तु इसके पहले भी वेदान्त सम्बन्धीय सूत्रग्रन्थ प्रचलित था। फलतः ब्रह्मसूत्रकी आलोचनासे ज्ञात होता है, कि प्राचीनोंने वेदान्तशास्त्रके सम्बन्धमें अनेक भिन्न भिन्न सिद्धान्त किये थे। ब्रह्मसूत्रकारने साक्षात् सम्बन्धमें सम्भवतः उनके मुखसे ये सब अभिप्राय संग्रह नहीं किये। शायद इस सम्बन्धमें बहुतसे छोटे छोटे सूत्रग्रन्थ थे। जिस प्रकार सूर्योदय होने पर आकाशके नक्षत्र तारे बिलकुल अदृश्य हो जाते हैं, शायद ब्रह्मसूत्ररूप वेदान्त सूर्यके उदय होने पर वे सब छोटे छोटे सूत्र उसी प्रकार अदृश्य हो गये हैं। किन्तु 'भिक्षुसूत्र' नामक एक वेदान्तसूत्र ग्रंथका नाम मात्र भी विद्यमान है। भिक्षुसूत्रकी एक टीका भी है। भिक्षुसूत्र प्राचीन ग्रंथ है, इसका प्रमाण भी मिलता है। पाणिनि कहते हैं—

"पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः" (४।३।११०)

काशिकावृत्तिमें लिखा है—"सूत्रशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते।"

अर्थात् भिक्षु और नट इन दोनों शब्दोंके साथ सूत्र शब्दका सम्बन्ध है। अतएव 'भिक्षुसूत्र प्राचीन ग्रंथ है, इसमें जरा भी संदेह नहीं। भिक्षुके पर्याय पाराशरी, कर्मन्दी, मस्करी और पाराशरी हैं।

"पराशरेण प्रोक्तं भिक्षुसूत्रं पाराशरि तदधीते पाराशरी।"

इससे जाना जाता है, कि पाराशर और कर्मन्द दोनोंने पृथक्-पृथक् भिक्षुसूत्रकी रचना की थी। भी

ब्रह्मसूत्रभाष्यके १।४वें अध्यायके चौथे पादकी टीकामें रामानुजने लिखा है—"भगवता बादरायणेन [illegible]" बादरायणने भी जो कई सूत्रोंमें ब्रह्मतत्त्वकी आलोचना की थी, उससे भी यह जाना जाता है।

कोई ऐसा भी कह सकते हैं, कि यह भिक्षुसूत्र बौद्ध ग्रन्थ है। क्योंकि, बौद्ध लोग ही भिक्षु कहलाते हैं। परन्तु हम इसे युक्तिसंगत नहीं मान सकते।

संन्यासाश्रम ही भिक्षु आश्रम है। पराशर और कर्मन्द ये दो नाम बौद्धाचार्योंके नामकी मालिकामें नहीं देखे जाते। दूसरे भिक्षुसूत्र हिन्दुओंका शास्त्र है। धर्मशास्त्रका अन्तिम आश्रम ही भिक्षु आश्रम है, संन्यासी ही भिक्षु हैं। वे शास्त्र ही संन्यासियोंका शास्त्र है। अतएव 'भिक्षुसूत्र' वेदान्तसूत्र है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं हो सकता।

ब्रह्मविचारक शास्त्रादि पढ़ना भिक्षुओंका कर्तव्य है। आत्मज्ञानावस्थामें ही उनके आत्माकी कथा है। मनुसंहितामें लिखा है—

"[illegible]।
[illegible]॥"

(मनु ६।४१)

भिक्षुका स्वरूप और वेदान्तशास्त्रका अधिकारित्वादि समान है। ब्रह्मशास्त्र पढ़ना भिक्षुका कर्तव्य है। वेदान्त ही आत्मज्ञानका साधन है। अतएव वेदान्त ही भिक्षुओंका अवलम्बन है। भिक्षुगण उपनिषद्‌शास्त्र अध्ययन करते थे, किन्तु उपनिषदोंमें बहुत उपदेश थे, उनका सारांश उपदेश संक्षेपमें जानना कठिन था, इसी कारण भिक्षुसूत्रकी रचना हुई थी। हमें केवल दूसरे दो भिक्षुसूत्रके नाम मालूम हैं। इनके रचयिता और जो भिक्षु थे, वैसे ही इन लोगोंको जानना है। इस तरह भिक्षुसूत्रोंमें भिन्न भिन्न वैदान्तिक सम्प्रदायोंने अपने अपने सम्प्रदायके लिये वेदान्तका उपदेश पृथक्‌रूपसे लिपिबद्ध किया था। कोई कोई सम्प्रदाय पूर्ववर्ती ग्रन्थोंको नष्ट कर यह सूत्र भी विलीन हो गये हैं; किन्तु यह निश्चय है, कि उन भिक्षुसूत्रोंके वेदान्त-प्रतिपादक सम्प्रदायकी पद्धति रहनेसे वेदान्त ही इसका अवलम्बन स्थिर था। कौशल्य-

उनके परवर्ती समयके ब्रह्मसूत्रके अध्यायोंमें भिक्षु आश्रमकी कर्तव्यता विशेषरूपसे वर्णित है। टीकाकारोंने उपनिषदोंसे वचनोंके अनेक प्रमाणोंका उल्लेख किया है। संन्यासाश्रमका दूसरा नाम यति आश्रम और भिक्षु आश्रम है। ब्रह्मसूत्र रचे जानेके बहुत पहले भिक्षुगण उपनिषद् और भिक्षुसूत्र अध्ययन कर आत्मतत्त्वके पर्यालोचनमें लगे रहते थे। उपनिषद् उस समय भी संहिता भागमें रखा जाता था। भिक्षुगण इन सब सूत्रोंसे ही वेदान्तका उपदेश पाते थे; किन्तु बादमें ब्रह्मसूत्रके प्रबल प्रभावसे भिक्षुसूत्र विरल या विलुप्तप्राय हो गये हैं।

ब्रह्मसूत्र।

हम पहले लिख चुके हैं, कि ब्रह्मसूत्र वेदान्तका "न्यायप्रस्थान" है। वेदान्तियोंको इस ग्रन्थपर आदर है। अतएव ब्रह्मसूत्र ग्रन्थपर हम कुछ विस्तृतरूपसे आलोचना करेंगे। कहना नहीं पड़ेगा, कि ब्रह्मसूत्र भारतवर्षका एक चिर गौरवस्थान है। भारतवर्ष ही क्यों कहा जाय, समस्त मानव समाजका ही यह गौरवकीर्तिस्तम्भ है। मनुष्यकी आत्मा किस प्रकार अनुध्यान करते करते कितने ऊँचे सोपानमें विचरण कर सकती है तथा उस पुरुषका अनुसन्धानके [illegible] किस प्रकार सम्बन्ध है ब्रह्मसूत्र इसीको विचारपूर्वक [illegible] प्रतिपादित है। ब्रह्मसूत्र 'वेदान्तदर्शन' कहलाता है। इसके और भी अनेक नाम हैं। हम एक एक कर सभी बातोंकी आलोचना करते हैं।

१। ब्रह्मसूत्र [illegible] भाष्यके तीसरे अध्यायके चौथे [illegible] । [illegible]

जैमिनिका सूत्र 'धर्मसूत्र' कहलाता है, यह कर्मकाण्ड प्रधान। कर्मके पश्चात् ज्ञानकाण्ड ही इस सूत्रग्रंथका आलोचित विषय है। अतएव धर्मसूत्रके साथ पृथक्ता सूचित करनेके कारण ही इसका नाम 'ब्रह्मसूत्र' हुआ है।

२। "वेदांत-सूत्र"—वेदांतवाक्योंका सूत्रस्वरूप होनेके कारण ही ग्रंथको वेदांतसूत्र कहते हैं।

३। 'बादरायणसूत्र'—बादरायण इस सूत्रग्रंथके प्रणेता है, इसीसे यह ग्रंथ 'बादरायणसूत्र' कहलाता है।

४। 'व्याससूत्र'—व्यास बादरायणका दूसरा नाम है।

५। 'शारीरक-मीमांसा'—शङ्करभाष्यके टीकाकार गोविन्दानंदने 'रत्नप्रभा' टीकामें लिखा है—

"शरीरमेव शरीरकं कुत्सितत्वात् तन्निवासी शारीरको जीवस्तस्य ब्रह्मत्वविचारो मीमांसा तस्या-स्तिद्वदर्थः।"

अर्थात् शरीर और शरीरक एक ही बात है। शरीर शब्दके उत्तर कुत्सित अर्थमें 'क', शरीरमें वास करते हैं 'जीव' ही शारीरक शब्दका वाच्य है। जीवका ब्रह्मत्व विचार जिस ग्रन्थमें प्रतिपाद्य हुआ है वही 'शारीरक-मीमांसा' नामसे प्रसिद्ध है। इस कारण इसका दूसरा नाम 'शारीरकसूत्र' है।

६। 'उत्तर-मीमांसा'—जैमिनिकृत मीमांसाग्रंथका नाम 'पूर्वमीमांसा' है, कर्मकाण्डोक्त क्रियानुशीलनके बाद भी ब्रह्मज्ञानके लिये वासना होती है। इसीसे ब्रह्मविचारात्मक सूत्र उत्तरमीमांसा नामसे अभिहित हुआ है।

७। 'वेदान्तदर्शन'—शारीरक सूत्र या ब्रह्मसूत्रका दूसरा नाम वेदान्तदर्शन है। वेदान्तदर्शन कहनेसे उपनिषद्के दार्शनिक तत्त्वका आलोचनापूर्ण ग्रंथ मात्र ही समझा जाता है। इसी प्रकार ब्रह्मसूत्रका शाङ्करभाष्य, रामानुजभाष्य और अन्यान्य भाष्य भी 'वेदान्तदर्शन' कहलाते हैं। 'वेदान्त' कहनेसे ही 'वेदान्तदर्शन' नहीं समझा जाता। उपनिषद्की श्रुतियाँ वेदान्तश्रुति कहलाती हैं। इन सब श्रुतियोंके आधार पर युक्ति द्वारा जो विचार या मीमांसा और सिद्धान्त प्रदर्शित हुआ है, तद्‌रूपात्मक ग्रंथ वेदांतदर्शन नामसे प्रसिद्ध है। किन्तु साधारणतः ब्रह्मसूत्र ग्रंथ वेदांतदर्शन कहलाता है।

सूत्रकार।

महर्षि बादरायण शारीरक मीमांसाके सूत्रकार कह कर प्रसिद्ध हैं। इसीसे शारीरक-मीमांसाका दूसरा नाम 'बादरायणसूत्र' है। बादरायणका दूसरा नाम 'व्यास' है, इससे ब्रह्मसूत्र 'व्याससूत्र' नामसे भी परिचित है। किन्तु 'बादरायण' और 'व्यास' किसी व्यक्ति विशेषका नाम नहीं है। विष्णुपुराणमें लिखा है, कि प्रति मन्वन्तरमें द्वापर युगमें एक एक व्यासने जन्म ले कर वेदको विभाग किया, इसीसे वे वेदव्यास नामसे अभिहित हुए। बादरायण भी व्यक्तिविशेषका नाम नहीं है। 'बदरे बदरिकाश्रमे अयनं वासो यस्य सः बादरायणः' अर्थात् बदरिकाश्रममें जिनका वास है, वे ही बादरायण हैं। बादरायण ही वेदव्यास हैं, इसमें ज़रा भी संदेह नहीं। किंतु वैसे बादरायण और वेदव्यासकी संख्या अनेक हैं। यहां तक, कि इस ब्रह्मसूत्रमें भी कई जगह 'बादरायण' नामका उल्लेख पाते हैं।

(१) तदुपर्यपि बादरायणः सम्भवात्। (१।३।२६)

(२) पूर्वन्तु बादरायणो हेतुव्यपदेशात्। (३।२।४२)

(३) पुरुषार्थोऽतः शब्दादिति बादरायणः।

(३।४।१)

(४) अधिकोपदेशात्तु बादरायणस्यैवं तद्दर्शनात्।

(३।४।८)

(५) अनुष्ठेयं बादरायणः साम्यश्रुतेः। (३।४।१९)

(६) अप्रतीकालम्बनान्नयतीति बादरायण उभयथाऽदोषात् तत्क्रतुश्च। (४।३।१५)

(७) एवमप्युपन्यासात् पूर्वभावादविरोधं बादरायणः।

(४।४।७)

इस सामविधानब्राह्मणमें 'बादरायण' शब्दका उल्लेख देखते हैं। सामविधानब्राह्मणके वंशब्राह्मणमें यह नाम दिखाई देता है। यह बादरायण पाराशरायणके शिष्य थे और व्यासपाराशर्य्यसे चार पीढ़ी नीचे थे। जैमिनिसूत्र और शाण्डिल्यसूत्रमें बादरायण शब्दका उल्लेख है। अब प्रश्न यह होता है, कि इनमेंसे कौन

वेदव्यास ही ब्रह्मसूत्रके प्रणेता बादरायण थे या नहीं और ये बादरायण शुकदेवके पिता कृष्ण-द्वैपायन थे या नहीं? इस सम्बन्धमें वेदव्यास कृष्णद्वैपायनके सम्बन्धमें एक कहावत देखनेमें आती है, वह कहावत यह है, कि आत्मज्ञानमार्ग [illegible] एक पुराणमें थे, जो हर किसीको विचारने शक्ति और ज्ञानको [illegible] कृष्णद्वैपायन नामसे आविर्भूत हुए थे। यथा—

"अष्टाविंशतितमे [illegible] वेदव्यासः पुराणसंहितासु [illegible] कलिद्वापरयोः सन्धौ कृष्णद्वैपायन सम्भूते [illegible]।" ([illegible] १।१।१२)

यह कृष्णद्वैपायन वेदव्यास ब्रह्मसूत्रकार बादरायण थे या नहीं, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। इस पर कोई कोई मानते हैं, कि व्यास बादरायण और व्यास कृष्णद्वैपायन दोनों ही पृथक् व्यक्ति थे। महाभारत पढ़नेसे जाना जाता है, कि जो व्यास पाराशर्य हैं वे ही कृष्णद्वैपायन वेदव्यास हैं तथा शुकदेव उन्हींके पुत्र हैं। व्यास बादरायण अपर व्यक्ति थे। किन्तु [illegible] महाभारत तथा अन्यान्य ग्रन्थोंमें 'शुकदेव' बादरायणके बताए हैं, इसी अर्थमें वे 'बादरायणि' नामसे अभिहित हुए हैं। इस बादरायणका नाम [illegible]में भी जगह जगह आता है।

ब्रह्मसूत्र-अध्याय विभाग।

ब्रह्मसूत्र ग्रन्थ चार अध्यायोंमें विभक्त है। प्रत्येक अध्याय फिर चार चार 'पाद'में विभक्त हुआ है।

सूत्रसंख्या इस प्रकार है—

१म अध्याय	१म पाद	३१ सूत्र
	२य „	३२ „
	३य „	४३ „
	४र्थ „	२८ „
२य „	१म „	३७ „
	२य „	४५ „
	३य „	५३ „
	४र्थ „	२२ „
३य „	१म „	२७ „
	२य „	४१ „
	३य „	६६ „
	४र्थ „	५२ „
४र्थ „	१म „	१९ „
	२य „	२१ „
	३य „	१६ „
	४र्थ „	२२ „
		५५५

समस्त सूत्रकी संख्या पांच सौ पचपन है। किसी किसीने और भी दो एक सूत्र बढ़ा कर ५५८ कर दिया। किन्तु प्रायः सभी मुद्रित ग्रन्थोंमें ५५५ संख्या ही देखी जाती है।

अधिकरण।

वेदान्तसूत्रोंको 'अधिकरण' नामके एक दूसरे भेदोंमें शामिल किया गया है, वह सांख्यिक विभागमात्र है। न्यायदर्शनमें पञ्चावयव द्वारा विषयोपपत्ति निर्दिष्ट है, यह पाठकोंको अच्छी तरह मालूम है। वेदान्त विभाग भी वैसा ही है। इस पर्व्वमें लिखा गया है, कि [illegible] वेदान्तशास्त्रके न्याय प्रस्थान नामसे अभिहित है। यह सूत्र प्रायः विचारपद्धतिसे [illegible] है। न्यायके पञ्चावयवकी तरह इसके जो पञ्चावयव हैं, वही अधि-करण कहलाता है। यथा—

"[illegible]
[illegible]"

अर्थात् अधिकरण पञ्चावयवविशिष्ट है — यथा, विषय, सन्देह, सङ्गति, पूर्वपक्ष और सिद्धान्त। साधारणतः दो श्लोकोंमें एक अधिकरण संगृहीत होता है। उसके बाद श्लोकके पूर्वार्द्धमें एक अवयव, उत्तरार्द्धमें एक अवयव, द्वितीय श्लोकमें एक अवयव, इन चार अवयवोंके अनुसन्धानसे [illegible] सङ्गति देखनी होगी। वह तीन प्रकारकी है, शास्त्रसङ्गति, अध्यायसङ्गति तथा पादसङ्गति, इन अवयव द्वारा सूत्रार्थका विचार किया जाता है। वेदान्तसूत्र पढ़नेमें पहले इस अधिकरणपञ्चांशका ज्ञानलाभ करना आवश्यक है। [illegible] 'न्यायमालाविस्तर' नामक एक ग्रन्थमें वेदान्तसूत्रके अधिकरणोंके [illegible] की अति विस्तृत आलोचना देखी जाती है।

वेदान्त सूत्रका प्रतिपाद्य

ब्रह्मसूत्रके प्रत्येक सूत्रका प्रतिपाद्य एक एक विषय है तथा कौन सूत्र किस अधिकरणके अन्तर्गत है उसका निरूपण किया गया है। संक्षेपमें उसकी तालिका नीचे दी जाती है।

समन्वयाख्य प्रथम अध्याय प्रथम पाद।

प्रतिपाद्य विषय	सूत्राङ्क	अधिकरण
१। ब्रह्मका विचार्यत्व	१	१
२। ब्रह्मका लक्षणत्व	२	२
३। ब्रह्मका वेदकर्तृत्व (२ वर्णक) ब्रह्मकी वेदैकगम्यता (२ वर्णक)	३	३
४। वेदांतका ब्रह्मबोधकत्व (१ वर्णक) ब्रह्ममें ही वेदांतका पर्यवसितत्व (२ वर्णक)	४	४
५। प्रधानके जगत्कर्तृत्वका अभाव (यह सांख्यदर्शनका प्रतिवाद है)	५-११	५
६। आनन्दमय कोषका परमात्मत्व (२ वर्णक) ब्रह्मका आनन्दमय जीवाधारत्व (२ वर्णक)	१२-१९	६
७। आदित्यके अन्तर्गत हिरण्मय पुरुषका ईश्वरत्व	२०-२१	७
८। परब्रह्मका आकाश शब्दवाच्यत्व	२२	८
९। ब्रह्मका आकाश शब्दवत् प्राणशब्द वाच्यत्व	२३	९
१०। परब्रह्मका ज्योतिशब्द वाच्यत्व	२४-२७	१०
११। ब्रह्मका प्राणशब्द वाच्यत्व	२८-३१	११

प्रथम अध्यायका द्वितीय पाद।

प्रतिपाद्य विषय	सूत्राङ्क	अधिकरण
१। ब्रह्मका उपास्यत्व	१-८	१
२। ब्रह्मका जगत्कर्तृत्व	९-१०	२
३। देवगणोंके ईश्वरका हृदयगुहागमनत्व	११-१२	३
४। छाया जीवादि अर्थसमूह त्याग कर परब्रह्मका ही उपास्यत्व	१३-१७	४
५। प्रधान जीवेतर ईश्वरका अन्तर्यामित्व शब्द वाच्यत्व	१८-२०	५
६। प्रधान और जीव निराकरण कर ईश्वरका भूतयोनित्व	२१-२३	६

प्रतिपाद्य विषय	सूत्राङ्क	अधिकरण
७। ब्रह्मका वैश्वानर शब्द वाच्यत्व	२४-३२	७

प्रथम अध्यायका तृतीय पाद।

१। आत्मा हिरण्यगर्भ प्रधान जीवसूत्र और ईश्वरके मध्य केवल ईश्वरका ही सर्वाधिष्ठानभूतत्व	१-७	१
२। प्राण और परेश इन दो शब्दोंके मध्य सत्य शब्द द्वारा परेशका ही श्रेष्ठत्व	८-९	२
३। प्रणव और ब्रह्मके मध्य ब्रह्मका ही अक्षरशब्द वाचित्व	१०-१२	३
४। अपर और परब्रह्मके मध्य त्रिमात्र प्रणव द्वारा परब्रह्मका ही ध्येयत्व	१३	४
५। दहराकाश रूपमें प्रतीयमान वियज्जीव और ब्रह्मके मध्य ब्रह्मका ही दहराकाश वाच्यत्व	१४-१८	५
६। अङ्गुष्ठपुरुषरूपमें आपाततः प्रतीयमान जीव और परेशके मध्य परेशका ही अङ्गुष्ठ शब्दका वाच्यत्व	१९-२१	६
७। जगत् प्रकाशत्वरूपमें उपलब्ध सूर्यादि तेज पदार्थ और चैतन्यके मध्य चैतन्यका ही तत्प्रकाशत्व	२२-२३	७
८। जीवात्मा और परमात्माके मध्य परमात्माका ही अङ्गुष्ठ मात्र पुरुष कह कर प्रतिपादन	२४-२५	८
९। देवताओंका निर्गुण विद्यामें अधिकार निरूपण	२६-३३	९
१०। शूद्रोंका वेदमें अनधिकारत्वपूर्वक जीवश्रुतत्वश्रुति द्वारा शूद्रजातियोंका ज्ञानश्रुतिका वेदविद्याधिगम	३४-३८	१०
११। प्राणस्वरूपमें आकाश वज्र, वायु और परेशके मध्य परेशका ही अङ्गुष्ठ प्राणशब्द वाच्यत्व	३९	११
१२। ब्रह्मका परम ज्योतिष्ट्व	४०	१२
१३। ब्रह्मका आकाश शब्द वाच्यत्व	४१	१३
१४। ब्रह्मका विज्ञानमय शब्द वाच्यत्व	४२-४३	१४

प्रथम अध्यायका चतुर्थ पाद।

१। कारणत्वप्रतिपादक स्थूल शरीरका अव्यक्त

सदानंद, स्वमार्गमर्मविवरण—हरिदास, स्वयंबोध, स्वरूपनिरूपण, स्वरूपनिर्णय, स्वरूपप्रकाश—सदानंद काश्मीर, स्वसंवाद्वैतप्रकाश (ब्रह्मसूत्रटीका)—रामानंदतीर्थ स्वात्मनिरूपण या स्वात्मानंदप्रकाश—शङ्कराचार्य, स्वात्मपूजा—शङ्कर, स्वात्मप्रयोगप्रदीप—अमरेन्द्रयोगीन्द्र, स्वात्मसंवित्युपदेश—दत्तात्रेय, स्वात्मानंदोपदेश, स्वानंद चन्द्रिका, स्वानुभवादर्श—माधवाश्रम, स्वानुभूतिप्रकाश—देवेन्द्र, स्वाराज्यसिद्धि, हंसमौन—सच्चिदानन्दनाम तीर्थ, हंसविवेक—सत्यज्ञाननामदत्तीर्थ, हरिगुणमणि-दर्पण—सुरपुर श्रीनिवास, हरिहरविहार बोधेन्द्र, हरिहरोपाधिविवेचन—अमृतानंदतीर्थ, हस्तामलक-स्तोत्र या हस्तामलकसंवादस्तोत्र।

वेदान्तचूड़ामणि—दाक्षिणात्यवासी एक सुपण्डित ब्राह्मण।

वेदान्तदेशिक—अच्युतशतक और यमकरत्नाकरके रच-यिता।

वेदान्तनयनाचार्य—अधिकरणचिंतामणिके प्रणेता।

वेदान्तवागीश भट्टाचार्य—१ वेदांतरहस्य और वेदांत-सारभावार्थदीपिकाके प्रणेता। २ हरितोषण नामक भक्तिग्रंथके रचयिता।

वेदान्तसूत्र (सं० पु०) महर्षि बादरायणकृत सूत्र जो वेदांतशास्त्रके मूल माने जाते हैं। विशेष विवरण वेदान्त शब्दमें देखो।

वेदान्ताचार्य—बहुतसे ग्रंथ रचयिताकी उपाधि। संस्कृत साहित्यमें लक्ष्मण, वेङ्कटनाथ, श्रीनिवास, आदि पण्डितोंकी वेदांताचार्य उपाधि दिखाई देती है, किंतु निम्नोक्त ग्रंथ किस वेदांताचार्यके रचित हैं, उसका पता नहीं। नीचे कई ग्रंथकर्त्ता वेदांताचार्यका उल्लेख किया जाता है

१ अधिकरण-सारावली, तत्त्वमुक्ताकलाप, न्याय-परिशुद्धि, न्यायरत्नावली, पञ्चरात्ररक्षा, भगवद्गीता-तात्पर्यचन्द्रिका, रङ्गनाथपादुकासहस्र, रहस्यत्रयसार, शतदूषणी, सच्चरित्ररक्षा, सर्वार्थसिद्धि और हंस-सन्देशके रचयिता।

२ अभयप्रदानसार, दशोपनिषच्छ और यतिराज-सप्ततिके प्रणेता।

३ गुणरत्नकोषटीकाके प्रणेता।

४ प्रमेयटीका और बहुमोहिवादके रचयिता।

५ यादवाभ्युदयकाव्यके रचयिता।

६ "अनुमानस्य पृथक्प्रामाण्यखण्डनम्"-के रच-यिता। ये वल्लभनृसिंहके पुत्र थे।

वेदान्तिन् (सं० पु०) वेदांतोऽस्यास्तीति वेदांत-इनि। वेदांतशास्त्रवेत्ता, वह जो वेदांतका अच्छा ज्ञाता हो, ब्रह्मवादी।

वेदाप्ति (सं० स्त्री०) वेदज्ञानप्राप्तकाम।

वेदाभ्यास (सं० पु०) वेदस्य अभ्यास। वेदपाठ, वेदानुशीलन। शास्त्रमें लिखा है, कि वेदाभ्यास पांच प्रकारका है। ब्राह्मणका वेदाभ्यास ही परम तपस्या है। दिनके दूसरे भागमें वेदाभ्यास करना होता है। पहले षडङ्गके साथ वेदस्वीकरण, पीछे वेदविचार, वेदाभ्यास, वेदजप और वेददान ये पांच प्रकारके वेदाभ्यास हैं।

वेदाम—मन्द्राज प्रेसिडेंसीके गञ्जाम जिलेका एक छोटा सामंत-राज्य। वेदाम ग्राम दो वर्गमील विस्तृत है।

वेदार (सं० पु०) कृकलास, गिरगिट।

वेदार—एक प्राचीन जनपद। प्राचीन विदर्भराज्य धीरे धीरे वेदार कहलाने लगा है। यह स्थान महिसुर, हैदराबाद और महाराष्ट्र प्रदेशके मध्यस्थलमें अवस्थित था। विदर्भराज नलके बाद इस स्थानकी समृद्धि या विशेष इतिहासका परिचय नहीं पाया जाता। दाक्षि-णात्यके हिन्दूराजाओंके प्रभावकालमें भी यह सुप्रतिष्ठित न हो सका था। इसके बाद मुसलमानी अमलसे इसका इतिहास मिलता है। आज भी इस देशमें विस्तृत स्थानोंमें वेदारी जातिका वास देख कर अनुमान किया जाता है, कि प्राचीन वेदार जनपद बहुत दूर तक फैला हुआ था।

१८३६ ई०के पूर्वपर्यन्त वेदारीगण छोटे छोटे कितने हिन्दू और मुसलमान राजाओंके शासनाधीन था। उनमेंसे बङ्गनपल्लीके सैयद-वंशीय नवाब सिटेड डिस्ट्रिक्के पूर्वांशमें, कर्नूलके पठान नवाब तुङ्गभद्राके दक्षिणा किनारेके देशोंमें तथा पश्चिमभागमें गद्वालके रेड्डीगण, सन्दूरके घोड़पड़े वंशीय महाराष्ट्र सरदार

चार्य,—शब्दारम्भमर्दन त्र्यम्बक, शिवादित्यप्रकाशिका, शिवादित्यमणिदीपिका—अप्पयदीक्षित, शिवोत्कर्ष, शुक्लोर्ध्वशोभेवाद, शुष्कज्ञाननिरास—श्रीधरमिश्र, शैवत्वविचार, शैववाक्यार्थचन्द्रिका, शैवनवदशप्रकरण, शैवपञ्चक, शैवभाष्य—श्रीकण्ठशिवाचार्य, शैववैष्णव, शैववैष्णववाद, शैववैष्णववादार्थ, श्रीकण्ठमार्गीय, श्रीमद्वेदान्तसार, श्रीधरीवज्रदर्शी, श्रीभाष्य—रामानुज, श्रीहर्षखण्डन, श्रुतदीप, श्रुतप्रकाशिका—सुदर्शनाचार्यकृत श्रीभाष्यटीका, श्रुतप्रकाशिकाखण्डनसिद्धाञ्जन, श्रुतप्रकाशिका संग्रह, श्रुतप्रदीप, श्रुतप्रदीपिका, श्रुतभावप्रकाशिका—रङ्गरामानुजस्वामिन्, श्रुतिकल्पद्रुम—हरिदास, श्रुतिकल्पलता श्रीपति, श्रुतिगीता, श्रुतिचिकित्सा, श्रुतितत्त्वनिर्णय, श्रुतितात्पर्यनिर्णय, श्रुतिप्रकाशिका, श्रुतिमतानुमान—त्र्यम्बकशास्त्री, श्रुतिमतप्रकाशिका—त्र्यम्बकशास्त्री, श्रुतिवाक्सारसंग्रह, श्रुतिसंक्षिप्तवर्णन—सुब्रह्मण्य, श्रुतिसंग्रह, श्रुतिसार—तोटकाचार्य, श्रुतिसार—पूर्णानन्द, श्रुतिसार—वल्लभाचार्य श्रुतिसारसमुच्चय—पूर्णानन्द, श्रुतिसारसमुद्धरणप्रकरण—तोटकाचार्य, श्रुतिस्मृत्यादितात्पर्य, श्लोकद्वयव्याख्या, श्लोकपञ्चकविवरण—हरिदास, षट्पदार्थ विवरण, षड्दर्शनोपकरण, षोडशमहावाक्यानि, षोडशवर्णी वासुदेवेन्द्रशिष्य, संवित्प्रकाश—वामनदत्त, संवित्सिद्धि—यमुनाचार्य सगुणनिर्गुणवाद, संक्षेपशारीरक सर्वज्ञात्मन् महामुनि, संक्षेपशारीरकभाष्य—शङ्कराचार्य, संक्षेपाध्यात्मसार—रामानन्दतीर्थ, संग्रह—वीरमहेश्वराचार्य, संग्रहविवरण, संज्ञाप्रकरण, सच्चिदानन्दानुभवदीपिका (पञ्चप्रकरणी टीका)—शङ्कराचार्य, सत्तत्त्वरत्नमाला ताम्रपर्णाचार्य, सत्सिद्धान्तमार्तण्ड, सत्सुखानुभव—इच्छारामस्वामी, सदाशिव ब्रह्म, सद्विद्याविजय—वेङ्कटाचार्य, सद्वृत्तरत्नावली, सनत्संहिता—गौरीकान्त, सन्धानकल्पवल्ली सच्चिदानन्द भारती, सन्यासाश्रमविचार, सपर्यासक्त, सप्तग्रन्थी, सप्तभङ्गीतरङ्गिणी, समाधिप्रकरण, समीचीनभाष्यटीका, सम्प्रदायचन्द्रिका, सम्प्रदायपरिशुद्धि, सम्यग्बोधदीप—स्वमनन्दी, सरस्वतीय—स्वप्रकाश सरस्वती, सर्वलिङ्गसन्यास, सर्वसार, सर्वसिद्धान्तसंग्रह, सर्वाङ्गयोगदीपिका—सुन्दरदास, सर्वार्थसिद्धि—वेदान्ताचार्य, सहस्रकिरणावली सहस्राख्य बोधसिद्धि, सात्वतसिद्धान्तशतक, साम्राज्यसिद्धि—गङ्गाधरसरस्वती, सारचुलुक—वैदनराचार्य, सारदीपिका—श्रीनिवासाचार्य, सारप्रकाशिका—श्रीनिवासाचार्य, सारभोग, सारसमुच्चय, सारासारविवेक, सारास्वादिनी गोपालदेशिकाचार्य, सारास्वादिनी—रामानुज स्वामी, सिद्धान्तकल्पलता, सिद्धान्तकल्पवल्ली वरदगुरुशिष्य, सिद्धान्तगीता, सिद्धान्तग्रन्थ, सिद्धांतचन्द्रिका अनंतभट्ट, सिद्धांतचंद्रिका—रामानंद, सिद्धांतचंद्रिका—शिवचंद्रसिद्धांत, सिद्धांतचंद्रिकाखण्डन, सिद्धांतचिंतामणि—कृष्णभट्ट, सिद्धांतचूडामणि, सिद्धांतजाह्नवी—श्रीदेवाचार्य, सिद्धांततत्त्व—अनंतदेव, सिद्धांततत्त्वदीप, सिद्धांततत्त्वप्रकाशिका, सिद्धांतदीप—विश्वदेव, सिद्धांतदीपमें तत्त्वप्रकाश—हयग्रीव, सिद्धांतदीपिका नाना दीक्षितकृत वेदांतसिद्धांतमुक्तावलीटीका, सिद्धांतन्यायचंद्रिका, सिद्धांतमकरन्द, सिद्धांतमञ्जरी, सिद्धांतमंजुषा शिवभारती, सिद्धांतमुक्तावली, सिद्धांतरत्न, (निम्बार्क) सिद्धांतरत्नमाला—श्रीवत्स शर्मन्, सिद्धांतरत्नाकर, सिद्धांतरत्नावली—वेंकटाचार्य, सिद्धांतरहस्य—कल्याणराय, सिद्धांतरहस्यवृत्तिकारिका—हरिदास, सिद्धांतवेद, सिद्धांतशतक, सिद्धांतशिरोमणि—राघवेंद्रसरस्वती, सिद्धांतसंग्रह—अप्पयदीक्षित, सिद्धांतसंग्रह—वेंकटाचार्य, सिद्धांतसारसंग्रह, सिद्धांतसारावली—आनंदभट्ट, सिद्धांतसिद्धाञ्जन अनंताचार्य सिद्धांतसिद्धाञ्जन—कृष्णानंद, सिद्धांतसिंधु, सिद्धांतसूक्तिमञ्जरी, सिद्धांतसेतुका—सुंदरभट्ट, सिद्धांतार्णव—रघुनाथसार्वभौम, सिद्धित्रय—यमुनाचार्य सिद्धिसाधक, सुधानविंशति—मुकुंदकवि, सुबोधपत्रिका—मातृसूनु, सुबोधिनी—गङ्गाधर, सुबोधिनी—नृसिंहसरस्वती, सुबोधिनी—पुरुषोत्तम, सूत्रपाद—काशीनाथ, सूत्रप्रकाशिका, सूत्रार्थचंद्रिका—केशवदेव, सूत्रोपन्यास, सेश्वरमीमांसा, सोपदेशधारण, सोपानपञ्चरत्न, स्थूलप्रकरण—शङ्कराचार्य, स्थूलसूक्ष्मप्रकरण, स्फुटबोध, स्वप्रभा—प्रत्यक्तत्त्वचिंतामणिटीका—

सदानंद, स्वमार्गमर्मविवरण—हरिदास, स्वयंबोध, स्वरूपनिरूपण, स्वरूपनिर्णय, स्वरूपप्रकाश—सदानंद काश्मीर, स्वल्पाद्वैतप्रकाश (ब्रह्मसूत्रटोका)—रामानंदतीर्थ, स्वात्मनिरूपण या स्वात्मानंदप्रकाश—शङ्कराचार्य, स्वात्मपूजा—शङ्कर, स्वात्मप्रयोगप्रदीप—अमरेन्द्रयोगीन्द्र, स्वात्मसंविदयूपदेश—दत्तात्रेय, स्वात्मानंदोपदेश, स्वानंदचन्द्रिका, स्वानुभवादर्श—माधवाश्रम, स्वानुभूतिप्रकाश—देवेंद्र, स्वाराज्यसिद्धि, हंसमीन—सत्यज्ञनानंदतीर्थ, हंसविवेक—सत्यज्ञनानंदतीर्थ, हरिगुणमणिदर्पण—सुरपुर श्रीनिवास, हरिहरविचार चौधेन्द्र, हरिहरोपाधिविवेचन—अमृतानंदतीर्थ, हस्तामलकस्तोत्र या हस्तामलकसंवादस्तोत्र।

वेदान्तचूड़ामणि—दाक्षिणात्यवासी एक सुपण्डित ब्राह्मण।

वेदान्तदेशिक—अच्युतशतक और यमकरत्नाकरके रचयिता।

वेदान्तप्रमाचार्य—अधिकरणचिंतामणिके प्रणेता।

वेदान्तवागीश भट्टाचार्य—१ वेदांतरहस्य और वेदांतसारभावार्थदीपिकाके प्रणेता। २ हरितोषण नामक भक्तिग्रन्थके रचयिता।

वेदान्तसूत्र (सं० पु०) महर्षि बादरायणकृत सूत्र जो वेदांतशास्त्रके मूल माने जाते हैं। विशेष विवरण वेदान्त शब्दमें देखो।

वेदान्ताचार्य—बहुतसे ग्रंथ रचयिताकी उपाधि। संस्कृत साहित्यमें लक्ष्मण, वेङ्कटनाथ, श्रीनिवास, आदि पण्डितोंको वेदांताचार्य उपाधि दिखाई देती है, किंतु निम्नोक्त ग्रंथ किस वेदांताचार्यके रचित हैं, उसका पता नहीं। नीचे कई ग्रंथकर्त्ता वेदांताचार्यका उल्लेख किया जाता है

१ अधिकरण-सारावली, तत्त्वमुक्ताकलाप, न्यायपरिशुद्धि, न्यायरत्नावली, पञ्चरात्ररक्षा, भगवद्गीतातात्पर्यचन्द्रिका, रङ्गनाथपादुकासहस्र, रहस्यत्रयसार, शतदूषणी, सच्चरित्ररक्षा, सर्वार्थसिद्धि और हंससंदेशके रचयिता।

२ अभयप्रदानसार, दशदोपनिघण्टु और यतिराजसप्ततिके प्रणेता।

३ गुणरत्नकोषटीकाके प्रणेता।

४ प्रमेयटीका और वहुवोहिवादके रचयिता।

५ यादवाभ्युदयकाव्यके रचयिता।

६ "अनुमानस्य पृथक्प्रामाण्यखण्डनम्"के रचयिता। ये वल्लमनृसिंहके पुत्र थे।

वेदान्तिन् (सं० पु०) वेदांतोऽस्यास्तीति, वेदांत-इनि। वेदांतशास्त्रवेत्ता, वह जो वेदांतका अच्छा ज्ञाता हो, ब्रह्मवादी।

वेदापि (सं० स्त्री०) वेदज्ञानप्राप्तकाम।

वेदाभ्यास (सं० पु०) वेदस्य अभ्यासः। वेदपाठ, वेदानुशीलन। शास्त्रमें लिखा है, कि वेदाभ्यास पांच प्रकारका है। ब्राह्मणका वेदाभ्यास ही परम तपस्या है। दिनके दूसरे भागमें वेदाभ्यास करना होता है। पहले षड्ङ्गके साथ वेदस्वीकरण, पीछे वेदविचार, वेदाभ्यास, वेदजप और वेददान ये पांच प्रकारके वेदाभ्यास हैं।

वेदाम—मन्द्राज प्रेसिडेंसीके गञ्जाम जिलेका एक छोटा सामंत-राज्य। वेदाम ग्राम दो वर्गमील विस्तृत है।

वेदार (सं० पु०) कृकलास, गिरगिट।

वेदार—एक प्राचीन जनपद। प्राचीन विदर्भराज्य धीरे धीरे वेदार कहलाने लगा है। यह स्थान महिसुर, हैदराबाद और महाराष्ट्र प्रदेशके मध्यस्थलमें अवस्थित था। विदर्भराज नलके बाद इस स्थानको समृद्धि या विशेष इतिहासका परिचय नहीं पाया जाता। दाक्षिणात्यके हिन्दूराजाओंके प्रभावकालमें भी यह सुप्रतिष्ठित न हो सका था। इसके बाद मुसलमानी अमलसे इसका इतिहास मिलता है। आज भी इस देशमें विस्तृत स्थानोंमें वेदारी जातिका वास देख कर अनुमान किया जाता है, कि प्राचीन वेदार जनपद बहुत दूर तक फैला हुआ था।

१८३६ ई०के पूर्वपर्यन्त वेदारोगण छोटे छोटे कितने हिन्दू और मुसलमान राजाओंके शासनाधीन था। उनमेंसे वङ्गनपल्लीके सैयद-वंशीय नवाब 'सिडेड डिस्ट्रिक्ट'के पूर्वांशमें, कर्नूलके पठान नवाब तुङ्गभद्राके दक्षिणी किनारेके देशोंमें तथा पश्चिमभागमें गढ़वालके रेड्डीगण, सन्दूरके घोड़पड़े वंशीय महाराष्ट्र सरदार

और आनगुंडोके क्षत्रियराज राज्य करते थे। राजा विजयनगरराज रामचंद्रके वंशधर हैं। गोलकुण्डा, कुलवर्गा, विजापुर और अहमदनगरके मुसलमान-राजाओं के अभ्युदय पर विजयनगर जब श्रीभ्रष्ट हो गया, तब उनके वंशधर सन्दूरमें आ कर बस गये।

इसके सिवा शाहनूरके पठान सरदार, गजन्धर (गदाधर) गढ़के घोड़पड़े वंशीय महाराष्ट्र-सामन्त तथा अकालकोट, घोरपंट और बेदार जोरापुरके सामन्तोंने इस राज्यका एक एक अंश ग्रहण किया था। शेषोक्त तीन सामंत पोड़ नायक नामक एक बेदारवासीके सैनिकके वंशधर थे। विजापुर अवरोधके समय इस व्यक्तिने मुगल बादशाह औरङ्गजेबको सहायता की थी, इस पुरस्कारमें उन्होंने रायचूड़ नामक जनपदों-को जागीरमें पाया था। आज भी उनके वंशधर बेदार-राज्यके दो स्थानोंका शासन करते हैं।

बेदारराज्यके अधिवासी बेदार या बेदारी कहलाते हैं। जोरापुरके बेदारी बहुत मजबूत होते हैं। ये तथा घोरपण्टवासी बेदारी शराब पीते तथा शूकर, बराह, गाय, भैंस आदिका मांस खाते हैं।

ये लोग साहसी तथा शिकार और दस्युवृत्तिमें बड़े विलक्षण होते हैं। जिस पिण्डारी दलने एक समय ५० वर्ष तक मध्यभारतको थर्रा दिया था उस दलमें बेदारी जातिकी संख्या ही बलवती थी तथा उसीसे इस दलका पिण्डार नाम हुआ। जोरापुर नगर पर्वतके ऊपर स्थापित होनेके कारण डकैतोंके रहनेका उपयुक्त स्थान था।

महिसुर राज्यमें भी अनेक बेदारियोंका बास है। उनमेंसे बहुतेरे शिकार कर अथवा पक्षीको पकड़ कर अपना गुजारा चलाते हैं। कुछ लोग तो छोटे छोटे घोड़े रखते और उनकी पीठ पर अनाज लाद कर दूसरी जगह ले जाते हैं। १९वीं सदीके मध्यकालमें बेल्लरी जिलेमें जिस बेदार-पामलू अर्थात् बेदार जातिका बास था, वह भी इसी तरह घोड़ेकी पीठ पर माल असबाब लाद कर दूसरी जगह ले जाता थी। अनेक समय युद्ध क्षेत्रमें रसद पहुंचानेके लिये सामरिक विभागसे इन्हें नियुक्त किया जाता था। रमणमल्ल पर्वत पर भी एक दल बेदारीका बास है। इनमेंसे महिसुरवासी बेदारी ही सबसे अधिक उन्नत हैं।

महिसुर और बेल्लरीवासी बेदारोके अधिकांश मनुष्य इस्लामधर्ममें दीक्षित हुए हैं।

हिन्दू बेदारियोंमें जब कोई कन्या जन्म लेती है, तब वे लोग उसे किसी देवताके नाम पर उत्सर्ग कर देते हैं तथा वह कन्या देवरक्षिता है, इस बातको जतानेके लिये वे कन्याके शरीरमें मुद्रा या छाप लगा देते हैं। तभी से वह कन्या बसवी या मुरली कहलाती है। पुरुष लोग "दशारी" हो ब्रह्मचर्य अवलम्बन कर भिक्षासे जीविका चलाते हैं।

बेदार—दाक्षिणात्यका प्राचीरद्वारा वेष्टित एक प्राचीन नगर। यह हैदराबाद नगरसे ७५ मील उत्तर-पश्चिम मञ्जिरा नदीके दाहिने किनारे (अक्षा० १७°५४´ उ० तथा देशा० ७७° ३५´ पू०के मध्य) अवस्थित है। नगरभाग समुद्र-पृष्ठसे २२५० फुट और तोरणचूड़ा २३५० फुट ऊंची है। १६वीं सदीके मध्यकालमें यह बाह्मनी-राजवंशकी राजधानी रूपमें गिना जाता था। उस समय इसकी श्रीवृद्धि भी यथेष्ट थी। जिस प्रकाण्ड प्राचीर और दुर्गसे एक समय इसके चारों ओर घिरा था, वह अभी तहस नहस हो गया है।

मुगल बादशाह बाबरके भारत पर चढ़ाईके समय बेदार राज्य पार्श्ववर्त्ती राजाओंके हाथ था। १५३२ ई०-में निजामशाही राजाओंने इस देशमें अपना शासन फैलाया। १७५१ ई०में पेशवा बाजीराव और सलाबत्-जङ्गके साथ इस नगरमें सन्धि हुई थी।

बेदारमें एक प्रकारके बढ़िया मिट्टीके बरतन तथा तरह तरहकी धातुओंके बरतन तैयार होते थे। यूरोपीय वाणिज्य पण्यमें यह 'बेदार वेयर' (Beder-ware) नामसे प्रसिद्ध है। डा० हाइन, बुकानन हमिल्टन इस मिश्रधातुकी प्रस्तुत प्रणाली देख कर जो लिपिबद्ध कर गये हैं, वह परस्पर स्वतन्त्र है।

डा० हाइनके मतसे—१६ऑंस तांबा, ४ औंस सीसा और २ औंस टीन इन्हें एकत्र गला कर प्रत्येक ३औंसमें १६औंसके हिसाबसे रांगा (zink) मिलावें। पीछे आंचमें पर चढ़ा कर गलानेसे यह धातु पात्रादि

बनाने लायक हो जाती है। उसका रंग प्युटर या जिंककी तरह सफेद होता है, किन्तु कारीगर बरतनको तैयार कर उस पर काला रंग चढ़ा देते हैं। यह रंग सोरा, लवण और तूतियाके योगसे बनाया जाता है। डा० हमिल्टनने परीक्षा कर देखा है, कि १२३६० ग्रेन जिन्क, ४६० ग्रेन तांबा और ४१४ ग्रेन सीसा इन्हें कुठालीमें रख कर गलाते हैं। आंच लगने पर ये सब कुठालियां नष्ट हो जाती हैं, इस कारण गलानेके समय उसमें थोड़ा मोम और रजन लगा दी जाती है। पीछे उस गली हुई धातुको सांचेमें ढालते हैं। ठंढा होने पर मट्टीके सांचेको धीरे धीरे फोड़ कर बरतन बाहर निकाल लेते हैं। पीछे बाहरी हिस्सेको साफ करनेके लिये रेंतीसे रेंत देते हैं। इसके बाद बरतनको तूतियेके जलमें डुबो रखते हैं, इससे उसके ऊपर काले रंगका दाग पड़ जाता है। नक्काशीको नक्काशी करनेमें इससे बड़ी सुविधा होती है। ये सब बरतन साधारणतः वेदारी बरतन कहलाते हैं।

ऊपर जिस बरतनकी बात लिखी गई, उसे प्रधानतः तीन श्रेणीके लोग बनाते हैं। एक श्रेणीके लोग सांचे बनाते हैं। यह सांचा बड़ी अनूठी प्रथासे बनाया जाता है। वे मिट्टीका सांचा बना कर उसके भीतर मोम और रजन भर देते हैं। द्रव धातु ढालनेके समय उस सांचेको थोड़ा गरम कर लेते हैं जिससे भीतरका मेम धीरे धीरे गल कर बाहर निकल आता और भीतरमें शून्य स्थान बन जाता है। पीछे उसमें द्रव पदार्थ ढाल देते हैं। इस धातुमें कभी भी मोर्चा नहीं लगता। हथौड़ेसे पीट कर इसे बढ़ानेका भी उपाय नहीं है। जोरसे चोट देने पर यह टुकड़े टुकड़े हो जाता है। डा० हमिल्टनका कहना है, कि यह मिश्रधातु आंच लगने पर भी रांगे और सीसेकी तरह जल्द नहीं गलती, किंतु उसमें तांबेका जो भाग है वह जल्द गल जाता है। अभी यह कारबार कारीगरके अभावसे लुप्तप्राय हो गया है। सिर्फ दो एक घर लिङ्गायत या जैन आज भी पूर्वस्मृतिकी रक्षा करते आ रहे हैं।

वेदारण्य—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके नागपत्तनके निकटवर्त्ती एक प्राचीन तीर्थ। ब्रह्माण्डपुराणके अंतर्गत वेदारण्यमाहात्म्य और स्कन्दपुराणकी सनत्कुमार-संहितामें इसका विषय लिखा है।

वेदार्ण (सं० पु०) एक तीर्थका नाम।

वेदार्थ (सं० पु०) वेदस्य अर्थः अभिधेयः प्रयोजनं वा। १ वेदप्रतिपाद्य विषय, वेदबोधित विषय। २ वेदका प्रयोजन, वेदकी आवश्यकता। ३ वेदके निमित्त, वेदके कारण।

वेदा वेदौना—युक्तप्रदेशके इलाहाबाद विभागके कानपुर जिलांतर्गत एक गांव। यहां नाना शिल्पोंसे युक्त एक प्राचीन ईंटका मंदिर है।

वेदाश्वा (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नदीका नाम। इसका उल्लेख महाभारतमें आया है।

वेदि (सं० स्त्री०) विद्यते पुण्यं अस्यामिति विद-इन् (उण् ४।११८) १ यज्ञार्थं परिष्कृता भूमि, यज्ञ कार्यके लिये साफ करके तैयारकी हुई भूमि। इसके आकारादि देश और कार्यभेदसे विभिन्न प्रकारके हैं, जैसे देशभेदसे अंतर्वेदि, उत्तरवेदि, दक्षिणवेदि इत्यादि। कार्यभेदमें भी बहुत विभिन्नता है, परंतु प्रायः डमरूकी तरह आकार वाली और चौकोन वेदी ही देखी जाती है।

तुलादानादिके अङ्गयज्ञकी मण्डपस्थ वेदीका लक्षण यों है मण्डपका तिहाई भाग वेदीकी लम्बाई चौड़ाई निरूपण करे। पीछे उसके तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, सप्तम, नवम या एकादश भाग परिमाणमें उच्छ्रायविशिष्ट वेदी बनावे। यह तुलादानादि कार्योंमें व्यवहृत वेदी ईंटकी बनानी होती है।

नीचे कात्यायन-श्रौतसूत्रोक्त वैदिक कर्माङ्गमें आवश्यकीय कुछ वेदीका लक्षण कहा जाता है।

"त्र्यङ्गुलावा" (कात्या० श्रौ० २।६।१)

"व्यस्त्रि प्राचीम्" "अपरिमिता वा

तीन उंगलीका गड्ढा बना कर आहवनीय-वेदि बनानी होती है।

वेदिमण्डपके पूर्व पार्श्वमें मुठली हाथकी तीन रेखासे त्रिकोणाकार क्षेत्र अङ्कित कर उसीके सदृश वेदि बनानी होगी। दूसरेके मतसे क्षेत्राङ्कित करनेके समय किसी प्रकारका निर्दिष्ट परिमाण न दे कर केवल उक्त आकारमें

और आनगुड़ीके क्षत्रियराज राज्य करते थे। राजा विजयनगरराज रामचंद्रके वंशधर हैं। गोलकुण्डा, कुलबर्गा, विजापुर और अहमदनगरके मुसलमान-राजाओंके अभ्युदय पर विजयनगर जब श्रीभ्रष्ट हो गया, तब उनके वंशधर सन्दूरमें आ कर बस गये।

इसके सिवा शाहनूरके पठान सरदार, गजम्बर (गदाधर) गढ़के घोड़पड़े वंशीय महाराष्ट्र-सामन्त तथा मशालकोट, घोरपंट और बेदार जोरापुरके सामन्तोंने इस राज्यका एक एक अंश ग्रहण किया था। शेषोक्त तीन सामंत पोड़ नायक नामक एक बेदारवासीके सैनिकके वंशधर थे। विजापुर अवरोधके समय इस व्यक्तिने मुगल बादशाह औरङ्गजेबको सहायता की थी, इस पुरस्कारमें उन्होंने रायचूड़ नामक जनपदों-को जागीरमें पाया था। आज भी उनके वंशधर वेदार-राज्यके दो स्थानोंका शासन करते हैं।

वेदारराज्यके अधिवासी वेदार या वेदारी कहलाते हैं। जोरापुरके वेदारी बहुत मजबूत होते हैं। ये तथा घोरखण्डवासी वेदारी शराब पोते तथा सूअर, बराह, गाय, भैंस आदिका मांस खाते हैं।

ये लोग साहसी तथा शिकार और दस्युवृत्तिमें बड़े विलक्षण होते हैं। जिस पिण्डारी दलने एक समय ५० वर्ष तक मध्यभारतको थर्रा दिया था उस दलमें वेदारी जातिकी संख्या ही बलवती थी तथा उसीसे इस दलका पिण्डार नाम हुआ। जोरापुर नगर पर्वतके ऊपर स्थापित होनेके कारण डकैतोंके रहनेका उपयुक्त स्थान था।

महिसुर राज्यमें भी अनेक वेदारियोंका वास है। उनमेंसे बहुतेरे शिकार कर अथवा पक्षीको पकड़ कर अपना गुजारा चलाते हैं। कुछ लोग तो छोटे छोटे घोड़े रखते और उनकी पीठ पर अनाज लाद कर दूसरी जगह ले जाते हैं। १६वीं सदीके मध्यकालमें वेल्लरी जिलेमें जिस वेदार-बामलू अर्थात् वेदार जातिका वास था, वह भी इसी तरह घोड़ेकी पीठ पर माल असबाब लाद कर दूसरी जगह ले जाता था। अनेक समय युद्ध क्षेत्रमें रसद पहुंचानेके लिये सामरिक विभागसे इन्हें नियुक्त किया जाता था। रमणमल्ल पर्वत पर भी एक दल वेदारोंका वास है। इनमेंसे महिसुरवासी वेदार ही सबसे अधिक उन्नत हैं।

महिसुर और वेल्लरीवासी वेदारोंके अधिकांश मनुष्य इस्लामधर्ममें दीक्षित हुए हैं।

हिन्दू वेदारियोंमें जब कोई कन्या जन्म लेती है, तब ये लोग उसे किसी देवताके नाम पर उत्सर्ग कर देते हैं तथा यह कन्या देवरक्षिता है, इस बातको जतानेके लिये ये कन्याके शरीरमें मुद्रा या छाप लगा देते हैं। इसी से वह कन्या बसबी या मुरली कहलाती है। पुरुष लोग "दशारी" हो ब्रह्मचर्य अवलम्बन कर भिक्षासे जीविका चलाते हैं।

वेदार—दाक्षिणात्यका प्राचीरद्वारा वेष्टित एक प्राचीन नगर। यह हैदराबाद नगरसे ७५ मील उत्तर-पश्चिम मञ्जिरा नदीके दाहिने किनारे (अक्षा० १७°५४´ उ० तथा देशा० ७७° ३५´ पू०के मध्य) अवस्थित है। नगरभाग समुद्र-पृष्ठसे २२५० फुट और तोरणचूड़ा २३५० फुट ऊंची है। १६वीं सदीके मध्यकालमें यह ब्राह्मनी-राजवंशकी राजधानी रूपमें गिना जाता था। उस समय इसकी श्रीवृद्धि भी यथेष्ट थी। जिस प्रकार प्राचीर और बुर्जसे एक समय इसके चारों ओर घिरा था, वह अभी तहस नहस हो गया है।

मुगल बादशाह बाबरके भारत पर चढ़ाईके समय वेदार राज्य पार्श्ववर्त्ती राजाओंके हाथ था। १५६२ ई०में निजामशाही राजाओंने इस देशमें अपना शासन फैलाया। १७६१ ई०में पेशवा बाजीराव और सलाबत-जङ्गके साथ इस नगरमें सन्धि हुई थी।

वेदारमें एक प्रकारके बढ़िया मिट्टीके बरतन तथा तरह तरहकी धातुओंके बरतन तैयार होते थे। यूरोपीय वाणिज्य पण्यमें यह 'वेदार वेयर' (Beder-ware) नामसे प्रसिद्ध है। डा० हायन, बुकानन हमिल्टन इस मिश्रधातुकी प्रस्तुत प्रणाली देख कर जो लिपिबद्ध कर गये हैं, वह परस्पर स्वतन्त्र है।

डा० हायनके मतसे—१६ औंस तांबा, ४ औंस सीसा और २ औंस टीन इन्हें एकत्र गला कर प्रत्येक ३ औंसमें १६ औंसके हिसाबसे रांगा (zink) मिलावें। पीछे आंचमें पर चढ़ा कर गलानेसे यह धातु पात्रादि

बनाने लायक हो जाती है। उसका रंग प्युटर या जिंककी तरह सफेद होता है, किन्तु कारीगर बरतनको तैयार कर उस पर काला रंग चढ़ा देते हैं। यह रंग सोरा, लवण और तूतियाके योगसे बनाया जाता है। डा० हमिल्टन-ने परीक्षा कर देखा है, कि १२३६० ग्रेन जिङ्क, ४६० ग्रेन ताँबा और ४१४ ग्रेन सीसा इन्हें कुठालीमें रख कर गलाते हैं। आँच लगने पर वे सब कुठालियां नष्ट हो जाती हैं, इस कारण गलानेके समय उसमें थोड़ा मोम और रजन लगा दी जाती है। पीछे उस गली हुई धातुको साँचेमें ढालते हैं। ठंढा होने पर मट्टीके साँचे-को धीरे धीरे फोड़ कर बरतन बाहर निकाल लेते हैं। पीछे बाहरी हिस्सेको साफ करनेके लिये रेंतीसे रेंत देते हैं। इसके बाद बरतनको तूतियेके जलमें डुबो रखते हैं, इससे उसके ऊपर काले रंगका दाग पड़ जाता है। नक्काशको नक्काशी करनेमें इससे बड़ी सुविधा होती है। ये सब बरतन साधारणतः वेदारी बरतन कहलाते हैं।

ऊपर जिस बरतनकी बात लिखी गई, उसे प्रधानतः तीन श्रेणीके लोग बनाते हैं। एक श्रेणीके लोग साँचे बनाते हैं। यह साँचा बड़ी अनूठी प्रथासे बनाया जाता है। वे मिट्टीका सांचा बना कर उसके भीतर मोम और रजन भर देते हैं। द्रव धातु ढालनेके समय उस सांचेको थोड़ा गरम कर लेते हैं जिससे भीतरका मेम धीरे धीरे गल कर बाहर निकल आता और भीतरमें शून्य स्थान बन जाता है। पीछे उसमें द्रव पदार्थ ढाल देते हैं। इस धातुमें कभी भी मोर्चा नहीं लगता। हथौड़ेसे पीट कर इसे बढ़ानेका भी उपाय नहीं है। जोरसे चोट देने पर यह टुकड़े टुकड़े हो जाती है। डा० हमिल्टनका कहना है, कि यह मिश्रधातु आंच लगने पर भी रांगे और सीसेकी तरह जल्द नहीं गलती, किंतु उसमें तांबेका जो भाग है वह जल्द गल जाता है। अभी यह कारबार कारीगर-के अभावसे लुप्तप्राय हो गया है। सिर्फ दो एक घर लिङ्गायत वा जैन आज भी पूर्वस्मृतिकी रक्षा करते आ रहे हैं।

वेदारण्य—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके नागपत्तनके निकटवर्ती एक प्राचीन तीर्थ। ब्रह्माण्डपुराणके अंतर्गत वेदारण्य-माहात्म्य और स्कन्दपुराणकी सनत्कुमार-संहितामें इसका विषय लिखा है।

वेदार्ण (सं० पु०) एक तीर्थका नाम।

वेदार्थ (सं० पु०) वेदस्य अर्थः अभिधेयः प्रयोजनं वा। १ वेदप्रतिपाद्य विषय, वेदबोधित विषय। २ वेदका प्रयोजन, वेदकी आवश्यकता। ३ वेदके निमित्त, वेदके कारण।

वेदा वेदौना—युक्तप्रदेशके इलाहाबाद विभागके कानपुर जिलांतर्गत एक गाँव। यहां नाना शिल्पोंसे युक्त एक प्राचीन ईंटका मंदिर है।

वेदाश्वा (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नदीका नाम। इसका उल्लेख महाभारतमें आया है।

वेदि (सं० स्त्री०) विद्यते पुण्यं अस्यामिति विद-इन् (उण् ४।११८) १ यज्ञार्थं परिष्कृता भूमि, यज्ञ कार्यके लिये साफ करके तैयारकी हुई भूमि। इसके आकारादि देश और कार्यभेदसे विभिन्न प्रकारके हैं, जैसे देशभेदसे अंतर्वेदि, उत्तरवेदि, दक्षिणवेदि इत्यादि। कार्यभेदमें भी बहुत विभिन्नता है, परंतु प्रायः डमरूकी तरह आकार वाली और चौकोन वेदी ही देखी जाती है।

तुलादानादिके अङ्गयज्ञकी मण्डपस्थ वेदीका लक्षण यों है मण्डपका तिहाई भाग वेदीकी लम्बाई चौड़ाई निरूपण करे। पीछे उसके तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, सप्तम, नवम या एकादश भाग परिमाणमें उच्छ्रायविशिष्ट वेदी बनावे। यह तुलादानादि कार्यमें व्यवहृत वेदी ईंटकी बनानी होती है।

नीचे कात्यायन-श्रौतसूत्रोक्त वैदिक कर्माङ्गमें आवश्य-कीय कुछ वेदीका लक्षण कहा जाता है।

"त्र्यङ्गुलखाता" (कात्या० श्रौ० २।६।१)

"त्र्यरत्नि प्राचीम्" "अपरिमिता वा

तीन उंगलीका गड्ढा बना कर आहवनीय-वेदि बनानी होती है।

वेदिमण्डपके पूर्व पार्श्वमें मुठली हाथकी तीन रेखासे त्रिकोणाकार क्षेत्र अङ्कित कर उसीके सदृश होगी। दूसरेके मतसे क्षेत्राङ्कित प्रकारका निर्दिष्ट परिमाण न दे कर

आवश्यकतानुसार कुछ अधिक परिमाणमें बनानेसे भी काम चल जायेगा।

किसी किसी वेदिके पूर्व ओर, किसीके उत्तर ओर निम्न अर्थात् ढालवाँ रचना होता है।

२ अंगुलिमुद्राविशेष, उंगलीको एक प्रकारकी मुद्रा। ३ गृहोपकरणविशेष, घरका सामान आदि। ४ गृहमध्यस्थित मृत्तिकास्तूपविशेष, घरकी पिंडी। ५ अभ्यन्तर। ६ नामाङ्कित अंगुलि, वह अंगूठी जिसमें नाम अंकित हो। ७ पण्डित, विद्वान्।

वेदिका (सं० स्त्री०) वेदि स्वार्थे कन्। १ किसी शुभ कार्यके लिये साफ करके तैयार की हुई भूमि। पर्याय—वितर्दि, वितर्दी, वेदि, वेदी। वेदि देखो।

२ जैन पुराणोंके अनुसार एक नदीका नाम। (जैनहरि०)

वेदिजा (सं० स्त्री०) वेद्यां जायते इति जन-ड। द्रौपदी। (हेम)

वेदित (सं० त्रि०) विद-णिच्-क्त। १ ज्ञापित, जो कुछ बतलाया या सूचित किया गया हो। २ साक्षात्कृत, दर्शित, जो देखा गया हो।

वेदितव्य (सं० त्रि०) विद-तव्य। वेद्य, ज्ञातव्य, जो जाननेके योग्य हो।

वेदितृ (सं० त्रि०) विद-तृच्। ज्ञाता। पर्याय—विदुर, विन्दु। (हेम)

वेदित्व (सं० क्ली०) वेदिनो भावः त्व। विदित होनेका भाव, ज्ञान।

वेदिन् (सं० पु०) वेत्तीति विद-णिनि। १ पण्डित, विद्वान्। २ ब्रह्म। (त्रि०) ३ ज्ञाता, जानकार। ४ परिणेता, विवाह करनेवाला।

वेदिमती (सं० स्त्री०) राजपुराङ्गनाभेद। (दशकुमार ११८।१)

वेदिमेखला (सं० स्त्री०) उत्तरवेदीका सीमासूत्र। (भागवत ४।५।१५)

वेदिया—छोटानागपुरवासी कृषिजीवी जातिविशेष। ये लोग कुर्मीजातिके सबसे भाई समझे जाते हैं। इनके शरीरकी गठन देख कर पाश्चात्यजातियां कहती हैं, कि यह जाति द्राविडीय वंशमें उत्पन्न हुई है। इन दो श्रेणियोंकी वर्त्तमान पृथक्ताके सम्बन्धमें एक किंवदन्ती इस प्रकार है। पहले कुर्मी और वेदिया लोगोंमें आदान-प्रदान चलता था, किन्तु अब कुर्मियोंने देखा, कि वेदिया लोग गो-मांस खाते हैं, तब उन्होंने नीच जान कर वेदियोंका संस्रव छोड़ दिया। इनमें भी श्रेणीगत विभाग है। यह विभाग साधारणतः जीवजन्तु और वृक्षादिके नाम पर प्रसिद्ध है।

इन लोगोंके विवाहमें नाई ही पुरोहिताई करता है। ये लोग कुर्मियोंके हाथकी कच्ची रसोई खाते हैं।

मानभूममें परित्यक्त १२ घर संथाल मूलजातिसे पृथक् रह कर वेदिया नामसे परिचित हैं। छोटानागपुरके वेदिया उसीकी एक शाखा है। ये लोग आदिवाससे पूर्वकी ओर आ कर इधर ही बस गये हैं। इस वेदिया जातिके साथ बङ्गालकी वेदिया जातिका कोई सम्पर्क नहीं है।

वेदिया—बङ्गालदेशवासी जातिविशेष। यथार्थमें ये लोग एक जातिके नहीं हैं। निम्न श्रेणीके हिन्दू, अर्द्ध सभ्य आदिम तथा बाजीगर, लाया, पातुआ आदि कुछ निकृष्ट जातियाँ वेदिया नामसे जनसाधारणमें परिचित हैं। शेषोक्तमें बहुतेरे अपनेको मुसलमान कहते हैं। आहार विहारमें ये लोग मुसलमानका आचार पालन करते हैं तथा सभी जानवरोंके मांस खाते हैं। फिर कहीं कहीं ये फलमूलादि बेचनेके कारण फड़िया नामसे प्रसिद्ध हैं। कोई कोई हिन्दू जाना उद्भिज्ज मूलादि, ओषधि, मन्त्रौषधि तथा अनेक वस्तुओंके मेलसे हातुरिया वैद्यकी तरह चिकित्सा करते हैं। बहुतोंका कहना है, कि चिकित्साव्यवसायी वैद्यजातिका अनुकरण करनेके कारण इनका वेदिया नाम हुआ है।

इनमें बहुतोंका वासस्थान निर्दिष्ट नहीं है। कभी कभी ये लोग एक गांवसे दूसरे गांवमें जाते हैं और किसीके बाग या मैदानमें डेरा खड़ा कर स्त्रीपुत्रके साथ रहते हैं। जाड़ेकी मौसिममें इन्हें किसी प्रकारका कष्ट या रोग नहीं होता। ये लोग कभी अकेला बाहर नहीं निकलते, पांच सात घरके साथ बाहर निकलते हैं।

इनमें कृषिजीवीकी संख्या बहुत कम है। दो एक घर सभ्यताके आलोकमें सभ्य जातिका अनुकरण करते

हुए घर बांध कर खेतीबारी करते हैं सही, पर उन्होंने अपना जातिगत व्यवसाय छोड़ा नहीं है। जो घरसे बाहर निकलते हैं, वे दिनको रामलक्ष्मणकी कीर्तिगाथा गान कर ग्रामवासीसे भिक्षा मांगते हैं तथा जङ्गली औषधादि संग्रह कर उनके हाथ बेचते हैं। स्त्रियां भी उसी प्रकार महलमें घुस कर हनूमान तथा अन्यान्य पौराणिक चित्रोंको दिखा कर पैसा कमाती हैं।

इसके सिवा दौर्बल्यनाश, वातकी व्यथा तथा बालरोग दूर करनेके विषयमें इस जातिकी स्त्रियां बड़ी निपुण हैं। कलकत्तेमें वेदिया रमणियां औषधकी थैलीको गलेमें लटकाये गली गली घूमती हैं। 'दांतका कीड़ा' 'वातकी व्यथा' दूर करनेके लिये वे जो औषध और मंत्रप्रक्रिया दिखाती हैं वह आश्चर्यजनक है।

वेदिया-रमणियां और बालक तरह तरहके खेल दिखलाते हैं। पुरुष गोलक अथवा ५।६ छुरी ले कर खेल करते हैं तथा शून्यमार्गमें दो बांसके ऊपर रस्सी लगा कर उस पर चढ़ते तथा तरह तरहके खेल दिखलाया करते हैं। पश्चिम बङ्गालके मलजाति ही साधारणतः ये सब व्यायामकौशल दिखा कर अर्थोपार्जन करते हैं।

इनमें कोई कोई श्रेणी चिड़ीमार या मीर-शिकार नामसे मशहूर है। वस्तुतः पक्षी मारना ही इनका व्यवसाय है। जिस पक्षीको शौकीन आदमी खाते या पोसते हैं उसे वे बाजारमें बेचते हैं, किन्तु जिनकी हड्डी या मांस औषधके काममें आता है उन्हें वे बेचते नहीं, अपने पास ही रख लेते हैं। कोई कोई हड्डी भौतिक या ऐन्द्रजालिक खेल करनेमें बड़ी उपयोगी है। जैसे धानराहु या वज्रकीट। इसका छिलका कवचरूपमें धारण करनेसे हृद्रोग आरोग्य होता है। उंगलीमें अंगूठीकी तरह पहननेसे यह उपदंशजनित रोगका प्रतिषेधक होता है। मङ्गल या शनिवारको पानकौड़ी मार कर उसका मांस खानेसे प्लीहा और सूतिका रोग दूर होता है। उल्लूकी आंख, नाखून या मल अनेक कार्यों में व्यवहृत होता है। उल्लूकी विष्ठा सुपारीके चूरके साथ पीस कर वशीकरणौषधरूपमें तथा डाकपक्षीका सूखा मांस धातनाशकरूपमें वे व्यवहार करते हैं। एक और श्रेणीके वेदिया हैं जो मंत्रके बल या कौशलसे सांप पकड़ने निकलते हैं। गोखुर या केउटा सांप पकड़नेमें वे जरा भी नहीं डरते। विषधर सांपको पकड़ कर वे विष-दांतको तोड़ देते और विषकी थैलीको बाहर निकाल लेते हैं तथा उसे आयुर्वेदवित् कविराजोंके निकट बेचते हैं। सांपके चक्रके मध्य एक प्रकारका छोटा कीड़ा रहता है। उस कीड़ेको भी वे बेच लेते हैं। कहते हैं, कि वह कीड़ा साथमें रहे तो सांपके काटनेका भय नहीं रहता।

ये लोग सांप भी पोसते हैं। मछली, मूसा, बेंग आदि पकड़ कर सांपोंको खिलाते हैं तथा मेले या किसी देवदेवीकी पूजाके समय वहां सांप ले जा कर खेल दिखाते हैं। उस समय पुरुष वंशी बजाते और स्त्रियां एक प्रकारका गान करके सांपोंको नचाती हैं। उस समय सांप तर्जन गर्जन करते हुए काटनेके लिये दौड़ते हैं। उनके काटने पर वे मन्त्र पढ़ कर विष उतारनेकी कोशिश करते हैं।

रसिया-वेदिया रांगेके बाला, हंसुली आदि बनाते हैं। यह कम मोलका अलङ्कार गरीब हिन्दू और मुसलमान अपनी पुत्रीको पहनाते हैं। रस या पारेकी तरह रांगेकी आकृति होती है, इस कारण इनका रसिया नाम हुआ है। ये प्रायः ही कृषिजीवी हैं। उत्तर-पश्चिमके इस श्रेणीके वेदिया प्रायः मुसलमान और फराजीमतावलम्बी हैं। इनमेंसे बहुतेरे नाव खे कर अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। उनकी नावोंकी आकृति स्वतन्त्र होती है।

वेदिया जातिके दूसरे सभी दलोंमें खानदार ही सभ्य और शिक्षित होते हैं।

वेदिलगोर्जा—मुसलमान कवि साहदाई गिलानीकी उपाधि। मुगलसम्राट् जहांगीर बादशाहके समय वे भारत पधारे तथा सम्राट्‌के अनुग्रहसे जागीर-खानाके दारोगा नियुक्त हुए। इसी काममें इन्हें वेदिलकी उपाधि मिली थी। इसके बाद इन्होंने तुकात् वेदिल, तुकायत् वेदिल और चहार आनसुर नामके दो दीवान काव्योंकी रचना की। १११८ हिजरीमें इनकी मृत्यु हुई।

वेदिषद् (सं० त्रि०) १ वेदिमें बैठनेवाला । (पु०) २ अग्नि । (ऋक् १।४०।१) ३ प्राचीन बर्हिः । (भागवत ४।२४।२७)

वेदिष्ठ (सं० त्रि०) सर्वज्ञ । (ऋक् ८।२।२४ सायण)

वेदी (सं० स्त्री०) कृदिकारादिति-ङीष् । १ किसी शुभ कार्यके लिये तैयार की हुई भूमि । जैसे विवाहकी वेदी, यज्ञकी वेदी । २ सरस्वती ।

वेदी—गुरु नानकके वंशधरगण । वे लोग सिख-सम्प्रदायके मध्य 'वेदी' नामसे सम्मानित हैं । वे लोग पहले नानककी वेदी (गद्दी) पर बैठते थे, इस कारण इनका वेदी नाम पड़ा है, अथवा गुरु नानकके प्रवर्तित धर्ममतको अच्छी तरह जानते थे, इससे सभी उन्हें वेदी कहा करते थे । अभी वे लोग वंशपरम्परासे सिखोंके मध्य वेदी नामसे पुरोहित रूपमें पूजित हैं । केवल नानकके वंशधर ही वेदी नामसे सर्वसाधारणमें सम्मानित थे, सो नहीं । नानकने जिस वंशमें जन्म लिया उस वंश या जातिका नाम भी वेदी है । परवर्त्ती कालमें नानकवंशीय वेदीने सिखसमाजमें बड़ा आदर पाया था, किन्तु उनकी अन्यान्य शाखाओंके वेदी मर्यादाहीन हो कर समाजमें लुप्तप्राय हो गये हैं । इस शेषोक्त दलमें बहुतेरे सिख सम्प्रदायभुक्त नहीं हैं ।

वर्त्तमान कालमें पञ्जाबके वेदी प्रायः सभी जगह फैले हुए हैं । कांगड़ा पर्वतके पाददेशस्थ भूभागमें, रेकना दोआबके गुजरानवाला विभागमें, इरावती तीरवर्त्ती गोगेरा नगरमें, झेलम तीरस्थ शाहपुरमें तथा रावलपिण्डीमें इनका वास देखा जाता है, किन्तु शतद्रुके दक्षिण बहुत थोड़े वेदियोंका वास है । इरावती तीरस्थित बटाला नगरके निकटवर्त्ती डेराबाली नामक स्थान ही इनका आदि वासस्थान है ।

वेदी लोग पहले कन्याको हत्या करते थे, इस कारण 'कुमारीमार' नामसे उनकी प्रसिद्धि थी । राजपूतकी तरह कन्याविवाहमें अधिक खर्च होनेके डरसे वे लोग यह जघन्य कार्य करते थे, सो नहीं । पुरोहित या गुरुवंशधरकी हैसियतसे वे सिखोंसे यथेष्ट धन और अनेक प्रकारके उपढौकनादि पाते थे, जिससे वे स्वच्छन्दतासे कन्याका विवाह कर सकते थे, इसमें संदेह नहीं । परन्तु उनका कहना है, कि पूर्वपुरुषोंकी अनुज्ञाके वशवर्त्ती हो कर वे लोग यह कार्य करते आ रहे थे । यह उन लोगोंका एक कौलिक नियम था ।

प्रवाद है, कि इस वंशके धरमचाँद नामक किसी आदिपुरुषकी कन्याके विवाहमें जब वर और बारात कन्याको ले कर घर लौट रही थी, तब धरमचाँदके दो पुत्र सौजन्य दिखानेके लिये कुछ दूर उनके साथ गये । ज्येष्ठका महीना था, उस दिन बड़ी गर्मी पड़ी थी । सभी लोग विवाहके आमोद और मद्यपानसे मतवाले हो नीच प्रकृतिके आमोद दिखलाते हुए बालक वेदीको नियमित स्थानमें न ले आ कर उन्हें वृथा कष्ट दे बहुत दूर पैदल ले गये । जब वे दोनों भाई क्षत विक्षत पदसे घर लौटे तब धरमचाँद उनकी दुर्दशा और कष्ट देख कर बड़े दुःखित हुए । उन्होंने अपने पुत्रोंसे पूछा, 'बरकत्तोंने तुम दोनोंको शीघ्र लौट आनेका क्यों नहीं हुकुम दिया ?' पुत्रोंके मुखसे यथायथ विवरण सुन कर वे बड़े बिगड़े और बोले, "आजसे कोई भी वेदी अपनी कन्याको जीवित नहीं रख सकता, पैदा होते ही उसे यमपुर भेज देना होगा ।"

पिताका कठोर आदेश सुन कर पुत्रगण भयसे विह्वल हुए और उन्होंने पितासे कहा, "शास्त्रमें पुत्रहत्याको महापातक बताया है, अतएव इस नियमका प्रतिपालन करनेमें वेदियोंको सदाके लिये पापपङ्कमें निमज्जित रहना पड़ेगा ।" इस पर धरमचाँदने जवाब दिया, 'यदि वेदीगण सत्य धर्मका आश्रय कर अपना समय बितावें तथा असत्य वचन वा प्रवञ्चना अथवा मद्यपान द्वारा अपनेको कलुषित न करें तो उन्हें पुत्र छोड़ कर कभी भी कन्या पैदा न होगी, किन्तु वर्त्तमान कालमें यह पाप मैं अपने माथे पर लेता हूं ।' इतना कहते ही धरमचाँदका शिर धड़से अलग हो उसकी छाती पर आ गया । जो हो, इसी अनुज्ञाके वशवर्त्ती हो वेदी लोग ३ सौ वर्ष से कन्या हत्या करते आ रहे थे । अभी वृटिश शासनसे यह प्रथा दूर हो गई है । उस समय यदि कोई वेदी स्नेह वशतः कन्याको न मार कर चुपकेसे उसका प्रतिपालन करता और पीछे समाजमें यह बात खुल जाती थी, तो उसे समाजसे भगा दिया जाता था और सभी उसे भंगीके समान मानते थे ।

वेदोतीर्थ (सं० क्ली०) एक प्राचीन तीर्थका नाम । (भारत वनपर्व)

वेदोयस् (सं० त्रि०) अतिशय विद्वान् । (ऋक् ७।८८।१)

वेदीश (सं० पु०) वेदानां पण्डितानामीशः । ब्रह्मा । (त्रिका०)

वेदुक (सं० त्रि०) १ वेत्ता, जाननेवाला । (तैत्तिरीयसं० ५।१।५।३) २ प्रापक, पानेवाला । ३ प्राप्त, जो कुछ मिला हो । (तैत्तिरीयब्रा० ३।६।२२।२)

वेदुर—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके दक्षिण आर्कट और पुदिचेरी जिलेके विल्लुपुरम् तालुकके अन्तर्गत एक गण्डग्राम । यह विल्लुपुरम् सदरसे ११ मील उत्तरपूर्वमें अवस्थित है । यहां एक जैनमन्दिर है ।

वेदुरावलापाडु—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके नेल्लुर जिलेके पोदिले तालुकके अन्तर्गत एक बड़ा ग्राम । पोदिले नगरसे यह ११ मील पश्चिमोत्तरमें पड़ता है । इस ग्रामके उत्तरमें तथा गड्डिपलो जानेके रास्तेके पूर्वमें एक शिलाफलक मौजूद है, जिसकी लिपि बहुत प्राचीन है ।

वेदुरु—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके कड़ापा जिलेके अन्तर्गत कड़ापा तालुकका एक ग्राम । यह कड़ापा सदरसे १५ मील उत्तरपश्चिममें अवस्थित है । यहां पेनेरु और पापघ्नाके संगम पर संगमेश्वरस्वामीका मन्दिर विद्यमान है । यह मंदिर हजार वर्षका है ।

वेदुल्लचलस—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके विजगापट्टम जिलेके अंतर्गत अगपतिनगरम् तालुकका एक गण्डग्राम । यहां एक प्राचीन देवमंदिर है । देवपूजाका खर्च चलानेके लिये राजप्रदत्त एक ताम्रशासन मंदिरमें रखा हुआ है ।

वेदुवाली—युक्तप्रदेशके बलिया जिलांतर्गत एक बड़ा ग्राम । यह बलिया सदरसे एक मील उत्तरमें अवस्थित है । यहां एक प्राचीन नगरका ध्वस्त स्तूप पड़ा हुआ है ।

वेदेश (सं० पु०) १ वेदधर । २ ब्रह्मा ।

वेदेशभिक्षु (सं० पु०) एक ग्रंथकारका नाम । ये व्यासतीर्थके शिष्य थे । इन्होंने आनन्दतीर्थकृत ऐतरेयोपनिषद्भाष्यकी टीका, काठकोपनिषद्भाष्यटीका, केनोपनिषद्भाष्यटीका, पदार्थकौमुदी नामक छांदोग्योपनिषद्भाष्यकी टीका, तत्त्वोद्योतविवरणकी टीका और प्रमाणपद्धतिकी टीका लिखी । इनका दूसरा नाम वेदेशतीर्थ था ।

वेदेश्वर (सं० पु०) ब्रह्मा ।

वेदोक्त (सं० त्रि०) वेदे उक्तः । श्रुतिकथित, जो वेदमें कहा गया है ।

वेदोजोपुरम्—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके उत्तर आर्कट जिलेको आर्णिजागीरके अंतर्गत एक बड़ा ग्राम । यह आर्णिसे ८ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है । यहांके राजनाथेश्वर स्वामीका मंदिर प्रायः पाँच सौ वर्षका है । मंदिरगात्रमें बहुत सी शिलालिपियाँ हैं ।

वेदोदय (सं० पु०) वेदः विषयज्ञानमुदये यस्य । सूर्य । (त्रिका०)

वेदोदित (सं० त्रि०) वेदे उदितः । वेदोक्त ।

वेदोपकरण (सं० पु०) वेदाङ्ग । (मनु २।१०५)

वेदोपग्रहण (सं० क्ली०) वेदपरिशिष्ट । (रामायण १।४।४)

वेदोपनिषद् (सं० स्त्री०) एक उपनिषद्का नाम । (तैत्तिरीय उप० १।११।४)

वेदोपबृंहण (सं० क्ली०) वेदपरिशिष्ट । (वेदान्त)

वेदोपस्थानिका (सं० स्त्री०) वेदरक्षाका स्थान । (हरिवंश)

वेदौयिन् (वेदावी) अरबजातिकी एक शाखा । येमेन, हेजाज, पालेस्तिन, सिरिया, युफ्रेतिस और नाजद नदी तीरवर्त्ती प्रदेशमें तथा मध्य अरबके प्रदेशोंमें इनका वास देखा जाता है । ये लोग प्रायः एक स्थानमें नहीं रहते, वासस्थान बदल कर घूमा करते हैं । इसके सिवा ऊंट पर पण्यद्रव्यादि लाद कर मरुप्रदेशसे देशांतर ले जाना ही इनका प्रधान कर्म है ।

विभिन्न स्थानमें वास होनेके कारण इनके नाममें भी पृथकता हुई है । अवल-सम्माके रहनेवाले सम्मार कहलाते हैं । ये लोग १७वीं सदीमें आदि वासभूमिका परित्याग कर उत्तर मरुमें आ कर बस गये । पीछे अनाजा जातिने उन्हें युफ्रेतिस नदीके दूसरे किनारे मार भगाया । उनमें जेरबा, फदाघा, सलामा और यससाफुक नामके पांच वंश हैं ।

बेदौइन लोगोंमें अनाज़ा ही विशेष प्रबल और संख्यामें अधिक हैं। ये मरुदेशमें ऊँट आदि पशुओंको चराते हैं तथा अकाल पड़ने पर एक देशसे दूसरे देशमें चले जाते हैं। पहले ये लोग नाजद प्रदेशमें रहते थे। १९वीं सदीके आरम्भमें ओहाबियोंने इन्हें उक्त प्रदेशसे मार भगाया। तभीसे ये ग्रीष्मके समय सिरिया और युफ्रेतिसके मध्यवर्ती मरुदेशमें आ कर रहते हैं तथा शीतकालमें दक्षिण नाजद तक चले आते हैं। इस समय ये लोग दमस्कस, हामा, होमस, अलेपो आदि सिरिया प्रान्तवर्ती नगरवासी वणिकोंके साथ पण्यद्रव्यादिका विनिमय करते हैं।

इनमें भी बहुत-सी शाखाएं हैं। ये शाखाएं बिशार तथा वालद अली और जेलस नामक दो बड़े विभागके अन्तर्भुक्त हैं। सेकरान् वंशसम्भूत धर्मसंस्कारक आबद उल् हाब मेसालिक अनाज़ा शाखाभुक्त थे। उत्तरदेशमें आ कर इन्होंने सम्मारोंके साथ युद्ध ठान दिया तथा घोरयुद्धके बाद उन्हें युफ्रेतिस नदीके दूसरे किनारे मार भगाया। कुछ तो नाजद प्रदेशमें, कुछ दक्षिणमें और कुछ पालेस्तिनके पूर्वांशमें आ कर बस गये। वालाद अलीगण हौरनमें रहते हैं। सिरिया हो कर जो सब 'हाज' पथ गये हैं उन्हीं के ये लोग अधिकारी हैं। अनेक समय ये लोग वणिकोंका माल असबाब लूट लेते हैं। ये स्वभावतः ही चोर और साहसी होते हैं। फरासी सेनापति क्लेबर (Kleber) इन लोगोंसे परास्त हुए थे। ये लोग घोड़े पर चढ़ कर युद्ध करनेमें बड़े निपुण होते हैं, इसीसे ये अच्छे अच्छे घोड़े भी रखते हैं।

बानीशहर, मामूर अमरात, वरकुद, गज्जा और शेलस, शेमिलात, हिसना, आदआदआरा, आलथायुन, जेब्राभा, सब सबाआ आनि, फादान, मायाशात्, दुआम आदि शाखाएं भी अनज़ा शाखाके संश्लिष्ट हैं।

ओबेद और ताई शाखा बहुत प्राचीन और अत्यन्त शक्तिशाली योद्धा हैं। ये लोग मोसलके निकट वास करते हैं तथा पशम बेचनेके लिये छागादि रखते हैं। ताई जाति मेसेनरो ताईग्रीसके किनारे आ कर बस गई है। इसमें ७ स्वतन्त्र वंश हैं। हातेम जाति दानशीलताके कारण विख्यात है। मन्तिफिगन, अब्दिम्बी और इजाद जातियां इराक प्रदेशमें रहती हैं। ये लोग अरब[illegible] नहीं रहते। मन्तिफिगण मत्स्यजीवी हैं। ये लोग भेड़ें भी पालते हैं। अब्दिम्बी कृषिजीवी हैं। शस्यादि बोना और काटना तथा गाय चराना, इनका एकमात्र कार्य है। ये लोग धनी हैं। इजादजाति कृषिजीवी हैं। माल असबाब ढोनेके लिये सफेद गदहे पालते हैं।

उत्तर मरुभागके मवाली हेजाज़से आये हैं। इनके शेख अपनेको अब्बासी खलीफाके वंशधर बतलाते हैं। सम्मार और मवालियोंकी वासभूमिके मध्यवर्ती इस भागको ले कर इनमें ५०-६० वर्ष तक विवाद चला था।

याद्दादिन धनवान् और मेषपालक हैं। ये शान्तिप्रिय होते हैं। युफ्रेतिसके तीरवर्ती येल्दीजाति कृषिजीवी हैं। पहले ये लोग मिसोपोटेमियामें रहते थे। आयू-येदेसगण कृषिजीवी, धनशाली और मेषपालक हैं, ये लोग तंबूमें रहते हैं। बेनीखालिदगण हाससे मरुभूमिके विभिन्न स्थानोंमें फैल गये हैं। सोदनी सोडा नामक क्षार बनाते हैं। फादुंम, येम और लाहेब लोग थोड़ा बहुत अनाज उपजाते हैं, परन्तु एक जगह ये स्थायी नहीं हैं, जमीनकी उर्वरता कम होनेसे उस स्थानका परित्याग कर अन्यत्र चले जाते हैं। बानू सैयद घोड़े पर चढ़ कर केवल दस्युवृत्ति द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं। युफ्रेतिस नदीके दाहिने किनारे इनका वास है। ये लोग किसी तरहका वाणिज्य नहीं करते और न घोड़े आदि ही पालते हैं। सुमागण बकरे, ऊँट और घोड़े आदिका पालन करते हैं। ये लोग युद्धविद्यामें भी निपुण हैं। अल्जाजिरावासी सम्मारोंके साथ इनका सर्वदा युद्ध हुआ करता है। आलन्लास, आल-मेदआदमा, आल-बाला, आल-मेवरा, आल्वासोन, आल्वासालिम आदि शाखाएं अपेक्षाकृत बहुत कम हैं। ये लोग युद्धविद्यामें सुदक्ष नहीं हैं। इनके सिवा फेरेज़ जातिके हेरनदि तथा अपेक्लजाति बेदौइन जातिमें गिनी जाती हैं। प्रथोक्त जातिके लोग सिरियामें रह कर घुड़सवार सेनादलमें नियुक्त हैं।

पहाड़ी प्रदेशमें जो सब बेदौइन रहते हैं, वे बकरे पालते हैं। सभी बेदौइन बड़े बड़े बाल रखते हैं।

वत्रपतमें ही सिर नहीं मुड़वाते। ये लोग तमाकू खूब पीते हैं। पढ़े लिखेकी संख्या इनमें नहींके समान है।

वेद्दनोल—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके गोदावरी जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। यह निज़ामराज्य सीमासे ४ मील दूर तथा राजमहेन्द्रीसे ३८ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। इसके चारों ओर कोयलेका गड्ढा और पहाड़ है। गाँवका मध्य भाग साढ़े पाँच वर्गमील है।

वेद्धव्य (सं० त्रि०) जो वेधने या छेदनेके योग्य हो, वेधा जानेके योग्य, वेध्य।

वेद्ध (सं० त्रि०) वेधकारी। (भारत आदिपर्व)

वेदुनोर—राजपूतानेके उदयपुर राज्यान्तर्गत एक नगर। उदयपुर राजधानीसे यह ६३ मील उत्तर-पश्चिम पड़ता है। नगराधिपति एक प्रधान सामन्त हैं। ये साठ गाँवका उपसत्व भोग करते हैं।

वेद्य (सं० त्रि०) विद्-ण्यत्। १ वेदितव्य, जो जानने या समझनेके योग्य हो। २ धनके विषयमें हितकर। (ऋक् २।३।३)
३ स्तुत्य, जो स्तुति करनेके योग्य हो। (ऋक् ५।२५।१) ४ लब्धव्य, जो प्राप्त करनेके योग्य हो। ५ वेदहित, वेदप्रतिपाद्य।

वेद्यत्व (सं० क्ली०) ज्ञान, जानकारी।

वेद्या (सं० स्त्री०) वेदितव्या। विद्या। (ऋक् १०।७१।८)

वेद्दुला—राजपूतानेके उदयपुर राज्यान्तर्गत एक नगर। यह उदयपुरसे ३ मील उत्तरमें अवस्थित है। यहांके सामन्त ६१ गाँवोंके उपसत्वभोगी हैं।

वेध (सं० पु०) विध-घञ्। १ किसी नुकीली चीजसे छेदनेकी क्रिया, वेधना, विद्ध करना। २ गभीरता, गहरापन। ३ यन्त्रों आदिकी सहायतासे ग्रहों, नक्षत्रों और तारों आदिको देखना। ४ ज्योतिषके ग्रहोंका किसी ऐसे स्थानमें पहुँचाना जहांसे उनका किसी दूसरे ग्रहमें सामना होता हो। जैसे,—युतवेध, सप्तशलाकावेध, पताकीवेध इत्यादि।

वेधक (सं० क्ली०) विध-ण्वुल्। १ धान्यक, धनियां। (राजनि०) २ कर्पूर। (त्रिका०) ३ अम्लवेतस। (पु०) ४ वह जो मणियों आदिको वेध कर अपनी जीविका चलाता हो। (त्रि०) ५ वेधकर्त्ता, वेध करनेवाला। वेधशाला देखो।

वेधनिका (सं० स्त्री०) विध्यतेऽनयेति विध-करणे-ल्युट्। ततः स्वार्थे-कन्। वह औजार जिससे मणियों आदिमें छेद करते हों। पर्याय—आस्फोटनी, लास्फोटनी, स्फोटनी, वृषदंशिका। २ सूची, तुर्पुन।

वेधनी (सं० स्त्री०) विध्यतेऽनयेति विध-ल्युट्, स्त्रियां ङीप्। १ वेधनिका, वह औजार जिससे मणियों आदिमें छेद करते हों। २ हस्तिकर्णवेधनास्त्र, अंकुश। (त्रिका०) ३ मेथिका।

वेधमय (सं० त्रि०) छिद्रयुक्त, छेदवाला।

वेधमुख्य (सं० पु०) वेधे वेधने मुख्यः श्रेष्ठः। कचूर। (राजनि०)

वेधमुख्यक (सं० पु०) वेधमुख्य स्वार्थे कन्। हरिद्रावृक्ष, हल्दीका पौधा। पर्याय—कर्व्वूरक, द्राविड़क, काल्पक, काल्य। (अमर)

वेधमुख्या (सं० स्त्री०) वेधे मुख्या। कस्तूरी। (राजनि०)

वेधशाला (सं० स्त्री०) वह स्थान जहां ग्रहों और नक्षत्रों आदिका वेध करनेके यन्त्र आदि रखे हों, वह स्थान जहां नक्षत्रों और तारों आदिको देखने और उनकी दूरी गति आदि जाननेके यन्त्र हों। अंगरेजीमें इसे Observatory कहते हैं। मानमन्दिर और वेधालय देखो।

वेधस् (सं० पु०) विदधातीति वि-धा (विधाञो वेधच। उण् ४।२२४) इति असि वेधादेशश्च। १ ब्रह्मा। २ विष्णु। (अमर) ३ शिव। ४ सूर्य। (शब्दरत्ना०) ५ पण्डित। (विश्व) ६ श्वेतार्क वृक्ष, मदारका पौधा। (शब्दच०) ७ अंशुमत्पुत्र। (अग्निपुराण सागरोपाख्यान नामाध्याय) ८ प्रजापति दक्ष आदि। (त्रि०) ६ मेधावी। (निघण्टु) १० विविध कर्त्ता। (ऋक् ५।४२।१२)

वेधस (सं० क्ली०) अङ्गुष्ठमूल, हथेलीके अंगूठेकी जड़के पासका स्थान। इसे ब्रह्मतीर्थ भी कहते हैं। आचमनके लिये इसी गड्ढेमें जल लेनेका विधान है।

वेधसी (सं० स्त्री०) एक प्राचीन तीर्थका नाम।

वेधस्या (सं० स्त्री०) यागविधानकी इच्छा। (ऋक् ६।८२।२)

वेधा (सं॰ पु॰) वेधस् देखो।

वेधालय (Observatory)—एक शलाका या यष्टि अथवा अन्य किसी पदार्थमें सूर्यादि आकाश-मण्डलस्थ ग्रहादि और ताराको वेध कहते हैं। उक्त शलाका आदिमें लक्ष्य पदार्थका विम्ब विद्ध होता है, इससे वेधसंज्ञा पड़ी है। यष्टि या शलाकादि यन्त्रों द्वारा नक्षत्रादिके संस्थान और गतिनिर्णयको ही वेध (Observation) कहते हैं और जिस घरमें इस तरहके यन्त्र आदि रक्षित और कार्य साधित होता हो, उस गृहको प्राचीन पुरुषोंने वेधशाला या वेधालय कहा है, इस समय जनसाधारणमें यह 'मानमन्दिर' (Observatory) नामसे परिचित है।

यूरोपियोंका विश्वास है, कि इस देशमें बहुत पहलेसे ज्योतिषकी चर्चा रहने पर भी यहांके लोगोंमें वेधज्ञान न था। सुतरां प्राचीनकालमें यहां कोई वेधशाला भी न थी। यूनानियोंसे ही भारतवासीने वेधज्ञान सीखे हैं। किन्तु यह बात सत्य नहीं। इसमें सन्देह नहीं, कि भारतवासी ईसाके जन्मसे बहुत पहले अर्थात् सहस्र सहस्र वर्ष पहलेसे वेधोपाय जानते थे। जगत्के आदि ग्रन्थ ऋक्संहितासे ही २७ नक्षत्र और सप्तर्षिका संधान मिलता है। तैत्तिरीयसंहितामें नक्षत्र-तारेमें रोहिणीके प्रति चंद्रकी अतिशय प्रीति है या चंद्र रोहिणीके निकटवर्त्ती ऐसा कहा है। आश्वलायन श्रौतसूत्रमें ध्रुव और अरुन्धतीके शनिकृत रोहिणीशकटभेद, रामायण और महाभारतमें नाना नक्षत्र और तिथिवर्णना तथा नाना प्राचीन स्मृतियोंमें नक्षत्रयोगिके उल्लेखसे अच्छी तरह जाना जाता है, कि भारतीय आर्योंने उस ऋक्संहिताके समयसे ही अर्थात् सात हजार वर्षसे भी पहलेसे वेधशिक्षा की थी। वराहमिहिरने बृहत्संहितामें केतुचारके प्रसङ्गमें लिखा है—

"गार्गीयं शिखिचारं पाराशरमसितदेवलकृतं च।
अन्यांश्च बहून् दृष्ट्वा क्रियतेऽयमनाकुलश्चारः॥"

उक्त प्रमाणसे जाना जाता है, कि गर्ग, पराशर, असित, देवल आदि बहुतेरे ऋषियोंने केतुचार निर्णय किया है। उक्त बृहत्संहिताकी टीकामें भट्टोत्पलने भी इस तरह पराशरकी बात प्रकाशित की है—

"पैतामहश्चलकेतुः पञ्चवर्षशतं प्रोष्य उदितः।...अथोद्दालकः श्वेतकेतुर्दशोत्तरं वर्षशतं प्रोष्य दृश्यः।...शूलाग्राकारो शिखां दर्शयन् ब्रह्मनक्षत्रमुपसृत्यमनाक् ध्रुवं ब्रह्मराशिं सप्तर्षीन् संस्पृश्य......काश्यपः श्वेतकेतुः पञ्चदश वर्षशतं प्रोष्यैन्द्रां पद्मकेतोश्चारान्ते......नभस्त्रिभागमाक्रम्यापसव्यं निवृत्यार्द्धं प्रदक्षिणं कराकारशिखः स यावन्तो मासान् दृश्यते तावद्वर्षाणि सुभिक्षमावहति॥ अथ रश्मिकेतुर्विभावसुजः प्रोष्य शतमब्दानां केतोरुदितश्चारान्ते कृत्तिकासु धूमशिखः।" (पराशर)

अर्थात् पैतामह केतु पांच सौ वर्ष प्रवासमें रह कर उदित होता है। इस तरह उद्दालक श्वेतकेतु ११० वर्ष, शूलाग्राकार, शिखाधारी, काश्यप श्वेतकेतु १५०० वर्ष और विभावसुज रश्मिकेतु १०० वर्ष प्रवासके बाद कृत्तिकामें धूमशिखावत् उदय होता है।

इस समय जैसे यूरोपियोंके आविष्कर्त्ताके नामानुसार Halley's Comet आदि विभिन्न केतुके नाम सुनाई देते हैं वैसे ही अतिप्राचीन कालमें इस भारतवर्षमें जिन सब ऋषियोंने वेधसामर्थ्यसे विभिन्न केतुचारका आविष्कार किया है, उनके नामानुसार ही उन केतुओंका नामकरण हुआ था। यह भट्टोत्पलधृत पराशरोक्तिसे जाना जाता है।

आर्यभट, ब्रह्मगुप्त आदि प्राचीन ज्योतिषाचार्यगण स्वाधीनभावसे अपने अपने उद्भावित यंत्रसाहाय्यसे अत्यन्त पूर्वकालसे आज पर्यन्त वेध करते आते हैं। आठगढ़के राजकुमार चन्द्रशेखर सिंहकी जीवनीमें उसका विलक्षण परिचय मिलता है।

विस्तृत विवरण चन्द्रशेखर सिंह शब्दमें देखो।

वेधके लिये वेधशालाकी आवश्यकता है। वराहमिहिर आदिके ज्योतिर्ग्रन्थमें जाना जाता है, कि राजनिर्देशसे कितने ही नक्षत्रदर्शी दिन रात निभृत कक्षमें बैठ कर नक्षत्रादिकी गतिविधि पर्यवेक्षण और उसके दर्शनका फलाफल लिपिबद्ध करते थे। भोजराजके राजमृगाङ्ककरण और बल्लभवंशीय दशबलराजके करणकमलमार्त्तण्डप्रभृति इस तरह राजज्योतिषियोंके पर्यवेक्षणका फल है। केवल राजज्योतिषी ही क्यों

अनेक स्थलोंमें कितने स्वाधीन ज्योतिर्विदु अपनी क्षुद्र कुटिमें बैठ कर भी वेधज्ञानका परिचय दे गये हैं। नाना वैदेशिकोंके आक्रमण और सैकड़ों राष्ट्रविप्लवसे भारतकी कितनी ही प्राचीन वेधशालायें विलुप्त हुई हैं, किन्तु भारतकी उत्तर सीमाके बाहर चीनदेशमें ऐसे राष्ट्रविप्लव और ध्वंसकाण्ड न हो सकनेसे आज भी वहां सहस्र वर्षोंके वेधालय दिखाई देते हैं। इनमें चीन-राजधानी पेकिङ्ग शहरका वेधालय जगत्प्रसिद्ध है। पहले यहां एक छोटा वेधालय था; किन्तु सन् १२७६ ई०में को-सौकिंने वर्त्तमान वृहत् वेधालयका निर्माण किया था। सन् १६७३ ई०में उक्त मानमन्दिरमें ही वार्बियष्ट (Verbiest) प्रमुख जेसुइटधर्म-प्रचारकोंके यत्नसे बहुतेरे नये यन्त्र निर्मित हुए। आज भी उसमें काम हो रहा है।

भारतवर्षमें अभी किसी श्रेष्ठ ज्योतिर्विदुका आविर्भाव हुआ है, तभी उन्होंने वेध द्वारा पूर्ववर्त्ती ज्योतिषिक मत शोधन करनेका यत्न किया है। बहुत अधिक दिनकी बात नहीं, ग्रहलाघव नामके प्रसिद्ध ज्योतिर्ग्रन्थ-प्रणेता गणेश दैवज्ञके पिता केशवाचार्यने १५वीं शताब्दीमें जिस तरह वेधका परिचय दिया है, उसके पढ़नेसे विस्मित होना पड़ता है। उनके ग्रहकौतुककी स्वरचित मिताक्षराटीकामें लिखा है—

"ब्राह्मार्यभटसौराद्येष्वपि ग्रहकरणेषु बुधशुक्रयोर्महदन्तरं अङ्कतया दृश्यते। मन्दे आकाशे नक्षत्रग्रहयोगे उदयेऽस्ते पञ्चभागा अधिकाः प्रत्यक्षमन्तरं दृश्यते।...... एवं क्षेपेष्वन्तरं वर्षभोगेष्वपि अन्तरमस्ति। एवं बहुकाले बह्वन्तरं भविष्यति। यतो ब्राह्मोद्येष्वपि भगणानां सावनादीनां च बह्वन्तरं दृश्यते एवं बहुकाले बह्वन्तरं भवत्येव।......एवं बह्वन्तरं भविष्यैः सुगणकैः नक्षत्रयोगग्रहयोगोदयास्तादिभिर्वर्त्तमानघटनामवलोक्य न्यूनाधिकभगणाद्यैर्ग्रहगणितानि कार्याणि। यद्वा तत्कालक्षेपक वर्षभोगान् प्रकल्प्य लघुकरणानि कार्याणि।... एवं मया परमफलस्थाने ग्रहणतिथ्यन्ताद्विलोमविधिना मध्यश्चन्द्रो ज्ञातः तत्र फलह्रासवृद्ध्यभावात्। केन्द्रगोलादिस्थाने ग्रहणतिथ्यन्ताद्विलोमविधिना चन्द्रोच्चनाकलितं। तत्र फलस्य परमह्रासवृद्धिदर्शनात्। तत्र चन्द्रः सूर्यपक्षात् पञ्चकलो नो दृष्टः। उच्चं ब्रह्मपक्षाश्रितं। सूर्यः सर्वपक्षेष्वेवदन्तरः स सौरो गृहीतः। अन्ये ग्रहा नक्षत्र-ग्रहयोगग्रहयोगास्तोदयादिभिर्वर्त्तमान-घटनामवलोक्य साधितः। तत्रेदानीं भौमेज्यौ ब्राह्म-पक्षाश्रितौ घटतः। ब्राह्मो बुधः। ब्राह्मार्यमध्ये शुक्रः। शनिः पक्षत्रयात् पञ्चभागाधिको दृष्टः। एवं वर्त्तमान घटनामवलोक्य लघुकर्मणा ग्रहगणितं कृतं।"

ब्राह्म, आर्यभट और सौरादिके सिद्धान्त ग्रन्थमें ग्रहकरणमें बुध और शुक्रका बड़ा अन्तर दिखाई देता है। मन्दाकाशमें नक्षत्र ग्रहयोगमें, उदय और अस्तमें पञ्चभाग अन्तर अधिक है, यह प्रत्यक्ष रूपसे दिखाई देता है। इस तरह वर्षभोग क्षेपमें भी विशेष अन्तर है और इसी तरह बहुत कालमें बहुत अन्तर हो जाता है; क्योंकि, ब्राह्मादिमें और सावनादि भगणमें बहुत अन्तर दिखाई देता है और इसके भी बहुत कालमें बहुत अन्तर हो जाता है। सुगणकोंने नक्षत्रयोग ग्रहयोग और उदयास्तादि वर्त्तमान घटनाका अवलोकन कर न्यूनाधिकभावसे भगणादि द्वारा ग्रहगणित करना चाहिये, ऐसा स्थिर किया है। अथवा तत्कालक्षेपक वर्षभोगकी कल्पना कर लघुकरण करना।

परमफलस्थानमें चन्द्रग्रहण तिथिके अन्तसे विलोम विधि द्वारा मध्य चन्द्र द्वारा मध्यचन्द्र ज्ञात होगा। इसमें फलकी ह्रास वृद्धि नहीं होती। केन्द्रगोलादि स्थानमें और ग्रहणतिथिके अन्तसे विलोमविधि द्वारा चन्द्रोच्च कल्पित हुआ है। उसमें फलका परम, ह्रास और वृद्धि होती है तथा चन्द्रसूर्यपक्षसे पञ्चकला कम भावसे दिखाई देता है। यह ब्रह्मपक्षाश्रित जानना होगा। सूर्यका सब पक्षोंमें ही अल्प अन्तर रहता है और यह सौर कह कर गृहीत हुआ है। अन्य सब ग्रह नक्षत्रग्रहयोग और नक्षत्र ग्रहयोगास्त तथा उदयादि वर्त्तमान घटनाका अवलोकन कर साधन करना उचित है। अधुना भौम और इज्य ब्राह्मपक्षाश्रित है। ब्राह्म अर्थात् बुध, ब्रह्मार्यमें शुक्र, शनि पक्षत्रयसे पञ्च भाग अधिक दिखाई देता है। इस तरह वर्त्तमान घटना देख कर लघुकर्म द्वारा ग्रहगणना करनी चाहिये।

इसी तरह प्रसिद्ध ज्योतिषी कमलाकरने भी अपने सिद्धान्ततत्त्वविवेक नामक ग्रन्थमें पूर्वाचार्योंके सिद्धा-

ग्रहोंका मण्डल कर ध्रुवनक्षत्रकी गति प्रकाशित की है। महामहोपाध्याय चन्द्रशेखरकी बात पहले ही कही जा चुकी है। अभी थोड़े ही दिन हुए, कि उन्होंने परलोक गमन किया है। उन्होंने अपनी चेष्टा और अपने रचित यन्त्रके साहाय्यसे कैसी वेध-दक्षता दिखाई है, उनके सिद्धान्तदर्पण ग्रन्थके पढ़नेसे उसका यथेष्ट परिचय मिलता है। उनकी असाधारण शक्ति देख इस देश या विदेशके ज्योतिषियोंने इनको "टाइको ब्राहे" उपाधि दी है।

इस देशमें ऐसे भी कई ज्योतिषी देखे गये हैं, जो संस्कृत और अंग्रेजी दोनों भाषा नहीं जानते। अथच उनको नक्षत्र देख कर ऐसा ज्ञान उत्पन्न हुआ है, कि वह अनायास ही कह सकते हैं, कि कौन कौन तारा पूर्वसे पश्चिम और कौन कौन पश्चिमसे पूर्व अस्त हुए।

प्राचीन कालमें भारतवर्षमें वेधशालामें कौन कौन यन्त्र व्यवहृत होते थे, भास्कराचार्यने अपने यन्त्राध्यायमें उन यन्त्रोंका इस तरह नामोल्लेख किया है—१ चक्रयंत्र, २ चाप, ३ तुर्यगोल, ४ गोलयन्त्र, ५ नाड़ीवलय, ६ घटिका, ७ शंकु, ८ फलकयन्त्र, ९ यष्टियन्त्र और १० स्वयंवह-यंत्र। भारतीय ज्योतिर्विद् लल्लाचार्य और ब्रह्मगुप्तके समयसे आज तक इन सब यन्त्रोंके साहाय्यसे ही वेध कार्य साधन करते आ रहे हैं। १८वीं शताब्दीमें जयपुराधिप सवाई जयसिंहने तत्कालीन भारतके प्रधान नगरोंमें वेधशाला या मानमन्दिर प्रतिष्ठित कर उनमें ये सब यंत्र रखे थे। उन्होंने फारसी भाषामें ऐसा विवरण लिख कर रख दिया है, जिससे उनके नये उद्भावित यन्त्रोंका व्यवहार सहज ही समझमें आ जाता है।

जब यूरोपीय ज्योतिष शास्त्रकी आलोचनामें और यन्त्रादि साहाय्यसे ज्योतिष्कमण्डली अर्थात् ग्रह-नक्षत्रादि गतिस्थितिनिर्णयके विषयमें जगत्‌में अभिनव पन्थाकी प्रसारवृद्धि कर रहे थे, जब कोपर्निकसके (१४७३-१५४३ ई०) आलोकित ज्योतिर्मार्गमें विचरण कर हर्शेल (Sir William Herschel 1738-1812 A D) आदि ज्योतिर्विद् ग्रहनक्षत्र आदि आविष्कार और गति-निर्णय द्वारा जगत्‌में अतीव ख्याति उपार्जन कर रहे थे, उससे भी कुछ पहले अर्थात् १८वीं शताब्दीके प्रथममें भारतवर्षमें भी ज्योतिष शास्त्रविशारद एक अद्वितीय पुरुषने जन्मग्रहण किया था। केशव दैवज्ञ और गणेश दैवज्ञके ज्योतिःशास्त्र-सागरको मन्थन कर उसके सारोद्धार सर्वांशमें तद्ग्रहगणितचयकी विशुद्धता सम्पादन करने पर भी वास्तवमें वे जयसिंहकी तरह ज्योतिषशास्त्रालोचनाका पथ उन्मुक्त कर नहीं सके हैं।

राजपूतानेके अन्तर्गत अम्बरराज्यके अधीश्वर जयसिंह संवत् १७५० विक्रमीय (१६९३ ई०)में पैदा हुए थे। वयोवृद्धिके साथ साथ उन्होंने भारतीय, मुसलमानी, यावनी और यूरोपीय नाना ज्योतिर्ग्रन्थोंकी आलोचना की। इन सब ज्योतिष ग्रन्थोंको पढ़ कर जब वह समझ गये, कि हिपार्कास, टलेमी, गुल्लिव, जमसेद काशि और नासिर तुसी आदिके ग्रन्थ प्रमाणसे दृक्प्रत्यय करनेकी जब सुस्पष्ट सुविधा नहीं दिखाई देती, तब उनके वे परिश्रम व्यर्थ हुए, यह सहज ही अनुमान किया जाता है। सिवा इसके ग्रहनक्षत्र आदिकी स्थिति-गणनामें संवत् गुर्गानि और अक्षांशोंकी प्रदर्शित सूची, तूविस्तात् मुल्लशाह प्रभ-चन्द्राही, संस्कृत ज्योतिर्ग्रन्थ और यूरोपीय गणना-सूची आदि प्रचलित थीं, उसके साथ ग्रहण गणनामें अनेक वैषम्य रहनेसे वे स्वतः प्रवृत्त हो वेधयन्त्र स्थापन कर प्राचीन पद्धतिके संस्कारसे नये ग्रन्थ और तालिका प्रस्तुतमें यत्नशील हुए।

इस समय दिल्लीके बादशाह महम्मद शाहने उनके ज्योतिष विषयक ज्ञानका परिचय पा कर और वेधशाला स्थापनमें उनका उद्यम और आग्रह जान कर उनको दिल्ली दरबारमें बुलाया और उनके आने-जानेका व्यय-भार अपने ऊपर लिया था। इसके अनुसार जयसिंहने दिल्ली राजदरबारमें आ कर मुसलमान ज्योतिर्विद् और ज्यामितिविदोंके, ज्योतिषशास्त्राभिज्ञ ब्राह्मण पण्डितोंके और कई यूरोपीय ज्योतिर्विदोंके साहाय्यसे कई ग्रहोंका गतिकाल प्रत्यक्ष कर आपसमें परामर्श किया और गणनामें जो भ्रम था, उसका संशोधन कर लिया। इस समय सुशृङ्खला पूर्वक कार्य निर्वाह करनेके लिये वैदेशिक यन्त्रादिका अनुकरण कर उनको भी कई यन्त्र निर्माण कर लेना पड़ा था।

राजा जयसिंहने मुसलमानी ग्रंथोंके अनुसार समरकन्दमें प्रतिष्ठित मानमन्दिरका अनुकरण कर दिल्लीमें उन सब यन्त्रादिको स्थापित कर सबसे पहले वेधशाला की भित्ति कायम की। समरकन्दमें उस समय तीन गज परिमित व्यासविशिष्ट आत्-उल-हलक और आत्-उल सेवेतिन, जात्-उल-फस बेतिन, सादस फकेरी और मंशालाआदि कई पीतलके बने यन्त्र थे। ये सब यन्त्र छोटे आकारके थे। इससे इनमें मिनट विभागकी सुविधा न थी। फिर स्थानमें वैषम्य होनेके कारण यन्त्रोंके स्थापनमें गड़बड़ीसे अनेक समय गणनामें विभ्राट् उपस्थित होता था। कभी तो मध्यदण्ड (axes) क्षयप्राप्त हो या कम्पित हो वृत्तोंका केन्द्रस्थानच्युत हो जाता था, उससे भी गणनामें गड़बड़ी उपस्थित होती थी। इन्हीं सब कारणोंसे हिपार्कास आदि प्राचीन ज्योतिर्विदों की गणना सर्वाङ्ग सुन्दर नहीं हुई। यह विचार कर उन्होंने अपने इच्छानुसार राजधानीके नामानुसार "दर-उल-खलिफात् शाह-जहानाबाद," "जयप्रकाश" "राम-यन्त्र" और "सम्राट्यन्त्र" निर्माण किया था। इसका व्यासार्द्ध प्रायः १८ हाथ, १ मिनटके निरूपणका अंशांश-परिमाण १॥ जौ था। यंत्र पत्थर और चूने आदिके संयोगसे बने थे। चौड़े होनेसे इनमें गति और दूरत्वका परिमाण निर्दोष करनेकी विशेष सुविधा है।

इस तरहकी प्रणालीसे वेधशाला स्थापित हुई सही; किन्तु निरूपित ग्रहनक्षत्र आदिको स्थान और वर्त्तमान यंत्रके साहाय्यसे अधःपतित इन सब स्थानों-को प्रकृत स्थितिनिर्णय द्वारा इन दोनोंमें दूरत्व या कालका व्यवधान करनेके लिये जयसिंहने विशेष अध्यवसायके साथ सवाई जयपुर, मथुरा, बनारस, और उज्जैन नगरीमें और भी चार स्वतन्त्र वेधालय स्थापन किये। इन सब स्थानोंमें स्वतन्त्र भावसे ग्रह-नक्षत्रादिका सञ्चालन और गणना की गई थी। उसी गणनाका फल ले कर उन्होंने दोनों नक्षत्रोंके अक्षांशका व्यवधान छोड़ सामञ्जस्य द्वारा इन सब गणनाओंको भ्रमविहीन और सर्वाङ्ग सुन्दर सिद्धान्त किया था। आज भी इन सब स्थानोंमें वेधालय विद्यमान हैं। किंतु वे आलोचनाके अभावमें अनादृत अवस्थामें निपतित और ध्वस्तप्राय हैं। जनसाधारणकी जानकारीके लिये एक एक करके कई वेधालयोंके यन्त्रादिका उल्लेख किया गया है।

दिल्ली नगरके प्राचीरके बहिर्भागमें १। मील दूर पर जुम्मा मसजिदके ३२° दक्षिण-पश्चिममें दिल्लीका मानमन्दिर अवस्थित है। इङ्गलैण्डके ग्रीनवीच (Greenwich) मानमन्दिरसे यह स्थान अक्षा० २८° ३८′ ३० तथा देशा० ७७° २′ पू० दूरवर्त्ती है। ये कई खण्ड खण्ड अट्टालिकामें विभक्त हैं। एक एक अट्टालिकामें एक या अधिक यन्त्र रखे हुए हैं। इन सब यन्त्रोंके कुछ विवरण यन्त्रशब्दमें लिखा जा चुका है। इससे यहां अधिक नहीं लिखा गया। केवल नाम और परिमाण निर्देश कर संक्षेपमें उनका परिचय दिया जाता है।

(१) सम्राट् यन्त्र (Equatorial dial) या नाड़ीवलय। इसका शंकु ११८ फीट ७ इञ्च लम्बा, मूल-देश १०४ फीट १ इञ्च और ऊंचाई ५६ फीट ६ इञ्च है। यह प्रस्तरग्रथित है। किन्तु स्थान-स्थानमें टूट गया है।

(२) उक्त यन्त्रसे कुछ दूर उत्तर-पश्चिममें और एक अपेक्षाकृत छोटा नाड़ी वलय है। इसके बीचमें शङ्कु है। इस पर चढ़नेके लिये सीढ़ी लगी है। इसके शङ्कुके दोनों पार्श्वमें ही समकेन्द्रके अर्द्धवृत्त है। शङ्कु बहिर्वृत्तके व्यास स्वरूप ३५ फीट ४ इञ्च लम्बा है। बहिर्गोलकका एक एक अंश $3\frac{74}{100}$ इञ्च है। बहिर्वृत्तसे मध्यवृत्तकी व्यवधान रेखा २ फीट ६ इञ्च है। प्रत्येक अंश १० भागमें और प्रत्येक भाग ६ कला (Minute) में विभक्त है।

इस वृत्तके उत्तरी प्राचीरमें और पश्चिम ओर की एक स्वतन्त्र अट्टालिकामें खगोलस्थ नक्षत्रोंकी ऊंचाईके निरूपणार्थ याम्योत्तररेखावलम्बित एक यन्त्र है। यह द्विवृत्तपाद (Double quadrant) है। इसका एक एक अंश $2\frac{5}{6}$ इञ्च है और उसमें कलाविभाग है।

(३) वृहन्नाड़ीवलय-यंत्रके दक्षिण कुछ दूर पर "उसतुवाना" नामकी दो अट्टालिकायें हैं इनसे खगोलस्थ

नक्षत्रोंके उन्नतांश और दिगंश (azimuth) निरूपण किया जाता है।

(५) इन दो गृह और गृहप्राङ्गणके मध्यस्थलमें शाम्भा नामक यंत्र प्रतिष्ठित है। यह कुब्ज (Concave)-पृष्ठ अर्द्धवृत्त है। इसमें खगोलके निम्नार्द्धकी रेखा अङ्कित है। याम्योत्तररेखामें १५ अंशकी दूरी पर स्थापित है।

जयपुरनगरमें इस समय जितने ज्योतिषिक यंत्र विद्यमान हैं, उनमें निम्नलिखित यंत्र प्रधान हैं—

१, याम्योत्तरभित्तियंत्र (Meridianal wall)। इस यंत्रके द्वारा ज्योतिष्कोंके याम्योत्तर अतिक्रमकालीन (Transit on the meridian) उन्नतांशमें, सूर्यकी महत्तम क्रांति (greatest declination) और स्थानीय अक्षांश (Latitude) निर्णीत होता है। वर्त्तमानकालमें यूरोप आदि स्थानोंमें Mural circle नामक यंत्र द्वारा ये सब उद्देश्य साधित होते हैं। पर्यवेक्षणिका भूमिके ऊपरी भागमें एक प्राचीर है। यह प्राचीर सम्पूर्ण रूपसे याम्योत्तर रेखा पर अवस्थित है। प्राचीरके पूर्वभागमें २० फुट व्यासार्द्ध विशिष्ट दो वृत्तपाद (Quadrant) और पश्चिमभागमें १६ फीट १० इञ्च व्यासार्द्ध विशिष्ट एक वृत्तार्द्ध चिह्नित है। परिधियां मार्बल पत्थरसे निर्मित हुई हैं और अंश (Degree), कला (Minute) प्रभृतिमें विभक्त हैं। पत्थरमें छेद कर उसमें सीसा प्रविष्ट करा कर विभागोंकी रेखायें अङ्कित हुई हैं। वृत्तके केन्द्रस्थानमें एक कील गड़ी हुई है। उसमें सूत बांध कर सारे विभागोंमें पर उस सूतके अग्रभागको घुमाया जा सकता है। यदि किसी ज्योतिष्कके उन्नतांश निर्णय करनेकी आवश्यकता होती है तब इसको याम्योत्तर रेखा अतिक्रम करनेके समयकी प्रतीक्षा करनी होती है। जब ज्योतिष्क याम्योत्तर रेखा पर उपस्थित होता है, तब सूतका अग्रभाग किसी विभागोंमें पकड़नेसे कील और यह ज्योतिष्क समसूत्रपात पर अवस्थित दिखाई देगा, तब यह विभागांश वृत्तार्द्धके शिखरकी सीमासे कई अंश दूर पर देख लेना। यह अंश संख्या उस ज्योतिष्ककी उन्नतांशज्ञापक है।

निम्नलिखित उपायसे जयपुरमें [illegible] हुए है। प्रतिदिन मध्याह्नकालमें याम्योत्तर रेखा अतिक्रम कालीन सूर्यका उन्नतांश देख लेना होता है। ९० अंशसे यह बाद देनेसे खस्वस्तिकसे दूरत्व अर्थात् नतांश मिलता है। लगातार कई महीने तक इस तरह उन्नतांशसे निर्णय करते करते सबसे जो कम और सबसे जो अधिक है, उन दोनोंका अन्तर ले कर उसका आधा ग्रहण करना होगा। यही विषुवरेखा और क्रान्तिवलयके अंतर्गत कोणका परिचायक है। अर्थात विषुवरेखा लघुतम नतांशमें अवस्थित है और महत्तम नतांशमें अवस्थानके मध्य विंदुसे हो कर गई है।

सन १७२७ ई०में महाराज जयसिंहने जयपुरकी रविपरमाक्रान्ति (Obliquity of the ecliptic) २३ डिग्री २८ मिनट निर्णय की है। उस समय वह यथार्थमें २३ डिग्री २८ मिनट २६ सेकेण्ड (विकला) थी। अतएव यह गणनाका सामान्य व्यतिक्रम मात्र जानना होगा। परमाक्रांतिमें सूर्यका लघुतम नतांश जोड़ देनेसे जयपुरका अक्षांश (Latitude) मिल जाता है। लघुतम नतांश किञ्चिदधिक साढ़े तीन अंश मात्र है। इसीलिये जयपुरका अक्षांश २७ डिग्री है। इससे पाठक समझ सकते हैं, कि सूर्य जयपुरके खस्वस्तिकमें अर्थात् शिर पर कभी उपस्थित नहीं होता। उसका न्यूनांश उत्तर प्रभृति जयपुरके थ [illegible] ३॥ डिग्री दक्षिणमें हो कर जाता है। अतएव जयपुर समकटिबंध (Temperate zone)में अवस्थित है।

भित्तियंत्रकी ऊंचाई प्रायः १४ हाथ है और लम्बाई इसके दुगुनेसे भी कुछ अधिक है। अतएव पर्यवेक्षणकी सुविधाके लिये सारी वृत्तपरिधियोंके बगलमें सीढ़ियां बनी हैं। इन्हीं सीढ़ियोंसे ऊपर चढ़ा जा सकता है।

२, "नाड़ीवलययंत्र"—इसके विषयमें पहले कुछ वर्णन किया जा चुका है। जयपुरके नाड़ीवलयकी पीठ पर किसी कवितासे पंचाङ्गका आरम्भकाल निर्णीत होता है। इसीसे यह कविता यहां उद्धृत कर दी जाती है।

"[illegible] अयनस्पृशोः ।
श्री जयसिंह [illegible] ॥

लुप्त्वा धर्मविरोधिनोऽध्वरसुखैश्चाचीर्य वेदाध्वभि-
धर्म्मं न्यस्य धरातले रचितवान् यन्त्रान् सुबोधान् बहून् ॥
गोलप्रवृत्तोगगने चराणां जिज्ञासया श्रीजयसिंहदेवः ।
आज्ञातवान् यन्त्रविदः पुनस्ते चक्रुर्हि याम्योत्तरभित्तिसंज्ञम् ॥
सवज्रलेपांशुविशुद्धपार्श्व-द्वयस्थ-नाड़ीवलयैककेन्द्रम् ।
ध्रुवाभिकेन्द्रस्थ त्रिभागकीलं कोणाग्रमासूचिनाड़ीकाद्यम् ॥
पितामहोच्छिष्टमथाश्च भाक्तौ रोहवरोहान् नवनन्दनस्त्तान् ।
प्रतापसिंहश्च विबुध्य विद्भ्यस्तान् कारयामास सुपार्श्वयुग्मे ॥
भारोपमम्लेच्छगणस्य वृद्ध-भूमारशान्त्यै पुनरादिदेवः ।
इक्ष्वाकुलशेऽप्यवतीर्य पूर्वावतारितान् वेदगणाननुक्त ॥
धर्माधिकारी विधिदेवकूल्यः प्रायुक्ति संरोहितधर्मपादाः ।
यन्त्रेषु वेदाङ्गविभूषणेषु द्वितीय यन्त्रोद्धरणाञ्चकार ॥
यस्मिन्नह्नि चतुर्षु पक्षतिधिवारर्क्षेषु पक्षोपश्रिप्न-
श्चान्यैस्त्रिभिरन्वितः स्मृतिचयः स्यात् शालिशाकस्य सः ।
नन्दघ्नत्स्थितिरपययुक् स च भवो विश्वघ्नवारीययुक्
यातत्वघ्न भमन्ययुक्तमयवेधाऽस्योद्व तस्योत्थितिः ॥"

अब यंत्रस्थापनका पक्ष, तिथि, वार और नक्षत्र द्वारा सिद्ध होता है, कि इस दिन कृष्णपक्ष, नवमी, शुक्रवार और कृत्तिका नक्षत्र विशिष्ट तथा १६४० शक (अर्थात् १६१८ ई०) की घटना है।

उपर्युक्त कवितासे मालूम होता है, कि यन्त्रालयके वर्त्तमान सब यंत्र अकेले जयसिंह द्वारा ही नहीं बने हैं, उनके पौत्र प्रतापसिंहने अनेक यंत्र बनवाये थे। जयसिंहके समयसे श्रीमाधोसिंहके समय तक प्रत्येक राजाने ही अल्पाधिक परिमाणसे यंत्रालयकी श्रीवृद्धि और उन्नतिसाधन-करनेमें अर्थ व्यय किया है। उक्त यंत्रालयोंमें जिस उद्देश्यसे जो यंत्र निर्मित और जिस राजाके समयमें स्थापित या संस्कृत हुए हैं, उनका विवरण नीचे दिया जाता है।

वेधालयके यंत्रोंकी सूची।

संख्या	नाम	किससे निर्मित	कहां रखे गये	कार्य व्यवहार	किस राजाके राज्यमें	किस राजाके राज्यमें पुनः संस्कृत या संवर्द्धित
१	याम्योत्तरभित्तियंत्र	इमारत	ज्योतिषिक यन्त्रालय	उन्नतांशनिर्णय	सवाई जयसिंह	सवाई रामसिंह
२	पट्टांशयंत्र	”	”	”	”	
३	रामयंत्र	”	”	उन्नतांश और दिगंशनिर्णय	”	सवाई माधवसिंह (२य)
४	दिगंशयंत्र (Azimuth circle)	”	”	दिगंशनिर्णय	”	
५	सम्राट्यंत्र	”	”	कालनिरूपण, नतकाल (hour angle) क्रान्ति	”	
६	नाड़ीवलय (Equatorial dial)	”	”	कालनिरूपण, नतकाल	”	सवाई प्रतापसिंह
७	राशिवलय	”	”	खगोलीय शर, द्राघिमा	”	
८	क्रांतिवृत्त	” और पीतल	”	” ”	”	सवाई माधवसिंह (२य)
९	कपालीयंत्र (Clepsydra)	इमारत	”	” ”	”	
१०	जयप्रकाश	”	”	” ”	”	
११	उन्नतांशयंत्र	पीतल	”	उन्नतांशनिर्णय	”	
१२	चक्रयन्त्र (Vertical circle)	”	”	क्रांति नतकाल	”	
१३	यंत्रराज	”	” और जादूघर	उन्नतांश और अन्यान्य गणना	”	

नक्षत्रोंके उन्नतांश और दिगंश (azimuth) निरूपण किया जाता है।

(५) इन दो गृह और वृहत्सम्राट्यंत्रके मध्यस्थल में शास्त्र नामक यंत्र प्रतिष्ठित है। यह कृष्ण (Cone-arc)-वृत्त संयुक्त है। इसमें भगोलके निरक्षांशकी रेखा अङ्कित है। याम्योत्तररेखायें १५ अंशकी दूरी पर स्थापित हैं।

जयपुरनगरमें इस समय जितने ज्योतिषिक यंत्र विद्यमान हैं, उनमें निम्नलिखित यंत्र प्रधान हैं—

१, याम्योत्तरभित्तियंत्र (Meridianal wall)। इस यंत्रके द्वारा ज्योतिष्कोंके याम्योत्तर अतिक्रमकालीन (Transit on the meridian) उन्नतांशमें, सूर्यकी महत्तम क्रांति (greatest declination) और स्थानीय अक्षांश (Latitude) निर्णीत होता है। वर्त्तमान कालमें यूरोप आदि स्थानोंमें Mural circle नामक यंत्र द्वारा ये सब उद्देश्य साधित होते हैं। पर्यवेक्षणिका भूमिके ऊपरी भागमें एक प्राचीर है। यह प्राचीर सम्पूर्ण रूपसे याम्योत्तर रेखा पर अवस्थित है। प्राचीरके पूर्वभागमें २० फुट व्यासार्द्ध विशिष्ट दो वृत्तपाद (Quadrant) और पश्चिमभागमें १६ फीट १० इंच व्यासार्द्ध विशिष्ट एक वृत्तार्द्ध चित्रित है। परिधियां मार्बल पत्थरसे निर्मित हुई हैं और अंश (Degree), कला (Minute) प्रभृतिमें विभक्त हैं। पत्थरमें खोद कर उसमें सीसा प्रविष्ट करा कर विभागोंकी रेखायें अङ्कित हुई हैं। वृत्तके केन्द्रस्थानमें एक कील गड़ी हुई है। उसमें सूत बांध कर सारे विभागांशों पर उस सूतके अग्रभागको घुमाया जा सकता है। यदि किसी ज्योतिष्कके उन्नतांश निर्णय करनेकी आवश्यकता होती है, तब इसको याम्योत्तर रेखा अतिक्रम करनेके समयकी प्रतीक्षा करनी होती है। जब ज्योतिष्क याम्योत्तर रेखा पर उपस्थित होता है, तब सूतका अग्रभाग किसी विभागांशमें पकड़नेसे कील और वह ज्योतिष्क समसूत्रपात पर अवस्थित दिखाई देगा, तब वह विभागांश वृत्तार्द्धके निकटकी सीमासे कई अंश दूर पर देख लेगा। यह अंश संख्या उक्त ज्योतिष्ककी उन्नतांशमापक है।

निम्नलिखित उपायसे जयपुरमें अक्षांश निर्णीत हुआ है। प्रतिदिन मध्याह्नकालमें याम्योत्तर रेखा अतिक्रम कालीन सूर्यका उन्नतांश देख लेना होता है। ९० अंशसे यह बाद देनेसे खस्वस्तिकसे दूरत्व अर्थात् नतांश मिलता है। लगातार कई महीने तक इस तरह उन्नतांशसे निर्णय करते करते सबसे जो कम और सबसे जो अधिक है, उन दोनोंका अन्तर ले कर उसका आधा ग्रहण करना होगा। यही विषुवरेखा और क्रान्तिवृत्तके अंतर्गत कोणका परिमापक है। अर्थात् विषुवरेखा लघुतम नतांशमें अवस्थित है और महत्तम नतांशमें अयनस्थानके मध्य बिंदुमें हो कर गई है।

सन् १७२७ ई०में महाराज जयसिंहने जयपुरकी रवि-परमाक्रान्ति (Obliquity of the ecliptic) २३ डिग्री २८ मिनट निर्णय की है। उस समय यह यथार्थमें २३ डिग्री २८ मिनट २६ सेकेण्ड (विकला) थी। अतएव यह गणनाका सामान्य व्यतिक्रम मात्र जानना होगा। परमाक्रान्तिमें सूर्यका लघुतम नतांश जोड़ देनेसे जयपुरका अक्षांश (Latitude) मिल जाता है। लघुतम नतांश किञ्चिदधिक साढ़े तीन अंश मात्र है। इसीलिये जयपुरका अक्षांश २७ डिग्री है। इससे पाठक समझ सकते हैं, कि सूर्य जयपुरके खस्वस्तिकमें अर्थात् सिर पर कभी उपस्थित नहीं होता। उसका चूड़ांत उत्तर प्रभृति जयपुरके खस्वस्तिसे ३½ डिग्री दक्षिणमें ही रह जाता है। अतएव जयपुर समशीतोष्ण (Temperate zone)में अवस्थित है।

भित्तियंत्रकी ऊंचाई प्रायः १४ हाथ है और लम्बाई इसके दुगुनेसे भी कुछ अधिक है। अतएव पर्यवेक्षणकी सुविधाके लिये सारी वृत्तपरिधियोंकी बगल में सीढ़ियां बनी हैं। इन्हीं सीढ़ियोंसे ऊपर चढ़ा जा सकता है।

२, "नाड़ीवलययंत्र"—इसके विषयमें पहले कुछ वर्णन किया जा चुका है। जयपुरके नाड़ीवलयको देख कर किसी कवितासे देशान्तरका आत्मकाय निर्णीत होता है, इसीसे यह कविता यहां उद्धृत कर दी जाती है।

*धर्मोपार्जितमर्थवृद्धिनिरतैर्यत्नाद्यया जनपमुखैः।
धर्मेण्डो वसति दृष्टान्तिकवर्षभूमि यस्यैः॥

लुप्त्वा धर्मविरोधिनोऽम्बरमुखेष्वाचीर्णं वेदाज्ञमि-
धर्मं न्यस्य धरातले रचितवान् यन्त्रान् सुबोधान् बहून् ॥
गोलप्रवृत्तेर्गगने चराणां जिज्ञासया श्रीजयसिंहदेवः ।
आज्ञासवान् यन्त्रविदः पुनस्ते चक्रुर्हि याम्योत्तरभित्तिसंज्ञम् ॥
सन्नग्नलेपांशुविशुद्धपार्श्व-द्वयस्थ-नाड़ीवलयैककेन्द्रम् ।
ध्रुवाभिकेन्द्रश्च तिभागकोर्ण : कोणप्रमाणचिनाड़ीकाद्यम् ॥
पितामहोच्छिष्टमयाश्च मार्गा रोहवरोहान नवनन्दनवृत्तान् ।
प्रतापसिंहश्च विबुध्य विद्म्यस्तान् कारयामास सुपार्श्वयुग्मे ॥
भारोपमम्लेच्छगणस्य वृद्ध-भूमारशान्त्यै पुनरादिदेवः ।
इक्ष्वाकुवंशेऽप्यवतीर्य पूर्वावतारितान् देवगणानुयुक्त ॥
धर्माधिकारी विधिदेवकुल्यः प्रायुक्ति संरोहितधर्मपादाः ।
यन्त्रेषु वेदाङ्गविभूषणेषु द्वितीय यन्त्रोद्धरणञ्चकार ॥
यस्मिन्नह्नि चतुर्षु पक्षतिविचारज्ञेषु पक्षोपभिन्न-
श्चान्यैस्त्रिभिरन्वितः स्मृतिजयः स्यात् शालिशाकस्य सः ।
नन्दघ्नस्थितिरपययुक् [redacted] च सतो विश्वघ्नवारोपययुक्
वातत्त्वघ्न भमन्ययुक्तमयवैषाऽस्योद्गतस्योत्थितिः ॥"

अब यंत्रस्थापनका पक्ष, तिथि, वार और नक्षत्र द्वारा सिद्ध होता है, कि इस दिन कृष्णपक्ष, नवमी, शुक्रवार और कृत्तिका नक्षत्र विशिष्ट तथा १६४० शक (अर्थात् १६१८ ई०) को घटना है।

उपर्युक्त कवितासे मालूम होता है, कि यन्त्रालयके वर्त्तमान सब यंत्र अकेले जयसिंह द्वारा ही नहीं बने हैं, उनके पौत्र प्रतापसिंहने अनेक यंत्र बनवाये थे। जयसिंहके समयसे श्रीमाधोसिंहके समय तक प्रत्येक राजाने ही अल्पाधिक परिमाणसे यंत्रालयकी श्रीवृद्धि और उन्नतिसाधन-करनेमें अर्थ व्यय किया है। उक्त यंत्रालयोंमें जिस उद्देश्यसे जो यंत्र निर्मित और जिस राजाके समयमें स्थापित या संस्कृत हुए हैं, उनका विवरण नीचे दिया जाता है।

वेधालयके यन्त्रोंकी सूची।

संख्या	नाम	किससे निर्मित	कहां रखे गये	कैसा व्यवहार	किस राजाके राज्यमें	किस राजाके राज्यमें पुनः संस्कृत या संवर्द्धित
१	याम्योत्तरभित्तियंत्र	इमारत	ज्योतिषिक यन्त्रालय	उन्नतांशनिर्णय	सवाई जयसिंह	सवाई रामसिंह
२	षष्ठांशयंत्र	"	"	"	"	
३	रामयंत्र	"	"	उन्नतांश और दिगंशनिर्णय	"	सवाई माधवसिंह (२य)
४	दिगंशयंत्र (Azimuth circle)	"	"	दिगंशनिर्णय	"	
५	सम्राट्यंत्र	"	"	कालनिरूपण, नतकाल (hour angle) क्रान्ति	"	
६	नाड़ीवलय (Equatorial dial)	"	"	कालनिरूपण, नतकाल	"	सवाई प्रतापसिंह
७	राशिवलय	"	"	खगोलीय शर, द्राघिमा	"	
८	क्रांतिवृत्त	" और पीतल	"	" "	"	सवाई माधवसिंह (२य)
९	कपालीयंत्र (Clepsydra)	इमारत	"	" "	"	
१०	जयप्रकाश	"	"	" "	"	
११	उन्नतांशयंत्र	पीतल	"	उन्नतांशनिर्णय	"	
१२	चक्रयन्त्र (Vertical circle)	"	"	क्रांति नतकाल	"	
१३	यंत्रराज	"	" और जादूघर	उन्नतांश और अन्यान्य गणना	"	

संख्या	नाम	किससे निर्मित	कहां रखे गये	कैसा व्यवहार	किस राजाके राज्यमें	किस राजाके समयमें पुनः संस्कृत या संस्थापित
१४	यष्टियंत्र (Graduated staff)	पीतल या काष्ठ	ज्योतिर्विदोंके घरमें	कालनिरूपण	सवाई माधवसिंह (१म)	
१५	ध्रुवभ्रमयंत्र और तुरीय यंत्र (Quadrant)	पीतल	आडूपर	„ और क्रांतिवृत्त-का स्थान	पण्डितगण	
१६	गोलयंत्र (Armillary sphere)	„	„	„	सवाई माधवसिंह (१म)	

१७ अन्यान्य बहुतेरे यन्त्र जैसे…जयसिंहका चतुरस्र, पलभायंत्र या धूपघड़ी, नाड़ीयंत्र (अंतिम दो इस समय उखाड़ दिये गये हैं)

सूचीमें जो कई यंत्रोंके नाम उल्लेख किये गये, उनके सिवा और भी कई पीतल या काठके बने यंत्र आडूपरों और ज्योतिर्विदोंके घरमें रखे हुए हैं। सूचीमें निर्दिष्ट उद्देश्यके सिवा और भी अनेक विषयों की गणना एक यंत्र द्वारा साधित होती है। उक्त यंत्र आदिके सिवा जयसिंहने 'जीज मुहम्मद' ग्रन्थ संग्रह की है। यह ग्रहनिर्णयके लिये विशेष फलप्रद है।

अन्यान्य विवरण यन्त्र शब्दमें देखो।

जयपुरके राजमहलके सिरोलिया दरवाजा नामक तोरण द्वार पार कर कई पैर उत्तर ओर जाने पर प्राचीर वेष्टित एक अहाता दिखाई देता है। इसकी लम्बाई चार सौ हाथ और चौड़ाई दो सौ साठ हाथ होगी। इसी जगह ज्योतिषिक यंत्र बने हैं। इसके उत्तर ओर राजभवन और कचहरी इमारत है, पश्चिम ओर कई देवालय, पूर्व ओर अश्वशाला और दक्षिण ओर कई देवमंदिर हैं। इस अश्वशाला और मंदिरके बाद ही बाजार है। कोलाहलपूर्ण नगरके केन्द्रभागमें ही यह अवस्थित है; किंतु चहारदीवारीके मध्यमें उपस्थित होने पर किसी तरहका शोरगुल या कोलाहल सुनाई नहीं देता, बिलकुल शांत और नीरव निस्तब्ध। शांतिप्रिय महाराज जयसिंह राजकार्योंकी झंझटोंसे छुटकारा पा कर इस निभृत-निस्तब्ध स्थानमें समागत हो कर गंभीर गवेषणासे समय बिताते थे।

महाराज सवाई जयसिंहने जयपुर नगरके निर्माण और ज्योतिषिक यंत्रालय प्रतिष्ठाके विषयमें शिल्पनैपुण्य (Engineering skill) का यथेष्ट परिचय दिया है। ज्योतिषके सम्बन्धमें जगन्नाथ आदि पण्डितोंकी गणना आदि और ग्रंथ प्रणयन आदि कार्योंमें आविष्ट रहने पर भी यंत्रालयका तत्त्वावधानभार वे स्वयं निर्वाह करते थे। कहा गया है, कि उनके बंगाली दीवान विद्याधर इस विषयमें विशेष उद्योगी थे। जयपुरके ज्योतिषिक यंत्रालय भारतवर्षकी अद्वितीय कीर्ति है।

महाराज जयसिंहने जयपुरके सिवा दिल्ली, मथुरा, बनारस और उज्जैन नगरमें भी अल्पाधिक परिमाणमें ज्योतिषिक यन्त्रादि निर्माण किये थे। काशीजीके मानमन्दिरके यन्त्र आदि जयसिंह द्वारा स्थापित हैं। बहुतेरे समझते हैं, कि काशीजीके मानमन्दिरके यंत्र महाराज मानसिंहके द्वारा स्थापित हैं, किंतु यह बात ठीक नहीं। मानमन्दिरका प्रासाद अवश्य ही महाराज मानसिंहने तीर्थयात्रियों तथा विद्यार्थियोंकी सुविधाके लिये तैयार कराया था। महाराज जयसिंहने उसमें दो यन्त्र स्थापन किया था। जयसिंहके पहले जयपुरसे वेदवेदांगादि शास्त्र अध्ययन करनेवाले यहां आ कर इसी प्रासादमें ठहरते थे।

पाश्चात्य वेधालय।

ज्योतिष्कमण्डलोंकी गतिविधिकी पर्यालोचनाके विषयमें पाश्चात्य जगत्‌की प्राचीनकालमें विशेषरूपसे समादर हो नहीं सके है। इतिहासकी आलोचना करने पर मालूम होता है, कि ईसासे ३०० वर्ष पूर्व यूरोपमें कहीं भी वेधालय प्रतिष्ठित नहीं थे। फिर आ

है। एक दार्शनिक सर्वसाधारणको जगत्की गठनके सम्बन्धमें ज्योतिष्क तत्त्व वितरणके मानससे कभी कभी ग्रहनक्षत्रादिकी गति और स्थिति लक्ष्य कर वह विषय लिपिबद्ध कर रखते थे। वे गतिनिर्णयके लिये अति सामान्य भावसे यंत्रादिका व्यवहार करते थे। इसके बाद वे इन सब खण्डखण्ड विषयोंको एकत्र कर जगत्की गठन और ग्रहस्थान-निर्णयविषयमें साधारणको प्रयास वृद्धि हुई और धीरे धीरे ज्योतिषशास्त्रकी ज्ञानोन्नति होती रही। इसी उद्देश्यकी सिद्धिके लिये अलेकजेण्ड्रियामें सबसे पहले विद्यालय प्रतिष्ठित हुआ। चार सदी तक तो विशेष उद्यमके साथ इस मानमन्दिरमें ग्रहस्थान निरूपण कार्य चलता रहा। इसके बाद अर्थात् ३री शताब्दीमें किसी समय यह विलुप्त हो गया।

यहां यूरोपीय ज्योतिषशास्त्रके प्रतिष्ठाता हिपार्कासने (Hiparchus) पूर्ववर्त्ती दार्शनिकों द्वारा आलोचित ग्रहवेधादिकी आलोचना कर उनका याथार्थ्य निर्णय किया था। इनके बाद और भी कई ज्योतिर्विद्ने इन सब ग्रहोंका पर्यायिक तत्त्व उद्घाटन कर ज्योतिषशास्त्रालोचनाकी और भी उन्नति और प्रसारवृद्धि की। ई०सन्की दूसरी शताब्दीमें भौगोलिक टलेमीकी गवेषणाके फलसे अलेकजेण्ड्रियाका वेधालय उन्नतिकी चरमसीमा तक पहुंचा था।

यथार्थमें इसी समयसे ज्योतिषशास्त्रकी आलोचनाका पथ तय्यार हुआ। उसीके फलसे अरबी राजाओंके उत्साहसे पहले पहल बुगदाद नगरमें और दमस्कसमें वेधालय स्थापित हुए। ९वीं शताब्दीके प्रारम्भमें खलीफा अलमामूनने बहुत अर्थ व्यय कर इन दो अट्टालिकाओंका निर्माण किया। इसके बाद करीब १००० ई०में प्रसिद्ध ज्योतिषीने इबनयुनिशके ज्योतिर्विषयक ज्ञानचर्चाके लिये खलीफा हकीम कायरो नगरके समीप मैकट्टमके ऊपर एक वेधमन्दिर बनवाया। इस मन्दिरमें ही सूर्य, चंद्र और ग्रहोंकी गति और दूरत्व परिमापक सूची (Hakimite table) सङ्कलित हुई थी। अरबोंको ज्योतिषविषयमें आगे बढ़ते देख मुगलवंशीय खां लोगोंने उनके पथका अनुसरण किया और उनके यत्नसे फारसके उत्तरपश्चिम मेरागा नगरमें १२६० ई०में एक सर्वोत्कृष्ट वेधशाला निर्मित हुई। हलाकू खां इस मंदिरके प्रतिष्ठाता और प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् नाशिर उल दीन् तुषा इसके परिदर्शक हैं। तुषीके यत्नसे यहां "इलोह खानिक" सूची (Ilobkhanic tables) तय्यार हुआ। इसके बाद १५वीं शताब्दीमें राजैश्वर्यपरित्यागी मुगल-राजकुमार मीरजा उलघवेगने समरकन्दमें एक वेधमन्दिरकी प्रतिष्ठा कर ग्रहसम्बन्धीय एक नई सूची (Planetary tables) और नक्षत्रसूची तय्यार की। अम्बरराज जयसिंहके संगृहीत "जीज महम्मद" नामकी ग्रहगणनाकी सूची इस विषयमें बड़ी उपयोगी है।

१५वीं शताब्दीमें यूरोपमें विज्ञान चर्चाका सूत्रपात हुआ। उस समय नक्षत्रोंकी गतिनिर्णयके लिये ज्योतिषोक्त ग्रहवेधके निरूपणकी आवश्यकता जान पड़ी। यद्यपि उसके दो सौ वर्ष पहलेसे कोई कोई आदमी स्वतः प्रवृत्त हो ग्रहगतिका प्रदर्शन करते थे और विश्वविद्यालयोंमें अध्यापक भी उस विषयमें वक्तृता देते थे, फिर भी, उस समय स्वतंत्र वेधशाला निर्माणके साथ ज्योतिष्कमण्डलोंका पर्यवेक्षण कार्य्य निर्वाह होता था। सन् १४७२ ई०का नूरेम्बर्ग नगरमें यूरोपमें सर्वप्रथम वेधशाला निर्मित हुई। वार्नी हार्ड वेलथर एक धनी व्यक्ति इसके प्रतिष्ठाता हैं। सन् १५०४ ई०में प्रतिष्ठाताके मृत्युकाल तक इस वेधमन्दिरमें विशेष उद्यमके साथ परिदर्शन कार्य्य चला था। विख्यात ज्योतिषी रेजिओमण्टानाके सहयोगसे वेलथरने ग्रहगतिगणनाके विषयमें कई अभिनव तत्त्वोंका आविष्कार किया। यथार्थमें इस वेधालयकी प्रतिष्ठा ही यूरोपमें प्राकृत ज्योतिष (Practical Astronomy) आलोचनाके पुनरभ्युदयका समय है।

इसके बाद १६वीं शताब्दीमें यूरोपमें दो प्रसिद्ध वेधमन्दिरोंकी प्रतिष्ठा हुई। उनमें एक टाइको ब्राहि (Tycho Brahe) द्वारा डेनमार्कवालोंके अधिकृत हूएन द्वीपमें (१५७६-१५९७ ई० तक विशेष उद्यमसे परिदर्शन हो रहा था) और दूसरा कासेल नगरमें ४थे लैण्डग्रेम विलियम द्वारा (१५६१-१५६७ ई०) प्रतिष्ठित हुआ था। इन दो वेधमन्दिरोंके वेधोपलक्षमें यूरोपमें

संख्या	नाम	किसके निर्मित	कहां रखे गये	यंत्र व्यवहार	किस राजाके राज्यमें	किस राजाके समयमें पुनः संस्कृत या संवर्द्धित
१४	षष्ठ्यंश (Graduated wall)	पत्थर या धातु	ज्योतिर्विदोंके घरोंमें	कालनिरूपण	सवाई माधवसिंह (१म)	
१५	ध्रुवभ्रमयंत्र और तुरीय यंत्र (Quadrant)	पीतल	आटूघर	" और क्रान्तिवृत्त का स्थान	पण्डितगण	
१६	गोलयंत्र (Armillary sphere)	"	"	"	सवाई माधवसिंह (१म)	
१७	अन्यान्य बहुतेरे यन्त्र जैसे…जयसिंहका चबूतरा, धन्वायंत्र या धूपघड़ी, भासयंत्र (अंतिम दो इस समय उजाड़ दिये गये हैं)					

सूचीमें जो कई यंत्रोंके नाम उल्लेख किये गये, उनके सिवा और भी कई पीतल या काठके बने यंत्र आटूघरमें और ज्योतिर्विदोंके घरोंमें रखे हुए हैं। सूचीमें निर्दिष्ट उद्देश्यके सिवा और भी अनेक विषयोंकी गणना एक यंत्र द्वारा साधित होती है। उक्त यंत्र आदिके सिवा जयसिंहने 'जीज महम्मद' सूची संग्रह की है। यह ग्रहनिर्णयके लिये विशेष फलप्रद है।

अन्यान्य विवरण स्तम्भ शब्दमें देखो।

जयपुरके राजमहलके त्रिपोलिया दरवाजा नामक तोरण द्वार पार कर कई पैर उत्तर ओर जाने पर प्राचीर वेष्टित एक चबूतरा दिखाई देता है। इसकी लम्बाई चार सौ हाथ और चौड़ाई दो सौ साठ हाथ होगी। इसी जगह ज्योतिषिक यंत्र बने हैं। इसके उत्तर ओर राजभवन और कचहरी इमारत है, पश्चिम ओर कई देवालय, पूर्व ओर अश्वशाला और दक्षिण ओर कई देवमंदिर हैं। इस अश्वशाला और मंदिरके बाद ही बाजार है। कोलाहलपूर्ण नगरके केंद्रस्थानमें ही यह अवस्थित है; किंतु चबूतरेके मध्यमें उपस्थित होने पर किसी तरहका शोरगुल या कोलाहल सुनाई नहीं देता, बिलकुल शांत और नीरव निस्तब्ध। राजिके महाराज जयसिंह राजकार्यकी झंझटोंसे छुटकारा पा कर इस विद्युत्-सेव्य स्थानमें समागत हो कर गंभीर गवेषणामें समय बिताते थे।

महाराज सवाई जयसिंहने जयपुर नगरके निर्माण और ज्योतिषिक यंत्रालय प्रतिष्ठाके विषयमें शिल्पनैपुण्य (Engineering skill) का यथेष्ट परिचय दिया है। ज्योतिषके सम्बन्धमें जगन्नाथ आदि पण्डितोंकी गणना आदि और ग्रंथ प्रणयन आदि कार्योंमें व्याप्त रहने पर भी यंत्रालयका तत्त्वावधानभार वे स्वयं निर्वाह करते थे। कहा गया है, कि उनके बंगाली दीवान विद्याधर इस विषयमें विशेष उद्योगी थे। जयपुरके ज्योतिषिक यंत्रालय भारतवर्षकी अद्वितीय कीर्ति है।

महाराज जयसिंहने जयपुरके सिवा दिल्ली, मथुरा, बनारस और उज्जैन नगरमें भी अल्पाधिक परिमाणमें ज्योतिषिक यन्त्रादि निर्माण किये थे। काशीके मानमंदिरके यन्त्र आदि जयसिंह द्वारा स्थापित हैं। बहुतेरे समझते हैं, कि काशीके मानमंदिरके यंत्र महाराज मानसिंहके द्वारा स्थापित हैं, किंतु यह बात ठीक नहीं। मानमन्दिरका प्रासाद अवश्य ही महाराज मानसिंहने तीर्थयात्रियों तथा विद्यार्थियोंकी सुविधाके लिये तय्यार कराया था। महाराज जयसिंहने उसमें ही यन्त्र स्थापन किया था। जयसिंहके पहले जयपुरसे ये दूर देशादि शास्त्र अध्ययन करनेवाले यहां आ कर इसी प्रासादमें ठहरते थे।

पाश्चात्य वेधालय।

ज्योतिष्कमण्डलोंकी गतिविधिकी पर्यालोचनाके विषयमें पाश्चात्य जगत्‌वासी प्राचीनकालसे विशेषरूपसे अग्रसर हो नहीं सके हैं। इतिहासकी आलोचना करने पर मालूम होता है, कि ईसासे ३०० वर्ष पूर्व यूरोपमें कहीं भी वेधालय प्रतिष्ठित नहीं थे। फिर भी

दो एक दार्शनिक सर्वसाधारणको जगत्‌की गठनके सब धर्ममें ज्योतिष्क तत्त्व वितरणके मानससे क्रमो क्रमो ग्रहनक्षत्रादिकी गति और स्थिति लक्ष्य कर यह विषय लिपिबद्ध कर रखते थे। वे गतिनिर्णयके लिये अति सामान्य भावसे यंत्रादिका व्यवहार करते थे। इसके बाद वे इन सब खण्डखण्ड विषयोंको एकत्र कर जगत्‌की गठन और ग्रहस्थान-निर्णयविषयमें साधारणकी प्रयास वृद्धि हुई और धीरे धीरे ज्योतिषशास्त्रको ज्ञानोन्नति होती रही। इसी उद्देश्यकी सिद्धिके लिये अलेकजेन्द्रियामें सबसे पहले विद्यालय प्रतिष्ठित हुआ। चार सदी तक तो विशेष उद्यमके साथ इस मानमन्दिरमें ग्रहस्थान निरूपण कार्य चलता रहा। इसके बाद अर्थात् ५रो शताब्दीमें किसी समय यह विलुप्त हो गया।

यहां यूरोपीय ज्योतिषशास्त्रके प्रतिष्ठाता हिपार्कासने (Hiparchus) पूर्ववर्त्ती दार्शनिकों द्वारा आलोचित ग्रह-वेधादिकी आलोचना कर उनका याथार्थ्य निर्णय किया था। इनके बाद और भी कई ज्योतिर्विदोंने इन सब ग्रहोंका पर्यायिक तत्त्व उद्घाटन कर ज्योतिषशास्त्रा लोचनाकी और भी उन्नति और प्रसारवृद्धि की। ई०सन्‌की दूसरी शताब्दीमें भौगोलिक टलेमोकी गवेषणाके फलसे अलेकजेन्द्रियाका वेधालय उन्नतिकी चरमसीमा तक पहुंचा था।

यथार्थमें इसी समयसे ज्योतिषशास्त्रकी आलोचनाका पथ तय्यार हुआ। उसीके फलसे अरबी राजाओंके उत्साहसे पहले पहल बुगदाद नगरमें और दमस्कसमें वेधालय स्थापित हुए। ९वीं शताब्दीके प्रारम्भमें खलीफा अलमामूनने बहुत अर्थ व्यय कर इन दो अट्टालिकाओंका निर्माण किया। इसके बाद करीब १००० ई०में प्रसिद्ध ज्योतिषीने इवन्‌युनिशके ज्योतिर्विषयक ज्ञानचर्चाके लिये खलीफा हकीम कायरो नगरके समीप मोकट्टमके ऊपर एक वेधमन्दिर बनवाया। इस मन्दिरमें ही सूर्य, चंद्र और ग्रहोंकी गति और दूरत्व परिमापक सूची (Hakimite table) सङ्कलित हुई थी।

अरबोंको ज्योतिर्विषयमें आगे बढ़ते देख मुगल-वंशीय खां लोगोंने उनके पदका अनुसरण किया और उनके यत्नसे फारसके उत्तरपश्चिम मेरागा नगरमें १२६० ई०में एक सर्वोत्कृष्ट वेधशाला निर्मित हुई। हलाकू खां इस मंदिरके प्रतिष्ठाता और प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् नाशिर उल दीन् तुषी इसके परिदर्शक हैं। तुषीके यत्नसे यहां "इलोह खानिक" सूची (Ilobkhanic tables) तय्यार हुआ। इसके बाद १५वीं शताब्दीमें राजैश्वर्यपरित्यागी मुगल-राजकुमार मीरजा उलघवेगने समरकन्दमें एक वेधमन्दिरकी प्रतिष्ठा कर ग्रहसम्बन्धीय एक नई सूची (Planetary tables) और नक्षत्रसूची तय्यार की। अम्बरराज जयसिंहके संगृहीत "जीज महम्मद" नामकी ग्रहगणनाकी सूची इस विषयमें बड़ी उपयोगी है।

१५वीं शताब्दीमें यूरोपमें विज्ञान चर्चाका सूत्रपात हुआ। उस समय नक्षत्रोंकी गतिनिर्णयके लिये ज्योतिषोक्त ग्रहवेधके निरूपणकी आवश्यकता जान पड़ी। यद्यपि उसके दो सौ वर्ष पहलेसे कोई कोई आदमी स्वतः प्रवृत्त हो ग्रहगतिका प्रदर्शन करते थे और विश्वविद्यालयोंमें अध्यापक भी उस विषयमें वक्तृता देते थे, फिर भी, उस समय स्वतंत्र वेधशाला निर्माणके साथ ज्योतिष्कमण्डलोंका पर्यवेक्षण कार्य्य निर्वाह होता था। सन् १४७२ ई०का नुरेम्वार्ग नगरमें यूरोपमें सर्वप्रथम वेधशाला निर्मित हुई। यानी हार्ड वेलथर एक धनी व्यक्ति इसके प्रतिष्ठाता हैं। सन् १५०४ ई०में प्रतिष्ठाताके मृत्युकाल तक इस वेधमन्दिरमें विशेष उद्यमके साथ परिदर्शन कार्य्य चला था। विख्यात ज्योतिषी रेजिओमण्टानाके सहयोगसे वेलथरने ग्रहगतिगणनाके विषयमें कई अभिनव तत्त्वोंका आविष्कार किया। यथार्थमें इस वेधालयकी प्रतिष्ठा ही यूरोपमें प्राकृत ज्योतिष (Practical Astronomy) आलोचनाके पुनरभ्युदयका समय है।

इसके बाद १६वीं शताब्दीमें यूरोपमें दो प्रसिद्ध वेधमन्दिरोंकी प्रतिष्ठा हुई। उनमें एक टाइको ब्राहि (Tycho Brahe) द्वारा डेनमार्कवालोंके अधिकृत ह्युयन द्वीपमें (१५७६-१५९७ ई० तक विशेष उद्यमसे परिदर्शन हो रहा था) और दूसरा कासेल नगरमें ४थे लैण्डग्रेभ विलियम द्वारा (१५६१-१५९७ ई०) प्रतिष्ठित हुआ था। इन दो वेधमन्दिरोंके वेधोपलक्षमें यूरोपमें

भी इसकी व्यवस्था हुई है। इस समय कई नये यन्त्र आविष्कृत हुए। इसके लिये स्वयं मारकी-आदि और टैलूडस्नके ज्योतिर्विद् बुर्गी (Burgi) ही विशेष धन्यवादके पात्र हैं। मारकोवादि वेधशालाका नाम युरानिवर्ग है। यह स्थान वर्त्तमान कई वेधालयोंसे भी बढ़कर था। मारकोवादिकी मृत्युके बाद ज्योतिषशास्त्र विज्ञानकी दृढ़ भित्ति पर प्रतिष्ठित हुआ था और उससे ही यह विश्वविद्यालयके आलोच्य विषय रूपमें गृहीत हुआ। लिडन और कोपेनहेगेनके विश्वविद्यालयके अध्यक्षने ज्योतिर्विद्याका सिद्ध साधनके लिये सबसे पहले विद्यालयोंके साथ एक एक वेधमंदिर संगठन किया था।

इसके बाद धीरे धीरे नाना स्थानोंमें वेधमन्दिर प्रतिष्ठित होने लगे। १७वीं शताब्दीके मध्यभागमें डानजिक् नगरमें जोहानस् हेभेलियस नामक एक व्यक्तिने एक वेधशाला स्थापित की। इसके बाद ही राजानुग्रहसे पेरिस नगरमें और ग्रीनविच (Greenwich) शहरमें जगत्की विख्यात वेधशाला प्रतिष्ठित हुई। इसके उपरान्त प्राच्य और प्रतीच्य जगत्में बहुतेरे वेधालय प्रतिष्ठित हुए थे।

पाश्चात्य और प्राच्यजगत्में सभी प्रधान शहरोंमें अभी युरोपीय प्रणालीकी वेधशालायें दिखाई देने लगीं। किस स्थानमें किस समय वेधशाला प्रतिष्ठित हुई है, नीचे उसकी अकारादि क्रमसे सूची दी जाती है—

किस नगरमें वेधशाला है	किस राज्यमें	कब प्रतिष्ठित हुई
आबरनोहें	इङ्गलैण्ड	१७३१
अलेगेनि	अमेरिकाके मेरीलैण्ड	
अन आरवर	„ मिशिगन	१८५४
अडिलेड	दक्षिण-अष्ट्रेलिया	१८६१
एथेन्स	यूनान	१८४५
अपसला	स्कन्डनाभ	१७३०
आबो	रूस-फिनलैण्ड	१८१९
आमहर्ष्ट	अमेरिका मासचुसेट	१८५०
आल्जिअर्स	अफ्रिका-अलजिरिया	१८८२
आलबानी	अमेरिका-न्यूयार्क	१८५१
आलटोना	जर्मनी	१८२३
आलेघेनी	अमेरिका-पेन्सिलवानिया	१८६०
इलिङ्ग	इङ्गलैण्ड लण्डनके पश्चिमांशमें	१८४१
एडिनबरा	स्काटलैण्ड	१८११
एटना	इटली	१८८१
उत्तमाशा अन्तरीप	अफ्रिकाके केपटाउनके निकट	१८२०
उतिना	इटली	१८३८
ओडेसा	रूस	१८७१
ओरपेलपार्क	इल्लिनयिस	१८७१
कर्क	इङ्गलैण्ड	१८८८
कर्डोभा	दक्षिण-अमेरिका	१८७१
कलोकजा	अष्ट्रोहङ्गरी	१८७८
कजान	रूस	१८१४
काम्ब्रिज	इङ्गलैण्ड	१८२०
केडिज	स्पेन	१७१०
कियेफ	रूस	१८४५
किल	जर्मनी	१८७४
क्यु	रिचमण्ड	१८४२
केम्ब्रिज	अमेरिका संयुक्तराज्य	१८३९
„	इङ्गलैण्ड	१८२०
कोइम्ब्रा	पुर्त्तगाल	१७९२
कोनिग्सबर्ग	जर्मनी	१८१३
कोपेनहेगेन	डेनमार्क	१६४१
क्लिण्टन	न्यूयार्क	१८५२
क्रेमसमुन्स्टर	ऊपर-अष्ट्रिया	१७४८
खारकफ	रूस	
गटिंजन	जर्मनी	१८११
गजानेश	इटली	१८७०
ग्रेशाइड	इङ्गलैण्ड	१८४०
गोथा	जर्मनी	१७९१
ग्रीनविच	इङ्गलैण्ड	१६७५
ग्लासगो	इङ्गलैण्ड	१८४०
„	अमेरिका-युक्तराज्य	१८६३
चापुलतेपेक	मेक्सिको	१८७८
चार्लसटाउन	अमेरिका युक्तराज्य	१८७४

किस नगरमें वेधशाला है	किस राज्यमें	कब प्रतिष्ठित हुई
जूरिच	स्वीजरलैण्ड	१७५६
जेनोवा	,,	१७७३
ट्यूरिन (तुरीन)	इटली	१७६०
टिफलिस्	रूस	१८६३
डबलिन	आयर्लैण्ड	१७८५
डरहम्	इङ्गलैण्ड	१८४१
डानएक्	स्काटलैण्ड	१८७२
डोरपाट	रूस	१८०८
ड्रे सडेन	जर्मनी	१८८०
तासकन्द	तुर्किस्थान	१८७४
तौलोस	फ्रान्स	१८४०
त्रिवन्द्रम	भारत-त्रिवांकुर राज्य	१८३६
दुसेलडफ	जर्मनी	१८४०
डरबन	अफ्रिका	१८८२
नार्थफिल्ड	अमेरिका-युक्तराज्य	१८७८
नाइस	फ्रान्स	१८८०
न्यूयार्क	अमेरिका-युक्तराज्य	
न्यूहेवेन	,,	१८३०
न्युसाटेल	स्वीजरलैण्ड	१८५८
निकोलेफ	रूस	१८२४
नेपल्स	इटली	१८१२
पादुया	,,	१७६१
पारामत्ता	अष्ट्रेलिया	१८२१
पेरिस	फ्रान्स	१६६७
पालकोवा	रूस	१८३६
पालेर्मो	इटली	१७९०
पेकिङ्ग	चीन	१२७६
पोटस्डम	जर्मनी	१८७४
पोला	अष्ट्रिया	१८७१
प्रिन्सटन	अमेरिका-युक्तराज्य	१८७७
प्रेग	अष्ट्रोहङ्गरी	१८५१
प्लनस्क	पोलैण्ड	१८७५
फ्लोरेन्स	इटली	१७७४
बन (Bonn)	जर्मनी	१८४५
बर्लिन	,,	१७०५
बारमारसाइड	इङ्गलैण्ड	१८७१
बोरकासल	आयर्लैण्ड	१८३६
बुडापेस्त	अष्ट्रोहङ्गरी	१७७७
बोथकम्प	जर्मनी	१८७०
बोलोग्ना	इटली	१७२४
ब्रुसेल्स	बेलजियम	१८२६
बेमेन	जर्मनी	१८३५
ब्रे सलउ	,,	
मास्को	रूस	१८२५
माउण्ट हेमिल्टन	अमेरिका-युक्तराज्य	१८७६
मादिसन	,,	१८७८
माद्रिद	स्पेन	
मान्द्राज	भारतवर्ष	१८३१
मान्हिम	जर्मनी	१७७२
मारकोकासल	आयर्लैण्ड	१८३४
म्यूनिक	जर्मनी	१८०६
मिलान	इटली	१७६३
म्युदन	फ्रान्स	१८७५
मेलबोरन	अष्ट्रेलिया	१८५३
मेसिना	इटली	१८१६
मोनपुरिस्	फ्रान्स	१८७५
रागवी	इङ्गलैण्ड	१८७२
रिउडीजानरो	दक्षिण-अमेरिका ब्रेजिल	१८४५
रोचेष्टर	अमेरिका युक्तप्रदेश	१८७६
रोम	इटली	१८४८
लखनऊ	भारतवर्ष	१८४१
लान्द	नारवे	१७६०
लिओन्स्	फ्रान्स	१८७७
लिपजिक्	जर्मनी	१७८७
लिवरपुल	इङ्गलैण्ड	१८३८
लिमा	दक्षिण-अमेरिका पेरू	१८६६
लिलिएनथल	जर्मनी	१७७६
लेडेन	हालेण्ड	१६३२
वारसा	रूसिया	१८२०
वासिङ्गटन	अमेरिका-संयुक्तराज्य	१८३८

किस नगरमें वेधालय है	किस राज्यमें	कब प्रतिष्ठित हुई
विन्डसर	न्यूसाउथवेल्स	१८६१
विलियामसटाउन	अमेरिका-मासचुसेट्स	१८३१
विलियमसटाउन	अष्ट्रेलिया	१८५४
वियना	अष्ट्रिया	१७५६
विल्ना	रूस	१७५३
वाश्डौनल	मोरेविया	१७००
वांगोहार्ट	इङ्गलैण्ड	१८५७
ष्ट्रासवर्ग	जर्मनी	१८८१
सान्तियागो	दक्षिण-अमेरिका चिली	१८४९
सिमली	मध्य एसिया	१८५५
सेन्टहेलना	अफ्रिका	१८२१
सेन्टपिटर्सवर्ग	रूस	१७२५
स्योरेल	जर्मनी	१८७०
स्थार (दर्शनमन्दिर)	इङ्गलैण्ड कूम्बरलैण्डके समीप	१७२६
हांगकांग	चीन	१८८३
हनोवर	अमेरिका-युक्तराज्य	१८५२
हमवर्ग	जर्मनी	१८२५
हेरिफो	इटली	१८८१
हेल्सिंगफोर्स	फिनलैण्ड	१८३२
हैविङ्गन्	अमेरिका युक्तराज्य	१८५०

यूरोपके वेधालयोंमें नक्षत्रादि जो सब यन्त्र व्यवहृत होते हैं, उनमें तारकादिके आविष्कार Mural-quadrant और Sextant नामके दो यन्त्र प्रधान हैं। पर्यवेक्षणकी गणना और तारोंकी सुविधाके लिये सेक्सटैण्टके साथ टेलिस्कोप और माइक्रोमिटर नामके दो यन्त्रोंको संयोग कर दिया जाता है। इसके बाद जब पाश्चात्य जगत्‌में नक्षत्रपर्यवेक्षणका ज्ञान बढ़ा, तब सौरजगत्‌के ग्रहनक्षत्रादिकी गतिकी सूक्ष्मता जाननेके लिये दूरवीक्षण यन्त्रादिकी उन्नति और परिशुद्धिकी आवश्यकता हुई और ट्रान्जिट नामक यन्त्र सेक्सटैण्टसे अधिक उपयोगी समझा गया। इस यन्त्रके व्यवहारमें विषुवांशका (Right Ascension) निर्णय सहज ही मालूम होता है। इसी समयमें घड़ी (Clocks) और क्रोनोमिटर (Chronometer) यन्त्रका संस्कार हुआ। इसके बाद १८वीं शताब्दीमें सूक्ष्मगणनाकी छानबिनके लिये जब उनके साथ परिवर्तनशक्तिका अनुशीलन आवश्यक हो आया, तब म्युरलक्वाड्रान्टके साथ ट्रान्जिट यन्त्र मिला कर एक नया यन्त्र गठित हुआ। यह "ट्रान्जिट या मेरिडियन सर्कल" नामसे पुकारा जाता है।

इसके उपरान्त स्थिर तारकाओं (Fixed stars) की प्रकृत गति अवधारित हुई, तब दूरवीक्षण यन्त्र और याम्योत्तर स्थितिसूचक यन्त्रोंकी (Meridian Instruments) उन्नतिकी चेष्टा की गई और उससे ही इन सब यन्त्रोंके नाना तरहसे संस्कार करनेकी आवश्यकता हुई।

यूरोपीय वेधालयोंके परिदर्शन कार्यमें नियुक्त एक एक सहकारी एक एक यन्त्रके निकट रह कर अपने अपने कर्त्तव्य पालन करते रहते हैं। वे सभी एक ज्योतिषराज (Astronomer Royal)के अधीन हैं। हमारे देशमें महाराज जयसिंह द्वारा स्थापित वेधालयोंके अध्यक्षरूपसे भी एक एक पण्डित ज्योतिषराज नियुक्त थे। अमेरिकाके युक्त राज्यस्थित वाशिङ्गटन और पुल्कोवा वेधालयमें एक एक कार्यको परिदर्शन-व्यवस्था एक एक ज्योतिषीके ऊपर सौंपी गई है और उनके इच्छानुसार ही कार्य परिचालित होता है। कई छोटे छोटे वेधशालाओंमें भी इसी तरह कौशलमय व्यवस्था हो दिखाई देती है।

वेधित (सं० त्रि०) विध-णिच्-क्त। छिद्रित, जिसमें छेद किया गया हो, जो बेधा गया हो।

वेधित्व (सं० क्ली०) वेधकका भाव या धर्म।

वेधिन् (सं० त्रि०) विध्यतीति विध णिनि। १ वेधकर्त्ता, वेध करनेवाला। २ वेधनशील। (पु०) ३ अम्लवेतस। (राजनि०)

वेधिनी (सं० स्त्री०) वेधिन् ङीप्। १ जलौका, जौंक। २ मेथिका, मेथी। (त्रि०) ३ वेधकर्त्री, वेध करनेवाली।

वेध्य (सं० क्ली०) विध-ण्यत्। १ भेद्य, वेध करनेके योग्य। (त्रि०) २ वेधनीय, जो वेध करनेके योग्य हो।

वेन (सं० पु०) अजतीति अज गतौ (-घापृवस्यज्यति-भ्यो नः। उण् ३।६) इति न, अजतेर्वीभावः। १ प्रजापति, पृथुराजके पिता। हरिवंशमें इसका विषय यों लिखा है—प्राचीनकालमें अत्रिवंशमें अत्रितुल्य गुणशाली अङ्ग नामक एक प्रजापति थे। धर्मराजकी दुहिता सुनीथाके गर्भसे इन महात्माको वेन नामक एक दुरात्मा पुत्र उत्पन्न हुआ। कालक्रमसे वेन इस तरह कामासक्त और धर्मविद्वेषी हो उठा, कि उसके शासनकालमें वैदिक कार्यकलाप बिलकुल बन्द हो गया। यह धर्मविगर्हित लोकनिन्दित असदनुष्ठानको ही गौरवका आस्पद और पुरुषकार समझने लगा। इससे ब्राह्मणोंको स्वाध्याय और वषट्कार अर्थात् वेदाध्ययन तथा यागानुष्ठानसे वञ्चित रहना पड़ा। इससे पहले जो देवता सोमरसके पिपासु हो यज्ञभूमिमें आहूत होते थे, इसके राजत्वकालमें उनका नामोनिशान न रहा। "विनाशकाले विपरीतबुद्धिः।" विनाशकाल उपस्थित होने पर दुरात्माओंकी दुर्मति स्वतः ही ऐसी हो जाती है। वेनके भाग्यमें भी ऐसा ही हुआ। वेन अपने मनमें समझने लगा, कि इस त्रिभुवनमें मेरे सिवा और कोई पूज्य नहीं है। अतः देवोद्देशसे यागयज्ञ करना निष्फल आडम्बरमात्र है। फिर भी, जिनको ऐसा करनेकी प्रवृत्ति हो, उनको चाहिये, कि वे मेरे उद्देशसे ही यागयज्ञ करें, क्योंकि मैं इसका अद्वितीय पात्र और लक्ष्य हूं, मैं यष्टा और यज्ञ हूं।

एक बार मरीचि आदि महर्षि इसकी दुर्वृत्ततासे नितान्त असहिष्णु हो उस अतिक्रान्तमर्याद अनुचित कार्यप्रवर्त्तयिता वेनसे कहने लगे, "वेन! हम लोगोंने इच्छा की है, कि बहुवत्सरसाध्य यज्ञ करेंगे, तुम निरस्त हो। अब तुम अधर्माचरण करना छोड़ दो, यह सनातन धर्म भी नहीं है। तुम अत्रिवंशमें जन्म ग्रहण कर प्रजापति हुए हो, इसमें जरा भी संशय नहीं। अतएव यथाधर्म प्रजापालन करना स्वीकार भी तुमने किया है।" दुर्बुद्धि वेनने इन महर्षियोंकी बात पर हंस कर उत्तर दिया, कि ऋषिगण! मेरे सिवा धर्मके सृष्टिकर्त्ता और कौन है, मैं किससे धर्मकथा सुनने जाऊं। इस पृथ्वीमें ज्ञान, वीर्य, तपोबल तथा सत्यमें मेरे समान और कौन है? तुम लोग नितान्त मूर्ख हो और तेजहीन हो, इसीलिये मुझको निखिल प्राणीके, विशेषतः सर्वधर्मके स्रष्टा नहीं समझ रहे हो। इच्छा करने पर मैं पृथ्वीको दग्ध या जल द्वारा डुबा सकता हूं, स्वर्ग तथा मर्त्यको सहज ही अवरुद्ध कर सकता हूं।

महर्षिगण मोहान्ध और नितान्त गर्वित वेनको इस तरह विविध मधुर अनुनय वाक्योंसे भी जब शान्त नहीं कर सके, तब उनका क्रोधानल प्रज्वलित हो उठा। वे क्रोधित मुनिगण समवेत हो कर इस महाबल गर्वित वेनको निग्रह कर उसके बायें ऊरुको मन्थन करने लगे। उस मथ्यमान ऊरुसे एक कृष्णवर्ण छोटे आकारका पुरुष उत्पन्न हुआ। इस तरह काला पुरुष जन्म ग्रहण कर डरता हुआ हाथ जोड़े ऋषियोंके सामने खड़ा हुआ। ऋषिश्रेष्ठ अत्रिने उसको भयभीत देख 'निषीद' बैठो, यह कह कर उसका भय दूर किया। यह पुरुष ही निषादवंशका आदि पुरुष है। इससे धीवर-सम्प्रदायकी सृष्टि हुई है। सिवा इसके विन्ध्यगिरिमें जो अधर्मरति तुम्बर और तुषार नाम्नी असभ्य जातियां हैं, वे भी इस वेनके वंशसे उत्पन्न हैं।

इसके बाद महात्मा ऋषियोंने आतमन्यु हो वेनके दक्षिण हाथको मन्थन किया। इस मथ्यमान बाहुसे हुताशनकी तरह तेजःपुञ्ज शरीर ले कर पृथु पैदा हुए। इन पृथुकी उत्पत्तिसे जगतीतलके लोग सन्तुष्ट हुए। पीछे इन्हीं पृथु द्वारा पुन्नाम नरकसे परित्राण पा कर वेन त्रिदिवधाममें गया। (हरिवंश ५ अ०) २ देवविशेष। ३ यज्ञ। (त्रि०) ४ मेधावी। ५ कामयमान। (ऋक् ८।८६।४)

वेनकूलेन—अंगरेजोंका एक प्रधान उपनिवेश। १८२५ ई०में मलक्का-प्रणालीके किनारे कुछ स्थानोंको जीत कर अंगरेजोंने यह स्थान ओलन्दाजोंको दे दिया था।

वेनवंश—राजपूत जातिकी एक शाखा। मिर्जापुर और रीवा अञ्चलमें इन लोगोंका वास है। दो पीढ़ी पहले ये लोग खारवाड़ नामसे परिचित थे, किन्तु अवस्था परिवर्त्तनके साथ साथ उनकी जातिगत और सामाजिक बड़ी उन्नति हुई। खारवाड़गण द्राविड़ीय-वंशसम्भूत थे। उस वंशका कोई एक व्यक्ति भाग्यवशतः उक्त प्रदेशका सरदार बन बैठा। उसके बादसे ही इस वंशकी क्रमिक

उत्पत्ति हुई। वर्त्तमान समयमें यह जाति कृषिजीवी है। एक सम्प्रदाय बाहेलवंशकी कन्यासे इनका विवाह हुआ है।

वेनाग्रा—मुसलमान फकीर सम्प्रदायविशेष। ख्वाजा हसन बसरी इस सम्प्रदायके प्रवर्त्तक हैं। जिन्दा शाह इन लोगोंको एकमात्र उपास्य मानते हैं। अब ये जिन्दाशाह कहलाते हैं, यह फुरकानके साथ अलग्नग्रोथित गावधीका प्रयोग करते हैं। प्रत्येक वेनाग्रा कमरमें लोहेके जंजीर पहनता है। यह समस्या मील देना उसके लिये आश्चर्यका विषय है।

वेनूप—इलाहाबाद विभागके फतेहपुर जिलान्तर्गत गाजीपुर तहसीलका एक प्राचीन ग्राम। यहां एक प्राचीन खंडहर दिखाई देता है। अनुमान होता है प्राचीन राजवंशका परिचित हुआ करते हैं।

वेणूर—मद्रास प्रदेशके दक्षिणकनाड़ा जिलान्तर्गत मङ्गलूर तालुकका एक नगर। यह मङ्गलूरसे २४ मील पूर्व-उत्तर तथा मूडबिद्रि (मैनुल) से १० मील पूर्वमें अवस्थित है। यहां ३५ फुट ऊँची एक जैनमूर्ति चबूतरे पर खड़ी है। यह मूर्ति कारकलकी मूर्तिसे छोटी होने पर भी इसमें वही कारीगरी दिखलाई गई है तथा यह उससे प्राचीन और श्रेष्ठ भी है। पास ही में एक मन्दिर, मन्दिरद्वार और स्तम्भोंमें एक उत्तम-उत्तम नक्काशी दिखाते परिपूर्ण है। इस मन्दिरको बसती और भी एक जैन मन्दिर है। उसके चारों ओर स्तम्भ खड़े हैं। इसके मूलदेशमें कुछ आसन और एक शोभन है। यहांके वर्त्तमान बस्ती नामक जैनमन्दिरमें १५३६ शकका खोदा एक शिलालिपि मौजूद है, गोमटेश्वर नामकी उस बड़ी प्रतिमूर्त्तिके स्थापनमें एक शिलालेख दृष्टिगोचर होता है। इसके सिवा वेणूरके गोमटेश्वर, अलङ्कार और मार्तपुर नगरोंमें ११०४ से ११३४ शकके मध्य अंकित कुछ शिलालिपियां पाई जाती हैं। ये सभी शिलालिपियां मन्दिरके रक्षणावेक्षणके लिये दान स्वरूप ही दी गई हैं।

वेनोंविलाई (सं० स्त्री०) वनबिल्ली।

वेन्तुपुर—युक्त-प्रान्तके कमायूं राज्यान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह कत्यूरी वंशवालोंकी प्राचीन राजधानी तलवाड़का है। आज भी यहां उस प्राचीन कीर्त्तिकी परिचय अनेक प्राचीन मन्दिर अट्टालिकादि देखनेमें आती हैं। यह नगर गोमती नदीके किनारे बागेश्वरसे १६ मील दक्षिणपूर्व इलाहाबाद जानेके रास्ते पर अक्षा० ३०° ५४' उ० तथा देशा० ७९° ६' पूर्वके मध्य अवस्थित है। कायस्थोंके इतिहाससे जाना जाता है, कि राजा वसन्तदेवने (८०६ ई०में) अपने नाम पर वसन्तपुर नगरको बसाया। यही पीछे वन्तिपुर कहलाने लगा है। यहां पिण्डदेवी और पैंचमहाली नामकी दो बड़ी अट्टालिकाओंका खंडहर दिखाई देता है। शायद उस समय ये देवमन्दिर अथवा प्राचीन कोई अट्टालिका होगी। उसके बिलकुल नष्ट हो जाने पर भी उसमें काश्मीरके प्राचीन स्थापत्य-शिल्पका अद्भुत निदर्शन देखनेमें आता है।

वेनोवा—उत्तर भारतका प्राचीन देशविभाग। यह वैनावत नामसे भी मशहूर है। जौनपुरका पश्चिमोत्तर, आजमगढ़, वाराणसी और गाजीपुर प्रदेशका कुछ अंश ले कर यह विभाग संगठित हुआ है। कोई कोई कहते हैं, कि आजमगढ़से जौनपुर तथा गोरखपुर तकका स्थान इसी नामसे परिचित था। इसमें अभी ५२ परगने लगते हैं। १२ वैनोवा राजाओंसे यह स्थान परिचालित होता है। उन्होंने जौनपुरके महाराजगण, नागवंशी और चन्द्रवंशी आदि अर्थोपार्जन ही प्रसिद्ध हैं।

वेन्दूकार—ब्रह्मावासी नागा जातिकी एक शाखा। केंदुवार, नमदा और दक्षिण ब्रह्मादेश जाति नाना स्थानोंमें इस जातिका वास है। केंदुवार और नागापोंके उत्तर कोदाम पहाड़ी प्रदेशके निविड़ वनमें तथा वेन्दूकार कुछ मामक शैलश्रृङ्गके पास वेन्दूकार जाति रहती है। सदर लोग साधारणतः दर्शनार्थ गोदावरी नदीकी प्रतिमूर्ति दर्शन निमित्त शाक्यके बाल करते हैं यहां पर वह वेन्दूकारोंकी प्रतिमूर्तिके तरह विविध अनुष्ठान नहीं है। सदर लोग अपनी आदि भाषा बोलते हैं, किन्तु वेन्दूकार लोगोंको कोई विशेष भाषा नहीं है और न इनके उत्पत्ति किसी प्रकारकी प्राचीन किंवदन्ती ही है। इनकी भाषा हिन्दी भाषासे भिन्न है। ये अनन्तर ढोलमें अथवा करताल बजा कर प्रदेशके पहाड़ोंमें अवस्थान

जातियोंके साथ रहते हैं, उन्होंने निम्न श्रेणीके उड़िया लोगोंके आचार-व्यवहारका बहुत कुछ अनुकरण किया है। वे बाशुली या बाँसुरी देवी नामकी एक स्त्रीमूर्त्तिकी उपासना करते हैं तथा ठाकुरानी कह कर उनके प्रति बड़ी श्रद्धा भक्ति दिखलाते हैं। प्रति वर्ष वे उस देवीमूर्त्तिके सामने भेड़ा और मुर्गीकी बलि देते हैं। किन्तु प्रत्येक दश वर्षके अन्तर पर वेन्दकार-दल अपने वंशगत मङ्गलके लिये इस देवीके सामने भैंस, जंगली सूअर, बकरे और १२ मुर्गेको बलि चढ़ाते हैं।

विवाहके समय कन्याके आत्मीय उसे ले कर वरके घर आते हैं, वहीं पर नव दम्पतीको आम्रपल्लवसे समाच्छादित पूर्ण कलसके चारों ओर ढाई बार घुमाते और बादमें स्नान कराते हैं। स्नानके बाद वर और कन्याका हाथ एक साथ बांध दिया जाता है। यही विवाहबन्धनकी समाप्ति है।

ये लोग वृक्षकी डाल पत्ती और घास आदिसे अपना अपना घर तय्यार करते हैं, जंगली फल मूलादि ही उनका प्रधान खाद्य है। कभी कभी जंगली जानवरका शिकार कर उसका मांस खाते हैं। किसी किसी नदी या झीलके किनारे, वेन्दकार लोग थोड़ी मिट्टी कोड़ कर उसमें धान, जुनहरी आदि बो देते हैं। यही फसल उनकी उपजीविका है। इसके सिवा वनजात द्रव्योंका संग्रह कर वे निकटवर्त्ती ग्रामवासियोंके साथ विनिमय करते हैं।

वेन्दामूलङ्का—मन्द्राज प्रदेशके गोदावरी जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १६° ३५' उ० तथा देशा० ८२° २' पू० के मध्य गोदावरीकी कौशिकी शाखाके किनारे अवस्थित है।

वेन्दी—मन्द्राज प्रदेशके गञ्जाम जिलान्तर्गत तेकलि राज्यका एक नगर। यह सुन्दलु बन्दरसे ४ मील उत्तरमें अवस्थित है। यहां एक प्राचीन शिवमन्दिर है जिसमें अच्छी कारीगरी दिखलाई गई है।

वेन्न—कोणमण्डलके एक सामन्त। ये सुमड़ी भीम १मके पुत्र थे।

वेन्ना (सं० स्त्री०) एक पवित्र नदी। इस नदीमें स्नान करनेसे सभी पाप विनष्ट होते हैं।

"वेन्ना भीमरथी चोभौ नदी पापभयापहौ।"

(भारत ३।८८।३)

वेन्य (सं० त्रि०) १ कमनीय, खूबसूरत। (ऋक् २।२४।१०) २ वेन नामक ऋषिके पुत्र।

(ऋक् १०।१४८।५)

वेपथु (सं० पु०) वेपनमिति वेप (टि्वतोऽथुच्। पा ३।३।८९) इति अथुच्। कम्प, कांपनेकी क्रिया, कँपकँपी।

वेपथुमत् (सं० त्रि०) वेपथु अस्त्यर्थे मतुप्। कम्पयुक्त

वेपन (सं० क्ली०) वेप-ल्युट्। १ कम्पन, कांपना। २ वातव्याधि।

वेपमान (सं० त्रि०) वेप-शानच्। कम्पमान।

वेपस (सं० क्ली०) वेप कम्पने (सर्वधातुभ्योऽसुन्। उण् ४।१८८) इत्यसुन्। १ अनवद्य। २ विरेप। ३ कर्म।

(निघण्टु २।१।५)

वेपिष्ठ (सं० त्रि०) अतिशय स्तुतिकारी।

(ऋक् ६।११।३ सायण)

वेपुर—मन्द्राज प्रदेशके मलबार जिलान्तर्गत एक छोटा नगर और बन्दर। यह अक्षा० ११° १०' उ० तथा देशा० ७५° ५' पू०के मध्य कालीकटसे ७ मील दक्षिण वेपुर नदीके किनारे अवस्थित है। १८५८ ई०में इस नगरमें मन्द्राज रेलपथका टर्मिनस स्थापित हुआ जिससे वाणिज्य-समृद्धिके साथ साथ इस स्थानकी बड़ी उन्नति हुई है। पुर्त्तगीजोंने यहांके कल्याण नामक स्थानमें एक कोठी बनाई, किन्तु उस कोठीका कार्य्य अधिक दिन सुश्रृङ्खलासे न चला। टीपू सुलतानने इस स्थानको मलवारकी राजधानी बना कर इसका 'सुलतान पत्तनम्' नाम रखा। आज भी उसके कितने निदर्शन दृष्टिगोचर होते हैं।

१७९७ ई०में यहां आरेकी कल (Saw mill), १८०५ ई०में कैन्विस बनानेका कारखाना, १८४८ ई०में लोहेका कारखाना, पीछे जहाज बनानेका एक और १८५८ ई०में रेल खुली जिससे इस स्थानको दिनों दिन उन्नति होती जा रही है। भाटेके समय भी इस नदीमें १२ या १४ फुट जल रहता है। अतएव नाव पर ३ सौ टन माल लाद कर इस नदीमें सब समय ले जा सकते हैं।

अम्बरलोनी उपत्यका और वैनादके दक्षिणपूर्वमें

उत्पन्न सभी प्रकारके अनाजों और नारियलकी आमदनी यहां ज्यादा होती है। इसके सिवा पहाड़ी जंगलोंसे इमारती लकड़ी ला कर यहां उसकी चिराई होती और बाहरी अन्यान्य स्थानोंमें रफ्तनी होती है। यहां लोहा और ग्रेनाइट नामक खनिज पदार्थ मिलता है।

नगरके पास ही [illegible] नगरका परिवर्त्तन [illegible] मसजिद मौजूद है। टीपू सुलतान इस नगरकी श्री-वृद्धि करनेके लिये बड़े यत्नवान थे। नगरसे ५ मील पूर्व '[illegible]' ([illegible]) नामक मैदान है। यहां बहुतसे प्राचीन प्रस्तरस्तम्भ तथा जगह जगह [illegible] पत्थरके टुकड़ोंसे घिरे हुए भूमि हैं। यहांके लोग इसे समाधिक्षेत्र कहते हैं।

यहां एक प्राचीन दुर्ग था। विजयनगरके आदिल-शाह नामक स्थानमें अली बहादुरको १३०२ ई०को बनाई हुई मसजिद और गुम्बजोंका एक दुर्ग था। १८४० ई०में कर्नल टाटके आदमीने इस दुर्गको अधिकार कर लिया। दुर्गाधीश [illegible] हुकुमसे दुर्गाध्यक्ष [illegible] सिर काट डाला गया था।

वेपुर—मन्द्राज-प्रेसिडेन्सीके मलवार जिलेके अन्तर्गत एक नगर। यहांके लोग इसे [illegible] या [illegible] कहते हैं। [illegible] शाखासे यह निकल कर [illegible] गई है। [illegible] पर होती हुई समुद्रमें आई है। [illegible] समुद्र देखने लायक है, [illegible] देखने हो [illegible] हो जाता है।

[illegible] बहुतसी छोटी छोटी [illegible] मिल कर इसके [illegible] बढ़ाया है। इनमेंसे [illegible] प्रधान है। यहां नदीके ऊपर एक सुन्दर [illegible] पुल है। इस नदीके [illegible] जाने पर [illegible] एक दूसरी शाखा कहीं इसमें मिल गई है। वेपुर नदीसे [illegible] हो कर जहां यह समुद्रमें गिरती है वहां इससे एक दूसरी शाखा मिल गई है। [illegible] हो गया है [illegible] हुई है। यहां पर मन्द्राज रेलवेकी दक्षिण-पश्चिम शाखाका "टर्मिनस" स्थापित है।

[illegible] नहीं हो कर यहीं यहां [illegible] नारिकेल [illegible] लाया जाता है। वर्षाकालमें नदीका जल बहुत बढ़ जाता है जिससे नावें और भी दूर तक जा सकती हैं। मुहानेके बालूपर ज्वारके समय १८ फुट और भाटेके समय १२ फुट जल रहता है।

वेवेदि—मन्द्राज [illegible] एक नगर। यह अक्षा० १३° ६' उ० तथा देशा० ८०° १५' पूर्व मध्य विस्तृत है। अभी यह मन्द्राजके साथ मिल गया है।

वेरमुर—मन्द्राज-प्रदेशके तंजोर जिलान्तर्गत कुम्भकोणम् तालुकका एक नगर। नगर हिन्दू प्रधान है, [illegible] हिन्दुओंका वास होता।

वेरुनु—मन्द्राज प्रदेशके कोचीन राज्यका एक उपविभाग। [illegible] नदियोंसे और बालू समुद्रके किनारे जमा हो गया है [illegible] है, यह [illegible] आकारमें परिणत हो गया है। मलयालम् भाषामें [illegible] कहते हैं। [illegible] वाइपिन (Vypin) नामसे उल्लेख किया है। [illegible] इतिहासमें [illegible] ही लिखा जाता है। अभी यहांके मुहाने और समुद्रतटके किनारे [illegible] एक छोटे गांवमें विराज कर रहा है। [illegible] यह समुद्र [illegible] विच्छिन्न है।

कोचीन राज्यकालके प्राचीन [illegible] जाना जाता है, कि १३४१ ई०में यह [illegible] समुद्रसे उत्पन्न हो कर [illegible] मिल गया। इसका दक्षिणांश [illegible] स्थापित था। १६६ [illegible] ई० यहां एक [illegible] स्थापित हुआ था। [illegible] यहां १५०३ ई०में [illegible] हुए थे।

वेलुर—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके उत्तर आर्काट जिलान्तर्गत गुडियात्तम् तालुकका एक ग्राम। यह गुडियात्तम्से ११ मील दक्षिणपूर्वमें अवस्थित है। यहां एक प्राचीन [illegible] मन्दिर है।

वेलूर—मन्द्राज प्रदेशके उत्तर आर्काट जिलान्तर्गत आर्काट

तालुकका एक प्राचीन नगर। यह आर्कट सदरसे २ मील पश्चिममें अवस्थित है। यहां चोलराजाओंका प्रतिष्ठित आरु-काड़ू वा षड़वनमंदिर विद्यमान है। यह ऋषिप्रमंदिर नामसे परिचित है। मंदिरगात्रमें बहुत-सी शिलालिपियां देखी जाती हैं।

वेप्पमवट्ट—मन्द्राज प्रदेशके सलेम जिलांतर्गत उत्तङ्गराई तालुकका एक बड़ा ग्राम। यह वेलूरके पास अवस्थित है। विजयनगरराज वीर प्रताप युक्त २य (१४०६ ईमें) मन्दिरमें कुछ दान कर एक शिलाफलक उत्कीर्ण कर गये हैं।

वेमारिज—भारतवर्षके सुप्रसिद्ध अङ्गरेजी इतिहास लेखक।

वेम—कोण्डविडुके रेड्डीवंशीय एक राजा।

वेम (सं० पु०) वे-मन् न आत्व'। वायदण्ड।

वेमक (सं० पु०) एक स्वर्गीय ऋषि। (हरिवंश)

वेमचित्र (सं० पु०) असुरराजके एक पुत्रका नाम। (ललितविस्तर)

वेमन (सं० पु०) वयत्यनेनेति वे (वेञः सर्वत्र। उण् ४।१४६) इति इमनिन्। वायदण्ड। (शुक्लयजु: १९।८३)

वेमपल्ली—मन्द्राज-प्रेसिडेन्सीके कडापा जिलांतर्गत पुलिवेण्डला तालुकका एक नगर। यह अक्षा० १४° २२´ ३० तथा देशा० ७७° ५०´ पू०के मध्य पापघ्नी नदीके किनारे अवस्थित है। यहां वृषभाचलेश्वरस्वामी नामक एक प्राचीन शिव या नन्दीके उद्देशसे स्थापित मंदिर है। प्रवाद है, कि राजा जनमेजयने यह मन्दिर बनवाया था। मन्दिर नदीतीरस्थ एक बड़े पहाड़की चोटी पर स्थापित है। इससे इसकी शोभा और भी मनोरम है। मन्दिरगात्रमें कुछ शिलालिपियां भी देखी जाती हैं। यहांके अधिवासियोंमें अधिकांश हिन्दू हैं।

वेमपल्ल—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके कड़ापा जिलांतर्गत मदनपल्ली तालुकका एक बड़ा-ग्राम। यह मदनपल्लीसे ३ मील दक्षिण पश्चिममें अवस्थित है। गांवके एक मन्दिरमें १६७६ शकको उत्कीर्ण एक शिलाफलक दिखाई देता है।

वेमरविल्ली—मन्द्राज प्रेसीडेंसीके गञ्जाम जिलांतर्गत श्रीकाकोल तालुकका एक बड़ा ग्राम। यह श्रीकाकोलसे १५ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। प्रायः तीन सौ वर्ष बीत गये, यहां एक टीलेसे पचास छोटी छोटी देवमूर्त्तियां निकाली गई हैं। प्रति वर्ष उन देवमूर्त्तियोंके उद्देशसे भंडारा होता है और बहुतसे मनुष्य देवप्रसाद पानेकी आशासे यहां आते हैं।

वेमराज—१ दाक्षिणात्यका रेड्डीवंशीय एक सरदार। यह मोलका लड़का था। २ शृङ्गारदीपिका नाम्नी अमरुशतकटीकाके प्रणेता। इनका दूसरा नाम वेमभूपाल भी है।

वेमवरम्—मन्द्राज प्रदेशके कृष्णा जिलान्तर्गत नरसरावपेट तालुकका एक बड़ा ग्राम। यहां एक अति प्राचीन विष्णुमन्दिर विद्यमान है।

वेमवरम्—मन्द्राज-प्रदेशके गोदावरी जिलान्तर्गत एक नगर। यहां रेड्डी सरदारोंका (१३२८-१४२७ ई०) प्रतिष्ठित एक प्राचीन मन्दिर है।

वेमानभैरवार्य—वर्णक्रमदर्पणके रचयिता।

वेमुला—मन्द्राज-प्रदेशके कड़ापा जिलान्तर्गत पुलिवेण्डला तालुकका एक नगर। यह पुलिवेण्डलासे ७ मील दक्षिण पूर्वमें अवस्थित है। यहां पोलिगारोंका एक दुर्ग विद्यमान है।

वेम्बकोट्टई—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके तिन्नेवल्ली जिलान्तर्गत सतुर तालुकका एक नगर। यह अक्षा० ९° २०´ ३० तथा देशा० ७७° ५०´ पू०के मध्य सतुर सदरसे १० मील पश्चिममें अवस्थित है।

वेयत—बम्बई प्रदेशके कच्छोपसागरस्थ एक द्वीप। यह अक्षा० २२° २५´ से २२° २६ उ० तथा देशा० ६९° से ६९° १२´ पू०के मध्य अवस्थित है। यह द्वीप उत्तरपूर्वसे दक्षिणपश्चिममें ५ मील लंबा है। इसका दक्षिणपश्चिमांश प्रायः ६० फुट ऊंची एक पहाड़ी अधित्यका भूमि है। इसका पूर्वांश पगानामक बालुकाचरसे ३ मील दूर पड़ता है। यह स्थान हनूमान-पायेण्ट या हनूमत अन्तरीप नामसे प्रसिद्ध है। अन्तरीपके मुखसे थोड़ी ही दूर पर हनूमानका मन्दिर है। उसी मन्दिरसे इस स्थानका नामकरण हुआ है। यहांका दुर्ग अक्षा० २२° २८´ ३० तथा देशा० ६९° ५´ पू०के बीच पड़ता है। यहां कृष्णोपासनाका प्रादुर्भाव अधिक है। बहुतसे मन्दिरोंमें आज भी कृष्णकी माधुर्यमयी मूर्त्ति विराज रही है। पंडा ब्राह्मण यहांके प्रधान अधिवासी हैं। प्रति वर्ष

कुण्ड गर्मी मौसमके कष्टोंसे और बालकको आवरणों इस प्रकार होती है। इसके सिवा यह पर्वतश्रेणी हाथकी लकड़ी का घर यहाँ इसको [illegible] होना और वस्तुएँ अन्यान्य स्थानोंमें भेजनी होती है। यहाँ लोहा और [illegible] नामक खनिज पदार्थ मिलता है।

नगरके पास ही वेलोर नगरका परिवर्त्तन चार-मकानादि मौजूद है। टीपू सुलतान इस नगरको पुन-र्निर्मित करनेके लिये यहाँ बसाना चाहते थे। नगरसे ५ मील पूरब '[illegible] (मुसलीम) नामक मैदान है। यहाँ बहुतसे प्राचीन [illegible] तथा अनेक जगह पुरातत्त्व-सम्बन्धी पत्थरके टुकड़ोंसे घिरी हुई भूमि है। यहाँके लोग इसे समाधिक्षेत्र कहते हैं।

यहाँ एक प्राचीन दुर्ग था। जिसको [illegible] नामक स्थानसे [illegible] १२०२ ई०को बनाई हुई मसजिद और दुर्गतोरणोंका एक दुर्ग था। १५४० ई०में कालीकटके सामन्तोंने इस दुर्गको अधिकार कर लिया। दुर्गतोरण [illegible] कुछअंश दुर्गाध्यक्ष कि कैदरका लिए काट डाला गया था।

वेपुर—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके मलबार जिलेके प्रवाहित एक नदी। यहाँके लोग इसे [illegible] या [illegible] कहते हैं। [illegible] (चिलिंगडुरको पश्चिमवर्त्ती शैल मालासे यह निकल कर [illegible] में जा मिली गई है। पीछे [illegible] समुद्रके ऊपर [illegible] पर होती हुई [illegible] जाती है। [illegible] पर यहाँसे [illegible], [illegible] पत्थरोंका समूह देखने लायक है, [illegible] देखने ही [illegible] का मन [illegible] हो जाता है।

[illegible] अब यह [illegible] उतरी है, यह बहुत-सी छोटी छोटी [illegible] मिल कर इसके [illegible] बहता है। इसमेंसे [illegible] ही प्रधान है। यहाँ नदीके ऊपर एक सुन्दर [illegible] पुल है। इस नदीके [illegible] जाने पर [illegible] नामकी एक दूसरी शाखा नदी इसमें मिल गई है। वेपुर नदीकी बगल हो कर जहाँ यह समुद्रमें मिलती है वहाँ इससे एक दूसरी शाखा मिल गई है। दोनोंके समुद्र पर [illegible] हो गया है [illegible] अधिकार [illegible]

[illegible] हुई है। यहाँ पर मन्द्राज रेलवेका दक्षिण-पश्चिम शाखाका "टर्मिनस" स्थापित है।

[illegible] बहुतोंसे [illegible] नहीं हो कर बड़ी बड़ी [illegible] तक जाती आती है। वर्षाकालमें नदीका जल बहुत बढ़ जाता है जिससे नावें और भी दूर तक जा सकती हैं। मुहानेका बालूबार ज्वारके समय १८ फुट और भाटेके समय १४ फुट निम्न रहता है।

वेवेदि—मन्द्राज [illegible] उपकूलस्थित एक नगर। यह अक्षा० १३° ६´ उ० तथा देशा० ८०° ११´ पूर्वके मध्य विस्तृत है। अभी यह मन्द्राजके साथ मिल गया है।

वेरनूर—मन्द्राज प्रदेशके [illegible] जिलान्तर्गत [illegible] तालुकका एक नगर। नगर हिन्दू प्रधान है, [illegible] आधक हिन्दुओंका वास होता।

वेलु—मन्द्राज प्रदेशके [illegible] राज्यका एक जनपद। [illegible] नदियोंसे और [illegible] समुद्रके किनारे आता हो गया है इससे यह बना है, यह घर धीरे धीरे [illegible] [illegible] परिणत हो गया है। [illegible] आवासमें [illegible] बहुत कहते हैं। पुर्तगालीने इसका [illegible] (Vypin) नामसे उल्लेख किया है। [illegible] यह स्थान इतिहासमें [illegible] [illegible] ही लिया जाता है। अभी यहाँके मुहाने और समुद्रतटके किनारे जलमें [illegible] एक छोटे छोटे [illegible] कर रहा है। [illegible] यह समुद्र [illegible] विख्यात है।

[illegible] प्राचीन [illegible] आता है, कि १३४१ ई०में यह [illegible] समुद्रसे उत्पन्न हो कर देशरूपमें [illegible] गया। इस [illegible] बहुतसे [illegible] हुआ स्थापित था। १६६३ ई०में यहाँ एक छोटा [illegible] [illegible] किला स्थापित हुआ था। [illegible] यहाँ १५०३ ई०में [illegible] हुए थे।

वेलुर—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके [illegible] जिलान्तर्गत [illegible] तालुकका बड़ा ग्राम। यह [illegible] ३३ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। यहाँ एक प्राचीन [illegible] मंदिर है।

वेलूर—मन्द्राज प्रदेशके [illegible] जिलान्तर्गत [illegible]

तालुकका एक प्राचीन नगर। यह आर्काट सदरसे २ मील पश्चिममें अवस्थित है। यहां चोलराजाओंका प्रतिष्ठित आरु-काडु या षड्वनमंदिर विद्यमान है। यह ऋषिग्राममंदिर नामसे परिचित है। मंदिरगात्रमें बहुत-सी शिलालिपियां देखी जाती हैं।

वेप्पमवट्ट—मन्द्राज प्रदेशके सलेम जिलांतर्गत उत्तङ्कराई तालुकका एक बड़ा ग्राम। यह चेल्लूरके पास अवस्थित है। विजयनगरराज वीर प्रताप बुक्क २य (१४०६ ईमें) मन्दिरमें कुछ दान कर एक शिलाफलक उत्कीर्ण कर गये हैं।

वेमारिज—भारतवर्षके सुप्रसिद्ध अङ्गरेजी इतिहास लेखक।

वेम—कोण्डविड़के रेड्डीवंशीय एक राजा।

वेम (सं० पु०) वे-मन् न आत्व'। वायदण्ड।

वेमक (सं० पु०) एक स्वर्गीय ऋषि। (हरिवंश)

वेमचित्र (सं० पु०) असुरराजके एक पुत्रका नाम। (ललितविस्तार)

वेमन (सं० पु०) वयत्यनेनेति वे (वेञ्मः सर्वत्र। उण् ४।१४६) इति स्मनिन्। वायदण्ड। (शुक्लयजुः १९।८३)

वेमपल्ली—मन्द्राज-प्रेसिडेन्सीके कड़ापा जिलांतर्गत पुलि-वेण्डला तालुकका एक नगर। यह अक्षा० १४° २२' ३० तथा देशा० ७७° ५०' पू०के मध्य पापघ्नी नदीके किनारे अवस्थित है। यहां वृषभाचलेश्वरस्वामी नामक एक प्राचीन शिव या नन्दीके उद्देशसे स्थापित मंदिर है। प्रवाद है, कि राजा जनमेजयने यह मन्दिर बनवाया था। मन्दिर नदीतीरस्थ एक बड़े पहाड़की चोटी पर स्थापित है। इससे इसकी शोभा और भी मनोरम है। मन्दिर-गात्रमें कुछ शिलालिपियां भी देखी जाती हैं। यहांके अधिवासियोंमें अधिकांश हिन्दू हैं।

वेमपल्ल—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके कड़ापा जिलांतर्गत मदन-पल्ली तालुकका एक बड़ा-ग्राम। यह मदनपल्लीसे ३ मील दक्षिण पश्चिममें अवस्थित है। गांवके एक मन्दिरमें १६७६ शकका उत्कीर्ण एक शिलाफलक दिखाई देता है।

वेमरविल्ली—मन्द्राज प्रेसीडेंसीके गञ्जाम जिलांतर्गत श्री-काकोल तालुकका एक बड़ा ग्राम। यह श्रीकाकोलसे १५ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। प्रायः तीन सौ वर्ष बीत गये, यहां एक टीलेसे पचास छोटी छोटी देव-मूर्त्तियां निकाली गई हैं। प्रति वर्ष उन देवमूर्त्तियोंके उद्देशसे भंडारा होता है और बहुतसे मनुष्य देवप्रसाद पानेकी आशासे यहां आते हैं।

वेमराज—१ दाक्षिणात्यका रेड्डीवंशीय एक सरदार। यह प्रोलका लड़का था। २ शृङ्गारदीपिका नाम्नी अमरु-शतकटीकाके प्रणेता। इनका दूसरा नाम वेमभूपाल भी है।

वेमवरम्—मन्द्राज प्रदेशके कृष्णा जिलान्तर्गत नरसरावु-पेट तालुकका एक बड़ा ग्राम। यहां एक अति प्राचीन विष्णुमन्दिर विद्यमान है।

वेमवरम्—मन्द्राज-प्रदेशके गोदावरी जिलान्तर्गत एक नगर। यहां रेड्डी सरदारोंका (१३२८-१४२७ ई०) प्रतिष्ठित एक प्राचीन मन्दिर है।

वेमानभैरवार्य—वर्णक्रमदर्पणके रचयिता।

वेमुला—मन्द्राज-प्रदेशके कड़ापा जिलान्तर्गत पुलिवेण्डला तालुकका एक नगर। यह पुलिवेण्डलासे ७ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। यहां पोलिगारोंका एक दुर्ग विद्यमान है।

वेम्बकोट्टई—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके तिन्नेवल्ली जिलान्तर्गत सतुर तालुकका एक नगर। यह अक्षा० ९° २०' ३० तथा देशा० ७७° ५०' पू०के मध्य सतुर सदरसे १० मील पश्चिममें अवस्थित है।

वेयत—बम्बई प्रदेशके कच्छोपसागरस्थ एक द्वीप। यह अक्षा० २२° २५' से २२° २६' उ० तथा देशा० ६९° से ६९° १२' पू०के मध्य अवस्थित है। यह द्वीप उत्तरपूर्वसे दक्षिणपश्चिममें ५ मील लंबा है। इसका दक्षिणपश्चि-मांश प्रायः ६० फुट ऊंची एक पहाड़ी अधित्यका भूमि है। इसका पूर्वांश पगानामक बालुकाचरसे ३ मील दूर पड़ता है। यह स्थान हनूमान-पाण्ड या हनूमत अन्तरीप नामसे प्रसिद्ध है। अन्तरीपके मुखसे थोड़ी ही दूर पर हनुमानका मन्दिर है। उसी मन्दिरसे इस स्थान-का नामकरण हुआ है। यहांका दुर्ग अक्षा० २२° २८' ३० तथा देशा० ६९° ५' पू०के बीच पड़ता है। यहां कृष्णोपासनाका प्रादुर्भाव अधिक है। बहुतसे मन्दिरों-में आज भी कृष्णकी माधुर्यमयी मूर्त्ति विराज रही हैं। पंडा ब्राह्मण यहांके प्रधान अधिवासी हैं। प्रति वर्ष

बहु संख्यक यात्री इसका अभिषिक्त मन्दराबृत्त इस अंगारीको जाते हैं।

१८५१ ईस्वी में अंगरेज सरकारने इस शासितों पर हाथ किया, तब दोनोंमें घमासान युद्ध चला था। उसी युद्धमें बहुतसे पुराने और प्राचीन मन्दिर नष्ट भ्रष्ट हो गये।

बेर (सं० क्ली०) [illegible]। १ शरीर, देह, बदन। २ वार्ताकु, बैंगन। ३ कुंकुम, केसर।

बेरक (सं० क्ली०) कर्पूर, कपूर।

बेरट (सं० पु०) १ मिश्रित, मिलाया हुआ। २ नीच। (क्ली०) ३ बदरीफल, बेर नामक फल।

बेरदू—बम्बई प्रेसिडेन्सीके कोल्हापुर जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १६° ३१´ उ० तथा देशा० १४° ११´ पू०के मध्य बनगङ्गा नदीके किनारे कोल्हापुर नगरसे [illegible] दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। इस नगरका दूसरा नाम बांद भी है। एक समय इस नगरमें कोल्हापुर और पन्हालाके अधीनस्थ किसी सरदारकी राजधानी थी। अभी यह ध्वंसप्राय हो कर एक छोटे गांवमें परिणत हो गई है। गांवमें जहां तहां प्राचीन इमारतका भग्नावशेष दिखाई देता है। गांवमें पत्थरका बना एक प्राचीन मन्दिर है। खोदित लेखसे मालूम होता है, कि १२०० ईस्वीमें उसका निर्माण हुआ था। मन्दिरमें जैन प्राचीन शिलालेख दिया है उसमें काल भी प्राचीन खुदा गया है। इस मन्दिरकी देवमूर्तिके पादपीठमें एक प्राचीन अनुशासन खोदा हुआ है।

बैनाग—उत्तर भारतके [illegible] राज्यान्तर्गत एक [illegible]। यह [illegible] दक्षिण पूर्व अक्षा० २६° ३४´ तथा देशा० ८९° १५´ पू०के मध्य पड़ता है। १८० [illegible] परिमाणका भूमि [illegible] यह [illegible] [illegible] नदीके [illegible] पड़ती है। मुगल सम्राट् [illegible] समय इसको [illegible] किया था।

बैराग्ड—राजपूत जातिका एक शाखा। अजितवंश, माधव [illegible] और [illegible] आदि [illegible] इस शाखाके अन्तर्गत है। [illegible] कहता है, कि मुसलमानोंके [illegible] अत्याचारके लिये इन्होंने अपना [illegible] [illegible] देवताका [illegible] किया था। मतः वैसी जातियोंसे पराजित कर के इस देशमें आये हुए। अजमेरके देवताका कहता है, कि ये लोग राजपूत हैं नहीं, पर मूर्तिपूजामें इनका बड़ा आदर है। सुनाता लिखा है, कि इस देशमें आर्योंके विना पुरुषोंसे उत्पन्न हुए, इस कारण ये [illegible] सके हैं। मूर्तिपूजाके [illegible] ऐसा कहा जाता है, कि ये लोग धर्मभावापन्न हो इस देशमें आये हैं। [illegible] कहता है, कि ये लोग हिन्दूके [illegible] पास रहते थे। ये लोग [illegible] हैं, उसमें [illegible] परिवर्तन कर [illegible] अधीन [illegible] बन गये। १३१३-१५१३ ईस्वी मध्य [illegible] थे। [illegible] अपनेको [illegible] वाई हुई [illegible] बतलाते हैं।

राजपूत और मूर्तिपूजकोंसे [illegible] उत्पन्न हुए हैं। विवाह या सम्बन्ध [illegible] समय ये लोग एक दूसरेके यहां नहीं जाते।

बैरागीवा—बम्बई प्रेसिडेन्सीके [illegible] जिलान्तर्गत एक नगर और बन्दर। इसका दूसरा नाम [illegible] भी है। यह अक्षा० १८° [illegible] उ० तथा देशा० ७२° ५´ पू०के मध्य स्थित है। बम्बई नगरसे १२ कोस उत्तर [illegible] एक खाड़ीके मुहाने पर यह नगर बसा है। इसके [illegible] नामक [illegible] है। यह [illegible] पूरी तरह सुरक्षित है। [illegible] और [illegible] मूर्तिके ऊपर [illegible] हुई है। पुर्त्तगीजोंने [illegible] किसी समय [illegible] लिये, [illegible] यह [illegible] होता। [illegible] पुनः अधिकार कर [illegible] [illegible] कर ली थी। [illegible] भी [illegible] जाती है।

बैरालोल—[illegible] जिलान्तर्गत [illegible] एक नगर। यहां [illegible] है।

बैरालोल—[illegible] [illegible] अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १८° [illegible] उ० तथा देशा० ८१° [illegible] पू०के मध्य [illegible] अवस्थित है।

यह स्थान कर्मेलाइट मिशनका प्रधान केन्द्र है। यहां खृष्टतन्त्रका एक भिकार पपास्टलिक है। १६५६ ई०में उस एपसटोलिक (Vicariate Apostolic of Verapoli) प्रतिष्ठासे ही वेरापालिकी प्रसिद्धि है। यह ईसाई मठ बहुत दूर तक फैला हुआ है। इसके बाद १६७३ ई०में यहां एक गिरजा बनाया गया। उस समय इस द्वीपमें एक भी आदमी नहीं रहता था तथा यह द्वीप कोचीनराजके अधिकारमें था।

गिरजा-घरको छोड़ कर मठ-वाटिकाका दृश्य भी मनोरम है। यह ईटेका बना हुआ है और तोन खण्डोंमें विभक्त है। इस मठवाटिकाके उत्तरी प्रान्तमें गिरजा-घर अवस्थित है। उसकी आकृति छोटी होने पर भी यह येरमकी राजधानीके सेएटपोटर गिरजा-घरसे कम नहीं है। इसके विभिन्न भजन-मन्दिरोंमें (Chapel) ईसाईसाधुओं और नाना पौराणिक चित्रकी प्रतिमूर्त्ति प्रथित और रक्षित है।

भारतवर्षके अन्यान्य स्थानोंमें प्रतिष्ठित १७वीं सदीके मठसे यह छोटा होने पर भी यहां बहुतसे देशी ईसाई पादरी और रोमन कैथलिक ईसाई सम्प्रदायका वास है। यहांके रोमनकैथलिककी संख्या २ लाख ८० हजारसे भी ज्यादा है। धर्मयाजककी संख्या प्रायः ४ सौ है। रोमन कैथलिक ईसाइयोंमें तृतीयांश प्रायः सिरिय मतानुसरण करके ही चलते हैं। उनमें २ विशप और १४ प्रिष्ट हैं। ये लोग यूरोपीय तथा कर्माइट मतानुसरणकारी हैं। ऊपर कहे गये रोमन कैथलिकोंको छोड़ कर यहां साइरो-नेष्टोरियन या जेकोबाइट मतावलम्बी और भी बहुतसे लोगोंका वास है। ये लोग साधारणतः सिरियन खृष्टान नामसे परिचित हैं।

वेरापपुर (वहरमपुर)—वङ्गालके दिनाजपुर जिलेके अन्तर्गत एक बड़ा गांव।

वेरार—मध्यभारतके अन्तर्गत एक स्वतन्त्र प्रदेश। यह वेरार राज्यके नामसे प्रसिद्ध था। हैदराबादके राजा निजामने जब इस प्रदेशका कर्त्तृत्व अंग्रेजोंके हाथ सौंपा, तबसे यह हैदराबाद पसाइण्ड डिष्ट्रीक्ट नामसे विख्यात हुआ। हैदराबादके रेजिडेण्ट वेरारके चीफकमिश्नरके पद पर रह कर शासनकार्य निर्वाह करते थे। इस समयसे वेरारराज्य अकोला, बुलढ़ाना, वासिम, अमरावती, इलिचपुर और वुन नामके ६ जिलोंमें बंट गया। इसकी उत्तरी और पूर्वी सीमा पर मध्यप्रदेश, दक्षिणमें निजाम राज्य और पश्चिममें बम्बई प्रेसिडेन्सी मौजूद है। इसका भूपरिमाण १७७१० वर्गमील है।

समूचा वेरार राज्य पूर्वपश्चिममें विस्तृत एक सुदीर्घ उपत्यका भूमि है। इसके उत्तर भागमें सतपुरेकी पहाड़ियां और दक्षिणमें अजण्टा शैलश्रेणी है। यहांके लोग सतपुरेके सन्निहित उपत्यका देशको वेरार पयानघाट और अजण्टाशैल तथा उसके अन्तर्गत अधित्यका देशको वेरार बालाघाट कहते हैं। इन दो भागोंमें उत्तरांश ही अपेक्षाकृत उर्वर और शस्यशाली है। यहां ताप्तीकी शाखा स्वरूप पूर्णा आदि कई छोटे छोटे पहाड़ी जलप्रवाह आ कर ताप्तीमें मिल गये हैं। यहां नियमित भावसे और यथेष्ट परिमाणसे वृष्टिपात होता है। इन सब कारणोंसे यहां कभी भी जलाभाव नहीं होता। इससे सदा यहांकी पृथ्वी शस्यशालिनी दिखाई देती है। शरत्कालमें शस्यपूर्ण खेतोंकी श्रीशोभा बड़ी ही आनन्दप्रद है। अधिकांश स्थान ही खेतीबारीके लिये उपयोगी हैं और उद्यमशील कृषिजीवी अधिवासी विशेष परिश्रमके साथ भूमिकर्षण और बीजवपन किया करते हैं। कुनबी, भील आदि हृष्टकाय पहाड़ी लोग यहां कृषिकार्य करते हैं।

भूपरिमाणकी तुलनामें वेरारप्रदेश आयनियन द्वीपको छोड़ यूनानके बराबर है। किन्तु यहांकी लोकसंख्या वहांसे दूनी है। इसके पूर्व पश्चिमकी लम्बाई प्रायः १५० मील और चौड़ाई प्रायः १४४ मील है। यहां कुल मिला कर ५५८५ ग्राम हैं। ताप्ती, पूर्णा, वर्द्धा और पैनगङ्गा या प्राणहिता नदी ही यहांकी प्रधान हैं। किन्तु इन सबोंमें वर्द्धा नदी द्वारा ही यहांका काम अधिकतासे निकलता है। बुलढ़ाने जिलेकी लोनार नामकी लवणाक्त भील पहाड़ी सौन्दर्यसे पूर्ण है। इस भीलके चारों ओर ही पहाड़ हैं, मानो गोलाकार भील चारों ओर इनसे घिरा हो। ये पर्वतगात्र नाना जातीय वृक्षोंसे परिशोभित हैं। भीलका जलभाग ३४५ एकड़ है, किन्तु तीरभूमिकी परिधि ५॥ मील है।

कुछ दिन पहले यहां भी भूकम्प हुए थे. इसके अनुसार यहांका रकबा ४३४४ वर्गमील अवधारित हुआ था। इसमें १३१६ वर्गमील राजधानी, ४८३ वर्गमील जिलेमें लिमा और १९५५ मील [illegible] समुद्रमें पड़ा हुआ है। इस समय [illegible] [illegible] कम हो गया है। यहां [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] बहुत [illegible] और [illegible] अधिक परिमाणमें उत्पन्न होते हैं। दक्षिण पेरुकी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अनुपजाऊ होती है। यहां पशुओंके चरनेके लिये घास भी अधिक उत्पन्न होती है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] पर बकरी और [illegible] का [illegible] जाती है।

पेरुवासियोंके [illegible] और [illegible] [illegible] पर प्रचुर परिमाणमें [illegible] पाये जाते हैं। पुरातत्त्व लिखते हैं, कि पेरुके लोग इस [illegible] बना कर कोई काम नहीं करते। अथवा किसी [illegible] वैज्ञानिक परीक्षा द्वारा अपना [illegible] नहीं करते। कुछ [illegible] [illegible] [illegible] उत्तर दक्षिणकी [illegible] हुई [illegible] एक खान (Coalfield) मिली है। इसकी [illegible] दक्षिण [illegible] तक यह ठीक [illegible] है। सन् १८७१ ई०में इसके [illegible] परीक्षा [illegible] [illegible] की गई कि इस देशमें कितना कोयला है। उस समय [illegible] पहलेसे कोयला निकाला गया था। किन्तु [illegible] [illegible] [illegible] न रहनेसे यह कार्य स्थगित हो गया। आजकल [illegible] और [illegible] आदिके लिये है, तथा इस प्रदेशके [illegible] [illegible] है जिससे [illegible] आदि [illegible] [illegible] हुई है। [illegible] [illegible] [illegible] अपेक्षा यहांके [illegible] और यहां प्रचुर परिमाणमें [illegible] होती है।

यहांका जलवायु [illegible] अच्छा नहीं है। [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] अनुकूल होता है यहां [illegible] [illegible] है। किन्तु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मालूम होता है। [illegible] समुद्रके [illegible] यहां [illegible] [illegible] [illegible] मालूम होती है। [illegible] [illegible] तक [illegible] [illegible] धूप [illegible] [illegible] है। किन्तु [illegible] [illegible] [illegible] धूप [illegible] [illegible] और [illegible] हो जाती है। इसके बाद [illegible] [illegible] होने लगती है, तब यहांको [illegible] [illegible] हो जाता है। इससे यह [illegible] [illegible] हो जाता है। [illegible] और [illegible] और [illegible] [illegible] द्वारा [illegible] [illegible] होनेसे भी यहांके [illegible] [illegible] होनेके कारण [illegible] [illegible] अधिक [illegible] नहीं होता। [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] रहता है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कम है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। इस पर्वतकी चोटी पर १३००० फीट ऊंचे स्थान पर [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] पूरी [illegible] है।

पेरु देशका इतिहास बहुत अधिक दिनका पुराना नहीं है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जिस राजाके अधीन शासित हुआ है, यह देश भी उसके किसी न किसी राजाके अधीन शासित हुआ है। किन्तु इसके प्राचीनतम इतिहासका उद्धार करना कठिन है। शिलालिपियोंसे मालूम होता है, कि इस [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] थे, किन्तु यह बात मालूम नहीं होती, कि वे किस किस राजाके अधीन थे।

ऐतिहासिक आलोचना करनेसे यह दिखाई देता है, कि ११वीं और १२वीं शताब्दीमें यहां [illegible] [illegible] [illegible] करते थे। १३वीं शताब्दीमें यहां [illegible] ([illegible]) के [illegible] [illegible] [illegible] थे, ऐसा ही अनुमान है। क्योंकि, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किया था। [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] थे। [illegible] [illegible] इस देशमें [illegible] [illegible] [illegible] हो रहे हैं, उनसे [illegible] और [illegible] मालूम हो रहा है।

[illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] यहां [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

पुर नगरमें उपस्थित हुए। उन्होंने अपने पुत्र दानियाल को बेरार और अन्यान्य प्रदेशके नवाब बना कर इस प्रान्तकी शासनव्यवस्था की। आईन-इ-अकबरी नामक ग्रन्थमें बेरार सूबेका राजस्व और परिमाण आदि निर्धारित है।

सन् १६०५ ई०में सम्राट् अकबरकी मृत्यु हो जाने पर मुगल-राजसरकारमें राज्यव्यवस्थाका विभ्राट् उपस्थित हुआ और मुगल दरबारने उत्तर भारतमें शृङ्खला स्थापन करनेमें फंसे रहनेके कारण दक्षिण भारतके नवाधिकृत प्रदेशके शासनमें ध्यान न दिया। इस समय बेरारको अरक्षित देख कर दौलताबादके स्वाधीनता प्रयासी निजामशाही राजा अम्बरने बेरारके कुछ अंशों पर कब्जा कर लिया। सन् १६२८ ई०में उनकी मृत्युके समय तक बेरार निजामशाहीवंशके अधिकारमें था। इसके बाद सन् १६३० ई०में मुगलोंने इस पर अधिकार कर यहां दिल्लीश्वरको शासन-शक्तिका विस्तार किया। मुगल-सम्राट् शाहजहांने अपने दाक्षिणात्यराज्यको दो पृथक् शासनकर्त्ताओंके अधीन रखा था। उस समय बेरार, बालाघाट, जालना, खानदेश एक विभागमें थे। किन्तु यह व्यवस्था विशेष सुविधाजनक न होनेसे उसे फिर एक ही शासनकर्त्ताके अधीन कर दिया गया। सन् १६१२ ई०में पहले पहल कर उगाहनेकी व्यवस्था हुई। पीछे शाहजहांके समयमें उसका बहुत कुछ सुधार हुए। सन् १६३७-३८ ई०में यहां फसली साल प्रवर्त्तित हुआ।

इसके बाद सन् १६५० ई० तक बेरारका प्रादेशिक कोई स्वतन्त्र इतिहास नहीं मिलता। इस समय दक्षिण भारतमें मुगल, मराठे और मुसलमान राजाओंमें युद्ध विग्रह चल रहा था। सन् १६५०-१७०७ ई० तक मुगल बादशाह औरङ्गजेब दाक्षिणात्य अभियानमें लिप्त थे। उस समयका बेरारका इतिहास औरङ्गजेबकी दाक्षिणात्यविजयसे संश्लिष्ट है। सन् १७०७ ई०में अहमदनगरमें औरङ्गजेबकी मृत्यु हुई। इसके बाद बेरार प्रदेश मराठे और मुगलसेनाओंके लूट खसोट तथा अभियानका केन्द्र बना हुआ था। इस समयमें दो भाइयोंने इस देशमें महाराष्ट्रगण सरदेशमुखी और चौथ वसूल करते थे। सन् १७१७ ई०में सम्राट् फर्रुखसियरने सैयदवन्धुओंसे भी यह कर देने पर बाध्य हुए थे।

सन् १७२० ई०में दाक्षिणात्यके मुगल राजप्रतिनिधि चीन किलिच खाँ निजाम उल्मुल्क् नाम रख कर स्वाधीनताके प्रयासी हुए। इस समाचारसे दोनों सैयद भाइयोंने उनके विरुद्ध फौजें भेजीं। उन्होंने उन सेनाओंको तीन युद्धोंमें पराजित कर अपना प्रभुत्व विस्तार किया था। इस समय बेरारके सूबेदारने उनका साथ दिया। सन् १७२१ ई०में बुरहानपुरमें पहला युद्ध हुआ और इसके खतम होते ही बालापुरमें दूसरा युद्ध हुआ। इसके बाद सन् १७२४ ई०में बुलढाना जिलेके सखरखेलडा नामक स्थानमें तीसरा या अन्तिम युद्ध छिड़ा। उसी समयसे सखरखेलडा 'फतेह खेलडा'के नाम विख्यात हुआ है। इस युद्धसे बेरार प्रदेश १९वीं शताब्दी तक नाममात्रको हैदराबाद राजवंशके अधीन रहा।

१७वीं शताब्दीके अन्त भागसे ही बेरार राज्यकी पूर्ण समृद्धिका ह्रास होने लगा। सन् १६६७ ई०में फ्रान्सीसी भ्रमणकारी Mr. de Thevnot ने इस देशका परिदर्शन कर लिखा है, कि मुगलसाम्राज्यमें यह स्थान धनधान्य और जन-संपदामें परिपूर्ण था। इसके बाद यहांके राजस्व संग्रह करनेवालोंके विद्रोहसे ही यह स्थान शस्यशून्य और जनहीन हुआ। इसके बाद राजाओंके युद्ध विग्रहसे यह श्रीभ्रष्ट हो गया। इस समय मराठोंने बेरार राज्यको लूट पाट कर और भी नष्ट कर दिया। उनकी डाकेजनीके भयसे यहांका वाणिज्य लुप्त हो गया। इससे बहुतेरे लोग देश छोड़ कर यहांसे चले गये। मुगलसम्राट्ने यहां एक जागीरदार नियुक्त कर राजस्वसंग्रहको व्यवस्था की। इसी समय मराठोंने भी एक स्वतन्त्र जागीरदार नियुक्त कर अलग राजस्व वसूल करनेके लिये व्यवस्था की थी। इस तरह यहांकी प्रजाने करभारसे पीड़ित हो जमीनको छोड़ दिया। निरन्तर लूट और दूसरेका सर्वनाश आंखोंसे देखते देखते उनका हृदय भी कलुषित हुआ, सुतरां वे स्वयं [illegible] न रह सके।

सन् १८०४ ई०में हैदराबादके अधिपतियोंने यहां

नदीके पूर्ववर्त्ती जिले समेत समग्र बेरार राज्य (नागपुरका कुछ अंश भोंसले वंशके और पेशवाओंके अधीन रहा) निज़ामके हाथ आया। गाविलगढ़-नरनाला दुर्ग नागपुरके महाराष्ट्र सरदारके अधीन था। फिर सन् १८२२ ई०में और एक सन्धि हुई। उस सन्धिके अनुसार बेरारकी सीमा जो निर्द्धारित हुई उसके अनुसार वर्द्धाके पश्चिमका सारा प्रदेश निज़ामके अधीन हो गया और नागपुरराजने नदीके पूर्व स्थित देश भागको नाममात्रके लिये पाया। सन् १७९५ ई०में पेशवाने जिन ज़िलों पर अधिकार रखा था और सन् १८०३ ई० तक नागपुरराजने जिन स्थानोंको अधिकार किया था, वे सभी निज़ामको लौटा देने पड़े थे।

उपर्युक्त कारणोंसे अनेक राजाको ही सैन्यसंख्याका ह्रास करना पड़ा। निकाले हुए सिपाही खेतीबारी न कर डाकेजनीसे अपना जीवन निर्वाह करने लगे। इन डाकुओंके अत्याचारसे राज्यरक्षा करनेमें निज़ामको बहुत कष्ट सह्य तथा प्रचुर धनव्यय करना पड़ता था। इस अयथा धनव्ययके कारण निज़ाम ऋणग्रस्त हो गये और अङ्गरेजराज १८०० ई०की सन्धिशर्त्तोंके अनुसार वृटिशराजकोषसे सेनाको वेतन देते थे। इस तरह उत्तरोत्तर विप्लवसे निज़ामके अधिकृत प्रदेश नष्टप्राय होने पर अङ्गरेज शान्तिस्थापनके लिये आगे बढ़े। अङ्गरेजोंने सन् १८४१ ई०में अप्पासाहबको कैद कर उसके अधीनस्थ सिपाहियोंको भगा दिया।

अंग्रेजोंकी इस सहायताके बदले निज़ाम "हैदराबाद कण्टिन्जेण्ट" सेनादलका खर्च देते थे। किन्तु उस समय यह व्ययभार असह्य हो उठा था, इससे निज़ामने इस व्ययभारको अंग्रेजोंके हाथ अर्पण किया। बहुत दिनों तक उसके प्रतिकारका अर्थात् उस रकमकी वसूलीका उपाय अंग्रेजोंको दिखाई नहीं दिया। उधर निज़ामका धनाभाव बढ़ने लगा था। एक तरहसे निज़ाम सरकार दिवालिया हो गई थी। अतएव अन्य उपाय न देख अंग्रेजोंने सन् १८५३ ई०में निज़ामके साथ एक नई सन्धि की। इस सन्धिके अनुसार अंग्रेजोंको पूर्वप्रदत्त ऋणपरिशोध करनेके लिये और हैदराबाद कण्टिन्जेण्ट फौजोंके व्ययभार निर्वाहके लिये ५० लाख आमदनीके कई ज़िले प्राप्त हुए। ये सभी ज़िले (धराशियो और रायचूड़ दोआब छोड़ कर) "हैदराबाद एसाइण्ड डिष्ट्रिक्ट" नामसे उसी समयसे अंग्रेजोंके अधीन आ गये। इस सेनादलका मूलांश इलिचपुरमें और अकोला तथा अमरावतीमें कुछ पैदल सैनिक रखे गये।

इस संधिकी शर्त्तोंमें एक शर्त्त यह भी थी कि अङ्गरेज निज़ामको वार्षिक हिसाब देंगे और राजस्वमें अपना किस्त काट कर जो बाकी निकलेगा, वह भी देंगे। उन की और अङ्गरेजोंकी सहायताके लिये युद्धके समय सेना भेजनी न पड़ेगी। ये सैन्यदल अब उनके सेनाविभागके अधीन रहेंगे। केवल उन्हींके कार्यके लिये ये सेनायें अङ्गरेजोंके अधीन रहेंगी।

पीछे सन् १८५३ ई०में जो सन्धि हुई, उसके अनुसार अंग्रेजोंको वार्षिक हिसाब दाखिल करनेमें असुविधा मालूम हुई। इस पर सन् १८०२ ई०की सन्धिशर्त्तके अनुसार ५ रुपये सैकड़े शुल्क वसूली देनेकी बात थी, उसके सम्बन्धमें दोनों पक्षमें गड़बड़ी चलने लगी। उस समय अंग्रेजोंने इस विपत्तिसे छुटकारा पानेके लिये और सन् १८५७ ई०में सिपाही-विद्रोहके समय निज़ामके स्वीकृत पुरस्कार देनेके लिये सन् १८६० ई०के दिसम्बर महीनेमें निज़ामके साथ एक सन्धि की। इससे अंग्रेजोंने निज़ामको ५० लाख रुपयेका माफी दे दी। सुरपुरके विद्रोही राजाका राज्य छीन कर अंग्रेजोंने निज़ामको दे दिया। इसके साथ ही धराशियो और रायचूड़ दोआब निज़ामको लौटा दिया गया। निज़ामको अंग्रेजोंसे सम्पत्ति मिली सही, किन्तु निज़ामको भी इसके बदलेमें अंग्रेजोंको गोदावरी नदीके बायें किनारेके कई ज़िले और उस नदीमें वाणिज्यके लिये जो शुल्क वसूल होता था, उसको छोड़ देना पड़ा।

इस तरह बदलेमें निज़ामसे अंग्रेजोंको जो सम्पत्ति मिली, उसका राजस्व प्रायः १२ लाख रुपया था। अंग्रेज सरकार इस रुपयेसे १८५३ ई०की संधिके अनुसार कार्य करने लगी। निज़ाम सरकारको अब वार्षिक हिसाब देनेकी आवश्यकता न रह गई। उक्त एसाइण्ड डिष्ट्रिक्टके मध्य फौजोंके वेतनके लिये निज़ामप्रदत्त जो सब जागीर और निज़ामके स्वयं व्ययके लिये जो सम्पत्ति

था, उनको अंग्रेजोंके शासनाधीन करनेके अभिप्रायसे अंग्रेजोंने अन्य स्थानमें सम्पत्ति दे कर अदलाबदली कर ली।

सन् १८६१ ई०में इस परिवर्त्तनके सिवा सन् १८५३ ई०से बेरारके राजनीतिक-संक्रांतमें और कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ। सन् १८५७ ई०में सिपाही-विद्रोहके समयमें भी यहां विप्लवकी विशेष सूचना न हुई। सन् १८५८ ई०में तांतियाटोपीके दल-बलके साथ सतपुरेके पहाड़ पर आ उपस्थित हुए थे सही, किन्तु वे बेरार-उपत्यकामें प्रवेश कर न सके। ग्रेट इण्डियन-पेनिनशुला और निजामस्-ष्टेट रेलवेके खुल जाने पर यहांके वाणिज्यमें बड़ी उन्नति हुई है।

यहां नाना जाति तथा नाना धर्मके लोगोंका वास है। उनमें हिन्दू प्रायः २८॥ लाख, मुसलमान प्रायः २ लाख और भील, गोंड़, कुर्कु आदि असभ्य जातियोंकी संख्या प्रायः १ लाख सत्तर हजार होगी। जैन, ईसाई, सिक्ख और पारसी भी रहते हैं, किन्तु इनकी संख्या कम है। यहां जो लोग वास करते हैं, उनमें अधिकांश कृषिजीवी हैं। यहां मकई, गेहूं, चना, बाजरा, धान, तिल, पाट, सन, तम्बाकू, ऊख, रुई, सरसों और गांजा, अफीम आदिकी खेती होती है। यहांके अधिवासी मोटी रुईके सूती कपड़े, गलीचा और भारजाम बेचते हैं सही, किन्तु वे चीजें प्रचुर नहीं होतीं। रेशमी वस्त्र तैयार करनेका साधन खूब सामान्य है। स्थान स्थानमें वस्त्र बुननेका काम भी फैला गया है और बुलढानेके निकटवर्ती देवलघाटमें इस्पातके बने अस्त्रादिका भी कारोबार देखा जाता है। नागपुरसे बारीक कपड़े और अन्यान्य आवश्यक सामग्री बाहरसे मंगाई जाती हैं।

अमरावती, अकोला, आकोट, अञ्जनगांव, बालापुर, वासिम, देवलगांव, इलिचपुर, हिवारखेड़, जलगांव, करिञ्जा, खामगांव, करासगांव, मलकापुर, मंगलवाड़ा, बापुर, सेन्दुरजना, शेगांव और उमरखेड़ बेरार प्रदेशकी समृद्धिके परिचायक हैं ; अमरावती, अकोला, खामगांव, शेगांव और वासिम नगरोंमें म्युनिसिपलिटियां हैं।

भारतके राजप्रतिनिधि लार्ड कर्जनके राजनीतिक कौशलसे सन् १९०२-३ ई०में बेरारप्रदेशके निजामके अधिकारसे च्युत होनेसे पहले ही यह प्रदेश एक चीफ कमिश्नरके द्वारा शासित होता था, जिसका विवरण ऊपर लिखा गया है। उनके अधीनमें एक जुडिशियल कमिश्नर और एक राजस्व विभागीय कमिश्नर, ७। डिपटी कमिश्नर, १० असिस्टेण्ट कमिश्नर और १ इन्सपेक्टर जेनरेल आव पुलिस, जेल और रजिष्ट्रेशन, १ डिष्ट्रिक्ट सुपरिंटेंडेण्ट आव पुलिस, २ असिस्टेण्ट सुपरिण्टेण्डेण्ट आव पुलिस, १ सेनिटरी कमिश्नर (ये इन्सपेक्टर-जनरल आव हिस्पेन्सरी और भेक्सिनेशन पद पर भी काम करते थे) १ सिविल सर्जन, १ डिरेक्टर आव पबलिक इनष्ट्रक्शन, १ कनजरवेटिव आव फारेष्ट और १ असिस्टेण्ट कञ्जरवेटिव थे। इन सबको दीवानी मामलेके मुकदमे विचार करनेकी क्षमता थी।

१९०३ ई०में बेरारका शासन-कार्य हैदराबादके रेसिडेण्टसे मध्यप्रदेशके चीफ-कमिश्नरके हाथ आया। शासनकार्यकी सुविधाके लिये यह अभी पांच जिलोंमें विभक्त है, यथा—अमरावती, इलिचपुर, ऊन, अकोला, बुलढाना और वासिम। प्रत्येक जिला एक एक डिपटी-कमिश्नरके और प्रत्येक तालुक एक एक तहसीलदारके अधीन है। पुलिस-विभागमें एक सुपेरिण्टेण्डेण्ट और उनके सहकारी डिपटी कमिश्नर तथा तीन तीन असिष्टेण्ट सुपेरिण्टेण्डेण्ट हैं। डिष्ट्रिक्ट जेलका कार्यभार सिविल सरजनके हाथ सपुर्द है। ग्राम्य कर्मचारी पटेल या पटवारी कहलाते हैं। यह पद उनका वंशपरम्परासे आता है। ग्रामका राजस्व वसूल करना ही उनका काम है। ये ग्राम्य चौकीदारके कामोंका भी निरीक्षण करते हैं। उन्हें अपराधीको पकड़ कर अदालत भेजनेकी भी क्षमता है।

बेरारमें एक भी कालेज नहीं है, परन्तु हाई स्कूल, सिकेण्डरी, प्रायमरी और निशल ट्रेनिङ्ग स्कूल बहुत हैं। स्कूलके अलावा ४७ अस्पताल और चिकित्सालय हैं।

बेरावल (वेरावल, भेरोल)—बम्बई प्रेसिडेन्सीके काठियावाड़ विभागके जूनागढ़ सामन्तराज्यके अन्तर्गत एक नगर और बन्दर। यह मङ्गरोलसे २० मील दक्षिण पूर्व जूनागढ़से ८० मील और सोमनाथ मन्दिरसे ३ मील

उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। अक्षा० २०° ५२´ उ० तथा देशा० ७२° २६´ पू०में अवस्थित है। मस्कट, बम्बई और करांची नगरसे यहांका प्रचुर वाणिज्य चलता है। वर्तमान समयमें इस बन्दरकी अच्छी उन्नति हुई है। विभिन्न स्थानोंसे प्रचुर परिमाणमें माल असवाब यहां आता है।

प्राचीन शिलालिपियोंमें इसका नाम वेरावलपत्तन लिखा है। निकट ही सोमनाथपत्तनका सुविख्यात मन्दिर है। यह प्राचीन मन्दिर समुद्रके किनारे अवस्थित है। इसके ध्वस्त स्तूपोंसे प्रस्तर आदि ले कर यहांके लोगोंने मकान आदि बनवाये हैं। अवशिष्ट जो दो घर मौजूद हैं, उनके गुम्वजको छतों पर नाना पौराणिक चित्र अङ्कित हैं। पहला गुम्वज ६५ स्तम्भों पर बना है। द्वितीय गुम्वज एक शिखरमात्र है। जो इस समय है, उसकी लम्बाई ६०॥ फुट, चौड़ाई ६८ फुट और ऊंचाई ४८ फुट है। प्रवाद है, कि ८५० वल्लभी अब्दमें यह मन्दिर निर्मित हुआ था।

सोमनाथका वर्तमान मंदिर इन्दोर राजपत्नी अहल्याबाई द्वारा सन् १८०६ संवत्में पुनः निर्मित हुआ। इसके प्राङ्गणकी लंबाई १२२७ फुट और चौड़ाई ८२ फुट है। किंतु मूलमंदिरकी लंबाई और चौड़ाई ३६ फुट और ऊंचाई ४२ फुट है। इस मंदिरमें गायकवाड़के दीवान विट्ठलदेवाजीने एक धर्मशाला बनवाई है। इसके निकट ही अन्नपूर्णा और गणपतिजीका मन्दिर है। मूलमंदिरभीतरमें पहले शंकेश्वर लिङ्ग और उसके नीचे १२ फुट लम्बे चौड़े गड्ढेमें सोमनाथलिङ्ग स्थापित है। इसके ऊपर गुम्वज ३२ स्तम्भों पर रक्षित है। यह पत्तन पवित्र तीर्थ गिना जाता है। सरस्वती, हिरण्या और कपिला नदीका सङ्गम ही यहांकी त्रिवेणी है। पत्तनके बाजारके किनारे जो जुमा मसजिद है, वह हिन्दू मन्दिर पर स्थापित है। अब भी मन्दिरगात्रमें प्रस्तरखोदित सुन्दर सुन्दर मूर्त्ति सटी दिखाई देती हैं। ये १११ फुट×१७१ फुट और इसकी छत २५१ स्तम्भों पर खड़ी है। प्राचीन सूर्यकुण्ड अब हौजमें परिणत हो गया है।

इस मसजिदके निकट जो मुसाफिरखाना है वह भी एक जैन मन्दिरका भग्न निदर्शन है। इसकी छतका गुम्वज भाग और स्तम्भ आदि भास्कर शिल्प समन्वित हैं। इस अट्टालिकाके निम्न भागमें ३५×४७॥ की एक गुहा है। यह प्रस्तर द्वारा ६ गृहोंमें विभक्त है।

पत्तन और वेरावलके बीच समुद्रके किनारे मिद्रिया मन्दिर है। अधिक सम्भव है, कि मिद्रुबन महादेवके नामसे अपभ्रंशमें मिद्रिया हो गया है। यह मन्दिर ४० फुट ऊंचा और १३७ फुट लम्बा और ८२ फुट चौड़ा है। यह प्रस्तरनिर्मित है और इसका गुम्वज २० स्तम्भों पर खड़ा है।

वेरावल और पत्तनके बीचे भालका कुण्ड है। उसका परिमाण २५×३७ फुट है। भालोदा या भल्ल (तीरयष्टि) शब्दसे इसका नाम हुआ है। यहीं भील नामक एक भीलने श्रीकृष्णको तीरसे मारा था।

पत्तनसे १० मील दूर दो प्राचीन कुण्ड हैं। इसी कुण्डसे सरस्वती नदी निकली हुई है। कुण्डके किनारे प्राची-पीपल नामका एक पीपलका पेड़ है। दोनों कुण्डोंके उत्तर सरस्वतीके गर्भमें तीरस्थ जम्बू वृक्षकी छायाके नीचे माधवरायजीकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित है।

पत्तनसे ३०० गज पूर्व हिङ्गुलाज माता नामकी गुहा है। इस गुहाकी लम्बाई ३६॥ फुट, चौड़ाई २८ फीट और गहराई १० फुट है। यह अति प्राचीन है, और दो प्रकोष्ठोंमें विभक्त है। एकमें हिङ्गुलाज देवीकी मूर्त्ति स्थापित है। वेरावलके हरसद मन्दिरमें श्रीधवलेश्वर मूर्त्तिकी पूजा और गृहादि निर्माणके व्ययविषयक और भोगोवर्द्धन मूर्त्तिमें (९२७ वल्लभी संवत्) तथा १४४२ सं०में सङ्गमेश्वरमूर्त्ति स्थापना सम्बन्धीय शिलाफलक उत्कीर्ण हैं।

चोरवाड़के निकटके नागनाथ मन्दिरमें भी १४४६ संवत्में उत्कीर्ण एक शिलालिपि है। उसमें रानी विमला देवी द्वारा चार चरणीय विप्र प्रतिष्ठाकी बात है।

वेराशेरुण—मन्द्राज प्रदेशके गोदावरी जिलान्तर्गत भीमवर मृतालुकका एक नगर। इसका असल नाम वीरवासरम् है। यह नगर बहुत पुराना है प्राचीन ऐतिहासिकोंने इस नगरका वेराशेरुण नामसे उल्लेख

किया है। १६२७ ई०में यहां अङ्गरेजोंकी एक कोठी और उपनिवेश स्थापित हुआ। १६६२ ई०में अङ्गरेजोंने इसे छोड़ दिया सही, पर १६७७ ई०में फिरसे वे यहां आ कर प्रतिष्ठित हुए। १७०२ ई०से अङ्गरेजोंने इसका बिलकुल परित्याग कर दिया है।

यहांके विरूपाक्षस्वामीमन्दिरके समीप एक ध्वजस्तम्भ है। उसकी बगलमें दो गणेशमूर्ति हैं। मन्दिर-गात्रस्थ शिलाफलक अनेक हैं। इसके सिवा यहां एक और अतिप्राचीन मन्दिर है। स्थानीय पूर्वतन जमींदारों द्वारा प्रतिष्ठित एक पुराना दुर्ग भी नजर आता है।

बेरि (सं० स्त्री०) बेंत आदिसे बुन कर बना हुआ यह नाव या बजरा।

बेरि—१ मध्यभारत एजेन्सीके बुन्देलखण्डके अन्तर्गत एक छोटा सामन्त राज्य। यह अक्षा० २५° ५५′ से २५° ५७′ उ० तथा देशा० ७९° ५५′ से ८०° ४′ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ३० वर्गमील है।

२ उक्त राज्यका एक प्रधान नगर; केन नदीके बायें किनारे कालिंजरसे २० मील दक्षिणपूर्वमें अवस्थित है। यहांके सरदार पूमार वंशीय राजपूत हैं। इनके लोगोंको सनद इन्हें वृटिश गवर्मेण्टसे मिली है।

बेरि—पञ्जाबके रोहतक जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २८° ४२′ ३० तथा देशा० ७६° ३७′ पू०के मध्य अवस्थित है। ९३० ई०में दोगराय जोष वणिकोंके द्वारा यह नगर प्रतिष्ठित हुआ। यहां प्रति वर्ष आश्विन और माघके महीनेमें देवीके उद्देशसे दो मेले लगते हैं। अन्तिम मेलेमें गाय, घोड़े और गदहे आदि बिकनेको आते हैं। जार्ज टामस नामक एक अंगरेजपुरुषने जाट और राजपूत सेनाओंसे यह स्थान दखल किया था। मराठोंने जार्ज टामसको जो जागीर दी, यह बेरीनगर उसीके अन्तर्भुक्त है।

बेरि-बेरि—रोगविशेष (Beri-Beri)। यह रोग दुर्भिक्षजनित है। काले ज्वरकी तरह कभी कभी यह दिखाई देता है। मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके अनेक अस्वास्थ्यकर स्थानोंमें इस रोगका प्रादुर्भाव है। डेंगू ज्वरकी तरह इसने १८७०-८ ई०में कलकत्ते और उसके निकटवर्ती स्थानवासियों पर आक्रमण किया। बहुतेरे अच्छे हो गये, परन्तु पूर्व-वत् स्वास्थ्य और बल उन्होंने फिर नहीं पाया। इसमें थोड़ा थोड़ा ज्वर आता है। सूर्योदय होने पर पैरका अगला हिस्सा धीरे धीरे फूलता जाता है तथा उस समयमें ज्वरकी मात्रा भी अधिक होती है। सन्ध्याके समय सूजन कम हो जाती है तथा ज्वर भी घट जाता है।

बेरिकिद्—मन्द्राज-प्रदेशके मदुरा जिलान्तर्गत एक भू-सम्पत्ति और उसके अन्तर्गत एक नगर।

बेरिया—मध्यप्रदेशके निमार जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। मालवके घोरी वंशधरोंने इसे बसाया है। १४वीं शताब्दीसे ले कर १६वीं सदीके मध्य उक्त राजाओंने नगरके दक्षिण २ मील विस्तृत एक चहबच्चा बनाया। १८.. ई०में उसका जीर्णसंस्कार हुआ। नगरमें एक सुन्दर जैनमन्दिर और जैन-वणिकसम्प्रदायका वास है।

बेरुआ—पूर्व बङ्गवासी निम्नश्रेणीकी जातिविशेष। ये लोग कृषिजीवी हैं और धीवरका भी कार्य करते हैं। चण्डालोंके ही साथ खाते पीते हैं, इस कारण इन्हें उक्त जातिकी ही एक शाखा माना गया है। किंतु उन-में आदान-प्रदान नहीं चलता। ये लोग महाजालको जाल फेंक कर मछली पकड़ते हैं।

बांस या सरकण्डेका 'बेड़ा' बना कर उसीसे नदी या सोतेका जल बांध देते हैं। इससे मछली बांधसे बाहर निकल नहीं सकती, बेड़ेके ही चारों तरफ रह जाती है। इस प्रकार ये आसानीसे उन मछलियोंको पकड़ लेते हैं।

सभी बेरुआ काश्यप गोत्रीय हैं। इनका दलपति या मण्डल पात्र बेरुआ कहलाता है। चण्डालोंका पुरोहित ही इनका पुरोहित होता है। कहते हैं, कि ये लोग सगोत्रमें विवाह नहीं करते, किन्तु यथार्थमें यह नहीं है, उसके बिना काम चलता ही नहीं।

बेरुर—मन्द्राज-प्रदेशके मलवार जिलान्तर्गत पोनानी तालुकका एक प्राचीन नगर। यह कुट्टिपुरम् रेल स्टेशनसे ३ मील दक्षिणमें अवस्थित है। यहांके एक प्राचीन मन्दिरके सामनेवाले स्तम्भमें शिलालिपि उत्कीर्ण है।

बेरोन्द्रा—मध्यभारत एजेन्सीके बुन्देलखण्डके अन्तर्गत एक सामंत राज्य। बरौन्दा देखो।

वेणि—१ युक्तप्रदेशके मुरादाबाद जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यहां एक बड़ा स्तूप है। स्थानीय लोग इसे राजा वेनका प्रासादावशेष बतलाते हैं।

२ युक्तप्रदेशमें एटा जिलान्तर्गत एक नगर। यह स्थानीय वाणिज्य-केन्द्र समझा जाता है।

वेद्दि—मध्यप्रदेशमें छिन्दवाड़ा जिलान्तर्गत एक नगर।

वेल (सं० क्ली०) उपवन, बाग। (हेम)

वेलका—बङ्गालके रङ्गपुर जिलान्तर्गत एक वाणिज्यप्रधान ग्राम। यहां पटसन और सरसोंका जोरों वाणिज्य चलता है।

वेलकुचि—बङ्गालके पवना जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २४° २०´ उ० तथा देशा० ८९° ४८´ पू०के मध्य यमुना नदीके किनारे अवस्थित है। यहां पटसन, सूती कपड़े, चावल तथा अन्यान्य द्रव्योंका वाणिज्य चलता है।

वेलखार—युक्तप्रदेशके मिर्जापुर जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह अहरौरा नगरसे दक्षिणमें अवस्थित है। गांवके पासवाले एक मैदानमें ११। फुट लंबा और १५ इञ्च चौड़ा एक मीनार है। उस मीनारके ऊपर एक छोटी गणेशकी मूर्त्ति स्थापित है। मीनारमें कुछ शिलालिपियाँ भी देखी जाती हैं, उनमेंसे ऊपरकी लिपि १२५३ संवत्‌में कन्नौजराज लक्ष्मणदेवके राज्यकालमें उत्कीर्ण है। उस लिपिसे जाना जाता है, कि कन्नौजके राठौरराज जयचन्द्रके मुसलमानों द्वारा पराभव और मृत्युके ३ वर्ष पीछे यह मीनार खड़ा किया गया था। स्तम्भलिपि मुसलमान अभ्युदयका उल्लेख न करके हिन्दू राजत्वकी गरिमा ही कीर्त्तन करती है।

वेलखेरा—मध्यप्रदेशके जबलपुर जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह एक स्थानीय वाणिज्यकेन्द्र है।

वेलगांव—(वेलगाम) बम्बई प्रेसिडेन्सीके दक्षिण विभागका एक जिला। अक्षा० १५° २२´ से १६° ५६´ उ० और देशा० ७४° ४´ से ७५° ३५´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण करीब पांच हजार वर्गमील है। इसके उत्तरकी सीमा पर निजाम और जाटराज्य, उत्तर-पूर्व सीमा पर कलादगी जिला, पूर्व सीमा पर जामखंडी और मुधोल राज्य, दक्षिण और दक्षिणपूर्व सीमा पर धारवाड़, उत्तर कणाड़ा और कोल्हापुरराज्य, दक्षिणपश्चिममें गोआराज्य तथा पश्चिम सावन्तवाड़ी और कोल्हापुरराज्य है। उत्तरपूर्वसे दक्षिणपश्चिम तक लम्बाई १२० मील और चौड़ाई ८० मील है।

यह जिला गण्डशैल मालासे विभूषित हो स्थान-स्थानमें उपत्यका, अधित्यका और अत्युच्च शृङ्गावलीसे परिशोभित है। एक ओर जैसे शस्यपूर्ण समतल प्रान्तरवक्षमें नदीमालाकी शान्तिमयी शोभा है, दूसरी ओर वैसे ही अत्युन्नत शैल शृङ्गोंमें दुर्भेद्य गिरिदुर्गोंका धीर गम्भीर दृश्य है। यह शैलश्रेणी पश्चिमघाट या सह्याद्रिशैलकी एक शाखा है। जिलेके पश्चिम और दक्षिणांशके पार्वत्यप्रदेश अपेक्षाकृत उन्नत और क्रम-निम्नभावसे पूर्वाभिमुख कलादगी जिले तक आया है। दक्षिणमें सह्याद्रि-शैलके सशिखर शाखाप्रशाखाओंके इधर उधर फैले रहने पर भी बीच-बीचमें निविड़ वन-माला और जनहीन समतल भूमि दीखती है। इसके दक्षिण भागमें बड़ी बड़ी नदीके किनारे आम, जामुन, कटहल, इमली आदि वृक्ष फलके बोझसे अवनत हो उस जनहीनताके बीचमें भी वहांकी सौन्दर्य-वृद्धि कर रहे हैं। जिलेके उत्तर और पूर्व अंश शस्यपूर्ण श्यामल प्रान्तरमय हैं और उसमें छोटे छोटे कृषकोंके गांव हैं।

इस जिलेके उत्तर कृष्णा, बीच भागमें घाटप्रभा और दक्षिणमें मालप्रभा नदी सह्याद्रिपादसे निकल कर पूर्वाभिमुख धीर मन्थर गतिसे बङ्गोपसागरसे गिरती है। इन तीन नदियोंके पश्चिमांशकी जलराशि मधुर है; किन्तु पूर्वांशका जल समुद्रस्रोतके साथ मिले रहनेसे कुछ लवणाक्त हो गया है।

इस पार्वतीय प्रदेशके स्थान-स्थानमें लौह, अभ्र, (अबरक), वेलपत्थर, दानादार और स्फटिक पत्थर आदि पाये जाते हैं। वनभागमें शाल, श्वेत शाल, हर्रि, हरीतकी और कटहल आदि पेड़ और जीव-जन्तुओंमें नाना जातिके हरिण, बनैले सूअर, व्याघ्र, लकड़बग्घा और नाना तरहके पक्षी दिखाई देते हैं।

यहांका इतिहास महाराष्ट्र-इतिहासके साथ संश्लिष्ट रहनेसे स्वतन्त्र भावसे लिखा न गया। सन् १८१८

ई०में पूनेकी सन्धिकी शर्तोंके अनुसार पेशवाने अङ्गरेजोंके हाथ धारवाड़ विभागके साथ यह जिला दान दे दिया था। उस समयसे यह धारवाड़ जिला नामसे अंगरेजों द्वारा शासित होने लगा। पीछे शासनकार्यकी सुविधाके लिये सन् १८३६ ई०में उक्त विभागके दक्षिणांशमें धारवाड़ और उत्तरांशमें बेलगांव नामसे दो स्वतन्त्र जिलोंमें विभक्त हुआ। सन् १८४८-४९ ई०में यहां पहली बार और १८८१-१८८२ ई०में दूसरी बार बन्दोबस्त हुआ। इस जिलेमें बेलगांव और उसके निकट छावनी, गोकाक, अथनि, निपाणि, सौन्दत्ती और यादवाड़ नामके प्रधान नगर हैं। यहांके अधिवासी साधारणतः लिङ्गायत शैव हैं। सिवा इनके अन्यधर्मके मतावलम्बी भी हैं। कैकाडि नामकी दस्युजाति ही यहां प्रसिद्ध है।

यह जिला अथनी, बेलगांव, चिक्कोडी, सिक्कोडी, गोकाक, परसगड़ और सम्पगांव नामक उपविभागोंमें विभक्त है। परसगड़ उपविभागके पर्वत पर यल्लमादेवीका प्रसिद्ध तीर्थ है। यहां प्रतिवर्ष कार्त्तिक और चैत्रके महीनेमें देवीके उद्देशसे महासमारोहसे पूजा और तीन दिनव्यापी मेला लगता है। इस मेलेमें प्रायः ४० हजार तीर्थयात्री एकत्र होते हैं। कार्त्तिकमें यल्लमादेवीके स्वामीकी मृत्युका पर्व और चैत्रमें उसका पुनर्जीवन समाधान है। कार्त्तिक मासमें मूलमन्दिरसे कुछ दूर पर एक छोटे पीठ पर आ मालिन्यायोग्यक पूजादि किये जाते हैं। कुछ काल बीत जाने पर समागत स्त्रियां यल्लमादेवीके स्वामीके वियोगदुःखमें समवेदना प्रकट करनेके लिये रो उठती हैं। बीस या ३० हजार स्त्रियोंकी रोदन ध्वनि कितनी हृदयविदारक होती होगी, यह सहज ही अनुमेय है। इसके बाद सभी स्त्रियां देवीके वैधव्यकी समवेदनामें अपने हाथकी चूड़ियां फोड़ डालती हैं।

२ बम्बईप्रेसिडेन्सीके बेलगाम जिलेका एक उपविभाग। इसका भूपरिमाण ६६२ वर्गमील है।

इस उपविभागमें निम्नोक्त गिरिदुर्ग विद्यमान है—

१ बेलगाम गिरिदुर्ग। २ महीपतगड़ गिरिदुर्ग, बेलगांवसे ७ मील पश्चिमोत्तर सुलगी नामक स्थानमें अवस्थित है। ३ कलानिधिगड़—बेलगामसे १७ मील पश्चिम कलिवेट नामक स्थानमें — बेलगामसे १६ मील पश्चिमोत्तर कोरज नामक स्थानमें है। ५ पारगड़—बेलगामसे ३२ मील पश्चिम दक्षिण पारगड़ शैलशृङ्ग पर अवस्थित है। ६ पाईगड़—बेलगांवसे २२ मील पश्चिम है। (अक्षा० १५° ५९' उ० और देशा० ७४° १५' पू०) यहां रेवननाथका मन्दिर विद्यमान है।

३ उक्त जिलेका प्रधान नगर। समुद्रपृष्ठसे २५०० फुटकी ऊंचाई पर बेलगरी माला नामकी मार्कण्डी नदीकी एक शाखा स्रोतके ऊपर स्थापित है। मार्कण्डीके-पार्श्वमें निम्नभूमि ही इस नदीका कलेवर पुष्ट हुआ है। यह अक्षा० १५° ५२' एवं देशा० ७४° ३४' पू०में विस्तृत है। नगरके पूर्व दुर्ग और पश्चिमभागमें सेनानिवास है। आकृति असमवृत्त है। यहां बांस बहुत होते हैं। इसीलिये कनाड़ी भाषामें इस नगरका नाम वेणुग्राम है और उससे ही वेणु, वेलु या बेलगाम रूपान्तरित हुआ है। यहांका गिरिदुर्ग छोटा होने पर भी सुरक्षित है। आयतन १००० गज लम्बा और ७०० गज चौड़ा है। प्रस्तरखण्ड काट कर इस दुर्गके चारों ओर खाई तय्यार की गई है। सन् १८१८ ई०में पेशवाके पतन होनेके बाद अंग्रेजोंने इस दुर्ग पर अधिकार कर लिया। २१ दिन तक अवरोध करनेके बाद दुर्गस्थ सैन्योंने अंग्रेजोंके हाथ आत्मसमर्पण कर दिया।

किंवदन्ती है, कि सन् १५१९ ई०में यह दुर्ग बना था। इसमें आमद खांकी दरगाह या मसजिद्‌-ए-सफा और १२ या १३वीं सदीमें स्थापित दो जैनमन्दिर हैं। मसजिद सफाके प्रवेशद्वार पर १५३० ई०का एक शिलाफलक है।

अङ्गरेजोंके अधिकारमें आ जानेके बादसे बेलगांवके नाना विषयोंमें उन्नति हुई है। वाणिज्यप्रभावसे यह नगर धनसे पूर्ण हुआ है। सेनानिवास स्थापनके साथ साथ देशीय बालकोंकी शिक्षाकी व्यवस्था हुई है। विङ्गुरला बन्दर यहांका प्रधान वाणिज्य-केन्द्र है। इस स्थानसे ही यहांकी आमदनी रफ्तनी होती है। यहां रुईसे कपड़ा बुननेका बहुत बड़ा कारोबार है। अभी हालमें एक आर्ट कालेज खोलनेका निश्चय हो चुका है। इसके लिये विङ्गुरला स्टटहाउसके

किसी देशाई महाशयने एक लाख रुपया सालाना आमदनीकी सम्पत्ति दान की है।

वेलगावि—महिसुर राज्यके शिमागो जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० १४° २३´ उ० तथा देशा० ७५° १८´ पू०के मध्य अवस्थित है। पहले इस नगरमें कदम्ब-वंशीय राजाओंकी राजधानी थी। १२वीं सदी तक यह दाक्षिणात्यके सभी नगरोंसे उन्नत रहा। दाक्षिणात्य-वासी इसे 'नगरमाता' कहते थे। यहां अनेक ध्वस्त देवमन्दिर और तत्संलग्न खोदित स्तम्भादि दृष्टिगोचर होते हैं। सारे महिसुर राज्यमें ऐसा भास्करशिल्पपूर्ण कीर्त्तिनिदर्शन और कहीं भी नहीं है। यहांसे अनेक शिलालिपियाँ पाई गई हैं, उनमेंसे कुछका पाठोद्धार भी हुआ है। वे सब शिलाफलक प्राचीन राजवंशके गौरव व्यञ्जक हैं। वल्लालवंशीय राजाओंके अधिकारकालमें भी यहांकी समृद्धि अक्षुण्ण थी; पीछे १३१० ई०में मुसलमानों द्वारा जब उक्त राजवंशका अधःपतन हुआ तब उसके साथ साथ हिन्दूकीर्त्तिका विलोप हो गया। वर्त्तमान कालमें उस भग्नावशेषका कुछ अंश महिसुरके जादूघरमें रखा हुआ है।

वेलघरिया—बङ्गालके २४ परगना जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह कलकत्तेसे ७ मील उत्तरपूर्वमें अवस्थित है। यहां इष्टर्न बेङ्गाल रेलवेका एक स्टेशन है।

वेलजियम—यूरोपके अन्तर्गत एक छोटा राज्य। यह हालेण्डके दक्षिणमें अवस्थित है। इसके उत्तर-पश्चिममें उत्तर सागर, दक्षिणपश्चिम और दक्षिणमें फ्रान्स, पूर्वमें लक्‌जम्बर्ग और पेनिस प्रुसिया है। इसकी लंबाई १७४ मील और चौड़ाई १०६ मील है।

ब्रुसेल्स नगरी इसकी राजधानी है। इसके सिवा एण्टोयर्स, घेण्ट, लिज, ब्रुजेस, वाटियार, थुर्ने, मालिन्स लौभेन, आर्लोन, और नामूर नगर वाणिज्यके लिये प्रसिद्ध है। इस छोटेसे राज्यमें प्रायः दो हजार मील रेलपथ फैला हुआ है। इस रेलपथमें तथा स्केल्ड, मिउज और येजार नदीसे यहांका वाणिज्य चलता है। यहां सूत, सूतीवस्त्र, गलीचे, पशमीने, लिलेन, फीता, टोपी, मोजा, चमड़ा, ग्लास क्लाथ, कागज, कांचकी वस्तुएं, पोर्सिलेन द्रव्य, मोमजुसली काँटाविरेक, रासायनिक द्रव्य, वियार मद्य, अन्यान्य स्पीरिट, चीनी तथा वैज्ञानिक और वाद्य यन्त्रादि यहां प्रस्तुत हो नानास्थानोंमें भेजे जाते हैं।

प्राचीन वेल्जी (Belgae) जातिकी वासभूमि होनेसे इस स्थानका नाम वेलजियम हुआ है। १५वीं सदीसे विभिन्न समयोंमें वेलजियम राज्य अष्ट्रिया और स्पेनराज्यके शासनाधीन हुआ था। सन् १७९५ ई०में फ्रान्सीसियोंने इस पर अधिकार किया और सन् १८१४ ई०की सन्धिके अनुसार यह हालण्डके साथ मिल कर नेदरलेण्डके नामसे प्रसिद्ध हुआ। वर्त्तमान वेलजियमके अन्तर्गत फ्लाण्डार्स नामक प्रदेश जिसने एक समय स्वाधीन भावसे एक छोटे राज्यके रूपमें शासनकार्य परिचालन किया था यह यूरोपीय इतिहासमें "The Cockpit of Europe" नामसे लिखा है। सन् १८३० ई०की २५वीं अगस्तको ब्रुसेल्स नगरमें एक राजविद्रोह उपस्थित हुआ। उसके फलसे उक्त वर्षसे ४थी अक्तूबरको उक्त प्रदेशकी विच्युति हुई थी। सन् १८३१ ई०की ४थी जूनको यहां एक जातीय महासमितिका अनुष्ठान हुआ। उसमें साक्सेकोवर्गके युवराज लिओपोल्ड वेलजियमोंके राजा चुने गये। १२वीं जुलाईको वे राजपद स्वीकार कर २१वीं तारीखको सिंहासन पर विराजमान हुए। इससे पहले फ्रान्सीसीराज लुई फिलिपके द्वितीय पुत्र ड्यूक डोनिमूरको उक्त राजपद देनेकी इच्छा प्रकट की गई किन्तु उन्होंने राजपद लेनेसे इनकार कर दिया। जो हो, सन् १८३९ ई०की १९वीं अप्रिलको लण्डन शहरकी सन्धिके अनुसार राजा १म लिओपोल्ड और नेदरलैण्डके राजाके साथ शान्ति और सौहार्द स्थापित हुआ। इसके बाद यूरोपके अन्यान्य राजाओंने वेलजियमको एक स्वतन्त्र राज्य कह कर घोषित किया।

वेलडङ्गा—बङ्गालके मुर्शिदाबाद जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २३° ५७´ उ० तथा देशा० ८८° १८´ पू०के मध्य विस्तृत है।

वेलदार—हिन्दूराजाओंके अधीन रक्षित एक श्रेणीकी सेना। ये लोग कुदाल आदि यन्त्र ले कर रणक्षेत्रमें जाते और आवश्यकतानुसार मिट्टी खोद कर दुर्ग प्राचीर आदि तोड़नेके लिये सुरंग बनाते हैं।

बेलदार—बिहार और पश्चिम बङ्गालमें रहनेवाली निम्न-श्रेणी की एक जातिका नाम। बेल (कुदाली) से कर मिट्टी खोदा करती रहती है, इससे इस जातिका नाम बेलदार हुआ। रानीगञ्ज और बराकरकी कोयलेकी खानोंमें ये काम करते हैं।

बिहारवासी बेलदारोंमें चौहान और कनौजिया या कनपरा नामके दो वंश या कुल और कश्यप गोत्र प्रच-लित है। इनमें बाल्य विवाह मौजूद है, किन्तु अनेक स्थानोंमें युवती कन्याका विवाह भी देखा जाता है। सलेरा, धरोहर प्रथाके अनुसार यह विवाह सम्पन्न होता है। विवाहका नियम निम्नश्रेणियोंकी तरह ही है।

मैथिलब्राह्मण इनका पौरोहित्य किया करते हैं। धर्म, कर्म, श्राद्ध और अन्त्येष्टि क्रिया आदि निम्नश्रेणीके हिन्दुओंकी तरह ही होती है। मुसलमानोंके विवाहमें मशालचीका काम करके जो कुछ पाते हैं, उसीसे ये अपना जीवन निर्वाह करते हैं।

उत्तर-पश्चिम भारतमें और दाक्षिणात्यमें भी बेलदार देखे जाते हैं। इनका कोई वासस्थान निर्दिष्ट नहीं है। साधारणतः तम्बूमें ही ये वास करते हैं। जहां जब यह कामका समाचार पाते हैं, उसी समय उस देशमें ये चले जाते हैं। कहीं कहीं मिट्टीकी जगह ये पत्थर भी काटा करते हैं। कुएं या तालाब आदि खोदा करते हैं और चहारदीवारी भी बनाते हैं। पूनाके बेलदार हिन्दी और मराठीमें बातचीत किया करते हैं। ये प्रायः १५० हाथकी पगड़ी बांधते हैं। ये बड़ी माई या शीतला माताकी पूजा करते हैं तथा इनकी मृत्युकी अधिष्ठात्री समझ कर बड़ी भाई कहते हैं। सिवा इनके माता, माई, देवी, भवानी, आदि विभिन्न शक्ति-मूर्त्तियोंकी उपासना करते हैं। देवीपूजामें ये बकरेकी बलि चढ़ाया करते हैं।

हिन्दूराजाओंके पास पहले बेलदार फौजें रहा करती थीं। राजा सीतारामकी बेलदार फौज कभी मिट्टी खोदती और आवश्यक होने पर युद्ध भी करती थी। उस समय इन निम्न श्रेणीके हिन्दुओंसे फौजें पहल की जाती थीं।

उत्तर-पश्चिमके बेलदारोंमें बाघेल, चौहान और कटोच वंश विद्यमान है। प्रथम दो राजपूत जातिका अनुकरण करते हैं। पर या यह आयका गूजरी चढ़ाई अन्दाज करनेके कारण कटोच इनको जाना हुई है। सिवा इसके बरैनोंमें माहुल और कोरा हैं, गोरखपुरमें देशी पारविन्द और सरवरिया; बस्ती जिलेमें पारविन्द और मालवाया आदि दल दिखाई देते हैं। वर्त्तमान समय-में सुसभ्य हिन्दुओंके सहवाससे ये बघेली, बाछल, बदेलिया बिन्दवार, चौहान, डांगिन, गहरवाड़, गौड़, गौतम, घोषी, कुर्मी ओनियो, कोरा, राजपूत, ठाकुर आदि वंशगत नाम तथा आगरवाला, अवहवंश, अयोध्यावासी, मदौरिया, दिल्लीवाला, गङ्गापारी, गोरख-पुरी, कनौजिया, काशीवाला, सरवरिया (सरयूपार-वासी) और उत्तराह आदि नामोंसे विद्यमान हैं।

जिस स्त्रीको स्वामी छोड़ देता है, वह दूसरा विवाह करती है। ये पांचों पीरको पूजा चढ़ाते हैं। शिवरात्रि-के पर्व पर महादेवजीकी पूजा तथा उपवासव्रत करते हैं।

उड़ीसेके बेलदार केवल तालाब पोखरे खोदते हैं। इनमें एक जमादार रहता है। जमादारके अधीन कई नायक रहते हैं। इन नायकोंके अधीन दसके दस बेलदार रहते हैं। इनका भी कोई निर्दिष्ट वासस्थान नहीं है।

बेलन (सं० क्ली०) हिंगु, हींग।

बेलनाड़—दाक्षिणात्यवासी तैलङ्ग ब्राह्मणकी एक शाखा। इनकी संख्या अन्यान्य सम्प्रदायसे कहीं अधिक है। १५ वीं सदीमें जिन वल्लभाचार्यकी प्रतिभाने सारे संसारको उज्ज्वल कर दिया था, जो एक दिन वैष्णव-समाजमें भगवदवतार कह कर पूजित हुए थे, जिनके वंश-धर आज भी राजपूताना, गुजरात और बम्बई प्रदेशमें प्रचुर पाये हैं, उन्होंने ही इस ब्राह्मणकुलमें जन्मग्रहण किया है। मद्रासमें प्रायः सभी जगह तथा गोदावरी और कृष्णा जिलेमें बहुसंख्यक बेलनाड़ ब्राह्मणोंका वास देखा जाता है।

बेलपुर—मन्द्राज प्रदेशके गोदावरी जिलान्तर्गत तनुक तालुकका एक नगर। यह अक्षा० १६° ४१′ उ० तथा देशा० ८१° ४५′ पूर्वके मध्य अवस्थित है।

शिलालिपिमें हायनामकी राजकन्या बेलपुरका उल्लेख

है। १म परमर्दिदेवने द्वारसमुद्र और वेलपुर राजधानीको अधिकार किया था।

वेलवती—बम्बई प्रदेशके धारवाड़ जिलांतर्गत हाङ्गल तालुकका एक नगर। यह अक्षा० १४° ५४' उ० तथा देशा० ७५° १५' पू० के मध्य हङ्गलसे ८ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यह प्राचीन लीलावती नामक नगरका एकांश माना जाता है। यहां गोलकेश्वर शिवमूर्त्ति विद्यमान है। मन्दिर काले पत्थरोंका बना हुआ है। यह बृहदाकार और नाना शिल्पयुक्त है। मन्दिरगात्रमें २ शिलालिपियां हैं।

वेलवा—महिसुरवासी जातिविशेष। ताड़ और खजूरका रस संग्रह कर बेचना इनका व्यवसाय है। ये लोग मलयालम् भाषामें बोलचाल करते हैं।

वेलवाटगी—बम्बईप्रदेशके धारवाड़ जिलान्तर्गत नवलगुण्ड तालुकका एक बड़ा गांव। यह नवलगुण्डसे ३ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहां रामलिङ्गदेवका टूटा फूटा मन्दिर विद्यमान है।

वेलवाड़ी—बम्बईप्रदेशके बेलगाम जिलान्तर्गत सांपगांव तालुकका एक नगर। यह अक्षा० १५° ४२' उ० तथा देशा० ७४°५६' पू०के मध्य सांपगांवसे १२ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। यहां वीरभद्रदेवका एक बहुत प्राचीन मन्दिर विद्यमान है। स्थानीय लोग उसकी *गठनप्रणालीको "जखनाचार्यप्रथा"* कहते हैं। कित्तुर देशाईके समय उसका संस्कार हुआ। यहां ६६२ शकमें उत्कीर्ण पश्चिमचालुक्य राजवंशका एक शिलालेख दिखाई देता है।

वेलवार—अयोध्यावासी कृषिजीवी जातिविशेष। इनमें सनाढ, बघेल, भोएडा और गौड़ नामके श्रेणीविभाग दिखाई देते हैं।

वेला (सं० स्त्री०) वेल्यतेऽनयेति वेल 'गुरोश्च हलः' इति अ, तत टाप्। १ काल, वक्त। पर्याय—समय, क्षण, वार, अवसर, प्रस्ताव, प्रक्रम। २ मर्यादा। ३ समुद्रकूल, समुद्रका किनारा। ४ समुद्रको लहर। ५ अक्लिष्टमरण। ६ रोग, बीमारी। ७ होरात्मक कालभेद, समयका एक विभाग जो दिन और रातका चौबीसवां भाग होता है। कुछ लोग दिनमानके आठवें भागको भी वेला मानते हैं। ८ वाक्, वाणी। ९ बुधकी स्त्री। (विश्व) १० दन्तमांस, मसूड़ा। (हारावली) ११ भोजन, खाना। (त्रिकां०)

वेला—अयोध्याप्रदेशके प्रतापगढ़ जिलान्तर्गत एक नगर। यह इलाहाबादसे (फैजाबाद जानेके रास्ते पर) ३६ मील और प्रतापगढ़से ४ मीलको दूरी पर अवस्थित है। शहरमें दो देवमन्दिर और एक मसजिद है।

वेला—मध्यप्रदेशके नागपुर जिलान्तर्गत एक नगर। यह बोरिसे १० मील दक्षिण अक्षा० २०° ४७' उ० तथा देशा० ७९° ४' पू०के मध्य अवस्थित है। गौली जमींदारोंके आधिपत्यकालमें यह नगर स्थापित हुआ है। रायसिंह चौधरी नामक एक जमींदारने यहां एक दुर्ग बनवाया था। अभी यह टूटीफूटी अवस्थामें पड़ा है। पिंडारी युद्धके समय यह नगर उक्त डकैतोंके उपद्रवसे दो बार नष्टप्राय हो गया था। आज भी यहां मोटा सूती कपड़ा और चट बुननेका कारबार है। उस देशी चटसे थैले बनाये जाते हैं। बंजारा वणिक् उस थैलीमें माल भर कर यहांसे दूसरी जगह ले जाते हैं। यहां स्थानीय उत्पन्न द्रव्यविक्रयकी एक बड़ी हाट है।

वेला—बेलुचिस्तानके लास-विभागका एक प्रधान नगर। पुरली नदी तीरवर्त्ती पहाड़ी अधित्यकाभूमि पर यह नगर बसा हुआ है। प्राचीन अरबी कवियोंने इसका *आर्मा बेल वा काड़ाबेल नामसे* उल्लेख किया है। यह नगर ध्वस्त और जनशून्य अवस्थामें पड़ा रहने पर भी इसकी पूर्व स्मृति लुप्त नहीं हुई है। प्राचीन मुद्रा, नाना अलङ्कार, खिलौने और तरह तरहके पात्रादि इस जनपदकी अतीत समृद्धि घोषित करते हैं। इसकी पार्श्ववर्त्ती शैलश्रेणीमें आज भी असंख्य गुहाएं तथा पर्वतगात्र पर खोदित देवमन्दिरें दिखाई देते हैं। ये सब कीर्त्तियां यहांके हिन्दू प्राधान्यकी परिचायक हैं। किन्तु मुसलमानोंका कहना है, कि यह फरहद और परियोंकी कीर्त्ति और वासभूमि है। यथार्थमें यह एक समय स्थानीय प्राचीन शासनकर्त्ताओं वा विभिन्न सरदारोंका विश्रामस्थान था, इसमें जरा भी संदेह नहीं। मुसलमानी अमलमें यह स्थान उनके हाथ आया था। उस समय यहां बहुतसे मकबरे बनाये गये थे।

बेलदार—बिहार और पश्चिम भारतमें रहनेवाली निम्न-श्रेणीकी एक जातिका नाम। बेल (कुदाली) ले कर मिट्टी खोदा करती रहती है, इससे इस जातिका नाम बेलदार हुआ। रामगढ़ और बराकरकी कोयलेकी खानोंमें ये काम करते हैं।

बिहारवासी बेलदारोंमें चौहान और कनौजिया या करवया नामके दो वंश या दल और कश्यप गोत्र प्रचलित है। इनमें बाल्य विवाह मौजूद है, किन्तु अनेक स्थानोंमें युवती कन्याका विवाह भी देखा जाता है। अमीर, गरीब प्रथाके अनुसार यह विवाह सम्पन्न होता है। विवाहका नियम निम्नश्रेणीकी तरह ही है।

मैथिलब्राह्मण इनका पौरोहित्य किया करते हैं। धर्म, कर्म, श्राद्ध और अन्त्येष्टि क्रिया आदि निम्नश्रेणीके हिन्दुओंकी तरह ही होती है। मुसलमानोंके विवाहमें मशालचीका काम करके जो कुछ पाते हैं, उसीसे ये अपना जीवन निर्वाह करते हैं।

उत्तर-पश्चिम भारतमें और दाक्षिणात्यमें भी बेलदार देखे जाते हैं। इनका कोई वासस्थान निर्दिष्ट नहीं है। साधारणतः तम्बूमें ही ये वास करते हैं। जहां जब यह कामका समाचार पाते हैं, उसी समय उस देशमें ये चले आते हैं। कहीं कहीं मिट्टीकी जगह ये पत्थर भी काटा करते हैं। कुएं या तालाब आदि खोदा करते हैं और महाराष्ट्रोंमें भी बनाते हैं। पूनाके बेलदार हिन्दी और मराठीमें बातचीत किया करते हैं। ये प्रायः १५० हाथकी पगड़ी बांधते हैं। ये खण्डोबा या तोलजा भवानीकी पूजा करते हैं तथा इनको मृत्युकी अधिष्ठात्री समझ कर बड़ी भक्ति करते हैं। सिवा इनके माता, भाई, देवी, भवानी, आदि विभिन्न शक्ति-मूर्त्तियोंकी उपासना करते हैं। देवीपूजामें ये बकरेकी बलि चढ़ाया करते हैं।

हिन्दूराजाओंके साथ पहले बेलदार फौजें रहा करती थीं। राजा सीतारामकी बेलदार फौज कभी मिट्टी खोदती और आवश्यक होने पर युद्ध भी करती थी। उस समय इस निम्न श्रेणीके हिन्दुओंमें फौजें पलन की जाती थीं।

उत्तर-पश्चिमके बेलदारोंमें राठौर, चौहान और कनौज वंश विद्यमान है। मध्य देशके राजपूत जातिका अनुकरण करते हैं। चार या पांच मासके गुणसे यहां गंगास्नान करनेके कारण कनौज इनकी शाखा हुई है। मिर्जा-पुरके बेलदारोंमें ठाकुर और कोरा हैं। गोरखपुरमें देशी धरविन्द और सरवरिया, बस्ती जिलेमें खारविन्द और भारद्वाज आदि दल दिखाई देते हैं। पश्चिमोत्तर प्रदेशमें सुसभ्य हिन्दुओंके अनुकरणसे ये बड़गोती, बाछल, बदेलिया बिसेन, चौहान, दीक्षित, गहरवार, गौड़, गौतम, जादौ, कुर्मी, सोलंकी, भोर, राजपूत, ठाकुर आदि वंशगत नाम तथा आगरवाला, अवधवंश, अयोध्यावासी, भदौरिया, दिल्लीवाला, गढ़वारी, गोरख-पुरी, कनौजिया, कालपीवाला, मरवरिया (मारवाड़-वासी) और उमराह आदि नामोंसे विख्यात हैं।

जिस स्त्रीको स्वामी छोड़ देता है, वह दूसरा विवाह करती है। ये पांचों पीरको पूजा चढ़ाते हैं। शिवरात्रिके पर्व पर महादेवजीकी पूजा तथा उपवासव्रत करते हैं।

बड़ौसेके बेलदार केवल तालाब पोखरे खोदते हैं। इनमें एक जमादार रहता है। जमादारके अधीन कई नायक रहते हैं। इन नायकोंके अधीन दशके दल बेलदार रहते हैं। इनका भी कोई निर्दिष्ट वासस्थान नहीं है।

बेलन (सं० क्ली०) हिंगु, हींग।

बेलनाड़—दाक्षिणात्यवासी तैलङ्गी ब्राह्मणकी एक शाखा। इनकी संख्या अन्यान्य सम्प्रदायसे कहीं अधिक है। १५ वीं सदीमें जिन वल्लभाचार्यकी प्रतिभाने सारे संसारको उज्ज्वल कर दिया था, जो एक दिन वैष्णव-समाजमें भगवदवतार कह कर पूजित हुए थे, जिनके मंत्र पर आज भी राजपूताना, गुजरात और बम्बई प्रदेशमें आदर पाते हैं, उन्होंने ही इस ब्राह्मणकुलमें जन्मग्रहण किया है। मद्रासमें प्रायः सभी जगह तथा गोदावरी और कृष्णा जिलेमें बहुसंख्यक बेलनाड़ ब्राह्मणोंका वास देखा जाता है।

बेलपुर—मन्द्राज प्रदेशके गोदावरी जिलान्तर्गत तालुकका एक नगर। यह अक्षा० १६° ४८' १० उत्तर देशा० ८१° ४५' पूर्वमें मध्य अवस्थित है।

शिलालिपिमें दोवनाम्नी रानीने बेलपुरका उल्लेख

है। १म परमर्दिदेवने द्वारसमुद्र और वेलपुर राजधानीको अधिकार किया था।

वेलवती—बम्बई प्रदेशके धारवाड़ जिलांतर्गत हाङ्गल तालुकका एक नगर। यह अक्षा० १४° ५४´ उ० तथा देशा० ७५° १५´ पू० के मध्य हङ्गलसे ८ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यह प्राचीन लीलावती नामक नगरका एकांश माना जाता है। यहां गोलकेश्वर शिवमूर्त्ति विद्यमान है। मन्दिर काले पत्थरोंका बना हुआ है। यह वृहदाकार और नाना शिल्पयुक्त है। मन्दिरगात्रमें २ शिलालिपियां हैं।

वेलवा—महिसुरवासी जातिविशेष। ताड़ और खजूरका रस संग्रह कर बेचना इनका व्यवसाय है। ये लोग मलयालम् भाषामें बोलचाल करते हैं।

वेलवाडगी—बम्बईप्रदेशके धारवाड़ जिलान्तर्गत नवलगुण्ड तालुकका एक बड़ा गांव। यह नवलगुण्डसे ३ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहां रामलिङ्गदेवका टूटा फूटा मन्दिर विद्यमान है।

वेलवाड़ी—बम्बईप्रदेशके बेलगाम जिलान्तर्गत सांपगांव तालुकका एक नगर। यह अक्षा० १५° ४२´ उ० तथा देशा० ७४°५६´ पू०के मध्य सांपगांवसे १२ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। यहां वीरभद्रदेवका एक बहुत प्राचीन मन्दिर विद्यमान है। स्थानीय लोग उसकी गठनप्रणालीको "जखनाचार्यप्रथा" कहते हैं। कित्तुर देशाईके समय उसका संस्कार हुआ। यहां ११२ शकमें उत्कीर्ण पश्चिमचालुक्य राजवंशका एक शिलालेख दिखाई देता है।

वेलवार—अयोध्यावासी कृषिजीवी जातिविशेष। इनमें ब्रनाढ़, बघेल, मोएडा और गौड़ नामके श्रेणीविभाग दिखाई देते हैं।

वेला (सं० स्त्री०) वेल्यतेऽनयेति वेल 'गुरोश्च हलः' इति अ, तत टाप्। १ काल, वक्त। पर्याय—समय, क्षण, वार, अवसर, प्रस्ताव, प्रक्रम। २ मर्यादा। ३ समुद्रकूल, समुद्रका किनारा। ४ समुद्रको लहर। ५ अक्लिष्ट-मरण। ६ रोग, बीमारी। ७ होरात्मक कालभेद, समयका एक विभाग जो दिन और रातका चौबीसवां भाग होता है। कुछ लोग दिनमानके आठवें भागको भी वेला मानते हैं। ८ वाक्, वाणी। ९ बुधकी स्त्री। (विश्व) १० दन्तमांस, मसूड़ा। (हराउली) ११ भोजन, खाना। (त्रिका०)

वेला—अयोध्याप्रदेशके प्रतापगढ़ जिलान्तर्गत एक नगर। यह इलाहाबादसे (फैजाबाद जानेके रास्ते पर) ३६ मील और प्रतापगढ़से ४ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। शहरमें दो देवमन्दिर और एक मसजिद है।

वेला—मध्यप्रदेशके नागपुर जिलान्तर्गत एक नगर। यह बोरिसे १० मील दक्षिण अक्षा० २०° ४७´ उ० तथा देशा० ७९° ४´ पू०के मध्य अवस्थित है। गौली जमींदारोंके आधिपत्यकालमें यह नगर स्थापित हुआ है। रायसिंह चौधरी नामक एक जमींदारने यहां एक कुआं बनवाया था। अभी यह टूटीफूटी अवस्थामें पड़ा है। पिंडारी युद्धके समय यह नगर उक्त डकैतोंके उपद्रवसे दो बार नष्टप्राय हो गया था। आज भी यहां मोटा सूती कपड़ा और चट बुननेका कारबार है। इस देशी चटसे थैले बनाये जाते हैं। बंजारा वणिक् उस थैलीमें माल भर कर यहांसे दूसरी जगह ले जाते हैं। यहां स्थानीय उत्पन्न द्रव्यविक्रयकी एक बड़ी हाट है।

वेला—बेलुचिस्तानके लास-विभागका एक प्रधान नगर। पुरली नदी तीरवर्ती पहाड़ी अधित्यकाभूमि पर यह नगर बसा हुआ है। प्राचीन अरबी कवियोंने इसका आर्मा बेल वा काड़ाबेल नामसे उल्लेख किया है। यह नगर ध्वस्त और जनशून्य अवस्थामें पड़ा रहने पर भी इसकी पूर्व स्मृति लुप्त नहीं हुई है। प्राचीन मुद्रा, नाना अलङ्कार, खिलौने और तरह तरहके पात्रादि इस जनपदकी अतीत समृद्धि घोषित करते हैं। इसकी पार्श्ववर्ती शैलश्रेणीमें आज भी असंख्य गुहाएं तथा पर्वतगात्र पर खोदित देवमन्दिरें दिखाई देते हैं। ये सब कीर्त्तियां यहांके हिन्दू प्राधान्यकी परिचायक हैं। किन्तु मुसलमानोंका कहना है, कि यह फरहद और परियोंकी कीर्त्ति और वासभूमि है। यथार्थमें यह एक समय स्थानीय प्राचीन शासनकर्त्ताओं वा विभिन्न सरदारोंका विश्रामस्थान था, इसमें जरा भी संदेह नहीं। मुसलमानी अमलमें यह स्थान उनके हाथ आया था। उस समय यहां बहुतसे मकबरे बनाये गये थे।

आज भी यहांके अधिवासियोंका एक तीर्थस्थान बना हुआ है।

बेला—युक्तप्रदेशके झांसीविभागके अन्तर्गत इटावा जिलेका एक प्राचीन नगर। यह अभी एक छोटे ग्राममें परिणत हो गया है। आज भी नाना स्थानोंमें ध्वंस-कीर्ति और नगरके तोरणादि भग्नावस्थामें पड़े दिखाई देते हैं।

बेलागर—सोन नदीके अन्तर्गत एक पहाड़ीग्राम। यहां कुलाकी जड़में एक मुनि उत्पन्न हुए थे।

(भविष्य ब्रह्मख० १०।२१)

बेलाकूल (सं० क्ली०) बेला एव कूलं यस्य। ताम्रलिप्त देशका एक नाम।

"बेलाकूलं तामलिप्तं दामलिप्तं तमालिका।" (त्रिका०)

२ समुद्रकूल, समुद्रका किनारा।

बेलाज्वर (सं० पु०) ज्वरविशेष। लक्षण—शोक, क्रोध, भयोत्पत्ति, रक्ताव या बलहानिके कारण अल्पकालमें मानवोंके जो कम्पन ज्वर होता है उसे बेला कहते हैं।

बेलाजलपान (सं० क्ली०) बेलायां जलपानं। समय पर जलपीना। राजनिघण्टुके मतसे यह बड़ा स्वास्थ्यकर है। इस जलपानसे पाण्डुरोग, कफ और वातपित्त विनष्ट होता और शुक्र धातुका परिपाक होता है। (राजनि०)

बेलाधिप (सं० पु०) बेलायाः अधिपः। फलित ज्योतिषमें दिनमानके आठवें भाग या बेलाके अधिपति देवता। रवि, शुक्र, बुध, चन्द्र, शनि, बृहस्पति और मंगल ये क्रमशः बेलाधिप होते हैं। जिस दिन जो वार होता है, उस दिनकी पहली बेलाका बेलाधिप उसी वारका ग्रह होता है और पीछेकी बेलाओंके अधिपति क्रमसे दूसरे ग्रह होते हैं। जैसे—रविवारकी पहली बेलाके बेलाधिप रवि, दूसरीके शुक्र, तीसरीके बुध, चौथीके चन्द्र होंगे। इसी प्रकार बुधवारकी पहली बेलाके बेलाधिप बुध, दूसरीके चन्द्र, तीसरीके शनि, चौथीके बृहस्पति होंगे।

बेलापुर—बम्बई प्रेसिडेन्सीके थाना जिलेका एक बन्दर।

बेलाबालवलसा—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके गञ्जाम जिलान्तर्गत एक भू सम्पत्ति। इसका भूपरिमाण १ वर्गमील है।

बेलावलि (सं० पु०) एक गोत्रप्रवर्तक ऋषि।

बेलावलि (सं० पु०) तालभेद।

बेलावित्त (सं० पु०) प्राचीनकालके एक प्रकारके राजकर्मचारी। (राजतरङ्गिणी ६।७१)

बेलि (Sir Steuart Colvin Bayley)—बङ्गालके अन्तर्गत रैन्ट्स-शासनकर्त्ता, साधारणतः छोटे लाट या लेफ्टेनान्ट गवर्नर नामसे प्रसिद्ध। ये माननीय ईस्ट इण्डिया कम्पनीके कर्मचारी और भारतके अस्थायी गवर्नर जनरल विलियम बटरवर्थ बेलीके पुत्र थे। इटन और हेलिवरि कालेजमें शिक्षालाभ कर वे १८५६ ईमें इसी मार्चको भारतवर्ष आये और २४ परगनेके असिष्टाण्ट मजिष्ट्रेट कलक्टर हुए। पीछे उन्होंने गवर्मेण्टके भिन्न भिन्न पद पर विशेष दक्षताके साथ कार्य करके बङ्गालके छोटे लाटके पद पर तरक्की पाई थी। १८६१-६२ ईमें चट्टग्राम बारई उपविभागके कलक्टर, १८६२-६३में जुनियर सिक्रेटरी बेङ्गाल गवर्मेण्ट; १८६५ और १८६७ में गवर्मेण्टके अस्थायी सिक्रेटरी, १८६७ ईमें हाइकोर्टके दीवानी और सेशन जज तथा मुरशिदाबादके मजिष्ट्रेट कलक्टर; १८६८ ईमें बंगाल गवर्मेण्टके अतिरिक्त सिक्रेटरी, पटनाके कलक्टर; १८७० ईमें सिविल सेसन जज नियुक्त; १८७१ ईमें चट्टग्रामके कमिश्नर और बंगाल-गवर्मेण्टके अस्थायी सिक्रेटरी, इसी सालके अक्टूबर मासमें स्पेशियल ड्यूटी पर; १८७२ ईमें प्रेसिडेन्सी कमिश्नर, चट्टग्रामके कमिश्नर और पटना विभागके कमिश्नर; C.S.I. उपाधि-प्राप्ति (१८७५ ईके सितम्बरसे १८७६ ईके जनवरी तक छुट्टी), फिर पटनामें उक्त पद पर नियुक्ति; १८७७ ईमें बंगाल गवर्मेण्टका सिक्रेटरी पद; भारतगवर्मेण्टके आबकारी विभागके अतिरिक्त सिक्रेटरी, दुर्भिक्षके कारण भारत प्रतिनिधि लार्ड लिटनके पर्यटन अतिरिक्त तथा कार्यके ऊपर भारत-गवर्मेण्टके दुर्भिक्षका दुर्भिक्ष सम्बन्धके अतिरिक्त सिक्रेटरी; १८७८ ईमें भारत-गवर्मेण्टके होम डिपार्टमेंटके सिक्रेटरी; K.C.S.I की उपाधि; आसामके अस्थायी चीफ कमिश्नर और बंगालके अस्थायी छोटे लाट (१२वीं जुलाई—१ली दिसम्बर १८७९)। फिर आसामके

चीफ कमिश्नर ; १८८१ ई०में हैदराबादके रेसिडेंट C. I. E. की उपाधि ; १८८२ ई०में बड़े लाटकी सभाके मेम्बर और १८८७ ई०की २री अप्रिलको बंगालके छोटे-लाट हुए।

इनके शासनकालमें चट्टग्राम पार्वतीय सीमान्तका उपद्रव दूर करनेके लिये सीमान्तदेशमें सिपाही रखनेकी व्यवस्था हुई। इसके सिवा लुसाई और सिक्किम जीतनेकी इच्छासे इन्होंने सेना भेजी थी। १८८८ ई०की ७वीं अप्रिलको ढाकाके सुप्रसिद्ध टरनाडों और हुगली-तीरवर्त्ती टरनाडों नामक तूफानने लोगोंको बड़ा नुकसान पहुंचाया। इन्हींके शासनकालमें ३री जनवरी १८९० ई०को हिज रायेल हाइनेस प्रिन्स अलबर्ट भिक्टरने कलकत्तेमें पदार्पण किया।

आबकारी और पुलिस-विभागका संस्कार, लोकल टैक्स, कलकत्ता पोर्ट और अन्यान्य विषयोंका राजनैतिक परिवर्त्तन करके इन्होंने १८९० ई०में कार्यसे छुट्टी ले ली। उनके प्रति कृतज्ञता दिखानेके लिये कलकत्तेकी वृटिश इण्डियन सभाने उनकी एक मूर्त्ति स्थापन की है।

इसके बाद इन्होंने Secretary in the Political and Secret department of the India office पद पर कार्य किया। १८९५ ई०को वे इण्डिया कौंसिल (Council of India)-के मेम्बर हुए।

बेलिका (सं० स्त्री०) १ बेलाभूमि। २ नदीतटके आस पासका प्रदेश। ३ ताम्रलिप्ति।

बेलिकेरि—बम्बई प्रदेशके उत्तर कनाड़ा जिलान्तर्गत एक बन्दर और गण्डग्राम। यह धारवाड़ नगरसे १३ मील दक्षिण अक्षा० १४° ४२' ४५" उ० तथा देशा० ७४° १६' पू०के बीच पड़ता है। गांव स्थानीय स्वास्थ्यनिवासमें गिना जाता है। इस कारण यहां समुद्रके किनारे बहुतसे बंगले हैं।

बेलिभुक्प्रिय (सं० पु०) सौरभयुक्त आम्र, वह आम जिनमें खूब सुगंध हो।

बेलियानारायणपुर—बङ्गालके मुर्शिदाबाद जिलान्तर्गत एक प्रसिद्ध ग्राम। यह पगला नदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। पहले यह वीरभूम जिलेके अन्तर्गत था। १८५७ ई०में यहां खनिज लौह गलानेका कारखाना था।

बेलियापाटम्—१ मन्द्राज प्रदेशके मलबार जिलेमें प्रवाहित एक नदी। भारतीय मानचित्रमें यह बिलीपटम नामसे उल्लिखित है। कुर्ग सीमान्त पर घाटपर्वतमालाके कुछ सोते तथा उत्तर-पूर्वमें मनत्तानसे एक बड़ी शाखा नदी इसमें मिल गई है। पीछे यह पुष्ट कलेवर धारण कर इरिकुडुसे पश्चिम इरयपुरकी चली गई है। यहां उसमें एक और शाखा नदीके मिल जानेसे उसका आकार बड़ा हो गया है। बादमें यह बेलियापाटम् नगरको पार कर उक्त नगरसे ४ मील दक्षिण-पश्चिम समुद्रमें मिलती है। समुद्रसन्निहित नदीके किनारे बहुतसे नारियल और सुपारीके पेड़ उत्पन्न होते हैं।

२ मन्द्राजप्रदेशके मलबार जिलेका एक नगर। यह अक्षा० ११° ५५' उ० तथा देशा० ७५° २५' पू०के मध्य मुहानेसे ४ मील दूर बेलियापाटम् नामकी नदीके बाएं किनारे अवस्थित है। मलयालम् भाषामें यह वलारपत्तनम् नामसे मशहूर है। भौगोलिक इवनवतूताने इस नगरका 'जरफतन' नाम रखा है।

१७३५ ई०में कोलगिरिके राजाने अङ्गरेज कम्पनीको इस नगरके समीप मादकार दुर्ग स्थापन करनेकी अनुमति दी। राजाकी सनदमें लिखा है, "बड़ी सावधानीसे देखना जिससे हमारे शत्रु कनाड़ाराजका कोई भी आदमी इस नदीमें घुस न सके" सुप्रसिद्ध मुसलमान-सैनिक हैदर अलीने मलबार विजयमें आ कर यहां प्रथम जय लाभ किया था। नगरके दक्षिण एक देवमन्दिर है। श्रीकुण्डपुरम् देखो।

बहुत प्राचीन कालसे यह नगर वाणिज्यसमृद्धिके लिये प्रसिद्ध था। अभी उस वाणिज्य प्रभावकी स्मृतिमात्र रह गई है। कोम्बनूर सेनानिवाससे यह स्थान ४ मील दूर पड़ता है।

बेलुड़—कलकत्तेके उत्तर गङ्गाके पश्चिमी किनारे अवस्थित एक बड़ा ग्राम। यहां परमहंस श्रीरामकृष्णदेवका एक मठ विद्यमान है। रामकृष्णदेव देखो।

बेलुन—बंगालका एक गण्डग्राम। यहां गोपीनाथ-मन्दिर विद्यमान है। (देशावली)

बेलुय—उष्ट्र संख्याभेद।

बलुआई—मन्द्राज प्रदेशके दक्षिण कनाड़ा जिलान्तर्गत

मदुरा तालुकका एक बड़ा ग्राम। यहाँके एक मन्दिरमें प्राचीन कनाड़ी भाषामें उत्कीर्ण शिलालिपि देखी जाती है। यह लिपि इस स्थानकी प्राचीनता सूचित करती है।

वेन्नुर—१ मन्द्राज प्रदेशके महिसुर राज्यके अन्तर्गत हसन जिलेका एक तालुक। भूपरिमाण ३ सौ वर्गमील है।

२ उक्त तालुकका एक नगर। वर्त्तमान कालमें यह शोचनीय अवस्थामें पड़ा है, फिर भी इसके प्राचीन गौरवके अनेक निदर्शन आज भी दिखाई देते हैं। यह नगर हसनसे २३ मील पश्चिमोत्तर यगाची नदीके दाहिने किनारे अक्षा० १३°१०´ उ० तथा देशा० ७५°५५´ पूर्वमें अवस्थित है। पुराणादि तथा प्राचीन शिलालिपियोंमें यह स्थान वेलापुर नामसे उल्लिखित है। यहाँके लोग इसे दक्षिण वाराणसी समझ कर भक्तिदृष्टिसे देखते हैं। यहाँ चेन्नकेशवका पवित्र मन्दिर है। इसी कारण यह दाक्षिणात्यवासियोंके पवित्र तीर्थरूपमें माना गया है। प्रसिद्ध भास्कर-शिल्पविद् जक्कनाचार्यने उक्त मन्दिरके शिल्पनैपुण्यपूर्ण शिलादि खुदवाये थे। १२ सदीके मध्य भागमें होयसल बल्लालवंशीय राजा विष्णुवर्द्धनने आर्हत जैन धर्मका परित्याग कर वैष्णवधर्मका आश्रय लिया। उन्होंने ही अपने इष्टदेवकी प्रतिष्ठाके लिये विष्णुमन्दिर बनवाया था। यहाँ प्रतिवर्ष चैत्रमासके महीनेमें ५ दिन तक मेला लगता है। इस मेलेमें बहुतसे आदमी एकत्र होते हैं।

बेलुर तालुकका विचार-सदर इसी नगरमें अवस्थित है।

वेलुर—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके सालेम जिलान्तर्गत होसुर तालुकका एक नगर। यह होसुरसे ११ मील उत्तरपूर्वमें अवस्थित है। यहाँ महेश्वरनाथ ईश्वर (शिव-देवता)के राजत्वकालमें कुमार राय दलवाय द्वारा निर्मित १६०३ ईमें एक आलंकार है।

वेलूर—बम्बई प्रदेशके कालादगी जिलान्तर्गत बदामी तालुकका एक नगर। यह बदामीसे ७ मील दक्षिण पूर्वमें पड़ता है। इस पुरमें भग्नावस्थापन्न मन्दिर स्थापित है।

वेल्लुर—मन्द्राज प्रदेशके दक्षिण आर्कट और पुदिचेरी जिलान्तर्गत तिरुवन्नमलय तालुकका एक प्राचीन नगर। यहाँ एक भग्नप्राय दुर्ग और प्राचीन देवमन्दिर है।

वेल्लूर—मन्द्राज प्रदेशके दक्षिण कनाड़ा जिलान्तर्गत उदिपि तालुकका एक नगर। यह उदिपिनगरसे १० मील उत्तरमें अवस्थित है। यहाँ एक प्राचीन शिवमन्दिर है। मन्दिरके भीतरकी दीवालमें उत्कीर्ण प्राचीन अक्षरोंकी जो शिलालिपि है उससे जाना जाता है, कि १५११ ईमें राजाने मन्दिरके खर्चके लिये सम्पत्ति दे दी थी।

वेमो—बम्बई प्रदेशके सिन्धुविभागके कराची जिलान्तर्गत सुजावल तालुकका एक बड़ा गाँव। यह अक्षा० २४° ४४´ उ० तथा देशा० ६८° ८´ पू०के मध्य मिरपुर और तालुकके विचारसदरसे ४ मील दूरमें अवस्थित है। यहाँ लोहाना और भाटिया नामक हिन्दू तथा सैयद और सुहाना नामको मुसलमान श्रेणीका वास है।

वेलोरा—मध्यप्रदेशके नागपुर जिलेके काटोल तालुकका एक नगर। यह मोवाड़ नगरसे ४ मील उत्तर-पश्चिम वर्धा नदीकी एक छोटी शाखाके ऊपर अवस्थित है। यहाँ स्थानीय उत्पन्न द्रव्योंका वाणिज्य होता है।

वेल्ल (सं० क्ली०) वेल्लतीति वेल्ल चलने पचाद्यच्। १ विड़ंग। (त्रि०) वेल्ल भावे घञ्। (पु०) २ गमन, जाना।

वेल्लक (सं० क्ली०) विड़ंग।

वेल्लकोविल—मन्द्राज प्रदेशके कोयम्बतोर जिलेके अन्तर्गत एक प्राचीन बड़ा गाँव। यह अक्षा० १०° ५७´ उ० तथा देशा० ७७° ४२´ पू०के मध्य धारापुरम्‌से १८ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहाँ एक प्राचीन शिवमन्दिर और शिवमन्दिरमें प्राचीन शिलालिपि है। गाँवके बगलमें एक प्राचीन स्मृतिस्तम्भ दिखाई देता है।

वेल्लकुरिचि—मन्द्राज प्रदेशके कोयम्बतोर जिलेका एक प्राचीन गण्डग्राम। यह अरवकुरिचिसे १८ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। यहाँ पुराने मन्दिरकी दीवारमें एक प्राचीन भाषित शिलालिपि दिखाई देती है।

वेल्लन्तिका (सं० स्त्री०) विड़ंग।

वेल्लज (सं० क्ली०) वेल्लवत् जायते इति जन-ड। मरिच, मिर्च।

वेल्लतङ्गड़ि—मन्द्राज प्रदेशके दक्षिण-कनाड़ा जिलान्तर्गत उप्पिनङ्गड़ि तालुकका एक प्राचीन नगर। यह मङ्गलोरसे ३२ मील उत्तर पूर्वमें अवस्थित है। वङ्गाके राजाओंका प्रतिष्ठित दुर्ग और जैनमन्दिर विद्यमान है। इस नगरमें जो एक समय राजधानी थी, उसके भी अनेक निदर्शन पाये जाते हैं।

वेल्लन (सं० क्ली०) वेल्ल-ल्युट्। १ घोड़ोंका जमीन पर लेटना। (त्रि०) २ सञ्चालन।

वेल्लनी (सं० स्त्री०) वेल्लति लुठति अश्वादि यत्रेति वेल्ल-ल्युट् ङीप्। नीला दूर्वा, नीली दूब। (राजनि०)

वेल्लन्तर (सं० पु०) वीरतरु, विल्मान्तरवृक्ष, वरवेल। यह वेल्लन्तर वृक्ष जगत्में वीरतरु नामसे मशहूर है। इसका फूल सफेदी लिये कुछ काला और आकारमें जाति फूलके समान होता है। इसके पत्ते शमी पत्तेके समान होते हैं। यह पेड़ कांटोंसे भरा रहता तथा जलविहीन स्थान पर लगता है। इसका गुण—तिक्तरस, कटुविपाक, धारक, तृष्णा, कफ, मूत्राघात, अश्मरी, योनिरोग, मूत्ररोग और वायुरोगनाशक माना गया है। (भावप्र०)

वेल्लन्तरादिगण (सं० पु०) वेल्लन्तर आदि करके द्रव्यवर्ग। वाभटके सूत्रस्थानमें इसका उल्लेख है। वातरोग, अश्मरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात रोगमें यह बड़ा फायदा पहुंचाता है। (वाभट सूत्र० १५ अ०)

वेल्लमय (सं० क्ली०) मरिच, मिर्च। (वैद्यकनि०)

वेल्लमकोण्डा—मन्द्राज प्रदेशके कृष्णा जिलान्तर्गत एक पर्वत। यह समुद्रपृष्ठसे १५६६ फुट ऊंचा है। तेलगू भाषामें इसे विल्लमकोण्डा (गुहा-गिरि) कहते हैं। इस पर्वतके ऊपर एक टूटा फूटा गिरिदुर्ग है। करीब १५१५ ई०में कृष्णदेवरायने तथा १५३१ और १५७८ ई०में गोलकोण्डाधिपति सुलतान कुलीकुतब शाहने इस पर अधिकार जमाया।

यह गुण्टूरसे नेलकोण्डा जानेके रास्ते पर अक्षा० १६° ३१′ उ० तथा देशा० ८०° ४′ पू०के मध्य अवस्थित है।

वेल्लर (वशिष्ठ नदी)—मन्द्राज प्रदेशमें प्रवाहित एक नदी। यह सलेम जिलेके पहाड़ी प्रदेशसे निकल कर पत्तुर गिरिसङ्कट होती हुई दक्षिण आर्कटके समतलक्षेत्रमें चली गई है। पीछे इस जिलेको पार कर पोर्टोनोवोके समीप समुद्रमें गिरती है। इस नदीकी लम्बाई प्रायः १३५ मील है। वृद्धाचलम्‌के समीप मणिमुक्ता नामक एक नदी आ कर इसमें मिल गई है। इस नदीके ऊपर एक रेलवे पुल है।

वेल्लरी (बल्लारि, प्राचीन नाम वल्लहरि)—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीका एक जिला। यह अक्षा० १४° १४′ से १५° ५७′ उ० तथा देशा० ७५° ४५′ से ७७° ४०′ पू०के मध्य अवस्थित है। इसके मध्यगत सण्डूर सामन्तराज्यको ले कर भूपरिमाण ६ हजार वर्गमील है।

इसके उत्तरमें खरप्रवाहा तुंगभद्रा नदीने निजाम राज्यको पृथक् कर रखा है। पूर्वमें अनन्तपुर और करनूल जिला, दक्षिणमें महिसुर राज्यके अन्तर्गत चित्तलदुर्ग जिला तथा पश्चिममें तुङ्गभद्राने बम्बई प्रेसिडेन्सीके धारवाड़ जिलेको इस जिलेसे विच्छिन्न किया है। इसके कुछ अंशको ले कर अनन्तपुर गठित हुआ है। उसके पूर्वमें इसका आयतन और भी विस्तृत था।

यह ८ तालुकों और संडूर नामक एक सामंत-राज्यमें विभक्त है। यहां कुल ११७४ ग्राम १० नगर हैं।

इस जिलेमें अधिकांश स्थान कपासकी खेतीके लिये उपयुक्त अर्थात् काली मिट्टीसे युक्त है। वृक्षलतादि न होने तथा बीच बीचमें ऊंची ऊंची पहाड़ियोंके होनेसे सारा देश मरुमय प्रांतर प्रतीत होता है। इसका पश्चिमांश घाटपर्वतमालाकी अधित्यका भूमि तथा पूर्वांश क्रमशः नीचा होता गया है। पश्चिममें बेलगाम जिलेके सीमांतदेशमें इसका अधित्यकादेश समुद्रपृष्ठसे २५८६ फुट ऊंचा है, पर पूर्वकी तरफ मन्द्राज रेलपथके गेमटकल-जंगशन नामक स्थानकी उच्चता १४५१ फुट है।

अधित्यका-भूमिके इस प्रकार समुन्नत होनेसे यहां विशेषरूपसे जलका अभाव तथा उसी कारण अन्यान्य वृक्षोंकी उत्पत्तिकी सम्भावना भी बहुत कम है। जिलेकी उत्तर-सीमामें एकमात्र तुङ्गभद्रा नदी है। वर्षाके समय दोनों किनारे डूब जाते हैं, जिससे अधिवासियोंको विपद्ग्रस्त होना पड़ता है। दक्षिणभागमें उक्त नदीकी हागरी,

प्राप्त की। हैदर-वंशधर दुर्द्धर्ष टीपू सुलतानने सामन्तोंका ऐसा व्यवहार देख क्रुद्ध हो उनके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। उन्होंने एक एक कर पलीगरोंके द्वारा रक्षित दुर्गोंको हस्तगत कर लिया और रायदुर्ग तथा हर्पणहल्लीके दो सामन्तोंको यमपुर पहुंचा दिया। इससे अन्यान्य सरदारोंने डर कर फिर टीपू सुलतानके विरुद्ध आचरण नहीं किया। टीपूने उनके अधिकृत अस्त्रशस्त्र, धनरत्न और रसद वगैरहको इकट्ठा कर अपने गुटो और बेल्लरी दुर्गमें रख दिया था।

धीरे धीरे इस प्रदेशमें टीपूके प्रभाव और अत्याचारोंकी वृद्धि होने लगी। टीपू मदमत्त हो कर अङ्गरेज गवर्नमेण्टके विरुद्ध भी आचरण करते रहे। इसी सूत्रसे १६८६ ई०में अंग्रेजोंके साथ उनका युद्ध हुआ। युद्धके बाद दोनों पक्षोंमें सन्धि हुई। उस सन्धिके अनुसार टीपूको शेष-लब्ध राज्य दूसरेको लौटा देनेके लिए बाध्य होना पड़ा, तदनुसार बेलरि जिला निजामके राज्य-भुक्त हुआ।

उसके बाद फिर युद्धकी सूचना हुई। श्रीरङ्गपत्तन-रणक्षेत्रमें टीपू वन्दी हो कर मारे गये (१७६६)। उससे फिर बेलरी जिलेको निजाम और पेशवा दोनोंने बांट लिया। १८०० ई०में अंग्रेजोंने पेशवासे बेलरी ले लिया। १७६२ और १७६६ ई०की सन्धिमें निजामने अदोनी और बेलरीका जो अवशिष्टांश प्राप्त किया था, वह भी सेनाके व्यय-वहनार्थ अंग्रेजोंके हाथ लग गया।

इस प्रकार सम्पूर्ण बेलरी जिला अंग्रेजोंके हाथ लगने पर उन्होंने कर वसूलीके लिये प्रयत्न किया, इस पर पलीगर सरदारोंने एक साथ मिल कर अंग्रेजोंके विरुद्ध विद्रोह करनेकी चेष्टा की। तब अङ्गरेजोंको बाध्य हो कर जेनरल कैम्बेलको सेना-सहित भेजना पड़ा। दुर्द्धर्ष पलीगरोंने अङ्गरेजी सेनासे डर कर उसकी वश्यता स्वीकार की।

उस समय अङ्गरेजोंने पलीगरोंके हाथसे प्रदेशके राजस्व वसूलीका भार छीन लिया और उन्हें सेनादल रखनेके लिये निषेध कर दिया। इससे पलीगरगण क्रमशः कमजोर हो गये। इधर अङ्गरेजोंने राजस्व वसूलीकी सुविधाके लिए प्राप्त जिलोंको एक कमिश्नरके शासनाधीन रखा।

१८०० ई०में कर्नल मनरो यहांके प्रथम कलक्टर नियुक्त हुए। परन्तु १८०७ ई०में उनके अवसर ग्रहण करने पर उक्त प्रदेशको कड़ापा और बेलरी इन दो जिलोंमें विभक्त कर दो कलक्टरोंके हाथ सौंप दिया गया। तबसे यहां कर वसूलीके सम्बन्धमें फिर कोई विभ्राट् नहीं हुआ।

अङ्गरेजोंके अधिकारमें बेलरीमें शान्ति स्थापन होने पर भी १८१४ ई०में पिण्डारी दस्युदलने हर्पणहल्ली लूट लिया था। उसीके साथ साथ उन्होंने रायदुर्ग और कुदलिघी पर आक्रमण किया था, किन्तु विशेष कुछ क्षति नहीं कर सके। दस्युदलके दमनार्थ बेलरीसे एक अङ्गरेजी फौज भेजी गई, जिसने बड़ी आसानीसे डकैतोंको भगा दिया। १८५७ ई०में सिपाही-विद्रोहकी विद्रोहाग्नि धारवार जिलेमें फैल गई और क्रमशः चारों ओर व्याप्त हो गई। हर्पणहल्लीके तहसीलदार भी उस समय दलबल-सहित विद्रोही हो गये। रामणदुर्ग आक्रमण करने पर अङ्गरेजी सेनाने उनकी गति रोक दी और कोपिला नामक स्थानमें ७४ नं०के हाइलैण्डर-दलने उन्हें पराजित और विध्वस्त कर देशमें पुनः शान्ति स्थापित की।

१८८२ ई०में प्राचीन बेलरी जिला पुनः दो भागोंमें विभक्त हो कर गठित हुआ तथा विचारकार्यकी सुविधाके लिए नव-विभक्त बेलरी जिला अदोनी, अल्लूर, बेलरी, हर्पणहल्ली, हविनहडगल्ली, होसपेट, कुदलिघि और रायदुर्ग इस प्रकार उपविभागोंमें विभक्त किया गया।

यहांके दश नगरोंमें बेलरी, अदोनी, हासपेट, कम्पली, रायदुर्ग, हर्पणहल्ली जनसंख्यामें सबसे बड़े शहर हैं। यहां नाना श्रेणीके लोग रहते हैं। किसान लोग चना, रागी और जुनहरी नामक फसल पैदा करते हैं। उसीसे जन-साधारणकी गुजर होती है। दलदल-भूमिमें धान्य और ईखकी खेती हो अधिकतासे होती है। जलाभाव होने पर ये अन्य स्थानसे नाले काट कर पानी लाते हैं और उसीसे खेतोंमें पानी देते हैं। ऊंची जमीन पर सिर्फ नारियल, सुपारी, केला, पर्ण, तम्बाकू, मिर्चा, हल्दी और नाना प्रकारकी सब्जियोंकी खेती होती है। यहां कपास काफी तादातमें होता है।

अनावृष्टि पड़ने पर यहां प्रायः दुर्भिक्ष और साथ ही

था। यहां तक कि वे आत्मसमर्पण करनेको प्रस्तुत हो गये थे, किन्तु हैदर अलीकी मृत्यु होने तथा मन्द्राजसे अंगरेजी सेनाके पहुंच जानेसे अंगरेजोंका सामना हुआ था। १७९१ ई०में लार्ड कार्नवालिसने इस दुर्ग पर अधिकार कर रंगपुरकी यात्रा कर दी। १७९९ ई०में श्रीरङ्गपत्तनके अधःपतनके बाद टीपू सुलतानके परिवार वर्ग इस वेल्लूर दुर्गमें आवद्ध रहे। १८०६ ई०में यहां जो सिपाही-विद्रोह हुआ था, उसमें बहुतोंका विश्वास है, कि उक्त सुलतानके परिवार भी शामिल थे। इस विद्रोहमें प्रायः अट्ठरह सौ और यूरोपियन सिपाहियोंके हाथसे अनेक सिपाही मारे गये। अर्काट सिपाहियोंकी सेना से विद्रोहियोंका जोश ही दमन हुआ। टीपूके परिवारवर्ग कलकत्तेमें भेज दिये गये।

उक्त दुर्गको छोड़ कर यहां एक सुन्दर विष्णुमन्दिर है। इस मन्दिरका कारुकार्य और शिल्पनैपुण्य देख कर बहुतेरे मुग्ध हो गये हैं। मन्दिरके बाहरी चबूतरे पर जो अश्वारोहीकी मूर्ति है उसमें ऐसी कारीगरी दिखलाई गई है, कि उसकी सुषमा दूसरी जगह दुर्लभ है। उक्त मन्दिरको छोड़ कर यहांकी ओट्‌शाहकी मसजिद भी देखने लायक है।

यह शहर गरम होने पर भी स्वास्थ्यकर है। यहां सुगन्धित पुष्पकी खेती होती है। प्रतिदिन रेलसे द्वारा इसकी टोकरी पुष्प मन्द्राज भेजा जाता है।

वेंगुर—मन्द्राजप्रेसिडेन्सीके कृष्णा जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह नागलपाडुसे १२ कोस पूर्वमें अवस्थित है। यहां रामेश्वर, नारायण और चन्द्रशेखर प्रभुओंका सुन्दर मन्दिर है। प्रवाद है, कि ये सब स्वामी प्रतिष्ठ चक्रवर्ति सत्यमन्तादेवके बनाये हुए हैं।

वेश (सं० पुं०) विशन्ति अत्रवाणिज्याथिन इति विश घञ्, यद्वा विशति अनुविशति (पदरुजविशस्पृशो घञ्। पा ३।३।१६) इति घञ्। १ कपड़े लत्ते और गहने आदि पहन कर अपने ... । २ किसी- ... के रूपमें रहने आदि ... घञ्, ... पर्याय—आकल्प, ... नेपथ्य, ... वेशः। (भरत) विशन्ति ... वेशस्य ... घञ्। ३ वेश्यालय घर। ... गृह, वेश्या। ४ प्रवेश। ५ घर। ६ पण्यजीवी आदि।

(ऋक् ४।२६।३)

वेशक (सं० पुं०) वेश एव स्वार्थे कन्। १ गृह, घर। (त्रि०) २ वेशकारक।

वेशयुवति (सं० स्त्री०) कुलटा स्त्री, पुंश्चली स्त्री। २ वेश्या, रंडी।

वेशता (सं० स्त्री०) वेशका भाव या धर्म, वेशत्व।

वेशत्व (सं० क्ली०) वेशस्य भावः त्व। वेशका भाव या धर्म, वेशता।

वेशदान (सं० पुं०) सूर्य्य पौधा। (शब्दच०)

वेशधर (सं० पुं०) १ वह जिसने किसी दूसरेका वेश धारण किया हो, वह जो भेष बदले हुए हो, बहुरूपी। २ जैनोंका एक सम्प्रदाय। १५२४ संवत्‌में यह सम्प्रदाय प्रवर्तित हुआ। जैन देखो।

वेशधारिन् (सं० पुं०) वेशं धारयितुं शीलमस्य धृ-णिनि। १ छद्मवेशी, कपट तपस्वी, वह जो तपस्वी न हो पर तपस्वियोंका-सा वेश धारण करता हो। २ मद्गुर जातिविशेष। ब्रह्मपुराणके अनुसार क्षत्रिय वेशधारीके औरससे वेशधारी जातिकी उत्पत्ति हुई तथा इनके पुत्र मद्गुर कहलाये। (ब्रह्मवैवर्त्तपु० ब्रह्मख० १० अ०) (त्रि०) ३ वेशधारक, वेश धारण करनेवाला।

वेशन (सं० क्ली०) विश-ल्युट्। प्रवेश करना।

(भागवत १०।१३।२६)

वेशभद्र (सं० पुं०) पाणिनिकथित एक नदीका नाम।

वेशन्त (सं० पुं०) वेशन्तम् भेदारूप इति विश (झृ विशिभ्यां झच्। उण् ३।१२६) इति झच्। १ छोटा तालाब, पल्वल, गड्ढा। २ अग्नि।

... पुं० ... परिपाटी।

... रंडी।

... रंडी।

१ वेश्याके धनसे अपनी जीविका चलानेवाला ; २ वेशविशिष्ट।
वेशवार (सं० पु०) नोमक, मिर्च, धनिया आदि मसाले।
वेशवास (सं० पु०) वेश्याका घर, रंडीका मकान।
वेशस (सं० पु०) वेश-असुर। १ वेश। (अथर्व० २।३२।५) २ बल।
वेशस्त्री (सं० स्त्री०) वेश्या, रंडी।
वेशान्त (सं० पु०) वेशन्त देखो।
वेशि (सं० क्ली०) सूर्यका अवस्थानगृह।
(लघुजातक ६।६)
वेशिक (सं० क्ली०) शिल्पविद्या, हाथकी कारीगरी।
वेशिन् (सं० त्रि०) १ वेशधारी, वेश धारण करनेवाला। २ आवेशकारी।
वेशी (सं० स्त्री०) सूची, सूई।
वेशीजाता (सं० स्त्री०) पुत्रदात्री नामकी लता।
वेशोक—सदुक्तिकर्णामृत धृत एक प्राचीन संस्कृत कवि।
वेशोभगीन (सं० त्रि०) वेशो बलं अस्त्यस्य वेशस्-ख (पा ४।४।१३२) बलशाली।
वेश्म (सं० क्ली०) गृह, घर।
वेश्मक (सं० त्रि०) गृहसम्बन्धीय।
वेश्मकलिङ्ग (सं० पु०) वेश्मनः कलिङ्गः। चटक, गौरैया। इसका मांस सन्निपातनाशक तथा अतिशय शुक्रवर्द्धक माना गया है।
वेश्मकुलिङ्ग (सं० पु०) गृहकुलिङ्ग।
वेश्मकूल (सं० पु०) वेश्म गृहं कूलयतीति-कूल-क। चिचिड़ा, चिचड़ा।
वेश्मन् (सं० क्ली०) विशन्त्यत्रेति विश-मनिन्। गृह, घर, मकान।
वेश्मनकुल (सं० पु०) वेश्मनो गृहस्य नकुलः। गन्धमूषिक, छछूंदर।
वेश्म-पुरोधक (सं० पु०) दूसरेके मकानको तोड़ कर या उसमें सेंध लगा कर चोरी करनेवाला।
वेश्मभू (सं० स्त्री०) वेश्मनो भूः। गृहकरणयोग्य भूमि, वह स्थान जो मकान बनानेके उपयुक्त हो अथवा जिस पर मकान बनाया जाय।

वेश्मवास (सं० पु०) वासगृह, रहनेका घर, मकान।
वेश्मस्त्री (सं० स्त्री०) वेश्या, रंडी।
वेश्मादीपिक (सं० पु०) मकानमें आग देनेवाला।
वेश्मान्त (सं० पु०) गृहान्तःपुर, घरके अंदरका वह भाग जिसमें स्त्रियां रहती हैं, जनानखाना।
वेश्य (सं० क्ली०) वेशे भवं वेश (दिगादित्वात् यत्। पा ४।३।५४) यद्वा. वेश्यायै हितं वेश्या-यत्। १ वेश्यालय, रंडीका घर। (त्रि०) २ प्रवेशार्ह, प्रवेश करनेके योग्य।
वेश्या (सं० स्त्री०) वेशमर्हति वेशेन दीव्यति आचरति, वेशेनपण्य योगेन, जीवति वा वेश-यत्-टाप्। वेश्या, रण्डी, कस्बी, गणिका।
परपुरुषगामिनी स्त्री साधारणतः वेश्या कह कर पुकारी जाती है। किन्तु शास्त्रमें इसका भेद इस तरह कहा गया—

"पतिव्रता चैकपत्नी द्वितीये कुलटा स्मृता।
तृतीये वृषली ज्ञेया चतुर्थे पुंश्चली मता॥
वेश्या तु पञ्चमे षष्ठे युङ्गी च सप्तमेऽष्टमे।
तत ऊर्ध्वं महावेश्या साऽस्पृश्या सर्वजातिषु॥"
(ब्रह्मवै०पु० प्र० ख० ३१ अ०)

जो स्त्री एक पतिकी सेवा करती है, उसको पतिव्रता, दो पुरुषोंको सेवन करनेवाली स्त्री कुलटा, तीन पुरुषोंकी सेवा करने वाली स्त्री वृषली, चार पुरुषोंसे रमण करनेवाली स्त्री पुंश्चली, पांच और छः पुरुषोंकी सेवा करनेवाली वेश्या और सात आठ पुरुषोंसे संङ्गम करनेवाली स्त्री युङ्गी और इससे अधिक पुरुषोंकी सेवा करनेवाली स्त्री महावेश्या कहलाती है। यह महावेश्या सब जातिके लिये अछूत हैं। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें और भी लिखा है,—

जो द्विज कुलटा, वृषली, पुंश्चली आदि स्त्रियोंसे रमण करते हैं, वह अवटोद नामक नरकमें जाते हैं।
वेश्या मृत्युके बाद वेधन नरकमें, युङ्गी दण्डताड़न नरकमें, महावेश्या जलरन्ध्र नरकमें, कुलटा देहचूर्ण नरकमें पुंश्चली दलन नामक नरकमें और वृषली शोषक नरकमें वास कर अशेष यन्त्रणा भोग किया करती हैं।
प्रायश्चित्त विवेकमें लिखा है, कि वेश्यागमन करने-

का गया था। यहाँ तक कि वे आत्मसमर्पण करने तैयार हो गये थे, किन्तु हैदर अलीके मृत्यु होने तथा मद्रासमें अंगरेजोंके सेनाके पहुंच जानेसे अंगरेजोंकी रक्षा हुई थी। १७९२ ईस्वी लार्ड कार्नवालिसने इस दुर्ग पर कब्जा कर टीपूको वापस कर दी। १७९९ ईस्वी श्रीरंगपत्तनके पतनके बाद टीपू सुलतानके परिवार वाले इस वेलूर दुर्गमें आ रहे। १८०६ ईस्वी यहां जो सिपाही-विद्रोह हुआ था, उसमें बहुतोंका विश्वास है, कि टीपू सुलतानके परिवार भी शामिल थे। इस विद्रोहमें कई अंगरेज पुरुष और स्त्रीबालक सिपाहियोंके हाथों मारे गये थे। अन्तमें सिपाहियोंको सेनासे विद्रोहियोंका दमन हुआ। टीपूके परिवार-वाले कलकत्ते भेज दिये गये।

इस दुर्गके भीतर एक सुन्दर विष्णुमन्दिर है। इस मन्दिरका कारुकार्य और शिल्पनैपुण्य देख कर बहुतेरे मुग्ध हो गये हैं। मन्दिरके बाहरी चबूतरे पर जो अश्वारोहियोंकी मूर्तियां हैं, उनमें ऐसी कारीगरी दिखलाई गई है, कि उसकी उपमा दूसरी जगह दुर्लभ है। इस मन्दिरको छोड़ कर यहांकी आरकटके नवाबकी मसजिद भी देखने लायक है।

यह शहर गरम होने पर भी स्वास्थ्यकर है। यहां सुगन्धित पुष्पोंसे तैल होता है। प्रतिदिन रेलसे यहां बेंगलोरसे फल मद्रास भेजा जाता है।

वेलुर—मन्द्राजप्रदेशके दक्षिणकनाड़ा जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह बागमण्डीसे १८ मील पूर्वमें अवस्थित है। यहां शालिग्राम, नारायण और कालिका-देवीका सुन्दर मन्दिर है। कहते हैं, कि ये सब देवालय प्रसिद्ध वनवासि कदम्बराजाओंके बनाये हुए हैं।

वेश (सं० पु०) विशन्ति अवस्थान्तरमनेन विश करणे घञ्, यद्वा विशति अङ्गमिति (अकर्तरिच कारके संज्ञायां। पा ३।३।१९) इति घञ्। १ कपड़े लत्ते और गहने आदि पहन कर अपने शरीरको सजाना। २ किसी-के कपड़े लत्ते आदि पहननेका ढंग। ३ पहननेके वस्त्र, पोशाक। पर्याय—आकल्प, वेषक, नेपथ्य, प्रतिकर्म, प्रसाधन, वेष। (अमर) विशन्ति कामुका यत्र, अधिकरणे घञ्। ४ वेश्याका घर। ५ गृह, घर। ६ तम्बू, खेमा। ७ खीमा। ८ बाजारकी आदि।

(मेदिनी)

वेशक (सं० पु०) वेश एव स्वार्थे कन्। १ गृह, घर। (त्रि०) २ वेशकारक।

वेशकुल (सं० क्ली०) कुलटा स्त्री, दुश्चरित्रा स्त्री। २ वेश्या, रंडी।

वेशता (सं० स्त्री०) वेशका भाव या धर्म, वेशत्व।

वेशत्व (सं० क्ली०) वेशस्य भावः त्व। वेशका भाव या धर्म, वेशता।

वेशदान (सं० पु०) सूर्य्यपुष्प। (हेमच०)

वेशधर (सं० पु०) १ वह जिसने किसी दूसरेका वेश धारण किया हो, वह जो भेस बदले हुए हो, छद्मवेशी। २ शैवोंका एक सम्प्रदाय। १५३४ ईस्वीमें यह सम्प्रदाय प्रवर्तित हुआ। शैव देखो।

वेशधारिन् (सं० पु०) वेशं धारयितुं शीलमस्य धृ-णिनि। १ संन्यासवेशी, कपट संन्यासी, वह जो संन्यासी न हो पर संन्यासियोंका-सा वेश धारण करता हो। २ सङ्कर जातिविशेष। ब्राह्मणकी कन्याके गर्भसे वेशधारीके औरससे वेशधारी जातिकी उत्पत्ति हुई तथा उनके पुत्र ताम्बूली कहलाये। (ब्रह्मवैवर्त्त ब्रह्म० १० अ०) (त्रि०) ३ वेशधारक, वेश धारण करनेवाला।

वेशन (सं० क्ली०) विश-ल्युट्। प्रवेश करना।

(भागवत १०।६।२१)

वेशनद (सं० पु०) प्राचीनकालकी एक नदीका नाम।

वेशन्त (सं० पु०) विशन्त्यत्र मीनादय इति विश (वेशन्त हिमन्त इति। उण् ३।१२६) इति झच्। १ छोटा तालाब। २ पल्वल, गड्ढा। ३ अग्नि।

वेशभाग (सं० पु०) वेशवासकी परिपाटी।

वेशयुवती (सं० स्त्री०) वेश्या, रंडी।

वेशयोषित् (सं० स्त्री०) वेश्या, रंडी।

वेशर (सं० पु०) अश्वतर, खच्चर।

वेशवधू (सं० स्त्री०) वेशयोषित्, वेश्या, रंडी।

वेशवनिता (सं० स्त्री०) वेश्या, रंडी।

वेशवत् (सं० त्रि०) वेश अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वः।

१ वेश्याके धनसे अपनी जीविका चलानेवाला, २ वेशविशिष्ट।

वेशवार (सं॰ पु॰) नोमक, मिर्च, धनिया आदि मसाले।

वेशवास (सं॰ पु॰) वेश्याका घर, रंडीका मकान।

वेशस (सं॰ पु॰) वेश-असुर। १ वेश। (अथर्व॰ २।३२।५) २ बल।

वेशस्त्री (सं॰ स्त्री॰) वेश्या, रंडी।

वेशान्त (सं॰ पु॰) वेशन्त देखो।

वेशि (सं॰ क्ली॰) सूर्यका अवस्थानगृह।

(मधुजातक ६।६)

वेशिक (सं॰ क्लीं॰) शिल्पविद्या, हाथकी कारीगरी।

वेशिन् (सं॰ त्रि॰) १ वेशधारी, वेश धारण करनेवाला। २ आवेशकारी।

वेशी (सं॰ स्त्री॰) सूची, सूई।

वेशीजाता (सं॰ स्त्री॰) पुत्रदात्री नामकी लता।

वैशोक—सदुक्तिकर्णामृत धृत एक प्राचीन संस्कृत कवि।

वेशोभगीन (सं॰ त्रि॰) वेशो बलं अस्त्यस्य वेशस्-ख (पा ४।४।१३२) बलशाली।

वेश्म (सं॰ क्ली॰) गृह, घर।

वेश्मक (सं॰ त्रि॰) गृहसम्बन्धीय।

वेश्मकलिङ्ग (सं॰ पु॰) वेश्मनः कलिङ्गः। चटक, गौरैया। इसका मांस सन्निपातनाशक तथा अतिशय शुक्रवर्द्धक माना गया है।

वेश्मकुलिङ्ग (सं॰ पु॰) गृहकुलिङ्ग।

वेश्मकूल (सं॰ पु॰) वेश्म गृहं कूलयतीति-कूल-क। चिचिड़ा, चिचड़ा।

वेश्मन् (सं॰ क्ली॰) विशन्त्यत्रेति विश-मनिन्। गृह, घर, मकान।

वेश्मनकुल (सं॰ पु॰) वेश्मनो गृहस्य नकुलः। गन्धमूषिक, छछूंदर।

वेश्म-पुरोधक (सं॰ पु॰) दूसरेके मकानको तोड़ कर या उसमें सेंध लगा कर चोरी करनेवाला।

वेश्मभू (सं॰ स्त्री॰) वेश्मनो भूः। गृहकरणयोग्य भूमि, वह स्थान जो मकान बनानेके उपयुक्त हो अथवा जिस पर मकान बनाया जाय।

वेश्मवास (सं॰ पु॰) वासगृह, रहनेका घर, मकान।

वेश्मस्त्री (सं॰ स्त्री॰) वेश्या, रंडी।

वेश्मादीपिक (सं॰ पु॰) मकानमें आग देनेवाला।

वेश्मान्त (सं॰ पु॰) गृहान्तःपुर, घरके अंदरका वह भाग जिसमें स्त्रियां रहती हैं, जनानखाना।

वेश्य (सं॰ क्ली॰) वेशे भवं वेश (दिगादित्वात् यत्। पा ४।३।५४) यद्वा वेश्यायै हितं वेश्या-यत्। १ वेश्यालय, रंडीका घर। (त्रि॰) २ प्रवेशार्ह, प्रवेश करनेके योग्य।

वेश्या (सं॰ स्त्री॰) वेशमर्हति वेशेन दीव्यति आचरति, वेशेनपण्य योगेन, जायति वा वेश-यत्-टाप। वेश्या, रण्डी, कस्बी, गणिका।

परपुरुषगामिनी स्त्री साधारणतः वेश्या कह कर पुकारी जाती है। किन्तु शास्त्रमें इसका भेद इस तरह कहा गया—

"पतिव्रता चैकपत्नी द्वितीये कुलटा स्मृता।
तृतीये वृषली ज्ञेया चतुर्थे पुंश्चली मता॥
वेश्या तु पञ्चमे षष्ठे युङ्गी च सप्तमेऽष्टमे।
तत ऊर्ध्वं महावेश्या साऽस्पृश्या सर्व जातिषु॥"

(ब्रह्मवै॰पु॰ प्र॰ ख॰ ३१ अ॰)

जो स्त्री एक पतिको सेवा करती है, उसको पतिव्रता, दो पुरुषोंको सेवन करनेवाली स्त्री कुलटा, तीन पुरुषोंको सेवा करने वाली स्त्री वृषली, चार पुरुषोंसे रमण करनेवाली स्त्री पुंश्चली, पांच और छः पुरुषोंकी सेवा करनेवाली वेश्या और सात आठ पुरुषोंसे सङ्गम करनेवाली स्त्री युङ्गी और इससे अधिक पुरुषोंकी सेवा करनेवाली स्त्री महावेश्या कहलाती है। यह महावेश्या सब जातिके लिये अछूत हैं। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें और भी लिखा है,—

जो द्विज कुलटा, वृषली, पुंश्चली आदि स्त्रियोंसे रमण करते हैं, वह अवरोद नामक नरकमें जाते हैं।

वेश्या मृत्युके बाद वेधन नरकमें, युङ्गी दण्डताड़न नरकमें, महावेश्या जलबन्ध नरकमें, कुलटा देहचूर्ण नरकमें पुंश्चली दलन नामक नरकमें और वृषली शोषक नरकमें वास कर अशेष यन्त्रणा भोग किया करती है।

प्रायश्चित्त विवेकमें लिखा है, कि वेश्यागमन करने-

था गया था। यहां तक कि वे आत्मसमर्पण करने तय्यार हो गये थे, किन्तु हैदर अलीको मृत्यु होने तथा मन्द्राजसे अंगरेजी सेनाके पहुंच आनेसे अंगरेजोंको मानरक्षा हुई थी। १६९१ ई०में लार्ड कार्नवालिसने इस दुर्गको केन्द्र बना कर रंगपुरको यात्रा की थी। १७९९ ई०में श्रीरङ्गपत्तनके अधःपतनके बाद टीपू सुलतानके परिवार-वर्ग इस वेल्लूर दुर्गमें आबद्ध रहे। १८०६ ई०में यहां जो सिपाहीविद्रोह हुआ था, उसमें बहुतोंका विश्वास है, कि उक्त सुलतानके परिवार भी शामिल थे। इस विद्रोहमें सभी अङ्गरेज पुरुष और यूरोपीयगण विद्रोहीके हाथसे यमपुर सिधारे थे। कर्नल जिलेस्पीको चेष्टासे विद्रोहियोंका शीघ्र ही दमन हुआ। टीपूके परिवार-वर्ग कलकत्तेमें भेज दिये गये।

उक्त दुर्गको छोड़ कर यहां एक सुन्दर विष्णुमन्दिर है। इस मन्दिरका कारुकार्य और शिल्पनैपुण्य देख कर बहुतेरे मुग्ध हो गये हैं। मन्दिरके बाहरी चबूतरे पर जो अश्वारोही मूर्त्ति है उसमें ऐसी कारीगरी दिखलाई गई है, कि उसकी तुलना दूसरी जगह दुर्लभ है। उक्त मन्दिरको छोड़ कर यहांकी चांदसाहबकी मसजिद भी देखने लायक है।

यह शहर गरम होने पर भी स्वास्थ्यकर है। यहां सुगन्धित पुष्पकी खेती होती है। प्रतिदिन रेलवे द्वारा टोकरी टोकरी फूल मन्द्राज भेजा जाता है।

वेपुर—बम्बईप्रदेशके कालादगी जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह बागलकोटसे १२ मील पूर्वमें अवस्थित है। यहां रामेश्वर, नारायण और कालिका-भवानीका सुन्दर मन्दिर है। प्रवाद है, कि ये सब देवालय प्रसिद्ध स्थपति यक्षनाचार्यके बनाये हुए हैं।

वेश (सं० पु०) विशन्ति नयनान्यस्मिन्निति विश अधिकरणे घञ्, यद्वा विशति अङ्गमिति (पदरुजविशस्पृशो घञ्। पा ३।३।१६) इति घञ्। १ कपड़े लत्ते और गहने आदि पहन कर अपने आपको सजाना। २ किसीके कपड़े लत्ते आदि पहननेका ढंग। ३ पहननेके वस्त्र, पोशाक। पर्याय—आकल्प, नेपथ्य, प्रतिकर्म, प्रसाधन, वेष। (भरत)। विशन्ति कामुका यत्रेति, अधिकरणे घञ्। ४ वेश्याका घर। ५ गृह, घर। ६ वस्त्रगृह, तंबू, खेमा। ७ प्रवेश। ८ पण्यस्त्री आदि। (मनु ४।८५)

वेशक (सं० पु०) वेश एव स्वार्थे कन्। १ गृह, घर। (त्रि०) २ वेशकारक।

वेशकुल (सं० क्ली०) कुलटा स्त्री, दुश्चरित्रा स्त्री। २ वेश्या, रंडी।

वेशता (सं० स्त्री०) वेशका भाव या धर्म, वेशत्व।

वेशत्व (सं० क्ली०) वेशस्य भावः त्व। वेशका भाव या धर्म, वेशता।

वेशदान (सं० पु०) सूर्य्यशोभा। (शब्दच०)

वेशधर (सं० पु०) १ वह जिसने किसी दूसरेका वेश धारण किया हो, वह जो भेष बदले हुए हो, छद्मवेशी। २ जैनोंका एक सम्प्रदाय। १५३४ संवत्में यह सम्प्रदाय प्रवर्त्तित हुआ। जैन देखो।

वेशधारिन् (सं० पु०) वेशं तापसलिङ्गं धरतीति धृ-णिनि। १ छलतपस्वी, कपट तपस्वी, वह जो तपस्वी न हो पर तपस्वियोंका-सा वेश धारण करता हो। २ सङ्कर जातिविशेष। गङ्गापुत्रक कन्याके गर्भसे वेशधारीके औरससे वेशधारी जातिकी उत्पत्ति हुई तथा उनके पुत्र युङ्गी कहलाये। (ब्रह्मवैवर्त्तपु० ब्रह्मख० १० अ०) (त्रि०) ३ वेशधारक, वेश धारण करनेवाला।

वेशन (सं० क्ली०) विश-ल्युट्। प्रवेश करना। (भागवत १०।१२।२९)

वेशनद (सं० पु०) प्राचीनकालकी एक नदीका नाम।

वेशन्त (सं० पु०) वेशन्त्यत्र भेकादय इति विश (तृ-विशिभ्यां भच्। उण् ३।१२६) इति झच्। १ क्षुद्र सरोवर। २ पल्वल, कर्दम। ३ अग्नि।

वेशभाव (सं० पु०) वेशसज्जाकी परिपाटी।

वेशयुवती (सं० स्त्री०) वेश्या, रंडी।

वेशयोषित् (सं० स्त्री०) वेश्या, रंडी।

वेशर (सं० पु०) अश्वतर, खच्चर।

वेशवधू (सं० स्त्री०) वेशयोषित्, वेश्या, रंडी।

वेशवनिता (सं० स्त्री०) वेशस्त्री, रंडी।

वेशवत् (सं० त्रि०) वेश अस्त्यर्थे मतुप मस्य वः।

"ऊर्द्ध्वं पादद्वयं नार्या भुजाभ्यां वेष्टयेद् यदि।
कराभ्यां कण्ठमालिङ्ग्य बन्धो वेष्टनवेष्टकः॥"
(रतिमञ्जरी)

वेष्टपाल (सं० पु०) बौद्धभेद। (तारनाथ)

वेष्टवंश (सं० पु०) वेष्टः वेष्टनकारो वंशः। रम्भवंश, एक प्रकारका बांस जिसे बेअर बांस कहते हैं।

वेष्टव्य (सं० त्रि०) वेष्टनयोग्य, बेठन आदिसे लपेटने लायक।

वेष्टसार (सं० पु०) वेष्टानां सारो यत्र। १ श्रीवेष्ट, गंधविरोजा। २ सरलकाष्ठ, धूपसरल, धूपका पेड़।

वेष्टा (सं० स्त्री०) हरीतकी, हर्रे। (वैद्यकनि०)

वेष्टित (सं० त्रि०) वेष्ट-क्त। १ नदी या परकोटे आदिसे चारों ओर घिरा हुआ। २ कपड़े आदिसे लपेटा हुआ। ३ रुद्ध, रुका हुआ।

वेष्टितक (सं० त्रि०) वेष्टित स्वार्थे कन्। वेष्टित देखो।

वेष्प (सं० पु०) वेवेष्टीति विष व्याप्तौ (पानीविषिभ्यः पः। उण् ३।२३) इति प। पानीय।

वेसन (सं० क्ली०) वेस-ल्युट्। १ मटर, चने आदिकी दाल पीस कर तैयार किया हुआ आटा, बेसन। २ गमन।

वेसर (सं० पु०) अश्वतर, गदहा।

वेसवार (सं० पु०) १ पीसा हुआ जीरा, मिर्च, लौंग आदि मसाला। पर्याय—उपस्कर, वेषवार, वेशवार। २ एक प्रकारका पकाया हुआ मांस। पहले हड्डियां आदि अलग करके खाली मांस पीस लेते हैं और तब गुड़, घी, पीपल, मिर्च आदि मिला कर उसे पकाते हैं। यही पकाया हुआ मांस वेसवार कहलाता है। यह गुरु, स्निग्ध और बलोपचयकारक होता है।

वेसवारीकृत (सं० त्रि०) वेसवारीं द्वारा संस्कृत।

वेसारा—रङ्गपुरवासी एक मुसलमान सम्प्रदाय।

वेसुक—देवगिरिके यादववंशीय एक राजा।
देवगिरि, यादवराजवंश देखो।

वेसुगि—वेसुक देखो।

वेस्ट (अं० पु०) पश्चिम दिशा।

वेस्टकोट (अं० पु०) एक प्रकारकी अङ्गरेजी कुरती या फतुही जिसमें बांहें नहीं होतीं और जो कमीजके ऊपर तथा कोटके नीचे पहनी जाती है।

वेहत (सं० स्त्री०) विशेषेण हन्ति गर्भमिति वि-हन-अति संश्चत्तृ पद्व हत्। (उण् २।८५) १ गर्भोपघातिनी गौ, वह गाय जो ऋतुकालको छोड़ अन्य समयमें सांढ़से जोड़ खा गर्भ नष्ट करती है। २ झेलम या वितस्ता नदी। वितस्ता देखो।

वेहला—२४ परगनेके अन्तर्गत एक वर्द्धिष्णु ग्राम। यहां सब-रजेष्ट्री, डाकघर और स्कूल हैं।

वेहिर—१ मध्यप्रदेशके बालाघाट जिलान्तर्गत एक तहसील। भूपरिमाण १४५१ वर्गमील है।

२ उक्त तहसीलके अधीन एक बड़ा ग्राम। यह बालाघाट शहरसे ४१ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहां अधिकांश गोंड़ और प्रधानका वास है। अभी वैसा समृद्धिशाली नहीं होने पर भी एक समय यहां जो बहुत लोगोंका वास था, उसका काफी प्रमाण मिलता है। दानेदार पत्थरके बने सुन्दर भास्कर शिल्पसमन्वित अति प्राचीन और अति वृहत् १३ मन्दिरोंका भग्नावशेष विद्यमान है।

वेहिस्तुन—पारस्य देशकी सीमा पर किरमाणशाहसे २१ मील पश्चिममें अवस्थित एक प्राचीन ग्राम। यह नाना भास्करशिल्पयुक्त प्रस्तरखोदित एक गिरिशैलके नीचे बसा हुआ है। इस ग्राममें कई जगह सुन्दर मर्मर पत्थरके खंभे इधर उधर पड़े हैं। इसके सिवा अखमनीवंशके समय उत्कीर्ण बहुत-सी कीलरूपा शिलालिपियां विद्यमान हैं। उनमें वाह्लिकभट्टवासी दारयुसके अधिकारभुक्त अनेक इरानीय जातियोंके नाम देखे जाते हैं। यहांकी दो शिलालिपि विशेष उल्लेखयोग्य हैं। एकमें गोतार्दाके समयको भग्न ग्रीकलिपि और दूसरीमें पार्सिपोलिसका भास्कर्यशिल्प अलंकृत है। दूसरी लिपिमें १००० पंक्तियुक्त कीललिपि है जिसमें दारयुस विस्तास्पका धर्ममत, बवेरुश्वसकी कथा तथा उनके हाथ उत्पति या शासनकर्त्ता नेबुनेतके पुत्र नेबुकाद्नेजारकी शासन कहानी लिखी है।

कीलरूपा शिलालिपिमें यह स्थान 'बघिस्थान' नामसे प्रसिद्ध है। प्रवाद है, कि यहां रानी सेमिरामिसका प्रमोद-उद्यान था।

यहां दारयुस विस्तास्पकी जो बड़ी शिलालिपि

वाले पुरुषको प्राजापत्यव्रतका अनुष्ठान करनेसे पापक्षय होता है। इसमें अशक्त होनेसे एक धेनु दान कर दे। यह प्रायश्चित्त सकृत् अर्थात् एक बार गमनकी बात कही गई। अभ्यासी लोगोंके लिये नहीं। अर्थात् क्रमागत वेश्यागमन करनेवालोंको इस प्रायश्चित्तसे वेश्यागमनका पाप नहीं छुटता। उनको कृच्छ्रसाध्य चान्द्रायण व्रतानुष्ठान करना होगा। चान्द्रायणसे यह पाप विदूरित होगा। (प्रायश्चित्तवि०)

वेश्याका अन्न भोजन करना न चाहिये। जो द्विज वेश्याका अन्न खाते हैं, वह कालसूत्र नामक नरकमें जाते हैं और सौ वर्ष तक नरकमें वास कर शूद्र रूपसे जन्म लेते हैं। उस जन्ममें नाना रूप क्लेश भोग कर शुद्धिलाभ करते हैं। (ब्रह्मवै०पु० प्र० ख० २१ अ०) वेश्यादर्शन करके यात्रा करनेसे शुभ होता है।

वेश्यागण (सं० पु०) वेश्यानां गणः। वेश्याओंका समूह।

वेश्याङ्गना (सं० स्त्री०) कुलटा स्त्री, बदचलन औरत।

वेश्याचार्य (सं० पु०) वेश्यानामाचार्यः। पीठमर्द, वह जो वेश्याओंके साथ रहता और उन्हें परपुरुषोंसे मिलाता हो, रंडियोंका दलाल।

वेश्याजनसमाश्रय (सं० पु०) वेश्याजनानां समाश्रयः आश्रयस्थानं। वेश्यालय, रंडीका मकान। पर्याय—वेश, वेश्याश्रय, पुर, वेश्य। (जटाधर)

वेश्वर (सं० पु०) अश्वतर, गदहा। (भूरिप्र०)

वेष (सं० पु०) वेवेष्टि व्याप्नोति अङ्गं वेषः, पचादित्वा-दच्। १ वेश देखो। २ नेपथ्य, रंगमंचमें पीछेका वह स्थान जहां नट लोग वेश रचना करते हैं। ३ वेश्यागृह, रंडीका मकान। ४ संस्थानविशेष। (रामा० २।१७।१६) वेवेष्टि व्याप्नोति कर्मणिति, पचाद्यच्। ५ कर्म। (निघण्टु २।१) विष व्याप्तौ घञ्। ६ व्याप्ति। (शुक्ल-यजु० १।६) ७ कार्य परिचालन, काम चलाना।

वेषकार (सं० पु०) वेष्टन, किसी बोझको लपेटनेका कपड़ा।

वेषण (सं० पु०) विष व्याप्तौ ल्युट्। १ कासमर्द, कसौंदी। (हारावली) (क्ली०) विष-ल्युट्। २ प्रवेषण। ३ परि-चर्या, सेवा। (ऋक् ५।७०।५)

वेषगा (सं० स्त्री०) वेवेष्टि व्याप्नोतीति विष-क्रु-टाप्। वितुन्नक, धनियां।

वेषदान (सं० पु०) सूर्यशोभा।

वेषधारिन् (सं० पु०) वेष-धृ-णिनि। वेशधारिन् देखो।

वेषवत् (सं० त्रि०) वेष-मतुप् मस्य वं। वेशयुक्त, वेशविशिष्ट।

वेसवार (सं० पु०) नमक, मिर्च धनियां आदि मसाले।

वेषश्री (सं० त्रि०) जिसमें सुन्दर और ललित वाक्य हों। (शतपथब्रा० ८।५।८१)

वेषिका (सं० स्त्री०) चमेली।

वेषिन् (सं० त्रि०) वेशधारी, वेश धारण करनेवाला।

वेष्क (सं० पु०) जीवननाशक फंदा। (शतपथब्रा० ३।८।१।१५)

वेष्ट (सं० पु०) वेष्ट-घञ्। १ वेष्टन देखो। २ श्रीवेष्ट, गंधाबिरोजा। ३ वृक्षका किसी प्रकारका निर्यास। ४ गोंद। ५ धूपसरल। ६ सुश्रुतके अनुसार मुंहमें होनेवाला एक प्रकारका रोग। (सुश्रुत २।१६)

वेष्टक (सं० क्ली०) वेष्टते इति वेष्ट-ण्वुल्। १ उष्णीष, पगड़ी। २ वृक्षका किसी प्रकारका निर्यास। ३ गोंद। ४ श्रीवेष्ट, गंधबिरोजा। (पु०) प्राचीर, परकोटा, चहारदीवारी। ५ कुष्माण्ड, कोंहड़ा। ६ वल्कल, छाल। (त्रि०) ७ वेष्टनकारक, घेरनेवाला।

वेष्टकापथ (सं० पु०) एक प्राचीन शिवस्थान। (सह्यादि १।२१।१४)

वेष्टन (सं० क्ली०) वेष्टते इति वेष्ट-ल्युट्। १ कर्णशष्कुली, कानका छेद। २ उष्णीष, पगड़ी। ३ मुकुट। ४ वृति, वह कपड़ा आदि जिससे कोई बोझ लपेटा जाय, वेठन। ५ वलयन, घेरने या लपेटनेकी क्रिया या भाव। ६ गुग्गुलु, गुग्गुल। ७ सर्पदोलिका। (वैद्यकनि०)

वेष्टनक (सं० पु०) वेष्टनेन कायतीति कै-क। रतिबन्ध-विशेष, स्त्रीप्रसंग करनेका एक प्रकार।

"कान्तकण्ठाश्रिता नारी बन्धो वेष्टनकः स्मृतः॥" (रतिमञ्जरी)

वेष्टनवेष्टक (सं० पु०) वेष्टनेन वेष्टते इति वेष्ट-ण्वुल्। रतिबन्धविशेष।

"ऊर्द्ध्वं पादद्वयं नार्या भुजाभ्यां वेष्टयेद् यदि।
कराभ्यां कण्ठमाश्लिष्य बन्धो वेष्टनवेष्टकः॥"
(रतिमञ्जरी)

वेष्टपाल (सं० पु०) बौद्धभेद। (तारनाथ)

वेष्टवंश (सं० पु०) वेष्टः वेष्टनकारो वंशः। रन्ध्रवंश, एक प्रकारका बांस जिसे बेउर बांस कहते हैं।

वेष्टव्य (सं० त्रि०) वेष्टनयोग्य, बेठन आदिसे लपेटने लायक।

वेष्टसार (सं० पु०) वेष्टानां सारो यत्र। १ श्रीवेष्ट, गंधविरोजा। २ सरलकाष्ठ, धूपसरल, धूपका पेड़।

वेष्टा (सं० स्त्री०) हरीतकी, हर्रे। (वैद्यकनि०)

वेष्टित (सं० त्रि०) वेष्ट-क्त। १ नदी या परकोटे आदि-से चारों ओर घिरा हुआ। २ कपड़े आदिसे लपेटा हुआ। ३ रुद्ध, रुका हुआ।

वेष्टितक (सं० त्रि०) वेष्टित स्वार्थे कन्। वेष्टित देखो।

वेष्य (सं० पु०) वेवेष्टीति विष व्याप्तौ (पानीविषिभ्यः पः। उण् ३।२३) इति प। पानीय।

वेसन (सं० क्ली०) वेस-ल्युट्। १ मटर, चने आदि-की दाल पीस कर तैयार किया हुआ आटा, बेसन। २ गमन।

वेसर (सं० पु०) अश्वतर, गदहा।

वेसवार (सं० पु०) १ पीसा हुआ जीरा, मिर्च, लौंग आदि मसाला। पर्याय—उपस्कर, वेषवार, वेशवार। २ एक प्रकारका पकाया हुआ मांस। पहले हड्डियां आदि अलग करके खाली मांस पीस लेते हैं और तब गुड़, घी, पीपल, मिर्च आदि मिला कर उसे पकाते हैं। यही पकाया हुआ मांस वेसवार कहलाता है। यह गुरु, स्निग्ध और बलोपचयकारक होता है।

वेसवारीकृत (सं० त्रि०) वेसवारों द्वारा संस्कृत।

वेसारा—रङ्गपुरवासी एक मुसलमान सम्प्रदाय।

वेसुक—देवगिरिके यादववंशीय एक राजा।
देवगिरि, यादवराजवंश देखो।

वेसुगि—वेसुक देखो।

वेस्ट (अं० पु०) पश्चिम दिशा।

वेस्टकोट (अं० पु०) एक प्रकारकी अङ्गरेजी कुरती या फतुही जिसमें बांहें नहीं होतीं और जो कमीजके ऊपर तथा कोटके नीचे पहनी जाती है।

वेहत (सं० स्त्री०) विशेषेण हन्ति गर्भमिति वि-हन-अति संज्ञत्त्वत् पद्वे हत्। (उण् ३।८५) १ गर्भोपघातिनी गौ, वह गाय जो ऋतुकालको छोड़ अन्य समयमें सांड़से जोड़ खा गर्भ नष्ट करती है। २ झेलम या वितस्ता नदी। वितस्ता देखो।

वेहला—२४ परगनेके अन्तर्गत एक वर्द्धिष्णु ग्राम। यहां सब-रजेष्ट्री, डाकघर और स्कूल हैं।

वेहिर—१ मध्यप्रदेशके बालाघाट जिलान्तर्गत एक तह-सील। भूपरिमाण १४५१ वर्गमील है।

२ उक्त तहसीलके अधीन एक बड़ा ग्राम। यह बाला-घाट शहरसे ४१ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहां अधिकांश गोंड और प्रधानका वास है। अभी वैसा समृद्धिशाली नहीं होने पर भी एक समय यहां जो बहुत लोगोंका वास था, उसका काफी प्रमाण मिलता है। इंटेदार पत्थरके बने सुन्दर भास्कर शिल्पसमन्वित अति प्राचीन और अति वृहत् १३ मन्दिरोंका भग्नावशेष विद्यमान है।

वेहिस्तुन—पारस्य देशकी सीमा पर किरमाणशाहसे २१ मील पश्चिममें अवस्थित एक प्राचीन ग्राम। यह नाना भास्करशिल्पयुक्त प्रस्तरखोदित एक गिरिशैलके नीचे बसा हुआ है। इस ग्राममें कई जगह सुन्दर मर्मर पत्थरके खंभे इधर उधर पड़े हैं। इसके सिवा अकमनीवंशके समय उत्कीर्ण बहुत-सी कीलरूप शिलालिपियां विद्य-मान हैं। उनमें बाहिलकमद्रवासी दारयुसके अधिकार-भुक्त अनेक इरानीय जातियोंके नाम देखे जाते हैं। यहां-की दो शिलालिपि विशेष उल्लेखयोग्य हैं। एकमें गोतार्जे-के समयकी भग्न ग्रीकलिपि और दूसरीमें पार्थिपोलिस-का भास्करशिल्प अलंकृत है। दूसरी लिपिमें, १००० पंक्तियुक्त कीललिपि है जिसमें दारयुस हिस्तास्पका धर्ममत, वबेरुवंशकी कथा तथा उनके हाथ उद्घ्पति या शासनकर्त्ता नेबुनेतके पुत्र नेबुकादनेज्जारकी शासन कहानी लिखी है।

कीलरूपा शिलालिपिमें यह स्थान 'बघिस्थान' नाम-से प्रसिद्ध है। प्रवाद है, कि यहां रानी सेमिरामिसका प्रमोद-उद्यान था।

यहां दारयुस हिस्तास्पकी जो बड़ी शिलालिपि

आविष्कृत हुई है, वह तीन भाषाओंमें लिखी है—प्राचीन पारस्य, बावेरु (Babylonian) और शाक। किस प्रकार तीनोंने अपने साम्राज्यमें अहुरमज्दधर्मको पुनः प्रतिष्ठित किया, किस प्रकार तीनोंने अवस्ता शास्त्र और उसकी टीकाका उद्धार किया, उसका परिचय उक्त लिपि-में दिया गया है।

भाषाविद्गण उक्त शाकलिपिकी भाषाको ईसाजन्मके पहले ५वीं सदीमें व्यवहृत मद्रोंकी भाषा मानते हैं, फिर भी इस भाषाके साथ द्राविड़ीय भाषाकी उपधर्मोंके साथ यथेष्ट सौसादृश्य है। इस कारण बहुतेरे अनुमान करते हैं, कि मद्र-पारस्य (Medo Persians) जातिके अभ्युदयके पहले इसी भाषामें ही शाकलोग बातचीत भी करते थे, तुर्की या मोङ्गलीय भाषामें नहीं।

वैंशतिक (सं० त्रि०) विंशत्या क्रीतं विंशतिक-अण् (५।१।२७) विंशति द्वारा क्रीत, जो बीससे खरीदा गया हो।

वैंचि—बंगालके हुगली जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। यह कलकत्तेसे ४४ मील दूर ग्राण्डट्रंकरोड नामक रास्ते पर अक्षा० २३° ७' ३० तथा देशा० ८८° १५' ३१" पू०के बीच पड़ता है। यहां ईष्ट इण्डिया रेलवेका स्टेशन है। एक समय यहां मशहूर डकैतोंका दल था।

वैकक्ष (सं० क्ली०) विशेषेण कक्षति व्याप्नोति वि-कक्ष-अण्। १ वह हार या माला जो एक ओर कंधे पर और दूसरी ओर हाथके नीचे रहे, जनेऊकी तरह पहना जानेवाला हार या माला। २ इस प्रकार माला पहननेका ढंग। (पु०) ३ पर्वतभेद। (भागवत ५।१६।२६)

वैकक्षक (सं० क्ली०) वैकक्ष-कन् स्वार्थे। वैकक्ष देखो।

वैकङ्कत (सं० पु०) १ वृक्षविशेष। पर्याय—श्रुतिक्षर, स्रुवावृक्ष, ग्रन्थिल, स्वादुकण्टक, व्याघ्रपात्, कण्टिकारी, विकङ्कत। (त्रि०) विकङ्कतस्यावयवो विकारो वा विकङ्कत-अण् पलाशादिभ्यो वा (पा ४।३।१४१) जो विकङ्कतकी लकड़ी आदिसे बना हो, विकङ्कतका।

वैकटिक (सं० पु०) १ रत्नपरीक्षक, जौहरी। (त्रि०) २ विकट-सम्बन्धीय, विकटका।

वैकट्य (सं० क्ली०) विकट होनेका भाव या धर्म, विकटता।

वैकतिक (सं० पु०) वह जो रत्नोंकी परीक्षा करता हो, जौहरी।

वैकथिक (सं० पु०) वह जो अपने सम्बन्धमें बहुत बढ़ा कर बातें कहा करता हो, शेखीबाज, सोटनेवाला।

वैकयत (सं० पु०) जातिविशेष।

वैकयतविध (सं० पु०) वैकयतानां विषयो देशः इति विधल्। वैकयतोंका देश। (पा ५।२।५४)

वैकर (सं० त्रि०) विकरात् प्राक्दीव्यति विकर-अण् (पा ४।१।८६)। विकरके पहले क्रीड़ित आदि।

वैकरञ्ज (सं० पु०) संकर जातिका एक प्रकारका सांप। दर्वीकर (फणायुक्त), मण्डली (फणाहीन) और राजिमान् (रेखायुक्त), इन तीन प्रकारके सांपोंके परस्पर योगसे जो सांप उत्पन्न होता है उसीको वैकरञ्ज कहते हैं। ये फिर माकुलि, पोटगल और स्निग्धराजिके भेदसे तीन प्रकारके हैं। कृष्णसर्प और गोनसके संगमसे माकुलि, राजिल और गोनसके संगमसे पोटगल तथा कृष्णसर्प और राजिमानके संगमसे स्निग्धराजि उत्पन्न होता है। माकुलिका विष पिताके समान तथा पोटगल और स्निग्धराजिका विष माताके समान होता है। फिर ये दिव्यलेप, रोध्रपुष्प, राजिचित्रक, पोटगल, पुष्पाभिकीर्ण, दर्भपुष्प और वेल्लितकके भेदसे सात प्रकारके हैं, जिनमेंसे पहलेके तीन राजिमानकी तरह हैं।

वैकर्ण (सं० पु०) विकर्णस्यापत्यमिति विकर्ण-अण् (विकर्णशुङ्गच्छगलात् वत्सभरद्वाजात्रिषु। पा ४।१।११७) १ वात्स्य मुनि। (सिद्धान्तकौमुदी) २ एक प्राचीन जनपद। (ऋक् ७।१८।११) ३ मक्षनक। (भार० भीष्म० २।४)

वैकर्णायन (सं० पु०) वह जो वैकर्ण या वात्स्य मुनिके वंशमें उत्पन्न हुआ हो।

वैकर्णि (सं० पु०) विकर्णका अपत्य, पुत्र। (पा ४।१।१२७)

वैकर्णेय (सं० पु०) काश्यपके वंशधर। (पा ४।१।१२४)

वैकर्त (सं० क्ली०) ग्रीवा मांसखण्ड। (ऐतब्रा० ७।१)

वैकर्त्तन (सं० त्रि०) १ सूर्यके पुत्र। २ कर्ण। ३ सूर्यवंशीय। ४ सुग्रीवके पूर्वपुरुष। (त्रि०) ५ सूर्यसम्बन्धी, सूर्यका।

वैकर्म (सं० पु०) विक्रम या अपक्रमका भाव, दुष्कृत्य।

वैकर्य (सं० क्ली०) विकरका भाव या धर्म, करहीनता।

वैकल्प (सं० पु०) विकल्पका भाव।

वैकल्पिक (सं० त्रि०) विकल्पेन प्राप्तः तत भवो वा विकल्प-ठक्। १ एकाङ्गी, जो किसी एक पक्षमें हो। २ संदिग्ध, जिसमें किसी प्रकारका संदेह हो। ३ जो अपने इच्छानुसार ग्रहण किया जा सके, जो चुना जा सके।

वैकल्य (सं० क्ली०) १ विकल होनेका भाव, विकलता, घबराहट। २ कातरता। ३ विकृत भाव, टेढ़ापन। ४ लङ्गता। ५ अङ्गहीनता। ६ न्यूनता, कमी। ७ अभाव न होना। (त्रि०) ८ अपूर्ण, अधूरा।

वैकायन (सं० पु०) एक प्राचीन गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि। (संस्कारकौ०)

वैकारिक (सं० त्रि०) १ विकारप्राप्त, जिसमें किसी प्रकारका विकार हुआ हो, बिगड़ा हुआ। (क्ली०) विकार एव विकार-ठक्। २ विकार, बिगाड़।

वैकारिमत (सं० क्ली०) विकारप्राप्तमत, मतका विकार भाव। (पा ११३१२१)

वैकार्य (सं० क्ली०) १ विकारका भाव या धर्म। (त्रि०) २ विकारके योग्य, जिसमें विकार हो सकता या होता हो।

वैकाल (सं० पु०) विकाल, अपराह्न।

वैकाल—रूसके अधिकृत एशियाके मंगोलिया विभागमें अवस्थित एक विस्तृत ह्रद। यह लम्बाईमें ४०० मील और चौड़ाईमें सर्वत्र ही प्रायः ४५ मील है। समुद्रकी तहसे यह १७१५ फीट ऊंचा है। यहां शील आदि नाना जातिकी मछलियां पाई जाती हैं। इस कारण कई एक जहाज इसके किनारे हमेशा यातायात किया करते हैं। विगत रूस जापानकी लड़ाईके समय इस ह्रदके बरफके ऊपरसे रूसगण रेलवे लाइन ले गये थे। किन्तु दुःखका विषय है—बरफके टूट जानेसे सेनासे लदी एक गाड़ी नीचे जलमें गिर पड़ी। इसके पास ही प्रायः जलपूर्ण बहुतेरे प्रस्रवण हैं। ह्रदके उत्तर-पूर्व कोने पर ओलिखोहन नामक द्वीप है। भ्रमणकारी मंगोल और बुलाते जातियां यहां आया करती हैं।

वैकालिक (सं० त्रि०) विकाले भवः विकाल-ठञ्। १ अपने उपयुक्त समय पर न हो कर असमयमें उत्पन्न हो। २ विकाल सम्बन्धीय।

वैकाशेय (सं० पु०) १ विकाशके अपत्यादि। (पा ४।१।१२३)

(त्रि०) २ विकाशके उपयुक्त, प्रकाशके योग्य।

वैकि (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक एक ऋषिका नाम। (प्रवराध्याय)

वैकिर (सं० त्रि०) विकि या प्रस्रवणादिका जल। (सुश्रुत)

वैकुट्यासीय (सं० त्रि०) विकुट्यास सम्बन्धीय। (पा ४।२।८०)

वैकुण्ठ (सं० पु०) १ श्रीकृष्ण। (भागवत ३।१५।४६)

इस शब्दकी व्युत्पत्ति इस तरह है—चाक्षुस मन्वन्तरमें पुरुषोत्तमदेवने वैकुण्ठमें विकुण्ठके गर्भसे जन्म ग्रहण किया था, इसीलिये उनका वैकुण्ठ नाम हुआ है।

"चाक्षुस्यान्तरे देवो वैकुण्ठः पुरुषोत्तमः।
विकुण्ठायामसौ जज्ञे वैकुण्ठे दैवतैः सह॥"
(विष्णुपुराण)

और भी लिखा है, कि कुण्ठा शब्दका अर्थ माया है, जिसकी कई प्रकारकी माया विद्यमान हैं, वे वैकुण्ठ नामसे अभिहित होते हैं। कुण्ठत्यनया, कुण्ठा माया विविधा कुण्ठा माया विद्यतेऽस्य वैकुण्ठः (विष्णुसहस्रनाम टीकामें शङ्कराचार्य)।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें वैकुण्ठ नामकी व्युत्पत्ति इस तरह लिखी हुई है—कुण्ठ शब्दसे जड़ या विभ्यसमूह, इनको जो विशिष्ट करते हैं, वेद चतुष्टयने उन्हींको विकुण्ठा या प्रकृति कहा है। भगवान् निर्गुण होने पर भी गुणका आश्रय ले कर अपनी सृष्टिके संस्थापन करनेके लिये उसमें उत्पन्न होते हैं। इससे पण्डितगण परिपूर्णतम ईश्वरको वैकुण्ठ नामसे पुकारते हैं।

श्रीमद्भागवतमें अजामिलके उपाख्यानमें लिखा है, कि वैकुण्ठ नाम लेनेसे अशेष पाप कट जाता है।

भाविष्कृत हुई है, यह तीन भाषाओंमें लिखी है—प्राचीन पारस्य, बाबेरु (Babylonian) और शाक। किस प्रकार तीनोंने अपने साम्राज्यमें अहुरमज्दधर्मको पुनः प्रतिष्ठित किया, किस प्रकार तीनोंने अवस्ता शास्त्र और उसकी टीकाका उद्धार किया, उसका परिचय उक्त लिपिमें दिया गया है।

भाषाविद्गण उक्त शाकलिपिकी भाषाको, ईसाजन्मके पहले ५वीं सदीमें व्यवहृत मद्रोंकी भाषा मानते हैं, फिर भी उस भाषाके साथ द्राविड़ीय भाषाकी उपश्रेणीके साथ यथेष्ट सौसादृश्य है। इस कारण बहुतेरे अनुमान करते हैं, कि मद्र-पारस्य (Medo Persians) जातिके अभ्युदयके पहले उसी भाषामें ही शाकलोग बातचीत भी करते थे, तुर्की या मोङ्गलीय भाषामें नहीं।

वैंशतिक (सं० त्रि०) विंशत्या क्रीत विंशतिक अण् (५।१।२७) विंशति द्वारा क्रीत, जो बीससे खरीदा गया हो।

वैँचि—बंगालके हुगली जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। यह कलकत्तेसे ४४ मील दूर ग्राण्ड्ट्रंकरोड नामक रास्ते पर अक्षा० २३° ७´ उ० तथा देशा० ८८° १५´ ३५´´ पू०के बीच पड़ता है। यहां ईष्ट इण्डिया रेलवेका स्टेशन है। एक समय यहां मशहूर डकैतोंका दल था।

वैकक्ष (सं० क्ली०) विशेषेण कक्षति व्याप्नोति वि-कक्ष-अण्। १ वह हार या माला जो एक ओर कंधे पर और दूसरी ओर हाथके नीचे रहे, जनेऊकी तरह पहना जानेवाला हार या माला। २ इस प्रकार माला पहननेका ढंग। (पु०) ३ पर्वतभेद। (भागवत ५।१६।२६)

वैकक्षक (सं० क्ली०) वैकक्ष-कन् स्वार्थे। वैकक्ष देखो।

वैकङ्कत (सं० पु०) १ वृक्षविशेष। पर्याय—वृतिक्षर, श्रुवावृक्ष, ग्रन्थिल, स्वादुकण्टक, व्याघ्रपात्, कण्टकारी, विकङ्कत। (त्रि०) विकङ्कतस्यावयवो विकारो वा विकङ्कत अण् पलाशादिभ्यो वा (पा ४।३।१४१) जो विकङ्कतकी लकड़ी आदिसे बना हो, विकङ्कतका।

वैकटिक (सं० पु०) १ रत्नपरीक्षक, जौहरी। (त्रि०) २ विकट-सम्बन्धीय, विकटका।

वैकट्य (सं० क्ली०) विकट होनेका भाव या धर्म, विकटता।

वैकटिक (सं० पु०) वह जो रत्नोंकी परीक्षा करता हो, जौहरी।

वैकत्थिक (सं० पु०) वह जो अपने सम्बन्धमें बहुत बढ़ा कर बातें कहा करता हो, डींगबाज, शेखीबाज।

वैकयत (सं० पु०) जातिविशेष।

वैकयतविध (सं० पु०) वैकयतानां विषयो देशः इति विधल्। वैकयतोंका देश। (पा ५।२।५४)

वैकर (सं० त्रि०) विकरात् प्राग्दीव्यति विकर-अण् (पा ४।१।८६)। विकरके पहले क्रीड़ित आदि।

वैकरञ्ज (सं० पु०) संकर जातिका एक प्रकारका सांप। दर्वीकर (फणायुक्त), मण्डली (फणाहीन) और राजिमान् (रेखायुक्त), इन तीन प्रकारके सांपोंके परस्पर योगसे जो सांप उत्पन्न होता है उसीको वैकरञ्ज कहते हैं। ये फिर माकुलि, पोटगल और स्निग्धराजिके भेदसे तीन प्रकारके हैं। कृष्णसर्प और गोनसके संगमसे माकुलि, राजिल और गोनसके संगमसे पोटगल तथा कृष्णसर्प और राजिमानके संगमसे स्निग्धराजि उत्पन्न होता है। माकुलिका विष पिताके समान तथा पोटगल और स्निग्धराजिका विष माताके समान होता है। फिर ये दिव्यलेप, रोध्रपुष्प, राजिचित्रक, पोटगल, पुष्पाभिकीर्ण, दर्भपुष्प और वेल्लितकके भेदसे सात प्रकारके हैं, जिनमेंसे पहलेके तीन राजिमानकी तरह हैं।

वैकर्ण (सं० पु०) विकर्णस्यापत्यमिति विकर्ण-अण् (विकर्णशुङ्गच्छगलात् वत्सभरद्वाजात्रिषु। पा ४।१।११७) १ वात्स्य मुनि। (सिद्धान्तकौमुदी) २ एक प्राचीन जनपद। (ऋक् ७।१८।११) ३ मत्स्यक। (पार० गृह्य० २।४)

वैकर्णायन (सं० पु०) वह जो वैकर्ण या वात्स्य मुनिके वंशमें उत्पन्न हुआ हो।

वैकर्णि (सं० पु०) विकर्णका अपत्य, वात्स्य। (पा ४।१।१२७)

वैकर्णेय (सं० पु०) काश्यपके वंशधर। (पा ४।१।१२४)

वैकल्प (सं० क्ली०) प्रौढ़ मांसखण्ड। (देवप्रा० ७।१)

वैकर्त्तन (सं० त्रि०) १ सूर्यके पुत्र। २ कर्ण। ३ सुग्रीव। ४ सुग्रीवके पूर्वपुरुष। (त्रि०) ५ सूर्यसम्बन्धी, सूर्यका।

वैकर्म (सं० पु०) विक्रम या अपक्रमका भाव, दुष्कृत्य।

वैकर्य (सं० क्ली०) विकरका भाव या धर्म, करहीनता।

वैकल्प (सं० पु०) विकल्पका भाव।

वैकल्पिक (सं० त्रि०) विकल्पेन प्राप्तः तत्र भवो वा विकल्प-ठक्। १ एकाङ्गी, जो किसी एक पक्षमें हो। २ संदिग्ध, जिसमें किसी प्रकारका संदेह हो। ३ जो अपने इच्छानुसार ग्रहण किया जा सके, जो चुना जा सके।

वैकल्य (सं० क्ली०) १ विकल होनेका भाव, विकलता, घबराहट। २ कातरता। ३ विकृत भाव, टेढ़ापन। ४ अक्षमता। ५ अङ्गहीनता। ६ न्यूनता, कमी। ७ अभाव न होना। (त्रि०) ८ अपूर्ण, अधूरा।

वैकायन (सं० पु०) एक प्राचीन गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि। (संस्कारकौ०)

वैकारिक (सं० त्रि०) १ विकारप्राप्त, जिसमें किसी प्रकारका विकार हुआ हो, बिगड़ा हुआ। (क्ली०) विकार एव विकार-ठक्। २ विकार, बिगाड़।

वैकारिमत (सं० क्ली०) विकारप्रासमत, मतका विकार भाव। (पा २।२।३१)

वैकार्य (सं० क्ली०) १ विकारका भाव या धर्म। (त्रि०) २ विकारके योग्य, जिसमें विकार हो सकता या होता हो।

वैकाल (सं० पु०) विकाल, अपराह्न।

वैकाल—रूसके अधिकृत एशियाके मंगोलिया विभागमें अवस्थित एक विस्तृत ह्रद। यह लम्बाईमें ४०० मील और चौड़ाईमें सर्वत्र ही प्रायः ४५ मील है। समुद्रकी तहसे यह १७१५ फीट ऊंचा है। यहां शील आदि नाना जातिकी मछलियां पाई जाती हैं। इस कारण कई एक जहाज इसके किनारे हमेशा यातायात किया करते हैं। विगत रूस जापानकी लड़ाईके समय इस ह्रदके बरफके ऊपरसे रूसगण रेलवे लाइन ले गये थे। किन्तु दुःखका विषय है—बरफके टूट जानेसे सेनासे लदी एक गाड़ी नीचे जलमें गिर पड़ी। इसके पास ही धातव जलपूर्ण बहुतेरे प्रस्रवण हैं। ह्रदके उत्तर-पूर्व कोनेमें ओलिखोहन नामक द्वीप है। भ्रमणकारी मंगोल और बुलाते जातियां यहां आया करती हैं।

वैकालिक (सं० त्रि०) विकाले भवः विकाल-ठक्। १ अपने उपयुक्त समय पर न हो कर असमयमें उत्पन्न हो। २ विकाल सम्बन्धीय।

वैकाशेय (सं० पु०) १ विकाशके अपत्यादि। (पा ४।१।१२३)

(त्रि०) २ विकाशके उपयुक्त, प्रकाशके योग्य।

वैकि (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक एक ऋषिका नाम। (प्रवराध्याय)

वैकिर (सं० त्रि०) विकि या प्रस्रवणादिका जल। (सुश्रुत)

वैकुट्यासीय (सं० त्रि०) विकुट्यास सम्बन्धीय। (पा ४।२।८०)

वैकुण्ठ (सं० पु०) १ श्रीकृष्ण। (भागवत ३।१५।४६)

इस शब्दकी व्युत्पत्ति इस तरह है—चाक्षुस मन्वन्तरमें पुरुषोत्तमदेवने वैकुण्ठमें विकुण्ठके गर्भसे जन्म ग्रहण किया था, इसीलिये उनका वैकुण्ठ नाम हुआ है।

"चाक्षुस्यान्तरे देवो वैकुण्ठः पुरुषोत्तमः।
विकुण्ठायामसौ जज्ञे वैकुण्ठे दैवतैः सह॥"
(विष्णुपुराण)

और भी लिखा है, कि कुण्ठा शब्दका अर्थ माया है, जिसकी कई प्रकारकी माया विद्यमान हैं, वे वैकुण्ठ नामसे अभिहित होते हैं। कुण्ठस्यनया, कुण्ठा माया विविधा कुण्ठा माया विद्यतेऽस्य वैकुण्ठः (विष्णुसहस्रनाम टीकामें शङ्कराचार्य)।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें वैकुण्ठ नामकी व्युत्पत्ति इस तरह लिखी हुई है—कुण्ठ शब्दसे जड़ या विश्वसमूह, इसको जो विशिष्ट करते हैं, वेद चतुष्टयने उन्हींको विकुण्ठा या प्रकृति कहा है। भगवान् निर्गुण होने पर भी गुणका आश्रय ले कर अपनी सृष्टिके संस्थापन करनेके लिये उसमें उत्पन्न होते हैं। इसमें पण्डितगण परिपूर्णतम ईश्वरको वैकुण्ठ नामसे पुकारते हैं।

श्रीमद्भागवतमें अजामिलके उपाख्यानमें लिखा है, कि वैकुण्ठ नाम लेनेसे अशेष पाप कट जाता है।

वैकृतवत् (सं० त्रि०) विकृत अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। वैकृतविशिष्ट, वैकृतयुक्त।

वैकृतिक (सं० त्रि०) नैमित्तिक।

वैकृत्य (सं० क्ली०) विकृतमेव स्वार्थे ष्यञ्। १ बीभत्स रस। २ उसका आलम्बन।

'विधु बीभत्सविकृतं वैकृत्यं विततन्था।' (शब्दरत्ना०)

वैक्रमीय (सं० त्रि०) विक्रम सम्बन्धी, विक्रमका। जैसे,—वैक्रमीय संवत्।

वैक्रान्त (सं० क्ली०) विक्रान्त्या दीव्यति विक्रान्ति-अण्। स्वनामख्यात मणिविशेष, चुन्नी। पर्याय—विक्रान्त, नीचवज्र, कुवज्रक, गोनास, क्षुद्रकुलिश, जीर्णवज्र, गोनस। यह वज्र (हीरक)के गुणके समान होता है। (राजनि०)

वैक्रान्तक (सं० क्ली०) वैक्रान्त स्वार्थे कन्। वैक्रान्त देखो।

वैक्रिय (सं० त्रि०) विक्रिया सम्बन्धी, विक्रीका, जो विकनेको हो।

वैक्लव (सं० क्ली०) विक्लव-अण्। विक्लव सम्बन्धी।

वैक्लव्य (सं० क्ली०) विक्लव-ष्यञ्। विक्लवता, जड़ता।

वैक्लव्यता (सं० स्त्री०) वैक्लव्यस्य भावः तल्-टाप्। वैक्लव्य, जड़ता।

वैखरी (सं० स्त्री०) १ सुदृढ्युत्थित कण्ठगत नादरूप वर्ण, कण्ठसे उत्पन्न होनेवाले स्वरका एक विशिष्ट प्रकार। ऐसा स्वर उच्च और गंभीर सुनाई पड़ता है। (अलङ्कारकौस्तुभ)

२ वाक्-शक्ति। ३ वाग्देवी।

वैखानस (सं० पु०) विखानसं ब्रह्माणं वेत्ति तपसा, विखनस-अण्। १ वानप्रस्थ। २ वनचारी ब्रह्मचारी विशेष। (लिङ्गपु० १०।६) (त्रि०) वैखानसस्येद-मित्यण्। ३ वैखानस सम्बन्धी।

वैखानस—१ एक आयुर्वेदवित्। टोडरानन्दमें इसका उल्लेख है। २ एक शिल्पशास्त्रके रचयिता। ३ श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र नामक ग्रन्थोंके प्रणेता।

वैखानसतन्त्र—तन्त्रग्रन्थभेद।

वैखानसि (सं० पु०) एक प्राचीन गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि।

वैखानसोपनिषद्—एक उपनिषद्। गोपाल-पूर्णतापनीयोपनिषद्‌के साथ इसका बहुत कुछ सादृश्य देखा जाता है।

वैग—छोटा नागपुरवासी धनुआ जातिकी एक शाखा। ये लोग जादूगिरी विद्या दिखा कर रुपये कमाते हैं। उस देशके खरवाड़ भी वैग या वैराग उपाधिसे परिचित हैं। जनसाधारणकी धारणा है, कि ये लोग भौतिक प्रक्रिया द्वारा स्थानीय देवताओंकी शान्ति देनेमें समर्थ हैं। बहुतेरे इन्हें स्थानीय आदिम अधिवासी भी मानते हैं।

मण्डलाके आदिम अधिवासी वैग या वैगा नामसे परिचित हैं। कहीं कहीं ये लोग गोंड़ जातिकी पुरो-हिताई करते हैं। ये साधारणतः भूमिज उपाधिधारी हैं। विञ्झवार, मण्डिया और भिरोटिया नामके तीन दलोंमें ये विभक्त हैं। उन तीन दलोंमें फिर सात वंश-विभाग हैं। ये लोग एक ग्राममें गोंड़ोंके साथ वास तो करते हैं, पर कभी उनका संसर्ग नहीं करते, सर्वदा पृथक् रहते हैं। इनकी भाषा विशुद्ध हिन्दी है। ये लोग नि[illegible]ैक, विश्वासी, साधीनचेता, कर्मठ, कार्य-तत्पर और बलिष्ठ होते हैं।

वैगन्धिक (सं० पु०) गन्धक। (वाभट उ० २६ अ०)

वैगलेय (सं० पु०) भूतगणविशेष। (हरिवंश)

वैगुण्य (सं० क्ली०) विगुणस्य भावः विगुण ष्यञ्। १ विगुणता, गुणहीन होनेका भाव। २ अपराध, दोष। ३ गुणविसम्वाद। ४ नीचता, वाहियातपन।

पूजादि कार्यमें भूलसे यदि कोई वैगुण्य हो जाय तो पूजादिके शेषमें वैगुण्य समाधान करना होता है। पूजाके अन्तमें भगवान विष्णुका नाम स्मरण करनेसे सभी दोष विनष्ट होते हैं।

वैग्रहिक (सं० त्रि०) शरीर सम्बन्धी, शरीरका। (पा ४।३।८०)

वैग्रेय (सं० पु०) विग्रका अपत्य। (पा ४।१।१२३)

वैघस (सं० पु०) हरिवंश वर्णित एक व्याध। (हरिवंश)

वैघात्य (सं० पु०) वह जो घात करनेके योग्य हो, मार डालने लायक।

वैङ्कि (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिभेद। (पा १।४।६१)

वैङ्कि (सं० पु०) प्राच्यगोत्रके अपत्य। बहुवचनमें वैङ्कीया होता है।

वैङ्गेय (सं० क्ली०) वङ्गदेश।

वैचक्षण्य (सं० क्ली०) विचक्षणस्य भावः। विचक्षण या निपुण होनेका भाव, निपुणता, होशियारी।

वैचित्त्य (सं० क्ली०) चित्तभ्रान्ति, भ्रम।

वैचित्र (सं० क्ली०) विचित्रस्य भावः अण्। विचित्रता, विलक्षणता।

वैचित्रवीर्य (सं० पु०) विचित्रवीर्यका अपत्य, धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुरादि।

वैचित्रवीर्यक (सं० त्रि०) विचित्रवीर्य सम्बन्धीय।

वैचित्रवीर्यिन (सं० पु०) विचित्रवीर्यवंशीय, वैचित्र-वीर्य।

वैचित्र्य (सं० क्ली०) विचित्रस्य भावः ष्यञ्। १ विचित्रता, विलक्षणता। २ विभिन्नता, भेद। ३ नाना रूपता। ४ सौन्दर्य, सुन्दरता।

वैच्छन्दस (सं० त्रि०) विच्छन्दस् सम्बन्धीय। (कात्या ७।७।११)

वैच्युत (सं० पु०) मुनिभेद।

वैच्युति (सं० स्त्री०) स्खलन, पतन, गिरना।

वैजाव (सं० त्रि०) विजावका भाव, जो जाया गया हो।

वैजनन (सं० पु०) विजायतेऽस्मिन्निति जन आधारे ल्युट्, ततः स्वार्थे अण्। प्रसवमास, वह मास जिसमें किसी स्त्रीको सन्तान हुआ हो।

वैजन्य (सं० क्ली०) जनशून्य, एकान्त।

वैजयन्त (सं० पु०) वैजयन्ती अस्त्यत्रेति अर्श आद्यच्। १ इन्द्रप्रासाद, इन्द्रपुरी। २ इन्द्रध्वज। ३ इन्द्र। ४ गृह। ५ अग्निमन्थवृक्ष, अरणी।

वैजयन्तिक (सं० त्रि०) वैजयन्ती अस्त्यस्येति व्रीह्यादित्वात् ठन्, यद्वा वैजयन्तीं वहतीति ठक्। पताकाधारी, झंडा उठानेवाला।

वैजयन्तिका (सं० स्त्री०) वैजयन्ती स्वार्थे कन्। १ जयन्तीवृक्ष। २ पताका, झंडा। ३ अग्निमन्थ, अरणी।

वैजयन्ती (सं० स्त्री०) १ पताका, झंडा। २ जयन्ती वृक्ष। ३ एक प्रकारकी माला जो पांच रंगोंकी और पुरों तक लटकती हुई होती थी। कहते हैं, कि यह माला श्रीकृष्ण पहना करते थे।

वैजयन्ती—दाक्षिणात्यका एक बड़ा गांव। प्रत्नतत्त्व-विदोंके मतसे यही ग्रीक भौगोलिकोंका वाणिज्य-प्रधान Buzantion नगर है। फिर कोई कोई गुजरातके पश्चिमी को Byzantium कहते हैं।

वैजयि (सं० त्रि०) १ मघवा, इन्द्र। २ जैनोंके बारह चक्रवर्तियोंमेंसे एक।

वैजयिक (सं० त्रि०) विजयस्य निमित्तं विजयिना संयोग इति वा विजय (तस्य निमित्तमिति। पा ५।१।३८) इति ठञ्। विजयसम्बन्धीय, विजयसूचक।

वैजयिन् (सं० त्रि०) विजयी एव स्वार्थे अण्। विजयी।

वैजर (सं० पु०) ऋषि प्रवर्तित शाखाभेद।

वैजल—प्रबोधचन्द्रिका नामक व्याकरणके प्रणेता। इनके आश्रयमें संस्कृत राजावलि रची गई।

वैजवन—वैदिक शाखाप्रवर्तक ऋषिभेद। पैजवन, पैजन आदि पाठ भी देखा जाता है।

वैजात्य (सं० क्ली०) वि-जाति भावे ष्यञ्। विजातीय होनेका भाव। २ विलक्षणता, अद्भुतता। ३ स्वजाति-का प्रभेद। ४ लाम्पट्य, बद-चलनी।

वैजान (सं० पु०) वृत्रके अपत्य ऋषिभेद।

वैजापक (सं० त्रि०) विज्ञापक देशभव।

वैजाबाई—महाराष्ट्र-सरदार महाराज दौलतराव सिन्धियाकी महिषी। ये महाराष्ट्र-सभ्भी सखाराम घाटगेकी पुत्री थीं। १८वीं सदीके शेषभागमें इनका जन्म हुआ था। हिन्दू राव इनके भाई थे।

बचपनमें ही बैजाकी प्रकृति दाम्भिकतासे भरी थी। जो उसने एक बार कह दिया यदि उसका पालन न होता तो वह क्रोधित हो उठती थी। पिताके आदरसे लालित पालित तथा अपनी प्रकृतिगतः परिचालित हो इनका चरित्र धीरे धीरे पुरुषोचित बुद्धि और विक्रमसे परिपूर्ण हो गया था। स्वामीके ऐश्वर्य और गौरवने इनके हृदयमें राजनीतिके प्रभुत्व प्रतापको सम्पूर्णरूपसे अङ्कित कर दिया था।

१८२७ ई०में स्वामीकी मृत्यु होने पर इन्होंने राज्यभार अपने हाथ लिया। कुछ समय बाद जनकोजी नामक स्वामीके एक आत्मीयको इन्होंने गोद लिया और उसीको राजसिंहासनका भावी उत्तराधिकारी बनाया। जनक-

जो नाबालिग थे, इस कारण वे ही राजकार्यकी देखभाल करती थीं। किन्तु नाबालिगके ऊपर कठोर व्यवहार और अत्याचार करनेसे वे बाज भी नहीं आती थीं। इस प्रकार माताका बार बार प्रपीड़न जनकजीके लिये असह्य हो गया। अत्याचारोंसे छुटकारा पानेके लिये अंगरेज-राजकी शरण ली। फलतः अंगरेजराजने १८३३ ई०में उन्हें सिन्देराजकी गद्दी पर बैठाया। इससे बैजाबाईका प्रभुत्व जाता रहा। अब वे हीनतासे राजप्रासादमें रहना नहीं चाहती। आगरेमें आ कर निर्विवाद-पूर्वक रहना ही उन्होंने स्थिर कर लिया। यहां कुछ दिन ठहर कर वे फरुखाबादको चली गई। आखिर दाक्षिणात्यमें जहां उनको जागीर थी, वहीं आ कर बड़े कष्टसे उन्होंने जीवन व्यतीत किया था।

बैजावी—मुसलमान ऐतिहासिक। सिराजके निकटवर्ती बैजा नामक ग्राममें इनका जन्म हुआ था, इस कारण ये बैजावी नामसे प्रसिद्ध हुए। इनका पूरा नाम था नासिर उद्दीन अबुल् खैर अबदुल्ला इब्न उमर अल बैजावी। ये कुछ दिन सिराज नगरीके काजी पद पर अधिष्ठित थे। १२८६ ई०में (दूसरेके मतसे १२९२ ई०में) इनका देहान्त हुआ। तफसिर बैजावि वा अनवर उल् तांजिल नामकी कुरानकी टीका तथा असरार उल ताविल नामके दो ग्रन्थ इन्हींके बनाये हुए हैं।

निजामत तवारिख नामक एक इतिहास ग्रन्थ इन्हींका रचित है। इस ग्रन्थमें आदमसे तातार जातिके हाथ खलीफाओंकी पतन-कहानी लिपिबद्ध है। कुछ लोगोंका कहना है, कि शायद सैयद बैजावीने शेषोक्त ग्रन्थकी रचना की।

बैजिक (सं० क्ली०) बीजाद्‌ आगतं बीज-ठक्। १ शिग्रु-तैल। २ हेतु, कारण। ३ आत्मा। ४ सद्योङ्कुर, हालका अंकुर। (त्रि०) ५ बीज सम्बन्धी। ६ वीर्य-सम्बन्धी।

बैजू—भारतके एक प्रसिद्ध सङ्गीतवेत्ता। उस समय गायक गोपाल और तानसेन नामक और भी दो गायक इनके जोड़के थे।

बैज्ञानिक (सं० त्रि०) विज्ञाने युक्तः विज्ञान (तत्र नियुक्तः। पा ४।४।६९) इति ठक्। १ निपुण, दक्ष। २ विज्ञान सम्बन्धीय। ३ विज्ञानविद्।

वैटप (सं० पु०) विटपका अपत्य। (पा ४।१।११२)

वैडूलिक (सं० पु०) रुद्रपूजकविशेष।

वैड्व—बीड़का अपत्य। (पञ्चविंशब्रा० ११।८।६)

वैड़ालव्रत (सं० क्ली०) वैड़ालं बिड़ालसम्बन्धि व्रतम्। दुराचारविशेष, कपटाचार, पाप और कुकर्म करते हुए भी ऊपरसे साधु बने रहना।

वैड़ालव्रति (सं० पु०) अङ्गनादिके अभावके कारण कृत-ब्रह्मचर्य।

वैड़ालव्रतिक (सं० पु०) विड़ालव्रतेन चरतीति बिड़ाल-व्रत-ठक्। छद्मतपस्वी। पर्याय—छद्मतापस, सर्वाभि-सन्धी। शास्त्रमें लिखा है, कि इनके साथ बातचीत तक भी नहीं करनी चाहिये।

वैड़ालव्रतिन् (सं० पु०) वैड़ालव्रतमस्यास्तीति इनि। भण्ड तापस, वह तपसी या साधु जो वास्तवमें पापी और कुकर्मी हो।

वैडूर्य (सं० क्ली०) वैदुर्यमणि।

वैडूर्यकान्ति (सं० त्रि०) वैदुर्यको तरह कान्तिविशिष्ट।

वैडूर्यप्रभ (सं० पु०) नागभेद।

वैडूर्यमणिमत (सं० त्रि०) वैदुर्यमणि सदृश।

वैडूर्यमय (सं० त्रि०) वैदुर्य स्वरूप।

वैडूर्यशिखर (सं० पु०) पर्वतभेद। (भारतवनपर्व)

वैडूर्यशृङ्ग (सं० क्ली०) नगरभेद। (कथासरित्सा० ६५।५७)

वैण (सं० पु०) वेणु-अण् उकारस्य लोपः। वेणु-सम्बन्धी, बांसका।

वैणव (सं० क्ली०) वेणोरिदं वेणु-अण्। १ वेणुफल, बांसका फल। (पु०) २ वेणोरवयो विकारो वा वेणु (बिल्वादिभ्योऽण्। पा ४।३।१३६) इत्यण्। ३ उपनयन-में वेणुदण्ड, बांसका वह डंडा जो यज्ञोपवीतके समय धारण किया जाता है। ४ वेणु, बंशी। (भारत ५।५०।१६) (त्रि०) ५ वेणुसम्बन्धी, बांसका।

वैणविक (सं० त्रि०) वैणवो वेणुस्तद्वादनं शीलमस्य वैणव ठक्। (पा ४।४।५५) वेणुवादक, बंशी बजाने-वाला।

वैणविन् (सं० त्रि०) १ वेणुवादक, बंशी बजानेवाला। (पु०) २ शिव। (भारत १३ पर्व)

वैणवी (सं० स्त्री०) वेणोर्निर्हृतिः वेणु (बिल्वादिभ्योऽण्

पा ४।१।११६) इत्यण्-ततो ङीप् । १ वंशलोचन । (त्रि०) २ वेणु सम्बन्धी, बांसका ।

वैणसौमत्नायीय (सं० क्ली०) सामभेद ।

वैणहोत्र (सं० पु०) १ वेणुहोत्रका वंश । २ धृष्टकेतुकी सन्तति परम्परा ।

वैणायत (सं० त्रि०) धनुषकी तरह वक्रतायिशिष्ट, जो धनुषकी तरह टेढ़ा हो । "वैणायताय प्रतिपन्नस्य-शङ्कुम् ।" (शाट्या० ३।१०।६)

वैणिक (सं० त्रि०) वीणावादनं शिल्पमस्य, वीणा (शिल्पं । पा ४।४।५५) इति ठक् । वीणावादक, वंशी बजानेवाला ।

वैणुक (सं० पु०) वेणुना कायति शब्दायते इति कै-क, ततः स्वार्थे अण् । १ वेणुवादक, वंशी बजानेवाला । २ गजका तोदनदण्ड, हाथीका अंकुश ।

वैणुकीय (सं० त्रि०) वेणुकस्यायमिति (वेण्वादिभ्य-श्छण् । पा ४।२।१२८) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्याच्छण् । वेणु सम्बन्धीय, बांसका ।

वैणुवंश (सं० पु०) वेणुवंश सम्बन्धीय ।

वैणेय (सं० पु०) वैदिक शाखाभेद ।

वैण्य (सं० पु०) वेणोरपत्यमिति वेण-ष्यञ् । पृथु, राजा वेणके पुत्र । ये सूर्यवंशीय षष्ठम राजा थे ।

वैतंसिक (सं० त्रि०) वीतंसो मृगपक्ष्यादि बन्धनोपाय-स्तेन चरतीति वितंस (चरति । पा ४।४।८) इति ठक् । मांसविक्रेता, मांस बेचनेवाला, चूहड़, कसाई । पर्याय—कौटिक, मांसिक । (अमर)

वैतण्डिक (सं० त्रि०) वितण्डायां साधुः वितण्डा (कथादिभ्यष्ठक् । पा ४।४।१०२) इति ठक् । जो बहुत अधिक वितण्डा करता हो, व्यर्थका झगड़ा या बहस करनेवाला ।

वैतदर्श (सं० पु०) सर्पभेद ।

वैतन्द्र (सं० पु०) धाताके एक पुत्रका नाम । (विष्णुपुराण)

वैतथ्य (सं० क्ली०) वितथस्य भावम् । १ वितथत्व, मिथ्यात्व । २ उपनिषद्भेद, वैतथ्योपनिषद् ।

वैतनिक (सं० त्रि०) जो वेतन ले कर काम करता हो, तनखाह ले कर काम करनेवाला । पर्याय—भृतक, भृति-भुक्, [illegible] ।

वैतरणा—शालिगाल्यके कोङ्कणप्रदेशमें प्रवाहित एक नदी । यह पुर्त्तगीजोंके अधिकृत वसई और दमन प्रदेशकी उत्तरी और दक्षिणी सीमा हो कर बहती गई है । इसके किनारे सायवान् नामक स्थानमें निजामोंने एक दुर्ग बनवाया था ।

वैतरणी (सं० स्त्री०) वितरणीविशुद्धेर्वा पापाद्वै यया वैतरणी इत्युच्यते । वितरणि विनोका, तरणकुम्भैरपि, स्वार्थे ष्णे वैतरणीत्येके । १ नरकसिन्धु । नरकद्वार-स्थित नदी । इस नदीका वेग अत्यन्त प्रबल है । जल बहुत उष्ण और अति दुर्गन्ध है । यह अस्थि, केश और रक्तसे परिपूर्ण है । यमद्वार पर यह नदी है । मृत्युके बाद इस नदीको पार कर यमसदनमें जाना होता है ।

कालिकापुराणमें इस नदीका विवरण इस तरह लिखा है,—महादेव सतीके वियोगमें जब रो रहे थे, तब उनकी आँखोंसे अश्रुपात हुआ । यह अश्रुपात होने देव देवता सोचने लगे, कि यदि महादेवके नेत्रोंसे गिरा जल पृथ्वी पर गिरेगा, तो उसी समय पृथ्वी भस्मीभूत हो जायेगी, यह सोच कर सभी देवता शनिके स्तवमें प्रवृत्त हुए—"हे शनैश्चर ! तुम प्रसन्न हो, शिवके शोकसम्भूत नेत्रजलसे पृथ्वीकी रक्षा करो । जैसे तुमने पहले एक सौ वर्ष वृष्टिका जल धारण कर अनावृष्टि की थी वैसे ही शिवके नेत्रोंका जल भी धारण करो । तुम जल धारण कर रहे हो, यह देख कर पुष्कर आदि मेघदल उन्होंने आकाशमें सतत वृष्टि करने लगे थे, किन्तु तुमने उन सब जलको आकाशमें ही नष्ट किया था । उसी तरह अब शूलपाणिका वाष्प विनष्ट करो । तुम्हारे सिवा यहां ऐसा कोई नहीं जो इसका निवारण कर सके । फिर इस अश्रुजलके पतित होने पर देवलोक, गन्धर्वलोक, नागलोक और पर्वतके साथ पृथ्वी नष्ट हो जायेगी । अतएव तुम अपने मायाबलसे इसे धारण करो ।" देवोंके इस तरह कहने पर शनिदेवने कहा, "हे देवगण ! मैं यथाशक्ति तुम लोगोंका कार्य करूंगा । किन्तु देवाधिदेव महादेव मुझको जान न सकें, ऐसा उपाय आप लोग कीजिये । यदि वह देख लें, तो उनके कोपसे मेरा शरीर विनष्ट हो जायेगा ।

इसके बाद ब्रह्मादि सभी देवगण शङ्करके समीप गये। उन्होंने शङ्करको योगमाया द्वारा सम्मोहित किया। शनिने भूतनाथके निकट आ कर अश्रुवृष्टिको मायाबलसे धारण किया। जब शनि अश्रुवृष्टि धारण करनेमें असमर्थ हुए, तो उन्होंने जलधर नामक महागिरिमें उसे निक्षेप कर दिया। जलधरगिरि लोकालोक पर्वतके निकट पुष्करद्वीपके पश्चाद् भागमें और जलसागरके पश्चिम अवस्थित है। यह पर्वत सर्वतोभावसे सुमेरु तुल्य है। यह पर्वत भी शङ्करके अश्रुजलको धारण करनेमें अक्षम हो उठा, शीघ्र ही इसका मध्य भाग विदीर्ण हो गया। इसके बाद यह नयनाम्बु गिरि भेद कर जलसमुद्रमें प्रविष्ट हुआ। समुद्र इस जलराशिको धारण करनेमें असमर्थ हुआ। इसके बाद सागरको पार कर यह जलसमुद्रके पूर्वीय किनारे पर आया और स्पर्शमात्रसे ही उसे भेद कर दिया। यह पुष्करद्वीपमध्यगत अश्रुजल वैतरणी नदी हो कर पूर्वकी ओर चला। यह जलधारा गिरिभेद और सागरसंसर्गवशतः किञ्चित् सौम्यताको प्राप्त हुआ था, इससे पृथ्वी भेद कर न सका। इस नदीका विस्तार २ योजन है।

नौका, द्रोणी, रथ या विमान किसीके भी द्वारा इस नदीको पार नहीं किया जा सकता। इस प्रतप्त जलपूर्ण अति भीषण नदीके ऊपरसे देवता लोग भी नहीं जा सकते। यह नदीने यमद्वारको इवाकी तरह घेरे हुए है। (कालि०पु० १८ अ०)

पापी मृत्युके बाद इस नदीको पार करनेके समय अशेष प्रकारके कष्ट सहन करते हैं। इसीलिये शास्त्रमें लिखा है, कि यमद्वार पर अवस्थित वैतरणी नदी सुखसे तैरनेके लिये मुमूर्षु व्यक्ति सवत्सा काली गो दान करे, इसी दान पुण्यके फलसे मृत व्यक्ति सुखसे इस नदीको पार करते हैं। यदि मुमूर्षु कालमें वैतरणी अर्थात् गो दान आदि न कर सके हों, तो उनके उद्देशसे श्राद्ध करनेवालेको उचित है, कि अशौचान्त द्वितीय दिनको पहले वैतरणी कर पीछे तिल दान आदि करें। फलतः यह कार्य्य अवश्य कर्त्तव्य है।

आसन्नमृत्यु व्यक्ति वैतरणीके लिये सवत्सा गो दान करेंगे। अशक्त होनेसे एक गाय ही केवल दान की जाती है। गोके अभावमें गोमूल्य दान करनेकी भी व्यवस्था है।

गोदान करते समय निम्नलिखित मन्त्र पढ़ना चाहिये—

"यमद्वारे महाघोरे तप्ता वैतरणी नदी।
तांश्च तर्त्तुं ददाम्येनां कृष्णां वैतरणीञ्च गाम्॥"

(शुद्धितत्त्व

पीछे दक्षिणान्त करना होता है। २ पितृकन्या। ३ कलिङ्ग देशस्थित नदीविशेष। (भारत ३।११४।४)

वैतरणी—उड़ीसेमें प्रवाहित एक नदी। यमद्वारस्थ तप्तस्रोता वैतरणीकी तरह यह भी पापमोचनकारी और उसकी तरह इहलोकमें पवित्र तीर्थ है।

उड़ीसेके केउञ्झर राज्यके उत्तर-पश्चिम लोहारदगा जिलेके शैलपादसे (अक्षा० २३° २६' ३० और देशा० ८४° ५५' पू०) निकल कर दक्षिण-पूर्व और पीछे पूर्वकी ओर केउञ्झर, मयूरभञ्जराज्य, कटक और बालेश्वर जिलाकी सीमा रूपसे प्रवाहित हो शेषोक्त जिलेकी ब्राह्मणी नदीमें मिल गई है। मूलनदी अक्षा० २४° ४४' ४५" से २१° २७' १५" उ० और देशा० ८५° ३५' से ८६° ५१' १५" पू०के मध्य अवस्थित है। बालेश्वर जिलेमें ब्राह्मणी और वैतरणीके सङ्गमके बाद यह नदी धामरा नामसे प्रसिद्ध हुई है और बङ्गोपसागरमें मिल गई है। समूची नदीकी गति प्रायः ३४५ मील है।

नदीके मुहानेसे ओलख तक प्रायः १५ मील नदी वक्षमें पण्यवाही नौका आ जा सकती है। ग्रीष्म ऋतुमें इस नदीमें अधिक जल नहीं रहता। पैदल पार किया जा सकता है। हिन्दुओंके लिये यह अति पवित्र तीर्थ है। सुप्रसिद्ध विरजाक्षेत्र इसके निकट ही अवस्थित है। याजपुर देखो। प्रवाद है, कि अयोध्यापति रामचन्द्र जब सीता देवीके उद्धारके लिये लङ्कापुरीमें गये थे, तब उन्होंने केउञ्झरके अन्तर्गत वैतरणी नदीके किनारे विश्राम किया था। इस घटनाका स्मरण कर बहुतेरे आदमी माघ महीनेमें आ कर यहां स्नान करते हैं और पितृपुरुषके उद्देशसे पिण्ड चढ़ाते हैं।

इसकी अन्यान्य शाखाओंमें बालेश्वर जिलेकी शालनदी और मलय उल्लेखयोग्य है। शङ्ख नामकी शाखा

१५ मीलका पथ तय कर इसके साथ आ मिली है। वैतरणीके किनारे जाजपुर, भोजपुर और चांदबाली नामक प्रसिद्ध बन्दर और नगर अवस्थित हैं।

गरुड़पुराणमें यह नदी गयाक्षेत्रके अन्तर्भुक्त गिनी गई है। इसका भौगोलिक विवरण सर्वांगसम्पन्न न होने पर भी इस स्थानको गयातीर्थकी तरह पुण्यफलप्रद माना जाता है। यहां पिण्डदान करनेसे पितृलोक स्वर्गवासी और आनन्दित होते हैं।

(गरुड़पुराण ८३।४४ अ०)

वैतस (सं० पु०) वेतस एव स्वार्थे अण्। १ अम्लवेतस, आमलवेत। २ शिश्नदण्ड, लिङ्ग। (निघण्टु ३।६) (त्रि०) ३ वेतस सम्बन्धी।

वैतसक (सं० त्रि०) वेतससम्बन्धीय। (पा ६।४।१५३)

वैतसकीय (सं० त्रि०) वैतससम्बन्धीय (पा ६।४।१५१)

वैतसेन (सं० पु०) राजा पुरूरवाका एक नाम, जो ऐतसेनाके पुत्र थे।

वैतस्त (सं० त्रि०) वितस्तादेशमें होनेवाला।

वैतस्तिक (सं० त्रि०) वितस्ति परिमाणसम्बन्धीय।

वैतहव्य—वीतहव्यके अपत्य वैदिकमन्त्रद्रष्टा अरुण ऋषि।

वैताढ्य (सं० पु०) पर्वतभेद।

वैतान (सं० त्रि०) वितान-अण्। वितान सम्बन्धी, वैतानिक।

वैतानिक (सं० पु०) विताने भवः, वितान, ठक्। १ श्रौतहोम, यज्ञ हवन या यज्ञ आदि जो श्रौत विधानोंके अनुसार हों। २ अग्निहोत्रादि कर्मसाधन अग्नि, वह अग्नि जिससे अग्निहोत्र आदि कृत्य किये जायँ।

(भारत० द० स० नाग०)

(त्रि०) ३ वितान सम्बन्धीय, यज्ञादि कार्यकारी। (भागवत १०।४०।५) विताने निर्वृत्तः ठक्। ४ वितान साध्य यज्ञादि प्रवृत्ति। (भारत० द० भी० ६ प०)

वैतायन (सं० पु०) वैतालका अपत्य।

वैताल (सं० त्रि०) वेताल अण्। १ वेतालसम्बन्धीय, वेतालका। २ स्तुतिपाठक, वैतालिक।

वैतालकि (सं० पु०) ऋग्वेदशाखाप्रवर्त्तक आचार्यभेद

वैतालरस—ज्वराधिकारोक्त रसौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—रस, गन्धक, विष, मिर्च और हरताल समान भाग ले कर अच्छी तरह घोंटे। जब यह काजलके समान दिखाई देने लगे, तब २ रत्तीकी गोली बनावें। सान्निपातिक ज्वरमें मूर्च्छा और प्रलापादि उपद्रव होने पर इसका प्रयोग किया जाता है। ग्रन्थविशेषमें यह श्रीवेतालरस नामसे भी लिखा गया है।

(भैषज्यरत्ना० ज्वराधिका०)

वैतालिक (सं० पु०) विविधेन तालेन चरतीति वितालठक्। १ बोधकर, प्राचीन कालका वह स्तुतिपाठक जो प्रातःकाल राजाओंको उनकी स्तुति करके जगाया करता था। 'विविधो मङ्गलगीतिवाद्यादिरूपस्तालस्तेन व्यवहरन्ति वैतालिकाः' (भरत)

विविध प्रकारके मंगलगीत और वाद्यादिको वितान कहते हैं। इससे जो जीविका निर्वाह करते, वे ही वैतालिक कहलाते हैं। २ लेट्टिभाल। लेट्टिभालकी जगह पहरुआल भी लिखा गया है।

वैतालिक—सत्यादिवर्णित राजभेद।

वैतालिन् (सं० पु०) छन्दोनुष्टभेद। (भारत ६ सं०)

वैतालि भाट—वाराणसीवासी भाटोंकी एक स्वतन्त्र शाखा। ये लोग गोसाईं अनाधिकारी हैं। प्रवाद है, कि राजा विक्रमादित्यकी सभामें वैताल नामक एक भाट था। राजवंशानुकीर्तनमें अतिशय दक्ष रहनेके कारण राजभाटकी उन्हें पदवी दी गई। पीछे यह राजाका आश्रित हिन्दूधर्म और राजवंशका परित्याग कर गोसाईं सम्प्रदायभुक्त हुआ। तभीसे इनके वंशधर गोसाईं कहलाते आ रहे हैं। वैतालके वंशधर होनेके कारण वे भाट नामसे प्रसिद्ध हैं।

ये लोग भीख मांग कर अपना गुजारा चलाते हैं, किन्तु वैष्णव गोसाईंको छोड़ कर और किसीका भी दान ग्रहण नहीं करते। इन गोसाइयोंका वंशकीर्तन ही इनका कार्य है।

वैतालीय (सं० पु०) १ मात्रावृत्तभेद। जिसके प्रथम और तृतीय पादमें चौदह तथा द्वितीय और चतुर्थ पादमें सोलह मात्रा रहती है, उसको वैतालीय छन्द कहते हैं। किन्तु इसमें विशेषता यह है, कि इसकी मात्रा केवल लघु या केवल गुरु होनेसे काम नहीं चलेगा, वह मिश्र होनी चाहिये। फिर सम मात्रा परस्परमें नहीं होगी,

अर्थात् ३,५ ७ इत्यादि मात्रा युक्तवर्ण हो कर पूर्वमात्राको गुरु न करे। इसके चरणके अन्तमें र, ल और नगण अवश्य रहेगा। (त्रि०) २ वैतालका।

वैतुल (सं० क्ली०) वितुलसम्बन्धीय। (पा ६।२।१२५)

वैतृष्ण्य (सं० क्ली०) वितृष्णा-ष्यञ्। तृष्णाराहित्य, लोभसे रहित होनेका भाव।

वैत्तपाल्य (सं० त्रि०) वित्तपाल वा कुवेरसम्बन्धीय।

वैत्रक (सं० त्रि०) वेत्र-कन्। वेत्रसम्बन्धी।

वैत्रकीयवन (सं० क्ली०) एकचक्रा। (भारत वन०)

वैत्रकेय (सं० त्रि०) वेत्र सम्बन्धीय।

वैत्रासुर (सं० पु०) वृत्रासुरका अपत्य असुरभेद।

वैद (सं० त्रि०) १ पण्डितसम्बन्धी। (पु०) २ एक प्राचीन ऋषिका नाम जो विद ऋषिके पुत्र थे।

(ऐतरेयब्रा० ३।६)

वैदक (सं० पु०) वैधक देखो।

वैदग्ध (सं० क्ली०) १ विदग्धत्व, पूर्ण पण्डित होनेका भाव। २ पटुता, कार्यकुशलता। ३ चतुरता, चालाकी। ४ रसिकता। ५ शोभा। ६ भङ्गि, हावभाव।

वैदग्धक (सं० त्रि०) वैदग्ध स्वार्थे कन्। विदग्ध-सम्बन्धीय।

वैदग्धी (सं० स्त्री०) विदग्धस्येयमिति विदग्ध अण् स्त्रियां ङीप्। भङ्गि, हावभाव।

वैदग्ध्य (सं० क्ली०) विदग्ध-ष्यञ्। विदग्धका भाव, पाण्डित्य, चतुरता।

वैदत (सं० त्रि०) विदत् (प्रज्ञादिभ्यश्च। पा ५।४।३८) इति स्वार्थे अण्। विद्वत्, जो किसी विषयका अच्छा ज्ञाता हो।

वैदथिन (सं० पु०) विदथीके अपत्य ऋषि।

(ऋक् ४।१६।१३)

वैददश्वि (सं० पु०) विददश्वके अपत्य ऋषिभेद।

(ऋक् ५।६१।१०)

वैदनृत (सं० क्ली०) सामभेद।

वैदन्वत (सं० क्ली०) विदन्वतके अपत्य।

(पञ्चविंशब्रा० १३।११।१६)

वैदभृत (सं० पु०) विदभृतके अपत्य। स्त्रियां ङीप् वैदभृती।

वैदभृतीपुत्र (सं० पु०) वैदिक आचार्यभेद।

(शतपथब्रा० १४।६।४।३२)

वैदभृत्य (सं० पु०) विदभृतका गोत्रापत्य।

(पा ५।३।१०४)

वैदर्भ (सं० पु०) शिवका एक नाम। (भारत १३ पत्र)

वैदर्भ (सं० पु०) विदर्भो निवासोऽस्येति विदर्भ अण्। १ विदर्भदेशीय राजा। २ दमयन्तीके पिता भीमसेन। ३ रुक्मिणीके पिता भीष्मक। ४ वाक्चातुर्य, बातचीत करनेकी चतुराई। ५ वह जो बातचीत करनेमें बहुत चतुर हो। ६ दन्तशूलरोग, एक रोग जिसमें मसूड़े फूल जाते हैं और उनमें पीड़ा होती है। (सुश्रुत नि० १६ अ०) (त्रि०) ७ विदर्भदेश सम्बन्धीय। ८ विदर्भ-देशजात।

वैदर्भक (सं० पु०) विदर्भदेशवासी।

वैदर्भि (सं० पु०) विदर्भका अपत्य। (प्रवराध्याय)

वैदर्भी (सं० स्त्री०) वैदर्भ-ङीप्। १ वाक्यकी एक रीति, वह रीति या शैली जिसमें मधुर वर्णों द्वारा मधुर रचना होती है। यह सबसे अच्छी समझी जाती है। रीति देखो। २ अगस्त्य ऋषिकी स्त्री। ३ दमयन्ती। ४ रुक्मिणी।

वैदर्य (सं० क्ली०) बालककी क्रीड़ा, लड़कोंका खेल।

वैदल (सं० क्ली०) १ भिक्षुकके मृण्मयादि पात्र, मिट्टीका वह बरतन जिसमें भिखमंगे भीख मांगते हैं। (पु०) विदलो दालिस्तस्माज्जातः विदल अण्। २ पिष्टकभेद, एक प्रकारकी पीठी। गुण—गुरु, विष्टम्भी और वायुकर।

(राजनि० १०)

वैदलाम्ल (सं० क्ली०) वैदलयुक्त अम्ल, दालपीठी। यह रुचिकारक और गुरु होता है।

वैदलिकशिम्ब (सं० पु०) वैदलकशिम्बी। यह रुचिप्रद और दुर्जर होता है।

वैदायन (सं० पु०) विदका अपत्य। (पा ४।१।११०)

वैदारिक (सं० पु०) सन्निपात ज्वरविशेष। इसमें वायुका प्रकोप कम, पित्तका मध्यम और कफका अधिक होता है। रोगीकी हड्डियों और कमरमें पीड़ा होती है। उसे भ्रम, क्लान्ति, श्वास, खांसी और हिचकी होती है और सारा शरीर सुन्न हो जाता है। ऐसा सन्निपात जल्दी अच्छा

१५ मीलका पथ तय कर इसके साथ आ मिली है। वैतरणीके किनारे आनन्दपुर, जाजपुर और चांदबाली नामक प्रसिद्ध बन्दर और नगर अवस्थित हैं।

गरुड़पुराणमें यह नदी गयाक्षेत्रके अन्तर्भुक्त लिखी गई है। इसका भौगोलिक विवरण सर्वसम्मत न होने पर भी इस स्थानको गयातीर्थकी तरह तुल्यफल-प्रद माना जाता है। यहां पिण्डदान करनेसे पितृलोक स्वर्गवासी और आनन्दित होते हैं।

(गरुड़पुराण ८३।४४ ४०)

वैतस (सं० पु०) वेतस एव स्वार्थे अण्। १ अम्लवेतस, अम्लवेंत। २ शिश्नदण्ड, लिङ्ग। (निघण्टु ३।६) (त्रि०) ३ वैतस सम्बन्धी।

वैतसक (सं० त्रि०) वैतससम्बन्धीय। (पा ६।४।१५६)

वैतसीय (सं० त्रि०) वैतससम्बन्धीय (पा ६।४।१५३)

वैतसेन (सं० पु०) राजा पुरूरवाका एक नाम जो वीतसेनाके पुत्र थे।

वैतस्त (सं० त्रि०) वितस्तादेशमें होनेवाला।

वैतस्तिक (सं० त्रि०) वितस्ति परिमाणसम्बन्धीय।

वैतहव्य—वीतहव्यके अपत्य वेदमन्त्रद्रष्टा सुनक ऋषि।

वैताढ्य (सं० पु०) पर्वतभेद।

वैतान (सं० त्रि०) वितान-अण्। वितान सम्बन्धी, वैतानिक।

वैतानिक (सं० पु०) वितानं यज्ञः, वितान, ठक्। १ श्रौतहोम, यज्ञ हवन या यज्ञ आदि जो श्रौत विधानोंके अनुसार हो। २ अग्निहोत्रादि कर्मसाधन अग्नि, वह अग्नि जिससे अग्निहोत्र आदि कृत्य किये जायें।

(भाग० ५० ५० आग०)

(त्रि०) ३ वितान सम्बन्धीय, यज्ञादि कार्यकारी। (भागवत १०।४०।५) वितानेन निर्वृत्तः ठक्। ४ वितान साध्य अग्न्याधेय प्रभृति। (भाग० ५० भी० २ अ०)

वैतायन (सं० पु०) वैतानका अपत्य।

वैतालक (सं० त्रि०) वैताल अण्। १ वैतालसम्बन्धीय, वैतालका। २ स्तुतिपाठक, वैतालिक।

वैतालकि (सं० पु०) ऋग्वेदप्रातिशाख्यप्रवर्तक आचार्यभेद।

वैतालरस—ज्वराधिकारोक्त रसौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—रस, गन्धक, विष, मिर्च और हरताल समान भाग ले कर अदरखके रसमें अच्छी तरह घोंटे। जब यह काजलके समान दिखाई देने लगे, तब २ रत्तीकी गोली बनावें। सान्निपातिक ज्वरमें मूर्च्छा और सर्वांग ठण्डा होने पर इसका प्रयोग किया जाता है। ग्रन्थविशेषमें यह श्रीवैतालरस नामसे भी लिखा गया है।

(भैषज्यरत्ना० ज्वराधि०)

वैतालिक (सं० पु०) विविधेन तालेन चरतीति विताल-ठक्। १ बोधकर, प्राचीन कालका वह स्तुतिपाठक जो प्रातःकाल राजाओंको उनकी स्तुति करके जगाया करता था। 'विविधो मङ्गलगीतिवाद्यादिरूपस्तालस्तस्मात् तेन व्यवहरन्ति वैतालिकाः' (भरत)

विविध प्रकारके मंगलगीत और वाद्यादिको वितास कहते हैं। इससे जो जीविका निर्वाह करते, वे ही वैतालिक कहलाते हैं। २ खेट्टिताल। खेट्टितालको अगर यष्टताल भी लिखा गया है।

वैतालिक—तालादिवर्णित रागभेद।

वैतालिन् (सं० पु०) कार्त्तिकानुचरभेद। (भारत ६ पं)

वैतालिक भाट—वाराणसीवासी भाटोंकी एक [illegible] शाखा। ये लोग गोसाईं उपाधिधारी हैं। प्रवाद है, कि राजा विक्रमादित्यकी सभामें वैताल नामक एक भाट था। राजवंशानुकीर्त्तनमें अतिशय दक्ष रहनेके कारण राजभाटकी उसे पदवी दी गई। पीछे वह राजाका आश्रित हिन्दूधर्म और राजकार्यका परित्याग कर गोसाईं सम्प्रदाययुक्त हुआ। तभीसे उसके वंशधर गोसाईं कहलाते आ रहे हैं। वैतालके वंशधर होनेके कारण वे भाट नामसे प्रसिद्ध हैं।

ये लोग भीख मांग कर अपना गुजारा चलाते हैं, किन्तु वैष्णव गोसाइयोंको छोड़ कर और किसीका भी दान ग्रहण नहीं करते। उन गोसाइयोंका वंशकीर्त्तन ही इनका कार्य है।

वैतालीय (सं० पु०) १ मात्रावृत्तभेद। जिसके प्रथम और तृतीय पादमें चौदह तथा द्वितीय और चतुर्थ पादमें सोलह मात्रा रहती हैं, उसको वैतालीय छन्द कहते हैं। किन्तु इसमें विशेषता यह है, कि इसकी मात्रा केवल लघु या केवल गुरु होनेसे काम नहीं चलेगा, वह मिश्र होनी चाहिये। फिर युग्म मात्रा पराश्रिता नहीं होगी,

अर्थात् ३, ५ ७ इत्यादि मात्रा गुरुवर्ण हो कर पूर्वमात्राको गुरु न करे। इसके चरणके अन्तमें र, ल और गगण अवश्य रहेगा। (त्रि०) २ वेतालका।

वैतुल (सं० क्ली०) वितुलसम्बन्धीय। (पा ६।२।१२५)

वैतृष्ण्य (सं० क्ली०) वितृष्णा-ष्यञ्। तृष्णाराहित्य, लोभसे रहित होनेका भाव।

वैत्तपाल्य (सं० त्रि०) वित्तपाल या कुवेरसम्बन्धीय।

वैत्रक (सं० त्रि०) वेत्र-कन्। वेत्रसम्बन्धी।

वैत्रकीयवन (सं० क्ली०) एकचक्रा। (भारत वन०)

वैत्रकेय (सं० त्रि०) वेत्र सम्बन्धीय।

वैत्रासुर (सं० पु०) वृत्रासुरका अपत्य असुरभेद।

वैद (सं० त्रि०) १ पण्डितसम्बन्धी। (पु०) २ एक प्राचीन ऋषिका नाम जो विद ऋषिके पुत्र थे। (ऐतेरयब्रा० ३।६)

वैदक (सं० पु०) वैद्यक देखो।

वैदग्ध (सं० क्ली०) १ विदग्धत्व, पूर्ण पण्डित होनेका भाव। २ पटुता, कार्यकुशलता। ३ चतुरता, चालाकी। ४ रसिकता। ५ शोभा। ६ भङ्गि, हावभाव।

वैदग्धक (सं० त्रि०) वैदग्ध स्वार्थे कन्। विदग्धसम्बन्धीय।

वैदग्धी (सं० स्त्री०) विदग्धस्येयमिति विदग्ध अण् स्त्रियां ङीप्। भङ्गि, हावभाव।

वैदग्ध्य (सं० क्ली०) विदग्ध-ष्यञ्। विदग्धका भाव, पाण्डित्य, चतुरता।

वैदत (सं० त्रि०) विदत् (प्रज्ञादिभ्यश्च। पा ५।४।३८) इति स्वार्थे अण्। विदत्, जो किसी विषयका अच्छा ज्ञाता हो।

वैदथिन (सं० पु०) विदथीके अपत्य ऋषि। (ऋक् ४।१६।१३)

वैदद्श्वि (सं० पु०) विददश्वके अपत्य ऋषिभेद। (ऋक् ५।६१।१०)

वैदनृत (सं० क्ली०) सामभेद।

वैदन्वत (सं० क्ली०) विदन्वतके अपत्य। (पञ्चविंशब्रा० १३।११।१९)

वैदभृत (सं० पु०) विदभृतके अपत्य। स्त्रियां ङीप् वैदभृती।

वैदभृतीपुत्र (सं० पु०) वैदिक आचार्यभेद। (शतपथब्रा० १४।६।४।३२)

वैदभृत्य (सं० पु०) विदभृतका गोत्रापत्य। (पा ५।३।१०४)

वैदर्भ (सं० पु०) शिवका एक नाम। (भारत १३ पर्व)

वैदर्भ (सं० पु०) विदर्भो निवासोऽस्येति विदर्भ अण्। १ विदर्भदेशीय राजा। २ दमयन्तीके पिता भीमसेन। ३ रुक्मिणीके पिता भीष्मक। ४ वाक्चातुर्य, बातचीत करनेकी चतुराई। ५ वह जो बातचीत करनेमें बहुत चतुर हो। ६ दन्तशूलरोग, एक रोग जिसमें मसूड़े फूल जाते हैं और उनमें पीड़ा होती है। (सुश्रुत नि० १६ अ०) (त्रि०) ७ विदर्भदेश सम्बन्धीय। ८ विदर्भदेशजात।

वैदर्भक (सं० पु०) विदर्भदेशवासी।

वैदर्भि (सं० पु०) विदर्भका अपत्य। (प्रवराध्याय)

वैदर्भी (सं० स्त्री०) वैदर्भ-ङीप्। १ वाक्यकी एक रीति, वह रीति या शैली जिसमें मधुर वर्णों द्वारा मधुर रचना होती है। यह सबसे अच्छी समझी जाती है। रीति देखो। २ अगस्त्य ऋषिकी स्त्री। ३ दमयन्ती। ४ रुक्मिणी।

वैदर्य (सं० क्ली०) बालककी क्रीड़ा, लड़कोंका खेल।

वैदल (सं० क्ली०) १ भिक्षुकके तृणमयादि पात्र, मिट्टीका वह बरतन जिसमें भिखमंगे भीख मांगते हैं। (पु०) विदलो दालिस्तस्माज्जातः विदल अण्। २ पिष्टकभेद, एक प्रकारकी पीठी। गुण—गुरु, विष्टम्भी और वायुकर। (राजनि० १०)

वैदलान्न (सं० क्ली०) वैदलयुक्त अन्न, दलपीठी। यह रुचिकारक और गुरु होता है।

वैदलिकशिम्ब (सं० पु०) वैदलकशिम्बी। यह रुचिप्रद और दुर्जर होता है।

वैदायन (सं० पु०) विदका अपत्य। (पा ४।१।११०)

वैदारिक (सं० पु०) सन्निपात ज्वरविशेष। इसमें वायुका प्रकोप कम, पित्तका मध्यम और कफका अधिक होता है। रोगीकी हड्डियों और कमरमें पीड़ा होती है। उसे भ्रम, क्लान्ति, श्वास, खांसी और हिचकी होती है और सारा शरीर सुन्न हो जाता है। ऐसा सन्निपात जल्दी अच्छा

नहीं होता। यदि नचता भी हो जाय, तो कालको अह से एक बड़ा फोड़ा निकल आता है। उसमें बहुत पीड़ा होती है, रोगीके प्राण जानेका भय बना रहता है। इस प्रकार सन्निपातका नाम वैदारिक है। इस रोगमें ओज धातुके बाद मौरपादिको सभी 'क्रमशः स्पर्श होती है। अर्थात् रोगी क्रमशः काल्का शिकार बन जाता है।

वैदि (सं० पु०) विदस्तिका अपत्य। (पा ४।१।१०४)

वैदिक (सं० पु०) वेदं जानातीति वेद ठक्। १ वेदज्ञ ब्राह्मण, वेदवित् ब्राह्मण वह ब्राह्मण जो वेद जानता हो। (त्रि०) २ वेदोक्त। ३ वेदोक्त क्रियाकाण्डका अनुष्ठाता।

किसी समय ब्राह्मण कहनेसे ही वैदिक समझा जाता था। क्योंकि, प्राचीनकालमें वेदपाठ और वेदोक्त क्रियादि न कर सकनेसे कोई ब्राह्मण नहीं हो सकता था। आगमायसे जब नाना अवैदिक सम्प्रदायका अभ्युदय हुआ, तभी हो ब्राह्मणोंमें भी उनके धर्म और क्रियाके अनुसार कई शाखायें हो गई। जैसे—शैव, शाक्त, निर्मल, नाक, आजीवक और कापिल आदि०। इस समय जो वेदपाठ और वेदोक्त क्रियादि करते, वे ही केवल वैदिक कहे जाते थे। इसी समयसे ही गौड़वङ्गमें वैदिक शब्द पारिभाषिक हो गया। किसको यथार्थमें वैदिक कहा जायेगा, इसके विषयमें सुप्रसिद्ध पण्डितोंने हस्तायुधने अपने ब्राह्मण सर्वस्वमें इस तरह विचार किया है—

"वेदा ऋग्यजुःसामाख्याः [illegible] द्विजातीनां तदिदं श्रुत्यैव इत्युक्तं तत्र वेदो ब्राह्मणेनाध्येयो प्रायः मनुष्यादेवतः इति क्रियते वेदाध्ययनं देशकालाद्य-वैद नाहं [illegible] एव न स्यात्। तदनधिकारे च सर्वकर्मानधिकार एव। यथाः—

"योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥"

इति वदता मनुना वेदाध्ययनस्य दृष्टवेन वेदार्थ-ज्ञानपराङ्मुख ब्राह्मणस्य शूद्रत्वमेवं प्रतिपादितं। अत्र च कर्मो वायुप्रकोपमाह-धर्महीनागमकारणात् तत्-वेदोचारण-वाक्याध्यायदिभिर्वेदाध्ययनमात्रं क्रियते। राढ़ीय-वारेन्द्रैस्तु अध्ययनं विना विवेक वेदार्थस्य कर्ममीमांसा द्वारेण यद्यपि कर्मकर्मादिविचारः क्रियते। न चैतदपि सम्यगर्थकामेदार्थज्ञानं सम्यगर्थज्ञानादेव न प्रयोजनं। यज्ञानुष्ठानमत्र श्रुतत्वं यदमी च दोषः प्रवर्त्तते। तथा च योगियाज्ञवल्क्यः—

"यस्तु आमन्त्र वर्णेन यातं [illegible] देवतम्।
विनियोगं ब्राह्मणं [illegible] च॥
एवैकस्य मुनः कोऽपि यजमानो [illegible]।
वेदज्ञानमनुपदं [illegible]॥
पूर्वोक्तेन प्रकारेण मन्त्रादीन् वेत्ति यो द्विजः।
अधिकारी भवेत् तस्य रहस्यादिषु कर्मसु॥
मन्त्रे मन्त्रे प्रयत्नेन ज्ञातव्यं ब्राह्मणेन च।
विज्ञाते परिपूर्णं तु [illegible]॥
[illegible] भवन्ति न संशयः॥"

तथा व्यतिरेके योगियाज्ञवल्क्यः—

"अविदित्वा तु यः कुर्याद् याजनाध्यापने जपं।
होममन्तर्जलादीनि तेभ्योऽन्यस्य फलं भवेत्॥
[illegible] स्वाद्‌गुणं [illegible] प्रवर्त्तते।
[illegible] दुर्गेषाप्नोति॥
नाधिकारोऽस्ति तस्यास्मिन् स्मृतिं निर्णयमिति॥"

अतो वेदाध्ययने वेदार्थज्ञाने हि तात्पर्यं। एतेन्तु राढ़ीयवारेन्द्रैर्विचार एव केवलः क्रियते। एवं योगयोग्ये [illegible] वेदज्ञानं तात्पर्यं। तदर्थे वैदिकैरन्यादि यथाविध्यध्ययनं इत्यर्थविचारः क्रियते। इत्युचित शाखा। तथा च यमः—

"न शूद्रा शूद्रो नाम वेदो हि यत्र दृश्यते।
[illegible] न वै शूद्रस्य शूद्रको॥
तस्मात् [illegible] ब्राह्मणेन प्रयत्नतः।
[illegible] यदि तत्रो न [illegible]॥"

तथा व्यासः—

"[illegible] वेदार्थविदो जनः।
[illegible]॥
यथाः—[illegible]।
[illegible] वेदार्था [illegible]॥"

---

* "[illegible]।
[illegible]॥"
(हस्तायुधकृत ब्राह्मणसर्वस्व [illegible])

ततश्चैकदेशस्याप्यध्ययनेन गार्हस्थ्याश्रमाधिकारो भवत्येव। इत्थमेकदेशाध्ययने कर्त्तव्ये संशयः। किं तृतीयोभागश्चतुर्थो भागो वा अध्येतव्य उतानुष्ठानोचित-भागो वा। तत्र च यदि पाठक्रमानुरोधेन प्रथमो भाग एकोऽधीयते। तदा तस्मिन् भागे सन्ध्यास्नानाद्या-ह्निकगर्भाधानादिकसंस्काराग्न्याधानादिक्रियाकाण्डोप-युक्तमन्त्राणां सर्वेषामसम्भवात्तदनुष्ठानं न सम्भवति। तद्वरं सन्ध्यास्नानाद्याह्निकगर्भाधानादिसंस्काराग्न्या-धानादिक्रियाकाण्डोपयुक्त-मन्त्रभाग एवाध्येतुं युज्यते। अस्ये वाध्ययनेन वेदैकदेशाध्ययनं पर्यवस्यति।

यत्तु केचित्,—

"गायत्री मात्रसारोऽपि वरं विप्रः सुयन्त्रितः।
नायन्त्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशी सर्वविक्रयी॥"

इति मनुवचनदर्शनादेकदेशशब्देन गायत्रीमात्र-मेवेच्छन्ति। तदयुक्तं। स्नानाद्यनुष्ठानसम्ध्यान-भिज्ञस्य स्नानादिष्वप्रायोग्यत्वात् तेषां गायत्री जपा-धिकारितैव न भवतीति सुदूरं निरस्तं गायत्रीमात्र-सारत्वं। गायत्रीमात्रसार इति वचनस्य तु निन्दितप्रति-ग्रहाद्यसत्क्रिया निवृत्तस्य स्नानसन्ध्याद्यनुष्ठान-शालिनो विहितार्थगायत्रीज्ञानिरतस्य निन्दितप्रति-ग्रहादुय सत्क्रियायुक्तत्रिवेदविद्ब्राह्मणाच्छ्रेष्ठत्वप्रति-पादने तात्पर्यं। न तु सकलवेदानुष्ठानरहितस्य गायत्रीमात्रसारत्वे तात्पर्यमिति।

तथा कात्यायनः—

"वेदे तथार्थज्ञाने च माहात्म्यो यत्नवान् च भवेत्।
एष धर्मस्य सर्वस्य चतुर्वर्गस्य साधकः॥"

तथा व्यासः—

'अतः स परमो धर्मो यो वेदादवगम्यते।
अपरः स तु विज्ञेयो यः पुराणादिषु स्थितः॥'

तथा "एकदेशोऽप्यध्येतव्यो" अत्रैकदेशशब्देन याव दनुष्ठानोपयुक्तवेदभागोऽपेक्षितः।

मनुः—"यथाकाष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयोमृगः।
यश्च विप्रो नाधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति॥"
तथा—"योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमं।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥"
मनुः—"ब्रह्म यस्त्वननुज्ञातमधीयानादवाप्नुयात्।
स ब्रह्मस्तेय संयुक्तो नरकं प्रतिपद्यते॥"

व्यास संहितायां कूर्म पुराणे च—

योऽधीत्य विधिवद्विप्रो वेदार्थं न विचारयेत्।
स सान्वयः शूद्रसमः पात्रतां न प्रपद्यते॥
यथापशुर्भारवाही न तस्य भजते फलं।
द्विजस्तथार्थानभिज्ञो न वेदफलमश्नुते॥"

(आचारमयूख)

अर्थात्—सरहस्य समस्त वेद ही ब्राह्मणोंको अध्ययन करना कर्त्तव्य है। इसी वाक्यके अनुसार 'रहस्य' शब्दके रहनेसे सारा वेद ही ब्राह्मणके धर्मानुसार और प्रथा नुसार अध्ययन करना कर्त्तव्य है, यही स्थिर हुआ है। अतः वेदाध्ययन या वेदार्थज्ञानके सिवा ब्राह्मणोंको गार्हस्थ्याश्रममें कभी अधिकार नहीं होता। गार्हस्थ्या श्रमका अधिकारी न होनेसे सब कामोंमें अनधिकारी रहना पड़ता है। किसी कर्ममें ही अधिकार नहीं होता। क्योंकि, शास्त्रमें कहा गया है, कि जो द्विज वेद अध्ययन न कर शास्त्रान्तर अध्ययन करते हैं, वे जीवित दशामें ही अति शीघ्र सवंश शूद्रत्वको प्राप्त होते हैं।

इस मनुके वाक्यके अनुसार वेद अध्ययन करना ही होगा। इस तरहके अनुशासनसे वेदार्थज्ञान वर्ज-युक्त ब्राह्मणोंको शूद्रत्व ही प्रतिपादित हुआ है। ऐसी अवस्थामें इस कलिमें आयु, प्रज्ञा, उत्साह और श्रद्धा आदिकी ह्रासताके कारण केवल उत्कल और पाश्चा-त्यादि ब्राह्मण ही वेदाध्ययन मात्र करते हैं। किन्तु बङ्गालके राढ़ीय और वारेन्द्रगण अध्ययनको छोड़ केवल कुछ अंशमें वेदार्थकी कर्ममीमांसाके अनुसार जो इतिकर्त्तव्यता विचारमात्र करते हैं, उसमें मन्त्रार्थ या वेदार्थज्ञान कुछ भी नहीं होता। फिर भी, मन्त्रार्थज्ञानका ही विशेष प्रयोजन है। क्योंकि, उसके परिज्ञानसे ही शुभ फल और उसके अपरिज्ञानसे दोष ही सुना जाता है।

इस विषयमें योगियाज्ञवल्क्यने लिखा है,—जो व्यक्ति प्रत्येक मन्त्रके दैवत, आर्ष, छन्दः, विनियोग, ब्राह्मण, मन्त्रार्थज्ञान और कर्म यथार्थ रूपसे जानते हैं, वे गुरुवत् पूज्य हैं। निःसन्देह उनको देवताका सायुज्य प्राप्त होता है। पूर्वोक्त प्रकारसे जो द्विज ऋषि प्रभृतिको जानते

नीलकण्ठ वैदिक रचित यशोधरवंशमाला नामक कुलग्रन्थमें लिखा है:—

"आसीद्गौडे महाराजः श्यामलो धर्मतत्परः।
प्रचण्डारातिभूपालैरर्चितः स महीपतिः॥
वैद्यप्रदप्रदिष्टे स बभूव राजा
गौडे स्वयं विजयन्ते परिभूय शत्रून्।
शूराग्रधामनिवहान् विजितान्तरात्मा
शाके युगः शुभतिथौ श्रीशालस्य सूनुः॥
तस्मै ददौ सुतां भद्रां काशीराजो महाशयः।
गजाश्वरत्नराज्यैश्च राज्यैर्दत्वा पुरस्कृतः॥
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञं यान्ते वैदिकमुत्तमं।
यशोधरं महात्मानं आनीयताभ्युपागतम्॥
तस्मै समादिशद्राजा गौडानां पावनाय सः।
प्रासादं रत्नपीठस्थं शाकुनपातदूषितम्॥
दृष्ट्वा सुविस्मितो राजा यज्ञं कर्तुं मनो दधौ।
वव्रे यशोधरं तत्र स राजा यज्ञकर्मणि॥
शाकुनेन च सूक्तेन समाहूतं यथाविधि।
जुहाव मन्त्रसंसिद्धं संस्कृतेऽग्नौ यथाविधि॥
तत्राद्भुतकर्माणं दृष्ट्वा प्रीतो महीपतिः।
राज्यमर्द्धं रत्नानि दक्षिणार्थं कल्पितम्॥
भूमिं प्रतिग्रहे पापं नास्तीति स द्विजाग्रणीः।
प्रत्यगृह्णात् सम्पन्नान् ग्रामाणां द्वादशैव च॥
ब्रह्मचर्यव्रतस्याथ विवाहाय स भूपतिः।
आनीतवान् द्विजान् पञ्च पञ्चगोत्रसमुद्भवान्॥
शौनकश्चैव शाण्डिल्यो वशिष्ठश्च तथापरः।
सावर्णोऽपि भरद्वाजः पञ्चगोत्राः प्रकीर्त्तिताः॥
आदौ शौनकशाण्डिल्यौ वशिष्ठो मध्यमस्तथा।
सावर्णोऽपि भरद्वाजः कनिष्ठः परिकीर्त्तितः॥
चतुर्थः शाण्डिल्यस्य वशिष्ठः शास्त्रपूजकः।
सावर्णोऽपि भरद्वाजो द्वैधं वैकल्पिकान्॥
पञ्चगोत्रद्विजैः सार्द्धं वेदाध्ययनतत्परः।
यशोधरो वङ्गदेशे कुलमान् समागतः॥
शौनकश्चैव शाण्डिल्यः सुमिष्टः परिकीर्त्तितः।
भरद्वाजो वशिष्ठश्च सावर्णः शिष्ट एव हि॥
पञ्चगोत्राद्विजाः ख्याता वैदिकाः समभवन् कुलाः।
गौडे वरेन्द्रदेशे च वैदिकाः॥
श्रीकृष्णो वेदगर्भश्च मेधातिथिश्च शङ्करः।
राज्ञः समाख्या विप्रा आगताः पञ्चशाखिनः॥"

गौड़देशमें प्रचण्डप्रतापान्वित शत्रुभूपालमर्द्दन धर्मपरायण श्यामलवर्मा नामके एक महीपति थे। इनके पिताका नाम श्रीशाल था। इन्होंने ९९४ शकमें अभिषिक्त हो सूर्यवंशीय राजाओंको पराभूत कर शुभतिथि माघमें उक्त गौड़सिंहासन पर अधिरोहण किया। महाराज काशिराजने इनको राज्य, धन, हाथी, घोड़े और रत्नोंके साथ अपनी भद्रानाम्नी कन्याको सम्प्रदान किया। कुछ दिनके बाद गौड़नरेशके यहां अशुभ शकुन हुआ। इस अमङ्गलके दोषको प्रशमन करनेकी इच्छासे इन्होंने एक यज्ञ करनेकी कामना की। इस यज्ञके लिये इन्होंने काशिराजके पास एक वैदिक ब्राह्मण भेज देनेकी प्रार्थना की। इस पर काशिराजने वेदवेदाङ्गपारग शास्त्रीयज्ञाभ्यासरत वैदिकश्रेष्ठ महात्मा यशोधरको गौड़राजकी हितकामनासे वहां जानेके लिये आज्ञा दी। गौड़राजने भी यथासमय आये यशोधरको सादर सम्मान पूर्वक यज्ञकार्यमें व्रती बनाया।

वैसे यज्ञकार्यमें व्रती हो यशोधरने शाकुनसूक्त पाठ द्वारा पक्षिविशेषोंको आकर्षित कर उनको यज्ञकुण्डमें निक्षेप कर सुसंस्कृत वह्निमें यथाविधि आहुति प्रदान की। महामति श्यामलवर्माने यशोधरकी इस तरहकी अद्भुत घटनाको देख परम आह्लादित हो यज्ञके दक्षिणास्वरूप आधा राज्य तथा प्रचुर धनरत्न देनेका सङ्कल्प किया। यशोधरने भी भूमि प्रतिग्रह लेनेमें कोई आपत्ति नहीं समझ कर निकटके ग्रामोंमें १२ ग्राम लिये थे।

इसके बाद महीपतिने ब्रह्मचारी यशोधरके विवाहके लिये चेष्टा की और शौनक, शाण्डिल्य, वशिष्ठ, सावर्ण और भरद्वाज, पञ्चगोत्रसम्भूत पांच ब्राह्मणोंको बुलाया। इनमें शौनक और शाण्डिल्य पहले, वशिष्ठ मध्यमें, सावर्ण और भरद्वाज अन्तमें आये। क्रमशः शाण्डिल्य, तदनन्तर वशिष्ठ, सावर्ण और भरद्वाज ये सभी कुलोंसे अपने अपने घरोंसे देवताओंके भी साथ में आये। ये शौनक और शाण्डिल्य सुमिष्ट और भरद्वाज, वशिष्ठ और सावर्ण

सिद्ध कहे गये। सिवा इनके वत्स, वात्स्य और काश्यप आदि पञ्चगोत्र तर गोत्र साध्य कहे गये थे।

वेदाध्ययनंतरतर यशोधर इन पञ्चगोत्रोंको साथ ले कुन्तलसे वङ्गदेशमें आये। इसके बाद राजाकी आज्ञासे भवट्ट यशोधर भट्ट, वेदवित् श्रीकृष्ण, वेदगर्भ और वेदाध्यायी शङ्कर कुन्तलसे वङ्गालमें आये।

इन पंञ्च गोत्रोंके सम्बन्धमें ईश्वर वैदिकने लिखा है—

शाण्डिल्य, वशिष्ठ, सावर्ण, भरद्वाज और एक शौनक ये पञ्चगोत्र हैं। इन पञ्चगोत्रोंमें वशिष्ठ तपनके पुत्र गोविन्द, शाण्डिल्य ईशपुत्र वेदगर्भ, सावर्ण रविके पुत्र पद्मनाभ, भरद्वाज कमलासनके पुत्र विश्वजित् और शौनक मनुके पुत्र यशोधर ये सभी पुत्रोंके साथ आये थे। इनको राजाने बुला कर यथायोग्य ताम्रशासन द्वारा विभिन्न ग्राम दान किया था।

राजा श्यामलवर्मा उन पञ्च-ब्राह्मणपुङ्गवको १४ ग्राम प्रदान किये थे। इन ग्रामोंके नाम इस तरह हैं—आलाधि, जयाड़ी, गौराली, कुमारहट्ट, पानिकुण्ड, आखोड़ा, सातौरा, ब्रह्मपुर मरीचिका प्रसार, दधिग्रामन, चन्द्रद्वीप, नवद्वीप, कोटालिपाड़ और सामन्तसार।

इन सब ग्रामोंमेंसे आलाधि, जयाड़ी और गौराली—ये तीन ग्राम वशिष्ठको ; कुमारहट्ट, पानिकुण्ड, आखोड़ा और सातौरा—ये चार शाण्डिल्यको ; मरीचिका प्रसार और दधिग्रामन—ये दो सावर्णको ; चन्द्रद्वीप, नवद्वीप और कोटालिपाड़—ये तीन ग्राम भरद्वाजको और केवल सामन्तसार ग्राम शुनकको मिले थे। यह एक एक ग्राम समाजके नामसे विख्यात था। ये चौदह समाज इन पाश्चात्य वैदिकोंको इसी तरह मिले थे।

पञ्चगोत्रका समाज।

उक्त १४ समाजोंके अवस्थानके सम्बन्धमें ईश्वरने भी इस तरह निर्देश किया है,—

कोटालिपाड़ और चन्द्रद्वीप ये दो स्थान पूर्व-वङ्गमें हैं। ये दोनों स्थान नारियलके वृक्षों और गुवाकादि द्वारा वेष्टित हैं। नवद्वीप गङ्गाके किनारे पर है। इस समाजमें चैतन्य-महाप्रभुने जन्मग्रहण किया था। सामंतसार ब्रह्मपुत्रके निकट और नवद्वीपसे बहुत पूर्वको और अवस्थित है। इसका भूभाग खजूर, कटहल आदि वृक्षों और कई छोटी छोटी नदियोंसे घिरा हुआ है। आलाधि आत्रेयी और ब्राह्मी नदियोंकी बगलमें अवस्थित है। इस स्थानमें बहुतेरे वेदविद् वैदिकोंका वास था। जयाड़ी अति समृद्धिशाली स्थान है। यह स्थान देवपुरी तुल्य है। यहां पुरश्री, देवश्री और हरिहर विरञ्चि आदिके बहुतेरे मन्दिर विद्यमान हैं। गौराली सर्वगुणसम्पन्न सुरम्य स्थान है। यहां बहुतेरे गुणसम्पन्न ब्राह्मणोंका वास है। कुमारहट्ट गङ्गाके किनारे अवस्थित है। यहां बहुतेरे वेदज्ञ ब्राह्मण रहते हैं। गङ्गाके पवित्र वारिके स्पर्शसे यह निर्दोष स्थान सदा ही पवित्र है। आखड़ा पूर्वदेशीय वैदिक-समाजके निकट है। पानिकुण्ड भागवद्द झीलके निकट है। ब्रह्मपुर आखड़ाके अन्तमें है। यह स्थान शाण्डिल्य गोत्रीय वैदिकोंका समाज है।

सामन्तसार—सामन्तसार इस समय फरीदपुर जिलेकी मेघना नदीके किनारे गोसाईंहाट पोष्टाफिसके अन्तर्गत है। इसकी पूर्वीय सीमा पर नागरकुण्डा ग्राम था, इस समय नदीके गर्भमें है। दक्षिणी सीमा पर धोपुर, पश्चिमीय सीमा पर चोंया और उत्तरमें कुलपट्ठी ग्राम है। इस समाजके वैदिक निकटके पेञ्जिनीसार, सिङ्गारडाहा, कार्फेसार, शीतल बुढ़िया, टेकुरा आदि स्थानमें भी वास करते हैं।

कोटालिपाड़—कोटालिपाड़ पूर्वमें चन्द्रद्वीप राज्यके अन्तर्गत था। इस समय यह फरीदपुर जिलेमें आ गया है। इस समाजके लोग मुख्य कोटालिपाड़, पश्चिमपाड़, मदनपाड़, डहरपाड़ा आदि ग्रामोंमें वास करते हैं।

चन्द्रद्वीप—यह ग्राम वरिशाल जिलेके बाकला परगनेके अन्तर्गत है। इस समाजके वैदिक चन्द्रद्वीपके अन्तर्गत बनीरपुर, शिकारपुर, रामचन्द्रपुर आदि स्थानोंमें अवस्थान करते हैं।

मध्यभाग—मध्यभाग समाजके वैदिकके मतसे फरीदपुर जिलेके अन्तर्गत पाटगांवके निकटवर्ती मदारिया ग्राम ही प्राचीन मध्यभाग है। इस समय यह ग्राम पद्माके गर्भमें है। इस समाजके लोग धुला और और कुछ लोग इदिलपुरमें और कुछ लोग पाटगांवमें वास कर रहे हैं।

आमोदा—ढाके जिलेके माणिकगञ्ज महकमेके अधीन है। इस समय यह ग्राम भी पद्माके गर्भमें है। इस समाजके लोग भी निकटके बयराकान्दी, गुलाबगाछी आदि ग्रामोंमें रहते हैं।

नलिकुण्डा—यह भी ढाके जिलेके माणिकगञ्ज महकमेके अधीन है। यहां आदमियोंका ऐसा ही मत है। किन्तु ईस्वरके मतसे सावपुरके निकट है और पाश्चात्य कुलाचार्यगणके मतसे पद्मातीर पर अवस्थित है।

कोटाली (अदाई)—राजशाही जिलेमें है। नाटोर राज्यसे प्रायः ३ कोस दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। पहले इस ग्रामको बस्तीमें आदमी नहीं थी। इस समय यह बहुत कुछ बढ़ गई है।

गौराति या गौराङ्ग—ढाकेके राजनगरके निकट है। इस समाजके लोग निकटके मधुरा, आकमा, धानुका, आदि स्थानोंमें वास करते हैं।

भाभि—राजशाही जिलेको भातेडो और प्रायो नदीके पार्श्वमें गमारपुरके निकट अवस्थित था। इस समय नदीके गर्भमें अवस्थित है, चिह्नमात्र भी नहीं दिखाई देता।

दर्पिच और मरीच—अग्रद्वीपके पूर्वोत्तर और अवस्थित है। इस समय अब इन दो स्थानोंमें पाश्चात्य वैदिकोंका वास नहीं है।

नदीया सुविख्यात प्राचीन नदिया ही पाश्चात्य वैदिकोंका नवद्वीप समाज है, किन्तु प्राचीन स्थानका अधिकांश गङ्गागर्भमें जा चुका है। यहां इस समय लोग बसवास करते दिखाते हैं, उसके कुछ दूर पर यह समाज अवस्थित था। इस समय वैदिकोंका वास रहने पर भी नवद्वीपके पञ्चकोटके श्रेष्ठ पाश्चात्य वैदिकोंके साथ प्रायः स्वतन्त्र सम्बन्ध नहीं होता।

[illegible] या [illegible]—अब यादि नामसे विख्यात है। फरीदपुर जिलेको भूषणाके निकट सुविख्यात 'हावेली [illegible]' नामक ग्रामके अन्तर्गत है। किसी समय यह स्थान एक प्रधान वैदिक समाज गिना जाता था।

मधुर—इस समय बैरिशालजिलेके अन्तर्गत है।

दाक्षिणात्य वैदिक।

हरिनाभिनिवासी रामकृष्ण विद्यारत्न संकलित "दाक्षिणात्य वैदिक-कुल-रहस्य" नामक एक कुलग्रन्थ १३०५ सालमें रचा गया।

रामकृष्णने लिखा है, कि पुराणादिमें कान्यकुब्ज आदि जिन पञ्च गौड़के ब्राह्मणोंका उल्लेख है, उनमें द्राविड़ोंको एक है। यजुर्वेदमें भी सब दाक्षिणात्य वैदिक ब्राह्मण दिखाई देते हैं, वे सभी उन द्राविड़ श्रेणीके हैं। दक्षिणदेशसे आनेवाले दाक्षिणात्य और वेद जाननेवाले वैदिक कहलाये।

प्रवाद है, कि काल पा कर इस प्रदेशमें वेदाधिकारी और वैदिक क्रियाकलापका लोप होनेसे द्राविड़ देशसे इस श्रेणीके ब्राह्मण यहां लाये गये। मालूम होता है, कि राढ़ी और वारेन्द्र श्रेणीके बाद यहां वह आये। उक्त श्रेणीके ब्राह्मणोंने इन्हें गुरु और पुरोहितके पद पर अभिषिक्त किया था। दाक्षिणात्यके वैदिकोंमें बहुतेरे कृतविद्य और ग्रन्थप्रणेता थे। स्मार्त रघुनन्दन भट्टाचार्यने अपने रचे मलमासतत्त्वमें "कालादर्श-कालमाधवीय आदि दाक्षिणात्य वैदिक ग्रन्थेषु" जो पाठ रखा है, उसमें सायणाचार्य, शङ्कराचार्य आदि महात्मा भी दाक्षिणात्य वैदिक होते हैं।

प्रथम मत।

इसका ठीक कुलग्रन्थमें उल्लेख नहीं, कि दाक्षिणात्य वैदिकगण किस समय इस देशमें आये। राढ़ीय और वारेन्द्र श्रेणीके ब्राह्मणके बाद वे आये हैं, केवल इतना ही प्रवाद है। फिर किसीको होता मत है, कि हरवर्मके पूर्व वंशीय राजाओंने जिस समय त्रिवेणी तक अधिकार फैलाया, उस समय वामपुर आदि ब्राह्मण ग्रामोंके निमित्त दिग्वारण आदिके वैदिकगण त्रिवेणी-संगमस्थ यजुर्वेदमें सर्वदा आया करते थे। उनमें कई यजुर्वेदि ब्राह्मणके निकट आश्रय प्राप्त कर उनमें किसी किसीने यहां वासस्थापन किया।* इस तरह उत्कलके वैदिक इस देशमें वास कर दाक्षिणात्य वैदिक नामसे विख्यात हुए।

१०७१ ई०के इतिहासमें लिखा है, कि सूर्यवंशीय राजा कुलस्तम्भदेवने त्रिवेणी तक राज्य विस्तार किया

* मत्स्यपुराणखण्ड ([illegible]) १४ पृ०।

था । इन्होंने १५५०ई०में सिंहासन पर आरोहण किया ।* उक्त प्रवाद-वाक्यको स्वीकार करने पर साढ़े तीन सौ वर्ष पहले यहांमें दाक्षिणात्य वैदिकागम स्वीकार करना पड़ेगा । किन्तु उसके बहुत पूर्व उत्कलसे वैदिक ब्राह्मण आ कर इस देशमें वास करते थे, इस बातका प्रमाणाभाव नहीं । साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व वैष्णव कवि जयानन्दने (महाप्रभुके याजपुर आगमन-उपलक्षमें) अपने बङ्गला चैतन्यमङ्गलमें (उत्कलखण्डमें) लिखा है,—

'चैतन्यगोसाईंके पूर्व पुरुष याजपुरमें आये ; किन्तु राजा भ्रमरके डरसे श्रीहट्टदेशमें भाग गये । उसी वंशमें एक वैष्णव हो गये हैं, जिनका नाम कमललोचन था । पूर्व जन्मके तपसे चैतन्य गोसाईं ने, उनके घर विश्राम किया ।'

सुतरां चैतन्यदेवके आविर्भावसे बहुत पहले उनके पूर्वपुरुष याजपुरवासी थे । वैदिक मधुकर मिश्र राजा भ्रमरवरके भयसे श्रीहट्ट भाग गये, किन्तु महाप्रभुने जब याजपुर पदार्पण किया तब भी यहां उन आतिथालोंका वास था । श्रीहट्टवासी प्रद्युम्नमिश्रके मनः-सन्तोषणी और चैतन्योदयावली आदि ग्रन्थानुसार चैतन्यदेवके प्रपितामह मधुकर मिश्र श्रीहट्टवासी हुए थे । इधर उड़ीसेके इतिहासमें और गोपीनाथपुरकी शिलालिपिमें उत्कलपति कपिलेन्द्रदेवकी 'भ्रमरवर' उपाधि दिख पड़ती है† । सन् १४५१ ई०में उनका राज्याभिषेक सम्पन्न होने पर भी उसके बहुत पूर्वसे ही उनका अभ्युदय हुआ था । ऐसे स्थलमें १५वीं शताब्दीके मध्य भागमें उनके उत्पातसे मधुकर मिश्र पुत्र परिजनके साथ श्रीहट्टवासी हुए थे । सन् १४७२ ई०में बङ्गालमें शान्ति स्थापित हुई थी× । इसके कुछ ही समय बाद मधुकर मिश्रके पौत्र और चैतन्यदेवके पिता जगन्नाथ मिश्र नवद्वीपवासी हो यहांके वैदिक समाजभुक्त हुए थे⊕ ।

चैतन्यदेवके पूर्वपुरुष याजपुरवासी थे ; सुतरां वे उत्तर श्रेणी या पञ्चगौड़ ब्राह्मणोंके अन्तर्गत हैं । गङ्गवंशीय राजकर्तृक कन्नौजसे ब्राह्मण लानेका प्रवाद यदि सत्य हो, तो यशोधरादिकी तरह महाप्रभुके पूर्व-पुरुष भी पाश्चात्य वैदिक हैं । फिर उत्कल या दक्षिण देशसे श्रीहट्टमें आगमनप्रयुक्त वे दाक्षिणात्य वैदिक भी कहे जा सकते हैं । इसी कारणसे ही महाप्रभुकी जीवनी-लेखकोंमेंसे कोई उनके पूर्वपुरुषको "पाश्चात्य वैदिक" कोई "दाक्षिणात्य वैदिक" कहते हैं । इस तरह दोनों समाजमें किसी समयमें सम्बंध स्थापित होना भी कुछ आश्चर्यकी बात नहीं । कटक और मेदिनीपुर जिलेमें दोनों श्रेणियोंका संमिश्रण दिखाई देता है । यहां षट्कुल या षड्गोत्र वैदिक ही सम्मानित हैं । यथा—

"करशर्मा भरद्वाजो धरशर्मा च गौतमः ।
आत्रेयो रथशर्मा च नन्दिशर्मा च काश्यपः ॥
कौशिको दासशर्मा च पतिशर्मा च मुद्गलः ।"

भरद्वाजगोत्रमें करशर्मा, गौतमगोत्रमें धरशर्मा, काश्यप गोत्रमें नन्दिशर्मा, कौशिक गोत्रमें दासशर्मा और मुद्गलगोत्रमें पतिशर्मा (ये ६ घर) हैं । सिवा इनके उत्कल श्रेणीके कुलग्रन्थमें घृतकौशिक और कात्यायन गोत्र आदि भी वैदिक कहे गये हैं । याजपुरके पण्डोंका कहना है, कि उत्कल, द्राविड़, ताम्रपर्णी, कामरूप (योनिपीठ), सागरसङ्गम, चन्द्रनाथ और सुह्म देशमें जो सब वैदिक हैं, वे दाक्षिणात्य गिने जाते हैं ।†

जो हो, उत्कल छोड़ कर इस समय बङ्गालका अनु-

* Sterling's Orissa (in Asiatic Researches, Vol xv, p. 287)

† Asiatic Researches Vol, xv, p. 275, और विश्वकोषमें गोपीनाथपुर शब्द देखो ।

× बङ्गेर जातीय इतिहास (ब्राह्मणकाण्ड १म अंश, १६६-६७ पृष्ठ द्रष्टव्य)

⊕ जातीय इतिहास (ब्राह्मणकाण्ड) २य भाग ३यांश ६२ पृष्ठमें जगन्नाथ मिश्रका आविर्भाव द्रष्टव्य ।

† "उत्कलो ताम्रपर्णी च योनिपीठो तु सागरो ।
चन्द्रनाथो तथा सुह्मो दाक्षिण्या वैदिकाः स्मृताः"

भगोहा—ढाके जिलेके माणिकगञ्ज महकमेके अधीन है। इस समय यह ग्राम भी गङ्गाके गर्भमें है। इस समाजके लोग भी निकटके बयाकान्दी, कुमारखाली आदि ग्रामोंमें रहते हैं।

दशिकुदरा—यह भी ढाके जिलेके माणिकगञ्ज महकमेके अधीन है। यहां आवृतियोंका मेला हो गया है। किन्तु ईश्वरके मतसे नवाबगञ्जके निकट है और पाश्चात्य कुलपञ्जिकाके मतसे गङ्गातीर पर अवस्थित है।

कोदारी (कदाड़ी)—राजशाही जिलेमें है। नाटोर शहरसे प्रायः ८ कोस दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। पहले इस ग्रामको बगलमें आत्रेयी नदी थी। इस समय यह बहुत दूर हट गई है।

गौराङ्ग या गौराइल—ढाकेके राजनगरके निकट है। इस समाजके लोग निकटके मधुरा, भाकसा, धानुका, आदि स्थानोंमें वास करते हैं।

धरगांव—राजशाही जिलेमें आत्रेयी और ग्राची नदीके पार्श्वमें अमरूलपुरके निकट अवस्थित था। इस समय नदीके गर्भमें अवस्थित है, चिह्नमात्र भी नहीं दिखाई देता।

दर्शिए और नगौर—अग्रद्वीपके पूर्वोत्तर ओर अवस्थित है। इस समय अब इन दो स्थानोंमें पाश्चात्य वैदिकोंका वास नहीं है।

नवद्वीप सुविख्यात प्राचीन नदिया ही पाश्चात्य वैदिकोंका नवद्वीप समाज है, किन्तु प्राचीन स्थानका अधिकांश गङ्गागर्भमें आ चुका है। जहां इस समय लोग वसवासरत दिखाते हैं, उसके कुछ दूर पर यह समाज अवस्थित था। इस समय वैदिकोंका वास रहने पर भी नवद्वीपमें पञ्चगोत्रके श्रेष्ठ पाश्चात्य वैदिकोंके साथ प्रायः उनका सम्बन्ध नहीं होता।

श्यामल या ...—यह शाहि नामसे विख्यात है। फरीदपुर जिलेके भूषणाके निकट सुविख्यात 'हावेली महाल' नामक ग्रामके अन्तर्गत है। किसी समय यह स्थान एक प्रधान वैदिक समाज गिना जाता था।

काटुर—इस समय कोटालीपाड़ेके अन्तर्गत है।

दाक्षिणात्य वैदिक।

कोटालीपाड़ानिवासी रामकृष्ण विद्यालङ्कार रचित "दाक्षिणात्य वैदिक-कुल-पञ्जिका" नामक एक कुल ग्रन्थ १७४५ शकमें रचा गया।

रामकृष्णने लिखा है, कि कुलाचार्योंने कान्यकुब्ज आदि जिन दश तरहके ब्राह्मणोंका उल्लेख है, उनमें द्राविड़ोंको एक है। वङ्गदेशमें भी सब दाक्षिणात्य वैदिक ब्राह्मण दिखाई देते हैं, वे सभी उस द्राविड़ श्रेणीके हैं। दक्षिण-देशसे आनेवाले दाक्षिणात्य और वेद जाननेवाले वैदिक कहलाये।

प्रवाद है, कि काल पा कर इस प्रदेशमें वेदादिचर्चा और वैदिक क्रियाकलापका लोप होनेसे द्राविड़ देशसे इस श्रेणीके ब्राह्मण यहां लाये गये। मालूम होता है, कि राढ़ी और वारेन्द्र श्रेणीके बाद यहां यह आये। इस श्रेणीके ब्राह्मणोंने इन्हें गुरु और पुरोहितके पद पर अभिषिक्त किया था। दाक्षिणात्यके वैदिकोंमें बहुतेरे कृतविद्य और प्रतापशाली थे। स्मार्त रघुनन्दन भट्टाचार्यने अपने रचे मलमासतत्त्वमें "कालादर्श-माधवाचार्य आदि दाक्षिणात्य वैदिक ग्रन्थेषु" जो पाठ रखा है, उससे सायणाचार्य, शङ्कराचार्य आदि महात्मा भी दाक्षिणात्य वैदिक होते हैं।

आगमन काल।

इसका ठीक कुलग्रन्थमें उल्लेख नहीं, कि दाक्षिणात्य वैदिकगण किस समय इस देशमें आये। राढ़ीय और वारेन्द्र श्रेणीके ब्राह्मणके बाद वे आये हैं, केवल इतना ही प्रवाद है। फिर कितनोंका ऐसा मत है, कि उत्कलके सूर्यवंशीय राजाओंने जिस समय त्रिवेणी तक अधिकार फैलाया था, उस समय याजपुर आदि प्रधान ग्रामोंके विशिष्ट वेदपारग याज्ञिक वैदिकगण त्रिवेणी तक वङ्गदेशमें गमनागमन करते थे। उनमें बहुतेरे ब्राह्मणके निकट सम्मान लाभ कर उनके दिये गाँवोंमें वासस्थापन किया।* इस तरह उत्कलके वैदिक इस देशमें वास कर दाक्षिणात्य वैदिक नामसे विख्यात हुए।

उत्कलके इतिहासमें लिखा है, कि सूर्यवंशीय राजा मुकुन्ददेवने त्रिवेणी तक राज्य विस्तार किया

* [illegible] (४थ संस्करण) १४ पृ।

था ; इन्होंने १५५०ई०में सिंहासन पर आरोहण किया।*
उक्त प्रवाद-वाक्यको स्वीकार करने पर साढ़े तीन सौ वर्ष पहले वङ्गमें दाक्षिणात्य वैदिकागम स्वीकार करना पड़ेगा। किन्तु उसके बहुत पूर्व उत्कलसे वैदिक ब्राह्मण आ कर इस देशमें वास करते थे, इस बातका प्रमाणाभाव नहीं। साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व वैष्णव कवि जयानन्दने (महाप्रभुके याजपुर आगमन-उपलक्षमें) अपने वङ्गला चैतन्यमङ्गलमें (उत्कलखण्डमें) लिखा है,—

'चैतन्यगोसाईंके पूर्व पुरुष याजपुरमें आये; किन्तु राजा भ्रमरके डरसे श्रीहट्टदेशमें भाग गये। उसी वंशमें एक वैष्णव हो गये हैं, जिनका नाम कमललोचन था। पूर्व जन्मके तपसे चैतन्य गोसाईंने, उनके घर विश्राम किया।'

सुतरां चैतन्यदेवके आविर्भावसे बहुत पहले उनके पूर्वपुरुष याजपुरवासी थे। वैदिक मधुकर मिश्र राजा भ्रमरवरके भयसे श्रीहट्ट भाग गये, किन्तु महाप्रभुने जब याजपुर पदार्पण किया तब भी वहाँ उन जातिवालोंका वास था। श्रीहट्टवासी प्रद्युम्नमिश्रके मनःसन्तोषणी और चैतन्योदयावली आदि ग्रन्थानुसार चैतन्यदेवके प्रपितामह मधुकर मिश्र श्रीहट्टवासी हुए थे। इधर उड़ीसेके इतिहासमें और गोपीनाथपुरकी शिलालिपिमें उत्कलपति कपिलेन्द्रदेवकी 'भ्रमरवर' उपाधि दिख पड़ती है।† सन् १४५१ ई०में उनके राज्याभिषेक सम्पन्न होने पर भी उसके बहुत पूर्वसे ही उनका अभ्युदय हुआ था। ऐसे स्थलमें १५वीं शताब्दीके मध्य भागमें उनके उत्पातसे मधुकर मिश्र पुत्र परिजनके साथ श्रीहट्टवासी हुए थे। सन् १४९२ ई०में वङ्गालमें शान्ति स्थापित हुई थी×। इसके कुछ ही समय बाद मधुकर मिश्रके पौत्र और चैतन्यदेवके पिता जगन्नाथ मिश्र नवद्वीपवासी हो यहाँके वैदिक समाजभुक्त हुए थे॥।

चैतन्यदेवके पूर्वपुरुष याजपुरवासी थे; सुतरां वे उत्तर श्रेणी या पञ्चगौड़ ब्राह्मणोंके अन्तर्गत हैं। गङ्गवंशीय राजकर्तृक कन्नौजसे ब्राह्मण लानेका प्रवाद यदि सत्य हो, तो यशोधरादिकी तरह महाप्रभुके पूर्वपुरुष भी पाश्चात्य वैदिक हैं। फिर उत्कल या दक्षिण देशसे श्रीहट्टमें आगमनप्रयुक्त वे दाक्षिणात्य वैदिक भी कहे जा सकते हैं। इसी कारणसे ही महाप्रभुकी जीवनी-लेखकोंमेंसे कोई उनके पूर्वपुरुषको "पाश्चात्य वैदिक" कोई "दाक्षिणात्य वैदिक" कहते हैं। इस तरह दोनों समाजमें किसी समयमें सम्बंध स्थापित होना भी कुछ आश्चर्यकी बात नहीं। कटक और मेदिनीपुर जिलेमें दोनों श्रेणियोंका संमिश्रण दिखाई देता है। यहां पर कुल या पञ्चगोत्र वैदिक ही सम्मानित हैं। यथा—

"करशर्मा भरद्वाजो धरशर्मा च गौतमः।
भार्गवो रथशर्मा च नन्दिशर्मा च काश्यपः॥
कौशिको दाशशर्मा च पतिशर्मा च मुद्गलः।"

भरद्वाजगोत्रमें करशर्मा, गौतमगोत्रमें धरशर्मा, काश्यप गोत्रमें नन्दिशर्मा, कौशिक गोत्रमें दासशर्मा और मुद्गलगोत्रमें पतिशर्मा (ये ६ घर) हैं। सिवा इनके उत्कल श्रेणीके कुलग्रंथमें घृतकौशिक और कात्यायन गोत्र आदि भी वैदिक कहे गये हैं। याजपुरके पण्डोंका कहना है, कि उत्कल, द्राविड़, ताम्रपर्णी, कामरूप (योनिपीठ), सागरसङ्गम, चन्द्रनाथ और सुह्म देशमें जो सब वैदिक हैं, वे दाक्षिण त्य गिने जाते हैं।†

जो हो, उत्कल छोड़ कर इस समय वङ्गालका अनु-

* Sterling's Orissa (in Asiatic Researches, Vol xv, p. 287)

† Asiatic Researches Vol, xv, p, 275, और विश्वकोषमें गोपीनाथपुर शब्द देखो।

× वङ्गेर जातीय इतिहास (ब्राह्मणकाण्ड १म अंश, १६६-६७ पृष्ठा द्रष्टव्य)

॥ जातीय इतिहास (ब्राह्मणकाण्ड) २य भाग ३यांश ६२ पृष्ठमें जगन्नाथ मिश्रका आविर्भाव द्रष्टव्य।

† "उत्कलो ताम्रपर्णी च योनिपीठो तु सागरी।
चन्द्रनाथी तथा सुह्मी दाक्षिण्या वैदिकाः स्मृताः"

अम्बोद्रा—ढाके जिलेके मानिकगञ्ज सबडिवीजनके अधीन है। इस समय यह ग्राम भी पद्माके गर्भमें है। इस ग्रामके रतन और निरञ्जनके वंशधरोंमें, ढुलादकुटी आदि ग्रामोंमें रहते हैं।

नरिकुन्दा—यह भी ढाके जिलेके मानिकगञ्ज सबडिवीजनके अधीन है। यहां पाश्चात्योंका ऐसा ही मत है। किन्तु ईश्वरके मतसे ... निकट है और पाश्चात्य कुलपञ्जिकाके मतसे ... पर अवस्थित है।

कोटाली (कोटाली)—राजशाही जिलेमें है। नाटोर राज्यके ...। कोन दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। पहले इस ग्रामको ... आत्रेयी नदी थी। इस समय यह बहुत दूर हट गई है।

गौरापि वा गौरादह—ढाकेके राजनगरके निकट है। इस ग्रामके लोग निकटके मलुरा, जाजना, भाजुका, आदि ग्रामोंमें वास करते हैं।

भालवि—राजशाही जिलेकी आत्रेयी और ... नदीके पार्श्वमें ... निकट अवस्थित था। इस समय नदीके गर्भमें अवस्थित है, निशान भी नहीं दिखाई देता।

दर्भवि और शाण्डि—मानभूमके पूर्वोत्तर कोण अवस्थित है। इस समय यह इन दो ग्रामोंमें पाश्चात्य वैदिकोंका वास नहीं है।

... सुविस्तृत प्राचीन नदिया हो पाश्चात्य वैदिकोंका वसतीय स्थान है, किन्तु प्राचीन ग्रामका अधिकांश गङ्गागर्भमें जा चुका है। अभी इस समय लोग बहरमपुर दिखाते हैं, उसके कुछ दूर पर यह समाज अवस्थित था। इस समय वैदिकोंका वास रहने पर भी ब्राह्मणोंके वंशज पाश्चात्य वैदिकोंके साथ ... सम्बन्ध नहीं होता।

... वा ...—यह नदिया ... विख्यात है। फरीदपुर जिलेके ... निकट सुविस्तृत 'हाड़ेला नदिया' नामक नदीके अन्तर्गत है। किसी समय यह ... एक प्रधान वैदिक समाज गिना जाता था।

...—इस समय मेदिनीपुर जिलेके अन्तर्गत है।

दाक्षिणात्य वैदिक।

ईश्वरनिबन्धमें ... विद्यासागर संगृहीत "दाक्षिणात्य वैदिक-कुलपञ्जिका" नामक एक कुलग्रन्थ १७४५ शकमें रचा गया।

आनन्दभट्टने लिखा है, कि पुराणादिमें कान्यकुब्ज ... जिन पांच गोत्रके ब्राह्मणोंका उल्लेख है, उन्हीं ब्राह्मणोंके वंश हैं। बङ्गदेशमें जो सब दाक्षिणात्य वैदिक ब्राह्मण दिखाई देते हैं, वे सभी उन ब्राह्मणोंके हैं। दक्षिण देशसे आनेवाले दाक्षिणात्य और वेद जाननेवाले वैदिक कहलाये।

प्रवाद है, कि ... इस प्रदेशमें वेदादिकी और वैदिक क्रियाकलापका लोप होनेसे ... इन ब्राह्मणोंके ... यहां लाये गये। मालूम होता है, कि राढ़ी और वारेन्द्र श्रेणीके बाद यहां आये। इन श्रेणीके ब्राह्मणोंने इन्हें गुरु और पुरोहितके पद पर अभिषिक्त किया था। दाक्षिणात्यके वैदिकोंमें बहुतेरे ... और ... थे। स्मार्त रघुनन्दन भट्टाचार्यने अपने रचे ... "..." आदि दाक्षिणात्य वैदिक ... जो पाठ रखा है, उसमें सायनाचार्य, ... आदि महात्मा भी दाक्षिणात्य वैदिक होते हैं।

अन्य मत।

इसका ठीक कुलग्रन्थमें उल्लेख नहीं, कि दाक्षिणात्य वैदिकगण किस समय इस देशमें आये। राढ़ीय और वारेन्द्र श्रेणीके ब्राह्मणके बाद वे आये हैं, केवल इतना ही प्रवाद है। फिर किसीको होता मत है, कि उत्कलके सूर्यवंशीय राजाओंने किस समय ... अधिकार किया था। उस समय ... आदि ... स्थानोंके विशिष्ट वेदपाठक सात्विक वैदिकगण ... बङ्गदेशमें ... आया करते थे। ... निकट सम्मान प्राप्त कर ... यहीं वासस्थापन किया।* इस तरह उत्कलके वैदिक इस देशमें वास कर दाक्षिणात्य वैदिक नामसे विख्यात हुए।

... इतिहासमें लिखा है, कि सूर्यवंशीय राजा ... देवने ... तक राज्य विस्तार किया

* ... (...) ...

था ; इन्होंने १५५०ई०में सिंहासन पर आरोहण किया।*
उक्त प्रवाद-वाक्यको स्वीकार करने पर साढ़े तीन सौ वर्ष पहले बङ्गमें दाक्षिणात्य वैदिकागम स्वीकार करना पड़ेगा। किन्तु उसके बहुत पूर्व उत्कलसे वैदिक ब्राह्मण आ कर इस देशमें वास करते थे, इस बातका प्रमाणाभाव नहीं। साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व वैष्णव कवि जयानन्दने (महाप्रभुके याजपुर आगमन-उपलक्षमें) अपने बङ्गला चैतन्यमङ्गलमें (उत्कलखण्डमें) लिखा है,—

'चैतन्यगोसाईंके पूर्व पुरुष याजपुरमें आये; किन्तु राजा भ्रमरके डरसे श्रीहट्टदेशमें भाग गये। उसी वंशमें एक वैष्णव हो गये हैं, जिनका नाम कमललोचन था। पूर्व जन्मके तपसे चैतन्य गोसाईंने, उनके घर विश्राम किया।'

सुतरां चैतन्यदेवके आविर्भावसे बहुत पहले उनके पूर्वपुरुष याजपुरवासी थे। वैदिक मधुकर मिश्र राजा भ्रमरवरके भयसे श्रीहट्ट भाग गये, किन्तु महाप्रभुने जब याजपुर पदार्पण किया तब भी वहाँ उन ज्ञातिवालोंका वास था। श्रीहट्टवासी प्रद्युम्नमिश्रके मनःसन्तोषणी और चैतन्योदयावली आदि ग्रन्थानुसार चैतन्यदेवके प्रपितामह मधुकर मिश्र श्रीहट्टवासी हुए थे। इधर उड़ीसेके इतिहासमें और गोपीनाथपुरकी शिलालिपिमें उत्कलपति कपिलेन्द्रदेवकी 'भ्रमरवर' उपाधि दिख पड़ती है†। सन् १४५१ ई०में उनका राज्याभिषेक सम्पन्न होने पर भी उसके बहुत पूर्वसे ही उनका अभ्युदय हुआ था। ऐसे स्थलमें १५वीं शताब्दीके मध्य भागमें उनके उत्पातसे मधुकर मिश्र पुत्र परिजनके साथ श्रीहट्टवासी हुए थे। सन् १४७२ ई०में बङ्गालमें शान्ति स्थापित हुई थी×। इसके कुछ ही समय बाद मधुकर मिश्रके पौत्र और चैतन्यदेवके पिता जगन्नाथ मिश्र नवद्वीपवासी हो यहाँके वैदिक समाजभुक्त हुए थे✻।

चैतन्यदेवके पूर्वपुरुष याजपुरवासी थे; सुतरां वे उत्तर श्रेणी या पञ्चगौड़ ब्राह्मणोंके अन्तर्गत हैं। गङ्गवंशीय राजकर्तृक कन्नौजसे ब्राह्मण लानेका प्रवाद यदि सत्य हो, तो यशोधरादिकी तरह महाप्रभुके पूर्वपुरुष भी पाश्चात्य वैदिक हैं। फिर उत्कल या दक्षिण देशसे श्रीहट्टमें आगमनप्रयुक्त वे दाक्षिणात्य वैदिक भी कहे जा सकते हैं। इसी कारणसे ही महाप्रभुकी जीवनी-लेखकोंमेंसे कोई उनके पूर्वपुरुषको "पाश्चात्य वैदिक" कोई "दाक्षिणात्य वैदिक" कहते हैं। इस तरह दोनों समाजमें किसी समयमें सम्बंध स्थापित होना भी कुछ आश्चर्यकी बात नहीं। कटक और मेदिनीपुर जिलेमें दोनों श्रेणियोंका संमिश्रण दिखाई देता है। यहां षट्कुल या षड्गोत्र वैदिक ही सम्मानित हैं। *यथा*—

"करशर्मा भरद्वाजो धरशर्मा च गौतमः।
आत्रेयो रथशर्मा च नन्दिशर्मा च काश्यपः॥
कौशिको दासशर्मा च पतिशर्मा च मुद्गलः।"

भरद्वाजगोत्रमें करशर्मा, गौतमगोत्रमें धरशर्मा, काश्यप गोत्रमें नन्दिशर्मा, कौशिक गोत्रमें दासशर्मा और मुद्गलगोत्रमें पतिशर्मा (ये ६ घर) हैं। सिवा इनके उत्कल श्रेणीके कुलग्रंथमें घृतकौशिक और कात्यायन गोत्र आदि भी वैदिक कहे गये हैं। याजपुरके पण्डोंका कहना है, कि उत्कल, द्राविड़, ताम्रपर्णी, कामरूप (योनिपीठ), सागरसङ्गम, चन्द्रनाथ और सुह्म देशमें जो सब वैदिक हैं, वे दाक्षिणात्य गिने जाते हैं।‡

जो हो, उत्कल छोड़ कर इस समय बङ्गालका मनु-

---

* Sterling's Orissa (in Asiatic Researches, Vol xv, p. 287)

† Asiatic Researches Vol, xv, p, 275, और विश्वकोषमें गोपीनाथपुर शब्द देखो।

× बङ्गेर जातीय इतिहास (ब्राह्मणकाण्ड १म अंश, १६६-६७ पृष्ठा द्रष्टव्य)

✻ जातीय इतिहास (ब्राह्मणकाण्ड) २य भाग ३यांश ६२ पृष्ठमें जगन्नाथ मिश्रका आविर्भाव द्रष्टव्य।

‡ "उत्कली ताम्रपर्णी च योनिपीठी तु सागरी।
चन्द्रनाथी तथा सुह्मी दाक्षिणात्या वैदिकाः स्मृताः"

यजुर्वेदी और दो प्रकारके सामवेदीय हैं*। प्राणकृष्णने जातुकर्ण और सावर्ण, इन गोत्रोंका उल्लेख नहीं किया है। फिर उनके मतसे कृष्णात्रेय और भरद्वाज ये दो गोत्र विलुप्त हुए हैं। किन्तु वर्त्तमान कालमें दाक्षिणात्य वैदिकोंमें घृतकौशिक, गौतम, कौशिक, काश्यप, काण्वायन, वात्स्य, भरद्वाज, कृष्णात्रेय और जातुकर्ण ये नौ गोत्र ही दिखाई देते हैं।

इस श्रेणीके बीच यजुर्वेदीकी संख्या ही अधिक है। सामवेदियोंकी संख्या अपेक्षाकृत कम है। ऋग्वेदियोंकी संख्या उससे भी कम है। अथर्ववेदीय यत्सामान्य हैं, और तो क्या, आज कल ये दिखाई भी नहीं देते।

इस श्रेणीमें आचार्य, भट्टाचार्य, चक्रवर्त्ती, मिश्र, भद्र, धर, कर, नन्दी, पति आदि उपाधियां दिखाई देती हैं। इनमें मर्यादाके अनुसार कुलीन, वंशज और मौलिक—ये तीन भेद हैं।

कुलप्रथा—आचार, विनय, विद्या, प्रतिष्ठा, तीर्थदर्शन, निष्ठा, आवृत्ति, तपः और दान ये भी कुलीनके लक्षण हैं। कन्याके जन्मते ही जो वाग्दान करते हैं अर्थात् जिनमें ऐसी वाग्दान-प्रथा प्रचलित है, वे कुलीन हैं। कुल कन्यागत है, इसलिये कन्याके आदान प्रदानसे ही कुलकी ह्रास-वृद्धि हुआ करती है। कुलीनोंमें जो कुलीनदौहित्रको कन्याका वाग्दान कर सके और जिनके लगातार सात पुरुष तक वंशज और मौलिक संस्रव नहीं हुआ, वे ही मुख्य और प्रधान कुलीन कहलाते हैं। वंशज आदि संस्रव होने पर भी प्रधान कुलीनोंके साथ जिनका कुटुम्ब संस्रव है, वे मध्यम कुलीन हैं। वाग्दत्ता कन्याके साथ जिसका विवाह होनेकी बात हो, उसके साथ विवाह न हो, किसी द्वितीय कुलीन पात्रको वह कन्या दी गई हो, तो उसको अन्यपूर्वा कहते हैं। इस तरह अन्यपूर्वाकी गर्भजात कन्यासे जो विवाह करते हैं, वही कुलीन-अधम कहलाते हैं। इस तरह आदान-प्रदानके गुण-दोषोंके कारण ढक्काकृति, मृदङ्गाकृति और धतूरेकी आकृति—ये तीन भाव भी दिखाई देते हैं। सिवा इसके कुल-संबंधके अनुसार क्षम्य, उचित और आर्त्ति—ये तीन तरहके भेद भी सुने जाते हैं। अपने घरसे उत्तम घरमें कन्यादान करनेसे आर्त्ति, समान समान घरमें करनेसे उचित और अपने घरसे निकृष्ट घरमें कन्यादान करनेसे क्षम्य कहा जाता है। आर्त्ति-संबंध ही प्रशस्त है। आर्त्ति मिलने पर उचित संबंध करनेकी आवश्यकता नहीं। अकुलीन कभी कुलीन नहीं हो सकता। किन्तु कुलीन कुलधर्मविरोधी कार्य करनेसे अकुलीन हो सकता है। यदि कोई कुलीन अपने पुत्र या कन्याकी वाग्दान-संबंधप्रथा तोड़ कर विवाह करे या अन्यपूर्वासे विवाह कर ले, तो उसका कुलीनत्व नष्ट हो जाता है और वह बहुत निन्दित गिना जाता है। वाग्दत्ता-कन्याकी मृत्यु हो जाने पर वंशज कन्याका पाणिग्रहण करना उचित है। किन्तु मौलिक कन्या ग्रहण करना कर्त्तव्य नहीं। मौलिक कन्या ग्रहण करने पर कुल दुर्बल हो जायेगा। जिसके सात पुरुष तक अविरोध कुलक्रिया चल रही है और मौलिक संबंध नहीं, वही कुल पवित्र है। यदि सात पुरुष तक क्रमागत मौलिकक्रिया चले, तो शूद्रकन्या विवाहवत् कुल नष्ट होता है। अन्यपूर्वागर्भजाता, रुपयासे खरीदी गई कन्या, रजस्वला, रोगिणी और नीचकुलजाता—ये पांच तरहकी कन्या कुलाधम है। अन्यपूर्वा-कुलीन कन्या मौलिकको दान करनेसे कोई दोष नहीं होता। किन्तु ऐसी कुलीन कन्याके हाथसे अन्न ग्रहण नहीं कर सकते।

वंशज—जो कुलीनके द्वितीय पुत्रको कन्या देते हैं और मौलिक कन्या ग्रहण करते हैं, वे वंशज हैं। कुलरहस्यमें लिखा है,—"वंशज कुलीनोंके आश्रय स्वरूप हैं। सत्कुलीनको कन्यादान और श्रेष्ठमौलिकसे कन्या ग्रहण—इस तरह कन्यागत भाव रहना वंशजका लक्षण है। कुलीन वंशमें जन्म और कुलविप्लवके कारण वंशमात्रमें प्रतिष्ठित रहनेसे वंशज ख्याति होती

---

* "जातुकर्णश्च सावर्णः काश्यपो घृतकौशिकः।
वात्स्यः काण्वायनश्चैव कौशिको गौतमस्तथा॥
अष्टावेते दाक्षिणात्ये गोत्राः संपरिकीर्त्तिताः।
द्वौ यजुः सामवेदी च तेषां ज्ञेयौ विशेषतः॥"
(पाश्चात्य वैदिक कुलपञ्जिका ६१२-६१३)

स्मरण किया जावे। इस देशमें किस समय दाक्षिणात्य वैदिक आये? यही आलोच्य है।

बङ्गमें दाक्षिणात्य वैदिकागमन-काल।

सन् १४३२ शकमें रचित आनन्दभट्टके वल्लाल चरितमें लिखा है, गौड़ाधिप वल्लालसेनने गौतम गोत्रीय अनंत शर्मा नामक एक द्राविड़ श्रेणीके ब्राह्मणको सुवर्णभुक्तिके अंतर्गत सर्वांशस्यसमन्वित 'कासार' ग्राम दान किया था। उस सुधाधवलित सर्वोपस्करसंयुत शालायतनादि परिशोभित गृहपूर्ण राजदत्त ब्राह्मणशासनमें दाक्षिणात्य विप्रगण वास करते रहे।

वल्लालचरितके रचयिता आनन्दभट्टने पूर्वोक्त अनंत शर्माके वंशधरको भी दाक्षिणात्य ब्राह्मण कहके परिचय दिया है। उनके मतसे दाक्षिणात्य ही द्राविड श्रेणी है*। अतएव वल्लालसेनके समयमें इस देशमें दाक्षिणात्य वैदिक थे, यह प्रमाणित हुआ। गौड़ाधिप वल्लालपिता विजयसेनके शिलाफलकमें उनके पूर्वपुरुष "दाक्षिणात्यक्षौणीन्द्र" कह प्रख्यात हुए और वे गौड़, कामरूप और कलिङ्ग पर विजय कर राजचक्रवर्ती हुए थे। वरेंद्रभूमिस्थ "प्रद्युम्नेश्वर" मन्दिर-प्रतिष्ठाके उपलक्षमें महाकवि उमापतिधरने उक्त 'विजयप्रशस्ति'-रचना की थी। यह भी देवपाड़ास्थ विजयसेनकी शिलालिपिके रूपमें प्रसिद्ध है।

प्राणकृष्णके वैदिक-कुलरहस्यमें लिखा है, कि किसी कारणसे कितने ही वैदिक द्राविड़ देशसे उत्कल देशमें आ कर बस गये। वहां कुछ दिनों तक वे सुखसे रहे थे। इसके बाद विरूपाक्ष नामक एक वीराचारी सिद्धपुरुषने आ कर भारी अनिष्ट किया। उन्हींने योगबलसे सारे देशको मदिरामय बना दिया। नदमें, झीलमें, कूपमें, सरोवरमें, तमाम जलाशयोंमें जलके बदले शराब ही शराब दिखाई देने लगी। इस तरहकी विपद्में पड़ कर कई प्रधान वैदिक उत्कलसे बङ्गदेशमें चले आये। उनके सदाचार, विद्याबुद्धि और क्रियादिको देख बङ्गज कायस्थ विक्रमादित्यसुत राजा प्रतापादित्यने सन् १५४२ शकमें उनकी सम्वर्द्धना की थी। उन्होंने ही दाक्षिणात्योंको नाना सुखैश्वर्य प्रदान कर बङ्गमें वास कराया। जहां पहला वास उन्होंने किया था, उसका नाम दोमुड़ा है, दाक्षिणात्य वैदिकोंकी यही मूलभूमि है। दाक्षिणात्य कुलीनोंके बीजपुरुषने सदाचार और स्वधर्मनिष्ठ हो कर यहां बहुत काल तक वास किया था। गङ्गा यमुना और सरस्वतीकी त्रिधारा एकत्र हो कर प्रयाग जैसे पुण्यमय हुआ है, यहां उसी तरह वैदिक वंशीय लोगोंकी तीन धारायें वर्द्धित हुई थीं। किन्तु सदा एक समान नहीं बीतता है। यहां वनैले जन्तुओंका उपद्रव हुआ। कोई भी यहां रहनेमें समर्थ नहीं हुआ। यह वासस्थान वन्यभूमिमें बदल गया। कोई बङ्गमें, कोई अङ्गमें, कोई गौड़में, कोई राढ़में इस तरह नाना स्थानोंमें दाक्षिणात्यगण चले गये।

अब मालूम हुआ, कि सेनवंशीय राजाओंके समयमें कई घर दाक्षिणात्यके बङ्गमें आ कर वास करने पर भी फिर बहुत दिनोंके बाद यशोराधिप प्रतापादित्यके समयमें भी तीन घर वैदिकोंने आ कर राजप्रदत्त दोमड़ा ग्राममें वास किया।

गोत्र और उपाधि-निर्णय—कुलरहस्यके मतसे १ गौतम, २ काश्यप, ३ वात्स्य, ४ काण्वायन, ५ घृतकौशिक, ६ कृष्णात्रेय, ७ भरद्वाज और ८ कुशिक, ये आठ गोत्र ही महाकुल हैं। इनमें इस समय छः गोत्र केवल दिखाई देते हैं। कृष्णात्रेय और भरद्वाज—ये दो गोत्र अब देख नहीं पड़ते*।

फिर पाश्चात्य वैदिक कुलपञ्जिकामें लिखा है,—१ जातुकर्ण, २ सावर्ण, ३ काश्यप, ४ घृतकौशिक, ५ वात्स्य, ६ काण्वायन, ७ कौशिक और ८ गौतम। दाक्षिणात्योंमें ये आठ गोत्र विख्यात हैं। इनमें दो प्रकारके

---

* "केचित् विप्रा भारताश्च वैदिका वेदपारगाः।
पाश्चात्या दाक्षिणात्याश्च द्वेधोक्ता द्राविड़ा स्मृताः॥"
(वल्लाल-चरित पूर्व खण्ड)

* "गौतमः काश्यपो वात्स्यः काण्वायनघृतकौशिकौ।
इत्यष्टगोत्रे स्वधुना गोत्रषट्कं प्रवर्द्धते।
कृष्णात्रेयभरद्वाजौ दृश्यते न न कुत्रचित्॥"
(कुलरहस्य १।२६-२७)

यजुर्वेदी और दो प्रकारके सामवेदीय हैं*। प्राणकृष्णने जातुकर्ण और सावर्ण, इन गोत्रोंका उल्लेख नहीं किया है। फिर उनके मतसे कृष्णात्रेय और भरद्वाज ये दो गोत्र विलुप्त हुए हैं। किन्तु वर्त्तमान कालमें दाक्षिणात्य वैदिकोंमें घृतकौशिक, गौतम, कौशिक, काश्यप, कात्यायन, वात्स्य, भरद्वाज, कृष्णात्रेय और जातुकर्ण ये नौ गोत्र ही दिखाई देते हैं।

इस श्रेणीके बीच यजुर्वेदीकी संख्या ही अधिक है। सामवेदियोंकी संख्या अपेक्षाकृत कम है। ऋग्वेदियोंकी संख्या उससे भी कम है। अथर्ववेदीय यत्सामान्य हैं, और तो क्या, आज कल ये दिखाई भी नहीं देते।

इस श्रेणीमें आचार्य, भट्टाचार्य, चक्रवर्त्ती, मिश्र, भद्र, धर, कर, नन्दी, पति आदि उपाधियां दिखाई देती हैं। इनमें मर्यादाके अनुसार कुलीन, वंशज और मौलिक—ये तीन भेद हैं।

कुलप्रथा—आचार, विनय, विद्या, प्रतिष्ठा, तीर्थदर्शन, निष्ठा, आवृत्ति, तपः और दान ये भी कुलीनके लक्षण हैं। कन्याके जन्मते ही जो वाग्दान करते हैं अर्थात् जिनमें ऐसी वाग्दान-प्रथा प्रचलित है, वे कुलीन हैं। कुल कन्यागत है, इसलिये कन्याके आदान प्रदानसे ही कुलकी ह्रास-वृद्धि हुआ करती है। कुलीनोंमें जो कुलीनदौहित्रको कन्याका वाग्दान कर सके और जिनके लगातार सात पुरुष तक वंशज और मौलिक संस्रव नहीं हुआ, वे ही मुख्य और प्रधान कुलीन कहलाते हैं। वंशज आदि संस्रव होने पर भी प्रधान कुलीनोंके साथ जिनका कुटुम्ब संस्रव है, वे मध्यम कुलीन हैं। वाग्दत्ता कन्याके साथ जिसका विवाह होनेकी बात हो, उसके साथ विवाह न हो, किसी द्वितीय कुलीन पात्रको यह कन्या दी गई हो, तो उसको अन्यपूर्वा कहते हैं। इस तरह अन्यपूर्वाको गर्भजात कन्यासे जो विवाह करते हैं, वही कुलीन-अधम कहलाते हैं। इस तरह आदान-प्रदानके गुण-दोषोंके कारण ढक्काकृति, मृदङ्गाकृति और धतूरेकी आकृति—ये तीन भाव भी दिखाई देते हैं। सिवा इनके कुल-संबंधके अनुसार क्षम्य, उचित और आर्त्ति—ये तीन तरहके भेद भी सुने जाते हैं। अपने घरसे उत्तम घरमें कन्यादान करनेसे आर्त्ति, समान समान घरमें करनेसे उचित और अपने घरसे निकृष्ट घरमें कन्यादान करनेसे क्षम्य कहा जाता है। आर्त्ति-संबंध ही प्रशस्त है। आर्त्ति मिलने पर उचित संबंध करनेकी आवश्यकता नहीं। अकुलीन कभी कुलीन नहीं हो सकता। किन्तु कुलीन कुलधर्मविरोधी कार्य्य करनेसे अकुलीन हो सकता है। यदि कोई कुलीन अपने पुत्र या कन्याकी वाग्दान-संबंधप्रथा तोड़ कर विवाह करे या अन्यपूर्वासे विवाह कर ले, तो उसका कुलीनत्व नष्ट हो जाता है और वह बहुत निन्दित गिना जाता है। वाग्दत्ता-कन्याकी मृत्यु हो जाने पर वंशज कन्याका पाणिग्रहण करना उचित है। किन्तु मौलिक कन्या ग्रहण करना कर्त्तव्य नहीं। मौलिक कन्या ग्रहण करने पर कुल दुर्बल हो जायेगा। जिसके सात पुरुष तक अविरोध कुलक्रिया चल रही है और मौलिक संबंध नहीं, वही कुल पवित्र है। यदि सात पुरुष तक क्रमागत मौलिकक्रिया चले, तो शूद्रकन्या विवाहवत् कुल नष्ट होता है। अन्यपूर्वागर्भजाता, रुपयासे खरीदी गई कन्या, रजस्वला, रोगिणी और नीचकुलजाता—ये पांच तरहकी कन्या कुलाधम है। अन्यपूर्वा-कुलीन कन्या मौलिकको दान करनेसे कोई दोष नहीं होता। किन्तु ऐसी कुलीन कन्याके हाथसे अन्न ग्रहण नहीं कर सकेंगे।

वंशज—जो कुलीनके द्वितीय पुत्रको कन्या देते हैं और मौलिक कन्या ग्रहण करते हैं, वे वंशज हैं। कुलरहस्यमें लिखा है,—"वंशज कुलीनोंके आश्रय स्वरूप हैं। सत्कुलीनको कन्यादान और श्रेष्ठमौलिकसे कन्या ग्रहण—इस तरह कन्यागत भाव रहना वंशजका लक्षण है। कुलीन वंशमें जन्म और कुलविप्लवके कारण वंशमात्रमें प्रतिष्ठित रहनेसे वंशज ख्याति होती

---

* "जातुकर्णश्च सावर्णः काश्यपो घृतकौशिकः।
वात्स्यः कात्यायनश्चैव कौशिको गौतमस्तथा॥
भरद्वाजो दाक्षिणात्ये गोत्राः संपरिकीर्त्तिताः।
ह्री यजुः सामवेदो च तेषां ज्ञेयो विशेषतः॥"
(पाश्चात्य वैदिक कुलपञ्जिका ६।२-६२)

हैं। वंशजोंको नव गुणोंकी अपेक्षा नहीं है। उनको याग दानकी यन्त्रणा सहनी नहीं पड़ती। कुलीनको कन्या देनेसे ही उनके स्वर्गका द्वार खुल जाता है। वंशज कभी भी मौलिकको कन्यादान न करें। अन्यपूर्वा-कन्या ग्रहण और मौलिकको कन्यादान—इन दो कामोंसे ही वंशजधर्म नष्ट होता है।

वंशज फिर दो प्रकारके हैं—प्रकृत और विकृत। कुलविधिस्थापन-कालमें जिनके पूर्वपुरुष वंशज हुए हैं, वे प्रकृत या आदिवंशज हैं और यागदान न करनेके कारण जो कुलसे च्युत हुए हैं, वे विकृत वंशज हैं। विष्णुधर, वत्सधर, शेषपति और शूलपाणि—ये चार आदमी पूर्वज अर्थात् पहले वंशज कहलाये। इन लोगोंके वंशधर ही आदिवंशज हैं। विष्णुधर वत्सधरके सन्तान घृतकौशिक और शेषपति और शूलपाणिके वंशधर वात्स्य कहलाये। राढ़ अञ्चलमें ही ये प्रसिद्ध हैं। विकृत वंशजके नाना गोत्र हैं और वे नाना स्थानोंमें वास करते हैं। इनके मध्य जो पुरुषानुक्रमसे कुलीनको कन्यादान करते हैं, वे ही श्रेष्ठमानास्पद हैं।

मौलिक—जो अन्यपूर्वा कन्या ग्रहण करते हैं, वे ही मौलिक हैं। मौलिकके सिवा कुलीनोंकी अन्य गति नहीं। मौलिकको ही अन्यपूर्वा-कन्या दान की जाती हैं। इसलिये सन्मौलिक ही कुलीनके निकट भी सम्मानित हैं। मूल या आदिमें ही ये अन्यपूर्वा ग्रहण करते आ रहे हैं। इसलिये इनका नाम मौलिक हुआ है। मौलिक अर्थ ले कर कभी विवाह सम्बन्ध न करें। जो धन लेंगे, या धन देंगे, वे दोनों ही पतित होंगे। कन्या दे कर कन्याग्रहण करनेको परिवर्त कहते हैं। दाक्षिणात्य-समाजमें यह भी कन्या विक्रयकी तरह निन्दित कर्म है; किन्तु अर्थ ले कर कन्या-विक्रयकी तरह पापजनक नहीं। किन्तु परिवर्त तथा शुल्कविक्रय दोनों ही गर्हित कार्य समझ कर छोड़ देना चाहिये। मौलिकमें भी आर्त्ति, उचित और क्षम्य भेदसे तीन तरहके दान हैं। कुलीनको कन्यादान करनेको आर्त्ति, वंशजको दान करनेको उचित और मौलिकको मौलिकके कन्यादान देने पर वह क्षम्य कहलाता है। आर्त्ति दानमें यश, उचितदानमें समुचित मान और क्षम्यदान अत्यन्त गर्हित दान है। सात पुरुष तक जिन्होंने आर्त्तिदान किया है, वे ही यथार्थमें मौलिक कहलाने योग्य हैं। मौलिक भी दो तरहके हैं—सन्मौलिक और असन्मौलिक। गङ्गाधर, रायवार, जटाधर भाण्डारी, कविसुमङ्गल और गाङ्मिश्र, ये ही चार आदि मौलिक थे। इन चारोंके ही वंशधर सन्मौलिक कहलाते हैं। सिवा इनके दूसरे जो अन्यपूर्वा कन्या ग्रहण कर मौलिक हुए हैं, वे असन्मौलिक हैं।

समाज-स्थान,—पहले गङ्गा कालीघाटसे पूर्व दक्षिणाभिमुखी हो राजपुर, हरिनाभि, कोदालिया, चिंगड़ीपोता, मालञ्च, माहीनगर, शासन, बारुईपुर, मयदा, बारासात, जयनगर, मजिलपुर, विष्णुपुर, आदि ग्रामोंमें होती हुई सागरमें मिली थीं—इसीसे गङ्गावासके उपलक्षमें इन सब ग्रामोंमें ही दाक्षिणात्य वैदिकोंने वास किया था। वर्त्तमान समयमें गङ्गाके इन सब स्थानोंसे अन्तर्हिता होने पर भी ये सब ग्राम आज भी दाक्षिणात्य वैदिकोंके समाज कहलाते हैं। इन सब स्थानोंके दाक्षिणात्य वैदिक वङ्गदेशके सब स्थानोंमें सम्मानित होते हैं और तो क्या, राढ़ी, वारेन्द्र, पाश्चात्य वैदिक प्रभृति ब्राह्मणोंसे यह दाक्षिणात्य वैदिक-श्रेष्ठगण ही आचार्य-वरण किये जाते थे। आज भी ढाका, विक्रमपुर आदि स्थानोंमें अनेक ब्राह्मणोंके घर भी यह वैदिक भिन्न वृषोत्सर्ग आदि वैदिक कर्म सम्पन्न नहीं होते।

ऊपर जिन समाजोंका उल्लेख किया गया, उन सब स्थानोंके वैदिकवंश ही श्रेष्ठ और सम्मानित हैं। उनके आत्मीय कुटुम्बगण नानास्थानोंमें फैल गये हैं।

चांङ्गिपोता और तन्निकटस्थ कोदालिया ग्राममें कई घर मध्यकुलीन घृतकौशिकका वास है, वे अपने समाजमें विशेष सम्मानित हैं। ये सुप्रसिद्ध सार्वभौम भट्टाचार्यके कनिष्ठ विद्याधर वाचस्पतिके सन्तान कह कर अपना परिचय दिया करते हैं। ये और भी कहते हैं, कि चैतन्य महाप्रभु आदिके तिरोधान होने पर क्षुब्धचित्त हो विद्याधर श्रीपुरीधाम परित्याग कर कलकत्तेके दक्षिणपूर्व बांसड़ाके निकटवर्त्ती नदीके किनारे सुजला सुफला शस्योत्तर भूमि पा कर यहां ही रह गये। कुलरहस्य-वर्णित दाक्षिणात्योंकी पूर्वभूमि 'होमड़ा' बांसड़ासे अधिक दूर

नहीं है। विद्याधरवंशका विश्वास है, कि वांशड़ाके पार्श्वसे जो प्रकाण्ड नदी प्रवाहित हो सागरमें मिली है, यह नदी उक्त विद्याधर विद्यावाचस्पतिके नामानुसार आज भी "विद्याधरी" नामसे विख्यात है। विद्याधरके परवर्त्ती वंशधर उक्त स्थानका परित्याग कर कोदालिया और इसके निकटके चांड़िपोता ग्राममें आ कर वास करते हैं।

सुप्रसिद्ध सोमप्रकाशके सम्पादक द्वारकानाथ विद्याभूषणने भी उक्त विद्याधरवंशमें जन्म लिया था। ये नैयायिक हरचन्द्रन्यायरत्नके पुत्र हैं। इन असाधारण गुणावली नानाशास्त्रोंमें सुपण्डित "विश्वेश्वरविलास", "प्रास" और "रोमका इतिहास" आदि बहुत ग्रन्थोंके प्रणेता विद्याभूषण महाशयका सम्यक् परिचय देना यहां असम्भव है। उनको बङ्गीय संवाद पत्रोंके आदर्श सम्पादक कहनेमें अत्युक्ति नहीं होती।

दाक्षिणात्य वैदिकोंके वर्त्तमान वासस्थान।

२४ परगना और नदिया जिलेमें हैं—१ रामपुर, २ ३ हरिनाभि, ३ मालञ्च, ४-५ मल्लिकपुर, ६ गोविन्दपुर, ७ लाङ्गलबेड़, ८ श्रीरामपुर, ६ बारद्रोण, १० बोलसिद्धि, ११ बारुइपुर, १२ कुड़ुन, १३ पाकुड़तला, १४ बारकान १५ हांसुड़ा, १६ सेओड़हट, १७ मुल्लाका चक, १८ मितरा, १६ खनातपुर, २० रङ्गीलाबाद, २१ विष्णुपुर, २२ घाटेश्वर, २३ बनमालीपुर, २४ जयनगर, २५ मजिलपुर, २६ दुर्गापुर, २७ बड़ु, २८ बारासत, २६ गोकर्ण, ३० बेलेघण्डी, ३१ तसरखला, ३२ यादवपुर, ३३ बघधवि, ३४ रामनगर, ३५ मयदा, ३६ कोदालिया, ३७ चिंड़िपोता, ३८ गाजीपुर, ३६ सोनारपुर, ४० बोड़ाल, ४१ आगड़ल, ४२ सापुर, ४३ खिदिरपुर, ४४ कालीघाट।

श्रीहट्ट वैदिक-समाज।

वैदिक पुराभृत्त और "वैदिक संवादिनी" नामक कुलग्रन्थसे विदित होता है, कि त्रिपुराके राजासन पर आदि धर्मपा नामक एक नृपति अधिष्ठित थे। उनके राजप्रासादके ऊपर एक अशुभ पक्षी बैठा था, यह अमङ्गल समझ कर उसकी शान्तिके लिये उन्होंने अपने मंत्रियोंके साथ परामर्श किया। उस समय श्रीहट्टमें वैदिक ब्राह्मण नहीं थे। वैदिक ब्राह्मण ही अमङ्गल दूर करनेमें समर्थ हैं, यह समझ कर मन्त्रियोंने राजाको उपदेश दिया, कि मिथिलासे १४ गुणोपेत क्रियावान् वेदविद् पञ्चगोत्रीय पांच ब्राह्मण मंगा कर उनके द्वारा शाकुनिक और अग्निष्टोम यज्ञ करानेसे आपका यह अमङ्गल सर्वाङ्गीन दूर होगा। मन्त्रियों द्वारा ऐसा परामर्श पा कर राजाने मिथिलापतिसे पांच वैदिक कर्मतत्पर ब्राह्मण भेज देनेके लिये प्रार्थना-पत्र भेजा।

मिथिला देशमें उस समय बलभद्र नामके राजा राज्य कर रहे थे। उन्होंने त्रिपुराके प्रार्थना-पत्र पा कर हर्षान्वित हो वात्स्यगोत्रीय श्रीनन्द, वात्स्यगोत्रीय आनन्द, भरद्वाजगोत्रीय गोविन्द, कृष्णात्रेयगोत्रीय श्रीपति और पराशर गोत्रीय पुरुषोत्तम—इन पांच वैदिक ब्राह्मणोंको बङ्गालके त्रिपुरामें जानेको आदेश दिया। सदाचारबहिर्भूत देश बङ्गाल जानेसे पहले ब्राह्मणोंने हिला हवाला किया; किन्तु पीछे लोकतः और शास्त्रतः अनुसन्धान कर जब उन्होंने यह जान लिया, कि यह देश नीलपर्वतके सिद्धक्षेत्र कामरूप सीमांतवर्त्ती है और यहांके राजा चंद्रवंश-सम्भूत हैं और विविध गुणशाली हैं, तब ये वहां जाने पर राजी हुए। इसके बाद किसी शुभ दिन और शुभ नक्षत्रमें यात्रा कर त्रिपुरामें वे पहुंच गये। वहां पहुंच उन्होंने यथासमय और यथारीति यज्ञ-सम्पन्न किया। श्रीहट्टके अन्तर्गत भानुगाछ परगनेके अधीन मङ्गलपुर ग्राममें उस प्राचीनतम यज्ञकुण्डका चिह्न आज भी दिखाई देता है।

यज्ञसम्पन्न होनेके बाद ब्राह्मणके यात्रा करनेकी तैयारी करने पर राजाने हाथ जोड़ कर कहा—आप लोग स्थायीरूपसे यहां बस जायें तो मैं नितान्त कृतार्थ हूंगा। राजाकी प्रार्थना पर ब्राह्मण अत्यन्त संतुष्ट हो वहां बस जाने पर सम्मत हो गये। उस समय राजाने अत्यन्त आनन्दित हो कर अपने राज्यमें त्रिपुराब्द ५१में (६४१ ई०) उनको अपने राज्यमें ब्रह्मोत्तर दान किया। इस प्रदत्त भूमिखण्डकी पश्चिमी और उत्तरी सीमा पर कोशिया नदी, दक्षिणमें हाङ्गाला और पूर्वमें कांकिकापुरी है। टेङ्गरी कुकी जातिके कीर्तिस्थान होनेसे इसका नाम टेङ्गरी या टङ्गरी था।

उक्त श्रीनन्दादि पांच ब्राह्मण एक वर्ष तक वहां

वास कर स्वदेशमें लौट आये और यहांसे स्त्री-पुत्र आदि और आत्मीय-कुटुम्बके साथ फिर श्रीहट्ट अपने अपने अधिकृत स्थानको चले आये। जब वे अपनी अपनी भार्याको ले आये, तब पहले रङ्गुरी पर्वत पर वास करते रहे। रङ्गुरी पर्वतस्थ अपने अपने अधिकृत स्थान पांच भागोंमें विभक्त होनेसे "पञ्चखण्ड" नामसे विख्यात हुआ। शास्त्रीय क्रियाकाण्डमें तथा आदान-प्रदानमें सुविधा होनेके लिये उन्होंने अपने देशके कात्यायन, काश्यप, मौद्गल्य, सवर्णकौशिक और गौतम इन पञ्चगोत्रीय ब्राह्मणोंको भी बुलाया। उन सभी ब्राह्मणोंका क्रिया-कलाप मैथिल-कुलाचार और प्राचीन प्रथाके अनुसार होता था और आज भी हो रहा है। बङ्गके अन्यान्य स्थानोंकी तरह श्रीहट्टमें रघुनन्दनकी स्मृतियुक्त व्यवस्था वैसी प्रचलित नहीं है। क्योंकि, यहां मैथिल विप्रोंका ही प्राधान्य है।

वैदिका (सं० स्त्री०) भूमिजम्बूवृक्ष, बनजामुन।

वैदिश (सं० पु०) १ विदिशाका अधिवासी। २ विदिशाका निकटवर्ती नगर। इसका वर्त्तमान नाम बेशनगर है।

वैदिश्य (सं० त्रि०) विदिशाके समीप होनेवाला। (सिद्धान्तकौ०)

वैदु (वैद्य)—बम्बई प्रेसिडेन्सीकी एक श्रेणीके वैद्य। हातुड़िया वैद्यकी तरह या वेदे जातिके समान चिकित्सा करना ही इनका व्यवसाय है। ये पथ, घाट और एक ग्रामसे दूसरे ग्राममें जा कर भेषज और नानाविध औषधादि बेच कर ही अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। यथार्थमें इनको भ्रमणशील तेलगू-भिक्षुक कहनेमें भी कोई हर्ज नहीं। अहमदनगरवासी वैदुओंमें भोई वैदु, घाङ्गड़ वैदु, कोली वैदु और माली वैदु नामके चार दल हैं। ये अपनी अपनी श्रेणीमें प्रधान हैं। एक श्रेणीके लोग अन्य श्रेणीकी कन्या नहीं लेते। अथवा एकत्र आहार विहार नहीं करते। इनमें वंशगत कोई उपाधि नहीं है। एक ही वंशमें निकट सम्बन्ध और स्वयं कुटुम्बिता परित्याग कर ये परस्परमें आदान-प्रदान करते हैं। ऊपर कथित कई दलोंमें आकृतिगत, आहार्य-सम्बन्धी, स्वभावगत, आचारगत और जातीय व्यवसायगत विशेष कोई पार्थक्य नहीं।

पूनेके वैदुओंमें झोलीवाले, चटैवाले, दाढ़ीवाले, नामसे तीन दल हैं। झोलीवालोंमें आकड़ा, भरिले, चिरकल, कोड़घण्टो, मानपाति, मेटकल, परकाँची और सिग्घाड़े नामसे कई वंशगत उपाधियाँ दिखाई देती हैं। इनमें एक तरहकी उपाधिवाले लोगोंमें विवाहादि नहीं होता।

ये घरमें तेलगू और बाहर अर्द्ध-मराठी भाषा बोलते। उत्तर-अर्काट जिलेके तिरुपतिके वेङ्कट-रमण और पूनेके चतुःश्रृङ्गी देवताकी ये विशेष भक्ति करते हैं। सिवा इनके घरमें स्वतन्त्र कुलदेवता भी हैं। प्रति वर्ष आश्विन महीने दशहराके उत्सवके समय ये भेड़का मांस रन्धन कर कुल देवताको भोग लगाते हैं और इसके बाद यहां प्रसाद रूपसे भक्षण करते हैं। सिवा इसके इनके यहाँ और कोई पर्व या उपवास व्रत आदि नहीं हैं। निषिद्ध मांस (गो-शूकर)के सिवा ये अन्य सभी पशुपक्षियोंके मांस खाते हैं। मांसके अभावमें शाक सब्जीकी तरकारी अन्न और जौ (यव) की रोटी इनका प्रधान खाद्य है। ये स्त्री-पुरुष सभी गांजा, मद्य और तम्बाकू पीते हैं किन्तु, भाँग और अफीम नहीं खाते।

ये साधारणतः शिरमें चोटी और दाढ़ी रखते हैं यदि इनमें कोई दाढ़ी कटवा दे या छँटवा दे, तो वह जातिच्युत किया जाता है। पुरुष शिर पर पगड़ी, देहमें कुरता और पैरमें जूता या खड़ाऊं पहनते हैं। रमणियां घाँघरा और काँचली धारण करती हैं। गहनेमें ये हाथमें काँचकी चूड़ी और गलेमें प्रवालकी माला पहनती हैं।

ये काले, लम्बे और बलिष्ठ होते हैं। ये दूसरा कोई काम नहीं करते। केवल वनमें जाते और वनस्पतियाँ चुन चुन कर ले आते और औषध बना कर घर घर और ग्राम ग्राममें जा कर बेचते हैं। हमारे देशमें जैसे वैद्य—कानका वैद्य, घावका वैद्य सब बीमारी दूर करनेका वैद्य, तुम्बी लगानेका वैद्य कह कर घूमते फिरते हैं, उसी तरह ये भी यह घूमते फिरते तथा औषध बेचा करते हैं या यों कहिये, कि ये वैदुय बम्बई आदिमें ही नहीं, युक्त प्रदेश विहार आदिके गाँवों और शहरोंमें घूमते फिरते हैं। आवश्यक होने पर ये जोंक लगा कर फोड़े आदि आराम करते हैं। ये तुम्बी लगा कर विषाक्त खून

मुंहसे खींच लेते हैं। कभी-कभी मन्त्रसे उपस्थित जनताको संमोहित कर अपना काम बना लेते हैं। औषधी विक्रयके समय ये विशेष कौशलके साथ लोगोंको ठगते हैं। इनका स्वभाव मलिन है। पुरुष कभी औषधी बेचते, कभी वनमें शिकार खेलते फिरते हैं। रमणी और बालक इस समय राह-राह भीख मांगते फिरते हैं। पैसा अधिक मिलनेसे स्त्रीपुरुष मद्यपान और गीतवाद्यमें लिप्त होते हैं।

इनमें बाल-विवाह, बहु-विवाह और विधवा-विवाह प्रचलित है। प्रसवके बाद रमणीको कच्चे जौका आटा चूर्ण कर गुड़के साथ खानेको दिया जाता है। जातबालकको १२ या १३ दिनके बाद सब कोई गोदमें लेने लग जाते हैं और उसका नामकरण होता है। पुत्र-सन्तान होनेसे उस दिन नाई आ कर मस्तक मुण्डन कर स्नान करा देता है।

साधारणतः बालक २५ वर्ष और बालिका युवती होने पर इनका विवाह होता है। साधारणतः पुत्र-कन्याका शैशवकालमें ही सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

विवाहके समय कन्याका पिता यदि वरके पितासे कन्या-पण वसूल करे, तो वह समाजसे बहिष्कृत होगा। इनके विवाहमें मन्त्र तथा देवपूजाका व्यवहार नहीं होता। केवल विवाहके दिन वर और कन्या-पक्षके लोग अपने अपने गांवके मारुति मन्दिरमें आ कर उस मूर्त्तिमें तेल और सिन्दूर मालिश करते हैं और एक नारियलके जलसे देवताके दोनों पैर धोते हैं। इसके बाद वर बांसुरी बाजाके साथ बारात ले कर कन्याके घर आता है। तदनन्तर वर और कन्या दोनों एक चटाई पर बैठाये जाते हैं। इसके उपरान्त नाई आ कर पहले मोचनेसे वरके सिरके कई बाल उखाड़ पीछे शिखाको छोड़ कर मुण्डन करता है और दाढ़ी भी चिकना करता है। फिर वर-कन्याको उष्ण जलसे स्नान कराया जाता है। इसके बाद ब्राह्मण या कोई वरका विवाहित पुरुष दोनोंका गठबन्धन करते हैं। फिर वरके गलेमें पुष्पमाला और स्त्रीके गलेमें पवित्र सूत्र मालाके रूपमें पहना दिया जाता है।

ये शवदेहको जमीनमें गाड़ते हैं। इस समय दो व्यक्ति एक बांसके डण्डेमें लगे हुए झूलेमें शवदेहको बैठा कर समाधिक्षेत्रमें लाते और कब्रमें डाल कर ऊपर नमक और मिट्टी डाल उस गड्ढेको भर देते हैं। इसके बाद मृतकके उद्देशसे भातका पिण्ड बना कर कब्र पर रख कर चले आते हैं। कोई कोई मृतकके लिये अशौच मानते हैं। कोई मृतकके लिये अशौच मानते ही नहीं। इनके यहां प्रेतोद्देशसे कोई श्राद्ध नहीं होता। बारहवें दिन ये स्वजातिके लोगोंको भात खिला देते हैं। वैदुओंमें जो आंत मांगने या सिलाई करते हैं, वे शीघ्र ही जातिसे च्युत किये जाते हैं। इनमें जातीयता कूट कूट कर भरी है। प्रति वर्ष फाल्गुनमासमें सेव गांवके माधि नगरमें जो इनकी सामाजिक बैठक होती है, उनमें पातिल (मोड़ल) आ उपस्थित होते हैं। निजाम राज्यमें इनका वास है, वे ही पातिल सामाजिक विवादोंको मिटाया करते हैं।

वैदुरिक (सं० त्रि०) विदुर द्वारा कृत।

(भागवत० १।१०)

वैदुल (सं० क्ली०) वेतसमूल, बेंतकी जड़।

वैदुष (सं० पु०) विद्वस् (प्रज्ञादिभ्यश्च। पा ५।४।३८) इति स्वार्थे अण्। विद्वान्, पण्डित।

वैदुष्य (सं० क्ली०) विदुषः कर्म भावो वा विद्वस्-ष्यञ्। विद्वत्ता, पाण्डित्य।

वैदूर—मन्द्राज-प्रदेशके दक्षिण-कनाड़ा जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १३° ५२' १५" उ० तथा देशा० ७४° ३९' ३०" पू०के बीच पड़ता है।

वैदूरपति (सं० पु०) वैदूर जनपदके अधिपति।

वैदूर्य (सं० क्ली०) विदूरात् प्रभवतीति विदूर (विदूराद् ञ्यः। पा ४।३।८४) इति ञ्य। मणिविशेष। यह मणि श्याम-पीतवर्ण है और इसके अधिष्ठात्री देवता केतु हैं। केतु ग्रह विरुद्ध रहनेसे इस मणिके धारण करनेसे केतुका दोष शान्त हो जाता है। पर्याय—वालवायज, केतुरत्न, कैतवप्रामृष्य, अभ्ररोह, खराब्दांकुर, विदूररत्न, विदूरज। गुण—अम्ल, उष्ण, कफ और वायुनाशक, गुल्म और शूलप्रशमक। इसके धारण करनेसे भी शुभ फल होता है।

वैदूर्य रत्न महारत्नोंमें गिना जाता है। किसी किसीके मतसे यह रत्न विदूर पर्वत पर उत्पन्न होता है इसीसे इसका नाम वैदूर्य हुआ है। 'विदूरे भवं वैदूर्य' इस व्युत्पत्तिके अनुसार भी विदूरजात मणि ही वैदूर्य नामसे ख्यात है।

शुक्रनीतिमें दिखाई देता है, कि "वैदूर्यं केतुप्रीतिकृत्" "वैदूर्यं मध्यमं स्मृतं" यह रत्न केतुग्रहका प्रीतिकारी है और हीरक रत्नापेक्षा मध्यम रत्न कहा जाता है। राजवल्लभमें लिखा है,—मुक्ता, विद्रुम और वैदूर्य आदि रत्न सारक गुणविशिष्ट, शीतल, कषाय रस, स्वादु पाकी, उल्लेखनकर, चक्षुहितकारी है। इस रत्नके धारण करनेसे पाप और दरिद्रता दूर होती है। उर्दूमें इस रत्नको लहसुनिया रत्न या लशनीय कहते हैं।

राजनिर्घण्टके मतसे यह रत्न साधारणतः कृष्णपीतवर्ण है, किन्तु शुक्रनीतिके मतसे यह रत्न नीलरक्तवर्ण है।

इस रत्नका रङ्ग चाहे जो भी हो, किन्तु इसमें जरा भी सन्देह नहीं, कि इसकी छाया या कान्तिगत विशेष वैलक्षण्य है। राजनिर्घण्टमें लिखा है —

वैदूर्य तीन तरहके होते हैं—पहला वेणुपलाश अर्थात् बाँसकी पत्तीकी तरहका, मयूरकण्ठकी तरहका दूसरा, तीसरा मार्जार आंखकी तरहका है। इनमें जो बड़ा, स्वच्छ, स्निग्ध और वजनमें भारी हो, वह उत्तम है।

जो विच्छाय अर्थात् विवर्ण और जिसके भीतर मिट्टी या शिलाका दाग दिखाई देता है, जो वजनमें हलका, रूखा, क्षतयुक्त, त्रासचिह्नसे चिह्नित, कर्कश और कृष्णाभ है, वह वैदूर्य निन्दित है, इसको दूर फेंकना चाहिये। इस तरहका निन्दित वैदूर्य धारण करनेसे अशुभ फल होता है।

इसकी परीक्षा—कसौटी पर वैदूर्य घिसनेसे जिसकी छाया और स्वच्छता परिस्फुट होती है, वही वैदूर्य उत्तम है।

गरुड़पुराणमें लिखा है, कि दैत्योंके महाप्रलय-क्षुभित समुद्रगर्जनकी तरह अथवा वज्रनिर्घोष शब्दसे अनेक रङ्गके वैदूर्योंकी उत्पत्ति हुई थी, वे सब वैदूर्य शोभायुक्त, मनोहर आभा और वर्णविशिष्ट थे। विदूर नामक पर्वतके उच्च प्रदेशके निकट अर्थात् प्रान्तदेशमें कामभूति नामक स्थानमें इस रत्नका आकर है। दैत्यध्वनिसमुत्थ होनेसे उसका आकार सुन्दर और महागुणविशिष्ट हुआ था। उस महागुण आकारसे उद्भूत या उत्पन्न होनेके कारण यह त्रैलोक्यका भूषण हुआ है। उस दानवराजके गर्जनके अनुरूप वर्षाकालके मेघराजकी तरह विचित्र मनोहर वर्णविशिष्ट और नाना प्रकार भास अर्थात् दीप्तियुक्त वैदूर्य मणि उन आकरोंसे अग्निस्फुलिङ्गोंकी तरह आविर्भूत हुई।

वैदूर्य कई तरहके होने पर भी मयूरकण्ठके रङ्गकी तरहका और बांसके पत्तेके रङ्गका वैदूर्य प्रधान या उत्कृष्ट है। जिसका वर्ण या चाषोकण्ठ पक्षीके पक्षाग्रभागकी तरह है, उस वैदूर्य मणिके धारण करनेवालेको और उसके मालिकको यह सौभाग्यशाली बनाता है। फिर कोई वैदूर्य दोषपूर्ण हो, तो वह दोष ही युक्त होता है। इसलिये इसकी विशेषरूपसे परीक्षा करनेकी आवश्यकता है।

गिरिकाच, शिशुपाल, काच और स्फटिक आदि जितनी ही मणि वैदूर्य मणिकी तरह जमीनमें विद्यमान हैं। इन सब मणियोंका आकार वैदूर्यकी तरह होने पर भी परीक्षामें वैसी नहीं हैं। अतएव ये सब मणि वैदूर्यसे इतर जातिकी हैं।

लिखाभाव अर्थात् प्रमाणकी क्षुद्रता हेतु काच, वजनमें हलका होनेकी वजह शिशुपाल, दीप्तिहीनता युक्त गिरिकाच, रङ्गकी उज्ज्वलता रहनेसे स्फटिक, विजातीय वैदूर्य कई तरहके होते हैं। अन्यान्य मणिकी तरह वैदूर्य मणि भी विजातीय हैं। समस्त विजातीय मणि ही सजातीय मणिकी समान वर्णयुक्त होता है। नाना तरहके प्रमाणों द्वारा उनका प्रभेद स्थिर करना होता है। स्नेह प्रभेद अर्थात् लावण्यकी त्रुटि, लघुता (वजनमें हलका) मृदुत्व (अकठिनता) ये सब प्रधान चिह्न हैं।

सुनार, धन, वारवल्ल, कलिङ्ग और वङ्ग ये पांच वैदूर्य महागुणसम्पन्न होते हैं। उनमें विल्वोंके नेत्रकी तरह या लहसुनके रङ्गका कठिन, निर्मल और बहुगुण-

विशिष्ट जो वैदूर्य है, उसे देवगण भूषणरूपसे व्यवहार करते हैं।

यह मणि यदि दीप्ति हो अर्थात् उससे तेजः निकलता हो, तो वह सुनार कहलाती है। आकारमें देखने पर छोटी किन्तु वजनमें भारी ऐसी मणिको घन कहते हैं। जो मणि कलङ्क आदि दोषसे शून्य है, वह अच्छ है। जिसमें चन्द्रकलाकी तरह एक तरहका चञ्चलवत् पदार्थ दिखाई देता है, वह कलिल कहलाती है। वह राजाओंको भी सम्पत्तिदायक है। जो अवयव-विशिष्ट अर्थात् विशेषरूपसे अलंकृत है, वह स्वङ्ग है।

इस मणिके जैसे पांच गुण हैं, वैसे ही इनके पांच महा दोष भी हैं। दोष, जैसे—कर्कर, कर्कश, त्रास, कलङ्क और देह। जो देखनेमें शर्करायुक्त अर्थात् कंकरयुक्त दिखाई दे, वह कर्करदोष है। इसके धारण करने पर बन्धुनाश होता है। जिसके देखते ही टूटनेकी भ्रान्ति उत्पन्न होती है, वह त्रास नामक दोषयुक्त है। इसके धारण करनेसे वंशनाश होता है। जिसकी गोदमें विजातीय घन दिखाई दे, उस दोषका नाम कलङ्क है। इसका धारण करनेवाला नाशको प्राप्त होता है। जिसमें देखनेसे मालूम हो, कि मललिप्त है, वह भी सदोष है। इस दोषको देहदोष कहते हैं। इस देहदोषयुक्त वैदूर्य-को धारण करनेसे शरीर क्षयरोगयुक्त होता है।

(युक्तिकल्पतरु)

इस तरह वैदूर्यके गुणदोषका विचार कर धारण करना चाहिये। वैद्यकग्रन्थमें औषध प्रस्तुतके स्थानमें जहां वैदूर्य मणिका उल्लेख है, वहां उसे शुद्ध कर लेना चाहिये। शोधनप्रणाली हीरेकी तरह है। अर्थात् जिस तरह हीरा शुद्ध किया जाता है, उसी तरह वैदूर्य भी शुद्ध किया जाता है।

वैदूर्य कर्कोतन मणिका प्रकारभेद है। प्रकृत वैदूर्य सदा नहीं मिलता। इस जातिके जितने पत्थर हम देखते हैं, वह उतना पक्का दाना या कठिन नहीं है। साधारणतः हरिद्रा (जर्द), कटा, सब्ज और कभी काले रङ्गका वैदूर्य मिलता है। मयूरकण्ठकी तरह रङ्गविशिष्ट नीलाभकृष्णकाय प्रस्तर सर्वापेक्षा उत्कृष्ट है। प्रस्तर चाहे जिस-जिस वर्णके क्यों न हों, उनके बीचमें बिल्लीकी आंखकी पुतलीके समान उज्ज्वल श्वेत वर्ण एक रेखा या आलोकज्योतिः है। इस रेखाकी दीप्ति कभी इन्द्रधनु-की तरह विभिन्न वर्ण धारण करती है, कभी यह कुछ उज्ज्वल आलोक विकिरण करती है। पत्थरके दानेका गठनवैचित्र और निर्मलता ही इसका एकमात्र कारण है।

आलोकविहीन स्थानमें वैदूर्य पर दृष्टिनिक्षेप करनेसे एक सादा दागके सिवा पत्थरका कोई दूसरा विशेषत्व दिखाई नहीं देता। गैसका आलोक अथवा प्रदीप्तसूर्या-लोक इस पर पड़नेसे इस रेखाकी आभ्यन्तरिक दीप्ति उद्भासित हो उठती है। पत्थरको जितना ही इस ओर उस ओर झुकाया जाता है, उतनी ही आलोक रेखा दौड़ती है। किन्तु आलोककी ओर रखनेसे इसका आलोक सङ्कुचित हो कर बिल्लीकी आंखकी पुतलीकी तरह दिखाई देता है।

भारतवासी ऐसे वैदूर्यको बहुत पसन्द करते हैं जो ओलिभ फलके रङ्गकी तरह काला हो और जिसके दोनों कोनोंसे दीप्ति उज्ज्वल और आलोक रेखा दूनी दिखाई दे। पाश्चात्य देशवासी सेवकी तरह सब्ज या गाढ़े ओलिभकी तरह रङ्गदार वैदूर्य ही उत्तम सम-झते हैं।

वैदूर्यके दृढ़त्वका परिमाण ८५, नीला, चुन्नी आदिके द्वारा उस पर आंचड़ दिया जाता है। इसका आपेक्षिक गुरुत्व ३·८ है। नलसे अग्युत्ताप प्रदान करनेसे यह गल जाता है। किन्तु अम्ल आदि उसके शरीरमें किसी तरहकी विकृति सम्पादन कर नहीं सकते। रासायनिक परीक्षा द्वारा जाना जाता है, कि उसमें ८० भाग एलुमीना और २० भाग ग्लूसिना है। इसका वर्णांश प्रोटक्साइड आयरन है।

स्फटिककी तरह वैदूर्यके भी दाना होता है। यह त्रिपहल और चौपहल होता है। प्रस्तरकी प्रकृतिके अनुसार अर्थात् स्वच्छता और अस्वच्छताके कारण आलोककी दीप्तिका तारतम्य भी है। आलोकपात भी दोनों ओर प्रतिफलित होता है। घर्षण द्वारा यह वैद्युतिक शक्ति आकर्षण करती है और अधिक क्षण स्थायी होता है।

उत्तर अमेरिका, मोरामिया, यूराल पर्वत, ब्राज़ील और सिंहलमें नीले पत्थरोंके साथ वैदूर्य दिखाई देता है। वर्त्तमानमें सिंहलद्वीपमें सुन्दर रूपसे वैदूर्य काटा जाता है। वे कभी एक, कभी दो पृष्ठ ग्बुजाकार बनाते हैं, पाश्चात्य जौहरियोंकी भाषामें उस प्रथाको en cabo chon कहते हैं।

सिरके पीन तथा अंगूठीके लिये इसका प्रधान व्यवहार होता है। हीरेकी तरह इस पर कभी खुदाई नहीं होती। पत्थरका आकार और औज्ज्वल्यके न्यूनाधिकके अनुसार उसके मूल्यमें कमी बेशी होती है। वर्णविभेदसे इसके दाममें उतनी कमी बेशी नहीं होती। क्योंकि, लोग अपनी पसन्दके अनुसार वैदूर्य खरीदते हैं। किन्तु जिस पत्थरकी आलोकरेखा एक कोनके बीचसे दूसरे कोने तक प्रतिफलित होती है और निर्दिष्ट सीमाद्वयके बीचमें भासमान होती है और जिसके औज्ज्वल्यके बीच कोई दाग या काला चिह्न प्रतिबिम्बित नहीं होता, ऐसे ही पत्थरोंका मूल्य अधिक है। साधारणतः १००) से १०००) मूल्यका वैदूर्य अंगूठोंमें लोग व्यवहार करते हैं। सुना गया है, कि किसी-किसी राजाके घर लाखों रुपये मूल्यके वैदूर्य हैं। प्रायः अर्द्ध इञ्च व्यासयुक्त अर्द्धवृत्ताकार वैदूर्य मिला है। मणिके इतिहासमें ये होप (Hope) नामसे प्रसिद्ध हैं। सन् १८१५ ई०में यह मणि सिंहलद्वीपके राजासे प्राप्त हुई है। काण्डी राजधानीके अधीश्वर इस मणिको विशेष सावधानीसे रखते आ रहे हैं। कई शताब्दीके इतिहासमें इस मणिकी प्रसिद्धिका जिक्र है। रिबिरो (Bibiero)-के लिखित सिंहलके इतिहासमें इस मणिका उल्लेख है। यह १६वीं शताब्दीमें राजा उनके अधिकारमें थी। उन्होंने विशेष यत्नके साथ इस मणिको स्वर्णके ऊपर पद्मराग मणिमण्डित करा कर सुसज्जित कर लिया था। यह "en cabochon" प्रथासे काटी गई है। पण्डित लक्ष्मीनारायणके पास और एक वृहत् वैदूर्य था। प्रवाद है, कि एक समय १००००) रुपये मूल्य पर भी उक्त पण्डित महाशय देना नहीं चाहते थे। अन्तमें उन्होंने इस पत्थरको ६००० रुपये पर मैमनसिंहके एक जमीन्दारके हाथ बेच दिया। मुर्शिदाबादके प्रसिद्ध महाजन बाबू धनपतसिंहके पास एक काला वैदूर्य था। राय बद्रीदास मुकीमके घर नाना रत्नोंके वैदूर्योंके खचित एक कण्ठा है। मृत महाराज यतीन्द्रमोहन ठाकुर बहादुरके एक पानदान पर एक कबूतरके अण्डेके समान एक वैदूर्य अङ्कित या जड़ित है। इसका वर्ण कुछ पिङ्गलवर्ण है और ज्योतिरेखा अत्यन्त स्पष्ट है।

इस मणिकी आलोकरेखा एक कोनसे दूसरे कोनमें चली जाती है। इसमें बहुतेरोंका यह ख्याल है, कि अपदेवताके अधिष्ठानके कारण इस मणिके भीतर आलोक प्रभाव होता है। प्राचीन आसीरीय इस मणिको देवता बेलास (Belus)-के प्रिय कहते थे। इसीलिये ये Oculus Beli नामसे परिचित हैं। कोई कोई से wolf's eye कहते हैं। कोई कोई जाति इसको पवित्र और भौतिक प्रभावनाशक समझती हैं।

प्रकृत वैदूर्यकी तरह एक तरहका नकली वैदूर्य भी बाजारमें दिखाई देता है। इसको स्फटिक वैदूर्य या Quartz Cats' eye कहते हैं। यह उज्ज्वलता और कठिनतामें पूर्वोक्त मणिकी अपेक्षा बहुत न्यून है। यह साधारणतः पिङ्गलवर्णका होता है। यह काठिन्यमें ६ से ६·५ है। आपेक्षिक गुरुत्व २·६५। इससे काँचके पात्रमें चिह्न दिया जा सकता है। फ्लुरिक एसिडसे यह द्रव किया जाता है और सोडेके योगसे अग्निमें सहज ही गल जाता है। इसमें ६४ भाग सिलिका, ५१ अंश माधिरजन और सामान्य परिमाणसे चूना तथा आयरन अवशिष्ट है।

अरबी इस मणिको ज़ुआ कहते हैं। अरबी विवरणोंमें मालूम होता है, कि यमन देशमें अधिक खानमें हाउम, आशायत और गुजरातमें किसी समय अधिकतासे वैदूर्य उत्पन्न होता था। ये साधारणतः हरा, लाल, जर्द और काले होते थे। अरबी जौहरी अकीककी तरह पहले वैदूर्य काट कर गर्म अग्निमें डालते थे। इससे मणिकी उज्ज्वलता कई अंशमें बढ़ जाती थी। गायागुरी नामक पत्थरोंका रङ्ग बाहरी एक तरहका और भीतरका रङ्ग दूसरी तरहका होता है। सुलेमानी पत्थर साधारणतः लाल और काला दिखाई देता है। आय-

नेलहार (हिङ्गुलोह सानिया) पत्थर सब्ज और हरिद्रा रङ्गका होता है। अतिशय स्वच्छ आलोक प्रतिफलिका शक्तिविशिष्ट है।

इसके धारण करनेसे स्वभावतः ही मनमें हर्ष उत्पन्न होता है। शरीर पीला पड़ जाये, तो इस मणिके धारण करनेसे उपकार होता है। गुर्विणी प्रसव वेदनासे बहुकाल तक कष्ट भोगती हो, तो उसके शिरके केशमें इसकी अंगूठी बांध देनेसे तुरन्त प्रसव वेदनासे मुक्त हो सन्तान प्रसव करती है। यदि बालकोंको खांसी हो, तो उसके गलेमें बांध देनेसे तुरन्त कफ काट कर फेंक देता और रोग आराम होता है। यह भूतभयनाशक और भौतिक प्रभाव अपनोदक है। इसको भस्म क्षत निवारक है। दन्तमञ्जनमें काम लानेसे दांतकी जड़को मजबूत करती और आंखमें सुरमेंकी तरह लगानेसे जलका गिरना बन्द होता है। इसके धारण करनेसे अशुभ स्वप्नका अशुभ फल भी नहीं होने पाता।

वैदेशिक (सं० त्रि०) १ विदेश सम्बन्धी, विदेशका। २ विदेशसे आया हुआ।

वैदेश्य (सं० त्रि०) वैदेशिक देखो।

वैदेश्यसार्थ (सं० पु०) विदेशी माल।

वैदेश्वर—उड़ीसा-विभागस्थ गवर्नमेण्टकी बड्डि जमींदारीके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। यह अक्षा० २०° २१′ १५″ उ० तथा देशा० ८५° २५′ ३०″ पू० महानदीके तट पर अवस्थित है। यहां नमक, मसाले, नारियल और पीतलके बरतनका विस्तृत कारबार है। सभी पदार्थ सम्बलपुरसे यहां लाये जाते हैं। रुई, गेहूं, चावल, तेलहन बीज, लोहा, तसरका कपड़ा आदि यहां बहुतायतसे उत्पन्न होता है। सम्बलपुरके व्यवसायी अपना द्रव्य बदल तथा खरीद कर उक्त द्रव्य ले जाते हैं।

वैदेह (सं० पु०) विदेहस्यापत्यमिति विदेह-अञ्। १ राजा निमिके पुत्रका नाम। इनका उत्पत्तिविवरण विष्णुपुराणमें इस प्रकार लिखा है,—जब राजा निमि निःसन्तान मर गये, तब धर्मका लोप हो जानेके भयसे ऋषियोंने अरणीसे मथ कर इन्हें राज्य करनेके लिये उत्पन्न किया था। इनके पुत्र उदावसु थे। (विष्णुपु० ४।५ अ०) २ वणिक्, सौदागर। (अमरटीका भरत) ३ प्राचीन कालकी एक वर्णसंकर जाति। मनुके अनुसार इस जातिकी उत्पत्ति ब्राह्मणी माता और वैश्य पितासे है। इसका काम अन्तःपुरमें पहरा देना था।

(मनु १०।१६)

वैदेहक (सं० पु०) वैदेह एव स्वार्थे कन्। १ वणिक्, व्यापारी। २ वैदेह नामक वर्णसंकर जाति।

वैदेहक व्यञ्जन (सं० पु०) व्यापारीके वेशमें गुप्तचर। ये समाहर्त्ताके अधीन काम करते थे और व्यापारियोंमें मिल कर उनकी कार्रवाइयोंकी सूचना दिया करते थे।

वैदेहिक (सं० पु०) १ वणिक्, सौदागर। (अमरटीका सारसुं०) २ एक वर्णसंकर जाति। (मनु १०।१६)

वैदेही (सं० स्त्री०) विदेहेषु भवा विदेहस्यापत्यं स्त्री वा विदेह-अण् ङीप्। १ विदेह राजा जनककी कन्या, सीता। २ वैदेह जातिकी स्त्री। (मनु १०।३७) ३ रोचना। ४ पिप्पली, पीपल।

वैद्य (सं० पु०) विद्यां वेद विद्या-अण (तदधीते तद्वेद। पा ४।२।५९) १ पण्डित। २ वासकवृक्ष, अड़ूस। ३ आयुर्वेदवेत्ता, चिकित्साव्यवसायी। पर्याय—रोगहारी, अगदङ्कार, भिषक्, चिकित्सक, रुग्ध, विधि, विद्वान्, आयुर्वेदी। यह चार प्रकारके हैं—रोगहर, विषहर, शल्यहर और कृत्याहर। (महाभारत) वैद्यजाति शब्दमें विशेष विवरण देखो।

वैद्यके दोष और गुणकी आलोचना वैद्यक ग्रन्थमें (संस्कृत) विशेषरूपसे की गई है। संक्षिप्तरूपसे यहां उसकी आलोचना करते हैं—

वैद्य-लक्षण—जो चिकित्साकार्य करते हैं, उन्हें वैद्य कहते हैं। इनमें जो प्रशंसनीय हैं, उनकी बात कही जाती है। जो वैद्य शास्त्रार्थमें विशेष व्युत्पन्नमति, दृष्टकर्मा, स्वयं चिकित्साकुशल, सुप्रसिद्धहस्त, शुचि, कार्यदक्ष, अभिनव औषध और चिकित्साके उपयोगी उपकरणोंसे सुसज्जित, सहसा उपस्थितबुद्धि, धीशक्तिसम्पन्न, चिकित्साव्यवसायी, मिष्टभाषी, सत्यवादी और धर्मपरायण हैं, वे ही वैद्य यथार्थ वैद्य कहलानेके पात्र हैं।

निषिद्धवैद्य,—कुत्सित वस्त्रपरिधानकारी, अप्रियभाषी, अभिमानी, लोगोंके साथ व्यवहारमें अनभिज्ञ और विना बुलाये आ जानेवाला वैद्य यदि धन्वन्तरीके समान भी हो, तो किसी तरह वह प्रशंसनीय नहीं हो सकता।

वैद्यका कर्म—लक्षणादि द्वारा सम्यक्‌रूपसे रोग और रोगका उपशम करना ही वैद्यका कर्म है। किन्तु वैद्य आयुप्रदाता नहीं हैं। कुछ लोग कहते हैं, कि सम्यक् प्रकारसे व्याधिका निर्णय और उसको उपशम करना ही वैद्यका कर्म नहीं, वरं परमायु दान करनेमें समर्थ होना चाहिये। क्योंकि १०० तरहकी अपमृत्युसे बचानेवाला वैद्य ही है।

जैसे दीपकमें बत्ती रहते हुए भी प्रबल वायुके झोंकेसे दीपक बुझ जाता है, उसी तरह आगन्तु हेतुजनित मृत्यु दुर्निरीक्ष्य उपसर्गके प्राबल्यके कारण परमायु रहते हुए भी प्राणियोंका प्राण विनष्ट हो जाता है।

सुश्रुतमें लिखा है, कि रसक्रियाविशारद वैद्य दोष निमित्त और आगन्तु निमित्त वेदनासे राजाको मुक्त करनेमें समर्थ हैं।

चरकमें लिखा है, कि वैद्य, द्रव्य, रोगीका परिचारक और रोगी ये चार उपयुक्त गुणविशिष्ट होनेसे ही रोगका उपशमित होता है। नहीं तो रोग प्रबल हो जानेसे रोगीकी मृत्यु हो जाती है।

वैद्य तीन प्रकारके हैं—छद्मचर, सिद्धसाधित और वैद्यगुणयुक्त भिषक्। जो अज्ञ चिकित्सक औषधागार, औषध, पुस्तक और चातुर्य्यावलम्बन आदि द्वारा वैद्योंका अनुकरण कर भिषक् नामसे अपना परिचय देते हैं, उन अज्ञ वैद्यप्रतिरूपोंको छद्मचर भिषक् कहते हैं। जो मूर्ख चिकित्सक श्री, यशः, ज्ञान और कार्य सिद्धि प्रभृति गुणशून्य हो कर भी अपनेको श्रीसम्पन्न, यशस्वी, ज्ञानवान् और एनकार्य समझ मिथ्या परिचय देते हैं, उनको सिद्धसाधित भिषक् कहते हैं। जो औषध प्रयोग-शास्त्रज्ञान, व्यवहारकुशल और कार्यसिद्धि द्वारा सुप्रतिष्ठित और रोगीके लिये आरोग्यप्रद तथा जीवनरक्षक हैं, उनको वैद्यगुणयुक्त भिषक् कहते हैं।

वैद्य ही सारे शरीरके ज्ञानमें, शरीरकी उत्पत्तिके ज्ञानमें और प्रकृति विकृति-ज्ञानमें संशयशून्य होते हैं। इसी तरह वैद्य ही सुखसाध्य, कृच्छ्रसाध्य, याप्य और प्रत्याख्येय रोगोंके निदान, पूर्वरूप, वेदना और उपशय विज्ञानमें सन्देहशून्य हैं। वे ही त्रिविध आयुर्वेद सूत्रके हेतु हैं। लिङ्ग और औषधज्ञानके और दैवव्यपाश्रयादि त्रिविध औषध ग्रामके व्याख्याता, ३५ प्रकार मूलफलके, १६ प्रकार मूलप्रधान, १६ प्रकार फलप्रधान वृक्षके, ४ प्रकार महास्नेहके, ५ प्रकार लवणके, ८ प्रकार मूत्रके, ८ प्रकार दुग्धके, क्षीरप्रधान और त्वक्‌प्रधान, ६ प्रकार अन्यान्य वृक्षोंके शिरोविरेचनादिके, पञ्चकर्माश्रय औषधोंके, १८ प्रकार यवागूके, ३२ प्रकार चूर्ण और प्रलेपके, ६०० विरेचनके, ५०० कषायके व्याख्याता और स्वस्थ वृत्तिविषयमें भोजन, पान, नियम, स्थान, भ्रमण, शय्या, आसन, मात्रा, द्रव्य, अञ्जन, धूम, नस्य, परिमार्जन, वेगविधारण, व्यायाम, सात्म्येन्द्रिय परीक्षा, चिकित्सा और सद्वृत्त इन सब विषयोंके विज्ञानमें पण्डित; वे ही सोलह गुणवाले चतुष्पादका भेषज्य और विनिश्चय, त्रिविध एषणा और वातकलाकल विषयोंमें संदेह रहित हैं।

वे २५ प्रकारके स्नेह विचारणा, ६४ प्रकार रस और बहुत तरहके स्नेह्य, स्वेद्य, वम्य और विरेच्य औषध विषयमें कुशल और शिरःपीड़ादि रोगोंके दोषांश, विकल्प व्याधियोंकी क्षय पिड़का और विद्रधिरोगके त्रिविध शोथके बहुत तरहके शोथानुबन्धके, १४८ प्रकारके रोगाधिकरणके, १४० प्रकारके नानात्मज रोगके, ८० प्रकार वात और ४० प्रकार पित्तज रोगके, २० प्रकार श्लेष्मरोगके और २० प्रकारके नानात्मज रोगोंके निवारणमें कुशल हैं। इसी तरहके वैद्य विगर्हित, अतिस्थौल्य और अतिकार्श्य रोगके निदान, लक्षण और चिकित्साके व्याख्याता हैं। वे ही हिताहित, निद्रा, अनिद्रा और अतिनिद्रा आदिके चिकित्साविज्ञानमें कुशल हैं। इत्यादि गुणयुक्त वैद्य ही स्मृति, मति और शास्त्रयोजनाज्ञानसम्पन्न हो अपने सद्‌गुणभावके गुणसे सब प्राणियोंको माता, पिता और भाईके समान हो जगत्‌का हितसाधन करते हैं। उक्त गुणयुक्त चिकित्सक ही प्राणाभिसर और रोगहन्ता कहलाते हैं।

उक्त प्रकारके गुणोंके विपरीत गुणविशिष्ट वैद्योंको रोगाभिसर और प्राणहन्ता समझना चाहिये। वे वैद्यवेशधारी लोककण्टक, अधार्मिक अज्ञ राजाकी असावधानीके कारण ही राज्यमें घूमते फिरते हैं। इनका उद्देश है—चिकित्सा द्वारा धन लाभ करना। इसी

लोभके कारण वैद्यवेशको धारण कर अपनी अत्यन्त श्लाघा करते हुए राहमें विचरण करते हैं। किसीकी पीड़ाकी बात सुन लेने पर वह उस व्यक्तिके घरके चारों ओर घूमता रहता है और श्रवणयोग्य प्रदेशमें खड़ा हो कर ऊंचे स्वरसे अपनी चिकित्साको बड़ाई किया करता है। फिर जो चिकित्सा कर रहा है, बारंबार उसके दोषकी घोषणा करता है। यह प्रहर्षण, उपजल्पन और सेवादि द्वारा रोगीके आत्मीय स्वजनको स्वपक्षमें लानेकी कोशिश करता है और अपनी स्वल्पाकांक्षा दिखलाता है चिकित्साका भार सौंप देने पर यह अपनी अज्ञानताको छिपा रखनेके अभिप्रायसे हस्ततासूचक चतुरताके साथ बारंबार रोगीको देखता है। रोगप्रशमनमें असमर्थ होने पर रोगी पर "कुपथ्य" करना है, "बड़ा स्वादी" दोषारोप करता है। रोगीकी शेष दशामें यह स्थान छोड़ कर दूसरे स्थानमें भाग जाता है। अर्थात् जहां मूर्ख है, वहां जाता है और उनसे अपनी चिकित्सा-कुशलताका वर्णन करता है तथा पण्डितोंके पाण्डित्यका दोष वर्णन करता है। ये कभी पण्डित समाजमें नहीं जाते। जैसे भयङ्कर दुर्गम पथ देख कर पथिक दूरसे ही उस पथको त्याग देता है, वैसे ही वञ्चक वैद्यवेशधारी वैद्य भी दूरसे ही पण्डित-समाजका परित्याग करते हैं। यदि दैवात् किसी तरह इनकी चिकित्सासे कुछ भी रोग आरोग्य हो जाता है, तो यह उसकी बारंबार प्रशंसा किया करते और अपने यशका पुल बांधा करते हैं। ये किसीके भी अनुयोगकी इच्छा नहीं करते और किसीका अनुयोग करते भी नहीं। अनुयोगसे यमकी तरह भय करते हैं। इनके कोई आचार्य नहीं, शिष्य भी नहीं और साहाय्य भी नहीं है।

व्याध जैसे फांस लगा कर पक्षियोंको फंसाया करते हैं, वैसे ही वैद्यरूप धारण कर जो रोगियोंका अन्वेषण करते हैं, वे शास्त्रज्ञान, बहुदर्शन, मात्राज्ञान और देशज्ञान-हीन हैं, अतएव इस तरहके वैद्य वर्जनीय हैं। ऐसे वैद्य यमके अनुचरकी तरह पृथ्वीमें विचरण करते हैं।

जो सामान्य जीविकाके लिये वैद्याभिमानी हैं, उन मूर्ख विशारदोंको विद्वान् रोगी परित्याग करें। क्योंकि वे वायुभक्षी सर्प हैं। सर्प जैसे वायु भक्षण करते हैं, वे भी वैसे ही जीवोंकी प्राणवायुका भक्षण किया करते हैं। ऐसे वैद्योंको दूरसे ही प्रणाम करना चाहिए।

यथार्थ वैद्य सबके ही पूजनीय हैं। रसायन, वृष्ययोग और जो कुछ रोगोंकी औषध है, वे सभी वैद्योंके अधीन हैं। अतएव देवराज इन्द्रने जैसे स्वर्वैद्य अश्विनीकुमारद्वयकी पूजा की थी, पण्डित व्यक्ति भी वैसे ही बुद्धिमान् वेदपारग प्राणाचार्य वैद्यकी पूजा करें।

चिकित्सक जब जरामरण-रहित देवोंके भी पूज्य हैं, तब इसमें कौन-सा आश्चर्य है, कि वे जराव्याधि-मरणशील दुःखी सुखार्थी मानवोंके पूज्य हों। जो वैद्य सत्स्वभाव, मतिमान्, शास्त्रज्ञ और ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य हैं, उसी वैद्यको प्राणिगण प्राणरक्षार्थ आचार्यवत् पूजा किया करते हैं। अतएव ऐसे गुणयुक्त वैद्य प्राणाचार्य नामसे अभिहित होते हैं।

ब्राह्मणोंके उपनयन संस्कार होनेसे उनको द्विजाति और वेदाध्ययन सम्पन्न होने पर त्रिजाति कहा जाता है। जब तक वे अनधीतवेद रहते हैं, तब तक उनको त्रिजाति अर्थात् वैद्य नामसे अभिहित नहीं किया जाता। जन्मसे ही वैद्य संज्ञा नहीं होती। ब्राह्मणोंके जन्म होनेके बाद जितने दिन उपनयन संस्कार नहीं होता, उतने दिन उनकी ब्राह्मणादि संज्ञा ही रहती है। उपनयन होने पर वे द्विजाति और वेदाध्ययन समाप्त होने पर त्रिजाति अर्थात् त्रिजन्मा वैद्य संज्ञासे अभिहित होते हैं। विद्यासमाप्तिके बाद तत्त्वज्ञान हेतु "ब्राह्ममनः" या "आर्षमनः" उनका आश्रय करता है। ब्राह्मणादि द्विजोंका इसी तरहसे वैद्यस्वरूपसे जन्मान्तर होता है और वे त्रिज नामसे अभिहित होते हैं।

जो बुद्धिमान् पुरुष दीर्घायुः लाभ करनेकी इच्छा करें, वे प्राणाचार्य वैद्यके धन आदि विषयमें स्पृहा या उसके प्रति क्रोध न करें तथा उसका कोई अहित न करें। जिस वैद्य द्वारा जो व्यक्ति चिकित्सित हुए हैं, उस वैद्यको कोई उपकार-जनक बातें सुन कर या न सुन कर यदि वह उसका उपकार नहीं करता, तो उस मनुष्यकी इहजगत्‌में निष्कृति नहीं है। फिर वैद्य भी

यदि परम धर्म पानेके अभिलाषी हों, तो उनको चाहिये, कि अपने सन्तानकी तरह रोगियोंकी पीड़ाको दूर करनेमें यत्नवान् हों।

जो वैद्य रोगीके या पूजित नहीं होते, उसका रोग नष्ट नहीं होता। रोगी या दूत शून्य हाथसे वैद्यका दर्शन न करे। क्योंकि शास्त्रमें लिखा है, कि राजा, वैद्य और गुरुका शून्य हाथसे दर्शन न करना चाहिये।

वैद्य निम्नोक्त व्यक्तियोंको छोड़ कर चिकित्सा करें। जो व्यक्ति अत्यन्त क्रोधी, अविचारितकार्यकारी, भयशील, वैद्य द्वारा उपकृत होने पर भी उसे अपमानकारी, व्याकुलचित्त, शोकाभिभूत, जिसकी मृत्यु निकट हो, इन्द्रियशक्तिरहित, वैद्योंके प्रति शठताचरणकारी, चिकित्सकके प्रति अविश्वासी या वैद्यके वाक्यकी अवहेला करनेवाला और जो व्यक्ति चिकित्साव्यवसायी हो, वैद्य इन व्यक्तियोंकी चिकित्सा न करें। क्योंकि इनकी चिकित्सा करनेसे कई तरहके दोषोंकी आशंका है। (भावप्रकाश) २ जातिविशेष। वैद्यजाति देखो।

वेद पद। ३ वेद-सम्बन्धीय।

वैद्यक (सं० क्ली०) आयुर्वेद, चिकित्साशास्त्र। अष्टाङ्ग चिकित्साशास्त्र, या दशाङ्ग वैद्यशास्त्र। आयुर्वेद शास्त्रको ही वैद्युक कहते हैं। सुश्रुतके मतसे शल्य, शालाक्य, कायचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्य, अगदतन्त्र, रसायनतन्त्र और वाजीकरणतन्त्र इन अष्टाङ्ग चिकित्साशास्त्रको वैद्युक कहते हैं।

वैद्युकनिघंटुके मतसे द्रव्याभिधान, गदविनिश्चय, कायसौख्यसम्पादन, शस्त्रविद्या, पक्षाद्यौषधिप्रभाव द्वारा भूतनिग्रह, विषप्रतीकार, बालोपचार, रसायन, शालाक्य और वृष्य—इन दशाङ्ग शास्त्रको वैद्युक कहते हैं।

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें लिखा है, पहले प्रजापति ब्रह्माने ऋक्, यजुः, साम, अथर्व नामक चार वेदोंके दर्शन किये। पीछे उनके अर्थोंकी पर्यालोचना कर आयुर्वेद नामसे एक पांचवें वेदकी सृष्टि की। इसके बाद भगवान् ब्रह्माने उस पञ्चम वेद भास्करदेवको दान किया। भास्करने भी इस आयुर्वेदसे स्वतन्त्र एक संहिता बनाई। उन्होंने अपनी बनाई संहिताके साथ उक्त आयुर्वेद अध्ययन करनेसे उन सबोंने दोनों शास्त्रोंका दर्शन कर एक संहिता तैय्यार की। इन सब संहिताओंका विवरण इस तरह लिखा है,—धन्वन्तरी, दिवोदास, काशीराज, अश्विनीकुमारद्वय, नकुल, सहदेव, यमराज, च्यवन, जनक, बुध, जावाल, जाजलि, पैल, करथ, अगस्त्य, ये सोलह भास्करके शिष्य हैं। पहले भगवान् धन्वन्तरिने अति सुन्दर "चिकित्सातत्त्वविज्ञान" नामक एक संहिता रची, पीछे दिवोदासने चिकित्सादर्पण और काशीराजने 'चिकित्साकौमुदी, नामक अति उत्तमशास्त्रकी रचना की। अश्विनीकुमारद्वयने 'चिकित्सासारतन्त्र', नकुलने 'वैद्युक सर्वस्व', सहदेवने 'व्याधिसिन्धुविमर्दन,' यमराजने 'ज्ञानार्णव' च्यवनने 'जीवदान', जनकने 'वैद्युकसन्देहभञ्जन', बुधने 'सर्वसार', जावालने 'तन्त्रसारक,' जाजलिने 'वेदाङ्गसारतन्त्र', पैलने 'निदान', करथने 'सर्वधरतन्त्र' और अगस्त्यने 'द्वैधनिर्णय' नामकी संहिता रची। ये षोड़शतन्त्र ही चिकित्साशास्त्रके बीज स्वरूप हैं और व्याधिनाशके कारण तथा बलाधानकारी हैं। इन वैद्यक ग्रन्थोंमें रोगोंकी चिकित्सा का वर्णन किया गया है।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण ब्र०ख० १६ अ०)

भावप्रकाशमें लिखा है, कि पहले ब्रह्माने आयुर्वेदका प्रचार करनेके लिये लक्ष श्लोकात्मक ब्रह्मसंहिता नामकी एक आयुर्वेदसंहिता रची और दक्षको इस संहिताका उपदेश दिया। पीछे राजर्षि दक्षसे अश्विनी-कुमारद्वयने आयुर्वेद अध्ययन कर चिकित्सकोंके करीब ज्ञानवर्द्धनके निमित्त अपने नामसे अश्विनीकुमारसंहिता बनाई।

अश्विनीकुमारद्वयसे इन्द्रने इस आयुर्वेदको सीखा। पीछे आत्रेयने जगत्‌को व्याधिग्रस्त देख कर अत्यन्त दयार्द्र हो इन्द्रसे इस आयुर्वेद शास्त्रको सिखा था। इसके बाद भरद्वाजने सुरपुरमें जा कर इन्द्रसे इस आयुर्वेद शास्त्रको अध्ययन किया।

जब नारायणने मत्स्यावतारमें वेदका उद्धार किया, तब अनन्तदेवने उस स्थानमें षड़्वेद और अथर्ववेदके अन्तर्गत सब आयुर्वेद पाये। इसके बाद एक दिन अनन्तदेवने भूतलकी अवस्थाका दर्शन कर चरकरूपमें

पृथ्वीमें आ कर देखा, कि भूमण्डलके लोग व्याधिग्रस्त हो वेदनासे पीड़ित हो रहे हैं तथा स्थान स्थानमें अत्यन्त उत्कण्ठित और मुमूर्षु प्राय हो रहे हैं। अनन्तदेव मानवोंको इस तरह दुरवस्थाग्रस्त देख कर अतिशय कृपावशतः उनके दुःखसे दुःखित हो व्याधि दूर करनेकी चिन्ता करने लगे। इसके बाद विशेष विवेचना कर स्वयं अनन्तदेव मुनिपुत्ररूपसे पृथ्वी पर आविर्भूत हुए। यह कोई जान न सका, कि भगवान् अनन्तदेव चररूपसे पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हैं। इसलिये वे चरक नामसे विख्यात हुए। चरकाचार्य मानवोंकी व्याधि विनाश कर बृहस्पतिके पूजनीय हुए।

आत्रेय मुनिके शिष्य अग्निवेश आदि मुनियोंने अपने अपने नामसे जिन तन्त्रोंकी रचना की थी, चरकने उन तन्त्रोंका जीर्णोद्धार कर चरकसंहिता प्रणयन की। यह संहिता वैद्यकशास्त्रोंमें सर्वोत्कृष्ट है।

चरकके प्रादुर्भाव होनेके बाद धन्वन्तरि आविर्भूत हुए। इस विषयमें लिखा है, कि एक बार पृथ्वीमें देवराज इन्द्रने मनुष्यकी ओर देखा। मनुष्योंका दर्शन कर कृपावशतः उनका हृदय व्यथित हुआ। इसके बाद दयालु इन्द्रने धन्वन्तरिसे कहा,—तुम भूलोकमें जा कर काशीधामका राजा बन व्याधियोंकी चिकित्साके लिये वैद्यकशास्त्र प्रकाशित करो। धन्वन्तरि काशीमें एक क्षत्रियके घर जन्मग्रहण कर दिवोदास नामसे प्रसिद्ध हुए। दिवोदासने राजपद पर अधिष्ठित हो जगत्‌के उपकारके लिये धन्वन्तरि-संहिता प्रणयन की।

विश्वामित्र आदि मुनियोंने ज्ञानचक्षुसे जान लिया, कि काशीधाममें धन्वन्तरिने दिवोदास नामसे जन्म ग्रहण किया है। तब विश्वामित्रने अपने पुत्र सुश्रुतसे कहा, कि तुम जीव लोगोंके उपकारके लिये काशीधाममें जा कर आयुर्वेदशास्त्रका अध्ययन करो। सुश्रुत अपने पिताके आज्ञानुसार काशीधाम चले गये। उनके साथ अन्यान्य १०० मुनि-पुत्र भी गये। इन सबोंने दिवोदाससे आयुर्वेद अध्ययन किया। यथा शास्त्र आयुर्वेदका अध्ययन कर सबोंने एक एक संहिता बनाई। इन सब संहिताओंमें सुश्रुत संहिता सर्वोत्कृष्ट है। इस तरह क्रमसे वैद्यकशास्त्रका बहुत प्रचार हुआ। (भावप्र०)

वैद्यकशास्त्रमें चरक और सुश्रुत ही उत्तम हैं और इन्हींसे नाना वैद्यक ग्रन्थ उत्पन्न हुए हैं।

जो आयुर्वेदशास्त्र जानते हैं, या चिकित्साका व्यवसाय करते हैं, वे ही वैद्य या वैद्यक हैं। वैद्यक शब्द साधारणतः आयुर्वेद अर्थमें ही व्यवहृत होता है, आयुर्वेद शब्दमें वैद्यक शब्दके आलोच्य कई विषयोंकी आलोचना की गई है। वेदविभागके बहुत पहलेसे ही जो इस देशमें चिकित्सा-व्यवसाय प्रचलित था, जगत्‌के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद पाठ करनेसे उसके सम्बन्धमें धारणा उत्पन्न होती है। अथर्ववेदकी बात पीछे कहेंगे। पहले ऋग्वेदसे ही उस प्राचीनतम कालके चिकित्सा-विज्ञानके प्रकर्षके कई प्रमाण यहां प्रकाशित किये जाते हैं।

भैषज्यतत्त्व या Pharmacology।

१। ऋग्वेदके समयमें भी आर्यगण शत सहस्र ओषधि-द्रव्योंका व्यवहार जानते थे। यथा—

"शतं ते राजन् भिषजः सहस्रमुर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु।"
(ऋग्वेद १।२४।९)

अर्थात् हे राजन् वरुण! तुम्हारी शत सहस्र ओषधियां हैं, तुम्हारी सुमति विस्तीर्ण और गभीर हो। उसी प्राचीन समयमें फार्माकोलोजी (Pharmiacology) या मेटेरिया मेडिका (Materiamedica) आदि शास्त्रकी भी यथेष्ट आलोचना हुई थी, इसका भी यथेष्ट प्रमाण मिलता है।

ऋग्वेदके दशवें मण्डलका ९७वां सूक्त ओषधिका स्तोत्रमय है। इसमें २३ ऋक् हैं, इस सूक्तका देवता ओषधि, ऋषि भिषक् है। प्रत्येक ऋक् औषधके माहात्म्यसूचक और गभीर अर्थव्यञ्जक है। इन सब ऋकोंका मर्म इस तरह है—पूर्वकालमें तीन युगोंसे देवताओंने जिन सब प्राचीन ओषधियोंकी सृष्टि की है, उन सब पिङ्गलवर्ण औषधके एक सौ सात स्थान विद्यमान हैं और तो क्या, सहस्र स्थान है। ये जननीस्वरूपा हैं, इनकी क्रिया एक भी तरहकी है। रोगीको रोगसे बचाती है। ये फलपुष्पवती, शोभाशालिनी और जयशालिनी रोगीके प्रति अनुग्रहकारिणी और कृतज्ञताभाजन हैं। अश्ववती, सोमवती, उर्ज्जयन्ती, उदोजस आदि ओषधिका संग्रह

और उसके द्वारा रोगोंके आरोग्यका विधान किया जाता था। ओषधियोंका गुण प्रत्यक्ष होता था। ओषधका फल प्रत्यक्ष दिखाता था। औषध द्वारा दुर्बल देह सबल होती थी, मृतदेहमें प्राण सञ्चार होता था। वारहवीं ऋक्में लिखा है, "जिस तरह बलवान् और मध्यवर्ती व्यक्ति सबको ही आयत्त करनेमें समर्थ होता है, हे ओषधियों! जिसके अङ्गमें, प्रत्यङ्गमें तथा गांठ गांठमें विचरण करो, उसके रोग उस स्थानोंसे दूर कर दो।" ओषधिके गुणसे चिड़ियेकी तरह रोग द्रुतवेगसे भागता है। औषध आपसमें मिल कर काम करती थी। १४ ऋक्के पढ़नेसे मालूम होता है, कि वैदिक समयमें भी बहुतेरी ओषधियां एकमें मिलाई जाती थीं। जैसे—'इस तरह सब परस्पर एक मन हो कर और एक कार्यकारिणी हो कर मेरी इस बातकी रक्षा करो।' इत्यादि। फलतः ऋग्वेदके समयमें सहस्र सहस्र उद्भिद रोग आरोग्यके लिये व्यवहृत होते और वे सब ओषधियां यथेष्ट सुफल प्रदान करती थीं।

शारीरविद्या या Anatomy और Physiology

२। एनाटमी और फिजिओलजीका सूत्रपात भी ऋग्वेदमें दिखाई देता है। ऋग्वेदके १०वें मण्डलके १६३ सूक्तमें नाक, कान, नाक, मस्तिष्क, जिह्वा, ग्रीवा, शिरा, स्नायु, अस्थि, मज्जा, बाहु, हस्त, स्कन्ध, अन्त्रनाड़ी, क्षुद्रनाड़ी, वृहदन्त्र, हृदयस्थान, मूत्राशय, यकृत्, ऊरु, जानु, पार्ष्णि, नितम्ब, मलद्वार, मूत्रद्वार, लोम, नख, आदि नाम दिखाई देते हैं।

क्षिति, अप्, तेज, मरुत् व्योम—इन पञ्चभूतों द्वारा मनुष्योंका देह गठित है। ऋक्संहिताके १० मण्डल १६वें सू० ३ ऋक्में उसका उल्लेख मिलता है। मृत्की दाह करते समय कहा जाता है—

"सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः॥"

अर्थात् हे मृत्! तुम्हारे चक्षु (अर्थात् चक्षु ज्योति) सूर्यलोक जावे, तुम्हारा श्वास वायुमें मिल जावे, तुम्हारा पुण्यफल आकाशमें मिल जावे, अपमें मिल जानेसे यदि हित हो, तो अपमें जावे, तुम्हारी देहके अवयव ओषधियोंमें आ कर अवस्थान करें।

"तिष्ठन्तु गर्भं यदमम" इत्यादि उक्तियोंसे मालूम होता है, कि वात, पित्त और कफ भी ऋग्वेदके समय चिकित्सकोंके सुपरिचित थे। आहार्य द्रव्योंके पाक, धमनी स्पन्दनके साथ जीवनीक्रियाका सम्बन्ध इत्यादि बहुत तरहके शरीर-विज्ञानशास्त्रका आलोचन विषय थोड़ा बहुत ऋग्वेदमें दिखाई देता है।

भ्रूणतत्त्व या Embryology

ऋग्वेदके दशवें मण्डलके १८४ सूक्तमें लिखा है, 'विष्णु स्त्रीअङ्गको गर्भधारणके उपयोगी बनावें', 'प्रजापति शुक्रपात करें', धाता गर्भधारण करें', हे सिनीवालि, हे सरस्वति! तुम लोग गर्भको धारण करो, पद्ममालाधारी देव अश्विद्वय गर्भोत्पादन करें'। हे पत्नि! अश्विद्वय तुम्हारे गर्भमें जिस सन्तानके लिये सुवर्णनिर्मित दो अरणि घर्षण कर रहे हैं, दशवें महीनेमें प्रसूत होनेके लिये हम तुम्हारे उस गर्भस्थ सन्तानका आह्वान करते हैं।' वैदिक साहित्य पढ़नेसे मालूम होता है, कि विष्णु जैविक ताड़ितके देवता, त्वष्टा जैविक तापके अधिष्ठाता और प्रजापति आर्तव शोणितके देवता हैं। उक्त वैदिक गर्भाधानमन्त्रका तात्पर्य यह है, कि गर्भधारणोपयोगी जरायुमें विष्णु (वायुके अधिदेवता) द्वारा पितृवीज लाया जाता है और प्रजापति द्वारा मातृबीज संचित होता है। सिनीवाली और सरस्वती गर्भकी रक्षा करती हैं और अश्विद्वय भ्रूणकी देह निर्माण करते हैं।

ऋक्संहिताका अनुसन्धान करनेसे इसके सम्बन्धमें और भी प्रमाण मिल सकते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थमें लिखा है,—

"तस्मात् परां यो गर्भोबध्नते पारं न गमयति ०००
तस्मान्मध्ये गर्भा धृता।" (ऐतरेयब्राह्मण ६।१०)

इसमें स्पष्ट भी प्रमाण मिलता है, कि गर्भ शिशुसन्तान अधोमुख रहती है और उसके ऐसे स्थित रहनेसे प्रसवके समय बड़ी सुविधा होती है।

अश्विनीकुमारद्वय और Surgery

ऋग्वेदके ११३।१मण्डलके नं ११६-१२० सूक्त तक हम अश्विद्वयकी स्तुति देखते हैं। इन सब स्तोत्रोंसे ऋग्वेदके समय शल्यके चिकित्साशास्त्रने किस तरह उत्कर्ष लाभ किया था, चिकित्साके सम्बन्धमें ऋग्वेदकी कैसी

धारणा थी, किस किसे व्यापारमें चिकित्सक और चिकित्साका प्रयोजन होता था इत्यादि चिकित्सा सम्बन्धीय ऐतिहासिक तथ्यका बहुल सन्धान इन कई सूक्तोंमें दिखाई देता है। अमरकोषमें लिखा है—

"* * * स्वर्वैद्यावश्विनीसुतौ।
नासत्यावश्विनौ दस्रावाश्विनेयौ च तावुभौ॥"

अर्थात् अश्विनीकुमारद्वय स्वर्गवैद्य, नासत्य, अश्वी, दस्र और आश्विनेय इन कई पर्यायोंसे अभिहित होते हैं। सूर्यकी भार्या अश्विनीके गर्भसे इनका जन्म है।

भावप्रकाशसे जाना जाता है, कि पहले ब्रह्माने अथर्ववेदके ऐश्वर्यस्वरूप आयुर्वेदका प्रचार करनेमें इच्छुक हो ब्रह्मसंहिता नामसे लाख श्लोकोंकी एक आयुर्वेदसंहिताकी रचना की। उन्होंने दक्ष प्रजापतिको आयुर्वेद सम्बन्धीय उपदेश दिया। दक्ष प्रजापतिने फिर सूर्य-वंशसम्भूत विद्वान् और देवताओंमें श्रेष्ठ अश्विनीकुमारद्वयको आयुर्वेदकी शिक्षा दी थी।

भावप्रकाशसे जाना जाता है, कि ब्रह्मसंहिताके बाद ही अश्विनीसंहिता नामकी एक आयुर्वेद सम्बन्धिनी संहिता अश्विनीकुमारद्वय द्वारा लिखी गई। भावप्रकाशमें और भी लिखा है, कि शिवने क्रोधित हो ब्रह्माका मस्तक काट डाला। अश्विनीकुमारद्वयने इस मस्तकको जोड़ दिया। इसी कारण अश्विनीकुमारद्वय उस समयसे यज्ञांशके भागी हुए। कटे शिरको जोड़ देनेमें अश्विनीकुमारोंकी यथेष्ट दक्षता थी। सुश्रुतके सूत्रस्थानमें भी इसके सम्बन्धमें प्रमाण मिलता है, यथा—

"अथ यदीरयें देवा इन्द्रं यज्ञभागेन प्रसादयन् ताभ्यां शिरः संहितमिति।"

सुश्रुतका कहना है, कि देवासुरके संग्राममें शल्यतन्त्रकी (Surgery विशेषतः military surgery) उत्पत्ति हुई। अश्विनीकुमारद्वय शल्यतन्त्रके अधिष्ठाता देवता हैं। यज्ञके कटे शिरको जोड़ देनेके कारण ही ये यज्ञभागके अधिकारी हुए। दैत्योंके साथ युद्धमें देवगण क्षतविक्षत हुए थे। अश्विनीकुमारद्वयने असाधारण क्षमताके प्रभावसे एक ही दिनमें सबको आरोग्य कर दिया। वज्रधारी इन्द्र भुजस्तम्भ रोगग्रस्त और निशापति चन्द्रमण्डलसे पतित हो प्रपीड़ित हुए थे। अश्विनीकुमारोंने शीघ्र ही इनका आरोग्य कर दिया। सूर्यका दन्तरोग, भगदेवका चक्षुरोग और चन्द्रका राजयक्ष्मा रोग अश्विनीकुमारद्वयकी चिकित्सासे शीघ्र ही प्रशमित हुआ था। भृगुमुनिके पुत्र च्यवन अतिशय इन्द्रियासक्त हो जराग्रस्त हुए और विह्वल हो उठे। अश्विनीकुमारद्वयने इनकी चिकित्सा की। उस चिकित्सासे ही उन्होंने चिरकुमार अवस्था पाई थी। राजयक्ष्मा चिकित्साके सम्बन्धमें दशवें मण्डलके अन्तमें जो एक सूक्त है, वह इससे पहले उल्लिखित किया गया है।

अश्विनीकुमारद्वय केवल मनुष्योंकी ही चिकित्सा नहीं करते थे, वरं गाय आदि पशुओंकी चिकित्सामें भी इनकी यथेष्ट क्षमता थी। जो गाय प्रसव करनेमें असमर्थ है, उन गायको भी दुग्धवती बना देते थे। (ऋक् १।११२।३, १।११६।२२) इसके सिवा युद्धमें आहत घोड़ोंकी चिकित्सा कर शीघ्र ही उनको युद्धमें भेजनेके लिये उपयोगी बना देते थे। पक्षियोंकी चिकित्सामें भी अश्विनीकुमारद्वय सिद्धहस्त थे। (१।११२।८)

कुएंमें फेंके हुए और पाशबद्ध रेभबन्धन, अन्तक, कर्कन्ध और भुज्यु आदि बहुत ऋषियोंको मृत प्राय अवस्थामें उठा कर अश्विनीकुमारद्वयने जीवन दान किया था। यह कहा जा नहीं सकता, कि सिलवेष्टरकी तरह कृत्रिम श्वास प्रश्वासका उपाय उन्होंने किया था या नहीं। किन्तु जलमग्न श्वासरुद्ध लोगोंको भी ये अनायास बचा देते थे। (११।१२।५-६)। रेभऋषिकी सद्गतिकी बात ११६ सूक्तकी २४वीं ऋक्में विशेष रूपसे विवृत हुआ है। इनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग तक विनष्ट हो गये थे। वे दश रात नौ दिनों तक जलमें थे।

Occulist

प्रथम मण्डलके ११२ सूक्तकी ८वीं ऋक्को पढ़नेसे मालूम होता है, कि ऋज्राश्व ऋषि अंधे थे। अश्विनीकुमारद्वयने अपनी चिकित्साने नेत्र अच्छे कर दिये। इसके बाद ११६ सूक्तसे १२० सूक्त तक और भी कई अंधे ऋषियोंके नेत्रप्रदान करनेकी बात देखी जाती है।

ऋज्राश्वके सम्बन्धमें सायणने उपाख्यान इस तरह

लिखा है,—ऋज्राश्व वृषागिरिके पुत्र हैं। ये एक राजर्षि हैं। अश्विद्वयका वाहन गर्दभ है। यह एक बार भेड़िया बन कर ऋज्राश्वके पास आया था। ऋज्राश्वने इसके भोजनके लिये १०१ नागरिकके मेषको खण्ड-खण्ड किया था। इस अपराधमें पिताने ऋज्राश्वको नेत्रहीन बना दिया। उन्होंने अश्विद्वयकी स्तुति की। इस पर अश्विद्वयने आ कर उनको नेत्र प्रदान किया।

Military surgeon।

परावृज और श्रोण ये दोनों ही पंगु हुए थे। अश्विद्वयने इनको अति शीघ्र कुशलसे चलने लायक बना दिया। प्रथम मण्डलके ११२वें सूक्तकी २१वीं और २२वीं ऋक् पढ़नेसे मालूम होता है, कि अश्विद्वय समरक्षेत्रमें आहत व्यक्तियोंकी चिकित्सा किया करते थे। प्रथम मण्डलके ११६वें सूक्तकी १५वीं ऋक्को पढ़नेसे मालूम होता है, कि खेल राजाकी पत्नी विश्पला युद्धमें गई थीं। उस युद्धमें उनका एक पैर कट गया था। रात्रिको आ कर अश्विद्वयने कटे हुए पैरमें लोहेका पैर जोड़ दिया। विश्पला इस "आयसी जङ्घा"के साहाय्यसे स्वस्थानलाभार्थ फिर युद्धमें गईं।

पुनर्यौवनदान या Rejuvenation।

१म मण्डलके ११६वें सूक्तकी १०वीं ऋक्में लिखा है,—"हे नासत्यद्वय! शरीरके आवरणको उतार कर फेंक देनेकी तरह तुम लोगोंने जीर्ण च्यवन ऋषिके शरीरसे जरा उतार कर उनको नवयौवन प्रदान किया था और तुम लोगोंने उन पुत्रादि रहित ऋषिका जीवन बढ़ा दिया था और इसके उपरान्त तुम लोगोंने ही उनको कई स्त्रियोंका स्वामी बनाया था।" ऋग्वेदमें दूसरी जगह भी यह आख्यान दिखाई देता है। शतपथ-ब्राह्मणमें भी यह आख्यान है। महाभारत वनपर्वके च्यवन ऋषिका आख्यान किसीसे छिपा नहीं है।

निहतको प्राणदान या Resuscitation।

उक्त ११६वें सूक्तकी २३वीं ऋक्में लिखा है, कि कृष्णके पुत्र ऋजुनावरायण विश्वकाय नामक ऋषिपुत्रकी मृत्युसे व्याकुल हो मृतपुत्र विष्णापुको ले अश्विद्वयके शरणापन्न हुए। इन्होंने उस विष्णापुकी मृतदेहमें प्राण डाला था।

मधुविद्या।

११६वें सूक्तकी १२वीं ऋक्के भाष्यमें सायणने लिखा है, कि इन्द्र दधीचिको प्रवर्ग्यविद्या और मधुविद्याका उपदेश दे कह गये थे, कि यदि तुम यह विद्या किसी दूसरेको कहोगे, तो तुम्हारा शिरश्छेदन करूंगा। अश्विद्वयने दधीचिका मस्तक काट कर उसको अन्य स्थानमें रख उस पर घोड़ेका सिर जोड़ दिया। इस तरह अश्विद्वयने दधीचिसे प्रवर्ग्य अर्थात् ऋक् साम यजु और मधुविद्याका अध्ययन किया था। इन्द्रने यह बात जान ली और दधीचिका घोड़ेका मस्तक काट डाला। अश्विद्वयने फिर मानवीय मस्तकको जोड़ दिया। दधीचिकी एक पौराणिक कथा प्रायः सभी जानते होंगे। आत्मत्यागी दधीचिने अपनी हड्डी इन्द्रको दी थी और उस हड्डीसे वज्र प्रस्तुत कर इन्द्रने वृत्रका संहार किया था।

नामर्दको पुत्र।

उक्त सूक्तकी १३वीं ऋक्के भाष्यमें सायणने लिखा है,—किसी एक राजर्षिकी वध्रीमती नामकी एक पुत्री थी। उसका स्वामी नामर्द था। वध्रीमतीने पुत्रके लिये अश्विद्वयको बुलाया। वे वहां आये और उन्होंने उसको हिरण्यहस्त नामक पुत्र दान किया।

वैज्ञानिक पण्डित।

अश्विद्वयने पैंजनसे गर्त्तका जल खींच कर भूमि-प्लावित किया था (१म। ११२ सू०)। रहूगणके पुत्र गोतम नामक स्तोताके पीनेके लिये उन्होंने कुएंका जल ऊपर उठा दिया, गोतम ऋषिके पास कुआं ले गये, उसका तल भाग ऊंचा और मुख नीचा कर दिया था। उस कुएंसे तृषित गोतमके पीनेके लिये और सहस्र धनलाभार्थ जल ऊंचा उठ आया था।

(११६ सू० ९ ऋक्)

कुमारीकी चिकित्सा।

११७वें सूक्तकी ७वीं ऋक्के भाष्यमें सायणने लिखा है, कि घोषा नामकी ब्रह्मवादिनी कक्षीवानकी दुहिता थी, वह कुष्ठरोगग्रस्त थी। इससे उसका विवाह नहीं हुआ। इस कारण वह अधिक उम्र तक पिताके घरमें अविवाहिताके रूपमें पड़ी रही। पीछे अश्विद्वयको

चिकित्सासे वह रोगमुक्त हो गई और उसका विवाह भी हो गया। कुष्ठी श्यावाश्व नामक ऋषिने भी अश्विद्वयकी चिकित्सासे आरोग्य लाभ कर दीप्तिमती स्त्री पाई थी।

अन्ध और बधिरचिकित्सा।

इसी सूक्तकी ८वीं ऋक् से यह भी मालूम होता है, कि कण्व ऋषिकी आंखें न रहनेसे वह चल फिर नहीं सकते थे। अश्विद्वयने उनको नेत्र प्रदान किया था। नृषत्-पुत्र बधिर हो गये थे। किसीकी बात सुन नहीं सकते थे। वे भी अश्विद्वयकी चिकित्सासे आरोग्य हुए थे।

छिन्नविछिन्न-देहमें प्राणदान।

११७वें सूक्तकी २४वीं ऋक् में लिखा है, कि श्यावाश्व ऋषिको शत्रुओंने तीन टुकड़े कर दिये थे। अश्विद्वयने उस छिन्नविछिन्न देहको जोड़ कर सजीव किया था। शल्यतन्त्र या सर्जरीमें अश्विद्वयका जैसा प्रभाव और प्राधान्य कहा गया है, अन्यान्य चिकित्सामें भी उसकी अपेक्षा उनके चिकित्सागौरवमें कमी नहीं पाई जाती। आधुनिक चिकित्साविज्ञान जिन सब अद्भुत कर्म-साधनके निमित्त धीरे धीरे आशान्वित हो रहा है, ऋग्वेद चिकित्सक अश्विनीकुमारद्वय उन सब विषयोंमें विशेष दक्ष थे।

वैदिक ऋषि इसके लिये प्रार्थना करते रहते थे, जिससे उनकी देह नीरोग रहे और सुहृदोंके साथ एक सौ वर्षसे अधिक दिनों तक वे जीते रहें। जैसे—

"उत् पश्यन्नश्नुवन्दी र्घमायुरस्तमिवेज्जरिमाणं जगम्याम्।"

(१।११६।२५)

स्वास्थ्यतत्त्व या Hygiene।

ऋग्वेदके समयमें इसलिये लोग औषधकी व्यवस्था करते थे, जिससे आजीवन जरा द्वारा आक्रान्त न होना पड़े। इसका दृष्टान्त च्यवन ऋषिके प्रसङ्गमें दिया गया है। सूर्य जगत्‌के पवित्रतासाधक हैं। सूर्यकी किरणोंसे जगत् शुचि होता है। साथ ही कई तरहके दोष सूर्य द्वारा विनष्ट होते हैं। आर्य ऋषियोंने ऋग्वेदीय स्तोत्रमें सूर्यके इस तरहके विविध गुणोंको जान कर उनका स्तव किया है। सूर्य कर विस्तार कर विश्वका पुष्टिसाधन करते हैं।

"विश्वस्य हि पुष्ये देवा ऊर्द्ध्व प्रयाह या पृथुगापि विपातें"

(१।३८।१२)

अग्निका दूसरा नाम पावक है। ऋग्वेदमें इस अर्थसे बहुत स्थानोंमें अग्निका स्तोत्र है। मरुद्‌गण हमारे प्राण हैं और मरुद्‌गण ही हमारे जीवनके सहायक हैं, इस स्तोत्रका भी ऋग्वेदमें अभाव नहीं है। जिस जलके गुणकी व्याख्याको ले कर आज कलके वैज्ञानिकगण निरन्तर व्यस्त हैं, एलोपैथिक चिकित्साविज्ञानमें जो जल औषध कह कर कल्पित हुआ है, जर्मनदेशके आधुनिक हाइड्रोपैथिकोंने जिस जलको रोग-प्रतीकारका एकमात्र उपाय निर्देश किया है, ऋग्वेदके प्राचीनतम ऋषियोंने उस जलकी नैसर्गिक आरोग्यसम्पादनी शक्ति (Vismedicatrix Naturae)के सम्बन्धमें कैसा अभिप्राय प्रकाश किया है, यह भी देखिये—

"आपः इद्वा उ भेषजी रापो अमी वचातनीः।
आपः सर्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वं तु भेषजम्॥"

(१०।१३७।६)

अर्थात् जल ही औषध, जल ही रोगशान्तिका कारण और जल सब रोगोंकी औषध है। जल तुम लोगोंको औषधं विधान करे।

"अप्सु अन्तः अमृतम्, अप्सु भेषजम्, अपां उत प्रशस्तये देवाः भवत वाजिनः।" (१।२३।१९)

जलमें अमृत है, जलमें ही औषध है, इसको ऋक् में भी देखिये,—

"अप्सुमें सोमः अब्रवीत् अन्तः विश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्वशम्भुवं आप च विश्वभेषजाः॥"

अर्थात् जलमें सब औषध है। सोमने हमसे ऐसी बात कही है और जगत्‌के सुखके लिये अग्नि है।

(तैत्तिरीयब्रा० २।३।६।७)

ऋग्वेदमें और भी लिखा है—

"आपः पृणीत भेषजं वरुथं तन्वे मम ज्योक च सूर्यं दृशे।"

(१।२३।२०)

हे आपः! मेरे शरीरके लिये रोगनिवारक भेषज परिपुष्ट करो।

सामवेदीय सन्ध्यावन्दनके प्रारम्भभागमें भी इसी तरह जलके गुणका कीर्त्तन है—

तैत्तिरीय ब्राह्मणमें भी लिखा है —

"अग्निर्वाऽ भेषजम् स्वर्हि विश्वभेषजः ॥"

(तै॰ ब्रा॰ २।४।१।७)

"आपो भवन्ति भेषजम्"—(तै॰ ब्रा॰ ३।६।८।१) स्नान, आहार, पान, निद्रा, वायुसेवन और देहरक्षा आदि विषयोंमें भी यथेष्ट हितकर वैदिक उपदेश हैं। कल्प, गृह्यसूत्र और स्मृतियोंमें ये सब वैदिक उपदेश भरे पड़े हैं।

वायुके सम्बन्धमें भी १०वें मण्डलके १३७वें सूक्तमें ऐसा स्तोत्र है—

"द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः।
दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातु यद्रपः॥
आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे॥
आ त्वागमं शंतातिभिरथो अरिष्टतातिभिः।
दक्षं ते भद्रमाभार्षं परा यक्ष्मं सुवामि ते॥"

अर्थात् समुद्र तक और उसे परे दूरवर्ती स्थान तक दो वायु बहती हैं। एक वायु तुम्हारे बलाधान करनेमें आगमन करे, दूसरी वायु तुम्हारे पाप ध्वंसके लिये बहती रहे। हे वायु! तुम इस ओर ओषधियोंको उड़ा लाओ, जो वस्तु हमारे लिये अहितकर है, उसे यहांसे ले जाओ। क्योंकि, तुम ही संसारके ओषधिस्वरूप हो। तुम्हीं देवताओंके दूत बन आओ।

इसके बाद और भी लिखा है—हे यजमान! तुम्हारे मङ्गलके लिये मैंने शान्ति स्वस्त्ययन किया है, तुम्हारे अमङ्गलके निवारणके लिये कार्य भी किया है, जिससे तुम्हारा उत्तम बलाधान हो, यह भी किया है। तुम्हारा रोग मैं अभी दूर कर देता हूँ। देवता तुम्हारी रक्षा करें, मरुद्गण तुम्हारी रक्षा करें, भूतमात्र रक्षा करें, यह व्यक्ति नीरोग हो।

इसी तरह बहुतेरे स्तोत्रोंमें स्वास्थ्यरक्षाके शक्ति-निर्दिष्ट प्राकृत पदार्थोंका स्पष्ट ऋग्वेदमें मिलता है। १०वें मण्डलके १८६वें सूक्तको भी देखना चाहिये। ऐसा मालूम होता है, कि इन सब स्तोत्रोंमें यथेष्ट वैज्ञानिक तथ्य निहित हैं।

विषतत्त्व और विषचिकित्सा Toxology

१म मण्डलके १९१वें सूक्तमें विषतत्त्व और विष-चिकित्साकी विस्तृत आलोचना देखी जाती है। जल, तृण और सूर्य इस सूक्तके देवता अल्पविष प्राणी, महा-विषप्राणी (जलचर और स्थलचर) दाहकर प्राणी और अदृश्यरूप (Pathogenic germs) विषकी बात हम इस सूक्तकी पहली ऋक्‌में देखते हैं। अदृष्ट विषधरकी बात स्पष्टतः इस ऋक्‌में उल्लिखित है। जैसे—

"नि अदृष्टा अलिप्सत"

इस ऋक्‌में ज्ञातविष और अदृष्ट (ज्ञात और अज्ञात) की बात जानी जाती है। इस सूक्तकी दूसरी ऋक्‌में अदृष्ट विष प्रशमनकी बात कही गई है। औषध आ कर अदृष्ट विषको नाश करती है। जिसके द्वारा रोग आरोग्य होता है, वही भेषज है। जल, वायु ताप, उपवास, भस्म ये सभी भेषजकी संज्ञामें आ जाते हैं। तीसरी ऋक्‌में वृश्चिक आदिके विषका स्थान निर्धारित किया गया है। शर, कुशर, दर्भ, शैर्य, मुञ्ज, वीरण, आदिमें विषधर अवस्थान करते हैं। पांचवीं ऋक्‌में लिखा है:—

"एत उ त्ये प्रत्यदृश्रन् प्रदोषं तस्करा इव।
अदृष्टा विश्वदृष्टाः प्रतिबुद्धा अभूतन॥"

रातमें ये सब विष तस्करकी तरह दिखाई देते हैं, ये अदृश्य होने पर भी सारे जगत्‌को देखते हैं। सुतरां हे जन! सावधान हो।

कहनेका प्रयोजन नहीं, कि इसका अर्थ गम्भीर वैज्ञानिक तथ्य मूलक और निगूढ़ है।

८वीं ऋक्‌में लिखा है, पूर्व और सूर्य उदित होते हैं, ये सारे विश्वको देखते हैं और अदृष्टकारीको विनष्ट करते हैं। ये समस्त अदृष्ट दिक्‌का और यातुधानोंका नाश करते हैं। सूर्यके उत्तापसे जो तरह तरहके वीजाणु (Pathogenic germ) विनष्ट होते हैं, यह आधुनिक चिकित्साविज्ञानका अकाट्य सिद्धान्त है। यदि अन्धकार स्थानमें ही अदृष्ट विषका प्रादुर्भाव है। पूर्व सूक्तमें इसका परिचय मिलता है। कालरा, प्लेग आदि भयङ्कर संक्रामक रोगके वीजाणु ऐसे स्थानोंमें ही प्रभाव उत्पन्न करते हैं, यह नये विज्ञानका भी दृढ़

सिद्धान्त है। मलेरिया प्रभृति विष रात्रिकालमें ही प्रभाव प्राप्त करता है। वैदिक ऋषिने इस सूक्तकी ९वीं और १०वीं ऋकोंमें दृढ़ताके साथ सूर्यका विनाशकता-गुणके सम्बन्धमें उल्लेख किया है। शकुन्तिका नामके छोटे छोटे पक्षी भी अनेक प्रकारके विषोंका नाश करते हैं। १२वीं ऋक्‌में लिखा है,—इक्कीस अग्निस्फुलिङ्ग विष नाश करे। यह भी वैज्ञानिक सिद्धान्त सम्मत है। १३वीं ऋक्‌में लिखा है,—"मैं सब विषविनाशक नयों नदियोंका नाम लेता हूं।" नदी-प्रवाहमें विष नाश होता है। यह भी आधुनिक चिकित्साविज्ञानके सिद्धान्तित सत्य है। नकुल, इक्कीस तरहकी मयूरियों और सात नदियोंके विषनाशक गुणका कीर्त्तन किया गया है।

७वें मण्डलके ५०वें सूक्तमें सर्पविष और अन्यान्य विषका उल्लेख है। नाना प्रकारके विषका उल्लेख इस सूक्तमें दिखाई देता है। यथा—"कुलायकारी और सर्वदा वर्त्तमान विष", "अजका नामक रोगजनक दुर्दर्शन-विष", वृक्षादिके पर्व स्थानमें उद्भूत "जानु और गुल्फ-स्फीतिकर बन्धनविष", "शाल्मलीमें उत्पन्न विष", "नदीजलस्थ उद्भिदुत्पन्न विष" इत्यादि बहुतेरे विषोंकी बात लिखी है। परवर्त्ती चिकित्सा शास्त्रमें "अगदतन्त्र" नामक चिकित्साङ्ग विभागमें विष और विष चिकित्सा-का वर्णन है।

यजुर्वेदमें भी वैद्यकशास्त्रका पूरा उल्लेख है।

आयुर्वेद शब्दमें देखो।

अथर्ववेद और आयुर्वेद।

यद्यपि ऋग्वेद और यजुर्वेदमें वैद्यकशास्त्रका यथेष्ट उल्लेख दिखाई देता है तथापि यथार्थमें अथर्ववेद ही वैद्यकशास्त्रका मूलग्रन्थ है और आयुर्वेद अथर्ववेद-का उपवेद है। ऐसा चरक और सुश्रुतने अपने अभि-मत प्रकाश किये हैं। "आयुर्वेद" शब्दमें इसका पूर्ण रूपसे विचार किया गया है। यहां अथर्ववेदसे वैद्यक के सम्बन्धमें कुछ आलोचना की जाती है।

अथर्ववेदके भैषज्य, आयुष्य, आभिचारिक, कृत्या-प्रतिहरण, स्त्रीकर्म, सांमनस्य, राजकर्म और पौष्टिक आदि व्यापार वैद्यक शास्त्रके बीजस्वरूप हैं। शान्ति स्वस्त्ययन और माङ्गल्य कर्मादि भी "भैषज्यों" के अन्तर्गत हैं। अथर्ववेदके अधिकृत कौशिकसूत्रके २५ से ३२ अध्याय तक वैद्यकशास्त्रकी आलोचनासे परिपूर्ण है। अथर्ववेदके ब्राह्मण ग्रन्थमें और अन्यान्य सूत्र-ग्रन्थमें भी वैद्यकके आलोचित विषयका उल्लेख है। इन सब विषयोंमें अथर्ववेदमें बहुप्रकार औषध और बहुप्रकार-की चिकित्साका विवरण दिखाई देता है। अथर्ववेदके मन्त्रोंमें जो अस्पष्टरूपसे उल्लिखित हुआ है, सूत्र-ग्रन्थमें वे सब विषय विवृत हुए हैं। फलतः जगत्‌के अति प्राचीन कालमें चिकित्साप्रणाली कैसी थी, अथ-र्ववेद और तदन्तर्भुक्त ब्राह्मण और सूत्र ग्रन्थ आदिमें उसका यथेष्ट प्रमाण मिलता है।

प्राचीन अथर्ववेदमें ज्वर, यक्ष्मा, अतिसार आदिका लक्षण है। वर्त्तमान आयुर्वेदमें भी ये दिखाई देते हैं। अथर्ववेदमें ज्वर "तक्मन" नामसे और अतिसार "आस्रव" नामसे अभिहित हुआ है। अथर्ववेदमें जिन सब रोगों और उद्भिदोंके नाम आये हैं, उनमें सबका सम झना बड़ा कठिन है। रोग और भूतादि ग्रस्त रोगीको पृथक्‌रूपसे आलोचना नहीं की गई है। जो सब रोग औषध आदि द्वारा चिकित्सायोग्य हैं, उन सब रोगों-में भी मन्त्र और यन्त्र (तावीज) द्वारा चिकित्सादिकी व्यवस्था की गई है। ये सब तावीजें प्रायः उद्भिज्ज द्रव्यसे ही प्रस्तुत होते थे। अथर्ववेदकी चिकित्सा-प्रणाली बहुत अद्भुत थी। कामलारोगमें देहका रंग पीला हो जाता है। सुतरां पीत पदार्थमें ही रोगीके पीत वर्ण भेजनेके लिये प्रार्थना की जाती थी। तक्मन या ज्वर होने पर शरीर गर्म हो जाता है। सुतरां शीतल पदार्थ ही उसे भेजना कर्त्तव्य है। इसके लिये मेढ़ककी देहमें ज्वरोत्ताप प्रेरण करनेके लिये मन्त्र पढ़ा जाता था। (अथर्ववेदका १।१२ और ७।११६ सूक्त देखो) अथर्ववेदके ५।४ और १९।३९ मन्त्रमें ज्वररोगके प्रतिकारके लिये कुष्ठ नामक उद्भिदके आह्वान और स्तोत्र दिखाई देता है। इसी तरह क्षम रोगके प्रतीकारके लिये काली मिर्चकी स्तुति भी (६।१०९) है।

तक्मन या ज्वर रोगी अथर्ववेदके समय यथेष्ट सु-विदित थे। ज्वर उस समय भी ज्वर नामसे विख्यात

नहीं हुआ था। इसका 'तक्मन' नाम अथर्ववेदके बाद दूसरे किसी ग्रन्थमें दिखाई नहीं देता।

अथर्ववेदमें ज्वररोगचिकित्साके चार स्तोत्र (१।२५, ५।२२, ६।२०, ७।११६) और इसलिये कुष्ठ सूक्तके दो अन्य (५।४, १९।३९) हैं। सुश्रुतने ज्वरको रोगका राजा कहा है। अथर्ववेदमें भी ज्वरका स्थान वैसा ही उच्चतम कहा गया है। ज्वररोग मनुष्योंके लिये अति भयानक रोग है, ऐसी धारणा उस प्राचीन समयके ऋषियोंकी भी थी।

अथर्ववेदमें ज्वरके लक्षण।

इस समय मलेरिया ज्वरके जो लक्षण देखे जाते हैं, अथर्ववेदके ज्वरके वैसे ही लक्षण हैं। रोगीको कम्प द्वारा ज्वर चढ़ता था। इसके बाद देहमें ज्वाला होती थी, प्रत्येक दिन निर्दिष्ट समयमें ज्वर आता या एक दिन बाद दूसरे दिन अथवा दो दिनके बाद एक दिन—इस तरह ज्वर आता था। इस ज्वरमें कामलारोग हो जाता था। वर्षाकालमें ही ऐसे ज्वरका प्रादुर्भाव होता था। इसके साथ सिरमें पीड़ा, खाँसी, बलास, उद्युग और पामा (खाज) रोग भी दिखाई देते थे। ज्वरका प्रधान लक्षण उत्ताप है। अग्नि ही इसका हेतु है। स्तव स्तुति और कुष्ठ वृक्षके और जङ्गिड वृक्षके द्वारा प्रस्तुत तावीजसे ही इस "तक्मन्" रोगका प्रतिकार किया जाता था। मेढकका स्थान भी (७।११६) अनेक समय ज्वर-चिकित्सामें प्रयोजनीय होता। कौशिक सूत्रमें भी इसका उल्लेख दिखाई देता है।

जलोदर।

अथर्ववेदमें जलोदर रोगका भी वर्णन आया है। यह रोग वरुणका दिया हुआ है। जो अनृतवादी हैं, उनके पापके लिये ही वरुणने इस रोगका सृजन किया (१।१०, ७।८३, ४।१६)। कौशिक सूत्रमें यह भी कहा गया है, कि यह रोग हृद्रोगका सहचर है। यह रोग-निर्णय आयुर्वेद विज्ञानके सिद्धान्तसे मिलता है। शास्त्रमें और सूत्रमें जल ही इस रोगकी औषध कही गयी है। यह अवश्य होमियोपैथिकके सिद्धान्त… है। हेतुसदृशचिकित्सा वर्तमान समयमें [illegible] भी स्थापित हुई है।

आस्राव—अतिसार

अथर्ववेदमें आस्राव या अतिसारकी चिकित्सा भी (१।२) देखी जाती है। इसीलिये "विपाणका" मंत्र (२।३, ६।४४) है। भाष्यकारने आस्रावरोगको अतिसार रोग कह कर व्याख्या की है। आस्राव शब्द मूत्रातिसार के इसी तरह शरीरके किसी प्रकारके रसके क्षरणार्थमें व्यवहृत होता था। के प्रमेह या मूत्रकृच्छ्ररोगकी चिकित्सा भी उक्त हुई है (१।३)। कौशिकसूत्रमें भी (२५।१०-१९) इन दोनों रोगोंकी चिकित्सा है। शूलकी चिकित्सा (६।९०) एवं कौशिक सूत्र (३१।९) देखो। पञ्चमके छेदनेकी तरह शूल होती है, इससे पञ्चम आकारका तावीज बनानेकी व्यवस्था है।

आस्रावकी पीड़ा।

अथर्ववेदके ऋषियोंने विविध पीड़ाओंके नाम और चिकित्साका उल्लेख किया है। बलास (६।१४), खाँसी (६।१०५, ७।१०७), यक्ष्मा, राजयक्ष्मा, अज्ञात-यक्ष्मा, पापयक्ष्मा आदिका उल्लेख (५।३३, ३।११, २।८, १९।३६), पक्षाघात (लकवा)की चिकित्सा भी देखी जाती है। "क्षेत्रिय" नामकी एक पीड़ाका (२।८-१०, ३।७) उल्लेख है। सम्भवतः उपदंश आदि रोग इस पीड़ाके अन्तर्भुक्त हैं। सिवा इसके भी सब रोग वंश परम्परासे उद्भूत होता जाता है, वे भी 'क्षेत्रिय' रोग कहा गया है। "सर्वशीर्षण्य" और भी कितने ही रोगोंका उल्लेख (२।३३, ९।८, १९।४४) हैं।

गले पीड़ा।

विद्रधिरोग फुड़का ही दूसरा नाम है। इसकी और हवाका उद्धृत यह रोग प्रकाशित होता है। अन्यान्य रोगोंके साथ विद्रधि-रोगकी चिकित्सा भी (११।४५ और ८, १०) अथर्ववेदमें दिखाई देती है। अपची अर्थात् गण्डमाला रोगकी चिकित्साका वर्णन बाहुल्य ६।२५, ६।८३, ७।७४, ७।७६, १।१२, ७।८१ में दिखाई देता है। गण्डमाला, अर्बुद आदि इसी नाममें अभि-… हैं। ये सब रोग सम्भवतः विनाशिन लिंग … के विकार हैं। यहाँ जैसे वृक्ष पर आश्रय … ये सब रोग भी मनुष्योंके शरीरमें अव…

ध्यान करते हैं, ऐसा ही ऋषियोंका विश्वास था। मन्त्रसे इनको उड़ा देनेके लिये बहुतेरे स्तव स्तुति दिखाई देते हैं।

अथर्ववेदमें सर्जरीकी चिकित्सामें क्षतचिकित्सा और भग्न (Tractures) चिकित्साका भी विधान है। यह विधान केवल मंत्र ही है (४।१२; ५।५) अरुन्धति और लाक्षी वृक्षके स्तोत्र द्वारा क्षत और भग्न (टूटने)की चिकित्सा की जाती है। रक्तप्रवाह निरोधके लिये भी मन्त्र है (१।१७)।

सिवा इसके सर्पविद्या और विषविद्याका उल्लेख भी अथर्ववेदमें (५।१३, ५।१६, ६।१२, ७।५६, ७।८८) दिखाई देता है। अथर्ववेदके अन्तर्गत गरुड़ उपनिषद् सर्पविषका ही प्रतिषेधक मन्त्र और उपायस्वरूप है।

क्रिमी (मनुष्यकी क्रिमी, पशुओंकी क्रिमी और शिशुओंकी क्रिमी) चिकित्सा (२।३१, २।३२ और ५।३३) अथर्ववेदमें आलोचित हुआ है। अथर्ववेदमें अनेक तरहकी क्रिमियोंका उल्लेख है। जिसकी जूं भी क्रिमीके नामसे अभिहित होता है। परवर्ती चिकित्सा शास्त्रमें बीसों प्रकारकी क्रिमियोंका उल्लेख दिखाई देता है। चक्षुरोगमें भी (आंखका आना) अलायु सर्पका स्तोत्र है। कर्ण रोगके नाम भी (६।८, १।२) अथर्ववेदमें उल्लिखित हैं।

अथर्ववेदके पढ़नेसे मालूम होता है, कि इस समय केशका बहुत आदर था। उससे शिरमें सुदीर्घ घनकृष्ण कुन्तल राशि जनती है। उसके लिये मंत्रस्तोत्र भी यथेष्ट (६।२१, १३६, १३७ और ६।११७।३) है। नितनी नामके एक प्रकारके उद्भिद्का उल्लेख है, इससे केशवृद्धिके उपायकी कल्पना होती थी।

शोक हर्षणके लिये भी कितने ही मंत्रोंका उल्लेख है (४।४, ६।७२, और ६।१०१)। उन्मादरोग गंधर्व, अप्सरा, राक्षस आदिकी दृष्टि बांध दी जाती थी। बकरेका सींग, भेड़का सींग और विडाली प्रभृति द्वारा राक्षस आदिकी दृष्टि दूर या भगाई जा सकती है। शांत काष्ठका तावीज़ (२।६) धारण करनेके लिये उपदेश दिया गया है। सिवा इसके भूतादि ग्रहशांतिके और राक्षस और पिशाचादिके उत्पात-प्रशमनके लिये भी मंत्रादि हैं (४।३६ और ३।३२)। इस तरह चिकित्सादिकी व्यवस्था की गई है।

आयुष्याणि

इसके लिये औषधका प्रयोग किया जाता है, जिससे आयुकी वृद्धि हो सके। जल, वृक्ष आदिसे सब तरहके रोगोंसे देह विमुक्त रहनेकी प्रार्थना की जाती (६।२५, ६।६५, ६।१२७, १६।३८, ६।६१, १६।४४, १६, ८।७) थी।

आयुर्वृद्धिके लिये अग्निसे भी प्रार्थना की जाती थी। अग्नि ही आयुके देवतारूपसे गिनी जाती (२।१३।२८, २६, ७।३२) थी। आयुर्वृद्धिके लिये सोनेका तावीज़ व्यवहृत होता (१६, २६) था, अञ्जनका भी प्रचलन (४।६, १६, ४४—४५) था। आयुष्य स्तवोंमें १।३०, ३।११, ५।२८, ३०, ६।४१, ५२, १६, २४, २७, ५८, ७० आदि स्तोत्रोंको देखना चाहिये।

सिवा इसके भूत प्रेत पिशाच दैत्य दानवादि दूर करनेके लिये भी अथर्ववेदमें कई तरहके मन्त्र और प्रक्रियायें दिखाई देती हैं। शत्रुदमनके लिये भी कई तरहकी आभिचारिक प्रक्रियायें थीं। स्त्री-वशीकरण और पुरुष-वशीकरण आदि प्रक्रियायें भी देखी जाती थीं, सब विषय वैद्यकके अन्तर्गत नहीं। किन्तु इन सब बातोंके लिये भी औषध आदि व्यवहृत होती थी।

ब्राह्मण ग्रन्थमें और उपनिषद्में भी देहविज्ञानका सूक्ष्मतत्त्व आलोचित हुआ है। अन्न प्राण मन आदि कोष सूक्ष्मतत्त्वोंसे परिपूर्ण है। इस उपनिषद्में सूक्ष्म शरीर बहुत तत्त्व देखने हैं। सिवा इसके हृत्पिण्ड और धमनी प्रभृतिके भी यथेष्ट तत्त्व हैं। विषय बढ़ जानेसे यहां उपनिषद्के शरीर-विज्ञानकी आलोचना न की गई। छान्दोग्य उपनिषद्से हृत्पिण्ड और धमनी प्रभृतिके केवल एक उदाहरणका उल्लेख किया जाता है—"अथ या एता हृदयस्य नाड्यस्ताः पिङ्गलस्याणिम्नस्तिष्ठन्ति शुक्लस्य नीलस्य पीतस्य लोहितस्येत्यसौ वा आदित्यः पिङ्गल एषः शुक्ल एषः नील एषः पीत एषः लोहितः" (छान्दोग्य ८।६।१) अर्थात् हृत्पिण्डकी नाड़ियां पिङ्गल, श्वेत, नील, पीत और लोहित हैं। इस श्रुतिके

शाङ्कर भाष्यमें और विशद रूप शिरास्रोतओंका अङ्ग-प्रत्यङ्ग स्पष्ट दिखाई देता है।

छान्दोग्य उपनिषद्के उक्त वाक्यके भाष्यमें लिखा है—

"शतं चैका हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका। तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति। ६।"

अर्थात् हृत्पिण्डकी १०१ धमनियाँ हैं। इनमेंसे एक मस्तककी ओर गयी है। इस नाड़ीके पथसे ही अमृत धाम प्राप्तिका पथ ज्ञात होता है। अन्यान्य नाड़ियाँ अन्यान्य कई ओरके गमनपथके पथ हैं। इसके भाष्यमें शङ्करने कहा है, कि मानवदेहमें असंख्य नाड़ियाँ हैं, इनमें १०१ ही प्रधान हैं। इन नाड़ियोंके पथसे जीवात्मा उत्क्रमण करती है। इनमें एक ही ब्रह्मनाड़ी है, उसी ब्रह्मनाड़ीके पथसे जीव मरनेपर ज्ञानके फलसे ब्रह्मलोकमें गमन करता है।

अन्यान्य उपनिषदोंमें भी देहतत्त्वकी आलोचना दिखाई देती है।

आयुर्वेद-युग (आत्रेय-युग)।

भरद्वाज, अङ्गिरा, जमदग्नि, आत्रेय, गौतम, अगस्त्य, वामदेव, कपिष्ठल, अश्मरथ, कुशिक, भार्गव, काश्यप, काप्य, शर्कराक्ष, शौनक, मैत्रेय, मैमतायनि, अग्निवेश, सुश्रुत, नारद, पुलस्त्य, असित, च्यवन, पैङ्गी, धौम्य आदि बहुतेरे आचार्योंने चिकित्सा-संहिता ग्रन्थ प्रणयन किये थे। सुश्रुतसंहितामें प्रायः सब चिकित्साओंमें इन सब आचार्योंका नाम दिखाई देता है। पाणिनिके व्याकरणमें पतञ्जलिके महाभाष्यमें और पुराणोंमें भी इन सब संहिताओंका नाम दिखाई देता है। पाणिनिके पूर्ववर्त्ती समयमें इस देशमें आयुर्वेदकी विशेष उन्नति हुई थी, इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं। पाणिनिके व्याकरणके अनेक सूत्रोंमें भी इसका परिचय मिलता है। जैसे,—

(१) शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादिभ्यश्छः ४।३।८८

(२) पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम् ६।१।१५७

(३) [illegible] ५।४।१०

(४) [illegible] ५।२।१२

(५) [illegible] ५।१।५१

(६) लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः ५।२।१००

(७) सिध्मादिभ्यश्च ५।२।९७

(८) रोगाच्चापनयने ५।४।४९

(९) कालप्रयोजनाद्रोगे ५।२।८१

(१०) अर्श आदिभ्योऽच् ५।२।१२७

(११) रोगाख्यायां ण्वुल् बहुलम् ३।३।१०८

(१२) कथादिभ्यष्ठक् ४।४।१०२

वैदिकयुगके बहुत बाद आयुर्वेद युगका सूत्रपात हुआ। जिस युगमें चिकित्साशास्त्र अद्भुतरूपसे प्रवर्त्तित हुआ, उसका निर्णय करनेका ऐतिहासिक कोई उपाय नहीं। किन्तु इसमें जरा भी सन्देह नहीं, कि चरक सुश्रुत आदिसे बहुत पहले ही आयुर्वेद युगका आरम्भ हो गया था।

चरक नाम भी बहुत प्राचीन है। यजुर्वेदकी शाखा-गणनामें चरकशाखाका उल्लेख है। चरकशाखाके अन्तर्गत यजुर्वेदकी १२ शाखायें हैं। "चरक" शब्दके व्युत्पादनके लिये पाणिनीय व्याकरणमें भी एक सूत्र है। जैसे—"कठचरकाल्लुक्" ४।३।१०७।

चरक-संहिता।

फलतः चरकसंहिता नामसे हम जो प्राचीन चिकित्साशास्त्र ग्रन्थ देखते हैं, वह चरकसंशोधित प्रतिविशेषका प्रचलित है। इस भावमिश्र रचित मधुमञ्जूषाको पढ़नेसे जान सकते हैं, कि महाभाष्यकार पतञ्जलिने चरककी एक टीका लिखी थी। यथा—

"[illegible]।
[illegible] इति चाके [illegible]॥"

भोज और चक्रपाणि दोनों ही इसके समर्थक हैं। चरककी आयुर्वेददीपिका नाम्नी टीकाके रचयिता चक्रपाणिदत्तने लिखा है,—

"पातञ्जलमहाभाष्यचरकप्रतिसंस्कृतैः।
मनोवाक्कायदोषाणां हर्त्रेऽहिपतये नमः॥"

चरकके पूर्वकी कथा।

चरक-संहितामें वैदिक देवताके सिवा पौराणिक देवताका नाम नहीं मिलता। इससे भी मालूम होता है, कि यह ग्रन्थ बहुत प्राचीन है। चरकसंहिता अतिप्राचीन होने पर भी इसके पूर्ववर्त्ती और भी कई संहिताओंका उल्लेख मिलता है। जैसे—

अग्निवेश, भेल, जातुकर्ण, पराशर, हारीत और क्षारपाणि—ये सभी आत्रेय मुनिके शिष्य हैं।

चरकने अग्निवेशका अनुसरण कर ही इस संहिताका प्रणयन किया। वाग्भटने भी अपने ग्रन्थमें हारीत और भेलके नामोंका उल्लेख किया है। भेल मुनिका दूसरा नाम "वेड़" था। वेड़संहिता अब भी प्रचलित है। चरकसंहिताका दूसरा नाम अग्निवेशसंहिता है। काश्मीरके चिकित्सक चरक इस संहिताको समाप्त नहीं कर सके। इसका शेष तृतीयांश कई शताब्दके बाद काश्मीरके दूसरे चिकित्सक दृढ़वल द्वारा रचित हुआ। दृढ़वल कपिलवलके पुत्र हैं। चक्रपाणिदत्तने चरककी टीकामें लिखा है, कि वर्तमान चरकसंहिताके चिकित्सित स्थानका १७वां अध्याय और कल्प स्थानका ७वां और ८वां अध्याय दृढ़वल द्वारा रचित हैं। चरकसंहितामें ३६० हड्डियां गिनी गई हैं। शतपथब्राह्मणमें भी इतनी ही हड्डियां बताई गई हैं। चरकसंहिता सर्वत्र प्रचलित ग्रन्थ है।

सुश्रुत संहिता।

सुश्रुत किसी व्यक्तिविशेषका नाम है या चरक शब्दकी तरह उपाधिविशेष है—इसका निर्णय करना कठिन है। शल्योपचारमें इन्होंने ही आद्यायुगके आचार्योंमें सविशेष पारदर्शिताके साथ ग्रन्थ लिखा है। ये शवव्यवच्छेद करते थे। इनकी संहितामें पत्रमय पुत्तलिका, अलाबु कर्दमपूर्ण भस्त्रिका प्रभृतिके साहाय्यसे अस्त्र या शस्त्रक्रियाके व्यवहारका उपदेश है। टूटी हुई हड्डियोंका जोड़ना, प्रणष्ट शल्यका खोजना और निकालना, व्रणका शोधन, रोपण, उत्सादन, अवसादन आदि सुश्रुतसंहितामें विशदरूपसे वर्णित है। प्रलेप द्वारा लुकायित शैल्यविनिर्णय करनेका उपाय था। विद्रधि या प्लीहाकी विद्रधि भेद करना, मूत्राशयसे अश्मरी (पथरी) काट कर फेंकना, यंत्र साहाय्यसे मूढ़गर्भ आहरण करना, आघात लगनेके कारण अंतड़ीके बाहर निकल आने पर उसे पुनः यथास्थान रखना और सिलाई करनेका उपाय सुश्रुतसंहितामें विवृत है। विवर्त्तन आवर्त्तनक्रमसे गर्भिणीके सुखप्रसवका उपाय लिखा हुआ है। धात्री परीक्षा, सन्तान परीक्षाके सम्बन्धमें विशेष उपदेश है। क्षतरोगमें धूपनकी व्यवस्था है। क्षतरोगीके शय्यासनादि तक धूपित होता था। सुश्रुतके मतसे राजयक्ष्मा, २१४ प्रकारके ज्वर, कई पामज व्याधि ये संक्रामक हैं। गर्भावस्थामें पाण्डुरोगमें रक्तकी लाल कणिकायें कम हो जाती हैं। रक्तातिसार और उराक्षतमें आभ्यन्तरिक क्षतकी चिकित्सा करनी पड़ती है। राजयक्ष्मामें हृत्पिण्डमें कोटर उत्पन्न होता है। विसर्पकी अंतिम अवस्थामें रक्त विपाक हो जाता है। शल्यमांश्य रक्तार्बुद पक जाने पर जीवन कठिन, दर्वीकर (काले सांप) के काटने पर हृदयमें रक्तशून्यता होती है, इसलिये श्वास कृच्छ्रतासे मनुष्य मर जाता है। सन्निपात या विसूचिका रोगमें हृदयके रक्तका दबाव होते रहने पर चिकित्सातत्त्वके अनुसार सर्पविष उसकी महौषध है। इसके सिवा हृदयमें रक्त सञ्चालन क्रिया, शिरा, धमनी, स्नायु आदिका प्रसार या संस्थिति, रसादि धातुओंकी परस्पर परिणति, वातवाही शिरामण्डलीका कार्य आदि अतीव दक्षताके साथ सुश्रुतसंहितामें आलोचित हुए हैं। सुश्रुतसंहितामें लिखा है, कि रश्मिबिन्दु अक्षितारकाके ऊपर पतित होता है, वही पदार्थकी रूपानुभूतिमें परिणत होता है। अर्थात् जैसे दो समकालांतर खद्योतस्फुलिङ्ग युगपत् खद्योतके अंतर और वहिर्जगत्‌को आलोकित करता है, आलोकरश्मि अक्षितारका पर पड़ कर उसी तरह वहिर्जगत्‌में रूप और अंतर्जगत्‌में रूपानुभूति हो जाती है। यह समकालांतरिन् है। यह सिद्धांत विज्ञानसम्मत है।

हम जो इस समय सुश्रुत प्रचलित देखते हैं, बौद्ध रसायनविद् नागार्जुन ही इसके संस्कारक हैं। डल्हणाचार्यने सुश्रुतकी टीकामें साफ तौर पर लिखा है—

"यत्र तत्र परोक्षे लिंगेन स्तत्र तत्रैव प्रतिसंस्कर्तृसूत्रं ज्ञातव्यमिति प्रतिसंस्कर्त्तापीह नागार्जुन एव।"

सुश्रुतके उत्तरतंत्र नागार्जुन-रचित है। डल्हणाचार्यका कहना है, कि बौद्ध और हिन्दुओंमें जब घोरतर विवाद चल रहा था, तब सिद्ध नागार्जुनने सुश्रुत ग्रंथका उत्तरतंत्र प्रणयन किया। इसके पहले यह ग्रंथ सुश्रुत तंत्र नामसे विख्यात था। नागार्जुनके संस्कारके बादसे ही यह सुश्रुत तन्त्र सुश्रुतसंहिता नामसे प्रसिद्ध हुआ

चरकसंहिता जैसी चिकित्साप्रधान है, सुश्रुतसंहिता वैसी ही फिर शस्त्रोपचारप्रधान है। चरक कायचिकित्सक-सम्प्रदायके अनुयायिस्वरूप थे, दूसरी ओर सुश्रुत धन्वन्तरि सम्प्रदायके शल्यतन्त्रनायक थे। धन्वन्तरि सम्प्रदायने अग्निवेशकृतान्ययसे शल्य और शालाक्य विद्याको लिया थी। महाभारतके पढ़नेसे मालूम होता है, कि सुश्रुत विश्वामित्रके पुत्र हैं। आयुर्वेदमें चरक, सुश्रुत आदिने प्राकृतिक विषयमें विस्तृत विवरण लिखा है। टीकाकारोंने वृद्ध सुश्रुत नामसे प्राचीन सुश्रुत ग्रन्थकी बातोंका उल्लेख किया है।

सुश्रुतके सूत्रस्थानके सप्तम और अष्टम—इन दो अध्यायोंमें शस्त्रोपचारके यन्त्रविवरण और पचीस अध्यायमें शस्त्रोपचारकी प्रणाली लिखी हुई है। चरकसंहिताके भी दो स्थानोंमें शस्त्र-चिकित्साका उल्लेख दिखाई देता है। चरकके चिकित्सित स्थानमें उदररोग-चिकित्साकी प्रणाली लिखी हुई है। इसके शारीरस्थानके आठवें अध्यायमें मूढगर्भ बाहर निकालनेकी प्रक्रिया विशदरूपसे लिखी हुई है। किन्तु इन दो स्थानोंमें कहीं कोई भी शस्त्रका नाम नहीं लिखा गया है। अष्टम अध्यायमें उदररोगकी चिकित्सा कुछ चरकको लिखी नहीं, वरं दृढ़बलकी लिखी है। दृढ़बल सुश्रुत पढ़ कर ही शस्त्रोदरके शस्त्रोपचारकी प्रणाली लिख गये हैं। शल्योद्धार [illegible] लिये सुश्रुतमें [illegible] मुख नामक एक तरहके ट्रोकार (Trocar)का उल्लेख किया है। चरकमें जिस शस्त्रोपचारकी बात लिखी हुई है, वह वास्तवमें दृढ़बलके प्रतिसंस्कारका ही फल है।

सुश्रुतके टीकाकार।

चक्रपाणिदत्तने चरककी टीका और सुश्रुतकी भी एक टीका की थी। [illegible] टीकाका नाम भानुमती होता है। सुश्रुतकी टीकाके दूसरे रचयिता डल्लनाचार्य हैं। डल्लनकी टीकाका नाम निबन्धसंग्रह है। डल्लनाचार्य महाराज [illegible] सभापण्डित थे। डल्लनने जेज्जट, गयदास और भास्करकी टीकाका उल्लेख किया है। इन सब व्यक्तियोंने डल्लनके पहले सुश्रुतकी टीका की थी।

बौद्धयुग।

बौद्धयुगमें इस देशमें चिकित्साशास्त्रकी यथेष्ट उन्नति हुई थी। लोगोंके दुःख निवारणके लिये गौतम-सिद्धार्थ प्राण व्याकुल हो गया था। उनके शिष्यों और सब धर्मके धर्मावलम्बी [illegible] व्यक्तियोंने मनुष्य और पशुओंकी चिकित्साके निमित्त स्थान स्थानमें चिकित्सालय संस्थापन किया। प्रियदर्शी राजा अशोकने शासनानुशासनमें लिखा है, कि उन्होंने मनुष्य और पशु दोनोंके लिये चिकित्सालय स्थापन किये थे। अशोकके राजत्वकालसे ७५० ई० तक बौद्धोंका काल माना जाता है। इस समय आयुर्वेदकी उन्नति हुई थी। यूनान, मिस्र, एशिया माइनर आदि दूर दूर देशोंमें आयुर्वेदकी महिमा प्रचारित हुई थी। नालन्द, राजगृह, गया, बिहार, वैशाली आदि प्रधान प्रधान नगरोंमें चिकित्सागार, पन्थाबास (धर्मशाला) और चिकित्साविद्यालय (मेडिकल कालेज) संस्थापित हुए थे। इन सब चिकित्सालयोंमें बहुतेरी नई नई औषधियां आविष्कृत होती थीं। महावग्ग नामके पालि ग्रन्थमें दिखाई देता है, कि शाक्यसिंहके समयमें जीवक कौमारभृत्य नामके शाक्यसिंह एक चिकित्सक थे। यह जीवक [illegible] समान थे। बचपनमें दरिद्रताके कारण आहार और सुचिकित्साके अभावमें जीवक बहुत कष्ट पाते थे। इस अवस्थामें जीवकने विचारा, कि संसारमें देखो बहुत लोग हैं, जिन्होंने मेरे समान बहुत कष्ट भोग किया है। मैं यदि चिकित्साविद्या सीख सकूं, तो बहुत गरीबोंका कष्ट दूर करनेमें समर्थ हूंगा। यह सोच कर जीवक आयुर्वेद [illegible] तक्षशिलामें जा उपस्थित हुए। उस समय तक्षशिलामें आयुर्वेदीय विश्वविद्यालय था। प्रतिभाशाली अध्यवसायी जीवकने अल्प समयमें (७ वर्षमें) आयुर्वेदमें अधिकार प्राप्त कर लिया। जीवकके आचार्यने जीवकके औषधि ज्ञानकी परीक्षा करनेके लिये जीवकसे कहा, "जीवक! इस पहाड़ीके चारों ओर एक एक योजन घूम आओ, राहमें जितना अचिकित्स्य [illegible] मिले, उसको हाथमें संग्रह करते आना।" चार पांच दिनके बाद [illegible] दोनों [illegible] [illegible] [illegible] कर [illegible]

आये थे। जीवक साकेत नगरीमें आ कर एक विधवा रमणीके असाध्य शिरोरोगकी चिकित्सा करने लगे। विधवाने कहा, "बहुतेरे विज्ञ, बहुदर्शी, वृद्ध वैद्य मेरी इस व्याधिको आरोग्य कर न सके हैं। तुम बालक हो, तुम इस असाध्य रोगको कैसे दूर कर सकोगे।" जीवकने जवाब दिया, "विज्ञान बालक भी नहीं और न वृद्ध ही है।" उनकी चिकित्सासे विधवाको बड़ा उपकार हुआ था यों कहिये, कि वह पूर्ण आरोग्य हो गई। काशीमें एक आदमीको सन्निरुद्धगुद (Intersusception of the bowels) हुआ था। जीवकने उसके उदरमें अस्त्र (Laparatomy Operation) चिकित्सा कर अन्त्राव-रोध आरोग्य किया। राजगृहमें एक धनवान् वणिक्के मस्तकका कर्पर खोल कर उसकी शिरःपीड़ाको शान्त किया। इस चिकित्सामें उन्होंने ऐसी दक्षतासे अस्त्र सञ्चालन किया था, कि उसका एक बाल भी स्पृष्ट नहीं हुआ था, मस्तकके सेवनी-(Suture) तकमें एक सेवनी भी आहत नहीं हुई थी। इस समय बुद्धदेवका शरीर अस्वस्थ हुआ। प्रधान शिष्य आनन्दने जीवकको बुलाया। तीन खिले हुए पद्मपुष्पोंके पत्तों पर औषधचूर्ण छींट उसे सुंघा कर ही उनका रोग जीवकने दूर किया था। इस समय काङ्गालके पुत्र जीवकने बुद्धदेवको वैद्य होनेका सौभाग्य प्राप्त किया था।

वाग्भट

बौद्धयुगके ग्रन्थकारोंमें वाग्भटका नाम यहां प्रथम उल्लेख्य है। चरक और सुश्रुतके बाद ही वाग्भटका नाम आता है। वाग्भट या वाभट बौद्ध थे। ये सिन्धुदेशवासी थे। वाग्भटने चरक और सुश्रुतका सार संग्रह किया है। सिवा इन दो ग्रन्थोंके इन्होंने भेल और हारीतके ग्रन्थोंसे भी कुछ लिया है। ग्रन्थके उपसंहारमें वाग्भटने लिखा है,—

"ऋषिप्रणीते प्रीतिश्चेन्मुक्त्वा चरकसुश्रुतौ।
भेड़ाद्याः किं न पठ्यन्ते तस्माद्ग्राह्यं सुभाषितम्॥"

अर्थात् प्राचीन ऋषिप्रणीत ग्रन्थ ही यदि प्रीतिजनक हो, तो केवल चरकसुश्रुत पढ़नेके सिवा भेलादि ऋषिप्रणीत ग्रन्थ क्यों नहीं पढ़ा जाता?

वाग्भटके ग्रन्थका नाम "अष्टाङ्गहृदय" है। अष्टाङ्गहृदयका अर्थ यह है, कि आयुर्वेदोक्त चिकित्साप्रणाली आठ भागोंमें विभक्त हुई है। उनके नाम इस तरह हैं,—

(१) कायचिकित्सा (Internal medicine) (२) शल्य (Major surgery) (३) शालक्य (Minor surgery) (४) भूतविद्या (Demonology) अथर्ववेदमें यह चिकित्सा विशेषरूपसे दिखाई देती है। (५) विष (Toxicology) (६) रसायन (Tonics) (७) वृष्य (Aphrodisiacs) (८) कौमारभृत्य (Paedotrophy)—ये सब विभाग चिकित्सामें अष्टाङ्गके नामसे प्रसिद्ध हैं।

वाग्भटने शल्यतन्त्रमें बहुतेरे नये तथ्योंका समावेश किया है। खनिज और समुद्रज लवणों (नमक)का उल्लेख भी इनके चिकित्साग्रन्थमें दिखाई देता है। कचित् कुत्रचित् पारदके व्यवहारका भी उल्लेख है। किसी किसी धातव औषधका व्यवहार भी अष्टाङ्गहृदयमें है। वाग्भट पहले ब्राह्मण थे। पीछे बौद्धधर्मावलम्बी हुए, ऐसा ही सुना जाता है। उनके ग्रन्थके प्रारम्भमें नमस्कारसूत्रसे ही इसका प्रमाण मिलता है, कि वह बौद्ध थे। मृगाङ्कदत्तके पुत्र अरुणदत्तने अष्टाङ्गहृदयवाग्भटकी एक टीका की। इसका नाम "सर्वाङ्गसुन्दरी" है। सुप्रसिद्ध चतुर्वर्गचिन्तामणि नामक स्मृतिग्रन्थकार सुपण्डित हेमाद्रिने वाग्भटके सूत्रस्थानकी 'आयुर्वेद रसायनाख्य' एक टीका की।

निदान।

माधवकर द्वारा संगृहीत सुप्रसिद्ध निदान ग्रन्थका परिचय देनेका कोई विशेष प्रयोजन नहीं। यह ग्रन्थ सर्वत्र ही सुप्रसिद्ध है। कविराजमात्र ही माधवनिदान पढ़ते हैं और तो क्या, वैद्यक शास्त्रमें जिनका कुछ भी पाण्डित्य नहीं है, वे भी माधवकरके निदानको पढ़ते हैं। विजयरक्षित इस ग्रन्थके 'मधुकोष' नामकी जो टीका कर गये है, वह अत्यन्त उपादेय और यथेष्ट पाण्डित्यपूर्ण है। सम्भवतः ८वीं शताब्दीमें यह ग्रन्थ रचा गया था। वाचस्पतिकृत "आतङ्कदर्पण" नामकी इसकी एक और भी टीका है।

सिद्धयोग।

वृन्द नामक एक चिकित्सक सिद्धयोग ग्रन्थके

रचित हुए हैं। इनमें चरक, सुश्रुत और वाग्भटका पदाङ्क अनुसरण कर वृन्दने औषधका व्यवहारात्मक सिद्धयोग ग्रन्थ प्रणयन किया था। इस इसके बाद चक्रपाणिदत्त-के लिये चक्रदत्त ग्रन्थमें भी इसका परिचय पाते हैं। जैसे—

"यः सिद्धयोगैर्विहितैर्विरोधा।
.... सिद्धयोगः॥"

वृन्दने माधवकरके निदानका अनुसरण कर सिद्ध-योग नाम चिकित्साका ग्रन्थप्रणयन किया था।

चक्रदत्त।

चरक और सुश्रुतके टीकाकार चक्रपाणिदत्तने "चक्र-दत्तसंग्रह" नामक चिकित्साशास्त्रकी एक उत्कृष्ट ग्रन्थ-की रचना की। वृन्द और चक्रपाणि दोनों ही धातव द्रव्यादि औषधोंमें व्यवहार कर गये हैं। यद्यपि नागार्जुनके समयसे ही धातव द्रव्य औषध रूपमें प्रचलित होना आरम्भ हुआ था, किन्तु वृन्द और चक्रदत्तने अधि-कांश धातव पदार्थोंको औषधरूपमें व्यवहार किया था। ईसाके जन्मसे एक हजार बाद प्रायः प्रत्येक चिकित्सा-शास्त्रमें न्यूनाधिक परिमाणमें धातव पदार्थका व्यवहार दिखाई देता है। चक्रपाणिदत्तके पिता महीपालके रसोईअधिकारी गौड़ाधिपके राजचिकित्सक थे। ११वीं शताब्दीके शेषमें चक्रपाणिदत्त ग्रन्थादि प्रणयन करने-में प्रवृत्त हुए। चक्रदत्तने चरक, सुश्रुत और वाग्भट-का पदाङ्क अनुसरण कर ग्रन्थ रचना की। इसी समय से वैद्यक चिकित्सामें तन्त्रका प्रभाव प्रचलित होने लगा। मन्त्रपाठ द्वारा भी औषधके गुण और क्रियादि परिवर्तित होते हैं, इनके ग्रन्थमें इसका भी उल्लेख दिखाई देता है। जैसे—

"अयं मन्त्रः प्रयोक्तव्यः सिद्धसाध्यविधानतः। ॐ नमो भगवते .... स्वाहा, ॐ .... इति ....॥"

चक्रपाणिके रसायनाधिकारमें भी इस तरहके विषय हो सकते हैं। प्रयुक्त किये जा सकते हैं। चक्रदत्तको .... विश्वास थी। इनके ग्रन्थमें इनके समय और इनके .... परिचय दिया हुआ है।

तान्त्रिक युग।

बौद्धयुगका प्रभाव और प्राधान्य लोपके बाद ही तान्त्रिकयुगका आरम्भ हुआ। प्राचीन आयुर्वेदके समय लोगोंके हृदयमें जिन सब विषयोंको प्राप्तिके लिये आग्रहातुर भाव सर्वदा जागरित रहता था, तान्त्रिकयुगमें भी वे ही सब भाव दिखाई देने लगे। रसायन, भूतविद्या और अमर आदिकी ओर लोगोंका ध्यान आकर्षित हुआ। एक श्रेणीके पण्डित रात दिन अपना मस्तिष्क संचालन करने लगे, जिससे समस्त धातुओंको सहज ही स्वर्णमें परिणत किया जावे। इस उद्देश्यसे वे कई तरहके धातव पदार्थ की परीक्षा करनेके लिये रात दिन भूषा प्रस्तुत रखते थे। अनुसन्धानजनित इन भूषोंमें स्वर्ण, रौप्य, ताम्र और लौह, विशे-षतः पारद आदि विविध धातुओंकी परीक्षा की जाती थी। धोखा दे कर प्रकृतिसे मूल्यवान् द्रव्य प्रस्तुत कर रातों रात धनी हो जानेकी इच्छा किसकी नहीं है। फलतः तान्त्रिकयुगमें प्रकृतिके रसायनागार पानेके लोगोंमें इस तरहकी एक भावना लगने लगी।

दूसरी ओर रसायनतन्त्रवर्णित रसायन और रसमाला-परिभाषा, इन्द्रजालरसायनादि औषध ... रसायनमें पारद आदिकी .... प्रवृत्त हुए। जिस इसके पश्चात्कालका प्रादुर्भाव भी बहुत स्थानों प्रचलित हुआ। इन सब घटनाओंके बीचमें उसी समय तान्त्रिकचिकित्साका एक नव प्रवाह भी सहसा इस देशमें प्रवाहित होने लगा। इस समय बौद्ध-तान्त्रिक धातुओंके बहुतेरे चिकित्सक पारदके तत्त्वानु-सन्धानमें अधिकतर मनोयोगी हुए। इन्होंने पारदमें बहुतेरे गुण देखे। पारदका दूसरा नाम रस है। इस रसके सम्बन्धमें ऐसी विपुल आलोचना होने लगी, कि इस रसको लक्ष्य कर धातव द्रव्यादिकी परीक्षा और प्रयोगके सम्बन्धमें बहुतेरे ग्रन्थोंकी सृष्टि की गई। रस-रत्नाकर, रसहृदय, रसेन्द्रचिन्तामणि, रसार्णव, रस-कौमुदी, रसेन्द्रचिन्तामणि, रसेन्द्रसारसंग्रह और रसराज-समुच्चय आदि बहुतेरे ग्रन्थोंके आविर्भावसे तान्त्रिक चिकित्साका यथेष्ट परिपुष्ट हुआ। और भी यथा - सर्वदर्शनसंग्रहमें भी इस "रसेश्वरदर्शन" नामक पारद-माहात्म्यपूर्ण एक दर्शन शास्त्र भी देखते हैं।

यद्यपि पारद-चिकित्साका प्राधान्य प्रदर्शनार्थ इन सब ग्रन्थोंके नामकरणमें ग्रन्थके नामके पहले 'रस' शब्द प्रयुक्त होता है ; किन्तु हीरा, ताम्र, रौप्य, अभ्र और लौह आदि विविध धातुओंके जारण, मारण और शोधन औषधार्थमें व्यवहार-प्रयोग अतीव विस्तृत रूपसे लिखा हुआ है। इन सब ग्रन्थोंमें आधुनिक विज्ञानकी आलोचनाके उपयोगी भी कई विषय दिखाई देते हैं। इस प्रणालीकी चिकित्सा क्रमसे अरबमें और पारसमें प्रचलित हुई। बहुतेरे ग्रन्थ अरबी और पारसीमें अनुवादित हुए हैं।

मुसलमानी युग।

महम्मदके समयमें अरबके सीना नगरमें एक चिकित्सा-शिक्षालय या हकीमी मकतब था। इस शिक्षालयके प्रधान शिक्षक थे हारि-येल-कानदा। ये इस देशसे आयुर्वेदकी शिक्षासे शिक्षित हो कर गये थे। ८वीं शताब्दीमें हारुन-अल-रसीदके पुत्र खलीफा अलमामुनने सबसे पहले फारसी भाषामें चरक और सुश्रुतका अनुवाद कराया। पीछे इनके द्वारा अरबी भाषामें इन ग्रन्थोंका अनुवाद हुआ। बोगदादके खलीफोंकी राजसभामें बहुतेरे संस्कृतज्ञ भारतीय पण्डित रहते थे। इवन आबु उसैबिया द्वारा रचित एक इतिहास ग्रन्थमें इनका नाम मिलता है। ११वीं शताब्दीमें इसी ग्रन्थकारने उक्त ग्रन्थका प्रणयन किया। इनमें कङ्क, जेङ्गर, सञ्जय, शनक और माङ्क आदि भारतीय आयुर्वेदविद् पण्डितोंके नाम लिखे हुए हैं। ये सब भिषक् खलीफाके राजवैद्य पद पर नियुक्त थे। जो सब मुसलमान सम्राट् भारतका शासन कर गये हैं, हिन्दुओंके वेदके प्रति उनमें किसी किसीके विद्वेष रहने पर भी आयुर्वेदके प्रति किसीका भी विद्वेष था, ऐसा मालूम नहीं होता। प्रत्युत कितनी ही राजसभाओं में आयुर्वेद वैद्य नियुक्त रहते थे। चक्रदत्तके टीकाकार शिवदास तत्सामयिक बङ्गालके नवाबके राजवैद्य थे। माधवीय निदानके "आतङ्कदर्पण" नामकी टीकाके रचयिता वाचस्पतिने अपनी ग्रन्थ-भूमिकाके ५वें श्लोकमें लिखा है, उनके पिता प्रमोद महम्मद हमीरके राजवैद्य थे। महम्मद हमीरका दूसरा नाम मैजुद्दीन महम्मद था। ये महम्मद गोरीके नामसे परिचित हैं। ये ११६३ से १२०५ ई० तक दिल्लीके राजा थे। १२३० ई०में आतङ्क-दर्पण रचा गया। इसके २७ वर्ष पहले विजय रक्षितने माधवीय निदानकी मधुकोषव्याख्या समाप्त की। सम्भवतः इससे भी २० वर्ष पहले अरुणदत्तने वाग्भटकी टीका की थी। मुसलमानी अमलके समय अनेक टीका रची गईं। मूलग्रन्थ भी बहुतेरे रचे गये थे। नीचे कितनोंके नाम उल्लेख किये गये,—

१। भावप्रकाश—लटकनके पुत्र भावमिश्र प्रणीत (१५५० ई०)

२। वैद्यामृत—भट्ट महेश्वर प्रणीत (१६२७ ई०)

३। योगचन्द्रिका— पण्डितदत्तके पुत्र लक्ष्मणकृत (१६३३ ई०)

४। वैद्यजीवन—लोलिम्बराजकृत (१६३३ ई०)

५। वैद्यवल्लभ—हस्तिसूरिकृत (१६७० ई०)

६। योगरत्नाकर—जैनाचार्य नारायणशेखरकृत (१६७६ ई०)

७। वैद्यरहस्य—वंशीधरके पुत्र विद्यापतिकृत (१६९८ ई०)

८। चिकित्सासंग्रह—यदुसेनकृत

९। आयुर्वेदप्रकाश—काशीके श्रीमाधवकृत (१७१२ ई०)

१०। ज्वरपराजय—जयरविकृत (१७११ ई०)

ग्रन्थोंकी सूची।

इन कई ग्रन्थोंके सिवा और भी कितने ग्रन्थोंके नाम प्रकाशित नहीं किये गये। इन सब ग्रन्थोंमें मौलिक प्रतिभाका कुछ भी परिचय नहीं मिलता। बहुतेरे ही पाण्डित्य लाभ कर टीका और संग्रह ग्रन्थ लिखते थे। किन्तु प्राचीन आयुर्वेदकी सीमाके बाहर आ नये तथ्योंका उद्भावन करनेका प्रयास इस समय केवल एक तान्त्रिक चिकित्सामें ही कुछ कुछ दिखाई देता है। हम नीचे आयुर्वेदके चरक, सुश्रुत और वाग्भटको छोड़ कर कई प्रधान प्रधान ग्रन्थोंकी सूची भी दे रहे हैं। नीचे जो अकारादि क्रमसे सूची दी गई है, उसे आयुर्वेदके सम्पूर्ण ग्रन्थोंकी सूची न समझना चाहिये।

अगस्त्यसूत्र, अग्निकर्म, अग्निवेशसंहिता, अद्भुत-

दर्शोक्त है। वृन्दने चरक, सुश्रुत और वाग्भटका पदानु अनुसरण कर रुग्विनिश्चयके व्यवहारोपयोगी सिद्धयोग नामक ग्रन्थ प्रणयन किया था। हम इनके बाद चक्रपाणिदत्तके लिखे ग्रन्थमें भी इसका परिचय पाते हैं। जैसे,

"यः सिद्धयोगलिखिताधिकसिद्धयोगा-
नत्रैव निक्षिपति केवलमुद्धरेद्वा।"

वृन्दने माधवकरके निदानका अनुसरण कर सिद्धयोग ग्रन्थ चिकित्साका सम्पादन किया था।

चक्रदत्त।

चरक और सुश्रुतके टीकाकार चक्रपाणिदत्तने "चक्रदत्तसंग्रह" नामक चिकित्साशास्त्रमें एक उत्कृष्ट ग्रन्थकी रचना की। वृन्द और चक्रपाणि दोनों ही धातव द्रव्यादि औषधार्थ व्यवहार कर गये हैं। यद्यपि वाग्भटके समयसे ही धातव द्रव्य औषध रूपसे प्रचलित होना आरम्भ हुआ था, किन्तु वृन्द और चक्रदत्तने अधिकतर धातव पदार्थोंको औषधरूपमें व्यवहार किया था। ईसाके ग्यारहवें शताब्द बाद प्रायः प्रत्येक चिकित्साग्रन्थमें न्यूनाधिक परिमाणमें धातव पदार्थोंका व्यवहार दिखाई देता है। चक्रपाणिदत्तके पिता महीपालके उत्तराधिकारी नयपालके राजचिकित्सक थे। इन्हीं ग्रन्थकारोंके आदर्शमें चक्रपाणिदत्त प्रभृति ग्रन्थ प्रणयन करनेमें प्रवृत्त हुए। चक्रदत्तने चरक, सुश्रुत और वाग्भटका पदानु अनुसरण कर ग्रन्थ रचना की। इसी समयसे वैद्यक चिकित्सामें तन्त्रका प्रभाव प्रबलित होने लगा। तन्त्रशास्त्र द्वारा भी औषधके गुण और क्रियादि वर्द्धित होती हैं, इसके ग्रन्थमें उसका भी उल्लेख दिखाई देता है। जैसे—

"अयं मन्त्रः प्रदातव्यस्त्रिफलाभिमन्त्रणे। ॐ नमो विश्वामित्राय अमृतं कुरु कुरु, मम चक्षूंषि शोधय शोधय स्वाहा॥"

चक्रपाणिके रसायनाधिकारमें भी इस तरहके कितने ही मन्त्र उद्धृत किये जा सकते हैं। चक्रदत्तकी व्याख्यामें शिवदास सेनने तत्त्वचन्द्रिका नामकी टीका लिखी थी। इसके ग्रन्थमें इनके समय और इनके वंशादिका परिचय दिया हुआ है।

तान्त्रिक युग।

बौद्धयुगका अवसान और ब्राह्मण्य धर्मके बाद ही तान्त्रिकयुगका आरम्भ हुआ। प्राचीन भारतवर्षके समय लोगोंके हृदयमें जिस तरह निर्वाणकी प्राप्तिके लिये आन्तरिक भावना सर्वदा जाग्रत रहती थी, तान्त्रिकयुगमें भी वे ही सब भाव दिखाई देने लगे। इन्द्रजाल, भूतविद्या और जादू आदिकी ओर लोगोंका ध्यान आकर्षित हुआ। एक श्रेणीके पण्डित रात दिन अपना मस्तिष्क संचालन करने लगे, जिससे सामान्य धातुओंको स्वर्ण हो सकनेमें परिणत किया जावे। इस उद्देश्यसे वे कई तरहके धातव पदार्थको परीक्षा करनेके लिये रात दिन मूषा तैयार रखते थे। अनुमान प्रकाशित इस युगसे स्वर्ण, रौप्य, ताम्र और लौह, विशेषतः पारद आदि विविध धातुओंकी परीक्षा की जाने लगी। थोड़ा दे कर प्रकृतिसे मूल्यवान् द्रव्य प्राप्त कर रातों रात धनी हो जानेकी इच्छा किसको नहीं है। फलतः तान्त्रिकयुगमें प्रकृतिके रत्नभण्डार पानेके लोभमें इस तरहकी एक तान्त्रिक धारा चलने लगी।

दूसरी ओर रसायनतन्त्रकर्त्ताओंने रसायन और रसधातुपरिपाकको, कल्याणकारकाख्यान ग्रन्थ भैरवाचार्य श्मशानमें पड़ी शवके ऊपर बैठ साधनामें प्रवृत्त हुए। जिस तरहके वज्रयानका प्रादुर्भाव भी इसी समय प्रवर्तित हुआ। इन सब घटनाओंके होनेसे उसी समय तान्त्रिकचिकित्साका एक नया प्रवाह भी क्रमशः इस देशमें प्रवाहित होने लगा। इस समय धीरे धीरे धातुओंसे बहुतेरे चिकित्सक पारदके अनुसन्धानमें अधिकतर मनोयोगी हुए। उन्होंने पारदमें बहुतेरे गुण देखे। पारदका दूसरा नाम रस है। रसके सम्बन्धमें ऐसी विपुल आलोचना होने लगी, कि इस रसको लक्ष्य कर धातव द्रव्यादिकी परीक्षा और प्रयोगके सम्बन्धमें बहुतेरे ग्रन्थोंकी सृष्टि की गई। रसाकर, रसहृदय, रसेश्वर सिद्धान्त, रसार्णव, रसकौमुदी, रसेन्द्रचिन्तामणि, रसेन्द्रसारसंग्रह और रसरत्नसमुच्चय आदि बहुतेरे ग्रन्थोंके आविर्भावसे तान्त्रिक चिकित्साका प्रभाव परिपुष्ट हुआ। और जैसा सर्वदर्शनसंग्रहमें भी हम "रसेश्वरदर्शन" नामक पारद-माहात्म्यपूर्ण एक दर्शन शास्त्र पा देते हैं।

यद्यपि पारद-चिकित्साका प्राधान्य प्रदर्शनार्थ इन सब ग्रन्थोंके नामकरणमें ग्रन्थके नामके पहले 'रस' शब्द प्रयुक्त होता है ; किन्तु हीरा, ताम्र, रौप्य, अभ्र और लौह आदि विविध धातुओंके जारण, मारण और शोधन औषधार्थमें व्यवहार प्रयोग अतीव विस्तृत रूपसे लिखा हुआ है। इन सब ग्रन्थोंमें आधुनिक विज्ञानकी आलोचनाके उपयोगी भी कई विषय दिखाई देते हैं। इस प्रणालीकी चिकित्सा क्रमसे अरबमें और पारसमें प्रवर्त्तित हुई। बहुतेरे ग्रन्थ अरबी और पारसीमें अनुवादित हुए हैं।

मुसलमानी युग।

महम्मदके समयमें अरबके सोना नगरमें एक चिकित्सा-शिक्षालय या हकीमी मकतब था। इस शिक्षालयके प्रधान शिक्षक थे हारिःवेल-कानदा। वे इस देशसे आयुर्वेदकी शिक्षासे शिक्षित हो कर गये थे। ८वीं शताब्दीमें हारुन-अलल-रसीदके पुत्र खलीफा अलमामुनने सबसे पहले फारसी भाषामें चरक और सुश्रुतका अनुवाद कराया। पीछे इनके द्वारा अरबी भाषामें इन ग्रन्थोंका अनुवाद हुआ। बोगदादके खलीफोंकी राजसभामें बहुतेरे संस्कृतज्ञ भारतीय पण्डित रहते थे। इबन आबु तसेबिया द्वारा रचित एक इतिहास ग्रन्थमें इनका नाम मिलता है। ११वीं शताब्दीमें इसी ग्रन्थकारने उक्त ग्रन्थका प्रणयन किया। इसमें कङ्क, जेङ्गर, सञ्जय, शनक और माङ्क आदि भारतीय आयुर्वेदविद् पण्डितोंके नाम लिखे हुए हैं। ये सब भिषक् खलीफाके राजवैद्य पद पर नियुक्त थे। जो सब मुसलमान सम्राट् भारतका शासन कर गये हैं, हिन्दुओंके वेदके प्रति उनमें किसी किसीके विद्वेष रहने पर भी आयुर्वेदके प्रति किसीका भी विद्वेष था, ऐसा मालूम नहीं होता। प्रत्युत कितनी ही राजसभाओंमें आयुर्वेद वैद्य नियुक्त रहते थे। चक्रदत्तके टीकाकार शिवदास तत्सामयिक बङ्गालके नवाबके राजवैद्य थे। माधवीय निदानके "आतङ्कदर्पण" नामकी टीकाके रचयिता वाचस्पतिने अपनी ग्रन्थ-भूमिकाके ५वें श्लोकमें लिखा है, उनके पिता प्रमोद महम्मद हम्मीरके राजवैद्य थे। महम्मद हम्मीरका दूसरा नाम मैजुद्दीन महम्मद था। ये महम्मद गोरीके नामसे परिचित हैं। ये ११६३ से १२०५ ई० तक दिल्लीके राजा थे। १२३० ई०में आतङ्क-दर्पण रचा गया। इसके २७ वर्ष पहले विजय रक्षितने माधवीय निदानकी मधुकोषव्याख्या समाप्त की। सम्भवतः इससे भी २० वर्ष पहले अरुणदत्तने वाग्भटकी टीका की थी। मुसलमानी अमलके समय अनेक टीका रची गई। मूलग्रन्थ भी बहुतेरे रचे गये थे। नीचे कितनोंके नाम उल्लेख किये गये, —

१। भावप्रकाश—लटकनके पुत्र भावमिश्र प्रणीत (१५५० ई०)

२। वैद्यामृत—भट्ट महेश्वर प्रणीत (१६२७ ई०)

३। योगचन्द्रिका—पण्डितदत्तके पुत्र लक्ष्मणकृत (१६३३ ई०)

४। वैद्यजीवन—लोलिम्बराजकृत (१६३३ ई०)

५। वैद्यवल्लभ—हस्तिरुचिकृत (१६७० ई०)

६। योगरत्नाकर—जैनाचार्य नारायणशेखरकृत (१६७६ ई०)

७। वैद्यरहस्य—वंशीधरके पुत्र विद्यापतिकृत (१६९८ ई०)

८। चिकित्सासंग्रह—वल्लसेनकृत

९। आयुर्वेदप्रकाश—काशीके श्रीमाधवकृत (१७११ ई०)

१०। ज्वरपराजय—जयरविकृत (१७६१ ई०)

ग्रन्थोंकी सूची।

इन कई ग्रन्थोंके सिवा और भी कितने ग्रन्थोंके नाम प्रकाशित नहीं किये गये। इन सब ग्रन्थोंमें मौलिक प्रतिभाका कुछ भी परिचय नहीं मिलता। बहुतेरे ही पाण्डित्य लाभ कर टीका और संग्रह ग्रन्थ लिखते थे। किन्तु प्राचीन आयुर्वेदकी सीमाके बाहर आ नये तत्त्वोंका उद्भावन करनेका प्रयास इस समय केवल एक तान्त्रिक चिकित्सामें ही कुछ कुछ दिखाई देता है। हम नीचे आयुर्वेदके चरक, सुश्रुत और वाग्भटको छोड़ कर कई प्रधान प्रधान ग्रन्थोंकी सूची भी दे रहे हैं। नीचे जो अकारादि क्रमसे सूची दी गई है, उसे आयुर्वेदके सम्पूर्ण ग्रन्थोंकी सूची न समझना चाहिये।

अगस्त्यसूत्र, अग्निकर्मन, अग्निवेशसंहिता, अङ्गक्रम-

व्यवहार है। इसमें चरक, सुश्रुत और वाग्भटका पदानु अनुसरण कर [illegible] रोगनिदान प्रणयन किया था। इस ग्रन्थके बाद चक्रपाणिदत्त-के लिखे चक्रदत्त ग्रन्थमें भी इसका परिचय पाते हैं। जैसे-

"[illegible]।

[illegible]॥"

वृन्दने माधवकरके निदानका अनुसरण कर सिद्ध-योग नाम चिकित्साग्रन्थका प्रणयन किया था।

चक्रदत्त।

चरक और सुश्रुतके टीकाकार चक्रपाणिदत्तने "चक्र-दत्त" नामक चिकित्साग्रन्थकी एक अद्वितीयग्रन्थ-की रचना की। वृन्द और चक्रपाणि दोनों ही धातव द्रव्यादि औषधार्थ व्यवहार कर गये हैं। यद्यपि नागार्जुनके समयसे ही धातव द्रव्य औषध रूपसे प्रचलित होना आरम्भ हुआ था, किन्तु वृन्द और चक्रदत्तने अधि-कतासे धातव पदार्थोंको औषधरूपमें व्यवहार किया था। इनके बादसे इस प्रकार प्रायः प्रत्येक चिकित्सा-ग्रन्थमें न्यूनाधिक परिमाणसे धातव पदार्थोंका व्यवहार दिखाई देता है। चक्रपाणिदत्तके पिता महापात्रके रसवत्यधिकारी नयपालके राजचिकित्सक थे। इन्होंने ग्रन्थोंके आदर्शमें चक्रपाणिदत्त ग्रन्थादि प्रणयन करने-में प्रवृत्त हुए। चक्रदत्तने चरक, सुश्रुत और वाग्भट-का पदानु अनुसरण कर ग्रन्थ रचना की। इसी समय से वैद्यक चिकित्सामें तन्त्रका प्रभाव प्रवर्तित होने लगा। तान्त्रिक द्वारा ही औषधके गुण और क्रियादि वर्द्धित होती है, इनके ग्रन्थमें इसका भी उल्लेख दिखाई देता है। जैसे—

"[illegible] निवसन्त्यमितात्मने। ॐ [illegible] स्वाहा॥"

चक्रपाणिके व्याख्याकारोंने भी इस तरहके कितने ही मन्त्र उद्धृत किये जा सकते हैं। चक्रदत्तको स्वकल्पित औषधोंका परिवृंहण कर [illegible] भी ग्रन्थमें [illegible] विस्तार भी। इसके ग्रन्थमें इनके मतसे और इनके [illegible] परिचय दिया हुआ है।

तान्त्रिक युग।

बौद्धयुगका अवसान और तन्त्रोंका प्रचार होनेके बाद ही तान्त्रिकयुगका आरम्भ हुआ। प्राचीन भारतवर्षके समय लोगोंके हृदयमें जिन सब विषयोंकी प्राप्तिके लिये आकांक्षा प्रबल सर्वदा जाग्रत रहता था; तान्त्रिकयुगमें भी वे ही सब भाव दिखाई देने लगे। इन्द्रजाल, भूतविद्या और अमर होनेकी और सोनेका ध्यान आकर्षित हुआ। एक श्रेणीके पण्डित रात दिन इसका अनुसन्धान करने लगे, जिससे मन्दतर धातुओंको स्वर्ण हो जानेमें परिणत किया जावे। इस उद्देश्यसे वे कई तरहके धातव पदार्थकी परीक्षा करनेके लिये रात दिन मूषा तैयार रखते थे। अनुमान इस युगमें स्वर्ण, रौप्य, ताम्र और सीस, [illegible] पारद आदि विविध धातुओंकी परीक्षा की जाती थी होता है कि इसलिये मूल्यवान् द्रव्य प्राप्त कर रातों रात धनी हो जानेकी इच्छा किसको नहीं है। फलतः तान्त्रिक युगमें प्रकृतिके रहस्यद्वार खोलनेके लोगोंमें इस तरहकी एक आकांक्षा जगने लगी।

दूसरी ओर रसतन्त्रके अधीन रसायन और रसमात्रा-[illegible], [illegible] रसाचार्य [illegible] रचनाओंमें [illegible] प्रवृत्त हुए। जिन ग्रन्थोंके पश्चात् प्रादुर्भाव था बौद्ध प्रचलित हुआ। इन सब घटनाओंके बीचमें इसी समय तान्त्रिकचिकित्साका एक नया प्रकार भी सहसा इस देशमें प्रचलित होने लगा। इस समय [illegible] भारतके साधुओंमें बहुतेरे चिकित्सक पारदके [illegible] सम्मोहित हुए। इन्होंने पारदमें बहुतेरे गुण देखे। पारदका दूसरा नाम रस है। इस रसके सम्बन्धमें ऐसी विपुल आलोचना होने लगी, कि इस रसको मूल कर धातव द्रव्यादिकी परीक्षा और प्रयोगके सम्बन्धमें बहुतेरे ग्रन्थोंकी सृष्टि की गई। रसाकर, रसहृदय, [illegible], रसार्णव, रस-कौमुदी, रसेन्द्रचिन्तामणि, रसेन्द्रसारसंग्रह और रसरत्न समुच्चय आदि बहुतेरे ग्रन्थोंके आविर्भावसे तान्त्रिक चिकित्साका कलेवर परिपुष्ट हुआ। और [illegible] सर्वदर्शनसंग्रहमें भी हम "रसेश्वरदर्शन" नामक पारद-माहात्म्यपूर्ण एक दर्शन शास्त्र भी देखते हैं।

यद्यपि पारद-चिकित्साका प्राधान्य प्रदर्शनार्थ इन सब ग्रन्थोंके नामकरणमें ग्रन्थके नामके पहले 'रस' शब्द प्रयुक्त होता है ; किन्तु हीरा, ताम्र, रौप्य, अभ्र और लौह आदि विविध धातुओंके जारण, मारण और शोधन औषधार्थमें व्यवहार प्रयोग अतीव विस्तृत रूपसे लिखा हुआ है। इन सब ग्रन्थोंमें आधुनिक विज्ञानकी आलोचनाके उपयोगी भी कई विषय दिखाई देते हैं। इस प्रणालीकी चिकित्सा क्रमसे अरबमें और पारसमें प्रवर्त्तित हुई। बहुतेरे ग्रन्थ अरबी और पारसीमें अनुवादित हुए हैं।

मुसलमानी युग।

महम्मदके समयमें अरबके सीना नगरमें एक चिकित्सा-शिक्षालय या हकीमी मकतब था। इस शिक्षालयके प्रधान शिक्षक थे हारि-वेल-कालदा। ये इस देशसे आयुर्वेदकी शिक्षासे शिक्षित हो कर गये थे। ८वीं शताब्दीमें हारुन-अलल-रसीदके पुत्र खलीफा अलमामुनने सबसे पहले फारसी भाषामें चरक और सुश्रुतका अनुवाद कराया। पीछे इनके द्वारा अरबी भाषामें इन ग्रन्थोंका अनुवाद हुआ। बोगदादके खलीफोंकी राजसभामें बहुतेरे संस्कृतज्ञ भारतीय पण्डित रहते थे। इयन आबु तसेबिया द्वारा रचित एक इतिहास ग्रन्थमें इनका नाम मिलता है। ११वीं शताब्दीमें इसी ग्रन्थकारने उक्त ग्रन्थका प्रणयन किया। इसमें कङ्क, जेज्जट, सञ्जय, शनक और माङ्क आदि भारतीय आयुर्वेदविद् पण्डितोंके नाम लिखे हुए हैं। ये सब भिषक् खलीफाके राजवैद्य पद पर नियुक्त थे। जो सब मुसलमान सम्राट् भारतका शासन कर गये हैं, हिन्दुओंके वेदके प्रति उनमें किसी किसीके विद्वेष रहने पर भी आयुर्वेदके प्रति किसीका भी विद्वेष था, ऐसा मालूम नहीं होता ; प्रत्युत कितनी ही राजसभाओंमें आयुर्वेद वैद्य नियुक्त रहते थे। चक्रदत्तके टीकाकार शिवदास तत्सामयिक बङ्गालके नवाबके राजवैद्य थे। माधवीय निदानके "आतङ्कदर्पण" नामकी टीकाके रचयिता वाचस्पतिने अपनी ग्रन्थ-भूमिकाके ५वें श्लोकमें लिखा है, उनके पिता प्रमोद महम्मद हम्मीरके राजवैद्य थे। महम्मद हम्मीरका दूसरा नाम मैजुद्दीन महम्मद शा। ये महम्मद गोरीके नामसे परिचित हैं। ये ११९३ से १२०५ ई० तक दिल्लीके राजा थे। १२३० ई०में आतङ्क-दर्पण रचा गया। इसके २७ वर्ष पहले विजय रक्षितने माधवीय निदानकी मधुकोषव्याख्या समाप्त की। सम्भवतः इससे भी २० वर्ष पहले अरुणदत्तने वाग्भटकी टीका की थी। मुसलमानी अमलके समय अनेक टीका रची गई। मूलग्रन्थ भी बहुतेरे रचे गये थे। नीचे कितनोंके नाम उल्लेख किये गये, —

१। भावप्रकाश—लटकनके पुत्र भावमिश्र प्रणीत (१५५० ई०)

२। वैद्यामृत—भट्ट महेश्वर प्रणीत (१६२७ ई०)

३। योगचन्द्रिका—पण्डितदत्तके पुत्र लक्ष्मणकृत (१६३३ ई०)

४। वैद्यजीवन—लोलिम्बराजकृत (१६३३ ई०)

५। वैद्यवल्लभ—हस्तिसूरिकृत (१६७० ई०)

६। योगरत्नाकर—जैनाचार्य नारायणशेखरकृत (१६७६ ई०)

७। वैद्यरहस्य—वंशीधरके पुत्र विद्यापतिकृत (१६९८ ई०)

८। चिकित्सासंग्रह—वङ्गसेनकृत

९। आयुर्वेदप्रकाश—काशीके श्रीमाधवकृत (१७५१ ई०)

१०। ज्वरपराजय—जयरविकृत (१७९९ ई०)

ग्रन्थोंकी सूची।

इन कई ग्रन्थोंके सिवा और भी कितने ग्रन्थोंके नाम प्रकाशित नहीं किये गये। इन सब ग्रन्थोंमें मौलिक प्रतिभाका कुछ भी परिचय नहीं मिलता। बहुतेरे ही पाण्डित्य लाभ कर टीका और संग्रह ग्रन्थ लिखते थे। किन्तु प्राचीन आयुर्वेदकी सीमाके बाहर जा नये तत्त्वोंका उद्भावन करनेका प्रयास इस समय केवल एक तान्त्रिक चिकित्सामें ही कुछ कुछ दिखाई देता है। हम नीचे आयुर्वेदके चरक, सुश्रुत और वाग्भटको छोड़ कर कई प्रधान प्रधान ग्रन्थोंकी सूची भी दे रहे हैं। नीचे जो अकारादि क्रमसे सूची दी गई है, उसे आयुर्वेदके सम्पूर्ण ग्रन्थोंकी सूची न समझना चाहिये।

अगस्त्यसूक्त, अग्निकर्म, अग्निवेशसंहिता, अङ्गप्रम-

रत्नमाला—माधव, द्रव्यगुणविवेक, द्रव्यगुणशतश्लोकी—त्रिमल्लभट्ट, द्रव्यगुणसंग्रह—चक्रपाणिदत्त, द्रव्यगुणसंग्रहटीका—निश्चलकर, द्रव्यगुणसंग्रहटीका—शिवदास, द्रव्यगुणाकर, द्रव्यगुणादर्शनिघण्ट, द्रव्यगुणाधिराज, द्रव्यरत्नावली, द्रव्यशुद्धि, द्रव्यादर्श, धन्वन्तरिग्रंथ, धन्वन्तरिनिघण्टु, धन्वंतरिपञ्चक, धन्वंतरिविलास, धन्वंतरिसारनिधि, धातुनिदान, धातुमञ्जरी—सदाशिव, धातुमारण—शार्ङ्गधर, धातुरत्नमाला—देवदत्त, नवपोधिका, नागराजपद्धति, नागार्जुनीय—नागार्जुन, नाड़ीग्रंथ, नाड़ीनिदान, नाड़ीपरीक्षा—दत्तात्रेय, नाड़ीपरीक्षा—मार्कण्डेय, नाड़ीपरीक्षादिचिकित्साक्रम—रत्नपाणि, नाड़ीप्रकरण, नाड़ीप्रकाश—गोविन्द, नाड़ीप्रकाश—रामराज, नाड़ीप्रकाश—शङ्करसेन, नाड़ीविज्ञान—गोविन्दरामसेन, नाड़ीविज्ञानीय, नाड़ीशास्त्र, नानौषधविधि, नानाशास्त्रनाममाला—धन्वन्तरि, नारायणविलास—नारायणराज, निघण्ट—राधाकृष्ण, निघण्टुराज (राजनिघंण्ट), निघण्टुशेष, निघण्टुसंग्रहनिदान, निघण्टुसार, निदान—माधव, निदान—वाग्भट, निदान (गरुड़पुराणोक्त), निदानप्रदीप—नागनाथ, निदानसंग्रह, निदानस्थान—अग्निवेश, निबन्धसंग्रह, निबन्ध (सुश्रुतटीका) डल्लनाचार्य, निबन्धसंग्रह—लङ्कानाथ, नृसिंहोदय—वीरसिंह, नेत्राञ्जन—अश्विनीज, पञ्चकर्मविधि, पञ्चकर्मविकार—वाग्भट, पञ्चमविलास, पञ्चसायक, पथ्यनिदान, पथ्यापथ्य—रघुदेव, पथ्यापथ्यनिघण्ट—कैयदेव पण्डित, पथ्यापथ्यनिर्णय, पथ्यापथ्यविधान, पथ्यापथ्यविधि—वक्षरूप, पथ्यापथ्यविनिश्चय, पथ्यापथ्यविबोध (कैयदेव पण्डित), पदार्थगुणचिन्तामणि, पदार्थचंद्रिका - वाग्भट, पदार्थचंद्रिका (अष्टाङ्गहृदयटीका) चंद्रनन्दन—या आयुर्वेदरसायन—हेमाद्रि परहितसंहिता—श्रीनाथ पण्डित, परिभाषासंग्रह—श्यामदास, पर्यायमुक्तावली, पाकादिसंग्रह, पाकाध्याय, पाकावली, पारदकल्प, पालाम- कल्प, पीयूषसागर, पीयूषसार, पुरातन योगसंग्रह, पुरुषार्थप्रबोध, प्रबोधचंद्रोदय—क्षेमराज, प्रयोगसार, प्रयोगामृत—वैद्यचिंतामणि, बसवराजीय—बसवराज, बालचिकित्सा—कल्याण भट्ट, बालचिकित्सा—धन्वन्तरि,

बालचिकित्सा वन्दि मिश्र, बालरक्षा (शिशुरक्षारत्न)—पृथ्वी मल्ल, बालतंत्र—कल्याण, बालबोध—वानराचार्य, बिन्दुसंग्रह, बृहतीकल्प, बृहत्कल्पस्थान, भारद्वाजीय, भावप्रकाश—भावमिश्र, भावप्रकाश—वाग्भट, भावप्रकाशकोष, भावस्वभाव—माधवदेव, भास्वती—शतानन्द भिषक्चक्रचित्तोत्सव—हंसराज, भिषक्चक्रनिदान, भीषग्विनोद, भेड़संहिता, भैषजकल्प, भैषज कल्पसार संग्रह, भैषजतर्क, भैषजमर्थन्व, भैषजप्रसाद, भैषज्यरत्नाकर—वैद्याराम, भैषज्यरत्नावली—गोविन्ददास विशारद, भैषज्यसार—उपेंद्रमिश्र, भैषज्यसारामृतसंहिता—प्राणनाथवैद्य, भोजनकस्तूरी, मगधपरिभाषा, मणिरत्नाकर—वंशदेव, मनिधुकर, मधुकोष—मरपाल दीक्षित, इसकी व्याख्या—मधुकोष, (माधवनिदानटीका) विजयरक्षित, मधूमती—नारायण कविराज, मनोरमा—शिवदत्त, महाप्रकाश, महाराजनिघण्टु, मातङ्गलीला, मातङ्गलीलाप्रकाशिका, मात्राप्रयोग, माहेश्वरकल्प, मुग्धबोधावश्य ज्वरादि रोगचिकित्सा, मुष्टीकल्प, मूत्रपरीक्षा और नाड़ीपरीक्षा, मृत्युवल्लचिकित्सा, मृतसञ्जीवनी, यन्त्रोद्धार, योगचन्द्रिका—लक्ष्मण, योगचन्द्रिकाविलास, योगचिकित्सा, योगचिन्तामणि—गणेश, योगचिन्तामणि—धन्वन्तरि, योगचिन्ता (वैद्यक संग्रह)—हर्षकीर्तिसूरि, योगतरङ्गिणी (बृहती और लघ्वी)—त्रिमल्लभट, योगदीपिका—धन्वन्तरि, योगप्रदीप, योगमाला—योगसिद्ध, योगमुक्तावली—(वैद्यचिन्तामणि उद्धृत) योगमुक्तावली पद्मनाभदेव, योगरत्न, योगरत्नमाला, इसकी टीका—गुणाकर (१२४०), योगरत्नावली—गङ्गाधर, योगशतक—वररुचि, योगटीका—अमितप्रभ, योगटीका—पूर्णसेन, योगटीका—रूपनारायण, योगशतक—मदनसिंह, योगशतक—लक्ष्मीदास, योगशतक—चिदम्बरवैद्य, योगसार—अश्विनीकुमार, योगसारसंग्रह—तुलसीदास, योगसारसमुच्चय - गणपति व्यास, योगसुधानिधि—वन्दिमिश्र, योगाञ्जन—मणि, योगाधिकार, योगामृत—गोपालदास (१७७२ ई०) योगामृतटीका सुबोधिनी—(१७९२ ई०) योगियाद्द, रत्नकलाचरित्र—लोलिम्बराज, रत्नदीपिका, रत्नमाला—रामनन्दन, रत्नसारचिन्तामणि, रत्नाकर, रत्नावली—कवीन्द्रचन्द्र,

लक्षण, अङ्गादिवृत्ति, अजीर्णमञ्जरी—काशीनाथ, अजीर्णमञ्जरी—काशिराज, अजीर्णमञ्जरीटीका—रमानाथ वैद्य, अजीर्णामृतमञ्जरी, अञ्जननिदान—अग्निवेश, अनवलोभमन्त्र, अनिङ्ग, अनुपानमञ्जरी—पीताम्बर, अनुभवसार—सच्चिदानन्दयति, अन्तर्यामी ब्राह्मण, अम्बुचिकित्सा, अन्नपानविधि, अमृतमञ्जरी या अजीर्णमञ्जरी—काशीनाथ और काशिराज, अशीतवातनिदान, अष्टधातुमारणविधि, अष्टाङ्गनिघण्टु, अष्टाङ्गसंग्रह, अष्टाङ्गहृदयनिघण्टु, अष्टाङ्गहृदयसंहिता—वाग्भट, इसके टीकाकार अरुणदत्त, आशाधर, चन्द्रचन्दन, रामनाथ और हेमाद्रि, अष्टाङ्गहृदयसंग्रह, आत्रेयसंहिता, आत्रेयसंहितासार, आनन्दमाला—आनन्दसिद्ध, आयुर्वृद्धि, आयुर्वेद,—श्रीसुख लता, आयुर्वेददीपिका, आयुर्वेदप्रकाश—माधव उपाध्याय, आयुर्वेदप्रकाश—वामन, आयुर्वेदप्रकाश—सुश्रुत, आयुर्वेदमहोदधि—श्रीसुख, आयुर्वेदमहोदधि—सुषेण, आयुर्वेदरससार—माधव, आयुर्वेदरसायन, (अष्टाङ्गहृदयटीका)-हेमाद्रि। आयुर्वेदसर्वस्व—भोजराज, आयुर्वेदसिद्धान्तसम्बोधिनी—रामेश्वर, आयुर्वेदसुधानिधि, आरोग्यदर्पण, आरोग्यमाला, उदकमञ्जरी, उदकलक्षण, उन्मादचिकित्सापटल, उमामहेश्वरसंवाद-(सन्तोक) उपानिदान, उष्णपाककल्प,—आत्रेय, ऋतुचर्या, ऋतुसंहार, औषधकल्प, औषधग्रन्थ, औषधप्रयोग—धन्वन्तरि, कङ्कालाध्याय—भञ्जनाचार्य, कणादसंहिता—कणाद, कनकसिंहप्रकाश—रामकृष्ण वैद्यराज, कनकसिंहविलास, कर्पूरप्रकाश, कर्मदीपवृत्ति, कर्मप्रकाश—नारायणभट्ट, कर्मविपाक, कल्पखण्ड, कल्पतरु—मल्लिनाथ, कल्पभूषण, कल्याणकारक—उग्रादित्याचार्य, कल्याणघृत, कामदेवघटीसारसंग्रह, कामभूप, कामरत्न (वृहत् और लघु), कामरत्नटीका—श्रीनाथ, कौपालिकग्रन्थ, क्षाराधिकार, क्षेमकुतूहल—क्षेमराज या क्षेमशर्मा, गणाध्याय—परमेश्वररक्षित, गदनिग्रह—सोढ़ल, गदराजरत्न, गदविनिश्चय—वृन्द, गदविनोदनिघण्टु, गन्धकरसायन, गन्धदीपिका, गुटिकाधिकार, गुटिकाप्रकार, गुड़ूच्यादि—धन्वन्तरि, गुणज्ञान, गुणज्ञाननिघण्टु, गुणपटल, गुणपाठ—वाग्भट, गुणपाठ—धन्वन्तरि, गुणमाला, गुणयोगप्रकाश, गुणरत्नमाला, गुणरत्नाकर—व्रजभूषण, गुणसंग्रह—सोढ़ल, गुणागुणी—सुषेण, गुणादर्श, गूढ़बोधकसंग्रह—देवसेन, गूढ़निग्रह, गोविन्दप्रकाश, गोविन्दसोमसेतु, गौरीकाञ्चलिका—शिव, चन्द्रकला, चन्द्रोदयविधान, चमत्कारचिन्तामणि—लोलिम्बराज, चरकसंहिता—चरक, चिकित्सा—धन्वन्तरि, चिकित्साकलिका—तीसट, चिकित्साकलिका—दयाशङ्कर, चिकित्साकलिका-टीका—तीसटपुत्र चन्द्रट, चिकित्साकौमुदी—काशीराम, चिकित्साचिन्तामणि, चिकित्साञ्जन, चिकित्सातत्त्वज्ञान—धन्वन्तरि, चिकित्सातन्त्र, चिकित्सादर्पण—दिवोदास, चिकित्सादीपिका—धन्वन्तरि, चिकित्सानागार्जुनीय, चिकित्सापद्धति—काशीराज, चिकित्सापरिभाषा—नारायणदास, चिकित्सामालिका, चिकित्सामृत—गणेश, चिकित्सामृतसार—देवदास, चिकित्सायोगशत, चिकित्सारत्न, चिकित्सार्णव—सदानन्दशुक्ल, चिकित्सालेश—गोवर्द्धन, चिकित्साशतश्लोक, चिकित्सासंग्रह—धन्वन्तरि, चिकित्सासंग्रह—चक्रपाणिदत्त, चिकित्सासंग्रहटीका—शिवदाससेन, चिकित्सासर्वसंग्रह, चिकित्सासर्वसागर—परमेश्वर, चिकित्सासार—धन्वन्तरि, चिकित्सासार—हरिभारती, चिकित्सासारसंग्रह—क्षेमशर्माचार्य, चिकित्सासारसंग्रह—वङ्गसेन, चिकित्सासारसमुच्चय, चिकित्सास्थानटिप्पन—चक्रपाणिदत्त, चिकित्सित, चोपचीनीप्रकाश, चोपचीनीसेवनविधि, जगद्वैद्यक, जराचिकित्सा, जल्पकल्पतरु—(चरक टीका) गङ्गाधर कविरत्न, जीवदान—च्यवन, ज्योतिष्मतीकल्प, ज्वरकल्प, ज्वरचिकित्सा, ज्वरतिमिरभास्कर—चामुण्डकायस्थ (१६२३) ज्वरत्रिशती—शार्ङ्गधर, ज्वरदर्पणमाला, ज्वरनिर्णय—नारायण, ज्वरपराजय—जयरव, ज्वरशान्ति, ज्वरस्तोत्र, ज्वरहरस्तोत्र, ज्वरांकुश, ज्वरादिरोगचिकित्सा, तत्त्वकणिका—भारतकर्ण, तन्त्रराज—ज्ञावाल, तन्त्रोक्तचिकित्सा, तैलोपवेशनविधि, त्रिशती, त्रैलोक्यडम्बर, दगपरीक्षा, दिव्यरसेन्द्रसार—धनपति, दूतपरीक्षा, देहसिद्धिसाधन, द्रव्यगुण—गोपाल, द्रव्यगुणदीपिका—कृष्णदत्त, द्रव्यगुणराजवल्लभ—नारायणदास कविराज, द्रव्यगुण-

रत्नमाला—माधव, द्रव्यगुणविवेक, द्रव्यगुणशतश्लोकी—त्रिमल्लभट्ट, द्रव्यगुणसंग्रह—चक्रपाणिदत्त, द्रव्यगुणसंग्रहटीका—निश्चलकर, द्रव्यगुणसंग्रहटीका—शिवदास, द्रव्यगुणाकर, द्रव्यगुणादर्शनिघण्ट, द्रव्यगुणाधिराज, द्रव्यरत्नावली, द्रव्यशुद्धि, द्रव्यादर्श, धन्वन्तरिग्रंथ, धन्वन्तरिनिघण्टु, धन्वंतरिपञ्चक, धन्वंतरिविलास, धन्वंतरिसारनिधि, धातुनिदान, धातुमञ्जरी—सदाशिव, धातुमारण—शार्ङ्गधर, धातुरत्नमाला—देवदत्त, नयबोधिका, नागराजपद्धति, नागार्जुनीय—नागार्जुन, नाड़ीग्रंथ, नाड़ीनिदान, नाड़ीपरीक्षा—दत्तात्रेय, नाड़ीपरीक्षा—मार्कण्डेय, नाड़ीपरीक्षादिचिकित्साकथन—रत्नपाणि, नाड़ीप्रकरण, नाड़ीप्रकाश—गोविन्द, नाड़ीप्रकाश—रामराज, नाड़ीप्रकाश—शङ्करसेन, नाड़ीविज्ञान—गोविन्दरामसेन, नाड़ीविज्ञानीय, नाड़ीशास्त्र, नानौषधविधि, नानाशास्त्रनाममाला—धन्वन्तरि, नारायणविलास—नारायणराज, निघण्ट—राधाकृष्ण, निघण्टुराज (राजनिघंट), निघण्टुशेष, निघण्टुसंग्रहनिदान, निघण्टुसार, निदान—माधव, निदान—वाग्भट, निदान (गरुड़पुराणोक्त), निदानप्रदीप—नागनाथ, निदानसंग्रह, निदानस्थान—अग्निवेश, निबन्धसंग्रह, निबन्ध (सुश्रुतटीका) डल्लनाचार्य, निबन्धसंग्रह—लङ्कानाथ, नृसिंहोदय—वीरसिंह, नेत्राञ्जन—अग्निवेश, पञ्चकर्मविधि, पञ्चकर्मविचार—वाग्भट, पञ्चप्रविलास, पञ्चसायक, पथ्यनिदान, पथ्यापथ्य—रघुदेव, पथ्यापथ्य निघण्ट—कैयदेव पण्डित, पथ्यापथ्यनिर्णय, पथ्यापथ्यविधान, पथ्यापथ्यविधि—दलकव, पथ्यापथ्यविनिश्चय, पथ्यापथ्यविवेक (कैयदेव पण्डित), पदार्थगुणचिन्तामणि, पदार्थचन्द्रिका—वाग्भट, पदार्थचन्द्रिका (अष्टाङ्गहृदयटीका) चन्द्रनन्दन—या आयुर्वेदरसायन—हेमाद्रि परहितसंहिता—श्रीनाथ पण्डित, परिभाषासंग्रह—श्यामदास, पर्यायमुक्तावली, पाकादिसंग्रह, पाकाध्याय, पाकावली, पारदकल्प, पालाश कल्प, पीयूषसागर, पीयूषसार, पुरातन योगसंग्रह, पुरुषार्थप्रबोध, प्रबोधचन्द्रोदय—क्षेमजय, प्रयोगसार, प्रयोगामृत—वैद्यचिन्तामणि, बसवराजीय—बसवराज, बालचिकित्सा—कल्याण भट्ट, बालचिकित्सा—धन्वन्तरि, बालचिकित्सा—चन्द्र मिश्र, बालरक्षा (शिशुरक्षारत्न)—पृथ्वी मल्ल, बालतंत्र—कल्याण, बालबोध—शंकराचार्य, बिन्दुसंग्रह, बृहतीकल्प, बृहत्कल्पज्ञान, भारद्वाजीय, भावप्रकाश—भावमिश्र, भावप्रकाश—वाग्भट, भावप्रकाशकोष, भावस्वभाव—माधवदेव, भास्वती—शतानन्द भिषक्चक्रचित्तोत्सव—हंसराज, भिषक्चक्रनिदान, भीमविनोद, भेडसंहिता, भेषजकल्प, भेषज कल्पसार संग्रह, भेषजतर्क, भेषजसर्वस्व, भैषज्यप्रसाद, भैषज्यरत्नाकर—धेचाराम, भैषज्यरत्नावली—गोविन्ददास विशारद, भैषज्यसार—उपेंद्रमिश्र, भैषज्यसारामृतसंहिता—प्राणनाथवैद्य, भोजनकस्तूरी, मगधपरिभाषा, मणिरत्नाकर—कैयदेव, मतिमुकुर, मधुकोष—जयपाल दीक्षित, इसकी व्याख्या—मधुकोष, (माधवनिदानटीका) विजयरक्षित, मधुमती—नारायण कविराज, मनोरमा—शिवदत्त, महाप्रकाश, महाराजनिघण्टु, मातङ्गलीला, मातङ्गलीलाप्रकाशिका, मात्राप्रयोग, माहेश्वरतन्त्र, मुग्धबोधाख्य अशादि रोगचिकित्सा, मुण्डीकल्प, मूत्रपरीक्षा और नाड़ीपरीक्षा, मृत्युरत्नाचिकित्सा, मृतसञ्जीवनी, यक्ष्मोद्धार, योगचन्द्रिका—लक्ष्मण, योगचन्द्रिकाविलास, योगचिकित्सा, योगचिन्तामणि—गणेश, योगचिन्तामणि—धन्वन्तरि, योगचिन्ता (वैद्यक संग्रह)—हर्षकीर्तिसूरि, योगतरङ्गिणी (बृहती और लघ्वी)—त्रिमल्लभट्ट, योगदीपिका—धन्वन्तरि, योगप्रदीप, योगमाला—नागसिद्ध, योगमुक्तावली—(वैद्यचिन्तामणि उद्धृत) योगमुक्तावली वल्लभदेव, योगरत्न, योगरत्नमाला, इसकी टीका—गुणाकर (१२४०), योग रत्नावली—गङ्गाधर, योगशतक—वररुचि, योगटीका—अमितप्रभ, योगटीका—पूर्णसेन, योगटीका—रूपनारायण, योगशतक—मदनसिंह, योगशतक—लक्ष्मीदास, योगशतक—विदग्धवैद्य, योगसार—अश्विनीकुमार, योगसारसंग्रह—तुलसीदास, योगसारसमुच्चय—गणपतिव्यास, योगसुधानिधि—वन्दिमिश्र, योगाञ्जन—मणि, योगाधिकार, योगामृत—गोपालदास (१३७२ ई०) योगामृतटीका सुबोधिनी—(१७५२ ई०) योनिव्यापद्, रत्नकला चरित लोलिम्बराज, रत्नदीपिका, रत्नमाला—राजवल्लभ, रत्नसारचिन्तामणि, रत्नाकर, रत्नावली—कवीन्द्रचन्द्र,

रत्नावली—राधामाधव, रसकङ्कालि—कङ्कालि, रसकल्पलता—काशीनाथ, रसकषाय—वैद्यराज, रसकौतुक, रसकौमुदी—माधवकर, रसकौमुदी—शक्तिवल्लभ, रसगोविन्द—गोविन्द, रसचन्द्रिका—नीलाम्बरपुरोहित, रसचिन्तामणि, रसतत्त्वसार, रसदर्पण, रसदीपिका—आनन्दानुभव, रसदीपिका—रामराज, रसनिबन्ध, रसपद्धति—बिन्दु, रसपद्धति टीका—महादेवपण्डित, रसपथ्यचन्द्रिका, रसपारिजात, रसप्रकाशसुधाकर—यशोधर, रसप्रदीप—प्राणनाथ, रसप्रदीप—रामचन्द्र, रसप्रदीप-वैद्यराज, रसभस्मविधि, रसभेषजकल्प—सूर्यपण्डित, रसभोगमुक्तावली, रसमञ्जरी—शालिनाथ, रसमञ्जरी-टीका—रमानाथ, रसमणि—हरिहर, रसमुक्तावली, रसयामल, रसयोगमुक्तावली—नरहरिभट्ट, रसरत्न—श्रीनाथ, रसरत्नप्रदीप—रामराज, रसरत्नप्रदीपिका, रसरत्नमाला—नित्यनाथ, रसरत्नसमुच्चय—नित्यनाथसिद्ध, रसरत्नसमुच्चय—नित्यानन्द, रसरत्नसमुच्चय—सिंहगुप्त पुत्र वाग्भट वाहट, रसरत्नाकर, रसरत्नाकर—आदिनाथ, रसरत्नाकर—नित्यनाथसिद्ध, रसरत्नाकर—रेवणसिद्ध, रसरत्नाकर—शुक्रपाणि, रसरत्नावली—गुरुदत्तसिंह, रसरत्नार्णव, रसरहस्य, रसराज, रसराजलक्ष्मी—रामेश्वरभट्ट, रसराजशङ्कर, रसराजशिरोमणि—परशुराम, रसराजहंस, रसवैशेषिक, रसशब्दसारणिनिघण्टु, रसशोधन, रससंस्कार, रससंकेत, रससंकेतकलिका—चामुण्डकायस्थ, रससंग्रहसिद्धान्त—अच्युत गोणिगपुत्र, रससागर, रससार—गोविन्दाचार्य, रससारसंग्रह—गङ्गाधरपण्डित, रससारसमुच्चय, रससारामृत—रामसेन, रससिद्धान्तसंग्रह, रससिद्धान्तसागर, रससिद्धिप्रकाश, रससिंधु, रससुधाकर, रससुधानिधि—मन्त्रराजगुरु, रससुधाम्भोधि, रससूतस्थान, रसहृदय—गोविन्द, उसकी टीका—चतुर्भुजमिश्र, रसहेमन् या कङ्कालीयरसहेमन्, रसाद्रिशुद्धि, रसाधिकार—हरिहर रसाध्याय (कङ्कालाध्याय वार्तिक), रसाध्याय—जयदेव, रसाम्भोधि, रसायनतरङ्गिणी, रसायनविधि, रसार्णव, रसार्णवकल्प, रसालङ्कार, रसावतार, रसेन्द्र, रसेन्द्रकल्पद्रुम—रामकृष्णभट्ट, रसेन्द्रकल्पद्रुम—रमानाथगणक, रसेन्द्रचूड़ामणि—सोमदेव, रसेन्द्रमङ्गल, रसेन्द्रसंहिता, रसेन्द्रसारसंग्रह—गोपालकृष्ण, रसेश्वरसिद्धान्त रसोपरस—माधवोपाध्यायकृत आयुर्वेदप्रकाशोक्त रसोपरसशोधन, राजवल्लभ (पर्यायरत्नमाला), राजहंस, राजहंससुधाम्भोध, रावणी चिकित्सा (अर्कप्रकाश)—लङ्केश्वर रावण, रुग्विनिश्चय (निदान)—माधवकर, रुग्विनिश्चयटीका सिद्धान्तचन्द्रिका, रुग्विनिश्चय—गणेशभिषग्, रुग्विनिश्चय—(निदानप्रदीप)—नागनाथ, रुग्विनिश्चय—भवानीसहाय, रुग्विनिश्चय—रामनाथवैद्य, रुग्विनिश्चय (आतङ्कदर्पण) वैद्यवाचस्पति, रुग्विनिश्चय (मधुकोष)—विजयरक्षित, रुद्रश्रीकण्ठ, रुद्रदत्त, रुद्रयामलीयचिकित्सा, रूपमञ्जरी—रोगनिर्णय, रोगप्रदीप—गोवर्द्धनवैद्य, रोगमूर्च्छितानप्रकरण, रोगलक्षण, रोगविनिश्चय (रुग्विनिश्चय), रोगान्तकसार, रोगारम्भ, रोलिम्बराजीय, लक्षणरत्न, लक्षणोत्सव—लक्ष्मण, लघुनिदान—सुरजित्, लघुरत्नाकर, लङ्घनपथ्यनिर्णय, लोहचिन्तामणि, लोकप्रदीपाख्यचन्द्रिकानिदान, वसंतराजचिकित्सा, वाजीकरण, वाजीकरणतंत्र, वाजीकरणाधिकार, वातज्वरादिनिर्णय—नारायण भिषक्, वातप्रमेहचिकित्सा, वातरोगहरप्रायश्चित्त, वासिष्ठी, वासुदेवानुभव—वासुदेव, विचारसुधाकर—राजज्योतिर्विद्, विद्यानानन्दकरी (वैद्यजीवन टीका), विद्यागदत्त, विश्वकोष या विश्वप्रकाशकोष—महेश्वर, विषतंत्र, विषमञ्जरी, विषवैद्य, विषहरचिकित्सा, विषहरमंत्रप्रयोग, विषहरमंत्रौषध, विषोद्धार, वृत्तरत्नावली—मणिराम, वृन्दयोगशतक, वृन्द—श्रीवृन्दभट्ट, वृन्दटीका, वृंदमाधव, वृंदसंहिता, वृन्दसिंधु—वृंद, वैद्यकग्रंथपञ्चाणि और टीका, वैद्यकपरिभाषा, वैद्यकयोगचन्द्रिका—लक्ष्मण, वैद्यकरत्नावली—कविचंद्र, वैद्यककल्पतरु, वैद्यककल्पद्रुम—शुकदेव, वैद्यकशास्त्रवर्णन—नारायणदास, वैद्यकसर्वस्व—नकुल, वैद्यकसार—राम, वैद्यकसारसंग्रह (रायसिंहोत्सव). वैद्यकसारसंग्रह (वैद्यहितोपदेश)—श्रीकण्ठशम्भु, वैद्यकानन्त, वैद्यकुतूहल—वंशीधर, वैद्यकौस्तुभ, वैद्यचंद्रोदय—त्रिमल्लवैद्य वैद्यचिकित्सा, वैद्यचिंतामणि—नारायणभट्ट, वैद्य

चिन्तामणि—रामचन्द्र, वैद्यचिन्तामणि—वल्लभेन्द्र, वैद्यजीवन—चाणक्य, वैद्यजीवन—लोलिम्बराज, वैद्यजीवनटीका—ज्ञानदेव वा दामोदर, वैद्यजीवन (शिशानाग्दकरी)—प्रयागदत्त, वैद्यजीवन—भवानीसहाय, वैद्यजीवन—रुद्रदत्त, वैद्यजीवन—हरिनाथ वैद्यविंशटीका—चन्द्राट, वैद्यदर्पण—दलपति, वैद्यदर्पण—प्राणनाथ, वैद्यनवबोधिका, वैद्यप्रदीप—उद्धवमिश्र, वैद्यबोधसंग्रह—भीमसेन, वैद्यमनोत्सव—वंशीधर, वैद्यमनोत्सव—बालकराम, वैद्यमनोत्सव—रामनाथ, वैद्यमनोत्सव—श्रीधरमिश्र, वैद्यमनोरमा, वैद्यमहोदधि—वैद्यराज, वैद्यमालिका, वैद्ययोग, वैद्यरत्न, वैद्यरत्नमाला—मल्लिनाथ, वैद्यरत्नाकरभाष्य—रामकृष्ण, वैद्यरसमञ्जरी—शालिनाथ, वैद्यरसरत्न, वैद्यरसायन, वैद्यराजतन्त्र, वैद्यवल्लभ—उदयरुचि, वैद्यवल्लभ—वल्लभ, वैद्यवल्लभ—हस्तिरुचि, वैद्यवल्लभ वा ज्वरत्रिशती—शार्ङ्गधर, वैद्यटीका—नारायण, वैद्यटीका—मेघभट्ट, वैद्यवल्लभा—शतश्लोकीटीका वैद्यविनोद—शङ्करभट्ट, वैद्यविनोद—शिवानन्द, वैद्यटीका—रामनाथ, वैद्यविलास—रघुनाथ, वैद्यविलास—राघव, वैद्यविलास—लोलिम्ब, वैद्यवृन्द—नारायण, वैद्यशास्त्रसारसंग्रह—व्यासगणपति, वैद्यसंक्षिप्तसार—सोमनाथमहापात्र, वैद्यसंग्रह, वैद्यसर्वस्व—मनुज, वैद्यसर्वस्व—लक्ष्मणकायस्थ, वैद्यसार—हर्षकीर्त्ति, वैद्यसारसंग्रह—गोपालदास, वैद्यसारोद्धार, वैद्यसूत्रटीका, वैद्यहितोपदेश—शिवपण्डित, वैद्यामृत, वैद्यामृत—मोरेश्वर, वैद्यामृत—श्रीधर, वैद्यामृतलहरी—मथुरानाथशुक्ल, वैद्यालङ्कार, वैद्यावतंस—लोलिम्बराज, व्याधिसिद्धाञ्जन, व्याध्यर्गल—दामोदर, व्रणचिकित्सा, शतश्लोकी—भवधानसरस्वती, शतश्लोकी—विमल, शतश्लोकी—वाग्भट, शतश्लोकी—बोपदेव, शतश्लोकीटीका—वैद्यवल्लभ, शतश्लोकीटीका—कृष्णदत्त, शतश्लोकी (भावार्थदीपिका) वेणीदत्त, शतश्लोकी (शतश्लोकी चन्द्रकला)—बोपदेव, शरच्चन्द्रिका—वैद्यचक्रपाणिदत्त, शर्करारत्नावली, शरीरलक्षण, शरीरविनिश्चयाधिकार—गङ्गाराम दास, शरीरस्थानभाष्य, शल्यतन्त्र, शाकनिघण्टु (अमिताविद्या)—सीतारामशास्त्री, शारीरिव—श्रीमुख, शारीरवैद्य, शार्ङ्गधरसंहिता—शार्ङ्गधर, शार्ङ्गधरसंहिताटीका, शार्ङ्गधरटीका (शार्ङ्गधरशारीरटीका)—आढमल्ल, शार्ङ्गधरटीका (गूढार्थदीपक) काशीराम, शार्ङ्गधर—रुद्रधर भट्ट, शार्ङ्गधरटीका—बोपदेव, शालिहोत्र (अश्व और गजचिकित्सा)—शालिहोत्रमुनि, शालिहोत्र—नकुल शालिहोत्र—भोजराज, शालिहोत्रसार, शालिहोत्रोद्भव, शाल्मलीकल्प, शास्त्रदर्पण—वाग्भट्ट, शिलाजतुकल्प, श्लेष्मज्वरनिदान, श्वेतमार्षकल्प, षड्मनिघण्टु, षड्मरत्नमाला, संख्यानिदान, संज्ञासमुच्चय—शिवदत्तमिश्र, सन्निपातकलिका—रुद्रभट्ट, सन्निपातकलिका—शम्भुनाथ, सन्निपातचन्द्रिका—भवदेव, सन्निपातचिकित्सा, सन्निपातनाड़ीलक्षण, सन्निपातमञ्जरी, सम्पन्नम्लानचन्द्रिका, सर्वसारसंग्रह—चक्रदत्त, सहस्रयोग, सारकलिका—उदयङ्कर, सारकौमुदी, सारसंग्रह—कालीप्रसादवैद्य, सारसंग्रह—चक्रपाणि, सारसंग्रह—रघुनाथ, सारसंग्रह—विश्वनाथ, सारसंग्रह (अश्वचिकित्सा)—गण, सारसंग्रहनिघण्टु, सारसमुच्चय (अश्वचिकित्सा) सारसिन्धु, सारावली, सारोद्धारसंग्रह, सिद्धमन्त्र—केशव, सिद्धटीका (सिद्धमन्त्रप्रकाश) बोपदेव, सिद्धयोग—वृन्द, सिद्धयोगसंग्रह (अभ्यायुर्वेद)—गण, सिद्धयोगसंग्रह—शालिहोत्र, सिद्धयोगसंग्रह—वृन्द, सिद्धसारसंहिता, सिद्धान्तचन्द्रिका (रुग्विनिश्चयटीका) सिद्धान्तमञ्जरी—बोपदेव, सिद्धौषधसंग्रह (तत्त्वकणिका) सुधासागर, सुवर्णसार, सुश्रुतसार, सूतमहोदधि, सूतार्णव, सौभाग्यचिन्तामणि, स्तम्भनप्रकार, स्वप्नपरीक्षा, स्वरविधि, स्वरस्वरूप, हंसनिदान, हरप्रबोधिका, हिकमतप्रकाश (अरबी ग्रंथका अनुवाद)—महादेवपण्डित, हिकमतप्रदीप (अरबी ग्रंथका अनुवाद), हितोपदेश—वैद्यहितोपदेश।

वैद्यचिन्तामणि—एक आयुर्वेदवित्, वैद्यराजके पुत्र और नारायण कविराजके छात्र। इन्होंने प्रयोगामृत नामक एक वैद्यक ग्रन्थकी रचना की थी।

वैद्यजाति—वैद्य कहनेसे पहले चिकित्सक मात्र ही समझे जाते थे। सब जातियोंमें जो व्यक्ति या वंश चिकित्सा व्यवसाय करता था, वह वैद्य नामसे पुकारा जाता था। इस तरह ब्राह्मणसे ले कर चण्डाल बहुत जातियोंमें

वैद्योपाधि देती जाती है। किन्तु कुछ दिनके बाद यह वैद्य शब्द किसी जातिविशेषके प्रति व्यवहृत होने लगा। चिकित्सा-व्यवसायी वैद्य जाति पूर्व समयमें अम्बष्ठ नामसे ही प्रसिद्ध थी। वैद्य कहनेसे इसी अम्बष्ठ जातिका ही बोध होता था। यह अम्बष्ठ जाति भी एक तरहकी नहीं है।

तरह तरहके अम्बष्ठोंकी उत्पत्ति।

इन अम्बष्ठोंकी उत्पत्तिको ले कर नाना मुनियोंके नाना मत हैं। नीचे वे सब प्राचीन मत उद्धृत किये जाते हैं—

१। गौतम धर्मसूत्रमें लिखा है—

"अनुलोमा अनन्तरैकान्तरद्व्यन्तरासु जाताः।
सवर्णाम्बष्ठोग्रनिषाददौष्यन्तपारशवाः।" (४।१६)

अर्थात् अनन्तरज, एकान्तरज, और द्व्यन्तरज, क्रमसे जात अनुलोम हो सवर्ण, अम्बष्ठ, उग्र निषाद, दौष्यन्त और पारशव जाति हैं। बौधायन-धर्मसूत्रमें भी उक्त मतका समर्थन हुआ है। जैसे—

"ब्राह्मणात् क्षत्रियायां ब्राह्मणो वैश्यायामम्बष्ठः शूद्रायां निषादः।" (८।३)

अर्थात् ब्राह्मणके औरससे और विवाहिता क्षत्रियकन्याके गर्भसे ब्राह्मण, ब्राह्मणसे वैश्याके गर्भसे अम्बष्ठ और शूद्रसे निषाद।

भगवान् मनुने भी धर्मसूत्रानुसार ही लिखा है—

"ब्राह्मणात् वैश्यकन्यायामम्बष्ठो नाम जायते।" (१०।८)

अर्थात् ब्राह्मणसे वैश्यकन्याके गर्भसे अम्बष्ठ नामकी जाति हुई है।

२। महर्षि याज्ञवल्क्यने लिखा है—

"विप्रान् मूर्द्धावसिक्तो हि क्षत्रियायां विशः स्त्रियाम्।
अम्बष्ठः शूद्र्यां निषादो जातः पारशवोऽपि वा॥" (१।९२)

अर्थात् ब्राह्मणके औरस तथा क्षत्रियाके गर्भसे मूर्द्धावसिक्त, ब्राह्मणसे वैश्यकी स्त्रीके गर्भसे अम्बष्ठ और ब्राह्मणसे शूद्राके गर्भसे निषाद या पारशव जाति उत्पन्न हुई है।

३। औशनस धर्मशास्त्रमें है—

"वैश्यायां विधिना विप्रात् जातो ह्यम्बष्ठ उच्यते।
कृष्याजीवो भवेत् तस्य तथैवाग्नेयवृत्तिकः॥ ३१
ध्वजिनी जीविका वापि ह्यम्बष्ठाः शस्त्रजीविनः।"

ब्राह्मणसे विधिपूर्वक वैश्यामें जो उत्पन्न हुआ है, उसको अम्बष्ठ कहते हैं। यह कृषिजीवी है, आग्नी करना और ध्वजा पकड़ना ही उसकी जीविका है। अम्बष्ठ शस्त्रजीवी हैं—

४। महर्षि नारदके मतसे—

"उग्रः पारशवश्चैव निषादश्चानुलोमतः।
अम्बष्ठो मागधश्चैव क्षत्ता च क्षत्रियात्मजः॥"

उग्र, पारशव और निषाद अनुलोमक्रमसे इनकी उत्पत्ति हुई है। अम्बष्ठ, मागध और क्षत्ता—ये कई जातियां क्षत्रियसे उत्पन्न हुई हैं।

५। पीछे फिर उन्होंने कहा है—

"अम्बष्ठोग्रौ तथा पुत्रावेवं क्षत्रियवैश्ययोः
एकान्तरस्तु चाम्बष्ठो वैश्यायां ब्राह्मणात् सुतः॥
शूद्रायां क्षत्रियात् तद्वत् निषादो नाम जायते।
शूद्रा पारशवं सूते ब्राह्मणादुत्तरं सुतम्॥" (१२।१०७-१०८)

क्षत्रिय और वैश्यसे अम्बष्ठ और उग्र जाति हुई है। ब्राह्मण द्वारा वैश्यामें एकान्तर अम्बष्ठ, क्षत्रिय द्वारा वैश्यामें इस तरह निषाद नामकी जाति और ब्राह्मण द्वारा शूद्राके गर्भसे पारशव पुत्रकी उत्पत्ति हुई है।

६। मनुटीकाकार रामचन्द्रने एक स्थानमें लिखा है—

"नृप कन्यायां वैश्ये उत्पन्ने शूद्रे उत्पन्ने सति उभौ अम्बष्ठौ भवतः।" (मनु टी० १०।७)

वैश्यके औरस तथा क्षत्रियकन्याके गर्भसे और शूद्रके औरस और क्षत्रियकन्याके गर्भसे दो प्रकारके अम्बष्ठ होते हैं।

७। स्मार्त्त रामचंद्रने "अम्बष्ठानां चिकित्सितम्" इसकी टीकामें लिखा है—

"अम्बष्ठानां शूद्रादम्बष्ठा जाताः चिकित्सनं शास्त्रं वैद्यक"॥ (१०।४७)

* मिताक्षराकार विज्ञानेश्वरने यहां पर 'विशः स्त्रियां' अर्थमें 'विवाहित वैश्यकन्या' अर्थ किया है।

अर्थात् गन्धर्वोंकी चिकित्सा अर्थात् वैद्यकशास्त्र ही उपजीविका है। यह अम्बष्ठ शूद्रोंसे उत्पन्न हैं।

८। बृहद्धर्मपुराणके उत्तरखण्डमें (१०।३३—३६) लिखा है—

"अयमन्यः सङ्करो हि वेणस्य वशगः पुरा।
वैश्यां समुपसंगम्य चक्रेऽन्यमपि सङ्करम्॥
तस्मादम्बष्ठनाम तु सङ्करोऽयं धरापते।
अस्माभिरस्य संस्कारः कर्त्तव्यो द्विजसत्तमाः।
येनासौ संस्कृतो भूत्वा पुनर्जातिः स्यात्तु च॥

व्यास उवाच।

इत्युक्त्वा ते द्विजगणाः स्मृत्वा नासत्यदस्रकौ।
तयोरनुग्रहाद्विप्र दयावन्तो द्विजातयः॥
आयुर्वेदं ददौ तस्मै वैद्यनाम च पुष्कलम्।
तेनासौ पापशून्योऽभूदम्बष्ठख्यातिसंयुतः॥
चारुरूपधरो भूत्वा विप्राज्ञां शिरसाकरोत्।
प्रणम्य भक्तितो विप्रान् सोऽम्बष्ठो विप्रसत्तम॥
कृताञ्जलिपुटस्तस्थौ ब्राह्मणाश्च तदाब्रुवन्॥

ब्राह्मणा ऊचुः।

अस्माभिर्यानि शास्त्राणि कृतानि सङ्करोत्तम।
तानि तुभ्यञ्च दत्तानि गृहीत्वा कुशलीभव॥
चिकित्साकुशलो भूत्वा कुशली तिष्ठ भूतले।
शूद्रधर्मान् समाश्रित्य वैदिकानि करिष्यथ॥
इत्युक्तस्तैस्तदाम्बष्ठस्तथेति कृतवानभूत्॥"

हे भूपते! यह और-एक सङ्कर है, यह जाति भी वेणकी वशीभूत थी। ब्राह्मणने वैश्यामें उपगत हो कर इस संकरकी सृष्टि की है। इसीसे इस जातिका अम्बष्ठ नाम पड़ा है। विप्रसे इसका जन्म हुआ है, इससे हमें इसका कुछ संस्कार करना चाहिये। जिसके द्वारा संस्कृत हो कर ये पुनर्जातिके समान हों। व्यासने कहा,—विप्रोंने यह कह कर अश्विनीकुमारद्वयका स्मरण किया। उभयके अनुग्रहसे दयावान् विप्रोंने अम्बष्ठको आयुर्वेद दे उसका वैद्य नाम रखा, उसी समयसे इस जातिकी दो उपाधियां हुईं—वैद्य और अम्बष्ठ। अम्बष्ठगण सुन्दर मूर्त्ति धारण कर ब्राह्मणोंकी आज्ञा शिरोधार्यपूर्वक भक्तिभावसे प्रणाम कर हाथ जोड़ खड़े हुए। इस पर विप्रोंने कहा—हे वर्णसंकरोंके प्रधान! हम लोगोंने जितने सब शास्त्रोंकी रचना की है, उन्हें भी तुम लोगोंको हम दे रहे हैं। तुम लोग इन सबका अध्ययन कर चिकित्सा विद्यामें पारदर्शी बन कुशलसे रहो। तुम शूद्र-धर्मका आश्रय ले तदुपयोगी वैदिककार्योंका अनुष्ठान करो। ब्राह्मणोंके ऐसा कहने पर अम्बष्ठ "जो आज्ञा" कह कर अपनेको कृतार्थ बोध करने लगे।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके ब्रह्मखण्डमें दो तरहसे वैद्य जातिकी उत्पत्तिकी बात लिखी है। जैसे—

९। "इत्येवमाद्या विप्रेन्द्र सच्छूद्राः परिकीर्त्तिताः।
शूद्राविशोस्तु करणोऽम्बष्ठो वैश्याद्विजन्मनोः।"
(१०।१८)

हे विप्रेन्द्र! ये ही आदि सत्शूद्रके नामसे ख्यात हैं। शूद्रागर्भसे तथा वैश्यके औरससे करण और द्विजातिसे वैश्यागर्भसे अम्बष्ठ हुए हैं।

१०। "वर्णसंकरदोषेण बह्व्यश्च धृतजातयः।
तासां नामानि संख्याश्च को वा वक्तुं क्षमो द्विज॥
वैद्योऽश्विनीकुमारेण जातश्च विप्रयोषिति।
वैद्यवीर्येण शूद्रायां बभूवुर्बहवो जनाः॥
ते च ग्राम्यगुणज्ञाश्च मन्त्रौषधिपरायणाः।
तेभ्यश्च जाताः शूद्रायां ये व्यालग्राहिणो भुवि॥

शौनक उवाच।

कथं ब्राह्मणपत्न्यां तु सूर्यपुत्रोऽश्विनीसुतः।
अहो केन विपाकेन वीर्याधानं चकार ह॥

सौतिरुवाच।

गच्छन्तीं तीर्थयात्रायां ब्राह्मणीं रविनन्दनः।
ददर्श कामुकः शान्तां पुष्पोद्याने च निर्जने॥
तया निवारितो यत्नात् बलेन बलवान् सुरः।
अतीव सुन्दरीं दृष्ट्वा वीर्याधानं चकार सः॥
द्रुतं तत्याज गर्भं सा पुष्पोद्याने मनोहरे।
सद्यो बभूव पुत्रश्च तप्तकाञ्चनसन्निभः॥
सपुत्रा स्वामिनो गेहं जगाम व्रीडिता तदा।
स्वामिनं कथयामास यन्मार्गे दैवसङ्कटम्॥
विप्रो रोषेण तत्याज तञ्च पुत्रं स्वकामिनीम्।
सरिद्बभूव योगेन सा च गोदावरी स्मृता॥
पुत्रं चिकित्साशास्त्रञ्च पाठयामास यत्नतः।
नानाशिल्पञ्च मन्त्रञ्च स्वयं स रविनन्दनः॥"

(ब्र०ख० १०।१२०-१३१)

अर्थात् वर्णसंकर दोषसे नाना जातियोंका नाम सुना जाता है। उनके नाम और संख्या बतलाना किसका साध्य है। अश्विनीकुमारके औरस तथा ब्राह्मणपत्नीके गर्भसे वैद्य जातिकी उत्पत्ति हुई है। वैद्यवीर्य तथा शूद्राके गर्भसे नाना जातियां हुईं। ये नाना वृक्ष वनस्पतियोंको जानते हैं, झाड़फूक करते हैं तथा रोग निवारण करते हैं। फिर इन सब (वेद्रिया)से और शूद्राके गर्भसे व्यालग्राही या संपेरोंका जन्म हुआ है। शौनकने पूछा, कि सूर्यपुत्र अश्विनीकुमारने किस तरह किस दुर्विपाकसे ब्राह्मणपत्नीके गर्भमें वीर्यपात किया था? सौतिने कहा, एक ब्राह्मणी तीर्थयात्रामें गई थी। निर्जन पुष्पोद्यानमें उस थान्ता ब्राह्मणीको देख कर अश्विनीकुमार कामविह्वल हो गये। ब्राह्मणीने भर सक निवारण किया, फिर देवताने उसके रूप पर मोहित हो बलपूर्वक उसके साथ संभोग किया। ब्राह्मणीने उस मनोहर पुष्पोद्यानमें ही गर्भ त्याग कर दिया। उससे तप्तकाञ्चन तुल्य शीघ्र ही एक बालक उत्पन्न हुआ। ब्राह्मणी उस बालकको ले कर घर गई और उस पर पथमें जो दैवी संकट उपस्थित हुआ था, उसने उसका सब हाल स्वामीसे कह सुनाया। ब्राह्मणने अत्यन्त क्रोधित हो कर पुत्रके साथ भार्याका त्याग किया। उस समय ब्राह्मणीने योगबलसे देह-त्याग कर गोदावरी नदीका रूप धारण कर लिया। अश्विनीकुमारोंने आ कर पुत्रको भलीभांति चिकित्साशास्त्र, शिल्पकार्य तथा मन्त्र सिखाया।

११। निर्णयसिन्धुकार प्रसिद्ध स्मार्त कमलाकरने प्राचीन स्मृति वचनोंको उद्धृत कर दिखाया है।

"ब्राह्मणेनोग्रकन्यायामम्बष्ठ नाम जायते।
स करोति मनुष्याणां चिकित्सां रोगिणामपि॥"

(शूद्रकमलाकर)

अर्थात् ब्राह्मणके औरस और आसुरी कन्याके गर्भसे अम्बष्ठ नामकी जाति हुई है। यह जाति मनुष्य और अस्वास्थ रोगियोंकी चिकित्सा किया करती है।

१२।१३।—कमलाकर भट्टने इसके बाद भी दो तरहके अम्बष्ठोंका उल्लेख किया है,—"विप्रात् वैश्यायां क्षत्रात् शूद्रायाश्च इति द्वौ अम्बष्ठौ" अर्थात् ब्राह्मण और वैश्याके संसर्गसे तथा क्षत्रिय और शूद्राकन्याके संसर्गसे जो पुत्र उत्पन्न होते हैं—वे दोनों अम्बष्ठ कहे जाते हैं।

१४। मेधातिथिने मनुसंहिताके १०।८ श्लोककी भाष्यमें लिखा है—

"एकान्तरा ब्राह्मणस्य वैश्या तत्र जातोऽम्बष्ठः।
स्मृत्यन्तरे भृज्जकण्टक इत्युक्तः"

इसके बाद १०।२१ श्लोकके भाष्यमें मेधातिथिने फिर कहा है—

"स ह्यनुलोमत्वान्नपापात्मा भवं चासंस्कृतात्मनो व्रात्याज्जायतोऽनधिकारित्वात् कः"

अर्थात् ब्राह्मणसे वैश्याके गर्भसे अम्बष्ठ हुआ है, अन्य स्मृतिमें उसका नाम भृज्जकण्टक लिखा है। यह जाति अनुलोम रूपसे पापात्मा नहीं है। किन्तु असंस्कृतात्मा व्रात्यसे उत्पन्न गर्भजात होनेसे यह वैदिक कार्यके अनधिकारी है।

१५। कविराज राघवने अपने वैद्यकुलदर्पणमें लिखा है,—"अपि च स्कन्दपुराणे,—

युधिष्ठिर उवाच।
धन्वन्तरिर्महाभागः समुत्पन्नः कथं भुवि।
अभवत् सर्वतत्त्वज्ञ! तन्मे वद महामुने।
मैत्रेय उवाच।
शृणु राजन् कथं जातो धन्वन्तरिरिहैव [illegible]।
महर्षि र्गालवो नाम कश्चिद्‌गाढ़ो वनम्॥
जगाम तत्र भ्रमणादतिश्रान्तकलेवरः।
ततो निर्जने तस्मात् तृष्णया परिपीड़ितः॥
ततो मुनिवर्हिर्देशे कन्यामेकां ददर्श सः।
तां दृष्ट्वा हृष्टचित्तोऽसौ बभाषे मुनिपुङ्गवः॥
हे कन्ये त्वं जलं देहि प्राणरक्षां कुरुष्व मे।
अवहास्या नु मे प्राणास्तस्माद्देहि जलं शुभे॥
ततः सा कलसं भूमौ निधायातिष्ठदुत्तमा।
गालवस्तेन तोयेन स्नात्वा तोयं पपौ च तु॥
प्राणान्तकोऽपि दोषोऽत्र नास्तीति चिन्तयन् मुनिः।
प्रायश्चित्तं करिष्यामि पश्चादस्य कुकर्मणः॥
एवं विधाय प्रोवाच तां कन्यामतिशोभिताम्।
शस्तपुत्रं यं ते कन्या जायतां मम गौरवात्॥

ततः प्रोक्तवतो कन्या न मे पाणिग्रहोऽभवत् ।
वीरभद्राभिधानां हि जानियात्मुनिसत्तम ।
विचिन्त्य मुनिस्तामादायाजगामाश्रमकं ततः ॥
मुनीनामाश्रमे नीत्वा उवाच हर्षमानसः ।
भद्रं कृतं मुने कर्म कन्यामानयता त्वया ॥
वैश्यायां वीरभद्रायां धन्वन्तरि र्भविष्यति ।
इति चिन्ताकुला ह्येते वयमत्राधुना त्वया ॥
चिन्ता दूरीकृतास्माकं यदागोतेयमद्भुता ।
इत्युक्त्वा ते महाराज कुशपुत्तलिका ततः ॥
कृत्वा क्रोड़े ऽदधुस्तस्या वेदमुच्चार्य्य तत्कुशे ।
प्राणप्रतिष्ठां चक्रुस्ते साभवत् पुरुषाकृतिः ॥
ततोऽभवत् काञ्चनराशिगौरो बालोऽभिरामाकृतिरेव तस्याः ।
क्रोड़े समालोक्य सुतं मुनीन्द्राः प्रापुर्मुदं वेदबलाच्च जातः ।
वैद्यः सुतोऽयं जननीकुले च ख्यातः ततोऽम्बष्ठ इति प्रसिद्धः ।
एवमूचुः स्मातः सर्वे मुनयो वेदरूपिणः ।
अमृताचार्य इत्येवं चक्रुस्तस्याभिधानकः ॥
पित्रालयं याहि भद्रे त्वमक्षतभगासि वै ।
इत्याकर्ण्य वीरभद्रा चचाल पितृमंदिरं ।
विलम्बकारणं सा तु कथयामास मातरि ।
ततो हि मुनयस्तस्य चक्रुः सर्वाः क्रियाः क्रमात् ॥
तमध्यापयामासुरायुर्वेदं क्रमेण तु ।
सिद्धविद्यां साध्यसिद्धां तथा कष्टकुलोद्भवां ॥
विवाहं कारयामासुस्त्रिस्रः कन्या नराधिप ।
तासु त्रयोदश सुता बभूवुस्तस्य केवलं ।
पृथक् कुलानि जातानि तेषाञ्चैव त्रयोदश ॥
सेनो दासश्च गुप्तश्च देवो दत्तो धरः करः ।
कुण्डश्चन्द्रो रक्षितश्च राजः सोमस्तथैव च ॥
नन्दी चैव कुलान्येतान्यम्बष्ठानां कुलाः नृप ।
उत्तमौ सेनदासौ च गुप्तश्चैव तथा परे ॥
मध्यमौ देवदत्तौ च शेषाः करधरादयः ।
स्थानदोषात् क्रियालोपात् अधमास्ताः स्थितास्तु वै ।
वैश्यवत् शुद्धिकर्म्माणि निर्दिष्टानि मुनीश्वरैः ।
अम्बष्ठानांतु सर्वेषां यतो मातृकुले स्थितिः ॥
आराध्या शूद्रजातानां गमश्यश्च विशेषतः ॥
वेदपाठेोऽधरश्चाथ तैश्च पालितमेवपथम् ।
मासादिकंतु यत्कुत्र ब्राह्मणादिभिरेव च ॥

इतीव कथितं राजन् तवगाथे यथापुनः ।
धन्वन्तरिः भगवान् विष्णुं स्वर्गं दिव्यं गतः ॥"
(स्कन्दपु० वैद्योत्पत्तिविवेचनम्)

स्कन्दपुराणमें युधिष्ठिर मैत्रेयका सम्बोधन कर पूछते हैं—"हे महामुनि! सर्वतत्त्वज्ञ! धन्वन्तरिका जन्म किस तरह हुआ, आप कहिये।" मैत्रेयने कहा,—हे राजन्! धन्वन्तरिकी जन्म-कथा मैं तुमसे कहता हूं। तुम ध्यान लगा कर सुनो। गालव नामक एक मुनि जङ्गलमें दर्भा या कुशा लानेके लिये गये। वहां घूमते घूमते वे थक गये। इसके बाद प्याससे व्याकुल हो बाहर निकले। बाहर आ कर उन्होंने एक कन्याको देखा। मुनिवरने उस कन्यासे हर्षचित्त हो कर कहा—हे कन्ये! शीघ्र जल पिला कर मेरी प्राण-रक्षा करो। मेरा प्राण छट पट कर रहा है। शरीर अवश होता जा रहा है। शीघ्र तुम जल दो। उस समय कन्या शिरसे घड़ा उतार भूमि पर रखके खड़ी हुई। गालवने उस जलसे स्नान कर पीछे उससे बचे जलको पान किया। प्राणान्तकालमें इस तरहके कार्यमें दोष नहीं—समझ कर ही उन्होंने ऐसा कर्म किया और उस कुकर्मका प्रायश्चित्त करना स्थिर कर शान्ति तुष्ट हो उस कन्यासे कहा—हे कन्ये! तुमने आज मुझको बहुत ही परितृप्त किया है। इससे तुमको मेरे आशीर्वादसे १०० पुत्र प्राप्त हों। कन्याने कहा,—महाराज! मैं अविवाहिता हूं। इस पर मुनिने उसका नाम पूछा। उत्तरमें उसने अपना नाम वीरभद्रा बताया। उसको लिये सोचते सोचते मुनि आश्रममें चले आये। यहां पहुंच मुनिने अन्यान्य मुनियोंसे सब हाल कहा। उन्होंने कहा, आपने कन्याको आश्रममें ला कर हम लोगोंका बड़ा उपकार किया। एक तरहसे आपने हम लोगोंकी एक चिन्ता दूर कर दी है। क्योंकि वैश्या वीरभद्रासे ही धन्वन्तरि जन्म ग्रहण करेंगे। हम लोग इसी चिन्तासे चिन्तित थे। यह कह कर उन्होंने एक कुशकी पुतली बना कर वीरभद्राकी गोदमें रखा और उसे वेदमन्त्रोंसे अभिमन्त्रित किया। इसके बाद उसमें प्राणप्रतिष्ठा की गई। उस समय सुवर्णकांति गौरवर्ण मनोहर बालकको देख मुनियोंने आनन्दित हो कर कहा,

अर्थात् वर्णसंकर दोषसे नाना जातियोंका नाम सुना जाता है। उनके नाम और संख्या बतलाना किसका साध्य है। अश्विनीकुमारके औरस तथा ब्राह्मणपत्नीके गर्भसे वैद्य जातिकी उत्पत्ति हुई है। वैद्यवीर्य तथा शूद्राके गर्भसे नाना जातियां हुईं। वे नाना वृक्ष वनस्पतियोंको जानते हैं, झाड़फूक करते हैं तथा रोग निवारण करते हैं। फिर इन सब (वेदिया)से और शूद्राके गर्भसे व्यालग्राही या संपेरोंका जन्म हुआ है। शौनकने पूछा, कि सूर्यपुत्र अश्विनीकुमारने किस तरह किस दुर्विपाकसे ब्राह्मणपत्नीके गर्भमें वीर्यपात किया था? सौतिने कहा, एक ब्राह्मणी तीर्थयात्रामें गई थीं। निर्जन पुष्पोद्यानमें उस श्रान्ता ब्राह्मणीको देख कर अश्विनीकुमार कामविह्वल हो गये। ब्राह्मणीने भर सक निवारण किया, फिर देवताने उसके रूप पर मोहित हो बलपूर्वक उसके साथ संभोग किया। ब्राह्मणीने उस मनोहर पुष्पोद्यानमें ही गर्भ त्याग कर दिया। उससे तप्तकाञ्चन तुल्य शीघ्र ही एक बालक उत्पन्न हुआ। ब्राह्मणी उस बालकको ले कर घर गई और उस पर पथमें जो दैवी संकट उपस्थित हुआ था, उसने उसका सब हाल स्वामीसे कह सुनाया। ब्राह्मणने अत्यन्त क्रोधित हो कर पुत्रके साथ भार्याका त्याग किया। उस समय ब्राह्मणीने योगबलसे देह-त्याग कर गोदावरी नदीका रूप धारण कर लिया। अश्विनीकुमारोंने आ कर पुत्रको भलीभांति चिकित्साशास्त्र, शिल्पकार्य तथा मन्त्र सिखाया।

११। निर्णयसिन्धुकार प्रसिद्ध स्मार्त कमलाकरने प्राचीन स्मृति वचनोंको उद्धृत कर दिखाया है।

"ब्राह्मणेनोग्रकन्यायामम्बष्ठ नाम जायते।
स करोति मनुष्याणां चिकित्सां रोगिणामपि॥"

(शूद्रकमलाकर)

अर्थात् ब्राह्मणके औरस और उग्रा कन्याके गर्भसे अम्बष्ठ नामकी जाति हुई है। यह जाति मनुष्य और अन्यान्य रोगियोंकी चिकित्सा किया करती है।

१२।१३—कमलाकर भट्टने इसके बाद भी दो तरहके अम्बष्ठोंका उल्लेख किया है,—"विप्रात् वैश्यायां क्षत्रात् शूद्रायाञ्च इति द्वौ अम्बष्ठौ" अर्थात् ब्राह्मण और वैश्याके संसर्गसे तथा क्षत्रिय और शूद्राकन्याके संसर्गसे जो पुत्र उत्पन्न होते हैं—ये दोनों अम्बष्ठ कहे जाते हैं।

१४। मेधातिथिने मनुसंहिताके १०।८ श्लोककी भाष्यमें लिखा है—

"एकान्तरा ब्राह्मणस्य वैश्या तत्र जातोऽम्बष्ठः।
स्मृत्यन्तरे भृज्जकण्टक इत्युक्तः"

इसके बाद १०।२१ श्लोकके भाष्यमें मेधातिथिने फिर कहा है—

"स ह्यनुलोमत्वान्नपापात्मा अयं चासंस्कृतात्मनो व्रात्याज्जायतोऽनधिकारित्वाच्च क"

अर्थात् ब्राह्मणसे वैश्याके गर्भसे अम्बष्ठ हुआ है, अन्य स्मृतिमें उसका नाम भृज्जकण्टक लिखा है। यह जाति अनुलोम रूपसे पापात्मा नहीं है। किन्तु असंस्कृतात्मा व्रात्यसे उत्पन्न गर्भजात होनेसे यह वैदिक कार्यके अनधिकारी है।

१५। कविराज रायबने अपने वैद्यकुलदर्पणमें लिखा है,—"अपि च स्कन्दपुराणे,—

युधिष्ठिर उवाच।

धन्वन्तरिर्महाभागः समुत्पन्नः कथं भुवि।
तमयत् सर्वतत्त्वज्ञ! तन्मे वद महामुने।

मैत्रेय उवाच।

शृणु राजन् कथं जातो धन्वन्तरिरिहैव तु।
महर्षिं गालवो नाम कश्चिद्भ्रमितो वनम्॥
जगाम तत्र भ्रमणादतिश्रान्तकलेवरः।
ततो निर्जने तस्मात् तृष्णया परिपीड़ितः॥
ततो मुनिवरैर्दृष्टो कन्यामेकां ददर्श सः।
तां दृष्ट्वा हृष्टचित्तोऽसौ ययाचे मुनिपुङ्गवः॥
हे कन्ये त्वं जलं देहि प्राणरक्षां कुरुष्व मे।
अवशस्या तु मे प्राणास्तस्माद्धि जलं शुभे॥
ततः सा कलसं भूमौ निधायातिष्ठदुत्तमा।
गालवस्तेन तोयेन स्नात्वा तोयं पपौ च तु॥
प्राणान्तकोऽपि दोषोऽत्र नास्तीति चिन्तयन् मुनिः।
प्रायश्चित्तं करिष्यामि पश्चादस्य कुकर्मणः॥
एवं विचार्य प्रोवाच तां कन्यामतिशोभिताम्।
शतपुत्रं वै ते कन्या जायन्तां मम भाषणात्॥

ततः प्रोक्तवती कन्या न मे पाणिग्रहोऽभवत् ।
वीरभद्राभिधानां हि जानियान्मुनिसत्तम ।
विचिन्त्य मुनिस्तामादायाजगामाश्रमकं ततः ॥
मुनीनामाश्रमे नीत्वा उवाच हर्षमानसः ।
भद्रं कृतं मुने कर्म कन्यामानयता त्वया ॥
वैश्यायां वीरभद्रायां धन्वन्तरि र्भविष्यति ।
इति चिन्ताकुला ह्यसे वयमत्राधुना त्वया ॥
चिन्ता दूरीकृतास्माकं यदानीतेयमद्भुता ।
इत्युक्त्वा ते महाराज कुशपुत्तलिका ततः ॥
कृत्वा क्रोड़ेऽददत्तस्या वेदमुख्यार्च्य तत्कुशो ।
प्राणप्रतिष्ठां चक्रुरते सामभवत् पुत्र्याकृतिः ॥
ततोऽभवत् काञ्चनराशिगौरः बालोऽभिरामाकृतिरेव तस्याः ।
क्रोड़े समालोक्य सुतं मुनीन्द्राः प्रापुर्मुदं वेदवलाच्च जातः ।
वैद्यः सुतोऽयं जननीकुले च ख्यातः ततोऽम्बष्ठ इति प्रसिद्धः ।
एवमूचुः स्ततः सर्वे मुनयो वेदरूपिणः ।
अमृताचार्य इत्येवं चमत्कर्त्ताभिधानकः ॥
पित्रालयं याहि भद्रे त्वमक्षतभगासि वै ।
इत्याकर्ण्य वीरभद्रा चचाल पितृमंदिरं ।
विलम्बकारणं सा तु कथयामास मातरि ।
ततो हि मुनयस्तस्य चक्रुः सर्वाः क्रियाः क्रमात् ॥
तमध्यापयामासुरायुर्वेदं क्रमेण तु ।
सिद्धविद्यां साध्यविदुषां तथा कष्टकुलोद्भवां ॥
विवाहं कारयामासुस्त्रिस्रः कन्या नराधिप ।
तासु त्रयोदश सुता बभूवुस्तस्य केवलं ।
पृथक् कुलानि जातानि तेषाञ्चैव त्रयोदश ॥
सेनो दासश्च गुप्तश्च देवो दत्तो धरः करः ।
कुण्डश्चन्द्रो रक्षितश्च राजः सोमस्तथैव च ॥
नन्दी चैव कुलान्येतान्यम्बष्ठानां कुलाः नृप ।
उत्तमौ सेनदासौ च गुप्तश्चैव तथा परे ॥
मध्यमौ देवदत्तौ च शेषाः करधरादयः ।
स्थानदोषात् क्रियालोपात् अधमास्ताश्चितास्तु वै ।
वैश्यवत् शुद्धिकर्माणि निर्दिष्टानि मुनीश्वरैः ।
अम्बष्ठानांतु सर्वेषां यतो मातृकुले स्थितिः ॥
आराध्या शूद्रजातानां समस्तश्च विशेषतः ॥
वेदपाठोऽङ्गरक्षाय तेश्च पाक्षिममौषधम् ।
मासादिकं तु यत्सूतं ब्राह्मणाद्भिरिव च ॥

इतीव कथितं राजन् नवभावे यथापुनः ।
धन्वन्तरिः भगवान् विष्णुं स्मर्त्वा दिवं गतः ॥"

(स्कन्दपु० वैद्योत्पत्तिविवेचनम्)

स्कन्दपुराणमें युधिष्ठिर मैत्रेयका सम्बोधन कर पूछते हैं—"हे महामुनि! सर्वतत्त्वज्ञ! धन्वन्तरिका जन्म किस तरह हुआ, आप कहिये।" मैत्रेयने कहा,—हे राजन्! धन्वन्तरिकी जन्म-कथा मैं तुमसे कहता हूं। तुम ध्यान लगा कर सुनो। गालव नामक एक मुनि जङ्गलमें दर्भा या कुशा लानेके लिये गये। वहां घूमते घूमते वे थक गये। इसके बाद प्याससे व्याकुल हो बाहर निकले। बाहर आ कर उन्होंने एक कन्याको देखा। मुनिवरने उस कन्यासे हृष्टचित्त हो कर कहा—हे कन्ये! शीघ्र जल पिला कर मेरी प्राण-रक्षा करो। मेरा प्राण छट पट कर रहा है। शरीर अवश होता जा रहा है। शीघ्र तुम जल दो। उस समय कन्या शिरसे घड़ा उतार भूमि पर रखके खड़ी हुई। गालवने उस जलसे स्नान कर पीछे उससे बचे जलको पान किया। प्राणान्तकालमें इस तरहके कार्यमें दोष नहीं—समझ कर ही उन्होंने ऐसा कर्म किया और उस कुकर्म-का प्रायश्चित्त करना स्थिर कर अति तुष्ट हो उस कन्यासे कहा—हे कन्ये! तुमने आज मुझको बहुत ही परितृप्त किया है। इससे तुमको मेरे आशीर्वादसे १०० पुत्र प्राप्त हों। कन्याने कहा,—महा-राज! मैं अविवाहिता हूं। इस पर मुनिने उसका नाम पूछा। उत्तरमें उसने अपना नाम वीरभद्रा बताया। उसको लिये सोचते सोचते मुनि आश्रममें चले आये। वहां पहुंच मुनिने अन्यान्य मुनियोंसे सब हाल कहा। उन्होंने कहा, आपने कन्याको आश्रममें ला कर हम लोगोंका बड़ा उपकार किया। एक तरहसे आपने हम लोगोंकी एक चिन्ता दूर कर दी है। क्योंकि वैश्या वीरभद्रासे ही धन्वन्तरि जन्म ग्रहण करेंगे। हम लोग इसी चिन्तासे चिन्तित थे। यह कह कर उन्होंने एक कुशकी पुत्तली बना कर वीरभद्राकी गोदमें रखा और उसे वेदमन्त्रोंसे अभिमन्त्रित किया। इसके बाद उसमें प्राणप्रतिष्ठा की गई। उस समय सुवर्णकांति गौरवर्ण मनोरम बालकको देख मुनियोंने आनन्दित हो कर कहा,

कि वेदप्रभावसे इनका जन्म हुआ, इसलिये वैद्य और अम्बाकुलमें स्थिति होनेसे अम्बष्ठ नाम हुआ। तब मुनियोंने उसको अमृताचार्यकी उपाधि दी। वीरभद्रासे कहा, 'वीरभद्रे ! तुम अक्षतयोनि हो कर पिताके घर जाओ।' इसके बाद वीरभद्रा पिताके घर आई और उसने विलम्बका कारण कह सुनाया। इसके बाद मुनियोंने उस बालकका जातकर्म संस्कार सम्पन्न कर यथासमय आयुर्वेद पढ़ाया और उनको सिद्धविद्या, साध्यविद्या और कष्टकुलोद्भवा—तीन कन्याओंका पाणिग्रहण कराया।

उन तीन कन्याओंसे १३ पुत्र उत्पन्न हुए। इन १३ पुत्रोंसे सेन, दास, गुप्त, देव, दत्त, धर, कुण्ड, चन्द्र, रक्षित, राज, सोम, नन्दी, इन पृथक् १३ अम्बष्ठोंकी उत्पत्ति हुई। इनमें सेन, दास और गुप्त सर्वोत्कृष्ट देव, दत्त मध्यम; अवशिष्ट धर, कर आदि स्थानदोष तथा क्रियाकलाप लोप होनेसे अधम कहलाये। मुनियोंने इन अम्बष्ठोंका शुद्धिकर्म वैश्यकी तरह निर्देश किया है। क्योंकि सब अम्बष्ठोंका मातृकुलमें अवस्थान है, सुतरां मातृकुलके आचारानुष्ठान ही करणीय निर्दिष्ट हुआ है। वेदमंत्रोच्चारणसे इनके बीजपुरुषका जन्म हुआ है, इससे ये सम्यक् प्रकारसे शूद्र जातिके आराध्य और नमस्य हैं और वेदविहित औषधादिके परिचालक हैं। इनके मासादिमें जो परिशुद्धि होती है, वह भी ब्राह्मणों द्वारा ही निर्दिष्ट हुई है। हे महाराज ! आपके सम्मुख इस समय फिर निवेदन कर रहा हूं, कि ये भगवान् धन्वंतरि इस तरहसे विष्णुका स्मरण कर स्वर्गीत हुए।

१६। वैद्यकुलतिलक भरत मल्लिकने अपने चंद्रप्रभामें लिखा है—

"सत्यत्रेताद्वापरेषु युगेषु ब्राह्मणाः किल।
ब्राह्मक्षत्रियविट्शूद्रकन्यका उपयेमिरे ॥
तत्र वैश्यसुतायां ये अभिरे तनया अमी।
सर्वे ते मुनयः ख्याता वेदवेदाङ्गपारगाः ॥
तेषां मुख्योऽमृताचार्यस्तस्यायम्बाकुले हि तत्।
अम्बष्ठ इत्यभाणुक्तस्तो जातिप्रवर्त्तनात् ॥
परे सर्वेऽपि चाम्बष्ठा वैद्या ब्राह्मणसम्भवाः।
जननीतो जनुर्लब्ध्वा यज्ञाता वेदसंहितेः ॥
अम्बष्ठात्वेन ते सर्वे द्विजा वैद्याश्च कीर्तिताः।
अथ रुक्प्रतिकारित्वात् भिषजस्ते प्रकीर्तिताः ॥
सत्ये वैद्यः पितुस्तुल्याः त्रेतायां क्षत्रवत्स्मृताः।
द्वापरे वैश्यवत् प्रोक्ताः कलौ शूद्रसमा मताः ॥"

अर्थात् सत्य, त्रेता, द्वापर युगमें ब्राह्मण चार जातिकी कन्याओंसे विवाह करते थे—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। इनमें ब्राह्मणके औरस तथा वैश्यकन्याके गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न हुए, वेदवेदाङ्गपारग मुनि कहलाये। उनमें अमृताचार्य (धन्वन्तरि) प्रधान थे। अर्थात् जननीकुलमें जन्म होनेकी वजह जाति प्रवर्त्तनके समय उनका नाम अम्बष्ठ हुआ, पीछे ब्राह्मण-वैश्या सम्भूत जो पुत्र हुए, वे सभी अम्बष्ठोंकी श्रेणीमें गिने गये। जननीसे जन्मलाभ और वेदमन्त्रके प्रभावसे स्थितिलाभ हुआ था, इससे वे सभी "अम्बष्ठ" और "वैद्य" नामसे ख्यात हुए। रोग अच्छा करते थे, इससे भिषक भी कहलाते थे। वैद्य सत्ययुगमें पितृ सदृश, त्रेतामें क्षत्रियवत्, द्वापरमें वैश्यवत् और कलिमें शूद्रके समान परिचित हैं।

सिवा इसके महाभारतमें और एक तरहके वैद्योंका उल्लेख है—

"चाण्डालो व्रात्यवैद्युयौ च ब्राह्मण्यां क्षत्रियासु च।
वैश्यायाञ्चैव शूद्रस्य लक्ष्यन्तेऽपसदास्त्रय ॥"

(भारत अनुशासन ४८।६)

अर्थात् शूद्रके औरस तथा वैश्याके गर्भसे वैद्य नामक अपसद जातिकी उत्पत्ति हुई है।

ऊपर जो कई प्रमाण उद्धृत किये गये, उन कई प्रमाणोंसे हम १५ तरहके अम्बष्ठ या वैद्योंका पता पाते हैं।

मनुसंहिता और महाभारतके प्रधान प्रधान टीकाकारोंने अधिकांश ही अम्बष्ठको अपसद या अपध्वंसज रूपसे ही ग्रहण किया है। मनुमें अम्बष्ठोंकी वृत्तिका निर्दिष्ट करनेके लिये कहा है—

"ये द्विजानामपसदा ये चापध्वंसजाः स्मृताः।
ते निन्दितैर्वर्त्तयेयुर्द्विजानामेव कर्मभिः ॥
सूतानामश्वसारथ्यमम्बष्ठानां चिकित्सितम्।"

(१०।४६)

द्विजातियोंमें जो अपसद और अपध्वंसज हैं, वे द्विजोंके निन्दित कर्म द्वारा जीविका निर्वाह करें। (इनमें) सूत जातिकी वृत्ति अश्वसारथ्य और अम्बष्ठों-को चिकित्सा है।

मनुटीकामें (१०।४६) मेधातिथिने लिखा है—

"अथ दस्यूनां साधारणीं वृत्तिमाह। ये द्विजानाम-पसदाः इति। अपसदाः चौर्यजाता अनुलोमजाः अप-ध्वंसजाः प्रतिलोमजाः सूताद्यः अनुलोमजेष्वप्यनंतराः पुत्रव्यतिरिक्ता अम्बष्ठादयश्च सजातीयेष्वपि कुण्डगोलका-दयश्च द्विजानामेव कर्मभिद्विजार्थैरेव कर्मभिः चिकित्सा-श्वसारथ्यादिभिर्वर्त्तयेयुर्जीवेयुः।"

अर्थात् दस्युओंकी साधारण वृत्ति कही जाती है। द्विजातियोंमें अपसद हैं अर्थात् चौर्यजात अनुलोमज अम्बष्ठादि और अपध्वंसज या प्रतिलोमज सूत आदि। अनुलोमज होने पर भी अनन्तर पुत्रको छोड़ कर अम्ब-ष्ठादि और सजातिमें जन्म होने पर भी कुण्डगोलकादि द्विजातियोंके लिये ही चिकित्सा अश्वसारथ्यादि निंदित कर्म द्वारा जीविका निर्वाह करें।

उद्धृत वचनानुसार अम्बष्ठ दस्यु और चौर्यजात हैं अर्थात् बलात्कार द्वारा उत्पन्न हुए हैं। वेदव्यासने महाभारत-अनुशासनपर्वके ४६वें अध्यायमें अम्बष्ठको अपध्वंसज कहा है। मिताक्षराकार विज्ञानेश्वरने "अपध्वंसज" शब्दका 'व्यभिचारजात' अर्थ किया है। (याज्ञवल्क्य टीका ११६०) है। मनुटीकामें सर्वज्ञनारा-यणने भी लिखा है—

"विप्राद्वैश्यायां यथाम्बष्ठो यथा वा क्षत्रियाच्छूद्राया-मुग्रः पुत्र आनुलोम्येन जातोऽप्यनन्तरस्त्रीजातपुत्रापेक्षया निन्दितस्तथा वैश्याद्विप्रायां जातो वैदेहः शूद्रात् क्षत्रिया-यां जातश्च क्षत्ता। अनंतरप्रतिलोमजातापेक्षयैकांत-रितजातस्याभिनिंदित इत्यर्थः। यथा स्मृतौ निन्दिता-विति शेषः।" (मनुटीका १०।१३) अर्थात् ब्राह्मणसे वैश्या-का गर्भज अम्बष्ठ और क्षत्रियके औरससे शूद्राका गर्भज उग्रपुत्र अनंतर स्त्रीजात पुत्रोंपेक्षा निंदित हैं। इस तरह वैश्यसे ब्राह्मणीका गर्भज वैदेह, शूद्रसे क्षत्रियाका गर्भज क्षत्ता भी निंदित है, अनंतरज-प्रतिलोम अपेक्षा एकांतरज-प्रतिलोमगण भी निंदित हैं। क्योंकि स्मृति-में है, कि अम्बष्ठ और उग्र दोनों जातियां ही निंदित हैं।

प्रसिद्ध टीकाकार सर्वज्ञनारायणने मनुके १०।५० श्लोककी टीकामें—"एते सूताद्य विज्ञानादिचह्नितः" अर्थात् सूत, अम्बष्ठसे येन तक चिह्नित जातियोंको धर लेना होगा। अर्थात् उनके मतसे ये सब जातियां समाजसे बाहर हैं। उक्त श्लोककी टीकामें राम-चन्द्रने लिखा है "स्वकर्मभिर्वर्त्तयन्तो विज्ञाता एते पौण्ड्र-काद्यः वसेयुः" अर्थात् रामचन्द्रके मतसे पौण्ड्रक, द्राविड़, कम्बोज, यवन, शक, पारद, पह्नव, चीन, किरात, दरद, खश और द्विज तथा शूद्रोंमें जो बाह्यजाति या दस्यु (डाकू) नामसे प्रसिद्ध हैं, अपसद तथा अपध्वंसज जो निर्दिष्ट हुए हैं, वे निन्दित कर्म द्वारा ही जीविका निर्वाह करें।

मनूक्त पौण्ड्रकादि क्षत्रिय जाति जिस तरह क्रियालोप और ब्राह्मणादर्शन हेतु वृषलत्व प्राप्त हुई थी, उसी तरह निन्दित कार्य द्वारा अम्बष्ठादि भी क्रियालोप हेतु पौण्ड्रकादिकी तरह वृषलत्वप्राप्त और बाह्यजातिमें गिने गये थे। वास्तविकतया आज भी दाक्षिणात्यमें त्रिवांकुरराज्यमें इस तरह समाजवाह्य अम्बष्ठ वैद्योंका वास है। इस जातिके सम्बन्धमें त्रिवांकुरराज्यके दीवान पेस्कार सुब्रह्मण्य अय्यरने लिखा है—"In their dress, ornaments and festivals they do not differ from the Malayal Sudras, of whom according to the Keralotpatti, they form one of the lowest subdivisions. The niece is the rightful wife of the son and the daughter that of the nephew..........Among the Ampaitans (Ambastham) fraternal polyandry seems to be common.*"

अर्थात् वेशभूषा और उत्सवोंमें मलयाल शूद्रोंके साथ कोई पार्थक्य दिखाई नहीं देता। केरलोत्पत्तिके मतसे यह जाति नीचतम शूद्रोंमें गिनी जाती है। भागिनेयी ही उपयुक्तपुत्रवधू है। इस अम्बष्ठ जातिमें बहुभ्रातृभो-

* Census Report of Travancore 1901, by N. Subrahmanya Aiyar, M. A, M. B, C, M Part, I p. 271

के साथ मिल कर साधारणतः एक पत्नी ग्रहण किया करते हैं।

सम्भवतः इस तरह अम्बष्ठ जातिको निकृष्ट देख कर ही स्मार्त्त रघुनन्दन, वाचस्पति मिश्र आदि स्मार्त्त "एवं अम्बष्ठादीनामपि कलौ शूद्रत्वमिति" लिखने पर बाध्य हुए हैं। सिवा इनके महाराष्ट्र और कर्णाट अञ्चलको वैदु और वैद्द जातिकी अवस्था आलोचना करने पर भी उनको द्राविड़ अम्बट जातिकी तरह हीन समझते हैं। वैदु शब्द देखो। बङ्गीय वेदेजातिके साथ उनकी तुलना हो सकती है।

उशनाने जिस अम्बष्ठका उल्लेख किया है, वह अम्बष्ठ जाति भागवतमें (१०।४३।५) हस्तिपकरूपसे अर्थात् हाथीके महावत कही गई हैं।

"अम्बष्ठाम्बष्ठमार्गं नौ देह्यपक्रम मा चिरम्।
नो चेत् सकुञ्जरं त्वाद्य नयामि यमसादनम्॥"
'अम्बष्ठो हस्तिपः' इति श्रीधर।

हिन्दू-राजत्वकालमें हस्तीपक खेतीबारी करते थे, हाथी पर ध्वजा कन्धे पर धर कर चलते थे। रणक्षेत्रमें उनको अस्त्रधारण करना पड़ता था तथा नाना उत्सवोंके समय हाथी पर आगे आगे जा नाना अग्नि क्रीड़ा प्रदर्शन करते थे। भागवतमें निषादी अम्बष्ठ ही गजाजीवि अम्बष्ठ हैं। वह हाथीको भी चिकित्सा करते थे, इससे लोग वैद्यको हाथुड़िया कहते हैं। नारदने क्षत्रियकन्याके गर्भजात जिस अम्बष्ठका उल्लेख किया है, मनुके प्रसिद्ध टीकाकार रामचन्द्रने उस अम्बष्ठको दो भागोंमें विभक्त किया है। एक वैश्यसे क्षत्रियकन्याजात। सुतरां यहां दोनों प्रकारके अम्बष्ठ ही क्षत्रियाजात प्रतिलोम जाति हो रही है। वैश्य और शूद्रके लिये क्षत्रियकन्या अविवाह्य है, सुतरां इन दोनों तरहके अम्बष्ठोंको ही हीन वर्णसंकर स्वीकार करना होगा।

कमलाकरने दो प्रकारके अम्बष्ठोंकी बात लिखी है, ब्राह्मणके औरस तथा आगुरीके गर्भसे उत्पन्न तथा क्षत्रिय औरस तथा शूद्रासे उत्पन्न दोनों अम्बष्ठ कहे जाते हैं। यह व्यभिचार और अवैवाह्य दुष्ट कहा जाता है। अतएव ब्राह्मण-उग्रज वा क्षत्रिय शूद्रज—ये दोनों प्रकारके अम्बष्ठ ही हीन बहके निन्दित हैं।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणकी वैद्यजातिको कुछ लोग वेदे समझते हैं। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणकारने अश्विनीकुमारके औरस और ब्राह्मणीके गर्भसे अम्बष्ठोंकी उत्पत्ति बता कर अन्तमें कहा है—

"पुत्रं चिकित्साशास्त्रञ्च पाठयामास यत्नतः।
नाना शिल्पञ्च मन्त्रञ्च स्वयं स रविनन्दनः॥"
(ब्र० खं० १०।१११)

अर्थात् अश्विनीकुमारने अपने बलात्कार जात पुत्रको चिकित्साशास्त्र पढ़ाया था और नाना शिल्प तथा मन्त्रोंको सिखाया था।

अब 'वेदे' जातिको कभी चिकित्साशास्त्र अध्ययन करते देखा नहीं गया, तो चिकित्साशास्त्रमें अधिकारी ब्रह्मवैवर्त्तोक्त वैद्य जाति 'वेदे' जातिके साथ निश्चय ही अभिन्न नहीं है। ब्रह्मवैवर्त्तकारने वैद्य जातिकी उत्पत्तिका वर्णन कर कहा है—

"वैद्यवीर्य्येण शूद्रायां बभूवुर्बहवो जनाः॥
ते च ग्राम्यगुणज्ञाश्च मन्त्रौषधिपरायणाः।
तेभ्यश्च जाताः शूद्रायां ये व्यालग्राहिणो भुवि॥"
(ब्र० ख० १०।१११)

अर्थात् वैद्यवीर्यसे शूद्राके गर्भसे ग्राम्यगुणज्ञ मन्त्रौषधपरायण बहुत जातियोंकी उत्पत्ति हुई है। इन्हीं सब जातियोंसे शूद्राके गर्भसे सपेरे या व्यालग्राही जातिकी सृष्टि हुई है।

ब्रह्मवैवर्त्तके वैद्यसे शूद्राके गर्भजात मन्त्रौषधपरायण जाति ही वेदे या बेदिया है।

मनुभाष्यकार मेधातिथिने स्मृति पर निर्भर कर ही लिखा है, कि जिस वैश्यका द्विजोचित संस्कार नहीं हुआ हो, इस तरहकी व्रात्य वैश्यकी कन्यासे ब्राह्मण वीर्यसे भूर्जकण्टक नामकी एक जाति उत्पन्न हुई है। मनुने जिस पापात्मा भूर्जकण्टकका उल्लेख किया है उससे वैश्यकन्याके गर्भजात भूर्जकण्टक स्वतन्त्र है। किन्तु व्रात्यकन्याके गर्भजात होनेसे ये समाजनिन्दित और पतित हैं। ब्राह्मण-वैश्याज कह कर इनको भी मेधातिथिने स्मृतिवचनके प्रमाणानुसार अम्बष्ठ ही पर लिया है।

राढ़ीय और वङ्गज वैद्यकुलज प्रायः सभी कहा

करते हैं, कि अमृताचार्य धन्वन्तरि महाराजसे ही वैद्य-जातिकी उत्पत्ति हुई। अम्बष्ठकुलमें स्थिति हेतु (कानीन पुत्र) अमृताचार्य अम्बष्ठ नामसे ख्यात हुए हैं, उसीसे ही वैद्यजातिका नाम अम्बष्ठ हुआ है।

अम्बष्ठ धन्वन्तरिकी अमृताचार्य उपाधि दे कर बहुतेरे यह ख्याल करते हैं, कि समुद्रमन्थनकालमें अमृतकुम्भ हाथमें ले कर जो धन्वन्तरि आविर्भूत हुए थे, जो वासुदेवके अंशरूपसे भागवत आदि ग्रन्थोंमें वर्णित हुए हैं, वैद्य जातिके आदिपुरुष धन्वन्तरि और वे अभिन्न हैं। वास्तवमें यह ठीक नहीं है।

महाभारतके मतसे देवोंके आदिरोगहर धन्वन्तरि समुद्रमन्थनकालमें अमृतकुम्भ हाथमें लिये निकले थे। (आदिपर्व १८ अ०) यह सागरसम्भूत धन्वन्तरि स्वर्गीय नामसे विख्यात हैं। इनको छोड़ कर सुप्रसिद्ध क्षत्रियवंशमें और एक धन्वन्तरि आविर्भूत हुए थे। ये मर्त्यलोकमें आयुर्वेद-प्रवर्त्तक और विष्णुके अन्यतम अवतार कहे गये हैं। भागवतमें इन धन्वन्तरिका वंशपरिचय इस तरह दिया गया है—

पुरूरवाके पुत्र आयु थे, इनके पांच पुत्र हुए—नहुष, क्षत्रवृद्ध, रजी, बलवान् राम और अनेना। क्षत्रवृद्धका पुत्र सुहोत्र है। उनके तीन पुत्र हुए:—काश्य, कुश और गृत्समद। इन गृत्समदके पुत्र शुनक और शुनकके पुत्र बह्वृचश्रेष्ठ शौनक मुनि हैं। काश्यके पुत्र काशि, काशिके पुत्र राष्ट्र, राष्ट्रके पुत्र दीर्घतमा, दीर्घतमाके पुत्र आयुर्वेद-प्रवर्त्तक धन्वन्तरि हैं। ये यज्ञभुक् और वासुदेवके अंश हैं, इनके स्मरणमात्रसे सब रोग दूर होता है। धन्वन्तरिके पुत्रका नाम केतुमान, केतुमान्के पुत्र भीमरथ और भीमरथके पुत्र दिवोदास हैं।

(भागवत ९।१७।१-५)

चरकादि ग्रन्थोंसे भी जाना जाता है, कि उक्त क्षत्रिय काशीराज दिवोदासने नाना आयुर्वेदशास्त्र इस देशमें प्रचार किये। नाना वैद्यकग्रन्थोंमें ये "धान्वन्तर दिवोदास" नामसे भी विख्यात हुए हैं। हिंदुशास्त्रके अनुसार क्षत्रियराज धन्वन्तरिसे ही मर्त्यलोकमें सबसे पहले आयुर्वेद शास्त्र प्रचारित हुआ। इनके वंशधर दिवोदासने भी कई आयुर्वेद तत्त्वोंका प्रचार किया था। चरक सुश्रुत आदि ऋषियोंने क्षत्रियराज धन्वन्तरि और उनके वंशजोंके प्रवर्त्तित आयुर्वेदीय मत ग्रहण कर अपने अपने चिकित्साशास्त्रका प्रचार किया था। उक्त धन्वन्तरि द्वारा सर्वप्रथम आयुर्वेदशास्त्रका प्रचार और जगत्का अशेष कल्याण साधित हुआ। इससे ये भी भागवतमें परशुरामके पूर्ववर्त्ती विष्णुका एक अवतार कहे गये हैं। जैसे—

"धन्वन्तरिश्च भगवान् स्वयमेव कीर्त्ति-
र्नाम्ना नृणां पुरुरुजां रुज आशु हन्ति।
यज्ञे च भागममृतायुरवावरुन्धे
आयुष्य-वेदमनुशास्त्यवतीर्य्य लोके॥" (२।७।२१)

धन्वन्तरिने सबसे पहले आयुर्वेदशास्त्रका प्रचार किया और उनके औषधप्रभावसे सैकड़ों व्यक्तियोंने जीवन लाभ किया है। इससे परवर्त्तीकालमें जिस व्यक्तिने आयुर्वेदशास्त्रमें विशेष पारदर्शिता दिखाई है और औषधप्रभावसे जो बहुतेरे लोगोंके जीवनदान करनेमें समर्थ हुए हैं, ऐसे वैद्य भी द्वितीय धन्वन्तरि कहके सम्मानित हुए। वीरभद्राके गर्भसे उत्पन्न अम्बष्ठको भी एक चिकित्सक जातिका अग्रणी सोच कर परवर्त्तीकालमें धन्वन्तरि उपाधि दी गई थी और उसीके साथ साथ अम्बष्ठ समुद्रमन्थनोद्भूत धन्वन्तरिको अमृताचार्य उपाधिको ले कर सम्भवतः उनके नामके साथ जोड़ दिया था।

चारों जातियोंमें अम्बष्ठ।

जो हो, उपरोक्त नाना तरहके शास्त्रवाक्य, कुलग्रन्थ, दाक्षिणात्यके अम्बष्ठोंकी वर्त्तमान अवस्थाको देख कर समझमें आता है, कि अम्बष्ठ जाति एक तरहकी भी हो नहीं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चार वर्णोंमें ही विभिन्न अम्बष्ठ जातियोंका वासस्थान था, इसमें सन्देह नहीं। पहले जो प्रमाण उद्धृत किये गये हैं, उनमें वैश्य और शूद्रधर्मा अम्बष्ठोंका ही परिचय मिलता है। इस समय हम अम्बष्ठ क्षत्रियका भी परिचय देते हैं—

अम्बष्ठ क्षत्रिय।

माकिदनवीर सिकन्दर जब पञ्जाबमें आ पहुंचा, उस समय दक्षिण पञ्जाबमें अम्बष्ठ (Ambastai of Arian) नामकी वीर जाति राजत्व कर रही थी। इस जातिने

इस सिकन्दरसे घोर युद्ध किया था। पुराणकार और पाणिनिने भी इस क्षत्रिय जातिका उल्लेख किया है। सुतरां इस जातिको नितान्त अर्वाचीन कहा जा नहीं सकता। इनकी अध्युषित वासभूमि पुराणमें अम्बष्ठ नामसे विख्यात है।

शाक्य बुद्धके आविर्भावके समय अम्बष्ठ नामक एक ब्राह्मण कपिलवस्तु अञ्चलमें वास करते थे। दो हजार वर्ष पहले रचित दीघनिकायके अन्तर्गत "अम्बट्ठ-सुत्त" नामक पाली ग्रन्थमें उस अम्बष्ठ ब्राह्मण और उस समयके ब्राह्मणोंकी सामाजिक अवस्थाका खूब पता लगता है।

अम्बष्ठ कायस्थ।

इसके सिवा उत्तर-पश्चिम प्रदेशीय कायस्थोंके कुलग्रन्थधृत पद्मपुराणीय वचनोंसे मालूम होता है, कि चित्रगुप्तके पुत्र हिमवान्से अम्बष्ठ नामक कायस्थ श्रेणीकी उत्पत्ति हुई है। इस जातिमें बहुतेरे लोगोंने चिकित्साशास्त्रमें पाण्डित्य दिखाया है। आज भी इनका आहार-विहार ब्राह्मण क्षत्रियोंके समान ही है।

उपरोक्त विभिन्न अम्बष्ठों और वैद्योंको छोड़ बङ्गदेशमें और एक वैद्य जातिकी बस्ती है। साधारणतः वैद्य कहनेसे इसी वैद्य जातिका ज्ञान होता है।

बङ्गालका वैद्यसमाज।

बङ्गालकी वैद्य जाति भी अपनेको अम्बष्ठ सन्तान कहके परिचय देती है। बङ्गालके वैद्यसमाजकी पूर्वा पर सामाजिक अवस्था, विद्या, बुद्धि और धर्मनिष्ठाकी आलोचना करनेसे इस जातिको कभी भी मनूक्त समाज द्वारा अम्बष्ठ कहा जा नहीं सकता।

इनकी उत्पत्ति।

बङ्गालके उच्च श्रेणीके ब्राह्मण-कायस्थके साथ वैद्य वैद्य समाजके आचार-व्यवहारका कुछ भी पार्थक्य दिखाई नहीं देता। वर्तमान बङ्गीय वैद्यसमाज अपने अपने वर्णधर्मके संबन्धमें तीन तरहके मत प्रकाशित किया करते हैं—

१। बङ्गीय भिषक्‌शिरोमणि गङ्गाधर-कविराज प्रमुख वैद्योंका कहना है, कि पूर्व समयमें असवर्ण विवाह-प्रथा प्रचलित थी। उस समय ब्राह्मण ब्राह्मणकन्याके सिवा असजातिकी अर्थात् क्षत्रिय और वैश्यकी कन्याओंसे विवाह कर लेते थे। अतएव ब्राह्मणके औरससे विवाहिता वैश्यकन्याके गर्भजात सन्तान अम्बष्ठ भी एक ब्राह्मण हैं।

२। राढ़ीय वैद्य-समाज और राजा राजवल्लभके दलभुक्त बङ्गज वैद्यसमाज अपनेको वैश्य समझते हैं। इसके सम्बन्धमें राजा राजवल्लभने उस समयके भारतवर्षके नाना स्थानोंके प्रधान प्रधान पण्डितोंको बुला कर जो व्यवस्थायें संग्रह की थीं, वही व्यवस्थायें प्रमाणस्वरूप व्यवहार करते हैं। वे साधारणतः—

"वैश्यकन्यकायां विन्नायामम्बष्ठोनाम भवति।
यत्तु ब्राह्मणेन···वैश्यामुत्पादितो वैश्य एव भवति॥"

(मिताक्षरा)

अर्थात् "विवाहिता वैश्यकन्यासे अम्बष्ठ नामकी जाति हुई है। ब्राह्मण द्वारा वैश्यासे उत्पन्न होनेसे वह जाति वैश्यकी समान होगी।" इत्यादि मिताक्षराकी उक्ति दिखाते हैं।

३। स्मार्त रघुनन्दनके मतानुवर्ती कोई कोई प्राचीन वैद्य भरतमल्लिकधृत वचन उद्धृत कर अपनेको शूद्र भावापन्न ही समझते हैं। जैसे—

"शनैः शनैः क्रियालोपादय ता वैश्यजातयः।
कलौ शूद्रसमा ज्ञेया यथा क्षत्रा यथा विशः॥" (इतिविष्णुः)

'युगे जघन्ये द्वे जाती ब्राह्मणः शूद्र एव च' इति यमः। 'शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः। वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च।' इति मनुवचनं धृत्वा एषामम्बष्ठादीनामपि कलौ शूद्रत्वमिति स स ग्रन्थेषु वाचस्पतिमिश्रादिभिस्तथा शुद्धितत्वे स्मार्त भट्टाचार्येणाप्युक्तम्। अतएव कुलपञ्जिकायामुक्तम्—

"अतिदिष्टं हि वैद्यस्य शूद्रत्वं वणिगादिवत्।
तस्मात् ब्रतविशालुत्वो वैद्यः शूद्रस्य पूजितः॥"

(चन्द्रप्रभा पृ ३०)

अर्थात् क्रमसे क्रियालोपके कारण वैश्य जातिकी तरह वैद्य जाति भी कलिमें शूद्रत्वको प्राप्त हुई है। यमने कहा है, कि इस जघन्य कलियुगमें ब्राह्मण और शूद्र केवल यही दो जातियां रहेंगी। ब्राह्मणके अदर्शन और

क्रमसे क्रियालोप होनेसे ये सब क्षत्रिय जातियां शूद्रत्वको प्राप्त करेंगी। मनुका वचन उद्धृत कर स्व स्व ग्रंथमें वाचस्पतिमिश्र आदि और शुद्धितत्त्वमें स्मार्त्त भट्टाचार्य्य द्वारा कलिकालमें अम्बष्ठादिका भी शूद्रत्व प्रतिपादित हुआ है। इसी कारण प्राचीन कुलपञ्जिकामें लिखा है, कि क्षत्रियोंकी तरह वैद्य भी अतिदिष्ट शूद्र हैं। (चन्द्रप्रभा) प्रायः १५९७ शक (१६७५ ई०)में राढ़ीय वैद्यकुलतिलक भरतमल्लिकने लिखा है,—

"अतिदिष्टं हि वैद्यस्य शूद्रत्वं क्षत्रियादिवत्।"

उक्त प्रमाणके अनुसार कहा जा सकता है, कि महामति भरत मल्लिकने जिस समाजमें जन्म लिया था, उस प्रथित राढ़ीय वैद्य समाजमें उनके समय उपवीत प्रचलित न था। साधारणतः वे शूद्राचारी ही गिने जाते थे। राजा राजवल्लभके अभ्युदयसे ही राढ़ीय और वङ्गज दोनों वैद्य समाजमें ही पुनः संस्कार या वैश्याचारग्रहणका सूत्रपात हुआ। राजा राजवल्लभने राढ़ीय वैद्य समाजके प्रधान समाजस्थान श्रीखण्डमें विवाह किया और अपने मुर्शिदाबादके भवनमें काशी, काञ्ची, द्राविड़ आदि भारतीय सभी प्रधान पण्डितोंका आह्वान कर पुनः संस्कारग्रहणकी व्यवस्था ली थी। उस व्यवस्थापत्रमें लिखा है—

"कड़इयादि ग्रामनिवासिनामम्बष्ठानां यज्ञोपवीतादिकामिति लोकदर्शनेन च" अर्थात् कड़इयादि ग्रामनिवासी अम्बष्ठोंका यज्ञोपवीत अभी भी दृष्टिगोचर होता है। इससे भी जाना जाता है, कि इस व्यवस्थाके ग्रहणके समय श्रीखण्ड आदि प्रधान प्रधान वैद्यसमाजमें यज्ञोपवीत प्रचलित न था। ऐसी दशामें उक्त व्यवस्थापत्रमें ऐसा नितांत अप्रसिद्ध ग्रामका उल्लेख कदापि न रहता*।

ब्राह्मणाभ्युदयके बाद यह जाति ब्राह्मणसमाजसे सम्पूर्ण भिन्न हो जाने पर भी कौलिन्यप्रथाके कठोर शासन पर भी कायस्थ समाजसे वैद्यसमाज अलग न हो सका। आश्चर्यका विषय है, कि प्रसिद्ध गोत्रीय वङ्गज कुलीन कविराज राघवने अपने सद्वैद्यकुलदर्पणमें अपने पूर्वपुरुषोंके परिचय प्रारम्भमें—

"गणेशरामकृष्णाख्य गङ्गादित्य महेश्वर।
पितागुरु परंमल्ल चित्रगुप्त नमोऽस्तु ते॥"

इत्यादि श्लोकोंके द्वारा आदि कायस्थ चित्रगुप्तका स्मरण किया है।

राजपूत सम्बन्ध।

पहले ही कह आये हैं, कि बौद्धाधिकारकालमें वैद्यसम्प्रदायका क्षत्रियोंसे सम्बंध था। पाली ग्रन्थसमूहसे उसका आभास मिलता है। जैन और बौद्धाधिकारमें क्षत्रिय प्रधानताका ही निदर्शन है। इसीसे सुप्राचीन जैन और बौद्धग्रंथोंमें ब्राह्मणसे क्षत्रिय श्रेष्ठ कहे गये हैं। इसी प्राधान्यका लोप करनेके उद्देशसे पुनर्ब्राह्मणाभ्युदय कालमें ब्राह्मणनियंभकार क्षत्रिय जातिके विलोपसाधनमें प्रवृत्त हुए थे। इसीके फलसे यहां 'युगे जघन्ये द्वे जाती ब्राह्मणःशूद्र एव च" इत्यादि कल्पित श्लोकोंकी सृष्टि हुई थी। इसी लिये ब्राह्मणाभ्युदयके बहुत पीछे वैद्यकुलग्रंथोंमें असिजीवी कायस्थोंका सम्बन्ध विवृत होने पर भी जो असिजीवी जाति ब्राह्मणोंके विरुद्ध अभ्युदित हुई थी, उनके संश्रवकी बातको स्थान नहीं मिला। किंतु वैद्य जातिमें जो पूर्वतन क्षत्रियवृत्ति सम्पूर्णरूपसे विलुप्त नहीं हुई थी, वह सेनभूमके राजवंशके विवरणालापसे स्पष्ट प्रमाणित होगा जो हो, १७वीं शताब्दीके पहले उच्च वैद्यजातिके साथ राठोर शाखाके राजपूतोंका विशेष रूपसे सम्बंध हुआ था। सभी कुलग्रन्थोंसे इसका प्रमाण मिलता है।

बड़े ही आश्चर्यकी बात है, कि बङ्गालकी अन्यान्य जातियोंका अस्तित्व भारतके प्रायः सब स्थानोंमें है, किन्तु वैद्य जातिका अस्तित्व बङ्गाल छोड़ और कहीं भी दिखाई नहीं देता। उत्तर-पश्चिम और विहार प्रदेशमें कनौजीया ब्राह्मण और कायस्थ साधारणतः चिकित्सा

---

* राजा राजवल्लभके समय जो गौड़वङ्गके वैद्यसमाजमें द्विजाचार पुनः प्रवर्त्तित हुआ, उस समयके थोड़े समय बाद रचित श्री मृत्युञ्जय विद्यालङ्कारके राजावली और Ward's Hindoos नामक ग्रंथके पढ़नेसे जाना जाता है।

वृत्ति करते हैं, फिर भी, उनके साथ बङ्गीय वैद्योंके कुछ सम्बन्ध होनेका कोई प्रमाण नहीं। वैद्य कुल ग्रन्थके अनुसार नन्दी आदि महाराष्ट्रमें जा कर बस गये। किसी किसीका ख्याल है, कि यहांके सेनवी ब्राह्मण ही यहांकी वैद्य जातिको मतान्तर शाखा है, किन्तु सेनवियोंमें तो चिकित्सा वृत्ति देखी ही नहीं जाती। वास्तवमें इस उन्नत जातिकी यथार्थ उत्पत्तिका इतिहास घोर तमसाच्छन्न है। पूर्व भारतमें बौद्धप्रभावके समय इसमें सन्देह नहीं, कि इस जातिका स्वतंत्र समाज गठित हो रहा था।

इस समय बङ्गालमें वैद्योंके साधारण चार समाज हैं—पञ्चकोट, राढ़ीय, बङ्गज, वारेन्द्र। पञ्चकोट समाज दो प्रधान शाखामें विभक्त हुआ है—सेनभूम और वीरभूम। मानभूम जिलेके वैद्य सेनभूम समाजके अंतर्गत हैं और वीरभूम जिलेके वैद्य वीरभूम समाजके अंतर्गत हैं।

राढ़ीय समाज प्रधानतः तीन शाखाओंमें विभक्त है—श्रीखण्डसमाज, सातशैका समाज और सप्तग्राम समाज। त्रिवेणी, कांचड़ापाड़ा, कुमारहट्ट, सोमड़ा, सुकचे, नाटागढ़, दिगड़े, बलागढ़, गुप्तिपाड़ा आदि गांगाके तीरवर्ती स्थानोंके वैद्य सप्तग्राम समाजके अन्तर्गत हैं। पूर्वसीमा कालना, पश्चिमसीमा वर्द्धमानका पश्चिम प्रांत, उत्तरीसीमा कांटोवा और दक्षिण सीमा पाण्डुआ इन चारों सीमाके भीतरके वैद्य सात शैका-समाजके अंतर्गत हैं। कांटोवाके उत्तर अवस्थित स्थानके वैद्यगण अहङ्कारपूर्वक अपनेको श्रीखण्ड समाजके वैद्य कहते हैं। ये सबकी अपेक्षा सदाचार-सम्पन्न हैं।

राढ़ीय कुलग्रंथ।

राढ़ीय सद्वैद्य या कुलीन समाजका परिचय देनेके लिये बहुतेरे वैद्य पण्डितोंने लेखनी उठाई थी। उनमें भूरिश्रेष्ठी-राजसभापण्डित प्रसिद्ध टीकाकार श्रीभरत मल्लिक-रचित कुलग्रंथ ही राढ़ीय वैद्योंका प्रामाणिक ग्रंथ कहा जाता है। ये दो कुलग्रंथ रच गये हैं—चन्द्रप्रभा और रत्नप्रभा। चंद्रप्रभा बहुत बड़ा ग्रंथ है। इसमें राढ़ागत वीरपुरुषसे भरतके समय तक सब सद्वैद्योंकी वंशावली और कुलपरिचय दिया गया है। रत्नप्रभामें केवल शुद्ध कुलीनोंका परिचय है। भरत मल्लिकके ग्रन्थमें दुर्गादास त्रिलोचन, सञ्जय, यादवराय, जगदीश, घटकराय, नारायणदास, अंतरङ्ग खां आदि कुलग्रंथकारोंके वचन उद्धृत किये गये हैं। सम्भवतः भरतमल्लिकका ग्रंथ विशेष आदृत हुआ जिससे अन्यान्य कुलग्रंथोंका प्रचलन बंद हो गया।

वैद्योंका गोत्र।

वैद्यपण्डित भरतमल्लिकने चन्द्रप्रभामें इस तरह लिखा है—

सेन दास आदि वैद्योंके २८ गोत्रोंका पृथक् पृथक् भावसे क्रमशः उल्लेख किया जाता है। यथा—धन्वंतरि, शक्ति, वैश्वानर, आत्रेय, मौद्गल्य, कौशिक, कृष्णात्रेय और आङ्गिरस, सेनोंके ये आठ गोत्र हैं।

मौद्गल्य, भरद्वाज, शालङ्कायन, शाण्डिल्य, वशिष्ठ और वात्स्य, दासोपाधिधारी वैद्योंके ये छः गोत्र हैं।

गुप्तोंके काश्यप, गौतम और सावर्णि, केवल तीन गोत्र हैं।

कौशिक, काश्यप, शाण्डिल्य और मौद्गल्य दत्तोपाधिक वैद्योंके ये चार गोत्र हैं।

वैद्योंमें जिनकी देव उपाधि है, उनके आत्रेय, कृष्णात्रेय, शाण्डिल्य और शालङ्कायन—ये चार गोत्र हैं।

करोंके गोत्र—भरद्वाज, पराशर, वशिष्ठ, शक्ति।

राजोंके वात्स्य और मार्कण्डेय। सोमोंके कौशिक और काश्यप। नन्दियोंका मौद्गल्य। चन्द्रोंका वशिष्ठ। धरोंका काश्यप। कुण्डोंका भरद्वाज। रक्षितोंका काश्यप।

किसी-किसी देशमें पूर्वोक्त दत्तोंके आत्रेय गोत्रीय और देश भेदसे आत्रेय और कृष्णात्रेय गोत्रीय बहुतेरे वैद्य संतान दिखाई देते हैं। अतएव दत्तवंशीय वैद्योंमें कुल सात गोत्र हैं। इसी तरह करोंमें भी देशभेदसे काश्यप, वात्स्य और मौद्गल्य गोत्रीय अनेकानेक वैद्यसंतति विद्यमान रहनेसे ये भी सात गोत्रोंमें विभक्त हुए हैं। राजोंमें भी किसी किसी स्थानमें

काश्यपगोत्र हैं। सुतरां ये भी कुल तीन गोत्रोंमें विभक्त हैं। इसी तरह घरोंमें भी जामदग्न्य और रक्षितोंमें भरद्वाज गोत्रकी बात सुनी जाती है।

पूर्वोक्त उपाधियोंके सिवा वैद्योंमें इंद्र और आदित्य—ये दो उपाधियां भी दिखाई देती हैं। उनको भी संख्याका पृथक् रूपसे उल्लेख किया जाता है—

इन्द्रके—काश्यप और आदित्यके आदित्य और कौशिक गोत्र हैं।

इस समय देखा जाता है, कि वैद्योंमें कुल पचास गोत्र हैं, इनके सिवा देशांतरमें भी इनके अन्य गोत्रका उल्लेख नहीं मिलता। यद्यपि दत्त आदि उपाधिधारी वैद्यके किसी देशमें कोई गोत्र विद्यमान हो, तो यह कहना होगा, कि वह समाजमें अप्रसिद्ध है।

कुलपञ्जिकान्तरोक्त राढ़ीय वैद्यकुलोंका उत्तमाधम गोत्र।

काञ्जोगा ग्राम-निवासी सेनवंशीय वैद्योंके आठ गोत्र हैं। उनमें शक्ति और धन्वन्तरि श्रेष्ठ हैं। वैश्वानर और आद्य—ये दो गोत्र मध्यम हैं, मौद्गल्य, कौशिक, कृष्णात्रेय और आङ्गिरस ये चार गोत्र अधम माने जाते हैं। गोनगरीय दासोंके १६ गोत्रोंमें मौद्गल्य और भरद्वाज ही श्रेष्ठ हैं। शालङ्कायन और शाण्डिल्य मध्यम हैं। वशिष्ठ, वात्स्य—ये दो गोत्र नितान्त अधम हैं। कारङ्कोडके रहनेवाले गुप्तवंशोंमें काश्यपगोत्रीय ही उत्तम हैं। गौतम गोत्रीय मध्यम तथा सावर्णि अधम हैं। मोरशासन ग्रामके दत्तोंमें कौशिक सर्वोत्तम, मौद्गल्य, काश्यप और शाण्डिल्य मध्यम और आद्य गोत्रीय सर्वापेक्षा निन्दनीय हैं। इनमें कान्तरवासी करोंमें पांच गोत्र हैं। इनमें शक्ति, वात्स्य और मौद्गल्य निकृष्ट हैं। समयस्थान-निवासी देववंशियोंके चार गोत्रोंमें शैवालात्रेय गोत्र ही उत्तम है। कृष्णात्रेय मध्यम और भालमान तथा शाण्डिल्य ये दोनों हीनगोत्र हैं। राढ़ीय वैद्योंमें मेदशासनवासी राज उपाधिधारी वात्स्य गोत्रीय सर्वश्रेष्ठ और मार्कण्डेय गोत्र सर्वापेक्षा निकृष्ट है। मणिग्रामके सोमोंमें जो कौशिक गोत्रीय है, कुलज्ञने उनको श्रेष्ठ और काश्यप गोत्रियोंको हीन निर्देश किया है।

नारायण दासान्तरकृतमें दास, नन्दी आदि आठ प्रकार वारेन्द्र श्रेणीके वैद्योंका इस तरह गोत्रनिर्णय किया है।

दास और नन्दी—ये मौद्गल्यगोत्रीय हैं।

घर और रक्षित—काश्यपगोत्रीय।

कर और चन्द्र—पराशर और वशिष्ठ गोत्र।

कुण्ड—भरद्वाज गोत्र। दत्त—शाण्डिल्य गोत्र।

वारेन्द्रोंमें इन कई गोत्रोंका आनुपूर्विक उल्लेख किया गया। उक्त उपाधिधारियोंके श्रेष्ठत्वका ज्ञापक है, किन्तु इसका व्यतिक्रम होनेसे ये सब गोत्र इनके हीनतासूचक हैं। जैसे दास और नन्दीके शाण्डिल्य, भरद्वाज, काश्यप आदि।

पञ्जिकान्तरमें वारेन्द्र वैद्योंका स्थान और गोत्र इस तरह है—

दास और नन्दी—इनका वासस्थान जामूर्ग तथा चम्पारी और गोत्र मौद्गल्य है।

घर और रक्षित—ये काश्यप गोत्रीय हैं और बन्धावनी और करञ्ज ग्राममें रहते हैं।

कर और चन्द्र—भेड़ी और मोरशासन ग्राममें वास है। पराशर और वशिष्ठ गोत्र हैं।

कुण्ड—भरद्वाज गोत्रीय और नागशासनमें वास है।

दत्त—वटग्राम और लोध्रवलोमें वास है और शाण्डिल्य गोत्र है।

राढ़ीय भटपर वैद्योंका प्रवर।

धन्वन्तरिगोत्रीय सेनोंके—धन्वन्तरि, अपसार, नैध्रुव, आङ्गिरस और वार्हस्पत्य—ये पाँच प्रवर हैं।

शक्ति गोत्रीय सेनोंके—शक्ति, पराशर और वशिष्ठ ये तीन हैं।

मौद्गल्य गोत्रीय दासोंके—और्व, च्यवन, भार्गव, जामदग्न्य और आप्नुवान—ये पांच प्रवर हैं।

काश्यपगोत्रीय गुप्तके—काश्यप, अपसार और नैध्रुव।

कौशिक गोत्रीय दत्तोंके—शाण्डिल्य, असित और देवल।

कृष्णात्रेय गोत्रीय दत्तोंके—कृष्णात्रेय, वशिष्ठ और आत्रेय।

आत्रेय गोत्रीय देवोंके—आत्रेय, आङ्गिरस और वार्हस्पत्य।

वात्स्य गोत्रीय राढ़ोंके—वात्स्य, असित और मार्कण्डेय।

कौशिक गोत्रीय सेनोंके—कौशिक, काश्यप और भार्गव ये तीन प्रवर हैं।

राढ़ीयादि भेद।

सेन, दास, गुप्त, दत्त, देव, कर, राज और सोम ये आठ घर राढ़ीय वैद्य हैं।

नन्दी, नाग, धर, कुण्ड, रक्षित, दास, दत्त और कर ये वारेन्द्र कहलाते हैं।

उक्त राढ़ीय वैद्योंमें प्रायः बहुतेरे बङ्गदेशमें आ कर बस गये। और नन्दी आदि वारेन्द्र वैद्योंमें कुछ लोग महाराष्ट्र चले गये।

सेन आदि वैद्योंका पूर्व स्थान।

काञ्चीशा, गोनगर, कट्टुकोठ, मोरशासन, कान्तार, गदरभुम, मेदुशासन और मणिग्राम—ये आठ सेन-प्रमुख राढ़ीय वैद्योंके पूर्व स्थान हैं।

कुलीन और मौलिक कथन।

बीजपुरुषसे अब तक जिनका कुलकार्य उचित रीतिसे चला आ रहा है, वे ही कुलीन हैं। महाकुल, मध्यकुल और अल्पकुल भेदसे कुल सम्बन्ध आदिके दोषसे नष्ट होता है। उनके मूल वंश सुप्रसिद्ध रहने पर भी वैद्य सम्प्रदायमें वे मौलिक नामसे प्रसिद्ध हैं।

कुलका गरिष्ठादि भाव।

मालञ्च, धनहट्ट और सेनहट्ट समाजके कायुवंशीयगण गरिष्ठ कुलीन हैं। अल्प दोषसे इनकी कुलीनतामें किसी तरहकी हीनता नहीं होती। खाना, मङ्गलकोट और नरहट्ट समाजके कायु और गन्धवंशीय कुलीन कोमल कह कर विख्यात हैं और सामान्य दोषसे भी पतित होते हैं। गरिष्ठोंमें जो विशेष ख्यातिमान हैं, वे अति गरिष्ठ हैं और जो अप्रसिद्ध हैं, वे कोमल आख्यासे आख्यात होते हैं। इसी तरह कोमलोंमें भी जिनकी अतीव सुख्याति है, वे गरिष्ठ हैं और जिनको किसी तरह ख्याति नहीं, वे अति कोमल कहके विख्यात हैं। फलतः यह गरिष्ठत्व और कोमलत्व दोनों ही कुलक्रियादि अच्छे होनेसे ही कुलका गौरव और खराब होनेसे कुलका लाघव होता है, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं।

वैद्योंके पूज्यापूज्य और पौर्वापर्य विचार।

सेन, दास और गुप्त ये क्रमसे पूज्य हैं अर्थात् माननीय हैं। किसी सभामें गोष्ठी अर्चनाके समय इन तीन वंशीय कुलीनोंके उपस्थित रहने पर उनमें सेन ही पहली अर्चनाके योग्य होंगे। उनके नहीं रहनेसे वहां दास और दास जहां नहीं रहेंगे, वहां गुप्त पूज्य होंगे। पहलेसे अब तक इसी तरहसे पूजनक्रम चला आ रहा है। पीछे किसी समय इनमें परस्पर प्रतिद्वन्द्विता होनेसे विप्रोंके विचारसे पितृ-पितामहादि क्रमसे और ज्ञाति कुटुम्ब आदिके प्राचुर्यसे भाग कर ही प्रथम पूजनीय स्थिर हुए। इस कारणसे सद्वंशीयगण ही सर्वत्र पूजित होते आ रहे हैं। इसके बाद सागरगुप्तका जो कोई उपस्थित रहता था, वही पूजित होता था। उसमें भी उपस्थित होनेसे पण्डित लोग कहीं सम्बन्धादिकी उत्कृष्टता विचारपूर्वक, कहीं पर्यायकी गुरु लघुता निर्द्धारण कर प्रतिद्वन्द्वियोंमें पूज्यापूज्य ठीक कर देते थे। जिस समय ऐसी व्यवस्थाका लोप हो गया, उस समय ख्याति ही बलवती हो उठी अर्थात् जब उनमें जो प्रसिद्ध होते, जिनकी दस पांच आदमी पूछताछ करते, वे ही पूज्य गिने जाते थे।

दुर्जयदासके मतसे पूज्यापूज्य निर्णय।

दुर्जयदासका कहना है, कि पहले जैसे प्रथम विनायक, पीछे वायु, इसके बाद कायु पूज्योंमें गिने जाते थे, इस समय भी वैसे ही कुमार, विश्वम्भर और विश्वनाथ ये तीन यथाक्रमपूज्य हैं। जहां इन तीनोंका अभाव हो या इनके वंशधर उपस्थित नहीं रहें वहां वैद्यगण प्राचीन कुलज्ञोंके विचार मेरे वाक्योंके प्रामाण्य ले कर पूज्य निर्णय करें।

जिनके पिता दत्तके दौहित्र हैं, जिन्होंने दत्तवंशको कन्यादान किया है, जिनके भ्राता दत्तवंशके जामाता हैं, वे कुमारसेन किस तरह अद्वयख्याति कहे जा सकते हैं! इस तरहका प्रश्न युक्तिसंगत कहा जा नहीं सकता। क्योंकि कुलमें और पौरुषमें कुमारसेनके समान कोई नहीं है। वे सर्वगुणसम्पन्न सर्वलोकपुरस्कृत हैं

सब जातियोंके प्रधान, आत्मीय कुटुम्ब सब इनके वशीभूत हैं, अतएव ऐसे महान व्यक्तिके यद्यपि कोई सामान्य दोष दिखाई दे, उस पर किसीको ध्यान न देना चाहिये। क्योंकि कभी कोई बड़ेका सामान्य दोष नहीं देखता। इस कारण सर्वसम्मति-क्रमसे कुमारसेन अर्चनामें सर्वाग्र हुए। इसी तरह विश्वम्भर स्वयं आपके दौहित्र होने और उनके ज्येष्ठ भ्राता नन्दीकन्यासे विवाह करनेसे इनके भी बहुविध गुण होनेसे दास वंशमें ये ही प्रथम पूजनीय हैं। विश्वनाथ भी देवकन्या समुद्भूत गङ्गाधर गुप्तके वंशधर होनेकी वजह कुछ दोषान्वित होने पर भी अपने सत्स्वभाव गुणोंसे वैद्य-समाजमें सर्वत्र पूजित हैं।

कुलाचार्यने सञ्जय और विनायक-वंशीय भास्कर को गोष्ठीपति और उनके विश्वविख्यात तीनों पुत्रोंको महाकुलीन कह कर निर्वाचन किया है। इस कारणसे तत्तद्वंशीयगण भी वैद्यसमाजमें सर्वाग्र पूज्य होते हैं। इनके अभावमें विचारसे जो श्रेष्ठ होंगे, वे ही समाजके पूजनीयोंमें गण्य होंगे।

घटकरायके मतसे—विनायकवंशके जगद्विख्यात कृष्ण खाँ और हरिहर खाँ दोनों ही महाकुलीन कहे जाते हैं। इनके वंशधर चाहे कोई हों, वे निश्चय ही सर्वाग्र पूजनीय होंगे। कायुवंशीय वनमाली आदि सभी महाकुलीनोंमें गिने जाते हैं और उनके वंशज कोई यथासमय उपस्थित हो, तो वे ही समाजमें पूजित होंगे। इनके अभावमें विचारसे जो कुलमें श्रेष्ठ हैं, वे ही पूजनीय होंगे।

राढ़ीय वैद्यग्रन्थकार।

राढ़ीय वैद्यवंशमें संस्कृत या वङ्गभाषाके बहुतेरे कवि तथा ग्रन्थकार हो गये हैं। यहां उनका परिचय देना असम्भव है। उनमें महाकवि दामोदर सेन, चैतन्य पार्षद नरहरि सरकार ठाकुर, सदाशिव कविराज, आत्माराम दास, गोपीरमणदास, लोचनदास, कविकर्णपुर, परमानन्दसेन, रामचन्द्र कविराज, पदकर्त्ता गोविन्द दास, कविराज घनश्याम दास, बलराम दास, यदुनन्दन दास, गोकुलानन्दसेन, उद्धवदास, पीताम्बर दास, गौरीकान्तदास, साधक कविरञ्जन रामप्रसाद सेन, कवि ईश्वरचन्द्र गुप्त, निधूबाबू, कृष्णकमल गोस्वामी, ब्रह्मानन्द केशवचन्द्र सेन, स्वामी परिव्राजक प्रसन्नसेन आदिका नाम उल्लेखयोग्य है।

वङ्गज वैद्य समाजका परिचय।

राढ़ीय वैद्यसमाजकी तरह वङ्गज वैद्यसमाजमें भी बहुतेरे कुलग्रंथ रचे गये थे। प्रथम वायुदासवंशीय दुर्गादास और बीचमें चतुर्भुजने वैद्यसमाजका परिचय संस्कृत-भाषामें रचा, इसके बाद कविकंठ भाषामें लिख गये, अंतमें कविकङ्कणने एक कुलग्रंथ प्रकाशित किया। इन सब ग्रंथोंकी आलोचना कर राघव कविराजने अपना वैद्यकुलदर्पण प्रकाश किया है। राघवके बाद कविकङ्कणके भांजे राधाकान्त कविकण्ठहारने अपनी सुप्रसिद्ध (संस्कृत) सद्वैद्यकुलपञ्जिका लिपिबद्ध की है। इसके बाद घटक विशारद रामकांत दास वङ्गभाषामें 'ठाकुर' या 'टाकुर' और जगन्नाथने भागावली और दोषावली प्रकाशित की। ये सब ग्रंथ ही वङ्गज वैद्यसमाज-कुलेतिहासके निर्णय करनेमें एकमात्र सहायक हैं। इन्हीं सब ग्रंथोंके साहाय्यसे वङ्गजसमाजका संक्षिप्त परिचय लिखा गया।

"राढ़ीया भिषजो ये ये प्रायास्ते वङ्गजा अपि।"

(भरत-चन्द्रप्रभा)

उक्त वचनोंके अनुसार राढ़ीय वैद्यगण ही वङ्गदेशमें जा कर बस गये हैं। वे ही कुछ दिन बस जाने पर वङ्गज नामसे परिचित हुए।

यशोर जिलेमें इतना और खुलना जिलेमें सेनहाटी, पयोग्राम, मूलघर, भट्टप्रताप; वाकरगञ्ज जिलेमें सिद्धकाटी; फरीदपुर जिलेमें सेनदिया, काञ्जलिया, कान्दारपाड़, कापारिया आदि स्थानोंमें श्रेष्ठ कुलीनोंका वास है। आश्चर्यका विषय है, कि सेनहाटी और पयोग्रामको छोड़ और एक कुलीनका स्थान भी २७ समाजके अन्तर्गत दिखाई नहीं देता। इन कई ग्रामके अधिवासी आज भी समान भावसे कार्य कर रहे हैं। कालीया किञ्चित् न्यून है। यशोर जिलेमें कालीया, डोंगनडांगा, भाटारभादा, मर्योवा, मागुरा, राड़खाली, मामूदपुर, दौलतपुर, उत्तुन आदि स्थानोंमें नाना श्रेणीके वैद्योंका वास है।

फतेहाबाद या मूरपा समाजमें, सेनारं, चांचपूरी

वात्स्य गोत्रीय राढ़ीके—वात्स्य, असित और मार्कण्डेय।

कौशिक गोत्रीय सेनोंके—कौशिक, काश्यप और भार्गव ये तीन प्रवर हैं।

राढ़ीयादि भेद।

सेन, दास, गुप्त, दत्त, देव, कर, राज और सोम ये आठ घर राढ़ीय वैद्य हैं।

नन्दी, चन्द्र, धर, कुण्ड, रक्षित, दास, दत्त और कर ये वारेन्द्र कहलाते हैं।

उक्त राढ़ीय वैद्योंमें प्रायः बहुतेरे बङ्गदेशमें आ कर बस गये। और नन्दी आदि वारेन्द्र वैद्योंमें कुछ लोग महाराष्ट्र चले गये।

सेन आदि वैद्योंका पूर्व स्थान।

काञ्चीना, गोनगर, कङ्कुकोट, गोरनासन, कान्तार, गन्धभुम, मेहुनासन और मणिग्राम—ये आठ सेन-प्रमुख राढ़ीय वैद्योंके पूर्व स्थान हैं।

कुलीन और मौलिक कथन।

पांचपुरुषसे अब तक जिनका कुलकार्य उचित रीतिसे चला आ रहा है, वे ही कुलीन हैं। महाकुल, मध्यकुल और अन्तरकुल भेदसे कुल सम्बन्ध आदिके दोषसे नष्ट होता है। उनके मूल वंश सुप्रसिद्ध रहने पर भी वैद्य सम्प्रदायमें वे मौलिक नामसे प्रसिद्ध हैं।

कुलका गरिष्ठादि भाव।

मालञ्च, धन्वन्तरि और येतड़ समाजके काशुवंशीयगण गरिष्ठ कुलीन हैं। अन्य दोषसे इनकी कुलीनतामें किसी तरहका हीनता नहीं होती। सेना, बङ्कुरकोट और नरहट्ट समाजके काशु और धन्यवंशीय कुलीन कोमल कह कर विख्यात हैं और सामान्य दोषसे भी भ्रष्ट होते हैं। गरिष्ठोंमें जो विद्या एवं अभिमान है, वे अति गरिष्ठ हैं और जो अप्रसिद्ध हैं, वे कोमल आख्यासे आख्यात होते हैं। इसी तरह कोमलोंमें भी जिनकी अतीव सुख्याति है, वे गरिष्ठ हैं और जिनकी किसी तरह प्रतिपत्ति नहीं, वे अति कोमल कहके विख्यात हैं। फलतः यह गरिष्ठत्व और कोमलत्व दोनों ही कुलक्रियादि अच्छे होनेसे ही कुल-का गौरव और खराब होनेसे कुलका लाघव होता है। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं।

वैद्योंके पूज्यापूज्य और पौर्वापर्य विचार।

सेन, दास और गुप्त ये क्रमसे पूज्य हैं अर्थात् माननीय हैं। किसी सभामें गोष्ठी अर्चनाके समय इन तीन वंशीय कुलीनोंके उपस्थित रहने पर इनमें सेन ही पहले अर्चनाके योग्य होंगे। उनके नहीं रहनेसे वहां दास और दास जहां नहीं रहेंगे, वहां गुप्त पूज्य होंगे। पहलेसे अब तक इसी तरहसे पूजनक्रम चला आ रहा है। पीछे किसी समय इनमें परस्पर प्रतिद्वन्द्विता होनेसे विद्वोंके विचारसे पितृ-पितामहादि क्रमसे और ज्ञाति कुटुम्ब आदिके प्राचुर्यसे भाग कर ही प्रथम पूजनीय किये हुए। इस कारणसे सद्वंशीयगण ही सर्वत्र पूजित होते आ रहे हैं। इसके बाद सागरगुप्तका जो कोई उपस्थित रहता था, वही पूजित होता था। उनके भी उपस्थित होनेसे पण्डित लोग कहीं सम्बन्धादिका उच्च नीचता विचारपूर्वक, कहीं पर्यायकी गुरु लघुता निर्देश कर प्रतिद्वन्द्वियोंमें पूज्यापूज्य ठीक कर देते थे। जिस समय ऐसी व्यवस्थाका लोप हो गया, उस समय ज्ञाति ही बलवती हो उठी अर्थात् अब उनमें जो अधिक होते, जिनकी दश पांच आदमी पूछताछ करते, वे ही पूज्य गिने जाते थे।

दुर्जयदासके मतसे पूज्यापूज्य निर्णय।

दुर्जयदासका कहना है, कि पहले जैसे प्रथम विनायक, पीछे चायु, इसके बाद कायु पूज्योंमें गिने जाते थे, इस समय भी वैसे ही कुमार, विश्वम्भर और विश्वनाथ ये तीन यथाक्रमपूज्य हैं। जहां इन तीनोंका अभाव हो या इनके वंशधर उपस्थित नहीं रहें वहां वैद्यगण प्राचीन कुलजोंके विचार मेरे वाक्योंके प्रामाण्य ले कर पूज्य निर्णय करें।

जिनके पिता इसके दौहित्र हैं, जिन्होंने इस वंशको कन्यादान किया है, जिनके भ्राता इस वंशके जामाता हैं, वे कुमारसेन किस तरह महद्व्यक्ति कहे जा सकते हैं। इस तरहका प्रश्न युक्तिसंगत कहा जा नहीं सकता; क्योंकि कुलमें और पौरुषमें कुमारसेनके समान कोई नहीं है। वे सर्वगुणसम्पन्न सर्वलोकपुरस्कृत हैं

सब जातियोंके प्रधान, आत्मीय कुटुम्ब सब इनके वशीभूत हैं, अतएव ऐसे महान व्यक्तिके यद्यपि कोई सामान्य दोष दिखाई दे, उस पर किसीको ध्यान न देना चाहिये। क्योंकि कभी कोई बड़ेका सामान्य दोष नहीं देखता। इस कारण सर्वसम्मति-क्रमसे कुमारसेन अर्चनामें सर्वाग्र हुए। इसी तरह विश्वम्भर स्वयं भावके दौहित्र होने और उनके ज्येष्ठ भ्राता नन्दीकन्यासे विवाह करनेसे इनके भी बहुविध गुण होनेसे दास वंशमें ये ही प्रथम पूजनीय हैं। विश्वनाथ भी देवकन्या समुद्भूत गङ्गाधर गुप्तके वंशधर होनेकी वजह कुछ दोषाश्रित होने पर भी अपने सत्स्वभाव गुणोंसे वैद्य-समाजमें सर्वत्र पूजित हैं।

कुलाचार्योंने सञ्जय और विनायक-वंशीय भास्करको गोष्ठीपति और उनके विश्वविख्यात तीनों पुत्रोंको महाकुलीन कह कर निर्वाचन किया है। इस कारणसे तद्वंशीयगण भी वैद्यसमाजमें सर्वाग्र पूज्य होते हैं। इनके अभावमें विचारसे जो श्रेष्ठ होंगे, वे ही समाजके पूजनीयोंमें गण्य होंगे।

घटकरायके मतसे—विनायकवंशके जगद्विख्यात कृष्ण खाँ और हरिहर खाँ दोनों ही महाकुलीन कहे जाते हैं। इनके वंशधर चाहे कोई हों, वे निश्चय ही सर्वाग्र पूजनीय होंगे। कायुवंशीय वनमाली आदि सभी महाकुलीनोंमें गिने जाते हैं और उनके वंशजात कोई यथासमय उपस्थित हो, तो वे ही समाजमें पूजित होंगे। इनके अभावमें विचारसे जो कुलमें श्रेष्ठ हैं, वे ही पूजनीय होंगे।

राढ़ीय वैद्यग्रन्थकार।

राढ़ीय वैद्यवंशमें संस्कृत या बङ्गभाषाके बहुतेरे कवि तथा ग्रन्थकार हो गये हैं। यहां उनका परिचय देना असम्भव है। उनमें महाकवि दामोदर सेन, चैतन्य पार्षद नरहरि सरकार ठाकुर, सदाशिव कविराज, आत्माराम दास, गोपीरमणदास, लोचनदास, कविकर्णपुर, परमानन्दसेन, रामचन्द्र कविराज, पदकर्त्ता गोविन्द दास, कविराज घनश्याम दास, बलराम दास, यदुनन्दन दास, गोकुलानन्दसेन, उद्धवदास, पीताम्बर दास, गौरीकान्तराय, साधक कविरञ्जन रामप्रसाद सेन, कवि ईश्वरचन्द्र गुप्त, निधूबाबू, कृष्णकमल गोस्वामी, ब्रह्मानन्द केशवचन्द्र सेन, वाग्मी परिव्राजक प्रसन्नसेन आदिका नाम उल्लेखयोग्य है।

बङ्गज वैद्यसमाजका परिचय।

राढ़ीय वैद्यसमाजकी तरह बङ्गज वैद्यसमाजमें भी बहुतेरे कुलग्रंथ रचे गये थे। प्रथम वासुदामवंशीय दुर्जयदास और बीचमें चतुर्भुजने वैद्यसमाजका परिचय संस्कृत-भाषामें रचा, इसके बाद कविचन्द्र भाषामें लिख गये, अंतमें कविकङ्कणने एक कुलग्रंथ प्रकाशित किया। इन सब ग्रंथोंकी आलोचना कर राघव कविराजने अपना वैद्यकुलदर्पण प्रकाश किया है। राघवके बाद कविकङ्कणके भांजे राधाकान्त कविकण्ठहारने अपनी सुप्रसिद्ध (संस्कृत) सद्वैद्यकुलपञ्जिका लिपिबद्ध की है। इसके बाद घटकविशारद रामकांत दास बङ्गभाषामें 'ढाकुर' या 'ठाकुर' और जगन्नाथने भाषावली और दीपावली प्रकाशित की। ये सब ग्रंथ ही बङ्गज वैद्यसमाज-कुलेतिहासके निर्णय करनेमें एकमात्र सहायक हैं। इन्हीं सब ग्रंथोंके साहाय्यसे बङ्गजसमाजका संक्षिप्त परिचय लिखा गया।

"राढ़ीया भिषजो ये वै प्रायास्ते वङ्गजा अपि।"

(भरत-चन्द्रप्रभा)

उक्त वचनोंके अनुसार राढ़ीय वैद्यगण ही वङ्गदेशमें आ कर बस गये हैं। वे ही कुछ दिन बस जाने पर बङ्गज नामसे परिचित हुए।

यशोर जिलेमें इतना और खुलना जिलेमें सेनहाटी, पयोग्राम, मूलघर, भट्टप्रताप; वाकरगञ्ज जिलेमें सिद्धकाटी; फरीदपुर जिलेमें सेनदिया, काजलिया, खन्दारपाड़, कोण्डिया आदि स्थानोंमें श्रेष्ठ कुलीनोंका वास है। आश्चर्यका विषय है, कि सेनहाटी और पयोग्रामको छोड़ और एक कुलीनका स्थान भी २७ समाजके अन्तर्वर्त्ती दिखाई नहीं देता। इन कई ग्रामके अधिवासी आज भी समान भावसे कार्य कर रहे हैं। कालीया किञ्चित् न्यून है। यशोर जिलेमें कालीया, होगलडांगा, भाटारखाद्रा, मधीया, मागुरा, राउजाही, मामुदपुर, दौलतपुर, उस्कुल आदि स्थानोंमें नाना श्रेणीके वैद्योंका वास है।

फतेहाबाद या भूरणा समाजमें, नेयार, पांचपुर्वो

और पालोंग प्रधान स्थान हैं। इसके बाद फरीदपुर जिलेमें गोनगर, पैलङ्गा ग्राम, कालोपाली, पल्लमदी, भालिया, कोटालीपाड़ा आदि स्थानोंमें भी बहुतेरे वैद्यों-का वास है।

बाकलासमाजमें पोनाबालिया, गुलकाटी, बरैकरण, उत्तर-साहबाजपुर, लक्ष्मीनिया, कीर्त्तिपाशा, बासण्डा, साहिलाड़ा, गैला, फुल्लश्री, माटीभा, नरसिंहल, तेघरा, बाउफाटी, नलचिरा, देयरी, खलीसाकोटा, बाउकाटी, लाखुटिया, चंदरा, नारायणपुर आदि स्थानोंमें भी बहुतेरे वैद्योंका वास है।

यशोर समाजके कुलीनोंमें बहुतेरे बाजु और बाकला समाजमें वास करते हैं। विक्रमपुरमें भी इनकी बस्ती देखी जाती है। इस तरह कुलज या मौलिकोंकी संख्या नाना स्थानोंमें विस्तृत होने पर भी विक्रमपुरमें ही उनकी संख्या अधिक है।

भट्ट, पावरा, लेबसा, सुजापुर, दासोरा आदि स्थानों-में अनेक सामाजिक वैद्य वास करते हैं।

बाजुसमाज—बज्रमताप, सोन बाजु, दशकाहनीया, सालीमग्राम, इसके सिवा मैमनसिंह और पबनेका कुछ अंश ले कर यह समाज गठित हुआ है। इसमें मैमन-सिंहका अधिकांश और ढाका महेश्वरदी और सोनारगांके वैद्य सम्पूर्णरूपसे समाजभुक्त नहीं हुए।

हमने जिन पांच प्रधान समाजोंका नामोल्लेख किया है, उन सब स्थानोंमें जो जो महत् वंश वास कर रहे हैं, आदान-प्रदानके नामसे उन्होंने बहुत कुछ अपनी मानमर्यादाको बचाया था।

यशोहर प्रदेशमें ही अधिकसे वैद्य पूर्वाभिमुखी हो कर फतेहाबाद और विक्रमपुर तक आये। अन्य देशोंसे सदलके वैद्योंने पश्चात् बाकला और बाजुमें आ कर बस गये, इससे वे भी समाजमें परिगणित हुए।

समाजमें जो प्रधान कुलीन वास करते हैं, उनके नाम सेनहाटी, मूलघर, सम्बाटपाड़ा आदि समाजोंके वैद्य कुलीन समाजपति कार्य करनेमें कुण्ठित नहीं होते।

पाबना, राजशाही प्रभृति जो सब वैद्य वास करते हैं, वे बारेन्द्रसमाजके नामसे विख्यात थे। इनमें संख्यामें बहुत कम होनेकी वजहसे बङ्गजसमाजमें मिल गये।

सैकड़ों वर्ष बीत गये, चन्दननगर जिलान्तर्गत बाद्यपुर वङ्गीय वैद्योंका एक समाजस्थान हो रहा है। मैना-से कई गण्यसेनके समान कार्यके उपलक्षमें यहां आ कर बस गये हैं। पीछे उन्होंने पाश्चात्योंके उभय वैद्योंके साथ कार्य कर अपने ग्राममें ला कर उनको संस्थापित किया। इस समय उनका प्रचार बढ़ रहा है।

पूर्वमें श्रीहट्ट और चट्टग्राम समाज राढ़ीय और बङ्गजसमाजके साथ चल रहा था, यह बात प्राचीन कुलग्रन्थोंमें दिखाई देती है। जब राढ़ीय और बङ्गज-समाजका आदान-प्रदान छोड़ कर भागेंस हुए, तब श्रीहट्ट और चट्टग्राम समाजमें वैसे स्वतंत्रताकी सुविधा न रहनेसे उन्होंने आदि वैद्यसमाजसे सम्बन्ध विच्छिन्न कर लिया। वर्त्तमानकालमें राढ़ीय और बङ्गज वैद्योंने एक ही समयमें चट्टग्राम और श्रीहट्ट-सम्बन्ध त्याग कर दिया, इसीसे राढ़ीय और बङ्गजसमाजमें श्रीहट्ट समाज विशेष भावसे निन्दित है।

वैद्योंके समाजपति।

अन्यान्य समाजोंकी तरह वैद्योंके पूर्वमें समाज-पति थे। सेनभूमके राजवंश ही वैद्यसमाजके आदि समाजपति हैं। समाजके प्रवीण और समाज-पति एकत्र बैठ कर अपराध शासनके अधिकारी थे। पहले लिख आये हैं, कि विनायक सेन राढ़ीय वैद्य समाजके आदि गोष्ठीपति हैं। कुलग्रन्थसे हम जान सकते हैं, कि उनके वंशके कुमारसेन, बासुदेवके चिरञ्जीव और दुर्लभदास और गुणाकरके विश्वनाथ गोष्ठीपति हुए थे।

ये सभी ज्ञाति-समाजमें कभी कभी एक एक जगहमें गोष्ठीपति होते थे, किन्तु उस समय सेनभूमके राजवंश ही समूचे वैद्यसमाजके समाजपति थे। १४वीं शताब्दी तक उनका समाजपतित्व अक्षुण्ण था। पूर्ववङ्गके वैद्यसमाजमें भी एक एक आदमी समाजपति थे, यह बात कुलग्रन्थकी उक्तिसे जानी जाती है। विनायक सेनके पुत्रमें रविसेन महामण्डल, चन्द्रमौलि पौत्र उनके सेनरूपमें विजयसेन वैद्यमण्डल भी और विजय

सेनके पौत्र धनञ्जयके पुत्र रामचन्द्रसेन समाजपति हुए थे।

इस वंशका इस समय विलोप हो गया है। इसके बाद और किसीको भी समग्र वैद्यका समाजपति नहीं बनाया गया। केवल ढाका माणिकगञ्जके अन्तर्गत दासोराके दत्तवंशका याञ्जसमाजका, विक्रमपुरके गौपाड़ाका भरद्वाज चौधरीवंशका विक्रमपुर ढाका समाजका और साहजादपुरके भरद्वाजोंको यावन्याका समाजपति होना मालूम होता है।

राजा राजवल्लभके अभ्युदयकालमें दासोराका दत्तवंश पूर्व वङ्गमें कुछ समाजपतित्व कर रहा था। इस वंशने ही शक्ति दुहिसेन वंशीयगण सेनको ६४ ग्राम दान दे सपरिवार विक्रमपुरमें बुला कर प्रतिष्ठित किया। गणसेन एक समय कुल स्थान परित्याग कर आने पर ही स्थानत्यागवशतः कुलहीन हुए।

इसके पिछले समयमें विक्रमपुर राजनगर निवासी धन्वन्तरि गोत्रज राजा राजवल्लभसेन सामाजिक क्रियाके बलसे और सेनहाटी और विक्रमपुर अञ्चलके वैद्योंकी सम्मतिसे समाजपति हुए। राजवल्लभने जिस समय सेनहाटी-निवासी कन्दर्परायकी कन्याके साथ अपने तीसरे पुत्र राजा गङ्गादासका विवाह किया, उसी समय उन्होंने समुदाय कुलीन और घटकोंको बुला कर एक चन्दन कार्यका अनुष्ठान किया। इसके बाद सेनहाटी-निवासी हिंगुवंशीय कृपेश्वर सेनके साथ उनकी कनिष्ठा कन्या अभयाके विवाहके समय भी उन्होंने इसी तरह एक चन्दनका अनुष्ठान कर वैद्य समाजपतित्व प्राप्त किया। पीछे उनके भतीजे दीवान बहादुरने अपने पुत्र रायवृन्दावनचन्द्रका विवाह अरविंद विश्वनाथ मजुमदारकी कन्याके साथ किया। उस समय भी उन्होंने एक चंदनका अनुष्ठान कर समुदाय कुलीन और घटकोंको एकत्र किया था, इस सभामें राजा राजवल्लभ समाजपति और रायगुरुप्रसाद सहकारी समाजपति कहके सम्मानित हुए थे। वङ्गज समाजमें जयसारके सुप्रसिद्ध लाला रामप्रसाद रायने पयोग्राम-निवासी हिंगुमगाधरवंशीय रामधन सेनके साथ अपनी कन्या सर्वेश्वरीका विवाह किया। इस विवाहमें भी एक चंदनका अनुष्ठान हुआ था। उस समय समवेत कुलीन और घटकोंने रामप्रसादको उपसमाजपति स्वीकार किया था। कहनेकी जरूरत नहीं, कि इस कार्यमें भी राजवल्लभ वैद्यसमाजपति और रायगुरुप्रसाद सहकारी समाजपति माने गये थे।

वङ्गज वैद्यग्रन्थकार।

वङ्गज वैद्यसमाजमें भी संस्कृत और बंगला बहुतेरे कवियों और ग्रन्थकारोंने जन्मग्रहण किया था। राघव कविराजके सद्वैद्यकुलदर्पण और कविकण्ठहारकी सद्वैद्यकुलपञ्जिकामें अनेक महात्माओंके नाम दिखाई देते हैं। सिवा इनके विजयगुप्त, षष्ठीवरसेन, गंगादाससेन, वैद्यजगन्नाथ, लाला रामगति राय, लाला जयनारायण राय, आनंदमयी, मुक्ताराम सेन, अनंतराम दत्त, जगदीश गुप्त, संवकवि भवानी प्रसाद, शिवचंद्रसेन, रामलोचन दास, वलरामपोल रामकुमारसेन, गोलमणिदास, काली नारायण गुप्त, पद्ममणि दाससेन, पतनचोस रामकुमार सेन, मुंशी शम्भूनाथ दास, नीलमणि दास, गोलोकचंद्रसेन, ईश्वरचंद्रसेन, जगद्बंधुदास, कालीनारायण गुप्त, मुंशी रामनाथ सेन, कालीकुमारदास, दुर्गापति सेन, पण्डितवर गङ्गाधर कविराज, कृष्णचंद्र मजुमदार, दीननाथ सेन, दुर्लभचंद्र सेन, रजनीकांत गुप्त, रोहिणीकुमार रायचौधरी आदि कवि तथा ग्रन्थकार वङ्गज वैद्यसमाजका मुखोज्ज्वल कर गये हैं।

वैद्यजीवन दास—एक प्राचीन कविका नाम।

वैद्यमरसिंह सेन (सं० पु०) पासवद्गाटीकाके रचयिता।

वैद्यनाथ—सन्थाल परगनेका प्रसिद्ध शैवतीर्थ। अङ्गरेज अधिकारमें भी यह एक समय वीरभूम जिलेमें, पीछे शाहाबाद जिलेके एक छोटेसे ग्रामके रूपमें परिगणित था। प्राचीन तीर्थमाहात्म्य आदि ग्रन्थोंमें वैद्यनाथक्षेत्र वीरभूमके अन्तर्गत कहा गया है।

देवघर देखो।

यह स्थान कलकत्तेके हावड़ा स्टेशनसे इष्ट इण्डिया रेलके कार्ड लाइनके पथसे २०१ मील पर अवस्थित है। यहांसे देवघर मधुपुर तक एक शाखा रेल विस्तृत है। जबसे यह रेल खुली, तबसे वैद्यनाथधाम जानेमें

यात्रियोंको बड़ी सुविधा होती है। पहले यात्री पैदल चल कर पार्वतीय प्रान्तरको तय करते थे। पथमें डाकुओंका पूरा भय था। सिवा इसके कभी कभी बद-माश पण्डोंके साथी भी मौका पा कर यात्रियोंको लूट लेते थे। इस समय ये सब उपद्रव अत्याचार लुप्त हुए हैं।

रेलपथके खुल जानेसे अब यात्रियोंको पैदल चलनेका मौका ही नहीं आता, फलतः डाकुओंका उपद्रव आप ही आप शान्त हो गया। अब यात्रियोंको विशेष कष्ट नहीं भोगना पड़ता। यथेष्ट पूजादि कर यात्री उसी दिन लौट भी आ सकते हैं।

वैद्यनाथधाम समुद्रपृष्ठसे ८७४ फीट ऊँचा है। उच्चताके कारण ही यहांकी मिट्टी रसदार नहीं और वायु भी रूखी और अतीव रसवर्जित है। यहांकी अधित्यकाभूमिके प्रवाहित जलमें नाना धातव पदार्थ मिश्रित होने और वायु साफ रहनेसे यह स्थान बड़ा ही स्वास्थ्यकर है। विशेषतः यह एक तीर्थक्षेत्र है। धर्मप्राण भारतवासी विशेषतः बङ्गाली वार्द्धक्यमें उपस्थित होने पर तीर्थवासके हेतु और वृद्धावस्थामें स्वास्थ्य-रक्षाके लिये यहां आ कर बसते हैं। इस समय यहां बहुतेरे लोगोंने बस्ती कर ली है। आदि वैद्यनाथ तीर्थ अर्थात् देवघरमें केवल तीर्थयात्री बङ्गालियों और पण्डोंका वास है। जो जलवायु परिवर्त्तनके लिये देवघरमें आ कर वास करते हैं, वे देवमन्दिरके दक्षिण ओर करौंदेघरा टाउन भागमें रहते हैं। ये दोनों स्थान वर्त्तमान देवघर नगरके अन्तर्गत हैं। पहले यहां बस्ती न थी, अब क्रमसे बढ़ रही है।

देवघरसे कुछ पश्चिम वैद्यनाथ जंक्शन स्टेशन है। स्टेशनके सटा ग्राम भी वैद्यनाथके नामसे प्रसिद्ध है। यहां प्राचीनत्वके निदर्शनस्वरूप मैदानमें बाटमें अनेक भग्नस्तूप पड़े हुए हैं।

देवघरमें सुप्रसिद्ध वैद्यनाथका मन्दिर है। उसमें देवादिदेव महादेवका अनादि वैद्यनाथलिङ्ग स्थापित है। इस मन्दिरके प्राचीरके मध्य और भी २२ मन्दिर हैं। उनके गठनशिल्प कोई निपुणताके परिचायक नहीं। फिर भी, मन्दिरमें लगी हुई किसी किसी लिपियोंका अनुशीलन करने अथवा उसका स्थापत्य प्रणालीकी पर्यालोचना करने पर मालूम होता है, कि मन्दिर मुसलमानोंकी अमलदारीमें बनाया या इसका संस्कार हुआ है। साधारणको अवगतिके लिये इन मन्दिरोंकी सूची नीचे दी गई—

१ श्याम-कार्त्तिक	११ देवी सिंहवाहिनी
२ पार्वती	१२ सूर्यनारायण
३ नीलकण्ठ महादेव	१३ सरस्वती
४ लक्ष्मीनारायण	१४ हनुमान और कुबेर
५ अन्नपूर्णा	१५ कालभैरव
६ भोगमन्दिर (भग्न)	१६ सन्ध्यामाई
७ काली	१७ ब्रह्मा और गणेश
८ समाधि	
९ आनन्दभैरव	१८ वैद्यनाथ
१० रामलक्ष्मण	१९ गङ्गा।

सिवा इसके कालभैरव, सन्ध्यामाई और ब्रह्मा तथा गणेश-मन्दिरके सम्मुख नेपालराजका दिया हुआ बड़ा घण्टा लटकता है। मन्दिरमें प्रवेश करनेके लिये प्राचीरमात्रमें ४ दरवाजे हैं। उत्तरके द्वारके पार्श्वमें एक पक्का कुंआ है। इसकी बगलमें ही लक्ष्मी-नारायणका मन्दिर है। इसके उत्तर द्वारके बाहर बाजार और नाना प्रकार खाद्यवस्तुकी दुकानें हैं। मन्दिरके सम्मुख भी दुकान और बाजार है। मन्दिरके उत्तर-पश्चिम कोने पर भोगमन्दिर और समाधिके बीचमेंसे बाहर जानेका एक पथ है। इस पथसे बंगाली टोलेमें शीघ्र आना जाना होता है। इस पथके किनारे भी दो एक टूटे-फूटे मन्दिर दिखाई देते हैं।

उत्तरके मूलद्वारसे बाजार पार कर और भी कुछ आगे बढ़ने पर बूढ़ी गङ्गाके निकट आया जाता है। तीर्थ-यात्री इसी बूढ़ी गङ्गा या शिवगङ्गामें स्नान कर देवताके अर्चनाके लिये मन्दिरमें आते हैं। यहां पण्डोंका वास-गृह है और यात्रियोंके ठहरनेके लिये बड़े बड़े मकान हैं। ये सब मकान निरापद नहीं समझे जाते हैं। क्योंकि ये नगरके उत्तर-पूर्व कोने पर अवस्थित हैं।

वैद्यनाथलिङ्ग भारतके द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमें एकतम कहा जाता है। इस लिङ्गकी प्रतिष्ठाके सम्बन्धमें

कई पौराणिक आख्यान मिलते हैं। पद्मपुराणके अन्तर्गत वैद्यनाथ माहात्म्य और हरिहरसुत मुकुन्दद्विज-विरचित 'वैद्यनाथमङ्गल' नामक भाषाग्रन्थमें रावण द्वारा देवाधिदेवका यहां आना और वनदेशमें रखनेकी बात लिखी है। यह प्रसङ्ग पीछे कहा गया। इस समय यह वर्णन किया जाता है, कि इस देशमें वैद्यनाथकी मंदिर-प्रतिष्ठा किस तरह हुई थी। प्रवाद है—

"प्राचीन समयमें ब्राह्मणोंका एक दल इस पुण्य क्षेत्रमें आया। दल वासभूमिकी खोजमें घूमते घूमते वर्त्तमान मंदिरके निकट जो जलाशय है, उसके निकट पहुंचा। इस स्थानका जल सुपेय और वायु सुशीतल देख कर उन लोगोंने वहां ही डेरा डण्डा डाल दिया। उस समय इस झीलके चारों ओरकी भूमि घोर जङ्गलसे परिपूर्ण थी। अनार्य (संथाल) वहां ही वास करते थे। ब्राह्मण शिवोपासक थे। वे उसी झीलके किनारे अपने अभीष्ट देवकी मूर्त्ति स्थापित कर पूजा करते थे। ब्राह्मण देवताके उद्देश्यसे यथायोग्य बलि भी देते थे। अनार्य संथाल भी वहां आ कर अपने पितृपुरुषोंके पूजित तीन खण्ड प्रस्तरकी पूजा कर जाते थे। किंतु वे ब्राह्मणोंकी तरह बलि नहीं चढ़ाते थे। वे तीन खण्ड प्रस्तर आज भी देवघरके पश्चिम प्रवेशद्वार पर रखे हुए हैं।

धनधान्यसे भाण्डार पूर्ण हो जाने पर ब्राह्मण आलसी तथा भोगविलासी हो उठे। उस समय वे अपने अनादि देवकी पूजामें वैसी तत्परतासे मन नहीं लगाते थे। यह देख अनार्य सन्थाल ब्राह्मणोंके आचरणसे श्रद्धारहित हो गये तथा देवशक्तिको अमूलक समझ देवमूर्त्तिके प्रति अश्रद्धा प्रकट करने लगे।

अन्तमें बैजू नामका एक धनवान् अनार्य मन ही मन चिन्ता करने लगा, कि अब ब्राह्मणोंके देवताका कुछ प्रभाव ही नहीं, तो अब भय काहे का? बैजूने मन ही मन संकल्प किया, कि प्रति दिन देवमूर्त्ति पर डण्डा जमानेके बाद ही जलस्पर्श करूंगा। इस प्रतिज्ञाके कारण क्रमसे शिवमूर्त्ति स्पर्शके लिये उसका एक अनुराग उत्पन्न होने लगा, वह आघातके बदले प्रति दिन निराहार अवस्थामें एक बार शिवलिङ्गको स्पर्श कर जाता। दैवात् एक दिन वनमें उसके गोवंश खो गये, उनके खोजनेमें उसका सारा दिन बिना खाये तमाम हो गया, संध्या समय जब वह लौटा, तब उस झीलमें स्नान आदि कर भोजन करने लगा। क्षुधासे कातर हो रहा था। घर आते ही वह भोजन करने बैठा। थाली उसके आगे रखी गई। उसने भोजनका प्रथम ग्रास उठाया, किंतु उसको स्मरण हो आया, कि अभी तो शङ्कर पर डण्डा जमाया ही नहीं। प्रतिज्ञा भङ्ग हो जानेके भयसे हाथका लिया हुआ ग्रास थालीमें डाल हाथ धो कर शङ्कर पर लट्ठ जमानेके लिये वह चला। क्षुधा-कातर बैजूने मानसिक मर्मवेदनाके साथ देवमूर्त्तिका दर्शन करनेके बाद हाथमें लिये हुए डण्डेसे मूर्त्ति पर प्रहार किया।

अनार्य बैजूका ऐसा अनुराग देख कर दयानिधान आशुतोष शङ्कर बैजूके प्रति दयार्द्र हुए। वे मन ही मन 'जो व्यक्ति मुझ पर प्रहार करनेके लिये आहार निद्रा परित्याग करता है, वह मेरा भक्त है। क्योंकि मेरी चिन्तामें उसकी एकाग्रता है और मेरे उपासक निश्चिन्त हो संसारमदसे मत्त हो रहे हैं' इत्यादि चिंता करने लगे। इसके बाद उन्होंने उस जलाशयसे दिव्यमूर्त्तिमें उसको दर्शन दिया और बैजूको सम्बोधन कर कहा, 'वत्स! तुम वर मांगो। मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूंगा।' देवमूर्त्तिका दर्शन कर भयविह्वल हो बैजूने जवाब दिया,—प्रभो! मेरे पास धन सम्पत्ति यथेष्ट है और मैं सन्थालोंका अधिपति हूं, इससे राजा बननेकी लालसा नहीं है, मेरी भी इच्छा है, लोग मुझे बैजूको अगद बैजनाथ या बैद्यनाथ कहे और आपका जो मन्दिर मैं बनवाऊंगा, वह मन्दिर मेरे नामसे ही विख्यात हो। उसकी बात पर प्रसन्न हो शङ्करने 'तथास्तु' कहा। तबसे ही उनका नाम बैजूके बदले बैद्यनाथ हुआ और मंदिर भी बैद्यनाथके नामसे ही प्रसिद्ध हुआ।

उस दिनसे बैद्यनाथका प्रभाव दिग्दिगन्तमें फैल गया। नाना देशोंसे वणिक्सम्प्रदाय, राजन्यवर्ग, ब्राह्मण और अन्यान्य वर्णोंके लोग यहां आ कर उत्कृष्ट-

यात्रियोंको बड़ी सुविधा होती है। पहले यात्री पैदल चल कर पार्वतीय प्रान्तको तय करते थे। पथमें डाकुओंका पूरा भय था। सिवा इसके कभी कभी मदमाती पण्डोंके साथी भी मौका पा कर यात्रियोंको लूट लेते थे। इस समय ये सब उपद्रव अत्याचार लुप्त हुए हैं।

रेलपथके खुल जानेसे अब यात्रियोंको पैदल चलनेका मौका ही नहीं आता, फलतः डाकुओंका उपद्रव आप ही आप शान्त हो गया। अब यात्रियोंको विशेष कष्ट नहीं भोगना पड़ता। यथोक्त पूजादि कर यात्री उसी दिन लौट भी आ सकते हैं।

वैद्यनाथतीर्थ समुद्रपृष्ठसे ८७४ फीट ऊँचा है। उच्चताके कारण ही यहांकी मिट्टी रसदार नहीं और वायु भी रूखी और अत्यन्त स्नेहवर्जित है। यहांकी अधित्यकाभूमिके प्रवाहित जलमें नाना धातव पदार्थ मिश्रित होने और वायु साफ रहनेसे यह स्थान बड़ा ही स्वास्थ्यकर है। विशेषतः यह एक तीर्थक्षेत्र है। धर्मप्राण भारतवासी विशेषतः बङ्गाली वार्द्धक्यमें उपस्थित होने पर तीर्थवासके हेतु और वृद्धावस्थामें स्वास्थ्य-रक्षाके लिये यहां आ कर बसते हैं। इस समय यहां बहुतेरे लोगोंने बस्ती कर ली है। आदि वैद्यनाथ तीर्थ अर्थात् देवघरमें केवल तीर्थयात्री बङ्गालियों और पण्डोंका वास है। जो जलवायु परिवर्तनके लिये देवघरमें आ कर वास करते हैं, वे देवमन्दिरके दक्षिण और करनिटर्स टाउन भागमें रहते हैं। ये दोनों स्थान वर्त्तमान देवघर नगरके अन्तर्गत हैं। पहले यहां बस्ती न थी, अब क्रमसे बढ़ रही है।

देवघरसे कुछ पश्चिम वैद्यनाथ जंक्शन स्टेशन है। स्टेशनके निकट ग्राम भी वैद्यनाथके नामसे प्रसिद्ध है। यहाँ प्राचीनत्वके निदर्शनस्वरूप मैदानमें चारों अनेक प्रस्तर-स्तूप पड़े हुए हैं।

देवघरमें सुप्रसिद्ध वैद्यनाथका मन्दिर है। इसमें देवादिदेव महादेवका अनादि वैद्यनाथलिङ्ग स्थापित है। इस मन्दिरके प्राकारके मध्य और भी २२ मन्दिर हैं। इनमें स्थापत्यशिल्प वैसी निपुणताके परिचायक नहीं। फिर भी, मन्दिरमें लगी हुई कितनी ही शिलालिपियोंका अनुशीलन करने अथवा उनके स्थापत्य-प्रणालीकी पर्यालोचना करने पर मालूम होता है, कि मन्दिर मुसलमानोंकी अमलदारीमें बनाया या इसका संस्कार हुआ है। साधारणकी अवगतिके लिये २२ मन्दिरोंकी सूची नीचे दी गई—

१ श्याम-कार्त्तिक	११ देवी सिंहवाहिनी
२ पार्वती	१२ सूर्यनारायण
३ नीलकण्ठ महादेव	१३ सरस्वती
४ लक्ष्मीनारायण	१४ हनुमान और कुबेर
५ अन्नपूर्णा	१५ कालभैरव
६ भोगमन्दिर (भग्न)	१६ सन्ध्यामाई
७ काली	१७ ब्रह्मा और गणेश
८ समाधि	
९ आनन्दभैरव	१८ वैद्यनाथ
१० रामलक्ष्मण	१९ गङ्गा।

सिवा इसके कालभैरव, सन्ध्यामाई और ब्रह्मा तथा गणेश-मन्दिरके सम्मुख नेपालराजका दिया हुआ बड़ा घण्टा लटकता है। मन्दिरमें प्रवेश करनेके लिये प्राचीरगात्रमें ४ दरवाजे हैं। उत्तरके द्वारके पार्श्वमें एक पक्का कुंआ है। इसकी बगलमें ही लक्ष्मी-नारायणका मन्दिर है। इसके उत्तर द्वारके बाहर बाजार और नाना प्रकार खाद्यकी दुकानें हैं। मन्दिरके सम्मुख भी दुकान और बाजार है। मन्दिरके उत्तर-पश्चिम कोने पर भोगमन्दिर और समाधिके बीचसे बाहर जानेका एक पथ है। इस पथसे बंगाली टोलेमें शीघ्र आना जाना होता है। इस पथके किनारे भी दो एक टूटे-फूटे मन्दिर दिखाई देते हैं।

उत्तरके मुख्यद्वारसे बाजार पथसे और भी कुछ आगे बढ़ने पर बूढ़ी गङ्गाके निकट आया जाता है। तीर्थयात्री इसी बूढ़ी गङ्गा या शिवगङ्गामें स्नान कर देवताकी अर्चनाके लिये मन्दिरमें जाते हैं। यहां पण्डोंका वास-गृह है और यात्रियोंके ठहरनेके लिये बड़े बड़े मकान हैं। ये सब मकान किरायेपर नहीं लगाये जाते हैं। क्योंकि ये नगरके उत्तर-पूर्व कोने पर अवस्थित हैं।

वैद्यनाथलिङ्ग भारतके द्वादश ज्योतिर्लिङ्गका एकतम कहा जाता है। इस लिङ्गकी प्रतिष्ठाके सम्बन्धमें

कांशको ही पालिग्रन्थोक्त विडम्बयन कह कर ग्रहण किया जा सकता है। क्योंकि देवघर-वैद्यनाथके सिवा इस देशके और किसी भागमें ऐसा बौद्धकीर्त्तियोंका निदर्शन नहीं मिला है। सिवा इसके देवघर नगरके वैद्यनाथ मन्दिरके निकट ही बत्सुरिया नामका एक छोटा ग्राम है। बहुतेरे लोग उसको पालि उत्तम शब्दका अपभ्रंश और उत्तानि संघारामका शेष स्मृतिज्ञापक समझते हैं।

यहां भग्नावस्थ जो सब मन्दिर हैं, वे उक्त तीन मंदिरोंसे दूर पर हैं और वे नये ढंगसे निर्मित हुए दिखाई देते हैं। सुतरां उनका विवरण लिपिबद्ध करनेका प्रयोजन नहीं जान पड़ता।

मंदिर-प्रांगणके ठीक बीचमें एक प्रस्तर-निर्मित एक बड़े मंदिरमें वैद्यनाथकी लिंगमूर्त्ति प्रतिष्ठित है। वैद्यनाथ मंदिरके उपरिदेशमें कुछ दबा हुआ है। हिंदुओंका विश्वास है, कि लङ्काका रावण जब बहुत स्तव-स्तुति करके भी देवादिदेव महादेवको लङ्कामें ले जा न सका और देवादिदेवका रथ पातालगामी होने लगा, तब उसने क्रोधसे रथके शिखरको दबा कर लिङ्गको पातालमें भेजनेकी इच्छा की थी, उसी समयसे इस मन्दिरका उपरिदेश रावणके अंगूठेके दबावका चिह्न रह गया।

वैद्यनाथ रावणेश्वर लिङ्गके सम्बन्धमें वैद्यनाथ-माहात्म्यमें इस तरहका आख्यान मिलता है,—लङ्केश्वर रावण नित्य उत्तराखण्डमें कैलास-शिखर पर आ कर अपने इष्टदेवकी पूजा किया करता था। प्रति दिन उसको इस तरह पूजा करनेसे उसके प्रति भगवान् सन्तुष्ट हुए। शिवकी कृपासे रावण सर्वदेव देवताओंके पीड़न करनेमें भी समर्थ होगा, इसकी आशङ्का कर इन्द्र शीघ्रतासे ब्रह्मलोकमें आये, ब्रह्माने उनके विघ्नद्रोह करनेसे मना किया और शिवलिङ्ग उठानेको पाप बता कर रावणके भविष्यमें पतनागमकी बात कही। फल भी वैसा ही हुआ। कुछ दिनोंके बाद रावणको कैलासपर्वतसे शिवलिङ्ग उठा कर लङ्कामें स्थापन करनेकी इच्छा हुई। उसकी इच्छा थी, कि स्वयं महेश्वर लङ्कापुरीमें विराजित न होनेसे सोनेकी लङ्काका गौरव ही वृथा है। मन ही मन ऐसी चिन्ता कर रावणने भगवान् महेश्वरके समीप जा कर उनसे अपनी इच्छा प्रकट की। भगवान् उस पर सन्तुष्ट हो रहे थे, उन्होंने कहा, 'रावण तुम्हारी तपस्यासे सन्तुष्ट हूं। तुम मेरी मूर्त्ति छल कर लङ्कामें स्थापन करो। उसमें मेरी कोई आपत्ति नहीं। किन्तु एक बातका ख्याल रखना, कि कैलाससे लङ्का ले जाते समय बीच रास्तेमें कहीं रखना न होगा। यदि भ्रमवश ऐसा करोगे, तो तुम जहां रखोगे, मैं वहीं बैठ जाऊंगा। शिर पर रख कर मुझको ले चलना होगा।' बलदर्पसे मत्त रावणने शिवलिङ्गका वाक्य सुन कर कहा—प्रभो! ऐसा ही होगा। रावणका बात पर परितुष्ट हो भगवान्‌ने कहा, 'तुम मुझको कैलासके साथ लङ्का ले चलो।'

शिव-कथित शुभ दिन आने पर रावण सानन्द चित्तसे कैलासकी ओर चला और रातको वहां पहुंचा। पहले अपने बलका अन्दाजा लगानेके लिये गिरिवरको सञ्चालित किया। दुर्दान्त रावणके निशाकालमें इस व्यवहारसे पार्वती कुपिता हुईं, किन्तु भगवान् हरके मुखसे सब बातें सुन कर उन्होंने शान्तभाव धारण किया।

इसके बाद रावण शिवपूजाके लिये शिवमन्दिरमें गया। द्वार पर नन्दी बैठा था, उसने कहा, कि इस समय शङ्कर-पार्वती शयन कर रहे हैं, भीतर मत जाओ। रावण मना करने पर भी नन्दीको धक्का दे कर यह कहता हुआ चला गया, कि मैं शङ्करका पुत्र हूं, वहां जाना मेरे लिये निषेध नहीं। रावणकी भक्तिको देख सन्तुष्ट हो शिवने कहा, 'वत्स! वर मांगो।' रावणने कहा, 'प्रभो! लङ्कामें चलिये, यही एकमात्र मेरी इच्छा है।' शिव पूर्व प्रस्तावके अनुसार लङ्का चलनेको तैयार हुए।

रावणने प्रसन्न चित्तसे लिङ्गमूर्त्तिको शिर पर उठा लिया और धीरे धीरे लङ्काकी ओर चला। जब वह हरितकी (वर्त्तमान नाम हरलाजुरि) ग्रामके निकट पहुंचा, तब उसको पेशाब करनेकी आवश्यकता हुई। रावण अब स्थिर न रह सका। इधर भगवान् मूर्त्तिमें भार बढ़ा रहे थे। रावण शिवको सिर पर रख कर पेशाब कर नहीं सकता। यदि ऐसा करे, तो उसको

कर मंदिर बना कर देवस्थानकी महिमा कीर्तन करने लगे। महादेवने स्वयं जहां वैजूको दर्शन दिया था, वहीं हो वे सब मंदिर प्रतिष्ठित हुए। इस तरह धीरे धीरे स्थानका माहात्म्य, देवताका पुण्यरहस्य और वैजूकी वैद्यनाथका देवरहस्य चारों ओर फैल गया और उससे नाना देशोंसे तीर्थयात्री रोग-मुक्तिकी कामनासे इस तीर्थमें आने लगे। भाद्र मासकी पूर्णिमाके दिन वैद्यनाथका एक पुण्याह आता है। इस दिन यहां एक मेला लगता है जो तीन चार दिन तक रहता है।

प्राचीर परिवेष्टित वर्त्तमान मंदिर-प्राङ्गनतल चूनेके पत्थरोंसे आच्छादित है। मिर्जापुर-वासी एक वणिकने एक लाख रुपया खर्च कर यह पत्थर जड़वाया था। उसके पूर्व यह स्थान जल और कूड़ेसे कर्दमाक्त (पङ्किल मिट्टी) था। इससे यह स्थान भीषण अस्वास्थ्यकर प्रतीत होता था। मंदिरोंमेंसे तीनमें महादेवजीकी मूर्त्ति तथा तीनमें पार्वती देवीकी मूर्त्ति विराजती हैं। ४० वा ५० गज लम्बी रेशमकी डोरीसे गौरव और शैवों द्वारा मंदिरोंके शिखर आपसमें बंधे हुए हैं। यह डोरी नाना रङ्गके पताका, वस्त्र और पुष्पमालाओंसे परिशोभित रहती है।

मन्दिरके पश्चिम द्वारसे बाहर आने पर ६ फीट ऊंचा और २० फीट चौकोन एक पत्थरका चबूतरा दिखाई देता है। इसी चबूतरे पर मध्य भागमें दो १२ फीट ऊंचे प्रस्तरस्तम्भ गड़े हैं और इन प्रस्तरस्तम्भोंके शिर पर एक प्रस्तरस्तम्भ समान्तरालभावसे रखा हुआ है। इस ऊपरवाले स्तम्भके दोनों मुख पर हाथी या घड़ियालके मुंहका चिह्न खुदा हुआ जान पड़ता है। किन्तु खड़े इन दो स्तम्भों पर कुछ भी खुदा हुआ नहीं है। अर्थात् उनसे विशेष कोई शिल्पनैपुण्यका परिचय नहीं मिलता। इन तीन खण्ड प्रस्तरोंका वजन प्रत्येक १६० मनसे ज़ियादः होगा। किस उद्देशसे किसने इन प्रस्तरखण्डोंको इस तरह रखा, इसका कुछ भी पता नहीं चलता। इसके समीप ही बौद्धविहारके ध्वंस-निदर्शन मौजूद हैं।

प्रत्नतत्त्वविदोंका अनुमान है, कि यहां जितने मन्दिर हैं, उनमें रावणेश्वर, वैद्यनाथ, पार्वती और लक्ष्मीनारायणका मन्दिर अपेक्षाकृत प्राचीन है। उनका कहना है, कि पहले यहां बौद्धोंका वास था। हिन्दुओंने बौद्धोंकी कीर्त्तियोंका लोप करनेके लिये उन्हींके बनाये हुए मन्दिरोंका निर्माण किया था। आज भी बुद्ध और बौद्ध-मूर्त्तियां और उनके पादमूलमें खोदित लिपियां इस प्राचीन बौद्ध-प्रभावका परिचय देती हैं। मूर्त्तियोंके पदतलमें "ये धर्मा" इत्यादि प्रसिद्ध मन्त्र खोदित देखा जाता है। इन सब और अन्यान्य स्थानोंमें पड़ी बौद्ध-प्रस्तर-मूर्त्तियोंके देखनेसे निःसन्देह कहा जा सकता है, कि प्राचीनकालमें यहां बौद्धोंका एक सुविस्तृत सङ्घाराम स्थापित था।

पालिग्रन्थोंमें विम्बकके अरण्य प्रदेशमें उस्सानिय नामक एक संघारामका उल्लेख दिखाई देता है। विम्ब संस्कृत विल्व शब्दका प्राकृत रूप है। सम्भवतः विल्वपर्वतके ऊपर विस्तृत पार्वत्य प्रदेशमें ही पालिग्रन्थोक्त विम्बवन है। इसी वनमें उस्सानिय-मठ है।

उक्त ग्रन्थमें लिखा है, "राजा पाटलिपुत्रसे विम्बवन होते हुए ताम्रलिप्त अनवरत सातवें दिन पहुंचे थे।" अन्यत्र "नाना देशोंसे श्रमण विम्बक संघाराममें आते थे।" फिर उक्त ग्रन्थकी दूसरी जगहमें लिखा है, कि "इसके पहिले महान् धर्म्माचार्य्योंका न्यायी ले कर विम्बवनके अन्तर्गत उस्सानीय-मठमें उपस्थित हुए थे।" इन तीन उक्तियोंसे राजमहल और पुरुलियाके मध्यका अनुमान करनेसे बौद्ध-संघारामके अवस्थानका पता ही अनुमान होता है।

पालिग्रन्थका वर्णनासे हम जान सके हैं, कि पाटलिपुत्रसे विम्बवन होते हुए ताम्रलिप्त (तमलुक) तक एक चौड़ा रास्ता था। आज भी तमलुकसे बांकुड़ा तक और वहांसे भागलपुर जानेके लिये जो प्राचीन रास्ता है, वह शिउड़ी, मल्लार और वासुकीनाथ हो कर गया है। वासुकीनाथसे देवघर वैद्यनाथ तक प्राचीन रास्तेका निदर्शन आज भी वर्त्तमान है। यह रास्ता खड्गकोल पर्वत श्रेणीकी पूर्वशाखाको अतिक्रम कर आहमदपुर, पार्वती और बिहार हो कर पटने तक गया है। इन सभी रास्तोंसे संघाराम पहुंचनेके अन्तर्गत इस विल्वपर्वतके अतिक्र-

कांशको ही पालिग्रन्थोक्त शिम्फवन कह कर ग्रहण किया जा सकता है। क्योंकि देवघर-वैद्यनाथके सिवा इस देशके और किसी भागमें ऐसा बौद्धकीर्तियोंका निदर्शन नहीं मिला है। सिवा इसके देवघर नगरके वैद्यनाथ मन्दिरके निकट ही उत्सुरिया नामका एक छोटा ग्राम है। बहुतेरे लोग उसको पालि उत्तम शब्दका अपभ्रंश और उत्तानि संघारामका शेष स्मृतिज्ञापक समझते हैं।

यहां अन्यान्य जो सब मन्दिर हैं, वे उक्त तीन मंदिरोंसे दूर पर और वे नये ढंगसे निर्मित हुए दिखाई देते हैं। सुतरां उनका विवरण लिपिबद्ध करनेका प्रयोजन नहीं जान पड़ता।

मंदिर-प्रांगणके ठीक बीचमें एक प्रस्तर-निर्मित एक बड़े मंदिरमें वैद्यनाथकी लिंगमूर्त्ति प्रतिष्ठित है। वैद्यनाथ मंदिरके उपरिदेशमें कुछ दबा हुआ है। हिंदुओंका विश्वास है, कि लङ्काका रावण जब बहुत स्तव-स्तुति करके भी देवादिदेव महादेवको लङ्कामें ले जा न सका और देवादिदेवका रथ पातालगामी होने लगा, तब उसने क्रोधसे रथके शिखरको दबा कर लिङ्गको पातालमें भेजनेकी इच्छा की थी, उसी समयसे इस मन्दिरका उपरिदेश रावणके अंगूठेके दबावका चिह्न रह गया।

वैद्यनाथ रावणेश्वर लिङ्गके सम्बन्धमें वैद्यनाथ-माहात्म्यमें इस तरहका आख्यान मिलता है,—लङ्केश्वर रावण नित्य उत्तराखण्डमें कैलास-शिखर पर आ कर अपने इष्टदेवकी पूजा किया करता था। प्रति दिन उसको इस तरह पूजा करनेसे उसके प्रति भगवान् सन्तुष्ट हुए। शिवकी कृपासे रावण स्वर्गस्थ देवताओंके पीड़न करनेमें भी समर्थ होगा, इसकी आशङ्का कर इन्द्र शीघ्रतासे ब्रह्मलोकमें आये, ब्रह्माने उनके विघ्नोद्धार करनेमें मना किया और शिवलिङ्ग उठानेकी बात बना कर रावणके भविष्यमें पंगतानकी बात कही। फल भी वैसा ही हुआ। कुछ दिनोंके बाद रावणको कैलासपर्वतसे शिवलिङ्ग उठा कर लङ्कामें स्थापन करनेकी इच्छा हुई। उसकी इच्छा थी, कि स्वयं महेश्वर लङ्कापुरीमें विराजित न होनेसे सोनेकी लङ्काका गौरव

ही वृथा है। मन ही मन ऐसी चिन्ता कर रावणने भगवान् महेश्वरके समीप जा कर उनसे अपनी इच्छा प्रकट की; भगवान् उस पर सन्तुष्ट हो रहे थे, उन्होंने कहा, 'रावण तुम्हारी तपस्यासे सन्तुष्ट हूं। तुम मेरी मूर्त्ति छल कर लङ्कामें स्थापन करो। उसमें मेरी कोई आपत्ति नहीं। किन्तु एक बातका ख्याल रखना, कि कैलाससे लङ्का ले जाते समय बीच रास्तेमें कहीं रखना न होगा। यदि भ्रमवश ऐसा करोगे, तो तुम जहां रखोगे, मैं वहीं बैठ जाऊंगा। सिर पर रख कर तुमको ले चलना होगा।' बलदर्पसे मत्त रावणने शिवलिङ्गका वाक्य सुन कर कहा—प्रभो! ऐसा ही होगा। रावणकी बात पर परितुष्ट हो भगवान्‌ने कहा, 'तुम मुझको कैलासके साथ लङ्का ले चलो।'

शिव-कथित शुभ दिन आने पर रावण सानन्द चित्तसे कैलासकी ओर चला और रातको वहां पहुंचा। पहले अपने बलका अन्दाजा लगानेके लिये गिरिवरको सञ्चालित किया। दुर्दान्त रावणके निशाकालमें इस व्यवहारसे पार्वती कुपिता हुईं, किन्तु भगवान् हरके मुखसे सब बातें सुन कर उन्होंने शान्तभाव धारण किया।

इसके बाद रावण शिवपूजाके लिये शिवमन्दिरमें गया। द्वार पर नन्दी बैठा था, उसने कहा, कि इस समय शङ्कर-पार्वती शयन कर रहे हैं, भीतर मत जाओ। रावण मना करने पर भी नन्दीको धक्का दे कर यह कहता हुआ चला गया, कि मैं शङ्करका पुत्र हूं, वहां जाना मेरे लिये निषेध नहीं। रावणकी भक्तिको देख सन्तुष्ट हो शिवने कहा, 'वत्स! वर मांगो।' रावणने कहा, 'प्रभो! लङ्कामें चलिये, यही एकमात्र मेरी इच्छा है।' शिव पूर्व प्रस्तावके अनुसार लङ्का चलनेको तैयार हुए।

रावणने प्रसन्न चित्तसे लिङ्गमूर्त्तिको सिर पर उठा लिया और धीरे धीरे लङ्काकी ओर चला। जब वह लाकुरी (वर्त्तमान नाम हरलाजुरि) ग्रामके निकट पहुंचा, तब उसको पेशाब करनेकी आवश्यकता हुई। रावण अब स्थिर न रह सका। इधर भगवान् मूर्त्तिमें भार बढ़ा रहे थे। रावण शिवको मिट्टी पर रख कर पेशाब कर नहीं सकता। यदि ऐसा करे, तो उसको

गए था, कि शिव यहीं रह जायेंगे। इधर देवताओंने ध्यान किया, कि रावण यदि शिवको लङ्कामें ले जायेगा, तो अहित हो जायेगा, इसलिये इसमें बाधा देनेके लिये विष्णुको उन लोगोंने भेजा। विष्णु वृद्ध ब्राह्मणरूपमें वहां उपस्थित हुए। रावणने उनको एकाएक वहां आते देख कर कहा, कि आप इस शिवलिङ्गको कुछ देरके लिये थाम लीजिये। इस पर विष्णुने ले लिया। विष्णुको शिवमूर्ति दे कर रावण पेशाब करनेके लिये कुछ दूर चला गया।* इस समय जहां मन्दिर है, वहां ही विष्णु शिवलिङ्ग और रथको रख कर चले गये।

देवताओंकी दुरभिसन्धिसे रावणके पेटमें वरुणदेव घुस गये थे। इससे उसके पेशाब करनेमें देर हुई। लौट कर उसने देखा, कि वहां ब्राह्मण नहीं है। केवल रथ पड़ा है। उस समय वह रथ खींचने लगा, किंतु रथ टससे मस नहीं हुआ। फिर शिवका ध्यान किया। शिवने पूर्व बातका स्मरण दिलाया।

अब इतनी आरजू मिन्नत पर भी शिवको दया न आई, तब रावण कुपित हुआ और क्रोधित हो लिङ्गको अंगूठेसे दबा कर कहने लगा,' हे देव! अब तुम लङ्कामें नहीं जाओगे, तो तुम्हें पाताल जाना उचित है।' अन्त पर भी जब शिवको दया न आई, तो रावण दूसरा उपाय न देख हरिद्वारको गङ्गाजलसे जल ला कर पुनः उनकी पूजामें प्रवृत्त हुआ, किंतु रावणके पेशाबसे यहां का जल दूषित हो गया था, इससे यहांके जलसे पूजा होना शिवको नापसंद हुआ। तब रावणने एक कूप खोद कर उससे जल निकाल लिङ्गकी पूजा की। यह कूप रावण द्वारा ही खुदवाई गई थी। इसमें पाताल-गङ्गाका जल आता है। रावणने फिर कूप जलसे पूजा की थी, आज भी इसी जलसे वैद्यनाथ महादेवकी पूजा होती है।

क्रोध त्यागने पर एक प्रकारका परिवर्तन क्यों होगा, इससे शिवने कहा, 'जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक यहां मेरी पूजा करेगा, वह पहले इस कूपमें स्नान करेगा।' इस समयसे लाखों तीर्थयात्री इस जलसे स्नान करते हैं।

रावण द्वारा लाये शिव पहले रावणेश्वर महादेवके नामसे प्रसिद्ध हुए। रावण महादेवकी पूजा कर लङ्काको लौट गया। कुछ समयके बाद ही यह स्थान जङ्गलसे भर गया। उस निविड़ वनमें महादेवकी मूर्ति स्थापित है, बहुत दिनों तक यह बात किसीको मालूम न हुई। बैजनाथ बैजू नामका एक अहीर महादेवके अस्तित्वकी बात जानता था। वह इसी वनके फल-मूलको खा कर जीवन धारण करता था। एक दिन भगवानने स्वप्नमें दर्शन दे कर बैजूसे कहा,—बैजू! तुम्हारे सिवा यहां मेरी पूजा करनेके लिये दूसरा कोई नहीं है। तुम नित्य सवेरे उठ स्नानादि कर बिल्वपत्र ले कर मेरी पूजा करो। निद्रा भङ्ग होनेके बाद बैजू स्वप्न पर विचार करने लगा और सवेरेके लिये जङ्गलमें लिङ्गमूर्ति खोजनेके लिये निकला। थोड़ी देरके बाद उसे लिङ्गमूर्ति दिखाई दी। अब स्वप्नादेशके अनुसार बिल्वपत्र ढूंढने चला। बिल्वपत्र भी मिल गया। अब जल लानेके लिये उसके पास कोई पात्र न था, इससे उसने अपने मुंहमें भर ला कर लिङ्गको स्नान कराया। देवादिदेव महादेव बैजूके इस भक्तिसे पूजा पा कर नाखुश न हुए। उन्होंने बैजूके सुव्यवहारका रावणको स्मरण दिया। रावणने हरिद्वारसे ब्राह्मण ला कर फिर उसकी प्रतिष्ठा की और [illegible] का अङ्ग ला कर अपने खोदे हुए कूपमें डाल दिया। रावणके आदेशसे उस समयसे ही इस पवित्र लिङ्गमूर्तिकी पूजा होती आ रही है।

इसके बाद जब भगवान् रामचन्द्र रावणके मारनेके लिये निकले थे, तब उन्होंने इस लिङ्गमूर्तिकी पूजा की थी। (कैलासमाहात्म्य [illegible])

जो हो 'बैजू' अहीर शिवलिङ्गका पुनरुद्धार करने लगा। उसकी इस अविचलित भक्तिसे संतुष्ट हो

* रावण 'लङ्का' [illegible] शिवलिङ्ग दे कर यहां पेशाब करने बैठा, वहांसे ही कर्मनाशा नदीकी उत्पत्ति हुई है। आज भी देवघरके निकट ही कर्मनाशा विद्यमान है। सभी यात्री इससे बच रहते हैं। केवल शूद्र मल्लाहोंसे [illegible] [illegible] जाता है।

भगवान् भूतभावनने उसको सम्बोधन कर कहा,—वत्स! तुम्हारी एकाग्रता और भक्तिसे मैं प्रसन्न हुआ हूं। मैं तुमको तुम्हारा अभीष्ट दूंगा। लोभशून्य और स्वाधीनचित्त गोपने शिववाक्यका उत्तर दिया,—तुम और मुझको क्या दोगे? मेरे भक्ष्यके लिये यहां यथेष्ट द्रव्य है, मेरा कोई अभाव नहीं। सुतरां आकांक्षाको इच्छा नहीं रखता। हां यदि तुम मुझको कुछ देना ही चाहते हो, तो मैं इतना ही चाहता हूं, कि तुम्हारे नाम लेनेसे पहले लोग मेरा नाम लिया करें। उसी दिनसे रावणेश्वरलिङ्ग बैजनाथ वा वैद्यनाथके नामसे प्रख्यात हुआ।

ऊपर वैद्यनाथदेवके 'प्रतिष्ठा-प्रसङ्गमें बैजूकी जो किंवदंती उद्धृत की गई, उसमें पौराणिक बातोंका संस्रव होने पर भी इसने इतना विकृत भाव धारण किया है, कि वह एक अलगयी किस्सेके और कुछ नहीं। बादमें तारकेश्वर मूर्त्ति स्थापन प्रसङ्गमें मुकुन्द घोषके साथ वैद्यनाथके बैजूका अनेक सादृश्य है।

दक्षयज्ञके बाद सती-देहत्यागकी घटना हुई। इस समय विष्णुने हरस्कन्धस्थित सतीदेहको सुदर्शन चक्र द्वारा खण्ड खण्ड कर दिया। देवीका हृदय वैद्यनाथमें पतित हुआ। उसी समयसे यह एक देवी पीठके नामसे प्रसिद्ध है। पीठकी देवीमूर्त्तिका नाम जयदुर्गा तथा भैरव वैद्यनाथ है। यहां बाणगङ्गामें स्नान कर पूजा की जाती है। यह बाणगङ्गा शिव-गङ्गाके नामसे भी प्रसिद्ध है।

मत्स्यपुराणके अनुसार इस पीठस्थानकी शक्तिका नाम आरोग्या है।

"करवीरे महालक्ष्मीरुमादेवी विनायके।
आरोग्या वैद्यनाथे तु महाकाले महेश्वरी॥"
(मत्स्यपु० १३ अ०)

२ भैरवविशेष। भैरव नामानुसार इस स्थानका नाम वैद्यनाथ हुआ है। यहां भगवतीका हृदय पतित हुआ था। तन्त्रचूडामणिके मतसे इस शक्तिका नाम जयदुर्गा है।

"हार्द्दपीठं वैद्यनाथे वैद्यनाथस्तु भैरवः।
देवता जयदुर्गाख्या नेपाले जानुनी मम॥"
(तन्त्रचूडामणि पीठनि०)

वैद्यनाथसे आरम्भ हो कर भुवनेश्वर तक शङ्खदेश है। अंगदेश तीर्थयात्राके लिये दूषित नहीं।

(शक्तिसंगमतन्त्र ७ प०)

वैद्यनाथसे कई मील उत्तर-पूर्व हरलाजुरी नामक ग्राम मौजूद है। यहां कई आधुनिक मन्दिर और कई प्राचीन मूर्त्तियोंके भग्नावशेषके सिवा और कुछ दिखाई नहीं देता। दो प्रतिमूर्त्तियोंमें एक योगीका नाम खुदा हुआ है। ऊपर कहे हुए मन्दिरोंका अधिकांश श्रीनिरमा-मल् दासके व्ययसे निर्मित हुआ। राजा श्रीमदनपाल-देवके (?) समयमें किमिल दास द्वारा उत्कीर्ण शिला-लिपिके सिवा यहां प्रत्नतत्त्वविद्के आदरणीय और कुछ नहीं है। जहां यह फलकलिपि विद्यमान है, साधारणका विश्वास है, कि रावणने विष्णुके हाथ यहां ही शिवलिंग दिया था। तीर्थयात्री इस स्थानको देखनेके लिये आते हैं।

देवघर-वैद्यनाथसे ६ मील दक्षिण-पूर्व वाल्मीकीय प्रसिद्ध तपोवन है। यह एक अनुच्चशैल शिखर पर अव-स्थित है। इस शैलमें एक गुहा है, उसमें शिवलिंग स्थापित है। यात्री यहां भी आ कर तपोवनका दर्शन करते हैं। प्रवाद है, कि तपस्विश्रेष्ठ वाल्मीकि इस गुहा में वास करते थे। गुहाके निकट दो शिलाफलक हैं—एकमें श्रीदेवपालदेव नाम मिलता है। दूसरा फलक अस्पष्ट है। इसके निकटके कुण्डमें यात्री स्नान किया करते हैं।

वैद्यनाथसे ८ मील उत्तर-पश्चिममें त्रिकूटशैल है। भारतीय मानचित्रमें (नकशेमें) त्रिउर या तिउर पहाड़ लिखा है। इस पर्वतपृष्ठ पर भी एक गुहा है। उसमें कोई देवमूर्त्ति नहीं है। केवल अन्धकारमय शून्य गह्वर मात्र है। निकट ही कुछ नीची भूमिमें भग्नदुर्गका ध्वं-सावशेष है। यहां त्रिकूट नाम महादेवलिंग प्रतिष्ठित है।

वैद्यनाथ—बिहार शाहाबाद जिलेका एक ग्राम। यह अक्षा० २५° १७' उ० और देशा० ८३° ३६' १५" पू०के मध्य अवस्थित है। यहां नाना प्रतिमूर्त्ति समन्वित एक विस्तृत ध्वंसावशेष दिखाई देता है। यहांके लोग उसको शिविरा-राज मदनपालकी कीर्त्ति हो निर्देश करते हैं।

वैद्यनाथ—नामविशेष। इस नामके कितने ही सुपरिचित विद्वान् तथा ग्रन्थकार हो गये हैं। १ एक प्राचीन कविका नाम। २ एक प्रसिद्ध ज्योतिषीका नाम। [illegible]-टीकामें भूधरने इनका उल्लेख किया है। ३ मदनपारिजातके प्रणेता। ४ कुन्दमाला-नाटकके रचयिता। ५ जातकपारिजात, [illegible] ज्योतिष रत्नमालाकी टीका, [illegible], [illegible], [illegible], भावचन्द्रिका, [illegible] और [illegible] नामक ज्योतिर्ग्रन्थके प्रणेता। यह एक प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् थे। ६ [illegible]के रचयिता। ७ [illegible]के प्रणेता; यह इनके रचे [illegible] प्रसिद्ध है। ८ [illegible]के रचयिता। ९ पद्धति और [illegible] नामके दो ग्रन्थोंके प्रणेता। दोनों ग्रन्थ [illegible] हैं। १० परिभाषार्थसंग्रह नामक [illegible]के रचयिता। ११ [illegible]के रचयिता। १२ [illegible]के प्रणेता। १३ रामायणदीपिकाके प्रणेता। यह [illegible] ब्राह्मण थे। १४ [illegible]टीका नामक [illegible]के रचयिता। १५ [illegible]के रचयिता। १६ [illegible] नामक वैदिक ग्रन्थके प्रणेता। १७ [illegible] नामक कुसुमाञ्जलिकारिका-व्याख्या टीकाकर्ता। १८ स्मृति सारसंग्रहकार। १९ एक दूसरे [illegible] पण्डित। यह दिवाकरके पुत्र, महादेवके पौत्र और बालकृष्णके प्रपौत्र थे। इन्होंने अपने पिताके रचित [illegible]की और [illegible] दो ग्रन्थोंकी [illegible] टीका लिखी थी। २० [illegible] दीक्षितके रचयिता, [illegible] पण्डितके पुत्र।

वैद्यनाथ कवि—[illegible]नाटकके प्रणेता।

वैद्यनाथ [illegible]—[illegible] नामकी [illegible]टीकाके रचयिता।

वैद्यनाथ दीक्षित—१ [illegible] और [illegible]के प्रणेता। २ [illegible] नामक दीपिकाके रचयिता। ३ [illegible]-[illegible]टीकाके प्रणेता। ४ स्मृति[illegible]के प्रणेता।

वैद्यनाथदेव [illegible]—[illegible] [illegible]टीकाके रचयिता। ये [illegible]के पुत्र और [illegible]के पौत्र थे।

वैद्यनाथ पायगुण्डे—१ दाक्षिणात्यवासी एक प्रसिद्ध पण्डित। ये [illegible] बालभट्ट नामसे प्रसिद्ध थे। इनके पिताका नाम माधव और माताका देवी था। प्रसिद्ध पण्डित नागेश भट्टके निकट ये व्याकरण पढ़े थे।

[illegible] नामक व्याकरण, छाया नामक महाभाष्य-प्रदीपोद्योतके प्रथमाह्निककी टीका, काशिका और गदा नामकी परिभाषेन्दुशेखरटीका, परिभाषेन्दुशेखर[illegible], [illegible]भूषण, [illegible], [illegible] [illegible] नामक [illegible] मञ्जूषाटीका, शब्दकौस्तुभटीका प्रभा, [illegible] भावप्रकाश, लघुशब्देन्दुशेखरटीका, चिदस्थिमाला और [illegible] नामक व्याकरण ग्रन्थ तथा मिताक्षराके व्यवहारकाण्डकी टीका, पराशरस्मृतिकी टीका और [illegible] स्मृतिटीका आदि ग्रन्थ इनके बनाये हैं।

२ एक पण्डित। ये रामभट्ट (रामभट्ट)के पुत्र और विट्ठलके पौत्र थे। इन्होंने अलङ्कारचन्द्रिका, [illegible]चन्द्रिका, कुवलयानन्दटीका, [illegible] टीका, काव्यप्रकाशटीका, काव्यप्रकाश[illegible] चन्द्रिका (१६८३ ई०), काव्यप्रदीपप्रभा, [illegible] टीका, दशकुमारचरित[illegible]चन्द्रिका, वैद्यनाथपद्धति, [illegible] न्यायबिन्दु नामक मीमांसासूत्रटीका, [illegible] मालिका (मीमांसा-[illegible]), [illegible], [illegible], [illegible]व्याख्या, [illegible] व्याख्या प्रभा और [illegible]टीका नामक बहुतसे ग्रन्थ प्रणयन किये थे। इनके बनाये [illegible] नामक इनका एक और ग्रन्थ मिलता है। यह ग्रन्थ इनका बनाया है उसका ग्रन्थकारका [illegible] निर्णय किया नहीं जाता।

वैद्यनाथ [illegible]—[illegible]नाटकके प्रणेता।

वैद्यनाथ [illegible]—[illegible] और [illegible] नामक दो ग्रन्थके रचयिता।

वैद्यनाथवटी—ज्वराधिकारोक्त [illegible] एक [illegible] औषध। इससे ज्वर, [illegible], पाण्डु, अरुचि और शोथ नष्ट होता है। ([illegible])

वैद्यनाथवटी—[illegible] [illegible]। इसकी [illegible]

भी कहते हैं। इसमें मत्स्य और जल खाना मना है।

वैद्यनाथवटी (सं॰ स्त्री॰) १ औषधविशेष। इसका सेवन करनेसे उदावर्त्त, गुल्म, पाण्डु, कृमि, कुष्ठ, गल-गण्ड और पीड़का आदि रोग शीघ्र जाते रहते हैं।
(रसेन्द्रसारसं॰)

२ ज्वराधिकारोक्त औषधविशेष। (रस॰ म॰)

वैद्यनाथ शास्त्रिन्—रामोपासनक्रमके प्रणेता।

वैद्यनाथ शुक्ल—शब्दकौस्तुभोद्योतके रचयिता।

वैद्यनाथसूरि—एक जैन पण्डित।

वैद्यबन्धु (सं॰ पु॰) वैद्यानां बन्धुरिव। १ आरग्वध वृक्ष, अमिलतासका पेड़। (शब्दच॰) २ वैद्योंका बन्धु।

वैद्यमातृ (सं॰ स्त्री॰) वैद्यानां मातेव। १ वासक, अडूसा। २ वैद्योंकी माता, भिषग्जननी।

वैद्यरत्न—एक प्रसिद्ध चिकित्सक, प्रयोगामृतके प्रणेता, वैद्यचिन्तामणिके पिता।

वैद्यराज—१ रसकषाय, रसप्रदीप और वैद्यमहोदधि नामक ग्रन्थके प्रणेता। २ वैद्यवल्लभके रचयिता, सुप्रसिद्ध शार्ङ्गधरके पिता। ये चिकित्सा-शास्त्रमें सुपण्डित थे। कोई कोई इन्हें वैद्यराज भी कहते थे।

वैद्यराज (सं॰ पु॰) वैद्यानां राजा, टच् समासान्त। वह जो अच्छा वैद्य हो, वैद्योंमें श्रेष्ठ।

वैद्यवाचस्पति—एक सुप्रसिद्ध चिकित्साशास्त्रविद्।

वैद्यवाटी—बङ्गालके हुगली जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा॰ २२° ४८´ उ॰ तथा देशा॰ २२° २०´´ के मध्य कल-कत्तेसे २५ मील उत्तरमें अवस्थित है। यह नगर म्युनिसपलिटीकी देखरेखमें रहनेके कारण खूब साफ सुथरा है, किसी प्रकारके रोगका उपद्रव नहीं है; पर मलेरिया ज्वरका प्रादुर्भाव प्रायः देखा जाता है।

यहां बाजार और हाट है। वैद्यवाटीहाट बहुप्रसिद्ध है। इतनी बड़ी हाट बङ्गालमें और कहीं भी नहीं है। निकटवर्त्ती स्थानके क्षेत्रजात द्रव्योंकी विशेषतः पटसन, आलू, कुम्हड़ा आदिकी यहां खासी आमदनी होती है। फिर यहांसे कलकत्ता, हुगली, बर्द्धमान आदि प्रधान प्रधान नगरोंमें रफ्तनी होती है।

यहां इष्ट-इण्डिया रेलवेका एक स्टेशन है। तार-केश्वरको रेलवे लाइन खुलनेके पहले तारकेश्वरके तीर्थ-यात्रिगण इसी स्टेशनमें उतर कर बैलगाड़ीसे तारकेश्वर-को जाते थे।

वैद्यसिंही (सं॰ स्त्री॰) वैद्ये व्यवहार्य्यौषधार्थ सिंहीव प्रभूतवीर्यवत्वात्। वासक वृक्ष, अडूसा।

वैद्या (सं॰ स्त्री॰) काकोली।

वैद्याधर (सं॰ त्रि॰) विद्याधर-सम्बन्धी।

वैद्यानि (सं॰ पु॰) वैदिक कालके एक ऋषि-पुत्रका नाम। (काठक)

वैद्यावृत्य (सं॰ पु॰) कुटकार, पेशका उलटा। जैसे,—वैद्यावृत्य विक्रय।

वैद्युत (सं॰ त्रि॰) १ विद्युत्-सम्बन्धी; बिजलीका। (पु॰) २ विद्युत्का देवता। (शुक्ल यजु॰ २४।१०) ३ पुराणानुसार शाल्मलि द्वीपके एक वर्षका नाम।
(विष्णुपु॰ ४६।४०)

वैद्युतगिरि (सं॰ क्ली॰) पुराणानुसार एक पर्वतका नाम। (ब्रह्माण्डपु॰ ४०।१४)

वैद्युती (सं॰ त्रि॰) विद्युत्के समान शक्ति या प्रभा-विशिष्ट।

वैद्येश्वर—उड़ीसा प्रदेशके गवर्नमेण्टके अधीनस्थ खोर्दा भू-सम्पत्तिके अन्तर्गत एक ग्रामग्राम। यह अक्षा॰ २०° २१´ ४५´´ उ॰ तथा देशा॰ ८५° २५´ ३०´´ पू॰ महानदीके तट पर अवस्थित है।

वैद्येश्वर कोविल—मन्द्राज-प्रेसिडेन्सीके तंजोर जिलेके शियाली तालुकके अंतर्गत एक नगर। यह शियाली स्टेशनसे साढ़े तीन मील दक्षिण-पश्चिम पड़ता है। यहां एक सुप्राचीन और सुवृहत् शिव-मंदिर दिखाई देता है, जिसमें बहुतेरे शिलाफलक उत्कीर्ण हैं।

वैद्रुम (सं॰ त्रि॰) विद्रुम-सम्बन्धी, मूंगेका।

वैध (सं॰ त्रि॰) विधिना बोधितः विध-अण्। विधि बोधित, जो विधिके अनुसार हो, कायदे या कानूनके मुताबिक।

वैधर्म्य (सं॰ क्ली॰) विरुद्धो धर्मो यस्य, तस्य भावः ष्यञ्। १ विधर्मी होनेका भाव। २ नास्तिकता। (पु॰) ३ विभिन्न धर्मावलम्बी, वह जो अपने धर्मके अतिरिक्त अन्यान्य धर्मोंके सिद्धान्तोंका भी मखौल उड़ाता हो।

वैधव (सं० पु०) विधु अर्थात् चन्द्रमाके पुत्र, बुध।

वैधवेय (सं० पु०) विधवाया अपत्यं पुमान् विधवा (शुभ्रादिभ्यश्च। पा ४।१।१२३) ढक्। वह जो विधवाके गर्भसे उत्पन्न हुआ हो, विधवाका पुत्र।

वैधव्य (सं० क्ली०) विधवाया भावः ष्यञ्। विधवा होनेका भाव, रंडापा।

वैधस (सं० त्रि०) १ विधि-सम्बन्धीय, ब्रह्मसम्बन्धी। २ ब्रह्मसम्बन्धीय। (पु०) ३ राजा हरिश्चन्द्रका एक नाम जो राजा वेधसके पुत्र थे। (देवीभाग० ७।११)

वैधहिंसा (सं० स्त्री०) वैधी विधिबोधिता या हिंसा। विधिबोधित हिंसा, वेदविहितहिंसा। शास्त्रानुसार जो हिंसा की जाती है या वेदमें जिन सब हिंसाओंका विधान है, उसे वैधहिंसा कहते हैं। यज्ञादिमें पशुवध-का विधान है, उसमें पशुवध करनेसे जो हिंसा की जाती है, उसका नाम वैधहिंसा है। हिंसामात्र ही पाप-जनक है। किन्तु वैधहिंसा पापजनक है वा नहीं? इस विषयमें विशेष मतभेद है। किसीके मतसे वैध-हिंसा पापजनक नहीं है, फिर कोई इसे पापजनक बत-लाते हैं। रघुनन्दनने तिथितत्त्वमें दुर्गोत्सवके वैध हिंसा-विषयमें अच्छी विचार कर स्थिर किया है, कि वैधहिंसा पापजनक नहीं है, यज्ञादिमें जो पशुवध होता है, उससे पाप नहीं होता। वेदके सिवा अन्य हिंसा-से पाप होगा। किन्तु वाचस्पति मिश्रने सांख्यतत्त्व-कौमुदीमें विचार करके स्थिर किया है, कि हिंसामात्र ही पापजनक है, वैध और अवैध सभी हिंसासे पाप होगा। नीचे इसकी संक्षिप्त आलोचना की जाती है।

एक श्रुति है, कि "मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि" (श्रुति) किसी भी जीवकी हिंसा न करे, इस श्रुति द्वारा प्राणि मात्रकी ही हिंसा निषिद्ध बतलाई गई है। इस सामान्य विधि द्वारा हिंसामात्र ही पापजनक है, यही प्रतिपादित हुआ है, जो हिंसा करेंगे, वे पापभागी होंगे। फिर दूसरी श्रुति इस प्रकार है, "अग्नीषोमीयं पशुमालभेत" (श्रुति) अग्नीषोमीय यज्ञमें पशुवध करे। एक श्रुतिसे हिंसा निषिद्ध और दूसरीसे वही है अर्थात् यज्ञमें पशुवध किया जा सकता है। हिंसा न करे, यह सामान्य विधि और यज्ञमें हिंसा करे यह विशेष विधि है। इस विशेष विधि द्वारा सामान्य विधि बाधित होगी।

वैध हिंसामें पाप नहीं है, न्याय और मीमांसा शास्त्रका यही सिद्धान्त है। उनका कहना है, कि वैध के अतिरिक्त यावतीय अवैध हिंसामें पाप होता है। 'मा हिंस्यात्' इस शास्त्रका विषय अवैध हिंसा है, "अन्यत्रकृतविषयं परित्यज्य उत्सर्गः प्रवर्त्तते" अर्थात् विशेष विधि का विषय छोड़ कर सामान्य विधिकी प्रवृत्ति होती है। विशेष शास्त्रका स्थल परित्याग कर अन्य स्थलों-के सामान्यशास्त्रका बोध होता है। अतएव वैध हिंसा करनेमें पाप होगा, सामान्य शास्त्र ऐसा नहीं कहता। वैधको छोड़ दूसरी हिंसासे पाप होता है, यही उनकी उक्ति है। किन्तु इस पर सांख्यकार कहते हैं, कि तुम्हारी यह उक्ति ठीक नहीं है, वैधहिंसासे भी पाप होगा, परन्तु पापकी अपेक्षा पुण्यका भाग अधिक है, इस कारण इसमें सर्वसाधारणकी प्रवृत्ति होती है। ज्योति-ष्टोमीय शास्त्रका कहना है—पशुवध करके यज्ञ सम्पन्न करे, पर उस पशुवधसे पाप नहीं होगा, ऐसा नहीं।

यज्ञ करनेसे पाप और पुण्य दोनों ही होते हैं, पापकी अपेक्षा पुण्यका भाग अधिक रहता है। पुण्यके फलसे स्वर्गभोग और पापके फलसे नरक होता है। किन्तु वे अधिक सुखभोग करके थोड़ा दुःख अनायास सहन कर सकते हैं। पुण्यराशि द्वारा समुत्पन्न स्वर्गसुख-महाह्रदमें जो सब पुण्यात्मा गोते लगाते हैं, वे थोड़े पापसे उत्पन्न दुःखरूपी अग्निकणाको बिना कष्टके सहन कर सकते हैं। (सांख्यतत्त्वकौमुदी)

वैधात्रिक (सं० पु०) वैधात्र देखो।

वैधात्र (सं० पु०) विधातुरपत्यं पुमान् विधातृ अण्। सनत्कुमार। ये विधाताके पुत्र माने जाते हैं। (भाग०)

वैधात्री (सं० स्त्री०) विधातुरियं विधातृ अण् ङीप्। १ ब्रह्माकी शक्ति ब्राह्मी। (राजनि०) (त्रि०) २ विधातृ-सम्बन्धी।

वैधुमाग्नी (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नगरीका नाम जो मालव देशमें थी। (हिरण्यकेशीगृ०)

वैधूर्य (सं० क्ली०) १ विधुर होनेका भाव, कातरता ।

कातर होनेका भाव, कातरता। २ भ्रम, संदेह। ३ कम्पित होनेका भाव, कम्पमानता।

वैधृत (सं० पु०) १ वह जो विधृतिका पुत्र या संतान हो। २ ग्यारहवें मन्वन्तरके एक इन्द्रका नाम।

वैधृतवासिष्ठ (सं० पु०) वैधृतं वासिष्ठं। साममेद।

वैधृति (सं० पु०) १ विष्कम्भ आदि सत्ताइस योगोंमेंसे एक योग। ज्योतिषके मतसे यह योग अशुभ माना जाता है। इसमें यात्रा अथवा कोई शुभ कार्य करना मना है। वैधृति और व्यतिपात योगका समस्त ही परित्याग करना होता है।

अमृतयोगसे वैधृति और व्यतिपात योगका दोष नष्ट होता है सही, पर विभिन्न वचनोंमें फिर लिखा है, कि अमृतयोगमें सभी दोष विनष्ट होते तो हैं, लेकिन वृद्धि, वैधृति और व्यतिपात योगोंका दोष नष्ट नहीं होता।

कोष्ठीप्रदीपमें लिखा है, कि इस योगमें जन्म होनेसे जातक मित्रताविहीन, कुटिल, खल, मूर्ख, दरिद्र, परवञ्चक, कुकर्मकारी और परदाररत होता है।

२ देवताविशेष। ये विधृतिके पुत्र हैं। (भागवत ८।१।२६) (स्त्री०) ३ आर्याकी कन्या और धर्मसेतुकी माता। (भागवत ८।१३।२७)

वैधृत्य (सं० क्ली०) वैधृत देखो।

वैधेय (सं० त्रि०) विधिं यततिमेवानुसृत्य व्यवहरति विधि ठक्, यद्वा विधेये कर्त्तव्ये अनभिज्ञः, विधेय-अण्, यद्वा विधयं ध्येयमस्य ततः स्वार्थे अण्, यद्विमाश्रित्य क्रियाकारित्वात् युक्तायुक्तविवेकशून्यत्वाच्च तथात्वमस्य। १ विधि-सम्बन्धी, विधिका। २ मूर्खसम्बन्धी। ३ मूर्ख, बेवकूफ, ना-समझ।

वैध्वन (सं० पु०) यमके एक प्रतिहारका नाम। (हेम०)

वैध्वंसिन (सं० त्रि०) विनाशशील पदार्थमय।

वैन (सं० पु०) राजा वेनके पुत्र पृथुका एक नाम। (ऋक् १०।१२३।१५ सायण)

वैनक (सं० क्ली०) प्राचीन कालका एक प्रकारका पात्र जिसमें घी रखा जाता था और जिसका व्यवहार यज्ञोंमें होता था।

वैनतीय (सं० त्रि०) १ विनत-सम्बन्धी। २ विनता कर्त्तृक सम्पादित या विनताजात (पा ४।२।८०)

वैनतेय (सं० पु०) विनताया अपत्यमिति विनता (स्त्रीभ्यो ढक्। पा ४।१।१२०) इति ढक्। १ गरुड़। (अमर) २ अरुण (मत्स्यपु०) ३ विनताकी संतान।

वैनतेयी (सं० क्ली०) एक वैदिक शाखाका नाम।

वैनय्य (सं० त्रि०) जिसका स्वभाव विनीत हो, नम्र।

वैनद (सं० स्त्री) एक प्राचीन नदीका नाम।

वैनभृत (सं० पु०) १ एक प्राचीन गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि। २ वैदिक शाखाविशेष।

वैनयिक (सं० पु०) विनय एव (विनयादिभ्यष्ठक्। पा ५।४।३४) इति स्वार्थे ठक्। १ विनय, प्रार्थना। २ शास्त्राभ्यासरत, वह जो शास्त्रों आदिका अध्ययन करता हो। ३ प्राचीन कालका एक प्रकारका रथ जिसका व्यवहार युद्धमें होता था। (त्रि०) ४ विनय-सम्बन्धी, विनयका। ५ धर्माधिकरण-सम्बन्धी।

वैनायक (सं० त्रि०) १ विनायक या गणेश-सम्बन्धी। (पु०) २ भागवतके अनुसार भूतोंका एक गण। (भागवत ६।८।२२)

वैनायिक (सं० त्रि०) १ विनायक-सम्बन्धी। (पु०) २ वह जो बौद्धधर्मका अनुयायी हो, बौद्ध।

वैनाशिक (सं० क्ली०) विनाशं सूचयतीति विनाश-ठक्। १ ज्योतिष नक्षत्रविशेष। वह नक्षत्र जन्मनक्षत्रसे तेईसवां नक्षत्र है। जिस नक्षत्रमें जन्म होता है, उस नक्षत्रसे तेईसवें नक्षत्रको वैनाशिक कहते हैं। यह नक्षत्र किसी नक्षत्रसे हो सकता है, क्योंकि यह जातकके जन्मनक्षत्रसे स्थिर करना होता है। जातकका चाहे जिस नक्षत्रमें जन्म क्यों न हुआ हो, उससे तेईसवां नक्षत्र होने पर ही वह वैनाशिक नक्षत्र होगा। जन्मकालमें इस नक्षत्रमें जो ग्रह रहता है, वह अशुभफलप्रद है। इसमें ग्रह रहनेसे उसका फल विनाश है। गोचरमें भी इस नक्षत्रमें ग्रहोंके उपस्थित होनेसे उसका फल अशुभ होता है।

२ नियतनारा। यह नारा जन्म नक्षत्रसे गणनामें ७वां, १०वां और १६वां नक्षत्र है। यह भी अनेक प्रकारके अनिष्ट देनेवाला है। इस तारेमें यात्रादि करनेसे नाना प्रकारके रोग, क्लेश और विपत्तप होते हैं।

(पु०) विनाशो मतमस्य विनाश ठक्, सर्वं दृश्यं

ल्पतिकर्मणि हस्तितुरगतीर्थयात्रादि गच्छति । २ प्रतिवादी, चोर । ३ कुटिल, मकड़ी, लूता । (त्रि०) ४ दण्डित, परपीड़क । ५ विनाश-सम्बन्धी ।

वैनीतक (सं० पुं० क्ली०) विनीतेन यानेन गच्छति, ... यत्र वाहकं यानं वा नरानाम् ... परम्परायेव गच्छति तद्वैनीतकं, यथा डोली वहन डोला-वाहक ... विनीतक देखो । ऐसी सवारी जिसे कई आदमी मिल कर उठाते हों । जैसे,—डोली, पालकी, तामझाम आदि ।

वैनेय (सं० पुं०) वैदिक शाखाभेद ।

वैन्दव (सं० पुं०) विन्दुका अपत्य ।

वैन्दवी (सं० पुं०) एक जाति जो गुड़ बहुत पसन्द करती है ।

वैन्दवीय (सं० पुं०) वैन्दवी जातिके राजा ।

वैन्ध्य (सं० पुं०) १ विन्ध्यसम्बन्धीय । २ विन्ध्य पर्वत-वासकर्ता ।

वैन्य (सं० पुं०) वेनस्यापत्यं पुमान् वेन (कुर्वादिभ्यो ण्यः । पा ४।१।१५१) इति ण्य । १ राजा वेनके पुत्र पृथु । यह नाम । (ऋक् ८।९।१०) २ ऋक् १०।१४८ सूक्तके मन्त्रद्रष्टा पृथु वैन्य पुरोहित । ३ पृथुराजके पुरोहित ।

वैन्यत (सं० पुं०) वेनुतके पुत्र ।

वैन्यताशिन (सं० पुं०) एक वंशिक देवताका नाम ।

वैन्यपृथ—ऋ० सूक्तवतके मावश आत्मके प्रवाद ।

वैन्धुक (सं० पुं०) लघक ।

वैपक्ष (सं० वि०) विपक्ष-सम्बन्धी ।

वैपरीत्य (सं० क्ली०) विपरीतस्य भाव ष्यञ् । विपरीत होनेका भाव, विपरीतता, प्रतिकूलता ।

वैपरीत्यकुष्ठ (सं० पुं०) ... इसका गुण कटु, गन्ध और कफनाशक होता है । (वैद्यक)

वैपश्यत (सं० पुं०) विपश्चित नामक ऋषिके वंशधर, मनुके ऋषि । (भारत और १०।०५)

वैपश्यत (सं० पुं०) वैदिक कालके एक ऋषिका नाम । (शतपथ ब्रा० १४।५।५।३)

वैपात्य (सं० क्ली०) विपात्यस्य भावः कर्म वा (पुष्यञ्जादिभ्यः ष्यञ् च । पा ५।१।१२४) इति विपात्य ष्यञ् । विपात्यका भाव या धर्म ।

वैपादिक (सं० वि०) १ विपादिका रोग सम्बन्धी । २ जो विपादिका रोगसे ग्रसित हो । (पा ५।२।१०१ वार्त्तिक)

वैपादिका (सं० स्त्री०) विपादिका नामक रोग ।

वैपार (सं० स्त्री०) व्यापार देखो ।

वैपारी (सं० पुं०) व्यापारी देखो ।

वैपाश (सं० पुं०) विपाट् या विपाशानदीके तटस्थ ।

वैपाशायन (सं० पुं०) विपाशस्य गोत्रापत्यं विपाश (गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ् । पा ४।१।९८) इति च्फञ् । विपाश के गोत्रापत्य ।

वैपाशायन्य (सं० पुं०) विपाशके गोत्रापत्य ।

विपाशक देखो ।

वैपाशिक (सं० वि०) १ विपाशासे निकला या उत्पन्न । २ कृतबन्धन ।

वैपित्र (सं० पुं०) विपितृव्य... वे भाई आदि जिनकी माता तो एक ही हो पर पिता अलग अलग हों ।

वैपुल्य (सं० क्ली०) विपुलस्य भावः ष्यञ् । विपुल होनेका भाव, विपुलता, अधिकता ।

वैप्रकर्षिक (सं० वि०) नित्यं विप्रकर्षमर्हति (छेदादिभ्यो नित्यं । पा ५।१।६४) इति विप्रकर्ष ठञ् । नित्य विप्रकर्षके योग्य ।

वैप्रचिति (सं० त्रि०) विप्रचित्ति-सम्बन्धी । विप्रचित्तवंश । (पा ४।३।?)

वैप्रचित्त (सं० पुं०) विप्रचित्तके पुत्र दानव । मनुष्य ।

वैप्रयोगिक (सं० वि०) नित्यं विप्रयोगमर्हति विप्रयोग (पा ५।१।६४) इति ठञ् । नित्य विप्रयोगार्ह ।

वैप्रश्निक (सं० वि०) नित्यं विप्रश्नमर्हति विप्रश्न ठञ् । नित्य विप्रश्नार्ह ।

वैफल्य (सं० क्ली०) विफलस्य भावः विफल-ष्यञ् । विफल होनेका भाव, विफलता ।

वैबध (सं० पुं०) १ प्राचीन कालका एक प्रकारका नियम । २ यह मक्खन दूध और घीके द्वारा तैयार किया जाता हो । (अथर्व ११।३।४)

वैबुध (सं० वि०) विबुध सम्बन्धी । १ विबुध सम्बन्धी । (क्ली०) २ विबुधका भाव या कर्म ।

वैबोधिक (सं० पु०) प्रहरी, वह जो रातमें घण्टा बजा कर समय बताता तथा सोये हुएको जगाता है।

वैमनक (सं० त्रि०) विमनमय। (पा ४।२।८०)

वैमण्ड (सं० पु०) एक गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिका नाम। इन्हें विमाण्डि भी कहते हैं। (प्रवराध्याय)

वैभव (सं० क्ली०) विभोर्भावः विभु-अण्। १ विभव, दौलत, धन-सम्पत्ति। २ अतिशय। ३ विभुता, सामर्थ्य, शक्ति, ताकत। ४ महिमा, महत्त्व, बड़प्पन।

वैभवशाली (सं० त्रि०) जिसके पास बहुत अधिक धन-सम्पत्ति हो, विभववाला, मालदार।

वैभविक (सं० त्रि०) वैभव-सम्बन्धी, जो कोई काम करनेकी अच्छी सामर्थ्य रखता हो, समर्थ।

(मार्क०पु० २३।४४)

वैभाजन (सं० त्रि०) विभाग-सम्बन्धी।

(भागवत ५।२२।७)

वैभाजित्र (सं० क्ली०) विभाजयितुर्भावः विभाजयितृ (युवादिभ्यः। पा ५।१।१३०) इति अण्, विभाजयितुर्णि-लोपश्चाप्येति काशिकोक्त्या णिलोपः। विभागकारी-का धर्मयुक्त। (सिद्धान्तकौमुदी)

वैभाज्यवादिन् (सं० पु०) बौद्धसम्प्रदायभेद।

वैभाण्डकि (सं० पु०) एक गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिका नाम।

(रामायण १।९।११)

वैभार (सं० पु०) राजगृहके पासके एक पर्वतका नाम। इसे वैहार भी कहते हैं। राजगृह देखो।

वैभाषिक (सं० त्रि०) १ विभाषा-सम्बन्धी। २ वैक-ल्पिक। (पु०) ३ बौद्धोंके एक सम्प्रदायका नाम। "विभाषया दिव्यन्ति चरन्ति वा वैभाषिकाः। विभाषां वा वदन्ति वैभाषिकाः।" (अभिधर्मकोष) बौद्ध देखो।

वैभाष्य (सं० क्ली०) विभाषा।

वैभीतक (सं० त्रि०) विभीतक-सम्बन्धी।

(भारत० भीष्म ६।७।७)

वैभीदक (सं० त्रि०) विभीतक-सम्बन्धी।

(षड्विंशब्रा० ३।८।४४)

वैभूतिक (सं० त्रि०) विभूति-सम्बन्धी, विभूतिका।

वैभूवस (सं० पु०) विभूवसुके अपत्य, त्रित।

(ऋक् १०।४६।३)

वैभ्राज—एक प्राचीन जाति। महाभारतके अनुसार द्रह्युके वंशज वैभोज कहलाते थे। ये लोग सवारी आदिका व्यवहार करना नहीं जानते थे और न इन लोगोंमें कोई राजा हुआ करता था।

वैभ्राज (सं० क्ली०) १ देवताओंका उद्यान या बाग। २ पुराणानुसार मेरुके पश्चिममें सुपार्श्व पर्वत परके एक जंगलका नाम। (मार्कण्डेयपु० ५५।१२) ३ विभ्राज राजका तपस्यास्थान। (हरिवंश २३।१९) (पु०) ४ पर्वतविशेष। (मार्कण्डेयपु० ५६।१३) ५ लोकविशेष। (हरिवंश १८।४६)

वैभ्राजक (सं० क्ली०) वैभ्राज स्वार्थे कन्।

वैभ्राज देखो।

वैभ्राजलोक (सं० पु०) स्वर्गस्थ लोकभेद। यहां बर्हि-षद्गण वास करते हैं।

वैम (सं० त्रि०) वेमन्-अण्। तांत-सम्बन्धी।

वैमतायन (सं० पु०) विमत ऋषिके गोत्रापत्य।

वैमतायन (सं० त्रि०) वैमतायन।

वैमत्य (सं० पु०) विमते गोत्रापत्यं विमति (कुर्वादिभ्यो ण्यः। पा ४।१।१५१) इति ण्य। १ विमतिके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष। विमतेर्भावः विमति (वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च। पा ५।१।१२३) इति ष्यञ्। २ विमतिका भाव।

वैमद (सं० त्रि०) विमदऋषिदृष्ट। (सूक्त)

वैमन (सं० त्रि०) वेम-सम्बन्धी।

वैमनस्य (सं० क्ली०) विमनसो भावः विमनस् (वर्णदृढा-दिभ्यः ष्यञ् च। पा ५।१।१२३) इति ष्यञ्। १ विमना या अन्यमनस्क होनेका भाव। (भागवत १०।५४।५०) २ वैर, द्वेष, दुश्मनी।

वैमन्य (सं० त्रि०) वेमनि साधुः (ये चाभावकर्मणोः। पा ६।४।१६८) इति वेमन्-य। वेम विषयमें साधु।

वैमल्य (सं० क्ली०) विमलस्य भावः विमल-ष्यञ्। विमल होनेका भाव, विमलता।

वैमात्र (सं० त्रि०) विमातुरपत्यमिति विमातृ-अण्। विमातासे उत्पन्न, सौतेला। जैसे,—वैमात्र भाई।

वैमात्रा (सं० स्त्री०) विमातुरपत्यं स्त्री, वैमात्र-टाप्। विमातृकन्या, सौतेली।

वैमात्रेय (सं० त्रि०) विमातुरपत्यं विमातृ ढक् (शुभ्रादिभ्यश्च।

पा ४।१।१२४) विमाताके अपत्य, सौतेला । पर्याय—विमातृज, वैमात्र । (अमर)

वैमात्रेयी (सं० स्त्री०) वैमात्रेय ङीप् । विमातृकन्या, सौतेली ।

वैमानिक (सं० त्रि०) १ विमानचारी, जो विमान पर चढ़ कर आकाशमें विहार करता है । (मनु १२।४८) २ आकाशमें गमन, जो उड़ सकता है । ३ आकाशगामी, आकाशमें विहार करनेवाला । (पु०) ४ देवयोनि-विशेष ।

वैमिता (सं० स्त्री०) कार्त्तिकेयकी एक मातृकाका नाम । (भारत शल्य)

वैमुख (सं० क्ली०) विमुखस्य भावः विमुख-अण् । १ विमुखका भाव । (त्रि०) २ विमुखविशिष्ट ।

वैमुख्य (सं० क्ली०) विमुखस्य भावः विमुख-ष्यञ् । १ विमुख होनेका भाव, विमुखता । २ अप्रसन्नता, नारा-जगी । ३ निरुत्सुकता, विरक्तता । ४ पलायन, भागना ।

वैमूल्य (सं० क्ली०) असमान मूल्य, विभिन्न मूल्य । (मनु ९।२८७)

वैमूल्यम् (सं० अव्य०) विभिन्न मूल्यसे, असमान दाम पर ।

वैमृध (सं० त्रि०) मृध करनेवाले, शत्रु । ([illegible])

वैमृध्य (सं० त्रि०) [illegible] । ([illegible])

वैमेय (सं० पु०) विनिमय, परिवर्त्तन, बदला ।

वैम्य (सं० पु०) एक गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिका नाम । ([illegible])

वैयग्र (सं० पु०) [illegible] ।

वैयग्र्य (सं० क्ली०) १ विरक्ति, व्याकुलता । (त्रि०) २ वैयग्रयुक्त । (मनु [illegible])

वैयधिकरण्य (सं० क्ली०) व्यधिकरणका या समानाधि-करणका विरोधी भाव । [illegible] ।

वैयश्व (सं० पु०) [illegible] । ([illegible])

वैयर्थ्य (सं० क्ली०) व्यर्थ होनेका भाव, व्यर्थता । (मनु [illegible])

वैयल्क (सं० त्रि०) विविध [illegible] । ([illegible])

वैयसन (सं० त्रि०) एक [illegible] नाम ।

वैयश्व (सं० पु०) १ [illegible] । २ एक वैदिक ऋषिका नाम जो विश्वमनके पिता थे ।

वैयश्वि (सं० पु०) वैयश्व या व्यश्वका गोत्रापत्य ।

वैयसन (सं० त्रि०) व्यसने भवं अण्, (न य्वाभ्यां पदा-न्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् । पा ७।३।३) इति ऐच् । व्यसनयुक्त, व्यसनमें आसक्त, व्यसनी ।

वैयाकरण (सं० पु०) व्याकरणं वेत्ति अधीते वा व्याकरण (तदधीते तद्वेद । पा ४।२।५९) इति अण् (न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां [illegible] । पा ७।३।३) इति ऐकारात् पूर्वं ऐच् । १ वह जो व्याकरणशास्त्रका ज्ञाता होता हो, व्याकरणवेत्ता । (त्रि०) २ व्याकरणसम्बन्धी, व्याक-रणका ।

वैयाकरणपाश (सं० पु०) कुत्सित अर्थात् अल्प व्याकरण ।

वैयाकरणभार्य (सं० पु०) वैयाकरणकी भार्या । वह जिसकी पत्नी वैयाकरणकी कन्या या वैयाकरण जानती हो । ([illegible])

वैयाघ्र (सं० त्रि०) व्याघ्र स्यायं अण्, ऐच् । व्याघ्र ।

वैयात्य (सं० स्त्री०) धृष्टता देखो ।

वैयास (सं० पु०) व्यासस्य अपत्य ([illegible] । पा ४।१।९७) इति अण्, ततः वैयासकि इति [illegible] ([illegible] पा ४।१ [illegible]) इति अण् । १ व्यासपुत्र शुकदेव, प्राचीन कालका एक प्रकारका रथ जिसमें एक ऊंट या घोड़ेका [illegible] । (त्रि०) २ व्याससम्बन्धी, व्यासका ।

वैयासकी (सं० त्रि०) व्यासप्रणीत संहिता [illegible] ।

वैयासपुत्र (सं० पु०) व्यासपुत्र शुकदेव [illegible] । ([illegible])

वैयासक (सं० पु०) व्यासस्य अपत्य [illegible] [illegible] इति [illegible] ([illegible] पा ४।१।९७) इति [illegible] (पा [illegible]) इति [illegible]

ततो यकारात् पूर्वमैच् । (पा ७।३।३) गोत्रकारक मुनिविशेष। महामति भीष्म इस गोत्रके थे।

वैयाघ्रपरिच्छद (सं० त्रि०) द्वीपिचर्माच्छादित।

वैयाघ्रपाद (सं० पु०) १ वैयाघ्रपद्य गोत्रकारक मुनि। २ वैयाघ्रपाद विरचित एक वैयाकरण।

वैयाघ्री (सं० स्त्री०) १ व्याघ्रकी भाव या धर्म। २ एक प्रकारका आसन।

वैयात (सं० त्रि०) वियात स्वार्थे अण् आद्यचो वृद्धिः। (पा ५।४।३६) वियात देखो।

वैयात्य (सं० क्ली०) वियातस्य भावः (वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च। पा ५।१।१२३) इति वियात-ष्यञ्। १ वियातका भाव, धृष्टता। २ प्रागल्भ्य, चतुरता। ३ निर्लज्जता। ४ औद्धत्य।

वैयादगी—बम्बई प्रेसिडेन्सीके धारवाड़ जिलान्तर्गत एक नगर। यहां म्युनिसिपलिटी है।

वैयावृत्ति (सं० स्त्री०) व्यावृत्ति, व्याख्या।

वैयावृत्य (सं० क्ली०) यतियों और साधुओं आदिकी सेवा।

वैयावृत्यकर (सं० पु०) जैनमतानुसार मठस्थ धर्मोपदेशक कर्मचारिभेद।

वैयास (सं० त्रि०) व्यास-सम्बन्धी, व्यासका।

(शिशुपालवध २०।८२)

वैयासकि (सं० पु०) व्यासस्यापत्यं (व्यासवरुडनिषादेति। पा ४।१।६७) इत्यस्य कार्त्तिकोक्त्या इञ्, अकणादेश, यकारात् पूर्वमैच्। व्यासके अपत्य।

(भागवत १०।१।१४)

वैयासि (सं० पु०) व्यासके अपत्य।

(भागवत ३।२२।२७)

वैयासिक (सं० त्रि०) व्यासेन कृतः व्यास-ठञ् तत ऐच्। व्यासका बनाया हुआ।

वैयासक (सं० क्ली०) एक प्रकारका वैदिक छन्द।

(ऋक्प्राति० १७।२५)

वैयुष (सं० त्रि०) व्युषे भोजने कार्यं (व्युष्टादिभ्योऽण्। पा ५।१।९७) इति अण् तत ऐच्। प्रातर्भोज्य, जो सवेरे होता हो।

वैर (सं० पु०) वीरस्य कर्म भावो वा वीर-अण्। विरोध, द्वेष, शत्रुता, दुश्मनी। महाभारतमें लिखा है, कि पांच कारणसे विरोध पैदा होता है। यथा, स्त्रीकृत—जैसे शिशुपाल और कृष्णका; वास्तुज—जैसे कुरु पाण्डवका; वाग्ज—बातबातमें जहां विवाद होता है, उसे वाग्ज कहते हैं, जैसे द्रोण और द्रुपदका; सापत्न—जैसे मूषे और बिल्लीका; अपराधज—जैसे पूजनीय और ब्रह्महन्ताका। (महाभारत)

वैरक (सं० पु०) वैर देखो।

वैरकर (सं० त्रि०) करोतीति कर वैरस्य करः। विरोधकारक, दुश्मनी करनेवाला।

वैरकरण (सं० क्ली०) वैरस्य करणं। दुश्मनी करना।

वैरकार (सं० त्रि०) वैरं करोति कृ-अण्। वैरकर, दुश्मनी करनेवाला।

वैरकारक (सं० त्रि०) वैरस्य कारकः। वैरकार देखो।

वैरकारिता (सं० स्त्री०) वैरकारिणो भावः तल्-टाप्। विरोधकारीका भाव या धर्म, विरोध, दुश्मनी।

वैरकि (सं० पु०) वीरकके अपत्य। (पा २।४।६१)

वैरकृत् (सं० त्रि०) वैरं करोतीति कृ-क्विप् तुक् च। शत्रुताकारी, दुश्मनी करनेवाला।

वैरक्त (सं० क्ली०) विरक्तस्य भावः विरक्त-अण्। विरक्तता, विराग।

वैरकृत (सं० त्रि०) शत्रुताकारी, द्वेष करनेवाला।

(भागवत ६।८।३६)

वैरङ्गिक (सं० त्रि०) विरङ्गं नित्यमर्हति (छेदादिभ्यो नित्यं। पा ५।१।६४) इति ठञ्। विरागार्ह, विरागके योग्य। (हेम)

वैरट (सं० पु०) राजभेद। वैराट देखो।

वैरमणी (सं० स्त्री०) बौद्ध-रमणीभेद।

वैरणक (सं० त्रि०) वीरण-सम्बन्धी। (पा ४।२।८०)

वैरणी (सं० स्त्री०) वीरणकी कन्या। (हरिवंश)

वैरण्डेय (सं० पु०) वीरण्डपर्वतर आर्षभेद। (मत्स्यपुराण)

वैरम (सं० पु०) जातिविशेष। "सिन्धुकालकवैरमाः।"

(मार्क०पु० ५८।१२)

वैरता (सं० स्त्री०) वैरस्य भावः तल्-टाप्। वैरका भाव या धर्म, शत्रुता, दुश्मनी।

वैरस्य (सं० क्ली०) १ विरसका भाव। (त्रि०) विरससम्बन्धीय या अरुचन्तुक निरूप।

वैरदेय (सं० क्ली०) १ प्रतिहिंसाजनित शत्रुता या पीड़न, वह वैर या शत्रुता जो किसीके शत्रुता करने पर उत्पन्न हो। २ असुरभेद। (काठक २३।८)

वैरनिर्यातन (सं० क्ली०) वैरस्य निर्यातनं। शत्रुताका प्रतिशोध लेना।

वैरन्त्य (सं० पु०) राजपुत्रभेद। देवीने इसे नूपुरसे मारा था। (काम० नीति० ७।५३)

वैरपुरुष (सं० पु०) शत्रु, दुश्मन।

वैरप्रतिक्रिया (सं० स्त्री०) वैरस्य प्रतिक्रिया। वैरनिर्यातन।

वैरभाव (सं० पु०) शत्रुभाव, शत्रुता, दुश्मनी।

वैरम खाँ—वैराम खाँ देखो।

वैरमण (सं० त्रि०) विराम-सम्बन्धी।

वैरयातन (सं० क्ली०) वैरस्य यातनं। वैरनिर्यातन।

वैरल्य (सं० क्ली०) विरलस्य भावः ष्यञ्। १ विरलका भाव, विरलता। २ एकान्त।

वैरवत् (सं० त्रि०) वैर अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। वैरविशिष्ट, शत्रुतायुक्त।

वैरविशुद्धि (सं० स्त्री०) वैरस्य विशुद्धिः। वैरनिर्यातन, दुश्मनोंका बदला लेना।

वैरशुद्धि (सं० स्त्री०) वैरस्य शुद्धिः। वैरनिर्यातन, किसीके वैरका बदला चुकाना।

वैरस (सं० क्ली०) विरसस्य भावः विरस-अण्। वैरस्य, विरसता।

वैरस्य (सं० क्ली०) विरस-ष्यञ्। १ विरस होनेका भाव, विरसता। २ अनिच्छा, इच्छाका न होना।

वैरहत्य (सं० क्ली०) वीरहत्या या शत्रुहत्या।

वैराग (सं० पु०) वैराग्य देखो।

वैराग—बम्बई प्रेसिडेन्सीके शोलापुर जिलेका एक नगर। यह अक्षा० १८° ३´ ४२´´ उ० तथा देशा० ७५° ५०´ ४५´´ पू० शोलापुरसे बार्सि जानेके रास्ते पर अवस्थित है। यह एक वाणिज्यकेन्द्र है। यहां प्रति सप्ताहमें बुधवारको हाट लगती है।

वैरागिक (सं० त्रि०) विरागं नित्यमर्हति विराग-ठञ्। विरागार्ह, जिसके कारण विराग उत्पन्न हो। (सिद्धान्तकौमुदी) वैरङ्गिक देखो।

वैरागिन् (सं० त्रि०) विरागस्य भावः वैरागं, तदस्यास्तीति इनि। वैरागी देखो।

वैरागी—उदासीन वैष्णव-सम्प्रदायभेद। इन लोगोंने विषय-कामनाको तिलाञ्जलि दे कर संसारधर्मका त्याग किया है। इस सम्प्रदायके सभी रामानुज या रामानन्दी मतका अनुसरण करते हैं। अन्यान्य वैष्णव-सम्प्रदायमें भी वैरागी देखे जाते हैं। ये लोग श्रीकृष्ण या श्रीरामचन्द्रको अपना उपास्य देवता मानते हैं तथा उदासीन संन्यासीकी तरह राह राह भीख मांगते फिरते हैं। 'श्रीरामाय नमः' इनका मूलमन्त्र है। ये लोग श्रीकृष्णका भजन तो करते हैं, पर श्रीराधाको उनकी शक्ति कह कर उपासना नहीं करते। राधाको ये लोग श्रीकृष्णकी अनुगता भामिनी समझते हैं। रुक्मिणी देवी ही इनके मतसे भगवान् श्रीकृष्णकी शक्तिस्वरूपिणी हैं। जो लोग अयोध्यापति रामचन्द्रके उपासक हैं, वे सीतादेवीको लक्ष्मीस्वरूपिणी कह कर उनकी पूजा करते हैं।

पश्चिमाञ्चलवासी वैरागियोंमें साधारणतः रामानुज या श्रीवैष्णव, मध्वाचार्य, विष्णुस्वामी और निम्बार्क मतानुसारी वैष्णव ही देखे जाते हैं। दाक्षिणात्यमें मध्वाचार्य, निम्बार्क और विष्णुस्वामी दलकी संख्या ही अधिक है। ये सभी श्रीकृष्णके उपासक हैं। पञ्जाब प्रदेशमें रामानन्दी और निमानन्दी सम्प्रदायी वैरागी हैं। रामानन्दी रामकी और निमानन्दी कृष्णकी उपासना करते हैं। श्रीरामनवमीमें श्रीरामचन्द्रके और भाद्रकी कृष्णाष्टमीमें श्रीकृष्णके जन्मोत्सवमें ये लोग उपवास और पारणादि करते हैं। स्वधर्मावलम्बियोंके मध्य किसीके मरने पर बड़ी धूमधामसे भोज होता है।

रामानन्दी धर्मशास्त्ररूपमें रामायणका पाठ करते हैं तथा अयोध्या और रामनाथ पवित्रतीर्थ मान कर धर्म कमानेके लिये उस देशमें जाते हैं। निमानन्दी श्रीकृष्णके भक्तिविषयक ग्रन्थादि पढ़ते हैं तथा मथुरा, वृन्दावन, द्वारकादिमें देवदर्शनके लिये गमन करते हैं। इन सब विभिन्न सम्प्रदायी वैष्णवोंके तिलकादि धारण करनेका भिन्न भिन्न रूप निर्दिष्ट है।

रामानुज सम्प्रदायके वैरागियोंमें टेङ्गलई और

वड्गलई नामक दो श्रेणीगत विभाग देखे जाते हैं। इनमें धर्ममतका कोई विशेष पार्थक्य नहीं रहने पर भी तिलकधारणके विषयमें यथेष्ट पार्थक्य दिखाई देता है। तेङ्गलईगण कहते हैं, कि देवताकी लोकोत्तर असीम ओर हैं, उनके भावसे (पुरुषकार द्वारा) आत्मा ईश्वरके समीप लाई जाती है। उधर वड्गलईगण उक्त शक्तिको असीम और अनन्त तथा मुक्तिके एकमात्र उपाय मानते हैं। अन्यान्य विषयोंमें भी दोनों दलमें थोड़ा थोड़ा प्रभेद है, यह लूथानमतावलम्बी कनमिनिष्ट और आर्मेनियोंकी तरह है। वड्गलईगण मानवको इच्छाको ही मुक्तिको एकमात्र सहाय मानते हैं तथा वानरका बच्चा जिस प्रकार निरापद स्थानमें जानेके लिये माताको मजबूतीसे पकड़े रहता है, उसी प्रकार आत्मा भी जगदीश्वरका आश्रय करके मुक्तिपथको आकांक्षी होती है। तेङ्गलईका कहना है, कि आत्मा निष्क्रिय और शक्तिहीन है; बिल्ली जिस प्रकार अपने बच्चेको दांतोंसे पकड़ कर निरापद स्थानमें ले जाती है, आत्माको उसी प्रकार ईश्वरकी दयासे परिचालित नहीं करने पर यह कभी भी निराश्रयताको अतिक्रम नहीं कर सकती, इस कारण इस सम्प्रदायमें 'मर्कटकिशोरन्याय' और 'मार्जारकिशोरन्याय' मतकी उत्पत्ति हुई है।

इनमेंसे अधिकांश शूद्रवर्णके होते हैं। ये लोग विवाहादि नहीं करते। किन्तु वङ्गालके चैतन्य-सम्प्रदायी वैष्णव वैरागियोंमें सेवादासी रखनेकी व्यवस्था देखी जाती है। इनको शवदेह गाड़ी जाती है।

वैराग्य (सं० क्ली०) विरागस्य भावः विराग-ष्यञ्। विषयसुखद्वेषी, मनकी वह वृत्ति जिसके अनुसार संसारकी विषयवासना तुच्छ प्रतीत होती है और लोग संसारकी झंझटें छोड़ कर एकान्तमें रहते और ईश्वरका भजन करते हैं, विरक्ति।

वैराज (सं० पु०) १ विराट् पुरुष, परमात्मा। (भागवत ३।१।२५) २ एक मनुका नाम। ३ सत्ताइसवें कल्पका नाम। ४ सामभेद। ५ तपोलोकमें रहनेवाले एक प्रकारके पितृ। कहते हैं, कि ये कभी नाशसे नहीं मर सकते। ६ अजितके पिताका नाम। (भाग० ८।५।९) ७ वैराज्य देखो।

वैराजक (सं० त्रि०) उन्नीसवें कल्पका नाम।

वैराज्य (सं० क्ली०) विविधं राज्यं विराट् तस्य भावो वैराज्यं, अणिमादिसिद्धिभावप्रमिश्वर्यः। १ प्राचीन कालकी एक प्रकारकी शासनप्रणाली जिसमें एक ही देशमें दो राजा मिल कर शासन करते थे, एक ही देशमें दो राजाओंका शासन। २ वह देश जहां इस प्रकारकी शासन-प्रणाली प्रचलित हो। ३ विदेशियोंका राज्य, विदेशियोंका शासन। वैराज्य और द्वैराज्यके गुणदोषका विचार करते हुए कहा गया है, कि द्वैराज्यमें अशान्ति रहती है और वैराज्यमें देशका धन धान्य निचोड़ लिया जाता है। दूसरी बात यह कही गई है, कि विदेशी राजा अपनी अधिकृत भूमि कभी कभी बेच भी देता है और आपत्तिके समय असहाय अवस्थामें छोड़ भी देता है।

वैराट (सं० त्रि०) विराट्-अण्। १ विराटसम्बन्धी। २ विस्तृत, लम्बा चौड़ा। (पु०) ३ इन्द्रगोपकीट, बीरबहूटी। ४ विराटराजपुत्र। ५ महाभारतका विराट पर्व। (स्त्री०) ६ वैराटी, विराटकी कन्या।

वैराट—राजपूतानेके जयपुर राज्यान्तर्गत तोड़वाटी जिलेका एक नगर। यह भीमगुफा पहाड़के नीचे जयपुरसे ४१ मील उत्तर तथा अलवारसे २५ मील पश्चिममें अवस्थित है। यह नगर बहुत पुराना है। पाण्डुपुत्रोंने वनवासकालमें यहां अज्ञातवास किया था। यही प्राचीन विराट् जनपद है। यहां बौद्ध सम्राट् अशोकके समय उत्कीर्ण दो अनुशासन देखे जाते हैं। यहां तांबेकी खान है।

वैराटक (सं० क्ली०) सुश्रुतके अनुसार शरीरमें किसी स्थान पर होनेवाली वह गांठ जो जहरीली हो। अङ्गरेजीमें इसे Poisonous Tubercle कहते हैं। (सुश्रुत २५ स्थान)

वैराटपुर—दाक्षिणात्यके बम्बई-प्रदेशके अन्तर्गत धारवाड़ जिलेका एक प्राचीन नगर। इसका वर्तमान नाम हङ्गल है। यहां कदम्बराजगण राज्य करते थे। शिलालिपिमें यह स्थान पम्पापुर, वैराटपुर, विराटकोट और विराटनगर नामसे अभिहित हुआ है।

वैराटि (सं० पु०) विराटके पुत्र। (भारत विराटपर्व)

वैराट्या (सं० स्त्री०) जैनियोंके अनुसार सोलह विद्यादेवियोंमेंसे एक विद्यादेवीका नाम।

वैरातक (सं० त्रि०) वीरतक-निर्वृत्त। (पा ४।२।८०)

वैराधव्य (सं० स्त्री०) विराधव-सम्बन्धी।
(पा ५।१।१२४)

वैराङ्क (सं० पु०) अर्जुन या कोह नामक वृक्ष।
(राजनि०)

वैरानुबन्ध (सं० पु०) वैरोद्भव, वैरसम्बन्ध।
(भागवत ७।१।२५।

वैरानुबन्धिन् (सं० त्रि०) वैरसंघटनविशिष्ट।
(कामं० नीति० १४।४५)

वैराम (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक प्राचीन जाति। (भारत वनपर्व)

वैराम—कुर्बानुलनियायासो तुर्कजातिका धर्मसंक्रान्त एक उत्सव। जि-उल-हज्ज मासकी १०वीं तारीखको यह उत्सव मनाया जाता है। इस्लाम धर्मशास्त्रमें यह ईद आधा और ईद-उल-कोरबान नामसे कथित है, किन्तु तुर्कोंने इसका 'बेयारम वैराम' नाम रखा है।

वैराम खां—मुगल राजमन्त्री। तुर्कमानवंशमें इसने जन्मग्रहण किया था। खानखानाकी उपाधि पा कर यह मुगल-राजदरबारमें ऊंचे ओहदे पर काम करता था। इसके पूर्वपुरुष तैमूरके समयसे मुगल राजसरकारमें काम करते थे। उसी सूत्रसे यह भी मुगल दरबारमें घुसा। कुछ ही दिनोंके बाद इसकी तरक्की हो गई। मुगल-सम्राट् हुमायूं शाह जब पारस्य हो कर भारतवर्ष आये थे, उस समय वैराम भी उनके साथ था।

हुमायूंके लड़के अकबर जब दिल्लीके सिंहासन पर अधिष्ठित हुए, तब उन्होंने अपने अभिभावक राजमन्त्रिप्रवर वैरामको खानखानाकी उपाधि दे कर सम्मानित किया था। उस समय मुगल-साम्राज्यके सामरिक-विभागका तथा दीवानी राजकार्यका परिचालनभार वैरामके ऊपर सपुर्द था। वैराम इस पद पर नियुक्त रह कर अपनी मर्यादाको अक्षुण्ण रख न सका। यह युवक अकबरके ऊपर अन्यायपूर्वक अपनी प्रभुता फैलानेमें कोई कसर उठा न रखता था। इस कारण यह अकबरकी आंखोंमें गड़ गया। १५५८ ई०में सम्राट् अकबर शाहने जब अपनेको राजकार्य चलानेमें उपयुक्त समझा, तब बड़े कौशलसे वैरामको राजकार्यसे अलग कर दिया। मन्त्रित्व और दरबारमें अपना प्रभाव नष्ट हुआ देख वैराम पहले सम्राट्के विरुद्ध साजिश करके विद्रोहवह्नि प्रज्वलित करनेमें उद्यत हो गया था। किन्तु इससे जब कोई फल न हुआ, तब यह दूसरा उपाय सोचने लगा। आखिर आत्मरक्षाका कोई उपाय न देख सम्राट्से क्षमा-प्रार्थना की। उदारमति बादशाह अकबरने उसके सब दोष माफ कर दिये तथा उसके भरण-पोषणके लिये वार्षिक ५० हजार रुपयेकी वृत्ति कायम कर दी।

इसके कुछ समय बाद वैरामने मक्का जानेके लिये सम्राट्से बिदाई ली। गुजरातमें आ कर ज्यों ही यह जहाज पर चढ़ने जा रहा था, त्योंही मुबारक खाँ लोहानी नामक एक मुसलमानने उसका काम तमाम किया। मुबारक अपने पिताकी मृत्युका बदला चुकानेके लिये बहुत दिनोंसे मौका ढूंढ़ रहा था, आज उसका मनोरथ सिद्ध हुआ। सम्राट् हुमायूं शाहके राज्यकालमें वैरामने रणक्षेत्रमें अपने हाथोंसे मुबारकके पिताको यमपुर भेजा था। १५६१ ई०की ३१वीं जनवरीमें यह घटना घटी थी। गुजरातके शेख हिसामके मकबरेके पास ही इसका मकबरा तैयार किया गया, पीछे यह लाश फिर मशहदमें ला कर दफनाई गई।

वैराम बेग—एक मुगलराजकर्मचारी। इसके लड़के मुनीम खांने हुमायूं बादशाहसे जागीर पाई थी।

वैरामघाट—मध्यभारतमें बेरार प्रदेशके इलिचपुर जिलेका एक बड़ा गांव। यह अक्षा० ११° २३´ उ० तथा देशा० ७७° ३६´ पू०के मध्य इलिचपुर नगरसे १४ मील पूर्व करिञ्जा सीमान्तमें अवस्थित है। यहां पर्वतके ऊपर एक देवस्थान शोभा दे रहा है। प्रति वर्षके कार्त्तिक मासमें यहां एक मेला लगता है जिसमें ५० हजार हिन्दू-मुसलमान एकत्र होते हैं। तीर्थयात्रियोंके पर्वत पर चढ़नेकी सुविधाके लिये सीढ़ी काटी गई है। हिन्दू एक बगलसे और मुसलमान दूसरी बगलसे सीढ़ी पर जाते हैं। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही इस देवतीर्थमें पार्वतीकी सामनेवाली समतल भूमिमें मानसिक पशुबलि चढ़ाते हैं। उस वार्षिक उत्सवमें प्रायः दो हजारसे ऊपर पशु मारे जाते हैं, किन्तु आश्चर्यका विषय है, कि उस समय यहां एकका नहीं बढ़ जाने पर भी एक भी मक्खी दिखाई नहीं देती।

वैरि (सं० पु०) वैरी, शत्रु, दुश्मन।
वैरिञ्च (सं० त्रि०) विरिञ्चि या ब्रह्मा-सम्बन्धी, ब्रह्माका। स्त्रियां ङीप्। २ वैरिञ्ची। (भागवत ११।६।१९)
वैरिञ्च्य (सं० पु०) विरिञ्चि-ष्यञ्। ब्रह्माके पुत्र सनकादि।
वैरिण (सं० क्ली०) शत्रु, दुश्मन।
वैरिणि (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिभेद। (प्रवराध्याय)
वैरिता (सं० स्त्री०) वैरिणोभावः तल्-टाप्। शत्रुता, दुश्मनी।
वैरित्व (सं० क्ली०) शत्रुता, दुश्मनी।
वैरिन् (सं० पु०) १ वैरमस्यास्तीति वैर-इनि। १ शत्रु, दुश्मन। (त्रि०) २ वीरसम्बन्धी, वीरविशिष्ट।
वैरियोर (सं० पु०) पुराणानुसार दशरथके एक पुत्र। इसका दूसरा नाम इलविल भी है। (विष्णुपुराण)
वैरिस—राजपूतानेके उदयसागर नामक हृदसे निकली एक नदी। यह चित्तोर राजधानीसे १ मील दूरमें बहती है। उदयसागरसे ६ मीलकी दूरी पर पेशोला नामका बाँध है। इसकी ऊँचाई ८० फुट होनेके कारण जल उदयसागरमें आ गिरता है। 'सुर्हेलियाकी बाड़ी' नामक ग्राममें इस प्रकारका एक और बाँध है। उस बाँधमें अरावली पर्वतकी कुछ नदियोंका जल गिरता है। पीछे यह जल यहाँसे सञ्चालित हो कर पेशोला और उदयसागरमें दौड़ता है।
वैरिसिंह (सं० पु०) राजपुत्रभेद।
वैरूप (सं० पु०) १ विरूपके अपत्य, ऋषिभेद। (प्रवराध्याय) २ विरूपके गोत्रापत्य अष्टादंष्ट्र। (पञ्चविंश ब्रा० ८।१।११) ३ सामभेद।
वैरूपाक्ष (सं० पु०) विरूपाक्षस्य गोत्रापत्यं विरूपाक्ष (शिवादिभ्योऽण्। पा ४।१।११२) इति अण्। विरूपाक्षके गोत्रापत्य।
वैरूप्य (सं० क्ली०) विरूपस्य भावः ष्यञ्। १ विरूपका भाव या धर्म, विरूपता, कुरूपता। २ नानारूपत्व। ३ विसदृशत्व। ४ अन्यथाभाव।
वैरेचन (सं० त्रि०) विरेक-सम्बन्धी, विरेचन-सम्बन्धी। (सुश्रुत)
वैरेचन (सं० त्रि०) विरेचन-सम्बन्धी, विरेचनका। (सुश्रुत)
वैरेय (सं० त्रि०) वीरसम्बन्धी, वीरका। (पा ४।२।८०)
वैरोचन (सं० पु०) विरोचनस्यापत्यं विरोचन-अण्। १ बुद्ध। २ राजा बलि। ३ अग्निके पुत्र। ४ सूर्यके पुत्र। ५ सिद्धगण। (शब्दरत्ना०)
वैरोचन-निकेतन (सं० क्ली०) वैरोचनस्य बलेर्निकेतनं। पाताल। (हलायुध)
वैरोचनभद्र (सं० पु०) बौद्ध धर्माचार्यभेद। (तारनाथ)
वैरोचनरश्मिप्रतिमण्डित (सं० पु०) बौद्धमतसे जगद्भेद।
वैरोचनि (सं० पु०) विरोचनस्यापत्यं विरोचन-इञ्। १ बुद्ध। २ राजा बलि। ३ सूर्यके पुत्र।
वैरोचि (सं० पु०) बलिके पुत्र बाणदैत्य। (मेदिनी)
वैरोट्या (सं० स्त्री०) जैनियोंकी सोलह विद्यादेवियोंमेंसे एक विद्यादेवीका नाम। (हेम)
वैरोद्धार (सं० पु०) वैरस्योद्धारः। वैरशुद्धि, किसीके वैरका बदला चुकाना।
वैरोवाल—पञ्जाब प्रदेशके अमृतसर जिलेका एक नगर। यह अक्षा० ३१°५६´३० तथा देशा० ७४°४०´ पूर्वके मध्य विपाशा नदीके दाहिने किनारे अमृतसरसे २६ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। इसके दूसरे किनारे कपुरथला राज्य है। म्युनिसपलिटी रहनेके कारण नगर खूब साफ सुथरा है। यहां शालकी लकड़ीका थोड़ा वाणिज्य चलता है। पर्वतसे लकड़ी काट कर विपाशा नदीमें लाई जाती है।
वैरोहित (सं० पु०) विरोहितके गोत्रापत्य। (पाणिनि ४।२।१११ वैरोहित्यगणा)
वैरोहित्य (सं० पु०) वैरोहितके अपत्य। (पा ४।१।१०५)
वैल (सं० पु०) बेल नामक वृक्ष या उसका फल।
वैलक्षण्य (सं० क्ली०) विलक्षणस्य भावः विलक्षण-ष्यञ्। १ विलक्षण होनेका भाव, विलक्षणता। २ विभिन्न या अलग होनेका भाव, पृथक्ता, विभिन्नता। ३ अन्य प्रकार।
वैलक्ष्य (सं० क्ली०) विलक्ष भावे ष्यञ्। १ लज्जा, संकोच, शर्म। २ विस्मय, आश्चर्य, ताज्जुब। ३ स्वभावकी विलक्षणता।

बैलगांव—युक्तप्रदेशके अयोध्या विभागके अन्तर्गत उन्नाव जिलेका एक बड़ा गांव। यह उन्नाव नगरसे ८ कोस दक्षिणपूर्वमें अवस्थित है। एक ध्वस्त दुर्गावशेष स्थानीय समृद्धिका परिचायक है। यहां प्रति सप्ताहमें दो दिन हाट लगती है। उस हाटमें लकड़ी, लोहेकी बनी वस्तु, कृषिकोंके उपयोगी वस्त्रादि तथा वस्त्र बिकनेको आते हैं। गांवके चारों ओर आम और महुएका वन है।

बैलभेल—युक्तप्रदेशके अयोध्या विभागके रायबरेली जिलेका एक नगर। यहां प्रायः पांच हजार आदमियोंका वास है। सभी शैव धर्मावलम्बी हैं। स्थानीय महादेवका मन्दिर विशेष प्रसिद्ध है।

बैलस्थान (सं० क्ली०) श्मशान, मरघट।
(ऋक् १।१३३।१)

बैलहोङ्गल—बम्बई-प्रदेशके बेलगांव जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह एक बड़ी दीघीके पूरब एक विस्तीर्ण मैदानमें अवस्थित है। बेलगांव और परशगढ़ उपविभागके सीमान्तदेशमें होनेके कारण यह स्थान एक वाणिज्यकेन्द्ररूपमें गिना गया है। यहां प्रति शुक्रवारको हाट लगती है। उस हाटमें स्थानीय सूती कपड़े बिकनेको आते हैं। स्थानीय तथा पार्श्ववर्त्ती ग्रामवासी कृषकों और छोटे छोटे व्यवसायियोंके अलावा बेलगांव और वेनगुरलावासी वणिक् भी ये सब वस्त्र खरीदने आते हैं। फिर गदग (धारवाड़), गुलेदगढ़ (बीजापुर), हुबली (धारवाड़), येल्लपुर (कनाड़ा) तथा बम्बई और मन्द्राज बन्दरसे तरह तरहके रेशमी और सूती कपड़े, सुपारी, गुड़ आदि भी काफी परिमाणमें यहां बिकनेको आते हैं।

नगर-प्राचीरके बहिर्भागमें उत्तरकी ओर बसवेश्वरका प्राचीन मन्दिर है। मन्दिरकी बाहरी बनावट और शिल्पकार्य देखनेसे मालूम होता है, कि जैनप्राधान्य कालमें यह बनाया गया था। दाक्षिणात्यमें लिङ्गायत मतका प्रादुर्भाव होनेसे इस मन्दिरमें लिङ्गमूर्त्ति प्रतिष्ठित हुई। प्रति वर्ष कार्त्तिक मासमें यहां देवताके उद्देशसे एक मेला लगता है। मन्दिरगात्रमें रट्टसरदारोंकी (८७५-१२५० ई०) १२ सदीमें कनाड़ी भाषामें उत्कीर्ण दो शिलाफलक दिखाई देते हैं। मन्दिरके सामने दाईं ओर जो शिलालिपि है, वह इतनी अस्पष्ट है, कि पढ़ी नहीं जाती। बाईं ओर की लिपि रट्टसरदार कार्त्तवीर्यके राज्यकालमें १७६४ ई०को खोदी गई है। उसके ऊपरी भागमें ठीक बीचमें जिनेन्द्रकी मूर्त्ति बैठी हुई है। उसके दक्षिण भागमें दण्डायमान नरमूर्त्ति और उसके शिरश्छत्र तथा वाम पार्श्वमें सवत्सा गाभी और उसके ऊपर सूर्यकी मूर्त्ति है। इस शिलाफलकमें जिनवन्दि और सम्भवतः जैनमन्दिरकी प्रतिष्ठाका उल्लेख है।

बैलाहव (सं० क्ली०) बिलाह-सम्बन्धी। (पा ५।१।१२३)

बैलुर—बम्बई प्रदेशके बेलगांवसे १४ मील दक्षिणपश्चिममें अवस्थित है। समुद्रकी तहसे यह ३४६१ फुट ऊंचा और प्रायः ५ मील चौड़ा है। इसके ऊपर लोहा मिली मिट्टी पाई जाती है। यहां त्रिकोणमितीय सर्वे स्टेशन प्रतिष्ठित है।

बैलेयिक (सं० त्रि०) बिलेयिकाका धर्म।

बैल्व (सं० क्ली०) बिल्वस्येदं अण्। १ बिल्व या बेल नामक फलके सम्बन्ध, बेलका।

बैवक्षिक (सं० त्रि०) विवक्षा-सम्बन्धी।

बैवधिक (सं० पु०) विवधेन धान्यतण्डुलादिना व्यवहरति (विभाषा विवधवीवधात्। पा ४।४।१७) इति वधो ठक्। १ वह जो अनाज आदि बेच कर अपना निर्वाह करता हो, गल्लेका व्यापारी। २ वार्त्तावह, दूत। ३ नैगमिक। ४ बोझ ढोनेवाला, मजदूर।

वैवर्ण (सं० क्ली०) विवर्णस्य भावः विवर्ण ष्यञ्। १ विवर्ण या मलिन होनेका भाव, मलिनता। २ कालिमा, सौन्दर्य या लावण्यका अभाव। ३ स्त्रियोंके आठ प्रकारके सात्त्विक भावोंमेंसे एक प्रकारका भाव।

बैवर्त्त (सं० क्ली०) चक्रवत् परिवर्त्तन, किसी पदार्थका चक्र या पहियेके समान घूमना।

बैवश्य (सं० क्ली०) १ विवश होनेका भाव, विवशता, लाचारी। २ दुर्बलता, कमजोरी।

बैवस्वत (सं० पु०) विवस्वतोऽपत्यमिति विवस्वत् अण्। १ सूर्यपुत्र। (ऋक् १०।१४।१) २ रुद्रविशेष। ३ शनि। ४ सप्तम मनु। आज कलका मन्वन्तर इन्हीं मनुका माना जाता है। इस मन्वन्तरमें अवतार वामन, पुरन्दर, इन्द्र, आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, विश्वदेवगण,

मरुद्गण और अश्विनाद्वय आदि देवता, कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज ये सप्तर्षि, इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करूषक, नरिष्यन्त, पृषध्र, नाभाग और कवि ये दश मनुके पुत्र हैं।
(भागवत)

हरिवंशमें लिखा है, कि वैवस्वत सप्तम मनु हैं। आज कल यही मन्वन्तर चल रहा है। इस मन्वन्तरमें अत्रि, वशिष्ठ, काश्यप, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र और ऋचीकपुत्र जमदग्नि ये सप्तर्षि हैं। साध्यगण, रुद्रगण, विश्वगण, वसुगण, मरुद्गण, आदित्यगण, अश्विनीकुमारद्वय ये देवता तथा इक्ष्वाकु आदि दश वैवस्वत मनुके पुत्र हैं। इनके पुत्र पौत्र आदि सन्तान-सन्ततिगण कालक्रमसे दिग्दिगन्तरमें व्याप्त हैं। मन्वन्तरके प्रारम्भमें लोगोंकी सम्यक् व्यवस्था और संरक्षणके लिये सात सात ऋषि व्यवस्थापित होते हैं। (हरिवंश ७ अ०)

वैवस्वततीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थभेद।

वैवस्वतद्रुम (सं० क्ली०) मोगरा चावल।

वैवस्वती (सं० स्त्री०) वैवस्वतस्य इयं अण् ततो ङीप्। दक्षिण दिशा, इस दिशाके अधिपति यम हैं। यह दिशा वैवस्वत मनुकी मानी गई है।

वैवस्वतीय (सं० त्रि०) वैवस्वत मनु सम्बन्धी।

वैवाह (सं० त्रि०) विवाह-अण्। विवाह-सम्बन्धी, विवाहका।

वैवाहिक (सं० पु०) विवाहाद्भवः विवाह-ठञ्। १ कन्या अथवा पुत्रका श्वशुर, समधी। (त्रि०) २ विवाहसम्बन्धी, विवाहका।

वैवाह्य (सं० त्रि०) १ विवाह सम्बन्धी, विवाहका। २ विवाह्य, जो विवाहके योग्य हो। (क्ली०) ३ वह समारोह या उत्सव जो विवाहके अवसर पर हो।

वैविक्त (सं० क्ली०) विविक्तका भाव।

वैवृत्त (सं० त्रि०) १ विवृत्ति सम्बन्धी। (पु०) २ उदात्त आदि स्वरोंका क्रम। (ऋक्प्राति०)

वैश—बङ्गाल और पश्चिमाञ्चलवासी वैश्य-जाति। वैश्य शब्दके अपभ्रंशसे हिन्दीमें वैश शब्द हुआ है। मारवाड़ी वणिक् सम्प्रदाय अपनेको बाईस या वैश कहते हैं।

उत्तर भागलपुरमें इस श्रेणीके एक दल पण्यजीवी हैं जो अपनेको आदि वैश्यजातिके वंशधर बतलाते हैं, किन्तु वैश बनियोंके साथ कोई सम्पर्क स्वीकार नहीं करते। ये लोग मूलवंशसे तीसरी पीढ़ीको बाद दे कर पुत्रकन्याका विवाह सम्बन्ध स्थिर करते हैं। बाल्यावस्थामें ही ये अपनी कन्याका विवाह करते हैं। इनमें विधवा-विवाह वा स्वामित्याग प्रचलित नहीं है। इनकी सामाजिक अवस्था बड़ी उन्नत है। वैश्य देखो।

वैशद्य (सं० क्ली०) विशदस्य भावः ष्यञ्। १ विशद होनेका भाव, विशदता। २ निर्मल या स्वच्छ होनेका भाव, निर्मलता।

वैशन्त (सं० त्रि०) वैशन्त-अण्। अल्प सरोवरोद्भूत, जो अल्प सरोवरमें हो। (शुक्लयजुः २४।२१)

वैशम्पायन (सं० पु०) विशम्पस्य गोत्रापत्यं (नडादिभ्यः फक्। पा ४।१।११०) इति फक्। एक प्रसिद्ध ऋषिका नाम जो वेदव्यासके शिष्य थे। कहते हैं, कि महर्षि व्यासदेवकी आज्ञासे उन्होंने जनमेजयको महाभारतकी कथा सुनाई थी। पुराणमें लिखा है, कि जैमिनि, सुमन्तु, वैशम्पायन, पुलस्त्य और पुलह ये पाँच मुनि ही यज्ञ-धारक हैं।

वैशली—वैशाली देखो।

वैशस (सं० क्ली०) विशसस्य भावः स्वार्थे अण्। १ विशसन, हिंसन। (पु०) २ हिंसक।

वैशस्त्य (सं० क्ली०) विशस्ति (गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च। पा ५।१।१२४) इति ष्यञ्। विशस्तिका भाव या कर्म।

वैशस्त्र (सं० क्ली०) विशसितुर्धर्म्यं विशसितृ (ऋतोऽञ्। पा ४।४।४९) इति अण्, तत्र विशसितुरिड् लोपश्चाञ् च, इति काशिकोक्त्या इट् लोपः। १ अधिकार। २ शस्त्राभावविशिष्टत्व। विगतं शस्त्रं यत्र, विशस्त्र अण्। (त्रि०) ३ जहांसे शस्त्र छूटा हो।

वैशाख (सं० क्ली०) विशाख एव-स्वार्थे अण्। १ धनुर्विदोंका संस्थानभेद। (पु०) २ पुरविशेष।
(कथासरित्सागर० ६७।५)

विशाखा प्रयोजनमस्य (विशाखाषाढादिति। पा ५।१।११०) इति अण्। ३ मन्थनदण्ड, मथानीमेंका डंडा। (शिशुपालवध)

वैशाखी ;पौर्णमासी अस्मिन् (सास्मिन् पौर्णमासीति । पा ४।२।२१) इति अण् । ४ द्वादश मासोंमें प्रथम मास । पर्याय—माधव, राध । (अमर)

चान्द्र और सौर वैशाखका लक्षण—विशाखा नक्षत्रयुक्त पूर्णिमाका नाम वैशाखी है। यह वैशाखी जिस मासमें होती है, उसी मासका नाम वैशाख है। फिर सूर्य जितने दिन मेषराशिमें अवस्थान करते हैं अर्थात् सूर्य मीनराशि अतिक्रम कर जितने दिन तक मेषराशिमें रहते हैं, उस सम्पूर्ण समयको सौर वैशाख कहते हैं। इस मासमें प्रति दिन सूर्य मेषलग्नमें उदित होते हैं। वैशाख मास अत्यन्त पुण्य मास है, कृत्यतत्त्वमें लिखा है,—

तुला, मकर और मेष अर्थात् कार्त्तिक, माघ और वैशाख इन तीन मासोंमें प्रातःस्नान, हविष्य और ब्रह्मचर्य करनेसे महापातक नष्ट होता है। वैशाख मासमें गङ्गा स्नान करनेसे अर्द्धप्रसूत लक्ष गोदानका फल लाभ होता है। यदि इस मासमें प्रातः गङ्गा स्नान करना हो, तो संकल्प करके करना चाहिये। क्योंकि संकल्प बिना किये कोई काम होता नहीं। इस मासमें सत्तूके साथ भरा घट दानका बड़ा महत्त्व लिखा है। यह घटदान संक्रान्तिके दिन, अक्षयतृतीया या पूर्णिमाके दिन करनेकी विधि है। यह दान पितृलोकके उद्देशसे करना चाहिये। पादुका और छत्रदानकी भी व्यवस्था है।

वैशाख मासमें विषमय निवारणके लिये निम्बपत्रके साथ मसूरकी दाल भक्षण करना चाहिये। शास्त्रमें लिखा है, कि जो निम्बपत्रके साथ मसूर भक्षण करते हैं, तक्षक उनका क्या बिगाड़ सकता है ?

इस मासकी शुक्ला तृतीया ही अक्षयतृतीया कही जाती है। यह युगाद्या है, इससे इस तिथिमें स्नान दान करना चाहिये। अक्षयतृतीया देखो।

इस मासमें पक्षश्राद्ध करनेका विधान है। पितृगणके उद्देशसे पक्षान्न द्वारा श्राद्ध करना होता है। इस मासके शुक्ल पक्षमें मङ्गल, शनि और शुक्रवारको नन्दा, रिक्ता और त्रयोदशी भिन्न तिथिमें, जन्मचन्द्र, अष्टमचन्द्र, जन्मतिथि, जन्म और इससे तृतीया और पञ्चम भिन्न तारामें, पूर्वफल्गुनी, पूर्वभाद्रपद, पूर्वाषाढ़ा, मघा, भरणी, अश्लेषा और आर्द्रा भिन्न नक्षत्रमें यह श्राद्ध करना चाहिये। यह अक्षयतृतीया और विषुवसंक्रान्तिमें भी किया जा सकता है। यह श्राद्ध अवश्य कर्त्तव्य है। यदि किसी तरह वैशाख मासमें यह श्राद्ध न किया जावे, तो ज्येष्ठ और आषाढ़ मासके शुक्ल पक्षमें करे किन्तु विष्णुशयनमें नहीं करना चाहिये।

पद्मपुराणके उत्तरकाण्डमें भी वैशाख मासके माहात्म्यका विवरण लिखा है। वैशाख मास सब मासोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ है।

इस मासमें यदि कोई व्यक्ति जन्म ले, तो वह प्रायः विनयी, द्विजदेवताका भक्त, धार्मिक, सुजनपालक, गुणाभिराम और जनप्रिय होता है।

इस मासमें जातबालकका रविग्रह शुभफल होता है, कारण इस मासमें रवि मेषराशिमें रहता है। मेष रविका तुङ्गस्थान है।

३ रक्त पुनर्नवा, लाल गदहपूरना। ४ मायके वैशाख नामक ग्रह। इस ग्रहसे आक्रान्त निम्नलिखित लक्षण दिखाई देते हैं—बालकका गात्र स्तब्ध, शुष्क और कम्पयुक्त हो जाता है। (अपरस्त ५७ अ०)

वैशाखी (सं० स्त्री०) विशाखया युक्ता पौर्णमासी (नक्षत्रेण युक्तः कालः। पा ४।२।३) इति अण् ततो ङीप्। १ वह पूर्णिमा जो विशाखा नक्षत्रसे युक्त हो, वैशाख मासकी पूर्णिमा। इस पूर्णिमा तिथिमें तिल और मधु द्वारा यम, देवता और पितरोंके उद्देशसे तर्पण करनेसे पापज्ञानकृत पाप विनष्ट होता है और अन्तमें दस हजार वर्ष तक स्वर्गमें वास होता है। २ रक्तपुनर्नवा, लाल गदहपूरना। (राजनि०) ३ पुराणानुसार वसुदेवकी एक स्त्रीका नाम।

वैशाख्य (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम।

वैशारद (सं० त्रि०) विशारद-अण् स्वार्थे। विशारद, पण्डित।

वैशारद्य (सं० क्ली०) विशारदस्य भावः (वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च। पा ५।१।१२३) इति ष्यञ्। विशारदता, निपुणता।

वैशाल (सं० त्रि०) १ विशालदेश-सम्बन्धी। (पु०) २ एक प्राचीन ऋषिका नाम।

वैशालायन (सं० पु०) विशालस्य गोत्रापत्यं विशाल (नडादिभ्यः फञ् । पा ४।१।११०) इति फञ् । विशाल के गोत्रापत्य ।

वैशालि (सं० पु०) विशालके अपत्य, सुशर्मा ।

वैशालिक (सं० त्रि०) विशाल या वैशाली जनपद-सम्बन्धी ।

वैशालिनी (सं० स्त्री०) विदिशाराजकुमारी । (मार्क० पु० १२३।२०)

वैशाली—एक प्राचीन जनपदका नाम । विशाल नगरी विशालपुरी नामसे भी विख्यात है। पुराणोंसे मालूम होता है, कि राजा तृणविन्दुके पुत्र विशालने इस नगरीकी प्रतिष्ठा की थी । इस नगरीकी समृद्धिका परिचय नाना पौराणिक उपाख्यानों और किम्वदन्तियोंसे जाना जाता है। बहुतेरे इसको विशाल राज्य (प्राचीन उज्जयिनी) समझते हैं और उसकी ही समृद्धिका स्मरण कर वर्त्तमान वैशालीकी गौरव-घोषणा करते हैं। किन्तु वास्तवमें यह ठीक नहीं ।

यह विशालपुरी गङ्गाके बायें किनारे अवस्थित है और यह तिरभुक्ति (तिरहुत)-के अन्तर्गत है। प्रत्नतत्त्वविद् कनिंहमके मतसे वैशाली नगरी पटना-राजधानीसे २७ मील दूर पर अवस्थित थी। बौद्ध और जैन-ग्रन्थोंसे वैशालीका प्राचीन इतिहास मिलता है और बौद्धप्राधान्यके पहलेसे ही यह नगर वाणिज्य-समृद्धिसे पूर्ण था, इसका भी उक्त ग्रन्थोंमें प्रमाण मिलता है। शाक्य बुद्धके जन्मसे पहले जैन-तीर्थङ्कर महावीरने वैशाली राजधानीके उपकण्ठस्थ कोल्लग नामक ग्राममें जन्म लिया था। इसी कारणसे वे भी वैशाली नामसे विख्यात हुए थे। शाक्यसिंहके जन्मकालसे सम्राट् अशोकके समय तक बौद्धधर्म उन्नतिकी चरम सीमा तक पहुंच चुका था। शेषोक्त समयमें पाटलिपुत्र (पटना) नगर बौद्धधर्मका केन्द्र मनोनीत हुआ और उस समयसे ही वैशालीकी समृद्धि घटने लगी। फिर भी उस समय तक वैशालीमें बौद्ध संघाराम आदि और श्रमणोंका अभाव नहीं था और इसका वाणिज्य प्रभाव खर्व होने पर भी नगरके श्रीसौन्दर्यका विशेष कोई विपर्यय साधित नहीं हुआ था। पीछे यह ध्वंसप्राप्त हुआ और वर्त्तमान समयमें उसका चिह्नमात्र भी विलुप्त हो गया है।

कनिंहम, फूसे, विन्सेण्ट स्मिथ, पिलट, डाक्टर ब्लच आदि प्रत्नतत्त्वविदोंने प्राचीन जैन और बौद्ध ग्रन्थोंसे तथा फाहियान, यूएनचुवङ्ग, इत्सिं आदि चीनपरिव्राजकोंके भ्रमण-वृत्तान्तकी आलोचना कर मुजःफर जिलेके बसाढ़ ग्रामको ही प्राचीन वैशालीका स्मृति-निकेतन होना स्थिर किया है। वर्त्तमान शताब्दके प्रारम्भमें डाक्टर ब्लचने बसाढ़ ग्रामके विध्वस्त स्तूपोंको खुदवाया था। भूगर्भसे जो सब मोहराङ्कित मृत्खण्ड निकले हैं, उनसे स्पष्ट प्रमाणित होता है, कि यह बसाढ़ ग्राम ही प्राचीन वैशाली है। यूएनचुवङ्गने लुप्तप्राय वैशालीको देखा था। उस समय भी बौद्धधर्मका चिराग कुछ टिमटिमा रहा था। इसके बाद ब्राह्मण्य-धर्मका विस्तार और बौद्ध-प्रभावका विलोप तथा पाटलिपुत्र राजधानीकी उत्तरोत्तर समृद्धि वृद्धि ही वैशाली-ध्वंसकी क्रमिक कारण हुई।

महावंश, वायु और मत्स्यपुराण आदि ग्रंथोंके पढ़नेसे मालूम होता है, कि बिम्बिसारके पुत्र अजातशत्रु वा कुणिक बुद्ध-निर्वाणके आठ वर्षसे पहले ही पितृ-सिंहासन पर बैठे। उन्होंने पहले तो बौद्धोंका विशेषरूपसे निर्यातन किया ; किन्तु पीछे उन्होंने स्वयं भी बौद्ध-धर्म ग्रहण किया था। राजगृह-स्थापन और वैशाली-आक्रमण उनके जीवनकी दो प्रधान घटनायें हैं। वैशालीकी समृद्धिने ही उस समय उनके चित्तको आकर्षित किया था, यह उनके वैशाली पर आक्रमण करनेसे ही मालूम होता है।

विनयपिटकम् नामक बौद्ध पालीग्रन्थमें लिखा है, कि बुद्धप्रवर्त्तित दश तरहके संस्कारके दोषगुणविचारके लिये वैशालीमें एक बौद्ध-सङ्गम बुलाया गया था। सिंहलीय आख्यायिकाके अनुसार मालूम होता है, यह सम्राट् अशोकके सिंहासनारोहणके ११८ वर्ष पहले संघटित हुआ था।

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं, कि जिस स्थानमें किसी समय प्रधान बौद्ध-सङ्गम प्रतिष्ठित हुआ था, वह स्थान उस समय बौद्धधर्मका केन्द्र-स्थल कहा जाता था। बौद्धगण इस स्थानको पवित्र तीर्थ मानते थे।

उस समय वहां सैकड़ों बौद्धमठ और संघाराम प्रतिष्ठित हुए थे और असंख्य बौद्ध-विहार और स्तूप स्थानीय पवित्रता और बौद्धप्रभावके प्रकृष्ट परिचय देनेमें समर्थ थे। इस समय उन सब कीर्तियोंका चिह्नमात्र भी नहीं है। केवल भूगर्भसे निकले कुछ इष्टकस्तूप, गृहभित्ति, *प्रस्तरनिर्मित पयःप्रणाली, मोहराङ्कित लिपियां,* प्राचीन राजाओंकी शिलालिपियां और उक्त चीनपरिव्राजकोंके भ्रमणवृत्तान्तके सिवा वैशालीके बौद्धकीर्ति-संग्रहका दूसरा कोई उपाय नहीं।

कुशीनगरसे हिरण्यवती तट और लिच्छविराज्य परिदर्शन कर फाहियान वैशाली पहुंचा। उस समय वैशाली नगरके उत्तर मर्कटभीलके किनारे दोमंजिला और ऊंचा चूड़ावाला महावन-विहार था। स्वयं बुद्धदेवने इस विहारमें कुछ दिनों तक वास किया था। इसके निकट ही आनन्दको अर्द्धदेह पर बना एक स्तम्भाकृति गोपुर विद्यमान था।

नगरके मध्यमें नगरनिवासिनी आम्रपाली नाम्नी एक बौद्ध-दारिकाके व्ययसे विनिर्मित शाक्यबुद्धका स्मृतिस्तम्भ और उनके रहनेके लिये इस आम्रपालीका दिया हुआ एक उद्यान था। ५वीं शताब्दीमें फाहियानने आम्रपालीकारित उक्त स्तूपको ध्वंसावस्थामें देखा था। उन्होंने यह भी लिखा है, कि बुद्धनिर्वाणके सौ वर्ष पीछे वैशालीमें कितने ही भिक्षु दश संस्कारोंके प्रचलनवशसे भ्रमलिप्त हो विनयसूत्र-विधिका उल्लंघन-जनित कार्य करते थे। इस विषयकी मीमांसाके लिये ७०० अर्हतों और भिक्षुओंने वैशालीमें एकत्र हो कर विनयपिटक संस्कार किया था। इस घटनाका स्मरण रखनेके लिये वहांके लोगोंने उस महान् स्थानमें एक स्तूप निर्माण किया था। यह उस समय विद्यमान था। फाहियानने और भी लिखा है,—बुद्धका भिक्षापात्र पहले वैशालीमें रखा गया था, पीछे वह गान्धार राज्यमें लाया गया।

यूएनचुअङ्गने लिखा है,—वे गण्डकी (गङ्गा ?) अतिक्रम कर १४० या १५० कोस पैदल चल कर वैशालीमें पहुंचे थे। इस राज्यकी परिधि प्रायः ५ हजार ली थी। यह स्थान [illegible] और आम्र आदिके वृक्षोंके उद्यानोंसे पूर्ण था। यहांका जलवायु अति शीतोष्ण, मनोरम और सुखप्रद है। इस स्थानके अधिवासी विशुद्धचित्त, सरल और धर्मान्वेषी हैं। यहां बौद्धमतके विश्वासी और इसके विपरीत मतवाले दोनों तरहके लोग हैं। इस समय बौद्धोंका वैसा प्रभाव नहीं रहा। सैकड़ों संघाराम ध्वंसावस्थामें पड़े हैं। ३ या ५ इस समय भी स्थापित बच गये हैं और उनमें केवल कई धर्मात्मा बौद्धधर्मके क्रियाकाण्डका पालन कर रहे हैं। उस समय भी अन्यान्य सम्प्रदायके लाखों मन्दिर वैशालीकी शोभा बढ़ा रहे थे। इन मन्दिरोंमें रह कर लोग अपने धर्मका विस्तार करनेमें लगे हुए थे। उस समय इस देशमें निर्ग्रन्थ सम्प्रदायके लोगोंकी संख्या बढ़ी चढ़ी थी।

'उस समय प्राचीन वैशाली-राजधानी ध्वंसप्राय थी। नगर-सीमाकी परिधि प्रायः ६०-७० ली और राजपुरीकी सीमा ४।५ ली होगी। यहां उस समय मुष्टिमेय लोगोंका वास था। इस राजपुरीके उत्तर-पश्चिम एक संघाराम था। इस मठमें बौद्ध-श्रमण सम्मतीय शाखानुसार हीनयान मतकी आलोचना करते थे। इसकी बगलमें एक स्तूप था। यहां आर्य विमलकीर्तिने सूत्रकी व्याख्या की और रत्नाकर आदि नगरवासी गृहस्थसन्ततियोंने इस स्थानमें बुद्धदेवको बहुमूल्य छत्र प्रदान किया था। इसके पूर्व एक स्तूप बना है। कहते हैं, कि इस स्थानमें शारिपुत्र आदि बौद्धयतियोंने अर्हत् पद लाभ किया था। शेषोक्त स्तूपके दक्षिण-पूर्व एक दूसरा वैशालीराज द्वारा प्रतिष्ठित स्तूप है। बुद्ध-निर्वाणके कुछ दिन बाद इस राजवंशके एक राजाने शाक्य-शरीरका कोई चिह्न पा कर उस पर एक गृह या स्तूप निर्माण किया था*। इस स्तूपके उत्तर-पश्चिम अशोकराजके द्वारा प्रतिष्ठित एक दूसरा स्तूप

* बौद्ध पाली और संस्कृत ग्रन्थोंमें लिखा है—वैशालीके लिच्छवि राजाओंने बुद्धके चिह्नोंका संग्रह कर उन पर एक स्तूप निर्माण किया था। उत्तर भारतकी बौद्ध-किंवदन्तीसे जाना जाता है, कि सम्राट् अशोकने उक्त स्तूपसे [illegible] बौद्ध चिह्नोंका अधिकांश ले कर अन्य स्तूपमें निहित किया था।

हैं। उसकी ही बगलमें ५०-६० फीट ऊंचा प्रस्तर-स्तम्भ है। इस स्तम्भके शिर पर सिंहमूर्त्ति बनी हुई है। इस स्तम्भके दक्षिण मर्कट झील है। प्रवाद है,—बुद्धदेवके व्यवहारार्थ वानरसंघने इस झीलको कटवाया था। मर्कट झीलके दक्षिण एक स्तूप है। यहां वानर बुद्धके भिक्षापात्रको ले कर वृक्ष पर चढ़ गया था और उनके पीनेके लिये उसने उस पात्रमें भर कर मधु ला कर दिया था। इसके ही दक्षिण जहां वानरने बुद्धको पीनेके लिये मधु दिया था, इस घटनाको स्मरण रखनेके लिये वहां भी एक स्तूप बना था। आज भी मर्कट झीलके उत्तर-पश्चिम कोनेमें प्रतिष्ठित एक वानरकी मूर्त्ति उस स्मृतिका परिचय दे रही है।

वैशालीके प्रधान संघाराम ३।४ ली (या कुछ अधिक एक पाव जमीन) उत्तरपूर्वमें विमलकीर्त्तिका प्राचीन मकान विद्यमान है। विमलकीर्त्तिने बौद्धधर्म ग्रहण किया था। यहां अब भी उनकी बौद्ध धर्मचर्याके बहुतेरे निदर्शन देखे जाते हैं। इसके निकट ही प्रेतभवन है। इसका आकार ईंटके पजावेकी तरह है। प्रवाद है, कि विमलकीर्त्तिने पीड़ितावस्थामें इस प्रस्तरमण्डपसे धर्मशास्त्रकी व्याख्या की थी। इसके निकट ही एक स्तूप मौजूद है, यह पूर्वकथित रत्नाकरकी आवासभूमि पर बना है। इस स्तूपके निकट एक दूसरा स्तूप दिखाई देता है। यहां वैशाली-निवासी बुद्धभक्ता आम्रपाली नामकी रमणीका वासभवन है। यहां ही बुद्धकी चाची और अन्यान्य भिक्षुणियां निर्वाणप्राप्त हुई थीं। यहां पूर्वकथित आम्रपालीका उद्यान था। यह उद्यान आम्रपालीने बुद्धदेवको रहनेके लिये दिया था।'

इस उद्यानके पार्श्वमें एक स्तूप है। यहां खड़ा हो कर तथागत, आनन्द और मारको अपने इहलोक-त्यागकी वासना बताई थी। इसीके पार्श्वमें एक स्तूप था, तथागत इसी स्थानमें वायुसेवनार्थ भ्रमण किया करते थे और बौद्धोंको उपदेश देते थे। * इस स्तूपमें आनन्दका देहविह्नावशेष निहित है। इसके ही समीप बहुसंख्यक स्तूप हैं। ये संख्यामें इतने अधिक हैं, कि इनका गिनना सहज बात नहीं। यहां सहस्र प्रत्येक बुद्धने† निर्वाण लाभ किया था।

नगरके मध्यस्थलमें और बाहरी प्रदेशमें बुद्ध और बौद्धोंका इतना अधिक पवित्र चिह्न या कीर्त्तियां दिखाई देती हैं, कि उनका गिनना असम्भव है। प्रत्येक पद पर, प्राचीन गृहस्थान या गृहभित्तिका भग्नशेष नेत्रोंके सामने आ जाता है। इसमें सन्देह नहीं, कि ये सब किसी समय प्राचीन कीर्त्तियोंमें परिगणित होते थे। ऋतुपरिवर्त्तन तथा वर्ष पर वर्ष, युग पर युग बीत जानेके बाद ये सब अब विलुप्त हो गये। किसी किसी विध्वस्त स्थानमें निविड़ वनमाला जाग उठी है। झील प्रायः सूख गये हैं। चारों ओर दुर्गन्ध उत्पन्न हो गई है।

फाहियान (४०५ ई०) और यूएनचुयङ्गने (६२६-६४५ ई०) जिन सब बौद्ध कीर्त्तियों और ध्वस्त निदर्शनोंका सन्दर्शन किया था, वही उनके भ्रमण-वृत्तान्तसे उद्धृत किया गया। चीनपरिव्राजक इत्सिंने भी ६७३ ई०में ताम्रलिप्ति जनपदमें पदार्पण कर नालन्दामें बौद्धकी शिक्षा ली। इसके बाद वे बोधगया, वाराणसी, श्रावस्ती, कान्यकुब्ज, राजगृह, वैशाली और कुशीनगर होते हुए ६९५ ई०में श्रीभोग (वर्त्तमान नाम पालेमबङ्ग) होते हुए चीन चले गये। उनकी विवरणीमें भी इस तरह कई ध्वंसावशिष्ट बौद्ध-कीर्त्तियोंका परिचय मिलता है।

ऊपर जिन कीर्त्तियोंका उल्लेख किया गया, डाक्टर-कनिंहम और ब्लचने वर्त्तमान बसाड़ ग्रामके चारों ओर खुदवा कर इन सब कीर्त्तियोंका स्थान सामञ्जस्य साधनमें भी प्रत्नतत्त्वकी गभीर गवेषणाके विशेष अध्यवसायका परिचय दिया था। यूएनचुवङ्ग वर्णित कीर्त्तियोंके सिवा महात्मा ब्लचने प्रत्नतत्त्वके और बौद्धप्रभावके अनेक निदर्शन पाये हैं। ब्लचकी आविष्कृत मृत्तिकाजात प्राचीन मोहरोंमें वैशाली नगरीका नाम और कई राजाओंका परिचय मिलता है। नीचे वैशाली राजाओंकी नामावली दी गई।

* फाहियानने लिखा है, कि बुद्धदेवने यहां अपना धनु और गादी रखी थी।

† हरिणकन्याके गर्भसे उत्पन्न बालकका नाम सहस्र प्रत्येक बुद्ध था।

(१) "महाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्त पत्नी महाराज श्रीगोविन्दगुप्तमाता महादेवी श्रीध्रुवस्वामिनी।"

श्रीध्रुवदेवीने ३८० से ४१३ ई० तक राजत्व किया था। राजा द्वितीय चन्द्रगुप्तकी महिषी थी।

(२) "श्रीघटोत्कचगुप्तस्य।"

महाराज घटोत्कचगुप्त ३०० ई०में विद्यमान थे। ये महाराज १म चन्द्रगुप्तके पिता थे। गुप्तराजवंश देखो।

सिवा इनके डाक्टर ब्लचने और भी कितने ही मोहराङ्कित मृत्खण्डोंका आविष्कार किया है, इनमें कुमारामात्याधिकरण, युवराज भट्टारकपादीय बलाधिकरण प्रभृति मन्त्रिगण, महाप्रतिहार, रणभाण्डागाराधिकरण, दण्डपाशाधिकरण, महादण्डनायक, अश्वपति आदिकी नामयुक्त मोहर विशेष आदरकी वस्तु है। उनकी प्रकाशित २५वीं मोहरमें "वैशाल्याधिकरण" शब्द देख कर अनुमान होता है, कि यह मोहर वैशालीराज्यके शासनकर्त्ता (City-magistrate) की थी। २६वें "वैशाल्यामर प्रकृतिकुटुम्बिना" और २७वें "वैशालविषये" पदका उल्लेख रहने पर ये सब वैशालीराज्यकी नित्य वस्तु मालूम होती हैं। इसके सिवा "श्रेष्ठिसार्थवाहकुलिकनिगम" अङ्कित जो दो मोहर पाई गई हैं, उससे यहांका वाणिज्य-प्रभाव और समृद्धिकी कल्पना की जा सकती है।

देवोपासना और धर्मप्रभावज्ञापक और भी कई मुद्रित मृत्खण्ड मिले हैं। इन सबकी आलोचना करने पर मालूम होता है, कि यहां वाराणसीके अष्टगुह्यलिङ्गका अन्यतम आम्रातकेश्वर और गयाके श्रीविष्णुपदस्वामी नारायणकी उपासनामें इस देशके अधिकारी विशेष भक्तिमान थे। सिवा इसके भगवान् अनन्त और पशुपति (शिव) और भगवती नन्देश्वरी (दुर्गा) के उपासक शैव और शाक्तोंका प्रभाव वैशालीमें विद्यमान था। इस बातका प्रमाण उक्त मृत्फलकोंसे मिलता है। दो शङ्खयुक्त चित्रित चक्र, दो शङ्खसमन्वित चित्रित त्रिशूल और दो शङ्खयुक्त और वेदी पर स्थापित डालि (?) विशिष्ट मोहराङ्कित मृत्खण्ड किसी विशेष सम्प्रदायके परिचायक हैं, इसमें सन्देह नहीं। सिवा इनके और भी कितने ही साधारण व्यक्तिके नामाङ्कित और भी अनेक मोहर मिली हैं। मालूम होता है, कि ये सब व्यक्ति उस समयके वणिक् सम्प्रदायके अग्रणी थे।

बौद्धकीर्त्तियोंमें यहां अब भी सिंहस्तम्भ, अशोकस्तूप और मर्कट भील दिखाई देते हैं। मर्कट भील इस समय रामकुण्डके नामसे विख्यात है। सिंहस्तम्भ इस समय ३० फीट ६ इञ्च ऊंचा है। इसके गात्रमें अशोकका अनुशासन था। स्तम्भगात्र भङ्ग जानेसे यह शासन नष्ट हो गया है, ऐसा अनुमान होता है। अशोकस्तूपको ध्वस्त इष्टकस्तूप पर जो मन्दिर या कुटि बनी है, उसके भूमिस्पर्शमुद्रामें उपविष्ट बुद्धमूर्त्ति स्थापित है। बुद्धदेवके गलेमें माला और माथेमें मुकुट है। इससे मूर्त्तिके नीचे एक मुकुटमूर्त्ति है। इससे वानर द्वारा बुद्धको मधुदान-प्रसङ्ग सूचित हो रहा है। यह मूर्त्ति माणिक्यपुत्र उत्साहकरणिक द्वारा प्रतिष्ठित हुई है।

चीनपरिव्राजक यूएनचुवङ्गने विहार तथा उसके निकटके जिन सब स्तूपोंका विवरण प्रकाशित किया है, डाक्टर ब्लचने इन सबकी अवस्थितिको मंजूर कर उनकी ईंटोंसे गृहान्तरका व्यवहार निरूपित किया है। सिंहस्तम्भसे आध मील उत्तर-पश्चिम भीमसेन-का-पल्ला नामके दो बड़े मृत्तिकास्तूप दिखाई देते हैं। कुल्लुआ ग्रामके पूर्व जहां नीलकी खेती होती थी, वहां ईंटकी बनी अट्टालिकाका ध्वंसावशेष अभी भी विद्यमान है। मिष्टर विनसेण्ट स्मिथ उसको कुटागारगृहका अनुमान करते हैं। मर्कट भीलसे इसका पूर्व-वर्णित दूरत्व और वर्त्तमान दूरत्वमें कुछ न्यूनाधिक होने पर भी इस तरहका अनुमान असङ्गत नहीं जंचता।

नगरके दक्षिण भागमें 'राजा विशाल-का गढ़' नामक जो स्थान दिखाई देता है, उसको गुप्तसम्राटोंका प्रासाद और दुर्ग कहा जा सकता है। क्योंकि इसकी भित्तिमें पूर्वोक्त राजाओंकी मोहर समन्वित मुद्रा पाई जाती है। इसके दक्षिण-पश्चिमकी ओर एक ईंटोंका बना प्राचीन स्तूप है। इस समय यह मुसलमानोंकी दरगाहके रूपमें परिणत है। चीनपरिव्राजकोंने इस स्तूपका उल्लेख नहीं किया है। इसके पश्चिम बावन-पोखर (ब्राह्मण पोखर या तालाव) के किनारे एक मन्दिर वर्त्तमान है। इस मन्दिरमें दो उपविष्ट बुद्धमूर्त्ति, एक बोधसत्वमूर्त्ति, एक

गणेशमूर्त्ति, एक विष्णुमूर्त्ति, एक पत्थरके टुकड़ेमें खोदित सप्तमातृकामूर्त्ति स्थापित हैं। ये मूर्त्तियां उस तालाबसे निकाली गई हैं।

सिवा इनके नाना स्थानोंमें असंख्य बौद्ध और हिन्दू-कीर्त्तियोंके निदर्शन पाये जाते हैं। उनका उल्लेख निष्प्रयोजन है। गुप्त राजाओंकी कीर्त्तियोंसे अनेक विषय आविष्कृत हुए हैं। इन सबकी विशेष आलोचना आवश्यक है।

वैशालीय (सं० त्रि०) १ विशाल देशोद्भव, विशाल देशका। (पु०) २ महावीर।

वैशालेय (सं० पु०) विशालके गोत्रापत्य, तक्षक। (अथर्व० ८।१०।२६)

वैशिक (सं० पु०) वेशेन जीवतीति वेश (वेतनादिभ्यो जीवति। पा ४।४।१२) इति ठक्। १ नायकभेद, तीन प्रकारके नायकोंमेंसे एक। पति, उपपति और वैशिक ये तीन प्रकारके नायक हैं। जो अनेक वेश्याओंके साथ भोग-विलास करता है, उसे वैशिकनायक कहते हैं। यह वैशिक नायक फिर तीन प्रकारका है—उत्तम, मध्यम और अधम। जो दयिताके श्रम और प्रकोपमें उपचारपरायण होते हैं, उन्हें उत्तम, जो प्रियाके कोपमें कोप या अनुराग प्रकाश नहीं करते और चेष्टा द्वारा मनोभाव प्रकट करते हैं, उन्हें मध्यम और जो भय, घृणा, लज्जाशून्य और कामक्रीड़ामें कृत्याकृत्य-विचारशून्य हैं, उन्हें अधम वैशिकनायक कहते हैं। मानी, चतुर और शठ इन तीनोंको इसीके अन्तर्भुक्त जानना होगा।

(त्रि०) २ वेश सम्बन्धी।

वैशिक्य (सं० पु०) पुराणानुसार एक प्राचीन जातिका नाम। (मार्क० पु० ५७।४७)

वैशिख (सं० त्रि०) विशिखा शील-मस्य (छत्रादिभ्यो णः। पा ४।४।६२) इति ण। विशिखायुक्त।

वैशिजाता (सं० स्त्री०) पुत्रदात्री नामकी लता।

वैशिष्ट (सं० क्ली०) विशिष्टस्य भावः विशिष्ट-ष्यञ्। १ विशिष्टत्व, विशिष्टता। २ असाधारणत्व।

वैशिष्ट्य (सं० क्ली०) विशिष्ट-ष्यञ्। विशिष्टत्व, वैशिष्ट।

वैशीति (सं० पु०) विशीतके गोत्रापत्य। (पा १।४।६१)

वैशीपुत्र (सं० पु०) वेश्याका पुत्र। (शतपथ-ब्राह्मण १३।२।६।८)

वैशेय (सं० पु०) विशस्य गोत्रापत्यं (शुभ्रादिभ्यश्च। पा ४।१।१२३) इति ढक्। विशके गोत्रापत्य।

वैशेषिक (सं० पु०) विशेषं वेत्ति अधीते वा विशेष-ठक्। १ कणादमुनिकृत दर्शनशास्त्रवेत्ता, वह जो वैशेषिक दर्शन जानता हो, औलूक्य। (हेम) विशेषमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः विशेष (अधिकृत्य कृते ग्रन्थे। पा ४।३।८७) इति ठक्। २ कणादमुनिकृत दर्शनशास्त्रविशेष। ३ न्यायमतसे आत्मादिकृत पारिभाषिक गुण। (भाषापरिच्छेद)

(त्रि०) विशेष एव (विनयादिभ्यष्ठक्। पा ५।४।३४) इति स्वार्थे ठक्। ४ असाधारण।

वैशेषिकदर्शन (सं० क्ली०) षड्दर्शनके अन्तर्गत दर्शनशास्त्रविशेष। यह निर्णय करनेके लिये प्रमाणोंका संग्रह करना अत्यन्त कठिन है, कि किस समय वैशेषिकसूत्र रचे गये थे। कुछ लोगोंका कहना है, कि ये कणादसूत्र ही दार्शनिक सूत्रग्रन्थोंके आदि हैं। कुछ लोग इसके बदले सांख्यसूत्रको ही यह आसन प्रदान करते हैं। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं, कि वैशेषिकसूत्र अति प्राचीन है। क्योंकि इससे बौद्धमत निरास का कोई भी प्रयास परिलक्षित नहीं होता। यद्यपि महर्षि कणादके सूत्रावलम्बित दर्शनशास्त्र सर्वदर्शनसंग्रहमें "औलूक्यदर्शन" नामसे अभिहित हुआ है। साधारणतः यह औलूक्यदर्शन वैशेषिकदर्शन नामसे परिचित है।

(विशेषमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः विशेष-ठक्। अधिकृत्य कृते ग्रन्थे। पा ४।३।८७) विशेष पदार्थको अधिकार कर यह बना है, इसीलिये इसका नाम वैशेषिक है। यह विशेष किसको कहते हैं, हम वैशेषिकसूत्रमें द्वितीय अध्यायके द्वितीय आह्निकके छठें सूत्रमें उसका आभास पाते हैं। जैसे—"अन्यत्रान्त्येभ्यो विशेषेभ्यः।"

जो अन्त्य है, वह नित्य है, नित्य द्रव्योंमें इस अन्त्यका अवस्थान है। प्रत्येक परमाणु अन्त्यविशिष्ट है। यह अन्त्य ही विशेष पदार्थ है। प्रत्येक परमाणुमें विशेष

(१) "महाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्त पत्नी महाराज श्रीगोविन्दगुप्तमाता महादेवी श्रीध्रुवस्वामिनी।"

श्रीध्रुवदेवीने ३८० से ४१३ ई० तक राजत्व किया था। राजा द्वितीय चन्द्रगुप्तकी महिषी थी।

(२) "श्रीघटोत्कचगुप्तस्य।"

महाराज घटोत्कचगुप्त ३०० ई०में विद्यमान थे। ये महाराज १म चन्द्रगुप्तके पिता थे। गुप्तराजवंश देखो।

सिवा इनके डाकृर ब्लचने और भी कितने ही मोहराङ्कित मृत्खण्डोंका आविष्कार किया है, इनमें कुमारामात्याधिकरण, युवराज भट्टारकपादीय बलाधिकरण प्रभृति तन्त्रिगण, महाप्रतिहार, रणभाण्डागाराधिकरण, दण्डपाशाधिकरण, महादण्डनायक, अश्वपति आदिकी नामयुक्त मोहर विशेष आदरकी वस्तु है। उनकी प्रकाशित २५वीं मोहरमें "वैशाल्याधिकरण" शब्द देख कर अनुमान होता है, कि यह मोहर वैशालीराज्यके शासनकर्त्ता (City-magistrate) की थी। २६वें "वैशालयामर प्रकृतिकुटुम्बिनां" और २७वें "वैशालविषये" पदका उल्लेख रहने पर ये सब वैशालीराज्यकी नित्य वस्तु मालूम होती है। इसके सिवा "श्रेष्ठिसार्थवाहकुलिकनिगम" अङ्कित जो दो मोहर पाई गई हैं, उससे यहांका वाणिज्य-प्रभाव और समृद्धिकी कल्पना की जा सकती है।

देवोपासना और धर्मप्रभावज्ञापक और भी कई मुद्रित मृत्खण्ड मिले हैं। इन सबकी आलोचना करने पर मालूम होता है, कि यहां वाराणसीके अष्टगुह्यलिङ्गका अन्यतम आम्रातकेश्वर और गयाके श्रीविष्णुपदस्वामी नारायणकी उपासनामें इस देशके अधिकारी विशेष भक्तिमान थे। सिवा इसके भगवान् अनन्त और पशुपति (शिव) और भगवती नन्देश्वरी (दुर्गा) के उपासक शैव और शाक्तोंका प्रभाव वैशालीमें विद्यमान था। इस बातका प्रमाण उक्त मृत्फलकोंसे मिलता है। दो शङ्खयुक्त चित्रित चक्र, दो शङ्खसमन्वित चित्रित त्रिशूल और दो शङ्खयुक्त और वेदी पर स्थापित दालि (?) विशिष्ट मोहराङ्कित मृत्खण्ड किसी विशेष सम्प्रदायके परिचायक हैं, इसमें सन्देह नहीं। सिवा इनके और भी कितने ही साधारण व्यक्तिके नामाङ्कित और भी अनेक मोहर मिली हैं। मालूम होता है, कि ये सब व्यक्ति उस समयके वणिक् सम्प्रदायके अग्रणी थे।

बौद्धकीर्त्तियोंमें यहां अब भी सिंहस्तम्भ, अशोकस्तूप और मर्कट झील दिखाई देते हैं। मर्कट झील इस समय रामकुण्डके नामसे विख्यात है। सिंहस्तम्भ इस समय ३० फीट ६ इञ्च ऊंचा है। इसके गात्रमें अशोकका अनुशासन था। स्तम्भगात्र भङ्ग जानेसे यह शासन नष्ट हो गया है, ऐसा अनुमान होता है। अशोकस्तूपको ध्वस्त इष्टकस्तूप पर जो मन्दिर या कुटि बनी है, उनके भूमिस्पर्शमुद्रामें उपविष्ट बुद्धमूर्त्ति स्थापित है। बुद्धदेवके गलेमें माला और माथेमें मुकुट है। इससे मूर्त्तिके नीचे एक मुकुटमूर्त्ति है। इससे वानर द्वारा बुद्धको मधुदान-प्रसङ्ग सूचित हो रहा है। यह मूर्त्ति माणिक्यपुत्र उत्साहकरणिक द्वारा प्रतिष्ठित हुई है।

चीनपरिव्राजक यूएनचुवङ्गने विहार तथा उसके निकटके जिन सब स्तूपोंका विवरण प्रकाशित किया है, डाक्टर ब्लचने इन सबकी अवस्थितिको मंजूर कर उनकी ईंटोंसे गृहान्तरका व्यवहार निरूपित किया है। सिंहस्तम्भसे आध मील उत्तर-पश्चिम भीमसेन-का-पल्ला नामके दो बड़े मृत्तिकास्तूप दिखाई देते हैं। कुल्हुआ ग्रामके पूर्व जहां नीलकी खेती होती थी, वहां ईंटकी बनी अट्टालिकाका ध्वंसावशेष अभी भी विद्यमान है। मिष्टर विनसेण्ट स्मिथ उसको कुटागारगृहका अनुमान करते हैं। मर्कट झीलसे इसका पूर्व-वर्णित दूरत्व और वर्त्तमान दूरत्वमें कुछ न्यूनाधिक होने पर भी इस तरहका अनुमान असङ्गत नहीं जंचता।

नगरके दक्षिण भागमें 'राजा विशाल-का गढ़' नामक जो स्थान दिखाई देता है, उसको गुप्तसम्राटोंका प्रासाद और दुर्ग कहा जा सकता है। क्योंकि इसकी भित्तिमें पूर्वोक्त राजाओंको मोहर समन्वित मुद्रा पाई जाती है। इसके दक्षिण-पश्चिमकी ओर एक ईंटोंका बना प्राचीन स्तूप है। इस समय यह मुसलमानोंकी दरगाहके रूपमें परिणत है। चीनपरिव्राजकोंने इस स्तूपका उल्लेख नहीं किया है। इसके पश्चिम वामन पोखर (ब्राह्मण पोखर या तालाव) के किनारे एक मन्दिर वर्त्तमान है। इस मन्दिरमें दो उपविष्ट बुद्धमूर्त्ति, एक बोधिसत्वमूर्त्ति, एक

गणेशमूर्त्ति, एक विष्णुमूर्त्ति, एक पत्थरके टुकड़े में खोदित सप्तमातृकामूर्त्ति स्थापित हैं। ये मूर्त्तियां उस तालावसे निकाली गई हैं।

सिवा इनके नाना स्थानोंमें असंख्य बौद्ध और हिन्दू-कीर्त्तियोंके निदर्शन पाये जाते हैं। उनका उल्लेख निष्प्रयोजन है। गुप्त राजाओंकी कीर्त्तियोंसे अनेक विषय आविष्कृत हुए हैं। इन सबकी विशेष आलोचना आवश्यक है।

वैशालीय (सं० त्रि०) १ विशाल देशोद्भव, विशाल देशका। (पु०) २ महावीर।

वैशालेय (सं० पु०) विशालके गोत्रापत्य, तक्षक।
(अथर्व० ८।१०।२९)

वैशिक (सं० पु०) वेशेन जीवतीति वेश (वेतनादिभ्यो जीवति। पा ४।४।१२) इति ठक्। १ नायकभेद, तीन प्रकारके नायकमेंसे एक। पति, उपपति और वैशिक ये तीन प्रकारके नायक हैं। जो अनेक वेश्याओंके साथ भोग-विलास करता है, उसे वैशिकनायक कहते हैं। यह वैशिक नायक फिर तीन प्रकारका है—उत्तम, मध्यम और अधम। जो दयिताके श्रम और प्रकोपमें उपचारपरायण होते हैं, उन्हें उत्तम; जो प्रियाके कोपमें कोप या अनुराग प्रकाश नहीं करते और चेष्टा द्वारा मनोभाव प्रकट करते हैं, उन्हें मध्यम और जो भय, कृपा, लज्जाशून्य और कामक्रीड़ामें कृत्याकृत्य-विचारशून्य हैं, उन्हें अधम वैशिकनायक कहते हैं। ज्ञानी, चतुर और शठ इन तीनोंको इसीके अन्तर्भुक्त जानना होगा।

(त्रि०) २ वेश सम्बन्धी।

वैशिक्य (सं० पु०) पुराणानुसार एक प्राचीन जातिका नाम। (मार्क० पु० ५७।४७)

वैशिख (सं० त्रि०) विशिखा शील-मस्य (छत्रादिभ्यो णः। पा ४।४।६२) इति ण। विशिखायुक्त।

वैशिजाता (सं० स्त्री०) पुत्रदात्री नामकी लता।

वैशिष्ट्य (सं० क्ली०) विशिष्टस्य भावः विशिष्ट-ष्यञ्। १ विशिष्टत्व, विशिष्टता। २ असाधारणत्व।

वैशिष्ट्र (सं० क्ली०) विशिष्ट-ष्यञ्। विशिष्टत्व, वैशिष्ट।

वैशीति (सं० पु०) विशीतके गोत्रापत्य। (पा १।४६१)

वैशीपुत्र (सं० पु०) वेश्याका पुत्र।
(शतपथ-ब्राह्मण १३।२।९।८)

वैशेय (सं० पु०) विशस्य गोत्रापत्यं (शुभ्रादिभ्यश्च। पा ४।१।१२३) इति ढक्। विशके गोत्रापत्य।

वैशेषिक (सं० पु०) विशेषं वेत्ति अधीते वा विशेष-ठक्। १ कणादमुनिकृत दर्शनशास्त्रवेत्ता, यह जो वैशेषिक दर्शन जानता हो, औलूक्य। (हेम) विशेषमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः विशेष (अधिकृत्य कृते ग्रन्थे। पा ४।३।८७) इति ठक्। २ कणादमुनिकृत दर्शनशास्त्रविशेष। ३ न्यायमतसे आत्मादिकृत पारिभाषिक गुण।
(भाषापरिच्छेद)

(त्रि०) विशेष एव (विनयादिभ्यष्ठक्। पा ५।४।३४) इति स्वार्थे ठक्। ४ असाधारण।

वैशेषिकदर्शन (सं० क्ली०) षड्दर्शनके अन्तर्गत दर्शनशास्त्रविशेष। यह निर्णय करनेके लिये प्रमाणोंका संग्रह करना अत्यन्त कठिन है, कि किस समय वैशेषिकसूत्र रचे गये थे। कुछ लोगोंका कहना है, कि ये कणादसूत्र ही दार्शनिक सूत्रग्रन्थोंके आदि हैं। कुछ लोग इसके बदले सांख्यसूत्रको ही यह आसन प्रदान करते हैं। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं, कि वैशेषिकसूत्र अति प्राचीन है। क्योंकि इससे बौद्धमत निरास का कोई भी प्रयास परिलक्षित नहीं होता। यद्यपि महर्षि कणादके सूत्रावलम्बित दर्शनशास्त्र सर्वदर्शनसंग्रहमें "औलूक्यदर्शन" नामसे अभिहित हुआ है। साधारणतः यह औलूक्यदर्शन वैशेषिकदर्शन नामसे परिचित है।

(विशेषमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः विशेष-ठक्। अधिकृत्य कृते ग्रन्थे। पा ४।३।८७) विशेष पदार्थको अधिकार कर यह बना है, इसीलिये इसका नाम वैशेषिक है। यह विशेष किसको कहते हैं, हम वैशेषिकसूत्रमें द्वितीय अध्यायके द्वितीय आह्निकके छठें सूत्रमें उसका आभास पाते हैं। जैसे—"अन्यत्रान्त्येभ्यो विशेषेभ्यः।"

जो अन्त्य है, वह नित्य है, नित्य द्रव्योंमें इस अन्त्यका अवस्थान है। प्रत्येक परमाणु अन्त्यविशिष्ट है। यह अन्त्य ही विशेष पदार्थ है। प्रत्येक परमाणुमें विशेष

(१) "महाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्त पत्नी महाराज श्रीगोविन्दगुप्तमाता महादेवी श्रीध्रुवस्वामिनी।"

श्रीध्रुवदेवीने ३८० से ४१३ ई० तक राजत्व किया था। राजा द्वितीय चन्द्रगुप्तकी महिषी थी।

(२) "श्रीघटोत्कचगुप्तस्य।"

महाराज घटोत्कचगुप्त ३०० ई०में विद्यमान थे। ये महाराज १म चन्द्रगुप्तके पिता थे। गुप्तराजवंश देखो।

सिवा इनके डाक्टर ब्लचने और भी कितने ही मोहराङ्कित मृत्खण्डोंका आविष्कार किया है, इनमें कुमारामात्याधिकरण, युवराज भट्टारकपादीय बलाधिकरण प्रभृति गण्डिगण, महाप्रतिहार, रणभाण्डागाराधिकरण, दण्डपाशाधिकरण, महादण्डनायक, अश्वपति आदिकी नामयुक्त मोहर विशेष आदरकी वस्तु है। उनकी प्रकाशित २५वीं मोहरमें "वैशाल्याधिकरण" शब्द देख कर अनुमान होता है, कि यह मोहर वैशालीराज्यके शासनकर्त्ता (City-magistrate) की थी। २६वें "वैशाल्यामर प्रकृतिकुटुम्बिना" और २७वें "वैशालविषये" पदका उल्लेख रहने पर ये सब वैशालीराज्यकी नित्य वस्तु मालूम होती है। इसके सिवा "श्रेष्ठिसार्थवाहकुलिकनिगम" अङ्कित जो दो मोहर पाई गई हैं, उससे यहांका वाणिज्य-प्रभाव और समृद्धिकी कल्पना की जा सकती है।

देवोपासना और धर्मप्रभावज्ञापक और भी कई मुद्रित मृत्खण्ड मिले हैं। इन सबकी आलोचना करने पर मालूम होता है, कि यहां वाराणसीके अष्टगुह्यलिङ्गका अन्यतम आम्रातकेश्वर और गयाके श्रीविष्णुपदस्वामी नारायणकी उपासनामें इस देशके अधिकारी विशेष भक्तिमान थे। सिवा इसके भगवान् अनन्त और पशुपति (शिव) और भगवती नन्देश्वरी (दुर्गा) के उपासक शैव और शाक्तोंका प्रभाव वैशालीमें विद्यमान था। इस बातका प्रमाण उक्त मृत्फलकोंसे मिलता है। दो शङ्खयुक्त चित्रित चक्र, दो शङ्खसमन्वित चित्रित त्रिशूल और दो शङ्खयुक्त और वेदी पर स्थापित हालि (?) विशिष्ट मोहराङ्कित मृत्खण्ड किसी विशेष सम्प्रदायके परिचायक हैं, इसमें सन्देह नहीं। सिवा इनके और भी कितने ही साधारण व्यक्तिके नामाङ्कित और भी अनेक मोहर मिली हैं। मालूम होता है, कि ये सब व्यक्ति उस समयके वणिक् सम्प्रदायके अग्रणी थे।

बौद्धकीर्त्तियोंमें यहां अब भी सिंहस्तम्भ, अशोकस्तूप और मर्कट भील दिखाई देते हैं। मर्कट भील इस समय रामकुण्डके नामसे विख्यात है। सिंहस्तम्भ इस समय ३० फीट ६ इञ्च ऊंचा है। इसके गात्रमें अशोकका अनुशासन था। स्तम्भगात्र भड़ जानेसे यह शासन नष्ट हो गया है, ऐसा अनुमान होता है। अशोकस्तूपको ध्वस्त इष्टकस्तूप पर जो मन्दिर या कुटि बनी है, उनके भूमिस्पर्शमुद्रामें उपविष्ट बुद्धमूर्त्ति स्थापित है। बुद्धदेवके गलेमें माला और माथेमें मुकुट है। इसके मूर्त्तिके नीचे एक मुकुटमूर्त्ति है। इससे वानर द्वारा बुद्धको मधुदान-प्रसङ्ग सूचित हो रहा है। यह मूर्त्ति माणिक्यपुत्र उत्साहकरणिक द्वारा प्रतिष्ठित हुई है।

चीनपरिव्राजक यूएनचुयङ्गने विहार तथा उसके निकटके जिन सब स्तूपोंका विवरण प्रकाशित किया है, डाक्टर ब्लचने इन सबकी अवस्थितिको मंजूर कर उनकी ईंटोंसे गृहान्तरका व्यवहार निरूपित किया है। सिंहस्तम्भसे आध मील उत्तर-पश्चिम भीमसेन-का-पल्ला नामके दो बड़े मृत्तिकास्तूप दिखाई देते हैं। कुल्लुआ ग्रामके पूर्व जहां नीलकी खेती होती थी, वहां ईंटकी बनी अट्टालिकाका ध्वंसावशेष अभी भी विद्यमान है। मिष्टर विनसेण्ट स्मिथ उसको कुटागारगृहका अनुमान करते हैं। मर्कट भीलसे इसका पूर्व-वर्णित दूरत्व और वर्त्तमान दूरत्वमें कुछ न्यूनाधिक होने पर भी इस तरहका अनुमान असङ्गत नहीं जंचता।

नगरके दक्षिण भागमें 'राजा विशाल-का गढ़' नामक जो स्थान दिखाई देता है, उसको गुप्तसम्राटोंका प्रासाद और दुर्ग कहा जा सकता है। क्योंकि इसकी भित्तिसे पूर्वोक्त राजाओंको मोहर समन्वित मुद्रा पाई जाती है। इसके दक्षिण-पश्चिमकी ओर एक ईंटोंका बना प्राचीन स्तूप है। इस समय यह मुसलमानोंकी दरगाहके रूपमें परिणत है। चीनपरिव्राजकोंने इस स्तूपका उल्लेख नहीं किया है। इसके पश्चिम बाभन पोखर (ब्राह्मण पोखर या तालाब) के किनारे एक मन्दिर वर्त्तमान है। इस मन्दिरमें दो उपविष्ट बुद्धमूर्त्ति, एक बोधसत्वमूर्त्ति, एक

गणेशमूर्त्ति, एक विष्णुमूर्त्ति, एक पत्थरके टुकड़ेमें खोदित सप्तमातृकामूर्त्ति स्थापित हैं। ये मूर्त्तियां उस तालावसे निकाली गई हैं।

सिवा इनके नाना स्थानोंमें असंख्य बौद्ध और हिन्दू-कीर्त्तियोंके निदर्शन पाये जाते हैं। उनका उल्लेख निष्प्रयोजन है। गुप्त राजाओंकी कीर्त्तियोंसे अनेक विषय आविष्कृत हुए हैं। इन सबकी विशेष आलोचना आवश्यक है।

वैशालीय (सं० त्रि०) १ विशाल देशोद्भव, विशाल देशका। (पु०) २ महावीर।

वैशालेय (सं० पु०) विशालके गोत्रापत्य, तक्षक। (अथर्व० ८।१०।२९)

वैशिक (सं० पु०) वेशेन जीवतीति वेश (वेतनादिभ्यो जीवति। पा ४।४।१२) इति ठक्। १ नायकभेद, तीन प्रकारके नायकमेंसे एक। पति, उपपति और वैशिक ये तीन प्रकारके नायक हैं। जो अनेक वेश्याओंके साथ भोग-विलास करता है, उसे वैशिकनायक कहते हैं। यह वैशिक नायक फिर तीन प्रकारका है—उत्तम, मध्यम और अधम। जो दयिताके श्रम और प्रकोपमें उपचारपरायण होते हैं, उन्हें उत्तम; जो प्रियाके कोपमें कोप या अनुराग प्रकाश नहीं करते और चेष्टा द्वारा मनोभाव प्रकट करते हैं, उन्हें मध्यम और जो भय, घृणा, लज्जाशून्य और कामक्रीड़ामें कृत्याकृत्य-विचारशून्य हैं, उन्हें अधम वैशिकनायक कहते हैं। मानी, चतुर और शठ इन तीनोंको इसीके अन्तर्भुक्त जानना होगा।

(त्रि०) २ वेश सम्बन्धी।

वैशिक्य (सं० पु०) पुराणानुसार एक प्राचीन जातिका नाम। (मार्क० पु० ५७।४७)

वैशिख (सं० त्रि०) विशिखा शील-मस्य (छत्रादिभ्यो णः। पा ४।४।६२) इति ण। विशिखायुक्त।

वैशिजाता (सं० स्त्री०) पुत्रदात्री नामकी लता।

वैशिष्ट (सं० क्ली०) विशिष्टस्य भावः विशिष्ट-अण्। १ विशिष्टत्व, विशिष्टता। २ असाधारणत्व।

वैशिष्ट्य (सं० क्ली०) विशिष्ट-ष्यञ्। विशिष्टत्व, वैशिष्ट।

वैशीति (सं० पु०) विशीतके गोत्रापत्य। (पा १।४।६१)

वैशीपुत्र (सं० पु०) वेश्याका पुत्र। (शतपथ-ब्राह्मण १३।२।९।८)

वैशेय (सं० पु०) विशस्य गोत्रापत्य (शुभ्रादिभ्यश्च। पा ४।१।१२३) इति ढक्। विशके गोत्रापत्य।

वैशेषिक (सं० पु०) विशेषं वेत्ति अधीते वा विशेष-ठक्। १ कणादमुनिकृत दर्शनशास्त्रवेत्ता, वह जो वैशेषिक दर्शन जानता हो, औलूक्य। (हेम) विशेषमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः विशेष (अधिकृत्य कृते ग्रन्थे। पा ४।३।८७) इति ठक्। २ कणादमुनिकृत दर्शनशास्त्रविशेष। ३ न्यायमतसे आत्मादिकृत पारिभाषिक गुण। (भाषापरिच्छेद)

(त्रि०) विशेष एव (विनयादिभ्यष्ठक्। पा ५।४।३४) इति स्वार्थे ठक्। ४ असाधारण।

वैशेषिकदर्शन (सं० क्ली०) षड्दर्शनके अन्तर्गत दर्शनशास्त्रविशेष। यह निर्णय करनेके लिये प्रमाणोंका संग्रह करना अत्यन्त कठिन है, कि किस समय वैशेषिकसूत्र रचे गये थे। कुछ लोगोंका कहना है, कि ये कणादसूत्र ही दार्शनिक सूत्रग्रन्थोंके आदि हैं। कुछ लोग इसके बदले सांख्यसूत्रको ही यह आसन प्रदान करते हैं। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं, कि वैशेषिकसूत्र अति प्राचीन हैं। क्योंकि इससे बौद्धमत निरास का कोई भी प्रयास परिलक्षित नहीं होता। यद्यपि महर्षि कणादके सूत्रावलम्बित दर्शनशास्त्र सर्वदर्शनसंग्रहमें "औलूक्यदर्शन" नामसे अभिहित हुआ है। साधारणतः यह औलूक्यदर्शन वैशेषिकदर्शन नामसे परिचित है।

(विशेषमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः विशेष-ठक्। अधिकृत्य कृते ग्रन्थे। पा ४।३।८७) विशेष पदार्थको अधिकार कर यह बना है, इसीलिये इसका नाम वैशेषिक है। यह विशेष किसको कहते हैं, हम वैशेषिकसूत्रमें द्वितीय अध्यायके द्वितीय आह्निकके छठें सूत्रमें उसका आभास पाते हैं। जैसे—"अन्यत्रान्त्येभ्यो विशेषेभ्यः।"

जो अन्त्य है, वह नित्य है, नित्य द्रव्योंमें इस अन्त्यका अवस्थान है। प्रत्येक परमाणु अन्त्यविशिष्ट है। यह अन्त्य ही विशेष पदार्थ है। प्रत्येक परमाणुमें विशेष

है। इसलिये समग्र जगत्‌में एक अनन्त सृष्टि-वैचित्र और अनन्त विभिन्नता रूप (Heterogeniosity) "विशेष" की विद्यमानता अनुभूत होती है और वही सृष्टिके विभिन्नता-साधनका (Differentiation) मूल कारण है। परमाणु ही इस दर्शनका 'विशेष' पदार्थ है। इसमें 'विशेष' पदार्थका प्राधान्य स्वीकृत हुआ है। इसीसे यह ग्रंथ "वैशेषिकदर्शन" नामसे अभिहित हुआ है।

महर्षि कणाद इस दर्शनशास्त्रके प्रणेता हैं। कणाद ऋषिके और भी कितने ही नाम हैं। इनमें एक नाम उलूक भी है।

इसी नामके अनुसार माधवाचार्यने सर्वदर्शन-संग्रहमें इनके रचे ग्रन्थका "औलूक्यदर्शन" नाम लिखा है।

महर्षि कणाद नाम होनेका हेतु यह है, कि कृषकोंके खेतसे शस्य (फसल) काट कर ले जानेके बाद खेतमें जो दाने झड़ कर गिर पड़ते थे, वे उन दानोंको चुन लेते थे और उन्हीं दानोंका आहार भी करते थे। इस तरह शस्यका कण भक्षण कर जीविका निर्वाह करते थे। इसीसे वे कणाद नामसे विदित हुए थे। इसीलिये किसी किसी दार्शनिकने 'कणभक्ष' कह कर कटाक्ष किया है। किन्तु ब्राह्मणोंके लिये इस तरहकी जीविका निन्दित नहीं, वरं उत्कृष्ट तपस्या कह कर प्रशंसित है। अब समझमें आता है, कि वैशेषिकदर्शनके प्रणेताका यह यथार्थ नाम नहीं है। जीविकाके लिये वे इस नामसे प्रसिद्ध हुए थे, उनका प्रकृत नाम 'उलूक' ही है। वे कश्यपवंशी थे।

न्यायदर्शन-प्रणेता गौतम और कणाद समसामयिक हैं, ऐसी बहुत लोगोंकी धारणा है। लिङ्गपुराणमें इसका प्रमाण भी मिलता है। लिङ्गपुराणके रचयिताका कहना है, कि दोनों ही शिवावतार सोमशर्माके शिष्य हैं,—अक्षपाद प्रथम और उलूक तृतीय शिष्य हैं। यथा—

"सप्तविंशतिमे प्राप्ते परिवर्त्ते क्रमागते।
जातूकर्ण्यो यदा व्यासो भविष्यति तपोधनः।
तदाप्यहं भविष्यामि सोमशर्मा द्विजोत्तमः॥
अक्षपादः कुमारश्च उलूको वत्स एव च।
तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यन्ति तपोधनाः॥"

एक किम्वदन्ती है, कि महर्षि कणादने महेश्वरकी प्रसन्नता लाभ कर उनके ही आज्ञानुसार वैशेषिकदर्शन प्रणयन किया था। उदयनाचार्यने भी इस किम्वदन्तीका अस्तित्व स्वीकार किया है।

कणाद ६ या ७ पदार्थवादी।

महर्षि कणाद षट्पदार्थवादी थे या सप्तपदार्थवादी, इसके सम्बन्धमें बहुत मतभेद है। कुछ लोगोंने उनको षट्पदार्थवादी और कुछने सप्तपदार्थवादी कहा है। किन्तु उनके उद्देशसूत्रमें ६ पदार्थोंका ही उल्लेख दिखाई देता है। (वैशेषिकदर्शन १।१।४)

अर्थात् निवृत्ति लक्षण धर्मसे समुत्पन्न द्रव्य, गुण, कर्म सामान्य, विशेष और समवाय पदार्थके साधर्म्य और वैधर्म्यरूपसे अर्थात् कौन कर्म है, किस पदार्थका समान धर्म है और कौन कर्म ही है या किस पदार्थका विरुद्ध धर्म है, यह जान कर तत्वज्ञान लाभ करनेसे अर्थात् इन सब तत्वोंका यथार्थ ज्ञान या तत्त्व साक्षात्कार होनेसे निःश्रेयस लाभ होता है। कणादने यद्यपि उद्देशसूत्रमें अभावका उल्लेख नहीं किया है, किन्तु स्थलान्तरमें अभाव सम्बन्धमें उन्होंने विशेषरूपसे आलोचना की है। उद्देशसूत्रमें षट्पदार्थवादी और स्थलान्तरमें अभावके विषयकी आलोचना हुई है, यह देख कर कोई कोई उनको सप्तपदार्थवादी भी कहते हैं। न्यायभाष्यकार वात्स्यायनने कणादको षट्पदार्थवादी ही निश्चय किया है। न्यायदर्शनके प्रमेयसूत्रके भाष्यमें भाष्यकारने लिखा है,—

"अस्त्यन्यदपि द्रव्य-गुण-कर्म-सामान्य-विशेष-समवायाः प्रमेयं।"

सूत्र निर्दिष्टके अतिरिक्त भी द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय प्रमेय है। वैशेषिकदर्शनके प्रति लक्ष्य कर ही अधिक सम्भव है, कि न्यायभाष्यकारने इस तरह व्यक्त किया है।

सांख्यदर्शनके मतसे भी कणाद षट्पदार्थवादी हैं, क्योंकि प्रचलित सांख्यदर्शनके एक सूत्रमें लिखा है—

"न वयं षट्पदार्थवादिनो वैशेषिकादिवत्।"

(सांख्यदर्शन १ अ०)

अर्थात् वैशेषिकादिकी तरह हम षट्पदार्थवादी

नहीं हैं। सांख्यसूत्रकारके मतसे भी स्पष्टरूपसे प्रतिपन्न होता है, कि वैशेषिक षट्पदार्थवादी हैं।

सांख्य और मीमांसादि दर्शनकारोंके मतसे भी अभाव नामसे कोई अतिरिक्त पदार्थ स्वीकृत नहीं हुआ। फिर भी, इनके दर्शनमें अभावका यथेष्ट उल्लेख देखा जाता है। किंतु मीमांसाचार्य भट्टने इस प्रश्नकी जो मीमांसा की है, वह इस तरह है,—

"भावान्तरमभावो हि कयाचित्तु व्यपेक्षया।"

किसी तरह वैलक्षण्यके अभिप्रायसे एक भाव पदार्थ ही दूसरे भावपदार्थके अभावरूपसे व्यवहृत होता है। अभाव आकाशकुसुमकी तरह अलीक भी नहीं है, पदार्थान्तर भी नहीं है, कुछ लोगोंने ऐसा ही उदाहरण दे कर सुस्पष्ट कर दिया। यथा—जिस समय घड़ेका अभावका व्यवहार नहीं होता, उस समय घड़ेका अभावका व्यवहार नहीं होता। भूतलमें घट है, ऐसा ही व्यवहार होता है। किन्तु वह घट भूतलसे हटा लेने पर भूतलमें घट नहीं है या घटाभाव है, ऐसा अनुभव या व्यवहार दिखाई देता है। भूतलमें घट रहनेसे घटका व्यवहार होता है। अतएव घटका अभाव केवलमात्र भूतल या भूतलकी केवलावस्थाके सिवा और कुछ नहीं है। अतएव प्रतिपन्न हुआ, कि अभाव पदार्थ है सही, किन्तु अभाव नामका कोई पदार्थ नहीं है। एक तरह भावपदार्थ ही केवल अन्यविध भावपदार्थके अभावरूपसे व्यवहृत होता है।

इस तरह युक्तिबलसे एक श्रेणीके पण्डितने कणादको षट्पदार्थवादी कह कर अभिहित किया है। फिर इसी तरहसे प्रशस्तपादाचार्य आदिके मतसे महर्षि कणाद सप्तपदार्थवादी हैं। प्रशस्तपादका कहना है,—"द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां षण्णां पदार्थानामभाव सप्तमानामित्यादि।"

अर्थात् द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, यह छः पदार्थ और अभाव सप्तम पदार्थ है। इन सात पदार्थोंका महर्षिने एक बार ही एक ही स्थानमें उल्लेख न कर एक स्थलमें ६ पदार्थोंका स्पष्टरूपसे उल्लेख किया है और सूत्ररचना भङ्गिमें अस्पष्ट अभाव पदार्थका भी आभास दे रखा है। उद्दिष्ट षट्पदार्थ पहले ही पृथक्रूपसे अभिहित हुआ है। कणादसूत्रकी आलोचनामें अभाव पदार्थका भी स्पष्ट आभास प्रतीयमान होता हो। वल्लभाचार्यने कणादके उद्देशसूत्रमें षट्पदार्थोंके उल्लेख के प्रति लक्ष्य कर वार्त्तिक प्रणालीसे लिखा हो,—

"अभावश्च वक्तव्यो निःश्रेयसोपयोगित्वात् भावप्रपञ्चवत्।

कारणाभावेन कार्याभावस्य सर्वसिद्धित्वादुपयोगित्वसिद्धेः॥"

मुक्तिलाभके लिये ही षट्पदार्थोंका तत्त्वोपदेश प्रवृत्त हुआ है, भावप्रपञ्च अर्थात् द्रव्यादिकी तरह अभाव भी निःश्रेयसका उपयोगी है। अतएव, भावप्रपञ्चकी तरह अभाव भी स्वीकार करना होगा। कारणके अभाव स्थलमें कार्यका भी अभाव दिखाई देता है। जैसे मृत्तिकाके अभावमें घटका अभाव सुवर्णके अभावमें कुण्डलका अभाव इत्यादि। इसी तरह मिथ्याज्ञानके अभावसे दुःखका अभाव होता है। दुःखके अभावका नाम मुक्ति है। मिथ्याज्ञान ही दुःखका कारण है। तत्त्वज्ञान द्वारा मिथ्याज्ञान निराकृत होने पर दुःखका अभाव होता है। सुतरां भावप्रपञ्चकी तरह अभाव भी वक्तव्य है। कणादने अभावपदार्थके सम्बन्धमें स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है सही; किन्तु उनके सूत्रपाठसे यह स्पष्ट हो जाता है, कि अभाव भी उनका वक्तव्य है।

पदार्थधर्मसंग्रहके टीकाकार उदयनाचार्यने किरणावली नामकी टीकामें अभाव ले कर सात पदार्थ कणादका अभिप्रेत कह कर इस मतका समर्थन किया है। जैसे—"एते च पदार्थाः प्रधानतयोद्दिष्टाः अभावस्तु स्वरूपवानपि। नोद्दिष्टः प्रतियोगिनोरूपणाधीन निरूपणत्वान्न तुच्छत्वात्।"

ये षट्पदार्थ प्रधानरूपसे उक्त हुए हैं। अभाव पदार्थ वस्तुगत्या विद्यमान रहने पर भी यहां उसका उद्देश नहीं किया गया। क्योंकि द्रव्यादिकी तरह स्वरूपतः अभावका निरूपण नहीं होता। प्रतियोगिनिरूपण द्वारा ही अभावका निरूपण होता है। घटका अभाव, पटका अभाव इत्यादि स्थलमें प्रतियोगिभेद हो अभावका भेद हो जाता है। इसीलिये अभावके प्रतियोगी स्वरूप षट्पदार्थोंका उद्देश किया गया है। अभावनिरूपण

प्रतियोगिनिरूपणके अधीन है अर्थात् अभावके प्रतियोगी-स्वरूप षट्पदार्थ निरूपित होने पर सहज ही अभावका निरूपण होता है। इसीलिये उद्देशसूत्रमें अभावका उल्लेख करना निष्प्रयोजन समझा गया था। सुतरां कणाद् सप्तपदार्थवादी रूपसे ही समाजमें स्वीकृत हैं। पिछले सभी ग्रन्थोंमें ही अभावका सप्तम पदार्थत्व स्वीकृत हुआ है। सुतरां यह प्रधानतः सिद्धान्त है, कि कणाद सप्तपदार्थवादी थे।

इस दर्शनके प्रणयनका उद्देश्य मुक्ति है। मुक्तिके लिये आत्माका श्रवण मनन आदि विहित हुआ है।

यह मनन अनुमान साध्य या अनुमान रूप है। यह अनुमान भी फिर व्याप्तिज्ञानके अधीन है। व्याप्ति ज्ञान पदार्थ तत्त्वज्ञान-सापेक्ष है। सुतरां पदार्थतत्त्व ज्ञान साक्षात् नहीं परम्परा-निःश्रेयस या मुक्तिका कारण है। इस वैशेषिकोक्त पदार्थतत्त्वका ज्ञान होने से निःश्रेयोलाभ होता है। इसीलिये इनके पदार्थका यथार्थ तत्त्व अभिहित हुआ है।

इस दर्शनमें ३७० सूत्र हैं। ये सूत्र १० अध्यायोंमें बटे हुए हैं। प्रत्येक अध्यायमें दो आह्निक हैं। आह्निक और कुछ नहीं केवल परिच्छेद हैं। दर्शनकारने एक दिनमें जितने सूत्रोंकी रचना की हैं, उन सबोंको एक आह्निक नामसे अभिहित किया है। "अह्ना निर्वृत्तो ग्रन्थ आह्निकः" इसके द्वारा प्रतीयमान होता है, कि महर्षि कणादने २० दिनमें ही इतने बड़े दर्शनकी रचना की थी।

इन सब आह्निकोंमें निम्नोक्त विषय अभिहित हुए हैं। प्रथमाध्यायके प्रथम आह्निकमें जाति, मान, द्रव्य, गुण, कर्म; द्वितीय आह्निकमें सामान्य या जाति और विशेष पदार्थ निरूपित हुए हैं। द्वितीय अध्यायके प्रथम आह्निकमें भूत पदार्थ है, अर्थात् पृथ्वी, जल, तेजः, वायु और आकाश। द्वितीय आह्निकमें काल और दिक्, तृतीय अध्यायके आह्निकद्वयमें ही आत्माका निरूपण और द्वितीय आह्निकमें मनका भी निरूपण किया गया है। चतुर्थ अध्यायके प्रथम आह्निकमें जगत्‌का मूल कारण और कई प्रत्यक्ष कारण, द्वितीयाह्निकमें शरीर विवेचित हुआ है। पञ्चमाध्यायके प्रथमाह्निकमें शारीरिक कर्म, द्वितीयाह्निकमें मानसिक कर्म, षष्ठाध्यायके प्रथमाह्निकमें दान और प्रतिग्रह, द्वितीयाह्निकमें आश्रम चतुष्टयका धर्म, सप्तमाध्यायके प्रथम दो आह्निकमें रूपादि गुण और द्वितीयाह्निकमें समवाय निरूपित हुआ है। अष्टमाध्यायके प्रथमाह्निकमें प्रत्यक्ष ज्ञान, द्वितीयाह्निकमें ज्ञानसापेक्ष ज्ञान और ज्ञानसाधन इन्द्रिय, नवमाध्यायके प्रथमाह्निकमें अभाव और कई प्रत्यक्ष कारण, द्वितीयाह्निकमें लैङ्गिक या अनुमान और स्मृति, प्रभृति, दशमाध्यायके प्रथम आह्निकमें सुख, दुःख और द्वितीयाह्निकमें समवायि आदि कारणत्रय विवेचित हुआ है। प्रसङ्गक्रमसे और भी अनेक विषय इसमें आलोचित और मीमांसित हुए हैं। जैसे—

प्रथम अध्यायके प्रथम आह्निकमें धर्मनिरूपणप्रतिज्ञादि, धर्मलक्षण, वेदप्रामाण्य, संस्थापन, प्रयोजन, अभिधेय सम्बन्धप्रदर्शन, पदार्थोद्देश, द्रव्यविभाग, गुणविभाग, कर्मविभाग, द्रव्यसाधर्म्य, गुणसाधर्म्य और कर्मसाधर्म्यद्रव्यादित्रयके सामान्य लक्षण, द्रव्य और कर्मके सामान्य लक्षण।

द्वितीयाह्निकमें—कार्यकारण-भाव-विचार, सत्ता प्रभृति जातिकथन, द्रव्यादिमें जातिका पार्थक्य संस्थापन, सत्ताका एकत्व संस्थापन और सत्ताका नानात्व निराकरण।

द्वितीयाध्यायके प्रथमाह्निकमें—पृथ्वीका लक्षण, जललक्षण, तेजोलक्षण, वायुलक्षण आदि, वायुसाधन प्रकरण, ईश्वरानुमान-प्रकरण और आकाश-निरूपण। द्वितीयाध्यायके द्वितीय आह्निकमें—गंधका स्वाभाविक औपाधिकत्व कथन, उष्णस्पर्शके तेजोमात्रनिष्ठत्वकथन, शीतस्पर्शके जलमात्रत्वकथन, कालनिरूपण, दिग्लक्षणादि शब्दपरीक्षार्थ संशय-व्युत्पादन और शब्द व्यवस्थापनादि।

तृतीयाध्यायके प्रथमाह्निकमें—आत्मपरीक्षाप्रकरण, व्याप्तिज्ञानके व्यायोपयोगित्व, प्रसङ्गतः हेत्वाभासनिरूपण, आत्मसाधनमें ज्ञानहेतुका अनाभासत्वकथन, परात्मानुमान प्रकार। इसके द्वितीयाह्निकमें—मनो निरूपण, आत्मसाधक लिङ्गान्तरकथन, नित्यज्ञानके आत्मत्वनिराकरण और आत्माका नानात्वप्रकरण।

चतुर्थ अध्यायके प्रथम आह्निकमें परमाणुके मूलकारणता-व्यवस्थापनादि, परमाणुकी अनित्यादि निराकरण, परमाणुके अतीन्द्रियत्वोपपादनादि, गुणप्रत्यक्षताप्रकरण, परमाणुरसादिकी अप्रत्यक्षता, गुरुत्वादिका अप्रत्यक्षताप्रतिपादन, दो इ'न्द्रियग्राह्य गुणकथन, अयोग्यवृत्ति इ'न्द्रियका अप्रत्यक्षत्व प्रतिपादन, सत्ता और गुणका सर्वेन्द्रिय ग्राह्यत्व-प्रतिपादन।

चतुर्थ अध्यायके द्वितीयाह्निकमें—अनित्यद्रव्यविभाग, शरीरका पार्थिव भौतिकत्व, पाञ्चभौतिकत्वका निराकरण, शरीरके भूतत्रय आरभ्यताका निराकरण, शरीरविभाग, अयोनिज शरीरविशेषमें उत्पत्तिप्रकार, अयोनिजशरीरविशेष पर विमानाधिकथन।

पञ्चमाध्यायके प्रथम आहि्नकमें—कर्मपरीक्षा आरम्भ, प्रयत्ननिरपेक्ष कर्मप्रतिपादन चेष्टाधीन कर्मप्रतिपादन, चेष्टा व्यतिरेकमें जायमान कर्मप्रतिपादन प्रतिबन्धकके अभाव सहकृत गुरुत्वके पतनकारणत्व, लोष्ट्रादि क्रियाविशेषमें हेतुविशेषकथन, आततायिवधजनक कर्ममें पुण्यपापहेतुत्व, यत्नाधीन कर्म, बाणक्षेपादि स्थलमें उपरम तक कर्मोंके नानात्व, वेगजनक कर्म, वेगनाशके बाद शरीरादि पतनका कारण।

पञ्चम अध्यायके द्वितीय आह्निकमें नोदनादिकी (संयोग-विशेषके) कर्महेतुता, भूकम्पादिका हेतुविशेष, प्रद्रव्य, कर्मपरीक्षा, जलाधिस्पन्दनकी हेतुता, पृथ्वीस्थ जलके औद्ध्वर्गमनकी हेतुता, वृक्षमूलमें सिक्त जलसे वृक्षके भीतरमें ऊर्द्ध्वगमनका हेतु, हिमकरकादिकी उत्पत्तिका प्रकार, वज्रनिर्घोषका हेतु, दिग्दाहकम्पादिका हेतु, ऊर्द्ध्वज्वलनादिका हेतु, इन्द्रियसंयोगजन्य मनका कर्महेतु, मरणके समयमें मनके देहान्तरमें प्रवेश, अन्धकारकी अभावस्वरूपता, आकाशादिकी निष्क्रियता, गुणादिके असमवायि-कारणत्व इत्यादि। कणादसूत्रके इस प्रथम पांच अध्यायमें पदार्थविज्ञान-सम्बन्धमें आलोचित हुआ है। सुतरां इन पांचों अध्यायोंको हम पदार्थविज्ञान या Physics कह सकते हैं। अवशिष्ट पञ्चाध्यायमें धर्मविज्ञान Theology, मनोविज्ञान (Metaphysics), न्याय (Logic) और स्थान स्थानमें पदार्थविज्ञानका आभास मिलता है।

नीचे किञ्चित् विस्तृतरूपसे इनका उल्लेख किया जाता है। जैसे—षष्ठाध्यायके प्रथमाह्निकमें वेदका प्रामाण्य उत्पादन, धर्मादिके स्वीयाधिकरणमें स्वर्गादिजनन, श्राद्धादिमें दुष्ट ब्राह्मण-भोजनका फलाभाव, दुष्ट ब्राह्मण-लक्षण, दुष्ट ब्राह्मण द्वारा कर्म बाधित होनेसे पुनराय अच्छे ब्राह्मणों द्वारा उस कर्मकी इति कर्त्तव्यता।

षष्ठाध्यायके द्वितीय आह्निकमें—वैधकर्मफल विवेचना, अदृष्टफल कतिपय कर्मप्रदर्शन, अधर्मसाधन कथन, दोषनिदान, धर्मादिका प्रागभाव-निरास, मुक्त्युपाय कथन।

सप्तमाध्यायके प्रथम आह्निकमें—नित्य रूपादिकथन, पार्थिव परमाणुरूपादिका पाकजत्वसाधन, परिमाणपरीक्षा, परिमाणमें अनित्यता, आकाशादिका परिमाण, मनमें महत्त्वका अभाव, दिगादिका परम महत्त्व।

सप्तमके द्वितीय आह्निकमें—संख्यापरीक्षा, पृथक्त्वपरीक्षा, गुणादिका निःशङ्कत्व, गुणादिका एकत्व उपाल कर बुद्धिके भ्रमजात अवयव:अवयवीका अभेद निराकरण, संयोगपरीक्षा, पदपदार्थके साङ्केतिक सम्बन्धसाधन प्रकरण, परत्व अपरत्व-परीक्षा, समवायपरीक्षा आदि। इसके बाद अष्टम अध्यायसे हम वैशेषिकसूत्र मनोविज्ञान (Meta-physics) और तर्कशास्त्रकी (Logic) आलोचना देखते हैं।

अष्टमाध्यायके प्रथम आह्निकके प्रारम्भमें ही बुद्धिपरीक्षा आरम्भ हुई है। पाश्चात्य-मनस्तत्त्वमें (Sensation) या इन्द्रियजन्य उपलब्धि (Perception) या बुद्धिजन्य उपलब्धि (Intellection) या ज्ञानविशेषजन्य उपलब्धिकी आलोचना इस अध्यायमें हम सूत्राकारमें देखते हैं। प्रत्यक्षहेतु सन्निकर्षविशेषमें इनके बाह्य विषयका विशेषत्व और अर्थपदपरिभाषा इस अष्टमाध्यायके प्रथम और द्वितीय आह्निकमें आलोचित हुई है।

नवमाध्यायके प्रथम आह्निकमें—अभावप्रत्यक्षकथन का भूमिकांश, प्रत्यक्ष सामग्रीकथन, प्रागभावमें इसका अतिदेश, अन्यान्य अभाव प्रत्यक्षप्रकार, योगज सन्निकर्षजन्य प्रत्यक्षकथन इत्यादि। नवमाध्यायके

द्वितीयाह्निकमें लैङ्गिकज्ञाननिरूपण शब्दबोधकी अनुमितिमें अन्तर्भाव, उपमिति आदिकी अनुमितिमें अन्तर्भाव, स्मृतिनिरूपण, स्वप्नहेतुनिरूपण, स्वप्नान्तिक ज्ञानहेतु कथन, भ्रमज्ञानका हेतुत्व, अविद्यालक्षण, विद्यालक्षण, आर्षज्ञानविशेषका हेतुकथन इत्यादि।

दशमाध्यायके प्रथमाह्निकमें—सुखदुःखका भेद प्रतिपादन, इनका अन्तर्भावकथन, शरीर अवयवका परस्पर भेदसंस्थापन इत्यादि। इस अध्यायके द्वितीय आह्निकमें *त्रिविध कारणोंके विविध विवेचन और वेदके प्रामाण्य संबंधमें* दृढ़ता-सम्पादन इत्यादि विषयक सूत्र हैं। ये सब सूत्र,भाष्य, वार्त्तिक, वृत्ति और टीका आदि ग्रन्थोंमें बहुलरूपसे विस्तृत हो वैशेषिकदर्शन, भारतीय पण्डितोंके ज्ञानगौरवकी समुज्ज्वल विजय-पताका अब भी समग्र सुसभ्य जगत्‌में उड़ा रहा है।

इस दर्शनमें उक्त विषय विशेषभावसे आलोचित हुए हैं। हम यहां संक्षेपतः वैशेषिकसूत्रोक्त विषयोंकी आलोचना कर रहे हैं। इस दर्शनमें सात पदार्थोंका उल्लेख किया गया है। उनमें सूत्रोद्दिष्ट द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय ये छः भावपदार्थ और अनुद्दिष्ट सप्तम पदार्थ अभाव है, ये कई पदार्थ नैयायिकोंके भी नविरुद्ध हैं। भावपदार्थ छः हैं, अभाव एक, ये सात पदार्थ वैशेषिकोंके द्वारा स्वीकृत हैं। नैयायिक किन्तु षोड़श पदार्थका उल्लेख करते हैं। आज कलके नैयायिक वैशेषिक द्वारा स्वीकृत सात पदार्थोंको स्वीकार कर प्राचीन न्यायके उक्त षोड़श पदार्थ इस सात पदार्थके अन्तर्भुक्त या अन्तर्निविष्ट समझते हैं। प्रशस्तपादाचार्यके ग्रन्थमें और उपमानचिन्तामणिमें भी नैयायिकोंके षोड़श पदार्थ इन सात पदार्थोंके अन्तर्निविष्ट करके गिने गये हैं।

द्रव्य।

जिस पदार्थमें कोई न कोई एक गुण अवश्य ही हो, उसका नाम द्रव्यपदार्थ है। अथवा जिस पदार्थमें द्रव्यत्व जाति है, उसका नाम द्रव्य है। जो सामान्य या जातिगुणवृत्ति नहीं, अथच गगनवृत्ति है, वह सामान्य या जाति ही द्रव्यत्व नामसे अभिहित है। सत्ता नामसे एक सामान्य जाति है, वे सामान्य गगनवृत्ति है सही, किन्तु गुणवृत्ति होनेसे वह द्रव्यत्व नहीं।

द्रव्यपदार्थ ६ तरहके हैं,—क्षिति, अप्, तेजः, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मनः। क्षिति, अपः, तेज, वायु और आकाश ये पांच द्रव्य पञ्चभूत नामसे अभिहित हैं। अर्थात् इन सब द्रव्योंकी साधारण संज्ञा भूत है। जिसमें बहिरिन्द्रियग्राह्य विशेष गुण हो, उसकी साधारण संज्ञा भूत है। अर्थात् बहिरिन्द्रिय ग्राह्य विशेष गुणविशिष्ट वस्तु ही भूत नामसे अभिहित है। पृथ्वीका गन्ध, जलका रस, तेजका रूप, वायुका स्पर्श, आकाशका शब्द विशेष विशेष गुण है। अथच ये सब गुणोंके बहिरिन्द्रियके ग्राह्य हैं। सुतरां पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये भूतके नामसे अभिहित हैं। ज्ञान आत्माका विशेष गुण है सही; किन्तु मनोग्राह्य है, यह बहिरिन्द्रिका ग्राह्य नहीं है। इसीलिये आत्माको भूत नहीं कहा जाता।

क्षिति पदार्थ दो तरहका है—*नित्य और अनित्य*। परमाणु ही क्षितिका नित्यपदार्थ है, इसकी उत्पत्ति या विनाश नहीं; परन्तु यहां स्वतःसिद्ध है। सिवा इसके समस्त पृथ्वी ही अनित्य है। अन्यान्य सब तरहके पार्थिव पदार्थकी उत्पत्ति और विनाश होता है। परमाणु प्रत्यक्ष नहीं, वरं अनुमानग्राह्य हैं।

सावयव क्षिति पदार्थका विभाग करते करते सूक्ष्मसे सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतरसे सूक्ष्मतम अवयवमें उपनीत होने पर भी ऐसा अवयव उपस्थित होता है, कि जिसका विभाग करना एकान्त असम्भव हो जाता है। इस तरह जिसके विभागकी किसी तरह कल्पना नहीं की जा सकती अर्थात् जो नितान्त ही अविभाज्य हो जाता है, वही परमसूक्ष्म या परमाणुके नामसे अभिहित होता है। अवयव संयोग ही उत्पत्तिका कारण है। परमाणुका अवयव नहीं है। सुतरां न इनकी उत्पत्ति होती है और न इनका विनाश ही है।

अनित्य पृथ्वी भी तीन प्रकारकी है—शरीर, इन्द्रिय और विषय। शरीर भोगायतन, शरीरको छोड़ किसी तरह भोग नहीं हो सकता। इन्द्रियां उसी भोगकी साधनस्वरूपा हैं। विषयकी उपलब्धि ही भोग है। यह शरीर भी दो तरहका है—योनिज और अयोनिज। शुक्रशोणित संयोगजन्य शरीर योनिज और इसके

सिवा अयोनिज हैं। योनिज शरीर भी दो तरहका है,—जरायुज और अण्डज। मनुष्यादिका शरीर जरायुज, पक्षी और सर्पादिका शरीर अण्डज है। अयोनिज शरीर भी दो तरहका है,—स्वेदज और उद्भिज। मच्छड़ आदिका शरीर स्वेदज और वृक्षादिका शरीर उद्भिज है। शास्त्र पढ़नेसे मालूम होता है, कि वृक्षादिमें जीवात्मा है। पापकर्म विशेषके फलस्वरूप जीव स्थावर योनि प्राप्त होता है।

वृक्षादिमें जीवात्मा है, इसके प्रमाणमें शङ्करमिश्रका मत लिखा जाता है। "वृद्धिक्षतभग्नसंरोहणे च" अर्थात् वृक्षादिका कोई स्थान भग्न तथा कोई स्थान क्षत होनेसे समय आने पर उसका जोड़ा लगता तथा वह क्षत शुष्क हो जाता है। इसीलिये उसको भग्नक्षत संरोहण कहते हैं। अतएव वृक्षादिमें भी जीवनीशक्ति है, यह इससे जाना जाता है। वृक्ष आदि अपनी पुष्टिके उपकरण रस आदिका आकर्षण कर परिपुष्ट होते हैं। यह भी इनकी जीवनीशक्तिके अस्तित्वके परिचायक हैं। सिवा इसके देवर्षियोंके और नारकीके शरीर भी अयोनिज है।

घ्राणेन्द्रिय पार्थिव और गन्धका अनुभव होनेसे यह गन्धकी उपलब्धि-क्रियाविशेष है। यह क्रिया गन्धकी है, इसलिये यह कर्म भी पार्थिव है।

स्नेहगुणविशिष्ट पदार्थ ही जल है। जिस गुणके प्रभावसे चूर्ण पिण्डकारमें परिणत हो सकता है, उस गुणविशेषका नाम स्नेह है। स्नेहगुण 'स्निग्धं जलं' जल स्निग्ध है, यह बात अनुभवसिद्ध है। जलके सिवा अन्य किसी द्रव्यमें स्नेहगुण नहीं। तैलादिका स्नेह गुण भी जलीय है। तैलादिका स्नेह उत्कृष्ट है, इसलिये यह दहनके प्रतिकूल है। जलको एक और संज्ञा है। वह यह कि जिस द्रव्यमें जलत्व जाति है, उसका नाम जल है। पृथ्वीवृत्तिविवर्जित है; फिर भी हिमकरकादिवृत्ति-जातिविशेषका नाम जलत्व है। सत्ता और द्रव्यत्व जाति पृथ्वीवृत्ति, तेजस्त्व आदि जाति हिमकरकादिवृत्ति नहीं है, इसलिये उनको जलत्वमें नहीं लाया जाता। जल दो प्रकारका है—नित्य और अनित्य। जलीय परमाणु नित्य है, उसको छोड़ कर सब तरहका जल अनित्य है। अनित्य जल तीन तरहका है—शरीर, इन्द्रिय और विषय। वरुणलोकके जीवोंका शरीर जलीय है, यह शास्त्र पढ़नेसे मालूम होता है।

तेजः—जिस द्रव्यमें रस नहीं है, फिर भी रूप है, उसका नाम तेजः है। पृथ्वी और जलमें रूप है, सही; किन्तु उनमें रस भी है, वायुप्रभृतिका रूप नहीं है। अथवा जिस द्रव्यमें तेजस्त्व है, उसका नाम तेजः है। करकादिमें अवृत्ति है, फिर भी, विद्युदादिमें वृत्ति जातिविशेषका नाम तेजस्त्व है। तेजः दो प्रकारका है,—नित्य और अनित्य। परमाणुरूप तेजः नित्य है, इसको छोड़ कर सभी अनित्य हैं। अनित्य तेजः भी तीन तरहके होते हैं—शरीर, इन्द्रिय और विषय। सूर्यलोकस्थित प्राणियोंका शरीर तैजस है। चक्षुरिन्द्रिय तैजस है। रूपमात्रके अभिव्यञ्जक है। अतएव यह भी तैजस है। शरीर और इन्द्रिय भिन्न समस्त तेजः विषय कहे गये हैं।

वायु—जिस द्रव्यमें रूप नहीं, स्पर्श है, उसका नाम वायु है। पृथ्वी, जल और तेजोद्रव्यमें रूप है, आकाशादि द्रव्योंमें स्पर्श नहीं है, इसीलिये वे वायुके नामसे अभिहित नहीं हो सकते। वायु दो प्रकारकी है,—नित्य और अनित्य। अनित्य वायु भी तीन प्रकारकी है,—शरीर, इन्द्रिय और विषय। वायुलोकस्थित जीवोंके शरीर वायवीय हैं। स्पर्शनवायु अङ्गसङ्गी जलके शीतल स्पर्शकी अभिव्यक्ति करती, स्पर्शेन्द्रिय भी स्पर्श मात्रके अभिव्यञ्जक है, अतएव यह वायवीय है। शरीर और इन्द्रियको छोड़ सब वायुका साधारण नाम विषय है। जन्यद्रव्यमात्रमें ही पृथ्वी, जल, तेजः और वायु इन भूतचतुष्टयके साथ न्यूनाधिक परिमाणसे सम्बन्ध है, अतएव इस भूतचतुष्टय जन्य द्रव्यमात्र ही आरम्भक या समवायिकारण है।

आकाश—शब्दाश्रय वस्तुका नाम आकाश है। शब्दकी उत्पत्ति वायुसापेक्ष होने पर भी वायु शब्दका आश्रय नहीं। वायुका एक विशेष गुण स्पर्श है। वायु जब तक रहती है, तब तक उसका स्पर्श गुण भी रहता है। शब्द वैसा नहीं। वायु रहने पर भी शब्द नष्ट हो सकता है। वायुके विशेष गुण स्पर्शके साथ इस-

के इस तरह ये लक्षण रहनेसे शब्द वायुका विशेष गुण नहीं।

काल—जिस द्रव्यके द्वारा ज्येष्ठत्व-कनिष्ठत्व व्यवहार निर्वाहित होता है, उसका नाम काल है। पूर्ववर्त्ती कालमें उत्पन्न व्यक्ति ज्येष्ठ और परवर्त्ती कालका उत्पन्न व्यक्ति कनिष्ठ है।

दिक्—दूरत्व और अन्तिकत्व या नैकट्य और पूर्व-पश्चिम आदि व्यवहारका कारण द्रव्यविशेषका नाम दिक् है।

आकाश, काल, दिक् प्रत्यक्ष नहीं। कार्य्य द्वारा अनुमेय है। ये प्रत्येक एक हैं, अनेक नहीं। एक होने पर भी उपाधि भेदसे भिन्न भिन्न है। घटाकाश, पटाकाश आदि आकाशका औपाधिक भेद है। क्षण, दिन और मास आदि भेदसे काल भी अनेक प्रकारका है। क्रियारूप उपाधिभेदसे इसका ऐसा भेद प्रतीत होता है। वस्तुतः काल एक है। इसी तरह दिक् भी एक है। उपाधिभेदसे वह पूर्व पश्चिमके नामसे पुकारा जाता है।

आत्मा—ज्ञानका आश्रय द्रव्य आत्मा है। आत्मा दो तरहकी है—परमात्मा और जीवात्मा। ईश्वरको अनुमान द्वारा जाना जाता है।

एक देवता हैं, जो इस विश्वकी सृष्टि करते हैं, वे और दूसरा कोई नहीं—एकमात्र ईश्वर हैं।

जीवात्मा—"मैं जानता हूं" "मैं सुनता हूं" इत्यादि मानस प्रत्यक्षसिद्ध होता है। किसी एक विशेष गुणके साथ जीवात्माका मानस प्रत्यक्ष होता है। जीवात्मा एक नहीं अनेक हैं या प्रति शरीरमें भिन्न भिन्न है। बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, भावनाख्यसंस्कार, धर्म और अधर्म जीवात्माके ये चौदह गुण हैं।

जिसके द्वारा जीवात्मा और तन्निष्ठ सुखदुःख आदिका अनुभव होता है, उसका नाम मन है। जीवात्मा भी अपने सुखदुःख मनके द्वारा प्रत्यक्ष करती है। इस कारण जैसे चक्षुरादि वहिरिन्द्रियको वहिःकरण कहा जाता है, वैसे ही मनको भी अन्तःकरण या अन्तरिन्द्रिय कहते हैं।

रूप आदि विषयोंके साथ चक्षुः आदि इन्द्रियोंका सन्निकर्ष या सम्बन्ध होने पर भी तत्तद्विषयकी उपलब्धि होती है। किन्तु एक समयमें रूप आदि पांच विषयोंके साथ चक्षु आदि पञ्चेन्द्रियका सन्निकर्ष होने पर भी एक कालमें ही पञ्चेन्द्रियजनित चाक्षुषादि पांच प्रकारके ज्ञान नहीं होते। केवल उनमें एक प्रकारका ज्ञान होता है। विषयके साथ इन्द्रियका सन्निकर्ष ही ज्ञानका साधन और पांच ज्ञान ही एक समय होनेका कारण है, तब पांचों ज्ञान एक समय क्यों नहीं होते? इसके उत्तरमें कहना होगा, कि विषयके साथ इन्द्रियके सन्निकर्षको छोड़ कर अन्य कोई सहकारी कारण भी है। जिसकी सन्निधि होनेसे ज्ञान उत्पन्न होता है, सन्निधि ही उस समय ज्ञानका कारण है। अर्थात् जिस इन्द्रियके साथ आगे मनःसंयोग होता है, वही इन्द्रियज्ञान प्रथम ही उत्पन्न होता है। जिस इन्द्रियके साथ मनःसंयोग नहीं होता या पीछे होता है, विषय सन्निकर्ष रहने पर भी वह इन्द्रियजन्य ज्ञान उस समय भी नहीं होता। यह सर्ववादिसम्मत स्वीकार्य विषय है।

जिसके धर्म है, वह धर्मी है, मनका धर्म अणुत्व है, सुतरां मन धर्मी है। जिस प्रमाणके बलसे अस्तित्व स्वीकार किया जाये, उसका नाम धर्मिग्राहक प्रमाण है। जिस प्रमाणके बलसे मन सिद्ध हुआ है, उस प्रमाणके बलसे मनका अणुत्व भी सिद्ध हुआ है, अतएव मनके महत्त्वकी कल्पना नहीं की जा सकती। मनके महत्त्वकी कल्पना करनेसे ही धर्मिग्राहक प्रमाणके हिसाबमें विरोध होता है।

इस पर आपत्ति हो सकती है, कि नर्त्तकी नृत्य करनेके समय दर्शकोंके दर्शन, गेयपदका स्मरण, वाद्यशब्दका श्रवण, वस्त्राञ्चलका स्पर्शन और पादन्यास, हस्तचालन, शिरश्चालन आदि कार्य्य एक समयमें करती है। अतएव मन अणुपरिमाण होनेसे एक समयमें उनका एकाधिक इन्द्रियका संयोग किसी तरह हो नहीं सकता। सुतरां मनके अणुत्व स्वीकार करनेसे एक समयमें एकाधिक ज्ञान या क्रिया कभी भी नहीं हो सकती।

इस आपत्तिके खण्डनमें वक्तव्य यह है, कि मनः अति शीघ्र शीघ्र सञ्चरणशील है। अतएव द्रुतभावसे एका-

धिक इन्द्रियके साथ मनका संयोग होता है, इससे यौगपद्य भ्रम होता है। अर्थात् एक समयमें एकाधिक ज्ञान और एकाधिक क्रियायें हो रही हैं, ऐसा भ्रम होता है। वस्तुतः ज्ञान और क्रियापरम्परा क्रमशः होती रहती है। एक समयमें नहीं होती। सुतरां एक इन्द्रियके साथ संयुक्त हो कर दूसरे क्षण ही और एक इन्द्रियके साथ संयुक्त होता है। किन्तु मनका संयोगक्रम और उसके लिये ज्ञानकर्म इतना दुर्लक्ष्य है, कि वह बोधगम्य नहीं होता, इसीलिये एक समयमें एकाधिक ज्ञान होता है। ऐसा जान पड़ता है। यह जानना या ऐसा विवेचन भ्रमात्मक है। शीघ्र शीघ्र ज्ञान होता है, इससे क्रमिक ज्ञानका यौगपद्य भ्रम अन्यत्र भी होता है।

कई पद्मपत्र एकके बाद दूसरा रख कर एक सूईकी नोकसे छेद दिया जाये, तो कहा जाता है, कि एक बार ही सभी पत्र छेदे गये। किन्तु ऐसी बात नहीं, वह एक समयमें ही नहीं छेदे गये वरं सबसे ऊपरवाला पत्र ही पहले छेदा गया, इसके बाद उसके नीचेका, पीछे उसके नीचेका, इसी तरह एकके बाद दूसरा छेदा गया। किन्तु छेदनेका काम शीघ्रतापूर्वक हुआ है, इसीलिये क्रमलक्ष्यका बोध नहीं होता। इसीलिये वेध या छेदनेकी क्रियाका यौगपद्य भ्रम होता है।

कणादसूत्रके तीसरे अध्यायके दूसरे आह्निकमें इसी तरह मनोपरीक्षाकी अवतारणा की गई है। उपस्कारकार शङ्करमिश्रने इस आह्निककी व्याख्या उदाहरण आदि दे कर अतीव प्राञ्जल भाषामें की है। उन्होंने दीर्घाशुली (लम्बाकारका पिष्टक) भक्षणका उदाहरण दे कर कहा है, कि इस स्थलमें यद्यपि रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, आदिकी युगपत् प्रतीति हो तथापि यह मनका अनुव्यवसाय (Gradual perception) मात्र है, क्योंकि मन शीघ्र सञ्चारी है। इस शीघ्र सञ्चालनके निमित्त युगपत् विविध इन्द्रियज्ञानकी प्रतीति होती है। दर्शनशास्त्रमें यह घटना यौगपद्याभिमानके नामसे अभिहित की जाती है। भगवान् सूत्रकार भी इस आह्निकके तीसरे सूत्रमें कहते हैं—

"प्रयत्नयौगपद्याज् ज्ञानायौगपद्याच्चैकम्।"

प्रत्येक देहमें एक मनके सिवा बहुतेरे मन नहीं हैं। इस तरह युक्ति द्वारा प्रमाणित किया गया है, कि एक शरीरमें एकाधिक मन नहीं है। अन्यथा कल्पना गौरवदोषप्रसङ्ग होता है। इस तरह यौगपद्य भ्रान्तिका उत्कृष्ट उदाहरण आज कलका बायस्कोप है। पाठक शङ्करमिश्रके उपस्कारमें और भाषापरिच्छेद नामक ग्रन्थमें वैशेषिकोक्त इन नौ द्रव्योंका सविशेष विवरण सहज ही देख सकेंगे।

इस दर्शनके मतसे चार तरहके परमाणु और आकाशादि पञ्चद्रव्य नित्य हैं। सिवा इनके द्व्यणुक अवधि महाभूत चतुष्टय अर्थात् क्षिति, जल, तेजः और वायु अनित्य हैं। सब अनित्य द्रव्योंकी सृष्टि और संहार या प्रलयका क्रम प्रदर्शित हो रहा है। ब्रह्माके देहविसर्जनके समय समागत होने पर सब भुवनोंके अधिपति महेश्वरकी सञ्जिहीर्षा अर्थात् संहारेच्छा प्रादुर्भूत हुई। इसके बाद समस्त जीवात्माके अदृष्टके वृत्तिनिरोधहेतु अदृष्ट द्वारा सृष्टि और स्थितिके निमित्त अदृष्टका कार्य प्रतिबद्ध होता है। प्राणियोंके भोगके लिये जगत्की सृष्टि और स्थिति है। भोग प्रयोजक या भोगहेतु अदृष्ट, प्रलयप्रयोजक अदृष्ट द्वारा प्रतिबद्ध होने पर भोगप्रयोजक अदृष्ट फिर भोग सम्पादन कर नहीं सकता। उस समयके प्रलयनिबन्धन अदृष्टयुक्त प्राणियोंके संयोगमें शरीर और इन्द्रियके आरम्भक परमाणुओंसे कर्मकी उत्पत्ति होती है। इस कर्मके कारण आरम्भक संयोगकी निवृत्ति हो जाती है। उस समय देह और इन्द्रिय विनष्ट हो कर तदारम्भक परमाणुमें कर्म हो कर आरम्भक संयोग निवृत्तिक्रमसे महापृथ्वी नष्ट हो जाती है। इस प्रणालीसे पृथ्वी पर जल, जल पर तेज, तेज पर वायु नष्ट होती है। तब चतुर्विध महाभूतके चतुर्विध-परमाणुमात्र विभक्तरूपसे अवस्थान करता है तथा धर्म, अधर्म और भावनाख्य संस्कारयुक्त सब आत्मा और आकाशादि नित्यपदार्थ अवस्थित रहते हैं।

प्रलयकालके अवसानमें प्राणियोंके भोगके लिये महेश्वरको सृष्टि करनेकी इच्छा होती है। तब प्रलयहेतु अदृष्टके हानेसे वह फिर भोगप्रयोजक अदृष्टकी वृत्ति निरोध नहीं कर सकता। सुतरां फलोन्मुख होता है।

उस अदृष्टयुक्त आत्माके संयोगसे प्रथमतः वायवीय परमाणुमें कर्मकी उत्पत्ति और इन सब परमाणुके संयोगसे द्वाणुकादि क्रमसे महान् वायुकी उत्पत्ति होती है और यह अनवरत कम्पमान रह कर आकाशमें अवस्थित रहती है। तिर्यक्गमन वायुका स्वभाव है। इस समय किसी दूसरे द्रव्यकी उत्पत्ति नहीं होती, जिसके द्वारा वायुका वेग प्रतिहत हो सके। सुतरां वायु नियत कम्पमान अवस्थामें रही। वायुकी सृष्टिके बाद इस तरहके जलीय परमाणुमें कर्मकी उत्पत्ति हो कर यह भी द्वाणुकादि क्रमसे महान् सलिल राशि हुई और वायु वेगसे कम्पमान हो वायुमें रही। इसके बाद इस क्रमसे पार्थिव परमाणु संयोगसे निविड़ावयव महापृथ्वी हुई और यह भी इसी जलराशिमें रही। इस तरह दीप्यमान महातेजोराशि समुत्पन्न हो कर इस जलराशिमें ही अवस्थित रही। पीछे महेश्वरके संकल्पमात्रसे ब्रह्माण्ड और ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई।

प्राणी जैसे दिन भर परिश्रम कर रातको विश्राम करते हैं, उसी तरह जगत्‌की सृष्टिके समय पुनः पुनः दुःखादि भोगमें परिक्लिष्ट प्राणियोंके कुछ कालके विश्रामके लिये महेश्वरके अभिप्रायसे प्रलयका आविर्भाव होता है। इसीलिये पुराणादिमें सृष्टि और प्रलय रात और दिनरूपसे कीर्त्तित हुए हैं। देखते हैं, कि घट आदि पार्थिव वस्तु चूर्णीकृत होती हैं, पर्वत भी पार्थिव हैं, अतएव वे भी एक दिन चूर्णीकृत होंगे। जलाशय सूख जाते हैं। समुद्र भी एक जलाशय ही है। प्रदीप तेज हैं, वे भी बुझ जाते हैं। इस तरह प्रलयके साधक बहु प्रकार अनुमान प्रदर्शित हुए हैं। जागतिक वस्तुमात्र ही क्षिति, अप्, तेज और वायु इस भूतचतुष्टयका कार्य है। आकाश किसी द्रव्यका आरम्भक नहीं। किन्तु आकाश विभु और सर्वगत है। जागतिक कोई पदार्थ ही आकाशसम्पर्कवर्जित नहीं। सुतरां जागतिक पदार्थ निर्वाचन करनेके समय आकाशको छोड़नेसे नहीं बनता और भी कहा जा सकता है, कि कणाद आदिके मतसे आकाश शब्दका आश्रय है। आकाशके सिवा शब्द हो नहीं सकता। सुतरां जगत्‌में आकाशकी उपयोगिता निःसन्देह है।

कणादने काल और दिक् पदार्थ माना है। यह क्यों मानना होगा? इसका भी उन्होंने कारण दिखाया है। किन्तु इस विषयमें सन्देह करनेका यथेष्ट कारण है, कि काल और दिक् पदार्थमें कणादके मतसे पञ्चभूतोंके अतिरिक्त हैं या नहीं? कणादने पहले पृथ्वी, अप्, तेजः और वायुके लक्षण निर्देश और अदृश्य वायु पदार्थके साधन और उसके नानात्वसंस्थापन पूर्वक शब्द और गुणके अधिकरणरूपसे आकाशके साधन या अनुमान किया है और आकाश एक है, कई नहीं, यह भी प्रतिपादन किया है। वायुका लक्षण स्पर्शविशेष, वायुसाधन प्रसङ्गमें परीक्षित हुआ है। इसके बाद, पृथ्वी, अप् और तेजके लक्षण गन्धादि द्वारा परीक्षा कर काल और उसका एकत्व और दिक् तथा उसका एकत्व संस्थापन कर एक पदार्थके भी कार्यभेदमें औपाधिक भेद होता है। इससे दिक्पदार्थ एक होने पर भी उपाधि भेदसे पूर्व दक्षिणादि व्यवहार भेद समर्थन कर आकाशके विशेष गुण शब्दकी परीक्षा की गई है। इस समय विवेच्य विषय यह है, कि दिक् पदार्थकी तरह काल पदार्थमें भी भूत, भविष्यत् और वर्तमान भेदसे औपाधिक नानात्वका व्यवहार प्रचुर परिमाणसे है। सूत्रकारने भी भविष्यत् आदिका व्यवहार किया है।

आकाशके भी घटाकाश, महाकाश इत्यादि रूपसे औपाधिक भेदका अभाव नहीं है। ऐसी अवस्थामें कणादने केवल दिक्पदार्थमें ही औपाधिक भेद क्यों प्रदर्शन किया? काल और आकाशके औपाधिक भेद क्यों प्रदर्शन नहीं किया? यह प्रश्न आप ही आप उठता है। केवल यही नहीं, काल और आकाशके औपाधिक भेद नहीं करनेसे सूत्रकारकी न्यूनता भी अपरिहार्य हो उठती है। किन्तु जरा विशेष रूपसे प्रणिधान करनेसे मालूम होता है, कि सूत्रकारका अभिप्राय स्वतन्त्र है। कणादके मतसे आकाश, काल और दिक् एक पदार्थ है। कार्यभेदसे केवल नाम भेदमात्र है। जैसे एक ही व्यक्ति प्रतियोगिभेदसे पिता, पुत्र, भ्राता, बन्धु आचार्य आदि नाना आख्याओंसे आख्यात होता है, उसी तरह एक ही पदार्थ कार्य भेदसे आकाश,

काल और दिक् नामसे अभिहित होता है। यथार्थमें काल और दिक् आकाशसे स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है।

कणादने आकाशका अनुमान कर पृथिव्यादि लक्षणको या विशेष विशेष गुणोंकी परीक्षा कर "तत्राकाश न विद्यते" इस सूत्र द्वारा दिखाया है, कि वे आकाशगत नहीं हैं। पृथिव्यादिके लक्षण आकाशमें नहीं हैं अर्थात् आकाश पृथिव्यादिके अन्तर्गत हो नहीं सकता। यह पृथ्वी आदिसे सम्पूर्ण स्वतन्त्र पदार्थ है। पीछे आकाशके प्रकारभेदस्वरूप काल और दिक् पदार्थ और उनका एकत्व निरूपण कर आकाश-निरूपणकी पूर्णता सम्पादन कर कार्य भेदसे एक पदार्थके नानात्व अङ्गीकार कर उदाहरण स्वरूप दिक्पदार्थके कार्यभेदसे नानात्व दिखाया है। इस तरह उन्होंने आकाश पदार्थका एकत्व विषय शेष कर आकाशमें विशेष गुण शब्दकी परीक्षा की है। क्योंकि धर्मिनिरूपणके बाद धर्मनिरूपण सर्वथा समीचीन है। सूत्रकारके इस तरह अभिप्राय न होनेसे पञ्चभूत निरूपणके बाद पृथिव्यादि भूत चतुष्टयके गुणकी परीक्षा और इसके बाद काल और दिक् निरूपण कर आकाशगुण शब्दकी परीक्षा करना असम्बन्ध और असङ्गत हो जाता है। अर्थात् पञ्चभूतका गुण परीक्षामें काल और दिक् पदार्थका निरूपण किसी तरह भी सङ्गत नहीं हो सकता।

काल और दिक् वास्तविक आकाशसे अतिरिक्त नहीं; सूत्रकारके इस तरह अभिप्राय वर्णन करनेका और भी विशिष्ट हेतु है। वह यह, कि शब्दके अधिकरण या आश्रय रूपसे आकाशका जो अनुमान किया गया है, उसकी प्रणाली भी प्रकाशित हुई है। यथा—

"कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः।"

"कार्यान्तराप्रादुर्भावाच शब्दः स्पर्शवतामगुणः॥"

इन दो सूत्रों द्वारा पृथ्वी, अप्, तेजः और वायुके गुण नहीं हो सकते, यह समर्थन किया गया। क्योंकि कार्यभूत पृथिव्यादिका गुण उसका कारण पूर्वक होता है, यह देखा गया है। वीणा, वेणु और मृदङ्ग आदिके शब्द कारण गुणपूर्वक नहीं। क्योंकि वीणादिके शब्द एक समान नहीं होता। वीणादिके शब्द कारणगुणपूर्वक होनेसे रूप आदिकी तरह अच्छा खराब भाव भी उसमें नहीं हो सकता।

उक्त दो सूत्रों द्वारा शब्द पृथिव्यादिके गुण नहीं हैं। यह स्थिर कर

"परत्र समवायात् प्रत्यक्षत्वाच नात्मगुणो न मनोगुणः।"

इस सूत्रसे शब्द आत्मा या मनका गुण नहीं है। यह समर्थन किया गया है। क्योंकि आत्माके गुण ज्ञान सुखादि, आत्मसमवेत है, किन्तु शब्द आत्मसमवेत नहीं। सुतरां शब्दमें आत्माका गुण नहीं हो सकता। शब्द आत्मसमवेत होनेसे "अहं जानामि" "अहं सुखी" मैं जानता हूं, मैं सुखी हूं आदिकी तरह "अहं शब्दवान" मैं शब्दयुक्त हूं, मुझमें शब्द हो रहा है। इस तरहकी प्रतीति होती, किन्तु ऐसा नहीं होता। अतएव शब्द आत्माका गुण नहीं। शब्द मनका भी गुण नहीं। कारण शब्दका प्रत्यक्ष है। मनका गुण होनेसे प्रत्यक्ष हो नहीं सकता। क्योंकि मन अणु है।

इन तीन सूत्रों द्वारा शब्द, पृथ्वी, अप्, तेजः, वायु, आत्मा और मनके गुण हो नहीं सकते, यह प्रतिपन्न करके ही सूत्रकारने कहा है—"परिशेषाल्लिङ्गमाकाशस्य" अर्थात् शब्द जब पृथ्वी, अप्, तेजः वायु, आत्मा और मनके गुणसे नहीं हो सकता है, तब परिशेषयुक्त यह आकाशके ही गुण होते हैं। इससे विलक्षण रूपसे समझमें आता है, कि काल और आकाशसे अतिरिक्त नहीं। ऐसा होनेसे शब्द क्यों काल और दिक्‌के गुण नहीं हो सकते, यह समझा देना अवश्य कर्त्तव्य था। वह न कर "परिशेषाल्लिङ्गमाकाशस्य" यह बात कहना नितान्त असङ्गत और असम्बन्ध हो जाता है।

काल और दिक् आकाशसे अतिरिक्त नहीं है यह कल्पनामात्र है, ऐसा समझ उपेक्षा करना असङ्गत नहीं होगा। कारण सांख्याचार्योंके मतसे भी दिक् आकाशसे अतिरिक्त नहीं।

"दिक्कालावाकाशादिभ्यः" यह सांख्यसूत्र ही इसका उत्कृष्ट प्रमाण है। दिक् और काल आकाशसे उत्पन्न हुए हैं। नैयायिकने और भी आगे बढ़ कर कहा है, कि आकाश भी ईश्वरसे अतिरिक्त नहीं।

गुण।

जिस पदार्थमें गुणत्व जाति है, उसका नाम गुण

है। संयोग और विभाग इन दोनोंकी समवेत सत्ताके भिन्न जातिका नाम गुणत्व है। संयोगत्व और विभागत्व यथाक्रम संयोग और विभाग ये दोनों समवेत नहीं है। सत्ता जाति संयोग विभाग दोनों समवेत होने पर भी सत्ता भिन्न नहीं। इसीलिये उनको गुणत्व कहा जाता है।

गुण चौबीस तरहके हैं—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, संस्कार, धर्म और अधर्म।

शब्द दो तरहका है—ध्वनि और वर्ण। मृदङ्ग आदिके शब्दका नाम ध्वनि है। कण्ठ और तालुप्रदेशमें आभ्यन्तरीण वायुके अभिघातसे जो शब्द होता है, उसका नाम वर्ण है। एकत्वसे परार्द्ध तक संख्या प्रकार है; उसमें द्वित्वादि संख्या अपेक्षा बुद्धि जन्य है; अपेक्षा बुद्धिका नाश होने पर ही द्वित्वादिका विनाश है। बहुत एकत्वविषयक बुद्धिका नाम अपेक्षाबुद्धि है। परिमाण चार प्रकारका है, अणु, महत्, ह्रस्व और दीर्घ। शङ्कर मिश्रके मतसे प्रत्येक वस्तुमें द्विविध परिमाण है। जिसमें अणुत्व परिमाण है, उसमें ह्रस्वत्व परिमाण भी है। इस तरहका महत्त्व और दीर्घत्व समदेशवर्त्ती है। परमाणु और मनः पदार्थोंमें परम अणुत्व अथवा अणुपरिमाणके चरम उत्कर्ष और आकाश, काल, दिक् और आत्मामें चरमोत्कर्ष या परम महत्त्व है। जिस गुणके अनुसार घटसे पट पृथक्, पृथ्वीसे जल पृथक् है। इत्यादि प्रतीति होती है, उसका नाम पृथक्त्व है। एकाधिक जो सब वस्तुएं परस्पर (स्वाभो-सम्बन्धका शून्य हो कर भी) मिलितभावसे रहती हैं, उनके सम्बन्धका नाम संयोग है। कार्य और कारण कभी भी सम्बन्ध-शून्य नहीं होता, इसीलिये उनका सम्बन्ध संयोग नहीं है, वह समवाय है। संयोग तीन प्रकारका है—अन्यतर कर्मजन्य, उभय कर्मजन्य और संयोग जन्य। जिन दो वस्तुओंका संयोग होता है, उनमें केवल एक क्रियाके लिये जो संयोग है, वह अन्यतर कर्म जन्य है। जैसे पर्वत पर किसी पक्षीके बैठने पर पर्वत और पक्षीमें जो संयोग होता है, वह केवल पक्षीके क्रियाजन्य है। युद्धके समयमें मल्लद्वय (दो पहलवानों)-में जो संयोग होता है, वह उभय क्रियाजन्य है। हस्तस्थित कुठारके साथ वृक्षका संयोग होने पर उसमें वृक्ष और हाथका भी परस्पर संबंध होता है, इसमें सन्देह नहीं। यह हस्तवृक्ष-संयोग कुठारवृक्ष संयोगजन्य है।

संयोगके प्रतिद्वन्द्वी या प्रतिपक्ष अर्थात् जो गुण उत्पन्न होनेसे संयोग विनष्ट होता है, उसका नाम विभाग है। विभाग भी संयोगकी तरहसे तीन तरहका है—पर्वतसे पक्षीका विभाग, पक्षीके कर्मजन्य है। मल्लद्वय और मेषद्वयका विभाग दोनों कर्मजन्य है। वृक्षसे हाथका विभाग वृक्षसे कुठार विभागजन्य है। परत्व और अपरत्व कालिक और दैशिकभेदसे दो प्रकारका है। कालिक परत्व और अपरत्व ज्येष्ठत्व और कनिष्ठत्वरूप है। दूरत्व और सन्निकटत्व ही दैशिक परत्व और अपरत्व है।

बुद्धिका अर्थ ज्ञान। ज्ञान अनेक रूपमें विभक्त है। उनमें पहले निर्विकल्प और सविकल्पभेदसे दो प्रकारका है। जिस ज्ञानमें विशेष्य विशेषणभाव नहीं उत्पन्न होता, उसमें केवल वस्तुका स्वरूप भासमान होता है, वह निर्विकल्प है। निर्विकल्पक ज्ञान अतीन्द्रिय है, वह प्रत्यक्ष नहीं, अनुमेय है। जिस ज्ञानमें विशेष्य विशेषण-भाव भासमान है, उसका नाम सविकल्पक है। 'अयं घटः' यह घट, यह प्रत्यक्ष सविकल्पक है।

निर्विकल्पक ज्ञानमें ऐसी विशेष रूपकी कल्पना नहीं है। इससे यह निर्विकल्पक अर्थात् विकल्पशून्य है। निर्विकल्पक ज्ञान ही अनुमान-प्रणाली ऐसी ही निर्दिष्ट हुई है। विशिष्टज्ञान विशेषण ज्ञानजन्य है। नील न जाननेसे नीलोत्पलका ज्ञान नहीं होता, दण्ड न जाननेसे दण्डीका ज्ञान नहीं हो सकता। सुतरां घटत्वज्ञान होनेसे घटत्वविशिष्टका ज्ञान हो नहीं सकता। इसलिये 'अयं घटः' इस तरह विशिष्टज्ञान होनेसे पहले विशेषणीभूत घटत्वका ज्ञान हुआ है, यह अनुमेय है। जिस निर्विकल्पक ज्ञानने घटत्वको विषय किया है, उसी ज्ञानने अवश्य घटको भी विषय किया है। क्योंकि घटत्व और घट दोनों विषय दोनोंका कारण एक रूप है। घटत्व और घट ये दोनों ज्ञानका

विषय होने पर भी वह स्वरूपमें ही विषय हुए हैं; विशेष्य-विशेषण भावमें नहीं। इसीलिये वह निर्विकल्पक है। पहले विशेषण ज्ञान न होनेसे विशिष्टज्ञान या विशेष्य विशेषणभावसे ज्ञान नहीं हो सकता। सुतरां निर्विकल्पक ज्ञान विशेष्य-विशेषणभावमें हो नहीं सकता। इसीलिये निर्विकल्पक शब्द द्वारा ज्ञानका आकार प्रकाश किया नहीं जाता। क्योंकि शब्दके द्वारा जो प्रकाशित होगा, वह अवश्य ही विशेष्य विशेषण-भावापन्न होगा। निर्विकल्पक ज्ञानका विषय विशेष्य-विशेषण-भावापन्न नहीं।

अनुभूति या अनुभव और स्मृति या स्मरणरूपसे भी ज्ञान दो प्रकारके हैं। अनुभूति दो तरहकी है—प्रत्यक्ष और लैङ्गिक या अनुमिति। प्रत्यक्ष छः प्रकारका है,—घ्राणज, रासन, चाक्षुष, स्पार्शन, श्रावण और मानस। संस्कारजन्य ज्ञानविशेषका नाम स्मृति या स्मरण है। विद्या या प्रमा और अविद्या या अप्रमा-भेदसे भी ज्ञान दो प्रकारका है। जो वस्तु वस्तुगत्या जैसी है उस वस्तुके ठीक उसी तरहका ज्ञान ही विद्या या प्रमा है। जो वस्तु जैसी है, अन्य रूपसे उस वस्तुका ज्ञान होनेको अविद्या या अप्रमा कहते हैं। अविद्या दो तरहकी है—संशय और विपर्यास। एकधर्मीमें नाना धर्मके ज्ञानका नाम संशय है, जैसे इसे स्थाणु या पुरुष—इस तरह जो अनिश्चयात्मक ज्ञान होता है, वही संशय है। क्योंकि एक स्थाणुरूपी धर्मीमें परस्पर विरुद्ध स्थाणुत्व और पुरुषत्वरूप धर्मद्वयका ज्ञान हुआ है। निश्चयात्मक भ्रमका नाम विपर्यास है। जैसे देहादिमें आत्मबुद्धि, पित्तदोष-दुष्ट-व्यक्तिके शंखसे पीतवर्ण बुद्धि, शुक्तिकामें रजतबुद्धि, मरीचिकामें जलबुद्धि इत्यादि।

जिस ज्ञानका विषय वस्तुतः विद्यमान नहीं, वही मिथ्याज्ञान या अविद्या है। स्वप्नज्ञान और अविद्या स्वप्नकालमें भी जाग्रदवस्थाकी तरह सब विषयोंका अनुभव होता है। परन्तु उस समय इन्द्रियोंकी कार्यकारिता नहीं रहती। विषयमें भी विद्यमानता नहीं। सुतरां मिथ्याज्ञान या अविद्या है। किसी किसी आचार्यके मतसे स्वप्नज्ञान पूर्वानुभवका स्मरणमात्र है। स्वप्नमें अपने शिरका काटा जाना देखा जाता है सही, किन्तु उसका कोई पदार्थ ही अनुभूत कहा नहीं जाता। स्व अर्थात् स्वयं अनुभूत है। शिर भी अनुभूत है, काटना भी अनुभूत है। दोषाधीन परस्पर सम्बन्धका केवल प्रतिभास होता है। कोई कोई स्वप्न धातुवैषम्य-जनित होता है। आकाशगमन, वसुन्धरा पर्यटन, व्याघ्रादिका भय आदि स्वप्नवात दोषजन्य है। अग्निप्रवेश, दिग्दाह, कनकपर्वत, विद्युद्विस्फुरण प्रभृति स्वप्नपित्तदोषजन्य है, समुद्रका तैरना, नदीका स्नान, वृष्टिपात तथा रजतपर्वतका दर्शन आदि श्लेष्मदोषजन्य है। अर्थात् वातपित्तादि धातुदोषसे ये सब स्वप्न देख पड़ते हैं। इसके सिवा अन्य स्वप्न अदृष्ट जन्य होते हैं। उनमें धर्मजन्य स्वप्न शुभसूचक और अधर्मजन्य स्वप्न अशुभसूचक है।

सुख दुःख इच्छा द्वेष आदिकी व्याख्या अनावश्यक है। इन सबोंके अनुभवसिद्ध हैं। यत्न तीन प्रकारका है—प्रवृत्ति, निवृत्ति और जीवनयोनि। इष्टसाधनता ज्ञान, चिकीर्षा अर्थात् यह मेरा कर्त्तव्य—इस तरहकी इच्छा, कृतिसाध्यत्वज्ञान और उपादानप्रत्यक्ष, ये सब प्रवृत्तिके कारण हैं। इष्टसाधनता-ज्ञानकी कारणता पहले ही समर्थित हुई है। जो करनेकी इच्छा नहीं होती, वह करनेके लिये कोई प्रवृत्त नहीं होता। इच्छा होने पर भी यदि विवेचना हो, कि यह कार्य मेरे करने योग्य नहीं, यानी यह निर्वाह करना मेरे साध्यातीत है, ऐसा होने पर भी उस कार्यमें प्रवृत्ति नहीं होती। असाध्य विषयमें प्रवृत्ति होना असम्भव है। ये सब होने पर भी जिस उपादानसे कार्यसम्पादन करना होगा, उस उपादानका प्रत्यक्ष न होनेसे उस कार्य सम्पादनमें प्रवृत्त हो नहीं सकता। मृत्तिकाका प्रत्यक्ष न होनेसे घट ढकना आदिके बनानेमें, चावलके प्रत्यक्ष न होनेसे पाकमें कोई प्रवृत्त नहीं होता। निवृत्तिका कारण पहले प्रदर्शित हुआ है। शरीरमें प्राणवायुके सञ्चरण (अर्थात् निश्वास प्रश्वास आदि जो यत्नप्रभावसे सम्पन्न होते हैं)का नाम जीवनयोनि-यत्न है।

गुरुत्व ही पतनका कारण होता है। पृथ्वीकी आकर्षणशक्तिके प्रभावसे वस्तुके पृथ्वीकी ओर आकृष्ट होने पर भी गुरुत्व या गुरुत्वका पतनहेतुत्व प्रत्याख्यात नहीं हो सकता। क्योंकि वस्तुके गुरुत्वके अनुसार आकर्षणशक्तिकी कार्यकारिताका न्यूनाधिक्य अवलोकन

अनभिज्ञ ऋत्विक् ब्राह्मणभक्ष सोम जब ग्रहण करेंगे, अपने ब्राह्मण लोगोंको ही जीत लेंगे, अपने ब्राह्मणकल्प होंगे, वे आदायी या प्रतिग्रहशील, आपायी या सोमपानमें आग्रहान्वित और आवसायी या परगृहमें सर्वदा यथेच्छा-कारी होंगे और इच्छानुसार सर्वदा कालयापन करेंगे। जब क्षत्रियको कोई दोष हो जाये, (अर्थात् यज्ञकालमें क्षत्रिय यदि ब्राह्मणका अंश ले) तो उसकी सन्तति भी ब्राह्मणकल्प होगी। द्वितीय या तृतीय पुरुषमें (पुत्र या पौत्र) संपूर्ण ब्राह्मण्यलाभके उपयुक्त होगा और ब्राह्मणोचित भिक्षादि द्वारा जीविकानिर्वाह करनेकी इच्छा करेगा। जब अनभिज्ञ ऋत्विक् वैश्यका अंश दधि आहरण करें, तब वैश्यों पर उसकी मतिगति फिरेगी। उसका वंश कर हो कर जन्म ग्रहण करेगा। दूसरे राजाको कर देगा। राजाकी इच्छानुसार वे तिरस्कारका भागी होंगे। जब क्षत्रियको कोई दोष होगा (अर्थात् यदि यज्ञकालमें क्षत्रिय वैश्यका अंश दधि ले ले), उसका सन्तान वैश्य हो कर जन्मेगा। द्वितीय या तृतीय पुरुष (पीढ़ीमें) (पुत्र या पौत्र) वैश्य जाति होनेके उपयुक्त होगा और वैश्यरूपसे जीविका निर्वाह करनेको इच्छा करेगा।

उद्धृत वैदिक प्रमाणादि अवलम्बनमें आभास मिल रहा है, कि प्रजा साधारणका भूमिकर्षण, गोरक्षा और अन्नाधान ही उपजीविका थी। जो राजकर देते और राजपीड़ित होते तथा जगतीछन्दविशिष्ट ऋत्मन्त्र ही जिनके सावित्री या आर्यत्वका निदर्शन निर्दिष्ट थे, वैदिक युगमें वे 'अर्य्य' या वैश्य नामसे अभिहित होते थे।

एक-एक वर्णके लिये एक एक विशेष द्रव्य ग्रहणकी व्यवस्था थी। एक वर्ण दूसरे वर्णके भाग्य द्रव्यके ग्रहण करने पर उसको उसीके समाजमें मिल जाना पड़ता है और उसके वंशधर उस वर्णके नाममें पुकारे जाते थे। ऐसी अवस्थामें दिखाई देता है, कि वैश्यरूपसे एक भिन्नवर्ण रहने पर भी उनके कार्य और धर्मके अनुसार वे अन्य-वर्णमें मिल सकते थे। उस समय इस समयकी तरह कठोरता नहीं थी। वृत्ति ही वर्णवाची थी।

मगोंके (पारस्यदेशके) आदि धर्मशास्त्र 'जन्द अवस्ता'-के अन्तर्गत 'यश्न' नामक विभागमें १ आथ्रव, २ रथ-पस्ताओ, ३ वास्त्रिय फसुयण्ट और ४ हुइति इन चार वर्णों का उल्लेख है। (यश्न १६।४६) यश्नके संस्कृतटीका कार नेरियो सिंहने उक्त चार शब्दोंका यथाक्रम अर्थ किया है—१ आचार्य, २ क्षत्रिय, ३ कुटुम्बिन्, ४ प्रकृतिकर्मन्। यहां कुटुम्बीसे वैश्य ही समझा जाता है।

वेदमें चार वर्णोंके मध्यमें "आर्यास्त्रैवर्णिकाः" अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीन वर्ण आर्य और शूद्र अनार्य या डाकुओंमें गिने जाते थे। आर्य, दास, दस्यु आदि शब्द देखो। उक्त चार वर्णोंका उल्लेख रहने पर भी तदुत्पन्न विभिन्न जातिके प्रसङ्ग वेदमें नहीं। वरं शुक्लयजुःसंहितामें—

"नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमोनमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमो नमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमो नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः" (१६।२७)

इस मन्त्रमें तक्षा या शिल्पी, रथकार या सूत्रधार, कुलाल या कुम्भकार, कर्मार या कमार (लोहार), निषाद या मांसाशी गिरिचर, पुंजिष्ठ या बहेलिया, श्वन्य या कुत्ते का पालन करनेवाला (शिकारी), मृगयु या व्याध इत्यादि विभिन्न शब्दोंका उल्लेख रहने पर भी ये सब कर्मवाची जातिवाची नहीं।

स्मृतिसंहिता-प्रचारके समय नाना जातियोंकी उत्पत्ति हो रही थी सही, किन्तु इस समय भी आर्य-समाजमें समाजबन्धनकी कठोरता न थी। इस समय भी एक वर्ण गुणकर्मके अनुसार वर्णान्तर आश्रय कर सकते थे। मिताक्षराकार विज्ञानेश्वर याज्ञवल्क्य-संहिताका उद्देश्य इस तरह समझा गये हैं—

व्यवस्था च—"ब्राह्मणेन शूद्रायामुत्पादिता निषादी सा ब्राह्मणेनोढ़ा काञ्चिज्जनयति। सापि ब्राह्मणेनोढ़ा अन्यामित्यनेन प्रकारेण षष्ठी सप्तमं ब्राह्मणं जनयति। ब्राह्मणेन वैश्यायामुत्पादिता अम्बष्ठा साप्यनेन प्रकारेण पञ्चमी षष्ठं ब्राह्मणं जनयति। एवमुग्रा क्षत्रियेनोढ़ा महिष्या च यथाक्रमं क्षत्रियं षष्ठं पञ्चमं जनयति।"

अर्थात् ब्राह्मण द्वारा शूद्रासे उत्पन्ना कन्या निषादी। यह कन्या यदि ब्राह्मणसे ब्याही जाये और उससे भी कन्या हो और उस कन्यासे फिर यदि

राजन्यस्य। जगती वैश्यस्य।" अर्थात् अग्निहोत्रको ब्राह्मण उच्चारण करे, क्योंकि श्रुतिने निर्देश किया है, ब्राह्मण ही आग्नेय है। 'देव सवितः' इत्यादि त्रिष्टुप्-छन्दोविशिष्ट सावित्री क्षत्रियके तथा जगतीछन्दोयुक्त सावित्री वैश्यके उच्चार्य है। जगतीछन्दकी सावित्री क्या है? पारस्करगृह्यसूत्रके भाष्यकार गदाधरने लिखा है,—

"जगतीछन्दस्कां विश्वा रूपाणि प्रतिमुञ्चते इत्युक्तं वैश्यस्यानुब्रूयात्" अर्थात् जगतीछन्दोयुक्त 'विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते' इत्यादि ऋक् वैश्यको उच्चार्य है। ऋग्वेदमें उक्त जगती छन्दकी सावित्री इस तरह पूर्णाकार हुई होती है। (इस ऋक्के देवता सविता है, ऋषि श्यावाश्व आत्रेय।)

"विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद्भद्रं द्विपदे चतुष्पदे।
वि नाकमख्यत् सविता वरेण्योऽनु प्रयाणमुषसो वि राजति॥"*
(५।८१।२)

अर्थ—ज्ञानवान् सविता समस्त विश्वरूप धारण करते रहते हैं। वे द्विपद और चतुष्पदोंके सब कल्याणोंका विधान करते हैं। उन वरणीय सविताने स्वर्गलोकको प्रकाशित किया है और उषाके पीछे विराजित हुए हैं।

उक्त ऋक् मंत्र वैश्यका अवलम्बन है, इससे तैत्तिरीय ब्राह्मणमें वैश्यको ऋक्जात और विश्वदेव सविता आत्मक जगतीछन्दः ही वैश्य वर्ण माना है। इससे कृष्णयजुर्वेदमें भी विश्वदेव और जगती छन्दके साथ वैश्यकी उत्पत्ति कल्पित हुई है।

वैश्यवर्णोत्पत्तिके सम्बन्धमें ऋग्वेदके ऐतरेयब्राह्मणमें लिखा है—

"त्रयाणां भक्षाणामेकमाहरिष्यन्ति सोमं वा दधि वाऽपो वा स यदि सोमं ब्राह्मणानां स भक्षो ब्राह्मणांस्तेन भक्षेण जिन्विष्यसि ब्राह्मणकल्पस्ते प्रजायामाजनिष्यत आदाय्यापाय्यावसायी यथाकामप्रयाप्यो यदा वै क्षत्रियाय पापं भवति ब्राह्मणकल्पोऽस्य प्रजायामाजायत ईश्वरो हास्माद् द्वितीयो वा तृतीयो वा ब्राह्मणतामभ्युपैतोः स ब्रह्मबन्धवेन जिज्यूषितोऽथ यदि दधि वैश्यानां स भक्षो वैश्यांस्तेन भक्षेण जिन्विष्यसि वैश्यकल्पस्ते प्रजायामाजनिष्यतेऽन्यस्य बलिकृदन्यस्याद्यो यथाकामप्रजाप्यो यदा वै क्षत्रियाय पापं भवति वैश्यकल्पोऽस्य प्रजायामाजायत ईश्वरो हास्माद् द्वितीयो वा तृतीयो वा वैश्यतामभ्युपैतोः स वैश्यतया जिज्यूषितः"
(ऐतरेय ब्रा० ७,५,१)

जनमेजय ऋत्विक् क्षत्रियके तीन भक्ष्य द्रव्योंमेंसे एक भक्ष्य लेते हैं। यथा, सोम, या तो दधि, या जल।

---

* सायनाचार्यने उक्त ऋक्का इस तरह भाष्य किया है,— कविः मेधावी सविता विश्वा सर्वाणि रूपाणि प्रति मुञ्चते आत्मनि धारयति। किञ्च भद्रं कल्याणं गमनादिविषयं प्रासावीत् अनुजानाति। कस्मै द्विपदे मनुष्याय चतुष्पदे गवाश्वादिकाय। किञ्च सविता वरेण्यो देवो वरणीयः सन् नाकम् व्यख्यत् प्रकाशयति। [illegible] नाकः स्वर्गः। [illegible]। स देव उषसः प्रयाणमनु वि राजति प्रकाशते। [illegible] पूर्वं [illegible] भवति।

शुक्लयजुर्वेदमें भी (१२।३) उक्त ऋग्वर्णित [illegible] देखी जाती है। भाष्यकार महीधरने [illegible] इसकी व्याख्या की है।

(शु० १२।३) [illegible] विश्वा रूपाणि [illegible] सविता [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] प्रति मुञ्चते [illegible] [illegible] [illegible] सविता [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] द्विपदे मनुष्याय चतुष्पदे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उषसः [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

अनभिज्ञ ऋत्विक् ब्राह्मणभक्ष सोम जब ग्रहण करेंगे, अपने ब्राह्मण लोगोंको ही जीत लेंगे, अपने ब्राह्मणकल्प होंगे, वे आदायी या प्रतिग्रहशील, आपायी या सोमपानमें आग्रहान्वित और आवसायी वा परगृहमें सर्वदा यत्‌चूना-कारी होंगे और इच्छानुसार सर्वदा कालयापन करेंगे। जब क्षत्रियको कोई दोष हो जाये, (अर्थात् यज्ञकालमें क्षत्रिय यदि ब्राह्मणका अंश ले) तो उसकी सन्तति भी ब्राह्मणकल्प होगी! द्वितीय या तृतीय पुरुषमें (पुत्र या पौत्र) संपूर्ण ब्राह्मण्यलाभके उपयुक्त होगा और ब्राह्मणोचित भिक्षादि द्वारा जीविकानिर्वाह करनेकी इच्छा करेगा। जब अनभिज्ञ ऋत्विक् वैश्यका अंश दधि आहरण करें, तब वैश्यों पर उसकी मतिगति फिरेगी। उसका वंश फल्प हो कर जन्म ग्रहण करेगा। दूसरे राजाको कर देगा। राजाकी इच्छानुसार वे तिरस्कारका भागी होंगे। जब क्षत्रियको कोई दोष होगा (अर्थात् यदि यज्ञकालमें क्षत्रिय वैश्यका अंश दधि ले ले), उसका सन्तान वैश्य हो कर जन्मेगा। द्वितीय या तृतीय पुरुष (पीढ़ीमें) (पुत्र या पौत्र) वैश्य जाति होनेके उपयुक्त होगा और वैश्यरूपसे जीविका निर्वाह करनेकी इच्छा करेगा।

उद्धृत वैदिक प्रमाणादि अवलम्बनमें आभास मिल रहा है, कि प्रजा साधारणका भूमिकर्षण, गोरक्षा और अन्नाधान ही उपजीविका थी। जो राजकर देते और राजपीड़ित होते तथा जगतीछन्दःविशिष्ट ऋग्मन्त्र ही जिनके सावित्री या आर्यत्वका निदर्शन निर्दिष्ट थे, वैदिक युगमें वे 'अर्य्य' या वैश्य नामसे अभिहित होते थे।

एक-एक वर्णके लिये एक एक यज्ञीय द्रव्य ग्रहणकी व्यवस्था थी। एक वर्ण दूसरे वर्णके ग्राह्य द्रव्यके ग्रहण करने पर उसको उसीके समाजमें मिल जाना पड़ता है और उसके वंशधर उस वर्णके नाममें पुकारे जाते थे। ऐसी अवस्थामें दिखाई देता है, कि वैश्यरूपसे एक मिश्रवर्ण रहने पर भी उनके कार्य और धर्मके अनुसार वे अन्य-वर्णमें मिल सकते थे। उस समय इस समयकी तरह कठोरता नहीं थी। वृत्ति ही वर्णवाची थी।

मगोंके (पारस्यदेशके) आदि धर्मशास्त्र 'जन्द अवस्ता'-के अन्तर्गत 'यश्न' नामक विभागमें १ आथ्रव, २ रथ-एस्ताओ, ३ वास्त्रिय फ्सुयण्ट और ४ हुइति इन चार वर्णोंका उल्लेख है। (यश्न १९।४६) यश्नके संस्कृतटीका कार नेरिओ सिंहने उक्त चार शब्दोंका यथाक्रम अर्थ किया है—१ आचार्य, २ क्षत्रिय, ३ कुटुम्बिन्, ४ प्रकृतिकर्मन्। यहां कुटुम्बीसे वैश्य ही समझा जाता है।

वेदमें चार वर्णोंके मध्यमें "आर्य्यास्त्रैवर्णिकाः" अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीन वर्ण आर्य्य और शूद्र अनार्य्य या डाकुओंमें गिने जाते थे। आर्य, दास, दस्यु आदि शब्द देखो। उक्त चार वर्णोंका उल्लेख रहने पर भी तदुत्पन्न विभिन्न जातिके प्रसङ्गवेदमें नहीं। वरं शुक्लयजुःसंहितामें—

"नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमोनमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमो नमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमो नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः" (१६।२७) इस मन्त्रमें तक्षा या शिल्पी, रथकार या सूत्रधार, कुलाल या कुम्भकार, कर्मार या कमार (लोहार), निषाद या मांसाशी गिरिचर, पुंजिष्ठ या बहेलिया, श्वन्य या कुत्तेका पालन करनेवाला (शिकारी), मृगयु या व्याध इत्यादि विभिन्न शब्दोंका उल्लेख रहने पर भी ये सब कर्मवाची जातिवाची नहीं।

स्मृतिसंहिता-प्रचारके समय नाना जातियोंकी उत्पत्ति हो रही थी सही, किन्तु उस समय भी आर्य-समाजमें समाजबन्धनकी कठोरता न थी। उस समय भी एक वर्ण गुणकर्मके अनुसार वर्णान्तर आश्रय कर सकते थे। मिताक्षराकार विज्ञानेश्वर याज्ञवल्क्य-संहिताका उद्देश्य इस तरह समझा गये हैं—

व्यवस्था च—"ब्राह्मणेन शूद्रामुत्पादिता निषादी सा ब्राह्मणेनोढ़ा काञ्चिज्जनयति। सापि ब्राह्मणेनोढ़ा अन्यामित्यनेन प्रकारेण षष्ठी सप्तमं ब्राह्मणं जनयति। ब्राह्मणेन वैश्यायामुत्पादिता अम्बष्ठा साप्यनेन प्रकारेण पञ्चमो षष्ठं ब्राह्मणं जनयति। एवमुग्रा क्षत्रियेनोढ़ा माहिष्या च यथाक्रमं क्षत्रियं षष्ठं पञ्चमं जनयति।"

अर्थात् ब्राह्मण द्वारा शूद्रासे उत्पन्ना कन्या निषादी। यह कन्या यदि ब्राह्मणसे ब्याही जाये और उससे भी कन्या हो और उस कन्याको फिर यदि

ब्राह्मणके ही विवाह हो और उसके गर्भसे भी कन्या उत्पन्न हो, तो इस तरह षष्ठ कन्या सप्तम पुरुषमें ब्राह्मण उत्पन्न करेगी। ब्राह्मण द्वारा शूद्रासे उत्पन्ना कन्या आम्बष्ठा होती है, किंतु उपरोक्त प्रकारसे वह कन्या भी षष्ठ पुरुषमें ब्राह्मण उत्पन्न कर सकती है। इस क्षत्रिय विवाहिता उग्रा या माहिष्या यथाक्रम षष्ठ या पञ्चम पुरुषमें क्षत्रिय उत्पादन करती है।

पुराणमें भी इस धर्मस्मृतिवचनोंके समर्थक अनेक प्रमाण पाते हैं। कितने ही क्षत्रियराजवंश वैश्यत्व प्राप्त हुए हैं और कितने ही वैश्य कर्मबलसे ब्राह्मणत्व लाभ कर चुके हैं।

सब प्रधान पुराणोंमें क्षत्रियराज मैदिष्ट या दिष्टके पुत्र नाभाग हैं। विष्णु और भागवतपुराणके मतसे नाभागने कर्मके अनुसार ही वैश्यत्व प्राप्त किया था।

"नाभागो दिष्टपुत्रोऽन्यः कर्मणा वैश्यतां गतः॥"

(भागवत ९।२।२३)

मार्कण्डेयपुराणके अनुसार नाभाग वैश्यकन्याका पाणिग्रहण कर वैश्यत्व प्राप्त हुए थे। फिर हरिवंशमें लिखा है, कि नाभागारिष्टके दो पुत्र वैश्य हो कर भी ब्राह्मणत्व प्राप्त हुए थे।

"नाभागारिष्टपुत्रौ द्वौ वैश्यौ ब्राह्मणतां गतौ।"

(हरिवंश ११ अ०)

गरुड़पुराणसे जाना जाता है, कि भलन्द, वत्स और संकृति ये तीन व्यक्ति वैश्य होकर वंश प्रवर्तक हुए हैं*।

महाभारतमें भगवान् व्यासने भी लिखा है:—

"भार्याश्चतस्रो विप्रस्य द्वयोरात्मास्य जायते।
आनुपूर्व्याद्‌द्वयोर्हीनौ मातृजात्यौ प्रसूयतः॥ ४
तिस्रः क्षत्रियसम्बन्धाद्द्वयोरात्मास्य जायते।
हीनवर्णास्तृतीयायां शूद्रा उग्रा इति स्मृतिः॥ ७
द्वे चापि भार्ये वैश्यस्य द्वयोरात्मास्य जायते।
शूद्रा शूद्रस्य चाप्येका शूद्रमेव प्रजायते॥" ८

ब्राह्मणोंके लिये चार वर्णों की भार्या विहित है। इन चार भार्याओंसे जो ब्राह्मणकन्या और क्षत्रियकन्यासे उत्पन्न हैं, वे उनकी आत्मा या समुत्पन्न ब्राह्मण ही होते हैं। इसके बाद अनुलोमक्रमसे अवशिष्ट दो पत्नियों (अर्थात् वैश्य और शूद्रकन्या)के गर्भसे उत्पन्न पुत्र मातृजाति (वैश्यकन्याका पुत्र वैश्य और शूद्रकन्याका पुत्र शूद्र) होता है। इस तरह क्षत्रियके तीन (क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा) भार्याओंमें प्रथम दो अर्थात् क्षत्रिय और वैश्यकन्याके गर्भसे उत्पन्न पुत्र क्षत्रिय और तृतीय हीन वर्ण शूद्राके गर्भसे उत्पन्न उग्र शूद्र गिना जाता है। वैश्यके भी (वैश्या और शूद्रा) दो भार्या विहित है। इन दोनोंसे ही उनकी आत्मा या समुत्पन्न वैश्य वर्ण जनमता है। शूद्रके लिये एक शूद्रा ही निर्दिष्ट और उससे शूद्र वर्ण ही जनमते हैं।

मनुस्मृतिमें लिखा है, कि पशुपालन, कृषि और वाणिज्य वैश्यकी जीविका है। दान, याग और अध्ययन इनका धर्म है। वैश्यके स्वकर्मोंमें वाणिज्य और पशुपालन ही प्रशस्त हैं आपत्काल उपस्थित होने पर वैश्य शूद्रवृत्ति द्वारा जीविका अर्जन कर सकता है। किन्तु जब आपदसे मुक्त हो जायेगा, तब उनको शूद्रवृत्ति छोड़ देनी होगी। वैश्योंका उपनयन संस्कार होता है। इसीसे वह द्विजाति कहे जाते हैं। इनका वेदमें अधिकार है। गर्भकालसे गणना कर १२ वर्ष पर उपनयन होना चाहिये। यदि इस समय वैश्योंका उपनयन न हो, तो २४ वर्ष तक उपनयन हो सकता है। इस २४ वर्षके भीतर किसी समय भी उपनयन हो सकता है। २४ बीत जाने पर इनको पतितसावित्रीक होना पड़ता है। अतएव इनको इस समयके भीतर ही उपनयन करा डालना एकान्त कर्त्तव्य है। इनका अशौच पन्द्रह दिनका है। (मनु)

विष्णुसंहितामें लिखा है, कि गर्भाधानसे ले कर श्राद्धपर्यन्त वैश्योंके सब काम वेदमन्त्रोंसे ही होते हैं। वैश्योंका धर्म, यजन, अध्ययन और पशुपालन है। वृत्ति—कृषि, वाणिज्य, गोरक्षण, कुसीदग्रहण और धान्यादि बीज रखना। आपत्काल उपस्थित होने पर वैश्य अन्य वृत्ति अर्थात् शूद्रवृत्तिसे भी अपनी जीविका चला सकता है। क्षमा, सत्य, दम, शौच, दान, इन्द्रियसंयम,

* "भलन्दश्चैव वत्सश्च संकृतिश्चैव ते त्रयः
वैश्य ... ...
... ..."

(गरुड़० ११२ अ०)

अहिंसा, गुरुसेवा, तीर्थ पर्यटन, दया, सरलता, लोभत्याग, देवब्राह्मणपूजा और असूया परित्याग, ये ही इनके सामान्य धर्म हैं। (विष्णुसं० २ अ०)

धर्मसूत्रमें हम पहले विभिन्न वर्णके संस्रवसे भिन्न भिन्न जातिकी उत्पत्ति और विस्तृति देखते हैं। फिर भी उस समय भी यहांकी तरह सहस्र सहस्र जातिकी सृष्टि नहीं हुई। मूल वर्णको छोड़ कर वशिष्ठधर्मसूत्रमें १०, बौधायन-धर्मसूत्रमें १४ और गोतम धर्मसूत्रमें १६ मिश्र जातियोंका उल्लेख दिखाई देता है*। धर्मसूत्रमें कुल चार मूल वर्ण हैं और २४ मिश्र जातियोंका उल्लेख है।† इन २४ में वैश्य वर्णके संस्रवसे माहिष्य, अम्बष्ठ, करण, रथकार और मूर्द्धकण्टक, ये पांच अनुलोमज हैं और अन्त्यावसायी, आयोगव, धीवर, पुक्कश, वैदेह, मागध और रामक ये ७ प्रतिलोमज सङ्करजातियोंकी उत्पत्ति हुई थी। अथच कर्मकार, कांस्यकार, कुम्भकार, चित्रकार, पर्णकार, या पर्णजीवी, शङ्खकार, स्वर्णकार, सूत्रकार, स्थपति और नाना प्रकारके व्यवसायी वणिक् भी स्वतंत्र जाति नहीं गिने जाते। इसमें सन्देह नहीं, कि इन सब वृत्ति-जीवियोंमें बहुतेरे वैश्य समाजके अन्तर्भुक्त थे, किन्तु वे उस समय एक एक भिन्न जाति नहीं कहे जाते थे। सम्भवतः उक्त जनसाधारण वैश्यवर्णोचित आर्य धर्मका ही आश्रय ले कर चलते थे। प्रायः ३००० वर्ष पहले तक भारतमें ऐसी ही व्यवस्था थी। इसके बाद भारतवर्षमें सौर, जैन और बौद्धप्रभाव विस्तृत हुए। प्रजासाधारण या वैश्यसमाज प्रधानतः नव प्रवर्त्तित धर्मसम्प्रदायके पृष्ठपोषक हुआ था।

क्षत्रियसमाज भी उनके अनुकूल ही था, किन्तु उक्त सम्प्रदायके साथ वैदिक आचार्यांके यथेष्ट मतभेद हो जानेसे आर्यसमाजमें प्रथमतः एक घोरतर समाज विप्लव उपस्थित हुआ था। इस समय जनसाधारणने क्षत्रियको ही ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ माना। नाना प्राचीन जैन और बौद्धोंके ग्रन्थोंसे उस समयके जनसाधारणका मत मालूम होता है। भारतवर्ष शब्दमें देखो। इस समय क्षत्रिय और वैश्य-समाज प्रचलित आचार-व्यवहारमें भी कुछ परिवर्त्तन हो रहा था। साधारणका विश्वास है, कि क्षत्रिय-प्राधान्यमें ही जैन और बौद्धोंका अभ्युदय है। अवश्य ही क्षत्रियके ज्ञानबल और बाहुबलसे उक्त समय धर्मकी प्रतिष्ठा हुई थी, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु वैश्यके अर्थबलने भी इन दो साम्प्रदायिक धर्मोंका सुप्रतिष्ठित करनेके पक्षमें यथेष्ट साहाय्य किया था। वणिक् शब्दसे धनवान् और वैश्य जाति समझी जाती थी। वणिक् और पणिक वैश्य शब्दका पर्याय है। वैदिक समयसे यह वर्ण वाणिज्यके लिये सभ्यजगत्‌में सभी जगह जाता और व्यवसाय वाणिज्य कर पैसा कमाता था।

आदि सभ्यजगत्‌के इतिहासमें फिणक् (Phoenician) नामक जो प्राचीन वणिक् जातिका उल्लेख हम पाते हैं, ऋक्‌संहितामें वे ही पणि नामसे प्रथित हैं। उस आदि वैदिक युगसे ही वे गो-रक्षा, कृषि और वाणिज्य अर्थात् मुख्य वैश्यवृत्ति द्वारा ही जीविका-निर्वाह करते थे।

सार्थवणिक् देश और विदेशमें समुद्रपथसे नाना स्थानोंमें जा कर चीजोंकी खरीद फरोख्त करते थे। वेद देखो।

ऋक्‌संहिताके १।५६।२ मन्त्रमें धनार्थी पणियोंके समुद्रगमनके और ५।२४।७ मन्त्रमें आहरणका उल्लेख है। उक्त वेदके ४।२४।६ मन्त्रमें द्रव्यमूल्य और क्रयविक्रय (खरीद फरोख्त)की प्रथाका आभास पाया जाता है।

अथर्ववेदसे भी हम जानते हैं, कि वैदिक युगमें

* गौतम धर्मसूत्रके मतसे—१ अम्बष्ठ, २ उग्र, ३ करण, ४ चण्डाल, ५ दौष्मन्त, ६ धीवर, ७ निषाद, ८ पारशव, ९ पुक्कश, १० वैण, ११ मूर्द्धकण्टक, १२ मागध, १३ माहिष्य, १४ मूर्द्धावसिक्त, १५ यवन, १६ सूत।

† वशिष्ठ धर्मसूत्रके मतसे—१ अन्त्यावसायी, २ अम्बष्ठ, ३ उग्र, ४ चण्डाल, ५ निषाद, ६ पारशव, ७ पुक्कश, ८ वैण, ९ रामक और १० सूत।

बौधायन धर्मसूत्रके मतसे—१ अम्बष्ठ, २ आयोगव, ३ उग्र, ४ कुक्कुटक, ५ चण्डाल, ६ निषाद, ७ पारशव, ८ पुक्कश, ९ वैण, १० मागध, ११ रथकार, १२ श्वपाक, १३ सूत, १४ क्षत्ता।

ब्राह्मणसे ही विवाह हो और उसके गर्भसे भी कन्या उत्पन्न हो, तो इस तरह षष्ठकन्या सप्तम पुरुषमें ब्राह्मण जन्मा सकेगी। ब्राह्मण द्वारा शूद्रासे उत्पन्ना कन्या अम्बष्ठा होती है, किंतु उपरोक्त प्रकारसे यह कन्या भी षष्ठ पुरुषमें ब्राह्मण उत्पन्न कर सकती है। इस क्षत्रिय विवाहिता उग्रा या माहिष्या यथाक्रम षष्ठ या पञ्चम पुरुषमें क्षत्रिय उत्पादन करती है।

पुराणमें भी हम वेदस्मृतिवचनोंके समर्थक अनेक प्रमाण पाते हैं। कितने ही क्षत्रियराजवंश वैश्यत्व प्राप्त हुए हैं और कितने ही वैश्य कर्मवलसे ब्राह्मणत्व लाभ कर चुके हैं।

सब प्रधान पुराणोंमें क्षत्रियराज नेदिष्ट या दिष्टके पुत्र नाभाग हैं। विष्णु और भागवतपुराणके मतसे नाभागने कर्मके अनुसार ही वैश्यत्व प्राप्त किया था।

"नाभागो दिष्टपुत्रोऽन्यः कर्मणा वैश्यतां गतः ॥"

(भागवत ९।२।२३)

मार्कण्डेयपुराणके अनुसार नाभाग वैश्यकन्याका पाणिग्रहण कर वैश्यत्व प्राप्त हुए थे। फिर हरिवंशमें लिखा है, कि नाभागारिष्टके दो पुत्र वैश्य हो कर भी ब्राह्मणत्व प्राप्त हुए थे।

"नाभागारिष्टपुत्रौ द्वौ वैश्यौ ब्राह्मणतां गतौ।"

(हरिवंश ११ अ०)

मत्स्यपुराणसे जाना जाता है, कि भलन्द, वन्द्य और संस्कृति ये तीन आदमी वैश्य वेदके मंत्र प्रकाश करते हैं* ।

महाभारतमें भगवान् व्यासने भी लिखा हैः—

"भार्याश्चतस्रो विप्रस्य द्वयोरात्मा प्रजायते ।
आनुपूर्व्याद्द्वयोर्हीनौ मातृजात्यौ प्रसूयतः ॥ ४
तिस्रः क्षत्रियसम्बन्धाद्द्वयोरात्मास्य जायते ।
हीनवर्णास्तृतीयां शूद्रा उग्रा इति स्मृतिः ॥ ७
द्वे चापि भार्ये वैश्यस्य द्वयोरात्मास्य जायते ।
शूद्रा शूद्रस्य चाप्येका शूद्रमेव प्रजायते ॥" ८

ब्राह्मणोंके लिये चार वर्णोंकी भार्या विहित है। इन चार भार्याओंमेंसे जो ब्राह्मणकन्या और क्षत्रियकन्यासे उत्पन्न हैं, वे उनको आत्मा या तत्सदृश ब्राह्मण ही होते हैं। इसके बाद अनुलोमक्रमसे अन्यान्य दो पत्नियों (अर्थात् वैश्य और शूद्रकन्या)के गर्भसे उत्पन्न पुत्र मातृजाति (वैश्यकन्याका पुत्र वैश्य और शूद्रकन्याका पुत्र शूद्र) होता है। इस तरह क्षत्रियके तीन (क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा) भार्याओंमें प्रथम दो अर्थात् क्षत्रिय और वैश्यकन्याके गर्भसे उत्पन्न पुत्र क्षत्रिय और तृतीय हीन वर्ण शूद्राके गर्भसे उत्पन्न उग्र शूद्र गिना जाता है। वैश्यके भी (वैश्या और शूद्रा) दो भार्या निहित हैं। इन दोमें ही उनकी आत्मा या तत्सदृश वैश्य वर्ण जन्मता है। शूद्रके लिये एक शूद्रा ही निर्दिष्ट और उसमें शूद्र वर्ण ही जन्मते हैं।

मनुस्मृतिमें लिखा है, कि पशुपालन, कृषि और वाणिज्य वैश्यकी जीविका है। दान, याग और अध्ययन इनका धर्म है। वैश्यके सत्कर्मोंमें वाणिज्य और पशुपालन ही प्रशस्त है आपत्काल उपस्थित होने पर वैश्य शूद्रवृत्ति द्वारा जीविका अर्जन कर सकता है। किन्तु जब आपद्से मुक्त हो जायेगा, तब उनको शूद्रवृत्ति छोड़ देनी होगी। वैश्योंका उपनयन संस्कार होता है। इसीसे यह द्विजाति कहे जाते हैं। इनका वेदमें अधिकार है। गर्भकालसे गणना कर १२ वर्ष पर उपनयन होना चाहिये। यदि इस समय वैश्योंका उपनयन न हो, तो २४ वर्ष तक उपनयन हो सकता है। इस २४ वर्षके भीतर किसी समय भी उपनयन हो सकता है। २४ बीत जाने पर इनको पतितसावित्रीक होना पड़ता है। अतएव इनको इस समयके भीतर ही उपनयन करा डालना एकान्त कर्त्तव्य है। इनका अशौच पन्द्रह दिनका है। (मनु)

विष्णुसंहितामें लिखा है, कि गर्भाधानसे ले कर श्राद्धपर्यन्त वैश्योंके सब काम वेदमन्त्रोंसे ही होते हैं। वैश्योंका धर्म, यजन, अध्ययन और पशुपालन है। वृत्ति— कृषि, वाणिज्य, गोपोषण, कुसीदग्रहण और धान्यादि बीज रखना। आपद्काल उपस्थित होने पर वैश्य अन्य वृत्ति अर्थात् शूद्रवृत्तिसे भी अपनी जीविका चला सकता है। क्षमा, सत्य, दम, शौच, दान, इंद्रियसंयम,

* "भलन्दश्चैव वन्द्यश्च संस्कृतिश्चैव ते त्रयः
ते च मन्त्रकृतो ज्ञेयाः वैश्यानां प्रवराः सदा ।
इत्येकनवतिः प्रोक्ताः मन्त्राः यैश्च बहिष्कृताः" ...;
(मत्स्यपु० १३२ अ०)

अहिंसा, गुरुसेवा, तीर्थ पर्य्यटन, दया, सरलता, लोभ-त्याग, देवब्राह्मणपूजा और असूया परित्याग, ये ही इनके सामान्य धर्म हैं। (विष्णुसं० ३ अ० ।

धर्मसूत्रमें हम पहले विभिन्न वर्णके संस्रवसे भिन्न भिन्न जातिकी उत्पत्ति और विस्तृति देखते हैं। फिर भी उस समय भी यहांकी तरह सहस्र सहस्र जातिकी सृष्टि नहीं हुई। मूल वर्णको छोड़ कर वशिष्ठधर्मसूत्रमें १०, बौधायन-धर्मसूत्रमें १४ और गौतम धर्मसूत्रमें १६ मिश्र जातियोंका उल्लेख दिखाई देता है*। धर्मसूत्रमें कुल चार मूल वर्ण हैं और २४ मिश्र जातियोंका उल्लेख है।† इन २४ में वैश्य वर्णके संस्रवसे माहिष्य, अम्बष्ठ, करण, रथकार और मूर्द्धकण्टक, ये पांच अनुलोमज हैं और अन्त्यावसायी, आयोगव, धीवर, पुक्कश, वैदेह, मागध और रामक ये ७ प्रतिलोमज सङ्करजातियोंकी उत्पत्ति हुई थी। अथच कर्मकार, कांस्यकार, कुम्भकार, चित्रकार, पर्णकार, वा पर्णजीवी, शङ्खकार, स्वर्णकार, सूत्रकार, स्थपति और नाना प्रकारके व्यवसायी वणिक् भी स्वतन्त्र जाति नहीं गिने जाते। इसमें सन्देह नहीं, कि इन सब वृत्ति-जीवियोंमें बहुतेरे वैश्य समाजके अन्तर्भुक्त थे, किन्तु वे उस समय एक एक भिन्न जाति नहीं कहे जाते थे। सम्भवतः उक्त जनसाधारण वैश्य-वर्णोचित आर्य्य धर्मका ही आश्रय ले कर चलते थे। प्रायः ३००० वर्ष पहले तक भारतमें ऐसी ही व्यवस्था थी। इसके बाद भारतवर्षमें सौर, जैन और बौद्ध-प्रभाव विस्तृत हुए। प्रजासाधारण या वैश्यसमाज प्रधानतः नव प्रवर्त्तित धर्मसम्प्रदायके पृष्ठपोषक हुआ था।

क्षत्रियसमाज भी उनके अनुकूल ही था, किन्तु उक्त सम्प्रदायके साथ वैदिक आचार्य्योंके यथेष्ट मतभेद हो जानेसे आर्य्यसमाजमें प्रथमतः एक घोरतर समाज विप्लव उपस्थित हुआ था। इस समय जनसाधारणने क्षत्रियको ही ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ माना। नाना प्राचीन जैन और बौद्धोंके ग्रन्थोंसे उस समयके जनसाधारणका मत मालूम होता है। भारतवर्ष शब्दमें देखो। इस समय क्षत्रिय और वैश्य-समाज प्रचलित आचार-व्यवहारमें भी कुछ परिवर्त्तन हो रहा था। साधारणका विश्वास है, कि क्षत्रिय-प्राधान्यमें ही जैन और बौद्धोंका अभ्युदय है। अवश्य ही क्षत्रियके ज्ञानबल और बाहुबलसे उक्त समय धर्मकी प्रतिष्ठा हुई थी, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु वैश्यके अर्थबलने भी इन दो साम्प्रदायिक धर्मका सुप्रतिष्ठित करनेके पक्षमें यथेष्ट साहाय्य किया था। वणिक् शब्दसे धनवान् और वैश्य जाति समझी जाती थी। वणिक् और पणिक वैश्य शब्दका पर्याय है। वैदिक समयसे यह वर्ण वाणिज्यके लिये सभ्यजगत्में सभी जगह जाता और व्यवसाय वाणिज्य कर पैसा कमाता था।

आदि सभ्यजगत्के इतिहासमें फिनिक् (Phoenician) नामक जो प्राचीन वणिक् जातिका उल्लेख हम पाते हैं, ऋक्संहितामें वे ही पणि नामसे प्रथित हैं। उस आदि वैदिक युगसे ही वे गो रक्षा, कृषि और वाणिज्य अर्थात् मुख्य वैश्यवृत्ति द्वारा ही जीविका-निर्वाह करते थे।

सार्थवणिक् देश और विदेशमें समुद्रपथसे नाना स्थानोंमें जा कर चीजोंकी खरीद फरोख्त करते थे। वेद देखो।

ऋक्संहिताके १।५६।२ मन्त्रमें धनार्थी पणियोंके समुद्रगमनके और ५।२४।७ मन्त्रमें आहरणका उल्लेख है। उक्त वेदके ४।२४।६ मन्त्रमें द्रव्यमूल्य और क्रय-विक्रय (खरीद फरोख्त)की प्रथाका आभास पाया जाता है।

अथर्ववेदसे भी हम जानते हैं, कि वैदिक युगमें

* गौतम धर्मसूत्रके मतसे—१ अम्बष्ठ, २ उग्र, ३ करण, ४ चण्डाल, ५ दौष्यन्त, ६ धीवर, ७ निषाद, ८ पारशव, ९ पुक्कश, १० वेण, ११ मूर्द्धकण्टक, १२ मागध, १३ माहिष्य, १४ मूर्द्धाविसिक्त, १५ यवन, १६ सूत।

† वशिष्ठ धर्मसूत्रके मतसे—१ अन्त्यावसायी, २ अम्बष्ठ, ३ उग्र, ४ चण्डाल, ५ निषाद, ६ पारशव, ७ पुक्कश, ८ वेण, ९ रामक और १० सूत।

बौधायन धर्मसूत्रके मतसे—१ अम्बष्ठ, २ आयोगव, ३ उग्र, ४ कुक्कुटक, ५ चण्डाल, ६ निषाद, ७ पारशव, ८ पुक्कश, ९ वेण, १० मागध, ११ रथकार, १२ श्वपाक, १३ सूत, १४ क्षत्ता।

वाणिज्य उद्देश्यसे विदेश जानेके समय वणिक अपनी मङ्गलकामनाके लिये इन्द्र, अग्नि आदि देवताओंकी स्तुति करते थे। इन सब मन्त्रोंमें क्रय-विक्रय और लाभकी बातें प्रकट हुई हैं।

कृषिवृत्तिके सम्बन्धमें भी ऋग्वेदमें भी बहुतेरे प्रमाण मिलते हैं। ऋक् संहिताके १।८३।१५ मंत्रमें कृषक द्वारा बैलकी सहायतासे जौकी खेती करनेकी बात मिलती है। उक्त संहिताके ४र्थ मण्डलके ५७ सूक्तमें क्षेत्रपतिकी स्तुतिके प्रसङ्गमें बलीवर्द ले कर कृषकों द्वारा भूमिकर्षण और बलीवर्द ले कर हल और उसके फालसे (फार) सुखपूर्वक भूमि पर गमन और पर्जन्य द्वारा मधुर जलसे पृथ्वीके जलमयी होनेकी बात विवृत हुई है। सिवा इसके १०।१०१ सूक्तमें कृषिकार्य-विषयक अनेक तथ्य मिलते हैं।

वैदिक आचार्य बड़े ही मांसप्रिय थे। किन्तु वणिगण एक समयमें निरामिषी थे, इसीसे शुरूसे ही इन दोनों श्रेणियोंमें बहुत मतविरोध था।

यद्यपि वणिकोंको पाश्चात्य-भूखण्डमें वाणिज्य-प्रसङ्गमें आर्यसभ्यता विस्तार और सुविस्तृत राज्य-प्रतिष्ठामें सुयोग मिलता था, किंतु उनकी जन्मभूमि भारतवर्षमें उनके साथ आचार्य और याज्ञिक राजन्य-वर्ग द्वारा पहले उपयुक्त अच्छा व्यवहार नहीं हुआ था। ऋग्वेदके ऐतरेय-ब्राह्मणसे ही उद्धृत करते हैं—

'ते प्रजाया आजनिष्यतेऽन्यस्य बलिकृदन्यस्याद्यो यथा-कामज्येयः"* (७।५।३)

अर्थात् करप्रदान, पराधीनता और तिरस्कार-भागिता ये वैश्योंके गुण वेदके प्राचीनतम ब्राह्मणमें निर्दिष्ट हुए हैं। राजाको वैश्य कर प्रदान करेंगे और उसके अधीन रहेंगे, यह अवश्य न्याय है, किंतु वे तिरस्कारभागी होंगे क्यों? यह क्या वैश्योंके प्रति बलिप्रिय ब्राह्मणकारकी विद्वेषदृष्टि नहीं? साधारण कृषिसमाज पर कृपादृष्टि रहने पर भी परवर्ती स्मृति, पुराण और नाना संस्कृत ग्रंथोंसे भी वणिक् या प्रकृत वैश्यसमाज पर बराबर ब्राह्मणशास्त्रकारगणकी कृपा-दृष्टिका अभाव था।

जो हो, क्षत्रिय राजाओंके दक्षिण हस्तस्वरूप श्रेष्ठी (सेठ) या धनी वणिक्गण राजा द्वारा वैसा निग्रह-भागी नहीं हुए। राजसभामें वे बहुत सम्मान पा गये हैं।

नाना जैन, बौद्ध और शैवग्रन्थोंमें इसका यह यथेष्ट प्रमाण है, कि वैश्य वणिकोंसे शैव, सौर, जैन या बौद्ध-धर्म विशेषरूपसे परिपुष्ट हुए थे। उनके यत्नसे बौद्ध-धर्म भारतवर्षको छोड़ बहुत दूर देशान्तरोंमें प्रचारित हुआ था। उनके द्वारा प्रतिष्ठित नाना शैव और बौद्ध देवोंके मन्दिर केवल भारतवर्षमें नहीं सुदूर चीन, कम्बोज, यवद्वीप, सुमात्रा आदि भारत महासागरीय द्वीपों और उपद्वीपोंमें सुशोभित हुए थे। आनाम, श्याम, कम्बोज, सिंहल आदि स्थानोंमें उन सब प्राचीन वणिकोंके वंशधरगण आज भी वास कर रहे हैं। श्याम देशके इतिहास-लेखक वाउरिङ्ग साहबने लिखा है—

"The forefathers of these people (of Anam, Siam, Cambodge) came from the Ganges valley, and probably they were the people of Bengal....The cut of the face is like that of a Bengali..At one time Cambodia was a powerful Hindoo kingdom and the Bengali merchants and traders used to frequent the Island....The descendants of the Bengali Baniks (traders and navigators) are found in Ceylon, Siam, Anam and Borneo."•

पहले ही देखा चुके हैं, खेतिहर और वणिक् इन दो श्रेणियोंके मनुष्योंसे ही वैश्य-समाज या प्रजासाधारण था। इनसे कर ले कर राजा राजत्व करता था। कारण शूद्रोंसे कर वसूल करनेकी प्रथा ही न थी।

* सायणाचार्यने इस तरह भाष्य किया है—"वैश्यश्च वाणिज्यं कुर्वन् अन्यस्य राज्ञो बलिकृत् बलिपूजां करोति, करं प्रयच्छतीत्यर्थः। अतएव अन्यस्य राज्ञः आद्यः भक्ष्योऽधीनो भवतीत्यर्थः। तस्य राज्ञः काममिच्छामनतिक्रम्य ज्येयः अभि-भवनीयो भवति। ज्या अभिभवे इति धातुः। त एते करप्रदान पराधीनत्वतिरस्कार्यत्वाख्या वैश्यगुणाः।" (सायण ७,५।३)

• Bowring's Siam, Vol II

गौतम-धर्मसूत्रसे हम जानते हैं, कि कृषक राजाको एक दशमांश, एक अष्टमांश या एक षष्ठांश कर देते थे। गाय आदि पशु और सुवर्ण पर ५०वां अंश, पण्यद्रव्य पर शुल्क हिसाबसे २० अंश, मूल फल, फूल, मेवज लता गुल्म आदि, मधु, मांस, तृण और जलानेकी लकड़ी पर ६०वां अंश कर वसूल होता था। कर्मकार और शिल्पियोंको मासमें एक दिन राजाका काम कर आना पड़ता था।

पाटलिपुत्रवासी यूनानी दूत भारतीय प्रजासाधारणके सम्बन्धमें दो हजार वर्ष पहले लिख गया है—

"They live happily enough, being simple in their manners and frugal. They never drink wine, except at sacrifices. Their beverage is a liquor composed from rice instead o barley, and their food is principally a rice pottage. The simplicity of their laws and their contracts is proved by the fact that they seldom go to law. They have no suits about pledges and deposits, nor do they require either seals or witnesses, but make their deposits and confide in each other. Their house and property they generally leave unguarded. These things indicate that they possess sober sense. Truth and virtue they hold alike in esteem. Hence they accord no special privileges to the old unless they possess superior wisdom."†

इस समयके कुछ दिनों बादके रचे जैनियोंके 'उपाशकदशा सूत्र'से मालूम होता है, कि आनन्द नामक एक वैश्य गृहस्थ था। जैनधर्मके अनुसार यतिधर्म न ग्रहण करने पर भी पञ्च अनुव्रत उसने ग्रहण किया था। उसने सब तरहकी जीवहिंसा, सब प्रकारकी मिथ्या प्रवञ्चना (ठगना) एक समयमें ही छोड़ दी थी। वह शिवनन्दा नामकी एक स्त्रीसे प्रेम करता था। ४ करोड़ सुवर्ण उनके कोषागारमें रक्षित था, ४ करोड़ कुसीदके लिये चल रहा था और ४ करोड़ सोनेकी जमींदारी भी थी। यही उसकी आयकी सीमा थी। अब इस धनको बढ़ानेकी इच्छा उसको न थी। इसके छोड़ उसके पास ४ दल गो भैंसें थीं। एक दलमें १०००० गाय भैंस होती थीं। ५०० हल और प्रत्येक हल पर उपयुक्त १०० निवर्त्तन जमीन थी। ५०० शकट, इसके सिवा जलपथसे वैदेशिक वाणिज्यके लिये चार जहाज और देशके व्यवसायके लिये दूसरे ४ जहाज मौजूद रहते थे।

उपासकसूत्रसे जिस एक सामान्य वणिक्‌का परिचय दिया गया, उससे समझना होगा, कि भारतीय वैश्यसमाज किस तरह उन्नत था। मृच्छकटिक नाटकसे भी राजधानीमें "श्रेष्ठी चत्वर" पाते हैं। यहां धनकुबेर वास करते थे। भारतके सभी बड़े शहरोंमें उनकी कोठियां थीं। कई तरहके जवाहर, नाना प्रकारके रेशमी और मूल्यवान् द्रव्य और स्तूपाकार धनराशि बहुजनपूर्ण शहरकी निभृत गलियोंकी अन्धकारपूर्ण कोठीमें पड़ी रहती थी प्रयोजन होने पर राजाधिराजको भी उनसे कर्ज लेना पड़ता था। उनको अहङ्कार और गौरवस्पृहा न थी, वे स्वजातिपोषण, प्रकाण्ड प्रकाण्ड देवालय स्थापन और देवगुरुमें भक्तिप्रदर्शन द्वारा अक्षय नाम अर्जन कर गये हैं। आज भी उनके वंशधर श्रेष्ठियोंमें भी वह पूर्वस्मृति जागरित है। भारतवर्षके सब जैन तीर्थ आज भी इस उदार चरित श्रेष्ठियोंके यत्न और व्ययसे विद्यमान हैं। आज भी सैकड़ों जैन और हिन्दू देवालय भारतीय वणिक् समाजके महत्त्वकी घोषणा कर रहे हैं। उन सब श्रेष्ठी और शिल्पियोंके प्रभावसे पाश्चात्य जगत् भी चमत्कृत हुआ था। ऐतिहासिकोंने लिखा है—

"These artists are marked all through the known world, and the products of their skill were appreciated in the court of Harun-al-Rashid in Baghdad, and astonished the great Charlemagne and his rude barons, who as an English poet has put it; raised their visors and looked with wonder on the silks

† Bohn's Translation of Strabo, Vol, III

and brocades and jewellary which had come from the far East to the infant trading marts of Europe "¶

प्राचीन वैश्य समाजका विशेषत्व—सरलता और आडम्बर हीनता, लक्ष्य—वाणिज्य और कृषि। जिन करोड़पति आनन्दकी बात हम पहले कह आये हैं, उन आनन्दका आहार-व्यवहार नितान्त सामान्य था। किसी विषयमें उनके सुख भोगकी लालसा न थी, उनके नित्य आवश्यकीय खाद्य और व्यवहार्य्य द्रव्यकी जो सूची उक्त जैन शास्त्रकारने उद्धृत की है, वह यहां उद्धृत कर दी गई।

"आनन्द नित्य निद्रा त्याग कर लाल गमछा और ताजा दतवन ले कर मुख धोते थे। इसके बाद एक फल और आंवलेका श्वेतांश गूदा भक्षण कर दो तरहके तैल शरीरमें मालिश कराते थे। इसके बाद शरीरमें एक प्रकारका सुगन्धित चूर्ण लेप कर ८ घड़े जलसे शरीर धो कर एक जोड़ा सूती कपड़ा पहनते थे। उन के नित्य व्यवहारके लिये कुंकुम, चन्दन, मुसब्बर, कस्तूरी आदि द्रव्य अङ्गमें लेपन करते और घरमें धूप आदि जलाते थे। उनकी पूजाके लिये श्वेत पद्म और दूसरे एक तरहका फूल आता था। उनके कानमें अलङ्कार और हाथमें अंगूठी थी।

"खाद्य द्रव्यके उपभोगमें भी वे विशेष आडम्बरी नहीं थे। कई तरहके शीतल पानीय, चावल दालकी खिचड़ी, घीमें पकाया चीनीकी चासनीमें डुबोया पीठा, नाना प्रकारके चावलका अन्न, उड़द, मूंग और सोना मूंगकी दाल, शरत्ऋतुका संगृहीत गायका घी, साधारण व्यञ्जन आदि और पलङ्ग उनके नित्यका व्यवहार्य्य था। सुपरिस्कृत पानीयके लिये वे वृष्टि-जल धरते थे। पांच तरहके मसालोंका पान उनकी मुखशुद्धिके लिये प्रस्तुत होता था।" (उपासकदशासूत्र)

एक करोड़पतिका कैसा सरल और आडम्बरहीन आचरण है! इसीलिये ही भारतीय वणिक्गण समय पर महान् और साधु आख्यासे अभिहित हुए थे। वैश्य साधारणमें क्या क्या व्यवसाय करते थे और उनमें कौन निन्दित और कौन उत्तम था, मनुसंहिताके आपद्धर्ममें उसका कुछ आभास मिलता है।

मनुसंहिताके दशवें अध्यायमें लिखा है—ब्राह्मण और क्षत्रियोंकी अपनी वृत्तिकी असम्भावना होने पर और धर्मनिष्ठामें व्याघात होने पर निषिद्ध वस्तु परित्यागपूर्वक वैश्यके विक्रेतव्य वस्तुजात विक्रय कर जीविका निर्वाह करे। किन्तु उनके लिये सब तरहके रस, तिल, प्रस्तर, सिद्धान्न, लवण, पशु और मनुष्य इन सब द्रव्योंका विक्रय निषेध है। कुसुम्भादि द्वारा रक्त वर्णका सूत निर्मित सब तरहके वस्त्र, शण और अतसी तन्तुमय वस्त्र और रक्तवर्ण न होने पर भी मेषलोमविनिर्मित कम्बल आदि भी विक्रय करना निषेध है। जल, शस्त्र, विष, मांस, सोमरस, सब तरहके गन्धद्रव्य, क्षीर, दधि, सोम, घृत, तैल, मधु, गुड़ और कुश—ये सब वस्तुएं भी निषेध हैं। सब तरहके आरण्य पशु, विशेषतः हाथी या दंष्ट्री पशु अखण्डित खुर अश्वादि, इनके अलावे पक्षी, नील, मद्य और लाह—ये सब चीजें भी विक्रय करना मना है। स्वयं कर्षण द्वारा तिल उत्पादन पूर्वक अचिरकालमें विशुद्धावस्थामें बेच सकता है। किन्तु लाभकी आशासे अधिक दिन घरमें रख छोड़ कर फिर वह उसे बेच न सकेगा। भोजन, मर्दन एवं दान को छोड़ यदि कोई तिल बेचे, तो वह पितृपुरुषोंके साथ कृमित्व प्राप्त हो कर कुक्कुरविष्ठामें निमग्न होता है। ब्राह्मण मांस, लवण और लाह बेचते ही पतित होता है। किन्तु दुग्ध क्रमागत तीन दिनों तक बेचनेसे शूद्रत्व प्राप्त होता है। मांस आदिको छोड़ अन्यान्य निषिद्ध वस्तुओंको लगातार सात दिनों तक बेचने पर ब्राह्मण वैश्यत्व को प्राप्त होता है। रसद्रव्य लिया जा सकता है, किन्तु रसद्रव्यके साथ लवणका परिवर्त्तन नहीं होता। सिद्धान्न का विनिमय आमान्नके साथ हो सकता है, किन्तु समान परिमाणसे।

ब्राह्मणके आपद्कालकी जो जीविका कीर्त्तित हुई, क्षत्रिय भी वैसी ही जीविकासे अपना

¶ R, C, Dutt's *Civilisation in Ancient India*, Vol, II p, 312

निर्वाह करें। किन्तु वह कभी भी विप्रवृत्ति अवलम्बन कर न सकेंगे। यदि कोई अधम जातीय व्यक्ति उत्तम व्यक्तियोंकी वृत्तिसे अपनी जीविकानिर्वाह करे, तो राजाका कर्त्तव्य होगा, कि उसकी सम्पत्ति जब्त कर उसको देशसे निकाल दे। स्वधर्म निकृष्ट होने पर भी लोगोंके अनुष्ठेय नहीं। आत्यन्तर धर्म द्वारा जीवन धारण करने पर भी मनुष्य तत्क्षणात् स्वजातिसे परिभ्रष्ट होता है। वैश्य स्वधर्म द्वारा जीविका निर्वाहमें असमर्थ होने पर झूठा भोजनादि अनाचार परिहार पूर्वक द्विजशुश्रूषादि द्वारा जीविका निर्वाह करें। किन्तु आपद्मुक्त होने पर शूद्रवृत्ति त्याग कर दे।

मनुवचनोंसे मालूम है, कि वैश्य निम्नलिखित चीजोंका व्यवसाय करते थे—

सब तरहके रस, (गुड़, अनार, आंवला, किरात तिक्त आदि), सिद्धान्न (तण्डुलादि), तिल, पाषाण, लवण, कई तरहके पशु, मनुष्य, सब तरहके तांतके कपड़े, लाल वस्त्र, शणका कपड़ा, क्षौम वस्त्र, कम्बल आदि, फल मूल, ओषधि, जल, लौह, विष, सोमरस, क्षीर, दधि, घी, तैल, गुड़, कुश, कर्पूर आदि सुगन्धित द्रव्य, मद्य, माक्षिक, मधु, मोम, शस्त्र, आसव, सब तरहके वन्य पशु, दंष्ट्री या वन्य शूकर आदि, पक्षी, सब तरहके घोड़े, गदहे, खच्चर आदि, नील, लाह, इत्यादि। किन्तु इन सबोंमें कई चीजोंका व्यवसाय श्रेष्ठ वणिकोंके लिये निन्दित था, विशेषतः तैल, दुग्ध, लाह, लवण, मांस, गुड़ और सिद्धान्न जो विक्रय करते थे, वे हेय समझे जाते थे—इसलिये आपद्कालमें भी ब्राह्मण, क्षत्रिय कभी भी उक्त चीजोंका व्यवसाय न करें।

साधारणतः शूद्र जातिके लिये द्विजसेवाको छोड़ अन्य वृत्तियोंका निषेध होने पर भी विपन्न शूद्र पुत्रदारादिके परिपालनके लिये कारुकार्य और शिल्प कर्म कर सकता था। (मनु १०।९९) यह कारु और शिल्प क्या है? इसके सम्बन्धमें मनुभाष्यकार मेधातिथिने लिखा है:—

"कारुकाः शिल्पिनः सूदतन्तुवायादयस्तेषां कर्माणि पाकवयनादीनि प्रसिद्धानि" अर्थात् कारुकर और शिल्पिगण कहनेसे सूपकार या पाचक, तन्तुवाय आदि समझना होगा। उनके कार्य पाक या वयन आदि हैं।

परवर्त्ती श्लोकके भाष्यमें भी मेधातिथिने लिखा है,—"तक्षकि वर्द्धकि प्रभृतयः कारवस्तेषां कर्माणि तक्षण वर्द्धनादीनि शिल्पानि यत छेद्यरूपकर्माण्यालेख्यानि।"

प्रसिद्ध मनुटीकाकार सर्वज्ञ नारायणने लिखा है, "कारुकाणां विशिष्टकर्मकराणां चित्रकरादीनां"—कारुकरका अर्थ—अधिक कमार और चित्रकर भी समझना चाहिये।

सुतरां देखा जाता है, पाचक,* तन्तुवाय, कमार, चित्रकर या पटुआ प्रभृतिका कार्य भी वैश्य या द्विजातिवृत्ति नहीं थी—वह शूद्रवृत्ति थी।

अब समझमें आया, कि कृषि द्वारा सब तरहके अन्न उत्पादन करना, गौ मेंसका पालन और अर्थकरी अन्तर्वाणिज्य और बहिर्वाणिज्य ही वैश्य जातिकी उपजीविका है। आश्चर्यका विषय है, कि कृषि और गोरक्षा वैश्य जातिको प्रधान वृत्ति कही जाने पर भी समय पर यह वृत्ति हीनवृत्ति गिनी जाती थी। उसका कारण क्या? मनुसंहितामें देखते हैं—

ब्राह्मण और क्षत्रियको यदि वैश्यवृत्ति द्वारा ही जीविका निर्वाह करना हो, तो दोनों ही हिंसा बहुल बलीवर्दादि पश्वाधीन कृषिकार्य यत्नपूर्वक छोड़ दें। यद्यपि कोई कोई कृषिकी प्रशंसा करते हैं, फिर भी, यह सज्जननिन्दित है। क्योंकि, हलकी नोकसे जमीनमें

* इस समय इस पाचकवृत्तिको ब्राह्मणोंने अपनाया है, किन्तु वास्तविकमें है यह शूद्रवृत्ति। शूद्र जातिमें कौन कौन पाचक हो सकता है अर्थात् किस किसके हाथका सभी द्विजाति भोजन कर सकते हैं, सब स्मृतियोंमें उसका भी उल्लेख है। जैसे—

मनु—"आर्द्धिकः कुलमित्रश्च गोपालो दासनापितौ।
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत्॥"

(४।२।५३)

याज्ञवल्क्य—शूद्रेषु, दासगोपालकुलमित्रार्द्धसीरिणः।
भोज्यान्ना नापितश्चैव यश्चात्मानं निवेदयेत्॥

(१।१६६)

यमसंहिता—(२०) और पराशरसंहितामें—(११।२०) ऐसे श्लोक दिखाई देते हैं।

तृण जलूका आदि प्राणी मर जाते हैं। (१०।८३-८५)

जिस दिन आर्यसमाजमें कृषिकार्य इस तरह निन्दित हुआ, उसी दिनसे ही वैश्यवर्णकी प्रधान उपजीविका कृषिवर्जनका सूत्रपात हुआ। जो कृषि-वृत्ति वेदवेदाङ्गमें और धर्मसूत्रमें अत्यन्त प्रशस्त गिनी गई है, राजर्षि जनक आदि बहुतेरे आर्य ऋषियोंने समादरसे कृषिकार्य किया था, वह कृषिवृत्तिके निन्दित होनेका क्या कारण है? आश्चर्यका विषय है, कि मानवकल्पसूत्रमें, मानवश्रौतसूत्रमें या मानवगृह्यसूत्रमें ऐसी व्यवस्था न रहने पर भी भृगुप्रोक्त मनुसंहितामें ऐसी बातके स्थान पानेका क्या कारण है? इसमें सन्देह नहीं, कि यह जैन और बौद्धोंके प्रभावका ही फल है। "अहिंसा परमो धर्मः" रूपी मूलमन्त्रमें दीक्षित होनेके साथ वैश्य-समाजने भी कृषिवृत्ति छोड़ दी, दधि और दूधका व्यवसाय भी ऊंची श्रेणीके लिये निन्दित समझ कर गोरक्षा, पशुपालन आदि कार्योंको भी वैश्योंने छोड़ दिया।

इन वृत्तियोंके त्यागके संबंधमें बङ्गालके एक बहुभाषाभिज्ञ बहुदर्शी पण्डितने कहा था,—"चार वर्णोंके गठित होनेके पहले वैश्य 'विश्' अर्थात् आर्यप्रजासाधारण रूपसे समाजके सब कर्त्तव्य कार्य्य करते थे। पशुपालन और कृषिकार्य्यका भार उन पर ही था। जीवनयात्रा निर्वाहके सभी कार्य्य और अर्थकरी महाजनोंके कर्म भी वे सम्पादन करते थे। जो सब नीच और दासत्वज्ञापक कार्य्य थे, जिन कामोंमें शारीरिक परिश्रमकी बहुत आवश्यकता होती थी, शूद्रोंकी सृष्टि होनेके बाद उन सब कामोंसे उन्हें फुरसत मिल गई। पीछे नाना मिश्रजातियोंकी सृष्टि होने पर वैश्योंको कारु और शिल्पकर्मोंसे भी अवसर मिल गया। शिल्पकार्य्यका भार सूत्रधर, तन्तुवाय, स्वर्णकार, कर्मकार, कुम्भकार आदि पर अर्पित हुआ। इस समय वैश्य केवल महाजन और वणिकोंका ही काम करनेमें व्यस्त हैं। इसी कारणसे वैश्य वणिक् नामसे ही विख्यात हुए। रामायणकी फलश्रुतिसे भी यह बात स्पष्ट हो जाती है।*

* Rev. K. M. Banarji's Lecture in Bengal Social Science Association.

ईसासे पूर्व ६ठीं शताब्दीसे ४थी शताब्दी तक भारतके जैन और बौद्धधर्म निकट निकट खूब प्रबल-भावसे चल रहे थे। इस समय वैश्यसमाज दोनों सम्प्रदायके दाहने हाथ स्वरूप थे, यह कहनेमें अत्युक्ति न होगी। वैशाली, श्रावस्ती, पाटलिपुत्र, कान्यकुब्ज, उज्जयिनी, सौराष्ट्र, पौण्ड्रवर्द्धन, ताम्रलिप्त आदि बहुजनाकीर्ण और वाणिज्य-प्रधान शहरके प्रत्नतत्त्वसे जो ढेरके ढेर निदर्शन पाये गये हैं, उनसे भारतीय वैश्य समाजकी उन्नत-अवस्थाका परिचय मिलता है।

और तो क्या, ४थी और ५वीं शताब्दीमें वैश्यशक्ति ही क्षत्रियशक्तिको खर्व कर सिर उठानेमें समर्थ हुई थी। जब ब्राह्मण-समाजने देखा, कि जैन और बौद्ध धर्मी क्षत्रिय राजाने ब्राह्मण-शक्तिको विपर्य्यस्त कर दिया है, ब्राह्मणोंके अभ्युदयकी आशा नहीं, तब उन्होंने वैश्य-शक्तिका आश्रय लिया था और तो क्या—एकमात्र क्षत्रियोंके अनुष्ठेय अश्वमेधयज्ञ वैश्यशक्ति द्वारा सम्पन्न करानेमें अग्रसर हुए थे। गुप्त-सम्राट् समुद्रगुप्तकी बात कहते हैं। गुप्तवंशके अभ्युदयके समय ब्राह्मणोंने उनका आश्रय लिया था। उनकी तृप्तिके लिये ही सम्राट् समुद्रगुप्तने* भारतके प्राचीन बौद्ध-राजधानी पाटलीपुत्रमें ब्राह्मण मर्यादा स्थापित करनेके लिये अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान किया था। हिन्दूशास्त्रके मतसे निम्नवर्ण अपने ऊंचे वर्णकी वृत्ति ग्रहण कर नहीं सकता था। इससे ब्राह्मण-शास्त्रकारोंने घोषणा की, कि पृथ्वी निःक्षत्रिय हुई है। इसीसे हम लोगोंने क्षत्रियका काम वैश्यसे कराया। उक्त अश्वमेधयज्ञ भी प्रकारान्तरसे मानो द्वितीय परशुराम द्वारा निःक्षत्रिय-यज्ञ कहनेसे भी अत्युक्ति नहीं

* गुप्तवंश किस वर्णके थे। इस विषयमें कई मत सुने जाते हैं। इसका प्रमाण भी बहुत मिलता है, कि गुप्तवंश वैश्यवर्णके थे। पारस्करगृह्यसूत्रमें लिखा गया है, "शर्म ब्राह्मणस्य वर्म क्षत्रियस्य गुप्तेति वैश्यस्य" (१।१७।४) अर्थात् वैश्यके नामके अन्तमें गुप्त उपाधि रहेगी। जिन्होंने अश्वमेधयज्ञ किया था, वे क्षत्रिय होने पर कभी भी क्षत्रियोचित उपाधि त्याग नहीं करते।

कही जा सकती। वैश्य-सम्राट् समुद्रगुप्तने उस समयके भारतके सब क्षत्रिय-राजवंशको पराजित कर सभीको वशमें कर लिया था। किन्तु इच्छा रहने पर वे उस समय भारतमें स्थायी भावसे धर्म वा ब्राह्मण-प्रतिष्ठा नहीं कर गये। वे एकान्त ब्राह्मणभक्त होने पर भी उनके अन्यान्य आत्मीय स्वजन बौद्धधर्मानुरागी थे। इस कारण उनके वंशधर गुप्तसम्राट्गण ब्राह्मण और श्रमण दोनोंके सम्मानकी रक्षा करने पर बाध्य हुए थे। जो हो, ७वीं शताब्दीके प्रारम्भमें कर्णसुवर्ण अधीश्वर शशाङ्कने ब्राह्मणभक्तिकी पराकाष्ठा और बौद्धविद्वेषका ज्वलन्त दृष्टान्त दिखाया था। उनके ब्राह्मण्य-प्रतिष्ठामें अग्रसर होने पर भी और एक अन्य वैश्य-सम्राट्ने उनका गर्व खर्व करनेके लिये अस्त्र धारण किया था। वह और कोई नहीं,—कन्नौजके हर्षवर्द्धन थे। हर्षवर्द्धन शशाङ्क नरेन्द्रगुप्तको पराजय कर आर्यावर्तके सम्राट् हुए थे। बहुतेरे इन हर्षवर्द्धनको क्षत्रिय वा वैश्य राजपूत कह कर परिचित करनेमें अग्रसर हो रहे हैं। किन्तु इन सम्राट्ने भी अपनेको क्षत्रिय कह कर परिचय नहीं दिया है। इस वंशकी लगातार 'वर्द्धन' उपाधि ही वैश्यवर्णकी परिचायक है।

पहले ही कह आये हैं, कि गुप्तवंशका अभ्युदय सच पूछिये तो वैश्यवर्णका अभ्युत्थान है। इस तरह महाशक्तिलाभ थोड़े ही दिनोंमें नहीं हुआ था। बहुत पहले से धीरे धीरे वैश्य-समाजने शक्तिका सञ्चय किया था, उसीका यह विकाश है। किस तरह वैश्य-समाजने ऐसी महाशक्ति लाभ की थी? इस समय जैसे अंग्रेज वणिक् पृथ्वीके चारों ओर अपनी शक्ति सञ्चालन कर अत्यंत प्रभावशाली हो गये हैं, उसी तरह भारतीय वणिक्-समाज चारों दिशाओंमें फैल कर शक्ति सञ्चय कर रहे थे। उसका उज्ज्वल दृष्टान्त भारपीत वणिक्गण (Phoenician) है। वाणिज्य-प्रभावसे उन्होंने सुदूर यूरोपखण्ड अधिकार कर सुसभ्य राज्यकी प्रतिष्ठा की थी, किन्तु भारतीय दूसरे वणिक् समाजकी ऐसे राज्य विस्तारकी प्रवृत्ति थी नहीं। वे जानते थे, कि उनकी जन्मभूमि सुवर्णप्रसू भारतभूमिसे श्रेष्ठस्थान जगत्में नहीं है। इस कारण महाद्वीपान्तरसे आहृत रत्नराजि ला कर जननी जन्मभूमिको अशेष समृद्धिशाली बना दिया था। वे वाणिज्यकी लाभाशासे कितनी दूरके देशोंमें जाते आते थे? हम तासितासके अनुवादसे ऐसा प्रमाण पाते हैं:—

"Pliny the elder relates the fact, after Cornelius Nepos, who, in his account of a voyage to the North, says, that in the consulship of Quintus Metellus Celer, and Lucius Afranius (A, U, C, 694, before Christ 60), certain Indians, who had embarked on a commercial voyage, were cast away on the coast of Germany, and given as a present by the King of the Suevians, to Metellus, who was at that time proconsular Governor of Gaul, "Cornelius Nepos de Septentrionali circuitu tradit quinto Metello Celeri, Lucii Afranii in Consulatu Collegæ, sed tum Galliae procunsuli, Indos a rege Suevorum dono datos, qui ex India commercii Causa navigantes, tempestatibus essent in Germaniam abrepit." Pliny, lib, ii, s, 67, The work of Cornelius Nepos has not come down to us; and Pliny, as it seems, has abridged too much. The whole tract would have furnished a considerable event in the history of navigation. At present we are left to conjecture, whether the Indian adventurers sailed round the cape of Good Hope, through the Atlantic Ocean, and thence into the Northern Seas; or whether they made a voyage still, more extraordinary, passing the island of Japan, the coast of Siberia, Kamschatska, Zembla in the Frozen Ocean, and thence round Lapland and Norway, either into the Baltic or the German ocean."*

दो हजार वर्ष पहले भारतीय वणिक् जर्मनीके किनारे

* Tacitus, translated by Murphy, Philadephia. 1836, p. 606.

जा कर चीजें बेच आते थे। इसीसे अति प्राचीनकालमें उत्तालतरङ्गसङ्कुल आयाम उपसागरको पार कर या अटलाण्टिक महासागर होते हुए वे लोग उस दूर देश जर्मनीमें कैसे पहुंचे थे। यह निश्चय न कर सकने पर (Murphy) साहब बहुत विस्मित हुए थे। उसकी अपेक्षा प्राचीनकालसे ही यहां वणिक् मिश्रके रत्नाहरणके लिये वहां वाणिज्य करने जाते थे, यह बात भी कही गई है। *

अब विचार कीजिये, कि भारतीय वैश्य-समाजने साम्राज्य लाभको उपयुक्त महाशक्ति किस तरह अर्जन की थी? और अल्प समयमें ही समस्त भारतवर्ष ही क्यों गुप्तवंशके हाथ आ गया था?

हिन्दू वैश्यसमाजमें जो जैन या बौद्ध थे, ब्राह्मण-भक्त गुप्त सम्राट्की चेष्टासे वे सब पीछे हिन्दू हो गये थे। ५वीं शताब्दीमें चीन-परिव्राजक फाहियान भारतमें बुद्ध-स्मृति तथा बौद्ध-कीर्त्तियोंको देखनेके लिये आये थे। वे आर्यावर्त्तमें ब्राह्मणधर्म्म तथा बौद्ध धर्म्मका समान प्रभाव देख कर गये थे। वे सिंहल जानेके समय ताम्रलिप्त बन्दरमें हिन्दुओंके जिस जहाज पर चढ़े थे, उसमें दो हजार आरोही चढ़ते थे। इस फाहियानके भारतभ्रमण-वृत्तान्तसे आपको पता चलेगा, कि भारतीय वणिक् केवल सिंहल ही नहीं, वरं भारतके प्रायः बहुत जनाकीर्ण भारतमहासागरीय द्वीपोंमें अपनी चीजोंको ले कर बेचने जाते थे। उस प्राचीन कालमें भी फाहियानने यवद्वीप और बालीद्वीपमें हिन्दू वणिकोंके उपनिवेश देखे थे। उस समय वणिक् कहनेसे वैश्य जातिका अर्थबोध होता था। इस समय उन्नत वैश्य समाज कृषि और पशुपालन इन दो वृत्तियोंका त्याग कर चुका है।

गुप्तसम्राटोंके यत्नसे भारतके नाना स्थानोंमें ब्राह्मण प्रतिष्ठाका आयोजन होने पर भी वैश्य सम्राट् हर्षवर्द्धनकी चेष्टासे आर्यावर्त्तमें कुछ दिन बौद्ध प्रतिष्ठाका ही अनुराग देखा गया था। जो ई० ६४८ ई०में सम्राट् हर्षवर्द्धनकी मृत्युके बाद बौद्धधर्म्मका अवसान होने लगा। कुछ दिनोंके बाद ८वीं शताब्दीके प्रथमांशमें कन्नौजके सिंहासन पर क्षत्रियवीर यशोवर्म्मदेव अधिष्ठित हुए। उनके समयसे ही ब्राह्मणाभ्युदयका स्थायी सूत्रपात हुआ। यशोवर्म्मदेवके यत्नसे वैदिक धर्म्म प्रचारका यथेष्ट आयोजन हुआ था। इस समयमें भी पाटलिपुत्र, गौड़ और ताम्रलिप्तिमें वैश्यसमाज बहुत प्रबल था। उनमें हिन्दुओंकी संख्या बहुत कम थी और बौद्धोंकी अधिक। पाटलिपुत्रमें वैश्योंकी चेष्टासे गोपाल मगधके अधीश्वर हुए। उनके पुत्र धर्म्मपालकी शिलालिपिसे यह बात जानी जाती है। यशोवर्माकी तरह उनके समसामयिक आदिशूर गौड़मण्डलमें साग्निक ब्राह्मणोंको बुला कर वैदिक धर्म्म प्रचारमें मनोयोगी हुए थे। किन्तु उनके देहत्यागके बाद ही गोपालके पुत्र धर्म्मपालने आ कर गौड़ राज्य पर अधिकार कर लिया। यह पालवंश किस जातिके थे, इसका पता नहीं लगता। किन्तु इस वंशके साथ वणिक् जातिका यौन सम्बन्ध था, इसका कुछ आभास गौड़ीय सुवर्ण वणिकोंके कुल-इतिहाससे मिलता है। प्रायः ४ सौ वर्ष तक बौद्ध पालराजवंशने गौड़ और मगधमें अपना राज्य विस्तार किया था। इस समय भी गौड़ बङ्गालका बौद्ध धर्म्मावलम्बी वैश्य समाज बहुत कुछ उन्नत था। उस समय भी यहांके वणिक् उत्तर चीन, तिब्बत, पूर्व आसाम, कम्बोज, दक्षिण यव, बाली, बोर्णियो, सुमात्रा आदि द्वीपोंमें और पश्चिम सूरत, गुजरात तथा सुदूर मिश्र राज्य तक जाते आते थे। वे समुद्रयात्राके उपयोगी नाना आकारके जहाज तैयार करते थे। कविकङ्कणके चण्डीमङ्गलसे उसका कुछ आभास मिलता है।

मुसलमानों तथा अङ्गरेजोंकी अमलदारीमें भी भारतीय वणिक् समाजकी पूर्व रीति एक समय परित्यक्त नहीं हुई। आधुनिक स्मार्त्तनिबन्धकारोंके हिन्दुओंके लिये समुद्रपथको बन्द कर देने पर भी तैलङ्ग, तामिल, गुजराती, मराठी और पञ्जाबी वणिक् आज भी सुदूर अफरिका, अमेरिका और यूरोपके नाना स्थानोंमें जा कर पण्य विक्रय करनेमें कुण्ठित नहीं होते। फिर कहें तो कह सकते हैं, कि जिस दिन हिन्दू स्मार्त्त समुद्र

* Asiatic Researches, vol. xvii p. 619-620.

यात्राके विरुद्ध खड़े हुए, उसी दिनसे भारतके घर्मोन्नत उन्नत वणिक् समाजको उन्नतिके मूलमें कुठाराघात हुआ। उनके कुछ हो दिन बादसे समुद्र वाणिज्य भारतीय वणिकोंके लिये कविकी कल्पना हो उठी, किन्तु इस समय अब देखा जाता है, कि समुद्रयात्राका बन्धन बहुत ढीला पड़ गया है। कितने ही सुविज्ञ वणिक् भारतीय द्वीपपुञ्जोंमें तथा जापान, चीन और अमेरिका आदि देशोंमें जा कर आमदनी-रफतनी (Export-import) का व्यवसाय करते है। इधर यूरोपीय महासमरके बाद यह बन्धन तो बिलकुल ढीला पड़ गया है।

आज भी भारत भरमें वैश्य जातिका सर्वत्र वास दिखाई देता है।

वर्त्तमान उत्तर पश्चिम प्रदेशमें जिन सब वणिकोंका वास है, वे सैकड़ों श्रेणियोंमें विभक्त हो गये हैं। राजस्थानके इतिहास-लेखक टाड साहबने लिखा है, कि एक जैन यति वणिक् जातिकी सूची संग्रह कर रहे थे। प्रायः १८०० श्रेणियोंका नाम संग्रह होनेके बाद उन्होंने दूरवासी और एक दूसरे यतिसे १५० और वणिक् श्रेणीकी सूची पायी। इस पर उन्होंने असम्भव सोच कर स्थगित कर दिया। यदि सच पूछिये, तो जातिकी संख्या उतनी अधिक नहीं, उनमें निम्नलिखित जातियां हो प्रधान हैं; उस वणिक् सम्प्रदायके नाना व्यवसाय नाना धर्मोके अनुसार हैं, नाना पारिवारिक विशेषत्वोंसे बहुत श्रेणियोंकी उत्पत्ति हुई होगी। जैसे—

अग्रवाल।

उत्तर-पश्चिममें अग्रवाल, खण्डेलवाल और ओसवाल या ओसवाल आदि प्रमुख धनशाली वणिकों या बनियोंका आवास है। बहुत दिनोंसे भारत इतिहासमें इनकी प्रतिष्ठाका परिचय मिलता है। अग्रवाल बनिया अग्रसेन नामक एक राजाके वंशधर है। पञ्जाबके हिसार जिलेमें अग्रहा नगरमें उनकी राजधानी थी। अग्रसेन किस समय सरहिन्द विभागका राज्यशासन करते थे, यह पता नहीं लगता। किन्तु उनके वंशधरोंने हिन्दू विद्वेषी हो कर जैन धर्मको ग्रहण कर लिया। सन् ११९४ ई०में साहबुद्दीन घोरीने अग्रहा पर अधिकार कर अग्रवालोंको वहांसे भगा दिया। इस विपद्पातसे गृहशून्य हो कर अग्रवाल व्यवसाय वाणिज्यमें लग गये।

इनमें इस समय वैष्णवोंकी संख्या अधिक है। सामान्य संख्यक जैन भी देखे जाते हैं। किन्तु फिर वह अग्रवाल नहीं रहे, जिन अग्रवालोंने जैनधर्म अख्त्यार कर लिया है। किन्तु अग्रवाल प्रायः वैष्णव या शैव दिखाई देते हैं। इस समाजमें कुछ ऐसे भी परिचित है, जो शिव और कालीको तो पूजा करते हैं सही; किन्तु वे शैव और शाक्त नामसे परिचित नहीं हैं। कुरुक्षेत्र और गङ्गानदी इनके पवित्र तीर्थ हैं। वणिक् वृत्ति अवलम्बन करनेके बाद महा धूमधामसे दीपावलीके अवसर पर लक्ष्मीदेवीकी पूजा करते हैं।

किम्वदन्ती है, कि किसी अग्रवालने घटनाक्रमसे एक नागवंशी या राजकन्याका पाणिग्रहण किया, उसी घटनाका स्मरण कर प्रत्येक हिन्दू (वैष्णव) धर्मावलम्बी अग्रवाल गृहद्वारमें नागमूर्त्ति अङ्कित कर फल फूलसे उनकी पूजा करते हैं। बहुतेरे हो उपवीतधारी है, किन्तु जो शास्त्र निर्दिष्ट द्विजाचार पालनमें पराङ्मुख हैं, वे कभो भी यज्ञसूत्र धारण नहीं करते।

इनमें १८ गोत्र हैं। सगोत्र तथा सपिण्ड दोष रहने पर वे पुत्र-कन्याका विवाह नहीं करते। जैन तथा वैष्णवमें भी इनका विवाह नहीं होता। किंतु जो अग्रवाल जैन मत ग्रहण कर चुके हैं, उनके साथ वैष्णवी अग्रवाल विवाह कर सकता है। गौड़ ब्राह्मण विवाहादिमें पौरोहित्य करते हैं। ये सभी निरामिष हैं।

वर्त्तमान अग्रवालोंका विश्वास है, कि वे ही आर्य वैश्योंके वंशधर है। इनकी सामाजिक अवस्था भी बड़ी उन्नत है। स्वर्णा पत्नीजात संतान विश-नामसे ख्यात हैं। साहबुद्दीन द्वारा भगाये अग्रवाल नाना स्थानोंमें जा व्यवसाय वाणिज्यमें लिप्त होने पर भी कोई कोई अपने प्रतिभाबलसे दिल्लीके मुसलमानसम्राटोंके अनुग्रहभाजन हुए थे।

अग्रवाल या ओसवाल।

अग्रवाल या ओसवाल, श्रीमाल या श्रीमाली नामसे परिचित हैं। श्रीमालीसे ये पूर्णतः स्वतन्त्र हैं

आ कर चीजें बेच जाते थे। इसीसे अति प्राचीनकालमें उत्तालतरङ्गसङ्कुल आपान उपसागरको पार कर या अटलाण्टिक महासागर होते हुए वे लोग उस दूर देश जर्मनीमें कैसे पहुंचे थे। यह निश्चय न कर सकने पर (Murphy) साहब बहुत विस्मित हुए थे। उसकी अपेक्षा प्राचीनकालसे ही यहां वणिक् मिश्रके रत्नाहरणके लिये वहां वाणिज्य करने जाते थे, यह बात भी कही गई है। *

अब विचार कीजिये, कि भारतीय वैश्य-समाजने साम्राज्य लाभको उपयुक्त महाशक्ति किस तरह अर्जन की थी? और अल्प समयमें ही समस्त भारतवर्ष ही क्यों गुप्तवंशके हाथ आ गया था?

हिन्दू वैश्यसमाजमें जो जैन या बौद्ध थे, ब्राह्मण-भक्त गुप्त सम्राट्की चेष्टासे वे सब पीछे हिन्दू हो गये थे। ५वीं शताब्दीमें चीन-परिव्राजक फाहियान भारतमें बुद्ध-स्मृति तथा बौद्ध-कीर्त्तियोंको देखनेके लिये आये थे। वे आर्यावर्त्तमें ब्राह्मण्यधर्म्म तथा बौद्ध धर्म्मका समान प्रभाव देख कर गये थे। वे सिंहल जानेके समय ताम्रलिप्त बन्दरमें हिन्दुओंके जिस जहाज पर चढ़े थे, उसमें दो हजार आरोही चढ़ते थे। इस फाहियानके भारतभ्रमण-वृत्तान्तमें आपको पता चलेगा, कि भारतीय वणिक् केवल सिंहल ही नहीं, वरं भारतके प्रायः बहुत जनाकीर्ण भारतमहासागरीय द्वीपोंमें अपनी चीजोंको ले कर बेचने जाते थे। उस प्राचीन कालमें भी फाहियानने यवद्वीप और बालीद्वीपमें हिन्दू वणिकोंके उपनिवेश देखे थे। उस समय वणिक् कहनेसे वैश्य जातिका अर्थबोध होता था। इस समय उन्नत वैश्य समाज कृषि और पशुपालन इन दो वृत्तियोंका त्याग कर चुका है।

गुप्तसम्राटोंके यत्नसे भारतके नाना स्थानोंमें ब्राह्मण प्रतिष्ठाका आयोजन होने पर भी वैश्य सम्राट् हर्षवर्द्धनकी चेष्टासे आर्यावर्त्तमें कुछ दिन बौद्ध प्रतिष्ठाका ही अनुराग देखा गया था। जो ई. ६४८ ई०में सम्राट् हर्षवर्द्धनकी मृत्युके बाद बौद्धधर्मका अवसान होने लगा। कुछ दिनोंके बाद ८वीं शताब्दीके प्रथमांशमें कन्नौजके सिंहासन पर क्षत्रियवीर यशोवर्म्मदेव अभिषिक्त हुए। उनके समयसे ही ब्राह्मणाभ्युदयका स्थायी सूत्रपात हुआ। यशोवर्म्मदेवके यत्नसे वैदिक धर्म्म प्रचारका यथेष्ट आयोजन हुआ था। इस समयमें भी पाटलिपुत्र, गौड़ और ताम्रलिप्तिमें वैश्यसमाज बहुत प्रबल था। उनमें हिन्दुओंकी संख्या बहुत कम थी और बौद्धोंकी अधिक। पाटलिपुत्रमें वैश्योंकी चेष्टासे गोपाल मगधके अधीश्वर हुए। उनके पुत्र धर्म्मपालकी शिलालिपिसे यह बात जानी जाती है। यशोवर्म्माकी तरह उनके समसामयिक आदिशूर गौड़मण्डलमें साग्निक ब्राह्मणोंको बुला कर वैदिक धर्म्म प्रचारमें मनोयोगी हुए थे। किन्तु उनके देहत्यागके बाद ही गोपालके पुत्र धर्म्मपालने आ कर गौड़ राज्य पर अधिकार कर लिया। यह पालवंश किस जातिके थे, इसका पता नहीं लगता। किन्तु इस वंशके साथ वणिक् जातिका यौन सम्बन्ध था, इसका कुछ आभास गौड़ीय सुवर्ण वणिकोंके कुल-इतिहाससे मिलता है। प्रायः ४ सौ वर्ष तक बौद्ध पालराजवंशने गौड़ और मगधमें अपना राज्य विस्तार किया था। इस समय भी गौड़ बङ्गालका बौद्ध धर्म्मावलम्बी वैश्य समाज बहुत कुछ उन्नत था। उस समय भी यहांके वणिक् उत्तर चीन, तिब्बत, पूर्व आसाम, कम्बोज, दक्षिण यव, बाली, बोर्णियो, सुमात्रा आदि द्वीपोंमें और पश्चिम सूरत, गुजरात तथा सुदूर मिश्र राज्य तक जाते आते थे। वे समुद्रयात्राके उपयोगी नाना आकारके जहाज तैयार करते थे। कविकङ्कणके चण्डीमङ्गलसे उसका कुछ आभास मिलता है।

मुसलमानों तथा अङ्गरेजोंकी अमलदारीमें भी भारतीय वणिक् समाजकी पूर्व रीति एक समय परित्यक्त नहीं हुई। आधुनिक स्मार्त्तनिबन्धकारोंके हिन्दुओंके लिये समुद्रपथको बन्द कर देने पर भी तैलङ्ग, तामिल, गुजराती, मराठी और पञ्जाबी वणिक् आज भी सुदूर अफरिका, अमेरिका और यूरोपके नाना स्थानोंमें जा कर पण्य विक्रय करनेमें कुण्ठित नहीं होते। किंतु कहें तो कह सकते हैं, कि जिस दिन हिन्दू स्मार्त्त समुद्र

* Asiatic Researches, vol. xvii p. 619-620.

यात्राके विरुद्ध खड़े हुए, उसी दिनसे भारतके धर्मभीरु उन्नत वणिक् समाजको उन्नतिके मूलमें कुठाराघात हुआ। उनके कुछ ही दिन बादसे समुद्र वाणिज्य भारतीय वणिकोंके लिये कविको कल्पना हो उठी; किन्तु इस समय अब देखा जाता है, कि समुद्रयात्राका बन्धन बहुत ढोला पड़ गया है। कितने ही सुशिक्षित वणिक् भारतीय द्वीपपुञ्जोंमें तथा जापान, चीन और जर्मनी आदि देशोंमें जा कर आमदनी-रफतनी (Export-Import) का व्यवसाय करते हैं। इधर यूरोपीय महासमरके बाद यह बन्धन तो बिलकुल ढीला पड़ गया है।

आज भी भारत भरमें वैश्य जातिका सर्वत्र वास दिखाई देता है।

वर्त्तमान उत्तर पश्चिम प्रदेशमें जिन सब वणिकोंका वास है, वे सैकड़ों श्रेणियोंमें विभक्त हो गये हैं। राजस्थानके इतिहास-लेखक टाड साहबने लिखा है, कि एक जैन यति वणिक् जातिको सूची संग्रह कर रहे थे। प्रायः १८०० श्रेणियोंका नाम संग्रह होनेके बाद उन्होंने दूरवासी और एक दूसरे यतिसे १५० और वणिक् श्रेणीकी सूची पायी। इस पर उन्होंने असम्भव सोच कर स्थगित कर दिया। यदि सच पूछिये, तो जातिकी संख्या उतनी अधिक नहीं, उनमें निम्नलिखित जातियां ही प्रधान हैं; उस वणिक् सम्प्रदायके नाना व्यवसाय नाना धर्मके अनुसार हैं, नाना पारिवारिक विशेषत्वोंसे बहुत श्रेणियोंको उत्पत्ति हुई होगी। जैसे—

अग्रवाल।

उत्तर-पश्चिममें अग्रवाल, खण्डेलवाल और अभ्वाल या ओसवाल आदि प्रमुख धनशाली वणिकों या बनियोंका आवास है। बहुत दिनोंसे भारत इतिहासमें इनको प्रतिष्ठाका परिचय मिलता है। अग्रवाल बनिया अग्रसेन नामक एक राजाके वंशधर हैं। पञ्जाबके हिसार जिलेमें अग्रहा नगरमें उनकी राजधानी थी। अग्रसेन किस समय सरहिन्द विभागका राज्यशासन करते थे, यह पता नहीं लगता। किन्तु उनके वंशधरोंने हिन्दू विद्वेषी हो कर जैन धर्मको ग्रहण कर लिया। सन् ११६४ ई०में साहबुद्दीन घोरीने अग्रहा पर अधिकार कर अग्रवालोंको वहांसे भगा दिया। इस विपद्पातसे गृहशून्य हो कर अग्रवाल व्यवसाय वाणिज्यमें लग गये।

इनमें इस समय वैष्णवोंकी संख्या अधिक है। सामान्य संख्यक जैन भी देखे जाते हैं। किन्तु फिर वह अग्रवाल नहीं रहे, जिन अग्रवालोंने जैनधर्म अख्तयार कर लिया है। किन्तु अग्रवाल प्रायः वैष्णव या शैव दिखाई देते हैं। इस समाजमें कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं, जो शिव और कालीकी तो पूजा करते हैं सही; किन्तु वे शैव और शाक्त नामसे परिचित नहीं हैं। कुरुक्षेत्र और गङ्गानदी इनके पवित्र तीर्थ हैं। वणिक् वृत्ति अवलम्बन करनेके बाद महा धूमधामसे दीपावलीके अवसर पर लक्ष्मीदेवीकी पूजा करते हैं।

किम्बदन्ती है, कि किसी अग्रवालने घटनाक्रमसे एक नागवंशी या राजकन्याका पाणिग्रहण किया, उसी घटनाका स्मरण कर प्रत्येक हिन्दू (वैष्णव) धर्मावलम्बी अग्रवाल गृहद्वारमें नागमूर्त्ति अङ्कित कर फल फूलसे उनकी पूजा करते हैं। बहुतेरे ही उपवीतधारी हैं, किन्तु जो शास्त्र निर्दिष्ट क्रियाचार पालनमें पराङ्मुख हैं, वे कभी भी यज्ञसूत्र धारण नहीं करते।

इनमें १८ गोत्र हैं। सगोत्र तथा सपिण्ड दोष रहने पर वे पुत्र-कन्याका विवाह नहीं करते। जैन तथा वैष्णवमें भी इनका विवाह नहीं होता। किंतु जो अग्रवाल जैन मत ग्रहण कर चुके हैं, उनके साथ वैष्णवी अग्रवाल विवाह कर सकता है। गौड़ ब्राह्मण विवाहादिमें पौरोहित्य करते हैं। ये सभी निरामिष हैं।

वर्त्तमान अग्रवालोंका विश्वास है, कि वे ही आर्य वैश्योंके वंशधर हैं। इनकी सामाजिक अवस्था भी बड़ी उन्नत है। सवर्णा पत्नीजात संतान विश-नामसे ख्यात हैं। साहबुद्दीन द्वारा भगाये अग्रवाल नाना स्थानोंमें जा व्यवसाय वाणिज्यमें लिप्त होने पर भी कोई कोई अपने प्रतिभाबलसे दिल्लीके मुसलमानसम्राटोंके अनुग्रहभाजन हुए थे।

अभ्वाल या ओसवाल।

अभ्वाल या ओसवाल, श्रीमाल या श्रीमाली नामसे परिचित हैं। श्रीमालोसे ये पूर्णतः स्वतन्त्र हैं

और उनमें आदान-प्रदान भी नहीं होता। इनमें जैनियों-की ही संख्या अधिक है या यों कहिये, कि ओसवाल नामसे जैन धर्मीका ही बोध होता है। हीरे जवाहर आदिका बेचना, रुपयेका लेन देन या महाजनी इनका प्रधान व्यवसाय है; राजपूतानेमें किसी समय यह ओसवाल वणिक सम्प्रदाय विशेष प्रतिष्ठित था। राजस्थानका इतिहास पढ़नेसे यह स्पष्ट मालूम होता है। मुर्शिदाबादके जगत्सेठ परिवार, अजीमगञ्जके राय धनोतसिंह और लक्ष्मीपत सिंह आदि धनशाली महाजन अग्रवाल वंशसम्भूत हैं। उत्तर-पश्चिम भारतमें इस श्रेणीके अनेक धनवान् और बुद्धिमान् व्यक्तियोंका परिचय मिलता है। उक्तप्रदेशके, राजा शिवप्रसाद, उदयपुरके दीवान बाबू पन्नालाल और जयपुरके प्रधान राजस्वसचिव नाथमल जी प्रभृति कई व्यक्तियोंने राजकार्यमें विशेष ख्यातिलाभ किया था।

इस श्रेणीके बहुतेरे लक्षोंके वरपुत्र हैं। ये वाणिज्य द्वारा प्रभूत अर्थ उपार्जन करते हैं सही; किन्तु विशेष वाणिज्यकुशली नहीं हैं।

ये जैसे ही धनशाली हैं, वैसे ही धर्मप्राण हैं। पालिताना और गिरिनार मन्दिरके सभी मंदिर इन्हीं लोगोंके द्वारा बनाये गये हैं। कलकत्ता और बङ्गलके अन्यान्य स्थानोंमें ओसवालों द्वारा प्रतिष्ठित नाना शिल्पकार्ययुक्त मन्दिर हैं। भोजक ब्राह्मण इनके पौरोहित्य करते हैं। सब श्रेणीके ब्राह्मण इनसे दान लेते हैं। ओसवालों और अग्रवालोंकी समतुल्य मर्यादा है। इनके भी असवर्णा पत्नीका जातपुत्र दास और सवर्णापत्नीज तनयगण बिश् नामसे परिचित हैं। उक्त दोनों सन्तानोंने ही वाणिज्यमें लिप्त रह कर सामाजिक अवस्थाकी विशेष उन्नति की है।

खण्डेलवाल बनिया।

धनगरिमा तथा आचार-व्यवहारमें खण्डेलवाल किसी अंशमें ओसवालों और अग्रवालोंसे कम नहीं है। जयपुर राज्यमें खण्डेल नगरके नामसे इस वणिक् सम्प्रदाय खण्डेलवालोंका नाम हुआ है। किसी समय यह खण्डेलनगरी शेखावती राजपूतोंका शासनकेन्द्र बनी थी।

ये जैन और वैष्णवधर्मावलम्बी हैं। मथुराके लक्षपति सेठगण खण्डेलवाल-वंशसम्भूत और जैन हैं। इनको ही एक शाखाने रङ्गाचारी स्वामीके निकट रामानुज वैष्णव मतकी दीक्षा ग्रहण की है। अजमेरके सुप्रसिद्ध वणिक् मूलचाँद सोनी जैन हैं।

श्रीमाली बनिया।

राजपूतानेके मारवाड़ विभागके झालर नगरके निकटवर्ती श्रीमाल (वर्त्तमान नाम भीनमाल) नगरवासी होनेसे इस सम्प्रदायका नाम श्रीमाली हुआ है। यह स्थानवासी ब्राह्मण भी साधारणमें श्रीमाली ब्राह्मण नामसे मशहूर हैं। इस नगरमें १५०० घर लोगोंका वास था। धनवान् महाजनगण यहां रह कर पण्यद्रव्य क्रयविक्रय करते थे। यहांकी हाटमें सर्वदा माल जमा रहता था, इससे इस श्रेणीका नाम श्रीमाल पड़ा।*

अग्रवालोंकी तरह श्रीमालोंसे भी दास श्रीमाली वंशकी उत्पत्ति हुई है। इस दाससन्ततिमें जैन और वैष्णव मत प्रचलित है। किन्तु इनके विशसन्तानगण एकान्त जैनधर्म्मावलम्बी हैं।

पल्लीवाल बनिया।

मारवाड़ और योधपुरराज्यके अन्तर्गत पल्ली नगरवासी होनेकी वजह यह सम्प्रदाय पल्लीवालके नामसे परिचित है। सन् ११५६ ई०में राठोर राजने पल्ली नगर पर अधिकार कर लिया¶। उसके बहुत पहलेसे यह नगर एक वाणिज्य-केन्द्रके नामसे विख्यात था।

ये जैन और वैष्णव-मतावलम्बी हैं। आगरा और जौनपुरमें बहुतेरे पल्लीवालोंका वास है।

पुरवाल बनिया।

गुजरातके पोर या पुरबन्दरमें वासनिबन्धन यह गुजराती वणिक् सम्प्रदाय पोरवाल नामसे ख्यात हुए। वर्त्तमान समयमें ललितपुर, झांसी, कानपुर, आगरा, हमीरपुर और बांदा जिलेमें इन लोगोंकी बस्ती है।

भाटिया।

भाटिया राजपूतानेके रहनेवाले हैं और अपनेको

---

* Tod's Annals of Rajasthan Vol, II p. 332

¶ Hunter's Imperial Gazetteer Vol, xi p, 1

राजपूत कह कर परिचय देते हैं ; किन्तु भाटियाजातीय राजपूतसे यह सम्पूर्ण स्वतन्त्र है। विलायती कपड़े-का यह व्यवसाय करते हैं। किन्तु इस समय वर्त्तमान राजनीतिक आन्दोलनके कारण प्रायः सभी वस्त्रव्यवसायीने विलायती वस्त्रोंका अस्थायीरूपसे बहिष्कार किया है। बम्बई, पञ्जाब और करांची बन्दरमें ही इनका प्रधान वास है।

माहेसरी या माहेश्वरी।

युक्तप्रदेश, राजपूताना, विहार और नागपुर अञ्चलमें इस वणिक् जातिका वास देखा जाता है। इन्दौर राजधानीके निकटस्थ सुप्राचीन महिष्मती या माहेश्वरपुरसे यह सम्प्रदाय माहेश्वरी नामसे परिचित हुआ है, ऐसा ही अनुमान होता है। कुछ लोगोंका कहना है, कि बीकानेरमें ही इनका आदि वास है। फिर मुजफ्फरपुरके माहेश्वरियोंका कहना है, कि भरतपुर राजधानीके निकटवर्त्ती महेशान नगरीमें उनका आदिवास था। इनके अधिकांश ही वैष्णव मतावलम्बी हैं। अति अल्प संख्यक माहेश्वरी जैन दिखाई देते हैं।

अग्रहारी बनिया।

बनारसमें बहुतेरे अग्रहारियोंका वास देखा जाता है। ये निरामिषाशी और जनेऊधारी हैं। आराके अग्रहारी सिख धर्म्मावलम्बी हैं।

धुनसर बनिया।

दिल्ली और मिरजापुरके बीच गाङ्गेय अन्तर्वेदीमें इनका वास है। गुड़गांव जिलेके रेवारी नगरके निकटस्थ 'धूसी' नामक गण्डशैलदेशके नामसे परिचित हैं। ये सभी वैष्णवमतावलम्बी हैं। इनमें कोई वाणिज्य नहीं करता। बहुतेरे ही धनशाली भूम्याधिकारी हैं और अवशिष्ट लोगोंमें कुछ कायस्थ और कुछ वैश्य वृत्तिसे जीविका चलाते हैं।

उम्मार बनिया।

आगरा और गोरखपुरके मध्यभागमें तथा कानपुरके चारों तरफ निकटवर्त्ती जिलोंमें इस श्रेणीके बनियोंका वास है। विहारमें इनके दो एक घरकी बस्ती दिखाई देती है। पिताकी मृत्यु न होने तक ये उपवीत धारण नहीं करते।

रस्तोगी बनिया।

उत्तर अन्तर्वेदी और लखनऊ, फतेहपुर, फर्रुखाबाद, मेरठ, आजमगढ़ आदि युक्तप्रदेशके प्रधान प्रधान नगरोंमें इस श्रेणीके बहुत लोगोंका वास है। कलकत्ता और पटना नगरमें कितने ही रस्तोगी व्यवसाय वाणिज्यके लिये बस गये हैं। ये सभी वल्लभाचारी हैं। ये भी पिताकी मृत्युके बाद जनेऊ धारण करते हैं।

कसरवानी बनिया।

युक्तप्रदेशके पूर्वीय प्रान्त तथा विहारके पश्चिमीय प्रदेशमें इनका वास है। यह चावल दाल अर्थात् खिचड़ फरोसीकी दुकान करते हैं।

काशी आदिके कसरवानी बनिया रामोपासक हैं और निरामिषाशी हैं। मिर्जापुरकी विन्ध्यवासिनी देवीक ये लोग पूजा करते हैं। किन्तु देवीको बकरेकी बलि नहीं चढ़ाते वरं उनके उद्देशसे छोड़ देते हैं।

लोहिया बनिया।

प्रधानतः लौह निर्मित द्रव्यादिका वाणिज्य करते हैं, इसी लोहिया नामसे ये परिचित हैं। इनमें कोई कोई यज्ञसूत्र भी धारण करते हैं। अधिकांश ही वैष्णव हैं, फिर दो एक घर जैनी भी हैं।

सोनिया बनिया।

सुवर्ण वणिक्—बङ्गालके सुवर्णवणिकोंकी तरह ये लोग धनी नहीं हैं। वाराणसीवासी सोनिया गुजरातसे आ कर यहां बस गये। स्वर्णालङ्कार बनाना या सोना चांदीका बेचना उनका व्यवसाय है।

शूरसेनी बनिया।

मथुरा जिलेका प्राचीन नाम शूरसेन है। सम्भवतः उसीसे ये शूरसेनी नामसे परिचित हैं।

वरसेनी बनिया।

मथुराके उपकण्ठस्थ वर्षाणानगरके नामसे ये वर्षाणी या वरसेनी नामसे परिचित हैं। ये धनशाली हैं। मथुरा और तत्पार्श्ववर्त्ती जिलोंमें इनका बहुत वास दिखाई देता है।

वरणवाल बनिया।

बुलन्दशहरका नाम वरण है। इस देशके रहनेवाले होनेकी वजह ये वरणवाल कहलाते हैं। पाठान-

सम्राट् मुहम्मद तुगलकके अत्याचारसे उत्पीड़ित हो कर ये जन्मभूमि त्याग करने पर बाध्य हुए थे और पटावा; आजमगढ़, गोरखपुर, मुरादाबाद, जौनपुर, गाजीपुर, बिहार और तिरहुत आदि स्थानोंमें फैल गये।

यह कट्टर हिन्दू हैं। गौड़ ब्राह्मण और मैथिल ब्राह्मण इनका पौरोहित्य करते हैं। इनमें कितने ही उपवीतधारी हैं। कितने ही दुकान करते हैं।

अयोध्यावासी बनिया।

अयोध्या प्रदेशवासी बनिया होनेसे ये इस नामसे ख्यात हैं। युक्तप्रदेशके कई स्थानोंमें और बिहार अञ्चलमें इनका वास है।

जैसवार बनिया।

रायबरेली जिलेके सालोन विभागके जैस परगनेमें वास होनेकी वजह ये जैसवारा कहलाये।

महोबिया बनिया।

हमीरपुर जिलेके महोबा नगरके पूर्वतन अधिवासी होनेके कारण ये महोबिया कहलाये।

महुरिया बनिया।

बिहार और गङ्गा यमुनाके बीच रहनेवाले बनिया बहुतेरे इनको रस्तोगीकी शाखा समझते हैं। ये हिन्दू और वैश्य हैं। ये कृषकोंको पेशगी दे कर ईखकी खेती कराते हैं। ये चीनीका एकान्त व्यवसाय करते हैं। सिक्खोंकी तरह इनमें भी तम्बाकू पीना मना है। यदि छिप कर कोई पीता है, तो वह जातिच्युत होता है।

वैंश बनिया।

बिहारमें इनका वास है। ये पीतल और कांसेके बरतन बेचनेके लिये दुकान रखते हैं। कोई खेती भी करते हैं। कुमायूंके वैंश या वाईजाति सामाजिकतामें तुल्य मर्यादा होने पर भी भिन्न जाति कहके परिचित हैं।

काठ बनिया।

बिहारमें इनका भी वास है, दुकानमें पण्य द्रव्य रख कर बेचना, ऋण देना और खेती करना—इनका प्रधान व्यवसाय है। ये जन्मदेहको [illegible] और १२वें दिन श्राद्ध करते हैं। मैथिल [illegible] करते हैं।

रौनियार बनिया।

गोरखपुर, तिरहुत और बिहार प्रदेशमें इस श्रेणीका वास है। अन्यान्य वणिक् सम्प्रदायकी तरह ये वैष्णव नहीं हैं। ये परम शैव हैं। अग्रवालोंकी तरह ये भी धनाधिष्ठात्री लक्ष्मीदेवीकी पूजा विशेष धूमधामसे करते हैं। ये सोनिया नामसे भी परिचित हैं।

जमैय बनिया।

युक्तप्रदेशके इटावा जिलेमें इनका वास है। ये अपनेको दैत्यपति हिरण्यकशिपुके पुत्र परम भक्त प्रह्लादके वंशधर बतलाते हैं।

जोहना बनिया।

ये भाटिया जातिकी अन्यतम शाखा हैं। सिन्धुप्रदेशमें इनका वास है।

कांदू बनिया।

ये सामान्य दुकानदार हैं और तरह तरहकी मिठाइयाँ तयार कर बेचते हैं। ये हलवाई नामसे भी परिचित हैं।

गुजराती बनिया।

श्रीमाली, ओसवाल और खण्डेलवालको छोड़ कर गुजरातके विभिन्न प्रदेशमें और भी कई श्रेणीके बनिया देखे जाते हैं। जैसे—१ नागर (दास और विश) २ देशवाल; ३ पोरावाल (दास और विश), ४ गुजर, ५ मोध, ६ लड़, ७ भरोल, ८ सोरठिया, ९ खड़ैता, १० हर्षोरा, ११ कपोल, १२ उरवल, १३ पटोलिया और १४ वयाद बनिया।

ये सब बनिया सम्प्रदायके प्रत्येकके तन्नामक एक ब्राह्मण-सम्प्रदाय याजकता करता है।

गुजराती बनियामात्र ही वैष्णव और वल्लभाचारी मतावलम्बी हैं। वैष्णव बनियामात्रको ही उपवीत है। किन्तु जो जैनमतानुसारी हैं, वे यज्ञसूत्र धारण नहीं करते।

दक्षिण भारतके बनिया।

[illegible] जातियोंमें मन्द्राज प्रेसि-
[illegible] वणिक् ही प्रधान हैं।
[illegible] संख्या अत्यन्त है।
[illegible] ई प्रकारके पण्य व्यव-

शेट्टी ही प्राचीन ग्रन्थोक्त श्रेष्ठी हैं। ये प्रभूत धनशाली हैं और सदा ही नाना वाणिज्योंमें लिप्त रहते हैं। इनमें कुछ लोग निरामिषभोजी हैं और कुछ लोग शास्त्रनिर्दिष्ट शुद्धमांस और मत्स्य भक्षण करते हैं। नाना श्रेणीमें विभक्त होनेकी वजह इनमें आदान-प्रदानमें भयानक विभ्राट् उपस्थित होता है। सभी उपवीतधारी नहीं। जो जनेऊ ग्रहण करते हैं, वे अपनेको वैश्य कहा करते हैं। किन्तु यहांके ब्राह्मण उनको शूद्र कहके उनसे घृणा करते हैं। और तो क्या, द्राविड़ वैदिकब्राह्मण तो उनसे न दान लेते और न उनका कर्मकाण्ड ही कराते हैं।

गटकुटाई शेट्टी सब श्रेणियोंमें प्रधान हैं। इनका मथुरा नगरमें आदिवास था। ये अङ्गरेजी भाषाके विशेष पक्षपाती नहीं हैं। व्यवसाय वाणिज्यके लिये ये सामान्य तैलगू या तामिलका ज्ञान ही यथेष्ट समझते हैं। पुत्रके जरा सयान होने पर ही वह अपने काममें नियोजित करते हैं। इनकी कोई कोई शाखा अपने विद्या या ज्ञानबलसे ब्राह्मण और वेल्लाल जातिके नीचे आसन पानेके उपयुक्त हैं।

इस समय कृष्णा, नेलूर, कड़ापा, कर्णूल, मन्द्राज, कोयम्बटूर आदि जिलोंमें लाखों श्रेष्ठियोंका वास है। केवल मन्द्राजमें ७ लाख श्रेष्ठियोंका वास है, सिवा इसके महिसुर, कलकत्ता, बम्बई, मलयारके किनारे भी श्रेष्ठी वणिकोंका आभास मिलता है।

महिसुरमें लिङ्गायत वणिकोंकी ही संख्या अधिक है। लिङ्गायत वणिक् कृषिजीवी हैं। ये कहीं भी स्वतः प्रवृत्त हो कर क्षेत्रकर्षण करा कर शस्य उत्पादन कराते हैं।

तेलगूदेशमें कोमतियोंकी ही संख्या अधिक है। ये वैश्य कहलाते और जनेऊ धारण करते हैं। इनमें १ गावुरी, २ कलिङ्ग कोमति, ३ बेरिकोमति, ४ वालजी कोमती, ५ नागर कोमती नामके पांच दल हैं। गावुरी निरामिषभोजी हैं, किन्तु दूसरे चार मांसाहारी हैं।

कलिङ्गकोमति और गावुरी शङ्कराचार्यके अद्वैतमत मान कर ही चलते हैं। दूसरे लिङ्गायत या रामानुज मतावलम्बी हैं। बेरिकोमतियोंमें अधिकांश ही लिङ्गायत हैं। कोमति सभी येलुरो जिलेके गुटी नगरके प्रधान मठाध्यक्ष भास्कराचार्यको अपने सामाजिक गुरु मानते हैं। ब्राह्मण इनके पौरोहित्य करते हैं सही, किन्तु वैदिक मन्त्र इनसे उच्चारण नहीं कराते। ये मामाकी लड़कीसे व्याह करने पर बाध्य हैं।

उड़ीसेके बनिये।

उड़ीसेमें दो तरहके बनियोंका वास है। १ सोनार बनिया और २ पुटली बनियाँ। पुटली बनिया बङ्गालके गन्धवनियोंके समान हैं। ये पुटली बाँध कर द्रव्यादि विक्रय करते हैं। इसीसे लोग इन्हें पुटली बनिया कहते हैं। बङ्गालकी तरह उड़ीसेके सोनार बनिया जलाचरणीय नहीं। किन्तु मसाले आदिके बेचनेवाले पुटली बनियोंका जल चलता है। पुटली बनियोंकी अपेक्षा यहांके सोनार बनिया अधिक धनवान् हैं।

वङ्ग वैश्य।

यहांकी गन्ध वणिक्, सुवर्ण वणिक्, ताम्बूल वणिक् (पनेरी) तम्बोली, बरई, साहावणिक* तथा तेली आदि जातियां भी वैश्य समाजकी अन्तर्गत हैं।

गन्धी या गन्धवणिक्।

जो पहले नाना प्रकारके गन्धद्रव्य बेचते थे, वे ही गन्धवणिक् या गन्ध बेने कह कर पुकारे जाते थे। गन्धवणिक् समाजमें "गन्धिककुलपञ्जी" नामक एक संस्कृत कुलग्रन्थ देखा जाता है। इसमें लिखा है - ब्रह्माकी बात सुन कर शिव ध्यानमग्न हुए। शिवके ललाटसे देव दास, वक्षस्थलसे शङ्खभूति, नाभिसे मायद् दत्त और पादमूलसे विश्वट गुप्त उत्पन्न हुए।

गन्धवणिक् जातिकी इस अपरूप उत्पत्तिकथा प्राचीन किसी हिन्दू या जैन शास्त्रमें नहीं मिलता।

तम्बोली।

गन्धवणिक् जैसे शिवाङ्गसे उद्भूत कह कर कथित हैं, ताम्बूल वणिक् भी तथा पान बेचनेवाले तम्बोली भी शिवके पसीनेसे उत्पन्न हैं। ऐसा ही इनके कुलग्रन्थमें लिखा है।

* सुवर्ण जातिसे इनका कोई सम्बन्ध नहीं।

सम्राट् मुहम्मद तुगलकके अत्याचारसे उत्पीड़ित हो कर ये जन्मभूमि त्याग करने पर बाध्य हुए थे और एटावा; आजमगढ़, गोरखपुर, मुरादाबाद, जौनपुर, गाजीपुर, विहार और तिरहुत आदि स्थानोंमें फैल गये।

यह कट्टर हिन्दू हैं। गौड़ ब्राह्मण और मैथिल ब्राह्मण इनका पौरोहित्य करते हैं। इनमें कितने ही उपवीतधारी हैं। कितने ही दुकान करते हैं।

अयोध्यावासी बनिया।

अयोध्या प्रदेशवासी बनिया होनेसे ये इस नामसे ख्यात हैं। युक्तप्रदेशके कई स्थानोंमें और विहार अञ्चलमें इनका वास है।

जैसवार बनिया।

रायबरेली जिलेके सालोन विभागके जैस परगनेमें वास होनेकी वजह ये जैसवारा कहलाये।

महोबिया बनिया।

हमीरपुर जिलेके महोबा नगरके पूर्वतन अधिवासी होनेके कारण ये महोबिया कहलाये।

महुरिया बनिया।

विहार और गङ्गा यमुनाके बीच रहनेवाले बनिया बहुतेरे इनको रस्तोगीकी शाखा समझते हैं। ये हिन्दू और वैश्य हैं। ये कृषकोंको पेशगी दे कर ईखकी खेती कराते हैं। ये चीनीका एकान्त व्यवसाय करते हैं। सिक्खोंकी तरह इनमें भी तम्बाकू पीना मना है। यदि छिप कर कोई पीता है, तो वह जातिच्युत होता है।

वंश बनिया।

विहारमें इनका वास है। ये पीतल और कांसेके बरतन बेचनेके लिये दुकान रखते हैं। कोई खेती भी करते हैं। कुमायूंके वंश या वाईजाति सामाजिकतामें तुल्य मर्यादा होने पर भी भिन्न जाति कहके परिचित हैं।

काठ बनिया।

विहारमें इनका भी वास है, दुकानमें पण्य द्रव्य रख कर बेचना, ऋण देना और खेती करना—इनका प्रधान व्यवसाय है। ये शवदेहको जलाते और १२वें दिन श्राद्ध करते हैं। मैथिल ब्राह्मण इनका पौरोहित्य करते हैं।

रौनियार बनिया।

गोरखपुर, तिरहुत और विहार प्रदेशमें इस श्रेणीका वास है। अन्यान्य वणिक् सम्प्रदायकी तरह ये वैष्णव नहीं हैं। ये परम शैव हैं। अग्रवालोंकी तरह ये भी धनाधिष्ठात्री लक्ष्मीदेवीकी पूजा विशेष धूमधामसे करते हैं। ये नोनिया नामसे भी परिचित हैं।

जमैय बनिया।

युक्तप्रदेशके इटावा जिलेमें इनका वास है। ये अपनेको दैत्यपति हिरण्यकशिपुके पुत्र परम भक्त प्रह्लादके वंशधर बतलाते हैं।

लोहना बनिया।

ये भाटिया जातिकी अन्यतम शाखा है। सिन्धुप्रदेशमें इनका वास है।

कांदू बनिया।

ये सामान्य दुकानदार हैं और तरह तरहकी मिठाइयाँ तयार कर बेचते हैं। ये हलवाई नामसे भी परिचित हैं।

गुजराती बनिया।

श्रीमाली, ओसवाल और खंडेलवालको छोड़ कर गुजरातके विभिन्न प्रदेशमें और भी कई श्रेणीके बनिया देखे जाते हैं। जैसे—१ नागर (दास और विश) २ देशवाल, ३ पोरवाल (दास और विश), ४ गुजर, ५ मोध, ६ लड़, ७ करोल, ८ सोरठिया, ६ खड़ता, १० हर्षोरा, ११ कपोल, १२ उरवल, १३ पटोलिया और १४ वयाद बनिया।

ये सब बनिया सम्प्रदायके प्रत्येकके सन्नामक एक ब्राह्मण-सम्प्रदाय याजकता करता है।

गुजराती बनियामात्र ही वैष्णव और वल्लभाचारी मतावलम्बी हैं। वैष्णव बनियामात्रको ही उपवीत है। किन्तु जो जैनमतानुसारी हैं, वे यज्ञसूत्र धारण नहीं करते।

दक्षिण भारतके बनिया।

दक्षिण भारतके पण्यजीवी जातियोंमें मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके शेठी और लिङ्गायत वणिक् ही प्रधान हैं। नागरती और कोमती वणिकोंकी संख्या अल्पतर है। इनके सिवा तेलगू देशमें भी कई प्रकारके पण्य व्यवसायियोंका वास है।

शेट्टी ही प्राचीन ग्रन्थोक्त श्रेष्ठी हैं। ये प्रभूत धन-शाली हैं और सदा ही नाना वाणिज्योंमें लिप्त रहते हैं। इनमें कुछ लोग निरामिषभोजी हैं और कुछ लोग शास्त्रनिर्दिष्ट शुद्धमांस और मत्स्य भक्षण करते हैं। नाना श्रेणीमें विभक्त होनेकी वजह इनमें आदान-प्रदानमें भयानक विभ्राट् उपस्थित होता है। सभी उपवीतधारी नहीं। जो जनेऊ ग्रहण करते हैं, वे अपनेको वैश्य कहा करते हैं। किन्तु यहांके ब्राह्मण उनको शूद्र कहके उनसे घृणा करते हैं। और तो क्या, द्राविड़ वैदिकब्राह्मण तो इनसे न दान लेते और न इनका कर्मकाण्ड ही कराते हैं।

नट्टकुटाई शेट्टी सब श्रेणियोंमें प्रधान हैं। इनका मथुरा नगरमें आदिवास था। ये अङ्गरेजी भाषाके विशेष पक्षपाती नहीं हैं। व्यवसाय वाणिज्यके लिये ये सामान्य तेलगू या तामिलका ज्ञान ही यथेष्ट समझते हैं। पुत्रके जरा सयान होने पर ही यह अपने काममें नियोजित करते हैं। इनकी कोई कोई शाखा अपने विद्या या ज्ञानबलसे ब्राह्मण और वेल्लाल जातिके नीचे आसन पानेके उपयुक्त हैं।

इस समय कृष्णा, नेलूर, कड़ापा, कर्णूल, मन्द्राज, कोयम्बटूर आदि जिलोंमें लाखों श्रेष्ठियोंका वास है। केवल मन्द्राजमें ७ लाख श्रेष्ठियोंका वास है, सिवा इसके महिसुर, कलकत्ता, बम्बई, मलबारके किनारे भी श्रेष्ठी वणिकोंका आभास मिलता है।

महिसुरमें लिङ्गायत वणिकोंकी ही संख्या अधिक है। लिङ्गायत वणिक् कृषिजीवी हैं। ये कहीं भी स्वतः प्रवृत्त हो कर क्षेत्रकर्षण करा कर शस्य उत्पादन कराते हैं।

तेलगूदेशमें कोमतियोंकी ही संख्या अधिक है। ये वैश्य कहलाते और जनेऊ धारण करते हैं। इनमें १ गावुरी, २ कलिङ्ग कोमति, ३ बेरिकोमति, ४ बालजी कोमती, ५ नागर कोमती नामके पांच दल हैं। गावुरी निरामिष-भोजी हैं, किन्तु दूसरे चार मांसाहारी हैं।

कलिङ्गकोमति और गावुरी शङ्कराचार्यके अद्वैतमत मान कर ही चलते हैं। दूसरे लिङ्गायत या रामानुज मतावलम्बी हैं। बेरिकोमतियोंमें अधिकांश ही लिङ्गायत हैं। कोमति सभी बेलरी जिलेके गुटी नगरके प्रधान मठाध्यक्ष भास्कराचार्यको अपने सामाजिक गुरु मानते हैं। ब्राह्मण इनके पौरोहित्य करते हैं सही, किन्तु वैदिक मन्त्र इनसे उच्चारण नहीं कराते। ये मामाकी लड़कीसे ब्याह करने पर बाध्य हैं।

उड़ीसेके बनिये।

उड़ीसेमें दो तरहके बनियोंका वास है। १ सोनार बनिया और २ पुटली बनियाँ। पुटली बनिया बङ्गालके गन्धबनियोंके समान हैं। ये पुटली बाँध कर द्रव्यादि विक्रय करते हैं। इसीसे लोग इन्हें पुटली बनिया कहते हैं। बङ्गालकी तरह उड़ीसेके सोनार बनिया जला-चरणीय नहीं। किन्तु मसाले आदिके बेचनेवाले पुटली बनियोंका जल चलता है। पुटली बनियोंकी अपेक्षा यहांके सोनार बनिया अधिक धनवान् हैं।

बङ्ग वैश्य।

यहांकी गन्ध वणिक्, सुवर्ण वणिक्, ताम्बूल वणिक् (बरेरी) तम्बोली, बरई, साहावणिक* तथा तेली आदि जातियां भी वैश्य समाजकी अन्तर्गत हैं।

गन्धी या गन्धवणिक्।

जो पहले नाना प्रकारके गन्धद्रव्य बेचते थे, वे ही गन्धवणिक् या गन्ध बेने कह कर पुकारे जाते थे। गन्धवणिक् समाजमें "गन्धिककल्पवल्ली" नामक एक संस्कृत कुलग्रंथ देखा जाता है। इसमें लिखा है - ब्रह्माकी बात सुन कर शिव ध्यानमग्न हुए। शिवके ललाटसे देव दास, वक्षस्थलसे शङ्खभूति, नाभिसे मागट् दत्त और पादमूलसे विश्वर गुप्त उत्पन्न हुए।

गन्धवणिक् जातिकी इस अपरूप उत्पत्तिकथा प्राचीन किसी हिन्दू या जैन शास्त्रमें नहीं मिलता।

तम्बोली।

गन्धवणिक् जैसे शिवाङ्गसे उद्भूत कह कर कल्पित हैं, ताम्बूल वणिक् भी तथा पान बेचनेवाले तम्बोली भी शिवके पसीनेसे उत्पन्न हैं। ऐसा ही इनके कुलग्रन्थमें लिखा है।

---

* सुवर्ण जातिसे इनका कोई सम्बन्ध नहीं।

तेली, बरई आदि जातियोंकी भी उत्पत्तिके सम्बन्धमें ऐसे ही उपाख्यान मिलते हैं। वास्तवमें इन सब उपाख्यानोंके मूलमें किसी ऐतिहासिक कोई भित्ति नहीं है। मालूम होता है, कि बौद्धयुगके अवसानमें वङ्गके अनेक वैश्य संतान शैवधर्म वा शिवोपासना ग्रहण कर हिन्दू समाजमें मिल गये थे। उनको शिवभक्ति देख शास्त्रज्ञ ब्राह्मण पण्डितोंने उनमें किसीको शिवधर्मसम्भूत, किसीको शिवाङ्गसम्भूत कहके प्रचार किया। धर्मभीरु वणिक् सम्प्रदायने उन सब कल्पित उपाख्यानोंको ही शास्त्रवाक्य रूपमें विश्वास किया। इसीलिये आज उनके कुलग्रन्थोंमें वे उपाख्यान दिखाई देते हैं।

सुवर्णवणिक् और गन्धवणिकोंका कहना है, कि गौड़ाधिप वल्लालसेनने वङ्गकी सारी वणिक् जातिको शूद्रत्वमें परिणत किया।

अवश्य ही वङ्गके वणिक् समाजमें वल्लालसेनके समयमें जो द्विजोचित यज्ञसूत्रका लोप तथा शूद्राचारप्रवर्त्तनका प्रवाद चला आ रहा है, वह बिलकुल झूठ कह कर उड़ा दिया जा नहीं सकता।

तम्बोली और बरई—ये दोनों जातियां बौद्ध भावापन्न हैं। धर्मठाकुरके ये विशेष रूपसे भक्त थीं। नाना कवियोंका कविताओंमें इसका प्रमाण मिलता है। किन्तु प्रसङ्गमें बौद्धके होनेका कोई निदर्शन नहीं मिलता। सम्भवतः बहुत दिन पहले ये शैव थे। मालूम होता है, कि इसी जातिको चीनपरिव्राजक यूएनचुवङ्गने "हिन्दू वणिक्" नामसे उल्लेख किया है। ये पूर्वापर हिन्दू थे। इसीसे बङ्गालमें ब्राह्मणोंके जमानेमें वङ्गीय वणिकोंमें गन्धवणिक् ही शुद्धाचारी और सर्वश्रेष्ठ कहे जाते थे। और तो क्या, मनसामङ्गल, चण्डीमङ्गल आदि शाक्तप्रभावसे रचित ग्रन्थमें भी गन्धवणिक् सौदागर स्पष्ट वैश्यके नामसे अभिहित किये गये हैं। इन सब मङ्गल ग्रन्थोंमें गन्धवणिक् जातिका ऐश्वर्य, प्रभाव और असाधारण शिवभक्तिका परिचय मिलता है। बंगला-साहित्य शब्द देखो।

गन्धवणिक् शुरूमें शैव रहने पर भी सभी शाक्त हो गये थे। इस जातिको तान्त्रिक शक्तिभक्त बनानेमें शक्ति उपासकोंको यथेष्ट यत्न और क्लेश सहन करना पड़ा था। यह हम मनसा-मङ्गलके नायक चांद और चण्डीमङ्गलके नायक श्रीमन्तके पिता धनपति सौदागरके उज्ज्वल चरित्रसे जान सके हैं।

इस समय इस जातिके अनेक मनुष्य श्रीगौराङ्ग प्रवर्त्तित वैष्णवधर्म ग्रहण करने पर भी किसी समयमें जो शक्तिमन्त्रसे दीक्षित हुए थे, इसमें तनिक सन्देह नहीं। गन्धेश्वरी नाम्नी उनकी कुलदेवीकी पूजा ही उसका स्पष्ट प्रमाण है।

वङ्गके विराट् वैश्य समाजकी क्षीण स्मृति ले कर आज भी हजार हजार मनुष्य पूर्व वङ्गमें वास करते हैं और वे "वैश्य" नामसे ही परिचित हैं। आश्चर्यका विषय है, कि यह जाति वल्लाली व्यवस्था अमान्य कर आज भी यज्ञसूत्र धारण करती है और इसी कारणसे ही वे आज भी वल्लाली नियमाधीन वङ्गकी श्रेष्ठ जातियोंके निन्दित हैं।

पूर्व वङ्गके ढाका जिलेके भावाल परगनेमें और मैमनसिंहके जहाङ्गीरपुरमें वैश्य नामक एक जातिका वास है।

ये अपनेको वैश्य कहते और त्रिसूत अर्थात् जनेऊ पहनते हैं, किन्तु कुछ स्मृतिसम्मत वैश्य धर्मको नहीं मानते। साधारणतः ये १३ वर्षसे पहले ही पुत्रोंका चूड़ाकरण और उपनयन समाप्त कर देते हैं। इनको गायत्री और यजुर्वेदके पढ़नेका अधिकार है, किन्तु ब्राह्मण इनको फिर पूर्ण गायत्री दान नहीं करते।

ये हिसाब किताब करनेके लिये सामान्य वङ्ग भाषा जान कर ही अपने कार्यमें प्रवृत्त हो जाते हैं। वर्त्तमान समयमें अति अल्प लोगोंने ही अंग्रेजीमें मन लगाया है। मैमनसिंह जिलेमें इस जातिके इस समय कितने ही वकील, मुख्तार, तहसीलदार, अमीन आदि राजकीय कार्य कर रहे हैं। यह पहले हल चलाते थे, अब उसे निन्दित समझते हैं। ये १५ दिन तक मृताशौच मानते हैं। ये सब हिन्दू देवदेवियोंकी पूजा करते।

यह वैश्य साधारणतः कर्णकार और हड़काव, नासिका उच्च और तिलपुष्पकी तरह जरा टेढ़ी होती है।

अधिगद्वय अपेक्षाकृत उच्च होता है। ये बुद्धिमान् और चतुर हैं। (त्रि०) २ वैश्य सम्बन्धी।

वैश्यता (सं० स्त्री०) वैश्यस्य भाव तल-टाप्। वैश्य का भाव या धर्म, वैश्यत्व। (ऐतरेयब्रा० ७।२६)

वैश्यत्व (सं० क्ली०) वैश्यता देखो।

वैश्यवनिया—बम्बई प्रदेशके पूना जिलावासी वणिक् जातिविशेष। ये लोग यहांके गुजरात-वाणी या मारवाड़ वासी वैश्यवणिक्-सम्प्रदायसे सम्पूर्ण स्वतन्त्र हैं। यहां तक, कि एक साथ आहार व्यवहारादि भी नहीं करते। इस जातिका आदिनिवास कहां है तथा किस समय वाणिज्य-सूत्रसे यहां आये उसकी कोई किंवदन्ती नहीं मिलती। जातीय नामसे अनुमान किया जाता है, कि ये लोग वैश्यवर्ण हैं तथा वणिग्वृत्ति ही इनकी उपजीविका है। किन्तु दुःखका विषय है, कि इनकी उत्पत्तिका कोई उपाख्यान नहीं।

ये लोग मध्यमाकृति और हृष्टकाय होते हैं। पुरुषकी अपेक्षा स्त्रियां श्रीमती और सुन्दरी होती हैं। शराब, मछली और मांस खानेमें इन्हें विशेष अनुराग है, किन्तु देवद्विजमें भक्ति भी अचला है। ये लोग हिन्दूके सभी तीर्थोंमें जाते हैं तथा ग्राम्य देवदेवीकी भी पूजा करते हैं। वेशभूषा दाक्षिणात्य ब्राह्मणकी तरह है। शास्त्रोक्त क्रियाकलापमें देशस्थ ब्राह्मण ही इनकी पुरोहिताई करते हैं। ये लोग भी उन पुरोहितोंके प्रति भक्ति दिखलाते हैं।

ये लोग चतुर, कर्मठ, स्थिरमति और आज्ञावाही हैं। वाणिज्य, कृषि अथवा सामान्य दुकानदारी ही इनकी उपजीविका है। सामाजिक विवाद मिटानेके लिये इनकी जातीयसभा होती है। उसी सभाके मीमांसित विचारको ये लोग मानते हैं।

वैश्यभद्रा (सं० स्त्री०) बौद्धोंकी वैश्य और भद्रा नामकी दो देवियां। (तारनाथ)

वैश्यभाव (सं० पु०) वैश्यस्य भावः। वैश्यता। (मनु १०।६१)

वैश्यसव (सं० पु०) एक प्रकारका सव या यज्ञ। (तैत्तिरीय-ब्राह्मण)

वैश्यस्तोम (सं० पु०) एक प्रकारका यज्ञ। (षड् विंशब्रा० ४।३)

वैश्या (सं० स्त्री०) वैश्य टाप्। १ वैश्यजातिकी स्त्री। पर्याय—अर्याणी, अर्या। (जटाधर) २ हल्दी।

वैश्रम्भक (सं० पु०) १ पुराणानुसार देवताओंके एक उद्यान या बागका नाम। (भागवत ३।२३।४०) २ विश्वासोत्पाद। (भागवत ५।२६।३२)

वैश्रवण (सं० पु०) विश्रवणस्यापत्यं (शिवादिभ्योऽण्। पा ४।१।११२) इति अण्। १ कुबेर। २ शिव। (भारत १३।१७।१०१)

वैश्रवणालय (सं० पु०) वैश्रवणस्यालयः। १ कुबेरपुरी। २ वटवृक्ष, बटका पेड़, बरगद।

वैश्रवणावास (सं० पु०) वैश्रवणस्यावासः। वैश्रवणालय देखो।

वैश्रवणोदय (सं० पु०) वैश्रवणस्योदयो यस्मिन्। वटवृक्ष, बरगदका पेड़।

वैश्रेय (सं० पु०) विश्रिके गोत्रापत्य। वैसेय देखो।

वैश्लेषिक (सं० त्रि०) विश्लेष सम्बन्धी।

वैश्व (सं० त्रि०) १ विश्वदेव सम्बन्धी, विश्वदेवका। (पु०) २ उत्तराषाढ़ा नक्षत्र।

वैश्वकथिक (सं० त्रि०) विश्वकथायां साधु (कथादिभ्य ठक्। पा ४।१०२) इति ठक्। विश्वकथा-विषयमें साधु।

वैश्वकर्मण (सं० त्रि०) विश्वकर्मन्-अण्। विश्वकर्मासम्बन्धी।

विश्वजनीन (सं० त्रि०) विश्वजने साधुः (प्रतिजनादिभ्यः खञ्। पा ४।४।९९) इति विश्व खञ्। १ विश्व भरके लोगोंसे सम्बन्ध रखनेवाला, समस्त संसारके लोगोंका। (पु०) २ वह जो समस्त विश्व या संसारके लोगोंका कल्याण करता हो।

वैश्वजित (सं० त्रि०) विश्वजित् नामक होतृ-सम्बन्धी। (ऐतरेयब्रा० ६।३०)

वैश्वज्योतिष (सं० क्ली०) सामभेद।

वैश्वदेव (सं० पु०) विश्वदेवस्याय विश्वदेव-अण्। विश्वदेव-सम्बन्धीय होमादि। मनुमें लिखा है, कि वैश्वदेवादि कार्यके लिये ब्राह्मण-भोजनकी आवश्यकता नहीं है। द्विजोंको प्रतिदिन संस्कृत अग्निमें वैश्वदेवोद्देश्यसे सिद्ध अर्थात् पक्व अन्न द्वारा विधिपूर्वक होम करना चाहिये।

वैश्वदेव होमकी विधि इस प्रकार है—अग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहा, अग्निषोमाभ्यां स्वाहा, विश्वेभ्यो देवेभ्यो स्वाहा, धन्वन्तरये स्वाहा, कुहै स्वाहा, अनुमत्यै स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा, द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा और अन्तमें अग्नये स्विष्टिकृते स्वाहा यह कह कर होम करे। उक्त प्रकारसे अनन्यमनाः हो कर प्रति देवताके उद्देशसे हविर्द्वारा होम कर पूर्वादि दिक्-क्रमसे इन्द्र, यम, वरुण, सोम इन्हें तथा इनके अनुचर देवताओंको बलिप्रदान करे यथा—पूर्वकी ओर इन्द्राय नमः इन्द्रपुरुषेभ्यो नमः, दक्षिणमें यमाय नमः, पश्चिममें वरुणाय नमः वरुणपुरुषेभ्यो नमः, उत्तरमें सोमाय नमः सोमपुरुषेभ्यो नमः, यह कह कर बलिप्रदान करना होगा। पीछे मण्डलके बाहर मरुद्भ्यो नमः, जलमें अद्भ्यो नमः और मूषल या ऊखलमें वनस्पतिभ्यो नमः यह कह कर बलि चढ़ानी होगी। वास्तुपुरुषके शिरःप्रदेशमें उत्तरपूर्वकी ओर श्रियै नमः कह कर लक्ष्मीको, उसके पाद-देशमें दक्षिण-पश्चिमकी ओर भद्रकाल्यै नमः, कह कर भद्रकालीको, गृहमें ब्रह्मणे नमः कह कर ब्रह्माको और वास्तोष्पतये नमः कह कर वास्तु देवताको बलि चढ़ानी होगी। इसके बाद विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः, दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नक्तञ्चारिभ्यो नमः यह कर सभी देवता, दिवाचर और रात्रिचर भूतोंके उद्देशसे ऊर्द्ध्व आकाशमें बलि उत्क्षेप करे। आखिर अपने पृष्ठदेश पर भूभागोपरि सर्वात्मभूताय नमः, कह कर सभीभूतोंको बलि देनी होगी। ये सब बलि देकर जो अन्न बचेगा, उसे दक्षिण-की ओर दक्षिणामुख और प्राचीनावीती हो कर पितरोंको स्वधा पितृभ्यः कह कर पितरोंको बलि दे। पीछे कुत्ते, पतित, कुकुरोपजीवी, पापरोगी, काक और कृमियोंके लिये दूसरे अन्नके पात्रमें ग्रहण कर धीरे धीरे जमीन पर इस तरह रख दे, कि धूल लगने न पावे।

ब्राह्मण इसी प्रकार प्रति दिन वैश्वदेवका अनुष्ठान करेंगे। जो ब्राह्मण इस प्रकार प्रति दिन अन्नदानादि द्वारा वैश्वदेवका अनुष्ठान करते हैं, वे सभी पापोंसे मुक्त हो अन्तमें स्वर्गलोकको जाते हैं। (मनु ३ अ०)

वैश्वदेव अवश्य कर्त्तव्य है, नहीं करनेसे प्रत्यवाय होता है।

वैश्वदेवक (सं० क्ली०) विश्वदेवस्य भावः कर्म वा (मनोज्ञादिभ्यश्च। पा ५।१।१३३) इति वुञ्। विश्वदेवका भाव या कर्म।

वैश्वदेवकर्मन् (सं० क्ली०) विश्वदेवकी पूजादि।

वैश्वदेवत (सं० क्ली०) उत्तराषाढ़ा नक्षत्र। इसके अधिष्ठाता विश्वदेव माने जाते हैं। (बृहत्संहिता ६।६)

विश्वदेवस्तुत (सं० पु०) एकाहभेद।

(शाङ्खायनश्रौ० १४।६०।१)

वैश्वदेवहोम (सं० पु०) वैश्वदेवताकी प्रीतिके लिये प्रदत्त होमविशेष।

वैश्वदेविक (सं० त्रि०) १ विश्वदेवसम्बन्धी, विश्वदेवका। (मार्क०पु० ३१।३८।५७) (पु०) २ वैश्वदेव।

वैश्वदेव्य (सं० त्रि०) जो विश्वदेवकी प्रीतिके लिये उत्सर्ग किया गया हो।

वैश्वदैवत (सं० क्ली०) वैश्वदेवत देखो।

वैश्वदैविक (सं० त्रि०) वैश्वदेविक देखो।

वैश्वध (सं० त्रि०) विश्वधा शीलमस्य। विश्वधारक।

वैश्वधेनव (सं० पु०) विश्वधेनु सम्बन्धी।

वैश्वधेनव (सं० पु०) वैश्वधेनवानां विषयो देशः। विश्वधेनु बहुलदेश। (पा ७।३।२५)

वैश्वन्तरि (सं० पु०) विश्वन्तरके गोत्रापत्य।

(संस्कारकौमुदी)

वैश्वमनस (सं० क्ली०) साममेद।

(पञ्चविंशब्रा० १५।४।१६)

वैश्वमानव (सं० क्ली०) विश्वमानवानां विषयो देशः। देशविशेष, वह देश जहां विश्वमानव हो।

(पा ४।२।५४)

वैश्वयुग (सं० पु०) फलितज्योतिषके अनुसार बृहस्पतिके शोभकृत, शुभकृत, क्रोधी, विश्वावसु और पराभव नामक पांच संवत्सरोंका युग या समूह। इनमेंसे पहले दो संवत्सर शुभ और शेष दो अशुभ माने जाते हैं। (बाहस्पत्य० ८।४१)

वैश्वरूप (सं० त्रि०) विश्वरूप-अण्। १ विश्वरूप सम्बन्धी। (क्ली०) २ विश्वरूप।

वैश्वरूप्य (सं० त्रि०) विश्वरूप-सम्बन्धी।

वैश्वलोप (सं० त्रि०) विश्वलोप भव या तज्जात। (कौषीतकी १७)

वैश्वव्यचस (सं० त्रि०) विश्वव्यचस्-अण्। रविसे उत्पन्न। "तस्य चक्षुर्वैश्वव्यचसम्" (शुक्लयजु० १३।५६)

वैश्वसृज (सं० त्रि०) विश्वस्रष्टा-सम्बन्धी। (तैत्तिरीयआर० १।२३।११)

वैश्वानर (सं० पु०) विश्वश्चासौ नरश्चेति (नरे संज्ञायां। पा ६।३।१२९) इति दीर्घः ततो विश्वानर एव स्वार्थे अण्। १ अग्नि। (गीता १५।१४) २ चित्रक या चीता नामका वृक्ष। ३ परमात्मा। (वाजसनेयसं० २०।१३) ४ चेतन। ५ चित्त, चिन्ता।

वैश्वानरचूर्ण (सं० क्ली०) चूर्णौषधविशेष। यह सेंधा नमक, अजवायन और हर्रे आदिसे बनाया जाता है। इसका सेवन करनेसे आमवात, गुल्म और शूल प्रभृति नाना प्रकारके रोग शीघ्र विनष्ट होते हैं। यह वायुका अनुलोमकारक है। (भैषज्यरत्ना० आमवातरो०)

वैश्वानरज्येष्ठ (सं० पु०) जाठराग्निके पर्याप्तिकालमें जात अग्नि, उखाग्न्यादि। उखाग्नि, यज्ञाग्नि और सोमपृष्ठ आदि ही वैश्वानरज्येष्ठ कहलाता है; क्योंकि ये सभी जाठराग्निके पर्याप्त कालमें उत्पन्न होते हैं। (अथर्व ३।२१।६ सायण)

वैश्वानरज्योतिष (सं० पु०) परब्रह्म। (शुक्लयजु० २०।२३)

वैश्वानरपथ (सं० पु०) वैश्वानरस्य पन्थाः, यच् समासान्तः। वैश्वानरमार्ग। (रामा० १।६०।३०)

वैश्वानरमार्ग (सं० पु०) अग्निकोण या पूर्व और दक्षिणके बीचका कोण। यह वैश्वानरका मार्ग माना जाता है।

वैश्वानरलौह (सं० क्ली०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—इमलीकी छालकी भस्म, अपामार्ग भस्म, शम्बुक सुक्तिभस्म, सेंधा नमक प्रत्येक एक पाव, लोहा एक सेर, इन सबोंको एक साथ पीस ले। शूलरोगमें घेरुना होने पर २ मासे भर यह औषध सेवन करे। इससे साध्यासाध्य सभी तरहके शूल जल्द आराम होते हैं। (भैषज्यरत्ना० शूलरोगाधि०)

वैश्वानरवटी (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी गोली। यह पारे, गंधक, तांबे, लोहे, शिलाजीत, सोंठ, पीपल, चित्रक तथा मिर्च आदिके योगसे बनाई जाती है और यह पेटके रोगोंमें उपकारी मानी जाती है। (रसेन्द्रसार० उदरोगाधि)

वैश्वानर विद्या (सं० स्त्री०) ५६ उपनिषद्का नाम।

वैश्वानरायण (सं० पु०) विश्वानरके गोत्रापत्य। (पा ४।१।११०)

वैश्वानरीय (सं० त्रि०) वैश्वानर-सम्बन्धी। (ऐतरेयब्रा० ३।१४)

वैश्वामनस (सं० क्ली०) सामभेद।

वैश्वामित्र (सं० पु०) विश्वामित्रके गोत्रापत्य, विभिन्न ऋषि। (भारत वनपर्व)

वैश्वामित्रिक (सं० त्रि०) विश्वामित्र-सम्बन्धी।

वैश्ववसव (सं० क्ली०) १ वसुओंका समूह। (त्रि०) २ विश्वावसु-सम्बन्धी।

वैश्वावसव्य (सं० पु०) विश्वावसो र्गोत्रापत्यं (गर्गादिभ्यो यञ्। पा ४।१।१०५) इति यञ्। विश्वावसुके गोत्रापत्य।

वैश्वासिक (सं० पु०) वह जिस पर विश्वास किया जाय एतबार करनेके काबिल, विश्वस्त।

वैश्वी (सं० स्त्री०) उत्तराषाढ़ा नक्षत्र। (हेम)

वैषम (सं० क्ली०) विषम-अण्। विषम होनेका भाव, विषमता।

वैषमस्थ्य (सं० क्ली०) विषमस्थस्य भावः कर्म वा (गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च। पा ५।१।१२४) इति ष्यञ्। विषमस्थितका भाव या कर्म।

वैषम्य (सं० क्ली०) विषमस्य भावः विषम-ष्यञ् भावे। विषम होनेका भाव, विषमता।

वैषय (सं० क्ली०) विषयाणां समूहः (भिक्षादिभ्योऽण्। पा ४।२।३८) इति अण्। विषय समूह।

वैषयिक (सं० त्रि०) १ विषय-सम्बन्धी, विषयका। (पु०) २ वह जो सदा विषयवासनामें रत रहता हो, विषयी, लंपट।

वैषुवत (सं० त्रि०) विषुवसंक्रान्ति। "उदगयन-दक्षिणायनवैषुवतसंज्ञाभिर्मितिभिः।" (भागवत ५।२१।३)

वैषुवतीय (सं० त्रि०) वैषुवत देखो।

वैष्किर (सं० पु०) वह पशु पक्षी जो चारों ओर घूम फिर कर आहार प्राप्त करता हो।

वैष्टप (सं० त्रि०) विष्टप-सम्बन्धी। (अथर्व ४।१।२७।४)

वैष्टपुरेय (सं० पु०) विष्टपुरस्य गोत्रापत्यं विष्टपुर (शुभ्रादिभ्यश्च। पा ४।१।१२३) इति ढक्। विष्टपुरके गोत्रापत्य।

वैष्टम्भ (सं० क्ली०) सामभेद। (पञ्चविंशब्रा० १।२।३।६)

वैष्टिक (सं० पु०) दुर्दान्त, दुराशय।

वैष्ठुत (सं० पु०) होमकी भस्म।

वैष्ठुभ (सं० क्ली०) वैष्ठुत देखो। (त्रिकाण्डशे० २।७।७)

वैष्ट्र (सं० क्ली०) विष्ट (भ्रमशिशमिनमिहर्जनिविरचर्चा वृद्धिश्च। उण ४।१५६) इति ष्ट्रन् वृद्धिश्च। १ विष्टप। (पु०) २ द्यौ, स्वर्ग। ३ वायु। ४ विष्णु। (संक्षिप्तसा० उणादि)

वैष्णव (सं० क्ली०) विष्णोरिदं विष्णु-अण्। १ होम-भस्म, यज्ञकुण्डकी भस्म। २ महापुराणविशेष, विष्णु-पुराण।

"त्रयोविंशतिसाहस्रं वैष्णवं परमाद्भुतम्।"

(देवीभागवत ३।१।८)

(त्रि०) ३ विष्णुसम्बन्धी।

"तो गतस्य तव धाम वैष्णवं कोपितो ह्यसि मया दिदृक्षुणा।"

(पु०) विष्णुर्देवताऽस्य अण्। ४ विष्णुमन्त्रो-पासक, विष्णुभक्त। पर्याय—कार्ष्ण, हार।

नीचे वैष्णव शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

वैष्णव (सं० पु०) विष्णुर्देवता अस्य विष्णु-अण्, विष्णु यजते या। विष्णु हो जिसके आराध्य देवता हैं, अथवा जो विष्णु यजन करते हैं, वे ही वैष्णव हैं।

(पद्मपु० उ० ख० ६६ अ०)

प्राचीन ऋक् मन्त्रोंमें ऋषि उपासना करते थे। भोगैश्वर्य प्रदानके निमित्त विष्णुकी प्रार्थना करते, विपदसे उद्धार पानेके लिये विष्णुकी शरण लेते फिर कभी कभी निष्काम भावसे विष्णुकी महिमा गा गा कर हृदयेश्वरके चरणोंमें आत्मसमर्पण करते थे।

हम ऋग्वेदके १ मण्डलके २२वें सूक्तके १६वीं ऋक्-में सर्वप्रथम विष्णुका उल्लेख देखते हैं। इस १६वीं ऋक्से परवर्त्ती ६ ऋक्में विष्णुकी जो महिमा कीर्त्तित हुई है, उससे ही वैदिक कालमें भी हम विष्णुकी आरा-धनाका प्रभाव, प्रसार और प्रतिपत्तिका यथेष्ट आभास पाते हैं। प्राचीन और आधुनिक जो २३५ उपनिषद् हैं, उनमें अधिकांशसे विष्णु-माहात्म्यकीर्त्तन उद्धृत किया जा सकता है।

वैष्णव सम्प्रदायकी उपनिषदोंमें तैत्तिरीयसंहिताके अन्तर्गत नारायणोपनिषद् ही प्राचीनतम है। ऐसा यूरोपीयनोंने भी स्वीकार किया है। शतपथब्राह्मणमें भी नारायणका नाम दिखाई देता है। बृहन्नारायणोप-निषद् अथर्ववेदके अन्तर्गत है। इसमें हरि, विष्णु और वासुदेव आदि शब्दमें भी देखे जाते हैं। महोपनिषदमें भी नारायण ही परब्रह्म कह कर स्वीकृत हुए हैं। अथर्व-शिरः उपनिषदमें "हम देवकी-पुत्र मधुसूदन" नाम देखते हैं। छान्दोग्यमें भी "देवकीपुत्र कृष्ण आङ्गिरस" नाम मिलता है। आत्मप्रबोध उपनिषद् और गर्भोपनिषदमें भी नारायण ही परमतत्त्व कहे गये हैं। मैत्रेयोपनिषद्, वासुदेवोपनिषद्, स्कन्दोपनिषद्, रामोपनिषद्, रामताप-नियोपनिषद् और मुक्तिकोपनिषदमें भी नारायणका माहात्म्य कीर्त्तित हुआ है। इन सब उपनिषदोंमें कई उपनिषद् प्राचीन न होनेसे भी बहुत आधुनिक नहीं है। साम्प्रदायिक उपनिषद् अपेक्षाकृत अप्राचीन होने पर इन-में कई पाणिनिके पहले ही रची गई थी, ऐसा अनुमान किया जा सकता है।

जो हो, नारायणोपनिषद् अति प्राचीन और वैदिक है, इसमें बिन्दुमात्र भी सन्देह नहीं। हम महाभारतके मोक्षधर्म अध्यायमें "नारायणीय" अध्याय देखते हैं। इन सब अध्यायोंमें प्राचीन कालके नारायण उपासक वैष्णवोंका कुछ विवरण दिखाई देता है।

महाभारतकी इस उक्तिसे हम समझते हैं, कि यह वैदिक आख्यान है। उपरिचर वसु देवराज इन्द्रके मित्र थे। इनको सूर्यसे नारायणकी अर्चनाके सम्बन्धमें "सात्वतविधान" मिला था। इस "सात्वत" शब्दका अर्थ टीकाकार नीलकण्ठने लिखा है,—"सात्वतानां पाञ्चरात्राणां हितं।" इसके बाद और भी लिखा है,—

"पाञ्चरात्रविदो मुख्यास्तस्य गेहे महात्मनः।
प्रायाणं भगवत्प्रोक्तं भुञ्जते चाग्रभोजनम्॥ २५"

अर्थात् वे समाहित हो कर काम्य और नैमित्तिक

याज्ञीय क्रिया समुदय "सात्त्वत" विधिके अनुसार निर्वाह करते थे। पञ्चरात्रमुख्य ब्राह्मणगण भगवत्-प्रोक्त भोज्यादि ग्रहण करते थे।

चित्रशिखण्डी शास्त्र।

वेदके समयमें भी 'सात्त्वत' विधि पाञ्चरात्र संप्रदायमें प्रचलित था। महाभारतके इस आख्यानसे मालूम होता है, कि "सात्त्वत" विधान ही वैष्णव मत है। मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ—ये सात ऋषि चित्रशिखण्डी नामसे विख्यात थे। ये ही "सात्त्वत-विधि" प्रवर्त्तक हैं।

(शान्तिपर्व ३३५।२८-२९)

राजा उपरिचर वसुने अङ्गिराके पुत्र बृहस्पतिके सम्मुख 'सप्त चित्रशिखण्डिज' शास्त्र पाठ किया। वे याग यज्ञादि भी करते थे। शान्तिपर्वमें इसका उल्लेख है।

देवताओंने द्विजोत्तमोंसे कहा था, अज द्वारा यज्ञ करना होगा। अजका अर्थ बकरा है। सुतरां बकरे द्वारा यज्ञ करना होगा। यही वैदिक श्रुति है। अज शब्दका अर्थ बीज होता है। सुतरां बकरेकी हत्या करना असङ्गत है। जिसमें पशु मारे जाते हैं, वह साधुओंके लिये धर्म नहीं गिना जा सकता है।

(शान्तिपर्व ३३७।३-४-५)

यही सात्त्वत विधि है। पूर्वाध्यायमें इसकी एक और विशिष्टता बताई गई है। जैसे—

"अनन्या परया युक्तो मनोवाक्कर्मभिस्तथा।" ४३॥

"नारायणपरोभूत्वा नारायणजपं जपन्।" ६४॥

यह जो यहां भक्तिकी बात कही गई, यही भक्ति ही वैष्णव धर्मकी उपासनाकी एक प्रधान विशिष्टता है। जो हो, महाभारतके पढ़नेसे मालूम होता है, कि श्रीभगवान् नारायण ही इस सात्त्वतधर्मके आदि उपदेष्टा हैं। जैसे महाभारतमें—

"आराध्य तपसा देवं हरिं नारायणं प्रभुम्।
दिव्यं वर्षं सहस्रं वै सर्वे ते ऋषिभिः सह॥
नारायणानुशिष्टा हि तदा देवी सरस्वती।
विवेश तान् ऋषीन् सर्वान् लोकानां हितकाम्यया॥
ततः प्रवर्त्तिता सम्यक् तपोविद्भिर्द्विजातिभिः।
शब्दे चार्थे च हेतौ च एषा प्रथमसर्गजा॥
आदावेव हि तच्छास्त्रमोङ्कारस्वरपूजितम्।
ऋषिभिः श्रावितं तत्र यत्र कारुणिको ह्यसौ॥
ततः प्रसन्नो भगवाननिर्दिष्टशरीरकः।
ऋषीनुवाच तान् सर्वानदृश्य पुरुषोत्तमः॥"

(शान्तिप० ३३५।३४-३८)

फिर श्रीमद्भागवतमें भी सात्त्वत् तन्त्रके प्रकाश-सम्बन्धमें पौराणिक इतिहास देखा जाता है। जैसे—

"तृतीयमृषिसर्गं वै देवर्षित्वमुपेत्य सः।
तन्त्रं सात्त्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः॥"

फिर, तृतीय ऋषिसर्गमें देवर्षित्व अर्थात् नारद रूप ग्रहण कर पञ्चरात्र नामक वैष्णव तन्त्र प्रकाश किया गया है। ये पञ्चरात्रोक्त कर्म करनेसे जीव कर्मबन्धनसे मुक्त होता है

उक्त श्लोककी टीकामें श्रीधर स्वामीका कहना है—

"सात्त्वतं वैष्णवतन्त्रं पञ्चरात्रागमं आचष्ट।" यह सात्त्वत धर्म भगवद्धर्म नामसे भी अभिहित होता है। श्रीमद्भागवतमें ही यह भगवद्धर्म उक्त हुआ है। स्वयं भगवान् नारायण ही इस धर्मके प्रकाशक हैं। उन्होंने पहले ब्रह्माके सम्मुख "भागवतधर्म" प्रकाश किया। इसके बाद ब्रह्माने नारदको और नारदने व्यासको इसकी शिक्षा दी।

हमने महाभारत और श्रीमद्भागवतसे वैष्णवधर्मके इतिहासके सम्बन्धमें जो सब प्रमाण संगृहीत किये, उससे स्पष्ट प्रमाणित होता है, कि प्राचीनतम कालमें वैष्णव धर्म "सात्त्वत धर्म" "भागवत धर्म" और "पञ्चरात्र धर्म" नामसे अभिहित होता था।

पञ्चरात्र।

भागवतधर्म या सात्त्वतधर्म बहुत प्राचीन समयसे आलोचित होता आ रहा है। भागवत् सम्प्रदायकी प्रवृत्ति और प्रसार किस तरह संगठित हुआ, इससे पहले इसका आभास दिया गया है। समय पा कर यह पञ्चरात्र मतके नाम प्रसिद्ध हुआ। इसका विस्तार वर्णन पञ्चरात्र शब्दमें देखो।

शङ्कराचार्य जब मायावाद संस्थापनमें प्रवृत्त हुए, तब उन्होंने ब्रह्मसूत्रके २।२।४२-४४-४५ सूत्रकी व्याख्यामें

पञ्चरात्र और भागवत मतको अवैदिकत्व-सिद्ध करनेकी चेष्टा की थी। रामानुजस्वामी शङ्कराचार्यके इस मतका खण्डन कर गये हैं। पञ्चरात्र शब्दमें यह दिखाया गया है। शङ्कराचार्यके बहुत पहले बोधायन, गुहदेव, श्रमिडाचार्य आदिने ब्रह्मसूत्रकी जो व्याख्या की है, वह भी वैष्णवसिद्धान्तके अनुकूल है। सुतरां शङ्कराचार्यके बहुत पहले इस देशमें पञ्चरात्र नामक वैष्णव धर्म प्रचलित था, यह शङ्कराचार्यको भी स्वीकार्य्य होगा और तो क्या महाभारतमें भी पञ्चरात्रागमकी बात स्पष्टतः लिखी है। इन प्रमाणों पर ही निर्भर कर अनायास ही कहा जा सकता है, कि ब्राह्मण ग्रन्थ रचित होनेके पहले पञ्चरात्र मत या सात्वत वैष्णव धर्म इस देशमें यथेष्ट प्रचलित था।

मध्य युगमें वैष्णव सम्प्रदाय।

वैदिक समयमें वैष्णव सम्प्रदायमें जैसा आचार व्यवहार रीति नीति और उपासना या यज्ञकी पद्धति प्रचलित थी, कालके साथ साथ क्रमशः वे सब प्रणालियां बदलती आ रही हैं। आचार-व्यवहार और उपासनाप्रणालीमें परिवर्त्तन संघटनमें भिन्न भिन्न संप्रदायोंको सृष्टिमें देश-काल-पात्रके भेदसे और प्रणाली भेदसे और भिन्न भिन्न आचार्योंके अभ्युत्थानसे भिन्न भिन्न सिद्धान्त संस्थापित हो कर वैष्णवधर्म महामहीरुह समय पाने पर बहुशाखामें विभक्त हो जायेगा, इसमें आश्चर्य ही क्या? भिन्न भिन्न प्रतिकूल वादियोंके तर्क निरसनके साथ साथ भी वैष्णवधर्मके भिन्न भिन्न संप्रदाय और सिद्धान्त प्रवर्त्तित हुए हैं।

हमने इससे पहले श्रीमद्भागवत और महाभारतसे प्राचीन वैष्णव संप्रदायका परिचय प्रदान किया है। शङ्कराचार्यके समयमें जो सब वैष्णव-संप्रदाय थे, शङ्करशिष्य आनन्दगिरि-लिखित शङ्करदिग्विजय ग्रन्थमें हम कुछ परिचय पाते हैं। इस ग्रन्थके छठवें प्रकरणसे जाना जाता है—

शङ्कराचार्यके समय इस देशमें भक्त, भागवत, वैष्णव, पाञ्चरात्र, वैखानस और कर्महीन—साधारणतः ये छः प्रकारके वैष्णव थे। किन्तु ज्ञान और क्रियाभेदसे इस छः सम्प्रदायके अन्तर्गत और भी छः प्रकारके वैष्णवोंका परिचय पाते हैं। शङ्करविजयके आनन्दगिरिने इन छः साम्प्रदायिक वैष्णवोंकी उपासना-प्रणालीके सम्बन्धमें संक्षेपमें कुछ वर्णना की है। किंतु यह कहा जा नहीं सकता, कि यह वर्णना कहां तक प्रामाणिक है।

भक्त।

वासुदेव ही भक्तोंके मतसे महापुरुष हैं। इस जगत्के रक्षाकर्त्ता, सर्वज्ञ और सर्वदेवकारण हैं। वासुदेव ही शिष्टपालन और दुष्टदमनके लिये तथा भूभार उतारनेके लिये रामकृष्ण आदिका अवतार लिया करते हैं। पुण्यस्थलमें निज्ञाविर्भूत मूर्त्ति प्रतिष्ठा करते हैं। इनकी पदपङ्कज-सेवा ही भक्तोंके जीवनकी पुरुषार्थ है। भक्तगण अनन्तमूर्त्तिके सेवक हैं, श्रीमन्दिरादिका सम्मार्जन और प्रोक्षण आदि इनके कार्य हैं। ये दास्यरूपसे उपासना, ऊर्द्ध्वपुण्ड्र तिलकादि धारण और ब्राह्ममुहूर्त्तमें स्नानाह्निक करते हैं। स्मार्त्तविहित नित्यकर्म इनके लिये अप्रामाणिक है। ज्ञानक्रियाभेदसे इनका आचार विविध है। ज्ञानी कर्मानुष्ठान नहीं करते। ज्ञानी और कर्मी भक्त भेदसे यह सम्प्रदाय दो तरहका है। कर्मीभक्त स्मार्त्तमार्गमें काम करते हैं। किन्तु उस कर्मफलको भगवान्‌को ही समर्पण करते हैं।

भागवत।

श्रीभगवान्‌की स्तोत्रवन्दना और कीर्त्तनादि ही भागवत मतकी उपासना है। ये कहते हैं—

सर्ववेद-विनिश्चित आचरण करने पर जो फल होता है, सर्व तीर्थोंमें भ्रमण करनेसे जो फल होता है, जनार्दनके स्तव करनेका भी वैसा ही फल हुआ करता है। "कलौ संकीर्त्य केशवम्" यही इनकी उपासनाकी सार बात है। स्मार्त्तविहित कर्मानुष्ठान इनके मतसे बिलकुल अग्राह्य न होने पर भी वे उसके अनुष्ठानमें तत्पर नहीं हैं। ऊर्द्ध्वपुण्ड्र, तिलक और नारायणचिह्न शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म आदि द्वारा तिलकाङ्कन, कण्ठमें तुलसीमाला धारण और सब समयमें उच्चस्वरसे नारायणका नामकीर्त्तन आदि इनके धर्मसङ्गत कार्य हैं। पर, व्यूह, विभव और अर्च्चा—भगवान्‌की ये चार मूर्त्तियां इनको स्वीकार हैं। परवर्त्तीकालमें श्रीरामानुजस्वामीने इसको उज्ज्वल बनाया।

वैष्णव ।

वैष्णव नारायणके उपासक हैं, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म आदि नारायणके चिह्न देहमें अङ्कित करते हैं। "ओं नमो नारायणाय" इसी मन्त्रसे विष्णुकी उपासना करते हैं। वैकुण्ठ इनका धाम है।

ये भी तप्तमुद्राचिह्न धारण करते हैं। अर्थात् शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, मुद्रा तप्त कर इसके द्वारा चर्ममें स्थायी भावसे चिह्न आदि धारण करते हैं।

पञ्चरात्र ।

जो सब विष्णुभक्त पञ्चरात्र आगमके मतसे उपासना और उसके अनुसार आचार-व्यवहार करते हैं, वे ही पञ्चरात्र नामसे अभिहित होते हैं और वे भगवद्अर्चा-मूर्त्ति प्रतिष्ठादि कर उसकी उपासनामें रत रहते हैं। "पञ्चरात्र" शब्दमें इसका विस्तार वर्णन देखना चाहिये। इस श्रेणीके वैष्णव बहुत प्राचीन हैं। महाभारत-रचनासे पहले पञ्चरात्रविधिका प्रवर्त्तन हुआ। ये भी नारायण या वासुदेवके उपासक हैं। चक्रादि चिह्न व्यवहार और तुलसीमाला धारण प्रभृति भी इनका कर्त्तव्य कार्य है।

आदित्यपुराण, गरुड़पुराण, पद्मपुराण, ब्रह्मपुराण, स्कन्दपुराण, वराहपुराण, गौतमीयतन्त्र, यजुर्वेदीय हिरण्यकेशीय शाखा, कठशाखा और अथर्ववेदमें भी उपक्रम चिह्नादि धारण करनेकी व्यवस्था है।

वायुपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, ऋग्वेदीय आश्वलायन-शाखा, ऋक्‌परिशिष्ट, यजुर्वेद और छान्दोग्यपरिशिष्ट, अथर्वपरिशिष्ट आदि विविध शास्त्रमें इसके संबंधमें अनेक प्रमाण मिलते हैं। सुविख्यात शाण्डिल्य भक्तिसूत्र इस पाञ्चरात्र-सम्प्रदायका ग्रंथ है। अनेकोंका मत है, कि यह सूत्रग्रंथ श्रीमद्भगवद्गीतामूलक है।

वैखानस ।

वैखानस भी शङ्ख, चक्र आदि चिह्न तिलक-स्वरूप धारण करते हैं। नारायण ही इनके उपास्य देवता हैं। इनके मतसे विष्णु सर्वोत्तम हैं। श्रुतिप्रमाण दे कर वे कहते हैं,—

"तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम्।
तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ॥" (ऋक् १।२२।२०-२१)

इस तरह श्रौत प्रमाणानुसार वे विष्णुको ही सर्वोत्तम कह कर भजन करते हैं। नारायणोपनिषद् इनके मतसे अति प्रामाणिक वेदान्त श्रुतिग्रन्थ है। वे तप्तचक्रादि चिह्न अङ्गमें नित्यरूपसे धारण करते हैं।

कर्महीन या निष्काम ।

कर्महीन वैष्णव कर्मकाण्डत्यागी है। यह कर्महीन वैष्णव केवलमात्र विष्णुको ही गतिमुक्ति समझ एक समयमें अशेष कर्म परित्याग करते हैं। वे अन्य देव, अन्य मन्त्र, अन्य साधन या अन्य किसी सम्प्रदायके आचार्य या गुरुको नहीं मानते। वे जगत्‌को विष्णुरूप मानते हैं—(सियाराममय सब जग जानी, करौं प्रणाम जोरि युग पाणि। ये चौपाई भी एक भक्त वैष्णवका ही है।) अपने सम्प्रदायके गुरुको वे एकमात्र मोक्षपथ-प्रदर्शक समझते हैं। वे सन्ध्या-गायत्री आदिकी मर्यादा-रक्षा नहीं करते हैं। इन सब सम्प्रदायोंके आचार-व्यवहार और दार्शनिक तत्त्व आदिका मर्म सात्वत शब्दमें देखो।

शङ्कराचार्यके कुछ काल पहले इस देशमें ये सब वैष्णव सम्प्रदाय विद्यमान थे और उनके तिरोधानके बाद इनमें कोई सम्प्रदाय किस आकारमें प्रचलित हुआ था, उसका इतिहास अस्पष्ट है। महाभारतके रचनाकालमें बहुत पहले भी कृष्ण और वासुदेवकी अर्चना प्रचलित थी। महाभारत पढ़नेसे यह सहज ही हृदयङ्गम होता है। किन्तु शङ्करदिग्विजय ग्रन्थमें अथवा शङ्करभाष्यमें हम श्रीकृष्णोपासक संप्रदायका नाम दिखाई नहीं देता है। श्रीमद्भागवत-ग्रन्थको श्रीमच्छङ्कराचार्य उत्तमरूपसे ही अध्ययन किया था, शङ्करदिग्विजय ग्रंथ पाठ करनेमें उसका परिचय पाया जाता है। वे शुभ ...नके विशुद्ध सिद्धान्त संस्थापन करनेके लिये वैष्णवमत निरसन प्रसङ्गमें श्रीमद्भागवतसे एक श्लोक उद्धृत कर रहे हैं, वह इस तरह है—

"कर्मवहिष्कृतस्य विष्णुभक्तस्यापि अधिकारो नास्त्येव। उक्तञ्च भागवतभगवद्भक्तस्य लक्षणम्—

"न चलति निजवर्णधर्मतो यः सममतिरात्मसुहृद्विपक्षपक्षे।
न हरति न च हन्ति किञ्चिदुच्चैः सततमन्तु तमवेहि विष्णुभक्तम् ॥"

(दशम प्रकरण)

पञ्चरात्र और भागवत मतका अवैदिकत्व-सिद्ध करनेकी चेष्टा की थी । रामानुजस्वामी शङ्कराचार्यके इस मत का खण्डन कर गये हैं। पञ्चरात्र शास्त्रमें यह दिखाया गया है। शङ्कराचार्यके बहुत पहले बौधायन, गुहदेव, द्रमिडाचार्य आदिने ब्रह्मसूत्रकी जो व्याख्या की है, वह भी वैष्णवसिद्धान्तके अनुकूल है। सुतरां शङ्कराचार्यके बहुत पहले इस देशमें पञ्चरात्र नामक वैष्णव धर्म प्रचलित था, यह शङ्कराचार्यको भी स्वीकार्य्य होगा और तो क्या महाभारतमें भी पञ्चरात्रागमकी बात स्पष्टतः लिखी है। इन प्रमाणों पर ही निर्भर कर अनायास ही कहा जा सकता है, कि ब्राह्मण ग्रन्थ रचित होनेके पहले पञ्चरात्र मत या सात्वत वैष्णव धर्म इस देशमें यथेष्ट प्रचलित था।

मध्य युगमें वैष्णव सम्प्रदाय।

वैदिक समयमें वैष्णव सम्प्रदायमें जैसा आचार व्यवहार रीति नीति और उपासना या यज्ञकी पद्धति प्रचलित थी, कालके साथ साथ क्रमशः वे सब प्रणालियां बदलती आ रही हैं। आचार-व्यवहार और उपासनाप्रणालीमें परिवर्त्तन सङ्घटनमें भिन्न भिन्न संप्रदायोंकी सृष्टिमें देश-काल-पात्रके भेदसे और प्रणाली भेदसे और भिन्न भिन्न आचार्यों के अभ्युत्थानसे भिन्न भिन्न सिद्धान्त संस्थापित हो कर वैष्णवधर्म महामहीरुह समय पाने पर बहुशाखामें विभक्त हो जायेगा, इसमें आश्चर्य ही क्या ? भिन्न भिन्न प्रतिकूल वादियोंके तर्क निरसनके साथ साथ भी वैष्णवधर्मके भिन्न भिन्न संप्रदाय और सिद्धान्त प्रवर्त्तित हुए हैं।

हमने इससे पहले श्रीमद्भागवत और महाभारतसे प्राचीन वैष्णव संप्रदायका परिचय प्रदान किया है। शङ्कराचार्यके समयमें जो सब वैष्णव-संप्रदाय थे, शङ्करशिष्य आनन्दगिरि-लिखित शङ्करदिग्विजय ग्रन्थमें हम कुछ परिचय पाते हैं। इस ग्रन्थके छठें प्रकरणसे जाना जाता है—

शङ्कराचार्यके समय इस देशमें भक्त, भागवत, वैष्णव, पाञ्चरात्र, वैखानस और कर्महीन—साधारणतः ये छः प्रकारके वैष्णव थे। किन्तु ज्ञान और क्रियाभेदसे इन छः सम्प्रदायके अन्तर्गत और भी छः प्रकारके वैष्णवोंका परिचय पाते हैं। शङ्करविजयके आनन्दगिरिने इन छः साम्प्रदायिक वैष्णवोंकी उपासना-प्रणालीके संबन्धमें संक्षेपमें कुछ वर्णना की है। किंतु यह कहा जा नहीं सकता, कि यह वर्णना कहां तक प्रामाणिक है।

भक्त।

वासुदेव ही भक्तोंके मतसे महापुरुष हैं। इस जगत्‌के रक्षाकर्त्ता, सर्वज्ञ और सर्वदेवकारण हैं। वासुदेव ही शिष्टपालन और दुष्टदमनके लिये तथा भूभार उतारनेके लिये रामकृष्ण आदिका अवतार लिया करते हैं। पुण्यस्थलमें निजाविर्भूत मूर्त्ति प्रतिष्ठा करते हैं। इनकी पदपङ्कज-सेवा ही भक्तोंके जीवनकी पुरुषार्थ है। भक्तगण अनन्तमूर्त्तिके सेवक हैं, श्रीमन्दिरादिका सम्मार्जन और प्रोक्षण आदि इनके कार्य हैं। ये दासभावसे उपासना, ऊर्द्ध्वपुण्ड्र तिलकादि धारण और ब्राह्ममुहूर्तमें स्नानाह्निक करते हैं। स्मार्त्तविहित नित्यकर्म इनके लिये अप्रामाणिक है। ज्ञानक्रियाभेदसे इनका आचार विविध है। ज्ञानी कर्मानुष्ठान नहीं करते। ज्ञानी और कर्मी भक्त भेदसे यह सम्प्रदाय दो तरहका है। कर्मीभक्त स्मार्त्तमार्गमें काम करते हैं। किन्तु उस कर्मफलको भगवान्‌को ही समर्पण करते हैं।

भागवत।

श्रीभगवानकी स्तोत्रवन्दना और कीर्त्तनादि ही भागवत मतकी उपासना है। ये कहते हैं—

सर्ववेद-विनिश्चित आचरण करने पर जो फल होता है, सर्व तीर्थोंमें भ्रमण करनेसे जो फल होता है, जनार्दनके स्तव करनेका भी वैसा ही फल हुआ करता है। "कलौ संकीर्त्य केशवम्" यही इनकी उपासनाको सार मानते हैं। स्मार्त्तविहित कर्मानुष्ठान इनके मतसे बिलकुल अस्वाज्य न होने पर भी वे उसके अनुष्ठानमें तत्पर नहीं हैं। ऊर्द्ध्वपुण्ड्र, तिलक और नारायणचिह्न शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म आदि द्वारा तिलकाङ्कन, कण्ठमें तुलसीमाला धारण और सब समयमें अष्टाक्षरसे नारायणका नामकीर्त्तन आदि इनके धर्माङ्ग कार्य हैं। पर, व्यूह, विभव और आर्चा—भगवानकी ये चार मूर्त्तियां इनको स्वीकार हैं। परवर्त्तीकालमें श्रीरामानुजस्वामीने इसको उन्नयन बनाया।

वैष्णव।

वैष्णव नारायणके उपासक हैं, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म आदि नारायणके चिह्न देहमें अङ्कित करते हैं। "ओं नमो नारायणाय" इसी मन्त्रसे विष्णुकी उपासना करते हैं। वैकुण्ठ इनका धाम है।

ये भी तप्तमुद्राचिह्न धारण करते हैं। अर्थात् शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, मुद्रा तप्त कर इसके द्वारा चर्ममें स्थायी भावसे चिह्न आदि धारण करते हैं।

पञ्चरात्र।

जो सब विष्णुभक्त पञ्चरात्र आगमके मतसे उपासना और उसके अनुसार आचार-व्यवहार करते हैं, वे ही पञ्चरात्र नामसे अभिहित होते हैं और वे भगवद्चर्चा-मूर्त्ति प्रतिष्ठादि कर उसकी उपासनामें रत रहते हैं। "पञ्चरात्र" शब्दमें इसका विस्तार वर्णन देखना चाहिये। इस श्रेणीके वैष्णव बहुत प्राचीन हैं। महाभारत-रचनासे पहले पञ्चरात्रविधिका प्रवर्त्तन हुआ। ये भी नारायण या वासुदेवके उपासक हैं। चक्रादि चिह्न व्यवहार और तुलसीमाला धारण प्रभृति भी इनका कर्त्तव्य कार्य है।

आदित्यपुराण, गरुड़पुराण, पद्मपुराण, ब्रह्मपुराण, स्कन्दपुराण, वराहपुराण, गौतमीयतन्त्र, यजुर्वेदीय हिरण्यकेशीय शाखा, कठशाखा और अथर्ववेदमें भी उपक्रम चिह्नादि धारण करनेकी व्यवस्था है।

वायुपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, ऋग्वेदीय आश्वलायन-शाखा, ऋक्‌परिशिष्ट, यजुर्वेद और छान्दोग्यपरिशिष्ट, अथर्वपरिशिष्ट आदि विविध शास्त्रमें इसके संबंधमें अनेक प्रमाण मिलते हैं। सुविख्यात शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र इस पाञ्चरात्र-सम्प्रदायका ग्रंथ है। अनेकोंका मत है, कि यह सूत्रग्रंथ श्रीमद्भगवद्गीतामूलक है।

वैखानस।

वैखानस भी शङ्ख, चक्र आदि चिह्न तिलक-स्वरूप धारण करते हैं। नारायण ही इनके उपास्य देवता हैं। इनके मतसे विष्णु सर्वोत्तम हैं। श्रुतिप्रमाण दे कर ये कहते हैं,—

"तद्विष्णोः परमं पदं सदापश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम्।
तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ॥" (ऋक् १।२२।२०-२१)

इस तरह श्रौत प्रमाणानुसार ये विष्णुको ही सर्वोत्तम कह कर भजन करते हैं। नारायणोपनिषद् [illegible] के मतसे अति प्रामाणिक वेदान्त श्रुतिग्रन्थ है। ये तप्तचक्रादि चिह्न अङ्गमें नित्यरूपसे धारण करते हैं।

कर्महीन या निष्काम।

कर्महीन वैष्णव कर्मकाण्डत्यागी हैं। यह कर्महीन वैष्णव केवलमात्र विष्णुको ही गतिमुक्ति समझ कर समयमें अशेष कर्म परित्याग करते हैं। ये अन्य देव, अन्य तन्त्र, अन्य साधन या अन्य किसी सम्प्रदायके आचार्य या गुरुको नहीं मानते। ये जगत्‌को विष्णु-रूप मानते हैं—(सियाराममय सब जग जानी, करौं प्रणाम जोरि जुग पानि। ये चौपाई भी एक भक्त वैष्णवका ही है।) अपने सम्प्रदायके गुरुको ये एक-मात्र मोक्षपथ-प्रदर्शक समझते हैं। ये सन्ध्या-गायत्री आदिकी मर्यादा-रक्षा नहीं करते हैं। इन सब सम्प्रदायोंके आचार-व्यवहार और दार्शनिक तत्त्व आदिका मर्म सात्वत शब्दमें देखो।

शङ्कराचार्यके कुछ काल पहले इस देशमें ये सब वैष्णव संप्रदाय विद्यमान थे और उनके तिरोधानके बाद इनमें कोई सम्प्रदाय किस आकारमें प्रवर्त्तित हुआ था, उसका इतिहास अस्पष्ट है। महाभारतके रचना-कालमें बहुत पहले भी कृष्ण और वासुदेवकी अर्चना प्रचलित थी। महाभारत पढ़नेसे यह सहज ही हृदयङ्गम होता है। किन्तु शङ्करदिग्विजय ग्रन्थमें अथवा शङ्कर-भाष्यमें हम श्रीकृष्णोपासक संप्रदायका नाम दिखाई नहीं देता है। श्रीमद्भागवत-ग्रन्थको श्रीमच्छङ्कराचार्य उत्तमरूपसे ही अध्ययन किया था, शङ्करदिग्विजय ग्रंथ पाठ करनेमें उसका परिचय पाया जाता है। वे शुद्ध ...कके विशुद्ध सिद्धान्त संस्थापन करनेके लिये वैखानस-मत निरसन प्रसङ्गमें श्रीमद्भागवतसे एक श्लोक उद्धृत कर रहे हैं, वह इस तरह है—

"कर्मबहिष्कृतस्य विष्णुभक्तस्यापि अधिकारो नास्त्येव। उक्तञ्च भागवतभगवद्भक्तस्य लक्षणम्—

"न चलति निजवर्णधर्मतो यः सम मतिरात्मसुहृद्विपक्षपक्षे।
न हरति न च हन्ति किञ्चिदुच्चैः सितमनसं तमवेहि विष्णुभक्तम् ॥"
(दशम प्रकरण)

जिनकी मधुर लीलामें श्रीमद्भागवतका प्रति छत्र सुधाधारासे परिप्लुत है, जिनके कीर्त्तिमाहात्म्यकी उद्घोषणासे सारा भारतवर्ष मुखरित है, श्रीमद्भगवद्गीता जिनके श्रीमुखका विश्वतोमुख सनातन-धर्मोपदेश है, मध्ययुगमें उन श्रीकृष्णकी नामगुणध्यानधारणा पूजा-अर्चना नहीं होती थी, यह बात कौन विश्वास करेगा? इसीसे मालूम होता है, कि शङ्करविजयमें जिन थोड़े वैष्णव संप्रदायका उल्लेख है, उनको छोड़ और भी कितने वैष्णव संप्रदाय भारतवर्षमें विद्यमान थे।

वर्त्तमान वैष्णव संप्रदाय।

जो हो, अभी हम लोग भारतवर्षमें जो चार शास्त्रीय वैष्णव मूलसंप्रदाय देखते हैं, पद्मपुराणमें भी उन चार संप्रदायोंका उल्लेख दिखाई देता है। यथा—

"अतः कलौ भविष्यन्ति चत्वारः संप्रदायिनः।
श्रीब्रह्मरुद्रसनको वैष्णवाः क्षितिपावनाः॥"

अर्थात् कलिकालमें चार संप्रदाय क्षितिपावन वैष्णव प्रकट हो कर श्री, ब्रह्म, रुद्र और सनक नामसे परिचित होंगे। इसका अभिप्राय यह कि लक्ष्मीसे एक संप्रदाय, ब्रह्मासे एक सम्प्रदाय, रुद्रसे एक संप्रदाय और सनकसे एक संप्रदाय वैष्णव प्रादुर्भूत होंगे। इन चार संप्रदायकी गुरुप्रणालिका आज भी प्रचलित है। भगवदवतारके सदृश आचार्योंके प्रत्येक संप्रदायमें आविर्भूत होनेसे अभी उन्हींके नाम पर ये संप्रदाय पुकारे जाते हैं। यथा—

"रामानुजं श्रीः स्वीचक्रे मध्वाचार्यं चतुर्मुखः।
श्रीविष्णुस्वामिनं रुद्रो निम्बादित्यं चतुःसनः॥"

अर्थात् श्रीठाकुरानीने श्रीमद्रामानुजाचार्यको, ब्रह्माने मध्वाचार्यको, रुद्रने विष्णुस्वामीको और चारसनने निम्बादित्यको अपने अपने सम्प्रदायका अभिनव प्रवर्त्तक स्वीकार किया। अभी इन चारों सम्प्रदायके वैष्णव भारतवर्षमें अधिक संख्यामें देखे जाते हैं। किन्तु श्रीगौर सुन्दरने मध्वाचार्य सम्प्रदाय हो कर भी वैष्णवधर्मका अभिनव समुज्ज्वल सिद्धान्त प्रकट किया है। यह संप्रदाय मध्वाचार्य-संप्रदायभुक्त कह कर प्रसिद्ध था, परन्तु अभी यह सभी विषयोंमें मध्वाचार्य-संप्रदायसे विभिन्न है तथा श्रीगौड़ेश्वर संप्रदाय नामसे ख्यात है।

श्रीसम्प्रदाय।

श्रीरामानुजाचार्यने इस सम्प्रदायका नाम प्रविख्यात कर दिया है। किन्तु उनके आविर्भावके बहुत पहलेसे ही श्रीसम्प्रदायका वैष्णवधर्म प्रचलित था तथा पूर्वाचार्यगण धर्ममतका संरक्षण करते आ रहे थे।

श्रीसम्प्रदाय शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

रामानुजका शाखा-सम्प्रदाय।

रामानुजके शाखा-संप्रदायमें रामातोंका नाम ही विशेष उल्लेखनीय है। भारतवर्षके उत्तर-पश्चिम अञ्चलमें रामात्-संप्रदायका वैष्णव सुप्रसिद्ध है। यह संप्रदाय रामानन्दी कहलाता है।

रामानन्द शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

कबीरपन्थी।

शास्त्रपथका परित्याग कर व्यक्तिविशेषके इच्छानुसार जब धर्ममत प्रवर्त्तित हुआ, तब उस संप्रदायके उपासक पन्थी कहलाने लगे। रामानन्दके सुप्रसिद्ध शिष्य कबीरने धर्ममत चलाया। यही मत उत्तर-पश्चिमाञ्चलमें यथेष्ट प्रचलित हुआ था। कबीरकी जीवनी और उनका धर्ममत 'कबीर' शब्दमें लिखा जा चुका है।

कबीर देखो।

खाकी।

रामानुज-संप्रदायकी दूसरी शाखा खाकी-संप्रदाय है। ये लोग रामानन्दी संप्रदायके अन्तर्भुक्त हैं। कील नामक एक भगवद्भक्त वैष्णव इस संप्रदायके प्रवर्त्तक थे। अयोध्याके निकटस्थ हनुमानगढ़ी इनका प्रधान मठ है। जयपुरमें खाकीकुलगुरु कीलका प्रधान मठ संस्थापित है। फरुखाबाद प्रदेशमें खाकी-संप्रदाय देखनेमें आता है।

मलूकदासी।

मलूकदासी नामक रामानुज-संप्रदायकी एक और शाखा है। मलूकदास इस संप्रदायके प्रवर्त्तक थे। रामानन्दी-संप्रदायकी गुरुप्रणालीमें मलूकदासका नामोल्लेख है। काशी, इलाहाबाद, लखनऊ, अयोध्या, वृन्दावन आदि स्थानोंमें इस संप्रदायके छः मठ हैं।

दादूपन्थी।

रामानुजकी शाखा रामातोंकी और एक शाखा भी प्रख्यात है। दादूपन्थी भी रामानुजीय संप्रदायकी

गूढ़शाखा है। रामानन्द रामानुज-संप्रदायसे प्रादुर्भूत हुए हैं। कबीर रामानन्दके शिष्य हैं। दादुपन्थी फिर कबीरपन्थीसे उत्पन्न हैं। दादु इस संप्रदायके प्रवर्त्तक हैं। कबीरपन्थियोंकी गुरुप्रणालीमें दादुका नाम आया है।

रयदासी।

रामानन्दस्वामीके दूसरे शिष्य रयदास या रुईदास रयदासी-संप्रदायके प्रवर्त्तक हैं। रुईदास जातिके चमार थे, वैष्णवधर्मके प्रभावसे एक चमारने भी धर्माचार्यकी पदवी पाई थी। चित्तोरराजकी झालि नाम्नी महिषीने भी रयदाससे दीक्षा ली थी, इससे और आश्चर्य क्या हो सकता है?

सेनपन्थी।

रामानन्दके शिष्य सेन नामक एक नापित सेनपंथी संप्रदायके प्रवर्त्तक थे। सेन और उनके वंशधरगण गन्धोयानाके बन्धगढ़ राजवंशके कुलगुरु थे। भक्तमालमें सेनका चरित और उनकी अद्भुत आख्यायिका प्रचलित है। सेनपन्थियोंका अभी कोई संधान नहीं मिलता।

रामसनेही।

रामचरण नामक एक व्यक्ति रामसनेही संप्रदायके प्रवर्त्तक थे। रामसनेही संप्रदाय रामात् वैष्णव हैं। ये लोग मूर्त्तिपूजा नहीं करते। यह संप्रदाय नितान्त आधुनिक है, १८२८ संवत्‌में प्रवर्त्तित हुआ है। ये लोग गलेमें माला पहनते और ललाटमें श्वेत दीर्घपुण्ड्र तिलक धारण करते हैं।

ब्रह्मसंप्रदाय।

हम पहले लिख चुके हैं, कि श्रीसंप्रदाय श्री या लक्ष्मीठाकुरानीसे चलाया गया है तथा ब्रह्मा ही ब्रह्मसंप्रदायके प्रवर्त्तक हैं। पद्मपुराणमें प्रागुक्त वचन ही इसका प्रमाण है। ब्रह्मासे जो एक वैष्णव-संप्रदाय प्रवृत्त है, श्रीमद्भागवतके तृतीय स्कन्धकी टीकाके प्रारम्भमें श्रीधरस्वामीने भी यह स्वीकार किया है। परवर्त्ती आचार्य कहते हैं—

"रामानुजानां शरणीरमातो गौरीपतेर्विष्णुमताऽनुगानाम्।
निम्बार्कगानां सनकादितश्च मध्वानुगानां परमेष्ठितश्च॥"

(माभजन १३३ पृ०)

ब्रह्मासे जिस वैष्णव संप्रदायकी प्रवृत्ति हुई, दक्षिणापथके अन्तर्गत तुलवदेशवासी मधिजीभट्टके पुत्र वासुदेव (मध्वाचार्य)-ने उस संप्रदायमें नवजीवन प्रदान किया। इस कारण ब्रह्मसंप्रदाय अभी माध्व-संप्रदाय नामसे भी अभिहित हुआ है। ये साधनासे सिद्धिलाभ करके पूर्णप्रज्ञ कहलाने लगे। इनका दूसरा नाम आनन्दतीर्थ है। इनकी जीवनी और धर्ममत 'मध्वाचार्य' शब्दमें लिखा जा चुका है। मध्वाचार्यने वेदांतका द्वैतभाष्य रचा जो "पूर्णप्रज्ञदर्शन" नामसे प्रसिद्ध है। नारायण उपनिषद् ही इस संप्रदायकी श्रुतिसम्बन्धिनी भित्ति है। माध्वगणने गुरुप्रणाली इस प्रकार स्वीकार की है।

ब्रह्मा
|
नारद
|
बादरायण
|
मध्व
|
पद्मनाभ
|
नरहरि
|
माधव
|
अक्षोभ्य
|
जयतीर्थ
|
ज्ञानसिन्धु
|
दयानिधि
|
विद्यानिधि
|
राजेन्द्र
|
जयधर्म
|
विष्णुपुरी पुरुषोत्तम

ऊपरोक्त इन्हीं पुरुषोत्तमसे श्रीगौराङ्ग-संप्रदायकी गुरुप्रणालीका प्रारम्भ निर्देश किया जा सकता है।

रुद्रसम्प्रदाय।

रुद्रने भी एक वैष्णव-संप्रदाय चलाया। परवर्त्ती

कालमें श्रीविष्णुस्वामीने इस सम्प्रदायके भक्तिमतका प्रचार किया। इस कारण लिखा है—"श्रीविष्णुस्वामिनं रुद्रः।"

अर्थात् रुद्रने श्रीविष्णुस्वामीको अपने संप्रदायका धर्माचार्य कह कर स्वीकार किया। महादेव सदाशिव जो भक्तिदाता और भक्तिधर्मप्रचारक थे, यह बात अनेक शास्त्रोंमें लिखी है। वल्लभाचार्य मतानुग प्रमेयरत्नार्णव-टीकाकारने अपने 'भावप्रकाशिका' नामक टीकाग्रन्थमें लिखा है—

"तत्र अस्माकम् रुद्रसम्प्रदायः" अतएव तस्य भक्तिदातृत्वं तत्र तत्र वर्णयन्ति श्रीमदाचार्याः। यथा पुरुषोत्तमनामसहस्रे—

"महादेव स्वरूपश्च भक्तिदाता कृपानिधिः।"

निबन्धे चतुर्थस्कन्ध विवरणेऽपि सायुज्याधिकारिणां प्रचेतसां श्रीशिवकर्तृकोपदेशादेव सिद्धिर्दर्शिता।

"तपसा साधने तस्य न यत्नो भवतीति हि।
तथापि कृष्णसेवायां कृतार्थत्वं हि सर्वथा॥
इति तान् सर्वथा शुद्धान् विलोक्येशो हरिप्रियः।
प्रोवाच सर्वसन्देहवारकं सर्वबोधकम्॥
अपि च द्वादशस्कन्धनिबन्धे श्रीमदाचार्याः।
'भक्तियुक्तो महादेवस्तां दातुं शक्नुयात्तया।'
एतेन महादेवे गुरुत्वबोधनाय तदुपनिबन्धन
मित्युक्तम्॥"

इस व्याख्यासे हम रुद्रप्रवर्तित वैष्णव-सम्प्रदायकी उत्पत्तिका इतिहास और हेतु स्पष्ट देख पाते हैं। अतएव ब्रह्मसम्प्रदायकी तरह रुद्रसम्प्रदाय भी प्राचीन है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। चार सौ वर्ष पहले वल्लभाचार्यने इस सम्प्रदायका प्रसिद्ध आचार्य पद पाया। उस समयसे यह सम्प्रदाय वल्लभाचारी भी कहलाता आ रहा है।

हम इस भावप्रकाशिकाटीका ग्रन्थमें ही इस सम्प्रदायकी प्रणाली देख पाते हैं। यथा—

"आदौ श्रीपुरुषोत्तमं पुरन्दरं श्रीनारदाख्यं मुनिं।
कृष्णं व्यास गुरुं गुरुं तदनु विष्णुस्वामिनं द्राविडम्॥
तच्छिष्यं किल बिल्वमङ्गलमहं वन्दे महायोगिनं।
श्रीमद्वल्लभनाम धाम च मत्तोऽस्मात् सम्प्रदायाधिपम्॥"

इससे निम्नलिखित गुरुप्रणालिका मिलती है—

श्रीपुरुषोत्तम
|
पुरन्दर (रुद्र)
|
नारद
|
कृष्णद्वैपायन
|
विष्णु स्वामी (द्राविड़ देशवासी)
|
ज्ञानदेव
|
त्रिलोचन
|
विल्वमङ्गल
|
वल्लभाचार्य

यह गुरुप्रणालीका धारावाहिक नहीं है। इसमें सिर्फ सम्प्रदाय-प्रवर्त्तकोंके प्रधान प्रधान आचार्योंके नामोंका उल्लेख किया गया है।

वल्लभाचार्य सम्प्रदायके गोस्वामी 'गोकुलस्थ गोसाईं' कहलाते हैं। प्रमेयरत्नार्णवके भावप्रकाशिकाटीकाकारने इस सम्बन्धमें भी ऐतिहासिक और पौराणिक उपाख्यानोंका उल्लेख किया है।

शाण्डिल्यसंहितासे वल्लभाचार्यने अपने सम्प्रदायकी उत्पत्तिके इतिहासका आनुपूर्विक परिचय दिया है। एक दिन शङ्करदेवने गोकुलमण्डलमें आ श्रीवृन्दावनमें सच्चिदानन्द मन्दिरमें कोटिमन्मथसुन्दर व्रजाङ्गनागण-सेवित श्रुतिगण-पूजित ललितत्रिभङ्ग श्याम सुन्दरको प्रणाम कर सामगानसे उन्हें प्रसन्न किया तथा भक्तिधर्म और सम्प्रदाय स्थापनके लिये उनसे प्रार्थना की। तदनुसार श्रीपतिने उन्हें सम्प्रदाय स्थापन करनेका आदेश दिया। नारद मुनिको सेवासे संतुष्ट हो शङ्करने नारदसे यह उपदेश कह सुनाया। पीछे नारदने यह वेदव्यासको सिखाया। विष्णुने कौण्डिन्य गर्गाचार्य महात्माओंको यह उपदेश प्रदान किया। व्यासने अपने पुत्र शुकको उस धर्मकी शिक्षा दी। शुकदेवने विष्णु अर्थात् विष्णुस्वामीको यह धर्मतत्त्व सुनाया।

इसके बाद इस शाण्डिल्यसंहिताको भविष्य वाणीके रीत्यानुसार वल्लभाचार्यके प्रादुर्भावका स्पष्ट प्रमाण दिया गया है अर्थात् पूर्वाचार्योंके अभावमें मार्ग नष्ट कर भक्ति

लुप्तप्राय होगी। उस समय श्रीपति हरिके अनुग्रहसे मथुरा-मण्डलके अन्तर्गत गोकुलमें एक महापुरुषका आविर्भाव होगा। वे पराभक्तिको पुष्टि और सम्प्रदाय प्रवर्त्तन कर पृथ्वीकी रक्षा करेंगे। वे श्रीभगवानके वदनसे निकलेंगे। सर्वश्रुतिमें उनका ज्ञान रहेगा, योगी भी योगीश्वर समझ कर उनका मान्य करेंगे। वे गोवर्द्धनाञ्चलमें आ भक्तिका प्रचार करेंगे। भगवद्रसाप्लुत व्यक्तियोंके हृदयमें वे प्रेमरसका सञ्चार कर देंगे, स्वसम्प्रदायका आचार विस्तार करेंगे। इनका विविध आश्चर्य चरित देख कर सभी मनुष्य चमत्कृत होंगे। वे जीवोंको हरिभक्ति प्रदान करेंगे, इत्यादि। इस प्रकार श्रीमद्वल्लभाचार्यके चरितका प्राभास दिया गया है। इनका चरित्र-वर्णन वल्लभाचार्य शब्दमें किया गया है। वल्लभाचार्य देखो।

श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय।

चतुःसनसे निम्बार्क-सम्प्रदायकी उत्पत्ति है। प्राचीन कालमें चतुःसन नामक एक वैष्णवसम्प्रदाय थे। परवर्त्तीकालमें चतुःसनने श्रीनिम्बादित्याचार्य वा निम्बार्काचार्यको अपने सम्प्रदायका आचार्य बनाया। इस कारण चतुःसम्प्रदायज्ञापक सुविख्यात श्लोकका अन्तिम पद है—"निम्बादित्यं चतुःसनः"

अर्थात् चतुःसनने निम्बादित्यको अपने सम्प्रदायके आचार्यरूपमें स्वीकार किया। निम्बार्कसंप्रदायका वैष्णवधर्म यदि जानना हो, तो सबसे पहले चतुःसनके धर्ममतके सम्बन्धमें कुछ ज्ञानलाभ करना आवश्यक है। श्रीभागवत पढ़नेसे जाना जाता है, कि हरि चतुःसनरूपमें प्रादुर्भूत हुए थे। यथा—

"तप्तं तपो विविधलोकसिसृक्षया मे
आदौ सनात् स्वतपसः स चतुःसनोऽभूत्।" (२।७।५)

इसकी टीकामें श्रीधरस्वामीने लिखा है—

"स हरिः चतुःसनोऽभूत्—सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः सनातन इति चत्वारः सनशब्दा नाम्नि यस्य सः। कथम्भूतात् स्वतपसः सनात् अखण्डितात् यद्वा स्वतपसः सनात् दानात् समर्पणादित्यर्थः सनु दाने।"

चतुःसन मोक्षधर्मावलम्बी और वासुदेवपरायण थे। सांख्ययोगतपोवैराग्यसम्पन्न हो कर भी भक्तिमान् थे। सात्वतधर्मके प्राचीनतम चतुःसन ही निंवार्क संप्रदायके आदिप्रवर्त्तक हैं। इसके बाद नारद, व्यास और शुकादि क्रमसे चतुःसन-प्रवर्त्तित सात्वतधर्म धीरे धीरे प्रचारित हुआ। इसके बाद श्रीमन्निम्बार्क इस सम्प्रदायके प्रवर्त्तकरूपमें स्वीकृत हुए। इनका प्रकृत नाम श्रीमन्नियमानन्द था। इसके बाद इन्होंने भास्कराचार्य-निम्बादित्य वा निम्बार्क नामसे प्रसिद्धि लाभ की। ये निम्बार्कसंप्रदायके प्रवर्त्तक हैं। निम्बार्कसंप्रदायको चलित भाषामें निमातसंप्रदाय कहते हैं। भक्तमालमें लिखा है, कि ये सूर्यावतार थे, पाषण्डोंका दमन करनेके लिये भूमण्डलमें अवतीर्ण हुए। इनका निम्बादित्य नाम क्यों पड़ा? इसके विषयमें एक आख्यान है जो निम्बार्क शब्दमें लिखा जा चुका है। निम्बार्क देखो।

कोई कोई कहते हैं, कि इनका असल नाम भास्कराचार्य था। किन्तु हम "दशश्लोकिविवृति" नामक निंबार्कसंप्रदायके एक सुप्रसिद्ध वेदान्तविचारग्रन्थमें इन्हें नियमानन्दाचार्य नामसे प्रसिद्ध देखते हैं।

उक्त ग्रन्थसे ज्ञात होता है, कि श्रीनिवासाचार्य इस संप्रदायके शङ्करावतार कह कर समादृत थे। इन्होंने अपने गुरु नियमानन्दके वाक्यार्थके अवलंबन पर वेदान्तसूत्रका एक बड़ा भाष्य किया है।

यह संप्रदाय जो श्रीकृष्णके लीलागुणवैभवादिको स्वीकार करता है, परब्रह्मकी विशेषणावलीमें उसका भी स्पष्ट प्रमाण दिखाई देता है।

देवपूजा।

इनमें बहुतेरे बाल-गोपाल मूर्त्तिके उपासक हैं। वे 'जयगोपाल' 'जयगोपाल' की ध्वनि किया करते हैं। राधाकृष्ण-युगल भी इनके उपास्य हैं। अन्यान्य वैष्णव संप्रदायकी पूजाकी साधारण विधिकी तरह इनकी भी पूजाकी विधि है। पूजा, भोग, आरत्रिक, स्तवपाठ इनके मन्दिरमें यथाशास्त्र हुआ करता है। इनका 'श्रीनिंबार्कमतनिर्णय' नामक एक स्मृतिग्रन्थ दिखाई देता है।

धर्मग्रन्थ।

वेदान्तसूत्र, उसका भाष्य, श्रीभागवत और भगवद्गीता आदि इनके प्रामाणिक ग्रन्थ हैं।

शाखा ।

निम्बादित्यके दो शिष्योंसे दो शाखाकी उत्पत्ति है। एक शिष्यका नाम हरिव्यास और दूसरेका नाम केशवभट्ट है। इनमें एक श्रेणी गृहस्थ हैं। मथुराके समीप यमुनाके किनारे ध्रुवक्षेत्रमें निम्बादित्यकी गद्दी है। पश्चिमाञ्चल और मथुरामें बहुतसे निमात् हैं।

विस्तृत विवरण धर्ममत शब्दमें देखो।

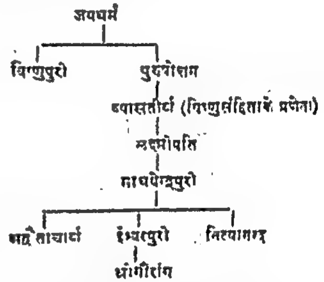
श्रीगौराङ्ग संप्रदाय ।

नवद्वीपमें १४०७ शकमें श्रीगौराङ्ग आविर्भूत हुए। इसके कई वर्ष बादसे ही बङ्गालमें भक्तिधर्मका सिन्धु-प्रवाह कल कल नादसे बहने लगा। चैतन्य देखो।

श्रीकविकर्णपुर गोस्वामिकृत गौरगणोद्देशदीपिकामें श्रीगौराङ्ग संप्रदायकी गुरुप्रणालिका देखी जाती है। वह इस प्रकार है—

"परव्योमेश्वरस्यासीच्छिष्यो ब्रह्मा जगत्पतिः ।
तस्य शिष्यो नारदोऽभूत् व्यासस्तस्यापि शिष्यताम् ॥
शुको व्यासस्य शिष्यत्वं प्राप्तो ज्ञानावबोधनात् ।
तस्य शिष्यप्रशिष्याश्च बहवो भूतले स्थिताः ॥
व्यासाल्लब्धकृष्णदीक्षो मध्वाचार्यो महायशाः ।
चक्रे वेदान् विभज्यासौ संहितां शतदूषणीम् ॥
निर्गुणाद्ब्रह्मणो यत्र सगुणस्य परिक्रिया ।
तस्य शिष्योऽभवत् पद्मनाभाचार्यो महाशयः ॥
तस्य शिष्यो नरहरिस्तच्छिष्यो माधवो द्विजः ।
अक्षोभ्यस्तस्य शिष्योऽभूत् तच्छिष्यो जयतीर्थकः ॥
तस्य शिष्यो ज्ञानसिन्धुस्तस्य शिष्यो महानिधिः ।
विद्यानिधिस्तस्य शिष्यो राजेन्द्रस्तस्य सेवकः ॥
जयधर्ममुनिस्तस्य शिष्योऽभूद्गणमध्यतः ।
श्रीमद्विष्णुपुरी यस्य भक्तिरत्नावलीकृतिः ॥
जयधर्मस्य शिष्योऽभूद् ब्रह्मण्यः पुरुषोत्तमः ।
व्यासतीर्थस्तस्य शिष्यो यश्चक्रे विष्णुसंहिताम् ॥
श्रीमल्लक्ष्मीपतिस्तस्य शिष्यो भक्तिरसाश्रयः ।
तस्य शिष्यो माधवेन्द्रो यद्धर्मोऽयं प्रवर्त्तितः ॥
कल्पवृक्षस्यावतारो व्रजधामनि तिष्ठतः ।
प्रीतप्रेयो वत्सलोज्ज्वलाख्यफलधारिणः ॥
तस्य शिष्योऽभवत् श्रीमानीश्वराख्य पुरी यतिः ।
कलयामास शृङ्गारं यः शृङ्गारफलात्मकम् ॥
उज्ज्वलं शुचिनामानमात्मनामीश्वरादिवर्जितम् ।
परिणामे कृष्णप्रेममात्राकांक्षी सदाशयम् ॥
प्रेम्णोररीकृत्य श्रीगौरः श्रीईश्वरपुरीं स्वयम् ।
जगदाप्लावयामास प्राकृताप्राकृतात्मकम् ॥
स्वीकृत्य राधिका-भावकान्ती पूर्णसमुज्ज्वले ।
अन्तर्बहीरसाम्भोधिः श्रीमन्मदनमोहनः ॥" इत्यादि

हम इसके पहले इस तालिकासे मध्वाचार्य संप्रदायकी गुरुप्रणाली दिखला चुके हैं। उसमें दिखलाया गया है, कि राजेन्द्रके शिष्य जयधर्म थे। इन जयधर्मके दो शिष्य थे—एक भक्तिरत्नावलीके प्रणेता विष्णुपुरी और दूसरे पुरुषोत्तम। पुरुषोत्तमसे ही श्रीगौराङ्ग संप्रदायके पूर्व आचार्योंका अभ्युदय हुआ है। अतएव निम्नलिखित रूपसे गौड़ीय वैष्णवोंकी गुरुपरम्पराका सुनिर्देश दिखलाया जाता है—



श्रीगौराङ्ग-संप्रदायके भक्तगण श्रीगौराङ्गदेवको ह्लादिनीशक्तिसमन्वित साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन समझते हैं। परमभक्त अद्वैताचार्यकी प्रार्थनासे गोलकेश्वर धराधाममें श्रीगौरांग मूर्तिमें प्रकट हो विमल भक्ति सिद्धान्त और अटूट कृष्णप्रेमकी शिक्षा इस जगत्‌में फैला गये हैं, श्रीगौरांग संप्रदायके वैष्णवमात्र ही ऐसे विश्वास करते हैं।

श्रीगौरांगके प्रियतम भक्त वयोवृद्ध प्रवीण पण्डित सर्वशास्त्रविज्ञ अद्वैताचार्य और नित्यानन्दमय कलेवर श्रीमन्नित्यानन्द भी श्रीगौरांगके अंश और अवतार माने जाते हैं और इसी कारण इनका सम्मान है। नित्यानन्द बलराम और अद्वैताचार्य महाविष्णु दोनोंसे

इस संप्रदायके आराध्य हैं। इनके सिवा उक्त श्रीवासाचार्य श्रीपाद गदाधर पण्डित भी इन सांप्रदायिक वैष्णवोंके निकट प्रभु और भगवत् शक्ति-रूपमें पूजनीय हैं।

नित्यानन्दचरित्र 'नित्यानन्द' शब्दमें देखो।

पञ्चतत्त्व।

श्रीगौरांग, नित्यानन्द, अद्वैताचार्य, गदाधर पण्डित और श्रीवासादि भक्तवृन्द ले कर ही वैष्णव समाजका पञ्चतत्त्व है। श्रीचरितामृतकार श्रीकृष्ण दास कविराज गोस्वामीने लिखा है—

"पञ्चतत्त्वात्मकं कृष्णं भक्तरूपस्वरूपकम्।
भक्तावतारं भक्ताख्यं नमामि भक्तशक्तिकम्॥"

अवतारका कारण।

श्रीचरितामृतकारका कहना है, कि श्रीकृष्ण रसिकशेखर और परम करुण हैं; ये दोनों गुण ही उनके इस अवतारके कारण हैं। परम करुण दयामय भगवान्ने मनुष्यके वेशमें आ कर प्रेम और नामका प्रचार कर मनुष्यके उद्धारका पथ देखा। यह केवल उनकी करुणाका परिचय है। किन्तु यह वहिरङ्ग है। अन्तरङ्गका उद्देश यह है, कि श्रीपाद स्वरूपदामोदरने अपने कड़चा ग्रन्थमें बहुत ही संक्षेपसे यह प्रकाश किया। यथा—

"श्रीराधायाः प्रणयमहिमा कीदृशो वानयैवा-
स्वाद्यो येनाद्भुतमधुरिमा कीदृशो वा मदीयः।
सौख्यं चास्या मदनुभवतः कीदृशं वेति लोभात्
तद्भावाढ्यः समजनि शचीगर्भसिन्धौ हरीन्दुः॥"

अर्थात् श्रीराधाकी प्रणयमहिमा कैसी है, जिस प्रणय महिमा द्वारा वे माधुर्य आस्वादन करते हैं, मेरी यह मधुरिमा ही कैसी है और मेरे अनुभवसे वे कैसा सुख पाते हैं, इन तीन विषयोंके लोभके कारण श्रीराधाभावमें भावित हो स्वयं हरिने शचीगर्भमें जन्मग्रहण किया।

अवतारका प्रमाण।

श्रीचरितामृतमें तथा उसकी टीकामें श्रीगौराङ्ग अवतारके अनेक पौराणिक वचन उद्धृत हुए हैं। श्रीमद् बलदेव विद्याभूषणने लघुभागवतामृतकी टीकामें इस सम्बन्धमें अनेक प्रमाणोंका उल्लेख किया है।

श्रीगौराङ्गसंप्रदायमें श्रीमन्नित्यानन्द और अद्वैताचार्य प्रभु कह कर सम्मानित हैं। इनके वंशधरगण आज भी वर्त्तमान हैं। ये दोनों प्रभु महाप्रभुके अङ्गके स्वरूप हैं। किन्तु श्रीमन्नित्यानन्दका नाम ही महाप्रभुके नामके साथ सर्वदा उच्चारित होता है। कनाई बलाई नामकी तरह गौरनिताई नाम भी वैष्णवोंके मुखसे हमेशा उच्चारित होता है। गौरनिताईका नामसङ्कीर्त्तन गाया जाता है, इनकी युगलमूर्त्ति वैष्णवोंके घरमें अर्च्चित होती है, तिलकमुद्रामें भी बङ्गालके वैष्णव "गौरनिताई" या "गौरनित्यानन्द" नामाङ्कित मुद्रा धारण करते हैं। गौड़ीय वैष्णवोंमें इस युगल नामका बहुत प्रभाव है।

गौरभक्त वृन्द।

श्रीगौरनित्यानन्द अद्वैत गदाधर और श्रीवासको छोड़ ब्रह्महरिदास, स्वरूप दामोदर, रायरामानन्द आदि श्रीगौराङ्गके सहचरगण भी गौड़ीय वैष्णववृन्दकी भक्तिके पात्र हैं। इनके सिवा चौंसठ महन्त, बारह गोपाल, छः गोस्वामी, छः चक्रवर्त्ती, आठ कविराज तथा महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु और अद्वैतप्रभुके असंख्य अनुचरोंके पवित्र और भक्तिप्रद नाम इस वैष्णव सम्प्रदायमें कीर्त्तित होते हैं। देवकीनन्दनकी वैष्णवन्दनामें अनेक वैष्णव महानुभवके नाम और संक्षिप्त पुण्यकीर्त्तिका वर्णन किया गया है। कविकर्णपुरके गौरगणोद्देशदीपिकाग्रन्थमें, श्रीचैतन्य भागवतका उपसंहार तथा श्रीचरितामृतकी आदि लीलाके ६वेंसे ११वें परिच्छेदमें बहुतेरे भक्तवृन्दोंके नाम और संक्षिप्तचरित वर्णित हैं। ये सभी महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु और अद्वैत प्रभुके सम सामयिक सहचर अनुचर थे। इन सब भक्तोंकी असंख्य शाखा, शिष्य और परिवारमें १५०० शकके मध्यभागसे श्रीगौराङ्ग सम्प्रदायका बहुत प्रसार हो गया। बङ्ग, विहार, आसाम, उत्कल, वृन्दावन, मथुरा आदि उत्तर-पश्चिमाञ्चलके विविध स्थानोंमें तथा मन्द्राज और बम्बई प्रदेशमें श्रीगौराङ्ग सम्प्रदायकी विजयपताका उड़ने लगी। अभी यूरोप और अमेरिकामें बहुतेरे लोग श्रीगौराङ्गप्रवर्त्तित वैष्णवधर्मका स्वीकार करते हैं।

छः गोस्वामी।

श्रीचैतन्यके भक्तोंमें छः गोस्वामीके नाम विशेष उल्लेखयोग्य हैं, यथा—श्रीसनातन गोस्वामी, श्रीरूप

गोस्वामी, श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी, श्रीरघुनाथभट्ट गोस्वामी, श्रीजीव गोस्वामी और श्रीरघुनाथदास गोस्वामी,। प्रत्येक शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

वैष्णव ग्रन्थ।

महाप्रभु तथा श्री और प्रभुका लिखा हुआ कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। किन्तु उक्त छः गोस्वामीमें सभी ग्रन्थ लिख कर वैष्णव समाजका बहुत उपकार कर गये हैं। वैष्णवदर्शन, वैष्णवस्मृति वैष्णव साहित्य और अलङ्कारादि ग्रन्थ इन्हीं गोस्वामीके रचित हैं।

श्रीहरिभक्तिविलास।

श्रीपाद सनातन और श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीका लिखित हरिभक्तिविलास तथा सनातन लिखित इसकी दिक्‌दर्शनीटीका आज भी गौड़ीय वैष्णव समाजको नित्य नैमित्तिक धर्मक्रियादिकी व्यवस्था प्रदान कर वैष्णवोंको उपासनाविधिकी शिक्षा देती है। इसके सिवा बहुतेरे शास्त्रग्रन्थ भी हैं।

द्वादश गोपाल।

जो सब भक्तमहानुभाव, श्रीगौराङ्गमहाप्रभु और श्री मन्नित्यानन्दके साथ सख्यसूत्रमें आबद्ध थे, 'गोपाल' नामसे उनकी प्रसिद्धि थी। गोपालका अर्थ है व्रजका ग्वाला। श्रीचैतन्यलीलाके प्रधान प्रधान पात्र श्रीकृष्ण-लीलाके पात्रपात्रीरूपमें अवतीर्ण हुए, यही वैष्णवोंका विश्वास है।

नीचेकी तालिकामें श्रीगौराङ्गलीलामें प्रादुर्भूत गोपालोंके नाम और पाट दिखलाये गये हैं।

कृष्णलीलामें	गौरलीलामें	पाट
१। श्रीदाम	अभिराम ठाकुर	खानाकुल
२। सुदामा	सुन्दर ठाकुर	महेशपुर
३। वसुदाम	धनञ्जय पण्डित	शीतलग्राम
४। सुबल	गौरीदास पण्डित	अम्बिका
५। महाबल	कमलाकर पिप्लाई	माहेश
६। सुबाहु	उद्धारण दत्त (स्वर्णवणिक्)	त्रिशविघा
७। महाबाहु	[illegible]	मनिपुर
८। दाम	[illegible]	[illegible]
९। स्तोक कृष्ण	[illegible]	[illegible]
१०। अर्जुन	परमेश्वर ठाकुर	पिराघाता
११। लवङ्ग गोपाल	कालाईठाकुर या काला कृष्णदास	वोधखाना
१२। मधुमङ्गल	श्रीधर	नवद्वीप

ये सब गोपाल नित्यानन्द-शाखाभुक्त हैं। गोपालोंकी सन्तति और शिष्यगण अनेक शाखाओंमें विभक्त हैं। गोपालपरिवारके शिष्योंकी संख्या भी थोड़ी नहीं है। इनके सिवा उपगोपालगण भी हैं। जैसे—

कृष्णलीला	गौरलीला	शाखा	पाट
१। सुबल गोपाल	हलायुध पण्डित	चैतन्य	रामचन्द्रपुर,
२। वरूथप गोपाल	रुद्रपण्डित	नित्यानन्द	वल्लभपुर
३। गन्धर्व गोपाल	मुकुन्दानन्द पण्डित	चैतन्य	नवद्वीप
४। किङ्किणीगोपाल	काशीश्वर पण्डित	"	वल्लभपुर
५। अंशुमान गोपाल	ओझा धन-माली दास	"	कुलाशाड़ा
६। भद्रसेन गोपाल	सतठाकुर	नित्यानन्द	रोहोल-पुर
७। वसन्त गोपाल	मुरारी महान्ति	चैतन्य	नंशीरोदा
८। उज्ज्वल गोपाल	गङ्गादास	नित्यानन्द	मैदारी
९। कोकिल गोपाल	गोपाल ठाकुर	"	गौराङ्गपुर
१०। विलासी गोपाल	विशाई	"	पेन्डुन
११। पुण्डरी गोपाल	नन्दाई	"	शालिग्राम
१२। कलविङ्क गोपाल	विष्णाई	"	खानाटपुर

इनके भी सन्तान, शाखा और परिवार हैं।

चौंसठ महन्त।

पूर्वलीला	गौरलीला	शाखा	पाट
१। नारद	श्रीवास	चैतन्य	नवद्वीप
२। हनुमान्	मुरारि गुप्त	"	"
३। अक्रूर	पुरन्दर पण्डित	"	"
सुनन्द	गोविन्दानन्द	"	"

५। वशिष्ठ	गङ्गादास पण्डित	चैतन्य	विद्यानगर
६। विभीषण	रामचंद्रपुरी	,,	नवद्वीप
७। ऋचीक-पुत्र (ब्रह्मा)	हरिदास ठाकुर	,,	बूढ़न
८। वेदव्यास मुनि	वृंदावन दास	नित्यानंद	कुमारहट्ट
९। सङ्कर्षणव्यूह	मीनकेतन रामदास	,,	झामटपुर
१०। प्रद्युम्नव्यूह	श्रीरघुनंदन	चैतन्य	श्रीखण्ड
११। अनिरुद्धव्यूह	वक्रेश्वर पण्डित	,,	गुप्तिपाड़ा
१२। ब्रह्मा	गोपीनाथाचार्य	,,	नवद्वीप
१३। शुकदेव गोस्वामी	वल्लभभट्ट	,,	कर्णाट
१४। गरुड़	गरुड़ पण्डित	,,	टोटाग्राम
१५। शङ्खनिधि	आचार्यरत्न	,,	नवद्वीप
१६। दुर्वासा	जगन्नाथ आचार्य	,,	श्रीहट्ट
१७। इन्द्रद्युम्न	प्रतापादित्य	,,	पुरीधाम
१८। चंद्रकांति गंधर्व	गदाधर दास	नित्यानंद	एंड़ेदह
१९। विश्वामित्र	वनमाली आचार्य	चैतन्य	नवद्वीप
२०। अर्जुन	राय रामानन्द	,,	पुरीधाम
२१। मधुरी	देवानन्द पण्डित	,,	कुलिया
२२। चन्द्रावली	सदाशिव	नित्यानन्द	कुमारहट्ट
२३। भद्रा	शङ्कर पण्डित	चैतन्य	पहाड़पुर
२४। शैव्या	दामोदर पण्डित	,,	अभिरामपुर
२५। ललिता	प्रद्यानन्द ब्रह्मचारी	चैतन्य	रामचन्द्रपुर
२६। विशाखा	स्वरूप-दामोदर	,,	नवद्वीप
२७। चित्रा	वनमाली कविराज	,,	गरीफा
२८। चम्पकलता	राघव-गोसांई	,,	रामनगर
२९। तुङ्गविद्या	प्रबोधानन्द सरस्वती	,,	काशी
३०। इन्दुरेखा	कृष्णदास ब्रह्मचारी	,,	गुप्तिपाड़ा
३१। रङ्गदेवी	गदाधरभट्ट	,,	हनूमानपुर (तैलङ्ग)
३२। सुदेवी	अनन्त-आचार्य महन्त उपमहन्त।	,,	अनन्तनगर
३३। रत्नरेखा	कृष्णदास (कुलीन ब्राह्मण)	,,	सातगाछिया
३४। धनिष्ठा	राघव-पण्डित	,,	पाणिहाटी
३५। माधवी	माधवाचार्य	नित्यानन्द	मन्यापुर
३६। सुकेशी	मकरध्वज	,,	वड़गाछी
३७। मधुरा	विद्यावाचस्पति	चैतन्य	काँउगाछी
३८। मधुरेक्षणा	बलभद्र भट्टाचार्य	,,	नवद्वीप
३९। कलकण्ठी	रामानन्द वसु	,,	कुलीनग्राम
४०। मान्द्रीमुखी	सारङ्ग ठाकुर	,,	माउगाछी
४१। सुकण्ठी	सत्यराज खाँ	,,	कुलीनग्राम
४२। मधुमती	नरहरि सरकार	,,	श्रीखण्ड

गोस्वामी, श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी, श्रीरघुनाथभट्ट गोस्वामी, श्रीजीव गोस्वामी और श्रीरघुनाथदास गोस्वामी,। प्रत्येक शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

वैष्णव ग्रन्थ।

महाप्रभु तथा दो और प्रभुका लिखा हुआ कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। किन्तु उक्त छः गोस्वामीमें सभी ग्रन्थ लिख कर वैष्णव समाजका बहुत उपकार कर गये हैं। वैष्णवदर्शन, वैष्णवस्मृति वैष्णव साहित्य और अलङ्कारादि ग्रन्थ इन्हीं गोस्वामीके रचित हैं।

श्रीहरिभक्तिविलास।

श्रीपाद सनातन और श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीका लिखित हरिभक्तिविलास तथा सनातन लिखित इसकी दिक्‌दर्शनीटीका आज भी गौड़ीय वैष्णव समाजको नित्य नैमित्तिक धर्मक्रियादिकी व्यवस्था प्रदान कर वैष्णवोंको उपासनाविधिकी शिक्षा देती है। इसके सिवा बहुतेरे शास्त्रग्रन्थ भी हैं।

द्वादश गोपाल।

जो सब भक्तमहानुभाव, श्रीगौराङ्गमहाप्रभु और श्रीमन्नित्यानन्दके साथ सख्यसूत्रमें आवद्ध थे, 'गोपाल' नामसे उनकी प्रसिद्धि थी। गोपालका अर्थ है व्रजका ग्वाला। श्रीचैतन्यलीलाके प्रधान प्रधान पात्र श्रीकृष्णलीलाके पात्रपात्रीरूपमें अवतीर्ण हुए, यही वैष्णवोंका विश्वास है।

नीचेकी तालिकामें श्रीगौराङ्गलीलामें प्रादुर्भूत गोपालोंके नाम और पाट दिखलाये गये हैं।

कृष्णलीलामें	गौरलीलामें	पाट
१। श्रीदाम	अभिराम ठाकुर	खानाकुल
२। सुदामा	सुन्दर ठाकुर	महेशपुर
३। वसुदाम	धनञ्जय पण्डित	शीतलग्राम
४। सुवल	गौरीदास पण्डित	अम्बिका
५। महावल	कमलाकर पिप्पलाई	माहेश
६। सुवाहु	उद्धारण दत्त (स्वर्णवणिक्)	सिशविघा
७। महावाहु	महेश पण्डित	मशिपुर
८। द्राम	पुरुषोत्तम नागर	नागर
६। स्तोक कृष्ण	ठाकुर पुरुषोत्तम	सुखसागर
१०। अर्जुन	परमेश्वर ठाकुर	विशखाना
११। लवङ्ग गोपाल	कानाईठाकुर या काला कृष्णदास	बोधखाना
१२। मधुमङ्गल	श्रीधर	नवद्वीप

ये सब गोपाल नित्यानन्द- शाखाभुक्त हैं। गोपालोंकी सन्तति और शिष्यगण अनेक शाखाओंमें विभक्त हैं। गोपालपरिवारके शिष्योंकी संख्या भी थोड़ी नहीं है। इनके सिवा उपगोपालगण भी हैं। जैसे—

कृष्णलीला	नवद्वीपलीला	शाखा	पाट
१। सुवल गोपाल	हलायुध पण्डित	चैतन्य	रामचन्द्रपुर,
२। वरुथप गोपाल	रुद्रपण्डित	नित्यानन्द	वल्लभपुर
३। गन्धर्व गोपाल	मुकुन्दानन्द पण्डित	चैतन्य	नवद्वीप
४। किङ्किणीगोपाल	काशीश्वर पण्डित	"	वल्लभपुर
५। अंशुमान गोपाल	ओझा वनमाली दास	"	कुल्लापाड़ा
६। भद्रसेन गोपाल	सत्तठाकुर	नित्यानन्द	रोकोणपुर
७। वसन्त गोपाल	मुरारी महान्ति	चैतन्य	वंशीदोटा
८। उज्ज्वल गोपाल	गङ्गादास	नित्यानन्द	नैहाटी
६। कोकिल गोपाल	गोपाल ठाकुर	"	गौराङ्गपुर
१०। विलासी गोपाल	शिशाई	"	वेलून
११। पुण्डरी गोपाल	नन्दाई	"	शालिग्राम
१२। कलविङ्क गोपाल	विष्णाई	"	झामटपुर

इनके भी सन्तान, शाखा और परिवार हैं।

चौंसठ महन्त।

पूर्वलीला	नवद्वीपलीला	शाखा	पट
१। नारद	श्रीवास	चैतन्य	नवद्वीप
२। हनूमान्	मुरारि गुप्त	"	"
३। अङ्गद	पुरन्दर पण्डित	"	"
४। सुग्रीव	गोविन्दानन्द	"	"

५ । वशिष्ठ	गङ्गादास पण्डित	चैतन्य	विद्यानगर
६ । विभीषण	रामचन्द्रपुरी	„	नवद्वीप
७ । ऋचीक-पुत्र (ब्रह्मा)	हरिदास ठाकुर	„	बूढ़न
८ । वेदव्यास मुनि	वृंदावन दास	नित्यानंद	कुमार-हट्ट
९ । सङ्कर्षणव्यूह	मीनकेतन रामदास	„	झामटपुर
१० । प्रद्युम्नव्यूह	श्रीरघुनंदन	चैतन्य	श्रीखण्ड
११ । अनिरुद्धव्यूह	वक्रेश्वर पण्डित	„	गुप्तिपाड़ा
१२ । ब्रह्मा	गोपीनाथाचार्य	„	नवद्वीप
१३ । शुकदेव गोस्वामी	वल्लभभट्ट	„	कर्णाट
१४ । गरुड़	गरुड़ पण्डित	„	टोटाग्राम
१५ । शङ्खनिधि	आचार्यरत्न	„	नवद्वीप
१६ । दुर्वासा	जगन्नाथ आचार्य	„	श्रीहट्ट
१७ । इन्द्रद्युम्न	प्रतापादित्य	„	पुरीधाम
१८ । चंद्रकांति गंधर्व	गदाधर दास	नित्यानंद	एँड़ेदह
१९ । विश्वामित्र	वनमाली आचार्य	चैतन्य	नवद्वीप
२० । अर्जुन	राय रामानन्द	„	पुरीधाम
२१ । माधुरी	देवानन्द पण्डित	„	कुलिया
२२ । चन्द्रावली	सदाशिव	नित्यानन्द	कुमार-हट्ट
२३ । भद्रा	शङ्कर पण्डित	चैतन्य	वहाड़पुर
२४ । श्यामा	दामोदर पण्डित	„	अभिराम-पुर
२५ । ललिता	ध्रुवानन्द ब्रह्मचारी	चैतन्य	रामचन्द्र-पुर
२६ । विशाखा	स्वरूप-दामोदर	„	नवद्वीप
२७ । चित्रा	वनमाली कविराज	„	गरीफा
२८ । चम्पकलता	राघव-गोसाईं	„	रामनगर
२९ । तुङ्गविद्या	प्रबोधानन्द सरस्वती	„	काशी
३० । इन्दुरेखा	कृष्णदास ब्रह्मचारी	„	गुप्तिपाड़ा
३१ । रङ्गदेवी	गदाधरभट्ट	„	हनूमानपुर (तैलङ्ग)
३२ । सुदेवी	अनन्त-आचार्य महन्त उपमहन्त।	„	अनन्त-नगर
३३ । रत्नरेखा	कृष्णदास (कुलीन ब्राह्मण)	„	सात-गाछिया
३४ । धनिष्ठा	राघव-पण्डित	„	पाणिहाटी
३५ । माधवी	माधवाचार्य	नित्यानन्द	नन्द्यापुर
३६ । सुकेशी	मकरध्वज	„	बड़गांछी
३७ । मधुरा	विद्यावाचस्पति	चैतन्य	कांड़गाछी
३८ । मधुरेक्षणा	बलभद्र भट्टाचार्य	„	नवद्वीप
३९ । कलकण्ठी	रामानन्द वसु	„	कुलीनग्राम
४० । नान्दीमुखी	सारङ्ग ठाकुर	„	माउगाछी
४१ । सुकण्ठी	सत्यराज खाँ	„	कुलीनग्राम
४२ । मधुमती	नरहरि सरकार	„	श्रीखण्ड

४३ । वीरा	शिवानन्द-सेन	चैतन्य	काँचड़ापाड़ा
४४ । वृन्दादेवी	मुकुन्ददास	,,	श्रीखण्ड
४५ । कलावती	गोविन्द घोष	,,	अग्रद्वीप
४६ । श्रीप्रेममञ्जरी	भूगर्भ-ठाकुर	,,	काञ्चननगर
४७ । लीलामञ्जरी	लोकनाथ गोस्वामी	,,	तालखड़ी (यशोर)
४८ । रासोल्लासा	माधवघोष	,,	दाँईहाट
४९ । गुणतुङ्गा	वासुघोष	,,	तमलुक
५० । रागरेखा	शिखि-महान्ति	,,	वंशीटोटा
५१ । यज्ञपत्नी	शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी	,,	चट्टग्राम
५२ । चन्द्रलतिका	जगदीश पण्डित	,,	यशोड़ा
५३ । रत्नावली	भगवान् आचार्य	,,	मालीपाड़ा
५४ । गुणचूड़ा	परमानंद सेन (कविकर्णपुर)	,,	कांचड़ापाड़ा
५५ । कर्पूरमञ्जरी	रमाई ठाकुर	,,	वाघनापाड़ा
५६ । श्याममञ्जरी	द्विज हरिदास	,,	ब्रह्मपुर
५७ । कामलेखा	छोटे हरिदास	,,	वाखरगञ्ज
५८ । काममञ्जरी	नन्दन ब्रह्मचारी	,,	नवद्वीप
५९ । कलभाषिणी	वाणीनाथ पण्डित	,,	मादिगाछी
६० । कलकण्ठी	चिरञ्जीव-दास	,,	श्रीखण्ड
६१ । खञ्जनी	सुन्दरानन्द ठाकुर	,,	वराहनगर
६२ । नीलकान्ति	नवाईहोड़	नित्यानन्द	रोकणपुर
६३ । कलापिनी	जगदानन्द	,,	नवद्वीप
६४ । सुकेशी	कंसारिसेन	,,	गुप्तिपाड़ा

बत्तीस उपमहन्त ।

पूर्वलीला	नवद्वीपलीला	शाखा	पाट
१ । कलावती	सुलोचन ठाकुर	चैतन्य	श्रीखण्ड
२ । सौरसेनी	भागवताचार्य	नित्यानन्द	वराहनगर
३ । इन्दिरा	श्रीजीव पण्डित	,,	अकाईहाट
४ । मनोहरा	कविचन्द्र	चैतन्य	आकना
५ । कात्यायनी	श्रीकान्तसेन	,,	गरिफा
६ । वंशी	वंशीदास	,,	खरग्राम
७ । कुब्जा	काशीमिश्र	,,	पुरीधाम
८ । मालती	यदुनाथ आचार्य	,,	चन्द्रपुर
९ । कमला	मुकुन्द ठाकुर	,,	रामचन्द्रपुर
१० । चन्द्रिका	परमानन्द गुप्त	,,	अम्बिका
११ । सुधीरा	माधवाचार्य	विष्णुप्रिया	नवद्वीप
१२ । कस्तूरीमञ्जरी	कृष्णदास कविराज	नित्यानन्द	झामटपुर
१३ । नागरी	द्विज शुभानन्द	चैतन्य	श्यामपुर
१४ । सुरङ्गिणी	श्रीधर ब्रह्मचारी	,,	पांचड़ानगर
१५ । कलहंसी	रघुनाथ द्विज	,,	त्रिवेणी
१६ । सुमुखी	जगन्नाथ	,,	नपाड़ा
१७ । शशीमुखी	सुबुद्धि मिश्र	,,	अम्बिका
१८ । सुरङ्गिणी	श्रीहर्ष	,,	शान्तिपुर
१९ । सम्मोहिनी	कृष्णदास सरखेल	नित्यानंद	अम्बिका

२० । विलासिनी	श्रीगुरु पण्डित	चैतन्य	आलुड़
२१ । गोपालिका	गोपाल आचार्य	अद्वैत	शान्तिपुर
२२ । गौरशालिनी	यदुनन्दन	,,	घाटाल
२३ । विमलादासी	श्रीराम-ठाकुर	चैतन्य	श्रीहट्ट
२४ । सुशीला	गोविन्द-दत्त	,,	सुखचर
२५ । विद्युल्लता	विहारी कृष्णदास	नित्यानन्द	आटपुर
२६ । रत्नावली	हरिदास-होड़	चैतन्य	पँड़ेदह
२७ । चित्राङ्गी	श्रीनाथ पण्डित	,,	कांचड़ापाड़ा
२८ । सुकवाणि	गालिम-जगन्नाथ	नित्यानन्द	बाकला-चन्द्रद्वीप
२९ । आह्लादिनी	पुरुषोत्तम ब्रह्मचारी	अद्वैत	जयनगर
३० । सुखमयी	मधु पण्डित	नित्यानन्द	साकिवनग्राम
३१ । रसवती	काशीश्वर	चैतन्य	वल्लभपुर
३२ । प्रेमवती	शङ्करारण्य	नित्यानन्द	चातराग्राम

इनके सन्तान, शाखा और परिकर गौड़ीय वैष्णवोंके सम्प्रदायपोषक हैं।

अष्टसखी ।

१ । ललिता	श्रीरूप गोस्वामी
२ । विशाखा	श्रीरामानन्द राय
३ । सुमित्रा	श्रीशिवानन्द सेन
४ । चम्पकलता	श्रीराघव पण्डित
५ । रङ्गदेवी	श्रीगोविन्द घोष
६ । सुन्दरी	श्रीवासुघोष
७ । तुङ्गदेवी	श्रीमाधव घोष
८ । इन्दुरेखा	श्रीगोविन्दानन्द

नवमञ्जरी ।

१ । श्रीरूपमञ्जरी	श्रीरूपगोस्वामी
२ । जीवमञ्जरी	श्रीसनातन गोस्वामी
३ । श्रीअनङ्गमञ्जरी	गोपालभट्ट गोस्वामी
४ । श्रीरसमञ्जरी	श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी
५ । श्रीविलासमञ्जरी	श्रीजीव गोस्वामी
६ । प्रेममञ्जरी	श्रीभूगर्भ गोस्वामी
७ । रागमञ्जरी	श्रीरघुनाथभट्ट गोस्वामी
८ । लीलामञ्जरी	श्रीलोकनाथ गोस्वामी
९ । कस्तूरीमञ्जरी	श्रीकृष्णदास गोस्वामी

अष्ट कविराज ।

कृष्णलीला	गौरलीला
१ । सुलोचना	रामचन्द्र कविराज
२ । माण्डोदरी	गोविन्द ,,
३ । गोपाली	कर्णपुर ,,
४ । सुचण्डिका	नरसिंह ,,
५ । सरस्वती	भगवान् ,,
६ । बाला	वल्लभदास ,,
७ । सुतारा	गोकुलचन्द्र ,,
८ । कस्तूरी	कृष्णदास ,,

इसके बाद गौड़ीय वैष्णव क्षेत्रमें तीन सरित्धारा पूर्णप्रात प्रेमभक्तिसुधासे परिपुष्ट हो बङ्गाल और उत्कलमें बह गई। इन तीनोंका नाम था श्रीनिवासाचार्य प्रभु, नरोत्तम ठाकुर महाशय और श्रीमत्श्यामानन्द। श्रीनिवास आचार्य प्रभु और ठाकुर महाशयने बङ्गदेशमें भक्तिरसका प्रचार किया। श्यामानन्दके द्वारा उत्कल प्रेमभक्तिकी सुधा-धारासे परिषिक्त हुआ था। ठाकुर महाशय कायस्थ कुलमें जन्म ले कर भी ब्राह्मणादिके गुरु हुए थे। इनका ब्राह्मण परिकर आज भी मुर्शिदाबाद और ढाका जिलेके बेलियर ग्राममें वर्त्तमान है। ये लोग वारेन्द्र ब्राह्मण हैं। विशेष विवरण नरोत्तम, श्रीनिवास आचार्य और श्यामानन्द शब्दमें देखो।

सदाचार ।

श्रीमन्महाप्रभु सदाचारके साक्षात् समुज्ज्वल विग्रह हैं। उनके आदेशसे श्रीपादने सनातन हरिभक्तिविलास ग्रन्थ लिख वैष्णवसदाचारका विधान किया है। इसमें बाह्यशुद्धि और आन्तर शुद्धिका अति उत्कृष्ट विधान है। ऐसा शास्त्रसम्मत सदाचार दूसरे सम्प्रदायमें कम देखनेमें

जाता है। हरिभक्तिविलासमें चित्तशुद्धिके बहुतसे उपाय कहे गये हैं। इस ग्रन्थमें गुरुपदाश्रय दीक्षा, प्रातःस्मृतिकृत्य दीक्षा, शौच, आचमन, दण्डधारण, स्नान, सन्ध्यावन्दन, गुरुसेवा, ऊर्द्ध्वपुण्ड्र और चक्रादि धारण, मालाधारण, तुलसीचयन, देवगृहसंस्कार, कृष्णप्रबोधन, छः सौ छप्पन प्रकारके उपचारोंसे भगवदर्चन, पञ्चकालपूजा, आरति, कृष्णका भोजन और शयनतीर्थयात्राका प्रयोजन, कृष्णमूर्त्तिदर्शन, नाममहिमा, नामापराधवर्जन, वैष्णवलक्षण, जप, स्तुति, परिक्रमा, दण्डवत्, वन्दन, प्रसादभक्षण, अनिवेदितत्याग, वैष्णवनिन्दावर्जन, साधुलक्षण, साधुसङ्ग, साधुसेवा, असत्सङ्गत्याग, इन्द्रियदमन, श्रीभागवतश्रवण और एकादश्युपवासादि व्रतपालन, अति विस्तृतरूपसे इस ग्रन्थमें है। शमदम वैराग्यादिकी पराकाष्ठा दिखलाई गई है। इन्द्रियपरायणताका मूलोच्छेद कर भगवल्लाभके लिये किस प्रकार वैराग्यका अवलम्बन करना होता है, इस ग्रन्थमें उसका विस्तृत उपदेश दिया गया है। सत्यवाक्य, असत्कर्मत्याग, इन्द्रियसंयम आदि प्रयोजनीय कह कर उपदिष्ट होने पर भी वैष्णवधर्मसे ये सब विषय बाहर हैं। भगवदुपासनाके लिये चित्तभूमिको प्रस्तुत करना ही इस सम्प्रदायका सार उपदेश है। भक्तिरसामृतसिन्धुमें इस विषयमें दार्शनिक प्रणालीसे अति उच्च उपदेश दिया गया है। यह ग्रन्थ भी वैष्णवाचारके स्मृतिग्रन्थके साथ अवश्य पढ़ने योग्य है। श्रीचैतन्यचरितामृतमें भी संक्षेपतः इन दोनों ग्रन्थका मर्म उल्लिखित हुआ है। इस सम्प्रदायका सदाचार हिन्दूशास्त्रका सारस्वरूप है।

वैष्णव-चिह्न।

ऊर्द्ध्वपुण्ड्रादितिलकधारण और जपके लिये तुलसी मालाका व्यवहार इस सम्प्रदायका वैष्णव चिह्न है। हरिभक्तिविलासके चतुर्थविलासमें ऊर्द्ध्वपुण्ड्रादिधारणकी विधि और माहात्म्य सविस्तार वर्णित है। केशवादि नामका उच्चारण कर ललाट, पेट, वक्षःस्थल, कण्ठ, दोनों पार्श्व, दोनों बाहु, दोनों स्कन्ध, पीठ और कटि बारह स्थानमें बारह तिलक लगानेको कहे गये हैं।

उपास्य देवता।

"कृष्णस्तु भगवान् स्वयं" श्रीभागवतपुराणके इस सिद्धान्तानुसार श्रीकृष्ण ही इस सम्प्रदायके उपास्य देवता हैं। राधाकृष्ण और श्रीगौराङ्ग इस संप्रदायके निकट अभिन्नतत्त्व हैं। निष्ठानुसार कोई राधाकृष्ण युगलकी, कोई श्रीगौराङ्गकी अर्चना करते हैं। श्रीश्रीराधाकृष्ण युगलमूर्त्ति प्रायः सभी स्थानोंमें देखी जाती है। श्रीगौराङ्गकी श्रीमूर्त्ति अर्चाना सभी जगह देखी नहीं जाती। पौराणिक उपास्य देवताकी अर्चनापद्धति जिस आसानीसे प्रवर्त्तित और गृहीत होती है, अभिनवाविर्भूत श्रीभगवान् उतनी आसानीसे गृहीत नहीं होते। किन्तु फिर भी हम लोग अभी अनेक स्थलोंमें श्रीश्रीराधाकृष्णकी युगल मूर्त्ति और श्रीश्रीगौरनित्यानन्दका विग्रह एक ही आसन पर पूजित होते देखते हैं।

उपासना-प्रणाली।

भगवदर्च्चनारूप निष्काम कर्म या विधिसङ्गत भक्ति ही इस संप्रदायकी उपासनाका आरम्भ है। चित्त-शुद्धिके लिये विधानानुयायिनी भक्तिका अनुशीलन अवश्य कर्त्तव्य है। हरिभक्तिविलास और भक्तिरसामृतसिन्धुमें यह वैधभक्तिप्रणाली और भक्तिविभाग अति विस्तृत रूपसे लिखा गया है। किन्तु मधुररसकी उपासना ही इस संप्रदायकी मुख्य उपासना है। भक्ति ही प्रधान साधन है, रसामृतसिन्धुग्रन्थमें भक्तिका विशेष विवरण है।

"रसो वै सः" ही इनके उपास्य देवता हैं। अतएव भावरसमें उनकी उपासना ही उपासनाका चरम सिद्धांत है। भावरसका उदाहरण व्रजगोपियोंकी श्रीकृष्णप्रीतिमें दिखाई देता है। यही चरम भजनका आदर्शस्वरूप है। उज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थमें उनका भावरस दार्शनिक प्रणालीसे विवृत हुआ है।

रागानुगा भक्तिमें व्रजवासियोंके भावका अनुसरण कर व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी उपासना-प्रणालीके सम्बन्धमें गोस्वामियोंने भक्तिरसामृतसिन्धुमें सविस्तार वर्णन किया है। श्रीचरितामृत ग्रन्थकी मध्यलीलामें रामानन्द-राय-मिलनमें तथा श्रीरूपसनातनकी शिक्षामें इस सम्बन्धमें अनेक उपदेश दिये गये हैं। ये सब ग्रन्थ सर्वत्र प्रचारित हैं।

श्रीमद्भागवत ही इस सम्प्रदायका ब्रह्मसूत्रभाष्य माना गया है। (भागव० १२।१३।१५)

वेदान्त तत्त्व।

श्रीजीवगोस्वामीकी क्रमसन्दर्भ टीकामें तथा षट्-सन्दर्भमें इस सम्प्रदायका दार्शनिक सिद्धांत हुआ है। ये लोग लीलारसमय श्रीकृष्णको अद्वयतत्त्व मानते हैं।

वैष्णव-उपसम्प्रदाय।

पूर्वोल्लिखित वैष्णव-सम्प्रदायके अंतर्गत अनेक उपसम्प्रदाय हैं। ये सब सम्प्रदाय कितने हैं उसका पता लगाना सहज नहीं है। नीचे कुछ उपसम्प्रदाय-के नाम दिये गये हैं—

अतिवड़ी—गौड़ीय वैष्णव समाजके अंतर्भुक्त है। गौड़ीय वैष्णवोंके आचार-व्यवहार और उपासनासे इनका आचार व्यवहार स्वतन्त्र है। प्रवाद है, कि जगन्नाथ नामक एक विरक्त वैष्णवने महाप्रभुके निकट श्रीमद्भागवतकी व्याख्या की। उनकी व्याख्याको शङ्करकी अद्वैतमतानुसारिणी समझ कर महाप्रभुने उनके प्रति कटाक्ष कर कहा, 'तुम इस सूत्रसे भी नीच वैष्णव समाजकी साम्प्रदायिक गद्दीमें आने योग्य नहीं हो, तुम अतिवड़ अर्थात् बहुत बड़े हो।' इस 'अतिवड़' बातसे ही 'अतिवड़ी' उपसम्प्रदायकी सृष्टि हुई। इनके साथ गौड़ीय वैष्णवोंका साम्प्रदायिक मेल नहीं है। इस श्रेणीका उत्कलमें वास है और पुरीमें मठ है। जगन्नाथदासने उत्कल भाषामें भागवतका अनुवाद किया।

अनंतकुली—ये लोग उत्कली गृहस्थ वैष्णव हैं।

अवधूती—अवधूती शब्द देखो।

आमहदपन्थी—बङ्गालके बाउलोंकी तरह ये लोग निरञ्जन उपासक वैष्णव हैं। ये लोग प्रतिमाकी पूजा नहीं करते, किंतु गलेमें तुलसीमाला पहनते हैं। ये मूंछ दाढ़ी रखते हैं। ये रामात्के ही उपसम्प्रदाय हैं।

आउल—गौड़ीय वैष्णव संप्रदायका उप-संप्रदाय।

आउल शब्द देखो।

आखड़ा—आखड़ा वैष्णव रामानन्द संप्रदायके उप-संप्रदाय हैं। ये लोग प्रचलित सात शाखाओंमें विभक्त हैं। यथा—निर्वाणी, खाकी, संतोषी, निर्मोंही, बलभद्री, टाटंबरी और दिगम्बरी।

आपापंथी—मलारपुर जिलेके अधिवासी मुन्नादास नामक एक स्वर्णकार आपापंथी संप्रदायके प्रवर्त्तक हैं। अयोध्यासे बहुत दूर पश्चिम आपड़ा नामक स्थानमें इनकी गद्दी है। पश्चिमदेशके वैरागियोंका कहना है—

"रामानुजके फौजमें बाजा गाड़ी पोल।
आपापंथी मनसुखा फिरे ढोले ढोल॥"

अर्थात् रामानुज सैन्यदलमें अनेक मन्त्र शकट हैं। मनसुखी आपापंथी जाति गलीमें भ्रमण करते हैं। जो अपने मनसे कार्य करते, किसीको भी गुरु नहीं मानते, वे मनसुखी हैं। यह पंथी रामानुजका उप-सम्प्रदाय है।

कबीरपन्थी—कबीर शब्दमें देखो।

कर्त्ताभजा—गौड़ीय संप्रदायका उप-संप्रदाय।

कर्त्ताभजा शब्द देखो।

कामधेनी—रामात् निमात् दोनों ही संप्रदायमें यह उप-संप्रदाय दिखाई देता है। कामधेन्नी शब्द देखो।

कालिन्दी—उत्कलके चमार हाड़ी आदि इतर जातिके वैष्णव कालिन्दी वैष्णव कहलाते हैं। इनके अन्य गुरु नहीं हैं। ये लोग शवदाह नहीं करते।

किशोरीभजनी—विक्रमपुरके कालाचांद विद्यालङ्कार किशोरीभजन इस सम्प्रदायके प्रवर्त्तक हैं। कृष्णलीला-के अनुकरण द्वारा मुक्तिलाभ करना इस सम्प्रदायका अभिप्राय है। ये लोग तीर्थयात्रा नहीं मानते। इस सम्प्रदायके पुरुष अपनेको कृष्ण तथा स्त्री अपनेको राधा समझती है। किशोरी आद्याशक्ति है। अतएव एक स्त्रीको किशोरी समझ कर ये उसकी पूजा करते हैं। बिना स्त्रीके ये दीक्षित नहीं हो सकते। नायकके एक नायिका रहना जरूरी है। 'मैं कृष्ण तुम राधा' इत्यादि वाक्योंका दीक्षाके समय प्रयोजन होता है। इस सम्प्रदायके पुरुष और स्त्री दोनों रातको इकट्ठे होते तथा उक्त कल्पित किशोरीकी पूजा करते और प्रसाद खाते हैं। इनमें जाति-विचार बिलकुल नहीं है। सभी सबोंका जूठा खाते हैं। किन्तु मछली आदि कोई भी नहीं खाता। ये लोग श्रीगौराङ्गका नाम ले कर गानादि करते हैं। पूर्ववङ्गके अनेक स्थानोंमें इस उपसम्प्रदायके लोगों-का वास है। इसमें भद्रपुरुषोंकी संख्या बहुत थोड़ी है।

सहजिया शब्द देखो।

कुड़ापन्थी—प्रायः ७५ वर्ष हुए आगरा जिलेके अधीन हातरास नगरमें तुलसी नामक एक अन्ध वणिक्-ने कुड़ापन्थी सम्प्रदायका प्रवर्त्तन किया। सबोंने मिल कर एक कुण्डमें भोजन किया था इसीसे वे कुड़ा-पन्थी कहलाये। ये लोग जातपांत नहीं मानते और न किसी मूर्त्तिकी उपासना ही करते हैं। रातको स्त्रीपुरुष एकत्र हो भजन करते हैं। ये लोग भी कर्त्ता-भजाकी तरह गुरुके प्रति अचल भक्ति दिखलाते हैं। निराकार निरञ्जनका ध्यान ही इनकी उपासना है। इनके कार्यादि किशोरी-भजनियोंके जैसे हैं।

खाकी—रामात्-सम्प्रदायके अन्तभुक्त।

खाकी शब्द देखो।

खुशी विश्वासी—कृष्णनगरके अन्तर्गत देवग्रामके निकट भाङ्गाग्राममें खुशो विश्वास नामक एक मुसल-मान इस सम्प्रदायके प्रवर्त्तक हैं। इनमें बहुत कुछ सहजिया भाव है। ये लोग श्रीगौराङ्गका नाम कीर्त्तन करते हैं। किन्तु साकार ईश्वरको नहीं मानते।

गिरि—गौड़ेश्वर सम्प्रदायके वैष्णव श्रेणीभुक्त संन्यासी।

गुरुदासी—ये लोग उत्कल वासी एक श्रेणीके गृहस्थ वैष्णव हैं।

गोबराई—एक मुसलमान। इस व्यक्तिने कर्त्ताभजा सम्प्रदायकी तरह जिस सम्प्रदायकी सृष्टि की, उसीका नाम गोबराई है।

चतुर्भुजी—रामात्सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त। इनका तिलक रामानन्दियोंके समान किन्तु बीचमें श्रीरेखा नहीं होती। चतुर्भुजी शब्द देखो।

चरणदासी—चरणदास नामक दिल्लीका एक धूसर जातीय वणिक् इस सम्प्रदायका प्रवर्त्तक है। द्वितीय आलमगीरके समय इस सम्प्रदायकी उत्पत्ति है। ये लोग राधाकृष्णके उपासक हैं और वैष्णवीय तिलक मालादि यथारीति धारण करते हैं। दिल्लीमें ही इस सम्प्रदायकी प्रधान गद्दी है। चरणदासी शब्द देखो।

चामरवैष्णव—चामर वैष्णव शब्द देखो।

च्युहरपन्थी—यह सम्प्रदाय अति आधुनिक है। ये लोग वल्लभाचार्य सम्प्रदायके ही उप-सम्प्रदाय हैं। करीब ६० वर्ष हुए, आगरेके एक वणिक्‌ने इस सम्प्रदाय-की प्रतिष्ठा की। गुजरातके 'नाथजी' इनके उपास्य हैं। ये लोग सर्वदा कृष्ण नामका कीर्त्तन किया करते हैं। नाम भजन ही इनका धर्म है। स्त्रीपुरुष एकत्र हो कर नृत्य करते हैं। ये सभी जातिका अन्न खाते हैं। इन्होंने कीर्त्तनप्रथाको महाप्रभुके सम्प्रदायसे ग्रहण किया है।

चूड़ाधारी—ये गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायभुक्त हैं। मैमनसिंह अञ्चलमें यह संप्रदाय देखा जाता है। ये गोपालके वंशमें चूड़ादि धारण करते हैं। शुद्ध वैष्णवोंके साथ इनका मतसामञ्जस्य नहीं है।

जगन्मोहिनी—जगन्मोहन गोसाईं इस संप्रदायके प्रवर्त्तक हैं। इन्होंने उत्कलके किसी रामानन्दी वैष्णव-से दीक्षा ली। जगन्मोहनके शिष्य गोविन्द, गोविन्द-के शिष्य शान्त गोसाईं और शान्तके शिष्य रामकृष्ण गोसाईं हैं। रामकृष्णके समय यह धर्म मत बहुत दूर तक फैल गया। ये ही लोग 'गुरु सत्य' सम्प्रदाय नामसे पूर्व बङ्गमें विख्यात हैं। इनमें गृही और उदासीन दो श्रेणीके लोग हैं।

तिङ्कल—मन्द्राज और बम्बई अञ्चलमें इस श्रेणीके वैष्णव हैं। ये लोग शास्त्रके श्रुतिप्रमाणको मान कर चलते हैं। काञ्चीपुर-निवासी वेदान्त तेसिकार नामक एक ब्राह्मणने रामानुजी-सम्प्रदायसे स्वतन्त्र हो कर एक वैष्णव सम्प्रदायकी सृष्टि की। उसीसे पीछे बड़गल और तिङ्कल नामक दो सम्प्रदायकी सृष्टि हुई। वेदान्त तेसिकारने यह घोषणा की, कि आचार और धर्मसंस्कार-के लिये वे ईश्वरसे भेजे गये हैं। धर्ममत और तिलक-सेवा ले कर इन दोनोंमें बहुत विरोध है।

तेङ्कल शब्द देखो।

तिलकदासी—एक सद्गोप इस सम्प्रदायका प्रव-र्त्तक है। यह व्यक्ति पहले कर्त्ताभजा था। पीछे इसने स्वसंप्रदायका परित्याग कर अपने नाम पर मुराद-पुरमें एक धर्मसंप्रदाय प्रवर्त्तित किया। यह व्यक्ति अपनेको विष्णुका अवतार कहा करता था। यह संप्र-दाय अभी विलुप्त हो गया है।

दरवेश—भक्त लोगोंका कहना है, कि श्रीपाद सनातन

गोस्वामी इस दलके प्रवर्त्तक हैं। किन्तु यह एकदम असत्य है। यह संप्रदाय बाउल और न्याड़ोंकी एक शाखा है और सर्वदा 'दीन दरदी' नाम उच्चारण करता है। मुसलमान और हिन्दूधर्मके संस्रवसे इस संप्रदायकी उत्पत्ति है। ये हरि और गौरनिताई नामका कीर्त्तन करते हुए घूमते हैं, किन्तु खुदा अल्लाह शब्द भी इनके गानमें है।

दादुपन्थी—रामात्संप्रदायके अन्तर्भुक्त है।

दादुपन्थी देखो।

दुयारा—रामात् निमात् आदि पश्चिम देशके वैष्णवोंके ५२ दुयारा हैं। पृथक् समयमें प्रादुर्भूत तेजियान् व्यक्तियोंने अपने प्रभावसे जो दल संगठित किया, उसीका नाम दुयारा है जैसे यामन दुयारा, अग्रदास दुयारा, भ्रमणजी दुयारा, कुबाजी दुयारा, खिनाजी दुयारा इत्यादि।

नागा—ये लोग शैव और वैष्णवभेदसे दो प्रकारके हैं। वैष्णव नागा रामात् संप्रदायभुक्त हैं।

नागा शब्द देखो।

निरञ्जनी साधु—निरञ्जन स्वामी इस संप्रदायके प्रवर्त्तक हैं। ये लोग रामातोंकी तरह साकार उपासक उदासीन वैष्णव हैं; कौपीन, कण्ठी और रक्तवर्ण श्रीयुक्त तिलक धारण तथा राम, सीता, शालग्राम आदि विग्रहोंकी पूजादि भी करते हैं। निरञ्जनी देखो।

निहङ्ग वैष्णव—उत्कल प्रदेशके निःसङ्ग वैष्णव इसी नामसे पुकारे जाते हैं। ये लोग मठधारी और सम्मानी हैं।

न्याड़ा—अनभिज्ञ निरक्षर लोगोंकी धारणा है, कि श्रीमन्नित्यानन्द प्रभुके पुत्र वीरभद्रने ढाकाप्रदेशमें आ कर इस धर्मसंप्रदायका प्रवर्त्तन किया, किन्तु यह नितान्त भ्रम है। न्याड़ा, बाउल संप्रदायकी ही शाखाविशेष है। प्रकृतिसाधन ही इनका भजन है। इनके मतसे श्रीराधाकृष्ण मानवदेहमें ही विराजित हैं, उपवासादि आत्माका क्लेशजनकमात्र है। ये बाहुमें लोहे या तांबेका एक कड़ा पहनते हैं, वैष्णवोंकी तरह कौपीन, तिलक, स्फटिकमाला, शङ्खादिका गला व्यवहार करते हैं। ये दाढ़ी मूँछ रखते हैं। ये शरीरमें तेल खूब लगाते, झोरी और लाठी ले कर भ्रमण करते तथा श्रीगौराङ्गका गुणानुवाद करते हैं। मुखसे 'हरिबोल' या 'वीर अवधूत' ध्वनिका उच्चारण करते हैं।

पञ्चधुनी—जो सब रामात् और निमात् पञ्चधूना करके तपस्या करते हैं, वे पञ्चधुनी कहलाते हैं।

पल्टदासी—पल्टदास इस संप्रदायके प्रवर्त्तक हैं। ये तुलसीकी माला और तिलक धारण करते, रामकृष्णादिका अवतार मानते और राममन्त्र जपते हैं। ये लोग एक तरहके आध्यात्मिक मायावादी रामात् हैं। पल्टदासी देखो।

फकीरदासी—छद्मवेशी कर्त्ताभजा।

फकीरी शब्द देखो।

फराची—रामात्-निमात् दलके कठोरतावलंबी तपस्वी।

मटुकधारी—जो मटकेको कंधेमें बांध कर अथवा राम या कृष्णका नाम उच्चारण कर भीख मांगते हैं, वे मटुकधारी कहलाते हैं। मटुकधारी शब्द देखो।

महापुरुषी—शङ्करदेव नामक एक महापुरुष इसके प्रवर्त्तक हैं। सिख लोग जिस प्रकार ग्रन्थसाहबकी पूजा करते हैं, ये लोग भी उसी तरह श्रीमद्भागवतग्रन्थकी पूजा करते हैं। राम, कृष्ण और हरिनाम कीर्त्तन भी किया करते। आसाम कुचविहार अञ्चलमें इस सम्प्रदायके अनेक लोग रहते हैं।

महापुरुषीय धर्मसंप्रदाय शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

माधवी—माधो नामक एक उदासीने इस संप्रदायका संस्थापन किया। कान्यकुब्जवासी माधोदास इस संप्रदायके प्रवर्त्तक थे, यह भी प्रवादसे जाना जाता है। ये लोग गौड़ीय वैष्णव हैं।

मानभवी—ये कृष्णोपासक हैं। कृष्णाम्भटयोगी इस संप्रदायके प्रवर्त्तक हैं। इनके मतसे कृष्ण ही परम देवता हैं तथा जीवहिंसा महापाप है। कृष्णका प्रसाद सभी एकत्र भोजन करते हैं। मानभवी शब्द देखो।

मार्गी—द्वारका अञ्चलमें मार्गी साधु नामक एक श्रेणीका वैष्णव है। ये गृही और रामानन्दी सम्प्रदायके उपसम्प्रदायभेद हैं। एक वैष्णव तीर्थयात्राको गये थे,

राहमें उनकी मृत्यु हो गई। उनके साथ कुछ धर्मग्रन्थ थे। कुछ लोगोंने उस धर्मग्रन्थको पा कर तदनुष्ठान किया। मार्ग अर्थात् राहमें प्राप्त ग्रन्थानुसार धर्मानुष्ठान करनेसे ये मार्गी कहलाये।

मीराबाई शब्द देखो।

मुलूकदासी—रामात् सम्प्रदायकी शाखा।

मुलूकदासी शब्द देखो।

योगी—गौड़ेश्वर सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त। यशोर और उत्कलमें इस श्रेणीके वैष्णव हैं।

योगी वैष्णव शब्द देखो।

रातभिखारी—बङ्गालमें एक श्रेणीके भिखारी वैष्णव शुक्ल पक्षीय पञ्चमीसे पूर्णिमा पर्यन्त शामसे एक पहर रात तक भीख मांगते हैं, पर ये किसीके दरवाजे पर नहीं जाते। कलकत्तेके निकटवर्त्ती उत्तरपाड़ा श्रीरामपुर और वैद्यबाटी अञ्चलमें इस श्रेणीके वैष्णव हैं। रातभिखारी शब्द देखो।

रुद्रदासी—रामात् सम्प्रदायके वैष्णव। रुद्रदास देखो।

राधावल्लभी—हरिवंश गोस्वामी इस सम्प्रदायके प्रवर्त्तक हैं। इन्होंने वृन्दावनमें १६४१ सम्वत्को राधावल्लभजीका मठ खोला। इस संप्रदायकी श्रीमती राधिका ही प्रधान उपास्या हैं। श्रीवृन्दावनमें इस संप्रदायका मठ है। इनके आचरण और वैष्णव चिह्नादि भी वैष्णव जैसे हैं। सेवासखीवाणी नामक एक ग्रन्थमें इनकी उपासना और क्रिया-कलापादिका विशेष विवरण लिपिबद्ध है। इस संप्रदायकी और भी अनेक शाखाएं हैं। ब्रजभाषामें लिखे हुए इनके अनेक ग्रन्थ हैं।

रामवल्लभी—रामवल्लभी शब्द देखो।

रामसनेही—रामात्संप्रदाय विशेष। रामसनेही देखो।

रामसाधनीय—रामानन्द संप्रदायका उपसंप्रदाय।

रूप-कविराजी—गौड़ीय संप्रदायच्युत एक कण्ठी वैष्णव। रूपदासक शब्द देखो।

लश्करी—रामानन्दी संप्रदायके अन्तर्गत। रामानन्दी तिलक लगाते हैं, किन्तु लाल श्रीरेखा नहीं देते। अयोध्यामें इनका मठ है।

वड़गल—मन्द्राज और बम्बई अञ्चलके एक श्रेणीके शास्त्राचारपालक वैष्णव। वड़गल शब्द देखो।

वलरामी—वलरामहाड़ी नामक एक बङ्गाली द्वारा प्रतिष्ठित। यह एक छोटा धर्मसंप्रदाय है।

बलरामी शब्द देखो।

बाउल—बङ्गीय वैष्णव संप्रदायकी शास्त्राचार विवर्जित एक शाखा। राधाकृष्ण इनके उपास्य हैं, किन्तु उपासनाप्रणाली अति गुप्त है। गौर नित्यानन्द नामका भी ये कीर्त्तन करते हैं। बाउल शब्द देखो।

बाणशायी—रामात् निमात्संप्रदायका कठोरताचारी संप्रदायभेद। ये लोग बाण पर शयन करते हैं।

बिन्दुधारी—उत्कलका वैष्णवभेद। बिन्दुधारी देखो।

विट्ठलभक्त—महाराष्ट्र प्रदेशमें विट्ठलभक्त नामक एक संप्रदाय है। ये लोग गुजरात, कर्णाट और भारतवर्षके मध्यखण्डमें भी रहते हैं। विठोबा नामक विष्णु ही इनके उपास्य हैं। इनका दूसरा नाम पाण्डुरङ्ग है। ये लोग उन्हें विष्णुका सम अवतार मानते हैं। पण्डरपुरमें इनकी गद्दी है तथा 'हरिविजय' आदि नामों पर सांप्रदायिक ग्रन्थ है।

बीजमार्गी—बीजमार्गी शब्द देखो।

वेरकारी—बम्बई अञ्चलमें वेरकारी नामक एक प्रकारके भिक्षुक वैष्णव हैं। ये गले और दोनों बाहुमें तुलसीकी माला पहनते हैं तथा गेरुआ वस्त्र और झोली ले कर घूमते हैं।

वैरागी—वैरागी शब्द देखो।

वैष्णवतपस्वी—जो काठके कौपीन पहनते हैं, कमरमें काठ बांधते हैं, वे काठिया और जो विभिन्न व्यवहार करते हैं, वे लोहिया कहलाते हैं, इत्यादि।

वैष्णवदण्डी—ये रामानुज संप्रदायी ब्राह्मण कुलोद्भव दण्डीसंप्रदाय हैं। ये त्रिदण्डी हैं और गेरुआ वस्त्र पहनते, सिर मुंड़वाते तथा यज्ञोपवीत और कमल या तुलसीकी माला पहनते हैं। ये शुद्धाचारी हैं तथा रात-दिन वेदाध्ययन और नित्य क्रियादिका अनुष्ठान करते हैं।

वैष्णव ब्रह्मचारी—यह श्रेणी रामानुजादि सम्प्रदायमें देखी जाती है।

वैष्णवपरमहंस—रामानुजादि सम्प्रदायसम्मत दीक्षामें दीक्षित हो परमहंसवृत्तिका अवलम्बन करनेसे लोग वैष्णवपरमहंस कहलाते हैं। योग साधन द्वारा सायुज्य मुक्तिलाभ इनका परम पुरुषार्थ है। ये लोग अपने हाथसे रसोई नहीं बनाते।

वैष्णव भाट—ये लोग रामानुज आदि वैष्णवोंकी गुरु प्रणाली लिखते हैं तथा उनका यश गान किया करते हैं।

इनके सिवा संयोगी, सखिभावुकी, सत्कुली, सत्नामी, सधनपन्थी, सहजिया, साजि, साखिभीपन्थी, साहेबघनी, सेनपन्थी, हजरती, हरिबोला, हरिव्यासी, हरिश्चन्द्र आदि उपसम्प्रदायका विषय इन्हीं सब शब्दोंमें देखना चाहिये।

वैष्णवतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थभेद, विष्णु-सम्बन्धी तीर्थ।

वैष्णवत्व (सं० क्ली०) वैष्णव होनेका भाव या धर्म, वैष्णवता। (राजत० ४।१२४)

वैष्णवदास—अष्टश्लोकीविवरणके प्रणेता।

वैष्णवदास कर्णाटक—कर्णाटदेशवासी एक कवि।

वैष्णवायन (सं० पु०) वैष्णवस्य गोत्रापत्य वैष्णव (हरितादिभ्योऽञ्। पा ४।१।१००) इति फक्। वैष्णवका गोत्रापत्य।

वैष्णवी (सं० स्त्री०) विष्णोरियं विष्णु-अण्, स्त्रियां ङीप्। १ विष्णुकी शक्ति। २ दुर्गा। (अमरटीका०) ३ गंगा। गंगा विष्णुके पादपद्मसे निकली हैं, इसलिये उन्हें वैष्णवी कहते हैं।

"विष्णोः पादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुपूजिता।
पाहिनस्त्वेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात्॥"

(आह्निकतत्त्व)

४ अपराजिता। ५ शतावरी। ६ तुलसी। ७ मनसा। ८ पृथिवी। ९ श्रवणा नक्षत्र। १० साममेद।

वैष्णवीतन्त्र (सं० क्ली०) तन्त्रभेद।

वैष्ण्य (सं० त्रि०) १ यज्ञ-सम्बन्धी। "पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ" (शुक्लयजु० १।१२) 'वैष्णव्यौ यज्ञसम्बन्धिनो' 'यज्ञो वै विष्णुः'। (महीधर) २ विष्णुसम्बन्धी, विष्णुका।

वैष्णावरुण (सं० त्रि०) वैष्णवरुण। स्त्रियां ङीप्। (तैत्तिरीयसं० २।१।५।४)

वैष्णुवारुण (सं० त्रि०) वैष्णवरुण। स्त्रियां ङीप्। (ऐतरेयब्रा० ३।३८)

वैष्णुवृद्धि (सं० पु०) विष्णुवृद्धके गोत्रापत्य। (प्रवराध्याय)

वैष्वक्सैन्य (सं० पु०) विष्वक्सेनके अपत्यादि।

वैस—अयोध्याप्रदेशवासी राजपूतजातिकी भिन्न भिन्न शाखा। वैश्यवर्णसे जो सब राजपूत उत्पन्न हुए हैं, वे ही प्रधानतः वैसराजपूत हैं। इनकी वासभूमि होनेसे ही युक्तप्रदेशके वैसवाड़ा जिलेका नामकरण हुआ है। यह जाति एक समय राजपूतजातिके इतिहासमें विशेष प्रसिद्ध हो गई थी। इस इतिहासके विभिन्न स्थानमें वाई या वाईस शब्दसे इन वैसोंका परिचय दिया गया है।

इनमें प्रवाद है, कि दक्षिण भारतके मञ्जी-पैठान नामक स्थानसे आ कर ये लोग उत्तर-भारतके नाना स्थानोंमें बस गये हैं। इनका कहना है, कि शालिवाहन राजाकी ३६० महिषीकी सन्तानसन्ततिसे ३६० घर वैसजातिकी उत्पत्ति हुई है। ये लोग ३६ राजपूतकुलके अन्तर्भुक्त हैं तथा चौहान और कच्छवाह जातिके साथ आदान-प्रदान करते हैं।

वैस राजपूतोंकी वीरताके सम्बन्धमें एक किंवदन्ती इस प्रकार सुनी जाती है। १२५० ई०में अर्गलराज गौतमने दिल्लीके लोदी सम्राटोंकी अधीनता स्वीकार नहीं की। वे जब दिल्लीश्वरको राजकर देनेसे इनकार चले गये, तब सम्राट्के आदेशसे अयोध्याका मुसलमान शासनकर्त्ता उनके विरुद्ध भेजा गया। इस युद्धमें मुसलमानी सेनाकी हार हुई। इसके कुछ समय बाद ही गौतमराजकी महिषी गङ्गास्नानके उपलक्षमें दुरिडया नैराके निकटवर्ती बगसर नगरमें आ ठहरीं। बहुतोंका कहना है, कि रानी प्रयागतीर्थ त्रिवेणीमें स्नान करने आई थीं। मुसलमानोंने उनका संधान पा कर दलबलके साथ रानीको आक्रमण करके कैद करनेकी चेष्टा की। इस समय रानीने ललकार कर कहा था, कि यहां एक भी क्षत्रिय नहीं जो राजकुल-ललनाके मानकी रक्षा कर सके। इतना सुनते ही अभयचाँद और निर्भयचाँद नामक दो वैसराजपूत भाई दलबलके साथ आ धमके और मुसलमान सेनादलको निहत कर रानीको फतेपुर जिलेके अन्तर्गत अर्गल नगरमें ले गये।

मुसलमानोंके साथ युद्धमें आहत हो निर्मलचाँद परलोक सिधारे। अभयचाँद अब रानीको ले कर राजाके समीप गये, तब राजाने कृतज्ञतापूर्ण हृदयसे अपनी कन्याके साथ अभयचाँदका विवाह कर दिया तथा यौतुक स्वरूप गङ्गाके उत्तर अपने राज्यका कुछ अंश तथा रावकी उपाधि दी।

करीब १४०० ई०में इस वंशमें राव तिलकचाँदने जन्म ग्रहण किया। उन्होंने अपने बाहुबलसे अनेक स्थान जीत कर राज्य फैलाया। प्रवाद है, कि उन्होंने २२ परगनेके अधिकारी हो काफी धन जमा किया था। उन्हींके समय बैसवाड़ा विभागमें बैस जातिका प्रभाव फैला था।

जो हो, तिलकचाँदने जो एक समय अपने बाहुबलसे अयोध्या-विभागके राजाओंका नेतृत्व ग्रहण किया था इसमें संदेह नहीं। ये अपने पालकी ढोनेवाले कहारों-को राजपूत बना गये तथा फैजाबादकी चोरजाति उन्हीं-के अनुग्रहसे भले सुलतान नामसे प्रसिद्ध हुई।

मैनपुरी जिलेके बैसोंका कहना है, कि वे १३९१-९२ ई०में राठोर राजपूतोंके साथ डुण्डिया-खेरासे इस देशमें आ कर बस गये। तारीख-ई-मुबारक-शाही पढ़नेसे जाना जाता है, कि यहांके बैसगण १४२० ई०में भयानक अत्याचारी हो उठे। दिल्लीश्वरने उनका दमन करनेके लिये सुलतान खिजिर खाँको भेजा। खिजिर खाँने बैस-शक्तिको जड़से उखाड़ दिया था।

फैजाबाद और फर्रुखाबादमें भी वैसोंका उपनिवेश स्थापित हुआ। फर्रुखाबाद आनेके सम्बन्धमें यहांके वैस कहते हैं, कि हंसराज और वत्सराज नामके दो वैस भाई डुण्डियाखेरा होते हुए इस प्रदेशमें आये। पहले वे लोग भर नामक यहांके आदिम अधिवासी-के अधीन थे, पीछे उनके साथ शत्रुता करके अकतपुर और सौरिख नामक स्थानोंको जीत वहीं बस गये। धीरे धीरे उन्होंने ईशान नदीतीरस्थ कुछ ग्रामोंको दखल कर वहां अपनी गोटी जमा ली थी।

गुड़गांव जिलेके वैसोंमें किंवदन्ती है, कि वैसवाड़ा-से दलीपसिंह नामक एक वैस सरदार इस अञ्चलमें आ कर बस गये। उन्हींके दो पुत्रोंसे उनमें चौधरी और राव वंशकी उत्पत्ति हुई है। गोरखपुरके वैसोंका कहना है, कि वे लोग नागवंशी हैं तथा वशिष्ठ ऋषिकी कामधेनुकी नाकसे उत्पन्न हुए हैं। गाजीपुरी वैस अपनेको वैसवाड़ासे आये हुए बघेल रावके वंशधर बतलाते हैं। मुगल-सम्राट् अकबर शाहके समय उनकी एक शाखा रोहिलखण्डमें जा बस गई थी।

बहुत-सी छोटी छोटी जातियोंके इस सुविस्तृत वैस जातिमें आ कर मिल जानेसे वैस समाजमें अनेक दलोंकी सृष्टि हुई है। फैजाबाद और पोस्ता जिलेमें गंधारिया, नाइपुरिया, पारवर और बाहुगण अपनेको वैस जातिसे उत्पन्न बतलाते हैं। रायबरेली जिलेके पूरब भराभिवैस श्रेणीका वास है। भितरिया और बहा-रिया वैसोंके संबंधमें किंवदन्ती है, कि राजा तिलक-चांदकी बहुत-सी स्त्रियां थीं। उनमें रेवा और मैनपुरी राजकन्या राजाके यहांसे भाग गई। उन्हींसे भितरिया और बहरिया दलकी उत्पत्ति हुई है। तिलकचांदी वैसोंमें राव, रावत, नैहाटा और सादवंशी प्रधान हैं। वैससे नीच जातिकी स्त्रीके गर्भसे काठवैसोंकी उत्पत्ति है। तिलकचांदी इनकी कन्याको ग्रहण नहीं करते और न उनके साथ खान पान ही करते हैं।

ऊपरमें शालिवाहनराजकी ३६० स्त्रियोंसे जो ३६० घर वैस जातिकी बात लिखी गई है, उनमें तिलसारी, चकवैस, नानवाग, भानवाग, बटस, पराशरिया, पट-सरिया, चिभोनिया, भटकारिया, छनमिया और गर्ग-वंश ही प्रधान हैं।

तिलकचन्द्र नामकी शाखाके सभी लोग कपालमें अर्द्धचंद्राकृति तिलक लगाते हैं।

वैसवार—मिर्जापुर जिलेकी पहाड़ी देशवासी जाति विशेष। ये लोग अपनेको डुण्डियाखेरावासी राजपूत वैस (बाईस) जातिकी एक शाखाके बतलाते हैं। प्रवाद है, कि वैस जातीय दो भाईको राजाने प्राणदण्ड का हुकुम दे दिया, इस पर वे बहुत दूर रेवा राज्यमें भाग गये। वहां उन्होंने राजानुग्रह पा कर बहुत भूसम्पत्ति सञ्चय की और दोनों प्रतिष्ठित समझे जाने लगे। ८।९ पीढ़ी वहां रहनेके बाद उन्होंने मिर्जापुरमें आ कर उप-निवेश बसाया। वैसवारोंका कहना है, कि वैसवाड़ा

जातिके साथ उनका कोई सम्पर्क नहीं है, आपसमें आदान-प्रदान भी नहीं चलता।*

वे लोग अपनेको राजपूत जातिकी शाखा बतलाते हैं सही, पर उनमें राजपूत रक्त बहता है ऐसा प्रतीत नहीं होता। क्योंकि, उनकी वाह्य आकृति और प्रकृति देखनेसे मालूम होता है, कि वे प्राचीन द्राविड़ीय शाखासे उत्पन्न हुए हैं।

उनमें सात विभाग हैं जिनमेंसे खण्डाइत और वंशीत प्रधान हैं। इन दो श्रेणियोंसे और पांच श्रेणी उत्पन्न हुई हैं। वनभूमिमें वास करनेके कारण एक शाखा वननैत कहलाती है। रौतिहा, सोहागपुरिया और पिपराह ग्राममें रहनेसे तीन शाखाका इसी प्रकार नाम हुआ है। रेवती, सोहागपुर और पिपरा ग्राम बुन्देलखण्डमें अवस्थित है।

उक्त सात शाखाओंमें खण्डाइत प्रधान है। दूसरी शाखावालेको खण्डाइतकी कन्या लेनेमें पण देना होता है। खण्डाइतोंमें जो व्यक्ति पञ्चायतका सरदार होता है उसे महतो कहते हैं।

बैसवारोंमें व्यभिचार उतना दोषजनक नहीं है, किन्तु स्वजातिमें यदि कोई अन्य जातिका अन्न ग्रहण करे, तो उसकी जात चली जाती है। जातिनाश या पाप क्षालनके लिये भागवतका ७ श्लोक-पाठ, गङ्गास्नान अथवा वाराणसी, प्रयाग वा मथुरामें तीर्थयात्रा करनी होती है। पञ्चायतके विचारसे दूसरा दण्ड नहीं है।

इन लोगोंमें बहु-विवाह प्रचलित है, किंतु साधारणतः एक पत्नीग्रहण करना ही नियम है। जिसे दो वा दोसे अधिक स्त्री रहती हैं, उसकी पहली स्त्री ही घरकी मालकिन और देवपूजादिकी अधिकारिणी होती हैं। सगाईकी तरह विधवाका विवाह होता है। इस समय सत्यनारायणकी पूजा और सजातीय स्वजनके सामने दोनोंके ग्रंथिबंधन सिवा और कोई काम नहीं होता। देवर यदि भौजाईसे विवाह करना न चाहे, तो वह विधवा दूसरेसे भी विवाह कर सकती है। स्वामी वा स्त्री यदि अन्य जातिका हुक्का तमाकू पीये, तो एक दूसरेको छोड़ सकता है। हिन्दूशास्त्रानुसार बैसवार लोग दत्तक ग्रहण कर सकते हैं।

संतानके जन्म लेने पर छः दिन तक चमारिन सूतिकागारमें प्रसूतिकी सेवा-सुश्रूषा करती है। छः दिनके बाद नाइन उसकी जगह पर आती है। बारहवें दिन प्रसूति शौचादिसे सम्पन्न हो घरमें आती है, परन्तु छः मास तक वह स्वामीके समीप नहीं आ सकती। बच्चा जब चलने लगता है, तब उसका कर्णवेध और अन्नप्राशन होता है।

विवाह संबंध स्थिर होने पर एक भोज होता है तथा कन्याका पिता बालकके कपालमें टीका दे विवाह ठीक कर जाता है। विवाहके पांच दिन पहले मटमङ्गला होती है। इस समय स्त्रियां एक ढोलको सिन्दूरसे रंगा लेती हैं। घरमें जो बूढ़ी है, वह मिट्टी कोड़ कर घर लाती और उसे विवाहमण्डपके मध्यस्थलमें रख एक वेदी बनाती है। वेदीके ऊपर सेमर पेड़की डाल और पवित्र जलपूर्ण कलस रहता है।

विवाहके पूर्व दिन मंत्रिपूजा होती है। इस समय एक घरकी ओखलमें गोबरकी लोई लगा कर उसमें दूब और आमका पल्लव खोंस देते हैं और ऊपरसे हल्दीका रंगा कपड़ा ढक दिया जाता है। कन्या उसके ऊपर घी डालती है, पीछे खड्गकी पूजा होती है। कन्यापक्षका कोई आत्मीय इस समय अपने हाथसे खड्ग पकड़ कर खड़ा रहता है तथा वरकी माता आ कर उसमें चावलका पिठारा और हल्दी लगा देती है। इसके बाद वह तलवारकी मूंठसे एक शस्यपूर्ण कलस फोड़ देती है। प्रवाद है, कि वरपक्षका कोई आदमी यदि इस विवाहमें शत्रुताचरण करे, तो उसे शस्यकी तरह दूर किया जायेगा।

अनन्तर वह तलवार विवाह मण्डपकी वेदीके मध्यस्थलमें ला कर रखी जाती है। पीछे उस तलवारसे एक बकरा मार कर रातको खिचड़ी और बकरेके मांसका भोज होता है। इस भोजको वे लोग 'भातवान' या आशयक कहते हैं।

घरसे बारात निकलनेके पहले नाई कन्याके घरसे लाये हुए जलसे वरको स्नान कराता है। यात्राकालमें वरकी माता 'परछन' कार्य करती है। पीछे बारात जब कन्याके घर पहुंचती है, तब वहां उन्हें स्वागत कर दर-

बाजे पर लाते हैं। इस समय कन्याको ओरसे नाई हल्दीसे रंगा कपड़ा ला कर पालकीको ढक देता है।

कन्यागृहके द्वार पर बैठनेके लिये आसन बिछाया रहता है। उस आसन पर बैठ कर वर गौरी और गणेशकी पूजा करता है। पूजा समाप्त होने पर कन्या-का पिता वरके कपालमें दही और चावल लगाता है। पीछे कन्यागृहसे वर और वरपक्षीय बालिकाओंका जलपान आता है। इसके बदले वरका पिता कन्या और कन्याकी माताके लिये साड़ी और अलङ्कार तथा वरका स्नान किया हुआ जल भेज देता है। इस जलसे फिरसे कन्याको स्नान कराया जाता है। पीछे उसे नववस्त्र और अलङ्कारादि पहना कर विवाह-मण्डपमें लाते और वरको ला कर विवाहकार्य शुरू कर देते हैं।

वर और कन्या दोनों सामने रखी हुई गृहदेवता मूर्त्तिकी पूजा कर कलस और सेमरके डंठलमें सिन्दूर लगाते हैं। इसके बाद गांठ बांध कर वर और कन्याको उस वेदीके चारों ओर पांच बार प्रदक्षिण कराया जाता है। प्रदक्षिणकालमें वरके हाथमें सूप रहता है; कन्या का भाई उस सूप पर चावल देता जाता और कन्या उसे फेंकती जाती है। अनन्तर वरकन्याको वासरगृह (कोहबर) ला कर रखा जाता है। विवाहके दूसरे दिन बारात विदा होती है। द्विरागमनके बाद वरके घरमें स्थानीय देवताकी पूजा और होम होता है।

हिन्दूकी तरह ये लोग शवदाह करते हैं। शवदाह-के बाद शवदाहकगण गृह लौट अष्टाङ्गसे अग्नि स्पर्श कर शुद्ध होते हैं। दूसरे दिन सबेरे मृतका निकट-सम्बंधीय दाह स्थानमें जा शवकी हड्डी और भस्मको ले कर पासवाली नदीमें फेंक देता है। पीछे ये लोग एक पीपल पेड़के नीचे आत्माकी प्यास बुझानेके लिये एक घड़ा जल रख छोड़ते हैं। मृतकका निकट आत्मीय प्रतिदिन सबेरे प्रेतके उद्देशसे एक एक पिण्ड देता है और दसवें दिन दूध और चावल उत्सर्ग कर निकटवर्त्ती जलाशयमें फेंक आता है। ग्यारहवें दिन महापात्रको मृतका वस्त्रभूषण दान किया जाता है। उनका विश्वास है, कि दान की हुई वस्तु प्रेतलोकमें जाती है। बारहवें दिन षोड़श पिण्डदानके बाद महा-पात्रको भोजन कराया जाता है तथा दक्षिणास्वरूप उसके हाथमें एक गाय और वस्त्र दिया जाता है। तेर-हवें दिन ब्राह्मणभोजन होता है। ये लोग देवीदुर्गा और वहीं भवानीकी पूजा करते हैं।

वैसर्गिक (सं० त्रि०) विसर्गाय प्रभवति विसर्ग (तस्मै प्रभवति सन्तापादिभ्यः। पा ५।१।१०१) इति ठञ्। जो विसर्जन करने या त्यागने योग्य हो, त्याज्य।

वैसर्ज्जन (सं० पु०) १ विसर्जन करने या उत्सर्ग करने-की क्रिया। २ वह जो विसर्जित या उत्सर्ग किया जाय। ३ यज्ञकी बलि।

वैसर्ज्जनीय (सं० त्रि०) उत्सर्गके योग्य।

(शतपथब्रा० ३।६।३।१)

वैसर्ज्जिन (सं० क्ली०) वैसर्ज्जन देखो।

वैसर्प (सं० पु०) विसर्प अण्। १ विसर्प रोग। (क्ली०) २ विसर्प रोग सम्बन्धी।

वैसा (हिं० क्रि० वि०) उस प्रकारका, उस तरहका।

वैसादृश्य (सं० क्ली०) विसदृश भावे ष्यञ्। असदृश या असमान होनेका भाव, असमानता, विषमता।

वैसारिण (सं० पु०) विशेषेण सरतीति विसारी मत्स्यः स एव (विसारिणो मत्स्ये। पा ५।४।१६) इति अण्। मत्स्य, मछली।

वैसूचन (सं० क्ली०) विशेषेण सूचयतीति विसूचनम्, तदेव स्वार्थे अण्। नाटकमें पुरुषोंका स्त्री बनना।

वैसृप (सं० पु०) दानवभेद। (हरिवंश)

वैस्तारिक (सं० त्रि०) विस्तार-सम्बन्धी, विस्तारका।

वैस्पष्ट्य (सं० क्ली०) परिष्कार, परिच्छन्नता।

वैस्रेय (सं० पु०) विस्रि ऋषिके अपत्य। (पा ४।१।१२०)

वैस्वर्य (सं० क्ली०) स्वरका विकृत होना, गला बैठना।

वैहग (सं० त्रि०) विहग-अण्। विहग-सम्बन्धी।

(कथासरित्सा० ५६।१७८)

वैहङ्ग (सं० त्रि०) विहङ्ग-अण्। विहङ्ग-सम्बन्धी, विहङ्गका। (सुश्रुत)

वैहति (सं० पु०) विहतके गोत्रापत्य।

वैहायन (सं० पु०) विहत ऋषिके अपत्यादि।

(संस्कारकौमुदी)

वैहायस (सं० त्रि०) विहायस-अण्। विहायस-सम्बन्धी, आकाशका।

वैहार (सं० पु०) मगधके अन्तर्गत एक पर्वत। यह वैभार नामसे प्रसिद्ध है। राजगृह देखो।

वैहार्य (सं० पु०) विशेषेण ह्रियते इति वि हृ ण्यत् विहार्य एव स्वार्थे अन्। वह जिसके साथ हंसी मजाक आदिका संबन्ध हो। जैसे,—साला, सरहज, साली आदि।

वैहासिक (सं० पु०) विहासं करोति ठक्। वह जो सबको हंसाता हो, विदूषक, भांड़। पर्याय—हासतिक, केलिकिल, प्रहासी, प्रीतिद। (हेम)

वैह्वल्य (सं० क्ली०) विह्वलस्य भावः विह्वल-ष्यञ्। विह्वलता, विह्वल होनेका भाव या धर्म।

वोक्काण (सं० पु०) १ वृहत्संहिताके अनुसार एक देशका नाम। २ इस देशका निवासी (वृहत्संहिता १६।२०)

वोखारा—प्राचीन तुर्किस्तानके अन्तर्गत एक छोटा सामंत राज्य। यह अक्षा० ३७° से ४३° उ० तथा देशा० ६०°से ६८° पू०के मध्य अवस्थित है। खां उपाधिधारी मुसलमान राजा द्वारा इसका शासन होता है।

इस राज्यके चारों ओर मरुभूमि रहने पर भी मध्य वर्त्ती यह देशभाग अधिक शस्यशाली है। आमू या आमु नदी, सैर या जाकजार्तिस, कोहिक या जार अफसान तथा कशीं और वाहिकराज्यप्रवाहित नदियां इसके बीचसे बह गई हैं। इससे इस स्थानकी उर्वरता दूनी बढ़ गई है। यहांके अधीश्वर अमीर उपाधिधारी हैं।

यहां पहले तामक जाति आ कर बस गई। हिजरीकी प्रथम सदीमें महम्मदके अनुचरोंने वोखारामें प्रवेश कर सामनिद-वंशीय शासनकर्त्ताओंको हराया और इसलाम धर्ममें दीक्षित किया। १०वीं सदीमें इस वंशके राजे जब कमजोर हो गये, तब उजवक जातिने उन्हें परास्त कर सिंहासनको अपना लिया था। पीछे १२वीं सदीमें चेङ्गीजखांके अधीनस्थ मुगलसैन्यने इस राज्य पर आक्रमण कर उजबकोंको मार भगाया।

जार-अफसान नदीके पूर्वी किनारेसे ७ मील दूर वोखारा नगर अवस्थित है। यह नगर एक प्रधान वाणिज्य-केन्द्र है। भारतवर्ष, रूस, काशगार और तुर्किस्तानके नाना स्थानोंके लोग यहां आ कर पण्यद्रव्य खरीद ले जाते हैं। राजा अलप आर्सलानने यहां एक बड़ा महल बनवाया था। उसके बादसे हो यहां बड़ी इमारतें बनने लगीं। अभी असंख्य मसजिद, स्कूल और वणिक संप्रदायके रहनेके लिये अच्छी अच्छी सरायें विद्यमान हैं।

१८६८ ई०में वोखारा रूससाम्राज्यके अन्तर्भुक्त हुआ।

वोखारो—महम्मदकी मृत्युके बाद जिन छः मुसलमानोंने धर्मावार्य रूपमें महम्मदके चलाये हुए धर्ममतका संग्रह किया था, उनमें यह एक है। इसका असल नाम आबू अबदुल्ला महम्मद इसमाइल है।

वोगदाद—तुरुष्कराज्यके अन्तर्गत वोगदाद प्रदेशका प्रधान नगर। यह अक्षा० ३३°२०´ उ० तथा देशा० ४४°२३´ पू०के मध्य अवस्थित है। ७६० ई०में यह नगर स्थापित हुआ तथा मुसलमान खलीफाओंके समय इसकी यथेष्ट उन्नति हुई थी। १२५७ ई०में तातार-दलके नेता हालाकूने और १४०० ई०में तैमूरलङ्गने बहुतसे अधिवासियोंको ध्वंस कर यह नगर फतह किया। १५०८ ई०में शाह इसमाइल तुर्कीके आक्रमणसे यह पारस्यके शासनभुक्त हुआ। पीछे १५३४ ई०में सुलेमानने इसको पारस्यसे निकाल कर तुरुष्कमें मिला दिया। इसके बाद शाह अब्बासने इसे पुनः पारस्यके अधीन कर लिया था। १६३८ ई०में यह फिर तुर्कोंके हाथ आया। तभीसे यह उन्हींके दखलमें है।

यह नगर खलीफाओंके अधिकारमें दर-उश-सलाम और मदिनात् अल-खलीफा नामसे परिचित था। ८वीं सदीमें मङ्क और सालो नामके दो चिकित्सकोंने खलीफा हारुण अल रसीदकी सभामें प्रतिपत्ति लाभ की थी।

वोट (अं० पु०) वह सम्मति जो किसी सार्वजनिक पद पर किसीको निर्वाचित करने या न करने अथवा सर्वसाधारणसे सम्बन्ध रखनेवाले किसी नियम या कानून आदिके निर्धारित होने या न होने आदिके विषयमें प्रकट की जाती है; किसी सार्वजनिक कार्य आदिके होने अथवा न होने आदिके संबंधमें दो हुई अलग अलग राय। आज कल प्रायः सभा-समितियोंमें निर्वाचनके संबंधमें या और किसी विषयमें सभासदों अथवा उपस्थित लोगोंकी सम्मतियां ली जाती हैं। यह

सम्मति या तो हाथ उठा कर या खड़े हो कर या कागज आदि पर लिख कर प्रकट की जाती है। इसी सम्मतिको घोट कहते हैं। आज कल प्रायः म्युनिसिपल और डिस्ट्रिक्टबोर्डों तथा काउन्सिलों आदिके चुनावमें कुछ विशिष्ट अधिकार प्राप्त लोगोंसे घोट लिया जाता है। भारतवर्षमें प्राचीन बौद्धकालमें और उसके पहले भी इससे मिलती जुलती सम्मति देनेकी प्रथा थी जिसे छन्दस् या छन्द कहते थे।

घोट आव सेंशर (अं॰ पु॰) निन्दाका प्रस्ताव, निन्दात्मक प्रस्ताव। जैसे,—परिषद्‌ने बहुमतसे सरकारके विरुद्ध घोट आव सेंशर पास किया।

घोटर (अं॰ पु॰) वह जिसे घोट या सम्मति देनेका अधिकार प्राप्त हो, घोट या सम्मति देनेवाला।

घोटर लिस्ट (अं॰ स्त्री॰) वह सूची जिसमें किसी विषयमें घोट देनेके अधिकारियोंके नाम और पते आदि लिखे रहते हैं, घोट देनेवालोंकी सूची।

घोटा (सं॰ स्त्री॰) दासी, मजदूरनी, दाई।

"पोटा घोटा च चेटी च दासी च कुटहारिका।" (हेम)

घोड़ (सं॰ पु॰) गुवाक, सुपारी।

घोड़ (सं॰ पु॰) १ गोह नामक जन्तु, गोनस सर्प। २ मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली।

घोड़ी (सं॰ स्त्री॰) पणचतुर्थांश, पणके चार भागका एक भाग। इसे बोड़ी भी कहते हैं।

घोढ़ (सं॰ पु॰) १ घोढ़ ऋषि। २ कदमका पेड़।

घोढ़व्य (सं॰ त्रि॰) वह-तव्य, अकारस्योकारः। १ वहनीय, ग्राह्य, ढोनेके लायक। (हरिवंश ७५।८८) २ परिणेतव्य, विवाहके योग्य। (भारत १२।४४।४५)

घोढ़ (सं॰ पु॰) एक प्राचीन ऋषि। इनके नामसे तर्पणके समय जल दिया जाता है।

घोढ़ृ (सं॰ पु॰) वहतीति वह-तृच् (सहिवहोरोदवर्णस्य। पा ६।३।११२) इति अकारस्यौकारः। १ भारिक, भार ले जानेवाला। (भागवत ५।१०।२) २ मूढ़, मूर्ख। ३ परिणेता, विवाहकर्ता। (मनु ८।२०४) ४ सूत। ५ अनडुवान, ऋषभ नामकी ओषधि। ६ सारथि। ७ पथदर्शक, राह दिखानेवाला।

घोण्ट (सं॰ पु॰) पूग, बौंड़ी, टूँडी।

घोद (सं॰ पु॰) आर्द्र, गीला।

घोदाल (सं॰ पु॰) वोदः आर्द्रः सन् अलतीति अलअच्। मत्स्यविशेष, बोआरी मछली। पर्याय—सहस्रदंष्ट्र, पाठीन, वदालक। यह मछली खानेमें बड़ी स्वादिष्ट होती है।

घोनाई—छोटा नागपुर विभागके अन्तर्गत एक सामन्त राज्य। यह अक्षा॰ २१° ३६´ से २२° ८´ उ॰ तथा देशा॰ ८४° ३२´ से ८५° २५´ पू॰के मध्य अवस्थित है। इसके उत्तरमें सिंहभूम और गाङ्गपुर राज्य, दक्षिण और पश्चिममें बामड़ा सामन्तराज्य तथा पूर्वमें केउञ्झर राज्य है।

१८२१ ई॰से यह अङ्गरेजोंके दखलमें आया है। यहांके राजा वृटिश सरकारको सेनादलसे सहायता पहुंचानेमें बाध्य हैं।

घोनाईगढ़—उक्त प्रदेशका एक नगर। यह अक्षा॰ २१° ५०´ उ॰ तथा देशा॰ ८५° १´ पू॰के मध्य समुद्रपृष्ठसे ५०५ फुटकी ऊंचाई पर अवस्थित है। यहां घोनाई राज्यका राजप्रासाद है। राजदुर्ग प्रायः तीन ओर नदीसे घिरा है।

घोनाईशैल—घोणाई सामन्तराज्यके अन्तर्गत एक विस्तृत शैलश्रेणी। यह घोणाई मध्य उपत्यकासे २००० से ३००० फुट ऊंची है। मालकारमाथा, बादामगढ़, कुमरिताड़, चेलियाटोका और कोएडाघर नामक शिखर यथाक्रम ३६३६, ३५२५, ३४६०, ३३०८, ३००० फुट तक ऊंचे हैं।

घोप्यादेवी (सं॰ स्त्री॰) राजपत्नीभेद।

घोपदेव—एक विख्यात पण्डित। इन्होंने सुप्रसिद्ध मुग्धबोध व्याकरण प्रणयन कर संस्कृत साहित्यमें अच्छा नाम कमाया है। ये जातिके ब्राह्मण तथा देवगिरिके रहनेवाले थे। इनके पिताका नाम था केशव। धनेश पण्डितके निकट ये पाठाध्ययन करते थे। ये यादवपति महाराज महादेवके सभापण्डित थे। कविकल्पद्रुम, काव्यकामधेनु, त्रिंशच्छ्लोकी, मर्गीचसंग्रह, धातुकोष और धातुपाठ, परमहंसप्रिया, परशुरामप्रतापटीका (श्राद्धखण्ड), भागवतपुराण द्वादश स्कन्धानुक्रम, महिम्नःस्तवटीका, मुक्ताफल, रामव्याकरण, शतश्लोकी और

शतश्लोकीचन्द्रकला नामकी टीका, शार्ङ्गधरसंहिता, गूढ़ार्थदीपिका और सिद्धमंत्रप्रकाश (वैद्यक), हरिलीला, हृदयदीपनिघण्टु (वैद्यक) आदि ग्रन्थ इनके रचे हैं। इनके सिवाय निर्णयसिन्धु, आचारमयूख और श्राद्धमयूख ग्रंथोंमें इनके रचे एक धर्मशास्त्रका उल्लेख मिलता है।

वोपदेवशतक नामक एक काव्य भी पाया जाता है। इसके रचयिता वोपदेव खुद हैं या दूसरे कोई कह नहीं सकते। यादव-राजवंश देखो।

वोपालित (सं० पु०) एक आभिधानिक।

वोपालित सिंह—एक आभिधानिक। अभिधानरत्नमालामें हलायुध तथा महेश्वर, मेदिनीकर, उज्ज्वल दत्त आदिने इनके अभिधानका उल्लेख किया है।

वोम्—त्रिपुरा पार्वत्य प्रदेशवासी एक जाति। ये बुनजु या बोन्-जु नामसे भी परिचित थे। कुकि, लङ्गया और पयुङ्गोरा इसी जातिके अन्तर्गत हैं।

वोरक (सं० पु०) वह जो लिखता हो, लेखक।

वोरट (सं० पु०) कुंदका फूल या पौधा।

वोरपट्टी (सं० स्त्री०) मंदुरा, चटाई।

वोरव (सं० पु०) धान्यविशेष, बोरो धान। इसका गुण—त्रिदोषवर्द्धक, मधुर, अल्पपाक और पित्तजनक। (राजवल्लभ)

वोरुखान (सं० पु०) पाटलवर्ण अश्व।

वोर्णिओ—भारत महासागरस्थ भारतीय द्वीपपुञ्जके अंतर्गत एक सुवृहत् द्वीप। यहां असभ्य जातिका वास है। १५१८ ई०में सेंट सिवाष्टियन जहाज पर चढ़ कर पुर्त्तगीज नाविक लरेंजो डि गामेज वोर्णियो द्वीपमें समागत हुए। तभीसे विभिन्न समयमें पुर्त्तगीज वणिक यहां वाणिज्य करनेके हेतु आ कर अपना अपना अधिकार विस्तार कर रहे हैं।

वोल (सं० क्ली०) वोलयति प्रायशो निमग्नं भवति पुल अच्, यद्वा वा गतौ विच्चादित्वादुलच्। स्वनाम ख्यात वणिक् द्रव्य (Balsamodendron myrrh)। महाराष्ट्र—बोल, तैलङ्ग—बालिम् त्रिपोलम्, तामिल—वेल्लइपोलम्, बम्बई—रक्तबोल। संस्कृत पर्याय—रसाग्गन्ध, गुण्ड, सुरस, पिण्डक, पिण्ड, निर्लोह, बर्ब्बर, पिण्ड, सौरभ, रक्तगन्धक, रसगन्ध, महागन्ध, विश्वा, शुभगन्ध, विश्वगन्ध, गन्धरस, प्राणादि। इसका गुण कटु, तिक्त, उष्ण, कषाय, रक्तदोषनाशक, कफपित्त तथा प्रदरादिरोगनाशक माना गया है। (राजनि०)

भावप्रकाशके मतसे गुण—रक्तहर, शीतल, मेध्य, दीपन, पाचन, मधुर, कटु तिक्त, त्रिदोषनाशक, ज्वर, अपस्मार, कुष्ठरोगनाशक तथा गर्भाशय-विशुद्धिकारक। (भावप्र०)

वोलक (सं० पु०) वह जो लिखता हो, लेखक।

वोलासक (सं० क्ली०) अगरभेद।

वोल्लाह (सं० पु०) अश्वविशेष, वह घोड़ा जिसकी दुम और अयालके बाल पीले रंगके हों।

वोहित्थ (सं० क्ली०) यानपात्र, अर्णवपोत, जहाज।

वौषट् (सं० अव्य०) उह्यतेऽनेन हविरिति वह बाहुलकात् डौषट्। देवताओंको हवि अर्थात् यज्ञीय घृतादि देनेका मंत्र। इस मंत्रसे देवताओंके उद्देशसे घृत आदिकी आहुति दी जाती है। पर्याय—स्वाहा, श्रौषट्, वषट्, स्वधा। इन पांच शब्दोंसे देवताओंके उद्देशसे अग्निमुखमें आहुति दी जाती है।

व्यंश (सं० पु०) सिंहिकागर्भजात विप्रचित्तिका पुत्रभेद। (हरिवंश)

व्यंशक (सं० पु०) पर्वत, पहाड़।

व्यंस (सं० पु०) १ राक्षसभेद। (त्रि०) २ स्कन्धहीन, छिन्नबाहु। (ऋक् १।३२।५ सायण)

व्यंसक (सं० पु०) वि-अंस-ण्वुल्। धूर्त्त, चालाक।

व्यंसन (सं० क्ली०) प्रवञ्चना, ठगने या धोखा देनेकी क्रिया।

व्यंसनीय (सं० त्रि०) प्रतारणाके योग्य।

व्यंसयितव्य (सं० त्रि०) प्रवञ्चनाके योग्य, जिसको ठगा जाय।

व्यंसित (सं० त्रि०) वि-अंस-क्त। प्रतारित, प्रवञ्चित।

व्यक्त (सं० त्रि०) अञ्ज् व्यक्तौ वि-अञ्ज् क्त। १ प्राज्ञ। २ स्फुट, स्पष्ट। ३ प्रकट। ४ स्थूल, बड़ा। ५ दृष्ट, देखा हुआ। ६ अनुमित। ७ प्रकाशित। (पु०) ८ कृत्य, कार्य। ९ मनुष्य, आदमी। १० व्यक्तिविशेष। ११ विष्णु। १२ सांख्यके मतसे प्रकृतिके स्थूल परि-

सम्मति या तो हाथ उठा कर या खड़े हो कर या कागज आदि पर लिख कर प्रकट की जाती है। इसी सम्मतिको वोट कहते हैं। आज कल प्रायः म्युनिसिपल, और, डिस्ट्रिक्टबोर्डों तथा काउन्सिलों आदिके चुनावमें कुछ विशिष्ट अधिकार प्राप्त लोगोंसे वोट लिया जाता है। भारतवर्षमें प्राचीन बौद्धकालमें और उसके पहले भी इससे मिलती जुलती सम्मति देनेकी प्रथा थी जिसे छन्दस् या छन्द कहते थे।

वोट आव सेंशर (अं० पु०) निन्दाका प्रस्ताव, निन्दात्मक प्रस्ताव। जैसे,—परिषद्ने बहुमतसे सरकारके विरुद्ध वोट आव सेंशर पास किया।

वोटर (अं० पु०) वह जिसे वोट या सम्मति देनेका अधिकार प्राप्त हो, वोट या सम्मति देनेवाला।

वोटर लिस्ट (अं० स्त्री०) वह सूची जिसमें किसी विषयमें वोट देनेके अधिकारियोंके नाम और पते आदि लिखे रहते हैं, वोट देनेवालोंकी सूची।

वोटा (सं० स्त्री०) दासी, मजदूरनी, दाई।

"पोटा वोटा च चेटी च दासी च कूटहारिका।" (हेम)

वोड़ (सं० पु०) गुवाक, सुपारी।

वोड़् (सं० पु०) १ गोह नामक जन्तु, गोनस सर्प। २ मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली।

वोड़ी (सं० स्त्री०) पणचतुर्थांश, पणके चार भागका एक भाग। इसे बौड़ी भी कहते हैं।

वोढ़ (सं० पु०) १ वोढ़ू ऋषि। २ कदमका पेड़।

वोढ़व्य (सं० त्रि०) वह-तव्य, अकारस्योकारः। १ वहनीय, वाह्य, ढोनेके लायक। (हरिवंश ७५।८८) २ परिणेतव्य, विवाहके योग्य। (भारत १२।७४।४५)

वोढ़ (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषि। इनके नामसे तर्पणके समय जल दिया जाता है।

वोढ़ृ (सं० पु०) वहतीति वह तृच् (सहिवहोरोदवर्णस्य। पा ६।३।११२) इति अकारस्योकारः। १ भारिक, भार ले जानेवाला। (भागवत ५।१०।१२) २ मूढ़, मूर्ख। ३ परिणेता, विवाहकर्त्ता। (मनु ८।२०४) ४ सूत। ५ अनडुवान, वृषभ नामकी ओषधि। ६ सारथि। ७ पथदर्शक, राह दिखानेवाला।

वोण्ट (सं० पु०) वृन्त, बौंड़ी, ढेंपी।

वोद (सं० पु०) आर्द्र, गीला।

वोदाल (सं० पु०) वोदः आर्द्रः सन् अलतीति अल-अच्। मत्स्यविशेष, बोआरी मछली। पर्याय—सहस्रदंष्ट्र, पाठीन, वदालक। यह मछली खानेमें बड़ी स्वादिष्ट होती है।

वोनाई—छोटा नागपुर विभागके अन्तर्गत एक सामन्त राज्य। यह अक्षा० २१° ३६´ से २२° ८´ उ० तथा देशा० ८४° ३२´ से ८५° २५´ पू०के मध्य अवस्थित है। इसके उत्तरमें सिंहभूम और गाङ्गपुर राज्य, दक्षिण और पश्चिममें वामड़ा सामन्तराज्य तथा पूर्वमें केउञ्झर राज्य है।

१८२६ ई०से यह अङ्गरेजोंके दखलमें आया है। यहांके राजा वृटिश सरकारको सेनादलसे सहायता पहुंचानेमें वाध्य हैं।

वोनाईगढ़—उक्त प्रदेशका एक नगर। यह अक्षा० २१° ५०´ उ० तथा देशा० ८५° १´ पू०के मध्य समुद्रपृष्ठसे ५०५ फुटकी ऊंचाई पर अवस्थित है। यहां वोनाई राज्यका राजप्रासाद है। राजदुर्ग प्रायः तीन ओर नदीसे घिरा है।

वोनाईशैल—वोनाई सामन्तराज्यके अन्तर्गत एक विस्तृत शैलश्रेणी। यह वोनाई मध्य उपत्यकासे २००० से ३००० फुट ऊंची है। मानकारमाचा, वादामगढ़, कुमरिताड़, वेलियाटोका और कोएडाधर नामक शिखर यथाक्रम ३६३६, ३५२५, ३४९०, ३३०८, ३००० फुट तक ऊंचे हैं।

वोन्थादेवी (सं० स्त्री०) राजपत्नीभेद।

वोपदेव—एक विख्यात पण्डित। इन्होंने सुप्रसिद्ध मुग्धबोध व्याकरण प्रणयन कर संस्कृत साहित्यमें अच्छा नाम कमाया है। ये जातिके ब्राह्मण तथा देवगिरिके रहनेवाले थे। इनके पिताका नाम था केशव। धनेश पण्डितके निकट ये पाठाध्ययन करते थे। ये यादवपति महाराज महादेवके सभापण्डित थे। कविकल्पद्रुम, काव्यकामधेनु, तिंगन्तश्लोकी, शतश्लोकी संग्रह, धातुकोष और धातुपाठ, परमहंसप्रिया, परशुरामप्रतापटीका (श्राद्धखण्ड), भागवतपुराण द्वादश स्कन्धानुक्रम, मदिरनाष्टकटीका, मुक्ताफल, रामव्याकरण, शतश्लोकी और

शतश्लोकीचन्द्रकला नामकी टीका, शार्ङ्गधरसंहिता, गूढ़ार्थदीपिका और सिद्धमंत्रप्रकाश (वैद्यक), हरिलीला, हृदयदीपनिघण्टु (वैद्यक) आदि ग्रन्थ इनके रचे हैं। इनके सिवाय निर्णयसिन्धु, आचारमयूख और श्राद्धमयूख ग्रंथोंमें इनके रचे एक धर्मशास्त्रका उल्लेख मिलता है।

वोपदेवशतक नामक एक काव्य भी पाया जाता है। इसके रचयिता वोपदेव खुद हैं या दूसरे कोई कह नहीं सकते। यादव-राजवंश देखो।

वोपालित (सं० पु०) एक आभिधानिक।

वोपालित सिंह—एक आभिधानिक। अभिधानरत्नमालामें हलायुध तथा महेश्वर, मेदिनीकर, उज्ज्वल दत्त आदिने इनके अभिधानका उल्लेख किया है।

वोम्—त्रिपुरा पार्वत्य प्रदेशवासी एक जाति। ये बुनजु या बौन-जु नामसे भी परिचित थे। कुकि, लङ्गा और बघुइगोरा इसी जातिके अन्तर्गत हैं।

वोरक (सं० पु०) वह जो लिखता हो, लेखक।

वोरट (सं० पु०) कुंदका फूल या पौधा।

वोरपट्टी (सं० स्त्री०) मंदुरा, चटाई।

वोरव (सं० पु०) धान्यविशेष, बोरो धान। इसका गुण—त्रिदोषवर्द्धक, मधुर, अम्लपाक और पित्तजनक। (राजवल्लभ)

वोरुखान (सं० पु०) पाटलवर्ण अश्व।

वोर्णिओ—भारत महासागरस्थ भारतीय द्वीपपुञ्जके अंतर्गत एक सुवृहत् द्वीप। यहां असभ्य जातिका वास है। १५१८ ई०में सेंट सिवाष्टियन जहाज पर चढ़ कर पुर्त्तगीज नाविक लरेंजो डि गामेज वोर्णियो द्वीपमें समागत हुए। तभीसे विभिन्न समयमें पुर्त्तगीज बनिये यहां वाणिज्य करनेके हेतु आ कर अपना अपना अधिकार विस्तार कर रहे हैं।

वोल (सं० क्ली०) वोलयति प्रायशो निमग्नं भवति बुल अच्, यद्वा या गती पिञ्छादित्वादूलच्। स्वनाम ख्यात वणिक् द्रव्य (Balsamodendron myrrh)। महाराष्ट्र—बोल, तैलङ्ग—पालिम् त्रिपोलम्, तामिल—वेलइपपोलम्, वम्बई—रक्ताबोल। संस्कृत पर्याय—रसगन्ध, मुण्ड, सुरस, पिण्डक, विष, निर्लोह, वर्व्वर, पिण्ड, सौरभ, रक्तगन्धक, रसगन्ध, महागन्ध, विश्वा, शुभगन्ध, विश्वगन्ध, गन्धरस, मणादि। इसका गुण कटु, तिक्त, उष्ण, कषाय, रक्तदोषनाशक, कफपित्त तथा प्रदरादिरोगनाशक माना गया है। (राजनि०)

भावप्रकाशके मतसे गुण—रक्तहर, शीतल, मेध्य, दीपन, पाचन, मधुर, कटु तिक्त, त्रिदोषनाशक, ज्वर, अपस्मार, कुष्ठरोगनाशक तथा गर्भाशय-विशुद्धिकारक। (भावप्र०)

वोलक (सं० पु०) वह जो लिखता हो, लेखक।

वोलासक (सं० क्ली०) नगरभेद।

वोल्लाह (सं० पु०) अश्वविशेष, वह घोड़ा जिसकी दुम और अयालके बाल पीले रंगके हों।

वोहित्थ (सं० पु० क्ली०) यानपात्र, अर्णवपोत, जहाज।

वौषट् (सं० अव्य०) उह्यतेऽनेन हविरिति वह बाहुलकात् डौषट्। देवताओंको हविः अर्थात् यज्ञीय घृतादि देनेका मंत्र। इस मंत्रसे देवताओंके उद्देशसे घृत आदिकी आहुति देनी होती है। पर्याय—स्वाहा, श्रौषट्, वषट्, स्वधा। इन पांच शब्दोंसे देवताओंके उद्देशसे अग्निमुखमें आहुति दी जाती है।

व्यंश (सं० पु०) सिंहिकागर्भजात विप्रचित्तिका पुत्रभेद। (हरिवंश)

व्यंशक (सं० पु०) पर्वत, पहाड़।

व्यंस (सं० पु०) १ राक्षसभेद। (त्रि०) २ स्कन्धहीन, छिन्नबाहु। (ऋक् १।३२।५ सायण)

व्यंसक (सं० पु०) वि अंस-ण्वुल्। धूर्त्त, चालाक।

व्यंसन (सं० क्ली०) वञ्चना, ठगने या धोखा देनेकी क्रिया।

व्यंसनीय (सं० त्रि०) प्रतारणाके योग्य।

व्यंसयितव्य (सं० त्रि०) प्रवञ्चनाके योग्य, जिसको ठगा जाय।

व्यंसित (सं० त्रि०) वि-अस-क्त। प्रतारित, प्रवञ्चित।

व्यक्त (सं० त्रि०) अञ्जु व्यक्तौ वि-अञ्जु क्त। १ प्राज्ञ। २ स्फुट, स्पष्ट। ३ प्रकट। ४ स्थूल, बड़ा। ५ दृष्ट, देखा हुआ। ६ अनुमित। ७ प्रकाशित। (पु०) ८ दृश्य, कार्य। ९ मनुष्य, आदमी। १० उपनिषद्विशेष। ११ विष्णु। १२ सांख्यके मतसे प्रकृतिके स्थूल परि-

माणका नाम व्यक्त है। प्रधान, अहङ्कार, एकादश इन्द्रिय, पञ्चतन्मात्र और पञ्चमहाभूत इन चौबीस तत्त्व को व्यक्त कहते हैं। अव्यक्त प्रकृति तथा व्यक्त पुरुष है।

व्यक्तगणित (सं॰ क्लो॰) अङ्कविद्या, हिसाब।

व्यक्तगन्धा (सं॰ स्त्री॰) १ नीली अपराजिता। २ स्वर्णयूथिका, सोनजुही। ३ पिप्पली, पीपल।

व्यक्तता (सं॰ स्त्री॰) व्यक्तस्य भावः तल्-टाप्। व्यक्त होनेका भाव।

व्यक्ततारक (सं॰ त्रि॰) पूर्णप्रकाशमान तारकाविशिष्ट।

व्यक्तदृष्टार्थ (सं॰ पु॰) व्यक्तं स्फुटं यथास्यात् तथा दृष्टोऽर्थो येन। वह जो देखी हुई बात कहे, चश्मदीद गवाह। पर्याय—प्रत्यक्षी, प्रत्यक्षदर्शी।

व्यक्तभुक् (सं॰ पु॰) काल, समय, वक्त।

व्यक्तमय (सं॰ त्रि॰) वचनशील, वाक्यविशिष्ट।

व्यक्तरसता (सं॰ स्त्री॰) स्वादग्रहणकी तीक्ष्णता, परिष्कार भावसे रसानुभवकी शक्ति।

व्यक्तराशि (सं॰ स्त्री॰) अंकगणितमें वह राशि या अङ्क जो व्यक्त किया या बतला दिया गया हो, ज्ञातराशि।

व्यक्तरूप (सं॰ पु॰) व्यक्तं रूपं यस्य। १ विष्णु। (त्रि॰) २ स्पष्टरूपयुक्त।

व्यक्तरूपिन् (सं॰ त्रि॰) ऐसी आकृतिवाला जो पहचाना जा सके।

व्यक्ति (सं॰ स्त्री॰) व्यज्यतेऽनयेति वि-अन्ज-क्तिन्। १ पृथगात्मिका, मनुष्य या किसी और शरीरधारीका सारा शरीर जिसकी पृथक् सत्ता मानी जाती है और जो किसी समूह या समाजका अङ्ग समझा जाता है, समष्टिका उल्टा, व्यष्टि। २ स्पष्टता। (रघु १।१०) ३ भूतमात्र। (गीता ८।१८) ४ न्यायशास्त्रोक्त वस्तु-पदार्थ। ५ मनुष्य, आदमी। जैसे,—कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो सदा दूसरोंका अपकार ही किया करते हैं। यद्यपि यह शब्द संस्कृतमें स्त्रीलिङ्ग है, तथापि हिन्दीमें 'मनुष्य' या 'आदमी' के अर्थमें यह प्रायः पुल्लिंग ही बोला और लिखा जाता है। ६ भेद। ७ शरीर। ८ द्रव्य, वस्तु, पदार्थ। ९ प्रकाश।

व्यक्तिग्राहिता (सं॰ स्त्री॰) जिस वृत्ति द्वारा एक एक वस्तुकी सत्ता उपलब्धि होती है।

व्यक्तीकृत (सं॰ त्रि॰) १ प्रकाशित, जो व्यक्त किया गया हो, प्रकट किया हुआ। २ उद्घाटित, स्पष्टीकृत।

व्यक्तीभाव (सं॰ पु॰) प्रकाशीभाव। जो पहले व्यक्त न था पीछे व्यक्त हुआ है, उसीको व्यक्तीभाव कहते हैं।

व्यक्तीभूत (सं॰ त्रि॰) जो व्यक्त किया गया हो, प्रकट किया हुआ।

व्यक्तोदित (सं॰ त्रि॰) साफ साफ कहा हुआ।

व्यक्ष (सं॰ त्रि॰) अक्षरेखावर्जित।

व्यग्र (सं॰ त्रि॰) विगतं अगतीति अग अच् इन्द्रेति साधुः। १ व्यासक्त, व्याकुल, घबराया हुआ। २ व्यस्त, काममें फंसा हुआ। ३ त्वरित। ४ त्रस्त, भीत, डरा हुआ। ५ उत्साही, उद्यमी, उद्योगी। ६ आग्रही। ७ आसक्त। ८ ससंभ्रम। (भागवत ३।१६।५ स्वामी) (पु॰) ९ विष्णु। (विष्णुका सहस्रनाम)

व्यग्रता (सं॰ स्त्री॰) व्यग्रस्य भावः तल् टाप्। १ व्यग्र होनेका भाव। २ व्याकुलता, घबराहट।

व्यग्रमनस् (सं॰ त्रि॰) चिन्ताविह्वल मानस।

व्यङ्कुश (सं॰ त्रि॰) विगतः अंकुशो यस्मात्। निरंकुश।

व्यङ्ग (सं॰ पु॰) विकृतानि अङ्गानि यस्य। १ भेक, मेंढक। (मेदिनी) विकृतानि अङ्गानि यस्मात्। २ मुखरोगविशेष। भावप्रकाशके मतसे क्रोध या परिश्रम आदिके कारण वायु कुपित होनेसे मुंह पर छोटी छोटी काली फुंसियां या दाने निकल आते हैं, इसीको व्यङ्ग रोग कहते हैं। बड़का नया पत्ता, मालती, रक्तचन्दन, कुट और लोध इन सबोंको एकत्र पीस कर प्रलेप देनेसे व्यङ्ग और नीलिका रोगमें बहुत फायदा पहुंचता है। कुंकुमाद्यतैल भी इस रोगमें बड़ा उपकारी है। ३ विकलाङ्ग, वह जिसका कोई अंग टूटा हुआ या विकृत हो। ४ उपहास, विद्रूप।

व्यङ्गक (सं॰ पु॰) पर्वत, पहाड़।

व्यङ्गता (सं॰ स्त्री॰) व्यङ्गका भाव।

व्यङ्गत्व (सं॰ क्लो॰) किसी अङ्गका न होना या खण्डित होना, लञ्जता, अङ्गहीनता।

व्यङ्गार्थ (सं० पु०) व्यंग्य देखो।
व्यङ्गार (सं० त्रि०) अङ्गार या अग्निवर्जित।
व्यङ्गित (सं० त्रि०) विकलीकृत।
व्यङ्गिन (सं० त्रि०) व्यङ्गरोगविशिष्ट, जिसे व्यङ्गरोग हुआ हो।
व्यङ्गीकृत (सं० त्रि०) खण्डित, काटा हुआ।
व्यंगुल (सं० पु०) १ अंगुलकी विस्तृतिके परिमाणका षष्टितम अंशविशेष। (त्रि०) २ विकृतांगुल, जिसकी अंगुली विकृत हो गई हो।
व्यंगुलि (सं० त्रि०) विकृतांगुलि।
व्यंगुष्ठ (सं० त्रि०) १ विकृतांगुष्ठ। (पु०) २ गुल्मभेद।
व्यङ्ग्य (सं० पु०) वि-अनज्-ण्यत्। १ व्यञ्जना वृत्ति द्वारा बोध्य अर्थ, तात्पर्यार्थ, निगूढ़भाव। शब्दकी शक्ति तीन प्रकार है—वाच्य, लक्ष्य और व्यङ्ग्य। इनमेंसे व्यञ्जना-वृत्ति द्वारा जिन सब शब्दोंका अर्थ प्रकाश पाता है, उन्हें व्यङ्ग्य कहते हैं। (सा० द० २ परि० ११) २ वह लगती हुई बात जिसका कुछ गूढ़ अर्थ हो, ताना, बोली, चुटकी।
व्यचस् (सं० क्ली०) १ व्याप्ति। "समुद्रो न व्यचस्दधे" (ऋक् १।३०।३)
२ आदित्य। "व्यचश्छन्दः" (शुक्लयजु० १५।४)
व्यचस्वत् (सं० त्रि०) व्याप्तियुक्त। "व्यचस्वतीर्विं प्रथन्तामजुर्याः" (ऋक् २।३।५)
व्यचिष्ठ (सं० त्रि०) व्याप्त। "वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठ" (ऋक् ३।१०।४)
व्यच्छ (सं० त्रि०) गमनशील। (शुक्लयजु० १०।१८)
व्यज (सं० पु०) व्यजत्यनेनेति वि-अज (गोचरसञ्चरेति। पा ३।३।११९) इति घञ्, निपातनादजे र्व्यघञपोरिति वीभावो न भवति। व्यजन, हवा करनेका पंखा।
व्यजन (सं० क्ली०) व्यजत्यनेनेति वि-अज-ल्युट्। (वो वी। पा २।४।५७) इति पक्षे वी भावो न भवति। तालवृन्तक, हवा करनेका पंखा। इसका सामान्य गुण—मूर्च्छा, दाह, तृष्णा, घर्म और श्रमनाशक। ताल व्यजनका गुण—त्रिदोषनाशक और लघु। वंशव्यजनका गुण—रूक्ष, उष्ण, वायुपित्तकारक, बेत, वस्त्र और मयूर-पुच्छव्यजनका गुण—त्रिदोषनाशक। चामरव्यजनका गुण—तेजस्कर और मक्षिकादि निवारक।

भावप्रकाशके मतसे इसका साधारण गुण दाह, स्वेद, मूर्च्छा और श्रान्तिनाशक है। तालवृन्तव्यजन त्रिदोषनाशक है। वंशव्यजन—उष्ण तथा रक्तपित्तप्रकोपक। चामर, वस्त्र, मयूरका पंखा तथा वेत्रज व्यजन त्रिदोषनाशक, स्निग्ध और हृदयग्राही है। व्यजनोंके मध्य यही व्यजन प्रशस्त है। (भावप्र०)
व्यजनक (सं० क्ली०) व्यजन-स्वार्थे कन्। व्यजन देखो।
व्यञ्ज्य (सं० त्रि०) १ जिसका बोध शब्दकी व्यञ्जना शक्तिके द्वारा हो। (पु०) २ व्यङ्ग्य देखो।
व्यञ्जक (सं० पु०) व्यनक्तीति वि-अञ्ज-ण्वुल्। १ हृद्गतभावादि प्रकाशक अभिनय। यह आङ्गिक, सात्त्विक, वाचिक और आहार्य भेदसे चार प्रकारका है। (भरत) २ व्यञ्जनाप्रतिपादक। (साहित्यद० २।११) (त्रि०) ३ प्रकाशक। (मनु ३।६८).
व्यञ्जन (सं० क्ली०) वि-अञ्ज-ल्युट्। १ तरकारी और साग आदि जो दाल, चावल, रोटी आदिके साथ खाये जाते हैं। पर्याय—तेमन, निष्ठान, तेम। (ऋक् ८।६७।२) इसका गुण—हृद्य, वृष्य और पुष्टिप्रद। मछली और मांसादिका व्यञ्जन जिस जिस द्रव्यके साथ भोजन किया जाता है, उस उस द्रव्यके दोष और गुणानुसार दोष और गुण स्थिर करना होता है। (राजवल्लभ)

२ चिह्न। ३ व्यञ्जनाशक्ति। (साहित्यद० १।५६) ४ श्मश्रु, मूंछ। ५ अवयव, शरीर। ६ दिन। ७ पेड़ूके नीचेका स्थान, उपस्थ। ८ साधारण बोलचालमें पका हुआ भोजन। ९ वर्णमालामेंका वह वर्ण जो बिना स्वरकी सहायतासे न बोला जा सकता हो। हिन्दीवर्णमालामें "क" से "ह" तकके सब वर्ण व्यञ्जन हैं। १० व्यक्त अथवा प्रकट करने अथवा होनेकी क्रिया। ११ गुप्तचर या गुप्तचरोंका मंडल।
व्यञ्जनसन्निपात (सं० पु०) व्यञ्जनसङ्गम कितने व्यञ्जनवर्णोंका एकत्र समावेश।
व्यञ्जनहारिका (सं० स्त्री) पुराणानुसार एक प्रकारकी अमंगल-कारिणी शक्ति जो विवाहिता लड़कियोंके बनाये हुए खाद्य पदार्थ उठा ले जाती है।

व्यञ्जना (सं० स्त्री०) वि-अञ्ज-णिच्-युच्-टाप्। १ प्रकट करनेकी क्रिया। २ शब्दकी वृत्तिविशेष। शब्दकी तीन वृत्ति हैं—अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना। (साहित्यद० २ परि०)

व्यड् (सं० पु०) एक ऋषिका नाम। व्याड़ि देखो।

व्यडम्बक (सं० पु०) एरण्डवृक्ष, रेंड़ीका पेड़।

व्यति (सं० पु०) अश्व, घोड़ा। (ऋक् ४।३२।१७)

व्यतिकर (सं० पु०) वि-अति-कृ-अप्। १ व्यसन। २ व्यतिषङ्ग। ३ विनाश, बरबादी। (भागवत १।७।३२) ४ मिश्रण, मिलावट। (माघ ४।५१) ५ व्याप्ति। ६ सम्पर्क, सम्बन्ध। ७ परस्पर काम करना। ८ समूह, झुंड।

व्यतिक्रम (सं० पु०) वि-अति-क्रम-घञ्। १ क्रममें होनेवाला विपर्यय, सिलसिलेमें होनेवाला उलट-फेर। २ बाधा, विघ्न।

व्यतिक्रमण (सं० क्ली०) वि-अति-क्रम ल्युट्। क्रममें विपर्यय करना, सिलसिलेमें उलट-फेर करना।

व्यतिक्रान्त (सं० त्रि०) वि-अति-क्रम-क्त। विपर्ययप्राप्त, जिसमें किसी प्रकारका विपर्यय हुआ हो।

व्यतिक्रान्ति (सं० स्त्री०) वि अति क्रम क्तिन्। व्यतिक्रम, क्रममें होनेवाला विपर्यय।

व्यतिगत (सं० त्रि०) अतिक्रान्त, जो अतिक्रम कर गया हो।

व्यतिचार (सं० पु०) १ दोष, ऐब। २ पापाचरण, पाप कर्म करना।

व्यतिचुम्बित (सं० त्रि०) अति सन्निकटमें स्पर्शन।

व्यतिपात (सं० पु०) वि-अति-पत-घञ्। १ महोत्पात, भारी उपद्रव या खराबी। २ अपमान। ३ योगभेद। व्यतीपात शब्द देखो।

व्यतिभेद (सं० पु०) वि-अति भिद्-घञ्। अतिक्रम करके भेद, एक एक करके भेद।

व्यतिमर्श (सं० पु०) विहारविशेष। वैदिक यज्ञादिमें वालखिल्य स्तोत्रके प्रथम या द्वितीय मन्त्रका बहुत-सा पाद या मन्त्राङ्ग एक के बाद एक परस्परमें एकयोगसे उच्चारणरूप प्रयोग।

व्यतिमर्शम् (सं० अव्य०) स्पष्ट, अतिक्रान्त।

व्यतिमिश्र (सं० त्रि०) और भी अनेक मिश्र चिह्नयुक्त। (सुश्रुत० ६।७।१)

व्यतिमुक्त (सं० त्रि०) अत्यन्त विरक्त या चिन्ताविवर्जित।

व्यतिमोह (सं०) अतिशय मुग्ध।

व्यतियात (सं० त्रि०) अतिक्रम करके गया हुआ।

व्यतिरिक्त (सं० त्रि०) वि अति-रिच् क्त। १ व्यतिरेकविशिष्ट, विभिन्न, अलग। २ वर्द्धित, बढ़ाया हुआ। ३ पृथक् कृत, अलग किया हुआ। (क्रि० वि०) ४ अतिरिक्त, सिवा, अलावा।

व्यतिरिक्तता (सं० स्त्री०) व्यतिरिक्त होनेका भाव या धर्म, विभिन्नता।

व्यतिरेक (सं० पु०) वि-अति रिच्-घञ्। १ बिना। २ अभाव। ३ प्रभेद, विभिन्नता। ४ वृद्धि, बढ़ती। ५ अतिक्रम। ६ अर्थालङ्कारविशेष। जहां उपमानसे उपमेयको अधिकता या न्यूनता वर्णन किया जाता है, वहां यह अलङ्कार होता है। इस अलङ्कारके ४८ भेद हैं। उदाहरण—उसका मुख अकलङ्क है, कलङ्की चंद्रमाके समान नहीं। उसके मुख पर तो कोई कलंक नहीं है, पर चंद्रमाका कलंक है, कलङ्की चन्द्रमाकी अपेक्षा उसके मुखसौन्दर्यको अधिकता वर्णन होनेसे यहां व्यतिरेक अलङ्कार हुआ। इस प्रकार उपमेयकी न्यूनता होने पर भी यह अलङ्कार होगा। (साहित्यद०)

व्यतिरेकव्याप्ति (सं० स्त्री०) जिसमें जो गुण नहीं है उसमें वही गुण देनेके लिये युक्ति देना।

व्यतिरेकिन् (सं० पु०) १ वह जो किसीको अतिक्रम करके आता हो। २ वह जो पदार्थोंमें विभिन्नता उत्पन्न करता हो।

व्यतिरेकिलिङ्ग (सं० क्ली०) अतिरिक्त चिह्न।

व्यतिरेचन (सं० क्ली०) विभिन्नतादर्शन। (साहित्यद० १०।११४)

व्यतिलङ्घिन् (सं० त्रि०) स्वस्थानभ्रष्ट, जो अपने स्थानसे च्युत हो गया हो। (रघु ६।१९)

व्यतिषक्त (सं० त्रि०) वि अति-षञ्ज-क्त। १ आसक्त। २ मिला हुआ। ३ ग्रथित।

व्यतिषङ्ग (सं० पु०) वि-अति-षञ्ज घञ्। १ मिला हुआ। २ विनिमय, बदला।

व्यतिहार (सं० पु०) वि-अति-हृ-घञ्। १ विनिमय,

बदला। २ पर्यायकरण, नाम लेना। ३ गाली गलौज। ४ मारपीट।

व्यतीकार (सं० पु०) वि अति-कृ-घञ्, घञि उपसर्गस्य दीर्घः। १ व्यसन। २ व्यतिषङ्ग। ३ विनाश, बरबादी। ४ निधन।

व्यतीत (सं० त्रि०) वि-अति इ-क्त। अतीत, बीता हुआ, गत। (तिथितत्त्व)

व्यतीपात (सं० पु०) वि-अति-पत-घञ् (उपसर्गस्य घञीति। पा ६।३।१२२) इति उपसर्गस्य दीर्घः। १ महोत्पात, अमङ्गलजनक उत्पात, धूमकेतु, भूकम्प आदि। २ अपमान। ३ विष्कम्भ प्रभृति सत्ताईस योगोंके अन्तर्गत सत्तरहवां योग। ज्योतिषके मतसे इस योगमें कोई भी शुभकर्म नहीं करना चाहिये, करनेसे अशुभ होता है।

संक्रान्ति, विष्टि, व्यतीपात, वैधृति और केन्द्रस्थानके शुभग्रहहीन होने पर भी पापदिन वर्जन करके शुभकार्य करे। व्यतीपात सभी शुभ कार्योंमें निषिद्ध होने पर भी इसका प्रतिप्रसव देखनेमें आता है। चन्द्र तारा यदि शुद्ध रहे, तो व्यतीपात दुष्ट नहीं होता। यात्राकालमें अमृतयोग होनेसे व्यतीपातदोष विनष्ट होता है अर्थात् व्यतीपातयोग होनेसे ऐसी हालतमें यात्रा की जा सकती है। (ज्योतिस्तत्त्व)

इस योगमें यदि कोई बालक जन्म ले, तो वह कर्कशभाषी, दुष्ट, सदा पीड़ित, माताका हितकारी और दूसरेके कार्यमें पक्षपाती होता है। (कोष्ठीप्रदीप)

४ पारिभाषिक योगविशेष, जैसे अर्द्धोदययोग, व्यतीपातयोग। इस योगमें गंगास्नान करनेसे कोटिकुलका उद्धार होता है। अमावस्याके दिन रविवार, श्रवणा, धनिष्ठा, आर्द्रा, अश्लेषा और मृगशिरा नक्षत्र होनेसे यह योग होता है।

चतुर्दशीके दिन यदि व्यतीपात तथा आर्द्रा नक्षत्रका योग हो, तो वह दिन भी अति पुण्यतम काल है। यह देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। इस दिन गंगास्नान करनेसे पूर्वोक्त फललाभ होता है। (प्रायश्चित्ततत्त्व)

५ सूर्यसिद्धान्तोक्त क्रान्तिसाम्यात्मक योगविशेषरूप पातभेद।

व्यतीहार (सं० पु०) वि-अति-हृ-घञ्, उपसर्गस्य दीर्घः। १ परिवर्त्त, बदला। २ आपसमें गाली गलौज, मारपीट या इसी प्रकारका और कोई काम करना।

व्यत्यय (सं० पु०) व्यत्ययनमिति वि-अति-इ। (एरच्। पा ३।३।५६) इति अच्। व्यतिक्रम। पर्याय—विपर्यास, व्यत्यास, विपर्यय।

व्यत्यस्त (सं० त्रि०) वि-अति-अस-क्त। विपरीतभावसे अवस्थित, उलटा पलटा।

व्यत्यास (सं० पु०) व्यत्यसनमिति वि-अति-अस्-घञ्। विपर्यास, व्यतिक्रम, वैपरीत्य।

व्यथ—१ भय, डर। २ चलना। ३ बाधा।

व्यथक (सं० त्रि०) व्यथयति पीड़यति व्यथ णिच् ण्वुल्। व्यथाकारी, पीड़ा देनेवाला।

व्यथन (सं० क्ली०) व्यथ-भावे ल्युट्। १ व्यथा, पीड़ा, तकलीफ। (त्रि०) व्यथयतीति व्यथ-ल्यु। २ व्यथक, तकलीफ देनेवाला।

व्यथयितृ (सं० त्रि०) व्यथ-णिच्-तृच्। व्यथाकारक, पीड़ा देनेवाला।

व्यथा (सं० स्त्री०) व्यथ-घञ्-टाप्। १ दुःख, पीड़ा, तकलीफ। २ भय, डर। (उत्तर च० १ अं०)

व्यथित (सं० त्रि०) व्यथ-क्त। १ पीड़ित, जिसे किसी प्रकारकी व्यथा या तकलीफ हो। २ जिसे शोक प्राप्त हुआ हो।

व्यथिन् (सं० त्रि०) १ व्यथित। २ बाधक। (ऋक् ५।५४।१)

व्यथ्य (सं० त्रि०) व्यथ-यत्। १ दुःखार्ह, व्यथा देने योग्य। २ भयानक, भय उत्पन्न करनेवाला।

व्यद्वर (सं० त्रि०) दंशक।

व्यध (सं० पु०) व्यधनमिति व्यध-ताड़े (व्यधजपोरनुपसर्गे। पा ३।३।६१) इत्यप्। १ वेध, बींधना। २ बाधा। ३ भेदना। ४ प्रहार।

व्यधन (सं० क्ली०) व्यध-ल्युट्। वेधन, विद्ध करना, बींधना।

व्यधिकरण (सं० क्ली०) अधिकरणाभाव।

व्यधिक्षेप (सं० पु०) निन्दा, शिकायत।

व्यध्य (सं० पु०) धनाय हितः व्यध यत्। १ धनुर्गुण,

अनुरक्त होते । (त्रि०) २ यौवनादि, यौवनके योग्य ।

व्यध्व (सं० पु०) विरुद्धो अध्वा, प्रादि समासः, 'उप-सर्गादध्वनः' इत्यच् । कुत्सित पथ । पर्याय—दुरध्व, विपथ, कदध्वा, कापथ, कुपथ, असत्पथ, कुत्सितवर्त्म ।

व्यध्वन् (सं० त्रि०) कुत्सित पथयुक्त ।

व्यध्वर (सं० त्रि०) संहारक ।

व्यन्त (सं० त्रि०) दूरवर्त्ती ।

व्यन्तर (सं० त्रि०) १ व्यवहित । २ सर्वधर्मसाम्य । (नीलकण्ठ भारतटीका) (पु०) ३ जैनोंके अनुसार एक प्रकारके पिशाच और यक्ष आदि ।

व्यपगम (सं० पु०) वि-अप-गम-अप् । व्यतीत ।

व्यपत्रपा (सं० स्त्री०) लज्जा ।

व्यपदेश (सं० पु०) वि-अप-दिश-घञ् । १ कपट, छल । २ नाम । ३ कुल, वंश । ४ वाक्यविशेष । ५ नामोल्लेख-कथन । ६ मुख्य व्यवहार । ७ निन्दा, शिकायत ।

व्यपदेशक (सं० त्रि०) १ नामक । २ प्रकाशक ।

व्यपदेशिन् (सं० त्रि०) मुख्य व्यवहारविशिष्ट ।

व्यपदेष्टृ (सं० त्रि०) वि-अप-दिश-तृच् । १ कपटी, छली । २ नामोल्लेखकारी ।

व्यपदेश्य (सं० त्रि०) वि-अप-दिश-यत् । १ व्यपदेशार्ह, व्यपदेशके योग्य । २ उल्लेखयोग्य ।

व्यपनय (सं० पु०) वि-अप-नी-अप् । १ विनाश, बर-बादी । २ त्याग, छोड़ देना ।

व्यपनयन (सं० क्ली०) वि-अप-नी-ल्युट् । त्याग, छोड़ देना ।

व्यपनीत (सं० त्रि०) वि-अप-नी-क्त । अपसारित, दूर किया हुआ ।

व्यपनुत्ति (सं० स्त्री०) अपसारित, दूर करना, अलग करना ।

व्यपनेय (सं० त्रि०) वि-अप-नी-यत् । व्यपनयनयोग्य, छोड़ देने लायक ।

व्यपमूर्द्धन् (सं० त्रि०) मस्तकहीन, बिना शिरका ।

व्यपयन (सं० स्त्री०) निशीथ ।

व्यपयान (सं० क्ली०) १ अपयान । २ पलायन, भागना ।

व्यपरोपण (सं० क्ली०) वि-अप-रुह-णिच्-ल्युट् 'रुहेः पोवा, इति हस्य पः । १ अवतारण, झुकाना । २ छेदन, काटना । ३ मूलोच्छेदन, जड़से काटना । ४ दूरीकरण, दूर करना, हटाना । ५ आघात पहुंचाना, पीड़ा पहुंचाना ।

व्यपरोपित (सं० त्रि०) वि-अप-रुह-णिच्-क्त, हस्य पः । १ अवतारित, झुकाया हुआ । २ छेदित, काटा हुआ । ३ मूलोत्पाटित, जड़से काटा हुआ । ४ दूरीकृत, दूर किया हुआ, हटाया हुआ । ५ उत्पाटित, उखाड़ा हुआ ।

व्यपवर्ग (सं० पु०) १ विच्छेद, अलग होना । २ त्याग, छोड़ना ।

व्यपवर्जन (सं० क्ली०) वि-अप-वृज-ल्युट् । १ त्याग । २ दान । ३ निवारण ।

व्यपवर्जित (सं० त्रि०) वि-अप-वृज-क्त । १ परित्यक्त, छोड़ा हुआ । २ दत्त, दिया हुआ । ३ निराकृत, निषिद्ध ।

व्यपवर्त्तित (सं० त्रि०) वि-अप-वृत-णिच्-क्त । प्रत्यावर्त्तित ।

व्यपसारण (सं० क्ली०) १ विनाश करना । २ दूर करना, हटाना ।

व्यपाकृत (सं० त्रि०) वि-अप-आ-कृ-क्त । १ अपनीत । २ अस्वीकृत । ३ निरस्त । ४ निह्नुत । ५ दूरीकृत ।

व्यपाकृति (सं० स्त्री०) वि-अप-आ-कृ-क्तिन् । १ अपह्नव । २ अस्वीकार । ३ निवारण । ४ निराकरण । ५ निह्नव ।

व्यपाय (सं० पु०) वि-अप-इ-घञ् । विनाश ।

व्यपाश्रय (सं० पु०) वि-अप-आ-श्रि-अच् । आश्रय, अवलम्बन ।

व्यपेक्षक (सं० त्रि०) वि-अप-ईक्ष-ण्वुल् । व्यपेक्षाकारी ।

व्यपेक्षा (सं० स्त्री०) वि-अप-ईक्ष-अङ्-टाप् । १ आकांक्षा, स्पृहा । २ विशेष अनुरोध । ३ अपेक्षा ।

व्यपेत (सं० त्रि०) वि-अप-इ-क्त । १ अपगत । २ दूरीकृत । ३ प्रतिरुद्ध । ४ विरुद्ध ।

व्यपोढ़ (सं० त्रि०) वि-अप-वह-क्त । १ विपरीत । २ घूर्णित । ३ ताड़ित ।

व्यपोह (सं० पु०) वि-अप-ऊह-घञ् । विनाश, बर-बादी । "सुखदुःखव्यपोहम् ।" (कुसुम)

व्यपोह्य (सं० त्रि०) विनाशके योग्य ।

व्यभिचरित (सं० त्रि०) वि-अभि-चर-क्त । किया हुआ व्यभिचार ।

व्यभिचार (सं० पु०) वि-अभि-चर-घञ्। १ कदाचार, कुक्रिया, बदचलनी। २ भ्रष्टाचार, खराब चालचलन। ३ स्त्रीका परपुरुषसे अथवा पुरुषका परस्त्रीसे अनुचित सम्बन्ध, छिनाला। शास्त्रानुसार व्यभिचार विशेष पाप-जनक है।

"व्यभिचारात्तु भर्त्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम्।
शृगालयोनिं प्राप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते॥"

(मनु ५।१६४)

जो स्त्री परपुरुषसे सम्भोग करती है, वह इस संसारमें निन्दनीय और मरने पर शृगालयोनिमें जन्म लेती है तथा तरह तरहके पापरोगोंसे आक्रान्त हो अत्यन्त कष्ट भोग करती है।

व्यभिचार स्त्री और पुरुष दोनोंके लिये ही समान पापजनक है।

४ न्यायादि प्रसिद्ध हेतुदोषभेद। साध्यका अधिकरण मात्रमें हेतुका अवस्थान नियमित होना ही सङ्गत है, क्योंकि, ऐसा होनेसे ही उसके द्वारा साध्यकी अनुमिति हो सकती है। जिस हेतुकी गति वा सम्बन्ध अर्थात् अवस्थिति उक्त रूपसे नियमित नहीं है, जिसकी गति वा सम्बन्ध सर्वतोमुखी है अर्थात् जो हेतु साध्यके अधिकरणमें और साध्याभावके अधिकरणमें भी समानरूपसे रहता है, उस हेतुके बलसे साध्यकी अनुमिति नहीं हो सकती। ऐसे दुष्ट हेतुको सव्यभिचार कहते हैं।

व्यभिचारवत् (सं० त्रि०) व्यभिचार अस्त्यर्थे मतुप्, मस्य व। व्यभिचारविशिष्ट, व्यभिचारयुक्त।

व्यभिचारिता (सं० स्त्री०) व्यभिचारिणो भावः, व्यभिचारिन्-तल्-टाप्। व्यभिचारित्व, व्यभिचारीका भाव या धर्म।

व्यभिचारिन् (सं० पु०) व्यभिचरतीति वि-अभि-चर-णिनि। चतुस्त्रिंशत् प्रकार शृङ्गार भावविशेष, चौंतीस प्रकारके शृंगारभावमेंसे एक।

साहित्यदर्पणके मतसे यह व्यभिचारिभाव ३३ प्रकारका है, यथा निर्वेद, आवेग, दैन्य, मद, जड़ता, औग्र्य, मोह, विबोध, स्वप्न, अपस्मार, गर्व, मरण, अलसता, अमर्ष, निद्रा, अवहित्थ, औत्सुक्य, उन्माद, शङ्का, स्मृति, मति, व्याधि, त्रास, लज्जा, हर्ष, असूया, विषाद, धृति, चपलता, ग्लानि, चिन्ता और वितर्क।

साहित्यदर्पणमें इनमेंसे प्रत्येकका भिन्न भिन्न लक्षण दिया गया है। तत्तद् शब्द देखो।

(त्रि०) २ व्यभिचारविशिष्ट, व्यभिचार करनेवाला। ३ स्वमार्गच्युत। जो अपने मार्गसे भ्रष्ट हुआ है, उसे व्यभिचारी कहते हैं। ४ अागमाचारी।

(भागवत ११।१।३८)

व्यभिचारिणी (सं० स्त्री०) व्यभिचरति या वि-अभि-चर-णिनि, ङीप्। परपुरुषगामिनी स्त्री, भ्रष्टचारिणी। याज्ञवल्क्यसंहितामें लिखा है, कि जो स्त्री अपने पतिको त्याग कर इच्छापूर्वक दूसरे पुरुषका आश्रय लेती है, उसे व्यभिचारिणी कहते हैं। ऐसी भ्रष्टाचारिणीको भृत्याभरणादि अधिकारसे च्युत करना चाहिये, अलङ्कार पहननेको न देना चाहिये, जिससे केवल जीवन पालन कर सके, उतना ही आहार उसे देना उचित है। उसे बार बार धिक्कार देना और सर्वदा जमीन पर सुलाना कर्त्तव्य है। ऐसी व्यभिचारिणी स्त्रीको अनाचारसे विरक्त करनेके लिये अपने घरमें ही रखना चाहिये।

स्त्रियोंको चन्द्रमाने शौच प्रदान किया है, गन्धर्वने मधुरभाषिता दी है तथा पावकने सभी वस्तुओंकी अपेक्षा उसे पवित्र बनाया है। अतएव स्त्रियां अति पवित्र हैं। इन स्त्रियोंके मानस व्यभिचार होनेसे रजोदर्शन द्वारा उसकी शुद्धि होती है। फिर यदि हीनवर्णके संसर्गसे यदि उसे गर्भ रह जाय अथवा वह प्रिय संसर्गादि करे, तो उसे छोड़ देना ही उचित है।

(याज्ञवल्क्यसंहिता १।७०-७२)

शूद्र यदि बलपूर्वक ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यकी स्त्रीके साथ संभोग करे, और उससे यदि पुत्र सन्तान उत्पन्न न हो, तो वह स्त्री प्रायश्चित्त द्वारा शुद्धि लाभ करती है। इनके सिवा दूसरोंकी शुद्धि नहीं होती।

व्यभिचारिणी स्त्री दान, उपवास और व्रतादि जिस किसी पुण्य कर्मका अनुष्ठान क्यों न करे, वे सभी निष्फल होते हैं। व्यभिचारिणी स्त्री धनाधिकारिणी नहीं होती।

व्यभिहास (सं० पु०) विद्रूप, ठट्ठा, मजाक।

व्यभीचार (सं० पु०) वि-अभि-चर-घञ्, उपसर्गस्य दीर्घः। व्यभिचार।

व्यभ्र (सं० त्रि०) मेघशून्य।

व्यय (सं० पु०) वि-इ-अच्। १ अर्थापगम, वित्तसमुत्सर्ग, खर्च। २ नाश। ३ परित्याग। ४ दान। ५ बृहस्पतिचारगत वर्षविशेष। (बृहत्संहिता ८।२६) ६ नागविशेष। (भारत १।५७।१६) (त्रि०) व्ययति गच्छतीति व्यय गतौ-अच्। ७ नश्वर। (मनु १।१९)

(क्लो०) व्यय गतौ अच्। ८ लग्नसे बारहवां स्थान, व्ययस्थान। लग्न, धन, भ्राता, बंधु, पुत्र, कलत्र, मृत्यु, धर्म, कर्म, आय और व्यय यही बारह स्थान हैं। लग्नसे इन सब स्थानोंका निर्णय करना होता है। जिसकी जो राशि लग्न है उसी राशिसे बारहवीं राशि व्ययस्थान कहलाती है।

व्ययस्थानमें यदि शुभग्रह रहे, तो अशुभ और यदि अशुभ ग्रह रहे, तो शुभ होता है। (दीपिका)

त्याग, भोगविलास, अस्त, विवाह, दान, इत्यादि कार्य, व्यय, पितृभ्राता, मातृ-भगिनी, मातुलानी, युद्धमें विनाश और युद्धमें पराजय, इन सभी विषयोंके शुभाशुभका विचार व्ययस्थानमें करना होता है।

(होराषट्पञ्चाशिका)

पराशरके मतमें भी त्याग, भोग, विवाद, दान, कृषिकर्म और समस्त व्यय विषयमें वृद्धि, इनके शुभाशुभका विचार व्ययस्थानमें करना होता है।

सूर्य यदि पापग्रहयुक्त वा पापग्रह कर्त्तृक दृष्ट हो कर व्ययस्थानमें रहे, तो उत्तम सद्वंशसम्भूत व्यक्ति भी गोत्रके बाहर होता है। फिर यह भी लिखा है, कि सूर्य यदि व्ययस्थानमें रहे, तो जातक मूर्ख, कामुक, क्रूरदेहायुक्त, कुत्सित शरीरशोभा, अल्पधनसम्पन्न, अंधारोगविशिष्ट और पंगु होता है।

चन्द्रके व्ययस्थानमें रहनेसे मनुष्य पद पदमें अविश्वासी और कृपण होते हैं। यह चन्द्र यदि कृष्णपक्षके हों, तो जातक अति कृपण होता है। किसीके मतानुसार चन्द्रके व्ययस्थानमें रहनेसे जात बालक दुबला पतला, रोगी, क्रोधी और निर्धन होता है। यह चन्द्र यदि अपने भवनमें, वा बुधके भवनमें अथवा बृहस्पतिके भवनमें हों, तो यह दाम्भिक, त्यागी कमजोर, धनवान् और सर्वदा नीच संसर्गमें आसक्त होता है।

यह चन्द्र यदि व्ययस्थानस्थित हो शुक्लपक्ष हों, तो मानव धनाढ्य, अनेक स्त्रियोंके पति और पुत्रपौत्रादि सम्पन्न होते हैं। किन्तु उस चन्द्रके नीचस्थ, क्षीण, शत्रुगृहगामी और पापगृहगामी होनेसे मनुष्य बहुरोगयुक्त और अशेष दुःखसन्तप्त होते हैं।

मङ्गल और राहुके व्ययस्थानमें रहनेसे मानव पापासक्त होते तथा उनकी भार्या व्यभिचारिणी होती है। ऐसा व्यक्ति कदापि सुखी नहीं होता।

बुधके व्ययस्थानमें रहनेसे मनुष्य विकलाङ्ग, लज्जाशील, परस्त्री द्वारा धनवान्, व्यसनासक्त, पापी और कुटुम्बी होते हैं।

बृहस्पतिके व्ययस्थानमें रहनेसे मनुष्य सत्यवादी, दानी, शुचि, दुष्टजनपरित्यागी, अप्रमादी और साधु स्वभावके होते हैं।

शुक्रके व्ययस्थानमें रहनेसे मनुष्य प्रथम अवस्थामें रोगी, पीछे दुबला पतला, मलिन, कृषिकर्मकारी और अतिशय दाम्भिक होते हैं।

शनिके व्ययस्थानमें रहनेसे चञ्चल भार्यायुक्त, रोगविशिष्ट, मदन धनवान्, अत्यन्त दुःखी, जङ्घादेशमें व्रणविशिष्ट, क्रूरमतिसम्पन्न, कृशाङ्ग और सर्वदा पक्षिवधमें निरत रहता है।

राहुके व्ययस्थानमें रहनेसे धर्महीन, मर्यादाहीन, दुःखित, यशोसुखरहित, विदेशवासी, दाम्भिक और विह्वलनयनके होते हैं। (ज्योतिःकल्पद्रुम)

व्ययस्थानके अधिपति ग्रह द्वारा भी फल निरूपण करना होता है। व्ययपतिके लग्नमें रहनेसे मानव अपव्ययी, सतत विपद्ग्रस्त और अल्पायु होता है। द्वितीय स्थानमें रहनेसे विविध प्रकारसे धन नाश, तृतीय स्थानमें रहनेसे भ्रातृनाश और यात्रादिमें अशुभ, चतुर्थ स्थानमें रहनेसे पिताका अशुभ तथा मानव पितृसम्पत्तिविनाशकारी, परगृहवासी और नाना कष्टयुक्त; पञ्चम स्थानमें रहनेसे सन्तानके लिये शोक और दुर्भावना, दुर्बुद्धि अथवा बुद्धिवृत्तिका सङ्कोच तथा विलासके कारण अर्थकी हानि होती है।

षष्ठ स्थानमें रहनेसे जातक रोगार्त्त और शत्रु द्वारा पीड़ित; सप्तम स्थानमें रहनेसे भार्यानाश वा कलत्रो, परिजनके मध्य कलह तथा व्यवसाय या मुकद्दमेमें अनिष्ट; अष्टम स्थानमें रहनेसे जातक क्षीण देहविशिष्ट, प्राप्य सम्पत्तिसे वञ्चित और सर्वदा विपदापन्न; नवम स्थानमें रहनेसे विद्या और धर्मानुशीलनमें प्रतिबन्धक और वाणिज्य वा नौकायात्रामें अनिष्ट तथा मनुष्य भाग्यहीन, विपदापन्न, साधु व्यक्तियोंका अप्रियभाजन; दशम स्थानमें रहनेसे अपमान और कार्यनाश; एकादश स्थानमें रहनेसे अर्थशाली, बन्धुनाश अथवा प्रतारक बन्धु द्वारा अनिष्ट होता है। व्ययपतिके व्ययस्थानमें अर्थात् द्वादश स्थानमें रहनेसे जातक शत्रुग्रस्त, शोकसन्तप्त, ऋणग्रस्त, कारारुद्ध, वधबन्धनरत अथवा निर्वासित होता है।

व्ययक (सं० त्रि०) व्ययकारक, व्यय करनेवाला।

व्ययकर (सं० त्रि०) करोतीति कृ-ट, व्ययस्य करः। व्ययकारक, व्यय करनेवाला।

व्ययगत (सं० त्रि०) व्ययं गतः। १ व्ययप्राप्त, व्ययित। २ ज्योतिषोक्त व्ययस्थानगत। जो ग्रह व्ययके स्थानमें रहता है, उसको व्ययगत कहते हैं।

व्ययन (सं० क्ली०) वि-अय-ल्युट्। विविध प्रकारसे जाना। (ऋक् १०।१६।५)

व्ययवत् (सं० त्रि०) व्ययोऽस्त्यस्य मतुप् मस्य व। व्यययुक्त, व्यय करनेवाला। (याज्ञवल्क्य २।२७१)

व्ययशील (सं० त्रि०) व्यय एव शीलं यस्य। जो बहुत अधिक खर्च करता हो, लम्बीले स्वभावका, शाह-खर्च।

व्ययित (सं० त्रि०) व्यय क्त। कृतव्यय, खर्च किया हुआ।

व्ययिन् (सं० त्रि०) व्ययोऽस्तास्तीति व्यय इनि। व्यययुक्त, खूब खर्च करनेवाला, शाह-खर्च।

व्यर्क (सं० त्रि०) सूर्यविरहित।

व्यर्ण (सं० त्रि०) वि-अर्द-क्त। पीड़ित, विशेषरूपसे दुःखी।

व्यर्थ (सं० त्रि०) विगतोऽर्थो यस्मात्। १ निरर्थक, जिसका कोई अर्थ या प्रयोजन न हो, बिना मतलबका। २ अर्थशून्य, जिसका कोई अर्थ या मतलब न हो। बिना मानेका। ३ लाभशून्य, जिसमें किसी प्रकारका लाभ न हो। (क्रि० वि०) ४ बिना किसी मतलबके, फजूल, यों ही।

व्यर्थक (सं० त्रि०) व्यर्थ स्वार्थे कन्। व्यर्थ, निष्फल।

व्यर्थता (सं० स्त्री०) व्यर्थस्य भावः तल्-टाप्। व्यर्थ होनेका भाव, निष्फलता, विफलता।

व्यलीक (सं० क्ली०) विशेषेण अलतीति वि-अल (अलीकादयश्च। उण् ४।२५) इति कीकन् प्रत्ययेन निपातनात् साधुः। १ वह अपराध जो कामके आवेगके कारण किया जाय, कामज अपराध। २ वैलक्षण्य, विलक्षणता, अद्भुतता। ३ प्रतारणा, डांट डपट, फटकार। ४ दुःख, कष्ट, तकलीफ। (वैजयन्ती) ५ कपट, छल। (त्रि०) ६ अप्रिय, जो अच्छा न लगे। ७ अकार्य, बिना कामका। ८ कष्टदायक, दुःख देनेवाला। ९ अपरिचित, बिना जान पहचानका। १० आश्चर्य, अद्भुत, अजीब। (पु०) ११ नागरविशेष, विट्। पर्याय—पिङ्ग, षट्प्रज्ञ, कामकेलि, विदूषक, पीठकेलि, पीठमर्द, भङ्गिल, छिदुर, विट। (त्रिका०)

व्यल्कशा (सं० स्त्री०) विविध शाखायुक्त। "रोहतु पाकदूर्वा व्यल्कशा" (ऋक् १०।१६।११)

व्यवकलन (सं० क्ली०) वि-अव-कल ल्युट्। एक अंक या रकममेंसे दूसरा अंक या रकम घटाना, बाकी निकालना। (लीलावती)

व्यवकलना (सं० स्त्री०) व्यवकलन-टाप्। व्यवकलन।

व्यवकलित (सं० त्रि०) वि-अव-कल-क्त। १ कृतव्यवकलन, घटाया हुआ, वियोग किया हुआ। (क्ली०) २ व्यवकलन, वियोग।

व्यवकिरणा (सं० स्त्री०) संयोग, मिश्रण। (शुल्बसू०)

व्यवकीर्ण (सं० त्रि०) वियुक्त, विमिश्रित।

व्यवच्छिन्न (सं० त्रि०) वि-अव-छिद्-क्त। १ विभिन्न, अलग, जुदा। २ विभक्त, विभाग करके अलग किया हुआ। ३ विशेषित। ४ मोचित। ५ निर्द्धारित।

व्यवच्छेद (सं० क्ली०) वि-अव-छिद्-घञ्। १ बाणमुक्ति, बाणमोचन। २ पृथक्त्व, पार्थक्य, अलगाव। ३ भेद, विभाग, खंड। ४ विभेद। ५ विराम, ठहरना। ६ निवृत्ति छुटकारा। (भागवत० ४।२६।१२)

व्यवच्छेदक (सं० त्रि०) व्यवच्छेदयति ण्वुल्। व्यवच्छेदकारी, जो व्यवच्छेद या अलग करता हो।

व्यवच्छेद्य (सं० त्रि०) वि-अव-छेद-यत्। व्यवच्छेदार्ह, व्यवच्छेद या अलग करने लायक।

व्यवदान (सं० क्ली०) परिशोधन, संस्कार।

व्यवदेश (सं० पु०) व्यपदेश।

व्यवधा (सं० स्त्री०) वि-अव-धा 'आतश्चोपसर्गे' इत्यङ् टाप्। व्यवधान, परदा।

व्यवधातव्य (सं० त्रि०) वि-अव-धा-तव्य। व्यवधानीय, व्यवधानके योग्य।

व्यवधान (सं० क्ली०) वि-अव-धा ल्युट्। १ आच्छादन। पर्याय—तिरोधान, अन्तर्धि, अपवारण, छदन, व्यवधा, अन्तर्धा, पिधान, स्थगन, व्यवधि, अपिधान। २ भेद, विभाग, खण्ड। ३ विच्छेद, अलग होना। ४ समाप्ति, खतम होना। (भागवत ४।२६।७७)

व्यवधानवत् (सं० त्रि०) व्यवधानमस्त्यस्य व्यवधान-मतुप्, मस्य व। व्यवधानविशिष्ट।

व्यवधायक (सं० त्रि०) व्यवधातीति वि-अव धा-ण्वुल्। १ जो आड़में जाता हो, छिपनेवाला, गायब होनेवाला। २ जो किसी को ढकता या छिपाता हो, आड़ करने या छिपानेवाला।

व्यवधारण (सं० क्ली०) वि-अव-धृ-णिच् ल्युट्। अच्छी तरह अवधारण या निश्चय करना। "अर्थवलाद् व्यवधारण" (हरि० उत्त०)

व्यवधि (सं० पु०) वि अव-धा-(उपसर्गे घोः किः। पा ३।३।९२) इति कि। व्यवधान, परदा, ओट।

(नैषध २।१६)

व्यवलम्बिन् (सं० त्रि०) वि अव लम्ब-इनि। विशेषरूप अवलम्बनविशिष्ट, अवलम्बनयुक्त।

व्यववद (सं० त्रि०) स्पष्ट रूप वर्णन किया हुआ।

(पञ्चविंशब्राह्मण १६।७।३)

व्यवशात (सं० पु०) १ परित्याग। २ चोटीकी ओर गिरना या हटना। (शतपथब्रा०)

व्यवसर्ग (सं० पु०) १ विभाजन, किसी पदार्थके विभाग करनेकी क्रिया, बाँट। २ मुक्ति, छुटकारा।

(शतपथब्रा० ६।८।१।२८)

व्यवसाय (सं० पु०) वि-अव-सो-घञ्। १ उपजीविका। जिससे जो जीविका निर्वाह करता है, वह उसका व्यवसाय है; जिसकी जो जीविका है, शास्त्रमें वह निर्दिष्ट है, वह वर्ण यदि अपना व्यवसाय छोड़ कर दूसरेका व्यवसाय अवलम्बन करे, तो उसे प्रत्यवायभागी होना पड़ता है। आपत् कालमें व्यवसायका परित्याग किया जा सकता है, पर उसकी भी व्यवस्था है, उसी व्यवस्थाके अनुसार चलना होगा।

२ अनुष्ठान। (रामायण ३।१०।४१) ३ निश्चय। (गीता २ अ०) ४ यत्न। ५ उद्यम। ६ कल्पना, स्रष्टा। ७ व्यापार। ८ कार्य। ९ अभिप्राय। १० विष्णु। (भारत १४।१४६।५५) ११ महादेव। (भारत १३।१७।९०)

व्यवसायिन् (सं० त्रि०) व्यवसायोऽस्यास्तीति इनि। १ जो किसी प्रकारका व्यवसाय करता हो, व्यवसाय करनेवाला। २ रोजगार करनेवाला, रोजगारी। ३ अनुष्ठाता, जो किसी कार्यका अनुष्ठान करता हो।

व्यवसित (सं० त्रि०) वि-अव-सो-क्त। १ प्रतारित। (भूरिप्रयोग) २ अनुष्ठित, जिसका अनुष्ठान किया गया हो। ३ चेष्टित। ४ उद्यत, तत्पर। ५ निर्धारित, निश्चित।

व्यवसिति (सं० स्त्री०) वि-अव-सो-क्तिन्। व्यवसाय, रोजगार।

व्यवस्था (सं० स्त्री०) वि-अव-स्था, आतश्चोपसर्गे इत्यङ्, ततष्टाप्। १ शास्त्रनिरूपित विधि। शास्त्रमें जो सब विधान कहे गये हैं उन्हें शास्त्रीय व्यवस्था कहते हैं।

प्रायश्चित्त या चान्द्रायण करनेमें शास्त्रज्ञ ब्राह्मणसे लिखि हुई व्यवस्था ले कर उसीके अनुसार प्रायश्चित्तादि आचरण करने होते हैं। यदि कोई ब्राह्मण धर्मशास्त्रका सिद्धान्त न जान कर व्यवस्था दें, तो जो व्यवस्थाके अनुसार कार्य करेंगे, वे पवित्र होंगे। किन्तु जिन्होंने व्यवस्था दी है, वह पाप उन्होंको होगा। अतएव धर्मशास्त्रका सिद्धान्त अच्छी तरह जाने विना व्यवस्था देना उचित नहीं।

"अज्ञात्वा धर्मशास्त्राणि प्रायश्चित्तं ददाति यः।
प्रायश्चित्ती भवेत् पूर्वं तत्पापं तेषु गच्छति ॥"

(प्रायश्चित्ततत्त्व०)

२ नियम। (कथासरित्सा० १०६।७१) ३ पृथक् पृथक् स्थापन, अलग अलग रखना। ४ स्थिति, ठिकाना।

व्यवस्थातृ (सं० त्रि०) वि-अव-स्था-तृन्। १ व्यवस्थापक, व्यवस्था या इन्तजाम करनेवाला। २ शास्त्रीय व्यवस्था देनेवाला, जो यह बतलाता हो कि अमुक विषय में शास्त्रोंकी क्या आज्ञा है।

व्यवस्थान (सं० क्ली०) वि-अव-स्था-ल्युट्। १ व्यवस्थिति, उपस्थित या अस्थिर होना।

"चातुर्वर्ण्यं व्यवस्थानं यस्मिन् देशे न विद्यते।
तं म्लेच्छदेशं जानीयादार्य्यावर्त्तस्ततः परम्॥"
(अमरटीकामें भरतधृत स्मृतिवचन)

(पु०) २ विष्णु। (भारत ३।१४९।५५)

व्यवस्थानप्रज्ञप्ति (सं० स्त्री०) बौद्धोंके अनुसार एक बहुत बड़ी संख्याका नाम। शततितिलम्भकी एक व्यवस्थानप्रज्ञप्ति होती है। ललितविस्तरमें इस गणनाका विषय यों लिखा है,—सौ कोटीका एक अयुत, सौ अयुतका एक नियुत, सौ नियुतका एक कङ्कर, सौ कङ्करका एक विवर, सौ विवरका एक अक्षोभ्य, सौ अक्षोभ्यका एक विवाह, सौ विवाहका एक उत्सङ्ग, सौ उत्सङ्गका एक बहुल, सौ बहुलका एक नागबल, सौ नागबलका एक तितिलम्भ, सौ तितिलम्भकी एक व्यवस्थानप्रज्ञप्ति। (ललितविस्तर १६८ पृ०)

व्यवस्थापक (सं० त्रि०) व्यवस्थापयति वि-अव-स्था-णिच्-ण्वुल्। १ व्यवस्था देनेवाला। २ नियामक, जो किसी कार्य आदिको नियमपूर्वक चलाता हो। ३ प्रबन्धकर्त्ता, इन्तजामकार।

व्यवस्थापकमण्डल (सं० पु०) वह समाज या समूह जिसे कानून कायदे बनाने और रद्द करनेका अधिकार प्राप्त हो।

व्यवस्थापत्र (सं० क्ली०) व्यवस्थाविषयकं पत्रं। वह पत्र जिसमें किसी विषयको शास्त्रीय व्यवस्था या वह विधान लिखा हो, कि अमुक विषयमें शास्त्रकी क्या आज्ञा या मत है।

व्यवस्थापद्धति (सं० स्त्री०) व्यवस्थायाः पद्धति प्रणाली। नियम-प्रणाली।

व्यवस्थापन (सं० क्ली०) वि-अव-स्था-णिच्-ल्युट्। १ व्यवस्थाप्रणयन, किसी विषयमें शास्त्रीय व्यवस्था देना या बतलाना। २ निर्द्धारण, निरूपण। ३ निश्चितकरण।

व्यवस्थापनीय (सं० त्रि०) वि-अव-स्था-णिच्-अनीयर्। व्यवस्थापन करनेके योग्य।

व्यवस्थापिका परिषद् (सं० स्त्री०) वह सभा या परिषद् जिसमें देशके लिये कानून कायदे आदि बनते हैं, देशके लिये कानून कायदे बनानेवाली सभा, लेजिस्लेटिव एसेम्बली। ब्रिटिश भारत भरके लिये कानून कायदे बनानेवाली सभा व्यवस्थापिका सभा या लेजिस्लेटिव एसेम्बली कहलाती है। आज कल इसके सदस्योंकी संख्या १४३ है जिनमेंसे १०३ लोकनिर्वाचित और ४० सरकार द्वारा मनोनीत (२५ सरकारी और १५ गैर-सरकारी) सदस्य हैं।

व्यवस्थापिका सभा (सं० स्त्री०) वह सभा जिसमें किसी प्रदेश विशेषके लिये कानून कायदे आदि बनते हैं, कानून कायदे बनानेवाली सभा, लेजिस्लेटिव कौंसिल।

व्यवस्थापित (सं० त्रि०) वि-अव-स्था-णिच्-क्त। १ स्थिरीकृत, जिसके विषयमें कुछ निश्चय या निरूपण किया गया हो। २ निर्द्धारित। ३ प्रकृतिप्रापित। ४ नियमपूर्वक स्थापित। ५ नियमित।

व्यवस्थाप्य (सं० त्रि०) वि-अव-स्थापि-यत्। व्यवस्थापनार्ह, जो व्यवस्थापन करनेके योग्य हो।

व्यवस्थित (सं० त्रि०) वि-अव-स्था-क्त। व्यवस्थापित, जिसमें किसी प्रकारकी व्यवस्था या नियम हो, जो ठीक नियमके अनुसार हो, कायदेका।

व्यवस्थिति (सं० स्त्री०) वि-अव-स्था-क्तिन्। १ व्यवस्थान, उपस्थित या स्थिर होना। २ व्यवस्था, इन्तजाम।

व्यवहरण (सं० क्ली०) वि-अव-हृ-ल्युट्। अभियोगों आदिका नियमानुसार विचार, मुकदमेकी सुनाई या पेशी, व्यवहार।

व्यवहर्त्तव्य (सं० क्ली०) वि-अव-हृ-तव्य। व्यवहार दिखानेके उपयुक्त।

व्यवहर्त्तृ (सं० पु०) वि-अव-हृ-तृच्। वह जो व्यवहार-शास्त्रके अनुसार किसी अभियोग आदिका विचार करता हो, न्यायकर्त्ता, जज।

व्यवहार (सं० पु०) वि-अव-हृ-घञ्। १ विवाद। २ वृक्षभेद। ३ न्याय। ४ पण। ५ स्थिति। ६ कर्म, क्रिया, कार्य। ७ मुकदमा।

अष्टादश पद विवादविषयका नाम व्यवहार।

व्यवहारमाह कात्यायनः—

"विनानार्थेऽव सन्देहे हरणं हार उच्यते ।
नानासन्देहहरणात् व्यवहार इति स्थितिः ॥"

विनाद नानार्थवाचक है, अव शब्दका अर्थ संदेह तथा हार शब्दका अर्थ हरण है, बहुतसे सन्देहोंका हरण होता है, इसीसे उसको व्यवहार कहते हैं। नाना विवादविषयक सन्देह जिसके द्वारा हरण होता है, उसका नाम व्यवहार है। विवाद विषयके सम्बन्धमें जो कुछ भी सन्देह उपस्थित क्यों न हो, जिससे वे सब सन्देह दूर होते हैं, उसीका नाम व्यवहार है। भाषोत्तर क्रियानिर्णयकरण ही व्यवहारत्व है अर्थात् कहनेके बाद उसका कर्त्तव्य निर्णय करना ही व्यवहारका कार्य है। वादी और प्रतिवादीके बीच जो विवाद उपस्थित होता है, उसीको व्यवहार कहते हैं।

राजाको चाहिये, कि वे क्रोध और लोभरहित हो कर धर्मशास्त्रानुसार विद्वान् ब्राह्मणोंके साथ स्वयं व्यवहार (मुकदमा) देखें अर्थात् आप ही विचार करें। मीमांसा व्याकरणादि तथा वेदशास्त्रमें अभिज्ञ धर्मशास्त्रविद्, धार्मिक, सत्यवादी तथा पक्षपातवर्जित ब्राह्मणको सभासद् बनावें। राजा यदि किसी कार्यवशतः स्वयं व्यवहार देख न सकें, तो पूर्वोक्त गुणसम्पन्न सभासदके साथ एक सर्वधर्मज्ञ ब्राह्मणको व्यवहार देखनेमें नियुक्त करें। (सागरसरण) कात्यायनने लिखा है,—

"ब्राह्मणो यत्र न स्यात्तु क्षत्रियं तत्र योजयेत् ।
वैश्यं वा धर्मशास्त्रज्ञं शूद्रं यत्नेन वर्जयेत् ॥"

अर्थात् उपयुक्त ब्राह्मणके अभावमें क्षत्रिय अथवा धर्मशास्त्रज्ञ वैश्य नियुक्त करें, किन्तु शूद्रको कदापि नियुक्त न करें।

स्मृति और आचार विरुद्ध पद्धतिके अनुसार शत्रु-कर्त्तृक उत्पीड़ित हो व्यवहार-दर्शकके निकट अपना दुखड़ा रोनेको व्यवहार कहते हैं अर्थात् एक आदमी शास्त्र और आचारविरुद्ध नियमानुसार दूसरेको कष्ट पहुंचावा, और उस उत्पीड़ित व्यक्तिने राजाके निकट इस बातकी नालिश की, इसीका नाम व्यवहार है। यही व्यवहारका विषय है। उक्त निवेदन और प्रतिवादीके सामने लिखनेका नाम भाषा या प्रतिज्ञा है। वादीके विवाद निवेदन करने अर्थात् मुकदमा खड़ा करनेके समय उसने जो कहा था, प्रतिवादीके सामने वही लिखा जायगा तथा उसी लेखमें यथायोग्य वर्ष, मास, तिथि और वारादि, वादी प्रतिवादीकी जाति तथा उनके नाम लिखे रहेंगे।

भाषार्थ श्रवण कर प्रतिवादी जो कुछ कहेगा वह सभी वादीके सामने लिखना पड़ेगा। इसके बाद वादी अपने पक्षका प्रमाण देगा। प्रमाण यदि ठीक होगा तो उसकी जीत और यदि ठीक नहीं होगा, तो हार होगी।

व्यवहार चतुष्पाद है अर्थात् चार भागोंमें विभक्त है, यथा—भाषापाद, उत्तरपाद, क्रियापाद और साध्य सिद्धपाद। ये सब भी पारिभाषिक शब्द हैं, इनका अर्थ भी इस प्रकार कहा गया है। भाषापाद क्यों है अर्थात् वादीने जो कुछ कहा है, प्रतिवादीके सामने ठीक वही लिखना होगा, इसीको भाषापाद कहते हैं। भाषार्थ सुननेके बाद प्रतिवादी जो कहेगा, वादीके सामने वह कुल लिखना पड़ेगा। यही उत्तरपाद है। भाषापाद और उत्तरपाद इन दोनोंको अर्जी और जवाब कहते हैं। वादी उसी समय जो प्रमाण लिखावेगा उसीका नाम क्रियापाद है। प्रमाण ठीक होने पर अवलाभ अन्यथा पराजय, यही साध्यसिद्धिपाद है। यही चतुष्पाद व्यवहार है।

जब तक अपने ऊपर लगाये गये दोषकी एक मीमांसा न हो जाये, तब तक और मीमांसा हो जाने पर भी दूसरे यदि वादीके ऊपर कोई अभियोग लगावे, तो जब तक उस अभियोगका शेष न हो लेगा, तब तक प्रतिवादी वादीके नाम उलटा अभियोग नहीं ला सकता। फिर प्रतिवादी भाषार्थ सुन कर जो उत्तर देगा वह एक दूसरेके विरुद्ध न देना चाहिये।

यह साधारण नियम है। किन्तु कुछ विशेषता यह है, कि वाक्पारुष्य (गालीगलौज), दण्डपारुष्य (मारामारी), साहस (विष शस्त्रादि द्वारा प्राणनाशादि इन सब स्थानोंमें उलटा अभियोग लाया जा सकता है।

अभियुक्त व्यक्तिके अभियोग अस्वीकार करनेके बाद

वादी यदि साक्षी आदि द्वारा अपलापित अभियोगको प्रमाणित करा दे, तो उक्त अभियुक्त व्यक्ति वादीका कथित धन वादीको तथा उतना ही धन राजाको दण्डस्वरूप देगा। फिर वादी यदि उसे प्रमाणित न कर सके, तो मिथ्याभियोगी वादी अपने उल्लिखित धनका दूना देगा।

साहस, चोरी, वाक्पारुष्य, दण्डपारुष्य तथा दुधारिल गाय आदि द्वारा लाये गये अभियोग, पातकाभियोग और प्राणनाश तथा धनक्षतिकी सम्भावना होने पर, कुलस्त्रीके चरित्र घटित तथा दासीके स्वत्व घटित अभियोग पर प्रतिवादीको चाहिये, कि भावार्थ सुननेके बाद ही वह तुरत उत्तर दे दे।

विचारक और सभ्यगण वादी प्रतिवादी दुष्ट है या नहीं इस ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये। जो एक स्थानमें स्थिर नहीं रह सकता, जो होंठ चाटता है, जिसके ललाटसे पसीना छूटता है, मुख फीका पड़ जाता है, कण्ठस्वर क्षीण तथा बद्ध हो जाता है, जो पूर्वापर विरुद्ध बहुतसी बातें कहता है, मीठा वचन नहीं कह सकता, ऐसे व्यक्तिको दुष्ट अर्थात् दोषी समझना होगा।

भावार्थ श्रवणके बाद प्रतिवादी जो कहेगा, वह सभी वादीके सामने लिखना पड़ेगा। इसके बाद वादी साक्षी आदि द्वारा आत्मपक्षका समर्थन करेगा। पीछे प्रतिवादीके साक्षी आदि विचारक सभ्योंके साथ कर्त्तव्य विचारण करें।

मत्त, उन्मत्त, पीड़ित, व्यसनासक्त, बालक, भीत, नगरादिविरुद्ध तथा सम्बन्धशून्य व्यक्ति जो व्यवहार या मुकद्दमा खड़ा करेगा, वह असिद्ध है।

बल या भयनिष्पन्न, स्त्रीकृत, निशाकालकृत, गृहाभ्यन्तरकृत, ग्रामबहिर्भागकृत तथा शत्रुकृत व्यवहार श्रेष्ठ व्यक्ति द्वारा दृष्ट होने पर भी परिवर्जित होगा।

तपोनिष्ठ, दानशील, सद्वंशीय, सत्यवादी, धर्मप्रधान, सरलस्वभाव, पुत्रवान, सम्पत्तिशाली, यथासम्भव श्रौतस्मार्त्त नित्य नैमित्तिक कर्मानुष्ठायी तथा वादकर्त्ताका सजाति या सवर्ण, ऐसे कमसे कम तीन साक्षी देने होंगे। सजाति या सवर्ण साक्षी नहीं मिलने पर सभी जातिके, सभी वर्णके व्यक्ति साक्षी हो सकते हैं।

दोनों पक्षसे गवाही लेने पर जिस पक्षमें अधिक आदमी रहेंगे उसी पक्षकी बात ग्राह्य होगी। दोनों पक्षमें समान आदमी रहने पर गुणवान् व्यक्तियोंकी और दोनों पक्षमें समान गुणवानके रहने पर जो अधिक गुणवान् हैं उन्हींकी बात ग्राह्य करनी होगी। साक्षिगण जिसकी लिखी प्रतिज्ञाको सत्य ठहरायगा, उसकी जीत और जिसकी प्रतिज्ञाको सत्य नहीं ठहरायगा, उसकी हार होती है।

कुछ साक्षियोंके इस प्रकार कह देने पर भी यदि अन्य पक्षीय या स्वपक्षीय अपरापर अत्यन्त गुणवान् व्यक्ति या बहुतसे आदमी दूसरी तरहकी गवाही दे, तो पूर्व साक्षिगण कूटसाक्षियोंके प्रत्येक व्यक्तिको इस विवादपराजित व्यक्तिको जो दण्ड मिलेगा उसका दूना दण्ड मिलना चाहिये। ब्राह्मण यदि कूटसाक्षी हों, तो राजा उन्हें राज्यसे निकाल दें।

पहले साक्ष्यदान स्वीकार करके पीछे वह यदि न दे, तो विवादमें पराजित व्यक्तिको जो दण्ड मिलेगा, उससे दूना दण्ड उसको देना पड़ेगा। ब्राह्मणका दण्ड निर्वासन कहा गया है। जिस विवादमें सच्ची बात कहने पर ब्रह्मचारीको प्राणदण्ड मिलता हो, वहां साक्षी झूठी बात कह सकता है। किन्तु द्विज साक्षिगण झूठ बोलनेसे जो पाप होगा, उस पापसे बचनेके लिये सारस्वत चरु निर्वपन करेंगे। विचारकको इसी प्रकार विचारकार्य करना चाहिये। (याज्ञवल्क्यसंहिता २ अ०)

व्यवहार अठारह प्रकारके हैं, यथा—१ ऋणादान, २ निक्षेप, ३ अस्वामिविक्रय, ४ सम्भूयसमुत्थान, ५ दत्ताप्रादानिक, ६ वेतनादान, ७ सम्विद्व्यतिक्रम, ८ क्रयविक्रयानुशय, ९ स्वामिपालविवाद, १० सीमाविवाद, ११ वाक्पारुष्य, १२ दण्डपारुष्य, १३ स्तेय, १४ साहस, १५ स्त्रीसंग्रहण, १६ विभाग, १७ द्यूत, १८ आह्वय। इनमेंसे कोई एक विषय ले कर यदि विवाद खड़ा हो और राजाके पास इसकी नालिश की जाय, तो राजाको चाहिये कि वे उसका साक्षी आदि ले कर न्यायानुसार विचार करें। प्रत्येक व्यवहारका विवरण उन्हीं सब शब्दोंमें देखो।

इन अठारह विषयोंको ले कर प्रायः विवाद हुआ करता है। इन सब विषयोंका विवाद उपस्थित होने पर राजाको चाहिये, कि वे लोकस्थितिके लिये शाश्वतधर्म-का आश्रय करके ये सब निरूपण करें।

राजा यदि अपने किसी अनिवार्य कारणसे ये सब कार्य न देख सकते हों, तो वे विद्वान् ब्राह्मणको उस कार्यमें नियुक्त करें। वे विद्वान् ब्राह्मण तीन सभ्योंके साथ धर्माधिकरण-सभामें प्रवेश कर उपविष्ट वा उत्थित भावसे कार्य करेंगे।

जिस सभामें ऋक्, यजुः और सामवेदवेत्ता ऐसे तीन सभ्य ब्राह्मण तथा राजप्रतिनिधि रहते हों उसे ब्रह्मसभा कहते हैं। यह्लोंसे परिवृत सभामें जिससे अन्याय विचार होने न पावे, सभ्यगणको वैसा ही करना चाहिये। सभामें न जाय यह अच्छा पर वहां जा कर अन्याय विचार करना बिलकुल निषिद्ध है। उप-स्थित रह कर चुप रहनेसे वा झूठ बोलनेसे पापभागी होना पड़ता है।

विचारकके सामने ही जहां अधर्म द्वारा धर्म और मिथ्या द्वारा सत्य नष्ट होता है वहां विचारकगण ही नष्ट होते हैं। जो व्यक्ति धर्मको नष्ट करता है, धर्म ही उसको नष्ट कर डालता है। धर्मकी रक्षा करनेसे धर्म रक्षा करता है। अतएव धर्म किसी भी प्रकार अतिक्रम-णीय नहीं है।

सभी कामनाओंको देते हैं, इस कारण शास्त्रमें धर्मका वृष नाम रखा गया है। जो व्यक्ति उस धर्मको 'अलं' अर्थात् निवारण करता है, वही यथार्थमें वृषल है, जातिगत वृषल वृषल नहीं है, धर्म ही जीवका एक मात्र सुहृद् है। मृत्युके बाद सभी नष्ट हो जाता है, एक धर्म ही साथ साथ जाता है।

अतएव विचारकको चाहिये कि वे धर्मके प्रति विशेष लक्ष्य रखें, जिससे अन्याय विचार न हो वही करें। अन्याय विचार करनेसे जो पाप होता है, उसके चार भागमें एक भाग मिथ्याभियोगीको प्राप्त होता है। मिथ्या साक्षी एक भाग, सभी सभासद् एक भाग तथा राजा भी एक भाग पाते हैं। इस कारण बड़ी सावधानी-से विचार करना कर्त्तव्य है। जहां न्यायविचार होता है, पापी उपयुक्त दण्ड पाता है, वहां राजा निष्पाप रहते हैं, सभ्यगण भी पापमुक्त होते हैं। पाप केवल पाप करनेवालेको ही होता है।

राजा धर्मासन पर बैठ कर सम्यक् आच्छादित देह और एकाग्रचित्त हो लोकपालोंको प्रणाम कर विचा-रादि कार्य आरम्भ कर दें। राजप्रतिनिधिको भी इसी प्रकार विचार करना होगा। अर्थ और अनर्थ दोनों ही समझ कर धर्म और अधर्मके प्रति विशेषरूपसे दृष्टि रखते हुए ब्राह्मणादि वर्णक्रमसे वादी प्रतिवादीके सभी कार्य देखेंगे। पहले बाह्य चिह्न द्वारा उनका मनो-गत भाव जाननेकी चेष्टा करनी चाहिये। उनके स्वर, वर्ण, इङ्गित, आकार, चक्षु और चेष्टा इन सबके प्रति लक्ष्य रखना भी आवश्यक है। आकार, इङ्गित, गति, चेष्टा, कथावार्त्ता और नेत्रमुखविकार द्वारा मनोगतभाव जाना जा सकता है।

पितृ-मातृविहीन अनाथ बालकका धन राजा तब तक अपने निरीक्षणमें रखें, जब तक वह बालीग न हो जाय। वन्ध्या स्त्री, परित्यक्ता स्त्री अर्थात् वह स्त्री जिसके स्वामीने दूसरा विवाह कर लिया है और उसे सिर्फ खाने पहननेका खर्च देता है, पुत्रहीन, प्रोषित-भर्तृका तथा जिस स्त्रीके सपिण्डादि कोई अभिभावक नहीं है तथा साध्वी विधवा और रोगिणी स्त्री, इनके धनकी रक्षा अनाथ बालकके धनकी तरह करनी चाहिये। यदि उनके जीवित रहते ही सपिण्डगण उक्त धन ले लें, तो धार्मिक राजाको चाहिये, कि वे चोर-दण्डसे उन्हें दण्डित करें।

अज्ञात स्वामीका धन मिलने पर राजा इस बातकी सर्वत्र घोषणा कर तीन वर्ष तक अपनी रक्षामें रखें। तीन वर्षके भीतर धनस्वामी आ जाये, तो वह धन उसे मिलेगा। तीन वर्ष बीतने पर राजा उस धनको अपने काममें ला सकते हैं। जो व्यक्ति उस धनको अपना बतला कर दावा करता है, राजा उससे उपयुक्त प्रमाण ले कर वह धन उसे दे दें। यदि कोई झूठ दावा करे और उपयुक्त प्रमाण न दे सके, तो राजा उसको उस द्रव्यका षष्ठांश दण्ड देंगे।

वर्णधर्म, जिस देशका जो धर्म है, गुरुपरम्परागत

प्रचलित है, अथच जो वेदविरुद्ध नहीं है, जानपदधर्म, श्रेणीधर्म और जिस कुलका जो धर्म अनादि कालसे चला आता है वह कुलधर्म, इन सब धर्मोंके प्रति विशेष दृष्टि रख कर राजा अपने धर्मनियमको व्यवस्था दें तथा विचारकालमें इन सबके प्रति विशेष दृष्टि रखें।

धनके लोभसे एक दूसरेमें विवाद खड़ा कर देना या दूसरेके प्राप्य अर्थमें लोभ करना राजा या राजपुरुषका कर्त्तव्य नहीं है। राजा व्यवहार विधिमें अवधानवान् हो कर देश, पात्र, काल आदिके ऊपर लक्ष्य रख कर सत्य और धर्मका अवलम्बन करते हुए विचार करें। साधुओं और धार्मिक ब्राह्मणोंने जैसा आचरण किया है, वह यदि देश, कुल और जातिधर्मके विरुद्ध न हो, तो उसी मतकी व्यवस्था दें।

उत्तमर्ण अधमर्णसे यदि रुपयेके लिये प्रार्थना करे तो राजा साक्षी और लेख्यादि द्वारा प्रदत्त धनको प्रमाणित करके अधमर्णसे वह धन दिला दें। उत्तमर्ण जिस जिस उपाय द्वारा अधमर्णसे अपना प्राप्य पा सकते हैं, राजा उन सब उपायोंका अनुमोदन करके उत्तमर्णको उसका प्राप्य दिलावें।

यदि अधमर्ण कहे, कि मैंने तुम्हारा नहीं लिया और उत्तमर्ण साक्षी और लेख्यादि द्वारा उसे प्रमाणित कर सके, तो राजा उत्तमर्णको धन दिला देवें और अधमर्णको इसके लिये शक्तिके अनुसार दण्ड देवें।

विचारस्थलमें विचारक अर्थी और प्रत्यर्थीके सामने साक्षियोंको खड़ा करके प्रिय वचनसे कहें, 'तुम वादी-प्रतिवादीके उपस्थित विषयमें जो जानते हो वह सच सच कहो। क्योंकि, तुम्हें इस विषयमें साक्ष्य माना गया है।' साक्ष्यस्थलमें सत्यवचन कहनेसे परलोकमें उत्तमगति और इस लोकमें अनुत्तमा कीर्त्ति प्राप्त होती है। ब्रह्मा भी सत्य वचनकी पूजा करते हैं। साक्ष्य-स्थलमें झूठी बात कहनेसे वह वरुणपाशसे बद्ध हो सौ जन्म तक कष्ट पाता है। अतएव सर्वदा सच्ची गवाही देनी चाहिये। सच वचन कहनेसे साक्षी पापसे मुक्त होता है। सत्य द्वारा धर्मकी वृद्धि होती है।

साक्षी शपथ देसो।

विचारक शुचि हो कर पूर्वाह्णकालमें देवताप्रतिमाके समीप अथवा ब्राह्मणके समीप साक्षियोंमेंसे ब्राह्मणको 'कहो', क्षत्रियको 'सच सच कहो', वैश्यको 'गो, बीज और सुवर्ण द्वारा शपथ करके कहो' तथा शूद्रको 'सब पातकके द्वारा शपथ खा कर कहो' इस प्रकार पूछें।

ब्राह्मणहन्ता, स्त्रीहन्ता, बालकहन्ता, मित्रद्रोही और कृतघ्नके लिये जो जो लोक शास्त्रमें कहा गया है साक्ष्य-स्थलमें झूठ कहनेसे उन्हीं सब लोकोंकी प्राप्ति होती है। साक्षीको इस प्रकार झूठी गवाही देनेका दोष दिखलाते हुए कहें, 'तुम झूठ न कहो, जो कुछ अपनी आंखोंसे देखा है या कानोंसे सुना है, वही कहो।

गोरक्षक, वाणिज्यजीवी, वाचक, नर्त्तकादि दास-कर्मजीवी और वृद्धिजीवी ब्राह्मणको शूद्रके समान साक्ष्यप्रश्न करें। ध्यान विशेषमें यह है, कि जिसमें एक तरहसे जान कर धर्मबुद्धि द्वारा अन्य प्रकारसे कहो, तो उसकी स्वर्गहानि नहीं होती। ऐसे वाक्यका नाम देववाक्य है। जहां सत्य वचन कहनेसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रकी प्राणरक्षा हो, वहां झूठी बात कही जा सकती है। ऐसे स्थलमें मिथ्याकथन सत्यसे बढ़ कर है। जो इस प्रकार असत्य वचन कहते हैं, उन्हें पापशान्तिके लिये चरुपाक करके वाग्देवता सरस्वतीके उद्देशसे याग अथवा यजुर्वेदीय कूष्माण्डमन्त्र द्वारा वह्निस्थापन कर होम करना चाहिये।

आपसमें झगड़नेवाले दो पक्षमें यदि किसी पक्षका साक्षी न रहे तो विचारक दोनों पक्षको शपथ खिला कर सत्यनिर्णय करें। महर्षि और देवताओंने आत्मशुद्धिके लिये शपथ किया था। वसिष्ठ ऋषिने भी आत्मशुद्धिके लिये पैजवनके पुत्र सुदासराजके निकट शपथ खाया था। ज्ञानी पुरुष छोटीसी बातके लिये वृथा शपथ न करें, करनेसे इस लोकमें अकीर्त्ति और परलोकमें नरक होता है।

ब्राह्मणको सत्य द्वारा, क्षत्रियको उसके हाथी घोड़े और आयुध द्वारा, वैश्यको उसके गो बीज या काञ्चन द्वारा तथा शूद्रको सभी पातक द्वारा शपथ करना होता है। अथवा शूद्रको अग्निपरीक्षा, जलपरीक्षा या स्त्रीपुत्रादिके मस्तक छुला कर परीक्षा करावें। जलती हुई आग

इन अठारह विषयोंको ले कर प्रायः विवाद हुआ करता है। इन सब विषयोंका विवाद उपस्थित होने पर राजाको चाहिये, कि वे लोकहितके लिये शास्त्रवचनों-का आश्रय करके ये सब निष्पन्न करें।

राजा यदि अपने किसी अनिवार्य कारणसे ये सब कार्य न देख सकते हों, तो वे विद्वान् ब्राह्मणको उन कार्योंमें नियुक्त करें। वे विद्वान् ब्राह्मण तीन सभ्योंके साथ धर्माधिकरण-सभामें प्रवेश कर उपविष्ट या उत्थित भावमें कार्य करेंगे।

जिस सभामें ऋक्, यजुः और सामवेदवेत्ता ऐसे तीन सभ्य ब्राह्मण तथा राजप्रतिनिधि रहते हों उसे ब्रह्मसभा कहते हैं। 'पक्षपातोंसे परिशून्य सभामें जिससे अन्याय विचार होने न पावे, सभ्यगणको वैसा ही करना चाहिये। सभामें न जाय यह अच्छा पर यहां आ कर अन्याय विचार करना बिलकुल निषिद्ध है। उपस्थित रह कर चुप रहनेमें या झूठ बोलनेमें पापभागी होना पड़ता है।

विचारकके सामने हो जहां अधर्म द्वारा धर्म और मिथ्या द्वारा सत्य नष्ट होता है वहां विचारकगण ही नष्ट होते हैं। जो व्यक्ति धर्मको नष्ट करता है, धर्म ही उसको नष्ट कर डालता है। धर्मकी रक्षा करनेसे धर्म रक्षा करता है। अतएव धर्म किसी भी प्रकार अतिक्रमणीय नहीं है।

धर्म कामनाओंको देते हैं, इस कारण शास्त्रमें धर्मका वृष नाम रखा गया है। जो व्यक्ति उस धर्मको 'अलं' अर्थात् निवारण करता है, वही पण्डितोंमें वृषल है, जातिवाचक वृषल वृषल नहीं है, धर्म ही जीवका एकमात्र सुहृद् है। मृत्युके बाद सभी नष्ट हो जाता है, एक धर्म ही साथ साथ जाता है।

अतएव विचारकको चाहिये कि वे धर्मके प्रति विशेष लक्ष्य रखें, जिससे अन्याय विचार न हो वही करें। अन्याय विचार करनेसे जो पाप होता है, उसके चार भागमें एक भाग मिथ्याभियोगीको प्राप्त होता है। मिथ्या साक्षी एक भाग, सभी सभ्यगण एक भाग तथा राजा भी एक भाग पाते हैं। इस कारण बड़ी सावधानी-से विचार करना कर्त्तव्य है। जहां न्यायविचार होता है, पापी उपयुक्त दण्ड पाता है, वहां राजा निष्पाप रहते हैं, सभ्यगण भी पापमुक्त होते हैं। पाप केवल पाप करनेवालेको ही होता है।

राजा धर्मासन पर बैठ कर सम्यक् आच्छादित देह और एकाग्रचित्त हो लोकपालोंको प्रणाम कर विचारादि कार्य आरम्भ कर दें। राजप्रतिनिधिको भी इसी प्रकार विचार करना होगा। अर्थ और अनर्थ दोनों ही समझ कर धर्म और अधर्मके प्रति विशेषरूपसे दृष्टि रखते हुए ब्राह्मणादि वर्णक्रमसे वादी प्रतिवादीके सभी कार्य देखेंगे। पहले बाह्य चिह्न द्वारा उनका मनोगत भाव जाननेकी चेष्टा करनी चाहिये। उनके स्वर, वर्ण, इङ्गित, आकार, चक्षु और चेष्टा इन सबके प्रति लक्ष्य रखना भी आवश्यक है। आकार, इङ्गित, गति, चेष्टा, कथावार्त्ता और नेत्रमुखविकार द्वारा मनोगतभाव जाना जा सकता है।

पितृ-मातृविहीन अनाथ बालकका धन राजा तब तक अपने निरीक्षणमें रखें, जब तक वह बालिग न हो जाय। वन्ध्या स्त्री, परित्यक्ता स्त्री अर्थात् वह स्त्री जिसके स्वामीने दूसरा विवाह कर लिया है और उसे सिर्फ खाने पहननेका खर्च देता है, पुत्रहीन, प्रोषित-भर्तृका तथा जिस स्त्रीके सपिण्डादि कोई अभिभावक नहीं है तथा साध्वी विधवा और रोगिणी स्त्री, इनके धनकी रक्षा अनाथ बालकके धनकी तरह करनी चाहिये। यदि इनके जीवित रहते ही सपिण्डगण उस धन ले लें, तो धार्मिक राजाको चाहिये, कि वे चोर-दण्डसे उन्हें दण्डित करें।

अज्ञात स्वामीका धन मिलने पर राजा इस बातकी सर्वत्र घोषणा कर तीन वर्ष तक अपने खजानेमें रखें। तीन वर्षके भीतर धनस्वामी आ जाये, तो यह धन उसे मिलेगा। तीन वर्ष बीतने पर राजा उस धनको अपने काममें ला सकते हैं। जो व्यक्ति उस धनको अपना बतला कर दावा करता है, राजा उससे उपयुक्त प्रमाण ले कर वह धन उसे दे दें। यदि कोई झूठ दावा करे और उपयुक्त प्रमाण न दे सके, तो राजा उसको उस धनका उपयोगी दण्ड देंगे।

वर्णधर्म, जिस देशका जो धर्म है, कुलपरम्परासे

प्रचलित है, अथच जो वेदविरुद्ध नहीं है, जानपदधर्म, श्रेणीधर्म और जिस कुलका जो धर्म अनादि कालसे चला आता है वह कुलधर्म, इन सब धर्मोंके प्रति विशेष दृष्टि रख कर राजा अपने धर्मनियमकी व्यवस्था दें तथा विचारकालमें इन सबके प्रति विशेष दृष्टि रखें।

धनके लोभसे एक दूसरेमें विवाद खड़ा कर देना या दूसरेके प्राप्य अर्थमें लोभ करना राजा या राजपुरुषका कर्त्तव्य नहीं है। राजा व्यवहार विधिमें आस्थावान् हो कर देश, पात्र, काल आदिके ऊपर लक्ष्य रख कर सत्य और धर्मका अवलम्बन करते हुए विचार करें। साधुओं और धार्मिक ब्राह्मणोंने जैसा आचरण किया है, वह यदि देश, कुल और जातिधर्मके विरुद्ध न हो, तो उसी मतकी व्यवस्था दें।

उत्तमर्ण अधमर्णसे यदि रुपयेके लिये प्रार्थना करे तो राजा साक्षी और लेख्यादि द्वारा प्रदत्त धनको प्रमाणित करके अधमर्णसे वह धन दिला दें। उत्तमर्ण जिस जिस उपाय द्वारा अधमर्णसे अपना प्राप्य पा सकते हैं, राजा उन सब उपायोंका अनुमोदन करके उत्तमर्णको उसका प्राप्य दिलायें।

यदि अधमर्ण कहे, कि मैंने तुम्हारा नहीं लिया और उत्तमर्ण साक्षी और लेख्यादि द्वारा उसे प्रमाणित कर सके, तो राजा उत्तमर्णको धन दिला देवें और अधमर्णको इसके लिये शक्तिके अनुसार दण्ड देवें।

विचारस्थलमें विचारक अर्थी और प्रत्यर्थीके सामने साक्षियोंको खड़ा करके प्रिय वचनसे कहें, 'तुम वादी-प्रतिवादीके उपस्थित विषयमें जो जानते हो वह सच सच कहो। क्योंकि, तुम्हें इस विषयमें साक्ष्य माना गया है।' साक्ष्यस्थलमें सत्यवचन कहनेसे परलोकमें उत्तमगति और इस लोकमें अनुत्तमा कीर्त्ति प्राप्त होती है। ब्रह्मा भी सत्य वचनकी पूजा करते हैं। साक्ष्यस्थलमें झूठी बात कहनेसे वह वरुणपाशसे बद्ध हो सौ जन्म तक कष्ट पाता है। अतएव सर्वदा सच्ची गवाही देनी चाहिये। सच वचन कहनेसे साक्षी पापसे मुक्त होता है। सत्य द्वारा धर्मकी वृद्धि होती है।

साक्षी शब्द देखो।

विचारक शुचि हो कर पूर्वाह्णकालमें देवताप्रतिमाके समीप अथवा ब्राह्मणके समीप साक्षियोंमेंसे ब्राह्मणको 'कहो', क्षत्रियको 'सच सच कहो', वैश्यको 'गो, बीज और सुवर्ण द्वारा शपथ करके कहो' तथा शूद्रको 'सब पातकके द्वारा शपथ खा कर कहो' इस प्रकार पूछें।

ब्राह्मणहन्ता, स्त्रीहन्ता, बालकहन्ता, मित्रद्रोही और कृतघ्नके लिये जो जो लोक शास्त्रमें कहा गया है साक्ष्यस्थलमें झूठ कहनेसे उन्हीं सब लोकोंकी प्राप्ति होती है। साक्षीको इस प्रकार झूठी गवाही देनेका दोष दिखलाते हुए कहें, 'तुम झूठ न कहो, जो कुछ अपनी आंखोंसे देखा है या कानोंसे सुना है, वही कहो।

गोरक्षक, वाणिज्यजीवी, पाचक, नर्त्तकादि दासकर्मजीवी और वृद्धिजीवी ब्राह्मणको शूद्रके समान साक्ष्यप्रश्न करें। स्थान विशेषमें यह है, कि जिसमें एक तरहसे जान कर धर्मबुद्धि द्वारा अन्य प्रकारसे कहो, तो उसकी स्वर्गहानि नहीं होती। ऐसे वाक्यका नाम दैववाक्य है। जहां सत्य वचन कहनेसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रकी प्राणरक्षा हो, वहां झूठी बात कही जा सकती है। ऐसे स्थलमें मिथ्याकथन सत्यसे बढ़ कर है। जो इस प्रकार असत्य वचन कहते हैं, उन्हीं पापशान्तिके लिये चरुपाक करके वाग्देवता सरस्वतीके उद्देशसे याग अथवा यजुर्वेदीय कुष्माण्डनाम्न द्वारा वह्निस्थापन कर होम करना चाहिये।

आपसमें झगड़नेवाले दो पक्षमें यदि किसी पक्षका साक्षी न रहे तो विचारक दोनों पक्षको शपथ खिला कर सत्यनिर्णय करें। सप्तर्षि और देवताओंने आत्मशुद्धिके लिये शपथ किया था। वशिष्ठ ऋषिने भी आत्मशुद्धिके लिये पैजवनके पुत्र सुदासराजके निकट शपथ खाया था। ज्ञानी पुरुष छोटीसी बातके लिये वृथा शपथ न करें, करनेसे इस लोकमें अकीर्त्ति और परलोकमें नरक होता है।

ब्राह्मणको सत्य द्वारा, क्षत्रियको उसके हाथी घोड़े और आयुध द्वारा, वैश्यको उसके गो बीज या काञ्चन द्वारा तथा शूद्रको सभी पातक द्वारा शपथ करना होता है। अथवा शूद्रको अग्निपरीक्षा, जलपरीक्षा या स्त्रीपुत्रादिके मस्तक छुला कर परीक्षा करावें। जलती हुई आग

जिसे प्रजा न सके, अन्न जिसके क्षेत्र बढ़ा न सके और स्त्रीपुत्रादिके मन्त्रकारकोंसे यदि उन्हें किसी प्रकारकी पीड़ा न हो, तो जानना चाहिये उन्होंने ठीक न्याय पाया है।

क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये तीन वर्ण यदि बार बार झूठी गवाही दें, तो राजाको चाहिये, कि वे उन्हें उचित सजा दे कर देशसे निकाल दें। किन्तु ब्राह्मणको अर्थ-दण्ड न दे कर सिर्फ निर्वासन दण्ड देना उचित है। स्वायम्भुव मनुने दण्ड देनेके दश स्थान निर्देश किये हैं। यथा—उपस्थ, उदर, जिह्वा, दो हाथ, दो पैर, चक्षु, कर्ण, नासिका और धन तथा महापराध करनेसे सारी देह। यह दैहिकदण्ड क्षत्रियादि तीन वर्णोंके लिये जानना चाहिये। ब्राह्मणके लिये यह दण्ड उचित नहीं। ब्राह्मणको शारीरिक कोई दण्ड न दे कर अक्षत शरीरसे देश-निकाला कर दें।

विचारक विचारकालमें अच्छी तरह सोच विचार कर देखें, कि अपराधीने इस प्रकारका अपराध कितनी बार किया है तथा अपराधके सम्बन्धमें देशकाल, अपराधीका बलाबल, अपराधका स्वरूप इन सबका अच्छी तरह विचार कर उसका दण्डविधान करें। अन्यायरूपसे यदि दण्ड दिया जावे, तो जीवितावस्थामें यश और परलोकमें स्वर्गकी हानि होती है। अतएव अन्याय दण्ड कदापि देना न चाहिये।

जो दण्डनीय नहीं है उसको दण्ड देनेसे तथा जो दण्डनीय है उसे दण्ड नहीं देनेसे राजाको भारी अयश होता है तथा वे नरकको जाते हैं। विचारक पहले मीठे वचनसे शासन करें, पीछे धिक्कार वा भर्त्सना दण्ड, तृतीय धनदण्ड और सबके अन्तमें अङ्गच्छेदादि शारीरिक दण्ड विधान करें। अङ्गच्छेदादि शारीरिक दण्डसे भी दुरात्मा यदि प्रशमित न हो, तो वाग्दण्डादि पूर्वोक्त चार दण्डका ही उसके ऊपर प्रयोग करें।

मद्यादिसे मत्त, उन्मादग्रस्त, व्याधिपीड़ित, दासादि, अधीन, नाबालिग, सत्तर वर्षसे अधिकका बूढ़ा तथा असम्बद्ध व्यक्ति इनके किये हुए ऋणदानादि व्यवहार-सिद्ध नहीं हैं।

जहां छलसे बन्धक, विक्रय दान वा प्रतिग्रह करता है अथवा उसमें विशेष आदि कोई भी चालाकी किया जाता है वहां विचारक विचारको बदल दें। यदि कोई व्यक्ति सर्वसाधारण कुटुम्बोंके लिये ऋण करके मरे, तो अविभक्त वा विभक्त परिवारमें सभीको वह ऋण चुकाना होगा। कुटुम्ब भरणपोषणके लिये यदि दास भी ऋण करे, तो धनस्वामी चाहे देशमें हो वा विदेशमें, उन्हें वह ऋण देना होगा।

बलपूर्वक जो कुछ दिया जाता है, जो कुछ लिखा जाता है और जो कुछ किया जाता है वह सभी अकृत है अर्थात् असिद्ध होता है। छल, बल और कौशलसे भी जो कुछ किया जाता है वह असिद्ध होगा।

काम क्रोधको संयम कर जो राजा धर्मसे व्यवहार करते हैं उन्हें इस लोकमें यश और परलोकमें स्वर्गलाभ होता है। नदियां जिस प्रकार समुद्रकी अनुगामी होती हैं, उसी प्रकार प्रजा राजाकी अनुगामी है। अतएव राजाके धर्मानुसार चलनेसे प्रजा भी धार्मिक होगी।

जो गृहदाह, डकैती आदि साहससे कार्य करता है उसे साहसिक कहते हैं। वाक्पारुष्यकारी, तस्कर और दण्डपारुष्यकारी व्यक्तिकी अपेक्षा साहसिकको अत्यन्त पापकारी समझना होगा। जो राजा साहसिकको दण्ड न दे कर उसकी उपेक्षा करते हैं वे शीघ्र ही नाशको प्राप्त और लोगोंके विद्वेषभाजन होते हैं। राजा इसी प्रकार सभी व्यवहारोंका निरूपण करें।

(मनु ८ अ०)

ऋणदान आदि जिन अठारह व्यवहारका वर्णन किया जा चुका है, उनका विशेष विवरण उन्हीं शब्दोंमें देखना चाहिये।

रघुनन्दनने व्यवहारतत्त्वमें व्यवहारका विषय शास्त्रादिके नियमानुसार विशेषरूपसे आलोचना की है। उन्होंने पहले विचारक और उसके दोष गुणोंका उल्लेख कर वादी जो अभियोग करेंगे अर्थात् जिस विषयकी नालिश होगी उस विषयका नाम भाषा रखा है। वादी उसका अभियोग लिख कर राजा वा राजप्रतिनिधिके निकट उपस्थित करे तो विचारक वह अभियोग सुन कर जिसके नाम अभियोग लगाया गया है, उसे इस अभियोगका विषय कह कर उसी समय उसके जवाब माँगे और स्वयं वादी प्रति-

वादीके सामने उसे लिख डाले। इसके बाद साक्षी द्वारा उक्त वाक्यका सत्यासत्य निरूपण करे। यदि साक्षी न रहे, तो दिव्य, विष और अग्नि आदिकी परीक्षा द्वारा उक्त विषय प्रमाणित करें। इसी प्रकार प्रमाण प्रयोग ले कर फल निरूपण करना होता है। यदि प्रतिवादी दण्डनीय हो, तो उसे दण्ड और दण्डनीय न हो तो छोड़ दे। अभियोग यदि मिथ्या साबित हो, तो वहां मिथ्या अभियोग लगानेवाला भी दण्डनीय होगा।

प्रतिवादी वादीकी नालिशका जो जवाब देता है, उसे उत्तरपाद, साक्षी ले कर विचारकार्यको क्रियापाद और विचारफलको निर्णयपाद कहते हैं। (व्यवहारतत्त्व) व्यवहारके निरूपणकालमें मन्वादिशास्त्रमें जो सब नियम निर्दिष्ट हुए हैं उनके प्रति विशेष लक्ष्य रखना आवश्यक है; क्योंकि जिससे अदण्ड्य दण्ड न पावे तथा दण्ड्य व्यक्ति दण्डभोग करे यही करना कर्त्तव्य है। ऐसा करनेसे इस लोकमें यश और परलोकमें स्वर्गलाभ होता है। इससे प्रकृतिपुञ्जकी उन्नति और राज्यकी श्रीवृद्धि होती है।

व्यवहारक (सं० त्रि०) १ जिसकी जीविका व्यवहारसे चलती हो, जो न्याय या वकालत आदि करता हो। २ प्राप्तवयस्क, जो वयस्क हो गया हो, बालिग।

व्यवहारजीविन् (सं० त्रि०) व्यवहारं जीवति जीव-णिनि। जो व्यवहार या वकालत आदिके द्वारा अपनी जीविका चलाता हो।

व्यवहारज्ञ (सं० पु०) व्यवहारं जानाति ज्ञा-क। १ वह जो व्यवहारशास्त्रका ज्ञाता हो, व्यवहार जाननेवाला। २ वह जो पूर्ण वयस्क हो गया हो, बालिग।

व्यवहारदर्शन (सं० क्ली०) व्यवहारस्य दर्शनं। किसी अभियोगमें न्याय और अन्याय अथवा सत्य और मिथ्याका निर्णय करना।

व्यवहारनिर्णय (सं० पु०) व्यवहारस्य निर्णयः। व्यवहार-निरूपण।

व्यवहार-पद (सं० क्ली०) व्यवहारस्य पदम्। वादी द्वारा राजासे निवेदन। वादी राजा या राजप्रतिनिधिके निकट जो नालिश करता है, उसे व्यवहारपद कहते हैं। स्मृति और आचारविरुद्ध पद्धतिके अनुसार अर्थात् यदि कोई स्मृतिशास्त्रके नियम तथा सदाचारपद्धति लङ्घन कर किसीको पीड़ा देता है, पीड़ित व्यक्ति उसको उत्पीड़न राजासे कहता है, यही व्यवहार-पद कहलाता है। व्यवहार शब्द देखो।

व्यवहार-पाद (सं० पु०) व्यवहारस्य पादः। १ व्यवहारके पूर्वपक्ष, उत्तर, क्रियापाद और निर्णय इन चारोंका समूह। २ इन चारोंमेंसे कोई एक जो व्यवहारका एक पाद या अंश माना जाता है।

व्यवहार-मातृका (सं० स्त्री०) व्यवहारस्य मातृकेव। व्यवहारोपयोग क्रिया, वे क्रियाएं जिनका व्यवहारमें उपयोग होता है, व्यवहार शास्त्रके अनुसार होनेवाली कार्रवाइयां। मिताक्षरामें ३० प्रकारकी व्यवहारमातृका कही है। यथा,—१ व्यवहारदर्शन। २ व्यवहार लक्षण। ३ सभासद। ४ प्राड्विवाकादि। ५ व्यवहार विषय। ६ राजाका कार्यानुत्पादकत्व। ७ कार्यार्थीका प्रतिप्रश्न। ८ आह्वान-समूहका आह्वान। ९ आसेध। १० प्रत्यर्थी आने पर लेख्यादि कर्त्तव्यता। ११ पक्षविधहीन। १२ कीदृश लेख्य। १३ पक्षाभास। १४ अनादेय। १५ आदेय। १६ नियुक्त जयपराजयमें वादीकी जय और पराजय। १७ शोधित लेख्य निवेशन। १८ उत्तरावधिशोधन। १९ शोधित पक्षारूढ़विषयमें उत्तर कर्त्तव्य। २० उत्तर-लक्षण। २१ सत्योत्तर-लक्षण। २२ मिथ्योत्तरलक्षण। २३ प्रत्यवस्कन्दनोत्तर। २४ प्राङ्न्यायोत्तर। २५ उत्तराभास। २६ सङ्करानुत्तर। २७ प्रत्यर्थीका क्रियानिर्देश। २८ उत्तरपक्ष अभिनिवेशित होनेसे साधननिर्देश। २९ उसकी सिद्धिके विषयमें सिद्धि। ३० चतुष्पाद व्यवहार। (मिताक्षरा)

व्यवहार-विषयमें अर्थात् विचार-कार्यमें इन ३० प्रकारकी व्यवहार-मातृकाके प्रति लक्ष्य कर विचार करना होता है।

व्यवहारमार्ग (सं० पु०) व्यवहारस्य मार्गः। व्यवहार विषय, व्यवहार-पद। (मिताक्षरा)

व्यवहारमूल (सं० पु०) मरकरा, मरकर-करदा।

व्यवहारविधि (सं० स्त्री०) व्यवहारस्य विधिः। वह शास्त्र जिसमें व्यवहार-सम्बन्धी बातोंका उल्लेख हो,

वह शास्त्र जिसमें व्यवहार या मुकदमे आदिका विधान हो।

व्यवहारविषय (सं॰ पु॰) व्यवहारस्य विषयः। व्यवहार-पद। व्यवहार शब्द देखो।

व्यवहारशास्त्र (सं॰ क्लो॰) विवाद आदि निष्पत्ति विषयक धर्मशास्त्र विशेष। मनु, याज्ञवल्क्य, आदि मुनि और बृहस्पत्यादि तथा दायभाग, मिताक्षरा और वीरमित्रोदय प्रभृति व्यवहारशास्त्रके अन्तर्भुक्त हैं। प्राड्विवाकगण इस विधिकी सहायतासे वादी और प्रतिवादीके विवादका निर्णय किया करते हैं। इसे धर्मशास्त्र भी कहते हैं।

व्यवहारसिद्धि (सं॰ स्त्री॰) व्यवहारस्य सिद्धिः। व्यवहारशास्त्रके अनुसार अभियोगोंका निर्णय करना।

व्यवहारस्थान (सं॰ क्लो॰) व्यवहारस्य स्थानं। १ व्यवहारका विषय या पद। २ लेन-देन, दस्तावेज आदिके सम्बन्धमें यह निर्णय, कि वे उचित रूपसे हुए हैं या नहीं। चन्द्रगुप्तके समयमें तीन धर्मस्थ और तीन अमात्य व्यवहारोंकी निगरानी करते थे।

व्यवहारासन (सं॰ क्लो॰) वह आसन जिस पर बैठ लोगोंका विचार करते समय विचार करनेवाला बैठता है, विचारासन, न्यायासन।

व्यवहाराभ्यर्थ (सं॰ पु॰) वह निवेदन जो वादी अपने अभियोगके सम्बन्धमें राजा अथवा न्यायकर्त्ताके सम्मुख करता हो, नालिश, फरियाद।

व्यवहारिक (सं॰ त्रि॰) व्यवहारमर्हतीति व्यवहार-ठक्। १ जो व्यवहारके लिये उपयुक्त या ठीक हो, व्यवहारयोग्य। बुद्धि कर्मेन्द्रियके साथ युक्त हो कर विज्ञानमय कोष कहलाती है, यह विज्ञानमय कोष व्यवहारिक जीव नामसे वर्णित है तथा जब तक मुक्ति नहीं होती, तब तक यह व्यवहारिक इहलोक और परलोकगामी होता है। २ इंगुदी, हिंगोट।

व्यवहारिक जीव (सं॰ पु॰) वेदान्तके अनुसार विज्ञानमय कोष जो कर्मेन्द्रियके साथ बुद्धिके संयुक्त होनेसे होता है।

व्यवहारिका (सं॰ स्त्री॰) व्यवहारेण चरतीति ठन्, स्त्रियां टाप्। १ लोकयात्रा, संसारमें रह कर उसके सब व्यवहार या कार्य करना। २ सम्मार्जनी, झाड़ू। ३ इंगुदीवृक्ष, हिंगोटका पेड़।

व्यवहारिन् (सं॰ त्रि॰) व्यवहारोऽस्त्यस्येति इनि। व्यवहारविशिष्ट, व्यवहार करनेवाला।

व्यवहार्य्य (सं॰ त्रि॰) वि-अव-हृ-ण्यत्। व्यवहरणीय, जो व्यवहार करनेके योग्य हो, काममें लाने लायक।

व्यवहित (सं॰ त्रि॰) वि-अव-धा-क्त। व्यवधान विशिष्ट, जिसके आगे किसी प्रकारका व्यवधान या परदा पड़ गया हो, आड़ या ओटमें गया हुआ।

व्यवहृत (सं॰ त्रि॰) वि-अव-हृ-क्त। १ आचरित, जिसका आचरण या अनुष्ठान किया गया हो। २ विचारित, जिसका व्यवहार शास्त्रके अनुसार विचार किया गया हो।

व्यवहृति (सं॰ स्त्री॰) १ वह लाभ जो व्यापारसे होता है, रोजगारमें होनेवाला नफा। २ वाणिज्य, व्यापार। ३ कुशलता, होशियारी।

व्यवाय (सं॰ क्लो॰) वि-अव-अय-अच्। १ तेज। (पु॰) विशेषेण अवायन्ते अत्र अनेनेति वा, वि-अव-इ-अच्। २ मैथुन, स्त्री-प्रसंग। ३ व्यवधान। ४ शुद्धि। ५ परिणाम, नतीजा। ६ विघ्न, बाधा, रुकावट। ७ आड़, ओट, परदा।

व्यवायशोष (सं॰ पु॰) एक प्रकारका राजयक्ष्मा या तपेदिक जो बहुत अधिक स्त्री प्रसंग करनेसे होता है।

व्यवायिन् (सं॰ पु॰ स्त्री॰) व्यवेतुं शीलमस्य णिनि। १ व्यवायपटु, वह जिसे स्त्रीप्रसंगकी बहुत अधिक कामना रहती हो, कामुक। श्राद्ध करके या श्राद्धमें भोजन करके संभोग नहीं करना चाहिए। यदि कोई करे, तो उसके पितृगण रेतोगर्त्तमें निमज्जित होते हैं। (श्राद्धतत्त्व) २ व्यवधानकर्त्ता, वह जो बीचमें किसी प्रकारका व्यवधान या परदा करता हो, आड़ या ओट करनेवाला। 'व्यवायिनोऽनुगच्छन्ति' (भा॰ १।३।१४६) 'व्यवायी व्यवधानकरः' (श्रीधर) ३ वह औषध जो शरीरमें पहुंच कर पहले सब नाड़ियोंमें फैल जाय और तब पचे। जैसे—भांग या अफीम।

व्यवेत (सं० त्रि०) पृथक् कृत, अलग किया हुआ। (भूकप्राति० ११।६)

व्यशन (सं० त्रि०) भोज्ययुक्त।

व्यश्विय (सं० पु०) वैदिक मन्त्रोक विषय विशेष। (तत्तिरीयसं० १।७।६।१)

व्यश्नुविन् (सं० पु०) अग्न्याधोशभेद। (शुक्लयजुः २२।३२)

व्यश्व (सं० त्रि०) १ अश्वशून्य। (पु०) २ एक प्राचीन ऋषिका नाम। ये ऋग्वेद्के ४।२२ सूक्तके मन्त्रद्रष्टा हैं। ये आङ्गिरस गोत्रज थे। इनके वंशधर वैयश्व नामसे परिचित हैं। वैयश्व देखो। ३ राजभेद। (भारत सभापर्व)

व्यष्टक (सं० पु०) मुष्क।

व्यष्टका (सं० स्त्री०) कृष्णपक्षकी प्रतिपदा। (तैत्तिरीयसं० ७।५।७।१)

व्यष्टि (सं० स्त्री०) वि अश-क्तिन्। समूह या समाजमेंसे अलग किया हुआ प्रत्येक व्यक्ति या पदार्थ, वह जिसका विचार अकेले हो औरोंके साथ न हो।

व्यसन (सं० क्ली०) वि-अस-ल्युट्। १ विपद्, आफत। २ दुःख, कष्ट। ३ पतन, गिरना। ४ विनाश, नष्ट होना। ५ पाप, अमङ्गल। ६ निष्फलोद्यम, वह प्रयत्न जिसका कोई फल न हो। ७ विषयासक्ति, विषयवासनाके प्रति होनेवाला अनुराग। ८ दुर्भाग्य, बदकिस्मती। ९ अयोग्यता, अक्षमता। १० काम और क्रोधजनित दोष। व्यसन अठारह प्रकारका है, जिनमेंसे कामज १० प्रकारका और क्रोधज ८ प्रकारका है। (मनु ७।४५-४८)

ये सभी व्यसन अति भयानक हैं, अतएव यत्नपूर्वक इन सब व्यसनोंका परित्याग करना उचित है। राजा यदि कामजव्यसनमें आसक्त हो, तो वे धर्म और अर्थसे वञ्चित होते हैं तथा क्रोधज व्यसनमें आसक्त होनेसे यहां तक कि उनका जीवन तक भी विनष्ट होता है।

मृगया, पाशक्रीड़ा, दिवानिद्रा, परदोषकथन, रमणीसम्भोग, मद्यजनित मत्तता, तौर्यत्रिक अर्थात् नृत्यगीत और वाद्यादि तथा वृथा भ्रमण ये दश कामज व्यसन हैं अर्थात् ये दश दोष कामसे उत्पन्न होते हैं।

पिशुनता, दुःसाहस, द्रोह, ईर्षा, असूया, परस्वापहरण, आक्रोश अर्थात् यथार्थ अस्त्रादि प्रदर्शन और दण्डपारुष्य अर्थात् संहार ये ८ प्रकारके व्यसन क्रोधज हैं। पण्डितोंने एकमात्र लोभको ही कामज और क्रोधज इन दोनों प्रकारके व्यसनोंका मूलीभूत कारण बताया है। इसलिये बड़े यत्नसे इसका परित्याग करना उचित है।

दश प्रकारके कामज व्यसनोंमें सुरापान, पाशक्रीड़ा, रमणीसंभोग और मृगया ये चार विशेष दोषावह तथा अनिष्टजनक हैं। क्रोधज ८ प्रकारके व्यसनोंमें निष्ठुर कथन, प्राप्य धनप्रवञ्चना और निर्घातप्रहार ये तीन विशेष अनिष्टकारक हैं। सात व्यसनोंमें प्रायः सभी राजे आसक्त होते हैं। इनमेंसे पिछलेकी अपेक्षा पहले व्यसनको गुरुतर जानना होगा। क्रोधज अथवा कामज व्यसन मृत्युसे भी बढ़ कर कष्टजनक है। यही कारण है, कि व्यसनी पापी व्यक्ति मरने पर नरक जाता है। (मनु ७ अ०)

व्यसनमात्र ही विशेष अनिष्टजनक है, अतएव व्यसनका परित्याग करना सबोंका कर्त्तव्य है। व्यसनासक्त होनेसे कोई भी काम सफल नहीं होता। देवीपुराणमें लिखा है, कि एक एक व्यसनासक्त व्यक्ति मृत्युवशवर्त्ती होता है तथा जो सभी प्रकारके व्यसनोंमें रत हैं वे छिन्नमूल वृक्षकी तरह महदैश्वर्यसे पतित और विनष्ट होते हैं। (देवीपुराण ८ अ०)

व्यसनवत् (सं० त्रि०) व्यसनमस्यास्तीति व्यसन-मतुप् मस्य व। व्यसनविशिष्ट, व्यसनासक्त।

व्यसनार्त्त (सं० त्रि०) व्यसनेनार्त्तः। जिसे किसी प्रकारकी दैवी या मानुषी पीड़ा पहुंचा हो।

व्यसनिता (सं० स्त्री०) व्यसनिनो भावः व्यसनिन् तल्-टाप् नस्य लोपः। व्यसनी होनेका भाव या धर्म, व्यसनित्व।

व्यसनिन् (सं० त्रि०) व्यसनमस्यास्तीति व्यसन इनि। १ व्यसनविशिष्ट, जिसे किसी प्रकारका व्यसन या शौक हो। पर्याय—पञ्चमद्र, विप्लुत। २ वेश्यागामी, रंडीबाज।

व्यसि (सं० पु०) १ असिशून्यपंतरा। (त्रि०) २ असिशून्य।

व्यसु (सं० त्रि०) विगताः असवः प्राणाः यस्य। विगत प्राण, मरा हुआ। (राजतरङ्गिणी ५।२४१)

व्यङ्गुल (सं० क्ली०) अङ्गुलीषष्टिः व्यङ्गुलं। विकला, अङ्गुलका षष्ठ भाग, पलव्यादि। (बृहत्संहिता ४।१२)

व्यस्त (सं० त्रि०) वि-अस-क्त। १ व्याकुल, घबराया हुआ। २ व्याप्त, फैला या छाया हुआ। ३ पृथक्, अलग अलग। ४ कामोंमें लगा या फँसा हुआ। ५ उद्विग्न, फैला हुआ। ६ विपर्यस्त, इधर उधर, आगे पीछे या ऊपर नीचे किया हुआ।

व्यस्थक (सं० त्रि०) जिसमें हड्डी न हो, बिना हड्डीका।

व्यस्तपद (सं० क्ली०) व्यस्तं पदं यत्र। व्यवहार-शास्त्रमें वादीका दोषी पद, अर्थात् अपना पक्ष न बताकर, अन्य कुछ प्रश्न करना। (मिताक्षरा)

व्यस्तार (सं० क्ली०) हस्तिमदप्रवाह। (त्रिका०)

व्यस्थक (सं० त्रि०) अस्थिहीन, बिना हड्डीके।

व्यहन् (सं० पु०) व्यह्न देखो।

व्यह्न (सं० पु०) गत दिन, बीता हुआ दिन।

व्याकरण (सं० क्ली०) व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते साधुशब्दाः अनेनेति वि-आ-कृ-ल्युट्। वेदाङ्गविशेष। यह शास्त्र, वर्ण, धर्म, क्रिया समासादि निरूपण करता है। इसकी व्युत्पत्ति—

"व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते साधुशब्दा अस्मिन् अनेनेति वा" जिसमें या जिसके द्वारा साधु शब्द व्युत्पादित हो उसका नाम व्याकरण है। यह शब्द-व्युत्पादक शास्त्र है। इसके द्वारा वर्ण, धर्म, क्रिया समासादि निर्णीत होते हैं।

२ विस्तार। (भाग० ३।१०।२१)

वैदिक संहिताकी सुगठित और सुमार्जित भाषा पढ़नेसे आपसे आप मनमें यह विश्वास उत्पन्न होता है कि वह प्राचीन कालमें वैदिक युगमें अवश्य ही व्याकरणकी सृष्टि हुई थी। जब तक कोई भाषा सुगठित और सुमार्जित नहीं होती तब तक व्याकरणकी सृष्टि हो नहीं सकती, यह स्वतःसिद्ध है। पहले भाषाका विकास और पीछे व्याकरणका प्रकाश होता है यह सभीको स्वीकार करना पड़ेगा। इसलिये किस देशका हो व्याकरण का कहते हैं। इसीसे शब्दानुशासनशास्त्र दूसरा नाम शब्दानुशासनशास्त्र कहा गया है। शास्त्रका अन्त नहीं है—शब्द अनन्त और अपार है। भगवान् पतञ्जलिने महाभाष्यके आरम्भ पर कहा है, कि बृहस्पतिने इन्द्रको दिव्य सहस्र वर्ष तक प्रतिपदोक्त शब्द-पारायण कहा था, फिर भी वहाँ शब्दोंका अन्त न मिला। (१)

अतएव व्याकरण शास्त्रके शासनमें पड़ कर सब शब्दोंके उद्देशसे व्यर्थ हुआ। केवल साधुशब्दोंका अनुशासन ही व्याकरणका विषय है। महाभाष्यकारने भी इसका ही स्वीकार किया है।

व्याकरण वेदाङ्गशास्त्रोंका प्रधान अङ्ग है। भगवान् पतञ्जलिने कहा है, "प्रधानं च षट्स्वङ्गेषु व्याकरणं।" वैदिक संहिताकी सृष्टिके समय अथवा उसके पहले भी व्याकरण था, ऐसा अनुमान करना युक्तिसंगत नहीं है। ऋक्, यजु आदि सब जब विभिन्न शाखाओंमें बंट गये थे, भिन्न भिन्न आचार्यगणोंने जब भिन्न भिन्न शाखाका पदपाठ और संहितापाठमें वेदाध्ययन करते थे, उसके भी बहुत पहले वैदिक संस्कृत भाषामें व्याकरणकी सृष्टि हुई थी। वैदिक ऋषियोंके सुनियमबद्ध सुगठित मन्त्रोंमें तथा किसीको 'ब्राह्मण' ग्रन्थोंके इतिहासका बीज देखनेमें आता है। वेदमें उपलब्ध धातु, प्रातिपदिक, समासलक्षण और निरुक्तशब्द दोनों वर्णित हैं। उस समय आख्यात-विभागों भी नहीं थी, तथापि पदोंमें ही इसका प्रमाण मिलता है। इस समयमें वैदिक युगमें व्याकरण नहीं था यह मानना भी अयुक्त है। इस चतुर्वेदमें (कृष्णयजुः संहितामें) व्याकरणका स्पष्ट उल्लेख पाते हैं। वह इस प्रकार है—

"वाग् वै पराच्यव्याकृतावदत्। ते देवा इन्द्रमब्रुवन् इमां नो वाचं व्याकुरु इति। सोऽब्रवीत् वरं वृणै मह्यं चैवैष वायवे च सह गृह्याता इति। तस्मादैन्द्रवायवः सह गृह्यते। तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत्। तस्मादियं व्याकृता वागुद्यते।"

(१) "बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यं वर्षसहस्रं प्रतिपदोक्तानां शब्दानां शब्दपारायणं प्रोवाच नान्तं जगाम।"

भावार्थ—पुरातनी वाक् अर्थात् वेदरूप वाक्य पहले मेघगर्जनकी तरह अखण्डाकारमें आविर्भूत था। उसमें कितना वाक्य और कितना पद था, यह कोई नहीं समझता था। इस पर देवताओंने वाक्य प्रकाश करनेके लिये प्रार्थना की। इन्द्रने वेदरूप वाक्योंको बीच बीचमें विच्छिन्न कर वाक्य, पद और प्रत्येक पदकी प्रकृति स्पष्ट कर दी थी। वाक्य, पद और पदके अन्तर्गत प्रकृति प्रत्यय निष्पन्न शब्दको विशेषरूपसे व्यक्त करना ही व्याकरणका कार्य है।

ऐसा सवाल हो सकता है, कि इन्द्र ही मानो वेदसमयके आदि वैयाकरण हैं। किन्तु महाभाष्यकारके वचनोंसे जाना जाता है, कि इन्द्रने बृहस्पतिसे व्याकरण सीखा। फलतः वैदिकयुगके वैयाकरण महोदयोंके नाम और इतिहासका पता लगाना बहुत कठिन है। पाणिनीय व्याकरणके प्रथम चौदह सूत्र माहेश्वरसूत्र कह कर प्रसिद्ध हैं। कुछ लोगोंका कहना है, कि माहेश व्याकरण नामक एक बड़ा व्याकरण था, पाणिनीके व्याकरणसे कहीं बढ़ा चढ़ा था, दोनोंमें जमीन आसमानका फर्क था। किन्तु इस उक्तिकी कोई मूलभित्ति नहीं। प्रतिवादियोंका कहना है, कि पाणिनीय व्याकरणके उक्त प्रत्याहार कुछ सूत्रोंको छोड़ स्वतंत्र कोई माहेश व्याकरण नहीं था। पाणिनि शब्दमें इसकी विस्तृत आलोचना देखो।

जो हो, पाणिनिके पहले भी बहुतसे वैयाकरण थे, जिनमें प्रधान प्रधान वैयाकरणके नाम हम पाणिनिके सूत्रों भी देखते हैं। यथा—अत्रि, आङ्गिरस, आपिशलि, कठ, कलापी, काश्यप, कुरव, कौण्डिन्य, कौत्स्य, कौशिक, गालव, गौतम, चरक, चक्रवर्मा, छागलि, जाबाल, तित्तिरि, पाराशर्य, पैला, बभ्रु, भारद्वाज, भृगु, मण्डुक, मधुक, यस्क, वड़वा, वरतन्तु, वशिष्ठ, वैशम्पायन, शाकटायन, शाकल्य, शिपालि, शौनक और स्फोटायन।

प्रातिशाख्य।

गोल्डष्टुकारने आपिशलि, काश्यप, गार्ग्य, गालव, चक्रवर्मा, भारद्वाज, शाकटायन, शौनक और स्फोटायन इन्हें पूर्वाचार्य बताया है। गोल्डष्टुकार प्रातिशाख्योंको पाणिनिके पूर्ववर्त्ती नहीं मानते। किन्तु रथल्फरोट और वेबर आदि पाश्चात्य पण्डितोंके मतमें प्रातिशाख्योंको पाणिनिके पूर्ववर्त्ती तथा प्राचीन वैदिक व्याकरणके अङ्गविशेष कहा है। अभी ये प्रातिशाख्य ग्रंथ लुप्तसे हो गये हैं। शौनक-रचित ऋग्वेदीय शाकल शाखाका ऋक्प्रातिशाख्य, यजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखाका तैत्तिरीय प्रातिशाख्य, वाजसनेय शाखाका कात्यायन रचित वाजसनेय-प्रातिशाख्य तथा सामवेदको माध्यन्दिन शाखाका पुष्पमुनि रचित सामप्रातिशाख्य और शौनकीय आथर्व प्रातिशाख्य ग्रन्थ पाये गये हैं।

इनका विवरण प्रातिशाख्य और वेद शब्दमें देखो।

प्रातिशाख्यमें पदच्छेद, सन्धिच्छेद, उच्चारणके प्रकार (नतिप्लुति) आदि विषयोंकी आलोचना की गई है। इससे सन्धि और समास आदिके विच्छिन्न होनेसे प्रातिशाख्यमें भी व्याकरणका परिचय मिलता है। फिर उच्चारणप्रणालीके निर्दिष्ट रहनेसे उसमें षडङ्गके अन्तर्गत शिक्षाके आलोच्य विषय भी देखनेमें आते हैं। यह विषय भी व्याकरणमें आलोचित होता है। फिर प्रातिशाख्यमें छन्दके संबंधमें भी आलोचना देखी जाती है। फलतः षडङ्गके विषय प्रातिशाख्यमें न्यूनाधिक परिमाणमें दिखाई देते हैं। रथल्फ रोट साहबका कहना है, कि ईसा-जन्मसे सात सौ वर्ष पहले प्रातिशाख्यकी सृष्टि हुई। ये सब प्रातिशाख्य इतने प्राचीन हैं या नहीं, इस विषयमें सन्देह रहने पर भी उनमेंसे कितने प्रातिशाख्य पाणिनिके पहले रचे गये थे, इसमें सन्देह नहीं। प्रातिशाख्यमें सन्धिविच्छेद और पदविच्छेद आदि देख कर मालूम होता है, कि प्रातिशाख्य व्याकरणकी आलोचनासे एकदम परिवर्जित नहीं है। इससे यह भी जाना जाता है, कि व्याकरणकी आलोचनाके बिना वेदाध्ययन करना कभी सम्भव नहीं होता। शाखाप्रवर्त्तकोंने अपनी अपनी शाखाके अन्तर्गत वेद पठनपाठनके लिये प्रातिशाख्य ग्रंथकी सृष्टि कर ली थी। ये सब शाखा पाणिनिके बहुत पहले प्रवर्त्तित हुई थीं। अतएव पाणिनिके बहुत पहले वैयाकरणोंने वैदिक साहित्यके व्याकरणकी उन्नति करनेमें हाथ बंटाया था। पाश्चात्य पण्डितोंमें प्राफेसर मूलर और वेबर आदि इस मतके समर्थक हैं। गोल्डष्टुकार इस सिद्धान्तको स्वीकार नहीं करते।

भावार्थ—पुरातनी वाक् अर्थात् वेदरूप वाक्य पहले मेघगर्जनकी तरह अखण्डाकारमें आविर्भूत था। उसमें कितना वाक्य और कितना पद था, वह कोई नहीं समझता था। इस पर देवताओंने वाक्य प्रकाश करनेके लिये प्रार्थना की। इन्द्रने वेदरूप वाक्योंको बीच बीचमें विच्छिन्न कर वाक्य, पद और प्रत्येक पद-की प्रकृति स्पष्ट कर दी थी। वाक्य, पद और पदके अन्तर्गत प्रकृति प्रत्यय निष्पन्न शब्दको विशेषरूपसे व्यक्त करना ही व्याकरणका कार्य है।

ऐसा ख्याल हो सकता है, कि इन्द्र ही मानो वेद-समयके आदि वैयाकरण हैं। किन्तु महाभाष्यकारके वचनोंसे जाना जाता है, कि इन्द्रने बृहस्पतिसे व्याकरण सीखा। फलतः वैदिकयुगके वैयाकरण महोदयोंके नाम और इतिहासका पता लगाना बहुत कठिन है। पाणिनीय व्याकरणके प्रथम चौदह सूत्र माहेश्वरसूत्र कह कर प्रसिद्ध हैं। कुछ लोगोंका कहना है, कि माहेश व्याकरण नामक एक बड़ा व्याकरण था, पाणिनीके व्याकरणसे कहीं बढ़ा चढ़ा था, दोनोंमें जमीन आसमानका फर्क था। किन्तु इस उक्तिकी कोई मूलभित्ति नहीं। प्रतिवादियोंका कहना है, कि पाणिनीय व्याकरणके उक्त प्रत्याहार कुछ सूत्रोंको छोड़ स्वतंत्र कोई माहेश व्याकरण नहीं था। पाणिनि शब्दमें इसकी विस्तृत आलोचना देखो।

जो हो, पाणिनिके पहले भी बहुतसे वैयाकरण थे, जिनमें प्रधान प्रधान वैयाकरणके नाम हम पाणिनिके सूत्रों भी देखते हैं। यथा—अत्रि, आङ्गिरस, आपिशलि, कठ, कलापी, काश्यप, कुत्स्य, कौण्डिन्य, कौत्स्य, कौशिक, गालव, गौतम, चरक, चक्रवर्मा, छागलि, जाबाल, तित्तिरि, पाराशर्य, पीला, बभ्रु, भारद्वाज, भृगु, मण्डूक, मधुक, यस्क, वड्वा, वरतन्तु, वशिष्ठ, वैशम्पायन, शाकटायन, शाकल्य, शिपालि, गौलक और स्फोटायन।

प्रातिशाख्य।

गोल्डष्टुकरने आपिशलि, काश्यप, गार्ग्य, गालव, चक्रवर्मा, भारद्वाज, शाकटायन, शौनक और स्फोटायन इन्हें पूर्वाचार्य बताया है। गोल्डष्टुकार प्रातिशाख्योंको पाणिनिके पूर्ववर्ती नहीं मानते। किन्तु राडल्फरोट और वेबर आदि पाश्चात्य पण्डितोंके ग्रंथमें प्रातिशाख्योंको पाणिनिके पूर्ववर्त्ती तथा प्राचीन वैदिक व्याकरणके अङ्गविशेष कहा है। अभी ये प्रातिशाख्य ग्रंथ लुप्तसे हो गये हैं। शौनक-रचित ऋग्वेदीय शाकल शाखाका ऋक्प्रातिशाख्य, यजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखाका तैत्तिरीय प्रातिशाख्य, वाजसनेय शाखाका कात्यायन रचित वाजसनेय-प्रातिशाख्य तथा सामवेदकी माध्यन्दिन शाखाका पुष्पमुनि रचित सामप्रातिशाख्य और शौनकीय आथर्व प्रातिशाख्य ग्रन्थ पाये गये हैं।

इनका विवरण प्रातिशाख्य और वेद शब्दमें देखो।

प्रातिशाख्यमें पदच्छेद, सन्धिच्छेद, उच्चारणके प्रकार (नतिप्लुति) आदि विषयोंकी आलोचना की गई है। इससे सन्धि और समास आदिके विच्छिन्न होनेसे प्रातिशाख्यमें भी व्याकरणका परिचय मिलता है। फिर उच्चारणप्रणालीके निर्दिष्ट रहनेसे उनमें षड्ङ्गके अन्तर्गत शिक्षाके आलोच्य विषय भी देखनेमें आते हैं। यह विषय भी व्याकरणमें आलोचित होता है। फिर प्रातिशाख्यमें छन्दके सम्बन्धमें भी आलोचना देखी जाती है। फलतः षड्ङ्गके विषय प्रातिशाख्यमें न्यूनाधिक परिमाणमें दिखाई देते हैं। राडल्फ रोट साहबका कहना है, कि ईसा-जन्मसे सात सौ वर्ष पहले प्रातिशाख्यकी सृष्टि हुई। ये सब प्रातिशाख्य इतने प्राचीन हैं या नहीं, इस विषयमें सन्देह रहने पर भी उनमेंसे कितने प्रातिशाख्य पाणिनिके पहले रचे गये थे, इसमें सन्देह नहीं। प्रातिशाख्यमें सन्धिविच्छेद और पदविच्छेद आदि देख कर मालूम होता है, कि प्रातिशाख्य व्याकरणकी आलोचनासे एकदम परिवर्जित नहीं है। इससे यह भी जाना जाता है, कि व्याकरणकी आलोचनाके बिना वेदाध्ययन करना कभी सम्भव नहीं होता। शाखाप्रवर्त्तकोंने अपनी अपनी शाखाके अन्तर्गत वेद पठनपाठनके लिये प्रातिशाख्य ग्रंथकी सृष्टि कर ली थी। ये सब शाखा पाणिनिके बहुत पहले प्रवर्तित हुई थीं। अतएव पाणिनिके बहुत पहले वैयाकरणोंने वैदिक साहित्यके व्याकरणकी उन्नति करनेमें हाथ बंटाया था। पाश्चात्य पण्डितोंमें प्रोफेसर मूलर और वेबर आदि इस मतके समर्थक हैं। गोल्डष्टुकार इस सिद्धान्तको स्वीकार नहीं करते।

विस्तृति लाभ की थी। मैक्समूलरने प्रथमतः कथा सरित्सागरकी आख्यायिकाका अनुसरण कर पाणिनिको ईसा जन्मसे पहले ४थी सदीके लोग अर्थात् नन्दराजके समसामयिक स्थिर किया है। इसके बाद 'षड्दर्शनके इतिवृत्त' नामक ग्रन्थकी भूमिकामें उन्होंने लिखा है, कि ईसा-जन्मसे छः सौ वर्ष पहले पाणिनि आविर्भूत हुए थे। गोल्डष्टुकरके मतसे ईसा जन्मसे पूर्व ७वीं सदीमें पाणिनि जीवित थे। गोल्डष्टुकरके मतको भी असमीचीन बता कर पण्डितसमाजने ग्रहण नहीं किया है। १८८५ ई०में अध्यापक पिशेल (Prof. Picsell)ने पाणिनिके कालसम्बन्धमें जो अभिप्राय प्रकट किया है उससे जाना जाता है, कि पाणिनि ईसा जन्मसे ६ सौ वर्ष पहलेके आदमी हैं। वैयाकरण पाणिनि जैसे एक दूसरे कवि पाणिनिका नाम भी सुना जाता है। ग्रियरसन और अफ्रेकट कवि और वैयाकरण पाणिनिको एक ही व्यक्ति बताते हैं।

१८६० ई०में सिलभेन लेभी (Sylven Levi)ने पाणिनिके सम्बन्धमें एक प्रबन्ध लिख कर कहा है, कि आभिम, सौभूता और अगता गणपाठमें ये तीन नाम देखे जाते हैं। ग्रीक भाषामें भी Omphis, Sophytes और Phyceing ये तीन शब्द हैं। पाणिनिने सम्भवतः ग्रीकोंसे ही ये तीनों शब्द ग्रहण किये हैं। यह कल्पनाका ही एक विचित्र खेल है।

डाक्टर लिबिक (Liebich)का कहना है, कि पाणिनि ईसा जन्मसे ३०० वर्ष पहले जीवित थे। ये कहते हैं, कि भगवद्गीता पाणिनिके पीछे रची गई, परन्तु ब्राह्मण और बृहदारण्यक पाणिनिके पूर्ववर्त्ती हैं।

तिब्बतीय लामा तारनाथने अपने बौद्धधर्मके इतिहासमें लिखा है, कि पाणिनि शौवाङ्गराजके अधीन रहते थे। उनके मतसे ख्रृ० पू० ५०० अब्दमें पाणिनि आविर्भूत हुए थे। यह सिद्धान्त प्रायः सर्वसम्मत है। सम्भवतः इसके भी बहुत पहले इन वैयाकरण-केशरीका प्रादुर्भाव हुआ था। जो हो, इस सम्बन्धमें ऐतिहासिक विशिष्ट प्रमाण दुर्लभ है। अनुमान द्वारा सूक्ष्मरूपसे कालनिर्णयके दुष्प्रयाससे कोई भी फल नहीं।

अन्यान्य विवरण पाणिनि शब्दमें देखो।

व्याड़ि।

पाणिनिके बाद व्याड़ि नामक एक वैयाकरणका नामोल्लेख देखनेमें आता है। नागेश भट्टने लिखा है, "संग्रहो व्याड़िकृतलक्षश्लोकग्रन्थ इति प्रसिद्धः" महाभाष्यकारने व्याड़िको पाणिनिके परवर्त्ती वैयाकरण बताया है। यथा—

"आपिशल-पाणिनीय-व्याड़ीय गौतमीया एवं पदं वर्जयित्वा सर्वाणि पूर्वपदानि, तत्र न ज्ञायते कस्य पूर्वपदस्य स्वरेण भवितव्यमिति (६।२।३६) महाभाष्यकारने वार्त्तिककारके 'अव्यहितञ्च' (२।२।३४) इस सूत्रानुसार पतञ्जलि, आपिशलि आदिको सबने अपने आचार्यका पौर्वापर्यमूलक स्थिर किया है।

यास्क।

निरुक्तकार यास्क किसीके मतसे पाणिनिके पूर्ववर्त्ती और किसीके मतसे उनके परवर्त्ती हैं। इस विषयका विचार पाणिनि शब्दमें किया गया है।

कात्यायन।

पाणिनीय सूत्रके वार्त्तिककार कात्यायन महाभाष्यके पूर्ववर्त्ती हैं। कोई कोई कहते हैं, कि पाणिनीय व्याकरणके वार्त्तिककार पाणिनीयके समसामयिक तथा एक देशवासी थे तथा इन्होंने वाजसनेय-प्रातिशाख्यकी रचना की। कैयट और नागोजीभट्टका कहना है, कि ये कात्यायन भ्राजा नामक श्लोकके प्रणेता हैं। यथा—

"कः पुनरिदं पठितम्। भ्राजा नामश्लोकाः। कात्यायनोपनिबद्धभ्राजाख्यश्लोकमध्यपठितस्य स्वस्य श्रुतिरनुग्राहिकास्ति। एकः शब्दः सुज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुग् भवति।" नागोजीभट्ट कहते हैं—"भ्राजा नाम कात्यायनप्रणीताः श्लोकाः इत्याहुः।"

पाणिनिसूत्रोंका अर्थ और तात्पर्य परिस्फुट करनेके लिये कात्यायनने वार्त्तिककी रचना की। ये वार्त्तिक भी सूत्रकी तरह हैं। किन्तु भ्राजाश्लोक अनुष्टुप छन्दमें रचे गये हैं। कात्यायनरचित कर्मप्रदीप ग्रन्थ भी अनुष्टुप छन्दमें लिखा गया है। षड्गुरु शिष्यका कहना है, कि कर्मप्रदीप ग्रन्थ कात्यायनका लिखा है। कथासरित्सागरमें कात्यायनके विषयमें एक गल्प इस तरह है—पार्वतीके शापसे परमहंसकी राजधानी कौशाम्बीमें

कप्पेलरके मतसे काव्यालङ्कारवृत्तिकार वामन १२वीं सदीके आदमी हैं।

यहां एक बात सोचनेकी है। काशिकावृत्ति क्या वामन और जयादित्य नामक दो पृथक् व्यक्तिकी रचित है अथवा वामनजयादित्य नामक किसी एक की ? कोलब्रुकके मतसे वामनजयादित्य एक व्यक्ति हैं। काशीवासी सुविख्यात बालशास्त्रीने 'पण्डित' पत्रके १८७८ ई०के जुनमासकी संख्याके २०वें पृष्ठमें लिखा था, काशिकावृत्ति वामनजयादित्य नामक एक व्यक्तिकी रची हुई है। आज उनके इस अभिप्रायका परिवर्त्तन हुआ है। उन्होंने कहा है, कि काशिकावृत्ति वामन और जयादित्य नामक दो व्यक्तिको रचित है। इस प्रकार मतपरिवर्त्तनका विशेष कारण है। भट्टोजी-दीक्षित-प्रणीत सिद्धान्तकौमुदीकी प्रौढ़मनोरमा नामकी टीकामें तद्धितप्रकरणके "बहुलार्थात्" इस सूत्रकी व्याख्यामें लिखा है "एतत् सर्वं जयादित्यमतेनोक्तं वामनस्तु मन्यते इति"। इससे स्पष्ट जाना जाता है, कि जयादित्य और वामन ये दोनों ही काशिकावृत्तिकार हैं। प्रथम, द्वितीय, पञ्चम और षष्ठ अध्यायमें वामनकृतवृत्ति, अपरांश जयादित्यकृत है।

डाक्टर बुलरने काश्मीरमें जो हस्तलिखित काशिकावृत्ति पाई थी उसमें लिखा था, कि आदिके चार अध्याय जयादित्यके और अन्तके चार वामनके रचित हैं। शब्दकौस्तुभ और मनोरमामें लिखा है—

"वोपदेवमहाग्राहग्रस्तो वामनदिग्गजः।
कीर्त्तेरेव प्रसङ्गेन माधवेन विमोचितः॥"

इससे स्पष्ट जाना जाता है, कि काशिकाकार वामन वेदार्थप्रकाशक माधवके तथा माधवसे प्राचीन वोपदेवके भी पूर्ववर्त्ती हैं। किन्तु मेक्समूलरका कहना है, कि ऋग्भाष्यमें माधवने कहीं भी वोपदेवका नामोल्लेख नहीं किया है। सायणधातुवृत्तिमें भी वामनका नामोल्लेख है। १३४० अब्दमें माधव आविर्भूत हुए थे। १२वीं सदीमें वोपदेव वर्त्तमान थे ऐसा जाना जाता है। इससे साबित होता है, कि वामन १२वीं सदीके पहलेके आदमी हैं। सायणने हरदत्त और न्यासकारका नामोल्लेख किया है। ये हरदत्त 'पदमञ्जरी' नामक काशिकावृत्तिके व्याख्याकार और न्यासकार काशिकावृत्तिके पञ्जीप्रणेता है।

वोपदेवकृत 'काव्यकामधेनु' नामक व्याकरणमें काशिकावृत्तिपञ्जिकाकी बातें उद्धृत हुई हैं।

इन सब प्रमाणोंकी आलोचना करनेसे यह कहा जा सकता है, कि काशिकाकार अवश्य ही १२वीं सदीके पहलेके आदमी थे। किन्तु इनके ठीक ठीक समयका पता लगाना बहुत कठिन है।

यहां एक और प्रश्न यह होता है, कि वामन और जयादित्य किस धर्मके माननेवाले थे? ये हिन्दू थे, या बौद्ध अथवा जैन। हिन्दूगण ग्रन्थके प्रारंभमें आशीर्नम-स्कारादिका उल्लेख करते हैं, किन्तु काशिकावृत्तिमें वैसा नहीं देखा जाता। बालशास्त्रीने प्रमाणित किया है, काशिकावृत्तिके दोनों ग्रन्थकार हिन्दू नहीं थे। इन लोगोंके समय जैन बौद्ध व्याकरणका यथेष्ट प्रचार था, जैसे न्यासकार जिनेन्द्रबुद्ध आदिके ग्रन्थ। इसके बाद हिन्दूवैयाकरणोंका प्रादुर्भाव हुआ। उस समय हम भट्टोजी दीक्षित, हरिदीक्षित और नागेशभट्ट आदिके नाम सुनते हैं। वामन और जयादित्य ये दोनों ही बौद्ध थे, यही बहुतोंकी धारणा है।

सुविख्यात चीन परिव्राजक इत्सिंगने इस सम्बन्धमें जो कहा है वह भी आलोच्य है। ६३५ ई०में चीनदेशमें इत्सिंगका जन्म हुआ। इन्होंने ६७१ ई०में भारतकी और ६७२ ई०में ताम्रलुककी यात्रा की।

अनन्तर नालन्दा-विहारमें आ कर इन्होंने बहुत-सी विद्या सीखी थी। ६९५ ई०में ये फिर चीनदेशको लौटे। ७१३ ई०में इनकी मृत्यु हुई। इनके भ्रमणवृत्तान्तमें भारतवर्षके अनेक तथ्य लिपिबद्ध हैं। इनके ग्रन्थके ३४वें अध्यायमें भारतीय शिक्षापद्धतिके सम्बन्धमें विविध आलोचना देखी जाती है। शब्दविद्याके सम्बन्धमें आप अनेक विषय लिख गये हैं।

इन्होंने लिखा है—छः वर्षका बालक पहले मूल-सिद्धान्त पढ़ता था। 'सिद्धिरस्तु' ही मूल सिद्धान्त था। मूलसिद्धान्त वर्णपरिचय नामसे अभिहित हो सकता है। छः महीनेमें यह पढ़ना समाप्त होता था। इत्सिंगका कहना है, कि यही माहेश्वरसूत्र है। किन्तु उन्होंने

कप्पेलरके मतसे काव्यालङ्कारवृत्तिकार वामन १२वीं सदीके आदमी हैं।

यहां एक बात सोचनेकी है। काशिकावृत्ति क्या वामन और जयादित्य नामक दो पृथक् व्यक्तिकी रचित है अथवा वामनजयादित्य नामक किसी एक की? कोलब्रुकके मतसे वामनजयादित्य एक व्यक्ति है। काशीवासी सुविख्यात बालशास्त्रीने 'पण्डित' पत्रके १८७८ ई०के जूनमासकी संख्याके २०वें पृष्ठमें लिखा था, काशिकावृत्ति वामनजयादित्य नामक एक व्यक्तिकी रची हुई है। आज उनके इस अभिप्रायका परिवर्त्तन हुआ है। उन्होंने कहा है, कि काशिकावृत्ति वामन और जयादित्य नामक दो व्यक्तिकी रचित है। इस प्रकार मत-परिवर्त्तनका विशेष कारण है। भट्टोजी-दीक्षित-प्रणीत सिद्धान्तकौमुदीकी प्रौढ़मनोरमा नामनी टीकामें तद्धितप्रकरणके "वहलार्थात्" इस सूत्रकी व्याख्यामें लिखा है "एतत् सर्वं जयादित्यमतेनोक्तं वामनस्तु मन्यते इति"। इससे स्पष्ट जाना जाता है, कि जयादित्य और वामन ये दोनों ही काशिकावृत्तिकार हैं। प्रथम, द्वितीय, पञ्चम और षष्ठ अध्यायमें वामनकृतवृत्ति, अपरांश जयादित्यकृत है।

डाक्टर बुलरने काश्मीरमें जो हस्तलिखित काशिकावृत्ति पाई थी उसमें लिखा था, कि आदिके चार अध्याय जयादित्यके और अन्तके चार वामनके रचित हैं। शब्दकौस्तुभ और मनोरमामें लिखा है—

"वोपदेवमहाग्राहग्रस्तो वामनदिग्गजः।
कीर्त्तेरेव प्रसङ्गेन माधवेन विमोचितः॥"

इससे स्पष्ट जाना जाता है, कि काशिकाकार वामन वेदार्थप्रकाशक माधवके तथा माधवसे प्राचीन वोपदेवके भी पूर्ववर्त्ती हैं। किन्तु मैक्समूलरका कहना है, कि ऋग्भाष्यमें माधवने कहीं भी वोपदेवका नामोल्लेख नहीं किया है। सायणधातुवृत्तिमें भी वामनका नामोल्लेख है। १३४० अब्दमें माधव आविर्भूत हुए थे। १२वीं सदीमें वोपदेव वर्त्तमान थे ऐसा जाना जाता है। इससे साबित होता है, कि वामन १२वीं सदीके पहलेके आदमी हैं। सायणने हरदत्त और न्यासकारका नामोल्लेख किया है। ये हरदत्त 'पदमञ्जरी' नामक काशिकावृत्तिके व्याख्याकार और न्यासकार काशिकावृत्तिके पञ्जीप्रणेता हैं।

वोपदेवकृत 'काव्यकामधेनु' नामक व्याकरणमें काशिकावृत्तिपञ्जिकाकी बातें उद्धृत हुई हैं।

इन सब प्रमाणोंकी आलोचना करनेसे यह कहा जा सकता है, कि काशिकाकार अवश्य ही १२वीं सदीके पहलेके आदमी थे। किन्तु इनके ठीक ठीक समयका पता लगाना बहुत कठिन है।

यहां एक और प्रश्न यह होता है, कि वामन और जयादित्य किस धर्मके माननेवाले थे? ये हिन्दू थे, या बौद्ध अथवा जैन। हिन्दूगण ग्रन्थके प्रारंभमें आशीर्नमस्कारादिका उल्लेख करते हैं, किन्तु काशिकावृत्तिमें वैसा नहीं देखा जाता। बालशास्त्रीने प्रमाणित किया है, काशिकावृत्तिके दोनों ग्रन्थकार हिन्दू नहीं थे। इन लोगोंके समय जैन बौद्ध व्याकरणका यथेष्ट प्रचार था, जैसे न्यासकार जिनेन्द्रबुद्ध आदिके ग्रन्थ। इसके बाद हिन्दूवैयाकरणोंका प्रादुर्भाव हुआ। उस समय हम भट्टोजी दीक्षित, हरिदीक्षित और नागेशभट्ट आदिके नाम सुनते हैं। वामन और जयादित्य ये दोनों ही बौद्ध थे, यही बहुतोंकी धारणा है।

सुविख्यात चीन परिव्राजक इत्सिंगने इस सम्बन्धमें जो कहा है वह भी आलोच्य है। ६३५ ई०में चीनदेशमें इत्सिंगका जन्म हुआ। इन्होंने ६७१ ई०में भारतकी और ६७३ ई०में तमलुककी यात्रा की।

अनन्तर नालन्दा-विहारमें आ कर इन्होंने बहुत सी विद्या सीखी थी। ६९५ ई०में ये फिर चीनदेशको लौटे। ७१३ ई०में इनकी मृत्यु हुई। इनके भ्रमणवृत्तान्तमें भारतवर्षके अनेक तथ्य लिपिबद्ध हैं। इनके ग्रन्थके ३४वें अध्यायमें भारतीय शिक्षापद्धतिके सम्बन्धमें विविध आलोचना देखी जाती है। शब्दविद्याके सम्बन्धमें आप अनेक विषय लिख गये हैं।

इन्होंने लिखा है—छः वर्षका बालक पहले मूलसिद्धान्त, पढ़ता था। 'सिद्धिरस्तु' ही मूल सिद्धान्त था। मूलसिद्धान्त वर्णपरिचय नामसे अभिहित हो सकता है। छः महीनेमें यह पढ़ना समाप्त होता था। इत्सिंगका कहना है, कि यही माहेश्वरसूत्र है। किन्तु उन्होंने

१९। तत्त्वबोधिनी—ज्ञानेन्द्र सरस्वती कृत। यह ग्रन्थ भट्टोजी दीक्षित कृत सिद्धान्तकौमुदीटीका है।

२०। शब्देन्दुशेखर—यह भी प्रागुक्त ग्रंथकी संक्षिप्त टीका है।

२१। लघुशब्देन्दुशेखर—यह भी प्रागुक्त ग्रंथकी संक्षिप्त टीका है।

२२। चिदस्थि माला—वैद्यनाथ पायगुण्ड विरचित। यह लघुशब्देन्दु शेखरकी टीका है।

२३। शब्दरत्न—हरिदीक्षित प्रणीत। नागोजी भट्टने मनोरमाकी जो टीका लिखी वही उनकी व्याख्या है।

२४। लघु शब्दरत्न—उक्त ग्रन्थका संक्षेप।

२५। भावप्रकाशिका—वैद्यनाथ पायगुण्ड प्रणीत। यह ग्रन्थ हरिदीक्षितके प्रणीत शब्दरत्नकी टीका है।

२६। मध्यकौमुदी—वरदराजकृत, सिद्धान्तकौमुदी-का संक्षेप करके वरदराजने इस ग्रन्थका प्रचार किया। इनका लिखा हुआ लघुकौमुदी ग्रन्थ भी है।

२७। परिभाषा—पाणिनिसूत्रव्याख्यार्थ वार्त्तिक और महाभाष्यसे उद्धृत नियमवचन।

२८। परिभाषावृत्ति—शिवदेव प्रणीत उपर्युक्त ग्रन्थकी टीका।

२९। लघु परिभाषावृत्ति—भास्करभट्ट प्रणीत उपर्युक्त परिभाषाग्रन्थकी संक्षिप्त टीका।

३०। परिभाषा ग्रन्थकी टीका।

३१। चन्द्रिका—स्वामी प्रकाशानन्द प्रणीत परिभाषार्थसंग्रह ग्रन्थकी व्याख्या।

३२। परिभाषेन्दुशेखर—नागेश भट्टकृत परिभाषा-ग्रन्थकी व्याख्या।

३३। परिभाषेन्दु शेखरकाशिका—वैद्यनाथ पायगुण्डकृत।

३४। कारिका—महाभाष्य और काशिकामें जो नियमश्लोक हैं, यह उन्हीं श्लोकोंका संग्रह ग्रन्थ है।

३५। वाक्यप्रदीप या वाक्पदीय—भर्तृहरि प्रणीत। इसका दूसरा नाम हरिकारिका है।

३६। व्याकरणभूषण—कोण्डभट्ट प्रणीत। यह ग्रन्थ भी वाक्पदीयकी तरह संस्कृत व्याकरणका दार्शनिक ग्रन्थ है।

३७। भूषणसारदर्पण—हरिवल्लभ प्रणीत व्याकरण भूषण ग्रन्थकी टीका।

३८। व्याकरणभूषणसार—व्याकरणभूषणकी टीका।

३९। व्याकरणसिद्धान्तमञ्जुषा—नागेश भट्ट रचित। यह ग्रंथ भी भर्तृहरिके वाक्पदीयकी तरह है।

४०। लघुभूषणकान्ति—वैद्यनाथ पायगुण्ड प्रणीत।

४१। लघु व्याकरणसिद्धांतमञ्जुषा।

४२। कला—वैद्यनाथ पायगुण्ड प्रणीत। यह लघु व्याकरणसिद्धांतमञ्जुषाकी टीका है।

४३। गणपाठ।

४४। गणरत्नमहोदधि सटीक।

४५। पाणिनि-धातुपाठ।

४६। धातुप्रदीप या तन्त्रप्रदीप मैत्रेय रक्षित कृत। इसमें उदाहरण और धातुरूपका उदाहरण दिया गया है।

४७। माधवीय वृत्ति—सायणाचार्य प्रणीत।

४८। पद्यचन्द्रिका—एक व्याकरण। इसमें पाणिनि-सूत्र यथेष्ट उद्धृत हुआ है।

पाणिनीय सूत्रके आधार पर ऐसे और भी अनेक ग्रन्थ हैं। इनके सिवा तर्कशास्त्रके साथ सम्बन्ध रखनेवाले और भी कितने व्याकरण देखे जाते हैं। ये सब ग्रन्थ व्याकरणशास्त्रके दर्शन नामसे पुकारे जा सकते हैं। नीचे और भी कई व्याकरणोंके नाम लिखे जाते हैं—

४९। सारस्वतप्रक्रिया—अनुभूति स्वरूपाचार्य प्रणीत। इसमें सात सौ सूत्र हैं। ग्रंथकारने यह व्याकरण सरस्वती देवीके प्रसादसे प्राप्त किया था, ऐसा प्रवाद प्रचलित है। भारतवर्षमें इस व्याकरणका अधिक प्रचार है। इस व्याकरणके तीन टीकाग्रंथ देखनेमें आते हैं—एक पुञ्जराजकृत और बाकी महाभट्ट-प्रणीत है। इसके सिवा सिद्धान्तचन्द्रिका नामकी भी इसकी एक टीका है।

५०। शब्दानुशासन या हैम व्याकरण—जैनाचार्य हेमचन्द्र सूरि द्वारा प्रणीत। जैन लोग इस व्याकरणको बड़े आदरसे पढ़ते हैं। कामधेनु नामक व्याकरण ग्रंथमें अभिनव शाकटायन रचित एक और शब्दानुशासन ग्रन्थका नाम देखनेमें आता है।

लिखा है, कि सूत्रनिकायमें ४६ वर्ण, दश हजारसे ऊपर शब्द और ३०० श्लोक हैं। प्रति श्लोकमें ३२ अक्षर हैं।

द्वितीय व्याकरण ग्रन्थ पाणिनिसूत्र इसमें १०० सूत्र हैं। बालक अष्टम वर्षमें इस ग्रन्थका पढ़ना आरम्भ करते और आठ मासमें समाप्त करते थे।

तृतीय व्याकरण पुस्तक—धातु। इसमें १००० सूत्र हैं।

चतुर्थ ग्रन्थ—तीन भागोंमें विभक्त है—

(१) धातु, (२) मण्डा और (३) उणादि। दश वर्षकी उमरसे आरम्भ करके तीन वर्षके भीतर यह ग्रन्थ समाप्त किया जाता था।

पञ्चम ग्रन्थ—पाणिनिसूत्रवृत्ति। इत्सिंग कहता है, कि यह वृत्ति ग्रन्थ अनेक व्याख्यासे श्रेष्ठ है। *इस ग्रन्थके कर्त्ता जयादित्य हैं।* इनकी प्रतिभा बड़ी ही तीक्ष्ण थी। इससे साबित होता है, कि ६६० ई० के पहले जयादित्य वर्त्तमान थे।

इत्सिंगने वामनका नामोल्लेख नहीं किया है। इत्सिंगके मतमें जयादित्य ७वीं सदीके आदमी हैं। किन्तु राजतरङ्गिणीके मतसे वामन राजा जयापीड़के सभापण्डित थे। जयापीड़ ८वीं सदीके मध्यभाग तक जीवित थे, इससे दोनों ग्रन्थकारके समयमें सौ वर्षका अन्तर दिखाई देता है। इसलिये इसकी अच्छी मीमांसा नहीं हुई। पर हां, इसमें सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है, कि काशिकावृत्ति ८वीं सदीके पीछे और ७वीं सदीके पहले रची नहीं गई। इस समयके भीतर किसी भी समय काशिकावृत्ति रची गई होगी।

नीचे पाणिनिसे लेकर कुछ संस्कृत व्याकरण और उनकी टीकाका नामोल्लेख किया जाता है—

१। पाणिनीय सूत्र—यह अष्टाध्यायी नामसे भी परिचित है।

२। अष्टाध्यायीका वार्त्तिक-कात्यायन-प्रणीत।

३। पाणिनीय सूत्रका महाभाष्य—पतञ्जली मुनिप्रणीत।

४। महाभाष्यप्रदीप—कैयटप्रणीत—महाभाष्यकी टीका।

५। भाष्यप्रदीपोद्योत—नागोजी भट्ट प्रणीत कैयट प्रणीत महाभाष्यप्रदीपकी टीका।

६। काशिकावृत्ति—वामन जयादित्य प्रणीत—पाणिनीय सूत्रकी वृत्ति।

७। पदमञ्जरी—हरिदत्तप्रणीत काशिकावृत्तिकी टीका।

८। न्यास या काशिकावृत्तिपञ्जिका-जिनेन्द्रकृत। (रक्षितकृत इसकी टीका है।)

९। वृत्ति-संग्रह—नागोजीभट्टप्रणीत पाणिनिसूत्रकी संक्षिप्त टीका।

१०। भाषावृत्ति—पुरुषोत्तम-प्रणीत—वैदिक व्याकरणके अंशको छोड़ कर पाणिनीय सूत्रकी टीका।

११। *भाषावृत्त्यर्थविवृति—सृष्टिधर-प्रणीत; (पुरुषोत्तम प्रणीत टीकाकी व्याख्या)*

१२। *शब्दकौस्तुभ—भट्टोजी दीक्षित प्रणीत—*पाणिनीय सूत्रकी व्याख्या।

१३। प्रभा—वैद्यनाथ पायगुण्ड उर्फ बालम्भट्ट प्रणीत।

१४। प्रक्रियाकौमुदी—रामचंद्र आचार्य प्रणीत, यह पाणिनिके सूत्रावलम्बन पर रचित व्याकरण है। किंतु पाणिनिसूत्रकी प्रणाली इस ग्रंथमें परिवर्त्तित हुई है।

१५। प्रसाद—विट्ठल आचार्य प्रणीत प्रक्रियाकौमुदीकी टीका।

१६। तत्त्वचन्द्र—जयंत रचित, यह भी प्रक्रियाकौमुदीकी टीका है। कृष्ण पण्डित नामक एक पण्डितने भी प्रक्रिया कौमुदीका एक संक्षिप्त टीकाग्रंथ प्रणयन किया।

१७। *सिद्धान्तकौमुदी*—भट्टोजी दीक्षित कृत यह ग्रंथ भी प्रक्रियाकौमुदीकी प्रणालीसे लिखा गया है। किंतु प्रक्रियाकौमुदीकी प्रणालीकी अपेक्षा यह ग्रंथ अधिकतर विशुद्ध और सम्पूर्ण है। वर्त्तमान कालमें सब जगह पाणिनीय अष्टाध्यायीके पठन कार्यके सहायकके कारण इसका आदर हुआ है।

१८। *प्रौढ़मनोरमा—भट्टोजी दीक्षित कृत।* यह सिद्धान्तकौमुदीकी ही टीका है।

१६। तत्त्वबोधिनी—ज्ञानेन्द्र सरस्वती कृत। यह ग्रन्थ भट्टोजी दीक्षित कृत सिद्धान्तकौमुदीटीका है।

२०। शब्देन्दुशेखर—यह भी प्रागुक्त ग्रंथकी संक्षिप्त टीका है।

२१। लघुशब्देन्दुशेखर—यह भी प्रागुक्त ग्रंथकी संक्षिप्त टीका है।

२२। चिद्‌हि माला—वैद्यनाथ पायगुण्ड विरचित। यह लघुशब्देन्दुशेखरकी टीका है।

२३। शब्दरत्न—हरिदीक्षित प्रणीत। नागोजी भट्टने मनोरमाकी जो टीका लिखी वही उनकी व्याख्या है।

२४। लघु शब्दरत्न—उक्त ग्रन्थका संक्षेप।

२५। भावप्रकाशिका—वैद्यनाथ पायगुण्ड प्रणीत। यह ग्रन्थ हरिदीक्षितके प्रणीत शब्दरत्नकी टीका है।

२६। मध्यकौमुदी—वरदराजकृत, सिद्धान्तकौमुदीका संक्षेप करके वरदराजने इस ग्रन्थका प्रचार किया। इनका लिखा हुआ लघुकौमुदी ग्रन्थ भी है।

२७। परिभाषा—पाणिनिसूत्रव्याख्यार्थ वार्त्तिक और महाभाष्यमें उद्धृत नियमवचन।

२८। परिभाषावृत्ति—शिवदेव प्रणीत उपर्युक्त ग्रन्थकी टीका।

२९। लघु परिभाषावृत्ति—भास्करभट्ट प्रणीत उपर्युक्त परिभाषाग्रन्थकी संक्षिप्त टीका।

३०। परिभाषा ग्रन्थकी टीका।

३१। चन्द्रिका—स्वामी प्रकाशानन्द प्रणीत परिभाषार्थसंग्रह ग्रन्थकी व्याख्या।

३२। परिभाषेन्दुशेखर—नागेश भट्टकृत परिभाषाग्रन्थकी व्याख्या।

३३। परिभाषेन्दु शेखरकाशिका—वैद्यनाथ पायगुण्डकृत।

३४। कारिका—महाभाष्य और काशिकामें जो नियमश्लोक है, यह उन्हीं श्लोकोंका संग्रह ग्रन्थ है।

३५। वाक्यप्रदीप या वाक्यपदीय—भर्तृहरि प्रणीत। इसका दूसरा नाम हरिकारिका है।

३६। व्याकरणभूषण—कोण्डभट्ट प्रणीत। यह ग्रन्थ भी वाक्यपदीयकी तरह संस्कृत व्याकरणका दार्शनिक ग्रन्थ है।

३७। भूषणसारदर्पण—हरिवल्लभ प्रणीत व्याकरण भूषण ग्रन्थकी टीका।

३८। व्याकरणभूषणसार—व्याकरणभूषणकी टीका।

३९। व्याकरणसिद्धान्तमञ्जुषा—नागेश भट्ट रचित। यह ग्रंथ भी भर्तृहरिके वाक्यपदीयकी तरह है।

४०। लघुभूषणकान्ति—वैद्यनाथ पायगुण्ड प्रणीत।

४१। लघु व्याकरणसिद्धांतमञ्जुषा।

४२। कला—वैद्यनाथ पायगुण्ड प्रणीत। यह लघु व्याकरणसिद्धांतमञ्जुषाकी टीका है।

४३। गणपाठ।

४४। गणरत्नमहोदधि सटीक।

४५। पाणिनि धातुपाठ।

४६। धातुप्रदीप या तत्त्वप्रदीप मैत्रेय रक्षित कृत। इसमें उदाहरण और धातुरूपका उदाहरण दिया गया है।

४७। माधवीय वृत्ति—सायणाचार्य प्रणीत।

४८। पदचन्द्रिका—एक व्याकरण। इसमें पाणिनि-सूत्र यथेष्ट उद्धृत हुआ है।

पाणिनीय सूत्रके आधार पर ऐसे और भी अनेक ग्रन्थ हैं। इनके सिवा सर्वशास्त्रके साथ सम्बन्ध रखनेवाले और भी कितने व्याकरण देखे जाते हैं। ये सब ग्रन्थ व्याकरणशास्त्रके दर्शन नामसे पुकारे जा सकते हैं। नीचे और भी कई व्याकरणोंके नाम लिखे जाते हैं—

४९। सारस्वतीप्रक्रिया—अनुभूति स्वरूपाचार्य प्रणीत। इसमें सात सौ सूत्र हैं। ग्रंथकारने यह व्याकरण सरस्वती देवीके प्रसादसे प्राप्त किया था, ऐसा प्रवाद प्रचलित है। भारतवर्षमें इस व्याकरणका अधिक प्रचार है। इस व्याकरणके तीन टीकाग्रंथ देखनेमें आते हैं—एक पुञ्जराजकृत और बाकी महानन्द-प्रणीत है। इसके सिवा सिद्धान्तचन्द्रिका नामकी भी इसकी एक टीका है।

५०। शब्दानुशासन या हैम व्याकरण—जैनाचार्य हेमचन्द्र सूरि द्वारा प्रणीत। जैन लोग इस व्याकरणको बड़े आदरसे पढ़ते हैं। कामधेनु नामक व्याकरण ग्रंथमें अभिनव शाकटायन रचित एक और शब्दानुशासन ग्रन्थका नाम देखनेमें आता है।

५१। प्राकृत मनोरमा—वररुचि प्रणीत प्राकृत-मञ्जरिका ग्रन्थकी संक्षिप्त टीका। इसमें प्राकृत और संस्कृत व्याकरणका पार्थक्य दिखलाया गया है।

५२। कलापव्याकरण—इस व्याकरणका बङ्गदेशमें बहुत प्रचार है। इसका दूसरा नाम कातन्त्रव्याकरण है।

५३। दौर्गसिंही—दुर्गासिंह प्रणीत कलापव्याकरणकी टीका।

५४। कातन्त्रवृत्तिटीका—दुर्गासिंह कृत।

५५। कातन्त्रविस्तार—वर्द्धमान मिश्रकृत।

५६। कातन्त्रपञ्जिका—कलापव्याकरणकी टीका, त्रिलोचन दास प्रणीत।

५७। कलापतत्त्वार्णव—रघुनन्दन आचार्यशिरोमणि कृत।

५८। कातन्त्रचन्द्रिका—कलापटीका।

५९। चैत्रकुटि—वररुचिकृत कलापटीका।

६०। व्याख्यासार—हरिराम चक्रवर्तिकृत कलापटीका।

६१। व्याख्यासार—रामदासकृत कलापटीका।

६२। कलापटीका—सुषेण कविराजकृत।

६३। „ रमानाथकृत।

६४। „ उमापतिकृत।

६५। „ कुलचन्द्रकृत।

६६। „ मुरारिकृत।

६७। „ विद्यासागरकृत।

६८। कातन्त्रपरिशिष्ट—श्रीपतिदत्तकृत।

६९। परिशिष्टप्रबोध—गोपीनाथकृत कातन्त्रपरिशिष्टका।

७०। परिशिष्टसिद्धान्तरत्नाकर—शिवराम चक्रवर्तिकृत कातन्त्रपरिशिष्टटीका।

७१। कातन्त्रगणधातु।

७२। मनोरमा—रमानाथकृत कातन्त्रगणधातुकी टीका।

७३। कातन्त्रषट्कारक—महेशचन्द्रकृत।

७४। कातन्त्रउणादिवृत्ति—शिवराम प्रणीत।

७५। कातन्त्रगुणप्रदीप।

७६। कातन्त्र धातुघोष।

७७। कातन्त्रशब्दमाला।

इनके सिवा कलापसूत्र और उसकी वृत्ति आदिके आधार पर और भी अनेक ग्रन्थ देखे जाते हैं।

७८। संक्षिप्तसार व्याकरण—क्रमदीश्वर प्रणीत। यह व्याकरण जुमारनन्दी द्वारा प्रतिसंस्कृत है। इस कारण इसका दूसरा नाम जौमार भी है।

७९। संक्षिप्तसारव्याकरणटीका—गोयीचन्द्रकृत।

८०। व्याकरणदीपिका—न्यायपञ्चाननकृत। यह ग्रन्थ गोयीचन्द्रकी संक्षिप्तसारव्याकरणटीकाकी व्याख्या है।

८१। दुर्घटघटना—संक्षिप्तसार व्याकरणकी टीका।

संक्षिप्तसारव्याकरणग्रन्थके आधार पर भी अनेक व्याकरण ग्रन्थ और टीका व्याख्या ग्रन्थ दिखाई देते हैं। गोपालचक्रवर्त्ती आदिने और भी इसकी बहुत-सी टीकाएँ लिखी हैं। इस व्याकरणके आधार पर शब्दघोष और धातुघोष आदि नामका अनेक व्याकरणनिबन्ध हैं। यह व्याकरण बङ्गालके वर्द्धमान अञ्चलमें प्रचलित है।

८२। मुग्धबोध—बोपदेवकृत। यह व्याकरण भी बङ्गदेशमें पढ़ा जाता है। ग्रन्थकारने स्वयं इसकी वृत्ति की है।

८३। सुबोधिनी—दुर्गादासकृत मुग्धबोधटीका।

८४। छाया—मिश्रकृत मुग्धबोध टीका।

८५। मुग्धबोध टीका—रामानन्दकृत।

८६। „ रामतर्कवागीशकृत।

८७। „ मधुसूदनकृत।

८८। „ देविदासकृत।

८९। „ रामभद्रकृत।

९०। „ रामप्रसाद तर्कवागीशकृत।

९१। „ श्रीवल्लभाचार्यकृत।

९२। „ दयाराम वाचस्पतिकृत।

९३। „ भोलानाथकृत।

९४। „ कार्त्तिकविद्यानन्दकृत।

९५। „ रतिकान्त तर्कवागीशकृत।

९६। मुग्धबोधटीका गोविन्दरामकृत।

इनके अतिरिक्त मुग्धबोध व्याकरणकी और भी अनेक टीकाएं हैं।

९७। मुग्धबोध परिशिष्ट—काशीश्वरकृत।

९८। „ नन्दीकेश्वरकृत।

९९। कविकल्पद्रुम—यह वोपदेवकृत गणपाठ।

१००। कामधेनु—वोपदेवकृत धातुपाठ और धात्वर्थ।

१०१। धातुदीपिका—दुर्गादासकृत।

१०२। कविकल्पद्रुमव्याख्या—रामन्यायालङ्कारकृत। रामन्यायालङ्कारने कविकल्पद्रुमकी और भी एक व्याख्या की है।

१०३। धातुरत्नावली—राधाकृष्ण प्रणीत।

१०४। कविरहस्य—हलायुधकृत। इसमें साधारण साधारण क्रियाके उदाहरण दिखलाये गये हैं। इस ग्रन्थकी एक टीका भी है।

उल्लिखित ग्रन्थ मुग्धबोधके आधार पर रचे गये हैं।

१०५। सुपद्मव्याकरण—महामहोपाध्याय पद्मनाभ दत्त प्रणीत। यशोर आदि अञ्चलोंमें यह व्याकरण पढ़ा जाता है।

१०६। मकरन्द—विष्णुमिश्रकृत सुपद्मव्याकरण-टीका।

१०७। सुपद्मव्याकरणटीका—कन्दर्पसिद्धान्त।

१०८। „ काशीश्वर।

१०९। „ श्रीधरचक्रवर्त्ती।

११०। „ रामचन्द्र।

इनके अलावा इस व्याकरणकी और भी एक टीका है।

१११। सुपद्मपरिशिष्ट।

११२। सुपद्मधातुपाठ—पद्मनाभदत्त प्रणीत। इसमें सुपद्मव्याकरणकी परिभाषा और उणादिवृत्ति भी है।

११३। काशीश्वरगण—काशीश्वर प्रणीत।

११४। काशीश्वरगणटीका—रामकान्तप्रणीत।

११५। रत्नमालाव्याकरण—पुरुषोत्तम प्रणीत। यह कामरूप और कोचविहार अञ्चलमें पढ़ा जाता है। इसकी भी तीन टीका हैं।

११६। द्रुतबोध—भरतमल्लप्रणीत सटीकव्याकरण। इस व्याकरणका तथा निम्नलिखित व्याकरणका उतना प्रचार नहीं है।

११७। शुद्धसुबोध—रामेश्वर प्रणीत। रामेश्वरका टीका सहित एक और भी व्याकरण है।

११८। हरिनामामृत व्याकरण—श्रीजीवगोस्वामि-प्रणीत। गौड़ीय वैष्णव इस व्याकरणका आदर करते हैं। इसमें व्याकरणके साथ भक्ति और भगवल्लीलाका उपदेश दिया गया है।

११९। चैतन्यामृत—यह भी गौड़ीय वैष्णवोंका प्रणीत है। इसकी टीका भी मिलती है।

१२०। कारिकावली—रामनारायणकृत। यह व्याकरण पद्यमें रचा गया है।

१२१। प्रबोधप्रकाशव्याकरण—बलरामपञ्चाननकृत।

१२२। रूपमालाव्याकरण—विमलासरस्वती प्रणीत।

१२३। ज्ञानामृतव्याकरण—काशीश्वर प्रणीत।

१२४। आशुबोधव्याकरण।

१२५। शीघ्रबोधव्याकरण।

१२६। लघुबोधव्याकरण।

१२७। सारामृतव्याकरण।

१२८। दिव्यव्याकरण।

१२९। पद्यावलीव्याकरण।

१३०। उत्कलव्याकरण आदि और भी कितने संस्कृत व्याकरण देखनेमें आते हैं। भारतवर्षके भिन्न भिन्न प्रदेशोंमें व्याकरण शिक्षाके लिये कितनी व्याकरणवृत्ति-टीका और पञ्जी आदि रची गई थी, उनकी गिनती लगाना कठिन है। जिन व्याकरणग्रन्थ और टीका-व्याख्याके नाम लिखे गये, वे सभी ग्रन्थ प्रसिद्ध तथा व्याकरण पढ़नेवालोंके सुपरिचित हैं फलतः संस्कृत-व्याकरणकी सर्वाङ्गसुन्दर तालिका बनाना सहज नहीं है।

इन सब ग्रन्थोंको छोड़ माधवीयवृत्तिमें और भी कितने वैयाकरणोंके नाम देखनेमें आते हैं यथा—

चान्द्र, आपिशलि, काशकृत्स्न, आत्रेय, धनपाल,

कौशिक, पुरुषकार, सुधाकर, मधुसूदन, माधव, भागुरि, श्रीभद्र, शिवदेव, रामदेवमिश्र, देवनन्दी, राम, भीम, भोज, हेलाराज, सुभूतिचन्द्र, पूर्णचन्द्र, यज्ञनारायण, कश्यपस्वामी, केशवस्वामी, शिवस्वामी, धूर्तस्वामी, क्षीरस्वामी (क्षीरतरङ्गिणीके प्रणेता) इत्यादि ।

माधवीयधातुवृत्तिमें तरङ्गिणी, आभरण, शाकाभरण, समन्त, प्रक्रियारत्न और प्रदीप आदि ग्रन्थोंके नाम हैं ।

बहुतसे व्याकरणग्रंथोंमें व्याघ्रभूति और व्याघ्रपादके वार्त्तिकका नामोल्लेख देखा जाता है । धातुपारायण नामक एक बड़े ग्रंथका भी नाम सुननेमें आता है । यह धातुपारायण हेमचन्द्रकृत कह कर प्रसिद्ध है । दुर्गादास-रचित धातुदीपिका ग्रन्थमें भट्टमल्ल, गोविन्दभट्ट, चतुर्भुज, नरसिंह, गोवर्द्धन तथा शरणदेव आदि वैयाकरणोंका नामोल्लेख है ।

प्राकृतभाषाका व्याकरण ।

प्राकृतभाषाके व्याकरणोंमें वररुचिके प्राकृतप्रकाशका नाम सबसे पहले उल्लेखयोग्य है । यह ग्रंथ वररुचि विरचित है । इस ग्रंथकी प्राकृत-मनोरमा या प्राकृतचंद्रिका नामक एक वृत्तिग्रंथ भी है । भामह इसके रचयिता हैं । प्राकृतमञ्जरी नामक वृत्ति कात्यायन-कृत है तथा प्राकृतसञ्जीवनी नामकी टीका वसन्तराज द्वारा रची गई है । इसके सिवा प्राकृत भाषाकी आलोचनाके लिये और भी अनेक व्याकरण रचे गये हैं । नीचे उनके नाम दिये जाते हैं—

प्राकृत-कल्पतरु—राम तर्कवागीश ।

प्राकृत-कामधेनु—लङ्केश्वर । यह प्राकृतलङ्केश्वर नामसे भी मशहूर है ।

प्राकृत कौमुदी—

प्राकृत-चंद्रिका—कृष्ण पण्डित ; आप शेषकृष्ण नामसे भी परिचित थे ।

प्राकृत-दीपिका—चण्डीदेव शर्मा । यह ग्रंथ संक्षिप्तसार व्याकरणके ८म अध्यायकी टीका है ।

प्राकृत-पाद—नारायण , इस ग्रंथका पूरा नाम संक्षिप्तसार प्राकृतपाद है ।

प्राकृत-प्रक्रियावृत्ति—उदय सौभाग्यगणि । यह हेमचंद्रके प्राकृताध्यायकी टीका है । यह ग्रंथ व्युत्पत्ति दीपिका या प्राकृतवृत्तिढुण्ढिका नामसे भी प्रसिद्ध है ।

प्राकृत-प्रदीपिका—

प्राकृत प्रबोध—नरचंद्र । यह हेमचंद्र रचित प्राकृताध्यायकी दूसरी एक वृत्ति है ।

प्राकृत-भाषान्तरविधान—चंद्र ।

प्राकृत-रहस्य—यह षड्भाषावार्त्तिक नामसे भी विदित है ।

प्राकृत-लक्षण—चण्ड ।

प्राकृत-व्याकरण—समन्तभद्र ।

प्राकृत-व्याकरण—हेमचन्द्र (शब्दानुशासन) ।

प्राकृत-व्याकरणवृत्ति—त्रिविक्रमदेव ।

प्राकृत-संस्कार ।

प्राकृत-सर्वस्व—मार्कण्डेय कवीन्द्र ।

प्राकृत-सूत्र—वाल्मीकि ।

प्राकृताध्याय—हेमचन्द्र-कृत शब्दानुशासनका ८म अध्याय ।

प्राकृतानन्द—रघुनाथ शर्मा ।

प्राकृताष्टाध्यायी ।

बङ्गभाषाका व्याकरण ।

१७४३ ई०में पुर्त्तगीज भाषामें बङ्गला भाषाका आदि व्याकरण प्रकाशित हुआ ।

पीछे हालहेड नामक एक सिविलियनने बङ्गला-व्याकरण रचा और उसका प्रचार किया । हालहेड बङ्गला भाषामें विशेष अभिज्ञ थे ।

पादरी केरी साहबका व्याकरण १८०१ ई०में प्रकाशित हुआ तथा १८१५ ई०के मध्य उसके चार संस्करण निकाले गये ।

बङ्गालीप्रणीत प्रथम व्याकरण १८१६ ई०में रचा गया । गङ्गाकिशोर भट्टाचार्य इसके प्रणेता हैं ।

हिन्दी-व्याकरण ।

हिन्दीभाषा शुद्ध शुद्ध लिखने पढ़नेके लिये यों तो हिन्दीव्याकरण भी अनेक हैं, पर निम्नलिखित व्याकरण ग्रन्थ ही प्रसिद्ध और सर्वत्र प्रचलित हैं ।

भाषाभास्कर—काशीनगरके पादरी एथरिंगटन साहब-कृत ।

हिन्दीभाषाका व्याकरण—कामता प्रसाद गुरु—प्रकाशक हिन्दी [illegible] बनारस ।

हिन्दीकौमुदी—पं० अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, सम्पादक 'स्वतन्त्र'।

व्याकरणकौमुदी—रामदहिनमिश्र काव्यतीर्थ।

प्रभाकर—

व्याकरण-चन्द्रोदय—लहेरियासराय।

इनके सिवा निम्न कक्षामें पढ़ानेयोग्य और भी कितने हिन्दी-व्याकरण हैं।

व्याकरणकौण्डिन्य (सं० पु०) एक ब्राह्मण पण्डित।

व्याकर्त्ता (सं० त्रि०) जगत्स्रष्टा, सृष्टिकर्त्ता।

व्याकार (सं० पु०) १ व्याख्या, विवृत्ति। २ परिवर्त्तिताकार, किसी पदार्थका बिगड़ा या बदला हुआ आकार।

व्याकीर्ण (सं० त्रि०) वि-आ-कृ-क्त। विक्षिप्त, जो चारों ओर अच्छी तरह फैलाया गया हो।

व्याकुञ्चित (सं० त्रि०) विशेष आकुञ्चित।

व्याकुल (सं० त्रि०) विशेषेणाकुलः। १ शोकादि द्वारा इतिकर्त्तव्यताशून्य। जो भय या दुःखके कारण इतना घबरा गया हो कि कुछ समझ न सके। २ व्यापृत। ३ उत्कण्ठित। ४ कातर। ५ भयविधुर। ६ उपद्रुत।

व्याकुलता (सं० स्त्री०) व्याकुलस्य भावः तल्-टाप्। १ व्याकुल होनेका भाव, विकलता, घबराहट। २ कातरता।

व्याकुलधूप (सं० पु०) राजपुत्रभेद।

व्याकुलात्मन् (सं० त्रि०) व्याकुलः आत्मा यस्य। शोकाभिहतचित्त, शोककातर।

व्याकुलितिन् (सं० त्रि०) व्याकुलित।

व्याकृति (सं० स्त्री०) विशिष्टा आकृतिः। छल, धोखा, फरेब।

व्याकृत (सं० त्रि०) वि-आ-कृ-क्त। १ प्रकाशित। २ व्याख्यात। ३ परिवर्त्तित, रूपान्तरित।

व्याकृति (सं० स्त्री०) वि-आ-कृ-क्तिन्। १ प्रकाशन। २ व्याख्यान। ३ परिवर्त्तन, रूपान्तर करना।

व्याकोप (सं० पु०) विशेष व्याप्ति। (कुसुमाञ्जलि ६।१९)

व्याकोश (सं० पु०) व्याकुश्यति प्रस्फुटतीति वि-आ-कुश-क। १ विकाश। २ स्फुटित होना, खिलना।

व्याकोष (सं० त्रि०) व्याकुष्णाति मुकुलीभावात् बहिर्निःसरतीति वि-आ-कुष-क। प्रफुल्ल, प्रस्फुरित, विकसित। (भारत ७।१०।२२)

व्याक्रोश (सं० पु०) वि-आ-क्रुश-घञ्। १ किसीका तिरस्कार करते हुए कटूक्ति करना। २ चिल्लाना, चिल्लाहट।

व्याक्रोशक (सं० त्रि०) चीत्कारकारी, चिल्लानेवाला।

व्याक्षेप (सं० पु०) वि-आ-क्षिप्-घञ्। १ विलम्ब, देर। २ व्यासङ्ग अन्यासङ्ग। ३ आकुलता, घबराहट।

व्याख्या (सं० स्त्री०) व्याख्यानमिति वि-आ-ख्या। 'आतश्चोपसर्गे' इति अङ्, ततष्टाप्। १ पद वाक्य आदि जो किसी जटिल पद या वाक्य आदिका अर्थ स्पष्ट करता हो, टीका, व्याख्यान।

"न शिष्याननुबध्नीत ग्रन्थान्नैवाभ्यसेद्बहून्।
न व्याख्यामुपयुञ्जीत नारम्भानारभेत् क्वचित्॥"
(भागवत ७।१३।८)

व्याख्या शब्दसे साधारणतः टीका या अर्थप्रकाशक ग्रन्थका बोध होता है। सभी शास्त्रग्रन्थ प्रायः सूत्र या श्लोकके आकारमें निबद्ध हैं। सूत्र संक्षिप्त हैं, अतएव बिना व्याख्याके अर्थबोध होना कठिन है। इस कारण व्याख्याग्रन्थकी विशेष आवश्यकता है। शास्त्रोंके अनेक प्रकारके व्याख्या ग्रन्थ हैं। व्याख्याग्रन्थ वृत्ति, भाष्य, वार्त्तिक, टीका, टिप्पनी आदि नाना शाखाओंमें विभक्त हैं।

इसके सिवा व्याख्याका एक साधारण लक्षण भी है। यथा—

"पदच्छेदः पदार्थोक्तिर्विग्रहो वाक्ययोजना।
आक्षेपस्य समाधानं व्याख्यानं पञ्चलक्षणम्॥"

पदच्छेद—अर्थात् सूत्रमें कई पद हैं जिन्हें स्पष्ट रूपसे बता देना; पदार्थोक्ति—किस पदका क्या अर्थ है, उसे कहना; विग्रह—समस्त पदका व्याससवाक्य उपन्यास करना; वाक्ययोजना—समस्त वाक्य या सूत्रका अन्वय अर्थात् वाक्यघटक पदावलोके अर्थोंका परस्पर सम्बन्ध दिखलाना; आक्षेपका समाधान—सम्भावित आपत्ति या आशङ्काका समाधान या निरसन, व्याख्याके यही पांच लक्षण हैं। व्याख्याग्रंथमें उक्त पांच विषय रहना उचित है। वेदमें भी पदच्छेद दिखानेके लिये पदपाठ, पदग्रंथ और व्याख्याके लिये ब्राह्मण-ग्रंथ विद्यमान हैं किन्तु सभी व्याख्याग्रंथोंमें इसी प्रकार उक्त पांच विषय

का समाख्यानमात्रसे वर्णन नहीं होता। वाक्ययोजन द्वारा पदच्छेदका कार्यसम्पन्न होता है, इस कारण अनावश्यक विवेचनासे प्रायः सभी जगह पदच्छेद उपेक्षित हुए हैं। व्याख्याकर्त्ताओंने स्थलविशेषमें पदका अर्थ निर्देश किया है सही, पर अधिकांश स्थलोंमें ही पदका अर्थ निर्देश नहीं किया। आक्षेपके समाधानके लिये वे स्थलविशेषमें एकसे अधिक कल्प या प्रणाली निर्देश करते हैं। जहां अनेक कल्प निर्दिष्ट हैं, वहां साधारणतः शेष कल्प ही समीचीन है। पूर्व पूर्व कल्प कुछ दोषदुष्ट या आपत्तियोग्य हैं। अन्तिम कल्पका निर्देश करनेसे ही जब उत्तमरूपसे आक्षेपका समाधान होता है, तब असमीचीन पूर्व पूर्व कल्पोंके उपन्यासको अन्याय या अनावश्यक कहा जा सकता है। किन्तु व्याख्याकारने शिष्यबुद्धिके वैशद्य और परिमार्जनाके लिये या कौशलप्रदर्शन अभिप्रायसे नाना कल्पकी अवतारणा की है।

व्याख्या ग्रन्थकी भी वृत्ति, टीका आदि प्रकार भेद देखे जाते हैं। वृत्ति प्रायः संक्षिप्त और उसकी रचना गाम्भीर्ययुक्त है। जिस ग्रन्थमें सूत्रानुसारिपदके द्वारा सूत्रका अर्थ वर्णित होता है और जिसके प्रयुक्त पद अर्थात् भाष्य भी व्याख्यात होते हैं, उसका नाम भाष्य है। भाष्यकी रचना प्रगाढ़ है। भाष्यका भावार्थ सहज है, तात्पर्यार्थ कुछ आसान है। कोई वृत्तिव्याख्याकारमें और कोई कोई भाष्य भी व्याख्याकी प्रणालीमें रचित देखा जाता है। उसमें भाष्यका लक्षण बिलकुल नहीं है। जिस व्याख्या-ग्रन्थमें उक्त, अनुक्त और दुरुक्त अर्थ परिष्कृत होता है, उसका नाम वार्त्तिक है।

२ वह ग्रन्थ जिसमें इस प्रकार अर्थ-विस्तार किया गया हो। ३ वर्णन, कहना।

व्याख्यागम्य (सं० पु०) व्याख्यया गम्य-व्याख्यया विचारेण गम्यते प्राप्यते यत्। १ उत्तराभासभेद, वादीके अभियोगका ठीक ठीक उत्तर न दे कर इधर उधरकी बातें कहना। (त्रि०) २ जो व्याख्या अथवा टीका आदिकी सहायतासे समझा जा सके।

व्याख्यात (सं० त्रि०) वि-आ-ख्या-क्त। विवृत, जिसकी व्याख्या की गई हो।

व्याख्यातव्य (सं० त्रि०) वि-आ-ख्या-तव्य। व्याख्यान योग्य, जो व्याख्या करनेके योग्य हो।

व्याख्यातृ (सं० त्रि०) वि-आ-ख्या-तृच्। १ व्याख्याकारक, जो किसी विषयकी व्याख्या करता हो। २ जो व्याख्यान देता हो, भाषण करनेवाला।

व्याख्यान (सं० क्ली०) वि-आ-ख्या-ल्युट्। १ किसी विषयकी व्याख्या या टीका करने अथवा विवरण बतलानेका काम। २ बोल कर कोई विषय समझानेका काम, भाषण। ३ वह जो कुछ व्याख्या रूपमें या समझानेके लिये कहा जाय, भाषण, वक्तृता।

व्याख्यानशाला (सं० स्त्री०) व्याख्यानस्य शाला। व्याख्यानगृह, वह स्थान जहां किसी प्रकारका व्याख्यान आदि होता हो।

व्याख्यास्वर (सं० पु०) १ व्याख्याके उपयुक्त स्वर। २ वह स्वर जो न बहुत ऊँचा हो और न बहुत नीचा, मध्यम स्वर। (भाग० श्रौ० ८।१३।६)

व्याख्येय (सं० त्रि०) वि-आ-ख्या-यत् आकारस्य एकारः। व्याख्यार्ह, जो व्याख्या करनेके योग्य हो, वर्णन करने या समझाने लायक।

व्याघट्टन (सं० क्ली०) वि-आ-घट्ट-ल्युट्। १ संघर्षण, अच्छी तरह रगड़नेका काम। २ आलोड़न, मथना, बिलोना।

व्याघात (सं० पु०) व्याहन्यतेऽनेनेति वि-आ-हन-घञ् नस्य त। १ विष्कम्भ आदि सत्ताईस योगोंमेंसे तेरहवाँ योग। ज्योतिषके मतसे यह योग शुभ नहीं है, इसमें किसी प्रकारका शुभ कार्य करना वर्जित है। पर कुछ लोगोंका मत है, कि इसके पहले छः दण्डोंको छोड़ कर शेष समयमें शुभ काम किये जा सकते हैं। (ज्योतिस्तत्त्व)

कोष्ठीप्रदीपके मतानुसार इस योगमें जो बालक जन्मग्रहण करता है, वह साधुओंके कामोंमें विघ्न करनेवाला, कठोर झूठा और निर्दय होता है। (कोष्ठीप्रदीप)

२ अन्तराय, विघ्न। ३ प्रहार, आघात, मार। ४ काव्यमें एक प्रकारका अलंकार। इसमें एक ही उपायके द्वारा अथवा एक ही साधनके द्वारा दो विरोधी कार्योंके होनेका वर्णन होता है।

व्याघारण (सं० क्ली०) जलसिञ्चनकार्य। (कात्यायनश्रौ० ५।२)

व्याघ्र (सं० पु०) व्याजिघ्रतीति वि-आ घ्रा-क। स्वनाम-ख्यात चतुष्पद जन्तुविशेष, बाघ। पर्याय—शार्दूल, द्वीपी, पृदाकु, चित्रकाय, चित्रक, पुण्डरीक, हंसपत्तु, व्याड़, हिंस्रक, हिंसारु, श्वापद, पञ्चनख, व्याल, गुहाशय, तीक्ष्णदंष्ट्र, भीरु, नखायुध। इसके मांसका गुण—अर्श, प्रमेह, जठरामय और जड़ता नाशक। व्याघ्र, सिंह आदि महत्सन जातीय जन्तु है। वह्निपुराणमें लिखा है, कि कश्यपपत्नी दंष्ट्रा-के गर्भसे व्याघ्र, सिंह आदिकी उत्पत्ति हुई।

यह स्वनामप्रसिद्ध चतुष्पद जन्तु स्तन्यपायी है तथा अत्यन्त हिंस्र और मांसाशी समझे जाते हैं। भूख नहीं रहने पर भी यह सामने आये हुए शिकार को विना मारे नहीं छोड़ता। सुना जाता है, कि यह गाय, भैंस, यहां तक कि मनुष्यों पर भी अतर्कित भावसे टूट पड़ता है और मुंहसे पकड़ कर घने जङ्गल-में ले जाता है। वहां उसके प्राणवायुके निकल जाने पर उसे खाने लगता है। जब एक मनुष्य या पशु एक बारमें नहीं खा सकता, तब बाकीको दूसरे या तीसरेके लिये रख छोड़ता है। हम लोगोंके देश-में बिल्ली जिस प्रकार चूहेको पकड़ कर खेल करती हुई मारती है, बाघ भी उसी प्रकार अपने शिकारको जङ्गलमें छोड़ कर बहुत दूर चला जाता है। इस समय शिकार यदि भागनेकी कोशिश करता है, तो यह दूरसे उछलता हुआ उस पर टूट पड़ता है और उसे नोच कर या क्षतविक्षत कर किनारे दूर हट जाता है। इस प्रकार खेल करते समय यह बड़ा आनन्द प्रकट करता है। व्याघ्रके आक्रमण बहुतसे लोगोंने ऐसी अवस्थामें बाघके पंजेसे बचने-की आशासे वृक्ष पर चढ़ कर प्राण बचाये हैं।

शिकार ले कर क्रीड़ा और आमोद तथा बिल्लीके साथ बाघका आकृतिगत सादृश्य देख कर हम लोगों-के देशमें बिड़ालको 'बाघकी मौसी' कहते हैं। प्राणि-तत्त्वविदोंने भी इसी कारणसे सिंह, व्याघ्र, लकड़-बग्घा, बिड़ाल आदिको पशुजातिकी Felis शाखामें अन्तर्निविष्ट किया है। उनके मतसे व्याघ्रगण Felidae जातिकी Felinae श्रेणीभुक्त हैं। चीता बाघ इस जातिकी एक दूसरी शाखा (Felis Pardus) माना गया है। किन्तु लकड़बग्घाकी जाति Canidae अर्थात् कुत्ते जातिकी अन्तर्भुक्त है। क्योंकि, दांत और मुखकी आकृति अच्छी तरह देखनेसे यह स्वभा-वतः ही कुत्ते जातिका मालूम होता है।

यह व्याघ्र जाति समस्त भारतवर्षके अर्थात् कुमारिका अन्तरीपसे ले कर हिमालय श्रेणीके ७ हजार फुटकी ऊंचाई तक विभिन्न स्थानके घने जङ्ग-लोंमें वास करती है। ब्रह्मराज्य, मलय प्रायोद्वीप, पश्चिम एसिया खण्ड और अफ्रिका महादेशके जङ्गलोंमें अथवा नद या तृणाच्छादित नदीके किनारे जहां अन्यान्य छोटे छोटे पशु जल पीनेके लिये आया करते हैं वैसे स्थानमें इन्हें विचरण करते देखा जाता है।

स्थान विशेषके जलवायुके तारतम्यानुसार व्याघ्र जातिका भी आकृतिगत अनेक वैषम्य हुआ करता है। इसी कारण हम विभिन्न स्थानमें विभिन्न प्रकार-के व्याघ्र भी देख पाते हैं। बङ्गालके पहाड़ी जङ्गलमें जो बड़ा बाघ दिखाई देता है वह यूरोपीय शिकारियों-के निकट Royal Bengal tiger नामसे प्रसिद्ध है। ऐसा बड़ा और बलिष्ठ बाघ संसार भरमें कहीं नहीं देखा जाता। यह प्रायः १२ फुट तक लम्बा होता है। सुन्दरवनके वासी लकड़हारेके मुखसे इनकी हिंसा प्रकृतिकी अद्भुत गप्पें सुनी जाती हैं। पश्चिम बङ्गाल और मध्यभारतके पहाड़ी जङ्गलोंमें ऐसे लंबे बाघ देखे तो जाते हैं, पर ये बंगालके बाघ जैसे हिंस्रक नहीं हैं।

सुन्दरवनका बड़ा बाघ (Tigris regalis) और पश्चिम बंगालका मध्यमाकृति गो-बाघ भारतीय विभिन्न जातिकी भाषामें स्वतंत्र नामसे पुकारे जाते हैं। यूरोपीय शिकारीकी भाषामें वे Battals tiger नामसे परिचित हैं। उत्तर-पश्चिम भारतमें बाघ और बाघिनी, शेर और शेरनी कहलाती हैं। इसके सिवा यह विभिन्न देशमें विभिन्न नामसे परिचित हैं। यथा—महाराष्ट्रमें बु-हाग या पटिवाघ, बुन्देलखण्ड और

मध्यभारतमें मांदर ; आगमपुरके पहाड़ी प्रदेशमें तुम् ; गोरखपुरमें नांगावाद ; नेपाल और सिक्किममें पुलि, पेनपुलि ; मलयालम पेरिंपुलि ; कनाड़ी हुली, निपुवन-में नाग ; मुंडारीमें कुल, टेरहा कुल्लोक ; पञ्जाबमें साहर ; सुमात्रा रिमाम या हरिमन।

इस जातिके बाघका शरीर ललाई लिये पीला होता है। बीच बीचमें काली रेखा दिखाई देती है जो मेरुदण्डके पास मोटी और पेटकी ओर पतली चली गई है। पेटके निचले भागमें हरिद्राभ श्वेत लोम दिखाई देते हैं। चिता-बाघके शरीरमें ऐसी काली रेखाएं नहीं रहतीं, गोल गोल चकत्ता दिखाई देता है। वर्ण भी ऐसा गाढ़ा लाल नहीं, वरन् कुछ मटल हरिद्रावर्ण मालूम होता है। किसी किसी चिताबाघके बाघके नाककोष भी कुछ ललाई लिये पीले होते हैं। ये ऊपर कहे गये दो प्रकारके बाघोंसे बहुत छोटे होते हैं। चिताबाघ देखो।

डाक्टर एलियट, मेजर सर विल और सर्जन मेजर जार्डन आदि शिकारियोंने एक स्वरसे कहा है, कि उन्होंने जितने 'रायल बेङ्गाल टाइगर'का शिकार किया है, उनमेंसे कोई भी १०´ ३´´ इञ्चसे बड़ा नहीं है, परन्तु जो एक १२´ १३´ फुट बाघकी कथा जो किसी किसी शिकारीके वर्णनमें पाई जाती है वह सम्भवतः बाघके शरीरसे चमड़ेको अलग कर सुखानेके समय खींच कर नापा गया होगा।

दक्षिण भारतके बाघके स्वभावकी आलोचना कर शिकारी एलियटने लिखा है ;—'ये स्वभावतः डरपोक होते हैं, किन्तु जब कोई इन्हें चिढ़ाता है अथवा किसी प्रकार चोट पहुंचाता है, तब ये कुपित हो कर आक्रमणकारी पर टूट पड़ते हैं। साधारणतः पहाड़ी जंगलोंमें ये रहते हैं और मौका देख कर सुभीतेसे समतल प्रांतरमें आते और शस्यपूर्ण खेतोंमें छिप रहते हैं। अनेक स्थानोंमें ये गाय आदिको मार कर इनका बड़ा नुकसान करते हैं। सुविधा और अवसर पा कर यह मनुष्यको ले जानेसे बाज नहीं आता। रातको गर्मीकी मौसिममें जब ग्रामवासी अपने बरामदे या आंगनमें सोता है, मौका पा कर यह झपट पड़ता और उसे उठा ले जाता है। कालिनियोंके द्वार तक बाघ आते देखा गया है। इसके गर्भाधानका कोई निर्दिष्ट समय नहीं है।

एलियटने सार्जेण्टनामी ओकसाहबके मुखसे सुना है कि, मौनसून वायुके समय जब खाद्यका विशेष अभाव होता है, तब बाघ मेंढक पकड़ कर जीवन धारण करते हैं। इस समय पेटकी ज्वालासे एक बाघने एक सजारूको निगलनेकी कोशिश की है ; पर उसका एक कांटा गलेमें अटक गया और गला बिद्ध हो गया, जिससे वह पीछे कोई वस्तु खा न सका। फलतः वह सूख कर मर गया था।'

मेजर सरविलने बाघवंशकी पर्यालोचना कर लिखा है, कि बङ्गालके बाघोंके भी दोसे चार बच्चे होते हैं। जब तक बच्चे स्वयं शिकार करनेमें समर्थ नहीं होते, तब तक वे माताके पीछे पीछे घूमते हैं। जब वे शिकार करना शुरू कर देते हैं, तब एक साथ ४५ गाय मार डालते हैं। परन्तु बूढ़ा बाघ इस प्रकार कभी भी नुकसान नहीं करता। यह भूखके समय सिर्फ एक गाय मार कर अपने प्राणको ठंढा करता है। बूढ़ा बाघ इस प्रकार प्रायः प्रति सप्ताहमें एक एक गाय पकड़ कर ले जाता है। गाय पकड़नेके लिये वह घने जंगलसे निकल कर गांवके समीप एक झाड़ीमें छिप रहता है। और मौका पाते ही वे गाय बैल या भैंस ले कर पुनः जंगलकी ओर चम्पत हो जाता है। वह जहां उस पशुको ले जाता है वहां दो तीन या उससे अधिक दिन रह कर उसकी कुल हड्डियोंको चबा लेता और तब घने जंगलमें चला जाता है। इस कारण जब शिकारियोंको मालूम होता है, कि बाघ गायको पकड़ ले गया है तब वे उसका पीछा करते हुए जंगलमें आते हैं। जब उन्हें मृत पशुका पता लग जाता है, तब वे पासवाले किसी पेड़ पर चढ़ कर उसकी प्रतीक्षा करते हैं। जब बाघ उस सड़े गले मांस और हड्डीको खाने लगता है, तब शिकारी छिपे हुए स्थानसे गोली या तीर फेंक कर बाघको मार डालते हैं। जिस वनमें बाघ रहता है वहां एक विजातीय गंध पाई जाती है। उसी गंधसे लोग वहां बाघका रहना जान सकते हैं।

बाघिनी निविड़ वनमें, विशेषतः जहां सरकंडेका जंगल होता है वहीं अपने शावकको छिपा रखती है। उस शावकको यदि कोई उसकी अनुपस्थितिमें उठा ले जाय, तो वह

उस स्थान पर आ कर दिन रात चीत्कार करती है।

साधारणतः हाथीकी पीठ पर चढ़ कर ही बाघका शिकार किया जाता है, किन्तु शिक्षित शिकारी हौदेमें रह कर उस पर गोली चलाना अच्छा नहीं समझते, इससे उनको जान पर डर रहता है। वे पैदल ही वनमें घूम कर शिकार करना निरापद समझते हैं। कहीं कहीं जहां दूसरे बाघने पशुको मार कर रखा है, वहां किसी वृक्षके ऊपर मचान बना कर शिकारी बैठते हैं। ज्यों ही बाघ मांस खाने लगता है त्यों ही शिकारी गोली दाग उसके प्राण ले लेते हैं। कभी कभी तो वे वृक्षके नीचे गाय आदिको निरापद भावमें बांध रखते हैं। बाघ ज्यों ही उसे खानेके लालचसे वहां आता है त्यों ही शिकारी ऊपरसे गोली दागता है।

देशी शिकारी पहले एक जगह जालको फैला चले जाते हैं, पीछे जंगल घेर कर गोलाकार भावमें चारों ओरसे बाघको भगा कर जालके बीच लाते हैं। बाघ जब जालमें फंस जाते हैं, तब उन्हें घर लेते हैं अथवा बर्छेसे भोंक कर उनके प्राण ले लेते हैं। सिंहभूम, हजारीबाग आदि अञ्चलोंमें कोल अस्त्रसे बाघका शिकार कर उसके चमड़े और नाखून ला सरकारको देते और सरकारसे उन्हें पुरस्कार मिलता है। कभी कभी स्ट्रीकनिया खिला कर भी बाघकी हत्या की जाती है। प्रति वर्ष इस प्रकार कितने ही बाघ मारे जाते हैं। फिर भी इनकी संख्या कम हुई है, ऐसा मालूम नहीं होता।

बाघके नाखून बड़े कामकी चीज है। उनकी माला छोटे छोटे बच्चोंके गलेमें पहनानेसे कभी उन पर कुदृष्टि नहीं पड़ती। शिक्षितके निकट वह शोभाकी सामग्री है। कोई कोई आदमी चेनके लाकेट या गलेके नेकलेसमें बाघके नाखूनको सोनेसे मढ़वा कर गलेमें और कोई चांदीसे मढ़वा कर वलयाकारमें हाथमें पहनते हैं। अशिक्षित और कुसंस्कारापन्न व्यक्ति बाल्यरोगमें बच्चोंके गले या कमरमें बाघका नाखून पहना देते हैं। उनका विश्वास है, कि यह नख रहनेसे बालग्रहोंका प्रकोपजनित ज्वर या दृष्टि जाती रहती है। जिस स्त्रीको सन्तान हो कर थोड़े ही समयके बाद मर जाती है, उनके भी जात बालकके गलेमें व्याघ्र-नख लटका दिया जाता है। प्रवाद है, कि इनके बल बालक व्याघ्रकी तरह बलिष्ठ और दीर्घजीवी होता है। व्याघ्रकी स्कन्धसन्धिमें जो कण्ठास्थि है वह अभिचार कार्यमें विशेष फलप्रद है। इसकी मूंछें या ओठके रोएं भी वशीकरणमें विशेष सहायक हैं। यदि पुरुष उसका अधिकारी हो, तो वह आसानीसे अभिलषित कामिनीको वशमें ला सकता है। यदि वह स्त्रीके पास हो तो वह मनचाहे पुरुषको वशमें ला सकती है।

दक्षिणभारतके निम्नश्रेणीके असभ्य लोग बाघका मांस खाते हैं।

प्राणितत्त्वविदोंका कहना है, कि यह बाघ पारस्य हो कर बुखारा और जर्जिया तक गया है। आमूर देश, अलटाई पर्वतश्रेणी और चीनदेशमें भी बहुतसे बाघ देखे जाते हैं। यव और मलय-प्रायोद्वीपमें बहुतसे बाघ हैं, परन्तु सिंहलमें नहीं हैं। इन सब विभिन्न देशोंके व्याघ्रमें भी आकृतिगत सामान्य पार्थक्य है।

साधारण व्याघ्रकी अपेक्षा लकड़बग्घा अति हिंस्र है। अनेक जगह सुना गया है, कि चरवाहेने भैंस गायको चराते समय भागते हुए बाघको मार कर उसके मुखमेंसे शिकारको छीन लिया है। वलियटने लिखा है, कि एक समय एक चरवाहेको बाघ उठा ले गया। यह देख दूसरे चरवाहोंने शोरगुल मचाया और गाय भैंसको उसी ओर भगाया। भैंसोंने तेजीसे आ कर बाघ पर आक्रमण कर दिया। बाघ भयभीत हो कर अपने शिकारको छोड़ भागा। किन्तु इस पर भी उसने महिषके हाथसे परित्राण नहीं पाया। उन्होंने अपने सींगसे उसका पेट फाड़ दिया था।

लकड़बग्घाकी प्रकृति सम्पूर्ण स्वतन्त्र है। ये शिकारको बिलकुल नहीं छोड़ते। कभी कभी ये दो दिन तक शिकारके पीछे पड़े रहते हैं।

लकड़बग्घा देखो।

ऊपरमें गो-बाघा नामक जिस व्याघ्रका उल्लेख हो चुका है, वही Buffalo Tiger नामसे प्रसिद्ध है। इसकी

आकृति और प्रकृति प्रायः Bengal Tigerसे मिलती जुलती है। परंतु साधारणतः शेषोक्त जातिकी अपेक्षा यह कुछ छोटा होता है।

यह प्रायः मलाबारके किनारे नरकटके वनमें रहता है और मछली पक्षी आदि खा कर अपना पेट भरता है। हिमालयके पहाड़ी प्रदेशमें, नेपालके तराई प्रदेशमें, पूर्णिया जिलेमें तथा कलकत्तेके समीपवर्ती नाना स्थानोंमें ये देख पड़ते हैं। रेवारेण्ड फेआरने कहा है, कि मलबार उपकूलका बाघ बहुत बलिष्ठ होता है। कभी कभी यह छोटे छोटे बच्चोंको उठा ले जाता है। बहुतोंने इसे बिल्ली जातिमें शामिल किया है। F. bengalensis और उसी प्रकारका एक और बाघ-बिड़ाल Leopard Cat है। इसकी देह २६ इञ्च और पूंछ प्रायः १२ इञ्च लम्बी होती है।

केंदुआ बाघको बिहारमें चीता, तैलङ्गमें चीता-पुली, कर्णाटमें चिर्चा और सिन्धुमें तथा कहीं कहीं लगर कहते हैं। ये पोस मानते हैं, इस कारण शिकारी अनेक समय इन्हें कौशलसे पकड़ते हैं और उपयुक्त शिक्षा दे कर कुत्तोंकी तरह शिकारमें अपने साथ ले जाते हैं।

इसका शरीर उज्ज्वल रक्त और हरिद्राभिमिश्र पाटल-वर्णके लोमोंसे ढका रहता है। बीच बीचमें काला धब्बा दिखाई देता है, किन्तु वह ऊपर कहे गये चिताके जैसा चक्राकार नहीं होता। चक्षुकोणसे दो काली रेखा मुख तक चली गई है। कान छोटे और गोल होते हैं। पूंछ छोटी होती और उसमें जगह जगह काला दाग रहता है। अगला भाग पतला और काले रोमोंसे ढका रहता है। देहयष्टि जीर्ण और शीर्ण होती तथा कोमर ग्रे-हाउण्ड नामक शीर्णदेही कुत्ते सी होती है। आंखकी पुतलियां बिलकुल गोल होती हैं। सिरसे ले कर समूचा शरीर ४॥० फुट, पूंछ २॥० फुट और ऊंचा स्कन्धमें २॥० फुट होती है।

इस जातिके बाघको प्राणीतत्त्वज्ञ पहले चीता (Panther या Leopardae) समझते थे। इधर अधिका-धारी वर्तमान अरब जाति तथा इन प्राणीतत्त्वविदोंका विश्वास है, कि सिंह और असल चीता (Pardis) जाति-के सहयोगसे इस जातिके चीताकी उत्पत्ति हुई है। मध्य और दक्षिण भारतमें, पश्चिम और उत्तर भारतके खान्देश-से सिन्धु, राजपूताना और पञ्जाब प्रदेशमें अनेक केंदुआ देखनेमें आते हैं। सिंहल और बङ्गालमें भी केंदुआका अभाव नहीं है। ये नीलगाय, चौसिंगा, हरिण आदि-का शिकार करते हैं। जेर्डन साहबने लिखा है, कि उन्होंने जङ्गलमें शृगालके साथ केंदुआको एक साथ घूमते देखा है। उन्होंने नीलगायके पीछे पीछे केंदुआ-को छिपके दौड़ते हुए भी देखा था।

केंदुआके शावकको अच्छी तरह सिखाने पर भी वह शिकारके उपयुक्त नहीं होता। शैशवकालमें जब वह माता पितासे शिकार करनेका ढंग सीख लेता है, अर्थात् स्वयं शिकार करने लगता है, तब यदि इसे पकड़ कर पाला पोसा जाये, तो ग्रे-हाउण्ड कुत्तेसे भी बढ़ कर शिकारी निकलता है। महिसुरराज टीपू सुल-तानके ऐसे पांच पालतू शिकारी केंदुआ थे। श्रीरङ्ग-पत्तनमें अङ्गरेजी सेनाके अधिनायक सर आर्थर वेलेस्लीने टीपूके अधःपतनके बाद उन पांचों बाघको ले लिया था।

इस जातिके शिकारी बाघ साधारणतः ग्रे-हाउण्ड वा घुड़दौड़के घोड़ेसे भी तेज दौड़ कर शिकार पर टूट पड़ते हैं। यहां तक कि कृष्णसार हरिणको ये दौड़नेमें मात कर देते हैं।

यह व्याघ्र शब्द नरादि शब्दके अन्तस्थ अर्थात् बाद-में रहनेसे श्रेष्ठार्थवाचक होता है। जैसे,—पुरुषव्याघ्र अर्थात् पुरुषश्रेष्ठ।

"उपमेयं व्याघ्रादिभिः श्रेष्ठार्थे", व्याकरणके इस सूत्रानुसार उपमित कर्मधारय समास होता है। पुरुष-व्याघ्र—पुरुषः व्याघ्र इव। यहां श्रेष्ठार्थमें उपमित कर्म-धारय समास हुआ।

२ रक्तैरण्ड, लाल रेंड़ी। ३ करञ्ज।

व्याघ्रक (सं॰ पु॰) अनुकम्पितो व्याघ्राजिनः (अजिनान्त-स्योत्तरपदलोपश्च। पा ५।३।८२) व्याघ्राजिनपद, अजिनान्तपदस्य लोपः। व्याघ्राजिन।

व्याघ्रतरु (सं॰ पु॰) रक्तैरण्ड वृक्ष, लाल रेंड़का पेड़।
(वैद्यकनि॰)

व्याघ्रकेतु (सं॰ पु॰) [illegible]-वर्णित [illegible]।

व्याघ्रदंष्ट्र (सं० पु०) बाघ या शेरका नाखून जो प्रायः बालकोंके गलेमें उन्हें नजर लगनेसे बचानेके लिये पहनाया जाता है।

व्याघ्रग्रीव (सं० पु०) १ पुराणानुसार एक प्राचीन देश-का नाम। २ इस देशका निवासी। (मार्क०पु० ५८।१७)

व्याघ्रघण्टा (सं० स्त्री०) किंकिणी या गोविन्दी नामकी लता। यह कोङ्कणप्रदेशमें अधिकतासे होती है। इसका गुण—पित्तवर्द्धक, उष्ण, रुचिकर, विष और कफनाशक। इसका फल—तिक्तोष्ण, विसूची, कफ और वात-रोगनाशक तथा त्रिदोषविनाशक। (वैद्यकनि०)

व्याघ्रघण्टी (सं० स्त्री०) व्याघ्रघण्टा देखो।

व्याघ्रचर्मन् (सं० स्त्री०) व्याघ्रस्य चर्म। बाघ या शेरकी खाल। इस पर प्रायः लोग बैठते हैं या यह शोभाके लिये कमरों आदिमें लटकाई जाती है।

व्याघ्रजम्भन (सं० स्त्री०) व्याघ्रध्वंस। (अथर्व ४।३।७)

व्याघ्रतरु (सं० पु०) रक्तैरण्ड, लाल रेंड़। (वैद्यकनि०)

व्याघ्रतल (सं० पु०) १ व्याघ्रनख या नखी नामक गन्ध द्रव्य। २ रक्तैरण्ड, लाल रेंड़।

व्याघ्रतला (सं० स्त्री०) व्याघ्रनख या नखी नामक गन्धद्रव्य, बघनहा।

व्याघ्रता (सं० स्त्री०) व्याघ्रका भाव या धर्म।

व्याघ्रत्व (सं० स्त्री०) व्याघ्रका भाव या धर्म।

व्याघ्रदंष्ट्र (सं० पु०) एक प्रकारका गुल्म।

व्याघ्रदत्त (सं० पु०) व्यक्तिभेद। (भारत द्रोणपर्व)

व्याघ्रदल (सं० पु०) १ व्याघ्रनख या नखी नामक गन्ध-द्रव्य, बघनहा। २ रक्तैरण्ड, लाल रेंड़।

व्याघ्रदला (सं० स्त्री०) व्याघ्रदल देखो।

व्याघ्रनख (सं० क्ली०) व्याघ्रस्य नखमिव। १ नख या बघनहा नामक गन्धद्रव्य। महाराष्ट्र तथा बङ्गालमें इसे वाघनखा कहते हैं। पर्याय—व्याघ्रायुध, करज, चक्रकारक, नखाङ्क, नखी, नख, व्याघ्रनखी। (शब्द-रत्ना०) गुण—तिक्तोष्ण, कषाय, व्रण और कफ-नाशक, कण्डू, कुष्ठ और व्रणनाशक, सुगन्ध (राजनि०) भावप्रकाशके मतसे यह ग्रहणी, श्लेष्मा, रक्तज्वर और कुष्ठरोगनाशक तथा लघु, उष्ण, शुक्रवर्द्धक, वर्णकर, स्वादु और विषनाशक, अलक्ष्मी और मुखदौर्गन्ध्यनाशक, पाक और रसमें कटु माना गया है। (भावप्र०) २ कन्दविशेष। ३ नक्षत्रविशेष। (पु०) व्याघ्रस्य नखमिव कण्टकं यस्य। ४ स्नुहीवृक्ष, थूहरका पेड़। ५ व्याघ्रनख। (राजनि०) ६ बाघ या शेरका नाखून जो प्रायः बच्चोंके गलेमें उन्हें नजरसे बचानेके लिये पह-नाया जाता है।

व्याघ्रनखक (सं० क्ली०) व्याघ्रनखमेव स्वार्थे कन्। १ व्याघ्र-नख। २ नखक्षत, नाखूनके द्वारा लगी हुई चोट।

व्याघ्रनखी (सं० स्त्री०) नख या बघनहा नामक गन्धद्रव्य। विशेष विवरण नख शब्दमें देखो।

व्याघ्रनायक (सं० पु०) व्याघ्रस्य नायक इव। शृगाल, गीदड़।

व्याघ्रपाद् (सं० पु०) १ एक प्रकारका गुल्म। २ वशिष्ठके गोत्रके एक प्राचीन ऋषि। ये ऋग्वेद ९।९७।१६-१८ मन्त्र-के द्रष्टा थे। ३ एक वैयाकरण। बोपदेवने इनका उल्लेख किया है। ४ एक धर्मशास्त्रकार। ५ सुन्दरेश्वर स्तोत्रके प्रणेता।

व्याघ्रपद (सं० पु०) वृक्षविशेष। (वृहत्संहिता ५४।८८१)

व्याघ्रपथ (सं० पु०) वैयाघ्रपद्यका सामादिक पाठ। (छान्दोग्य उपनिषद् ५।१६।१)

व्याघ्रपराक्रम (सं० पु०) व्याघ्रस्य पराक्रमः। १ व्याघ्रका पराक्रम। (त्रि०) व्याघ्रस्य पराक्रम इव पराक्रमो यस्य। २ व्याघ्रके समान पराक्रमविशिष्ट।

व्याघ्रपाद् (सं० पु०) व्याघ्रस्य पाद इव ग्रन्थियुक्तमूलानि यस्य। (पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः। पा ५।४।१३८) इत्य-लोपः। १ विकङ्कत या कंटाई नामक वृक्ष। २ मुनि-विशेष। ३ वैयाकरणभेद। व्याघ्रपाद् देखो। (त्रि०) ४ व्याघ्रतुल्य चरण।

व्याघ्रपाद (सं० पु०) व्याघ्रस्य पाद इव मूलानि यस्य। १ विकङ्कत या कंटाई नामक वृक्ष। २ विकण्टक, गर्भा-कुल। (राजनि०) ३ मुनिविशेष। ४ धर्मशास्त्रके प्रणेता एक मुनि। इनके चरण व्याघ्रके समान थे। (भारत १३।१४।१०६)

व्याघ्रपादपी (सं० स्त्री०) विकण्टक, गर्भाकुल।

व्याघ्रपुच्छ (सं० पु०) व्याघ्रस्य पुच्छमिव सच्छदमस्य। १ एरण्डवृक्ष, रेंड़का पेड़। २ व्याघ्रका लांगुल, बाघ-की पूंछ।

व्याघ्रपुर (सं० क्ली०) नगरभेद।
व्याघ्रनख (सं० पु०) नख या बघनखा नामक गन्धद्रव्य।
व्याघ्रपुलि (सं० पु०) एक प्राचीन गोत्रप्रवर्तक ऋषि।
व्याघ्रनखीक (सं० त्रि०) १ व्याघ्रनखी। २ व्याघ्रके समान। (अथर्व ४।२०)
व्याघ्रदत्त (सं० पु०) राजभेद। (कथासरित्सागर १२०।७१)
व्याघ्रभट (सं० पु०) १ योद्धाका नाम। (कथासरित्सागर १०।२१) २ एक राक्षसका नाम। (४७।२०)
व्याघ्रभूति (सं० पु०) १ वैयाकरणभेद। २ धर्मशास्त्रकारभेद।
व्याघ्रमुख (सं० पु०) व्याघ्रस्य मुखमिव मुखं यस्य। १ विडाल, बिल्ली। २ पुराणानुसार एक पर्वत। (मार्क०पु० ५८।११) ३ बृहत्संहिताके अनुसार एक देशका नाम। ४ इस देशका निवासी। (बृहत्सं० १४।८) (क्ली०) ५ बाघका मुख।
व्याघ्रराज (सं० पु०) राजभेद।
व्याघ्रपदा (सं० स्त्री०) वन्ध्या कर्कोटी, बन ककोड़ा।
व्याघ्रलोम (सं० क्ली०) व्याघ्रस्य लोम। १ व्याघ्रका लोम। २ श्मश्रु, ऊपरी ओठ परके बाल, मूंछ।
व्याघ्रवक्त्र (सं० पु०) व्याघ्रस्य वक्त्रमिव वक्त्रं यस्य। १ बीड़ाल, बिल्ली। २ शिव। (हरिवंश १४१३ श्लो०) (क्ली०) ३ बाघका मुख। (त्रि०) ४ बाघके समान मुखवाला।
व्याघ्रश्वन् (सं० पु०) कुक्कुरभेद, एक प्रकारका कुत्ता।
व्याघ्रसेवक (सं० पु०) शृगाल, गीदड़।
व्याघ्रैरण्ड (सं० क्ली०) रक्तैरण्ड, लाल रेंड़।
व्याघ्राक्ष (सं० त्रि०) व्याघ्रस्य अक्षिणी इव अक्षिणी यस्य, बहुव्रीहि। १ बाघके समान आंखवाला। (पु०) २ बाघकी आंख। ३ असुरविशेष। (हरिवंश १२८६८ श्लो०) ४ स्कन्दानुचर देवताभेद।
व्याघ्राजिन (सं० पु०) मुनिविशेष। (पा ५।२।८२)
व्याघ्राट (सं० पु०) व्याघ्र इव अटतीति अट गतौ पचा-दच्। भरद्वाज पक्षी, लवा नामक चिड़िया।
लवा देखो।
व्याघ्रापद (सं० स्त्री०) विदेहवासी आचार्य।
व्याघ्रादनी (सं० स्त्री०) शिम्बी।

व्याघ्रायुध (सं० क्ली०) व्याघ्रस्य आयुधं। १ व्याघ्रनख, बाघका नाखून। नाखून ही इसका अस्त्र है। २ नख नामक गन्धद्रव्य।
व्याघ्रास्य (सं० पु०) व्याघ्रस्य आस्यमिव आस्यमस्य। १ विड़ाल, बिल्ली। २ बौद्ध-देवताभेद। (क्ली०) ३ व्याघ्रमुख, बाघका मुंह। (त्रि०) ४ बाघके समान मुखवाला।
व्याघ्रिणी (सं० स्त्री०) बौद्धोंकी एक देवी।
व्याघ्री (सं० स्त्री०) व्याघ्र ङीप्। १ कण्टकारी, छोटी कटाई। २ कीटविशेष, एक प्रकारका कीड़ा। ३ नखी नामक गन्धद्रव्य। ४ व्याघ्रपत्नी, बाघिन।
व्याघ्रीयुग (सं० क्ली०) बृहती और कण्टकारी इन दोनों-का समूह।
व्याघ्रेश्वर (सं० क्ली०) शिवलिङ्गविशेष।
व्याघ्र्य (सं० त्रि०) व्याघ्रवत्, बाघके समान।
(अथर्व ११।२।१८)
व्याङ्घ्रि (सं० पु०) व्यङ्घ्रका गोत्रापत्य।
व्याचिख्यासु (सं० त्रि०) व्याख्यातुमिच्छुः वि-आ-ख्या सन्, सनन्तादुप्रत्ययः। व्याख्या करनेमें इच्छुक।
व्याज (सं० पु०) व्यजति यथार्थव्यवहारादपगच्छती-त्यनेनेति वि-अज-घञ्। १ कपट, छल, फरेब। २ बाधा, विघ्न, खलल। ३ विलम्ब, देर। ब्याज देखो।
व्याजनिन्दा (सं० स्त्री०) व्याजेन निन्दा। १ वह निन्दा जो व्याज अर्थात् छल या कपटसे की जाय, ऐसी निन्दा जो ऊपरसे देखनेमें स्पष्ट निन्दा न जान पड़े। २ एक प्रकारका शब्दालङ्कार जिसमें इस प्रकार निन्दा की जाती है।
व्याजभानुमित्र (सं० पु०) राजभेद।
व्याजमय (सं० त्रि०) व्याज स्वरूपे मयट्। व्याजस्वरूप, कपटसे भरा हुआ।
व्याजस्तुति (सं० स्त्री०) व्याजेन स्तुतिः। १ वह स्तुति जो व्याज अथवा किसी बहानेसे की जाय और ऊपरसे देखनेमें स्तुति न जान पड़े। २ एक प्रकारका शब्दालङ्कार जिसमें इस प्रकार स्तुति की जाती है। इसमें जो स्तुति की जाती है, वह ऊपरसे देखनेसे निन्दा-सी जान पड़ती है।

व्याजिह्म (सं० त्रि०) बड़ा कुटिल, वक्र।

व्याजी (सं० स्त्री०) बिक्रीमें माप या तौलके ऊपर कुछ थोड़ा-सा और देना, घाल, घलुआ।

व्याजीकरण (सं० क्ली०) वञ्चनीकरण, छलना करना।

व्याजोक्ति (सं० स्त्री०) व्याजेन उक्तिः। १ वह कथन जिसमें किसी प्रकारका छल हो, कपट भरी बात। २ एक प्रकारका अलंकार। इसमें किसी स्पष्ट या प्रकट बातको छिपानेके लिये किसी प्रकारका बहाना किया जाता है। छेकापह्नुतिसे इसमें यह अंतर है, कि छेकापह्नुतिमें निषेधपूर्वक बात छिपाई जाती है और इसमें बिना निषेध किये ही छिपाई जाती है।

(साहित्यद० १०।७४६)

व्याड़ (सं० पु०) १ सर्प, सांप। २ व्याघ्र, बाघ। ३ इन्द्र। (त्रि०) ४ वञ्चक धूर्त।

व्याड़ंव (सं० क्ली०) रक्त एरण्ड, लाल रेंड़।

व्याड़ायुध (सं० क्ली०) व्याडस्य व्याघ्रस्य आयुधं नखमिव। नख नामक गन्धद्रव्य।

व्याड़ि (सं० पु०) १ कोष और व्याकरणकारक मुनिविशेष। पा १।२।६४ सूत्रके ४५ वार्त्तिकमें व्याड़िका उल्लेख मिलता है। २ ऋषिभेद। ३ प्रातिशाख्य कारिका और संग्रह नामक ग्रन्थके प्रणेता। नागोजी भट्टने इनका नामोल्लेख किया है। पर्याय—विन्ध्यवासी, नन्दिनीतनय, विन्ध्यस्थ नन्दिनीसुत। (त्रिका०)

व्याड़ी (सं० स्त्री०) व्याड़ि-ष्यङ्-ततश्चाप्। व्याड़ीकी स्त्री। (पा ४।१।८०)

व्यात्त (सं० त्रि०) वि-आ-दा-क्त। १ प्रसारित। २ विस्तृत, प्रशस्त, लम्बा-चौड़ा।

व्यात्युक्षी (सं० स्त्री०) व्यतिहारेण उक्षणं वि-आ-अति-उक्ष (कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियां। पा ३।३।४३) इति णच्, ततः (णचः स्त्रियामञ्। पा ५।४।१४) इति अञ् (टिड्ढाणञिति। पा ४।१।१५) इति ङीप्। जल-क्रीड़ा।

व्यादान (सं० क्ली०) वि-आ-दा-ल्युट्। १ विस्तार, फैलाव। २ उद्घाटन, खोलना।

व्यादिश (सं० पु०) विशेषेणादिशति स्व स्व कर्मणि नियोजयति जगत् वि-आ-दिश-क। विष्णु।

व्यादीर्घ (सं० त्रि०) अति दीर्घ, बहुत लम्बा।

व्यादीर्ण (सं० त्रि०) विशेषरूपसे गिरा हुआ।

व्यादीर्णास्य (सं० पु०) सिंह।

व्यादेश (सं० पु०) विशेष आदेश।

व्याध (सं० पु०) विध्यति मृगादीन् व्यध (श्याद्व्यधे ण। पा ३।१।४१) इति ण। १ वह जो जंगली पशुओं आदिको मार कर अपना निर्वाह करता हो, शिकारी। पर्याय—मृगवधाजीव, मृगयु, लुब्धक, मृगाविन्, द्रोहाट, मृगजीवन, वलपांशुल। (शब्दरत्ना०) २ प्राचीन कालकी एक जाति। यह जंगली पशुओंको मार कर अपनी जीविका निर्वाह करती थी। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके अनुसार इसकी उत्पत्ति सर्वसी माता और क्षत्रिय पितासे है। ३ प्राचीन कालकी शबर नामक जाति। (त्रि०) ४ दुष्ट, पाजी, लुच्चा।

व्याधक (सं० पु०) व्याध-स्वार्थे कन्। व्याध देखो।

व्याधभीत (सं० पु०) व्याधाद्भीतः। १ मृग, हिरन। (त्रि०) २ व्याधसे भीत।

व्याधाम (सं० पु०) वज्र। (हेम)

व्याधि (सं० स्त्री०) विविधा आधयोऽस्मात् यद्वा वि आ-धा (उपसर्गे घोः किः। पा ३।३।९२) इति किः। रोग, पीड़ा बीमारी।

पुरुषमें दुःखका योग होनेसे उसे व्याधि कहते हैं। पुरुष जो दुःख अनुभव करता है, वही व्याधिपदवाच्य है। यह व्याधि दो तरहकी है—शारीर और मानस। वायु, पित्त और श्लेष्माकी विषमता निबन्धन शारीरव्याधि तथा काम, क्रोध, लोभ और मोहादि निबन्धन मानसव्याधि होती है।

शरीर और मन यह दोनों ही व्याधिसमूहका और आरोग्यका आश्रयस्थान है। वायु, पित्त और कफ ये तीन शारीर दोष तथा रजः और तमः ये दो मानस दोष कहे गये हैं। उक्त वायु पित्तादि दोष कुपित हो कर शारीरिक व्याधि तथा रजः और तमोदोषसे मानसिक व्याधि उत्पन्न होती है। बलि, होम और स्वस्त्ययनादि दैव आश्रय तथा संशोधन और संशमनादि युक्ति आश्रय कर इन दोनों द्वारा वातादि दोषकी शान्ति तथा ज्ञान, विज्ञान, धैर्य, स्मृति और समाधि द्वारा मानस व्याधिकी शान्ति होती है। (अग्निपुराण २०१ अ०)

२ कुष्ठ या कूट नामकी ओषधि। ३ आघात, अंबष्ठ। ४ साहित्यमें एक संचारी भाव, विरह काम आदिके कारण शरीरमें किसी प्रकारका रोग होना।

व्याधिघात (सं० पु०) रोगदूषित और हानिकर हेतुभूत-भाव। (राजनि०)

व्याधितस्कर (सं० पु०) मन माराद मन्यहरत।

व्याधिघात (सं० पु०) व्याधियोंका घातक। आरग्वध, बड़ा अमलतासका पेड़। (राजनि०)

व्याधिहन् (सं० पु०) व्याधिं हन्ति व्याधि-हन्-टक्। १ आरग्वध, अमलतास। (त्रि०) २ व्याधिनाशक, जिससे किसी प्रकारकी व्याधिका नाश होता हो।

व्याधिजित् (सं० पु०) व्याधि जयति जि-क्विप्-तुक् च। १ आरग्वध, अमलतास। (त्रि०) २ व्याधिजय-कारी, व्याधिको हरण करनेवाला।

व्याधित (सं० त्रि०) व्याधिः संजातोऽस्येति तारकादि-त्वादितच्। व्याधियुक्त, जिसे किसी प्रकारकी व्याधि हुई हो, रोगी, बीमार।

व्याधिन (सं० त्रि०) व्याध-णिनि। १ व्याधियुक्त, जिसे किसी प्रकारकी व्याधि हुई हो। व्याध-णिन। २ अनुवेधनशील, छेदनेवाला, मारनेवाला।
(शुक्लयजुः १६।१८)

व्याधिनाशन (सं० पु०) १ लोध-सोमी। (त्रि०) २ रोगनाशक।

व्याधिरिपु (सं० पु०) व्याधि एव रिपुः। १ व्याधिरूप शत्रु। २ अमलतास। ३ एक प्रकारका अमलतास जिसे कर्णिकार कहते हैं।

व्याधिविपरीत (सं० पु०) व्याधेर्विपरीतः। ऐसी औषध जो व्याधिके विपरीत गुण करनेवाली हो। जैसे—दस्त लानेके अथवा कब्जियत करनेवाली दवा।
(भावप्र०)

व्याधिस्थान (सं० क्ली०) शरीर, बदन, जिस्म।

व्याधिहन्तृ (सं० पु०) व्याधिं [illegible] वाराही कन्द, गृष्टिकन्द, गेंठी। (राज[illegible] रोगका नाश होता है।

व्याधिहर (सं० त्रि०) व्याधि [illegible] व्याधिको दूर [illegible]

व्याधी (सं० स्त्री०) भद्रुक, अतागिन।
(अथर्व ७।१२(१२) भाष्य देखो।)

व्याघुत (सं० त्रि०) वि-आ-धु-क्त। कम्पित, काँपता हुआ। (भागवत०)

व्याधूत (सं० पु०) वि-आ-धू-क्त। कम्पित, काँपा हुआ।

व्याध्य (सं० त्रि०) १ व्याध-ताड़नीय, ताड़नीय। (पु०) २ मित्र।

व्याघ्रास्य (सं० पु०) दुर्गाके एक अनुचर गणका नाम।

व्यान (सं० पु०) व्यानिति सर्वशरीरं व्याप्नोतीति वि-आ-अन-अच्। शरीरमें रहनेवाली पाँच वायुओंमें-से एक वायु। यह सारे शरीरमें संचार करनेवाली मानी जाती है। कहते हैं, कि इसीके द्वारा शरीरकी सब क्रियाएँ होती हैं; सारे शरीरमें रस पहुँचता है, पसीना बहता है और खून चलता है, आदमी उठता, बैठता और चलता फिरता है और आँखें खोलता तथा बंद करता है। भावप्रकाशके मतसे जब यह वायु कुपित होती है, तब प्रायः सारे शरीरमें एक न एक रोग हो जाता है। (भावप्र०)

व्यानदा (सं० स्त्री०) व्यानं ददातीति दा-क, स्त्रियां टाप्। वह शक्ति जो व्यान वायु प्रदान करती है।
(शुक्लयजु० १४।१४)

व्यानशि (सं० त्रि०) व्यापनशील, व्यापक।
(ऋक् १।५०।१)

व्यापक (सं० त्रि०) विशेषेणाप्नोतीति वि-आप-ण्वुल्। १ जो बहुत दूर तक व्याप्त हो, चारों ओर फैला हुआ। २ व्याप्यव्यापकभावे पूर्वसाध्याभावाधिकरणावृत्तिः, तद्वृत्त्यभावाप्रतियोगी। जिसका अभाव जो अप्रतियोगी अर्थात् अभाव है, वही व्यापक है। ३ आच्छादक, जो ऊपर या चारों ओरसे घेरे हुए हो।

व्यापकन्यास (सं० पु०) पूजाङ्गन्यासभेद। जिस देवताकी पूजा करनी होती है, उस देवताके मूलमन्त्रसे सिरसे पैर तक न्यास करनेका नाम व्यापकन्यास है।

व्यापत्ति [illegible]) वि आप क्तिन्। मृत्यु, मौत।

[illegible] -वि-आ पद क्विप्। मृत्यु, मौत।

[illegible] -ल्युट्। १ घातन, विनाश,

फैलाव। २ आच्छादन करना, चारों ओरसे या ऊपरसे घेरना या ढकना।

व्यापना (हिं० क्रि०) किसी चीजके अंदर फैलाना, व्याप्त होना।

व्यापनीय (सं० त्रि०) वि-आप-अनीयर्। १ व्यापन करनेके योग्य। २ आच्छादनीय।

व्यापन्न (सं० त्रि०) वि-आ-पद्-क्त। १ मृत, मरा हुआ। २ विपन्न, जो किसी प्रकारकी विपत्तिमें पड़ा हुआ हो, आफतमें फंसा हुआ।

व्यापाद (सं० पु०) वि-आ-पद-क्त। १ द्रोहचिन्तन, मनमें दूसरेके अपकारकी भावना करना, किसीकी बुराई सोचना। २ मारण, विनाश, वध। ३ नष्ट, बरबाद।

व्यापादक (सं० त्रि०) व्यापादयतीति वि आ पद णिच् ण्वुल्। १ जो दूसरोंकी बुराई करनेकी इच्छा रखता हो। २ जो हत्या या विनाश करता हो।

व्यापादन (सं० क्ली०) वि-आ-पद-णिच्-ल्युट्। १ मार डालना, वध, हत्या। २ परानिष्ट चिन्तन, किसीको कष्ट पहुंचानेका उपाय सोचना। ३ नष्ट करना, बरबाद करना। (अमरटीकामें रामाश्रम)

व्यापादनीय (सं० त्रि०) वि-आ-पद्-णिच्-अनीयर्। व्यापादनयोग्य, मार डालने या नष्ट करने लायक।

व्यापादयितव्य (सं० त्रि०) वि-आ-पद्-णिच्-तव्य। व्यापादनयोग्य, मार डालने या नष्ट करनेलायक।

व्यापादित (सं० त्रि०) वि-आ पद्-णिच्-क्त। मारित, मारा हुआ।

व्यापार (सं० पु०) वि-आ पृ-घञ्। १ कर्म, कार्य, काम। २ साहाय्य, मदद। ३ नैयायिक मतसे करण जन्य क्रियात्मक पदार्थ। जो पदार्थ करणजन्य क्रियाका जनक होता है, वही व्यापार है। विषयके साथ इन्द्रियका जो संयोग होता है, उसीका नाम व्यापार है। यह व्यापार छः प्रकारका है। ४ व्यवसाय, पदार्थों अथवा धनके बदलेमें पदार्थ लेना और देना।

व्यापारक (सं० पु०) व्यापार स्वार्थे कन्। व्यापार देखो।

"नियतविषयाभिमानव्यापारकोऽहङ्कारः स्वीकार्यः"

(कुसुमाञ्जलि)

अहंकारका कार्य ही नियत विषयाभिमान है।

व्यापारण (सं० क्ली०) १ आदेश, आज्ञा देना। २ नियोग, किसी काममें नियुक्त करना।

(पा ८।१।१०४)

व्यापारवत्ता (सं० स्त्री०) व्यापारवतो भावः व्यापारवत् तल्-टाप्। व्यापारविशिष्टका भाव या धर्म, व्यापार।

व्यापारवत् (सं० त्रि०) व्यापारो विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य व। व्यापारविशिष्ट, व्यापारयुक्त।

व्यापारिन् (सं० त्रि०) व्यापारोऽस्यास्तीति व्यापार-इनि। व्यापारी देखो।

व्यापारी (सं० त्रि०) १ जो किसी प्रकारका व्यापार करता हो। २ व्यवसाय या रोजगार करनेवाला, व्यवसायी, रोजगारी। ३ व्यापार-सम्बन्धी, व्यापार का।

व्यापित्व (सं० क्ली०) व्यापिनो भावः व्यापिन्-त्व। व्यापीका भाव या धर्म, व्यापकका भाव या धर्म।

व्यापिन् (सं० पु०) व्याप्नोति सर्वमिति वि-आप-णिनि। १ विष्णु। (भारत १३।१४९।६३) विष्णु चराचर सब जगत् व्याप्त हैं इसलिये वे व्यापी कहलाते हैं। (त्रि०) २ व्यापक, जो व्याप्त हो।

व्यापीत (सं० त्रि०) सम्पूर्णरूपसे पीत।

व्यापृत (सं० पु०) वि-आ-पृ-क्त। १ कर्मसचिव, मंत्री, राजकर्मचारी। (त्रि०) २ व्यापारयुक्त, कार्यरत।

व्यापृति (सं० स्त्री०) वि-आ-पृ-क्तिन्। व्यापार।

व्याप्त (सं० त्रि०) वि आप-क्त। १ आपूर्ण। पर्याय—पूर्ण, आचित, छन्न, पूरित, भरित, निचित। २ ख्यात, मशहूर। ३ समाक्रांत। ४ स्थापित। ५ व्याप्तियुक्त। ६ वेष्टित, परिपूरित। ७ विस्तारित।

व्याप्ति (सं० स्त्री०) वि-आप-क्तिन्। १ व्यापन, चारों ओर या सब जगह फैला हुआ होना। २ लाभ। हेमचन्द्र अभिधानमें लाभकी जगह लक्षण ऐसा अर्थ देखनेमें आता है। ३ आठ प्रकारके ऐश्वर्योंमेंसे एक प्रकारका ऐश्वर्य।

अणिमा, लघिमा, व्याप्ति, प्राकाम्य, महिमा, ईशिता, वशित्व और कामावसायिता यही आठ प्रकारके ऐश्वर्य हैं।

२ कुड़ या कुट नामकी औषधि। ३ आक्रम, झंझट। ४ साहित्यमें एक संचारी भाव, विरह काम आदिके कारण शरीरमें किसी प्रकारका रोग होना।

व्याधिकाल (सं० पु०) रोगवृद्धि और हानिका हेतुभूत-काल। (माधव नि०)

व्याधिखड्ग (सं० पु०) नख नामक गन्धद्रव्य।

व्याधिघात (सं० पु०) व्याधेर्घातो यस्मात्। स्थूल आरग्वधवृक्ष, बड़ा अमलतासका पेड़। (राजनि०)

व्याधिघ्न (सं० पु०) व्याधिं हन्ति व्याधि-हन-टक्। १ आरग्वध, अमलतास। (त्रि०) २ व्याधिनाशक, जिससे किसी प्रकारकी व्याधिका नाश होता हो।

व्याधिजित् (सं० पु०) व्याधिं जयति जि-क्विप्-तुक् च। १ आरग्वध, अमलतास। (त्रि०) २ व्याधिजय-कारी, व्याधिको हरण करनेवाला।

व्याधित (सं० त्रि०) व्याधिः संजातोऽस्येति तारकादि-त्वादितच्। व्याधियुक्त, जिसे किसी प्रकारकी व्याधि हुई हो, रोगी, बीमार।

व्याधिन् (सं० त्रि०) व्याध-णिनि। १ व्याधियुक्त, जिसे किसी प्रकारको व्याधि हुई हो। व्याध-णिन्। २ शत्रुवेधनशील, दुश्मनको मारनेवाला। (शुक्लयजुः १६।१८)

व्याधिनाशन (सं० पु०) १ तीव-चीनी। (त्रि०) २ रोगनाशक।

व्याधिरिपु (सं० पु०) व्याधि एव रिपुः। १ व्याधिरूप शत्रु। २ अमलतास। ३ एक प्रकारका अमलतास जिसे कर्णिकार कहते हैं।

व्याधिविपरीत (सं० पु०) व्याधेर्विपरीतः। ऐसी औषध जो व्याधिके विपरीत गुण करनेवाली हो। जैसे—दस्त लानेके समय स्तम्भन करनेवाली दवा। (माधवनि०)

व्याधिस्थान (सं० क्ली०) शरीर, बदन, जिस्म।

व्याधिहन्तृ (सं० पु०) व्याधेर्हन्ता। १ वाराही कंद, गेंठी। (राजनि०) २ रोगनाशक, जिससे रोगका नाश हो।

व्याधिहर (सं० त्रि०) व्याधि-हृ-अच्। व्याधिनाशक, व्याधिको दूर करनेवाला।

व्याधी (सं० स्त्री०) अशुभ, अशान्ति। (अथर्व ७।११४।२) व्याधि देखो।

व्याधुत (सं० त्रि०) वि-आ-धु-क्त। कम्पित, काँपा हुआ। (शब्दरत्ना०)

व्याधूत (सं० पु०) वि-आ-धू-क्त। कम्पित, काँपा हुआ।

व्याध्य (सं० त्रि०) १ व्याध-सम्पर्कीय, व्याधिका। (पु०) २ शिव।

व्याध्यगज (सं० पु०) दामोदरकृत वैद्यक ग्रन्थ।

व्यान (सं० पु०) व्यानिति सर्वशरीरं व्याप्नोतीति वि-आ-अन-अच्। शरीरमें रहनेवाली पाँच वायुओंमें-से एक वायु। यह सारे शरीरमें संचार करनेवाली मानी जाती है। कहते हैं, कि इसीके द्वारा शरीरकी सब क्रियाएं होती हैं; सारे शरीरमें रस पहुंचता है, पसीना बहता है और खून चलता है, आदमी उठता, बैठता और चलता फिरता है और आँखें खोलता तथा बंद करता है। भावप्रकाशके मतसे जब यह वायु कुपित होती है, तब प्रायः सारे शरीरमें एक न एक रोग हो जाता है। (भावप्र०)

व्यानदा (सं० स्त्री०) व्यानं ददातीति दा-क, स्त्रियां टाप्। वह शक्ति जो व्यान वायु प्रदान करती है। (शुक्लयजु० १७।१५)

व्यानशि (सं० त्रि०) व्यापनशील, व्यापक। (ऋक् ३।५०।१)

व्यापक (सं० त्रि०) विशेषेणाप्नोतीति वि-आप-ण्वुल्। १ जो बहुत दूर तक व्याप्त हो, चारों ओर फैला हुआ। २ स्वाश्रयोक्ताधिकरण वृत्त्यभावाप्रतियोगिपदार्थ, तन्निष्ठात्यन्ताभावाप्रतियोगी। अत्यन्ताभावका जो प्रतियोगी अर्थात् अभाव है, वही व्यापक है। ३ आच्छादक, जो ऊपर या चारों ओरसे घेरे हुए हो।

व्यापकन्यास (सं० पु०) पूजाङ्गन्यासभेद। जिस देवताकी पूजा करनी होती है, उस देवताके मूलमन्त्रमें सिरसे पैर तक न्यास करनेका नाम व्यापकन्यास है।

व्यापत्ति (सं० स्त्री०) वि-आ-पद-क्तिन्। मृत्यु, मौत।

व्यापद् (सं० स्त्री०) वि-आ-पद-क्विप्। मृत्यु, मौत।

व्यापन (सं० क्ली०) वि-आप-ल्युट्। १ व्याप्ति, विस्तार,

फैलाव। २ आच्छादन करना, चारों ओरसे या ऊपरसे घेरना या ढकना।

व्यापना (हिं० क्रि०) किसी चीजके अंदर फैलाना, व्याप्त होना।

व्यापनीय (सं० त्रि०) वि-आप-अनीयर्। १ व्यापन करनेके योग्य। २ आच्छादनीय।

व्यापन्न (सं० त्रि०) वि-आ-पद्-क्त। १ मृत, मरा हुआ। २ विपन्न, जो किसी प्रकारकी विपत्तिमें पड़ा हुआ हो, आफतमें फंसा हुआ।

व्यापाद (सं० पु०) वि-आ-पद्-घञ्। १ द्रोहचिन्तन, मनमें दूसरेके अपकारकी भावना करना, किसीको बुराई सोचना। २ मारण, विनाश, वध। ३ नष्ट, बरबाद।

व्यापादक (सं० त्रि०) व्यापादयतीति वि आ पद् णिच् ण्वुल्। १ जो दूसरोंकी बुराई करनेकी इच्छा रखता हो। २ जो हत्या या विनाश करता हो।

व्यापादन (सं० क्ली०) वि-आ-पद्-णिच्-ल्युट्। १ मार डालना, वध, हत्या। २ परानिष्ट चिन्तन, किसीको कष्ट पहुंचानेका उपाय सोचना। ३ नष्ट करना, बरबाद करना। (अमरटीकामें रामाश्रम)

व्यापादनीय (सं० त्रि०) वि-आ-पद्-णिच्-अनीयर्। व्यापादनयोग्य, मार डालने या नष्ट करने लायक।

व्यापादयितव्य (सं० त्रि०) वि-आ-पद्-णिच्-तव्य। व्यापादनयोग्य, मार डालने या नष्ट करनेलायक।

व्यापादित (सं० त्रि०) वि-आ पद्-णिच्-क्त। मारित, मारा हुआ।

व्यापार (सं० पु०) वि-आ पृ-घञ्। १ कर्म, कार्य, काम। २ साहाय्य, मदद। ३ नैयायिक मतसे करण जन्य क्रियाजनक पदार्थ। जो पदार्थ करणजन्य क्रियाका जनक होता है, वही व्यापार है। विषयके साथ इन्द्रियका जो संयोग होता है, उसीका नाम व्यापार है। यह व्यापार छः प्रकारका है। ४ व्यवसाय, पदार्थों अथवा धनके बदलेमें पदार्थ लेना और देना।

व्यापारक (सं० पु०) व्यापार स्वार्थे कन्। व्यापार देखो।

"नियतविषयाभिमानव्यापारकोऽहङ्कारः लोकार्थैः"

(कुसुमाञ्जलि)

अहंकारका कार्य ही नियत विषयाभिमान है।

व्यापारण (सं० क्ली०) १ आदेश, आज्ञा देना। २ नियोग, किसी काममें नियुक्त करना।

(पा ८।२।१०४)

व्यापारवत्ता (सं० स्त्री०) व्यापारवतो भावः व्यापारवत् तल्-टाप्। व्यापारविशिष्टका भाव या धर्म, व्यापार।

व्यापारवत् (सं० त्रि०) व्यापारो विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य व। व्यापारविशिष्ट, व्यापारयुक्त।

व्यापारिन् (सं० त्रि०) व्यापारोऽस्या-स्तीति व्यापार-इनि। व्यापारी देखो।

व्यापारी (सं० त्रि०) १ जो किसी प्रकारका व्यापार करता हो। २ व्यवसाय या रोजगार करनेवाला, व्यवसायी, रोजगारी। ३ व्यापार-सम्बन्धी, व्यापार का।

व्यापित्व (सं० क्ली०) व्यापिनो भावः व्यापिन् त्व। व्यापीका भाव या धर्म, व्यापकका भाव या धर्म।

व्यापिन् (सं० पु०) व्याप्नोति सर्वमिति वि-आप-णिनि। १ विष्णु। (भारत १३।१४९।६३) विष्णु चराचर सब जगह व्याप्त हैं इसलिये वे व्यापी कहलाते हैं। (त्रि०) २ व्यापक, जो व्याप्त हो।

व्यापीत (सं० त्रि०) सम्पूर्णरूपसे पीत।

व्यापृत (सं० पु०) वि-आ-पृ-क्त। १ कर्मसचिव, मंत्री, राजकर्मचारी। (त्रि०) २ व्यापारयुक्त, कार्यरत।

व्यापृति (सं० स्त्री०) वि-आ पृ-क्तिन्। व्यापार।

व्याप्त (सं० त्रि०) वि आप-क्त। १ सम्पूर्ण। पर्याय—पूर्ण, आचित, छन्न, पूरित, भरित, निचित। २ ख्यात, मशहूर। ३ समाक्रांत। ४ स्थापित। ५ व्याप्तियुक्त। ६ वेष्टित, परिवृत्त। ७ विस्तारित।

व्याप्ति (सं० स्त्री०) वि-आप-क्तिन्। १ व्यापन, चारों ओर या सब जगह फैला हुआ होना। २ लक्षण। हेम-चन्द्र अभिधानमें इसकी जगह लक्षण ऐसा अर्थ देखनेमें आता है। ३ आठ प्रकारके ऐश्वर्योंमेंसे एक प्रकारका ऐश्वर्य।

अणिमा, लघिमा, व्याप्ति, प्राकाम्य, महिमा, ईशिता, वशित्व और कामावसायिता यही आठ प्रकारके ऐश्वर्य हैं।

२ कूट या कुट नामकी ओषधि । ३ आफत, झंझट । ४ साहित्यमें एक संचारी भाव, विरह काम आदिके कारण शरीरमें किसी प्रकारका रोग होना ।

व्याधिकाल (सं० पु०) रोगवृद्धि और हानिका हेतुभूत-काल । (माधव नि०)

व्याधिखड्‌ग (सं० पु०) नग नामक गन्धद्रव्य ।

व्याधिघात (सं० पु०) व्याधेर्घातो यस्मात् । स्थूल आरग्वधवृक्ष, बड़ा अमलतासका पेड़ । (राजनि०)

व्याधिघ्न (सं० पु०) व्याधिं हन्ति व्याधि-हन्-टक् । १ आरग्वध, अमलतास । (त्रि०) २ व्याधिनाशक, जिससे किसी प्रकारकी व्याधिका नाश होता हो ।

व्याधिजित् (सं० पु०) व्याधिं जयति जि-क्विप्-तुक् च । १ आरग्वध, अमलतास । (त्रि०) २ व्याधिजय-कारी, व्याधिको हरण करनेवाला ।

व्याधित (सं० त्रि०) व्याधिः संजातोऽस्येति तारकादि-त्वादितच् । व्याधियुक्त, जिसे किसी प्रकारकी व्याधि हुई हो, रोगी, बीमार ।

व्याधिन् (सं० त्रि०) व्याध णिनि । १ व्याधियुक्त, जिसे किसी प्रकारकी व्याधि हुई हो । व्याध-णिन । २ शत्रुवेधनशील, दुश्मनको मारनेवाला ।

(शुक्लयजुः १६।१८)

व्याधिनाशन (सं० पु०) १ लोध-चीनी । (त्रि०) २ रोगनाशक ।

व्याधिरिपु (सं० पु०) व्याधि एव रिपुः । १ व्याधिरूप शत्रु । २ अमलतास । ३ एक प्रकारका अमलतास जिसे कर्णिकार कहते हैं ।

व्याधिविपरीत (सं० पु०) व्याधेर्विपरीतः । ऐसी औषध जो व्याधिके विपरीत गुण करनेवाली हो । जैसे—दस्त लानेके समय कब्जियत करनेवाली दवा ।

(भावनि०)

व्याधिस्थान (सं० क्ली०) शरीर, बदन, जिस्म ।

व्याधिहन्तृ (सं० पु०) व्याधेर्हन्ता । १ वाराही कंद, शूकरकंद, गेंठी । (राजनि०) २ रोगनाशक, जिससे रोगका नाश हो ।

व्याधिहर (सं० त्रि०) व्याधि-हृ-अच् । व्याधिनाशक, व्याधिको दूर करनेवाला ।

व्याधी (सं० स्त्री०) अमुक्त, अशान्ति ।

(अथर्व ७।११४।२) व्याधि देखो ।

व्याधुत (सं० त्रि०) वि-आ-धु-क्त । कम्पित, काँपा हुआ । (शब्दरत्ना०)

व्याधूत (सं० पु०) वि-आ धू क्त । कम्पित, काँपा हुआ ।

व्याध्य (सं० त्रि०) १ व्याध-सम्पर्कीय, व्याधिका । (पु०) २ शिव ।

व्याध्यगज (सं० पु०) दामोदरकृत वैद्यक ग्रन्थ ।

व्यान (सं० पु०) व्यानिति सर्वशरीरं व्याप्नोतीति वि-आ-अन-अच् । शरीरमें रहनेवाली पाँच वायुओंमें-से एक वायु । यह सारे शरीरमें संचार करनेवाली मानी जाती है । कहते हैं, कि इसीके द्वारा शरीरकी सब क्रियाएं होती हैं ; सारे शरीरमें रस पहुंचता है, पसीना बहता है और खून चलता है, आदमी उठता, बैठता और चलता फिरता है और आँखें खोलता तथा बंद करता है । भावप्रकाशके मतसे जब यह वायु कुपित होती है, तब प्रायः सारे शरीरमें एक न एक रोग हो जाता है । (भावप्र०)

व्यानदा (सं० स्त्री०) व्यानं ददातीति दा-क, स्त्रियां टाप् । वह शक्ति जो व्यान वायु प्रदान करती है ।

(शुक्लयजु० १७।१५)

व्यानशि (सं० त्रि०) व्यापनशील, व्यापक ।

(ऋक् ३।५०।२)

व्यापक (सं० त्रि०) विशेषेणाप्नोति वि-आप-ण्वुल् । १ जो बहुत दूर तक व्याप्त हो, चारों ओर फैला हुआ । २ व्याप्यतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरण वृत्त्यभावाप्रतियोगिपदार्थो, तन्निष्ठात्यन्ताभावाप्रतियोगी । अत्यन्ताभावका जो प्रतियोगी अर्थात् अभाव है, वही व्यापक है । ३ आच्छादक, जो ऊपर या चारों ओरसे घेरे हुए हो ।

व्यापकन्यास (सं० पु०) पूजाङ्गन्यासभेद । जिस देवताकी पूजा करनी होती है, उस देवताके मूलमन्त्रसे सिरसे पैर तक न्यास करनेका नाम व्यापकन्यास है ।

व्यापत्ति (सं० स्त्री०) वि-आप-क्ति । मृत्यु, मौत ।

व्यापद् (सं० स्त्री०) वि-आ पद क्विप् । मृत्यु, मौत ।

व्यापन (सं० क्ली०) वि-आप-ल्युट् । १ व्याप्ति, विस्तार,

फैलाव। २ आच्छादन करना, चारों ओरसे या ऊपर-से घेरना या ढकना।

व्यापना (हिं० क्रि०) किसी चीजके अंदर फैलाना, व्याप्त होना।

व्यापनीय (सं० त्रि०) वि-आप-अनीयर्। १ व्यापन करनेके योग्य। २ आच्छादनीय।

व्यापन्न (सं० त्रि०) वि-आ-पद्-क्त। १ मृत, मरा हुआ। २ विपन्न, जो किसी प्रकारकी विपत्तिमें पड़ा हुआ हो, आफतमें फंसा हुआ।

व्यापाद (सं० पु०) वि-आ-पद्-घञ्। १ द्रोहचिन्तन, मनमें दूसरेके अपकारकी भावना करना, किसीको बुराई सोचना। २ मारण, विनाश, वध। ३ नष्ट, बरबाद।

व्यापादक (सं० त्रि०) व्यापादयतीति वि आ पद् णिच् ण्वुल्। १ जो दूसरोंकी बुराई करनेकी इच्छा रखता हो। २ जो हत्या या घोनाश करता हो।

व्यापादन (सं० क्ली०) वि-आ-पद्-णिच्-ल्युट्। १ मार डालना, वध, हत्या। २ परानिष्ट चिन्तन, किसीको कष्ट पहुंचानेका उपाय सोचना। ३ नष्ट करना, बरबाद करना। (अमरटीकामें रायमुकुट)

व्यापादनीय (सं० त्रि०) वि-आ-पद्-णिच्-अनीयर्। व्यापादनयोग्य, मार डालने या नष्ट करने लायक।

व्यापादयितव्य (सं० त्रि०) वि-आ-पद्-णिच्-तव्य। व्यापादनयोग्य, मार डालने या नष्ट करनेलायक।

व्यापादित (सं० त्रि०) वि-आ पद्-णिच्-क्त। मारित, मारा हुआ।

व्यापार (सं० पु०) वि-आ पृ-घञ्। १ कर्म, कार्य, काम। २ साहाय्य, मदद। ३ नैयायिक मतसे करण जन्य क्रियाजनक पदार्थ। जो पदार्थ करणजन्य क्रिया-का जनक होता है, वही व्यापार है। विषयके साथ इन्द्रियका जो संयोग होता है, उसीका नाम व्यापार है। यह व्यापार छः प्रकारका है। ४ व्यवसाय, व्यापार अथवा धनके बदलेमें पदार्थ लेना और देना।

व्यापारक (सं० पु०) व्यापार स्वार्थे कन्। व्यापार देखो।
"नियतविषयाभिमानव्यापारकोऽहङ्कारः स्मृतः"
(कुसुमाञ्जलि)
अहंकारका कार्य ही नियत विषयाभिमान है।

व्यापारण (सं० क्ली०) १ आदेश, आज्ञा देना। २ नियोग, किसी काममें नियुक्त करना।
(पा ८।२।१०४)

व्यापारवत्ता (सं० स्त्री०) व्यापारवतो भावः व्यापार वत् तल्-टाप्। व्यापारविशिष्टका भाव या धर्म, व्यापार।

व्यापारवत् (सं० त्रि०) व्यापारो विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य व। व्यापारविशिष्ट, व्यापारयुक्त।

व्यापारिन् (सं० त्रि०) व्यापारोऽस्यास्तीति व्यापार-इनि। व्यापारी देखो।

व्यापारी (सं० त्रि०) १ जो किसी प्रकारका व्यापार करता हो। २ व्यवसाय या रोजगार करनेवाला, व्यवसायी, रोजगारी। ३ व्यापार-सम्बन्धी, व्यापार का।

व्यापित्व (सं० क्ली०) व्यापिनो भावः व्यापिन् त्व। व्यापीका भाव या धर्म, व्यापकका भाव या धर्म।

व्यापिन् (सं० पु०) व्याप्नोति सर्वमिति वि-आप-णिनि। १ विष्णु। (भारत १३।१४९।६३) विष्णु भगवान् सब जगह व्याप्त हैं इसलिये वे व्यापी कहलाते हैं। (त्रि०) २ व्यापक, जो व्याप्त हो।

व्यापीत (सं० त्रि०) सम्पूर्णरूपसे पीत।

व्यापृत (सं० पु०) वि-आ-पृ-क्त। १ कर्मसचिव, मंत्री, राजकर्मचारी। (त्रि०) २ व्यापारयुक्त, कार्यरत।

व्यापृति (सं० स्त्री०) वि-आ-पृ-क्तिन्। व्यापार।

व्याप्त (सं० त्रि०) वि आप-क्त। १ सम्पूर्ण। पर्याय— पूर्ण, आचित, छन्न, पूरित, भरित, निचित। २ ख्यात, मशहूर। ३ समाक्रान्त। ४ स्थापित। ५ व्याप्तियुक्त। ६ वेष्टित, परिपूरित। ७ विस्तारित।

व्याप्ति (सं० स्त्री०) वि-आप-क्तिन्। १ व्यापन, चारों ओर या सब जगह फैला हुआ होना। २ लाभ। हेम-चन्द्र अभिधानमें इसकी जगह लम्भन ऐसा शब्द देखने-में आता है। ३ आठ प्रकारके ऐश्वर्यों मेंसे एक प्रकारका ऐश्वर्य।

अणिमा, लघिमा, व्याप्ति, प्राकाम्य, महिमा, ईशिता, वशित्व और कामावसायिता यही आठ प्रकारके ऐश्वर्य हैं।

४ न्यायके अनुसार किसी एक पदार्थमें दूसरे पदार्थका पूर्णरूपसे मिला या फैला हुआ होना, एक पदार्थका दूसरे पदार्थमें अथवा उसके साथ सदा पाया जाना।

साध्यविशिष्टके अन्य विषयमें जो असम्बन्ध अर्थात् अवृत्तित्व है, वही व्याप्ति है। इसका तात्पर्य इस प्रकार है, 'वह्निमान् धूमात्' धूम हेतुक वह्नियुक्त, यहां वह्नि साध्य और महानसादि साध्यवान् है, चूल्हे आदिमें यह साध्य वह्नि है, इस कारण यह साध्यवान् है, तदन्य अर्थात् साध्यवानके अन्य जलह्रदादि हैं, जलह्रद आदिमें साध्यरूपवह्नि नहीं है। अतएव यह तदन्य है, उसमें अर्थात् जलह्रदादिमें धूमका अवृत्तित्व असम्बन्ध है, जलह्रद आदिमें धूमका कोई भी सम्बन्ध नहीं रह सकता, यही व्याप्ति है। अथवा हेतुसन्निष्ठ विरहका जो अप्रतियोगी साध्य है उसके साथ हेतुका जो ऐकाधिकरण्य है, उसका नाम व्याप्ति है।

तत्वन्यायमें व्याप्तिके लक्षण आलोचित हुए हैं।

व्याप्तिकर्मन् (सं॰ पु॰) व्याप्तिविशिष्टं कर्म यस्य। व्यापनक्रियाविशिष्ट, वह जिसकी क्रिया तमाम व्याप्त हो। (मेदनि॰ २११८ अ॰)

व्याप्तिज्ञान (सं॰ पु॰) न्यायके अनुसार वह ज्ञान जो साध्यको देख कर साध्यवान्के अस्तित्वके सम्बन्धमें अथवा साध्यवान्को देख कर साध्यके अस्तित्वके सम्बन्धमें होता है।

व्याप्तित्व (सं॰ क्ली॰) व्याप्तिमतो भावः व्याप्तिमत् भावे त्व। व्याप्तिमत्‌का भाव या धर्म, व्याप्ति।

व्याप्तिमत् (सं॰ त्रि॰) व्याप्ति विद्यतेऽस्य व्याप्ति-मतुप्। व्याप्तिविशिष्ट, व्याप्तियुक्त।

व्याप्य (सं॰ क्ली॰) व्याप्यते इति वि आप-ण्यत्। १ वह जिसके द्वारा कोई काम हो, साधन, हेतु। "व्याप्यं लिङ्गञ्च साधनं" (त्रिका॰) व्याप्य द्वारा व्यापककी अनुमिति हुआ करती है। नैयायिक मतसे व्याप्तिके अनुयोगीका नाम व्याप्य है। २ व्याप्ति देखो। ३ कुष्ठ या कूठ नामक औषधि। (त्रि॰) ४ व्यापनीय, व्याप्त करनेके योग्य।

व्याप्यवृत्ति (सं॰ त्रि॰) अव्याप्यवृत्ति, जो अन्य पदार्थ-में हो।

व्याम्रियमाण (सं॰ त्रि॰) वि-आ-मृ-शानच्। व्यापृत, नियुक्त।

व्याम (सं॰ पु॰) विशेषेण आयतेऽनेनेति अम गतौ घञ्। परिमाणविशेष, लम्बाईकी एक नाप। दोनों हाथोंको जहां तक हो सके, दोनों बगलमें फैलाने पर एक हाथकी उंगलियोंके सिरेसे दूसरे हाथकी उंगलियोंके सिरे तक जितनी दूरी होती है वह व्याम कहलाती है।

व्यामिश्र (सं॰ त्रि॰) वि-आ-मिश्र-घञ्। संमिलित, दो प्रकारके पदार्थों या कार्योंको एकमें मिलानेकी क्रिया।

व्यामिश्रव्यूह (सं॰ पु॰) मिला जुला व्यूह, वह व्यूह जिसमें पैदलके अतिरिक्त हाथी, घोड़े और रथ भी सम्मिलित हों। कौटिल्यने इसके दो भेद कहे हैं—मध्यभेदी और अन्तभेदी। मध्यभेदी वह है जिसके अन्तमें हाथी, इधर उधर घोड़े, मुख्य भाग या केन्द्रमें रथ तथा उरस्यमें हाथी और रथ हों। इससे भिन्न अन्तभेदी है।

व्यामिश्रासिद्धि (सं॰ स्त्री॰) शत्रु और मित्र दोनोंकी स्थितिका अपने अनुकूल होना।

व्यामोह (सं॰ पु॰) वि-आ-मुह-घञ्। मोह, अज्ञान।

व्याम्य (सं॰ त्रि॰) १ विरुद्धगमन या नियम लङ्घनहेतु बाधित। २ विविधरूपसे पीड़ित। (भागवत ४।१६।८ भाष्य)

व्यायत (सं॰ त्रि॰) विशेषणायत। १ व्यापृत, हैरान। २ दृढ़। ३ अतिशय। ४ दूर। ५ व्याम।

व्यायतन (सं॰ क्ली॰) आयतनविशिष्ट।

व्यायाम (सं॰ पु॰) वि-आ-यम-घञ्। १ पौरुष। २ व्यापार, काम। ३ श्रम, मेहनत। ४ विषम। ५ व्याम। ६ दुर्गसञ्चार। ७ मल्लक्रीड़ा, कसरत, वह क्रिया जिससे शारीरिक परिश्रम होता है।

मनको अनुकूल और देहको बलप्रद जो शारीरिक चेष्टा या क्रिया है उसीको व्यायाम कहते हैं। यह व्यायाम उपयुक्त परिमाणमें करना होता। उपयुक्त रूपमें व्यायाम करनेसे शरीरकी जड़ता दूर होती और बल धीरे धीरे बढ़ने लगता है। व्यायाम इस हिसाबसे करना चाहिये जिससे शरीर अत्यन्त क्लान्त न हो जाय। व्यायाम द्वारा देह लघु, कार्यमें सामर्थ्य, शरीर स्थिर

अर्थात् पाचनशक्तिमें अवस्थान, क्लेशसहिष्णुता, वातादि-दोषका ह्रासवृद्धिका नाश और अग्निकी वृद्धि होती है।

जो नियमितरूपसे व्यायाम करते हैं, उनको अग्निकी वृद्धि होती है, अतएव विरुद्ध, अविरुद्ध, विदग्ध, अविदग्ध सभी प्रकारके खाद्य परिमित व्यायामशील व्यक्ति आसानीसे पचा लेता है। इससे अग्नि बढ़ती है, सुतरां उसके वातादिदोष कुपित नहीं हो सकते। अग्निवृद्धि होनेके कारण देहानुकूल व्यायाम द्वारा वातादिदोषकी वृद्धि न हो कर वरं उनको समता ही होती है।

अतिशय व्यायाम शरीरके लिये हानिकारक है। इससे शरीरको ग्लानि, मनोग्लानि, धातुक्षय, तृष्णा, रक्तपित्त, श्वास, कास, ज्वर, वमि आदि उपद्रव होते अतएव यह अत्यन्त मात्रामें न करना चाहिये। हाथी जिस प्रकार अपना बलसे सिंहको आक्रमण करने पर आप ही विनष्ट होता है उसी प्रकार अति मात्रामें व्यायामकारी व्यक्ति भी स्वयं विनष्ट होता है।

व्यायाम सुबह शाम करना चाहिये। दूसरे समयमें करना उचित नहीं, अन्य समय करनेसे शरीरका अपकार होता है।

८ युद्धकी तैयारी। ९ सेनाकी कवायत आदि।

(चरकसू स्थान० ७ अ०)

व्यायामवत् (सं० त्रि०) व्यायामो विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य व। व्यायामयुक्त, व्यायामविशिष्ट।

व्यायामयुद्ध (सं० पु०) आमने सामनेकी लड़ाई। चाणक्यका मत है, कि व्यायामयुद्ध अर्थात् आमने सामनेकी लड़ाईमें दोनों ही पक्षोंको बहुत हानि पहुंचती है। जो राजा जीत भी जाता है, वह भी इतना कमजोर हो जाता है, कि उसको एक प्रकारसे पराजित ही समझना चाहिए।

व्यायामिक (सं० त्रि०) व्यायामसम्बन्धी। "व्यायामिकीनां च विद्यानां ज्ञानम्।" यह चौसठ कलाविद्यामें एक है। भागवत १०।४५।३६ श्लोककी टीकामें श्रीधरस्वामीने इसका उल्लेख किया है। किसी किसी ग्रन्थमें 'व्यायामिकी' जगह "वैतालिकी" पाठ देखा जाता है।

व्यायामिन् (सं० त्रि०) व्यायाम अस्त्यर्थे इनि। १ व्यायामविशिष्ट, जो व्यायाम करता हो, कसरत करनेवाला, कसरती। २ श्रमशील, जो बहुत परिश्रम करता हो, मेहनती।

व्यायुक (सं० त्रि०) तेज भागनेवाला। (काठक ११।३)

व्यायुध (सं० त्रि०) आयुधहीन, निःशस्त्र।

(भारत द्रोण०)

व्यायोग (सं० पु०) वि-आ-युज-घञ्। साहित्यमें दृश्य प्रकारके रूपकोंमेंसे एक प्रकारका रूपक या दृश्य काव्य। इसकी कथावस्तु किसी ऐसे ग्रन्थसे ली जानी चाहिये जिससे सब लोग भली भांति परिचित हों। इसके पात्रोंमें स्त्रियां कम और पुरुष अधिक होते हैं। इसमें गर्भ, विमर्ष और सन्धि नहीं होती। इसमें एक ही अंक रहता है और कौशिकी वृत्तिका व्यवहार होता है। इसका नायक कोई प्रसिद्ध राजर्षि, दिव्य और धीरोद्धत होना चाहिये। इसमें शृंगार, हास्य और शान्तके सिवा और सब रसोंका वर्णन होता है।

व्यायोजिम (सं० पु०) स्थूलानुसम, विषमपालि।

(सुश्रुत ११६ अ०)

व्यारोष (सं० पु०) आक्रोश, गुस्सा।

व्याल (सं० पु०) विशेषेण आसमन्तात् अलतीति अल-पर्याप्तौ अच्। १ सर्प, सांप। २ दुष्ट गज, पाजी हाथी। ३ व्याघ्र, शेर। ४ वह बाघ जो शिकार करनेके लिये सधाया गया हो। ५ राजा। ६ दण्डक छन्दका एक भेद। ७ कोई हिंसक जन्तु। ८ विष्णु। (त्रि) ९ शठ, धूर्त्त, क्रूर। १० अपकारी, दूसरोंका अपकार करनेवाला।

व्यालक (सं० पु०) व्याल एव स्वार्थे कन्। १ दुष्टगज, पाजी हाथी। पर्याय—गजोऽपदेशी, वक्रकुञ्जरदुर्द्धर, व्यालक। (त्रिका०) २ श्वापद, हिंस्रजन्तु। ३ व्याल देखो।

व्यालखड्ग (सं० पु०) नख या बघनखा नामक गन्धद्रव्य।

(राजनि०)

व्यालगन्धा (सं० स्त्री०) व्यालस्येव गन्धो यस्याः। नाकुली नामक कंद।

व्यालग्राह (सं० पु०) व्यालं गृह्णातीति व्याल-ग्रह-अण्। व्यालग्राही, वह जो सांपोंको पकड़ता हो, संपेरा।

व्यालग्राहिन् (सं० पु०) व्यालं गृह्णातीति ग्रह-णिनि। वह जो सांप पकड़नेका काम करता हो, संपेरा। पर्याय—

अहितुण्डिक, जांगुलि, आहितुण्डिक, व्यालग्राह, माड-लिक, विषवैद्य।

व्यालग्रीव (सं० पु०) १ बृहत्संहिताके अनुसार एक देशका नाम। २ इस देशका निवासी। (बृ० सं० १४।६)

व्यालजिह्वा (सं० स्त्री०) व्यालस्य जिह्वेव आकृति-र्यस्याः। १ महासमङ्गा, कंगही या कंघी नामक पौधा। २ व्यालकी जिह्वा, सांप या हिंस्र जन्तुकी जीभ।

व्यालता (सं० स्त्री०) व्यालका भाव या धर्म, व्यालत्व।

व्यालत्व (सं० क्ली०) व्यालका भाव या धर्म, व्यालता।

व्यालदंष्ट्र (सं० पु०) व्यालस्य दंष्ट्रेव आकृतिर्यस्य। गोक्षुरक्षुप, गोखरूका पौधा।

व्यालदंष्ट्राण (सं० पु०) सर्पदंष्ट्राण। व्यालवर्ग देखो।

व्यालनख (सं० पु०) व्यालस्य नखं इव आकृतिर्यस्य। नख या बघनहा नामक गन्धद्रव्य। इसका गुण—तिक्त, उष्ण, कषाय, कफ, वात, कुष्ठ, कण्डू और व्रण-नाशक, वर्णवर्द्धक तथा सौगन्ध्यप्रद।

व्यालपत्र (सं० पु०) पर्वटिकलता, खेतपापड़ा।

व्यालपत्रा (सं० स्त्री०) व्यालानि तीक्ष्णानि पत्राणि यस्याः। पर्पट, खेतपापड़ा।

व्यालपाणिज (सं० पु०) नख या बघनहा नामक गन्ध-द्रव्य। (राजनि०)

व्यालप्रहरण (सं० पु०) नख या बघनहा नामक गन्ध-द्रव्य। (वैद्यनि०)

व्यालबल (सं० पु०) नख या बघनहा नामक गन्धद्रव्य।

व्यालमृग (सं० पु०) व्यालो हिंस्रो मृगः पशुः। चीता, शेर।

व्यालम्ब (सं० पु०) विशेषेण आलम्बते वि-आ-लम्ब-अच्। १ रक्तैरण्ड, लाल रेंड। (त्रि०) २ लम्ब-मान।

व्यालम्बिन् (सं० त्रि०) व्यालम्बते वि-आ-लम्ब-णिनि। व्यालम्बयुक्त, विलम्बित।

व्यालवर्ग (सं० पु०) व्यालदंष्ट्राण। सर्प और वृश्चिकका प्रथम, द्वितीय, षष्ठ वा सप्तम दंशन तथा मीन-का सुनाद दंशन, व्यालदंष्ट्राण कहलाता है।

व्यालशुक (सं० पु०) मत्कुण।

व्यालायुध (सं० पु० क्ली०) व्यालस्य आयुधं नख इव आकृतिर्यस्य। १ नख या बघनहा नामक गन्धद्रव्य। (अमरटीका मथुरेश) २ व्याघ्रनख, बाघका नाखून।

व्यालि (सं० पु०) व्याडि इत्यस्य लः। व्याडि नामक एक प्राचीन ऋषि। इन्होंने एक व्याकरण बनाया था।

व्यालिक (सं० त्रि०) व्यालेन चरति व्याल (पर्पा-दिभ्यष्ठन्। पा ४।४।१०) इति ठन्। जो सांपोंको पकड़ कर अपनी जीविका चलाता हो, सँपेरा।

व्यालीढ़ (सं० क्ली०) सांपके काटनेका एक प्रकार, सांपका वह काटना जिसमें केवल एक या दो दांत लगे हों और घावमेंसे खून न बहा हो।

व्यालुप्त (सं० क्ली०) सांपके काटनेका एक प्रकार, सांपका वह काटना जिसमें दो दांत भरपूर बैठे हों और घावमेंसे खून भी निकला हो।

व्यालोल (सं० त्रि०) ईषत् कम्पित।

व्यावक्रोशी (सं० स्त्री०) वि-आ-अव-क्रुश (कर्मव्यति-हारे णच् स्त्रियां। पा ३।३।४३) इति णच्, ततः (णचः स्त्रियामञ्। पा ५।४।१४) इति स्वार्थे अञ्, (न कर्मव्यतिहारे। पा ७।३।६) इति वृद्धिप्रतिषेधः, स्त्रियां ङीप्। परस्पर आक्रोशन, आपसमें क्रोध करना। (भरत)

व्यावभाषी (सं० स्त्री०) वि-आ-अव-भाष-णच्, स्वार्थे अञ्, ङीप्। व्यावक्रोशी, आपसमें क्रोध करनेवाली।

व्यावर्ग (सं० पु०) विभाग करना, हिस्सा लगाना।

व्यावर्त्त (सं० पु०) वि-आ-वृत-अच्। १ नाभिकण्टक, आगेकी ओर निकली हुई नाभि। २ चक्रमर्द, चकवड़।

व्यावर्त्तक (सं० त्रि०) व्यावर्त्तयतीति वि-आ-वृत-णिच्-ण्वुल्। व्यावर्त्तनकारी, पीछेकी ओर लौटाने-वाला।

व्यावर्त्तन (सं० क्ली०) वि-आ-वृत-णिच्-ल्युट्। १ परा-ङ्मुखीकरण, जो पराङ्मुख किया गया हो। २ पीछेकी ओर लौटाया या मोड़ा हुआ।

व्यावर्त्तित (सं० त्रि०) वि-आ-वृत-णिच्-क्त। पराङ्-मुखी कृत, जो पराङ्मुख किया गया हो।

व्यावर्त्य (सं० त्रि०) व्यावर्त्तनके योग्य, हटानेके लायक।

व्यावहारिक (सं० त्रि०) व्यवहार-ठक् (विनयादिभ्यष्ठक्।

पा ५।४।३४) इति स्वार्थे ठक् । १ व्यवहार । व्यवहार-मित्याह व्यवहार-ठक् (न्यग्रोधादीनाञ्च । पा ७।३।७) इति वृद्धिनिषेधः येनाऽगमश्च न स्यात् । २ जो व्यवहार शास्त्रके अनुसार अभियोगोंका विचार करता हो, विचारक । ३ व्यवहार-सम्बन्धी । ४ धर्माधिकरण-सम्बन्धी । ५ राजाका वह अमात्य या मन्त्री जिसके अधिकारमें भीतरी और बाहरी सब तरहके काम हों ।

व्यावहारिक ऋण (सं० पु०) वह ऋण जो किसी कार-बारके सम्बन्धमें लिया गया हो ।

व्यावहारिन् (सं० त्रि०) व्यवहारविशिष्ट, व्यवहार करनेवाला ।

व्यावहारी (सं० स्त्री०) व्यवहार-ङीप् । १ परस्पर व्यवहार । २ परस्पर हरण । (शोनरेव ६।११०)

व्यावहार्य (सं० त्रि०) व्यवहार यत् । व्यवहारके योग्य, जो व्यवहार करने लायक हो ।

व्यावहासी (सं० स्त्री०) वि-अव-हस (कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियां । पा ३।३।४३) इति णच्, ततः (णचः स्त्रियामञ् । पा ७।३।६) इति वृद्धिप्रतिषेधः, स्त्रियां ङीप् । १ परस्पर हास्यकरण । २ परस्पर विचारणा ।

व्यावृत् (सं० स्त्री०) १ विशेषरूप निर्देश । २ आलोचना वर्णित ।

व्यावृतत्व (सं० क्ली०) १ व्यावृतत्व । २ गुह्यविसर्जना ।

व्यावृत्त (सं० त्रि०) वि-आ-वृत्-क्त । १ निवृत्त, छुटा हुआ । २ निषिद्ध, मना किया हुआ । ३ खण्डित, टूटा हुआ । ४ पृथक्कृत, अलग किया हुआ । ५ मनोनीत, जो मनसे पसंद किया गया हो । ६ वेष्टित, चारों ओरसे घेरा हुआ । ७ संशोधित, बांटा हुआ । ८ स्तुत, जिसकी प्रशंसा या स्तुति की गई हो । ९ निवारित । १० आच्छादित, ऊपरसे ढका हुआ ।

व्यावृत्ति (सं० स्त्री०) वि आ-वृत-क्तिन् । १ व्यावर्तन । २ आवृत्ति । ३ मनोनयन, मनसे चुनने या पसंद करनेका काम । ४ वेष्टन, चारों ओरसे घेरना । ५ स्तुति, तारीफ । ६ निराकरण, निर्णय, मीमांसा । ७ निषेध, मनाही । ८ बाधा, रुकावट । ९ निवृत्ति । १० वियोग । ११ विच्छेद ।

व्यावृत्सु (सं० स्त्री०) १ अनावृत रखनेमें इच्छुक । २ गोल कर रखनेमें इच्छुक ।

व्याश्रय (सं० पु०) वि-आ-श्रि-घञ् । विभिन्न आश्रय । (पाणिनि ५।४।४८)

व्यास (सं० पु०) वि-अस-घञ् । १ विस्तार, फैलाव । २ मानभेद । (शब्दरत्ना०) ३ पुराणादि पाठक ब्राह्मण, जो ब्राह्मण पुराणादि पाठ करते हैं, वे व्यास कहलाते हैं । ४ गोल वस्तुकी मध्य रेखा । अंगरेजीमें इसे Diameter कहते हैं । ५ समासविग्रह वाक्य । समास करनेके समय जो वाक्य किया जाता है, उसे व्यासवाक्य कहते हैं । जैसे,—'दर्भपाणिः' 'दर्भः पाणौ यस्य सः दर्भपाणि' इसका नाम व्यासवाक्य है ।

व्यास—१ कृच्छ्रचान्द्रायण लक्षण, वज्रसूचि, गोलाध्याय, (ज्यातिःसिद्धान्त) तत्त्वबोध और उसकी टीका, तीर्थपरिभाषा, दत्तकदर्पण, प्रतिमालक्षण, बालकृष्णाष्टक, बृहत्-संहिता, ब्रह्मसूत्र महाभारत और पुराणनिर्णय, योगसूत्र भाष्य, वक्रतुण्डस्तोत्र, वक्रतुण्डाष्टक, विघ्ननाशाष्टक, शिव तत्त्वविवेक और इतिहास मातृक ग्रन्थादिके रचयिता । ये पुराणपाठकके निकट व्यासदेव या वेदव्यास नामसे परिचित हैं । वेदव्यास और व्यास शब्दमें देखो ।

२ यजुःगुरुशिष्यके ७ गुरुओंमें एक । ३ श्रुतप्रकाशिकाके प्रणेता सुदर्शनाचार्यकी उपाधि । ४ तंत्रसार-टीकाके प्रणेता ।

व्यास आचार्य—बृहन्नारायणसारस्तुतिके प्रणेता ।

व्यासकूट (सं० क्ली०) व्यासस्य कूटं । १ महाभारतमें आये हुए वेदव्यासके कूट श्लोक । जो सब श्लोक अति दुर्बोध तथा अस्पष्ट होते हैं, उन्हें व्यासकूट कहते हैं । २ वे कूटश्लोक जो मीमांसक होने पर रामचन्द्रजीके माल्यवान् पर्वत पर कहे गये थे और जिनसे उन्हें कुछ शान्ति मिली थी ।

व्यासकेशव (सं० पु०) शब्दकल्पद्रुम नामक अभिधानके प्रणेता । केशवकृत "कल्पद्रुम" नामक एक अभिधान पाया जाता है । दोनों ग्रंथ और ग्रंथकार एक हैं या नहीं कह नहीं सकते ।

व्यासक्त (सं० त्रि०) वि-आ-सञ्ज-क्त । १ जो बहुत

अधिक आसक्त हुआ हो, जिसका मन बेतरह फंस गया हो। २ अनुक्रान्त, अभिभूत।

व्यास गणपति—गैयशास्त्रसंग्रहके सङ्कलयिता।

व्यासगिरि—शङ्करविजयके प्रणेता।

व्यासगीता (सं० स्त्री०) १ कूर्मपुराणका एक अंश। २ एक उपनिषद्।

व्यासङ्ग (सं० त्रि०) वि-आ-सञ्ज-घञ्। विशेषरूपसे आसङ्ग, बहुत अधिक आसक्ति या मनोयोग।

व्यासता (सं० स्त्री०) व्यासका भाव या धर्म, व्यासत्व।

व्यासतीर्थ—एक प्रसिद्ध यति लक्ष्मीनारायणतीर्थके निकट अध्ययन समाप्त कर इन्होंने पीछे ब्रह्मण्यतीर्थका शिष्यत्व ग्रहण किया। वेदेश भिक्षु इनके प्रधानशिष्य थे। इन्होंने व्यासरायमठ स्थापन किया था। १५३९ ई०में इनका देहान्त हुआ। ये व्यासतीर्थ भिक्षु, व्यास यति और व्यासराज नामसे भी परिचित थे। निम्नोक्त ग्रन्थ इन्होंके बनाये हुए हैं—

मनुजयतीर्थविजय, जयतीर्थकृत कथालक्षण विवरणकी टीका, आनन्दतीर्थ कृत काठकोपनिषद्भाष्य, छान्दोग्योपनिषद्भाष्य, तैत्तिरीयोपनिषद्भाष्य, बृहदारण्यकभाष्य, माण्डूक्योपनिषद्भाष्य, मुण्डकोपनिषद्भाष्य आदिकी टीका, तर्कताण्डव, आनन्दतीर्थकृत ब्रह्मसूत्रभाष्यकी जयतीर्थकृत तत्त्वप्रकाशिनी नामकी टीकाकी तात्पर्यचन्द्रिका नामकी टिप्पन, न्यायामृत और खण्डनोद्धार नामकी उसकी टीका, जयतीर्थकृत प्रपञ्चमिथ्यात्वानुमानखण्डनविवरणकी भावप्रकाशिका नामकी टीका, भेदोज्जीवन और आनन्दतीर्थकृत अन्यान्य ग्रन्थटीकाके संक्षेप परिचय स्वरूप मन्दारमञ्जरी नामक ग्रन्थ।

व्यासदत्त (सं० पु०) शरद्वतके पुत्र।

व्यासदास (सं० पु०) क्षेमेन्द्रका एक नाम।

व्यासदेव—दायभागनिर्णय निबन्धके प्रणेता।

व्यासदेव मिश्र—बृहत्सूत्रप्रदीपटीकाके रचयिता।

व्यासदोपवता (सं० स्त्री०) काकपाककँटी, वनकण्टी। (वैद्यकनि०)

व्यासप्रकाश—ज्योतिस्तत्त्व वार्त्तिककर्त्ता।

व्यासपूजा (सं० स्त्री०) व्यासस्य पूजा। व्यासकी पूजा, व्यासदेवकी अर्चना।

व्यासवत्स—शिशुहितैषिणी नामकी कुमारसम्भव टीकाके प्रणेता।

व्यासविट्ठल आचार्य—शब्दचिन्तामणि नामक अभिधानके सङ्कलयिता।

व्यासभट्ट—श्रीरङ्गराजस्तव और सर्वार्थसिद्धि नामक वेदान्तग्रन्थके प्रणेता।

व्यासमातृ (सं० स्त्री०) व्यासस्य माता। व्यासकी माता, वेदव्यासकी जननी। पर्याय—सत्यवती, वासवी, गन्धकालिका, योजनगन्धा, दाशेया, शालङ्कायनजौषस्, किसी किसी ग्रन्थमें शालङ्कायनजा नाम भी देखा जाता है। काली, मत्स्योदरी, विचित्रवीर्यसू, चित्राङ्गदसू, योजनगन्धिका, गन्धकाली, सत्या, दासनन्दिनी। (शब्दरत्ना०)

व्यासमूर्त्ति (सं० पु०) व्यास एव मूर्त्तिर्यस्य। शिव, महादेव। (शिवपु०)

व्यासवन (सं० क्ली०) मुनिजनविसेवित पवित्र वनभेद। (भारत वनपर्व)

व्यासवर्य (सं० पु०) एक पण्डित। ये न्यायार्थदीपिकाके रचयिता हनूमदाचार्यके पिता थे।

व्यासशरानन्द—सर्वबोधिनी-प्रक्रिया नामक व्याकरणके प्रणेता। ये हस्तिमतीर्थवासी थे।

व्याससमासिन् (सं० त्रि०) व्याससमासयुक्त, व्यासवाक्य और समस्तपदविशिष्ट।

व्याससूत्र (सं० क्ली०) व्यासप्रणीतं सूत्रं। व्यासप्रणीत सूत्र, वेदान्तसूत्र। वेदान्तदर्शनके सूत्र व्यासने प्रणयन किये थे। वेदान्त देखो।

व्यासस्थली (सं० स्त्री०) महाभारतके अनुसार एक प्राचीन पवित्र तीर्थका नाम। (भारत वनप०)

व्यासाचल (सं० पु०) एक प्राचीन कवि।

व्यासाचार्य—एक प्रसिद्ध यति। इन्होंने पीछे वेदव्यासतीर्थ नाम ग्रहण किया था। १५६० ई०में ये मृत्युमुखमें पतित हुए।

व्यासारण्य (सं० क्ली०) व्यासस्य अरण्यं। १ व्यासवन। व्यास जिस वनमें वास करते थे, उसे व्यासवन कहते हैं। २ एक प्रसिद्ध यति। ये विद्यारण्यके गुरु थे। इन्होंने सुबोधिनीकी रचना की।

व्यासार्द्ध (सं० पु०) व्यासस्य अर्द्धः। व्यासका आधा भाग, किसी वृत्तके केन्द्रसे उसके छोर-तककी रेखा।

व्यासाश्रम (सं० पु०) व्यासस्य आश्रमः। १ व्यास मुनिका आश्रम। २ वेदान्तकल्पतरुके प्रणेता अमलानन्दका एक नाम।

व्यासाष्टक (सं० क्ली०) व्यास-विरचित शिवस्तोत्र विशेष।

व्यासासन (सं० क्ली०) वह आसन जिस पर कथा कहनेवाले बैठ कर कथा कहते हैं।

व्यासिद्ध (सं० त्रि०) वि-आ-सिध क्त। १ निषिद्ध, मना किया हुआ। २ अवरुद्ध, रुका हुआ।

व्यासीय (सं० त्रि०) १ व्यास सम्बन्धी, व्यासका। (क्ली०) २ व्यासरचित ग्रन्थ।

व्यासुकी (सं० पु०) व्याड़िके गोत्रापत्य।

व्यासेध (सं० पु०) विघ्न, उत्पात।

व्यासेश्वर (सं० पु०) व्यासेन स्थापित ईश्वरः। शिवलिङ्ग विशेष, व्यास स्थापित शिवलिंग।

व्यासेश्वरतीर्थ (सं० पु०) शिवपुराणका एक अध्याय।

व्याहत (सं० त्रि०) वि आ-हन क्त। १ विशेष रूपसे आहत। २ व्यर्थ। ३ प्रतिबद्ध। ४ निषिद्ध, मना किया हुआ।

व्याहति (सं० स्त्री०) बाधा डालना, नुकसान पहुंचाना।

व्याहनन्य (सं० त्रि०) विशिष्ट मैथुनयुक्त या तदङ्गीभूत कार्य। (शुक्लयजुः ६।२६)

व्याहन्तव्य (सं० त्रि०) वि आ-हन तव्य। व्याहननयोग्य।

व्याहन्यमान (सं० त्रि०) वि आ हन शानच्। प्रतिषिध्यमान।

व्याहरण (सं० क्ली०) वि-आ-हृ ल्युट्। कथन, उक्ति।

व्याहर्त्तव्य (सं० त्रि०) वर्णन करनेको योग्य, बोलने लायक।

व्याहार (सं० पु०) वि आ-हृ-घञ्। वाक्य, जुमला।

व्याहारमय (सं० त्रि०) वाक्यरत्न, वाक्य-प्रकृत।

व्याहारिन् (सं० त्रि०) वाक्यविशिष्ट।

व्याहृत (सं० त्रि०) वि-आ-हृ क्त। कथित, कहा हुआ।

व्याहृति (सं० स्त्री०) वि-आ-हृ-क्तिन्। १ व्यवहार, कथन, उक्ति। २ मन्त्रविशेष, ओं भूः ओं भुवः ओं स्वः ये मन्त्र।

पुराकालमें ये मन्त्र स्वयं उद्भूत हुए थे। ये सब अशुभनाशक, सत्त्व, रजः, तमः तथा ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर स्वरूप हैं। यह व्याहृति ओंकार पूर्वक प्रयोग करनी होती है। व्याहृतिहोम करने पर इस मन्त्रसे होम समझना होगा। (ओं भूः, ओं भुवः, ओं स्वः) इन सबोंको महाव्याहृति कहते हैं।

(कूर्मपु० उपवि० १२ अ०)

जहां और कोई मन्त्र न हो, वहां इसी व्याहृति मंत्र से काम लेना चाहिये। (तैत्ति० उप० १।५।१)

३ साममेद।

व्युच्छित्ति (सं० स्त्री०) वि-उत् छिद्-क्तिन्। विनाश, बरबादी।

व्युच्छेत्तृ (सं० त्रि०) वि-उत्-छिद्-तृच्। विनाशक, बरबाद करनेवाला।

व्युत (सं० त्रि०) वि-वे-क्त। स्यूत, बुना हुआ, सीया हुआ। (भरत द्विरूपकोष)

व्युति (सं० स्त्री०) वि वे-क्तिन्। ऊति, तन्तु सन्तति। (भरत द्विरूपकोष०)

व्युत्क्रम (सं० पु०) वि-उत् क्रम-घञ्। क्रमविपर्यय, क्रममें उलट फेर होना, गड़बड़ी।

व्युत्क्रमण (सं० क्ली०) वि उत्-क्रम ल्युट्। पृथक् भव स्थान, अलग रहना।

व्युत्क्रान्त (सं० त्रि०) अतिक्रान्त, गत। (स्त्री०) २ प्रहेलिका, पहेली।

व्युत्थातव्य (सं० त्रि०) विशेष रूपसे उत्थानके योग्य, विरुद्ध भावमें रहने लायक।

व्युत्थान (सं० क्ली०) वि-उत्-स्था ल्युट्। १ स्वाधीन या स्वाधीन हो कर काम करना। २ विरोधाचरण, किसीके विरुद्ध आचरण करना, खिलाफ चलना। ३ प्रतिरोध, रुकावट डालना, रोकना। ४ समाधि। ५ नृत्यभेद। ६ विशेष रूपसे उत्थान। ७ योगके अनुसार चित्तकी अवस्था विशेष। क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध ये पांच प्रकारकी चित्तकी अवस्थाएं

व्योमसद् (सं० पु०) १ देवता। २ गन्धर्व। ३ भूतयोनि।

व्योमसरित् (सं० स्त्री०) व्योम्नि या सरित्। व्योमगङ्गा, आकाशगंगा।

व्योमस्थली (सं० स्त्री०) व्योम्नः स्थली। १ नभःस्थल। २ पृथ्वी। (भूरिप्र०)

व्योमस्पृश् (सं० त्रि०) आकाशस्पर्शकारी, गगनचुम्बी।

व्योमाम (सं० पु०) व्योम्ना शून्येन आमातीति आ-मा-क। १ बुद्धदेव। २ दिगम्बर जैन साधुभेद।

व्योमारि (सं० पु०) विश्वदेवगण।

व्योमोदक (सं० क्ली०) व्योम्नः उदकम्। दिव्योदक, वर्षाका जल, बरसातका पानी।

व्योमिक (सं० त्रि०) व्योमसम्बन्धी, व्योम या आकाशका।

व्योष (सं० क्ली०) विशेषेण ओषतीति उष दाहे पचाद्यच्। सोंठ, पीपल और मिर्च इन तीनोंका समूह; त्रिकटु।

व्र (सं० पु०) सङ्घीभूत, परस्परमें अनुराग।

(ऋक् १।१२६।५ सायण)

व्रज (सं० क्ली०) व्रजतीति व्रज-घ। १ व्रजन, गमन, जाना या चलना। (पु०) व्रज गतौ (गोचरसञ्चरेति। पा ३।३।११९) इति घ प्रत्ययेन निपातनात् साधुः। २ समूह, झुण्ड। ३ गोष्ठ। ४ मथुरा और वृन्दावनके आस-पासका प्रान्त। यह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका लीलाक्षेत्र है और इसी कारण यह बहुत पवित्र माना जाता है।

पुराणों आदिके अनुसार मथुराके चारों ओर ८४।८५ कोस तककी भूमि व्रजभूमि कही गई है। भगवान् श्रीकृष्णने यहीं लीला की थी, इसीसे यह अत्यन्त पुण्यभूमि है। यदि कोई इस स्थानका प्रदक्षिण करे, तो उसे अश्वमेध लाभ होता है। इस स्थानमें दान, पूजा या वास करनेसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। इस स्थानमें यदि किसीकी मृत्यु हो जाय; तो उसे अशेष पुण्य लाभ होता है और उसे फिर जन्म लेना नहीं पड़ता। भगवान् श्रीकृष्णने यहीं चार हजार लीलें प्रस्तुत किये थे। इस व्रजभूमिमें बारह बारह वन, उपवन, प्रतिवन और अधिवन देखे जाते हैं। इन ४८ वनोंके नाम नीचे लिखे जाते हैं।

बारह वन—१ महावन, २ काम्यवन, ३ कोकिलवन, ४ तालवन, ५ कुमुदवन, ६ भाण्डीरवन, ७ छत्रवन, ८ खदिरवन, ९ लोहजङ्घवन, १० भद्रवन, ११ बहुलवन, १२ बिल्ववन, ये सभी वन शुभ फलप्रद हैं।

बारह उपवन—१ ब्रह्मवन, २ अप्सरोवन, ३ विहलवन, ४ कदम्बवन, ५ स्वर्णवन, ६ सुरभिवन, ७ प्रेमवन, ८ मयूरवन, ९ मानेङ्गितवन, १० शेषशायिवन, ११ नारदवन, १२ परमानन्दवन।

बारह प्रतिवन—१ रङ्कवन, २ वार्त्तावन, ३ करहावन, ४ काम्यवन, ५ अञ्जनवन, ६ कर्णवन, ७ कृष्णक्षिपणकवन, ८ नन्दप्रेक्षण कृष्णस्नानवन, ९ इन्द्रवन, १० शिक्षावन, ११ चन्द्रावलीवन और १२ लोहवन।

बारह अधिवन—१ मथुरा, २ राधाकुण्ड, ३ नन्दग्राम, ४ गड़स्थान, ५ ललिताग्राम, ६ वृषभानुपुर, ७ गोकुल, ८ बलदेव, ९ गोवर्द्धनवन, १० जावट, ११ वृन्दावन, १२ सङ्केतवटवन। मथुरा और वृन्दावन देखो।

व्रजक (सं० पु०) तपस्वी। (शब्दरत्ना०)

व्रजकिशोर (सं० पु०) व्रजस्य किशोरः। श्रीकृष्ण। श्रीकृष्ण व्रजभूमिके अधिष्ठात्री देवता हैं। व्रजभक्तिविलासमें व्रजकिशोरमन्त्र तथा उनके ध्यान और पूजादिका विषय लिखा है। द्वादशवनके मध्य ललितावनके अधिपति व्रजकिशोर हैं। 'ओं क्लीं ललितावनाधिपतये व्रजकिशोराय नमः' यह एक विंशाक्षर इनका मन्त्र है। उनकी पूजन नारायण-पूजाविधिके अनुसार तथा उक्त मन्त्रसे प्राणायाम कर ऋष्यादिन्यास करना होता है। न्यास इस प्रकार है—अस्य मन्त्रस्य विमाण्डक ऋषि व्रजकिशोरदेवता गायत्र्यश्छन्दः मम सकल पापक्षयद्वारा श्रीकृष्णदर्शनार्थे विनियोगः, शिरसि विभाण्डक ऋषये नमः, मुखे व्रजकिशोराय नमः, हृदि गायत्र्यच्छन्दसे नमः इस प्रकार न्यास करके ध्यान करना होता है। ध्यान इस प्रकार है—

"ललिताकुञ्जं कृष्णं वरेन्दु ललितं हरम्।
ध्यायेच्चित्रैर्भूषणैर्महाराजकिशोरकम्॥"

(व्रजभक्तिविलास)

इस प्रकार ध्यान और पूजादि करके यथाशक्ति जपादि करने होते हैं। (व्रजभक्तिवि० १ अ०)

ब्रजक्षित् (सं० त्रि०) व्रज्रे कूपे क्षियति निवसयति इति, व्रज-क्षि क्विप्, "व्रज इति मेघनामसु (नि० १।१०।११) पठितं । अत्र तु उदकधारणसामर्थ्यात् कूप उच्यते ।" (शुक्लयजुः १०।४ महीधर)

ब्रजन (सं० क्ली०) व्रज ल्युट् । गमन, चलना, जाना ।

ब्रजनाथ (सं० पु०) व्रजस्य नाथः । श्रीकृष्ण, व्रजभूमिके अधिपति ।

ब्रजनाथभट्ट—मरीचिका नामनी और ललितत्रिभङ्ग नामक वेदान्त ग्रन्थके रचयिता ।

ब्रजनिविलास (सं० पु०) श्रीकृष्णके व्रजलीलाविषयक ग्रन्थविशेष ।

ब्रजभाषा—व्रजभूमिवासी जनसाधारण जिस भाषामें बातचीत करते हैं और जिस भाषामें काव्य-रच कर भारतके अधिकांश कवि, जैसे सूर, तुलसी, विहारी आदि इतने यशस्वी हो गये हैं, वही ब्रजभाषा है।

एक समय दिल्ली और आगरे जिलेके मध्यवर्त्ती सभी प्रदेश व्रजभूमि या व्रजराज्य कहलाते थे। मथुरा इस राज्यकी राजधानी थी। वृन्दावन और गोकुल-नगरी भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाभूमि होनेके कारण एक समय सभी मनुष्य उसे पूज्यदृष्टिसे देखते थे तथा भगवान्के लीलागानके लिये इस स्थानकी भाषाको विशेष इज्जत थी।

सुविस्तृत भरतपुरराज्य, ग्रन्थकारणके अन्तर्गत गोवर्द्धनगिरिप्रदेश तथा गोपगिरिदुर्गाधिष्ठित सुप्राचीन ग्वालियर राज्यवासी सुशिक्षित हिन्दूगण भी व्रजभूमिके अधिवासियोंकी तरह परिष्कार और प्राञ्जलभावमें ब्रजभाषाका व्यवहार करते थे। दिल्ली और आगरा प्रान्तवासी हिन्दू व्रजबोलीको छोड़ कर खड़ी और ठेठ हिन्दीमें बातचीत करते थे तथा मुसलमान लोग कुछ हिन्दी और रेखता (उर्दू) भाषाको काममें लाते थे। किन्तु पैनवार, बुदावर, बुंदेलखण्ड और गङ्गाके अन्तर्वेदी प्रदेशमें ब्रजभाषा कुछ मिश्रित भावमें प्रचलित थी। इससे जाना जाता है, कि किस प्रकार कथित भाषाके मिलनेसे ब्रजभाषा बहुत दूर तक फैल गई थी। पाश्चात्य-साहित्यजगत्‌में सुपरिचित कृष्णकवि के सतसई ग्रंथकी टीकासे हम इस विषयका कुछ आभास पाते हैं—

"बोलत कविता विविध हैं कवि सब बहुत सभा ।
प्रथम देववाणी बहुरि प्राकृति भाषा जान ॥
देश देश तें होत सो भाषा बहुत प्रकार ।
बरनत है तिन सबनमें ग्वालियरी रसधार ॥"

उल्लिखित 'भाषा' ब्रज और ग्वालियर प्रदेशकी प्रचलित भाषा है, यह कविकी उक्तिसे ही जाना जाता है।

यह ब्रजभाषा कबसे लिखित-भाषारूपमें प्रचलित होती आ रही है, उसका कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता फिर भी इतना जरूर कहा जा सकता है, कि यह भाषा एक समय धीरे धीरे उत्तर देशोंमें फैल गई थी तथा साधारणने विशेषतः कविता-रसास्वादी व्यक्तिमात्रने ही इस भाषाको कविताकलापके प्रियतम पथादका पवित्र जल कह कर ग्रहण किया था। केवल भारतवर्ष ही नहीं एक समय सारे एशियाके क्या हिंदू क्या मुसलमान अनेक कवि ही इस ब्रजभाषाको कविता या गान रच गये हैं। यही कारण है, कि हम खियाल, ठुमरी, ध्रुपद, विष्णुपदस्तुति नाना प्रकारके गीत, कविता, छन्द, दोहा, चौपाई, सोरठा, कुण्डलिया आदि विभिन्न प्रकारके काव्य इसी भाषामें विरचित देखते हैं। इसमें संस्कृत भाषाकी छाप रहने पर भी संस्कृतसे इसकी उत्पत्ति स्वीकार नहीं की जा सकती। परन्तु संस्कृत व्याकरणकी क्रिया और विशेषण पदादिकी तरह इसमें भी पदादिके कर्त्ता कर्म या कालभेदसे रूपांतर हुआ करता है। इस कारण बहुतेरे पण्डितोंने इस भाषाको संस्कृतकी तरह मधुर और सुश्राव्य बतलाया है। कविप्रियाग्रन्थमें कवि केशोदासने इस भाषाको प्रधानता स्वीकार की है—

"भाषा बोलन जानहीं जिनके कुलको दास।
भाषाकविभो मन्दमति तिहि कुल केशोदास ॥"

सुविख्यात भाषाकवि कृष्णलिखित* तथा विहारीदास† दोनोंने ही ब्रजभाषाको श्रेष्ठताका वर्णन किया है।

* "किती देववाणी प्रगट है पंडितको पास।
मैं भाषाते होत है सब मनके परगास ॥" (पं०राइदय)

† "ब्रजभाषा भाखा रुचिर कहत सुबानी सबकुल।
हरि हि समान सुहाग कवि करत महारसमूल ॥"

व्योमसद् (सं० पु०) १ देवता। २ गन्धर्व। ३ भूतयोनि।

व्योमसरित् (सं० स्त्री०) व्योम्नि या सरित्। व्योमगङ्गा, आकाशगंगा।

व्योमस्थली (सं० स्त्री०) व्योम्नः स्थली। १ नभःस्थल। २ पृथ्वी। (भूरिप्र०)

व्योमस्पृश् (सं० त्रि०) आकाशस्पर्शकारी, अत्युच्च।

व्योमाश (सं० पु०) व्योम्ना शून्येन आश्नातीति आ-अश-क। १ बुद्धदेव। २ देवप्रतिम जैन साधुभेद।

व्योमारि (सं० पु०) विश्वदेवगण।

व्योमोदक (सं० क्ली०) व्योम्नः उदकम्। दिव्योदक, वर्षाका जल, बरसातका पानी।

व्योमिक (सं० त्रि०) व्योमसम्बन्धी, व्योम या आकाशका।

व्योष (सं० क्ली०) विशेषेण ओषतीति उष दाहे पचाद्यच्। सोंठ, पीपल और मिर्च इन तीनोंका समूह; त्रिकटु।

व्र (सं० पु०) सङ्घीभूत, परस्परमें अनुराग।
(ऋक् १।१२६।५ सायण)

व्रज (सं० स्त्री०) व्रजतीति व्रज-घ। १ व्रजन, गमन, जाना या चलना। (पु०) व्रज गतौ गोचरसञ्चरेति। पा ३।३।११९) इति घ प्रत्ययेन निपातनात् साधुः। २ समूह, झुण्ड। ३ गोष्ठ। ४ मथुरा और वृन्दावनके आस-पासका प्रान्त। यह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका लीलाक्षेत्र है और इसी कारण यह बहुत पवित्र माना जाता है।

पुराणों आदिके अनुसार मथुराके चारों ओर ८४।८५ कोस तककी भूमि व्रजभूमि कही गई है। भगवान् श्रीकृष्णने यहाँ लीला की थी, इसीसे यह अत्यन्त पुण्यभूमि है। यदि कोई इस स्थानका प्रदक्षिण करे, तो उसे अश्वमेध लाभ होता है। इस स्थानमें दान, पूजा या वास करनेसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। इस स्थानमें यदि किसीकी मृत्यु हो जाय, तो उसे अशेष पुण्य लाभ होता है, और पीछे फिर जन्म लेना नहीं पड़ता। भगवान् श्रीकृष्णने यहां ढाई हजार तीर्थ प्रस्तुत किये थे। इस व्रजभूमिमें बारह बारह वन, उपवन, प्रतिवन और अधिवन देखे जाते हैं। इन ४८ वनोंके नाम नीचे लिखे जाते हैं।

बारह वन—१ महावन, २ काम्यवन, ३ कोकिलावन, ४ तालवन, ५ कुमुदवन, ६ भाण्डीरवन, ७ छत्रवन, ८ खदिरवन, ९ लोहजङ्घवन, १० भद्रवन, ११ बहुलावन, १२ बिल्ववन, ये सभी वन शुभ फलप्रद हैं।

बारह उपवन—१ ब्रह्मवन, २ अप्सरोवन, ३ विह्वलवन, ४ कदम्बवन, ५ स्वर्णवन, ६ सुरभिवन, ७ प्रेमवन, ८ मयूरवन, ९ मानेङ्गितवन, १० शेषशायिवन, ११ नारदवन, १२ परमानन्दवन।

बारह प्रतिवन—१ रङ्कुवन, २ वार्त्तावन, ३ करहाटवन, ४ काम्यवन, ५ अञ्जनवन, ६ कर्णवन, ७ कृष्णक्षिपणकवन, ८ नन्दप्रेक्षण कृष्णावतनन्दनवन, ९ इन्द्रवन, १० शिक्षावन, ११ चन्द्रावलीवन और १२ लोहवन।

बारह अधिवन—१ मथुरा, २ राधाकुण्ड, ३ नन्दग्राम, ४ गढ़स्थान, ५ ललिताग्राम, ६ वृषभानुपुर, ७ गोकुल, ८ बलदेव, ९ गोवर्द्धन, १० जावट, ११ वृन्दावन, १२ सङ्केतवटवन। मथुरा और वृन्दावन देखो।

व्रजक (सं० पु०) तपस्वी। (शब्दरत्ना०)

व्रजकिशोर (सं० पु०) व्रजस्य किशोरः। श्रीकृष्ण। श्रीकृष्ण व्रजभूमिके अधिष्ठाता देवता हैं। व्रजभक्तिविलासमें व्रजकिशोरमन्त्र तथा उनके ध्यान और पूजादिका विषय लिखा है। द्वादशवनके मध्य ललितावनके अधिपति व्रजकिशोर हैं। 'ओं ह्रीं ललिताया धिपत्याधिपतये व्रजकिशोराय नमः' यह एक विंशाक्षर इसका मन्त्र है। उनको पूजन नारायण-पूजाविधिके अनुसार तथा उक्त मन्त्रसे प्राणायाम कर ऋष्यादिन्यास करना होता है। न्यास इस प्रकार है—अस्य मन्त्रस्य विभाण्डक ऋषिर्व्रजकिशोरदेवता गायत्रीच्छन्दः मम सकल पापक्षयद्वारा पुरुषार्थसिद्ध्यर्थे विनियोगः, शिरसि विभाण्डक ऋषये नमः, मुखे व्रजकिशोराय नमः, हृदि गायत्रीच्छन्दसे नमः इस प्रकार न्यास करके ध्यान करना होता है। ध्यान इस प्रकार है—

"ललितानन्दं कृष्णं वहन्तं मुरलीमिदम्।
ध्यायेद्विशेषं कृष्णं व्रजराजकिशोरकम्॥"

(व्रजभक्तिविलास)

इस प्रकार ध्यान और पूजादि करके यथाशक्ति जपादि करने होते हैं। (व्रजभक्तिवि० १ अ०)

खड़ीबोली

"क्या कुदरत पड़ गया है उलझेड़ा ।
हरिभजन बिन नहीं है सुलझेड़ा ॥
नामधरनी मे पाऊँ पलमें ।
कृष्णबिन मांझे धार है बेड़ी ॥
उनके चरणों से कृष्णको यह कहूँ ।
कुञ्ज गलियोंमें हो जो मुठभेड़ा ॥
दो मुझे ठौर वह मनल हरिजी ।
जैसे ध्रुवको दिया अटल पेड़ा ।
तेरे मिलनेकी चाह है जोगी ॥
यों ही मारे हैं कितने भट-मेड़ा ।
कृष्णको रस सुधारा नित उठ भोग ॥
मिसरी माखन मलाई और पेड़ा ।" इत्यादि

भाषा दोहा

"तन बिन सब मृदु फिर गई देख दिनोंके फेर ।
बैठ मिलोई भानु यनि गावन जारी फेर ॥
मीन थमें फंदा गह्यो सुन्दरि हिय जिय जानि ।
छूटत ही दोऊ छुटे फंदा हत मानि ॥
मन राखौं हो भरम के मिस राखौ अनुमान ।
नैना बरसे सब नार हैं मिले आगठ दाय ॥
अब बरसे सब नार हैं नेह प्रेम रस सें ।
भर बस यों परबस भये ये बिसवासी नैन ॥" - इत्यादि

व्रजभू (सं० पु०) व्रजे भूरुत्पत्तिर्यस्य । १ कंसिकद्रुम । (त्रि०) २ व्रजजात । भास्कर पण्डितके पुत्र नारायण भट्टने सुललित श्लोकावलीमें यह ग्रन्थ प्रणयन किया है। इसमें वृन्दावनके देवस्थानोंका माहात्म्य कीर्तित हुआ है। (स्त्री०) ३ व्रजभूमि ।

व्रजभूषण—१ गुणरत्नाकर नामक वैद्यग्रन्थके प्रणेता । २ तत्त्वविवेकसार नामक वेदान्त और भागवतपुराण-टीकाके रचयिता । ३ हठप्रदीपिका टीकाकार ।

व्रजभूषण मिश्र—वेदान्तरत्नमालाके प्रणेता ।

व्रजमण्डल (सं० क्ली०) व्रजस्य मण्डलम् । व्रजभूमि, व्रज और उसके आस-पासका प्रदेश ।

व्रजमोहन (सं० पु०) व्रज व्रजवासिनो जनान् मोहयतीति मुह-णिच्-ल्युट् । श्रीकृष्ण ।

व्रजयुवति (सं० स्त्री०) व्रजानां युवतिः । व्रजवासिनी, व्रजाङ्गना ।

व्रजराज (सं० पु०) श्रीकृष्ण ।

व्रजराज—१ उणादिवृत्तिके प्रणेता । २ कारिकावली-टीका नामक वैशेषिक ग्रन्थके रचयिता । ३ शब्दादिविषयसारके प्रणेता । ४ सम्बन्धगोत्सव-कल्पलताके रचयिता ।

व्रजराज गोस्वामी—न्यायसारके प्रणेता ।

व्रजराजदीक्षित—१ रसिकरञ्जन नामक रसमञ्जरीटीकाके प्रणेता । २ आर्यात्रिशतीमुक्तक या रसिकरञ्जन, वल्लभाख्यानटीका, शृङ्गारशतक और षड्ऋतुवर्णन नामक ग्रन्थके रचयिता । इनके पिताका नाम था काशीराम । तर्ककारिकाके प्रणेता जीवराज दीक्षित इनके पुत्र थे ।

व्रजराज शुक्ल—अन्नपूर्णाकल्पलता, चण्डीविलास, छिन्नमस्तारहस्य, जैमिनीसूत्रटिप्पण, त्रिशतीटीका, नीतिविलास, दानमञ्जरी, रससुधानिधि (वैद्यक), श्यामादीपदान और सूर्यरहस्यके प्रणेता ।

व्रजरामा (सं० स्त्री०) व्रजस्य रामा । व्रजवधू ।

व्रजलाल (सं० पु०) १ नन्दलाल, श्रीकृष्ण । २ एक राजा । ये कामसूत्रटीकाके प्रणेता भास्करनृसिंहके प्रतिपालक थे । ३ सेवाविचारके रचयिता ।

व्रजवधू (सं० स्त्री०) व्रजस्य वधूः । व्रजवनिता, व्रजाङ्गना ।

व्रजवर (सं० पु०) व्रजे वरः श्रेष्ठः । श्रीकृष्ण । व्रजभक्तिविलासमें इनका मन्त्र और पूजा आदि इस प्रकार लिखा है। ये व्रजवर द्वादश अधिपतिके अन्तर्गत आठवें वनके अधिष्ठात्री देवता हैं। 'ओं हः ओं वराधिपनाधिपतये व्रजवराय नमः' यह अष्टोत्तर अक्षर इनका मन्त्र है। व्रजवरकी पूजा करनेमें सामान्य पूजापद्धतिसे पूजा समाप्त कर इस मन्त्रसे प्राणायाम कर ऋषि आदिका न्यास करे ।

व्रजवल्लभ (सं० पु०) व्रजानां व्रजवासिनां वल्लभः, प्रियः । श्रीकृष्ण ।

व्रजसुन्दरी (सं० स्त्री०) व्रजस्य सुन्दरी । व्रजस्त्री, व्रजाङ्गना ।

व्रजस्त्री (सं० स्त्री०) व्रजवासिनी ।

व्रजस्वामि (सं० पु०) व्रजस्य स्वामी, गुरुजनः । व्रजपति श्रीकृष्ण ।

व्रजाङ्गना (सं० स्त्री०) व्रजस्य अङ्गना । व्रजस्त्री, गोपी ।

इस गीत और कविताको छोड़ कर प्राचीन कालमें व्रजभाषामें रचित और किसी पुस्तक विशेषका उल्लेख नहीं मिलता। १६वीं सदीमें मुगलसम्राट् अकबर शाहके शासनकालके पहले रचित 'पृथ्वीराजरासा' और 'हमीर-रासा' उल्लेखनीय हैं। ये दोनों ग्रन्थ सुप्रसिद्ध चांद-कविके बनाये हैं।*" चांदकवि देखो।

किन्तु यथार्थमें सम्राट् अकबर शाहके शासनकाल और तत्परवर्ती समयसे ही व्रजभाषामें अनेक ग्रन्थादि लिखे जाने लगे।

हिन्दी और व्रजभाषामें जो अन्तर है उसे दिखलानेके लिये नीचे कुछ शब्दों और धातुओंका परिवर्त्तित रूप उद्धृत किया गया है। हिन्दीमें जिस प्रकार ड़, ढ़ की जगह र उच्चारण करनेसे दोष नहीं होता तथा य कभी व, कभी ब की जगह उच्चारित होता है, व्रजभाषामें कहीं जगह उसी प्रकार व्यतिक्रम दिखाई देता है। निम्नोक्त पदोंका भी व्रजभाषामें परिवर्त्तन होता है।

लर। डर। पय। पत्र। नाम। कुछ। मय। भग। गय। पग। तप। नक। पर्व। पेट। भय। पत्त। दोह। भक्त।

फिर अनेक स्थलोंमें एक शब्दके एक अर्थमें दो तीन तरहका प्रयोग देखा जाता है। कभी व्रजभाषाके दो एक शब्दोंमें देवनागरी अक्षरकी जगह फारसी हिन्दीके अ, ख, ग, ज, फ, आदि भी व्यवहृत हुए हैं। कभी श्रुतिमाधुर्यसम्पादनके लिये वर्गीय ब अन्तस्थ व रूपमें तथा न ण रूपमें लिखा गया है। जैसे—

आलो, आरो। बालो, बारो। घोड़ा, घोरा। गढ़ा, गरा। बन, वन। वसुदेव, बसुदेव। यमुना, जमुना। यश, जस। यज्ञ, जग्य। शिशु, सिसु। अक्षर, अच्छर। लक्ष्मी, लछमी। गांव, गांव। नांव, नांव। ढूंढ़ली, ढूंढ़री। कष्ट, कष्ट। कभी, कबी। पगड़ी, पघड़ी। पता, पता। रथ, रत। भरत, भरथ। ज्योतिसी, जोतिसी। ज्योतिष, जोतिस। यह, इह। आये, आए। लाये, लाए। किया, किना। दिया, दिना। घट, खट। पढ़ो, पढ्यो। येही, येई। तुही, तुई। तुम्हें, तुझे। तुझ, तुज।

हिन्दी (खड़ीबोली) भाषाकी 'होना' क्रिया व्रजभाषामें किस प्रकार रूपान्तरित होता है, नीचे वही दिखलाया गया है—

हिन्दी		भाषा।
होना		होनो-हैबो
मैं हूं	१म पु० १ वच०	हौं-मैं-हूं
तैं-तू है	२य पु० १ व०	तैं-तू है
वह है	३य पु० १ व०	वह सो-है
हम हैं	१म पु० बहुव०	हम हैं
तुम हो	२य पु० "	तुम हो
वे हैं	३य पु० "	वे सें हैं
होता था	१म पु० १ व०	होतुतो
होते थे	१म पु० २य पु० ३य पु० बहुवच०	होतिहे
होती थी (स्त्री)	" १ वच०	होतिही
होती थीं	" " १ बहुव०	होतिहीं

नीचे कुछ हिन्दी-पदोंका प्रयोग व्रज बोलीमें दिया गया है—

हिन्दी	भाषा
मेरा	मेरौ
तेरा	तेरौ
तुमको	तोको
उसको	वा ताको
इसको	याको
जिसको	जाको
मुझसे	मो सों ते
कुछ	कछू
तक	लौं

नीचे विशुद्ध हिन्दी खड़ीबोली और व्रजभाषाका नमूना उद्धृत किया जाता है। थोड़ा गौर कर देखनेसे ही दोनोंमें क्या अन्तर है यह मालूम हो जायेगा।

व्रजभाषा भाखै रुचि न बहु [illegible]।
भारती सुन्दर [illegible] विलास॥"

* प्राचीन 'पृथ्वीराजरासा' ग्रन्थका बहुत कम प्रचार है। अभी जो कुछ मिलता है वह १६वीं सदीका बना है। इस ग्रन्थको छोड़ कर व्रजभाषामें रचित और कोई बड़ा ग्रन्थ नहीं।

खड़ीबोली

"क्या कुढब यह गया है उलझेड़ा।
हरिभजन बिन नहीं है सुलझेड़ा॥
नामवरशी से चाहूं बसमें।
कृष्णबिन नामें धार है बेड़ा॥
उनके चरणों से कृष्णको यह कहूं।
कुञ्ज गलियोंमें हो जो मुटभेड़ा॥
दो मुझे दीनपर मनज हरिजी।
जैसे ध्रुवको दिया मदल पेड़ा।
तेरे मिलनेकी चाट है खोपी॥
यों हो मारे हैं कितने भटभेड़ा।
कृष्णको रस गुलाब नित उठ भोग॥
मिसरी मक्खन मलाई और पेड़ा।" इत्यादि

भाषा दोहा

"मन बिन सब सूनु फिर गई देख दिनके फेर।
जेठ गिनाई भानु बनि मावन आरी घेर॥
गोन समें फेंटा गह्यो सुन्दरि हित प्रिय जानि।
छूटत ही दोऊ छुटे फेंटा इत मानि॥
मन राखों हो परम के मिय राख्यो समुझाय।
नैना बरजे तब नाह हैं मिले भागठ दाय॥
अब बरजे सब नार है नेय प्रेमरस लें।
भार बस तें परबस भये ये बिसवासी नैन॥" इत्यादि

व्रजभू (सं० पु०) व्रजे भूरुत्पत्तिर्यस्य। १ कंलिकदम्ब। (त्रि०) २ व्रजजात। भास्कर पण्डितके पुत्र नारायण भट्टने सुललित श्लोकावलीमें यह ग्रन्थ प्रणयन किया है। इसमें वृन्दावनके देवस्थानोंका माहात्म्य वर्णित हुआ है। (स्त्री०) ३ व्रजभूमि।

व्रजभूषण—१ गुणरत्नाकर नामक वैद्यकग्रन्थके प्रणेता। २ तत्त्वविवेकसार नामक वेदान्त और भागवतपुराण-टीकाके रचयिता। ३ हठप्रदीपिका टीकाकार।

व्रजभूषण मिश्र—वेदान्तरत्नमालाके प्रणेता।

व्रजमण्डल (सं० क्ली०) व्रजस्य मण्डलम्। व्रजभूमि, व्रज और उसके आस-पासका प्रदेश।

व्रजमोहन (सं० पु०) व्रज व्रजवासिनो जनान् मोहयतीति मुह-णिच्-ल्युट्। श्रीकृष्ण।

व्रजयुवति (सं० स्त्री०) व्रजानां युवतिः। व्रजवासिनी, व्रजाङ्गना।

व्रजराज (सं० पु०) श्रीकृष्ण।

व्रजराज—१ उणादिवृत्तिके प्रणेता। २ कारिकावल्ल-टीका नामक वैशेषिक ग्रन्थके रचयिता। ३ शङ्करदिग्वि-जयसारके प्रणेता। ४ सम्वत्सरोत्सव-कल्पलताके रचयिता।

व्रजराज गोस्वामी—न्यायसारके प्रणेता।

व्रजराजदीक्षित—१ रसिकरञ्जन नामक रसमञ्जरीटीकाके प्रणेता। २ आर्याशिक्षाप्रमुकाव या रसिकरञ्जन, वल्लभाख्यानटीका, शृङ्गारशतक और षड्ऋतुवर्णन नामक ग्रन्थके रचयिता। इनके पिताका नाम था कामराज। तर्ककारिकाके प्रणेता जीवराज दीक्षित इनके पुत्र थे।

व्रजराज शुक्ल—अन्नपूर्णाकल्पलता, चण्डीविलास, छिन्न-मस्तारहस्य, जैमिनीसूत्रटिप्पण, त्रिशतीटीका, नीति-विलास, ज्ञानमञ्जरी, रससुधानिधि (वैद्यक), श्यामादीप-दान और सूर्यरहस्यके प्रणेता।

व्रजरामा (सं० स्त्री०) व्रजस्य रामा। व्रजवधू।

व्रजलाल (सं० पु०) १ नन्दलाल, श्रीकृष्ण। २ एक राजा। ये कामसूत्रटीकाके प्रणेता भास्करनृसिंहके प्रतिपालक थे। ३ सेवाविचारके रचयिता।

व्रजवधू (सं० स्त्री०) व्रजस्य वधूः। व्रजवनिता, व्रजाङ्गना।

व्रजवर (सं० पु०) व्रजे वरः श्रेष्ठः। श्रीकृष्ण। व्रज-भक्तिविलासमें इनका मन्त्र और पूजा आदि इस प्रकार लिखा है। ये व्रजवर द्वादश वनके अन्तर्गत आयट वनके अधिष्ठात्री देवता हैं। 'ओं ह्रः ओं वटाधिपनाधि-पतये व्रजवराय नमः' यह इक्कीस अक्षर इनका मन्त्र है। व्रजवरकी पूजा करनेमें सामान्य पूजाक्रमसे पूजा समाप्त कर इस मन्त्रसे प्राणायाम कर ऋषि न्यादिका न्यास करे।

व्रजवल्लभ (सं० पु०) व्रजानां व्रजवासिनां वल्लभः, प्रियः। श्रीकृष्ण।

व्रजसुन्दरी (सं० स्त्री०) व्रजस्य सुन्दरी। व्रजस्त्री, व्रजाङ्गना।

व्रजस्त्री (सं० स्त्री०) व्रजवासिनी।

व्रजस्वामि (सं० पु०) व्रजस्य स्वामि, गुह्यकपतिः। व्रजपति श्रीकृष्ण।

व्रजाङ्गना (सं० स्त्री०) व्रजस्य अङ्गना। व्रजस्त्री, गोपी।

इस मत और कविताको छोड़ कर प्राचीन कालमें ब्रजभाषामें रचित और किसी पुस्तक विशेषका उल्लेख नहीं मिलता। १६वीं सदीमें मुगलसम्राट् अकबर शाहके शासनकालके पहले रचित 'पृथ्वीराजरासो' और 'हमीर-रासा' उल्लेखनीय हैं। ये दोनों ग्रन्थ सुप्रसिद्ध चांद-कविके बनाये हैं।* चांदकवि देखो।

किन्तु यथार्थमें सम्राट् अकबर शाहके शासनकाल और उसके परवर्त्ती समयसे ही ब्रजभाषामें अनेक ग्रन्थादि लिखे जाने लगे।

हिन्दी और ब्रजभाषामें जो अन्तर है उसे दिखलानेके लिये नीचे कुछ शब्दों और धातुओंका परिवर्त्तित रूप उद्धृत किया गया है। हिन्दीमें जिस प्रकार ड, ढ को जगह र उच्चारण करनेसे दोष नहीं होता तथा य कभी ज, कभी ब को जगह उच्चारित होता है, ब्रजभाषामें कई जगह उसी प्रकार व्यतिक्रम दिखाई देता है। निम्नोक्त पदोंका भी ब्रजभाषामें परिवर्त्तन होता है।

लर। उर। पथ। यज्ञ। शास। छत्र। मय। भय। गय। धन। तथ। नक। पपे। पेड़। मध। धन। होर। म्रक।

फिर अनेक स्थलोंमें एक शब्दके एक अर्थमें दो तीन तरहका प्रयोग देखा जाता है। कभी ब्रजभाषाके दो एक शब्दोंमें देवनागरी अक्षरको जगह फारसी हिन्दीके ज़, ख़, ग़, फ़, क़, आदि भी व्यवहृत हुए हैं। कभी श्रुतिमाधुर्यसम्पादनके लिये कहीं ब आवश्यक व रूपमें तथा ल र-में लिया गया है। जैसे—

जाली, जारी। थाली, थारी। घोड़ा, घोरा। गढ़ा, गरा। बन, वन। बसुदेव, वसुदेव। यमुना, जमुना। यश, जस। शत्रु, सत्रु। शिशु, सिसु। अक्षर, अच्छर। लक्ष्मी, लछमी। गांव, गाँव। गाम, गाँव। हँसली, हँसुली। काम, कम। कहाँ, कहाँ। पगड़ी, पगड़ी। पगा, पाग। रथ, रत्थ। अरज, अरद। बोलिसी, बोलिबो। बोलिब, बोलिक। बड़, बड़। आवे, आय। जावे, जाय। किया, किया। दिया, दिया। पढ़, पड़। पढ़ो, पढ्यो। येही, येई। मुझे, मूहि। मुझे, मुजे। मुझ, मुज।

हिन्दी (खड़ीबोली) भाषाकी 'होना' क्रिया ब्रजभाषामें किस प्रकार रूपान्तरित होता है, नीचे यही दिखलाया गया है—

हिन्दी		भाषा।
होना		होनो-ह्वैबो
मैं हूं	१म पु० १ वच०	हौं-मैं हौं
तैं-तू है	२य पु० १ व०	तैं-तू है
वह है	३य पु० १ व०	वह तो-है
हम हैं	१म पु० बहुव०	हम हैं
तुम हो	२य पु० ,,	तुम हो
वे हैं	३य पु० ,,	वे तो हैं
होता था	१म पु० १ व०	होतुतो
होते थे	१म पु० २य पु० ३य पु० बहुवच०	होतिहे
होती थी (स्त्री)	,, १ वच०	होतिही
होती थीं	,, ,, १ बहुव०	होतिहीं

नीचे कुछ हिन्दी-पदोंका प्रयोग ब्रज बोलीमें दिया गया है—

हिन्दी	भाषा
मेरा	मेरो
तेरा	तेरो
तुमको	तोको
उसको	वा ताको
इसको	याको
जिसको	जाको
तुम्हारे	तौ मारे
कुछ	कछु
तक	लौं

नीचे शिखरहिन्दी खड़ीबोली और ब्रजभाषाका नमूना उद्धृत किया जाता है। मिलान कर देखनेसे दोनोंमें क्या अन्तर है यह मालूम हो जायेगा।

ब्रजभाषा भाषो रुचिर न बहु विधि बुद्धि विलास।
भाषो सुकवि गहिबो सब विधि विलास॥"

* प्राचीन 'पृथ्वीराजरासो' अत्यन्त बृहत् ग्रन्थ है। इसमें जो कुछ लिखे हैं वह १६वीं सदीका बना है। इस ग्रन्थको छोड़ कर ब्रजभाषामें अधिक और कोई बड़ा ग्रन्थ नहीं।

खड़ीबोली

"क्या कुढब पड़ गया है उलझेड़ा।
हरिभजन बिन नहीं है सुलझेड़ा ॥
माखनचोरी से पावहूँ पलमें।
कृष्णबिन मांझे धार है बेड़ी ॥
लगके चरणों से कृष्णको यह कहूँ।
कुञ्ज गलियोंमें हो जो मुठभेड़ा ॥
दो मुझे दीन यह भक्त हरिजी।
जैसे ध्रुवको दिया अटल पेड़ा।
तेरे मिलनेकी बाट है जोखी ॥
यों ही मारे हैं कितने भट-भेड़ा।
कृष्णको रस सुहाक नित उठ भोग ॥
मिसरी माखन मलाई और पेड़ा।" इत्यादि

भाषा दोहा

"तन बिन तप भृगु फिर गई देख दिनके फेर।
पेठ मिलोई भानु पनि लावन आरी मेर॥
गोल गर्में फंदा गयो सुन्दरि हित प्रिय जानि।
छूटन ही दोऊ छुटे फंदा इन मानि॥
मन राखो हो भरत के प्रिय राखो अनुमान।
नैना बरसे तब नार हैं मिले भागउ हाय॥
अब बरसो तब नार है नेव में भरत जो।
भर बस तें बरसत भये ये बिलखाये नैन॥" इत्यादि

ब्रजभू (सं० पु०) ब्रजे भूर्जन्मस्थितरस्य। १ श्रीकृष्ण। (त्रि०) २ ब्रजजात। भास्कर पण्डितके पुत्र नारायण भट्टने सुललित श्लोकावलीमें यह ग्रन्थ प्रणयन किया है। इसमें वृन्दावनके देवस्थानोंका माहात्म्य कीर्तित हुआ है। (स्त्री०) ३ ब्रजभूमि।

ब्रजभूषण—१ गुणरत्नाकर नामक वैद्यकग्रन्थके प्रणेता। २ तत्त्वविवेकसार नामक वेदान्त और भागवतपुराण-टीकाके रचयिता। ३ हंसदीपिका टीकाकार।

ब्रजभूषण मिश्र—वेदान्तरत्नमालाके प्रणेता।

ब्रजमण्डल (सं० क्ली०) ब्रजस्य मण्डलम्। ब्रजभूमि, ब्रज और इसके आस-पासका प्रदेश।

ब्रजमोहन (सं० पु०) ब्रज ब्रजवासिनो जनान् मोहयतीति मुह-णिच्-ल्युट्। श्रीकृष्ण।

ब्रजयुवति (सं० स्त्री०) ब्रजानां युवतिः। ब्रजवासिनी, ब्रजाङ्गना।

ब्रजराज (सं० पु०) श्रीकृष्ण।

ब्रजराज—१ उणादिवृत्तिके प्रणेता। २ कालिकावर्ण टीका नामक वैशेषिक ग्रन्थके रचयिता। ३ शङ्करदिग्विजयसारके प्रणेता। ४ ब्रजभूषणोत्सव-कल्पलताके रचयिता।

ब्रजराज गोस्वामी—न्यायसारके प्रणेता।

ब्रजराजदीक्षित—१ रसिकरञ्जन नामक रसमञ्जरीटीकाके प्रणेता। २ आर्यात्रिशतीमुक्तक वा रसिकरञ्जन, वल्लभाख्यानटीका, शृङ्गारशतक और षड्ऋतुवर्णन नामक ग्रन्थके रचयिता। इनके पिताका नाम था कालराज। तर्ककारिकाके प्रणेता जीवराज दीक्षित इनके पुत्र थे।

ब्रजराज शुक्ल—अन्नपूर्णाकल्पलता, चण्डीविलास, छिन्नमस्तारहस्य, जैमिनीसूत्रटिप्पण, त्रिशतीटीका, गोपिविलास, रागमञ्जरी, रससुधानिधि (वैद्यक), श्यामाशीर-दास और सूर्यरहस्यके प्रणेता।

ब्रजरामा (सं० स्त्री०) ब्रजस्य रामा। ब्रजवधू।

ब्रजलाल (सं० पु०) १ नन्दलाल, श्रीकृष्ण। २ एक राजा। ये कामसूत्रटीकाके प्रणेता मान्धातृसिंहके प्रतिपालक थे। ३ सेवाविचारके रचयिता।

ब्रजवधू (सं० स्त्री०) ब्रजस्य वधूः। ब्रजवनिता, ब्रजाङ्गना।

ब्रजवर (सं० पु०) ब्रजे वरः श्रेष्ठः। श्रीकृष्ण। ब्रजभक्तिविलासमें इनका मन्त्र और पूजा आदि इस प्रकार लिखा है। ये ब्रजवर द्वादश अधिपतके अन्तर्गत आगर वनके अधिष्ठात्री देवता हैं। 'ओं ङः श्रीं पद्मावनाधिपतये ब्रजवराय नमः' यह अष्टोत्तर अक्षर इनका मन्त्र है। ब्रजवरकी पूजा करनेमें सामान्य पूजाप्रकरणमें पूजा समाप्त कर इस मन्त्रसे प्राणायाम कर स्तुति आदिका ध्यान करे।

ब्रजवल्लभ (सं० पु०) ब्रजानां ब्रजवासिनां वल्लभः, प्रियः। श्रीकृष्ण।

ब्रजसुन्दरी (सं० स्त्री०) ब्रजस्य सुन्दरी। ब्रजस्त्री, ब्रजाङ्गना।

ब्रजस्त्री (सं० स्त्री०) ब्रजवासिनी।

ब्रजस्वामिन् (सं० पु०) ब्रजस्य पतिः, सुखागमः। ब्रजनाथ श्रीकृष्ण।

ब्रजाङ्गना (सं० स्त्री०) ब्रजस्य अङ्गना। ब्रजस्त्री, गोपी।

व्रजावास (सं० पु०) व्रजे आवासः। १ व्रजमें अवस्थान। (त्रि०) व्रजे वासो यस्य। २ व्रजनिवासी, जो व्रजमें अवस्थान करते हैं, व्रजवासी। ३ वृन्दा।

व्रजित (सं० त्रि०) पृथग्भूत, स्वस्थानच्युत।

व्रजिन (सं० क्ली०) कलुष, पाप।

व्रजिनी (सं० स्त्री०) व्रजानुगामिनी, राजि। (ऋक् ४।५७।१ भाष्य)

व्रजेन्द्र (सं० पु०) व्रजस्य इन्द्रः। १ व्रजके अधिपति नन्द। २ श्रीकृष्ण।

व्रजेश्वर (सं० पु०) व्रजस्य ईश्वरः। श्रीकृष्ण।

व्रजौकस् (सं० पु०) व्रजे ओकः अवस्थान येषां। व्रजवासी।

व्रज्य (सं० त्रि०) गो स्थान। व्रजे गोसमूहे भवो व्रज्यः तस्मै। (शुक्लयजु १६।४४ महीधर)

व्रज्या (सं० स्त्री०) व्रजनमिति व्रज गतौ (व्रज यजोर्भावे क्यप्। पा ३।३।९८) इति क्यप्। १ पर्यटन, घूमना फिरना। २ आक्रमण, चढ़ाई। ३ गमन, जाना। ४ एक ही तरहकी बहुत सी चीजें एक स्थान पर एकत्र करना। ५ वर्ग। ६ रङ्गालय, नाट्यशाला। ७ दल।

व्रज्यावत् (सं० त्रि०) गमनशील स्वरूप। (ऋक् ७।३०)

व्रढिमन् (सं० पु०) वृढ-इमनिच् (पा ५।१।१२२) वृढ़का भाव।

व्रण (सं० पु० क्ली०) व्रणयति गात्रमिति व्रण चूर्णे पचाद्यच्। १ क्षत, फोड़ा। पर्याय—ईर्म, अरु। २ व्रणासम्बन्धीय रोग। शरीरमें जो क्षत होता है, वही व्रण या फोड़ा है। साधारणतः व्रण कहनेसे घाव या फोड़ेका बोध होता है। यह व्रण दो प्रकारका है, शारीर और आगन्तु। जो व्रण वायु, पित्त, कफ, शोणित और सन्निपातसे होता है अर्थात् वायु, पित्त, कफ और रक्तादिके बिगड़नेसे जो व्रणरोग उत्पन्न होता है, उसे शारीर-व्रण कहते हैं। फिर जहां पुरुष, पशु, पक्षी, व्याल, सरीसृप, पतन, पीड़न, प्रहार, अग्नि, क्षार, विष, तीक्ष्णौषध आदि द्वारा व्रण होता है उसे आगन्तु कहते हैं। (सुश्रुत)

भावप्रकाशमें लिखा है, कि व्रणरोग दो प्रकारका है—निज और आगन्तु। शरीर दोष अर्थात् वायु, पित्त, कफ, या सन्निपात। वायु, पित्त और कफके बिगड़नेसे जहां व्रणरोगकी उत्पत्ति होती है, वहां उसे निज व्रण कहते हैं। फिर व्याघ्रादि द्वारा अर्थात् व्याघ्रघात, पतन, दंशन आदि द्वारा जो व्रणरोग उत्पन्न होता है, उसका नाम आगन्तु है। निज व्रणमें वातादि दोषके कुपित होनेसे व्रणरोग होता है। आगन्तु व्रणरोगमें पहले बाह्य कारणसे क्षत हो पीछे वातादि दोष कुपित होता है।

उक्त शारीर और आगन्तु दोनों प्रकारके व्रण सामान्य भेदसे बीस प्रकारके हैं। उनमेंसे दुष्ट व्रण बारह प्रकारका, स्थान ८, गन्ध ८, स्राव १४, उपद्रव १६, दोष २४ और चिकित्सा कर्म ३६ प्रकारके हैं।

व्रणके ८ प्रकारके स्थान हैं। इन आठ स्थानोंमें साधारणतः व्रणोत्पत्ति हुआ करती है। वह स्थान यथा—१ त्वक्, २ शिरा, ३ मांस, ४ मेद, ५ अस्थि, ६ स्नायु, ७ मर्म, ८ अभ्यन्तर।

उक्त व्रणोंसे ८ प्रकारकी गन्ध निकलती है। इन सब गन्धोंका विषय इस प्रकार लिखा है—१ घृतवद्गन्ध, २ तैलवद्गन्ध, ३ वसावद्गन्ध, ४ पूयगंध, ५ रक्तगंध, ६ धूमगंध, ७ अम्लगंध और ८ पूतिगंध।

उक्त सभी प्रकारके व्रणोंसे १४ प्रकारका स्राव निकलता है। वे सब स्राव इस प्रकार हैं—१ लसीकास्राव, २ जलस्राव, ३ पूयस्राव, ४ रक्तवर्णस्राव, ५ हरिद्रावर्ण स्राव, ६ अरुणवर्ण, ७ पिञ्जरवर्ण, ८ कषाय अर्थात् वटवृक्षादिके काढ़ेकी तरह, ९ नील वर्ण, १० हरितवर्ण, ११ स्निग्ध, १२ रूक्ष, १३ श्वेतवर्ण और १४ कृष्णवर्ण स्राव।

व्रणके १६ प्रकारके उपद्रव हैं—१ विसर्प, २ पक्षाघात, ३ शिरास्तम्भ, ४ अपतानक, ५ मोह, ६ उन्माद, ७ व्रणवेदना, ८ ज्वर, ९ तृष्णा, १० हनुग्रह, ११ कास, १२ वमि, १३ अतिसार, १४ हिक्का, १५ श्वास और १६ कम्प।

व्रणरोगके २४ प्रकारके दोष हैं—१ स्नायुक्लेद, २ शिराक्लेद, ३ गम्भीरता, ४ कृमियोंकी उत्पत्ति और दंशन (अर्थात् व्रणको कीड़ा खाना और खुजलाना) ५ अस्थिभेद, ६ सशल्यत्व, ७ सविषत्व, ८ अतिमांस, ९ [illegible], १० [illegible], ११ अधिक [illegible], १२

रोगका अभिघट्टन, १३ अनुपयुक्त व्रणबन्धन, १४ अति स्नेहप्रयोग, १५ अतिभेषज्यकर्षण, १६ अजीर्ण, १७ अतिभोजन, १८ विरुद्धभोजन, १९ असात्म्यभोजन, २० शोक, २१ क्रोध, २२ दिवानिद्रा, २३ मैथुन और २४ शोषण, व्रणरोगमें यही २४ प्रकारके दोष हैं। जब ये सब दोष उपस्थित होते हैं, उस समय यदि अच्छी तरह चिकित्सा न की जाय, तो वह प्रशमित नहीं होता। व्रणमें परिस्राव दुर्गंध और बहुदोष होनेसे वह कृच्छ्रसाध्य होता है।

व्रणकी तीन परीक्षा है—दर्शन, प्रश्न और स्पर्शन। प्रथम दर्शन है। इस दर्शन द्वारा रोगीको वयस, व्रणके वर्ण, शरीर और इन्द्रियकी परीक्षा होती है। द्वितीय प्रश्न है, इससे रोगोत्पादक हेतु, उपस्थित पीड़ा और अग्निबलकी परीक्षा होती है। तृतीय स्पर्श है, व्रण स्पर्श करनेसे उसकी कठिनता, कोमलता, शीतलता और उष्णता आदिका अनुभव होता है। इस त्रिविध परीक्षा द्वारा परीक्षा करके व्रणरोगकी चिकित्सा करनी होती है।

यदि किसीका व्रणत्वक्, मांसका मर्म रहित स्थानमें उत्पन्न हो, बहुत दिनका न हो, तृष्णादि उपद्रवशून्य हो, रोगी युवक और हिताहितज्ञ हो तथा कालशुभ अर्थात् हेमन्तका शीतऋतुमें हो, तो वह अति शीघ्र आरोग्य होता है। इस प्रकारके व्रणको ही सुखसाध्य जानना होगा। फिर यदि इन सब गुणोंका कुछ भी अभाव हो, तो वह कष्टसाध्य है। इनमेंसे सबोंका अभाव होनेसे उसे असाध्य जानना चाहिये।

व्रणपीड़ित व्यक्तिके बलाबलका विचार कर वमन, विरेचन, शस्त्रप्रयोग या वस्तिक्रिया द्वारा विशोधन करना कर्त्तव्य है। उक्त प्रकारसे विशुद्ध होने पर व्रण शीघ्र ही प्रशमित होता है।

व्रणके ३६ प्रकारके उपक्रम और ६ प्रकारकी शोधनक्रिया है अर्थात् व्रणका फूलना जिससे बंद हो जाय, उसके लिये ६ प्रकारकी क्रिया निर्दिष्ट है। शास्त्रमें, अपपीड़न, निर्वापण, संधान, स्वेद, शमन, शोधनकषाय, रोपणकषाय, शोधनप्रदेह, रोपणप्रलेप, शोधनतैल, रोपणतैल, शोधनचूर्ण, रोपणचूर्ण, शोधनपत्राच्छादन, रोपणपत्राच्छादन, अङ्गबन्धन, दृढ़िमबन्धन, लाघ, उत्सादन, अवसादन, द्विविध दाह, धूप, मार्दवकरण, काठिन्यकर लेपन, मार्दवकरलेपन, प्रजावचूर्ण, वर्ण्य, रोपन और रोमरोहण ये ३६ प्रकार व्रणके उपक्रम।

जहां व्रण निकलता है, वहां पहले सूजन पड़ आती है। यही सूजन व्रणका पूर्वलक्षण है। इसके आदि स्थानोंमें सूजन दिखाई देनेसे जानना चाहिये, कि यहां फोड़ा निकलेगा। इस शोथ या सूजनके दोषादिका विषय परीक्षा कर उसकी शान्ति करनी चाहिये। जिससे उस शोथमें व्रण न हो, उसके लिये पहले जोंकसे रक्तमोक्षण करना होता है। इससे व्रण निकलने नहीं पाता। किन्तु वह शोथ यदि बहुदोषयुक्त हो, तो वमन विरेचनादि शोधन और अन्य दोष दूर होनेसे लङ्घनकी व्यवस्था करनी होगी। शोथमें वायुका प्रकोप अधिक रहनेसे पहले वातघ्नकषाय और घृत प्रयोग द्वारा उसकी शान्ति करनी होती है।

व्रणरोगकी चिकित्सा—व्रणकी शोथावस्थामें वट, पीपल, गूलर, पाकड़ और आम्रवेतस, इनकी छालको जलमें पीस कर घीके साथ प्रलेप देनेसे शोथ प्रशमित होता है। मांस, मुलेठी, क्षीरकांकोली, पद्ममूल, शालमूली, नीलोत्पल, नागकेशर और रक्तचन्दन इन सब द्रव्योंका प्रलेप देनेसे भी शोथ विनष्ट होता है। जौका सत्तू, मुलेठी, घी और चीनी इन सब द्रव्योंका प्रलेप तथा अविदाही अन्नभोजन व्रणशोथके लिये विशेष उपकारी है।

व्रणकी शोथावस्थामें पहले इसी प्रकार प्रलेप दे। इससे यदि शोथ न घटे, उपनाह अर्थात् पुलटिस दे कर उसे पकाना होगा। पीछे उसके पक जाने पर शस्त्रप्रयोग द्वारा उसे चीर देना होता है। चीर देने होसे वह शीघ्र आरोग्य होता है। अतएव ऐसी अवस्थामें शस्त्र प्रयोग ही विशेष हितकर है।

फोड़ेको पकानेके लिये उक्त प्रकारसे पुलटिस देनी होगी। तीसीके सत्तूको अच्छी तरह पाक कर उसमें घी या तेल अथवा घी तेल दोनों ही मिला कर गरम करे, पीछे गरम रहते ही उसकी पुलटिस दे। एरण्डबीज, तीसी, कुट और सैन्धव नमक मिला हुआ जौके सत्तूका गीला,

व्रजागार (सं० पु०) व्रजे आगारः। १ व्रजमें अवस्थान। (त्रि०) व्रजके आगारमें स्थित। २ व्रजनिवासी, जो व्रजमें अवस्थान करते हैं, व्रजवासी। ३ कृष्ण।

व्रजित् (सं० त्रि०) पुरोभूत, पुरस्कृत।

व्रजिन (सं० क्ली०) कलुष, पाप।

व्रजिनी (सं० स्त्री०) गमनशीला, शक्ति। (ऋक् १।७५।४ सायण)

व्रजेन्द्र (सं० पु०) व्रजस्य इन्द्रः। १ व्रजके अधिपति नन्द। २ श्रीकृष्ण।

व्रजेश्वर (सं० पु०) व्रजस्य ईश्वरः। श्रीकृष्ण।

व्रजौकस् (सं० पु०) व्रजे ओकः अवस्थानं येषां। व्रजवासी।

व्रज्य (सं० त्रि०) गो सम्बन्ध। व्रजे गोसमूहे भवो व्रज्यः। (शुक्लयजु ११।४४ महीधर)

व्रज्या (सं० स्त्री०) व्रजनमिति व्रज गतौ (व्रज यजोर्भावे क्यप्। पा ३।३।९८) इति क्यप्। १ पर्यटन, घूमना फिरना। २ आक्रमण, चढ़ाई। ३ गमन, जाना। ४ एक ही तरहकी बहुत सी चीजें एक स्थान पर एकत्र करना। ५ वर्ग। ६ रङ्गालय, नाट्यशाला। ७ पथ।

व्रज्यावत् (सं० त्रि०) गमनशील व्यक्ति। (ऋक् ७।३।०)

व्रढिमन् (सं० पु०) व्रढ-इमनिच् (पा ५।१।१२३) व्रढका भाव।

व्रण (सं० पु० क्ली०) व्रणयति गात्रमिति व्रण अच्, चूर्णं पचादित्वादच्। १ क्षत, फोड़ा। पर्याय—ईर्म, अरुः। २ स्वनामप्रसिद्ध रोग। शरीरमें जो क्षत होता है, वही व्रण या फोड़ा है। साधारणतः व्रण कहनेसे घाव या फोड़ेका बोध होता है। यह व्रण दो प्रकारका है, शारीर और आगन्तु। जो व्रण वायु, पित्त, कफ, शोणित और सन्निपातज होता है अर्थात् वायु, पित्त, कफ और रक्तादिके विकृतोंसे जो व्रणरोग उत्पन्न होता है। उसे शारीर-व्रण कहते हैं। फिर जहां पुरुष, पशु, पक्षी, व्याल, सरीसृप, प्रपतन, पीड़न, प्रहार, अग्नि, क्षार, विष, तीक्ष्णौषध आदि द्वारा व्रण होता है उसे आगन्तु कहते हैं। (सुश्रुत)

चरकसंहितामें लिखा है, कि व्रणरोग दो प्रकारका है—निज और आगन्तु। शारीर दोष अर्थात् वायु, पित्त, कफ या सन्निपात (वायु, पित्त और कफके मिलने)से जहां व्रणरोगकी उत्पत्ति होती है, वहां उसे निज व्रण कहते हैं। फिर बाह्यहेतु द्वारा अर्थात् अस्त्राघात, पतन, दंशन आदि द्वारा जो व्रणरोग उत्पन्न होता है, उसका नाम आगन्तु है। निज व्रणमें वातादि दोष के कुपित होनेसे व्रणरोग होता है। आगन्तु व्रणरोगमें किसी बाह्य कारणसे व्रण हो पीछे वातादि दोष कुपित होता है।

उक्त शारीर और आगन्तु दोनों प्रकारके व्रण स्थानभेदसे बीस प्रकारके हैं। उनमेंसे दुष्ट व्रण बारह प्रकारका, स्थान ८, गन्ध ८, स्राव १४, उपद्रव १६, दोष २४ और चिकित्सा कर्म ३६ प्रकारके हैं।

व्रणके ८ प्रकारके स्थान हैं। इन आठ स्थानोंमें साधारणतः व्रणोत्पत्ति हुआ करती है। वह स्थान यथा—१ त्वक्, २ शिरा, ३ मांस, ४ मेद, ५ अस्थि, ६ स्नायु, ७ मर्म, ८ अभ्यन्तर।

उक्त व्रणोंसे ८ प्रकारकी गन्ध निकलती है। इन सब गन्धोंका विवरण इस प्रकार लिखा है—१ घृतगन्ध, २ तैलगन्ध, ३ वसागन्ध, ४ पूयगंध, ५ रक्तगंध, ६ श्यावगंध, ७ अम्लगंध और ८ पूतिगंध।

उक्त सभी प्रकारके व्रणोंसे १४ प्रकारका स्राव निकलता है। ये सब स्राव इस प्रकार हैं—१ लसीका-स्राव, २ जलस्राव, ३ पूयस्राव, ४ रक्तपीतस्राव, ५ हरिद्राभवर्ण स्राव, ६ अरुणवर्ण, ७ पिङ्गलवर्ण, ८ कषाय अर्थात् वटवृक्षादिके काढ़ेकी तरह, ९ नील वर्ण, १० हरिद्वर्ण, ११ स्निग्ध, १२ रूक्ष, १३ श्वेतवर्ण और १४ कृष्णवर्ण स्राव।

व्रणके १६ प्रकारके उपद्रव हैं—१ विसर्प, २ पक्षाघात, ३ शिरास्तम्भ, ४ अपतानक, ५ मोह, ६ उन्माद, ७ व्रणवेदना, ८ ज्वर, ९ तृष्णा, १० हनुग्रह, ११ कास, १२ वमि, १३ अतिसार, १४ हिक्का, १५ श्वास और १६ कम्प।

व्रणरोगके २४ प्रकारके दोष हैं—१ स्नायुक्लेद, २ शिरासंकोच, ३ गम्भीरता, ४ क्रिमियोंसे उत्पत्ति और दंशन, अर्थात् घावमें कीड़ा पड़ना और दंशन करना। ५ अस्थिभेद, ६ सशल्यता, ७ सविषता, ८ परिसर्पण, ९ नखाघात, १० काष्ठ-घर्षण, ११ चर्मका अतिउत्सन्न, १२

लोमका अतिघट्टन, १३ अनुपयुक्त व्रणबन्धन, १४ अति स्नेहप्रयोग, १५ अतिभेषज्यकर्षण, १६ अजीर्ण, १७ अतिभोजन, १८ विरुद्धभोजन, १९ असात्म्यभोजन, २० शोक, २१ क्रोध, २२ दिवानिद्रा, २३ मैथुन और २४ व्यायाम, व्रणरोगमें यही २४ प्रकारके दोष हैं। जब ये सब दोष उपस्थित होते हैं, उस समय यदि अच्छी तरह चिकित्सा न की जाय, तो वह प्रशमित नहीं होता। व्रणमें परिस्राव दुर्गंध और बहुदोष होनेसे वह कृच्छ्र-साध्य होता है।

व्रणकी तीन परीक्षा है—दर्शन, प्रश्न और स्पर्शन। प्रथम दर्शन है। इस दर्शन द्वारा रोगीको वयस, व्रणके वर्ण, शरीर और इन्द्रियकी परीक्षा होती है। द्वितीय प्रश्न है, इससे रोगोत्पादक हेतु, उपस्थित पीड़ा और अग्निबलकी परीक्षा होती है। तृतीय स्पर्श है, व्रण स्पर्श करनेसे उसकी कठिनता, कोमलता, शीतलता और उष्णता आदिका अनुभव होता है। इस त्रिविध परीक्षा द्वारा परीक्षा करके व्रणरोगकी चिकित्सा करनी होती है।

यदि किसीका व्रणस्थान, मांसका मर्म रहित स्थानमें उत्पन्न हो, बहुत विलम्ब न हो, तृष्णादि उपद्रवशून्य हो, रोगी युवक और हिताहितज्ञ हो तथा कालशुभ अर्थात् हेमन्तका शीतऋतुमें हो, तो वह अति शीघ्र आरोग्य होता है। इस प्रकारके व्रणको ही सुखसाध्य जानना होगा। फिर यदि इन सब गुणोंका कुछ भी अभाव हो, तो वह कष्टसाध्य है। इनमेंसे सबोंका अभाव होनेसे उसे असाध्य जानना चाहिये।

व्रणपीड़ित व्यक्तिके बलाबलका विचार कर वमन, विरेचन, शस्त्रप्रयोग या वस्तिक्रिया द्वारा विशोधन करना कर्त्तव्य है। उक्त प्रकारसे विशुद्ध होने पर व्रण शीघ्र ही प्रशमित होता है।

व्रणके ३६ प्रकारके उपक्रम और ६ प्रकारकी शोथघ्न-क्रिया है अर्थात् व्रणका फूलना जिससे बंद हो जाय, उसके लिये ६ प्रकारकी क्रिया निर्दिष्ट है। आलेपन, अपपीड़न, निर्वापण, संधान, स्वेद, शमन, शोधनकषाय, रोपणकषाय, शोधनघृत, रोपणघृत, शोधनवर्त्ति, रोपण-तैल, शोधनचूर्ण, रोपणचूर्ण, धूपनपत्राच्छादन, रोपण पत्राच्छादन, सवर्णकरण, कृमिघ्नबन्धन, पाक, उत्सादन, अवसादन, द्विविध क्षार, धूप, मार्दवकरण, काठिन्यकर लेपन, मार्दवकरलेपन, शलाकाचूर्ण, रक्तमोक्ष, रोपन और रोमरोहण ये ३६ प्रकार व्रणके उपक्रम।

जहां व्रण निकलता है, वहां पहले सूजन पड़ जाती है। यही सूजन व्रणका पूर्वलक्षण है। स्तन आदि स्थानोंमें सूजन दिखाई देनेसे जानना चाहिये, कि यहां फोड़ा निकलेगा। इस शोथ या सूजनके दोषादिका विचार परीक्षा कर उसकी शान्ति करनी चाहिये। जिससे उस शोथमें व्रण न हो, उसके लिये पहले जोंकसे रक्त-मोक्षण करना होता है। इससे व्रण निकलने नहीं पाता। किन्तु यह शोथ यदि बहुदोषयुक्त हो, तो वमन विरेचनादि शोधन और अल्प दोष दृष्ट होनेसे लङ्घनकी व्यवस्था करनी होगी। शोथमें वायुका प्रकोप अधिक रहनेसे पहले वातघ्नकषाय और घृत प्रयोग द्वारा उसकी शान्ति करनी होती है।

व्रणरोगकी चिकित्सा—व्रणकी शोथावस्थामें बड़, पीपल, गूलर, पाकड़ और आकवन, इनकी छालको जलमें पीस कर घीके साथ प्रलेप देनेसे शोथ प्रशमित होता है। सोंठ, मुलेठी, क्षीरकाकोली, पद्मकेसर, शत-मूली, नीलोत्पल, नागकेशर और रक्तचन्दन इन सब द्रव्योंका प्रलेप देनेसे भी शोथ विनष्ट होता है। जौका सत्तू, मुलेठी, घी और चीनी इन सब द्रव्योंका प्रलेप तथा अविदाही अन्नभोजन व्रणशोथके लिये विशेष उपकारी है।

व्रणकी शोथावस्थामें पहले इसी प्रकार प्रलेप दे। इससे यदि शोथ न दबे, उपनाह अर्थात् पुलटिस दे कर उसे पकाना होगा। पीछे उसके पक जाने पर शस्त्र-प्रयोग द्वारा उसे चीर देना होता है। चीर देनेसे ही वह शीघ्र आरोग्य होता है। अतएव वैसी अवस्थामें शस्त्र प्रयोग ही विशेष हितकर है।

फोड़ेको पकानेके लिये उक्त प्रकारसे पुलटिस देना होगा। जौके सत्तूको जलमें पाक कर उसमें घी या तेल अथवा घी तेल दोनों ही मिला कर गरम करे, पीछे गरम रहते ही उसकी पुलटिस दे। कृष्णतिल, तीसी, कुट और सैन्धव नमक मिला हुआ जौके सत्तूका गोला,

इन्हें नष्ट करनेसे रोग ४४ पूर्वहित है। इससे फोड़ा बहुत जल्द पक जाता है।

पूर्वहित देनेसे जब व्रणस्थानमें दाह, रक्तवर्णता, सूचीविद्धवत्, दाह प्रभृत उपस्थित हों, तो जानना चाहिये, कि यह शोथ पक गया है। शोथस्थान जहां दबानेसे यदि जलपूर्ण चर्मकी तरह उसका स्पर्श हो, और अंगुलीसे दबाने पर यदि वह गद्देकी तरह दबता हो उठे, तो जानना चाहिये, कि यह व्रण अच्छी तरह पक गया है। व्रणके अच्छी तरह पक जाने पर उसे चीर फाड़ करना होता है। पकानेके लिये उपनाहस्वेद ही विशेष उपकारी है। यदि उपरोक्त आदमी चीरफाड़से डर जाता हो, तो दन्ती, गुग्गुल, कबूतरका बीट, कबूतरकी विष्ठा, पलाशका क्षार, कपोतादिमें या इन्हीं इन्हें पकाकर व्रणके ऊपर देना होगा। ये सब द्रव्य पक व्रणके भेदक हैं अर्थात् इससे व्रण फट जाता है।

व्रणके शस्त्रकर्म ६ प्रकारके बताये गये हैं, यथा— पाटन, छेदन, भेदन, लेखन, प्रच्छन और सीवन।

भगंदर, व्रणगुल्म और विस्फोटकादि व्रणमें छेदन रोग उपयोगी हैं अर्थात् इन्हें छिन्न करना होता है। जहां अंगुलि आदिका प्रवेश हो सके अर्थात् काट कर छोड़ देने योग्य है।

जिस व्रणमें अधिक मांस इकट्ठा हो जाता है तथा पानीके तरह उजला और कठिन होता है वे सब व्रण लेखन हैं अर्थात् तेज औजारसे उसे खोद देना होता है। वातरक्त आदि प्रच्छान हैं अर्थात् वहां आलिपिन द्वारा चीर निकाल देना होता है।

जिस व्रणका मुख सूक्ष्म, पर अन्तःस्थल चौड़ा है, उन्हें एषणीय करना होता है। शिलाकोंद्वारा व्रणको एषणीय करनेकी विधि है। समुद्र, उदर और बिद्रु, ये सब एषणीय द्रव्य हैं। इन सब वस्तुओंमेंसे कोई एक वस्तु ले कर अच्छी तरह पीसें। बादमें किसी कपड़ेका अंगुलके बराबर टुकड़ा ले कर उसके ऊपर लपेट दे, तो व्रणको चीर कर बाहर निकल जायेगा।

शोथकी दाह, विस्फोटकका मुंह और व्रणमुख इन सब इलाजोंसे परिषेक और प्रलेप देनेसे भी उपकार होता है। आर्यावर्त, दूध या पदिमपुष्प का आदि परिषेक तथा शीतक्रिया करनेसे रक्तपित्तोत्थ व्रण प्रशमित होता है। वातव्याधिको प्रशमित दूर करनेके लिये शेषकको गायका प्रलेप या परिषेक देना होता है। इससे वातजन्य शोथ नष्ट होती है।

व्रणको काटने पर यदि व्रणस्थानमें मांस लटक जाय, तो उस मांसको पहले जिस जगह था उसी जगह रख कर अच्छी तरह बांध दे। जब मालूम हो गया कि मांस जुड़ गया तब हलका तथा अच्छे लिये शिरस्त्र, लोध, कायफल, मजीठ और धवका फूल, इनका चूर्ण अथवा दग्धकपाल चूर्ण या शुक्तिचूर्ण इन्हें लगाते रहते हैं। इससे व्रण भर जायेगा। वातोल्बणव्रणमें यदि दाह और वेदना रहे, तो उस व्रणमें उत्पलादि और गोरोचनका चूर्ण कर दूधमें पीस लगावे। इससे दाह और वेदना शीघ्र दूर होती है।

व्रणके मुखस्थानमें यदि भरपूर मुख हो, तो वहां भी चिकित्साके विधानानुसार उसे प्रस्तुत कर सकते हैं। इससे वह मुख बढ़ जाता है। बरगद आदिका काढ़ा या इन्हीं पानीमें अथवा कुछ गरम तैलमिश्रित दूध, तथा जलमें परिषेक करनेसे वातोल्बण व्रणका दाह और वेदना प्रशमित होती है।

साधारणतः व्रणका दाह और वेदना दूर करनेके लिये जौका चूर, मुलेठी और तिलका चूर, बराबर भाग ले कर उनमें घी मिला कर कुछ गरम करके व्रणके ऊपर प्रलेप देनेसे व्रणका दाह और वेदना नष्ट होती है। समान परिमाणमें उत्पलादि और मुंग दूधमें पका कर उसका प्रलेप देनेसे भी व्रणका दाह और वेदना नष्ट होगी।

जिस व्रणका मुख अति सूक्ष्म है तथा जिसमें पीब अधिक निकलती है, उस व्रणमें भरी जाती है या नहीं इसके जानना बड़ा आवश्यक है। इस प्रकार बड़ा व्रणादिका शत्रु बनता है। किन्तु यदि सर्वोपचार करना हो तो रखना उचित नहीं। इस व्रणको जल्दी बन्द कर दे, इत्यादि द्वारा यह निर्णय करना

होता है। यह एषणा दो प्रकारकी है—मृदु और कठिन। जहां उद्भिद्‌की मृदुनाल द्वारा एषणा होती है, उसे मृदु एषणा और जहां लौहशलाका द्वारा एषणा होती है, वहां उसे कठिन एषणा कहते हैं। मांसल प्रदेशमें व्रण गम्भीर होनेसे लौहशलाका द्वारा नलीका अनुसन्धान कर पाटन करना होता है। इसके विपरीत स्थलमें मृदु एषणा कर पाटन करे।

जिन सब व्रणसे अत्यन्त दुर्गन्ध निकलती है तथा जो विवर्ण, बहुस्रावयुक्त और वेदनान्वित है, ऐसे व्रणको अशुद्ध जानना चाहिये। यह अशुद्ध व्रण शोधन-प्रणालीके अनुसार शुद्ध कर चिकित्सा करनी होगी।

निम्न व्रणका उत्सादन—स्तन्यजनक द्रव्य, मूंग-जीर्ण द्रव्य इन सब द्रव्योंका प्रलेपादि देनेसे निम्नव्रण ऊपरको उठता है। मेढ़ासिंगकी गांठ, पत्थरकुचा, हीराकसीस और गुग्गुल समान भाग ले कर लेप देनेसे व्रणका अवसादन अर्थात् उन्नत व्रण निम्न होता है। कबूतरकी विष्ठा लगानेसे भी व्रणका अवसादन होता है।

व्रणमें अग्निकर्म—रक्तके अतिस्रावमें, विद्धस्थानमें, छेदनादि स्थानमें, अधिक मांस-स्थलमें, गण्डमालामें, गंभीर-व्रणमें, स्थिरव्रणमें तथा स्पर्शरहित स्थानमें अग्निकर्म प्रशस्त है। मोम, तेल, मज्जा, मधु, चरबी, घी और शलाकादि विविध प्रकारके लौह-द्रव्यको अग्निमें उत्तप्त कर दाह करे। बालक, वृद्ध, दुर्बल व्यक्ति, गर्भिणी स्त्री, रक्तपित्त, तृष्णा और ज्वरपीड़ित रोगी, भीरु और विषण्ण व्यक्ति इनके लिये अग्निकर्म निषिद्ध है। स्नायुव्रणमें, मर्मव्रणमें, सविष वा सशल्य व्रणमें तथा नेत्र और कोष्ठ व्रणमें भी अग्निकर्म निषिद्ध बताया गया है।

व्रणके दोष और कालकी विवेचना कर सुनिपुण चिकित्सक शस्त्र और अग्निकर्मसाध्य व्रणमें क्षारका प्रयोग कर सकते हैं। श्वेतचन्दन वा गन्धकके धूमका प्रयोग करनेसे शिथिल व्रण कठिन हो जाता है। घृत, मज्जा, चरबी और तेलका धूप देनेसे कठिन व्रण शिथिल होता है। व्रणमें इस प्रकार धूप देनेसे व्रणकी वेदना, स्राव, गंध, कृमि, कठिनता और मृदुता प्रशमित होती है। लोध, वटशुङ्ग, खदिर, त्रिफला, इन सब द्रव्योंके कल्कको घृताक्त कर व्रणमें प्रलेप देनेसे व्रण शिथिल और मुलायम होता है।

अर्जुन, यज्ञडुमर, पीपल, लोध, जामुन और कायफल इन सब द्रव्योंको एकत्र पीस कर घृत और मधुके साथ मिलावें और व्रणके ऊपर प्रलेप दे। इससे त्वग्विशुद्धि होती है। तगरपादुका, आमकी गुठली, गूदा, नागेश्वर और लौहचूर्ण इन्हें गोबरके रसमें मर्दन कर व्रणस्थानमें प्रलेप देनेसे उस स्थानका रंग पहले जैसा हो जाता है। गन्ध, तुत, पीपल और हिमलमूल, लाक्षा, गेरूमिट्टी, नागेश्वर, गुलञ्च और हीराकसीस इन सब द्रव्योंका प्रलेप देनेसे भी व्रणस्थानका वर्ण मांसके समान होता है। चौपाये जन्तुके चमड़े, रोएं, खुर, सींग और हड्डीको भस्म कर वह भस्म तेलके साथ व्रणस्थानमें लगानेसे वहां रोएं निकलते हैं।

व्रणरोगी लवण, अम्ल, कटु, उष्ण, विदाहि और गुरुपाक अन्नपान तथा मैथुन परित्याग करें। अति शीतल, स्निग्ध और अविदाही लघु अन्न और पान तथा दिनको नहीं सोना व्रणरोगीके लिये हितकर है।

(चरक चिकित्सितस्था० २५ अ०)

सुश्रुत, वाभट और भावप्रकाश आदि वैद्यक ग्रन्थोंमें व्रणका विशेष विवरण दिया गया है।

व्रणकृत् (सं० पु०) व्रणं करोतीति कृ-क्विप् तुगागमश्च। १ भल्लातक, भिलावां। (त्रि०) २ व्रणकारक।

व्रणकेतुघ्नी (सं० स्त्री०) व्रणकेतु हन्तीति हन-टक् ङीप्। दुग्धफेणोक्षुप, दुग्धफेनीका पौधा।

व्रणग्रन्थि (सं० पु०) व्रणरोगभेद, यह गांठ जो फोड़ेके ऊपर हो जाती है। वैद्यकमें इसकी गणना रोगोंमें होती है।

व्रणजिता (सं० स्त्री०) गोरक्षमुण्डी। (वैद्यनि०)

व्रणद्विष् (सं० पु०) व्रणस्य द्विट् शत्रुः। १ माननपत्रिका। (त्रि०) २ व्रणद्वेषक।

व्रणधूपन (सं० पु०) व्रणस्य धूपनं। व्रणकी धूपदान-विधि। व्रण शब्द देखो।

व्रणरोपण (सं० क्ली०) व्रणस्य रोपणं। व्रणका रोपण,

इन्हें मट्ठे या दहीमें घोल कर पुलटिस दें। इससे फोड़ा बहुत जल्द पक जाता है।

पुलटिस देनेसे जब व्रणशोथमें दाह, रक्तवर्णता, सूचीविद्धवत्, सब लक्षण उपस्थित हों, तो जानना चाहिये, कि वह शोथ पक गया है। शोथस्थल स्पर्श करनेसे यदि जलपूर्ण वस्तिकी तरह उसका स्पर्श हो, और उंगलीसे दाबने पर यदि वह पहलेकी तरह उन्नत हो उठे, तो जानना चाहिये, कि वह व्रण अच्छी तरह पक गया है। व्रणके अच्छी तरह पक जाने पर उसे चीर फाड़ करना होता है। पक्वव्रणके लिये शस्त्रप्रयोग ही विशेष उपकारी है। यदि डरपोक आदमी चीरफाड़से भय खाता हो, तो तीसी, गुग्गुल, थूहरका दूध, कबूतरकी विष्ठा, पलाशका क्षार, स्वर्णक्षीरी या दन्ती इन्हें पथ्य व्रणके ऊपर देना होगा। ये सब द्रव्य पक्व व्रणके भेदक हैं अर्थात् इनसे पक्वव्रण फट जाता है।

व्रणमें शस्त्रकर्म ६ प्रकारके बताये गये हैं, यथा—पाटन, व्यधन, छेदन, लेखन, प्रच्छन और सीवन।

जलोदर पक्वगुल्म और विसर्पपिडकादि सभी रक्तज रोग व्यधनयोग्य हैं अर्थात् इन्हें बिद्ध करना होता है। अर्श प्रभृति अधिमांसरोग छेदन अर्थात् काट कर फेंक देने योग्य हैं।

जिन सब व्रणमें अधिक मांस इकट्ठा हो जाता है तथा प्रान्तदेश स्थूल उन्नत और कठिन होता है वे सब व्रण लेख्य हैं अर्थात् तेज औजारसे उसे छील देना होता है। वातरक्त आदि प्रच्छन्न हैं अर्थात् कांटे आदिसे उसकी पीव निकाल देनी होती है।

जिन सब व्रणका मुख सूक्ष्म, पर मध्यस्थल कोषयुक्त है, उन्हें प्रपीड़न करना होता है। निम्नोक्तरूपसे व्रणको प्रपीड़न करनेकी विधि है। मसूर, मटर और गेहूं, ये सब प्रपीड़न द्रव्य हैं। इन सब वस्तुओंमेंसे कोई एक वस्तु ले कर अच्छी तरह पीसे। बादमें किसी तरहका स्नेहपदार्थ उसमें न मिला कर व्रणके ऊपर प्रलेप दे, तो व्रणकी पीव आपसे आप बाहर निकल आयेगी।

सेमरकी छाल, बिजबंदका मूल और वटपत्र इन सब द्रव्योंका परिषेक और प्रलेप देनेसे भी उपकार होता है। शतधौतघृत, दुग्ध या यष्टिमधुके क्वाथका परिषेक तथा शैत्यक्रिया करनेसे रक्तविस्रावण व्रण प्रशमित होता है। व्रणस्थानकी जलनको दूर करनेके लिये सेमरकी छालका प्रलेप या परिषेक देना होता है। इससे यन्त्रणा शीघ्र नष्ट होती है।

व्रणको काटने पर यदि क्षतस्थलमें मांस लटक जाय, तो उस मांसको पहले ठीक जगहमें ला कर वहां घी और मधुका प्रलेप दे वस्त्रखण्ड द्वारा अच्छी तरह बांध दे। जब मालूम हो गया कि मांस जुड़ गया तब क्षतस्थलको भरनेके लिये प्रियङ्गु, लोध, कायफल, बराक्रान्ता और धवका फूल, इनका चूर्ण अथवा पञ्चवल्कलचूर्ण या शुक्तिचूर्ण इन्हें व्रणमें ठूस दे। इससे व्रणक्षत भर आयेगा। वातोल्वणव्रणमें यदि दाह और वेदना रहे, तो उस व्रणमें कृष्णतिल और तीसीको भुन कर दूधमें पीस प्रलेप दे। इससे दाह और वेदना विनष्ट होती है।

व्रणके क्षतस्थलमें यदि अत्यन्त शूल हो, तो सर्कराके विधानानुसार उसे प्रस्तुत कर व्रणमें प्रलेप दे। इससे वह शूल रह जाता है। दशमूलका क्वाथ या दहीका पानी अथवा कुछ गरम तैलमिश्रित घृत, व्रणस्थलमें परिषेक करनेसे वातोल्वण व्रणका दाह और वेदना प्रशमित होती है।

साधारणतः व्रणका दाह और वेदना दूर करनेके लिये जौका चूर, मुलेठी और तिलका चूर, समान भाग ले कर जलमें पीसे। पीछे घी मिला कर कुछ गरम करके व्रणके ऊपर प्रलेप देनेसे व्रणका दाह और वेदना नष्ट होती है। समान परिमाणमें कृष्णतिल और मूंग दूधमें पका कर उसका उपनाह देनेसे भी व्रणका दाह और वेदना नष्ट होती।

जिन सब व्रणका मुख अति सूक्ष्म है तथा जिनसे पीव अधिक निकलती है, उन सब व्रणमें नाली है या नहीं पहले उसका पता लगाना आवश्यक है। इस प्रकार पता लगानेका नाम एषणा है। किन्तु व्रण यदि मर्मस्थान जात हो तो एषणा उचित नहीं। उक्त व्रणकी नली कहां तक गई है, शलाका द्वारा यह स्थिर करना

होता है। यह एषणा दो प्रकारकी है—मृदु और कठिन। जहां उद्भिद्की मृदुनाल द्वारा एषणा होती है, उसे मृदु एषणा और जहां लौहशलाका द्वारा एषणा होती है, वहां उसे कठिन एषणा कहते हैं। मांसल प्रदेशमें व्रण गम्भीर होनेसे लौहशलाका द्वारा नलीका अनुसन्धान कर पाटन करना होता है। इसके विपरीत स्थलमें मृदु एषणा कर पाटन करे।

जिन सब व्रणसे अत्यन्त दुर्गन्ध निकलती है तथा जो विवर्ण, बहुस्रावयुक्त और वेदनान्वित हैं, ऐसे व्रणको अशुद्ध जानना चाहिये। यह अशुद्ध व्रण शोधन-प्रणालीके अनुसार शुद्ध कर चिकित्सा करनी होगी।

निम्न व्रणका उत्सादन—स्तन्यजनक द्रव्य, बृंहणीय द्रव्य इन सब द्रव्योंका प्रलेपादि देनेसे निम्नव्रण ऊपरको उठता है। पोजगनकी जड़, पथरचुआ, हीराकसीस और गुग्गुल समान भाग ले कर लेप देनेसे व्रणका अवसादन अर्थात् उन्नत व्रण निम्न होता है। कबूतरकी विष्ठा लगानेसे भी व्रणका अवसादन होता है।

व्रणमें अग्निकर्म—दग्धके अभिप्रायमें, विद्धस्थानमें, उत्सन्न स्थानमें, कठिन मांस-स्थलमें, गण्डमालामें, गम्भीर-व्रणमें, शिराव्रणमें तथा स्पर्शरहित स्थानमें अग्निकर्म प्रशस्त है। मोम, तैल, मज्जा, मधु, चरबी, घी और शलाकादि विविध प्रकारके लौह-द्रव्यको अग्निमें उत्तप्त कर दाह करे। बालक, वृद्ध, दुर्बल व्यक्ति, गर्भिणी स्त्री, रक्तपित्त, तृष्णा और ज्वरपीड़ित रोगी, शोक और विषण्ण व्यक्ति इनके लिये अग्निकर्म निषिद्ध है। स्नायुव्रणमें, मर्मव्रणमें, नेत्र वा अन्तर व्रणमें तथा नेत्र और कोष्ठ व्रणमें भी अग्निकर्म निषिद्ध बताया गया है।

व्रणके दोष और कालकी विवेचना कर सुनिपुण चिकित्सक शस्त्र और अग्निकर्मसाध्य व्रणमें क्षारका प्रयोग कर सकते हैं। श्वेतचन्दन या गन्धकके धूपका प्रयोग करनेसे शिथिल व्रण कठिन हो जाता है। घृत, मज्जा, चरबी और तैलका धूप देनेसे कठिन व्रण शिथिल होता है। व्रणमें इस प्रकार धूप देनेसे व्रणकी वेदना, स्राव, गंध, कृमि, कठिनता और मृदुता प्रशमित होती है। लोध, वटशुङ्ग, खदिर, त्रिफला, इन सब द्रव्योंके कल्कको घृताक्त कर व्रणमें प्रलेप देनेसे व्रण शिथिल और मुलायम होता है।

अर्जुन, यज्ञडुमर, पीपल, लोध, जामुन और कायफल इन सब द्रव्योंको एकत्र पीस कर घृत और मधुके साथ मिलावे और व्रणके ऊपर प्रलेप दे। इससे त्वक् विशुद्धि होती है। तगरपादुका, आमकी गुठली, गूला, नागेश्वर और लौहचूर्ण इन्हें पीसके इससे मर्दन कर व्रणस्थानमें प्रलेप देनेसे उस स्थानका रंग पहले जैसा हो जाता है। गन्ध, तृण, पीपल और हिमलमूल, लाक्षा, गेरूमिट्टी, नागेश्वर, गुलञ्च और हीराकसीस इन सब द्रव्योंका प्रलेप देनेसे भी व्रणस्थानका वर्ण गात्रके समान होता है। चौपाये जन्तुके चमड़े, रोएं, खुर, सींग और हड्डीको भस्म कर यह भस्म तेलके साथ व्रणस्थानमें लगानेसे वहां रोएं निकलते हैं।

व्रणरोगी लवण, अम्ल, कटु, उष्ण, विदाहि और गुरुपाक अन्नपान तथा मैथुन परित्याग करे। अति शीतल, स्निग्ध और अविदाही लघु अन्न और पान तथा दिनको नहीं सोना व्रणरोगीके लिये हितकर है।

(चरक चिकित्सितस्था० २५ अ०)

सुश्रुत, वाग्भट और भावप्रकाश आदि वैद्यक ग्रन्थोंमें व्रणका विशेष विवरण दिया गया है।

व्रणकृत् (सं० पु०) व्रणं करोतीति कृ-क्विप् तुगागमश्च। १ भल्लातक, भिलावां। (त्रि०) २ व्रणकारक।

व्रणकेतुघ्नी (सं० स्त्री०) व्रणकेतु हन्तीति हन-टक् ङीप्। कृष्णफेणीक्षुप, कृष्णफेनीका पौधा।

व्रणग्रन्थि (सं० पु०) व्रणरोगभेद, यह गांठ जो फोड़ेके ऊपर हो जाती है। वैद्यकमें इसकी गणना रोगोंमें होती है।

व्रणजिता (सं० स्त्री०) गोरक्षदुग्धी। (वैद्यकनि०)

व्रणद्विष् (सं० पु०) व्रणस्य द्विट् शत्रुः। १ मायनपत्रिका। (त्रि०) २ व्रणद्वेषक।

व्रणधूपन (सं० पु०) व्रणस्य धूपनं। व्रणको धूपदान-विधि। व्रण शब्द देखो।

व्रणरोपण (सं० क्ली०) व्रणस्य रोपणं। व्रणका रोपण,

फोड़ेका घाव भरनेकी क्रिया। फोड़ेमेंसे दूषित मांस निकल जाने पर जो औषधादि द्वारा फोड़े या घाव भरा जाता है, उसे व्रणरोपण कहते हैं। भावप्रकाशमें लिखा है, कि दूषित मांस निकलने पर उस जगह मांस भरनेके लिये तिलका कल्क, घृत और मधु संयोगसे प्रयोग करना चाहिए। असगंध, कटकी, लोध, कायफल, इन सबोंको पीस मधके साथ प्रयोग करनेसे व्रणरोपण अर्थात् व्रणकी गभीरता पूरी होती है। व्रण शब्द देखो।

व्रणरोपणरस (सं० पु०) क्षुद्ररोगाधिकारकी एक औषध। बनानेकी तरकीब—रस, गंधक, अफीम, सोवर्चल और सेंधा नमक समान भाग ले कर अम्बोर, घृतकुमारी, नरमूत्र और चिताके रसमें तीन तीन दिन अलग रख भावना दे तैयार करे। मात्रा ६ रत्ती, अनुपान मधु है। (रसेन्द्रचिन्ता० क्षुद्ररोगाधि०)

व्रणवत् (सं० त्रि०) व्रण अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। व्रणविशिष्ट, व्रणरोगी।

व्रणशोथ (सं० पु०) व्रणस्य शोथः। व्रणका स्फीतताकारक रोगभेद। पृथक् या समस्त दोष दूषित हो कर छः प्रकार व्रणशोथ उत्पन्न करता है। जैसे—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, रक्तज और आगन्तुज। इसमें शोथके लक्षण दिखाई पड़ते हैं।

व्रणशोधन (सं० पु०) काम्पिल्लक, कमीला। (वैद्यकनि०)

व्रणशोफ (सं० पु०) व्रणस्य शोफः। क्षतजन्य शोफरोग, फोड़े या घाव आदिमें होनेवाला वह सूजन जिसके साथमें पीड़ा भी हो।

व्रणस्थान (सं० क्ली०) व्रणस्य स्थानं। व्रणका स्थान। चरक और सुश्रुतसंहितामें लिखा है, कि व्रणके आठ स्थान हैं,—त्वक्, मांस, शिरा, स्नायु, अस्थि, सन्धि, कोष्ठ और मर्म। इन आठ स्थानोंमें दोषदुष्ट व्रण होता है। (सुश्रुत सू २२ अ०)

व्रणस्राव (सं० पु०) व्रणस्य स्रावः। सुश्रुतोक्त व्रणरोगका पूयादि क्षरण।

व्रणहृ (सं० पु०) व्रणं हन्तीति हन-ड। १ एरण्डवृक्ष, रेंड़का पेड़। (त्रि०) २ व्रणघातक।

व्रणहरी (सं० स्त्री०) लाङ्गलिकौषध, विषलांगुलिया। (वैद्यकनि०)

व्रणहा (सं० स्त्री०) व्रणं हन्तीति हन ड, स्त्रियां टाप्। गुड़ूची, गुड़ुच।

व्रणहृत् (सं० पु०) व्रणं हरतीति हृ-क्विप् तुक् च। कलिकारी या कलिहारी नामक पेड़। (राजनि०)

व्रणायाम (सं० पु०) वैद्यकके अनुसार एक प्रकारका वातरोग। इसमें मर्मस्थानके फोड़ेमें सारे शरीरकी वायु एकत्र हो कर व्याप्त हो जाती है। यह रोग असाध्य माना जाता है।

व्रणारि (सं० पु०) व्रणस्य अरिः। १ बोल नामक गन्धद्रव्य। २ अगस्त नामक वृक्ष।

व्रणिन् (सं० त्रि०) व्रण अस्त्यर्थे इनि। व्रणरोगी, जिसे व्रण हुआ हो।

व्रणिल (सं० त्रि०) व्रणयुक्त, क्षतविशिष्ट।

व्रणीय (सं० त्रि०) व्रण-सम्बन्धी, व्रण या फोड़ेका।

व्रणोपक्रम (सं० पु०) व्रणस्य उपक्रमः। व्रणरोगकी चिकित्सा। सुश्रुत चिकित्सित स्थानमें १ अध्यायमें ६० प्रकार व्रणोपक्रम अर्थात् व्रणकी चिकित्सा वर्णित हुई है। "व्रणोपक्रमाः षष्टिविधोऽपतर्पणादि भेदेन, यथा इत्यादि" (सुश्रुत चि० १ अ०)

ये ६० प्रकार जैसे—अपतर्पण, आलेप, परिषेक, अभ्यङ्ग, स्वेद, विम्लापन, उपनाह, पाचन, विस्रावण, स्नेह, वमन, विरेचन, छेदन, भेदन, दारण, लेखन, एषण, आहरण, व्यधन, सीवन, सन्धान, पीड़न, शोणितस्थापन, निर्वापण, उत्कारिका, कषाय, वर्ति, कल्क, सर्पि, तैल, रसक्रिया, अवचूर्णन, व्रणधूपन, अवसादन, मृदुकर्म, दारणकर्म, क्षारकर्म, अग्निकर्म, पाण्डुकर्म, प्रतिसारण, रोमसंजनन, लोमापहरण, वस्तिकर्म, उत्तर वस्तिकर्म, बन्ध, पत्रदान, कृमिघ्न, बृंहण, विषघ्न, शिरोविरेचन, नस्य, कवलधारण, धूम, मधुसर्पिः, यन्त्र, आहार तथा रक्षाविधान ये साठ प्रकार व्रणरोगके उपक्रम हैं।

व्रण्य (सं० त्रि०) व्रणोत्पादनयोग्य।

व्रत (सं० पु० क्ली०) व्रियते इति व्रञ् वरणे बाहुलकात् तच् स च कित्। १ भक्षण, भोजन करना। २ पुण्यजनक उपवासादि। किसी पुण्य तिथिमें पुण्य प्राप्तिके लिये उपवास आदि करनेका नाम व्रत है। जिन सब

उपवासादि कर्मानुष्ठान द्वारा पुण्य सञ्चय होता है, उसको व्रत कहते हैं। सम्यक् सङ्कल्पजनित अनुष्ठेय क्रियाविशेष रूपका नाम व्रत है। यह पहले दो प्रकारका प्रवृत्तिरूप और निवृत्तिरूप है। द्रव्य विशेष भोजन और पूजादि साध्य व्रतको प्रवृत्तिरूप और केवल उपवासादि साध्य व्रतको निवृत्तिरूप कहते हैं। इसके फिर तीन भेद हैं, नित्य, नैमित्तिक और काम्य। अकरणसे प्रत्यवाय होता है उसे नित्य कहते हैं। एकादशी आदि व्रत नित्य हैं। किसी निमित्त वशतः जो व्रत किया जाता है, उसका नाम नैमित्तिक है। पापक्षयके लिये चान्द्रायणादि व्रत नैमित्तिक है। तिथिविशेषमें कामना करके जो सब व्रत किये जाते हैं, उन्हें काम्य कहते हैं। जैसे, सावित्री आदि व्रत। ज्येष्ठमासकी कृष्णा चतुर्दशी तिथिमें अवैधव्य-कामनासे सावित्री व्रत करना होता है, अतएव यह काम्य है। इस प्रकार कामना करके जो व्रत किया जाता है, वही काम्य है।

व्रतारम्भविधि—हेमाद्रिके व्रतखण्डमें लिखा है, कि अखण्डा तिथिमें व्रतारम्भ करना होता है। खण्डा तिथि व्रतारम्भमें निषिद्ध है अर्थात् इस तिथिमें व्रत नहीं करना चाहिये। गुरु शुक्रके बाल्य वृद्धात्वजनित अकाल और मलमासमें भी व्रतारम्भ निषिद्ध है।

जिस तिथि तक सूर्यदेव अवस्थान करते हैं, वही अखण्डा-तिथि है। यह अखण्डा तिथि ही व्रतारम्भमें प्रशस्त है। अस्तगामिनी तिथिकी अपेक्षा उदयगामिनी तिथि ही श्रेष्ठ है। अतएव उदयगामिनी तिथिमें ही व्रतादि कार्य करने चाहिये।

व्रतके कायिक और मानसिक दो प्रकारके भेद कहे गये हैं। यथा—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अकल्मष, ये सब मानस व्रत हैं। इन सबका अनुष्ठान करनेसे मानस व्रतका फल होता है। कायिक व्रत—उपवास और अयाचित भावमें अवस्थान आदि अर्थात् दिनरात उपवास या अशक्त व्यक्तिके लिये रातको भोजन तथा किसीसे कुछ न माँगना, यही कायिक व्रत है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णोंके स्त्री, पुरुष सभीको व्रतमें अधिकार है। वे सभी व्रतानुष्ठान द्वारा पापमुक्त हो श्रेष्ठगतिको पा सकते हैं। जो व्रतानुष्ठान करेंगे उनका कर्ममें अधिकार रहना आवश्यक है। इस अधिकारका विषय इस प्रकार लिखा है, कि जो वर्णानुसार अपने अपने आश्रममर्यादाका प्रतिपालन करते हैं तथा विशुद्ध चित्त, अलुब्ध, सत्यवादी, सब भूतोंके हितकारी, श्रद्धायुक्त, मद और दम्भरहित तथा पहले शास्त्रार्थ निर्णय करके तदनुसार कार्यकारी, ये सब सद्गुणविशिष्ट व्यक्ति ही व्रतके अधिकारी हैं। अर्थात् जो धार्मिक हैं, वे ही व्रतानुष्ठान करेंगे और उन्हींको व्रत करनेका फल मिलेगा, दूसरेको नहीं। धार्मिक शब्दका अर्थ ऐसा लिखा है, कि जितोंके उद्देशसे श्रद्धा, तपस्या, सत्य, अक्रोध, स्वदारमें सन्तोष, शौच, अनसूया, आत्मज्ञान, तितिक्षा, ये सब साधारण धर्म कहलाते हैं। इन सब साधारण धर्मके अनुसार जो विचरण करते हैं, वे धार्मिक व्यक्ति ही व्रतके अधिकारी हैं।

चारों वर्णोंकी स्त्रीको व्रत करनेका अधिकार है। किन्तु इसके सम्बन्धमें कुछ विशेष विधि है, वह यह कि सधवा स्त्री स्वामीकी अनुमति ले कर व्रत करें। बिना अनुमति लिये वह व्रत नहीं कर सकती हैं। क्योंकि, शास्त्रमें लिखा है, कि स्त्रियोंके लिये पृथक् यज्ञ, व्रत, उपवास आदि कुछ भी नहीं है। एकमात्र पतिशुश्रूषा ही उनका धर्म है। इसीसे वह उत्कृष्ट लोक पाती है।

अविवाहिता कन्या पिताकी, सधवा पतिकी और विधवा पुत्रकी अनुमति ले कर व्रताचरण करे।

कुमारी, सधवा और विधवा स्त्री मात्रको ही पिता, पति और पुत्रका आदेश ले कर व्रत करना चाहिये। अन्यथा वे व्रतकी फलभागिनी नहीं होंगी।

व्रताचरण करनेमें उसके पूर्व दिन संयत हो कर रहना पड़ता है। पीछे व्रतारम्भके दिन सङ्कल्प करके व्रत करना होता है। व्रतके पूर्व दिन धान, साठी, मूंग, उड़द, जल, दूध, साँवा, नीवार और गेहूं ये सब अन्न खा सकते हैं, किन्तु कुम्हड़ा, कद्दू, बैंगन, पालंकी साग, ज्योत्स्निका (सफेद फूलकी तरोई) ये सब वस्तु खाना निषिद्ध है।

फोड़े का घाव भरनेकी क्रिया। फोड़े मेंसे दूषित मांस निकल जाने पर जो औषधादि द्वारा फोड़े या घाव भरा जाता है, उसे व्रणरोपण कहते हैं। भावप्रकाशमें लिखा है, कि दूषित मांस निकलने पर उस जगह मांस भरनेके लिये तिलका कल्क, घृत और मधु संयोगसे प्रयोग करना चाहिए। असगंध, कटकी, लोध, कायफल, इन सबोंको पीस मधुके साथ प्रयोग करनेसे व्रणरोपण अर्थात् व्रणकी गंभीरता पूरी होती है। व्रण शब्द देखो।

व्रणरोपणरस (सं० पु०) क्षुद्ररोगाधिकारकी एक औषध। बनानेकी तरकीब—रस, गंधक, अफीम, सौवर्चल और सेंधा नमक समान भाग ले कर जम्बीर, घृतकुमारी, नरमूल और चिताके रसमें तीन तीन दिन अलग रस भावना दे तैयार करे। मात्रा ६ रत्ती, अनुपान मधु है। (रसेन्द्रचिन्ता० क्षुद्ररोगाधि०)

व्रणवत् (सं० त्रि०) व्रण अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। व्रणविशिष्ट, व्रणरोगी।

व्रणशोथ (सं० पु०) व्रणस्य शोथः। व्रणका स्फीतता-कारक रोगभेद। पृथक् या समस्त दोष दूषित हो कर छः प्रकार व्रणशोथ उत्पन्न करता है। जैसे—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, रक्तज और आगन्तुज। इसमें शोथके लक्षण दिखाई पड़ते हैं।

व्रणशोधन (सं० पु०) कम्पिल्लक, कमीला। (वैद्यकनि०)

व्रणशोष (सं० पु०) व्रणस्य शोषः। क्षतजन्य शोथरोग, फोड़े या घाव आदिमें होनेवाला वह सूजन जिसके साथमें पीड़ा भी हो।

व्रणस्थान (सं० क्ली०) व्रणस्य स्थानं। व्रणका स्थान। चरक और सुश्रुतसंहितामें लिखा है, कि व्रणके आठ स्थान हैं,—त्वक्, मांस, शिरा, स्नायु, अस्थि, सन्धि, कोष्ठ और मर्म। इन आठ स्थानोंमें दोषदुष्ट व्रण होता है। (सुश्रुत सू० २२ अ०)

व्रणस्राव (सं० पु०) व्रणस्य स्रावः। सुश्रुतोक्त व्रणरोगका पूयादि क्षरण।

व्रणहृद् (सं० पु०) व्रणं हरतीति हृ-ट। १ एरण्डवृक्ष, रेंडका पेड़। (त्रि०) २ व्रणघातक।

व्रणहरी (सं० स्त्री०) लाङ्गलिकौषध, विषलांगुलिया। (वैद्यकनि०)

व्रणहा (सं० स्त्री०) व्रणं हन्तीति हन-ड, स्त्रियां टाप्। गुडूची, गुड़ुच।

व्रणहृत् (सं० पु०) व्रणं हरतीति हृ-क्विप् तुक् च। कलिकारी या कलिहारी नामक पेड़। (राजनि०)

व्रणायाम (सं० पु०) वैद्यकके अनुसार एक प्रकारका वातरोग। इसमें मर्मस्थानके फोड़ेमें सारे शरीरकी वायु एकत्र हो कर व्याप्त हो जाती है। यह रोग असाध्य माना जाता है।

व्रणारि (सं० पु०) व्रणस्य अरिः। १ बोल नामक गन्धद्रव्य। २ अगस्त नामक वृक्ष।

व्रणिन् (सं० त्रि०) व्रण अस्त्यर्थे इनि। व्रणरोगी, जिसे व्रण हुआ हो।

व्रणित (सं० त्रि०) व्रणयुक्त, क्षतविशिष्ट।

व्रणीय (सं० त्रि०) व्रण-सम्बन्धी, व्रण या फोड़ेका।

व्रणोपक्रम (सं० पु०) व्रणस्य उपक्रमः। व्रणरोगकी चिकित्सा। सुश्रुत चिकित्सित स्थानमें १ अध्यायमें ६० प्रकार व्रणोपक्रम अर्थात् व्रणकी चिकित्सा वर्णित हुई है। "व्रणोपक्रमः षष्टिविधोऽपतर्पणादि भेदेन, यथा इत्यादि" (सुश्रुत चि० १ अ०)

ये ६० प्रकार जैसे—अपतर्पण, आलेप, परिषेक, अभ्यङ्ग, स्वेद, विम्लापन, उपनाह, पाचन, विस्रावण, स्नेह, वमन, विरेचन, छेदन, भेदन, दारण, लेखन, एषण, आहरण, व्यधन, सीवन, सन्धान, पीड़न, शोणितस्थापन, निर्वापन, उत्कारिका, कषाय, वर्त्ति, कल्क, सर्पि, तैल, रसक्रिया, अवचूर्णन, व्रणधूपन, अवसादन, मृदुकर्म, दारुणकर्म, क्षारकर्म, अग्निकर्म, पाण्डुकर्म, प्रतिसारण, रोमसंजनन, लोमापहरण, वस्तिकर्म, उत्तर वस्तिकर्म, बन्ध, पत्रदान, कृमिघ्न, बृंहण, विषघ्न, शिरोविरेचन, नस्य, कवलधारण, धूम, मधुसर्पि, यन्त्र, आहार तथा रक्षाविधान ये साठ प्रकार व्रणरोगके उपक्रम हैं।

व्रण्य (सं० त्रि०) व्रणोत्पादनयोग्य।

व्रत (सं० पु० क्ली०) व्रियते इति वृञ् वरणे बाहुलकात् तच् स च कित्। १ भक्षण, भोजन करना। २ पुण्यजनक उपवासादि। किसी पुण्य तिथिमें पुण्य प्राप्तिके लिये उपवास आदि करनेका नाम व्रत है। जिन सब

उपवासादि कर्मानुष्ठान द्वारा पुण्य सञ्चय होता है, उसको व्रत कहते हैं। सम्यक् सङ्कल्पजनित अनुष्ठेय क्रियाविशेष रूपका नाम व्रत है। यह पहले दो प्रकारका प्रवृत्तिरूप और निवृत्तिरूप है। द्रव्य विशेष भोजन और पूजादि साध्य व्रतको प्रवृत्तिरूप और केवल उपवासादि साध्य व्रतको निवृत्तिरूप कहते हैं। इसके फिर तीन भेद हैं, नित्य, नैमित्तिक और काम्य। अकरणसे प्रत्यवाय होता है उसे नित्य कहते हैं। एकादशी आदि व्रत नित्य हैं। किसी निमित्त वशतः जो व्रत किया जाता है, उसका नाम नैमित्तिक है। पापक्षयके लिये चान्द्रायणादि व्रत नैमित्तिक है। तिथिविशेषमें कामना करके जो सब व्रत किये जाते हैं, उन्हें काम्य कहते हैं। जैसे, सावित्री आदि व्रत। ज्येष्ठमासकी कृष्णा चतुर्दशी तिथिमें अवैधव्य-कामनासे सावित्री व्रत करना होता है, अतएव यह काम्य है। इस प्रकार कामना करके जो व्रत किया जाता है, वही काम्य है।

व्रतारम्भविधि—हेमाद्रिके व्रतखण्डमें लिखा है, कि अखण्डा तिथिमें व्रतारम्भ करना होता है। खण्डा तिथि व्रतारम्भमें निषिद्ध है अर्थात् इस तिथिमें व्रत नहीं करना चाहिये। गुरु शुक्रके बाल्य वृद्धात्वजनित अकाल और मलमासमें भी व्रतारम्भ निषिद्ध है।

जिस तिथि तक सूर्यदेव अवस्थान करते हैं, वही अखण्डा तिथि है। यह अखण्डा तिथि ही व्रतारम्भमें प्रशस्त है। अस्तगामिनी तिथिकी अपेक्षा उदयगामिनी तिथि ही श्रेष्ठ है। अतएव उदयगामिनी तिथिमें ही व्रतादि कार्य करने चाहिये।

व्रतके कायिक और मानसिक दो प्रकारके भेद कहे गये हैं। यथा—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अकल्मष, ये सब मानस व्रत हैं। इन सबका अनुष्ठान करनेसे मानस व्रतका फल होता है। कायिक व्रत—उपवास और अयाचित भावमें अवस्थान आदि अर्थात् दिनरात अनाहार या असमर्थ व्यक्तिके लिये रातको भोजन तथा किसीसे कुछ न माँगना, यही कायिक व्रत है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णोंमें स्त्री, पुरुष सभीको व्रतमें अधिकार है। वे सभी व्रतानुष्ठान द्वारा पापमुक्त हो श्रेष्ठगतिको पा सकते हैं। जो व्रतानुष्ठान करेंगे उनका कर्ममें अधिकार रहना आवश्यक है। इस अधिकारका विषय इस प्रकार लिखा है, कि जो वर्णानुसार अपने अपने आश्रमधर्मका प्रतिपालन करते हैं तथा विशुद्ध चित्त, अलुब्ध, सत्यवादी, सब भूतोंके हितकारी, श्रद्धायुक्त, मद और दम्भरहित तथा पहले शास्त्रार्थ निर्णय करके तदनुसार कार्यकारी, ये सब सद्गुणविशिष्ट व्यक्ति ही व्रतके अधिकारी हैं। अर्थात् जो धार्मिक हैं, वे ही व्रतोनुष्ठान करेंगे और उन्हींको व्रत करनेका फल मिलेगा, दूसरेको नहीं। धार्मिक शब्दका अर्थ ऐसा लिखा है, कि पितरोंके उद्देशसे श्रद्धा, तपस्या, सत्य, अक्रोध, स्वदारमें सन्तोष, शौच, अनसूया, आत्मज्ञान, तितिक्षा, ये सब साधारण धर्म कहलाते हैं। इन सब साधारण धर्मके अनुसार जो विचरण करते हैं, वे धार्मिक व्यक्ति ही व्रतके अधिकारी हैं।

चारों वर्णकी स्त्रीको व्रत करनेका अधिकार है। किन्तु उसके सम्बन्धमें कुछ विशेष विधि है, वह यह कि सधवा स्त्री स्वामीकी अनुमति ले कर व्रत करे। बिना अनुमति लिये वह व्रत नहीं कर सकती है। क्योंकि, शास्त्रमें लिखा है, कि स्त्रियोंके लिये पृथक् यज्ञ, व्रत, उपवास आदि कुछ भी नहीं है। एकमात्र पतिशुश्रूषा ही उनका धर्म है। इसीसे वह उत्कृष्ट लोक पाती है।

अविवाहिता कन्या पिताकी, सधवा पतिकी और विधवा पुत्रकी अनुमति ले कर व्रताचरण करे।

कुमारी, सधवा और विधवा स्त्री क्रमसे ही पिता, पति और पुत्रका आदेश ले कर व्रत करना चाहिये। अन्यथा वे व्रतकी फलभागिनी नहीं होंगी।

व्रताचरण करनेमें उसके पूर्व दिन संयत हो कर रहना पड़ता है। पीछे व्रतारम्भके दिन सङ्कल्प करके व्रत करना होता है। व्रतके पूर्व दिन धान, साठी, मूंग, उड़द, जल, दूध, साँवा, नीवार और गेहूं ये सब अन्न खा सकते हैं, किन्तु कुम्हड़ा, कद्दू, बैंगन, पालकी साग, ज्योत्स्निका (सफेद फूलकी तरोई) ये सब वस्तु खाना निषिद्ध है।

गव्य, शक्तु, शाक, दधि, घृत, मधु, श्यामाक, शालि, नीवार, मूल और फलादि भी भोजन कर सकते हैं। परन्तु मधु और मांस भोजन निषिद्ध है।

उस दिन ब्रह्मचर्यावलम्बन करके रहना होता है। ब्रह्मचर्य शब्दसे यह अष्ट मैथुननिवृत्ति समझनी होगी। व्रत करनेवाले इस दिन सभी भूतोंके प्रति दया, शान्ति, अनसूया, शौच आदिका पालन करेंगे।

व्रतारंभके समय यदि अशौचादि हो जाये, तो व्रत नहीं करना चाहिये। किन्तु व्रतारंभके बाद होनेसे व्रत किया जा सकता है, इसमें दोष नहीं होता। अर्थात् एक व्रत ७ वर्ष तक करना होता है, उनमेंसे जिस वर्षमें प्रथम व्रतारंभ होगा, उस वर्षमें यदि अशौचादि हो जाये, तो व्रत नहीं कर सकते। किन्तु दूसरे वर्ष यदि व्रतके समयमें अशौच या स्त्री रजस्वला हो, तो व्रतमें बाधा नहीं होगी, वह दूसरे द्वारा कराया जायेगा अर्थात् ब्राह्मण व्रत करेंगे, और उपवासादि स्वयं करना होगा। उपवासमें असमर्थ होने पर पुत्रादि प्रतिनिधि द्वारा उपवास करावे। स्वामीके व्रतमें स्त्री और स्त्रीके व्रतमें स्वामी प्रतिनिधि हो सकता है। यह यदि न हो, तो ब्राह्मणको भी प्रतिनिधि कर सकते हैं।

यथाविधान व्रतग्रहण करनेसे समाप्तिके बाद उस व्रतकी प्रतिष्ठा करनी होती है। व्रतविशेषमें ५, ७, १४ आदि वर्षोंमें उसकी प्रतिष्ठा कही गई है। यदि कोई व्रतका आरंभ कर व्रतके समाप्तिकाल तक न बचे, तो व्रतकी असमाप्तिके लिये दोष नहीं होता। व्रत करनेवालेको उस व्रतका फल मिलेगा। किन्तु यदि कोई व्यक्ति लोभ, मोह, प्रमादवशतः व्रतभङ्ग कर दे, तो उसे प्रायश्चित्त करना होता है। प्रायश्चित्तानुष्ठानके बाद फिरसे वह व्रत करना होगा। प्रायश्चित्तके विषयमें लिखा है, कि तीन दिन उपवास और केशमुण्डन करे। केशमुण्डन यदि न करे, तो उसके मूल प्रायश्चित्तका दूना प्रायश्चित्त करना होगा। अथवा स्त्रीके सम्बन्धमें विशेषता यह है, कि वे केशमुण्डन न करावें, सिर्फ केशके अग्रभागमें दो अंगुल केश माप कर उसे काट डालें। इस प्रकार प्रायश्चित्त करनेके बाद पुनः व्रत करना होता है। यदि कोई सङ्कल्प करके प्रमादवशतः यह व्रत न करे, तो वह जीवितावस्थामें चण्डालत्व और मरनेके बाद कुक्कुरयोनिको प्राप्त होता है।

व्रतग्रहणके विषयमें पूर्वाह्णकालमें सङ्कल्प करना होता है। पूर्व दिन संयतचित्त हो कर व्रतदिनमें सवेरे स्नान सन्ध्यादि करके आचमन, सूर्यार्घ्य, गणेश, शिवादि पञ्चदेवता, आदित्यादि नवग्रह और इन्द्रादि दशदिक्पाल आदिकी पूजा, सूर्य, सोम इत्यादि स्वस्तिवाचन करके संकल्प करे।

व्रत जितने दिनोंमें शेष होगा उतने दिनों तक एक ही नियमसे व्रतानुष्ठान करना होगा। नियमित समय पूरा होने पर विधिके अनुसार उस व्रतकी प्रतिष्ठा करनी होगी। प्रतिष्ठाकालमें यदि अशक्त या मरणाशौच हो, तो भी पूर्व सङ्कल्पानुसार प्रतिष्ठाकार्य सिद्ध होगा, इसमें किसी तरहका दोष नहीं होता। किन्तु जिनका व्रत है, वे उपवासादि भिन्न और कुछ भी नहीं कर सकते।

यदि किसी विघ्नवशसे प्रतिष्ठा वर्षमें प्रतिष्ठा न हो, तो अशौच नहीं होगा। यदि उस वर्षमें गुरु शुक्रका बाल्य, अस्त और वृद्धजनित अकाल और मलमासादि हो, तो भी प्रतिष्ठा नहीं होगी। जिस वर्षमें अकाल, मलमास आदि न पड़े तथा अशौचादि न रहे, उसी वर्षमें प्रतिष्ठा होगी, किन्तु प्रतिष्ठा वर्षमें प्रतिष्ठा नहीं करनेसे पापभागी अवश्य होना पड़ेगा।

व्रतकारी व्रतानुष्ठानके बाद व्रतकथा श्रवण करें। व्रत-प्रतिष्ठा हो जाने पर फिर कथा सुननेकी जरूरत नहीं। किन्तु किसी किसी व्रतमें विशेषता यह है, कि प्रतिष्ठाके बाद भी कथाश्रवण और भोज्योत्सर्ग करना होता है। जैसे, कुक्कुटीसप्तमीव्रतमें प्रतिष्ठाके बाद ही यावज्जीवन व्रतकथा श्रवणका विधान है।

अकारादि क्रमसे कुछ व्रतोंके नाम नीचे दिये गये हैं। भविष्यपुराण, मत्स्यपुराण, पद्मपुराण आदिपुराणोंमें इन सब व्रतोंका विधान निर्दिष्ट हुआ है।

१। अक्षयतृतीया व्रत—इस व्रतका भविष्योत्तर पुराणमें वर्णन आया है। वैशाख मासकी शुक्ला तृतीया तिथिमें यह व्रत करना होता है। इस तिथिमें स्नान, जप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण, दान आदि जो कुछ किये जाते हैं, वे अक्षय होते हैं। यह तिथि सत्य युगाद्या

है। इस तिथिमें सभी फल अक्षय होते हैं, इस कारण इस तिथिका नाम अक्षया तृतीया हुआ है।

२। अक्षयफलावाप्तिफलकाख्य तृतीया व्रत—यह व्रत विष्णुधर्मोत्तरमें वर्णित है। अक्षयतृतीयाके दिन उपवास करके यह व्रत करना होता है।

३। अक्षय्यैकादशी व्रत—इस व्रतका विधान वामनपुराणमें लिखा है। आश्विन मासकी शुक्ल एकादशीके दिन यह व्रत करना होता है।

४। अग्निचतुर्थी व्रत—यह व्रत विष्णुधर्मोत्तरमें लिखा है। फाल्गुन मासकी शुक्लाचतुर्थीके दिन यह व्रत करना होता है।

५। अघोरचतुर्दशी—भविष्योत्तरमें इस व्रतका विधान है। भाद्रमासकी कृष्णा चतुर्दशीका नाम अघोर चतुर्दशी है। इस तिथिमें व्रत करना होता है। रघुनन्दनने तिथितत्त्वमें इस व्रतका विधान उल्लेख किया है।

६। अङ्गारकचतुर्थी व्रत—मत्स्यपुराणमें इस व्रतका विधान है। जिस किसी मासके मङ्गलवारमें यदि चतुर्थी तिथि पड़े, तो उसी दिन यह व्रत करना होता है।

७। अचला सप्तमी व्रत—भविष्योत्तरमें इस व्रतका हाल लिखा गया है। माघ मासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

८। अद्यादित्यषष्ठी व्रत—स्कन्दपुराणमें यह व्रत उक्त हुआ है। प्रत्येक मासकी षष्ठी तिथिमें एक वर्ष तक यह व्रत करना होता है।

९। अनघाष्टमी व्रत—भविष्योत्तरमें यह व्रत लिखा है। अग्रहायण मासकी कृष्णाष्टमी तिथिमें यह व्रत करनेको कहा गया है।

१०। अनङ्गत्रयोदशी व्रत—भविष्योत्तरमें इस व्रतका वर्णन है। अग्रहायण मासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी तिथिमें यह व्रत करना होता है। यह व्रत एक वर्षमें शेष होता है।

११। अनङ्गत्रयोदशी व्रत—कालोत्तरमें यह व्रत निर्दिष्ट हुआ है। चैत्र मासकी शुक्ला त्रयोदशी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

१२। अनन्तचतुर्दशी व्रत—यह व्रत भविष्यपुराणमें निर्दिष्ट हुआ है। भाद्र मासकी शुक्ला चतुर्दशी तिथिमें यह व्रत किया जाता है। यह व्रत चौदह वर्ष करना होता है। व्रतारम्भके बाद चौदह वर्ष इस व्रतकी प्रतिष्ठा करनी होती है।

१३। अनन्त-तृतीया व्रत—इस व्रतका विधान पद्मपुराणमें लिखा है। निर्दिष्ट तृतीया तिथिमें व्रत करनेसे अनन्त फल लाभ होता है, इस कारण इसका नाम अनन्ततृतीया व्रत है। श्रावण, वैशाख वा अग्रहायण मासकी शुक्ला तृतीया तिथिमें यह व्रत करना होता है।

१४। अनन्तद्वादशी व्रत—विष्णुरहस्यमें इस व्रतका विषय लिखा है। भाद्र मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिमें यह व्रत किया जाता है। यह व्रत एक वर्षमें समाप्त होता है।

१५। अनन्तपञ्चमी व्रत—यह व्रत स्कन्दपुराणके प्रभासखण्डमें वर्णित है। फाल्गुन मासकी शुक्ला पञ्चमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

१६। अनन्तफलसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। यह भाद्र मासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें किया जाता है।

१७। अनोदनसप्तमीव्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। वैशाख मासकी शुक्ला षष्ठी तिथिमें उपवास करके दूसरे दिन सप्तमीतिथिमें यह व्रत करना होता है।

१८। अपराजितासप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत, भाद्र मासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें यह व्रत करना होता है। यह वर्ष साध्यव्रत है।

१९। अमावस्या व्रत—कूर्मपुराणोक्त व्रत। जिस किसी अमावस्या तिथिमें यह व्रत किया जाता है। अमावस्या तिथिमें महादेवके उद्देशसे यदि कोई वस्तु वेदविद् ब्राह्मणको दान की जाय, तो महादेव उस पर प्रसन्न होते हैं तथा उसी समय उसके सात जन्मका पाप विनष्ट होता है।

२०। अशोकसप्तमी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। जिस किसी सप्तमी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

२१। अभुक्ताभरणसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। भाद्रमासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

२२। अरुन्धती व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत। वसन्त ऋतुमें तृतीया तिथिको यह व्रत किया जाता है।

२३। अर्कव्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। यह व्रत एक वर्षमें करना होता है। प्रत्येक मासके शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षकी षष्ठी और सप्तमी तिथिमें उपवास करके यह व्रत करना होता है।

२४। अर्कसप्तमी व्रत—ब्रह्मपुराणोक्त व्रत। यह व्रत दो वर्षमें होता है। फाल्गुन मासकी शुक्ला षष्ठीमें यह व्रत करना होता है।

२५। अर्कसम्पुटसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। फाल्गुन मासकी शुक्ला षष्ठी तिथिमें सूर्यके उद्देशसे उपवासादि करके यह व्रत किया जाता है।

२६। अर्काष्टमी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। जिस किसी मासके शुक्लपक्षमें रविवारको यदि अष्टमी तिथि पड़े, तो उस दिन यह व्रत करना होता है।

२७। अर्द्धश्रावणक व्रत—ब्रह्माण्डपुराणोक्त व्रत। श्रावण मासके शुक्लपक्षमें यह व्रत होता है।

२८। अर्द्धोदय व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत। जिस दिन अर्द्धोदय योग होता है, उस दिन यह करना होता है। माघ मासकी अमावस्याके दिन यदि रविवार, व्यतिपातयोग और श्रवणा नक्षत्र हो, तो उसे अर्द्धोदय कहते हैं। पहले वशिष्ठदेव, पीछे जामदग्न्य और सनकादि ऋषियोंने यह व्रत किया था।

२९। अलवणतृतीया व्रत—भविष्योक्त व्रत। यह व्रत यावज्जीवन करना होता है। द्वितीया तिथिमें उपवास करके तृतीयाके दिन लवण नहीं खाना चाहिये। प्रतिमास यह व्रत करना होता है। यह व्रत करनेसे पुरुष मनोरमा पत्नी तथा स्त्री मनोरम पति लाभ करती है।

३०। अविघ्न विनायक चतुर्थी व्रत—वराहपुराणोक्त व्रत। फाल्गुन मासकी शुक्ला चतुर्थी तिथिमें यह व्रत करना होता है। इस व्रतके फलसे सभी विघ्न विनष्ट होता है।

३१। अवियोग तृतीया व्रत—कालिकापुराणोक्त व्रत। अग्रहायण मासके शुक्लपक्षकी द्वितीया तिथिमें उपवास और रातिमें चन्द्रदर्शन करके यावक भोजन तथा दूसरे दिन तृतीयाको यह व्रत स्त्रियोंको अवैधव्यकर है।

३२। अवियोग द्वादशी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। यह व्रत भाद्रमासकी शुक्ला द्वादशी तिथिको उपवास करके करना होता है।

३३। अव्यङ्गसप्तमी व्रत—भाद्रमासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें आरम्भ करके एक वर्ष तक यह व्रत करना होता है, श्रावणकी शुक्लसप्तमी तिथिमें यह व्रत समाप्त होता है।

३४। अशून्य-शयन द्वितीया व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। चातुर्मास्यमें अर्थात् श्रावण, भाद्र, आश्विन और कार्त्तिक इन चार महीनोंमें कृष्णपक्षकी द्वितीया तिथिको यह व्रत किया जाता है।

३५। अशोकत्रिरात्र व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। अग्रहायण, ज्येष्ठ और भाद्र इन तीन मासकी पूर्णिमा तिथिमें यह व्रत करना होता है।

३६। अशोकपूर्णिमा व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। फाल्गुनी पूर्णिमाका नाम अशोकपूर्णिमा है। पूर्णिमा तिथिमें यह व्रत करना होता है।

३७। अशोक-प्रतिपद् व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। आश्विन मासकी शुक्ला प्रतिपद् तिथिमें यह व्रत करना होता है। यह व्रत करनेसे पिता, माता, पति, पुत्र, आदिको शोक नहीं होता।

३८। अशोकाष्टमी व्रत—लिङ्गपुराणोक्त व्रत। यह व्रत चैत्रमासकी शुक्लाष्टमी तिथिमें करना होता है। इस दिन मन्त्रपाठ करके ८ अशोकपुष्पकी कली खानी पड़ती है। इस व्रतके फलसे शोक नहीं होता।

भाद्र मासकी शुक्लाष्टमी तिथिमें और एक प्रकारका अशोकाष्टमी व्रत है।

३९। अहिंसा व्रत—पद्म-पुराणोक्त व्रत। अग्रा-यणमें यह व्रत करना होता है।

४० आग्नेय व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। जिस किसी नवमी तिथिको यह व्रत किया जाता है।

४१। आशासंक्रान्ति व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत। संक्रान्तिमें यह व्रत करना होता है। इसके फलसे आशा अप्रतिहत होती है।

४२। आदित्य व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। यह व्रत एक वर्षमें करना होता है। जिस मासके रविवारको यह व्रत ग्रहण किया जाता है, उसके बारह मासके बाद यह व्रत शेष होगा।

४३। आदित्यशयन व्रत—आदित्यपुराणोक्त व्रत। यदि रविवारको या संक्रान्तिके दिन हस्ता नक्षत्र और सप्तमी तिथि पड़े, तो उसी दिन यह व्रत करना होता है।

४४। आदित्य-नन्दादि व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। रविवारको यदि द्वादशी तिथि और हस्ता नक्षत्र हो, तो उसी दिन यह व्रत होगा।

४५। आनन्दव्रत—मत्स्यपुराणोक्त व्रत। चैत्र माससे ले कर चार महीने तक यह व्रत करना होता है।

४६। आनन्द-पञ्चमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। नागपञ्चमी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

४७। आनन्दनवमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। फाल्गुन मासकी शुक्ला नवमी तिथिको आनन्द नवमी कहते हैं। यह व्रत करनेमें फाल्गुन मासकी शुक्ला पञ्चमी तिथिमें एक बार भोजन और षष्ठी तिथिमें रातको भोजन तथा सप्तमी तिथिमें अयाचित रूपसे भोजन और अष्टमीमें उपवास करके पीछे नवमी तिथिमें यह व्रत करे।

४८। आयुष व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। यह व्रत श्रावण, भाद्र, आश्विन और कार्त्तिक इन चार महीनोंकी रातको भोजन करके करना होता है।

४९। आरोग्य व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। भाद्र मासकी पूर्णिमाके बाद प्रतिपद्से आश्विनकी पूर्णिमा तक यह व्रत करना होता है।

वराहपुराणमें एक और आरोग्य व्रतका उल्लेख है। माघ मासकी सप्तमी तिथिमें यह व्र किया जाता है।

५०। आरोग्य-दशमी व्रत—गरुड़पुराणोक्त व्रत। नवमी तिथिमें उपवास करके दशमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

५१। आयुः व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत। चतुर्दशी तिथिमें संयत हो कर पूर्णिमाके दिन यह व्रत करना होता है।

५२। आयुःसंक्रान्ति व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत। संक्रान्तिमें यह व्रत होता है।

५३। आशादित्य व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत। आश्विन मासके प्रथम रविवारके दिन यह व्रत आरम्भ करके एक वर्ष तक करना होता है।

५४। आश्रमव्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। चैत्र मासकी शुक्ला चतुर्थी तिथिको उपवास करके यह व्रत करना होता है।

५५। आषाढ़व्रत—महाभारतोक्त व्रत। आषाढ़ मास तक यह व्रत करना होता है। इस व्रतमें आषाढ़के प्रतिदिन एक बार भोजन और विष्णुपूजा करनी होती है।

५६। इन्द्रपौर्णमास व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। यह व्रत पूर्णिमाके दिन करना होता है। पूर्णिमाके दिन उपवास करके ३० दम्पतीको अलङ्कारादि द्वारा भूषित कर उनकी पूजा करे।

५७। ईशान व्रत—कालिकापुराणोक्त व्रत। चतुर्दशी तिथिमें बृहस्पतिवार होनेसे यह व्रत किया जाता है।

५८। ईश्वर व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। चतुर्दशी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

५९। उल्कसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। यह व्रत सप्तमी तिथिमें करना होता है।

६०। उत्पन्नैकादशी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। यह व्रत अग्रहायण माससे ले कर एक वर्ष तक करना होता है। महीनेकी दोनों एकादशीके दिन यह व्रत करना होता है।

६१। उभयनवमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। यह व्रत भी एक वर्ष तक करना होता है। मासकी दोनों नवमी तिथिमें इस व्रतका अनुष्ठान किया जाता है।

६२। उभयसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। यह व्रत भी एक वर्षमें शेष होता है। मासकी उभय-सप्तमीमें इसका अनुष्ठान करना होता है।

६३। उमामहेश्वरतृतीया व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। अग्रहायण मासकी शुक्लातृतीयातिथिमें यह व्रत करना होता है।

देवीपुराण, भृगुसंहिता और विष्णुधर्मोत्तरमें और भी तीन प्रकारका यह व्रत है।

६४। उल्कानवमी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। आश्विन मासकी शुक्लानवमीका नाम उल्कानवमी है। इस तिथिमें यह व्रत करना होता।

६५। ऋतु व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। यह व्रत

वसन्त ऋतुमें आरम्भ कर ६ ऋतुओंमें करना होता है।

६६। ऋषिपञ्चमी व्रत—ब्रह्माण्डपुराणोक्त व्रत। श्रावणकी शुक्लापञ्चमीका नाम ऋषिपञ्चमी है। इस तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

६७। एकभक्त व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। पौष-मासमें एक बार भोजन करके यह व्रत करना होता है।

६८। ऐश्वर्यतृतीया व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। तृतीया तिथिमें इस व्रतका अनुष्ठान होता है।

६९। कदली व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। यह व्रत भाद्रमासकी शुक्लाचतुर्दशी तिथिमें करना होता है।

७०। कुन्दचतुर्थी व्रत—माघमासकी शुक्लाचतुर्थी। इस दिन यह व्रत करना होता है।

७१। कपिलाषष्ठी व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत। भाद्रमासकी कृष्णाषष्ठीतिथिमें यदि व्यतीपातयोग और रोहिणी नक्षत्र हो, तो उसे कपिलाषष्ठी कहते हैं। इस षष्ठीमें यह व्रत करना होता है।

७२। करण व्रत—ब्रह्माण्डपुराणोक्त व्रत। माघमासके शुक्लपक्षमें जिस दिन ववकरण होता है, उसी दिन यह व्रत किया जाता है।

७३। कमलसप्तमी व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत। फाल्गुनमासकी शुक्ला सप्तमीको कमलसप्तमी कहते हैं। इस तिथिमें यह व्रत करनेको कहा गया है।

७४। कल्किद्वादशी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। भाद्रमासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

७५। कल्पवृक्ष व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत। पयोव्रतके नियमानुसार तीन दिन उपवास और काञ्चनकल्पवृक्ष प्रस्तुत करके यह व्रत करे।

७६। कल्याणसप्तमी व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत। रविवारको यदि शुक्लासप्तमी पड़े तो उसे कल्याण सप्तमी कहते हैं। इस तिथिमें उक्त व्रत करना होता है।

७७। काञ्चनपुरी व्रत—मत्स्यपुराणोक्त व्रत। यह व्रत शुक्लातृतीया, कृष्णपक्षद्वादशी, पूर्णिमा, संक्रान्ति, अमावस्या और अष्टमी इन सब पर्व दिनोंमें यह व्रत किया जाता है।

७८। कामव्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। यह व्रत पौष मासकी त्रयोदशीतिथिमें करना होता है।

७९। कामदासप्तमी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। फाल्गुनमासकी शुक्लासप्तमीका नाम कामदासप्तमी है। इस तिथिमें यह व्रत करनेको कहा गया है।

८०। कामदेव व्रत। यह व्रत वैशाखमासकी शुक्लात्रयोदशी तिथिमें आरम्भ करके चैत्रशुक्लात्रयोदशीमें समाप्त करना होगा।

८१। कामधेनु व्रत—वह्निपुराणोक्त व्रत। यह व्रत कार्त्तिक मासमें किया जाता है।

८२। काम व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत। यह व्रत त्रयोदशी तिथिमें करते हैं।

८३। कामषष्ठी व्रत—वराहपुराणोक्त व्रत। माघमासकी शुक्लाषष्ठी तिथिमें यह व्रत किया जाता है। यह व्रत एक वर्षमें समाप्त होता है।

८४। कामावाप्ति व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। कृष्णाचतुर्दशी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

८५। कार्त्तिकस्नान व्रत—नारदोक्त व्रत। कार्त्तिकमासमें यह व्रत होता है।

८६। कार्त्तिकेयषष्ठी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। अगहन महीनेकी शुक्लाषष्ठी तिथिको कार्त्तिकेयषष्ठी कहते हैं।

८७। कालरात्रि व्रत—कालिकापुराणोक्त व्रत। आश्विनमासकी शुक्लाष्टमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

८८। कालाष्टमी व्रत—वामनपुराणोक्त व्रत। श्रावणकी कृष्णाष्टमीतिथिमें यदि मृगशिरा नक्षत्र हो, तो उसे कालाष्टमी कहते हैं। इस तिथिमें उक्त व्रत किया जाता है।

८९। कीर्त्ति व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत। यह व्रत अष्टमी तिथिमें करना होता है।

९०। कुक्कुटी व्रत—भविष्योक्त व्रत। यह व्रत भाद्रमासकी शुक्लासप्तमी तिथिमें होता है।

९१। कुबेरतृतीया व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। यह व्रत तृतीयातिथिमें करना होता है।

९२। कुमारषष्ठी व्रत—कालोत्तरोक्त व्रत। यह व्रत शुक्लाषष्ठीसे आरम्भ होता है।

९३। कुलजी व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत। कार्त्तिक

मासकी शुक्ला एकादशी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

९४। कूर्मद्वादशी व्रत—भविष्योक्त व्रत। यह व्रत पौषमासकी शुक्लाद्वादशीमें किया जाता है।

९५। कृच्छ्र व्रत—विष्णुरहस्योक्त व्रत। यह व्रत कार्त्तिक मासकी शुक्ल एकादशीसे पूर्णिमा तक करना होता है।

९६। कृच्छ्रचतुर्थी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। अग्रहायण मासकी शुक्लाचतुर्थी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

९७। कृत्तिका व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। कार्त्तिक मासकी पूर्णिमा तिथिमें यह व्रत करना होता है।

९८। कृष्णचतुर्द्दशी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। फाल्गुन मासकी कृष्णचतुर्द्दशी तिथिमें महादेवके उद्देशसे रातको यह व्रत करना होता है।

९९। कृष्णाद्वादशी व्रत—वराहपुराणोक्त व्रत। अग्रहायण मासकी कृष्णाद्वादशी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

१००। कृष्ण व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत। एकादशी तिथिमें श्रीकृष्णके उद्देशसे यह व्रत किया जाता है।

१०१। कृष्णषष्ठी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। यह व्रत अग्रहायण मासकी कृष्णाषष्ठी तिथिमें किया जाता है।

१०२। कृष्णाष्टमी व्रत—देवीपुराणोक्त व्रत। अग-हनमहीनेकी कृष्णाष्टमी तिथिमें इस व्रतका अनुष्ठान होता है।

१०३। कृष्णैकादशी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत—फाल्गुनमासकी कृष्णएकादशी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

१०४। कोकिला व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। आषाढ़ पूर्णिमाके दिन आरम्भ करके श्रावण मासकी पूर्णिमा पर्यन्त यह व्रत किया जाता है।

१०५। कोटीश्वरीतृतीया व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत। भाद्रमासके शुक्लपक्षकी तृतीयातिथिमें यह व्रत आरम्भ करके ४ वर्षके बाद इसकी प्रतिष्ठा करनी होती है। इस व्रतके फलसे दरिद्र भी कोटिपति होता है।

१०६। कौमुदी व्रत—विष्णुरहस्योक्त व्रत। आश्विन मासके शुक्लपक्षकी एकादशी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

१०७। क्षेम व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। चतुर्द्दशीमें यक्ष और रक्षोंकी पूजा करके यह व्रत किया जाता है।

१०८। गणपतिचतुर्थी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। गणेश चतुर्थीमें यह व्रत किया जाता है। यह व्रत २ वर्षमें समाप्त होता है। इससे गणपति संतुष्ट हो कर अभीष्ट फल प्रदान करते हैं।

१०९। गव्य व्रत—शिवधर्मोक्त व्रत। पूर्णिमाके दिन उपवास करके महादेवके उद्देशसे यह व्रत किया जाता है। यह व्रत एक वर्षसाध्य है।

११०। गलन्तिका व्रत—शिवरहस्योक्त व्रत। ग्रीष्म-कालमें शिवजीके उद्देशसे यह व्रत किया जाता है।

१११। गायत्रीव्रत—गरुड़पुराणोक्त व्रत। शुक्ला चतुर्द्दशी तिथिमें भगवान् सूर्यदेवके उदयके पहले गायत्रीजप द्वारा सूर्यके उद्देशसे यह व्रत करना होता है। इस व्रतके फलसे सभी रोग नष्ट होते हैं।

११२। गुडतृतीया व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। भाद्र मासकी शुक्लतृतीया तिथिमें यह व्रत करना होता है।

११३। गुणवाप्तिव्रत—विष्णुपुराणोक्त व्रत। फाल्गुन मासके शुक्लपक्षमें यह व्रत करना होता है।

११४। गुह व्रत—भविष्योक्त व्रत। गृहस्थितिग्रहकी प्रीतिके लिये यह व्रत किया जाता है।

११५। गुर्वष्टमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। भाद्र मासकी शुक्लाष्टमी तिथिमें यदि गुरुवार पड़े, तो यह व्रत किया जाता है।

११६। गुरुद्वादशी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। द्वादशी तिथिमें गुरुजीके उद्देशसे यह व्रत किया जाता है।

११७। गृहाश्रमी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। यह व्रत पञ्चमी तिथिमें करना होता है।

११८। गोपद्मत्रिरात्र व्रत—भविष्योक्त व्रत। भाद्र मासके शुक्लपक्षके तृतीया और चतुर्थी इन दो तिथियों-में उक्त व्रत करना होता है।

११९। गौपालनवमी व्रत—गरुड़पुराणोक्त व्रत। नवमी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

१२०। गोमयादिसप्तमी-व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। सप्तमी तिथिमें यह व्रत करते हैं।

१२१। गौरीचतुर्थी व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत। माघ मासकी शुक्लाचतुर्थीका नाम उमाचतुर्थी है। इस चतुर्थी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

१२२। गौरी व्रत—कालोत्तरोक्त व्रत। चैत्रशुक्ल-तृतीयामें यह व्रत होता है। यह व्रत स्त्रियोंका सौभाग्य-वर्द्धक है।

१२३। गोवत्सद्वादशीव्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। कार्त्तिक मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

१२४। गोविन्दद्वादशी व्रत—विष्णुरहस्योक्त व्रत। गोविन्दद्वादशीमें विष्णुके उद्देशसे इस व्रतका अनुष्ठान होता है।

१२५। चण्डिका व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। प्रति मासकी अष्टमी और चतुर्दशी तिथिमें चण्डिकादेवीके उद्देशसे यह व्रत एक वर्षमें करना होता है।

१२६। चतुर्दशी आगस्त्य व्रत—कालिकापुराणोक्त व्रत। कार्त्तिक मासकी शुक्लाचतुर्दशी तिथिमें यह व्रत होता है।

१२७। चतुर्दशी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। चतुर्दशी तिथिमें महादेवके उद्देशसे यह व्रत किया जाता है।

१२८। चतुर्दश्यष्टमीनक्त व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। शुक्लपक्षकी चतुर्दशी तिथिमें यह व्रत आरम्भ करके प्रति मासकी दो अष्टमी और दो चतुर्दशी तिथिमें शिवजीके उद्देशसे यह व्रत करना होता है।

१२९। चातुर्मासी व्रत—इसे चातुर्मास्य व्रत भी कहते हैं। यह भविष्योत्तरोक्त व्रत है। आषाढ़ मासकी शुक्ला एकादशीसे आरम्भ कर कार्त्तिक मासकी शुक्ला एकादशी तक इन चार महीनोंमें करना होता है।

१३०। चातुर्मूर्त्तिचतुर्थी-व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। चैत्रमासकी शुक्ला चतुर्थी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

१३१। चतुर्युग व्रत—विष्णुधर्मोक्त व्रत। चैत्रमासके शुक्लपक्षकी प्रतिपद्‌से चतुर्थी पर्यन्त यह व्रत करना होता है।

१३२। चन्द्रव्रत—वराहपुराणोक्त व्रत। पूर्णिमा तिथिमें यह व्रत किया जाता है। यह व्रत पन्द्रह वर्षमें होता है।

१३३। चन्द्ररोहिणी-शयनव्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत। सोमवारको यदि पूर्णिमा तिथि या रोहिणी नक्षत्र हो, तो उसी दिन यह व्रत होगा।

१३४। चन्द्रार्क व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। अमावस्या तिथिमें चन्द्रसूर्य एक साथ रहते हैं, इस दिन दोनोंके उद्देशसे यह व्रत किया जाता है।

१३५। चम्पाषष्ठी व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत। भाद्र मासकी षष्ठीतिथिमें वैधृतियोग, विशाखा नक्षत्र, मङ्गल वार हो तो उसे चम्पाषष्ठी कहते हैं। इस तिथिमें उक्त व्रत किया जाता है।

१३६। चान्द्रायण व्रत—ब्रह्मपुराणोक्त व्रत। पौष मासकी शुक्लाचतुर्दशीमें पापमोचनके लिये यह व्रत करना होता है। शास्त्रमें एक और चान्द्रायण व्रतका विधान है। जिस प्रकार चन्द्रकी ह्रासवृद्धि होती है उसी प्रकार इस चान्द्रायणव्रतमें आहारका ह्रासवृद्धि मूलक कहा गया है।

१३७। चित्राभानुसप्तमीव्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। सप्तमीतिथिमें यदि चित्रानक्षत्र हो, तो उसी दिन यह व्रत होगा।

१३८। चैत्रभाद्रमाघतृतीयाव्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। यह व्रत चैत्र, भाद्र और माघमासकी शुक्ला तृतीया तिथिमें करना होता है।

१३९। चैत्रशुक्लप्रतिपद्विहिततिलक व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। चैत्रशुक्ला प्रतिपद्‌में यह व्रत किया जाता है।

१४०। जयन्तीसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। माघमासकी शुक्लासप्तमीका नाम जयन्तीसप्तमी है। इस तिथिमें उक्त व्रत करना होता है।

१४१। जयपौर्णमासी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। पूर्णिमा तिथिमें यह व्रत करना होता।

१४२। जयापञ्चमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। कार्त्तिक मासकी शुक्लापञ्चमीको जयापञ्चमी कहते हैं। इस पञ्चमी तिथिमें उक्त व्रत करना होता है।

१४३। जयावाप्तिव्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। आश्विन मासकी पौर्णमासीके बाद प्रतिपद् तिथिसे आरम्भ कर एक मास तक यह व्रत चलता है।

१४४। जयासप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। यदि शुक्लपक्षकी सप्तमीतिथिमें रोहिणी, अश्लेषा, मघा या हस्तानक्षत्र हो, तो उसे जयासप्तमी कहते हैं। उसी दिन यह व्रत करना चाहिये।

१४५। ज्ञानित्रिरात्र व्रत—भविष्योत्तरकथित व्रत। ज्येष्ठ मासकी त्रयोदशीतिथिसे आरम्भ कर तीन दिन यह व्रत करना होता है।

१४६। ज्ञानदग्धद्वादशी व्रत—धरणीकथित व्रत। यह वैशाखमासकी द्वादशीमें होता है।

१४७। ज्ञानाव्याप्ति व्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित व्रत। समस्त वैशाख मासमें रातको भोजन करके यह व्रत किया जाता है।

१४८। ज्येष्ठा व्रत—भविष्योत्तरकथित व्रत। भाद्र मासके शुक्लपक्षके जिस दिन ज्येष्ठा नक्षत्र पड़े उसी दिन यह व्रत करना होगा।

१४९। ज्यैष्ठ व्रत—महाभारतवर्णित व्रत। ज्यैष्ठ मासमें यह व्रत करना चाहिये।

१५०। तण्डुलसप्तमी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। अग्रहायण मासकी सप्तमीतिथिमें यह व्रत किया जाता है।

१५१। तपो व्रत—पद्मपुराणवर्णित व्रत। माघमासकी सप्तमी तिथिमें आर्द्रवास हो कर यह व्रत करना होता है।

१५२। ताम्बूलसंक्रान्ति व्रत—स्कन्दपुराणकथित व्रत। यह व्रत चैत्र संक्रान्तिमें आरम्भ करके एक वर्ष प्रति संक्रान्तिको करना होता है।

१५३। तारकाद्वादशी व्रत—भविष्योत्तर कथित व्रत। अग्रहायण मासका शुक्ला द्वादशीको तारका द्वादशी कहते हैं। उस तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

१५४। तिथिनक्षत्रवार व्रत—कालोत्तर कथित व्रत। तिथि, नक्षत्र और वार विशेषका योग होनेसे उसी दिन यह करना होता है। बुधवार, रोहिणी नक्षत्र और अष्टमीतिथि तथा वृहस्पतिवार शुक्ला चतुर्दशी और पुष्यानक्षत्रयुक्त होनेसे यह व्रत होता है। इस प्रकार प्रायः सभी नक्षत्र, वार और तिथिविशेषके योगमें यह व्रत होगा।

१५५। तिथियुगल व्रत—यमस्मृतियुक्त व्रत। मासकी दो अष्टमी, दो चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा इन दो तिथियोंमें ही उक्त व्रत करना होता है।

१५६। तिन्दुकाष्टमी व्रत—भविष्यपुराणकथित व्रत। ज्यैष्ठमासकी शुक्लाष्टमी तिथिको तिन्दुकाष्टमी कहते हैं। उस दिन यह व्रत किया जाता है।

१५७। तिलदाही व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत। पौष मासकी कृष्णा एकादशी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

१५८। तिलद्वादशी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। माघमासके कृष्णापक्षकी द्वादशी तिथिमें यदि पूर्वाषाढ़ा या मूला नक्षत्र हो, तो उस दिन यह व्रत होगा।

१५९। तीव्र व्रत—सौरपुराणोक्त व्रत। त्रिपदीमें अपने दोनों चरणोंको भेद कर यावज्जीवन अवस्थान करनेसे अन्तमें मुक्ति होती है।

१६०। तुरग-सप्तमी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरकथित व्रत। चैत्रमासकी शुक्लासप्तमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

१६१। तुष्टिप्राप्तितृतीया व्रत—विष्णुधर्मोत्तरकथित व्रत। श्रावण मासकी कृष्णा तृतीया तिथिमें यदि श्रवणा नक्षत्र हो, तो उसी दिन यह व्रत होगा। किन्तु श्रावणकी कृष्णा तृतीयाके दिन श्रवणा नक्षत्रका योग अति दुर्घट है।

१६२। तैलसंक्रान्ति व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत विशेष। यह व्रत चैत्र संक्रान्तिमें आरम्भ कर प्रति संक्रान्तिको करना होता है। एक वर्षके बाद व्रत प्रतिष्ठा करनी होगी।

१६३। त्रयोदशद्व्यक्षरसप्तमी व्रत—भविष्योत्तर कथित व्रत। उत्तरायण होनेसे या शुक्लपक्ष रविवार सप्तमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

१६४। त्रिगतिसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणमें

कथित व्रत फाल्गुन मासके शुक्लपक्षकी दशमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

१६५। त्रिविक्रम तृतीया व्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित व्रत। ज्येष्ठ मासकी शुक्ला तृतीया तिथिमें यह करना होता है।

१६६। त्रिविक्रमत्रिरात्र-व्रत व्रत—विष्णुरहस्य-कथित व्रत। अग्रहायण मासकी शुक्ला नवमी तिथिमें यह व्रत करना चाहिये।

१६७। त्रिविक्रम व्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित व्रत। कार्त्तिक माससे आरम्भ करके तीन मास पर्यन्त त्रिविक्रम विष्णुके उद्देशसे यह व्रत करना होता है।

१६८। त्र्यम्बक व्रत—पद्मपुराणमें कथित व्रत। चतुर्दशी तिथिमें महादेवके उद्देशसे यह व्रत होगा।

१६९। दशादित्य व्रत—ब्रह्माण्डपुराणमें कथित व्रत। यह व्रत शुक्लपक्षके रविवारमें यदि दशमी तिथि पड़े, तो उस दिन भगवान् सूर्यदेवके उद्देशसे यह व्रत करना होता है। इस व्रतके फलसे सभी आपत्ति दूर होती है।

१७०। दशावतार व्रत—विष्णुपुराणमें लिखित व्रत। एकादशी तिथिमें उपवास करके द्वादशी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

१७१। दारिद्र्यहराष्टमी व्रत—भविष्यपुराण कथित व्रत। कार्त्तिक मासके कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

१७२। दिवाकर व्रत—भविष्यपुराणमें कथित व्रत। रविवारमें हस्ता नक्षत्र हो, तो उस दिन उक्त व्रत होगा।

१७३। दीप्ति व्रत—पद्मपुराण-वर्णित व्रत। इस व्रतमें शामको दीपदान करना होता है।

१७४। दुर्गन्धदौर्भाग्यनाशन त्रयोदशी व्रत—भविष्य-कथित व्रत। ज्येष्ठ मासकी शुक्ला त्रयोदशीके दिन यह व्रत करना होता है।

१७५। दुर्गानवमी व्रत—भविष्यपुराणमें कथित व्रत। भगवती दुर्गादेवीके उद्देशसे यह व्रत किया जाता है।

१७६। दुर्गा व्रत—देवी-पुराण-कथित व्रत। श्रावण मासके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिमें उपवास करके यह व्रत किया जाता है।

१७७। दुर्गागणपति चतुर्थी व्रत—नीलपुराणमें कथित व्रत। श्रावण मासकी शुक्ला चतुर्थी या कार्त्तिक मासकी शुक्ला चतुर्थी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

१७८। दूर्वात्रिरात्र व्रत—पद्मपुराण-वर्णित व्रत। भाद्र मासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

१७९। दूर्वाष्टमी व्रत—भविष्यपुराणमें कथित व्रत। भाद्र मासकी शुक्लाष्टमी तिथिमें यह व्रत करना होता है। यह व्रत ८ वर्ष तक करके प्रतिष्ठा करनी होती है।

१८०। देवमूर्त्ति व्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित व्रत। चैत्रमासकी शुक्ला प्रतिपद्से आरम्भ करके चार दिन तक यह व्रत किया जाता है।

१८१। देव व्रत—पद्मपुराण-कथित व्रत। एक वर्ष तक रातको यह व्रत करना होता है। कालोत्तरोक्त व्रतभेद। चतुर्दशी तिथिमें वृहस्पतिवारको यह व्रत होता है।

१८२। देवीव्रत—पद्मपुराणकथित व्रत। पूर्णिमा तिथिमें यह व्रत करना होता है। इस प्रकार कार्त्तिक मासकी पूर्णिमा तिथिमें भी देवीपुराणोक्त व्रत विशेषका विधान है।

१८३। द्वादशसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणमें कथित व्रत। माघ मासके शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिसे आरंभ करके एक वर्ष पर्यन्त बारह मासकी १२ सप्तमी तिथिमें ही यह व्रत करना होगा। इस व्रतमें प्रतिमासमें भिन्न भिन्न विधि है।

१८४। द्वादशमासतृतीया व्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित व्रत। यह व्रत तृतीया तिथिसे आरंभ करके बारह मासकी सभी तृतीयामें ही उपवास करके करना होता है। एक वर्षके बाद इसकी प्रतिष्ठा होगी।

१८५। द्वादशादित्य व्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित व्रत। शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिमें उपवास करके १२ मासोंमें धाता आदि बारह आदित्योंके उद्देशसे यह व्रत करना होता है।

१८६। द्वादशीव्रत—कूर्मपुराण वर्णित व्रत। शुक्ल

पक्षकी एकादशी तिथिमें उपवास करके द्वादशी तिथिमें यह व्रत करे।

१८७। द्वीपव्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित व्रत। चैत्र शुक्लपक्षसे आरंभ करके ७ दिन जम्बू आदि सप्त द्वीपोंकी पूजा करनी होगी।

१८८। धनसंक्रान्ति व्रत—स्कन्दपुराणमें कथित व्रत। महाविषुव संक्रान्तिसे ले कर एक वर्ष प्रति संक्रान्तिको यह व्रत करना चाहिये। एक वर्ष पूरा होने पर प्रतिष्ठा विधेय है।

१८९। धनावाप्ति व्रत—धर्मोत्तरकथित व्रत। श्रावण पूर्णिमाके बाद प्रतिपद तिथिसे यह व्रत विहित हुआ है। इस व्रतके फलसे निर्धन धनवान होता है।

१९०। धन्यव्रत—वराहपुराणमें कथित व्रत। अग्रहायण मासके शुक्लपक्षकी प्रतिपद तिथिमें उपवास करके रातको यह व्रत करना होता है।

१९१। धरा व्रत—पद्मपुराणमें कथित व्रत। उत्तरायणमें शुभदिनमें काञ्चनमयी धरा प्रस्तुत करके यह व्रत करना होता है।

१९२। धर्म व्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित व्रत। शुक्लपक्षकी दशमी तिथिमें धर्मराजके उद्देशसे यह व्रत करना होता है।

१९३। धान्य व्रत—स्कन्दपुराणमें कथित व्रत। विषुवसंक्रान्तिमें सूर्यदेवके उद्देशसे यह व्रत करना होता है।

१९४। धान्यसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणमें कथित व्रत। शुक्ला सप्तमीमें यह व्रत किया जाता है।

१९५। धाम त्रिरात्र व्रत—पद्मपुराणमें कथित व्रत। फाल्गुन मासकी पूर्णिमासे तीन दिन यह व्रत करना होता है।

१९६। धारा व्रत—भविष्योत्तर कथित व्रत। चैत्रमाससे आरम्भ करके यह व्रत किया जाता है।

१९७। ध्वजनवमी व्रत—भविष्योत्तरकथित व्रत। पौष मासकी शुक्ला नवमीका नाम ध्वजनवमी है। इस तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

१९८। ध्वज व्रत—विष्णुधर्मोत्तरकथित व्रत। चैत्र माससे आरम्भ करके प्रतिदिन यह व्रत करना पड़ेगा। यह व्रत द्वादश वत्सरव्याप्य है।

१९९। नक्तचतुर्थी व्रत—नारदपुराणोक्त व्रत। विनायकचतुर्थीमें यह व्रत किया जाता है।

२००। नक्षत्रपुरुष व्रत—मत्स्यपुराणोक्त व्रत। चैत्र मासमें यह व्रत करना होता है।

२०१। नक्षत्रार्थ व्रत—देवीपुराणोक्त व्रत। मृगशिरा नक्षत्रसे आरम्भ करके यह व्रत किया जाता है।

२०२। नदी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। चैत्रमासके शुक्लपक्षसे ले कर ७ दिन यथाक्रम ह्लादिनी, ह्रादिनी, पावनी, सीता, इक्षु, सिन्धु और भागीरथी नदीकी पूजा करे।

२०३। नन्द व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। फाल्गुनमासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी तिथिमें उपवास करके यह व्रत करे।

२०४। नन्दादि व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। रविवारको यह व्रत करना चाहिये।

२०५। नन्दा व्रत—देवीपुराणोक्त व्रत। श्रावण मासमें यह व्रत किया जाता है।

२०६। नन्दासप्तमी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। अग्रहायण मासकी शुक्ला सप्तमीका नाम नन्दासप्तमी है। इस सप्तमी तिथिमें उक्त व्रत करना होता है।

२०७। नयनप्रदसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। अग्रहायण मासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें यदि हस्ता नक्षत्रका योग हो, तो उसे नयनप्रदसप्तमी कहते हैं। इस सप्तमीमें व्रत करना होता है। यह व्रत वर्षव्याप्य है।

२०८। नरकपूर्णिमा व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। पूर्णिमा तिथिसे आरम्भ करके एक वर्ष प्रति पूर्णिमाको यह व्रत किया जाता है।

२०९। नरसिंहचतुर्दशी व्रत—नरसिंहपुराणोक्त व्रत। वैशाख मासकी शुक्ला चतुर्दशीको नरसिंह चतुर्दशी कहते हैं। इस चतुर्दशी तिथिमें उक्त व्रत करना होता है। यह व्रत प्रति वर्ष करनेका विधान है।

२१०। नरसिंहत्रयोदशी व्रत—नरसिंहपुराणमें कथित व्रत। वृहस्पतिवारको यदि त्रयोदशी तिथि हो, तो उसी दिन यह व्रत होगा।

कथित व्रत । फाल्गुन मासके शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

१६५ । त्रिविक्रम तृतीया व्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित व्रत। ज्येष्ठ मासकी शुक्ला तृतीया तिथिमें यह करना होता है।

१६६ । त्रिविक्रमत्रिरात्र-व्रत व्रत—विष्णुरहस्य-कथित व्रत। मार्गशीर्ष मासकी शुक्ला नवमी तिथिमें यह व्रत करना चाहिये।

१६७ । त्रिविक्रम व्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित व्रत। कार्त्तिक माससे आरम्भ करके तीन मास पर्यन्त त्रिविक्रम विष्णुके उद्देशसे यह व्रत करना होता है।

१६८ । त्र्यम्बक व्रत—पद्मपुराणमें कथित व्रत। चतुर्दशी तिथिमें महादेवके उद्देशसे यह व्रत होता।

१६९ । दशादित्य व्रत—ब्रह्माण्डपुराणमें कथित व्रत। यह व्रत शुक्लपक्षके रविवारमें यदि दशमी तिथि पड़े, तो उस दिन भगवान् सूर्यदेवके उद्देशसे यह व्रत करना होता है। इस व्रतके फलसे सभी आपत्ति दूर होती है।

१७० । दशावतार व्रत—विष्णुपुराणमें लिखित व्रत। एकादशी तिथिमें उपवास करके द्वादशी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

१७१ । दशरथाष्टमी व्रत—भविष्यपुराण कथित व्रत। कार्त्तिक मासके कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

१७२ । दिवाकर व्रत—भविष्यपुराणमें कथित व्रत। रविवारमें हस्ता नक्षत्र हो, तो उस दिन यह व्रत होता।

१७३ । दीप्ति व्रत—पद्मपुराण-वर्णित व्रत। इस व्रतमें शामको दीपदान करना होता है।

१७४ । दुर्गन्धदौर्भाग्यनाशन त्रयोदशी व्रत—भविष्य कथित व्रत। ज्येष्ठ मासकी शुक्ला त्रयोदशीके दिन यह व्रत करना होता है।

१७५ । दुर्गानवमी व्रत—भविष्यपुराणमें कथित व्रत। भगवती दुर्गादेवीके उद्देशसे यह व्रत किया जाता है।

१७६ । दुर्गा व्रत—देवी-पुराण-कथित व्रत। श्रावण मासके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिमें उपवास करके यह व्रत किया जाता है।

१७७ । दुर्गागणपति चतुर्थी व्रत—सौरपुराणमें कथित व्रत। श्रावण मासकी शुक्ला चतुर्थी या कार्त्तिक मासकी शुक्ला चतुर्थी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

१७८ । दूर्वात्रिरात्र व्रत—पद्मपुराण-वर्णित व्रत। भाद्र मासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

१७९ । दूर्वाष्टमी व्रत—भविष्यपुराणमें कथित व्रत। भाद्र मासकी शुक्लाष्टमी तिथिमें यह व्रत करना होता है। यह व्रत ८ वर्ष तक करके प्रतिष्ठा करनी होती है।

१८० । देवमूर्त्ति व्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित व्रत। चैत्रमासकी शुक्ला प्रतिपद्‌से आरंभ करके चार दिन तक यह व्रत किया जाता है।

१८१ । देव व्रत—पद्मपुराण-कथित व्रत। एक वर्ष तक रातको यह व्रत करना होता है। कालिकोक्त व्रतभेद। चतुर्दशी तिथिमें वृहस्पतिवारको यह व्रत होता है।

१८२ । देवीव्रत—पद्मपुराणकथित व्रत। पूर्णिमा तिथिमें यह व्रत करना होता है। इस प्रकार कार्त्तिक मासकी पूर्णिमा तिथिमें भी देवीपुराणोक्त व्रत विशेषका विधान है।

१८३ । द्वादशसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणमें कथित व्रत। माघ मासके शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिसे आरंभ करके एक वर्ष पर्यन्त बारह मासकी १२ सप्तमी तिथिमें ही यह व्रत करना होगा। इस व्रतमें प्रतिमास भिन्न भिन्न विधि है।

१८४ । द्वादशमासर्क्षतृतीया व्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित व्रत। यह व्रत तृतीया तिथिसे आरंभ करके बारह मासके सभी तृतीयाओंमें ही उपवास करके करना होता है। एक वर्षके बाद इसका प्रतिष्ठा होती।

१८५ । द्वादशादित्य व्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित व्रत। शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिमें उपवास करके १२ मासोंके धाता आदि बारह आदित्योंके उद्देशसे यह व्रत करना होता है।

१८६ । द्वादशीव्रत—कूर्मपुराण वर्णित व्रत। शुक्ल

पक्षकी एकादशी तिथिमें उपवास करके द्वादशी तिथिमें यह व्रत करे।

१८७। द्वीपव्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित व्रत। चैत्र शुक्लपक्षसे आरंभ करके ७ दिन जम्बू आदि सप्त द्वीपों-की पूजा करनी होगी।

१८८। धनसंक्रान्ति व्रत—स्कन्दपुराणमें कथित व्रत। महाविषुव संक्रान्तिसे ले कर एक वर्ष प्रति संक्रा-न्तिको यह व्रत करना चाहिये। एक वर्ष पूरा होने पर प्रतिष्ठा विधेय है।

१८९। धनावाप्ति व्रत—धर्मोत्तरकथित व्रत। श्रावण पूर्णिमाके बाद प्रतिपद् तिथिसे यह व्रत विहित हुआ है। इस व्रतके फलसे निर्धन धनवान् होता है।

१९०। धन्यव्रत—वराहपुराणमें कथित व्रत। अग्र-हायण मासके शुक्लपक्षकी प्रतिपद् तिथिमें उपवास करके रातको यह व्रत करना होता है।

१९१। धरा व्रत—पद्मपुराणमें कथित व्रत। उत्तरायणमें शुभदिनमें काञ्चनमयी धरा प्रस्तुत करके यह व्रत करना होता है।

१९२। धर्म व्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित व्रत। शुक्लपक्षकी दशमी तिथिमें धर्मराजके उद्देशसे यह व्रत करना होता है।

१९३। धान्य व्रत—स्कन्दपुराणमें कथित व्रत। विषुव-संक्रान्तिमें सूर्यदेवके उद्देशसे यह व्रत करना होता है।

१९४। धान्यसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणमें कथित व्रत। शुक्ला सप्तमीमें यह व्रत किया जाता है।

१९५। धाम त्रिरात्र व्रत—पद्मपुराणमें कथित व्रत। फाल्गुन मासकी पूर्णिमासे तीन दिन यह व्रत करना होता है।

१९६। धारा व्रत—भविष्योत्तर कथित व्रत। चैत्रमाससे आरम्भ करके यह व्रत किया जाता है।

१९७। ध्वजनवमी व्रत—भविष्योत्तरकथित व्रत। पौष मासकी शुक्ला नवमीका नाम ध्वजनवमी है। इस तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

१९८। ध्यान व्रत—विष्णुधर्मोत्तरकथित व्रत। चैत्र माससे आरम्भ करके प्रतिदिन यह व्रत करना पड़ेगा। यह व्रत द्वादश वत्सरसाध्य है।

१९९। नक्तचतुर्थी व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत। विनायकचतुर्थीमें यह व्रत किया जाता है।

२००। नक्षत्रपुरुष व्रत—मत्स्यपुराणोक्त व्रत। चैत्र मासमें यह व्रत करना होता है।

२०१। नक्षत्रार्घ्य व्रत—देवीपुराणोक्त व्रत। मृगशिरा नक्षत्रसे आरम्भ करके यह व्रत किया जाता है।

२०२। नदी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। चैत्रमास-के शुक्लपक्षसे ले कर ७ दिन यथाक्रम ह्रदिनी, ह्लादिनी, पावनी, सीता, इक्षु, सिन्धु और भागीरथी नदीकी पूजा करे।

२०३। नन्द व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। फाल्गुन-मासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी तिथिमें उपवास करके यह व्रत करे।

२०४। नन्दादि व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। रविवार-को यह व्रत करना चाहिये।

२०५। नन्दा व्रत—देवीपुराणोक्त व्रत। श्रावण मासमें यह व्रत किया जाता है।

२०६। नन्दासप्तमी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। अग्रहायण मासकी शुक्ला सप्तमीका नाम नन्दासप्तमी है। इस सप्तमी तिथिमें उक्त व्रत करना होता है।

२०७। नयनप्रदसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। अग्रहायण मासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें यदि हस्ता नक्षत्रका योग हो, तो उसे नयनप्रदसप्तमी कहते हैं। इस सप्तमीमें व्रत करना होता है। यह व्रत वर्षसाध्य है।

२०८। नरकपूर्णिमा व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। पूर्णिमा तिथिसे आरम्भ करके एक वर्ष प्रति पूर्णिमाको यह व्रत किया जाता है।

२०९। नरसिंहचतुर्दशी व्रत—नरसिंहपुराणोक्त व्रत। वैशाख मासकी शुक्ला चतुर्दशीको नरसिंह-चतुर्दशी कहते हैं। इस चतुर्दशी तिथिमें उक्त व्रत करना होता है। यह व्रत प्रति वर्ष करनेका विधान है।

२१०। नरसिंहत्रयोदशी व्रत—नरसिंहपुराणमें कथित व्रत। वृहस्पतिवारको यदि त्रयोदशी तिथि हो, तो उसी दिन यह व्रत होगा।

२११। नक्षत्राष्टवास व्रत—मत्स्यपुराणमें वर्णित व्रत। नवमी, अष्टमी, पूर्णिमा और चतुर्दशी इन सब तिथियोंमें उपवास करके यह व्रत करना होता है।

२१२। नवरात्र व्रत—देवीपुराणमें वर्णित व्रत। देवीभागवत आदि पुराणोंमें भी इस व्रतका विशेष विधान है। आश्विन शुक्ला प्रतिपद्से भगवती दुर्गा देवीके प्रीतिकामनाके लिये नवमी पर्यन्त ९ दिन यह व्रत करना होता है।

२१३। नागदष्टोद्धरणपञ्चमी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। भाद्र मासकी शुक्ला पञ्चमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

२१४। नागपञ्चमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। नागपञ्चमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

२१५। नागव्रत—कूर्मपुराणमें वर्णित व्रत। कार्त्तिक मासके शुक्लपक्षमें यह व्रत होता है।

२१६। नानाफलपूर्णिमा व्रत—भविष्योत्तरकथित व्रत। कार्त्तिक मासकी शुक्ला पूर्णिमा तिथिमें नाना प्रकारके फल द्वारा यह व्रत करना होता है।

२१७। नामतृतीया व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। यह व्रत प्रति मासकी तृतीया तिथिमें करना होता है। यह वर्षसाध्य है।

२१८। नामद्वादशी व्रत—विष्णुरहस्योक्त व्रत। अग्रहायण मासकी शुक्ला द्वादशी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

२१९। नामनवमी व्रत—भविष्यपुराणमें वर्णित व्रत। आश्विन मासके शुक्लपक्षकी नवमी तिथिमें भगवती दुर्गादेवीके उद्देशसे यह व्रत किया जाता है।

२२०। नामसप्तमी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। चैत्र मासके शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिसे आरम्भ करके प्रति मासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें यह व्रत करना होगा।

२२१। नित्यमार्त्तण्डसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। षष्ठी, सप्तमी तिथि, संक्रान्ति वा रविवारके दिन यह व्रत किया जाता है।

२२२। निर्जलैकादशी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। ज्येष्ठ और आषाढ़ मासकी शुक्ला एकादशीके दिन निरम्बु उपवास करके यह व्रत करना होता है।

२२३। नीराजनद्वादशी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। कार्त्तिक मासकी शुक्ला द्वादशीको नीराजनद्वादशी कहते हैं। इस तिथिमें उक्त व्रत करना होता है।

२२४। नृसिंहद्वादशी व्रत—भविष्यपुराणमें वर्णित व्रत। फाल्गुन मासके कृष्णपक्षकी द्वादशी तिथिमें यह व्रत करना होगा।

२२५। पक्षसन्धि व्रत—पद्मपुराणमें वर्णित व्रत। पक्षसन्धि प्रतिपद् तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

२२६। पञ्चपदपूर्णिमा व्रत—भविष्योत्तरमें वर्णित व्रत। पांच पूर्णिमा तिथि पांच वत्सरव्यापक व्रत।

२२७। पञ्चपिण्डिकागौरी व्रत—स्कन्दपुराणके नागरखण्डोक्त व्रत। श्रावण मासके शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिमें यह व्रत करना होता है।

२२८। पञ्चमहापातकनाशनद्वादशी व्रत—भविष्यपुराणमें वर्णित व्रत। श्रावण मासकी शुक्ला द्वादशी तिथिसे आरम्भ करके यह व्रत करे।

२२९। पञ्चमहाभूत पञ्चमी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। चैत्र मासकी शुक्ला पञ्चमी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

२३०। पञ्चमूर्त्ति व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। यह चैत्र मासकी शुक्ला पञ्चमी तिथिमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और पृथिवी इन पञ्चमूर्त्तिके उद्देशसे यह व्रत करना होगा।

२३१। पञ्चाग्निसाधनरूपा तृतीया व्रत। भविष्योत्तरमें लिखित व्रत। ज्येष्ठ मासकी शुक्ला तृतीया तिथिमें साधन करके यह व्रत करे।

२३२। पत्र व्रत—भविष्योत्तरमें वर्णित व्रत। यह आषाढ़ मासके आदिमें करना होता है। यह व्रत एक वर्ष करके पीछे उसकी प्रतिष्ठा करनी होती है।

२३३। पदार्थ व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। अग्रहायण मासके शुक्लपक्षकी दशमी तिथिमें यह व्रत आरम्भ करके एक वर्ष तक करना होता है।

२३४। पद्मनाभद्वादशी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरमें वर्णित व्रत। आश्विन मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

२३५। पयोव्रत—पद्मपुराणमें वर्णित व्रत। यह

व्रत अमावस्या तिथिमें आरम्भ करके एक वर्ष तक करना होता है।

२३६। पर्वानन्द व्रत—भविष्यपुराणमें वर्णित व्रत। यह व्रत भी अमावस्याके दिन आरम्भ करके एक वर्ष पर्यन्त किया जाता है।

२३७। पर्वभोजन व्रत—पद्मपुराणमें कथित व्रत। पर्वके दिन पृथिवी पर अन्न रख कर भोजन करके यह व्रत करना होता है।

२३८। पाताल व्रत—विष्णुधर्मोत्तरमें कथित व्रत। चैत्र मासकी कृष्णा प्रतिपद तिथिमें आरम्भ करके प्रति दिन यह व्रत करना होता है।

२३९। पाप व्रत—नरसिंहपुराणमें वर्णित व्रत। माघमासकी शुक्ला एकादशीसे आरम्भ करके पूर्णिमा पर्यन्त यह व्रत किया जाता है।

२४०। पापनाशनीसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणमें कथित व्रत। शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिमें यदि हस्तानक्षत्र हो तो उसे पापनाशिनी सप्तमी कहते हैं। इस सप्तमी तिथिमें उक्त व्रत करना होता है।

२४१। पापमोचन व्रत—सौरपुराणमें कथित व्रत। बिल्ववृक्षका आश्रय करके बारह दिन उपवास करके यह व्रत करना होता है। इस व्रतके फलसे ब्रह्महत्याका पाप विनष्ट होता है।

२४२। पापनाशसंक्रान्ति व्रत—स्कन्दपुराणमें वर्णित व्रत। संक्रान्तिमें पापमोचनके लिये यह व्रत करना होता है।

२४३। पाली चतुर्दशी व्रत—भविष्योत्तरमें कथित व्रत। भाद्रमासके शुक्लपक्षकी चतुर्दशी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

२४४। पाशुपत व्रत—वह्निपुराणमें कथित व्रत। द्वादशी तिथिमें एक बार भोजन, त्रयोदशीमें अयाचित भोजन और चतुर्दशीमें उपवास करके महादेवके उद्देशसे यह व्रत करना होता है।

२४५। पितृ व्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित व्रत। यह चैत्र प्रतिपद् तिथिसे आरम्भ होता है।

२४६। पिपीतकीद्वादशी व्रत—तिथितत्त्व धृत व्रत। वैशाख मासकी शुक्ला द्वादशीको पिपीतकी द्वादशी कहते हैं। इस द्वादशीमें उक्त व्रत करना होता है।

२४७। पुण्डरीकप्राप्ति व्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित व्रत। द्वादशी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

२४८। पुत्रकाम व्रत—पद्मपुराणमें कथित व्रत। श्रावण मासकी पूर्णिमा तिथिमें पुत्रकी कामना करके सपत्नीक यह व्रत करना होता है।

२४९। पुत्रप्राप्ति-षष्ठी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरकथित व्रत। वैशाख मासकी शुक्ला पञ्चमी तिथिमें यह व्रत किया जाता है। यह व्रत एक वर्ष तक चलता है।

२५०। पुत्रप्राप्ति व्रत—देवीपुराणमें कथित व्रत। श्रावण मासकी पूर्णिमा तिथिमें यह व्रत करना होता है।

२५१। पुत्रसप्तमी व्रत—वराहपुराणोक्त व्रत। भाद्रमासकी शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिमें उपवास रह कर पुत्रकामनाके लिये यह व्रत करना होता है।

२५२। पुत्रीयसप्तमी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरकथित व्रत। अग्रहायण मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

२५३। पुत्रोत्पत्ति व्रत—आदित्यपुराणमें कथित व्रत। प्रत्येक श्रवणा नक्षत्रमें यह व्रत करना होता है।

२५४। पुरश्चरणसप्तमी व्रत—स्कन्दपुराणके नागरखण्डोक्त व्रत। माघ मासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

२५५। पुष्पद्वितीया व्रत—भविष्यपुराणमें कथित व्रत। कार्त्तिक मासकी शुक्ला द्वितीया तिथिमें यह व्रत करना होता है। यह व्रत एक वर्षमें होता है।

२५६। पूर्णिमा व्रत—विष्णुधर्मोत्तरकथित यह व्रत करना होता है। एतद्भिन्न अग्निपुराणमें श्रावणी पूर्णिमाके दिन और भी एक पूर्णिमाव्रतका विधान है।

२५७। पृथिवीपञ्चमी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। शुक्लापञ्चमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

२५८। पौरन्दरपञ्चमी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। पञ्चमी तिथिमें इन्द्रके उद्देशसे यह व्रत करना होता है।

२५९। प्रतिपुरुष द्वितीयाव्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। चैत्रमासकी शुक्लाद्वितीया तिथिमें उपवासी रह कर व्रत करना चाहिये।

२११। [illegible] व्रत—मत्स्यपुराणमें वर्णित व्रत। सप्तमी, अष्टमी, पूर्णिमा और चतुर्दशी इन चार तिथियोंमें उपवास करके यह व्रत करना होता है।

२१२। नवरात्रि व्रत—देवीपुराणमें वर्णित व्रत। देवीभागवत आदि पुराणोंमें भी इस व्रतका विशेष विधान है। आश्विन शुक्ला प्रतिपद्से भगवती दुर्गा देवीके प्रीतिकामनाके लिये नवमी पर्यन्त ९ दिन यह व्रत करना होता है।

२१३। नागदष्टोद्धरणपञ्चमी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। भाद्र मासकी शुक्ला पञ्चमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

२१४। नागपञ्चमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। नागपञ्चमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

२१५। नागव्रत—कूर्मपुराणमें वर्णित व्रत। कार्त्तिक मासके शुक्लपक्षमें यह व्रत होता है।

२१६। नानाफलपूर्णिमा व्रत—भविष्योत्तरकथित व्रत। कार्त्तिक मासकी शुक्ला पूर्णिमा तिथिमें नाना प्रकारके फल द्वारा यह व्रत करना होता है।

२१७। नामतृतीया व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। यह व्रत प्रति मासकी तृतीया तिथिमें करना होता है। यह वर्षसाध्य है।

२१८। नामद्वादशी व्रत—विष्णुरहस्योक्त व्रत। अग्रहायण मासकी शुक्ला द्वादशी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

२१९। नामनवमी व्रत—भविष्यपुराणमें वर्णित व्रत। आश्विन मासके शुक्लपक्षकी नवमी तिथिमें भगवती दुर्गादेवीके उद्देशसे यह व्रत किया जाता है।

२२०। नामसप्तमी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। चैत्र मासके शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिसे आरम्भ करके प्रतिमासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें यह व्रत करना होता।

२२१। निम्बमार्त्तण्डसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। षष्ठी, सप्तमीतिथि, संक्रान्ति वा रविवारके दिन यह व्रत किया जाता है।

२२२। निर्जलैकादशी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। ज्येष्ठ और आषाढ़ मासकी शुक्ला एकादशीके दिन निरम्बु उपवास करके यह व्रत करना होता है।

२२३। नीराजनद्वादशी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। कार्त्तिक मासकी शुक्ला द्वादशीको नीराजनद्वादशी कहते हैं। इस तिथिमें उक्त व्रत करना होता है।

२२४। पुष्टिद्वादशी व्रत—भविष्यपुराणमें वर्णित व्रत। फाल्गुन मासके कृष्णपक्षकी द्वादशी तिथिमें यह व्रत करना होता।

२२५। पक्षसन्धि व्रत—पद्मपुराणमें वर्णित व्रत। पक्षसन्धि प्रतिपद् तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

२२६। पञ्चघटपूर्णिमा व्रत—भविष्योत्तरमें वर्णित व्रत। माघ पूर्णिमा तिथि पांच घटदानरूप व्रत।

२२७। पञ्चपिण्डिकागौरी व्रत—स्कन्दपुराणके नागरखण्डोक्त व्रत। श्रावण मासके शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिमें यह व्रत करना होता है।

२२८। पञ्चमहापातकनाशद्वादशी व्रत—भविष्यपुराणमें वर्णित व्रत। श्रावण मासकी शुक्ला द्वादशी तिथिसे आरम्भ करके यह व्रत करे।

२२९। पञ्चमहाभूत पञ्चमी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। चैत्र मासकी शुक्ला पञ्चमी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

२३०। पञ्चमूर्त्ति व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। यह चैत्र मासकी शुक्ला पञ्चमी तिथिमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और पृथिवी इन पञ्चमूर्त्तिके उद्देशसे यह व्रत करना होता।

२३१। पञ्चाग्निसाधनरूपा तृतीया व्रत। भविष्योत्तरमें लिखित व्रत। ज्येष्ठ मासकी शुक्ला तृतीया तिथिमें साधन हो कर यह व्रत करे।

२३२। पल व्रत—भविष्योत्तरमें वर्णित व्रत। यह [illegible] आदिमें करना होता है। यह व्रत एक वर्ष करके पीछे उसकी प्रतिष्ठा करनी होती है।

२३३। पदार्थ व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। अग्रहायण मासके शुक्लपक्षकी दशमी तिथिमें यह व्रत आरम्भ करके एक वर्ष तक करना होता है।

२३४। पद्मनाभद्वादशी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरमें वर्णित व्रत। आश्विन मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

२३५। पशुव्रत—पद्मपुराणमें वर्णित व्रत। यह

व्रत अमावस्या तिथिमें आरम्भ करके एक वर्ष तक करना होता है।

२३६। पर्यन्त व्रत—भविष्यपुराणमें वर्णित व्रत। यह व्रत भी अमावस्याके दिन आरम्भ करके एक वर्ष पर्यन्त किया जाता है।

२३७। पर्णभोजन व्रत—पद्मपुराणमें कथित व्रत। पर्वके दिन पृथिवी पर अन्न रख कर भोजन करके यह व्रत करना होता है।

२३८। पाताल व्रत—विष्णुधर्मोत्तरमें कथित व्रत। चैत्र मासकी कृष्णा प्रतिपद् तिथिमें आरम्भ करके प्रति दिन यह व्रत करना होता है।

२३९। पात्र व्रत—नरसिंहपुराणमें वर्णित व्रत। माघमासकी शुक्ला एकादशीसे आरम्भ करके पूर्णिमा पर्यन्त यह व्रत किया जाता है।

२४०। पापनाशनीसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणमें कथित व्रत। शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिमें यदि हस्तानक्षत्र हो तो उसे पापनाशिनी सप्तमी कहते हैं। इस सप्तमी तिथिमें उक्त व्रत करना होता है।

२४१। पापमोचन व्रत—सौरपुराणमें कथित व्रत। बिल्ववृक्षका आश्रय करके बारह दिन उपवास करके यह व्रत करना होता है। इस व्रतके फलसे ब्रह्महत्याका पाप विनष्ट होता है।

२४२। पापनाशसंक्रान्ति व्रत—स्कन्दपुराणमें वर्णित व्रत। संक्रान्तिमें पापमोचनके लिये यह व्रत करना होता है।

२४३। पाली चतुर्दशी व्रत—भविष्योत्तरमें कथित व्रत। भाद्रमासके शुक्लपक्षकी चतुर्दशी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

२४४। पाशुपत व्रत—वह्निपुराणमें कथित व्रत। द्वादशी तिथिमें एक बार भोजन, त्रयोदशीमें अयाचित भोजन और चतुर्दशीमें उपवास करके महादेवके उद्देशसे यह व्रत करना होता है।

२४५। पितृ व्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित व्रत। यह चैत्र प्रतिपद् तिथिसे आरम्भ होता है।

२४६। पिपीतकीद्वादशी व्रत—तिथितत्त्व धृत व्रत। वैशाख मासकी शुक्ला द्वादशीको पिपीतकी द्वादशी कहते हैं। इस द्वादशीमें उक्त व्रत करना होता है।

२४७। पुण्डरीकप्राप्ति व्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित व्रत। द्वादशी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

२४८। पुत्रकाम व्रत—पद्मपुराणमें कथित व्रत। श्रावण मासकी पूर्णिमा तिथिमें पुत्रकी कामना करके सपत्नीक यह व्रत करना होता है।

२४९। पुत्रप्राप्ति-षष्ठी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरकथित व्रत। वैशाख मासकी शुक्ला पञ्चमी तिथिमें यह व्रत किया जाता है। यह व्रत एक वर्ष तक चलता है।

२५०। पुत्रप्राप्ति व्रत—देवीपुराणमें कथित व्रत। श्रावण मासकी पूर्णिमा तिथिमें यह व्रत करना होता है।

२५१। पुत्रसप्तमी व्रत—वराहपुराणोक्त व्रत। भाद्रमासकी शुक्लपक्षके सप्तमी तिथिमें उपवास रह कर पुत्रकामनाके लिये यह व्रत करना होता है।

२५२। पुत्रीयसप्तमी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरकथित व्रत। अग्रहायण मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

२५३। पुत्रोत्पत्ति व्रत—आदित्यपुराणमें कथित व्रत। प्रत्येक अथवा मासमें यह व्रत करना होता है।

२५४। पुरश्चरणसप्तमी व्रत—स्कन्दपुराणके नागरखण्डोक्त व्रत। माघ मासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

२५५। पुष्पद्वितीया व्रत—भविष्यपुराणमें कथित व्रत। कार्त्तिक मासकी शुक्ला द्वितीया तिथिमें यह व्रत करना होता है। यह व्रत एक वर्षमें होता है।

२५६। पूर्णिमा व्रत—विष्णुधर्मोत्तरकथित यह व्रत करना होता है। एतद्भिन्न अग्निपुराणमें श्रावणी पूर्णिमाके दिन और भी एक पूर्णिमाव्रतका विधान है।

२५७। पृथिवीदशमी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। शुक्लादशमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

२५८। पौरन्दरपञ्चमी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। पञ्चमी तिथिमें इन्द्रके उद्देशसे यह व्रत करना होता है।

२५९। प्रहतिपुष्कर द्वितीयाव्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। चैत्रमासकी शुक्ला द्वितीया तिथिमें उपवासी रह कर व्रत करना चाहिये।

२६० । फलत्याग व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत । कार्त्तिक वा वैशाख मासकी प्रतिपद् तिथिमें करना होता है ।

२६१ । फलदा व्रत—काशीखण्डोक्त व्रत । यह व्रत कार्त्तिकमासकी चतुर्दशी तिथिमें आरम्भ करके एक वर्ष तक प्रति मासकी चतुर्दशी तिथिमें करना चाहिये ।

२६२ । फलव्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत । अष्टमी? तिथिमें [illegible] यह व्रत करना होता है ।

२६३ । फला व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत । एक पक्ष तक उपवास करके सर्वफलप्रद उत्तम व्रत है ।

२६४ । फलागमन व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत । एक वर्ष तक एक बार भोजन करके यह व्रत करना होता है ।

२६५ । फल व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत । विष्णु शयनसे प्रारम्भ करके चार मास तक यह व्रत करना होता है ।

२६६ । फलतृतीया व्रत—पद्मपुराणके प्रभासखण्डोक्त व्रत । शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिमें आरम्भ करके एक वर्ष तक यह व्रत किया जाता है ।

२६७ । फलषष्ठी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत । माघमासकी शुक्ला षष्ठी तिथिमें यह व्रत करना होता है ।

२६८ । फलसंक्रान्ति व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत । महाविषुवसंक्रान्तिसे आरम्भ कर प्रति संक्रान्तिमें विविध फलदान द्वारा यह व्रत किया जाता है । एक वर्षके बाद इसकी प्रतिष्ठा होती है ।

२६९ । फलसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत । भाद्रमासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें यह व्रत करना होता है ।

२७० । फाल्गुन व्रत—ब्रह्माण्डोक्त व्रत । फाल्गुन मासमें प्रतिदिन दिनमें एक बार भोजन करके यह व्रत करना होता है ।

२७१ । बलिराज्य व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत । कार्त्तिक मासकी अमावस्याको पूर्वाह्नमें यह व्रत करना होता ।

२७२ । बुधवासरी व्रत—ब्रह्मपुराणोक्त व्रत । भाद्र मासकी शुक्ला अष्टमीके दिन यह व्रत किया जाता है ।

२७३ । बुधव्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत । विशाखा नक्षत्रमें आरम्भ करके ७ दिन यह व्रत करना होता है ।

२७४ । बुधाष्टमी व्रत—शुक्लाष्टमी तिथिमें यदि बुधवार हो, तो उसी दिन यह व्रत करे ।

२७५ । ब्रह्मकूर्च व्रत—ब्रह्मपुराणोक्त व्रत । चतुर्दशी तिथिमें उपवास करके पूर्णिमामें यह व्रत करना होता है ।

२७७ । ब्रह्मपदप्राप्ति व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत । चैत्र मासकी शुक्ला प्रतिपद् तिथिसे आरम्भ करके यह व्रत करना होता है ।

२७८ । ब्रह्मण्यावाप्ति व्रत—ब्रह्माण्डखण्डोक्त व्रत । यह ज्येष्ठ मासकी पूर्णिमा तिथिमें होता है ।

२७९ । ब्रह्मा व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत । द्वितीया तिथिमें यह व्रत करना होता है ।

२८० । ब्रह्मसावित्री व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत । भाद्र मासकी त्रयोदशी तिथिसे आरम्भ करके तीन दिन यह व्रत करना होता है ।

२८१ । भर्तृप्राप्ति व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत । फाल्गुन मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिमें यह व्रत करना होता है ।

२८२ । भद्रकाली व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत । कार्त्तिक मासके शुक्लपक्षकी नवमी तिथिमें यह व्रत करना होता है ।

२८३ । भद्रचतुष्टय व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत । अग्रहायण मासकी शुक्ला प्रतिपद्से चतुर्थी तिथि पर्यन्त यह व्रत किया जाता है ।

२८४ । भद्रतृतीया व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत । यह कार्त्तिक मासकी शुक्ला तृतीया तिथिमें करना होता है ।

२८५ । भद्रा सप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत । शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिमें यदि हस्ता नक्षत्र हो, तो उसे भद्रासप्तमी कहते हैं । इस व्रतमें चतुर्थीके दिन एक बार भोजन, पञ्चमीमें रात्रि भोजन, षष्ठी तिथिमें अयाचित भोजन करके पीछे इस सप्तमी तिथिमें उपवास करना होता ।

२८६। भवानी तृतीया व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत। तृतीया तिथिमें निराहारवर्ती भवानीदेवीके उद्देशसे यह व्रत करे।

२८७। भवानी व्रत—लिङ्गपुराणोक्त व्रत। अमावस्या और पूर्णिमा तिथिमें भवानीकी प्रीतिकामनासे व्रतानुष्ठान करना होता है।

२८८। भाद्रपद व्रत—महाभारतमें लिखित व्रत। समस्त भाद्रमासमें एकाहारी हो कर यह व्रत करना होता है।

२८९। भानुव्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत। सप्तमी तिथिमें रातको भोजन करके सूर्यके उद्देशसे यह व्रत करना होता है।

२९०। भास्करव्रत—कालिकापुराणोक्त व्रत। षष्ठी तिथिमें उपवास करके सप्तमीको सूर्यकी प्रीति कामनासे यह व्रत किया जाता है।

२९१। भीमद्वादशी व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत। माघ मासकी शुक्ला द्वादशीको भीमद्वादशी कहते हैं। इस द्वादशी तिथिमें उक्त व्रत करना होता है।

२९२। भीम व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत, उपवास करके धेनुदानरूप व्रत।

२९३। भीष्मपञ्चक व्रत—नारदपुराणोक्त व्रत। कार्त्तिक शुक्ला एकादशीसे पूर्णिमा पर्यन्त तिथिको भीष्मपञ्चक कहते हैं। इस भीष्मपञ्चकमें व्रताचरण करना होता है।

२९४। भूशाजन व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत। इस व्रतमें एक वर्ष तक मिट्टी पर भातादि रख कर भोजन करना होता है।

२९५। भूमि व्रत—कालोत्तरोक्त व्रत। संक्रान्तिमें यदि शुक्ला चतुर्दशी हो, तो उसी दिन यह व्रत करना होगा।

२९६। भौमसंक्रान्ति व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत। संक्रान्तिमें यह व्रत किया जाता है।

२९७। भौमपालि व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। ज्येष्ठी पूर्णिमाके बाद प्रतिपत् तिथिसे यह व्रत आरम्भ करना होगा।

२९८। भौमवार व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत। मङ्गलवारको यह व्रत करना होता है।

२९९। भौम व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। मङ्गलवारको यदि स्वाति नक्षत्र पड़े, तो यह व्रत विधेय है।

३००। मङ्गला व्रत—देवीपुराणोक्त व्रत। आश्विन, माघ, चैत्र वा श्रावण मासकी शुक्लाष्टमीसे शुक्लाष्टमी पर्यन्त यह व्रत करना होता है।

३०१। मङ्गलसप्तमी व्रत। सप्तमी तिथिमें उपवासी रह कर यह व्रत करना होगा।

३०२। मत्स्यद्वादशी व्रत—वराहपुराणोक्त व्रत। अग्रहायण मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

३०३। मदनद्वादशी व्रत—मत्स्यपुराणोक्त व्रत। चैत्र शुक्लाद्वादशीको मदनद्वादशी कहते हैं। इस द्वादशी तिथिमें उक्त व्रत करना होता है।

३०४। मधुकतृतीया व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। फाल्गुनकी शुक्ला तृतीयाका नाम मधुकतृतीया है। इस तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

३०५। मनोरथद्वादशी व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत। फाल्गुन मासके शुक्लापक्षकी एकादशी तिथिमें उपवास करके द्वादशी तिथिमें करना होता है।

३०६। मनोरथपूर्णिमा व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। कार्त्तिकमासकी पूर्णिमा तिथिसे आरम्भ करके एक वर्ष तक यह व्रत किया जाता है।

३०७। मनोरथसंक्रान्ति व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत। उत्तरायण-संक्रान्तिमें यह व्रत आरम्भ करके एक वर्ष तक करना होता है।

३०८। मन्दारषष्ठी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। माघमासके शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिको मन्दारषष्ठी कहते हैं। इस षष्ठी तिथिमें उक्त व्रत करना होगा।

३०९। मन्दारसप्तमी व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत। माघमासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

३१०। मरीचसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। सप्तमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

३११। मार्त्तण्डसप्तमी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। पौषमासके शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

३१२। महाद्वादशी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। श्रव-

३६१ । रुद्र व्रत—पद्मपुराणोक्त । एक वर्ष तक प्रति दिन सिर्फ एक बार भोजन करके बाद और दान करनेके लिये रुद्रदेवके उद्देशसे यह करना होता है ।

३६२ । रूपसप्तमी—भविष्यपुराणोक्त । पौषमासमें यह करना होता है ।

३६३ । रूपस्नान—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । फाल्गुनमासकी कृष्णाष्टमी तिथिमें यह व्रत किया जाता है ।

३६४ । रूपसंक्रान्ति—स्कन्दपुराणोक्त । संक्रान्तिके दिन यह करना होता ।

३६५ । रूपावाप्ति व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । फाल्गुनी पूर्णिमाके बाद प्रतिपद्‌से यह आरम्भ होता है ।

३६६ । रोहिणीद्वादशी—भविष्योत्तरोक्त । श्रावण मासकी कृष्णा द्वादशीको रोहिणीद्वादशी कहते हैं । इसी तिथिमें यह व्रत करना होता ।

३६७ । रोहिणी व्रत—स्कन्दपुराणमें वर्णित व्रत । रोहिणी नक्षत्रमें यह किया जाता है ।

३६८ । ललिताष्टमी व्रत—स्कन्दपुराणमें कथित व्रत । श्रावण मासीय अष्टमी तिथिमें यदि ... नक्षत्र हो, तो ललिताके उद्देशसे यह करना होता है ।

३६९ । लक्ष्मीनारायण व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । फाल्गुन मासकी पूर्णिमा तिथिमें यह किया जाता है ।

३७० । लक्ष्मीपञ्चमी व्रत—पद्मपुराणमें कथित व्रत । पञ्चमी तिथिमें उपवास करके यह करना होता है । यह सर्वसम्पत्प्रद व्रत है ।

३७१ । ललितातृतीया—भविष्योत्तरोक्त । भाद्रके शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिका नाम ललितातृतीया है । इस तिथिमें उक्त व्रत करना होता है ।

३७२ । ललिता व्रत—स्कन्दपुराणोक्त । आश्विन शुक्लपक्षकी ... तिथिमें यह करना होता ।

३७३ । ललिता षष्ठी—भविष्योत्तरोक्त । भाद्र मासके शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिमें यह किया जाता है ।

३७४ । लावण्यप्राप्ति—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत । कार्त्तिककी पूर्णिमाके बाद प्रतिपद्‌से यह करना होता है ।

३७५ । लोक व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । चैत्रमासके शुक्ल पक्षकी प्रतिपद् तिथिसे ... दिन तक करना होता है ।

३७६ । वटसावित्री—स्कन्दपुराणोक्त । ज्येष्ठ मासकी पूर्णिमा तिथिमें यह किया जाता है ।

३७७ । वत्सचतुर्थी—अग्रहायण मासकी शुक्ला चतुर्थी तिथिको वत्सचतुर्थी कहते हैं । इस दिन उक्त व्रत करना होता है ।

३७८ । वनव्रत—पद्मपुराणोक्त । ... करके ७ दिन यह करना होता ।

३७९ । वराटिकासप्तमी—भविष्यपुराणोक्त । किसी किसी सप्तमी तिथिमें यह किया जा सकता है ।

३८० । वराहद्वादशी—वराहपुराणोक्त । माघ मासकी शुक्ला द्वादशीको वराहद्वादशी कहते हैं । इस दिन उक्त व्रत करना चाहिये ।

३८१ । वरुणव्रत—पद्मपुराणोक्त । रात्रिकालमें जलस्थान कर प्रभातकालमें गोदानरूप व्रत ।

३८२ । वसुव्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । चैत्रमासके शुक्ल पक्षकी अष्टमी तिथिसे आरम्भ करके यह व्रत किया जाता है ।

३८३ । वस्त्रविलास व्रत—भविष्योत्तरोक्त । चैत्र मासमें तीन दिन रातको भोजन करके यह व्रत करना होता है ।

३८४ । वह्नि व्रत—विष्णुपुराणोक्त । पौषमासकी अमावस्याके दिन यह किया जाता है ।

३८५ । वामनद्वादशी व्रत—भविष्योत्तरोक्त । चैत्रमासकी शुक्ला द्वादशीको वामनद्वादशी कहते हैं । इसी दिन उक्त व्रत करना होता है ।

३८६ । वायुव्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । ज्येष्ठमासकी शुक्ला चतुर्दशीसे आरम्भ करके यह करना होता है ।

३८७ । वारि व्रत—पद्मपुराणोक्त । चैत्रादि चार मास तक यह व्रत करना होता है ।

३८८ । विजयाद्वादशी—भविष्यपुराणोक्त । शुक्ला द्वादशी तिथिमें पुष्या नक्षत्र होनेसे उसी दिन यदि व्रत किया जावे, तो महापुण्य होता है । ब्रह्मवैवर्तपुराणमें भाद्रमासके शुक्ला द्वादशी तिथिको श्रवण ... और ... स्थान है ।

...—भविष्योत्तरोक्त शुक्ल पक्षकी

सप्तमी तिथिमें यदि रविवार पड़े, तो उसे विजयासप्तमी कहते हैं। इस सप्तमीमें उक्त व्रत करना होता है।

३९१। विजयासप्तमीव्रत—भविष्यपुराणोक्त। संक्रान्तिमें सप्तमी तिथि होनेसे उसी दिन यह व्रत किया जाता है।

३९२। विद्याप्रतिपद् व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। पौष मासकी पूर्णिमाके बाद प्रतिपद् तिथिमें यह व्रत करना होता है।

३९३। विद्याप्राप्तिव्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। पौषी पूर्णिमाके बाद प्रतिपद् तिथिसे यह व्रत करना होता है।

३९४। विधानद्वादशसप्तमी व्रत—आदित्य पुराणोक्त। चैत्र मासकी शुक्लासप्तमी तिथिसे आरम्भ करके यह व्रत समाप्त करना होता है। पीछे द्वादश मासकी सप्तमी तिथिमें एक ही नियमसे यह व्रत करना होगा। यथाविधान द्वादशसप्तमीमें यह व्रत किया जाता है, इसीसे इसको विधानद्वादशसप्तमी व्रत कहते हैं।

३९५। विभूतिद्वादशी—मत्स्यपुराणोक्त। कार्त्तिक, अग्रहायण, फाल्गुन, वैशाख वा आषाढ़ मासकी शुक्ला दशमी तिथिमें लघु भोजन तथा उसके बाद एकादशीके दिन यह व्रत करे।

३९६। विवत्रिरात्रव्रत—स्कन्दपुराणोक्त। ज्येष्ठ मासकी पूर्णिमा तिथिमें ज्येष्ठा नक्षत्र होनेसे उसी दिन यह व्रत होगा।

३९७। विशोकद्वादशी—पद्मपुराणोक्त। आश्विन मासकी शुक्ला द्वादशी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

३९८। विशोकषष्ठी—भविष्योत्तरोक्त। माघ मासकी शुक्ला षष्ठी तिथिमें शोकनाशकी कामनासे यह व्रत करना होता है।

३९९। विशोकसंक्रान्ति—स्कन्दपुराणमें लिखित व्रत। विषुवसंक्रान्तिके दिन व्यतीपातयोग होनेसे उसी दिन यह व्रत करना होता है।

४००। विश्वव्रत—भविष्यपुराणोक्त। एकादशी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

४०१। विश्वरूप व्रत—दानोत्तरोक्त। शुक्लाष्टमी तिथिमें यह व्रत करनेका विधान है।

४०२। विष्टिव्रत—भविष्योत्तरोक्त। जिस दिन विष्टिभद्रा तिथि होती है, उसी दिन यह व्रत करना होगा।

४०३। विष्णुदेवका व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। कार्त्तिक मासके प्रथम दिनमें यह व्रत आरम्भ होता है।

४०४। विष्णुव्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। आषाढ़ मास पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रसे आरम्भ करके यह व्रत करना होता है।

४०५। विष्णुमासिद्वादशी—भविष्यपुराणोक्त। द्वादशी तिथिमें उपवास करके विष्णुके उद्देशसे यह व्रत करना होता है।

४०६। विष्णुव्रत—भविष्यपुराणोक्त। यह व्रत भी द्वादशी तिथिमें होता है। पद्मपुराण और विष्णुधर्मोत्तरमें भी इस विष्णुव्रतका विधान है। विष्णुधर्मोत्तरके मतसे पौष मासकी शुक्ला द्वितीया तिथिसे आरम्भ करके यह व्रत करना ही कर्त्तव्य है।

४०७। वेदव्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। चैत्र मासके प्रथमसे आरम्भ करके ज्येष्ठ मासके शेष पर्यन्त यह व्रत करना होता है।

४०८। वैतरणी व्रत—भविष्योत्तरोक्त। अग्रहायण मासकी कृष्णा एकादशी तिथिको वैतरणी तिथि कहते हैं। इस तिथिमें यह व्रत करना होता है।

४०९। वैनायकचतुर्थी—भविष्योत्तरोक्त। चतुर्थी तिथिमें नक्तभोजन करके यह व्रत करना होता है।

४१०। वैशाख व्रत—पद्मपुराणोक्त। वैशाख मासमें प्रति दिन एक बार भोजन करके यह करना होता है।

४११। वैश्वानर व्रत—पद्मपुराणोक्त। वर्षा ऋतुसे आरम्भ करके चार ऋतुमें काष्ठादि दानरूप व्रत।

४१२। वैष्णव व्रत—पद्मपुराणोक्त। आषाढ़से चार मास प्रातःस्नान करके यह व्रत करना उचित है।

४१३। व्यतीपात व्रत—वराहपुराणोक्त। व्यतीपातके दिन यह व्रत करना होगा।

४१४। व्योम व्रत—भविष्यपुराणोक्त। अमावस्याको आर्द्रदान करनेके बाद यह व्रत किया जाता है।

४१५ । [illegible] व्रत—अग्निपुराणोक्त । षष्ठी तिथिमें [illegible] अनुष्ठान करके इसमें सूर्यदेवके उद्देशसे यह व्रत करे ।

४१६ । [illegible]—देवीपुराणोक्त । शुक्ल तृतीया तिथिमें इस व्रतका अनुष्ठान होता है ।

४१७ । [illegible]—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । आश्विन मासकी पूर्णिमा तिथिमें इन्द्रके उद्देशसे यह व्रत करना होता है । पद्मपुराणमें और भी एक व्रतका विधान है ।

४१८ । [illegible]—देवीपुराणोक्त व्रत । शुभ दिनमें शङ्कर और नारायणके उद्देशसे यह व्रत करना होता है ।

४१९ । [illegible] व्रत—कालिकापुराणोक्त । [illegible]मासकी अष्टमी तिथि पड़नेसे यह व्रत करे ।

४२० । शनिव्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत । शनिवार के दिन शनिग्रहको प्रसन्न करनेके लिये यह व्रत किया जाता है ।

४२१ । शर्करासप्तमी व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत । वैशाख मासकी शुक्ला सप्तमी तिथिको इस व्रतका विधान है ।

४२२ । शाकसप्तमी—भविष्यपुराणोक्त । कार्त्तिक मासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें यह व्रत करना होता है ।

४२३ । शान्ताचतुर्थी—भविष्यपुराणोक्त । माघ मासकी शुक्ला चतुर्थीका नाम शान्ता चतुर्थी है, उस दिन यह व्रत करना होता है ।

४२४ । [illegible]—मत्स्यपुराणोक्त । तृतीया तिथिमें [illegible] यह किया जाता है ।

४२५ । [illegible]—भविष्यपुराणोक्त । माघ मासकी शुक्ला चतुर्थी तिथिमें यह व्रत करना होता है ।

४२६ । [illegible]—[illegible] । कार्त्तिक मासकी शुक्ला चतुर्थी तिथिमें [illegible] यह व्रत अनुष्ठेय है ।

४२७ । [illegible]—[illegible] । [illegible] यह व्रत करना होता है ।

४२८ । शिवाचतुर्थी—भविष्योत्तरोक्त । चतुर्थी तिथिमें इस व्रतका विधान है ।

४२९ । शिवचतुर्दशी—मत्स्यपुराणोक्त । मार्गशीर्ष मासकी शुक्ला चतुर्दशीको शिवचतुर्दशी कहते हैं । इस तिथिमें यह व्रत किया जाता है ।

४३० । [illegible] व्रत—भविष्यपुराणोक्त । [illegible] और कृष्णा चतुर्दशी तिथिमें [illegible] यह व्रत करना होता है ।

४३१ । शिवरात्रि व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । हेमन्त ऋतुमें प्रति दिन एक बार करके भोजन तथा [illegible] फाल्गुन मासमें शिवके उद्देशसे विशेष कर यह व्रत करे ।

४३२ । शिवरात्रि—स्कन्दपुराणोक्त । माघ मासकी कृष्णा चतुर्दशीका नाम शिवचतुर्दशी है । इस तिथिमें शिवके उद्देशसे यथाविधान उपोषण यह व्रत कर सकता है ।

४३३ । शिवलिङ्ग व्रत—शिवधर्मोत्तरोक्त । अंगुष्ठ मात्र परिमाण शिवलिङ्ग बनावें, उसके [illegible] स्थापन करे । पीछे पञ्चगव्य और पुष्पादि द्वारा उनकी पूजा करनी होती है ।

४३४ । शिव व्रत—वाराहपुराणोक्त । [illegible] अष्टमी और चतुर्दशी तिथिमें यह व्रत कर्त्तव्य कहा है ।

४३५ । शिवाचतुर्थी । भविष्यपुराणोक्त । भाद्र मासकी शुक्ला चतुर्थीको शिवाचतुर्थी कहते हैं । इस तिथिमें यह व्रत करना होता है ।

४३६ । [illegible] व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । आषाढ़ मासकी पूर्णिमा तिथिमें यह व्रत अनुष्ठेय है ।

४३७ । [illegible]—पद्मपुराणोक्त । [illegible] तिथिमें [illegible] भोजन करके इस व्रतका अनुष्ठान करे ।

४३८ । [illegible] व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । [illegible] प्रति दिन यह व्रत करना होता है ।

४३९ । [illegible] व्रत—भविष्योत्तरोक्त । [illegible] यह करना कर्त्तव्य है ।

४४० । [illegible] व्रत—[illegible]पुराणोक्त । [illegible] तिथिमें उपवास करके यह व्रत करना होता है ।

४४१। शुभद्वादशी—वराहपुराणोक्त। अग्रहायण मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

४४२। शुभसप्तमी—पद्मपुराणोक्त। आश्विन मासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें यह व्रत करनेका विधान है।

४४३। शून्यव्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। एक वर्ष पर्यन्त अमावस्याके दिन उपवास करके यह व्रत करें।

४४४। शील व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। चैत्रमासके शुक्लपक्षसे आरम्भ करके ७ दिन पर्यन्त यह व्रत करनेका विधान है।

४४५। श्रीपनक्षत्रपुरुष व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। फाल्गुन मासके शुक्लपक्षमें जिस दिन हस्तानक्षत्र होता है, उसी दिन यह व्रत होता।

४४६। शौचमहाव्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। पौष मासमें नक्त भोजन करके यह व्रत करना होता है।

४४७। शैवोपवास व्रत—भविष्यपुराणोक्त। दोनों पक्षकी अष्टमी और चतुर्दशी तिथिमें शिवके उद्देशसे उपवास करके यह व्रत किया जाता है।

४४८। श्रीव्रत—वराहपुराणोक्त। आश्विन मासकी शुक्ला नवमी तिथिमें उपवास करके यह व्रत करना होता है।

४४९। श्रवणव्रत—पद्मपुराणोक्त। शुभ दिनमें शाक या बेलपत्रसे पहले उपलेपन करके यह व्रत करे।

४५०। श्रवणा-द्वादशी। भविष्योत्तरोक्त। शुक्ला एकादशी तिथिमें यदि श्रवणा नक्षत्र हो, तो उस एकादशीमें उपवास करके द्वादशी तिथिमें व्रत करे।

४५१। श्रीपञ्चमी—गरुड़पुराणोक्त। अग्रहायण मासकी शुक्ला पञ्चमीको श्रीपञ्चमी कहते हैं। इस तिथिमें लक्ष्मीके उद्देशसे यह व्रत किया जाता है।

४५२। श्रीप्राप्तिव्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। वैशाखी पूर्णिमाके बाद प्रतिपद् तिथिमें यह व्रत करे।

४५३। श्रीवृक्षनवमी—भविष्योत्तरोक्त। भाद्र मासकी शुक्ला नवमी तिथिमें इस व्रतकी व्यवस्था है।

४५४। श्रीव्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। चैत्र शुक्ला पञ्चमीमें यह व्रत करना होता है।

४५५। षष्ठीव्रत—ब्रह्मपुराणोक्त। षष्ठी तिथिमें यह व्रत करना चाहिये।

४५६। संवत्सर व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। चैत्र मासके शुक्लपक्षमें आरम्भ करके एक वर्ष तक यह व्रत करना होता है।

४५७। सद्गाटक व्रत—वराहपुराणोक्त। कार्त्तिक मासकी पूर्णिमा तिथिमें उपवास करके यह व्रत करना होता है।

४५८। सन्तानद व्रत—भविष्योत्तरोक्त। कार्त्तिक मासकी पूर्णिमा तिथिमें उपवास करके यह व्रत करना होता है।

४५९। सन्तानाष्टमी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। चैत्र मासकी कृष्णाष्टमी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

४६०। सप्तर्षि व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। चैत्रशुक्ला प्रतिपद्से आरम्भ करके सप्तमी पर्यन्त ७ दिन सप्तर्षियोंके उद्देशसे इस व्रतका अनुष्ठान करे।

४६१। सप्तसारस्वत व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। यह व्रत भी चैत्र मासकी शुक्ला प्रतिपद्से लगातार ७ दिन तक करनेका विधान है।

४६२। समसुन्दरक व्रत—भविष्योत्तरोक्त। प्रतिदिन सिर्फ एक बार भोजन करके ७ दिन तक यह व्रत करना कर्त्तव्य है।

४६३। समुद्र व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। चैत्र मासके शुक्लपक्षसे आरम्भ करके ७ दिन पर्यन्त इस व्रतका पालन करे।

४६४। सम्पूर्ण व्रत—भविष्यपुराणोक्त। शुभ दिनमें यथाविधान यह व्रत करना कर्त्तव्य है।

४६५। संभोग व्रत—भविष्यपुराणोक्त। मासकी दो पञ्चमी और प्रतिपद् तिथिमें यह व्रत करे।

४६६। सर्वकामोत्सव—भविष्यपुराणोक्त। मासपंचमीमें यह व्रत करना होता है।

४६७। सर्पविषापहपंचमीव्रत—स्कन्दपुराणके प्रभासखण्डोक्त। श्रावण मासकी शुक्ला पञ्चमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

४६८। सर्वकाम व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। अग्रहायण मासकी शुक्ला एकादशी तिथिमें उपवास करके एक वर्ष तक यह व्रत करे।

४१५। [illegible] व्रत—भविष्योत्तरपुराणोक्त। षष्ठी तिथिमें स्कन्द प्रमुख करके उनकी गुरुदेवके उद्देशसे यह व्रत करे।

४१६। [illegible]—देवीपुराणोक्त। शुक्ला पूर्णिमा तिथिमें इस व्रतका अनुष्ठान होता है।

४१७। शत्रुघ्न—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। मार्गशीर्ष मासकी पूर्णिमा तिथिमें शत्रुघ्नके उद्देशसे यह व्रत करना होता है। बहुपुराणोंमें और भी यह शत्रुघ्नका विधान है।

४१८। शत्रुघ्न[illegible]—देवीपुराणोक्त व्रत। शुभ दिनमें शत्रुघ्न और भगवतीके उद्देशसे यह व्रत करना होता है।

४१९। [illegible] व्रत—कालिकापुराणोक्त। [illegible] विविध उपायोंसे यह व्रत करे।

४२०। शान्तिव्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। शान्तिके लिये शान्तिदेवीको प्रसन्न करनेके लिये यह व्रत किया जाता है।

४२१। शर्करासप्तमी व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत। वैशाख मासकी शुक्ला सप्तमी तिथिको इस व्रतका विधान है।

४२२। शाकसप्तमी—भविष्यपुराणोक्त। कार्तिक मासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

४२३। शान्ताचतुर्थी—भविष्यपुराणोक्त। माघ मासकी शुक्ला चतुर्थीका नाम शान्ता चतुर्थी है। उस दिन यह व्रत करना होता है।

४२४। शान्तिपूर्णिमा—मत्स्यपुराणोक्त। पूर्णिमा तिथिमें शान्तिकी कामनासे यह किया जाता है।

४२५। [illegible]—भविष्यपुराणोक्त। माघ मासकी शुक्ला चतुर्थी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

४२६। शान्तिव्रत—वराहपुराणोक्त। कार्तिक मासकी शुक्ला पञ्चमी तिथिमें शान्तिकी कामनासे यह व्रत अनुष्ठेय है।

४२७। [illegible]—भविष्योत्तरपुराणोक्त। [illegible] मासमें [illegible] यह व्रत करना होता है।

४२८। शिवचतुर्थी—भविष्योत्तरपुराणोक्त। चतुर्थी तिथिमें इस व्रतका विधान है।

४२९। शिवचतुर्दशी—मत्स्यपुराणोक्त। फाल्गुन मासकी कृष्णा चतुर्दशीको शिवचतुर्दशी कहते हैं। इस तिथिमें उक्त व्रत किया जाता है।

४३०। शिवनक्त व्रत—भविष्यपुराणोक्त। कृष्णाष्टमी और कृष्णा चतुर्दशी तिथिमें रातको यह व्रत करना होता है।

४३१। शिवपद व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। [illegible] मासमें प्रति दिन एक बार करके भोजन तथा [illegible] मासमें [illegible] फाल्गुन मासमें शिवके उद्देशसे [illegible] यह व्रत करे।

४३२। शिवरात्रि—स्कन्दपुराणोक्त। माघ मासकी कृष्णा चतुर्दशीका नाम शिवचतुर्दशी है। इस तिथिमें शिवके उद्देशसे यथाविधान यह व्रत कर सकता है।

४३३। शिवलिङ्ग व्रत—शिवधर्मोत्तरोक्त। [illegible] शिवलिङ्ग बनाके घरके भीतरमें स्थापन करे। पीछे अभिषेचन और पुष्पादि द्वारा उसकी पूजा करनी होती है।

४३४। शिव व्रत—कालोत्तरोक्त। कृष्णा अष्टमी और चतुर्दशी तिथिमें यह व्रत करनेका नियम है।

४३५। शिवाचतुर्थी—भविष्यपुराणोक्त। माघ मासकी शुक्ला चतुर्थीको शिवाचतुर्थी कहते हैं। इस तिथिमें यह व्रत करना होता है।

४३६। [illegible] व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। आषाढ मासकी पूर्णिमा तिथिमें यह व्रत अनुष्ठेय है।

४३७। [illegible]—पद्मपुराणोक्त। पूर्णिमा तिथिमें [illegible] भोजन करके इस व्रतका अनुष्ठान करे।

४३८। [illegible] व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। [illegible] मास [illegible] प्रति दिन यह व्रत करना होता है।

४३९। शुक्र व्रत—भविष्योत्तरोक्त। [illegible] यह करना [illegible] है।

४४०। शुद्धि व्रत—[illegible]। [illegible] मासकी [illegible] तिथिमें उपवास करके यह व्रत करना होता है।

४४१। शुभद्वादशी—वराहपुराणोक्त। अग्रहायण मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

४४२। शुभसप्तमी—पद्मपुराणोक्त। आश्विन मासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें यह व्रत करनेका विधान है।

४४३। शून्यशयन—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। एक वर्ष पर्यन्त अमावस्याके दिन उपवास करके यह व्रत करे।

४४४। शैल व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। चैत्रमासके शुक्लपक्षसे आरम्भ करके ७ दिन पर्यन्त यह व्रत करनेका विधान है।

४४५। शैवनक्षत्रपुरुष व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। फाल्गुन मासके शुक्लपक्षमें जिस दिन हस्तानक्षत्र होता है, उसी दिन यह व्रत होगा।

४४६। शौचमहाव्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। पौष मासमें नक्त भोजन करके यह व्रत करना होता है।

४४७। शैवोपवास व्रत—भविष्यपुराणोक्त। दोनों पक्षकी अष्टमी और चतुर्दशी तिथिमें शिवके उद्देशसे उपवास करके यह व्रत किया जाता है।

४४८। शौर्यव्रत—वराहपुराणोक्त। आश्विन मासकी शुक्ला नवमी तिथिमें उपवास करके यह व्रत करना होता है।

४४९। श्रद्धाव्रत—पद्मपुराणोक्त। शुभ दिनमें शय्या या केशवको पहले उपलेपन करके यह व्रत करे।

४५०। श्रवणाद्वादशी। भविष्योत्तरोक्त। शुक्ला एकादशी तिथिमें यदि श्रवणा नक्षत्र हो, तो उस एकादशीमें उपवास करके द्वादशी तिथिमें व्रत करे।

४५१। श्रीपञ्चमी—गरुडपुराणोक्त। अग्रहायण मासकी शुक्ला पञ्चमीको श्रीपञ्चमी कहते हैं। इस तिथिमें लक्ष्मीके उद्देशसे यह व्रत किया जाता है।

४५२। श्रीप्राप्तिव्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। वैशाखी पूर्णिमाके बाद प्रतिपद् तिथिमें यह व्रत करे।

४५३। श्रीवृक्षनवमी—भविष्योत्तरोक्त। भाद्र मासकी शुक्ला नवमी तिथिमें इस व्रतकी व्यवस्था है।

४५४। श्रीव्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। चैत्र शुक्ला पञ्चमीमें यह व्रत करना होता है।

४५५। षष्ठीव्रत—ब्रह्मपुराणोक्त। षष्ठी तिथिमें यह व्रत करना चाहिये।

४५६। संवत्सर व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। चैत्र मासके शुक्लपक्षसे आरंभ करके एक वर्ष तक यह व्रत करना होता है।

४५७। सद्गुटक व्रत—वराहपुराणोक्त। कार्तिक मासकी पूर्णिमा तिथिमें उपवास करके यह व्रत करना होता है।

४५८। सन्तानद व्रत—भविष्योत्तरोक्त। कार्तिक मासकी पूर्णिमा तिथिमें उपवास करके यह व्रत करना होता है।

४५९। सन्तानाष्टमी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। चैत्र मासकी कृष्णाष्टमी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

४६०। सप्तर्षि व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। चैत्रशुक्ला प्रतिपद्से आरंभ करके सप्तमी पर्यन्त ७ दिन सप्तर्षियोंके उद्देशसे इस व्रतका अनुष्ठान करे।

४६१। सप्तसारस्वत व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। यह व्रत भी चैत्र मासकी शुक्ला प्रतिपद्से लगातार ७ दिन तक करनेका विधान है।

४६२। सप्तसुन्दरक व्रत—भविष्योत्तरोक्त। प्रतिदिन सिर्फ एक बार भोजन करके ७ दिन तक यह व्रत करना कर्त्तव्य है।

४६३। समुद्र व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। पौष मासके शुक्लपक्षसे आरंभ करके ७ दिन पर्यन्त इस व्रतका पालन करे।

४६४। सम्पूर्ण व्रत—भविष्यपुराणोक्त। शुभ दिनमें यथाविधान यह व्रत करना कर्त्तव्य है।

४६५। संयोग व्रत—भविष्यपुराणोक्त। मासकी दो पञ्चमी और प्रतिपद् तिथिमें यह व्रत करे।

४६६। सर्पदंशपञ्चमीव्रत—भविष्यपुराणोक्त। नागपञ्चमीमें यह व्रत करना होता है।

४६७। सर्पविषापहपञ्चमीव्रत—स्कन्दपुराणके प्रभासखण्डोक्त। श्रावण मासकी शुक्ला पञ्चमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

४६८। सर्वकाम व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। अग्रहायण मासकी शुक्ला एकादशी तिथिमें उपवास करके एक वर्ष तक यह व्रत करे।

४६९ । सर्वकामादि व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । कार्त्तिक मासकी पूर्णिमा तिथिमें यह व्रत करना होता है।

४७० । सर्व व्रत—भविष्योत्तरोक्त । भविष्यमें शुक्लपक्षकी द्वादशी इसी दिन यह व्रत आवश्यक है।

४७१ । सर्वाप्तिसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त । माघ मासके कृष्णपक्षकी सप्तमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

४७२ । सर्वसम्पत्ति व्रत—भविष्यपुराणोक्त । सप्तमी तिथिमें यह व्रत होता है।

४७३ । सागर व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । श्रावणादि चार मासोंमें यह व्रत किया जाता है।

४७४ । साध्यव्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । आषाढ़ मासकी शुक्ला द्वादशी तिथिमें यह व्रत अनुष्ठेय है।

४७५ । सावित्र्यमुनी—पद्मपुराणोक्त । शुक्लपक्षीय चतुर्दशीमें गृहस्थानानुष्ठेयमादि द्वारा ... नामकी देवीकी पूजा करनी होती है।

४७६ । सारस्वत व्रत—प्रति दिन ... पूजन करना होता है। ... मासोंमें ... पुष्पफल, पञ्चपुष्प, तिल और घृत दान करना विहित है। (पद्मपु०)

४७७ । सार्वभौम व्रत—कार्त्तिककी शुक्ला दशमीको रात्रिमें ही प्रत्येक दिशाओंमें बलिदान प्रदान करे। (वराहपु०)

४७८ । सिद्धार्थी—... मासीय शुक्ला ... उपवासी रह कर ... किसी दूसरे ... और ... द्वारा पूर्व देवकी पूजा करे। (विष्णुध०)

४७९ । सिताष्टम्यादि ... मासकी शुक्ला ... उपवास कर ... विष्णुधर्म ... द्वारा देवकी पूजा करनी होती है। (भविष्यपु०)

४८० । सिद्धिविनायक चतुर्थी—... तिथि ... यह व्रत ... पूजा ... द्वारा ... होती है। (... पु०)

४८१ । सुकृतद्वादशी—... द्वादशी ... या ... किसी यह ... "..." इस नामसे ... करे। (विष्णुधर्मोत्तर)

४८२ । सुखव्रत—मार्गशीर्ष पूर्वक ... मासीय ... तिथिमें ..., ... और ... गन्ध पुष्प द्वारा, त्रिविक्रमदेवकी पूजा करनी होती है। (विष्णुधर्मोत्तर)

४८३ । सुखद्वादशी—फाल्गुन मासकी शुक्ला एकादशीमें उपवासी रह कर दूसरे दिन इसी भगवान्‌की ... अर्चना करे।

४८४ । सुख व्रत—भविष्यपुराणके मतसे कृष्णपक्षकी ... या ... मतसे ... तिथि होनेसे उसमें उपवास कर ... इष्टदेवकी पूजा करनी होती है।

४८५ । सुगन्धि व्रत—कार्त्तिकी ... नामक पूजा करनी चाहिये। (विष्णुधर्मोत्तर)

४८६ । सुदर्शन व्रत—कार्त्तिकी ... देवता सुदर्शनमें ... रहते हैं। इस दिन ... उपवासी रह कर ... पूजा तथा देवगृह, ..., ... आदि ... करे। (भविष्यपु०)

४८७ । सुदिवस—... तिथि ... हो कर ... होता है। (पद्मपु०)

४८८ । सुन्दरीद्वादशी—फाल्गुन मासकी शुक्ला द्वादशी तिथि इष्टदेवकी अर्चना कर १०८ बार "नमः" का जप करे। (विष्णुधर्मोत्तर)

४८९ । सुभद्राद्वादशी—... मासकी शुक्ला तिथिमें ... इसी दिन ... का ... करना है। ... व्रत ... तिथिमें ... विष्णुपूजा ... करे। (विष्णुधर्मोत्तर)

४९० । सुप्रभातादि व्रत—... उपवासी रह कर ... पूजा ... देवता हैं। ... (...)

मिथुन-संक्रमणमें श्रीविष्णुकी, कर्कट संक्रान्तिमें वराह-देवताकी, सिंह-संक्रमणमें नरसिंहदेवकी, कन्यासंक्रमणमें वामनदेवकी, तुला-संक्रमणमें कूर्मावतारकी, वृश्चिकसंक्रमणमें परशुरामदेवकी, धनुःसंक्रमणमें बुद्धदेवकी, मकरसंक्रान्तिमें दाशरथि रामचन्द्रकी, कुम्भ-संक्रमणमें बलरामदेवकी और मीनसंक्रमणमें मीनावतारकी अर्चना करनेका नियम है। (विष्णुधर्म)

४९१। सुदर्शनषष्ठी व्रत—षष्ठीतिथिमें उपवास करनेके बाद एक पद्मासन प्रस्तुत कर उसकी कर्णिकामें सुदर्शन और प्रतिदलमें अन्यान्य आयुधोंकी यथाविधि पूजा करते हैं। (गरुड़पु०)

४९२। सुगतिद्वादशी—अग्रहायण मासकी प्रथम द्वादशीकी अव्यवहित पूर्ववर्त्ती दशमीके दिन एक वेला हविष्यान्न भोजन कर दूसरे दिन एकादशीमें निरम्बु उपवास करे। पीछे यथारीति जनार्दन विष्णुकी पूजा कर दूसरे दिन द्वादशीको भोजन करे। इसी प्रकार एक वर्ष तक करना होगा। (वह्निपु०)

४९३। सुकृतद्वादशी—पौषमासीय पुष्यानक्षत्र संयुक्त रात्रिमें संयतचित्तसे विष्णुका ध्यान करना होता है। पीछे निरवच्छिन्न श्वेतवर्ण गोकी गोमयाग्निमें तिल द्वारा एक सौ आठ बार आहुति देनी होती है। इसके बाद परवर्त्ती कृष्णा एकादशीमें उपवासी रह कर स्वर्ण वा रौप्यनिर्मित हरिमूर्त्तिको तिलपूर्ण पात्रमें अवस्थित कुम्भके ऊपर रख यथाविधि उनकी अर्चना करनी होती है। (उमामहेश्वर०)

४९४। सूर्यव्रत—रविवारको शुक्ला सप्तमी और अश्विनीनक्षत्रका योग होनेसे रविवार द्वारा परमात्मा शिवके अनुराग तथा रक्तपुष्प कपिला गायोंके दुग्ध और धूप आदि द्वारा उनकी अर्चना करे। (कालोत्तर)

यतद्भिन्न विष्णुधर्मोत्तर, पद्मपुराण, भविष्यपुराण आदिमें भी सूर्यव्रतका विवरण आया है।

४९५। सूर्यनक्त व्रत—प्रति रविवारको अथवा हस्तानक्षत्रयुक्त रविवारसे आरम्भ करके एक वर्ष तक दिनमें उपवासी रह कर सूर्यास्तकालमें रक्तचन्दन द्वारा द्वादशदल पद्म अङ्कित करके उसके ऊपर एकाग्र मनसे सूर्यदेवकी पूजा कर रातको हविष्यान्न भोजन करनेसे निश्चय ही सभी व्याधिसे मुक्तिलाभ किया जाता है। (मत्स्यपुराण)

४९६। सूर्यषष्ठी—भाद्र मासकी शुक्ला षष्ठी तिथिमें उपवासी रह कर सूर्यास्तकालमें रक्तचन्दनाङ्कित पद्मके ऊपर सूर्यमूर्त्ति स्थापन करे। पीछे पञ्चगव्यादि द्वारा स्नान और रक्तवस्त्र वा रक्तकरवीर पुष्प द्वारा उनका पूजा करनेका नियम है। (भविष्योत्तर)

४९७। सूर्यसप्तमी व्रत—चैत्रमासकी शुक्लासप्तमी तिथिमें उपवासी रह कर दूसरे दिन सप्तमीमें पञ्चवर्णकी गुण्डिका द्वारा अङ्कित अष्टदल कमल पर देवदेवकी अर्चना करनी होती है। (विष्णुधर्मोत्तर)

४९८। सोमद्वितीया व्रत—शुक्ला द्वितीया तिथिमें ब्राह्मणको नैवेद्यलवणके साथ गोदान देना होता है। (पद्मपु०)

४९९। सोमव्रत—वैशाखी पूर्णिमाके दिन जब सूर्यदेव पश्चिमदिशामें रहते हैं और सोमदेव पूर्वदिशामें उदय होते हैं, उस समय वारिपूर्ण ताम्रपात्रके भीतर चन्द्रमूर्त्ति संस्थापन कर यथाविधि उनकी पूजा करना कर्त्तव्य है। (भविष्यपु०)

इसके सिवा कालोत्तर और कालिकापुराणादिमें भी इस व्रतका उल्लेख है।

५००। सोमवार व्रत—पहले नियमयुक्त सोमवारको यथाविधानानुसार सोमदेवकी पूजा करे। पीछे उनके सातवें सोमवारको चतुर्दशोक्त महाप्राज्ञ मनोज्ञ रजतनिर्मित सोममूर्त्तिको कांसेके बरतनमें रख उनकी यथाविधि पूजा करनी होती है। (भविष्योत्तर)

५०१। सोमाष्टमी व्रत—दोनों पक्षके सोमवारको अष्टमी तिथिमें रातके समय हरगौरी मूर्त्तिकी यथाविधि पूजा करना कर्त्तव्य है। (स्कन्दपु०)

५०२। सौख्य व्रत—माघ मासकी अष्टमी, एकादशी और चतुर्दशी तिथिमें एकाहारी हो कर अतिथियोंको श्वेतवस्त्र, उपानह, कम्बल आदि दान करने होते हैं।

५०३। सौगन्ध्य व्रत—हेमन्त और शिशिर ऋतुमें सुगन्धित पुष्पका परित्याग कर फाल्गुन मासमें यथाशक्ति काञ्चन निर्मित तोल दक्षका दान देना और यथा-

४६९। सर्वकामाप्ति व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। कार्त्तिक मासकी पूर्णिमा तिथिमें यह व्रत करना होता है।

४७०। सद्‌गति व्रत—सौरपुराणोक्त। शनिवारमें शुक्लत्रयोदशी होनेसे उसी दिन यह व्रत आचरणीय है।

४७१। सर्वाप्तिसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त। माघ मासके कृष्णपक्षकी सप्तमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

४७२। सप्तसप्तमीव्रत—भविष्यपुराणोक्त। सप्तमी तिथिमें यह व्रत होता है।

४७३। सागर व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। श्रावणादि चार मासमें यह व्रत किया जाता है।

४७४। साध्यव्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। अग्रहायण मासकी शुक्ला द्वादशी तिथिमें यह व्रत अनुष्ठेय है।

४७५। सारस्वतपञ्चमी—पद्मपुराणोक्त। शुक्लपक्षीय पञ्चमीमें शुक्लमाल्यानुलेपनादि द्वारा वीणाक्षमालाधारिणी गायत्री देवीकी पूजा करनी होती है।

४७६। सारस्वत व्रत—प्रति दिन मौनभावसे एकाग्रचित्तसे इसका पूजन करना होता है। पीछे वर्षके अन्तमें ब्राह्मणको घृतकुम्भ, वस्त्रयुग्म, तिल और घंटा दान करनेका नियम है। (पद्मपु०)

४७७। सार्वभौम व्रत—कार्त्तिकी शुक्ला दशमीमें उपवासी हो प्रत्येक दिशामें बलिका प्रदान करे। (वराहपु०)

४७८। सितसप्तमी—अग्रहायण मासीय शुक्ला सप्तमीमें उपवासी रह कर श्वेतकमल वा किसी दूसरे श्वेतपुष्प तथा श्वेतगन्ध और श्वेतपटकादि द्वारा सूर्यदेवकी पूजा करे। (विष्णुध०)

४७९। सितार्कादि सप्तमी—अग्रहायण वा माघ मासकी शुक्ला सप्तमीसे आरम्भ कर क्रमागत उसी पक्षीय सात सप्तमी पर्यन्त सितार्क (श्वेतमन्दार) आदि द्वारा सूर्यदेवकी पूजा करनी होती है। (भविष्यपु०)

४८०। सिद्धिविनायकचतुर्थी—जिस किसी मासमें श्रावणके उदय होने पर उस मासकी शुक्ला चतुर्थीमें शुक्ल तिलादि द्वारा गणेशकी पूजा करनी होती है। (स्कन्दपु०)

४८१। सुकृतप्राप्ति—प्रतिमासमें कृत्तिकाके उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा वा उत्तरभाद्रपद, इनमेंसे किसी एक नक्षत्रमें "माधवाय नमः" इस मन्त्रसे सर्वदा हरिकी आराधना करे। (विष्णुधर्मोत्तर)

४८२। सुकृतविराम—त्रिरात्रोपवास पूर्वक अग्रहायण मासीय द्वादशी तिथिमें श्वेत, पीत और रक्त इन तीन वर्णोंके पुष्प द्वारा, त्रिविक्रमदेवकी पूजा करनी होती है। (विष्णुधर्मोत्तर)

४८३। सुकृतद्वादशी—फाल्गुनमासकी शुक्ला एकादशीमें उपवासी रह कर दूसरे दिन उसी द्वादशीमें श्रीहरिकी अर्चना करे।

४८४। सुखव्रत—भविष्यपुराणके मतसे कृष्णा अष्टमी वा सप्तमीमें अथवा मङ्गलवारको चतुर्थी तिथि होनेसे उसमें उपवास कर सारी रात इष्टदेवकी पूजा करनी होती है।

४८५। सुखषष्ठी व्रत—षष्ठीतिथिमें ऋषियोंकी यथाविध भावसे पूजा करनी चाहिये। (विष्णुधर्मोत्तर)

४८६। सुखसुप्ति व्रत—कार्त्तिकी अमावस्यामें देवगण सुखनिद्रामें अभिभूत रहते हैं। इस दिन बालक तथा आतुर व्यक्तिको छोड़ सभी उपवासी रह कर प्रदोषके समय लक्ष्मी पूजा तथा देवगृह, चत्वर, चतुष्पथ आदि स्थानोंमें यथाशक्ति दीपमाला प्रदान करे। (आदित्यपु०)

४८७। सुगतिव्रत—अष्टमी तिथिमें नक्ताशी हो कर वर्षके बाद गोदान करना होता है। (पद्मपु०)

४८८। सुगतिद्वादशी—फाल्गुन मासकी शुक्ला एकादशी तिथिमें इष्टदेवकी अर्चना कर १०८ बार "हरि" का नाम जपे। (विष्णुधर्मोत्तर)

४८९। सुजन्मद्वादशी—पौष मासकी शुक्ला द्वादशी तिथिमें ज्येष्ठा नक्षत्रका योग होनेसे उस दिन श्रीविष्णुकी अर्चना आरम्भ कर दे। पीछे एक वर्ष तक प्रतिमासको उसी तिथिमें उपवास करनेके बाद विष्णुपूजा करके दानध्यानादि करे। (विष्णुधर्मोत्तर)

४९०। सुरूपावाप्ति व्रत—रविके मेषसंक्रमण दिनमें उपवासी रह कर यथाविधि धनुर्धरकी पूजा करनी होती है। पीछे वृषसंक्रान्तिमें इसी प्रकार श्रीहरिकी,

मिथुन-संक्रमणमें श्रीविष्णुको, कर्कट संक्रान्तिमें वराहदेवताको, सिंह-संक्रमणमें नरसिंहदेवको, कन्यासंक्रमणमें वामनदेवको, तुला-संक्रमणमें कूर्मावतारको, वृश्चिकसंक्रमणमें कल्किदेवको, धनुःसंक्रमणमें बुद्धदेवको, मकरसंक्रान्तिमें दाशरथि रामचन्द्रको, कुम्भसंक्रमणमें बलरामदेवको और मीनसंक्रमणमें मीनावतारको अर्चना करनेका नियम है। (विष्णुधर्म)

४९१। सुदर्शनषष्ठी—राजन्यगण षष्ठीतिथिमें उपवास करनेके बाद एक कमलाज प्रस्तुत कर उसकी कर्णिकामें सुदर्शन और प्रतिदलमें अन्यान्य आयुधोंकी यथाविधि पूजा करते हैं। (गरुड़पु०)

४९२। सुनामद्वादशी—अग्रहायण मासकी प्रथम द्वादशीकी अव्यवहित पूर्ववर्ती दशमीके दिन एक वेला हविष्यान्न भोजन कर दूसरे दिन एकादशीमें निरम्बु उपवास करे। पीछे यथारीति जनार्दन विष्णुकी पूजा कर दूसरे दिन द्वादशीको भोजन करे। इसी प्रकार एक वर्ष तक करना होगा। (वह्निपु०)

४९३। सुकृतद्वादशी—पौषमासीय पुष्यानक्षत्र संयुक्त रात्रिमें संयतचित्तसे विष्णुका ध्यान करना होता है। पीछे निरवच्छिन्न श्वेतवर्ण गोको गोमयाग्निमें तिल द्वारा एक सौ आठ बार आहुति देनी होती है। इसके बाद परवर्त्ती कृष्णा एकादशीमें उपवासी रह कर स्वर्ण या रौप्यनिर्मित हरिमूर्तिको तिलपूर्ण पात्रके उपरिस्थित कुशके ऊपर रख यथाविधि उनकी अर्चना करनी होती है। (हेमाद्रिव्रत०)

४९४। सूर्यव्रत—रविवारको शुक्ला सप्तमी और अभिजीनक्षत्रका योग होनेसे वेदमन्त्र द्वारा परमात्मा शिवके मन्दार तथा रक्तपुष्प करवीर मालतीके पुष्प और धूप आदि द्वारा उनकी अर्चना करे। (कालोत्तर)

एतद्भिन्न विष्णुधर्मोत्तर, पद्मपुराण, भविष्यपुराण आदिमें भी सूर्यव्रतका विवरण आया है।

४९५। सूर्यनक्त व्रत—यदि रविवारको अथवा हस्तनक्षत्रयुक्त रविवारसे आरम्भ करके एक वर्ष तक दिनमें उपवासी रह कर सूर्यास्तकालमें रक्तचन्दन द्वारा अष्टदल पद्म अङ्कित करके उसके ऊपर एकान्त मनसे सूर्यदेवकी पूजा कर रातको हविष्यान्न भोजन करनेसे निश्चय ही सभी व्याधिसे मुक्तिलाभ किया जाता है। (मत्स्यपुराण)

४९६। सूर्यषष्ठी—भाद्र मासकी शुक्ला षष्ठी तिथिमें उपवासी रह कर सूर्यास्तकालमें रक्तचन्दनाङ्कित पद्मके ऊपर सूर्यमूर्ति स्थापन करे। पीछे पञ्चगव्यादि द्वारा स्नान और रक्तवस्त्र या रक्तकरवीर पुष्प द्वारा उनकी पूजा करनेका नियम है। (भविष्योत्तर)

४९७। सूर्यसप्तमी व्रत—चैत्रमासकी शुक्लाषष्ठी तिथिमें उपवासी रह कर दूसरे दिन सप्तमीमें पञ्चवर्णकी गुँड़िका द्वारा अङ्कित अष्टदल कमल पर देवदेवकी अर्चना करनी होती है। (विष्णुधर्मोत्तर)

४९८। सोमद्वितीया व्रत—शुक्ला द्वितीया तिथिमें ब्राह्मणको नैवेद्यलवणके साथ भोज्यान्न देना होता है। (पद्मपु०)

४९९। सोमव्रत—वैशाखी पूर्णिमाके दिन जब सूर्यदेव पश्चिमदिशामें रहते हैं और सोमदेव पूर्वदिशामें उदय होते हैं, उस समय वारिपूर्ण ताम्रपात्रके भीतर चन्द्रमूर्ति संस्थापन कर यथाविधि उनकी पूजा करना कर्त्तव्य है। (भविष्यपु०)

इसके सिवा कालोत्तर और कालिकापुराणादिमें भी इस व्रतका उल्लेख है।

५००। सोमवार व्रत—पहले चित्रानक्षत्रयुक्त सोमवारको यथाविधानानुसार सोमदेवकी पूजा करे। पीछे उसके सातवें सोमवारको चतुर्द्रोणस्थ महाराज मनोज्ञ रजतनिर्मित सोममूर्तिको कांसेके बरतनमें रख उनकी यथाविधि पूजा करनी होती है। (भविष्योत्तर)

५०१। सोमाष्टमी व्रत—दोनों पक्षके सोमवारकी अष्टमी तिथिमें रातके समय हरगौरी मूर्तिकी यथाविधि पूजा करना कर्त्तव्य है। (स्कन्दपु०)

५०२। सौख्य व्रत—माघ मासकी सप्तमी, एकादशी और चतुर्दशी तिथिमें एकाहारी हो कर ब्राह्मणको भोजनान्न, उपानह, कम्बल आदि दान करने होते हैं।

५०३। सौगन्ध्य व्रत—हेमन्त और शिशिर ऋतुमें सुगन्धित पुष्पका परित्याग कर फाल्गुन मासमें यथाशक्ति काञ्चन निर्मित तीन पुष्पका दान देना और यथा-

बहुतेरे समावर्तन करते हैं, वही व्रतस्नातक कहलाते हैं। (मनु ४।३१)

व्रतस्नातक (सं० पु०) व्रतस्नात। (पारस्करगृ० २।५)

व्रतस्नान (सं० क्ली०) व्रत समापन पूर्वक समावर्तन।

व्रतादिवृत्ति (सं० स्त्री०) व्रतभङ्ग, व्रतपालनके लिये व्रतकी सामग्री।

व्रतादेश (सं० पु०) व्रतस्य आदेशः। उपनयन नामक संस्कार, यज्ञोपवीत।

व्रतादेशन (सं० क्ली०) व्रतस्य आदेशनं। वेदोंका वह उपदेश जो उपनयन संस्कारके बाद ब्रह्मचारीको दिया जाता है। (मनु २।१७३)

व्रतिक (सं० त्रि०) व्रतिन्-कन्। व्रतधारी, जिसने किसी प्रकारका व्रत धारण किया हो।

व्रतिन् (सं० पु०) व्रतमस्यास्तीति व्रत इनि। १ मुनि विशेष। २ यजमान। ३ ब्रह्मचारी, यति। (मनु २।१८८) (त्रि०) ४ व्रतविशिष्ट, जिसने किसी प्रकारका व्रत धारण किया हो। (जटाधर)

व्रतेयु (सं० पु०) रौद्राश्वके एक पुत्रका नाम। (भागवत ९।२०।४)

व्रतेश (सं० पु०) शिव, महादेव।

व्रतोपनयन (सं० क्ली०) व्रतादेश, शिक्षाके लिये उपनयन।

व्रतोपद (सं० क्ली०) सामभेद।

व्रतोपायन (सं० क्ली०) व्रतार्थ उपोसन। (शतपथब्रा० ३।१।१०।१)

व्रत्य (सं० पु०) १ व्रत कर्मसम्पादक, वह जिसने कोई व्रत धारण किया हो। २ ब्रह्मचारी। (ऋक् ८।४८।६)

व्रद्धिन् (सं० त्रि०) १ गुरुत्वविशिष्ट। २ समृद्धिविशिष्ट। 'व्रद्धिनः गुरुत्वात् महान् बहो समृद्धवान्।' (ऋक् १।३०।४ सायण)

व्रदस (सं० स्त्री०) चर्मण। (ऋक् ८।२८।१६ सायण)

व्रश्चन (सं० पु०) वृश्च्यतेऽनेनेति व्रश्च करणे ल्युट्। १ छोटा, आरी आदि काटनेका हथियार। पर्याय—पत्रपरशु, पत्रपर्शु। २ वह पुरज़ा जो लकड़ी आदि काटने पर गिरता है। ३ कुठार, कुल्हाड़ी। (क्ली०) ४ छेदने या काटनेकी क्रिया।

व्रश्क (सं० त्रि०) काटने, छेदने या काटनेवाला।

व्रा (सं० स्त्री०) १ रात्रि। २ उषा। (ऋक् १।१२१।२ सायण) ३ समूह, दल। (निघण्टु ५।१३)

व्राचड़ (सं० स्त्री०) १ अपभ्रंश भाषाका एक भेद। इसका व्यवहार आभीरोंमें ग्यारहवीं शताब्दी तक सिन्ध प्रान्तमें था। २ पैशाचिक भाषाका एक भेद।

व्राज (सं० पु०) १ झुण्ड। २ दल, समूह। (भाग० १।१६।१) ३ गमन, गति।

व्राजपति (सं० पु०) दल या समूहका नायक। (ऋक् १०.१७९.१)

व्राजबाहु (सं० पु०) गुरुभुजा, दस्तविस्तार। (शाङ्खायनब्रा० २।१)

व्राजि (सं० स्त्री०) व्रजति गच्छतीति व्रज गतौ (वसि-वपि। ४।१२४) इति इञ्। वायु।

व्राजिन् (सं० त्रि०) गमनकारी, जो गमनशील न हो। (शतपथब्रा० ५।५।१।११)

व्रात (सं० पु०) १ समूह, दल। २ व्याधादि। ३ मनुष्य। (निघण्टु २।३) (क्ली०) ४ शरीरायाससाध्यजीविकर्म, वह परिश्रम जो जीविकाके लिये किया जाय। (काशिका० ५।२।२१)

व्रातजीवन (सं० पु०) वह जो शारीरिक परिश्रम करके अपना निर्वाह करता हो।

व्रातपति (सं० त्रि०) १ व्रातपति-सम्बन्धी। (पु०) २ व्रातपति। (शुक्लयजु० १६।२५)

व्रातसाह (सं० त्रि०) दलपति। (ऋक् ६।७५।९ सायण)

व्रातिक (सं० त्रि०) व्रात-सम्बन्धी। (कौशिक ११।१३)

व्रातीन (सं० पु०) व्रातेनशरीरायासेन जीवति व्रात-ख (व्रातेन जीवति। पा ५।२।२१) इति खञ्। संघजीवि। (हेम)

व्रात्य (सं० पु०) व्राते साधुः व्रात-य (साधु। पा ४।४।१०३) इति यत्। १ व्रतसाध्यहीन। (मनु १०।२०) २ दशसंस्कारहीन। ३ उपनयन संस्कारहीन। पर्याय—संस्कारहीन, सावित्रीपतित, व्रात्यस्तोम, पुरोहितहीन।

ब्राह्मणका १६, क्षत्रियका २२ वर्ष और वैश्यका २४ वर्षमें उपनयन होना चाहिये।

इस समय यदि उपनयन-संस्कार न हो, तो इन्हें व्रात्य कहते हैं तथा वे आर्यविगर्हित हैं।

एक समय सावित्री-संस्कार वा उपनयनहीन द्विज (ब्राह्मणादि तीनों वर्ण) मात्र ही व्रात्य कहलाते थे। किन्तु अथर्ववेदके १५।८।१ और १५।९।१ दोनों मन्त्रसे हम जान सकते हैं, कि व्रात्य देवप्रिय हैं, यहां तक कि परम पिताके ही अनुरूप हैं। इन्हींके द्वारा राजन्य और ब्राह्मणगण उत्पन्न हुए थे।

सावित्रीपतित उपनयनादि-संस्कारविहीन व्यक्ति ही व्रात्य कहलाते हैं। व्रात्यको यज्ञादि वेदविहित क्रियामें अधिकार नहीं है—व्रात्य व्यवहारयोग्य भी नहीं है। यही एक श्रेणीका शास्त्रसम्मत सिद्धान्त है; किन्तु अथर्ववेदका पन्द्रहवां काण्ड केवल व्रात्यमहिमासे परिपूर्ण है। व्रात्य वैदिक कार्यके अधिकारी हैं, व्रात्य महानुभव हैं, व्रात्य देवप्रिय हैं, व्रात्य ब्राह्मण, क्षत्रिय आदिके पूज्य हैं और तो क्या, व्रात्य स्वयं देवादिदेव हैं। व्रात्य जहां जाते हैं, विश्वगण् और विश्वदेव भी वहीं उनका अनुगमन करते हैं। वे जहां रहते हैं, विश्वदेवगण भी उसी स्थानमें रहते हैं। वहांसे उनके चले जाने पर वे भी उनके साथ साथ चले जाते हैं। अतएव वे जब जहां जाते हैं, तब राजाकी तरह वे भी साथ ही रहते हैं।

समूचे पन्द्रहवें काण्डमें केवल इसी प्रकारकी व्रात्य-महिमा देखनेमें आती है। अथर्ववेदका पञ्चदश काण्डोक्त व्रात्य वाच्य विषयमें धर्मसंहितोक्त व्रात्यसे एकदम स्वतन्त्र है। इन सभी व्रात्योंको वैदिक पुरुषसूक्तके पुरुष और पौराणिकोंके वर्णित विराट् पुरुष मानना चाहिये। यहां पर अथर्ववेदके पन्द्रहवें काण्डसे इस विषयके कुछ प्रमाण उद्धृत किये जाते हैं।

"व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत्।
स प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्नपश्यत् तत् प्राजनयत्॥
तदेकमभवत्, तल्ललाममभवत्, तन्महदभवत् तज्ज्येष्ठमभवत्
तद्ब्रह्माभवत् तत्तपोऽभवत् तत्सत्यमभवत् तेन प्राजायत।
सोऽवर्धत स महानभवत् स महादेवोऽभवत्।
स देवानामीशां पर्यैत् स ईशानोऽभवत्।
स एको व्रात्योऽभवत् स धनुरादत्त तदेवेन्द्रधनुः।
नीलमस्योदरं लोहितं पृष्ठम्।
नीलेनैवाप्रियं भ्रातृव्यं प्रोर्णोति लोहितेन द्विषन्तं
विध्यतीति ब्रह्मवादिनो वदन्ति। (१५।१।१-८)
स उदतिष्ठत् स प्राचीं दिशमनु व्यचलत्। १
तं बृहच्च रथन्तरं चादित्याश्च विश्वे च देवा अनुव्यचलन्।
बृहते च वै स रथन्तराय चादित्येभ्यश्च विश्वेभ्यश्च
देवेभ्य आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति। ३
बृहतश्च वै स रथन्तरस्य चादित्यानाञ्च विश्वेषाञ्च
देवानां प्रियं धाम भवति तस्य प्राच्यां दिशि। ४
श्रद्धा पुंश्चली मित्रो मागधो विज्ञानं वासो
ऽहरुष्णीषं रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः। ५
तं वैरूपं च वैराजं चापश्च वरुणश्च राजानुव्यचलन्। १०
वैरूपाय च वै स वैराजाय चाद्भ्यश्च वरुणाय च
राज्ञ आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति॥ ११

इस पञ्चदश काण्डके प्रथम अनुवाकका समग्र पर्यायसूक्त पढ़नेसे मालूम होता है, कि यह व्रात्य पुरुष ही यज्ञ स्वरूप प्रजापति परमेष्ठी पिता पितामह आदिके समीभूत विषय है। यथा—

"तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चापश्च
श्रद्धा च वर्षं भूत्वानुव्यवर्तयन्त।" (१५।७।२)

द्वितीय अनुवाकका अष्टम पर्यायसूक्त पढ़नेसे ऐसी धारणा बलवती हो उठती है, कि व्रात्य पुरुषका ही नामान्तर है। यथा—

"व्रात्यस्य सप्त प्राणाः सप्तापानाः सप्त व्यानाः।
तस्य व्रात्यस्य योऽस्य प्रथमः प्राण ऊर्ध्वो नामायं सो अग्निः।
द्वितीयः प्राणः प्रौढो नामासौ स आदित्यः ० ०
तृतीयः प्राणोऽभ्यूढो नामासौ चन्द्रमाः।
चतुर्थः प्राणो विभूर्नामायं स पवमानः।
पञ्चमः प्राणो योनिर्नाम ता इमा आपः।
षष्ठः प्राणः प्रियो नाम त इमे पशवः।
सप्तमः प्राणो अपरिमितो नाम ता इमाः प्रजाः।"

व्रात्यके अपान सम्बन्धमें भी इसी प्रकार लिखा है। यथा—

"तस्य व्रात्यस्य योऽस्य प्रथमोऽपानः सा पौर्णमासी"

इसी प्रकार द्वितीय अपान अष्टका, तृतीय अपान

शेषोंमें समावर्त्तन करते हैं, वही व्रतस्नातक कहलाते हैं। (मनु ४।३१)

व्रतस्नातक (सं० पु०) व्रतस्नात। (पारस्करगृ० २.५)

व्रतस्नान (सं० क्ली०) व्रत समापन पूर्वक समावर्त्तन।

व्रतातिपत्ति (सं० स्त्री०) व्रतभङ्ग, व्रतपालनके लिये समयकी अतिक्रान्ति।

व्रतादेश (सं० पु०) व्रतस्य आदेशः। उपनयन नामक संस्कार, यज्ञोपवीत।

व्रतादेशन (सं० क्ली०) व्रतस्य आदेशनं। वेदोंका वह उपदेश जो उपनयन संस्कारके बाद ब्रह्मचारीको दिया जाता है। (मनु २।१७३)

व्रतिक (सं० त्रि०) व्रतिन्-कन्। व्रतधारी, जिसने किसी प्रकारका व्रत धारण किया हो।

व्रतिन् (सं० पु०) व्रतमस्यास्तीति व्रत-इनि। १ मुनि विशेष। २ यजमान। ३ ब्रह्मचारी, यति। (मनु २।१८८) (त्रि०) ४ व्रतविशिष्ट, जिसने किसी प्रकारका व्रत धारण किया हो। (तिथितत्त्व)

व्रतेयु (सं० पु०) रौद्राश्वके एक पुत्रका नाम। (भागवत ९।२०।४)

व्रतेश (सं० पु०) शिव, महादेव।

व्रतोपनयन (सं० क्ली०) व्रतादेश, शिक्षाके लिये उपनयन।

व्रतोपद (सं० क्ली०) सामभेद।

व्रतोपायन (सं० क्ली०) व्रतार्थ प्रवेश। (शतपथब्रा० ४।११।७।१)

व्रन्द (सं० पु०) १ व्रत 'स संजातमस्य', वह जिसने कोई व्रत धारण किया हो। २ ब्रह्मचारी। (ऋक् ८।१।८८)

व्रन्दिन् (सं० त्रि०) १ मृदुभावयुक्त। २ समूहविशिष्ट। 'व्रन्दिनः मृदुभावा भवन्ति यद्वा समूहवन्तः।' (ऋक् १।१६५।४ सायण)

व्रयस् (सं० क्ली०) बलाधिक्य। (ऋक् ४।१६।१६ सायण)

व्रश्चन (सं० पु०) वृश्चत्यनेनेति व्रश्च करणे ल्युट्। १ आरा, आरी आदि काटनेका शस्त्र। पर्याय—पत्रपरशु, पत्रपर्शु। २ वह बुरादा जो लकड़ी आदि काटने पर निकलता है। ३ कुठार, कुल्हाड़ी। (क्ली०) व्रश्च ल्युट्। ४ छेदने या काटनेके लिए। (शतपथब्रा० ३।६।१।१०)

व्रस्क (सं० त्रि०) कर्तक, छेदने या काटनेवाला।

व्रा (सं० स्त्री०) १ रात्रि। २ उषा। (ऋक् १।१२१।२ सायण) ३ समूह, दल। (निघ० ५।३)

व्राचड (सं० स्त्री०) १ अपभ्रंश भाषाका एक भेद। इसका व्यवहार आठवींसे ग्यारहवीं शताब्दी तक सिंध प्रान्तमें था। २ पैशाचिकी भाषाका एक भेद।

व्राज (सं० पु०) १ कुल। २ दल, समूह। (पञ्च० १।२६।१) ३ गमन, गति।

व्राजपति (सं० पु०) दल या समूहका नायक। (ऋक् १०.१७९.१)

व्राजबाहु (सं० पु०) मुष्टिका हस्तविस्तार। (लाट्यायनश्रौ० २.१)

व्राजि (सं० स्त्री०) व्रजति गच्छतीति व्रज गतौ (वसिवपिर्जि। ४।१२४) इति इञ्। वायु।

व्राजिन् (सं० त्रि०) भ्रमणशील, जो शान्तशील न हो। (शतपथब्रा० ५।१।१।१४)

व्रात (सं० पु०) १ समूह, दल। २ व्याधादि। ३ मनुष्य। (निघण्टु २।३) (क्ली०) ४ शरीरायासमात्रविषयं, वह परिश्रम जो जीविकाके लिये किया जाय। (पाणिनि० ५।२।२१)

व्रातजीवन (सं० पु०) वह जो शारीरिक परिश्रम करके अपना निर्वाह करता हो।

व्रातपति (सं० त्रि०) १ व्रातपति-सम्बन्धी। (पु०) २ दलपति। (गृह्यसू० १।१२५)

व्रातसाह (सं० त्रि०) दलपति। (ऋक् ६।७५।९ सायण)

व्रातिक (सं० त्रि०) व्रत-सम्बन्धी। (गोभिल ३।१।१३)

व्रातीन (सं० पु०) शरीरायासेन ये जीवन्ति तेषां कर्म व्रातं तेन जीवतीति व्रात (व्रातेन जीवति। पा ५।२।२१) इति खञ्। मजदूर। (हेम)

व्रात्य (सं० पु०) व्राते साधुः व्रातादिभ्यो य इव (पा ५।१।१०२) इति यत्। १ संस्कारहीन। (मनुसंहिता १०।२०) २ दशसंस्काररहित। ३ उपनयन संस्काररहित। पर्याय—संस्कारहीन, सावित्रीपतित, व्रात्यस्तुत, पुरोहितस्य।

ब्राह्मणका १६ वर्षकी अवस्था, क्षत्रियका २२ वर्ष और वैश्यका २४ वर्षमें उपनयन होना चाहिये।

इस समय यदि उपनयन-संस्कार न हो, तो इन्हें व्रात्य कहते हैं तथा ये आर्यविगर्हित हैं।

पहले समय सावित्री-संस्कार या उपनयनहीन द्विज (ब्राह्मणादि तीनों वर्ण) मात्र ही व्रात्य कहलाते थे। किन्तु अथर्ववेदके १५।८।१ और १५।९।१ दोनों मन्त्रसे हम जान सकते हैं, कि व्रात्य देवप्रतिम हैं, यहां तक कि पाप विनाशके ही अनुकूल हैं। इन्हींके द्वारा राजन्य और ब्राह्मणगण उत्पन्न हुए थे।

सावित्रीपतित उपनयनादि-संस्कारविहीन व्यक्ति ही व्रात्य कहलाते हैं। व्रात्यको यज्ञादि वेदविहित क्रियामें अधिकार नहीं है—व्रात्य व्यवहारयोग्य भी नहीं हैं। यही एक श्रेणीका शास्त्रसम्मत सिद्धान्त है; किन्तु अथर्ववेदका पन्द्रहवां काण्ड केवल व्रात्यमहिमासे परिपूर्ण है। व्रात्य वैदिक कार्यके अधिकारी हैं, व्रात्य महानुभव हैं, व्रात्य देवप्रिय हैं, व्रात्य ब्राह्मण, क्षत्रिय आदिके पूज्य हैं और तो क्या, व्रात्य स्वयं देवाधिदेव हैं। व्रात्य जहां जाते हैं, विश्वजगत् और विश्वदेव भी वहीं उनका अनुगमन करते हैं। वे जहां रहते हैं, विश्वदेवगण भी उसी स्थानमें रहते हैं। वहांसे उनके चले जाने पर वे भी उनके साथ साथ चले जाते हैं। अतएव वे जब जहां जाते हैं, तब राजाकी तरह वे भी साथ ही लेते हैं।

समूचे पन्द्रहवें काण्डमें केवल इसी प्रकारकी व्रात्यमहिमा दिखलाई जाती है। अथर्ववेदका पञ्चदश काण्डोक्त व्रात्य वाच्य विषयमें धर्मसंहितोक्त व्रात्यसे एकदम स्वतन्त्र है। इन सभी व्रात्योंको वैदिक पुरुषसूक्तके पुरुष और पौराणिकोंके वर्णित विराट् पुरुष मानना चाहिये। यहां पर अथर्ववेदके पन्द्रहवें काण्डसे इस विषयके कुछ प्रमाण उद्धृत किये जाते हैं।

"व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत्।
स प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्नपश्यत् तत् प्राजनयत्॥
तदेकमभवत्, तल्ललाममभवत्, तन्महदभवत् तज्ज्येष्ठमभवत्,
तद्ब्रह्माभवत् तत्तपोऽभवत् तत्सत्यमभवत् तेन प्राजायत।
सोऽवर्धत स महानभवत् स महादेवोऽभवत्।
स देवानामीशां पर्यैत् स ईशानोऽभवत्।
स एकव्रात्योऽभवत् स धनुरादत्त तदेवेन्द्रधनुः।
नीलमस्योदरं लोहितं पृष्ठम्।
नीलेनैवाप्रियं भ्रातृव्यं प्रोर्णोति लोहितेन द्विषन्तं
विध्यतीति ब्रह्मवादिनो वदन्ति। (१५।१।१-८)
स उदतिष्ठत् स प्राचीं दिशमनु व्यचलत्। १
तं बृहच्च रथन्तरं चादित्याश्च विश्वे च देवा अनुव्यचलन्।
बृहते च वै स रथन्तराय चादित्येभ्यश्च विश्वेभ्यश्च
देवेभ्य आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति। ३
बृहतश्च वै स रथन्तरस्य चादित्यानां च विश्वेषां च
देवानां प्रियं धाम भवति तस्य प्राच्यां दिशि। ४
श्रद्धा पुंश्चली मित्रो मागधो विज्ञानं वासो
ऽहरुष्णीषं रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः। ५
तं वैरूपं च वैराजं चापश्च वरुणश्च राजानुव्यचलन्। १०
वैरूपाय च वै स वैराजाय चाद्भ्यश्च वरुणाय च
राज्ञ आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदन्ति॥ १७

इस पञ्चदश काण्डके प्रथम अनुवाकका समग्र पर्यालोचन करनेसे मालूम होता है, कि यह व्रात्य पुरुष ही यज्ञ अथवा प्रजापति परमेष्ठी पिता पितामह आदिके तपोभूत विषय है। यथा—

"स प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चापश्च
श्रद्धा च वर्षं भूत्वानुव्यवर्तयन्त।" (१५।७।२)

द्वितीय अनुवाकका प्रथम पर्यालोचन करनेसे ऐसी धारणा बलवती हो सकती है, कि व्रात्य पुरुषका ही नामान्तर है। यथा—

"व्रात्यस्य सप्त प्राणाः सप्तापानाः सप्त व्यानाः।
तस्य व्रात्यस्य योऽस्य प्रथमः प्राण ऊर्ध्वो नामायं सो अग्निः।
द्वितीयः प्राणः प्रौढो नामासौ स आदित्यः।
तृतीयः प्राणोऽभ्यूढो नामासौ स चन्द्रमाः।
चतुर्थः प्राणो विभूर्नामायं स पवमानः।
पञ्चमः प्राणो योनिर्नाम ता इमा आपः।
षष्ठः प्राणः प्रियो नाम त इमे पशवः।
सप्तमः प्राणोऽपरिमितो नाम ता इमाः प्रजाः।"

व्रात्यके अपान सम्बन्धमें भी इसी प्रकार लिखा है। यथा—

"तस्य व्रात्यस्य योऽस्य प्रथमोऽपानः सा पौर्णमासी"

इसी प्रकार द्वितीय अपान अष्टका, तृतीय अपान

अन्नादवत्, चतुर्थ स्थान धन, पञ्चम स्थान ह्रीपा और षष्ठ स्थान पञ्च है।

पञ्चदश काण्डके द्वितीय अनुवाकके नवम पर्याय सूक्तमें व्रात्यके स्थान स्वरूपमें लिखा है।

व्रात्यका प्रथम स्थान भूमि, द्वितीय स्थान अन्तरीक्ष, तृतीय स्थान द्यौ, चतुर्थ स्थान नक्षत्र, पञ्चम स्थान ऋतु, षष्ठ स्थान आर्तव और सप्तम स्थान संवत्सर है।

इस काण्डके उपसंहारमें अर्थात् द्वितीय अनुवाकके अष्टादश पर्याय सूक्तमें लिखा है—

'तस्य व्रात्यस्य। यदस्य दक्षिणमक्ष्यसौ स आदित्यो यदस्य सव्यमक्ष्यसौ स चन्द्रमाः।
योऽस्य दक्षिणः कर्णोऽयं सोऽग्निर्योऽस्य सव्यः कर्णोऽयं स पवमानः। अहोरात्रे नासिके दितिश्चादितिश्च शीर्षकपाले संवत्सरः शिरः अह्ना प्रत्यङ् व्रात्यो रात्र्या प्राङ् नमो व्रात्याय।"

पञ्चदश काण्डके प्रथम अनुवाक छठे पर्यायसूक्तके प्रथम सूक्तमें लिखा है—"स महिमा स द्रुर्भूत्वा पृथिव्या अगच्छत् स समुद्रोऽभवत्॥"

इस ऋग्वेदके पुरुषसूक्तमें और भी देखते हैं—

"एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि"
१०।९०।३

"तस्माद्विराळजायत विराजो अधि पूरुषः
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः।"
१०,९०।५

"यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः॥"
१०।९०।६

"चन्द्रमा मनसो जात श्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत॥
नाभ्या आसीदन्तरिक्षं, शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् तथा लोकाँ अकल्पयन्॥"

ऋग्वेदके इस पुरुष महिमाका सूक्त तथा अथर्ववेदको व्रात्यमहिमाका सूक्त एक प्रकारका है तथा एकार्थ विशिष्ट है।

अथर्ववेदके पञ्चदश काण्ड द्वितीय अनुवाकके प्रथम पर्याय सूक्तमें जिस भावमें व्रात्यमहिमा गाई गई है, उसे पढ़नेसे मालूम होता है, कि प्राचीन वैदिककालमें एक ऐसे लोकपूज्य पुण्यवान् सर्वजनमान्य विद्वान् पुरुष हो किसी कारणवश व्रात्य कहलाते थे। व्रात्य अतिथिरूपमें जिसके घर रहते थे, उसे अतिपुण्य होता था। यथा—

"तद् यस्यैवं विद्वान व्रात्य एकां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ये पृथिव्यां पुण्या लोकास्तानेव तेनावरुन्धे।

तद् यस्यैवं विद्वान व्रात्यो द्वितीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति येऽन्तरिक्षे पुण्या लोकास्तानेव तेनावरुन्धे।"
इत्यादि

इस प्रकार इन सूक्तोंमें अनेक आतिथ्यग्रहणका फल लिखा गया है। उसे पढ़नेसे ज्ञात होता है, कि व्रात्य सम्भवतः साधु परिव्राजक हैं। किन्तु इस व्रात्य-महिमाका उपक्रमोपसंहार पढ़नेसे प्रतीत होता है, कि व्रात्य अनादिकारण पुरुष हैं, यहाँ जो व्रात्यको गृहमें आतिथ्यदानकी कथा लिखी है उसका तात्पर्य यह है, कि जो परम पुरुषको अपने हृदयमें स्थान देते हैं, उन्हें अतीव पुण्य होता है।

वह परम पुरुष ही जो वैदिक युगमें व्रात्य कहलाते थे, प्रश्नोपनिषद्‌में भी उसका प्रमाण है तथा उन्हें व्रात्य क्यों कहा जाता था उसका भी कारण स्पष्ट भावसे दिया गया है। यथा—

"व्रात्यस्त्वं प्राणैकऋषिरत्ता विश्वस्य सत्पतिः।
वयमाद्यस्य दातारः पिता त्वं मातरिश्व नः॥"
(प्रश्नोपनिषद् २।११)

अर्थात् हे परम पुरुष! तुम्हारा जन्म पहले हुआ है, इससे तुम्हारा कोई भी संस्कारक न था, इस कारण तुम व्रात्य हो, किन्तु तुम स्वभावतः पवित्र हो। हे प्राण! तुम ही एकमात्र ऋषि हो, भोक्ता हो और सबके सत्पति हो। मैं तुम्हें आज्य देता हूँ, तुम वायुके पिता हो।

प्रश्नोपनिषदुक्त यह व्रात्य और ऋग्वेदके पुरुषसूक्तका पुरुष तथा अथर्ववेदका व्रात्य प्रायः एक अनुरूप कहते हैं। (१० ९०, अ० १५।१८)

इसके सिवा सामवेदीय ताण्ड्य ब्राह्मणमें इस

व्रात्य शब्दका एक दूसरा व्याख्याविषय देखते हैं। इसे पढ़नेसे मालूम होता है, कि देवगण जब स्वर्ग गये, तब उनके सम्प्रदायमें कुछ व्यक्ति उनके साथ न जा कर इस मर्त्यलोकमें ही घूमने लगे। ये ही व्रात्य कहलाये। आखिर ये लोग स्वर्ग जानेकी इच्छासे भ्रमण करते करते पुनः स्वर्गके दरवाजे पर पहुंचे। किन्तु ये लोग वैदिक मन्त्र जानते न थे, इस कारण इनका उद्देश सिद्ध न हुआ। इनकी यह अवस्था देख स्वर्गगामी देवोंने मरुत्को इन्हें वेद पढ़ानेका भार दिया। मरुत्ने इन्हें अनुष्टुप छन्दमें "षोडश" उपदेश दिये, पीछे वे स्वर्गको चले गये।

फिर कौषीतकी ब्राह्मण व महाब्राह्मण भी व्रात्य नामसे अभिहित हुए हैं।

व्रात्यगण अनावृत गृहस्थ चलानेका कार्य करते थे, धनु और बर्छा ग्रहण करते थे, अपने सिर पर पगड़ी बांधते और लाल पाड़वाला वस्त्र पहनते थे। ये सब वस्त्र हवाके झंकारसे हिलते थे। उनके नेतृगण कपिलवर्णका परिच्छद और रौप्यनिर्मित कण्ठाभरण व्यवहार करते थे। वे खेती बारी आदि नहीं करते थे। उनके शासनविधिकी कोई श्रृङ्खला न थी। उनकी भाषा संस्कृत होने पर भी उच्चारणमें बहुत फर्क था। ब्राह्मण-ब्राह्मणके इन व्रात्यदेवोंका शायद पहले सम्मान होता होगा, पर पीछे वेद न जाननेके कारण वे समाजमें अनादृत हो गये। वस्तुतः प्राचीन आर्यसमाजमें सम्मानहीन ये व्रात्यगण यथार्थमें सावित्रीभ्रष्ट व्रात्य थे या नहीं, कह नहीं सकते। फलतः हम वाजसनेय-संहितामें भी एक श्रेणीके व्यक्तिका व्रात्य नाम देखते हैं। (शुक्लयजु ३०।८)

इसके सिवा लाट्यायन-श्रौतसूत्र (८।६।२,२८) तथा कात्यायन-श्रौतसूत्रमें (२२।४।१) इस व्रात्य शब्दका उल्लेख पाते हैं। असवर्णसन्तान ही श्रौतसूत्रमें व्रात्य कह कर उल्लिखित हुए हैं। जिस प्रकार व्रात्य शब्दकी इस तरह अर्थावनति हुई, परवर्त्तीकाल प्रायः इधर किस प्रकार मानव-समाजमें असम्मानित व्यक्तिके अर्थबोधक-रूपमें व्यवहृत हुआ, उसका भी पता लगाया जाता है। बौधायन धर्मसूत्रमें लिखा है, कि ब्राह्मणके औरस और क्षत्रियाके गर्भसे जातसन्तान ब्राह्मण, वैश्याके गर्भसे जातसन्तान अम्बष्ठ, शूद्राके गर्भसे जातसन्तान निषाद या पारशव है। क्षत्रियवैश्यासे जातसन्तान क्षत्रिय, क्षत्रियशूद्रासे जातसन्तान उग्र, वैश्यशूद्रासे जातसन्तान रथकार, शूद्रावैश्यासे मागध, वैश्यक्षत्रियासे आयोगव आदि हुए। ये सब असवर्ण जातसन्तान व्रात्य नामसे प्रसिद्ध हैं। (बौधायनधर्मसूत्र १।८।१६-१७)

मनुसंहितामें एक दूसरा कारण देखनेमें आता है। यथा—

"द्विजातयः सवर्णासु जनयन्त्यव्रतांस्तु यान्।
तान् सावित्रीपरिभ्रष्टान् व्रात्या इति विनिर्दिशेत्॥"

(मनु १०।२० अ०)

अर्थात् द्विजातियोंकी सवर्णाभार्यासे उत्पन्न सन्तान सावित्रीभ्रष्ट होनेसे व्रात्य कहलाये। अतएव बौधायन धर्मसूत्रका व्रात्य और मनुसंहिताका व्रात्य सम्पूर्ण विभिन्न है। मनुसंहितामें हम ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यके भेदसे तीन प्रकारके व्रात्य देखते हैं, अर्थात् ब्राह्मण व्रात्य, क्षत्रिय व्रात्य और वैश्य व्रात्य। देश-भेदसे ये फिर भिन्न भिन्न नामसे पुकारे जाते हैं। यथा—

"व्रात्यात् तु जायते विप्रात् पापात्मा भूर्जकण्टकः।
आवन्त्यवाटधानौ च पुष्पधः शैख एव च॥
झल्लो मल्लश्च राजन्याद् व्रात्यान्निच्छिविरेव च।
नटश्च करणश्चैव खसो द्रविड एव च॥
वैश्यात् तु जायते व्रात्यात् सुधन्वाचार्य एव च।
कारुषश्च विजन्मा च मैत्रः सात्वत एव च॥"

(मनु १०।२१-२३)

अर्थात् ब्राह्मण व्रात्यसे भूर्जकण्टक, आवन्त्य, वाटधान, पुष्पध और शैख; क्षत्रिय व्रात्यसे झल्ल, मल्ल, निच्छिवि, नट, करण, खस और द्रविड तथा वैश्यव्रात्य-से सुधन्वा, आचार्य, कारुष, विजन्मा, मैत्र और सात्वतों-की उत्पत्ति हुई है।

श्रीमद्भागवतके द्वादशस्कन्धके प्रथम अध्यायमें भी इन व्रात्यका उल्लेख देखते हैं। यथा—

"सौराष्ट्रावन्त्याभीराश्च शूरा अर्बुदमालवाः।
व्रात्या द्विजा भविष्यन्ति शूद्रप्राया जनाधिपाः॥ ३६

त्रिमासिकस्यं मन्त्रणां कीर्तो कार्यं पश्येत् ।
अंशुमति शुद्ध मानवाः संस्कार धारणकरीः ॥ ३३

धर्मशास्त्रोंमें [redacted] दो श्लोकोंकी टीकाएं लिखा है—
"शीलसूत्राद्विदिनमस्लिंकी त्रिभा मानवा उपनयनरहिता भविष्यन्ति । अतएव धर्मोऽ: वेदमार्गानुष्ठाः ।" श्रीमहावीर ब्राह्मणात्मात्मे मानवधर्मशिक्षा नामकी टीकामें लिखा है, 'शीलशूद्राद्विदिनमस्लिंकी त्रिभा मानवा उपनयनादि-संस्काररहिता' अतएव शूद्रपायाः भविष्यन्ति अनाधि-धेति शस्त्रोक्तं । अनाधिया इति पाठे तै शूद्रपाया शूद्र-प्रमुखा भविष्यन्तिप्रस्तुतः ।"

धर्मशास्त्रके सुप्रसिद्ध टीकाकार विज्ञानभवने लिखा है—'शीलसूत्रास्य आवश्यकादूस्य सामीप्यस्य शूद्रस्य मानवस्य मानवा संस्काराहीना त्रिभा शूद्रपाया अनाधि-कारी भविष्यन्ति ।'

जो मानते हैं, कि मानवगण शूद्र हैं—धर्मशास्त्रका यह श्लोक और सुप्रसिद्ध उन टीकाकारोंकी टीका पढ़ने हारे उनका भ्रम दूर हो जायेगा ।

प्रायश्चित्तविधि ।

उपनयनादि संस्कारके होनेसे जो मानवता दोष लगता है, प्रायश्चित्त द्वारा उस दोषयुक्त व्यक्तियोंकी शुद्धिके लिये अनेक विधान शास्त्रमें देखे जाते हैं । यथा-कालमें उपनयन नहीं होनेसे मानवता होती है । इस मानवता दोषको दूर करनेके लिये धर्मशास्त्रने आपस्तम्ब ने जो प्रायश्चित्तकी व्यवस्था दी है, नीचे उसका उल्लेख किया जाता है । आपस्तम्बका कहना है—

१ । अतिक्रान्ते सावित्र्याः कालमृतुं त्रैविद्यकं ब्रह्मचर्यं चरेत् ।

इसका इन शब्दका टीकानुसार इस सूत्रका अर्थ यह है, कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णोंके लिये जो सावित्रीकाल कहा गया उसके बीत जाने पर त्रैविद्यक व्रतोंका अनुष्ठान करना होगा । त्रैवि-द्यक शब्दकी व्याख्या इस प्रकार है—"त्रिवेदव्रता विद्या विद्यारूप शरीरोत्पादक [illegible] सुरेन्द्रनाथ [illegible] अर्थात् [illegible] अतिम [illegible] संस्कारों, ब्रह्मचर्य और गुरु [illegible] के निकट ग्रहणको कहते हैं ।

२ । अथोपनयनम् ।

इस प्रकार त्रैविद्यक ब्रह्मचर्यानुष्ठानके बाद उपनयन संस्कार होता है ।

३ । ततः संवत्सरमुदकोपस्पर्शनम् ।

अर्थात् उपनयनके बाद एक वर्ष पर्यन्त त्रिकाल स्नान करना चाहिये । जो समर्थ हैं, वे त्रिसन्ध्या स्नान करें । जो समर्थ नहीं हैं, उनके लिये यथाशक्ति स्नान उचित है ।

४ । ततोऽध्याप्यः ।

अर्थात् इस प्रकारका अनुष्ठानके बाद वेदाध्ययन उचित अध्यापनीय है ।

५ । अथ यस्य पितापितामह इत्यनुपेतौ स्यातां ते ब्रह्महसंस्तुताः ।

अर्थात् जिसके पिता पितामह अनुपेत हैं, वे ब्रह्म-हत्य कहलाते हैं । "पिता पितामह" इस शब्द द्वारा प्रपि-तामह मातामह आदि तथा इनके भ्राताओंका भी बोध होगा ।

६ । तेषामभ्यागमनं भोजनं विवाहमिति च वर्जयेत् ।

अर्थात् इनके साथ अभ्यागमन (गमनागमन व्यवहार), भोजन और विवाहादि व्यापार वर्जनीय है । अभ्या-गमन शब्दके अर्थसे मैत्रीकरण आलापादि भी समझा जायेगा ।

७ । तेषामिच्छतां प्रायश्चित्तम् ।

अर्थात् इच्छापूर्वक व्यक्तियोंका हो प्रायश्चित्तके योग्य हैं, किन्तु अनिच्छा पूर्वक पतितोंके बलात्कार करनेसे प्रायश्चित्त नहीं होगा ।

८ । यथा प्रथमेऽतिक्रम ऋतुरेवं संवत्सरः ।

सावित्रीका अतिक्रमकाल दोष आने पर एक ऋतु-काल और उसके पिताके अनुपनीत होनेसे एक वर्ष तक [illegible] । ब्रह्मचर्य करना चाहिये ।

[illegible]त्रैविद्यकम् ।

[illegible] संस्कार देना होगा, पीछे

[illegible] पावमानी

[illegible] अनु-

होगा ।

यह आपस्तम्बके टीकाकार हरदत्तका मत है। किन्तु पण्डितप्रवर रामामिश्र शास्त्रीने लिखा है—"माणवकस्य पितामहमारभ्य स्वपर्यन्तं कालातिक्रमे पूर्णं संवत्सरं यावत् पूर्वोक्तरीत्या उपनयनमकृत्वैव तीर्थविध्युक्त सर्वान्तकप्रायश्चित्तानुष्ठानमित्यर्थः।"

अर्थात् माणवकके पितामहसे ले कर निज पर्यन्त कालातिक्रममें एक वर्ष तक पूर्वोक्त रीतिके अनुसार उपनयनका उपयोगी प्रत्यवायात्मक प्रायश्चित्त करना कर्त्तव्य है।

उदकोपस्पर्शनके समय वैदिक मन्त्रका व्यवहार होता है। यथा—

(१) "अद्भिः पावमानीभिः पवन्ति यथासूक्ते।"
(ऋग्वेदोक्त)

(२) "आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु" इत्यादि
(यजुर्वेदोक्त)

(३) "कया नश्चित्र आभुवत्" इत्यादि (सामवेदोक्त) इन मन्त्रानुसार अपने सिर पर जलसेचन करना होता है।

११। अत ऊर्ध्वं प्रपितामहादेरानुस्मृतेरुपनयनं ते श्मशानसंस्तुता।

जिस माणवकके प्रपितामहसे ले कर ऊर्द्ध्वतन पुरुषोंका उपनयन स्मरणमें नहीं आता अर्थात् प्रपितामहसे कितने पुरुष व्रात्यता दोष हुआ यह ठीक ठीक मालूम नहीं, ऐसा माणवक श्मशानसंस्तुत है।

१२। तेषामभ्यागमनं भोजनं विवाहमिति च वर्जयेत् तेषामिच्छतां प्रायश्चित्तं द्वादशवर्षाणि त्रैविद्यकं ब्रह्मचर्यं चरेयुः। अथोपनयनं तत उदकोपस्पर्शनं पावमान्यादिभिः।

इनके साथ मैत्रीभाव भोजन विवाहादि वर्जनीय है। वे यदि इच्छापूर्वक प्रायश्चित्त करके पुनः संस्कृत होना चाहें, तो द्वादशवर्षव्यापी त्रैविद्यक ब्रह्मचर्यका अनुष्ठान करें। इसके बाद पावमान्यादि मन्त्रसे उदकोपस्पर्शन करना होगा।

१३। तेषामिच्छतां प्रायश्चित्तम्।

अर्थात् इनमें जिनकी इच्छा हो, वे प्रायश्चित्त कर सकते हैं। यहां पर हरदत्त कहते हैं, कि 'तेषां' शब्दसे मात्र यह समझा जाता है। किन्तु "आपस्तम्बधर्मसूत्रमीमांसा" नामक ग्रन्थमें पण्डितप्रवर रामामिश्र शास्त्रीने हरदत्तकी इस व्याख्याको युक्तियुक्त पूर्ण विचारोंसे खण्डन किया है। उनका कहना है, कि यह प्रायश्चित्त पिता पितामह आदिके लिये ही कहा गया है। आपस्तम्बसूत्रके उपक्रम उपसंहार समन्वय विचारसे यहां 'तेषां' शब्दका प्रयोग सार्थक है, यही हरदत्तका मत है। वे कहते हैं, कि इससे माणवकके अनुपनीत पिता पितामह आदिका प्रायश्चित्त व्यवस्थित नहीं हुआ है। किन्तु रामामिश्र शास्त्री महाशयने अति सूक्ष्म विचारसे इसको खण्डन कर ताण्ड्य-महाब्राह्मणसे एक प्रमाण दिखलाते हुए अपने सिद्धान्तको मजबूत किया है। उनका कहना है, कि माणवकके अनुपनीत पितृपितामहादिको भी जो प्रायश्चित्तकी व्यवस्था है वह ताण्ड्यब्राह्मणमें भी दिखाई देती है—

अनुमोदितसामवेदताण्ड्य ब्राह्मणे सप्तदशाध्याये चतुर्थे खण्डे प्रथम ब्राह्मणे तद्यथा—"अथैष शमनी-मेढ्राणां स्तोमो ये ज्येष्ठाः सन्तो व्रात्यां प्रवसेयुस्त एतेन यजेरन्।"

इसकी व्याख्या इस प्रकार है—"शमेन शमोनि-मद्रेण शमोनिमदंस्तुर्द-वयसि प्राप्ते तस्मात् यौवन-वयस्येव भोगं अनुदत्तं पुंस्त्वव्यापारासमर्थं आसमन्तात् मेढ्रमुपस्थेन्द्रियं येषां ते इतेन व्रात्यस्तोमेन यजेरन्-इत्युक्त्वा वृद्धान् प्रति संस्कारोक्तं सुव्यक्तम्।"

इसका अर्थ इस प्रकार है—स्वभावतः ही इन्द्रिय व्यापारमें समोनिम्र होता है। यौवनके अवसान पर पुंस्त्वव्यापारासमर्थ वृद्ध व्रात्योंको भी व्रात्यस्तोम यज्ञ द्वारा संस्कार करना उचित है। इससे वृद्ध व्रात्यगणका भी संस्कार कहा गया है।

महर्षि कात्यायनके सिद्धान्त द्वारा भी हरदत्तका अभिमत खण्डित होता है। इस सम्बन्धमें भी उन्होंने कात्यायनश्रौतसूत्रके द्वितीय काण्डमें लिखा है—

१। "त्रिपुरुषं पतित सावित्रीकाणां अपत्ये संस्कारो नाध्यापनञ्च।"

अर्थात् तीन पीढ़ी तक पतितसावित्रीक व्यक्तियोंके लिये अपत्य संबंधी संस्कार या अध्यापना नहीं है।

२। "तेषां संस्कारेप्सुः व्रात्यस्तोमेनेष्ट्वा कामाधी-यीरन् व्यवहार्या भवन्ति।"

त्रिरात्रेष्वहं वान्धवानां चोपयोगो कल्पनीयस्तथा ।

औदुम्बरि शूद्र मागधा शौचस्नातपातकान्तेनः । ३३

धर्मप्रकाशमें [illegible] दो श्लोकोंकी टीकामें लिखा है—"औदुम्बरादिदेशवर्णिनो द्विजा जातका उपनयनादिनः अतिरिक्ति। यस्त्ववस्थाः पैतृकात्मवाचः।" औदुम्बरीय तपश्चरणके तामसवर्णित्वका भागी होनेसे लिखा है, 'औदुम्बरादिदेशवर्णिनो द्विजा जातका उपनयनादि-संस्कारहिनो' अनवद्य शूद्रवत्ता अतिरिक्ति प्रायश्चित्तेन तस्योपनम। अन्यथिता इति पाठे तु शूद्रवाटा शूद्र-प्रभृत अतिरिक्तिमवर्थः।'

धर्मप्रकाशके सुविख्यात टीकाकार विज्ञानेश्वरने लिखा है—'औदुम्बराद्य आवस्थाद्य मातंगादय शूद्राद्य मालवादय जातका संस्कारहीनाः द्विजाः शूद्रवाटा अनाधि-वनतो अतिरिक्ति।'

जो समझते हैं, कि सत्यगात शूद्र हैं—धर्मप्रकाशका यह श्लोक और सुप्रसिद्ध उन टीकाकारोंकी टीका पढ़ने द्वारा उनका भ्रम दूर हो जायेगा।

सद्व्यवस्था।

उपनयनादि संस्कारहीन होनेसे जो पातकका दोष लगता है, प्रायश्चित्त द्वारा उस दोषयुक्त व्यक्तियोंकी शुद्धिके लिये अनेक विधान शास्त्रमें देखे जाते हैं। यथा-कालमें उपनयन नहीं होनेसे पातकता होती है। इस पातकता दोषको दूर करनेके लिये धर्मसूत्रकार आपस्तम्ब ने जो प्रायश्चित्तकी व्यवस्था दी है, नीचे उसका उल्लेख किया जाता है। आपस्तम्बका कहना है—

१। यस्य पित्रादि सावित्रीपतः कालपूर्वं नौतिकं प्रायश्चित्तं चरेत्।

इसका इस आपस्तम्ब टीकानुसार इस सूत्रका अर्थ यह है, कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णों से जिसके लिये जो सावित्रीकाल कहा गया उसके बीत जाने पर सौतिक प्रायश्चित्तका अनुष्ठान करना होगा। सौतिक शब्दकी व्याख्या इस प्रकार है—"त्रि-अवस्था त्रिरात्र त्रिविध सर्वतिस्रःपूर्व त्रिरात्र सौतिकं प्रायश्चित्तम्" ऐसे अर्थसे सौतिक यह निष्पन्न हुआ है। अतिकृच्छ्र, चान्द्रायण और तप्तकृच्छ्र ये तीनो विधान सौतिक प्रायश्चित्त कहलाते हैं।

२। सर्पास्नानम्।

इस प्रकार सौतिक प्रायश्चित्तानुष्ठानके बाद स्नानसे संस्कार होता है।

३। ततः संवत्सरपूर्वं त्रिरात्रस्नानम्।

अर्थात् इसके बाद वर्षपर्यन्त तीन रात्रि स्नान करना चाहिये। जो समर्थ हैं, वे त्रिकालमें स्नान करें। जो समर्थ नहीं हैं, उनके लिये यथाशक्ति स्नान उचित है।

४। सपादप्रायश्चित्तः।

अर्थात् इस प्रकारका अनुष्ठानके बाद संस्कार पतित अशौचमोक्ष है।

५। अथ यस्य पितापितामह इत्यनुवेषी स्यात्ते प्रत्यहम् स्मृताः।

अर्थात् जिसके पिता पितामह अनुवेश हैं, वे प्रत्यहन् कहलाते हैं। "पिता पितामह" इस शब्द द्वारा प्रपितामह मातामह आदि तथा इनके पूर्वजोंका भी बोध होगा।

६। नैवाशनपानादि भोजनं विवाहादिनि च कुर्वीत्।

अर्थात् इनके साथ पक्वान्नादि (सानादि स्नानादि), भोजन और विवाहादि व्यवहार वर्जनीय है। अन्नपान शब्दमें वर्तन पात्र आसनादि भी समझा जायेगा।

७। नैवानिच्छतो प्रायश्चित्तम्।

अर्थात् इच्छापूर्वक स्वयंपतित हो प्रायश्चित्तके योग्य हैं, किन्तु अन्यथा पूर्वक परकीयोंसे बलात्कार करनेसे प्रायश्चित्त नहीं होता।

८। यथा प्रथमोत्पन्न अनुवेश्यं संस्कारः।

प्रायश्चित्तका उपनयनादि योग आदि पर नव प्रसू-कालमें और उनके पिताके अनुवर्तन होनेसे एक वर्ष तक अशुचर्याका अनुसरण करना चाहिये।

९। अधोनिरहर्षं पर्षत्कल्पनम्।

इसके बाद उपनयन संस्कार देना होगा, जोकि षड्वर्षोपरान्त कहलाता है।

१०। वर्षत्रयं संवत्सरं संस्कारम् ब्रह्मचर्यम् अनुवेशं तु।

जिसके अनुवेश होनेसे एक वर्ष और जिसके अनुवेश नहीं होनेसे दो वर्ष तक ब्रह्मचर्यका पालन करना होगा।

यह आपस्तम्बके टीकाकार हरदत्तका मत है। किन्तु पण्डितवर रामनिश्र शास्त्रीने लिखा है—"माणवकस्य पितामहादारभ्य अपरांगन' कालातिक्रमे पूर्णं संवत्सरं यावत् पूर्वोक्तरीत्या उपनयनव्यवहार्याय त्रैविद्यकव्रत-चर्यात्मकप्रायश्चित्तानुष्ठानमित्यर्थः।"

अर्थात् माणवकके पितामहसे ले कर जिस वर्णके कालातिक्रमसे एक वर्ष तक पूर्वोक्त रीतिके अनुसार उपनयनका उपयोगी व्रतचर्यात्मक प्रायश्चित्त करना कर्त्तव्य है।

उदकोपस्पर्शनके समय वैदिक मन्त्रका व्यवहार होता है। यथा—

(१) "सप्तभिः पावमानीभिः यन्ति पवायूतके।"
(ऋग्वेदीय)

(२) "आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु" इत्यादि
(यजुर्वेदीय)

(३) "कया नश्चित्र आभुवत्" इत्यादि (सामवेदीय)

इस मन्त्रानुसार अपने सिर पर जलसेचन करना होता है।

११। अथ यस्य प्रपितामहादेर्नानुस्मर्य्यते उपनयनं ते श्मशानसंस्तुताः।

जिस माणवकको प्रपितामहसे ले कर ऊर्द्धतन पुरुषोंका उपनयन स्मरणमें नहीं आता अर्थात् प्रपितामहसे कितने पुरुष व्रात्यता दोष हुआ यह ठीक ठीक मालूम नहीं, वैसा माणवक श्मशानसंस्तुत है।

१२। तेषामभ्यागमनं भोजनं विवाहमिति च वर्जयेत् तेषामिच्छतां प्रायश्चित्तं द्वादशवर्षाणि त्रैविद्यकं ब्रह्मचर्य्यं चरेदथोपनयनं तत उदकोपस्पर्शनं पावमान्यादिभिः।

इनके साथ मेलजोल भोजन विवाहादि वर्जनीय है। वे यदि इच्छापूर्वक प्रायश्चित्त करके पुनः संस्कृत होना चाहें, तो द्वादशवर्षव्यापी त्रैविद्यक ब्रह्मचर्य्यका अनुष्ठान करें। इसके बाद पावमान्यादि मन्त्रसे उदकोपस्पर्शन करना होगा।

१३। तेषामिच्छतां प्रायश्चित्तम्।

अर्थात् इनमें जिनकी इच्छा हो, वे प्रायश्चित्त कर सकते हैं। यहां पर हरदत्त कहते हैं, कि 'तेषां' शब्दसे माणवक समझा जाता है। किन्तु "संस्कारमीमांसा" नामक ग्रन्थमें पण्डितवर रामनिश्र शास्त्रीने हरदत्तकृत इस व्याख्याको युक्तियुक्त पूर्ण विचारोंसे खण्डन किया है। उनका कहना है, कि पञ्चापदिष्ट पिता पितामह आदिके लिये ही कहा गया है। आपस्तम्बसूत्रके उपक्रमोपसंहार समन्वय विचारमें यहां 'तेषां' शब्दका वाच्य माणवक है, यही हरदत्तका मत है। वे कहते हैं, कि इसमें व्रात्यके अनुपनीत पिता पितामह आदिका प्रायश्चित्त उपदिष्ट नहीं हुआ है। किन्तु रामनिश्र शास्त्री महाशयने अति सूक्ष्म विचारसे इसको खण्डन कर ताण्ड्य-महाब्राह्मणसे एक प्रमाण दिखलाते हुए अपने सिद्धान्तको मजबूत किया है। उनका कहना है, कि माणवकके अनुपनीत पितृपितामहादिको भी जो प्रायश्चित्तकी व्यवस्था है वह ताण्ड्यब्राह्मणमें भी दिखाई देती है—

अनुमोदितव्रात्यवर्णनापक्रम ब्राह्मणे सप्तदशाध्याये चतुर्थे खण्डे प्रथम आर्वणे तद्यथा—"अथैष शमनीचामेढ्राणां स्तोमो ये ज्येष्ठाः सन्तो व्रात्यां प्रवसेयुस्त एतेन यजेरन्।"

इसकी व्याख्या इस प्रकार है—"शमेन मनोनिग्रहेण मनोनिग्रहेन्द्रियनिग्रहवति प्रायः समस्यात् यौवनापगमेन मेढ्रं अनुलग्नं पुंव्यापारासमर्थं आयमनात् संयुक्तमेढ्रेन्द्रियं येषां ते ऽनेन व्रात्यस्तोमेन यजेरन्नित्युक्त्वा वृद्धानामपि संस्कारोऽस्तीत्युपलक्षितम्।"

इसका अर्थ इस प्रकार है—स्वभावतः जो इन्द्रियव्यापारमें मनोनिग्रह होता है। यौवनके अपगम पर पुंव्यापारासमर्थ वृद्ध व्रात्योंको भी व्रात्यस्तोम यज्ञ द्वारा संस्कार करना उचित है। इसमें वृद्ध व्रात्यगणका भी संस्कार कहा गया है।

महर्षि कात्यायनके सिद्धान्त द्वारा भी हरदत्तका अभिमत खण्डित होता है। इस सम्बन्धमें भी उन्होंने कात्यायनश्रौतसूत्रके द्वितीय काण्डमें लिखा है—

१। "त्रिपुरुषं पतितसावित्रीकाणां अपत्ये संस्कारो नाध्यापनञ्च।"

अर्थात् तीन पीढ़ी तक पतितसावित्रीक व्यक्तियोंके लिये अपत्य संबंधमें संस्कार वा अध्यापना नहीं है।

२। "तेषां संस्कारेप्सुः व्रात्यस्तोमेनेष्ट्वा काममधीयीरन् व्यवहार्या भवन्ति।"

इसके बाद संस्कारविहीनोंकी [illegible] प्रायश्चित्त आपस्तम्बोक्त द्वारा शुद्धताएँ होती हैं।

प्रायः सर्व धर्मोंमें भी विधान उपनयनानुष्ठानके बाद ब्रह्मचर्यकी व्यवस्था है। उपनयन होने पर गायत्र्यादि [illegible] द्वारा पूर्वोक्त [illegible] विधान है। इन सब कार्यों द्वारा पारलौकिक हितसाधक [illegible] सम्पन्न होते हैं। [illegible] बाद आपस्तम्बने [illegible] दर्शित किया है। यथा—"[illegible]"

अर्थात् [illegible] उपदेशका [illegible] अध्ययन करना होगा, किन्तु जिस ब्राह्मणोंके [illegible] वेदका [illegible] अधिकार उस समय भी नहीं है। क्योंकि, उसके बादके सूत्रमें ही लिखा है— "[illegible]"

अर्थात् जिस ब्राह्मणोंके [illegible] वेद अध्यापनीय नहीं है।

हरदत्तने कहा है—"[illegible] किन्तु पुत्रप्रभृतीनाम्" अर्थात् स्वयं वेद पढ़नेका अधिकार नहीं होने पर भी पुत्रादिके पढ़नेका अधिकार होगा।

इस प्रकार संस्कृत हो पुत्रका होनेसे उसका [illegible] संस्कृत होता है। उसके बाद ऐसे वंशमें फिर कोई जात होनेसे उसका संस्कार [illegible] जैसा होगा। अर्थात् [illegible] उपनयनसे ही उसका प्रायश्चित्त होगा। यथा आपस्तम्बने लिखा है—

"[illegible]"

अर्थात् उक्त प्रकारसे प्रायश्चित्त करनेके बाद यदि पुत्र हो, तो उस वंशका [illegible] रहता है। ऐसे वंशके किसी व्यक्तिका उपनयनकाल बीत जाने पर [illegible] अनुष्ठान करानेके बाद फिर संस्कार [illegible] अधिकार होता है। ऐसे [illegible] होता है वहां [illegible] होता है अर्थात् और फिर कोई प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ता। इसी कारण आपस्तम्बने लिखा है—

"[illegible]"

अर्थात् [illegible] और वैश्योंका उपनयनकाल [illegible] है, उसी कालके अनुसार [illegible] उपनयन होगा।

आपस्तम्बके धर्मसूत्रानुसार कई पीढ़ी तक पतित सावित्रीक व्यक्तियोंका भी इसी प्रकार प्रायश्चित्त द्वारा पुनः संस्कार होगा। इस तरह प्रायश्चित्त द्वारा [illegible] ऐहिक पारलौकिक कार्य करनेमें अधिकार होता है। "[illegible] उपनयनम्" सूत्रकी व्याख्या हरदत्तने उज्ज्वलावृत्तिमें भी लिखी है—

"[illegible]" इस वचन पर [illegible] नहीं सकती। किन्तु पीछे उन्होंने लिखा है—

"यस्य तु प्रपितामहादेः [illegible] नानुस्मर्यते उपनयनं तस्य प्रायश्चित्तं [illegible]। [illegible]।"

अर्थात् जिसके प्रपितामहके पिताके [illegible] उपनयनसंस्कार नहीं हुआ है, उसका प्रायश्चित्त नहीं है। हरदत्त महाशयकी टीका [illegible] समीचीन नहीं है, राममिश्र शास्त्री महाशयने अपने ग्रंथमें उसका खंडन किया है। उन्होंने [illegible] और [illegible] उद्धृत कर इस [illegible] विचार कर दिखलाया है, कि कई पीढ़ी तक पतित सावित्रीक व्यक्तिगण भी आपस्तम्बके धर्मसूत्रानुसार प्रायश्चित्त करके ऐहिक पारलौकिक कार्य करनेके अधिकारी होते हैं। यथा—

"[illegible]"

पण्डितवर राममिश्र शास्त्री महोदयने आपस्तम्ब सूत्रका वचन उद्धृत करके भी अपने मतका समर्थन किया है।

"[illegible] "अथ उपनयनम्" [illegible]

वस्ये संस्कारो नाध्यापनं च तेषां 'संस्कारेप्सु व्रात्यस्तो-मेनेष्ट्वा काममधीयीरन् व्यवहार्या भवन्तीति श्रुतेः।'

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यके उपनयनका मुख्य काल निर्देश करके पीछे आपोडशादि द्वारा गौण कालका उल्लेख किया गया है। गौण कालका लङ्घन करने पर भी जो पातित्य होता है, वह कहा गया। ऐसी हालतमें उपनयन, अध्यापन और यजनादि व्यव-हार तक निषिद्ध है।

इसके बाद सूत्रकारने कहा है,—"कालातिक्रमे नियत-वत्"

उक्त सूत्रकी व्याख्यामें महामहोपाध्याय रामनिश्र शास्त्रीने निम्नोक्त प्रकारसे अपना अभिमत व्यक्त कर लिया है—"कालातिपाते यथा श्रौतेषु स्मार्त्तेषु च कर्मसु प्रायश्चित्त मनुष्ठाय प्रकृतिकर्मानुष्ठानं नियतं, न तु सर्वथा कर्मलोपः। काललोपमपेक्ष्य कर्मलोपस्यानि-ष्टतरत्वात् तथैवात्रापि प्रायश्चित्तमनुष्ठाय भवत्युप-नयनार्हता।"

अर्थात् श्रौत और स्मार्त्त क्रियादि सम्बन्धमें समय बीत जाने पर जिस प्रकार श्रौत और स्मार्त्त कर्मोंमें प्रायश्चित्तका अनुष्ठान करके पीछे प्रकृत कर्मानुष्ठान करना ही नियमसिद्ध है, किन्तु उस प्रकारका लोप करना किसी हालतसे उचित नहीं, क्योंकि काललोप-की अपेक्षा कर्मलोप अति अयोग्य है। यहां पर भी उसी प्रकार काललोपके कारण व्रात्यदोष होनेसे उसके लिये प्रायश्चित्त करके फिरसे उपनयनार्हता उत्पन्न होती है, उसके बाद वैदिक कार्योंका अधिकार प्रदान करना ही शास्त्रीय विधि है। कात्यायनसूत्रका यही अभिप्राय है। आपस्तम्ब और कात्यायन इन दोनोंने ही बहुपुरुषवर्जित सावित्रीक व्यक्तियोंके प्रायश्चित्तके बाद उपनयनसंस्कारका अभिमत प्रदान किया है।

'पराशरमाधव' नामक माधवाचार्य रचित पराशर-स्मृतिकी व्याख्यामें सब प्रकारका व्रात्यप्रायश्चित्त वर्णित है। उसे यहां पर बिल्कुल भाषामें उद्धृत करना आवश्यक है।

पराशरमाधवीय प्रायश्चित्त-काण्डोक्त व्रात्य-प्राय-श्चित्त इस प्रकार है—

"यस्य पितादयोऽप्यनुपनीताः तस्य प्रायश्चित्तम् द्रष्टव्यं।

यस्य पिता पितामह इत्युनुपनीतौ स्यातां ते ब्रह्मघ्नसंस्तुताः तेषामभ्यागमनं भोजनं विवाहमिति वर्जयेत्। तेषामिच्छतां प्रायश्चित्तं, यथा प्रथमे अति-क्रमे कृच्छ्रः एवं सम्वत्सरः। अथ उपनयनं। ततः संवत्सरं उदकोपस्पर्शं प्रति-पुरुषं संख्याय संवत्सरान् यावन्तोऽनुपनीताः स्युः। सप्तभिः पावमानीभिः यदन्ति यच्च दूरक इत्येताभिः यजुःपवित्रेण साम्नाङ्गिरसेन इति अथवा व्याहृतिभिरेव। अथाध्याप्यः। यस्य प्रपिता-महादि नं अनुस्मर्यते उपनयनं ते श्मशान-संस्तुताः। तेषामभ्यागमनं भोजनं विवाहमिति वर्जयेत्। तेषा-मिच्छतां प्रायश्चित्तं द्वादशवर्षाणि त्रैविद्यकं ब्रह्मचर्यं चरेत्, अथ उपनयनं। ततः उदकोपस्पर्शनम्।"

पराशर-माधवीय प्रायश्चित्तकाण्डमें भी मनुके व्यवस्थित निःसृत और धनिष्ठके व्यवस्थापित उद्दा-लक व्रताचरणका विधान इसके पहले लिखा जा चुका है।

सामवेदीय ताण्ड्यब्राह्मणमें व्रात्य-प्रायश्चित्तका जो विधान देखनेमें आता है वह व्रात्यस्तोमके नामसे प्रसिद्ध है। व्रात्यस्तोमके अनेक भेद हैं। यहां सिर्फ "हीनव्रात्य" और "गरगिर" व्रात्यस्तोमकी बातें लिखी जाती हैं। महामहोपाध्याय रामनिश्रने अपने व्रात्यसंस्कार-मीमांसा ग्रन्थके १०५ से कई पृष्ठोंमें इस विषयकी आलोचना की है। हम उनका कुछ अंश नीचे उद्धृत करते हैं—

"त्रिषु पुरुषेष्वप्यनुपेतेषु संस्कारो भवति वैश्यानुमते यथा ताण्ड्य-ब्राह्मण सप्तदश अध्याये चतुर्थखण्डे "अथैष शमनीचामेढ्राणां स्तोमो ये ज्येष्ठाः सन्तो व्रात्यां प्रवसेयुस्त एतेन यजेरन्" तद्भाष्य—अथ पूर्वोक्त कर्म व्रात्यानां संस्कारविधानानन्तरम् अथ वृद्धानां व्रात्यानां शमनीचामेढ्राणाम्—शमेन नीचकोटरमेढ्र भोग-मनुष्यं मेढ्रं शिश्नं येषां ते तथाविधाः कार्यवर्षात्मक-योग्यं इन्द्रियं तेषां स्तोमस्तेनानुष्ठेय इत्यर्थः; ज्येष्ठाः ये ज्येष्ठाः वृद्धतमा सन्तोऽपि व्रात्यावस्थायाम् प्रवत्स्यन्तो व्रात्याधिकारिणो भवन्ति, तदर्थम् व्रात्यस्तोमानुष्ठानेन

इनमें प्रथम [illegible] [illegible] [illegible] द्वारा [illegible] होते हैं।

[illegible] [illegible] होने पर [illegible] [illegible] है। इस तरह [illegible] [illegible] होते हैं। [illegible] [illegible] किया है। यथा—"[illegible]"

अर्थात् [illegible] [illegible] होता, किंतु [illegible] [illegible] नहीं है। क्योंकि, उसके बाद सूत्र ही लिखा है— "[illegible]"

अर्थात् [illegible] नहीं है।

इसके आगे कहा है—"[illegible]" अर्थात् [illegible] अधिकार नहीं होने पर भी [illegible] अधिकार होता।

इस प्रकार [illegible] होता है। [illegible] प्रायश्चित्त होता। [illegible] यथा [illegible] लिखा है—

"[illegible]"

अर्थात् इस प्रकारसे प्रायश्चित्त करनेके बाद यदि [illegible] है, तो [illegible] है। [illegible] अधिकार होता है। [illegible] नहीं [illegible] इसी कारण [illegible] लिखा है—

"[illegible]"

अर्थात् [illegible] और [illegible] होता।

[illegible] सूत्रानुसार [illegible] प्रायश्चित्त द्वारा [illegible] होता। इस तरह प्रायश्चित्त द्वारा [illegible] करनेका अधिकार होता है। "[illegible]" सूत्रकी व्याख्या [illegible] लिखी है—

"[illegible]" इस वचन पर [illegible] नहीं सकते। किन्तु [illegible] लिखा है—

"[illegible]"

अर्थात् [illegible] नहीं हुआ है, उसका प्रायश्चित्त नहीं है। [illegible] नहीं है, [illegible] किया है। [illegible] और [illegible] कर दिखलाया है, कि [illegible] प्रायश्चित्त करके [illegible] अधिकारी होते हैं। यथा—

"[illegible]"

[illegible] सूत्रका [illegible] किया है।

"[illegible]"

पत्ये संस्कारो नाध्यापनं न तेषां 'संस्कारेषु व्रात्यस्तोमेनेष्ट्वा काममधीयीरन् व्यवहार्या भवन्तीति श्रुतेः।'

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यके उपनयनका मुख्य काल निर्देश करके पीछे आषोडशादि द्वारा गौण कालका उल्लेख किया गया है। गौण कालका लङ्घन करने पर भी जो पातित्य होता है, वह कहा गया। ऐसी हालतमें उपनयन, अध्यापन और यजनादि व्यवहार तक निषिद्ध है।

इसके बाद सूत्रकारने कहा है,—"कालातिक्रमे नियतवत्"

उक्त सूत्रकी व्याख्यामें महामहोपाध्याय रामनिश्र शास्त्रीने निम्नोक्त प्रकारसे अपना अभिमत व्यक्त कर लिया है—"कालातिपाते यथा श्रौतेषु स्मार्तेषु च कर्मसु प्रायश्चित्तमनुष्ठाय प्रकृतिकर्मानुष्ठानं नियतं, न तु सर्वथा कर्मलोपः। काललोपमपेक्ष्य कर्मलोपस्यातिजघन्यत्वात् तथैवात्रापि प्रायश्चित्तमनुष्ठाय भवत्युपनयनार्हता।"

अर्थात् श्रौत और स्मार्त क्रियादि सावनमें समय बीत जाने पर जिस प्रकार श्रौत और स्मार्त कर्मोंमें प्रायश्चित्तका अनुष्ठान करके पीछे प्रकृत कर्मानुष्ठान करना ही नियमसिद्ध है, किन्तु उस प्रकारका लोप करना किसी हालतसे उचित नहीं, क्योंकि काललोपकी अपेक्षा कर्मलोप अति जघन्य है। यहां पर भी उसी प्रकार काललोपके कारण व्रात्यदोष होनेसे उसके लिये प्रायश्चित्त करके फिरसे उपनयनार्हता उत्पन्न होती है, उसके बाद वैदिक कार्योंका अधिकार प्रदान करना ही शास्त्रीय विधि है। कात्यायनसूत्रका यही अभिप्राय है। आपस्तम्ब और कात्यायन इन दोनोंने ही बहुपुरुषपतित सावित्रीक व्यक्तियोंके प्रायश्चित्तके बाद उपनयनसंस्कारका अभिमत प्रदान किया है।

'पराशरमाधव' नामक माधवाचार्यरचित पराशरस्मृतिकी व्याख्यामें सब प्रकारका व्रात्यप्रायश्चित्त वर्णित है। उसे यहां पर विस्तृत भावमें उद्धृत करना आवश्यक है।

पराशरमाधवीय प्रायश्चित्त-काण्डोक्त व्रात्य-प्रायश्चित्त इस प्रकार है—

'यस्य पितादयोऽप्यनुपनीताः तस्य प्रायश्चित्तं द्रष्टव्यं।

यस्य पिता पितामह इत्यनुपनीतौ स्यातां ते ब्रह्महसंस्तुताः तेषामभ्यागमनं भोजनं विवाहमिति वर्जयेत्। तेषामिच्छतां प्रायश्चित्तं, यथा प्रथमे अतिक्रमे कृच्छ्रः एवं सम्वत्सरः। अथ उपनयनं। ततः संवत्सरं उदकोपस्पर्शं प्रति-पुरुषं संख्याय संवत्सरान् यावन्तोऽनुपनीताः स्युः। सप्तभिः पावमानीभिः यदन्ति यच्च दूरक इत्येताभिः यजुःपवित्रेण आङ्गिरसेन इति अथवा व्याहृतिभिरेव। अथाध्याप्यः। यस्य प्रपितामहादि नं नानुस्मर्यते उपनयनं ते श्मशानसंस्तुताः। तेषामभ्यागमनं भोजनं विवाहमिति वर्जयेत्। तेषामिच्छतां प्रायश्चित्तं द्वादशवर्षाणि त्रैविद्यकं ब्रह्मचर्यं चरेत्, अथ उपनयन। ततः उदकोपस्पर्शनम्।"

पराशर-माधवीय प्रायश्चित्तकाण्डमें भी मनुके व्यवस्थित विहच्छ और वसिष्ठके व्यवस्थापित उद्दालक व्रतावरणका विधान इसके पहले लिखा जा चुका है।

सामवेदीय ताण्ड्यब्राह्मणमें व्रात्य-प्रायश्चित्तका जो विधान देखनेमें आता है वह व्रात्यस्तोमके नामसे प्रसिद्ध है। व्रात्यस्तोमके अनेक भेद हैं। यहां सिर्फ "हीनव्रात्य" और "गरगिर" व्रात्यस्तोमकी बातें लिखी जाती हैं। महामहोपाध्याय रामनिश्रने अपने व्रात्यसंस्कार-मीमांसा ग्रन्थके १०५ से कई पृष्ठोंमें इस विषयकी आलोचना की है। हम उसका कुछ अंश नीचे उद्धृत करते हैं—

"किञ्च वृद्धव्रात्यानामपि संस्कारो भवति गिरानुगतो यथा ताण्ड्य-ब्राह्मण सप्तदश अध्याये चतुर्थखण्डे "अथैष शमनीचामेढ्राणां स्तोमो ये ज्येष्ठाः सन्त व्रात्यां प्रवसेयुस्त एतेन यजेरन्" तद्भाष्य—अथ पूर्वोक्त कर्मां यत्रो व्रात्यानां संस्कारविधानानन्तरम् एष वक्ष्यमाणो यज्ञः शमनीचामेढ्राणाम्—शमिनं नीचमेढ्रं येषां ते तथाविधाः स्थविरवार्द्धक्यबहुलीनां इत्यर्थः तेषां स्तोममनेनानुष्ठेय इत्यर्थः। तस्मात् ये ज्येष्ठाः वृद्धतया सन्तोऽपि व्रात्यत्वेनापि व्रात्यस्तोमादिवचनादिदं सिध्यति, अतएव व्रात्यस्तोमानुष्ठेन्

[illegible]

फिर [illegible] —"[illegible]"

इससे स्पष्ट प्रतिपन्न होता है, कि कुछ शाक्तोंका भी [illegible] है। "[illegible]" इत्यादि [illegible] पहले लिखी जा चुकी है। अभी केवल शाक्तोंका [illegible] जाती है। शाक्त साधारणतः चार प्रकारका है—निषिद्ध, कनिष्ठ, ज्येष्ठ और श्रेष्ठ। [illegible] हैं।

निषिद्ध शाक्त—जो मद्यपान, मांसभक्षण, [illegible] हैं, वे ही निषिद्ध शाक्त हैं।

कनिष्ठ शाक्त—जिनके [illegible] हैं, वे ही कनिष्ठ शाक्त हैं।

शुद्ध वा ज्येष्ठ शाक्त—जिनका [illegible] नहीं होता और [illegible] में कूदे हो गये हैं, वे ही शुद्ध शाक्त हैं।

श्रेष्ठ शाक्त—जिनके [illegible] नहीं हुआ, [illegible] है, [illegible] हुए हैं, वे ही श्रेष्ठ शाक्त हैं।

[illegible] है, कि [illegible] नहीं है, वे [illegible] भी नहीं करते।

[illegible] है। [illegible] है। [illegible]

[illegible] —"[illegible]"

[illegible] "शाक्त" कहलाते हैं। [illegible] होता है, [illegible] होते हैं। अतएव [illegible] भी "शाक्त" कहलाते हैं। [illegible] हैं।

[illegible] होता; यथा—

"[illegible]" ([illegible])
"[illegible]" ([illegible])

अर्थात् [illegible] और [illegible] ।

[illegible] लिखा है—"[illegible]" ([illegible])

अर्थात् [illegible] ।

[illegible] है, कि [illegible]

ब्रह्मचर्याश्रम और गृहस्थाश्रमका विपर्यय निमित्त चतुर्थ पाप और अनुपनीत विवाहादि कर्म करके पुत्रादि उत्पादन पञ्चम पाप है। प्रत्येक पापके लिये पृथक् पृथक् प्रायश्चित्त करना आवश्यक है या नहीं? इसके उत्तरमें इतना ही कहना पर्याप्त होगा, कि गुरुलघुपातकमें गुरुपातकके प्रायश्चित्त द्वारा ही लघुपातककी निवृत्ति हुआ करती है। अतएव व्रात्यस्तोम प्रायश्चित्त द्वारा ही सभी प्रकारके पापोंकी निवृत्ति होती है।

मत्स्यसूक्तमें भी प्रायश्चित्तका विषय लिखा है। व्रात्यस्तोम द्वारा उनकी विशुद्धि होती है। यज्ञ करनेमें अशक्त होने पर औद्दालिकव्रतका आचरण करे। इसमें दो मास तक जौ खा कर, एक मास दूध पी कर, एक पक्ष दही, ७ दिन घी, अयाचित भावमें ६ दिन, तीन दिन केवल जल पी कर और एक अहोरात्र उपवास करके रहना पड़ता है। इसके बाद उसका संस्कार कार्य किया जाता है। प्रायश्चित्त इस प्रकार है—

शिखाके साथ केश वपन कार्य करके अर्थात् समूचा सिर मुड़वा कर समाहित चित्तसे व्रतानुष्ठान करे। ५ या ७ ब्राह्मणको हविष्यान्न भोजन कराना होगा तथा स्वयं २१ दिन प्रसृति परिमाणमें (पसर भर) जौ खा कर रहे। इस प्रकार जौ द्वारा विशुद्ध होने पर उसका उपनयन संस्कार होगा। ऐसा व्रत करनेमें जो अशक्त हैं, वे तीन तीन चान्द्रायणानुष्ठान करके उपनयन संस्कार ग्रहण कर सकते हैं।

सुप्रसिद्ध स्वामी रामनाथ शास्त्री महाशयने इस सम्बन्धमें जो व्यवस्था की है, वह इस प्रकार है—

व्रात्य यदि ब्रह्मचर्य महाव्रत भी नहीं कर सकते हैं, तो उनके प्रत्याम्नायस्वरूप ३६० गोप्रदान करना होगा। गोदान त्रिविधभाव उत्तमभाव, मध्यमभाव, कनिष्ठभाव भेदसे तीन प्रकारका होगा। जिसकी जैसी शक्ति है उसे उसीके अनुसार करना होगा। धनि, धीर, दरिद्र, अति दरिद्र भेदसे प्रायश्चित्तका अधिक और न्यूनत्व करना होगा। अर्थात् धनीके लिये गौका मूल्य, मूल्यके बदलेमें ३६० रु०, दरिद्रके लिये ३६० पैसे और अति दरिद्रके लिये ३६० कौड़ी देनेसे ही काम चलेगा।

देशकालादि विपर्ययसे जिनका सावित्री पतित होती है, वे एक चान्द्रायण करके उपनीत हो सकते हैं।

व्रात्य और वृषलत्व एक नहीं है। अभी बहुतोंकी धारणा है, कि जो व्रात्यताप्राप्त हैं वे ही वृषल हैं, अतएव उनका पातित्य अवश्यम्भावी है तथा वे प्रायश्चित्तके योग्य नहीं हैं। सच पूछिये तो यह बात ठीक नहीं, थोड़ा विचार कर देखनेसे ही इस विषय मनुवचनका एक विशद तात्पर्य्य लाभ होगा: मनुके मतसे पतित सावित्रीक व्रात्य-प्रायश्चित्तके योग्य हैं, किन्तु स्वयं क्रियालोपी वृषलका कोई प्रायश्चित्त है ही नहीं।

"शनैकस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च॥" (मनु १०।४३)

कुल्लूकमें भी लिखा है, कि उपनयनादि सब प्रकारके क्रियालोपके कारण क्षत्रियादिका तथा याजनाध्ययनादि नहीं करनेसे ब्राह्मण धीरे धीरे वृषलत्वको प्राप्त होते हैं।

ऊपरकी टीकासे स्पष्ट जाना जाता है, कि एकमात्र उपनयनसंस्काररहित होनेसे ही जातिभ्रंश नहीं होता। पुत्रपौत्रादि क्रमसे इस प्रकार यदि सभी क्रियाओं और संस्कारोंका लोप हो, तो वे वृषल कहलाते हैं। ब्राह्मणके लिये याजनाध्यापन, वेदविहित कर्मोंसे विरत, ब्राह्मणोंसे संलाप और प्रायश्चित्तमें अनास्था ही वृषलत्व है।

व्रात्यता (सं० स्त्री०) व्रात्यस्य भावः धर्मो वा, तल् टाप्। व्रात्यका भाव या धर्म, व्रात्यत्व।

व्रात्यत्व (सं० क्ली०) व्रात्यका भाव या धर्म, व्रात्यता।

व्रात्यब्रुव (सं० पु०) वह जो अपनेको व्रात्य कह कर घोषित करता हो। (अथर्व १५।१३।९)

व्रात्ययाजक (सं० पु०) व्रात्यका याजनकारी, वह जो व्रात्योंका यज्ञ करता हो।

व्रात्यस्तोम (सं० पु०) व्रात्यस्तोमः स्तोमः। यज्ञभेद। कात्यायनश्रौतसूत्रमें इसके चार भेद देखे जाते हैं, संक्षेपमें उनका विवरण नीचे दिया जाता है,—

साधारणतः त्रिपुरुष पतितसावित्रिकोंको व्रात्य कहते हैं। इनके प्रायश्चित्तके लिये सौत्रिकाग्नि ही प्रशस्त है। इसमें आधानाग्निकी कोई जरूरत नहीं होती, क्योंकि यह यज्ञाङ्गभूत क्रिया नहीं है।

"व्रात्यस्तोमप्रयोगः"

[illegible]

[illegible] होता है।

[illegible]

शं (सं० पु०) १ शिव, महादेव। २ शान्ति, [illegible]। (क्ली०) ३ सुख, कल्याण, मङ्गल।

[illegible] (सं० पु०) १ [illegible], मङ्गल। २ [illegible]। ([illegible]) ३ शुभ। ४ [illegible]। ५ [illegible]। (वि०) १ शुभ।

[illegible] (हिं० पु०) एक प्रकारका बहुत ऊँचा वृक्ष। यह [illegible] और [illegible] होता है। इसकी लकड़ी [illegible] और मजबूत होती है और मकान या गाड़ी आदि बनानेके काममें आती है। इसके पत्तोंसे [illegible] भी निकाला जाता है।

[illegible] (सं० पु०) [illegible]।

[illegible] (सं० त्रि०) [illegible] इति [illegible]। १ [illegible]। (पु०) २ [illegible] और ४८ [illegible]। ३ [illegible], एक प्रकारका [illegible]। ४ [illegible] ([illegible])

[illegible] (सं० पु०) १ [illegible]। २ [illegible]। ([illegible])

[illegible] (सं० पु०) [illegible]।

[illegible] (सं० त्रि०) [illegible] ([illegible]) [illegible]। १ [illegible]। (त्रि० पु०) २ [illegible]। ३ [illegible]। ([illegible])

[illegible] (सं० पु०) [illegible] ([illegible]) [illegible]।

[illegible] (सं० स्त्री०) [illegible]। [illegible]।

[illegible] (सं० पु०) [illegible]।

[illegible] (सं० पु०) [illegible]। ([illegible])

[illegible] (सं० स्त्री०) [illegible]। १ [illegible]। २ [illegible]। ३ [illegible]।

[illegible] (सं० त्रि०) [illegible]। १ [illegible]। २ [illegible]। ३ [illegible]।

[illegible] (सं० स्त्री०) [illegible]। १ [illegible]। २ [illegible]। ([illegible])

[illegible] (सं० त्रि०) [illegible]। १ [illegible]। ([illegible]) २ [illegible]। ३ [illegible]। ४ [illegible]। ५ [illegible]। ६ [illegible]।

[illegible] (सं० त्रि०) [illegible]। १ [illegible]। २ [illegible]। ३ [illegible]। यह [illegible] होता है। [illegible]।

[illegible] (सं० पु०) [illegible] इति [illegible]। [illegible] इति [illegible]। १ [illegible]। २ [illegible]। ३ [illegible]।

([illegible])

[illegible] (सं० त्रि०) [illegible], यह [illegible] किया जाता है।

[illegible] (सं० त्रि०) [illegible]। [illegible]।

[illegible] (सं० स्त्री०) [illegible]। [illegible]।

[illegible] (सं० त्रि०) [illegible]। १ [illegible]। २ [illegible]।

[illegible] (सं० पु०) [illegible]। [illegible] होता है। यह [illegible] जाता है।

[illegible] (सं० पु०) १ [illegible]। २ [illegible]। ३ [illegible]।

[illegible] (सं० पु०) [illegible], [illegible]।

[illegible] (सं० पु०) [illegible]। १ [illegible]। [illegible]। २ [illegible]। [illegible]

था, इसलिए वे म्लेच्छ हुए थे। उनके वंशधरगण म्लेच्छ जातिमें गिने गये थे। (ब्रह्मपु० हरिवं० १४ अ०)

४ राजा शालिवाहनका चलाया हुआ संवत् जो ईसाके ७८ वर्ष पश्चात् आरम्भ हुआ था। ५ संवत्। ६ आकार देश। ७ अज। ८ मल। ९ एक प्रकारका पशु। १० संदेह, आशंका। ११ भय, त्रास, डर।

शक (अ० पु०) शंका, संदेह, दुविधा।

शककारक (सं० पु०) वह जिसने कोई नया संवत् या शक चलाया हो, संवत्का प्रवर्त्तक।

शककेलि—एक प्राचीन कवि।

शकट (सं० पु० क्ली०) शक्नोति भारं वोढुमिति शक (शकादिभ्योऽटन्। उण् ४।८१) इति अटन्। १ यान विशेष, बैलगाड़ी। पर्याय—अन, नस। (शब्दरत्ना०) २ असुरविशेष, शकटासुर। भगवान् श्रीकृष्णने इस असुरको मारा था। यह असुर शकटाकृति था, इससे इसका नाम शकटासुर हुआ था।

(भागवत १०।७ अ०)

३ दो हजार पलकी तौल। पर्याय—भार, आचित, शाकटीन, शलाट। ४ तिनिश वृक्ष। ५ धवका वृक्ष, धौं। ६ शरीर, देह। ७ रोहिणी नक्षत्र। इसकी आकृति शकट या छकड़ेके समान है। (हलायु० २४।१०)

शकटकर्म (सं० पु०) १ गाड़ी या और कोई सवारी हाँकनेका काम। २ गाड़ी आदि सवारियोंकी सामग्री बनाने और बेचनेका काम।

शकटधूम (सं० पु०) १ गोबर या उपले आदिका धूआँ। २ एक नक्षत्रका नाम।

शकटबिल (सं० पु०) जलकुक्कुटभेद।

शकटव्यूह (सं० पु०) १ शकटके आकारका सेनाका निवेश, सेनाको इस प्रकार रखना कि उसके आगेका भाग पतला और पीछेका मोटा हो और वह देखनेमें शकटके आकारका जान पड़े। २ वह योग व्यूह जिसके अंदर उत्तरोत्तर दोहरी पंक्तियाँ हों और सब मिल जो।

शकटहन् (सं० पु०) शकटं हन्तीति हन क्विप्। श्रीकृष्ण। श्रीकृष्णने शकटासुरको मारा था, इस लिये इनका शकटहा नाम पड़ा। (भागवत १०।७ अ०)

शकटाक्ष (सं० पु०) गाड़ीका धुरा।

शकटाङ्गज—शाकटायनका एक नाम।

शकटाख्य (सं० पु०) धव या धौका वृक्ष।

शकटाख्यक (सं० पु०) शकटाख्य देखो।

शकटार (सं० पु०) राजा महानन्दका प्रधान मन्त्री। इसने अपने अपमानका बदला चुकानेके लिये चाणक्यसे मिल कर षड्यन्त्र रचा था और इस प्रकार नंदवंशका नाश किया था। २ एक प्रकारकी शिकारी चिड़िया।

शकटारि (सं० पु०) शकट दैत्यके शत्रु, श्रीकृष्ण।

शकटाल (सं० पु०) शकटार देखो।

शकटाविल (सं० पु०) जलचरपक्षीभेद।

शकटासुर (सं० पु०) एक दैत्य। इसे कंसने कृष्णको मारनेके लिये भेजा था और यह स्वयं ही कृष्ण द्वारा मारा गया था।

शकटाह्वा (सं० स्त्री०) शकटमिति आह्वा यस्याः। रोहिणी नक्षत्र। इस नक्षत्रका आकार शकटके समान है।

शकटि (सं० स्त्री०) छोटी गाड़ी।

शकटिक (सं० त्रि०) शकट-सम्बन्धी।

शकटिका (सं० स्त्री०) १ क्षुद्र शकट, छोटी बैलगाड़ी। २ बच्चोंके खेलनेकी गाड़ी।

शकटिन् (सं० त्रि०) शकटाधिकारी, शकटवान्, गाड़ी-वाला।

शकटी (सं० स्त्री०) छोटी गाड़ी।

शकटीय शकर—एक प्राचीन कवि।

शकट्या (सं० स्त्री०) शकटानां समूहः (पाशादिभ्यो यः। पा ४।२।४९) इति शकट-य-टाप्। शकटोंका समूह।

शकण्ड (सं० पु०) सेवार।

शकधूम (सं० पु०) गोबर या उपले आदिका धूआँ।

शकन् (सं० क्ली०) शकृत्, विष्ठा।

शकलि (सं० पु०) शकादिलिपि, विक्रमादित्यानुमोदित शकप्रमाण, लिखाइति आदि।

शकन्धि (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

शकन्धु (सं० पु०) शकानां अन्धुः शकन्ध्वादित्वात् अकारलोपः। शकोंका कूप या कूआँ।

शकपिण्ड (सं० पु०) शकस्य पिण्डः। विष्ठा-पिण्ड, गोबरका पिण्ड।

शकुल (सं॰ पु॰) एक मछलीका नाम।

शकुन्त (सं॰ पु॰) १ एक पक्षीका नाम। [illegible] २ [illegible]

शकृत् (सं॰ क्ली॰) [illegible]

शकट (सं॰ त्रि॰) १ [illegible] २ [illegible]

शकटार (सं॰ पु॰) [illegible]

शकर (फा॰ स्त्री॰) शक्कर, चीनी, खांड़, शर्करा।

शकरकन्द (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका प्रसिद्ध कन्द। इसकी बेलें जमीनपर फैली होती हैं। यह साधारणतः भूमिमें आलूकी तरह बोया जाता है। इसका कन्द दो प्रकारका होता है—एक लाल और दूसरा सफेद। लाल शकरकन्द [illegible] या सिन्दूरी कहलाता है और सफेदको शकरकन्द या [illegible] कहते हैं। यह भून कर या उबाल कर खाया जाता है। प्रायः हिन्दू लोग व्रतके दिन फलाहारमें इसीका व्यवहार करते हैं। यह कंद बहुत मीठा होता है और इससे एक प्रकारकी चीनी निकलती है। अनेक पाश्चात्य देशोंमें इससे चीनी निकाली भी जाती है और इसके लिये इसकी बहुत अधिक खेती होती है। वनस्पति-शास्त्रके आधुनिक विद्वानोंका अनुमान है कि यह मूलतः अमेरिकाका कंद है और वहींसे यहां आया है।

शकरखोरा (फा॰ पु॰) एक प्रकारका छोटा सुन्दर पक्षी। इसकी चोंच [illegible] होती है। यह [illegible] बहुत [illegible] होते हैं और यह [illegible] [illegible] है। [illegible] और [illegible] [illegible] है। यह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं है।

शकरपारा (फा॰ पु॰) १ एक प्रकारका [illegible] [illegible] [illegible] होता है। इसका [illegible] [illegible] [illegible] होता है, पर [illegible] [illegible] कुछ लम्बा होता है। [illegible] और बहुत मीठा होता है। २ एक प्रकारका प्रसिद्ध पकवान जो शकरपारेकी तरह चौकोर कटा हुआ होता है। यह मीठा भी बनता है और नमकीन भी। इसके बनानेके लिये पहले मैदेमें मोयन डाल कर और दूध या पानीसे गूंधते हैं और तब उसे मोटी रोटीकी तरह बेल कर छुरीसे चौकोर छोटे छोटे टुकड़ोंमें काट कर घीमें तल लेते हैं। यदि नमकीन बनाना होता है, तो मैदा गूंधते समय ही उसमें नमक, अजवाइन आदि डाल देते हैं और यदि मीठा बनाना होता है, तो बादमें इन टुकड़ियोंको तलनेके बाद चीनीके शीरेमें पाग लेते हैं। ३ चौकोर कटाई वाली एक प्रकारकी सिलाई जो [illegible] शकरपारेके आकारकी चौकोर होती है।

शकरपाला (फा॰ पु॰) शकरपारा देखो।

शकरकोरा (हिं॰ पु॰) एक प्रकारकी कंटीली झाड़ी। यह हिमालय पर्वतकी पहाड़ियों और गंगाके किनारेके इलाकोंमें पाई जाती है। [illegible] [illegible] भी है, पर साधारणतः [illegible] या [illegible] [illegible] कुछ [illegible] होता है।

शकरबादाम (फा॰ पु॰) खूबानी या जर्द [illegible] [illegible] जो [illegible] [illegible] होता है।

शकरी (फा॰ पु॰) [illegible]

शकल (सं॰ क्ली॰) [illegible] (पिं[illegible] [illegible] (१।२।१) इति कल। १ खण्ड, टुकड़ा। २ छाल, बकला। ३ [illegible], [illegible]। ४ [illegible], [illegible]। ५ [illegible]। ६ [illegible], [illegible]। ७ [illegible]। (पु॰) ८ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। ([illegible])

शकल (अ॰ स्त्री॰) १ मुखकी बनावट, आकृति, चेहरा। २ मुखका ढांचा, चेहरा। ३ किसी पदार्थकी बनावट, [illegible], आकृति, [illegible]। ४ किसी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। ५ [illegible], [illegible], [illegible], [illegible]।

शकलित (सं॰ त्रि॰) [illegible] [illegible] [illegible]

शकलेन्दु (सं॰ पु॰) अर्धचन्द्र।

शकलोत् (सं॰ पु॰) [illegible], [illegible] [illegible]।

शकल्यैषिन् (सं० त्रि०) काष्ठखण्ड मार्गणेच्छु। (अथर्व १।२५।२)

शकय (सं० पु०) शकदेश।

शकसंवत् (सं० पु०) संवत् देखो।

शकाकुल (सं० पु०) शतावरकी जातिकी एक प्रकारकी वनस्पति। यह प्रायः मिस्र देशमें अधिकतासे होती है और भारतके भी कुछ स्थानों विशेषतः काश्मीर और अफगानिस्तानमें पाई जाती है। यह प्रायः नर्म जमीनमें वृक्षोंके नीचे उगती है। यह बारहों मास रहती है। इसके डंठल डेढ़ दो हाथ ऊँचे होते हैं। इसके पत्ते प्रायः तीन अंगुल चौड़े और एक बालिश्त लम्बे होते हैं। इसके पौधेकी प्रत्येक गांठ पर पत्ते होते हैं। इसमें सफेद या लाल रंगके छोटे छोटे फूल गुच्छोंमें और काले रंगके फल लगते हैं। इसकी जड़ कंदके रूपमें होती है और बाजारमें प्रायः शकाकुल मिश्रीके नामसे मिलती है। यह जड़ कामोद्दीपक तथा स्नायुओंके लिये बलकारक मानी जाती है और विविध प्रकारकी पौष्टिक औषधोंमें डाली जाती है। बंगालमें इसके बीज औषधिके काममें आते हैं। इसको राजका क्षार (नमक) मर्दीरोगमें लाभदायक समझा जाता है। यह जड़ प्रायः काबुलसे आती है और वहीं सबसे अच्छी भी होती है। इसे शुपली या दुपली भी कहते हैं।

शकादित्य (सं० पु०) शकजेता, शालिवाहन राजा।

शकान्तक (सं० पु०) शकस्य जातिविशेषस्य अन्तकः। शक जातिका नाश करनेवाला, विक्रमादित्य।

शकाब्द (सं० पु०) राजा शालिवाहनका चलाया हुआ संवत्, शक-संवत्। ईस्वी सन्मेंसे ७८, ७९ घटानेसे शकाब्द निकल आता है। विशेष विवरण संवत्सर शब्दमें देखो।

शकार (सं० पु०) १ संस्कृत नाटकोंकी परिभाषामें राजाका वह साला जो नीच जातिका हो। नाटकमें इस पात्रको बेवकूफ, चंचल, घमंडी, नीच तथा कठोर हृदयवाला दिखलाया जाता है। जैसे—मृच्छकटिकमें संस्थानक। (साहित्यद० ३।८४-८५)

श स्वरूप कार। २ श अक्षर वर्ण शकार।

शकारि (सं० पु०) शकस्य म्लेच्छजातिविशेषस्य अरिः। शक जातिका शत्रु, विक्रमादित्य।

'शकान्तकः शकारिः स्याद्विक्रमादित्य ईरितः' (त्रिका०)

शकालिपि (सं० पु०) भारतकी प्राचीन एक लिपि।

शकील (फा० वि०) अच्छी शकलवाला, खूबसूरत, सुन्दर।

शकुन (सं० क्ली०) शक्नोति शुभाशुभं विज्ञातुमनेनेति शक (शके रुन्नोन्तोन्त्यूनयः। उण् ३।४९) इति उन्। शुभाशुभसूचक लक्षण, शुभशंसिनिमित्त। जो चिह्न देखनेसे शुभ या अशुभ जाना जा सके उसे शकुन कहते हैं, यथा बाहुस्पन्दन या काकोलूकादि। शकुनशास्त्रमें लिखा है—दक्षिणबाहु स्पन्दित होनेसे स्त्री-लाभ होता है, सुतरां दाहिने बाहुका फड़कना शुभ शकुन है। इस प्रकार जिस निमित्त द्वारा शुभविषय जाना जाता है, उसे शुभ-शकुन और जिस निमित्त द्वारा अशुभ विषय जाना जाता है, उसे अशुभशकुन कहते हैं। किसी कार्यमें जानेके समय या कोई कार्य करनेके समय शुभाशुभ शकुन जान कर वह करना आवश्यक है।

वसन्तराजशाकुनमें शुभाशुभ शकुनका विषय इस प्रकार लिखा है—

शुभशकुन—दधि, घृत, दूर्वा, आतप तण्डुल, पूर्णकुम्भ, सिद्धान्न, श्वेतसर्षप, चन्दन, दर्पण, शङ्ख, मांस, मत्स्य, मृत्तिका, गोरोचन, गोधूलि, देवमूर्ति, बाला, फल, भद्रासन, पुष्प, अञ्जन, अलङ्कार, अस्त्र, ताम्बूल, यान, आसन, ध्वज, छत्र, व्यजन, वस्त्र, पद्म, भृङ्गार, प्रज्वलित वह्नि, हस्ती, छाग, कुशा, चामर, रत्न, सुवर्ण, रूप्य, ताम्र, मद्य, मेष, औषधि, मद्य और नूतन पल्लव ये ५० द्रव्य देख या छू कर गमन करनेसे शुभ होता है। यात्रा करके तत्क्षणात् दाहिनी ओर ये सब द्रव्य देख लेनेसे यात्रामें शुभ होता है। अतएव यह शुभशकुन है।

यात्राकालमें यदि वाद्यध्वनि और वेदपाठ आदि शब्दोंके और गम्भीर मनोहर ध्वनिमें व कल्याण वादित्र, वेदध्वनि, गृहगीत आदि सुने जायें तो शुभ होता है। गमनकालमें यदि कोई व्यक्ति कलसी ले कर पथिकके साथ आवे और वह कलसी भर कर लौटे, तो पथिक भी फल-काम हो निर्विघ्नपूर्वक पुनरागमन करता है। यात्राकालमें मृदङ्ग या डमरू शब्दको सुने पर यदि अकस्मात् कुछ फल वहीं गिर पड़े अर्थात् पेड़में लगा आप

शकधूम (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

शकपूत (सं० पु०) १ एक ऋषिका नाम। ये ऋग्वेदके १० वें मण्डलके १३२ सूक्तके मन्त्रद्रष्टा थे। २ गोमय द्वारा पवित्र।

शकम् (सं० अव्य०) सुखकर।

शकमय (सं० त्रि०) १ गोमययुक्त। २ गोमयसम्भूत।

शकम्भर (सं० पु०) गोमयपूर्ण द्रव्य, वह चीज जिसमें गोबर रखा जाता है।

शकर (सं० स्त्री०) शक्कर, कच्ची चीनी, शकर।

शकरकन्द (हिं० पु०) एक प्रकारका प्रसिद्ध कन्द। इसकी खेती प्रायः सारे भारतमें होती है। यह साधारणतः सूखी जमीनमें बोया जाता है। इसका कन्द दो प्रकारका होता है—एक लाल और दूसरा सफेद। लाल शकरकंद रतालू या पिण्डालू कहलाता है और सफेदको शकरकन्द या कंदा कहते हैं। यह भून कर या उबाल कर खाया जाता है। प्रायः हिन्दू लोग व्रतके दिन फलाहार रूपसे इसका व्यवहार करते हैं। यह कंद बहुत मीठा होता है और इसमेंसे एक प्रकारकी चीनी निकलती है। अनेक पाश्चात्य देशोंमें इससे चीनी निकाली भी जाती है और इसीलिये इसकी बहुत अधिक खेती होती है। वनस्पतिशास्त्रके आधुनिक विद्वानोंका अनुमान है, कि यह मूलतः अमेरिकाका कंद है और वहींसे सारे संसारमें फैला है।

शकरखोरा (फा० पु०) एक प्रकारका छोटा सुन्दर पक्षी। इसकी ऊंचाई प्रायः एक बालिश्तसे भी कम होती है। यह भारत, फारस तथा चीनमें पाया जाता है। इसका रङ्ग नीला और चोंच काली होती है और यह पेड़ोंमें लटकता हुआ घोंसला बनाता है। यह प्रायः खेतोंमें रहता है और खेतोंको हानि पहुंचानेवाले कीड़े मकोड़े आदि खाता है। यह सफेद रङ्गके दो या तीन अंडे एक साथ देता है पर इसके अंडा देनेका कोई निश्चित समय नहीं है।

शकरपारा (फा० पु०) १ एक प्रकारका फल। यह नींबूसे कुछ बड़ा होता है। इसका पेड़ नींबूके पेड़के समान होता है, पर पत्ते नींबूसे कुछ बड़े होते हैं। फूल लाल रङ्गके होते हैं। फल सुगन्धित और बहुत मीठा होता है। २ एक प्रकारका प्रसिद्ध पकवान जो बरफीकी तरह चौकोर कटा हुआ होता है। यह मीठा भी बनता है और नमकीन भी। इसके बनानेके लिये पहले मैदेमें मोयन डाल कर उसे दूध या पानीसे गूंधते हैं और तब उसे मोटी रोटीकी तरह बेल कर छुरी आदिसे छोटे छोटे चौकोर टुकड़ोंमें काट कर घीमें तल लेते हैं। यदि नमकीन बनाना होता है, तो मैदा गूंधते समय ही उसमें नमक, अजवायन आदि डाल देते हैं और यदि मीठा बनाना होता है, तो कटी हुई टुकड़ियोंको तलनेके बाद चीनीके शीरेमें पाग लेते हैं। ३ सूईसे कपड़े परकी एक प्रकारकी सिलाई जो शकरपारेके आकारकी चौकोर होती है।

शकरपाला (फा० पु०) शकरपारा देखो।

शकरपीटन (हिं० पु०) एक प्रकारकी कंटीली झाड़ी। यह हिमालय पर्वतकी पथरीली और सूखी जमीनमें कुमायूं और उसके पश्चिम ओर पाई जाती है। यह थूहड़का ही भेद है, पर साधारण सेंहुड़ या थूहड़के वृक्षसे कुछ भिन्न होता है।

शकरबादाम (फा० पु०) खूबानी या आड़ू नामक फल जो पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्तमें होता है।

शकरी (फा० पु०) फालसा नामक फल।

शकल (सं० क्ली०) शक्नोतीति शक (शकिशम्योर्नित्। उण् १।१११) इति कल। १ त्वक्, चमड़ा। २ खण्ड, टुकड़ा। ३ वल्कल, छाल। ४ शल्क, खोंइ। ५ कोयला। ६ कमलकी नाल, कमल-दण्ड। ७ दाल-चीनी। (पु०) ८ मनुके अनुसार एक प्राचीन देशका नाम। (मनु १।२८)

शक्ल (अ० स्त्री०) १ मुखकी बनावट, आकृति, चेहरा। २ मुखका भाव, चेष्टा। ३ किसी चीजका बनाया हुआ आकार, आकृति, स्वरूप। ४ किसी चीजकी बनावट, गढ़न, ढांचा। ५ मूर्ति। ६ उपाय, तरकीब, ढंग।

शकलिन् (सं० पु०) शकलमस्यास्तीति इनि। मत्स्य-भेद, सकुची मछली।

शकलेन्दु (सं० पु०) अर्द्धेन्दु।

शकलोष्ट (सं० पु०) गोमयगोलक, गोबरका पिण्ड।

शकक्षेपिन् (सं० त्रि०) काष्ठवत् मांसक्षेप्ता। (अथर्व ११।२५।५)

शकव (सं० पु०) राजहंस।

शकसंवत् (सं० पु०) शक देखो।

शकाकुल (सं० पु०) शतावरकी जातिकी एक प्रकारकी वनस्पति। यह प्रायः सिन्धु देशमें अधिकतासे होती है और भारतके भी कुछ स्थानों विशेषतः काश्मीर और अफगानिस्तानमें पाई जाती है। यह प्रायः नर्म जमीनमें वृक्षोंके नीचे उगती है। यह बारहों मास रहती है। इसके डंठल डेढ़ दो हाथ ऊंचे होते हैं। इसके पत्ते प्रायः तीन अंगुल चौड़े और एक बालिश्त लम्बे होते हैं। इसके पौधेकी प्रत्येक गांठ पर पत्ते होते हैं। इसमें नीले या लाल रंगके छोटे छोटे फूल गुच्छोंमें और काले रंगके फल लगते हैं। इसकी जड़ कंदके रूपमें होती है और बाजारमें प्रायः शकाकुल मिस्रीके नामसे बिकती है। यह जड़ कामोद्दीपक तथा स्नायुओंके लिये बलकारक मानी जाती है और विविध प्रकारकी पौष्टिक औषधोंमें डाली जाती है। पंजाबमें इसके बीज औषधके काममें आते हैं। इसकी राखका क्षार (नमक) मदीनेमें लवणद्रावक समझा जाता है। यह जड़ प्रायः काबुलसे आती है और वहीं सबसे अच्छी भी होती है। इसे बुधली या बुधलो भी कहते हैं।

शकादित्य (सं० पु०) शकजेता, शालिवाहन राजा।

शकान्तक (सं० पु०) शकस्य जातिविशेषस्य अन्तकः। शक जातिका अन्त करनेवाला, विक्रमादित्य।

शकाब्द (सं० पु०) राजा शालिवाहनका चलाया हुआ संवत्, शक-संवत्। ईस्वी सन्‌में से ७८, ७९ घटानेसे शकाब्द निकल आता है। विशेष विवरण संवत्सर शब्दमें देखो।

शकार (सं० पु०) १ संस्कृत नाटकोंमें वर्णित राजाका एक साला जो नीच जातिका हो। नाटकमें इस पात्रको बेवकूफ, चंचल, घमंडी, नीच तथा कठोर हृदयवाला दिखलाया जाता है। जैसे—मृच्छकटिकमें संस्थानक। (साहित्यद० ३।८५-८६)

— श अक्षर वार। २ श अक्षर वर्ण शकार।

शकारि (सं० पु०) शकस्य जातिविशेषस्य अरिः। शक जातिका शत्रु, विक्रमादित्य।

'शकाधीशः शकारिः स्याद्विक्रमादित्य ईश्वरः' (जटाधर)

शकारिलिपि (सं० पु०) भारतकी प्राचीन एक लिपि।

शकील (फा० वि०) अच्छी आकृतिवाला, खूबसूरत, सुन्दर।

शकुन (सं० क्ली०) शक्नोति शुभाशुभं विज्ञातुमनेनेति शक (शके रुनोन्तोन्त्युनयः। उण् ३।४९) इति उन्। शुभाशुभसूचक लक्षण, शुभदर्शिनिमित्त। जो चिह्न देखनेसे शुभ या अशुभ जाना जा सके उसे शकुन कहते हैं, यथा बाहुस्पन्दन या काकोलूकादि। शकुनशास्त्रमें लिखा है—दक्षिणबाहु स्पन्दित होनेसे स्त्रीलाभ होता है, सुतरां दाहिने बाहुका फड़कना शुभ शकुन है। इस प्रकार जिस निमित्त द्वारा शुभविषय जाना जाता है, उसे शुभशकुन और जिस निमित्त द्वारा अशुभ विषय जाना जाता है, उसे अशुभशकुन कहते हैं। किसी कार्यमें जानेके समय या कोई कार्य करनेके समय शुभाशुभ शकुन जान कर वह करना आवश्यक है।

वसन्तराजशाकुनमें शुभाशुभ शकुनका विषय इस प्रकार लिखा है—

शुभशकुन—दधि, घृत, दूर्वा, आतप तण्डुल, पूर्णकुम्भ, सिद्धान्न, श्वेतसर्षप, चन्दन, दर्पण, शङ्ख, मांस, मत्स्य, मृत्तिका, गोरोचन, गोधूलि, देवमूर्त्ति, वाद्य, फल, भद्रासन, पुष्प, अञ्जन, अलङ्कार, अस्त्र, ताम्बूल, यान, आसन, ध्वज, छत्र, व्यजन, वस्त्र, पद्म, भृङ्गार, प्रज्वलित वह्नि, हस्ती, छाग, कुशा, चामर, रत्न, सुवर्ण, रौप्य, ताम्र, वज्र, मेष, औषधि, मद्य और नूतन पल्लव ये ५० द्रव्य देख या छू कर गमन करनेसे शुभ होता है। यात्रा करके गमनकालमें दाहिनी ओर ये सब द्रव्य देख लेनेसे यात्रामें शुभ होता है। अतएव यह शुभशकुन है।

यात्राकालमें यदि गान्धार और षड्ज आदि स्वरोंसे और गम्भीर मनोहर स्वरोंसे व्याख्यान दाहिम, वेदध्वनि, मृदङ्गध्वनि आदि सुने जायें तो शुभ होता है। गमनकालमें यदि कोई काली चिड़िया ले कर पथिकके साथ जाये और वह चलते चलते लौटे, तो पथिक भी इसभांति ही निर्विघ्नपूर्वक पुनरागमन करता है। यात्राकालमें शुभ्र मन जाते कुत्तेको पकड़े पर यदि अकस्मात् कुछ हल पहिले लोग अर्थात् देहमें कहा जाय

का अभीष्ट कार्योंकी सिद्धि होती है तथा सुख लाभ होता है।

अशुभशकुन—अङ्गार, भस्म, काष्ठ, रज्जु, कर्दम, पिण्याक, कार्पास, तुष, अस्थि, विष्ठा, मलिनव्यक्ति, लौह, भग्नसंभारादि, छिन्नपात्र, प्रस्तर, केश, सर्प, औषध, तैल, गुड़, चमड़ा, चर्बी, खाली घड़ा, लवण, तृण, तक्र, अर्गल, शृङ्खल, वृष्टि और वायु ये ३० द्रव्य यात्राकालमें अशुभजनक हैं। ये सब द्रव्य देख कर गमन करनेसे अशुभ होता है।

यदि यात्रा करके गाड़ी पर चढ़ते समय पैर फिसल जावे अथवा गाड़ी भाग जाये अथवा बाहर निकलते समय द्वार पर अभिघात हो, तो यात्रामें विघ्न उपस्थित होता है। मार्जारयुद्ध, मार्जारशब्द, कुटुम्बका परस्पर विवाद, यात्राकालमें ये सब देख कर यात्रा न करे। नये घरमें प्रवेश करते समय शवदर्शन होनेसे मृत्यु अथवा बड़ा रोग होता है। किन्तु यात्राकालमें रोदन शब्द-हीन शवदर्शन होनेसे उस यात्रामें सभी कार्य सिद्ध होते हैं।

जाते अथवा आते समय यदि अत्यन्त सुन्दर, शुक्ल वस्त्र और शुक्ल माल्यधारी पुरुष वा स्त्रीके दर्शन हों, तो कार्य सिद्ध होता है। राजा, हृष्ट ब्राह्मण, वेश्या, कुमारी, बन्धु, सुन्दर वेशवाला मनुष्य, अश्वारूढ़ वा गजारूढ़ व्यक्ति यात्राकालमें देखनेसे शुभ होता है। श्वेतवस्त्र-धारिणी, श्वेतचन्दनलिप्ता तथा सिर पर सफेद माला पहनी हुई स्त्री और संतुष्टचित्ता तथा गर्भिणी नारी यात्राकालमें देखनेसे सभी कार्य सिद्ध होता है। छत्र-धारी, शुक्लवस्त्रपरिधारी, पुष्प और चन्दनादि द्वारा लिप्ताङ्ग, शास्त्रकार्यमें निपुण और वाङ्निपुण ब्राह्मणके यात्राकालमें दर्शन करनेसे सभी कार्य सिद्ध होते हैं। जिसके जाते समय भर या भारी कलस हाथमें लिये सामनेसे निकल जाय, उसका अभिलषित कार्य अचिरात् सिद्ध होता है।

यात्राकालमें दुर्भग, अपमानित, अङ्गहीन, मत्त, आतुर, तैलाभ्यक्त, रजस्वला, गर्भिणी, रोगग्रस्तचित्त, मलिनवेशधारी, उन्मत्त, विवस्त्र, रोगी, शत्रु, मुण्डकेश, अन्ध वा अङ्गविकृत व्यक्तियों और नपुंसक ये सब देखनेसे दुःख और अभिलषित कार्यकी सिद्धि होती है। कृष्णवस्त्रधारिणी, कृष्णानुलेपनयुक्ता और कृष्णवर्णकी माला सिर पर पहनी हुई स्त्री अथवा कृष्णवर्णा कुत्सित रमणी यात्रा-कालमें दीखनेसे यात्रामें विपद् होती है।

जिसके जाते समय पीछेसे अथवा सामने खड़े हो दूसरा व्यक्ति 'जाओ' ऐसा वाक्य कहे, तो उस व्यक्तिका सभी प्रकारका मङ्गल, सन्तोष और वित्त लाभ होता है। शत्रुवधके लिये यात्राकालमें यदि मार, काट, भेद कर इत्यादि शब्द हो, तो कार्य सिद्धि होती तथा यात्राकालमें 'कहाँ जाते हो? मत जाओ' इत्यादि शब्द सुने जायें, तो उस यात्रामें विपद् होती है, यात्राकालमें लाभ, जय, मङ्गल और अमङ्गल इत्यादि सूचक वाक्य द्वारा उस उस फलका शुभाशुभ स्थिर करना होगा।

यात्राकालमें सामने यदि रोदनध्वनि सुनाई दे, तो उपद्रव, अग्निकोणमें भय, और नैऋत कोणमें युद्धके समय विपद् और वायुकोणमें रोदन सुनाई देनेसे सन्तुष्टि लाभ होती है। पीछेसे यदि रोदन सुनाई दे, तो शत्रुनाश, रोदनध्वनिकी निवृत्ति होनेसे लाभ तथा शत्रुकी क्रन्दन-ध्वनि सुननेसे कार्य सिद्धि होती है। जो हाथी ऊपर-की ओर सूँड़ उठा कर अथवा दाहिने दांत पर सूँड़का अगला भाग रख कर खड़ा रहे, वा जोरसे चिंघाड़ मार कर चारों ओर घूमे, ऐसे हाथीको देख यात्रा करनेसे सभी मनोरथ सिद्ध होता है। यात्राकालमें शब्दहीन शृगाल देखनेसे उसी समय कोई अनिष्ट होगा ऐसा जानना चाहिये। वामभागमें शृगालकी गति देखनेसे शुभ और रात्रिकालमें बहुतसे शृगाल एकत्र हो कर घोर शब्द करे, तो भी शुभ जानना होगा।

यदि शृगाल पहले 'हुआ हुआ' शब्द करके पीछे 'टटा' ऐसा शब्द करे, तो शुभ और अन्य प्रकारका शब्द करनेसे अशुभ होता है। रात्रिकालमें जिस घरके पश्चिम ओर शृगाल शब्द करे, उसके मालिकका उच्चाटन, पूर्व ओर शब्द होनेसे भय, उत्तर और दक्षिण ओर शब्द करनेसे शुभ होता है।

यदि अमर वर्ण और शुभ शुभ शब्द कर किसी कार्यमें जल्द जाओ अथवा उत्तम करना कहे, तो यात्रा-

कालमें ऐसा भ्रमर देखनेसे शुभ होता है। गोधूम, कृष्णसर्प आदि स्वाभाविक अति भयङ्कर यात्रा या किसी कार्यारम्भ कालमें सर्प देखनेसे वह कार्य या यात्रा बन्द कर देना उचित है, क्योंकि इससे विघ्न होता है। इसमें कुछ विशेषता है। वह यह कि यात्राकालमें सर्पदर्शन होनेसे पाषाण या कण्टकसे पादस्पर्श कर यात्रा करनेसे समस्त विघ्न विनष्ट होता है। यात्राकालमें सर्प अथवा वज्रनको यदि वामभागमें दिखाई दे, तो शुभ और अर्द्धपथमें उन्नतमस्तक सर्प दिखाई देनेसे राज्यलाभकी सम्भावना रहने पर भी गमन न करना चाहिये।

यात्राकालमें छींक होने, छिपकली देखने और कौवे का शब्द सुननेसे निम्नोक्त प्रणालीके अनुसार शुभाशुभ स्थिर किया जा सकता है। जिस वारमें यात्रा करनी होगी, उस वारको पहले पूर्वकी ओर रख कर दक्षिणावर्त क्रमसे उसके बादके वारोंको तथा राहुग्रहको पश्चिम दिशाओंमें विन्यस्त करे। किन्तु शनिग्रहके बाद राहुग्रह स्थापन करना होता है। इसके बाद देखना होगा, कि जिस किसी ओर छींक, छिपकली या कौवे-का शब्द हुआ है, उस ओर पूर्वोक्त वार स्थापन क्रमसे कौन ग्रह पतित हुआ है, यह जानना होगा। यदि उस ओर रवि पतित हो, तो जिस कार्यके लिये यात्रा की गई है उसमें भय, सोम होनेसे कर्मका शुभ, मङ्गल होनेसे उत्पात, बुधमें शुभ, वृहस्पतिमें सर्वसिद्धि, शुक्र होनेसे द्रव्यलाभ, शनि होनेसे वह कार्य उसी समय नाश तथा राहु होनेसे भी उस कार्यका नाश जानना होगा।

अङ्गस्पन्दन होनेसे निम्नरूपमें शुभाशुभ स्थिर करना होता है। अङ्गका दक्षिण भाग स्पन्दित होनेसे शुभ तथा पृष्ठ और हृदयके वामभागका स्पन्दन होनेसे अशुभ होता है। मस्तकस्पन्दन होनेसे स्थानवृद्धि तथा भ्रू और नासास्पन्दनमें प्रियसङ्गम होता है। नेत्रस्पन्दनसे भृत्यलाभ, चक्षुके उपान्त देशके स्पन्दनसे अर्थप्राप्ति तथा चक्षुके मध्यदेशके स्पन्दनसे उद्वेग और मृत्यु होती है। युद्धके समय और निद्रा-हीन अवस्थामें चक्षुःस्पन्दन होनेसे शीघ्र अवसान, कपोलदेशके स्पन्दनसे स्त्रीलाभ और कर्णके प्रान्तभागके स्पन्दनसे प्रिय संवाद लाभ होता है। नासिकास्पन्दनसे प्रणय और सुगन्ध, अधर और ओष्ठदेश स्पन्दनसे अभीष्ट विषय लाभ, कण्ठदेश स्पन्दनसे सुख, बाहुस्पन्दनसे मित्रस्नेह, स्कन्धदेश-स्पन्दनसे सुख, हस्तस्पन्दनसे धनलाभ, पृष्ठदेश स्पन्दनसे युद्धमें पराजय तथा वक्षःस्थलस्पन्दनसे जयलाभ होता है। कुक्षिदेशके स्पन्दनसे प्रीति, स्त्रियोंके स्तनस्पन्दनसे सन्तानोत्पत्ति, नाभिस्पन्दनसे स्थानच्युति, आन्त्रस्पन्दनसे अर्थलाभ, जानुसन्धि अर्थात् घुटनेके स्पन्दनसे शत्रुके साथ सन्धि, जङ्घा स्पन्दनसे किसी न किसीका नाश, चरणस्पन्दनसे स्थानप्राप्ति और पदतल स्पन्दनसे पथभ्रमण होता है।

स्त्रीपुरुषके सम्बन्धमें ये सब शुभाशुभ विपरीत भावमें जानने होंगे अर्थात् पुरुषके दक्षिण भाग और स्त्रीके वाम भागमें शुभ तथा इसके विपरीत भागमें अशुभ जानना होगा। (शकुनदीपिका)

(पु०) २ पक्षिमात्र, पक्षीका साधारण नाम शकुन है। ३ पक्षिविशेष, गृध्र। कश्यपपत्नी ताम्राके गर्भसे गृध्रकी उत्पत्ति हुई। (भागवत)

गृध्र यदि वाम, दक्षिण, पृष्ठ और पश्चाद्भागमें रह कर शब्द करे, तो अमंगल होता है। (वसन्तराज)

४ विप्रभेद। ५ गीतविशेष। उत्सवादिमें मङ्गलार्थ यह गीत गाया जाता है।

शकुनक (सं० पु०) शकुन-स्वार्थे-कन्। शकुन देखो।

शकुनज्ञ (सं० त्रि०) शकुनं जानातीति ज्ञा-क। शकुनज्ञाता, जो शकुनोंका शुभाशुभ फल जानता हो।

शकुनज्ञा (सं० स्त्री०) छिपकली, गिरगिट।

शकुनज्ञान (सं० क्ली०) शकुनस्य शुभाशुभनिमित्तस्य ज्ञानं। शुभाशुभ निमित्तका ज्ञान।

शकुनद्वार (सं० पु०) शकुनविषयक द्वारविशेष। यदि दो शकुन वामभागमें अवस्थित रह शान्तभावसे शब्द और चेष्टा प्रदर्शन करते हैं, तो उसे शकुनद्वार कहते हैं। यह शकुनद्वार शुभसूचक है। यात्रा आदिके समय ऐसा शकुनद्वार देखनेसे शुभ होता है। किसी किसीका कहना है, कि एक ग्रामीय

शान्तमेघ और शस्यहित शकुनशास्त्र दोनों पार्श्वमें होनेसे शुभ होता है। (बृहत्संहिता ८६।५२-५३)

शकुनशास्त्र (सं० क्ली०) शकुनविषयक शास्त्र। यह शास्त्र जिसमें शकुनोंके शुभ और अशुभ फलोंका विवेचन है, शकुन बतलानेवाला शास्त्र।

शकुनसूक्त (सं० क्ली०) सूक्तविशेष। भृगुपक्षीके विकारमें यह सूक्त अपना पड़ता है। इसको शाकुनसूक्त भी कहते हैं।

"गृत्सो इति येषेन देवा गावश्च दक्षिणा।
कपोतसूक्तशकुनसूक्तं वा मन्त्रैर्दशिराधि च॥"

(हरिवंश ४६।७१)

शकुनाख्या (सं० स्त्री०) गुल्माकार वृक्षभेद।

शकुनाहृत (सं० पु०) १ बालरोगविशेष। २ शकुनि ग्रह। ३ मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली। ४ शालि धान्यभेद, एक प्रकारका चावल जिसे सांठदगाली कहते हैं। (भावप्र०)

शकुनाहृता (सं० स्त्री०) १ चिड़ियों द्वारा लाई हुई वस्तु। २ एक प्रकारका चावल।

शकुनि (सं० पु०) शक्नोति उन्नेतुमात्मानमिति शक (शके रुनोन्तोनयः। उण् ३।४६) इति उनि। १ पक्षी मात्र। २ गृध्र, गिद्ध। ३ कौरव या दुर्योधनादिका मामा। यह सुबलराजाका लड़का था, इससे इसका नाम सौबल हुआ। यह दुर्योधनका मन्त्री था। राजा दुर्योधन जब पाण्डवों का ऐश्वर्य देख नितान्त व्यथित हुए, तब इसी शकुनिके परामर्श और सहायतासे कपटद्यूतमें पाण्डवोंको हराया। पाण्डव पराजित हो कर वनमें चले गये। शकुनि की परामर्शमूलक यह कपटद्यूतक्रीड़ा ही कुरुकुलध्वंस की एक मात्र कारण थी। सहदेव द्वारा पुत्रसहित शकुनि मारा गया। महाभारतके सभा और शल्य पर्वमें इसका विस्तृत विवरण है।

४ ग्यारह करणोंके अन्तर्गत अष्टम करण। इस करणमें किसी बालकके जन्म लेनेसे वह परधनहारी, पशुघ्न, कुत्सित, कृपण, अतिशय परद्वाररत, क्रोधी और शोच्यकर्मा होता है। (कोष्ठीप्रदीप)

५ दुःसहपुत्र। दुःसहके औरस और निर्माष्टिके गर्भसे दुःस्वाहृति और शकुनि आदि ८ पुत्र तथा ८ कन्या उत्पन्न हुई। ये सभी अत्यन्त पापाचारी थे। शकुनिके श्येन, काक, कपोत, गृध्र और उलूक नामक पांच पुत्र थे। (मार्कण्डेयपु०)

६ विकुक्षिपुत्र। वैवस्वत मन्वन्तरमें इक्ष्वाकु नामक एक राजा थे। उनके सौ पुत्र थे। बड़ेका नाम विकुक्षि था। वे विकुक्षि अयोध्याके राजा थे। इनके शकुन आदि पन्द्रह पुत्र हुए।

(अग्निपु० हरिवंशाख्यान-नामाध्याय)

शकुनि—स्वनामप्रसिद्ध पक्षीविशेष। संस्कृत पर्याय—गृध्र। यह मांस खानेवाला पक्षी है, सड़ा गला मुर्दा ही इसका एकमात्र खाद्य है। मैदानके छोटे मकोड़ेको भी यह खाता है। बाहरी गठन देख कर इसे गिद्ध जातिके पक्षियोंमें शामिल किया जा सकता है। प्राणितत्त्वविदोंने भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न प्रकारका शकुनि देख कर उन्हें विशेष विशेष श्रेणीमें विभाग किया है। Jerdon साहबने प्रकृत शकुनियोंको Vulturinae शाखाके अन्तर्भुक्त किया है। यातुन शकुनि (Vulture monachus) कृष्णशकुनि (Otogyps Calvus, श्येन-गृध्र शकुनि (G. fulvus), वृहदाकृति ताम्रवर्ण शकुनि (G. fulvus) दीर्घचञ्चु कपिश शकुनि (G. Indicus) आदिको इसी शाखाके अन्तर्भुक्त किया जाता है। एतद्भिन्न विभिन्न देशमें इस श्रेणीके जो सब पक्षी हैं उनके Neophroninae Gypaetinae, Sarcoramphinae, American Vulture और Gypohierax ciune (Angola Vulture) आदि कुलोंमें विभक्त किया जाता है। Neophron percnopterus पक्षी इस लोगोंके देशमें काला मुर्गा या काली मुर्गी नामसे परिचित है। जिन सब शकुनियोंको चिम चोंचके नीचे दाढ़ीकी तरह लाल बालकी कलगी रहती है, वे ही Gypaetus Barbatus नामसे प्रसिद्ध हैं। इन्हें पाश्चात्य भाषामें Lammergeyers कहते हैं।

मिस्र देशका शकुनि एशिया, अफ्रिका और पूर्व यूरोपमें प्रायः देखनेमें आता है। यहां इन लोगोंके देशको काली मुर्गी (Neophron percnopterus) और बाइबिल प्रसिद्ध "Pharaoh's chicken"।

हिमालयके आसिन्नस्थित देशमें मनुष्यजातिको

पासमूचिके एलिनिदिन प्रदेशमें तो ये देखनेमें आते हैं। भारतके समतल प्रान्तमें भी इस पुरुने और कृष्ण पक्षि-श्रालिका वास है। पूर्वोक्त जितने प्रकारके शकुनि हैं, उनमें उक्त जाति ही छोटी है। चोंचसे ले कर पूंछ तक इसकी लम्बाई २६ इञ्चसे अधिक नहीं होती। १८६६ ई०में मथ्याल्स साहबसे एक बड़ा भूरे रङ्गका शकुनि गोलीसे मारा गया था। दोनों डैनेका विस्तार ८ फुट २ इञ्च और मांसपिण्ड १७ पौंड था।

शकुनिका (सं० स्त्री०) शकुनि स्वार्थे कन्-टाप्। १ शकुनि। २ पुराणानुसार स्कन्दके एक अनुचरका नाम।

शकुनिग्रह (सं० पु०) पुराणानुसार स्कन्दके एक अनुचरका नाम।

शकुनिप्रपा (सं० स्त्री०) शकुनीनां पक्षिणां पानाय प्रपा। पक्षियोंकी पानीयशाला। पर्याय—श्रोमक। (हारावली)

शकुनिवाद (सं० पु०) उषा कालके समय चिड़ियोंका चहचहाना।

शकुनिसवन (सं० क्ली०) शकुनसव।

शकुनिसाद (सं० पु०) पक्षीके समान खाना। (शुक्लयजुः २४।१)

शकुनी (सं० स्त्री०) शकुन-ङीष्। १ श्यामापक्षी। २ गौरैया पक्षीकी मादा। ३ एक पूतनाका नाम। यह बहुत क्रूर और भयङ्कर कही गई है। (हरिवं० ६२।१९-२) सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका बालग्रह। कहते हैं, कि जिस बालक पर इसका आक्रमण होता है, उसके अंग शिथिल पड़ जाते हैं, शरीरमें जलन होती है, फोड़े फुंसियां आदि निकल आती हैं, शरीरसे पक्षियोंकी-सी गन्ध आने लगती है और वह रह रह कर चौंक उठता है। (सुश्रुत उत्तर० २७ अ०)

शकुनी (हिं० पु०) वह जो शकुनोंका शुभ और अशुभ फल जानता हो, शकुनज्ञ।

शकुनी-मातृका (सं० स्त्री०) बालकोंकी एक प्रकारकी व्याधि। यह उनके जन्मसे छठे दिन, छठे मास या छठे वर्ष होती है और इसमें उन्हें ज्वर तथा कंप होता है, दृष्टि ऊर्द्ध्व हो जाती है और हरदम बहुत कष्ट बना रहता है।

शकुनीश्वर (सं० पु०) शकुनीनां पक्षिणामीश्वरः। पक्षियोंका स्वामी, गरुड़।

शकुनोपदेश (सं० पु०) शकुनशास्त्र।

शकुन्त (सं० पु०) शक्नोति उत्पतितुमिति शक (शकेरुनोन्तोन्त्युनयः। उण् ३।४९) इति उन्त। १ पक्षी, चिड़िया। २ कीटभेद, एक प्रकारका कीड़ा। ३ भास पक्षी। ४ काकभेद, एक प्रकारका कौआ। ५ कुक्कुटभेद। ६ विश्वामित्रके पुत्रका नाम।

शकुन्तक (सं० पु०) पक्षी, चिड़िया।

शकुन्तला (सं० स्त्री०) शकुन्तैः पक्षिभिर्लायते पाल्यते इति ला-घञर्थे क, स्त्रियामाप्। मेनका नामकी अप्सराके गर्भसे और विश्वामित्रके औरससे उत्पन्न कन्या। यह कन्या निर्जन वनमें शकुन्त या गिद्ध द्वारा रक्षित हुई थी इसीसे इसका नाम शकुन्तला हुआ।

"निर्जने तु वने यस्मात् शकुन्तैः परिरक्षिता।
शकुन्तलेति नामास्याः कृतञ्चापि ततो मया॥"
(महाभारत १।७२।१६)

राजा दुष्यन्तके साथ इसका विवाह हुआ तथा उन्हींके औरस तथा गर्भसे भरतने जन्म ग्रहण किया। इस भरतसे ही भारतवर्ष नाम हुआ है।

महाभारतमें लिखा है, कि एक दिन दुष्यन्त सेनाओंके साथ आखेटको निकले। आखेटके बाद वे हठात् अकेले ही कण्वमुनिके आश्रममें जा पहुंचे। उस समय कण्व वहां नहीं थे। शकुन्तलाके ऊपर ही आश्रमरक्षाका भार था। इस कारण शकुन्तलाने ही आसन, पाद्य और अर्घ्य आदि द्वारा राजाकी अर्चना की तथा कुशल-क्षेम पूछा। राजा दुष्यन्तने लावण्यमयी रूपवती परमधर्माचारिणी साक्षात् लक्ष्मीकी तरह रूपवती कन्यासे कहा 'मैं भगवान् कण्वकी पूजा करने आश्रममें आया हूं। वे कहां हैं?' शकुन्तलाने उत्तर दिया, 'पिता फल लानेके लिये गये हैं, कुछ समय ठहरिये' उनके दर्शन हो जायेंगे।'

अनन्तर राजाने थोड़ा विश्राम कर फिरसे पूछा 'भगवान् कण्व ऊर्द्ध्वरेता हैं, अतएव तुम किस प्रकार उनकी कन्या हुई? मुझे इस विषयमें संदेह है, इसलिये मेरा संदेह दूर करो।'

राजाके इस वचन पर शकुन्तलाने कहा,—मैंने

गया है, कि विश्वामित्र नामक एक महातपस्वी ऋषि हिमालयके प्रान्तमें कठोर तपस्या करते थे। इन्द्रने उनको तपस्यासे भय मान कर तपोभङ्ग करनेके लिये मेनका नामकी अप्सराको भेजा। मेनका द्वारा उनका तपोभङ्ग हुआ। उसी समय दोनोंके संयोगसे मेरा जन्म हुआ।

जन्मके बाद ही मेनका मुझे हिंस्रपशुसे समाकुल विजनवनमें छोड़ गई। शकुन्तोंने सिंहव्याघ्रादिसे मेरी रक्षा की थी, इस कारण मेरा नाम शकुन्तला हुआ। पिता कण्व मुझे उस अवस्थामें देख आश्रम उठा लाये और लालनपालन करने लगे। इसीसे वे मेरे पिता हैं।

राजा दुष्यन्तने शकुन्तलाका जन्म वृत्तान्त सुन कर कहा, 'तुम राजाकी कन्या हो, इससे मुझसे विवाह करने योग्य हो, गान्धर्व-विधानसे मुझे वरमाला पहनाओ, यही मेरी एकान्त अभिलाषा है।' इस पर शकुन्तला बोली, 'राजन्! मेरे पिता अभी आवेंगे। आप थोड़ी देर ठहरिये। वे आते ही मुझे आपके हाथ समर्पण कर देंगे।' राजाने कहा, मेरी इच्छा है, कि तुम स्वयं मेरी भजना करो, मैं तुम्हारे लिये ही यहां आया हूं: मेरा हृदय तुम पर अत्यन्त आसक्त हो गया है, क्षत्रियके लिये गान्धर्व विवाह ही सबसे श्रेष्ठ है, इसमें जरा भी धर्महानि न होगी।

शकुन्तला बोली, 'हे पौरव! यदि यह धर्म-पथ तुम्हारा हो और आत्मसमर्पण विषयमें मेरा प्रभुत्व रहे, तो मेरा एक पण है यह सुनिये। आप मुझसे यह प्रतिज्ञा कीजिये, कि मेरे गर्भसे जो पुत्र जन्म लेगा, वह युवराज और आपका राज्याधिकारी होगा। यदि आप यह प्रतिज्ञा करें, तो मैं आपसे विवाह कर सकती हूं।'

सन्तानके वास्ते निश्चिन्त स्वभाव राजा बिना सोचे विचारे ही शकुन्तलाकी बात पर सम्मत हो गये। इसके बाद यथाविधान पाणिग्रहण करके उसके साथ सुख सम्भोग किया। कुछ समय प्रेमालापके बाद राजाने कहा, 'मैं राजधानी जा कर ही तुम्हें यहांसे बुलाऊंगा।' इस प्रकार आश्वासनवाक्यसे शकुन्तलाको प्रसन्न किया तथा महर्षि कण्व आश्रममें आ कर इसे मालूम कर क्या करेंगे यह सोचते सोचते वे आश्रमसे निकल गये।

थोड़ी देर बाद महर्षि कण्व आश्रममें आये और दिव्यज्ञानसे सारी बातें जान कर शकुन्तलासे कहा, 'बेटी! आज तुमने मेरी अपेक्षा न करके जो पुरुष संसर्ग किया है, इससे तुम्हारी धर्महानि न हुई। तुमने उन्हें अपना पति बना कर उनके साथ संसर्ग किया है। इससे तुम्हारे गर्भसे एक महाबलिष्ठ पुत्र जन्म लेगा तथा वही पुत्र सागर पर्यन्त सभी भूभागका अधिपति होगा। पातालतलमें उसका रथवेग कहीं भी न रुक सकेगा।'

राजा दुष्यन्तके अपनी राजधानी लौटनेके तीन वर्ष बाद शकुन्तलाने एक कुमार प्रसव किया। वह पुत्र दिनों दिन बढ़ने लगा। महर्षिने बालकका जात कर्मादि संस्कार किया। वह बालक सभी प्राणियोंका दमन करता था, इस कारण उसका नाम 'सर्वदमन' हुआ। महर्षिने उस बालकका असाधारण बल और कार्यकलाप देख कर शकुन्तलासे कहा, 'इस बालकके यौवराज्यके अभिषेकका समय पहुंच गया। इसलिये तुम इन शिष्योंके साथ अपने स्वामीके पास जाओ, स्त्रियोंको सदा पिताके घर रहना उचित नहीं है।'

शकुन्तला महर्षिके आदेशसे शिष्योंके साथ राजाके समीप गई। शकुन्तलाने राजाका यथायोग्य सत्कार कर कहा, 'राजन्! देवतुल्य यह पुत्र आपके ही औरससे उत्पन्न हुआ है, इसे आप युवराज बनाइये। आपने पहले जैसी प्रतिज्ञा की थी, अभी उसका पालन कीजिये। यही मेरा अभिलाष है।'

शकुन्तलाकी यह बात सुन कर राजाको पूर्वकी सभी बातें स्मरण हो आयीं। किन्तु फिर भी उन्होंने शकुन्तलासे कहा, 'दुष्ट तापसि! तुम किसकी भार्या हो? तुम्हारे साथ मेरा धर्म, अर्थ और काम विषयी कोई सम्बन्ध है, स्मरण नहीं होता, अतएव यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो जा सकती हो अथवा यहां रहनेमें भी मुझे कोई आपत्ति नहीं।'

तपस्विनी शकुन्तला लज्जासे अभिभूत और अचेतन्यसी तरह हो गई। पीछे वह दुःख, अभिमान और क्रोधके वश राजासे कहने लगी, 'महाराज! आपको सभी विषय मालूम रहने पर भी क्या कारण है, कि

सामान्य पुरुषके लिये निःसंकुचितसे 'नहीं' जानता हूँ' ऐसी बात कहते हैं। यह सत्य है या असत्य, आपका अन्तःकरण ही जानता है। आप राजा हैं, धर्मके प्रति लक्ष्य करके अन्याय आचरण न करें। आपने क्या यह समझ रखा है, कि मैंने अकेले निर्जनमें यह काम किया है, सामने कोई न था, कौन जान सकेगा? क्या आपको यह मालूम नहीं, कि परमात्मा परमेश्वर सबोंके हृदयमें जागरूक हैं, उनसे पापकर्म छिपा नहीं रहता। आपने इन्हींके सामने यह पापकर्म किया है। मनुष्य पापकर्म करके समझते हैं, कि कोई इसे जान न सकेगा। आदित्य, चन्द्र, अनिल, आकाश, भूमि, जल, दिवा, रात्रि, संध्या और यम आदि सभी लोगोंके चरित्र जानते हैं। मैं पतिव्रता स्वयं उपस्थित हुई हूँ, ऐसा समझ अवज्ञा न करें। मैं आपकी आदरणीया भार्या हूँ, मुझे आदरपूर्वक ग्रहण करना उचित है। मैंने ऐसा कौन-सा पाप किया है, मालूम नहीं। बचपनमें पिता माताने मुझे छोड़ दिया, अभी आप भी छोड़ते हैं, किन्तु यह बालक आपका है, इसे छोड़ना आपको कदापि उचित नहीं।'

शकुन्तलाकी बात सुन कर दुष्मन्त बोले, 'शकुन्तले! यह बालक मेरा पुत्र है या नहीं सो मैं नहीं जानता। तुम्हारी बात पर किस प्रकार विश्वास करूँ, स्त्रियाँ प्रायः झूठ बोला करती हैं। विशेषतः तुम्हारी माता व्यभिचारिणी दयाहीना मेनकाने निर्माल्य द्रव्यकी तरह हिमालयपृष्ठ पर तुम्हारा परित्याग किया था तथा क्षत्रियकुलोद्भव ब्राह्मणत्वलुब्ध निर्दयी विश्वामित्र जो कामके वशवर्ती हो तुम्हारे जनक हुए थे। इसलिये तुम्हारा असत्य बोलना असम्भव नहीं। मेरे सामने मुझे मिथ्यावादी बनानेमें तुम्हें जरा भी लज्जा न हुई! तुमसे और अधिक मैं बोलना नहीं चाहता। अभी तुम्हारी जो इच्छा हो, कर सकती हो।'

इस पर शकुन्तलाने अत्यन्त क्रुद्ध हो कर राजासे कहा, 'राजन्! आप धर्मके विरुद्ध हो कर धर्मका अतिक्रम न करें। मैं सती नारी हूँ, आपसे मेरा कोई सरोकार नहीं। आप यह निश्चय जानें, कि आपके मुझे ग्रहण नहीं करने पर भी मेरा यह पुत्र ससागरा धरणीका अधीश्वर होगा।'

शकुन्तला इत्यादि प्रकारसे नाना प्रकारके न्याय और धर्मसङ्गत वाक्यसे राजाको तिरस्कार कर चली गई। उस समय राजाके प्रति यह दैववाणी हुई, 'दुष्मन्त! माता चर्मकोषस्वरूपा है। उसमें पिता आप ही पुत्ररूपमें जन्मग्रहण करते हैं। अतएव पुत्रका भरण पोषण करो, शकुन्तलाकी अवज्ञा न करो। शकुन्तलाने जो कुछ कहा है, वह सभी सत्य है। मेरे वचनानुसार तुम्हें इस पुत्रका भरण करना होगा और इसी कारण इसका नाम भरत होगा।'

राजा दुष्मन्तने यह दैववाणी सुन कर अमात्य आदिसे कहा, 'आप लोग इस देवदूतका वाक्य श्रवण कीजिये तथा मैं भी यह अच्छी तरह जानता हूँ। किन्तु यह जानते हुए भी यदि मैं इस पुत्रको ग्रहण करता, तो प्रजा मुझ पर संदेह करती।'

अनन्तर राजाने हृष्टचित्तसे सबोंके सामने शकुन्तला और उसके पुत्रको आनन्दके साथ ग्रहण कर उसका भरत नाम रखा तथा शीघ्र ही उसे युवराज बनाया।

(महाभारत आदिप० ६८-७४ अ०)

पद्मपुराणके स्वर्गखण्डमें १मसे ५म अध्यायोंमें शकुन्तलाका विस्तृत विवरण वर्णित हुआ है। इस पुराणके मतसे दुष्मन्त जब कण्वाश्रम छोड़ रहे थे उस समय चाहनाके लिये उन्होंने शकुन्तलाको एक अंगूठी दी थी। पतिके घर जाते समय दैववशसे वह अंगूठी नदीमें गिर पड़ी। कोई स्मरणचिह्न दिखा न सकनेके कारण दुष्मन्त शकुन्तलाको पहचान न सके। आखिर एक धीवरके जालमें पकड़ी हुई मछलीके पेटसे वह अंगूठी निकली। वह अंगूठी देखते ही दुष्मन्तको पूर्वस्मृति जग उठी। पीछे हिमालय प्रदेशमें भरतको पुरुवंशका परिचय पा कर उन्होंने भरतको अपना पुत्र समझा और बड़े आदरसे पुत्र सहित शकुन्तलाको ग्रहण किया। महाकवि कालिदासने यह उपाख्यान ले कर ही अभिज्ञान-शकुन्तला नामक नाटक प्रणयन किया है। यह संस्कृत नाटकमें सर्वश्रेष्ठ है।

शकुन्तलात्मज (सं० पु०) शकुन्तलायाः आत्मजः पुत्रः। भरतराज।

शकुलिन (सं० पु०) शक्नोति उत्पतितुमिति शक-उलिन्। पक्षी, चिड़िया।

शकुलिका (सं० स्त्री०) १ छोटी चिड़िया। २ शिकरा, बाज।

शकुन्द (सं० पु०) सफेद कनेर।

शकुल (सं० पु०) शक्नोति गन्तुं शीघ्रमिति शक (शकेरुनोन्तोन्त्युलयः। उण् १।७६) इति उलच्, रस्य लः। मत्स्यविशेष, सौरी मछली। इसका गुण—मधुर, रुक्ष, ग्राही, पित्त और आमवातनाशक माना गया है। (राजनि०)

शकुलगण्ड (सं० पु०) शकुलस्य गण्ड इव गण्डो यस्य। मत्स्यविशेष, सौरी मछली।

शकुला (सं० स्त्री०) कुटकी, कटुकी।

शकुलाक्ष (सं० पु०) १ श्वेत दूर्वा, सफेद दूब। २ गण्डदूर्वा, गाँडर दूब।

शकुलाक्षक (सं० पु०) शकुलाक्ष देखो।

शकुलाक्षा (सं० स्त्री०) शकुलाक्ष देखो।

शकुलाक्षी (सं० स्त्री०) गण्ड दूर्वा, गाँडर दूब।

शकुलार्भक (सं० पु०) १ शकुल मत्स्यका बच्चा। २ मत्स्य-विशेष।

शकुलादनी (सं० स्त्री०) शकुलानामदनं यस्याः ङीष्। १ कटम्भरा, कुटकी। २ कटुरकाक, जल नीलाई। ३ जटामांसी, बालछड़। ४ गजपिप्पली, गजपीपल। ५ कट्फल, कायफल। ६ गण्डदूर्वा, गाँडर दूब। ७ गण्डूपद, केंचुआ। ८ जलपिप्पली, जलपीपल।

शकुलार्भक (सं० पु०) शकुलस्य अर्भक इव। गडक मत्स्य, गडुई मछली।

शकुलादनी (सं० स्त्री०) जलपिप्पली, जलपीपल।

शकुली (सं० स्त्री०) शकुल-ङीष्। १ मत्स्यविशेष, सकुची मछली। यह मछली गुरु, मधुर, स्निग्ध और श्लेष्मवर्द्धक मानी गई है। (राजवल्लभ) २ पुराणानुसार एक नदीका नाम। (मार्कण्डेयपु० ५७।२३)

शकृत् (सं० क्ली०) शक्नोति मलं त्यक्तुमिति शक (शकेर्ऋतन्। उण् ४।५८) इति ऋतन्। १ विष्ठा, गुह। २ गोबर।

शकृत्करि (सं० पु० स्त्री०) शकृत् करोतीति शकृत्-कृ (स्तम्ब शकृतोरिन्। पा ३।२।२४) इति इन्। गोवत्स, गायका बछड़ा।

शकृत्कार (सं० त्रि०) शकृत् करोतीति शकृत्-कृ अण्। मलत्यागकारक, मलत्याग करनेवाला।

शकृद्देश (सं० पु०) मलद्वार, गुदा।

शकृद्द्वार (सं० क्ली०) शकृतो द्वार। मलद्वार, गुदा। पर्याय—अपान, पायु, गुदा, च्युति, मलोत्सर्ग, त्रिवलीक, वली। (हेम)

शक्कर (सं० पु०) वृष, बैल।

शक्कर (फा० स्त्री०) १ चीनी। २ कच्ची चीनी, खाँड़।

शक्करि (सं० पु०) वृष, बैल। (त्रिका०)

शक्करी (सं० स्त्री०) १ एक प्राचीन नदीका नाम। २ मेखला। ३ वर्णवृत्तके अन्तर्गत चौदह अक्षरोंवाले छंदोंकी संज्ञा। इनके नाम इस प्रकार हैं—वसंततिलक, असंबाधा, अपराजिता, प्रहरणकलिका, वासन्ती, मधुर, कुटिल, इन्दुवदना, चक्र, नान्दीमुख, लोला और भ्रमर। इनमेंसे वसन्ततिलका सबसे अधिक प्रसिद्ध है। (छन्दोमञ्जरी)

शक्की (अ० वि०) जिसे हर बातमें संदेह होता हो, सदा शक करनेवाला।

शक्त (सं० त्रि०) शक-क्त। १ शक्तिविशिष्ट, समर्थ, ताकतवर। पर्याय—सह, क्षम, प्रभु, जिष्णु। २ प्रियंवद, जो प्रिय बातें करता हो, मिष्टभाषी।

शक्तरूप (सं० त्रि०) दृढ़रूप।

शक्तव (सं० पु०) भूना, भुने हुए अनाजका आटा, सत्तू।

"[illegible]
[illegible]"
([illegible])

शक्तसिंह—मेवाड़-पति राणा प्रतापसिंहके भाई। आपसमें विरोध हो जानेके कारण इन्होंने पहले मुगल-सम्राट् अकबर शाहका पक्ष अवलम्बन किया, पीछे भाईकी राजपूतोचित वीरता पर मुग्ध हो पुनः उनके अनुगामी हुए। प्रतापसिंह, शब्द देखो।

शक्ति (सं० स्त्री०) शक-क्तिन्। १ सामर्थ्य, बल, ताकत। पर्याय—द्रविण, तर, बल, शौर्य, स्थाम, शुष्म, पराक्रम,

प्राण, सहस्, ऊर्जा। (अमर) २ कार्यजननसामर्थ्य। (नागेशी भट्ट) 'या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता'
(देवीमाहात्म्य)

नयवर्गे उत्तमन्त्र प्रभु-शक्ति। जिसके द्वारा शत्रु-को पराजय किया जाये, ऐसा कार्योत्पादनयोग्य धर्मा-त्मदोष। राजाओंकी तीन प्रकारकी शक्ति है—प्रभु-शक्ति, मन्त्रशक्ति और उत्साहशक्ति। कोष और दण्डके विषयमें सर्वतोमुखी क्षमताका नाम प्रभुशक्ति, विक्रमप्रकाशपूर्वक स्वशक्ति द्वारा विस्फुरणका नाम उत्साहशक्ति तथा सन्धि, विग्रह आदि और सामदानादि विषयमें यथारूपसे व्यवस्थापनका नाम मन्त्रशक्ति है। राजा इन त्रिशक्तियुक्त हो कर प्रस्थान करें।

३ स्त्रीदेवता, देवीमूर्त्ति। ४ गौरी। ५ लक्ष्मी।
(शब्दमाला)

यह देवीशक्ति तीन प्रकारकी है—सात्त्विकी, राजसी और तामसी। श्वेतवर्णा ब्रह्मसंस्थिता सात्त्विकी शक्ति, रक्तवर्णा वैष्णवी राजसीशक्ति और कृष्णवर्णा तामसी रौद्रीशक्ति है। एक परम देवता ही प्रयोजना-नुसार त्रिशक्तिरूपमें विभक्त हुए हैं।
(बाराहपु० त्रिशक्तिमाहात्म्य)

बिन्दु शिवस्वरूप और बीज शक्तिस्वरूप है। इन दोनोंके परस्पर संयोगसे नाद होता है। इस नादसे फिर त्रिशक्तिकी उत्पत्ति है। यह इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति नामसे कथित तथा यह त्रिशक्ति यथाक्रम गौरी, ब्राह्मी और वैष्णवी शक्तिके भेदसे परिचित है।

इसके अलावा ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें अष्टशक्तिका उल्लेख है। यथा—रुद्राणी, वैष्णवी, ब्रह्माणी, कौमारी, नारसिंही, वाराही, माहेश्वरी और भैरवी।
(श्रीकृष्णजन्मख० १६१ अ०)

बालगुहकालमें ये सब शक्तियां सदैव स्वामीरक्षण करके पुत्रवत्सल रही थीं।

दूसरी जगह भी शक्तिका परिचय देखनेमें आता है, यथा—वैष्णवी, ब्रह्माणी, रौद्री, माहेश्वरी, नारसिंही, वाराही, इन्द्राणी, कार्त्तिकी और सर्वमङ्गला। इन सब शक्तियोंकी यथायोग्य पूजा करनी होती है।
(ब्रह्मवैवर्त्तपु० प्रकृतिख० ६१ अ०)

पाञ्चरात्र पुराण और तन्त्रादिमें और भी अनेक शक्ति-योंका उल्लेख है। कहीं ५० विष्णुशक्ति और ५० रुद्र-शक्तिके नाम लिखे गये हैं—

पचास विष्णुशक्ति, यथा—कीर्त्ति, कान्ति, तुष्टि, पुष्टि, धृति, शान्ति, क्रिया, दया, मेधा, श्रद्धा, लज्जा, लक्ष्मी, सरस्वती, प्रीति, रति, जया, अभया, दुर्गा, प्रभा, सत्या, चण्डा, वाणी, विलासिनी, विरजा, विजया, विश्वा, विमदा, सुनदा, स्मृति, ऋद्धि, समृद्धि, शुद्धि, भक्ति, मुक्ति, मति, क्षमा, रमा, उमा, क्लेदिनी, क्लिन्ना, वसुधा, सूक्ष्मा, सन्ध्या, प्रज्ञा, निशा, अमोघा, विद्युता, परा और परायणा।

पचास रुद्रशक्ति, यथा—पूर्णोदरी, विरजा, शाल्मली, लोलाक्षी, वर्त्तुलाक्षी, दीर्घघोणा, सुदीर्घमुखी, गोमुखी, दीर्घजिह्वा, कुण्डोदरी, ऊर्ध्वकेशी, विकृतमुखी, ज्वाला-मुखी, उल्कामुखी, सुश्रीमुखी, विद्यामुखी, महाकाली, सर-स्वती, गौरी, लम्बोदरी, द्राविणी, नागरी, खेचरी, मञ्जरी, रूपिणी, वीरिणी, काकोदरी, पूतना, भद्रकाली, योगिनी, शङ्खिनी, गर्जिनी, कुब्जिनी, कपर्दिनी, जया, रेवती, माधवी, वारुणी, वायवी, कालरात्रि, रक्षा, सुमुखेश्वरी और लक्ष्मी आदि। (प्रपञ्चसार)

तन्त्रके मतमें पीठाधिष्ठात्री स्त्रीदेवता मात्र ही शक्ति नामसे अभिहित हैं। यह शक्ति जिनकी आराध्य देवी है, उन्हें शाक्त कहते हैं। शाक्त शब्द देखो।

देवीभागवतमें नदी, कापालिकी आदि चौसठ प्रकारकी कुलशक्तियोंका उल्लेख है।

गुप्तसाधनतन्त्रमें इस प्रकार लिखा है, कि नर्त्त-कीपकस्त्रीगण और शौण्डिकशासकामिनी नटी, कापा-लिनी, वेश्या, रजकी, नापितकन्या, ब्राह्मणी, शूद्रकन्या तथा गोपालक और मालाकारकन्या, ये नव कुल-शक्तियोंको यथाविधानसे पूजा करनेसे निश्चय ही सिद्धिलाभ होता है।

शक्तिवादमतावलम्बी स्वयं महादेवने शक्तिकी प्रधानताका उल्लेख कर कहा है, "शक्तियुक्त होनेसे ही मैं सर्वशक्तिमान् जगत्प्रभु शिवरूपमें व्यक्त होता हूं, नहीं तो शवरूपमें अवस्थान करता हूं।" अन्यत्र शक्तियुक्त हो कर ही सदाशिव सम्पूर्ण कार्य सम्पादन करते हैं। सूत्रमें

शक्तियोंके साथ इस सबका लय करके ही निर्विकल्प किया था। शक्तिके सबको इष्टदेवोंकी तरह ध्यान कर पाप मोचन करावे। तिस वर्णोंसे भगवान् वर्णोंसे मनसे भारकी महामाया कालिका ही शक्तिकल्पकी विशेष उपयोगिनी है।

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें स्वयं नारायणने कहा है, कि ब्रह्म और विष्णु प्रभृति तथा मुझे छोड़ प्रकृति गुण सर्वत्र सभी प्राकृतिक जगत् है। उनके उत्पत्तिकालमें मेरी इच्छासे मुझसे ही शक्ति उत्पन्न हो कर इन सबमें आविर्भूत होती है तथा सृष्टिसंहरणकालमें उन्हींसे तिरोहित हो कर फिरसे मुझमें ही आ कर लीन होती है। जिस प्रकार कुम्हार बिना मिट्टीके और सोनार बिना सोनाके घट और कुण्डल नहीं बना सकता, मैं भी उसी तरह बिना शक्तिके आत्मिक सृष्टिविषयमें असमर्थ हूं। इस कारण सृष्टि-व्यापारमें शक्तिको ही सर्वप्रधान मानना होगा। सृष्टिकालमें राधा, पद्मा, सावित्री, दुर्गा और सरस्वती, ये पांच शक्तियां आविर्भूत हुईं। श्रीकृष्णके प्राणसे भी अधिक प्रियतमा शक्तिका नाम राधा तथा ऐश्वर्यविधात्री सर्वसम्पत्-प्रदायिनी परमात्मस्वरूपा शक्तिका नाम लक्ष्मी, परमेश्वरकी विद्याविद्यारूपी और वेदशास्त्रयोगमातास्वरूपा शक्तिका नाम सावित्री तथा बुद्ध्यधिष्ठात्री सर्वशक्तिस्वरूपिणी सर्वज्ञानात्मिका और दुर्गतिनाशिनी शक्तिका नाम दुर्गा है तथा जो शक्ति वागधिष्ठात्री देवी और शास्त्रज्ञानप्रदायिनी और कृष्ण-कण्ठोद्भवा है, वे ही सरस्वती हैं। इन पांच शक्तियोंको ही मूल प्रकृति जानना होगा, किन्तु सृष्टिके क्रमानुसार ये फिर अनेक अंशोंमें विभक्त हैं। फलतः सभी स्त्रीजाति इस प्रकृति या शक्तिकी अंश है तथा पुरुष जाति सभी पुरुषका अंश ले कर निकला है।

(ब्रह्मवैवर्तपु० प्रकृतिख०)

भगवती अन्नपूर्णाशक्ति—दक्षपुत्रमें स्नान करि देवगण असुर पराजयकी आशङ्का कर बड़े सन्तोष हुए। ... शक्तिके लिये और महादेवकी सहायताके लिये वे सभी आकाशमें हुए। यह ... (illegible)

प्रजाकर धारिणी प्रतिपालनकारिणी आनन्दमयी शक्ति ही महामाया-शक्ति कहलाती है। (देवीपुराण)

देवीपुराणके मन्त्रपूजा-परिच्छेदाध्यायमें लिखा है, कि देवशक्तियोंके सम्बन्धमें कोई विचार नहीं करना होगा। क्योंकि, सभी शक्ति अनादि अनन्त विश्वविमोहक परमेश्वरकी परमानन्दस्वरूपिणी है और इन सबोंके प्रभावसे सबका आदिका फल प्राप्त होता है। (देवीपुराण)

शक्तिपूजामें व्यवहार करनेयोग्य पुष्पादि—यथा, दो प्रकारके करवीर, कुसुम, दो प्रकारकी तुलसी, जाति, अशोक, केतकी, चम्पक, बेल पत्र, कुन्द, मन्दार, पुन्नाग, पारिजातपुष्प, नागकेशर, कर्णिकार, नवमल्लिका, पलाश, अलकतास, राजहंस, अपामार्ग, दमनक या दौना फूल, गन्धतुलसी, मरुआ, अनन्तपुष्प, नागपुष्प, अपापुष्प, द्रोणपुष्प तथा इस प्रकार कल्हार, पद्म, कमल, उत्पल और लिखित अनेक प्रकारके पुष्पादि शक्तिपूजामें व्यवहार किये जा सकते हैं। (तन्त्रसार)

६ प्रकृति। पर्याय—प्रधान, नियत्या, अविकृति। यह प्रकृति या शक्ति पुरुषको आश्रय कर जगत्‌सृष्टिका कारण होती है। सत्त्व, रजः और तमः ये तीन इसके गुण हैं। (सांख्यदर्शन)

७ द्रव्यगुणक्रियादिगत पदार्थविशेष। इन सात पदार्थोंकी शक्ति प्रत्येकमें विभिन्नरूपसे दिखाई देने पर भी उसकी किसी शक्तिका विकाश करनेमें आदमीकी सहायता आवश्यक है। जैसे, अग्निसंयोग बिना किये किसी द्रव्यकी दाहिका शक्तिका विकाश नहीं हो सकता, बल्कि किसी द्रव्यके साथ संयुक्त नहीं होनेसे उसकी प्रज्वलनशक्तिका विकाश नहीं कर सकता। उत्तोलन बिना जब तक किसी भी पदार्थके ऊपर रक्खा न जावेगा, तब तक वह अपने अव्यक्त शक्तिका विकाश नहीं कर सकती।

८ शब्दोंका अनुकूल पदार्थांशबोधक वृत्ति-विशेष। अर्थात् "यह पद अमुक अर्थका बोधक हो" वा "इस शब्दसे ऐसे अर्थका परिग्रह होना कर्तव्य है" इस प्रकारका जो संकेतात्मक सम्बन्ध कल्पित होता है, वह भी एक प्रकारकी शक्ति है। आलंकारिकगण इस शक्तिको तीन भागोंमें विभक्त करते हैं, यथा रूढ़ि, यौगिक

और योगरूढ़ि। रूढ़ि, जैसे घट; यौगिक, पाचक, योगरूढ़ि पङ्कज। इसके सिवा लक्षणा व्यञ्जना आदि शक्ति द्वारा भी शब्दादिका बोध होता है। विस्तृत विवरण शब्दशक्ति, शक्तिग्रह और व्यञ्जना शब्दमें देखो।

दार्शनिक और वैज्ञानिकगण शक्ति सम्बन्धमें यथेष्ट पर्यालोचना कर गये हैं। शक्ति शब्दका व्युत्पत्तिगत अर्थ सामर्थ्यवाची है। शक् धातुके उत्तर क्तिन् प्रत्यय करके शक्तिपद निष्पन्न हुआ है। संस्कृत भाषाके व्युत्पत्तिके अनुसार शक्ति शब्दका अर्थ बहुत व्यापक है। जिसके द्वारा कोई कार्य सम्पन्न होता है,—अथवा जो कार्यरूपमें परिणत होने योग्य है,—जो किसी प्रकार परिवर्त्तनका साधक है,—जो योग्यताविशिष्ट धर्मी है या जो किसी द्रव्यका धर्म है,—अथवा जो कार्यका कारणभूत है, वही शक्ति है।

अभिधानमें शक्तिके उत्साह, बल, सामर्थ्यादि अर्थोंका व्यवहार है। निघण्टुकारका कहना है, कि शक्ति शब्दका अर्थ कर्म है। वे यह भी कहते हैं, कि जिसके द्वारा कर्म सम्पन्न होता है अथवा जिसके द्वारा परलोक जीता जाता है, वही शक्ति है। "शक्नोति: क्रियां क्तिन्। शक्यते अनया परलोकं जेतुम्।"

ब्रह्मसूत्रभाष्यमें श्रीमच्छङ्कराचार्यने लिखा है—

"कारणस्यात्मभूता शक्तिः शक्तेश्चात्मभूतं कार्यम्।"

अर्थात् कारणका जो आत्मभूत है, वही शक्ति है तथा शक्तिका जो आत्मभूत है, वही कार्य है।

श्रीमच्छङ्कराचार्यकी यह उक्ति दर्शन और विज्ञानसम्मत है।

इस अतिप्राचीन ऋक्संहितामें भी यह शक्ति शब्द इसी अर्थमें प्रयुक्त देख पाते हैं। यथा—

"स्तोमेन हि दिवि देवासो अग्निमजीजनञ्छक्तिभी रोदसिप्राम्।
तमू अकृण्वन् त्रेधा भुवे कं स ओषधीः पचति विश्वरूपाः॥"

(१०।८८।१०)

निरुक्तकारने इसकी व्याख्या यह की है—

"स्तोमेन हि यं दिवि देवा अग्निमजनयन् शक्तिभिः कर्मभिर्द्यावापृथिव्योः पूरणं तमकुर्वन् त्रेधाभावाय पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवीति शाकपूणिस्तद्यदस्य दिवि तृतीयं तदसावादित्य इति ब्राह्मणम्।"

इस ऋक्का अर्थ यह है, कि देवताओंने स्तुति द्वारा जिस त्रिलोकव्यापक पूर्णात्मक अग्निको द्युलोकमें उत्पन्न किया है, उसी अग्निको जगत्की कार्यसिद्धिके लिये अग्नि, विद्युत् और आदित्य इन त्रिविधरूपोंमें विभक्त किया है। यह सर्वव्यापक अग्नि जगत्की भलाईके लिये सभी ओषधियोंका यथाविधि परिपाककार्य सम्पन्न करती है। अग्नि द्वारा ही जगत्के सभी कार्य होते हैं।

श्वेताश्वतर पढ़नेसे जाना जाता है, कि सत्त्व, रजः और तमः यह त्रिगुणात्मिका प्रकृति ही शक्ति कहलाती है। यह शक्ति या प्रकृति परमेश्वरमें प्रतिष्ठित है तथा उनसे अभिन्न है। वही शक्ति विश्वकी सृष्टिस्थिति और लयकारिणी है।

हम योगवाशिष्ठमें भी शक्तिका सूक्ष्मतत्त्व देख पाते हैं।

अप्रमेय, शान्त, निराकार निर्विकार और सद्रूपस्वरूप परमात्मामें पहले इच्छाशक्तिकी स्फुरण होती है, पीछे व्योमसत्ता, कालसत्ता और नियतिसत्ताकी यथाक्रम अभिव्यक्ति होती है। इच्छासत्तादिकी अनुगतसत्ता महासत्ता कहलाती है। इत्यादि सभी ही चिच्छक्ति हैं। ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति, कर्तृत्वशक्ति, अकर्तृत्वशक्ति इत्यादि नामक परमेश्वरके अनेक शक्तियां हैं। ये सब शक्तियां शक्तिमान् परमेश्वरसे अभिन्न हैं—"शक्ति-शक्तिमतोरभेदात्"।

शक्तिमान्से शक्ति भिन्न है। किन्तु टीकाकारने लिखा है—"सतः हि [illegible] नित्यं गुणाः शक्तयः कार्यस्वरूपेण [illegible] न भिद्यन्ते [illegible] इत्यर्थः।"

अर्थात् जब जिससे शक्ति और [illegible] कल्पित होती है, यह विकल्पमात्र है, वस्तुतः भिन्न नहीं है।

कर्म, वासना या उपासना तथा [illegible] कारण मतभेदसे दो सम्प्रदायोंमें शक्ति शब्दका प्रयोग दिखाई देता है, यथा—

"[illegible]" (१।१११)

वह शक्तिका [illegible] अभिप्रेत नहीं होता है

अर्थात् स्वभाव द्वारा भी विलक्षण नहीं होता। आपत्ति हो सकती है, कि वह हेतुसाध्य ही अंकुरका स्वभाव है, किन्तु बीजके रूप होनेसे उसका यह स्वभाव विलक्षण होता है। कविताकारने इस आपत्तिका खण्डन करनेके लिये कहा है, कि इस दृष्टान्त द्वारा शक्तिका स्वरूप स्पष्टरूप प्रमाणित नहीं होता। इस न्यायसे शक्तिका केवल [illegible] तिरोभाव ही प्रमाणित होता है, किन्तु स्वतन्त्र विभाग इस दृष्टान्तसे प्रमाणित नहीं होता।

[illegible] कहता है, कि कार्योंकी अनागत अवस्था ही शक्ति है।

पातञ्जलदर्शनमें भी शक्तिशब्दका प्रयोग देखनेमें आता है। यहां भी इसकी योग्यता और सामर्थ्य आदि अर्थोंमें ही व्यवहार हुआ है। पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसामें भी योग्यता और सामर्थ्य अर्थमें शक्ति शब्द का प्रयोग किया गया है।

भर्तृहरि इस वाक्यपदीय ग्रन्थमें भी हम शक्ति शब्दका एक विशिष्ट व्यवहार देखते हैं। यथा—

'एकमेव यदाम्नातं भिन्नं शक्तिव्यपाश्रयात्।
अपृथक्त्वेऽपि शक्तिभ्यः पृथक्त्वेनेव वर्त्तते॥'

अर्थात् शब्दब्रह्मकी एकरूपको अविरोधिनी, परस्पर पृथक् आत्मभूता शक्तियां विद्यमान हैं। इन सब शक्तियोंके भेदारोपके लिये शक्तिसमूहसे यद्यपि ब्रह्म स्वतः पृथक् नहीं है, तथापि ब्रह्मका पृथक्त्व आरोप होता है।

वाक्यपदीयकारने और भी लिखा है,—

"[illegible]
[illegible]"

अतएव प्रमाणादि द्वारा निश्चयकारी ज्ञान द्रव्यशक्तिविशिष्ट द्रव्य सामर्थ्यविशिष्ट होनेसे अपने आप धर्मानुसार कार्य नहीं कर सकता, वरं अनन्त [illegible] देखा जाता है। [illegible] और पदार्थविज्ञानमें हम भी इस शक्तिसंरक्षणवाद (Conservation and [illegible] of Energy) के अनेक दृष्टान्त देख सकते हैं।

प्राचीन नैयायिकोंने [illegible] प्रकारके पदार्थ स्वीकार किये हैं, उनमें शक्ति भी एक पदार्थ है। यथा—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, शक्ति और [illegible]। मीमांसकगण भी आठ प्रकारके पदार्थ स्वीकार करते हैं। यथा—

द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, समवाय, शक्ति और सादृश्य।

प्राभाकरोंके मतसे ईश्वरानुमानकी तरह शक्ति और शक्तिकार्य अनुमानसिद्ध है।

आपत्ति हो सकती है, कि द्रव्य, गुण और कर्ममें शक्ति रहती है, सुतरां शक्ति पदार्थ इन्हींके अन्तर्भुक्त है, किन्तु प्राभाकरोंका कहना है, अनुमान द्वारा जाना जा सकता है, कि शक्ति द्रव्य, गुण, कर्म, समवाय आदिसे स्वतन्त्र पदार्थ है। शक्ति सामान्यादिकी तरह नित्य या स्थिर पदार्थ नहीं है। प्राभाकरोंकी युक्ति यह है, कि जिसके द्वारा भी कार्य निष्पन्न होता है, वही उस कार्योपयोगी शक्ति है। कार्योत्पादन-योग्यताविशिष्ट धर्मविशेष ही शक्ति शब्दवाच्य है। स्थलविशेषमें ऐसा भी देखा जाता है, कि प्रचुर प्रमाणादि द्वारा सुनिश्चित [illegible] यथायोग्य कार्य करनेमें समर्थ नहीं होती। अग्निकी दाहिकाशक्ति, जिसके प्रभाव, [illegible] शक्ति रहते भी किसी प्रकारसे स्फूर्ति नहीं होती। जिसके अभावमें ही कार्य का अभाव होता है, वही [illegible] है, किन्तु [illegible] पदार्थ छोड़ कर भी शक्ति अनन्त पदार्थोंमें परिव्याप्त है।

न्यायकुसुमाञ्जलिकार उदयनाचार्यका कहना है, कि न्यायदर्शनमें भी शक्ति पदार्थको स्वीकार नहीं किया गया है। कारणत्वको ही न्यायदर्शनमें शक्ति कहा है। यथा—

[illegible] ही शक्ति माना गया है।

इस प्रकारसे भी शक्ति कह सकते हैं, क्योंकि, जिसके द्वारा कोई कार्य निष्पन्न होता है, जिससे कार्य सम्भवकी योग्यता है, वही शक्ति है। महर्षि गौतमके [illegible] भी इस बातको कहा गया है। [illegible]

जाता है या प्रकृष्ट रूपसे कोई कार्य होता है, वही प्रकृति है। विज्ञानभिक्षुका कहना है, कि साक्षात् या परम्परा भावमें प्रकृति ही सब प्रकारका परिणाम साधन करती है। इसी कारण इसका प्रकृति नाम रखा गया है और इसी कारण प्रकृतिका दूसरा पर्याय शक्ति है। यह प्रकृति अजा, शक्ति, प्रधान, अव्यक्त, माया, तमः और अविद्या आदि नामोंसे प्रसिद्ध है।

पाणिनिके मतसे उपादानकारण ही प्रकृति है।

"जनिकर्त्तुः प्रकृतिः।" (पा १।४।३०)

पतञ्जलि, कैयट, भट्टोजिदीक्षित और नागेश आदिने प्रकृतिको उपादानकारणरूपसे ही समझा है। नैयायिकों ने भी कारणत्वको ही शक्ति कहा है, पाणिनिके अभिप्रायानुसार प्रकृतिको ही उस शक्तिका प्रतिनिधि या पर्याय कहा जा सकता है।

अनिरुद्धदेवका कहना है, "प्रायः रूप विनिर्मुक्त जगत् जिस पर अवस्थान करता है उसे कोई प्रकृति, कोई माया, कोई अणु इत्यादि नामोंसे पुकारते हैं।" श्रीमद्भागवतसे जाना जाता है, कि प्रकृति पुरुष और काल ब्रह्मसे भिन्न नहीं है। पुरुष और काल ब्रह्मकी ही अवस्थाविशेष है। प्रकृति ब्रह्मकी ही शक्ति है। मायावादी प्रकृतिको ही माया कहते हैं।

हम योगवाशिष्ठ-रामायणमें देखते हैं, कि परिच्छिन्न और अपरिच्छिन्न सारी सत्ता ही शक्ति है। इससे जाना जाता है, कि पदार्थमात्र ही शक्ति है। शक्ति ही द्रव्य गुण कर्म आदि विविध नामोंसे परिचित है। भिन्न भिन्न पदार्थशक्तिकी ही भिन्न भिन्न अवस्था विशेष है। आकाश, देश, काल, दिक्, परमाणु, मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय, इच्छा, प्रयत्न—ये सभी शक्तिविशेष है।

वैशेषिकदर्शनमें उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण और गमन यह जो पांच प्रकारके कर्मों की बात कही गई है, वह पांचों भी शक्ति स्पन्दन और कुछ भी नहीं है।

हम ऋग्वेद पढ़नेसे समझ सकते हैं, कि यह विशाल विश्वब्रह्माण्ड भगवान्‌की इच्छासे उत्पन्न हुआ है। वेदान्त पढ़नेसे जाना जाता है कि परमेश्वरने मायाशक्ति द्वारा इस जगत्‌की सृष्टि की है। पाश्चात्य दार्शनिक इच्छाशक्तिको ही जगत्‌की मूलशक्ति कहते हैं।

हम सारे जगत्‌में ताप, तड़ित्, गुरुत्वाकर्षण, माध्याकर्षण, आलोक, रासायनिक आकर्षण आदि शक्तिकी विविध लीला देखते हैं। ये सब शक्तियां भगवान्‌की ही इच्छाशक्ति-प्रणोदित हैं तथा मूलतः एक हैं। यद्यपि हम शक्तिके भिन्न भिन्न प्रकाश देखते हैं, किन्तु ताप, तड़ित् और आलोक आदि एकमात्र शक्तिका ही भिन्न भिन्न प्रकाश मात्र है। ऋग्वेदमें लिखा है—

"अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र।
येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः॥"

(ऋक् ३।२२।२)

अर्थात् हे यज्ञदेव! द्युलोकमें जो तेजःशक्ति विद्यमान है वह तुम्हारी ही ज्योति है, पृथिवी पर दाह पाकादि क्रियानिष्पादक रूपसे जो जो तेज देखनेमें आते हैं, वह भी तुम्हारे ही तेज हैं, वृक्षादिमें जो तेज विद्यमान है, वनस्पति आदिमें जो सामान्य तेज है, जलमें जो वर्ण तेज है, वह भी तुम्हारे ही तेज हैं। तुम ही वायुरूपसे समस्त आकाशमें तेजस्वरूप वर्त्तमान हो।

एक ही परमात्माकी शक्ति कहीं अग्निरूपसे, कहीं तड़ित् रूपसे, कहीं आदित्यरूपसे और कभी जगत् वायुरूपमें प्रतिष्ठित है। अग्नि, वायु, आदित्य ये त्रिलोकमें वर्त्तमान हैं। ये कभी चैतन्यरूप धारण करके और कभी अचेतन रूपसे अवस्थान करते हैं। निरुक्तकारने लिखा है—

"[illegible]।"

ऋग्वेदमें अग्निकी प्रार्थनामें लिखा है—

"अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनुरुध्यसे। गर्भे सञ्जायसे पुनः।" (ऋक् ८।४३।९)

अर्थात् हे अग्ने! तुम ही जलमें प्रवेश करते हो, तुम ही ओषधियोंकी सृष्टि करके उनके गर्भमें प्रविष्ट हो कर रहते हो, वहीं तुम फिर उनके अन्तस्तलमें उत्पन्न हुए हो।

अथर्ववेदमें कहा है—"दिवं पृथिवीमन्वन्तरिक्षं ये विद्युतमनुसंचरन्ति। ये दिक्ष्वन्तर्ये वाते अन्तस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत्।" (अथर्ववेद ३।२१।७)

अर्थात् ये शक्तियाँ पृथ्वी-स्थ तथा इन देवोंके अन्त-र्गत अव्यक्त होकर कर सञ्चालन करते हैं, जो मरुद्गण आकाशमें प्रकाशित होते हैं, जो अंतरि-क्षमें सञ्चरण करते हैं, जो निरोधरूपमें स्थित हुए हैं, जो सर्वव्यापी मरुत् हैं, जो मृत्युलोकमें वायुमें विद्यमान हैं, उन विश्व मरुत्‌के अनुग्राहक हमारी रक्षा करते हैं।

ऋग्वेदके ये सब प्रमाण पढ़नेसे स्पष्ट मालूम होता है, कि मरुद्गण आदित्यगण आदि शक्तियोंमें मरुद्गण प्राचीन-तम साहित्य ऋग्वेदमें शक्तिके एकत्व (Unity of Forces) स्पष्टरूपसे प्रकट कर गया है। इन वेदोंके ये सब प्रमाण पढ़नेसे और भी समझ सकते हैं, कि वैदिक ऋषि एक ही शक्तिके भिन्न भिन्न प्रकारके विकासको अच्छी तरह जानकार थे। जो शक्ति इस विशाल विश्वब्रह्माण्डके छोटेसे छोटे सब प्रकारके पदार्थोंमें विद्यमान है, वही शक्ति इन देवोंको आत्माके आत्मस्वरूप अंतरमें रह कर इन देवोंके सभी प्रकारके कार्योंका नियमन करती है। फिर वही शक्ति कभी ताप, कभी तड़ित्, कभी आलोक, कभी अग्नि, कभी वायु, कभी जल, कभी सूर्य आदिके रूपमें आकाशमें प्रकाश पाती है। शक्तिका एकत्व (Unity of Forces) और शक्तिका रूपान्तर ग्रहण (Transformation of forces) आधुनिक विज्ञानका एक विशिष्ट सिद्धान्त है। अति प्राचीन ऋग्वेदके समय भी हिन्दुओंके हृदयमें यह सिद्धान्त उद्भासित हुआ था।

इस देवोपाख्यान या अलंकारको छोड़ कर भी शक्तिके प्रति पूर्ण दार्शनिक और वैज्ञानिक तत्त्वको जान सकते हैं। विज्ञानविद्गण जिसे चित्शक्ति (Cosmo-physical Energy) कहते हैं, ईश्वरविश्वासी दार्शनिकगण जिसे विश्वव्यापिनी शक्ति (Cosmo-psychical Energy) नामसे पुकारते हैं तथा पुरातन [illegible] जिसे इस विशाल विश्वशक्तिको अचिन्त्य महाशक्ति (Unknowable Power) नामसे अभिहित करते हैं, प्राचीनतम ऋग्वेदके देवोपाख्यानमें उस विराट् महाशक्तिकी अचिन्त्य महाशक्तिका और सुन्दर अभिव्यक्ति अंकित हुई है। आजकलके [illegible]

है। आधुनिक विज्ञानमें 'पावर' (Power), 'फोर्स' (Force) और 'एनर्जी' (Energy) ये तीन शब्द शक्ति शब्दके प्रतिनिधिरूपमें व्यवहृत होते हैं। गेनो (Ganot) का कहना है, कि जिसके द्वारा स्थितिशील पदार्थ गतिविशिष्ट होता है तथा गतिशील पदार्थकी गति संरुद्ध होती है, या जिसके द्वारा किसी भी प्रकारका परिवर्त्तन साधित होता है, वही 'फोर्स' या शक्ति है। जिस शक्ति द्वारा गति वर्द्धित होती है, उसका नाम एक्सिलारेटिंग फोर्स (Accelerating Force) है। जो शक्ति गतिको प्रतिरोधक है, उसका नाम Retarding Force है।

वैज्ञानिक पण्डित प्रो, एस, गनो एम० ए० महोदय को शक्तिके स्थानमें प्रायः भी 'एनार्जी' की संज्ञा देते हैं।

प्रोफेसर हाल्मन (Halman) ने गति-शक्ति (Energy of motion), क्रियात्मक शक्ति (Kinetic Energy), माध्याकर्षण शक्ति (Energy of Gravitation), ताप (Heat), स्थितिस्थापकता शक्ति (Energy of Elasticity), योगाकर्षण या संयोग-शक्ति (Cohesion Energy), ताड़ितशक्ति (Electrical Energy) इन्हीं शक्तियोंका प्रयोग किया है। इन सबको 'फोर्स' और 'एनर्जी' की संज्ञा पूर्वोद्धृत शक्ति संज्ञाके ही अनुरूप है*।

प्रोफेसर ग्राण्ट एलेन (Grant Allen) ने शक्ति-की व्याख्यामें केवल 'पावर' (Power) शब्दका ही प्रयोग किया है। उनके मतसे यह पावर दो प्रकारका है—फोर्स और एनर्जी। इन्होंने फोर्स और एनर्जीका भिन्न भिन्न नाम रखा है, उनका कहना है, कि इन 'पावरों' और भी कई भेद हैं। यथा—Aggregative Power या योगाकर्षणशक्ति, Separative Power या वियोजनशक्ति, Polar Power या मेरुशक्ति, Molecular Power या आणविक शक्ति, Atomic या परमाणविकशक्ति, Electric या ताड़ित

* Force is anything which changes or tends to change the state of rest or of uniform motion of Body.

शक्ति, Gravitation या माध्याकर्षण शक्ति, Chemical affinity या रासायनिक शक्ति ।*

उधर पश्चिमप्रवर हार्बर्ट स्पेन्सरने Force को ही शक्ति शब्दके प्रतिनिधिरूपमें व्यवहृत किया है। हार्बर्ट स्पेन्सर बड़े दार्शनिक थे। उनके मतसे शक्तितत्त्व भी अज्ञेय है। शक्ति जाननेका कोई उपाय नहीं है। वे कहते हैं,—

"Force, as we know it, can be regarded only as certain conditioned effect of the unconditioned cause."

अर्थात् शक्तिके मूलतत्त्व सम्बन्धमें हम कुछ भी नहीं जानते, पर हां इतना जरूर है, कि वह किसी अपरिच्छिन्न कारणका एक निर्दिष्ट कार्यफलमात्र है। हार्बर्ट स्पेन्सरका शक्तितत्त्व भी सूक्ष्म दार्शनिकता और वैज्ञानिकताका परिचायक है। स्पेन्सरने शक्तिकी नित्यता (Persistence of Force) को स्वीकार किया है। उनका कहना है, कि आद्या शक्ति नित्य और सर्वव्यापिनी है। यह शक्ति अनादि और अनन्त है,—यथा—

"By persistence of force we really mean the persistence of some cause which transcends over knowledge and conception. In asserting it, we assert an unconditioned reality without beginning or end."

जो आद्य कारण हम लोगोंके ज्ञान और धारणाके अतीत है, शक्तिका सातत्य स्वीकार कर हम यथार्थमें उस दुर्ज्ञेय कारणका अस्तित्व स्वीकार करते हैं। यह आद्य कारण ही आद्यन्तरहित एक अपरिच्छिन्न सत्ताविशेष है।

हार्बर्ट स्पेन्सरने इसी शक्तिका Mysterious और Inscrutable Force नाम रखा है। उनके मतसे यह महाशक्ति ही इस विशाल विश्वब्रह्माण्डकी प्रसविनी है। हम लोगोंके मार्कण्डेयपुराण या देवीमाहात्म्यमें यही एक तत्त्व 'सैव विश्वं प्रसूयते' वाक्यसे सूचित है। इस शक्तिका विषय सोचनेमें बुद्धि ठिकाने नहीं रहती—ज्ञान ध्यानमें डूब जाती है।

चुम्बक-शक्ति या Magnetic force के सम्बन्धमें शक्तिविज्ञानमें यथेष्ट आलोचना देखी जाती है। शक्ति-वादी वैज्ञानिक पण्डितोंने Kinetic तथा Potential Energy के सम्बन्धमें भी यथेष्ट आन्दोलन किया है। व्यावहारिक विज्ञानमें इन दोनों प्रकारके 'एनर्जी'का यथेष्ट प्रयोजन दिखाई देता है। Dynamics नामक शक्तिविज्ञानमें इस विषय पर विशद आलोचना की गई है। वायु वेगादि द्वारा शक्ति जो साधारणतः Kinetic Energy कहलाती है। फिर द्रव्यादिके अभ्यन्तर जो शक्ति है, वही Potential Energy है। अवलम्बनहीन द्रव्य, घर्षणात्मक गोला, बारूदिक पदार्थोंका उदाहरण है। फिर इधर क्रियाशक्तियुक्त द्रव्यके अभ्यन्तर जो गति अवरुद्ध रहके क्रियाशीलताकी शक्ति प्रकाश करता है, उसको Potential Energy का उदाहरण कहते हैं। जैसे—एक धनुषको धनुष पर तीर देके यह पीछे अपनी ओरको खींचके बल करे बाण दूरवर्त्ती लक्ष्यभेद धारण करता है। ये दोनों दृष्ट विज्ञानाय

motion of bodies. Energy is power to change the state of motion of a body.

* डंकेन साहबके एक ग्रन्थका नाम "Force and energy" है। उसमें लिखा है, A Power is that which initiates or terminates, accelerates or retards motion in one or more particles of ponderable matter or of the ethereal medium.

Allen साहबने 'फोर्स' और 'एनर्जी'का जो अर्थ रखा है, वह भी उल्लेखनीय है। जैसे—A Force is a power which intiates or accelerates aggregative motion, while it resists or retards separative motion in two or more particles of ponderable matter.

An Energy is a Power which resists or retards aggregative motion while it initiates or accelerates separative motion in two or more particles of ponderable or of the Ethereal medium.

या उदित Kinetic या शांत Potential नामसे अभिहित हो सकते हैं।

इस पाश्चात्यदर्शनमें भी ये दो शब्द देखने हैं। वैशेषिक-दर्शनमें भी संस्कार, वेग, स्पन्दन इत्यादिकी आलोचना है। ये सब विषय भी प्राचीन हिन्दुओंके शक्तिविज्ञानके आलोच्य विषय समझे जाते थे।

भारतीय शास्त्रादिकी पर्यालोचना करनेसे देखा जाता है, कि शक्तिविज्ञानके सम्बन्धमें अनेक सूक्ष्म-तत्त्वके सूत्र वेदमें, उपनिषद्में, दार्शनिकशास्त्रमें, धर्मविज्ञानमें और पुराणादिमें निविष्ट हुए हैं। आधुनिक पाश्चात्य-विज्ञान जड़विज्ञानके उन्नति-मार्गमें चेष्टा कर जिस सूक्ष्म-सिद्धान्त पर पहुंचे हैं, वह सिद्धान्त क्रमशः भारतीय ऋषियोंके सिद्धान्तका निकटवर्ती होता है। वे लोग अभी कहते हैं, Matter is force and conversely force is matter अर्थात् जड़ ही शक्ति है और शक्ति ही जड़ है। हमलोगोंके धर्मशास्त्र कहता है, "सर्वं शक्तिमयं जगत्"। श्रीचण्डीमें लिखा है, "नित्यैव सा जगन्मूर्त्तिस्तया सर्वमिदं जगत्"। दार्शनिकोंने बहुत पहले कह रखा है, 'शक्ति शक्तिमतोरभेदात्।' आधुनिक विज्ञानमें जड़-पदार्थके सूक्ष्मतम अंशका 'इलेक्ट्रन' नाम रखा है, वह भी शक्तिकी अवस्थाविशेष है।

शक्तिक (सं० पु०) १ शक्ति देखो। २ [illegible]।

शक्तिकर (सं० त्रि०) शक्तिप्रद, बलकर।

शक्तिकुमार (सं० पु०) १ एक कवि। २ एक मेदिनीपति। ([illegible])

शक्तिग्रह (सं० पु०) शक्तिं गृह्णातीति शक्तिग्रह (शक्तिग्रह-अच्) इत्यस्य कार्त्तिकेय शक्ति-अस्त्र। १ शिव, महादेव। २ कार्त्तिकेय। शक्तेः ग्रहः। ३ शक्तिका अर्थ बतलानेवाला, शक्ति या मूर्त्तिका ज्ञान। ४ वह जो भाला या बरछी चलाता हो, भालाबरदार। (त्रि०) ५ शक्तिको ग्रहण करनेवाला।

शक्तिघ्वज (सं० पु०) शक्तिं ध्वजे यस्य। १ शक्तिधरदेव। २ कुमारका शक्तिचिह्न हेतु, कार्त्तिकेय।

पहले इसके अवस्थानुसार शरीरका अनुभव, इन्द्रिय प्रत्यक्षादि द्वारा शक्तिज्ञान होता है। तन्त्रादि देखो।

शक्तिप्रकार (सं० स्त्री०) तालभेद।

शक्तिग्रह (सं० त्रि०) शक्तिं गृह्णातीति ग्रह-अच्। शक्ति ग्राहक, जो शक्ति ग्रहण करे।

शक्तितन्त्र (सं० क्ली०) तन्त्रभेद, शक्तिविषयक तन्त्र।

शक्तितस् (सं० अव्य०) शक्ति-तसिल्। शक्तिके अनुसार, यथाशक्ति।

शक्तिता (सं० स्त्री०) शक्तेर्भावः तल्-टाप्। शक्तिका भाव या धर्म, शक्तित्व।

शक्तिदास—मायावीरचरितके प्रणेता।

शक्तिदेव (सं० पु०) एक शब्दरत्नके रचयिता।

शक्तिधर (सं० पु०) धरतीति धृ-अच्, शक्तेर्धरः। १ कार्त्तिकेय। (त्रि०) २ शक्तिधारक, ताकतवर।

शक्तिध्वज (सं० पु०) कार्त्तिकेय, स्कन्द।

शक्तिनाथ (सं० पु०) वशिष्ठके एक पुत्रका नाम। शक्ति देखो।

शक्तिनाद (सं० पु०) शिवलिङ्गभेद।

शक्तिपाशा (सं० स्त्री०) तालभेद।

शक्तिपर्ण (सं० पु०) सप्तपर्ण वृक्ष, छतिवन।

शक्तिपाणि (सं० पु०) शक्तिरस्त्रविशेषः पाणौ यस्य। कार्त्तिकेय, स्कन्द। (शब्दर०)

शक्तिपूजक (सं० पु०) शक्तेः पूजकः। १ वह जो शक्तिकी उपासना करता हो, शाक्त। २ तान्त्रिक, वाममार्गी।

शक्तिपूजा (सं० स्त्री०) शक्तेः पूजा। १ शक्तिका तन्त्र द्वारा होनेवाला पूजन। २ तालभेद।

शक्तिपुत्र (सं० पु०) पराशर, शक्तिके पुत्र।

शक्तिबोध (सं० पु०) १ ... १ शब्दशक्तिका ज्ञान, शब्दके अर्थका बोध। २ तालभेद।

शक्तिभद्र—चूडामणि नाटकके रचयिता।

शक्तिभृत् (सं० पु०) शक्तिं बिभर्त्तीति भृ-क्विप्, तुक् च। १ कार्त्तिकेय, स्कन्द। (त्रि०) २ शक्ति धारण करनेवाला।

शक्तिमोक्ष (सं० स्त्री०) तालभेद।

शक्तिमत् (सं० त्रि०) शक्ति विद्यतेऽस्य शक्ति-मतुप्। शक्तिमान्, ताकतवर।

शक्तिमत्ता (सं० स्त्री०) शक्तिमान् होनेका भाव या धर्म।

शक्तिमत्त्व (सं० क्ली०). शक्तिमतो भावः शक्तिमत् भावे त्व। शक्तिमान्‌का भाव या धर्म, शक्ति।

शक्तिमन्त्र (सं० क्ली०) शक्तिदेवताका मन्त्र, वह मन्त्र जो शक्तिके उपासक ग्रहण करते हैं।

शक्तिमय (सं० त्रि०) शक्तिस्वरूपार्थे मयट्। शक्तिस्वरूप।

शक्तिमान् (सं० त्रि०) शक्तिमत् देखो।

शक्तियशस् (सं० स्त्री०) विद्याधरीभेद। (कथासरित्सा० ५६।११)

शक्तियामल (सं० क्ली०) यामल तन्त्रभेद। इसमें शक्ति माहात्म्य विस्तृत रूपसे वर्णित है।

शक्तिरक्षित (सं० पु०) किरातराजपुत्रभेद। (कथासरित्सा० ७८।१६)

शक्तिरत्नाकर—तन्त्रभेद।

शक्तिवन—वनतीर्थभेद। भविष्योत्तरपुराणमें इस वनका माहात्म्य कीर्तित है।

शक्तिवल्लभ—रसकौमुदीके रचयिता।

शक्तिवर (सं० पु०) एक योद्धा।

शक्तिवादी (सं० पु०) वह जो शक्तिकी उपासना करता हो, शाक्त।

शक्तिवीर (सं० पु०) वह जो शक्तिकी उपासना करता हो, वाममार्गी।

शक्तिवेग (सं० पु०) विद्याधरभेद। (कथासरित्सा० ४५।११)

शक्तिवैकल्य (सं० क्ली०) १ शक्तिका नाश, कमजोरी। २ असमर्थता।

शक्तिशोधन (सं० पु०) शाक्तोंका एक संस्कार। इसमें वे किसी स्त्रीको शक्तिकी प्रतिनिधि बनाकर पहले कुछ विशिष्ट क्रियाएं करके उसे शुद्ध करते हैं।

शक्तिष्ठ (सं० त्रि०) जिसमें शक्ति हो, शक्तिशाली, सामर्थ्यवान्।

शक्तिसङ्गमतन्त्र (सं० क्ली०) तन्त्रग्रन्थभेद।

शक्तिसङ्गमामृत (सं० क्ली०) तन्त्रभेद।

शक्तिसम्पन्न (सं० त्रि०) शक्तिसे युक्त, बलवान्, ताकतवर।

शक्तिसाधन (सं० क्ली०) शक्तिपूजाके समय व्यवहृत शाक्तोंकी उपासना-प्रक्रियाविशेष।

शक्तिसिंह (सं० पु०) एक राजाका नाम। ये मदनरत्नके प्रणेता मदनसिंहके पिता थे।

शक्तिसेन (सं० पु०) काश्मीरके एक धनाढ्य व्यक्ति। (राजत० ६।२१६)

शक्तिस्वामी—कर्कोट वंशोद्भव राजा मुक्तापीड़के मन्त्री। इनके पिताका नाम था मित्र। (राजत०)

शक्तिहर (सं० त्रि०) बलनाशकारी, बलहारक।

शक्तिहस्त (सं० पु०) स्कन्दभेद।

शक्तिहीन (सं० त्रि०) १ जिसमें शक्तिका अभाव हो, निर्बल, नाताकत। २ हीजड़ा, नामर्द, नपुंसक।

शक्तिहेतिक (सं० त्रि०) शक्तिर्हेतिः प्रहरणमस्य कन्। शक्तिअस्त्रधारी योद्धा, जो शक्तिअस्त्र धारण करते हैं। पर्याय—शाक्तीक, शक्त्यायुधधर। (शब्दरत्ना०)

शक्ती (सं० पु०) १ एक प्रकारके मात्रिक छन्दका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें १८ मात्राएं होती हैं और इसकी रचना ३+३+४+३+५ होती है। अन्तमें सगण, रगण या नगणमेंसे कोई एक और आदिमें एक लघु होना चाहिए। इसकी १, ६, ११ और १६वीं मात्रा लघु रहती है। यह छन्द भुजङ्गी और चन्द्रिका छन्दकी चाल पर होता है। अन्तर यह है, कि ये गणबद्ध होते हैं और यह मात्रिक है। यह छन्द फारसीके 'फरोशा बदख्शाद बर हाल मा। कि हस्नत् मसीरे कसंदे हया'की बहरसे मिलता है। २ शक्तिवाला, शक्तिशाली, बलवान्।

शक्तीवत् (सं० त्रि०) शक्तियुक्त, बलवान्।

शक्तु (सं० पु० क्ली०) शक-बाहुलकात् तुन्। सक्तु, भर्जित यवादिचूर्ण, भुने हुए जौ, चने आदिका आटा, सत्तू।

भुनेके दानोंको पहले उसे भुन कर भूसी अलग कर ले, पीछे जांतेमें पीसे। इस प्रकार जो सक्तु तैयार होता है उसे सक्तु या सत्तू कहते हैं। यह सत्तू चावल, जौ और चने आदिका होता है। इनमेंसे प्रत्येकका गुण भिन्न भिन्न है।

जौके सत्तूका गुण—शीतवीर्य, अग्निदीपक, लघु, सारक, कफ और पित्तनाशक, रूक्ष और लेखन गुणयुक्त। यह सत्तू पानीमें या और किसी अन्य पदार्थमें

का कइन Kinetic या स्टेट Potential नामसे अभि-हित हो सकते हैं।

इस दृश्यजगत्‌में भी शक्ति दो प्रकार देखने हैं। वैशेषिक-दर्शनमें भी संस्कार, वेग, स्थितिस्थापक इत्यादिकी आलोचना है, ये सब विषय भी प्राचीन हिन्दुओंके शक्तिविज्ञानके अन्तर्गत गिने जाते थे।

प्राच्य शास्त्रादिकी पर्यालोचना करनेसे देखा जाता है, कि शक्तिविज्ञानके सम्बन्धमें अनेक सूक्ष्म-तत्त्वके गूढ़ रहस्य, दर्शनसमूह, वैज्ञानिकशास्त्र, तान्त्रिकों और पुराणादिमें लिपिबद्ध हुए हैं। आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान प्रकृतितत्त्वके [illegible] चेष्टा कर जिस सूक्ष्म-सिद्धान्त पर पहुंचे हैं, वह प्राचीन भारतीय ऋषियोंके सिद्धान्तका निदर्शन होता है। वे लोग अभी कहते हैं, Matter is force and conversely force is matter अर्थात् जड़ ही शक्ति है और शक्ति ही जड़ है। इसलिये शास्त्रकार कहता है, "सर्वं शक्तिमयं जगत्"। [illegible] लिखा है, "[illegible] जगन्मूर्तिमती [illegible] जगत्"। दार्शनिकोंने बहुत पहले कह दिया है, 'शक्तिशक्तिमतोरभेदः।' आधुनिक विज्ञानने जड़-पदार्थके सूक्ष्मतम अंशका 'इलेक्ट्रन' नाम रखा है, वह भी शक्तिको अवस्थाविशेष है।

शक्तिक (सं० पु०) १ शक्ति देखो। २ [illegible]।

शक्तिधर (सं० त्रि०) शक्तियुक्त, बलवान।

शक्तिकुमार (सं० पु०) १ एक कवि। २ एक [illegible]। ([illegible])

शक्तिग्रह (सं० पु०) शक्तिं गृह्णाति शक्ति-ग्रह [illegible] १ शिव, महादेव। २ कार्तिकेय। [illegible] ३ शक्तिका [illegible], शक्ति या [illegible] ४ यह भी [illegible] ग्रहण करनेवाला। (त्रि०) ५ शक्तिको ग्रहण करने-वाला।

शक्तिग्राहक (सं० पु०) शक्तिं गृह्णाति [illegible] शक्ति [illegible]। १ [illegible]। २ [illegible]।

पहले पुरुषके स्वरूपानुसार शक्तिका मूल्य, [illegible] इत्यादि द्वारा शक्तिज्ञान होता है। प्रकृति देखो।

शक्तित्रय (सं० क्ली०) [illegible]।

शक्तित्व (सं० त्रि०) शक्तिं [illegible]। शक्ति [illegible], और शक्तिसे [illegible]।

शक्तिनाथ (सं० पु०) [illegible], शक्तिविशिष्ट [illegible]।

शक्तिमत् (सं० [illegible]) शक्ति-मतुप्। शक्तिके अनुसार, यथाशक्ति।

शक्तिता (सं० स्त्री०) शक्तिका भाव। [illegible]। शक्तिका भाव या धर्म, शक्तित्व।

शक्तिदास—[illegible] प्रणेता।

शक्तिदेव (सं० पु०) एक [illegible] रचयिता।

शक्तिधर (सं० पु०) शक्तिं धरति धृ-अच्, शक्तिधर। १ कार्तिकेय। (त्रि०) २ शक्तिधारक, बलवान।

शक्तिध्वज (सं० पु०) कार्तिकेय, स्कन्द।

शक्तिनाथ (सं० पु०) [illegible] एक पुत्रका नाम।

शक्ति देखो।

शक्तिनाथ (सं० पु०) [illegible]।

शक्तिपर्याय (सं० क्ली०) [illegible]।

शक्तिपर्ण (सं० पु०) सप्तपर्ण वृक्ष, छतिवन।

शक्तिपाणि (सं० पु०) शक्तिः [illegible] पाणौ यस्य। कार्तिकेय, स्कन्द। (शब्दर०)

शक्तिपूजक (सं० पु०) शक्तेः पूजकः। १ वह जो शक्तिकी उपासना करता हो, शाक्त। २ तान्त्रिक, वाममार्गी।

शक्तिपूजा (सं० स्त्री०) शक्तेः पूजा। १ शक्तिका शास्त्र द्वारा होनेवाला पूजन। २ [illegible]।

शक्तिपुत्र (सं० पु०) पराशर, शक्तिके पुत्र।

शक्तिबोध (सं० पु०) [illegible]। १ [illegible] ज्ञान, [illegible]। २ [illegible]।

शक्तिभद्र—[illegible] रचयिता।

शक्तिभृत् (सं० पु०) शक्तिं बिभर्ति भृ-क्विप्। १ कार्तिकेय, स्कन्द। (त्रि०) २ शक्ति धारण करनेवाला।

शक्तिमत्ता (सं० स्त्री०) [illegible]।

शक्तिमत् (सं० त्रि०) शक्ति [illegible] शक्ति-मतुप्। शक्तिविशिष्ट, शक्तियुक्त, बलवान।

शक्तिमत्ता (सं० स्त्री०) शक्तिमान् होनेका भाव या धर्म।

शक्तिमत्त्व (सं० क्ली०) शक्तिमतो भावः शक्तिमत् भावे त्व। शक्तिमान्‌का भाव या धर्म, शक्ति।

शक्तिमन्त्र (सं० क्ली०) शक्तिदेवताका मन्त्र, वह मन्त्र जो शक्तिके उपासक ग्रहण करते हैं।

शक्तिमय (सं० त्रि०) शक्तिस्वरूपार्थे मयट्। शक्ति स्वरूप।

शक्तिमान् (सं० त्रि०) शक्तिमत् देखो।

शक्तियशस् (सं० स्त्री०) विद्याधरीभेद। (कथासरित्सा० ५६।११)

शक्तियामल (सं० क्ली०) यामल तन्त्रभेद। इसमें शक्ति माहात्म्य विस्तृत रूपसे वर्णित है।

शक्तिरक्षित (सं० पु०) किरातराजपुत्रभेद। (कथासरित्सा० ७६।११)

शक्तिराधाकर—नगरभेद।

शक्तिवन—वनभेद। भविष्योत्तरपुराणमें इस वनका माहात्म्य कीर्तित है।

शक्तिवल्लभ—रसदीपिकाके रचयिता।

शक्तिवर (सं० पु०) एक योद्धा।

शक्तिवादी (सं० पु०) वह जो शक्तिकी उपासना करता हो, शाक्त।

शक्तिवीर (सं० पु०) वह जो शक्तिकी उपासना करता हो, वाममार्गी।

शक्तिवेग (सं० पु०) विद्याधरभेद। (कथासरित्सा० २५।१०)

शक्तिवैकल्य (सं० क्ली०) १ शक्तिका नाश, कमजोरी। २ असमर्थता।

शक्तिशोधन (सं० पु०) शाक्तोंका एक संस्कार। इसमें वे किसी स्त्रीको शक्तिका प्रतिनिधि बनानेसे पहले कुछ विशिष्ट क्रियाएं करके उसे शुद्ध करते हैं।

शक्तिष्ठ (सं० त्रि०) जिसमें शक्ति हो, शक्तिशाली, ताकतवर।

शक्तिसङ्गमतन्त्र (सं० क्ली०) तन्त्रग्रन्थभेद।

शक्तिसङ्गमामृत (सं० क्ली०) ग्रन्थभेद।

शक्तिसम्पन्न (सं० त्रि०) शक्तिसे युक्त, बलवान्, ताकतवर।

शक्तिसाधन (सं० क्ली०) शक्तिपूजाके समय स्मार्त शाक्तोंकी उपासना-प्रक्रियाविशेष।

शक्तिसिंह (सं० पु०) एक राजाका नाम। ये मदन रत्नके प्रणेता मदनसिंहके पिता थे।

शक्तिसेन (सं० पु०) काश्मीरके एक प्रधान व्यक्ति। (राजत० ६।११६)

शक्तिस्वामी—कर्कोट वंशोद्भव राजा मुक्तापीड़के मन्त्री। इनके पिताका नाम था मित्र। (राजत०)

शक्तिहर (सं० त्रि०) बलनाशकारी, बलहारक।

शक्तिहस्त (सं० पु०) स्कन्दभेद।

शक्तिहीन (सं० त्रि०) १ जिसमें शक्तिका अभाव हो, निर्बल, नाताकत। २ हीजड़ा, नामर्द, नपुंसक।

शक्तिहेतिक (सं० त्रि०) शक्तिर्हेति प्रहरणार्थे ठन्। शक्तिअस्त्रधारी योद्धा, जो शक्तिअस्त्र धारण करते हैं। पर्याय—शाक्तिक, शक्त्यायुधधर। (शब्दरत्ना०)

शक्ती (सं० पु०) १ एक प्रकारके मात्रिक छन्दका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें १८ मात्राएं होती हैं और इसकी रचना ३+३+४+३+५ होती है। अन्तमें सगण, रगण या नगणोंमेंसे कोई एक और आदिमें एक लघु होना चाहिए। इसकी १, ६, ११ और १६वीं मात्रा लघु रहती है। यह छन्द भुजङ्गी और चन्द्रिका छन्दके मेल पर होता है। अन्तर यह है, कि ये लघ्वन्त होते हैं और यह गुर्वन्त है। यह छन्द फारसीके 'करीमा बबख-शाय बर हाल मा। कि हस्तम् असीरे कमंदे हवा'की बहरसे मिलता है। २ शक्तिवाला, शक्तिशाली, बलवान्।

शक्तीवत् (सं० त्रि०) शक्तियुक्त, बलवान्।

शक्तु (सं० पु० क्ली०) शक् बाहुलकात् तुन्। भर्जित यवादिचूर्ण, भुने हुए जौ, चने आदिका आटा, सत्तू।

भुननेके पहले उसे धुन कर भूनो अथवा भर लें, पीछे जांतेमें पीसे। इस प्रकार जो चूर्ण तैयार होता है उसे सक्तु या सत्तू कहते हैं। यह सत्तू जौ, चने और गेहूं आदिका होता है। इनमेंसे प्रत्येकका गुण भिन्न भिन्न है।

जौके सत्तूका गुण—शीतवीर्य, अग्निदीपक, लघु, कफ, कफ और पित्तनाशक, रूक्ष और लेखन गुण-युक्त। यह सत्तू पानीमें घी और किसी भाव पदार्थके

[illegible] कर खानेसे बलकारक, पुष्टिवर्द्धक, [illegible] [illegible], [illegible], [illegible], मधुरतर और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] होता है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होती है।

जौ और चनेका सत्तू—जौ और चनेको समान भाग ले कर [illegible] जो सत्तू बनता है, उसे जौ-चनेका सत्तू कहते हैं। यह सत्तू [illegible] और [illegible] साथ मिला कर खानेसे विशेष उपकार होता है।

धानका सत्तू—धानको भून कर [illegible] सत्तू तैयार करनेसे उसे धानका सत्तू कहते हैं। यह सत्तू अग्निकारक, लघु, शीतवीर्य, मधुरतर, धारक, रुचिकारक, [illegible], बलप्रदायक और शुक्रवर्द्धक होता है।

वैद्यकशास्त्रमें सत्तू खाना समय-विशेषमें निषिद्ध बताया है। भोजनके बाद सत्तू खाना मना है। सत्तूको दांतसे चबा कर या रातको नहीं खाना चाहिए। अधिक परिमाणमें सत्तू खाना मना है, [illegible] घोल कर ही सत्तू खाना चाहिये दूसरेसे नहीं। सत्तू खानेके समय जल न पीना चाहिये। [illegible] पुनर्वार सत्तू खाना भी निषिद्ध है। [illegible] दूधके साथ मिला कर सत्तू [illegible] करे और उसके ऊपर दूसरा सत्तू डाल दे, तो उसे पुनर्वार सत्तू कहते हैं। [illegible] [illegible] दूधके साथ सत्तू खाना मना है। [illegible] सत्तू खाना भी [illegible] है।

[illegible] लिखा है, कि [illegible] दिन [illegible] [illegible] सत्तू भोजन करे। [illegible] सत्तू खानेसे [illegible] होता है तथा [illegible] [illegible] [illegible] होता है।

[illegible] देवता और पितरोंके उद्देशसे [illegible] [illegible] सत्तू दान करनेकी विधि है। [illegible] सत्तू दान करते हैं, वे [illegible] [illegible] होते हैं।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] देखो।

शक्तुक (सं० पु०) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] होता है। [illegible] [illegible] होते [illegible] [illegible] हो जाती है।

शक्तुफला (सं० स्त्री०) शमीवृक्ष, सफेद कीकर। (वैद्यक)

शक्तुफलिका (सं० स्त्री०) शक्तुफली देखो।

शक्तुफली (सं० स्त्री०) शमीवृक्ष, सफेद कीकर। (शब्दरत्ना०)

[illegible] (सं० पु०) [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible], तो [illegible] [illegible] [illegible] प्रयोग हुआ है।

शक्ति (सं० पु०) वशिष्ठमुनिके ज्येष्ठ पुत्र। एक दिन इक्ष्वाकु वंशीय राजा कल्माषपाद [illegible] गये थे। वहां [illegible] [illegible] हो [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पर पहुंचे। [illegible] [illegible] शक्तिको आते देखा। राजाने शक्तिको रास्तेसे हट जाने कहा। इस पर शक्तिने उत्तर दिया, 'यह मेरा पथ है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हट नहीं सकता।' इस प्रकार दोनोंमें झगड़ा खड़ा हो गया। [illegible] राजाने [illegible] [illegible] [illegible]। इस पर मुनिश्रेष्ठ शक्तिने क्रुद्ध हो कर राजाको शाप दिया, 'तुम [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], इस कारण [illegible] [illegible] राक्षस हो कर रहोगे।' [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भक्षण किया। ([illegible])

[illegible] (सं० त्रि०) [illegible], [illegible]। ([illegible])

[illegible] (सं० त्रि०) [illegible], [illegible]।

[illegible] (सं० पु०) [illegible] ([illegible] [illegible]) [illegible] [illegible] [illegible]। ([illegible]) ([illegible])

[illegible] (सं० त्रि०) [illegible] ([illegible] [illegible]) [illegible]। [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]। [illegible], [illegible] [illegible] हो।

३ शक्याशय, शक्तिका आशय। (पु०) ४ शब्दशक्तिके द्वारा प्रकट होनेवाला अर्थ। अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना तीन शब्दकी वृत्ति हैं, जहां शब्दका अर्थबोध होता है, उसे शक्य कहते हैं। शब्दका शक्ति द्वारा अर्थबोधक शब्द है। शक्तिवादमें लिखा है, कि ईश्वरकी इच्छाका नाम संकेत है, यही संकेत शक्ति है, इसके द्वारा अर्थबोधक जो पद है, उसे वाचक या शक्य कहते हैं।

शब्दशक्ति देखो।

शक्यता (सं० स्त्री०) शक्य होनेका भाव या धर्म, क्रिया-त्मकता।

शक्यतावच्छेदक (सं० त्रि०) शक्यताया अवच्छेदकं। शक्यतामें भासमान धर्म। शक्य पदार्थके असाधारण धर्म है, जिस धर्म द्वारा अर्थको शब्दसङ्केतविषयता बोधगम्य होती है, वही धर्म है।

शक्यव्याप्ति (सं० स्त्री०) न्यायदर्शनके अनुसार प्रमाणके वे प्रमाण जिनसे प्रमेय सिद्ध होता है।

शक्र (सं० पु०) शक्नोति दैत्यान् नाशयितुं शक (स्फायितञ्चीति। उण् २।१३) इति रक्। १ दैत्यों का नाश करनेवाले, इन्द्र। २ कुटजवृक्ष, कोरैया। ३ अर्जुनवृक्ष, कोह वृक्ष। ४ इन्द्रयव, इन्द्रजौ। ५ ज्येष्ठा नक्षत्र। इस नक्षत्रके अधिष्ठाता देवता इन्द्र हैं। १४ इसी। ६ छप्पयके चौथे भेद अर्थात् (ऽ।ऽ) की संज्ञा जिसमें छः मात्राएं होती हैं। (त्रि०) ७ समर्थ, योग्य। (ऋक् ४।१९।६)

शक्रकार्मुक (सं० क्ली०) शक्रस्य इन्द्रस्य कार्मुकं। इन्द्र-धनुष।

शक्रकुमारिका (सं० स्त्री०) शक्रस्य कुमारिका, शक्र-कुमारी, शक्रध्वजयष्टिविशेष। शक्रध्वज देखो।

शक्रकेतु (सं० पु०) शक्रस्य केतुः। इन्द्रध्वज।

शक्रक्रीडाचल (सं० पु०) शक्रस्य क्रीडायाः क्रीडाचलः। सुमेरु पर्वत। इन्द्र इस पर्वत पर क्रीड़ा करते हैं, इस लिये इसको शक्रक्रीडाचल कहते हैं।

शक्रगोप (सं० पु०) इन्द्रगोप नामक कीड़ा। बीरबहूटी।

शक्रचाप (सं० क्ली०) इन्द्रधनुष।

शक्रज (सं० पु०) शक्राज्जायते इति जन-ड। १ काक, कौआ। (त्रि०) २ इन्द्रजातमात्र।

शक्रजा (सं० स्त्री०) शक्राज्जायते जन, इन्द्रायण, इन्द्रायन।

शक्रजाल (सं० पु०) शक्रजालम्। इन्द्रजाल देखो।

शक्रजानु (सं० पु०) रामायणके अनुसार एक वानरका नाम। (रामायण ६।७३।६१)

शक्रजाया (सं० स्त्री०) इन्द्राणी।

शक्रजित् (सं० पु०) शक्रं जितवान् जि-क्विप् तुक् च। १ इन्द्रविजयी रावणके पुत्र मेघनाद। (त्रि०) २ इन्द्र-जेता, इन्द्रको जीतनेवाला।

शक्रतरु (सं० पु०) भांगका पेड़।

शक्रत्व (सं० क्ली०) शक्रस्य भावः त्व। शक्रका भाव या धर्म, इन्द्रत्व।

शक्रदिश् (सं० स्त्री०) शक्रस्य दिक्। पूर्व दिशा। इस दिशाके स्वामी इन्द्र माने जाते हैं।

शक्रदेव (सं० पु०) १ इन्द्र। २ कलिङ्गके एक राजाका नाम। (भारत भीष्मपर्व) ३ हरिवंशके अनुसार शृगालके एक पुत्रका नाम।

शक्रदेवता (सं० पु०) इन्द्रदेवता।

शक्रदैवत (सं० क्ली०) ज्येष्ठा नक्षत्र। इसके स्वामी इन्द्र माने जाते हैं। (बृहत्सं० ७।१२)

शक्रद्रुम (सं० पु०) शक्रस्य द्रुमः। १ देवदारु। २ बकुल-वृक्ष, मौलसिरी।

शक्रधनु (सं० पु०) इन्द्रधनुष।

शक्रधनुस् (सं० क्ली०) शक्रस्य धनुः। इन्द्रधनुष।

आकाशमें यह धनुष दिखाई देनेसे शुभाशुभ कैसा फल होता है, वृहत्संहितामें यह विषय इस प्रकार लिखा है—

सूर्यकी नाना प्रकारकी वर्णयुक्त किरणें वायु द्वारा विघट्टित हो कर मेघयुक्त आकाशमें जो धनुषका आकार दिखाई देता है, उसको शक्रधनु कहते हैं। किसी किसी आचार्यका कहना है, कि अनन्त नागके कुलनागके निश्वाससे इस इन्द्रधनुषकी उत्पत्ति होती है। आकाशमें इन्द्रधनुष दिखाई देनेके समय राजा यदि उसको लक्ष्य कर युद्धयात्रा करे, तो उन्हें युद्धमें पराजय होती है। इस धनुषके अच्छिन्न, अवनिगाढ़, द्युतिमान्, स्निग्ध, विविध वर्णयुक्त, द्विबार उदित वा अनुलोम होनेसे शुभ

[illegible] पीसेसे [illegible], पुष्टिकर [illegible], [illegible], मधुररस और [illegible] होता है। [illegible] और [illegible] होता है। यह [illegible] और [illegible] व्यक्तियोंके लिये [illegible] है।

[illegible] और [illegible] सत्तू—[illegible] और [illegible] भाग ले कर [illegible] को सत्तू बनाते हैं, उसे [illegible] सत्तू कहते हैं। यह सत्तू [illegible] और [illegible] के साथ मिला कर खानेसे [illegible] होता है।

धानका सत्तू—धानको भून कर अथवा [illegible] सत्तू तैयार करनेसे उसे धानका सत्तू कहते हैं। यह सत्तू अग्निवर्धक, लघु, शीतवीर्य, मधुररस, ग्राही, रुचिकारक, [illegible], [illegible] और पुष्टिकर होता है।

वैद्यकशास्त्रमें सत्तू खाने समय-विशेषकी विधि बताई है। भोजनके बाद सत्तू खाना मना है। सत्तूको दांतसे चबा कर या रातको नहीं खाना चाहिए। अधिक परिमाणमें सत्तू खाना मना है, जलमें घोल कर ही सत्तू खाना चाहिये सूखा नहीं। सत्तू खानेके बाद जल न पीना चाहिये। [illegible] पुनः सत्तू खाना भी निषिद्ध है। दूधके साथ मिला कर सत्तू [illegible] और उसके ऊपर दूसरा सत्तू खा ले, तो [illegible] सत्तू कहते हैं। [illegible] दो बार सत्तू खाया जाता है। रातको सत्तू खाना भी हानिकारक है।

[illegible] लिखा है, कि [illegible] दिन [illegible] पूजादि करके सत्तू भोजन करे। [illegible] सत्तू [illegible] होता है तथा [illegible] भोजन [illegible] होता है।

[illegible] और [illegible] [illegible] सत्तू [illegible] है। [illegible] दिन सत्तू [illegible] है, वे [illegible] होते हैं।

[illegible] सत्तू [illegible] है।

सत्तुक (सं० पु०) [illegible] बहुत [illegible] और [illegible] होता है। [illegible] हो कर [illegible] सत्तूके समान हो जाता है।

सत्तुगर्भा (सं० स्त्री०) [illegible], [illegible] (शब्दर०)

सत्तुफलिका (सं० स्त्री०) सत्तुफली देखो।

सत्तुफली (सं० स्त्री०) [illegible], [illegible] (शब्दार्थचि०)

[illegible] (सं० पु०) [illegible]। [illegible] [illegible] और [illegible] लिखने और [illegible], तो [illegible] [illegible] हुआ है।

[illegible] (सं० पु०) [illegible] पुत्र। एक दिन [illegible] राजा [illegible] गये थे। वहां [illegible] हो गयी [illegible] पर [illegible] [illegible] पहुंचे। [illegible] देखा। [illegible] कहा। [illegible] उत्तर दिया, '[illegible] है। [illegible], [illegible] है, [illegible] नहीं [illegible] हो गया। [illegible] [illegible] दिया, [illegible] है, [illegible] हो कर रहोगे।' [illegible] [illegible] हुए [illegible] किया। ([illegible])

[illegible] (सं० त्रि०) [illegible], [illegible]। ([illegible])

[illegible] (सं० त्रि०) [illegible], [illegible]।

[illegible] (सं० पु०) [illegible] [illegible]। ([illegible] ([illegible]) [illegible]। ([illegible])

[illegible] (सं० क्लि०) [illegible] [illegible]। [illegible], [illegible], [illegible]। [illegible], [illegible] होना।

३ शब्दाश्रय, शब्दका आश्रय। (पु०) ४ शब्दशक्तिके द्वारा प्रकट होनेवाला अर्थ। अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना नामक शब्दकी वृत्ति है, जहां शब्दका अर्थबोध होता है, उसे शब्द कहते हैं। शब्दका शक्ति द्वारा अर्थबोधक शब्द है। शक्तिवादमें लिखा है, कि ईश्वरकी इच्छाका नाम संकेत है, यही संकेत शक्ति है, इसके द्वारा अर्थबोधक जो पद है, उसे वाचक या शब्द कहते हैं।

शब्दशक्ति देखो।

शब्दता (सं० स्त्री०) शब्द होनेका भाव या धर्म, विशे-षकता।

शब्दतावच्छेदक (सं० त्रि०) शब्दतायाः अवच्छेदकं। शब्दत्वमें अवस्थान धर्म। शब्द पदार्थके असाधारण धर्म है, जिस धर्म द्वारा अर्थकी शब्दसङ्केतविषयता बोधगम्य होती है, वही धर्म है।

शब्दव्याप्ति (सं० स्त्री०) न्यायदर्शनके अनुसार प्रमाणोंके वे प्रमाण जिनसे अभेद सिद्ध होता है।

शक्र (सं० पु०) शक्नोति दैत्यान् नाशयितुं शक (स्फायितञ्चीति। उण् २।१३) इति रक्। १ दैत्योंका नाश करनेवाले, इन्द्र। २ कुटजवृक्ष, कोरैया। ३ अर्जुनवृक्ष, कोह वृक्ष। ४ इन्द्रयव, इन्द्रजौ। ५ ज्येष्ठा नक्षत्र। इस नक्षत्रके अधिष्ठाता देवता इंद्र हैं। [illegible]। ६ टगणके चौथे भेद अर्थात् (S.IS) की संज्ञा जिसमें छः मात्राएं होती हैं। (त्रि०) ७ समर्थ, योग्य। (ऋक् ४।१६।१८)

शक्रकार्मुक (सं० क्ली०) शक्रस्य इंद्रस्य कार्मुकं। इंद्र-धनुष।

शक्रकुमारिका (सं० स्त्री०) शक्रस्य कुमारिका, शक्र-कुमारी, शक्रध्वजोपरिस्थित। शक्रमातृका देखो।

शक्रकेतु (सं० पु०) शक्रस्य केतुः। इन्द्रध्वज।

शक्रक्रीडाचल (सं० पु०) शक्रस्य क्रीडाचलः क्रीडापर्वतः। सुमेरु पर्वत। इन्द्र इस पर्वत पर क्रीडा करते हैं, इस लिये इसको शक्रक्रीडाचल कहते हैं।

शक्रगोप (सं० पु०) इन्द्रगोप नामक कीड़ा। बीरबहूटी।

शक्रचाप (सं० क्ली०) इन्द्रधनुष।

शक्रज (सं० पु०) शक्राज्जायते इति जन-ड। १ काक, कौआ। (त्रि०) २ इन्द्रजातमात्र।

शक्रजा (सं० स्त्री०) इन्द्रयवकी लता, इन्द्रायण, इनारुन।

शक्रजात (सं० पु०) शक्राज्जातः। शक्रज देखो।

शक्रजानु (सं० पु०) रामायणके अनुसार एक वानरका नाम। (रामायण ६।७३।६२)

शक्रजाल (सं० क्ली०) इंद्रजाल।

शक्रजित् (सं० पु०) शक्रं जितवान् जि-क्विप् तुक् च। १ इंद्रजित् रावणके पुत्र मेघनाद। (त्रि०) २ इंद्र-जेता, इंद्रको जीतनेवाला।

शक्रतरु (सं० पु०) भांगका पेड़।

शक्रता (सं० स्त्री०) शक्रस्य भावः तल्। शक्रका भाव या धर्म, इंद्रत्व।

शक्रदिश् (सं० स्त्री०) शक्रस्य दिक्। पूर्व दिशा। इस दिशाके स्वामी इंद्र माने जाते हैं।

शक्रदेव (सं० पु०) १ इंद्र। २ कलिङ्गके एक राजाका नाम। (भारत भीष्मपर्व) ३ हरिवंशके अनुसार शृगालके एक पुत्रका नाम।

शक्रदेवता (सं० पु०) इंद्रदेवता।

शक्रदैवत (सं० क्ली०) ज्येष्ठा नक्षत्र। इसके स्वामी इंद्र माने जाते हैं। (ज्योति० ५।१२)

शक्रद्रुम (सं० पु०) शक्रस्य द्रुमः। १ देवदारु। २ बकुल वृक्ष, मौलसिरी।

शक्रधनु (सं० पु०) इन्द्रधनुष।

शक्रधनुस् (सं० क्ली०) शक्रस्य धनुः। इंद्रधनुष।

आकाशमें यह धनुष दिखाई देनेसे शुभाशुभ कैसा फल होता है, बृहत्संहितामें वह विषय इस प्रकार लिखा है—

सूर्यकी नाना प्रकारकी वर्णयुक्त किरण वायु द्वारा विघट्टित हो कर मेघयुक्त आकाशमें जो धनुषका आकार दिखाई देता है, उसको शक्रधनु कहते हैं। किसी किसी आचार्यका कहना है, कि अनन्त नामक कुलनागके निश्वाससे इस इंद्रधनुषकी उत्पत्ति होती है। आकाशमें इंद्रधनुष दिखाई देनेके समय राजा यदि उसकी ओर युद्धयात्रा करे, तो उन्हें युद्धमें पराजय होती है। इस धनुषके अविच्छिन्न, अवनिगाढ़, ज्योतिर्युक्त, स्निग्ध, विविध वर्णयुक्त, दो बार उदित या अनुलोम होनेसे शुभ

[illegible] ... होता है। ... [illegible] सकती है।

[illegible] ... शमशु ... कहते हैं। यह शमशु ... [illegible] ... विशेष प्रकार होता है।

[illegible] ... शमशु कहते हैं। यह शमशु ... [illegible] ... होता है।

[illegible] ... शमशु ... [illegible] ... होता है। ... [illegible] ... शमशु ... [illegible] ... है।

[illegible] ... है, कि ... [illegible] ... शमशु ... [illegible] ... होता है।

[illegible] ... है।

[illegible] ... है।

[illegible] (सं० पु०) [illegible] ... है। ... [illegible] ... जाती है।

[illegible] (सं० स्त्री०) [illegible] (अमर)

[illegible] (सं० स्त्री०) [illegible] देखो।

[illegible] (सं० स्त्री०) [illegible] (शब्दरत्ना०)

[illegible] (सं० पु०) [illegible] ... हुआ है।

[illegible] (सं० पु०) [illegible] ... ([illegible])

[illegible] (सं० त्रि०) [illegible]

[illegible] (सं० त्रि०) [illegible]

[illegible] (सं० पु०) [illegible]

[illegible] (सं० त्रि०) [illegible] ... हुआ।

३ शक्याभिप्राय, शक्तियुक्त साध्य। (पु०) ४ शब्दशक्ति के द्वारा प्रकट होनेवाला अर्थ। अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना तीन शब्दकी वृत्ति हैं, जहां शब्दका अर्थबोध होता है, उसे शक्य कहते हैं। शब्दका शक्ति द्वारा अर्थ बोधगम्य शक्य है। शक्तिवादमें लिखा है, कि ईश्वरकी इच्छाका नाम संकेत है, यही संकेत शक्ति है, इच्छा द्वारा अर्थबोधक जो पद है, उसे वाचक या शक्य कहते हैं।

शब्दशक्ति देखो।

शक्यता (सं० स्त्री०) शक्य होनेका भाव या धर्म, क्रिया-त्मकता।

शक्यतावच्छेदक (सं० त्रि०) शक्यताया अवच्छेदकं। शक्यतामें भासमान धर्म। शक्य पदार्थके असाधारण धर्म हैं, जिस धर्म द्वारा अर्थको शब्दसङ्केतविषयता बोधगम्य होती है, वही धर्म है।

शक्यव्याप्ति (सं० स्त्री०) न्यायदर्शनके अनुसार प्रमाणांके दो प्रमाण जिनसे प्रमेय सिद्ध होता है।

शक्र (सं० पु०) शक्नोति दैत्यान् नाशयितुं शक (स्फायितञ्चीति। उण् २।१३) इति रक्। १ दैत्यों का नाश करनेवाले, इन्द्र। २ कुटजवृक्ष, कोरैया। ३ अर्जुनवृक्ष, कोह वृक्ष। ४ इन्द्रयव, इन्द्रजौ। ५ ज्येष्ठा नक्षत्र। इस नक्षत्रके अधिष्ठाता देवता इंद्र हैं। इन्द्र इन्हीं। ६ छन्दके चौदे भेद अर्थात् (३.१४) की संख्या जिसमें १४ मात्राएं होती हैं। (त्रि०) ७ समर्थ, योग्य। (ऋक् ४।१९।६)

शक्रकार्मुक (सं० क्ली०) शक्रस्य इंद्रस्य कार्मुकं। इंद्रधनुष।

शक्रकुमारिका (सं० स्त्री०) शक्रस्य कुमारिका, शक्र-कुमारी, शक्रध्वजयष्टिविशेष। शक्रमातृका देखो।

शक्रकेतु (सं० पु०) शक्रस्य केतुः। इन्द्रध्वज।

शक्रक्रीडाचल (सं० पु०) शक्रस्य क्रीडाचलः क्रीडापर्वतः। सुमेरु पर्वत। इन्द्र इस पर्वत पर क्रीड़ा करते हैं, इस लिये इसको शक्रक्रीडाचल कहते हैं।

शक्रगोप (सं० पु०) इन्द्रगोप नामक कीड़ा। बीरबहूटी।

शक्रचाप (सं० क्ली०) इन्द्रधनुष।

शक्रज (सं० पु०) शक्राज्जायते इति जन-ड। १ काक, कौआ। (त्रि०) २ इन्द्रजातमात्र।

शक्रजा (सं० स्त्री०) इन्द्रजायते या। इन्द्राणी, इन्द्रायण।

शक्रजाल (सं० पु०) शक्रस्य जालः। इन्द्रजाल देखो।

शक्रजानु (सं० पु०) रामायणके अनुसार एक वानरका नाम। (रामायण ६।७३।६१)

शक्रजाल (सं० क्ली०) इंद्रजाल।

शक्रजित् (सं० पु०) शक्रं जितवान् जि-क्विप् तुक् च। १ इंद्रविजयी रावणके पुत्र मेघनाद। (त्रि०) २ इंद्र-जेता, इंद्रको जीतनेवाला।

शक्रतरु (सं० पु०) भांगका पेड़।

शक्रत्व (सं० क्ली०) शक्रस्य भावः त्व। शक्रका भाव या धर्म, इंद्रत्व।

शक्रदिश् (सं० स्त्री०) शक्रस्य दिक्। पूर्व दिशा। इस दिशाके स्वामी इंद्र माने जाते हैं।

शक्रदेव (सं० पु०) १ इंद्र। २ कलिङ्गके एक राजाका नाम। (भारत भीष्मपर्व) ३ हरिवंशके अनुसार शृगालके एक पुत्रका नाम।

शक्रदेवता (सं० पु०) इंद्रदेवता।

शक्रदैवत (सं० क्ली०) ज्येष्ठा नक्षत्र। इसके स्वामी इंद्र माने जाते हैं। (वृहत्सं० ७।१९)

शक्रद्रुम (सं० पु०) शक्रस्य द्रुमः। १ देवदारु। २ कुटज वृक्ष, कौरैया।

शक्रधनु (सं० पु०) इन्द्रधनुष।

शक्रधनुस् (सं० क्ली०) शक्रस्य धनुः। इंद्रधनुष।

आकाशमें यह धनुष दिखाई देनेसे शुभाशुभ फल होता है, वृहत्संहितामें यह विषय इस प्रकार लिखा है—

सूर्यकी नाना प्रकारकी वर्णयुक्त किरण वायु द्वारा विघट्टित हो कर मेघयुक्त आकाशमें जो धनुषका आकार दिखाई देता है, उसको शक्रधनु कहते हैं। किसी किसी आचार्यका कहना है, कि अनन्त नामक कुलनागके निश्वासमें इस इंद्रधनुषकी उत्पत्ति होती है। आकाशमें इंद्रधनुष दिखाई देनेके समय राजा यदि उसकी ओर युद्धयात्रा करे, तो उन्हें युद्धमें पराजय होती है। इस धनुषके अविच्छिन्न, अवनिगाढ़, द्युतिमत्, स्निग्ध, विविध वर्णयुक्त, दो बार उदित या अनुलोम होनेसे शुभ

[illegible] है।

[illegible] है।

[illegible] है।

[illegible] है।

[illegible] है।

[illegible] है।

[illegible] है।

[illegible] है।

[illegible]

३ शब्दाश्रय, शक्तिका आश्रय। (पु०) ४ शब्दशक्तिके द्वारा प्रकट होनेवाला अर्थ। अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना तीन शब्दकी वृत्ति है, जहां शब्दका अर्थबोध होता है, उसे शक्य कहते हैं। शब्दका शक्ति द्वारा अर्थ बोधक शक्य है। शक्तिवादमें लिखा है, कि ईश्वरकी इच्छाका नाम संकेत है, वही संकेत शक्ति है, इसके द्वारा अर्थबोधक जो पद है, उसे वाचक या शक्य कहते हैं।

शब्दशक्ति देखो।

शक्यता (सं० स्त्री०) शक्य होनेका भाव या धर्म, मिल सकना।

शक्यतावच्छेदक (सं० त्रि०) शक्यताया अवच्छेदकं। शक्यांशमें सामान्य धर्म। शक्य पदार्थके असाधारण धर्म है, जिस धर्म द्वारा अर्थको शब्दसङ्केतविषयता बोधगम्य होती है, वही धर्म है।

शक्यव्याप्ति (सं० स्त्री०) न्यायदर्शनके अनुसार प्रमाणके वे प्रमाण जिनसे प्रमेद सिद्ध होता है।

शक्र (सं० पु०) शक्नोति दैत्यान् नाशयितुं शक (स्फायितञ्चीति। उण् २।१३) इति रक्। १ दैत्यों का नाश करनेवाले, इन्द्र। २ कुटजवृक्ष, कोरैया। ३ अर्जुनवृक्ष, कोह वृक्ष। ४ इन्द्रयव, इन्द्रजौ। ५ ज्येष्ठा नक्षत्र। इस नक्षत्रके अधिष्ठाता देवता इंद्र हैं। १४ संख्या। ६ रगणके चौथे भेद अर्थात् (ऽ।ऽ) की संज्ञा जिसमें छः मात्राएं होती हैं। (त्रि०) ७ समर्थ, योग्य। (शुक्ल ४।१६।१९)

शक्रकार्मुक (सं० क्ली०) शक्रस्य इन्द्रस्य कार्मुकं। इंद्र-धनुष।

शक्रमातृका (सं० स्त्री०) शक्रस्य मातृका, शक्रमाता, शक्रवल्लरिविशेष। भारङ्गी देखो।

शक्रकेतु (सं० पु०) शक्रस्य केतुः। इन्द्रध्वज।

शक्रक्रीडाचल (सं० पु०) शक्रस्य क्रीडाचलः क्रीडापर्वतः। सुमेरु पर्वत। इन्द्र इस पर्वत पर क्रीड़ा करते हैं, इस लिये इसको शक्रक्रीडाचल कहते हैं।

शक्रगोप (सं० पु०) इन्द्रगोप नामक कीड़ा। बीरबहूटी।

शक्रचाप (सं० क्ली०) इन्द्रधनुष।

शक्रज (सं० पु०) शक्रात् जायते इति जन-ड। १ काक, कौआ। (त्रि०) २ इन्द्रजातमात्र।

शक्रजा (सं० स्त्री०) इन्द्रवारुणी लता, इन्द्रायण, इनारुन।

शक्रजात (सं० पु०) शक्राज्जातः। काक देखो।

शक्रजानु (सं० पु०) रामायणके अनुसार एक वानरका नाम। (रामायण ६।३०।२१)

शक्रजाल (सं० क्ली०) इंद्रजाल।

शक्रजित् (सं० पु०) शक्रं जितवान् जि-क्विप् तुक् च। १ इंद्रविजयी रावणके पुत्र मेघनाद। (त्रि०) २ इंद्रजेता, इंद्रको जीतनेवाला।

शक्रतरु (सं० पु०) भांगका पेड़।

शक्रत्व (सं० क्ली०) शक्रस्य भावः त्व। शक्रका भाव या धर्म, इंद्रत्व।

शक्रदिश् (सं० स्त्री०) शक्रस्य दिक्। पूर्व दिशा। इस दिशाके स्वामी इंद्र माने जाते हैं।

शक्रदेव (सं० पु०) १ इंद्र। २ कलिङ्गके एक राजाका नाम। (भारत भीष्मपर्व) ३ हरिवंशके अनुसार शृगालके एक पुत्रका नाम।

शक्रदेवता (सं० पु०) इंद्रदेवता।

शक्रदैवत (सं० क्ली०) ज्येष्ठा नक्षत्र। इसके स्वामी इंद्र माने जाते हैं। (बृहत्० ७।१२)

शक्रद्रुम (सं० पु०) शक्रस्य द्रुमः। १ देवदारु। २ कुटज-वृक्ष, मीठसिरी।

शक्रधनु (सं० पु०) इन्द्रधनुष।

शक्रधनुस् (सं० क्ली०) शक्रस्य धनुः। इंद्रधनुष।

आकाशमें यह धनुष दिखाई देनेसे शुभाशुभ कैसा फल होता है, बृहत्संहितामें यह विषय इस प्रकार लिखा है—

सूर्यकी नाना प्रकारकी वर्णयुक्त किरण वायु द्वारा विघटित हो कर मेघयुक्त आकाशमें जो धनुषका आकार दिखाई देता है, उसको शक्रधनुः कहते हैं। किसी किसी आचार्यका कहना है, कि अनन्त नामक कुलनागके निश्वाससे इस इंद्रधनुषकी उत्पत्ति होती है। आकाशमें इंद्रधनुष दिखाई देनेके समय राजा यदि उसकी ओर युद्धयात्रा करे, तो उन्हें युद्धमें पराजय होती है। इस धनुषके अच्छिन्न, अवनिगाढ़, द्युतिमत्, स्निग्ध, विविध वर्णयुक्त, दो बार उदित या अनुलोम होनेसे शुभ

[illegible]

[illegible] (सं० स्त्री०) [illegible]

[illegible] (सं० पु०) [illegible]

[illegible] Wrightia antidysenterica [illegible]

[illegible] (सं० पु०) [illegible]

[illegible]

शक्रसारथि (सं० पु०) शक्रस्य सारथिः। इन्द्रके सारथी अर्थात् मातलि।

शक्रसुत (सं० पु०) शक्रस्य सुतः। इन्द्रका पुत्र बालि जिसे रामने मारा था।

शक्रसुधा (सं० स्त्री०) शक्रस्य सुधेव। कुंदुरु, गुंद-गदोमा।

शक्रसुरा (सं० स्त्री०) शक्रेण सृष्टा। हरीतकी, हर्रे। (निघ०)

शक्राख्य (सं० पु०) शक्रस्य आख्या यस्य। १ पेचक, उल्लू। (निघ०) (त्रि०) २ इंद्रनामक।

शक्राग्नी (सं० पु०) शक्रश्च अग्निश्च दैवते यस्य इति इका-रस्य दीर्घः। विशाखा नक्षत्र। इस नक्षत्रके अधि-ष्ठात्री देवता इंद्र और अग्नि माने जाते हैं। (बृहत्संहिता ९८।४)

शक्राणी (सं० स्त्री०) शक्रस्य पत्नी ङीष्, आनुक्। १ इंद्रकी पत्नी, शची। २ निर्गुंडी, शेफालिका।

शक्रात्मज (सं० पु०) शक्रस्य आत्मजः। अर्जुन।

शक्राशन (सं० क्ली०) शक्रेण अद्यते अद्-ल्युट्। शक्राह्न, विजया, भंग।

शक्रादित्य (सं० पु०) राजपुत्रभेद।

शक्रानलाधय (सं० त्रि०) इंद्र और अग्नि-संबंधी।

शक्राजित (सं० पु०) ज्योतिषमें प्रभव आदि साठ संवत्सरोंके बारह युगोंमेंसे दसवें युगके अधिपति। इसके युगमें ये पांच संवत्सर होते हैं,—परिधावी, प्रमादी, आनंद, राक्षस और अनल।

शक्रानिलमारुत (सं० स्त्री०) मूल्यवान् प्रस्तरविशेष।

शक्रायुध (सं० क्ली०) शक्रस्य आयुधं, इंद्रधनुष।

शक्रारि (सं० पु०) शक्रस्य अरिः। इंद्रका शत्रु।

शक्रावर्त्त (सं० स्त्री०) महाभारतके अनुसार एक प्राचीन तीर्थका नाम। (भारत वनपर्व)

शक्राशन (सं० क्ली०) शक्रेण अश्यते इति अश-ल्युट्। १ विजया, भांग। कहते हैं—देवासुरसंग्राममें जब देव-सेना दैत्योंके प्रहारसे मारी गई, तब इंद्रने अमृत-सिंचन द्वारा उन्हें पुनर्जीवित किया। बूंदोंके अमृत-बिन्दु भूपतित अमृतकणोंसे विजयाकी उत्पत्ति हुई। वैद्यकशास्त्रके मतसे यह तीक्ष्ण, उष्ण, ग्राहक, कफ, मेधा और अग्निवर्द्धक, श्लेष्मनाशक और रसायन माना गया है। २ कुटज, कौरैया। ३ कलिंगबीज, इंद्रजौ।

शक्रासन (सं० क्ली०) १ इंद्रका आसन। २ सिंहासन।

शक्राह्व (सं० पु०) शक्रस्य आह्वा यस्य। १ कुटज बीज, इन्द्रजौ। २ कुटज वृक्ष। ३ शक्राशन, भांग। (त्रि०) ४ इन्द्रनामक।

शक्राह्वा (सं० स्त्री०) शक्राह्व देखो।

शक्रि (सं० पु०) शक्र-बाहुलकात्-क्रिन्। १ मेघ, बादल। २ वज्र। ३ हस्ती, हाथी। ४ पर्वत, पहाड़। (संक्षिप्तसार उणादि)

शक्रेन्द्र (सं० पु०) बीरबहूटी या इंद्रगोप नामका कीड़ा।

शक्रोत्थान (सं० क्ली०) शक्रस्य शक्रध्वजस्य उत्थानम्। शक्रध्वजोत्सव। भाद्र मासकी शुक्ला द्वादशी तिथिमें यह उत्सव करना होता है। रघुनंदनने तिथितत्त्वमें द्वादशीकृत्यके मध्य इसका विधान भी किया है—

सूर्यके सिंह राशिमें रहते समय द्वादशी तिथिमें राज्यविघ्नविनाशके लिये इस उत्सवका अनुष्ठान करना होता है। पुराकालमें राजा उपरिचर वसुने इस शक्रोत्थानोत्सवका विवरण इस प्रकार कहा था। यथा—भाद्र मासकी शुक्ला द्वादशी तिथिमें नाना प्रकारके उत्सवोंके साथ इन्द्रध्वजके लिये वृक्ष ला कर उसे वर्द्धन करे। एक वर्ष तक वह वृक्ष रहेगा। पीछे इन्द्रध्वजके लिये मांगलिक उत्सवका अनुष्ठान करना होगा। वृक्षके सम्बन्धमें भी विशेष नियम है। चैत्य, देवगृह, श्मशान और रास्ते पर जो वृक्ष उत्पन्न होते हैं, वे सब वृक्ष इन्द्रध्वजके लिये ग्रहण नहीं करने चाहिये। पक्षियोंके कुलायसंकुल, बहु कोटरयुक्त और अग्निदग्धपत्र निकृष्ट हैं। स्त्री नामके लतावेष्टित, कुब्ज अथवा ह्रस्व वृक्ष भी निषिद्ध हैं। अर्जुन, अश्वकर्ण, प्रियक, उदुम्बर और वट ये पांच प्रकारके वृक्ष प्रशस्त हैं। इसके अतिरिक्त देवदारु और शाल आदि वृक्ष भी ग्रहण किये जा सकते हैं। किन्तु अप्रशस्त वृक्ष कदापि ग्रहण न करे।

दूसरे दिन सवेरे उस वृक्षको काट डाले। पीछे मूलमें आठ अंगुल काट कर जलमें डाल दे। पीछे

शक्वर (सं० पु०) शक-वरच्। १ वृष, बैल। २ आकाश। (शुक्लयजु० ४।२५)

शक्वरी (सं० स्त्री०) शक्नोति कर्माणि कर्त्तुमिति शक-वनिप् (स्था मदि पदीति। उण् ४।११२) (वनो र च। पा ४।१।७) ङीप् रश्च। १ अङ्गुलि, उंगली। २ नदीविशेष। ३ मेखला। ४ छन्दोभेद, चौदह अक्षरपादक छन्दः। जैसे—असंबाधा, वसन्ततिलक, सिंहोद्धता, अपराजिता, प्रहरणकलिका, वासन्ती, लोला और नांदी मुखी आदि। ५ ऋक्। (ऋक् १०।७१।११) ६ गाभी, गाय। (निघण्टु २।११)

शखा (सं० पु०) शख्न देखो।

शाख्स (अ० पु०) शख्स देखो।

शख्स (अ० पु०) व्यक्ति, जन, मनुष्य।

शख्सियत (अ० स्त्री०) शख्सका भाव या धर्म, व्यक्तित्व, व्यक्तित्व।

शख्सी (अ० वि०) शख्सका, मनुष्यका, व्यक्तिगत।

शगल (अ० पु०) १ व्यापार, काम धंधा। २ वह काम जो जी ही समय बिताने या मन बहलानेके लिये किया जाय, मनोविनोद।

शगुन (हिं० पु०) १ किसी कामके समय होनेवाले लक्षणोंका शुभाशुभ विचार, शकुन। विशेष विवरण शकुन शब्दमें देखो। २ किसी कामके आरम्भमें होनेवाले शुभ लक्षण। ३ नजराना, भेंट। ४ एक प्रकारकी रसम जो विवाहकी बातचीत पक्की होने पर होती है। इसमें कन्यापक्षके लोग वरपक्षके यहां कुछ मिठाई और नगद आदि भेजते हैं। इसे तिलक या टीका भी कहते हैं। ५ बहेलियोंमें वह स्थान जहां चिड़ियां फंसानेवाला बैठता है।

शगुनिया (हिं० पु०) वह जो ज्योतिष या रमल आदिके द्वारा शुभाशुभ शगुनों आदिका विचार करता हो, साधारण कोटिका ज्योतिषी।

शगून (हिं० पु०) शगुन देखो।

शगूनिया (हिं० पु०) शगुनिया देखो।

शगूफा (फा० पु०) १ बिना खिला हुआ फूल, कली। २ पुष्प, फूल। ३ कोई नई और विलक्षण घटना।

शग्म (सं० क्ली०) सुख। (शुक्लयजु० ३।४३)

शग्मन (सं० क्ली०) शग्म देखो।

शग्मिय (सं० त्रि०) सुखविशिष्ट। (ऋग्० मं० १।१)

शङ्गु (सं० पु०) १ बैल जो छकड़ा खींचता है। २ मद, गर्व, अहंकार।

शङ्गन (सं० पु०) १ रागभेद। २ शङ्काकर।

शङ्कनीय (सं० त्रि०) शङ्क-अनीयर्। शङ्का करनेयोग्य, भयके योग्य।

शङ्कर (सं० पु०) शं कल्याणं करोतीति शम्-कृ (शमि धातोः संज्ञायां। पा ३।२।१४) इति अच्। १ शिव, महादेव। ये सबोंका मङ्गल करते हैं, इस कारण ये शङ्कर नामसे ख्यात हैं। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें स्वयं शिवने अपने इस नामकी व्युत्पत्ति इस तरह की है,—भक्तोंके सहित मेरा ध्यानमें युक्त हो उन्हें पवन अर्थात् पवित्र तथा निरामय करनेके कारण मेरा शङ्कर और भूतनाथ नाम हुआ है। २ शङ्कराचार्य। बहुतोंका विश्वास है, कि ये शङ्करके अवतार हैं। ३ हंसभेद, हंस भक्षक। ४ भीमसेनी कपूर। ५ कपोत, कबूतर। (वैद्यक०) ६ एक छन्द का नाम। इसके प्रत्येक चरणमें १६ और १० के विश्राम से २६ मात्राएं होती हैं और अन्तमें गुरु लघु होता है। ७ एक राग। यह मेघरागका आठवां पुत्र कहा गया है। कहते हैं, कि इसका रङ्ग गोरा है, श्वेत वस्त्र धारण किये हुए हैं, त्रिशूल इसके हाथमें है, पान खाये और आगका लगाये स्त्रीके साथ विहार करता है। शास्त्रोंमें यह सम्पूर्ण जातिका कहा गया है। रात्रिका प्रथम पहर इसके गानेका समय है और कोई रात्रिमें किसी समय गाया जा सकता है। (त्रि०) ८ मङ्गल करनेवाला। ९ शुभ। १० कल्याणदायक।

शङ्कर—१ विजयके बड़नगरमें (ईसा सन् ४६५) इस नाम शैलरोदीमें युद्ध किया। ये शङ्करगणपति नामसे प्रसिद्ध थे। २ 'गोपालचिन्तामणिटीका' नामक ग्रन्थके कालिदासके पुत्र। हरदासतत्त्व और देवदासके भाई कह कर इनका परिचय मिलता है। ३ कर्मोद्धारके रचिता तथा रत्नाकरप्रयोगरत्नसूत्रके टीका लिखनेवाले विवाहद। ४ 'भोगदीप' ग्रन्थके रचयिता होनेके कारण इनका दूसरा नाम भोगदीप शङ्करभट्ट था। इनके पुत्र सोमनाथविष्णुके टीका ग्रन्थके रचयिता थे। ५ शास्त्रदीपिकाके टीका शङ्करभट्ट

रघुनाथभट्टके पुत्र थे । ४३ शङ्करनारायण, प्रद्युम्न-विजय नाटक और शङ्करचेतोविलासके रचयिता । ये दीक्षित बालकृष्णके पुत्र तथा दीक्षित दुण्ढिराजके पौत्र थे । काशीश्वर राजा चेतसिंहके आदेशसे इन्होंने चेतोविलास ग्रन्थ १८वीं शताब्दीके शेषमें लिखा था । ४४ वैद्यविनोद ग्रन्थकार ।

शङ्कर आचार्य—१ भावाध्याय नामक ज्योतिर्ग्रन्थके प्रणेता । २ सुभाषित नामक ज्योतिषशास्त्रके रचयिता ।

शङ्कर कण्ठ—१ स्तुतिकुसुमाञ्जलिके टीकाकार रत्नकण्ठके पिता तथा शङ्करके पुत्र । २ शिवप्रसादसुन्दरस्तवके प्रणेता ।

शङ्कर कवि—पद्यावलीधृत एक प्राचीन कवि । शार्ङ्गधरने इनका उल्लेख किया है । इनके ग्रन्थमें भोजराजका उल्लेख है ।

शङ्करपुत्र (सं० पु०) शङ्करसुत, गणपति ।

शङ्करकिङ्कर—भक्तामरस्तवके एक छन्दोबद्ध ग्रन्थके रचयिता ।

शङ्करगण—१ एक हिन्दू नरपति । ये हैहयराज १म कोकल्लके तथा चन्देलराज यशोवर्माके समसामयिक थे । २ कलचूरीराज लक्ष्मणराजके पुत्र तथा २य कोकल्लके भ्राता ।

शङ्करगीता (सं० स्त्री०) देवीपुराणका एक अध्याय ।

शङ्करगौरीश (सं० पु०) देवमूर्तिभेद । (राजत० ५।१५७)

शङ्करचूड़ (सं० पु०) एक प्रकारका सर्प । कहते हैं, कि इसकी उत्पत्ति नागराज और फूँकराज सर्पके जोड़ेसे होती है । यह कभी कभी ११।१२ हाथ लम्बा होता है । इसके जहरके दांत बड़े होते हैं, इसीसे इसका काटना सांघातिक होता है । यह बहुत कम देखनेमें आता है और बङ्गालमें केवल सुन्दरवनमें होता है । यह बहुत भयंकर होता है और इसका पकड़ना बड़ा कठिन है ।

शङ्करजटा (सं० स्त्री०) १ रुद्रजटा, रुद्रलता । २ शाङ्करजटा, रुद्रजटा । ३ एक प्रकारका जिरक ।

शङ्करजित्—शाङ्करगीतविनिर्णयके (ईस्वीसन् १६३६) प्रणेता । ये वाचस्पति और धर्माङ्गदके भाई तथा दीक्षितके पुत्र थे ।

शङ्करजी—वैद्यकसार-टिप्पनके रचयिता ।

शङ्कर ताल (सं० पु०) संगीतमें एक प्रकारका ताल । इसमें ११ मात्राएं होती हैं, जिसमें ९ आघात और २ खाली होते हैं ।

शङ्करतीर्थ (सं० पु०) पुराणानुसार एक प्राचीन तीर्थका नाम ।

शङ्करदत्त—पद्मनाभसोमपक्ष और वस्तुदीपिकाके प्रणेता ।

शङ्करदयालु—वृत्तरत्न तथा अभिज्ञवर्णा नामक उसकी टीकाके प्रणेता ।

शङ्करदास—हठसङ्केतचन्द्रिकाकार । ये १८७६ ईस्वी जीवित थे ।

शङ्करदीक्षित—लक्ष्मणके पिता तथा मृत्युञ्जयटीकाके प्रणेता महादीक्षितके पितामह ।

शङ्करदेव—बहुतेरे प्राचीन संस्कृत कवियोंके नाम ।

शङ्करदेव—नेपालके लिच्छवी या सूर्यवंशी मानदेवके पितामह । मानदेवका समय ईस्वी सन् ७०५ था । शङ्करदेव धर्मदेवके (ईस्वी सन् ६६४ ?) पौत्र वृषदेवके पुत्र थे । बडेर साहबने नेपालराज वंशावलीके अनुसार स्थिर किया है, कि वृषदेव ६३०-६५५ ईस्वीसन्में जीवित थे ।

शङ्करदेव—नेपालके नवाकोटके ठाकुरीवंशोद्भव । ये मधुमल्लदेव या महादेव नामसे भी परिचित थे । (ईस्वी सन् १०६५)

शङ्करदैवज्ञ—१ गोलप्रश्नकुण्डलीटीकाकार नामक ग्रन्थके रचयिता । इनके पिताका नाम था शिव । २ ज्ञानमान-परीक्षाके प्रणेता ।

शङ्करपूर्णवाचार्य—ज्ञानमोहनके रचयिता ।

शङ्करनारायण—शलिकाकुल-नाटकके रचयिता ।

शङ्करनारायण—दाक्षिणात्यका एक प्रसिद्ध देवमूर्ति । यह दो पाण्डवतीर्थमार्गके बीच कल्पूर नामक स्थानके देवालयमें प्रतिष्ठित है ।

शङ्कर पण्डित—मनोहर नामक धर्मशास्त्रके प्रणेता ।

शङ्करप्रिय (सं० पु०) शङ्करस्य प्रियः । १ तीतर पक्षी । २ होमपुष्पी, मुरा, लोध । (स्त्रीलिङ्ग) ३ पार्वती ।

शङ्करभट्ट—दार्शनिकप्रवर मिश्र दीक्षित 'शास्त्रदीपिका' के टीकाकार । इनका नाम शास्त्रदीपिकाप्रकाश है ।

रामभट्टके पुत्र थे। ४३ शङ्करशास्त्री, प्रद्युम्न-विजय नाटक और शङ्करचेतोविलासके रचयिता। ये दीक्षित बालकृष्णके पुत्र तथा दीक्षित दुण्ढिराजके पौत्र थे। भूमिविहारी राजा चेतसिंहके आदेशसे इन्होंने चेतोविलास ग्रन्थ १८वीं सदीके शेषमें लिखा था। ४४ वैद्यविनोद ग्रन्थकार।

शङ्कर आचार्य—१ शाखाप्रदीप नामक ज्योतिर्ग्रन्थके प्रणेता। २ शुभकौतुक नामक ज्योतिषशास्त्रके रचयिता।

शङ्कर कण्ठ—१ न्यायकुसुमाञ्जलिके टीकाकार रत्नकण्ठके पिता तथा भवनाथके पुत्र। २ शिवपादादिसुन्दर-स्तवके प्रणेता।

शङ्कर कवि—पद्यावलीधृत एक प्राचीन कवि। वल्लभदेवने इनका उल्लेख किया है। इनके ग्रन्थमें भोजराजका उल्लेख है।

शङ्करका पुष्प (सं० पु०) शङ्खाहुली, गुलवरी।

शङ्करकिङ्कर—प्रस्तावरत्नाकरके एक छन्दोग्रन्थके रचयिता।

शङ्करगण—१ एक हिन्दू नरपति। ये हैहयराज इस कोकल्लके तथा चेदिराज युवराजके समसामयिक थे। २ कलचुरिराज लक्ष्मणराजके पुत्र तथा २य कोकल्लके पिता।

शङ्करगीता (सं० स्त्री०) देवीपुराणका ७२ अध्याय।

शङ्करगौरीश (सं० पु०) देवतार्थभेद। (राजत० ५।१५८)

शङ्करचूड़ (सं० पु०) एक प्रकारका सर्प। कहते हैं, कि इसकी उत्पत्ति नागराज और क्षुपराज सर्पके जोड़ेसे होती है। यह कभी कभी ११० हाथ लम्बा होता है। इसके मुहमें दांत बड़े होते हैं, इसीसे इसका काटना सांघातिक होता है। यह बहुत कम देखनेमें आता है और बङ्गालमें केवल सुन्दरवनमें होता है। यह बहुत भयंकर होता है और इसको पकड़ना बड़ा कठिन है।

शङ्करजटा (सं० स्त्री०) १ रुद्रजटा, रुद्राणी। २ लज्जालुका, लज्जालता। ३ एक प्रकारका विषम।

शङ्करजित्—कौमारीविक्रियास्थानके (ईस्वी सन् १६५२) प्रणेता। ये गोकुलजित् और श्यामजित्के भाई तथा हरिजित्के पुत्र थे।

शङ्करजी—वेदान्तसार-टिप्पनके रचयिता।

शङ्कर ताल (सं० पु०) संगीतमें एक प्रकारका ताल। इसमें ११ मात्राएं होती हैं, जिनमें ९ आघात और २ खाली होते हैं।

शङ्करतीर्थ (सं० पु०) पुराणानुसार एक प्राचीन तीर्थका नाम।

शङ्करदत्त—पद्मावतीमङ्गल और चन्द्रविद्यानके प्रणेता।

शङ्करदयालु—वृत्तरत्न तथा सम्मितवर्णी नामक उनकी टीकाके प्रणेता।

शङ्करदास—हठसङ्केतचन्द्रिकाकार। ये १८७६ ई०में जीवित थे।

शङ्करदीक्षित—लक्ष्मणके पिता तथा मुहूर्तचिन्तामणिटीकाके प्रणेता लल्लदीक्षितके पितामह।

शङ्करदेव—कई एक प्राचीन संस्कृत कवियोंके नाम।

शङ्करदेव—नेपालके लिच्छवी या सूर्यवंशी मानदेवके पितामह। मानदेवका शासन ईस्वी सन् ४७५ था। शङ्करदेव धर्मदेवके (ईस्वी सन् ४५४?) पौत्र वृषदेवके पुत्र थे। फ्लीट साहबने नेपालराज वंशावलीके अनुसार स्थिर किया है, कि वृषदेव ४३०-४५५ ईस्वीसन्में जीवित थे।

शङ्करदेव—नेपालके मानदेवके ठाकुरीवंशोद्भव। ये शङ्करकामदेव या वामदेव नामसे भी परिचित थे। (ईस्वी सन् १०७५)

शङ्करदैवज्ञ—१ गोत्रप्रवरनिर्णयसारोद्धार नामक ग्रन्थके रचयिता। इनके पिताका नाम था शिव। २ ज्ञान-भास-परीक्षाके प्रणेता।

शङ्करनृसिंहाचार्य—ज्ञानमोदकस्तवके रचयिता।

शङ्करनारायण—रसिकभूषण-नाटकके रचयिता।

शङ्करनारायण—दाक्षिणात्यका एक प्रसिद्ध देवमन्दिर। यह दो पाटवर्णपथके बीच कोयम्बटूर नामक नगरसे देश-में अवस्थित है।

शङ्कर पण्डित—कर्मोद्धार नामक धर्मग्रन्थके प्रणेता।

शङ्करप्रिय (सं० पु०) शङ्करस्य प्रियः। १ तीतर पक्षी। २ शीतकुम्भी, गुग्गुल, (क्ली०) ३ धतूरा।

शङ्करभट्ट—पार्थसारथि मिश्र रचित 'शास्त्रदीपिका' के टीकाकार। टीकाका नाम शास्त्रदीपिकाप्रकाश है।

शङ्करवर्मा—एक प्राचीन कवि।

शङ्करवाणी (सं० स्त्री०) शङ्करका वाक्य अर्थात् प्रश्न-वाक्य जिसका सत्य होना परम निश्चित माना जाता है, सदा ठीक घटनेवाली बात।

शङ्करविन्दु—'निर्णय-संग्रह' या निर्णयसंग्रहसार नामक मीमांसाग्रन्थके रचयिता। ये भट्टशङ्करविन्दु नामसे परिचित थे।

शङ्करशर्मा—१ त्रिकाण्डकोषशेषटिकाकार। २ वाक्य-परिशिष्ट प्रबोधचन्द्रिकाके प्रणेता। ३ देवीमाहात्म्य-टीकाकार। ४ दृक्तुल्यतापत्रोंके रचयिता।

शङ्करशुक्र (सं० क्ली०) पारद, पारा।

शङ्करशुक्ल—मीमांसाशास्त्र-प्रदीप नामक वेद-सम्बन्धी ग्रन्थके प्रणेता। इसमें ८०० अनुष्टुप् श्लोक हैं।

शङ्करशैल (सं० पु०) महादेवजीका पर्वत, कैलास।

शङ्करसेन—नाड़ीप्रकाश नामक वैद्यक ग्रन्थके प्रणेता।

शङ्करस्वामी—शङ्कराचार्य देखो।

शङ्करस्वेद (सं० पु०) १ आमवातरोगाधिकारोक्त स्वेद विशेष। इसकी प्रणाली—कपासकी ढोंढी, कुलथी-कलाय, तिल, जौ, लाल भेरेण्डका मूल, तीसी, पुनर्नवा, शणबीज, इन सब द्रव्योंमें यदि सभी न मिलें, तो जो कुछ मिलता हो, उसीको ले कर एक साथ कूटे और कांजीमें सिद्ध करे तथा उससे दो पोटली बांधे। पीछे प्रज्वलित अग्निमय चुल्हेके ऊपर कांजीसे भरी एक हण्डी रख कर उसके मुंह पर अनेक छेदवाला एक ढक्कन रख दे। बादमें हण्डी और ढक्कनके मुंहको कपड़ेसे बन्द कर दे। इसके बाद उस ढक्कनके ऊपर पूर्वोक्त दो पोटलीको एक एक कर गरम करे तथा उसीसे क्रमशः स्वेद दे। इस प्रकार बार बार करना होगा।
(भैषज्यरत्ना०)

चरकमें लिखा है, कि उक्तोषध औषधको वस्त्रखण्डमें पोटली बांध कर अथवा अन्य किसी तरह पूरी हुई औषध को गरम और पिण्डीकृत करके उसीसे जो स्वेद दिया जाता है, उसको शङ्करस्वेद कहते हैं।
(चरकसूत्रस्थान)

२ गो, महिष और छाग, इनके अभिमतका लिखा द्वारा स्वरूप स्वेद। (चरकसू० १८ अ०)

शङ्करा (सं० स्त्री०) १ शमीवृक्ष, सफेद कीकर। (राजनि०) २ मञ्जिष्ठा, मजीठ। (शब्दर०) ३ शङ्करकी भार्या, शिवानी, भवानी। ४ एक प्रकारका राग। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह हिण्डोल रागका पुत्र माना जाता है। विशेष विवरण शङ्कर और शङ्कराभरण शब्दमें देखो। (त्रि०) ५ शुभदायिनी, मंगल करनेवाली।

शङ्कराचारी (सं० पु०) श्रीशङ्कराचार्य द्वारा संस्थापित शैव धर्मका अनुयायी।

शङ्करादि (सं० पु०) शुक्राके वृक्ष, गनियार महादेवका पेड़।
(राजनि०)

शङ्करानन्द (सं० पु०) १ श्रुतिगीताटीकाकार। २ ब्रह्मसूत्रदीपिकाके रचयिता। ३ विवेकसारके प्रणेता आनन्दात्माके शिष्य।

शङ्कराचार्य—भारतवर्षके अद्वितीय दार्शनिक, सुप्रसिद्ध अद्वैतवादके प्रवर्तक तथा वेदान्त और उपनिषद्भाष्य-कार। इनकी अद्भुतशक्ति और असाधारण प्रतिभा देख कर पण्डित समाजने इन्हें 'शङ्करावतार' माना है। भारतके सभी प्रधान स्थानोंमें शङ्करका पदार्पण हुआ था तथा सभी स्थान उनके अनुरक्त भक्त और शिष्यानु-शिष्योंसे परिव्याप्त रहने पर भी आचार्य शङ्करकी प्रकृत जीवनी नहीं मिलती। परवर्तीकालमें कुछ जीवन-चरितावलि रची गई सही, पर उनमें इनकी प्रकृत जीवनी निर्धारण करना कठिन है। जो हो, आज तक शङ्करका आत्मवृत्तान्त ले कर जितना जीवनी पुस्तक रची गई है, उनमें आनन्दगिरिकृत शङ्करदिग्विजय, चिद्विलास यतिविरचित शङ्करविजय तथा माधवाचार्यकृत संक्षेप-शङ्करजय नामक ग्रन्थ ही प्रधान और सर्वजनमान्य है। इसके सिवा गोविन्दनाथ, सदानन्द, [illegible] और ब्रह्मानन्द विरचित लघु शङ्कर-विजय, तिरुमल दीक्षितका शङ्कराभ्युदय और पुरुषोत्तम भारतीकृत शङ्कर-विजयसंग्रह भी विशेष उल्लेखयोग्य ग्रन्थ हैं।

माधवाचार्यका संक्षेप शङ्करजय या "शङ्करविजय।"

माधवके शङ्करविजय ग्रन्थमें लिखा है, कि शङ्करा-चार्यने भगवत्के अवतार शङ्कर नामक स्वामीने शिवगुरुके औरससे और सती देवीके गर्भसे जन्मग्रहण किया।

थे। ये भट्ट नारायण और पार्वतीके पुत्र तथा रामेश्वरके पौत्र थे। स्वरचित मीमांसाबालप्रकाश ग्रन्थमें शङ्करभट्टने सोमेश्वर भट्ट, विज्ञानेश्वर, हेमाद्रि और माधवाचार्य का नामोल्लेख किया है। शास्त्रदीपिकाकी टीकाके सिवा सर्वधर्मप्रकाश नामक संक्षिप्त व्यवहारशास्त्र, स्मृत्यर्थसार, कालादर्श, निर्णयसिन्धु, मीमांसाबाल प्रकाश, विधिरसायनदूषण, व्रतमूल, शास्त्रदीपिका प्रकाश, निर्णयचन्द्रिका, धर्मद्वैतनिर्णय, श्राद्धकल्पसार और उसकी टीका इत्यादि शङ्कर-रचित और भी बहुतसे ग्रन्थ हैं। इन सब ग्रन्थोंसे रङ्गभट्ट, नीलकण्ठ, दामोदर और नृसिंह नामक इनके चार पुत्रोंका उल्लेख मिलता है। इनके नातीने दिवाकर तथा पोते शङ्करभट्ट भी पण्डित कह कर विख्यात थे। ये काशीनिवासी थे।

शङ्करभट्ट—कुण्डमण्डपनिर्णय, कुण्डभास्कर नामक कुण्डोद्योतटीका, महारुद्रसंग्रह, कुण्डार्क, कुण्डोद्योतदर्शन, संस्कारमयूख, व्रतार्क और कर्मविपाक नामक ग्रन्थके रचयिता। ये काशी-निवासी तथा कुण्डोद्योतके प्रणेता नीलकण्ठ भट्टके पुत्र थे। शङ्कर-भट्ट मीमांसक थे। सदाशिव भट्टात्मज दिवाकर भट्ट सम्भवतः इनके नाना थे। शङ्करने कर्मविपाकमें अपने पितामह के रचे हुए शान्तिनिर्णय ग्रन्थका उल्लेख किया है। १६७१ ई०में इन्होंने कुण्डोद्योतदर्शनकी रचना की।

शङ्करभट्ट—१ मीमांसा-सारसंग्रह नामक एक संस्कृत 'मीमांसा' विषयविज्ञ ग्रन्थके रचयिता। २ "सद्वंशवर्णन"के प्रणेता। ३ प्रतिष्ठापद्धतिकार। ४ वस्तुसार नामक वेदान्तग्रन्थके प्रणेता। ५ [illegible] टीका और [illegible] टीकाके रचयिता।

शङ्करारण्यतीर्थ—नृसिंहआश्रमी तीर्थके शिष्य तथा भागवतसारवर्णनके प्रणेता।

शङ्करभाष्य (सं० क्ली०) शङ्करकृत भाष्य। शङ्कराचार्यने ब्रह्मसूत्र वेदान्तसूत्र उपनिषदों और गीतादि पर जो भाष्य प्रणयन किया, वही शङ्करभाष्य नामसे अभिहित है।

• [illegible] है।

शङ्करमत (सं० पु०) एक प्रकारका लोहा। इसे शंकर लोह भी कहते हैं।

शङ्करमिश्र—पद्मानुभवहुङ्कारिपुत्र एक कवि।

शङ्करमिश्र—रसमञ्जरी नामकी गीतगोविन्दकी टीकाके प्रणेता। ये दिनेश्वर मिश्रके पुत्र थे। इन्होंने शालि-नाथके अनुरोधसे इस ग्रन्थकी रचना की।

शङ्करमिश्र (महामहोपाध्याय)—वैशेषिक सूत्रोपस्कार, न्यायलीलावतीकण्ठाभरण, आत्मतत्त्वविवेककल्पलता और भेदप्रकाश। इसके सिवा इन्होंने खण्डन-खण्ड खाद्य ग्रन्थकी 'शाङ्करी' नामकी टीका, कणादरहस्य, त्रिसूत्री-निबन्धव्याख्या, वादिविनोद, श्राद्धप्रदीप आदि ग्रन्थ लिखे हैं। शङ्करमिश्र भवनाथ महामहोपाध्यायके पुत्र तथा जीवनाथ महामहोपाध्यायके भ्रातुष्पुत्र थे। जीवनाथ भवनाथके गुरु थे तथा शङ्करने भवनाथसे विद्या शिक्षा लाभ किया। इन्होंने गौरीदिगम्बर नाटक तथा सामान्यनिरुक्तिटीका नामक और भी दो ग्रन्थ लिखे थे। इनके अलावे इनके लिखे शङ्करमोद, पक्षताटीका, आलोकटीका, अनुमितिटीका, अवच्छेदकत्वनिरुक्तिटीका, अतिव्याप्तिपूर्वपक्ष ग्रन्थटीका, अतिव्याप्तिसिद्धान्त ग्रन्थटीका, उदाहरणलक्षणटीका, उपाधिदूषकतावीज-टीका, उपाधिपूर्वपक्षटीका, उपाधिसिद्धान्त ग्रन्थटीका, कूटघटितलक्षणटीका, कूटाघटितलक्षणटीका, केवलान्वयी ग्रन्थटीका, तर्कग्रन्थटीका, तृतीयमिश्रलक्षणटीका, द्वितीयमिश्रलक्षणटीका, पक्षताटीका, परामर्शसिद्धान्तग्रन्थ-टीका, पञ्चलक्षणीमोद, पञ्चलक्षणटीका, परामर्शपूर्वपक्ष-ग्रन्थटीका, परामर्शसिद्धान्तग्रन्थटीका, पुरुषलक्षणटीका, प्रतिबन्धकलक्षणटीका, प्रथमचक्रवर्तिलक्षणटीका, प्रागभाव-लक्षणटीका, बाधपूर्वपक्षग्रन्थटीका, बाधसिद्धान्तग्रन्थटीका, विरुद्धपूर्वपक्षग्रन्थटीका, विशेषनिरुक्तिटीका, व्याप्तिपञ्चक-मोद, व्याप्तिसिद्धान्तग्रन्थटीका, सत्प्रतिपक्षपूर्वपक्ष ग्रन्थटीका, सामान्यनिरुक्तिमोद, सामान्यनिरुक्तिटीका, सामान्यलक्षणविवरण, सामान्यलक्षणटीका, हेत्वाभास-टीका, शङ्करमोद, शङ्करपक्ष और शाङ्करी नामक बहुतसे व्याख्यान मिलते हैं।

शङ्करलाल—[illegible] प्रणेता [illegible] पुत्र [illegible] पुरोहित। ये [illegible] शाखाध्यायी थे।

शङ्करवर्मा—एक प्राचीन कवि।

शङ्करवाणी (सं॰ स्त्री॰) शङ्करका वाक्य अर्थात् प्रत्यादेश जिसका सत्य होना परम निश्चित माना जाता है, सदा ठीक उतरनेवाली बात।

शङ्करविन्दु—'निगम-संग्रह' या निगमसंग्रहादि नामक मीमांसाग्रन्थके रचयिता। ये सहनशङ्करविन्दु नामसे परिचित थे।

शङ्करशर्मा—१ चिकित्सकोपयोगीपिकाकार। २ वास्तुपरिशिष्ट प्रयोगपद्धतिकाके प्रणेता। ३ देवीमाहात्म्य-टीकाकार। ४ दृग्गुणताघ्नोके रचयिता।

शङ्करशुक (सं॰ पुं॰) पारद, पारा।

शङ्करशुद्ध—मीमांसार्थ-प्रदीप नामक पितृ-मन्त्रार्थी ग्रन्थके प्रणेता। इसमें ८०० अनुष्टुभ् श्लोक हैं।

शङ्करशैल (सं॰ पु॰) महादेवजीका पर्वत, कैलास।

शङ्करसेन—नाड़ीप्रकाश नामक वैद्यक ग्रन्थके प्रणेता।

शङ्करस्वामी—शङ्कराचार्य देखो।

शङ्करस्वेद (सं॰ पु॰) १ वातकफरोगापहारक स्वेद विशेष। स्वेददानप्रणाली—कपासकी ढोंढी, कुलथी-कलाय, तिल, जौ, लाल अरेंडका मूल, सोंठ, पुनर्नवा, शणबीज, इन सब द्रव्योंमें यदि सभी न मिलें, तो जो कुछ मिलता हो, उसीको ले कर एक साथ कूटे और कांजीमें सिक्त करे तथा उससे दो पोटली बांधे। पीछे प्रज्वलित अग्निमय चूल्हेके ऊपर कांजीसे भरी एक हांड़ी रख कर उसके मुंह पर अनेक छेदवाला एक ढक्कन रख दे। बादमें हांड़ी और ढक्कनके मुंहको आटेसे बन्द कर दे। इसके बाद उस ढक्कनके ऊपर पूर्वोक्त दो पोटलीको एक एक कर उष्ण करे तथा उसीसे क्रमशः स्वेद दे। इस प्रकार बार बार करना होगा।
(भैषज्यरत्ना॰)

चरकमें लिखा है, कि उक्तोक्त औषधको वस्त्रखण्डमें पोटली बांध कर अथवा अच्छी तरह कूटी हुई औषधको उष्ण और पिण्डीकृत करके शरीरमें जो स्वेद दिया जाता है, उसको शङ्करस्वेद कहते हैं।
[illegible]

२ धी, मदिरा और अन्न, इनको अग्निसन्तप्त पिण्ड द्वारा प्रयुक्त स्वेद। (चरक सू॰ १४ अ॰)

शङ्करा (सं॰ स्त्री॰) १ शमीवृक्ष, सफेद कीकर। (राजनि॰) २ मञ्जिष्ठा, मजीठ। (वैद्यक॰) ३ शङ्करकी भार्या, शिवानी, भवानी। ४ एक प्रकारका राग। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह हिंडोल रागका पुत्र माना जाता है। विशेष विवरण शङ्कर और शङ्कराभरण शब्दमें देखो। (त्रि॰) ५ शुभदायिनी, मंगलकरनेवाली।

शङ्कराचारी (सं॰ पु॰) श्रीशङ्कराचार्य द्वारा संस्थापित शैव धर्मका अनुयायी।

शङ्करारि (सं॰ पु॰) गुडार्क वृक्ष, सफेद मदारका पेड़।
(राजनि॰)

शङ्करानन्द (सं॰ पु॰) १ भगवद्गीतासटीकाकार। २ ब्रह्मसूत्रदीपिकाके रचयिता। ३ विवेकसारके प्रणेता आनन्दात्माके शिष्य।

शङ्कराचार्य—भारतवर्षके अद्वितीय दार्शनिक, सुप्रसिद्ध अद्वैतवादके प्रवर्त्तक तथा वेदान्त और उपनिषद्भाष्यकार। इनकी असाधारण और अलौकिक प्रतिभा देख कर पण्डित समाजने इन्हें 'शङ्करावतार' माना है। भारतके सभी प्रधान स्थानोंमें शङ्करका पदार्पण होने तथा सभी स्थान उनके अनुरक्त भक्त और शिष्यानुशिष्यसे परिव्याप्त रहने पर भी आचार्य शङ्करकी प्रकृत जीवनी नहीं मिलती। परवर्त्तीकालमें कुछ पण्डित कविगण रची गई सही, पर उनमें इनकी प्रकृत जीवनी निर्धारित करना कठिन है। जो हो, आज तक शङ्करके नामपर जितने ग्रन्थ पुस्तक रची गई हैं, उनमें माधवाचार्यरचित शङ्करदिग्विजय, चिद्विलास यतिविरचित शङ्करविजय तथा आनन्दगिरिरचित संक्षेप शङ्करजय नामक ग्रन्थ ही प्रधान और उल्लेखयोग्य हैं। इसके सिवा नीलकण्ठ, सदानन्द, [illegible] और [illegible] विरचित लघु शङ्करविजय, चिद्घन [illegible] शङ्कराभ्युदय और पुरुषोत्तम भारतीरचित शङ्करविजयविलास भी विशेष उल्लेखयोग्य ग्रन्थ है।
[illegible]

माधवने शङ्करविजय ग्रन्थमें लिखा है, कि शङ्कराचार्यने ब्रह्माके अन्तर्गत कालटि नामक स्थानमें शिवगुरुके औरससे और सती देवीके गर्भसे जन्मग्रहण किया।

६९० ई०के पूर्ववर्ती नहीं हैं, यह भी सिद्ध हुआ। फिर हम देखते हैं, कि धर्मकीर्त्ति, विद्यानन्द आदि जिनसेनके परवर्ती नहीं हैं और जिनसेनका समय ७८३ ई० होनेके कारण उन्हें ७८३ ई०के पहलेके नहीं कह सकते। अतएव यह देखा गया है, कि ६९० ई०से ७८३के मध्य ही सब व्यक्ति एक समय आविर्भूत हुए थे। अर्थात् प्रायः ९३ वर्षका अन्तर रहा। इसे पण्डित के. बी. पाठकजी संघपालोंमें पूर्वोक्त श्लोक लिखते हैं। इन श्लोकोंको संग्रह करनेमें उन्हें जितना परिश्रम उठाना पड़ा था, वह विचारशील व्यक्ति मात्र ही समझ सकते हैं। किन्तु उन्होंने उल्लिखित उदाहरण पा कर भी थोड़ा भ्रम किया है। उन्होंने शङ्करको ७८८ ई०का बतलाया है। परन्तु यह उनकी भूल है। कुमारिलको धर्मकीर्त्ति और विद्यानन्दके समसामयिक मानते हुए भी शङ्करको कुमारिलसे बाद बहुत पीछेका आदमी माना है। इनकी युक्ति यह है, कि कुमारिलने प्रसिद्धि लाभ नहीं की, इसीलिये ही शङ्करने उनका नाम उद्धृत नहीं किया। अतएव कुमारिलके ५० वर्ष पीछे शङ्करका काल अनुमान करना उचित है। पाठक निर्दिष्ट द्वितीय कारण यह है — कथासरित्सागरमें लिखा है, कि धर्मकीर्त्ति उत्पलाचार्यके समसामयिक थे। [illegible] समय ७५३ ई०के पीछे और ७८३ ई०के पहले मिलता है, इत्यादि। किंतु इस सम्बन्धमें हमारा कहना है, कि दूसरे ग्रंथकी तुलनामें कथासरित्सागर अति आधुनिक पुस्तक है। आधुनिक पुस्तकको मान कर ऐसे सिद्धान्तको अन्यथा करना उचित नहीं। शङ्करने कुमारिलका खण्डन किया है, इससे यदि कुमारिल शङ्करके ५० वर्ष पहलेके हों, तो विद्यानन्दने भी सुरेश्वरका वाक्य उद्धृत किया, इससे सुरेश्वर विद्यानन्दसे ५० वर्ष पहलेके आदमी क्यों न होंगे? हमारे ख्यालसे पण्डित पाठककी युक्तिका यह दुर्बल अंश है। जो हो, पूर्व सिद्धान्तको ग्रहण करनेके लिये कहना है, कि शङ्कर, कुमारिल और धर्मकीर्त्ति ये समसामयिक थे। यहां पर यह कह देना उचित है, कि हम लोगोंको पूर्वोक्त परवर्ती लेख भी कुछ कम नहीं हैं यथा जिन युक्तियोंसे इसके [illegible] खण्डन किया है, उनमेंसे कोई शङ्कर [illegible] हुए हैं, इस [illegible] पुस्तकादिसे नहीं आ गई है अथवा ये युक्तियां ठीक नहीं। वे अपने अपने अनुमानसे युक्त नहीं हैं। अन्यत्र शङ्करका कालनिर्णय करनेमें हमने इनकी बातकी आलोचना नहीं की। अपने सिद्धान्तके अनुकूल हम प्रधानतः तीन युक्तियां देखते हैं। एक एक कर नीचे युक्तियोंका उल्लेख नीचे किया गया है।

प्रथम। भवभूतिका समय स्थिर हो चुका है। वे ६९० ७३१ ई०के मध्य भी विद्यमान थे, यह सर्ववादि-सम्मत है। शङ्कर पाण्डुरङ्ग पण्डितने एक और प्राचीन कालके लिखित 'मालतीमाधव' के ग्रंथमें शेष पृष्ठ पाये हैं। तत्प्रकाशित बापुजीकृत 'गौड़वहो' नामक पुस्तकके संस्करणमें उन्होंने लिखा है, कि इन्होंने महादेव [illegible] जिनसे उन्होंने इस ग्रंथका विवरण पाया है। इसमें—

(१) इति श्रीमद्कुमारिलशिष्यकृते मालतीमाधवे तृतीयोऽङ्कः।

(२) इति श्रीकुमारिलस्वामिप्रसादप्राप्तवाग्वैभव-श्रीमदुम्वेकाचार्यविरचिते मालतीमाधवे षष्ठोऽङ्कः।

(३) इति श्रीभवभूतिविरचिते मालतीमाधवे अष्टमोऽङ्कः।

अर्थात् कुमारिलशिष्यकृत, कुमारिलशिष्य उम्बेकाचार्यकृत और भवभूति विरचित ये तीन पृथक् पृथक् वचन तीन पृथक् पृथक् अध्यायके अंतमें पाये गये हैं। शङ्कर विजयमें शङ्करशिष्य मण्डनमिश्र वा सुरेश्वरका नाम उम्बेकाचार्य कह कर उल्लिखित है। अतएव यह कहना होगा, कि शंकर ६९० ७३१ ई०में उक्त भवभूतिके समय विद्यमान थे। 'मालतीमाधव' भवभूति द्वारा रचित हुआ, इसी कारण यह भवभूतिके नामसे प्रचलित हुआ होगा। उम्बेकाचार्यने इसका आदर्श लिया। इस प्रकार अनुमान करनेका कारण यह है, कि इस ग्रंथके तृतीय अङ्कमें कुमारिलशिष्य कृत, छठे अंकमें उम्बेकाचार्यकृत और अष्टम अंकमें भवभूति कृत लिखा है। इससे यहां तक कहा जा सकता है, कि ग्रंथकार ३२ वर्ष जीवन [illegible] शताब्दीके प्रथम भागमें समाप्त हुआ।

द्वितीय। शङ्करदेवजीकी गुरुपरम्परामें देखा जाता

है, कि शंकरने १४ विक्रमादित्यमें जन्मग्रहण किया। फिर यह भी देखा जाता है, कि सुरेश्वरशिष्य सर्वज्ञात्म-मुनिने संक्षेपशारीरकके अन्तमें लिखा है, कि मनुकुला-के आदित्यराजके समय उन्होंने पुस्तककी रचना की। इन दोनों उक्तियोंको एकत्र कर देखनेसे अवश्य कहना होगा, कि शंकरका उक्त समय अर्थात् १४ विक्रमादित्य मानुषवंशीय प्रथम विक्रमार्कका समय है, क्योंकि राजा आदित्य प्रथम विक्रमादित्यके भाई थे। उक्त विक्रमादित्य ६७० ई०से राज्य करने लगे थे। इसमें पूर्वका १४ विक्रमादित्य जोड़ देनेसे ६८४ होता है। सुतरां यह कहा जा सकता है, कि शंकरने ६८४ ई०में जन्मग्रहण किया था।

तृतीय। माधवाचार्य एक अद्वितीय व्यक्ति थे। इनका परिचय देना निष्प्रयोजन है। उन्होंने शंकरका एक ग्रहसंस्थापन दिया है। इसमें सिर्फ ४ ग्रह अपने तुङ्ग और केन्द्रमें अवस्थित थे, ऐसा लिखा है। माधव ज्योतिष शास्त्रमें भी सुपण्डित थे। किन्तु फिर भी इनके इस प्रकार ग्रहसंस्थापनके वर्णनको हम लोग कवि-कल्पनाके सिवा और कुछ भी नहीं कह सकते। क्योंकि यदि यह यथार्थ ज्योतिषिक वर्णन होता, तो माधवाचार्य कालचक्र तथा सम्पूर्णग्रहस्थिति कहनेमें कदापि नहीं चूकते। जो हो, हम यहां तक कह सकते हैं, कि उक्त चार ग्रहोंका उक्त स्थितिमें जो जो होना उचित है वह शंकरके जन्म जीवनमें अथवा उसके साथ शंकरके जीवनकी घटना होना आवश्यक है। श्रीयुक्त राजेन्द्र-नाथ घोषमहाशयने ऐसे अनुमानके वशवर्ती हो कर उक्त प्रकारका ग्रहसंस्थापन किस समय हुआ था उसे निकालनेकी चेष्टा की। इस चेष्टामें उन्होंने शंकर-के समसामयिक सभी घटनाओंका एक एक कोष्ठी तैयार की। किन्तु किसी भी कोष्ठीसे वे माधववर्णित योग निकाल न सके। पर हां उन्होंने जिस शेषोक्त कोष्ठीको ले कर बहुत परिश्रम किया है उसीसे ६८६ ई०की जो कोष्ठी तैयार की गई है, उसे देखनेसे स्पष्ट तरह मालूम होता है, कि उस कोष्ठीसे शंकर जैसे एक महापुरुषको व्यक्ति उत्पन्न हो सकता है। बाकी सभी कोष्ठीमें वैसा नहीं है। इसमें पेरनाङ्गयोग, गुलिकमन्दिरज पारिवेषयोग, सर्वगुलिकपापयोग, स्वगृहगामिबिन्दुयोग, ग्रहचक्रार्योग, गुलिकयोग, चन्द्रयोग, कन्याचुयोग, अमलकमनोविनोदयोग आदि शंकरके जीवनके अनुरूप सभी योग मिलते हैं। इसमें माधव-कथित चार ग्रहमें मेल है केवल एकमें मेल नहीं है। अतएव देखा जाता है, कि हम लोगोंके निर्णीत समयके साथ ज्योति-शास्त्रकी भी सहायता है।

अभी हमें देखना चाहिये, कि शंकरके समयके सम्बन्ध-में प्रचलित मत ७८८ ई० तथा हमारे निर्णीत ६८४ या ६८६ ई० इन दो समयके साथ किस कौन ऐति-हासिक घटनाको मेल खाता है।

१। जो कहते हैं, कि युवनचुयंग (Yuan Chuang) और इत्सिङ् (I-tsing) ये दो चीनपरिव्राजक शंकरके पहलेके हैं, वे हमारे निर्णीत सिद्धान्त पर आपत्ति नहीं कर सकते, क्योंकि इत्सिङ् जिस समय भारतवर्ष आये थे, उस समय शंकर बालक थे। सुतरां इत्सिङ्का शंकर आलोच्य करना किस प्रकार सम्भव हो सकता?

२। पूर्णवर्मा पूर्णपुष्करके मगधराजवंशी थे तथा शंकरने जिस भावमें पूर्णवर्माका आलोचना किया है, उससे यह मालूम नहीं होता, कि पूर्णवर्मा शंकरके बहुत पहले हो गये हैं। ७८८ ई० से और भी ६०० वर्षका अन्तर होता है।

३। काश्मीरका राजतरङ्गिणी वर्णित ललितादित्य-के समयको ठीक ठीक या बहुत भावमें शारदाविहार-में राजतरङ्गिणी भाष्यमें शंकर शब्द चिह्न किया है। ६८६ ई० होनेसे यह उचित हो सकता है, ७८८ ई० होनेसे बिलकुल नहीं हो सकता।

४। बौद्धपुरोहितादक्षताके जन्मके पुरुषके से बहुत है, ६८६ ई० होनेसे यह मिलता है (Bendall, J. R. A. S.) ७८८ ई० होनेसे बहुत अन्तर पड़ जाता है।

५। माधवोक्त शंकर दक्षिणामें प्रायः ४६८८, अभिनवगुप्त आदिको जीत कर बहुतोंके साथ शंकरका शास्त्रार्थ ६८६ ई० होनेसे मालूम होता है, किन्तु

७८८ ई०में किसीके भी साथ शास्त्रार्थ सम्भव नहीं होता।

६। सर्वज्ञात्ममुनिप्रणीत संक्षेपशारीरक राजाको ९८९ ई० होनेसे पाया जाता है,—७८८ ई० होनेसे नहीं पाया जाता।

७। शृङ्गेरी-मठकी गुरुपरम्पराका जो समय दिया गया है, ९८९ ई०से वह मिलता है, किन्तु ७८८ ई० होनेसे नहीं मिलता।

८। ९८९ ई० होनेसे कौमारिल भट्टके समसामयिक बौद्धवादियोंका शङ्करसे पृथक् करना नहीं होता। इस बौद्ध शङ्करके समय ज्ञानाकरोंमें बौद्धोंको मार भगाया था।

९। माण्डूक्यकारिकामें अनेक युक्तियाँ दिखलाते हुए शङ्करका समय ९८० निर्णय किया है। इस रीतिसे निरूपित ९८९ माण्डूक्यकारिकाके निरूपित समयसे बहुत नजदीक पड़ता है।

१०। ९८९ ई० होनेसे शङ्करपादाचार्यके गुरुसम्बन्धका पता मिलता है। ७८८ ई० होनेसे नहीं मिलता। इस कारण ९८९ ई०में शङ्करका आविर्भावकाल माना जा सकता है।

ग्रन्थनिचय।

शङ्कराचार्यके बनाये हुए अनेक ग्रन्थ मिलते हैं, नीचे अकारादि क्रमसे उनके नाम दिये गये हैं—

अच्युताष्टक, अजपागायत्री, अद्वैतपञ्चरत्न, अद्वैतानुभूति, आत्मबोधटीका, अथर्वशिखोपनिषद्भाष्य, अद्वैतपञ्चरत्न, अध्यात्मपटल, अध्यात्मबोध, अध्यात्मविद्योपदेश, अध्यात्मभाष्य, अनुभवप्रकाश, अनुभूति, अन्नपूर्णास्तवमालिका, अन्नपूर्णास्तोत्र, अपराधसुन्दरस्तोत्र, अपराधस्तोत्र, अपरोक्षानुभूति, अमरुकशतकटीका, अष्टक, अर्द्धनारीश्वराष्टक, अष्टपद्यष्टक, अष्टाङ्गयोग, आत्मानात्मविवेक, आत्मबोधस्तोत्र, आत्मप्रबोधोपनिषद्भाष्य, आत्मनिरूपण, आत्मषट्क, आत्मपञ्चक, आत्मबोध, आत्मानात्मविवेक, आत्मोपदेशविधि, आनन्दलहरीस्तोत्र, आर्या, आर्याशतक, ईशावास्योपनिषद्भाष्य, उपदेशसाहस्री, उमामहेश्वरस्तोत्र, ऐतरेयोपनिषद्भाष्य, कनकधारास्तोत्र, कपिलगीता, कठोपनिषद्भाष्य, कालिकास्तुति, कामाक्षीस्तोत्र, कारणप्रकरण, कालभैरवाष्टक, कालिकास्तोत्र, कार्पण्यपञ्चक, कृष्णाद्वैतस्तोत्र, कृष्णविजय, कृष्णस्तोत्र, कृष्णाष्टक, केनोपनिषद्भाष्य, कैवल्योपनिषद्भाष्य, कौपीनपञ्चक, कौषीतकोपनिषद्भाष्य, गङ्गाष्टक, गणेशभुजङ्गस्तोत्र, गणेशाष्टक, गणेशभुजङ्गस्तोत्र, गायत्रीभाष्य, गिरिजादशक, गुरुप्रातःस्मरामि, गुरुस्तोत्र, गुर्वष्टक, गोपालतापनीयोपनिषद्भाष्य, गोविन्ददामोदरस्तोत्र, गोविन्दभजनस्तोत्र, गोविन्दाष्टक और तद्भाष्य, गौड़पादीयभाष्य, गौरीदशक, चण्डालिकास्तोत्र, चतुर्दशमतविवेक, चतुर्विंशतिनामस्तोत्र, चर्पटपञ्जरिका, चिदानन्दस्तवराज, चिदानन्दाष्टक, चिन्तामणिस्तोत्र, छान्दोग्योपनिषद्भाष्य, जगन्नाथस्तोत्र, जगन्नाथाष्टक, ज्ञानगीता, ज्ञानवासिष्ठिका, ज्ञानगीता (विज्ञानगीता), ज्ञानप्रबोध, ज्ञानसंन्यास, ज्ञानोपदेश, तत्त्वसंग्रह, तत्त्वसार, तत्त्वसार, तारापञ्जरिका, ताराहृदय, तैत्तिरीयोपनिषद्भाष्य, त्रिपुरोपनिषद्भाष्य वा त्रिपुरोपनिषद्, त्रिपुरसुन्दरीस्तोत्र, त्रिवेणीस्तोत्र, त्रिशतीनामावलिकालिका, दक्षिणामूर्तिकल्प, दक्षिणामूर्तिवर्णमाला, दक्षिणामूर्तिस्तोत्र, दक्षिणामूर्त्यष्टक और टीका, दत्तगुरुस्तोत्र, दशश्लोकीस्तोत्र, दशावताराविधान, दशश्लोकी, दक्षिणामूर्तिस्तोत्र, दृग्दृश्यप्रकरण, देवीप्रशस्त, देवीभुजङ्ग, देवीमानसपूजाविधि, देवीस्तुति, देव्यपराधक्षमापन स्तोत्र, द्वादशपञ्जरिकास्तोत्र, द्वादशमञ्जरी, द्वादशमहावाक्यविवरण, द्वादशमहावाक्यविवरण, द्वादशलिङ्गस्तोत्र, धन्यस्तोत्र, धान्याष्टक, नर्मदालहरी, नारायणस्तोत्र, नारायणोपनिषद्भाष्य, निर्गुणमानसपूजाविवरण, निर्वाणाष्टक, निर्वाणषट्क, नृसिंहतापनीयोपनिषद्भाष्य, नृसिंहपञ्चरत्नमाला, नर्मदाष्टकस्तोत्र, पञ्चपदी और टीका, पञ्चरत्न, पञ्चकस्तोत्र, पञ्चीकरणवार्त्तिक और टीका, परमहंसोपनिषद्भाष्य, परापूजा, पाण्डुरङ्गाष्टक, पातञ्जलसूत्रभाष्य, पुरुषसूक्तभाष्य, प्रश्नोत्तररत्नमाला, प्रबोधसुधाकर, प्रश्नोपनिषद्भाष्य, प्रौढ़ानुभूति, प्रपञ्चसारतन्त्र, ब्रह्मसूत्रभाष्य, ब्रह्मानन्दलहरी, ब्रह्मानुचिन्तन, ब्रह्मज्ञानावलीमाला,

प्रश्नोपनिषद्भाष्य, बालकृष्णाष्टक, बालबोधसंग्रह, बालबोधिनी, ब्रह्मानुचिन्तन, बृहदारण्यकोप-निषद्भाष्य, ब्रह्मगीताटीका, ब्रह्मज्ञान, ब्रह्मनामावली, ब्रह्मनामस्तोत्र, ब्रह्मसूत्रभाष्य वा शारीरिक-मीमांसाभाष्य, ब्रह्मानन्दस्तव, भगवद्गीताभाष्य, भगवन्मानसपूजा, भट्टिकाव्यटीका, भवानीभुजंग, भवान्यष्टक, भवानीभुजङ्ग-प्रयात, भृगुवल्ल्युपनिषद्भाष्य, भैरवाष्टक, भ्रमराम्बाष्टक, मणिकर्णिकास्तोत्र, मणिरत्नमाला, मनीषापञ्चक, मन्त्र-कोष, महाकरणप्रकरण, महापुरुषस्तोत्र महावाक्यपञ्ची-करण, महावाक्यविवरण, महावाक्यविवेक, महा-वाक्यसिद्धान्त, महावाक्यार्थ, महावेदान्तपदक, माण्डूक्योपनिषद्भाष्य, मानसपूजाविधि, मीनाक्षी-स्तोत्र, मुकुन्दचतुर्दश, मुण्डकोपनिषद्भाष्य, मैत्रा-यणीयोपनिषद्भाष्य, मोहमुद्गर, यतिपञ्चधर्मविधा-विधि, यमुनाष्टक, योगतारावली, रागद्वेषप्रकरण, राघवाष्टक, रामभुजङ्ग, रामस्मरण, रामाष्टक, लक्ष्मी-नृसिंहस्तोत्र, लघुवाक्यवृत्ति और टीका, ललितात्रिशती-भाष्य, ललितासहस्रनामभाष्य, वज्रसूच्युपनिषद् और टीका, वल्लभेशस्तोत्र, वाक्यवृत्ति, वाक्यसुधा, विवेक-चूड़ामणि वा वेदान्तविवेकचूड़ामणि, विश्वनाथनगरी-स्तोत्र, विष्णुपादादिकेशान्तस्तुति, विष्णुभुजङ्ग, विष्णु-षट्पदी, विष्णुसहस्रनामभाष्य, विष्णुस्तोत्र, वृहज्जाबालोप-निषद्भाष्य, वेदसारशिवसहस्रनाम, वेदसारशिवस्तव, वेदान्तकेसरी, वेदान्तसिद्धान्त, वेदान्तभाष्य, वेदान्त-शास्त्रसंक्षिप्तप्रक्रिया, वेदान्तसार, वेदान्तसिद्धान्तदीपिका, वैराग्यशतक, शतश्लोकी और टीका, शतरत्न, शाट्यायनीयोपनिषद्भाष्य, शास्त्रदर्पण, शिवापराधक्षमा, शिवकेशादि-पादान्तवर्णनस्तोत्र, शिवगीताभाष्य, शिवदशक, शिवनामावली, शिवपञ्चाक्षरस्तोत्र, शिवप्रातःस्मरणस्तोत्र, शिवपादादिकेशान्तवर्णनस्तोत्र, शिवभक्तानन्दकलिका, शिवभुजङ्ग वा शिवभुजङ्गप्रयातस्तोत्र, शिवभुजङ्गाष्टक, शिवानन्दलहरी, शिवाष्टक, शिवस्तोत्र, श्यामलानवरत्न, श्यामानामसार्थ, श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्य, षट्पदी-स्तोत्र, षडारस्तोत्र, [illegible], [illegible], संहितोपनिषद्भाष्य, [illegible], सनत्सु-जातीय विवरण, सांख्यभाष्य, संन्यासपद्धति, समस्तमठाम्नायजननामाभिधान, सनत्सुत, सर्वधर्मदीपिका, सहजाष्टक, साधनपञ्चक, सिद्धान्तबिन्दु, सुधाबोधिनी, सूतसंहिताभाष्य, स्तोत्रपाठ, स्वरूपनिरूपण, स्वरूप-निर्णय, स्वात्मनिरूपण वा स्वात्मानन्दप्रकाश, स्वात्म-पूजा, स्वात्मप्रबोध, स्वाराज्यसिद्धि, हरिनाममाला, हरि-मीडे स्तोत्र वा हरिस्तोत्र, हरिहरस्तोत्र, हस्तामलकस्तोत्र वा हस्तामलकसंवाद और उसकी टीका और हाला-स्याष्टक।

उक्त सभी ग्रन्थ सुप्रसिद्ध दार्शनिक और उपनिषद्-भाष्यकार शङ्कराचार्यके रचित नहीं हैं। अनेक ग्रन्थोंकी भाषा, शब्दविन्यास और उद्देश्यकी आलोचना करनेसे ही यह मालूम होता है। सनातन हिन्दू धर्मके पुनः प्रतिष्ठाता शङ्करके नामसे प्रचलित ग्रन्थ वा कविताकी ख्याति फैलानेके अभिप्रायसे कोई कोई महात्मा और कवि शंकराचार्यके नाम पर अपना अपना ग्रन्थ चला गये हैं। इसके सिवा आदिगुरु शङ्कराचार्यके मठा-धिपति महन्तगण भी शङ्कराचार्यकी उपाधि धारण करते आ रहे हैं। उन लोगोंके ग्रन्थमें भी शङ्कराचार्य-की भणिता है। यथार्थमें शङ्कर नामसे कुछ आचार्य भी ग्रन्थादि रचना कर गये हैं, इसीसे हमने पहले कथित शङ्कराचार्यके रचित अनेक ग्रन्थ पाये हैं। दुःख-का विषय है, कि इनमेंसे प्रत्येकको पृथक् रूपसे निर्वा-चित करनेमें हमारी सामर्थ्य नहीं। पर हां, इतना अवश्य कह सकते हैं, कि आदि शङ्करने कुछ उपनिष-द्भाष्य, गीता और वेदान्तविषयक ग्रन्थोंके सिवा और किसी भी ग्रन्थकी रचना नहीं की। यहां तक कि उनके नाम पर प्रचलित अनेक उपनिषद्भाष्य और वेदान्तग्रन्थ हैं जिन्हें उनके रचित कहनेमें ही सन्देह होता है। अव-शिष्ट अन्यान्य ग्रन्थ निःसन्देह परवर्ती शङ्कराचार्यों-के रचित माने जाते हैं।

शङ्कराचार्यका दार्शनिक सिद्धान्त।

श्रीशंकराचार्यने केवलाद्वैतवादका प्रचार किया। यह वाद मायावाद नामसे भी प्रसिद्ध है। इनके अद्वैत मतवादके सम्बन्धमें प्राचीन इतिहास इस प्रकार है—

७८८ ई०के पहिलेके भी लोग साधारणतः मालूम नहीं होता।

६। मार्कण्डेयवर्णितव्याख्याकार राजाको ६८६ ई० होनेसे जाना जाता है,—७८८ ई० होनेसे नहीं पाया जाता।

७। शङ्करदिग्विजयमें सुधन्वाका भी समय दिया गया है, ६८६ ई०से यह मिलता है, किन्तु ७८८ ई० होनेसे नहीं मिलता।

८। ६८६ ई० होनेसे भौतिक मायावीय वर्द्धीय संवत्सरोंके संवत्से पृथक् करना नहीं होता। इस वर्द्धीय संवत्के समय शङ्कराचार्यने बौद्धोंका नाश लगाया था।

९। शङ्कराचार्यके अनेक जीवनियां लिखनेवाले हुए शङ्करका समय ६८० विक्रम लिखा है। इस लोगोंका लिखित ६८६ शङ्कराचार्यके लिखित समयसे बहुत नज़दीक पड़ता है।

१०। ६८६ ई० होनेसे शङ्करपादलिङ्गुकमठीय कथन मिलता है। ७८८ ई० होनेसे नहीं मिलता। इस कारण ६८६ ई०में शङ्करका आविर्भावकाल माना जा सकता है।

ग्रन्थ।

शङ्कराचार्यके बनाये हुए अनेक ग्रन्थ मिलते हैं, नीचे अकारादि क्रमसे उनके नाम दिये गये हैं—

अच्युताष्टक, अजपागायत्री, अद्वैतपञ्चरत्न, अध्यात्म-पटल नामकी आत्मबोधटीका, अथर्वशिखोपनिषद्भाष्य, अद्वैतानुभूति, अध्यात्मपटल, अध्यात्मबोध, अनात्मश्रीविगर्हण, अनात्मविकाश, अनुभवप्रकाश, अनुभूति, अन्नपूर्णाष्टकमालिका, अन्नपूर्णास्तोत्र, अपराधभञ्जनस्तोत्र, अद्वैतस्तोत्र, अपरोक्षानुभूति, अमरुशतकटीका, अम्बाष्टक, अर्धनारीश्वराष्टक, अवधूताष्टक, अष्टाष्टक, आत्मानात्मविवेक, आत्मषट्क, आत्मबोधोपनिषद्भाष्य, आत्मनिरूपण, आत्मपूजा, आत्मबोध, आत्मसप्तक, आत्मानात्मविवेक, आत्मानात्मविवेचन, आनन्दलहरीस्तोत्र, आर्या, आर्याद्विशती, ईशावास्योपनिषद्भाष्य, उपदेशसाहस्री, उमाष्टक, उपदेशपञ्चक, ऐतरेयोपनिषद्भाष्य, कनकधारास्तोत्र, कर्पूराद्य, काठकोपनिषद्भाष्य, कालिकास्तुति, कामाक्षीस्तोत्र, कात्यायनस्तव, कालभैरवाष्टक, कालिकास्तोत्र, कौपीनपञ्चक, कृष्णाष्टकस्तोत्र, कृष्णविजय, कृष्णस्तोत्र, कृष्णाष्टक, केनोपनिषद्भाष्य, कैवल्योपनिषद्भाष्य, कौषीतकीभाष्य, कौषीतकोपनिषद्भाष्य, गङ्गाष्टक, गणाष्टक, गणेशभुजङ्गस्तोत्र, गणेशाष्टक, गणेशपुराणस्तोत्र, गायत्रीभाष्य, गिरिजादशक, गुरु प्रातःस्मरामि, गुरुस्तोत्र, गुर्वष्टक, गोपालतापनीयोपनिषद्भाष्य, गोविन्दनामोदयस्तोत्र, गोविन्दभजनस्तोत्र, गोविन्दाष्टक और तद्भाष्य, गौडपादीयभाष्य, गौरीदशक, चपलाम्बिकास्तोत्र, चतुर्दशमतविवेक, चतुर्विंशतत्त्वोद्भेद, चर्पटपञ्जरिका, चिदानन्दस्तवराज, चिदानन्दाष्टक, चिन्तामणिस्तोत्र, छान्दोग्योपनिषद्भाष्य, जगन्नाथस्तोत्र, जगन्नाथाष्टक, ज्ञानगीता, ज्ञानबोधिनीका, ज्ञानलीला (विज्ञानलीला), ज्ञानप्रदीप, ज्ञानसंन्यास, ज्ञानोपदेश, तत्त्वानन्द, तत्त्वसार, तन्त्रसार, तारापञ्जरिका, तारास्तव, तैत्तिरीयोपनिषद्भाष्य, त्रिपुरोपनिषत्स्तव वा त्रिपुरोपनिषद्, त्रिपुरसुन्दरीस्तोत्र, त्रिवेणीस्तोत्र, त्रिशतीनामार्थप्रकाशिका, दक्षिणामूर्तिस्तव, दक्षिणामूर्तिवर्णमाला, दक्षिणामूर्तिस्तोत्र, दक्षिणामूर्त्यष्टक और टीका, दत्तगुरुस्तोत्र, दशमहिमास्तोत्र, दशावतारविधान, दशश्लोकी, दशावतारमूर्तिस्तोत्र, दृग्दृश्यविवेक, देवीपञ्चरत्न, देवीभुजङ्ग, देवीमानसपूजाविधि, देवीस्तुति, देव्यपराधक्षमापनस्तोत्र, द्वादशपञ्जरिकास्तोत्र, द्वादशमञ्जरी, द्वादशमहावाक्यविवरण, द्वादशमहावाक्यनिरूपणात्मनिरूपण, द्वादशलिङ्गस्तोत्र, धन्यस्तोत्र, धन्याष्टक, नवरत्नमालिका, नारायणस्तोत्र, नारायणोपनिषद्भाष्य, निर्गुणमानसपूजानिरूपण, निर्वाणाष्टक, निर्वाणषट्क, नृसिंहतापनीयोपनिषद्भाष्य, नृसिंहपञ्चरत्नमाला, पञ्चरत्नस्तोत्र, पञ्चरत्नी और टीका, पञ्चीकरण, पञ्चवर्णस्तोत्र, पञ्चीकरणवार्तिक और टीका, परमार्थसार, [illegible], परापूजा, पराष्टक, [illegible], पूर्णमदोपनिषद्भाष्य, प्रपञ्चसार, प्रबोधसुधाकर, प्रश्नोत्तररत्नमालिका, प्रश्नोपनिषद्भाष्य,

ब्रह्मोपनिषद्भाष्य, बालकृष्णाष्टक, बालबोधसंग्रह बालबोधिनी, बाल्यावस्थारत्न, बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्य, ब्रह्मगीताटीका, ब्रह्मज्ञान, ब्रह्मनामावली, ब्रह्मपारस्तोत्र, ब्रह्मसूत्रभाष्य या शारीरिक-मीमांसाभाष्य, ब्रह्मानन्दस्तव, भगवद्गीताभाष्य, भगवन्मानसपूजा, भट्टिकाव्यटीका, भवानीभुजङ्ग, भवान्यष्टक, भवानीभुजङ्गप्रयात, भृगुवल्ल्युपनिषद्भाष्य, भैरवाष्टक, भ्रमरांबाष्टक, मणिकर्णिकास्तोत्र, मन्त्ररत्नमाला, मनीषापञ्चक, मन्त्रकोष, महावाक्यप्रकरण, महागुरुस्तोत्र, महावाक्यपञ्चीकरण, महावाक्यविवरण, महावाक्यविवेक, महावाक्यसिद्धान्त, महावाक्यार्थ, महावेदान्तषट्क, माण्डूक्योपनिषद्भाष्य, मानसपूजाविधि, मीनाक्षीस्तोत्र, मुकुन्दचतुर्दश, मुण्डकोपनिषद्भाष्य, मैत्रायणीयोपनिषद्भाष्य, मोहमुद्गर, यतिसद्धर्मशिक्षाविधि, यमुनाष्टक, योगतारावली, राजयोगप्रकरण, राघवाष्टक, रामभुजङ्ग, रामसमाराधन, रामाष्टक, लक्ष्मीनृसिंहस्तोत्र, लघुवाक्यवृत्ति और टीका, ललितात्रिशतीभाष्य, ललितासहस्रनामभाष्य, वज्रसूच्युपनिषद् और टीका, वरदराजस्तोत्र, वाक्यवृत्ति, वाक्यसुधा, विवेकचूडामणि या वेदान्तविवेकचूडामणि, विश्वनाथनगरीस्तोत्र, विष्णुपादादिकेशान्तस्तुति, विष्णुभुजङ्ग, विष्णुषट्पदी, विष्णुसहस्रनामभाष्य, विष्णुस्तोत्र, वृहज्जाबालोपनिषद्भाष्य, वेदसारशिवसहस्रनाम, वेदसारशिवस्तव, वेदान्तप्रक्रिया, वेदान्तमतविधान, वेदान्तशास्त्र, वेदान्तशास्त्रसिद्धान्तविद्या, वेदान्तसार, वेदान्तसिद्धान्तदीपिका, वैराग्यपञ्चक, शतश्लोकी और टीका, शब्दतत्त्व, शाट्यायनीयोपनिषद्भाष्य, शास्त्रदर्पण, शिवापराधक, शिवकेशादिपादान्तवर्णनस्तोत्र, शिवगीताव्याख्या, शिवदशक, शिवनामावली, शिवपञ्चाक्षरस्तोत्र, शिवापराधक्षमापनस्तोत्र, शिवपादादिकेशान्तवर्णनस्तोत्र, शिवमानसपूजास्तोत्रिका, शिवभुजङ्ग या शिवभुजङ्गप्रयातस्तोत्र, शिवभुजङ्गाष्टक, शिवानन्दलहरी, शिवाष्टक, शिवस्तोत्र, श्यामलानवरत्न, श्यामलासारार्थक, श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्य, षट्पदीस्तोत्र, षट्पदस्तोत्र, संक्षिप्तनामावलिका, सत्पुरुषदी, सर्वसिद्धान्तसंग्रह, सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारसंग्रह, सप्तश्लोकीटीका, सांख्यसूत्र, सदाचारानुसन्धान, सनत्सुजातीय विवरण, सन्ध्याभाष्य, संन्यासपद्धति, समस्तदानावधानग्रामाभिधान, सामसूत्र, सारसंग्रहदीपिका, सदाचारानुसन्धान, सिद्धान्तबिन्दु, सुबोधिनी, सूतसंहितावाख्य, स्तोत्रपाठ, स्वरूपनिरूपण, स्वरूपनिर्णय, स्वात्मनिरूपण या स्वात्मानन्दप्रकाश, स्वात्मपूजा, स्वात्मप्रबोध, स्वाराज्यसिद्धि, हरिनाममाला, हरिमीडेस्तोत्र या हरिस्तोत्र, हरिहरस्तोत्र, हस्तामलकस्तोत्र या हस्तामलकसंवाद और इसकी टीका और हनुमदष्टक।

उक्त सभी ग्रन्थ सुप्रसिद्ध दार्शनिक और उपनिषद्-भाष्यकार शङ्कराचार्यके रचित नहीं हैं। अनेक ग्रन्थोंकी भाषा, शब्दविन्यास और उद्देश्यकी आलोचना करनेसे ही यह मालूम होता है। सनातन हिन्दू धर्मके पुनः प्रतिष्ठाता शङ्करके नामसे अरचित ग्रन्थ या कविताकी ख्याति फैलानेके अभिप्रायसे कोई कोई महात्मा और कवि शंकराचार्यके नाम पर अपना अपना ग्रन्थ चला गये हैं। इसके सिवा आदिगुरु शङ्कराचार्यके मठाधिकारी महन्तगण भी शङ्कराचार्यकी उपाधि धारण करते आ रहे हैं। उन शिष्योंके ग्रन्थमें भी शङ्कराचार्यकी भणिता है। पलङ्गिम शङ्कर नामसे कुछ आचार्य भी ग्रन्थकी रचना कर गये हैं, उन्होंने इसमें पचीस अधिक शङ्कराचार्यके रचित अनेक ग्रंथ पाये हैं। दुःखका विषय है, कि इनमेंसे प्रत्येकका पृथक् रूपसे निर्वाचित करनेकी हमारी सामर्थ्य नहीं। पर हां, इतना अवश्य कह सकते हैं, कि आदि शङ्करने कुछ उपनिषद्भाष्य, गीता और वेदान्तविषयक ग्रंथोंको छोड़ और किसी भी ग्रंथकी रचना नहीं की। यहां तक कि उनके नाम पर प्रचलित अनेक उपनिषद्भाष्य और वेदान्तग्रंथ हैं जिन्हें उनके रचित कहनेमें ही सन्देह होता है। अब लिए अन्यान्य ग्रंथ निःसन्देह दूसरे अभिनव शङ्कराचार्यके रचित माने जाते हैं।

शङ्कराचार्यका दार्शनिक सिद्धान्त।

श्रीशंकराचार्यने केवलाद्वैतवादका प्रचार किया। यह वाद मायावाद नामसे भी प्रसिद्ध है। इसके संक्षिप्त मतवादोंके सारांशकी आलोचना इस प्रकार है—

"प्रत्यक्षं न प्रवृत्तानि तत्त्वं प्रत्येकशः
[illegible] ।।"

अर्थात् अनेक ग्रन्थोंमें शंकराचार्यके दार्शनिक तत्त्व-ज्ञानोंमें जो सब सिद्धान्त प्रकाशित हुए हैं, वह श्लोकार्द्धमें दिखलाये जाते हैं। वह सिद्धान्त यह है, कि ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है, और ब्रह्म जीव अभिन्न है।

फलतः शंकरका दार्शनिक अभिमत इन तीन सिद्धान्तोंकी समष्टि आलोचना पर ही पर्यवसित हुआ है। किंतु वस्तुतः ब्रह्म ही मूलतत्त्व है। ब्रह्म सर्वोपादान-के अतिरिक्त, अखण्ड, अविशेष, एक, अद्वितीय, और चिन्मात्र है। शंकराचार्य कहते हैं कि वह त्रिविध विकल्प विवर्जित सृष्टिके पहले एकमात्र चिन्मात्र परब्रह्म विद्यमान थे। वह परब्रह्म एक और अद्वितीय है। यह सत् और सृष्टि अनादि अनन्त है। माध्यमिक बौद्धोंका सिद्धान्त यह है, कि सृष्टिके पहले कुछ भी न था। श्रीमत् शंकराचार्यने माध्यमिक बौद्धोंके इस सिद्धान्तको खण्डन कर वैदिक मतको स्थिर और तर्कयुक्तिके बल पर इन लोगोंका विपरीत सिद्धान्त संस्थापन किया है। वे कहते हैं, कि असत्से सत्की उत्पत्ति असम्भव है।

माध्यमिक बौद्धगण शून्यवादी हैं। वे कहते हैं—

"कथानि कथं वदन्ति शून्यम्।
विज्ञानवादिनस्त्वं वदन्ति शून्यम्।"

फिर दूसरी जगह लिखा है—

"शून्यमाध्यमिकैः सर्वं सर्वं शून्यं वदन्तिनम्।"
(माध्यमिक सू० १८ अ०)

इस प्रकार शून्यवाद [illegible] नहीं है और नहीं। हम शांकरभाष्यमें देखते हैं—

"[illegible]
[illegible] ।" (११।१४)

फिर दूसरी जगह लिखा है—

"[illegible]
[illegible] ।"

[illegible] है। [illegible]

धन किया है। उन्होंने ब्रह्मका ऐसा स्वरूप निर्देश किया है कि वह व्यावहारिक विचारसे एक प्रकार शून्यवादका [illegible] जा सकता है। किंतु ब्रह्मसूत्रके द्वितीय अध्याय द्वितीय पादके २८वें सूत्रके 'नाभाव उपलब्धेः' भाष्यमें शंकरने दूसरी तरहसे शून्यवादका खण्डन किया है। शंकरका ब्रह्म 'निराकार' होने पर भी वह पूर्ण और सत्य ज्ञानानन्दस्वरूप कह कर प्रसिद्ध है। बृहदारण्यक उपनिषद्भाष्यमें उन्होंने ब्रह्मका पूर्ण नाम रखा है। यथा—

"न वस्तुपरिच्छेदेन [illegible] पूर्णतो व्याप्तः किंतु [illegible] अवस्थेन।" (बृहदारण्यक उपनिषद् ५।१)

शंकरका ब्रह्म निर्गुण निराकार होने पर भी वह पूर्ण और विभु है।

ब्रह्म केवल पूर्ण और विभु नहीं है, वे सर्वज्ञ हैं।

जगत्कारणसे [illegible] ईश्वरका अनुमान किया है। उन्होंने ब्रह्मसूत्रभाष्यमें प्रथम अध्यायके प्रथम पादमें द्वितीय सूत्रभाष्यमें लिखा है—

"न यथोक्तविशेषणस्य जगतो यथोक्तविशेषणमीश्वरं मुक्त्वान्यतः प्रधानादचेतनादणुभ्यो वा अभावाद्वा संसारिणो वा उत्पत्त्यादि संभावयितुं शक्यम्।"

अर्थात् सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् ईश्वर वा सगुण ब्रह्मके अतिरिक्त [illegible] अथवा अचेतन प्रधान अथवा परमाणुओं, असत् अथवा संसारी जीवोंसे इस विविध जगत्का इस प्रकार सृष्टि-स्थिति प्रलय होना किसी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता। शंकर भारतवर्षके पूर्ण विश्वासी थे। परंतु उनका [illegible] नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव है। वह [illegible] निर्विकार है।

तैत्तिरीय [illegible] शंकरने लिखा है—

"[illegible]
[illegible]
[illegible] ।" (१।१)

[illegible]

समान है। सचेतन प्राणियोंमें हम जो ज्ञान देखते हैं, वह बुद्धि प्रतिबिम्बमात्रसे उपलब्ध है। कठोपनिषद्भाष्यमें शंकरने लिखा है—

"आत्मनोऽन्यविषयमिति व नैतद्विज्ञानमन्यत्वात्" इत्यादि।

(२।१।१)

अतएव उपनिषद्भाष्य और सूत्रभाष्यमें शंकर-दर्शनका यह प्रधानतम वा सिद्धान्त विस्तृतरूपमें और विशदरूपमें आलोचित हो सकता है। आत्मा जो ज्ञानमात्र या केवल ज्ञानरूप है, शङ्कराचार्यने इस सिद्धांतका अच्छी तरह विवृत किया है।

निर्विशेष ब्रह्म।

शंकरके मतसे ब्रह्म निर्गुण और निष्क्रिय है। वे स्थूल नहीं हैं, सत् नहीं हैं, असत् नहीं हैं, कार्य नहीं हैं, कारण भी नहीं हैं, ब्रह्म इन्द्रियातीत हैं। श्रुतमें वे वाक्यमनके अगोचर हैं, वहां वाक् नहीं जा सकता, मन नहीं जा सकता, वाक्य भी उन्हें व्यक्त नहीं कर सकता। वे ज्ञाता नहीं हैं और न ज्ञेय ही हैं, वे ज्ञान-के अतीत और क्रियाके भी अतीत हैं।

श्रीशंकराचार्यने वेदान्तसूत्रभाष्यमें, गीताभाष्यमें, बृहदारण्यक तथा अनेक उपनिषद्भाष्यमें निर्विशेष ब्रह्म-के ज्ञापक हैं, ऐसे प्रमाणका उल्लेख कर अपने सिद्धांत-को संस्थापित किया है।

सविशेष वा सगुण ब्रह्मको भी शंकरने अस्वीकार नहीं किया है। शंकरका कहना है, कि ईश्वर ही सगुण ब्रह्म हैं। मायाके सम्बन्धमें ब्रह्म ही सगुण ब्रह्म है। शंकराचार्यके सिद्धान्तानुसार सगुणब्रह्म मायिक है, अतएव ब्रह्मकी गुणमय अभिव्यक्ति अनित्य है। गुण जिस प्रकार अनित्य ब्रह्मका सगुण है, अभिव्यक्ति भी उसी प्रकार अनित्य है। श्रुतिमें सविशेष और सगुण ब्रह्मका उल्लेख है। शंकराचार्यको ये सब श्रुतिवाक्य स्वीकार करने पड़े हैं। किन्तु शंकरके मायावादके ऐन्द्र-जालिक प्रभावसे श्रुतिके सगुण ब्रह्म अनित्य और मिथ्याकल्पमें कल्पित हुए हैं। शंकरने इस सगुण ब्रह्ममें ही शक्ति और गुणादिका अस्तित्व स्वीकार किया है। किन्तु यह सगुण ब्रह्म जब अनित्य और मायिक है, तब शक्ति भी मायिक है। सुतरां शंकराचार्य यथार्थमें शक्ति-वादी नहीं हैं तथा किसी भी प्रकार शक्तिके पारमार्थि-कत्वको स्वीकार नहीं करते।

शङ्करका कहना है, कि व्यावहारिक भावमें ही वे सगुण ब्रह्म स्वीकृत हुए हैं। जगत्‌का उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय आदिका कारण भी यही सगुण ब्रह्म है। किन्तु आत्मज्ञानके विमल आलोकसे जब मायाका अन्धकार दूर होता है, तब फिर इस सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् ब्रह्मका अस्तित्व नहीं रहता। निर्विशेष ब्रह्म ही एक-मात्र सार और पारमार्थिक तत्त्व है। शास्त्र और व्यवहारके अनुरोधसे शंकरने इस सगुण ब्रह्मको स्वी-कार किया है, नहीं तो निर्विशेषमें पर्यवसान ही उनके ब्रह्म-तत्त्वका चरम सिद्धान्त है।

अभेदवाद वा अद्वैतवाद।

कोई कोई समझते हैं, कि अभेदवाद या अद्वैतवाद शंकराचार्यका प्रवर्तित है, किन्तु ध्यानपूर्वक वेदान्त-सूत्र पढ़नेसे सभी जान सकते हैं, कि वेदान्तसूत्र रचे जानेके बहुत पहले इस देशके ऋषियोंमें ये सब वाद ले कर 'अभेद' वाद-विवाद चलता था। आश्मरथ्य, औडुलोमि, बादरायण, काशकृत्स्न और जैमिनि आदि ऋषिगण ब्रह्म और जीवके सम्बन्धमें भिन्न भिन्न अभि-मत पोषण करते थे। शंकराचार्यने बादरि और काश-कृत्स्नका मत समर्थन करके ही "ब्रह्म और जीव अभिन्न" यह मत प्रचार किया है। केवल माया द्वारा ही जीव और ब्रह्मका पार्थक्य सूचित होता है। ज्ञानके उदयसे जब माया तिरोहित होती है, तब जीव और ब्रह्ममें कोई भी भेद नहीं रहता। यह विचित्र विश्वब्रह्माण्ड केवल मायाकी ही लीला है। यह असत् और मायाविजृ-म्भित मात्र है। एकमात्र ब्रह्म ही सत् और नित्य है। यह ब्रह्म एक और अद्वितीय है। ब्रह्म और जीवमें कोई पृथक्ता नहीं है। मायावशतः भिन्नता दिखाई देने पर भी मूलतः दोनों ही एक हैं। ज्ञान ब्रह्मका गुण नहीं है, ब्रह्म चिन्मात्र और विशुद्ध ज्ञानस्वरूप है।

ब्रह्म निर्गुण अर्थात् गुणसम्पर्कविवर्जित है। यदि कहा जाये, कि 'यह जो परिदृश्यमान विचित्र विशाल विश्वब्रह्माण्ड दिखाई देता है, वह क्या पदार्थ है? अभेदवादी शंकरने इसके उत्तरमें कहा है, कि पारमा-

"श्लोकार्द्धे न प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः
ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः ॥"

अर्थात् अनेक ग्रन्थोंमें शंकराचार्यके दार्शनिक तत्त्व-सम्बंधमें जो सब सिद्धांत प्रकाशित हुए हैं, वह श्लोकार्द्धमें दिखलाये जाते हैं। वह सिद्धांत यह है, कि ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है, जीव ब्रह्मसे अभिन्न है।

फलतः शंकरका दार्शनिक अभिमत इन तीन विषयोंकी प्रगाढ़ आलोचना पर ही पर्यवसित हुआ है। किंतु परमात्म ब्रह्म ही मूलतत्त्व है। ब्रह्म मनोवाक्यके अगोचर, अप्रतर्क्य, अविज्ञेय, एक, अद्वितीय, और चिरन्तन हैं। शंकरका कहना है कि यह विचित्र विशाल विश्वब्रह्माण्ड सृष्टिके पहले एकमात्र चिन्मात्र परमब्रह्म विद्यमान थे। वह परमब्रह्म एक और अद्वितीय हैं। ब्रह्म सत् और सृष्टि जगत् असत् है। माध्यमिक बौद्धोंका सिद्धान्त यह है, कि सृष्टिके पहले कुछ भी न था। श्रीपाद शंकराचार्यने माध्यमिक बौद्धोंके इस सिद्धान्तको खण्डन कर वैदिक मन्त्रकी भित्ति और तर्कयुक्तिके बल पर उन लोगोंका विपरीत सिद्धांत संस्थापन किया है। वे कहते हैं, कि असत्से सत्की उत्पत्ति असम्भव है।

माध्यमिक बौद्धगण शून्यवादी हैं। वे कहते हैं—

"रूपाणि रूपी पश्यति शून्यम्।
विज्ञान्त्यायतनं पश्यति शून्यम्।"

फिर दूसरी जगह लिखा है—

"शून्यमाध्यात्मिकं पश्य पश्य शून्यं बहिर्गतम्।"
(माध्यमिक सू० १८ अ०)

इस प्रकार शून्यवाद अविप्रणीत ग्रंथमें नहीं है, सो नहीं। हम श्रीभागवतमें देखते हैं—

"तत्र शब्दपदं चित्तमाकृष्य व्योम्नि धारयेत्।
तच्च त्यक्त्वा महारोहो न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥"(११।१४)

फिर दूसरी जगह लिखा है—

"त्वमप्येव कुरु चात्मानं आत्मन्यवर त्वं कुरु।
आत्मानं त्वयं कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥"

ये सब उक्तियां शून्यवादकी पोषक हैं। श्रीमच्छङ्कराचार्यने ब्रह्मतत्त्वका निरूपण करते हुए मायावादकी सहायतासे इस विचित्र विश्वप्रपञ्चको कार्यतः शून्यमें पर्यवसित किया है। उन्होंने ब्रह्मका जैसा स्वरूप निर्देश किया है वह व्यवहारिक विचारसे एक प्रकार शून्यवादका अपर पृष्ठ समझा जाता है। किंतु ब्रह्मसूत्रके द्वितीय अध्याय द्वितीय पादके २८वें सूत्रके 'नाभाव उपलब्धेः' भाष्यमें शङ्करने दूसरी तरहसे शून्यवादका खण्डन किया है। शङ्करका ब्रह्म 'चिन्मात्र' होने पर भी वह पूर्ण और सत्य ज्ञानानन्दस्वरूप कह कर प्रसिद्ध है। बृहदारण्यक उपनिषद्भाष्यमें उन्होंने ब्रह्मका पूर्ण नाम रखा है। यथा—

"न यद्युपहितेन रूपेण पूर्णतां वदामः किंतु केवलेन स्वरूपेण।" (बृहदारण्यक उपनिषद् ४।१)

शंकरका ब्रह्म निर्गुण चिन्मात्र होने पर भी वह पूर्ण और विभु है।

ब्रह्म केवल पूर्ण और विभु नहीं है, वे स्वप्रकाश हैं।

जगदुत्पत्तिका विषय शंकरने ईश्वरका अनुमान किया है। उन्होंने ब्रह्मसूत्रभाष्यमें प्रथम अध्यायके प्रथम पादमें द्वितीय सूत्रभाष्यमें लिखा है—

"न यथोक्तविशेषणस्य जगतो यथोक्तविशेषणमीश्वरं मुक्त्वान्यतः प्रधानादचेतनादणुभ्यो वा भावाद्वा संसारिणो वा उत्पत्त्यादि संभावयितुं शक्यम्।"

अर्थात् सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् ईश्वर या सगुण ब्रह्मव्यतीत शून्य या अतीव अणुसे अथवा जड़स्वभाव प्रकृतिसे अथवा परमाणुसे, जन्म अथवा मरणवान् संसारी जीवसे इस विचित्र जगत्का इस प्रकार सृष्टि-स्थिति-प्रलय होना किसी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता। शंकर भावपदार्थके पूर्ण विश्वासी थे। परंतु उनका स्वीकृत भावपदार्थ नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव है। वह भावपदार्थ चिदेकमात्र है।

तैत्तिरीय उपनिषद्के भाष्यमें शंकरने लिखा है—
"आत्मनः स्वरूपं ज्ञप्तिर्न ततो व्यतिरिच्यते अतो नित्यैव। प्राप्तमन्तवत्त्वं लौकिकस्य ज्ञानस्य, अन्तवत्त्वदर्शनात् अत स्तन्निवृत्त्यर्थं।" (२।१)

अर्थात् चिन्मात्र ही आत्माका स्वरूप है। यह ज्ञान उसके स्वरूपसे किसी प्रकार भिन्न नहीं है। अतएव यह नित्य है। किन्तु लौकिक ज्ञानकी सीमा है, ज्ञानस्वरूप आत्माका अन्तर्धान नहीं है, वह असीम और

प्रमाण है। सर्वोत्तम आँखोंसे हम जो ज्ञान देखते हैं, वह सुदीर्घ प्रत्यभिज्ञासे उपलब्ध है। छान्दोग्योपनिषद्भाष्यमें शंकरने लिखा है—

"आत्मान्यत्वेनैव विज्ञेयो न चेतरविषयत्वेनैव" इत्यादि।

(२।१।१)

अस्तु, उपनिषद्भाष्य और सूत्रभाष्यमें शंकरदर्शनका यह प्रधानतम एक सिद्धान्त विभूतरूपमें और विशदरूपमें आलोचित हो सकता है। आत्मा ही चिन्मात्र या केवल ज्ञानरूप है, शङ्कराचार्यने इस सिद्धान्तको अच्छी तरह विवृत किया है।

निर्विशेष ब्रह्म।

शंकरके मतसे ब्रह्म निर्गुण और निष्क्रिय हैं। वे स्थूल नहीं हैं, सत् नहीं हैं, असत् नहीं हैं, कार्य नहीं हैं, कारण भी नहीं हैं, ब्रह्म इन्द्रियातीत हैं। सुतरां वे वाक्यमनके अगोचर हैं, वहां वाक् नहीं जा सकता, मन नहीं जा सकता, चक्षु भी उन्हें ग्रहण नहीं कर सकता। वे ज्ञाता नहीं हैं और न ज्ञेय ही हैं, वे ज्ञानके अतीत और क्रियाके भी अतीत हैं।

श्रीशंकराचार्यने वेदान्तसूत्रभाष्यमें, गीताभाष्यमें, बृहदारण्यक तथा अनेक उपनिषद्भाष्योंमें निर्विशेष ब्रह्मके ज्ञापक हैं, ऐसे प्रमाणका उल्लेख कर अपने सिद्धान्तको संस्थापित किया है।

सविशेष या सगुण ब्रह्मको भी शंकरने अस्वीकार नहीं किया है। शंकरका कहना है, कि ईश्वर ही सगुण ब्रह्म हैं। मायाके सम्बन्धसे ब्रह्म ही सगुण ब्रह्म हैं। शंकराचार्यके सिद्धान्तानुसार सगुणब्रह्म मायिक है, अतएव ब्रह्मकी गुणमय अभिव्यक्ति अनित्य है। गुण जिस प्रकार अनित्य, ब्रह्मका सगुणत्व, अभिव्यक्ति भी उसी प्रकार अनित्य है। श्रुतिमें सविशेष और सगुण ब्रह्मका उल्लेख है। शंकराचार्यको ये सब श्रुतिवाक्य स्वीकार करने पड़े हैं; किन्तु शंकरके मायावादके वेदान्तिक प्रमाणसे श्रुतिके सगुण ब्रह्म अनित्य और मिथ्यारूपमें कल्पित हुए हैं। शंकरने इस सगुण ब्रह्मके ही शक्ति और गुणादिका अस्तित्व स्वीकार किया है। किन्तु यह सगुण ब्रह्म जब अनित्य और मायिक हैं, तब शक्ति भी मायिक है। सुतरां शंकराचार्य वस्तुतः शक्तिवादी नहीं हैं तथा किसी भी प्रकार शक्तिके पारमार्थिकत्वको स्वीकार नहीं करते।

शङ्करका कहना है, कि सृष्टिके आरम्भमें ही वे सगुण ब्रह्म कल्पित हुए हैं। जगत्‌की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय आदिका कारण भी यही सगुण ब्रह्म है। किन्तु आत्मज्ञानके विमल आलोकसे जब मायाका अन्धकार दूर होता है, तब फिर इस सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् ब्रह्मका अस्तित्व नहीं रहता। निर्विशेष ब्रह्म ही एकमात्र सार और पारमार्थिक तत्त्व है। शास्त्र और व्यवहारके अनुरोधसे शंकरने इस सगुण ब्रह्मको स्वीकार किया है, नहीं तो निर्विशेषमें परब्रह्म ही उनके मतसे तत्त्वका चरम सिद्धान्त है।

अभेदत्व वा अद्वैतवाद।

कोई कोई समझते हैं, कि अभेदवाद या ब्रह्मवाद शंकराचार्यका प्रवर्तित है, किन्तु ध्यानपूर्वक वेदान्तसूत्र पढ़नेसे सभी जान सकते हैं, कि वेदान्तसूत्र रचे जानेके बहुत पहले इस देशके ऋषियोंमें वे सब वाद ले कर घोर वादविसंवाद चलता था। आश्मरथ्य, औडुलोमि, बादरायण, आत्रेय, काशकृत्स्न और जैमिनि आदि ऋषिगण ब्रह्म और जीवके सम्बन्धमें भिन्न भिन्न अभिमत पोषण करते थे। शंकराचार्यने बादरि और काशकृत्स्नका मत समर्थन करके ही "ब्रह्म और जीव अभिन्न" यह मत प्रचार किया है। केवल माया द्वारा ही जीव और ब्रह्मका पार्थक्य सूचित होता है। ज्ञानके उदयसे जब माया तिरोहित होती है, तब जीव और ब्रह्ममें कोई भी भेद नहीं रहता। यह विविध विश्वप्रपञ्च केवल मायासे ही होता है। यह असत् और मायाविजृम्भित मात्र है। एकमात्र ब्रह्म ही सत् और नित्य है। वह ब्रह्म एक और अद्वितीय है। ब्रह्म और जीवमें कोई पृथक्ता नहीं है। मायावशतः विभिन्नता दिखाई देने पर भी वस्तुतः दोनों ही एक है। अतः ब्रह्मका गुण नहीं है, ब्रह्म निर्विशेष और विशुद्ध ज्ञानस्वरूप है।

ब्रह्म निर्गुण अर्थात् गुणसम्बन्धविवर्जित है। यदि कहा जाये, कि यह जो परिदृश्यमान विविध विचित्र विश्वप्रपञ्च दिखाई देता है, वह क्या असत्य है? अभेदवादी शंकरने इसके उत्तरमें कहा है, कि मायामा-

"श्लोकार्द्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः
ब्रह्मसत्य जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः ॥"

अर्थात् अनेक ग्रन्थोंमें शंकराचार्यके दार्शनिक तत्त्व-सम्बन्धमें जो सब सिद्धांत प्रकाशित हुए हैं, वह श्लोकार्द्धमें दिखलाये जाते हैं। वह सिद्धांत यह है, कि ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है, जीव ब्रह्मसे अभिन्न है।

फलतः शंकरका दार्शनिक अभिमत इन तीन विषयोंकी प्रगाढ़ आलोचना पर ही पर्यवसित हुआ है। किंतु एकमात्र ब्रह्म ही मूलतत्त्व है। ब्रह्म मनोवाक्यके अगोचर, अप्रतर्क्य, अविज्ञेय, एक, अद्वितीय, और चिन्मात्र हैं। शंकरका कहना है कि यह विचित्र विशाल विश्वब्रह्माण्ड सृष्टिके पहले एकमात्र चिन्मात्र परब्रह्म विद्यमान थे। वह परमब्रह्म एक और अद्वितीय हैं। ब्रह्म सत् और सृष्टि जगत् असत् है। माध्यमिक बौद्धोंका सिद्धान्त यह है, कि सृष्टिके पहले कुछ भी न था। श्रीपाद शंकराचार्यने माध्यमिक बौद्धोंके इस सिद्धान्तको खण्डन कर वैदिक मन्त्रकी भित्ति और तर्कयुक्तिके बल पर उन लोगोंका विपरीत सिद्धांत संस्थापन किया है। वे कहते हैं, कि असत्से सत्की उत्पत्ति असम्भव है।

माध्यमिक बौद्धगण शून्यवादी हैं। वे कहते हैं—

"रूपाणि रूपी पश्यति शून्यम्।
विज्ञान्यायतनं पश्यति शून्यन।"

फिर दूसरी जगह लिखा है—

"शून्यमाध्यात्मिकं पश्य पश्य शून्यं बहिर्गतम्।"
(माध्यमिक सू० १८ का०)

इस प्रकार शून्यवाद ब्रह्मनिरूपणात्मक ग्रंथमें नहीं है सो नहीं। हम श्रीभागवतमें देखते हैं—

"तत् सर्व्वदं विलमाकृत्य व्योम्नि धारयेत्।
तच्च त्यक्त्वा महारोहो न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥"(११।१४)

फिर दूसरी जगह लिखा है—

"समर्प्ये कुरु चात्मानं आत्ममर्प्येत सं कुरु।
आत्मानं समयं कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥"

ये सब उक्तियां शून्यवादका पोषक हैं। श्रीमच्छङ्कराचार्यने ब्रह्मतत्त्वका निरूपण करते हुए मायावादकी सहायतासे इस विचित्र विश्वप्रपञ्चको कार्यतः शून्यमें पर्यवसित किया है। उन्होंने ब्रह्मका जैसा स्वरूप निर्देश किया है वह व्यवहारिक विचारसे एक प्रकार शून्यवादका अपर पृष्ठ समझा जाता है। किंतु ब्रह्मसूत्रके द्वितीय अध्याय द्वितीय पादके २८वें सूत्रके 'नाभाव उपलब्धेः' भाष्यमें शङ्करने दूसरी तरहसे शून्यवादका खण्डन किया है। शङ्करका ब्रह्म 'चिन्मात्र' होने पर भी वह पूर्ण और सत्य ज्ञानानन्दस्वरूप कह कर प्रसिद्ध है। बृहदारण्यक उपनिषद्भाष्यमें उन्होंने ब्रह्मका पूर्ण नाम रखा है। यथा—

"न वयमुपहितेन रूपेण पूर्णतां वदामः किंतु केवलेन स्वरूपेण।" (बृहदारण्यक उपनिषद् ५।१)

शंकरका ब्रह्म निर्गुण चिन्मात्र होने पर भी वह पूर्ण और विभु है।

ब्रह्म केवल पूर्ण और विभु नहीं है, वे स्वप्रकाश हैं। जगदुत्पत्तिका विषय शंकरने ईश्वरका अनुमान किया है। उन्होंने ब्रह्मसूत्रभाष्यमें प्रथम अध्यायके प्रथम पादमें द्वितीय सूत्रभाष्यमें लिखा है—

"न यथोक्तविशेषणस्य जगतो यथोक्तविशेषणमीश्वरं मुक्त्वान्यतः प्रधानादचेतनादणुभ्यो वा भावाद्वा संसारिणो वा उत्पत्त्यादि संभावयितुं शक्यम्।"

अर्थात् सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् ईश्वर या सगुण ब्रह्मव्यतीत शून्य या अतीव अणुसे अथवा जड़स्वभाव प्रकृतिसे अथवा परमाणुसे, जन्म अथवा मरणवान् संसारी जीवसे इस विचित्र जगत्का इस प्रकार सृष्टि-स्थिति-प्रलय होना किसी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता। शंकर भावपदार्थके पूर्ण विश्वासी थे। परंतु उनका स्वीकृत भावपदार्थ नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव है। यह भावपदार्थ चिदेकमात्र है।

तैत्तिरीय उपनिषद्के भाष्यमें शंकरने लिखा है—
"आत्मनः स्वरूपो ज्ञप्तिर्न ततो व्यतिरिच्यते अतो नित्यैव। प्राप्तमप्यत्रस्य लौकिकस्य ज्ञानस्य अन्तवत्त्वदर्शनात् अन्तवत्त्वनिवृत्यर्थं।" (२।१)

अर्थात् चिन्मात्र ही आत्माका स्वरूप है। यह ज्ञान उसके स्वरूपसे किसी प्रकार भिन्न नहीं है। अतएव यह नित्य है। किन्तु लौकिक ज्ञानकी सीमा है, ज्ञानस्वरूप आत्माका अन्तर्धान नहीं है, यह असीम और

मानना है। मरीचिका आँखोंसे हम जो जल देखते हैं, वह दृष्टि भ्रान्तिमात्रसे उपलब्ध है। कठोपनिषद्भाष्यमें शंकरने लिखा है—

"आत्मावगम्यनिर्विशेषत्वं न चेन्द्रियग्राह्यत्वात्" इत्यादि।

(२।३।१२)

अद्यापि उपनिषद्भाष्य और सूत्रभाष्यमें शंकरदर्शनका यह प्रधानतम एक सिद्धांत विवृतरूपमें और विशदरूपमें आलोचित हो सकता है। आत्मा जो विज्ञान या केवल ज्ञानरूप है, शङ्कराचार्यने इस सिद्धांतको अच्छी तरह विवृत किया है।

निर्विशेष ब्रह्म।

शंकरके मतमें ब्रह्म निर्गुण और निष्क्रिय है। वे स्थूल नहीं हैं, सत् नहीं हैं, असत् नहीं हैं, कार्य नहीं हैं, कारण भी नहीं हैं, ब्रह्म इन्द्रियातीत हैं। सुतरां वे वाक्यमनके अगोचर हैं, वहाँ चक्षु नहीं जा सकता, मन नहीं जा सकता, वाक्य भी उन्हें व्यक्त नहीं कर सकता। वे ज्ञाता नहीं हैं और न ज्ञेय ही हैं, वे ज्ञानके अतीत और क्रियाके भी अतीत हैं।

श्रीशंकराचार्यने वेदांतसूत्रभाष्यमें, गीताभाष्यमें, बृहदारण्यक तथा अनेक उपनिषद्भाष्यमें निर्विशेष ब्रह्मके ज्ञापक हैं, ऐसे प्रमाणका उल्लेख कर अपने सिद्धांतको संस्थापित किया है।

सविशेष या सगुण ब्रह्मको भी शंकरने अस्वीकार नहीं किया है। शंकरका कहना है, कि ईश्वर ही सगुण ब्रह्म हैं। मायाके सम्बन्धसे ब्रह्म ही सगुण ब्रह्म हैं। शंकराचार्यके सिद्धान्तानुसार सगुणब्रह्म मायिक हैं, अतएव ब्रह्मकी गुणगत अभिव्यक्ति अनित्य है। गुण जिस प्रकार अनित्य ब्रह्मका सगुण है, अभिव्यक्ति भी उसी प्रकार अनित्य है। श्रुतिमें सविशेष और सगुण ब्रह्मका उल्लेख है। शंकराचार्यको वे सब श्रुतिवाक्य स्वीकार करने पड़े हैं। किन्तु शंकरके मायावादके अन्तःप्राविष्ट प्रभावसे श्रुतिके सगुण ब्रह्म अनित्य और मिथ्यारूपमें कल्पित हुए हैं। शंकरने इस सगुण ब्रह्ममें ही शक्ति और गुणादिका अस्तित्व स्वीकार किया है। किन्तु यह सगुण ब्रह्म जब अनित्य और मायिक है, तब शक्ति भी मायिक है। सुतरां शंकराचार्य यथार्थमें शक्ति-मानते नहीं हैं तथा किसी भी प्रकार शक्तिके पारमार्थिकत्वको स्वीकार नहीं करते।

शङ्करका कहना है, कि व्यावहारिक भावमें ही वे सगुण ब्रह्म स्वीकृत हुए हैं। जगत्‌की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय आदिका कारण भी वही सगुण ब्रह्म है। किन्तु आत्मज्ञानके विमल आलोकसे जब मायाका अन्धकार दूर होता है, तब फिर इस सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् ब्रह्मका अस्तित्व नहीं रहता। निर्विशेष ब्रह्म ही एकमात्र सार और पारमार्थिक तत्त्व है। शास्त्र और व्यवहारके अनुरोधसे शंकरने इस सगुण ब्रह्मको स्वीकार किया है, नहीं तो निर्विशेष परब्रह्म ही उनके ब्रह्मतत्त्वका चरम सिद्धान्त है।

अभेदवाद वा अद्वैतवाद।

कोई कोई समझते हैं, कि अभेदवाद या ब्रह्मवाद शंकराचार्यका प्रवर्तित है, किन्तु ध्यानपूर्वक वेदान्तसूत्र पढ़नेसे जाना जा सकता है, कि वेदान्तसूत्र रचे जानेके बहुत पहले इस देशके ऋषियोंमें वे सब वाद ले कर यथेष्ट वादविवाद चलता था। आश्मरथ्य, औडुलोमि, बादरायण, बादरि, काशकृत्स्न और जैमिनि आदि ऋषिगण ब्रह्म और जीवके सम्बन्धमें भिन्न भिन्न अभिमत पोषण करते थे। शंकराचार्यने बादरि और काशकृत्स्नका मत समर्थन करके ही "ब्रह्म और जीव अभिन्न" यह मत प्रचार किया है। केवल माया द्वारा ही जीव और ब्रह्मका पार्थक्य सूचित होता है। ज्ञानके प्रभावसे जब माया तिरोहित होती है, तब जीव और ब्रह्ममें कोई भी भेद नहीं रहता। यह निखिल विश्वब्रह्माण्ड केवल मायाकी ही लीला है। यह असत् और मायाविजृम्भित मात्र है। एकमात्र ब्रह्म ही सत् और नित्य है। वह ब्रह्म एक और अद्वितीय है। ब्रह्म और जीवमें कोई पृथक्ता नहीं है। मायावशतः विभिन्नता दिखाई देने पर भी मूलतः दोनों ही एक हैं। अतः ब्रह्मका गुण नहीं है, ब्रह्म चिदेकमात्र और विशुद्ध ज्ञानस्वरूप है।

ब्रह्म निर्गुण अर्थात् गुणसम्बन्धवर्जित है। यदि कहा जाये, कि यह जो वस्तुसमूह विचित्र विशाल विश्वब्रह्माण्ड दिखाई देता है, वह क्या असत्य है? अभेदवादी शंकरने इसके उत्तरमें कहा है, कि

र्थिक हिसाबसे यह विश्व ब्रह्माण्ड अलीक और अवान्तर नहीं है, तो क्या है? सगुण ब्रह्मके मायागुणसे ही जगत्प्रपञ्चका अस्तित्व प्रतिभात होता है। यह जगत् एक इन्द्रजाल मात्र है। यह माया अविद्या नामसे भी पुकारी जाती है। यह माया सत् भी नहीं है और न असत् ही है। तत्त्वज्ञानके निकट यह माया असत् और व्यवहारिक ज्ञानके सामने सत् मानी जाती है। यह माया सदसद्‌रूपिणी और अनिर्वचनीय माया ही जगत्‌का उपादान है। मायागुणसमन्वित ब्रह्म ही ईश्वर है। ईश्वर मायाशक्तिके इन्द्रजालमें ऐन्द्रजालिककी तरह यह जगत् मायाधीन जीवको प्रत्यक्ष दिखलाता है। माया ही भेदज्ञानका कारण है। यह जो अनन्त जीव प्रत्यक्ष दिखाई देता है, इनकी पृथक्‌ता केवल माया होकी क्रीड़ा मात्र है। नहीं तो एक अखण्ड अद्वितीय ब्रह्मको छोड़ और सभी मायाके इन्द्रजालमात्र हैं। मायाबद्ध व्यक्तिके जो पारोक्ष-ज्ञान है, वह भी मिथ्या है। बद्ध-जीव मायाका मोह आवरण भेद कर परमतत्त्व देख नहीं सकता, अतएव मायाबद्ध जीवके 'अहं ब्रह्म' ऐसा ज्ञान नहीं होता। जीव अपनेको ब्रह्म न समझ कर मायाकी उपाधिको ही अहं समझता है। मायोपहित देही जीव अहं समझ कर भ्रान्तिकूपमें गोता खाते हैं, सुविशाल ब्रह्म-सागरकी आनन्दलीलालहरी फिर उसके ज्ञाननेत्रका गोचर नहीं होती। आत्मा विशुद्ध ज्ञानस्वरूप निष्क्रिय और अनन्त है, जीवको यह ज्ञान नहीं रहता। जीवका ज्ञान अपनी देहमें सीमाबद्ध रहती है। इस समय जीव अपने कृतकर्मके फलसे सुकृति दुष्कृति अर्जन करता है। इस कारण जीवको सुख दुःख का भोग करना होता है तथा जन्म-मरण-प्रवाहरूप यातना सह्य करनी होती है। ईश्वर जीवोंको दुष्कृति और सुकृतिका फल देता है। कल्पके अन्तमें जगत्‌का प्रलय होता है। उस समय यह विचित्र विश्वब्रह्माण्ड मायामें विलीन हो जाता है। जीवको फिर कोई उपाधि नहीं रहती। किन्तु फिर भी जब तक उनके कृतकर्मोका प्रायश्चित्त नहीं होता, तब तक वे कर्मानुसार जन्मग्रहण करते हैं। इस प्रकार मायाबद्ध जीव अनन्त संसार-प्रवाहमें भ्रमण करते हैं।

मुक्तिका उपाय।

शंकरका कहना है, कि इस अनन्त संसार-प्रवाहसे जीव किस प्रकार विमुक्त हो सकता है, उसका विधान वेदमें देखनेमें आता है। कर्मकाण्डमें यागयज्ञ आदि क्रियादिकी व्यवस्था है। किन्तु इससे जीव मुक्तिलाभ नहीं करता। स्वर्गादिके लिये कितने भी यज्ञका अनुष्ठान क्यों न किया जाये, उससे जीवकी मुक्ति नहीं हो सकती। वैदिक ज्ञानकाण्डकी पर्यालोचनासे दो प्रकार ब्रह्मके विषय जाने गये हैं—एक सगुण ब्रह्म और दूसरा निर्गुण ब्रह्म। सगुण ब्रह्मका ईश्वर नाम रखा गया है। जागतिक क्रियादि इस सगुण ब्रह्मका कार्य है। सगुण ब्रह्मके साथ ही इस जगत्प्रपञ्चका सम्बन्ध है। परम ब्रह्म निर्गुण और निष्क्रिय है। उनके साथ मायिक जगत्‌का कोई भी सम्बन्ध नहीं है, वे परमात्मा हैं। सगुण ब्रह्मकी उपासनासे मुक्तिलाभ नहीं होता। पर ब्रह्मका ज्ञान नहीं होनेसे संसारदुःखसे जीव मुक्तिलाभ नहीं कर सकता। "तत्त्वमसि" महावाक्यके अनुष्ठानसे जीव और ब्रह्मका भिन्न ज्ञान जब तिरोहित होता है, तभी जीव मुक्तिलाभ कर अपने स्वरूपको प्राप्त होता है। शंकरके सिद्धान्तका यही सारगर्भ संक्षिप्त मर्म है। वेदान्त शब्द देखो।

शङ्करादि (सं० पु०) शुक्लार्कवृक्ष, सफेद मदारका पेड़। (राजनि०)

शङ्करानन्द (सं० पु०) १ श्रुतिगीताटीकाकार। २ ब्रह्मसूत्रदीपिकाके रचयिता। ३ विवेकसारके प्रणेता, आनन्दात्माके शिष्य।

शङ्करानन्द—वाञ्छेश और तेंकटाम्बाके पुत्र। ये सायण और पञ्चदशीकार माधवाचार्यके गुरु थे। शंकरानन्द आनन्दात्म मुनिके शिष्य थे। इन्होंने आत्मपुराण* नामक वेदांतिक ग्रन्थकी रचना की। इनके रचित दूसरे ग्रन्थ ये सब हैं—भगवद्गीतातात्पर्यबोधिनी, शिवसहस्रनामटीका, सर्वपुराणसार, यत्यनुष्ठानपद्धति। इन्होंने निम्नलिखित उपनिषद्‌की दीपिका रची—अथर्व-

---

* "उपनिषद्-रत्न" इसका दूसरा नाम है। इसमें श्लोकके आकारके बहुत सी उपनिषद्‌के विवरण लिपिबद्ध है।"

निषद्, अथर्वशिरा, अमृतबिन्दु, आरुणक, ऐतरेयक, ऐतरेय, काठक, गर्भोपनिषद्, ... कैवल्य, कौषीतक, गर्भ, छान्दोग्य, जाबाल, तैत्तिरीय, नारायण, नृसिंहोत्तरतापनीय, परमहंस, ब्रह्म, प्रश्न, ब्रह्मबिन्दु, महोपनिषद्, माण्डूक्य, मुण्डक, श्वेताश्वतर और हंस।

शङ्करानन्दतीर्थ—शिवरामानन्दतीर्थके शिष्य। इन्होंने पद्यरत्नावलीकी रचना की।

शङ्करानन्दनाथ—त्रिपुरासुन्दरी महोदयके रचयिता। ये रामानन्दनाथके शिष्य थे। इन्होंने अपने ग्रन्थमें महार्थमञ्जरीका उल्लेख किया है।

शङ्कराभरण (सं० पु०) सम्पूर्ण जातिका एक प्रकारका राग। यह मायामालवगौल रागका पुत्र माना जाता है। इसके गानेका समय प्रभात है और किसीके मतसे सायंकालमें १६ दण्डसे २० दण्ड तक भी गाया जा सकता है।

शङ्करालय (सं० पु०) शङ्करका आलय, निवासस्थान, कैलास।

शङ्करावास (सं० पु०) १ महादेवका आवास स्थान, कैलास। २ भीमसेन कर्पूर, कपूर। (राजनि०)

शङ्कराह्वा (सं० स्त्री०) शमीका वृक्ष।

शङ्करी (सं० स्त्री०) १ शिवकी पत्नी पार्वती। २ मञ्जिष्ठा, मजीठ। ३ शमीका वृक्ष। ४ एक रागिनी जो मालकोसकी सहचरी मानी जाती है। (त्रि०) ५ कल्याण करनेवाली, मङ्गल करनेवाली।

शङ्करीय (सं० त्रि०) शङ्करसम्बन्धी। (पा ४।२।११४)

शङ्कर्षण (सं० पु०) १ विष्णु। (भा० ६।१६।४ म० २२) २ रोहिणीके पुत्रका नाम।

शङ्कव (सं० स्त्री०) शङ्कुकी मछली।

शङ्कवत् (सं० त्रि०) शङ्कुर्विद्यते यस्य शङ्कु मतुप्। शङ्कुलक्षणयुक्त।

शङ्का (सं० स्त्री०) १ मनमें होनेवाला अनिष्टका भय, डर, खौफ। २ किसी विषयकी सत्यता या यथार्थता के सम्बन्धमें होनेवाला सन्देह, आशंका, संशय, शक। ३ साहित्यके अनुसार एक संचारी भाव, अपने किसी अनुचित व्यवहार अथवा किसी और कारणसे होनेवाली इष्टहानिकी चिन्ता।

शङ्काभिशाप (सं० पु०) स्मृतिके अनुसार एक प्रकारका पाप या अभिशाप जो मिथ्या-शङ्काके ... करनेसे होता है।

शङ्कामय (सं० त्रि०) शङ्का-मयट्। शङ्कायुक्त। (शुक्लयजु० ३०।१३)

शङ्कित (सं० त्रि०) शङ्का जाता अस्य शङ्का-इतच्। १ भीत, डरा हुआ। (विशेष) २ सन्दिग्ध, जिसमें सन्देह हुआ हो। ३ शङ्कायुक्त, अनिश्चित। (पु०) ४ चोरक या चोर नामका गन्धद्रव्य। (राजनि०)

शङ्कितवर्णक (सं० पु०) शङ्कितं यथा ... शाकटायनादिकं वा वर्णाकृति नयन्ति, इति वर्ण-ण्वुल्। तस्कर, चोर।

शङ्कितव्य (सं० त्रि०) शङ्क-तव्य। शङ्कनीय, भयके उपयुक्त।

शङ्किन् (सं० त्रि०) शङ्का विद्यतेऽस्य। शङ्कान्वित, भययुक्त।

शङ्कु (सं० पु०) शङ्कतेऽनेनेति शङ्क (मृगय्वादयश्च। उण् १।३७) इति कुप्रत्ययेन निपातनात् साधु। १ कोई नुकीली वस्तु। २ खूंटी, कील। ३ भाला, बरछा। ४ खूंटी। ५ शूल, कील। ६ कामदेव। ७ शिव। ८ राक्षस। ९ विष। १० हंस। ११ एक प्रकारकी मछली। १२ गणनाके अनुसार दस लाख करोड़की एक संख्या, शंख। १३ प्राचीन कालका एक प्रकारका बाजा। १४ कलोंज, कीलें। १५ पत्र, नाग। १६ पुराणानुसार ... विश्वामित्रके पुत्रोंमेंसे एक। १७ उग्रसेनका एक पुत्र। (भागवत ९।२४।२४) १८ शिवके अनुचर एक गन्धर्वका नाम। १९ विष्णु। २० पत्तोंकी नसें। २१ हाथीके दस अंगुलकी ... २२ बारह अंगुलकी एक खूंटी जिसकी सहायतासे प्राचीन कालमें सूर्य या दीपकी छाया नापी जाती थी ... होता था। २३ बारह अङ्गुलकी एक माप। २४ ... जिसके ... और ... होता है। २५ ... २६ ...

शङ्कुक—१ भुवनाभ्युदयकाव्यके प्रणेता। इनके और ... काव्यमालामें परिचय ... जाता है। २ एक कवि। ये मयूरके पुत्र थे।

र्थिक हिसाबसे यह विश्व ब्रह्माण्ड अलीक और अवान्तर नहीं है, तो क्या है ? सगुण ब्रह्मके मायागुणसे ही जगत्प्रपञ्चका अस्तित्व प्रतिभात होता है। यह जगत् एक इन्द्रजाल मात्र है। यह माया अविद्या नामसे भी पुकारी जाती है। यह माया सत् भी नहीं है और न असत् ही है। तत्त्वज्ञानके निकट यह माया असत् और व्यावहारिक ज्ञानके सामने सत् मानी जाती है। यह माया सदसदात्मिका और अनिर्वचनीय माया ही जगत्की उपादान है। मायागुणसमन्वित ब्रह्म ही ईश्वर है। ईश्वर मायाशक्तिके इन्द्रजालमें ऐन्द्रजालिककी तरह यह जगत् मायाधीन जीवको प्रत्यक्ष दिखलाता है। माया ही भेदज्ञानका कारण है। यह जो अनन्त जीव प्रत्यक्ष दिखाई देता है, इनकी पृथक्ता केवल माया होकी क्रीड़ा मात्र है। नहीं तो एक अखण्ड अद्वितीय ब्रह्मको छोड़ और सभी मायाके इन्द्रजालमात्र हैं। मायाबद्ध व्यक्तिके जो पार्थिव-ज्ञान है, वह भी मिथ्या है। बद्धजीव मायाका मोह आवरण भेद कर परमतत्त्व देख नहीं सकता, अतएव मायाबद्ध जीवके 'अहं ब्रह्म' ऐसा ज्ञान नहीं होता। जीव अपनेको ब्रह्म न समझ कर मायाकी उपाधिको ही अहं समझता है। मायोपहित देही जीव अहं समझ कर भ्रान्तिकूपमें गोता खाते हैं, सुविशाल ब्रह्म-सागरकी आनन्दलीलालहरी फिर उसके ज्ञाननेत्रका गोचर नहीं होती। आत्मा विशुद्ध ज्ञानस्वरूप निष्क्रिय और अनन्त है, जीवको यह ज्ञान नहीं रहता। जीवका ज्ञान अपनी देहमें सीमाबद्ध रहती है। इस समय जीव अपने कृतकर्मोंके फलसे सुकृति दुष्कृति अर्जन करता है। इस कारण जीवको सुख दुःखका भोग करना होता है तथा जन्म-मरण-प्रवाहरूप यातना सह्य करनी होती है। ईश्वर जीवोंको दुष्कृति और सुकृतिका फल देता है। कल्पके अन्तमें जगत्का प्रलय होता है। उस समय यह निखिल विश्वब्रह्माण्ड मायामें विलीन हो जाता है। जीवको फिर कोई उपाधि नहीं रहती। किन्तु फिर भी जब तक उनके कृतकर्मोंका प्रायश्चित्त नहीं होता, तब तक वे कर्मानुसार जन्मग्रहण करते हैं। इस प्रकार मायाबद्ध जीव अनन्त संसार प्रवाहमें भ्रमण करते हैं।

मुक्तिका उपाय।

शंकरका कहना है, कि इस अनन्त संसार-प्रवाहसे जीव किस प्रकार विमुक्त हो सकता है, उसका विधान वेदमें देखनेमें आता है। कर्मकाण्डमें यागयज्ञ आदि क्रियादिकी व्यवस्था है। किन्तु इससे जीव मुक्तिलाभ नहीं करता। स्वर्गादिके लिये कितने भी यज्ञका अनुष्ठान क्यों न किया जाये, उससे जीवको मुक्ति नहीं हो सकती। वैदिक ज्ञानकाण्डकी पर्यालोचनासे दो प्रकार ब्रह्मके विषय जाने गये हैं—एक सगुण ब्रह्म और दूसरा निर्गुण ब्रह्म। सगुण ब्रह्मका ईश्वर नाम रखा गया है। जागतिक क्रियादि इस सगुण ब्रह्मका कार्य है। सगुण ब्रह्मके साथ ही इस जगत्प्रपञ्चका सम्बन्ध है। परम ब्रह्म निर्गुण और निष्क्रिय है। उनके साथ मायिक जगत्का कोई भी सम्बन्ध नहीं है, वे परमात्मा हैं। सगुण ब्रह्मकी उपासनासे मुक्तिलाभ नहीं होता। पर ब्रह्मका ज्ञान नहीं होनेसे संसारदुःखसे जीव मुक्ति लाभ नहीं कर सकता। "तत्त्वमसि" महावाक्यके अनुष्ठानसे जीव और ब्रह्मका भिन्न ज्ञान जब तिरोहित होता है, तभी जीव मुक्तिलाभ कर अपने स्वरूपको प्राप्त होता है। शंकरके सिद्धान्तका यही सारगर्भसंक्षिप्त मर्म है। वेदान्त शब्द देखो।

शङ्करादि (सं० पु०) शुक्लार्कवृक्ष, सफेद मदारका पेड़। (राजनि०)

शङ्करानन्द (सं० पु०) १ श्रुतिगीताटीकाकार। २ ब्रह्मसूत्रप्रदीपके रचयिता। ३ विवेकसारके प्रणेता, आनन्दात्माके शिष्य।

शङ्करानन्द—पाकठेश्न और तेंकटाम्बाके पुत्र। ये सायण और पञ्चदशीकार माधवाचार्यके गुरु थे। शंकरानन्द आनन्दात्म मुनिके शिष्य थे। इन्होंने आत्मपुराण* नामक वेदांतिक ग्रन्थकी रचना की। इनके रचित दूसरे ग्रन्थ ये सब हैं—भगवद्गीतातात्पर्यबोधिनी, शिवसहस्रनामटीका, सर्वपुराणसार, यत्यनुष्ठानपद्धति। इन्होंने निम्नलिखित उपनिषद्की दीपिका रची—अथर्व-

* "उपनिषद्-रत्न" इसका दूसरा नाम है। इसमें श्लोकके आकारमें बहुत सी उपनिषदोंके विषय लिपिबद्ध है।"

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें शंखोत्पत्तिविवरण इस प्रकार लिखा है—देवादिदेव महादेवका मध्याह्न कालके मार्त्तण्ड सदृश देदीप्यमान शूल जब दानवप्रवीर शंखचूड़के ऊपर गिरा तब उसकी देह भस्म हो गई। इस पर महादेव बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने उसकी हड्डियोंको लवणाम्बुमें फेंक दिया। उन्हीं सब हड्डियोंसे नाना प्रकारके शंखोंकी उत्पत्ति हुई। (ब्रह्मवै० प्रकृतिख० १८ अ०)

शंखका माहात्म्य—देवतादिकी पूजामें शंख अति पवित्र पदार्थ है। उसका जल तीर्थजल सदृश तथा देवताओंका अत्यन्त प्रीतिप्रद है। शंखकी ध्वनि जहां तक जाती है, वहां लक्ष्मीदेवी स्थिरभावसे अवस्थान करती हैं। शंखमें सर्वदा हरि वास करते हैं, अतः जहां शंख रहता है, लक्ष्मीभगवान् वहांका कुछ अमङ्गल दूर कर सर्वदा उस स्थानमें वास करते हैं। किन्तु यदि किसी स्त्रीशूद्र द्वारा वह शंख बजाया जाय, तो लक्ष्मी नाराज और अप्रसन्न हो कर वहांसे दूसरी जगह चली जाती हैं। (ब्रह्मवै०) शंखमें कपिला गायका दूध भर कर उससे नारायणको स्नान करानेसे बहुत महत्व यज्ञका फल लाभ होता है। जिस किसी गायका दूध शंखमें भर कर नारायणको स्नान करानेसे [illegible] लाभ होता। शंखस्थ गङ्गाजल द्वारा 'नमो नारायणाय' कह कर विष्णुको स्नान करानेसे जीव योनिसमूहसे मुक्त होता है। शंखाङ्कस्थ विष्णुपादोदकको शिर पर लिया कर अन्त वैष्णवोंको देनेसे चान्द्रायणव्रतका फललाभ होता है। नदी, तड़ाग, कूप, सरोवर, ह्रद आदि जिस किसी जलाशयका जल क्यों न हो, वह शंखमें डालनेसे गङ्गाजलके समान हो जाता है। जो वैष्णव शंखस्थ विष्णुपादाम्बुको मस्तक पर धारण कर नित्य ग्रहण करता है, उसको नित्य [illegible] होती है। त्रिभुवनमें जितने तीर्थ हैं वासुदेवकी आज्ञासे वे सभी शंखके भीतर अधिष्ठित हैं, इस कारण "त्वं पुरा सागरोत्पन्नो विष्णुना विधृतः करे। मानितः सर्वदेवैश्च पाञ्चजन्य नमोऽस्तु ते।" इस प्रकारसे सदा शंखकी अर्चना करना कर्त्तव्य है। जल पुष्प अक्षतादि द्वारा जो वासुदेवके सामने शंखकी अर्चना करते हैं, लक्ष्मी उन पर सदा प्रसन्न रहती हैं।

शंखकी अर्चना करनेसे भी दूर रहे, और इसीसे सारे ही सूर्योदय होने पर तिमिरविन्दुकी तरह पापराशि विलुप्त हो जाती है। पाञ्चजन्य शंखके दर्शनसे असुर पिशाचोंके गर्भ सहस्र खण्डोंमें विभक्त हो विनष्ट होते हैं। भूत, पिशाच, राक्षस आदि जिस व्यक्तिके सिर पर शंखोदक है, उसे देख भयभीत हो दूर भागते हैं। नित्य, नैमित्तिक और काम्य स्नानार्चन विधिमें जो शंखकी अर्चना करते हैं, [illegible] उनकी गति होती है। (पद्मोत्तर० [illegible] अ०)

दक्षिणावर्त्तशंखमाहात्म्य—[illegible] लक्ष्मीके छिपाये आ कर दक्षिणावर्त्तशंख द्वारा विधिवत् अभिषेक करनेसे सभी पाप नष्ट होते हैं। तिल और जल संयुक्त दक्षिणावर्त्तशंख द्वारा जल प्रवाहकी पूर्वादि[illegible] सभीके मासिन पर्यन्त निराहार रह कर यथा विधि अभिषेक करनेसे जीवन भरका किया हुआ पाप उसी समय नष्ट होता है। दक्षिणावर्त्तशंख द्वारा परिशोधित जल हरिविष्णुके मस्तक पर धारण करनेसे जन्मान्तरीय पाप उसी समय जाते रहते हैं। इससे कभी भी मछली या शूकरको नहीं मारना चाहिये। इस शंखमें जलपान करना सर्वदा निषिद्ध है। (वाराह०)

दक्षिणावर्त्तशंख साधारणतः दुष्प्राप्य है। इस कारण इसका मूल्य भी अधिक है। एक दक्षिणावर्त्तशंख गुणानुसार ४००) ५००) रुपयेमें बिकता है। वामावर्त्तशंखको जहां हम मुंह लगा कर फूंका करते हैं, दक्षिणावर्त्तशंख वह मुख कानमें लगानेसे अपूर्व मधुर ध्वनि कर्णकुहरमें प्रवेश करती है। इस प्रकारके कारण वह एक [illegible] लिया जाता है।

आह्निकाचारतत्त्वमें लिखा है, कि दक्षिणावर्त्तशंख द्वारा हरिको अर्चना करनेसे सात जन्मका पाप नष्ट होते हैं।

युक्तिकल्पतरु ग्रन्थमें शंखको रत्नविशेषमें लिया गया है। यह शंख [illegible] सुराष्ट्र देशके पास [illegible] ही पाया जाता है। इसका वर्ण [illegible] की तरह या स्फटिकतुल्य होता है। शुद्ध बहुत सूक्ष्म और वह बहुत भारी तथा बड़ा होता है। वाम और दक्षिणावर्त्त भेदसे यह दो प्रकारका है, इनमेंसे दक्षिणावर्त्त शुभ, [illegible] और धनप्रद है।

शङ्कुकर्ण (सं० पु०) शंकु इव कर्णौ यस्य। १ गर्दभ, गदहा। (त्रिका०) २ दानवविशेष। (हरिवंश ३।८१) ३ नागविशेष। (भारत १।५७।१५) ४ शंकु सदृश कर्णविशिष्ट, वह जिसके कान शंकुके समान लम्बे और नुकीले हों।

शङ्कुकर्णी (सं० पु०) शिव, महादेव।

शङ्कुकर्णेश्वर (सं० पु०) शिवलिङ्गभेद। (भारत वनपर्व)

शङ्कुचि (सं० पु०) शंकुमत्स्य, सकुची मछली। (शब्दरत्ना०)

शङ्कुच्छाया (सं० स्त्री०) प्राचीन कालकी बारह अंगुलकी एक नुकीली खूंटी। इसका ऊपरी भाग नुकीला होता था। इसकी छायासे समयका परिमाण मालूम किया जाता था।

शङ्कुजिह्वा (सं० स्त्री०) ज्योतिषके अनुसार एक गणित Gnomon-sine)।

शङ्कुतरु (सं० पु०) शंकुरिव तरुः। शालका वृक्ष। (शब्दरत्ना०)

शङ्कुद्वार (सं० पु०) गुजरातके समीपके एक छोटे टापूका नाम। यहां शंकु नारायणकी मूर्त्ति है।

शङ्कुनारायण (सं० पु०) नारायणकी वह मूर्त्ति जो शंकुद्वार टापूमें है।

शङ्कुपथ (सं० पु०) पथभेद। (पा ५।१।७७)

शङ्कुपुच्छ (सं० क्ली०) जिसकी पूंछमें डंक हो। (रामायण० ३।१६६)

शङ्कुफणिन् (सं० पु०) जलमें होनेवाला जन्तु, जलचर। (हेम)

शङ्कुफलिका (सं० स्त्री०) सफेद कीकर।

शङ्कुफल्ली (सं० स्त्री०) सफेद कीकर।

शङ्कुमत् (सं० त्रि०) शंकु अस्त्यर्थे मतुप्। शंकुविशिष्ट, शंकुयुक्त।

शङ्कुमती (सं० स्त्री०) एक वैदिक छन्द। इसके पहले पादमें पांच और शेष तीनोंमें छः छः या इनसे कुछ न्यूनाधिक वर्ण होते हैं।

शङ्कुमुख (सं० त्रि०) १ शंकुके समान मुखवाला। (पु०) २ कुम्भीर, मगर। ३ चूहा, बिल्ली आदि।

शङ्कुमुखी (सं० स्त्री०) जलौका, जोंक।

शङ्कुर (सं० त्रि०) शंक्यतेऽस्मादिति शंक बाहुलकात् उरच्। १ त्रासदायी, भीषण, भयंकर। (हेम) २ पुराणानुसार एक दानवका नाम। (विष्णुपु०)

शङ्कुला (सं० स्त्री०) शंकु पूर्वात् लातेः (आतोऽनुपसर्गे कः। पा ३।२।३) इति कप्रत्यये शंकुला, (उण् १।३७) शङ्कुपूर्वाल्लातेर्घञर्थे कविधानमिति वा क प्रत्ययः। (काशिका ६।३।६) १ उत्पलपत्रिका। २ पूगकर्त्तरी, सुपारी काटनेका सरौता।

शङ्कुलाखण्ड (सं० क्ली०) वह वस्तु जो सरौतेसे दो खण्ड की गई हो।

शङ्कुवृक्ष (सं० पु०) शंकुरिव वृक्षः। शालका पेड़। (रत्नमाला)

शङ्कुशिरस् (सं० पु०) असुरविशेष। (भागवत ६।६।३०)

शङ्कुश्रवणा (सं० त्रि०) शङ्कुरिव श्रवणौ यस्य। शंकुके समान कर्णविशिष्ट, जिसके कान शंकुके समान हों। शङ्कुके समान कान होनेसे राजा होता है।

शङ्कुष्ठ (सं० त्रि०) शङ्कु-स्था-क, सस्य षः। (पा ८।३।९७) शङ्कुमें अवस्थित।

शङ्कुस् (सं० त्रि०) शम्-शं-क्विप्। मङ्गलकारी।

शङ्कोच (सं० पु०) शङ्कुमत्स्य, सकुची मछली। (जटाधर)

शङ्कोचि (सं० पु०) शङ्कोच देखो।

शङ्कौशिक (सं० त्रि०) नैमित्तिक।

शङ्ख (सं० पु० क्ली०) शाम्यति अशुभमस्मादिति शम-ख (शमेः खः। उण् १।१०४) समुद्रोद्भव जन्तु विशेष, एक प्रकारका बड़ा घोंघा जो समुद्रमें पाया जाता है। पर्याय—कम्बु, कम्बोज, अब्ज, जलज, अर्णोभव, पावनध्वनि, अन्तःकुटिल, महानाद, श्वेत, पूत, मुखर, दीर्घनाद, बहुनाद, हरिप्रिय। गुण—कटुरस, पुष्टिवर्द्धक, वीर्य और बलप्रद, गुल्म, शूल, कफ, श्वास, और विषदोषनाशक।

भावप्रकाशमें लिखा है—शंख, क्षुद्रशंख, झिनुक, शम्बूक और वराट आदि कीटस्थ जीव मधुर, स्निग्ध, वातपित्तहर, हिम, पुष्टिद, मलकारक, शुक्रल और बलवर्धक होता है।

राजवल्लभमें कहा है, कि शंख और समुद्रफेन शीतवीर्य, कषायरसविशिष्ट और अति वर्द्धिमलनिःसारक है।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें शंखोत्पत्तिविवरण इस प्रकार लिखा है—देवाधिदेव महादेवका प्रचण्ड कालके मार्त्तण्ड सदृश देदीप्यमान शूल जब दानवश्रेष्ठ शंखचूड़के ऊपर गिरा तब उसकी देह भस्म हो गई। इस पर महादेव बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने उसकी हड्डियोंको लवणसमुद्रमें फेंक दिया। वहीं सब हड्डियोंसे नाना प्रकारके शंखकी उत्पत्ति हुई। (ब्रह्मवै० प्रकृति० १८ अ०)

शंखका माहात्म्य—देवतादिकी पूजामें शंख अति पवित्र पदार्थ है। उसका जल तीर्थजल सदृश तथा देवताओंका अत्यन्त प्रीतिप्रद है। शंखकी ध्वनि जहां तक जाती है, वहां लक्ष्मीदेवी स्थिरभावसे अवस्थान करती हैं। शंखमें सर्वदा हरि वास करते हैं, अतएव जहां शंख रहता है, लक्ष्मीजनार्दन वहांका शुभ अमङ्गल दूर कर सर्वदा उस स्थानमें वास करते हैं। किन्तु यदि किसी स्त्रीशूद्र द्वारा वह शंख बजाया जाय, तो लक्ष्मी असन्तोष और अप्रसन्न हो कर वहांसे दूसरी जगह चली जाती हैं। (ब्रह्मवै०) शंखमें कपिला गायका दूध भर कर उससे नारायणको स्नान करानेसे अनुमेय फल प्राप्त होता है। जिस किसी गाय का दूध शंखमें भर कर नारायणको स्नान करानेसे स्वर्ग पर लाभ होता। शंखमें गङ्गाजल द्वारा 'नमो नारायणाय' कह कर विष्णुको स्नान करानेसे जीव योनिसङ्कटसे मुक्त होता है। शंखस्थित विष्णुपादोदकको शिर पर धारण कर अन्य वैष्णवोंको देनेसे चान्द्रायणव्रतका फललाभ होता है। नदी, तड़ाग, कूप, सरोवर, ह्रद आदि जिस किसी जलाशयका जल क्यों न हो, वह शंखमें डालनेसे गङ्गाजलके समान हो जाता है। जो वैष्णव शंखस्थ विष्णुपादाम्बुको मस्तक पर धारण कर नित्य ग्रहण करता है, उसको नित्य तीर्थ स्नानोंका फल होता है। त्रिभुवनमें जितने तीर्थ हैं वासुदेवकी आज्ञासे वे सभी शंखके भीतर अवस्थित हैं, इस कारण "त्वं पुरा सागरोत्पन्नो विष्णुना विधृतः करे। मानितः सर्वदेवैश्च पाञ्चजन्य नमोऽस्तु ते।" इस मन्त्रसे सर्वदा शंखको प्रणाम करना कर्त्तव्य है। जो पुरुष शङ्खादि द्वारा श्री वासुदेवके सामने शंखका [illegible] करते हैं, लक्ष्मी उन पर सदा प्रसन्न रहती हैं।

शंखकी अर्चना करना तो दूर रहे, शंख दर्शन मात्रसे ही सूर्योदय होने पर तिमिरविन्दुकी तरह पापराशि विलुप्त हो जाती है। पाञ्चजन्य शंखके आदर्श स्वरूप चन्द्रमाके तथा सहस्र भागोंमें विभक्त हो स्थित होते हैं। गन्धर्व, विद्याधर, उरग, राक्षस आदि जिस शंखके शिर पर शंखोदक है, उन्हें देख भयभीत हो दूर भागते हैं। नित्य, नैमित्तिक और काम्य कर्मानुष्ठान विशेषतः में जो शंखकी अर्चना करते हैं, देवताओंसे उनकी गति होती है। (बद्रीनाथ० १२१ अ०)

दक्षिणावर्त्तशंखमाहात्म्य—पूर्वदिग्गामिनी नदीके किनारे जा कर दक्षिणावर्त्तशंख द्वारा विधिवत् अभिषेक करनेसे सभी पाप नष्ट होते हैं। तिल और जल संयुक्त दक्षिणावर्त्तशंख द्वारा उक्त प्रकारकी पूर्वदिग्गामिनी नदीके सामने आदि दर्शन विशेष कर तथा विधि अभिषेक करनेसे जीवन भरका किया हुआ पाप उसी समय नष्ट होता है। दक्षिणावर्त्तशंख द्वारा परिशोधित जल हुएसियों मस्तक पर धारण करनेसे जन्मार्जित पाप उसी समय भाग जाते हैं। इसमें कभी भी मछली या शूकरको नहीं मारना चाहिये। इस शंखमें जलपान करना सर्वदा निषिद्ध है। (गारुड़०)

दक्षिणावर्त्तशंख साधारणतः दुष्प्राप्य है। इस कारण इसका मूल्य भी अधिक है। यह दक्षिणावर्त्तशंख गुणानुसार ४००।५००) रुपयेमें बिकता है। नाना-प्रदेशोंमें जहां इस शंखको रख कर शंखपूजा करते हैं, दक्षिणावर्त्तशंख वह शुभ [illegible] अपूर्व मधुर ध्वनि कर्णकुहरमें प्रवेश करती है। इस [illegible] पदार्थ [illegible] लिया जाता है।

शास्त्रकारोंने लिखा है, कि दक्षिणावर्त्तशंख द्वारा हरिकी अर्चना करनेसे सात जन्मके पाप नष्ट होते हैं।

युक्तिकल्पतरु आदिमें शंखकी रत्नजातिमें लिखा गया है। यह शंख [illegible] समुद्र देशमें या [illegible] जाता है। इसका वर्ण [illegible] मूर्तिकी तरह या [illegible] होता है। शुभ बहुत सूक्ष्म और वह बहुत अच्छा [illegible] होता है। वाम और दक्षिणावर्त्त भेदसे यह दो प्रकारका है। इनमेंसे दक्षिणावर्त्त शुभ, [illegible] और [illegible] हैं।

शङ्कुकर्ण (सं० पु०) शंकु इव कर्णौ यस्य । १ गर्दभ, गदहा । (त्रि०) २ दानवविशेष । (हरिवंश ३।८१) ३ नागविशेष । (भारत १।५७।१५) ॥ शंकु सदृश कर्णविशिष्ट, वह जिसके कान शंकुके समान लम्बे और नुकीले हों।

शङ्कुकर्णी (सं० पु०) शिव, महादेव।

शङ्कुकर्णेश्वर (सं० पु०) शिवलिङ्गभेद। (भारत वनपर्व)

शङ्कुकेश (सं० पु०) शंकुमत्स्य, सकुची मछली। (शब्दरत्ना०)

शङ्कुच्छाया (सं० स्त्री०) प्राचीन कालकी बारह अंगुलकी एक नुकीली खूंटी। इसका ऊपरी भाग नुकीला होता था। इसकी छायासे समयका परिमाण मालूम किया जाता था।

शङ्कुजिह (सं० स्त्री०) ज्योतिषके अनुसार एक गणित (Gnomon-sine)।

शङ्कुतरु (सं० पु०) शंकुरिव तरुः। शालका वृक्ष। (शब्दरत्ना०)

शङ्कुद्वार (सं० पु०) गुजरातके समीपके एक छोटे टापूका नाम। यहां शंकु नारायणकी मूर्त्ति है।

शङ्कुनारायण (सं० पु०) नारायणकी वह मूर्त्ति जो शंकुद्वार टापूमें है।

शङ्कुपथ (सं० पु०) पथभेद। (पा ५।१।७७)

शङ्कुपुच्छ (सं० क्ली०) जिसकी पूंछमें डंक हो। (राजतर० ३।३६६)

शङ्कुफणिन् (सं० पु०) जलमें होनेवाला जन्तु, जलचर। (हेम)

शङ्कुफलिका (सं० स्त्री०) सफेद कीकर।

शङ्कुफली (सं० स्त्री०) सफेद कीकर।

शङ्कुमत् (सं० त्रि०) शंकु अस्त्यर्थे मतुप्। शंकुविशिष्ट, शंकुयुक्त।

शङ्कुमती (सं० स्त्री०) एक वैदिक छन्द। इसके पहले पादमें पांच और शेष तीनोंमें छः छः या इससे कुछ न्यूनाधिक वर्ण होते हैं।

शङ्कुमुख (सं० त्रि०) १ शंकुके समान मुखवाला। (पु०) २ कुम्भीर, मगर। ३ चूहा, चिड़िया आदि।

शङ्कुमुखी (सं० स्त्री०) जलौका, जोंक।

शङ्कुर (सं० त्रि०) शंक्यतेऽस्मादिति शंक बाहुलकात् उरच्। १ त्रासदायी, भीषण, भयंकर। (हेम) २ पुराणानुसार एक दानवका नाम। (विष्णुपु०)

शङ्कुला (सं० स्त्री०) शंकु पूर्वात् लातेः (आतोऽनुपसर्गे कः। पा ३।२।३) इति कप्रत्यये शंकुला, (उण् १।३७) शङ्कुपूर्वाल्लातेर्घञर्थे कविधानमिति वा क प्रत्ययः। (काशिका ६।३।६) १ उत्पलपत्रिका। २ पूगकर्त्तरी, सुपारी काटनेका सरौता।

शङ्कुलाखण्ड (सं० क्ली०) वह वस्तु जो सरौतेसे दो खण्ड की गई हो।

शङ्कुवृक्ष (सं० पु०) शंकुरिव वृक्षः। शालका पेड़। (रत्नमाला)

शङ्कुशिरस् (सं० पु०) असुरविशेष। (भागवत ६।६।३०)

शङ्कुश्रवणा (सं० त्रि०) शङ्कुरिव श्रवणौ यस्य। शंकुके समान कर्णविशिष्ट, जिसके कान शंकुके समान हों। शङ्कुके समान कान होनेसे राजा होता है।

शङ्कुष्ठ (सं० त्रि०) शङ्कु-स्था-क, सत्व षः। (पा ८।३।९७) शङ्कुमें अवस्थित।

शङ्कुस् (सं० त्रि०) शम्-कृ-क्विप्। मङ्गलकारी।

शङ्कोच (सं० पु०) शङ्कुमत्स्य, सकुची मछली। (अमर)

शङ्कोचि (सं० पु०) शङ्कोच देखो।

शङ्क्षिक (सं० त्रि०) नैर्मासिक।

शङ्ख (सं० पु० क्ली०) शाम्यति अशुभमस्मादिति शम-ख (शमेः खः। उण् १।१०४) समुद्रोद्भवम जन्तु विशेष, एक प्रकारका बड़ा घोंघा जो समुद्रमें पाया जाता है। पर्याय—कम्बु, कम्बोज, अब्ज, जलज, अर्णोभव, पावनध्वनि, अन्तःकुटिल, महानाद, श्वेत, पूत, मुखर, दीर्घनाद, बहुनाद, हरिप्रिय। गुण—कटुरस, पुष्टिवर्द्धक, वीर्य और बलप्रद, गुल्म, शूल, कफ, श्वास, और विषदोषनाशक।

भावप्रकाशमें लिखा है—शंख, भाभिशंख, सितुक, शम्बूक और कपर्द आदि कीटपतङ्ग और मधुर, स्निग्ध, वातपित्तहर, हिम, पुष्टिद, मलकारक, शुक्रल और बलवर्द्धक होता है।

राजवल्लभमें कहा है, कि दांत और समुद्रफेन शीतवीर्य, कषायरसविशिष्ट और अति पदमलनिसारक है।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें शंखोत्पत्तिविवरण इस प्रकार लिखा है—देवाधिदेव महादेवका मध्याह्न कालके मार्त्तण्ड सदृश देदीप्यमान शूल जब शङ्खचूड़के ऊपर गिरा तब उसकी देह भस्म हो गई। इस पर महादेव बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने उसकी हड्डियोंको लवणाम्बुमें फेंक दिया। उन्हीं सब हड्डियोंसे नाना प्रकारके शंखकी उत्पत्ति हुई। (ब्रह्मवै० प्रकृतिख० १८ अ०)

शंखका माहात्म्य—देवतादिकी पूजामें शंख अति पवित्र पदार्थ है। उसका जल तीर्थजल सदृश तथा देवताओंका अत्यन्त प्रीतिप्रद है। शंखकी ध्वनि जहां तक जाती है, वहां लक्ष्मीदेवी चिरकालसे अवस्थान करती हैं। शंखमें सर्वदा हरि वास करते हैं, अतएव जहां शंख रहता है, लक्ष्मीजनार्दन वहांका दुःख समूल दूर कर सर्वदा उस स्थानमें वास करते हैं। किन्तु यदि किसी स्त्रीशूद्र द्वारा वह शंख बजाया जाय, तो लक्ष्मी अप्रसन्न और असन्तुष्ट हो कर वहांसे दूसरी जगह चली जाती हैं। (ब्रह्मवै०) शंखमें कपिला गायका दूध भर कर उससे नारायणको स्नान करानेसे अयुत यज्ञका फल प्राप्त होता है। जिस किसी गायका दूध शंखमें भर कर नारायणको स्नान करानेसे ब्रह्मपद प्राप्त होता। शंखस्थ गङ्गाजल द्वारा 'नमो नारायणाय' कह कर विष्णुको स्नान करानेसे जीव जीवितावस्थामें मुक्त होता है। शंखस्थित विष्णुपादोदकमें तिल वा सरसों मिला कर अपने शरीरमें देनेसे चान्द्रायणव्रतका फल प्राप्त होता है। नदी, तड़ाग, कूप, सरोवर, ह्रद आदि किसी जलाशयका जल क्यों न हो, वह शंखमें रखनेसे गङ्गाजलके समान हो जाता है। जो वैष्णव शंखस्थ विष्णुपादोदकको मस्तक पर धारण कर नित्य ग्रहण करता है, उसको नित्य गंगास्नानका फल होता है। त्रिभुवनमें जितने तीर्थ हैं वासुदेवकी आज्ञासे वे सभी शंखके भीतर अधिष्ठित हैं, इस कारण "त्वं पुरा सागरोत्पन्नो विष्णुना विधृतः करे। नमितः सर्वदेवैश्च पाञ्चजन्य नमोऽस्तु ते।" इस मन्त्रसे सर्वदा शंखकी अर्चना करना कर्त्तव्य है। जो पुष्प चन्दनादि द्वारा जो वासुदेवके सामने शंखकी अर्चना करते हैं, लक्ष्मी उन पर सदा प्रसन्न रहती है।

शंखकी अर्चना करना तो दूर रहे, केवल दर्शन मात्रसे ही सूर्योदय होने पर तिमिरनिकरकी तरह पापराशि विलुप्त हो जाती है। पाञ्चजन्य शंखके शब्दसे असुर पंक्तियोंके गर्भ सहस्र भागोंमें विभक्त हो विनष्ट होते हैं। यक्ष, पिशाच, उरग, राक्षस आदि जिस व्यक्तिके सिर पर शंखोदक है, उसे देख भयभीत हो दूर भागते हैं। नित्य, नैमित्तिक और काम्य स्नानादिक क्रियाओंमें जो शंखकी अर्चना करते हैं, वैष्णवोंमें उनकी गति होती है। (पद्मोत्तर० १६१ अ०)

दक्षिणावर्त्तशंखमाहात्म्य—पूर्वदिक्‌गामिनी नदीके किनारे जा कर दक्षिणावर्त्तशंख द्वारा विधिवत् अभिषेक करनेसे सभी पाप नष्ट होते हैं। तिल और जल संयुक्त दक्षिणावर्त्तशंख द्वारा जल प्रवाहको पूर्वदिक्‌गामिनी नदीके गर्भमें शान्ति पर्यन्त निक्षिप्त कर यथाविधि अभिषेक करनेसे जीवन भरका किया हुआ पाप उसी समय नष्ट होता है। दक्षिणावर्त्तशंख द्वारा परिशोधित जल हृदयमिलाके मस्तक पर धारण करनेसे जन्मार्जित पाप उसी समय जाते रहते हैं। इससे कभी भी मछली या कुत्तेको नहीं मारना चाहिये। इस शंखमें जलपान करना सर्वदा निषिद्ध है। (वाराहपु०)

दक्षिणावर्त्तशंख साधारणतः दुष्प्राप्य है। इस कारण इसका मूल्य भी अधिक है। एक दक्षिणावर्त्तशंख मूल्यानुसार ४००) ५००) रुपयेमें बिकता है। वामावर्त्तशंखमें जहां हम मुंह लगा कर शंखनाद करते हैं, दक्षिणावर्त्तशंख का मुख बायें लगानेसे अपूर्व मधुर ध्वनि कर्णकुहरमें प्रवेश करती है। इस खासियतके कारण यह बहुत कममें मिलता है।

शाक्तिरत्नाकरमें लिखा है, कि दक्षिणावर्त्तशंख द्वारा हरिकी अर्चना करनेसे सात जन्मका पाप नष्ट होते हैं।

युक्तिकल्पतरु ग्रन्थमें शंखके लक्षणादिका विषय लिखा गया है। यह शंख [illegible] सुलक्षण देखे या अङ्गुष्ठ समान भी पाया जाता है। इसका मुख पूर्णचन्द्र वा अर्द्धचन्द्र होता है। मुख बहुत सूक्ष्म और यह बहुत भारी नहीं होता है। वाम और दक्षिणावर्त्तसे ये दो प्रकार हैं। इनमेंसे दक्षिणावर्त्त शुभ, फल और धनदायक है।

शङ्कुकर्ण (सं० पु०) शंकु इव कर्णौ यस्य। १ गर्दभ, गदहा। (त्रि०) २ दानवविशेष। (हरिवंश ३।८१) ३ नागविशेष। (भारत १।५७।१५) ४ शंकु सदृश कर्णविशिष्ट, वह जिसके कान शंकुके समान लम्बे और नुकीले हों।

शङ्कुकर्णी (सं० पु०) शिव, महादेव।

शङ्कुकर्णेश्वर (सं० पु०) शिवलिङ्गभेद। (भारत वनपर्व)

शङ्कुकि (सं० पु०) शंकुमत्स्य, सकुची मछली। (शब्दरत्ना०)

शङ्कुच्छाया (स० स्त्री०) प्राचीन कालकी बारह अंगुल की एक नुकीली खूंटी। इसका ऊपरी भाग नुकीला होता था। इसकी छायासे समयका परिमाण मालूम किया जाता था।

शङ्कुजिह्व (सं० स्त्री०) ज्योतिषके अनुसार एक गणित Gnomon-sine)।

शङ्कुतरु (सं० पु०) शंकुरिव तरुः। शालका वृक्ष। (शब्दरत्ना०)

शङ्कुद्वार (सं० पु०) गुजरातके समीपके एक छोटे टापू का नाम। यहां शंकु नारायणकी मूर्त्ति है।

शङ्कुनारायण (सं० पु०) नारायणकी वह मूर्त्ति जो शंकुद्वार टापूमें है।

शङ्कुपथ (सं० पु०) पथभेद। (पा ५।१।७७)

शङ्कुपुच्छ (सं० क्ली०) जिसकी पूंछमें डंक हो। (राजतर० ३।३९६)

शङ्कुफणिन् (सं० पु०) जलमें होनेवाला जन्तु, जलचर। (हेम)

शङ्कुफलिका (सं० स्त्री०) सफेद कीकर।

शङ्कुफाली (सं० स्त्री०) सफेद कीकर।

शङ्कुमत् (सं० त्रि०) शंकु अस्त्यर्थे मतुप्। शंकु-विशिष्ट, शंकुयुक्त।

शङ्कुमती (सं० स्त्री०) एक वैदिक छन्द। इसके पहले पादमें पांच और शेष तीनोंमें छः छः या इससे कुछ न्यूनाधिक वर्ण होते हैं।

शङ्कुमुख (सं० त्रि०) १ शंकुके समान मुखवाला। (पु०) २ कुम्भीर, मगर। ३ चूहा, ढिबरी आदि।

शङ्कुमुखी (सं० स्त्री०) जलौका, जोंक।

शङ्कुर (सं० त्रि०) शंक्यतेऽस्मादिति शंक बाहुलकात् उरच्। १ त्रासदायी, भीषण, भयंकर। (हेम) २ पुराणानुसार एक दानवका नाम। (विष्णुपु०)

शङ्कुला (सं० स्त्री०) शंकु पूर्वात् लातेः (मातोऽनुपसर्गे कः। पा ३।२।३) इति कप्रत्यये शंकुला, (उण् १।३७) शङ्कु-पूर्वाल्लातेर्घञर्थे कविधानमिति वा क प्रत्ययः। (काशिका ३।३।५) १ उत्पलपत्रिका। २ पूगकर्त्तरी, सुपारी काटनेका सरौता।

शङ्कुलाखण्ड (सं० क्ली०) वह वस्तु जो सरौतेसे दो खण्ड की गई हो।

शङ्कुवृक्ष (सं० पु०) शंकुरिव वृक्षः। शालका पेड़। (रत्नमाला)

शङ्कुशिरस् (सं० पु०) असुरविशेष। (भागवत ६।६।३०)

शङ्कुश्रवणा (सं० त्रि०) शङ्कुरिव श्रवणौ यस्य। शंकुके समान कर्णविशिष्ट, जिसके कान शंकुके समान हों। शङ्कुके समान कान होनेसे राजा होता है।

शङ्कुष्ठ (सं० त्रि०) शङ्कु-स्था-क, सत्व या। (पा ८।३।९७) शङ्कुमें अवस्थित।

शङ्कृत् (सं० त्रि०) शम्-कृ-क्विप्। मङ्गलकारी।

शङ्कोच (सं० पु०) शङ्कुमत्स्य, सकुची मछली। (जटाधर)

शङ्कोचि (सं० पु०) शङ्कोच देखो।

शङ्कोलिक (सं० त्रि०) नैमित्तिक।

शङ्ख (सं० पु० क्ली०) शाम्यति अशुभमनेनादिति शाम-ख (शमेः खः। उण् १।१०४) समुद्रोद्भव जन्तु विशेष, एक प्रकारका बड़ा घोंघा जो समुद्रमें पाया जाता है। पर्याय—कम्बु, कम्बोज, अब्ज, जलज, अर्णोभव, पावनध्वनि, अन्तःकुटिल, महानाद, श्वेत, पूत, मुखर, दीर्घनाद, बहुनाद, हरिप्रिय। गुण—कटुरस, पुष्टिप्रद, वीर्य और बलप्रद, गुल्म, शूल, कफ, श्वास, और विषदोषनाशक।

भावप्रकाशमें लिखा है—शंख, नाभिशंख, क्षितुर, शम्बूक और वराट आदि क्षेत्रपत्य शीत मधुर, स्निग्ध, वातपित्तहर, हिम, पुष्टिद, मलकारक, शुक्रल और बलवर्द्धक होता है।

राजवल्लभमें कहा है, कि शंख और समुद्रोत्पन्न शीत-वीर्य, कषायरसविशिष्ट और अति पदिंमलनिवारक है।

१४ एक राक्षसस्त्रीका नाम। १५ काश्मीरके राजा शंकरवर्माका पुरोहित और लिपिकका नाम। १६ धारा नगरके राजा, गन्धर्वसेनका बड़ा लड़का और राजा विक्रमादित्यका बड़ा भाई। इसे मार कर विक्रमने गद्दी पाई थी। १७ दण्डकके ७१ भेदोंमेंसे एक भेद। इसमें १५२ मात्राएं या १४९ वर्ण होते हैं। इसमें ३ गुरु और शेष १४६ लघु होते हैं। १८ दण्डकवृत्तके अन्तर्गत प्रचितका एक भेद। इसमें दो नगण और चौदह रगण होते हैं। १९ पवनके सम्बन्धसे होनेवाला शब्द।

शङ्ख (सं० पु० क्ली०) शं खनति कन्। १ कम्बु, शंख। २ कटक, कङ्कण। ३ वैद्यकके अनुसार एक प्रकारका रोग। इसमें बहुत गरमी होती है और विशेष बिगड़नेसे कनपटीमें दाह सहित लाल रंगकी गिल्टी निकल आती है जिससे सिर और गला जकड़ जाता है। कहते हैं, कि यह असाध्य रोग है और तीन दिनके अंदर इसका इलाज साध्य है, इसके बाद नहीं। ४ हाथीके कनपटी-का भाग। ५ हीराकसीस। (क्ली०) ६ ललाट, माथा। ७ नौ निधियोंमेंसे एक निधि।

शङ्खक (सं० पु०) शंखाम्बु, रोग। (वर्णरत्ना०)

शङ्खकर्ण (सं० पु०) शिवानुचर गणभेद।

शङ्खकार (सं० पु०) शंखं करोतीति शंख-कृ-अण्। पुराणानुसार एक वर्णसंकर जाति। इसकी उत्पत्ति शूद्रा माता और विश्वकर्मा पितासे मानी गई है। इस जातिके लोग शंखको चीरकर काम करते हैं। (ब्रह्मवैवर्तपुराण) पर्याय—शांखिक, काम्बविक, शाङ्खविक।

शङ्खकालवर (सं० स्त्री०) स्कन्दानुचर मातृभेद। (भारत ९ पर्व)

शङ्खकुसुमा (सं० स्त्री०) १ शंखपुष्पी। २ सफेद अपराजिता, सफेद कोयल।

शङ्खकूट (सं० पु०) १ पर्वतभेद। (मार्कण्डेयपु० ५५।१०) २ नागभेद। (हेम)

शङ्खक्षीर (सं० पु०) शंखका दूध अर्थात् कोई असम्भव और अनहोनी बात।

शङ्खचरी (सं० स्त्री०) शंखे ललाटदेशे चर्च्यतेऽसौ चर्च-अ, टाप्, तिलक, टीका। २ अलंकार, सजावट, भूषण। ३ कस्तूरीका तिलक।

शङ्खचर्ची (सं० स्त्री०) शङ्खचरी देखो।

शङ्खचूड़ (सं० पु०) दैत्यभेद, सुदामाका अवतार। ब्रह्म-वैवर्तपुराणमें शंखचूड़का विवरण इस प्रकार लिखा है— सुदामा नामक गोप राधाकी शापसे दानव-वंशमें जन्म ले कर शंखचूड़ नामसे विख्यात हुआ था। यह तपस्या द्वारा एक कवच पा कर देवताओंसे अजेय हो गया। इसका विवाह तुलसीसे हुआ था। देवताओंको राज्यच्युत कर इसने स्वर्गका अधिकार प्राप्त किया। पीछे एक मन्वन्तर तक यह देव, दानव, असुर, गन्धर्व आदि पर शासन करता रहा। देवगण अपने अधिकारसे च्युत हो भिक्षुककी तरह विचरण करने लगे। पीछे उन्होंने ब्रह्माकी शरण ली। किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो ब्रह्मा महादेव और देवताओंके साथ वैकुण्ठ गये और वहां विष्णुसे उन्होंने कुल वृत्तान्त कह सुनाया।

भगवान् विष्णुने देवताओंका वृत्तान्त सुन कर कहा, 'मन्वन्तरकाल बीत गया, शंखचूड़के शासनकी अवधि पूरी हो गई। महादेव यह शूल लें और इसी शूलसे दानवका संहार करें। शंखचूड़ मेरा ही मंत्र-कवच धारण कर सबोंसे अजेय हो गया है। अब कवचके रहते कहीं कोई भी उसे मार न सकेगा। इस कारण मैं ब्राह्मण रूप धारण कर यह कवच मांग लूंगा और तुमने भी उसे वर दिया है, कि जब उसकी स्त्रीका सतीत्व विनष्ट होगा उसी समय उसकी मृत्यु होगी। अतएव इस विषयमें कुछ उपाय सोचना आवश्यक है।'

पीछे देवताओंने शंखचूड़के साथ स्वर्गराज्यके लिये युद्ध ठान दिया। भगवान् विष्णुने ब्राह्मण बन कर कवच उससे मांग लिया और शंखचूड़का रूप धारण कर उसकी स्त्री तुलसीका सतीत्व नष्ट किया। इस प्रकार कवच लिये जाने और पत्नीका सतीत्व विनष्ट होने पर महादेवने शूल द्वारा उसका संहार किया।

(ब्रह्मवैवर्तपु० प्रकृतिख० १८ अ०)

२ कुबेरके पुत्र और खजानेका नाम। ३ एक सर्पका नाम। ४ पुराणानुसार कृष्ण-विहारका एक गुह्यक या असुर। इसके मुख मस्तक हो कर असुर हो गया था। ५ एक प्रकारका राग। ६ एक औषधिविशेष।

जो इस शंखसे श्रद्धापूर्वक जल ग्रहण करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो पुण्यलोकको जाते हैं। शुभ्राकार भाव, स्निग्धता और निर्मलता ये तीन शंखके गुण हैं। इस शंखमें यदि आवर्त्तानुरूप कोई दोष हो, तो सुवर्ण संयोग द्वारा उस दोषकी शान्ति हो सकती है। ये शंख फिर ब्राह्मणक्षत्रियादिभेदसे चार वर्णोंमें विभक्त हैं।

देवपूजाकालमें बजानेके लिये जिस प्रकार शंखकी आवश्यकता होती है, आह्निकादिमें भी उसी प्रकार 'पाणि-शंख' की प्रयोजनीयता देखी जाती है।

शंख शम्बूक जाति (Mollusca)के अन्तर्गत तथा एक स्वतन्त्र पर्यायभुक्त है। पाश्चात्य पण्डितोंने शंख शब्द या उसकी वाद्यध्वनिसे ही इसका Conch-shell या Chank-shell नाम रखा है। इस जातिके जीवका वैज्ञानिक नाम Turbinelle pyrum है। एकमात्र भारत-महासागर और बङ्गोपसागरमें शंख जातिका शम्बुक पाया जाता है।

प्राचीन हिन्दुओंके निकट शंखवाद्य परम पवित्र है। स्वयं विष्णु शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी हैं। युद्धमें प्रधान प्रधान रथी तथा सैन्यदल भी शंखनिनादसे रणस्थलको गुंजा देते थे, यह उस समय सुदीर्घ रीतिसे अधिक प्रचलित था। प्रत्येक रथीका अपना अपना शंख रहता था। यथा—श्रीकृष्णका पाञ्चजन्य, अर्जुनका देवदत्त, भीमका पौण्ड्र, युधिष्ठिरका अनन्तविजय, नकुलका सुघोष, सहदेवका मणिपुष्पक इत्यादि। (गीता)

प्रति हिन्दूमन्दिरमें पूजाके समय अथवा संध्याकालमें शंखनाद होता है। किसी किसी स्थानमें अन्त्येष्टि-क्रियाके लिये जाते समय और श्मशानादि स्थानमें भी शंख बजाते देखा जाता है। अष्ट्रेलिया और पोलिनेशिया द्वीपवासी Triton tritonis नामक शम्बूकको ऐसे शंखके बदलेमें व्यवहार करते हैं। पाश्चात्य अन्य जातियाँ भी इस प्रकार Buccinum whelk नामक शम्बूक बजाती रहती हैं। लाटिन भाषाका Buccina शब्द ही उसका परिचय देता है।

ढाकामें और सूरतमें शंखकाटक लोग शंख काट कर उससे चूड़ी, कड़ा, बटन आदि बनाते हैं। छोटे शंखकी अपेक्षा बड़े शंखका आदर अधिक है। क्योंकि उसमें तरह तरहकी कारीगरी दिखलाई जा सकती है। भारतकी सभ्य और असभ्य जातिमें शंखका अलङ्कार पहननेकी रीति है। किसी किसी देवमन्दिरमें शंखके प्रदीपमें घी डाल कर रोशनी की जाती है।

शंखको विधिपूर्वक शुद्ध कर भस्म बना कर काममें लाते हैं। यह भस्म सब प्रकारके ज्वर, सब प्रकारकी खाँसी, श्वास, अतिसार आदि रोगोंमें उचित अनुपानसे अत्यंत लाभकारी है। यह स्तम्भक और पाचक भी है। इसकी मात्रा चार रत्तीसे डेढ़ माशे तक है।

एक समय मद्रासके उपसागरमें प्रायः ४० लाख शंख पाये गये थे जो लाखसे अधिक रुपयेमें बिके थे।

शङ्खका सविस्तर विवरण शम्बूक शब्दमें देखो।

२ रणवाद्यविशेष। पर्याय—मङ्गलतूर्य, गम्भतूर्य, रणतूर्य, महास्वन, संग्रामपटह, अमरविक्रिडित, महाध्वज, कुम्भाशीर, भीम, कोलाहल। (शब्दरत्ना०)

३ ललाटास्थि, कपालकी हड्डी। ४ कुबेरकी निधिविशेष। (भारत २।१०।३९)

मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है—८ प्रकारकी निधियोंमें शंख अष्टम निधि है। यह रजः और तमोगुणविशिष्ट है, इस कारण इसके अधीश्वर भी वही सब गुण पाते हैं। जो शंखनिधिके अधिपति हैं, वे सर्वदा केवल आत्मपरितोषणमें ही रत रहते हैं, यहां तक कि सुहृद्, भार्या, भ्राता, पुत्र, पुत्रवधू आदि स्वजनोंके मल वस्त्रादिके अकृत्यापहरणके प्रति भी दृष्टिपात नहीं करते, स्वयं आत्मपरितुष्टिके लिये ही व्यस्त रहते हैं।

५ नखी नामक गन्धद्रव्यविशेष। (सुश्रुत ६।१७) ६ कर्णके निकटवर्ती अस्थिभेद, कनपटी। ७ अष्टनागनायकान्तर्गत नागविशेष। ८ हस्तिदन्तका मध्यभाग, हाथीका गण्डस्थल। ९ दश निखर्वकी एक संख्या, एक लाख करोड़। १० धर्मशास्त्रप्रणेता मुनिविशेष। ११ [illegible]। १२ एक दैत्यका नाम जो देवताओंको जीत कर वेदोंको चुरा ले गया था और जिसके हाथोंसे वेदोंका उद्धार करनेके लिये भगवान्‌को मत्स्यावतार धारण करना पड़ा था। १३ राजा विराट्‌का पुत्र।

१४ एक दानवमन्त्रीका नाम। १५ मगधपुरीके राजा हंसध्वजका पुरोहित और लिपिकार भाई। १६ धारा नगरके राजा, गन्धर्वसेनका बड़ा लड़का और राजा विक्रमादित्यका बड़ा भाई। इसे मार कर विक्रमने गद्दी पाई थी। १७ छप्पयके ७१ भेदोंमेंसे एक भेद। इसमें १५२ मात्राएं या १४१ वर्ण होते हैं। इसमें ११ गुरु और शेष १३० लघु होते हैं। १८ दण्डकवृत्तके अन्तर्गत प्रचितका एक भेद। इसमें दो नगण और चौदह रगण होते हैं। १९ पवनके चलनेसे होनेवाला शब्द।

शङ्ख (सं० पु० क्ली०) शाम्यति अशुभं खन्। १ कम्बु, शंख। २ वलय, कङ्कण। ३ वैद्यकके अनुसार एक प्रकारका रोग। इसमें बहुत गरमी होती है और त्रिदोष बिगड़नेसे कनपटीमें दाह सहित लाल रंगकी फुंसी निकल आती है जिससे सिर और गला जकड़ जाता है। कहते हैं, कि यह असाध्य रोग है और तीन दिनके अंदर इसका इलाज हो सकता है, इसके बाद नहीं। ४ हाथीके कनपटी-का भाग। ५ हीराकसीस। (क्ली०) ६ मस्तक, माथा। ७ नौ निधियोंमेंसे एक निधि।

शङ्खक (सं० पु०) शंखाक्षु, शंख। (शब्दरत्ना०)

शङ्खकर्ण (सं० पु०) शिवानुचर गणभेद।

शङ्खकार (सं० पु०) शंखं करोतीति शंख-कृ-अण्। पुराणानुसार एक वर्णसंकर जाति। इसकी उत्पत्ति शूद्रा माता और विश्वकर्मा पितासे मानी गई है। इस जातिके लोग शंखको चीर कर गहने बनानेका काम करते हैं। (ब्रह्मवैवर्तपुराण) पर्याय—शांखिक, काम्बविक, शाङ्खिक।

शङ्ख[illegible] (सं० स्त्री०) स्कन्दानुचर मातृभेद। (भारत ९ पर्व)

शङ्खपुष्पा (सं० स्त्री०) १ शंखपुष्पी। २ सफेद अपराजिता, सफेद कोयल।

शङ्खकूट (सं० पु०) १ पर्वतभेद। (मार्कण्डेयपु० ५५।१६) २ नागभेद। (हेम)

शङ्खक्षीर (सं० पु०) शंखका दूध अर्थात् और असम्भव और अनहोनी बात।

शङ्खचारी (सं० स्त्री०) शंखे ललाटादिषु चरतीति चर-ट, ङीप्। १ ललाट, मस्तक, माथा। २ चन्दनका तिलक।

शङ्खचर्ची (सं० स्त्री०) शङ्खचारी देखो।

शङ्खचूड़ (सं० पु०) दैत्यभेद, तुलसीका स्वामी। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें शंखचूड़का विवरण इस प्रकार लिखा है—सुदामा नामक गोप राधिकाके शापसे दैत्य-वंशमें जन्म ले कर शंखचूड़ नामसे विख्यात हुआ था। यह तपस्या द्वारा एक कवच पा कर देवताओंसे अजय हो गया। इसका विवाह तुलसीसे हुआ था। देवताओंको राज्यच्युत कर इसने स्वर्गका आधिपत्य प्राप्त किया। पीछे एक मन्वन्तर तक यह देव, दानव, असुर, गन्धर्व आदि पर शासन करता रहा। देवगण अपने अधिकारसे च्युत हो भिक्षुककी तरह विचरण करने लगे। पीछे उन्होंने ब्रह्माकी शरण ली। किंकर्तव्य-विमूढ़ हो ब्रह्मा महादेव और देवताओंके साथ गोलोक गये और वहां विष्णुसे उन्होंने सब वृत्तान्त कह सुनाया।

भगवान् विष्णुने देवताओंका वृत्तान्त सुन कर कहा, 'मन्वन्तरकाल बीत गया, शंखचूड़के शापकी अवधि पूरी हो गई। महादेव यह शूल लें और इसी शूलसे दानवका संहार करें। शंखचूड़ मेरा ही मंगल-सूचक कवच धारण कर सबोंसे अजेय हो गया है। जब तक कवच उसके कण्ठमें रहेगा, कोई भी उसे मार न सकेगा। इस कारण मैं ब्राह्मण रूप धारण कर यह कवच मांग लूंगा और ब्रह्माने भी उसे वर दिया है, कि जब उसकी स्त्रीका सतीत्व विनष्ट होगा उसी समय उसकी मृत्यु होगी। अतएव इस विषयमें कुछ उपाय सोचना आवश्यक है।'

पीछे देवताओंने शंखचूड़के साथ घोरतर युद्ध ठान दिया। भगवान् विष्णुने ब्राह्मण वेशमें कवच उससे मांग लिया और शंखचूड़का रूप धारण कर उसकी पत्नी तुलसीका सतीत्व नष्ट किया। इस प्रकार कवच लिये जाने और तुलसीका सतीत्व विनष्ट होने पर महादेवने शूल द्वारा उसका संहार किया।

(ब्रह्मवैवर्तपु० प्रकृति० [illegible] अ० देखो।)

२ कुबेरके दूत और सखाका नाम। ३ एक असुरका नाम। ४ पुराणानुसार द्वारका-निवासी एक गन्धर्वका नाम। इसके पुत्र उत्पन्न हो कर [illegible] थे। ५ एक नागका नाम। ६ एक मछलीका नाम।

शङ्खचूड़क (सं० पु०) नागभेद। (हेम)

शङ्खचूड़ेश्वरतीर्थ (सं० क्लो०) तीर्थभेद।

शङ्खचूर्ण (सं० क्लो०) शंखस्य चूर्णम्। शंखजातचूर्ण। गुण—कटु, क्षार, उष्ण, और क्रिमिनाशक।

शङ्खज (सं० पु०) शंखाज्जायते इति जन-ड। १ मुक्ताभेद, बड़ा मोती जो शंखसे निकलता है। (त्रि०) २ शंखजात।

शङ्खजाती (सं० स्त्री०) राजकन्याभेद। (तारनाथ)

शङ्खजीरा (सं० पु०) संग जराहत।

शङ्खण (सं० पु०) १ कल्माषपादके एक पुत्रका नाम। (रामा० १।७०।३६) २ वज्रनाभके पुत्र। इसका दूसरा नाम था शंखनाभ।

शङ्खतीर्थ (सं० क्लो०) तीर्थविशेष।

शङ्खदत्त (सं० पु०) एक कवि। ये काश्मीरराज अजापीड़की सभामें विद्यमान थे। (राजतर० ४।४९६)

शङ्खदारक (सं० पु०) शङ्खकार देखो।

शङ्खद्रावक (सं० पु०) शंखं द्रावयतीति द्रु-णिच्-ण्वुल्। औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—अकवनकी छाल, गूदरका मूल, इमलीकी छाल, तिलकाष्ठ, अमलतासकी छाल, चित्रा, अपाङ्ग, इन सब द्रव्योंको अलग समान भाग ले कर जलमें घोले और पीछे छान ले। यह क्षारजल जब तक खारा न हो जाय, तब तक उसे मीठी आंचमें पकाना होगा। इसके बाद यह लवणरस ४ तोला, यवक्षार, सज्जिक्षार, सोहागा, समुद्रफेन, नौसादर, हरिताल, हीराकसीस और सोरा प्रत्येक ४ तोला, पञ्चलवण प्रत्येक ८ तोला, इन सब द्रव्योंको एकत्र कर मट्टीके साथ कांचकी कूपीमें ७ दिन छोड़ दे। बादमें शंखचूर्ण ८ तोला उसमें मिला कर बालुकायन्त्रमें चुआ लेनेसे द्रावक प्रस्तुत होता है। इस द्रावकमें कौड़ी और शंख आदि गल जाते हैं। इसका सेवन करनेसे प्लीहा यकृत् आदि उदररोग अतिशीघ्र विनष्ट होते हैं।

(भैषज्यरत्ना० उदररोगचि०)

शङ्खद्रावकरस (सं० पु०) औषधविशेष। यह शंखद्रावकरस और महाशंखद्रावकरस भेदसे दो प्रकार है।

शङ्खद्राविन (सं० पु०) शंखं द्रावयति द्रु-णिच्-णिनि। आजवेतस, अम्लवेत। अङ्गरेजीमें इसे Rumex Vesicarius कहते हैं। (वैद्यनि०)

शङ्खद्वीप (सं० पु०) द्वीपभेद। (विष्णुपुराण)

शङ्खधर (सं० पु०) १ शंखको धारण करनेवाले अर्थात् विष्णु। २ श्रीकृष्ण।

शङ्खधर—१ एक धर्मशास्त्रके प्रणेता। इन्होंने स्मृतिचन्द्रिकाके बाद ग्रंथ रचना की। हेमाद्रि, रघुनन्दन, कमलाकर आदिने इनका मत उद्धृत किया है। २ कविकर्णटिका नामक अलंकार और लटकमेलक नामक प्रहसनके रचयिता।

शङ्खधरा (सं० स्त्री०) धरतीति धृ-अच्, टाप् शंखस्य धरा। हिलमोचिका, हुरहुरका साग। (रत्नमाला)

शङ्खधवला (सं० स्त्री०) १ शुक्लयूथिका, सफेद जूही। (वैद्यनि०) २ शंखके समान सफेद।

शङ्खध्म (सं० पु०) शंखं धमतीति ध्मा-क। शंखवादक, वह जो शंख बजाते हों। पर्याय—शाब्दिक। (जटाधर)

शङ्खध्मा (सं० पु०) शंखं धमतीति ध्मा-क्विप्। शंखवादक।

शङ्खन (सं० पु०) १ अयोध्याके राजा कल्माषपादके एक पुत्रका नाम। २ वज्रनाभके पुत्रका नाम।

शङ्खनख (सं० पु०) १ क्षुद्रशंख, छोटा शंख, घोंघा। २ व्याघ्रनख, नखी नामक गन्धद्रव्य। (शब्दरत्ना०)

शङ्खनखा (सं० स्त्री०) १ क्षुद्र शंख, घोंघा। २ नखी नामक गन्धद्रव्य।

शङ्खनाभ (सं० पु०) वज्रनाभके एक पुत्रका नाम। शङ्खण देखो।

शङ्खनाभि (सं० स्त्री०) १ एक प्रकारका शंख। २ एक प्रकार गन्धद्रव्य।

शङ्खनाम्नी (सं० स्त्री०) शंखपुष्पी नामक लताविशेष।

शङ्खनारी (सं० स्त्री०) एक वृत्तका नाम। इसमें छः वर्ण होते हैं। यह दो यगणका वृत्त है। इसे सोमराजी वृत्त भी कहते हैं।

शङ्खनी (सं० स्त्री०) शङ्खिनी देखो।

शङ्खपद (सं० पु०) १ विश्वदेव भेद। २ कर्दमके एक पुत्रका नाम। (विष्णुपु० १।२२)

शङ्खपनीला (हिं० पु०) एक प्रकारका रेशेदार खनिज पदार्थ। यह स्थानानुसार पत्थरोंसे निकलता है।

इसका रङ्ग सफेद या हरा होता है और इससे रेशमको चमक होती है। इसका विशेष गुण यह है, कि यह जल्दी जलता नहीं, इसीलिये गैसके मट्ठे बनानेमें इसका बहुत उपयोग होता है। आगसे न जलनेवाले कपड़े तैयार करनेमें भी यह काममें लाया जाता है। गरमी और बिजलीका प्रवेश इसमें बहुत कम होता है, इससे यह बिजलीके तार आदि लपेटनेमें भी काम आता है। इञ्जिनोंके जोड़ इसीसे भरे या बन्द किये जाते हैं। यह कारसिका, स्काटलैण्ड, कनाडा, इटली आदि देशोंमें अधिक मिलता है।

शङ्खपाणि (सं० पु०) शंखं पाणौ यस्य। हाथमें शंख धारण करनेवाले, विष्णु।

शङ्खपात्र (सं० पु०) शंखका बना हुआ पात्र या तलवारकी मूंठ। (रामा० १।७३।२२)

शङ्खपाद (सं० पु०) कर्दम राजपुत्र। ये शंखपाद भागसे भी परिचित थे।

शङ्खपाल (सं० पु०) १ राजपुत्रभेद। २ समानप्रसिद्ध दर्वीकर महासर्प। ३ पातालस्थ नागभेद। (सुश्रुत कल्प ४ अ०) ४ सूर्यका एक नाम। ५ शक्करपारा नामकी मिठाई। शकरपारा देखो।

शङ्खप्रस्थ (सं० पु०) चन्द्रमा।

शङ्खपिण्ड (सं० पु०) पातालस्थ नागभेद।

शङ्खपुट (सं० क्ली०) नागभेद।

([illegible])

शङ्खपुष्पी (सं० स्त्री०) शंखनिर्मित हस्त और पदालङ्कारधारिणी।

शङ्खपुष्पिका (सं० स्त्री०) १ श्वेतापराजिता, सफेद अपराजिता। २ श्वेत यूथिका, सफेद जूही।

शङ्खपुष्पी (सं० स्त्री०) शंखवत् पुष्पं यस्याः ङीष्। १ शङ्खपुष्पी, (Andropogon aciculatum or Sansevieria dentata) शंखाहुली। पर्याय—सुपुष्पी, शंखाह्वा, कम्बुमालिनी, चोलपुष्पी, कम्बुपुष्पी, मेध्या, मल्लविनाशिनी, तिरीटी, शंखकुसुमा, भूलग्ना, शंखनामिका। गुण—शीतल, तिक्त, मेध्या और सुस्वर, कफ, मद्यपादि दोषनाशक, वशीकरण और सिद्धिदायक।

भावप्रकाशके मतसे रेचक, तुवर, मानस रोगनाशक, रसायन, कषाय, उष्ण, स्मृति, कान्ति, बल और अग्निवर्द्धक, दोष, अपस्मार, रक्तदोष, कुष्ठ, कृमि और विषदोषनाशक। २ श्वेतापराजिता, सफेद अपराजिता। ३ श्वेतयूथिका, सफेद जूही।

शङ्खप्रस्थ (सं० क्ली०) शंखका भाग या जोड़।

शङ्खबर (सं० त्रि०) वृहत् या श्रेष्ठ शंख।

शङ्खभस्म (सं० पु०) चन्द्रमाका कलङ्क।

शङ्खभस्म (सं० पु०) चूना।

शङ्खभिन्न (सं० पु०) जिसका शंख अर्थात् कपालप्रान्त भिन्न हुआ हो। छिन्नं शोण। (पा ५।१।५२)

शङ्खभृत् (सं० पु०) शंखं बिभर्त्तीति भृ क्विप् तुक् च। शंखधारण करनेवाले, विष्णु।

शङ्खमालिनी (सं० स्त्री०) शंखपुष्पी, शंखाहुली। विशेष विवरण शङ्खपुष्पी शब्दमें देखो।

शङ्खमित्र (सं० पु०) ऋषिभेद।

शङ्खमुक्ता (सं० स्त्री०) शंखजाता मुक्ता शंखज आनका बड़ा मोती। जो मुक्ता शंखसे उत्पन्न होती है, उसे शंखमुक्ता कहते हैं। वृहत्संहितामें लिखा है, कि हस्ती, भुजङ्ग, शुक्ति, शंख और मत्स्य आदिसे मुक्ता निकलती है। यह मुक्ता अतिशय गुणविशिष्ट होती है, इसलिये इसका मूल्य शास्त्रमें निर्दिष्ट नहीं हुआ। इसको धारण करनेसे पुत्र, अर्थ, सौभाग्यलाभ तथा रोगशोक नाश होता है। (वृहत्सं० ८१ अ०) मुक्ता देखो।

शङ्खमुख (सं० पु०) शंखवत् मुखं यस्य। १ कुम्भीर, घड़ियाल। २ नागविशेष। (भारत १।३५।१६)

शङ्खमुद्रा (सं० स्त्री०) मुद्राभेद। उंगलियोंको शंखाकृति करनेसे यह मुद्रा होती है। (तन्त्रसार) मुद्रा शब्द देखो।

शङ्खमूल (सं० क्ली०) शंखवत् शुभ्रं कन्दमूलं यस्य मूलं यस्य। १ मूलक, मूली। (राजनि०) २ शंखका मूल, शंखका अग्रभाग।

शङ्खमूलक (सं० क्ली०) शङ्खमूल देखो।

शङ्खमेखल (सं० पु०) मुनिविशेष। (भारत [illegible])

शङ्खमौक्तिक (सं० पु०) शंखोत्पन्न मुक्ता।

शङ्खयूथिका (सं० स्त्री०) शुक्लयूथिका, सफेद जूही। ([illegible])

शङ्खरसगुटिका (सं० स्त्री०) औषधविशेष। परिणाम-शूलमें यह औषध प्रयोग करनेसे बड़ा फायदा पहुंचता है।

शङ्खराज (सं० पु०) १ श्रेष्ठ शंख। २ राजभेद। (राजत० ८।१०१)

शङ्खरावित (सं० क्ली०) शंखनिनाद।

शङ्खरी (सं० पु०) वह जो शंखकी चूड़ी बनानेका व्यवसाय करता हो।

शङ्खरोमन् (सं० पु०) पातालस्थ नागभेद। (हरिवंश)

शङ्खलिका (सं० स्त्री०) स्कन्दानुचरमातृभेद। (भारत ९ पर्व)

शङ्खलिखित (सं० त्रि०) १ निर्दोष, दोषरहित, बे-ऐब। (पु०) २ न्यायशील राजा। ३ शंख और लिखित नामके दो ऋषि जिन्होंने एक स्मृति बनाई थी। (स्त्री०) ४ शंख और लिखित ऋषियों द्वारा लिखी हुई स्मृति।

शङ्खलिखितप्रिय (सं० त्रि०) जो न्याय विचारके अनुरागी हों।

शङ्खवटी (सं० स्त्री०) अग्निमान्द्य रोगाधिकारोक्त औषध विशेष। इसके दो भेद हैं—शंखवटी और महाशंखवटी। शंखवटीकी प्रस्तुत प्रणाली—शंखभस्म, पञ्चलवण, इमलीकी छालका क्षार, त्रिकटु, हींग, विष, पारा, गन्धक, समान भाग ले कर एक साथ मिलावे, पीछे अपाङ्ग और चितामूलके काढ़ेमें नीबूके रसमें और अम्लवर्ग द्वारा भावना दे।

जंबीरी नीबू, बिजौरा, चुकापालङ्ग, बीजपूरक, नारङ्ग, इमली और कुलकाञ्ज इन आठ द्रव्योंको अम्ल-वर्ग कहते हैं। भावना इस प्रकार देनी होगी जिससे औषध शङ्खद्रवविनिष्ट हो जाये। इस औषधके साथ रांगा और लोहा मिलानेसे उसको महाशंखवटी कहते हैं। २ रत्ती भर गोली बनानी होगी। प्रातःकाल उष्ण जलके साथ इस औषधका सेवन करना चाहिये। इसके सेवनसे अजीर्ण, अर्श, पाण्डु और शूल आदि नाना प्रकारके रोग जाते रहते हैं। भर पेट खा कर भी इस औषधके सेवनसे उसी समय सभी पच जाता है। अग्निमान्द्याधिकारमें यह अति उत्कृष्ट और परीक्षित औषध है।

दूसरा तरीका—इमलीके छिलकेकी भस्म १ पल, पञ्चलवण मिश्रित १ पल, शंखभस्म १ पल, हींग, सोंठ, पीपर और मिर्च मिला कर १ पल, पारा, गन्धक और विष प्रत्येक आध तोला, इन्हें नीबूके रसमें घोंट कर २ रत्तीकी गोली बनावे। इसके सेवनसे भी अग्निमान्द्य और शूल आदि विविध रोग शीघ्र प्रशमित होते हैं।

शङ्खवटी रस (सं० पु०) वैद्यकमें एक प्रकारकी वटी या गोली। यह शूलरोगको तत्काल दूर करनेवाली मानी जाती है। इसके प्रस्तुत करनेकी विधि यह है। बड़े शंखको तपा तपा कर ग्यारह बार नीबूके रसमें बुझावे और इस शंखके चूर्णमें टंके भर इमलीका क्षार, ५ टंक सांभर नमक, टंके भर सेंधा नमक, टंके भर सौंचर नमक, टंके भर कच नोन, टंके भर विड नोन, ६ माशे सोंठ, ६ माशे काली मिर्च, ६ माशे पिप्पली, टंके भर सेंकी हींग, टंके भर शुद्ध गन्धक, टंके भर शुद्ध पारा, १ टंक शुद्ध सिङ्गी मुहरा, इन सबको मिला कर अदरकके साथ घोंट कर छोटे बेरके बराबर गोलियां बना ले। शूलरोगके लिये यह रामबाण है।

शङ्खवत् (सं० त्रि०) १ शंखयुक्त। २ शंखके समान।

शङ्खवात (सं० पु०) सिरकी पीड़ा। शङ्खक देखो।

शङ्खविष (सं० स्त्री०) विषभेद, संखिया।

शङ्खवेलान्याय (सं० पु०) एक प्रकारका न्याय। इसमें किसी एक कार्यके होनेसे किसी दूसरी बातका वैसे ही ज्ञान होता है। जैसे शंख बजनेसे उत्सवका ज्ञान होता है।

शङ्खशिरस् (सं० पु०) पातालस्थ नागभेद। (भारत १म पर्व)

शङ्खशिम्बा (सं० स्त्री०) शंखपुष्पी।

शङ्खशीर्ष (सं० पु०) पातालस्थ नागभेद। (भारत ५ पर्व)

शङ्खशुक्तिका (सं० स्त्री०) सीप।

शङ्खस (सं० पु०) शंखकी गुड़ी या कड़ा।

शङ्खद्राव (सं० पु०) शंखद्राव, रसेन्द्र शंखद्रव। (वैद्यक०)

शङ्खह्रद (सं० पु०) शंखादि चिह्नयुक्त ह्रद, वह ह्रद जिसमें शंख आदिके चिह्न हों।

शङ्खाख्य (सं० पु०) शंख इति आख्या यस्य । नृहन्नखी या वगनखा नामक गन्धद्रव्य ।

शङ्खान्तर (सं० क्ली०) कपाल, दो शंखके बीचका स्थान ।

शङ्खाल (सं० पु०) शंखालुक, शंखकन्द, सफेद शकरकन्द ।

शङ्खालु (सं० पु०) शङ्खाल देखो ।

शङ्खालुक (सं० पु०) शंखालु, सफेद शकरकन्द ।

शङ्खावती (सं० स्त्री०) नदीविशेष । (मार्क०पु० ५७।७)

शङ्खावर्त्त (सं० पु०) एक प्रकारका भगन्दर रोग । इसे शम्बूकावर्त्त भी कहते हैं । शम्बूकावर्त्त देखो ।

शङ्खासुर—एक दैत्य । १ यह ब्रह्माके पाससे वेद चुरा कर समुद्रके गर्भमें जा छिपा था । इसीको मारनेके लिये विष्णुने मत्स्यावतार धारण किया था । २ मुर दैत्यका पिता ।

शङ्खास्थि (सं० स्त्री०) १ सिरकी हड्डी । (सिक्क शा० ७ अ०) २ पीठकी हड्डी । (राजनि०)

शङ्खाह्न (सं० क्ली०) शतावय पक्षका कृत्यभेद ।

(कात्यायन ४.५.५)

शङ्खाह्वा (सं० स्त्री०) १ शंखपुष्पी, शंखाहुलि । २ श्वेतापराजिता, सफेद कोयल ।

शङ्खाहोली (सं० स्त्री०) शंखपुष्पी, कौड़ियाला, कौड़ेना ।

शङ्खाह्वा (सं० स्त्री०) शंख इति आह्वा नाम यस्याः । शंखपुष्पी, कौड़ियाला)

शङ्खिक (सं० पु०) बीजपूर । (शब्दार्थ)

शङ्खिका (सं० स्त्री०) शंखवत् पुष्पमस्त्यस्याः शङ्ख-ठन्, अत इत्वं टाप । शंखाहुली, कौड़ियाली ।

शङ्खिन (सं० पु०) शंखोऽस्त्यस्येति शंख इनि । १ विष्णु । २ समुद्र । (मेदिनी) ३ शाब्दिक । ४ एक प्रकारका सांप । (त्रिका०) ५ शंखविशिष्ट । ६ शंखनिधियुक्त ।

शङ्खिन (सं० पु०) शिरीष वृक्ष, सिरस । (वैद्यकनि०)

शङ्खिनिका (सं० स्त्री०) श्वेतापराजिता, सफेद कोयल ।

(वैद्यकनि०)

शङ्खिनी (सं० स्त्री०) शंख इव पुष्पमस्त्यस्याः शङ्ख इनि । १ एक प्रकारकी वनौषधि । इसकी लता और फल सिर-सिड्डीके समान होते हैं । अन्तर केवल यही है, कि सिर-सिड्डीके फल एक सफेद छोटे होते हैं जो शंखिनीके फल पर नहीं होते । इसके बीज शंखके समान होते हैं जिससे तेल निकलता है । वैद्यकमें यह चरपरी, तिक्त, कड़वी, भारी, तीक्ष्ण, गरम, अग्निदीपक, बलकारक, रुचिकारक और विषविकार, कफवात, कुष्ठ, रक्तविकार तथा उदर रोग आदिको नाश करनेवाली मानी जाती है । इसका संस्कृत पर्याय—यवतिक्ता, महातिक्ता, शङ्खिनिका, सूक्ष्मपुष्पी, दृढ़पादा, विसर्पिणी, नाकुली, नेत्रमीला, अक्षपीड़ा, माहेश्वरी, तिक्ता, यासी । २ कुहुनाड़ीभेद । ३ शंखाहुली । ४ सुश्रुत शास्त्रमें मत । ५ सुंदरको नाड़ी । ६ एक देवी । ७ चोर । ८ एक तीर्थस्थान । ९ एक प्रकारकी वनस्पति । १० चार प्रकारकी स्त्री जातियोंमें एक स्त्रीजाति । पद्मिनी, चित्रिणी, शङ्खिनी और हस्तिनी ये चार प्रकारकी स्त्रीजाति हैं । शश, मृग, वृषभ और अश्व ये चार प्रकारके पुरुष हैं । इनमें शश जातीय पुरुष पद्मिनीसे, मृग चित्रिणीसे, वृषभ शङ्खिनीसे तथा अश्व हस्तिनीसे तुष्ट रहते हैं । कहते हैं, कि ऐसी स्त्री क्रोधशील, कौशिक, लम्बोदर शरीरवाली, बड़ी बड़ी और लम्बी आंखोंवाली, केशोंसे सुन्दर, लज्जा और दोषरहित, अधीर, चंचल, क्षार संयुक्त और अल्प मदवाली होती है । (रतिमञ्जरी)

शङ्खिनी डाकिनी (सं० स्त्री०) एक प्रकारका उन्माद । इसके लक्षण इस प्रकार कहे गये हैं—सर्वांगमें पीड़ा होना, नेत्र बहुत दुखना, मूर्च्छा होना, शरीर कांपना, रोना, हंसना, बकना, भोजनमें अरुचि, गला बैठना, शरीरके रङ तथा भूषण कान, ज्वर चढ़ना और सिर-में चक्कर आना ।

शङ्खिनीफल (सं० पु०) शंखिन्याः फलमिव फलं यस्य । शिरीष वृक्ष ।

शङ्खिनीवास (सं० पु०) शंखिन्याः वासः आवासस्थानं । शाखोट वृक्ष, सहोरा । कहते हैं, कि इस वृक्ष पर भूत, प्रेत और शंखिनी आदि वास करती हैं ।

शङ्खी (सं० पु०) शङ्खिन देखो ।

शङ्खेश्वरीमन्त (सं० पु०) समुद्रफेन ।

शङ्खोदरी (सं० स्त्री०) मध्य भारतका एक प्रकारका वृक्ष । यह बागोंमें शोभाके लिये लगाया जाता है । इसके पत्ते कचनारके पत्तोंके समान होते हैं । पीले और लाल फूलोंके भेदसे यह दो प्रकारका होता है । इसकी फलियां पत्तोंके समान चिपटी, तिकोनी तथा चार पांच अंगुल लम्बी होती हैं और इसके

७, ८ हाथ ऊंचे होते हैं। इसके फूल गुच्छोंमें लगते हैं, जो बारहों महीने रहते हैं, परन्तु और महीनोंकी अपेक्षा आषाढ़में अधिक फूल लगते हैं। फूलोंमें गन्ध नहीं होती। इसकी लकड़ी मजबूत होती है, इसके वृक्ष बंगाल और आसाम देशोंमें ही लगते हैं। कई प्रकारके रोगोंमें इसका व्यवहार भी किया जाता है। वैद्यकके अनुसार यह गरम, कटु, वात, शूल, आमवात और शीतरोगको दूर करनेवाली है। इसे गुलचटी, गुलचुरी भी कहते हैं।

शङ्खोद्धार (सं० क्ली०) तीर्थभेद। (हरिवंश)

शच् (सं० त्रि०) शच् देखो। (तैत्तिरीय ४।४।८।१)

शङ्गय (सं० त्रि०) सुखालय। (ऋक् २।१।६ सायण) स्त्रियां ङीप्। (ऋक् १।१६७।१७)

शङ्गयी (सं० स्त्री०) गवादिका शङ्खमूल। ([illegible] १।८।१।१८)

शङ्ग (सं० त्रि०) १ सुखप्रापक। २ जिसका दर्शन पावन हो। (शुक्लयजु० २६।४०)

शचि (सं० स्त्री०) शच इन्। (सर्वधातुभ्य इन्। उण् ४।११३) शची देखो।

शचिका (सं० स्त्री०) शची, इन्द्रकी पत्नी।

शचिष्ठ (सं० त्रि०) शक्तिमत्-प्राज्ञ। (ऋक् ४।२०।१)

शची (सं० स्त्री०) शचि कृदिकारादिति ङीष्। १ इन्द्रकी पत्नी, इन्द्राणी। जो दानवराज पुलोमाकी कन्या थी। पर्याय—पुलोमजा, शचि, शनि, पुत्रमन्तायी, पौलोमी, माहेन्द्री, जयवाहिनी, ऐन्द्री, शतावरी। (शब्दरत्ना०) २ शतमूली, सतावर। ३ [illegible]। कोई कोई विधिकरणको शची कहते हैं। ४ कर्म। (निघण्टु २।१) ५ प्रज्ञा, बुद्धि, वाक्। (निघण्टु ३।६) ६ वाक्य। (निघण्टु १।११) ७ स्तुति, अनुग्रह।

शचीतीर्थ (सं० पु०) तीर्थभेद।

शचीनर (सं० पु०) राजपुत्रभेद। (राजत० ११६)

शचीपति (सं० पु०) शच्याः पतिः। १ शचीके पति, इन्द्र। (त्रि०) २ कर्मपालक। (ऋक् ७।६७।५)

शचीनन्दन (सं० पु०) [illegible] पति, श्रीकृष्णचैतन्यदेव।

शचीश्वर (सं० पु०) नाटकमें वह पात्र जो इन्द्रके समान वेश भूषा धारण करता हो।

शचीवत् (सं० त्रि०) १ कर्मवत्। २ प्रज्ञावत्। ३ शक्तिमान्।

शचीवसु (सं० त्रि०) १ कर्मधन, यज्ञादि द्वारा धनवान्। २ बल या धनयुक्त। (ऋक् १।११६।५, ७।७४।१)

शच्येश (सं० पु०) शच्याः ईशः। शचीपति, इन्द्र।

शजर (अ० पु०) दरख्त, वृक्ष, पेड़।

शजरा (अ० पु०) १ वह कागज जिसमें किसीकी वंश-परम्परा लिखी हो, वंशवृक्ष, कुलनामा, कुर्सीनामा। २ वृक्ष, पौधा। ३ पटवारीका तैयार किया हुआ खेतोंका नकशा।

शट (सं० त्रि०) शट-अच्। १ अम्ल, खट्टा। (पु०) २ एक प्राचीन देशका नाम।

शटा (सं० स्त्री०) शट-अच्-टाप्। सटा, जटा। (महावीरच०)

शटि (सं० स्त्री०) शट इन्। शटी देखो।

शटी (सं० स्त्री०) शटि वा ङीष्। स्वनामप्रसिद्ध ओषधि, कचूर। बम्बई—कचोरा, कापूर, काचरी; तैलङ्ग—किचिलि, पगड़ूल। संस्कृत पर्याय—गन्धमूली, षड्ग्रन्थिका, कर्चूर, सुगन्धा, सटि, शटि, गन्धमूला, गन्धोलि, गन्धमूलक, गन्धसटा, वधू, गन्धमूल, जीमूतमूल, कर्चूर, हिमजा, हैमी, बहुतागि, सुभता, गन्धोली, दशाङ्गा, हिमा, षड्ग्रन्था, आलविदा, सुगन्धमूला, गन्धारी, शटीका, पलाशिका, सुभद्रा, तृणी, दूर्वा, गंधा, पृथु पलाशिका, सौम्या, हिमोद्भवा, गन्धवधू। गुण—तिक्त, अम्लरस, लघु, उष्ण, दीपनकारक, ज्वर, कफ, श्वास, कण्ठ, मलदोष और रक्तामयनाशक। (राजनि०)

शटी [illegible] चूर्ण करके वैज्ञानिक प्रक्रिया द्वारा एक प्रकारका आटा प्रस्तुत होता है, जो उदरामय रोगाक्रान्त बालकबालिकाओंके लिये बड़ा फायदामंद होता है। आराहोट, बार्लि आदि जिस प्रकार गरम जलमें सिद्ध कर रोगियोंको दिया जाता है, उसी प्रकार इसका भी व्यवहार करना होता है। इससे अबीर भी बनता है।

शटूक (सं० स्त्री०) घी और चावलोंमें बना हुआ [illegible] माड़। इसका व्यवहार वैद्यकमें होता है।

शठ (सं० क्ली०) शठ-अच्। १ तगरका फूल। २ इस्पात, फौलाद। ३ लोहा। ४ कुङ्कुम, केसर, जाफरान।

(राजनि०) (पु०) ५ धुस्तूरवृक्ष, धतूरेका पेड़ । ६ चित्रक, चीता । ७ तालवृक्ष । ८ अमलाका वृक्ष । ९ मध्यस्थ, यह जो दो आदमियोंके बीचमें पड़ कर उनके झगड़ेका निपटारा करता हो । १० जड़बुद्धि, बेवकूफ । ११ आलसी । १२ वृष्णिवंशीय विशेष । (हरिवंश ३१) १३ साहित्यमें पांच प्रकारके पतियों या नायकोंमेंसे एक प्रकारका पति या नायक, यह नायक जो छलपूर्वक अपना अपराध छिपानेमें चतुर हो और किसी दूसरी स्त्रीके साथ प्रेम करते हुए भी अपनी स्त्रीसे प्रेम प्रदर्शित करनेका बहाना करता हो । (साहित्यद० ३।७४)

रसमञ्जरीके मतसे पांच प्रकारके पतियोंमें पति विशेष । ये कामिनीविषयक कपटवचनमें पटु होते हैं । (त्रि०) १४ धूर्त, चालाक । १५ पाजी, लुच्चा, बदमाश । मनुने लिखा है, कि जो शठ है, उसके साथ वाक्यालाप करना उचित नहीं ।

"प्रियं व्यक्तिं पुरोऽन्यत्र विप्रियं कुरुते भृशम् ।
युक्तापराधश्चेष्टाभिः शठोऽयं कथितो बुधैः ॥"
(विष्णुपु० ३।१८।२१ श्लोक टीका)

जो समक्षमें मीठी मीठी बात बोले और असमक्षमें निन्दा करे, वही शठ कहलाता है ।

शठता (सं० स्त्री०) शठस्य भावः 'तस्य भावे' इति तल्-टाप् । १ शठका भाव या धर्म, धूर्त्तता । २ बदमाशी, पाजीपन । पर्याय—माया, शाठ्य, कुसृति, निकृति । (हेम)

शठत्व (सं० क्ली०) शठ भावे त्व । शाठ्य, शठता ।

शठाङ्गा (सं० स्त्री०) शठाम्बा देखो ।

शठाम्बा (सं० स्त्री०) ब्राह्मणीलता, अम्बष्ठा । (राजनि०)

शठारिमुनि—प्रमाणसारके रचयिता । ये शिवकोपमुनिके गुरु थे ।

शठिका (सं० स्त्री०) शठी देखो ।

शठी (सं० स्त्री०) १ कचूर । २ गन्धपलाशी, कपूर कचरी । ३ वन आदरक, पेड़ ।

शठोत्था (सं० स्त्री०) कन्दगुडूची, कन्दगिलोय । (वैद्यकनि०)

शठोदर (सं० त्रि०) धूर्त्त, धोखेबाज ।

शठ्यादि (सं० पु०) त्रिदोषघ्न कषायविशेष, ज्वरनाशक पाचनविशेष । इसके बनानेका तरीका—कचूर, कुट, बरंगो, कर्कटशृङ्गी, दुरालभा, गुडूची, सोंठ, आकनादि, चिरैता और कटकी, इन सबका एक एक तोला ले कर आध सेर पानीमें सिद्ध करे । जब सिद्ध करके आध पाव पानी रह जाय, तो नीचे उतार ले । कुछ गरम रहते ही इसका सेवन करनेसे त्रिदोषकी शमता तथा ज्वर विनष्ट होता है ।

शठ्यादिक्वाथ (सं० पु०) क्वाथौषधविशेष । (भावप्रकाश ज्वराधि०)

शण (सं० क्ली०) शण-अच् । १ क्षुपविशेष । पर्याय—गञ्जा, मातुलानी । (पु०) २ सनामख्यात क्षुप, शण । (Crotalaria juncea, Indian hemp) इसे तैलङ्गमें शण, मनुवेल, जेनपनर, रेलुचेट्ट, और तामिलमें जेनप्पनर कहते हैं । संस्कृत पर्याय—माल्यपुष्प, वमन, कटुतिक्तक, निशावन, दीर्घशाख, त्वक्सार, दीर्घपल्लव । गुण—अम्ल, कषाय, मल, गर्भ और अस्रपातन तथा वमिकारक, पित्त, कफ और तीव्र अङ्गमर्द नाशक । (राजनि०)

यह तीन साढ़े तीन हाथ ऊंचा होता है और इसका काण्ड सीधी छड़ीकी तरह दूर तक ऊपर जाता है । फूल पीले रंगके होते हैं । कुआरी फसलके साथ यह खेतोंमें बोया जाता है और भादों कुआरमें तय्यार हो जाता है । रेशेदार छिलका अलग करनेके लिये इसके डंठल पानीमें डाल कर सड़ाए जाते हैं । रेशोंसे मजबूत रस्सियां आदि बनती हैं, इसीसे यह भारतीय वाणिज्यका एक मूल्यवान् उपकरण समझा गया है । यूरोपमें इस जातिके पौधेसे जो सन उत्पन्न होता है, वही प्रकृत सन कहलाता है । इसके छिलकेसे जो रेशे निकलते हैं, वे बहुत मजबूत होते तथा कपड़े बुनने या रस्सी बनानेके काममें आते हैं । उद्भिद्विद् विलडेनो, ग्मेलिन और थुनबर्गने यथाक्रम, पारस्य, तातार और जापानमें यह वृक्ष देख कर अनुमान किया है, कि ये सब देश ही इसके पौधेके आदिस्थान हैं । हिरोदोतसने इस पौधेको शाकद्वीपका पौधा बतला गये हैं । थियोफ्रिनने काकेसस पर्वतके निकटवर्ती देशोंमें तथा सीरियामें इस

वृक्षको देता है। चीनदेशमें हो-मा, थ-स, थ-म और इन्न-म नामके भी कई प्रकारके शन उत्पन्न होते हैं। ये वस्तुतः एक नहीं हैं, भिन्न भिन्न जातिके हैं, किन्तु कार्यतः प्रायः समगुणसम्पन्न हैं। यह प्रकृत शनकी तरह मजबूत जटिल और पिच्छिल होता है तथा उसमें रेशे भी बहुत होते हैं। भारतमें इस श्रेणीका जो पौधा उत्पन्न होता है उसे Canabis Indica कहते हैं। बोखारा, पारस्य और भारतमें सभी जगह विशेषतः १० हजार फुटकी ऊंचाई हिमालयपृष्ठ पर इस जातिका वृक्ष उत्पन्न होता है। प्रधानतः यूरोपमें केवलमात्र तन्तुके लिये ही इस वृक्षका आदर है। क्योंकि उससे तरह तरहकी रस्सी और एक प्रकारका मोटा कपड़ा तैयार होता है। प्राच्यभूखण्ड अर्थात् भारत, पारस्य आदि स्थानोंमें एकमात्र गाँजा और सिद्धिके लिये ही इसकी खेती होती है। रस्सी बनानेके लिये इसकी उतनी खेती नहीं होती। इसके राल जैसे पदार्थसे चरस नामक मादक द्रव्य बनता है। ये सब भिन्न भिन्न पदार्थ उत्पन्न करनेमें एक ही पौधा भिन्न भिन्न प्रकारकी खेतीका प्रयोजक होता है। गाँजा और चरसके उत्पादनके लिये इस पौधेमें धूप, हवा और रोशनीकी विशेष आवश्यकता होती है। इस कारण इसे पतला करके रोपनेके बाद दूसरी जगह रोपा जाता है। रस्सीके लिये इसकी खेती करनेमें बीया खूब घना कर बुना जाता है। रस्सीके लिये पौधेमें धूप अधिक नहीं लगती, छाया और जलसिक्त मिट्टीकी ही विशेष आवश्यकता होती है।

Crotalaria Juncea नामक वृक्षसे भारतीय सन, Hibiscus Cannabinus वृक्षसे दक्षिणी या अम्बारी शण, Musa textilis नामक वृक्षसे मानिली सन उत्पन्न होता है। जब्बलपुरमें एक प्रकारका सन उत्पन्न होता है जो यूरोपीय वाणिज्यमें Jubbalpur hemp नामसे प्रसिद्ध है। इङ्गलेण्ड राज्यमें उसका आदर सबसे अधिक है।

शणई (हिं० स्त्री०) सन देखो।

शणक (सं० पु०) ऋषिभेद। (पा ६।२।३६)

शणकन्द (सं० पु०) पर्णकपा नामका सुगन्धि द्रव्य।

शणकन्दा (सं० स्त्री०) एक प्रकारका थूहड़ जिसे सातला कहते हैं।

शणघण्टा (सं० क्ली०) शणघण्टिका देखो।

शणघण्टिका (सं० स्त्री०) शणस्य घण्टेव तत्स्यागम्कारिफलवत्वात्, स्वार्थे कन् टापि अत इत्वं। शणपुष्पी नामकी लता। (राजनि०)

शणचूर्ण (सं० क्ली०) सनईका वह बचा हुआ भाग जो उसे कूट कर सन निकाल देनेके बाद रह जाता है।

शणपर्णी (सं० स्त्री०) शणस्य पर्णमिव पर्णमस्याः ङीष्। मज्ञनपर्णी।

शणपुष्पिका (सं० स्त्री०) शणपुष्पी स्वार्थे कन् अत इत्वं। घण्टारवा, वनसनई।

शणपुष्पी (सं० स्त्री०) शणस्य पुष्पमिव पुष्पमस्याः। १ एक प्रकारकी वनस्पति जो साधारण वनसनई कहलाती है। यह छोटी और बड़ी दो प्रकारकी होती है। छोटी शणपुष्पी प्रायः सब प्रान्तोंमें पाई जाती है। इसका क्षुप, पत्ते, फूल इत्यादि सनके ही समान होते हैं, किन्तु क्षुप सबसे छोटा होता है। फूल पीले, फलियाँ मटरके समान गोल और लम्बी होती हैं। यह कड़वी, वमनकारक और पारेको बांधनेवाली कही गई है। इसके फल सूख जाने पर अन्दरके बीजोंके कारण झन झन शब्द करते हैं, इसीसे इसे झुनझुनियाँ कहते हैं। बड़ी शणपुष्पी प्रायः वाटिकाओंमें लगाते हैं। इसका क्षुप, पत्ते आदि छोटी शणपुष्पीसे बड़े होते हैं। फूल सफेद रंगके होते हैं। यह कसैली, गरम और पारेको बांधनेवाली कही गई है और मोहन, स्तम्भन आदिमें व्यवहार की जाती है। इसका संस्कृत पर्याय—बृहत्पुष्पी, शणिका, शणघण्टिका, पीतपुष्पी, स्थूलफला, लोमशा, माल्यपुष्पिका। २ अरहर।

शणफला (सं० स्त्री०) शणफलजातीया।

शणमय (सं० त्रि०) शणविशिष्ट। स्त्रियां ङीप्। (कात्या० श्रौ० ७।३।२६)

शणमूल (सं० क्ली०) शणस्य मूलम्। सनकी शिफा, शणका मूल।

शणशिफा (सं० स्त्री०) शणमूल, सनई या सनकी जड़।

शणसमा (सं० स्त्री०) शणपुष्पी, वनसनई ।

शणसूत्र (सं० क्ली०) शणस्य सूत्रम् । कुश आदिकी बनी हुई पवित्री जो श्राद्ध, तर्पण आदि कृत्योंके समय कनिष्ठिकाकी बगलवाली उंगलीमें पहनी जाती है; पवित्रक । (मनु २।४४)

शणाल (सं० पु०) शण्यालुक देखो ।

शणालुक (सं० पु०) शणालुरेव स्वार्थे कन् । आरेवत वृक्ष, अमलतासका पेड़ ।

शणिका (सं० स्त्री०) शणः स्त्रियां टाप् कन् अत इत्वं । शणपुष्पी, वनसनई ।

शणीर (सं० क्ली०) १ सोन नदीके मध्यका उपजाऊ स्थल । २ सर्यू नदीकी शाखाओंसे घिरा हुआ छपरेके समीपका एक द्वीप, दर्दरो तट ।

शण्ड (सं० क्ली०) १ पद्मिनी, कमलिनी । (पु०) २ नपुंसक, हीजड़ा । ३ वह पुरुष जिसे सन्तान न होती हो, वन्ध्या पुरुष । ४ उन्मत्त, पागल । ५ गोपति, सांढ़ । (भरतधृत द्विरूपको०)

शण्डता (सं० स्त्री०) शण्डस्य भावः तल टाप् । शण्डका भाव या धर्म, नपुंसकत्व, हीजड़ापन ।

शण्डा (सं० पु०) १ फटा हुआ खट्टा दूध अथवा दही । २ एक यक्षका नाम ।

शण्डाकी (सं० स्त्री०) शिण्डाकी देखो ।

शण्डाकी मद्य (सं० स्त्री०) अर्थप्रकाशके अनुसार एक प्रकारकी शराब । यह राई, मूली और सरसोंके पत्तों का रस चावलोंकी पीठीमें मिला कर अर्क निकालनेसे तैयार होती है ।

शण्डामर्क (सं० पु०) शण्ड और मर्क नामके दो दैत्य जिनका नाम साथ ही साथ लिया जाता है ।

शण्डिक (सं० पु०) शुक्राचार्यका पुत्र जो असुरोंका पुरोहित था ।

शण्डिल (सं० पु०) शडि रुजायां (सलिकल्यनिमहिभडि-भण्डिशण्डीति । उण् २।५५) इति इलच् । एक प्राचीन गोत्रकार ऋषि । इनके गोत्रके लोग शाण्डिल्य कहलाते हैं ।

शण्ढ (सं० पु०) शाम्यति ग्राम्यधर्मात् शम (शमेढ । उण् १।१३१) इति ढ । १ अन्तर्महलिक, खोजा । ये लोग राजाओंके अन्दर महलमें रहते और स्त्रियोंकी रक्षा करते हैं । इन्हें वर्षवर भी कहते हैं । २ नपुंसक, हीजड़ा । ३ गोपति, सांढ़ । ४ वन्ध्य पुरुष । ५ उन्मत्त । (धनञ्जय) ६ मूर्ख, बेवकूफ ।

शत (सं० त्रि०) दश दशतः परिमाणमस्येति (पङ्क्तिविंशति त्रिंशदिति । पा ५।१।५९) इति ... दशानां शभावश्च निपात्यते । १ दशका दश गुना, सौ । शतवाचक शब्द धार्तराष्ट्र, शतभिषातारा, पुरुषायुष, रावणांगुलि, पद्मदल, इन्द्रयज्ञ, अग्नियोजन । (कविकल्पलता) २ बहु । (ऋक् ८।१।५) (क्ली०) ३ सौकी संख्या, दशकी दशगुनी संख्या जो इस प्रकारकी लिखी जाती है—१०० ।

शतक (सं० पु०) शतं परिमाणमस्य । शत (संख्याया अतिशदन्तायाः कन् । पा ५।१।२२) इति कन् । १ सौका समूह । २ एक ही तरहकी सौ चीजोंका संग्रह । ३ वह जिसमें सौ भाग या अवयव हों । ४ सौ वर्षोंका समूह, शताब्दी । ५ विष्णु ।

शतकपालेश (सं० पु०) शिवलिङ्गभेद । (राजतर० ११११७)

शतकर्मा (सं० पु०) शनिग्रह । (हेम)

शतकिरण (सं० पु०) एक प्रकारकी समाधि ।

शतकीर्त्ति (सं० पु०) जैन पुराणानुसार एक भावी अर्हत्का नाम । (हेम)

शतकुन्त (सं० पु०) शतकुन्द देखो ।

शतकुन्द (सं० पु०) शतं कुन्दा यस्य । करवीर, सफेद कनेर ।

शतकुम्भ (सं० पु०) १ एक प्राचीन पर्वत । २ करवीर, सफेद कनेर । ३ सुवर्ण, सोना ।

शतकुम्भा (सं० स्त्री०) नदीतीर्थविशेष । इस नदीमें स्नान करनेसे स्वर्गलाभ होता है । (भारत ३।८४।१०)

शतकुलीरक (सं० पु०) सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका कीड़ा । (सुश्रुत कल्प० ८ अ०)

शतकुसुमा (सं० स्त्री०) शतपुष्पा, सौंफ ।

शतकृत्वस् (सं० अव्य०) शतवार, सौ दफे ।

शतकृष्णल (सं० त्रि०) शतसंख्यक कृष्णलपरिमित । (तैत्तिरीयस० २।३।२।१)

शतकेसर (सं० पु०) भागवतके अनुसार एक वर्ष पर्वतका नाम । (भागवत ५।२०।२६)

शतकोटि (सं० पु०) शतं कोटयोऽग्राः निम्ना यस्य ।

१ इन्द्रका वज्र। २ हीरक, हीरा। ३ अर्बुद, सौ करोड़की संख्या। (लीलावती)
शतकौम्भ (सं० क्ली०) स्वर्ण, सोना। (वैद्यकनि०)
शतकौम्भक (सं० क्ली०) शतकौम्भ देखो।
शतक्रतु (सं० पु०) शतं क्रतवो यस्य। १ इन्द्र। २ बहुकर्मा। ३ बहुयज्ञ। (ऋक् १०।१०३।)
शतक्रतुद्रुम (सं० पु०) कृष्णकुटज वृक्ष, काली कुड़ाका पेड़। (वैद्यकनि०)
शतक्रतुप्रस्थ (सं० क्ली०) इन्द्रप्रस्थ। (भारत)
शतक्रतुयव (सं० पु०) इन्द्रयव, कुटज बीज। (वैद्यकनि०)
शतक्री (सं० त्रि०) सौ द्वारा खरीदा हुआ।
(कात्यायन ६।४।१५)
शतखण्ड (सं० क्ली०) १ सुवर्ण, सोना। २ सोनेकी बनी हुई कोई चीज।
शतखण्डमय (सं० त्रि०) शतखण्ड-मयट् स्वरूपार्थे। १ सुवर्णमय। २ शतभाग स्वरूप।
शतगु (सं० त्रि०) गोशत परिमाण धनविशिष्ट, सौ गौओंका स्वामी, सौ गायोंका रखनेवाला। (मनु ११।१४)
शतगुण (सं० त्रि०) सौ गुना।
शतगुणा (सं० स्त्री०) पेपण। (Euphorbia antiquorum)
शतग्रन्थि (सं० स्त्री०) शतं ग्रन्थयो यस्याः। १ दूर्वा, सफेद दूब। २ नीली दूब। (राजनि०)
शतग्रीव (सं० पु०) भूतयोनिविशेष।
शतग्व (सं० त्रि०) शतसंख्यक, सौ।
शतग्विन् (सं० त्रि०) शतसंख्यक गवादि विशिष्ट, सौ गायोंका रखनेवाला। (ऋक् १।१५२।५ सायण)
शतघ्नी (सं० स्त्री०) शतं हन्तीति शत-हन्-ङीप्। शस्त्रविशेष, एक प्रकारका शस्त्र। यह किसी बड़े पत्थर या लकड़ीके कुंदेमें बहुतसे नोल कांटे ठोंक कर लगाया जाता है और इसका व्यवहार युद्धके समय शत्रुओं पर फेंकनेमें होता है। यह शस्त्र दुर्गके चारों ओर रखना होता है।

"दुर्गञ्च परितोऽदितं सप्रादृष्टाजसंयुतम्।
शतघ्नी यन्त्रमुख्यैश्च शतशश्च समावृतम्॥"
(मत्स्यपु० १६ अ०)

२ वृश्चिककाली, बिछाती। ३ करञ्ज या कञ्जेका पेड़। (मेदिनी) ४ भावप्रकाशके अनुसार गलेमें होनेवाला एक प्रकारका रोग। इसमें त्रिदोषके कारण गलेमें बत्तीके समान लम्बी और मोटी तथा कण्ठको रोकनेवाली, मांसके अंकुरोंसे भरी हुई और बहुत पीड़ा देनेवाली सूजन हो जाती है। यह रोग बड़ा भयङ्कर तथा असाध्य है। इसमें रोगीके प्राणनाशका डर रहता है। गलरोग देखो।
शतचक्र (सं० त्रि०) शतकरणसाधन, बहु योगनिष्पादन।
(ऋक् १०।१४४।४)
शतचण्डी (सं० स्त्री०) शतरूपी चण्डीपाठ।
शतचन्द्र (सं० त्रि०) एक शतचन्द्र तुल्य, सौ चन्द्रमाके समान।
शतचन्द्रित (सं० त्रि०) शतचन्द्रयुक्त।
शतचर्मन् (सं० त्रि०) शतचर्मसूत्र विनिर्मित।
(भारत आदिपर्व)
शतच्छद (सं० पु०) शतं छदा यस्य। १ काष्ठकुट्ट पक्षी, कठफोड़वा या कठ-ठोका नामक चिड़िया। (त्रिका०) २ शतदल पद्म, सौ पत्तोंवाला कमल।
शतजटा (सं० स्त्री०) शतमूली, सतावर।
शतजित् (सं० पु०) १ विष्णु। २ रजके पुत्र। (विष्णुपु०) विराजके पुत्र। (भागवत ५।१५।१३) ४ सहस्रजित्के पुत्र। (भाग० ६।२३।२०) ५ भजमानके पुत्र। (भाग० ६।२४।८) ६ यक्षभेद।
(भाग० १२।११।४३)
शतजिह्व (सं० त्रि०) शिव, महादेव। (भारत १३ पर्व)
शतजीविन् (सं० त्रि०) शतं जीवति जीव-णिनि। सौ वर्ष जीनेवाला।
शतज्योतिस् (सं० पु०) सुभ्राजके पुत्र। (भारत १।१४)
शततन्ति (सं० स्त्री०) शततन्त्री।
शततम (सं० त्रि०) शत-तमप् पूरणार्थे। शतसंख्याका पूरण।
शततर्द (सं० पु०) शतछिद्र, सौ छेद।
शततारा (सं० स्त्री०) शतं तारा यस्यां। शतभिषा नक्षत्र। इस नक्षत्रमें सौ तारे हैं।
शततिन् (सं० पु०) राजपुत्रभेद। (विष्णुपु० ३।३।४१)

शततेजस् (सं० पु०) व्यासका एक नाम।

शतद (सं० त्रि०) शतं ददाति दा-क। शतसंख्यक दानकारी, सौ दान करनेवाला।

शतदक्षिण (सं० त्रि०) शतदक्षिणायुक्त, सौ दक्षिणासे युक्त।

शतदत् (सं० त्रि०) शतदन्तविशिष्ट, चिरुणी।

शतदन्तिका (सं० स्त्री०) नागदन्ती, नखी नामक गन्धद्रव्य, हाथीशुंडी। (राजनि०)

शतदल (सं० क्ली०) शतं दलानि यस्य। पद्म, कमल।

शतदलमल्लिका (सं० स्त्री०) स्वनामख्यात पुष्पक्षुप। (पर्यायमु०)

शतदला (सं० स्त्री०) १ शतपत्री, सेवती। २ गुलाब।

शतदा (सं० त्रि०) शत-दा-क्विप्। शतदानकारी, सौ दान करनेवाला।

शतदातु (सं० त्रि०) शतसंख्यक, सौ।

शतदाय (सं० त्रि०) १ प्रचुर धनयुक्त, काफी धनवाला। २ शतदानपटु।

शतदारुक (सं० पु०) कीटविशेष। (सुश्रुत)

शतद्युम्न (सं० पु०) १ एक ऋषि। (तैत्तिरीयब्रा० १।४।२।१) २ राजभेद। (भारत १० पर्व) ३ चाक्षुष मनुके एक पुत्रका नाम। (मार्कण्डेयपु० ७६।५५) ४ भानुमतका पुत्र। (भागवत ६।१३।२१)

शतद्रु (सं० स्त्री०) शतधा द्रवतीति शत-द्रु (शेते च। उण् १।३६) इति कु। नदीविशेष। पर्याय—शितद्रु, शुतुद्रि, शतद्रु। (अमर) इसकी नामनिरुक्ति। "शतधा विद्रुता यस्माच्छतद्रुरिति विश्रुता।" (भारत १।१७८६) यह नदी शतभागमें विद्रुता हुई थी, इसलिये इसका नाम शतद्रु हुआ है। महाभारतमें इस नदीका विषय यों लिखा है—पुत्रशोकातुर वशिष्ठ हिमालयसे उत्पन्न एक खरस्रोता नदी देख उसमें प्राण विसर्जन करनेके अभिप्रायसे गिरे। यह नदी विप्रको अग्नितुल्य जान शतधा हो कर विद्रुता हुई, इस कारण वह नदी तभीसे शतद्रु नामसे विख्यात हुई है। (भारत १।१७८ अ०) ऋग्वेदमें इस नदीका नाम शुतुद्रि है।

इस नदीके जलका गुण—शीतल, लघु, स्वादु, सर्वामयनाशक, निर्मल, दीपन, पाचन, बल्य, बुद्धि, मेधा और आयुर्जनक। (राजनि०)

शतद्रु पञ्जाबकी एक प्रसिद्ध नदी है। यह हिमालय पर्वतसे निकल कर पञ्जाबके दक्षिण-पश्चिमी भागमें बहती हुई व्यास या विपासासे मिल कर मुलतानके दक्षिण ओर सिन्धुमें मिलती है। पुराणादि पढ़नेसे पता चलता है, कि मानस-सरोवरसे ही शतद्रु निकली है—फिर किसी और पौराणिक वृत्तान्तसे मालूम होता है, कि शतद्रु नदी रावणहृदसे निकलती है। रावणहृद मानस-सरोवरसे पश्चिम है। ब्रह्मपुत्र और सिन्धु जहांसे निकले हैं, उसके पास होते शतद्रु उत्पन्न हुई है। मानस-सरोवर और रावणहृद दोनों आस-पास ही है। शतद्रुके उत्पत्तिस्थानको ले कर भिन्न भिन्न मतोंका सामञ्जस्य करना उतना कठिन नहीं है। ब्रह्मपुत्र पूर्वकी ओर, सिन्धु पश्चिमकी ओर तथा शतद्रु दक्षिण-पश्चिमकी ओर बहती है। इसका उत्पत्तिस्थान हमारे इस समतल भूखण्डसे १५२०० फीट ऊर्ध्वमें अवस्थित है। यह पहाड़ी प्रदेश शतद्रु नदीके जिस स्थानमें प्रथमतः समतल भूमिमें निपतित है, उस भूखण्डका नाम है गञ्ज। इस समतल भूमिमें इसकी गहराई प्रायः चार हजार फुट है। चीन देशके पुलिस स्टेशन सिपकी नामक स्थानसे शतद्रु सीधे दक्षिणकी ओर बह चली है। हिमालयके पथरीले प्रदेशसे हो कर यहां शतद्रु जैसी बहती है, भ्रमणकारी उसका विवरण थोड़ा बहुत संग्रह कर प्रकाश कर गये हैं। हिमालयके मध्य हो कर शतद्रु बहती है। यहां शतद्रुके पथरीले किनारेकी ऊंचाई करीब बीस हजार फुट है। सिपकीमें भी समुद्र-तटसे ऊंचाई दस हजार फुटसे कम नहीं है। हिमालयके प्रान्त भागसे शतद्रु बसहर-स्टेट और विलासपुरके मध्य होती हुई वह चली है। विलासपुर समतल भूमिखण्डसे प्रायः तीन हजार फुट ऊंचा है।

विलासपुरकी सीमाको छोड़ शतद्रु वृटिश राज्यमें आ गिरी है। दो सौ मील तक निर्जन पहाड़ी प्रदेश हो कर बहती हुई लिपा स्पिति नदीमें मिल गई है। यहांसे दोनों प्रवाह एकत्र मिल कर दक्षिण-पश्चिमकी ओर बसाहर और सिमला पहाड़ पथसे होसियारी हो कर वह चला है। यहांसे शतद्रु शिवालिक पर्वतमाला-को घेरती हुई दक्षिणकी ओर बह चली है। शतद्रु

द्वारा होशियारपुर और अम्बाला विभक्त हुआ है। इसके बाद शतद्रु प्रवाह उत्तरमें जालन्धर तथा अम्बाला, लुधियाना और फिरोजपुर, दक्षिणमें राज कपूरतलाके बीच हो कर प्रवाहित है। कपूरतलाके दक्षिण-पश्चिम कोन पर शतद्रु नदीमें विपस नद आ मिला है। यह सम्मिलित जलप्रवाह इस स्थानसे बराबर दक्षिण-पश्चिमकी ओर प्रवाहित होता है। इसके दक्षिण-पूर्व तट पर फिरोजपुर, सिरसा और बहवलपुर अवस्थित हैं। उत्तर पश्चिम प्रान्तमें धारोदोआब, लाहोरका कुछ अंश, मण्टेगूमारी और मुलतान जिला है। दोनों किनारेके हरे भरे क्षेत्रोंकी शोभा देखते ही बन पड़ती है। दोनों किनारा बहुत ऊंचा है। किन्तु नीचे राजपुताना अञ्चलमें तटके आस पासकी भूमि उतनी उर्व्वरा नहीं है। मदवालाके समीप शतद्रु चिनाव नदके साथ मिल गई है। यहां नदियां पञ्चनद नामसे ख्यात हैं।

शतद्रु ६०० मील पथ घूमती घूमती मिथुनकोटके पास सिन्धुनदमें मिल गई है। मिथुनकोट सामुद्र समतल भूमिसे २५८ फुट उदुर्ध्वमें अवस्थित है। जून, जुलाई और अगस्त इन तीन महीनेमें वर्षाके कारण नदी भरी रहती है। फिलोरके पास शतद्रुके वक्षमें एक रेलवे पुल तथा बहवलपुरके पास भी और एक पुल है। वर्षाकालमें फिरोजपुर तक स्टीमर जा सकता है।

शतद्रुका (सं० स्त्री०) शतद्रु-स्वार्थे कन् टाप्। शतद्रु नदी।

शतद्रुज (सं० पु०) शतद्रुतीरवासी।
(मार्क०पु० ५७।३७)

शतद्रुति (सं० स्त्री०) समुद्रको कन्या और बर्हिषदकी पत्नी। (भाग० ४।१०।१३)

शतद्युम्न (सं० त्रि०) शतसंख्यक धनयुक्त।

शतद्वार (सं० त्रि०) शतं द्वाराणि यस्य। शतद्वारविशिष्ट, जिसमें सौ प्रवेशपथ हों।

शतधनुस् (सं० पु०) यदुवंशीय राजभेद, हृदिक राजपुत्र। (भागवत ६।२४।२७)

शतधन्व (सं० त्रि०) सौ बार धन्यवादके पात्र।

शतधन्वा (सं० पु०) १ एक योद्धा जिसे कृष्णने सत्राजित्के मारनेके अपराधमें मारा था। २ राजभेद। (हरिवंश) ३ ऋषिभेद। (पा ५।१।१३२)

शतधर (सं० पु०) राजभेद। (वायुपुराण)

शतधा (सं० अव्य०) शत प्रकारे धाच्। १ शत प्रकार, सौ किस्म। (स्त्री०) २ दूर्व्वा, दूब। (शब्दच०)

शतधामन् (सं० पु०) शतं धामानि वर्च्चांसि यस्य। विष्णु। (जटाधर)

शतधार (सं० क्ली०) शतं धाराः कोणा यस्य। १ वज्र। (त्रिका०) (त्रि०) २ शत धारायुक्त, जिसमें सौ धारा हो।

शतधारवन (सं० क्ली०) तीर्थभेद।

शतधृति (सं० पु०) १ इन्द्र। २ ब्रह्मा। (मेदिनी) ३ स्वर्ग। (विश्व)

शतधेनुतन्त्र (सं० क्ली०) तन्त्रभेद।

शतधौत (सं० त्रि०) शतधा धौत, जो एक सौ बार धोया गया हो।

शतनिर्हाद (सं० पु०) बहुमीषण शब्दयुक्त, भयङ्कर शब्दवाला। स्त्रियां टाप्। (भारत ५ पर्व)

शतनेत्रिका (सं० स्त्री०) शतावरी। (राजनि०)

शतपति (सं० पु०) सौ मनुष्योंका मालिक या सरदार।
(पा ४।१।१४)

शतपत्र (सं० क्ली०) शतं पत्राणि यस्य। १ पद्म, कमल। (अमर) (पु०) शतं पत्राणि पक्षा यस्य। २ मयूर, मोर। ३ सारस। ४ शारिका, मैना। ५ कठफोड़वा पक्षी। ६ शतपत्री, सेवती। ७ वृहस्पति। (त्रि०) ८ सौ दलों या पत्तोंवाला। ९ सौ पंखोंवाला।

शतपत्रक (सं० पु०) शतपत्र स्वार्थे कन्। १ कठफोड़वा नामका पक्षी। २ एक प्रकारका विषैला कीड़ा। ३ पुराणानुसार एक पर्वतका नाम।

शतपत्रनिवास (सं० पु०) शतपत्रं निवासो यस्य। १ ब्रह्मा। (कविकल्पलता) (त्रि०) २ पद्मस्थ।

शतपत्रभेदन्याय (सं० पु०) न्याय देखो।

शतपत्रयोनि (सं० पु०) शतपत्रं योनिः उत्पत्तिस्थानं यस्य। ब्रह्मयोनि, ब्रह्मा।

शतपत्रा (सं० स्त्री०) दूर्व्वा, दूब।

शतपत्रिका (सं० स्त्री०) शतपत्र कन् टाप् अत इत्वं। शतपत्री।

शतपत्री (सं० स्त्री०) शतं पत्राणि यस्याः ङीप्। पुष्पविशेष, एक प्रकारका गुलाब। कलिङ्ग—सेवन्तिगे, तैलङ्ग—चेमन्ति चेट्टु। पर्याय—सुमनाः, सुशीता, शिववल्लभा, सौम्यगन्धी, शतदला, सुवृत्ता, शतपत्रिका। गुण—शीतल, तिक्त, कषाय, कुष्ठ, मुखरोग, स्फोटक, पित्त और दाहनाशक, रुचिकर और सुरभि। (राजनि०)

शतपत्रीकेसर (सं० पु०) गुलाबका जीरा, गुलाब, केसर।

शतपथ (सं० त्रि०) १ असंख्य मार्गोंवाला। २ बहुतसी शाखाओंवाला।

शतपथब्राह्मण (सं० पु०) यजुर्वेदका एक ब्राह्मण। इसके कर्ता महर्षि याज्ञवल्क्य माने जाते हैं। इसकी माध्यन्दिन और काण्व शाखायें मिलती हैं। इनमेंसे पहलीकी विशेष प्रतिष्ठा है। एक प्रणालीके अनुसार इसमें ६८ प्रपाठक हैं और दूसरीके अनुसार यह १४ काण्डों और १०० अध्यायोंमें विभक्त है। चारों ब्राह्मणोंमेंसे यह अधिक कामपूर्ण और रोचक है। इसमें अग्निहोत्रसे ले कर अश्वमेध पर्यन्त कर्मकाण्डका बड़ा ही विशद और सुन्दर वर्णन है। वेद देखो।

शतपथिक (सं० त्रि०) शतपथमधीते तद्वेद इति वा (शतषष्टेः षिकन् पथो बहुलम्। पा ४।२।६०) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या शत शब्दोत्तर पथिन् शब्दात् षिकन्। १ बहुतसे मतोंका अनुयायी। २ शतपथब्राह्मणका जानने या पढ़नेवाला।

शतपथीय (सं० त्रि०) शतपथब्राह्मण-सम्बन्धी।

शतपद् (सं० त्रि०) शतपद्विशिष्ट।

(ऋक् १।११६।४।२)

शतपद (सं० क्ली०) १ कनखजूरा, गोजर। २ च्यूँटी।

शतपदचक्र (सं० क्ली०) शतं पदानि कोष्ठा यस्य तच्चक्रञ्चेति। ज्योतिषमें सौ कोष्ठोंवाला एक प्रकारका चक्र। इस चक्रके अनुसार नाम रखनेसे जातकके नामके आदि अक्षर द्वारा उसका जन्म नक्षत्र तथा उस नक्षत्रका पाद ज्ञात और उसके अनुसार बालकका राशिनाम होता है।

शतपदी (सं० स्त्री०) शतं पादा यस्याः ङीप्। १ कनखजूरा, गोजर। पर्याय—कर्णजलौका, कर्णकीटी, मीरु, शतपादिका, कर्णजलूका, शतपात्, शतपादी। (जटाधर) यह कीट आठ प्रकारका होता है, जैसे—परुषा, कृष्णा, चित्रा, कपिलिका, पित्तिका, रक्ता, श्वेता, अग्निप्रभा। इसके दंशन करनेसे उस जगह शोथ, हृदयमें दाह और वेदना होती है। (सुश्रुत कल्पस्था० ८ अ०) २ शतमूली, सतावर। (राजनि०) ३ नीली कोयल नामकी लता। ४ सरसोंकी जातिका एक पौधा। इसके ऊपर कलगीके आकारके लाल फूल लगते हैं।

शतपद्म (सं० क्ली०) श्वेतपद्म, सफेद कमल।

शतपयस् (सं० त्रि०) शतसंख्यक पयोविशिष्ट।

(शुक्लयजुः १७।५६ महीधर)

शतपरिवार (सं० पु०) समाधिका एक भेद।

शतपर्ण (सं० पु०) एक ऋषि। इनके अपत्य शातपर्णेय कहलाते हैं।

शतपर्वक (सं० त्रि०) १ शतपर्वविशिष्ट। २ शतपर्वा, दूब।

शतपर्वधृक् (सं० पु०) वज्रधारी इन्द्र।

(भागवत ३।१४।४१)

शतपर्वन् (सं० पु०) शतं पर्वाणि यस्य। १ वंश, बाँस। २ इक्षुभेद, एक प्रकारकी ईख। ३ शतपर्वविशिष्ट वज्र, वह वज्र जिसमें सौ पर्व हों।

(ऋक् १।८०।६)

शतपर्वा (सं० स्त्री०) शतं पर्वाणि यस्याः। १ दुर्वा, दूब। २ वचा, बच। ३ भार्गवकी पत्नी। (भारत ५।१५७।१२) ४ कोजागर पूर्णिमा। (शब्दरत्ना०) ५ कटुकी। ६ श्वेतदूर्वा, सफेद दूब। ७ नीलदूर्वा। ८ कलम्बी शाक, करेमूका साग। (भावप्र०) ९ सुगन्धि द्रव्य। १० पौंढा, गन्ना, केतारा।

शतपर्विका (सं० स्त्री०) शतपर्वा कन्-टापि अत इत्वं। १ दूर्वा, दूब। २ वचा, बच। (मेदिनी) ३ यव, जौ। (शब्दरत्ना०)

शतपर्वेश (सं० पु०) शतपर्वणां ईशः। शुक्रग्रह। (त्रिका०)

शतपर्वित (सं० त्रि०) बहुपर्वयुक्त कन्विशिष्ट। स्त्रियां

टाप्। (शतं बहूनि पवित्राणि पावनानि रूपाणि यासाम्‌ताः। ऋक् ७।४७।३ सायण)

शतपात् (सं० स्त्री०) शतं पादा यस्याः पादस्य पात्। कर्णजलौका, गोजर।

शतपादक (सं० पु०) अग्निप्रकृति कोटविशेष।

शतपादिका (सं० स्त्री०) शतपाद् स्वार्थे कन् टाप् अत इत्वं। १ काकोली नामक अष्टवर्गीय ओषधि। २ कर्णजलौका, गोजर।

शतपादी (सं० स्त्री०) १ श्वेतकटभीवृक्ष। २ नीली अपराजिता। (वैद्यकनि०)

शतपाल (सं० पु०) शतं पालयति, पाल अन्। शतपालक, वह जो सौका पालन करता हो।

शतपुत्र (सं० त्रि०) शतं पुत्रा यस्य। शतपुत्रविशिष्ट, जिसे सौ पुत्र हो।

शतपुत्री (सं० स्त्री०) १ शतावरी, सतावर। २ सतपुतिया तरोई।

शतपुष्प (सं० पु०) १ किराताजुर्नीय ग्रन्थकर्त्ता भारविनामक कवि। २ षष्टिक शालिधान्य, साठी धान।

शतपुष्पा (सं० स्त्री०) शतं पुष्पाणि यस्याः। १ शाकविशेष, सोआ नामका साग। अंगरेजीमें इसे Peucedanum Sowa P. Graveolens कहते हैं। संस्कृत पर्याय—सितछत्रा, अतिछत्रा, मधुरा, मिसि, अवाक्पुष्पी, कारवी, शताह्वी, शतपुष्पिका, मधुरिका, शताह्वा, छत्रा, मिशी, माधवी, घोषा। गुण—मधुर, वातपित्तहर, गुरु। (राजव०) २ क्षुपविशेष, सौंफ। पर्याय—शताह्वा, मिसि, घोषा, पोतिका, अतिछत्रा, अवाकपुष्पी, माधवी, कारवी, शिफा, संघातपत्रिका, छत्रा, वज्रपुष्पा, सुपुष्पिका, शतप्रसूना, बहला, पुष्पाह्वा, शतपत्रिका, वनपुष्पा, भूरिपुष्पा, सुगन्धा, सूक्ष्मपत्रिका, मधुरिका, अतिछत्रा। गुण—कटु, तिक्त, स्निग्ध, श्लेष्मा, अतिसार, ज्वर, नेत्ररोग और व्रणनाशक तथा वस्तिकार्यमें प्रशस्त। इसका दलगुण—उष्ण, मधुर, गुल्म, शूल और वातनाशक, दीपन, पथ्य, पित्तहारक और रुचिदायक। (राजनि०) ३ गवेधुक।

शतपुष्पाह्व (सं० पु०) १ सौंफका साग। २ शताह्वा।

शतपुष्पिका (सं० स्त्री०) शतपुष्पा, स्वार्थे कन् टापि अत इत्वं। शतपुष्पा देखो।

शतपोद (सं० पु०) १ एक प्रकारका वातजन्य भगन्दर। इसमें गुदाके समीप फोड़ा उत्पन्न होता है, जिसके पकने पर बहुतसे छेद हो जाते हैं और उनमेंसे मल, मूत्र तथा वीर्य निकलता है। २ एक प्रकारका रोग जिसमें वात और रक्तके कुपित होनेसे लिङ्ग पर अनेक छेद हो जाते हैं।

शतपोदक (सं० पु०) शतपोद देखो।

शतपोनक (सं० पु०) शतपोद देखो।

शतपोर (सं० पु०) इक्षुविशेष, पौंढ़ा, गन्ना। इसका गुण—कुछ उष्ण, वातशान्तिकर। (सुश्रुत सूत्र ४५ अ०)

शतपौर (सं० पु०) शतपोर देखो।

शतप्रद (सं० त्रि०) शतदानशील। (निरु० ११।११)

शतप्रभेदन (सं० पु०) एक ऋषि। ये ऋक् १०।११३ सूक्तके मन्त्रद्रष्टा तथा वैरूप गोत्रीय थे।

शतप्रसव (सं० पु०) कम्बलबर्हिके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश)

शतप्रसूति (सं० पु०) शतप्रसव देखो।

शतप्रसूना (सं० स्त्री०) शतं प्रसूनानि पुष्पाणि यस्याः। शतपुष्पा देखो।

शतप्रास (सं० पु०) शतं प्रासा इव फलानि यस्य। करवीर वृक्ष, कनेरका पेड़।

शतफल (सं० पु०) वंश, बांस।

शतबला (सं० स्त्री०) महाभारतके अनुसार एक प्राचीन नदीका नाम। (भारत भीष्मपर्व)

शतबलाक (सं० पु०) एक वैदिक आचार्य। (वायुपु०)

शतबलाक्ष (सं० पु०) मौद्गल्य गोत्रसम्भूत एक वैयाकरण। (निरुक्त ११।६)

शतबलि (सं० पु०) १ मत्स्य, मछली। (भागवत ३।१७) २ रामायणके अनुसार एक बन्दरका नाम। (रामायण ४।३३।१४)

शतबाहु (सं० पु०) १ सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका कीड़ा। (सुश्रुत कल्पस्था० ८ अ०) २ असुरभेद (भाग० ७।२।४) ३ मारका पुत्र। (ललितविस्तर) (त्रि०) ४ शतबाहुविशिष्ट, सौ भुजावाला। (तैत्तिरीय आर० १०।१) (स्त्री०) ५ देवताविशेष।

शतबुद्धि (सं० त्रि०) १ बहुबुद्धिधारी, बड़ा बुद्धिमान्। (पु०) २ पञ्चतन्त्रोक्त मत्स्यविशेष।

शतभिष (सं० पु०) शतभिषा नक्षत्र।

शतभिषज् (सं० स्त्री०) शतं भिषज इव तारा यत्र। १ शतभिषा नक्षत्र। (पु०) २ वह व्यक्ति जिसका जन्म शतभिषा नक्षत्रमें हुआ हो। (पाणिनि ४।३।३६)

शतभिषा (सं० स्त्री०) अश्विनी आदि सत्ताइस नक्षत्रोंमें-से चौबीसवाँ नक्षत्र। यह सौ तारोंका समूह है और इसकी आकृति मण्डलाकार है। इसके अधिष्ठाता देवता वरुण कहे गये हैं, और यह ऊर्द्ध्वमुख माना गया है। कहते हैं, कि जो बालक इस नक्षत्रमें जन्म लेता है, वह साहसी, निष्ठुर, चतुर और अपने वैरीका नाश करनेवाला होता है।

शतभिषा नक्षत्रयुक्त रवि, शनि या मङ्गलवारमें रोगोत्पन्न होनेसे रोगीकी मृत्यु होती है।

अष्टोत्तरी मतसे शतभिषा नक्षत्रमें जन्म लेनेसे राहुकी दशा होती है। अगर यह नक्षत्र समूचा पड़े, तो चार वर्ष भोग होता है, साधारणतः ६० दण्ड नक्षत्रमान रहनेसे नक्षत्रके प्रतिपदमें एक वर्ष, प्रति दण्डमें २४ दिन तथा प्रतिपदमें २४ दण्ड करके भोग जानना होगा। किन्तु सूक्ष्म हिसाब करनेसे नक्षत्रमान जितना दण्ड होगा, उन्हीं दण्डोंमें ४ वर्ष भोग होगा। विंशोत्तरी मतसे भी शतभिषा नक्षत्रमें राहुकी दशा हुआ करती है।

शतभीरु (सं० स्त्री०) शतं बहवो वियोगिनो भीरवोऽस्याः। मल्लिका पुष्पवृक्ष, चमेलीका पेड़।

शतभुजि (सं० त्रि०) १ अत्यन्त विस्तीर्ण। २ शतगुण। ३ बहुसंख्यक भुज अर्थात् प्राचीरादि वेष्टित। ४ असंख्यजात भोगवत्। (ऋक् १।१६६।८ सायण)

शतभृष्टि (सं० स्त्री०) अतिशय तीक्ष्ण या तेज।
(तैत्ति० सं० २।६।४।२)

शतमख (सं० पु०) शतं मखा यज्ञा यस्य। १ इन्द्र, शतक्रतु। (हलायुध) २ कौशिक, उल्लू।

शतमन्यु (सं० पु०) शतं मन्यवो क्रतवो यस्य। १ इन्द्र। २ कौशिक, उल्लू। (त्रि०) ३ शतयज्ञकारी, सौ यज्ञ करनेवाला। ४ क्रोधी, गुस्सावर। ५ उत्साही।

शतमन्युकपित्थ (सं० पु०) वृक्षभेद।

शतमय (सं० त्रि०) शत स्वरूपे मयट्। शत स्वरूप, सौ।

शतमयूख (सं० त्रि०) १ बहुरश्मिविशिष्ट। (पु०) २ चन्द्रमा।

शतमल्ल (सं० पु०) संखिया नामक विष।

शतमाण्टि (सं० पु०) माण्टि नामधारी वैदिक आचार्योंकी वंशपरम्परा।

शतमान (सं० पु० क्ली०) १ सुवर्णकी कोई वस्तु जो तौलमें सौ मानकी हो। २ सोना या चाँदी तौलनेके लिये सौ मानकी तौल या बाट। ३ चाँदीका पल। ४ आढ़क नामकी प्राचीन कालकी तौल जो प्रायः पौने चार सेरकी होती थी। ५ रूपामाखी या तार-माक्षिक नामकी उपधातु। (त्रि०) ६ शतलोकपूज्य, जगत्पूज्य।
(शुक्लयजु १९।९३)

शतमाय (सं० त्रि०) बहुमायावित्।

शतमार्ज (सं० पु०) शतं शतवारं मार्जयति शस्त्राणीति मृज शुद्धौ णिच् अच्। वह जो अस्त्र आदि बनाता या उन्हें ठीक करता हो। कोई कोई इसे शस्त्रमार्ज भी कहते हैं।

शतमारिन् (सं० पु०) १ वैद्य, उत्तम चिकित्सक। २ शत शत्रुहन्ता, वह जिसने सौ शत्रुको मारा हो।

शतमुख (सं० पु०) १ असुरभेद। (भारत १२ पर्व) २ शिवगणभेद। (हरिवंश)

शतमुखी (सं० स्त्री०) दुर्गा। (हेम)

शतमूति (सं० त्रि०) बहुविध रक्षणोपेत।
(ऋक् १।१०२।६ सायण)

शतमूला (सं० स्त्री०) शतं मूलानि यस्याः। १ दूर्वा, दूब। २ वचा, बच। ३ बड़ी सतावर।

शतमूलिका (सं० स्त्री०) शतं मूलानि यस्याः ततः स्वार्थे कन्। १ द्रवन्ती, बड़ी दन्ती, बंगरेडा। २ आखुकर्णी नामकी लता।

शतमूली (सं० स्त्री०) शतं मूलानि यस्याः (पाककर्णेति। पा ४।१।६४) इति ङीष्। १ शतावरी नामकी ओषधि। पर्याय—बहुसुता, अभीरु, इन्दीवरी, वरी, ऋष्यप्रोक्ता, भीरुपत्नी, नारायणी, शतावरी, अहेरु, दङ्गिनी, शम्या,

द्विपिनक, अध्यपत्रा, शतपदी, पीवरी, धीवरी, दृष्या, दिव्या, शीविका, दरकण्ठिका, सूक्ष्मपत्रा, सुपत्रा, बहुमूला, शताह्वा, स्वादुरसा, शताह्वा, लघुपर्णिका, अ.रमगुप्ता, जटा, मूला, शतवीर्या, महौषधी, मधुरा, शतमूला, केशिका, शतपत्रिका, विश्वस्या, वैष्णवी, पार्ष्णी, वासुदेवप्रियङ्करी, दुर्गेना, तैलवल्ली। गुण—दृष्य, मधुर, शीतल, मेद, कफ, वात और पित्तनाशक, सोता और रसायन। (राजनि०)

२ तालमूली, मूसली। ३ वचा, वच।

शतमूल्यादिलौह—रक्तपित्तरोगमें फलप्रद औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—शतमूली, चीनी, धनियाँ, नागेश्वर, रक्तचन्दन, त्रिकटु, त्रिफला, त्रिमद, पिठ्ठुनी, मोथा, चिताभूल और कृष्णतिल, इनका एक भाग, सबके बराबर समान लौह। इन सब द्रव्योंको एकत्र पीस लेना होगा। मात्रा १ माशा और अनुपान मधु है। इसका सेवन करनेसे तृष्णा, दाह, ज्वर, वमि और रक्तपित्त उपशमित होता है।

शतयज्ञोपलक्षित (सं० पु०) इन्द्र।

शतयज्वन् (सं० त्रि०) १ शतयज्ञकारी, सौ यज्ञ करने वाला। (पु०) २ शतक्रतु, इन्द्र।

शतयष्टिक (सं० पु०) शतं यष्टयो गुच्छा यस्य। शत लतिकहार, वह हार जिसमें सौ लड़ हों। पर्याय—देव-च्छन्द।

शतयाजम् (सं० अव्य०) शत यज्ञान्तर्निविष्ट। (अथर्व ६।४।१८)

शतयातु (सं० पु०) ऋषिभेद। (ऋक् ७।१८।२१)

शतयामन् (सं० त्रि०) बहुपथविशिष्ट। (ऋक् १।८६।१६)

शतयूप (सं० पु०) राजर्षिभेद। (भारत १५ पर्व)

शतयोजन (सं० क्लो०) एक शतयोजनपरिमित दूरविस्तृति।

शतयोजनपर्वत (सं० पु०) पर्वतभेद।

शतयोनि (सं० त्रि०) १ बहु आवासविशिष्ट। २ बहु नीड़। (अथर्व ७।४१।२)

शतयोजनगामिन् (सं० त्रि०) बहुदूरगामी।

शतरंज (फा० पु०) एक प्रकारका प्रसिद्ध खेल। यह चौंसठ खानोंकी बिसात पर खेला जाता है। यह खेल दो आदमी खेलते हैं। जिनमेंसे प्रत्येकके पास १६-१६ मुहरे रहते हैं। इन सोलह मुहरोंमें एक बादशाह, एक वजीर, दो ऊंट, दो घोड़े, दो हाथी या किश्तियां तथा आठ प्यादे होते हैं। इनमेंसे प्रत्येक मुहरेकी कुछ विशिष्ट चाल होती है अर्थात् उसके चलनेके कुछ विशिष्ट नियम होते हैं। उन्हीं नियमोंके अनुसार विपक्षीके मुहरे मारे जाते हैं। जब बादशाह किसी ऐसे घरमें पहुंच जाता है, जहांसे उसके चलनेको जगह नहीं रहती, तब बाजी मात समझी जाती है। इसकी बिसातमें आठ आठ खानोंकी आठ पंक्तियां होती हैं।

विशेष विवरण चतुरङ्ग शब्दमें देखो।

शतरंजबाज (सं० पु०) शतरंजका खिलाड़ी, शातिर।

शतरंजबाजी (फा० स्त्री०) १ शतरंज खेलनेका व्यसन। २ शतरंज खेलनेका काम या भाव।

शतरंजी (फा० स्त्री०) १ वह दरी जो कई प्रकारके रंग बिरंगे सूतोंसे बनी हो। २ वह जो शतरंजका अच्छा खिलाड़ी हो। ३ शतरंज खेलनेकी बिसात। ४ वह रोटी जो [illegible] प्रकारके अनाजोंको मिला कर बनाई गई हो, मिस्सी रोटी।

शतरथ (सं० पु०) राजभेद। (भारत आदिपर्व)

शतरा (सं० पु०) १ बहुधनविशिष्ट, बड़ा दौलतमंद। २ इन्द्रियप्रसन्नता-दानकारी, सुख। (ऋक् १०।६।५ सायण)

शतरात्र (सं० पु०) शतरात्रव्याप्य सत्रविशेष, एक प्रकारका यज्ञ जो सौ रातोंमें समाप्त होता था। (पञ्चवि०)

शतरुद्र (सं० पु०) १ रुद्रका एक रूप जिसके सौ मुंह माने जाते हैं। २ शैवदर्शनके अनुसार एक शक्ति जो आत्माकी उत्पादक कही गई है।

शतरुद्रा (सं० स्त्री०) हिमालयकी एक नदीका नाम।

शतरुद्रिय (सं० स्त्री०) शतरुद्रीय देखो।

शतरुद्रीय (सं० स्त्री०) शतं रुद्रा देवता अस्य, शतरुद्र (शतरुद्राच्छश्च घश्च। पा ४।२।२८) इत्यस्य वार्त्ति-कोक्तया घः पक्षे छश्च। १ यजुकी हवि। (क्लो०) २ यजुर्वेदान्तर्गत रुद्रदेवताविषयक मन्त्रविशेष। (वाजसनेयस० १६।१।१६)

यह स्तोत्र पाठ करनेसे शतशीर्ष रुद्रदेव परितृप्त होते हैं। स्थलविशेषमें शम्-क करके शान्तरुद्रीय शब्दके बदले शतरुद्रीय पद होता है। वाजसनेयसंहिताके १६वें अध्यायमें बहु मन्त्र द्वारा स्तुत शतरुद्रीय होमकी विधि है। (ऋक् १०।१०६।५ सायण)

शतरूप (सं० त्रि०) १ बहुरूपविशिष्ट। (पु०) २ मुनिविशेष।

शतरूपा (सं० स्त्री०) शतं रूपाणि यस्याः। ब्रह्माकी मानसी कन्या और पत्नी। इन्हींके गर्भसे स्वायम्भुव मनुकी उत्पत्ति हुई थी। (मत्स्यपु० ३ अ०)

विष्णुपुराणके मतसे यह स्वायम्भुव मनुकी पत्नी थी। (विष्णुपु० १।७।१४-१६) मनु (१।३२)-में शतरूपाका तो कोई उल्लेख नहीं है, पर पुराणवर्णित इस उपाख्यानका सारांश निम्नोक्तरूपसे उल्लिखित हुआ है। ब्रह्माने अपनी इच्छासे देह दो खण्ड कर अर्द्धनारीश्वर-मूर्त्ति धारण की। पीछे स्वयं उस रमणीमें विराट्को उत्पन्न किया।

शतवंस् (सं० त्रि०) शतविध तेजःविशिष्ट, बहुत प्रकारका तेजवाला। (ऋक् ७।१००।३ सायण)

शतर्चिन् (सं० पु०) ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंकी उपाधि। (ऋग्वेद अनुक्रमणिकामें षड्गुरुशिष्य)

शतलक्ष (सं० क्ली०) कोटिसंख्या, करोड़।

शतलुम्प (सं० पु०) भारविनामा कवि। स्वार्थे कन्। शतलुम्पक।

शतलोचन (सं० त्रि०) १ सौ नेत्रोंवाला। (पु०) २ स्कन्दानुचरभेद (भारत ९ पर्व) ३ असुरभेद। (हरिवंश)

शतपत्र (सं० पु०) मन्त्रात्मविशेष। (रामा० १।३०।५)

शतवत् (सं० त्रि०) शत अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। शतविशिष्ट।

शतवनि (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक एक ऋषि। इनकी सन्तान आदि शातवनेय कहलाती हैं।

शतवपुस् (सं० पु०) उशनाके एक पुत्रका नाम। (विष्णुपु०)

शतवर्ष (सं० पु०) १ शतसंख्यक वर्षव्याप्य काल, शताब्दी। २ शताब्द प्राचीन।

शतबल (सं० त्रि०) बहु बलधारी, बड़ा ताकतवर।

शतवल्ली (सं० स्त्री०) १ नीली दूब। २ काकोली नामक अष्टवर्गीय ओषधि।

शतवल्श (सं० त्रि०) बहुशाखाविशिष्ट।

शतवाज (सं० त्रि०) प्रभूत शक्तिसम्पन्न। (ऋक् ८।८१।१०)

शतवादन (सं० क्ली०) बहुतसे बाजोंका एक साथ बजना।

शतवार (सं० पु०) कवचविशेष। (अथर्व १९।३६।१)

शतवार्षिक (सं० त्रि०) शतवर्षभव, प्रति सौ वर्ष पर होनेवाला।

शतवार्षिकी (सं० स्त्री०) अनावृष्टि, पानी न बरसना।

शतवाही (सं० स्त्री०) १ शतवहनकारिणी। २ वह स्त्री जो मैकेसे बहुत-सा धन साथ ले कर ससुराल आई हो।

शतविचक्षण (सं० त्रि०) बहुदर्शन। (ऋक् १०।९७।१८)

शतवीर (सं० पु०) विष्णुका एक नाम। (हेम)

शतवीर्य (सं० त्रि०) श्रोत्रेन्द्रियसम्बन्धीय प्रभूत शक्तिसम्पन्न। (अथर्व ३।११।३)

शतवीर्या (सं० स्त्री०) शतं वीर्याणि यस्याः। १ श्वेत दूर्वा, सफेद दूब। २ शतावरी, शतमूली। ३ कपिलद्राक्षा, मुनक्का। ४ सफेद मूसली। ५ किशमिश।

शतवृषभ (सं० पु०) ज्योतिषमें एक मुहूर्त्तका नाम।

शतवेधिन् (सं० पु०) शतं विध्यतीति विध णिनि। १ अम्लवेतस, अमलवेंत। २ चुकिका या चूका नामक साग।

शतवेधिनी (सं० स्त्री०) चुकिका या चूका नामक साग।

शतशलाका (सं० स्त्री०) छत्र। (दिव्या० ५१३.२०)

शतशस् (सं० अव्य०) शत वशस् वारार्थे। शत बार, सौ दफे।

शतशाख (सं० त्रि०) बहु शाखा-प्रशाखा-विशिष्ट। (अथर्व ४।१९।५)

शतशाखत्व (सं० क्ली०) १ बहु शाखाविशिष्टका भाव। २ बहुत्वका निदानभूत।

शतशारद (सं० त्रि०) शत सम्वत्सर।

शतशीर्ष (सं० पु०) १ विष्णुका एक नाम। २ रामायणके अनुसार एक प्रकारका अभिमन्त्रित अस्त्र। (रामा० १।३।१६)

शतशीर्षा (सं० स्त्री०) वासुकीदेवी। (भारत उद्योगपर्व)

शतशृङ्ग (सं० पु०) एक पर्वत। (भाग० ५।२०।१०)

यह महासमुद्रके उत्तरमें अवस्थित है। (लिङ्गपु० ४९।५५) अनुमान है, कि यह वर्त्तमान मैसूर राज्यके एक पर्वतका प्राचीन नाम है। इस पर्वतकी देवकीर्त्तिका विषय शतशृङ्गमाहात्म्यमें वर्णित है।

शतश्लोकी—मधुसूदन सरस्वतीकृत ब्रह्मसूत्रकी व्याख्याके आधार पर वलभश्लोकतीर्थ-विरचित एक वेदान्त ग्रन्थ। यह श्लोकके आकारमें लिखा गया है।

शतसंख्य (सं० त्रि०) शतं संख्या यस्य। १ शतसंख्यक, सौ। (पु०) २ पुराणानुसार दशवें मन्वन्तरके एक देवता। (विष्णुपु०)

शतसंवत्सर (सं० पु०) शत वत्सर, सौ वर्ष।

शतसङ्घशस् (सं० अव्य०) शत शत संख्यक।

शतसनि (सं० त्रि०) शतसंख्याविशिष्ट, सौ।

शतसहस्र (सं० क्ली०) शतगुणितं सहस्रं। शतगुणित सहस्र, एक लाख।

शतसहस्रक (सं० क्ली०) तीर्थभेद। (भारत वनपर्व)

शतसहस्रधा (सं० अव्य०) शतसहस्र प्रकारार्थे धाच्। शतसहस्र प्रकार।

शतसहस्रपत्र (सं० पु०) पुष्प, फूल।

शतसहस्रशस् (सं० अव्य०) शतसहस्र प्रकारार्थे शशस्। शतसहस्र प्रकार। (भाग० ५।१६।१६)

शतसहस्रांशु (सं० पु०) चन्द्रमा। (भारत आदिपर्व)

शतसहस्रान्त (सं० पु०) चंद्रमा। (नीलकण्ठ)

शतसा (सं० त्रि०) शतदाता, शतदानि।

शतसाहस्र (सं० त्रि०) बहु संख्यक।

शतसाहस्रक (सं० क्ली०) तीर्थभेद।

शतसाहस्रिक (सं० त्रि०) शत सहस्र संख्याविशिष्ट।

शतसुला (सं० स्त्री०) शतमूली, सतावर।

शतसू (सं० त्रि०) १ शतप्रसवकारी, सौ प्रसव करनेवाला। २ बहु धनानयनकारी, बहुत धन लानेवाला।

शतसेय (सं० क्ली०) अपरिमित धनपर्यवसान। (ऋक् ३।१८।३)

शतस्विन् (सं० त्रि०) शतसंख्योपेत धनवान्। (ऋक् ७।५८।४ सायण)

शतहन् (सं० त्रि०) शतं हन्ति हन् क्विप्। शतघ्ना, सौको मारनेवाला। (पु०) २ शतघ्नी नामक एक प्रकारका शस्त्र। शतघ्नी देखो।

शतहस्त (सं० त्रि०) शतं हस्ता यस्य। शतहस्तविशिष्ट, जिसे सौ हाथ हो, एक सौ हाथका।

शतहिम (सं० त्रि०) शतसम्वत्सर। (ऋक् ६।४।८)

शतहुत (सं० त्रि०) सौ बार जिस होममें आहुति दी गई हो। (षड्विंशब्रा० ४।१)

शतहर (सं० पु०) असुरभेद। (हरिवंश)

शतह्रदा (सं० स्त्री०) शत ह्रदा अधांसि यस्याः यद्वा शतं ह्रादाः शब्दाः यस्याः निपातनात् ह्रस्वः। १ विद्युत्, बिजली। २ वज्र। ३ दक्षकी एक कन्या जो बाहुपुत्रकी स्त्री थी। (अग्निपुराण) ४ विराध राक्षसकी माता। (रामा० ३।३।२०)

शतांश (सं० पु०) सौ भागोंमेंसे एक भाग, १००वाँ हिस्सा।

शता (सं० स्त्री०) शतावरी। (वैद्यकनि०)

शताकरा (सं० स्त्री०) एक किन्नरीका नाम।

शताकारा (सं० स्त्री०) एक गंधर्व स्त्रीका नाम।

शताक्ष (सं० पु०) एक दानवका नाम। (हरिवंश)

शताक्षी (सं० स्त्री०) १ रात्रि, रात। २ शतपुष्पा नामक वनस्पति, सौंफ। ३ पार्वती। ४ दुर्गा। भगवती दुर्गा सौ नेत्रोंसे मुनियोंको दर्शन करती हैं, इसलिये लोग उन्हें शताक्षी कहते हैं।

शताग्रमहिषी (सं० स्त्री०) एक प्रधान राजमहिषी। (मार्क०पु० ७४।२१)

शताङ्ग (सं० पु०) शतं अङ्गानि अवयवा यस्य। १ रथ। (अमर) २ तिनिस, तिरिछ वृक्ष। ३ दानवविशेष। (हरिवंश २३२।२२) (त्रि०) ४ शतावयवविशिष्ट, सौ अंगों या अवयवोंवाला। (भारत १।११८।२२)

शताङ्कुल (सं० पु०) तालवृक्ष, ताड़का पेड़।

शताजित् (सं० पु०) सात्वत राजभेद। (भागवत ९।२४।८)

शतातृण (सं० त्रि०) बहु छिद्रविशिष्ट, बहुत छेदवाला। (तैत्तिरीयब्रा० १।८।६।४)

शतात्मन् (सं० त्रि०) नानारूपविशिष्ट। (ऋक् १।१४९।३)

शताधिक (सं० त्रि०) सौसे अधिक।

शताधिपति (सं० पु०) शतस्य अधिपतिः। १ शतका अधिपति, शतस्वामी। २ शतवर्ष वयस्क, वह जिसकी उम्र सौ वर्ष हो।

शतानक (सं० क्ली०) श्मशान, मरघट। (त्रिका०)

शतानन (सं० पु०) विल्व, बेल।

शतानना (सं० स्त्री०) एक देवीका नाम।

शतानन्द (सं० पु०) शतं बहुलः आनन्दो यस्य। १ गौतम मुनिका पुत्र। ये जनक राजाके पुरोहित थे। २ देवकीनन्दन। ३ ब्रह्मा। ४ विष्णु। (भारत १३।१४९।७६) ५ गौतममुनिका पुत्र जो अहल्याके गर्भसे उत्पन्न हुआ था। ६ विष्णुरथ।

शतानन्द—१ कार्त्तिकमाहात्म्यसंग्रहके प्रणेता। २ तिथ्यधिकारटीका-कर्त्ता। ३ रत्नमाला नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। रघुनन्दनने ज्योतिस्तत्त्वमें इनका मत उद्धृत किया है। ४ भास्वतीकरण और भास्वती नामक वैद्यक ग्रन्थके रचयिता। इन्होंने ११०० ई०में प्रथमोक्त ग्रन्थ लिखा। इनके पिताका नाम था शङ्कर तथा माताका नाम सरस्वती। ५ एक प्राचीन कवि।

शतानन्दा (सं० स्त्री०) शतानन्द-टाप्। १ स्कन्दानुचर मातृभेद। (भारत ९ पर्व) २ नदीभेद। (कालिकापु० ७८।२१)

शतानीक (सं० पु०) शतं अनीकानि यस्य। १ वृद्ध पुरुष, बूढ़ा आदमी। २ एक मुनि जो व्यासके शिष्य थे। ३ पुराणानुसार चौथे युगमें चन्द्रवंशका द्वितीय राजा। इसका पिता जनमेजय और पुत्र सहस्रानीक था। ४ भागवतके अनुसार सुदास राजाका पुत्र। (भागवत ९।२२ अ०) ५ नकुलके एक पुत्रका नाम जो द्रौपदीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था। (भारत १।२३४।१०) ६ एक असुरका नाम। ७ सौ सिपाहियोंका नायक।

शताब्ज (सं० क्ली०) शतपत्र।

शताब्द (सं० त्रि०) १ सौ वर्षवाला। (पु०) २ सौ वर्ष, शताब्दी, सदी।

शताब्दी (सं० स्त्री०) १ सौ वर्षोंका समय। २ किसी संवत्‌में सैकड़ेके अनुसार एकसे सौ वर्ष तकका समय। जैसे,—ईसाकी पाँचवीं शताब्दी अर्थात्, ई० सन् ४०१से ५०० तकका समय।

शतामघ (सं० पु०) १ शतधन। (ऋक् ८।१।५ सायण) २ इन्द्र।

शतायु (सं० पु०) शतायुस् देखो।

शतायुध (सं० त्रि०) शत अस्त्रधारी, जो सौ अस्त्र धारण करता हो। (तैत्तिरीयस० ५।७।२।३)

शतायुधा (सं० स्त्री०) एक किन्नरीका नाम।

शतायुस् (सं० पु०) शतं आयुर्यस्य। १ वह जिसकी आयु सौ वर्षोंकी हो। पुरुषकी पूर्ण आयु सौ वर्ष है। "शतायुर्वै पुरुषः" (श्रुति) २ पुरुरवाके एक पुत्रका नाम। (भारत आदिपर्व) ३ चिरायुका पुत्र। (कथासरित्सा० ४१।५८) ४ उशनाका पुत्र। (विष्णुपु०)

शतार (सं० क्ली०) शतं आराणि यस्य। १ वज्र। २ सुदर्शनचक्र।

शतारु (सं० क्ली०) एक प्रकारका कोढ़। इस रोगमें लाल पर लाल, काली और दाहयुक्त फुंसियाँ हो जाती हैं।

शतारुक (सं० पु०) शतारु देखो।

शतारुण (सं० पु०) राजभेद। (कौषीतकी ११।६)

शतारुषी (सं० स्त्री०) शतारु देखो।

शतारुस् (सं० क्ली०) शतारु देखो।

शतार्घ (सं० त्रि०) बहुमूल्य।

शतार्घा (सं० स्त्री०) एक प्रकारका वृक्ष। (Anethum Sowa)

शतार्द्ध (सं० क्ली०) पञ्चाशत् संख्या, पचास।

शतार्ह (सं० त्रि०) शतार्घ, बहुमूल्य।

शतावधान (सं० पु०) १ राघवेन्द्र भट्टाचार्यकी उपाधि। २ श्रुतिधर, वह मनुष्य जो एक साथ बहुत-सी बातें सुन कर उन्हें सिलसिलेवार याद रख सकता हो। कुछ मेधावी लोग ऐसे होते हैं जो एक साथ बहुत-से काम करनेका अभ्यास करते हैं। जैसे—एक आदमी रह रह कर कुछ संख्या या अंकोंका नाम लेता है। दूसरा आदमी रह रह कर घड़ियाल बजाता है। तीसरा आदमी किसी ऐसी भाषाके वाक्यके शब्द बोलता है जिससे शतावधान करनेवाला मनुष्य अपरिचित होता है। एक आदमी पूर्त्तिके लिये कोई समस्या देता है। एक ओर शतरंजका खेल होता रहता है। शतावधानका यह कर्त्तव्य होता है, कि वह संख्याओं और अपरिचित भाषाके

यावतके शब्द याद रखे, समस्याकी पूर्ति करे और शतरंज खेलता चले और इसी प्रकार और जितने काम होते हों, उन सबमें सम्मिलित रहे और अन्तमें सबका ठीक ठीक उत्तर दे और सब काम ठीक ठीक पूरे उतारे। ३ शतावधानका काम।

शतावधानी (सं० पु०) १ शतावधान देखो। (स्त्री०) २ शतावधानका काम।

शतावर (सं० पु०) सतावर नामकी ओषधि, सफेद मूसली।

शतावरी (सं० स्त्री०) शतमावृणोतीति आ-वृ अच्, गौरादित्वात् ङीष्। १ शतमूली, सतावर, सफेद मूसली। (Asparagus racemosus or asparagus sarmentosus) २ इन्द्रकी भार्या, इन्द्राणी। ३ शटी, कचूर।

शतावरीघृत—अम्लपित्तरोगमें उपकारक घृतौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—घृत ४ सेर, कल्कार्थ शतमूलीकी जड़ १ सेर, जल ४ सेर, दूध १६ सेर, धीमी आंचमें पाक करे। इसे पीनेसे अम्लपित्त, वातपित्तोद्भव नाना रोग, रक्तपित्त, तृष्णा, मूर्च्छा, श्वास और सन्ताप निवारित होता है।

शतावरीमहाचैतस—औषधविशेष। (चिकित्सासा०)

शतावरीमण्डूर—शूलरोगाधिकारोक्त औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—शोधित मण्डूरचूर्ण ८ पल, शतावरी रस ८ पल, दही ८ पल, दूध ८ पल, घी ८ पल, इन सबों को एक साथ पाक करे। पीछे पिण्डके समान हो जाने पर उतार ले। यह भोजनके पहले, भीतर और अन्तमें सेवनीय है। इसका सेवन करनेसे वातिक, पैत्तिक और परिणामज शूल विनष्ट होता है।

शतावर्यादि—मूत्रकृच्छ्ररोगकी एक औषध। इसके बनाने की तरकीब—शतमूली, काशमूल, कुशमूल, गोक्षुर, भूमिकुष्माण्ड, शालितण्डुल, कशेरुमूल और केशुरके क्वाथमें मधु और चीनी डालकर शुशीतल करे। इसके सेवनसे पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र नाश होता है।

शतावर्त्त (सं० पु०) १ विष्णु। २ महादेव। (भारत १३।१७।४६)

शतावर्त्तवन (सं० क्ली०) एक पवित्र वन। (हरिवंश)

शतावर्त्तिन् (सं० पु०) शतेन प्राणरूपेण नाडीशतेन वर्त्तते वृत णिनि। विष्णु। (त्रिका०)

शताश्रि (सं० पु०) वज्र। (ऋक् ६।१७।१०)

शताश्व (सं० त्रि०) बहु अश्वयुक्त। (ऋक् ८।४।११)

शताष्टक (सं० क्ली०) अष्टोत्तर शत।

शताह्वया (सं० स्त्री०) १ सौंफ। २ मधुरिका, सोआ। ३ शतावरी, सतावर।

शताह्वा (सं० स्त्री०) शतं आह्वा यस्याः। १ शतपुष्पा। २ शतावरी, सतावर। ३ सौंफ। ४ एक प्राचीन नदी। ५ एक तीर्थका नाम।

शतिक (सं० त्रि०) शत। शताच्च ठन् यतावशते। पा ५।१।२१) इति ठन्। १ शत द्वारा क्रीत, जो सौसे खरीदा गया हो। २ शत-सम्बन्ध, सौका। (सिद्धान्तकौ०)

शतिन् (सं० त्रि०) शतमस्यास्तीति शत इनि। शतसंख्याविशिष्ट, सौ। (ऋक् १।१०।१०)

शतेध्म (सं० क्ली०) बहु काष्ठ। (काठक १६।६)

शतेन्द्रिय (सं० त्रि०) प्रभूत इन्द्रियशक्तिविशिष्ट। (ऐतरेयब्रा० ३।१७)

शतेपञ्चाशन्न्याय (सं० पु०) न्यायसूत्रविशेष। (तैत्तिरीय प्राति० ३।२५)

शतेर (सं० पु०) शद शातने (शदेस्त च। उण् १।६१) इति एरक्, तकारान्तादेशश्च। १ शत्रु, दुश्मन। २ हिंसा। ३ घाव, जखम।

शतेश (सं० पु०) शतस्य ईशः। शताधिपति, सौ ग्रामका अधिपति। (मनु ६।११५)

शतैकशीर्षन् (सं० त्रि०) शत संख्यक श्रेष्ठ शिरःसमन्वित, सौ सिरवाला।

शतैकीय (सं० त्रि०) शतसंख्याविशिष्ट, सौ। (राम वत० ८।१२।७४)

शतोक्थ्य (सं० त्रि०) शत उक्थका समयविशिष्ट। (शतपथब्रा० १३।५।१।२)

शतोति (सं० त्रि०) १ बहुरक्षक। २ बहुगमन। (ऋक् ६।१६।१४ भाष्य)

शतोदर (सं० त्रि०) १ शत उदरविशिष्ट, जिसे सौ उदर या पेट हो। (पु०) २ शिव, महादेव। (भारत १२ पर्व) ३ मत्स्यविशेष। (रामा० १।१०।५) ४ शिवगणभेद। (हरिवंश)

शतोदरी (सं० स्त्री०) स्कन्दानुचरमातृभेद। (भारत ९ पर्व)

शतोलुखलमेखला (सं० स्त्री०) स्कन्दानुचर मातृभेद। (भारत ६ पर्व)

शतौदना (सं० स्त्री०) यज्ञकर्मविशेष, यज्ञमें होनेवाला एक प्रकारका कृत्य। (अथर्व १०।६।१)

शत्य (सं० त्रि०) शत (शताच्च ठन् यतावशते। पा ५।१।२१) इति यत्। १ शतका विकार। २ शत द्वारा क्रीत, सौसे खरीदा हुआ। ३ शतिक। ४ धनपतिसंयोग।

शत्वङ्गय (सं० पु०) कार्त्तिकमासका १३वां दिन।

शत्र (सं० क्ली०) बल। (निघ०)

शत्रि (सं० पु०) शद् (शं शदिभ्यां त्रिप्। उण् ४।६७) इति त्रिप्। १ हस्ती, हाथी। २ एक राजर्षिका नाम। (ऋक् ५।३४।६) ३ बल, ताकत।

शत्रु (सं० पु०) शद शातने (शसादिभ्यां क्रुन्। उण् ४।१०३) इति क्रुन्। १ वह जिसके साथ भारी विरोध या वैमनस्य हो, दुश्मन। पर्याय—रिपु, वैरि, सपत्न, अरि, द्विश, द्वेषण, दुर्हृद, द्विष, विपक्ष, अहित, अमित्र, दस्यु, शात्रव, अभिघाती, पर, अराति, प्रत्यर्थी, परिपन्थिन्, धूप, प्रतिपक्ष, द्विषत्, घातक, द्वेषिन्, विद्विष, हिंसक, अप्रिय, अभिघातिन्, अहित, दौर्हृद। (शब्दरत्ना०) २ एक असुरका नाम। ३ नाग-दमन या मारछोबा नामकी वनस्पति।

शत्रुसह (सं० त्रि०) शत्रुसहनशील, जो शत्रुको सहन कर सके। (पा ३।२।४६)

शत्रुक (सं० पु०) स्वार्थे कन्। शत्रु, दुश्मन।

शत्रुकण्टक (सं० पु०) पुंगीफल, सुपारी।

शत्रुकण्टका (सं० स्त्री०) सुपारी।

शत्रुघ्न (सं० त्रि०) शत्रुनाशकारी, शत्रुका नाश करनेवाला।

शत्रुघात (सं० त्रि०) शत्रुं हन्तीति शत्रु-हन-घञ्। शत्रुविनाशकारी, शत्रुका नाश करनेवाला।

शत्रुघातिन् (सं० पु०) शत्रुघ्नके एक पुत्रका नाम। (रघु १५।३६)

शत्रुघ्न (सं० पु०) शत्रून् हन्तीति हन, मूलविभुजादित्वात् क, यद्वा अमनुष्यकर्त्तृकेऽपि चेतयति अमनुष्यात् इत्यधिकारात् घ्नादयः सिद्धा इति दुर्गसिंहः। १ रामचंद्रके भाई। पर्याय—शत्रुमर्द्दन। (शब्दरत्ना०) राजा दशरथकी तृतीया पत्नी सुमित्राके पुत्रेष्टि यज्ञके हुताविशष्ट चरु खाने पर उनके गर्भसे इनका जन्म हुआ। इन्होंने मधुपुरनिवासी लवणाख्य असुरका वध किया था। इनका भरतके साथ वैसा ही प्रेम था जैसा लक्ष्मणका रामके साथ। (रामायण)

२ श्वफल्कके एक पुत्रका नाम। (त्रि०) ३ शत्रुहन्ता, शत्रुको मारनेवाला।

शत्रुघ्न शर्मान्—मन्त्रार्थदीपिका, रुद्रसूक्तभाष्य और वेदविलासिनी नामक तीन ग्रन्थके रचयिता। केशवमिश्रने स्वरचित द्वैतपरिशिष्टमें इनका विषय उल्लेख किया है।

शत्रुघ्नजननी (सं० स्त्री०) शत्रुघ्नस्य जननी, सुमित्रा। (शब्दरत्ना०)

शत्रुघ्नी (सं० स्त्री०) हथियार।

शत्रुजित् (सं० पु०) शत्रून् जयतीति जि-क्विप् तत-स्तुक् (ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्। पा ६।१।७१) १ एक राजाका नाम। इनके पुत्रका नाम ऋतध्वज था। ये साधारणमें कुवलयाश्व नामसे परिचित थे। (मार्क०पु०) २ शिव। (त्रि०) ३ शत्रुको जीतनेवाला।

शत्रुञ्जय (सं० पु०) १ काठियावाड़ प्रांतका एक प्रसिद्ध पर्वत जो विमलाद्रि भी कहलाता है। यह जैनियोंका एक प्रसिद्ध तीर्थ है। शत्रुञ्जयशैल देखो। (दिग्वि० प्र० ४६।२१) २ रामायणके अनुसार एक नागका नाम। (रामायण ३।३२।१०) ३ एक पाण्ड्यवंशीय राजा। ४ एक नदी। भौगोलिक टलेमीने इसे 'Sodrana' शब्दमें उल्लेख किया है। (त्रि०) शत्रुं जयतीति जि-खच् ततो मुम्। (संज्ञायां भृतृवृजीति। पा ३।२।४६) ५ शत्रुजयकारी, शत्रुविजेता, शत्रुको जीतनेवाला।

शत्रुञ्जयशैल—बम्बई प्रेसिडेन्सीके काठियावाड़ विभागके गोहिलवाड़ प्रान्तका एक पर्वत और उसके ऊपरका नगर। आज कल यह पालिताना कहलाता है।

पालिताना देखो।

यह स्थान जैन-सम्प्रदायका एक पवित्र तीर्थ है। तीर्थङ्करके शिष्य जैनयतिओंकी प्रतिष्ठाके समयसे ही इस पवित्र स्थानको भक्तिकी दृष्टिसे देखते आ रहे हैं। काठियावाड़से दक्षिण पूर्व अवस्थित पालिताना राजधानीके निकट प्रान्तरमें यह बड़ा शैल है। यहां आनेमें उतनी

सुविधा नहीं है। जो गंदा पथ है भी, वह बड़ा कठिन है। पर्वत पर चढ़नेके लिये सीढ़ियां लगी हैं। बीच बीचमें आराम करनेके लिये चौमुहानी काट कर छत और पुष्करिणी निकाली गई है। इसके चारों ओर चहार-दीवारी है। उसके ऊपर स्थापित जो दो चार कमान हैं, वे आज भी प्राचीन समृद्धिका परिचय देती हैं। किन्तु दुःखका विषय है, कि यहां अब कोई वास नहीं करते। सिर्फ बहुत थोड़े यति और पुरोहित देवताकी अर्चनाके लिये यहां रहते हैं। यात्री सुबहको पर्वत पर देवदर्शनको चढ़ते तथा शामको पुनः नगरको लौट आते हैं।

धर्मप्राण एकमात्र जैन-सम्प्रदायके यत्न, अध्यवसाय तथा अभिनिवेशसे ही आज भी मन्दिर सुरक्षित हैं। कौन सबसे पुराना है, यह बतलाना कठिन है। सभी जीर्ण संस्कारमें नवकलेवर धारण किये हुए हैं। लेकिन मंदिरगात्रके शिलाफलक देखनेसे अनुमान होता है, कि ११ वीं १२ वीं सदीसे वर्त्तमान १९ वीं सदी तक ये मंदिर रक्षित हैं। एक एक मंदिरका सोलह बार तक उद्धार वा जीर्ण-संस्कार हो चुका है।

यहांके मन्दिरोंकी विशेषता यह है, कि सभी मन्दिर सफेद चकमक चूनेकी पालिश किये हैं। जिससे देखनेमें बड़े चमकीले मालूम होते हैं, मानो मर्मरपत्थरके बने हों। रास्तेके किनारे किनारे छोटे छोटे मन्दिर हैं, वे भी उक्त मन्दिर जैसे बने हैं। प्रत्येक मन्दिरके लिये सम्पत्ति दे दी गई है। धनाढ्य व्यक्तियों द्वारा ये सब मन्दिर बने हैं तथा उनकी ही प्रदत्त देवोत्तर सम्पत्ति और जनोंकी सहायतासे परिचालित होते हैं। मन्दिरके बाहर जिस प्रकार शिल्पनैपुण्यका परिचय है, भीतर भी उसी प्रकार नाना पौराणिक चित्र अंकित हैं। इन्हीं सब कारणोंसे इन मन्दिरों द्वारा प्रत्नतत्त्वविदोंको खासी मदद पहुंचती है।

इस तीर्थमें जो सब प्रधान प्रधान जैन मन्दिर हैं, नीचे उनके नाम दिये जाते हैं,—

१ श्रीआदीश्वर, भगवान् वा श्रीमूलनायक आदीश्वर, इस मन्दिरमें २३४ प्रतिमूर्त्ति हैं, एक-मण्डप और गम्भीरा प्रतिष्ठित है। २ कवदकायक्षयकी, ३ श्रीश्रेयप्रभुजी, ४ श्रीशान्तिनाथजी। श्रीवासुपूज्य, ६ श्रीमहावीरजी, ७ श्रीआदिनाथ, ८ श्रीधर्मनाथजी, ९ श्रीअभिनन्दजी, १० नेमिनाथजी, ११ श्रीपार्श्वनाथजी, १२ श्रीअजितनाथजी, १३ श्रीसुमतिनाथजी, १४ श्रीचन्द्रप्रभुजी, १५ श्रीपुण्डरीकजी वा पुण्डरीकनाथ, १६ श्रीऋषभदेव, १७ श्रीसमेतशिखरजी और १८ श्री-विमलनाथजी।

इनके सिवा और भी विभिन्न आदिनाथ, श्रीनन्दी-श्वर, द्वीप, महावीर स्वामी, शीतलनाथजी, सुपार्श्वनाथ-जी आदिको ले कर यहां कुल करीब ५१३ छोटे बड़े मन्दिर हैं। मन्दिर-प्राचीरमें भी छोटे छोटे घरमें, कुलुङ्गी-में, भित्तिमें और गोखलोंमें अनेक मूर्त्ति और तीर्थङ्करोंके पादचिह्न स्थापित हैं। अधिक हो जानेके भयसे सबों-का विवरण नहीं दिया गया।

शत्रुता (सं० स्त्री०) शत्रुका भाव या धर्म, वैर भाव, दुश्मनी।

शत्रुतापन (सं० त्रि०) १ शत्रुन्तप, शत्रुका ताप कारी। (पु०) २ महाभारतवर्णित एक राजाका नाम। (महा० ३३।२८) ३ एक दैत्यका नाम। कहते हैं, कि यह रोग फैलाता है।

शत्रुतूर्व (सं० त्रि०) शत्रुतारण, शत्रुको नाश करने वाला। (ऋक् ६।२२।१०)

शत्रुत्व (सं० क्ली०) शत्रुता, शत्रुका भाव या धर्म। (ऋक् ८।४५।१)

शत्रुदमन (सं० त्रि०) १ शत्रुविमर्द्दन, दुश्मनोंका दमन करनेवाला। (पु०) २ दशरथके पुत्र शत्रुघ्नका एक नाम।

शत्रुद्रुम (सं० पु०) आम्लवेतस, अमलबेंत।

शत्रुनिकाय (सं० पु०) शत्रुसङ्घ, विपक्षका दल।

शत्रुनिबर्हण (सं० क्ली०) शत्रुताड़न, शत्रुका नाश।

शत्रुनिलय (सं० पु०) शत्रुकी वासभूमि।

शत्रुन्तप (सं० त्रि०) शत्रुं तपति तापयति वा तप-खच् ततो मुम् (संज्ञायां भृतृवृजीति। पा ३।२।४६) शत्रु-तापकारी, दुश्मनको जीतनेवाला।

शत्रुघ्न (सं० त्रि०) १ शत्रुदमनकारी, शत्रुविमर्दी। (पु०) २ शिव, महादेव।

शत्रुपक्ष (सं० पु०) विपक्ष।

शत्रुबाधक (सं० त्रि०) शत्रुपीड़नकारी, दुश्मनको पीड़ा देनेवाला।

शत्रुभङ्ग (सं० पु०) मूंज नामक तृण। (वैद्यकनिघ०)

शत्रुभट (सं० पु०) असुरविशेष। (कथासरित्सा० ४७।२०)

शत्रुभूमिज (सं० पु०) नीलाञ्जन, आंखोंमें लगानेका सुरमा। (वैद्यकनिघ०)

शत्रुमर्द्दन (सं० पु०) शत्रुं मृद्नातीति मृद ल्यु। १ शत्रुघ्न। २ कुवलयाश्वका पुत्र। (त्रि०) ३ शत्रुहन्ता, शत्रुओंका नाश करनेवाला। (कथासरित्सा० ४२।१२५)

शत्रुमिलन (सं० स्त्री०) शत्रु या विपक्षके साथ सद्भावस्थापन।

शत्रुलाव (सं० त्रि०) शत्रुच्छेदन करनेवाला, शत्रुको मारनेवाला।

शत्रुवत् (सं० त्रि०) १ शत्रुसदृश। (अव्य०) २ शत्रुतुल्य, शत्रुके समान।

शत्रुवल (सं० त्रि०) शत्रुर्विद्यतेऽस्य शत्रु-वलच्। (अन्येभ्योऽपि दृश्यते। पा ५।२।११२ वार्त्तिक) १ जिसका शत्रु विद्यमान हो। (क्ली०) शत्रो र्बलम्। २ शत्रुका सैन्य।

शत्रुविग्रह (सं० पु०) शत्रुतापूर्वक युद्ध, शत्रुभावसे आक्रमण।

शत्रुविनाशन (सं० पु०) शिव, महादेव।

शत्रुसात् (सं० त्रि०) १ शत्रुरूपमें परिणत। २ विपक्षसात्, विपक्षका हस्तगत। (महाभारत)

शत्रुसाल (हिं० वि०) शत्रुके हृदयमें शूल उत्पन्न करनेवाला।

शत्रुसाह (सं० त्रि०) शत्रुका विक्रमसहनशील या सहायकारी।

शत्रुह (सं० त्रि०) शत्रुं वध्यात् शत्रु-हन-ड। (आशिषि हनः। पा ३।२।४९) जो शत्रुवध करे या शत्रुवध करनेके उपयुक्त हो इस प्रकार आशीर्वाद देना। (अथर्व ३।२६।५)

शत्रुहत्या (सं० स्त्री०) शत्रु-हन-क्यप्। शत्रुवध, शत्रुका हनन या नाश करना।

शत्रुहन् (सं० त्रि०) १ शत्रुहन्ता, शत्रुओंका नाश करनेवाला। (ऋक् १०।१५१।३) (पु०) २ श्वफल्कके एक पुत्रका नाम। ३ दशरथके पुत्र शत्रुघ्नका एक नाम।

शत्रुहन्तृ (सं० त्रि०) शत्रु-हन-तृच्। १ शत्रुहननकारी, शत्रुका नाश करनेवाला। (पु०) २ शम्बरके एक मन्त्रीका नाम। (हरिवंश)

शत्रुप्रताप (सं० पु०) शत्रुका कुपरामर्श।

शत्वरी (सं० स्त्री०) रात्रि, रात। (निघण्टु)

शद (सं० पु०) शद-अच्। १ फल मूलादि। २ कर, लगान। ३ तरकारी।

शदक (सं० पु०) वह अनाज जिसकी भूसी न निकाली गई हो।

शदीद (अ० वि०) बहुत ज्यादह, जोरका, भारी।

शद्देवी (सं० स्त्री०) शद्देवा देखो।

शद्रि (सं० पु०) शीयते इति शद (अदि शदि भूशुभिभ्यः क्रिन्। उण् ४।६५) इति क्रिन्। १ मेघ, बादल। २ विष्णु। ३ हस्ती, हाथी। (स्त्री०) ४ विद्युत, बिजली। ५ खण्ड, टुकड़ा।

शद्रु (सं० त्रि०) शद-शातने (दाधेट् सि शद सदोरुः। पा ३।२।१५९) इति रु। १ पतनकर्त्ता, गिरानेवाला। (पु०) २ विष्णु। ३ गदहा।

शद्रुला (सं० स्त्री०) नदीभेद। (शत्रुञ्जयमाहात्म्य १।५५)

शन (सं० पु०) १ शान्ति। २ चुप्पी, खामोशी। ३ शण देखो।

शनक (सं० पु०) शम्बरके एक पुत्रका नाम।

शनकावलि (सं० स्त्री०) गजपिप्पली, गजपीपल।

शनकैस् (सं० अव्य०) शनैस्-स्वार्थे क-न। शनैः, थोड़ा थोड़ा, कम क्रमसे।

शनपर्णी (सं० स्त्री०) शणस्येव पर्णान्यस्याः ङीष्, पृषोदरादित्वात् णस्य न। कठुकी नामकी ओषधि।

शनपुष्पी (सं० स्त्री०) वन-सनई।

शनफुली (सं० स्त्री०) शनपुष्पी देखो।

शनि (सं० पु०) रवि आदि ग्रहके अन्तर्गत सप्तमग्रह। संस्कृत पर्याय—सौरि, शनैश्चर, नीलवासस, मन्द, छायात्मज, पातङ्गि, ग्रहनायक, छायासुत, भास्करि, नीलाम्बर, आर, कोड़, पङ्गु, कोल, मन्दांशु, पंगु, काल

गृध्रांसुत, अमित। इसका वर्ण कृष्ण है। ये पश्चिम-दिक्‌पती, नपुंसक, अन्त्यजजाति, तमोगुणयुक्त, कषाय-रसाधिपति और सत्‌मित्र, मकर और कुम्भराशिके अधिपति, सौराष्ट्रजन्मा और सौराष्ट्रदेशके अधिपति, कश्यपमुनिके पुत्र, शूद्रवर्ण, सूर्यमुख और चार अंगुल परिमाणके हैं। इनका वस्त्र कृष्ण और वाहन गृध्र है। ये गृध्रांसुत, चतुर्भुज हैं, चारों हाथोंमें मल्ल, बाण, शूल और धनु ये चारों शोभित हैं। इसके अधिष्ठात्री देवता यम और प्रत्यधिदेवता प्रजापति हैं।

(ग्रहयागतत्त्व और बृहज्जातक)

पद्मपुराणके स्वर्गखण्डमें शनिग्रहकी उत्पत्तिका विवरण इस प्रकार लिखा है—मरीचिसे कश्यपने जन्म-ग्रहण किया। कश्यपके पुत्र विभावसु हुए। त्वष्टृ प्रजापतिकी संज्ञा नाम्नी कन्याके साथ विभावसुका विवाह हुआ। संज्ञा सूर्यग्रहमें जा कर उनका तेज सहन न कर सकी, इस कारण उसने आत्मसदृशी मायामयी छायाको निर्माण किया तथा उससे कहा, कि तुम निःशङ्कचित्तसे यहां रहो और मैं अपने पिताके घर जाती हूं। इतना कह कर संज्ञा पिताके घर चली गई। सूर्यसे छायाके सावर्णि मनु और शनि नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। (पद्मपु० स्वर्गख० ११ अ०)

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें शनिकी क्रूर दृष्टि होनेका कारण इस प्रकार लिखा है—देव गणपतिके जन्म लेने पर एक दिन शनि, विष्णु आदि देवगण गणेशको देखने गये। शनि जब दरवाजे पर पहुंचे, तब उन्होंने द्वारपालको दरवाजा खोल देने कहा। द्वारपालने भगवती दुर्गाके आदेशसे दरवाजा खोल दिया और शनिने भीतर घुस कर भगवतीको प्रणाम किया। इस पर पार्वतीने उनसे कहा, 'शनि! तुम्हारा मुख झुका क्यों है, उठता क्यों नहीं? तुम इस बालकको तथा मुझे क्यों नहीं देखते?' शनिने कहा, 'मातः! सभी अपने अपने कर्मवशतः अपना अपना फल भोग करते हैं, मैं भी अपने किये हुए कर्मका फल भोगता हूं। मेरा मुख झुका क्यों है, इसका कारण अपनी माताके सामने नहीं कहता। पर आपसे कहता हूं। मैं बचपनसे ही कृष्णभक्त था तथा सर्वदा तपोनिरत और ध्यानस्थ रहा करता था। चित्ररथकी कन्याके साथ मेरा विवाह हुआ। पत्नी भी पतिव्रता और तपोनिरता थी। एक दिन मेरी स्त्री ऋतुस्नान कर मेरे पास आई और अपना मनोभाव प्रकट किया। उस समय मैं बाह्यज्ञानशून्य हो भगवान्‌के ध्यानमें निमग्न था। इस पर, भामिनी ऋतुरक्षा न हुई देख उसने मुझे शाप दिया कि, तुमने मुझे नहीं देखा और न ऋतुकी रक्षा ही की, इस कारण तुम जिसकी ओर दृष्टि डालोगे, वही विनष्ट हो जायगा। इसके बाद मैंने ध्यानसे विरत हो कर उसे प्रसन्न किया, पर वह शाप मोचन करनेमें समर्थ न हुई। यही कारण है, कि मैं अपने चक्षुसे कोई वस्तु नहीं देखता तथा तभीसे प्राणिहिंसाभयसे मैं अपना मुख झुकाये रहता हूं।'

पार्वतीने यह सुन कर भी कौतुकवशतः पुत्रको देखनेके लिये कहा। शनिने कुटिल दृष्टिसे बालक गणेशको देखा और उसी समय गणेशका मस्तक छिन्न हो गया। पुत्रको मस्तकहीन देख पार्वतीने भी शनिको शाप दिया। गणेश देखो।

इस प्रकार शनि पत्नीके शापसे क्रूरदृष्टिको प्राप्त तथा पार्वतीके शापसे खञ्ज हुए थे।

(ब्रह्मवैवर्त्तपु० गणेशख० १२।११ अ०)

शनिग्रहके सम्बन्धमें हमारे देशमें जैसा पौराणिक आख्यान है, यूरोपीय साहित्यमें भी शनिके सम्बन्धमें वैसी ही कथा देखनेमें आती है। इटालीवासी शनिको सातरण (Saturn) देवता कह उनका मान्य करते थे। प्राचीन और आधुनिक रोमक इस Saturn या शनिको ग्रीस देशीय पौराणिक देवता क्रोनास (Cronus) कहते हैं। ग्रीसदेशीय पौराणिक कहानी पढ़नेसे जाना जाता है, कि आकाशके औरस और पृथ्वीके गर्भसे अनेक सन्तानोंने जन्मग्रहण किया था। ग्रीस भाषामें आकाशको उरनस (Uranus) और पृथ्वीको जिआ (Gaea) कहते हैं। हमारे वेदमें भी आकाश आदिको देवता हो कहा है। जो हो, आकाशके औरस और पृथ्वीके गर्भसे जो सब सन्तान उत्पन्न हुई थीं, वे साधारणतः टीटान (Titan) कह-लाती थीं। क्रोनस या शनिग्रह इन टिटानोंके सबसे

छोटे भाई हैं। टिटानोंको छोड़ आकाश और पृथ्वीके साइक्लप्स (Cyclops) तथा शतहस्त (Hundred Handers) नामक और भी सन्तान थीं। इन साइक्लप्स और शतहस्तोंको जब आकाशने अत्यन्त विरक्तिजनक समझा, तब उन्हें फिरसे पृथ्वीके गर्भमें प्रविष्ट करा दिया। आकाशके इस कार्यसे पृथ्वी बड़ी दुःखित और क्रोधित हुई। उसने अपने पुत्रोंको आह्वान किया और कहा, कि यदि तुम लोग मेरे पुत्र हो, तो इस कार्यका प्रतिशोध अपने पितासे लेना होगा। माताका यह वचन सुन कर क्रोनस या शनिको छोड़ और किसी भी पुत्रने पिताके विरुद्ध युद्ध करनेका साहस न किया। क्रोनस या शनिग्रहने एक दिन एक हँसियेसे अपने पिता आकाशका अंग काट डाला। उस समय आकाशके शरीरसे जो रक्तपात हुआ था, उससे क्रोधित दैत्यों और असुरोंकी उत्पत्ति हुई। इस समय क्रोनस या शनिग्रह पिताके प्रासादमें रह कर पितृराज्यका शासन करने लगे। शनिग्रहने अपनी बहन रिआ (Rhea) देवीसे विवाह किया था। क्रोनसको अपने मातापिताने कह रखा था, कि क्रोनस अपने किसी पुत्र द्वारा मारा जायेगा। कंसराजको जिस प्रकार आकाशवाणी द्वारा मालूम हुआ था, कि वह अपने भांजेसे मारा जायेगा, क्रोनस भी उसी प्रकार पितामाताके मुखसे दैववाणी सुन कर गये थे।

उस समयसे उसके जो पुत्र जन्म लेता था, उसे वे खा डालते थे। इस प्रकार क्रोनसको पांच सन्तान हुई थी, पांचोंको उन्होंने एक एक कर मार डाला था। इन सब सन्तानोंके नाम थे—हेष्टिया, डिमिटा, हेरा, हेडस् और पसिडन। इस प्रकार पांचों सन्तानोंको निहत होते देख रिआदेवीके दुःखकी अवधि न रही। उसने समझा कि इससे गर्भ न रहे यह बल्कि अच्छा पर सन्तानके जन्म लेने पर उसकी अकालमृत्यु होना अच्छा नहीं और यह शोक वह बरदास्त नहीं कर सकती। किन्तु कालधर्मसे उसके फिर गर्भ रह गया और यथासमय उसने एक पुत्र प्रसव किया। उस सन्तानका नाम जियस (Zeus) रखा गया। इस बार स्नेहमयी माताने पुत्रको छिपा रखा और पुत्रके बदलेमें एक पत्थरको रक्तात वस्त्रसे लपेट कर क्रोनसके निकट समर्पण किया। क्रोनस पुत्रके भ्रमसे पत्थरको ही निगल गये। इधर क्रीटद्वीपमें जियस छिपा कर रखा गया था। जियस क्रमशः बड़ा हुआ। एक दिन जियसने अपने पिताको वमनकारक एक औषध खानेको दिया। उस औषधके सेवनसे क्रोनसको भयानक वमि हुई। पहले ही वमिके साथ साथ पत्थरका टुकड़ा निकल आया। इसके बाद जियसके सभी भाई भी निकले। यह पत्थर डेल्फीनगरमें रखा गया था। प्राचीन ग्रीकगण प्रति दिन तेलसे इसको गात्र अभिषिक्त करते थे।

कालक्रमसे जियस और उसके भाइयोंने मिल कर अपने पिताके विरुद्ध युद्ध ठान दिया। दश वर्ष व्यापी युद्धके बाद क्रोनस् तरतरस नामक स्थानमें फेंक दिये गये। कोई कोई कहते हैं, कि Island of the Blest नामक स्थानमें रखा गया था। वहां वे युद्धमें पराजित और निहत वीरोंके आत्माओंके ऊपर कर्तृत्व और विचार करते थे। ग्रीस देशकी प्राचीन कहानी पढ़नेसे मालूम पड़ता है, कि क्रोनस जिस समय राज्यशासन करते थे, उस समय देशकी अवस्था सुधर गई थी। उनके शासनाधीन लोग देवताकी तरह स्वाधीनता भोग करते थे। उन्हें किसी प्रकारका दुःखभोग करना नहीं होता था। जीविकानिर्वाहके लिये उन्हें परिश्रम नहीं करना पड़ता था। बुढ़ापेमें वे कमजोर भी नहीं होते थे। बिना जोते जमीनमें फसल होती थी। ग्रीकदेशमें आज भी क्रोनसकी उपासनाकी प्रथा कुछ कुछ देखनेमें आती है। पसानियसने लिखा है कि आथेन्समें एकपालिस पर्वतके पाददेशमें आज भी क्रोनस या शनिग्रहका एक मन्दिर विद्यमान है। यहां प्रति वर्ष उत्सव होता है। अलिम्पियामें एक पर्वत क्रोनस पर्वत कहलाता है। प्रतिवर्ष यहां शनिग्रहके नाम पर धार्मिक उत्सव होता है।

क्रोनस कालदेवता माने जाते हैं। यह धारणा किस प्रकार ग्रीसवासियोंमें उत्पन्न हुई, इस सम्बन्धमें एक आलोचना देखी जाती है। ग्रीक-पण्डित कारटियसका कहना है, कि क्रोनसको कालदेवता मानने का

कारण यह है, कि क्रोणसको जनसाधारण Chronus समझते हैं। पीछेका लिखा क्रोणस शब्द क्रा धातुसे निकला है। क्रा धातुका अर्थ सम्पन्न करना है। क्रोणस एक श्रेणीकी असभ्य जातिके लोगोंके देवता हैं। इस असभ्य जाति प्राचीन ग्रीकों द्वारा परास्त हुई थी। कार्टियसका कहना है, कि क्रोणसके पुत्र-भक्षणकी कहानीका भाव बुसमेन, काफेर, यासतु, गिणियावासी और स्कुइमो आदि लोगोंमें प्रचलित है।

सातर्नके सम्बन्धमें इटलीमें और भी एक प्रकारका पौराणिक वृत्तान्त सुना जाता है। सातर्न इटलियोंके पूज्य देवता हैं। इनकी स्त्रीका नाम ओप्स है। रोम नगरकी सृष्टिके बहुत पहले इस देवताकी कहानी प्रचलित है। ये कृषिकार्यके देवता हैं। Serere धातुसे सातर्ण शब्दकी उत्पत्ति हुई है। इस धातुका अर्थ कृषि कार्य करना है। इस कहानीके अनुसार भी क्रोणस जियस या जुपिटर द्वारा भगाये जाने पर इटलीमें भ्रमण करने लगे। इटलीमें राजा हो कर इन्होंने राज्यशासन करना आरंभ कर दिया। इन्होंने अपने शासित भूमण्डलका Saturnia नाम रखा। इटलीके अन्यतम प्राचीन देवता सातर्णकी अभ्यर्थना कर उन्हें रोमदेशमें ले गये थे। इस देवताका नाम जेनस है। इस जेनसने रोमदेशके कपिटल पर्वतके पाददेशमें सातर्नको प्रतिष्ठित किया। इसी पौराणिक वृत्तांतके अनुसार कपिटल पर्वत 'सातर्निपन' नामसे अभिहित होता आ रहा है। इस सातर्निपन पर्वतके पाददेशमें आज भी शनिमंदिरका भग्नावशेष दिखाई देता है। इस मंदिरमें उनकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित है। उनके दोनों पैर समूचा वर्ष पशमसे बाँध कर रखे जाते हैं। केवल वार्षिक उत्सव सतार्नेलियाके समय वह बंधन खोल दिया जाता है। प्राचीन कालमें सातर्नके निकट नरबलि दी जाती थी। किन्तु हारक्युलिजने इस जघन्य प्रथाको उठा दिया।

इटलीमें सातर्नके अनेक मन्दिर हैं। वहांके कितने शहर और पर्वत भी सातर्न कहलाते हैं। पूर्व कालमें इटलीमें एक तरहकी कविता रची जाती थी, वे सब कविताएं सातर्नियन मर्स कहलाती थीं। अन्यान्य देवताओंकी तरह सातर्न भी पृथिवीसे अन्तर्हित हुए थे। इसिवा सातर्नका चिह्नस्वरूप है। सातर्नकी स्त्रीका नाम ओप्स है। ओप्सका अर्थ प्राचुर्य है। ओप्स देवी पृथिवी मूर्त्ति है। शस्यश्यामला वसुन्धरा लक्ष्मीकी ही मूर्त्तिस्वरूपा है। सातर्नकी एक और स्त्री है जिसका नाम लुया है। यह लुया अलक्ष्मी विशेष है।

आधुनिक ज्योतिर्विज्ञान पढ़नेसे जाना जाता है, कि समस्त सौर जगत्‌में सिर्फ एक जुपिटर (बृहस्पति) को छोड़ शनिग्रह ही सबसे बड़े हैं। अन्यान्य सभी ग्रहोंके एकत्र करनेसे उनका परिमाण जितना होता है, शनिग्रह उस परिमाणसे तिगुने बड़े हैं, अन्यान्य ग्रहोंका सूर्यसे दूरत्व निर्णय करनेमें शनिग्रहका स्थान छठा आया है। प्राचीन ज्योतिर्विदोंकी धारणा थी, कि शनिग्रह ही सूर्यसे अधिक दूर हैं। फलतः सूर्यसे ८७२१३७००० मील दूर रह कर यह ग्रह सूर्यका प्रदक्षिण करता है। जब सूर्यसे यह ग्रह अधिक दूरमें रहता है, तब उसकी दूरताका परिमाण ९२०६७३००० मील और उससे सबसे कम दूरताका परिमाण ८१३३१००० मील है। इसकी कक्षाकी उत्केन्द्रता (Eccentricity of orbit) ०'०५५९९६ तथा धरातलके क्रान्तिवृत्तकी ओर इसका पातकोण (inclination to the plane of ecliptic) २°२९' २८" है। शनिग्रह उनतीस वर्ष एक सौ सड़सठ दिनमें अपनी कक्षका परिभ्रमण करता है। उसका युति-संक्रान्त (Synodical revolution) परिभ्रमण काल ३९८००७० दिन है। इसके व्यासका परिमाण ७०००० मील तथा विषुव प्रदेशस्थ व्यासका परिमाण ७५३०० मील है। इसके मेरुदेशस्थ व्यासका परिमाण ६६५०० मील है। शनिग्रह पृथिवीसे सात गुना बड़ा है, तथा वजनमें नब्बे गुना भारी है। पृथिवीकी अपेक्षा शनिग्रहका घनत्व कम है अर्थात् पृथिवीका घनत्व एक सौ मान लेनेसे शनिग्रहका घनत्व १३से ज्यादा नहीं। शनिग्रह साढ़े दश घण्टेमें अपने कक्षमें (Axis) परिभ्रमण करता है।

दूरवीक्षणकी सहायतासे देखा गया है, कि शनिकक्ष ज्योतिर्मय वलय (Ring) द्वारा परिवेष्टित हैं। गालिलियोने सबसे पहले शनिग्रहका यह वलय देखा था।

उन्होंने यह भी देखा था, कि यह ग्रह तीन भागोंमें विभक्त है अर्थात् दो वलयके मध्य एक पिण्डवत् पदार्थ सबसे पहले उनके दृष्टिगोचर हुआ। उन्होंने किसी किसी समय इस वलयवत् पदार्थको अत्यन्त वृहदाकार धारण करते और कभी बिलकुल गायब होते देखा था। उस समय अन्यान्य ग्रहोंके साथ आकाशमें शनिग्रहकी कोई पृथकता दिखाई नहीं देती थी। हाइगेन्स् ने (Huyghens) सबसे पहले इस बातको सूचित किया, कि शनिग्रहके विषुव प्रदेशमें एक ज्योतिर्मय वलयवत् पदार्थ स्वतन्त्र भावसे विद्यमान है। यह पदार्थ शनिग्रहका सहचर होने पर भी उक्त ग्रहसे बहुत दूरमें अवस्थित है।

शनिग्रहके वलय पर सूर्यकिरण पड़नेसे वह चमक उठता है। सूर्य और पृथ्वी जब दोनों उसके एक पार्श्वमें रहते हैं, तब ही वह दिखाई देता है। जब एक ओर सूर्य और दूसरी ओर पृथिवी तथा बीचमें शनिग्रह रहता है, तब यह वलय फिर दिखाई नहीं देता।

डब्ल्यु यन और जे यन इन दोनों भाइयोंने शनिग्रहके सम्बन्धमें यथेष्ट गवेषणा कर स्थिर किया है, कि यह वलय, दो समकेन्द्रिक (Concentric) निम्नभागके वलयसे बहुत बड़ा है। कासिनी (Cassini) का कहना है, कि शनिग्रहका निर्माणोपादान जैसा घना है, उसके वलयका उपादान उससे कम घना नहीं है। शनिग्रहकी अपेक्षा उसके वलयकी ज्योति अधिक उज्ज्वल है। ऊपरके वलयसे नीचेका वलय ही बहुत साफ है। ज्योतिर्विदोंने अच्छे दूरवीक्षणकी सहायतासे इस वलयके ऊपर बहुत-सी समकेन्द्रकी काली रेखाएं देखी हैं।

हारसेलका कथन है, कि शनिका वलय अपने प्लेनमें (Plane) १० घंटा ३२ मिनिट १५ सेकेण्डमें परिक्रमण करता है। लापलस का भी यही सिद्धान्त है। १८५० ई०के पहले शनिके वलयके सम्बन्धमें ज्योतिर्विदोंके ग्रन्थादिमें कोई भी उल्लेख दिखाई नहीं देता। परन्तु एक ज्योतिर्विद्‌ने इसका उल्लेख किया था। उनका नाम डाक्टर गल (Gall) था। वे बार्लिनके रहनेवाले थे। इन्होंने १८८८ ई०में शनिग्रहका वलय यन्त्रकी सहायतासे देखा था।

१८५० ई०में युनाइटेड् स्टेटस् के कैमब्रिज विश्वविद्यालयके प्राफेसर उण्ड और मिः डज इन दोनोंने ही शनिग्रहका वलय देखा था। अच्छे दूरवीक्षणको सहायतासे अभ्यस्त नेत्रोंको यह वलय दिखाई देना अभी उतना कष्टकर नहीं है। मिः डज़ने इस वलयको साफ तौरसे प्रत्यक्ष कर इसका विशद विवरण लिखा है।

मन्द्राज मानमन्दिरसे कप्तान जेकबने यह वलय देखा था। एम ओटो ष्टुभ (M otto Stuve)-का कहना है, कि शनिग्रहका यह वलय नया उत्पन्न नहीं हुआ है। यह वलय क्रमशः शनिग्रहके निकटवर्त्ती होता है और उसका घनत्व धीरे धीरे बढ़ता है।

आधुनिक वैज्ञानिक ज्योतिर्विदोंका कहना है, कि यह वलय और कुछ नहीं है, छोटे छोटे ग्रहोंकी समष्टि है। ये सब उपग्रह वाष्पके साथ संमिश्रित हैं। यह वलय असङ्घभावमें शनिग्रहके साथ परिभ्रमण करता है।

शनिग्रहके आठ उपग्रह (Satellites) हैं। सबोंके बहिःस्थ उपग्रहकी विस्तृति चालीस लाख मील है। यह हम लोगोंके चन्द्रसे भी कहीं बड़ा है। छठा उपग्रह, टिटान (Titan) मार्कुरीके समान है।

फल—ग्रहगण राशिविशेषमें रह कर विशेष विशेष फल देते हैं। शनिग्रहके फलविषयमें ऐसा लिखा है, कि शनि पापग्रह है, अतएव अशुभफल देनेवाला है, किन्तु राशि और स्थानविशेषमें शुभफल भी देता है। यहां तक, कि शनि और मङ्गल ये दो ग्रह स्थानविशेषमें रह कर राजयोगकारक भी होते हैं।

शनिका स्थान—शनि शुभस्थानमें रह कर राज्य, दास, दासी, वाहन और स्मरणशक्ति प्रदान करता है। किन्तु अशुभ स्थानमें रहनेसे वह अनिष्ट और विनाशकारक होता है। इसको संन्यासी, प्राचीन व्यक्ति, भृत्य और नीच मनुष्य माना जाता है।

शनिग्रह भारतवर्षस्थित सूरतदेशका अधिपति तथा पश्चिम दिग्बली है। मनुष्यके शरीरमें शनिका भाग अधिक होनेसे रूक्षकेश, कृश और दीर्घदेह, पीननासिका, अधर ओष्ठ स्थूल, नेत्र छोटे और कान बड़े होते हैं।

स्वभाव—जन्मके समय शनिके अनुकूल रहनेसे आतङ्क, गभीर बुद्धिशक्तिसम्पन्न, मितभाषी, धैर्यशाली,

परिश्रमी, सम्पत्ति उपार्जनमें यत्नवान, [illegible] शसहिष्णु और दूरदर्शी होता है।

शनिके विगुण होनेसे मानव मलिन, हिंस्र, द्वेषी, लोभी, भीरु, नीचाशय, सन्दिग्ध, अपवित्र, अशुचि, नीचकर्मरत, मिथ्यावादी और विश्वासघातक होते हैं।

व्याधि—शनिके विगुण होनेसे बधिरता, पदविकलता, प्लीहा, पक्षाघात, शरीर कम्पन, उदरी, वात, वायुरोग, श्वासरोग और यक्ष्मरोग होता है।

कार्य—शनिग्रहके अनुकूल होनेसे मानव राजा, खनिके अधिपति, उर्णा और काष्ठव्यवसायी तथा कृषी होते हैं। शनिके प्रतिकूल होनेसे जातक भारवाहक, शकटचालक, कुम्भकार, भूमिखननकारी, भृत्य, पशुरक्षक, डोम और चण्डाल आदि नीच जाति होता है।

उष्ट्र, गर्दभ, उलूक, महिष, मेक, सर्प, कूर्म, गृध्र, वादुर आदि पक्षी शनिके प्रिय हैं।

विजयद, शमी, ताल, खजूर, शाल, समस्त विषाक्त तरुलता तथा लौह, सीसक और इन्द्रनील रत्न शनिके अत्यन्त प्रिय हैं। शनिके विरुद्ध होनेसे लौह और सीसेका दान तथा धारण या इन्द्रनील मणि धारण करनेसे शुभ होता है।

शनिग्रह ढाई वर्ष तक एक एक राशिका भोग करता है, अतएव समस्त राशिचक्र भ्रमण करनेमें उसे ३० वर्ष लगता है। शनि जन्मराशिसे अवस्थान कर विशेष विशेष फल देता है।

गोचरफल—शनिके जन्मराशिमें रहनेसे दीर्घकालस्थायी श्लेष्मा, अथवा वायुजनित पीड़ा, कम्प, संक्रामक या सन्यासिक ज्वर, पक्षाघात, उदरी, वात आदि रोग होनेकी सम्भावना, नाना प्रकारकी मनोवेदना, अर्थहानि, अपवाद, माता, पुत्र और कलत्रादिकी पीड़ा या वियोग जनित शोक होता है। द्वितीयमें मनःक्लेश और अर्थक्षति, तृतीयमें शत्रुनाश, क्षमता वृद्धि और सौभाग्यता होता है। किन्तु शनि यदि इस स्थानमें नीचस्थ हो, तो उक्त फलका ह्रास होता है। चतुर्थमें बन्धुनाश, शत्रुवृद्धि, पिताकी पीड़ा और स्थानभ्रंश; पञ्चममें सन्तानादिका अमङ्गल, बुद्धिनाश और विविध प्रकारका मानसिक क्लेश; षष्ठमें शत्रुनाश, आरोग्यलाभ, अर्थागम और कार्य सफल होता है। किन्तु नीचस्थ होनेसे इस फलका ह्रास होता है। सप्तममें स्त्रीकी पीड़ा या विनाश, विरोध, यात्रादिमें अमङ्गल और नाना प्रकारका अनिष्ट होता है। अष्टममें पीड़ाक्रान्त और विपदापन्न होना पड़ता है। नवममें वाणिज्यमें क्षति, मनःक्लेश तथा अर्थ और कार्यहानि होती है। दशममें प्राज्ञता, अर्थ और वाहनादि लाभ तथा द्वादशमें शोक, बधबन्धन, भय, ऋण और शत्रुवृद्धि होती है।

शनि जन्मके समय जिस राशिमें था, गोचरमें उसी राशिमें अथवा उसके सप्तममें उपस्थित होनेसे मानवको नाना प्रकारके विघ्नका सामना करना पड़ता है। मङ्गलका राशि भोगकाल थोड़ा है, किन्तु शनिका प्रायः ढाई वर्ष है तथा उसका फल भी दीर्घस्थायी है। अतएव गोचरफलका विचार करनेमें पहले यह देखना चाहिये, कि शनि जन्मके समय जिस राशिमें था, उस राशिमें अथवा उसके सप्तममें पहुंचा है या नहीं? क्योंकि गोचरमें शुभ होने पर भी उक्त दो स्थानोंमें वह विशेष अशुभ फलप्रद होता है। जन्मकालसे प्रायः १५ वर्षमें शनि अपने सप्तममें उपस्थित होता है तथा ३० वर्षमें अपनी अधिष्ठित राशिमें लौटता है। अतएव कमसे कम १५ वर्षमें मानव अत्यन्त शारीरिक और मानसिक क्लेशमें निमग्न रहते हैं। उस समय उस ग्रहके जन्मकर्मादि षण्णाड़ीस्थ होनेसे उक्त फल अवश्य फलता है। इसके सिवा शनि जन्मकालीन रविभाग्य राशिमें अथवा उसके सप्तममें उपस्थित होनेसे जातकके पिताका अनिष्ट, शत्रुभय, बन्धुनाश और मानहानि तथा रविके आयुर्दाता होनेसे प्राणनाशका डर रहता है। शनिके जन्मलग्नमें आनेसे जातव्यक्ति और उसकी संतानादिको पीड़ा, धनलग्नमें अर्थात् लग्नसे दशम स्थानमें उपस्थित होनेसे कार्यहानि, अपमान और नाना प्रकारका उद्वेग होता है।

बारहवीं राशिमें शनिके रहनेसे उक्त प्रकारका फल प्राप्त होता है। मेष राशिमें शनि रहनेसे व्यसन और परिश्रमकातर, कृतघ्न, निष्ठुर, निन्दित और निर्धन होता है।

वृषराशिमें शनि रहनेसे अर्थहीन, भृत्य, मिथ्याकर्मी-

नियुक्त, वाक्यवीर, वृद्धा या कुत्सितस्त्रीरत, स्त्रियोंका भृत्य, निकृष्टस्थानवासी और दुष्टस्वभाव होता है।

मिथुनमें शनि रहनेसे बन्धनयुक्त, श्रमातुर, दाम्भिक, मन्त्रणानिपुण, सर्वदा पाठरत, उत्तमशिल्पी और वाक्यवीर; कर्कटमें शनि रहनेसे उत्तम भाग्ययुक्त, दरिद्र, बाल्यकालमें रोगपीड़ित, पण्डित, जननीहीन, अति मृदु, श्रमातुर, बन्धुयुक्त, मध्यावस्थामें नरपति, तुल्य और भोगमें वर्जित; सिंहराशिमें रहनेसे लिपिपाठक और पुराणवेत्ता, निन्दिताचारयुक्त, दुःशील, स्त्रीविजित, विरत और भ्रमणशील; कन्याराशिमें रहनेसे षण्ढकी तरह आकृति, अतिशठ, पराम्नभोजी, वेश्यासक्त, आलसी, अशुचि और परोपकारी; तुलाराशिमें रहनेसे मानी, आलसी, विदेश भ्रमणमें रत, राजा, तपस्वी, स्वपक्षरक्षक, शिराल, बन्धुओंका श्रेष्ठ, साधु, कुलटा, नट और वेश्यास्त्रीरमणशील; वृश्चिकमें रहनेसे विद्वेष्टा, विषमस्वभाव, विष और अस्त्रवेत्ता, प्रचण्डकोपी, लोभी, दर्पयुक्त, परधनहरणमें पारग, नृशंसकर्मकारक, अनेक कष्टसहिष्णु, क्षय, व्यय और विविध व्याधियुक्त; धनुमें रहनेसे व्यवहारज्ञ, विद्वान्, विख्यातपुत्र, स्वधर्मपरायण, सुशील, वृद्धावस्थामें श्रीभोगी, अतिशय सम्मानी, अल्पवाक्यभाषी, बहुसङ्गविशिष्ट और मृदु स्वभावसम्पन्न; मकरराशिमें रहनेसे परयोषित् और परक्षेत्रका अधिपति, शास्त्रज्ञ, शिल्पवेत्ता, सद्वंशोत्पन्न, विख्यात, प्रवासशील, सरलताविहीन और शौर्ययुक्त; कुम्भराशिमें रहनेसे मिथ्यावादी, सुमिष्टभाषी, स्त्री और व्यसनासक्त, धूर्त्त, वञ्चनाकुशल, कुमित्रयुक्त और सहजमें कार्यसिद्धि तथा मीनराशिमें रहनेसे यज्ञप्रिय, शिल्पविद्यासम्पन्न, स्वोयबंधु और सुहृदोंका प्रधान, शान्तस्वभाव, विनयी और धार्मिक होता है।

अष्टोत्तरीके मतसे शनिकी दशा दश वर्ष है। अनुराधा, ज्येष्ठा और मूला, इन तीन नक्षत्रोंमें जन्म होनेसे शनिकी दशा होती है। इसके प्रति नक्षत्रमें ३ वर्ष, ४ मास तथा नक्षत्रके प्रतिपादमें १० मास और प्रति दण्डमें २० दिन तथा प्रति पलमें २० दण्ड होता है।

शनिकी स्थूलदशा दश वर्ष होने पर भी प्रत्येक ग्रहको अन्तर्दशा और प्रत्यन्तर्दशा विभाग है। साधारणतः दश और अन्तर्दशानुसार फलविचार करना होता है। ग्रहोंके शुभ ग्रहमें अवस्थान आदि द्वारा दशाकालमें फलके शुभाशुभकी कल्पना करनी होती है।

शनिका निज अन्तर ०।११।३।२० दण्ड।
शनि वृहस्पति १।६।३।२० दण्ड।
शनि राहु १।१।१० दिन।
शनि शुक्र १।११।१० दिन।
शनि रवि ०।६।२० दिन।
शनि चन्द्र १।४।२० दिन।
शनि मङ्गल ०।८।२६।४० दण्ड।
शनि बुध १।६।२६।४० दण्ड।

विंशोत्तरीके मतसे शनिकी दशा १९ वर्ष है। पुष्या, अनुराधा और उत्तरभाद्रपद नक्षत्रमें जन्म होनेसे शनिकी दशा होती है। इस दशाके नियमानुसार प्रत्येक नक्षत्रमें ही १९ वर्ष भोग होता है। परन्तु नक्षत्रका जितना दण्ड भोग हुआ है, दशा भी उतनी ही भुक्त हुई है, ऐसा जानना होगा। इस दशाकी भी पहलेकी तरह अन्तर्दशा और प्रत्यन्तर्दशा है, उसका विभाग इस प्रकार है—

निज शनि	३।०।३ दिन।
शनि बुध	२।८।९ दिन।
शनि केतु	१।१।९ दिन।
शनि शुक्र	३।२।० दिन।
शनि रवि	०।११।१२ दिन।
शनि चन्द्र	१।७।० दिन।
शनि मंगल	१।१।९ दिन।
शनि राहु	२।१०।६ दिन।
शनि वृहस्पति	२।६।१२ दिन।

विंशोत्तरीके मतसे उक्त रूपसे १९ वर्ष भोग होता है। विंशोत्तरीमतसे पराशरने विशेषरूपसे दशाफलका विचार किया है। विस्तार हो जानेके भयसे उसका यहां पर उल्लेख नहीं किया गया।

शनिग्रह जन्मकालमें शयनादि द्वादशभावके किस भावमें रहता है, उसे स्थिर करके पीछे फलनिर्णय करना आवश्यक है। ग्रहका स्फुट, भाव, बल और सन्धिका निर्णय करके भी फल स्थिर करना होता है। ग्रहगण

परिश्रमी, सम्पत्ति उपार्जनमें यत्नवान, क्लेशसहिष्णु और दूरदर्शी होता है।

शनिके विगुण होनेसे मानव मलिन, हिंस्र, द्वेषी, लोभी, भीरु, नीचाशय, सन्दिग्ध, अपवित्र, अशुचि, नीचकर्मरत, मिथ्यावादी और विश्वासघातक होते हैं।

व्याधि—शनिके विगुण होनेसे वधिरता, पदविकलता, दन्तपीड़ा, पक्षाघात, शरीर कम्पन, उदरी, वात, वायुरोग, श्वासरोग और यक्ष्मरोग होता है।

कार्य—शनिग्रहके अनुकूल होनेसे मानव राजा, खनिके अधिपति, उर्णी और काष्ठव्यवसायी तथा कृषी होते हैं। शनिके प्रतिकूल होनेसे जातक भारवाहक, शकटचालक, कुम्भकार, भूमिखननकारी, भृत्य, पशुरक्षक, डोम और चण्डाल आदि नीच जाति होता है।

उष्ट्र, गर्दभ, उल्लूक, महिष, भेक, सर्प, कुर्म, गृध्र, बादुर आदि पक्षी शनिके प्रिय हैं।

विजयंद, शमी, ताल, खजूर, शाल, समस्त विषाक्त तरुलता तथा लौह, सीसक और इन्द्रनील रत्न शनिके अत्यन्त प्रिय हैं। शनिके विरुद्ध होनेसे लौह और सीसेका दान तथा धारण या इन्द्रनील मणि धारण करनेसे शुभ होता है।

शनिग्रह ढाई वर्ष तक एक एक राशिका भोग करता है, अतएव समस्त राशिचक्र भ्रमण करनेमें उसे ३० वर्ष लगता है। शनि जन्मराशिसे अवस्थान कर विशेष विशेष फल देता है।

गोचरफल—शनिके जन्मराशिमें रहनेसे दीर्घकालस्थायी श्लेष्मा, अथवा वायुजनित पीड़ा, कम्प, संक्रामक या त्र्याहिक ज्वर, पक्षाघात, उदरी, वात आदि रोग होनेकी सम्भावना, नाना प्रकारकी मनोवेदना, अर्थहानि, अपवाद, माता, पुत्र और कलत्रादिकी पीड़ा या वियोग जनित शोक होता है। द्वितीयमें मनःक्लेश और अर्थक्षति, तृतीयमें शत्रुनाश, क्षमता वृद्धि और सौभाग्यलाभ होता है। किन्तु शनि यदि इस स्थानमें नीचस्थ हो, तो उक्त फलका ह्रास होता है। चतुर्थमें बन्धुनाश, शत्रु वृद्धि, पिताकी पीड़ा और स्थानभ्रंश ; पञ्चममें सन्तानादिका अमङ्गल, बुद्धिनाश और विविध प्रकारका मानसिक क्लेश; षष्ठमें शत्रुनाश, आरोग्यलाभ, अर्थागम और कार्य सफल होता है। किन्तु नीचस्थ होनेसे इस फलका ह्रास होता है। सप्तममें स्त्रीकी पीड़ा या विनाश, विरोध, यात्रादिमें अमङ्गल और नाना प्रकारका अनिष्ट होता है। अष्टममें पीड़ाक्रान्त और विपदापन्न होना पड़ता है। नवममें वाणिज्यमें क्षति, मनःक्लेश तथा अर्थ और कार्यहानि होती है। दशममें प्राज्ञता, अर्थ और वाहनादि लाभ तथा द्वादशमें शोक, बन्धबन्धन, भय, ऋण और शत्रुवृद्धि होती है।

शनि जन्मके समय जिस राशिमें था, गोचरमें उसी राशिमें अथवा उसके सप्तममें उपस्थित होनेसे मानवको नाना प्रकारके विघ्नका सामना करना पड़ता है। मङ्गलका राशि भोगकाल थोड़ा है, किन्तु शनिका प्रायः ढाई वर्ष है तथा उसका फल भी दीर्घस्थायी है। अतएव गोचरफलका विचार करनेमें पहले यह देखना चाहिये, कि शनि जन्मके समय जिस राशिमें था, उस राशिमें अथवा उसके सप्तममें पहुंचा है या नहीं? क्योंकि गोचरमें शुभ होने पर भी उक्त दो स्थानोंमें वह विशेष अशुभ फलप्रद होता है। जन्मकालसे प्रायः १५ वर्षमें शनि अपने सप्तममें उपस्थित होता है तथा ३० वर्षमें अपनी अधिष्ठित राशिमें लौटता है। अतएव कमसे कम १५ वर्षमें मानव अत्यन्त शारीरिक और मानसिक क्लेशमें निमग्न रहते हैं। उस समय उस ग्रहके जन्मकर्मादि षण्णाड़ीस्थ होनेसे उक्त फल अवश्य फलता है। इसके सिवा शनि जन्मकालीन रविभाग राशिमें अथवा उसके सप्तममें उपस्थित होनेसे जातकके पिताका अनिष्ट, शत्रुभय, बन्धुनाश और मानहानि तथा रविके आयुर्दाता होनेसे प्राणनाशका डर रहता है। शनिके जन्मलग्नमें आनेसे जातव्यक्ति और उसकी संतानादिको पीड़ा, धनलग्नमें अर्थात् लग्नसे दशम स्थानमें उपस्थित होनेसे कार्यहानि, अपमान और नाना प्रकारका उद्वेग होता है।

बारहवीं राशिमें शनिके रहनेसे उक्त प्रकारका फल प्राप्त होता है। मेष राशिमें शनि रहनेसे व्यसन और परिश्रमकातर, कृतघ्न, निष्ठुर, निन्दित और निर्धन होता है।

वृषराशिमें शनि रहनेसे अर्थहीन, भृत्य, मिथ्याकर्मी-

निपुण, वाक्यवीर, वृद्धा या कुत्सितस्त्रीरत, स्त्रियोंका भृत्य, निकृष्टस्थानवासी और दुष्टस्वभाव होता है।

मिथुनमें शनि रहनेसे बन्धनयुक्त, श्रमातुर, दाम्भिक, मन्त्रणानिपुण, सर्वदा पाठरत, उत्तमशिल्पी और वाक्यवीर; कर्कटमें शनि रहनेसे उत्तम भाग्ययुक्त, दरिद्र, बाल्यकालमें रोगपीड़ित, पण्डित, जननीहीन, अति मृदु, श्रमातुर, बन्धुयुक्त, मध्यावस्थामें नरपति तुल्य और भोगमें वर्जित; सिंहराशिमें रहनेसे लिपिपाठक और पुराणवेत्ता, निन्दिताचारयुक्त, दुःशील, स्त्रीविजित, खिन्न और भ्रमणशील; कन्याराशिमें रहनेसे षण्डकी तरह आकृति, अतिशठ, पराग्नभोजी, वेश्यासक्त, आलसी, अशुचि और परोपकारी; तुलाराशिमें रहनेसे मानी, आलसी, विदेश भ्रमणमें रत, राजा, तपस्वी, स्वपक्षरक्षक, शिशल, वन्धुओंका श्रेष्ठ, साधु, कुलटा, नट और वेश्यास्त्रीरमणशील; वृश्चिकमें रहनेसे विद्वेष्टा, विषमस्वभाव; विष और अस्त्रवेत्ता, प्रचण्डकोपी, लोभी, दर्पयुक्त, परधनहरणमें पारग, नृशंसकर्मकारक, अनेक कष्टसहिष्णु, क्षय, व्यय और विविध व्याधियुक्त; धनुमें रहनेसे व्यवहारज्ञ, विद्वान्, विख्यातपुत्र, स्वधर्मपरायण, सुशील, वृद्धावस्थामें श्रीभोगी, अतिशय सम्मानी, अल्पवाक्य भाषी, बहुसङ्गविशिष्ट और मृदु स्वभावसम्पन्न; मकर राशिमें रहनेसे परयोषित् और परक्षेत्रका अधिपति, शास्त्रज्ञ, शिल्पवेत्ता, सद्वंशोत्पन्न, विख्यात, प्रवासशील, सरलताविहीन और शौर्ययुक्त; कुम्भराशिमें रहनेसे मिथ्यावादी, सुमिष्टभाषी, स्त्री और व्यसनासक्त, धूर्त, वञ्चनाकुशल, कुमित्रयुक्त और सहजमें कार्यसिद्धि तथा मीनराशिमें रहनेसे यज्ञप्रिय, शिल्पविद्यासम्पन्न, स्वीयबंधु और सुहृदोंका प्रधान, शान्तस्वभाव, विनयी और धार्मिक होता है।

अष्टोत्तरीके मतसे शनिकी दशा दश वर्ष है। अनुराधा, ज्येष्ठा और मूला, इन तीन नक्षत्रोंमें जन्म होनेसे शनिकी दशा होती है। इसके प्रति नक्षत्रमें ३ वर्ष, ४ मास तथा नक्षत्रके प्रतिपादमें १० मास और प्रति दण्डमें २० दिन तथा प्रति पलमें २० दण्ड होता है।

शनिको स्थूलदशा दश वर्ष होने पर भी प्रत्येक ग्रहको अन्तर्दशा और प्रत्यन्तर्दशा विभाग है। साधारणतः दश और अन्तर्दशानुसार फलविचार करना होता है। ग्रहोंके शुभ ग्रहमें अवस्थान आदि द्वारा दशाकालमें फलके शुभाशुभकी कल्पना करनी होती है।

शनिका निज अन्तर ०।११।३।२० दण्ड।
शनि वृहस्पति १।६।३।२० दण्ड।
शनि राहु १।१।१० दिन।
शनि शुक्र १।११।१० दिन।
शनि रवि ०।६।२० दिन।
शनि चन्द्र १।४।२० दिन।
शनि मङ्गल ०।८।२६।४० दण्ड।
शनि बुध १।६।२६।४० दण्ड।

विंशोत्तरीके मतसे शनिकी दशा १९ वर्ष है। पुष्या, अनुराधा और उत्तरभाद्रपद नक्षत्रमें जन्म होनेसे शनिकी दशा होती है। इस दशाके नियमानुसार प्रत्येक नक्षत्रमें ही १९ वर्ष भोग होता है। परन्तु नक्षत्रका जितना दण्ड भोग हुआ है, दशा भी उतनी ही भुक्त हुई है, ऐसा जानना होगा। इस दशाकी भी पहलेकी तरह अन्तर्दशा और प्रत्यन्तर्दशा है, उसका विभाग इस प्रकार है—

निज शनि	३।०।३ दिन।
शनि बुध	२।८।९ दिन।
शनि केतु	१।१।९ दिन।
शनि शुक्र	३।२।० दिन।
शनि रवि	०।११।१२ दिन।
शनि चन्द्र	१।७।० दिन।
शनि मंगल	१।१।९ दिन।
शनि राहु	२।१०।६ दिन।
शनि वृहस्पति	२।६।१२ दिन।

विंशोत्तरीके मतसे उक्त रूपसे १९ वर्ष भोग होता है। विंशोत्तरीमतसे पराशरने विशेषरूपसे दशाफलका विचार किया है। विस्तार हो जानेके भयसे उसका यहां पर उल्लेख नहीं किया गया।

शनिग्रह जन्मकालमें शयनादि द्वादशभावके किस भावमें रहता है, उसे स्थिर करके पीछे फलनिर्णय करना आवश्यक है। ग्रहका स्फुट, भाव, बल और सन्धिका निर्णय करके भी फल स्थिर करना होता है। ग्रहगण

जन्मकालमें, गोचर आदिमें यदि विरुद्ध रहे, तो उसकी शान्ति करना कर्त्तव्य है। शान्ति करनेसे यह ग्रह शुभफलदाता होता है।

ग्रहशान्तिके सम्बन्धमें गुल्म लतादिका मूल, धातु, रत्नधारण तथा दान, उस ग्रहके अधिष्ठात्री देवताकी पूजा, स्तव और कवचादि धारण उचित है। शनिग्रहका दान—उड़द, तैल, इन्द्रनील मणि अर्थात् पन्ना, कृष्णतिल, कुलथी, महिष अभावमें मूल्य, लौह ये सब द्रव्य सवस्त्र और दक्षिणाके साथ दान करने होते हैं।

शनिग्रहकी अधिष्ठात्री देवी दक्षिणाकाली हैं। अतएव कालीपूजा करनेसे भी शुभ होता है।

शनिग्रहका स्तव इस प्रकार है—

नीलाञ्जनचयप्रख्यं रविसुतः महाग्रहम्।
छायाया गर्भसम्भूतं वन्दे भक्त्या शनैश्चरम्॥

शनिचक्र (सं० क्ली०) शनैश्चक्र। मानवका शुभाशुभ जाननेके लिये चक्रभेद। इस चक्र द्वारा शनिभोग्य नक्षत्रसे आरम्भ कर २७ नक्षत्र विन्यासपूर्वक शुभाशुभ फल निर्णय करना होता है। ज्योतिस्तत्त्वमें इस चक्रका विषय इस प्रकार लिखा है—पहले एक नराकार पुरुष अङ्कित करना होगा। पीछे शनि जिस नक्षत्रमें रहते हैं, वह नक्षत्र उसीके मुख पर विन्यास करे। बादमें उस नक्षत्रसे दूसरे नक्षत्र उक्त स्थलमें लिखने होते हैं। इस पुरुषके दाहिने हाथमें ४, दोनों पैरमें ६, हृदयमें ५, बायें हाथमें ४, मस्तक पर ३, दोनों नेत्रमें २ और गुह्यमें २, इस प्रकार सभी नक्षत्र रख कर फलनिरूपण करने होते हैं। मुखमें हानि, दाहिने हाथमें जय, पैरमें भ्रम, हृदयमें लक्ष्मीलाभ, बायें हाथमें भय, मस्तक पर राज्य, नेत्रमें सुख और गुह्यमें मरण होता है। जिसका जन्मनक्षत्र उन सब दुःस्थानोंमें रहता है, उनका अमङ्गल और शुभस्थानमें रहनेसे शुभ होता है। जिस समय शनि ४, ८, १२ नक्षत्रमें रह कर अमङ्गलप्रद होता है, उस समय चतुः, हृदय, शीर्ष, दक्षनेत्रस्थ शनि सुखदायक होते हैं। जिस समय शनि तृतीय, एकादश और षष्ठमें रहते हैं, उस समय सुखदायक तथा गुह्य, वक्त्र और वामचरणस्थ होनेसे अशुभजनक होते हैं। इस प्रकार शनि अशुभ होनेसे इसकी शान्तिका विधान लिखा है। यह चक्र कृष्ण द्रव्य द्वारा लिख कर तेलमें डाल पीछे जमीन पर रख दे। बादमें कृष्ण पुष्प द्वारा उसकी पूजा करे। इस प्रकार पूजा करनेसे शनि शुभप्रद होते हैं। (ज्योतिस्तत्त्व)

शनिज (सं० पु०) काली मिर्च।

शनिप्रदोष (सं० पु०) एक प्रकारका प्रदोष या पर्व। यह शनिवारके दिन किसी मासके कृष्ण पक्षकी त्रयोदशी पड़ने पर होता है। इस दिन व्रत रखा और शिवका पूजन किया जाता है।

शनिप्रसू (सं० स्त्री०) शनेः प्रसूर्जननी। छाया, सूर्यकी पत्नी।

शनिप्रिय (सं० क्ली०) शनेः प्रियम्। नीलमणि, नीलम।

शनिरुद्र (सं० पु०) महिष, भैंसा।

शनिवार (सं० पु०) शनभोग्यः शनेर्वा वारः। वह वार जो रविवारसे पहले और शुक्रवारके बाद पड़ता है। सावन गणनामें उक्त है, कि रवि आदि सात ग्रह यथाक्रमसे जो जिस दिनके अधिपति होंगे, वही उनके योग्य दिन तथा वही उनके वार होगा।

स्कन्दपुराणमें लिखा है, कि चैत्रमासकी शुक्लत्रयोदशी तिथिमें शनिवार और शतभिषा नक्षत्रका योग होनेसे महावारुणी होती है। इस दिन गंगास्नान करनेसे सौ सूर्यग्रहणमें स्नान करनेका फल होता है।

कोष्ठीप्रदीपमें लिखा है, कि जो बालक शनिवारको जन्म लेगा, वह अतिशय कृश, हमेशा रोगी, अङ्गहीन, कुवेशधारी, मध्यधनी, कुलकीर्त्तिविहीन, तमोगुणविशिष्ट तथा यावनीय लोगोंका शत्रु होगा।

ज्योतिस्तत्त्वानुसार शनिवारको यात्रादि निषिद्ध है।

सन्त्यजेद्दिवसे यात्रा सूर्यारार्कीन्दुवक्रियाम्॥
(ज्योतिस्तत्त्व)

शनैश्चर (सं० पु०) शनि देखो।

शनैः (सं० अव्य०) १ धीरे, आहिस्ता, होले। (ऋक् ८।४५।११) (पु०) २ शनैश्चर, शनि।

शनैःप्रमेह (सं० पु०) एक प्रकारका प्रमेहरोग। इस प्रमेहमें रोगीको धीरे धीरे, थम कर और बहुत पतली धारमें थोड़ा थोड़ा पेशाब आता है।

शनैर्मेह (सं०पु०) शनैःप्रमेह देखो।

शनैर्मेही (सं०पु०) वह रोगी जिसे शनैःप्रमेहका रोग हो।

शनैश्चर (सं०पु०) शनैर्मन्दं मन्दं चरतीति चर गतौ पचाद्यच्। शनि। व्यासदेवके नवग्रहस्तोत्रमें लिखा है कि सूर्यके औरस संज्ञा छायाके गर्भसे इनकी उत्पत्ति हुई।

"नीलाञ्जनचयप्रख्यं रविसुनुं महाग्रहम्।
छायायां गर्भसंभूतं वन्दे भक्त्या शनैश्चरम्॥" (व्यासस्तोत्र)

शन्त (सं०त्रि०) शं सुखं विद्यतेऽस्य शम्-त मत्वर्थे। (शंभा कैश्यां बभ यु स्ति-मुत यवं । पा५।२।१३८) सुखी।

शन्तनु (सं०त्रि०) शं मङ्गलात्मकस्तनुर्यस्य। १ श्रेय-पूर्ण देहविशिष्ट, सुन्दर शरीरवाला। (पु०) २ द्वापर-युगमें चन्द्रवंशीय राजभेद, भीष्मके पिता। ये प्रतीपके औरस और शैवराजनन्दिनी सुनन्दाके गर्भसे जन्मग्रहण किया था। महाभारतमें लिखा है, इक्ष्वाकुवंशीय महाभिष नामक एक राजाने हजार अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञ करके ब्रह्मलोकको पाया। एक दिन देवताओंसे समावृत ब्रह्माके समीप बहुत-से राजर्षि और राजा महाभिष बैठे थे। उसी समय सुधाधवलित वसनपरिहिता गङ्गादेवी वहां पहुंची। हवा जोरोंसे बह रही थी जिससे गङ्गादेवी बेपर्द हो गई। यह देख सबोंने लज्जावशतः शिर झुका लिया, किन्तु राजा महाभिष अशङ्कित चित्तसे उस ओर दृष्टिपात करते ही रहे। इस पर ब्रह्मा बड़े क्रुद्ध हुए और राजाको शाप दिया कि 'तुम मर्त्यलोकमें जन्म लोगे।' इस प्रकार अभिशप्त महाभिषने प्रतीपके औरससे जन्म लेनेकी इच्छा प्रकट की।

जिस समय राजा महाभिष गङ्गाकी ओर टक लगाये रहे थे, उस समय गङ्गा भी अपनेको संभाल न सकी थीं। जब वे वहांसे चलीं, तब राहमें भी उनकी प्रकृति राजाकी ओरसे हटी न थी। इसी समय वसुओंके साथ उनकी भेंट हो गई। संध्योपासनानिरत वशिष्ठदेवने उन्हें नरयोनिमें जन्म लेनेका शाप दिया था। वसुओंने गङ्गासे अनुरोध किया, कि आप मानवीरूपमें हम लोगोंको गर्भमें धारण कर उद्धार कीजिये। हम लोग सामान्य मानवोंके गर्भमें जन्म लेना नहीं चाहते। त्रिलोकख्यात प्रतीपपुत्र राजा शन्तनुके औरससे जन्म लेनेकी हमारी इच्छा है। गङ्गादेवीने उनकी प्रार्थनाके साथ अपनी वर्त्तमान प्रवृत्तिके परिणाम फलका सामञ्जस्य समझ कर उनके प्रस्तावको स्वीकार कर लिया।

एक दिन जब राजा प्रतीप गङ्गाके किनारे बहुवर्षव्यापी जपतप कर रहे थे, तब अतिशय प्रलोभनीया, दिव्यश्रीयुक्त सौन्दर्यधारिणी सुमुखी गङ्गा जलसे निकलीं और तपोनिरत राजर्षिको भजनेकी इच्छासे उनके शालस्तम्भसदृश दक्षिण ऊरु पर बैठ गईं। राजाने उनका अभिप्राय सुन कर अस्वीकार किया। इस पर गङ्गाने एकान्त कामाभिलाषिणीको निराश लौटा देनेके सम्बन्धमें विविध भीति और नीति प्रदर्शन की। अन्तमें राजाने एक युक्ति निकाल कर कहा, 'तुमने जब स्वयं ही प्रणयिनीभावापन्न ऊरुका परित्याग कर कन्या, स्नुषा आदि वात्सल्योपयुक्त पात्रियोंके स्थान दक्षिण ऊरुका अवलम्बन किया है, तब मैं तुम्हें स्नुषा कह कर ग्रहण कर सकता हूं; अतएव तुम मेरी स्नुषा हो।' गङ्गाने भी इसे स्वीकार कर लिया।

इस प्रस्तावके बाद कुरुकुलप्रदीप प्रतीपने स्त्रीके साथ पुत्रप्राप्तिकी कामनासे तपस्या आरम्भ कर दी। पीछे दम्पतीकी वृद्धावस्थामें उसी शापग्रस्त महात्मा महाभिषने जन्मग्रहण किया। मङ्गलमय देह होनेके कारण किसीने इनका नाम शन्तनु रखा। और जराग्रस्तको भी स्पर्श करनेसे यह शान्ततनु (स्थिरतनु या स्थिरयौवन) लाभ करता था, इस प्रवादके अनुसार किसी किसीने शान्तनु नाम रखा। क्रमशः जब शन्तनु बड़े हुए, तब एक दिन वृद्ध पिताने उनसे कहा, 'वत्स! यदि कोई सुवर्णाङ्गी रूपवती दिव्ययुवती पुत्रकी कामनासे निर्जन स्थानमें तुम्हारे पास आवे, तो उससे कोई परिचय दिना पूछ कर मेरे आदेशानुसार तुम उसकी मनस्कामना पूर्ण करना।'

इसके बाद प्रतीपने शान्तनुको राज्यमें अभिषिक्त कर वानप्रस्थका अवलम्बन किया। राजा शान्तनु एक

दिन शिकार खेलते खेलते गङ्गाके किनारे आये। इस समय इन्होंने साक्षात् लक्ष्मीकी तरह कांतिमती दिव्याभरणभूषिता परम रमणीया एक रमणी मूर्त्ति देख स्तम्भित और विस्मित हो कर उनसे कहा, 'शोभने! तुम देवी दानवी अप्सरी किन्नरी पन्नगी मानवी कोई भी क्यों न हो मैं तुमसे विवाह करना चाहता हूं। अत एव मेरा अभिलाष पूर्ण कर मुझे बाधित करो।'

राजाके इस प्रकार आग्रहान्वित मनोमोहन मृदु मधुर मनोहर वचन सुन कर दिव्यमूर्त्ति धारिणी गङ्गा वसुओं-का विवरण स्मरण करती हुई मुस्कुराई और बड़ी प्रसन्न हो कर उन्होंने राजासे कहा, 'महीपाल! मैं तुम्हारी महिषी और वशवर्त्तिनी हूंगी, किन्तु आपको एक प्रतिज्ञा करनी होगी, वह यह कि यदि मैं किसी प्रकारका शुभ या अशुभ कार्य करूं, तो आप मुझे रोक नहीं सकते और न कोई कटु वचन ही कह सकते हैं। यदि कहेंगे, तो उसी समय मैं आपको छोड़ चली जाऊंगी।' राजाने यह प्रतिज्ञा स्वीकार कर ली। इस प्रकार दोनों चैनसे दिन काटने लगे। दोनोंकी प्रीति दिनो दिन बढ़ने लगी। नवपरिणीता भार्याके औदार्य्य गुण और निर्जन परिचर्यासे राजा परितुष्ट रहा करते थे।

इस प्रकार वर्षों सुखसम्भोगके बाद उन्हें आठ सन्तान उत्पन्न हुई। वसुओंके साथ नियम था, कि जन्म लेते ही जलमें फेंक देना होगा। तदनुसार एकसे सात सन्तान तक जलमें फेंक कर गङ्गा देवीने अपनी पूर्ण प्रतिज्ञाका पालन किया। गङ्गाके इस प्रकार बार बार कठोर व्यवहारसे राजा इतने दुःखित हुए थे, कि आठवें पुत्रके जन्म लेते ही वे अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग किये विना रह न सके। ज्यों ही गङ्गादेवी इस आठवें पुत्रको भी जलमें फेंकने जा रही थी, त्यों ही राजाने उन्हें रोका और कहा, 'तुम कौन हो? किसकी कन्या हो? किस लिये पुत्रवध करती हो?' राजाकी इस उक्ति पर गङ्गा निरस्त हो बोली, 'हे पुत्रकाम! मैं तुम्हारे इस पुत्रको वध न करूंगी। किन्तु तुमने नियम भंग किया, इसलिये अब मैं तुम्हारे पास नहीं रह सकती। मैं महर्षिगणनिषेविता जह्नुतनया गङ्गा हूं। देवकार्यकी सिद्धिके लिये मैंने तुम्हारे साथ सहवास किया था। तुम्हारे पुत्र महातेजस्वी अष्टवसु हैं। वशिष्ठके शापसे वे मनुष्ययोनिमें उत्पन्न हुए हैं। इस मर्त्यलोकमें तुम्हारे सिवा और कोई भी जनक और मेरे सिवा जननी होनेकी उपयुक्त नहीं है। अभी तुमने अष्टवसुको जन्म दे कर अक्षयलोक अधिकार किया। वसुओंके साथ मेरी शर्त थी, कि उनके जन्मसे उन्हें मुक्त करूंगी। इसी कारण प्रसवके बादमें उन्हें जलमें फेंक आती थी। किन्तु यह पुत्र तुम्हारे लिये ही मैंने वसुओंसे मांगा था। यह कुमार प्रत्येक वसुके अष्टमांसके मेलसे उत्पन्न हुआ है। अभी तुम इसका पालनपोषण करो। तुम्हारा कल्याण हो, मैं चलती हूं।" इतना कह कर वह उस कुमारको ले यथाभिलषित स्थानमें अन्तर्हित हो गई। यही कुमार स्वर्गीय द्यु नामक वसु हैं, मर्त्यलोकमें शन्तनुके पुत्र हो कर देवव्रत और गाङ्गेय नामसे विख्यात हुए। ये ही कुरुक्षेत्र युद्धके प्रथम और प्रधान सेनापति परम धनुर्द्धर महाबलिष्ठ भीष्म थे।

गङ्गादेवीके अन्तर्धानके बाद राजा शन्तनु बड़े दुःखित हुए। कुछ समय बाद एक दिन वे एक बाण-विद्ध मृगका अनुसरण करते हुए गङ्गाके किनारे आये। वहां वे एक सुन्दर कुमारको शरजाल द्वारा गङ्गाका स्रोत रोकते देख बड़े विस्मित हुए और गङ्गासे उन्होंने इसका परिचय पूछा। गङ्गाने कहा, 'राजन्! पहले तुमने जो मेरे गर्भसे अष्टमपुत्र लाभ किया था, वह यही पुत्र है। अस्त्र, शस्त्र, शास्त्र, वेद, वेदाङ्ग आदि सभी विद्याओंमें पारदर्शी हो गया है। अब तुम इसे अपने घर ले जाओ।' राजाने गङ्गाप्रदत्त उस पुत्रको ला कर युवराज बनाया।

इन सब घटनाओंके बाद किसी एक दिन राजा शन्तनु यमुनाके किनारे वनमें भ्रमण कर रहे थे। इसी समय उन्होंने एक सद्गन्ध आघ्राण कर उसी ओर कदम बढ़ाया और एक देवरूपिणी कन्याको देख उसका परि-चय पूछा। कन्याने कहा, 'मैं वसुराज (दाशराज) की कन्या हूं, सत्यवती मेरा नाम है। पिताकी आज्ञासे यहां नाव खेने आई हूं।' शन्तनुने उस परम रूपवती कन्याके रूप पर मोहित हो कर उसे व्याहनेकी इच्छा

प्रकट की। परन्तु सत्यवतीका पिता उनसे सम्मत नहीं हुआ। पीछेसे उसने कहा, "यदि आप सत्यवतीके पुत्रको राज्य देना स्वीकार करें, तो मैं अपनी कन्या ब्याह दूं।

तीव्र मनोज-वेदनासे दह्यमान होते हुए भी राजा शांतनुको साहस न हुआ, कि वे दाशराजकी बात पूरी कर सकें। अतः वे कामवाणसे पीड़ित हो हस्तिनापुर लौटे। वहां वे बड़ी उदासीनतासे दिन बिताने लगे। विपुलबुद्धि देवव्रत पिताको इस प्रकार उदास देख बड़े दुःखित हुए और मंत्रीसे इसका कारण पूछा। कुल बात मालूम होने पर देवव्रत दाशराजके समीप गये और पिताके लिये उन्होंने कन्या प्रार्थना की। दाशराजने उत्तर दिया, कि कन्याका पिता साक्षात् इन्द्र होने पर भी यदि वह ऐसे श्लाघ्य और एकांत प्रार्थनीय सम्बन्धका परित्याग करे, तो उसे अंतमें अवश्य पश्चात्ताप करना पड़ेगा। परंतु इसमें एकमात्र सापत्न्यदोष पर ही मुझे संदेह होता है। क्योंकि आप जिसके सपत्न हैं, वह देव, नर, गंधर्व या असुर भी क्यों न हो, तो भी आपके क्रोध करने पर वह कभी नहीं रह सकता। इसके सिवा देनलेनके विषयमें और कोई वक्तव्य नहीं है।

अनंतर गङ्गापुत्र देवव्रतने पिताको संतुष्ट करनेके लिये क्षत्रियमण्डलीके समीप दाशराजके सामने इस प्रकार प्रतिज्ञा की, "आपकी कन्याके गर्भसे उत्पन्न बालक ही मेरा राज्याधिकारी होगा और अन्तमें कहीं मेरी सन्ततिसे विवाद भी खड़ा न हो जाय, इसलिये मैंने चिरब्रह्मचर्य अवलम्बन किया।" इस प्रकार प्रतिज्ञाबद्ध हो देवव्रत उस योजनगन्धा दाशराजकन्या सत्यवतीको अपने घर ले आये। इस प्रकार भीषण प्रतिज्ञा करनेके कारण देवताओं और ऋषियोंने उनका 'भीष्म' नाम रखा।

इसके बाद समय पा कर शन्तनुके औरस और सत्यवतीके गर्भसे चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य नामक दो वीर्यवान् महाधनुर्द्धर पुत्र उत्पन्न हुए। विचित्रवीर्य वयःप्राप्त होनेसे पहले ही शन्तनु परलोकको सिधारे। पीछे महामति भीष्मने सत्यवतीके मतावलम्बी हो कर अकपटचित्तसे अरिन्दम चित्राङ्गदको यथासमय राज्याभिषिक्त किया।

२ राजभेद। (ऋक् १०।९८।१) ४ ऋषिनाम। (ऋक् १०।९८।३) ५ कौरव्य। (ऋक् १०।९८।७)

शन्तनुत्व (सं० क्ली०) १ शान्तिमय देहका भाव। २ शन्तनुका धर्मविशिष्ट।

शन्तम (सं० पु०) अतिशय सुखकर स्तोत्र। (ऋक् १।४३।१)

शन्ताति (सं० त्रि०) सुखकर्त्ता। (ऋक् १।११२।२०)

शन्तातीय (सं० त्रि०) शान्तिसूचक-स्तोत्रसम्बन्धी। (ऋक् ७।३५।१०।१३)

शन्ति (सं० त्रि०) शमस्यास्तीति शम् (कंशम्भ्यां बभयुस्तितु तयसः। पा ५।२।१३८) इति ति। मङ्गलयुक्त, कल्याणविशिष्ट।

शन्तिव (सं० त्रि०) सुखयुक्त। (अथर्व ३।३०।२ सायण)

शन्तु (सं० त्रि०) शम् मत्वर्थे (कंशम्भ्यामिति। पा ५।२।१३८) इति तु। शान्त, मङ्गलयुक्त।

शन्त्व (सं० क्ली०) सुखका भाव या धर्म। (तैत्तिरीयस० ५।१।६।२)

शन्ध (सं० पु०) षण्ढ, हीजड़ा।

शप (सं० पु०) शप-अच्। १ शपथ, कसम। २ निर्भर्त्सन, गाली देना। (अव्य०) ३ स्वीकार, मंजूर।

शपथ (सं० पु०) शप क्रोशे (शीङ्शपि-रुशमीति। उण् ३।११३) इति अथ। १ वह कथन जिसके अनुसार कहनेवाला इस बातकी प्रतिज्ञा करता है, कि यदि मेरा कथन असत्य हो, मैंने अमुक काम किया हो, मैं अमुक काम करूं या न करूं इत्यादि, तो मुझ पर अमुक देवताका शाप पड़े अथवा मैं अमुक पापका भागी होऊं इत्यादि, कसम, दिव्य, सौगन्द। संस्कृत पर्याय—शपन, शाप, सत्य, समय, शाप, प्रत्यय, अभिषङ्ग। (जटाधर)

आपसमें लड़नेवाले वादी और प्रतिवादी इन दो पक्षोंका यदि कोई साक्षी न रहे, तो विचारक दोनों पक्षको शपथ खिला कर सत्यनिरूपण करे। महर्षियों और देवताओंने आत्मशुद्धिके लिये पहले शपथ की थी। वशिष्ठऋषिने भी पिजवनके पुत्र सुदासराजाके निकट शपथ खाई थी। ज्ञानियोंको वृथा शपथ न खानी चाहिये। जो वृथा शपथ खाते हैं, उन्हें इस लोकमें

अकीर्त्ति और परलोकमें नरक) होता है। शपथके विषयमें इस प्रकार प्रतिप्रसव लिखा है—

"कामिनीषु विवाहेषु गवां भक्ष्ये तथेन्धने।
ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ च शपथे नास्ति पातकम्॥"
(मनु ८।११२)

तुम मेरी अतिशय प्रियतमा हो, दूसरेको मुझे याद नहीं है, इस प्रकार सुरतलाभके लिये स्त्रीविषयमें मिथ्या शपथ खानेसे उसमें पाप नहीं होता। विवाह, गौके लिये भक्ष्यद्रव्य संग्रह, होम काष्ठ लाना और ब्राह्मणरक्षा इन सब विषयोंमें भी यदि मिथ्या शपथ खाई जाय, तो पाप नहीं होता।

विचारकालमें ब्राह्मणको सत्य द्वारा शपथ करानी होगी। क्षत्रियको उसके हस्त्यश्व या आयुध द्वारा, वैश्यको उसकी गो या काञ्चन द्वारा तथा शूद्रको सभी पातक द्वारा शपथ करानी होती है। अथवा शूद्रको अग्नि या जल परीक्षा किंवा स्त्रीपुत्रादिका शिर छुवा कर परीक्षा करावे। इस परीक्षा विषयमें अग्नि जिसे दग्ध न करे, जल जिसे ऊपर न भंसावे तथा स्त्रीपुत्रादिका मस्तक छूनेसे शीघ्र यदि पीड़ा न हो, तो जानना चाहिये कि वह विशुद्ध है। (मनु०)

विष्णुसंहितामें लिखा है, कि राजद्रोह तथा साहस अर्थात् दस्युता आदि कार्यमें इच्छानुसार शपथ करानी होगी। गच्छित तथा चौर्यमें गच्छित और अपहृत धन पर प्रमाण देते हुए शपथ खानी होती है। जिस वस्तुके लिये शपथ होगी उसके मूल्यके बराबर सुवर्ण रख कर शपथ खाना कर्त्तव्य है। इसमें विशेषता यह है, कि कृष्णल (सुवर्णपरिमाणविशेष) से कम होने पर शूद्रके हाथमें दुर्वा दे कर उसे शपथ खिलावे। दो कृष्णलसे कम होने पर हाथमें तिल दे कर, तीन कृष्णलसे कम होने पर हाथमें हलसे उखाड़ी हुई मिट्टी दे कर शपथ खिलानी होगी। सुवर्णादिके कम होने पर शूद्रको कोष (दिव्यविशेष) प्रदान करे। उससे ऊपर होने पर यथानुसार तुला, अग्नि, जल और विषादि द्वारा दिव्य करावे। पहलेसे दूना अर्थ होने पर वैश्यको भी शपथ खिलाना कर्त्तव्य है। तिगुना होनेसे क्षत्रियको, चौगुना होने पर ब्राह्मणको शपथ खानी चाहिये। शपथ खानेमें पूर्वदिन उपवास करना होता है। दूसरे दिन सवेरे सूर्योदय कालमें स्नान कर शपथ करे। (विष्णुसंहिता ९ अ०)

देवता और ब्राह्मणादिके चरण, पुत्र और स्त्री आदिके मस्तक स्पर्श कर अल्पकारणमें शपथ खानेसे शुद्धि लाभ होता है। किन्तु साहस और अभिशाप आदिमें तुला, जल, अग्नि आदि दिव्य द्वारा शुद्धि होती है। व्यवहारतत्त्व, विष्णुसंहिता आदिमें विशेष विवरण दिया गया है।

शपथपत्र (सं० क्ली०) वह शपथ जो कागज पर लिख कर दिया जाता है। अदालतमें हाकिमके सामने पत्र लिख कर जो affidavids किया जाता है, उसे शपथपत्र कहते हैं।

शपथयावन (सं० त्रि०) आक्रोशनाशक। (अथर्व० ४।१७।२)

शपथयावन (सं० त्रि०) शाप निवारण। (अथर्व० २।७।१)

शपथेय्य (सं० पु०) शपथकारी, सौगन्ध देनेवाला। (अथर्व० ५।३१।१२)

शपथ्य (सं० त्रि०) शपथ प्रवृत्त। शपथसम्भव, शपथसे उत्पन्न। "मुञ्चन्तु मा शपथ्यात्" (ऋक् १०।९७।१६) 'शपथ्यात् शपथसंजातात्'। (सायण)

शपन (सं० क्ली०) शप-क्रोधे ल्युट्। १ शपथ, कसम। २ कुवाक्य, गाली।

शपनतर (सं० त्रि०) आक्रोशशील। (शतपथब्रा० ६।१।१।३)

शप्त (सं० पु०) शप-क्त। १ उलूक अथवा उलप नामक तृण। २ वह व्यक्ति जिसे शाप दिया गया हो।

शप्तृ (सं० त्रि०) शापकर्त्ता, शाप देनेवाला।

शप्य (सं० त्रि०) शाप देनेके उपयुक्त, जो शाप देनेके योग्य हो।

शफ (सं० क्ली०) १ पशुओंका खुर। २ नखी नामक गन्धद्रव्य। ३ वृक्षकी जड़।

शफक (सं० पु०) शफ-स्वार्थे कन्। १ गायका खुर। २ शफाकार जलोत्पन्न द्रव्यविशेष। (अथर्व ४।३४।५)

शफक (अ० स्त्री०) प्रातःकाल या सायंकालके समय आकाशमें दिखाई पड़नेवाली ललाई। विशेषतः सन्ध्याके

के समय दिखाई पड़नेवाली लालिमा जो बहुत ही मनोहर होती है।

शफ़कृत (अ० स्त्री०) १ कृपा, दया, मेहरबानी। २ प्यार, मुहब्बत।

शफ़गोल (फा० स्त्री०) इसबगोल देखो।

शफच्युत (सं० त्रि०) १ खुरभ्रष्ट, जिसका खुर नष्ट हो गया हो। (ऋक् १०।१२३।१४ सायण) २ खुरहीन।

शफ़तालू (फा० पु०) एक प्रकारका बड़ा आलू। इसे सतालुक या सतालू भी कहते हैं। सतालू देखो।

शफर (सं० पु० स्त्री०) मत्स्यविशेष, पोठी या पोठिया नामकी मछली।

शफराधिप (सं० पु०) शफराणां अधिपः। इल्लीश मत्स्य, हिलसा मछली। पर्याय—इल्लीश, वारिकपूर, गाङ्गेय, अमीताल।

शफरी (सं० स्त्री०) १ अम्ललोणिका, शाक, अमलोनी नामक साग। (भावप्र०) २ प्रोष्ठी मत्स्य, पोठी या पोठिया नामकी मछली।

शफरीय (सं० त्रि०) शफर सम्बन्धी।

शफरुक (सं० पु०) १ संदूक, बकस। २ पात्र, बरतन।

शफवत् (सं० त्रि०) शफ अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वः। शफ-विशिष्ट, शफयुक्त, खुरवाला। (ऋक् ३।३९।६)

शफ़शस (सं० अव्य०) खुर खुरमें।

शफ़ा (अ० स्त्री०) शरीरका स्वस्थ होना, नीरोगता, तंदु-रुस्ती।

शफाङ्ग (सं० पु०) ऋषिभेद।

शफ़ाखाना (फा० पु०) वह स्थान जहां रोगियोंकी चिकित्सा होती है, चिकित्सालय, अस्पताल।

शफ़ायत (सं० पु०) सामनेमें परबल हननकारी।

शफोरु (सं० त्रि०) १ जिसकी जांघ गायके खुरके समान हो। (स्त्री०) २ गायके खुरके जङ्घावाली स्त्री।

शब (फा० स्त्री०) रात्रि, रात, निशा।

शबनम (फा० स्त्री०) १ तुषार, ओस। २ एक प्रकार-का सफेद रङ्गका बहुत ही बारीक कपड़ा।

शबनमी (फा० स्त्री०) चारपाईके ऊपरका वह ढांचा जिस पर रातके समय ओससे बचनेके लिये मसहरी टांगी जाती है, मसहरी, छपरखट।

शब्बेरात (फा० स्त्री०) मुसलमानोंके आठवें मासकी चौदहवीं अथवा पन्द्रहवीं रात। इस रातको मुसल-मानोंके विश्वासके अनुसार फरिश्ते परमात्माकी आज्ञासे भोजन बांटते और आयुका हिसाब लगाते हैं। इस दिन मुसलमान अपने मृत पूर्वजोंके उद्देश्यसे प्रार्थना करते, हलुआ पूरी बांटते, रोशनी करते और आतिशबाजी छोड़ते हैं।

शबर (सं० पु०) शव (अच्छेरः। उण् १।१३१) इति अर। जातिविशेष। भारतवासी आदिम असभ्य जाति। इनमेंसे बहुतोंने यद्यपि आज कल राजधानीके निकट-वर्ती स्थानोंमें रह कर सभ्यजातिके आचार व्यवहारका अनुकरण कर लिया है, तो भी ये अब तक पूर्ण सभ्य न हो सके हैं। आज भी उड़ीसा और मध्यभारतके नाना स्थानोंमें पार्वत्य वन्यप्रदेशमें शबर जातिका वास है। ये लोग जङ्गलकी लकड़ी काट कर या जङ्गली चीज संग्रह कर निकटवर्ती नगर या ग्राममें आ कर बेचते हैं। यही इन लोगोंकी प्रधान उपजीविका है।

यह जाति बहु प्राचीन कालसे ही भारतमें अपने अस्तित्वका परिचय देती आ रही है। ऐतरेय-ब्राह्मण ७।१८ मन्त्रमें इन्हें विश्वामित्र ऋषिकी किसी अभिशप्त सन्तानका वंशधर कहा गया है। शाङ्खायन-श्रौतसूत्र १५।२६।६ सूत्रमें भी शबरोंका उल्लेख है। महाभारतके आदि, भीष्म, शान्ति और अनुशासन पर्वमें शबर जातिका परिचय दिया गया है। शेषोक्त पर्वमें इन्हें "मध्यदेशबहिष्कृत" कहा है। भागवत (२।७।४६) में ये लोग पापजीवी कह कर वर्णित हैं। भौगो-लिक टलेमीने इन्हें Sabarae और प्लिनिने इन्हें Suari शब्दमें उस जातिका उल्लेख किया है। एक समय शबरोंने जगन्नाथ देवकी रक्षा की थी। जन-साधारणका विश्वास है, कि आज भी शबर लोग ही जग-न्नाथ देवकी याचकता करते हैं। जगन्नाथ देखो। वाक्-पतिकी गौड़वध काव्य पढ़नेसे जाना जाता है, कि ८वीं सदीमें ये लोग नरबलि दे कर विन्ध्यवासिनीकी पूजा करते थे। इन्हींकी एक शाखा राज्यलाभ कर अपनेको सोमवंशी बतलाती है तथा आर्यसमाजभुक्त हो जाती। मध्य प्रदेशके श्रीपुरसे इस राजवंशकी शिलालिपि आवि-ष्कृत हुई है।

उड़ीसा प्रान्तमें पर्णशवर नामक इस जातिकी एक शाखाका वास देखा जाता है। ये लोग अत्यन्त दुर्द्धर्ष और जंगली समावके होते हैं। आज तक भी इन्होंने कपड़ा पहनना सीखा नहीं है। शहरके निकटवर्ती स्थानवासीको छोड़ सभी वनवासी शवर आज भी पर्णाच्छादन द्वारा अपनी लज्जा निवारण करते हैं। ग्वालियर राज्यवासी शवरी या शहरिया कोटा सोमांतस्थ जंगलमें रहते हैं। पश्चिम मारवाड़ और गुणा पर्यन्त विस्तृत स्थानोंमें इनका वास है।

दक्षिण भारतके पूर्वघाट पर्वतमाला पर शूवर या शूरा नामकी जो अर्द्धसभ्य वन्य जाति रहती है, वह भी शवर कहलाती है। शवर शब्दके अपभ्रंशसे शूवर या शूरा हो गया है। ये लोग अभी जिस जिस स्थानमें वास करते हैं, उस उस स्थानकी सभ्य और इतर जातियां इन्हें चेञ्चुकुलम्, चेञ्चवार और चेनशूवर नामसे पुकारती हैं। ये लोग साधारणतः पूर्वघाट पर्वतमालाके पश्चिम शैलसे ले कर कृष्णा और पेन्नर नदीके मध्यवर्त्ती नल्लमलय और लङ्कामलय नामक स्थान तक वास करते हैं। अफ्रिका, निकोवर द्वीप और पश्चिमेनेसियावासी असभ्य जिस तरह घर बना कर रहते हैं, ये लोग उसी तरह वन काट कर एक स्थान परिष्कार करते और वहीं मधु-चक्रकी तरह घर बना कर रहते हैं।

घरकी दीवाल बांसकी टट्टरियोंकी और छाजन घास का होता है। घरकी ऊंचाई सिर्फ ३ फुट होती है। पुरुष प्रायः नंगे रहते हैं, लज्जानिवारणके लिये सामान्य एक वस्त्रखण्ड पहन लेते हैं। स्त्रियां एक वस्त्रखण्ड कमरमें बांध लेती हैं सही, पर अनेक स्थलोंमें ही उनका वक्षस्थल खुला रहता है।

ये कदमें छोटे पर मजबूत होते हैं। हनुकी हड्डी चौड़ी और ऊंची, नाक चिपटी, नाकके छेद चौड़े, आंसकी पुतली घोर काली और दृष्टि तीक्ष्ण होती है। ये लोग निकटवर्ती अन्यान्य सभ्य इतर जातिके कुछ छोटे हैं सही, पर बलवीर्यमें उनसे कहीं बढ़े चढ़े हैं। ये लोग किसी प्रकारकी देवमूर्त्तिकी पूजा नहीं करते। सभी प्रायः बड़े बड़े कुत्ते पालते हैं। पार्वत्य जंगल रक्षाके लिये गवर्मेण्टने इन्हें वहां नियुक्त किया है।

ये लोग बहु विवाह करते हैं। शवदाह साधारणतः प्रचलित है। किंतु कभी कभी देहसमाधिकालमें ये लोग मृतका तीर धनुष ला कर उसके साथ गाड़ या जला देते हैं। ये लोग बरछा, कुठार और बंदूक भी रखते हैं। किसी भी प्रकारके शिल्पवाणिज्य या वस्त्रवयन कार्यको ये घृणित समझते हैं। ये लोग घोर और नम्र होते हैं।

शवरक (सं० पु०) जङ्गली, वहशी।

शवरचन्दन (सं० पु०) एक प्रकारका चन्दन। यह लाल और सफेद दोनों मिले हुए रङ्गोंका होता है। वैद्यकके अनुसार यह शीतल तथा कड़ुवा और वात, पित्त, कफ, विस्फोटक, खुजली, कुष्ठ, मोहादिको नष्ट करनेवाला माना जाता है।

शवरजम्बु (सं० स्त्री०) जम्बूभेद।

शवरभाष्य (सं० क्ली०) शवरस्वामीकृत पैशाल्य या मीमांसासूत्रका प्रसिद्ध भाष्य।

शवरलोध्र (सं० क्ली०) श्वेत लोध्र, सफेद लोध। (राजनि०)

शवरसिंह (सं० पु०) राजभेद।

शवरस्वामिन्—१ एक प्रसिद्ध मीमांसक। इन्होंने मीमांसासूत्रभाष्य और शवरकौस्तुभ नामक दो ग्रन्थ लिखे। इन दोनों ग्रन्थोंमें इनकी विज्ञताका विशेष परिचय है। २ भट्टदीप्तस्वामीके पुत्र। ये हर्षवर्द्धन कृत लिङ्गानुशासनके रचयिता थे। उज्ज्वलदत्तने इनका नामोल्लेख किया है।

शवल (सं० त्रि०) शव आक्रोशे (वृषेरीत्वः। उण् १।१०७) इति कलः यश्चादेशः। १ कर्बुरवर्ण, चितकबरा। २ चित्र विचित्र, विरङ्ग। (पु०) ३ एक नागका नाम। ४ गन्ध तृण, अगिया घास। ५ चित्रक, चितउर वृक्ष। ६ बौद्धोंका एक प्रकारका धार्मिक कृत्य।

शवलक (सं० त्रि०) १ चितकबरा। २ चित्र विचित्र, रङ्ग बिरङ्ग।

शवलचेतन (सं० पु०) वह जो किसी प्रकारकी पीड़ा या

कष्ट आदिके कारण घबराया हुआ हो, वह जो संतप्त या व्यथित होनेके कारण अन्यमनस्क हो।

शबलता (सं० स्त्री०) शबलस्य भावः तल्-टाप्। १ शबलत्व, शबलका भाव या धर्म। २ रङ्ग बिरङ्गापन। ३ मिलावट।

शबलत्व (सं० क्ली०) शबलता देखो।

शबला (सं० स्त्री०) शबलः स्त्रियां टाप्। १ शबलवर्णा गाभी, चितकबरी गौ। २ कामधेनु।

शबलाक्ष (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक ऋषिका नाम। (भारत १३ पर्व)

शबलाश्व (सं० पु०) १ एक ऋषिका नाम। (प्रवराध्याय) २ अविक्षित्‌के पुत्र। ३ दक्षसे पाञ्चजन्या गर्भजात पुत्र। (भागवत ६।५।२४) ४ हरिवंशके अनुसार वैरणीका गर्भजात।

शबलिका (सं० स्त्री) एक प्रकारका पक्षी।

शबलित (सं० त्रि०) कर्बुर वर्णयुक्त, चितकबरा। (राजतर० २।१६७)

शबली (सं० स्त्री०) शबल-ङीष्। १ शबलवर्णा गाभी, चितकबरी गाय। २ कामधेनु।

शबाब (अ० पु०) १ यौवनकाल, जवानी। २ किसी वस्तुकी वह मध्यकी अवस्था जिसमें वह बहुत अच्छा या सुन्दर जान पड़े। ३ बहुत अधिक सौन्दर्य।

शबाहत (अ० स्त्री०) १ समानता, अनुरूपता। २ आकृति, सूरत, शक्ल।

शबीह (अ० स्त्री०) १ वह चित्र जो किसी व्यक्तिकी सूरत शकलके ठीक अनुरूप बना हो। २ समानता, अनुरूपता।

शबोरोज़ (फा० अव्य०) रात दिन, हर समय, हर दम।

शब्द (सं० पु०) शब्द-घञ् भावे यद्वा शप आक्रोशे (शाशपिभ्यां ददनौ। उण् ४।९७) इति दन् पकारस्य बकारः श्रोत्रग्राह्य गुणपदार्थविशेष, वायुमें होनेवाला वह कम्प जो किसी पदार्थ पर आघात पड़नेके कारण उत्पन्न हो कर कान या श्रवणेन्द्रिय तक पहुंचता और उसमें एक विशेष प्रकारका क्षोभ उत्पन्न करता है, पर्याय—निनाद, निनद, निःस्वन, ध्वनि, ध्वान, रव, स्वन, स्वान, निर्घोष, निर्ह्राद, नाद, निःस्वान, निस्वन, आरव, आराव, संराव, विराव, (अमर)—संरव, राव, (शब्दच०) घोष।

ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक भेदसे शब्द दो प्रकार का है। मृदङ्गादिके शब्दको ध्वन्यात्मक और कण्ठतालु अभिघातजन्य क, ख इत्यादि शब्दको वर्णात्मक कहते हैं। दोनों प्रकारके शब्द आकाशसे उत्पन्न होते हैं तथा जब श्रोत्रेन्द्रियके साथ उसका अभियोग होता है, तब अविकृत श्रोत्रेन्द्रियवान् जीवमात्र ही उसका अर्थबोध कर सके या न कर सके, पर शब्द अवश्य अनुभव कर सकता है। फलतः जब तक शब्दके साथ श्रोत्रेन्द्रियका अभिषङ्ग नहीं होता, तब तक उसकी उपलब्धि नहीं होती; यही कारण है, कि हम बहुत दूरका शब्द नहीं सुन सकते। किन्तु वर्त्तमान पाश्चात्य विज्ञानवित् पण्डितोंकी कृपासे 'टेलीफोन' आदि यन्त्र द्वारा दूरसे दूर शब्द भी हम अभी सुन सकते हैं।

श्रोत्रेन्द्रियमें शब्दके विकाश सम्बन्धमें नैयायिक लोग कहते हैं—मृदङ्गादि या कण्ठतालु आदिमें अभिघात लगनेसे वहांके नभःप्रदेशमें उत्पन्न शब्द वीचितरङ्गन्यायमें अर्थात् जिस प्रकार किसी स्थानके जलमें वायु द्वारा एक तरङ्ग उत्पन्न होनेसे क्रमशः उसीके घात प्रतिघात द्वारा बहुत दूर तक तरङ्ग बढ़ती जाती है, मृदङ्गादिमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय इत्यादि आघातजन्य उत्पन्न शब्द भी वायु द्वारा क्रमशः उत्तरोत्तर उक्त प्रकारके तरङ्गाकारमें श्रवणेन्द्रिय पर्यन्त पहुंच कर उसमें प्रतिहत होनेसे वहां उसका विकाश होता है।

किसी किसीके मतसे कदम्बगोलकन्यायमें अर्थात् मृदङ्गादिमें प्रथम द्वितीय आदि आघातजन्य क्रमशः उत्पन्न शब्दोंकी उस प्रथम उत्पत्तिस्थानको ही कदम्बपुष्पकी तरह गोलाकार वस्तुके केन्द्रस्वरूप तथा उसके केशरोंकी तरह उक्त केन्द्रोत्पन्न शब्द या उनकी गति व्यासार्द्ध स्वरूप चारों ओर विक्षिप्त होती है, इस विक्षेपकालमें जहां जहां उस शब्द या उसकी गतिके साथ श्रोत्रसंयोग होता है। उन्हीं सब स्थानोंमें उसका विकाश दिखाई देता है।

"शब्दो नित्यः" इस श्रुतिके मर्म पर कोई कोई कहते हैं, "श्रोत्रोत्पन्नस्तु गृह्यते" "उत्पन्नाको विनष्टः कः" 'क' उत्पन्न हुआ है 'क' विनष्ट हुआ है; ये सब प्रयोग किस प्रकार सम्भव होते हैं अर्थात् शब्दमात्र ही जब नित्य

उड़ीसा प्रान्तमें पर्णशवर नामक इस जातिको एक शाखाका वास देखा जाता है। ये लोग अत्यन्त दुर्द्धर्ष और जंगली स्वभावके होते हैं। आज तक भी इन्होंने कपड़ा पहनना सीखा नहीं है। शहरके निकटवर्ती स्थानवासीको छोड़ सभी वनवासी शवर आज भी पर्णाच्छादन द्वारा अपनी लज्जा निवारण करते हैं। ग्वालियर राज्यवासी शवरी या शहरिया कोटा सीमांतस्थ जंगलमें रहते हैं। पश्चिम मारवाड़ और गुणा पर्यन्त विस्तृत स्थानोंमें इनका वास है।

दक्षिण भारतके पूर्वघाट पर्वतमाला पर शूयर या शूरा नामकी जो अर्द्ध सभ्य वन्य जाति रहती है, वह भी शवर कहलाती है। शवर शब्दके अपभ्रंशसे शूयर या शूरा हो गया है। ये लोग अभी जिस जिस स्थानमें वास करते हैं, उस उस स्थानकी सभ्य और इतर जातियां इन्हें चेञ्चुकुलम्, चेञ्चवार और चेनशूयर नामसे पुकारती हैं। ये लोग साधारणतः पूर्वघाट पर्वतमालाके पश्चिम शैलसे ले कर कृष्णा और पेन्नर नदीके मध्यवर्त्ती नल्लमलय और लङ्कामलय नामक स्थान तक वास करते हैं। अफ्रिका, निकोबर द्वीप और पश्चिमेनेसियावासी असभ्य जिस तरह घर बना कर रहते हैं, ये लोग उसी तरह वन काट कर एक स्थान परिष्कार करते और वहीं मधु-चक्रकी तरह घर बना कर रहते हैं।

घरकी दीवाल बांसको टट्टरियोंको और छाजन घास का होता है। घरकी ऊंचाई सिर्फ ३ फुट होती है। पुरुष प्रायः नंगे रहते हैं, लज्जानिवारणके लिये सामान्य एक वस्त्रखण्ड पहन लेते हैं। स्त्रियां एक वस्त्रखण्ड कमरमें बांध लेती हैं सही, पर अनेक स्थलोंमें ही उनका वक्षस्थल खुला रहता है।

ये कदमें छोटे पर मजबूत होते हैं। इनकी हड्डी चौड़ी और ऊंची, नाक चिपटी, नाकके छेद चौड़े, आंखकी पुतली घोर काली और दृष्टि तीक्ष्ण होती है। ये लोग निकटवर्ती अन्यान्य सभ्य इतर जातिके कुछ छोटे हैं सही, पर बलवीर्यमें उनसे कहीं बढ़े चढ़े हैं। ये लोग किसी प्रकारकी देवमूर्त्तिकी पूजा नहीं करते। सभी प्रायः बड़े बड़े कुत्ते पालते हैं। पार्वत्य जंगल रक्षाके लिये गवर्मेण्टने इन्हें वहां नियुक्त किया है।

ये लोग बहु विवाह करते हैं। शवदाह साधारणतः प्रचलित है। किंतु कभी कभी देहसमाधिकालमें ये लोग मृतका तीर धनुष ला कर उसके साथ गाड़ या जला देते हैं। ये लोग बरछा, कुठार और बंदूक भी रखते हैं। किसी भी प्रकारके शिल्पवाणिज्य या वस्त्रवयन कार्यको ये घृणित समझते हैं। ये लोग घोर और नम्र होते हैं।

शवरक (सं० पु०) जङ्गली, वहशी।

शवरचन्दन (सं० पु०) एक प्रकारका चन्दन। यह लाल और सफेद दोनों मिले हुए रङ्गोंका होता है। वैद्यकके अनुसार यह शीतल तथा कड़ुवा और वात, पित्त, कफ, विस्फोटक, खुजली, कुष्ठ, मोहादिको नष्ट करनेवाला माना जाता है।

शवरजम्बु (सं० स्त्री०) मगरभेद।

शवरभाष्य (सं० क्ली०) शवरस्वामीकृत वेदान्त या मीमांसासूत्रका प्रसिद्ध भाष्य।

शवरलोध्र (सं० क्ली०) श्वेत लोध्र, सफेद लोध। (राजनि०)

शवरसिंह (सं० पु०) राजभेद।

शवरस्वामिन्—१ एक प्रसिद्ध मीमांसक। इन्होंने मीमांसासूत्रभाष्य और शवरकौस्तुभ नामक दो ग्रन्थ लिखे। इन दोनों ग्रन्थोंमें इनको विज्ञवत्ताका विशेष परिचय है। २ भट्टदीप्तस्वामीके पुत्र। ये दर्पदलन कृत लिङ्गानुशासनके रचयिता थे। उज्ज्वलदत्तने इनका नामोल्लेख किया है।

शवल (सं० लि०) शव कणोति (शपेर्गश्च। उण् १।१०७) इति कलः यस्यादेशः। १ कर्बूरवर्ण, चितकबरा। २ चित्र विचित्र, विरङ्ग। (पु०) ३ एक नागका नाम। ४ गन्ध तृण, अगिया घास। ५ चितक, चितउर वृक्ष। ६ बौद्धोंका एक प्रकारका धार्मिक कृत्य।

शवलक (सं० लि०) १ चितकबरा। २ चित्र विचित्र, रङ्ग विरङ्ग।

शवलचेतन (सं० पु०) वह जो किसी प्रकारकी पीड़ा या

कष्ट आदिके कारण घबराया हुआ हो, वह जो संतप्त या व्यथित होनेके कारण अन्यमनस्क हो।

शवलता (सं० स्त्री०) शवलस्य भावः तल्-टाप्। १ शबलत्व, शबलका भाव या धर्म। २ रङ्ग विरङ्गापन। ३ मिलावट।

शवलत्व (सं० क्ली०) शवलता देखो।

शवला (सं० स्त्री०) शवलः स्त्रियां टाप्। १ शवलवर्णा गाभी, चितकबरी गौ। २ कामधेनु।

शवलाक्ष (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक ऋषिका नाम। (भारत १३ पर्व)

शवलाश्व (सं० पु०) १ एक ऋषिका नाम। (प्रवराध्याय) २ अविक्षित्के पुत्र। ३ दक्षसे पाञ्चजन्या गर्भजात पुत्र। (भागवत ६।५।२४) ४ हरिवंशके अनुसार वैरणीका गर्भजात।

शवलिका (सं० स्त्री) एक प्रकारका पक्षी।

शवलित (सं० त्रि०) कर्बूर वर्णयुक्त, चितकबरा। (राजतर० २।१६७)

शवली (सं० स्त्री०) शवल-ङीप्। १ शवलवर्णा गाभी, चितकबरी गाय। २ कामधेनु।

शवाव (अ० पु०) १ यौवनकाल, जवानी। २ किसी वस्तुकी वह मध्यकी अवस्था जिसमें वह बहुत अच्छा या सुन्दर जान पड़े। ३ बहुत अधिक सौन्दर्य।

शवाहत (अ० स्त्री०) १ समानता, अनुरूपता। २ आकृति, सूरत, शक्ल।

शवीह (अ० स्त्री०) १ वह चित्र जो किसी व्यक्तिकी सूरत शकलके ठीक अनुरूप बना हो। २ समानता, अनुरूपता।

शवोरोज (फा० अव्य०) रात दिन, हर समय, हर दम।

शब्द (सं० पु०) शब्द-घञ् भावे यद्वा शप आक्रोशे (शशिपिभ्यां ददनौ। उण् ४।१६७) इति दन् पकारस्य वकारः श्रोत्रग्राह्य गुणपदार्थविशेष, वायुमें होनेवाला वह कम्प जो किसी पदार्थ पर आघात पड़नेके कारण उत्पन्न हो कर कान या श्रवणेन्द्रिय तक पहुंचता और उसमें एक विशेष प्रकारका क्षोभ उत्पन्न करता है, पर्याय—निनाद, निनद, निःस्वन, ध्वनि, ध्वान, रव, स्वन, स्वान, निर्घोष, निर्ह्राद, नाद, निःस्वान, निःस्वन, आरव, आराव, संराव, विराव, (अमर)—संरव, राव, (शब्दच०) घोष।

ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक भेदसे शब्द दो प्रकार का है। मृदङ्गादिके शब्दको ध्वन्यात्मक और कण्ठतालु अभिघातजन्य क, ख इत्यादि शब्दको वर्णात्मक कहते हैं। दोनों प्रकारके शब्द आकाशसे उत्पन्न होते हैं तथा जब श्रोत्रेन्द्रियके साथ उसका अभियोग होता है, तब अविकृत श्रोत्रेन्द्रियवान् जीवमात्र ही उसका अर्थबोध कर सके या न कर सके, पर शब्द अवश्य अनुभव कर सकता है। फलतः जब तक शब्दके साथ श्रोत्रेन्द्रियका अभिषङ्ग नहीं होता, तब तक उसकी उपलब्धि नहीं होती; यही कारण है, कि हम बहुत दूरका शब्द नहीं सुन सकते। किन्तु वर्त्तमान पाश्चात्य विज्ञानवित् पण्डितोंकी कृपासे 'टेलीफोन' आदि यन्त्र द्वारा दूरसे दूर शब्द भी हम अभी सुन सकते हैं।

श्रोत्रेन्द्रियमें शब्दके विकाश सम्बन्धमें नैयायिक लोग कहते हैं—मृदङ्गादि या कण्ठतालु आदिमें अभिघात लगनेसे वहांके नभःप्रदेशमें उत्पन्न शब्द वीचितरङ्गन्यायमें अर्थात् जिस प्रकार किसी स्थानके जलमें वायु द्वारा एक तरङ्ग उत्पन्न होनेसे क्रमशः उसीके घात प्रतिघात द्वारा बहुत दूर तक तरङ्ग बढ़ती जाती है, मृदङ्गादिमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय इत्यादि आघातजन्य उत्पन्न शब्द भी वायु द्वारा क्रमशः उत्तरोत्तर उक्त प्रकारके तरङ्गाकारमें श्रवणेन्द्रिय पर्यन्त पहुंच कर उसमें प्रतिहत होनेसे वहां उसका विकाश होता है।

किसी किसीके मतसे कदम्बगोलकन्यायमें अर्थात् मृदङ्गादिमें प्रथम द्वितीय आदि आघातजन्य क्रमशः उत्पन्न शब्दोंकी उस प्रथम उत्पत्तिस्थानको ही कदम्बपुष्पकी तरह गोलाकार वस्तुके केन्द्रस्वरूप तथा उसके केशरोंकी तरह उक्त केन्द्रोत्पन्न शब्द या उनकी गति व्यासार्द्ध स्वरूप चारों ओर विक्षिप्त होती है, इस विक्षेपकालमें जहां जहां उस शब्द या उसकी गतिके साथ श्रोत्रसंयोग होता है। उन्हीं सब स्थानोंमें उनका विकाश दिखाई देता है।

"शब्दो नित्यः" इस श्रुतिके मर्म पर कोई कोई कहते हैं, "श्रोत्रोत्पन्नस्तु गृह्यते" "उत्पन्नाको विनष्टः कः" 'क' उत्पन्न हुआ है 'क' विनष्ट हुआ है; ये सब प्रयोग किस प्रकार सम्भव होते हैं अर्थात् शब्दमात्र ही जब नित्य

है, तब उनकी उत्पत्ति या विनाश कदापि नहीं हो सकता। परन्तु जहां ऐसा व्यवहार देखा जाता है, वहां अनित्यता बुद्धिसे ही होता है। फिर प्रत्यभिज्ञास्थलमें जो "सोऽयं कः" है वह वही 'क' इस प्रकार व्यवहृत होता है, वहां केवल 'यह वही औषध है' (अर्थात् मैंने जिस औषधका व्यवहार किया था, यह वही स्वजातीय औषध है।) इस प्रकार साजात्य अवलम्बन करके ही उसकी अर्थनिष्पत्ति करनी होती है। वस्तुतः 'वह वही क है' 'यह वही औषध है' इत्यादि स्थानोंमें कमसे कम शब्दका नित्यत्व प्रतीत होने पर भी प्रत्यभिज्ञाकालमें सजातीयत्व ही गृहीत होगा, उससे व्यक्तिकी (पूर्वो च्चारित 'क' या पूर्व व्यवहृत औषधकी) अभिन्नता समझी न जायेगी।

चरकके विमानस्थानमें वर्णात्मक शब्दको चार भागोंमें विभक्त किया गया है; यथा—दृष्टार्थ, अदृष्टार्थ, सत्य और अनृत।

दृष्टार्थ शब्द—असात्म्येन्द्रियार्थ संयोग, प्रज्ञापराध और परिणाम इन तीन कारणोंसे वातादि दोषका प्रकोप होता है तथा लङ्घन बृंहणादि प्रक्रिया द्वारा ये सब दोष शमताको प्राप्त होते हैं। इसे उक्तिका फल सर्वदा देखा जाता है, इसी कारण उन्हें दृष्टार्थशब्द कहते हैं।

अदृष्टार्थ शब्द—जिसका फल अदृष्ट है अर्थात् चक्षु-गोचर नहीं होता, वही अदृष्टार्थ शब्द है, जैसे पुनर्जन्म है, मोक्ष है।

सत्यशब्द—जो विश्वासयोग्य है, वही सत्य है; जैसे सिद्धिका उपाय है, अर्थात् कायमनोवाक्य द्वारा क्रिया करनेसे सिद्धिलाभ किया जाता है, चिकित्सा करनेसे साध्य रोग आरोग्य होता है, इत्यादि। किन्तु जहां भ्रम विश्वास होगा, वह सत्य कदापि नहीं है।

अनृत शब्द—जो सत्यका विपरीत है, वही अनृत अर्थात् मिथ्या शब्द है; जैसे ईश्वर नहीं है, आत्मा नहीं है, कर्मफल नहीं है, पुनर्जन्म नहीं है, इत्यादि।

(चरक विमानस्थान ८म अध्याय)

महाभारतके अश्वमेधपर्वमें षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, निषाद, धैवत, इष्ट और संहतके भेदसे शब्दको दश भागोंमें विभक्त किया गया है।

विशेष विशेष शब्दका विशेष विशेष नाम है, यथा—गुण और अनुरागसे उत्पन्न शब्दका नाम शब्द है। शीतकृत अर्थात् रतिकालमें स्त्रियोंके मुखसे निकले हुए अव्यक्त हस हस या शिस देनेकी तरह शब्दका नाम मणाद; मलद्वारोत्थित शब्दका नाम पर्द्दन (पाद); कुक्षिगत शब्द अर्थात् पेट बोलनेका नाम कूर्दन; युद्धकालीन वीरोंकी चीत्कार ध्वनिका नाम सिंहनाद या क्ष्वेड़; कलकल शब्दका नाम कोलाहल; व्याकुल या हठात् विपदुग्रस्त अवस्थाके रवका नाम तुमुल; वस्त्र और शुष्कपत्रादिका मर्मर (फरफर), अलङ्कारकी झंकारका शिञ्जित; गोध्वनिका हम्मा, रम्भा और रेमण; अश्वका रव हेषा और हेषा; गजका गर्जा और बृंहित, धनुकका शब्द विस्फार, मेघका स्तनित, गर्जित, गर्जि, स्वनित और रसित; विहङ्गोंका कूजित, पशुपक्षी आदि साधारण तिर्यग् जातिके शब्दका नाम रुत और वाशित, लकड़-बग्घाकी बोलीका नाम रेषण; कुक्कुरादिका शब्द बुक्कन और भषण; किसी भी कारणसे पीड़ित व्यक्तिकी कातरोक्तिका नाम कपिास; चुम्बन और रतिकालके अव्यक्त शब्दका नाम मणित; तन्त्रीके स्वरका नाम प्रक्वाण और प्रक्वण; मादलका गुंजन और भेरीके स्वरका टुट्टुर, सच्छिद्र-वंशकी ध्वनिका स्रोजन; अत्युच्च शब्दका तार; गम्भीर ध्वनिका मन्द्र, मधुरध्वनिका कल; सूक्ष्म मधुरध्वनिका काकली; लयसङ्गत ध्वनिका एकताल और सहज स्वरको व्यङ्ग करके इच्छाक्रमसे विकृतभावमें उच्चारण करनेका नाम काकु और धनुषकी डोरीके शब्द-का नाम टङ्कार है।

कविकल्पलतामें उद्धृत निम्नलिखित शब्दोंको अनु-लोम या विलोम जिस किसी भावमें पढ़ा क्यों न जाये, उसमें उनके उच्चारण या अर्थगत कोई वैषम्य दिखाई नहीं देता था। यथा—

नवन, नर्त्तन, कनक, कण्टक, महिम, कालिका, सरस, सहास, मध्यम, तावता, तारता, विमवि, करक, कम्बूक, काञ्चिका, नन्दन, दर्दद, लगुल, नुततनु, दायवदा, पद-दातप, वरभैरव, कलपुलक, वरकीरव, वरकीरव, वरवीरव, तरुणोरुत, रवसोदर, मदमेदन, लङ्काकङ्काल, माधव-वल्लभवधमा, नन्दनन्दन, सचिस, समास, कालिका, जलज, कटक, माना, मम।

कविकल्पलतामें निम्नोक्त शब्दोंका अनुलोमभावमें उच्चारण और अर्थ एक प्रकारका है और विलोमभावमें अन्य प्रकारका है, यथा—

देवे, लेख, भिमु, घद, यम, राधा, सुनामा, नन्दक, मालिका, कालिनी, करका, दीनरक्षा, सदालिका, यमराज, नन्दनवन, नलकूबर, सहसानुत, नयतम, संमद, मार, वत, युवा, सदा, वशि, लता, तुत, लव, विमा।

उक्त ग्रन्थमें लिखित वक्ष्यमाण शब्दोंका संस्कृत, प्राकृत हिंदी सभी भाषाओंमें पुंलिङ्गमें व्यवहार होता है, यथा—

आहार, हार, विहार, सार, सम्भोग, रोग, असुर, संहार, अमर, वार, वारण, गण, मार, आकर, लोल, उल्लेख, विलास, वायस, हर, अहङ्कार, हीर, अंकुर, नीहार, वरुण, राग, माल, तरल, गोविन्द, कन्द, उदर, तरुण, तरणि, हास, मोर, सन्दोह, मांस, खुर, तर, मल, शङ्कर, आरम्भ, हास, कर, करि, किरि, कीर, कील, कल्लोल, धीर, मल, मलय, करीर, वामदेव, असि, वीर, नर, नरक, कङ्क, दण्ड, चण्डाल, रङ्ग, दर, सरल, कलङ्क, कम्बल, आकार, पङ्क, खल, बकुल, करङ्क, देह, सन्देह, सङ्ग, पर, कुरव, चारु, सञ्चार, मङ्ग, अरि, हरि, परिणाह, कण्ठ, अहि, दाह, परिसर, रवि, हाहा, मञ्जु, मञ्जीर, वाह, अचल, कुल, कुमार, कुम्भ, कुम्भीर, सार, विरल, कमल, और, कन्दर, उदार, पार, जम्बीर, केशरि, वराह, मुरारि, काल, काकोल, कुन्तल, चमूरु, विराम, बाल, बालोल, बाहु, रण, सङ्कर, बोल, मार, संसार, केरल, समीरण, ढक्का, ताल, आसार, चामर, कुलीर, तुरङ्ग, सूर, कङ्काल, कन्दल, कराल, विकास, पूर, हेरम्ब, कम्बु, विधु, सिंधु, बुध, अनुबन्ध, कुन्द, इन्दु, मन्दर, समीर, समूह, गंध, भीम, अङ्क, सङ्कर, किरीट, तमाल, गुञ्ज, हिन्ताल, तोमर, महीरुह, बिम्ब, पुञ्ज, हिण्डीर, पिण्ड, घर, संवर, कोण, काण, संरंभ, सोम, परिरंभ, विकार, वाण, वसंत, आसव, वैसन्त, वास, वासव, वासर, कासार, सरस, अरुण।

निम्नोद्धृत शब्द पूर्वोक्त सभी भाषाओंमें स्त्रीलिङ्गमें व्यवहृत होते हैं, यथा—

हेला, गेला, कला, माला, रसाला, काहला, मचला, कीला, लीला, घला, बाला, लीला, दोला, अलसा, मसी घरणी, धारणी, गोपी, रोहिणी, रमणी, मणी, वीणा, वाणी, वसा, वेणी, रोढ़ा, गङ्गा, तरङ्गिणी, कन्दला, लहरी, नारी, रामी, मेरी, वसुन्धरा, काली, कराली, चामुण्डा, चण्डा, रण्डा, तुला, मही।

पूर्वोक्त प्रकारसे व्यवहृत क्लीवलिङ्ग शब्द, यथा—

जाल, फल, पल, मूल, वारि, कीलाल, कुल, बल, पलल, दुकूल, लिङ्ग, गम्भीर, कमल, सलिल, चीर, तुच्छ, राजीव, नीर, हल, रजत, कुटीर, दाव, लाल, पटीर, कारण, रोहण, चेल, कूबर, अम्बर, मंदिर, कुटल, मण्डल, तामरस, कुण्डल, अङ्गद, पुर, अरविन्द, लोह, अङ्ग, तड़ाग, करण, कूल, तोरण, मरण, तुङ्ग, अलम्, आगार, भासुर।

इन सब भाषाओंमें व्यवहृत एकार्थबोधक क्रियापद; यथा—माण, देहि, गच्छ, संहर, कुरु, चोरय, मारय, अवगच्छ, अवलोकय, अवचिन्तय, जाइ।

नीचे कुछ ओष्ठ्यवर्णवर्जित पुलिङ्ग शब्द दिखलाये गये हैं, यथा—

नीहार, हार, हरिण, अङ्ग, हर, अट्टहास, कैलास, कास, रद, नारद, सिंह, इन्द्र, शङ्ख, शेष, अहि, हंस, घनसार, हलि, नाग, हिण्डीर, निर्झर, शरद्घन, चन्द्रकांत, श्रृङ्गार, सागर, तड़ाग, जलाशय, अग, हर्य्यक्ष, तक्षक, नख, क्षत, दीक्षित, अक्ष, नाराच, काच, कच, कीचक, चञ्चरीक, चाणक्य, चारण, गण, घण, काण, शोण, संहार, सारस, रस, अरि, रसाल, साल, कङ्काल, काल, कलि, शैल, खल, अनल, अर्क, किञ्जल्क, कल्क, कर, शङ्कर, कीर, हीर, लङ्केश, केश, गर, केशव, देश, लेश, आनन्द, नन्दन, धनञ्जय, खञ्जरीट, कीट, अग्नि, कण्टक, कटाह, कटाक्ष, यक्ष, दक्ष, अङ्क, यज्ञ, जनक, अञ्जलि, यन्त्र, यत्न, रत्नाकर, अन्धक, धराधर, घोर, शोर, नासीर, नारायण, कृष्ण और हृषीकेश।

ओष्ठ्यवर्णरहित स्त्रीलिङ्ग शब्द—गङ्गा, गीता, सती, सीता, सिद्धि, संध्या, गदा, गया, आशीः, काशी, निशा, नासा, कांति, दया, रसा, आर्द्रा, निद्रा, हरिद्रा, दृक्, द्राक्षा, लाक्षा, धृति, छाया, जाया, कथा, कांता, धात्री, रति, गति, कंधरा, धारणा, धारा, तारा, कारा, जरा,

आलि, राजि, रजनी, गिरि, कोरि, कन्या, तटी, नदी, नारी, सारी, दरी, दासी, घटिका, घटिका जटा, कक्षा, रक्षा, शिखा, संध्या, कालिंदी, कलिका, कला, काली, कराली और दुर्गा।

ओष्ठवर्णविवर्जित क्लीबलिङ्ग—चरण, करण, चक्षत, नक्षत्र, तक्र, रजत, शत, शरीर, क्षीर, नीर, अक्षि, तीर धन, कनक, निधान, ध्यान, संधान, दान, नलिन, नगर, गात्र, छत्र, नेत्र, अस्थि, दात्र, आलिङ्गन, स्नान, शिरः, नरित, जल, स्थल, स्थान, कलत्र, चित्र, कीलाल, जाल, अलक, नाल, दैन्य, लिङ्ग, शङ्ख, लावण्य, हिरण्य, सैन्य, अस्त्र, अजिन, यान, अलक, काञ्चन, आनन, कानन, हाटक, नाटक, नाट्य, तैल, रसातल, अदन, सदन, ज्ञान, निदान, दधि, चंदन, अक्षर, लक्षण, लक्ष, शस्त्र, शास्त्र, दल और दल। (कविकल्पलता १४ स्तबक २४ कुसुम)

२ वह स्वतंत्र, व्यक्त और सार्थक ध्वनि जो एक या अधिक वर्णों के संयोगसे कण्ठ और तालु आदिके द्वारा उत्पन्न हो और जिससे सुननेवालेको किसी पदार्थ, कार्य या भाव आदिका बोध हो, लफ्ज।

३ अमृतोपनिषद्के अनुसार 'ओउम्' जो परमात्माका मुख्य नाम है। ४ किसी साधु या महात्माके बनाये हुए पद या गीत आदि।

शब्दकर्मन् (सं० त्रि०) शब्द जिसका कर्म अर्थात् जो क्रियापदका कर्मपद शब्द अर्थात् किसी प्रकारकी ध्वनि। (पा १।४।५२) जैसे—"स्वरान् विकुरुते" स्वरको विकृत करता है; यहां 'विकुरुते' क्रियाका कर्म स्वर अर्थात् शब्द किसी प्रकारकी ध्वनि होनेसे 'विकुरुते' पदको शब्दकर्मा क्रियापद कहते हैं।

शब्दकार (सं० त्रि०) शब्दं करोतीति कृ-अण्। (न शब्दश्लोककलहगाथेति। पा ३।२।२४) १ वह जो सार्थक शब्द प्रस्तुत या संग्रह करे, शब्दकर्त्ता। २ ध्वनिकारक।

शब्दकारिन् (सं० त्रि०) शब्द कृ णिनि। शब्दकार, शब्द करनेवाला।

शब्दक्रिय (सं० त्रि०) शब्दः क्रिया कर्म यस्य। शब्द कर्मक। शब्दकर्मन् देखो।

शब्दग (सं० त्रि०) शब्दं गच्छति प्राप्नोतीति शब्द-गम-ड। १ श्रोत्र। शब्दो गच्छति येन करणेन। २ वायु।

शब्दगति (सं० स्त्री०) १ शब्दस्रोत। २ गति। (त्रि०) ३ शब्दग देखो।

शब्दगोचर (सं० पु०) वेदांत कथेय, वेदांत द्वारा ज्ञातव्य।

शब्दग्रह (सं० पु०) शब्दं गृह्णात्यनेनेति ग्रह अप्। (ग्रह वृदनिश्चिगमश्च। पा ३।३।५८) १ कर्ण, कान। २ एक प्रकारका काल्पनिक बाण। (त्रि०) ३ शब्दको ग्रहण करनेवाला।

शब्दग्राम (सं० पु०) शब्दसमूह, स्वरग्राम।

शब्दचातुर्य (सं० पु०) शब्दोंके प्रयोग करनेकी चतुरता, बोलचालकी प्रवीणता, वाग्मिता।

शब्दचालि (सं० स्त्री०) एक प्रकारका नृत्य।

शब्दचित्र (सं० पु०) अनुप्रास नामक अलङ्कार।

शब्दत्व (सं० क्ली०) शब्दका भाव या धर्म, शब्दता।

शब्दन (सं० त्रि०) शब्दं करोति शीलमस्य शब्द-युच्। (चलनशब्दार्थादकर्मकाद्-युच्। पा ३।२।१४८) इति तच्छीले युच्। १ शब्दकर्त्ता। पर्याय—चरण। (क्ली०) शब्द भावे ल्युट्। २ शब्दमात्र।

शब्दनिर्णय (सं० पु०) १ अभिधान। २ स्वरनिर्धारण।

शब्दनृत्य (सं० पु०) एक प्रकारका नृत्य।

शब्दपति (सं० पु०) नाम मात्रका नेता, वह नेता जिसके अनुयायी न हों। (रघु ८।५२)।

शब्दपात (सं० त्रि०) शब्दस्य पातो यत्र शब्दस्येव पातो यत्र वा। १ जहां तक शब्दपतन हो सके। २ शब्दकी तरह पतनशील अर्थात् शब्दकी गतिके समान गति जिसकी। (भट्टि ५।१०० भरत)

शब्दपातिन् (सं० त्रि०) १ शब्दकी सहायतासे गमनकारी। २ शब्दके साथ निपतित।

शब्दप्रकाश (सं० पु०) शब्दोत्थान, शब्दका उद्बोधन।

शब्दप्रभेद (सं० पु०) शब्दकी विभिन्नता।

शब्दप्रमाण (सं० क्ली०) १ मौखिकप्रमाण, वह प्रमाण जो किसीके केवल शब्दों या कथनके ही आधार पर हो, आप्त या विश्वासपात्र पुरुषकी बात जो प्रमाण स्वरूप मानी जाती है। विशेष विवरण प्रमाण शब्दमें देखो।

शब्दप्रवृत्ति (सं० स्त्री०) शब्दस्य प्रवृत्तिरुत्पत्तिः। वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और सूक्ष्मा चार प्रकारकी वाङ्निष्पत्ति।

शब्दप्राच्छ (सं० त्रि०) शब्दं पृच्छति प्रच्छ-क्विप् (क्विब्वचि प्रच्छ्यायत स्तुकटप्रजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च। पा ३।२।१७८ वार्त्तिक) शब्दजिज्ञासु, जो शब्द पूछते हों।

शब्दप्रामाण्यवाद (सं० पु०) शब्दविचार सम्बन्धी न्यायग्रन्थभेद।

शब्दप्राश (सं० पु०) शब्दके अर्थोंका अनुसंधान, शब्दार्थकी जिज्ञासा।

शब्दविरोध (सं० पु०) वह विरोध जो वास्तविक या भावमें न हो बल्कि केवल शब्दोंमें जान पड़ता हो।

शब्दविशेषण (सं० क्ली०) शब्द एव विशेषणम्। विशेषण शब्द।

शब्दबोध (सं० पु०) शाब्दिक साक्षी द्वारा प्राप्त ज्ञान, वह ज्ञान जो जबानी गवाहीसे प्राप्त हो।

शब्दब्रह्मन् (सं० क्ली०) शब्द एव ब्रह्म। १ शब्दात्मक ब्रह्म, ओंकारादि। वेदादि शास्त्रमें नादविन्दुसम्वलित ओंकार आदि शब्दब्रह्म कह कर वर्णित है।

मैत्रेयोपनिषद्में शब्दब्रह्म और परब्रह्म भेदसे ब्रह्मके दो भेद कल्पित हुए हैं। शब्दब्रह्मसे उत्तीर्ण होने अर्थात् ओंकारादि शब्दसे यथार्थज्ञान उत्पन्न होने पर परब्रह्ममें अधिष्ठित हो जाता है।

"द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परञ्च यत्।
शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति॥"
(मैत्रेय उप० ६।२२)

२ वेद, श्रुति। ३ स्फोटात्मक शब्द, उच्चारित वर्ण या जो कोई शब्द।

शब्दब्रह्ममय (सं० त्रि०) शब्दब्रह्मके स्वरूप।

शब्दभिद् (सं० स्त्री०) शब्दस्य भित् भेदः। शब्दकी अन्यथा व्याख्या अर्थात् प्रकृत व्याख्या न करके छलपूर्वक शब्दका वैयर्थ्य सम्पादन करना। जैसे, 'दशावरान् भोजयेत्' यहां 'दश एव अवराः निम्नसंख्याः येषां तान्' दश ही अवर अर्थात् न्यून या निम्न संख्या जिसको तिसको भोजन करावगो, दशसे कम भोजन नहीं करावगो, ऐसा सदर्थ न कर, 'दशभ्योऽवरान्' दशसे भी कम ऐसा असदर्थ व्यवहार करनेसे शब्दका अन्यथा व्यवहार किया जाता है।

शब्दभृत् (सं० त्रि०) शब्दं बिभर्त्तीति शब्द-भृ-क्विप्। शब्द मात्र पालन, धर्मार्थ सिर्फ शब्द धारण।

शब्दभेद (सं० पु०) शब्दकी विभिन्नता।

शब्दभेदिन् (सं० त्रि०) शब्दमनुसृत्य भेत्तुं शीलमस्य भिद्-णिनि। १ शब्दवेधिन् देखो। (स्त्री०) २ मलद्वार, गुदा। (पु०) ३ वाणविशेष। रामायणमें लिखा है, कि दशरथने शब्दभेदी वाण द्वारा अन्धकमुनिके पुत्र सिन्धुको मारा था।

शब्दमय (सं० त्रि०) शब्दयुक्त, शब्दविशिष्ट।

शब्दमहेश्वर (सं० पु०) शिव। कहते हैं, कि पाणिनिको व्याकरणका आदेश शिवने ही किया था, इसीसे उनका यह नाम पड़ा।

शब्दमात्र (सं० क्ली०) केवल शब्द।

शब्दमाल (सं० पु०) रन्ध्रवंश, पोला बांस।

शब्दमाला (सं० स्त्री०) १ शब्दसमूह। २ रामेश्वरशर्मा विरचित अभिधान।

शब्दयोनि (सं० स्त्री०) शब्दस्य योनिमुत्पत्तिस्थानम्। १ शब्दकी उत्पत्ति। २ वह शब्द जो अपने मूल अथवा प्रारम्भिक रूपमें हो। ३ मूल, जड़।

शब्दरहित (सं० त्रि०) निःशब्द, शब्दशून्य।

शब्दराशिमहेश्वर (सं० पु०) शिव।

शब्दरोचन (सं० क्ली०) तृणभेद, एक प्रकारकी घास।

शब्दवज्रा (सं० स्त्री०) एक देवीका नाम।
(कालचक्र ३।१४४)

शब्दवत् (सं० त्रि०) शब्दो विद्यतेऽस्य शब्द-मतुप्, मस्य व। १ शब्दशाली, शब्दविशिष्ट, जिसमें शब्द हो। (अव्य०) शब्देन तुल्यः। शब्दवति (पा ५।१।११५) २ शब्दकी तरह, शब्दके समान।

शब्दवारिधि (सं० पु०) शब्दोंका समूह।

शब्दविद्या (सं० स्त्री०) शब्दविषयक शास्त्र, व्याकरण आदि।

शब्दविज्ञान—जिस वैज्ञानिक प्रक्रिया द्वारा शब्दविषयक तत्त्वनिचय जाना जाता है, उसे शब्दविज्ञान कहते हैं। श्रवणेन्द्रिय द्वारा हमें जो वस्तुविषयमें ज्ञान लाभ होता है, वही शब्द है। शब्दसे ध्वनि मात्रका ही बोध होता है। व्यक्त और अव्यक्तके भेदसे यह दो प्रकारका है। जिन सब शब्दोंका अर्थ है और जो वर्ण द्वारा प्रकाश किया जा सकता है, उसका नाम है व्यक्त और जिसका

अर्थ नहीं है अथवा वर्णविशेष द्वारा जो प्रकाशित नहीं होता ऐसी ध्वनिको ही अव्यक्त कहते हैं। मनुष्यके कण्ठ, तालु आदिके अभिघातसे जो नाद या स्वर उत्पन्न होता है, वह आहत या व्यक्तस्वर है, किन्तु शैशवावस्थामें सन्तानादिके मुखसे जो शब्द सुना जाता है, उसको अस्फुट या अव्यक्त कहते हैं। फिर भिन्न वस्तुके पर स्पर आघातसे जो शब्द उत्पन्न होता है, वह अनाहत या अव्यक्त ध्वनि है।

यह व्यक्त और अव्यक्त ध्वनि फिर मधुर और कठोरके भेदसे दो प्रकारकी है। निर्दिष्ट समयके मध्य नियमित अनुरणन परम्परा द्वारा मनुष्य कण्ठसे जो श्रुतिमधुर स्निग्ध मञ्जुल ध्वनि उच्चारित या अनुकृत होती है; उसका नाम मधुर है और अनियमित कालके मध्य अनियमित संख्यक अनुरणन परम्परा द्वारा माधुर्यगुणविहीन जो कर्कश शब्द निकाला जाता है, वह श्रुतिसुख उत्पादन न करनेके कारण श्रुतिकठोर कहलाता है। सङ्गीतमें ही एकमात्र ऐसा शब्दविपर्यय होते देखा जाता है।

जड़ द्रव्योंके अणुओंके विकम्पनके कारण ही शब्द उत्पन्न होता है। सितार आदि यन्त्रोंकी तन्त्रीमें आघात करनेसे तार आन्दोलित होता है और पीछे उसका वेग क्रमशः धीर होता जाता है। तारके कम्पनकी वृद्धि और उसके क्रमिक ह्राससे शब्दकी भी उन्नति या अवनतिका ज्ञान अनुभूत होता है। शब्दायमान द्रव्योंके अणु सभी स्थलोंमें आन्दोलित नहीं होते। एक धातु निर्मित थालीके ऊपर कुछ बालू रख कर उसके साथ बालुकणा भी कम्पित होती देखी जाती है। थालीके अणु आन्दोलित नहीं होनेसे बालुकाकणा कभी भी प्रकम्पित नहीं हो सकती। शब्दायमान द्रव्यके अणुओंका आन्दोलन ही शब्दज्ञानका एकमात्र कारण है ऐसा नहीं कह सकते। शब्दायमान द्रव्यकी सन्निहित वायुराशिमें अणुओंकी आन्दोलन सञ्चारित एक तरंग उपस्थित होती है। यह तरङ्ग आ कर जब कर्णपटह पर आघात करती, तभी शब्दज्ञान होता है।

शब्दकर द्रव्यके अणुओंके कम्पनसे पहले उसमें संसृष्ट वायुकणा प्रकम्पित होती है, उस विकम्पनसे तत्संलग्न वायुकणा धीरे धीरे कम्पित हो कर जब कर्णकुहरमें आ पटह पर आघात होता है, तब शब्दका ज्ञान होता है। शब्दायमान द्रव्य और कर्णपटहको मध्यवर्त्ती वायुमें एक शब्द तरङ्ग वायुकणाओंको स्थानच्युत न करके जो आन्दोलित करती जाती है, वह सहज ही अनुमेय है। वायु द्वारा शब्द परिचालित होता है, यह वैज्ञानिक परीक्षासे स्थिर हुआ है। वायु निकालनेवाले यन्त्रकी सहायतासे किसी गोल कांचके बरतनकी भीतरी वायु निकालते समय यदि उसमें स्थित एक घण्टा बजाया जाय, तो वायुके निष्काशनके अनुसार वह शब्द धीरे धीरे मन्द होता जाता है और उस बरतनकी वायु बिलकुल निकाल देने पर फिर शब्द सुनाई नहीं देता। वायु द्वारा जो शब्द चालित होता है उसके और भी अनेक प्रमाण मिलते हैं। जलमें गोता मारनेसे शब्द सुनाई देता है। वायुकी अपेक्षा काष्ठमें शब्द परिचालकता गुण अधिक है। एक बड़े चौकोर काष्ठके एक प्रान्तमें उंगलीका आघात करनेसे वह उसके दूसरे प्रान्तमें सुनाई देता है। अनेक समय बालक ताम्रकूटसेवनकी कलिकाके ऊपर एक पतला चमड़ा मढ़ कर उसके बीचसे एक पतली सनकी रस्सी बहुत दूर ले जा कर दूसरा प्रांत बांध देते और आपसमें बातचीत करते हैं। इससे यद्यपि स्पष्ट भावमें शब्द सुनाई नहीं देता तो फिर भी कुछ अस्पष्ट शब्द कर्णकुहरमें प्रविष्ट होते हैं। वर्त्तमान Telephone और Telegraph यन्त्रकी सहायतासे इसी प्रकार तांबेके तार बांध कर बातचीत चलती है। पृथिवी द्वारा भी शब्द परिचलित होता है। रातको पृथ्वीमें कान सटा कर ध्यानपूर्वक सुननेसे दौड़ते हुए घोड़ेके टापका शब्द सुनाई देता है। आज कल कलकत्ता म्युनिसपलिटीके अधिकारी रातको गृहस्थगण कलका जल फजूल खर्च करते हैं या नहीं अथवा जलका लौहनल मोरचा लग कर खराब तो नहीं हो गया है, इसकी परीक्षा करनेके लिये नलमें एक लौहदण्ड लगा कर उसके प्रान्त भागको कानमें सटा जल निकलनेके शब्दका लक्ष्य करते हैं।

परीक्षा द्वारा जाना गया है, कि शब्द वायुतरङ्ग द्वारा प्रति सेकण्डमें ११९८ फुट दौड़ता है। दो या

तीन सेकण्डके पीछे यह शब्द उससे दुनी या तिगुनी दूरीके फासले पर सुनाई देता है। यही कारण है, कि दूरमें किसी वस्तुके शब्द होनेसे वह सहजमें सुनते हैं। वायुकी अपेक्षा जलका वेग अधिक है। जलमें शब्दतरङ्ग प्रति सेकण्डमें ४७०८ फुट चलती है। इस कारण नदीतटकी तोप या वनका शब्द बड़ी दूर तक चला जाता है। लौह द्वारा शब्द प्रति सेकण्डमें १६८०० फुट, ताम्र द्वारा ११६०० फुट और किसी किसी काष्ठ द्वारा १५००० फुट तक दौड़ता है।

शब्दायमान द्रव्यका अणु जितना ही आन्दोलित होता है, शब्द भी उतना ही अधिक होता है। जहां आन्दोलन कालमें अणु अल्प उन्नत और अपनत होता है, वहां शब्दकी भी स्वल्पता होती है। फिर शब्द वह वायुका घनत्व जहां जितना अधिक होता है, वहां शब्द भी अधिकतर गंभीर होता है। पर्वतादिकी ऊपरी वायु नीचेकी वायुसे बहुत पतली है, इस कारण अनेक समय गिरिसङ्कटादिमें जब तक जोरसे नहीं कहा जायेगा, तब तक दूरके आदमी उसे नहीं सुन सकते। यदि शब्दायमान द्रव्यकी ओरसे वायु श्रोताकी ओर बहे, तो शब्द जैसा गंभीरतर सुनाई देता है, विपरीत ओर बहनेसे वैसा सुनाई नहीं देता। दुर्गकी तोपध्वनि इसका प्रमाण है। ग्रीष्मकालमें दक्षिणी वायु उस शब्दको उत्तरकी ओर तथा शीतकी उत्तरी वायु उसे दक्षिणकी ओर ले जाती है। वह शब्द फिर दूरत्वके वर्गानुसार क्रमशः मन्दीभूत होता है। १०० हाथ दूरमें घंटा बजानेसे जैसा शब्द सुनाई देता है, ५० हाथ दूरमें वह यदि उसी तरह जोरसे बजाया जाय, तो पूर्वोक्त ध्वनिसे चार गुणा शब्द सुनाई देगा। फिर ५० हाथकी दूरी पर घंटा बजानेसे जो शब्द सुना जाता है, १०० हाथकी दूरी पर वह शब्द सुननेमें उसी तरह वैसे चार घण्टे बजाने होंगे। इससे जाना जाता है, कि दूरी दुनी होनेसे शब्दका परिमाण चौगुनी कम होती है।

किसी उच्च प्राचीर, घरकी दीवाल, अट्टालिका या पर्वतादिसे शब्द टकरा कर जब लौटता है, तब प्रतिध्वनि होती है। कोई कोई शब्द ४५ फुट दूरमें अड़चन पा कर लौटते समय प्रतिध्वनित होता है। मनुष्यका शब्द यदि ११२ फुट दूरमें प्रतिबन्धक पा कर प्रतिफलित हो, तो स्पष्ट प्रतिध्वनि सुननेमें आती है। कभी कभी एक शब्द दो समान्तराल पदार्थसे बार बार प्रतिफलित हो कर पुनः पुनः प्रतिध्वनि उत्पन्न करता है।

शब्दविरोध (सं० पु०) १ शत्रुवत्कल्प। २ विरुद्ध शब्दका व्यवहार।

शब्दविशेष (सं० पु०) विशिष्ट-शब्द। बहुवचन विभिन्न शब्द जाना जाता है। सांख्यकारका कहना है, कि उदात्त, अनुदात्त और स्वरित् तथा षड्ज, ऋषभ, गांधार मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद स्वरग्राम शब्दविशेष कहा गया है।

शब्दवृत्ति (सं० स्त्री०) शब्दका कार्य। (अलङ्कारशास्त्र)

शब्दवेध (सं० पु०) शब्द सुन कर उसी शब्दके अनुसार शब्दकारी अदृश्य वस्तुको विद्ध करना।

शब्दवेधित्व (सं० क्ली०) श्रुत शब्दानुसरण द्वारा वेधनका भाव या कार्य।

शब्दवेधिन् (सं० पु०) शब्दमनुसृत्य वेद्धं शीलमस्य विध-णिनि। १ वह मनुष्य जो आखोंसे बिना देखे हुए केवल शब्दसे दिशाका ज्ञान करके किसी व्यक्ति या वस्तुको बाणसे मारता हो। हमारे यहां प्राचीन कालमें ऐसे धनुर्धर हुआ करते थे जो आंख पर पट्टी बांध कर किसी व्यक्तिका शब्द सुन कर या लक्ष्य पर की हुई टंकार सुन कर ही यह समझ लेते थे कि यह व्यक्ति अथवा वस्तु अमुक ओर है और तब ठीक उसी पर बाण चलाते थे। २ अर्जुन, धनञ्जय। ३ बाणविशेष। ४ दशरथ।

शब्दवेध्य (सं० त्रि०) शब्दानुसरणपूर्वक वेधके योग्य, जिसे शब्द अनुसरण कर विद्ध किया जाय।

शब्दशासन (सं० क्ली०) व्याकरणके नियम आदि।

शब्दशक्ति (सं० स्त्री०) शब्दस्य शक्तिः सामर्थ्यं अर्थात् शब्दादयमर्थोबोद्धव्यः इतीश्वरेच्छा शक्तिः। शब्दकी वह शक्ति जिसके द्वारा उसका कोई विशेष भाव प्रदर्शित होता है। व्याकरण, अभिधान, उपमान, आप्तवाक्य और लौकिक व्यवहारसे शब्दकी इस शक्तिकी उपलब्धि होती है।

व्याकरण।

व्याकरणोक्त सुबन्त, तद्धित, कृदन्त, समास

और तद्धितांत शब्दोंकी शक्ति या अर्थ निम्नलिखित प्रकार से जाना जाता है। क्रमशः उदाहरण द्वारा दिखलाया जाता है। यथा—'गामानय' इस शब्दके उच्चारित होते ही प्रथमतः (गो—अम्+आ—नी—हि) गो अर्थात् गलकम्बलादि विशिष्ट जंतुविशेषकी अनुभूति हो कर पीछे 'गो और 'अम्' इस प्रकृति प्रत्ययके योगसे उत्पन्न 'गाम' शब्द और उसके अर्थसे 'गलकम्बलादिविशिष्ट किसी जंतुका' बोध होगा। आ=वैपरीत्य, नी=ले जाना, लोट हि=अनुज्ञा, प्रकाश करना, इन तीनोंके (उपसर्ग, प्रकृति और प्रत्यय) योगसे उत्पन्न 'आनय' शब्द द्वारा ले जानेका विपरीत भाव अर्थात् लाना सम्बंधोध अज्ञा की जाती है, ऐसा अर्थ समझा जायेगा। अधिकंतु मध्यम पुरुषीय प्रत्यय 'हि' व्यवहृत होनेके कारण 'त्वं' तुम लाओ, ऐसा ही अर्थ करना चाहिये। अभी स्पष्ट देखा जाता है, कि 'गामानय' ऐसा शब्द उच्चारित होनेसे उक्त प्रकारसे उसके अंतर्भुक्त पृथक् पृथक् वर्ण या शब्दके प्रत्येकगत अर्थके साथ स्थूल अर्थ 'त्वं गां आनय' तुम गलकम्बलादि विशिष्ट कोई जंतु अर्थात् गायको लाओ, ऐसा जाना जायेगा। व्याकरणानभिज्ञ स्थूलदर्शी व्यक्ति या अंथ तपूर्वशब्द बालकके सम्बंधमें उक्त 'गामानय' शब्दका और तरहसे शब्दबोध हो सकता है, यथा—स्थूलदर्शी व्यक्ति किसी अभिज्ञके मुखसे तथा बालक किसी वयोवृद्धके मुखसे 'गामानय' शब्द सुननेके बाद यदि उसी कथनानुसार किसी दूसरे व्यक्तिको एक गौ लाते देखे और इस प्रकार बार बार देखे, तो आगे चल कर यदि कोई उनके ऊपर ही लक्ष्य कर 'गामानय' ऐसी उक्ति करे, तो वे भी उस समय एक गौ ले आवेंगे। इसमें सन्देह नहीं; क्योंकि यह भी एक ईश्वरेच्छाशक्ति है। कृदन्त—'पाचक' (पच णक्) शब्द द्वारा पहले पच=पाक करना या पाक क्रिया, पीछे उस धातुके उत्तर कर्तृ वाच्यमें णक प्रत्यय होनेसे उसका (पाकक्रिया) आश्रय अर्थात् कर्त्ता समझा जाता है; अतएव धातु और प्रत्ययके योगसे उत्पन्न 'पाचक' शब्दमें पाकक्रियावान् पुरुषका बोध होगा। इस प्रकार कर्म प्रभृति किसी वाच्यमें प्रत्यय करनेसे भी तत्प्रत्ययान्तर तदाश्रित कह कर निर्दिष्ट होता है। समास—'नीलघटः' (नीलः नीलाभिन्नः नीलगुणविशिष्ट इति घटः) नीलघट कहनेसे उस घट या घटीय सभी परमाणुओंको ही नीलगुणयुक्त समझना होगा; क्योंकि, शुक्लादिगुण, गुण और गुणी इन दोनोंका बोध कराता है। विशेषतः यहां नील और घट ये दो विशेष्य और विशेषण कर्मधारय समास हुए हैं, ऐसा शब्दबोध होता है। फलतः जहां कर्मधारय समास होगा वहां विशेष्य और विशेषण पदकी अभिन्नता या एकाधिकरणवृत्तित्व समझा जायेगा। फिर जहां इन दोनोंका एकाधिकरणवृत्तित्व या अभिन्नता न समझी जायेगी, वहां समास न होगा; जैसे 'नीलेन घटः' नीलवर्ण द्वारा चिह्नित घट, यहां घट नीलवर्ण द्वारा चित्रित है, केवल यही समझा जायेगा अर्थात् इस घटके बहिर्भागको छोड़ उसके अभ्यन्तर भागमें नीलवर्णका कुछ भी संस्रव नहीं है, ऐसा जानना होगा। इस प्रकार प्रत्येक समासके सम्बन्धमें ही अवस्था जान कर उस उस समासान्त पदका शब्दग्रह करना होगा। तद्धित—'पाञ्चालः' (पञ्चालानां राजा अपत्यं वा पञ्चाल·अण्) पञ्चाल ऐसा शब्द उच्चारित होनेसे पहले पञ्चालदेश या वहांके अधिवासीका, पीछे अण् प्रत्ययको लक्ष्य कर उनकी राज-सन्तानका बोध होता है।

अभिधान।

अभिधानका अर्थ कथन या शब्दकोष है, यदि कोई महाकवि किसी स्थानमें व्याकरणविरुद्ध कोई प्रयोग कर गये हों या कोई कोषकार अपने संग्रहमें ऐसा शब्द उद्धृत करते हों, तो उससे भी शब्दग्रह होता है, यथा—'अस्' धातुके उत्तर लिट् विभक्तिका णल् प्रत्यय करनेसे व्याकरणमतानुसार अस् धातुकी जगह 'भू' आदेश हो कर 'बभूव' ऐसा पद बनता है तथा यह सर्व वैयाकरण सम्मत है, किंतु महाकवि कालिदास "तेनास लोकः पितृमान् विनेत्रा तेनैव शोकापनुदेन पुत्री" रघुके इस श्लोकमें अस+अ (णल्)=आस; ऐसा प्रयोग कर गये हैं, इस कारण यह व्याकरणविरुद्ध होने पर भी अभिधान अर्थात् महाकविका कथन होनेसे उससे भी शब्दग्रह होगा। क्योंकि कहा है, कि—अभिधान ही कृत्, तद्धित, समास आदिका प्रकृत व्यवस्थापक है;

लक्षण अर्थात् व्याकरणादिका अनुशासन केवल अनभिज्ञों के ज्ञानका प्रथम पथदर्शक है।

उपमान।

उपमान द्वारा भी शाब्दबोध होता है, जैसे, जिस व्यक्तिने किसो दिन 'गवय' नामक जन्तुको नहीं देखा उसे यदि कहा जाय, कि 'गौरिव गवयः' गवय नामक जो जंतु है, वह ठीक गायकी तरह है, तो वह अद्गष्टगवयः व्यक्ति इस उक्ति द्वारा निश्चय हो गवय समझ सकेगा। उस व्यक्तिको गौ सम्बन्धीय ज्ञान रहना आवश्यक है।

आप्तवाक्य।

आप्त अर्थात् जो जगत्‌के सभी पदार्थों के प्रकृत तत्त्वसे अवगत हैं, उनके कहनेसे भी शब्दको यथार्थ शक्ति निरूपित नहीं हो सकती। जैसे यदि कोई भ्रमप्रमादरहित मनुष्य कहे "विषस्य विषमौषधम्" विष प्रयोग करनेसे विषाक्त व्यक्ति आरोग्यलाभ कर सकता है, तो यद्यपि कमसे कम देखा जाता है, कि एक विष देहमें प्रविष्ट हो कर उसको विषक्रियाके फलसे रोगी मर जाता है। ऐसी अवस्थामें पुनः उस पर विषप्रयुक्त होनेसे वह किस प्रकार बच सकेगा? तो भी उक्त अभ्रान्त व्यक्तिकी बात पर इतना विश्वास है, कि वह इस असम्भवनीय विषयको ही सम्पूर्ण सम्भवनीय समझने लगेगा।

लौकिक शब्द।

लौकिक अर्थात् जो किसी वेदपुराणादिमें व्यवहृत नहीं होता, केवल देशीय लोग अपने अपने कार्यसौकर्यार्थ अपने अपने देशमें व्यवहारके लिये कुछ शब्दोंकी सृष्टि कर गये हैं और करते हैं, उससे भी शब्दार्थको अवगति हो सकती है।

साहित्यदर्पणमें लिखा है, कि वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्यार्थके भेदसे शब्दको शक्ति तीन प्रकारकी है, उनमेंसे 'गामानय' आदि दृष्टान्त द्वारा वाच्यार्थका उल्लेख किया गया है। लक्ष्य अर्थात् लक्षण द्वारा तथा व्यङ्ग अर्थात् व्यञ्जना द्वारा शक्तिका निरूपण होता है।

किसी जगह यदि शब्दका प्रकृत अर्थ जाननेमें बाध अर्थात् विघ्न या असंङ्गत मालूम हो, तो प्रसिद्धि या प्रयोजन हेतुक जिसके द्वारा शब्दके अर्थान्तरको प्रतीति होती है वह अर्पिता है अर्थात् स्वाभाविकसे इतर या ईश्वरानुद्भाविता शक्ति ही शब्दको लक्षणा शक्ति है; जैसे, 'कलिङ्गः साहसिकः' कलिङ्ग साहसी यह कहनेसे कलिङ्ग शब्दका प्रकृत अर्थ यदि कलिङ्गदेश माना जाय, तो उससे किसी प्रकारका अर्थबोध करना एकदम कठिन हो जाता है; क्योंकि चेतनधर्म साहसिकता अचेतन देशादिमें कदापि सम्भव नहीं, अतएव प्रसिद्धि हेतुक लक्षणा शक्ति द्वारा कलिङ्ग शब्दमें उस देशके पुरुषादिकी प्रतीति हो 'कलिङ्गवासी साहसी' होते हैं, ऐसा अर्थ करना चाहिये। फिर 'गङ्गायां घोषः प्रतिवसति' घोष गङ्गामें वास करता है, इत्यादि स्थानोंमें गङ्गारूप जलमय स्थानमें वास करना असंभव होनेसे शैत्य-संस्तव या पावनत्वरूप प्रयोजन हेतुक लक्षणा शक्ति द्वारा गङ्गा शब्दसे उसके तटका बोध हो कर 'घोष शैत्यसंस्तव या पावनके लिये गङ्गातट पर वास करता है' ऐसा अर्थ समझा जायगा।

उक्त लक्षणा शक्तिके अहत्स्वार्था, अजहत्स्वार्था, उपादानलक्षणा, लक्षणलक्षणा इत्यादि भेद, तद्भेद रूप परम्परासे अच्छी प्रकारके भेद कल्पित हुए हैं।

शब्दको जिस शक्ति द्वारा उसके वाच्यार्थका बोध करा कर पीछे उससे यदि कोई दूसरा समझा जाय, तो उसे व्यञ्जना कहते हैं। यह अभिधामूलक और लक्षणामूलकके भेदसे प्रथमतः दो भागोंमें विभक्त है।

अनेकार्थ शब्द निम्नोक्त संयोगादि कारण द्वारा एक अर्थमें नियन्त्रित अर्थात् विधिबद्ध होने पर भी यदि वह उसके अन्यान्य अर्थोंका बोध करावे, तो उसे अभिधामूला व्यञ्जना कहते हैं। अर्थात् जहां संयोगादि द्वारा नियन्त्रित नहीं होनेसे वहां शब्दके सभी अर्थ समझ आवेंगे।

संयोग या सङ्ग—"सशङ्खचक्रो हरिः" यहां शङ्ख और चक्रके साथ वर्त्तमान हरि कहनेमें (हरिमें शङ्ख और चक्रका संयोग रहनेसे) हरि शब्दके अन्य किसी अर्थको उपलब्धि न हो कर उससे केवल विष्णुका हो बोध होता है।

विप्रयोग या वियोग—"अशङ्खचक्रो हरिः" यहां शङ्खचक्र परित्यक्त होने पर भी हरि शब्दसे विष्णुको छोड़ और किसोका अर्थ न होगा।

साहचर्य—"भीमार्जुनौ" अर्जुन शब्दसे कार्त्त-

योधादिका बोध होने पर भी यहां भीम शब्दकी साहचर्य-प्रयुक्त व्यञ्जनाशक्ति द्वारा पार्थका ही बोध होगा।

विरोधिता—"कर्णार्जुनौ" कर्ण शब्दसे श्रोत्रादि समझे जाने पर भी अर्जुनके साथ वैरिताप्रयुक्त व्यञ्जनाशक्ति द्वारा कुन्तीपुत्र ही समझा जायेगा।

प्रयोजन—"स्थाणुं वन्दे" भवबन्धनसे मुक्तिके लिये शिवको वन्दना करता हूं; यहां पर भवबन्धनसे मुक्तिलाभ प्रयोजन होनेके कारण व्यञ्जनाशक्ति द्वारा स्थाणु शब्दसे शाखापल्लवरहित शुष्क तरुकाण्डका बोध न हो कर शिवका ही बोध होगा। क्योंकि सामान्य तरुकाण्डको मुक्तिदानकी क्षमता नहीं है।

प्रकरण या प्रस्ताव—प्रस्तावानुसार भी अनेकार्थ शब्द एकार्थमें प्रयुक्त होता है। जैसे, नाटकादिमें राजा आदिके प्रति कहा जाता है, "सर्वं जानाति देव" आप सब कुछ जानते हैं; यहां प्रस्तावानुसार देव शब्दसे राजाको छोड़ अन्य किसी देवताका बोध न होगा।

चिह्न—"कुपितो मकरध्वजः" कोपचिह्नयुक्त मकरध्वज कहनेसे, मकरध्वज शब्दसे कामदेवका ही बोध होगा, क्योंकि चेतनधर्म कोप अचेतन समुद्रार्थक मकरध्वजमें सम्भव नहीं है।

सन्निधि—शब्दान्तरके सान्निध्यप्रयुक्त अनेकार्थ शब्दसे एकार्थका बोध होता है, जैसे—"देवः पुरारिः" पुरारि शिव हैं; यहां पुरारि शब्दके सान्निध्यप्रयुक्त देव शब्दसे शिवको छोड़ अन्य किसी देवताका बोध न होगा; क्योंकि शिव ही पुरासुरके शत्रु और हन्तारक हैं।

सामर्थ्य—"मधुना मत्तः पिकः" वसन्त कर्तृक अर्थात् वसन्तकालमें कोकिल मत्त हो जाता है; कोकिलको मत्त करनेकी क्षमता एक वसन्तकालमें ही है इस कारण यहां मधु शब्दसे मद्यादिका बोध न हो कर केवल वसन्तकालका ही बोध होता है।

औचित्य—"पातु वो दयितामुखम्" अपनी दयिताकी ओर गमन करे; यहां गमन करनेमें दयिताओंके मुखके ऊपर गमन करना उचित या सम्भव नहीं होता; सुतरां मुख शब्दके अभिमुख्यार्थ ग्रहण करना ही कर्तव्य है।

देश—देश अर्थात् स्थानके निर्देशप्रयुक्त शब्दको एकार्थताकी उपलब्धि होती है; जैसे, "विभाति गगने चन्द्रः" आकाशमें चन्द्रमा चमकते हैं यहां आकाश चन्द्रका निर्दिष्ट स्थान होनेके कारण चन्द्र शब्दसे कर्पूरादि न समझा जायेगा।

काल—कालानुसार भी अनेकार्थ शब्दके सिर्फ एकार्थका बोध होता है, जैसे—"निशि चित्रभानुः" रात्रिमें वह्नि धधकती है; चित्रभानु शब्दसे सूर्यका बोध होने पर भी रात्रिकालमें उनका दर्शन असम्भव है, इसलिये यहां वह्निका ही बोध होता है।

व्यक्ति या पुंस्त्वादि—कोई कोई अनेकार्थ शब्द पृथक् पृथक् लिङ्गमें पृथक् पृथक् अर्थ प्रकाश करता है; जैसे, रथाङ्ग शब्द नपुंसक लिङ्गमें चक्रको ही व्यक्त करता है; चक्रवाकादि अर्थमें उसका व्यवहार नहीं होता।

स्वर—उच्चारणके तारतम्यानुसार भी भिन्न भिन्न रूपमें शब्दार्थकी प्रतीति होती है। वेदमें लिखा है, "इन्द्रशत्रुर्विवर्द्धस्व" यहां इन्द्रशत्रु शब्दका बहुव्रीहि समासान्तकी तरह उच्चारण करनेसे इन्द्र विवर्द्धित हों ऐसा अर्थ प्रकट करता है, किन्तु वही शब्द फिर तत्पुरुष समासान्तकी तरह उच्चारित होनेसे उनका शत्रु वृत्र विवर्द्धित हो, इस अर्थकी अभिव्यक्ति होती है। इसके सिवा सचराचर भाषामें भी काकु अर्थात् स्वरविकृति द्वारा सहज शब्दका अर्थवैलक्षण्य होता है, जैसे कोई युवती अपनी सखीसे कहती है, कि "सखि! प्रियतम पति पराधीनताप्रयुक्त कार्यवशतः दूर देश गये हैं, किन्तु इस अलिकुलगुञ्जित कोकिलकूजित सुरभि समयमें क्या वे आयेंगे नहीं?' यहां 'वे आयेंगे नहीं' यह सहज उक्ति है, पूछनेके बहाने उच्चारित होनेके कारण इससे उनका आना नहीं होगा, ऐसे अर्थकी अभिव्यक्ति न हो कर उसके विपरीत अर्थका विकाश होता है, कि यद्यपि वे कार्यानुसार विदेश गये हैं, फिर भी क्या इस वसन्त समयमें वे एक बार नहीं आयेंगे? अर्थात् अवश्य आयेंगे।

आकाङ्क्षा, योग्यता और आसक्ति आदि द्वारा भी वाक्य या शब्दोंका शक्तिग्रह होता है।

वाक्य और महावाक्य शब्द देखो।

शब्दशास्त्र (सं० क्ली०) वह शब्द जिसमें भाषाके भिन्न भिन्न अङ्गों और स्वरूपोंका विवेचन तथा निरूपण किया जाय, व्याकरण।

शब्दशेष (सं० त्रि०) शब्दका शेषांश।

शब्दश्लेष (सं० पु०) अलङ्कारविशेष। इसमें एक शब्द द्वारा श्लेषोक्ति प्रकाश की जाती है। अङ्गरेजीमें इसे Punning कहते हैं।

शब्दसंज्ञा (सं० स्त्री०) शब्दका एक पर्यायक नाम। (पा १।१।६८)

शब्दसम्भव (सं० पु०) शब्दानां सम्भवः उत्पत्तिर्यस्मात्। वायु जो शब्दकी उत्पत्तिका कारण है अथवा जिससे शब्दका अस्तित्व सम्भव होता है।

शब्दसाधन (सं० पु०) व्याकरणका वह अङ्ग जिसमें शब्दोंकी व्युत्पत्ति, भेद और रूपान्तर आदिका विवेचन होता है। शब्दोंके संज्ञा, क्रिया, विशेषण, क्रिया-विशेषण, सर्वनाम आदि जो भेद होते हैं, वे भी इसीके अन्तर्गत हैं।

शब्दसाह (सं० त्रि०) १ शब्दवेधि। २ शब्दबाधानिवारक। (भारत ३।२२।५)

शब्दसिद्धि (सं० स्त्री०) १ शब्दका पूर्ण व्यवहार। २ काव्यकल्पलतावृत्तिपरिमल नामक ग्रन्थका एकांश।

शब्दसौन्दर्य (सं० पु०) शब्दोंके उच्चारणकी सुगमता।

शब्दसौष्ठव (सं० पु०) किसी लेख या शैली आदिमें प्रयुक्त किये हुए शब्दोंकी कोमलता या सुन्दरता।

शब्दस्फोट (सं० पु०) वाक्यस्फोट, बड़ाड़म्बर।

शब्दस्मृति (सं० स्त्री०) शब्दका स्मरण।

शब्दहीन (सं० क्ली०) शब्दोंका वह रूप या प्रयोग जिसे आचार्योंने न प्रयुक्त किया हो।

शब्दाकर (सं० पु०) शब्दानां आकरः। शब्दकी मूल या प्रकृति, शब्दोंका उत्पत्तिस्थान।

शब्दाक्षर (सं० क्ली०) १ शब्द और अक्षर। २ शब्द ज्ञापक अक्षर। ३ ओंम शब्द।

शब्दाध्येय (सं० त्रि०) ज़ोरसे या चिल्ला कर कहा जानेवाला शब्द।

शब्दाडम्बर (सं० पु०) बड़े बड़े शब्दोंका ऐसा प्रयोग जिसमें भावकी बहुत ही न्यूनता हो, केवल शब्दोंकी सहायतासे खड़ा किया जानेवाला आडम्बर, शब्दजाल।

शब्दाढ्य (सं० क्ली०) काँसा नामकी धातु।

शब्दातिग (सं० पु०) विष्णु। (भारत १३।१४९।११०)

शब्दातीत (सं० पु०) वह जो शब्दसे परे हो अर्थात् ईश्वर।

शब्दाधिष्ठान (सं० क्ली०) शब्दस्य अधिष्ठानं आश्रयस्थानम्। कर्ण, कान।

शब्दाध्याहार (सं० क्ली०) वाक्यको पूरा करनेके लिये उसमें अपनी ओरसे और शब्दका जोड़ना।

शब्दानुकरण (सं० क्ली०) शब्दका अनुकरण, शब्द नकल करना।

शब्दानुकृति (सं० स्त्री०) शब्दानुकरण।

शब्दानुशासन (सं० क्ली०) शब्दस्य अनुशासनं प्रकृतिप्रत्ययादिना व्युत्पादनं यत्र। व्याकरण।

शब्दानुसृष्टि (सं० स्त्री०) शब्दानुशासन।

शब्दाभिवह (सं० त्रि०) शब्दग्राही, शब्दवहनकारी शिरा आदि। (सुश्रुत)

शब्दायमान (सं० त्रि०) शब्दित, शब्दविशिष्ट।

शब्दार्थ (सं० पु०) १ शब्दका अर्थ अर्थात् अभिधेय या वाच्य। २ शब्द तथा अर्थ। (पा २।२।११)

शब्दालङ्कार (सं० पु०) साहित्यमें वह अलंकार जिसमें केवल शब्दों या वर्णोंके विन्याससे भाषामें लालित्य उत्पन्न किया जाय। जैसे,—अनुप्रास आदि।

शब्दित (सं० त्रि०) ध्वनित, शब्द किया हुआ, आहूत।

शब्दिन् (सं० त्रि०) शब्दविशिष्ट।

शब्देन्द्रिय (सं० क्ली०) कर्ण, कान।

शम (सं० पु०) शम्यत इति शम-घञ्। (हलश्च। पा ३।३।१२१) १ शान्ति। (अमर) २ मोक्ष। (त्रिकाण्डशेष) ३ पाणि, हाथ। (रामाश्रम) ४ उपचार। (राजनि०) ५ अन्तरिन्द्रियनिग्रह। (वेदान्तसार) ६ बाह्येन्द्रिय निग्रह। (भाग० ३।३२।३३) ७ सर्वकर्मनिवृत्ति। (गीता ६।३) ८ शान्त रसका स्थायी भाव। (साहित्यद० ३।२३८) ९ निवृत्ति। (राजतर० २।५६) १० मनःसंयम। ११ क्षमा। १२ तिरस्कार।

शमक (सं० त्रि०) शामयतीति शम-णिच्-ण्वुल् नोदात्तोपदेशस्येति न दीर्घः, (पा ७।३।३४) शान्तिकारक, शान्ति करनेवाला।

शमकृत् (सं॰ त्रि॰) शमक, प्रशमकारी ।

शमगिर (सं॰ स्त्री॰) शान्तिकथा, प्रशमोक्ति, जो वाक्य सुननेसे अन्तरमें शान्तभावका उदय हो।

शमठ (सं॰ पु॰) शम-मठ बाहुलकात् (कुशमोरप्यठः। उण् १।१०१) १ महाभारतके अनुसार एक ब्राह्मण। (महाभारत वनपर्व) २ गंडीर नामक शाक। ३ तूतभेद, एक प्रकारका तूत या शहतूत।

शमता (सं॰ स्त्री॰) शान्ति, उपशम, निवृत्ति।

शमथ (सं॰ पु॰) शम-अथ बाहुलकात् (दयामिदमिभ्यश्च। उण् ३।११४) १ शान्ति। (अमर) २ मन्त्री। (मेदिनी)

शमन (सं॰ क्ली॰) शम ल्युट् । १ यज्ञार्थ पशुहनन, यज्ञके लिये होनेवाला पशुओंका बलिदान । २ शान्ति। ३ मनकी स्थिरता। ४ निवृत्ति, रोकना। ५ उपशम, कम होना। ६ चर्वण, चबाना। ७ हिंसा। ८ प्रतिसंहार, प्रतिनिवृत्ति। (मार्क॰पु॰ ७८।११) ९ निवारक।

(पु॰) शमयति पापिनां कर्म आलोचयतीति कर्त्तरि ल्यु। १० यम। ११ मृगभेद। १२ अन्न। १३ मटर। १४ तिरस्कार, शाप। १५ आघात, चोट। १६ दमन। १७ एक प्रकारका वस्तिकर्म जो मोथा, प्रियङ्गु, मुलेठी और रसाञ्जन आदि मिले हुए दूधसे किया जाता है। यह वस्तिप्रयोग करनेसे सभी दोषोंका उपशम होता है।

१८ धूमपानभेद । इसमें इलायची, तगर, कूड़ा, जटामांसी, गंधतृण, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेशर, रेणुका, व्याघ्रनखी, मधी, सरल, बाला, गुग्गुल, धूना, शिलारस, अगुरु, पृक्का, खसकी जड़, भद्रदारु, कुङ्कुम, केशर और पुन्नाग इन कई औषधियोंका चूर्ण चालीस उंगली लंबी नली या सटक आदिके द्वारा पीते हैं इससे वात आदि दोषोंका नाश होना माना जाता है।

भावप्रकाशके मतसे नल बनानेका नियम इस प्रकार है,—नलको तीन खण्ड और तीन गांठका कर लेना होगा। यह नल कनिष्ठ अङ्गुलीके समान और भीतरका छेद उड़दके बराबर होगा। इसकी लम्बाई शमनी उंगलीसे ४० उंगली होगी। ऐसे नल द्वारा शमनधूमपान करना होता है।

(स्त्री॰) १९ शमनी, रात्रि, रात। २० कषायभेद। जिन सब कषाय अर्थात् क्वाथादि द्वारा वमनादि पञ्चकर्म के बिना भी वातादि दोषोंका नाश होता है, उसीका नाम शमनी है।

२१ वस्तिभेद, शमन नामक निरूहवस्ति । प्रियङ्गु, मुलेठी, मोथा और रसाञ्जन इन्हें दूधके साथ मिला कर जो वस्ति-प्रयोग किया जाता है, उसे शमनवस्ति कहते हैं।

बारह उंगली लम्बा एक सरकंडा ले कर उसके चारों ओर ८ उंगली तक २ तोला पलाशिणका कल्क लेप कर छायामें सुखाना होगा। जब अच्छी तरह सूख जाय, तब सरकंडेको धीरे धीरे अलग करना होता है। बादमें उस कल्कवर्त्तिको स्नेहाक्त कर उसके अगले भागको अङ्गारकी आगसे जलाना होगा। पीछे नलका दूसरा भाग मुखमें लगा कर धूमपान करे और मुखसे ही वह धूम निकाले। इसके बाद नाकसे धूम ग्रहण कर वह धूम मुखसे निकालना होगा। (भावप्रकाश)

२२ सम, उद्धत और विषम वातपित्तादि दोषोंको समान करनेवाला। २३ अरुण, लाल।

शमनस्वसृ (सं॰ स्त्री॰) शमनस्य यमस्य स्वसा। यमकी भगिनी अर्थात् यमुना। (अमर)

शमनी (सं॰ स्त्री॰) शमयति नृणां व्यापारान् शम ल्यु, स्त्रियां ङीप्। १ रात्रि, रात। शाम्यतेऽनेन इत्यर्थे करणे ल्युट्-ङीप्। २ शान्तिकारयित्री।

(भाग॰ ३।२४।३६) शमन देखो।

शमनीय (सं॰ त्रि॰) शम-अनीयर्। शमन करने योग्य, दबाने या शांत करने योग्य।

शमनीषद् (सं॰ पु॰) शमन्यां रात्रौ सीदन्ति सद्-भक्त्वं। निशाचर, राक्षस। (त्रिका॰)

शमयितृ (सं॰ त्रि॰) शम-णिच्-तृच्। शमनकारक, शांतिकारक, निवारक।

शमल (सं॰ क्ली॰) शम (सानसिवर्णसि॰। उण् ४।१११) इति कल। विष्ठा, गुह। २ पाप, गुनाह। (शब्दरत्ना॰)

शमवत् ([illegible]॰ त्रि॰) शम अस्त्यर्थे मतुप्, मस्य व। शमगुणविशिष्ट।

शमशम (सं० त्रि०) १ सुखशांतिविशिष्ट । (पु०) २ शिवका एक नाम । (भारत १२ पर्व)

शमशेर (फा० स्त्री०) १ वह हथियार जो शेरकी पूंछ अथवा नखके समान हो अर्थात् तलवार, खड्ग आदि । २ तलवार ।

शमा (अ० स्त्री०) १ मोम । २ मोम या चर्बीकी बनी हुई बत्ती जो जलानेके काममें आती है, मोमबत्ती ।

शमादान (फा० पु०) वह आधार जिसमें मोमकी बत्ती लगा कर जलाते हैं। यह प्रायः धातुका बना हुआ और अनेक आकार प्रकारका होता है ।

शमान्तक (सं० पु०) शमस्य शान्तेरन्तकः । कामदेव ।

शमाला (सं० स्त्री०) राजदत्त ब्राह्मण-शासनभेद । (राजतर० ७।२५६)

शमि (सं० स्त्री०) १ शिम्बिधान्य । मूंग, मसूर, मोठ, उड़द, चना, अरहर, मटर, कुलथी, लोबिया आदिको शिम्बी धान्य कहते हैं । २ शमीवृक्ष, सफेद कीकर । शमी देखो । (पु०) ३ अन्धकके एक पुत्रका नाम । (हरिवंश) ४ उशीनरके एक पुत्रका नाम । (भाग० ६।२३।२१) ५ यज्ञ या यज्ञकृत कर्म । (मृक् ३।५५।२)

शमिक (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम । (पा ४।१।१०४)

शमिका (सं० स्त्री०) शमीवृक्ष ।

शमिज (सं० पु०) लाल कुलथी ।

शमिजा (सं० स्त्री०) १ लाल कुलथी । २ शिम्बी धान्य ।

शमित (सं० त्रि०) शम-क्त । १ जिसका शमन किया गया हो । २ शान्त, ठहरा हुआ ।

शमितृ (सं० त्रि०) शम तृच् । १ निवारक, शान्तिकारक। २ यज्ञमें पशुका बलिदान करनेवाला ।

शमिन् (सं० त्रि०) शमो विद्यतेऽस्य शम-इन् । शान्त, शमगुणविशिष्ट ।

शमिपत्र (सं० क्ली०) पानीमें होनेवाली लजालू नामकी लता ।

शमिपत्रा (सं० स्त्री०) शमिपत्र देखो ।

शमिर (सं० पु०) १ शमीवृक्ष । २ सोमराजी, बकुची ।

शमिरोह (सं० पु०) शिव, महादेव ।

शमिला (सं० स्त्री०) चमेलीकी जातिका एक प्रकारका पौधा ।

शमिष्ठ (सं० त्रि०) अयमनयोरतिशयेन शमः । दो या बहुतोंमें जो बड़ा शान्त हो ।

शमिष्ठल (सं० क्ली०) एक स्थानका नाम ।

शमी (सं० स्त्री०) स्वनामख्यात सकण्टक वृक्ष, छिकुर, छोंकर । इसे महाराष्ट्रमें शमी, खैरी ; कलिङ्गमें वणि, कावणि और उत्कलमें शुमी कहते हैं। संस्कृत पर्याय— शक्तफला, शिवा, शक्तफली, शांता, तुङ्गा, कचरिपुफला, केशमथनी, ईशानी, लक्ष्मी, तपनतनया, इष्टा, शुभकरी, हविर्गन्धा, मेध्या, दुरितदमनी, शक्तफलिका, समुद्रा, मङ्गल्या, सुरभि, पापशमनी, भद्रा, शङ्करी, केशहन्त्री, शिवाफला, सुपत्रा, सुखदा । यह छोटी और बड़ीके भेदसे दो प्रकारकी है ।

यह बङ्गाल और विहारमें सर्वत्र, प्रायोद्वीपके पश्चिम, जावा (ब्रह्म) और सिंहलमें बहुत पाई जाती है । इसकी लकड़ी बहुत कुछ खैरकी लकड़ीसे मिलती जुलती है, किंतु इसमें बहुतसे छोटे छोटे छेद होते हैं । इसकी डालसे खैरकी तरह एक प्रकारका लासा पाया जाता है। इस जातिके लाल पत्तेवाले वृक्ष अग्निगर्भा कहलाते हैं ।

एक और प्रकारकी शमी है जिसे अङ्गरेजीमें Prosopis spicigera कहते हैं। इसका आकार मंझोला होता है और डालियां कटीली होती हैं । पंजाब, सिन्धु, राजपूताना, गुजरात, बुन्देलखण्ड और दाक्षिणात्यकी प्रान्तरभूमिके जिस स्थानकी मिट्टी जलहीन और कठिन होती है, वहां यह वृक्ष उत्पन्न होते देखा जाता है। बीज अथवा उसकी डाल काट कर गाड़ देनेसे पेड़ लगता है। पेड़की जड़ बहुत लम्बी होती है । १८७८ ई०में पेरिस नगरकी विख्यात प्रदर्शनीमें इस जातिके एक प्रकारके पेड़की ८६ फुट लम्बी जड़ दिखलाई गई थी । वह ठीक समान भावमें ६४ फुट मिट्टी छेद कर नीचे जाती है ।

इसके तनेको छिल देने अथवा छोटी छोटी डाल काट देनेसे वहां एक तरहका लासा निकलता है । Pharmacographia Indica ग्रन्थके रचयिताने रासायनिक परीक्षा द्वारा इसको मेक्सिकोके Mozquit gum नामक द्रव्यके समान गुणविशिष्ट निरूपण किया है।

इसकी छाल चमड़ा साफ करने और रंगनेके काममें आती है। इसकी छेमी पञ्जाबमें औषधार्थ व्यवहृत होती है। इसके छिलकेमें कीटविशेष द्वारा बड़े बड़े म्पञ्जकी तरह एक प्रकारकी गांठ उत्पन्न होती है। यह बाजारमें "खरनाकी छिन्द्री" नामसे परिचित है। यह सङ्कोचन गुणविशिष्ट है। पेड़का छिलका पीस कर वातव्याधिपीड़ित ग्रन्थिमें प्रलेप देनेसे बहुत लाभ पहुंचता है।

छेमीका बोझ पकने पर सभी लोग खाते हैं। कच्ची छेमीमें घी, प्याज और नमक डाल कर गरीब आदमी तरकारी बना कर खाते हैं। कभी कभी उसमें दही मिला कर खाते हुए भी देखा गया है। १८६८-६६ ई०में राजपूतानाके दुर्भिक्षमें इसकी कच्ची तथा सूखी छाल के चूरकी पीठी बना कर लोगोंने प्राणरक्षा की थी। पेड़की पत्तियां समेत छोटी डाल और छीमी ऊंट, गाय भैंसे, बकरे, भेड़े आदि पालतू पशुकी प्रधान खाद्य है। डेरा इस्माइल खाँ और सिन्धुनदके पश्चिम पार्वत्य देशोंमें शीतके समय तृणादि न मिलनेके कारण इसकी सूखी पत्तियां ही साधारणतः पालतू पशुके लिये व्यवहृत होती हैं। इसके एक क्युबिक फुट काष्ठका वजन ५८ पौंड होता है। इससे गाड़ी और घरके सामान तैयार होते हैं। इसमें ज्वलनशक्ति अधिक है। इस कारण बहुत से जलावनमें शमीकाष्ठका ही व्यवहार करते हैं। ब्राण्डिस साहबका कहना है, कि १३७४ पौण्ड शमीकाष्ठ, १३८८ पौण्ड बाबलाकाष्ठ और १६२७ पौण्ड इमलीका काष्ठ एक ही समयमें समपरिमाण जलको उबालता है।

पञ्जाबवासी साधुओंके समाधिस्थलमें शमीवृक्षको गाड़ देते हैं। राजपूतानेमें वर्षमें एक बार राजा, महाराज, सामन्त, ठाकुर और प्रजावर्ग बड़ी धूमधामसे शमीवृक्षकी पूजा करते हैं। यहां पूजाके लिये एक स्वतन्त्र शमीवृक्ष निर्दिष्ट रहता है। हिन्दूमात्र ही शमीवृक्षको सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं। व्रतराज नामक व्रतविषयक ग्रन्थमें लिखा है, कि आश्विन शुक्लपक्षीय दशमी तिथिमें शमीपूजा करनी होती है। विराटभवनमें अज्ञातवासके समय पाण्डवोंने शमीवृक्ष पर ही अस्त्रादि रखे थे। ये सब अस्त्र सर्पके रूपमें उस वृक्ष पर थे। जनसाधारणका विश्वास है, कि शमी भगवतीरूपमें उत्पन्न हुई है। शमीकाष्ठ समिधरूपमें तथा पत्र गणपतिकी पूजामें व्यवहृत होते हैं। गणेशपुराणमें शमीमाहात्म्य वर्णित है।

वैद्यकमतसे इसका गुण—रूक्ष, कषाय, रक्त, पित्त और अतिसारनाशक। फलका गुण—गुरु, स्वादिष्ट, उष्ण और केशनाशक। (राजनि०) भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—तिक्त, कटु, शीतल, कषाय, रेचक, लघु, कफ, कास, भ्रम, श्वास, कुष्ठ, अर्श और कृमिनाशक। (भावप्र०) इसकी लकड़ी बहुत मजबूत और कठिन होती है। प्राचीनोंका विश्वास है, कि सूखी लकड़ीमें अग्नि गुप्तभावमें रहती है। (मनु ८।२४७, रघु ३।६) वैदिकयुगमें शमीकाष्ठ घिस कर अग्नि उत्पादन की जाती थी। इस सम्बन्धमें एक उपाख्यान भी प्रचलित है कि पुरूरवाने अश्वत्थ और शमीवृक्षकी शाखा रगड़ कर जगत्में सबसे पहले अग्नि उत्पन्न की थी।

२ शिम्ब, सेम। ३ सोमराजी। ४ कर्म। (ऋक् ६।२।२)

शमी—बम्बई प्रेसिडेन्सीके राधनपुर सामन्त राज्यका एक नगर। यह अक्षा० २३° ४१' १५" उ० तथा देशा० ७१° ५०' पू० सरस्वती नदीके किनारे अवस्थित है।

शमीक (सं० पु०) एक प्रसिद्ध क्षमाशील ऋषि। कहते हैं, कि परिक्षितने इनके गलेमें एक बार मरा हुआ सांप डाल दिया परन्तु ये कुछ न बोले। इनके लड़के शृंगी ऋषिने अपने पिताको दुर्दशा देख कर क्रुद्ध हो शाप दिया कि आजके सातवें दिन मेरे पिताके गलेमें सर्प डालनेवालेको तक्षक डसेगा। कहा जाता है, कि इसी शापके द्वारा तक्षकके काटनेसे राजा परिक्षितकी मृत्यु हुई थी। (भाग० १।१८ अ०)

शमीकुण (सं० पु०) शमी-कुण। (पा ५।२।२४) पका हुआ शमी फल।

शमीगर्भ (सं० पु०) शम्या गर्भः। १ ब्राह्मण। २ अग्नि।

शमीजात (सं० त्रि०) शमीगर्भ। (हरिवंश)

शमीधान (सं० क्ली०) शमीधान्य देखो।

शमीधान्य (सं० क्ली०) शमी यक्षादिकं, तद्धर्थे धान्यं। शिम्बी धान्य। मूंग, राजमाष, तिल और

कुलथी आदिको शमीधान्य कहते हैं। पर्याय—शमीज, शिम्बिज, शिम्बातर, सूप्य, वैदल। गुण—मधुर, रूक्ष, कषायरस, कटुपाकी, वातवर्द्धक, कफपित्तनाशक, मलमूत्रवर्द्धक और शैत्यगुणविशिष्ट। शमीधान्यमें मूंग और मसूर कुछ आध्मानकारक हैं, इसके सिवा और सभी अधिक परिमाणमें आध्मान उत्पन्न करते। (भावप्रकाश)

राजवल्लभ नामक वैद्यक ग्रन्थमें लिखा है, कि एक वर्षका शमीधान्य सबसे उत्तम, उससे ऊपरका वातवर्द्धक और रूक्ष तथा नया शमीधान्य प्रायः गुरु होता है। किन्तु इनमें जौ, गेहूं, उड़द और नया तिल ही प्रशस्त है। यह जितना ही पुराना होगा उतना ही विरस, रूक्ष और गुणभ्रष्ट होता है। विभिन्न ऋतुज, व्याधिविपन्न, असम्यक्परिपुष्ट, अनाकर्षित या कदर्य स्थानमें जात और अभिनव धान्यादि वैसा गुणशाली नहीं होता।

शमीनहुषी (सं० स्त्री०) द्यावा पृथ्वी, स्वर्गमर्त्य। (ऋक् १०।९२।१२)

शमीपत्रा (सं० स्त्री०) शम्याः पत्राणीव पत्राणि यस्याः। लज्जालुलता, लज्जावती नामकी लता।

शमीप्रस्थ (सं० पु०) स्थानभेद। (पा ६।२।८७)

शमीमय (सं० त्रि०) शमीविशिष्ट, शमीनिर्मित।

शमीर (सं० पु०) ह्रस्व शमी। (कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः। पा ५।३।८८) इति रः। शमी वृक्ष।

शमीरकन्द (सं० पु०) वाराहीकन्द, चमार आलू।

शमीवत् (सं० पु०) ऋषिभेद। (पा ५।३।११८)

शमीमन्दार (सं० क्ली०) शमी और मन्दारवृक्ष। पूर्वकालमें शमी और मन्दार वृक्षका बड़ा आदर था। ऋषियोंने इसका माहात्म्य कीर्त्तन किया है। गणेशपुराणके क्रीड़ाखण्डके ३७ अध्यायमें इसका विषय सविस्तार वर्णित है।

शमेश्वरी (सोमेश्वरी)—आसाम प्रदेशके गारो पहाड़ जिलेमें प्रवाहित एक नदी। तुरा नामक शैलाग्रासके पाससे निकल कर धीरे धीरे पूर्वकी ओर घूम तुरा शैलके उत्तर चली गई है, झरनोंसे मिल कर मैमनसिंह जिलेकी समतल भूमि पर आई है। इसके बाद धीर मन्थर गतिसे यह सुसङ्ग परगनेको कङ्कनदीमें मिली है। गारो पहाड़ पर शमेश्वरी जैसी बड़ी और जनसमाजकी उपयोगिनी नदी और कोई नहीं है। इस नदीसे गारोपर्वतके अधित्यकादेशके सिजू पर्यन्त जाया जा सकता, उसके बाद आगे बढ़नेका कोई उपाय नहीं है। यहां एक दानेदार पत्थरका स्तर रहनेसे नदी जल प्रतिहत हो कर प्रपाताकारमें गिरता है। इस प्रपातको पार कर फिरसे छोटी छोटी नाव पर चढ़ उक्त नदीसे बहुत दूर चले जाते हैं। शमेश्वर उपत्यकाका अन्वेषण कर पत्थरके नीचे कोयलेकी खान पाई गई है। नदीतीरवर्त्ती स्थानमें बढ़िया चूनापत्थर मिलता है। यहां चूना-पत्थरके स्तरमें बड़ी बड़ी गुहा देखी जाती है। सिजूके पास भी ऐसी एक गुहा है जिसके भीतरसे एक छोटा पहाड़ी झरना निकला है।

इस नदीमें बड़ी बड़ी मछली पाई जाती है, जिसे गारोजाति बड़े चावसे खाती है।

शम्मीप्य (सं० क्ली०) संपतन अथवा सम्यक् प्रकारसे भूमि पर पतन। (अथर्व ११।४।३)

शम्पक (सं० पु०) शापयभेद।

शम्पका (सं० स्त्री०) वृद्धि नामकी ओषधि।

शम्पा (सं० स्त्री०) विद्युत, बिजली।

शम्पाक (सं० पु०) १ आरग्वध, अमलतास। इसका फल स्वादुपाक, अग्निबलकारक, स्निग्ध और वातपित्तहर होता है। (सुश्रुत सू०) २ विपाक। ३ यावक, अलक्तक, आलता। ४ रन्धन। ५ हस्तिनापुरवासी एक ब्राह्मण। (महाभारत)

शम्पात (सं० पु०) १ आरग्वध, अमलतास। २ अभिशप्पात।

शम्ब (सं० पु०) शम्-वन् (शमेर्बन्। उण् ४।९४) यद्वा शमस्त्यस्येति शं-ब, (शंकम्भ्यां बभयुस्तितुतयसः। पा ५।२।१३८) १ इन्द्रका वज्र। (ऋक् १०।४२।७) २ लोहेकी जंजीर जो कमरके चारों तरफ पहनी जाय। ३ प्राचीन कालकी नापनेकी एक माप। ४ नियमित रूपसे हल जोतनेकी क्रिया। ५ दरिद्र। (त्रि०) ६ भाग्यवान्।

शम्बर (सं० क्ली०) १ सलिल, जल। २ व्रत। ३ वित्त।

(नानार्थरत्नमाला) ४ चित्र। ५ बौद्ध मतविशेष। (हेम और त्रिका) ६ मेघ, बादल। (पु०) ७ मृगविशेष, शम्बर मृग। ८ दैत्यविशेष।

ऋग्वेदके १म और २य मण्डलमें लिखा है, कि जब इन्द्रने शुष्ण, पिप्रु, कुयव और वृत्र इन चार असुरोंको संग्राममें मारा, उस समय उन्होंने शम्बरासुरकी पुरीको भी तहस-नहस कर डाला था। इस दुर्घटनाके बाद शम्बर इन्द्रके भयसे डर गया और बहुत दिनों तक पर्वत गुहामें छिपा रहा। ४० वर्ष तलाश करनेके बाद इन्द्रने उसे पकड़ा और मार डाला।

भागवतमें लिखा है, कि रुक्मिणीगर्भज सद्यःप्रसूत श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नको शम्बरासुरने चुरा कर समुद्रमें फेंक दिया। वहां एक मछली उस बालकको निगल गई। कुछ समय बाद एक धीवरने उस मछलीको पकड़ा और शम्बरासुरको उपहारस्वरूप दे दिया। पाचकोंने मछलीके पेटमें दिव्य-बालमूर्त्ति देख एक दूसरी पाचिका मायावतीको इस बातकी खबर दी। यह मायावती कामपत्नी रति थी, रुद्रकोपसे दग्ध पतिकी पुनः-प्राप्तिकी प्रतीक्षामें उस रुद्रके कथनानुसार हो वर्त्तमान शम्बरके घर सूपकार्यमें नियुक्त थी। मायावतीने जब पाचकोंके मुखसे सुना, कि मछलीके पेटसे बालक निकला है, तब वह नारदके पास गई और उनसे कुल वृत्तान्त कह सुनाया। 'तुम्हारा पति कामदेव ही प्रद्युम्नरूपमें जन्म ले कर चिरशत्रु शम्बरके षड़यन्त्रसे ऐसी हालतको प्राप्त हुआ है। यह सुन कर मायावती बड़े यत्नसे उसका लालन पालन करने लगी। बालक जब बड़ा हुआ, तब मायावतीने उसका तथा अपना पूर्ववृत्तान्त और शम्बरके निष्ठुर व्यवहारका हाल शुरूसे आखिर तक कह सुनाया। पीछे उसने उस बालकसे यह भी कहा, कि ऐसे परम दुराचार दुर्जय दुर्द्धर्ष शत्रुको क्षण भरके लिये भी इस संसारमें रहने देना उचित नहीं। अतएव मुझसे सर्वमायाविनाशिनी मायाविद्या ले कर शम्बरको मारनेका उपाय सोचो।

मायावतीकी प्रेरणासे युवकने वैसा ही करनेकी प्रतिज्ञा की। एक दिन वह शम्बरके पास हठात् आ पहुंचा और उसको खूब फटकारा। शम्बरने क्रुद्ध हो उस पर गदा चलाई, इस प्रकार दोनोंमें घोर युद्ध चला। पीछे उस युवकने एक तेज तलवार उठाई और किरीट तथा कुण्डलके साथ शम्बरका शिर काट डाला।

(भागवत १०।५५)

९ मत्स्यविशेष। १० जैनविशेष। ११ जिनभेद। १२ युद्ध। १३ श्रेष्ठ। १४ चित्रक वृक्ष। १५ लोध। १६ अर्जुनवृक्ष। १७ तालवृक्ष। १८ पर्वतभेद।

शम्बर (शम्भर) राजपूतानेके अन्तर्गत एक बड़ा ह्रद। यह अक्षा० २६°५२´ तथा देशा० ७४°५७´ से ७५°१६´ पू० के मध्य अवस्थित है। अजमीर राज्यसे ४० मील उत्तर-पश्चिम जहां आरावली गिरिश्रेणीकी उत्तरदिग्वाहिनी शाखाओंमें एक बड़ी जलप्रणालिकाकी सृष्टि की है, ठीक उसी गर्भसे इस ह्रदकी उत्पत्ति है। इससे जल निकलने का रास्ता नहीं है। वर्षा ऋतुमें जब यह भरा रहता है, उस समय इसकी लम्बाई २० मील और चौड़ाई २से १० मील तक होती है। उस समय कहीं कहीं इसे ४ फुट जल गहरा देखा जाता है। वर्षाके बाद भाद्र और आश्विन माससे ही इसका जल सूखने लगता है। कार्त्तिकसे वैशाख तक एकदम सूख जाता है। केवल एक मील लंबे और आध मील चौड़े स्थानमें जल रहता है। ह्रदका मध्यस्थल पार्श्ववर्त्ती स्थानोंसे कुछ अधिक गहरा है, इस कारण वहांका जल कभी भी नहीं सूखता। यहांके लोग इसे 'धनभण्डार' कहते हैं। यही विपरीत ओर 'माता-की देवी' नामक एक पर्वतशिखरके दक्षिण किनारेको भेद कर ह्रदगर्भकी ओर दौड़ गया है। यह धनभाण्डार पूर्व-पश्चिममें विस्तृत है।

ह्रद चारों ओर चूनपत्थर और लवण पर्वतसे घिरा है, इस कारण इस स्थानकी भूमि अनुर्वर तथा वृक्ष लतादि परिशून्य मरुस्थली सदृश है। इसके बीच बीचमें पार्मीय स्तर (Permain system) का पत्थर दिखाई देता है। जनसाधारणका विश्वास है, कि लवणमय पथरीला जलप्रवाहसे विघौत हो कर ह्रदके जलको लवणाक्त बनाता है। ह्रदकी मिट्टी काली है।

ग्रीष्मऋतुमें ह्रदका प्राकृतिक सौन्दर्य बड़ा ही मनोहर और विस्मयोद्दीपक है। दक्षिणदिशाके जलप्रणालिका देखनेसे जो सब छोटी छोटी बालूकी भीत दिखाई देती

है, उनमेंसे किसी एकके ऊपर खड़ा हो कर चारों ओर देखनेसे आगे और पीछे विस्तीर्ण तुषारावृत स्थान सा नजर आता है। केवल खण्ड खण्ड जलराशि और उन सब स्थानोंमें उतरनेके रास्तेको छोड़ और कुछ भी उस रजतधवल प्रान्तरकी एकाग्रताको भङ्ग करनेमें समर्थ नहीं है। यथार्थमें यह स्थान तुषारमण्डित नहीं है, मिट्टीके ऊपर नमकके पड़ जानेसे ऐसा सफेद फूलके बिछावनकी तरह दिखाई देता है।

इस स्थानसे नमक उत्पन्न होता है, इस कारण बहुत पहले हीसे हिन्दू और मुसलमान राजे इस मूल्यवान् सम्पत्तिको अधिकार करनेकी कोशिश करते आ रहे थे। मुगल सम्राट् अकबरशाह और उनके वंशधरोंके शासनकालसे ले कर अहम्मदशाहके दिल्ली सिंहासनाधिकार तक किसी राजदरबारकी देखरेखमें यह नमक बनानेका कारखाना खुला था। आखिर यह जयपुर और जोधपुरके राजपूत राजाओंके हाथ आया। १८३५ ई०से १८४४ ई० तक राजपूतोंने अङ्गरेजी राज्यसीमाको अतिक्रम कर नाना स्थानोंमें उपद्रव मचाया। डकैतोंके अत्याचारका दमन करनेके लिये इस समय वृटिश-सरकारको बहुत क्षतिग्रस्त होना पड़ा था। उस क्षतिपूर्त्तिके लिये भारत सरकारने लवण बनानेका भार अपने हाथ ले लिया। किन्तु १७वीं सदीसे जयपुर और जोधपुरकी राजसरकार जिस तरह लवण बनाती आ रही थी, १८७० ई० तक यह उसी तरह बनाती रही। पीछे अंगरेज सरकारने उक्त दोनों राजाओंसे एक स्वतन्त्र सन्धि कर ली और उसी सन्धिके अनुसार यह स्थान इजारा ले लिया। इस हृदका पूर्वी किनारा और दक्षिणका कुछ अंश जयपुर और जोधपुरकी मिलित सम्पत्ति है, किन्तु बाकी सभी जयपुराधिपके अधिकृत है।

मिट्टीके ऊपर नमक फुट आनेसे मजूर टोकरी ले कर हृदके किनारे आते और नमककी पपड़ीको टोकरीमें भर कर कारखाना ले जाते हैं। वह नमक स्थानके गुणानुसार तथा द्रव्यविशेषके आणविक संमिश्रणके कारण लाल नील वर्ण धारण करता है। कभी छिछले लोहेके कड़ाहमें और कभी गहरे चहबच्चेमें नमकका पानी डाल कर नमक बनाते हैं। इसे जनसाधारण शम्बर या साँभर नमक कहते हैं। पंजाब, युक्तप्रदेश और मध्यभारतके हिन्दू प्रधान देशोंमें यह लवण प्रधानतः प्रचलित है। जयपुर और जोधपुरके मिलित शासनाधिकारमें स्थापित शम्बर नगर और हृदके दूसरे किनारेमें अवस्थित जोधपुराधिकृत नवा और गुधा नगरके साथ राजपूताना-मालव रेलवेका संयोग होनेके कारण यहांका नमक दूसरे दूसरे स्थानोंमें भी भेजा जाने लगा है।

१८वीं सदीके आरम्भमें जो सब विदेशी भ्रमणकारी और देशीय तीर्थयात्री शम्बर हृद देख गये थे, उनके विवरणमें लिखा है, कि यह हृद लम्बाईमें ५० मील और चौड़ाईमें १० मील था। अभी उसका आकार बहुत छोटा हो गया है।

शम्बर—राजपूतानेके शम्बरहृदके किनारे अवस्थित एक नगर। यह जयपुर और जोधपुरराजके अधीन है। जयपुरनगरसे यह ३९ मील दक्षिण-पश्चिममें पड़ता है। यहां राजपूताना-मालव रेलवेकी शम्बर शाखाका एक स्टेशन है।

शम्बरकन्द (सं० पु०) शम्बरः नामका कन्दः। वाराहीकन्द, शूकरकन्द।

शम्बरचन्दन (सं० क्लो०) एक प्रकारका चन्दन जो शम्बर पर्वत पर होता है। इसे शबर या बर्वर चन्दन भी कहते हैं। पर्याय—कैरात, बहलगंध, वल्य, गन्धकाष्ठ, कैरातक, तैलगंध। गुण—शीतल, तिक्त, उष्ण तथा वात, श्लेष्म, श्रम, पित्त, विस्फोटक, पामादिकुष्ठ, तृष्णा, ताप और मोहनाशक। (राजनि०)

शम्बरदेशज (सं० पु०) शुक्लरोध्र, सफेद लोध। (वैद्यकनिघ०)

शम्बरपादप (सं० पु०) शुक्लरोध्र, सफेद लोध।

शम्बरमाया (सं० स्त्री०) १ इन्द्रजाल, जादू। २ शक्ति।

शम्बरसूदन (सं० पु०) शम्बरं सूदयति सूद-ल्यु। कामदेव।

शम्बरहत्य (सं० क्ली०) शंबर-हन क्यप्। शंबरहनन, शंबरवध। (ऋक् ११२।१४)

शम्बरारि (सं० पु०) शंबरस्यारिः। १ शंबरका शत्रु

(नानार्थरत्नमाला) ४ चित्र। ५ बौद्ध मतविशेष। (हेम और गिर) ६ मेघ, बादल। (पु०) ७ मृगविशेष, शम्बर मृग। ८ दैत्यविशेष।

ऋग्वेदके १म और २य मण्डलमें लिखा है, कि जब इन्द्रने शुष्ण, पिप्रु, कुयव और वृत्र इन चार असुरोंको संग्राममें मारा, उस समय उन्होंने शम्बरासुरकी पुरीको भी तहस नहस कर डाला था। इस दुर्घटनाके बाद शम्बर इन्द्रके भयसे डर गया और बहुत दिनों तक पर्वत गुहामें छिपा रहा। ४० वर्ष तलाश करनेके बाद इन्द्रने उसे पकड़ा और मार डाला।

भागवतमें लिखा है, कि रुक्मिणीगर्भज सद्यःप्रसूत श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नको शम्बरासुरने चुरा कर समुद्रमें फेंक दिया। वहां एक मछली उस बालकको निगल गई। कुछ समय बाद एक धीवरने उस मछलीको पकड़ा और शम्बरासुरको उपहारस्वरूप दे दिया। पाचकोंने मछलीके पेटमें दिव्य-बालमूर्त्ति देख एक दूसरी पाचिका मायावतीको इस बातकी खबर दी। यह मायावती कामपत्नी रति थी, रुद्रकोपसे दग्ध पतिकी पुनःप्राप्तिकी प्रतीक्षामें उस रुद्रके कथनानुसार ही वर्त्तमान शम्बरके घर सूपकार्यमें नियुक्त थी। मायावतीने जब पाचकोंके मुखसे सुना, कि मछलीके पेटसे बालक निकला है, तब वह नारदके पास गई और उनसे कुल वृत्तान्त कह सुनाया। तुम्हारा पति कामदेव ही प्रद्युम्नरूपमें जन्म ले कर चिरशत्रु शम्बरके षड्यन्त्रसे ऐसी हालतको प्राप्त हुआ है। यह सुन कर मायावती बड़े यत्नसे उसका लालन पालन करने लगी। बालक जब बड़ा हुआ, तब मायावतीने उसका तथा अपना पूर्ववृत्तान्त और शम्बरके निष्ठुर व्यवहारका हाल शुरूसे आखिर तक कह सुनाया। पीछे उसने उस बालकसे यह भी कहा, कि ऐसे परम दुराचार दुर्जय दुर्द्धर्ष शत्रुको क्षण भरके लिये भी इस संसारमें रहने देना उचित नहीं। अतएव गुरुसे सर्वमायाविनाशिनी मायाविद्या ले कर शम्बरको मारनेका उपाय सोचो।

मायावतीकी प्ररोचनासे युवकने वैसा ही करनेकी प्रतिज्ञा की। एक दिन वह शम्बरके पास हठात् आ पहुंचा और उसको खूब फटकारा। शम्बरने क्रुद्ध हो उस पर गदा चलाई, इस प्रकार दोनोंमें घोर युद्ध चला। पीछे उस युवकने एक तेज तलवार उठाई और किरीट तथा कुण्डलके साथ शम्बरका सिर काट डाला। (भागवत १०।५५.)

९ मत्स्यविशेष। १० शैवविशेष। ११ जिनभेद। १२ युद्ध। १३ श्रेष्ठ। १४ चित्रक वृक्ष। १५ लोध। १६ अर्जुनवृक्ष। १७ तालवृक्ष। १८ पर्वतभेद।

शम्बर (शाम्भर) राजपूतानेके अन्तर्गत एक बड़ा ह्रद। यह अक्षा० २६°५२´ तथा देशा० ७४°५७´ से ७५°१६´ पू०के मध्य अवस्थित है। अजमीर राज्यसे ४० मील उत्तर-पश्चिम जहां आरावल्ली गिरिश्रेणीकी उत्तरदिग्वाहिनी शाखाओंमें एक बड़ी अववाहिकाकी सृष्टि की है, ठीक उसी गर्भसे इस ह्रदकी उत्पत्ति है। इससे जल निकलनेका रास्ता नहीं है। वर्षा ऋतुमें जब यह भर रहता है, उस समय इसकी लम्बाई २० मील और चौड़ाई ३से १० मील तक होती है। उस समय कहीं कहीं १से ४ फुट जल गहरा देखा जाता है। वर्षाके बाद भाद्र और आश्विन माससे ही इसका जल सूखने लगता है। कार्त्तिकसे वैशाख तक एकदम सूख जाता है। केवल एक मील लंबे और आध मील चौड़े स्थानमें जल रहता है। ह्रदका मध्यस्थल पार्श्ववर्त्ती स्थानोंसे कुछ अधिक गहरा है, इस कारण वहांका जल कभी भी नहीं सूखता। वहांके लोग इसे 'धनभण्डार' कहते हैं। वहीं विपरीत ओर 'माता-की देवी' नामक एक पर्वतशिखरके दक्षिणी किनारेको भेद कर ह्रदगर्भकी ओर दौड़ गया है। यह धनभाण्डार पूर्व-पश्चिममें विस्तृत है।

ह्रद चारों ओर चूनपत्थर और लवण पर्वतसे घिरा है, इस कारण इस स्थानकी भूमि अनुर्वर तथा वृक्षलतादि परिशून्य मरुस्थली सदृश है। इसके बीच बीचमें पार्मीय स्तर (Permain system) का पत्थर दिखाई देता है। जनसाधारणका विश्वास है, कि लवणमय पथरीला जलप्रवाहसे विधौत हो कर ह्रदके जलको लवणाक्त बनाता है। ह्रदकी मिट्टी काली है।

ग्रीष्मऋतुमें ह्रदका प्राकृतिक सौन्दर्य बड़ा ही मनोहर और विस्मयोद्दीपक है। दक्षिणदिशाके अववाहिका देशमें जो सब छोटी छोटी बालूकी भीत दिखाई देती

है, उनमेंसे किसी एकके ऊपर खड़ा हो कर चारों ओर देखनेसे आगे और पीछे विस्तीर्ण तुषारावृत स्थान सा नजर आता है। केवल खण्ड खण्ड जलराशि और उन सब स्थानोंमें उतरनेके रास्तेको छोड़ और कुछ भी उस रजतधवल प्रान्तरकी एकाग्रताको भङ्ग करनेमें समर्थ नहीं है। यथार्थमें यह स्थान तुषारमण्डित नहीं है, मिट्टीके ऊपर नमकके पड़ जानेसे ऐसा सफेद फूलके बिछावनकी तरह दिखाई देता है।

इस स्थानसे नमक उत्पन्न होता है, इस कारण बहुत पहले हीसे हिन्दू और मुसलमान राजे इस मूल्यवान् सम्पत्तिको अधिकार करनेकी कोशिश करते आ रहे थे। मुगल सम्राट् अकबरशाह और उनके वंशधरोंके शासनकालसे ले कर अहमदशाहके दिल्ली सिंहासनाधिकार तक किसी राजदरबारकी देखरेखमें यह नमक बनानेका कारखाना खुला था। आखिर यह जयपुर और जोधपुरके राजपूत राजाओंके हाथ आया। १८३५ ई०से १८४४ ई० तक राजपूतोंने अङ्गरेजी राज्यसीमाको अतिक्रम कर नाना स्थानोंमें उपद्रव मचाया। डकैतोंके अत्याचारका दमन करनेके लिये इस समय वृटिश-सरकारको बहुत क्षतिग्रस्त होना पड़ा था। उस क्षतिपूर्त्तिके लिये भारत सरकारने लवण बनानेका भार अपने हाथ ले लिया। किन्तु १७वीं सदीसे जयपुर और जोधपुरकी राजसरकार जिस तरह लवण बनाती आ रही थी, १८७० ई० तक वह उसी तरह बनाती रही। पीछे अंगरेज सरकारने उक्त दोनों राजाओंसे एक स्वतन्त्र सन्धि कर ली और उसी सन्धिके अनुसार यह स्थान इजारा ले लिया। इस हृदका पूर्वी किनारा और दक्षिणका कुछ अंश जयपुर और जोधपुरकी मिलित सम्पत्ति है, किन्तु बाकी सभी जयपुराधिपके अधिकृत है।

मिट्टीके ऊपर नमक फुट जानेसे मजूर टोकरी ले कर हृदके किनारे आते और नमककी पपड़ीको टोकरीमें भर कर कारखाना ले जाते हैं। वह नमक स्थानके गुणानुसार तथा द्रव्यविशेषके आणविक संमिश्रणके कारण लाल नील वर्ण धारण करता है। कभी छिछले लोहेके कड़ाहमें और कभी गहरे चहवच्चेमें नमकका पानी डाल कर नमक बनाते हैं। इसे जनसाधारण शम्बर या साँभर नमक कहते हैं। पंजाब, युक्तप्रदेश और मध्यभारतके हिन्दूप्रधान देशोंमें यह लवण प्रधानतः प्रचलित है। जयपुर और जोधपुरके मिलित शासनाधिकारसे स्थापित शम्बर नगर और हृदके दूसरे किनारेमें अवस्थित जोधपुराधिकृत नवा और गुधा नगरके साथ राजपूताना-मालव रेलवेका संयोग होनेके कारण यहांका नमक दूसरे दूसरे स्थानोंमें भी भेजा जाने लगा है।

१८वीं सदीके आरम्भमें जो सब विदेशी भ्रमणकारी और देशीय तीर्थयात्री शम्बर हृद देख गये थे, उनके विवरणमें लिखा है, कि यह हृद लम्बाईमें ५० मील और चौड़ाईमें १० मील था। अभी उसका आकार बहुत छोटा हो गया है।

शम्बर—राजपूतानेके शम्बरहृदके किनारे अवस्थित एक नगर। यह जयपुर और जोधपुरराजके अधीन है। जयपुरनगरसे यह ३६ मील दक्षिण-पश्चिममें पड़ता है। यहां राजपूताना-मालव रेलवेकी शम्बर शाखाका एक स्टेशन है।

शम्बरकन्द (सं० पु०) शम्बरः नामका कन्दः। वाराहीकन्द, शूकरकन्द।

शम्बरचन्दन (सं० क्ली०) एक प्रकारका चन्दन जो शम्बर पर्वत पर होता है। इसे शबर या बर्बर चन्दन भी कहते हैं। पर्याय—कैरात, बहलगंध, वल्य, गन्धकाष्ठ, कैरातक, तैलगंध। गुण—शीतल, तिक्त, उष्ण तथा वात, श्लेष्म, श्रम, पित्त, विस्फोटक, पामादिकुष्ठ, तृष्णा, ताप और मोहनाशक। (राजनि०)

शम्बरदेशज (सं० पु०) शुक्ररोध्र, सफेद लोध। (वैद्यकनिघ०)

शम्बरपादप (सं० पु०) शुक्लरोध्र, सफेद लोध।

शम्बरमाया (सं० स्त्री०) १ इन्द्रजाल, जादू। २ शक्ति।

शम्बरसूदन (सं० पु०) शम्बरं सूदयति सूद-ल्यु। कामदेव।

शम्बरहत्य (सं० क्ली०) शंबर-हन क्यप्। शंबरहनन, शंबरवध। (ऋक् १।११२।१४)

शम्बरारि (सं० पु०) शंबरस्यारिः। १ शंबरका शत्रु

अर्थात् कामदेव, मदन। २ प्रद्युम्न जो कामदेवके अवतार कहे जाते हैं।

शम्बराहार (सं० पु०) वनचर, जरदेरी।

शम्बरी (सं० स्त्री०) १ आखुपर्णी लता, मूसाकानी। २ माया। ३ ऋष्यप्रोक्तप। ४ द्रवन्तीक्षुप, बड़ी दन्ती, अगरेंडा।

शम्बरोगन्धा (सं० स्त्री०) वनतुलसी, बर्बरो।

शम्बरोद्भव (सं० पु०) शुक्लरोध, सफेद लोध। (वाभट उत्तरस्थान)

शम्बल (सं० पु० क्ली०) शम्ब-कलच् (उण् ११०८) १ कुल। २ यात्राके समय रास्तेके लिये भोजन-सामग्री, पाथेय। ३ तट, किनारा। ४ ईर्षा, द्वेष। ५ शम्बर देखो।

शम्बलपुर (सम्बलपुर)—विहार और उड़ीसेका एक जिला। यह अक्षा० २०°४५' से २१°५७' उ० तथा देशा० ८२°३८' से ८४°२६' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३७७३ वर्गमील है। इसके उत्तरमें छोटानागपुर, पूर्व और दक्षिणमें कटक जिला तथा पश्चिममें विलासपुर और रायपुर जिला है। यह छत्तीसगढ़ विभागकी पूर्वसीमा पर अवस्थित था। शम्बलपुर शहरमें जिलेका विचार-सदर प्रतिष्ठित है।

पहले यह छत्तीसगढ़ विभागके अन्तर्भुक्त था, किन्तु प्राकृतिक, भौगोलिक या ऐतिहासिक संश्रय ले कर गणना करनेसे उसे छत्तीसगढ़के सीमायत्त नहीं कर सकते। खालसा या गवर्मेण्टके अधिकृत जिलेका अंश महानदीके उपत्यकादेशमें फैला हुआ है तथा यह बामड़ा, करोण्ड, पटना, रायगढ़, रैराकोल और शारणगढ़, सोनपुर इन सात सामन्तराज्योंके केन्द्ररूपमें गिना जाता है।

इस जिले सर्वत्र गण्डशैलमाला दिखाई देती है। पर्वतोंके नीचे भी ऊंची नीची जमीन है। यहांका 'बड़ा पहाड़' ३५० वर्गमील विस्तृत एक गिरिश्रेणी है। देवीगढ़ इसकी सबसे ऊंची चोटी है। समतलक्षेत्रसे इसकी ऊंचाई प्रायः २२६७ फुट है।

ऊपर जिन सब गण्डशैलमालाओंका उल्लेख किया गया, उनका अधिकांश महानदीके मोड़ पर अवस्थित है; मानो यह नदी पर्वतोंको चारों ओरसे घेरे हुई है। किन्तु दक्षिण पश्चिमकी ओर एक शैलश्रेणी ३० मील तक आ कर सिंघोड़ाघाट नामक गिरिसङ्कट तक चली आई है। इस स्थानसे रायपुरसे शंबलपुर आनेका रास्ता घूम गया है। सिंघोड़ाघाटसे गिरिश्रेणी दक्षिण आ कर फुलझरसे पुनः पश्चिमकी ओर चली है। इस फुलझरमें ही विख्यात गोंड़ डकैतोंका वास है। सिंघोड़ासङ्कटमें छत्तीसगढ़के सम्यसैनादलके साथ असभ्य गोंड़सरदारोंका कई बार युद्ध हुआ था। १८५७ के गदरके समय शम्बलपुरमें शांतिस्थापनके लिये अङ्गरेज-सेनापति कप्तान उड, मेजर सेक्सपियर और लेफ्टेनाण्ट राइबोल् दलबलके साथ इसी रास्ते गये थे। युद्धमें विद्रोहियोंने इस गिरिसङ्कटमें अङ्गरेजीसेनादलको अच्छी तरह परास्त किया था। इसके सिवा झाड़घाटीकी गिरिमाला भी विशेष उल्लेखयोग्य है। यह संबलपुर नगरसे १० कोस उत्तर छोटा नागपुर जानेके रास्तेको पार कर गई है। इस शैल पर भी उस समय विद्रोहिदलने एक दुर्भेद्य व्यूह रचा था। इसका सर्वोच्चशिखर १६६३ फुट ऊंचा है। दक्षिणकी ओर महानदीके एक सीधमें कुछ गण्डशैल खण्ड खण्ड भावमें ३० मील तक फैले हुए हैं। उनमेंसे मण्डर १५६३ फुट और बोड़ापाली २२३१ फुट ऊंचे हैं। जिलेमें जो सब खण्डशैल विराजित हैं, उनमें सुनारि १५४६ फुट, पेला १४५० फुट और रसोड़ा १६४६ फुट ऊंचे हैं।

किंवदन्ती है, कि राजा नरसिंहदेवके भाई बलरामदेव शम्बलपुरके प्रथम राजा थे। महाराज नरसिंहदेव पटनाके १२ वें राजा थे। वे उस समय गड़जात राज्योंमें प्रधान थे। पटना देखो।

राजा बलरामने अपने भाईसे महानदीकी उस शाखाके दूसरे किनारे अवस्थित जङ्गलप्रदेश जागीरस्वरूप पाया था। उस जङ्गलको काट कर उन्होंने यहां एक छोटा राज्य बसाया तथा अपने बाहुबलसे सरगुजा, गाङ्गपुर, बोनाई और बामड़ा-राजाओंको युद्धमें पराजित कर अपनी राज्यसीमा बढ़ाई थी। उनके बड़े लड़के हरिनारायण देव १४६३ ई०को पितृसम्पत्तिके अधिकारी हुए।

उन्होंने छोटे लड़के मदनपालको वर्त्तमान शोनपुरराज्य दे दिया था। उन्हींके वंशधर आज भी उस सम्पत्तिका भोग कर रहे हैं।

हरिनारायणके बाद दो सदी तक शम्बलपुर राज्यको खूब श्रीवृद्धि हुई तथा उसके साथ ही साथ पटनाका प्रभूत प्रभाव जाता रहा। शंबलपुर-राजशक्तिने इस समय बलवीर्यमें पुष्ट हो सामन्तराज्योंमें श्रीर्ष-स्थान अधिकार कर लिया था। १७३२ ई०में राजा अभयसिंह शम्बलपुर-सिंहासन पर अधिष्ठित हुए। सर्व-ग्रासी महाराष्ट्रशक्ति जब इस सामन्तराजपुञ्जके राज्य पर चढ़ाई करनेके लिये तय्यार हुई, तब राजा अभयसिंह ने महाराष्ट्रीय सेनाके विरुद्ध हथियार उठाया और परास्त किया। इस समय मराठा-सरदारने कुछ बड़ी कमानें कटकसे महानदीके रास्ते नागपुर भेज दी। शंबलपुर-राजमन्त्री अकबररायने यह संवाद पा कर कमान दखल करनेका संकल्प किया। उन्होंने चुपकेसे षड़यन्त्र करके नाविकोंके द्वारा नावकी पेंदोको कटवा दिया जिससे कमानके साथ कमानवाही सेना गम्भीर जलमें डूब गया। पीछे अकबर रायने कमानोंको समुद्र-मेंसे निकाल कर शंबलपुर दुर्गमें स्थापित किया। नाग-पुरपतिको जब यह समाचार मिला, तब उन्होंने शंबल-पुरपतिको दण्ड देने तथा कमानोंको फिरसे दखल करने-के लिये मराठी सेना भेजी थी। दुःखका विषय है, कि शंबलपुरमें आ कर सभी युद्धमें खेत रहे। जो बच गये थे, उन्होंने नागपुरमें भाग कर प्राणरक्षा की थी।

१८६० ई०में अभयसिंहके वंशधर जेठसिंहके शासन-कालमें फिरसे महाराष्ट्रदलके साथ शंबलपुरराजका विवाद खड़ा हुआ। इस समय नागपुरराजके आत्मीय नानासाहब दलबलके साथ जगन्नाथदेवके दर्शनके लिये पुरीधाम आते। सारनगढ़, शंबलपुर, शोनपुर और बउदके अधिवासियोंने इसी मौकेमें नानासाहब पर आक्रमण कर दिया। नानासाहब जरा भी न डरे और सम्मुख युद्धमें डट गये। विपक्ष दलकी गतिविधि देख कर वे कटकसे लौट आये थे। यहां कुछ मराठी सेना को अपने दलमें मिला कर वे दूने उत्साहसे सामन्त सरदारोंको आक्रमण करने अग्रसर हुए। दोनों दलमें कई बार घमसान युद्धके बाद नानासाहबने शोनपुर-सर-दार पृथ्वीसिंह और बउदके सरदारको कैद कर लिया। इस समय वृष्टिकी मूषलाधारसे सेनादलको भारी कष्ट भोगना पड़ा था। महाराष्ट्र सेनाको इस कारण आगे बढ़नेका साहस न हुआ। वर्षाके बाद नानासाहब नव-बलसे बलवान् हो शम्बलपुर राजधानीके सामने आ धमके और महाराष्ट्रसेना द्वारा नगरका अवरोध किया।

इधर राजा जेठसिंहने पूर्वाह्णकालमें महाराष्ट्रसेना-का आगमन संवाद पा कर दुर्गको अच्छी तरह सुरक्षित कर लिया। पांच मास अवरोधके बाद नाना साहबने दीवालको लांघ और सलमाईका द्वार तोड़ दुर्गमें प्रवेश किया। यहां दोनों दलमें घोर संघर्ष उपस्थित हुआ। युद्धमें शंबलपुरराज पराजित हुए। दुर्ग मराठोंके हाथ लगा। राजा जेठसिंह और उनके पुत्र महाराज शा बन्दी हो कर नागपुरमें लाये गये।

इस समय नागपुरराजकी ओरसे भूपसिंह नामक एक मराठा जमींदारने शंबलपुरका शासनभार अपने हाथ लिया। मौका देख कर उन्होंने अपनेको स्वाधीन राज कह कर घोषित कर दिया। नागपुरपति इस पर बड़े बिगड़े और उन्हें दण्ड देनेके लिये महाराष्ट्रसेना-को भेजा। भूपसिंहने कोई उपाय न देख सामन्तराजकी शरण ली और उनकी सहायतासे सिंघोड़ा-सङ्कटमें महा-राष्ट्र दलको परास्त किया। नागपुरमें यह संवाद पहुं-चते ही नागपुरपतिने खामरा गांवधिया नामक एक महाराष्ट्रसेनापतिके अधीन फिरसे एक दल सेना भेजी। भूपसिंहने पहले गांवधियाका ग्राम जला दिया था। यह ले कर दोनोंमें कट्टर दुश्मनी थी। गांवधियाने दल-बलके साथ आ कर सिंघोड़ा-सङ्कटको अधिकार कर लिया और भूपसिंहको हटाया। युद्धमें हार खा कर भूपसिंह शंबलपुर भाग आये। यहांसे वे राजा जेठसिंहकी रानीको ले कर कोलाबीराकी ओर भागे और महाराष्ट्रक्रोधसे आत्मरक्षा करनेकी कोशिश की। इसके बाद उन्होंने रानीकी ओरसे अंगरेजोंकी सहायता मांगी। १८०४ ई०में रामगढ़के राज-सैन्यके साथ अंग-रेज सेनापति कप्तान रफसेज शंबलपुर भेजे गये। नाग-पुरराज रघुजी भोंसलेने अंगरेजोंके इस व्यवहार पर

विरक्त हो अंगरेज गवर्मेण्टको सूचित कर दिया, "मेरे लिए राज्यमें अंगरेजोंकी प्रतिपक्षता करनेकी कोई जरूरत नहीं।" अंगरेज गवर्मेण्टने पूर्वस्वीकृत सन्धिके अनुसार नागपुरपतिको सम्बलपुर छोड़ दिया।

इस समयसे सम्बलपुर जिला कई वर्षोंके लिये मराठोंके शासनाधीन रहा। राजा जैतसिंह और उनके लड़के उस समय चंदामें बंदी थे। किन्तु मेजर रफसेजने सम्बलपुरसे आ कर जैतसिंहकी अवस्थाका वर्णन करते हुए अंगरेज गवर्मेण्टसे इस बातका निवेदन किया, कि सम्बलपुर राज्य जैतसिंहको मिलना चाहिये। फलतः १८१७ ई०में जैतसिंह पुनः सम्बलपुरके सिंहासन पर बैठे, किन्तु एक वर्ष बाद ही जैतसिंहकी मृत्यु हुई। कई मास तक सम्बलपुरराज्य राजशून्य रहा तथा अंगरेज गवर्मेण्टने उसका शासनकार्य परिदर्शन किया। आखिर अंगरेज गवर्मेण्टके अनुग्रहसे महाराज साह सिंहासन पर बैठे, किन्तु उन्होंने अपने पूर्वपुरुषोंकी तरह सामन्त राजाओंमें फिर शीर्षस्थान नहीं पाया। इस समय मेजर राफसेज अंगरेज गवर्मेण्टकी ओरसे सम्बलपुरमें असिष्टाण्ट एजेण्टरूपमें नियुक्त हुए। १८२७ ई०में महाराज साहकी मृत्यु हुई। पीछे उनकी विधवा रानी मोहनकुमारी राजसिंहासन पर बैठी।

इस समय सुरेन्द्र साह और गोविन्द सिंह नामक दो चौहान पोतेने अपनेको सामन्तवंशके प्रकृत उत्तराधिकारी बता कर गद्दी पर बैठनेकी चेष्टा की। इस सूत्रसे राज्यमें घोर विशृङ्खला उपस्थित हुई। विप्लवकारियोंने राजशक्तिकी अवमानना कर सम्बलपुर राजधानीके निकटवर्ती ग्रामोंको लूटा। इस पर एजेण्ट निश्चिन्त न रह सके। लेफ्टेनाण्ट हिगिन्स द्वारा विद्रोही दल भगाये जाने पर भी उन्होंने हजारीबागसे कप्तान विलकिन्सनको सम्बलपुरमें बुलाया। विलकिन्सनने कई विद्रोहियोंको फांसी पर लटका दिया। इसके बाद उन्होंने रानीको राज्यच्युत करके उनकी जगह पर नारायण सिंह नामक एक व्यक्तिको सम्बलपुरके सिंहासन पर बैठाया। यह व्यक्ति सम्बलपुरके भूतपूर्व राजा बालियार सिंहके औरस और किसी नीच जातिकी रमणीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था।

नारायणकी इच्छा नहीं रहते हुए भी उसने राज्यपद ग्रहण किया। क्योंकि वह जानता था, कि अंगरेजोंके जानेके बाद ही उस पर विपत्तिका पहाड़ टूट पड़ेगा। आखिर हुआ भी यही। लखनपुरके गोंड़ सरदार बलभद्र साहने पहले ही सम्बलपुरराजके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। आखिर वह बड़पहाड़ शैल पर मारा गया।

१८३९ ई०में मेजर उसले सम्बलपुरके असिष्टाण्ट एजेण्ट नियुक्त हुए। इस समय पूर्वोक्त सुरेन्द्र साहने फिरसे सम्बलपुर राज्य पानेकी आशासे अपनेको ४र्थ राजा मधुकर शाके वंशोद्भव कह कर घोषित किया। इस सूत्रसे राज्यमें एक घोर विप्लव खड़ा हुआ। १८४० ई०में अपने दो आत्मीयकी सहायतासे रामपुरराज दुर्जय सिंहके पिता और पुत्रको मार डाला। इस अपराध पर वे जीवन भरके लिये छोटानागपुर जेलमें बन्दी हुए थे।

१८४९ ई०में नारायणसिंहकी मृत्यु हुई तथा सम्बलपुर अङ्गरेज गवर्मेण्टके हाथ आया। अङ्गरेज गवर्मेण्टने सम्बलपुरकी सम्पत्ति हाथमें ले कर ही चार आना राजस्व बढ़ा दिया तथा राजस्व देवोत्तर या ब्रह्मोत्तर निष्कर जमीन जब्त कर ली। इससे ब्राह्मणप्रधान सम्बलपुरमें लोगोंको भारी असन्तोष हो गया। १८५४ ई०में फिरसे चार आना कर बढ़ाया गया। इससे विरक्त हो स्थानीय ब्राह्मणोंने रांचीमें इस विषयके प्रतिकारार्थ आवेदन किया। किन्तु कोई फल न होनेसे धुंआंकी आग धीरे धीरे धधक उठी। १८५७ ई०के गदरमें उस वह्निको प्रदीप्त शिखाने सम्बलपुरके शासनयन्त्रको जला डालनेकी कोशिश की। सिपाहियोंने जेलखानेसे सुरेन्द्रसाह और उनके भाइयोंको मुक्त कर दिया। पिंजड़ेसे खुले हुए सिंहकी तरह सुरेन्द्रसाह उसी समय सम्बलपुर आ धमके। उनके प्रतिद्वन्द्वी राज्यापहारी गोविन्दसिंहको छोड़ अन्यान्य सभी सरदारोंने इस विद्रोहमें उनका साथ दिया था।

सुरेन्द्रसाहने भारी सेना संग्रह कर अपनेको सम्बलपुरका अधीश्वर बतला कर घोषित किया। प्राचीन भग्न दुर्ग उनके आवासस्थानमें परिणत हुआ। विपक्ष अङ्गरेजोंको उन्हें दण्ड देनेके लिये अवसर होते देर थे निकटस्थ

हो गये और सबोंके परामर्शसे वे अङ्गरेजोंके हाथ आत्मसमर्पण करेंगे, ऐसा स्थिर हुआ। किन्तु अकस्मात् उनकी बुद्धि पलट गई। मौका देख कर उन्होंने दुर्गको छोड़ जङ्गलावृत पहाड़ीदेशमें आश्रय लिया तथा विद्रोहियोंसे मिल कर अंगरेजोंके साथ युद्ध करने लगे। १८६० ई० तक इसी तरह चलता रहा। अंगरेज गवर्मेण्ट वृथा चेष्टा करके उनके पीछे पड़ी, किन्तु कहीं भी उनका पता न चला। उनके अधीनस्थ दलबल अंग्रेजोंके विरुद्ध मनमाना अत्याचार करने लगे। जिन सब ग्रामवासियोंने गवर्मेण्टका पक्ष लिया था, दुर्वृत्तोंने वे सब गांव लूट कर जला दिये थे। यूरोपीय कर्मचारी डा० मूर मारा गया। बड़पहाड़के समीप विद्रोहिदल लेफ्टेनाण्ट उड्‌ब्रिजको मार उसका शिर काट ले गया। राजद्रोहीके प्रति क्षमासूचक घोषणापत्र (*Proclamation of amnesty*) जारी किया गया, फिर भी विद्रोही दल शान्त न हुआ। १८६१ ई०में मेजर इम्पे अङ्गरेजी एजेण्ट हो कर शंबलपुर आये। उन्होंने विद्रोहियोंके विरुद्ध कठोर शासन दण्ड चलाया और प्रजावर्गकी प्रतिप्रद शासननीतिका अवलंबन करनेके लिये संकल्प किया। उन्होंने पहले सामन्तोंको यथेष्ट पुरस्कारका लोभ दे कर वशीभूत कर लिया। इन लोगोंके अङ्गरेजोंके हाथ आत्मसमर्पण करने पर महामति इम्पे उनकी सहायतासे विद्रोहदमन करनेमें समर्थ हुए थे। १८६२ ई०में विद्रोह जड़से उखाड़ दिया गया। सुरेन्द्रशाहने स्वयं अङ्गरेजोंके हाथ आत्मसमर्पण किया।

दूसरे वर्ष फिरसे विप्लवका सूत्रपात हुआ था। किंतु इस बार उसने भीषण रूप धारण नहीं किया। शासनशृङ्खला स्थापित करनेके लिये अंग्रेज गवर्मेण्टने शंबलपुर जिला मध्य प्रदेशमें मिला लिया। उस समयके चीफ कमिश्नर मि० टेम्पल जब पहले इस स्थानको देखने आये, तब स्थानीय अधिवासियोंने सुरेंद्रशाहको अपना राजा बनाना चाहा और उन्हींके हाथ राज्य-शासनभार देनेका अनुरोध किया। इसके बाद ही कमलसिंहके अधीन विद्रोहिदलने फिरसे विद्रोहवह्नि प्रज्वलित की। कमलसिंह पूर्व विद्रोहमें सुरेंद्रशाहके सेनापति थे। इस घटनाके बादसे ही विद्रोहिदल बार बार अत्याचार और उत्पीड़न करने लगा। अङ्गरेज गवर्मेण्टने सुरेंद्रशाहको उत्तेजनाकारी समझ कर १८६४ ई०में उन्हें कैद कर लिया। किंतु वे विद्रोहियोंके साथ षड़यंत्रमें लिप्त थे, ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिला, फिर भी अङ्गरेज-गवर्मेण्टने उन्हें नैतिक अपराधमें अपराधी करार कर आत्मीय और अनुचरोंके साथ जीवन भरके लिये कैदमें रखा। तभीसे शंबलपुरमें शांति विराजने लगी। १९०६ ई०में एक स्वतंत्र शासनकर्त्ता नियुक्त करनेकी व्यवस्था हुई, वङ्गदेशके कुछ जिलोंको आसाम प्रदेशमें मिला कर 'पूर्व वङ्ग और आसाम' नामक स्वतंत्र शासनकर्त्ताके अधीन किया गया। इस समय शंबलपुर जिलेको मध्यप्रदेशसे अलग कर उड़ीसाकी शासन सीमामें मिला दिया गया।

इस जिलेमें १ शहर और १६३८ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या साढ़े छः लाखके करीब है। यहांके प्रधान अधिवासी गोंड, कोल्ता, शबर और अहीर हैं। कृषिजीवीकी संख्या ही अधिक है। व्यवसाय-वाणिज्यका उतना आदर नहीं है। कोष्ठी एक प्रकारका बढ़िया कपड़ा तैयार करते हैं। कामचार कांसे और पीतलके बरतन बनाते हैं। प्रायः प्रत्येक ग्राममें स्थानीय लोगोंके व्यवहार्य मोटा सूती कपड़ा बुना जाता है। यहांसे चावल, तेलहन, अपरिष्कृत चीनी, लाख, टसर, रुई और लोहेकी विभिन्न स्थानोंमें रफ्तनी होती तथा लवण, परिष्कृत चीनी, विलायती कपड़े, नारियल, मसलिन, बढ़िया देशी कपड़े और अनेक प्रकारकी धातुकी आमदनी होती है। कटक और मिर्जापुरके साथ यहांका साधारणतः वाणिज्य चलता है। रायपुर, शङ्कप, राइरांखोल, अङ्गुल, पद्मपुर, चन्द्रपुर, विङ्गा, रांची और विलासपुर आदि स्थानोंमें बैलगाड़ी द्वारा वाणिज्यका माल भेजा जाता है। महानदीसे भी ६० मील तक माल आता जाता है।

यहांका स्वास्थ्य उतना अच्छा नहीं है। ज्वरका प्रकोप सभी समय देखा जाता है। नया आदमी यहां आते ही ज्वरसे भारी कष्ट पाता है, यहां तक कि वह

निरक्त हो अंगरेज गवर्मेण्टको सूचित कर दिया, "मेरे मध्य राज्यमें अंगरेजोंकी प्रतिपत्तिता करनेको कोई उद्यम नहीं।" अंगरेज गवर्मेण्टने पूर्वस्वीकृत सन्धिके अनुसार नागपुरपतिको शम्बलपुर छोड़ दिया।

इस समयसे शम्बलपुर जिला कई वर्षोंके लिये मराठोंके शासनाधीन रहा। राजा जैतसिंह और उनके लड़के उस समय बंदीमें पड़े थे। किन्तु मेजर रफसेजने शंबलपुरमें आ कर जैतसिंहकी अवस्थाका वर्णन करते हुए अंगरेज गवर्मेण्टसे इस बातका निवेदन किया, कि शम्बलपुर राज्य जैतसिंहको मिलना चाहिये। फलतः १८१७ ई०में जैतसिंह पुनः शंबलपुरके सिंहासन पर बैठे, किन्तु एक वर्ष बाद ही जैतसिंहकी मृत्यु हुई। कई मास तक शम्बलपुरराज्य राजशून्य रहा तथा अंगरेज गवर्मेण्टने उसका शासनकार्य परिदर्शन किया। आखिर अंगरेज गवर्मेण्टके अनुग्रहसे महाराज शाह सिंहासन पर बैठे, किन्तु उन्होंने अपने पूर्वपुरुषोंकी तरह सामन्त राजाओंमें फिर शीर्षस्थान नहीं पाया। इस समय मेजर रफसेज अंगरेज गवर्मेण्टकी ओरसे शम्बलपुरमें असिष्टाण्ट एजेण्टरूपमें नियुक्त हुए। १८२७ ई०में महाराज शाहकी मृत्यु हुई। पीछे उनकी विधवा रानी मोहनकुमारी राजसिंहासन पर बैठी।

इस समय सुरेन्द्र शाह और गोविन्द सिंह नामक दो चौहान वीरोंने अपनेको सामन्तपदके प्रकृत उत्तराधिकारी बता कर गद्दी पर बैठनेकी चेष्टा की। इस सूत्रसे राज्यमें घोर विशृङ्खला उपस्थित हुई। विप्लवकारियोंने राजनीतिकी अवमानना कर शम्बलपुर राजभक्तोंके निकटवर्ती ग्रामोंको लूटा। इस पर एजेण्ट निश्चिन्त न रह सके। लेफ्टेनाण्ट हिगिन्स द्वारा विद्रोही दल दबाये जाने पर भी उन्होंने हजारीबागसे कप्तान विलकिन्सनको शंबलपुरमें बुलाया। विलकिन्सनने कई विद्रोहियोंको फांसी पर लटका दिया। इसके बाद उन्होंने रानीको राज्यच्युत करके उनकी जगह पर नारायण सिंह नामक एक व्यक्तिको शंबलपुरके सिंहासन पर बैठाया। यह व्यक्ति शंबलपुरके तृतीय राजा बलियार सिंहके औरस और किसी नीच जातिकी रमणीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था।

नारायणको इच्छा नहीं रहते हुए भी उसने राज्यभार ग्रहण किया। क्योंकि वह जानता था, कि अंगरेजों-सेनाके बाद ही उस पर विपत्तिका पहाड़ टूट पड़ेगा। आखिर हुआ भी वही। लखनपुरके गोंड़ सरदार बलभद्र शाहने पहले ही शंबलपुरराजके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। आखिर वह बड़पहाड़ शैल पर मारा गया।

१८३९ ई०में मेजर उसले शंबलपुरके असिष्टाण्ट एजेण्ट नियुक्त हुए। इस समय पूर्वोक्त सुरेन्द्र शाहने फिरसे शंबलपुर राज्य पानेकी आशासे अपनेको वहांका राजा मधुकर शाहका वंशोद्भव कह कर घोषित किया। इस सूत्रसे राज्यमें एक घोर विप्लव खड़ा हुआ। १८४० ई०में अपने दो आत्मीयकी सहायतासे रामपुरराज हरिबाब सिंहके पिता और पुत्रको मार डाला। इस अपराध पर वे जीवन भरके लिये छोटानागपुर जेलमें बन्दी हुए थे।

१८४९ ई०में नारायणसिंहकी मृत्यु हुई तथा शंबलपुर अङ्गरेज गवर्मेण्टके हाथ आया। अङ्गरेज गवर्मेण्टने शंबलपुरकी सम्पत्ति हाथमें ले कर ही चार आना राजस्व बढ़ा दिया तथा राजपूत देवोत्तर या ब्रह्मोत्तर निष्कर जमीन जब्त कर ली। इससे ब्राह्मणप्रधान शंबलपुरमें लोगोंको भारी असन्तोष हो गया। १८५४ ई०में फिरसे चार आना कर बढ़ाया गया। इससे विरक्त हो स्थानीय ब्राह्मणोंने राजासे इस विषयके प्रतिकारार्थ आवेदन किया। किन्तु कोई फल न होनेसे धुंआती आग धीरे धीरे धधक उठी। १८५७ ई०के गदरमें उस वह्निकी प्रदीप्त शिखाने शंबलपुरके शासनयन्त्रको जला डालनेकी कोशिश की। सिपाहियोंने जेलखानेसे सुरेन्द्रशाह और उनके भाइयोंको मुक्त कर दिया। पिंजड़ेसे छूटे हुए सिंहकी तरह सुरेन्द्रशाह उसी समय शंबलपुर आ धमके। उनके प्रतिद्वन्द्वी राज्यापहारी गोविन्दसिंहको छोड़ अन्यान्य सभी सरदारोंने इस विद्रोहमें उनका साथ दिया था।

सुरेन्द्रशाहने काफी सेना संग्रह कर अपनेको शंबलपुरका अधीश्वर कह कर घोषित किया। प्राचीन शंबलपुर दुर्ग उनके आधिपत्यमें परिणत हुआ। किन्तु अङ्गरेजको उन्हें दण्ड देनेके लिये अवसर होते देर न लगी

हो गये और सबोंके परामर्शसे वे अङ्गरेजोंके हाथ आत्मसमर्पण करेंगे, ऐसा स्थिर हुआ। किन्तु अकस्मात् उनकी बुद्धि पलट गई। मौका देख कर उन्होंने दुर्गको छोड़ जङ्गलावृत पहाड़ीदेशमें आश्रय लिया तथा विद्रोहियोंसे मिल कर अंगरेजोंके साथ युद्ध करने लगे। १८६० ई० तक इसी तरह चलता रहा। अंगरेज गवर्मेण्ट वृथा चेष्टा करके उनके पीछे पड़ी, किन्तु कहीं भी उनका पता न चला। उनके अधीनस्थ दलबल अंग्रेजोंके विरुद्ध मनमाना अत्याचार करने लगे। जिन सब ग्रामवासियोंने गवर्मेण्टका पक्ष लिया था, दुर्वृत्तोंने वे सब गांव लूट कर जला दिये थे। यूरोपीय कर्मचारी डा० मूर मारा गया। वड्पहाड़के समीप विद्रोहिदल लेफ्टेनाण्ट उड्रिजको मार उसका शिर काट ले गया। राजद्रोहीके प्रति क्षमासूचक घोषणापत्र (*Proclamation of amnesty*) जारी किया गया, फिर भी विद्रोही दल शान्त न हुआ। १८६१ ई०में मेजर इम्पे अङ्गरेजी एजेण्ट हो कर शंबलपुर आये। उन्होंने विद्रोहियोंके विरुद्ध कठोर शासन दण्ड चलाया और प्रजावर्गकी प्रतिपद् शासननीतिका अवलंबन करनेके लिये संकल्प किया। उन्होंने पहले सामन्तोंको यथेष्ट पुरस्कारका लोभ दे कर वशीभूत कर लिया। उन लोगोंके अङ्गरेजोंके हाथ आत्मसमर्पण करने पर महामति इम्पे उनकी सहायतासे विद्रोहदमन करनेमें समर्थ हुए थे। १८६२ ई०में विद्रोह जड़से उखाड़ दिया गया। सुरेन्द्रशाहने स्वयं अङ्गरेजोंके हाथ आत्मसमर्पण किया।

दूसरे वर्ष फिरसे विप्लवका सूत्रपात हुआ था। किंतु इस बार उसने भीषण रूप धारण नहीं किया। शासनशृङ्खला स्थापित करनेके लिये अंग्रेज गवर्मेण्टने शंबलपुर जिला मध्य प्रदेशमें मिला लिया। उस समयके चीफ कमिश्नर मि० टेम्पल जब पहले इस स्थानको देखने आये, तब स्थानीय अधिवासियोंने सुरेंद्रशाहको अपना राजा बनाना चाहा और उन्हींके हाथ राज्य-शासनभार देनेका अनुरोध किया। इसके बाद ही कमलसिंहके अधीन विद्रोहिदलने फिरसे विद्रोहवह्नि प्रज्वलित की। कमलसिंह पूर्व विद्रोहमें सुरेंद्रशाहके सेनापति थे। इस घटनाके बादसे ही विद्रोहिदल बार बार अत्याचार और उत्पीड़न करने लगा। अङ्गरेज गवर्मेण्टने सुरेंद्रशाहको उत्तेजनाकारी समझ कर १८६४ ई०में उन्हें कैद कर लिया। किंतु वे विद्रोहियोंके साथ षड़यंत्रमें लिप्त थे, ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिला, फिर भी अङ्गरेज-गवर्मेण्टने उन्हें नैतिक अपराधमें अपराधी ठहरा कर आत्मीय और अनुचरोंके साथ जीवन भरके लिये कैदमें रखा। तभीसे शंबलपुरमें शांति विराजने लगी। १९०६ ई०में एक स्वतंत्र शासनकर्त्ता नियुक्त करनेकी व्यवस्था हुई, बङ्गदेशके कुछ जिलोंको आसाम प्रदेशमें मिला कर 'पूर्व बङ्ग और आसाम' नामक स्वतंत्र शासनकर्त्ताके अधीन किया गया। इस समय शंबलपुर जिलेको मध्यप्रदेशसे अलग कर उड़ीसाकी शासन सीमामें मिला दिया गया।

इस जिलेमें १ शहर और १६३८ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या साढ़े छः लाखके करीब है। यहांके प्रधान अधिवासी गोंड, कोल्ता, शबर और अहीर हैं। कृषिजीवीकी संख्या ही अधिक है। व्यवसाय-वाणिज्यका उतना आदर नहीं है। कोष्टी एक प्रकारका बढ़िया कपड़ा तैयार करते हैं। कामवार कांसे और पीतलके बरतन बनाते हैं। प्रायः प्रत्येक गांवमें स्थानीय लोगोंके व्यवहार्य मोटा सूती कपड़ा बुना जाता है। यहांसे चावल, तेलहन, अपरिष्कृत चीनी, लाख, टसर, रूई और लोहेकी विभिन्न स्थानोंमें रफ्तनी होती तथा लवण, परिष्कृत चीनी, विलायती कपड़े, नारियल, मसलिन, बढ़िया देशी कपड़े और अनेक प्रकारकी धातुकी आमदनी होती है। कटक और मिर्जापुरके साथ यहांका साधारणतः वाणिज्य चलता है। रायपुर, शङ्कुरा, राइरांखोल, अङ्गुल, पद्मपुर, चन्द्रपुर, विङ्का, रांची और बिलासपुर आदि स्थानोंमें बैलगाड़ी द्वारा वाणिज्यका माल भेजा जाता है। महानदीसे भी ६० मील तक माल आता जाता है।

यहांका स्वास्थ्य उतना अच्छा नहीं है। ज्वरका प्रकोप सभी समय देखा जाता है। नया आदमी यहां आते ही ज्वरसे भारी कष्ट पाता है, यहां तक कि वह

कभी कभी मारात्मक हो जाता है। उदरामय रोगसे लोग अक्सर पीड़ित रहते हैं। ग्रीष्मके समय यह विसूचिकामें परिणत हो कर लोगोंका प्राणनाशक होता है।

शासनकार्यकी सुविधाके लिये यह जिला दो तहसीलोंमें विभक्त है, शम्बलपुर और बरगढ़। डिपटी कमिश्नर और उनके तीन सहकारी डिपटी कलक्टर और एक सबडिपटी कलक्टर द्वारा शासनकार्य परिचालित होता है। दीवानी विभागमें हरएक तहसीलमें एक डिष्ट्रिक्ट जज, दो सबोर्डिनेट जज और एक मुनसफ रहते हैं।

विद्याशिक्षामें यह जिला बहुत पिछड़ा हुआ है। शम्बलपुर शहरमें एक हाई-स्कूल, एक मिडिल इंगलिश स्कूल, ६ वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल और १२० प्राइमरी स्कूल हैं। इनके सिवा जिलेभरमें छः सरकारी-बालिका स्कूल हैं। उक्त सभी स्कूलोंमें उड़िया भाषा सिखाई जाती है। अभी लोगोंका ध्यान विद्या-शिक्षाकी ओर गया है और नये नये स्कूल भी प्रतिवर्ष खोले जा रहे हैं। स्कूलके सिवा सात चिकित्सालय भी हैं।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २०°१८ से २१°५० उ० तथा देशा० ८३°२६´ से ८४°२६´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण २ हजार और जनसंख्या ४ लाखके करीब है। इसमें एक शहर और ७६६ ग्राम लगते हैं। इस तहसीलमें ५ दीवानी और ७ फौजदारी अदालत तथा सात सामन्त राज्य हैं।

३ उक्त जिलेका प्रधान नगर और विचार सदर। यह अक्षा० २१°२८´ उ० तथा देशा० ८३°५८´ पू०के मध्य महानदीके उत्तरी किनारे अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः १२८७० है। वर्षाऋतुमें महानदीका पाट १ मील तक फैल जाता है, किन्तु अन्यान्य ऋतुओंमें जल घटता है। नदीका विस्तार उस समय सिर्फ १०० हाथ रह जाता है। नगरके दूसरे किनारे घना झाऊवन अङ्कुल दिखाई देता है। वर्षाकालमें उस झाऊवनके बीचसे कल कल नाद करती हुई महानदी प्रबल वेगसे बहती है, तब नगर और नदीकूलकी शोभा बड़ी रमणीय हो जाती है। नदीके किनारे भी विस्तृत आम्रादि वृक्षका बाग है, यह अधिवासियोंको सुखसमृद्धिका परिचय देता है। नगरके दक्षिणांशमें उच्च गिरिमाला नगरपृष्ठको रक्षाके लिये खड़ी है।

पहले इस नगरकी अवस्था उतनी अच्छी न थी। १८६४ ई०से संस्कार आरंभ हुआ। इसके पहले नगरके प्रधान प्रधान रास्तेसे बैलगाड़ी बड़ी मुश्किलसे जाती थी। नगरके उत्तर पश्चिम अंशमें प्राचीन दुर्गका ध्वंसावशेष दिखाई देता है। नदीके किनारे टूटी फूटी दीवाल और कई एक आज भी विद्यमान हैं। चारों ओरकी गड़खाई आज भी पूर्वस्मृति याद दिलाती है सही, पर उसमें पहलेकी तरह जल नहीं रहता। दुर्गमें किसी जगह प्रवेशद्वार नहीं है। केवल शामलाई देवीमन्दिरके सम्मुखस्थ शामलाई द्वारका कुछ अंश आज भी दृष्टिगोचर होता है। शामलाई देवीका शम्बलपुरकी अधिष्ठात्री देवीरूपमें पूजन होता है। इसके सिवा दुर्गसीमाके भीतरी भागमें और भी कितने मन्दिर हैं, जिनमें पद्मेश्वरीदेवी, बूढ़ा जगन्नाथ और अनन्त शायीके मन्दिर प्रधान हैं। ये सब मन्दिर १६वीं सदीके बने हैं और सबोंकी बनावट एक-सी है। उनमें उतनी कारीगरी देखी नहीं जाती। उक्त दुर्गके पास ही 'बड़ाबाजार' नामक ग्राम है। यहां नदीके किनारे अदालत और सबडिविजनल आफिसरकी कचहरीके अलावा दो सराय, जेलखाना, हाई-स्कूल, बालिकास्कूल और अस्पताल हैं।

शम्बली (सं० स्त्री०) कुट्टिनी, कुटनी।

शम्बसादन (सं० पु०) वाल्मीकीय रामायणके अनुसार एक दैत्य। इसे केसरीवानरने मारा था।

शम्बा (अ० पु०) शनिवार, शनैश्चरवार।

शम्बाकृत (सं० त्रि०) शम्बं कृषिकर्मणि अनुलोमकर्षणं कृतं, शम्ब-डाच्-कृ-क्त। (द्वितीय तृतीयशम्बबीजात् कृषौ। पा ५।४।५८) दो बार जोता हुआ खेत, वह खेत जो अनुलोम भी दो बार जोता गया हो। पर्याय—द्विगुणाकृत, द्वितीयाकृत, द्विहल्य, द्विसीत्य। (अमर)

शम्बु (सं० पु० स्त्री०) शम्ब-उन् कु वा। शम्बुक, घोंघा, शंख।

शम्बुक (सं० पु० स्त्री०) शम्बु-कन् स्वार्थे, उप कन् शुणाननत्य (उण् ४।४१) १ जलजन्तुविशेष, घोंघा,

सीप। पर्याय—जलशुक्ति, शम्बुका, शंबूक्य, शाम्बूक, शंबू, शांबुक्य, जलडिम्ब, दुश्चर, पङ्कमण्डूक।

(पु०) २ गजकुम्भका अग्रभाग, हाथीके सूंडका अगला भाग। ३ एक शूद्र तपस्वी। इसकी तपस्याके कारण त्रेतायुगमें रामराज्यमें एक ब्राह्मणका पुत्र अकाल मृत्युको प्राप्त हुआ था, अतः इसे रामने मार कर मृत ब्राह्मण-पुत्रको पुनरुज्जीवित किया था। ४ दैत्यविशेष। ५ शङ्ख। ६ क्षुद्र शङ्ख, छोटा शंख। ७ प्राणनाशक कीट विशेष। (सुश्रुत)

शम्बू (सं० पु०) शम्बु देखो।

शम्बूक (सं० पु०) शम्बुक देखो।

शम्बूकपुष्पी (सं० स्त्री०) शङ्खपुष्पी देखो।

शम्बूका (सं० स्त्री०) शंबूक टाप्। शम्बुक देखो।

शम्बूकाद्यतैल (सं० क्ली०) कर्णरोगाधिकारोक्त तैलौषध विशेष। प्रस्तुत प्रणाली—कटुतैलमें शंबूकका मांस भून कर यह तैल कर्णगत नाड़ीरोगमें डालनेसे विशेष उपकार होता है।

वृहत् शंबूकाद्यतैल—शंबूक मांस २ सेर, जल १६ सेर, शेष ४ सेर, कटुतैल ४ सेर, कुट, केशराज, क्षेतपर्पटी, मदूसकी छाल, अकवनका पत्ता, थूहरका दूध, मोथा, विल्वमूल, शालिञ्चपत्र, किशमिश, अतीस, मुलेठी, कचूर, रेंड़ीका मूल और कपासका फल, प्रत्येक दो तोला तथा भृङ्गराज और नागकेशर ४ तोला, इनका कल्क ले कर तेलमें पाक करे। यह तैल कानमें भर देनेसे नाड़ीव्रण अति शीघ्र प्रशमित होता है।

(रत्नाकर)

शम्बूकावर्त्त (सं० पु०) सन्निपातज भगन्दररोग। इस रोगमें गोस्तन सदृश भिन्न भिन्न रंगके फोड़े निकलते हैं। ये फोड़े वेदनाविशिष्ट और स्रावयुक्त होते हैं। इसमें जो नाड़ीव्रण देखा जाता है, वह शंबूकके आवर्त्त की तरह होता है, इसीलिये इसका नाम शंबूकावर्त्त रखा गया है।

शम्भ (सं० त्रि०) शमस्त्यस्य शं-भ (पा ५।२।१३८) कल्याणयुक्त, मङ्गलविशिष्ट।

शम्भर (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

शम्भल (सं० पु०) ग्रामविशेष। (भारत वनपर्व) इसका वर्त्तमान नाम शंवलपुर है। यह किसीके मतसे गोण्डवानाके और किसीके मतसे मुरादाबादके अन्तर्गत है। भागवतके मतसे (१२।२।१८) इस ग्राममें भगवान् कल्कि अवतीर्ण होंगे। कल्किपुराणमें लिखा है, कि यहां ६० तीर्थ हैं तथा कलिकलुषमोचनार्थ भगवान् कल्किरूपमें अवतीर्ण हो कर बन्धुबांधवोंके साथ हजार वर्ष तक अवस्थान करेंगे।

स्कन्दपुराणके शंभलग्राममाहात्म्यमें उन सब तीर्थोंका परिचय दिया गया है।

शम्भल—१ युक्तप्रदेशके मुरादाबाद जिलान्तर्गत एक तहसील। यह अक्षा० २८° २०´ से २८° ४६´ ३० तथा देशा० ७८° २४´ से ७८° ४४´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ४६६ वर्गमील और जनसंख्या ढाई लाखसे ऊपर है। इसमें ३ शहर और ४६६ ग्राम लगते हैं। सोत और गङ्गानदीका मध्यवर्त्ती समतलक्षेत्र ले कर यह विभाग संगठित है। यह लम्बाईमें ३२ मील है। गेहूं और ईख यहांकी मुख्य उपज है।

२ उक्त तहसीलका एक परगना।

३ उक्त जिलेके अन्तर्गत एक नगर और तहसीलका विचार सदर। यह अक्षा० २८° ३५´ ३० तथा देशा० ७८° ३४´ पू०के मध्य विस्तृत है। यह सोत नदीसे ४ मील पश्चिम और मुरादाबाद सदरसे २३ मील दक्षिण-पश्चिम अलीगढ़के रास्ते पर अवस्थित है। नगर विस्तृत श्यामल शस्यक्षेत्र और वनमालाविभूषित प्रान्तरमें बसा हुआ है। महाभारतीय युगमें यह नगर विशेष समृद्धिशाली था, अभी वह समृद्धि बिलकुल जाती रही है। प्राचीन ध्वस्तकोर्त्तिस्तूपके ऊपर वर्त्तमान नगर खड़ा है। मालेश्वर और चित्रेश्वर नामक दो बड़े स्तूप आज भी नगर प्राचीरके उपरिस्थ बप्रोंका स्मृतिचिह्न रक्षा करते हैं।

मुसलमान अभ्युदयके प्रारम्भसे ही शासनकर्त्ता इसी नगरमें राजधानी उठा लाये। मुगल-बादशाह अकबरके राज्यकालमें यहां एक सरकारका विचारकेन्द्र प्रतिष्ठित था तथा तभीसे यह मुगलराज्यकी राजधानीरूपमें गिना जाने लगा।

नगर छोटा होने पर भी सुन्दर है। यहां म्युनिस्पलिटी है। नगर और उसके उपकण्ठके रास्ते पक्के हैं।

कभी कभी मारात्मक हो जाता है। उदरामय रोगसे लोग अक्सर पीड़ित रहते हैं। ग्रीष्मके समय यह विसूचिकामें परिणत हो कर लोगोंका प्राणनाशक होता है।

शासनकार्यकी सुविधाके लिये यह जिला दो तहसीलमें विभक्त है, शंबलपुर और बड़गढ़। डिपटी कमिश्नर और उनके तीन सहकारी डिपटी कलक्टर और एक सबडिपटी कलक्टर द्वारा शासनकार्य परिचालित होता है। दीवानी विभागमें हरएक तहसीलमें एक डिस्ट्रिक्ट जज, दो सबोर्डिनेट जज और एक मुनसफ रहते हैं।

विद्याशिक्षामें यह जिला बहुत पिछड़ा हुआ है। शंबलपुर शहरमें एक हाई-स्कूल, एक मिडिल इंगलिश स्कूल, ६ वर्नाकुलर मिडिल स्कूल और १२० प्राइमरी स्कूल हैं। इनके सिवा जिले भरमें छः सरकारी-बालिका स्कूल हैं। उक्त सभी स्कूलोंमें उड़िया भाषा सिखाई जाती है। अभी लोगोंका ध्यान विद्या-शिक्षाकी ओर गया है और नये नये स्कूल भी प्रतिवर्ष खोले जा रहे हैं। स्कूलके सिवा सात चिकित्सालय भी हैं।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २१°१८ से २१°५७ उ० तथा देशा० ८३°२६´ से ८४°२६´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण २ हजार और जनसंख्या ४ लाखके करीब है। इसमें एक शहर और ७६६ ग्राम लगते हैं। इस तहसीलमें ५ दीवानी और ७ फौजदारी अदालत तथा सात सामन्त राज्य हैं।

३ उक्त जिलेका प्रधान नगर और विचार सदर। यह अक्षा० २१°२८´ उ० तथा देशा० ८३°५८´ पू०के मध्य महानदीके उत्तरी किनारे अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः १२८७० है। वर्षाऋतुमें महानदीका पाट १ मील तक फैल जाता है, किन्तु अन्यान्य ऋतुओंमें जल घटता है। नदीका विस्तार उस समय सिर्फ १०० हाथ रह जाता है। नगरके दूसरे किनारे घना झाऊका जङ्गल दिखाई देता है। वर्षाकालमें उस झाऊवनके बीचसे कल कल नाद करती हुई महानदी प्रबल वेगसे बहती है, तब नगर और नदीकूलकी शोभा बड़ी रमणीय हो जाती है। नदीके किनारे जो विस्तृत आम्रादि फलका बाग है, वह अधिवासीकी सुखसमृद्धिका परिचय देता है। नगरके दक्षिणांशमें उच्च गिरिमाला नगरपृष्ठकी रक्षाके लिये खड़ी है।

पहले इस नगरकी अवस्था उतनी अच्छी न थी। १८६४ ई०से संस्कार आरंभ हुआ। इसके पहले नगरके प्रधान प्रधान रास्तेसे बैलगाड़ी बड़ी मुश्किलसे आती थी। नगरके उत्तर-पश्चिम अंशमें प्राचीन दुर्गका ध्वंसावशेष दिखाई देता है। नदीके किनारे टूटी फूटी दीवाल और कई वप्र आज भी विद्यमान हैं। चारों ओरकी गड़खाई आज भी पूर्वस्मृति याद दिलाती है सही, पर उसमें पहलेकी तरह जल नहीं रहता। दुर्गमें किसी जगह प्रवेशद्वार नहीं है। केवल शामलाई देवीमन्दिरके सम्मुखस्थ *शामलाई द्वारका* कुछ अंश आज भी दृष्टिगोचर होता है। शामलाई देवीका शंबलपुरकी अधिष्ठात्री देवीरूपमें पूजन होता है। इसके सिवा दुर्गसीमाके भीतरी भागमें और भी कितने मन्दिर हैं, जिनमें पत्नेश्वरीदेवी, बूढ़ा जगन्नाथ और अनन्त शायीके मन्दिर प्रधान हैं। ये सब मन्दिर १६वीं सदीके बने हैं और सबोंकी बनावट एक-सी है। उनमें उतनी कारीगरी देखी नहीं जाती। उक्त दुर्गके पास ही 'बड़ाबाजार' नामक ग्राम है। यहां नदीके किनारे अदालत और सबडिविजनल आफिसरकी कचहरीके अलावा दो सराय, जेलखाना, हाइ-स्कूल, बालिकास्कूल और अस्पताल है।

शम्बली (सं० स्त्री०) कुट्टिनी, कुटनी।

शम्बसादन (सं० पु०) वाल्मीकीय रामायणके अनुसार एक दैत्य। इसे केशरीवानरने मारा था।

शम्बा (अ० पु०) शनिवार, शनैश्चरवार।

शम्बाकृत (सं० त्रि०) शम्बं कृष्टमनुलोममाकृष्यते शंब-डा-च्-कृ-क्त। (द्वितीय तृतीयशम्बबीजात् कृषौ। पा ५।४।५८) दो बार आकृष्ट क्षेत्र, वह खेत या जमीन जो दो बार उपजाई गई हो। पर्याय—द्विगुणाकृत, द्वितीयाकृत, द्विहल्य, द्विसीत्य। (अमर)

शम्बु (सं० पु० स्त्री०) शंब-उण् कु वा। शंबुक, घोंघा, सीप।

शम्बुक (सं० पु० स्त्री०) शंब कन् स्वार्थे, शम उक युगागमश्च (उण् ४।४१) १ जलजन्तुविशेष, घोंघा,

सीप। पर्याय—जलशुक्ति, शम्बुका, शंबूक्य, शाम्बूक, शंबू, शांबुक्य, जलडिम्ब, दुश्चर, पङ्कमण्डूक।

(पु०) २ गजकुम्भका अग्रभाग, हाथीके सूँड़का अगला भाग। ३ एक शूद्र तपस्वी। इसकी तपस्याके कारण त्रेतायुगमें रामराज्यमें एक ब्राह्मणका पुत्र अकाल मृत्युको प्राप्त हुआ था, अतः इसे रामने मार कर मृत ब्राह्मण-पुत्रको पुनरुज्जीवित किया था। ४ दैत्यविशेष। ५ शङ्ख। ६ क्षुद्र शङ्ख, छोटा शंख। ७ प्राणनाशक कीट विशेष। (सुश्रुत)

शम्बू (सं० पु०) शम्बु देखो।

शम्बूक (सं० पु०) शम्बुक देखो।

शम्बूकपुष्पी (सं० स्त्री०) शङ्खपुष्पी देखो।

शम्बूका (सं० स्त्री०) शंबूक टापू। शम्बुक देखो।

शम्बूकाद्यतैल (सं० क्ली०) कर्णरोगाधिकारोक्त तैलौषध विशेष। प्रस्तुत प्रणाली—कटुतैलमें शंबूकका मांस भून कर वह तैल कर्णगत नाड़ीरोगमें डालनेसे विशेष उपकार होता है।

बृहत् शंबूकाद्यतैल—शंबूक मांस २ सेर, जल १६ सेर, शेष ४ सेर, कटुतैल ॥ सेर, कुट, केशराज, श्वेतपर्पटी, मङ्गूसकी छाल, अकवनका पत्ता, थूहरका दूध, मोथा, बिल्वमूल, शालिञ्चपत्र, किशमिश, अतीस, मुलेठी, कचूर, देड़ीका मूल और कपासका फल, प्रत्येक दो तोला तथा भृङ्गराज और नागकेशर ॥ तोला, इनका कल्क ले कर तेलमें पाक करे। यह तेल कानमें भर देनेसे नाड़ीव्रण अति शीघ्र प्रशमित होता है।

(रत्नाकर)

शम्बूकावर्त्त (सं० पु०) सन्निपातज भगन्दररोग। इस रोगमें गोस्तन सदृश भिन्न भिन्न रंगके फोड़े निकलते हैं। ये फोड़े वेदनाविशिष्ट और स्रावयुक्त होते हैं। इसमें जो नाड़ीव्रण देखा जाता है, वह शंबूकके आवर्त्तकी तरह होता है, इसीलिये इसका नाम शंबूकावर्त्त रखा गया है।

शम्भ (सं० त्रि०) शमस्त्यस्य शं-भ (पा ५।२।१३८) कल्याणयुक्त, मङ्गलविशिष्ट।

शम्भर (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

शम्भल (सं० पु०) ग्रामविशेष। (भारत वनपर्व) इसका वर्त्तमान नाम शंबलपुर है। यह किसीके मतसे गोण्डवानाके और किसीके मतसे मुरादाबादके अन्तर्गत है। भागवतके मतसे (१२।२।१८) इस ग्राममें भगवान् कल्कि अवतीर्ण होंगे। कल्किपुराणमें लिखा है, कि यहां ६० तीर्थ हैं तथा कलिकलुषमोचनार्थ भगवान् कल्किरूपमें अवतीर्ण हो कर बन्धुबांधवोंके साथ हजार वर्ष तक अवस्थान करेंगे।

स्कन्दपुराणके शंभलग्राममाहात्म्यमें उन सब तीर्थोंका परिचय दिया गया है।

शम्भल—१ युक्तप्रदेशके मुरादाबाद जिलान्तर्गत एक तहसील। यह अक्षा० २८° २०´से २८° ४६´ उ० तथा देशा० ७८° २४´से ७८° ४४´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ४६६ वर्गमील और जनसंख्या ढाई लाखसे ऊपर है। इसमें ३ शहर और ४६६ ग्राम लगते हैं। सोत और गङ्गानदीका मध्यवर्त्ती समतलक्षेत्र ले कर यह विभाग संगठित है। यह लम्बाईमें ३२ मील है। गेहूं और ईख यहांकी मुख्य उपज है।

२ उक्त तहसीलका एक परगना।

३ उक्त जिलेके अन्तर्गत एक नगर और तहसीलका विचार सदर। यह अक्षा० २८° ३५´ उ० तथा देशा० ७४° ३४´ पू०के मध्य विस्तृत है। यह सोत नदीसे ४ मील पश्चिम और मुरादाबाद सदरसे २३ मील दक्षिण-पश्चिम अलीगढ़के रास्ते पर अवस्थित है। नगर विस्तृत श्यामल शस्यक्षेत्र और वनमालाविभूषित प्रान्तरमें बसा हुआ है। महाभारतीय युगमें यह नगर विशेष समृद्धिशाली था, अभी वह समृद्धि बिलकुल जाती रही है। प्राचीन ध्वस्तकीर्त्तिस्तूपके ऊपर वर्त्तमान नगर खड़ा है। भालेश्वर और चिन्द्रेश्वर नामक दो बड़े स्तूप आज भी नगर प्राचीरके उपरिस्थ बप्रोंका स्मृतिचिह्न रक्षा करते हैं।

मुसलमान अभ्युदयके प्रारम्भसे ही शासनकर्त्ता इसी नगरमें राजधानी उठा लाये। मुगल-बादशाह अकबरके राज्यकालमें यहां एक सरकारका विचारकेन्द्र प्रतिष्ठित था तथा तभीसे यह मुगलराज्यकी राजधानीरूपमें गिना जाने लगा।

नगर छोटा होने पर भी सुन्दर है। यहां म्युनिसपलिटी है। नगर और उसके उपकण्ठके रास्ते पक्के हैं।

इसके सिवा इस नगरसे मुरादाबाद, बिलारी, अमरोहा, चन्दौसी, मझोई और हसनपुर आदि स्थानोंमें आने जानेकी सुविधाके लिये और भी कितने कच्चे रास्ते हैं। नगरकी सौचनाला प्रायः पक्के और ईंटकी हैं।

कहते हैं, कि दिल्लीके पृथ्वीराजने कन्नौजके जयचन्दको शम्भलके पास ही युद्धमें पराह्त किया था। इसके भी पहले दिल्लीके राजा और सईद सलारके बीच यहां मुठभेड़ हुई थी। कुतुबुद्दीन ऐबकने इसके आस पासके स्थानको तहस नहस कर डाला था, लेकिन कतेरियोंने बार बार आक्रमण करके मुसलमान राजाओंको तङ्ग तङ्ग कर दिया। यहां मुसलमान राजाओं द्वारा नियुक्त एक शासनकर्त्ता १३४६ ई०में बागी हो गये, पर शीघ्र ही उसका दमन किया गया।

फिरोजशाह ३यने शम्भलमें १३८० ई०को एक अफगान नियुक्त किया। उसे हुकुम दिया गया था, कि जब तक हिन्दू-सरदार खरगू जिससे कई एक सैयदोंको मार डाला है, आत्मसमर्पण न कर ले तब तक वह कतेरियों पर चढ़ाई करना और आस पास देशोंको वन्द न करे। १५वीं सदीमें शंभलमें दिल्लीके सम्राटों और जौनपुरके राजाओंमें घोर संघर्ष हुआ। जौनपुरके राजाओंके अधःपतन पर सिकन्दर लोदीने कुछ वर्षों तक कचहरी की थी। बाबरने अपने लड़के हुमायूंको यहांका शासक बनाया था।

शहरमें कलक्टरी कचहरी और जज-अदालत, पुलिस फाँड़ी, पोष्ट आफिस, साधारण औषधालय, गिरजा-घर, गवर्मेण्ट और म्युनिस्पलिटीके साहाय्यप्राप्त विद्यालय, सराय आदि हैं।

यहां परिष्कृत चीनी तैयार होती है। चीनीके वाणिज्यसे ही यहांकी प्रसिद्धि है। इसके सिवा यहांसे गेहूं और अन्यान्य शस्य, घृत और सूखे चमड़ेकी रफ्तनी होती है। यहां जो सूती कपड़ा तैयार होता है, वह स्थानीय अधिवासियोंके काममें आता है।

शम्मली (सं० स्त्री०) कुट्टिनी, कुटनी।

शम्मलीय (सं० त्रि०) कुट्टिनी-सम्बन्धी, कुटनीका।

शम्मलेश्वर (सं० पु०) शिवलिङ्गभेद।

शम्मय (सं० त्रि०) शं-भू-मय्-(शमिधाणोः संज्ञायां। पा ३।२।१४) १ जिनसे मङ्गल हो। २ सुखरूप संसार या सुखितरूप भव अर्थात् परम शिव। "नमः शम्भवाय" (शुक्लयजु० १६।४१)

शम्भविष्ठ (सं० त्रि०) अयमेवामतिशयेन शंभुः शंभुइष्ठन् (पा ५।३।५५) जो सर्वापेक्षा मङ्गल करता हो।

शम्भु (सं० पु०) शं मङ्गलं भवत्यस्मादिति शं-भू-डु। (मितद्र्वादिभ्य उपसंख्यानम्। पा ३।२।१८० वार्त्तिक) १ शिव, महादेव। २ ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक। (विष्णुपु० १।१५।१२३ १२४) ३ ब्रह्मा। (महाभारत) ४ बुद्ध। (मदिनी) ५ विष्णु। (हलायुध) ६ सिद्ध। (शब्दरत्ना०) ७ श्वेतार्क, सफेद आक। ८ अग्नि। (महाभारत) ९ पारद, पारा। १० एक वृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें १९ वर्ण होते हैं। (त्रि०) ११ सुखसंवर्द्धनाकारी, सुखको भावयिता अर्थात् संवर्द्धयिता या वृद्धिकारक। (ऋक् १।४३।१३)

शम्भु—१ काश्मीरके एक कवि। ये श्रीकण्ठचरित-प्रणेता आनन्द वैद्यके पिता थे। इन्होंने ज्योतिर्मुक्तालता और राजेन्द्रकर्णपुर नामक ग्रंथ लिखे। पद्यावलीमें इनके रचे अनेक श्लोक देखे जाते हैं। २ कामधेनु नामक एक दीधितिके रचयिता। हेमाद्रिने परिशेषखण्डमें इनका मत उद्धृत किया है। ३ हृदयेन्द्र काव्यटीकाके प्रणेता। ४ एक प्राचीन पण्डित। ये परिभाषेन्दुटीकाके प्रणेता गोपालदेव तथा कृष्णदेवके पिता थे।

शम्भुकान्ता (सं० स्त्री०) १ शंभुकी स्त्री, पार्वती। २ दुर्गा।

शम्भुकालिदास—रामचन्द्रकाव्यके रचयिता।

शम्भुकेतन (सं० पु०) पीतशाल। (वैद्यकनि०)

शम्भुगञ्ज—मैमनसिंह जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। यह नशिराबादसे तीन मील पूर्वमें अवस्थित है। यहां स्थानीय उत्पन्न द्रव्योंकी एक छोटी हाट लगती है। इस हाटमें प्रति दिन बहुत रुपयेके मालकी खपत होती है। इसे जिलेका एक वाणिज्य-केन्द्र कहनेमें कोई अत्युक्ति न होगी। यहांसे कलकत्तेको हर साल प्रायः ७५ हजार मन पाट, ३० हजार मन चावल तथा १० हजार मन सरसों भेजी जाती है।

शम्भुगिरि (सं० पु०) शम्भुका पर्वत, कैलास। यह एक तीर्थ है। स्कन्दपुराणान्तर्गत शम्भुगिरिमाहात्म्यमें इसका विषय सविस्तार वर्णित है।

शम्भुचन्द्र—१ रङ्गपुर जिलेके काकिनीयाके जमींदार। इन्होंने १६वीं सदीके प्रारम्भमें ग्रन्थ लिखा। २ नवद्वीपके अधिपति महाराज कृष्णचन्द्रके वंशधर। ये बहुकीर्त्तिशाली और दानशील थे।

शम्भूजी—छत्रपति शिवाजीके ज्येष्ठ पुत्र। १६५८ ई०में इनका जन्म हुआ था। दिल्लीके बादशाह औरङ्गजेबकी चालाकीसे शिवाजी जब दिल्लीमें कैद हुए, उस समय पिताके साथ ये भी भाग गये। शिवाजीकी मृत्युके बाद १६८० ई०से १६८६ ई० तक इन्होंने राज्य किया। तदनन्तर मुगल-सेना इनको कैद कर दिल्ली ले आई और दिल्लीमें औरङ्गजेबने बड़ी निर्दयतासे इन्हें मार डाला। ये विषयासक्त और मद्यप थे।

शम्भुतनय (सं० पु०) शम्भोस्तनयः। १ गणेश। २ कार्त्तिकेय। ३ शम्भुके पुत्र।

शम्भुतेजस् (सं० क्ली०) पारद, पारा। (रसेन्द्रसार०)

शम्भुदास—गणितपञ्चविंशटीकाकार।

शम्भुदेव—प्रशस्तिप्रकाशिकाके प्रणेता। ये ब्रह्मानन्दके शिष्य थे।

शम्भुनन्दन (सं० पु०) शंभो नन्दनः। १ कार्त्तिकेय। २ गणेश।

शंभुनाथ (सं० पु०) १ शिव, महादेव। २ नेपालका विख्यात शैवतीर्थ। नेपाल देखो।

शम्भुनाथ—१ भुवनेश्वरीस्तोत्रके रचयिता पृथ्वीधरके गुरु। २ कालज्ञान और सन्निपातकलिका नामक दो वैद्यक ग्रन्थके प्रणेता। ३ गणितसारके रचयिता। ४ जातकभूषणके प्रणेता। ५ शंभुतत्त्वानुसन्धान नामक ग्रन्थके रचयिता।

शम्भुनाथ आचार्य—सङ्केतकौमुदी नामक ज्योतिग्रन्थके रचयिता।

शम्भुनाथ कवि—भाषाके कवि वन्दीजन। ये संवत् १७६८ में उत्पन्न हुए थे। 'रामविलास' नामक एक बहुत सुन्दर ग्रन्थ इन्होंने बनाया है। इस ग्रन्थमें अनेक छन्द हैं।

शम्भुनाथ त्रिपाठी—एक भाषा-कवि। ये डौंड़ियाखेराके रहनेवाले थे। इनका जन्म संवत् १८०६ में हुआ था। ये राजा अचलसिंहके दरबारी कवि थे। इन्होंने राव रघुनाथसिंहके नामसे वेतालपचीसीको संस्कृतसे हिन्दी भाषामें अनूदित किया है। मुहूर्त्तचिन्तामणिका भी नाना छन्दोंमें इन्होंने भाषानुवाद किया है।

शम्भुनाथ पण्डित—कलकत्ता हाईकोर्टके सर्वप्रथम देशी जज। शंभुनाथ काश्मीरी ब्राह्मण थे। इनके पिताका नाम था सदाशिव पण्डित। सन् १८२० ई०में कलकत्तेमें शंभुनाथका जन्म हुआ। इनके चचा कलकत्ते की सदर अदालतमें पेशकार थे। चचाके कोई पुत्र न था। इस कारण उन्होंने बड़े भाईकी सम्मतिसे शंभुनाथको दत्तकग्रहण किया। कलकत्तेमें शंभुनाथका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता था। इस कारण ये लखनऊ पढ़नेके लिये भेज दिये गये। वहां कुछ उर्दू और फारसी पढ़ कर अङ्गरेजी पढ़नेके लिये ये काशी गये। काशीसे कलकत्ते आ कर ये ओरियण्टल सेमिनरीमें भर्ती हुए। इस समय इनकी अवस्था सिर्फ १४ वर्षकी थी। यहां इन्होंने अङ्गरेजी-साहित्यमें विशेष ज्ञान प्राप्त कर लिया। १८४१ ई०में सदर अदालतमें २०) मासिक पर ये क्लर्क बहाल हुए। १८४६ ई०में ये डिगरी जारी करानेके मुहर्रिर हुए। इसी समय इन्होंने डिगरी जारी करानेके संबन्धमें एक ग्रन्थ लिखा, जिसके कारण जजोंने इनकी भूरि भूरि प्रशंसा की। १८४८ ई० में इन्होंने वकालतकी परीक्षा दी और उसमें ये उत्तीर्ण हुए। इसी वर्ष नवम्बर महीनेसे ये वकालत करने लगे। थोड़े ही दिनोंमें फौजदारी मुकद्दमेमें इनका बड़ा नाम हुआ। १८५५ ई०में ये जुनियर सरकारी वकील नियुक्त हुए। इसी समय ४००) मासिक वेतन पर ये प्रेसिडेन्सी कालेजमें कानूनके अध्यापक हुए। इसके थोड़े दिनोंके बाद ही ये हाईकोर्टके जज हो गये। १८६७ ई०में पिड़की रोगसे इनकी मृत्यु हुई। ये स्त्री-शिक्षाके पक्षपाती थे। सबसे पहले इन्होंने ही अपनी कन्याको बेथून कालेजमें पढ़नेके लिये भेजा था। इन्होंने भवानीपुरमें एक अस्पताल बनवाया है, जो शंभुनाथ पण्डित हास्पिटलके नामसे प्रसिद्ध है। भवानीपुरमें इनके नाम पर एक स्ट्रीट भी है।

शम्भुनाथ मिश्र—१ भाषाके एक कवि। इनका जन्म १८०३ सम्वत्‌में हुआ था। ये भगवन्तराय खीचीके यहां असोथरमें रहते थे। ये अनेक शिष्योंको कवि बना गये हैं। "रसकल्लोल", "रसतरङ्गिणी" और "अलङ्कारदीपक" नामक तीन ग्रन्थ इन्होंने लिखे हैं।

२ बैसवारेके रहनेवाले एक भाषा-कवि। संवत् १९०१में इन्हों ने जन्म ग्रहण किया। ये राना यदुनाथ सिंह कजूर गांवके यहां रहते थे। थोड़ी ही अवस्थामें ये करालकालके गालमें पतित हुए। बैसवंशावली और शिवपुराणके चतुर्थ खण्डका इन्हों ने भाषान्तर किया।

शम्भुनाथसिंह—सीतारागढ़के रहनेवाले एक सोलङ्की क्षत्रिय। सं० १७३८में इनकी उत्पत्ति हुई। ये मतिराय तिपाठीके बड़े मित्र थे। इनके यहां कवियोंका बड़ा आदर था। इन्होंने नायिकाभेदका कोई ग्रन्थ भी बनाया है। (शिवसिंहसरोज)

शम्भुनाथसिद्धान्तवागीश—दिनभास्कर, दुर्गोत्सवकौमुदी, देवीपूजनभास्कर, अकालभास्कर और वर्षभास्कर नामक ग्रन्थके रचयिता। शेषोक्त दो ग्रन्थ इन्होंने अपने प्रतिपालक राजा धर्मदेवकी आज्ञासे लिखे थे। १७१५ ई०में अकालभास्कर लिखा गया था।

शम्भुनाथार्चन—एक तन्त्र।

शम्भुप्रसाद कवि—एक भाषा-कवि। इनकी शृङ्गाररस-सम्बन्धी कविता उत्तम होती थी। (शिवसिंहसरोज)

शम्भुप्रिया (सं० स्त्री०) शम्भोः प्रिया। १ दुर्गा। २ आमलकी, आंवला। (शब्दरत्ना०)

शम्भुबीज (सं० पु०) पारद, पारा।

शम्भुभट्ट—कालतत्त्वविवेचनसारसंग्रह, त्रिंशच्छ्लोकी विवरणसारोद्धार (यह ग्रंथ रघुनाथकृत त्रिंशच्छ्लोकी बृहद्विवरण ग्रन्थकी टीका), पाकयज्ञप्रयोग और भट्टदीपिका-प्रभावली नामक ग्रंथके प्रणेता। शेषोक्त ग्रंथ १७०८ ई०में रचा गया। इनके पिताका नाम बालकृष्ण भट्ट तथा गुरुका नाम खण्डदेव था। ये मण्डल शंभुभट्ट नामसे भी विदित थे। शम्भुभट्टीय नामके न्यायग्रंथ इनके लिखे थे या नहीं कह नहीं सकते।

शम्भुभूषण (सं० पु०) महादेवजीका भूषण, चंद्रमा।

शम्भुमनु (सं० पु०) स्वायम्भुव मन्वन्तर जो सबसे पहला मन्वन्तर है।

विशेष विवरण स्वायंभुव और मनु शब्दमें देखो।

शम्भुमहादेवक्षेत्र—एक शैवतीर्थ। स्कन्दपुराणान्तर्गत शंभुमहादेवक्षेत्रमाहात्म्यमें इसका विवरण सविस्तार वर्णित है।

शम्भुराज—नीतिमञ्जरीके प्रणेता।

शम्भुराम—१ आत्मविद्याविलासके प्रणेता। २ छन्दोमुक्तावलीके रचयिता। ३ ताजिकालङ्कारके प्रणेता। १७२० ई०में यह ग्रन्थ रचा गया। इनके पिताका नाम गोकुल था।

शम्भुलोक (सं० पु०) महादेवजीका लोक, कैलास।

शम्भुवल्लभ (सं० क्ली०) शंभोर्वल्लभम्। १ श्वेतकमल, सफेद पद्म। (पु०) २ शंभुको प्रिय वस्तु।

शम्भुसिंह—मेवाड़के महाराणा। इनके पिताका नाम था शार्दूलसिंह। महाराणा स्वरूपसिंहकी मृत्यु होने पर उनके भतीजे शंभुसिंह मेवाड़की राजगद्दी पर बैठे। १८६१ ई०में इनका राज्याभिषेक हुआ था। उस समय ये बालक थे, इस कारण एक शासक-समिति स्थापित की गई और वही शासन करने लगी। परन्तु उस शासक-समितिके सदस्य मनमाने व्यवहार करने लगे। इस हेतु गवर्नमेण्टको दूसरी व्यवस्था करनी पड़ी। अबकी बार तीन आदमियोंकी एक समिति कायम हुई और इसके सभापति हुए स्वयं पोलिटीकल एजेण्ट साहब।

महाराणा शंभुसिंहको १८६५ ई०के नवम्बर महीनेमें शासनका अधिकार मिला। परन्तु दुःखका विषय है, कि महाराणा शंभुसिंहका अधिकार मेवाड़ पर बहुत दिनों तक नहीं रहा। बहुत थोड़े ही दिनोंमें सन् १८७४के अक्टूबर महीनेकी ७वीं को २७ वर्षकी अवस्थामें इनका परलोक वास हो गया। प्रजाने सोचा था, कि महाराणा शंभुसिंहके शासनमें सुखसे समय बीतेगा, किन्तु उनकी यह मधुर आशा ज्योंकी त्यों रह गई।

शम्भू (सं० पु०) शं-भू-क्विप् (भुवः संज्ञान्तरयोः। पा ३।२।१७९) शम्भु देखो।

शम्भूनाथ (सं० पु०) शम्भुनाथ देखो।

शम्मद् (सं० पु०) आङ्गिरसभेद।

(पञ्चविंशब्रा० १५।५।११)

शम्या (सं० स्त्री०) शम्यतेऽनया शम यत्-टाप्। १ युगकीलक, वह लड़की या खूंटा जो बम और जुएके मिले छेदोंमें डाला जाता है, सैल, सैला। (ऋक् ३।३३।१३) २ लकुट, यष्टि, दण्ड। (अथर्व्व ३।३१।१०) ३ अश्वत्थगर्भा शमी। (ऋक् १०।३१।१०) ४ दक्षिण-हस्तगृहीत तालविशेष। (सङ्गीतदामोदर)

शम्याक (सं० पु०) आरग्वध, अमलतास।

शम्याक्षेप (सं० पु०) शम्यायाः क्षेपो यत्र। १ साति-शय भ्रमित यष्टि उसी अवस्थामें सवेग निक्षिप्त हो जहां तक पहुंचे अर्थात् जहां जा कर वह यष्टि गिरे निक्षेप स्थानसे उतनी दूर परिमित भूमि। २ यज्ञविशेष।

शम्याताल (सं० पु०) दक्षिणहस्तगृहीत तालविशेष।

(सङ्गीतदामोदर)

शय (सं० त्रि०) शेते सर्वमस्मिन्निति प्रायो वस्तुनः करा-धीनत्वात्। शी-अ (पा ३।३।११८)। १ हस्त, हाथ। २ शय्या। ३ सर्प, सांप। ४ निद्रा, नींद। ५ पण। (त्रि०) ६ शयनकारी, सोनेवाला। ७ अवस्थानकारी, रहने-वाला।

शय (अ० स्त्री०) १ वस्तु, पदार्थ, चीज। २ भूत, प्रेत। ३ शह देखो।

शयण्ड (सं० पु०) शी-अण्डन् (उण् १।१२८) १ एक प्राचीन जनपदका नाम। २ इस देशका निवासी। ३ निद्रालु, वह जिसे नींद आई हो।

शयण्डक (सं० पु०) शयण्ड स्वार्थे कन्। १ शयण्ड देखो। २ कृकलास, गिरगिट।

शयत (सं० पु०) निद्रालु, वह जिसे नींद आई हो।

(संक्षिप्तसारोणादि०)

शयतान (अ० पु०) शैतान देखो।

शयतानी (अ० स्त्री०) शैतानी देखो।

शयथ (सं० पु०) शेते इति शी-अथ (शीङ्शपीति। उण् ३।११३) १ अजगर, सर्प। २ मृत्यु, मौत। ३ वराह, शूकर, सूअर। ४ मत्स्य, मछली। (संक्षिप्तसारोणादि) ५ गाढ़ी नींद। ६ यम।

शयन (सं० क्ली०) शी-ल्युट्। १ निद्रा। २ शय्या। ३ स्त्रीसङ्ग, मैथुन। ४ सर्वदेव शयनकाल अर्थात् आषाढ़ी शुक्ला एकादशीसे ले कर कार्त्तिकी शुक्ला एकादशी तकका समय। इस समय पहले हरि और पीछे एक एक कर सभी देव, यक्ष, नाग और गन्धर्वगण कुछ समयके लिये सुखशय्या पर सोते हैं। वामनपुराणमें लिखा है, कि सूर्यदेवके मिथुनराशिमें जानेके बाद शुक्ल-पक्षीय एकादशीमें वासुकीके फण पर सोपवीतक जगत्-पति श्रीहरिके शयनकी कल्पना कर पहले उनकी पूजा पीछे ब्राह्मणोंकी। अनन्तर दूसरे दिन द्वादशीको उन सब ब्राह्मणोंकी अनुमति ले कर भगवान्‌को सुलावे। सवेरे त्रयोदशीको सुकोमल सुगन्धित कदम्बकुसुमशय्या पर कामदेव, दूसरे दिन चतुर्द्दशी तिथिको सुवर्णपङ्कजके ऊपर यक्षगण, पौर्णमासीको व्याघ्रचर्म पर पिनाकी निद्रितावस्थामें रहते हैं।

इसके बाद सूर्यदेव जब कर्कट राशिमें जाते हैं, तब कृष्ण प्रतिपत् तिथिको नीलोत्पलदलशय्या पर ब्रह्मा, द्वितीयाको विश्वकर्मा, तृतीयाको गिरिसुता, चतुर्थीको गणपति, पञ्चमीको धर्मराज, षष्ठीको कार्त्तिकेय, सप्तमीको सूर्यदेव, अष्टमीको भगवती कात्या-यनी, नवमीको कमलालया लक्ष्मी, दशमीको नागराज-गण और एकादशीको साध्यागण कुछ समयके लिये सुखशय्या पर शयन करते हैं।

उक्त प्रकारसे देवताओंकी शयनक्रिया सम्पन्न होते न होते प्रावृट् काल आ पहुंचता है। इस समय कङ्कगृध्रबलाका आदि पक्षीगण सुखनिद्रासे समय वितानेके लिये पर्वत पर चढ़ जाते हैं। वहां वायस और यथाकालमें गर्भभाराक्रान्त वायसी घोंसला बना कर वहां सुखसे सोती हैं।

जिस द्वितीयामें विश्वकर्माके शयनका विषय लिखा है, उस तिथिमें गन्धपुष्पादि द्वारा लक्ष्मीके साथ पर्य्य-ङ्कस्थ श्रीवत्सलाञ्छन चतुर्भुजमूर्त्ति हरिकी अभ्यर्च्चना करके स्वादिष्ट और सुगन्धित फल चढ़ाके उनकी शय्या पर रख देना होगा। तथा—

"यथाहि लक्ष्म्या न वियुज्यसे त्वं त्रिविक्रमानन्त जगन्निवास।
तथा त्वशून्यं शयनं सदैव तस्माकमेवेह तव प्रसादात्॥"

तदा त्वशून्यं तव देव तल्पं स्वयं हि लक्ष्म्या शयने सुरेश ।
एतेन सेनाभिनवीयं विष्णोगार्हस्थ्यभागो मम चास्तु देव ॥"

इस मन्त्रसे भगवान्‌को प्रणाम तथा उन्हें प्रसन्न करनेके लिये बार बार यथेष्ट चेष्टा करे। इस अर्चनाके दिन व्रतीको चाहिये, कि वह तैलक्षारविवर्जित उपवास और अर्चनाके बाद रातको हविष्यान्न भोजन करे। दूसरे दिन 'लक्ष्मीधर प्रीयतां मे' इस मन्त्रसे फल चढ़ा कर किसी सत्‌शील ब्राह्मणको दान करना होगा। इस प्रकार चातुर्मास्य व्रतका प्रतिपालन करना कर्त्तव्य है।

इसके बाद दिवाकरके वृश्चिक राशिस्थ होनेसे उक्त सुप्त सुरगण क्रमशः प्रबुद्ध होते हैं।

भाद्रमासकी मृगशिरा नक्षत्रयुक्त कृष्णाष्टमी तिथि-का नाम कामाष्टमी है। इस तिथिमें जगत्‌के सभी *लिङ्गोंमें शिव शयन करते हैं, अतएव इसमें* जिस दिन लिङ्गके समीप पूजादि करनेसे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। (वामनपु०)

भविष्य और नारदीयपुराणमें निम्नोक्त रूपसे हरि-शयनादिकी व्यवस्था है—अनुराधाके आद्यपादमें श्री विष्णुका शयन, श्रवणाके मध्यपादमें उनका पार्श्वपरि-*वर्त्तन और रेवतीके अन्त्यपादमें उत्थान कल्पित* होता है। इन सब नक्षत्रोंके यथानिर्दिष्ट पादोंका संघ-टन यथाक्रम आषाढ़, भाद्र और कार्त्तिक मासकी शुक्ला एकादशी तिथिमें तथा उन सब दिनोंके निशा, संध्या और दिवा भागमें होनेसे यह अवश्य फलप्रद होता है। किन्तु यदि ऐसा न हो, तो उस द्वादशीमें यथाक्रम शय-नादि कार्य्य निर्वाह करना होगा।

वराहपुराणमें स्वयं भगवान्‌ने इस सम्बन्धमें कहा है, कि आषाढ़ शुक्लद्वादशीमें कदम्ब, कुटज, चम्पक और अर्जुन आदिके पुष्प द्वारा पहले यथाविधि मेरी अभ्य-र्चना कर पीछे 'नमो नारायणाय' कह जो विधिपूर्वक मन्त्र पढ़ते हैं, वे किसी भी युगमें अधःपतित नहीं होंगे।

इसके बाद भाद्रमासकी शुक्ला एकादशी तिथिमें भगवान्‌के पार्श्वपरिवर्त्तनके उपलक्षमें यथाविधि उनकी पूजा होम करे।

कालकपोत निबन्धमें लिखा है, कि भाद्रमासकी शुक्ला द्वादशी तिथिमें निम्नोक्त मन्त्रसे श्रीहरिका पार्श्व-परिवर्त्तन करना कर्त्तव्य है।

"वासुदेव जगन्नाथ प्राप्तेयं द्वादशी तव।
पार्श्वेन परिवर्त्तस्व सुखं स्वपिहि माधव॥
त्वयि सुप्ते जगन्नाथ जगत् सर्वं चराचरम्॥"

इसके बाद उत्थानके सम्बन्धमें ब्रह्मपुराणमें लिखा है—

"एकादश्यान्तु शुक्लायां कार्त्तिके मासि केशवम्।
प्रसुप्तं बोधयेद्रात्रौ श्रद्धाभक्तिसमन्वितः॥"
"कृत्वा वै मम कर्माणि द्वादश्यां मत्परो नरः।
ममैव बोधनार्थाय इमं मन्त्रमुदीरयेत्॥"

दोनों श्लोकोंमें तिथिघटित संशय होनेसे कहा जाता है, कि एकादशीकी रातको प्रसुप्त केशवके अर्च-नादि कार्य्य समाप्त करके दूसरे दिन द्वादशीको मेरे प्रबोधके लिये मन्त्रका पाठ करे।

वाचस्पति मिश्र कहते हैं, कि उक्त दोनों मन्त्र पढ़नेके बाद निम्नोद्धृत मन्त्र भी पढ़ना कर्त्तव्य है। यथा—

"उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते।
त्वया चोत्थीयमानेन उत्थितं भुवनत्रयम्॥"

*कल्पतरु आदि ग्रन्थलिखित संवादानुसार शुध-*चरण आदिने शयनोत्थान सम्बन्धीय मन्त्रकी इस प्रकार मीमांसा की है—द्वादशी या एकादशी इसके जिस जिस दिनमें रेवती नक्षत्रके अन्त्यपादका योग होगा, उस दिन दिवा भागमें उत्थानक्रिया करे और यदि किसी भी दिन नक्षत्रका योग न हो, तो द्वादशीमें ही उक्त क्रिया करनी होगी।

जीमूतवाहनने स्पष्ट कहा है, कि आषाढ़, भाद्र और कार्त्तिक मासकी शुक्ला द्वादशीमें ही यदि यथाक्रम अनु-राधाके आद्य, श्रवणाके मध्य और रेवतीके अन्त्यपाद-का योग हो, तो उन सब द्वादशियोंमें ही यथाक्रम भग-वान्‌का शयन, पार्श्वपरिवर्त्तन और उत्थानक्रिया करना ही सर्वश्रेष्ठ कल्प है।

श्रीहरिके शयनादि सम्बन्धमें चार प्रकारकी नियम-विधि है, यथा—

(१) द्वादशीको रातको नक्षत्रका योग होनेसे उसी दिन शयनादिक्रिया कर्त्तव्य है।

(२) उक्त प्रकारसे नक्षत्रका योग नहीं होने पर जिस तिथिमें यथोक्त समय उनका पादयोग होगा, उसी दिन शयनादि कर्त्तव्य है।

(३) यदि उक्त दोनों प्रकारसे तिथि नक्षत्रका समावेश न हो, तो जिस तिथिमें सन्धिकालमें अर्थात् शाम या सुबह नक्षत्रका योग होगा उसी दिन यथासमय क्रियादि करनी होगी।

(४) यदि इस तरह किसी प्रकार तिथिनक्षत्रका योगायोग न हो, तो द्वादशीकी सायंसन्धिमें शयनक्रिया और प्रातःसन्धिमें प्रबोधनक्रिया सम्पन्न करे। फिर पार्श्वपरिवर्त्तनक्रिया जिस प्रकार संधिमें की जाती है, तदनुसार ही करनी होगी।

यमस्मृतिमें लिखा है, कि आषाढ़ी शुक्ला एकादशीसे ले कर पौर्णमासी पर्य्यन्त श्रीहरिका निद्राग्रहणरूप शयनकाल है, इस कारण ब्रह्मपुराणमें भी पहले एकादशीमें शयनका उल्लेख करके उस दिनसे ले कर पांच दिन तक यह कर्म करनेका विषय कहा गया है।

शयन, उत्थान और पार्श्वपरिवर्त्तनघटित एकादशीमें प्रत्येक आश्रमीको अनशन रहना कर्त्तव्य है। इस संबन्धमें स्वयं भगवान्‌ने कहा है, कि मेरे शयन, उत्थान और पार्श्वपरिवर्त्तनके दिन फल, मूल या जलाहारी व्यक्ति मेरे हृदयमें शेल (बरछा) मारते हैं अर्थात् उस दिन फल, मूल या जल बिन्दुमात्र भी ग्रहण करनेसे शल्यविद्धवत् मुझे वेदना होती है।

"मच्छयने मदुत्थाने मत्पार्श्वपरिवर्त्तने।
फलमूलजलहारी हृदि शल्यं समार्पयेत्।" (एकादशीतत्त्व)

मर्त्यगणका शयनविधि-निषेध।

वह्निपुराणमें लिखा है, कि सायंसन्ध्यावन्दनादि करके अग्निमें आहुति दे और उसकी उपासना करे। पीछे भृत्यादि परिवारोंके साथ लघुभोजन करे। इसके बाद गोबरसे लिपे हुए निर्जन पवित्र प्रदेशमें शयन करना कर्त्तव्य है। शयनकालमें निम्नलिखित नियम पालन करने होते हैं। यथा—ज्ञानियोंको चाहिये, कि जिस घरके उत्तर और पूरब क्रमशः निम्न रहता है, वही स्थान शयनके लिये चुने। शयनकालमें सर्वदा पूर्व और दक्षिणकी ओर सिरहाना रहना उचित है, उत्तर और पश्चिमकी ओर सिरहाना कदापि न रखना चाहिये। एक दूसरेसे सट कर या तिर्य्यक् भावमें सोना कदापि उचित नहीं। शून्यालयमें अर्थात् परित्यक्त घरमें, श्मशानमें, एक वृक्षके नीचे, चौराहे पर, शिवालयमें, यक्षनागायतनमें अर्थात् जिन सब स्थानोंमें यक्ष स्कन्द आदि ग्रह या सर्पादि रहते हैं वहां, धान्यगृहमें, गुरुजन या विप्रोंके अवस्थितिस्थानसे ऊपरमें, अशुचिस्थानमें, तृणपत्रादि परिपूर्ण स्थानमें, स्वयं अशुचि, शिखारहित या उलङ्ग अवस्थामें, दिनमें, संध्याकालमें, पर्वत पर, शून्य स्थानमें, देवाश्रित वृक्ष पर, जलक्लिन्न द्वारयुक्त गृहमें अर्थात् जिस घरका दरवाजा जल और कीचड़से भरा रहता है उस घरमें, आर्द्रपद या अधौत पदमें, पलाशकाष्ठ निर्मित खट्टादि पर, बहुविदीर्ण स्थानमें, विद्युत् या अग्निदग्ध स्थानमें, जलके ऊपर और शरके आसन पर शयन करना निषिद्ध है। अतएव इसका किसी प्रकार उल्लङ्घन करनेसे लोग इस लोकमें दुःखी और परलोकमें निरयगामी होते हैं। (वह्निपुराण)

स्मृत्यादिके मतसे सूर्यके रहते शयनशय्याको बिछाना और उठाना निषिद्ध है अर्थात् प्रति दिन सूर्यास्तके बाद बिछौना बिछाना और सूर्यदेवके उदयके पहले उसे उठाना उचित है।

व्यासका कहना है, कि शयनकालमें सिरहानेके पास ही एक माङ्गल्य पूर्णकुम्भ वैदिक गरुड़ मन्त्रोच्चारण पूर्वक स्थापन कर शयन करना चाहिये।

गर्गने कहा है, कि अपने घरमें दक्षिण या पूर्व ओर तथा परदेशमें पश्चिम ओर सिरहाना कर सोनेसे आयुकी वृद्धि होती है। किन्तु उत्तर ओर मस्तक कर कदापि सोना न चाहिये।

मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है, कि पूर्व ओर मस्तक रख कर शयन करनेसे धन लाभ, दक्षिण ओर आयुर्वृद्धि, पश्चिम ओर प्रबल चिन्ता और उत्तर ओर मस्तक रख कर सोनेसे हानि और मृत्यु होती है। फिर प्रति दिन रातको विष्णुको प्रणाम कर समाधिस्थ हो शयन करे। शून्यगृहमें, श्मशानमें, एक वृक्ष पर, चौराहे पर, शिवालयमें, ढेले या पूल पर, धान, गाय, विप्र, देवता और गुरु-

उनसे उच्चासन पर, भग्न शय्या पर, अपवित्र शय्या पर, स्वयं अपवित्र अवस्थामें, आर्द्र वस्त्रसे उलङ्गावस्थामें, उत्तर और पश्चिमकी ओर मस्तक रख कर शून्य या अनावृत्ति स्थानमें तथा देवताश्रित वृक्ष पर शयन न करना चाहिये।

मत्स्यसूक्तके ४थे पटलमें लिखा है—गृही व्यक्तिको सन्ध्याके बाद यथोक्त समयमें खा पी कर पैर हाथ धो कर यथाविधि मन्त्रोच्चारण कर बिछावन पर जाना चाहिये। किन्तु शाल्मली, कदम्ब, मन्दार, पलाश और वट आदि लकड़ोंके बने हुए तथा कुशमय शय्या पर कभी सोना न चाहिये, सोनेसे पापभागी होना पड़ता है। इसके सिवा वृक्षादिके नीचे, पाट, शण आदि सूतके ऊपर, शुक्रादि द्वारा अपवित्र शय्या पर, खड़ तृण आदिके ऊपर, निरवच्छिन्न मिट्टीके ऊपर तथा पट्टवस्त्र और कलङ्की अर्थात् किसी प्रकारके दागवाले कम्बल पर सोना निषिद्ध है। गृहीके लिये तुला निर्मित शय्या या शुद्ध वस्त्रके ऊपर सोनेकी व्यवस्था है।

विष्णुपुराणमें लिखा है, कि सूर्यके उदय होने तक तथा उनके अस्त होते ही पीड़ित व्यक्तिको छोड़ जो निद्रादेवीकी गोदमें पड़े रहते हैं, वे अवश्य ही प्रायश्चित्त के योग्य हैं।

भावप्रकाशमें लिखा है, कि खानेके बाद धीरे धीरे सौ कदम चल कर पीछे शयन करनेसे शरीरकी पुष्टि होती है।

"भुक्तोपविशतस्तुन्द' शयानस्य तु पुष्टिता।
आयुश्च'क्रममाणस्य मृत्युर्धावति धावतः॥"

उक्त शयनकी व्यवस्था इस प्रकार है—

अष्टश्वास परिमित काल तक चित हो कर, उससे दूना दाहिनी करवटसे और उससे भी दूना अर्थात् जितनी देरमें (८×२×२) ३२ बार श्वास निकाल सके उतनी देर तक बाईं करवटसे सोवे। उसके बाद जिस ओर इच्छा हो, सो सकते हैं। जन्तुओंके वाम पार्श्वमें नाभिके ऊपर पाचकाग्निका अधिष्ठान है, अतएव खाई वस्तु जिससे अच्छी तरह पच जाय उसके लिये खानेके बाद बाईं करवटसे सोना ही कर्त्तव्य है।

खट्टादि शय्या पर शयनगुण।

खट्टा अर्थात् खाट पर सोनेसे त्रिदोषकी शमता होती है; तुलानिर्मित शय्या पर सोना वातश्लेष्मनाशक है; भूशय्या शरीरको उपचयकारक और शुक्रजनक तथा काष्ठपीठकी शय्या वायुवर्द्धक है।

किसी किसीके मतसे भूशय्या अत्यन्त वायुवर्द्धक, रूक्ष और रक्तपित्तनाशक है।

सुशय्या अर्थात् खूब साफ सुथरे दूधकी तरह सफेद शय्या पर सोनेसे अन्तःकरणकी स्फूर्ति, शरीरकी पुष्टता, सहजमें निद्राकर्षण, धारणशक्तिकी वृद्धि, श्रमनाश और वायु प्रशमित होती है। निकृष्ट शय्या इसका विपरीत गुणवाली है, अतएव उस पर कभी सोना न चाहिये।

५ ग्रहोंके बारह भावोंमेंसे एक भाव या अवस्था, ग्रहोंका भाव या अवस्थाविशेष। नीचे प्रत्येक ग्रहको शयन भाव और उस भावापन्न ग्रहका फल लिखा जाता है—

ग्रहोंका शयनादि भाव जाननेमें जातकके जन्मकालमें ग्रहगण किस किस नक्षत्रमें रहते थे, सबसे पहले उसीका निर्णय करना होता है। पीछे उस ग्रहाधिष्ठित नक्षत्र संख्या द्वारा उस संख्याको गुना करे। बादमें ग्रहगण अपनी अधिष्ठित राशिके जिस नवांशमें रहते हैं, उस नवांश परिमित अङ्क द्वारा उस गुणनफलको फिरसे गुना करना होता है। अब ग्रहोंका अपना जन्मनक्षत्र, उस जातकका जन्मलग्नसंज्ञक अङ्क और उदयसे जितने दण्डमें उसका जन्म हुआ है, यह दण्ड पूर्वोक्त गुणनफलमें योग कर उसे १२से भाग दे। यदि भागशेष एक रह जाय, तो उसे ग्रहका शयनभाव जानना होगा। इस प्रकार दो रहनेसे उपवेशन, इत्यादि।

ग्रहोंका जन्मनक्षत्र, यथा—रविका जन्मनक्षत्र १६ विशाखा, चन्द्रका ३ कृत्तिका, मङ्गलका २० पूर्वाषाढ़ा, बुधका २२ श्रवणा, वृहस्पतिका ११ पूर्वफल्गुनी, शुक्रका ८ पुष्या, शनिका २७ रेवती, राहुका २ भरणी, केतुका ६ अश्लेषा।

कोई पापग्रह शयन या निद्रित अवस्थामें किसी दूसरे पापग्रह कर्त्तृक दृष्ट न हो कर सप्तम अर्थात् जाया-स्थानमें रहे, तो जातकका शुभफल होता है। रिपुगृह

और रिपुगृहागत पापग्रह उक्त अवस्थापन्न हो कर सप्तममें रहे, तो पत्नीके साथ जातककी मृत्यु होती है। ऐसा अवस्थापन्न शुभग्रह शुभाशुभग्रह कर्त्तृक दृष्ट होनेसे सिर्फ जातककी प्रथम पत्नीका वियोग होता है।

उक्त भावद्वयापन्न पापग्रहके सुत या पञ्चम स्थानमें रहनेसे जगत्का शुभ होता है। वह ग्रह यदि अपने उच्च मूलत्रिकोणस्थ हो, तो सन्तानकी हानि होती है। उस अवस्थाका शुभग्रह यदि शुभग्रह दृष्ट हो कर सुतस्थानमें रहे, तो जातकको प्रथम सन्तानका अनिष्ट होता है।

मृत्यु या अष्टम स्थानमें उक्त अवस्थाद्वयसम्पन्न पापग्रहके रहनेसे राजा या किसी शत्रुके हाथ जातककी अपमृत्यु होती है। किन्तु वह पापग्रह शुभदृष्ट होनेसे तो निःसन्देह गङ्गाके किनारे उसकी मृत्यु होगी। शत्रु या पापग्रहदृष्ट शुभग्रह शयन भावमें मृत्युस्थानमें रहनेसे शिरश्छेद होता है; विशेषतः शनि, मङ्गल या राहुके इसी भावमें उसी स्थानमें रहनेसे अपमृत्यु या शिरश्छेद अनिवार्य है।

कर्म अर्थात् दशम स्थानमें शयन या भोजनभावापन्न पापग्रह रहनेसे जातक दरिद्रताके कारण इस पृथ्वी पर भटकता रहता है।

रविके शयनभावमें किसी स्थानमें रहनेसे जातक मन्दाग्नि, पित्तशूल, श्लीपद और गुह्यरोगसे आक्रान्त होता है।

चन्द्रमाके शयनभावापन्न होनेसे जातक क्रोधी, दरिद्र, अतिशय लम्पट और गुह्यरोगी होता है। यहां तक, कि वह हमेशा अस्वस्थ रहा करता है। चन्द्रके लग्नस्थ हो कर शयनावस्थापन्न होनेसे भी जातकके सब रोग अधिक होते हैं, अन्य स्थानस्थ होनेसे उतने नहीं होते।

शयनावस्थापन्न बुधके लग्नमें रहनेसे बालक धनवान, सर्वदा क्षुधित और खञ्ज होता है। अन्य स्थानमें इसी भावमें रहनेसे वह दरिद्र और भारी लंपट होता है।

वृहस्पतिके शयनावस्थामें किसी स्थानमें रहनेसे मानव विद्याबुद्धिसमन्वित, नाना गुणयुक्त, दाता और सुखी होता है।

सप्तम अथवा एकादश स्थानमें शुक्रकी शयनावस्था होनेसे बालक कभी भी दरिद्र नहीं होता, हमेशा सुखी रहता है तथा कम होने पर भी उसे सात पुत्र और पांच कन्या होती है। परन्तु ग्रहका बलाबल समझ कर कमी बेशी भी हो सकती है। उस अवस्थामें रहनेसे जातक धनवान, धार्मिक और सुखी होता है, किन्तु उसका पुत्रनाश अनिवार्य है।

मङ्गलके शयन भावमें किसी स्थानमें रहनेसे जातक लम्पट, कृपण, सुखी, महाक्रोधी, महादक्ष और पण्डित होता है, किन्तु उसी भावमें पञ्चम और सप्तम स्थानमें रहनेसे यथाक्रम उसकी पहली सन्तान और पहली स्त्री विनष्ट होती है। शत्रुगृहस्थ मङ्गल रिपु द्वारा देखे जाने पर जातकके कर्णनासादि या भुजच्छेद और वहां रह कर शनि और राहुयुक्त होनेसे शिरश्छेद होता है। शयनभावापन्न मङ्गल यदि लग्नमें रहे, तो जातक हमेशा रोगी रहता तथा दद्रु, कुष्ठ, विचर्चिका आदि द्वारा उसका शरीरभङ्ग होता है।

शनिके शयनभावमें रहनेसे जातक क्षुधित, विकलाङ्ग और गुह्यरोगी होता है तथा उसके कोपकी वृद्धि होती है। लग्न, षष्ठ और अष्टममें रहनेसे मानव चिरप्रवासी, दरिद्र और अतिशय विकलाङ्ग होता है। पञ्चम, नवम, दशम और सप्तममें यदि उसका शयनभाव देखा जाय, तो जातक पुत्रवान् और सब प्रकारसे सुखी होता है।

जिसके जन्मकालमें राहुकी शयन अवस्था होती है, उसे नाना प्रकारका क्लेश होता तथा वह हमेशा दुःखी और श्लीपदरोगग्रस्त रहता है। राजाका भी इस अवस्थामें जन्म होनेसे उसके धनकी हानि होती है। किंतु वृष, मिथुन, सिंह और कन्या राशिमें रह कर शयनभावग्रस्त होनेसे मनुष्य सभी सुखोंके अधिकारी होते हैं।

शयन आरती (सं० स्त्री०) देवताओंकी वह आरती जो रातको सोनेके समय होती है।

शयनकक्ष (सं० पु०) सोनेका कमरा या घर, शयनागार।

शयनगृह (सं० क्ली०) शयनमन्दिर, सोनेका स्थान, शयनागार।

शयनप्रकोष्ठ (सं० पु०) शयनगृह, शयनमन्दिर।

शयनबोधनी (सं० स्त्री०) अगहन मासके कृष्ण पक्षकी एकादशी ।

शयनभूमि (सं० स्त्री०) शयनस्थान, सोनेकी जगह ।

शयनमन्दिर (सं० क्ली०) शयनगृह, सोनेका घर, शयनागार ।

शयनमहल (सं० क्ली०) शयनागार

शयनवासस् (सं० क्ली०) वे कपड़े जो सोनेके समय पहने जांय ।

शयनस्थान (सं० क्ली०) शयनभूमि, सोनेकी जगह ।

शयनागार (सं० पु०) शयनमन्दिर, शयनगृह, सोनेका स्थान ।

शयनावास (सं० पु०) सोनेका घर ।

शयनास्पद (सं० क्ली०) बिछौना ।

शयनीय (सं० क्ली०) शेतेऽस्मिन्निति शी-अनीयर् अधिकरणे । १ शय्या, बिछौना । (त्रि०) २ शयनयोग्य, सोनेके लायक । (रामायण २।७२।११)

शयनीयक (सं० क्ली०) शयनीयमेव स्वार्थे कन् । शय्या, बिछौना । (कथासरित्सागर ३३।१७७)

शयनीयगृह (सं० क्ली०) सोनेका घर ।

शयनीयवास (सं० पु०) वे कपड़े जो सोनेके समय पहने जांय ।

शयनैकादशी (सं० स्त्री०) शयनाय शयनस्य या एकादशी । आषाढ़ मासके शुक्लपक्षकी एकादशी । विष्णु भगवान्‌के शयनका प्रारम्भ इसी दिनसे माना जाता है । विस्तृत विवरण शयन और हरिशयन शब्दोंमें देखो ।

शयाण्ड (सं० पु०) १ एक प्राचीन देश या जनपदका नाम । २ इस देशका निवासी ।

शयाण्डक (सं० पु०) कृकलास, गिरगिट ।

(शुक्लयजु: २४।३३)

शयाण्डभक्त (सं० पु०) शयाण्डानां विषयो देशः । शयाण्ड नामक जनपद-वासियोंका विषय या देश ।

(पा ४।२।५४)

शयान (सं० पु० क्ली०) निद्रित, वह जो सोया हो ।

शयानक (सं० पु०) शी शानच्, ततः कन् यद्वा 'आनकः शीङ् भियः इति आनक ।' (उणादिकोष) १ सर्प, सांप । २ ... गिट ।

शयामूत्र (सं० क्ली०) शय्यामूत्र, बिछौने पर पेशाब करना ।

शयालु (सं० त्रि०) शी-आलुच् (आलुचि शीङो ग्रहणं कर्त्तव्यम् । पा ३।२।१५८) १ निद्राशील, वह जिसे नींद आई हो । (माघ २।८०) २ अजगर, सर्प । ३ कृकलास, गिरगिट । ४ कुक्कुर, कुत्ता । ५ शृगाल, सियार, गीदड़ ।

शयित (सं० त्रि०) शी क्त । १ कृतशयन, सोया हुआ । (कथासरित्सा० ५६।१८७) २ निद्रालु, जिसे नींद आई हो । (क्ली०) ३ शयन, सोना । ४ श्लेष्मान्तक, लिसोड़ा । ५ अजगर ।

शयितवत् (सं० त्रि०) शी-क्त-वतु । निद्रालु, जिसे नींद आई हो ।

शयितव्य (सं० त्रि०) सोने लायक । (कथासरित्सा० १४।४८)

शयितृ (सं० त्रि०) शी-तृच् । पा ४।२।१५) शयनकारी, सोनेवाला ।

शयु (सं० पु०) शी-उ । १ अजगर । २ एक प्राचीन वैदिक ऋषिका नाम । (ऋक् १।११२।१६) (त्रि०) ३ शयान, सोया हुआ । (ऋक् ४।१८।१२)

शयुत्रा (सं० पु०) १ शयन । २ शयु नामक ऋषिके त्राणकर्त्ता । (ऋक् १।११७।१२)

शयुन (सं० पु०) शी-उनन् (उणादिकोष) । अजगर ।

शय्यम्भद्र (सं० पु०) जैनोंके छः श्रुतकेवलीमेंसे एक । संभवतः इसका दूसरा नाम शय्यम्भव है ।

शय्यम्भव (सं० पु०) जैनोंके छः श्रुतकेवलीमेंसे एक ।

शय्या (सं० स्त्री०) शी-क्यप् संज्ञायां समजेति (पा ३।३।९९) १ गुम्फन, गूथना, गांथना । शेरते यत्र सा । २ बिछौना, जिस पर शयन किया जाय ।

शय्या और आसनादि कुसुमसुकोमल होना उचित है । ऐसी शय्या पर सोनेसे निद्रा, पुष्टि और धृतिशक्ति की वृद्धि होती है तथा श्रमजन्य प्रकुपित वायु विनष्ट होती है । इसकी विपरीत अर्थात् कदर्य शय्या पर सोनेसे विपरीत फल होता है । भू-शय्या वातपित्तप्रशमनी, बृंहणी और शुक्रवर्द्धिनी होती है । खट्टा वातविवर्द्धिनी तथा पट्टशय्या अति रूक्षतम और अतिशय वातप्रकोपणी है । (राजवल्लभ)

किसी किसीके मतसे खट्टा त्रिदोषप्रशमनी, तूलिशय्या वातकफापहारिणी, भूशय्या बृंहणी और शुक्रला; काष्ठ और पट्टशय्या वातला है ।

भावप्रकाशमें लिखा है, कि भूशय्या अत्यन्त वातला, रुक्ष और रक्तपित्तविनाशिनी है।

विष्णुपुराणमें लिखा है, कि गृहस्थ सायंकालीन भोजनके बाद हाथ पैर धो कर अस्फुटित दारुनिर्मित सुप्रशस्त अभग्न समतल अत्यन्त परिष्कार परिच्छन्न शय्या पर सोवे; अविस्तृत या किसी जन्तुमयी शय्या पर कदापि सोना न चाहिये।

(विष्णुपु० ३य अंश ११ अ०)

शय्यादानफल।

शुद्धितत्त्वमें लिखा है, कि गृह, धान्य, हरीतकी, पादुका, छत्र, माल्य, चन्दनादि अनुलेपनद्रव्य, शकटादि यान, वृक्ष, शय्या और जिसके लिये जो वस्तु अत्यन्त प्रिय है वह वस्तु दान करनेसे सुखसम्भोग होता है। विशेषतः सामर्थ्य रहते हुए शय्यादिदानमें कभी भी किसीको प्रत्याख्यान करना कर्त्तव्य नहीं; क्योंकि याज्ञवल्क्यने कहा है, कि कुश, शाक, दुग्ध, मत्स्य, गंधद्रव्य, पुष्प, दधि, क्षिति, मांस, शय्या, आसन, धान और जल इन सब द्रव्यदानमें कभी किसीको प्रत्याख्यान न करे।

(याज्ञवल्क्य)

ब्रह्मपुराणमें लिखा है, कि मृतव्यक्तिके उद्देशसे जो सब शय्यादि दान की जाती है वह तथा मुमूर्षु या मृतव्यक्तिकी उद्धार कामनासे जो सब तिल और धेनु दान किया जाता है, वह जो व्यक्ति दान लेता है, वह कभी नरकसे छुटकारा नहीं पा सकता। परन्तु आङ्गिरस देवताके उद्देशसे जो सब छत्र, कृष्णाजिन, शय्या, रथ, आसन, पादुका, शकटादि यान और प्राणवर्जित जो कोई दान किया जाता है, मनुष्य उसे ग्रहण कर सकते हैं।

देवीपुराणके पुष्पाभिषेक नामक अध्यायमें शय्या-पट्टक अर्थात् पीठशय्याका विषय इस प्रकार लिखा है, यथा—दो हाथ लम्बा, हाथ भर चौड़ा, दश उंगली ऊंचा रत्नालङ्कार द्वारा सुशोभित पीठक बैठनेके लिये प्रस्तुत करे, स्नानके लिये यदि बनाना हो, तो उसे डेढ़ हाथ घेरेका हंसाकारमें बनाना होगा; शयनके लिये व्यवहार करनेमें उसे चार हाथ लंबा बनाना कर्त्तव्य है।

(देवीपुराण पुष्पाभिषेक)

शय्यागत (सं० त्रि०) १ शय्याशायी, बिछौने पर सोनेवाला। २ जो बीमार होनेके कारण खाट पर पड़ा हो, पीड़ित।

शय्यागृह (सं० क्ली०) शयनगृह, सोनेका घर।

शय्याच्छादन (सं० क्ली०) आस्तरण, पलङ्ग पर बिछानेकी चादर।

शय्यादान (सं० पु०) मृत्युके अनन्तर मृतकके संबन्धियोंका महापात्रको चारपाई बिछावन आदि दान देना, सज्जादान।

शय्याध्यक्ष (सं० पु०) शय्यापाल।

शय्यापतित (सं० त्रि०) शय्यागत देखो।

शय्यापाल (सं० पु०) वह जो राजाओंके शयनागारकी व्यवस्था करता हो।

शय्यापालक (सं० पु०) शय्यापाल।

शय्यामूत्र (सं० क्ली०) एक रोग जो प्रायः बालकोंको होता है। इसमें उन्हें निद्रावस्थामें ही शय्या पर पड़े पड़े पेशाब हो जाता है।

शय्यावासवेश्मन् (सं० क्ली०) शयनगृह, सोनेका घर।

(कथासरित्सा० ७६।१८०)

शय्यावेश्मन् (सं० क्ली०) शय्यागृह, सोनेका घर।

शय्योत्सङ्ग (सं० पु०) शय्याका पार्श्वदेश, मतान्तरसे शय्याका मध्यस्थान।

शय्योत्थायम् (सं० अव्य०) बिछौना छोड़नेका समय, प्रातःकाल, सुबह।

शर (सं० पु०) शृणात्यनेनेति शृ हिंसे (ऋदोरप्। पा ३।३।५७) इति अप्। स्वनामख्यात तृणभेद, सरकण्डा, नरकट। पर्याय—इषु, काण्ड, बाण, मुक्त, तेजन, गुन्द्रक, उत्कट, शायक, क्षुर, क्षुप, क्षुरिका, पत्र, विशिख। वैद्यकके मतसे गुण—मधुर, तिक्त, कुछ उष्ण, कफ, श्रम और मत्ततानाशक, बलवीर्यकारक, प्रतिदिन सेवन करनेसे वातवर्द्धक। (राजनि०)

यह बहुत बड़ा होता और अनेक कामोंमें आता है। उद्भिद्विदोंने देशभेदसे पार्थक्य निरूपण कर इसका भिन्न भिन्न नाम रखा है; यथा—रक्सवर्ग Saccharum sara और S Munja तथा एण्डर्सन Cili are; किंतु यथार्थमें यह तृणजाति एक है। नामभेद होने पर

भी उनमें कोई विशेष प्रभेद नहीं है। देशभेदसे भी यह विभिन्न नामोंसे पुकारा जाता है। हिन्दी—शर, सरकण्डा, शर्करा, सरपत, शरपत्र, रामशर, मुञ्जा ; बङ्गला—शर ; संथाल—शर; युक्तप्रदेशके पूर्वांशमें—पातावर ; पश्चिमांशमें—र्कर, शरहर, शरकाण्ड ; अयोध्या—पालशा ; पञ्जाब—सरकाना, काण्ड, सर्जवर, शर्कर ; अजमीर—शर, सरपत; सिन्धुदेश—शर ; सिन्धुके पश्चिम—दगा, साधा, कड़े ; तैलङ्ग—गुन्द्रा, पोणिका ; अङ्गरेजी—Pen-reed grass,

उत्तर-पश्चिम भारत और पंजाबके समतल प्रांतमें यह तृण बहुतायतसे उपजता है। यह देखनेमें लंबा और सुन्दर होता है। साधारणतः ८ से १२ फुट तक इसकी ऊंचाई होती है। कभी कभी नदीतीरस्थ जमीन अथवा जो सब निम्न भूमि नदीकी बाढ़से डूब जाया करती है, वैसी जमीनके अड्डेके ऊपर यह घास गाड़ कर बाहरसे घेरा दे दिया जाता है। ऐसी जल सिक्त जमीन पर यह जल्द बढ़ता है तथा अन्यान्य उच्च स्थानजात तृणकी अपेक्षा इसका आकृतिगत अनेक परिवर्त्तन होता है। इसके काण्डावरक पत्रवृन्त से जो रेशे निकलते हैं, उनसे अच्छी रस्सी तय्यार होती है। वर्षाऋतुके बाद इसमें फूल लगते हैं। Erianthus R, vennae नामक तृणविशेषके साथ इसका आकृतिगत और स्वभावगत अनेक सौसादृश्य है। बहुतेरे दोनों तृणको देख कर भ्रममें पड़ जाते हैं, किन्तु इनके पुष्पोद्गमकालकी पृथकता है। शेषोक्त तृणके पुष्प निकलनेके बहुत पीछे प्रथमोक्त तृण पुष्पित होता है।

पञ्जाबमें इसका मूल 'गर्भगंध' नामसे बिकता है। यह प्रसूतिका एक उपकारी औषध है। संतानके जन्म लेने पर यह गर्भगंध प्रसूतिके सामने जलाया जाता है। इसका धूम अग्निदग्ध या क्षत स्थानके लिये विशेष उपकारी है। इसका मुञ्ज बहुत दृढ़ होता है और जलमें जल्दी सड़ता नहीं। इलाहाबाद और मिर्जापुरके मांझी नाममुञ्जके रस्सेसे नाव खींचते हैं। यह टेबिल, टोकरे, पर्दे, धान आदिके गोले तथा घर छानेके काममें आता है। १८८३-८४ ई०में कलकत्तेमें जब आन्तर्जातिक प्रदर्शनी खोली गई, तब बहुतसे शरके घर विज्ञापनेदानमें बनाये गये थे।

इसकी कच्ची कच्ची पत्तियां गवादिके खाद्यरूपमें व्यवहृत होते हैं। शीतकालमें पंजाबवासी गवादिको सूखी पत्तियां, भूसी और चनेके साथ खिलाते हैं, इसके डंठलसे लिखनेकी कलम भी बनाई जाती है। अरबी, फारसी और भारतकी विभिन्न जातियोंकी भाषालिपि शरकी कलमसे ही लिखी जाती है। पूर्व समयमें योद्धा लोग शरसे बाण तैयार करते थे। आज भी संथाल, भील आदि असभ्य जातियां शरका बाण बनाती हैं। सरस्वतीपूजाके समय देवीके सामने शरकी कलमसे पूजा की जाती है।

शरकाण्ड (S. arundinaceum या S. procerum) जातिकी एक और श्रेणी है। पर्वतादिके बालुकामय श्रृङ्गदेश पर तथा समतल क्षेत्रमें यह तृण उपजता है। यह भारतवर्षमें प्रायः २० फुट ऊंचा होता है। कार्त्तिक मासमें ये सब तृण पुष्पके भारसे झुक कर अत्यन्त सुन्दर दृश्य धारण करते हैं। यह देखनेमें प्रायः ईख (S, officinarum)की तरह होता है, किन्तु बाह्य दृश्यमें उससे कहीं सुन्दर दिखाई देता है। इससे भी उक्त शरकी तरह नाना प्रकारकी चीजें बनती हैं। इस शरके पुष्पयुक्त अग्रभागसे टोकरी, पंखे, चलनी आदि बनते हैं।

२ बाण, तीर। ३ दध्यग्रभाग, दहीकी मलाई। पर्याय—दधिसार, दधिस्नेह। कट्टर। ४ दूधकी मलाई। ५ उशीर, खस। ६ महापिण्डी, भाला। ७ हिंसा। ८ ज्योतिषोक्त पञ्चमाङ्क, पांचकी संख्या। इससे कामदेवके पञ्चबाणका भी बोध होता है। ९ असुरभेद। १० उचथ्यके पुत्र। (ऋक् ५।११६।२३) ११ शिव। १२ जल। १३ वृत्तांशकी शिञ्जिनी (Sine of an arc)।

शरअ (अ० स्त्री०) १ वह सीधा रास्ता जो ईश्वरने भक्तोंके लिये बतलाया हो। २ मुसलमानोंका धर्मशास्त्र। ३ दस्तूर, रीत, तरीका। ४ कुरानमें दी हुई आज्ञा। ५ दीन, मजहब, धर्म।

शरई (अ० वि०) १ शरअके अनुसार, मुसलमानी धर्मके अनुसार। (पु०) २ शरअ पर चलनेवाला मनुष्य।

शरक (सं० त्रि०) शरत्प्रभव। (पा ४।३।८०)
शरकाण्ड (सं० पु०) शरदण्ड, शरकंडा, सरपत।
शरकार (सं० पु०) वह जो तीर बनाता हो।
शरकुण्डेशय (सं० त्रि०) शरकुण्डमें अवस्थानकारी।
शरकूप (सं० पु०) प्रस्रवणभेद। (ललितविस्तर)
शरखड्ग (सं० पु०) उलूक तृण, उलप।
शरगुल्म (सं० पु०) १ शरतृण, सरकंडा। २ रामायणके अनुसार एक यूथपति बंदरका नाम।
(रामायण ४।४१।३)
शरघात (सं० पु०) शर-हन् घञ्। शराहत, शराघात।
शरच्चन्द्र (सं० पु०) शरत्कालका चन्द्रमा।
शरच्छशिन् (सं० पु०) शरत्कालका चन्द्रमा।
शरच्छालि (सं० पु०) शारदीय धान्य।
शरच्छिखिन् (सं० पु०) मयूर, मोर।
(भारत शान्ति०)
शरज (सं० क्ली०) शरात् जायते जन-ड। १ हैयङ्गवीन, नवनीत, मक्खन। (हेम) (त्रि०) २ शरजात, सरकंडेसे उत्पन्न या बना हुआ।
शरजन्मन् (सं० पु०) शरे शरवने जन्म यस्य। कार्त्तिकेय।
शरज्ज्योत्स्ना (सं० स्त्री०) शरत्कालकी चन्द्रिका।
शरट (सं० पु०) शॄ-शकादित्वादटन्। १ कुसुम्भ नामक साग। २ कृकलास, गिरगिट। ३ करञ्ज।
शरटी (सं० स्त्री०) लज्जालुक, लाजवन्ती, लज्जालु।
शरण (सं० क्ली०) शृणाति दुःखमनेनेति शॄ-ल्युट्। १ गृह, घर, मकान। २ रक्षा, आड़, आश्रय, पनाह। ३ आश्रयका स्थान, बचावकी जगह। ४ वध, जो शरणमें आये उसके वैरीको मारना। ५ अधीन, मातहत। ६ एक कवि। गीतगोविन्दमें जयदेवने इसका उल्लेख किया है। प्रवाद है, कि इनका दूसरा नाम शरणदत्त था। लक्ष्मणसेनकी सभामें ये विद्यमान थे। ७ शाहाबादके उत्तर सारन नामक जिला।
शरणद (सं० त्रि०) शरण देनेवाला, रक्षा करनेवाला।
शरणदेव—एक कवि। शरण देखो।

शरणा (सं० स्त्री०) गन्ध-प्रसारिणी नामकी लता।
(शब्दरत्ना०)
शरणाकुरु (सं० पु०) अन्नभेद। 'वाघातेन वा स्वयं वा पक्वतया फलानां अधःपतनेन विशरणं शरणा तत्प्रधानाः कुरवोऽन्नानि शरणाकुरवः। शॄ-विशरणेऽस्माद्भावे ल्युः। कुरुर्द्वीपान्तरे भक्त इति मेदिनी। भक्त ओदनः।'
(भारत १३ पर्व नीलकण्ठ)
शरणागत (सं० त्रि०) शरणमागतः प्राप्तः। शरणापन्न, शरणमें आया हुआ। पर्याय—शरणार्थक, अभिपन्न, शरणार्थी। जो व्यक्ति शरणागत व्यक्तिकी रक्षा नहीं करता, वह एक युग तक कुम्भीपाक नरकमें वास करता है। शरणागतकी रक्षा करनेसे सौ राजसूययज्ञका फल और परम ऐश्वर्य लाभ होता है।

"भयहीनश्च भीतश्च दीनश्च शरणागतम्।
यो न रक्षत्यधर्मिष्ठः कुम्भीपाके वसेद्युगम्॥
राजसूयशतानाञ्च रक्षिता लभते फलम्।
परमैश्वर्ययुक्तश्च धर्मेण स भवेदिह॥"
(ब्रह्मवैवर्त्त प्रकृतिख० ५५ अ०)

पद्मपुराणमें क्रियायोगसारमें लिखा है, जो व्यक्ति धन या प्राण द्वारा शरणागत व्यक्तिकी रक्षा करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो अन्तमें मोक्ष पाता है।

"शरणागत रक्षां यः प्राणैरपि धनैरपि।
कुरुते मानवो शान्ती तस्य पुण्यं निशामय॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्महत्याशुतैरपि।
आयुषोऽन्ते भजेन्मोक्षं योगिनामपि दुर्लभम्॥"
(पद्मपु० क्रियायोग० ८ अ०)

अग्निपुराणमें लिखा है, कि जो लोभ, द्वेष और भयसे शरणागतकी रक्षा नहीं करता, उसे ब्रह्महत्याके समान पाप होता है। महापातकियोंके भी पापकी निष्कृति है, किन्तु शरणागत व्यक्तिको त्याग करनेवाले पापका निस्तार नहीं है।

"लोभाद्द्वेषाद्भयाद्वापि यस्त्यजेत् शरणागतम्।
ब्रह्महत्यासमं तस्य पापमाहुर्मनीषिणः॥
शास्त्रेषु निष्कृतिर्दृष्टा महापातकिनामपि।
शरणागतहन्तुस्तु न दृष्टा निष्कृतिः क्वचित्॥"
(अग्निपु०)

शरणापन्न (सं० त्रि०) शरणागत, शरणमें आया हुआ।

शरणार्थिन् (सं० त्रि०) शरणं अर्थयते इति अर्थ-णिनि। शरणप्रार्थी, आश्रय चाहनेवाला।

शरणार्पक (सं० त्रि०) शरणार्थमर्पयति आत्मानमिति अर्प-ण्वुल्। शरणापन्न, शरणमें आया हुआ।

शरणालय (सं० पु०) आश्रयस्थान।

शरणि (सं० स्त्री०) १ पन्था, मार्ग, पथ। "सरत्यनयेति सरणिः भाम्नीति अनिः इदन्तात् पक्षे ङीपि सरणी च। सरणि श्रेणिवर्त्मनोरिति दन्त्यादौ रभसः। शॄ, स्तॄ, णि हिंसने इत्यस्मात् पूर्ववत्‌ शरणिस्तालव्यादिश्च। शुभं शुभे प्रदोषे च शरणिः पथि चावनौ। इति तालव्यादावजयः।" (अमरटीकामें भरत) २ पृथ्वी, जमीन। ३ हिंसा। (ऋक् १।३१।१६)

शरणी (सं० स्त्री०) शरणि वा ङीप्। १ पन्था, मार्ग, रास्ता। २ गन्ध-प्रसारिणी नामकी लता। ३ जयन्ती। (त्रि०) ४ शरणदेनेवाली।

शरणैषिन् (सं० त्रि०) शरणप्रार्थी, शरण चाहनेवाला।

शरण्ड (सं० पु०) १ पक्षी, विहंग, चिड़िया। २ कामुक। ३ धूर्त्त, चालाक। ४ शरठ। ५ गिरगिट। ६ भूषणभेद, एक प्रकारका गहना। ७ छिपकली।

शरण्य (सं० त्रि०) शृणाति भयमिति शॄ-हिंसायां (शॄरम्योश्च। उण् ३।१०१) इति अन्य यद्वा शरणमिव (शरणादिभ्यो यः। पा ५।३।१०३) इति य। शरणागतरक्षक, शरणमें आये हुएकी रक्षा करनेवाला।

शरण्यता (सं० स्त्री०) शरण्यस्य भावः तल्-टाप्। शरण्यका भाव या धर्म।

शरण्या (सं० स्त्री०) शरण्य-टाप्। दुर्गा। विष, अग्नि आदि भय उपस्थित होने पर भगवती दुर्गादेवीका स्मरण करनेसे वे रक्षा करती हैं, इसलिये वे शरण्या नामसे ख्यात हैं।

शरण्यु (सं० स्त्री०) १ सूर्यकी पत्नी आख्या योषा। सरण्यु देखो। (पु०) २ मेघ, बादल। ३ वायु, हवा।

शरत (सं० स्त्री०) शरत देखो।

शरत (सं० स्त्री०) शरद् देखो।

शरतिया (अ० क्रि० वि०) शर्तिया देखो।

शरत् (सं० स्त्री०) शॄ-हिंसायां (शृदृभसोऽदि। उण् १।१२९) इति अदि। १ वत्सर, वर्ष, साल। २ ऋतु-विशेष, शरत्‌ऋतु। पर्याय—शारदा, कालप्रभात, वर्षावसान, मेघान्त, प्रावृडत्यय। आज कल आश्विन और कार्त्तिक मासमें शरत् ऋतु मानी जाती है, वैदिक कालमें कार्त्तिक और अग्रहायण मासमें मानी जाती थी।

किसीके मतसे भाद्र और आश्विन वा आश्विन और कार्त्तिक मास शरत्‌काल है। यह काल उष्ण, पित्तवर्द्धक और मानवोंके लिये बलप्रद है। शरत् कालमें वायु प्रशमित और पित्त प्रकुपित होता है।

जिस प्रकार वर्षमें ६ ऋतु होती हैं, उसी प्रकार प्रतिदिन भी ६ ऋतुका आविर्भाव हुआ करता है। प्रातःकालमें वसन्त ऋतु, मध्याह्नमें ग्रीष्म, अपराह्णमें वर्षा, अर्द्धरातमें शरत् इत्यादि प्रकारसे ऋतुओंका आविर्भाव होता है।

शरत्‌ऋतुमें इक्षु विकार गुड़ चीनी आदि, शालिधान्य, मुद्ग, सरोवर जल, क्वथित दुग्ध और प्रदोष कालमें चन्द्रकिरणका सेवन प्रशस्त है। (भावप्र०)

कविकल्पलतामें लिखा है, कि शरत्‌कालमें यह सब वर्णन करना होता है,—चंद्रपटुता, रविपटुता, जलशुभ्रता, बकपुष्प, हंस, वृष, सर्प, सप्तच्छद, पद्म, श्वेतमेघ, धान्य, शिखिपक्ष। ज्योतिषमें लिखा है, कि शरत्‌कालमें जन्म होनेसे मानव उत्तम कर्मकारी, तेजस्वी, शुचि, सुशील, गुणवान्, सत्पात्नी और धनी होता है।

"नरः शरत्‌संभवजन्मा भवेत् सुकर्मा मनुजस्तरस्वी।
शुचिः सुशीलो गुणवान् सुमानी धनान्वितो राजकुलप्रपन्नः॥"
(कोष्ठीप्रदीप)

शरत्‌कामिन् (सं० पु०) शरदि शरत्‌काले कामयते कुक्कुरीमिति कम 'कमेर्णिङ्' इति णिङ्, ततः णिनि। कुक्कुर, कुत्ता।

शरत्‌काल (सं० पु०) कन्या-संक्रान्तिसे तुला-संक्रान्ति तकका अथवा आश्विन और कार्त्तिकका समय शरत् ऋतु।

शरत्‌काल (सं० क्ली०) शरत्‌काल।

शरत्पद्म (सं० क्ली०) शरदः पद्मम्। सिताम्भोज, श्वेत-पद्म। (राजनि०)

शरत्पर्व्वन् (सं० क्ली०) शरदः पर्व्व। कोजागर पूर्णिमा, आश्विन मासकी पूर्णिमा।
शरत्पुष्प (सं० क्ली०) शरदः पुष्पं। १ आहुल्य क्षुप। २ शरत्कालोद्भव कुसुम, वह सब फूल जो शरद्कालमें हो।
शरत्समय (सं० पु०) शरत्काल।
शरद् (सं० स्त्री०) शॄ-अदि। (उण् १।१२६) १ शरत् ऋतु। २ राजपत्नीभेद। (राजत० ८।१-२५)
शरदई (हिं० स्त्री०) सरदई देखो।
शरद्क्ष (सं० पु०) स्मृतिशास्त्रके रचयिता एक आचार्यका नाम।
शरदण्ड (सं० पु०) १ शरयष्टि, सरकंडा। २ चाबुक। "शरदण्डः सार प्रकाण्डश्च अनुदण्डः पृष्ठवंशो येषां सितगौरपृष्ठा (हयाः) इत्यर्थः।" (भारत द्रोणपर्वटीकामें नीलकण्ठ)
शरदण्डा (सं० स्त्री०) १ प्राचीन नदीका नाम। २ एक प्राचीन देशका नाम।
शरदन्त (सं० पु०) शरदः तदाख्य ऋतोरन्तो यस्मात्। शरत्ऋतुका अन्त अर्थात् हेमन्त ऋतु।
शरदपूर्णिमा (सं० पु०) कुआर मासकी पूर्णिमासी, शरत् पूनो।
शरदसिंहदेव (सं० पु०) राजभेद।
शरदा (सं० स्त्री०) १ शरत् ऋतु। २ वर्ष, साल।
शरदिज (सं० त्रि०) शरदि जायते इति जन-ड (प्रावृट् शरत्कालदिवां जे। पा ६।३।१५) इति सप्तम्या अलुक्। शरत् कालजात, जो शरत् ऋतुमें उत्पन्न हो।
शरदिन्दु (सं० पु०) शरच्चन्द्र, शरतऋतुका चन्द्रमा।
शरदुदाशय (सं० क्ली०) शरत्कालका सरोवर।
शरदुद्भव (सं० पु०) दुग्धपलशाक विशेष।
शरदेव—एक प्राचीन कवि।
शरद्गत (सं० त्रि०) शरदं गतः। शरत्कालप्राप्त।
शरद्धिमरुचि (सं० पु०) शरत्कालका चन्द्रमा।
शरद्ह्रद (सं० पु०) शरत्कालीनो ह्रदः। शरत्कालका जलाशय।
शरद्वत् (सं० पु०) १ शरत्काल। २ विशीर्ण कार्मुक। ३ बहुसंवत्सरयुक्त अथवा पूर्वतन या चिरवस्तु। ४ एक प्राचीन ऋषि। (पा ४।१।१०२) ५ गौतमके वंशधर, शारद्वत ऋषि। (हरिवंश)
शरद्वसु (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषि।
शरद्विहार (सं० पु०) शरत्कालका आमोद-प्रमोद।
शरद्वीप (सं० पु०) पुराणानुसार एक द्वीपका नाम जो जम्बुद्वीप भी कहलाता है।
शरधान (सं० पु०) १ वृहत्संहिताके अनुसार एक देश। २ इस देशका निवासी।
शरधि (सं० पु०) शरा धीयन्तेऽस्मिन्निति शर-धा-(कर्मण्यधिकरणे च। पा ३।३।९३) इति कि। तूण, तीर रखनेका चोंगा, तरकश।
शरनिवास (सं० पु०) शरवनमें वास करनेवाला। (पा ८।४।३६)
शरन्मेघ (सं० पु०) शरत्कालीनो मेघः। शरत्कालको मेघ।
शरपङ्ख (सं० पु०) जवासा, हिंगुआ, धमासा।
शरपञ्जर (सं० क्ली०) शरशय्या।
शरपट्टा (हिं० पु०) एक प्रकारका शस्त्र।
शरपर्णी (सं० स्त्री०) वृक्षभेद, एक प्रकारका पौधा। (पा ४।१।६४)
शरपुङ्ख (सं० पु०) शरस्य पुङ्ख आकृतिर्यस्य। १ स्वनामख्यात क्षुपविशेष, नीलकी तरहका एक प्रकारका पौधा, सरफोका। (Sephrosia purpures) बम्बई—कुलथि। कलिङ्ग—पेरडु कोमुगि। महाराष्ट्र—उन्हलि। तैलङ्ग—तेलवेपलि चेट्टु। तामिल—कोल्लुक यवेलयि। संस्कृत पर्याय—काण्डपुङ्खा, बाणपुङ्खा, इषुपुङ्खिका, शायकपुङ्खा, इषुपुङ्खा। गुण—कटु, उष्ण, कृमि और वातनाशक। सफेद शरपुङ्ख बड़ा फायदेमंद होता है। (राजनि०) भावप्रकाशके मतसे तिक्त, और कषाय, यकृत्, प्लीहा, गुल्म, व्रण और विष, कास, अस्रज्वर और श्वासनाशक। (भावप्रकाश)
२ बाण या तीरमें लगा हुआ पंख। (क्ली०) ३ सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका यन्त्र।
शरपुङ्खा (सं० स्त्री०) शरपुङ्ख देखो।
शरबत (अ० पु०) १ पीनेकी मीठी वस्तु, रस। २ चीनी आदिमें पका हुआ किसी ओषधिका अर्क जो दवाके

शरणापन्न (सं० त्रि०) शरणागत, शरणमें आया हुआ।

शरणार्थिन् (सं० त्रि०) शरणं अर्थयते इति अर्थ-णिनि। शरणप्रार्थी, आश्रय चाहनेवाला।

शरणार्पक (सं० त्रि०) शरणं अर्पयति आत्मानमिति अर्प-ण्वुल्। शरणापन्न, शरणमें आया हुआ।

शरणालय (सं० पु०) आश्रयस्थान।

शरणि (सं० स्त्री०) १ पथ्या, मार्ग, पथ। "सरत्यनयेति सरणिः गार्म्मीति श्रणिः इत्यन्तात् पक्षे ईपि सरणी च। सरणि श्रोणिपर्णीगोपिति इत्यादौ रत्नमः। शृ, स्तृ, गि हिंसने इत्यस्मात् पूर्ववत्नी शरणिस्तालव्यादिश्च। शुभे शुभे प्रदोषे च शरणिः पथि चायनी। इति तालव्यादावमरः।" (अमरटीकामें भरत) २ पृथ्वी, जमीन। ३ हिंसा। (ऋक् १।३१।१६)

शरणी (सं० स्त्री०) शरणि वाहु ङीप्। १ पन्था, मार्ग, रास्ता। २ गन्ध-प्रसारिणी नामकी लता। ३ जयन्ती। (त्रि०) ४ शरणदेनेवाली।

शरणैषिन् (सं० त्रि०) शरणप्रार्थी, शरण चाहनेवाला।

शरण्ड (सं० पु०) १ पक्षी, विहंग, चिड़िया। २ कामुक। ३ धूर्त्त, चालाक। ४ शरठ। ५ कृकलास, गिरगिट। ६ भूषणभेद, एक प्रकारका गहना। ७ छिपकली।

शरण्य (सं० त्रि०) शृणाति भयमिति शृ-हिंसायां (शृ रम्योश्च। उण् ३।१०१) इति अन्य यद्वा शरणमिव (शाखादिभ्यो यः। पा ५।३।१०३) इति य। शरणागतरक्षक, शरणमें आये हुएकी रक्षा करनेवाला।

शरण्यता (सं० स्त्री०) शरण्यस्य भावः तल्-टाप्। शरण्यका भाव या धर्म।

शरण्या (सं० स्त्री०) शरण्य-टाप्। दुर्गा। विपद्, अग्नि आदि भय उपस्थित होने पर भगवती दुर्गादेवीका स्मरण करनेसे वे रक्षा करती हैं, इसलिये वे शरण्या नामसे ख्यात हैं।

शरण्यु (सं० स्त्री०) १ सूर्यकी पत्नी आरण्य योषा। शरण्यु देवी। (पु०) २ मेघ, बादल। ३ वायु, हवा।

शरत (सं० स्त्री०) शरत देखो।

शरत (सं० स्त्री०) शरत् देखो।

शरतिया (अ० क्रि० वि०) शर्तिया देखो।

शरत् (सं० स्त्री०) शृ-हिंसायां (शृ दृभसोऽदिः। उण १।१२९) इति अदि। १ वत्सर, वर्ष, साल। २ ऋतुविशेष, शरत्ऋतु। पर्याय—शारदा, कालप्रभात, वर्षावसान, मेघान्त, प्रावृडत्यय। आज कल आश्विन और कार्त्तिक मासमें शरत् ऋतु मानी जाती है, वैदिक कालमें कार्त्तिक और अग्रहायण मासमें मानी जाती थी।

किसीके मतसे भाद्र और आश्विन या आश्विन और कार्त्तिक मास शरत्काल है। यह काल उष्ण, पित्तवर्द्धक और मानवोंके लिये बलप्रद है। शरत् कालमें वायु प्रशमित और पित्त प्रकुपित होता है।

जिस प्रकार वर्षमें ६ ऋतु होती हैं, उसी प्रकार प्रतिदिन भी ६ ऋतुका आविर्भाव हुआ करता है। प्रातःकालमें वसन्त ऋतु, मध्याह्नमें ग्रीष्म, अपराह्णमें वर्षा, अर्द्धरातमें शरत् इत्यादि प्रकारसे ऋतुओंका आविर्भाव होता है।

शरत्ऋतुमें इक्षु विकार गुड़ चीनी आदि, शालिधान्य, मुद्ग, सरोवर जल, पयसित दुग्ध और प्रदोष कालमें चन्द्रकिरणका सेवन प्रशस्त है। (भावप्र०)

कविकल्पलतामें लिखा है, कि शरत्कालमें यह सब वर्णन करना होता है,—चंद्रपटुता, रविपटुता, जलशुभ्रता, बकपुष्प, हंस, वृष, सर्प, सप्तच्छद, पद्म, श्वेतमेघ, धान्य, शिखिपक्ष। ज्योतिषमें लिखा है, कि शरत्कालमें जन्म होनेसे मानव उत्तम कर्मकारी, तेजस्वी, शुचि, सुशील, गुणवान्, सम्मानी और धनी होता है।

"नरः शरत्संज्ञककालजन्मा भवेत् सुकर्मा मनुजस्तपस्वी।
शुचिः सुशीलो गुणवान् गुमानी धनान्वितो राजकुलप्रपन्नः॥"
(कोष्ठीप्रदीप)

शरत्कामिन् (सं० पु०) शरदि शरत्काले कामयते कम-णिनि ७म 'कर्मेनि-ङ' इति सिद्ध, ततः णिनि। कुक्कुर, कुत्ता।

शरत्काल (सं० पु०) कन्या-तुलाराशिसे तुला-संक्रांति तक। अथवा आश्विन और कार्त्तिकका समय शरत् ऋतु।

शरत्कालीन (सं० स्त्री०) शरत्काल।

शरत्पद्म (सं० क्ली०) शरदः पद्मम्। सितामोज, श्वेतपद्म। (राजनि०)

शरत्पर्व्वन् (सं० क्लो०) शरदः पर्व्व। कोजागर पूर्णिमा, आश्विन मासकी पूर्णिमा।

शरत्पुष्प (सं० क्ली०) शरदः पुष्पं। १ आहुल्य क्षुप। २ शरत्कालोद्भव कुसुम, वह सब फूल जो शरद्कालमें हो।

शरत्समय (सं० पु०) शरत्काल।

शरद् (सं० स्त्री०) शृ-अदि। (उणा १।१२६) १ शरत् ऋतु। २ राजपत्नीभेद। (राजत० ८।१-२५)

शरदई (हिं० स्त्री०) सरदई देखो।

शरदक्ष (सं० पु०) स्मृतिशास्त्रके रचयिता एक आचार्यका नाम।

शरदण्ड (सं० पु०) १ शरयष्टि, सरकंडा। २ चाबुक। "शरदण्डः सार प्रकाण्डइव अनुदण्डिः पृष्ठवंशो येषां सितगौरपृष्ठा (हयाः) इत्यर्थः।" (भारत द्रोणपर्वटीकामें नीलकण्ठ)

शरदण्डा (सं० स्त्री०) १ प्राचीन नदीका नाम। २ एक प्राचीन देशका नाम।

शरदन्त (सं० पु०) शरदः तदाख्य ऋतोरन्तो यस्मात्। शरत्ऋतुका अन्त अर्थात् हेमन्त ऋतु।

शरदपूर्णिमा (सं० पु०) कुआर मासकी पूर्णिमासी, शरत् पूनो।

शरदसिंहदेव (सं० पु०) राजभेद।

शरदा (सं० स्त्री०) १ शरत् ऋतु। २ वर्ष, साल।

शरदिज (सं० त्रि०) शरदि जायते इति जन-ड (प्रावृट् शरत्कालदिवां जे। पा ६।३।१५) इति सप्तम्या अलुक्। शरत् कालजात, जो शरत् ऋतुमें उत्पन्न हो।

शरदिन्दु (सं० पु०) शरच्चन्द्र, शरतऋतुका चन्द्रमा।

शरदुदाशय (सं० क्ली०) शरत्कालका सरोवर।

शरदुद्भव (सं० पु०) वृन्ताकशाक विशेष।

शरदेव—एक प्राचीन कवि।

शरद्गत (सं० त्रि०) शरदं गतः। शरत्कालप्राप्त।

शरद्धिमरुचि (सं० पु०) शरत्कालका चन्द्रमा।

शरद्ह्रद (सं० पु०) शरत्कालीनो ह्रदः। शरत्कालका जलाशय।

शरद्वत् (सं० पु०) १ शरत्काल। २ विशीर्ण कार्मुक। ३ बहुसंवत्सरयुक्त अथवा पूर्वतन या नित्यवस्तु। ४ एक प्राचीन ऋषि। (पा ४।१।१०२) ५ गौतमके वंशधर, शारद्वत ऋषि। (हरिवंश)

शरद्वसु (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषि।

शरद्विहार (सं० पु०) शरत्कालका आमोद-प्रमोद।

शरद्वीप (सं० पु०) पुराणानुसार एक द्वीपका नाम जो जलद्वीप भी कहलाता है।

शरधान (सं० पु०) १ वृहत्संहिताके अनुसार एक देश। २ इस देशका निवासी।

शरधि (सं० पु०) शरा धीयन्तेऽस्मिन्निति शर-धा-(कर्मण्यधिकरणे च। पा ३।३।९३) इति कि। तूण, तीर रखनेका चोंगा, तरकश।

शरनिवास (सं० पु०) शरवनमें वास करनेवाला। (पा ८।४।३६)

शरन्मेघ (सं० पु०) शरत्कालीनो मेघः। शरत्कालको मेघ।

शरपङ्ख (सं० पु०) जवासा, हिंगुआ, धमासा।

शरपञ्जर (सं० क्ली०) शरशय्या।

शरपट्टा (हिं० पु०) एक प्रकारका शस्त्र।

शरपर्णी (सं० स्त्री०) वृक्षभेद, एक प्रकारका पौधा। (पा ४।१।६४)

शरपुङ्ख (सं० पु०) शरस्य पुङ्ख आकृतिर्यस्य। १ स्वनामख्यात क्षुपविशेष, नीलकी तरहका एक प्रकारका पौधा, सरफोका। (Sephrosia purpures) बम्बई—कुलथि। कलिङ्ग—वेरडु कोग्गि। महाराष्ट्र—उन्हलि। तैलङ्ग—तेल्लवेम्पलि चेट्टु। तामिल—कोल्लुक वयेलचि। संस्कृत पर्याय—काण्डपुङ्खा, बाणपुङ्खा, इषुपुङ्खिका, शायकपुङ्खा, इषुपुङ्खा। गुण—कटु, उष्ण, कृमि और वातनाशक। सफेद शरपुङ्ख बड़ा फायदेमंद होता है। (राजनि०) भावप्रकाशके मतसे तिक्त, और कषाय; यकृत्, प्लीहा, गुल्म, व्रण और विष, कास, अस्रज्वर और श्वासनाशक। (भावप्रकाश)

२ बाण या तीरमें लगा हुआ पंख। (क्ली०) ३ सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका यन्त्र।

शरपुङ्खा (सं० स्त्री०) शरपुङ्ख देखो।

शरबत (अ० पु०) १ पीनेकी मीठी वस्तु, रस। २ चीनी आदिमें पका हुआ किसी ओषधिका अर्क जो दवाके

पश्चात् सदोदा आनन्दवर्द्धक पुत्र था, वैसे पुत्रको जिसने इस प्रकार मारा है और जिसके लिये हमारे प्राण शायद पलभरमें निकल रहे हैं, वह व्यक्ति भी निश्चय हो उसके कारण शोक सन्तप्त हृदयसे देह विसर्जन करेगा।" इतना कह कर ऋषि और ऋषिपत्नीने इस धराधामका परित्याग किया। उस घटनाका स्मरण करनेके लिये यहां शरयन्त्रनगर बसाया गया सही, पर किसी भी धर्मप्राण क्षत्रियसन्तानने उस ब्रह्मशापदग्ध स्थानमें बसना न चाहा। बहुतेरोंने वहां घर बना कर रहनेकी कोशिश की थी, पर उन्हें साहस न हुआ।

वह पुष्करिणी आज भी विद्यमान है। उसके किनारे एक वृक्षके नीचे शरयान्त्रऋषिकी प्रस्तरमयी मूर्त्ति आज भी देखी जाती है। ऋषिकुमारने जिस प्रकार क्षुत्-पिपासु हो कर प्राणत्याग किया, उसी घटनाके स्मरणार्थ यह मूर्त्ति भी बनाई गई है, कि मूर्त्तिके नाभिमूलमें जितना ही जल क्यों न ढालें, पर वह पूर्ण नहीं होता।

शरवारण (सं० क्ली०) ढाल, जिससे तीरोंकी बौछार रोकी जाती है।

शरवृष्टि (सं० स्त्री०) शरस्य वृष्टिः। १ शर वर्षण, बाणकी वर्षा। २ मरुत्वत्भेद। (हरिवंश)

शरवेग (सं० पु०) शरस्य वेगः। बाणका वेग।

शरव्य (सं० क्ली०) शरवे हिंसायै बाणक्षिप्तायै वा साधुः शरु (उगवादिभ्यो यत्। पा ५।१।२) इति यत्; यद्वा शरान् व्ययति व्ये ड। लक्ष्य, वह जिस पर शरका संधान किया जाय, वह जो तीरका निशाना बनाया जाय।

शरव्यक (सं० क्ली०) शरव्य स्वार्थे कन्। शरव्य, लक्ष्य, निशाना।

शरशय्या (सं० स्त्री०) शरनिर्मिता शय्या। शर या बाणकी बनी हुई शय्या। भीष्म पितामहने शरशय्या पर शयन कर देहत्याग किया था। भीष्म देखो।

शरस (सं० क्ली०) १ सारसनवमावापनम्। (ऐतरेयब्रा० १२।६) २ शर, बाण।

शरस्तम्ब (सं० पु०) शरस्य स्तम्बः। १ शरका झाड़। (भागवत १।६।११) २ महाभारतके अनुसार एक प्राचीन स्थानका नाम। (भारत अनुशासन) ३ एक प्राचीन प्रवरकार ऋषिका नाम। (प्रवराध्याय)

शरह (अ० स्त्री०) १ वह कथन या वर्णन जो किसी बातको स्पष्ट करनेके लिये किया जाय। २ दर, भाव। ३ टीका, भाष्य, व्याख्या। ४ शरह लगान देखो।

शरह लगान (हिं० स्त्री०) भूमिकी दर, जमीनकी पड़ती, बिघौती।

शरा (अ० स्त्री०) शरअ देखो।

शराक (सं० पु०) १ संकर जातीय पशु। २ एक जाति। सराक देखो।

शराकत (फा० स्त्री०) १ शरीक या सम्मिलित होनेका भाव। २ साझा, हिस्सेदारी।

शराग्नि (सं० पु०) पञ्चाग्नि। (नीलकण्ठ)

शराघात (सं० पु०) शरस्य आघातः। बाणाघात। पर्याय—प्रस्तलाक। (जटाधर)

शराटि (सं० पु०) शरं जलं प्राप्नोतीति शट-इन्। शरालि पक्षी, टिटिहरी।

शराटिका (सं० स्त्री०) १ शरालि पक्षी, टिटिहरी। २ लज्जालुक, लजालू, लाजवन्ती।

शराड़ि (सं० पु०) शराटि देखो।

शराति (सं० पु०) शराटि देखो।

शरादिपञ्चमूल (सं० क्ली०) शरादिपञ्चद्रव्यकृत कषाय। शर, इक्षु, दर्भ, काश और शालिधान्य इन पांचों द्रव्योंकी जड़ एकत्र कर यह प्रस्तुत करना होता है। (चक्रद० अश्मरीरो०)

शरादिपञ्चमूलाद्यघृत (सं० क्ली०) घृतौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—शरादिपञ्चमूलके कषायमें चार सेर घृत और एक सेर गोक्षुर कल्कके साथ पाक करे। पाक होने पर उसमें थोड़ा शक्कर डाल कर उतार ले। इस घृतका सेवन करनेसे अश्मरी रोग आराम होता है। (चक्रदत्त अश्मरीचि०)

शरापना (हिं० क्रि०) किसीको शाप देना, सरापना।

शराभ्यास (सं० पु०) शराणामभ्यासः। बाणशिक्षा। पर्याय—उपासन, विकर्षण, शस्त्राभ्यास। (शब्दरत्ना०)

शराफ (अ० पु०) सराफ देखो।

शराफत (अ० स्त्री०) शरीफ या सज्जन होनेका भाव, भलमनसाहत, सज्जनता।

शराफा (अ० पुं०) सराफा देखो।

शराफी (अ० स्त्री०) सराफी देखो।

शराब (अ० स्त्री०) १ मदिरा, सुरा, मद्य। विशेष विवरण मदिरा शब्दमें देखो। २ हकीमोंकी परिभाषामें शरबत। जैसे—शराब बनफशा।

शराबखाना (फा० पु०) शराब बनने तथा बिकनेकी जगह, वह स्थान, जहां शराब मिलती हो।

शराबखोरी (फा० स्त्री०) १ शराब पीनेका कृत्य, मदिरा पान। २ शराब पीनेकी लत।

शराबख्वार (फा० पुं०) वह जो शराब पीता हो, मदिरा पीनेवाला, शराबी।

शराबी (अ० पु०) वह जो शराब पीता हो, शराब पीनेवाला।

शराबोर (फा० वि०) जल आदिसे, बिलकुल भींगा हुआ, लथपथ, तरबतर। जैसे,—रंगसे शराबोर, पानीसे शराबोर।

शरारत (अ० स्त्री०) शरीर या पाजी होनेका भाव, पाजीपन, बदमाशी।

शरारि (सं० पु०) शरं जलं ऋच्छतीति ऋ गतौ इ। १ स्वनामख्यात प्लवजातीय पक्षी, टिटिहरी। पर्याय—आटि, आड़ि, आड़ी, शराड़ी, आड़िका, शराली, शरालि, शराटि, शरालिका। इसके मांसका गुण वायुदोषनाशक, स्निग्ध, बलकारक, सृष्टमलत्व, वातरक्तनाशक और शीतल माना गया है। (राजव०) २ रामकी सेनाका एक यूथपति बंदर।

शरारिमुख (सं० पु०) १ शरारि पक्षी, टिटिहरी नामकी छोटी चिड़िया जो जलाशयोंके पास रहती है। (क्ली०) २ सुश्रुतोक्त शरारि पक्षीके मुखके समान अस्त्र। यह पीब आदि निकालनेमें व्यवहृत होता है।

(सुश्रुत सूत्र० ८ अ०)

शरारी (सं० स्त्री०) टिटिहरी नामकी छोटी चिड़िया।

शरारु (सं० त्रि०) शृणोतीति शृ (शृवन्द्योरारुः। पा ३।२।१७३) इति आरु। हिंस्र।

शरारोप (सं० पु०) शरस्य आरोपो यस्मिन्। धनुष, जिस पर शर चढ़ाया जाता है, कमान।

शरार्चिस् (सं० पु०) रामकी सेनाका एक यूथपति बंदर। (रामा० ४।४१।३)

शरारयास्य (सं० पु०) शरारि पक्षीके मुखके समान चिरावणास्त्रभेद।

शरालि (सं० स्त्री०) शरारि पक्षी, टिटिहरी।

शरालिका (सं० स्त्री०) टिटिहरी।

शराली (सं० स्त्री०) शरालि देखो।

शराव (सं० पु० क्ली०) शरं जलं अवति रक्षतीति अव रक्षणे अण्। १ मृत्पात्रविशेष, मिट्टीका एक प्रकारका पुरवा, कुल्हड़। पर्याय—वर्द्धमानक, मार्त्तिक, सराव, शाकाजिर, पार्थिव, मृत्कांस। (शब्दरत्ना०)

२ वैद्यकमें एक प्रकारका परिमाण या तौल जो चौंसठ तोले या एक सेरकी होती है। वैद्यकमें सेर चौंसठ तोलेका ही माना जाता है।

शरावक (सं० पु०) शराव-स्वार्थे कन्। शराव देखो।

शरावक—पूर्वभारतीय द्वीपपुञ्जके बोर्नियो द्वीपस्थ एक जनपद। यह पायेण्ट आपि नामक अन्तरीपके पूर्वस्थित उपसागरके किनारे गिरिपादके नीचे अवस्थित है। यह पर्वतमाला १५००से ३००० फुट तक ऊंची तथा बोर्नियो द्वीपके मध्यदेश तक विस्तृत है। दातु अन्तरीपसे बड़म नदी पर्यन्त स्थान शरावकराजके अधिकारमें है। यहां शरावक नामक नदीके किनारे लीची, जामुन, सुपारी आदि उत्कृष्ट और सुमिष्ट फलके पेड़ देखे जाते हैं। बड़ी बटाङ्गलुपा नदीके मुहानेके निकटवर्ती एक शाखाके लिङ्गा नामक स्थानमें एक प्रकारका उज्ज्वल बालुकामिश्रित प्रस्तरखण्ड पड़ा हुआ है। इसका वर्ण पुष्पराग (Topaz) या बैंगनी पत्थरविशेष (Amethyst)की तरह होता है। मुका नामक स्थानमें सागू और बसाई नगरके समीप रसाञ्जन मिलता है।

शरावकुट (सं० पु०) वायव्यकीटविशेष।

(सुश्रुत कल्पस्था० ८ अ०)

शरावती (सं० स्त्री०) शरा तृणविशेषाः सन्त्यस्यामिति शर-मतुप् (शरादीनाञ्च। पा ६।३।१२०) इति दीर्घः। १ एक नदी जो आज कल बाणगङ्गा कहलाती है। टलेमीने इसको Sarabas शब्दमें उल्लेख किया है। इसके पास ही द्रोनावर राज्य अवस्थित है। २ एक प्राचीन नगरी जो लवकी राजधानी थी। कुशावती

एकमात्र सहारा शान्तनुवंशके पुत्र था, वैसे पुत्रको जिसने इस प्रकार मारा है और जिसके लिये हमारे प्राण दारुण यन्त्रणासे निकल रहे हैं, वह व्यक्ति भी निश्चय ही उसके कारण शोक सन्तप्त हृदयसे देह विसर्जन करेगा।" इतना कह कर मुनि और मुनिपत्नीने इस धराधामका परित्याग किया। उस घटनाका स्मरण करनेके लिये यहां शरवणनगर बसाया गया सही, पर किसी भी धर्मप्राण क्षत्रियसंतानने उस ब्रह्महत्याप्राप्त स्थानमें बसना न चाहा। बहुतेरोंने यहां घर बना कर रहनेकी कोशिश की थी, पर उन्हें साहस न हुआ।

वह पुष्करिणी आज भी विद्यमान है। उसके किनारे एक वृक्षके नीचे शरवाणऋषिकी प्रस्तरमयी मूर्त्ति आज भी देखी जाती है। ऋषिकुमारने जिस प्रकार तृष्णा-पिपासु हो कर प्राणत्याग किया, उसी घटनाके स्मारकार्थ यह मूर्त्ति भी बनाई गई है, कि मूर्त्तिके नाभिमूलमें जितना ही जल क्यों न डालें, पर वह पूर्ण नहीं होता।

शरवारण (सं० क्ली०) ढाल, जिससे तीरोंकी बौछार रोकी जाती है।

शरवृष्टि (सं० स्त्री०) शरस्य वृष्टिः। १ शरवर्षण, बाणकी वर्षा। २ मरुत्वत्भेद। (हरिवंश)

शरवेग (सं० पु०) शरस्य वेगः। बाणका वेग।

शरव्य (सं० क्ली०) शरवे हिंसायै बाणक्षिप्तायै वा साधुः शरु (उगवादिभ्यो यत्। पा ५।१।२) इति यत्; यद्वा शरान् व्ययति व्ये-ड। लक्ष्य, वह जिस पर शरका संधान किया जाय, वह जो तीरका निशाना बनाया जाय।

शरव्यक (सं० क्ली०) शरव्य स्वार्थे कन्। शरव्य, लक्ष्य, निशाना।

शरशय्या (सं० स्त्री०) शरनिर्मिता शय्या। शर या बाणकी बनी हुई शय्या। भीष्म पितामहने शरशय्या पर शयन कर देहत्याग किया था। भीष्म देखो।

शरस (सं० क्ली०) १ सारसवसनापपन्न। (देवीभाग० ९।१६) २ शर, बाण।

शरस्तम्ब (सं० पु०) शरस्य स्तम्बः। १ शरका झाड़। (भागवत १।१।११) २ महाभारतके अनुसार एक प्राचीन स्थानका नाम। (भारत अनुशासन) ३ एक प्राचीन ग्रंथकार ऋषिका नाम। (प्रवराध्याय)

शरह (अ० स्त्री०) १ वह कथन या वर्णन जो किसी बातको स्पष्ट करनेके लिये किया जाय। २ दर, भाव। ३ टीका, भाष्य, व्याख्या। ४ शरह लगान देखो।

शरह लगान (हिं० स्त्री०) भूकरकी दर, जमीनकी पड़ती, बिघौती।

शरा (अ० स्त्री०) शरअ देखो।

शराक (सं० पु०) १ संकर जातीय पशु। २ एक जाति। सराक देखो।

शराकत (फा० स्त्री०) १ शरीक या सम्मिलित होनेका भाव। २ साझा, हिस्सेदारी।

शराग्नि (सं० पु०) पञ्चाग्नि। (नीलकण्ठ)

शराघात (सं० पु०) शरस्य आघातः। बाणाघात। पर्याय—प्रचलाक। (जटाधर)

शराटि (सं० पु०) शरं जलं प्राप्नोतीति शर-इन्। शरालि पक्षी, टिटिहरी।

शराटिका (सं० स्त्री०) १ शरालि पक्षी, टिटिहरी। २ लज्जालुक, लजालू, लाजवन्ती।

शराड़ि (सं० पु०) शराटि देखो।

शराति (सं० पु०) शराटि देखो।

शरादिपञ्चमूल (सं० क्ली०) शरादिपञ्चद्रव्यकृत कषाय। शर, इक्षु, दर्भ, काश और शालिधान्य इन पांचो द्रव्योंको जड़ पाक कर यह प्रस्तुत करना होता है। (चक्रद० अश्मरीचि०)

शरादिपञ्चमूलाद्यघृत (सं० क्ली०) घृतौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—शरादिपञ्चमूलके कषायमें चार सेर घृत और एक सेर गोखुरु कल्कके साथ पाक करे। पाक होने पर उसमें थोड़ा शक्कर डाल कर उतार ले। इस घृतका सेवन करनेसे अश्मरी रोग आराम होता है। (चक्रद० अश्मरीचि०)

शरापना (हिं० क्रि०) किसीको शाप देना, सरापना।

शराभ्यास (सं० पु०) शराणामभ्यासः। बाणशिक्षा। पर्याय—उपासन, विकर्षण, शस्त्राभ्यास। (शब्दरत्ना०)

शराफ (अ० पु०) सराफ देखो।

शराफत (अ० स्त्री०) शरीफ या सज्जन होनेका भाव, भलमनसी, सज्जनता।

शराफा (अ० पु०) सराफा देखो।

शराफी (अ० स्त्री०) सराफी देखो।

शराब (अ० स्त्री०) १ मदिरा, सुरा, मद्य। विशेष विवरण मदिरा शब्दमें देखो। २ हकीमोंकी परिभाषामें शरबत। जैसे—शराब बनफशा।

शराबखाना (फा० पु०) शराब बनने तथा बिकनेकी जगह, वह स्थान जहां शराब मिलती हो।

शराबखोरी (फा० स्त्री०) १ शराब पीनेका कृत्य, मदिरा पान। २ शराब पीनेकी लत।

शराबख्वार (फा० पु०) वह जो शराब पीता हो, मदिरा पीनेवाला, शराबी।

शराबी (अ० पु०) वह जो शराब पीता हो, शराब पीनेवाला।

शराबोर (फा० वि०) जल आदिसे बिलकुल भींगा हुआ, लथपथ, तरबतर। जैसे,—रंगसे शराबोर, पानीसे शराबोर।

शरारत (अ० स्त्री०) शरीर या पाजी होनेका भाव, पाजीपन, बदमाशी।

शरारि (सं० पु०) शरं जलं ऋच्छतीति ऋ गतौ इ। १ स्वनामख्यात प्लवजातीय पक्षी, टिटिहरी। पर्याय—आटि, आड़ि, आड़ी, शराड़ी, आड़िका, शराली, शरालि, शराटि, शरालिका। इसके मांसका गुण वायुदोषनाशक, स्निग्ध, बलकारक, सृष्टमलत्व, वातरक्तनाशक और शीतल माना गया है। (राजव०) २ रामकी सेनाका एक यूथपति बंदर।

शरारिमुख (सं० पु०) १ शरारि पक्षी, टिटिहरी नामकी छोटी चिड़िया जो जलाशयोंके पास रहती है। (स्त्री०) २ मुख तीक्ष्ण शरारि पक्षीके मुखके समान अस्त्र। यह पीब आदि निकालनेमें व्यवहृत होता है।
(सुश्रुत सूत्र० ८ अ०)

शरारी (सं० स्त्री०) टिटिहरी नामकी छोटी चिड़िया।

शरारु (सं० त्रि०) शृणोतीति शृ (शृवन्द्योरारुः। पा ३।२।१७३) इति आरु। हिंस्र।

शरारोप (सं० पु०) शरस्य आरोपो यस्मिन्। धनुष, जिस पर शर चढ़ाया जाता है, कमान।

शरार्चिस (सं० पु०) रामकी सेनाका एक यूथपति बंदर। (रामा० ४।४१।३)

शरार्यास्य (सं० पु०) शरारि पक्षीके मुखके समान विस्रावणास्त्रभेद।

शरालि (सं० स्त्री०) शरारि पक्षी, टिटिहरी।

शरालिका (सं० स्त्री०) टिटिहरी।

शराली (सं० स्त्री०) शरालि देखो।

शराव (सं० पु० क्ली०) शरं जलं अवति रक्षतीति अव रक्षणे अण्। १ मृत्पात्रविशेष, मिट्टीका एक प्रकारका पुरवा, कुल्हड़। पर्याय—वर्द्धमानक, मात्तिक, सराव, शाल्ताजिर, पार्थिव, मृत्कांस। (शब्दरत्ना०)

२ वैद्यकमें एक प्रकारका परिमाण या तौल जो चौंसठ तोले या एक सेरको होती है। वैद्यकमें सेर चौंसठ तोलेका ही माना जाता है।

शरावक (सं० पु०) शराव-स्वार्थे कन्। शराव देखो।

शरावक—पूर्वभारतीय द्वीपपुञ्जके बोर्नियो द्वीपस्थ एक जनपद। यह पोयेंट आपि नामक अन्तरीपके पूर्व स्थित उपसागरके किनारे गिरिपादके नीचे अवस्थित है। यह पर्वतमाला १५००से ३००० फुट तक ऊंची तथा बोर्नियोद्वीपके मध्यदेश तक विस्तृत है। दातु अन्तरीपसे बड़म नदी पर्यन्त स्थान शरावकराजके अधिकारमें है। यहां शरावक नामक नदीके किनारे लीची, जामुन, सुपारी आदि उत्कृष्ट और सुमिष्ट फलके पेड़ देखे जाते हैं। बड़ी बटाङ्गलुपा नदीके मुहानेके निकटवर्ती एक शाखाके लिङ्गा नामक स्थानमें एक प्रकारका उज्ज्वल बालुकामिश्रित प्रस्तरखण्ड पड़ा हुआ है। इसका वर्ण पुष्पराग (Topaz) या बैंगनी पत्थर-विशेष (Amethyst)की तरह होता है। मुका नामक स्थानमें सागू और बसाई नगरके समीप रसाञ्जन मिलता है।

शरावकुद (सं० पु०) वायव्यकीटविशेष।
(सुश्रुत कल्पस्था० ८ अ०)

शरावती (सं० स्त्री०) शरा तृणविशेषाः सन्त्यस्यामिति शर मतुप् (शरादीनाञ्च। पा ६।३।१२०) इति दीर्घः। १ एक नदी जो आज कल घाणगङ्गा कहलाती है। टलेमीने इसको Sarabas शब्दमें उल्लेख किया है। इसके पास ही होनावर राज्य अवस्थित है। २ एक प्राचीन नगरी जो लवकी राजधानी थी। कुशावती

और शरावती यह दो नगरी यथाक्रम कुश तथा लवकी राजधानी थी।

शरावर (सं० क्लो०) १ ढाल। २ वर्म, कवच। ३ कटाहादि।

शरावरण (सं० क्लो०) ढाल जिससे तीरका वार रोकते हैं।

शरावान्—बेलुचिस्तानके अन्तर्गत एक प्रदेश। यह बेलुचिस्तानके मध्यस्थित सुचिस्तान पार्वत्य अधित्यकाभूमि पर है। शरावान्, झालावान् और लुस प्रदेश ले कर उक्त अधित्यका विभक्त है।

शरावाप (सं० पु०) धनुष, कमान।

शरावार्द्ध (सं० क्लो०) शरावस्य अर्द्ध। कुडवपरिमाण, शरावका आधा परिमाण, ३२ तोला। (वैद्यकपरि०)

शरारि (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम।

शराविका (सं० स्त्री०) १ वह फुंसी जो ऊपरसे ऊंची और बीचमें गहरी हो। २ एक प्रकारका फोड़ा।

शरावी—एक भारतीय मुसलमान सम्प्रदाय। ये फकीरी वेशमें द्वार द्वार भीख मांगते फिरते हैं।

शराश्रय (सं० पु०) शरणामाश्रयः। तूण, तरकश।

शरास (सं० पु०) शर-अस-घञ्। शरासन।

(भाग० ३।१०।२२)

शरासन (सं० क्ली०) शरा अस्यन्ते क्षिप्यन्तेऽनेनेति अस-करणे-ल्युट्। १ धनुष, कमान, चाप। (पु०) २ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। (भारत १।११७।४)

शरासनिन् (सं० त्रि०) शरासनयुक्त, धनुर्वाणधारी। (भारत उद्योग)

शरास्य (सं० क्ली०) शराऽस्यन्तेऽनेनेति अस-ण्यत्। धनुष, कमान।

शरि (सं० त्रि०) हिंस्र। (उण् ४।१२७)

शरिका (सं० स्त्री०) एक प्रकारका प्रासाद।

शरिन् (सं० त्रि०) बाणविशिष्ट। (भारत सभापर्व)

शरिमन् (सं० पु०) शृणाति जीवनमिति शृ-इमन् (हृ भृ धृ सृ स्तृ शृभ्य इमनिच्। उण् ४।१४७) प्रसव। (उज्ज्वल)

शरिया—मुजफ्फरपुर जिलेके अन्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह मुजफ्फरपुर नगरसे १८ मील दक्षिण-पश्चिम तथा नदीके किनारे अवस्थित है। यहां नदीके ऊपर शिल्पनैपुण्यके परिचायक तीन गुम्बजदार पुल हैं। इस पुलके ऊपरसे छपरा-रोड गई है। शरियासे कुछ दूर "भीमसिंहकी लाठी या गदा" नामक एकखण्ड पत्थरका एक स्तम्भ है। उस स्तम्भके ऊपर सिंहमूर्त्ति खोदी हुई है। जमीनकी सतहसे स्तम्भ प्रायः १० फुट ऊंचा है। ऊपरका सिंह और उसका आसन तथा नीचेका स्तंभमूल छोड़ कर स्तंभदण्ड २४ फुट ऊंचा है। स्तंभमूलके नीचे यह प्रस्तरखण्ड जमीनके भीतर कहां तक गया है, वह आज भी निरूपित नहीं हुआ है। जिस ब्राह्मणके गृहप्राङ्गणमें यह स्तंभ खड़ा है, वहांके कितने लोगोंने उसकी नींव देखनेकी इच्छासे उसे खोदा है। कई फुट खोदनेके बाद भी उन्हें उसका तलदेश देखनेमें न आया। स्तंभगात्रमें बहुतसे नाम खोदे हुए हैं। यह स्तंभ किसी प्राचीन राजाकी कीर्त्ति है, इसमें सन्देह नहीं। चाहे जिस कारणसे हो, वह इसी भावमें छोड़ दिया गया है। उसका इतिहास जाननेकी किसीने विशेष चेष्टा नहीं की। इसकी बगलमें एक बहुत बड़ा कूप है। जिस ब्राह्मणकी जमीनमें यह स्तंभ खड़ा है, उसका कहना है, कि उसके निम्नभागमें प्रचुर धनरत्न है, उसीको निकालनेके लिये यह कूप खोदा गया था।

शरी (सं० स्त्री०) एरका या मोथा नामका तृण।

शरीअत (अ० स्त्री०) १ मुसलमानोंके अनुसार वह पथ जो परमात्माने अपने भक्तोंके लिये निश्चित किया हो। २ धर्मशास्त्र। (भारत सभापर्व)

शरीक (अ० वि०) १ शामिल, सम्मिलित, मिला हुआ। (पु०) २ वह जो किसी बातमें साथ रहता हो, साथी। ३ साझी, हिस्सेदार, पट्टीदार। ४ रिश्तेदार, संबन्धी। ५ सहायक, मददगार।

शरीफ (अ० पु०) १ ऊंचे घरानेका व्यक्ति, कुलीन मनुष्य। २ सभ्य पुरुष, अच्छा मानुस। ३ मक्केके प्रधान अधिकारीकी उपाधि। (वि०) ४ पाक, पवित्र। जैसे,—मिजाज शरीफ, कुरान शरीफ।

शरीफ (अं० पु०) कलकत्ते, बंबई और मद्रासमें सरकारकी ओरसे नियुक्त किये जानेवाले एक प्रकारके

अवैतनिक अधिकारी। इनके सपुर्द शान्ति-रक्षा तथा इसी प्रकारके और कुछ काम होते हैं। प्रायः नगरके बड़े बड़े रईस और प्रतिष्ठित व्यक्ति कुछ निश्चित समयके लिये शरीफ बनाये जाते हैं। यूरोप और अमेरिका आदिमें भी इस प्रकारके अधिकारी नियुक्त किये जाते हैं जिन्हें कुछ शासन-सम्बन्धी कार्य भी सौंपे जाते हैं। इनके अधिकारी प्रायः मजिष्ट्रेटोंसे कुछ मिलते जुलते होते हैं।

शरीफा (हिं० पु०) १ मझोले आकारका एक प्रकारका प्रसिद्ध वृक्ष। यह प्रायः सारे भारतवर्षमें फलके लिये लगाया जाता है और मध्य तथा पश्चिमी भारतके जङ्गली देशोंमें बहुत अधिकतासे पाया जाता है। कहते हैं, कि यह वृक्ष वेस्ट इ'डिजसे यहां आया है। इस वृक्षकी छाल पतली और खाकी रंगकी और लकड़ी कुछ मटमैलापन लिये सफेद रंगकी होती है। इसके पत्ते अमरूदके फलके सदृश, अण्डाकार तथा नोकदार होते हैं। इसमें एक प्रकारके विरल फूल लगते हैं जो नीचेकी ओर झुके हुए होते हैं। ये फूल तरकारी बनानेके काममें आते हैं। यह वृक्ष गरमीके दिनोंमें फूलता है और कार्त्तिक अगहनमें इसमें अमरूदके आकारके खाकी रंगके गोल फल लगते हैं। यह वृक्ष बीजोंसे उगता है और बहुत जल्दी बढ़ कर फूलने फलने लगता है। इसके पौधे जब कुछ बड़े हो जाते हैं, तब उखाड़ कर दूसरे स्थान पर रोपे जाते हैं। इसकी छाल, जड़ और पत्तियोंका व्यवहार औषधमें होता है। इसकी छाल बहुत दस्तावर होती है। इसके बीजोंसे एक प्रकारका तेल भी निकलता है और इसमें तीन तरहके गोंद भी लगते हैं। २ इस वृक्षका फल जो अमरूदके सदृश गोल और खाकी रंगका होता है। इसके तल पर आंखके आकारके बड़े बड़े दाने होते हैं जिनके अन्दर सफेद गूदेमें लिपटे हुए काले लम्बोतरे बीज होते हैं। इसका गूदा बहुत मीठा होता है और इसीके लिये यह फल खाया जाता है। अकालके दिनोंमें गरीब लोग प्रायः जङ्गली शरीफेके फल खा कर निर्वाह करते हैं। वैद्यकमें इसे मधुर, हृदयके लिये हितकारी, बलवर्द्धक, वातकारक, शक्तिवर्द्धक, तृप्तिकारक, मांसवर्द्धक और दाह, पित्त, रक्तपित्त, प्यास, वमन, रुधिर-विकार आदिके लिये लाभदायक माना है। इसे श्रीफल या सीताफल भी कहते हैं।

शरीर (सं० क्ली०) शॄ-ईरन् (कॄ शॄ पॄ कटि पटि शौटिभ्य ईरन्। उण् ४।३०) देह, यह रोगादि द्वारा शीर्ण होती है इसीसे इसका शरीर नाम पड़ा है। पर्याय—कलेवर, गात्र, वपुः, संहनन, वर्ष्म, विग्रह, काय, देह, मूर्त्ति, तनु, तनू, क्षेत्र, पुर, घन, अङ्ग, पिण्ड, भूतात्मा, स्वर्गलोकेश, स्कन्ध, पञ्जर, कुल, बल, आत्मा, इन्द्रियायतन, मूर्त्तिमत्, करण, बेर, सञ्चय, बंध, मुद्गल। (हेम)

कविकल्पलतामें स्त्रीपुरुषका सर्वाङ्ग इस प्रकार वर्णित है—प्रपद, अंघ्रि, गुल्फ, पार्ष्णि, जङ्घा, जानु, ऊरु, वङ्क्षण, कटि, त्रिक, नितम्ब, स्फिक्, वस्ति, उपस्थ, ककुन्दर, जघन, जठर, नाभि, वलि, स्तन, चूलक, क्रोड़, रोम, कक्ष, अंश, वक्षः, दोः, पार्श्व, प्रपण्ड, कुर्पर, हस्त, प्रकोष्ठ, मणिबन्ध, अंगुलि, अंगुष्ठ, करभ, नख, पर्व, चपेटक, कण्ठ, शिरोधि, श्मश्रु, मुख, ओष्ठ, चिबुक, हनु, सृक्क, तालु, रद, जिह्वा, नासा, भ्रू, गण्ड, लोचन, अपाङ्ग, तारा, कर्ण, भाल, मस्तक, केश।

(कविकल्पलता)

सांख्यदर्शनकी टीकामें वाचस्पति मिश्रने लिखा है, कि शरीर दो प्रकारका है, स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर। बुद्धि, अहङ्कार, मन, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय और पञ्चतन्मात्र इन अठारह अवयवोंका नाम सूक्ष्म या लिङ्गशरीर है। यह लिङ्गशरीर सृष्टिके प्रारम्भमें उत्पन्न और महाप्रलयमें विलीन होता है। महाप्रलयके बाद जब फिरसे सृष्टि आरम्भ होती है, तब अन्य लिङ्गशरीर उत्पन्न होता है। विशेष इन्द्रिय द्वारा संगठित है, इसलिये लिङ्गशरीरको विशेष भी कहते हैं। स्थूलशरीर माता-पितृज है। यह मातापितृज शरीर कुछ समय बाद चाहे मिट्टीमें मिलता, चाहे अग्निमें जलता, चाहे पशुपक्षीका पेट भरता है।

परलोकगत लिङ्गशरीर इस लोकमें लौट कर अन्नादिमें मिल जाता है। पीछे भोजनके साथ वह अदृष्टानुसार पितृदेहमें प्रविष्ट होता है। अनन्तर वह पितृशुक्रका आश्रय लेता है और तब मातृजरायुमें

और शरावती यह दो नगरी यथाक्रम कुश तथा लवकी राजधानी थी।

शरावर (सं० क्ली०) १ ढाल। २ वर्म, कवच। ३ कटाहादि।

शरावरण (सं० क्ली०) ढाल जिससे तीरका वार रोकते हैं।

शरावान्—बेलुचिस्तानके अन्तर्गत एक प्रदेश। यह बेलुचिस्तानके मध्यस्थित सुविस्तृत पार्वत्य अधित्यकाभूमि पर है। शरावान्, झालावान् और लुस प्रदेश ले कर उक्त अधित्यका विभक्त है।

शरावाप (सं० पु०) धनुष, कमान।

शरावार्द्ध (सं० क्ली०) शरावस्य अर्द्ध। कुडवपरिमाण, शरावका आधा परिमाण, ३२ तोला। (वैद्यकप०)

शरावि (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम।

शराविका (सं० स्त्री०) १ वह फुंसी जो ऊपरसे ऊंची और बीचमें गहरी हो। २ एक प्रकारका कोढ़।

शरावी—एक भारतीय मुसलमान सम्प्रदाय। ये फकीरी वेशमें द्वार द्वार भीख मांगते फिरते हैं।

शराश्रय (सं० पु०) शराणामाश्रयः। तूण, तरकश।

शरास (सं० पु०) शर-अस-अण्। शरासन। (भाग० ३।१०।२२)

शरासन (सं० क्ली०) शरा अस्यन्ते क्षिप्यन्तेऽनेनेति अस-करणे-ल्युट्। १ धनुष, कमान, चाप। (पु०) २ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। (भारत १।११७।४)

शरासनिन् (सं० त्रि०) शरासनयुक्त, धनुर्बाणधारी। (भारत द्रोण)

शरास्य (सं० क्ली०) शराऽस्यन्तेऽनेनेति अस-ण्यत्। धनुष, कमान।

शरि (सं० त्रि०) हिंस्र। (उण् ४।१२८)

शरिका (सं० स्त्री०) एक प्रकारका पिलाई।

शरिन् (सं० त्रि०) बाणविशिष्ट। (भारत वनपर्व)

शरिमन् (सं० पु०) शृणाति बीजमिति शॄ-इमन् (हृभृधृसृस्तृशृभ्य इमनिच्। उण् ४।१४७) प्रसव। (उज्ज्वल)

शरिया—मुजफ्फरपुर जिलेके अन्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह मुजफ्फरपुर नगरसे १८ मील दक्षिण-पश्चिम बया नदीके किनारे अवस्थित है। यहां नदीके ऊपर शिल्पनैपुण्यके परिचायक तीन गुम्बजदार पुल हैं। इस पुलके ऊपरसे उतरा-रोड गई है। शरियासे कुछ दूर 'भीमसिंहकी लाठी या गदा' नामक एकखण्ड पत्थरका एक स्तम्भ है। उस स्तम्भके ऊपर सिंहमूर्त्ति खोदी हुई है। जमीनकी सतहसे स्तम्भ प्रायः १० फुट ऊंचा है। ऊपरका सिंह और उसका आसन तथा नीचेका स्तंभ मूल छोड़ कर स्तंभदण्ड २४ फुट ऊंचा है। स्तंभमूलके नीचे यह प्रस्तरखण्ड जमीनके भीतर कहां तक गया है, यह आज भी निरूपित नहीं हुआ है। जिस ब्राह्मणके गृहप्राङ्गणमें यह स्तंभ खड़ा है, वहांके किसी लोगोंने उसकी नींव देखनेकी इच्छासे इसे खोदा है। कई फुट खोदनेके बाद भी उन्हें उसका तलदेश देखनेमें न आया। स्तंभगात्रमें बहुतसे नाम खोदे हुए हैं। यह स्तंभ किसी प्राचीन राजाकी कीर्त्ति है, इसमें सन्देह नहीं। चाहे जिस कारणसे हो, यह इसी भावमें छोड़ दिया गया है। उसका इतिहास जाननेकी किसीने विशेष चेष्टा नहीं की। इसकी बगलमें एक बहुत बड़ा कूप है। जिस ब्राह्मणकी जमीनमें यह स्तंभ खड़ा है, उसका कहना है, कि उसके निम्नभागमें प्रचुर धनरत्न है, उसीको निकालनेके लिये यह कूप खोदा गया था।

शरी (सं० स्त्री०) एरका या मोथा नामका तृण।

शरीअत (अ० स्त्री०) १ मुसलमानोंके अनुसार वह पथ जो परमात्माने अपने भक्तोंके लिये निश्चित किया हो। २ धर्मशास्त्र। (भारत सभापर्व)

शरीक (अ० वि०) १ शामिल, सम्मिलित, मिला हुआ। (पु०) २ वह जो किसी बातमें साथ रहता हो, साथी। ३ साझी, हिस्सेदार, पट्टीदार। ४ रिश्तेदार, संबन्धी। ५ सहायक, मददगार।

शरीफ (अ० पु०) १ ऊंचे घरानेका व्यक्ति, कुलीन मनुष्य। २ सभ्य पुरुष, भला मानुस। ३ मक्केके प्रधान अधिकारीकी उपाधि। (वि०) ४ पाक, पवित्र। जैसे,—मिजाज शरीफ, कुरान शरीफ।

शरीफ (अं० पु०) कलकत्ते, बंबई और मद्रासमें सरकारकी ओरसे नियुक्त किये जानेवाले एक प्रकारके

अवैतनिक अधिकारी। इनके सपुर्द शान्ति-रक्षा तथा इसी प्रकारके और कुछ काम होते हैं। प्रायः नगरके बड़े बड़े रईस और प्रतिष्ठित व्यक्ति कुछ निश्चित समयके लिये शरीफ बनाये जाते हैं। यूरोप और अमेरिका आदिमें भी इस प्रकारके अधिकारी नियुक्त किये जाते हैं जिन्हें कुछ शासन-संबन्धी कार्य भी सौंपे जाते हैं। इनके अधिकारी प्रायः मजिष्ट्रेटोंसे कुछ मिलते जुलते होते हैं।

शरीफा (हिं० पु०) १ मझोले आकारका एक प्रकारका प्रसिद्ध वृक्ष। यह प्रायः सारे भारतवर्षमें फलके लिये लगाया जाता है और मध्य तथा पश्चिमी भारतके जङ्गली देशोंमें बहुत अधिकतासे पाया जाता है। कहते हैं, कि यह वृक्ष वेस्ट इंडिजसे यहां आया है। इस वृक्षकी छाल पतली और खाकी रंगकी और लकड़ी कुछ मटमैलापन लिये सफेद रंगकी होती हैं। इसके पत्ते अमरूदके पत्तके सदृश, अण्डाकार तथा मनोहर होते हैं। इसमें एक प्रकारके विरल फूल लगते हैं जो नीचेकी ओर झुके हुए होते हैं। ये फूल तरकारी बनानेके काममें आते हैं। यह वृक्ष गरमीके दिनोंमें फूलता है और कार्तिक अगहनमें इसमें अमरूदके आकारके खाकी रंगके गोल फल लगते हैं। यह वृक्ष बीजोंसे उगता है और बहुत जल्दी बढ़ कर फूलने फलने लगता है। इसके पौधे जब कुछ बड़े हो जाते हैं, तब उखाड़ कर दूसरे स्थान पर रोपे जाते हैं। इसकी छाल, जड़ और पत्तियोंका व्यवहार औषधमें होता है। इसकी छाल बहुत दस्तावर होती है। इसके बीजोंमेंसे एक प्रकारका तेल भी निकलता है और इसमें तीन तरहके गोंद भी लगते हैं। २ इस वृक्षका फल जो अमरूदके सदृश गोल और खाकी रंगका होता है। इसके तल पर मांसके आकारके बड़े बड़े दाने होते हैं जिनके अन्दर सफेद गूदेमें लिपटे हुए काले लम्बोतरे बीज होते हैं। इसका गूदा बहुत मीठा होता है और इसीके लिये यह फल खाया जाता है। अकालके दिनोंमें गरीब लोग प्रायः जङ्गली शरीफेके फल खा कर निर्वाह करते हैं। वैद्यकमें इसे मधुर, हृदयके लिये हितकारी, बलवर्द्धक, वातकारक, शक्तिवर्द्धक, तृप्तिकारक, मांसवर्द्धक और दाह, पित्त, रक्तपित्त, प्यास, वमन, रुधिर-विकार आदिके लिये लाभदायक माना है। इसे श्रीफल या सीताफल भी कहते हैं।

शरीर (सं० क्ली०) शॄ-ईरन् (कॄ शॄ पॄ कटि पटि शौटिभ्य ईरन्। उण् ४।३०) देह, यह रोगादि द्वारा शीर्ण होती है इसीसे इसका शरीर नाम पड़ा है। पर्याय—कलेवर, गात्र, वपुः, संहनन, वर्ष्म, विग्रह, काय, देह, मूर्त्ति, तनु, तनू, क्षेत्र, पुर, घन, अङ्ग, पिण्ड, भूतात्मा, स्वर्गलोकेश, स्कन्ध, पञ्जर, कुल, बल, आत्मा, इन्द्रियायतन, मूर्त्तिमत्, करण, बेर, सञ्चय, बंध, मुद्‌गल। (हेम)

कविकल्पलतामें स्त्रीपुरुषका सर्वाङ्ग इस प्रकार वर्णित है—प्रपद, अंघ्रि, गुल्फ, पार्ष्णि, जङ्घा, जानु, ऊरु, वङ्क्षण, कटि, त्रिक, नितम्ब, स्फिक्, वस्ति, उपस्थ, ककुन्दर, जघन, जठर, नाभि, वलि, स्तन, चूचुक, क्रोड़, रोम, कक्ष, अंश, वक्षः, दोः, पार्श्व, प्रपण्ड, कुर्पर, हस्त, प्रकोष्ठ, मणिबन्ध, अंगुलि, अंगुष्ठ, करभ, नख, पर्व, चपेटक, कण्ठ, शिरोधि, श्मश्रु, मुख, ओष्ठ, चिबुक, हनु, सृक, तालु, रद, जिह्वा, नासा, भ्रू, गण्ड, लोचन, अपाङ्ग, तारा, कर्ण, भाल, मस्तक, केश।

(कविकल्पलता)

सांख्यदर्शनकी टीकामें वाचस्पति मिश्रने लिखा है, कि शरीर दो प्रकारका है, स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर। बुद्धि, अहङ्कार, मन, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय और पञ्चतन्मात्र इन अठारह अवयवोंका नाम सूक्ष्म या लिङ्गशरीर है। यह लिङ्गशरीर सृष्टिके प्रारम्भमें उत्पन्न और महाप्रलयमें विलीन होता है। महाप्रलयके बाद जब फिरसे सृष्टि आरम्भ होती है, तब अन्य लिङ्गशरीर उत्पन्न होता है। विशेष इन्द्रिय द्वारा संगठित है, इसलिये लिङ्गशरीरको विशेष भी कहते हैं। स्थूलशरीर माता-पितृज है। यह मातापितृज शरीर कुछ समय बाद चाहे मिट्टीमें मिलता, चाहे अग्निमें जलता, चाहे पशुपक्षीका पेट भरता है।

पारलौकिगत लिङ्गशरीर इस लोकमें लौट कर अनाजमें मिल जाता है। पीछे भोजनके साथ वह अदृष्टानुसार पितृदेहमें प्रविष्ट होता है। अनन्तर वह पितृशुक्रका आश्रय लेता है और तब मातृजरायुमें

और शरावती यह दो नगरी यथाक्रम कुश तथा लवकी राजधानी थी।

शरावर (सं० क्ली०) १ ढाल। २ वर्म, कवच। ३ कटाहादि।

शरावरण (सं० क्ली०) ढाल जिससे तीरका वार रोकते हैं।

शरावान्—बेलुचिस्तानके अन्तर्गत एक प्रदेश। यह बेलुचिस्तानके मध्यस्थित सुविस्तृत पार्वत्य अधित्यकाभूमि पर है। शरावान्, झालावान् और लुस प्रदेश ले कर उक्त अधित्यका विभक्त है।

शरावाप (सं० पु०) धनुष, कमान।

शरावार्द्ध (सं० क्ली०) शरावस्य अर्द्ध। कुडवपरिमाण, शरावका आधा परिमाण, ३२ तोला। (वैद्यकप०)

शरावि (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम।

शराविका (सं० स्त्री०) १ वह फुंसी जो ऊपरसे ऊंची और बीचमें गहरी हो। २ एक प्रकारका कोढ़।

शरागी—एक भारतीय मुसलमान सम्प्रदाय। ये फकीरी वेशमें द्वार द्वार भीख मांगते फिरते हैं।

शराश्रय (सं० पु०) शराणामाश्रयः। तूण, तरकश।

शरास (सं० पु०) शर-अस-घञ्। शरासन। (भाग० ३।१०।२२)

शरासन (सं० क्ली०) शरा अस्यन्ते क्षिप्यन्तेऽनेनेति अस-करणे-ल्युट्। १ धनुष, कमान, चाप। (पु०) २ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। (भारत १।११७।४)

शरासनिन् (सं० त्रि०) शरासनयुक्त, धनुर्व्वाणधारी। (भारत द्रोण)

शरास्य (सं० क्ली०) शराऽस्यन्तेऽनेनेति अस-ण्यत्। धनुष, कमान।

शरि (सं० त्रि०) हिंस्र। (उण् ४।१२८)

शरिका (सं० स्त्री०) एक प्रकारका प्रासाद।

शरिन् (सं० त्रि०) बाणविशिष्ट। (भारत वनपर्व)

शरिमन् (सं० पु०) शृणाति यौवनमिति शॄ-इमनिच्। (हृ य व र ल्सु सूक्ष्म इमनिच्। उण् ४।१४८) प्रसव। (उज्ज्वल)

शरिया—मुजफ्फरपुर जिलेके अन्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह मुजफ्फरपुर नगरसे १८ मील दक्षिण-पश्चिम गण्डक नदीके किनारे अवस्थित है। यहाँ नदीके ऊपर शिल्पनैपुण्यके परिचायक तीन गुम्बजदार पुल हैं। इन पुलके ऊपरसे छपरा-रोड गई है। शरियासे कुछ दूर 'भीमसिंहकी लाठी या गदा' नामक एक प्रस्तरका एक स्तम्भ है। उस स्तम्भके ऊपर सिंहमूर्ति खोदी हुई है। जमीनकी सतहसे स्तम्भ प्रायः ३० फुट ऊंचा है। ऊपरका सिंह और उसका आसन तथा नीचेका स्तंभमूल छोड़ कर स्तंभदण्ड २४ फुट ऊंचा है। स्तंभमूलके नीचे यह प्रस्तरखण्ड जमीनके भीतर कहां तक गया है, यह आज भी निरूपित नहीं हुआ है। जिस ब्राह्मणके गृहप्राङ्गणमें यह स्तंभ खड़ा है, वहांके कितने लोगोंने उसकी नींव देखनेकी इच्छासे उसे खोदा है। कई फुट खोदनेके बाद भी उन्हें उसका तलदेश देखनेमें न आया। स्तंभगात्रमें बहुतसे नाम खोदे हुए हैं। यह स्तंभ किसी प्राचीन राजाकी कीर्त्ति है, इसमें सन्देह नहीं। चाहे जिस कारणसे हो, यह इसी गांवमें छोड़ दिया गया है। उसका इतिहास जाननेको किसीने विशेष चेष्टा नहीं की। इसकी बगलमें एक बहुत बड़ा कूप है। जिस ब्राह्मणकी जमीनमें यह स्तंभ खड़ा है, उसका कहना है, कि उसके निम्नभागमें प्रचुर धनरत्न है, उसीको निकालने के लिये यह कूप खोदा गया था।

शरी (सं० स्त्री०) एरका या मोथा नामका तृण।

शरीअत (अ० स्त्री०) १ मुसलमानोंके अनुसार वह पथ जो परमात्माने अपने भक्तोंके लिये निश्चित किया हो। २ धर्मशास्त्र। (भारत सभापर्व)

शरीक (अ० वि०) १ शामिल, सम्मिलित, मिला हुआ। (पु०) २ वह जो किसी बातमें साथ रहता हो, साथी। ३ साझी, हिस्सेदार, पट्टीदार। ४ रिश्तेदार, संबन्धी। ५ सहायक, मददगार।

शरीफ (अ० पु०) १ ऊंचे घरानेका व्यक्ति, कुलीन मनुष्य। २ सभ्य पुरुष, भला मानुस। ३ मक्केके प्रधान अधिकारीकी उपाधि। (वि०) ४ पाक, पवित्र। जैसे,—मिजाज शरीफ, कुरान शरीफ।

शरीफ (अं० पु०) कलकत्ते, बंबई और मद्रासमें सरकारकी ओरसे नियुक्त किये जानेवाले एक प्रकारके

अवैतनिक अधिकारी। इनके सपुर्द शान्ति-रक्षा तथा इसी प्रकारके और कुछ काम होते हैं। प्रायः नगरके बड़े बड़े रईस और प्रतिष्ठित व्यक्ति कुछ निश्चित समयके लिये शरीफ बनाये जाते हैं। यूरोप और अमेरिका आदिमें भी इस प्रकारके अधिकारी नियुक्त किये जाते हैं जिन्हें कुछ शासन-सम्बन्धी कार्य भी सौंपे जाते हैं। इनके अधिकारी प्रायः मजिष्ट्रेटोंसे कुछ मिलते जुलते होते हैं।

शरीफा (हिं० पु०) १ मझोले आकारका एक प्रकारका प्रसिद्ध वृक्ष। यह प्रायः सारे भारतवर्षमें फलके लिये लगाया जाता है और मध्य तथा पश्चिमी भारतके जङ्गली देशोंमें बहुत अधिकतासे पाया जाता है। कहते हैं, कि यह वृक्ष वेस्ट इंडीज़से यहां आया है। इस वृक्षकी छाल पतली और खाकी रंगकी और लकड़ी कुछ मटमैलापन लिये सफेद रंगकी होती है। इसके पत्ते अमरूदके फलके सदृश, अण्डाकार तथा अनीदार होते हैं। इसमें एक प्रकारके विरल फूल लगते हैं जो नीचेकी ओर झुके हुए होते हैं। ये फूल तरकारी बनानेके काममें आते हैं। यह वृक्ष गरमीके दिनोंमें फूलता है और कार्त्तिक अगहनमें इसमें अमरूदके आकारके खाकी रंगके गोल फल लगते हैं। यह वृ। बीजोंसे उगता है और बहुत जल्दी बढ़ कर फूलने फलने लगता है। इसके पौधे जब कुछ बड़े हो जाते हैं, तब उखाड़ कर दूसरे स्थान पर रोपे जाते हैं। इसकी छाल, जड़ और पत्तियोंका व्यवहार औषधमें होता है। इसकी छाल बहुत दस्तावर होती है। इसके बीजमेंसे एक प्रकारका तेल भी निकलता है और इसमें तीन तरहके गोंद भी लगते हैं। २ इस वृक्षका फल जो अमरूदके सदृश गोल और खाकी रंगका होता है। इसके तल पर आंखके आकारके बड़े बड़े दाने होते हैं जिनके अन्दर सफेद गूदेमें लिपटे हुए काले लम्बोतरे बीज होते हैं। इसका गूदा बहुत मीठा होता है और इसीके लिये यह फल खाया जाता है। अकालके दिनोंमें गरीब लोग प्रायः जङ्गली शरीफेके फल खा कर निर्वाह करते हैं। वैद्यकमें इसे मधुर, हृदयके लिये हितकारी, बलवर्द्धक, वातकारक, शक्तिवर्द्धक, तृप्तिकारक, मांसवर्द्धक और दाह, पित्त, रक्तपित्त, प्यास, वमन, रुधिर-विकार आदिके लिये लाभदायक माना है। इसे श्रीफल या सीताफल भी कहते हैं।

शरीर (सं० क्लो०) शॄ-ईरन् (कॄ शॄ पॄ कटि पटि शौटिभ्य ईरन्। उण् ४।३०) देह, यह रोगादि द्वारा शीर्ण होती है इसीसे इसका शरीर नाम पड़ा है। पर्याय—कलेवर, गात्र, वपुः, संहनन, वर्ष्म, विग्रह, काय, देह, मूर्त्ति, तनु, तनू, क्षेत्र, पुर, घन, अङ्ग, पिण्ड, भूतात्मा, स्वर्गलोकेश, स्कन्ध, पञ्जर, कुल, बल, आत्मा, इन्द्रियायतन, मूर्त्तिमत्, करण, बेर, सञ्चय, बंध, पुद्गल। (हेम)

कविकल्पलतामें स्त्रीपुरुषका सर्वाङ्ग इस प्रकार वर्णित है—प्रपद, अंघ्रि, गुल्फ, पार्ष्णि, जङ्घा, जानु, ऊरु, वङ्क्षण, कटि, त्रिक, नितम्ब, स्फिक्, वस्ति, उपस्थ, ककुन्दर, जघन, जठर, नाभि, वलि, स्तन, चूचुक, क्रोड़, रोम, कक्ष, अंश, वक्षः, दोः, पार्श्व, प्रपण्ड, कुर्पर, हस्त, प्रकोष्ठ, मणिबन्ध, अंगुलि, अंगुष्ठ, करभ, नख, वर्त्त, चपेटक, कण्ठ, शिरोधि, श्मश्रु, मुख, ओष्ठ, चिबुक, हनु, सृक्क, तालु, रद, जिह्वा, नासा, भ्रू, गण्ड, लोचन, अपाङ्ग, तारा, कर्ण, भाल, मस्तक, केश।

(कविकल्पलता)

सांख्यदर्शनकी टीकामें वाचस्पति मिश्रने लिखा है, कि शरीर दो प्रकारका है, स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर। बुद्धि, अहङ्कार, मन, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय और पञ्चतन्मात्र इन अठारह अवयवोंका नाम सूक्ष्म या लिङ्गशरीर है। यह लिङ्गशरीर सृष्टिके प्रारम्भमें उत्पन्न और महाप्रलयमें विलीन होता है। महाप्रलयके बाद जब फिरसे सृष्टि आरम्भ होती है, तब अन्य लिङ्गशरीर उत्पन्न होता है। विशेष इन्द्रिय द्वारा संगठित है, इसलिये लिङ्गशरीरको विशेष भी कहते हैं। स्थूलशरीर माता-पितृज है। यह मातापितृज शरीर कुछ समय बाद चाहे मिट्टीमें मिलता, चाहे अग्निमें जलता, चाहे पशुपक्षीका पेट भरता है।

परलोकगत लिङ्गशरीर इस लोकमें लौट कर अनाजमें मिल जाता है। पीछे भोजनके साथ वह अदृष्टानुसार पितृदेहमें प्रविष्ट होता है। अनन्तर वह पितृशुक्रका आश्रय लेता है और तब मातृजरायुमें

और शरावती यह दो नगरी यथाक्रम कुश तथा लवकी राजधानी थी।

शरावर (सं० क्ली०) १ ढाल। २ वर्म, कवच। ३ वराहादि।

शरावरण (सं० क्ली०) ढाल जिससे तीरका वार रोकते हैं।

शरावान्—बेलुचिस्तानके अन्तर्गत एक प्रदेश। यह बेलुचिस्तानके मध्यस्थित सुविस्तृत पार्वत्य अधित्यकाभूमि पर है। शरावान्, झालावान् और लुस प्रदेश ले कर उक्त अधित्यका विस्तृत है।

शरावाप (सं० पु०) धनुष, कमान।

शरावार्द्ध (सं० क्ली०) शरावस्य अर्द्ध। कुडवपरिमाण, शरावका आधा परिमाण, ३२ तोला। (वैद्यकप०)

शरावि (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम।

शराविका (सं० स्त्री०) १ वह फुंसी जो ऊपरसे ऊंची और बीचमें गहरी हो। २ एक प्रकारका फोड़ा।

शरावी—एक भारतीय मुसलमान सम्प्रदाय। ये फकीरी वेशमें द्वार द्वार भीख मांगते फिरते हैं।

शराश्रय (सं० पु०) शराणामाश्रयः। तूण, तरकश।

शरास (सं० पु०) शर-अस-घञ्। शरासन। (भाग० ३।१०।२२)

शरासन (सं० क्ली०) शरा अस्यन्ते क्षिप्यन्तेऽनेनेति अस-करणे-ल्युट्। १ धनुष, कमान, चाप। (पु०) २ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। (भारत १।११७।४)

शरासनिन् (सं० त्रि०) शरासनयुक्त, धनुर्धारी। (भारत द्रोण)

शरास्य (सं० क्ली०) शरा अस्यन्तेऽनेनेति अस-ण्यत्। धनुष, कमान।

शरि (सं० त्रि०) हिंस्र। (उण् ४।१२७)

शरिका (सं० स्त्री०) एक प्रकारका प्रासाद।

शरिन् (सं० त्रि०) बाणविशिष्ट। (भारत शल्यप०)

शरिमन् (सं० पु०) शृणाति शीर्यतेऽनेनेति शॄ-इमनिच् (हृभृधृसृस्तृशृभ्य इमनिच्। उण् ४।१४७) प्रसव। (उज्ज्वल)

शरिया—मुजफ्फरपुर जिलेके अन्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह मुजफ्फरपुर नगरसे १८ मील दक्षिण-पश्चिम गण्डक नदीके किनारे अवस्थित है। यहां नदीके ऊपर निर्व्वाणपुण्यके परिचायक तीन गुम्बजदार पुल हैं। इस पुलके ऊपरसे दरभंगा-रोड गई है। शरियासे कुछ दूर 'भीमसिंहकी लाठी या गदा' नामक एकखण्ड पत्थरका एक स्तम्भ है। उस स्तम्भके ऊपर सिंहमूर्त्ति खोदी हुई है। जमीनकी सतहसे स्तम्भ प्रायः ३० फुट ऊंचा है। ऊपरका सिंह और उसका आसन तथा नीचेका स्तंभमूल छोड़ कर स्तंभदण्ड २४ फुट ऊंचा है। स्तंभमूलके नीचे यह प्रस्तरखण्ड जमीनके भीतर कहां तक गया है, यह आज भी निरूपित नहीं हुआ है। जिस ब्राह्मणके गृहप्राङ्गणमें यह स्तंभ खड़ा है, वहांके कितने लोगोंने उसकी नींव देखनेकी इच्छासे इसे खोदा है। कई फुट खोदनेके बाद भी उन्हें उसका तलदेश देखनेमें न आया। स्तंभगात्रमें बहुतसे नाम खोदे हुए हैं। यह स्तंभ किसी प्राचीन राजाकी कीर्ति है, इसमें सन्देह नहीं। चाहे जिस कारणसे हो, यह इसी भावमें छोड़ दिया गया है। उसका इतिहास जाननेकी किसीने विशेष चेष्टा नहीं की। इसकी बगलमें एक बहुत बड़ा कूप है। जिस ब्राह्मणकी जमीनमें यह स्तंभ खड़ा है, उसका कहना है, कि उसके निम्नभागमें प्रचुर धनरत्न है, उसीको निकालनेके लिये यह कूप खोदा गया था।

शरी (सं० स्त्री०) एरका या मोथा नामका तृण।

शरीअत (अ० स्त्री०) १ मुसलमानोंके अनुसार वह पथ जो परमात्माने अपने भक्तोंके लिये निश्चित किया हो। २ धर्मशास्त्र। (भारत सभापर्व)

शरीक (अ० वि०) १ शामिल, सम्मिलित, मिला हुआ। (पु०) २ वह जो किसी बातमें साथ रहता हो, साथी। ३ साझी, हिस्सेदार, पट्टीदार। ४ रिश्तेदार, सम्बन्धी। ५ सहायक, मददगार।

शरीफ (अ० पु०) १ ऊंचे घरानेका व्यक्ति, कुलीन मनुष्य। २ सभ्य पुरुष, भला आदमी। ३ मक्केके प्रधान अधिकारीकी उपाधि। (वि०) ४ पाक, पवित्र। जैसे,—मिजाज शरीफ, कुरान शरीफ।

शरीफा (अ० पु०) कलकत्ते, बंबई और मद्रासमें अब चारों ओरसे निपुण किये जानेवाले एक प्रकारके

अवैतनिक अधिकारी। इनके सपुर्द शान्ति-रक्षा तथा इसी प्रकारके और कुछ काम होते हैं। प्रायः नगरके बड़े बड़े रईस और प्रतिष्ठित व्यक्ति कुछ निश्चित समयके लिये शरीफ बनाये जाते हैं। यूरोप और अमेरिका आदिमें भी इस प्रकारके अधिकारी नियुक्त किये जाते हैं जिन्हें कुछ शासन-सम्बन्धी कार्य भी सौंपे जाते हैं। इनके अधिकारी प्रायः मजिष्ट्रेटोंसे कुछ मिलते जुलते होते हैं।

शरीफा (हिं० पु०) १ मझोले आकारका एक प्रकारका प्रसिद्ध वृक्ष। यह प्रायः सारे भारतवर्षमें फलके लिये लगाया जाता है और मध्य तथा पश्चिमी भारतके जङ्गली देशोंमें बहुत अधिकतासे पाया जाता है। कहते हैं, कि यह वृक्ष वेस्ट इं डिजसे यहां आया है। इस वृक्षकी छाल पतली और खाकी रंगकी और लकड़ी कुछ मटमैलापन लिये सफेद रंगकी होती है। इसके पत्ते अमरूदके फलके सदृश, अण्डाकार तथा नोकदार होते हैं। इसमें एक प्रकारके विरल फूल लगते हैं जो नीचेकी ओर झुके हुए होते हैं। ये फूल तरकारी बनानेके काममें आते हैं। यह वृक्ष गरमीके दिनोंमें फूलता है और कार्त्तिक अगहनमें इसमें अमरूदके आकारके खाकी रंगके गोल फल लगते हैं। यह वृक्ष बीजोंसे उगता है और बहुत जल्दी बढ़ कर फूलने फलने लगता है। इसके पौधे जब कुछ बड़े हो जाते हैं, तब उखाड़ कर दूसरे स्थान पर रोपे जाते हैं। इसकी छाल, जड़ और पत्तियोंका व्यवहार औषधमें होता है। इसकी छाल बहुत दस्तावर होती है। इसके बीजोंमेंसे एक प्रकारका तेल भी निकलता है और इसमें तीन तरहके गोंद भी लगते हैं। २ इस वृक्षका फल जो अमरूदके सदृश गोल और खाकी रंगका होता है। इसके तल पर आंखके आकारके बड़े बड़े दाने होते हैं जिनके अन्दर सफेद गूदेमें लिपटे हुए काले लम्बोतरे बीज होते हैं। इसका गूदा बहुत मीठा होता है और इसीके लिये यह फल खाया जाता है। अकालके दिनोंमें गरीब लोग प्रायः जङ्गली शरीफेके फल खा कर निर्वाह करते हैं। वैद्यकमें इसे मधुर, हृदयके लिये हितकारी, बलवर्द्धक, वातकारक, शक्तिवर्द्धक, तृप्तिकारक, मांसवर्द्धक और दाह, पित्त, रक्तपित्त, प्यास, वमन, रुधिर-विकार आदिके लिये लाभदायक माना है। इसे श्रीफल या सीताफल भी कहते हैं।

शरीर (सं० क्लो०) शॄ-ईरन् (कॄ शॄ पॄ कटि पटि शौटिभ्य ईरन्। उण् ४।३०) देह, यह रोगादि द्वारा शीर्ण होती है इसीसे इसका शरीर नाम पड़ा है। पर्याय—कलेवर, गात्र, वपुः, संहनन, वर्ष्म, विग्रह, काय, देह, मूर्त्ति, तनु, तनू, क्षेत्र, पुर, घन, अङ्ग, पिण्ड, भूतात्मा, स्वर्गलोकेश, स्कन्ध, पञ्जर, कुल, बल, आत्मा, इन्द्रियायतन, मूर्त्तिमत्, करण, वेर, सञ्चय, बन्ध, मुद्गल। (हेम)

कविकल्पलतामें स्त्रीपुरुषका सर्वाङ्ग इस प्रकार वर्णित है—प्रपद, अंघ्रि, गुल्फ, पार्ष्णि, जङ्घा, जानु, ऊरु, वङ्क्षण, कटि, त्रिक, नितम्ब, स्फिक्, वस्ति, उपस्थ, ककुन्दर, जघन, जठर, नाभि, वलि, स्तन, चूचुक, क्रोड़, रोम, कक्ष, अंश, वक्षः, दोः, पार्श्व, भुजदण्ड, कूर्पर, हस्त, प्रकोष्ठ, मणिबन्ध, अंगुलि, अंगुष्ठ, करभ, नख, पर्व, चपेटक, कण्ठ, शिरोधि, श्मश्रु, मुख, ओष्ठ, चिबुक, हनु, सृक्क, तालु, रद, जिह्वा, नासा, भ्रू, गण्ड, लोचन, अपाङ्ग, तारा, कर्ण, भाल, मस्तक, केश।

(कविकल्पलता)

सांख्यदर्शनकी टीकामें वाचस्पति मिश्रने लिखा है, कि शरीर दो प्रकारका है, स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर। बुद्धि, अहङ्कार, मन, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय और पञ्चतन्मात्र इन अठारह अवयवोंका नाम सूक्ष्म या लिङ्गशरीर है। यह लिङ्गशरीर सृष्टिके प्रारम्भमें उत्पन्न और महाप्रलयमें विलीन होता है। महाप्रलयके बाद जब फिरसे सृष्टि आरम्भ होती है, तब अन्य लिङ्गशरीर उत्पन्न होता है। विशेष इन्द्रिय द्वारा संगठित है, इसलिये लिङ्गशरीरको विशेष भी कहते हैं। स्थूलशरीर माता-पितृज है। यह मातापितृज शरीर कुछ समय बाद चाहे मिट्टीमें मिलता, चाहे अग्निमें जलता, चाहे पशुपक्षीका पेट भरता है।

परलोकगत लिङ्गशरीर इस लोकमें लौट कर अनाजमें मिल जाता है। पीछे भोजनके साथ यह अदृष्टानुसार पितृदेहमें प्रविष्ट होता है। अनन्तर यह पितृशुक्रका आश्रय लेता है और तब मातृजरायुमें

प्रविष्ट हो कर शुक्रशोणितमिश्रणसम्भूत कर्मसंवलन देह-बीजमें आवद्ध होता है। इसके बाद वह भूमिष्ठ होता है। जिसमें स्नायु, अस्थि और मज्जा तथा माताके लोम, लोहित और मांस प्राप्त होता है, इस कारण इसको षाट्कौशिक शरीर कहते हैं। यह षाट्कौशिक शरीर जन्मके बाद अदृष्टानुसार भोग और पीछे उसका नाश होता है। इस प्रकार लिङ्गशरीरका बार बार जन्म और मरण होता है।

पञ्चतन्मात्रसे पञ्चमहाभूत उत्पन्न हुआ है। इस पञ्चमहाभूतमें कोई सुखकर और लघु, कोई दुःखकर और चञ्चल, कोई विषादकर या गुरु है। अतएव यह शास्त्रमें विशेष नामसे निर्दिष्ट हुआ है। सभी विशेष तीन श्रेणियोंमें विभक्त हैं, सूक्ष्मशरीर, मातापितृज वा स्थूलशरीर और तद्भिन्न महाभूत। महतत्त्व, अहङ्कार, एकादश इन्द्रिय और पञ्चतन्मात्र इन सबोंको समष्टि सूक्ष्मशरीर है। इन्द्रियां शान्त, घोर और मूढ़ स्वभाव होती हैं, अतएव ये भी विशेष हैं। सूक्ष्म शरीर इन्द्रियघटित है, अतएव यह भी विशेषमें गिना जाता है। एक एक पुरुषका एक एक सूक्ष्मशरीर पहले ही प्रकृतिसे उत्पन्न हुआ है। यह महाप्रलयपर्यन्त स्थायी है। यह सूक्ष्मशरीर पूर्वगृहीत स्थूल देहको त्याग और अभिनव स्थूल देहको ग्रहण करता है, इसीका नाम संसार है। चित्र जिस प्रकार आधारके बिना नहीं रह सकता, उसी प्रकार लिङ्गशरीरका आधारस्वरूप स्थूल शरीर है।

सांख्यदर्शनके भाष्यकार विज्ञानभिक्षुने जो तीन तीन शरीर स्वीकार किये हैं, वे सूक्ष्मशरीर, अधिष्ठान-शरीर और स्थूलशरीर हैं। उनके मतसे स्थूलशरीर परित्यागके बाद लिङ्गशरीरका जो लोकान्तर गमन होता है, वह इसी अधिष्ठान शरीरके आश्रयसे होता है। उनका कहना है, कि सूक्ष्मशरीर कभी भी बिना आश्रय के रह नहीं सकता। स्थूलभूतका सूक्ष्म अंश ही अधिष्ठान शरीर कहलाता है। इस अधिष्ठान शरीरका दूसरा नाम आतिवाहिक शरीर है। सूक्ष्मशरीर धर्माधर्मादि निमित्तके अनुसार नाना प्रकारका स्थूलशरीर धारण करता है। क्योंकि [illegible] स्वभावसिद्ध और [illegible] उपादानकारणात्मक है। जब तक मुक्ति न होगी, तब तक उक्त सूक्ष्मशरीर स्थूलशरीरको ग्रहण और अदृष्टानुसार सुखदुःखादि भोग कर उसे त्याग करता है। (सांख्य६०)

आयुर्वेदके मतसे शुक्र और शोणितके संयोगके बाद एक मास तक गर्भ कुछ तरल अवस्थामें रहता है। द्वितीय मासमें गर्भस्थ महाभूतगण शीत, उष्ण और अनिलके संयोगसे परिपाक प्राप्त होनेसे संहत और घनीभूत होता है। इस अवस्थामें यदि पिण्डाकृति होनेसे पुरुष, पेश्याकृति होनेसे कन्या और अर्बुदाकृति होनेसे नपुंसक सन्तान जन्म लेती है। तृतीय मासमें दो हाथ, दो पैर और सिर, ये पांच पिण्डाकार तथा ग्रीवा, पीठ आदि अंग और नाक, दाढ़ी आदि प्रत्यङ्ग सूक्ष्मभावमें उत्पन्न होता है। चतुर्थ मासमें समस्त अङ्ग प्रत्यङ्गका विभाग अधिकतर व्यक्त हो जाता है तथा गर्भहृदयकी प्रव्यक्तताके कारण वहां चेतनाधातुकी अभिव्यक्ति होती है; क्योंकि हृदय ही चेतनाधातुका स्थान है। इस समय गर्भविषयमें अभिलाष होता है, इसी कारण उस समय गर्भिणीको द्विहृदया या दौहृदिनी कहते हैं। दौहृदकी अवमानना करनेसे गर्भिणी कुब्ज, कुणि, खञ्ज, जड़, वामन, विकृताक्ष और दीनाङ्ग सन्तान प्रसव करती है, अतएव गर्भिणीको उस समय जो कुछ अभिलाषा हो, उसे पूर्ण करना कर्त्तव्य है। पञ्चममासमें मनकी बोधशक्ति अधिक बढ़ती है; षष्ठ मासमें बुद्धिशक्तिका आविर्भाव होता है। सप्तम मासमें अङ्ग प्रत्यङ्गका विभाग स्फुटतर होता है। अष्टम मासमें गर्भका ओजो धातु स्थिर नहीं होता अर्थात् उस समय ओजो नामक धातु अस्थिरतावश, कभी मातृहृदयमें, कभी शिशु-हृदयमें अवस्थान करता है। इसी कारण मातृहृदयमें ओजो धातुके रहते समय प्रसूत होनेसे शिशु जीवित नहीं रह सकता, क्योंकि ओजो धातु ही जीवका एक तरहका जीवन और बल है, अतएव ओजो धातुका नाश होनेसे उसके साथ ही साथ प्राण या बलका भी नाश होता है। पर ओजो धातुके शिशुहृदयमें रहते समय प्रसूत होनेसे उसे बचनेकी संभावना रहती है। नवम, दशम, एकादश और द्वादश मासमें ही किसी समयमें गर्भ भूमिष्ठ होनेका प्रकृत काल है। इसके अन्यथा होनेसे गर्भ विकृतिको प्राप्त होता है।

गर्भकी नाभीनाड़ी माताकी रसवहा नाड़ीमें सम्बद्ध रह कर उसके आहार-रसवीर्यको गर्भशरीरमें ले जाती है, इस कारण माताके उस उपस्नेह द्वारा क्रमशः गर्भकी अभिवृद्धि होती है। योनिमें शुक्रका जब तक निषेचन नहीं होता, तब तक गर्भका अङ्गप्रत्यङ्ग अच्छी तरह उत्पन्न नहीं होता, तब तक माताके सर्वशरीरावयवगामिनी रसवहा तिर्यग्‌गत धमनियोंके उपस्नेह उसे जीवित रखते और परिपुष्ट करते हैं।

गर्भके केश, श्मश्रु, लोम, अस्थि, नख, दन्त, शिरा, स्नायु, धमनी, रेत आदि स्थिर अङ्ग पितृज तथा मांस, शोणित, मेद, मज्जा, हृदय, नाभि, यकृत्, प्लीहा, अन्त्र, गुद आदि कोमलाङ्ग मातृज हैं। उसके शरीरकी पुष्टि, बल, वर्ण, स्थिति और हानि रसज, इन्द्रियां, ज्ञान, विज्ञान, आयु और सुख-दुःखादि आत्मज तथा वीर्य, आरोग्य, बल, वर्ण और मेधा सात्म्यज हैं। इनके सिवा कितने सत्त्वज लक्षण भी उसके शरीरमें देखे जाते हैं।

पहले कहा जा चुका है, कि शुक्रार्त्तवके संयोगसे गर्भकी उत्पत्ति होती है; किन्तु जिस प्रकार ऋतु, क्षेत्र, जल और बीजकी समग्रता नहीं होनेसे अङ्कुरोत्पत्ति नहीं होती, उसी प्रकार ऋतु, क्षेत्र, आहारकृत रस और बीजकी समग्रता हुए विना सन्तानोत्पत्ति नहीं होती। इसलिये सन्तानकामी नरनारीको चाहिये, कि वे यथाविधान शुक्रशोणित परिशुद्धि विषयमें सर्वदा सचेष्ट रहें। ऐसा करनेसे यथासमय दोनोंके संयोग होनेसे रूपगुणसम्पन्न महाबलिष्ठ सन्तान उत्पन्न होती है।

यमजादिका उत्पत्ति विवरण।

घृतपिण्ड जिस प्रकार अग्निका आश्रय करनेसे गल जाता है, उसी प्रकार नारीका आर्त्तव पुरुष-समागमसे गल कर विसर्पित होता है तथा शुक्रके साथ मिल कर जब गर्भोत्पत्ति करता है, तब यह शुक्र आर्त्तवके साथ सम्मिलित होनेके प्राक्‌कालमें यदि किसी कारणसे वायु द्वारा दो भागोंमें विभक्त हो जाय, तो उसीसे अदृष्ट कारणवशतः दो जीव आश्रय ले कर यमज सन्तान उत्पादन करता है। यमज अधर्मको सामने करके ही अवतीर्ण होता है, अर्थात् अधर्मकारी ही यमज हो कर जन्म लेते हैं। माता-पिताकी अल्प शुक्रताके कारण आसेक्य (शिथिल शेफ) नामक पुरुष उत्पन्न होता है। जो सन्तान पूतियोनिमें जन्म लेती है उसे सौगन्धिक कहते हैं। पुरुषकी तरह स्त्रियोंके वायुमें गमनकारी अजितेन्द्रिय जातकका नाम कुम्भीक; दूसरेका व्यवाय देख कर जिसे व्यवाय प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, उसका नाम ईर्षक है; पुरुष यदि मोहवशतः उत्तानभावसे सो कर अपनी चेष्टासे स्त्रीमें वीर्याधान करे तो उस गर्भमें षण्ड नामक सन्तान जन्म लेती है तथा उसका आकार प्रकार और चेष्टादि स्त्रीकी तरह होती है। फिर यदि उक्त अवस्थापन्न पुरुषसे स्त्री अपनी चेष्टा द्वारा वीर्य ग्रहण करे और उससे सन्तान जन्म ले, तो उसकी चेष्टादि पुरुषकी तरह होती है। उक्त षण्डके शरीरमें शुक्रका भाग नहीं रहता। दो नारी रमणेच्छुक हो कर परस्पर गमन करनेसे यदि परस्पर शुक्रमोचन करे, तो अस्थिहीन सन्तान उत्पन्न होती है। ऋतुस्नाता स्त्री यदि स्वप्नमें मैथुनाचरण करे, तो भी उससे सन्तानोत्पत्ति होती है। किन्तु वह गर्भ पितृजदेहवर्जित होता है अर्थात् उसके केश, श्मश्रु, लोम, नख, दन्त, शिरा, स्नायु, धमनी और रेत आदि नहीं होते। अत्यन्त पापकृत गर्भ सर्प, वृश्चिक, कुष्माण्ड आदिकी तरह विकृताकारमें प्रसूत होता है। दौहृदकी अवमानना करनेसे गर्भकी जो अवस्था होती है, वह पहले ही कहा जा चुका है। कहनेका तात्पर्य यह, कि माता-पिताकी नास्तिकता, पूर्वजन्मकृत अशुभ और वातादिके प्रकोपवशतः गर्भ नाना प्रकारकी विकृतिको प्राप्त होता है।

माताके निःश्वासप्रश्वास-संक्षोभ और निद्रासे गर्भस्थ शिशुके निःश्वास प्रश्वास-संक्षोभ और निद्रा होती है। किन्तु मलकी अल्पताके कारण तथा वायु और पक्वाशयके अयोगके कारण अर्थात् उनकी प्रकृतावस्थाकी अप्राप्तिके कारण उस शिशुके वात, मूत्र और पुरीष नहीं निकलता; फिर यदि उसका मुख जरायु द्वारा आच्छन्न तथा कण्ठ कफवेष्टित और उसका वायुमार्ग प्रतिरुद्ध रहे, तो उक्त शिशु रोदन करनेमें असमर्थ होता है।

शरीर चय।

अग्नि, सोम, वायु, सत्त्व रजः, तमः, पञ्चेन्द्रिय और भूतात्मा (कर्मपुरुष) ये सब प्राण हैं। जिस प्रकार

प्रविष्ट हो कर शुक्रशोणितमिश्रणसम्भूत कर्मोत्पन्न देह-कोषमें आबद्ध होता है। इसके बाद वह भूमिष्ठ होता है। पिताके स्नायु, अस्थि और मज्जा तथा माताके लोम, लोहित और मांस लाभ होता है, इस कारण इसको षाट्कौशिक शरीर कहते हैं। यह षाट्कौशिक शरीर पानेके बाद अदृष्टानुसार भोग और पीछे उसका नाश होता है। इस प्रकार लिङ्गशरीरका बार बार जन्म और मरण होता है।

पञ्चतन्मात्रसे पञ्चमहाभूत उत्पन्न हुआ है। इस पञ्चमहाभूतमें कोई सुखकर और लघु, कोई दुःखकर और चञ्चल, कोई विषादकर वा मूढ़ है। अतएव यह शास्त्रमें विशेष नामसे निर्दिष्ट हुआ है। इसी विशेष तीन श्रेणियोंमें विभक्त है, सूक्ष्मशरीर, मातापितृज वा स्थूलशरीर और तद्भिन्न महाभूत। महतत्त्व, अहङ्कार, एकादश इन्द्रिय और पञ्चतन्मात्र इन सबोंकी समष्टि सूक्ष्मशरीर है। इन्द्रियां शान्त, घोर और मूढ़ रूप होती हैं, अतएव ये भी विशेष हैं। सूक्ष्म शरीर इन्द्रियघटित है, अतएव यह भी विशेषमें गिना जाता है। एक एक पुरुषका एक एक सूक्ष्मशरीर पहले ही प्रकृतिसे उत्पन्न हुआ है। यह महाप्रलयपर्यन्त स्थायी है। यह सूक्ष्मशरीर पूर्वगृहीत स्थूल देहको त्याग और अभिनव स्थूल देहको ग्रहण करता है, इसीका नाम संसार है। चित्र जिस प्रकार आधारके बिना नहीं रह सकता, उसी प्रकार लिङ्गशरीरका आधारस्वरूप स्थूल शरीर है।

सांख्यसूत्रके भाष्यकार विज्ञानभिक्षुने जो तीन तीन शरीर स्वीकार किये हैं, वे सूक्ष्मशरीर, अधिष्ठान-शरीर और स्थूलशरीर हैं। उनके मतसे स्थूलशरीर परित्यागके बाद लिङ्गशरीरका जो लोकान्तर गमन होता है, वह इसी अधिष्ठान शरीरके आश्रयसे होता है। उनका कहना है, कि सूक्ष्मशरीर कभी भी बिना आश्रयके रह नहीं सकता। स्थूलभूतका सूक्ष्म अंश ही अधिष्ठान-शरीर कहलाता है। इस अधिष्ठान शरीरका दूसरा नाम आतिवाहिक शरीर है। सूक्ष्मशरीर धर्मादि निमित्तके अनुसार नाना प्रकारका स्थूलशरीर ग्रहण करता है। धर्मादि निमित्त स्वाभाविक और निमित्त स्वभावानुरूप अदृष्ट है; जब तक मुक्ति न होगी, तब तक यह सूक्ष्मशरीर स्थूलशरीरको ग्रहण और अदृष्टानुसार सुखदुःखादि भोग कर उसे त्याग करता है। (सांख्यद०)

आयुर्वेदके मतसे शुक्र और शोणितके संयोगके बाद एक मास तक गर्भ कुछ तरल अवस्थामें रहता है। द्वितीय मासमें गर्भावस्थापक महाभूतगण शीत, उष्ण और वायुके संयोगसे परिणाम प्राप्त होनेसे संहत और घनीभूत होता है। इस अवस्थामें गर्भ पिण्डाकृति होनेसे पुत्र, दीर्घाकृति होनेसे कन्या और अर्बुदाकृति होनेसे नपुंसक सन्तान उत्पन्न होती है। तृतीय मासमें दो हाथ, दो पैर और सिर, ये पांच पिण्डाकारमें तथा हाथों, पैरों आदि अंग और नाक, ठोढ़ी आदि प्रत्यङ्ग सूक्ष्मभावमें उत्पन्न होता है। चतुर्थ मासमें समस्त अङ्गप्रत्यङ्गका विभाग अधिकतर व्यक्त हो जाता है तथा गर्भहृदयकी प्रव्यक्तताके कारण वही चेतनाधातुकी अभिव्यक्ति होती है; क्योंकि हृदय ही चेतनाधातुका स्थान है। इस समय गर्भविषयमें अभिलाष होता है, इसी कारण उस समय गर्भिणीको द्विहृदया वा दौहृदिनी कहते हैं। दौहृदकी अवमानना करनेसे गर्भिणी कुब्ज, कुणि, खञ्ज, जड़, वामन, विकृताक्ष और हीनाङ्ग सन्तान प्रसव करती है, अतएव गर्भिणीको उस समय जो कुछ अभिलाषा हो, उसे पूर्ण करना कर्त्तव्य है। पञ्चम मासमें मनकी बोधशक्ति अधिक बढ़ती है; षष्ठ मासमें बुद्धिशक्तिका आविर्भाव होता है। सप्तम मासमें अङ्गप्रत्यङ्गका विभाग स्फुटतर होता है। अष्टम मासमें गर्भका ओजो धातु स्थिर नहीं होता अर्थात् उस समय ओजोनामक धातु अस्थिरभावमें, कभी मातृहृदयमें, कभी शिशु हृदयमें अवस्थान करता है। इसी कारण मातृहृदयमें ओजो धातुके रहते समय प्रसूत होनेसे शिशु जीवित नहीं रह सकता; क्योंकि ओजो धातु ही जीवका एकमात्र तदाश्रय जीवन और बल है, अतएव ओजो धातुका नाश होनेसे इसके साथ ही साथ प्राण वा बलका भी नाश होता है। अतः ओजो धातुके शिशुहृदयमें रहते समय प्रसूत होनेसे उसके जीनेकी सम्भावना रहती है। नवम, दशम, एकादश और द्वादश मासोंमें ही किसी मासमें गर्भ भूमिष्ठ होनेका प्रकृत काल है। इसके अन्यथा होनेसे उसे विकृति ज्ञात होता है।

गत इस शुक्रको दूसरे धातुसे पृथक् ...विमें बचाये रखता है, इसलिये इसको शुक्रधरा-कला कहते हैं।

अङ्ग छः हैं जिनके नाम पहले लिखे जा चुके हैं। प्रत्यङ्ग चौबीस हैं जिनके नाम ये हैं—मस्तक, उदर, पृष्ठ, नाभि, ललाट, नासा, चिबुक, वस्ति, ग्रीवा, कर्ण, नेत्र, भ्रू, शङ्ख, अंस, गण्ड, कक्ष, स्तन, वृषण, पार्श्व, स्फिक्, जानु, बाहु, ऊरु और अंगुलि।

सुश्रुतके मतसे त्वक् ७, कला ७, आशय ७, शिरा ७ सौ, पेशी ५ सौ, स्नायु ६ सौ, अस्थि ३ सौ, सन्धि २ सौ दश, मर्म १ सौ सात, धमनी २४, दोष या मल ३ और स्रोत ६ है। विस्तार हो जानेके भयसे प्रत्येकका यथायथ विवरण यहां नहीं किया गया।

शरीर (अ० वि०) दुष्ट, पाजी, नटखट।

शरीरक (सं० क्ली०) शरीर स्वार्थे कन्। शरीर देखो।

शरीरकर्त्तृ (सं० त्रि०) शरीरनिर्माता, शरीरको बनानेवाला, सृष्टिकर्त्ता।

शरीरकृत् (सं० त्रि०) शरीरकारी, शरीरकर्त्ता।

शरीरज (सं० पु०) शरीरात् जायते इति जन-ड। १ रोग, बीमारी। २ कामदेव, मनसिज। (महाभारत १०।१००।५६) ३ पुत्र। (महाभारत १३।२५।४) (त्रि०) ४ देहजात, शरीरसे उत्पन्न।

शरीरता (सं० स्त्री०) शरीरका भाव या धर्म।

शरीरत्याग (सं० पु०) देहत्याग, मृत्यु।

शरीरत्व (सं० स्त्री०) शरीरका भाव या धर्म, शरीरता।

शरीरदण्ड (सं० पु०) शारीरिक दण्ड।
(भाग० ५।२६।१६)

शरीरधातु (सं० पु०) रस, रक्त और मांस।

शरीरपण (सं० क्ली०) शरीरक्षय, शरीरपाक।

शरीरपतन (सं० क्ली०) १ मृत्यु, मौत। २ शरीरका क्रमिक क्षय, धीरे धीरे शरीरका अपचय।

शरीरपाक (सं० पु०) शरीरक्षय, शरीरका क्रमिक अपचय।

शरीरपात (सं० पु०) शरीरपतन, शरीरका नाश, देहावसान।

शरीरप्रभ (सं० पु०) प्रभवत्यस्मात् प्रभवः। शरीरकृत्, शरीरोत्पादक।

शरीरबन्ध (सं० पु०) १ शरीरयोग, देहसंभव। (भागवत ५।५।५) २ शारीरिक क्रियायोग। (रघु १६।२३)

शरीरबन्धक (सं० पु०) जमीन्दार, जो किसी अपरिचित या अविश्वस्त व्यक्तिके विश्वासार्थ राजद्वार आदिमें स्वयं अङ्गीकारबद्ध रहे।

शरीरभाज् (सं० त्रि०) शरीरं भजतीति भज ण्वि (भजो ण्विः। पा ३।२।६२) १ शरीरधारी, प्राणी। (भागवत १।६।४२) (पु०) २ देही, जीवात्मा।

शरीरभृत् (सं० त्रि०) १ देहधारी, जो शरीर धारण किये हो, शरीरी। (पु०) २ विष्णु। (भागवत ११।४६।५१) ३ जीवात्मा।

शरीररक्षक (सं० पु०) देहरक्षी, वह जो राजा आदिके साथ उसके शरीरकी रक्षा करनेके लिये रहता हो। अंगरेजीमें इसे Body-guard कहते हैं।

शरीरवत्त्व (सं० क्ली०) शरीर-युक्तका भाव या धर्म। (ऋग्वेद०)

शरीरवत् (सं० त्रि०) देहधारी, शरीरवाला।

शरीरवृत्त (सं० पु०) वे पदार्थ जो शरीरका सौन्दर्य बढ़ानेके लिये आवश्यक हों।

शरीरवृत्ति (सं० स्त्री०) जीवन-निर्वाह करनेकी वृत्ति, जीविका। (रघु २।४५)

शरीरशास्त्र (सं० पु०) वह शास्त्र जिसमें शरीरके सब अवयवों, नसों, नाड़ियां आदिका विवेचन होता है और जिससे यह जाना जाता है, कि शरीरका कौन-सा अंग कैसा है और क्या काम करता है। शरीर विज्ञान।

शरीरशुश्रूषा (सं० स्त्री०) देहकी सेवा। (मनु ६।८६)

शरीरशोधन (सं० पु०) वह औषध जो कुपित मल, पित्त तथा कफको हटा कर ऊर्द्ध्व अथवा अधोमार्गसे निकाल दे।

शरीरशोषण (सं० क्ली०) देहका क्षय।

शरीरसंस्कार (सं० पु०) १ गर्भाधानसे ले कर अन्त्येष्टि तकके मनुष्यके वेदविहित सोलह संस्कार। २ शरीरकी शोभा तथा मार्जन।

शरीरसन्धि (सं० स्त्री०) शरीरग्रन्थि, शरीरके प्रत्येक

दूध पच्यमान होनेसे उससे सर उत्पन्न होता है, उसी प्रकार शुक्र और शोणित, अग्नि आदि प्राणद्वारा अधिष्ठित हो कर पच्यमान होनेसे उनसे सात त्वक् उत्पन्न होते हैं। यथा—

१म अवभासिनी—यह त्वक् सर्ववर्णोंका व्यञ्जक और पञ्चभूतात्मक कान्तिका प्रकाशक है। इसकी मोटाई एक धानके अठारहवें भागके समान होती है।

२य लोहिता—यह अवभासिनीके कुछ नीचे तथा एक धानके सोलहवें भागके बराबर होती है।

३य श्वेता—इसका परिमाण धानके बारहवें भागके समान है।

४र्थ ताम्रा—यह एक धानके आठवें भागके बराबर है।

५म वेदिनी—एक धानका पाँचवाँ भाग ही इसका परिमाण है।

६ष्ठ रोहिणी—इसकी मोटाई एक धानके समान है।

७म मांसधरा—इसका परिमाण दो धानकी मोटाईके समान है।

इन सात त्वक्‌की स्थूलताकी समष्टि एक अंगुलोदर है। किन्तु त्वकोंके प्रत्येकका और समुदयकी समष्टि का जो परिमाण कहा गया, वह शरीरके मांसलप्रदेशके सम्बन्धमें ही जानना होगा, ललाटादि अस्थिमय स्थानके त्वक्‌के सम्बन्धमें नहीं।

शरीरके अन्तरस्तरस्थ धातु और आशयोंके परस्परके मध्यवर्ती सीमास्वरूप, स्नायुसे समाच्छन्न और जरायु नामक सूक्ष्म कलाकृति पदार्थ द्वारा सन्तत तथा श्लेष्मा द्वारा परिवेष्टित पदार्थका नाम कला है। यह कला भी शरीरके भीतर सात हैं, यथा—

१म मांसधराकला—यह मांसको घिरे रहती है अर्थात् दूसरे धातुसे मांसको स्वतन्त्र कर रखती है तथा पङ्कस्थित हुए कमलमें जिस मृणाल जिस प्रकार इधर उधर निर्गलित होता है, उसी प्रकार शिरा, स्नायु, धमनी और स्रोत इसी कलाभ्यन्तरसे अवस्थित रह कर मांसके साथ सम्बद्ध रहता है।

२य रक्तधरा—यह मांसके अभ्यन्तरस्थ रक्तको घेरे रहती है। इसके सिवा रक्तधरा शिरा, प्लीहा और यकृत्‌को भी रक्तधरा कला घेरे है।

३य मेदोधरा—मेद साधारणतः सब प्राणियोंके उदरमें ही रहता है, परन्तु सूक्ष्म और महदस्थियोंके भीतर जो मेद है उसे मज्जा कहते हैं।

४र्थ श्लेष्मधरा—यह प्राणियोंकी सर्वसन्धियोंमें अवस्थित है। जिस प्रकार चक्केके छिद्रोंमें काष्ठ स्नेहाक्त होनेसे अच्छी तरह चलता है उसी प्रकार सन्धियाँ श्लेष्मावृत होनेसे सम्यक् रूपसे सञ्चालित होती हैं।

५म पुरीषधरा—यह पक्वाशयमें अवस्थित है तथा जिस कोष्ठके मध्यस्तरस्थ अर्थात् उण्डुकस्थ मलको अन्य पदार्थोंसे स्वतन्त्र रखा करता है। उण्डुक पक्वाशय या बृहदन्त्र नाभिके निम्न प्रदेशमें आरम्भ कर कुक्षिके दक्षिण भागसे दाहिनी ओरकी कुक्षिके पास तक आ कर समाप्त हुआ है। यहाँ एक थैली है जिसमें विष्ठा जमा रहती है। इसीका नाम उण्डुक है। यही उण्डुक स्थूलान्त्रकी प्रथम सीमा है। यहाँसे स्थूलान्त्र क्रमशः ऊपरकी ओर आ कर यकृत् और आमाशयको वेष्टन कर फुसफुसके नीचेसे प्लीहा तक आया है। पीछे यह नीचे मलद्वार तक चला गया है। मलधरा कला इस कोठीमें रह कर ही यहाँके दूसरे पदार्थोंसे उण्डुकस्थ मलको पृथक् रूपसे विभाग करती है।

"यकृत् समन्तात् कोष्ठञ्च तथान्त्राणि समाश्रिता।
उण्डुकस्थं विभजते मलं मलधरा कला॥"

(सुश्रुत शारीरस्थान)

६ष्ठ पित्तधरा—इसका नाम ग्रहणी नाड़ी या पक्वामाशय है। इससे अन्न, चोष्य, लेह्य और पेय ये चार प्रकारके अन्नपान आमाशय या पक्वाशयसे च्युत हो कर इस स्थानमें आते और स्थानीय पाचक नामा पित्तके द्वारा शोषित हो कर परिपाकको प्राप्त होते हैं, तथा पक्वाशयकी ओर जानेके लिये तैयार रहते हैं।

७म शुक्रधरा—जिस प्रकार दूधमें घृत और ईखके रसमें गुड़ रहता है, उसी प्रकार प्राणियोंके सारे शरीरमें शुक्र वर्त्तमान रहता है। जब पुरुष आनन्दित हो कर स्त्रीसे रत होता है, तब हर्षवशतः शरीरमें उत्पन्न हो कर यह पुरुषके वस्तिद्वारसे दो अंगुल दक्षिण पार्श्वमें नीचेकी ओर मूत्रस्रोतके साथ निकलता है। शरीर-

अत्यन्त मधुररस, रुचिकारक, शीतवीर्य, शुक्रवर्द्धक तथा वायु, रक्त, पित्त, दाह, मूर्च्छा, वमि और ज्वर-नाशक, मानी गई है।

पुष्पशर्करा—शीतवीर्य, रक्तपित्तनाशक, लघु, कषायरस, शीतवीर्य तथा कफ, पित्त, वमि, अतीसार, पिपासा, तृष्णा, दाह और रक्तरोधनाशक है। यह जितनी ही मधुर होगी, उतना ही उसमें मधुर, स्निग्ध, लघु, शीतल और सारक गुण होगा। (भावप्रकाश) विशेष विवरण चीनी शब्दमें देखो।

२ उपला, कण्डा। ३ कंकड़। ४ ठीकरा। ५ पथरी नामक रोग। ६ वालुका, बालू। ७ पुराणानुसार एक देशका नाम जो कूर्मचक्रके पुच्छ भागमें है। (मार्क०पु० ५८।३५) ८ एक प्रकारका रोग, शर्करा रोग।

शुक्राश्मरी रोगमें रोगीके मूत्राशयमें वेदना होती, कष्टसे पेशाब उतरता और दोनों अण्डकोष सूज जाते हैं। इस रोगके उत्पन्न होते ही शुक्र गिरने लगता है, किन्तु लिङ्ग और मुष्कके मध्यभागमें दर्द होनेसे अश्मरी भीतरमें लीन हो जाती है। यह अश्मरी जब वायु द्वारा भिन्न अर्थात् चीनीकणकी तरह होती है, तब उसे शर्करा कहते हैं। शर्करा और सिकतामें प्रभेद यह है, कि शर्करासे सिकताकी रेणु सूक्ष्म होती है। वायु द्वारा प्रभिन्न शर्करा और सिकतारोगमें यदि वायु स्वपथगामी हो, तो मूत्रके साथ रेणु निकल जाती है तथा वायुके विपथगामी होनेसे उनका निकलना बन्द हो जाता है और मूत्रस्रोतके साथ संलग्न हो कर विविध उपद्रव उत्पन्न करती है। दुर्बलता, शरीरकी अवसन्नता, कृशता, कुक्षि-शूल, अरुचि, पाण्डु, मूत्राघात, पिपासा, हृद्रोग और वमि ये सब उपद्रव होते हैं। (भावप्र०) अश्मरी और मूत्रकृच्छ्र शब्द देखो।

शर्कराक्ष (सं० पु०) चरकके अनुसार एक प्राचीन ऋषिका नाम।

शर्कराचल (सं० पु०) शर्करामयो अचलः। दानार्थ कृत्रिम शर्करामय पर्वतविशेष, चीनीका वह पहाड़ जो दान करनेके लिये लगाया जाता है। (हेमाद्रि दानख०)

शर्कराधेनु (सं० स्त्री०) शर्करानिर्म्मिता धेनुः। दानार्थ शर्करा निर्मित धेनु, चीनीकी वह गौ जो दान करनेके लिये बनाई जाती है। वराहपुराणमें इस धेनुदानका विधान है। चीनीकी सवत्सा धेनु बना कर यथाविधान दान करना होता है। जो दक्षिणाके साथ यह दान करते हैं, वे सभी पातकोंसे मुक्त हो अन्तमें विष्णुलोकको जाते हैं।

शर्कराप्रभा (सं० स्त्री०) शर्करेव प्रभा यस्याः। जैनोंके अनुसार एक नरक।

शर्कराप्रमेह (सं० पु०) एक प्रकारका प्रमेह। इसमें मूत्रका रंग मिस्रीका-सा होता है और उसके साथ शरीरकी शर्करा निकलती है।

शर्करार्बुद (सं० पु० क्ली०) शर्करावदर्बुदः। क्षुद्ररोगाधिकारोक्त रोगविशेष। इसका लक्षण—जिस रोगमें कफ वायुके प्रकोपके कारण मांस, स्नायु और मेद दूषित हो कर ग्रन्थि उत्पन्न होती है, उस ग्रन्थिसे मधु, घृत या चर्बीकी तरह स्राव निकलता है और अधिक स्रावके कारण वायु फिरसे बढ़ कर मांसको सुखाती है और शर्कराकी तरह कठिन गाँठ उत्पन्न हो कर उसमेंकी शिराओं द्वारा नाना प्रकारका वर्णविशिष्ट अत्यन्त दुर्गन्धित क्लेद निकलता है, कभी उससे रक्तस्राव भी होता है, उसीको शर्करार्बुद कहते हैं। यह रोग होने पर मेदजन्य अर्बुद रोगकी तरह चिकित्सा करनी होगी। (भावप्र० क्षुद्ररोगाधि०)

शर्करालेह (सं० पु०) रसायनाधिकारोक्त लेहविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—मेदा, महामेदा, ऋद्धि, वृद्धि, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, यष्टिमधु, प्रत्येक द्रव्य ४ तोला, ५ माशा ५ रत्ती; कुशमूल, कासमूल, उलुमूल, शरमूल और इक्षु मूल प्रत्येक ३ पल, जल ३२ सेर, इन्हें अग्निमें पाक कर शेष ८ सेर, नारियल जल १२ सेर, घृत ४ पल, यथानियम पाक कर १६ पल शर्करा देनी होगी। पीछे पाक सिद्ध होने पर इलायची, तेजपत्र, धनिया, जीरा, दारचीनी, मङ्गरैला, वंशलोचन और नागकेशर प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला करके प्रक्षेप दे कर उतारना होगा। यह लेह श्रेष्ठ रसायन है।

शर्करावत् (सं० पु०) शरवत।

रक्त, प्रोक्त शिरा स्नायु अस्थि कण्डिरा दशमार शिरस्थ स्थान। (भाग० ३।१२।४८)
शरीरस्थ (सं० त्रि०) १ शरीरमें रहनेवाला। २ जीवित, जीता हुआ।
शरीरस्थान (सं० क्ली०) शारीरस्थान।
शरीरान्त (सं० पु०) देहका अन्त अथवा नाश, मृत्यु, मौत।
शरीरार्पण (सं० पु०) किसी कार्यके निमित्त अपने शरीरको इस प्रकार लगा देना मानो उस पर अपना कोई स्वत्व ही न हो।
शरीरावयव (सं० पु०) अङ्गप्रत्यङ्ग।
शरीरावरण (सं० क्ली०) शरीरस्य आवरणं। १ चर्म, चमड़ा, खाल। २ वर्म, कवच। (महाभारत) ३ कायवेष्टन, शरीरको ढकनेकी कोई चीज। जैसे कपड़ा। ४ देहाच्छादन, शरीरको ढकना।
शरीरास्थि (सं० स्त्री०) कङ्काल, पिंजर।
शरीरिन् (सं० पु०) शरीरमस्यास्तीति शरीर-इनि। १ देही, शरीरविशिष्ट, अवयवसमन्वित। पर्याय—प्राण, उद्भव, प्राणी, असु, जन्तु, प्राणभृत्, चेतन, जन्मी।

वैद्यकशास्त्रमें शरीरीका लक्षण इस प्रकार लिखा है,—

शरीरावयवविशिष्ट शुक्र, शोणित, ओज अर्थात् चैतन्य और सविकार अर्थात् महत्, अहङ्कार, पञ्चतन्मात्र, मनके साथ एकादश इन्द्रिय और पञ्चमहाभूत ये सब विकार प्रकृति हैं, इनका साधारण नाम गर्भ है। यह गर्भ जब समय पा कर दो हाथ, दो पैर, मस्तक और मध्यदेह, षडङ्ग, दो शङ्खास्थिका, दो कर्णास्थिका, दो नितम्ब, दो स्तन और लिङ्ग इत्यादि ५६ प्रत्यङ्ग, मांस, हृदय, फेफड़ा, यकृत् और प्लीहा इत्यादि १५ कोष्ठाङ्ग, चेतनाधिष्ठान ८८, इन्द्रियाधिष्ठान १०, प्राणायतन १०, शुष्क शिरा कर ३६० अस्थि, ९०० स्नायु, ७०० शिरा, २०० धमनी, ५०० पेशी, १०७ मर्म और २०० सन्धियोंसे व्याप्त गुण पूर्णावयवको प्राप्त होता है, तब उसे शरीरी कहते हैं। अङ्गप्रत्यङ्गादिका विस्तृत विवरण शरीर शब्दमें लिखा जा चुका है। शरीर देखो।

२ जीव, आत्मा। (मनु १।५३) ३ देहाभिमानी आत्मा, आत्मा जब तक देहमें रहती है, तब तक उसे शरीरी कहते हैं। ४ जीव, जन्तु, प्राणी।
शरीष (सं० क्ली०) शामका पेड़।
शरु (सं० पु०) शृ हिंसायां शृ उ (शृस्वृस्निहित्रप्यसि। उण् १।११) १ क्रोध, गुस्सा। २ वज्र। ३ बाण, तीर। ४ आयुध, अस्त्र, हथियार। (त्रिकाण्डशे०) ५ हिंसा। (ऋक् १।१७२।१) ६ गन्धर्वविशेष। (महाभारत १।१२३।५८) (त्रि०) ७ हिंसक, हिंसा करनेवाला। ८ बहुत पतला। ९ जिसका अगला भाग बहुत ही छोटा या नुकीला हो।
शरुमत् (सं० त्रि०) आयुधविशिष्ट, हथियारबन्द। (ऋक् १०।८६।५ सायण)
शरेज (सं० पु०) शरे शरवने जायते जन-ड (विभाषा वर्षक्षरशरवरात्। पा० ६।३।१६) इति विकल्पे सप्तम्या अलुक्। कार्त्तिकेय।
शरेष्ट (सं० पु०) आम्र, आम।
शर्क (सं० पु०) जन्तुविशेष। (अथर्व्व ८।६।१२)
शर्कर (सं० पु०) १ कङ्कर, कंकड़। २ बालूका कण। ३ अश्मरी रोगभेद, मसानेमें उत्पन्न होनेवाला एक प्रकारका प्राणी। (पञ्चविंशब्रा० १४।५।१५) ४ पुराणानुसार एक देशका नाम। ५ इस देशका निवासी। (मार्क० पु० ५७।५५)
शर्करक (सं० पु०) शर्कर (तुम्बुरुकेऽपि। पा ४।२।८०) इत्यनेन कः। मधुर जम्बीर, मीठी नीबू। (राजनि०)
शर्करज (सं० पु०) शर्करोत्थ देखो।
शर्करा (सं० स्त्री०) शर्करास्त्यस्याः इति अच् ततः टाप्। सिकतायुक्त, बालू।
शर्करा (सं० स्त्री०) १ खण्डविकार, शक्कर, चीनी। पर्याय—सिता, गुडोद्भवा, सुधा, सितोपला, शीतापृष्टि, मत्स्यण्डिका, अहिच्छत्रा, सुसितपा, गुडोद्भवा। गुण—मधुर, शीतल, पित्त, दाह, श्रम, रक्तदोष, भ्रान्ति और दुर्बलतानाशक। (राजनि०)

गुड़से चीनी बनती है। साधारणतः खजूर, ईख और ताड़के रसको ही आंचमें पका कर कड़ा करना होता है। आज कल किटसे तैयार की हुई चीनीका ही विशेष प्रचार है। आयुर्वेदमें लिखा है, कि शर्करा और वायु, जैसे यव (वायु)को शर्करा वा सिता कहते हैं। यह

शर्द्धस् (सं० त्रि०) १ अभिभविता, पराभवकारी। २ बलवान्, ताकतवर। (ऋक् १।१२२।१०) (क्ली०) ३ बल, ताकत। (ऋक् १।१०६।१)

शर्द्धिन् (सं० त्रि०) स्पर्द्धायुक्त, गर्व्वित।

शर्द्ध्य (सं० पु० क्ली०) प्राप्य, लक्ष्य। (ऋक् १।१११।५)

शर्बत (अ० पु०) शरबत देखो।

शर्बती (अ० पु०) शरबती देखो।

शर्ब—१ हिंसा। २ गति।

शर्म (फा० स्त्री०) शरम देखो।

शर्म्म (सं० क्ली०) शर्म्मन देखो।

शर्म्मक (सं० पु०) १ एक देशका नाम। २ इस देशकी एक जाति। (भारत सभापर्व)

शर्म्मकृत् ([redacted] ० त्रि०) मङ्गलकारी। (भागवत ७।११।३१)

शर्म्मणी (सं० स्त्री०) ब्राह्मीक्षुप। (वैद्यकनि०)

शर्म्मण्य (सं० त्रि०) १ सुखके योग्य। २ आश्रयके योग्य।

शर्म्मद (सं० त्रि०) १ सुखदायक, आनन्द देनेवाला। (पु०) २ विष्णु।

शर्म्मन् (सं० क्ली०) शृ-मनिन् (सर्वधातुभ्यो मनिन्। उण् ४।१४) १ सुख, आनन्द। (ऋक् ४।२५।४) २ गृह, घर। (ऋक् ६।१३।४) (त्रि०) ३ सुखी। (पु०) ४ ब्राह्मणोंकी उपाधि।

विष्णुपुराणमें लिखा है, कि बालकके जन्मदिनसे दश दिन बीत जाने पर पिता उसका नामकरण करे। नामकरणके समय नामके बाद देव शब्द तथा पीछे शर्म्मवर्म्मादि शब्दकी योजना करनी होती है अर्थात् ब्राह्मणके नामके बाद शर्म्म तथा क्षत्रियके नामके बाद वर्म्म इत्यादि।

५ विष्णु। (भारत १३।१४९।२३)

शर्म्मन्—दर्शकृत्य नामक दीधितिके प्रणेता। ये चम्प भट्ट व शेष तथा श्रीशर्म्मा नामसे भी परिचित थे।

शर्म्मर (सं० पु०) १ एक प्रकारका वस्त्र। (त्रि०) २ सुखदायक, आनन्द देनेवाला।

शर्म्मरी (सं० स्त्री०) दारुहरिद्रा, दारुहल्दी।

शर्म्मरी (सं० स्त्री०) दारुहरिद्रा, दारुहल्दी।

शर्म्मवत् (सं० त्रि०) १ सुखयुक्त, सुखी। २ शर्म्मा नामयुक्त। (मनु २।३२)

शर्म्मसद् (सं० त्रि०) घरमें रहनेवाला। (ऋक् ३।५५।२१)

शर्म्मा (सं० पु०) शर्म्मन देखो।

शर्म्माख्य (सं० पु०) मसूर। (पर्यायमुक्ता)

शर्म्माना (अ० क्रि० वि०) शरमाना देखो।

शर्म्मिंदगी (अ० स्त्री०) शरमिंदगी देखो।

शर्म्मिंदा (अ० वि०) शरमिंदा देखो।

शर्म्मिला (सं० स्त्री०) पाण्डु, शर्म्मिला शब्दसे पञ्चपाण्डवकी पत्नी द्रौपदीका बोध होता है।

शर्म्मिष्ठा (सं० स्त्री०) वृषपर्वा नामक असुरराजकी कन्या। महाभारतमें लिखा है, कि एक दिन दैत्यगुरु शुक्राचार्यकी कन्या देवयानी और शर्मिष्ठा अपनी सहेलियोंके साथ स्नान कर रही थी। वायुके चलनेसे तट पर रखे हुए सभीके वस्त्र मिल गये। स्नानके अन्तमें शर्मिष्ठाने देवयानीका वस्त्र पहन लिया। फिर क्या था दोनोंमें कलह होने लगा। शर्मिष्ठाने देवयानीके पिताको असुरोंका भाट बतलाया और देवयानीको कुएंमें गिरवा कर वह स्वयं घर चली गई। संयोगवश राजा ययाति वहां पहुंच गये। राजा ययाति रमणीका आर्त्तनाद सुन कर उस कुएंके पास गये और देवयानीको निकाला। कुएंसे निकल कर देवयानी अपने घर नहीं गई। उन्होंने किसीके द्वारा अपने पिताको अपनी दुर्दशाका हाल और अपना संकल्प कहला भेजा। दैत्यगुरुने अपना अभिप्राय दैत्यराज वृषपर्वासे कहा। वृषपर्वाने उनसे अपना अभिप्राय बदल देनेके लिये कहा। इस पर शुक्राचार्य बोले, 'तुम देवयानीको प्रसन्न करो, यदि वह तुम्हारे नगरमें रहना स्वीकार करे, तो मुझे भी स्वीकार है।' वृषपर्वा देवयानीके समीप जा कर उसका अनुनय करने लगा। देवयानी बोली, 'यदि तुम्हारी कन्या शर्मिष्ठा हजार दासियोंके साथ मेरी दासी होना स्वीकार करे और हमारे ब्याहके बाद भी हमारे पतिके घर दासी बन कर ही जाय, तो मैं सङ्कल्प छोड़ सकती हूं।' दैत्यराजने देवयानीका कहना स्वीकार किया।

शर्करासप्तमी (सं० स्त्री०) शर्करायाः प्राप्तिप्रधाना सप्तमी। वैशाखकी शुक्ला सप्तमी। मत्स्यपुराणमें लिखा है, कि वैशाखकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें प्रातःस्नानके बाद कुङ्कुम द्वारा कर्णिकायुक्त अष्टदल पद्म अङ्कित कर शुक्ल तिल और शुक्ल माल्यानुलेपनके साथ 'नमः सवित्रे नमः' इस मन्त्रसे गन्धपुष्प चढ़ावे। पीछे उसके ऊपर शर्करापात्र संयुक्त उदकुम्भ स्थापन करे। इस कुम्भका शुक्ल वस्त्र, माल्य और अनुलेपन द्वारा अलंकृत सुवर्णाश्वको सामने रख कर यथाविहित मन्त्रसे पूजन करना होगा।

अमृतपानको सूर्यके मुखसे गिरता हुआ अमृतबिन्दु ही शालि, मुद्ग और इक्षु कहलाता है तथा वह अमृत स्वतः इक्षुका सारभाग ही शर्करा है। अतएव यह शर्करा सूर्यदेवकी अतिप्रिय वस्तु है। इस कारण शर्करासप्तमीमें शर्करासंयुक्त उदकुम्भ द्वारा पूर्वोक्त प्रकारसे सुवर्णाश्वकी पूजा और सौरसूक्त स्तवादि करनेसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है तथा अन्तमें [illegible] लाभ होता है। (मत्स्यपु० ७२ अ०)

शर्करासव (सं० पु०) एक प्रकारका मद्य या आसव जो शर्करासे तैयार की जाती है। गुण—मुखप्रिय, सुगन्धयुक्त, सुगन्धि, अग्निदीपनकारक और पाचक, यह पुराना होनेसे हृद्य और बलकर होता है। (चरकसू० २७ अ०)

शर्करासुरभि (सं० पु०) [illegible] देखो।

शर्करिक (सं० त्रि०) शर्करा विद्यतेऽस्मिन् शर्करा ठक्। (शर्करायाश्चेति ठक्। पा ४।२।८४) शर्करावान्। (सिद्धान्तकौमुदी)

शर्करिल (सं० त्रि०) शर्करा विद्यतेऽस्मिन् शर्करा-इलच्। (देशे लुबिलचौ च। पा ४।२।१०५) शर्करावान्। (अमर)

शर्करी (सं० स्त्री०) १ वर्णवृत्तके अन्तर्गत चौदह अक्षरोंका एक छन्द। इसके कुल १६३८४ भेद होते हैं जिनमेंसे १२ मुख्य हैं। २ नदी, दरिया। ३ मेखला। ४ लेखनी, लिखनेकी कलम।

शर्करीक (सं० त्रि०) शर्करासम्बन्धी, कंकड़ा।

शर्करोदक (सं० क्ली०) १ चीनी घोला हुआ पानी, शरबत। यह शरबत पित्तको दूर करनेवाला, शीत, मधुर और वीर्यवर्धक लिखा है। वैद्यकमें इसे बलवर्द्धक, रुचिकारक, वायु, पित्त तथा रक्तदोषनाशक और वमन, मूर्च्छा, दाह और तृष्णा आदिको शमन करनेवाला माना है।

शर्कार (सं० पु०) जन्तुविशेष। गौरादि गण। (पा ४।१।४१)

शर्कोट (सं० पु०) सर्प, सांप।

शर्ट (अं० स्त्री०) कमीज नामका पहननेका कपड़ा।

शर्णाकायिति (सं० पु०) एक प्राचीन गोत्रकर्त्ता ऋषिका नाम।

शर्त (अ० स्त्री०) १ दो व्यक्तियों या दलोंमें होनेवाली ऐसी प्रतिज्ञा कि अमुक बात होने या न होने पर हम तुमको इतना धन देंगे अथवा तुमसे इतना धन लेंगे, बाजी जिसमें हार जीतके अनुसार कुछ लेन देन भी हो, दांव। २ किसी कार्यकी सिद्धिके लिये आवश्यक या अपेक्षित होनेवाली बात या कार्य जिसके न होनेसे उस कार्यमें बाधा उपस्थित न हो।

शर्तिया (अ० क्रि० वि०) १ शर्त बदकर, बहुत ही निश्चय या दृढ़तापूर्वक। (वि०) २ बिलकुल ठीक, निश्चित।

शर्ती (अ० क्रि० वि०) शर्तिया देखो।

शर्दि (सं० स्त्री०) वैदिक कालके एक प्राचीन नगरका नाम। "शार्दिनो अभिशस्तीरमीतः" ([illegible])

शर्द्ध (सं० पु०) शृधु शब्दकुत्सायाम् घञ्। १ अपान वायुका त्याग, पादना। २ बल। (ऋक् ४।११।२) ३ समूह। (ऋक् १।१४।१) (शब्दार्थचि०) ४ आर्द्रत्व, गीलापन। (त्रि०) ५ उत्साहशील। (ऋक् १।१४०।४)

शर्द्धहा (सं० पु०) शर्द्धं जहातीति शर्द्ध-हा-क्विप्। (आपुर्नवोन्दि शर्द्धेऽपि। पा ३।२।२८) १ माष, उड़द। (त्रि०) २ अपान वायु निकालनेवाला, पादनेवाला।

शर्द्धन (सं० क्ली०) शर्द्ध-ल्युट्। १ अपानवायु-त्याग। (मनु ८।२८२ कुल्लूक) २ आर्द्रता, गीलापन।

शर्द्धनीति (सं० त्रि०) उत्साही। (ऋक् ५।४१।३)

पाया जाता है। २ एक मौखरिराज। ये अवन्तुके पुत्र ईशान देवात्मज थे। इनकी माताका नाम लक्ष्मी वती था। ३ एक सामन्त-सरदार। ये गुप्तराजाओंके अधीन महासामन्त महाराज समुद्रसेनके पूर्वपुरुष थे।

शर्वर (सं० क्ली०) १ तमः, अंधकार, अंधेरा। २ कन्दर्प, कामदेव। (संक्षिप्तसारोणादि) ३ सन्ध्या। ४ नारीजाति।

शर्वरिन् (सं० पु०) बृहस्पतिके साठ संवत्सरोंमेंसे चौंतीसवां संवत्सर। कहते हैं, कि इस संवत्सरमें दुर्भिक्षका भय होता है।

शर्वरी (सं० स्त्री०) शृणाति चेष्टामिति शृ-ष्वरच् पित्वात् ङीप्। १ रात्रि, रात, निशा। (ऋक् ६।५२।३) २ योषित्, नारी, स्त्री। (मेदिनी) ३ हरिद्रा, हल्दी। (विश्व) ४ सन्ध्या, साँझ, शाम। (संक्षिप्तसारोणादि) ५ बृहस्पतिके साठ संवत्सरोंमेंसे आठवां वर्ष।

शर्वरीक (सं० त्रि०) क्षतिकर, हानिकारक, नुकसान करनेवाला।

शर्वरीकर (सं० पु०) विष्णु।
(भारत १३।१४६।११०)

शर्वरीदीपक (सं० पु०) चन्द्रमा।

शर्वरीद्वय (सं० क्ली०) हरिद्रा और दारुहरिद्रा इन दोनोंका समूह।

शर्वरीपति (सं० पु०) १ चन्द्रमा। २ शिव।

शर्वरीश (सं० पु०) चन्द्रमा। (राजतर० ३।३८७)

शर्वला (सं० स्त्री०) तोमराख्य अस्त्र। (रायमुकुट)

शर्वाक्ष (सं० पु०) रुद्राक्ष, शिवाक्ष।

शर्वाचल (सं० पु०) कैलास।
(कथासरित्सा० १०६।१५१)

शर्वाणी (सं० स्त्री०) शर्वस्य भार्या इन्द्रवरुणभवेति। ङीप् (पा ४।१।४९) पार्वती।

शर्विलक (सं० पु०) नायकभेद। (मृच्छकटिक ३५।२१)

शर्शरीक (सं० पु०) शृ-ईकन् शृ शृ-वृशां ह्रस्वश्च-चाभ्यासस्य। (उण् ४।१६) १ हिंसक। २ खल, दुष्ट, पाजी। (उणादिकोष) ३ अश्व, घोड़ा। ४ मङ्गलामरण। ५ अग्नि। (संक्षिप्त सारोणादि)

शर्षीका (सं० स्त्री०) एक प्रकारका छन्द।

शलंदा (हिं० पु०) पाताल गारुड़ी, जल जमुनी, छिरहटा।

शल (सं० क्ली०) शल ण (ज्वलितिकसन्तेभ्यो णः। पा ३।१।१४०) १ शल्लकीलोम, साहीका कांटा। पर्याय—शलली, शलल। (पु०) २ तालवृक्ष, ताड़का पेड़। ३ भृङ्गी। ४ क्षेत्रभेद। ५ ब्रह्मा। (मेदिनी) ६ कुन्तास्त्र, भाला। (त्रिकाण्डशेष) ७ उष्ट्र, ऊंट। ८ वासुकीवंशीय सर्पविशेष। (महाभारत १।५७।५) ९ शन्तनु राजाका पुत्र। (भागवत ९।२२।१८) १० शल्यराज। (भागवत १।१५।१६) ११ कंसके मन्त्री। (भागवत १०।३६।२१) १२ धृतराष्ट्रका पुत्र। (भारत १।११७।४) १३ शिवानुचर भृङ्गी। १४ सोमदत्तका पुत्र। (भारत)

शलक (सं० पु०) १ लूता, मकड़ी। २ तालवृक्ष, ताड़का पेड़। ३ शलकी कण्टक, साहीका कांटा।

शलकर (सं० पु०) नागभेद। (भारत आदिपर्व)

शलगम (फा० पु०) शलजम देखो।

शलङ्कट (सं० पु०) एक ऋषिका नाम। (पा २।४।६९)

शलङ्क (सं० पु०) एक ऋषिका नाम। शालङ्कायन आदि इनके वंशसम्भूत हैं।

शलङ्कु (सं० पु०) १ लोकपाल। २ लवणविशेष, एक प्रकारका नमक। (उणादिकोष)

शलजम (फा० पु०) गाजरकी तरहका एक प्रकारका कन्द। यह प्रायः सारे भारतमें जाड़ेके दिनोंमें होता है। यह कन्द गाजरसे कुछ बड़ा और प्रायः गोल होता है और तरकारी, अचार और मुरब्बे आदि बनानेके काममें आता है। यूरोपमें इससे चीनी भी निकाली जाती है।

शलपुत्र (सं० पु०) बौद्ध-यतिभेद, सम्भवतः शालिपुत्र।
(तारनाथ)

शलभ (सं० पु०) शल-अभच्। (कृशृशलिकलिगर्दिभ्यो-ऽभच्। उण् ३।१२२) १ कीटविशेष, पतङ्ग, फतिंगा। २ शरभ, टीड़ी, टिड्डी। ३ छप्पयके ३१वें भेदका नाम। इसमें ४० गुरु और ७२ लघु, कुल ११२ वर्ण या १५२ मात्राएं होती हैं। ४ असुरविशेष। (हरिवंश ३।५५)

शलभता (सं० स्त्री०) शलभका भाव या धर्म।
(कुमारसम्भव ४।४०)

देवयानी घर लौट गयी, शर्मिष्ठा भी हजार दासियों के साथ उस शुक्राचार्यके घर देवयानीकी सेवा करनेके लिये गई। इस प्रकार कुछ दिन बीत गये। एक दिन जब यौवनागमका समय उपस्थित हुआ, शर्मिष्ठा छिपकर राजा ययातिके पास गई और ऋतु विशेष मानकर अनुग्रह करनेके लिये प्रार्थना की। राजाको पहले देवयानीके भयसे शर्मिष्ठाकी प्रार्थना पूरी करनेका साहस न हुआ, किन्तु पीछे जब उन्होंने देखा, कि [illegible] आत्मसमर्पण करनेवालीके लौटानेसे भ्रूणहत्याका दोषी होना पड़ेगा, तब उन्होंने शर्मिष्ठाकी प्रार्थना पूरी की। यथासमय शर्मिष्ठाके गर्भसे द्रुह्यु, अनु और पुरु नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए।

कुछ समय बाद देवयानीको जब यह बात मालूम हुआ, तब वह राजा और शर्मिष्ठा पर बड़ी बिगड़ी और पिताके पास जा कर कुल वृत्तान्त कह सुनाया। दैत्यगुरु शुक्रने राजाको 'तुम अकालजरा हो' कह कर शाप दिया। पीछे शुक्रने राजाको दूसरेके ऊपर जराभार देने और उससे यौवन लेनेका हुक्म दिया। राजाने देवयानी और शर्मिष्ठा दोनोंके ही पुत्रोंको बुलाया और जराभार लेनेके लिये कहा। इस पर शर्मिष्ठाके पुत्र पुरुको छोड़ और कोई भी जरा लेनेको राजी न हुआ। अनन्तर राजा ययातिने पुरुके ऊपर ही जराभार और हजार वर्ष तक यौवनका उपभोग किया। एक हजार वर्ष बीतने पर भी जब राजा तृप्त न हुए, तब उन्होंने पुरुको बुला कर कहा, 'मैंने हजार वर्ष तक विषय सुख भोगे, परन्तु मेरी तृप्ति नहीं हो सकी। अतएव अब विषय सुख भोगना व्यर्थ है।' यह कह कर ययातिने पुरुको यौवन लौटा दिया और वे स्वयं वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करके कठिन तपस्या करने लगे।

शर्मीला (सं० त्रि०) शर्मिला देखो।

शर्य (सं० पु०) १ योद्धा। (ऋक् १।१२२।१०) २ इषु, बाण। (ऋक् १।१४८।४) ३ अंगुलि, उंगली। (ऋक् [illegible])

शर्यण (सं० पु०) कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत जनपदविशेष। (ऋक् ८।६४।११)

शर्यणावत् (सं० पु०) कुरुक्षेत्रके जनपदके पास का एक प्राचीन सरोवर जो नीचे बहता जाता था। (ऋक् ८।७।२९ भाष्य)

शर्यहन् (सं० पु०) बाण द्वारा शत्रुसंहारकारी, जो बाणसे शत्रुको मारता हो। (ऋक् १।११।११)

शर्या (सं० स्त्री०) रात्रि, रात।

शर्यात (सं० पु०) शर्याति देखो।

शर्यान (सं० पु०) मानव, मनुष्य। (ऋक् १।११२।१७)

शर्याति (सं० पु०) १ एक राजाका नाम जिनकी कन्या "सुकन्या" महर्षि च्यवनको ब्याही गई थी। २ वैवस्वत मनुके एक पुत्रका नाम। (भागवत ८।१३।२)

शर्व (सं० पु०) शृणाति सर्वाः प्रजाः संहरति प्रलये, संहारयति वा आत्मानं प्रापयति शृ-व (शृ-स्व-[illegible] उण् १।१५४) १ शिव, शंकर, महादेव। (अमर १।१।३३) २ विष्णु। (भारत १३।१४९।१७)

शर्वक (सं० पु०) मुनिविशेष।

शर्वट (सं० पु०) १ कश्मीरके एक ब्राह्मणका नाम। २ एक कवि। (राजत० ५।४।१३)

शर्वगुप्त—एक कवि। ये राजा [illegible] द्वारा [illegible] श्लोकोंमें शिलालेखके रचयिता हैं।

शर्वदत्त (सं० पु०) सामवेदीय वैदिक आचार्यका नाम।

शर्वन (सं० क्ली०) शर्व देखो।

शर्वपाल—१ कोटा प्रदेशके एक सामन्तराज। ये [illegible] थे। २ महाराज [illegible] एक [illegible]। ये [illegible] थे।

शर्वनाथ—[illegible] एक [illegible]। ये [illegible] थे। इनके [illegible] नाम [illegible] था।

शर्वरी (सं० स्त्री०) १ रात्रि। ([illegible] ५।२।१५) २ हल्दी।

शर्वरीश (सं० पु०) चन्द्रमा।

शर्वलोक—१ एक प्राचीन कवि। २ [illegible] और [illegible] नामक ग्रन्थके रचयिता।

शर्ववर्मा—१ भारतके एक [illegible] राजा। [illegible] संवत् [illegible]

पाया जाता है। २ एक मौखरिराज। ये उपगुप्तके पुत्र ईशान देवात्मज थे। इनकी माताका नाम लक्ष्मी वती था। ३ एक सामन्त-सरदार। ये गुप्तराजाओंके अधीन महासामन्त महाराज समुद्रसेनके पूर्वपुरुष थे।

शर्वर (सं० क्ली०) १ तमः, अंधकार, अंधेरा। २ कन्दर्प, कामदेव। (संक्षिप्तसारोणादि) ३ सन्ध्या। ४ नारीजाति।

शर्वरिन् (सं० पु०) वृहस्पतिके साठ संवत्सरोंमेंसे चौंतीसवाँ संवत्सर। कहते हैं, कि इस संवत्सरमें दुर्भिक्षका भय होता है।

शर्वरी (सं० स्त्री०) शृणाति चेष्टामिति शृ-ष्वरच् पित्वात् ङीष्। १ रात्रि, रात, निशा। (ऋक् ६।५२।३) २ योषित्, नारी, स्त्री। (मेदिनी) ३ हरिद्रा, हल्दी। (विश्व) ४ सन्ध्या, साँझ, शाम। (संक्षिप्तसारोणादि) ५ वृहस्पतिके साठ संवत्सरोंमेंसे आठवां वर्ष।

शर्वरीक (सं० त्रि०) क्षतिकर, हानिकारक, नुकसान करनेवाला।

शर्वरीकर (सं० पु०) विष्णु।

(भारत १३।१४९।११०)

शर्वरीदीपक (सं० पु०) चन्द्रमा।

शर्वरीद्वय (सं० क्ली०) हरिद्रा और दारुहरिद्रा इन दोनोंका समूह।

शर्वरीपति (सं० पु०) १ चन्द्रमा। २ शिव।

शर्वरीश (सं० पु०) चन्द्रमा। (राजतर० ३।३८७)

शर्वला (सं० स्त्री०) तोमराख्य अस्त्र। (रायमुकुट)

शर्वाक्ष (सं० पु०) रुद्राक्ष, शिवाक्ष।

शर्वाचल (सं० पु०) कैलास।

(कथासरित्सा० १०६।१५१)

शर्वाणी (सं० स्त्री०) शर्वस्य भार्या इन्द्रवरुणभवेति। ङीष् (पा ४।१।४९) पार्वती।

शर्विलक (सं० पु०) नायकभेद। (मृच्छकटिक ३५।२२)

शर्शरीक (सं० पु०) शृ-ईकन् शृ पृ-वृञां द्वे रुक् चाभ्यासस्य। (उण् ४।१९) १ हिंसक। २ खल, दुष्ट, पाजी। (उणादिकोष) ३ अश्व, घोड़ा। ४ मङ्गलाभरण। ५ अग्नि। (संक्षिप्त सारोणादि)

शर्षीका (सं० स्त्री०) एक प्रकारका छन्द।

शलंदा (हिं० पु०) पाताल गारुड़ी, जल जमुनी, छिरहटा।

शल (सं० क्ली०) शल अच् (ज्वलितिकसन्तेभ्यो णः। पा ३।१।१४०) १ शल्लकीलोम, साहीका कांटा। पर्याय— शलली, शलल। (पु०) २ तालवृक्ष, ताड़का पेड़। ३ भृङ्गी। ४ ऊँटभेद। ५ ब्रह्मा। (मेदिनी) ६ कुन्तास्त्र, भाला। (त्रिकाण्डशेष) ७ उष्ट्र, ऊँट। ८ वासुकीवंशीय सर्पविशेष। (महाभारत १।५७।५) ९ शन्तनु राजाका पुत्र। (भागवत ९।२२।१८) १० शलय-राज। (भागवत १।१५।१६) ११ कंसके मन्त्री। (भागवत १०।३६।२१) १२ धृतराष्ट्रका पुत्र। (भारत १।११७।४) १३ शिवानुचर भृङ्गी। १४ सोमदत्तका पुत्र। (भारत)

शलक (सं० पु०) १ लूता, मकड़ी। २ तालवृक्ष, ताड़का पेड़। ३ शल्लकी कण्टक, साहीका कांटा।

शलकर (सं० पु०) नागभेद। (भारत आदिपर्व)

शलगम (फा० पु०) शलजम देखो।

शलङ्कट (सं० पु०) एक ऋषिका नाम। (पा २।४।६९)

शलङ्कु (सं० पु०) एक ऋषिका नाम। शालङ्कायन आदि इनके वंशसंभूत हैं।

शलङ्ग (सं० पु०) १ लोकपाल। २ लवणविशेष, एक प्रकारका नमक। (उणादिकोष)

शलजम (फा० पु०) गाजरकी तरहका एक प्रकारका कन्द। यह प्रायः सारे भारतमें जाड़ेके दिनोंमें होता है। यह कन्द गाजरसे कुछ बड़ा और प्रायः गोल होता है और तरकारी, अचार और मुरब्बे आदि बनानेके काममें आता है। यूरोपमें इससे चीनी भी निकाली जाती है।

शलपुत्र (सं० पु०) बौद्ध-यतिभेद, सम्भवतः शालिपुत्र। (तारनाथ)

शलभ (सं० पु०) शल-अभच्। (कृशृशलिकलिगर्दिभ्योऽभच्। उण् ३।१२२) १ कीटविशेष, पतङ्ग, फतिंगा। २ शरभ, टीड़ी, टिड्डी। ३ छप्पयके ३१वें भेदका नाम। इसमें ४० गुरु और ७२ लघु, कुल ११२ वर्ण या १५२ मात्राएं होती हैं। ४ असुरविशेष। (हरिवंश ३।८८)

शलभता (सं० स्त्री०) शलभका भाव या धर्म।

(कुमारसम्भव ४।४०)

११ मुकोंके । ये बाह्लीक राजाके लड़के तथा मद्र-देशके अधिपति थे । पाण्डुपत्नी माद्री इनकी बहन थीं । महाभारत पढ़नेसे जाना जाता है, कि पाण्डु-तनय नकुल और सहदेव इनके भांजे होने पर भी कुरु-क्षेत्रकी लड़ाईमें इन्होंने पाण्डवोंका पक्ष नहीं लिया था । क्योंकि, युद्धके पहले संवाद पा कर मद्रराजने जब बहुत-सी सेनाओंके साथ पाण्डवोंके निकट यात्रा की, तब दुर्योधनने यह संवाद पा कर रास्तेमें उनके विश्रामके लिये बहुत-से शिल्पकुशल शिल्पियों द्वारा रत्नविचित्रित सुसज्जित सभागृह बनवाया और वहां तरह तरहके खाद्य पदार्थ, उत्कृष्ट मांसादि, सुगन्धिके गन्धमाल्य तथा चित्त प्रफुल्लकर विविध प्रकारके फूल, पानी आदि प्रस्तुत कराये । पथक्लान्त मद्रराजने भी वहां आ कर विश्राम किया । इस विश्राम सुखसे अति आह्लादित हो इन्होंने सन्तुष्ट हो कर कहा, 'युधिष्ठिरके किन आदमियोंने इस सभागृहको बनाया है ? मैं पुरस्कारस्वरूप उन्हें कुछ पुरस्कार दूंगा ।' यह सुनते ही वहां जो सब भृत्य खड़े थे, वे तुरन्त दुर्योधनके पास दौड़े और सारी बातें कह दीं । दुर्योधन बड़े नम्रभावसे शल्यके पास आया और इन्होंने उसका परिचय लिया । मद्र-राज उन्हें देख तथा इस सभा जिलोवादि जिनको उन्होंका प्रदान जान कर बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें आलिङ्गन कर कहा, 'वत्स ! तुम्हारी जो इच्छा हो, हमसे मांगो ।' शल्यका यह आश्वासन वाक्य सुन कर दुर्योधनके आनन्दका पारावार न रहा और इन्होंने शल्यसे प्रार्थना की । 'आप मेरी सारी सेनाका अधिनायक बनें ।' शल्यने इसे स्वीकार करनेमें जरा भी संकोच न किया और दुर्योधनसे कहा, 'तुम निश्चिन्त मनसे घर लौट जाओ, मैं युधिष्ठिरके साथ भेंट करके अब तुम्हारे पास आता हूं ।'

शल्यकी आज्ञासे दुर्योधन अपने घर लौट गये । पीछे मद्रराजने पाण्डवशिविरमें जा कर सारा वृत्तान्त राजा युधिष्ठिरसे कह सुनाया । इस पर युधिष्ठिर जरा भी दुःखित वा कुपित न हुए, वरं प्रसन्न चित्तसे बोले, "आपने यह अच्छा काम किया है, परन्तु आपको संग्राममें किसी तरह हमारा कुछ उपकार अवश्य करना होगा । जब कर्ण और अर्जुन दोनों युद्धमें प्रवृत्त होंगे, तब यह निश्चय है, कि आप ही कर्णका सारथी बनेंगे । अतएव हे राजसत्तम ! यदि मेरी भलाई चाहते हों, तो उस समय आप अर्जुनकी रक्षा करेंगे तथा वाक्यतीक्ष्णसे सूतपुत्रके तेजकी हानि कर जिससे हमारी जय हो सके, उस विषयमें आपको ध्यान रखना होगा ।" शल्य युधि-ष्ठिरकी यह प्रार्थना भी पूरी करनेको सहमत हुए और उन्हें तरह तरहके प्रबोध वाक्यसे संतुष्ट कर वहांसे चल दिये ।

भारतयुद्धमें अतीव वीरता दिखलानेके बाद मद्र-राज युधिष्ठिरके हाथ मारे गये ।

शल्यक (सं० पु०) शल्य इव शल्य इवार्थे कन् । १ मदन वृक्ष, मैनफल । २ शल्लकी, साही नामक जन्तु । ३ मत्स्य-भेद, एक प्रकारकी मछली । ४ शोणवृक्ष । ५ बिल्व, बेल । ६ श्वेत खदिर, सफेद खैर । ७ रक्तखदिर, लाल खैर ।

शल्यकण्ठ (सं० पु०) शल्यं शल्यलोम कण्ठे यस्य । शल्लकी, साही नामक जन्तु ।

शल्यकर्तन (सं० पु०) जनपदभेद । (रामा० २।७१।३)

शल्यकर्त्तृ (सं० पु०) शल्योद्धारकारी, यह जो शस्त्र चिकित्सा करता हो, चीरफाड़का इलाज करनेवाला ।

शल्यवत् (सं० त्रि०) १ शल्ययुक्त । (पु०) २ आतुर, चूहा । (भारत उद्योगपर्व)

शल्लकी (सं० स्त्री०) साही नामक जन्तु ।

शल्यहर्त्ता (सं० पु०) शस्त्रचिकित्सक, चीरफाड़का इलाज करनेवाला । (भारत १।११।१५)

शल्यशिरस्क (सं० पु०) मदनवृक्ष, मैनफल ।

शल्यक्रिया (सं० स्त्री०) शस्त्रचिकित्सा, चीरफाड़का इलाज ।

शल्यजनाड़ीव्रण (सं० पु०) नाड़ीमें होनेवाला एक प्रकारका व्रण या घाव । जब किसी कांटे या कांचका टुकड़ा आदि घुस कर किसी नाड़ीमें पहुंच जाता और वहीं रह जाता है, तब जो व्रण होता है, वह शल्यज नाड़ी-व्रण कहलाता है । इसमें पानीसा गरम लहूके साथ मवाद निकलता है ।

शल्यलोमन (सं० क्ली०) सुश्रुतके अनुसार अंग घावके

तन्त्रोंमेंसे एक तन्त्र । "शल्य' नाम विविध तृणकाष्ठपाषाणपांशुलोहलोष्टास्थिवालनखपूयास्रावान्तर्गर्भशल्योद्धारार्थं यन्त्रशस्त्रक्षाराग्निप्रणिधानव्रणविनिश्चयार्थञ्च" ।
(सुश्रुत १अ०)

विविध प्रकारकी घास, लड़की, पत्थर, लोहे, ईंटके टुकड़े, हड्डी, नाखून आदिके किसी कारण शरीरमें गड़ जानेसे मवाद और खून आदि विकृत हो कर अति उत्कट यन्त्रणा होती है। इन्हें शरीरसे बाहर निकाल कर यन्त्रणा दूर करनेके लिये जिस तन्त्रमें यन्त्र, शस्त्र, क्षार और अग्निकर्म आदिका प्रस्तुत और प्रयोग करनेका विधान है, उसीको शल्यतन्त्र कहते हैं। सुश्रुतके मतसे आठ प्रकारके तन्त्रोंमेंसे शल्य, तन्त्र ही सबोंसे श्रेष्ठ है, कारण इससे शीघ्र ही फायदा पहुंच जाता है। इस शल्यतन्त्रमें निपुणता रहने पर पुण्य, स्वर्ग, यश, अर्थ और आयु प्राप्त होती है। (सुश्रुत १ अ०)

अष्टाङ्गहृदयसंहिता नामक वैद्यकग्रन्थके उत्तरखण्ड-का २५से ३४ अध्याय शल्यतन्त्र कहलाता है।

शल्यदा (सं० स्त्री०) मेदा नामकी ओषधि। वैद्यकमें लिखा है कि इसके अभावमें असगन्ध औषधमें देना होता है। (राजनि०)

शल्यपर्णिका (सं० स्त्री०) मेदा नामकी ओषधि।

शल्यपर्णी (सं० स्त्री०) शल्यपर्णिका देखो।

शल्यपर्व—महाभारतका ६वां पर्व। इस पर्वमें शल्य राजाका कर्णसारथ्य, सेनापत्य, भीमके साथ गदायुद्ध और युधिष्ठिरके हाथ मृत्युकी बात लिखी है।

शल्यलोमन् (सं० क्ली०) शल्लकस्य लोम। शल्ली, साही नामक जन्तुका कांटा।

शल्यवत् (सं० त्रि०) शल्ययुक्त, बाणविशिष्ट।

शल्यवारङ्ग (सं० क्ली०) बाण या अन्यान्य शल्यका पश्चाद्भाग।

शल्यशालक (सं० पु०) फोड़ों आदिकी चीरफाड़का काम।

शल्यशास्त्र (सं० पु०) चिकित्साशास्त्रका वह अङ्ग जिसमें शरीरमें गड़े हुए कांटों आदिके निकालनेका विधान रहता है।

शल्यसंसन (सं० क्ली०) शल्यनिष्काशन, कांटा निकालना। (कौषितकी० ३३)

शल्यहर्त्तृ (सं० पु०) शल्योद्धारकर्त्ता, वह जो कांटा निकालता हो। (रामा० ५।२५।८६)

शल्यहृत (सं० पु०) शल्यहरणकारी। (बृहत्सं० ५।८०)

शल्या (सं० स्त्री०) १ मेदा। २ विकङ्कत वृक्ष। ३ नागवल्ली नामकी लता।

शल्यारि (सं० पु०) शल्यस्य अरिः तन्नाशकत्वात्। शल्यको मारनेवाले, युधिष्ठिर।

शल्योद्धरण (सं० क्ली०) शल्यस्य उद्धरणं।
शल्योद्धार देखो।

शल्योद्धार (सं० पु०) १ शरीरमें लगे हुए बाण या कांटे आदि निकालनेकी क्रिया। २ वास्तुविद्याके अनुसार नया मकान बनवानेके समय जमीनको साफ कराना और उसमें हड्डियां आदि निकलवा कर फेंकवाना।

शल्ल (सं० क्ली०) १ त्वक्, चमड़ा। २ वृक्षकी छाल। (पु०) ३ भेक, मेढक।

शल्ल (अ० वि०) जो दुर्बलता या थकावट आदिके कारण बिलकुल सुस्त या सुन्न हो गया हो।

शल्लक (सं० क्ली०) शल्लमेव स्वार्थे कन्। १ त्वक्, चमड़ा। (पु०) २ शोण वृक्ष, सलई। ३ शल्लकी, साही नामक जन्तु।

शल्लकी (सं० स्त्री०) १ पशुविशेष, साही नामक जन्तु। बम्बई—शालयघर्प। तामिल—कुंलि। संस्कृत पर्याय — श्वावित्, शलका, शलय, ककचपाद, छेदार, शल्यक, शल्यमृग, वज्रशल्य, विलेशय। इसके मांसका गुण—गुरु, स्निग्ध, शीतल तथा कफपित्तनाशक। साही पञ्चनखके भक्ष्य है, इसलिये इसका मांस भक्षणीय है।
(याज्ञवल्क्य १।१७७)

२ वृक्षविशेष, सलईका पेड़। (Boswellia serrata Indian olibanum)

शल्लकीत्वच (सं० स्त्री०) सलई वृक्षकी छाल।
(चरक सू० ४ अ०)

शल्लकीद्रव (सं० पु०) सिह्लक, शिलारस। (जटाधर)

शल्लकीरस (सं० पु०) सिह्लक, शिलारस।

शल्लिका (सं० स्त्री०) नौका, नाव।

शल्ली (सं० स्त्री०) १ शल्लकी वृक्ष, सलई। २ शल्लकी, साही नामक जन्तु।

शम्ब (सं० पु०) शम्ब देखो।

शव (सं० क्ली०) शवति गच्छतीति शव-अच्। १ जल, पानी। (पु० क्ली०) शवति इन्द्रियैः विना विकारं गच्छतीति शव विकारे अच्। २ मृत शरीर, लाश, मुर्दा। पर्याय—कुणप, छिन्नवर्त्म, मृतक। देहसे प्राणके निकल जाने पर उसे शव कहते हैं। शास्त्रमें शवदाह करनेका विधान है। दो वर्षसे कम उमरवाले बालक या बालिकाकी मृत्यु होने पर उसका शव गाड़ना तथा दो वर्षसे ऊपर होने पर जलाना होता है।

शवका अनुगमन करनेसे एक दिन अशौच रहता है। जो शववहन या दहन करते, उन्हें भी एक दिन अशौच होता। वे शवदाहादि करके जलमें अवगाहन स्नान, अग्निस्पर्श और घृतभोजन करके शुद्धिलाभ करें। जल उठा कर स्नान करनेसे शुद्धि लाभ नहीं होती, जलमें अवगाहन करके स्नान करना होता है।

ब्राह्मणादिका शव ब्राह्मणादि ही वहन और दहन करें, अन्य वर्ण वहन और दहन करे तो उसे पाप होता है। शूद्रके वहन करनेसे उसे नरककी गति होती है।

"शूद्रस्कन्धोपरिस्थं देवम् शूद्रा वह्निं ददेत्।
यावन्त्यस्थीनि देहस्य नरके स्थितिः॥"

(शुद्धितत्त्व)

वापी, कूप, तड़ाग आदिमें जिसका शव सड़ जाता है, ऐसा यदि कोई जन्तु मरे, तो उसका जल खराब हो जाता है। जिससे शास्त्रानुसार जल अगाधको शोधन कर लेनेसे उसके जल द्वारा देव या पैत्र कार्य किया जाता है। नहीं तो उस जलसे कोई क्रिया नहीं होगी। वापी आदिके जलमें मनुष्यकी मृत्यु होने पर भी उसका जल दुष्ट होगा।

घरमें कुछ पहले ही मुर्दे बाहर करना होता है। यदि बाहर न किया जाये और घरमें ही मृत्यु हो, तो वह घर दुष्ट हो जायगा।

महापातकी या अभिशप्तकोंका शववहन या दहन नहीं करना चाहिये। ब्रह्मघ्न, आत्मघाती आदि निन्दनीय महापातकी और भी निषेधित अभिशप्तक कहते हैं। किन्तु स्नेहवशतः यदि कोई शव वहन करे तो उसे शवदाह देगा। अभिशप्तकोंका जो शवदाह नहीं करना चाहिये। जो यह शवदाह करते हैं, उन्हें प्रायश्चित्त करना होता है। अन्त्येष्टि और मरण देखो।

शवकाम्य (सं० पु०) शवः काम्यो यस्य। कुक्कुर, कुत्ता।

शवच्छद (सं० पु०) धीवरजातिका एक भाग।

(ब्रह्मवै० १।८।१०१)

शवधान—कामरूपके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम।

(—भविष्य० ख० ४४।१०,४।१२)

शवदाह (सं० पु०) मनुष्यके मृत शरीरको जलानेकी क्रिया या भाव। इसीको अन्त्येष्टिक्रिया कहते हैं। केवल भारतवर्षमें ही नहीं, सारे संसारमें विभिन्न समयमें विभिन्न सम्प्रदायके मध्य विभिन्न प्रकारकी शवदाह-प्रथा प्रचलित हुई थी। उस सबका विवरण नीचे लिखा जाता है—

पाश्चात्य जगत्‌के सभ्यासभ्य स्थानोंमें बहुत पहले भी शवदाह प्रथा प्रचलित थी। प्राचीन ग्रन्थावलीसे शवदाहप्रथा ही यथाक्रम प्राचीन समझी जाती है। क्योंकि सल (Saul) नामक राजाकी देहको दाह कर अस्थि आदि गाड़ दी गई थी। आसा (Asa) मृत्युके बाद सुरभित द्रव्यादि पर गन्धद्रव्यादिके साथ भस्मीभूत हुए थे। इस समय असभ्य स्थानोंमें गाड़ने, नदी जलमें बहा देने और निर्जन स्थानमें शवको फेंक देनेकी प्रथा भी प्रचलित थी। मिस्रदेशके पचनासिरई नामी जो सब समाधि दृष्टिगोचर होती हैं उनमें तरह तरहके पात्र, धान्य और अलङ्कारादि पाये गये हैं। मिश्रकी कुछ समाधियाँ भी उसी तरहके अलङ्कार और पात्रादि देखनेसे मालूम होता है, कि इस युगमें होमरके देशमें शवदाहका इस प्रकारकी प्रथा प्रचलित हुई थी। पुरातत्त्वविद् डिकाईने इन सब मन्दिरोंमें अस्थिपात्र देख कर अनुमान किया है, कि ये सब एक प्राचीन जातियोंके व्यवहार पर बनाई गई हैं। डिओडोरसके वर्णनसे जाना जाता है, कि पारसवासी राजपुत्रके विपरीतमान हम (Olo-Tontes) में और भारतमें अस्थियाँ होमें एक कर एकत्र रखा गया था।

प्राचीन यहूदियोंमें शवदाह और अस्थिसंचय भी प्रचलित थे। कभी कभी देवपूजामें ...

करते थे। (Herod, lib, I. C, 140, Arian de Bello, Alex, Theoph, de Lapid C, XV) इलियनने लिखा है, कि राजा अरक्षेरशने जब बेलुसकी कब्र खोदी, तब उन्होंने शवसिन्धुकको तैलविशेषसे एकदम परिपूर्ण देखा था। इस शवसिन्धुकका वर्णन देख कर मि० लेयार्डने अपना अभिप्राय प्रकट किया है, कि आसीरियाके प्राचीनतम प्रासादादि बनाये जानेके बाद तथा अपेक्षाकृत आधुनिक अट्टालिकादि बननेके पहले आसीरियाके राज्यमें जिस जाति या जनसम्प्रदायने वास किया था, यह शवसमाधि उसी मध्य युगकी प्रथा है।

सुप्राचीन निनिभे राज्यवासी जनसाधारणके नाना समाधिस्तम्भ दृष्टिगोचर होने पर भी निनिभिगण किस उपायसे शवका सत्कार करते थे, उसका कुछ भी निदर्शन नहीं मिलता। केवल बाबिलोनिया राज्यमें प्राप्त कुछ अस्थिभस्माधारसे (Sepulchral) से जली मिट्टीका जलपात्र, खाद्य भाण्ड, मृत्युकी मिती लिखी हुई मृत्खण्ड, मस्तकके अस्थिसमाधानार्थ काटी हुई ईंटें पाई गई हैं। बुशायाकी राजधानीके निकट इसी प्रकारके एक भस्मभाण्डमें बालुकायोगसे एक पूर्णावयव मनुष्यकी देहास्थि पाई गई है। यह भाण्ड मिट्टीका बना है। उसकी लंबाई ३´४´´ और उसके मध्य स्थानकी परिधि २´६´´ इञ्च तथा ऊंचाई एक इञ्चका तृतीयांश होगी। भाण्डके ऊपरकी दोनों बगलमें दो ढोंस शृङ्गवत् दण्ड हैं। उसके ऊपर पृथग्भावमें दो पात्र सजाये हुए हैं। पात्रका भीतरी भाग मिट्टीके तेलकी तरह एक प्रकारके तेलसे संपृक्त देखा जाता है। भाण्डमें ऐसा कोई चिह्न नहीं जिससे इनके समयका पता लगाया जा सके।

कालदीयगण उस प्राचीन समयमें मिट्टीसे एक प्रकारका शवाधार बनाते थे। उनमेंसे बहुतोंकी आकृति डिम्बकी तरह छिछली होती थी। वे लोग उसमें शवको, शवके आगे पात्रके साथ खाद्य और जल तथा मस्तकरक्षाके लिये सुप्रपक्क इष्टकको रख कर समाधिस्थ करते थे। कहीं कहीं मर्तवानके आकारमें शवाधार देखा जाता है। मालूम होता है, कि उस भाण्डमें शवको रख कर ऊपरसे स्तूपाकारमें मिट्टी भर देते थे।

कालदीय जातिके अभ्युत्थान कालमें प्रकृत काल-दीया (Chaldae proper) को छोड़ उत्तर-बाबिलोनिया या आसीरिया राज्यमें और कहीं भी ऐसी प्राचीन कब्र नहीं दिखाई देती। रेवरेण्ड जी० रलिन्सनने अपने ग्रन्थमें लिखा है, कि पारसिक लोग जिस प्रकार मृतदेहको करबला या मेशेद अली नामक स्थानमें ले जा कर दफनाना गौरवजनक समझते हैं, भारतवासी हिन्दू जिस प्रकार दूर देशमें मृत व्यक्तिके शव या अस्थिको वाराणसी, चक्रदह आदि गङ्गातीरवर्त्ती नगरमें ला कर फिर दाह करना मुक्तिप्रद समझते हैं, एक दिन कालदीयावासी भी कालदीयाके पवित्र क्षेत्रमें अपनेको समाधिस्थ करना सम्मानजनक समझते थे।

प्राचीन रोमक भी शवदाहके पक्षपाती थे। किन्तु वे लोग भी रोगविशेषमें मृतको दफनाते थे। बचपनमें बालक-बालिकाकी मृत्यु होने पर उसे जन्मभूमिसे दूरमें गाड़ दिया जाता था। इस जातिके मध्य भस्मास्थिको भाण्डमें रख कर गाड़नेकी व्यवस्था थी। भूपृष्ठसे २ फुट नीचे उस भाण्डको रख कर ऊपरसे स्मृतिस्तम्भ खड़ा किया जाता था। इस जातिकी प्राचीन कब्रमें जो सब शवाधार पाये गये हैं, वे पत्थरके बने हैं और भिन्न भिन्न आकृतिके हैं। अन्त्येष्टिक्रिया करनेके लिये रोमकगण शववहनकालमें रास्तेसे शोकसूचक ध्वनि करते करते जाते थे। चुल्लीमें शवस्थापनके बाद उसमें आग लगा दी जाती थी तथा उसके ऊपर मृतका वस्त्रालङ्कारादि और प्रियतम भोग्य पशु मार कर उसका मांस फेंक दिया जाता था।

प्राचीन ग्रीकजातिकी शवसत्कारप्रणाली बहुत कुछ भारतीय आर्यों-सी है। ये लोग वैतरणी (Styx और Acheron) नामक स्वर्गस्थ नदी पार करनेकी कामनासे शवके मुखमें एक मुद्रा डाल देते थे तथा सरमा (Cerberus) को प्रसन्न करनेके लिये गेहूंका चूर्ण और मधुमिश्रित पिष्टक पिण्ड देते थे। मृतके उद्देशसे मस्तकमुण्डनका आभास भी ग्रीक लोगोंके मध्य दिखाई देता है। किसी निकट आत्मीयके मरने पर ग्रीक लोग शोकचिह्नस्वरूप शिर मुंडवा लेते थे। इलियाड (Iliad, xxiii) में लिखा है, कि पट्रोक्लासकी अन्त्येष्टिक्रियाके समय एकिलिसके बंधुबांधवोंने अपने अपने शिरके बाल कटवा

कर शवके ऊपर फेंक दिये थे। फिर पीछेके समयमें [illegible] स्थानोंके अधिवासी युद्धके लिये [illegible] बहुत [illegible] वंशोंको देख उनके [illegible] सारा [illegible] जाती थी।

तुर्किस्तानवासी किसी आदमीकी मृत्यु पर मस्तक मुड़ा लेते और उन वंशोंको उसके चारों ओर लटका देते हैं। ईरान प्रान्तकी युवक युवतियां विवाहबन्धनमें आबद्ध होनेके पहले अपने अपने केशगुच्छको ले कर उनके ऊपर टांगी गई हुई कुमारियोंके समाधिस्तम्भके ऊपर रख कर सम्मान प्रदर्शन करती हैं।

भूमध्यसागरसे आरम्भ महासागर तक विस्तीर्ण [illegible] विभिन्न जातियोंमें पहले और आज भी ऊपरसे सुगठित ढांक कर समाधिकी व्यवस्था थी और है। बाइबलमें देखा जाता है, कि राजा आइ [illegible] द्वारा मारे जाने पर नगरद्वार पर लटकाये गये थे तथा उस शवके ऊपर एक बड़ा भारी मीनार खड़ा किया गया था। (Joshua) हिरोडोटसने लिखा है, कि लिडियाराज [illegible] शवके ऊपर भी मिट्टीका मीनार खड़ा किया था, उसका घेर प्रायः १ मील और विस्तार १३०० फुट है। वर्त्तमान प्रत्नतत्त्वविदोंके यत्नसे यह स्थान आविष्कृत हुआ है।

ट्रायन जातियों भी शवके ऊपर मिट्टीका मीनार खड़ा करना गौरव समझा जाता था। प्राचीन [illegible] शवदेह रख कर ऊपरसे मिट्टी डाल देते थे। [illegible] देशोंमें [illegible] और [illegible] ऊपर मीनार (Tumuli) खड़ा करनेकी प्रथा प्रचलित थी।

हिरोडोटसके विवरणसे जाना जाता है, कि प्राचीन शाकद्वीपियों (Scythians) का [illegible] किया जाता था। वर्तमान समयमें भी [illegible] देशमें और [illegible] 'कैर्न' नामसे [illegible] देखी जाती है। [illegible] लिखा है, कि किसी किसी देशमें मृत [illegible] मार कर [illegible] (Kurd) हिरोडोटसने लिखा है, कि जब किसी राजाकी मृत्यु होती है, तब उसके शवदेह [illegible] और [illegible] जाते हैं तथा उसे रथ पर चढ़ा कर बड़ी धूमधामसे समाधिक्षेत्रमें लाया जाता है। शवको रखनेके लिये समाधिक्षेत्रमें एक बड़ा गड्ढा बनाया जाता है। उसके भीतर शव लिटा कर ऊपरसे [illegible] लकड़ीसे ढक दिया जाता है। शवके [illegible] देहके दोनों बगलमें बर्छे गाड़ देते हैं। इसके बाद राजाकी एक पत्नीको गला घोंट कर मार कर उस गड्ढेके दूसरे कोनेमें गाड़ते हैं। उसके साथ राजाका ताम्बूलवाहक, पाचक, प्रिय अनुचर, अश्व, दूत और [illegible] तथा बहुत स्वर्णपात्रादि गाड़ देते हैं। उनका विश्वास है, कि राजाके परलोक यात्रा करने पर ये सब वस्तु नहीं रहनेसे उन्हें भारी कष्ट होगा। इन वस्तुओंके गाड़नेके बाद समवेत लोग मिट्टीसे वह गड्ढा भर कर वहां एक बड़ा मीनार खड़ा कर देते हैं। वर्षके अन्तमें फिरसे राजाके ५० विश्वस्त अनुचरों और ५० अश्वोंको मार कर तथा घोड़ोंकी पीठ पर अनुचरोंको बैठा कर उस समाधि स्तूपके चारों तरफ गाड़ दिया जाता था।

हूणसरदार ऐटिलाकी जब मृत्यु हुई तब उसकी कब्र पर एक बड़ा मीनार खड़ा किया था। वह मीनार इतना विस्तृत था, कि उसके ऊपर मनुष्य विचरण करते थे। इस कारण उसके हूण अनुचरोंने इस पर युद्धादि खेल कर इसे अद्भुत बना दिया था। कर्नल टाड इस राजस्थानके इतिहासमें भी इस [illegible] समाधिस्तम्भ देखते हैं। जो सब राजपूत रमणियां प्राण विसर्जन करती थी उनके शवके ऊपर जो सब समाधिस्तम्भ है उन पर राजपूत [illegible] मूर्ति और उनकी बगलमें उनकी [illegible] तथा दोनोंके बगलमें चन्द्र और सूर्यमूर्ति राजपूत-वीरके अक्षय [illegible] घोषणा करती है। (Tod's Rajasthan I, p. 54)

प्राचीन [illegible] आदि [illegible] जातियोंमें ही पहले शवके ऊपर "[illegible]" ([illegible]) खड़ा करनेकी रीति थी। [illegible] अब भी [illegible] इधर उधर पड़ा देखा जाता है। यह

स्तम्भोंके ऊपर अस्पष्ट आकारमें मृत्युकी अवस्थाद्योतक वीरमूर्त्ति अङ्कित है। अधिकांश मूर्त्ति ही अश्वारोही हैं।

पञ्जाबके नाना स्थानोंमें, वामियानप्रदेशमें, अफगानिस्तानमें और काबुलके समीप इस प्रकारके अनेक समाधिस्तूप विद्यमान हैं। भारतवर्षके स्थान स्थानमें बुद्धके अङ्गविशेषके ऊपर जो इष्टकस्तूप खड़ा किया गया था, वह इसीका रूपान्तरमात्र है। किन्तु इन समाधियोंमें केवल एक व्यक्तिकी अस्थि या भस्म रखी हुई है। उनकी बनावट ग्रीक देशीय स्थापत्यशिल्पकी तरह है। मनिकैल नगरीके पास ८० फुट ऊंचाई और ३२० फुट घेरेका वैसा ही एक स्तूप देखनेमें आता है। उसके मध्यभागमें स्वर्ण रौप्य और ताम्रपात्रादि तथा रोमक और वाह्लिकयवनोंकी मुद्रा पाई गई है। भीतर ६० फुट गहरा जो घर है उसमें ताम्रनिर्मित सिन्दुकके मध्य पशुकी अस्थि रखी हुई है।

डा०. कनिंहमने दाक्षिणात्यकी शवसमाधि और स्तूपनिर्माणप्रथा देख कर कहा है, कि इङ्गलैण्डकी आदिम अधिवासी केल्टजातिके समाधिप्रस्तरादि (Cairns, cromlechs, kistvaens and circles of upright loose stones)से नीलगिरिवासी असभ्य जातीयके समाधिप्रस्तरके साथ बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। उन सब समाधियोंमें विविधपात्र, भस्मभाण्ड, नरास्थि और भस्म, उज्ज्वल मिट्टीके पात्र आदि रखे रहते हैं। बम्बई प्रेसिडेन्सी, दक्षिण-भारतके नागपुरसे ले कर मदुरा तकके स्थानोंमें तथा कोयम्वतोरके दक्षिणस्थ अनमलय शैलपृष्ठ पर अनेक समाधिस्तम्भ दृष्टिगोचर होते हैं। नीलगिरिमें जो समाधिस्तम्भ दृष्टिगोचर होते हैं, उनसे ये सब स्तम्भ विगत सभ्ययुगके ... आते ...

फिरोजाबाद और भोमातीरस्थ स्थानोंके शवस्थानकी परीक्षा कर तथा इङ्गलैण्डके इसी प्रकारके शवशैलके साथ उसकी तुलना कर कहा है, कि ये सब Scytho-celtic या Scytho Druidical हैं।

उक्त स्थानकी तोडा, कुरुवर आदि पहाड़ी जातियां तथा निकटवर्त्ती आर्य हिन्दू इन सब शवशैलोंके किसी भी तत्त्वसे अवगत नहीं हैं। संस्कृतसाहित्यमें अथवा द्राविड़ीय लिपिमालामें उसका कोई निदर्शन नहीं मिलता। तामिल भाषामें उन्हें पाण्डु-कुड़ि कहते हैं। तामिल भाषाके कुड़ि शब्दका अर्थ है कब्र या गर्त्त। इस कारण बहुतेरे उसे पाण्ड्य-समाधि कह कर घोषणा करना चाहते हैं, पर यथार्थमें ऐसा नहीं है। दक्षिण-भारतमें द्राविड़ जातिके आनेके पहले यहां बहुत सम्भव है, कि भ्रमणकारी रावालदलका वास था। द्राविड़ जातिके आने तथा उनसे दण्डित या विताड़ित होने अथवा उनके साथ मिल जानेसे यह जाति विलुप्तप्राय हो गई है। उस जातिकी धर्मबुद्धिका एकमात्र परिचय यह अन्त्येष्टिक्रिया ही होती है।

हैदराबादराज्यमें तथा बलराम और सिकन्दराबाद नगरके चारों ओर इस प्रकार प्रस्तरस्तम्भवेष्टित अनेक समाधिक्षेत्र दिखाई देते हैं। सिकन्दराबादसे २० मील पूर्व-दक्षिणमें एक बहुत बड़ा समाधिक्षेत्र है। उसे देखनेसे मालूम होता है, कि यहां सैकड़ों वर्षसे शव दफनाये जा रहे हैं। जिस जातिकी यह कीर्त्ति है उनका चिह्न-मात्र भी न रह गया है। इन सब कब्रोंका पर्यवेक्षण करनेसे देखा जाता है, कि प्रत्येक वृहत् प्रस्तरखण्डके नीचे एक एक गर्त्त है। उसके मध्यस्थलमें शवास्थि और भस्मभाण्ड है तथा ऊपर और नीचे मृतके व्यवहार्य धनुर्वाण और पात्रादि रखे हुए हैं। पीछे उस समाधिके चारों ओर गोल पत्थर सजाये गये हैं।

जाते हैं। परन्तु यह निश्चित रूपसे कहा नहीं जाता, कि इसके प्रारम्भके अभिप्राय क्या थे। इस परिणाम देखनेसे मालूम होता है, कि इस जातिमें भी मृतदेहोंको मृत्युके बाद उसके साथ उसके अस्त्र शस्त्र और मनुष्योंको साथ कर दफनाया जाता था। वाल्-फोर साहबका अनुमान है, कि हिन्दू और राजपूत जातियोंमें जो सहमरणप्रथा प्रचलित था, वह प्राचीन शकजातियोंकी अनुकरण-प्रथासे [illegible] अनुमान है।

मृतक सत्कार विभिन्न स्थानोंमें विभिन्न प्रकारोंसे सम्पन्न होता है। रूसी और अंग्रेजोंके [illegible] और [illegible] सामाजिक नियम देखनेसे मालूम होता है, कि दोनोंके आचार व्यवहार पृथक् पृथक् हैं। अंग्रेज लोग [illegible] समय शोकचिह्न और गम्भीरता दिखलाते हैं, रूसीलोग उसका विपरीतभाव दर्शन करते हैं। [illegible] राजधानीमें जो कब्रिस्तान है वहाँ प्रत्येक दिनके लिये एक एक गड्ढा खोदा जाता है। वहाँ सामान्य [illegible] शव लाये जाने पर कब्रिस्तानके लोग (Cemetery assistants) पहलेसे ही उसका सब प्रबन्ध किये रहते हैं। पीछे पादरी आ कर उसके कुछ अनुष्ठान करते हैं। कार्य समाप्त होने पर कब्रिस्तानके नौकर [illegible] विश्राम करने बाद उस मृतदेहको गड्ढेमें डाल देते हैं। प्रतिदिन जितने शव लाये जाते हैं, सभी एक एक गड्ढेमें डाल कर ऊपरसे मिट्टी ढक दी जाती है। किसी धनवान् व्यक्तिके शवके लिये स्वतन्त्र विधि है। [illegible] शव लाये जाने पर [illegible] बाद उस मृतदेहको [illegible] धातुओंसे सुसज्जित किया जाता है। जब [illegible] थोड़े थोड़े दिखाई देते हैं, तब उसे [illegible] पहना कर [illegible] (Glass case) में रख कर रख देते हैं। [illegible] जाति बड़ी धूमधामसे शव सत्कार करती है और [illegible] कब्रिस्तान और [illegible] सम्पूर्ण स्थानोंको अधिकृत करती है। इन [illegible] (Catacombs) कहते हैं। [illegible] मालूम होता है, कि मृत्युके बाद ही जितने [illegible] उनको [illegible] बहुत दिनोंतक रख छोड़ते तथा वहाँ किसी प्रकारका [illegible] करते हैं।

[illegible] शवदाहके प्रचलित हैं। [illegible] देहदाह करने पर [illegible] नहीं इस देहको दाह करनेके लिये नदीके किनारे ले गये। मृत्युसंस्कारके बाद एक [illegible] काले कपड़े से [illegible] कर [illegible] किये जाने पर [illegible] और [illegible] नदीके [illegible] गया। इस [illegible] उसने [illegible] कर [illegible] हाथ लिया और तलवारसे [illegible] कर उसमें मिला दिया। पीछे वह भी [illegible] पड़ा और [illegible] हुआ नदीके दूसरे किनारे आ सकते [illegible] गया। प्रवाद है, कि उस [illegible] फिर कभी भी [illegible] मुँह नहीं दिखलाया। उनके [illegible], जो सब हाथी घोड़े आदि [illegible] थे, वे छोड़ दिये गये तथा वे [illegible] विचरण करते रहे। जिन सब [illegible] राजाको मृत-देहके ऊपर पावक छिड़का था, वे भी नदीके दूसरे किनारे भेज दी गई तथा इन्हें कभी भी [illegible] न दिया गया।

यहूदियोंके प्राचीन ग्रन्थमें (Old Testament) यहूदी जातिके प्रसिद्ध कुछ आचारोंका उल्लेख देखनेमें आता है। वे सब एक समय बहुत देशोंमें प्रचलित थे, जिसमेंसे कुछ नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

(१) Neither shall men lament for them, nor cut themselves (Jeremiah XVI. 6)

हिन्दुओंमें आत्मीयकी मृत्यु पर इष्टमित्रोंको शोक प्रकाश करना तथा सिर पटकने और छाती पीटनेकी रीति है।

(२) They shall come at no dead person to defile themselves. (Ezekiel XLIV. 25)

हिन्दू शव छूनेसे अपवित्र होते हैं तथा स्नानके बाद शुद्ध हो जाते हैं।

(३) The rich man shall lie down but shall not be gathered (Job xxvii. 19)

हिन्दुओंका विश्वास है, कि मृत्युके बाद जिनकी अन्त्येष्टि [illegible] नहीं होती, उनकी प्रेतात्मा इधर [illegible] भटकती है, उसे कहीं भी शान्ति नहीं

मिलती इस कारण गया क्षेत्रमें पिण्डदानकी व्यवस्था है।

(४) So shall they burn odours for thee. (Jeremiah, xxxiv. 5)

हिन्दुओंकी शवदाहके समय चन्दनकाष्ठ, धूना और घृत जलानेकी रीति है।

(५) Rachel weeping for children and would not be comforted, because they are not, (Mathew II, 18.)

पुत्रकी मृत्यु होने पर माताका हृदयविदारक क्रन्दनध्वनि करना स्वभाव है। युद्धमें निहत पुत्रोंके लिये उनकी माताओंकी समवेत क्रन्दनध्वनि जो शोकजनक कोलाहल उत्पन्न करता है, वह स्वभावतः ही मर्मभेदी है। लङ्काध्वंसके बाद तथा कुरुक्षेत्र-युद्धके बाद रामचन्द्र और पाण्डवोंने ऐसा ही भीषण शोक प्रकट किया था।

प्राचीन कालमें वैदिक आर्यसमाजमें शवसत्कारकी एक और पद्धति प्रचलित थी। किसी आदमीके मरने पर उसके आत्मीय बैल-गाड़ी पर शव लाद कर श्मशान ले जाते थे, कभी उसके अनुचर उसे ढोते थे। मृतका निकट आत्मीय या कोई वयावृद्ध व्यक्ति उस शवयात्राका नायक बन कर जाता था। साथमें एक काली बूढ़ी गायको मार कर वे लोग मांस चर्बी आदि शवके ऊपर रखते और उस गोचर्मसे शवदेह ढक देते थे। इसके बाद मृतकी पत्नी शवके ऊपर सुलाई जाती थी। कभी कभी मृतका छोटा भाई, सतीर्थ या कोई अनुचर उस विधवाको स्त्रीरूपमें स्वीकार कर उसे साथ लाता था। ३म, ५म, ७म या १०म दिनमें शोककारी मृतका शव गाड़ कर उसके चारों ओर प्रस्तरशलाका गाड़ते तथा अशौचग्रहणकारीके घरमें आ कर सत्तू और बकरेका मांस खाते थे।

हिन्दू वैष्णव शवदाह करके भस्म गाड़ देते थे। मृत्यु निकटस्थ होने पर वे लोग सिरहानेमें दीप जलाते तथा कपूर और नारियलसे होम करते हैं। मृत्यु होने पर तुलसीपत्रसे मृतके मुखमें पञ्चगव्य देते हैं। इसके बाद दो तीन घण्टेमें शवको बाहर ला कर सत्कारके लिये श्मशान ले जाते हैं। स्थानविशेषमें काष्ठ या शुष्क गोमयके चूल्हेसे शवदाह किया जाता है। उसके ऊपर भात रख कर तुलसीपत्र देते और पिण्डदान करते हैं। दाहके दूसरे दिन वे अस्थि और करोटीको संग्रह कर उसमें जल देते हैं। पीछे एक पात्रमें उन हड्डियोंको रख नदी या समुद्रके जलमें फेंक देते हैं।

आसाममें हिन्दू लोग घरमें किसीको भी मरने नहीं देते। क्योंकि, इससे घर अपवित्र हो जाता है तथा कोई भी उस अपवित्र घरमें भोजनादि नहीं करते। इस कारण मृत्युके कुछ पहले वे लोग पीड़ितको घरके आंगनमें उठा लाते हैं। कोई कोई इस समय उसे रखनेके लिये एक स्वतन्त्र गृह बना रखता है। कई जगह मृतकी इच्छानुसार उसका सत्कारकार्य होता है। सिन्धुदेशमें भी बिछौने पर मरने नहीं देते। वे मृत्युके पहले शवको बाहर ला कर गोमयलिप्त स्थानमें सुलाते हैं। घरमें मरने पर जो अशौच होता है, उसके लिये घरके मालिकको धारातीर्थ या कच्छके अन्तर्गत नारायण-सरोवरमें आना पड़ता है, नहीं आनेसे गृहाशौच निवृत्त नहीं होता।

तिब्बतीय बौद्धोंका शव ढोनेका चित्र अद्भुत है। वे लोग शवदेहको रज्जुसे बांध कर घरसे दूर ले जाते हैं और पर्वत परके वनप्रदेशमें छोड़ आते हैं। कभी तो वे देहको दाह करते, कभी जलमें बहा देते और कभी टुकड़े टुकड़े कर कुत्तेको खिला देते हैं। दरिद्रका शव कुत्तोंको खिलाया जाता है। धनी आदमी इसीलिये कुत्तेको पोसते हैं। राजा और बड़े लामा स्वतन्त्र स्थानमें गाड़े और निम्न श्रेणीके लामा जलाये जाते हैं।

ब्रह्मदेशवासी फुङ्गी नामक बौद्धपति शवदेहको एक वर्ष तक मधुमें डुबो रखते हैं। इसके बाद बाजे गाजेके साथ वे शवको बाहर कर दाह करने ले जाते हैं। दाहके समय वे लोग तरह तरहकी आतशबाजी करते हैं। चीन-देशवासी मृत व्यक्तिका अच्छी तरह सम्मान करते हैं तथा अपने अपने पूर्वपुरुषके समाधिस्थलमें वे तीर्थ करने जाते हैं। वहां शवदेहको एक काठके बकसमें बन्द कर एक जगह रखा जाता है तथा प्राचीन यहूदी जातिकी तरह वे उस शवदेह पर एक घर खड़ा करते हैं।

व्यवस्था करनेवाली इन संस्थाओंका काम विज्ञापनों द्वारा प्रसिद्ध कर रखते हैं। कभी कभी वे लोग अपनी मृत्युके पहले ही शवदेह रखनेके लिये अपनी इच्छानुसार स्थान नियत करते हैं।

दक्षिण भारतके शैव सम्प्रदायभुक्त हिन्दू, अछूत, लिङ्गायत, पतित ब्राह्मण जाति, सन्यासी तपस्वी आदि और बहुत प्राचीन जातियोंके शवदेहको गड्ढेमें समाधिस्थ कर गाड़ते हैं। कहीं कहीं लिङ्गायत शवको बहुत ऊंचे पर बैठा कर उसको समाधिस्थ कर देते हैं। आधुनिक वैष्णव शवदेहको साधारणतः दाह करते हैं। उत्तर-पश्चिमवासी और महाराष्ट्र-देशवासी उच्च श्रेणीके हिन्दू और राजपूत जातिमें शवदाह करनेकी ही विधि है। एक समय राजपूतोंमें स्वामीकी मृत्युके बाद उनके साथ सहमरणकी व्यवस्था थी। अङ्गरेजी शासनकालमें वह प्रथा रद्द हो गई है। जैनियोंमें भी साधारण रोगसे मरना, हड्डीके बाद उसको जला डाला जाता है। किन्तु विशूचिका, अतिसार या किसी प्रकारके संक्रामक रोगसे अथवा अविवाहित अवस्थामें मरने पर उसको गाड़ देते हैं। मानिकपुरके किसी प्रधान व्यक्तिकी मृत्यु होने पर जब उसका शवदाह होता, तब उसकी विधवा पत्नियां और दासदासियां भी चितामें सम्मिलित करती हैं। मकदोनियामें एक आत्मीय जनश्रुति है। वहां शवदाहका प्रथा नहीं था, समुद्रमें उसको बहाना अथवा कुत्तोंसे खिलवा देना या पशु पक्षी द्वारा शिकारियोंका प्रथा प्रचलित है।

दक्षिण अफ्रिकाके कालीन्द्र जातियोंमें एक रीति है, कि जिस स्थानमें उनका आदिवास होता है, उस स्थानको वे छोड़ दूर देश चले जाते हैं, कभी भी वह स्थान देखने नहीं आते। प्राचीन मिस्रवासी शवदेहका किस प्रकार संस्कार करते थे, वह ठीक ठीक नहीं कह सकते। वे लोग प्राचीन राजाओंके मृतदेहको दुर्गन्धशून्य और मिलित (Embalm) कर बचाये रख छोड़ते थे। अब भी वे सब रक्षित शवदेह मिस्रके अजायबघरोंमें सुरक्षित हैं जिन्हें Mummy कहते हैं, रखी हुई हैं। कहीं कहीं बहुतसे लोगोंके एक साथ सम्भव न होनेसे, तब वे शवदेहको जमीनके नीचे, अर्थात् पत्थर पहाड़ खोद उसमें शिकारियोंकी गुफामें दफन करते थे। रोम, नगरमें सुरङ्ग जैसा कब्रगाह (Catacombs) इसका प्रकृष्ट प्रमाण है। इस समय यहांके लोगोंमें प्रत्येक जनसाधारणके लिये स्वतन्त्र समाधिस्थान रखना सम्भव नहीं था।

पाश्चात्य जगत्में भी आज कल शवदाहकी व्यवस्था देखनेमें आती है। वैज्ञानिक पण्डितोंने स्वास्थ्य विज्ञानके मतसे ही समाधि (कब्र) की अपेक्षा शवदाहको ही श्रेष्ठ साबित किया है। अमेरिका महादेशके स्थान स्थानमें भी शवदाहकी व्यवस्था है, पर वह आज भी पूर्ण प्रतिष्ठा लाभ न कर सकी है। हिन्दू लोग जिस प्रकार श्मशानमें शव ले जा कर अपने अपने कुलाचारसे दाहसंस्कार करते हैं, वे लोग उस प्रकार नहीं करते। वे केवल कोयले या लकड़ियोंकी भट्टीमें दग्ध करते हैं। ईसाई और मुसलमान यद्यपि शवको दफनाते हैं, फिर भी वे कब्रिस्तान ले जानेके पहले उसे स्नान कराते और कपड़े पहना देते हैं। बादमें ईसाई साधारणतः गाड़ी पर लाद कर ले जाते हैं। यह शव ले जानेके लिये एक एक दल रहता है जिसे Under taker कहते हैं। समाधिस्थलमें शव गाड़नेके लिये स्थान खोदना पड़ता है। शव ले जाना, स्थान खोदना और समाधिमन्दिर बनाना ये सब काम उक्त अण्डरटेकर दलके हाथ रहते हैं। पीछे वे लोग उनके विरुद्ध आत्मीयोंसे रुपये वसूल करते हैं। रूस लोगोंमें भी शवानुगमन है। विरुद्ध आत्मीय और बंधुओंको मृत्यु तथा शव ले जानेका संवाद पत्र द्वारा ही दिया जाता है। वह पत्र पानेसे सभी निर्दिष्ट समयमें मृत व्यक्तिके घर आते और शवके पीछे पीछे चलते हैं। वे लोग शवदेहको काठके बक्समें रख कर गाड़ते हैं।

यद्यपि ईसाई भी अपने आत्मीयका शव [illegible] सकते, पर दो शवदेहको होते हैं। इसकी [illegible] उतनी प्रचारता नहीं होती।

मुसलमानोंका शव कबर पर ही [illegible] स्वतः शवदेहके लिये कब्रकी खोद कर [illegible]

रहती है। किसी व्यक्तिके मरने पर शव ढोनेवालोंको खबर देनी पड़ती है। खबर पाते ही वे शव ढोनेके उद्देशसे रखी हुई खाटको सजा कर लाते हैं। शवके पीछे पीछे चलनेके लिये मुसलमान सम्प्रदायमें संवाद देनेकी विशेष व्यवस्था नहीं है; निकट आत्मीय मृत्युके कुछ पहले या पीछे संवाद पाते हैं। वे ही शववाहीके पीछे पीछे जाते हैं। कब्रिस्तानमें जा कर सभी फतीहा पाठके बाद मृतकी समाधिके ऊपर एक एक मुट्ठी मिट्टी फेंक घर लौटते हैं। मुसलमान देखो।

मृत्युके पूर्व पीड़ितको कुरान पढ़ कर सुनाया जाता है। मृत्यु होने पर शवको स्नान कराया जाता है। ऊपर कही हुई प्रथासे मिट्टी देनेके बाद कब्रके ऊपर मिट्टीका टीला और कभी कभी बड़ा बड़ा महल भी बनाया जाता है। आगरेका ताज-महल, फतेपुर सिकरीकी माथर शाहकी समाधि, औरङ्गाबादकी औरङ्गजेब-कन्याकी समाधि, दाक्षिणात्य-कुलबर्गा, गोलकुंडा और बीजापुर आदि स्थानोंमें आदिलशाही, कुतबशाही और बाहाणी राजवंशधरोंके समाधिमन्दिर इस विषयके उत्कृष्ट दृष्टान्त हैं।

असभ्य अनार्य जातिमें भी दफनानेकी प्रथा है। वे लोग शव ले कर अपने अपने घरसे दूर वन या स्थान-विशेषमें गड्ढा बना कर शव गाड़ते तथा शवके सामने खाद्यादि रखते और दीप बाल देते हैं। पीछे उसके ऊपर मिट्टी ढक दी जाती है। कोई कोई शवको वनमें छोड़ आता है। उन लोगोंका विश्वास है, कि जंगली जन्तुसे उसकी देह खाई जाने पर परलोकमें उसे सुख-शान्ति मिलती है। आर्य हिन्दुओंमें भी शव-समाधि प्रचलित है। किसी किसी दशनामी संन्यासीको दफ-नानेके समय उसके शरीरमें तमाम लवण दे दिया जाता है। किसीको जलमें बहा दिया जाता। उन लोगोंकी धारणा है, मत्स्यादि जलज जीव द्वारा यह मांस खाये जाने पर अधीर पुण्य होता है।

कुटीचक, बहूदक आदि देखो।

पारसी लोग जरथुस्त्रके प्रवर्त्तित अग्न्युपासक हैं। पूर्वमें हांकांङ्गसे पश्चिममें इङ्गलैण्ड तक सुदूर स्थानोंमें इन लोगोंके दो एक घरोंका वास है। किन्तु बम्बई प्रदेशमें ही ये अधिक संख्यामें पाये जाते हैं। इनमें नेसुस-सालर नामक एक निकृष्ट श्रेणी है जो शव वहन करती है। ये लोग शुभ्र वस्त्र पहन कर शवदेहको दोखमामें (Power of silence) ले जाते हैं। उस दोखमामें छत नहीं होती, चारों ओर ऊंची दीवार खड़ी रहती है। बीचमें एक ऊंचा ढालुवां चबूतरा रहता है। उसी चबूतरे पर वे शव रख कर चले आते हैं। दोखमाके जिस चबूतरे पर शव रखा जाता है, उसके मध्यस्थलमें एक कूप है। उस चबूतरेसे गलित शवदेहके रसादि नली द्वारा कूपमें गिरता है। जब वह कूआ भर जाता है, तब भीतरकी अस्थि और रस निकाल कर दोखमाको बाहर गाड़ दिया जाता है।

मृतके प्रेतकी मङ्गल कामनाके लिये पारसियोंके अग्न्युपासक एक पुरोहित रहता है। उसे माहवारी या सालानेके हिसाबसे तनखाह मिलती है। इसके अतिरिक्त वह प्रति वार्षिक भजनके लिये भी कुछ पाता है।

पीड़ित व्यक्तिकी मृत्युके बाद तथा शव दोखमामें ले जानेके पहले पारसी लोग एक कुत्तेको ला कर शवदर्शन कराते हैं। इसे सगदिद् या कुत्तेकी दृष्टि कहते हैं। उनका विश्वास है, कि कुत्तेकी सुदृष्टि शवके ऊपर पड़नेसे उसकी प्रेतात्मा आसानीसे स्वर्गस्थ चिनवद् पुलको पार कर सकेगी।

पश्चिम भारतवासी पारसी जातिमें शवदेह पक्षी आदिको खिलानेकी व्यवस्था है। इस कारण वे शव रखनेके लिये एक ऊंची इमारत बनवाते हैं। उस इमारतका नाम है Tower of silence। बम्बई नगर-के पास ऐसी ही एक ऊंची मन्दिरवाटिका है। पारसी लोग उसी घरके मध्यस्थानमें शव रख आते हैं। शकुनि, गृधिनी आदि पक्षी बड़े चावसे वह शवदेह खाते हैं। शवकी गंधसे नगरवासीका स्वास्थ्य खराब न हो जाय, इस कारण उसकी दीवार ऊंची की जाती है। वायु सञ्चालनसे वह गंध बहुत दूर चली जाती है, नगरवासी उसका कुछ भी अनुभव नहीं कर सकते।

पम्पाई देखो।

पहले लिखा जा चुका है, कि अंगरेजाधिकृत भारत-

धनशाली चीनवासी उन बक्सोंको नाना शिल्प-नैपुण्य खचित कर रखते हैं। कभी कभी वे लोग अपनी मृत्युके पहले ही शवदेह रखनेके लिये अपनी इच्छानुसार बक्स तैयार करते हैं।

दक्षिण-भारतके शैव-सम्प्रदायभुक्त हिन्दू, जङ्गम, लिङ्गायत, परिया नामक जाति, अन्यान्य अनार्य जाति और पञ्च प्रधान शिल्पजीवी शवदेहको गड्ढेमें उत्तरमुख सुला कर गाड़ते हैं। कहीं कहीं लिङ्गायत खाटके बदले कुर्सी पर बैठा कर शवको समाधिस्थलमें ले जाते हैं। भारतीय वैष्णव शवदेहको साधारणतः दाह करते हैं। उत्तर-भारतवासी और महाराष्ट्र-देशवासी उच्च श्रेणीके हिन्दू और राजपूत जातिमें शवदाह करनेकी ही विधि है। उन सब स्थानोंमें स्वामीकी मृत्युके बाद उसके साथ संतोदाहकी व्यवस्था थी। अङ्गरेजी अमल-दारीमें यह प्रथा उठा दी गई है। वैष्णवोंमें जो सामान्य रोगसे मरता, दाहके बाद उसकी भस्म गाड़ी जाती है। किन्तु विसूचिका, वसन्त या किसी प्रकारके संक्रामक रोगसे अथवा अविवाहित अवस्थामें मरने पर शवको गाड़ देते हैं। वालिद्वीपके किसी प्रधान सरदारकी मृत्यु होने पर जब उसका शवदाह होता, तब उसकी विधवा पत्नियां और दासदासियां भी चितामें प्राण-विसर्जन करती हैं। यवद्वीपमें एक भारतीय उपनिवेश है। यहां शवदाहप्रथा तथा नदी या समुद्रके जलमें बहाना अथवा वृक्षमें शवदेह लटका कर पशु पक्षी द्वारा खिलानेकी प्रथा प्रचलित है।

दक्षिण-अफ्रिकाकी बालोन्दा जातिमें ऐसी एक रीति है, कि जिस स्थानमें उनका स्त्रीवियोग होता है, उस स्थानको वे छोड़ दूर देश चले जाते हैं, कभी भी वह स्थान देखने नहीं आते। प्राचीन मिस्रवासी शवदेह-का किस प्रकार संस्कार करते थे, यह ठीक ठीक नहीं कह सकते। वे लोग प्राचीन राजाओंकी मृत देहको परिष्कृत और तैलसिक्त (Embalm) कर वस्त्रसे ढक रखते थे। आज भी ये सब रक्षित शवदेह पिरामी नामक इकोर्शिस्तूपके गृह-गह्वरमें जिसे Mummy कहते हैं, रखी हुई हैं। धीरे धीरे वहांके लोगोंने जब इस प्रथाको उचित न समझा, तब वे शवदेहको जलाने लगे, कभी कभी पशु पक्षी द्वारा खिलाने लगे और निर्जन स्थानमें फेंक कीड़ोंका खाद्य बनाने लगे। नील-नदतीरस्थ सुवृहत् शवखात (Catacombs) उसका प्रकृष्ट प्रमाण है। इस समय वहांके लोगोंने प्रत्येक जनसाधारणके लिये स्वतन्त्र समाधिस्थान बनाना सीखा नहीं था।

पाश्चात्य जगत्में भी आज कल शवदाहकी व्यवस्था देखनेमें आती है। वैज्ञानिक फरासियोंने भारतीय विज्ञानके वशवर्ती हो समाधि (कब्र) की अपेक्षा शव-दाहको ही श्रेष्ठ समझ रखा है। अमेरिका महादेशके स्थान स्थानमें भी शवदाहकी व्यवस्था है, पर वह आज भी पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त न कर सकी है। हिन्दू लोग जिस प्रकार श्मशानमें शव ले जा कर स्नानके बाद मुखाग्नि दे दाहसंस्कार करते हैं, वे लोग उस प्रकार नहीं करते। वे केवल कोयले या लकड़ीकी आगमें दग्ध करते हैं। ईसाई और मुसलमान यद्यपि शवको दफ-नाते हैं, फिर भी वे कब्रिस्तान ले जानेके पहले उसे स्नान कराते और पीछे पोंछ लेते हैं। धनी ईसाई साधारणतः गाड़ी पर लाद कर शव ले जाते हैं। यह शव ले जानेके लिये एक एक दल रहता है जिसे Under taker कहते हैं। समाधिक्षेत्रमें शव गाड़नेके लिये स्थान खरीदना पड़ता है। शव ले जाना, स्थान खरीदना और समाधिमन्दिर बनाना ये सब कार्य उक्त अण्डरटेकर दलके हाथ रहते हैं। पीछे वे लोग मृतके निकट आत्मीयसे यह खर्चा वसूल करते हैं। इन लोगोंके भी शवानुगमन है। निकट आत्मीय और बंधुओंकी मृत्यु तथा शव ले जानेका संवाद पत्र द्वारा ही दिया जाता है। यह पत्र पानेसे सभी निर्दिष्ट समय-में मृत आत्मीयके घर जाते और गाड़ीके पीछे पीछे चलते हैं। ये लोग शवदेहको काठके बक्स (Collin)में रख कर फूलसे सजाते हैं।

दरिद्र ईसाई जो गाड़ी आदिका खर्च वहन नहीं कर सकते, कंधे पर ही शवदेहको ढोते हैं। इनकी शवयात्रा उतनी धूमधामसे नहीं होती।

मुसलमानोंका शव कंधे पर ही ढोया जाता है। उनका शव ढोनेके लिये काठकी बनी एक स्वतन्त्र खाट

नहीं है। तन्त्रके मतसे महाबलिष्ठ, अति बुद्धिमान, महासाहसिक, पवित्रचेता, महास्वच्छ, दयालु और सर्वभूतके हितमें रत, ऐसा व्यक्ति ही शवसाधनके योग्य है।

साधनविधि—बलिके लिये उड़द, भात, तिल, कुश, सरसों और धूप दीपादि पूजाके उपकरणकी आवश्यक है। ये सब वस्तु ले कर पूर्वनिर्दिष्ट किसी स्थानमें जावे। पहले सामान्य अर्घ्य स्थापन कर याग स्थान अभ्युक्षण करे। पीछे पूर्वको ओर गुरु, दक्षिणमें गणेश, पश्चिममें वटुकभैरव और उत्तरमें ६४ योगिनियोंकी पूजा करके जमीन पर चौराइ'न मन्त्र लिखना होगा। चौराइ'न मन्त्र इस प्रकार है—

"हू' हू' ह्रीं ह्रीं कालिके घोरदंष्ट्रे प्रचण्डे चण्डनायिके दानवान् दारय हन हन शव शरीरे महाविघ्नं छेदय छेदय स्वाहा हू' फट्'। इसके बाद—

"ये चात्र संस्थिता देवा राक्षसाश्च भयानकाः।
पिशाचा सिद्धयो यक्षा गन्धर्वाप्सरसां गणाः॥
योगिन्यो मातरो भूताः सर्वाश्च खेचरा स्त्रियः।
सिद्धिदास्ता भवन्त्वत्र तथा च मम रक्षकाः॥"

इत्यादि मन्त्रोच्चारण कर ३ वार पुष्पाञ्जलि दे। पीछे पूर्व दिशामें श्मशानाधिपति, भैरव, कालभैरव और महाकालकी पञ्चोपचारसे पूजा कर निम्नलिखित मन्त्र पढ़ बलि देनी होगी—

"ओं हू' श्मशानाधिप इमं सामिषान्न बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय विघ्न निवारणं कुरु सिद्धिं मम प्रयच्छ स्वाहा।" इस मन्त्रसे श्मशानाधिपकी तथा 'ओं हू' भैरव भयानक इमं सामिषान्नमित्यादि' मन्त्रसे भैरव, कालभैरव और महाकालको बलि देनी होगी। इसके बाद—"ओं ह्रीं स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर घोर घोरतर तनुरूप चट चट प्रचट प्रचट कह कह वम वम बन्ध बन्ध घातय घातय हू' फट् सहस्रारे हू' फट्" इस अघोर सुदर्शन मंत्रके मंत्रमें शिखाबंधन कर और छाती पर हाथ रख "आत्मानं रक्ष रक्ष" इत्यादि मन्त्रोंसे आत्मरक्षा करे।

पीछे भूतशुद्धि और न्यास आदि करके "ओं दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा" यह जयदुर्गा मन्त्र उच्चारण कर चारों ओर सर्षप तथा—

"ओं तिलोऽसि सोमदैवत्यो गोसवस्तृप्तिकारकः।
पितृणां स्वर्गदाता त्वं मर्त्यानां मम रक्षकः॥
भूतप्रेतपिशाचानां विघ्नेषु शान्तिकारकः।"

यह मन्त्र उच्चारण कर चारों ओर तिल छिड़क कर विहित शवके समीप उपस्थित होवे। शवके पास बैठ कर 'हूं फट्' इस मन्त्रसे शवके ऊपर अभ्युक्षण करे। पीछे 'ओं हू' मृतकाय नमः फट्' इस मन्त्रसे तीन बार पुष्पाञ्जलि दे शव स्पर्श कर नमस्कार करे। प्रणाम-मन्त्र इस प्रकार है—

"वीरेश परमानन्द शिवानन्द कुलेश्वर।
आनन्दभैरवाकार देवीपर्यङ्क शङ्कर॥
वीरोऽहं त्वां प्रपद्यामि उत्तिष्ठ चण्डिकार्च्चने॥"

प्रणामके बाद 'ओं हू' मृतकाय नमः' इस मन्त्रसे शवका प्रक्षालन और सुगन्धित जलसे स्नान करा कर कपड़े से पोंछ डाले। पीछे धूप जला कर शवदेहमें चन्दनादि लगावे। शव यदि रक्त वर्ण हो जाय, तो वह साधकको खा डालता है। इसके बाद शवके मुंहमें जायफल, खैर, अदरक और पान भर कर उसे औंधे मुंह कर रखे। शवपृष्ठ पर चन्दनादि लेप कर बाहुमूलसे कटि पर्यन्त चौकोन मण्डल बनावे। चौकोनके मध्य अष्टदल पद्म और चतुर्द्वार अंकित कर पद्ममें 'ओं ह्रीं फट्' यह मन्त्र और उसके साथ कल्पोक्त पीठमन्त्र लिखे। बादमें उसके ऊपर कम्बलादि आसन बिछा दे।

शवका कटिदेश पकड़ कर पूजास्थानमें लाना होता है। लाते समय यदि किसी प्रकारका उपद्रव करे, तो शवको थुकथुका दे तथा फिरसे प्रक्षालन कर अवस्थानमें लावे। इसके बाद द्वादशांगुल यज्ञकाष्ठ अवस्थानके दशों दिशाओंमें रख यथाक्रम इन्द्रादि दशदिक्पालकी पूजा करनी होती है। "ओं लां इन्द्राय सुराधिपतये ऐरावतवाहनाय वज्रहस्ताय सशक्तिपरिवाराय सपरिवाराय नमः"। इस मन्त्रसे पाद्य तथा "ओं लां इन्द्राय सुराधिपतये इमं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्न निवारणं कृत्वा मम सिद्धिं प्रयच्छ स्वाहा।" इस मन्त्रसे उड़द भातको बलि दे कर 'ओं लां इन्द्राय स्वाहा' उच्चारण करे।

अग्निकी पूजा और बलिमन्त्र—"ओं रां अग्नये

तेजोऽधिपतये मेषवाहनाय सपरिवाराय शक्तिहस्ताय सायुधाय नमः" इस मन्त्रसे पूर्ववत् पूजा और 'ओं रां अग्नये तेजोधिपतये इमं बलिं गृह्ण गृह्ण' इत्यादि पूर्ववत् बलि दें।

यमका मन्त्र—"ओं मां यमाय प्रेताधिपतये दण्डहस्ताय महिषवाहनाय सायुधाय नमः" इस मन्त्रसे पूजा और 'ओं मां यमाय प्रेताधिपतये इमं बलिं' इत्यादि मन्त्रसे पूर्ववत् बलि चढ़ावे।

निऋतिका मन्त्र—'ओं क्षां निऋतये रक्षोऽधिपतये असिहस्तायाश्ववाहनाय सपरिवाराय नमः" इस मन्त्रसे पूजा और 'ओं क्षां निऋतये रक्षोऽधिपतये" इत्यादि पूर्ववत्।

वरुणका मन्त्र—"ओं वां वरुणाय जलाधिपतये पाशहस्ताय मकरवाहनाय सायुधाय नमः" इस मन्त्रसे पूजा तथा 'ओं वां वरुणाय जलाधिपतये' इत्यादि पूर्ववत्।

वायुका मंत्र—'ओं यां वायवे प्राणाधिपतये हरिणवाहनाय अंकुशहस्ताय नमः' और 'ओं यां वायवे प्राणाधिपतये' इत्यादि पूर्ववत्।

कुवेरका मंत्र—'ओं कुवेराय यक्षाधिपतये गदाहस्ताय नरवाहनाय सपरिवाराय नमः' और 'ओं कुवेराय यक्षाधिपतये' इत्यादि पूर्ववत्।

ईशानका मन्त्र—'ओं हां ईशानाय भूताधिपतये शूलहस्ताय वृषवाहनाय सपरिवाराय नमः' और 'ओं हां ईशानाय भूताधिपतये' इत्यादि पूर्ववत्।

ब्रह्माका मन्त्र—'ओं इन्द्रेशानयोर्मध्ये आं ब्रह्मणे प्रजाधिपतये हंसवाहनाय पद्महस्ताय सपरिवाराय सायुधाय नमः और 'ओं आं ब्रह्मणे प्रजाधिपतये' इत्यादि पूर्ववत्।

अनंतका मंत्र—'ओं नैऋतवरुणयोर्मध्ये ओं ह्रीं अनन्ताय नागाधिपतये चक्रहस्ताय रथवाहनाय सपरिवाराय सायुधाय नमः' और 'ओं ह्रीं अनन्ताय नागाधिपतये' इत्यादि पूर्ववत्।

दश दिक्पालके उद्देशसे पूजा बलि देनेके बाद सर्वभूतके उद्देशसे बलि दे। सभी जगह सामिषान्न बलि देनेकी विधि है। इसके बाद अधिष्ठात्री देवता, चौसठ योगिनी और डाकिनियोंके उद्देशसे भी बलि देनी होती है।

इसके बाद साधक अपने पास पूजाद्रव्य और कुछ दूरमें उत्तरसाधकको रख 'ओं ह्रीं फट् शवासनाय नमः' इस मन्त्रसे शवकी पूजा करे। पीछे 'ह्रीं फट्' यह मंत्र पढ़ कर अश्वारोहणक्रमसे शवपृष्ठ पर बैठ कर अपने पैरके नीचे कुछ कुश रखे तथा शवके केशको फैला, जूड़ा बांध गुरु, गणपति और देवीको प्रणाम करे। इसके बाद प्राणायाम और षडङ्गन्यास कर पूर्वोक्त वीरार्दनमंत्र पढ़ दशो दिशाओंमें ढेले फेंक सङ्कल्प करे। यथा 'अद्येत्यादि अमुक गोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा अमुक देवतायाः सन्दर्शनकामः अमुकमन्त्रस्यामुकसंख्यजपमहं करिष्ये' संकल्पके बाद 'ओं ह्रीं आधारशक्ति कमलासनाय नमः' इस मन्त्रसे आसनको पूजा कर अपने वामभागमें शवके निकट अर्घ्य रख कर पूजा करे। पीछे साधक यथाशक्ति षोड़शोपचार, दशोपचार अथवा पञ्चोपचारसे देवीको पूजा कर शवके मुखमें सुगन्धित जलसे तर्पण करे। इसके बाद उठ कर शवके सामने खड़े हो यह मंत्र पढ़े—

'ओं वशो मे भव देवेश मम वीर सिद्धिं देहि देहि महाभाग कृताश्रयपरायण'।

अनंतर पाटके सूतसे शवके दोनों पैर बांध मूलमंत्रसे शव देहको मजबूतीसे बांध रखे। मंत्र इस प्रकार है—

"ओं मद्वशो भव देवेश वीरसिद्धिकृतास्पद।
ओं भीम भीरु भयाभाव भवमोचन भावुक।
त्राहि मां देवदेवेश शवानामधिपाधिप॥"

यह मंत्र पढ़नेके बाद शवके पादमूलमें त्रिकोण मन्त्र अङ्कित करे। शवके ऊपर बैठ उसके दोनों हाथ फैला उस पर कुश बिछा दे। उस कुशके ऊपर साधक पैर रख कर फिरसे तीन बार प्रणाम करे और शिरास्थित पद्मसे गुरुदेवका तथा अपने हृदयमें देवीका ध्यान करते करते दोनों ओंठ संपुटकी तरह कर निर्भय हृदयसे मौनभावमें विहित माला ले श्मशानसाधनके क्रमानुसार जप करे। इस प्रकार जप करनेसे भी यदि आधी रात तक कुछ दिखाई न पड़े, तो फिरसे पूर्ववत् सरसों और तिल फेंक कर उपविष्ट स्थानसे सात

कदम आगे जा पुनः जप करे। जप कालमें शवके हिलने पर डरना न चाहिये। यदि डर मालूम हो, तो इस प्रकार कहे, "दिनान्तरे कुञ्जरादिकं दास्यामि मम स्थाने स्वनाम कथय" अर्थात् दूसरे दिन गजादि दूंगा, तुम कौन हो, तुम्हारा नाम क्या है। साफ साफ कहो। इस प्रकार संस्कृतमें कह कर फिरसे निर्भय हो जप शुरू कर दे। मधुर वाक्यसे यदि शव अपना नाम बतावे, तो साधकको भी फिर इस प्रकार कहना चाहिये। 'प्रतिज्ञा करो, कि तुम मुझे वर दोगे' इस प्रकार प्रतिज्ञाबद्ध कर साधक वर मांगे। यदि प्रतिज्ञा न करे और वर भी न दे, तो ऐकान्तिक मनसे फिर जप करे। किन्तु प्रतिज्ञा करके वर देनेमें राजी होने पर फिर जपकी जरूरत नहीं। ऐसी हालतमें अभीष्ट वर ले कर कार्य सिद्ध हुआ समझना चाहिये। पीछे शवका जूरा खोल उसे धो डाले और दूसरी जगह रख शवके पैर भी खोल दे। इसके बाद पूजोपकरणको जलमें फेंक तथा शवको भी जल या गर्त्तमें डाल साधक स्नान करे।

साधक घर आ कर शवको प्रार्थनानुसार दूसरे दिन प्रतिश्रुत हाथी, घोड़े, आदमी या सूअरकी पिष्टमय बलि चढ़ा कर उपवास करे। बलिमन्त्र इस प्रकार है—

"भगिनमदाक्षी येषां यजमानोऽहं ते गृह्णत्विमं बलिं।"

दूसरे दिन साधक प्रातःकृत्यादि नित्यक्रिया करके पञ्चगव्य पान करे और २५ ब्राह्मण भोजन करावे। अक्षम होने पर शक्तिके अनुसार ब्राह्मण भोजन करानेमें भी दोष नहीं। ब्राह्मण भोजन हो जाने पर साधक स्नान करे, बादमें भोजन कर उत्तम आसन पर बैठे। मन्त्रसिद्धिके बाद तीन या नौ रात तक उसे गोपन रखे। किसीको भी मन्त्रसिद्धिकी बात न कहे। मन्त्रसिद्धिके बाद स्त्री-शय्या पर जानेसे व्याधिग्रस्त, गीत सुननेसे बधिर, नाच देखनेसे अंध और दिनको बोलनेसे साधक मूक होता है। पांच दिन तक साधकको सभी कामकाज छोड़ देना होगा। इस समय साधकके शरीरमें देवी वास करती हैं। एक पक्ष तक साधक गंधपुष्प न ले, बाहर जानेका यदि मौका हो, तो परिधेय वस्त्र छोड़ दूसरा वस्त्र पहने। गोब्राह्मणकी निन्दा, अथवा दुर्जन, पतित और क्लीवको भी स्पर्श न करे। सवेरे नित्यकर्मके बाद बिल्वपत्रोदक पान करे। सोलहवें दिन गंगास्नान कर स्वाहान्त मन्त्र उच्चारण कर तीन सौ चार जलसे देवताओंका तर्पण करे। तर्पणके अन्तमें नमः कहना होता है। स्नान और पितृतर्पण किये बिना देवतर्पण न करना चाहिये। अनन्तर दक्षिणा दे कर अच्छिद्रावधारण करना होता है। उक्त प्रकारसे शवसाधन करने पर साधक सिद्धि लाभ करते हैं तथा इस लोकमें उत्कृष्ट भोग कर अन्तमें हरिपद पाते हैं।

(भागवतत्त्वविलास)

शवसान (सं० पु०) शव-शीणादिक सानच्। पथिक, यात्री। यह शब्द वैदिक है अर्थात् वेदमें ही इस शब्दका प्रयोग देखा जाता है।

शवसावत् (सं० त्रि०) बलवत्, शक्तिविशिष्ट, ताकतवर।

(ऋक् १।६२।११)

शवसिन (सं० त्रि०) बलयुक्त, ताकतवर।

(ऋक् ७।२८।२)

शवाग्नि (सं० पु०) शवदाहको अग्नि। (ऐत० ब्रा० ७।३)

शवान्न (सं० क्ली०) १ वह अन्न जो बिलकुल खराब हो गया हो और किसी कामका न हो। २ मनुष्यके शव या मृत शरीरका मांस। (पार०गृ० ३।८)

शवाश (सं० पु०) शवं अश्नाति अश-अण्। शवभक्षक, वह जो मुर्दा खाता हो।

शविष्ठ (सं० त्रि०) बलवत्तम, जो सबोंमें अधिक बलवान् हो। (ऋक् ६।१९।६)

शवीर (सं० त्रि०) गतियुक्त। (ऋक् १।१।२)

शवोद्वह (सं० पु०) शववाही। (शत०ब्रा० १२।५।२।१४)

शव्य (सं० क्ली०) वह कृत्य या उत्सव जो शवको अन्त्येष्टिक्रियाके लिये ले जानेके समय होता है।

(छान्दो० उप० ५।५)

शव्वाल (अ० पु०) मुसलमानोंका दशवां महीना।

शश (सं० पु०) शशति प्लुतेन गच्छतीति शश् अच्। १ मृगविशेष, खरगोश, खरहा। महाराष्ट्र—खरहा, तैलङ्ग—चेवुलपिल्लि। इसके मांसका गुण—स्वादु, कषाय, मलबद्धकारक, शीतल, लघु, शोथ, अतीसार, पित्त और रक्तनाशक तथा रुक्ष। (राजवल्लभ)

राजनिघण्टुके मतसे इसका मांस त्रिदोषनाशक, दीपन, श्वास और कासनाशक है।

श्राद्धतत्त्वमें लिखा है, कि श्राद्धमें इसका मांस दिया जा सकता है। इसके मांससे पितृगण परितृप्त होते हैं।

एकादशीतत्त्वमें लिखा है, कि विष्णुको भी इसका मांस दिया जा सकता है।

२ चन्द्रमाका लाञ्छन या कलंक। (धरणि) ३ बोल नामक गंधद्रव्य, गंधरस। ४ लोध्र, लोध। ५ कामशास्त्रके अनुसार मनुष्यके चार भेदोंमेंसे एक भेद। जो मनुष्य मृदु वचन बोलता हो, सुशील, कोमलाङ्ग, सत्यवादी और सकल गुणनिधान हो, वह शशजातिका माना जाता है। इस मनुष्यसे पद्मिनी स्त्री वशीभूता होती है। (रसमञ्जरी)

शशक (सं० पु०) शश-स्वार्थे कन्। स्वनामप्रसिद्ध चतुष्पद जन्तुविशेष, खरगोश। यह चूहेकी जातिका, पर उससे कुछ बड़े आकारका होता है। इसके कान लंबे, मुंह और सिर गोल, चमड़ा नरम और रोएंदार पूंछ, छोटी और पिछली टांगें अपेक्षाकृत बड़ी होती है।

शशक पञ्चनखमें गिना जाता है, अतः इसका मांस खाया जा सकता है।

"शशकः शल्लकी गोधा खड्गी कूर्मश्च पञ्चमः।
भक्ष्याः पञ्चनखेष्वेते न भक्ष्यास्त्वन्यजातयः॥"

(स्मृति)

यह संसारके प्रायः सभी उत्तरी भागोंमें भिन्न भिन्न आकार और वर्णका पाया जाता है। जहां जाड़ा बहुत पड़ता है, वहां भी यह जीवित रहता है। वैज्ञानिक भाषामें खरगोशको Leporidae जातिमें शामिल किया और Lepus इसका नाम रखा गया है। अङ्गरेजीमें इसे Hare कहते हैं। एतद्भिन्न जर्मन—Hase, फरासी—Lievre, हिब्रु—अर्णेवेथ, इटली—Lepre, स्पेन—Lievre, अरब—आर्णव, तुर्क—तावसैन, तिब्बत—कार्जदोङ्ग आदि भिन्न भिन्न भाषामें यह भिन्न भिन्न नामसे पुकारा जाता है।

भारतवर्ष और पूर्वद्वीपपुञ्जमें साधारणतः पांच प्रकारके खरगोश देखनेमें आते हैं। इनमेंसे L. ruficandatus भारतवर्षमें प्रायः सभी जगह देखनेमें आता है। हिमालय प्रदेशमें, पञ्जाब और आसामसे दक्षिण गोदावरीतट और मलवार उपकूल तक इस श्रेणीका शशक है। यही प्राणिवित् इजसन कथित L. Indicus और L. macrotus है। अङ्गरेजीमें यह Common Indian hare नामसे उल्लिखित है। हिंदीमें इसे चौगुड़ा और खरहा भी कहते हैं।

आराकान, तेनासेरिम प्रदेश, समस्त मलय प्रायोद्वीप और पूर्वद्वीपपुञ्जमें खरगोश नहीं मिलता। केवल यवद्वीपमें L. nigricollis श्रेणीका खरगोश देखनेमें आता है। अधिक सम्भव है, कि दक्षिण भारत और सिंहलसे यहां और पीछे मोरिसस द्वीपमें शशक लाया गया था। भारत-संलग्न चीन राज्यमें, यहां तक कि सुदूर कोचिन चीनमें भी एक जातिका खरगोश है।

मिश्रराज्यमें जो खरगोश देखा जाता है, उसे अङ्गरेजीमें Egyptian hare कहते हैं।

यूरोप महादेशमें जो छोटा खरगोश (L. cuniculus) देखनेमें आता है, वह बेलजियम और हालैण्ड राज्यमें Konyn konin, डेनमार्क—Kanine, जर्मन—Kaninchen, इटली—coniglio, पुर्त्तगाल—Coelho, स्पेन—Conejo, स्कॉटलैण्ड—Kanin, वेल्स—Cedningen, इङ्गलैण्ड—Coney या Rabbit नामसे प्रसिद्ध है।

यह जंगलों और देहातोंमें जमीनके अन्दर बिल खोद कर झुण्डमें रहता है और रातके समय आसपासके खेतों विशेषतः ऊखके खेतोंको बहुत हानि पहुंचाता है। यह बहुत अधिक डरपोक और जरासे आघातसे मर जाता है। यह छलांगें मारता हुआ बहुत तेज दौड़ता है। इसके दांत बड़े तेज होते हैं। खरहो छः मासकी होने पर गर्भवती हो जाती है और एक मास पीछे सात आठ बच्चे देती है। दश पन्द्रह दिन पीछे यह फिर गर्भवती हो जाती है और इसी प्रकार बराबर गर्भवती होती है। इसके छः स्तन होते हैं जिनमेंसे दोमें दूध नहीं पाया जाता। जंगलमें एकमात्र मूल और वृक्षकी छाल खा कर ही यह जीवन धारण करता है। प्रकृतिने भक्ष्य द्रव्यके अनुसार ही इसका शरीर बनाया है और बल दिया है। नासाग्रसे ले कर पुच्छमूल तक इसकी लम्बाई

१६॥० इञ्च होती है। खरही वजनमें ५॥० पौंड और खरहेसे एक आध इञ्च छोटी होती है, किन्तु दोनोंकी पीठ पर १२ इञ्च लंबा एक दाग रहता है। खरहेसे खरहीकी पूंछ बड़ी होती है। तुरतके जन्मे बच्चेके शरीरमें लोम नहीं होते तथा आंखें भी नहीं फूटती हैं। टोपी पर खोंसनेके लिये यूरोपमें इसके लोम अधिक दाममें बिकते हैं। चांदीकी तरह सफेद लोमविशिष्ट चर्म एक समय प्रति ३ शिलिङ्गमें बिका था। वहांके लोग अपने अपने कुरतेके किनारे उस चमड़ेको काट कर सिलाई कर देते थे।

हिमालयके पादमूलस्थ शालवनमें और उसके आसपास स्थानोंमें गोरखपुरसे पूर्व त्रिपुराराज्य तकके स्थानोंमें और शिलिगोड़ीके तराई देशमें L. hispidas जातिका शशक देखनेमें आता है। दक्षिण-भारतमें L. migricollis या कृष्णग्रीव शशक तथा हिन्दुस्तानमें लोहितपुच्छ (L. ruficandata) शशक जाति जिस प्रकार तमाम फैली हुई है, इस मलेरियापूर्ण हिमालय पादस्थ वनभागमें भी Hispid hare नामक शशजाति उसी प्रकार प्रबल है। ये सब कभी भी समतल क्षेत्रमें नहीं आते और न हिमालयके पार्वत्य पृष्ठ पर चढ़ते ही हैं। इस कारण इनका स्वभाव पर्यवेक्षण करनेका उतना मौका नहीं मिलता।

हिमालयपृष्ठ और नेपाल राज्यमें L. Macrotus श्रेणीका खरगोश है। यह दक्षिण-भारतके कृष्णग्रीव शशजातिसे बहुत बड़ा होता है। L. nigricollis या कृष्णग्रीव शशक किसी किसी ग्रन्थमें L. malanauchen नामसे वर्णित हुआ है। दक्षिणभारत, सिंहल और यवद्वीपमें इस जातिके खरगोश अधिक संख्यामें पाये जाते हैं। सिन्धुप्रदेश और पंजाबमें भी इनका अभाव नहीं है। तिब्बत और नेपालके पर्वतपृष्ठस्थ नील खरगोश L. diostolus या L. Pallipes नामसे वर्णित है। इनकी दोनों टांगें सफेद तथा पृष्ठ और देह बहुत कुछ स्लेट पत्थरकी तरह घोर काली होती है। इनके साथ यूरोपके पार्वत्य शशक (alpine hare) का बहुत कुछ सौसादृश्य है।

ब्रह्मराज्यमें जो शशजाति (L. peguensis) देखनेमें आती है, वह भारतवर्षकी लोहितपुच्छ शशजातिसे बहुत कुछ मिलती जुलती है। उत्तर-भारतमें, आसाम प्रदेशमें और उत्तर-ब्रह्ममें प्रधानतः यह शशजाति विचरण करती है। बङ्गालके खरगोशकी तरह इनका गात्रवर्ण कुछ धूसर होता है, परन्तु पेट बिलकुल सफेद दिखाई देता है। पूंछका ऊपरी भाग भी काला है।

L. sinensis जातिके साथ L. raficandata श्रेणीके शशककी समता दिखाई देती है। केवल गात्रवर्णका पार्थक्य ही एकमात्र विशेषत्व है, इसके पंजेका निचला भाग काला, पर ऊपरी भाग लाल होता है। पूंछका अगला हिस्सा काला, पर मूलभाग अपेक्षाकृत सफेद होता है। इनके दोनों पंजरे तथा पेटके लोम लोहितपुच्छ शशकके पृष्ठलोमकी तरह वर्णविशिष्ट हैं। किन्तु पीठका रंग ललाई लिये कुछ काला भी होता है।

शशकर्ण (सं० पु०) १ एक ऋषिका नाम। ये ऋग्वेदके अष्टम मण्डलके नवम सूक्तके मन्त्रद्रष्टा हैं। २ सामभेद।

शशकविषाण (सं० क्ली०) शशकस्य विषाणं। शशकशृङ्ग, मिथ्या, आकाशकुसुम कहनेसे जिस प्रकार कुछ भी नहीं समझा जाता, शशविषाण शब्दसे भी उसी प्रकार जानना होगा अर्थात् कुछ भी नहीं।

शशकाद्यघृत—नेत्ररोगनाशक घृतौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—घृत आध सेर, क्वाथार्थ शशकका मांस १ सेर, जल ८ सेर, शेष २ सेर, बकरीका दूध २ सेर। कल्क—यष्टिमधु और पुण्डरीया प्रत्येक ॥ तोला। इन्हें आंखमें भर कर देनेसे शुक्र और अन्धकारोग नाश होते हैं।

शशगानी (फा० पु०) चांदीका एक प्रकारका सिक्का जो फीरोजशाहके राज्यमें प्रचलित था। यह लगभग दुअन्नीके बराबर होता था।

शशघातक (सं० पु०) बाज या श्येन नामक पक्षी, हरगोला।

शशघातिन् (सं० पु०) शशघातक देखो।

शशघ्न (सं० पु०) बाज या श्येन नामक पक्षी, हरगोला।

(हृत्‍०७० ८८।१)

शशधर (सं० पु०) धरतीति धृ-अच् धरः शशस्य धरः। १ चन्द्रमा। २ कर्पूर, कपूर।

शशधर—१ किरणावली नामक अलंकारग्रन्थके प्रणेता। २ राघवपाण्डवीय टीकाके रचयिता। इनके पितामहका नाम था चन्द्रसिंह।

शशधर आचार्य—शशधरीय या न्यायसिद्धांतदीपन्याय-नय, न्यायमीमांसाप्रकरण, न्यायरत्नप्रकरण और शशधरमाला नामक न्यायविषयक ग्रंथोंके रचयिता।

शशधरीय (सं० त्रि०) १ शशधर-सम्बंधी। (पु०) २ शशधरकृत ग्रंथ।

शशधर्मन् (सं० पु०) राजभेद। (विष्णुपु०)

शशप्लुतक (सं० क्ली०) नखाघात। (शब्दमाला)

शशबिन्दु (सं० पु०) १ विष्णु। २ चित्ररथके एक पुत्र-का नाम।

शशभृत् (सं० पु०) शशं बिभर्त्तीति भृ-क्विप्। १ चन्द्रमा। २ कर्पूर, कपूर।

शशभृद्भृत् (सं० पु०) शशभृतं चंद्रं बिभर्त्तीति भृ-क्विप् तुक् च। शिव।

शशमाही (फा० वि०) हर छः महीने पर होनेवाला, छः माही, अर्द्धवार्षिक।

शशमुण्डरस (सं० पु०) रसौषधविशेष।

(शार्ङ्गधर० २ १।१६)

शशमौलि (सं० पु०) शिव।

शशय (सं० त्रि०) शयान, सोया हुआ।

(ऋक् १।१६४।४६)

शशयान (सं० क्ली०) महाभारतके अनुसार एक तीर्थका नाम। (भारत वनपर्व्व)

शशयु (सं० त्रि०) शयनशील, सोनेवाला।

शशलक्षण (सं० पु०) शशलक्षणं चिह्नं यस्य। चन्द्रमा।

शशलक्ष्मन् (सं० पु०) शश लक्ष्म चिह्नं यस्य। १ चन्द्रमा। (क्ली०) २ शशचिह्न।

शशलाञ्छन (सं० पु०) शशः लांछनं चिह्नं यस्य। चन्द्रमा।

शशलोमन् (सं० क्ली०) शशस्य लोम। १ शशकका रोम। पर्याय—शशोर्णा। (पु०) २ तन्नामक राजभेद।

शशविषाण (सं० क्ली०) शशस्य विषाणं। शशशृङ्ग देखो।

शशशिम्बिका (सं० स्त्री०) जीवन्तीलता, डोडी।

शशशृङ्ग (सं० क्ली०) कोई असम्भव और अनहोनी बात, वैसा ही असम्भव कार्य जैसा खरगोशको सींग होना होता है, आकाशकुसुमकी सी असम्भव बात।

शशस्थली (सं० स्त्री०) गङ्गा और यमुनाके मध्यका प्रदेश, दोआब।

शशा (सं० पु०) शश देखो।

शशाङ्क (सं० पु०) शशोऽङ्कश्चिह्नं अङ्के क्रोड़े वा यस्य। १ चन्द्रमा। २ कर्पूर, कपूर। (राजनि०) ३ प्राच्य भारतके एक पराक्रान्त हिन्दू राजा। ये सातवीं सदीमें विद्यमान थे। बङ्गदेश देखो।

शशाङ्ककुल (सं० क्ली०) शशाङ्कस्य कुलं। चन्द्रमाका कुल।

शशाङ्कज (सं० पु०) शशाङ्काज्जायते जन-ड। बुध जो चन्द्रमाका पुत्र माना जाता है। (बृहत्सं० ४।२६)

शशाङ्कतनय (सं० पु०) शशाङ्कस्य तनयः। बुध।

शशाङ्कदेव—देववंशीय एक पराक्रान्त प्राच्य भूपति। रोहतसगढ़ (रोटासगढ़) दुर्गमें इनकी जो मोहराङ्कित मुद्रा पाई गई है, उसकी वर्णमाला विचार कर प्रत्नतत्त्व-विदोंने इन्हें चीनपरिव्राजक वर्णित कर्णसुवर्णाधिपति शशाङ्क माना है। इन्होंने बौद्धधर्म्मद्वेषी कन्नौजराज राज्यवर्द्धनको पराजित और निहत किया था। पीछे ये सम्राट् हर्षवर्द्धन द्वारा पराजित हुए।

बङ्गदेश देखो।

शशाङ्कधर (भट्ट)—एक प्राचीन वैयाकरण। क्षीरतरङ्गिणी ग्रन्थमें क्षीरस्वामीने इनका उल्लेख किया है।

शशाङ्कपुर (सं० क्ली०) शशाङ्कस्य पुरं शशाङ्क पूर्णं पुरं। चन्द्रमाका पुर।

शशाङ्कमुकुट (सं० पु०) शशाङ्कः मुकुटे मौलौ यस्य। शशाङ्कशेखर, शिव।

शशाङ्कवती (सं० स्त्री०) कथासरित्सागर वर्णित एक राजकन्याका नाम।

शशाङ्कशेखर (सं० पु०)-शशाङ्कशेखरः यस्य। शिव, महादेव। (भाग० ४।६।४१)

शशाङ्कसुत (सं० पु०) शशाङ्कस्य सुतः। बुध ग्रह, जो शशाङ्क या चन्द्रमाका पुत्र माना जाता है।

(बृहत्स० ५।२)

शशाङ्कार्द्ध (सं० पु०) शशाङ्कस्य अर्द्धः। १ अर्द्ध चन्द्र। २ शिव, महादेव।

शशाङ्कोपल (सं० पु०) चन्द्रकान्तोपल, चन्द्रकान्त मणि।

शशाण्डुलि (सं० स्त्री०) स्वनामख्यात फलशाकविशेष, कड़ुवी ककड़ी। पर्याय—बहुफला, तण्डुली, क्षेत्रसम्भवा, क्षुद्राम्ला, लोमशफला, धूम्रा, वृत्तफला। गुण—तिक्त, कटु, कोमल, कटु और अम्लगुणविशिष्ट, मधुर, कफनाशक, पाकमें अम्लयुक्त, मधुर, दाहकारक, कफशोषक, रुचिकर और दीपन। (राजनि०)

शशाद (सं० पु०) शशमत्तीति अद-अच्। १ श्येन पक्षी, बाज। २ इक्ष्वाकुका पुत्र। इसका नाम विकुक्षि था। भागवतके नवम स्कन्धके छठे अध्यायमें इसका विवरण इस प्रकार लिखा है—एक दिन इक्ष्वाकुने इसे श्राद्धके लिये मांस लानेको कहा। पिताके आज्ञानुसार वन जा कर इसने बहुत-से मृग आदि मारे। मृगया करनेके कारण अतिशय श्रान्त हो इसने वहीं एक शश भक्षण किया, इसीसे इसका नाम शशाद हुआ। विष्णुपुराणके ४।२ अध्यायमें इसका विवरण है।

शशादन (सं० पु०) शशमत्तीति अद-ल्यु। श्येनपक्षी, बाज।

शशि (सं० पु०) शशिन् देखो।

शशिक (सं० पु०) १ महाभारतके अनुसार एक प्राचीन जनपदका नाम। २ इस जनपदमें रहनेवाली जाति। (भारत भीष्मपर्व ९।४६)

शशिकर (सं० पु०) चन्द्रमाकी रश्मि या किरण।

शशिकला (सं० स्त्री०) शशिनः कला। १ चन्द्रमाकी कला। २ एक प्रकारका वृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें चार नगण और एक सगण होता है। इसको 'मणिगुण' और 'शरभ' भी कहते हैं। (छन्दोमञ्जरी)

शशिकान्त (सं० क्ली०) शशीकान्तो यस्य। १ कुमुद, कोईं, बघोला। (पु०) २ चन्द्रकान्तमणि।

शशिकुल (सं० पु०) चन्द्रवंश।

शशिकेतु (सं० पु०) बुद्धभेद।

शशिखण्ड (सं० पु० क्ली०) १ शिव, महादेव। २ विद्याधरभेद। ३ चन्द्रमाकी कला।

शशिखण्डपद (सं० पु०) विद्याधरभेद। (कथासरित्सा० २६।२८१)

शशिखण्डिक (सं० पु०) पुराणानुसार एक देशका नाम। Periplus ने इसे Sasikrienai नामसे उल्लेख किया है। वामनपुराणमें शिशिराद्रिक पाठ है। (वामनपु० १३।५७)

शशिगच्छ (सं० पु०) शशिकुल। (शत्रुञ्जयमा० १४।२८३)

शशिगुहा (सं० स्त्री०) यष्टिमधु, मुलेठी।

शशिग्रह (सं० पु०) चन्द्रग्रह।

शशिज (सं० पु०) शशिनो जायते जन-ड। चन्द्रका पुत्र, बुधग्रह।

शशितनय (सं० पु०) चन्द्रमाका पुत्र, बुधग्रह।

शशितिथि (सं० स्त्री०) पूर्णिमा, पूर्णमासी।

शशितेजस् (सं० पु०) १ विद्याधरभेद। २ नागभेद।

शशिदेव (सं० पु०) राजभेद, रन्तिदेवका एक नाम। (शब्दरत्ना०)

शशिदेव—व्याख्यानप्रक्रियानामक व्याकरणके प्रणेता।

शशिदैव (सं० क्ली०) शशी देवताऽस्य अण्। मृगशिरा नक्षत्र। इसके अधिष्ठातृ देवता चन्द्रमा माने जाते हैं, इसलिये इसको शशिदैव कहते हैं। (वृहत्संहिता० ७।६)

शशिधर (सं० पु०) १ शिव, महादेव। २ एक प्राचीन नगरका नाम।

शशिधर—एक राजकवि। ये कलचुरिराज नरसिंह देवकी सभामें (११५५-११६५ ई०) विद्यमान थे। इनके पिताका नाम था धरणीधर। राजाके आदेशसे शशिधरने कई एक शिलालिपिकी रचना की थी।

शशिध्वज (सं० पु०) शशी ध्वजे यस्य। १ भल्लाटपुरराज। (कल्किपु० २५ अ०) २ असुरभेद।

शशिन् (सं० पु०) शशोऽस्यास्तीति शश-इनि। १ चन्द्रमा, इन्दु। २ छप्पयके ५४वें भेदका नाम। इसमें १७ गुरु और ११८ लघु, कुल १३५ वर्ण या १५२ मात्राएं होती हैं। ३ रगणके दूसरे भेदकी संज्ञा। ४ छःकी संख्या। ५ मोती।

शशिपर्ण (सं० पु०) पटोल, परवल।

शशिपुत्र (सं० पु०) शशिनः पुत्रः। बुधग्रह जो चन्द्रमाका पुत्र माना जाता है।

शशिपुर—विन्ध्यशैल पार्श्वस्थ एक गांव। (भविष्य ब्र०ख० ८।६५)

शशिपुष्प (सं० पु०) पद्म, कमल।

शशिपोषक (सं० पु०) चन्द्रमाका पोषण करनेवाला, शुक्लपक्ष।

शशिप्रभ (सं० क्ली०) शशिनः प्रभेव प्रभा यस्य। १ कुमुद, कोईं। २ मुक्ता, मोती। (त्रि०) ३ चन्द्रमाके सदृश जिसकी प्रभा हो।

शशिप्रभा (सं० स्त्री०) शशिनः प्रभा। ज्योत्स्ना, चाँदनी।

शशिप्रभा—एक नागराजकन्याका नाम। नर्मदातीरस्थित रत्नावतीवासी वज्रांकुश दैत्यको मार कर सिन्धुराजने इनका पाणिग्रहण किया।

शशिप्रिय (सं० पु०) १ कुमुद, कोईं। २ मुक्ता, मोती।

शशिप्रिया (सं० स्त्री०) शशिनः प्रिया। सत्ताइसों नक्षत्र जो चन्द्रमाकी पत्नियाँ माने जाते हैं।

शशिभागा (सं० स्त्री०) राजा मुचकुन्दकी कन्याका नाम।

शशिभाल (सं० पु०) मस्तक पर चन्द्रमा धारण करनेवाले, शिव, महादेव।

शशिभूषण (सं० पु०) शशी भूषणं यस्य। शिव, महादेव।

शशिभृत् (सं० पु०) शशिनं बिभर्त्तीति भृ-क्विप् तुक् च। शिव, महादेव।

शशिमणि (सं० पु०) चन्द्रकान्त मणि।

शशिमण्डल (सं० पु०) चन्द्रमाका मण्डल या घेरा, चन्द्रमण्डल।

शशिमत् (सं० त्रि०) शशी विद्यतेऽस्य मतुप्। चन्द्रयुक्त।

शशिमुख (सं० त्रि०) जिसका मुख चन्द्रमाके सदृश हो, अति सुन्दर।

शशिमौलि (सं० पु०) शशी मौलौ यस्य। शिव, महादेव।

शशिरस (सं० पु०) अमृत।

शशिरेखा (सं० स्त्री०) शशिलेखा, चन्द्रमाकी एक कला।

शशिलेखा (सं० स्त्री०) शशिनो लेखा। १ चन्द्रलेखा, चन्द्रमाकी कला। २ गुडूची, गुरुच। ३ सोमराजी, बकुची। ४ एक प्रकारका वृत्त। इस छन्दके प्रति चरणमें १५ करके अक्षर रहते हैं जिनमेंसे ५, १० और १३ वां अक्षर लघु तथा बाकी वर्ण गुरु होते हैं। इस छन्दके ७ और ८वें अक्षरमें यति होती है। ५ षडक्षरपादक एक प्रकारका छन्द। इस छन्दके प्रथम चार वर्ण लघु और बाकी दो गुरु होते हैं।

शशिवंश (सं० पु०) चन्द्रवंश।

शशिवदन (सं० त्रि०) शशीव आह्लादजनकत्वात् वदनं यस्य। चन्द्रवदन, चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाला।

शशिवदना (सं० स्त्री०) १ एक वृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें एक नगण और एक यगण होता है। इसे चौवंसा, चण्डरसा और पादांकुलक भी कहते हैं। (त्रि०) २ चन्द्रमुखी, चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाली।

शशिवर्द्धन (सं० पु०) एक प्राचीन कवि।

शशिवाटिका (सं० स्त्री०) पुनर्नवा, गदहपूर्ना।

शशिविमल (सं० त्रि०) चन्द्रमाके समान विमल या स्वच्छ।

शशिशाला (सं० स्त्री०) वह घर जो बहुतसे शीशोंका बना हुआ हो या जिसमें बहुत-से शीशे लगे हुए हों, शीशमहल।

शशिशिखामणि (सं० पु०) शिव, महादेव। (राजतरङ्गिणी १।२८१)

शशिशेखर (सं० पु०) शशी शेखरे यस्य। १ शिव, महादेव। (हलायुध) २ एक बुद्धका नाम। पर्याय—हेरम्ब, हेरुक, चक्रसंवर, वंध, वज्रकमाली, निशुम्भी, वज्रटीक। (त्रिका०)

शशिशोषक (सं० पु०) चन्द्रमाको क्षीण करनेवाला, कृष्णपक्ष।

शशिसुत (सं० पु०) शशिनः सुतः। चन्द्रमाका पुत्र, बुध ग्रह।

शशिहीरा (हिं० पु०) चन्द्रकान्तमणि।

शशीकर (सं० पु०) चन्द्रमाकी किरण।

शशीयस् (सं० त्रि०) उत्प्लवमान। (ऋक् ४।३२।३)

शशीश (सं० पु०) १ शिव, महादेव। २ स्कन्दगिरि। (किराता० १५।१५)

शशोर्णा (सं० स्त्री०) शशस्य ऊर्णा, अभिधानात् क्लीवत्वं। शशलोम, खरहेका रोआँ।

शशोलूकमुखी (सं० स्त्री०) स्कन्दानुचर मातृगण।

शश्वत् (सं० त्रि०) १ शाश्वत, जो सदा स्थायी रहे। (ऋक् १।२६।६) २ बहु, ज्यादा। (ऋक् १।११३।८)

शश्वत् (सं० अव्य०) शश-बाहुलकात् वत्। पुनः पुनः, बारंबार, सदा।

शष्कण्डी (सं० स्त्री०) १ वृक्षविशेष, एक प्रकारका पेड़। २ इस पेड़का फल।

शष्कुल (सं० पु०) करंज।

शष्कुली (सं० स्त्री०) शष्कुल गौरादित्वात् ङीष्। १ तिलतण्डुलमाष मिश्रित यवागु। २ कर्णरन्ध्र, कानका छेद। ३ मत्स्यभेद, सौरी मछली। इसका गुण हृद्य, मधुर और तुवर माना गया है। (भावप्र०) ४ पुरी पक्वान्न आदि।

शष्प (सं० क्लो०) शष हिंसायां (खष्पशिल्पशष्पवाष्परूपपर्प-तल्पाः। उण् ३।२८) इति पस्य निपात्यते। १ बालतृण, नई घास। २ नीलदूर्वा, नीली दूब। ३ विभ्रासहानि।

शष्पभुज् (सं० पु०) शष्प भुज-क्विप्। बालतृणभोजन-कारी, वह जो नई घास खाता हो।

शष्पभोजन (सं० पु०) नवतृणभोजन, नई घास खाना।

शष्पवत् (सं० त्रि०) शष्प अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वः। शष्पविशिष्ट। (शुक्ल यजु० १६।४२)

शष्पिञ्जर (सं० त्रि०) बालतृणकी तरह पीत रक्तवर्ण।

शसन (सं० क्लो०) शंस-ल्युट्। १ यज्ञार्थ पशुहनन, यज्ञके लिये पशुओंकी हत्या करना। (रामाश्रम) शस्यते हन्यतेऽत्र इत्यधिकरणे ल्युट्। २ हत्यास्थान, वह स्थान जहां पशुओंका बलिदान होता हो।

शस्त (सं० क्लो०) शंस क्त। १ कल्याण, मंगल, भलाई। २ शरीर, बदन, जिस्म। (त्रि०) ३ कल्याणयुक्त, मंगल-युक्त। ४ स्तुत, जिसकी प्रशंसा की गई हो। ५ प्रशस्त, उत्तम। ६ निहत, जो मार डाला गया हो।

शस्त (फा० पु०) १ वह हड्डी या धातुका छल्ला जो तीर चलानेके समय अंगूठेमें पहना जाता है। २ वह जिस पर तीर या गोली आदि चलाई जाती है, लक्ष्य, निशाना। ३ मछली पकड़नेका कांटा। ४ जमीनकी पैमाइश करने-वालोंकी दूरबीनके आकारका वह यन्त्र जिसकी सहा-यतासे जमीनकी सीध देखी जाती है।

शस्तक (सं० क्लो०) अङ्गुलित्राण, हाथमें पहननेका चमड़ेका दास्ताना।

शस्तकेशक (सं० त्रि०) शस्ताः केशो यस्य कन्। प्रशस्त केशयुक्त। (शब्दरत्ना०)

शस्तता (सं० स्त्री०) शस्तस्य भावः तल्-टाप्। शस्तका भाव या धर्म, प्रशस्तता।

शस्ति (सं० स्त्री०) शंस-क्तिन्। स्तुति, प्रशंसा, तारीफ।

शस्तृ (सं० त्रि०) प्रशास्ता। (ऋक् १।१६२।५)

शस्तोक्थ (सं० त्रि०) प्रशस्त शस्त्रविशिष्ट। (शुक्लयजु० ८।१२)

शस्त्र (सं० क्लो०) शस्यते हिंस्यतेऽनेन (अशित्रसिचिमिदि शसिभ्यः त्रः। उण् ४।१६३) इति त्र यद्वा (दाम्नीशसयुयुजे। पा ३।२।१८२) इति ष्ट्रन्। १ लौह, लोहा। २ अस्त्र, हथि-यार। अस्त्र और शस्त्रमें प्रभेद—जो हाथसे पकड़ कर चलाया जाता है, उसे शस्त्र, जैसे खड्ग आदि और जो फेंक कर चलाया जाता है उसे अस्त्र कहते हैं, जैसे तीर आदि।

विष्णुपुराणकी टीकामें लिखा है, कि मन्त्रपूत होने-से उसे अस्त्र और तद्भिन्न होनेसे उसे शस्त्र कहते हैं।

३ खड्ग, तलवार। वैद्यकमें शस्त्र और उसके प्रयोग-का विशेष विवरण लिखा है। सुश्रुतमें बीस प्रकारके शस्त्रोंके नाम देखनेमें आते हैं। यथा—मण्डलाग्र, कर-पत्र, वृद्धिपत्र, नखशस्त्र, मुद्रिका, उत्पलपत्र, अर्द्धधार, सूची, कुशपत्र, आटीमुख, शरारीमुख, अन्तर्मुख, त्रि-कूर्चक, कुठारिका, व्रीहिमुख, आरा, वेतसपत्रक, बड़िश, दन्तशंकु और एषणी यही बीस प्रकारके शस्त्र हैं। बुद्धिमान् चिकित्सकको चाहिए, कि वे विशुद्ध लौहके कर्मठ लोहार द्वारा ये सब शस्त्र बनवा लें। शस्त्र चिकित्साके शिक्षाकालमें शस्त्रचिकित्सामें पारदर्शी वैद्यसे पहले कौंहड़ा, लौकी, तरबूज, खीरा और ककड़ी आदि काटनेयोग्य द्रव्य सीख कर पीछे शस्त्र कार्य करना होता है। (सुश्रुत सूत्रस्था० ८ अ०)

शस्त्रक (सं० क्लो०) शस्त्रमेव स्वार्थे कन्। लौह, लोहा।

शस्त्रकर्मन् (सं० क्लो०) शस्त्रस्य कर्म। घाव या फोड़े-में नश्तर लगाना, फोड़ों आदिके चीरफाड़का काम। सुश्रुतमें यह आठ प्रकारका कहा गया है, जैसे,—छेदन,

लेखन, भेदन, विस्रावण, कथन, आहरण, एषण्येषण और सेवन बीस प्रकारके शस्त्रों द्वारा इन आठ प्रकारके शस्त्रोंका काम करना होता है। (सुश्रुत सूत्रस्था० ८ अ०)

शस्त्रकलि (सं० पु०) शस्त्रयुद्ध। (कथासरित्सा० ७१।१००)

शस्त्रकेतु (सं० पु०) एक प्रकारका केतु। यह पूर्वमें उदय होता है। कहते हैं, कि इसके उदय होने पर महामारी फैलती है।

शस्त्रकोप (सं० पु०) शस्त्रस्य कोपः। शस्त्रका प्रकोप।

शस्त्रकोशतरु (सं० पु०) शस्त्रस्य खड्गस्य कोशइव तरुः। महापिण्डी तरु, बड़ा मैनफल।

शस्त्रक्रिया (सं० स्त्री०) फोड़े आदिकी चीर-फाड़, नश्तर लगानेकी क्रिया।

शस्त्रगृह (सं० पु०) वह स्थान जहां अनेक प्रकारके शस्त्र आदि रहते हों, शस्त्रशाला, हथियार घर, सिलहखाना।

शस्त्रचूर्ण (सं० क्ली०) शस्त्रस्य चूर्ण। लौहकिट्ट, लौहमल, मण्डूर। (वैद्यकनि०)

शस्त्रजीविन् (सं० त्रि०) शस्त्रेण जीवतीति जीव णिनि। शस्त्राजीव, योद्धा, सैनिक। (बृहत्संहिता १७।२४)

शस्त्रदेवता (सं० स्त्री०) युद्धकी अधिष्ठात्री देवी।

शस्त्रधर (सं० पु०) योद्धा, सैनिक, सिपाही।

शस्त्रधारण (सं० क्ली०) शस्त्रस्य धारणं। शस्त्रग्रहण, हथियार लेना।

शस्त्रधारणजीवक (सं० त्रि०) शस्त्रधारणेन जीवतीति जीव-ण्वुल्। शस्त्राजीव, सैनिक।

शस्त्रधारिन् (सं० त्रि०) १ शस्त्रधारण करनेवाला, हथियारबंद। (पु०) २ योद्धा, सैनिक। ३ एक प्रकारका जन्तु जिसे सिलहपोश भी कहते हैं। ४ एक प्राचीन देशका नाम।

शस्त्रपाणि (सं० पु०) शस्त्रं पाणौ यस्य। शस्त्रहस्त, वह जिसके हाथमें तलवार आदि शस्त्र हो।

शस्त्रपान (सं० क्ली०) शस्त्रस्य पानं। शस्त्रका पानी या आब। (बृहत्संहिता ५०।२२)

शस्त्रप्रकोप (सं० पु०) शस्त्रस्य प्रकोपः। शस्त्रका कोप।

शस्त्रप्रहार (सं० पु०) शस्त्रस्य प्रहारः। शस्त्रका प्रहार, खड्ग आदि शस्त्रका आघात।

शस्त्रबन्ध (सं० पु०) शस्त्र द्वारा बन्धन।

शस्त्रभृत् (सं० त्रि०) शस्त्रं बिभर्त्तीति भृ क्विप् तुक् च। शस्त्रधारी, हथियारबंद।

शस्त्रमय (सं० त्रि०) शस्त्र-मयट्। शस्त्रस्वरूप।

शस्त्रमार्ज (सं० पु०) शस्त्राणि मार्ष्टीति मृज-अण्। शस्त्रमार्ज्जनकर्त्ता। पर्याय—असिधावक, शस्त्रमार्ज्ज, असिधाव, शाणाजीव, भ्रमासक्त। (हेम)

शस्त्रवत् (सं० त्रि०) शस्त्रेण इव इवार्थे वति। १ शस्त्रतुल्य, शस्त्रके सदृश। २ शस्त्रविशिष्ट, हथियारबंद।

शस्त्रवार्त्त (सं० त्रि०) १ शस्त्रधारी, शस्त्रजीवी। (बृहत्संहिता ५।३१) (पु०) २ एक प्राचीन देशका नाम।

शस्त्रविद्या (सं० स्त्री०) १ हथियार चलानेकी क्रिया। यजुर्वेदका उपवेद, धनुर्वेद जिसमें सब प्रकारके शस्त्र चलानेकी विधियों और लड़ाईके सम्पूर्ण भेदोंका वर्णन किया गया है।

शस्त्रवृत्ति (सं० त्रि०) शस्त्रं वृत्तिर्यस्य। शस्त्राजीव, शस्त्र ही जिसकी जीविका हो।

शस्त्रशाला (सं० स्त्री०) वह स्थान जहां बहुतसे शस्त्र आदि रखे हों, शस्त्रगृह, शस्त्रागार।

शस्त्रशास्त्र (सं० पु०) १ वह शास्त्र जिसमें हथियार चलाने आदिका निरूपण हो। २ धनुर्वेद।

शस्त्रशिक्षा (सं० स्त्री०) शस्त्रस्य शिक्षा। शस्त्राभ्यास, हथियार चलानेकी शिक्षा।

शस्त्रहत (सं० त्रि०) शस्त्रेण हतः। शस्त्राघात द्वारा मृत, शस्त्रके आघातसे जिसकी मृत्यु हुई हो। शस्त्राघातसे मृत्यु होने पर उसके अशौचके विषयमें शुद्धितत्त्वमें लिखा है, कि शस्त्रद्वारा हत व्यक्तिका सद्याशौच और उसकी दाहादि क्रिया होगी।

क्षत हो कर यदि ७ दिनमें मृत्यु हो, तो त्रिरात्र और यदि ७ दिनके बाद हो, तो दश दिन अशौच होता है। किन्तु शस्त्राघातजन्य क्षतसे तीन दिनके बाद मृत्यु होने पर जिस वर्णका जैसा अशौच है, उसके लिये भी वैसा ही अशौच होगा। इस शस्त्राघात शब्दसे क्षतसे इतर शस्त्राघात समझा जायेगा। पारिभाषिक शस्त्राघातको छोड़ समझना होगा। पारिभाषिक शस्त्राघातका

अर्थ इस प्रकार लिखा है, कि पक्षी, मत्स्य, मृग, दंष्ट्री, शृङ्गी, नख द्वारा हत, उच्चस्थानसे पतन, अनशन, वज्र, अग्नि, विष, बन्धन और जलप्रवेशादि द्वारा जिनकी मृत्यु हुई है, उन्हें भी शस्त्रहत कहते हैं।

शस्त्रहतचतुर्दशी (सं० स्त्री०) शस्त्रहतानां चतुर्दशी युद्धादि हतानां श्राद्धादिकर्मणि प्रशस्तत्वात्तत्वात्। गौण आश्विनकृष्णाचतुर्दशी, गौणकार्त्तिककृष्णाचतुर्दशी इन दो चतुर्दशी और तिथियोंमें शस्त्रहत व्यक्तियोंका श्राद्ध प्रशस्त है। इसी कारण इन दोनों तिथियोंका नाम शस्त्रहतचतुर्दशी पड़ा है। (श्राद्धविवेक)

शस्त्रहस्त (सं० पु०) शस्त्रं हस्ते यस्य। शस्त्रपाणि, अस्त्रधारी पुरुष, सैनिक।

शस्त्राख्य (सं० पु०) १ केतुभेद। (वृहत्सं० ११।२०) २ शस्त्रसंज्ञक।

शस्त्रागार (सं० पु०) शस्त्रशाला, सिलहखाना।

शस्त्राङ्गा (सं० स्त्री०) चाङ्गेरी, खट्टी लोनी या अम-लोनी जिसका साग होता है।

शस्त्राजीव (सं० त्रि०) शस्त्रेण आजीवतीति आ-जीव-अच्। १ शस्त्र द्वारा जो जीविका निर्वाह करता हो, असिजीवी। पर्याय—काण्डपृष्ठ, आयुधीय, आयुधिक, काण्डस्पृष्ट, काण्डपृष्ठ, शस्त्रधारणजीवक। स्त्रियां ङीप्। २ शाक्तोंके आठ अकुलोंमेंसे एक।

शस्त्राभ्यास (सं० पु०) शस्त्राणां अभ्यासः। अस्त्र-शिक्षा।

शस्त्रायस (सं० क्ली०) शस्त्रार्थं यदायसम्। वह लोहा जिससे अस्त्र बनाये जाते हैं।

शस्त्रायुध (सं० त्रि०) शस्त्र आयुधो यस्य। शस्त्र-विशिष्ट, शस्त्रधारी।

शस्त्रिन् (सं० त्रि०) शस्त्र अस्त्यर्थे इनि। १ शस्त्र-विशिष्ट, जिसके पास शस्त्र हो। २ जो शस्त्र आदि चलाना जानता हो।

शस्त्री (सं० स्त्री०) शस् ष्ट्रन् स्त्रियां ङीप्। छुरिका, छूरी।

शस्त्रोपजीविन् (सं० त्रि०) शस्त्रेण उपजीवतीति जीव-णिनि। जो शस्त्र द्वारा अपनी जीविका चलाता हो।

शस्य (सं० क्ली०) शस (शकिशसिचतियतीति। पा ३।१।९७) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या यत्। १ वृक्षादि-निष्पन्न, फल। वृक्षादिके फलको शस्य कहते हैं। साधारणतः कृषिकार्य द्वारा उत्पन्न धान्यादि ही शस्य कहलाता है। अमरटीकामें भरतने लिखा है, कि वृक्ष और लतादिका फल ही शस्य है।

हेमचन्द्रने शस्य शब्दसे धान्यका अर्थ लगाया है। स्मृतिमें लिखा है, कि क्षेत्रोत्पन्न वस्तुका नाम शस्य है।

ग्राम्यशस्य—धान, जौ, गेहूं, चना, तिल, प्रियंगु, दीर्घशालि, कोरदूष और चीना, इन सबको ग्राम्यशस्य कहते हैं। उड़द, मूंग, मसूर, निष्पाव, कुलथी अरहर, चना और शाण ये भी ग्राम्यशस्य कहलाते हैं।

विष्णुपुराणमें लिखा है, कि ग्राम्य और आरण्य शस्य चौदह प्रकारका है। यथा—धान, जौ, उड़द, गेहूं, चना, तिल, प्रियंगु, ये सात ग्राम्य शस्य और कुलथी, सांवां, नीवार, वनतिलया, कोदिला, वंशलोचन और महुआ ये सात आरण्य शस्य हैं।

नया शस्य उत्पन्न होने पर विशुद्ध दिन देख भोजन करना होता है तथा भोजनके पहले देवताको निवेदन और पितरोंके उद्देशसे श्राद्ध कर भोजन करना उचित है। मलमासतत्त्वमें इसकी व्यवस्था लिखी है। नव-शस्य भोजनमें ये सब नक्षत्र प्रशस्त कहे गये हैं। यथा—अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद, उत्तरफल्गुनी, हस्ता, चित्रा, मघा, पुष्या, श्रवणा, पुनर्वसु, और रोहिणी। शरत् या वसन्तकालमें विशुद्ध दिन नवशस्य द्वारा पार्वण विधिके अनुसार श्राद्ध करके नवशस्य भोजन करना होता है।

२ बालतृण। ३ प्रतिभाहानि। ४ फलका सारांश, गूदा। ५ सद्गुण। (त्रि०) शन्स यथ्। ६ प्रशंसनीय।

शस्यक (सं० पु०) एक प्रकारका रत्न।

शस्यघ्नी (सं० स्त्री०) चोरपुष्पी, चोरहुली।

शस्यध्वंसिन् (सं० पु०) शस्यानि ध्वंसयतीति ध्वंस-णिनि। १ तूर्ण वृक्ष, तून। (त्रि०) २ शस्यनाशक, जिससे शस्यका नाश हो।

शस्यमञ्जरी (सं० स्त्री०) शस्यस्य मञ्जरी। अभिनव,

निर्गत धान्यादि शीर्षक, नई निकली हुई धानकी बाल या सींक। पर्याय—कणिश, कणिप।

शस्यशूक (सं० क्ली०) शस्यस्य शूकं। शस्यका तीक्ष्णाग्र, शस्यकी तीखी बाल या सींक। पर्याय—किंशारु।

शस्यसम्बर (सं० पु०) १ शाल वृक्ष। २ अश्वकर्ण वृक्ष।

शस्याद् (सं० त्रि०) शस्यं अद्‌-किप्। शस्यभक्षक। (मुग्धबोधव्या०)

शस्याद (सं० पु०) क्षुद्र शमीवृक्ष, छोटी शमी।

शहंशाह (फा० पु०) बादशाहोंका बादशाह, महाराजाधिराज, शाहंशाह।

शहंशाही (फा० वि०) १ शाहोंका-सा, शाही, राजसी। (स्त्री०) २ शाहंशाहका भाव या धर्म। ३ शाहंशाहका पद। ४ लेने देनेमें खरापन।

शह (फा० पु०) १ बहुत बड़ा राजा, बादशाह। २ वर, दूल्हा। (वि०) ३ बढ़ा चढ़ा, श्रेष्ठतर। इस अर्थमें इस शब्दका प्रयोग केवल यौगिक शब्द बनानेके साथ उसके आरम्भमें होता है। जैसे—शहजोर, शहबाज, शहसवार। (स्त्री०) ४ शतरंजके खेलमें कोई मुहरा किसी ऐसे स्थान पर रखना जहांसे बादशाह उसकी घातमें पड़ता हो, किश्त। ५ गुप्तरूपसे किसीके भड़काने या उभारनेकी क्रिया या भाव। ६ गुड्डी, पतंग या कनकौवे आदिको धीरे धीरे डोर ढीली करते हुए आगे बढ़ानेकी क्रिया या भाव।

शहमात (हिं० स्त्री०) शतरंजमें बादशाहका वह मात जो और मोहरोंको मारी जाने पर चली आती है।

शहजादा (फा० पु०) १ राजपुत्र, राजकुमार। २ राज्यका उत्तराधिकारी, युवराज।

शहजोर (फा० वि०) बली, बलवान्, ताकतवर।

शहजोरी (फा० स्त्री०) १ बल, ताकत। २ जबरदस्ती।

शहत (अ० पु०) शहद देखो।

शहतीर (फा० पु०) लकड़ीका चीरा हुआ बहुत बड़ा और लम्बा लट्ठा जो प्रायः इमारतके काममें आता है।

शहतूत (फा० पु०) तूत नामका पेड़ और उसका फल। विशेष विवरण तूत शब्दमें देखो।

शहद (अ० पु०) चीनीकी तरहका एक बहुत प्रसिद्ध गाढ़ा, गाढ़ा तरल पदार्थ। यह कई प्रकारके कीड़े और विशेषतः मधुमक्खियां अनेक प्रकारके फूलोंके मकरन्दसे संग्रह करके अपने छत्तोंमें रखती हैं। जब यह अपने शुद्ध रूपमें रहता है, तब इसका रङ्ग सफेदी लिये कुछ लाल या पीला होता है। यह पानीमें सहजमें घुल जाता है। यह बहुत बलवर्द्धक माना जाता है और प्रायः औषधोंके साथ दूधमें मिला कर अथवा यों ही खाया जाता है। इसमें फल आदि भी रक्षित रखे जाते हैं अथवा मुरब्बा डाला जाता है। कभी कभी ऐसा शहद भी मिलता है जो मादक या विष होता है। वैद्यकमें यह शीतवीर्य, लघु, रूक्ष, धारक, आंखोंके लिये हितकारी, अग्निदीपक, स्वास्थ्यवर्द्धक, वर्णप्रसादक, चित्तको प्रसन्न करनेवाला, मेधा और वीर्य बढ़ानेवाला, रुचिकारक और कोढ़, बवासीर, खांसी, कफ, प्रमेह, प्यास, कै, हिचकी, अतीसार, मलरोध और दाहको दूर करनेवाला माना गया है। इसका दूसरा नाम मधु है। मधु देखो।

शहनगी (अ० पु०) १ शस्य-रक्षकका कार्य। २ वह धन जो चौकीदारको देनेके लिये असामियोंसे वसूल किया जाता है, चौकीदारी।

शहना (अ० पु०) १ खेतकी चौकसी करनेवाला, शस्यरक्षक। २ कोतवाल, नगर-रक्षक। ३ वह व्यक्ति जो जमींदारकी ओरसे असामियोंको बिना पोत दिये खेतकी उपज उठानेसे रोकने और उसकी रक्षाके लिये नियुक्त किया जाता है।

शहनाई (फा० स्त्री०) १ बांसुरी या अलगोजेके आकारका पर उससे कुछ बड़ा मुंहसे फूंक कर बजाया जानेवाला एक प्रकारका बाजा जो रोशनचौकीके साथ बजाया जाता है, नफीरी। २ रोशनचौकी देखो।

शहबाला (फा० पु०) वह छोटा बालक जो विवाहके समय दूल्हेके साथ पालकी पर अथवा उसके पीछे घोड़े पर बैठ कर जाता है। यह प्रायः वरका छोटा भाई या उसका कोई निकट सम्बन्धी हुआ करता है।

शहबुलबुल (फा० स्त्री०) एक प्रकारकी बुलबुल। इसका सारा शरीर लाल होता है, केवल कण्ठ काला होता है और सिर पर सुनहले रङ्गकी चोटी होती है।

शहमात (फा० स्त्री०) शतरंजके खेलमें एक प्रकारकी मात। इसमें बादशाहको केवल शह या किश्त दे कर इस प्रकार मात किया जाता है, कि बादशाहके चलनेके लिये और कोई घर ही नहीं रह जाता।

शहर (फा० पु०) मनुष्यकी वह बड़ी बस्ती जो कसबेसे बहुत बड़ी हो, जहां हर पेशेके लोग रहते हों और जिसमें अधिकतर पक्के मकान हों। नगर देखो।

शहरपनाह (फा० स्त्री०) नगरके चारों ओर बनी हुई पक्की दीवार, वह दीवार जो किसी नगरके चारों ओर रक्षाके लिये बनाई जाय, शहरकी चार-दीवारी।

शहरी (फा० वि०) १ शहरसे सम्बन्ध रखनेवाला, शहरका। २ शहरका रहनेवाला, नगर-निवासी, नागरिक।

शहवत (अ० स्त्री०) १ कामातुरता, कामका उद्रेक। २ भोग विलास, विषय, मैथुन।

शहसवार (फा० पु०) वह जो घोड़े पर अच्छी तरह सवारी कर सकता हो, अच्छा सवार।

शहादत (अ० स्त्री०) १ गवाही, साक्ष। २ सबूत, प्रमाण। ३ धर्मके लिये लड़ाई आदिमें मारा जाना, शहदी होना।

शहाना (हिं० पु०) १ सम्पूर्ण जातिका एक राग। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह राग फरोदस्त और काम्हड़ाको मिला कर बनाया जाता है और इसका व्यवहार प्रायः उत्सवों तथा धर्म सम्बन्धी कार्योंमें होता है। शास्त्रके अनुसार यह मालकोश रागकी रागिणी है। गानेका समय ११ दण्डसे १५ दण्ड तक है। २ वह जोड़ा जो विवाहके समय दूल्हेको पहनाया जाता है। (वि०) ३ शाही या बादशाहोंका-सा, राजाओंके योग्य, राजा-सी। ४ बहुत बढ़िया, उत्तम।

शहाना काम्हड़ा (हिं० पु०) सम्पूर्ण जातिका एक प्रकारका काम्हड़ा राग। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

शहाब (फा० पु०) एक प्रकारका गहरा लाल रङ्ग। यह कुसुमके खूब अच्छे और लाल रंगमें आम या इमलीकी छाल मिला कर बनाया जाता है।

शहाबा (हिं० पु०) अगिया बेताल देखो।

शहाबी (हिं० वि०) शहाबके रङ्गका, गहरा लाल।

शहीद (अ० पु०) वह व्यक्ति जो धर्म या इसी प्रकारके और किसी शुभ कार्यके लिये युद्ध आदिमें मारा गया हो, न्यौछावर या बलिदान होनेवाला व्यक्ति।

शांवत्य (सं० पु०) वैदिक आचार्यभेद, शंवत्‌पत्रऋषिके गोत्रापत्य। (आश्व० गृ० ४।८।२६)

शांशप (सं० पु०) शिंशपाया विकारः (पलाशादिभ्यो वा। पा ४।३।१४१) इति अण्। शिंशपाविकार, चमस। यह यज्ञ आदिमें व्यवहृत होता है।

शांशपक (सं० लि०) शिंशपाका निकटवर्त्ती स्थान।

शांशपायन (सं० पु०) मुनिविशेष। (विष्णुपु० ३।६।१६)

शांशपायनक (सं० लि०) शांशपायन-सम्बन्धी।

शांशपास्थल (सं० लि०) शिंशपास्थल-सम्बन्धी। (पा ७।३।१)

शाइस्तगी (फा० स्त्री०) १ शिष्टता, सभ्यता, तहजीब। २ भलमनसी, आदमीयत।

शाइस्ता (फा० वि०) १ शिष्ट, सभ्य, तहजीबवाला। २ विनती, नम्र। ३ जो अच्छी चाल सीखा हो, अदब कायदा जाननेवाला।

शाक (सं० पु० क्ली०) शक्यते भोक्तुमिति शक-घञ्। पत्रपुष्पादि, भाजी, तरकारी, साग। पर्याय—हरितक, शिग्रु, सिग्रु, हारितक। (शब्दरत्ना०)

पत्र, पुष्प, फल, नाल (डंटा) कन्द और संस्वेज अर्थात् छत्राक आदि ये छः प्रकारके शाक कहे गये हैं। ये यथाक्रम उत्तरोत्तर गुरु होते अर्थात् पत्रसे पुष्प गुरु और पुष्पसे फल और फलसे नाल इस प्रकार जानना होगा।

गुण—शाक मात्र ही विष्टम्भी, गुरु, रुक्ष, अतिशय मलवर्द्धक और मलमूत्रनिःसारक। शाकका सेवन करनेसे शरीरको अस्थि, नेत्र, बल, रक्त, शुक्र, बुद्धि, स्मृति और गति विनष्ट होती है तथा अकालमें केश पकता है। शाकमें सभी रोग अवस्थित हैं अर्थात् शाक भोजन करनेसे सभी रोग होते हैं। इसलिये रोगमात्रमें ही शाकभोजन निषिद्ध है।

प्रवाद है, कि मांससे मांसकी और शाकसे मलकी वृद्धि होती है। शाक भोजन करनेसे केवल मलवृद्धि ही हुआ करती है। भावप्रकाश, सुश्रुत आदि वैद्यक ग्रन्थोंमें शाकवर्गमें शाकोंके नाम, पर्याय और गुण सविस्तार लिखे हैं। यहाँ केवल नाम दिये जाते हैं। गुण और पर्याय आदिका विषय इन्हीं सब शब्दोंको देखनेसे मालूम होगा।

शाकसमूहके नाम—वास्तुक, पोतकी, श्वेतमरुषा, लोहित मरुषा, तण्डुलीय, जलतण्डुलीय, पालङ्क, नाडिक, कालशाक, पट्टशाक, कलम्बी, लोणी, वृहल्लोणी, चाङ्गेरी, चुक्रा, चिञ्चा, हिलमोचिका, शितिवार, मूलपत्रक, द्रोणपुष्पी, यवानी, चक्रमर्द, सेहुण्ड, पर्पट, गोजिह्वा, पटोलपत्र, गुडूची कासमर्द, चणकशाक, कलायशाक, सार्षपशाक, पुष्पशाक, कदलीपुष्प, शोभाञ्जन पुष्प, शाल्मलीपुष्प, सिमूलपुष्प।

कुष्माण्ड अलावू आदिको फलशाक कहते हैं। इनका गुण—कुष्माण्ड, कुष्माण्डी, अलावू, २ तुम्बी, कर्कटी, चिचिण्ड, करेला, महाकोशातकी, पटोल, शिम्बि, शिम्बि, कोलशिम्बि, शोभाञ्जन, वृन्ताक, डिण्डिश, पिण्डार, कर्कोटकी, डोडिका और कण्टकारी ये सब फलशाक हैं। नालशाक सर्षपनाल है।

कन्दशाक—शूरण अर्थात् ओल आदिको कन्दशाक कहते हैं। यह शाकवर्ग इस प्रकार है—शूरण, आलुक, (यह काष्ठालुक, शङ्खालुक और पिण्डालुक आदि अनेक प्रकारका है) लघुमूलक, गाँजर, कदलीकन्द, मानकन्द, वाराहीकन्द, हस्तिकर्ण, केमुक, कसेरु (केशर), शालूक, ये सब शाकवर्ग हैं। हालका उत्पन्न, अकालमें उत्पन्न, जीर्ण, व्याधियुक्त, कीड़ोंसे खाया और अग्नि जलादि द्वारा दूषित किया हुआ शाक वर्जनीय है। ये सब शाक कदापि खाने न चाहिये।

फिर अतिशय जीर्ण अर्थात् पुरातन, रूक्ष, सिद्ध अर्थात् तैलादि स्नेह भिन्न सिद्ध, कुस्थानमें उत्पन्न, कर्कश, अति कोमल, अथवा शीत और व्यालादि कर्तृक दूषित तथा शुष्क, ये सब दोषदुष्ट शाक भी वर्जनीय हैं। इसमें विशेषता यह है, कि मूलक शुष्क होनेसे वह अहित कर नहीं होता।

भूमि, गोमय, काष्ठ और वृक्षादि पर स्वेदज शाक उत्पन्न होता है। सभी प्रकारके स्वेदज शाक शीतवीर्य, स्रिदोषजनक, पिच्छिल, गुरु तथा वमि, अतीसार, ज्वर और कफरोगजनक हैं। (भावप्र०)

सुश्रुतमें शाकवर्गमें शाकोंके नाम इस प्रकार लिखे हैं—पुनर्नव, कुमदा, लोका, तण्डुल आदिको शाकवर्ग कहते हैं। यथा—

कुष्माण्ड, कालीन्दक, त्रपुस, एर्वारुक, कर्कारु, जीर्णवृन्त, पिप्पली, मिर्च, सोंठ, अदरक, हींग, जीरा, कुस्तुम्बुरु, आजवाइन, सुरसा, सुमुख, अर्जक, भूस्तृण, सुगन्ध, कासमर्द, कालमाल कुठेरक, क्षवक, खरपुष्प, शिग्रु, मधुशिग्रु, फणिज्झक, सर्षप, राजिका, कुलाहल, वेणु, गण्डीर, तिलपर्णिका, वर्षाभू, चित्रक, मूलकपोतिका लहसुन, प्याज, कलायशाक, अम्लोट, चुचुम, जीवन्ती, तण्डुलीयक, उपोदिका, विश्वातिका, नन्दी, भल्लातक, छागलान्त्री, वृक्षादनी, फञ्जी, शाल्मली, शेलु, वनस्पति प्रसव, शण, कर्बुदार, कोविदार, पुनर्णवा, वरुण, तर्कारी, उरुबुक, गुल्ञ्च, बिल्वशाक, पुद, मेथी, पालङ्क, चेनशाक, चिल्लिशाक, मण्डूकपर्णी, सप्तला, सुनिषण्ण, सुवर्चला, अम्लसुवर्चला, गोजिह्वा, मकोय, चक्रमर्द, वृहती, कण्टकारी, पटोल, वार्त्ताकु, कारवेल्लक, कटकी, मारसा, केमुक, पर्पटक, किराततिक्त, कर्कोटक, निम्ब, कोशातकी, वेत, अडूस, अर्कपुष्प आदि शाकवर्ग हैं।

(सुश्रुत सूत्रस्था०)

राजवल्लभमें लिखा है, कि पटोल, वास्तूक, मकोय और पुनर्णवाको छोड़ सभी शाक अपकारी हैं।

(पु०) २ वृक्षविशेष, सागौनका पेड़। पर्याय—शाकवृक्ष, शाकाख्य, खरपत्र, अर्जुनोपम, ककचपत्र, क्षरपत्र, अक्षिपत्र, अहीदह, श्रेष्ठकाष्ठ, स्थिरसार, गृहद्रुम। गुण—सारक, पित्तदाह और श्रमनाशक। वल्कगुण—कफनाशक, मधुर, रूक्ष, कषाय। ३ शक्ति, बल, ताकत। ४ शिरीष वृक्ष, सिरिसका पेड़। ५ नृपभेद। ६ द्वीपविशेष, सात द्वीपोंमेंसे एक द्वीप। ७ युधिष्ठिर, विक्रमादित्य, शालिवाहनादि शकराजका संवत्। ८ कर्म, काम। (त्रि०) ९ समर्थ। १० शक जाति-सम्बन्धी। ११ शक राजाका।

शाक (अ० वि०) १ भारी, कठिन। २ दुःख देनेवाला, कड़ा।

शाकक्षलम्बक (सं० पु०) १ प्याज। २ लहसुन।

शाकचुक्रिका (सं० स्त्री०) चिञ्चा, इमली। २ अमलोनीका साग, नोनिया।

शाकजम्ब (सं० त्रि०) शाकभक्षक। (पा ४।१।२३)

शाकजम्बु (सं० पु०) जनपदविशेष।

शाकट (सं० त्रि०) शकटस्येदं अण्। १ शकट-सम्बन्धी, गाड़ीका। (पु०) शकटं वहतीति शकट-(शकटादण्। पा ४।४।८०) इत्यण्। २ गाड़ीका बैल या जानवर। ३ गाड़ीका बोझ। ४ खेत। ५ धवक्ष, धौका पेड़। ६ लिसोढ़ा, लभेरा।

शाकटपोतिका (सं० स्त्री०) पोय या पोईका पौधा।

शाकटमुख (सं० क्ली०) पटवास, गन्धचूर्ण। (वैद्यकनि०)

शाकटाख्य (सं० पु०) शाकट इति आख्या यस्य। धव-वृक्ष, धौका पेड़।

शाकटायन (सं० पु०) शकटस्यापत्यं पुमान्, शकट (नड़ादिभ्यः फक्। पा ४।१।९९) इति फक्। आठ शाब्दिकोंमेंसे एक शाब्दिक।

"इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नापिशली शाकटायनः।
पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टादि शाब्दिकाः॥"
(कविकल्पद्रुम)

शाकटायनि (सं० पु०) शाकटायन। (हेम)

शाकटिक (सं० त्रि०) शकटेन गच्छतीति शकट ठक्। १ शकटगामी, गाड़ीवान। २ गाड़ीवाला। (सिद्धान्तकौ०)

शाकटिकर्ण (सं० पु०) शकटिकर्णका निकटवर्ती स्थान।

शाकटीन (सं० पु०) १ गाड़ीका बोझ। २ प्राचीनकाल की एक तौल जो बीस तुला या दो सहस्र पलकी होती थी। पर्याय—भार, आचित, शकट, शलाट।

शाकतरु (सं० पु०) शाकाख्यः तरुः। शाकवृक्ष, सागोन-का पेड़।

शाकदास (सं० पु०) भार्त्तितायनके अपत्य एक वैदिक आचार्यका नाम।

शाकद्रुम (सं० पु०) १ वरुण वृक्ष। २ शाक वृक्ष, सागौनका पेड़।

शाकद्वीप (सं० पु०) सात द्वीपोंमेंसे एक द्वीप। इसके विषयमें महाभारतमें इस प्रकार लिखा है—

जम्बूद्वीपका जैसा विस्तार कहा गया है, शाकद्वीप-का विस्तार उससे दूना है। यह द्वीप क्षीरसमुद्रसे परि-वेष्टित है। यहां बहुतसे पवित्र देश अवस्थित हैं। मानव-गण कभी भी कालग्रासमें पतित नहीं होते अर्थात् उनकी अकाल मृत्यु नहीं होती। वे सभी तेजस्वी और क्षमता-शाली हैं। यहां दुर्भिक्ष कभी भी नहीं पड़ता। मणि-विभूषित सात पर्वत और अनेक रत्नोंकी आकर नदियां बहती हैं। अति पवित्र देवर्षिगणसेवित महागिरि मेरु ही सर्वप्रधान है। इसके पश्चिममें मलयपर्वत विस्तृत है जहांसे मेघ सञ्चालित हो कर सर्वत्र प्रवर्त्तित होते हैं। उसके पूर्व भागमें जलधार नामक एक बड़ा पर्वत खड़ा है। देवराज इन्द्र वहाँसे जल ले कर वर्षाकालमें वर्षण करते हैं। उसके बाद अति उन्नत रैवत पर्वत है। भगवान् ब्रह्माके आदेशानुसार रेवती वहां वास करती हैं। सुमेरुके उत्तर अति उन्नत नवीन जलधारकी तरह श्यामल, उज्ज्वल कान्तिसम्पन्न श्यामगिरि प्रतिष्ठित है। मनुष्यगण उस गिरिसे श्यामलत्वको प्राप्त हुए हैं। सभी द्वीपोंमें ब्राह्मण गौरवर्ण, क्षत्रिय लोहित, वैश्य पीत और शूद्र कृष्णवर्णके होते हैं। एक वर्णका कोई नहीं होता, परन्तु श्यामगिरिमें सभी मनुष्य सांवले होते हैं।

श्यामगिरिके बाद अति उन्नत दुर्गशैल है। वहां केशरसम्पन्न सिंह और समीरण पाये जाते हैं। उन पर्वतोंका विस्तार उत्तरोत्तर द्विगुण है। इन सब पर्वतों पर महामेरु, महाकाश, जलद, कुमुद, उत्तर, जल धार और सुकुमार ये सात वर्ष हैं। रैवत पर्वतका कौमार वर्ष, श्यामगिरिका मणिकाञ्चन वर्ष और केशर पर्वतका मौदाकी वर्ष है। उसके बाद महापुमान् नामक एक पर्वत है जिसका परिमाण जम्बुद्वीपके समान है। यह महागिरि शाकद्वीपसे घिरा है। यहां शाक नामक एक महाद्रुम अवस्थित है। प्रजा इसकी अनुगामिनी है। उस पर्वत पर अनेक पवित्र जनपद हैं। वहांके लोग भगवान् शङ्करकी आराधना करते हैं। सिद्ध, चारण और देवगण वहां हमेशा आया करते हैं। प्रजा चार वर्णमें विभक्त है। वे दीर्घजीवी और अपने अपने धर्ममें एकान्त अनुरक्त हैं। वहां चोरका भय नहीं है, जरा-मृत्युका अधिकार नहीं है, जिस प्रकार वर्षाकालमें नदियां परिवर्द्धित होती हैं, प्रजागण भी उसी प्रकार धीरे धीरे परिवर्द्धित होती हैं। यहां अनेक शाखाओंमें विभक्त गङ्गा, सुकुमारी, कुमारी, शीताशी, वेणिका, महानदी, मणिजला और चक्षुर्वर्द्धनिका नदी बहती है। इनके सिवा और भी हजारों झरने बहते हैं। इन्द्र उनका जल ले कर वर्षा करते हैं। उन सब नदियोंका नाम और संख्या बतलाना बहुत कठिन है।

शाकसमूहके नाम—वास्तुक, पोतकी, श्वेतमरषा, लोहित मरषा, तण्डुलीय, जलतण्डुलीय, पालङ्क, नाडिक, कालशाक, पट्टशाक, कलम्बी, लोणी, वृहल्लोणी, चाङ्गेरी, चुक्र, चिञ्चा, हिलमोचिका, शितिवार, मूलपत्र, द्रोणपुष्पी, यवानी, चणचड़, सिंहुण्डु, पर्पट, गोजिह्वा, पटोलपत्र, गुडूची, कासमर्द, चणकशाक, कलायशाक, सार्षपशाक, पुष्पशाक, कदलीपुष्प, शोभाञ्जन पुष्प, शाल्मलीपुष्प, सिमूलपुष्प।

कुष्माण्ड अलावू आदिको फलशाक कहते हैं। इनका गुण—कुष्माण्ड, कुष्माण्डी, अलाबू, १ तुम्बी, कर्कटी, चिचिण्ड, करेला, महाकोशातकी, पटोल, बिम्ब, शिम्ब, कोलशिम्ब, शोभाञ्जन, वृन्ताक, डिण्डिश, पिण्डार, कर्कोटकी, डोडिका और कण्टकारी ये सब फलशाक हैं। नालशाक सर्षपनाल है।

कन्दशाक—सूरण अर्थात् ओल आदिको कन्दशाक कहते हैं। यह शाकवर्ग इस प्रकार है—सूरण, आलुक, (यह काष्ठालुक, शङ्खालुक और पिण्डालुक आदि अनेक प्रकारका है) लघुमूलक, गाजर, कदलीकन्द, मानकन्द, वाराहीकन्द, हस्तिकर्ण, केमुक, कसेरु (केसर), शालूक, ये सब शाकवर्ग हैं। हालका उत्पन्न, अकालमें उत्पन्न, जीर्ण, व्याधियुक्त, कीटोंसे खाया और अग्नि जलादि द्वारा दूषित किया हुआ शाक वर्जनीय है। ये सब शाक कदापि खाने न चाहिये।

फिर अतिशय जीर्ण अर्थात् पुरातन, रुक्ष, सिद्ध अर्थात् तैलादि स्नेह भिन्न सिद्ध, कुस्थानमें उत्पन्न, कर्कश, अति कोमल, अथवा शीत और व्यालादि कर्तृक दूषित तथा शुष्क, ये सब दोषयुक्त शाक भी वर्जनीय हैं। इसमें विशेषता यह है, कि मूलक शुष्क होनेसे यह अहित कर नहीं होता।

भूमि, गोमय, काष्ठ और वृक्षादि पर स्वेदज शाक उत्पन्न होता है। सभी प्रकारके स्वेदज शाक शीतवीर्य, त्रिदोषजनक, पिच्छिल, गुरु तथा वमि, अतीसार, ज्वर और कफरोगजनक हैं। (भावप्र०)

सुश्रुतमें शाकवर्गमें शाकोंके नाम इस प्रकार लिखे हैं—पुष्पफल, कुम्हड़ा, लौकी, तरबूज आदिको शाकवर्ग कहते हैं। यथा—

कुष्माण्ड, कालीन्दक, त्रपुस, एर्वारुक, कर्कारु, शीर्णवृन्त, पिप्पली, मिर्च, सोंठ, अदरक, हींग, जीरा, कुस्तुम्बुरु, जम्बीरी, सुरसा, सुमुख, अर्जक, भूस्तृण, सुगन्ध, कासमर्द, कालमाल कुठेरक, क्षवक, खरपुष्प, शिग्रु, मधुशिग्रु, फणिज्झक, सर्षप, राजिका, कुलाहल, वेणु, गण्डीर, तिलपर्णिका, वर्षाभू, चित्रक, मूलकपोतिका लहसुन, प्याज, कलायशाक, जम्बीर, सुमुख, जीवन्ती, तण्डुलीयक, उपोदिका, चिर्बोतिका, लम्बी, भल्लातक, छागलान्त्री, वृक्षादनी, फञ्जी, शाल्मली, शेलु, वनस्पति प्रसव, शण, कर्बुदार, कोविदार, पुनर्नवा, वरुण, तर्कारी, उरुबुक, गुलञ्च, बिल्वशाक, पुष्प, मेथी, पालङ्क, पीलुशाक, चिल्लिशाक, मण्डूकपर्णी, ससला, सुषुणि, सुवर्चला, अलसुवर्चला, गोजिह्वा, मकोय, अर्कपत्र, वृहती, कण्टकारी, पटोल, वार्त्ताकु, कारवेल्लक, कटकी, मारसा, केमुक, पर्पटक, किरातिक्त, कर्कोटक, निम्ब, कोशातकी, वेत्र, अडूस, अर्कपुष्प आदि शाकवर्ग है।

(सुश्रुत सूत्रस्था०)

राजवल्लभमें लिखा है, कि पटोल, वास्तूक, मकोय और पुनर्नवाको छोड़ सभी शाक अपकारी हैं।

(पु०) २ वृक्षविशेष, सागोनका पेड़। पर्याय—शाकवृक्ष, शाकाख्य, खरपत्र, अर्जुनोपम, ककचपत्र, क्षरपत्र, अतिपत्र, महीरुह, श्रेष्ठकाष्ठ, स्थिरसार, गृहद्रुम। गुण—सारक, पित्तदाह और श्रमनाशक। वल्क-गुण—कफनाशक, मधुर, रुक्ष, कषाय। ३ शक्ति, बल, ताकत। ४ शिरीष वृक्ष, सिरिसका पेड़। ५ नृपभेद। ६ द्वीपविशेष, सात द्वीपोंमेंसे एक द्वीप। ७ युधिष्ठिर, विक्रमादित्य, शालिवाहनादि शकराजका संवत्। ८ कर्म, काम। (त्रि०) ९ समर्थ। १० शक जाति-सम्बन्धी। ११ शक राजाका।

शाक (अ० वि०) १ भारी, कठिन। २ दुःख देनेवाला, कड़ा।

शाककलम्बक (सं० पु०) १ प्याज। २ लहसुन।

शाकचुक्रिका (सं० स्त्री०) चिञ्चा, इमली। २ अमलोनी-का साग, नोनिया।

शाकजाघ (सं० त्रि०) शाकभक्षक। (पा ४।१।१७३)

शाकजम्बु ([redacted]० पु०) जनपदविशेष।

शाकट (सं० त्रि०) शकटस्येदं अण्। १ शकट-सम्बन्धी, गाड़ीका। (पु०) शकटं वहतीति शकट-(शकटादण्। पा ४।४।८०) इत्यण्। २ गाड़ीका बैल या जानवर। ३ गाड़ीका बोझ। ४ खेत। ५ धववृक्ष, धौका पेड़। ६ लिसोड़ा, लभेरा।

शाकटपोतिका (सं० स्त्री०) पोय या पोईका पौधा।

शाकटमुख (सं० क्ली०) पटवास, गन्धचूर्ण। (वैद्यकनि०)

शाकटाख्य (सं० पु०) शाकट इति आख्या यस्य। धव-वृक्ष, धौका पेड़।

शाकटायन (सं० पु०) शकटस्यापत्यं पुमान्, शकट (नड़ादिभ्यः फक्। पा ४।१।९९) इति फक्। आठ शाब्दिकोंमेंसे एक शाब्दिक।

"इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नापिशली शाकटायनः।
पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टादि शाब्दिकाः॥"
(कविकल्पद्रुम)

शाकटायनि (सं० पु०) शाकटायन। (हेम)

शाकटिक (सं० त्रि०) शकटेन गच्छतीति शकट-ठक्। १ शकटगामी, गाड़ीवान। २ गाड़ीवाला। (सिद्धान्तकौ०)

शाकटिकर्ण (सं० पु०) शकटिकर्णका निकटवर्ती स्थान।

शाकटीन (सं० पु०) १ गाड़ीका बोझ। २ प्राचीनकाल की एक तौल जो बीस तुला या दो सहस्र पलकी होती थी। पर्याय—भार, आचित, शकट, शलाट।

शाकतरु (सं० पु०) शाकाख्यः तरुः। शाकवृक्ष, सागौन-का पेड़।

शाकदास (सं० पु०) भारद्वितायनके अपत्य एक वैदिक आचार्यका नाम।

शाकद्रुम (सं० पु०) १ वरुण वृक्ष। २ शाक वृक्ष, सागौनका पेड़।

शाकद्वीप (सं० पु०) सात द्वीपोंमेंसे एक द्वीप। इसके विषयमें महाभारतमें इस प्रकार लिखा है—

जम्बूद्वीपका जैसा विस्तार कहा गया है, शाकद्वीप-का विस्तार उससे दूना है। यह द्वीप क्षीरसमुद्रसे परि-वेष्टित है। यहां बहुतसे पवित्र देश अवस्थित हैं। मानव-गण कभी भी कालग्रासमें पतित नहीं होते अर्थात् उनकी अकाल मृत्यु नहीं होती। वे सभी तेजस्वी और क्षमता-शाली हैं। यहां दुर्भिक्ष कभी भी नहीं पड़ता। मणि-विभूषित सात पर्वत और अनेक रत्नोंकी आकर नदियां बहती हैं। अति पवित्र देवर्षिगणसेवित महागिरि मेरु ही सर्वप्रधान हैं। इसके पश्चिममें मलयपर्वत विस्तृत है जहांसे मेघ सञ्चालित हो कर सर्वत्र प्रवर्त्तित होते हैं। उसके पूर्व भागमें जलधार नामक एक बड़ा पर्वत खड़ा है। देवराज इन्द्र वहांसे जल ले कर वर्षाकालमें वर्षण करते हैं। उसके बाद अति उन्नत रैवत पर्वत है। भगवान् ब्रह्माके आदेशानुसार रैवती यहां वास करती हैं। सुमेरुके उत्तर अति उन्नत नवीन जलधारकी तरह श्यामल, उज्ज्वल कान्तिसम्पन्न श्यामगिरि प्रतिष्ठित है। मनुष्यगण उस गिरिसे श्यामलत्वको प्राप्त हुए हैं। सभी द्वीपोंमें ब्राह्मण गौरवर्ण, क्षत्रिय लोहित, वैश्य पीत और शूद्र कृष्णवर्णके होते हैं। एक वर्णका कोई नहीं होता, परन्तु श्यामगिरिमें सभी मनुष्य सांवले होते हैं।

श्यामगिरिके बाद अति उन्नत दुर्गशैल है। यहां केशरसम्पन्न सिंह और समीरण पाये जाते हैं। उन पर्वतोंका विस्तार उत्तरोत्तर द्विगुण है। उन सब पर्वतों पर महामेरु, महाकाश, जलद, कुमुद, उत्तर, जल धार और सुकुमार ये सात वर्ष हैं। रैवत पर्वतका कौमार वर्ष, श्यामगिरिका मणिकाञ्चन वर्ष और केशर पर्वतका मौदाकी वर्ष है। उसके बाद महापुमान् नामक एक पर्वत है जिसका परिमाण जम्बुद्वीपके समान है। यह महागिरि शाकद्वीपसे घिरा है। यहां शाक नामक एक महाद्रुम अवस्थित है। प्रजा उसकी अनुगामिनी है। उस पर्वत पर अनेक पवित्र जनपद हैं। यहांके लोग भगवान् शङ्करकी आराधना करते हैं। सिद्ध, चारण और देवगण यहां हमेशा आया करते हैं। प्रजा चार वर्णोंमें विभक्त है। वे दीर्घजीवी और अपने अपने धर्ममें एकान्त अनुरक्त हैं। यहां चोरका भय नहीं है, जरा मृत्युका अधिकार नहीं है, जिस प्रकार वर्षाकालमें नदियां परिवर्द्धित होती हैं, प्रजागण भी उसी प्रकार धीरे धीरे परिवर्द्धित होती है। यहां अनेक शाखाओंमें विभक्त गङ्गा, सुकुमारी, कुमारी, शीताशी, वेणिका, महानदी, मणिजला और चक्षुर्वर्द्धनिका नदी बहती है। इनके सिवा और भी हजारों झरने बहते हैं। इन्द्र उनका जल ले कर वर्षा करते हैं। उन सब नदियोंका नाम और संख्या बतलाना बहुत कठिन है।

मत्स्यपुराणमें भी महाभारतकी अपेक्षा शाकद्वीपका सविस्तर वर्णन और उसके अन्तर्गत अनेक जनपदादि-का उल्लेख है*। श्रीमद्भागवत और देवीभागवतोक्त शाकद्वीप आपसमें मिलने पर भी महाभारत अथवा किसी दूसरे पुराणके साथ उसका मेल नहीं खाता† । किस किस पुराणमें शाकद्वीपका कैसा वर्षविभाग है, उसीकी एक तालिका नीचे दी गयी है।

	मात्स्यमत	विष्णुपुराण	गारुड़	ब्रह्माण्ड	भागवत	देवीभागवत
१म	जलधार वा गतगय	जलद	जलद	जलधार	पुरोजव	पुरोजव
२य	सुकुमार वा शैशिर	कुमार	कुमार	सुकुमार	मनोजव	मनोजव
३य	कौमार वा सुखोदय	सुकुमार	सुकुमार	कौमार	वेपमान	पवमान
४र्थ	मणीचक वा आनन्दक	मणीचक	मणीचक	मणीचक	धूम्रानीक	धूम्रानीक
५म	कुसुमोत्तर वा मोमक	कुसुमोद	कुसुमोद	कुसुमोत्तर	चित्ररेफ	चित्ररेफ
६ष्ठ	मैनाक वा क्षेमक	मौदाकि	मौदाकि	मौदाक	बहुरूप	बहुरूप
७म	ध्रुव वा विभ्राज	महाद्रुम	महाद्रुम	महाद्रुम	विश्वाधार	विश्वधृक्

* मत्स्यपुराण १२२ अध्याय द्रष्टव्य।

† भागवत ५म स्कन्ध २० अध्याय, देवीभागवत ८म स्कन्ध १२ अ० द्रष्टव्य।

कोई कोई कहते हैं, कि कालभेदसे नामभेद हुआ है। जो हो, प्राचीन नाम विलुप्त होनेसे अभी शाकद्वीपको वर्त्तमान अवस्थितिका निरूपण करना कठिन हो गया है। भिन्न भिन्न पुराणमें शाकद्वीपके सम्बन्धमें नाना मत दिखाई देने पर भी मत्स्यपुराण और महाभारतका मत एक सा रहनेसे दोनों ही मत ग्रहण करने योग्य हैं।

मत्स्य और महाभारतके मतसे जम्बूद्वीप (जिसका अधिकांश ले कर ही भारतवर्ष बना है) के बाद ही शाकद्वीप है, मेरु वा सुमेरु इसकी एक सीमा है। ग्रीक-ऐतिहासिक हिरोदोतसने भी लिखा है,—हिन्दुस्तान (India proper) और सिथिया (Scythia) के मध्य हिमदेश (Hemodes वा Hemodus) नामक महागिरि पड़ता है। वर्त्तमान मध्यएशियाका पामीर नामक गिरि ही पुराणोक्त मेरु वा सुमेरुका दक्षिणांश समझा जाता है।

ग्रीक लोगोंके मतसे हिमदेशमें (Hemodes) देवताओं का वास था। पुराणके मतसे भी मेरु वा सुमेरु-शिखर पर देवगण रहते हैं। अतः पामीर और तत्-संलग्न तुर्किस्तान तक विस्तृत पर्वतमालाको ही जम्बूद्वीप और शाकद्वीपका व्यवधान मानना होगा। अति पूर्वकालमें इस दुर्गम प्रदेशमें आसानीसे कोई भी नहीं जा सकता था और दोनों देशके लोगोंके साथ परस्पर सम्बन्ध रहनेसे अनेक कल्पित आख्यान प्रचलित हुए होंगे।

पारस्य देशीय पूर्वतन राजाओंकी प्राचीनतम शिला-लिपियोंमें शक या शकजातिका उल्लेख है। भारतीय शक कुशनोंकी मुद्रामें भी 'शाक' नाम पाया जाता है। इस शक या शाकका हिरोदोतस, ष्ट्राबो आदि पाश्चात्य ऐतिहासिक और भौगोलिकोंने सिथीय* (Scythian) या साकितई (Sakitai) नामसे उल्लेख किया है।

ष्ट्राबोने लिखा है,—कास्पीयसागरको पूर्वाञ्चलवासी सभी जातियां सिथी कहलाती हैं। सागरके ठीक पासहीमें दही (Dahae) है। इसमें कुछ पूर्व मस्सगेतई (Massagetai) और साकोंका वास है।

* Scythae = शकद्वीपी।

किन्तु इन सब जातियोंका विशेष विशेष नाम है। ये लोग एक जगह स्थायी भावसे नहीं रहते। इन लोगोंमें असि (Asi), पसियानी (Pasiani), तोखारी और सकरनलोका नाम प्रसिद्ध है। इन लोगोंने ग्रीकोंसे बक्ट्रिया (Bactria)* जीता था। साक लोगोंने (Sacae) एशियामें प्रवेश कर किमेरी (Cimmerae) लोगोंकी तरह बक्ट्रिया और अर्मेनियाके प्रधान देशोंको अधिकार किया था तथा उनके नामानुसार वह स्थान शाकसेनी (Sacasenae) नामसे प्रसिद्ध हुआ¶।

दियोदोरसने लिखा है,—"शाक (Sacae or Scythian) लोगोंका आदि वासस्थान अरक्षेसके ऊपर था। एला (Ella = इला) नामकी पृथ्वीजाता एक कुमारीसे यह जाति उत्पन्न हुई है। इस कुमारीको कमरसे ऊपर नारी सी और नीचे सर्प सी आकृति थी। जुपिटरके औरससे उस कुमारीके गर्भसे सिकदिस् (Scythes) वा शाक नामक एक पुत्रने जन्मग्रहण किया। इसके दो पुत्र थे, पालि (Palis) और नाप (Napas), दोनों ही महावीर समझे जाते थे। उनके नामानुसार पालिया और नापिया जातिका नामकरण हुआ है। उन्होंने बहुदूरवर्त्ती इजिप्टदेशमें नीलनद तक अधिकार किया था तथा अनेक जातियोंको हराया था। उनके प्रभावसे शकराज्य पूर्वसागरसे कास्पीय और मेवती (Maeotis) हद तक फैल गया था। इस जातिके अनेक राजे राज्य कर गये हैं। उनके वंशसे शाक (Sacae), मस्सग (Massagetai), अरिअस्प (Ariaspa)† आदि अनेक श्रेणियोंकी उत्पत्ति हुई है। उन्होंने बहुतेरे साम्राज्योंको विपर्यस्त कर आसिरीय और मिदीयको जीता था तथा सौरमतीय (Sauromatae) लोगोंको अरक्षेसके किनारे बसाया था।"+

पूर्वतन ग्रीक ऐतिहासिकोंके वर्णनानुसार वर्त्तमान युरोपीय पुराविदोंने स्थिर किया है, कि वर्त्तमान तातार, एशियाटिक रूसिया, साइवेरिया, मस्कोवी, क्रिमिया, पोलण्ड, हङ्गेरीका कुछ अंश, लिथुयनिया, जर्मनीका उत्तरांश, स्वीडेन, नार्वे आदि देशोंको ले कर प्राचीन सिदिया (या शाकद्वीप *) विस्तृत था।

शाकद्वीपमें वर्ण-विभाग।

अभी देखा जाता है, कि शाकद्वीप जम्बूद्वीपके बाद ही हुआ। वर्त्तमान तुर्किस्तान, साइवेरिया, एशियास्थ रूस, पोलण्ड आदि शाकद्वीपके मध्य ठहराया गया। किन्तु इन सब स्थानोंमें वर्ण-विभाग प्रचलित था, इस भारतकी तरह वहां आर्य्यसमाज था, इसका प्रमाण हो क्या है?

बहुतेरे शाकद्वीपको म्लेच्छदेश बतलाते हैं, पर हमें जो प्राचीन प्रमाण मिला है, उससे जाना जाता है, कि शाकद्वीप पूर्वकालमें कभी भी म्लेच्छदेश नहीं समझा जाता था। पूर्ववर्णित महाभारतके वर्णनसे ही यह बहुत कुछ प्रमाणित होता है। अब देखना चाहिये, कि शाकद्वीपमें वर्णविभाग किस प्रकार प्रचलित था?

महाभारतमें लिखा है—उस शाकद्वीपमें पुण्यप्रद लोक प्रसिद्ध चार जनपद हैं, यथा—मग, मशक, मानस और मन्दग। मग-विभागमें स्वकर्मनिरत श्रेष्ठ मग ब्राह्मणोंका वास, मशक-विभागमें धार्मिक और सर्व्वकामप्रद मशक नामक क्षत्रियोंका वास, मानस-विभागमें सर्व्वकामसम्पन्न, धर्मार्थतत्पर और शूर मानस नामक वैश्य धार्मिकोंका वास तथा मन्दग-विभागमें नित्यधर्मनिरत मन्दग नामक शूद्रोंका वास है। यहां राजा नहीं हैं या दण्डधारी भी नहीं हैं। वे धार्मिक मनुष्य अपने धर्मके प्रभावसे एक दूसरेकी रक्षा किया करते हैं। (भीष्मपर्व ११ अध्याय)

विष्णुपुराण (२।४।६९-७१)में भी लिखा है—मग,

* पौराणिक नाम वाह्लिक।

¶ Strabo, lib, xi

† अरि-अस्प = आर्याश्व (संस्कृत)

+ Diodorus Siculus, ook II.

* कोई कोई कह सकते हैं, कि महाभारत और मात्स्यके मतसे जब शाकद्वीप क्षीरोदसागरवेष्टित है,तब हम किस प्रकार उक्त विस्तृत भूभागको शाकद्वीप मान सकते हैं। जिस भूभागके दो ओर जल है, पुराणमें उसीको द्वीप कहा है। पूर्वोक्त भूभागके दो ओर जो जल है उसे सब कोई स्वीकार करेंगे।

मगध, मानस और मन्दग ये चार वर्ण हैं। मगगण सर्वब्राह्मणश्रेष्ठ, मागधगण क्षत्रिय, मानसगण वैश्य और मन्दगगण शूद्र हैं। इस शाकद्वीपमें सूर्यरूपधारी विष्णु वास करते हैं।

भविष्यपुराण और साम्बपुराणमें भी ठीक वैसा ही लिखा है,—जम्बूद्वीपके बाद विख्यात शाकद्वीप है। यहां चातुर्वर्ण्यसमायुक्त जनपद है। उस जनपद (और वहां बसनेवाली चार जाति)-का नाम मग, मशग, मानस और मन्दग या मन्दस है। मगगण ब्राह्मण, मशगगण क्षत्रिय, मानसगण वैश्य और मन्दसगण शूद्र समझे जाते हैं। उनमें सङ्कर वर्ण नहीं है। सभी धर्माश्रित हैं। धर्मका किसी प्रकारका व्यभिचार न रहनेसे प्रजा एकान्त सुखी हैं। मेरे (अर्थात् सूर्यके) तेज द्वारा ये विश्वकर्मासे सृष्ट हुए हैं। उनके लिये वेदोक्त विविध स्तोत्र और गुह्य विषय द्वारा मैंने चार वेद प्रकाश किये हैं।

उपरोक्त पौराणिक प्रमाणसे शाकद्वीपमें जो चार वर्ण थे उसे अब कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। महाभारतकी 'मशक' और भविष्योक्त 'मशग' नामक क्षत्रिय जाति है जो ग्रीक ऐतिहासिक हिरोदोतस और स्ट्राबो प्रभृति द्वारा Massagetae अर्थात् मस्सग नामसे वर्णित हुई है, उसमें अब कोई सन्देह रह नहीं जाता। साकितई या शाकद्वीपमें* इस मशगके अलावा दूसरी जातिका वास था, यह भी ग्रीक ऐतिहासिकगण लिपिबद्ध कर गये हैं। हिरोदोतसने और भी लिखा है, कि उस मशग आदि वीर जातिने ही असुर (Assyria) और मद्र (Media)-को जीत कर अरक्षसके किनारे† 'सौरमतीय' (Sauromatian=सूर्योपासक मग?) लोगोंको प्रतिष्ठित किया था। मार्कण्डेयादि किसी किसी पुराणमें लिखा है, कि प्रियव्रतके पुत्र मेधातिथि शाकद्वीपके अधीश्वर हुए थे। अतएव अतिप्राचीन कालमें आर्यप्रभाव-विस्तारके साथ वहां भी जो चातुर्वर्ण्य-समाज सङ्गठित हुआ था, इसमें सन्देह नहीं।

बहुतोंका विश्वास है, कि मध्य एशियावासी प्राचीनतम आर्यसन्तानोंने भारतमें आ कर उपनिवेश बसानेके पीछे यहांके ब्रह्मावर्त्त-प्रदेशमें चातुर्वर्ण्य समाज सङ्गठित किया था। किन्तु अभी ये सब बातें सत्य प्रतीत नहीं होतीं। वैदिक आर्यों के समयसे जो चार वर्ण स्थिर हुए थे, मध्य-एशियामें ही जो वर्ण-विभागकी सृष्टि हुई थी, यह अभी बिलकुल असत्य प्रतीत नहीं होता। ईरानीय (आर्य) और तुरानीय दोनों प्राचीन समाजोंमें ही वर्णभेद हुआ था, यह पुराणादि ग्रन्थसे बहुत कुछ जाना जाता है।

जो प्रचलित पुराणोंके आख्यानोंको अतिप्राचीन नहीं मानते, उन्हें विश्वास दिलानेके लिये अपने ऋग्वेदोक्त चार वर्णविभाग और प्राचीन पारसिकोंके आदि धर्मशास्त्र जन्द अवस्ताका उल्लेख कर सकते हैं। जन्द अवस्ताके अन्तर्गत 'यस्न' नामक विभागमें १ आथ्रव, २ रथेष्ठाय, ३ वास्त्रियफशुयन्त और ४ हुइति इन चार वर्णोंका उल्लेख है। (यस्न १९।४६) यस्नके संस्कृत टीकाकार नेरियोसिंहने उन चार शब्दोंका यथाक्रम इस प्रकार अर्थ लगाया है, १ आचार्य, २ क्षत्रिय, ३ कुटुम्बिन् और ४ प्रकृतिकर्मन्। इन चार प्रकारके लोगोंके उल्लेखके पहले ही यस्नमें (१९।४४) देखा जाता है, "यह जो आदेश अहुरमज्द करते हैं, उसे चार पित्र या श्रेणी ही माने।" इसके सिवा यस्नकी दूसरी जगहमें भी (१४।१६) लिखा है—आथ्रव (या आचार्य) रथेष्ठाओं (रथस्थ या क्षत्रिय) और वास्त्रियफशुयन्त (कुटुम्बी अर्थात् वैश्य) ये तीन श्रेणी ही मज्दीय धर्मकी शक्तिस्वरूप हैं। इस भारतमें भी जैसे प्रथम त्रिवर्णका ही सर्वश्रेष्ठ और आर्यसमाजकी शक्तिस्वरूपता बताया है अग्निपूजक ईरानियोंके पुराचीन धर्मग्रन्थमें भी वैसा ही देखा जाता है। अवस्ता शास्त्रके श्लोकोंकी आलोचना कर पाश्चात्य पण्डित दार्मेस्टेटरने लिखा है,—

* Vide Pinkerton's Researches on Goth, vol. II and Tod's Rajasthan, vol. I. 57-61.

† वर्त्तमान नाम आरक्स, महाभारतोक्त चक्षु। टाडने उद्धृत किया है, "Sakitai, a region at the fountain of the Oxus and Jaxartes, styled Sakiti from the Sacae;

See D'Anville's Anc. Geog.

"It is thus established that according to the Zend Avesta the first class (pishtra) consists of teachers or priests, of Brahmans, the second of knights, *Kshatriyas*, exactly in India consequently a division of the nobility into Brahmans and Kshatriyas; and the precedence of the former over all the classes, is not the work of the Indian Brahmans"

शाकद्वीपका जो स्थान निर्देश किया गया है, उसमें वर्त्तमान पारस्यदेशके उत्तरांशमें ही शाकद्वीपकी सीमा आरम्भ है। अवस्ता पारसियोंका प्राचीनतम धर्मशास्त्र है। इस अवस्तामें जब (आविस्तक धर्मप्रवर्त्तक जरथुस्त्रके समय) चार वर्णोंका प्रसङ्ग मिलता है, तब शाकद्वीपके चार वर्णोंके सम्बन्धमें और कोई सन्देह नहीं रह जाता।

पारस्य राज्यके प्राचीन इतिहासकी आलोचना करनेसे जाना जाता है, कि खृष्ट-पूर्व ६ठी और ७वीं सदीमें सिकदीय या शाकद्वीपीयगण अत्यन्त प्रबल हो उठे थे। पारस्यसम्राट् दरायुस देश जीतनेकी आशासे ५१५ ई०सन्‌के पहले पुल द्वारा वासफोरस प्रणाली और दानियुब नदी पार कर शकोंके राज्यमें घुसे; किन्तु विफल-मनोरथ हो उन्हें लौट आना पड़ा था। फिर यह भी जाना जाता है, कि उत्तरमद्र (Media) के राजाओंने ही सबसे पहले आवस्तिक जरथुस्त्र-धर्मका प्रचार किया था। हिरोदोतसने लिखा है, कि पारस्य सम्राट्गण उत्तरमद्रोंमें (Medians) से ही पूर्वतन पारसिक पुरोहित निर्वाचित करते थे। वे सब अग्नि-पूजक पुरोहितगण मग या मगर नामसे प्रसिद्ध थे।

प्राचीन ग्रीक ऐतिहासिकोंमेंसे बहुतोंने लिखा है, कि शाकद्वीपियोंने (Scythians) समस्त उत्तरमद्र पर आधिपत्य फैलाया और सौरमतियोंको प्रतिष्ठित किया था। सौरमतीय या सूर्योपासकगण पारसिकोंके निकट मगुस या मग, हिन्दूपुराणमें 'मग' या 'मगस' और प्राचीन ग्रीकोंके निकट 'मगी' नामसे ख्यात हुए थे।

कालक्रमसे उन मग पुरोहितोंका प्रभाव समस्त सभ्य जगत्‌में फैल गया था। बहुत दिनों तक पारस्यके प्रतापशाली सम्राट्गण इन मगपुरोहितोंका प्राधान्य और शिष्यत्व स्वीकार कर गये हैं। इस मग-पुरोहित वंशके सुप्रसिद्ध जरथुस्त्रने अग्निपूजाका प्रचार किया। इस उपलक्षमें वे अवस्ता शास्त्रका प्रचार कर बुद्ध, ईसाई, चैतन्यादिकी तरह सभ्य जगत्‌में अविनश्वर नाम छोड़ गये हैं।

पाश्चात्य-मत।

वर्त्तमान पुरातत्त्वविद् और भौगोलिकोंने विशेष अनुसन्धान द्वारा ग्रीक इतिहासोक्त सिकदीय जातिके (Scythian) वासस्थान सिकदियाको ही (Scythia) प्राचीन शाकद्वीप बताया है। सभ्यता और ज्ञानमार्गमें अग्रसर हो कर ग्रीक लोगोंने नाना स्थानोंमें जा उपनिवेश बसानेकी चेष्टा की। खृष्टपूर्व ७वीं सदीके मध्यभागमें एक दल ग्रीक कृष्णसागरके उत्तरी किनारे बस गये। उस समय उन लोगोंने रूस राज्यके दक्षिणस्थ तृणाच्छादित ष्टेपी नामक प्रान्तर भागमें स्कोलोटी (Scoloti) नामकी जातिको वास करते देखा था। उस स्कोलोटी जातिका प्रकृत नामसे वर्णन न करके ग्रीकोंने उनका नाम सिकदीय रखा है। तभीसे शाकद्वीपी लोग प्राच्यतम अधिवासीके इतिहासमें सिकदीय नामसे प्रसिद्ध हैं।

हेसियडमें (Strabo vii p. 300) ८०० ई० सन्‌के पहले और हेरोदोतस (Herod iv 15)के वर्णनमें ६८६ ई० सन्‌के पहले शाकद्वीपवासीके वाणिज्य प्रभावका परिचय है। ग्रीक मिलसवासीके अरिष्टियस सिकदियोंके मध्य एशियाके वाणिज्य विषयसे अच्छी तरह जानकार थे। हिरोदोतस और हिपोक्रेटिसकी लिखित विवरणी पर अच्छी तरह विचार करनेसे मालूम होता है, कि सिकदीय जातिकी वासभूमि बहुत दिनों तक यूरोपके दक्षिण पूर्वांशमें ही थी तथा उसके पास ही शर्मशीय, बुदनो, गेलिनी, थाइसागेटी, और आइर्कि आदि अनेक भिन्न भिन्न जातियां रहती थीं। सिकदीय लोगोंका इनके साथ वाणिज्य-सम्बन्धमें इतना घनिष्ट सम्बन्ध हो गया था, कि आपसमें आचार व्यवहारमें बहुत कुछ सदृशता भी दिखाई देती थी। इस कारण ग्रीकोंने उन लोगोंको भी सिकदीय कह कर घोषित किया।

मागध, मानस और मन्दग ये चार वर्ण हैं। मगगण सर्वब्राह्मणवर्ग हैं, मागधगण क्षत्रिय, मानसगण वैश्य और मन्दगगण शूद्र हैं। इस शाकद्वीपमें सूर्यरूपधारी विष्णु वास करते हैं।

भविष्यपुराण और साम्बपुराणमें भी ठीक ऐसा ही लिखा है,—जम्बूद्वीपके बाद विख्यात शाकद्वीप है। यहां चातुर्वर्ण्यसमायुक्त जनपद है। उस जनपद (और वहां बसनेवाली चार जाति)का नाम मग, मगग, मानस और मन्दग या मन्दस है। मगगण ब्राह्मण, मगगगण क्षत्रिय, मानसगण वैश्य और मन्दगगण शूद्र समझे जाते हैं। उनमें सङ्कर वर्ण नहीं है। सभी धर्माश्रित हैं। धर्मका किसी प्रकारका व्यभिचार न रहनेसे प्रजा एकान्त सुखी है। मेरे (अर्थात् सूर्यके) तेज द्वारा ये विश्वकर्मासे सृष्ट हुए हैं। उनके लिये वेदोक्त विविध स्तोत्र और गुह्य विषय द्वारा मैंने चार वेद प्रकाश किये हैं।

उपरोक्त पौराणिक प्रमाणसे शाकद्वीपमें जो चार वर्ण थे उसे अब कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। महाभारतकी 'मशक' और भविष्योक्त 'मसग' नामक क्षत्रिय जाति है जो ग्रीक ऐतिहासिक हिरोदोतस और प्लिनी प्रभृति द्वारा Massagetae अर्थात् मसग्-गण नामसे वर्णित हुई है, उसमें अब कोई सन्देह रह नहीं जाता। साकितई या शाकद्वीपमें* इस मसगके अलावा दूसरी जातिका वास था, वह भी ग्रीक ऐतिहासिकगण लिपिबद्ध कर गये हैं। हिरोदोतसने और भी लिखा है, कि उस मसग आदि वीर जातिने ही असुर (Assyria) और मद्र (Media)को जीत कर अरक्सके किनारे† 'सौरमतीय' (Sauromatian = सूर्योपासक मग?) लोगोंको प्रतिष्ठित किया था। भागवतादि किसी किसी पुराणमें लिखा है, कि प्रियव्रतके पुत्र मेधातिथि शाकद्वीपके अधीश्वर हुए थे। अतएव अतिप्राचीन कालमें आर्यप्रभाव-विस्तारके साथ यहां भी जो चातुर्वर्ण्य-समाज सङ्गठित हुआ था, इसमें सन्देह नहीं।

बहुतोंका विश्वास है, कि मध्य एशियावासी प्राचीनतम आर्यसन्तानोंने भारतमें आ कर उपनिवेश बसानेके पीछे यहांके ब्रह्मावर्त्त-प्रदेशमें चातुर्वर्ण्य समाज सङ्गठित किया था। किन्तु अभी ये सब बातें सत्य प्रतीत नहीं होतीं। वैदिक आर्योंके समयसे जो चार वर्ण स्थिर हुए थे, मध्य-एशियासे ही जो वर्ण-विभागकी सृष्टि हुई थी, यह अभी बिलकुल असत्य प्रतीत नहीं होता। इराणीय (आर्य) और तुराणीय दोनों प्राचीन समाजोंमें ही वर्णभेद हुआ था, यह पुरातत्त्वालोचनसे बहुत कुछ जाना जाता है।

जो प्रचलित पुराणोंके आख्यानोंको अतिप्राचीन नहीं मानते, उन्हें विश्वास दिलानेके लिये हम उन्हें शाकद्वीपके चार वर्णविभाग और प्राचीन पारसिकोंके आदि धर्मशास्त्र जन्द अवस्ताका उल्लेख कर सकते हैं। जन्द अवस्ताके अन्तर्गत 'यश्न' नामक विभागमें १ आथ्रव, २ रथेष्टार, ३ वास्त्रियफ्शुयन्त और ४ हुइति इन चार वर्णोंका उल्लेख है। (यश्न १९।४६) यश्नके संस्कृत टीकाकार नेरियोसिंहने उन चार शब्दोंका यथाक्रम इस प्रकार अर्थ लगाया है, १ आचार्य, २ क्षत्रिय, ३ कुटुम्बिन् और ४ शूद्रतिकर्मन्। इन चार प्रकारके लोगोंके अन्तर्गत पहले ही यश्नमें (१९।४४) देखा जाता है, "यह जो आदेश अहुरमज्द करते हैं, उसे चार पित्र या श्रेणी ही मानें।" इसके सिवा यश्नकी दूसरी जगहमें भी (१४।८) लिखा है—आथ्रव (या आचार्य) रथेष्टाओं (रथस्थ या क्षत्रिय) और वास्त्रियफ्शुयन्त (कुटुम्बी अर्थात् वैश्य) ये तीन श्रेणी ही भारतीय आर्योंकी जातिस्वरूप है। इस भारतमें भी जैसे प्रथम त्रिवर्णको ही सर्वश्रेष्ठ और आर्यसमाजकी जातिस्वरूप बताया है अग्निपूजक इराणियोंके सुप्राचीन धर्मग्रन्थोंमें भी वैसा ही देखा जाता है। अवस्ता शास्त्रके श्रेणीकी आलोचना कर पाश्चात्य पण्डित काणेगाइवने लिखा है,—

* Vide Pinkerton's Researches on Goth, vol. II and Tod's Rajasthan, vol, I. 57-61,

† वर्त्तमान नाम आक्सस, महाभारतोक्त चक्षु। दान्विलने उद्धृत किया है, "Sakitai, a region at the fountain of the Oxus and Jaxartes, Styled Sakiti from the Sacae,

See D, Anville's Anc, Geog.

"It is thus established that according to the Zend Avesta the first class (pishtra) consists of teachers or priests, of Brahmans, the second of knights, *Kshatriyas*, exactly in India consequently a division of the nobility into Brahmans and Kshatriyas, and the precedence of the *former* over all the classes, is not the work of the Indian Brahmans"

शाकद्वीपका जो स्थान निर्देश किया गया है, उसमें वर्त्तमान पारस्यदेशके उत्तरांशमें ही शाकद्वीपकी सीमा आरम्भ है। अवस्ता पारसियोंका प्राचीनतम धर्मशास्त्र है। इस अवस्तामें जब (आविस्तक धर्मप्रवर्त्तक जरथुस्त्रके समय) चार वर्णोंका प्रसङ्ग मिलता है, तब शाकद्वीपके चार वर्णोंके सम्बन्धमें और कोई सन्देह नहीं रह जाता।

पारस्य राज्यके प्राचीन इतिहासकी आलोचना करनेसे जाना जाता है, कि खृष्ट-पूर्व ६ठी और ७वीं सदीमें सिकदीय या शाकद्वीपीगण अत्यन्त प्रबल हो उठे थे। पारस्यसम्राट् दरायुस देश जीतनेकी आशासे ५१५ ई०सन्के पहले पुल द्वारा वासफोरस प्रणाली और दानियुब नदी पार कर शकोंके राज्यमें घुसे; किन्तु विफल-मनोरथ हो उन्हें लौट आना पड़ा था। फिर यह भी जाना जाता है, कि उत्तरमद्र (Media) के राजाओंने ही सबसे पहले आवस्तिक जरथुस्त्र-धर्मका प्रचार किया था। हिरोदोतसने लिखा है, कि पारस्य सम्राट्गण उत्तरमद्रोंमें (Medians) से ही पूर्वतन पारसिक पुरोहित निर्वाचित करते थे। ये सब अग्निपूजक पुरोहितगण मग या मगर नामसे प्रसिद्ध थे।

प्राचीन ग्रीक ऐतिहासिकोंमेंसे बहुतोंने लिखा है, कि शाकद्वीपियोंने (Scythians) समस्त उत्तरमद्र पर आधिपत्य फैलाया और सौरमतियोंको प्रतिष्ठित किया था। सौरमतीय या सूर्योपासकगण पारसिकोंके निकट मगुस या मग, हिन्दूपुराणमें 'मग' या 'मगस' और प्राचीन ग्रीकोंके निकट 'मगी' नामसे ख्यात हुए थे।

कालक्रमसे उन मग पुरोहितोंका प्रभाव समस्त सभ्य जगत्में फैल गया था। बहुत दिनों तक पारस्यके प्रतापशाली सम्राट्गण इन मगपुरोहितोंका प्राधान्य और शिष्यत्व स्वीकार कर गये हैं। इस मग-पुरोहित वंशके सुप्रसिद्ध जरथुस्त्रने अग्निपूजाका प्रचार किया। इस उपलक्षमें वे अवस्ता शास्त्रका प्रचार कर बुद्ध, ईसाई, चैतन्यादिकी तरह सभ्य जगत्में अविनश्वर नाम छोड़ गये हैं।

पाश्चात्य-मत।

वर्त्तमान पुरातत्त्वविद् और भौगोलिकोंने विशेष अनुसन्धान द्वारा ग्रीक इतिहासोक्त सिकदीय जातिके (Scythian) वासस्थान सिकदियाको ही (Scythia) प्राचीन शाकद्वीप बताया है। सभ्यता और ज्ञानमार्गमें अग्रसर हो कर ग्रीक लोगोंने नाना स्थानोंमें जा उपनिवेश बसानेकी चेष्टा की। खृष्टपूर्व ७वीं सदीके मध्यभागमें एक दल ग्रीक कृष्णसागरके उत्तरी किनारे बस गये। उस समय उन लोगोंने रूस राज्यके दक्षिणस्थ तृणाच्छादित ष्टेपी नामक प्रान्तर भागमें स्कोलोटो (Scoloti) नामकी जातिको वास करते देखा था। उस स्कोलोटो जातिका प्रकृत नामसे वर्णन न करके ग्रीकोंने उनका नाम सिकदीय रखा है। तभीसे शाकद्वीपी लोग प्राच्यतम अधिवासोंके इतिहासमें सिकदीय नामसे प्रसिद्ध हैं।

हेसियडमें (Strabo vii p. 300) ८०० ई० सन्के पहले और हेरोदोतस (Herod iv 15)के वर्णनमें ६८८ ई० सन्के पहले शाकद्वीपवासीके वाणिज्य प्रभावका परिचय है। ग्रोन्निससवासीके अरिष्टियस सिकदियोंके मध्य एशियाके वाणिज्य विषयसे अच्छी तरह जानकार थे। हिरोदोतस और हिपोक्रेटिसकी लिखित विवरणी पर अच्छी तरह विचार करनेसे मालूम होता है, कि सिकदीय जातिकी वासभूमि बहुत दिनों तक यूरोपके दक्षिण पूर्वांशमें ही थी तथा उसके पास ही शर्मशीय, बुदनो, गेलिनी, थाइसापेटी, और आइर्यार्क आदि अनेक भिन्न भिन्न जातियां रहती थीं। सिकदीय लोगोंका इनके साथ वाणिज्य-सम्बन्धमें इतना घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया था, कि आपसमें आचार व्यवहारमें बहुत कुछ सदृशता भी दिखाई देती थी। इस कारण ग्रीकोंने उन लोगोंको भी सिकदीय कह कर घोषित किया।

मशक, मानस और मन्दग ये चार वर्ण हैं। मगगण ब्राह्मणश्रेष्ठ, मशकगण क्षत्रिय, मानसगण वैश्य और मन्दगगण शूद्र हैं। इन शाकद्वीपमें सूर्योपासक हिन्दु वास करते हैं।

भविष्यपुराण और साम्बपुराणमें भी ठीक वैसा ही लिखा है,—जम्बूद्वीपके बाद विख्यात शाकद्वीप है। यहां चातुर्वर्ण्यसमायुक्त जनपद है। उस जनपद (और वहां बसनेवाली चार जाति)-का नाम मग, मगग, मानस और मन्दग या मन्दग है। मगगण ब्राह्मण, मगगगण क्षत्रिय, मानसगण वैश्य और मन्दगगण शूद्र समझे जाते हैं। इनमें सङ्कर वर्ण नहीं है। सभी धर्माश्रित हैं। वर्णोंका किसी प्रकारका व्यभिचार न रहनेसे प्रजा एकान्त सुखी है। मेरे (अर्थात् सूर्यके) तेज द्वारा ये विश्वकर्मासे सृष्ट हुए हैं। उनके लिये वेदोक्त विविध स्तोत्र और गुह्य विषय द्वारा मैंने चार वेद प्रकाश किये हैं।

उपरोक्त पौराणिक प्रमाणसे शाकद्वीपमें जो चार वर्ण थे इसे अब कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। महाभारतको 'मशक' और भविष्योक्त 'मगग' नामक क्षत्रिय जाति है जो ग्रीक ऐतिहासिक हिरोदोतस और ष्ट्राबो प्रभृति द्वारा Massagetae अर्थात् मस्सगत नामसे वर्णित हुई है, इसमें अब कोई सन्देह रह नहीं जाता। साकिताई या शाकद्वीपमें* इस मशकके अलावा दूसरी जातिका वास था, वह भी ग्रीक ऐतिहासिकगण लिपिबद्ध कर गये हैं। दियोदोरसने और भी लिखा है, कि उन मशक आदि वीर जातिने ही असुर (Assyria) और मद्र (Media)को जीत कर अरक्सके किनारे‡ 'सौरमतीय' (Sauromatian = सूर्योपासक मग?) देवोंको प्रतिष्ठित किया था। भागवतादि किसी किसी पुराणमें लिखा है, कि प्रियव्रतके पुत्र मेधातिथि शाकद्वीपके अधीश्वर हुए थे। अतएव अतिप्राचीन कालमें आर्योपनिवेश-विस्तारके साथ यहां भी जो चातुर्वर्ण्य-समाज सङ्गठित हुआ था, इसमें सन्देह नहीं।

बहुतोंका विश्वास है, कि मध्य एशियावासी प्राचीनतम आर्यसन्तानोंने भारतमें आ कर उपनिवेश बसानेके पीछे यहांके ब्रह्मावर्त-प्रदेशमें चातुर्वर्ण्य समाज सङ्गठित किया था। किन्तु अभी ये सब बातें सत्य प्रतीत नहीं होती। वैदिक आर्योंके समयसे जो चार वर्ण स्थिर हुए थे, मध्य-एशियासे ही जो वर्ण-विभागकी सृष्टि हुई थी, यह अभी बिलकुल असत्य प्रतीत नहीं होता। इराणीय (आर्य) और तुरानीय दोनों प्राचीन समाजोंमें ही वर्णभेद हुआ था, यह पुरातत्त्वालोचनासे बहुत कुछ जाना जाता है।

जो प्रचलित पुराणोंके आख्यानोंको अतिप्राचीन नहीं मानते, उन्हें विश्वास दिलानेके लिये हम अति प्राचीन चार वर्णविभाग और प्राचीन पारसिकोंके आदि धर्मशास्त्र जन्द अवस्ताका उल्लेख कर सकते हैं। जन्द अवस्ताके अन्तर्गत 'यस्न' नामक विभागमें १ आथ्रव, २ रथेष्टार, ३ वास्त्रियफ्शुयन्त और ४ हुइति इन चार वर्णोंका उल्लेख है। (यस्न १९।४६) यस्नके संस्कृत टीकाकार नेरियोसिङ्गने इन चार शब्दोंका यथाक्रम इस प्रकार अर्थ लगाया है, १ आचार्य, २ क्षत्रिय, ३ कुटुम्बिन् और ४ वृषलिकर्मन्। इन चार प्रकारके लोगोंके उल्लेखके पहले ही यस्नमें (१९।४४) देखा जाता है, "वह जो आदेश चतुष्पाद कहते हैं, उसे चार पिता या श्रेणी ही मानो।" इसके सिवा यस्नकी दूसरी जगहमें भी (१४।१६) लिखा है—आथ्रव (या आचार्य) रथेष्टारो (रथस्थ या क्षत्रिय) और वास्त्रियफ्शुयन्त (कुटुम्बी अर्थात् वैश्य) ये तीन श्रेणी ही मज्दीय धर्मके साक्षिस्वरूप हैं। इस भारतमें भी जैसे प्रथम त्रिवर्णोंको ही सर्वश्रेष्ठ और आर्यसमाजको शक्तिस्वरूप बताया है तत्स्थानीय पारसियोंके सुप्राचीन धर्मग्रन्थोंमें भी वैसा ही देखा जाता है। अवस्ता शास्त्रके श्रेणियोंकी आलोचना कर पाश्चात्य पण्डित डार्मेष्टेटरने लिखा है,—

---

* Vide Pinkerton's Researches on Goth, vol. II and Tod's Rajasthan, vol. I. 57-61.

† [illegible] महाभारतोक्त मशक। टालेमीने उद्धृत किया है, "Sakitai, a region at the fountain of the Oxus and Jaxartes, Styled Sakiti from the Sacae,"

‡ See D'Anville's Anc. Geog.

"It is thus established that according to the Zend Avesta the first class (pishtra) consists of teachers or priests, of Brahmans, the second of knights, *Kshatriyas*, exactly in India consequently a division of the nobility into Brahmans and Kshatriyas, and the precedence of the former over all the classes, is not the work of the Indian Brahmans"

शाकद्वीपका जो स्थान निर्देश किया गया है, उसमें वर्त्तमान पारस्यदेशके उत्तरांशमें ही शाकद्वीपकी सीमा आरम्भ है। अवस्ता पारसियोंका प्राचीनतम धर्मशास्त्र है। इस अवस्तामें जब (आविस्तक धर्म-प्रवर्त्तक जरथुस्त्रके समय) चार वर्णोंका प्रसङ्ग मिलता है, तब शाकद्वीपके चार वर्णोंके सम्बन्धमें और कोई सन्देह नहीं रह जाता।

पारस्य राज्यके प्राचीन इतिहासकी आलोचना करनेसे जाना जाता है, कि खृष्ट-पूर्व छठो और ७वीं सदीमें सिकदीय या शाकद्वीपीगण अत्यन्त प्रबल हो उठे थे। पारस्यसम्राट् दरायुस देश जीतनेकी आशासे ५१५ ई०सन्‌के पहले पुल द्वारा वासफोरस प्रणाली और दानियुब नदी पार कर शकोंके राज्यमें घुसे, किन्तु विफल-मनोरथ हो उन्हें लौट आना पड़ा था। फिर यह भी जाना जाता है, कि उत्तरमद्र (Media) के राजाओंने ही सबसे पहले आविस्तक जरथुस्त्र-धर्मका प्रचार किया था। हिरोदोतसने लिखा है, कि पारस्य सम्राट्गण उत्तरमद्रोंसे (Medians) से ही पूर्वतन पारसिक पुरोहित निर्वाचित करते थे। ये सब अग्नि-पूजक पुरोहितगण *मग या मगर* नामसे प्रसिद्ध थे।

प्राचीन ग्रीक ऐतिहासिकोंमेंसे बहुतोंने लिखा है, कि शाकद्वीपियोंने (Scythians) समस्त उत्तरमद्र पर आधिपत्य फैलाया और सौरमतियोंको प्रतिष्ठित किया था। सौरमतीय या सूर्योपासकगण पारसिकोंके निकट मगुस या मग, हिन्दूपुराणमें 'मग' या 'मगस' और प्राचीन ग्रीकोंके निकट 'मगी' नामसे ख्यात हुए थे।

कालक्रमसे उन मग पुरोहितोंका प्रभाव समस्त सभ्य जगत्‌में फैल गया था। बहुत दिनों तक पारस्यके प्रतापशाली सम्राट्गण इन मगपुरोहितोंका प्राधान्य और शिष्यत्व स्वीकार कर गये हैं। इस मग-पुरोहित वंशके सुप्रसिद्ध जरथुस्त्रने अग्निपूजाका प्रचार किया। इस उपलक्षमें वे अवस्ता शास्त्रका प्रचार कर बुद्ध, ईसाई, चैतन्यादिकी तरह सभ्य जगत्‌में अविनश्वर नाम छोड़ गये हैं।

पाश्चात्य-मत।

वर्त्तमान पुरातत्त्वविद् और भौगोलिकोंने विशेष अनुसन्धान द्वारा ग्रीक इतिहासोक्त सिकदीय जातिके (Scythian) वासस्थान सिकदियाको ही (Scythia) प्राचीन शाकद्वीप बताया है। सभ्यता और ज्ञानमार्गमें अग्रसर हो कर ग्रीक लोगोंने नाना स्थानोंमें जा उपनिवेश बसानेकी चेष्टा की। खृष्टपूर्व ७वीं सदीके मध्यभागमें एक दल ग्रीक कृष्णसागरके उत्तरी किनारे बस गये। उस समय उन लोगोंने रूस राज्यके दक्षिणस्थ तृणाच्छादित स्तेपी नामक प्रान्तर भागमें स्कोलोटी (Scoloti) नामकी जातिको वास करते देखा था। उस स्कोलोटी जातिका प्रकृत नामसे वर्णन न करके ग्रीकोंने उनका नाम सिकदीय रखा है। तभीसे शाकद्वीपी लोग प्राच्यतन अधिवासीके इतिहासमें सिकदीय नामसे प्रसिद्ध हैं।

हेसियडमें (Strabo vii p. 300) ८०० ई० सन्‌के पहले और हेरोदोतस (Herod iv 15)के वर्णनमें ६८६ ई० सन्‌के पहले शाकद्वीपवासीके वाणिज्य प्रभावका परिचय है। ग्रीक मिलसवासीके अरिष्टियस सिकदियोंके मध्य एशियाके वाणिज्य विषयसे अच्छी तरह जानकार थे। हिरोदोतस और हिपोक्रेटिसकी लिखित विवरणी पर अच्छी तरह विचार करनेसे मालूम होता है, कि सिकदीय जातिकी वासभूमि बहुत दिनों तक यूरोपके दक्षिण पूर्वांशमें ही थी तथा उसके पास ही शर्मशोप, बुदनो, गेलिनो, थाइसापेटो, और आइर्कि आदि अनेक भिन्न भिन्न जातियां रहती थीं। सिकदीय लोगोंका इनके साथ वाणिज्य-सम्बन्धमें इतना घनिष्ट सम्बन्ध हो गया था, कि आपसमें आचार व्यवहारमें बहुत कुछ सदृशता भी दिखाई देती थी। इस कारण ग्रीकोंने उन लोगोंको भी सिकदीय कह कर घोषित किया।

हिरोदोतस (iv. 101) ने लिखा है, कि सिफदिय प्रदेशका भूपरिमाण ४००० वर्ग ष्टाडिया तथा यह इस्टरसे पलासमियोटिस और समुद्रतटसे मेलाञ्चलिनो तक विस्तृत था। किन्तु उनकी इस उक्तिसे सिकदीया-प्रदेशकी प्रकृत सीमा निर्देश नहीं हो सकती। परन्तु इतना जरूर कहा जायेगा, कि यह यूरोपके दक्षिणपूर्वांशमें कार्पेथियन पर्वतमाला और टनाई (डन) नदीके मध्यस्थलमें अवस्थित था। उन्होंने यह भी कहा है, कि इस सिकदीय या शकजातिका आदिवास एशिया-भूभागमें था। ये लोग मङ्गोल जातिके ही एक अंश हो सकते हैं। मसग (Massagetae) जाति द्वारा जन्मभूमिसे भगाये जाने पर ये आराक्सस (Araskes) नदी पार कर उत्तरी पथसे यूरोप आये और वहांके किमेरिय (Gimmerians) लोगोंको भगा कर यहीं रहने लगे। शकलोगोंकी वासभूमि पीछे शाकीयसे स्काइथी (Scythae) कहलाने लगी। किसी समय शाकद्वीपवासी शकोंने यूरोपमें आ कर उपनिवेश बसाया था, उसका पता लगाना कठिन है। पर हां, यदि राजा आर्डिसके राजत्वकालमें ६४० ई० सन्‌के पहले किमारियोंका लिडिया-लुण्ठन शकजाति कर्तृक पराभवका परवर्ती कारण माना जाय, तो उसके पहले ही यूरोपस्थ शकजातिका अभ्युदय हुआ था, ऐसा स्वीकार किया जा सकता है।

यूरोपमें आ कर शकगण जो केवल रूसके दक्षिणस्थ विस्तीर्ण ष्टेपीप्रान्तरमें आबद्ध थे, सो नहीं कृषिकार्यके लिये उस प्राचीन तृणभूमिका परित्याग कर उन लोगोंने धीरे धीरे नदीतीरवर्ती स्थानोंको अधिकार किया था। अलुता और दानिउब (Atlas and Ister) नदीके मध्यवर्ती ग्रेट-वालाचिया प्रदेश भी उनके हाथ लगा था। उसके उत्तर ट्रान्सिलभानिया देशमें अगाथार्सियन जातिका उपनिवेश था। ये लोग आर्यवंशसम्भूत और ग्रेसियोंके आचारसम्पन्न थे। निष्टर (Dniester) नदी-तट पार कर ग्रीक लोग जहां तक आनेमें समर्थ हुए थे, वहां तक उन्होंने शकजातिका वास देखा था। बागनदीके किनारे उन लोगोंने यवनभावापन्न कालिपिदि नामक एक शकजातिको (Graeco-Scythian Callipidae) और उत्तर नदीके एकसलिवस नामकी पूर्वशाखाके किनारे कृषिकर्मनिरत एक दूसरा शक-उपनिवेश देखा था। ये लोग शस्यादिको रफ्तनी करते थे। निपर नदीके वाम किनारे अवस्थित 'वनभूमि' को पार कर शकजातिका एक दूसरा उपनिवेश मिलता है। ये लोग वोरिस्थिनियन नामसे प्रसिद्ध थे। गेरहु या कनक्कामें नदीसीमा तक पूर्वांशमें कृषिजीवी और भ्रमणशील शकजातिका वास था। ये लोग हिपाकाइरिस या मोलोच्छनाके नदी सैकतवर्ती अर्द्धप्रदेशमें ही रहते थे। गेरहु नदीके पूरब क्रिमिया पर्यन्त राज-शकोंका (Royal horde of Scythians) अधिकार विस्तृत हुआ था। इसके दक्षिण पार्वत्य टोरीय जातिका वास था। आजफसागरके उपकूलसे ले कर क्रिमि और डान नदी तक फिरसे शकराजोंका अधिकार फैल गया। यहांसे ष्टेपीको ओर २० दिनका रास्ता तै करने पर मेलाञ्चलेनी जातिकी वासभूमि देखी जाती है।

ऊपरमें जो शकजातिके उपनिवेशका विषय कहा गया, उससे जाना जाता है, कि शक लोगोंने यूरोपमें आ कर विभिन्न स्थानमें भ्रमणशील जातिकी तरह वास किया था। उस समय उन्होंने प्राचीन शकजातिको योद्धृ प्रकृतिका कुछ भी परिचय न दिया। हिपोक्रेटिसके समय तक (Ed, Littri ii 22) शक लोग अन्यान्य वर्वरजातिकी तरह विशेष बलिष्ठ और वीरचेता समझे न जाते थे। दृढ़काय, मांसल और रक्ताभवर्णविशिष्ट स्वास्थ्यवान् पुरुष समझे जाने पर भी उन्होंने साहसिकताका उतना परिचय नहीं दिया था। आमरक्त और वातकी पीड़ासे तथा ध्वजभङ्ग और वन्ध्यारोगसे शक लोग बहुत कष्ट पाते थे।

हिपोक्रेटिसका वर्णन पढ़नेसे जाना जाता है, कि यह शकजाति मङ्गोलीय वंशसे उत्पन्न हुई है। अध्यापक A. Von, Gutschmid-का कहना है, कि आकृतगत सादृश्यता देख कर शकोंको मङ्गोल जातीय कहना समीचीन नहीं है। क्योंकि, उस तृणप्रान्तरके अधिवासीमात्रका ही दैहिकगठन ऐसा ही देखा जाता है। ज्युस (Zeuss)ने शकजातिकी भाषा पर्यालोचना

कर प्रमाणित किया है, कि यह जाति आर्यो और औपनिवेशिक इरानियोंकी एक शाखामात्र है। किन्तु इस विषयमें हिरोदोतसकी उक्ति ही अखण्डनीय प्रमाण है। उनका कहना है, कि शक और शर्मतीय जातिकी भाषा परस्पर अनुरूप है। शर्मतीय जाति निःसन्देह आर्य-समाजभुक्त है तथा एक मद्र उपनिवेश कह कर स्वीकृत हुआ है। इससे मालूम होता है, कि उस समय अक्षु और जक्षर्तेश इन दोनों नदियोंके अववाहिकाभुक्त तृणमय प्रान्तरसे ले कर हंगेरी राज्यके पुस्तास तक विस्तीर्ण भूभाग भ्रमणशील आर्य जातियोंके अधिकारमें था।

शकजातिके देववृन्दका जैसा वर्णन कहा गया है, वह एकमात्र आर्य देवतामें ही दिखाई देता है। उनकी रन्धनशालाकी प्रधान अधिष्ठात्री देवीका नाम तबित्ती है। ये ही देवताओंकी सर्वश्रेष्ठा हैं। उसके बाद स्वर्गपति पापियुस और उसकी पत्नी पृथ्वीदेवी आपिया सूर्यदेव इतोसिरस है। अरिम्पासा उन लोगोंकी प्रजननदेवी है। ये ही फिर स्वर्गकी रानी मानी जाती हैं। हिरोदोतसने 'हिराक्लिस' और 'ओरेरस' इस ग्रीक नामसे दो शक देवताओंका उल्लेख किया है। ये दो देवता सभी सम्प्रदायके शकोंमें देखे जाते हैं। राजशकोंमें थमिमासदस नामक एक देवता है। समुद्रदेव कह कर इनका उल्लेख किया गया है। इन सब देवताओंको वे प्रकृत इरानीय पद्धतिके अनुसार मूर्त्तिप्रतिष्ठापूर्वक अलङ्कारादि द्वारा सजाते नहीं थे तथा उनके लिये वेदी और मन्दिर भी नहीं बनवाते थे। केवल एक वेदीके ऊपर कटे वृक्षकी डालियोंको स्तूपाकारमें रख उसमें एक तलवार ऊर्द्ध्वमुखसे खड़ी कर आरेरस मूर्त्तिकी कल्पना होती थी।

ग्रीक ऐतिहासिक हिरोदोतसने पारस्यपति दरायुसके पहले सात शाकपतिका उल्लेख किया है, यथा—स्पार्गपीठ, लियक, नूर, सौलिक और इदन्थुरस। स्वर्गपीठके समय (६४६ ई० सन्के पहले) ओलबीय शहर प्रतिष्ठित हुआ तथा इदन्थुरसके समय (५१३ ई० सन्के पहले) दरायुसके साथ शाक लोगोंकी लड़ाई छिड़ी तथा पारस्यपतिके हाथसे ही शकोंका मान मर्द्दन हुआ।

यूरोपके दक्षिणांशस्थित पारस्याधिपके नयाधिकारभुक्त जनपद जब यवनविप्लवसे तहस नहस हो गया, उसी समय शाकोंने थ्रेसको जीता था। उनके आक्रमणसे भयभीत हो मिलतियादिस (४६५ ई० सन्के पहले) राज्य छोड़ भाग गया था। इस समय शाक लोग कहीं एशिया पर भी न चढ़ाई कर दें, इस आशङ्कासे दरायुसने आबिदस नगरोंको जला डाला। (Strabo xiii, p. 591) शाक लोगोंने भी इस समय एशिया विजयमें सहायता पानेकी आशासे क्लिओमेनेसके पास स्पार्टामें दूत भेजा था। (Herod, VI 84) शाकपति स्काईलेसके समयसे ही यूरोपीय शाकोंके जातीय चरित्र परिवर्त्तन और अधोगतिका सूत्रपात हुआ। उक्त शाकपति ग्रीक रीतिके अवलम्बन करने तथा बाकस उत्सवमें शामिल होनेसे मार डाले गये।

इसीके बाद शाकजातिकी पालि नामक एक शाखाने डान नदी पार कर पूर्वदिशासे आ 'नाप' नामक एक दूसरी शाखाको परास्त किया। इस समयसे ही इस जातिमें अन्तर्विप्लवका सूत्रपात हुआ। पेरिप्लसके वर्णनसे जाना जाता है, कि हिरोदोतसके समय शाकलोगोंका जैसा विस्तृत अधिकार था, इस समय भी (३४६ ई० सन्के पहले) उसका व्यतिक्रम नहीं हुआ, केवल पूर्वकी ओर सामान्य परिवर्त्तन हुआ था। इसके पहले ही सौरमतीयगण डान नदी तक अधिकार कर चुके थे। अतिस (Ateas) उस समय भी पूर्वसीमावद्ध स्किदीय राज्यका शासन कर रहे थे। ३३६ ई० सन्के पहले माकिदनपति फिलिपने दानियुबके निकट अतिसको परास्त किया। दियोदोरसने लिखा है, कि सौरमतीय लोगोंने ही स्किदीयाके अधिवासियोंको (३४६ से ३३६ खृष्ट पूर्वके मध्य) जड़से उखाड़ दिया था। जो हो, माकिदनके अभ्युदयके साथ साथ पाश्चात्य जगत्‌से शाकोंका प्रभाव विलुप्त हुआ। १०० ई० सन्के पीछे पाश्चात्य इतिहासमें इस पराक्रान्त घोर जातिका कोई सन्धान नहीं मिलता।

पाश्चात्य जगत्‌में इस जातिका प्रभाव विलुप्त होने पर भी प्राच्य जगतमें इनका प्रभाव अक्षुण्ण रहा। भारतवर्षमें प्रवेश करके यह जाति प्रबल प्रतापसे राज्य-

शासन कर गई है। भोजक ब्राह्मण शब्द और भारतवर्ष शब्द में शकाधिकार प्रसङ्ग देखो।

मासिडनवीर अलेकसन्दरने पंजाबमें जिस पराक्रान्त वीर जातिका मुकाबला किया था, वे सभी शाकजातिकी किसी न किसी शाखाके अन्तर्भुक्त थे। केवल पंजाबमें ही क्यों, एक समय भारतवर्षके पूर्वांशमें भी शाक लोगोंने अपना प्रभाव फैलाया था। जिस वंशमें बुद्ध शाक्यसिंहका अवतार हुआ, उस शाक्यवंशको भी बहुतेरे शाकद्वीपी समझते हैं। शाक्य वंश और शाकद्वीपीयकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें जो पौराणिक आख्यायिका प्रचलित है, उसमें उतना भेद नहीं है; दोनोंका ही शाकवृक्ष आश्रय है, इस कारण दोनों ही शाक या शाक्य नामसे परिचित हैं। फेरिस्ता और रियाज उस सलातिन नामक मुसलमान इतिहाससे भी हमें मालूम होता है, कि ई० सनसे सात सदी पहले पारस्यके उत्तर शाकद्वीपसे पराक्रान्त शाक जातिने आ कर गौड़राज्यको अधिकार किया था। उनके बहुत पहले शाकद्वीपी मग ब्राह्मणोंने भारतमें उपनिवेश बसाया था; पर इसका भी प्रमाण नहीं मिलता। भोजक ब्राह्मण देखो। ई० सन्‌के पहले १से ४थी शताब्दी पर्यन्त एक तरहसे समस्त भारतमें शकका अधिकार फैला हुआ था। शक-संवत् या शकाब्द इस जातिके प्रभावका परिचय आज भी भारतवर्षके घर घरमें उज्ज्वल किये हुए है। उक्त शक या शाक जातिसे ही नाग, हूण आदि जातियाँ उत्पन्न हुई हैं तथा उनके वंशधर विभिन्न नामोंसे अभी राजपूत और जाट समाजमें विराज कर रहे हैं।

शाकद्वीपीय (सं० त्रि०) १ शाकद्वीपका रहनेवाला। (पु०) २ ब्राह्मणोंका एक भेद, मग ब्राह्मण। विशेष विवरण शाकद्वीप और भोजक ब्राह्मणमें देखो।

शाकन्धव्य (सं० पु०) शकंधु (कुर्व्वादिभ्यो ण्यः) इति ण्य। शकंधुका गोत्रापत्य।

शाकन्धेय (सं० पु०) शकंधि (शुभ्रादिभ्यश्च। पा ४।१।१२३) इति ढक्। शकंधिका गोत्रापत्य।

शाकपत्र (सं० पु०) शिग्रु वृक्ष, सहिंजन।

शाकपार्थिव (सं० पु०) शाकप्रियः पार्थिवः, मध्यपद-लोपि कर्मधा०। शाकप्रिय पार्थिव। जहां मध्यपद-लोपि कर्मधारय समास होता है, वहां शाकपार्थिवादि समास कहलाता है।

शाकपूणि (सं० पु०) शकपूणके अपत्य एक ऋषिका नाम। ये वैदिक व्याकरणकार और आचार्य थे। (निरुक्त ३।११)

शाकपूत (सं० क्ली०) सामभेद।

शाकपोत (सं० पु०) पर्वतविशेष। (मार्कण्डेयपु० ५६।१४)

शाकफल (सं० क्ली०) शाकस्य फलं। शाकवृक्षफल, सागौन फल। (सुश्रुत सूत्रस्था० ३८ अ०)

शाकवालेय (सं० पु०) ब्रह्मयष्टि, भारंगी।

शाकबिल्व (सं० पु०) शाके बिल्व इव। वार्त्ताकु, बैंगन।

शाकबिल्वक (सं० पु०) शाकबिल्व देखो।

शाकभक्ष (सं० त्रि०) मांस न खानेवाला, शाकाहारी।

शाकभव (सं० पु०) प्लक्षद्वीपके अंतर्गत वर्षभेद। (मार्क० पु० ५३।१६)

शाकमत्स्य (सं० क्ली०) मत्स्यव्यञ्जनविशेष।

शाकम्पूत (सं० पु०) एक ऋषिका नाम। शकपूत देखो।

शाकम्भरी (सं० स्त्री०) शाकेन बिभर्त्ति भृ खश् मुमागमः ङीप्। १ भगवती दुर्गा, शाकजातिकी इष्टदेवी। (मार्क० पु० चण्डी) २ नगरविशेष। कोई कोई इसे सांभर या शम्भर नगर कहते हैं।

शाकम्भरीभव (सं० क्ली०) लवणभेद, सांभर नमक। (भावप्र०)

शाकम्भरीय (सं० त्रि०) १ सांभर झीलसे उत्पन्न। (क्ली०) २ सांभर नमक। गुण—वातनाशक, अत्युष्ण, भेदक, पित्तवर्द्धक, तीक्ष्ण, व्यवायी, अभिष्यन्दी और कटुपाकयुक्त। (भावप्र०) शम्भर देखो।

शाकयोग्य (सं० पु०) शाकस्य योग्यः। धान्यक, धनिया।

शाकरस (सं० पु०) शाकस्य रसः। शाकका रस।

शाकराज (सं० पु०) शाकानां राजा निर्दोषत्वात् (राजाहस्सखिभ्यष्टच्। पा ५।४।९१) इति टच्। १ वास्तूक शाक, बथुआ। निर्दोष होनेके कारण बथुआ शाकोंका राजा कहा गया है। २ शकाब्द प्रवर्त्तक एक राजाका नाम।

शाकरी (सं० स्त्री०) शाकारी देखो।

शाकल (सं० त्रि०) शकलेन प्रोक्तमधीयते शाकलास्तेषां सङ्घोऽङ्को घोषो वा (शाकलाद्वा । पा ४।३।१२८) इति अण्। १ शकल नामक द्रव्यसे रंगा हुआ। २ खण्ड या अंश सम्बन्धी। (पु०) ३ खण्ड, टुकड़ा, चिप्पड़। ४ एक प्रकारका सांप। ५ लकड़ीका बना हुआ तावीज। ६ मद्रदेशका एक नगर। ७ बाहीक (पञ्जाब) देशका एक ग्राम। ८ उक्त ग्राम या नगरका निवासी। ९ हवनकी सामग्री जिसमें जौ, तिल, घी, मधु, आदिका मेल होता रहता है। १० ऋग्वेदकी एक शाखा या संहिता।

शाकलशाखा (सं० स्त्री०) ऋग्वेदकी वह शाखा या संहिता जो शाकल्य ऋषिके गोत्रजोंमें चली। ऋग्वेदकी यही शाखा आज कल मिलती और प्रचलित है।

शाकलहोमीय (सं० त्रि०) शाकल होम सम्बन्धी मन्त्र। (मनु ११।२५७)

शाकलिक (सं० त्रि०) शकल (कन्कड् गाम्यानुपत स्थानं । पा ४।१।२) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या शाकलिकः काद्र्मिकः। शकल-सम्बन्धी। (सिद्धान्तकौ०)

शाकली (सं० पु०) एक प्रकारकी मछली।

शाकल्य (सं० पु०) शकल (गर्गादिभ्यो यञ्। पा ४।१।१०५) इति अपत्यार्थे यञ्। एक बहुत प्राचीन ऋषि। ये ऋग्वेदकी एक शाखाके प्रचारक थे और इन्होंने पहले पहल उसका पदपाठ ठीक किया था।

शाकल्यायनी (सं० स्त्री०) शाकल्य (लोहितादिकतन्तेभ्यः। पा ४।१।१८) इति ष्फ, ङीप्। शाकल्यकी पत्नी।

शाकवर (सं० पु०) जीवशाक। (पर्यायमुक्ता०)

शाकवरा (सं० स्त्री०) जीवन्ती या डोडी नामक लता। (वैद्यकनि०)

शाकवल्ली (सं० स्त्री०) लताकरञ्ज, सागरगोटा।

शाकवाट (सं० पु०) शाकका बाग, सागसब्जीका बगीचा।

शाकवाटिका (सं० स्त्री०) शाकवाट देखो।

शाकवालेय (सं० पु०) ब्राह्मणयष्टिका, भारंगी, बभनेटी।

शाकबिन्दक (सं० पु०) बिल्ववृक्ष, बेलका पेड़।

शाकबिल्वक (सं० पु०) १ वार्त्ताकु, बैंगन, भंटा। (क्लीo) २ जीवन्ती शाक।

शाकबीज (सं० क्लो०) शाकस्य बीजं। १ शाकतरुका बीज, सागौनका बीया। २ सागका बीया।

शाकवीर (सं० पु०) १ वास्तूकशाक, बथुआ। २ पुनर्नवा, गदहपूरना। ३ जीवशाक।

शाकवृक्ष (सं० पु०) शाकाख्यो वृक्षः। वृक्षविशेष, सागौनका पेड़।

शाकशाकट (सं० क्लो०) शाकानां भवनं क्षेत्रं शाक 'भवने क्षेत्रे शाकटशाकिणौ' इति शाकट। शाकक्षेत्र, सागका बगान।

शाकशाकिन (सं० क्लो०) शाकक्षेत्रार्थे शाकिन। शाकक्षेत्र।

शाकशाल (सं० पु०) महानिम्ब, बकायन।

शाकश्रेष्ठ (सं० पु०) शाकेषु श्रेष्ठः। १ वास्तुकशाक, बथुआ।

शाकश्रेष्ठा (सं० स्त्री०) १ लघु जीवन्ती लता, डोडी शाक। २ लता बृहती। ३ वार्त्ताकु, बैंगन। ४ कुष्माण्ड लता,कुम्हड़ाकी लता। ५ तरम्बूज, तरबूज। ६ पेठा, सतुआ। (वैद्यकनि०)

शाका (सं० स्त्री०) हरीतकी, हर्रे।

शाकाख्य (सं० स्त्री०) शाक इति आख्या यस्य। १ पत्र पुष्पादि। व्यञ्जनयोग्य पत्र पुष्पादिको शाक कहते हैं। अमरटीकामें भरतने शाक शब्दकी व्युत्पत्ति यों की है—जो भोजन करनेमें शक्त हो जाता है, वही शाक है। यह शाक दश प्रकारका है, जैसे—१ मूल, २ पत्र, ३ करीर, ४ अग्र, ५ फल, ६ काण्ड, ७ अधिरूढ़क, ८ त्वक्, ९ पुष्प, १० कवक। इन दश प्रकारके लक्षण ऐसे हैं,—मूलक आदि वस्तु मूल, पटोल प्रभृति पत्र, वंशाङ्कुरादि करीर, वेत्रादि अग्र, कुष्माण्डादि फल, उत्पल आदिकी नाड़ी काण्ड, तालास्थि आदिकी मज्जा अधिरूढ़, मातुलुङ्गादि त्वक्, कोविदार प्रभृति पुष्प, छत्रिका आदिको कवक कहते हैं। ये ही दश प्रकारके शाक हैं। ये सभी वस्तु खाई जाती हैं, इसलिये इनका नाम शाक पड़ा है। (भरत)

२ शाकवृक्ष, सागोनका पेड़। ३ शाक देखो।

शाकाङ्ग (सं० क्ली०) शाकस्य अङ्गमिव। मरीच, मिर्च।

शाकाद (सं० पु०) शाकं अत्ति अण्। शाकभक्षण, शाकभोजी।

शाकान्न (सं० क्ली०) शाकयुक्तमन्नं, मध्यपदलोपि कर्मधारयः। शाकयुक्त अन्न, साग मिला हुआ भात। यह लेखन, उष्ण, रुक्ष और दोषवर्द्धक माना गया है।

शाकाम्ल (सं० क्ली०) शाके अम्लो यस्य। १ वृक्षाम्ल, महादा। २ इमली।

शाकाम्लभेदन (सं० क्ली०) शाकाम्लं भेदनञ्च। चुक, चूक।

शाकायन (सं० पु०) शाकस्य गोत्रापत्यं शाक (गोत्रे कुञ्जादिभ्योच्फञ्। पा ४।१।९८) इति अपत्यार्थे फञ्। शाकका गोत्रापत्य।

शाकायनिन् (सं० पु०) शाकका गोत्रापत्य। (पा ४।१।९८) शाकायनका शिष्यसमूह।

शाकायन्य (सं० पु०) शाकका गोत्रापत्य। (पा ४।१।९८)

शाकारिकी (सं० स्त्री०) नाटकमें राजाके सालेको शकार कहते हैं, शकार जो भाषा बोलते हैं, वही शाकारिकी कहलाती है।

शाकारी (सं० स्त्री०) शकों अथवा शकारोंकी भाषा जो प्राकृतका एक भेद है।

शाकालाबु (सं० स्त्री०) राजालाबु, बड़ा कद्दू।

शाकाष्टका (सं० स्त्री०) शाका अष्टौ अदेया यत्र। शाकोपकरणक श्राद्धार्ह अष्टमी। शाक, मांस, अपूप आदि द्वारा पितरोंके उद्देशसे अष्टमी तिथिमें श्राद्ध करना होता है। ये सब श्राद्ध शाकाष्टका, मांसाष्टका और अपूपाष्टका कहलाते हैं। गौण फाल्गुन और मुख्यचान्द्र माघमासकी कृष्णाष्टमी तिथिको शाकाष्टका श्राद्ध करना होता है। इस तिथिमें शाकाष्टका श्राद्धका विधान है, इसलिये यह तिथि शाकाष्टका कहलाती है।

शाकाष्टमी (सं० स्त्री०) शाकाष्टका देखो।

शाकाहार (सं० पु०) अनाज अथवा फल फूल पत्ते आदिका भोजन, मांसाहारका उलटा।

शाकाहारिणी (सं० स्त्री०) केवल अनाज या साग भाजी खानेवाली।

शाकाहारी (सं० त्रि०) केवल अनाज या साग भाजी खानेवाला, मांस न खानेवाला।

शाकिन् (सं० त्रि०) १ शक्तियुक्त, बलवान्, ताकतवर। २ शिकायत करनेवाला। ३ नालिश करनेवाला। ४ चुगली खानेवाला।

शाकिनिका (सं० स्त्री०) शाकिनी।

शाकिनी (सं० स्त्री०) शाकोऽस्त्यत्रेति शाक-इनि, स्त्रियां ङीप्। १ शाकयुक्त भूमि, वह भूमि जिसमें शाक बोया हुआ हो, सागकी क्यारी। २ एक पिशाची या देवी जो दुर्गाके गणोंमें समझी जाती है, डाइन, चुड़ैल।

तन्त्रसारमें भी शाकिनीकी पूजा आदिका विषय लिखा है। तारादेवीके न्यासस्थलमें लिखा है, कि षट्चक्रके मध्य विशुद्धाख्य महाचक्रमें शाकिनीके साथ सदाशिवको अकारादि षोड़श स्वर संयुक्त कर न्यास करना होता है।

शाकिनीत्व (सं० क्ली०) शाकिन्याः भावः त्व। शाकिनीका भाव या धर्म, शाकिनीका कार्य।

शाकिर (अ० वि०) १ कृतज्ञता प्रकाशित करनेवाला, शुक्रगुजार। २ सन्तोष रखनेवाला।

शाकी (सं० त्रि०) १ शाकिन देखो। (स्त्री०) २ शाकक्षेत्र, सागकी क्यारी।

शाकीय (सं० त्रि०) शाकका अदूरभव स्थान। (पा ४।२।९०)

शाकुण (सं० त्रि०) १ परीतापी, दूसरेको दुःख देनेवाला। २ पक्षि सम्बन्धी, चिड़ियोंका।

शाकुन (सं० पु०) शकुनमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः शकुन-अण्। १ पशुपक्षी आदि द्वारा मनुष्यका शुभाशुभ निर्णायक ग्रन्थ, शाकुनशास्त्र, काकचरित्र, जिस शास्त्र द्वारा वायस आदि पक्षीके और शृगाल आदि जन्तुके शब्दादि द्वारा मानवोंके शुभाशुभ ज्ञात हो जाता है, उसे शाकुनशास्त्र कहते हैं।

वसन्तराजशाकुनमें तथा बृहत्संहितामें इस शाकुन या सगुनका विशेष विवरण दिया हुआ है। बृहत्संहितामें लिखा है, कि गमनकालमें शकुन या पक्षी आदि मानवोंके जन्मान्तरकृत शुभाशुभ कर्म प्रकाश करता है,

वही शाकुन कहलाता है। प्राचीन कालमें शुक्र, इन्द्र, बृहस्पति, कपिष्ठल आदिने इस शास्त्रका उपदेश दिया था। पीछे वराहमिहिरने उनका मत जान यह शास्त्र प्रणयन किया। (बृहत्सं० ८६ अ०)

बृहत्संहितामें ८६ अध्यायसे ९६ अध्याय तक शाकुनका विशेष विवरण दिया हुआ है। शकुन शब्द देखो।

२ चिड़िया पकड़नेवाला, बहेलिया। (त्रि०) ३ पक्षी-सम्बन्धी, चिड़ियोंका। ४ शुभाशुभ लक्षण सम्बन्धी, सगुनवाला।

शाकुनसूक्त (सं० क्ली) मन्त्रविशेष। बृहत्संहितामें लिखा है, कि मृग पक्षी आदिसे उपद्रव खड़ा होने पर सदक्षिण होम और शाकुनसूक्त आदिका जप करे।

शाकुनि (सं० पु०) बहेलिया।

शाकुनिक (सं० पु०) शाकुनान् हन्तीति शकुन (पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति। पा ४।४।३५) इति ठक्। पक्षिहन्ता, बहेलिया।

शाकुनिन् (सं० पु०) १ शाकुनिक, बहेलिया। २ मछवाहा, मछली पकड़नेवाला। ३ सगुन विचारनेवाला। ४ एक प्रकारका प्रेत।

शाकुनेय (सं० पु०) शकुनेरपत्यं शकुनि (शुभ्रादिभ्यश्च। पा ४।१।१२३) १ कुण्डुल पक्षी, एक प्रकारका छोटा उल्लू। २ बकासुर नामक दैत्य। (भागवत १०।८८।२६) ३ एक मुनिका नाम। (त्रि०) ४ पक्षी सम्बन्धी।

शाकुन्तकि (सं० पु०) १ योद्धाकी एक जाति। (पा ४।१।१२६) २ देशभेद।

शाकुन्तकीय (सं० पु०) शाकुन्तकि देशका राजा।

शाकुन्तल (सं० पु०) शकुन्तलाका पुत्र, भरत।

शाकुन्तलेय (सं० पु०) शकुंतलाया अपत्यमिति शकुन्तला (स्त्रीभ्यो ढक्। पा ४।१।१२०) इति ढक्। १ शकुन्तलाका पुत्र, भरतराज। (त्रि०) २ शकुंतला-सम्बंधी, शकुंतलाका।

शाकुन्तिक (सं० पु०) बहेलिया, चिड़ीमार।

शाकुलादिक (सं० पु०) शकुलाद ऋषिका गोत्रापत्य। (पा ४।२।११६)

शाकुलिक (सं० पु०) शकुलान् हन्ति यः शकुल (पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति। पा ४।४।३५) इति ठक्। १ शकुलहन्ता, मछवाहा। २ मछलियोंका समूह।

शाकेक्षु (सं० पु०) इक्षुविशेष, ईखका एक भेद।

शाकटक (सं० त्रि०) शकृत्-सम्बंधी। (पा ४।३।६१)

शाकेय (सं० पु०) वैदिक शाखाभेद।

शाकेश्वर (सं० पु०) वह राजा जिसके नामसे संवत् चले। जैसे,—युधिष्ठिर, विक्रमादित्य, शालिवाहन।

शाकोल (सं० पु०) एक प्रकारकी लता।

शाक्कर (सं० पु०) शक्कर एव स्वार्थे अण्। वृष, बैल।

शाक्को (सं० स्त्री०) पांच विभागोंमेंसे एक।

शाक्त (सं० पु०) शक्तिर्देवताऽस्य शक्ति (सास्य देवता। पा ४।२।२४) शक्तिके उपासक, तन्त्रोक्त शक्तिमंत्रोपासक, जो काली, तारा आदि शक्तिमंत्रकी उपासना करते हैं, उन्हें शाक्त कहते हैं।

मुण्डमालातंत्रमें शिवजी देवीसे कहते हैं,—हमारे अर्थात् शिवके अंशसे उत्पन्न मनुष्य मात्र ही नामदेह शैव और तुमसे अर्थात् देवी आद्याशक्तिके अंशसम्भव मात्र ही प्रकृत शक्ति हैं। शैवगण वर्षों साधनाके बाद शाक्त हो सकते हैं। किन्तु जिस किसी कुलसे उत्पन्न शाक्त हों, इच्छा करनेसे ही शैव हो सकते हैं। ब्राह्मणसे ले कर चण्डाल पर्यन्त शाक्त मात्रको ही कभी सामान्य मनुष्य नहीं समझना चाहिये। चर्मचक्षु द्वारा भले ही उन्हें साधारण मनुष्य समझ सकते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जिस किसी जातिके शाक्त हों, वामाचार प्रभावसे उन्हें जपपूजा करना कर्त्तव्य है। ब्राह्मण हों, क्षत्रिय हों, वैश्य हों, चाहे शूद्र हों, शाक्तमात्रको ही ब्राह्मण समझना चाहिये। ये शाक्तरूपी ब्राह्मणगण ही साक्षात् शिव त्रिनेत्र हैं, चन्द्रशेखर हैं।

निर्वाणतंत्रमें लिखा है (३य पटल)—परमाक्षरी देवी गायत्रीकी उपासना करता है, इस कारण सभी द्विज शक्ति हैं, शैव या वैष्णव नहीं हैं।

मुण्डमालातंत्र २य पटलमें लिखा है—सौर, गाणपत्य और वैष्णव इन तीन प्रकारके आचारोंमें सिद्ध होनेके बाद शाक्त हो सकते हैं। शाक्तसे बढ़ कर और कुछ भी नहीं है। शाक्त ही शिव हैं, साक्षात् परब्रह्म

स्वरूप हैं। काली, तारा, त्रिभुवनेश्वरी, षोड़शी, मातङ्गी, छिन्नमस्ता, बगलामुखी आदि जिनके निकट उपासित हैं, वे ही शाक्त शिव हैं, इसमें संदेह नहीं। शाक्तगण-का परम पद अतिगोपनीय है। उन लोगोंका कहना है, कि शक्ति ही शिव है, शिव ही शक्ति है, ब्रह्मा विष्णु भी शक्ति हैं, इंद्र सूर्य देवगण भी शक्ति हैं, चंद्रादि ग्रहगण भी निश्चय शक्ति हैं, यह सारा संसार शक्तिका विकाश है, जो शाक्त यह नहीं जानता, वह नारकी है।

बिना शक्तिके इस सम्प्रदायकी पूजा या कोई धर्म कर्म नहीं हो सकता, इसलिये भी वे शाक्त कहलाते हैं। तन्त्र शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

शाक्तसम्प्रदायका आविर्भावकालनिर्णय।

भारतवर्षमें किस समय शाक्त सम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई उसका निर्णय करना कठिन है। तंत्रकी उत्पत्ति के साथ जो शाक्तमत प्रचलित हुआ यह बहुत कुछ ठीक है। विश्वकोषमें तंत्र शब्दमें लिखा है, कि ७वीं सदीके बाद तथा ६वीं सदीके पहले तंत्रशास्त्रका प्रचार हुआ था। किंतु पीछे आलोचना द्वारा प्रमाणित हुआ है, कि तंत्र उसकी अपेक्षा बहु प्राचीन है। अथर्ववेदमें ही जो तंत्रशास्त्रका सूत्र प्रकाशित है उसे पाश्चात्य पण्डित भी स्वीकार करते हैं।* जापानके होरिउजी मठसे 'उष्णीषविजयधारणी' नामक तालपत्रमें लिखित एक तांत्रिक ग्रंथ निकला है। यह ग्रन्थ ६ठी सदीमें जापानमें लाया गया था, सुतरां मूलग्रन्थ उससे भी बहुत पहले लिखा गया, इसमें जरा भी संदेह नहीं। ५वीं सदीमें शक्तिपूजा भारतवर्षमें सर्वत्र प्रचलित थी, इसका यथेष्ट प्रमाण पाया गया है। दाक्षिणात्यके पूर्वतन कदम्बवंश सप्तमातृकाके विशेष उपासक थे।† सप्तमातृका ही पूर्वतन चालुक्य राजाओंकी अधिष्ठात्री देवी कह कर परिचित थीं।¶ मालवपति विश्ववर्माके ४८० संवत्में (४२३-२४ ई०में) उत्कीर्ण शिलालिपिमें लिखा है—

"मातृणाञ्च प्रमुदितघनात्यर्थनिर्ह्रादिनीनाम्।
तन्त्रोद्भूतप्रबलपवनोद्वर्त्तिताम्भोनिधीनाम्॥
* * * गतमिदं डाकिनीसंप्रकीर्णम्।
वेश्मात्युग्रं नृपतिसचिवो कारयेत् पुण्यहेतुः॥"*

अर्थात् पुण्यलाभके लिये (उक्त) राजाके सचिवने डाकिनियोंसे पूर्ण जलदनिनादिनी तन्त्रोद्भूत-प्रबल-जलनिधिविक्षोभकारिणी मातृकाओंका मन्दिर बनवाया है।

उक्त प्रमाणसे मध्यभारतमें भी तन्त्रके प्रभाव और शक्तिकी उपासनाका यथेष्ट परिचय पाया जाता है। यहां तक, कि गुप्तसम्राट् स्कन्दगुप्त मातृकाभक्त या शाक्त थे, यह भी उनकी शिलालिपिसे जाना गया है।¶ अतएव शाक्तधर्मकी उत्पत्ति उससे भी बहुत पहले हुई है, इसे सभी स्वीकार करेंगे। मृच्छकटिक नाटकके प्रारम्भमें जिस प्रकार शिवशक्तिकी स्तुति है, उसमें भी हम १ली सदीके पहले शिवशक्तिसाधनमूलक (तांत्रिक) प्रेमालिङ्गन-चित्रका ही बहुत कुछ आभास पाते हैं। यथा—

"पातु वो नीलकण्ठस्य कण्ठः श्यामाम्बुदोपमः।
गौरी भुजलता यत्र विद्युल्लेखेव राजते॥"

इस प्रकार हरपार्वतीकी प्राचीनमूर्त्ति भारतवर्षके नाना स्थानोंमें विद्यमान है। मथुरा और सारनाथके नाना स्थानोंमें विद्यमान है। इस हिसाबसे शकाधि-कारकालमें शक्तिपूजा प्रचलित थी, यह असम्भव नहीं है।

किसी किसीका मत है, कि बौद्धाचार्य नागार्जुनने जो संशोधित महायानमत प्रचार किया, उसीमें शाक्त धर्मका बीज निहित है। उन्हींकी चेष्टासे बौद्ध शक्तिमूर्त्ति महायान-समाजमें प्रकाशित हुई थी। किन्तु हम लोगों-का विश्वास है, कि उनके पहलेसे महायान बौद्धसमाजमें तांत्रिक देवदेवी या शक्तिपूजा प्रचलित होने पर भी

* Dr. Bloomfield's Atharvaveda.

† Indian Antiquary, Vol, vi. p. 27.

¶ Indian Antiquary, vol xii, p, 162, xiii p. 137.

* Dr, Fleet's Gupta Inscriptions,

¶ Dr. Fleet's Gupta Inscriptions, p. 48.

सौर और शैव-समाजमें उसके पहले ही शक्तिपूजा प्रचलित थी। महाभारतके उद्योगपर्वमें "ह्रीं श्रीं गार्गी-श्च गान्धारी योगिनां योगदा सदा" इत्यादि देवीस्तोत्रमें अति प्राचीन कालसे ही शक्तिमन्त्रका प्रच्छन्न आभास मिलने पर भी उस समय शाक्त सम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई थी अथवा नाना शक्तिमूर्त्तिकी पूजा होती थी या नहीं, इस विषयमें सन्देह है। ललितविस्तरमें कुछ देव-प्रतिमाका उल्लेख है—

"शिवस्कन्दनारायण-कुबेरचन्द्रसूर्यवैश्रवणशक्रब्रह्मलोकपालप्रभृतयः प्रतिमा।"

अर्थात् बुद्धदेवके जन्मके बाद उन्हें शिव, कार्त्तिक, नारायण, कुबेर, चन्द्र, सूर्य, वैश्रवण, इन्द्र और ब्रह्मादि लोकपालोंकी प्रतिमा दिखलाई गई थी। बुद्धके समय किसी प्रकारकी शक्तिप्रतिमा रहने पर ललितविस्तरमें उसका आभास अवश्य रहता। इससे कोई कोई समझते हैं, कि बुद्धके समय सप्तमातृका या शक्तिमूर्त्ति प्रचलित न थी। फिर कोई कोई ललित-विस्तरके (२४ अध्यायमें)

"पूर्वस्मिन् वै दिशो भागे अष्टौ देवकुमारिकाः॥
जयन्ती विजयन्ती च सिद्धार्था अपराजिता।
नन्दोत्तरा नन्दिसेना नन्दिनी नन्दवर्द्धनी॥
तापि व अधिपालेन्तु आरोग्येण शिवेन च॥"
"दक्षिणस्यां दिशो भागे अष्टौ देवकुमारिकाः।
श्रियामती यशोमती यशःप्राप्ता यशोधरा॥
सुउत्थिता सुप्रथमा सुप्रबुद्धा सुखावहा।
तापि व अधिपालेन्तु आरोग्येण शिवेन च॥"
"पश्चिमेऽस्मिन् दिशो भागे अष्टौ देवकुमारिकाः।
अलम्बुषा मिश्रकेशी पुण्डरीका तथाऽरुणा॥
एकादशा नवनामिका सीता कृष्णा च द्रौपदी।
तापि व अधिपालेन्तु आरोग्येण शिवेन च॥"
(ललितविस्तर ५०२-५०७ पृ०)

उद्धृत प्रमाणके अनुसार कोई कोई चारों दिशाओंमें चार श्रेणीकी अष्टनायिका या अष्टशक्तिका अस्तित्व स्वीकार करते हैं।

शक्तिप्रधान तन्त्रोंमें वेदकी प्रधानताका अस्वीकार, अवैदिकाचार और जगह जगह वेदनिन्दा रहनेसे बहुतेरे अनुमान करते हैं, कि तान्त्रिक या शाक्तमत वैदिकनिष्ठ आर्यतीय ब्राह्मण सम्प्रदायका उद्भावित नहीं है। डेढ़ हजार वर्ष पहले लिखित कुलालिकाम्नाय या कुब्जिकामततन्त्रमें लिखा है—

"गच्छ त्वं भारते वर्षेऽधिकाराय सर्वतः।
पीठोपपीठक्षत्रेषु कुरु सृष्टिरनेकधा॥
गच्छ त्वं भारते वर्षे कुरु सृष्टिस्त्वमीदृशः।
पञ्चभेदाः पञ्चैव योगिनः पीठपञ्चकं॥
एतानि भारते वर्षे यावत् पीठान्यवाप्यते।
तावत् न मे त्वया सार्द्धं सङ्गमश्च प्रजायते॥"

हे देवि! सर्वत्र अधिकारार्थ भारतवर्षमें जाओ, पीठ, उपपीठ और क्षेत्रोंमें बहुतोंकी सृष्टि करो। भारतवर्षमें भी जाओ, वहां जा कर पञ्च भेद, पञ्च योगी और पञ्च पीठकी सृष्टि करो। जब तक भारतवर्षमें इस प्रकार पीठादि प्रतिष्ठित नहीं होते, तब तक तुम्हारे साथ मेरा सङ्गम नहीं होगा।

उक्त प्रमाणसे जाना जाता है, कि इस मतका उत्पत्तिस्थान भारतवर्षके बाहर है। यथार्थमें हिन्दू और बौद्ध दोनों शाक्त समाजकी प्रधान आराध्या तारा या आद्याशक्ति हैं। पूजा-प्रचारके प्रसङ्गमें चीनाचार आदि तन्त्रोंमें लिखा है, कि वशिष्ठदेवने चीन देशमें जा कर बुद्धके उपदेशसे ताराका दर्शन किया था। इससे भी एक प्रकारसे स्वीकृत हुआ है, कि हिमालयके बाहर उत्तरदेशसे ही तारारूपा आद्याशक्तिकी पूजाका प्रचार हुआ है। उक्त सुप्राचीन कुलालिकाम्नायतन्त्रमें मगों-को ब्राह्मण स्वीकार किया गया है। मग या शाक-द्वीपी ब्राह्मणोंने ही इस देशमें सूर्यमूर्त्तिपूजाका प्रचार किया। पीछे उन्हींके यत्नसे शिवशक्ति मूर्त्तिगठित और उनकी पूजा भी प्रचारित हुई होगी। मग लोग ही आदि सूर्यपूजक हैं। इस कारण प्राचीन हिन्दू और बौद्धतन्त्रमें शिवशक्ति अथवा बोधिसत्त्वशक्तिके साधन-प्रसङ्गमें पहले सूर्यमूर्त्तिभावनाका प्रसङ्ग है। यह भी आदि सौरप्रभावका निदर्शन है उसमें जरा भी सन्देह नहीं। कोई कोई आज भी समझते हैं, कि सुप्राचीन ग्रीक ऐतिहासिकोंने जिस प्रकार Sakitai नामसे शाक जातिका उल्लेख किया है, उसी प्रकार शाक लोगों-

की एक शाखाके शक्तिपूजकगण भारतमें 'शाक' नामसे परिचित हुए थे। शाक-जातिके आचार-व्यवहारके इतिहासकी आलोचना करनेसे भी जाना जाता है, कि वे लोग मद्यमांसादि पञ्चमकारकी सेवामें सिद्ध थे। उनके गुरुस्थानीय मगाचार्यगण बहुत कुछ उन्नत होने पर भी अन्यान्य साधारण व्यक्ति वीराचारी थे, इस कारण भारतमें उनके प्रभाव विस्तारके साथ अवैदिक शाक्तमत सर्वत्र प्रचारित और दूसरे समाजमें भी गृहीत हुआ था। शाकाधिप कनिष्कके समय महायानमत प्रचारित हुआ। उत्तरमें मङ्गोलिया, दक्षिणमें विन्ध्याचल, पूर्वमें बङ्गोपसागर और पश्चिममें पारस्य पर्यन्त इन्हीं शाकराजके शासनाधीन था। उनके यत्नसे समस्त एशियाखण्डमें महायान मत प्रचारित और गृहीत हुआ। महायान लोगोंने ही सर्वत्र शक्तिपूजाका प्रचार किया था।* कितनी शक्तिमूर्त्तियां जो हिमालयके उत्तरसे भारतमें लाई गई थीं, उनका भी उल्लेख मिलता है। रुद्रयामलादि हिन्दूतन्त्रोंमें, जिस प्रकार चीनसे वशिष्ठ द्वारा तारातत्त्व लाये जानेका संवाद है, उसी प्रकार नेपाली बौद्धोंके साधनमालातन्त्रमें एक जटासाधन प्रसङ्गमें लिखा है—

"आर्यनागार्जुनपादैर्भोटेषु उद्धृता इति"

अर्थात् एकजटा नाम्नी तारा देवीकी विभिन्न मूर्त्ति महायानमतके प्रतिष्ठाता आर्यनागार्जुन भोटदेशसे उद्धार कर लाये थे। स्वतन्त्रतन्त्रमें भी लिखा है—

"मेरोः पश्चिमकूले तु चोलनाख्यो ह्रदो महान्।
तत्र यज्ञे स्वयं तारा देवी नीलसरस्वती॥"

कुलालिकाम्नायमें जिन पञ्च वेद, पञ्च योगी और पञ्च पीठोंका उल्लेख है, वह उक्त तन्त्रानुसार १ उत्तराम्नाय, २ दक्षिणाम्नाय, ३ पूर्वाम्नाय, ४ पश्चिमाम्नाय और ५ ऊर्ध्वाम्नाय ये पञ्चाम्नाय, पञ्च महेश्वर या पञ्च ध्यानीबुद्ध तथा १ उड्डियान (उत्कलमें), २ जाल (जालन्धरमें), ३ पूर्ण (महाराष्ट्रमें), ४ मतङ्ग (श्रीशैल पर) और ५ कामाख्या ये पञ्चपीठ हैं। परवर्त्ती कालमें ५१ पीठोंकी उत्पत्ति होने पर भी उक्त पांच ही शाक्तोंके आदि पीठ या केन्द्रस्थान हैं। अवैदिक शाक्त मतको पहले वेदमार्गपरायण ब्राह्मणोंने ग्रहण नहीं किया, किन्तु जब भारतमें सर्वत्र इस मतका आदर होने लगा, तब उनमें भी कोई कोई शाक्त तन्त्रमें दीक्षित हुए। उन लोगोंने पहले अष्टमातृकाकी पूजा ग्रहण की। वराहमिहिरकी बृहत्संहितामें ये सब ब्राह्मण "मातृकामण्डलवित्" कह कर परिचित थे। चक्र, मण्डल या यन्त्रके बिना शक्तिपूजा नहीं होती शायद इसी कारण शाक्तब्राह्मण 'मातृकामण्डलवित्' कह कर परिचित होंगे। चक्र, मण्डल, यन्त्र, मन्त्र और तन्त्र शब्द देखो। इन्हींकी चेष्टासे शक्तिपूजामें वैदिक क्रियाकाण्डमूलक कुछ मन्त्र प्रविष्ट हुए। इन्हीं लोगोंको हमने हिन्दू शाक्त बताया है। ये लोग दक्षिणाचारी हैं। इनके अलावा कुलालिकाम्नाय नामक उक्त सुप्राचीन तन्त्रसे हमें मालूम होता है कि शाक्तोंमें देवयानपितृयान और महायानने तीन सम्प्रदाय हुए थे।

"दक्षिणे देवयानन्तु पितृयाणन्तु उत्तरे।
मध्यमे तु महायानं शिवसंज्ञा प्रगीयते॥"

(कुलालिकाम्नाय)

दक्षिणमें देवयान, उत्तरमें पितृयान और मध्यदेशमें महायान प्रचलित थे। इन तीन यानोंमें विशेषता क्या है, ठीक ठीक मालूम नहीं। परन्तु महायानोंमें श्रेष्ठ तन्त्र तथागतगुह्यक पढ़नेसे मालूम होगा, कि रुद्रयामलादि तन्त्रमें जिसे वामाचार या कौलाचार कहा है, वही महायान तान्त्रिकगणका अनुष्ठेय आचार है। इसी सम्प्रदायसे कालचक्रयान या कालोत्तर महायान तथा वज्रयानकी उत्पत्ति हुई है। नेपालके सभी शाक्त बौद्ध वज्रयान सम्प्रदायभुक्त हैं।

नेपालमें लक्षश्लोकात्मक शक्तिसङ्गमतन्त्र प्रचलित है। इस महातन्त्रमें शाक्त सम्प्रदायका सविस्तार परिचय मिलता है। इस तन्त्रमें शाक्त मतकी उत्पत्तिके

* नेपालमें महायानीके जो ९ प्रधान शास्त्र प्रचलित हैं तथा नेपाली बौद्धाचार्यगण आज भी जिन ९ शास्त्रोंकी पूजा करते हैं, उनमें 'तथागतगुह्यक' नामका एक बहुत बड़ा बौद्धतन्त्र है। उस तन्त्रमें देखा जाता है—

"स सिद्धिं विपुलां गच्छेन्महायानाग्रधर्मेषु।"

(एसियाटिक सोसाइटीका ग्रन्थ १६ पृ०)

सम्बन्धमें ऐसा आभास पाया जाता है—

"संसारोत्पत्तिकार्यार्थं प्रपञ्चोयं विनिर्मितम्।
शाक्तं शैवं गाणपत्यं वैष्णवं सौरबौद्धकं ॥ ६
एवं क्रमेण देवेशि मतमेतद्विनिर्मितम्।
मतानि बहुसंख्यानि तदारभ्य महेश्वरि ॥७
संजातानि महेशानि प्रपञ्चार्थं हि निश्चितम्।
अम्भोधि जलधिश्चैव समुद्रः सागरो यथा ॥८
यथा चैतेतु पर्याया तथैतानि मतानि च।
वैदिके शक्तिनिन्दा च चीने जैनस्य निन्दनम् ॥९
सौरे चान्द्रस्य निन्दा च चान्द्र बौद्धस्य निन्दनम्।
स्वायम्भुवस्य निन्दा च बौद्धमार्गे महेश्वरि ॥१०
पौराणे जैननिन्दा च जैने पौराणनिन्दनम्।
पौराणे तन्त्रशास्त्रस्य निन्दनं परमेश्वरि ॥११
एवं भिन्नमतान्येव संजातानि महेश्वरि।
वेदानां शाखावाहुल्यं प्रपञ्चार्थं महेश्वरि।
एवं निन्दासमापन्ने भेदे जाते महेश्वरि।
ऐकत्व तु मनो लग्नं कस्यचित् परमेश्वरि ॥१२
सर्वासान्योन्यनिन्दा च तदैक्यञ्च प्रजायते।
तदैक्यस्य सुसिद्धयर्थं प्रपञ्चार्थं प्रकीर्त्तितम् ॥१४
भिन्नाः भिन्नं प्रशंसन्ति निन्दन्ति च परस्परम्।
न क्रिया सिद्धिमाप्नोति मंत्रमत्ति पिशाचवत् ॥
अन्योन्य यदि निन्दा च तदैक्यञ्च प्रजायते।
तदैक्यस्य सुसिद्धयर्थं कालिकां तारिणीं यजेत् ॥
सुन्दरं क्रूरमप्युभे रूपा संबिभ्रतो शिवा।
रूपमेतत् प्रपञ्चार्थं कीर्त्तितन्तु मया तव ॥
पुराणं न्यायमीमांसा सांख्यपातञ्जले तथा ॥
वेदांतो व्याहृतिं देवि धर्मशास्त्राङ्गमिश्रता।
छन्दोज्योतिर्वेदसाङ्गविद्या एताश्चतुर्दश।
प्रपञ्चार्थं मया प्रोक्तं एकत्वं परिणामजे ॥
प्रकृतं कथ्यते देवि शृणु सावहिता भव ॥
चतुर्वेद त्रयी प्रोक्ता श्रीमद्भवतारिणी।
अथर्ववेदाधिष्ठात्री श्रीमहाकालिका परा ॥
विना कालीं विना तारां नाथर्वणो विधि क्वचित्।
केरले कालिका प्रोक्ता काश्मीरे त्रिपुरा मता ॥
गौड़े तारेति संप्रोक्ता सैव काल्योत्तरा भवेत्।
अविच्छिन्ना सदा सा वै चतुःशङ्कराशयः ॥
तदन्यः सम्प्रदायो हि भविष्यति महेश्वरि।
केरलश्चैव काश्मीरो गौड़श्चैव तृतीयकः ॥"

(शक्तिसङ्गम उत्तरभाग १म खण्ड ८म प०)

"केरलश्चैव काश्मीरो गौड़श्चैवः तृतीयकः।
केरलाख्य मते देवि बलिपात्रं तु दक्षिणे।
काश्मीरतर्पणे भेदो गौड़े वामकरे भवेत् ॥"

(" ४र्थ पटल)

संसारसृष्टिको सुविधाके लिये यह प्रपञ्च बनाया गया है। शाक्त, शैव, गाणपत्य, वैष्णव, सौर और बौद्ध इत्यादि संप्रदाय धीरे धीरे अनेक मतोंकी सृष्टि हुई है। किंतु अम्भोधि या जलधि तथा समुद्र सागर कहनेसे जिस प्रकार एक ही वस्तुका बोध होता है, विभिन्न नाम होने पर भी जिस प्रकार एक होका पर्याय है, उसी प्रकार संप्रदायभेदसे विभिन्न नाम होने पर भी सौर बौद्धादि एक ही वस्तु है, केवल मतभेदसे पर्याय शब्द मात्र है। वैदिकमें शक्ति-निंदा, चीन या बौद्धमें जैन-निंदा, चांद्रमें बौद्धकी निंदा, बौद्धमार्गमें शैवकी निन्दा, पौराणिकमें जैन-निंदा, जैनमें पौराणिककी निंदा इस प्रकार विद्वेष भावमें नाना मत उत्पन्न हुए हैं। इस तरह प्रपञ्चके लिये ही वेदकी अनेक शाखाएं हो गई हैं। ऐसी परस्पर निंदासे भेद हुआ है, एकत्व होनेके लिये किसी-की इच्छा नहीं होती। सभी जगह परस्पर निंदा अर्थात् एक शास्त्रमें दूसरे शास्त्रकी निन्दा देखनेमें आती है। किंतु सभी मतका ऐक्य है। इस ऐक्य सिद्धिके लिये प्रपञ्चार्थ कहा गया है। भिन्न भिन्न व्यक्ति भिन्न भिन्न विषयकी प्रशंसा या निन्दा करते हैं, उनकी क्रिया सिद्ध नहीं होती तथा मंत्र पिशाचवत् होता है। परस्परको यदि निन्दा न की गई हो, तो उनका एकत्व निश्चय किया जाता है। इस प्रकार परस्परको ऐक्य सिद्धिके लिये काली वा ताराकी उपासना प्रवर्त्तित हुई है। सुन्दर और क्रूर अर्थात् भला और बुरा इन दोनोंको ही शिवा (शक्ति) धारण करते हैं। यह मत प्रकाश करने-के लिये ही मैंने शास्त्र कीर्त्तन किया है। पुराण, न्याय, मीमांसा, सांख्य, पातञ्जल, वेदान्त, वेद, धर्मशास्त्र, छन्दः, ज्योतिष आदि चौदह विद्या परिणाममें एकत्व प्रतिपा-दनके लिये मैंने ही (शक्तिमत्व) उपदेश दिया है। प्रकृत

विवरण इस प्रकार है—भवतारिणी देवी चतुर्वेदमयी, कालिकादेवी अथर्ववेदाधिष्ठात्री, काली और ताराके बिना आथर्वण-क्रिया अर्थात् अथर्ववेदविहित कोई भी क्रिया नहीं हो सकती। केरल देशमें कालिका देवी, काश्मीर देशमें त्रिपुरा और गौड़ देशमें तारा तथा ये ही पीछे काली रूपमें उपास्या होती हैं। सभी समय ये चतुराङ्कर योगसे अवच्छिन्न अर्थात् भिन्न भिन्न होती हैं। हे महेश्वरि! इसके सिवा अन्य सम्प्रदाय भी होगा। केरल, काश्मीर और गौड़ इन तीन स्थानोंमें यथाक्रम त्रिपुरा, काली और तारा ये तीन भेद होते हैं।

शक्तिसङ्गमतन्त्रके उक्त वचनसे मालूम होता है, कि पूर्ववर्त्ती साम्प्रदायिकोंका मत सामंजस्य करनेके लिये ही तान्त्रिक या शाक्त धर्म प्रचारित हुआ था। यथार्थमें देखा जाता है, कि परवर्त्ती कालमें क्या बौद्ध, क्या ब्राह्मण आदि विभिन्न साम्प्रदायिकोंने अपने अपने उपास्यकी एक एक शक्ति स्वीकार कर ली थी। परन्तु किसीने अल्प और किसीने बहुसंख्यक शक्ति स्वीकार की है। इसी कारण मालूम होता है, कि क्या हिन्दू क्या बौद्ध दोनों शाक्त-समाजमें ही बहुत कुछ साम्यभाव विद्यमान था। इसी कारण बौद्धतन्त्रमें हिन्दुओंकी शक्ति तथा हिन्दूतन्त्रमें बौद्धशक्तियोंकी पूजा पद्धति देखी जाती है।

इसके अलावा परवर्त्ती तन्त्रोंमें १ वेदाचार, २ वैष्णवाचार, ३ शैवाचार, ४ दक्षिणाचार, ५ वामाचार, ६ सिद्धान्ताचार और ७ कुलाचार या कौल इन सात प्रकारके आचारका उल्लेख है। ये सप्ताचार उक्त विधानके अन्तर्गत ही मालूम होते हैं। तन्त्र शब्द देखो।

महाराष्ट्रमें वैदिकोंके मध्य वेदाचार, रामानुज और गौड़ीय वैष्णवोंके मध्य वैष्णवाचार, दाक्षिणात्यमें शङ्कर संप्रदायभुक्त शैवोंके मध्य दक्षिणाचार, दाक्षिणात्यमें वीरशैव या लिङ्गायतोंमें शैवाचार और वीराचार, केरल, गौड़, नेपाल और कामरूपके शाक्त-समाजमें वीराचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार और कौलाचार ये चार प्रकारके आचार ही देखे जाते हैं। प्रथम तीन आचारके तान्त्रिक ग्रन्थ उतने अधिक नहीं हैं, शेषोक्त चार आचारोंके तान्त्रिक ग्रन्थ असंख्य हैं।

उक्त विभिन्न आचारके ग्रंथोंमें विशेषता यह है—वेदाचार, वैष्णवाचार और दक्षिणाचारमूलक तंत्रोंमें वीराचार या कौलाचारकी निंदा है, किंतु अपरापर आचारमूलक तांत्रिक ग्रंथोंमें वीराचार या कौलाचारकी विशेष सुख्याति दिखाई देती है।

अभी भारतवर्षमें शाक्तकी संख्या थोड़ी नहीं है। प्रधानतः रक्त चंदनका तिलक शाक्तनिर्देशक है, किन्तु शाक्त धर्म अति गुह्य होनेके कारण जनसाधारण उसे सहजमें समझ नहीं सकते, इस कारण तांत्रिक निबंधकारोंने लिखा है—

"अन्तः शाक्ताः बहिः शैवाः सभायां वैष्णवा मताः।
नाना रूपधराः कौलाः विचरन्ति महीतले॥"

वर्त्तमान शाक्तोंमें पशु, वीर और दिव्य ये तीन भाव प्रचलित हैं। इस संबंधमें रुद्रयामलका प्रमाण उद्धृत कर शाक्तोंने दिखलाया है—

"शक्तिप्रधानं भावानां त्रयाणां साधकस्य च।
दिव्यवीरपशूनाञ्च भावत्रयमुदाहृतम्॥
पशुभावे ज्ञानसिद्धिः पश्वाचारनिरूपणम्।
वीरभावे क्रियासिद्धिः साक्षाद् रुद्रो न संशयः।
दिव्यभावे देवतायाः दर्शनं परिकीर्त्तितम्।
ज्ञानी भूत्वा पशोर्भावे वीराचारं ततः परम्।
वीराचाराद्भवेद्रुद्रोऽन्यथा नैव च नैव च॥
भावद्वयस्थितो मंत्री दिव्यभावं विचारयेत्।
सदा शुचिर्दिव्यभावमाचरेत् सुसमाहितः।
देवतायाः प्रियार्थञ्च सर्वकर्म कुलेश्वर॥
देवतातुल्यभावस्य देवतायाः प्रियापरः।
तद्विद्धि देवताभावं सुदिव्यभावं प्रकीर्त्तितम्।
सर्वेषां भावधर्माणां शक्तिमूलं न संशयः॥"

(रुद्रयामल १ अ०)

साधकोंके लिये दिव्य, वीर और पशु (साधक) जो त्रिविध भावोंका प्रसङ्ग है, वही शक्तिप्रधान है अर्थात् शक्तिसाधक इन्हीं तीन भावोंका आश्रय करें। जिस भावसे ज्ञानसिद्ध होता है, वही पश्वाचार है, जिस वीरभावसे क्रियासिद्ध होती है अर्थात् साधक साक्षात् रुद्र होते हैं, उसीका नाम वीराचार है। जिस दिव्यभावसे देवताओंका साक्षात्कार होता है, वही दिव्याचार है।

साधक पहले पशुभावमें ज्ञानी हो कर पीछे वीराचार अवलम्बन करे। वीराचारसे ही केवल रुद्रत्वलाभ होता है, दूसरे किसी प्रकारसे रुद्रत्वलाभ नहीं होता। पशु और वीर इन दोनों भावोंमें सिद्ध होनेके बाद दिव्यभावकी आलोचना करे। इस दिव्य भावके द्वारा देवताके समान भाव और देवताकी तरह क्रियाशील होता है, इसी कारण इसको श्रेष्ठ दिव्यज्ञान या देवता-भाव कहा है। इन सब भावोंका मूल ही निःसन्देह शक्ति है।

शाक्ताचार।

श्यामारहस्यमें शाक्तोंके आचार-विषयमें इस प्रकार लिखा है—सर्वदा सभी प्राणियोंकी भलाईमें रत तथा विहित आचारपरायण होवें। अनित्य कर्मका परित्याग कर नित्यकर्मके अनुष्ठानमें लगे रहें तथा इष्टदेवताके प्रति सभी कर्म निवेदन करें। इष्टदेवताके मंत्रको छोड़ अन्य मन्त्रार्चानसे श्रद्धा, अन्य मन्त्रका पूजा, कुलस्त्री और वीरनिन्दा, उसी स्थलमें वेश्योपाहरण, स्त्रियोंके प्रति प्रहार और उनके प्रति क्रोधका परित्याग करें। क्योंकि समस्त जगत् स्त्रीमय है तथा शाक्त स्वयं अपनेको भी स्त्रीस्वरूप समझें। स्त्रियोंकी पूजा करनी होती है, इस कारण साधकको स्त्रीद्वेष परित्याग करना उचित है।

शाक्तसाधक जपके समय जपस्थानमें महाशङ्ख स्थापन कर शुभा और कुलजाता शक्तिमें गमन तथा उसे दर्शन और स्पर्शन; मत्स्य, मांस आदि यथारुचि द्रव्य भक्षण और ताम्बूल सेवन कर मत्स्य, मांस, दधि, मधु, दुग्धादि तथा नाना प्रकारके भोज्य इष्टदेवताके उद्देशसे निवेदन कर जपविधानानुसार जप करें।

शाक्तसाधक सिद्धिके लिये जब जप करेंगे, तब उनके लिये दिक्, काल और स्थित्यादिका कोई नियम नहीं है, अर्थात् उन्हें किस दिन किस समय अवस्थान कर पूजाजपादि करने होंगे, उसका कोई विशेष नियम नहीं है। बलि और पूजादि वे इच्छानुसार कर सकेंगे। किंतु इसमें कुछ विशेषता है, वह यह कि साधक जहां महामंत्रका साधन करेंगे, वहां स्वेच्छानियम नहीं चलेगा। पर हां, उसका यथाविधान पूजन और जपादि अवश्य करना होगा। इस समय वस्त्र, आसन, स्थानादि सभी नियमानुसार करने होंगे।

साधक साधनकालमें मनको निर्विकल्प अर्थात् स्थिर करें। उस समय सुगन्धित श्वेत और लोहित पुष्प और बिल्वपत्रादि द्वारा इष्टदेवताकी अर्चना करना उचित है। अर्चना अर्थात् पूजा और जपके बाद पेय, चव्य, चोष्य, भोज्य, भोग, गृह, सुख इन सबोंको युवतीरूपमें चिन्ता करें। इस प्रकार चिंताके बाद कुलजा शक्तिका दर्शन कर समाहित चित्तसे उन्हें प्रणाम करें। ऐसा करनेसे यदि साधकको भाववशतः, कुलदृष्टि उत्पन्न हो जावे, तो वे मानसी पूजाके अधिकारी होंगे। मानसीपूजा करके वे बाला, यौवनोन्मत्ता, वृद्धा, सुन्दरी, कुत्सिता और महादुष्टा इन्हें प्रणाम कर स्मरण करें। ये सब स्त्रियोंके प्रकार हैं, इनकी निन्दा या इनके प्रति कौटिल्याचरण या अप्रियभाषणका परित्याग करना होगा, क्योंकि ऐसा करनेसे सिद्धिमें बाधा पहुंचती है। स्त्रीशक्तिगण ही एकमात्र देवता, प्राण और विभूषण स्वरूप हैं। सभी समय स्त्रीके साथ रहना होगा।

"स्त्रीसङ्गिता सदा भाव्यमन्यथा स्वस्त्रियामपि।
विपरीतरता सा तु भवितां हृदयोपरि॥
भाधर्मो जायते सुभ्रु किन्तु धर्मो महान् भवेत्।
स्वेच्छाचारोऽत्र गदितः प्रचरेत् हृष्टमानसः॥"
(श्यामारहस्य ८ प०)

शाक्त साधकको इस प्रकार आचारयुक्त हो कर पूजा और जपादिका अनुष्ठान करना चाहिये। कुलस्त्रियोंके साथ उक्त प्रकारसे पानभोजनादि करके पूजा-जपादि करनेसे मंत्र सिद्ध होता है।

कौलतंत्रमें लिखा है, कि पानमें जिसकी भ्रांति है, रक्तरेतमें जिसकी घृणा है, शुद्धिमें अशुद्धताभ्रम है और मैथुनमें पापशंका है, वह भ्रष्ट है, भ्रष्ट व्यक्ति किस प्रकार चण्डीमंत्र साधन कर सकेगा? वह भ्रष्टव्यक्ति इस जन्ममें रोग और शोकका भोग कर अंत कालमें रौरव नरकका भोग करता है। शाक्तोंके लिये पञ्चमकार ही सुख और मोक्षका एकमात्र श्रेष्ठसाधन है। शक्तिदेवी भावरूपा हैं तथा वे रेतः द्वारा प्रसन्न होती हैं। रेतः

द्वारा उनका तर्पण मद्य और मांसके समान है। केवल पञ्चमकार द्वारा ही साधक सिद्धिलाभ करते हैं।

"केवलैः पञ्चमैर्देवि सिद्धो भवति साधकः।
ध्यात्वा कुण्डलिनीं शक्तिं रमन् देवो विमुच्यते॥"

यदि शक्तिसाधनमें अनन्या नारी लाभ हो, तो उसे आत्मदेहस्वरूप समझ कर उसके कानमें मन्त्र प्रदान करें। ऐसा करनेसे ही वे भुक्ति और मुक्तिप्रदायिनी शक्ति होगी। रम्भा और उर्वशी आदि स्वर्गमें तथा इस लोकमें जो सर्वश्रेष्ठा स्त्री हैं, उनका नाथ होनेसे वे शाक्त या कौलिक कहलाते हैं।

साधक गुरुपत्नी आदिको शक्ति बना सकते हैं। क्योंकि गुरु साक्षात् शिवस्वरूप हैं, उनकी पत्नी परमेश्वरी हैं,—

"गुरोः स्नुषा गुरोः कन्या तथा च मन्त्रपुत्रिका।
एतस्या गमनं वर्ज्यं ब्रह्मघ्नं मानसेऽपि च॥
कौलिकस्य च पत्नी च सा साक्षात्परमेश्वरी शिवे।
तस्या रमणमात्रेण कौलिको नारकी भवेत्॥
आत्मापि गौरवाद्रुरुर्या अन्या या विहिताः स्त्रियः।
मूलोद्भागे न कर्तव्यो विचारो मन्त्रवित्तमैः॥"

शिवहीन जो शक्ति है उसे बिलकुल परित्याग करना होता है। साधक पञ्चमकारके प्रथम द्वारा भैरव, द्वितीय द्वारा ब्रह्मरूपभाक्, तृतीय द्वारा महाभैरव, चतुर्थ द्वारा पुण्यैकनायक और पञ्चम द्वारा शिवतुल्य होते हैं।

साधक कुलाचार्य गृहमें आ कर पापविशुद्धिके लिये अमृतके लिये प्रार्थना करें, यदि अमृत न मिले, तो जल पान करें। कुलाचार्य जिस भावमें पात्र दें, उसे भक्तिपूर्वक नमस्कार कर ग्रहण करना होगा।

ज्ञानवान् साधक धूम्रक्रीड़ादि द्वारा वृथा समय नष्ट न करें। देवपूजा, जप, यज्ञ और स्तवपाठादि द्वारा समय बितावें। सर्वदा गुरुके साथ शास्त्रालाप, गुरुदर्शन, गुरुप्रणाम और गुरुपूजादि करें। गुरुके आगे पृथक् पूजा और औद्धत्य, दीक्षा, व्याख्या और प्रभुत्वका परित्याग करना उचित है। गुरुकी शय्या, आसन, यान, पादुका, स्नानोदक और छाया इन सबका लङ्घन न करें। गुरुका नाम भी लेना मना है। कायमनोवाक्यसे गुरुका अनुगामी हो। गुरुके प्रति भक्ति रख कर साधक साधना करें।

शाक्तगण सभी पदार्थोंको शक्तिरूपमें अवलोकन करें। शक्ति ही शिव है, शिव ही शक्ति है, ब्रह्म, विष्णु, रुद्र, रवि, चन्द्र और ग्रहगण आदि सभी शक्तिस्वरूप हैं। और तो क्या, यह समस्त निखिल ब्रह्माण्ड शक्तिस्वरूप है। जो इस निखिल जगत्‌को शक्तिरूपमें नहीं देख सकते, वे निरयगामी होते हैं। (श्यामारहस्य)

वर्तमान शाक्ताचारके सम्बन्धमें असंख्य तान्त्रिक निबन्ध हैं जिनमें लक्ष्मण देशिकका शारदातिलक, राघवभट्टकृत शारदातिलककी टीका, ब्रह्मानन्दगिरिकी शाक्तानन्दतरङ्गिणी, गौड़ीय शङ्कराचार्यका तारारहस्य, ज्ञानानन्दका कौलावलीतन्त्र और कृष्णानन्द आगमवागीशका तन्त्रसार, इन सब ग्रन्थोंमें सभी बातें संक्षेपमें लिखी गई हैं।

२ शक्तिमान, बलवान्। (ऋक् ७।१०३।५)

शाक्तागम (सं० पु०) तन्त्रशास्त्र।

शाक्तानन्दतरङ्गिणी (सं० स्त्री०) तन्त्रभेद।

शाक्तिक (सं० पु०) शक्त्या जीवति शक्ति (वेतनादिभ्यो जीवति। पा ४।४।१२) इति ठक्, आयुधो वृत्तिः। १ शक्ति-उपासक, शाक्त। २ भाला चलानेवाला।

शाक्तीक (सं० पु०) शक्तिप्रहरणमस्य शक्ति (शक्तियष्ट्योरीकक्। पा ४।४।५९) इति ईकक्। १ शक्ति या भाला सम्बन्धी। २ भाला चलानेवाला।

शाक्तेय (सं० त्रि०) १ शक्ति-सम्बन्धी। २ शक्तिका उपासक, शाक्त। ३ शक्तिका पुत्र पराशर।

शाक्त्य (सं० पु०) शक्ति-ष्यञ्। १ शक्तिका उपासक, शाक्त। २ वैदिक गौरिवीति ऋषिका गोत्रापत्य। ३ पराशर।

शाक्त्यायन (सं० पु०) शाक्त्य ऋषिका गोत्रापत्य।

शाक्मन् (सं० क्ली०) बल। (ऋक् १०।५६।६)

शाक्य (सं० पु०) शकोऽभिजनमस्येति (शण्डिकादिभ्योञ्यः। पा ४।३।९२) इति ञ्य। १ बुद्धदेव।

२ एक प्राचीन क्षत्रिय जाति। ये लोग अपनेको सूर्यवंशीय इक्ष्वाकु वंशोद्भव बतलाते हैं। एक समय शाक्य लोगोंने अपने वर्णाश्रम प्रभावसे विशेष

प्रतिष्ठा लाभ की तथा स्वयं भगवान् बुद्धने इस वंशमें अवतीर्ण हो कर शाक्यजातिका गौरव बढ़ाया।

जिस समय मगधाधिप बिम्बिसार राजगृहमें, अङ्गाधिपति चम्पा नगरमें, लिच्छवी वैशालीमें और साकेतपुरी परित्यागके बाद जब कोशलपति प्रसेनजित् उत्तर-श्रावस्तिनगरमें बड़े गौरवसे राज्यशासन कर रहे थे, उस समय कोशलराज्यके पूर्वभागमें रोहिणी नदीके किनारे शाक्य और कोलि नामक दो क्षत्रिय शाखा धीरे धीरे अपना मस्तक उठानेकी कोशिश कर रही थी। इस समय मगधाधीश्वर और कोशलपति एक दूसरेका दुश्मन बन कर राज्यसीमा बढ़ानेकी इच्छासे युद्धविग्रहमें लिप्त थे। इसी मौकेमें रोहिणी नदीके एक किनारे शाक्योंने और दूसरे किनारे कोलियोंने अपनेको स्वाधीन घोषित कर दिया। कपिलवास्तुमें शाक्य राजधानी प्रतिष्ठित हुई। शाक्य और कोलियोंने आपसमें आत्मीयता सूत्रसे बद्ध हो बड़े आनन्दसे कुछ समय शान्ति सुखभोग किया था। शाक्यपति शुद्धोदनने दो कोलीय राजकुमारियोंका पाणिग्रहण किया। इन दोनों राजकुमारियोंसे कोई पुत्र उत्पन्न न होनेके कारण राजा शुद्धोदन बड़े चिन्तित रहा करते थे। कुछ समय बाद बड़ी रानीको गर्भका लक्षण दिखाई दिया। प्राचीन प्रथानुसार राजनन्दिनी सन्तान प्रसव करनेके लिये पित्रालय चली। किन्तु राहमें ही उन्होंने लुम्बिनी उद्यानमें एक पुत्र प्रसव किया। नवजात कुमार और प्रसूतिको उसी समय कपिलवास्तुमें लौटा लाया गया। सात दिनके बाद सूतिकागारमें ही माताका देहान्त हुआ। अब छोटी रानी ही राजकुमारका लालन पालन करने लगी। यह बालक शाक्यवंशकेतु होनेके कारण शाक्यसिंह नामसे प्रसिद्ध हुआ। आगे चल कर कोलिय-राजकन्या यशोधरा या सुभद्राके साथ उसका विवाह हुआ। बुद्ध देखो।

जिस शाक्यवंशमें शाक्यसिंहने जन्मग्रहण किया, उस ऐक्ष्वाक वंशधरोंने किस प्रकार शाक्य नामसे प्रथित हो अपना आधिपत्य फैलाया था, उसका संक्षिप्त विवरण बौद्ध ग्रन्थावलीमें लिखा है। ये सब ग्रन्थ पढ़नेसे प्रदर्शित शाक्य जातिकी संख्या और उनका प्रभाव तथा बौद्धमतसे उनके विराग और आनुरक्तिका यथायथ इतिहास संग्रह किया जा सकता है।

तिब्बत देशीय दुल्व या विनयपिटक ग्रन्थमें लिखा है, कि वाराणसीपति महेश्वरसेनके वंशधर कुशीनगर और पोतलमें राज्य करते थे। उस वंशमें पोतल नामक एक राजा थे। गौतम और भरद्वाज नामक उनके दो पुत्र हुए। ज्येष्ठ गौतम पिताकी अनुमति ले कर पोतलके प्रान्तदेशमें तपस्या करने चले गये। कनिष्ठ भरद्वाज कर्णिककी मृत्युके बाद राजा हुए। भरद्वाजके कोई पुत्र सन्तान न रहनेके कारण दुःखित अन्तःकरणसे एक दिन गौतमने अपने गुरु ऋषि कनकवर्णसे कहा, 'प्रभो! पोतलराजवंश लोप होना चाहता है, आप ऐसा कोई रास्ता निकाल दीजिये जिससे लोप न हो।' प्रिय शिष्यका ऐसा वचन सुन कर ऋषिने योगबलसे गौतमके शरीरमें वृष्टिपात कराया जिससे उन्हें दिव्य शक्तिके सञ्चारके साथ दिव्य ज्ञान उत्पन्न हो आया। पीछे उन्हींकी देहसे निःसृत दो रक्तमिश्रित बिंदु कुछ समय सूर्यके उत्तापमें रह कर अण्डेमें परिणत हो गया। उत्तरोत्तर सूर्यके उत्तापसे वे दोनों अण्डे फूट गये और दिव्यकांतियुक्त दो नवकुमार भीतरसे निकले और पार्श्ववर्ती ईखके खेतमें चले गये। इस प्रकार तापसे दोनों बालककी उत्पत्ति हुई सही, पर नष्टवीर्य गौतम दिन पर दिन कमजोर होते गये। ऋषि कनकवर्ण उन दोनों संतानोंको गौतमके पुत्र ज्ञान कर घर लाये और उनका लालन पालन करने लगे। सूर्योदयके साथ जन्म होनेसे वे सूर्यवंशी, गौतमके अङ्गजात होनेसे आङ्गिरस और इक्षुक्षेत्रमें प्राप्त होनेसे इक्ष्वाकु या ऐक्ष्वाक नामसे परिचित हुए।

भरद्वाजकी मृत्युके बाद मन्त्रिदलने ऋषिके साथ सलाह करके गौतमके बड़े लड़केको राजा बनाया। कुछ समय राज्य करके वे अपुत्रक अवस्थामें पञ्चत्वको प्राप्त हुए। पीछे छोटे लड़के इक्ष्वाकु नाम धारण कर राजसिंहासन पर बैठे। इसके बाद उनके सात वंशधरोंने एक एक कर पोतल राजधानीमें राज्य किया। उस वंशके अन्तिम राजा इक्ष्वाकु विरुधक थे। उनके उल्कामुख, करकर्ण, हस्तिनाजक और नूपुर नामक चार

पुत्र थे। किन्तु राजाने एक परमसुन्दरी नारीके रूप पर मुग्ध हो उससे इस शर्त पर विवाह कर लिया, कि उसके गर्भमें जो पुत्र जन्म लेगा, वही सिंहासनाधिकारी होगा। कुछ समय बाद उस रमणीके गर्भसे राज्यानन्द नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। राजाने पूर्व वचनानुसार उसीको राजा बनाया और चारों लड़कोंको देशसे निकाल दिया। चारों राजकुमार आत्मीय और अनुचरोंसे परिवृत हो हिमालयको पार कर भागीरथीके किनारे कपिलमुनिके आश्रममें पहुंचे। वहां ऋषि-आश्रमके समीप उन्होंने कुटी बनाई। ऋषिके आदेशानुसार वे लोग अपनी स्वजातीय बहनोंसे ही विवाह कर अनेक सन्तान संतति उत्पादन करनेमें बाध्य हुए।

इस प्रकार दलपुष्ट हो कर उन्होंने ऋषिप्रदर्शित आश्रमभागमें एक नगर बसाया। ऋषिके नामानुसार उस नगरका नाम कपिलवास्तु रखा गया। वहां धीरे धीरे उनकी संख्या बढ़ने लगी। पीछे वे लोग देवदह नामक नगर स्थापन कर वहां रहने लगे। इस समय "शाक्यगण स्वजातीयको छोड़ किसी रमणीका पाणिग्रहण नहीं कर सकते" ऐसी विवाह पद्धति लिपिबद्ध हुई।

इधर एक दिन राजा विरूढ़कने अपने प्रथम चार पुत्रोंकी याद कर राजसभामें उनकी बात उठाई। राजमंत्रियोंने कहा, 'महाराज! आपके पुत्रगण अपने अदृष्ट और शक्तिके बलसे इस प्रकार लब्धप्रतिष्ठ हो कर राज्येश्वर हो गये हैं।' इस पर राजाने पुत्रोंकी अलौकिक कीर्तिकहानी सुन कर कहा, 'मेरे कुमार साहसी और शक्तिमान् हैं। तभीसे वे लोग शाक्य नामसे परिचित हुए। किसी दूसरेका कहना है, कि इनके पूर्वपुरुषोंने शाकवृक्षका आश्रय लिया था और वे लोग इनके वंशधर होनेके कारण 'शाक्य' कहलाये।

विरूढ़कको मृत्युके बाद उनके सबसे छोटे लड़के राजा हुए। इनके कोई सन्तानादि न रहनेसे पीछे उल्कामुखने ही राजसिंहासनको सुशोभित किया। अनन्तर यथाक्रम करकर्ण, हस्तिनासक और नूपुर राजा हुए। नूपुरके पुत्र वशिष्ठ, पीछे इस वंशमें कई राजाओंके बाद धनुर्दुर्ग कपिलवास्तुके अधीश्वर हुए। इनके सिंह-हनु और सिंहनाद नामक दो पुत्र थे। सिंह-हनुके शुद्धोदन, शुक्लोदन, द्रोणोदन और अमृतोदन नामक चार पुत्र तथा शुद्धा, शुक्ला, द्रोणा और अमृता नामकी चार कन्याएं उत्पन्न हुईं। शुद्धोदनके पुत्र सिद्धार्थ और आयुष्मत नन्द, शुक्लोदनके पुत्र आयुष्मत् जिन और शाक्य राजभद्र (भद्रिक), द्रोणोदनके पुत्र महानाम और आयुष्मत् अनिरुद्ध। अमृतोदनके पुत्र आनन्द और देवदत्त। शुद्धाके सुप्रबुद्ध, शुक्लाके मल्लिक, द्रोणाके सुलभ, अमृताके कल्याणवर्द्धन और सिद्धार्थके राहुल नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे। इन सब शाक्यकुलरथियोंसे बौद्धधर्मकी पुष्टि और प्रचार हुआ।*

सिद्धार्थके बुद्धत्वप्राप्ति और तन्मतप्रचारके पहले शाक्यगण शिव और शक्तिके उपासक थे, उसका आभास ललितविस्तारादि ग्रंथमें यथेष्ट मिलता है। इस समय संख्यावृद्धिके साथ शाक्योंका प्रभाव बहुत कुछ बढ़ गया था। पूर्वोक्त कोशलराज प्रसेनजित्‌के पुत्र विरूढ़क या विड़ूढक पिताको राज्यच्युत कर स्वयं कोशलके राजा हुए। पीछे उन्होंने कपिलवास्तुके शाक्यकुलको निर्मूल किया था। जातिगत और धर्मगतविद्वेष ही इसका एकमात्र कारण था।

शाक्यगण जो बुद्धधर्म ग्रहण कर बौद्ध हुए थे, उसका परिचय बौद्धधर्म विकाशके इतिहासमें अच्छी तरह दिया गया है। आनन्द, काश्यप प्रभृति सिद्धार्थके सभी अनुचरगण शाक्यवंशोद्भव थे। धर्मके आच्छादनसे सामाजिक आवरण हट गया, शाक्यगण तब बौद्ध यति या श्रमण नामसे परिचित हुए. शिलालिपिसे शाक्य भिक्षु और भिक्षुणीका परिचय पाया जाता है, वे लोग ५वीं ६ठी शताब्दीमें भी विद्यमान थे। उनमेंसे ५वीं सदीमें उत्कीर्ण शाक्यभिक्षु बोधिधर्मकी मूर्त्तिलिपि, यशोविहारकी बौद्ध भिक्षुणी जयभट्टारिकाकी मूर्त्तिलिपि, शाक्यराज महानामकी बोधगयास्थ लिपि, गोसुरसिंह-

---

* ऊपर जो उपाख्यान दिया गया है, वह बहुत कुछ रामायणकी छायाके आधार पर रचित मालूम होता है। जो हो, उसमें मूल इतिहासकी कुछ छाया भी प्रतिफलित दिखाई देती है।

बलके पुत्र विहारस्वामी रुद्रकी लिपि, शाक्यपति धर्मदासकी साक्षीलिपि और तिष्यप्रतीर्थनिवासी शाक्यभिक्षु धर्मगुप्त और द'द्रसेनकी बोधगयास्थ लिपि उसका प्रकृष्ट प्रमाण हैं।

शाक्यपाल (सं० पु०) राजभेद। (राजतर० ८।१३२६)

शाक्यपुङ्गव (सं० पु०) शाक्ये शाक्यवंशे पुङ्गवः श्रेष्ठः। शाक्यसिंह, शाक्यमुनि।

शाक्यप्रभ (सं० पु०) बौद्धाचार्यभेद। (तारनाथ)

शाक्यबुद्ध (सं० पु०) बुद्धदेव, शाक्यमुनि।

शाक्यबुद्धि (सं० पु०) बौद्धाचार्यभेद, शाक्यबोधका एक नाम।

शाक्यबुद्धोपजीविन् (सं० त्रि०) शाक्यबुद्धं बुद्धमतं उपजीवति जीव-णिनि। शाक्यबुद्ध-मतावलम्बी।

शाक्यबोधिसत्त्व (सं० पु०) बुद्धदेव, शाक्यमुनि।

शाक्यभिक्षु (सं० पु०) बुद्धधर्मावलम्बी। मनुटीकाकार कुल्लूकने शाक्य भिक्षुओंको पाषण्डी बताया है।

'पाषण्डिनः वेदवाह्यव्रतलिङ्गधारिणः शाक्यभिक्षु क्षपणकादयः' (कुल्लूक)

शाक्यभिक्षुकी (सं० स्त्री०) बौद्ध-भिक्षुरमणी। (दशकुमारच०)

शाक्यमति (सं० पु०) बौद्धाचार्यभेद। (तारनाथ)

शाक्यमहाबल (सं० पु०) बौद्धराजभेद।

शाक्यमित्र (सं० पु०) बौद्धाचार्यभेद।

शाक्यमुनि (सं० पु०) बुद्धदेव, शाक्यवंशावतंस बुद्ध, मुनिविशेष। पर्याय—स्वजित श्वेतकेतु, धर्मकेतु, महामुनि, पञ्चज्ञान, सर्वदर्शी महाबोध, महाबल, बहुक्षम, त्रिमूर्त्ति, सिद्धार्थ, शाक। (शब्दरत्ना०)

अमरटीकाकार भरतने इस शब्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की है,—बुद्धदेव शाक्यवंशमें उत्पन्न हुए थे, इसलिये शाक्य तथा मुनिकी तरह आचरण करते थे, सुतरां शाक्यमुनि कहलाये। शाक शब्दसे वृक्षका बोध होता है। वृक्षके नीचे वे रहते थे, इस कारण शाक्य नामसे अभिहित हुए। इक्ष्वाकुवंशीय बहुतेरे व्यक्ति पिताके शापसे गौतम वंशीय कपिल मुनिके आश्रममें शाकवृक्षके नीचे वास करते थे, अतएव उनका शाक्य नाम पड़ा।

'शाक्यवंशत्वात् शाक्यः शाक्यश्चासौ मुनिश्चेति शाक्यमुनिः तथाहि शाको वृक्षविशेषस्तत्रभवा विद्यमानाः शाक्याः। पितुः शापेन केचिदिक्ष्वाकुवंश्या गौतमवंशजकपिलमुनेराश्रमे शाकवृक्षे कृतवासाश्च शाक्या उच्यन्ते।' तदुक्तं।

"शाकवृक्षप्रतिच्छन्नं वासं यस्मात् प्रचक्रिरे।
तस्मादिक्ष्वाकुवंशास्ते भुवि शाक्या इति श्रुताः।"
(अमरटी० भरत)

शाक्यवर्द्ध (सं० पु०) शाक्यकुलदेवताविशेष।

शाक्यश्री (सं० पु०) बौद्धाचार्यविशेष।

शाक्यसिंह (सं० पु०) शाक्यः सिंह इव। शाक्यमुनि। (अमर)

शाक्र (सं० त्रि०) शक्र-अण्। १ शक्रसम्बन्धी। (पु०) ज्येष्ठा नक्षत्र। इसके अधिपति इन्द्र हैं।

शाक्री (सं० स्त्री०) १ दुर्गा। २ शक्रपत्नी, इन्द्राणी।

शाक्रीय (सं० त्रि०) शक्र-सम्बन्धी।

शाक्वर (सं० त्रि० १ शक्तिशाली, पराक्रमी, बलवान्। (पु०) २ शाक्वोद्भव वायु, सृष्टिसे पहले आत्मासे आकाश निकला, पीछे इस आकाशसे वायुकी उत्पत्ति हुई। ३ इन्द्र। ४ इन्द्रका वज्र। ५ बैल, सांड़। ६ प्राचीन कालकी एक रीति या संस्कार।

शाक्वरवर्ण (सं० क्ली०) सामभेद। (लाट्या० ७।२।१।६)

शाक्वर्य (सं० क्ली०) शाक्वरका कार्य।

शाख (सं० पु०) १ कृत्तिकाका पुत्र, कार्त्तिकेय। २ करञ्ज। ३ भाग।

शाख (फा० स्त्री०) १ टहनी, डाल, डाली। २ लगा हुआ टुकड़ा, खंड, फांक। ३ नदी आदिकी बड़ी धारामेंसे निकली हुई छोटी धारा। ४ सींग।

शाखदार (फा० वि०) १ जिसमें बहुत-सी शाखाएं हों, टहनीदार। २ सींगवाला, सींगदार।

शाखा (सं० स्त्री०) शाखति गगनं व्याप्नोतीति शाखअच्-टाप्। १ वृक्षाङ्गविशेष, पेड़के धड़से चारों ओर निकली हुई लकड़ी या छड़, डाल, टहनी। पर्याय—लता, लङ्का, शिखा। (भरतधृत मेदिनी) २ शरीरका अवयव, हाथ और पैर। ३ बाहु। ४ बोवाड़। ५ घरका पाखा। ६ उंगली। ७ अवयव, अङ्ग। ८ प्रकार, किसी मूल वस्तुसे निकले हुए उसके भेद।

(गीता २।४१) ९ विभाग, हिस्सा। १० अंतिक, समीप। ११ किसी शास्त्र या विद्याके अंतर्गत उसका कोई भेद। १२ वेदकी संहिताओंके पाठ और क्रमभेद जो कई ऋषियोंने अपने गोत्र या शिष्यपरम्परामें चलाये। शौनकने अपने 'चरणव्यूह'-में वेदोंकी जो शाखाएं गिनाई हैं, उसके अनुसार ऋग्वेदकी पांच शाखाएं हैं, शाकल्य, बाष्कल, आश्वलायन, शांखायन और माण्डूकेय। वायुपुराणमें यजुर्वेदकी ८६ शाखाएं कही गई हैं जिनमें ४२के नाम चरणव्यूहमें आये हैं। इन ४२में माध्यन्दिन और काण्वको ले कर १७ शाखाएं वाजसनेयोंके अन्तर्गत हैं। सामवेदकी सहस्र शाखाएं कही जाती हैं जिनमें १५ गिनाई गई हैं। इसी प्रकार अथर्ववेदकी भी बहुत-सी शाखाओंमेंसे पिप्पलादा, शौनकीया आदि केवल नौ गिनाई गई हैं।

शाखाकण्ट (सं० पु०) शाखायां कण्टो यस्य। स्नूही वृक्ष, थूहर। इस वृक्षकी प्रत्येक शाखामें कांटा होता है, इसलिये इसका नाम शाखाकण्ट हुआ है। (राजनि०)

शाखाङ्ग (सं० क्ली०) अङ्गस्य शाखा पूर्वनिपातः। शरीरका अवयव, हाथ और पैर।

शाखाग्र (सं० क्ली०) शाखाया अग्रं। १ विटाग्र, शाखाका अगला हिस्सा। २ अङ्गुली, उंगली।

शाखाचङ्क्रमण (सं० पु०) १ एक डाल परसे दूसरी डाल पर कूद जाना। २ कोई विषय पूरा अध्ययन न करके थोड़ा यह थोड़ा वह पढ़ना। ३ एक विषय अधूरा छोड़ कर दूसरा विषय हाथमें लेना, एक विषय पर स्थिर न रहना।

शाखाचन्द्रन्याय (सं० पु०) एक न्याय या कहावत जो ऐसी बातके सम्बन्धमें कही जाती है जो केवल देखनेमें जान पड़ती है, वास्तवमें नहीं होती। चंद्रमा कभी कभी देखनेमें ऐसा जान पड़ता है मानो पेड़की डाल पर है।

शाखाद (सं० पु०) पेड़ोंकी डाल या टहनी खानेवाला पशु। जैसे—गौ, बकरी, हाथी।

शाखारुण्ड (सं० पु०) शाखारण्ड देखो।

शाखानगर (सं० क्ली०) शाखेव नगरं। नगरका प्रान्तवर्ती छोटा नगर, उपनगर। भानुदीक्षितने भरतने इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की है—नगरमें अपरिमित लोगोंका स्थान न होनेसे उन सब लोगोंके रहनेके लिये उसके समीप जो नगर स्थापित होता है, उसे शाखानगर कहते हैं। अंगरेजीमें इसका नाम है Suburb।

शब्दरत्नावलीमें लिखा है, कि मूल नगरसे आरम्भ करके दूसरा जो नगर बसाया जाता है, उसे शाखानगर कहते हैं।

शाखान्तर (सं० क्ली०) शाखाया अन्तरं। अन्य शाखा, दूसरी शाखा।

शाखापशु (सं० पु०) यूपबद्ध पशु। (कात्या० श्रौ० ६।१०)

शाखापित्त (सं० क्ली०) एक रोग। इसमें हाथ पैरमें जलन और सूजन होती है।

शाखापुर (सं० क्ली०) पुरस्य शाखा अभिधानात् पूर्वनिपातः, शाखेव पुरमिति वा। शाखानगर, किसी नगरके आस-पास फैली हुई बस्ती। (हेम)

शाखाप्रकृति (सं० स्त्री०) अपने राज्यके कुछ दूर परके आठ प्रकारके राजा। इनका विचार किसी राजाको युद्धके समय रखना चाहिये। (मनु ७।१५६)

शाखाभृत् (सं० पु०) शाखां बिभर्त्ति भृ-क्विप् तुक्। वृक्ष, पेड़।

शाखामृग (सं० पु०) शाखायां मृगः। १ वानर, बंदर। २ गिलहरी।

शाखाम्ल (सं० पु०) अम्लवेंत।

शाखाम्लिका (सं० स्त्री०) तिन्तिड़ी वृक्ष, इमलीका पेड़।

शाखारण्ड (सं० पु०) वह ब्राह्मण जो अपनी शाखाको छोड़ कर दूसरी शाखाका अध्ययन करे, शाखारण्ड। पर्याय—अन्यशाखक। (हेम)

शाखारथ्या (सं० स्त्री०) सोलह हाथ चौड़ा रास्ता।

शाखारोग (सं० पु०) रोगविशेष। रक्तादि धातु कुपित हो कर रक्तस्राव वीसर्प और गुल्मादि रोग पैदा करता है। (चरक सूत्रस्था० ११ अ०)

शाखाल (सं० पु०) शाखां लाति आश्रयतीति ला-क। वानीर वृक्ष, अम्लवेंत।

शाखावात (सं० पु०) हाथ पैरमें होनेवाला वातरोग। हाथ और पैरको देहकी शाखा कहते हैं, यहां वात मिलनेसे यह शाखावात कहलाया। (सुश्रुत)

शाखाशिफा (सं० स्त्री०) शाखायाः शिफा। वह डाल जो नीचेकी ओर बढ़ कर जड़ पकड़ ले और एक अलग पेड़के धड़के रूपमें हो जाय। जैसे,—बटकी जटा या बरोह।

शाखास्थि (सं० क्ली०) हाथकी हड्डी।

शाखि (सं० पु०) तुर्किस्तान।

शाखिन् (सं० पु०) शाखाऽस्त्यस्येति शाखा-इनि। १ वृक्ष, पेड़। २ वेद। ३ वेदकी किसी शाखाका अनुयायी। ४ पीलुका पेड़। ५ तुर्किस्तानका निवासी। (त्रि०) ६ शाखाविशिष्ट, शाखाओंसे युक्त।

शाखिमूल (सं० पु०) रुचि वृक्ष।

शाखिल (सं० पु०) व्यक्तिविशेष। (कथासरित्सा० ४७।८५)

शाखी (सं० पु०) शाखिन् देखो।

शाखीय (सं० त्रि०) शाखा-संबन्धी।

शाखोच्चार (सं० पु०) विवाहके समय वंशावलीका कथन।

शाखोट (सं० पु०) स्वनामख्यात वृक्षविशेष, सिहोरका पेड़। कलिङ्ग—सखोड़मरणु, महाराष्ट्र—साहोड़, तैलङ्ग—बारपिकेचेट्टु, रवनूकी, बम्बई—सहोड़ा। संस्कृत पर्याय—पिशाचद्रु, पीतफल, कर्कशच्छद, भूतवृक्ष, सकट, अक्षधर, गवाक्षी, धूकावास, रूक्षपत्र, पीत, कैशिकयोज, क्षीरनाशन। गुण—तिक्त, उष्ण, पित्तवर्द्धक और वातनाशक। (राजनि०)

भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—रक्तपित्त, अर्श, वातश्लेष्म और अतिसारनाशक। (भावप्रका०) श्वित्र (सफेद कोढ़) रोगमें इसका बीज बाँट कर प्रलेप देनेसे आरोग्य होता है।

शाखा (सं० त्रि०) शाखा रूप। शाखा-सम्बन्धी।

शागिर्द (फा० पु०) किसीसे विद्याप्राप्त करनेका संबंध रखनेवाला, शिष्य, चेला।

शागिर्दपेशा (फा० पु०) १ मातहत। २ अहलकार, कर्मचारी। ३ खिदमतगार, सेवक। ४ बड़ी कोठीके पास नौकरोंके लिये अलग बने हुए घर।

शागिर्दी (फा० स्त्री०) १ शिक्षाप्राप्त करनेके लिये किसी गुरुके अधीन रहनेका भाव, शिष्यता। २ सेवा टहल।

शाग्लि (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक एक ऋषिका नाम।

शाङ्कर (सं० क्ली०) शङ्कर-अण्। १ एक छन्दका नाम। इसका रूपान्तर शाक्कर या शाकर ऐसा देखा जाता है। शङ्करो देवताऽस्य अण्। २ रुद्रदैवतक नक्षत्र, आर्द्रा नक्षत्र। इस नक्षत्रके अधिष्ठाता देवता शङ्कर हैं, इसलिये इसका नाम शाङ्कर है।

(पु०) शङ्करस्यायं वाहनत्वात् शङ्कर अण्। ३ बलीवर्द, साँड़। (मेदिनी) ४ शङ्कराचार्यका अनुयायी। ५ सोमलताका एक भेद। (त्रि०) ६ शङ्कर-सम्बन्धी। ७ शङ्कराचार्यका। जैसे,—शाङ्करभाष्य, शाङ्करमत।

शाङ्करभाष्य (सं० क्ली०) शङ्कराचार्य-प्रणीत भाष्य। वेदान्तदर्शन, गीता और उपनिषदोंके जिस भाष्यको शङ्कराचार्यने प्रणयन किया, उसे शाङ्करभाष्य कहते हैं।

शाङ्करि (सं० पु०) शङ्करस्यापत्यं पुमान् शङ्कर-इञ्। १ शिवके पुत्र, गणेश। २ कार्त्तिकेय। ३ अग्नि। ४ एक मुनिका नाम। ५ शमीका पेड़।

शाङ्करी (सं० स्त्री०) शिव द्वारा निर्धारित अक्षरोंका क्रम, शिवसूत्र।

शाङ्कव्य (सं० पु०) शङ्कोर्गोत्रापत्यं शंकु (गर्गादिभ्यो यञ्। पा ४।१।१०५) इति यञ्। शंकुका गोत्रापत्य।

शाङ्कव्यायनी (सं० स्त्री०) शाङ्कव्य ष्फ, ङीप्। शाङ्कव्यकी स्त्री। (पा ४।१।१८)

शाङ्कित (सं० पु०) चोरक नामक गन्धद्रव्य।

शाङ्कुक (सं० पु०) राजतरङ्गिणीके अनुसार एक कवि। इन्होंने भुवनाभ्युदय नामक एक काव्य रचा।

(राजतरङ्गिणी ४।७०४)

शाङ्कुची (सं० स्त्री०) शकुचि मछली।

शाङ्कुपथिक (सं० त्रि०) शंकुपथेन आहृतं गच्छतीति वा। शंकुपथ (उत्तरपथेनाहृतञ्च। पा ५।१।७७) इति ठञ्, आद्यचो वृद्धिः। १ शंकुपथ द्वारा आहृत। २ शंकुपथ द्वारा गमनकारी।

शाङ्कुर (सं० त्रि०) १ शंकु-सम्बन्धी। (पु०) २ लिङ्गभेद।

(अथर्व० ७।१०।३)

शाङ्ख (सं० त्रि०) शङ्खस्येदं अण्। १ शङ्ख-सम्बन्धी, शंखका बना हुआ। (पु०) २ शंखकी ध्वनि।

शाङ्खमित (सं० पु०) शंखमितका गोत्रापत्य।

शाङ्खमित्रि (सं० पु०) १ अपर्यासितनामक एक स्मृतिकार। २ शंखमित्रका गोत्रापत्य।

शाङ्खलिखित (सं० पु०) शंख और लिखित ऋषिका धर्मशास्त्र-सम्बन्धी।

शाङ्खायन (सं० पु०) शङ्खस्य गोत्रापत्यं शङ्ख (अश्वादिभ्यः फञ्। पा ४।१।११०) इति फञ्। एक गृह्य और श्रौत-सूत्रकार ऋषि। इनका कौषीतकीब्राह्मण भी है।

शाङ्खायन्य (सं० पु०) शाङ्खायनस्य गोत्रापत्यं शाङ्खायन (गोत्रे कुञ्जादिभ्य च्फञ्। पा ४।१।९८) इति च्फञ्। शाङ्खायनका गोत्रापत्य।

शाङ्खारि (सं० पु०) शङ्ख बेचनेवाली जाति।

शाङ्खिक (सं० पु०) शङ्खकरणं शिल्पमस्य इति शङ्ख-ठक्। १ शङ्ख बनाने और बेचनेवाला। पर्याय—काम्बविक, शङ्खकार, काम्बकार। २ शङ्खवादक, शङ्ख बजानेवाला। पर्याय—शङ्खध्मा। (जटाधर)

(त्रि०) ३ शङ्ख-सम्बन्धी। ४ शङ्खका बना हुआ।

शाङ्खिन (सं० पु०) शङ्खिनोऽपत्यं शङ्खिन् (संयोगादिभ्यश्च। पा ६।४।१६६) इति अण्। शङ्खीका अपत्य।

शाङ्ख (सं० पु०) शङ्खस्य गोत्रापत्यं शङ्ख (गर्गादिभ्यो यञ्। पा ४।१।१०५) इति अण्। १ शङ्खका गोत्रापत्य। (त्रि०) २ शङ्ख-सम्बन्धी, शङ्खका बना हुआ।

शाङ्खुष्ठा (सं० स्त्री०) शङ्खुष्ठा देखो।

शाचि (सं० पु०) १ सक्तु। २ शाक। ३ प्रवाल।

(ऋक् ८।१७।१२)

शाचिगु (सं० त्रि०) १ शक्त गाभीयुक्त, जिसकी गाय सब काममें समर्थ हो। २ विख्यात गाभीयुक्त।

(ऋक् ८।१८।१२)

शाञ्जी (सं० स्त्री०) शालिञ्च शाक, एक प्रकारका साग।

(रत्नावि० १ अ०)

शाट (सं० पु०) १ वस्त्रभेद, वह कपड़ा जो कमरमें लपेट कर पहना जा सके, धोती। २ कपड़ेका टुकड़ा। ३ एक प्रकारकी कुरती। ४ ढीला ढाला पहनावा।

शाटक (सं० पु० क्ली०) शाट स्वार्थे-कन्। १ पट, वस्त्र। २ शाटकोर। (अमर)

शाटिका (सं० स्त्री०) १ साड़ी, धोती। २ कचूर।

शाटी (सं० स्त्री०) साड़ी, धोती।

शाठ्य (सं० त्रि०) शठोऽभिजनोऽस्य शठ (शण्डिकादिभ्यो ञ्यः। पा ४।३।९२) इति ञ्य। १ जिसका शठ अभिजन हो। (पु०) २ शठका गोत्रापत्य।

(पाणिनि ४।१।१०५)

शाठ्यायन (सं० क्ली०) १ होमभेद, शाठ्यायनहोम, प्रकृतिकर्म वैगुण्य प्रशमनार्थ होमविशेष। विवाह और व्रतप्रतिष्ठा आदि कर्मोंमें जो होम करनेको कहा गया है, उसे प्रकृतकर्म कहते हैं। प्रकृत कर्म करनेमें यदि भ्रम और प्रमादवशतः कोई त्रुटि हो जाय, तो उस त्रुटिको दूर करनेके लिये जो होम करना होता है उसे शाठ्यायनहोम कहते हैं। भवदेवभट्टने प्रकृतकर्मके वैगुण्य समाधानके लिये यह होम करने कहा है। किन्तु इसे भट्टनारायण आदि स्वीकार नहीं करते। उन लोगोंका कहना है, कि प्रायश्चित्तके लिये यह होम करना होता है। प्रकृत कर्ममें यदि भ्रम हो जाय, तो उसके प्रायश्चित्तके लिये यह होम करे।

(पु०) २ मुनिविशेष।

शाठ्यायनक (सं० क्ली०) शाठ्यायनहोमकर्म।

शाठ्यायनि (सं० पु०) शाठ्यायनस्य गोत्रापत्यं शाठ्यायन (शिवादिभ्यः इञ्। पा ४।१।१५४) इति इञ्। शाठ्यमुनिका गोत्रापत्य। (शतपथब्रा० ८।१।४।६)

शाठ्यायनिन् (सं० पु०) शाठ्यायनेन यत् प्रोक्तं शाठ्यायन (पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु। पा ४।३।१०५) इति णिनि। शाठ्यायनप्रोक्त एक उपनिषद्।

शाठायन (सं० पु०) शठका गोत्रापत्य।

शाठायन्य (सं० पु०) शठका गोत्रापत्य।

(पाणिनि ४।१।९८)

शाठ्य (सं० क्ली०) शठस्य भावः शठ-ष्यञ्। शठता, धूर्तता, कपटता, बदमाशी। पर्याय—कपट, व्याज, दम्भ, उपाधि, छद्म, कैतव, कुसृति, निकृति इन सौ अयथार्थ व्यवहारको शाठ्य कहते हैं। अमरटीकामें भरतने लिखा है,—पूर्वोक्त पर्यायोंमें कपट आदि छः छलार्थ तथा कुसृति आदि तीन निकृतार्थ व्यवहार होता है। यह बात कोई कोई कहते हैं। इसमें भेद यह है, कि कपट, व्याज आदि छः पर्यायमात्रक तथा कुसृति आदि तीन

हिंसामात्र फल है। किन्तु बहुतोंका मत है, कि ये नौ एक अर्थमें व्यवहृत होते हैं।

चाणक्यपण्डितने चाणक्यश्लोकमें लिखा है, कि जो शठ है, उसके प्रति शठताचरण करना ही युक्तियुक्त है। कुटिल व्यक्तिके प्रति सरलतानीति शास्त्रविगर्हित है।

'शठे शाठ्यं समाचरेत्' (चाणक्य)

शाठ्यवत् (सं० त्रि०) शाठ्यं विद्यते ऽस्य मतुप् मस्य व। शाठ्ययुक्त, शठताविशिष्ट, शठ, धूर्त्त।

(बृहत्संहिता ६८।५५)

शाड्वल (सं० पु०) शाद्वल देखो।

शाण (सं० क्ली०) शणेन निर्मितमिति शण-अण्। १ शणनिर्मित वस्त्र, सनके रेशेका बना हुआ कपड़ा, अँगरा।

(पु०) शण्यते ज्ञायते गुणादिरनेनेति शण घञ्। २ कषपट्टिका, कसौटी। पर्याय—निकष, कष, शान, निकस, कस, आकष। ३ हथियारोंकी धार तेज करनेका पत्थर, सान। ४ परिमाणविशेष, चार माशेकी एक तौल। (भावप्रकाश) (त्रि०) ५ सनके पौधेसे सम्बन्ध रखनेवाला। ६ सनका बना हुआ।

शाणक (सं० पु०) शण-अण् स्वार्थे कन्। शणनिर्मित वस्त्र, सनके रेशेका बना हुआ कपड़ा, मंगरा।

शाणकवास (सं० पु०) शाणक देखो।

शाणपाद (सं० पु०) १ पर्वतविशेष। (हरिवंश) २ परिमाणविशेष, चार माशेकी एक तौल।

शाणवस्य (सं० पु०) जनपदविशेष। (भारत)

शाणवास (सं० पु०) १ वह जो सनका बुना हुआ वस्त्र पहने। २ एक अर्हत्का नाम।

शाणाजीव (सं० पु०) शाणेन आजीवतीति आ-जीव-अच्। अस्त्रमार्जक, वह जो हथियारोंमें सान देनेका काम करता हो।

शाणि (सं० पु०) पट्टवृक्ष, पटुआ।

शाणिक (सं० त्रि०) राजाओंका सम्बन्धी।

शाणित (सं० त्रि०) शाण इतच्। १ सान रखा हुआ, चोखा या तेज किया हुआ। २ कसौटी पर घसा हुआ।

शाणी (सं० स्त्री०) शाणस्य विकारः शण-अण्-ङीप्। १ शणसूत्रमयी पट्टिका, सनके रेशोंसे बुना हुआ कपड़ा, मंगरा। २ वह छोटा कपड़ा जो यज्ञोपवीतके समय ब्रह्मचारीको पहननेके लिये दिया जाता है। ३ छिन्नवस्त्र, फटाहुआ कपड़ा, चीथड़ा। ४ सान। ५ कसौटी। ६ छोटा खेमा या पर्दा।

शाणीर (सं० क्ली०) शोणनद मध्यस्थित तट, दरेरो नदीका किनारा।

शाणोत्तरीय (सं० पु०) पाणिनि मुनिका एक नाम।

शालातुरीय देखो।

शाण्ड—एक राजा। "शाण्डो दाद्धिरणिनः" (ऋक् ६।६३।६) 'शाण्डः राजा'। (सायण)

शाण्डदूर्वा (सं० स्त्री०) पाकदूर्वा, एक प्रकारकी दूब।

शाण्डाकी (सं० स्त्री०) एक प्रकारका पशु।

शाण्डिक (सं० पु०) माँदमें रहनेवाला साँडा नामक जन्तु।

शाण्डिक्य (सं० त्रि०) शाण्डिकोऽभिजनोऽस्य शाण्डिक (शण्डिकादिभ्यो ञ्यः। पा ४।३।९२) इति ञ्य। जिसका शाण्डिक अभिजन हो, शाण्डिक देशवासी।

शाण्डिल (शाण्डिल्य)—१ अयोध्या प्रदेशके हर्दोई जिलान्तर्गत एक तहसील या उपविभाग। यह अक्षा० २६° ५३' से ले कर २७° २१' ३० तथा देशा० ८०° १८' से ले कर ५०' के बीच पड़ता है। भू परिमाण ५५७ वर्गमील है। इसके उत्तरमें हर्दोई और मिथिल, पूर्वमें महमूदाबाद, दक्षिणमें मालिहाबाद और मोहन तथा पश्चिममें बिलग्राम तहसील है। शाण्डिल, कल्याणमल, बालामों और गुन्दाया परगना ले कर यह उपविभाग गठित है। यहां चार दीवानी और छः फौजदारी अदालत और चार थाने हैं।

२ उक्त विभागका एक परगना। भू-परिमाण ३२६ वर्गमील है। यहांका अधिकांश स्थान ही जङ्गल और बालुकामय प्रान्तरसे पूर्ण है। सिर्फ १७० वर्गमील स्थान आबाद है। जौ, गेहूं, बाजरा, चना, अरहर, उड़द, ज्वार, रूई, ईख, पोस्ता, तमाकू, नील और चावल यहांकी प्रधान उपज है। इस परगनेमें २१३ गांव लगते हैं जिनमें ८२ गांव राजपूतके अधिकारमें, ८१ मुसलमानके और ४१ गांव कायस्थके अधिकारमें हैं।

३ उक्त जिलेका एक नगर तथा शाण्डिल उपविभागका

शाङ्कमित्रि (सं० पु०) १ अथर्वप्रातिशाख्यका एक सूत्रकार। २ शंखमित्रका गोत्रापत्य।

शाङ्खलिखित (सं० पु०) शंख और लिखित ऋषिका धर्मशास्त्र-सम्बन्धी।

शाङ्खायन (सं० पु०) शङ्खस्य गोत्रापत्यं शङ्ख (अश्वादिभ्यः फञ्। पा ४।१।११०) इति फञ्। एक गृह्य और श्रौत-सूत्रकार ऋषि। इनका कौशीतकीब्राह्मण भी है।

शाङ्खायन्य (सं० पु०) शाङ्खायनस्य गोत्रापत्यं शाङ्खायन (गोत्रे कुञ्जादिभ्य च्फञ्। पा ४।१।९८) इति च्फञ्। शाङ्खायनका गोत्रापत्य।

शाङ्खारि (सं० पु०) शङ्ख बेचनेवाली जाति।

शाङ्खिक (सं० पु०) शङ्खकरणं शिल्पमस्य इति शङ्ख-ठक्। १ शङ्ख बनाने और बेचनेवाला। पर्याय—काम्बविक, शङ्खकार, काम्बवक। २ शङ्खवादक, शङ्ख बजानेवाला। पर्याय—शङ्खध्मा। (जटाधर)

(त्रि०) ३ शङ्ख-सम्बन्धी। ४ शङ्खका बना हुआ।

शाङ्खिन (सं० पु०) शङ्खिनोऽपत्यं शङ्खिन (संयोगादिश्च। पा ६।४।१६६) इति अण्। शङ्खीका अपत्य।

शाङ्ख्य (सं० पु०) शङ्खस्य गोत्रापत्यं शङ्ख (गर्गादिभ्यो यञ्। पा ४।१।१०५) इति यञ्। १ शङ्खका गोत्रापत्य। (त्रि०) २ शङ्ख-सम्बन्धी, शङ्खका बना हुआ।

शाङ्गुष्ठा (सं० स्त्री०) चाङ्गुष्ठा देखो।

शाचि (सं० पु०) १ सक्तु। २ शाक। ३ मण्डल।

(ऋक् ८।१७।१२)

शाचिगु (सं० त्रि०) १ शक्त गमनोयुक्त, जिसकी गाय सब काममें समर्थ हो। २ विख्यात गमनोयुक्त।

(ऋक् ८।८।१५)

शाञ्जी (सं० स्त्री०) शालिञ्च शाक, एक प्रकारका साग।

(राजनि० ६ अ०)

शाट (सं० पु०) १ वस्त्रभेद, वह कपड़ा जो कमरमें लपेट कर पहना जा सके, धोती। २ कपड़ेका टुकड़ा। ३ एक प्रकारकी कुरती। ४ ढीला ढाला पहनावा।

शाटक (सं० पु० क्ली०) शाट स्वार्थे-कन्। १ पट, वस्त्र। २ शाटकभेद। (अमर)

शाटिका (सं० स्त्री०) १ साड़ी, धोती। २ कचूर।

शाटी (सं० स्त्री०) साड़ी, धोती।

शाठ्य (सं० त्रि०) शठोऽभिजनोऽस्य शाठ (शण्डिकादिभ्यो ञ्यः। पा ४।३।९२) इति ञ्य। १ जिसका शठ अभिजन हो। (पु०) २ शठका गोत्रापत्य।

(पाणिनि ४।१।१०५)

शाट्यायन (सं० क्ली०) १ होमभेद, शाट्यायनहोम, प्रकृतकर्म वैगुण्य प्रशमनार्थ होमविशेष। विवाह और मन्त्रप्रतिष्ठा आदि कर्मोंमें जो होम करनेको कहा गया है, उसे प्रकृतकर्म कहते हैं। प्रकृत कर्म करनेमें यदि भ्रम और प्रमादवशतः कोई त्रुटि हो जाय, तो उस त्रुटिको दूर करनेके लिये जो होम करना होता है उसे शाट्यायनहोम कहते हैं। भवदेवभट्टने प्रकृतकर्मके वैगुण्य समाधानके लिये यह होम करने कहा है। किन्तु इसे भट्टनारायण आदि स्वीकार नहीं करते। उन लोगोंका कहना है, कि प्रायश्चित्तके लिये यह होम करना होता है। प्रकृत कर्ममें यदि भ्रम हो जाय, तो उनके प्रायश्चित्तके लिये यह होम करे।

(पु०) २ मुनिविशेष।

शाट्यायनक (सं० क्ली०) शाट्यायनहोमकर्म।

शाट्यायनि (सं० पु०) शाट्यायनस्य गोत्रापत्यं शाट्यायन (तिकादिभ्यः फिञ्। पा ४।१।१५४) इति फिञ्। शाट्यमुनिका गोत्रापत्य। (शतपथब्रा० ८।१।४।९)

शाट्यायनिन् (सं० पु०) शाट्यायनेन प्रोक्तं शाट्यायन (पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु। पा ४।३।१०५) इति णिनि। शाट्यायनप्रोक्त एक उपनिषद्।

शाठायन (सं० पु०) शठका गोत्रापत्य।

शाठायन्य (सं० पु०) शठका गोत्रापत्य।

(पाणिनि ४।१।९८)

शाठ्य (सं० क्ली०) शठस्य भावः शठ-ष्यञ्। शठता, धूर्तता, कपटता, वञ्चकता। पर्याय—कपट, व्याज, दम्भ, उपाधि, छद्म, कैतव, कुसृति, निकृति. इन सब अर्थोंमें व्यवहारको शाठ्य कहते हैं। अमरटीकामें भरतने लिखा है,—पूर्वोक्त पर्यायोंमें कपट आदि छः उपाधिमें तथा कुसृति आदि तीन विप्रतारणमें व्यवहार होता है। यह बात कोई कोई कहते हैं। इसमें भेद यह है, कि कपट, व्याज आदि छः वञ्चनात्मक तथा कुसृति आदि तीन

हिंसामात्र फल है। किन्तु बहुतोंका मत है, कि ये दो एक अर्थमें व्यवहृत होते हैं।

चाणक्यपण्डितने चाणक्यश्लोकमें लिखा है, कि जो शठ है, उसके प्रति शठताचरण करना ही युक्तियुक्त है। कुटिल व्यक्तिके प्रति सरलतानीति शास्त्रविगर्हित है।

"शठे शाठ्यं समाचरेत्" (चाणक्य)

शाठ्यवत् (सं० त्रि०) शाठ्यं विद्यते ऽस्य मतुप् मस्य व। शाठ्ययुक्त, शठताविशिष्ट, शठ, धूर्त्त। (वृहत्संहिता ६८।५५)

शाड्वल (सं० पु०) शाद्वल देखो।

शाण (सं० क्ली०) शणेन निर्मितमिति शण-अण्। १ शणनिर्मित वस्त्र, सनके रेशेका बना हुआ कपड़ा, भँगरा।

(पु०) २ श्यते श्यायते गुणादिरनेनेति शण घञ्। २ कषपट्टिका, कसौटी। पर्याय—निकष, कष, शान, निकस, कस, आकष। ३ हथियारोंकी धार तेज करनेका पत्थर, सान। ४ परिमाणविशेष, चार माशेकी एक तौल। (भावप्रकाश) (त्रि०) ५ सनके पौधेसे सम्बन्ध रखनेवाला। ६ सनका बना हुआ।

शाणक (सं० पु०) शण-अण् स्वार्थे कन्। शणनिर्मित वस्त्र, सनके रेशेका बना हुआ कपड़ा, भँगरा।

शाणकवास (सं० पु०) शाणक देखो।

शाणपाद (सं० पु०) १ पर्वतविशेष। (हरिवंश) २ परिमाणविशेष, चार माशेकी एक तौल।

शाणयत्य (सं० पु०) जनपदविशेष। (भारत)

शाणवास (सं० पु०) १ वह जो सनका बुना हुआ वस्त्र पहने। २ एक अर्हत्‌का नाम।

शाणाजीव (सं० पु०) शाणेन आजीवतीति आ-जीव-अच्। अस्त्रमार्जक, वह जो हथियारोंमें सान देनेका काम करता हो।

शाणि (सं० पु०) पट्टवृक्ष, पटुआ।

शाणिक (सं० त्रि०) राजाओंका सम्बन्धी।

शाणित (सं० त्रि०) शाण इतच्। १ सान रखा हुआ, तीखा या तेज किया हुआ। २ कसौटी पर घसा हुआ।

शाणी (सं० स्त्री०) शाणस्य विकारः शण-अण्-ङीप्। १ शणसूत्रमयी पट्टिका, सनके रेशोंसे बुना हुआ कपड़ा, भँगरा। २ वह छोटा कपड़ा जो यज्ञोपवीतके समय ब्रह्मचारीको पहननेके लिये दिया जाता है। ३ छिन्नवस्त्र, फटाहुआ कपड़ा, चीथड़ा। ४ सान। ५ कसौटी। ६ छोटा खेमा या पर्दा।

शाणीर (सं० क्ली०) शोणनद मध्यस्थित तट, इस नदीका किनारा।

शाणोत्तरीय (सं० पु०) पाणिनि मुनिका एक नाम। शालातुरीय देखो।

शाण्ड—एक राजा। "शाण्डो दाद्धिरणिनः" (ऋक् ६।६३।९) 'शाण्डः राजा'। (सायण)

शाण्डदूर्वा (सं० स्त्री०) पाकदूर्वा, एक प्रकारकी दूब।

शाण्डाकी (सं० स्त्री०) एक प्रकारका पशु।

शाण्डिक (सं० पु०) माँदमें रहनेवाला साँडा नामक जन्तु।

शाण्डिक्य (सं० त्रि०) शाण्डिकोऽभिजनोऽस्य शाण्डिक (शण्डिकादिभ्यो ञ्यः। पा ४।३।९२) इति ञ्य। जिसका शाण्डिक अभिजन हो, शाण्डिक देशवासी।

शाण्डिल (शाण्डिल्य)—१ अयोध्या प्रदेशके हर्दोई जिलान्तर्गत एक तहसील या उपविभाग। यह अक्षा० २६° ५१' से ले कर २७° २१' उ० तथा देशा० ८०° १८' से ले कर ५०' के बीच पड़ता है। भू परिमाण ५५७ वर्गमील है। इसके उत्तरमें हर्दोई और मिश्रिख, पूर्वमें महमूदाबाद, दक्षिणमें मालिहाबाद और मोहन तथा पश्चिममें विलग्राम तहसील है। शाण्डिल, कल्याणमल, पालामी और गुन्दावा परगना ले कर यह उपविभाग गठित है। यहां चार दीवानी और छः फौजदारी अदालत और चार थाने हैं।

२ उक्त विभागका एक परगना। भू-परिमाण ३२६ वर्गमील है। यहांका अधिकांश स्थान ही जङ्गल और बालुकामय प्रान्तरसे पूर्ण है। सिर्फ १७० वर्गमील स्थान आबाद है। जौ, गेहूं, बाजरा, चना, अरहर, उड़द, ज्वार, रुई, ईख, पोस्ता, तमाकू, नील और चावल यहांकी प्रधान उपज है। इस परगनेमें २१३ गाँव लगते हैं जिनमें ८२ गाँव राजपूतके अधिकारमें, ८१ मुसलमानके और ४१ गांव कायस्थके अधिकारमें हैं।

३ उक्त जिलेका एक नगर तथा शाण्डिल उपविभागका

शाङ्खमित्रि (सं० पु०) १ अथर्वप्रातिशाख्यका एक सूत्रकार। २ शंखमित्रका गोत्रापत्य।

शाङ्खलिखित (सं० पु०) शंख और लिखित ऋषिका धर्मशास्त्र सम्बन्धी।

शाङ्खायन (सं० पु०) शङ्खस्य गोत्रापत्यं शङ्ख (अश्वादिभ्यः फञ्। पा ४।१।११०) इति फञ्। एक गृह्य और श्रौतसूत्रकार ऋषि। इनका कौषीतकीब्राह्मण भी है।

शाङ्खायन्य (सं० पु०) शाङ्खायनस्य गोत्रापत्यं शाङ्खायन (कुञ्जादिभ्य च्फञ्। पा ४।१।९८) इति च्फञ्। शाङ्खायनका गोत्रापत्य।

शाङ्खरि (सं० पु०) शङ्ख बेचनेवाली जाति।

शाङ्खिक (सं० पु०) शङ्खकरणं शिल्पमस्य इति शङ्ख-ठक्। १ शङ्ख बनाने और बेचनेवाला। पर्याय—काम्बविक, शङ्खकार, काम्बवक। २ शङ्खवादक, शङ्ख बजानेवाला। पर्याय—शङ्खध्मा। (भरत)

(त्रि०) ३ शङ्ख-सम्बन्धी। ४ शङ्खका बना हुआ।

शाङ्खिन (सं० पु०) शङ्खिनोऽपत्यं शाङ्खिन (संयोगादिश्च। पा ६।४।१६६) इति अण्। शङ्खीका अपत्य।

शाङ्ख्य (सं० पु०) शङ्खस्य गोत्रापत्यं शङ्ख (गर्गादिभ्यो यञ्। पा ४।१।१०५) इति यञ्। १ शङ्खका गोत्रापत्य। (त्रि०) २ शङ्ख-सम्बन्धी, शङ्खका बना हुआ।

शाङ्गुष्ठा (सं० स्त्री०) शाङ्गुष्ठा देखो।

शाचि (सं० पु०) १ सक्तु। २ शाक। ३ प्रज्ञान। (ऋक् ८।१७।१२)

शाचिगु (सं० त्रि०) १ शक्त गाभीयुक्त, जिसकी गाय सब कामोंमें समर्थ हो। २ विख्यात गाभीयुक्त। (ऋक् ८।१७।१२)

शाञ्ची (सं० स्त्री०) हालिञ्च शाक, एक प्रकारका साग। (रत्नचि० ६ अ०)

शाट (सं० पु०) १ वस्त्रभेद, वह कपड़ा जो कमरमें लपेट कर पहना जा सके, धोती। २ कपड़ेका टुकड़ा। ३ एक प्रकारकी कुरती। ४ ढीला ढाला पहनावा।

शाटक (सं० पु० क्ली०) शाट स्वार्थे-कन्। १ पट, वस्त्र। २ शाटकभेद। (अमर)

शाटिका (सं० स्त्री०) १ साड़ी, धोती। २ कचूर।

शाटी (सं० स्त्री०) साड़ी, धोती।

शाट्य (सं० त्रि०) शटोऽभिजनोऽस्य शाट (शण्डिकादिभ्यो ञ्यः। पा ४।३।९२) इति ञ्य। १ जिसका शाट अभिजन हो। (पु०) २ शटका गोत्रापत्य। (पाणिनि ४।१।१०५)

शाट्यायन (सं० क्ली०) १ होमभेद, शाट्यायनहोम, यज्ञादि-कर्मवैगुण्य प्रशमनार्थ होमविशेष। विवाह और मन्त्र-प्रतिष्ठा आदि कर्मोंमें जो होम करनेको कहा गया है, उसे प्रकृतकर्म कहते हैं। प्रकृत कर्म करनेमें यदि भ्रम और प्रमादवशतः कोई त्रुटि हो जाय, तो उस त्रुटिको दूर करनेके लिये जो होम करना होता है उसे शाट्यायनहोम कहते हैं। भवदेवभट्टने प्रकृतकर्मके वैगुण्य समाधानके लिये यह होम करने कहा है। किन्तु इसे भट्टनारायण आदि स्वीकार नहीं करते। उन लोगोंका कहना है, कि प्रायश्चित्तके लिये यह होम करना होता है। प्रकृत कर्ममें यदि भ्रम हो जाय, तो उसके प्रायश्चित्तके लिये यह होम करे।

(पु०) २ मुनिविशेष।

शाट्यायनक (सं० क्ली०) शाट्यायनहोमकर्म।

शाट्यायनि (सं० पु०) शाट्यायनस्य गोत्रापत्यं शाट्यायन (तिकादिभ्यः फिञ्। पा ४।१।१५४) इति फिञ्। शाट्यमुनिका गोत्रापत्य। (शतपथब्रा० ८।१।४।९)

शाट्यायनिन् (सं० पु०) शाट्यायनेन यत् प्रोक्तं शाट्यायन (पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु। पा ४।३।१०५) इति णिनि। शाट्यायनप्रोक्त एक उपनिषद्।

शाठायन (सं० पु०) शठका गोत्रापत्य।

शाठायन्य (सं० पु०) शठका गोत्रापत्य। (पाणिनि ४।१।१८)

शाठ्य (सं० क्ली०) शठस्य भावः शठ-ष्यञ्। शठता, धूर्त्तता, कपटता, बदमाशी। पर्याय—कपट, व्याज, दम्भ, उपाधि, छद्म, कैतव, कुसृति, निकृति इन भी अन्यथा व्यवहारको शाठ्य कहते हैं। अमरटीकामें भरतने लिखा है,—पूर्वोक्त पर्यायोंमेंसे कपट आदि छः छलार्थमें तथा कुसृति आदि तीन विप्रतार्थमें व्यवहार होता है। वह बात कोई कोई कहते हैं। इनमें भेद यह है, कि कपट, व्याज आदि छः मनोगतात्मक तथा कुसृति आदि तीन

हिंसामात्र फल है ; किन्तु बहुतोंका मत है, कि ये दो एक अर्थमें व्यवहृत होते हैं।

चाणक्यपण्डितने चाणक्यश्लोकमें लिखा है, कि जो शठ है, उसके प्रति शठताचरण करना ही युक्तियुक्त है। कुटिल व्यक्तिके प्रति सरलतानीति शास्त्रविगर्हित है।

"शठे शाठ्यं समाचरेत्" (चाणक्य)

शाठ्यवत् (सं० त्रि०) शाठ्यं विद्यते ऽस्य मतुप् मस्य व। शाठ्ययुक्त, शठताविशिष्ट, शठ, धूर्त। (बृहत्संहिता ६८।५५)

शाड्वल (सं० पु०) शाद्वल देखो।

शाण (सं० क्लो०) शणेन निर्मितमिति शण-अण्। १ शणनिर्मित वस्त्र, सनके रेशेका बना हुआ कपड़ा, भंगरा।
(पु०) २ शण्यते ज्ञायते गुणादिरनेनेति शण घञ्। २ कषपट्टिका, कसौटी। पर्याय—निकष, कष, शान, निकस, कस, आकष। ३ हथियारोंको धार तेज करनेका पत्थर, सान। ४ परिमाणविशेष, चार माशेकी एक तौल। (भावप्रकाश) (त्रि०) ५ सनके पौधेसे सम्बन्ध रखनेवाला। ६ सनका बना हुआ।

शाणक (सं० पु०) शाण-अण् स्वार्थे कन्। शणनिर्मित वस्त्र, सनके रेशेका बना हुआ कपड़ा, भंगरा।

शाणकवास (सं० पु०) शाणक देखो।

शाणपाद (सं० पु०) १ पर्वतविशेष। (हरिवंश) २ परिमाणविशेष, चार माशेकी एक तौल।

शाणवत्य (सं० पु०) जनपदविशेष। (भारत)

शाणवास (सं० पु०) १ वह जो सनका बुना हुआ वस्त्र पहने। २ एक अर्हत्‌का नाम।

शाणाजीव (सं० पु०) शाणेन आजीवतीति आ-जीव-अच्। अस्त्रमार्जक, वह जो हथियारोंमें सान देनेका काम करता हो।

शाणि (सं० पु०) पट्टवृक्ष, पटुआ।

शाणिक (सं० त्रि०) राजाओंका सम्बन्धी।

शाणित (सं० त्रि०) शाण इतच्। १ सान रखा हुआ, तीखा या तेज किया हुआ। २ कसौटी पर घसा हुआ।

शाणी (सं० स्त्री०) शाणस्य विकारः शण-अण-ङीप्। १ शणसूत्रमयी पट्टिका, सनके रेशोंसे बुना हुआ कपड़ा, भंगरा। २ वह छोटा कपड़ा जो यज्ञोपवीतके समय ब्रह्मचारीको पहननेके लिये दिया जाता है। ३ छिन्नवस्त्र, फटा हुआ कपड़ा, चीथड़ा। ४ सान। ५ कसौटी। ६ छोटा खेमा या पर्दा।

शाणीर (सं० क्लो०) शोणनद मध्यस्थित तट, वहांकी नदीका किनारा।

शाणोत्तरीय (सं० पु०) पाणिनि मुनिका एक नाम।
शालातुरीय देखो।

शाण्ड—एक राजा। "शाण्डो दाद्धिरणिनः" (ऋक् ६।६३।९) 'शाण्डः राजा'। (सायण)

शाण्डदूर्वा (सं० स्त्री०) पाकदूर्वा, एक प्रकारकी दूब।

शाण्डाकी (सं० स्त्री०) एक प्रकारका पशु।

शाण्डिक (सं० पु०) मांदमें रहनेवाला सांडा नामक जन्तु।

शाण्डिक्य (सं० त्रि०) शाण्डिकोऽभिजनोऽस्य शाण्डिक (शण्डिकादिभ्यो ञ्यः। पा ४।३।९२) इति ञ्य। जिसका शाण्डिक अभिजन हो, शाण्डिक देशवासी।

शाण्डिल (शाण्डिलय)—१ अयोध्या प्रदेशके हर्दोई जिलान्तर्गत एक तहसील या उपविभाग। यह अक्षा० २६° ५१' से ले कर २७° २१' उ० तथा देशा० ८०° १८' से ले कर ५०' के बीच पड़ता है। भू परिमाण ५५७ वर्गमील है। इसके उत्तरमें हर्दोई और मिश्रिख, पूर्वमें महमूदाबाद, दक्षिणमें मालिहाबाद और मोहन तथा पश्चिममें विलग्राम तहसील है। शाण्डिल, कल्याणमल, बालामो और गुन्दावा परगना ले कर यह उपविभाग गठित है। यहां चार दीवानी और छः फौजदारी अदालत और चार थाने हैं।

२ उक्त विभागका एक परगना। भू-परिमाण २२६ वर्गमील है। यहांका अधिकांश स्थान ही जङ्गल और बालुकामय प्रान्तरसे पूर्ण है। सिर्फ १७० वर्गमील स्थान आबाद है। जौ, गेहूं, बाजरा, चना, अरहर, उड़द, ज्वार, रुई, ईख, पोस्ता, तमाकू, नील और चावल यहांकी प्रधान उपज है। इस परगनेमें २१३ गांव लगते हैं जिनमें ८२ गांव राजपूतके अधिकारमें, ८१ मुसलमानके और ४१ गांव कायस्थके अधिकारमें हैं।

३ उक्त जिलेका एक नगर तथा शाण्डिल उपविभागका

जिला-सदर। यह अक्षा० २५° ४' १५" उ० तथा देशा० ८०° ३३' २०" पू० लखनऊ शहरसे ३२ मील उत्तर पश्चिममें तथा हरदोईसे २४ मील दक्षिण-पूर्वमें अव-स्थित है। यहां म्युनिसपलिटि है। धौम्यमुनिने इस स्थानमें रहकर शिष्योंको शिक्षा दी थी तथा समग्र अयोध्या-प्रदेशमें अनुपम स्थान अधिकार किया है। यहां प्रत्न-तत्त्वके आदरकी कोई भी वस्तु नहीं है। प्रायः दो सौ वर्ष हुए यहां "बारह खम्भा" अर्थात् बारह स्तम्भ सम्बलित एक मण्डपका घर बना था। विख्यात सिपाहीयुद्धके समय यहां १८५८ ई०की ६ठी और ७वीं अक्टूबरको दो युद्ध हुए।

यहां सप्ताहमें दो दिन हाट लगती है। इस हाटमें धान और घीकी काफी बिक्री होती है। अवध रोहिल-खण्ड रेलवेका यहां एक स्टेशन रहनेसे उक्त द्रव्यादिकी रफ्तनीमें बड़ी ही सुविधा हुई है।

शाण्डिल्ली (सं० स्त्री०) एक ब्राह्मणी जो अग्निकी माता मान कर पूजी जाती थी। (महाभारत)

शाण्डिल्य (सं० पु०) शाण्डिलस्य मुनेर्गोत्रापत्यं शण्डिल (गर्गादिभ्यो यञ्। पा ४।१।१०५) इति यञ्। १ शाण्डिल मुनिके कुलमें उत्पन्न पुरुष। २ गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिभेद। ३ सरयूपारी ब्राह्मणोंके तीन प्रधान गोत्रोंमेंसे एक गोत्र। ४ एक मुनि। इनकी रची एक स्मृति है और यह भक्ति सूत्रके कर्त्ता माने जाते हैं। ५ श्रीफल, बेल। ६ अग्नि।

शाण्डिल्य—१ एक प्राचीन कवि। २ कुरुसैनवासी एक पुराणविद। लाडमके पुत्र गोविन्दने ११६० ई०में इनके रचे एक ग्रन्थकी बालबोध नामकी टीका लिखी। ३ महाभारतकी टीकाके प्रणेता। ये शाण्डिल्य-लक्ष्मण नामसे परिचित थे। ४ शाण्डिल्यसूत्र या भक्तिमीमांसा-सूत्रके प्रणेता एक ऋषि। शाण्डिल्योपनिषद् और शाण्डिल्यस्मृति नामक दो ग्रन्थ इसी नामके किसी ऋषि द्वारा सङ्कलित थे।

शाण्डिल्यलक्ष्मण (सं० पु०) एक प्रसिद्ध टीकाकार।

शाण्डिल्यायन (सं० पु०) शाण्डिल्य मुनिका गोत्रापत्य। (शत० ब्रा० १०।५।१,२४)

शाण्डिल्यायनक (सं० त्रि०) शाण्डिल्य मुनिका अदूर-भव स्थान आदि।

शाण्य (सं० त्रि०) शाण-यत्। शाण-सम्बन्धी।

शात (सं० क्ली०) शो क्त, (शाच्छोरन्यतरस्याम्। पा ७।४।४१) इति पक्षे इत्वाभावः। १ सुख। २ धुस्तूर वृक्ष, धतूरेका पेड़। (त्रि०) ३ सुखी, सुखयुक्त। ४ विरल। (सुश्रुत ४।१) ४ पतला, पतन, शाणित, सान दिया हुआ, तेज किया हुआ। ५ दुर्बल, कृश। ६ सुन्दर। ७ प्रकाशमान, दीप्तिमान्।

शातक (सं० पु०) १ राजभेद। (मार्कण्डेयपु० ५८।७६) (त्रि०) शातक-भव। २ शातक-सम्बन्धी।

शातकर्णि (सं० पु०) १ मुनिविशेष, शतकर्णिका गोत्रा-पत्य। (विष्णुपु० ४।२४।१२) २ एक आलङ्कारिक। मल्लिनाथने इनका वचन उद्धृत किया है।

शातकर्णी—दाक्षिणात्यके अन्ध्रभृत्यवंशीय कई एक राजे। पहले राजा श्रीशातकर्णि या श्रीमल्लकर्णि, दूसरे शात-कर्णि, तीसरे सुन्दर शातकर्णि या सुनन्द, चौथे सर्वेद शातकर्णि, पांचवें त्रिवश्री शातकर्णि या शिवस्कन्द शातकर्णि, छठे यज्ञश्री शातकर्णि तथा सातवें चन्द्रश्री या दशश्री शातकर्णि नामसे विख्यात थे। विष्णु, वायु, मत्स्य, ब्रह्माण्ड और भागवतपुराणमें इन राजाओंके नाम कुछ परिवर्तित भावमें देखे जाते हैं। ये शालिवाहनवंशीय कहलाते हैं। नानाघाटकी शिलालिपिसे जाना जाता है, कि राजा १म शातकर्णि खृष्टपूर्व २री सदीमें अर्थात् १८०से १६३ खृष्टपूर्वाब्दमें जीवित थे। इनकी महिषीका नाम था नायनिका। हाथीगुम्फामें जो शिलाफलक मिला है, उसमें लिखा है, कि कलिङ्गराज खारवेलने अपने राज्यकालके दूसरे वर्ष अन्ध्रराज शातकर्णिसे राजकर वसूल किया था। भारतवर्ष देखो।

शातकुम्भ (सं० क्ली०) शतकुम्भे पर्वते भवं शतकुम्भ-अण्। १ काञ्चन, सुवर्ण, सोना। (पु०) २ धुस्तूर वृक्ष, धतूरेका पेड़। ३ करवीर वृक्ष, कनेरका पेड़। ४ कचनार वृक्ष।

शातकुम्भमय (सं० पु०) शातकुम्भस्य विकारः, विकारे मयट्। सुवर्णविकार, सोनेका बना हुआ अलङ्कार आदि।

शातकौम्भ (सं० क्ली०) १ स्वर्ण, सोना। (त्रि०) २ सोनेका बना हुआ।

शातकतव (सं० पु०) इन्द्रधनुष।

शातद्वारेय (सं० पु०) शतद्वारस्य गोत्रापत्यं शतद्वार (शुभ्रादिभ्यश्च। पा ४।१।१२३) इति ढक्। शतद्वारका गोत्रापत्य।

शातन (सं० क्लो०) १ सान पर धार तेज करना, चोखा करना। २ काटना, तराशना, छीलना। ३ पेड़ आदि कटवाना। ४ सतह बराबर करना, रौंदना। ५ नष्ट करना। (त्रि०) ६ छेदक, काटनेवाला। (रघु ३।४२)

शातपत (सं० पु०) शतपति (अश्वपत्यादिभ्यश्च। पा ४।१।८४) इति अण्। शतपतिका अपत्यादि।

शातपत्र (सं० क्लो०) शतपत्रमिव शतपत्र (शर्करादिभ्योऽण्। पा ५।३।१०७) इति अण्। शतपत्रके समान, पद्मतुल्य, पद्मसदृश।

शातपत्रक (सं० पु०) शातपत्रं पद्ममिव कन्। चन्द्रिका, चाँदनी।

शातपथ (सं० त्रि०) शतपथ-अण्। शतपथब्राह्मण-सम्बन्धी। (बृहदारण्यकउप० २।४।७)

शातपथिक (सं० पु०) शतपथब्राह्मणके अध्येता।

शातपर्णेय (सं० पु०) शतपर्णका गोत्रापत्य।

शातपुत्रक (सं० क्लो०) शतपुत्रस्य भावः कर्मवा, शतपुत्र (द्वन्द्व मनोज्ञादिभ्यश्च। पा ५।१।१३३) इति वुञ्। शतपुत्रका भाव या कर्म।

शातपुरशैल (सतपुरा पर्वत)—मध्यभारतकी एक गिरिश्रेणी। यह नर्मदा और तासी नदियोंके मध्यदेशमें अवस्थित है। यह विस्तीर्ण अधित्यका-भूमि पूर्वमें अमरकण्टकसे आरम्भ हो कर मध्यप्रदेशके बीचसे होती हुई पश्चिममें सौराष्ट्रोपकूल तक फैल गई है। पहले यह शैल विन्ध्यगिरिका अंश समझा जाता था। पीछे नर्मदा और तासी उपत्यकाका विभागकारी पर्वतांश शात,राके नामसे विख्यात हुआ। किन्तु नर्मदाके उत्तरस्थ विन्ध्यपर्वतकी गठन और बेलपत्थर स्तरराजी एवं महादेवपर्वत प्रभृति स्थानोंकी (सतपुरा पर्वतके विभिन्न अंशोंकी) स्तरगठन पर्य्यवेक्षण करनेसे देखा जाता है, कि इन दोनों पर्वतोंका प्राकृतिक स्तरविन्यास सम्पूर्ण स्वतंत्र है। दो बड़ी बड़ी नदियों द्वारा यह पार्वत्य अधित्यका-भूमि सम्पूर्ण पृथक् सीमामें आबद्ध रहने पर भी उनकी पारस्परिक स्वतन्त्रता सूचित होती है।

अमरकण्टकको सतपुराकी पूर्व सीमा मान लेने पर समस्त पर्वत पूर्व-पश्चिममें पांच सौ मीलकी लम्बाईमें फैला हुआ दिखाई पड़ता है। उत्तर-दक्षिणमें उसकी चौड़ाई कहीं एक सौ मील है। अमरकण्टकके निकट यह पर्वत समुद्रपृष्ठसे ३३२८ फीट ऊंचा है। यहांसे एक शाखा दक्षिण-पश्चिमकी ओर १०० मील विस्तृत हो भण्डारा जिलेके साले-तेकी पर्वतमें आ कर मिल गई है। यह पर्वतांश मैकालगिरिश्रेणीके नामसे वर्णित है और इस पार्वत्यत्रिकोण अधित्यकाका मूलदेश कहलाता है। यहांसे सतपुरा पर्वतश्रेणी क्रमशः संकुचित हो कर दो समान्तराल सूक्ष्मकाय पर्वतशाखाके रूपमें पश्चिमकी ओर चली गई है। ये दोनों पर्वतशाखाएं तासी उपत्यकाकी सीमा कहलाती हैं।

आशीरगढ़के पूर्वांशमें यह पर्वतपृष्ठ अपेक्षाकृत निम्न रहनेके कारण इस रास्तेसे ग्रेट-इण्डियन-पेनिनसुला रेलवेकी परिचालनाकी बड़ी सुविधा हुई है। इस पथसे जब्बलपुरसे खान्देश होती हुई बम्बईशहर पर्यन्त मोटर गाड़ी आती जाती है। इस आशीरगढ़ नगर तक ही सतपुराकी प्राच्य सीमा है।

इस पर्वतकी गठनप्रणाली अत्यन्त विचित्र है। उत्तरमें विन्ध्यश्रेणी जिस तरह अपनी उच्च चूड़ासे सुन्दर विस्तृत अधित्यकामें अववाहिका विस्तार करती है, उसी तरह यह पर्वतश्रेणी भी खण्ड खण्ड अधित्यकाएं तथा उपत्यकाएं ले कर अपनी अववाहिकाओं द्वारा नर्मदा तथा तासी नदियोंके कलेवरको पुष्ट करती है। मण्डला जिलेमें उत्तरकी ओर ही यह पर्वत अधिक ढालवां है। यहां पर्वतपृष्ठ पर चार प्रधान उपत्यकाएं हैं। इन चारों उपत्यकाओंसे चार नदियां पार्वत्य अववाहिकाओंका जल ले कर नर्मदामें मिलती है। पश्चिमांशकी उपत्यकाओंकी अपेक्षा पूर्वांशकी उपत्यकाएं कुछ ऊंची हैं, इस कारण शेषोक्त स्थानकी जलराशिका वेग कुछ अधिक है और उसीसे स्रोतका वेग भी तीव्र हो जाता है। बानमेर और बुर्हनेर नामक दो शाखा नदियोंका पर्वतांश वृक्षलतारहित एवं सुविस्तृत

प्रस्तरस्तूपनिहित है। इसे देखनेसे ही मालूम पड़ता है, कि ज्वालामुखी पर्वतकी अग्न्युद्गारक्रिया द्वारा ही यह इस तरह गठित हुआ है। क्योंकि, इसके चूड़ांशमें केवल ग्रेनाइट और लेटाराइट प्रस्तरस्तर ही दीख पड़ते हैं। गोंडवाड़ा नामकी अधित्यका-भूमि समुद्रपृष्ठसे ११०० फीट ऊंची और पांच वर्गमील विस्तृत है।

सिवनी जिलेमें इस पर्वतपृष्ठ पर सिवनी और लखनादौन नामकी दो अधित्यकायें हैं। ये १८००से २२०० फीट पर्यन्त ऊंची हैं। इस देशभागमें पर्वत उत्तरसे दक्षिणकी ओर ढालू हो गया है। इसकी दो नवयाहिकाओंकी मध्यवर्ती निम्नभूमिसे वैनगंगा नदी निकल है। छिन्दवाड़ा जिलेमें भी पर्वत दक्षिणकी ओर ढालवां है। यहां पेंच और कोलबीड़ा नदीकी पार्वत्य उपत्यका है। यह समुद्रकी सतहसे २२०० फीट ऊंची है। किन्तु मोतुरकी अधित्यका ३५०० फीट ऊंची है। बैतूल जिलेमें भी यह क्रमसे दक्षिणकी ओर ढालवां है। यहांसे ताप्ती नदी निकली है। इसके बाद उस पार्वत्यप्रदेशको पार कर ताप्ती नदी प्रबल स्रोतसे बहती है। इस जिलेके दक्षिण-पश्चिम कोनेमें सावल्गा पर्वत है जो समुद्रपृष्ठसे ३००० फुट ऊंचा है। उत्तर शातपुराकी कई एक शाखायें हुशंगाबाद जिलेके अधिकांश स्थानोंमें फैली हुई हैं। धूपगढ़ (४४५४ फुट) यहांका सबसे ऊंचा शिखर है। पाचमाढ़ी नामक अधित्यका-भूमि समुद्रपृष्ठसे ३४८१ फीट ऊंची एवं प्रायः १२ वर्गमीलमें फैली हुई है। यह पर्वतांश प्राकृतिक सौन्दर्यसे परिपूर्ण है।

हुशंगाबादके दक्षिण बैनगाखर और बहुतोंमें प्रस्तरीभूत स्तर (Metamorphic rocks) दृष्टिगोचर होता है। यह बराबर बैतूल और पाचमाढ़ी पर्वतमाला पर्यन्त विस्तृत है। इसके पूर्व Trap नामक पत्थर दिखाई पड़ता है। निमार जिलेमें यह पर्वत ताप्ती और नर्मदा नदीकी उपत्यकाको विभक्त करता है। इस स्थान पर यह १८ मील चौड़ा है। यहांके पर्वत पर पुराकालादि दृष्टिगोचर नहीं होती। इस पर्वतांके सर्वोच्च शृंग पर विख्यात असीरगढ़ दुर्ग अवस्थित है। असीरगढ़ शातपुरा पर्वत कण्ड ... मध्यमें शिर नामसे कहा है, उसे ताप्तीके दक्षिणी किनारे खड़े हो कर देखनेसे अनुमान होता है, मानो एकमुखान्त पीठ पुन्ज इसकी प्रतिष्ठामें गम्भीर भावसे अंगीभूत हो कर खड़े हों। दक्षिणमें ताप्ती नदी 'कलकल' शब्द करती हुई सीमारूपसे प्रवाहित हो रही है। उसे पार कर दाक्षिणात्यमें प्रवेश करना कष्टकर समझ कर ही मानो शातपुरा पर्वत फिर दक्षिण की ओर अग्रसर नहीं हुआ। ताप्तीके उत्तरीय किनारेसे एक एक करके शृंगसमूह क्रमशः ६००० फीट ऊंचा हो गया है। इस पर्वतके सबसे पश्चिमके प्रान्त भागसे सागर आरम्भ रहता है। यह बम्बई सागर हांकरोडके नामसे विख्यात है।

इस पर्वत पर २०००से ले कर ३८०० फीट तक जितने ऊंचे शिखर हैं, उनमें तुरणमाल सबसे अधिक रमणीय है। यह अधित्यका अधिक दुरारोह न होने पर भी लंबाईमें प्रायः १६ वर्गमील तक फैली हुई है। यह स्थान समुद्रपृष्ठसे ३३०० फीट ऊंचा है। तुरणमालके पश्चिम पर्वतशृंग फिर सजी हुई सेनाकी तरह नर्मदा और ताप्तीके सामने खड़ा है।

नर्मदा और ताप्ती नदीके तीर तथा उसके पासवाली पर्वतश्रेणी देवगन्धर्वोंकी विहारभूमि कहलानेसे विन्ध्यशैलका यह अंश शातपुर (सतपुरा) नामसे भी लिया जाता है। विन्ध्यपर्वत देखो।

मध्यप्रदेशके सिवनी, छिन्दवाड़ा और बालाघाट जिलेमें शातपुरा पर्वतका जो दक्षिण ढालवां प्रदेश फैला हुआ है, उसके ऊपरके जङ्गलकी रक्षा गवर्मेण्ट द्वारा होती है एवं कागजपत्रोंमें उसका नाम 'शातपुरावनमाला' लिया जाता है। इसका भूपरिमाण १००० वर्गमील है। साल और सागवान् वृक्ष यहां बहुत मिलते हैं। बड़े बड़े शाल वृक्ष काट लिये गये हैं और छोटे छोटे पेड़ोंकी खबरदारी की जाती है। मोहगांव और सुहागपुर नामक स्थानमें शालकी नई खेती होने लगी है।

शातभिष (सं० त्रि०) शतभिषा भव। शतभिषा नक्षत्र सम्बन्धी। (पा ४।३।३६)

शातभिषज (सं० त्रि०) शतभिषज्जात।

(पाणिनि ४।३।३६)

शातशौक (सं० पु०) भद्रवाही, मद्रबाहो।

शातमन्यव (सं० त्रि०) शतमन्यु-अण्। शतमन्यु सम्बन्धी, इन्द्र-सम्बन्धी।

शातमान (सं० त्रि०) शतमानेन क्रीतं शतमान (शतमान-विश'तिकेति। पा ५।१।२७) इति अण्। शतमान द्वारा क्रीत, सौ दे कर जो खरीदा गया हो।

शातरात्रिक (सं० त्रि०) शतरात्रभव, सौ रातमें होने वाला। (कात्यायनश्रौ० २३।६।१४)

शातला (सं० स्त्री०) शातं छेदं लातीति, ला-क।
सातला देखो।

शातलेय (सं० पु०) शतल-ढक्। शतलका गोत्रापत्य।
(पा ४।१।१२३)

शातवनेय (सं० पु०) सौ यज्ञ करनेवालेका पुत्र। जो सौ यज्ञ करते हैं, वे शतवनि कहलाते हैं। शतवनिका अपत्य शातवनेय है। "शातवनेये शतिनीभिरग्निः पुरुनीथे" (ऋक् १।५९।७) 'शातवनेये शतसंख्यकान् क्रतून् वनति सम्भजत इति शतवनिः तस्य पुत्रः शातवनेयः।'
(सायण)

शातवाहन (सं० पु०) एक राजाका नाम।
शालिवाहन देखो।

शातशूर्प (सं० पु०) एक आयुर्वेदाचार्यका नाम।

शातश्रृङ्गिन् (सं० पु०) मेरुके उत्तर अवस्थित एक पर्वत। (मार्क०पु० ५५।१३)

शातहृद (सं० त्रि०) विद्युत सम्बन्धी, बिजलीका।

शातातप (सं० पु०) एक संहिताकार ऋषिका नाम।
"शातातपो वशिष्ठश्च धर्मशास्त्रप्रयोजकाः।"
(याज्ञवल्क्य)

शातातप आदि ऋषि धर्मशास्त्रप्रयोजक हैं। श्राद्धमें पिण्ड देनेके समय इनका नाम लेना होता है। शातातप ऋषिने जो धर्मशास्त्र लिखा, उसका नाम शातातप-संहिता है। यह संहिता छः अध्यायमें सम्पूर्ण है। स्वयं याज्ञवल्क्यने इसका उल्लेख किया है। हेमाद्रि और विज्ञानेश्वरके ग्रन्थमें भी शातातपस्मृतिका वचन उद्धृत है। वृद्ध शातातपके वचन भी हलायुध, हेमाद्रि आदि उद्धृत कर गये हैं।

शातातपीय (सं० त्रि०) शातातप-सम्बन्धी, शातातप-प्रणीत कर्मविपाक। कौन कर्म करनेसे कैसा नरक तथा; नरक भोग करनेके बाद कौन कौन रोग और जन्म होता है, शातातपीय कर्मविपाकमें इसका विशेष रूपसे वर्णन है। कर्मविपाक देखो।

शाताहर (सं० पु०) शताहरका गोत्रापत्य।
(पा ४।१।१२३)

शाताहरेय (सं० पु०) शाताहरका गोत्रापत्य।

शातिन् (सं० त्रि०) छेदक, काटनेवाला। (रघु ३।४१)

शातिर (अ० वि०) १ चालाक, चतुर, उस्ताद। २ निपुण, दक्ष। (पु०) ३ दूत। ४ शतरंजका खिलाड़ी।

शातोदर (सं० त्रि०) १ पतली कमरवाला। २ क्षीण, पतला।

शातोदरी (सं० स्त्री०) १ पतली कमरवाली। २ क्षीण, पतली।

शात्रव (सं० क्लो०) शत्रोर्भावः समूहो वा शत्रु-अण्। १ शत्रुत्व, शत्रुता। २ शत्रुसंहति, शत्रुओंका समूह। (पु०) शत्रुरेव स्वार्थे अण्। ३ शत्रु, दुश्मन। (त्रि०) ४ शत्रुसम्बन्धी। (रघु ४।४२)

शात्रुन्तपि (सं० पु०) शत्रुन्तप जनपदवासिभेद।

शात्रुन्तपीय (सं० पु०) शात्रुन्तपि जनपदका राजा।

शाद (सं० पु०) शो तनूकरणे (शाशपिभ्यां ददनौ। उण् ४।९७) इति-द। १ कर्दम, कीचड़। २ दूब घास।

शाद (फा० वि०) १ खुश, प्रसन्न। २ परिपूर्ण, भरापूरा।

शादन (सं० पु०) पतन, गिरना, पड़ना।

शादमान (फा० वि०) प्रसन्न, खुश।

शादमान खाँ—एक गक्कर सरदार।

शादमानी (फा० स्त्री०) प्रसन्नता, खुशी।

शादहरित (सं० त्रि०) शादैः शष्पैः हरितः। शाद्वल, हरित तृण या दूर्वासे युक्त, हराभरा।

शादा (सं० स्त्री०) ईंट।

शादाब (फा० वि०) हराभरा, सरसब्ज, तरोताजा।

शादियाना (फा० पु०) आनन्द मंगलसूचक बाजा, खुशीका बाजा। २ बधावा, बधाई। ३ वह धन जो किसान जमींदारको ब्याहके अवसर पर देते हैं।

शादी (फा० स्त्री०) १ खुशी, प्रसन्नता, आनन्द। २ आनन्दोत्सव। ३ विवाह, ब्याह।

शाही (शाही)—खुरासानके एक फारसी कवि । ये कवि अमीर-वंशज होने पर भी हाफिजका मुकाबला न कर सके । इनका असल नाम था मीर आका मलिक-इ-दीन । १३८४ ई०में सिवाज़ नगरमें इनका जन्म और १४५३ ई०में मृत्यु हुई । पारस्यराज बाबुरमिर्ज़ाके राजदरबारमें ये मौजूद थे । राजाके नामकी सार्थकता रखनेके लिये इन्हें शाही उपाधि दी गई ।

जवानीमें इन्होंने उपयुक्त नाम हासिल किया । बाल-कालके साथ साथ इनके हृदयमें दया और धर्मकी प्रबल बाढ़ उमड़ आई । इस कारण इन्होंने दरवेशके वेशमें जीवनका अधिकांश समय बिताया था तथा प्रायः चौदह बार मक्केकी यात्रा की । (हातिम देखो ।)

शाही खाँ—एक अफगान-सरदार । मुगल-सम्राट् अकबर शाहके सेनापति मनोहुनी खाँके साथ इनकी लड़ाई हुई थी ।

शाही बे उज़बक—अब्दुल्लाहका एक सेनापति । पारसी भाषामें इसका नाम शाही बे शाहीबेग और एक हज़ारी सेनानायक है । इसके पिताका नाम था नज़र बे उज़बक । इसने मनव्वर खाँके साथ मारिकोंके विरुद्ध युद्ध कर बड़ा नाम कमाया ।

शाहीबेग सुजायत् खाँ—बादशाह शाहजहांका एक सेना-पति । इसके पिताका नाम शाहीस बहादुर था । शाहजहांके राज्यकालके ७वें वर्षमें शाही खाँ उपाधिके साथ इसने पञ्चहज़ारी पद पाया । १२वें वर्षमें यह नालिकराम नगर महाबत् खाँके पास शाहज़ादाके दूत बनाया गया । १४वें वर्षमें यह डेढ़ हज़ारी पद पर और मलूकका शासनकर्ता नियुक्त हुआ । इसके कुछ समय बाद पीराम खाँकी मृत्यु होने पर यह दोहज़ारी मनसबदार और ठाठाका शासनकर्ता नियुक्त हुआ था । १९वें वर्षमें इसने राजकुमार मुराद बख्शके ... और बदख्शानको और युद्ध-यात्रा ... जब राजा जिवराजकी पदच्युति हुई, ... शासनकर्ता बनाया गया । इसने औरंगजेबके साथ कंधार और बल्ख ... गया था । २२वें वर्षमें ... तीन हज़ारी ... दो हज़ारी अश्वारोही ... हुआ तथा

सूबेका पताका और डंका मिला । इसके दो वर्ष बाद अर्थात् सम्राट् शाहजहांके राज्यकालके २५वें वर्षमें यह फिरसे कंधार जीतनेको गया । सम्राट् शाहजहांने इसकी युद्धनिपुणता पर विमुग्ध हो काबुल जा इसे साढ़े तीन हज़ारी पदातिक और तीन हज़ार अश्वारोही सेनाका नायक बनाया । इस समय उन्होंने शाहीबेगको सुजा-यत् खाँकी उपाधिसे भूषित किया था । इसने फिरसे सम्राट्के २६वें वर्षमें दाराशिकोहके साथ कंधार और रुस्तम खाँके साथ बस्तकी ओर युद्धयात्रा की । इसके कुछ समय बाद ही इसकी मृत्यु हुई ।

शाद्वल (सं० त्रि०) शाद (नडशादाड्ड्वलच् । पा ४।२।८८) इति ड्वलच् । १ हरित तृण या दूर्वासे युक्त, हरीभरी घाससे ढका हुआ, हराभरा । भरतने इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की है,—शादका अर्थ है नई घास । नई घास जहां रहती है, वही स्थान शाद्वल कहलाता है ।
"शादो नवतृणं विद्यतेऽत्र शाद्वलः, शब्दादित्वात् वल स्यात् न तु वल्लयादिवोऽनभिधानात्"
(भरत)

(पु०) २ दूब, हरी घास । ३ बैल, सांड़ ।

शाद्वलवत् (सं० त्रि०) शाद्वल अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व । शाद्वलविशिष्ट, हराभरा । (भार० द्रुप ३।१)

शाद्वलाभ (सं० पु०) शाद्वलस्य आभाइव आभा यस्य । मन्द्विप दूर्वाकीट, एक प्रकारका हरा कीड़ा ।
(सुश्रुत कल्पस्था० ८ अ०)

शाद्वलित (सं० क्ली०) शाद्वल इतच् । शाद्वलकारना हरा ।

शाद्वलिन् (सं० त्रि०) शाद्वल अस्त्यर्थे इनि । शाद्वल-विशिष्ट, हराभरा । (रामायण ४।५।१४)

शान (सं० पु०) शाण, सान ।

शान (अ० स्त्री०) १ भड़क भड़क, ठाट बाट, सजावट । ... चमत्कार, विशालता, भव्यता । ३ प्रतिष्ठा, ... । गर्वीली चेष्टा, ठसक । ५ शक्ति,

। ये लोग तै का थे

, कर भी इसकी

विशेषता

२५॥ अक्षांशसे श्याम-उपसागरके उपकूल पर्यन्त १३॥० अक्षांशमें इनका वास देखा जाता है। मणिपुर नदीको उपत्यकाभूमि, खेन्दयेन, इरावती, शालविन् और मेनम नदीकी शाखाप्रशाखाके किनारे इस जातिका वास है। श्यामदेशीय भाषामें इन्हें खे कहते हैं तथा लेयस, शान, आहोम और खामती नामक चार प्रधान विभागोंमें ये लोग विभक्त हैं। कहीं कहीं ये छोटी छोटी शाखामें विभक्त हो कर एक एक क्षुद्र यशरूपमें गिने गये हैं। आज भी इरावतीके किनारेसे ले कर आनमराज्यकी पर्वतमाला पर्यन्त समस्त भूभाग शानजातिके अधिकृत है। चीनसीमासे श्यामोपसागर और पर्यन्त भूखण्ड-वासी समस्त शानजातिको यदि एकत्र सन्निवेशित किया जाय, तो पूर्व-एशियाकी एक बड़ी शक्तिमें इनकी गिनती हो सकती है।

ब्रह्मवासीको मध्यमें रख उत्तर पश्चिम, उत्तर, पूर्व और दक्षिण-पश्चिममें परिक्रम करनेसे आसाम और ब्रह्मपुत्रकी तीरभूमि, मणिपुरराज्य, यूनानप्रदेश, श्याम और कम्बोज आदि स्थानोंमें बहुसंख्यक शानजातिका वास देखा जाता है। ये लोग सबके सब बौद्धधर्मावलम्बी हैं, सभी बहुत कुछ सुसभ्य हैं, भाषा सबोंकी प्रायः एक-सी है। परन्तु स्थानभेदसे भाषामें कुछ पृथकता देखी जाती है।

श्यामवासी शानजातिकी तरह अन्यान्य स्थानवासी शानजातिमें भी किंवदन्ती है, कि ये लोग किसी समय एक बलशाली जाति समझे जाते थे। ब्रह्मराज्यके उत्तर उनका राज्य भी था, किन्तु दैवदुर्विपाकसे ये लोग उस राज्यसे परिभ्रष्ट हो नाना स्थानोंमें खण्ड खण्ड भावमें विच्छिन्न हो गये हैं। कालधर्मसे मानो किसीके साथ किसीका सम्बन्ध नहीं है। प्रत्येक विभागमें एक एक सरदार है तथा कोई कोई राज्य सामन्तराजके अधीन हो गया है। एकमात्र श्यामराज्य ही शानजातिकी अतीत स्वाधीनताकी रक्षा करता आ रहा है। उत्तरमें जितने सामन्तसरदार हैं, वे सभी इस समय अङ्गरेजराजके अधीन हैं। मुङ्-यु से, मुये लात्, मोने, लेग्या, येचिन्ने, मोरांगयेन्, मुङ् येन, केङ्गमा मैङ्ग मैङ्ग, मैङ्ग, लेङ्ग-ये, केङ्ग-टुङ्, केङ्ग-तुङ्ग और केङ्ग खेन नामक स्थानवासी शान-सामन्त ब्रह्मराजको कर देते थे। उक्त स्थानोंमेंसे कुछ शालविन नदीके पूरबी और पश्चिमी किनारे अवस्थित हैं। कुर्सा—उपत्यका, नामकाये या मणिपुर नदीतट, इरावतीके दक्षिण तीरस्थ नामो नामक स्थानमें मेनाम नदीके किनारे शानराजा है। ये सब राजा पर्वतके गभीर जङ्गलमें अवस्थित हैं तथा सहजमें इन पर आक्रमण नहीं किया जा सकता। मणिपुरीभाषामें शानजातिको कुशी या कबु कहते हैं।

श्यामराज्यका लेउसविभागमें एक शानराज्य है। यहांके अधिवासी उत्तर इरावतीके किनारे बसनेवाली सिंगफो नामक ब्रह्मजातिसे मिश्रित हैं, फिर भी दक्षिणके शानगण आज भी अपनेको छोटे से बतला कर गौरव प्रकट करते हैं। ये लोग प्रकृत लेउसवासी शानोंको बड़े मानते हैं। पहले ये लोग कम्बोजपतिके अधीन थे, पर १३५० ई०में स्वाधीन हो गये।

१३वीं सदीमें उत्तर-इरावती देशमें लौ नामकी एक जातिने अपनी प्रतिभासे नाना देशोंको फतह किया। मुङ्ग-गौङ्ग नगरमें उनकी राजधानी थी। १२२४ ई०में उन लोगोंने आसामको जीत कर आहोम राजवंशकी प्रतिष्ठा की थी। मेङ्कोङ्ग और मेनम नदीके मुहाने पर तथा यूनान प्रदेशके कुछ अंशोंमें इन आहोमोंका आदि-वास था। मतान्तरसे उत्तर-पश्चिम भागके आहोम १२वीं सदीमें आसाम आये। इसी समय श्यामवासी श्यामराज्यमें चले गये। १२२८ ई०में चोङ्गराज सुकाफाने सबसे पहले आहोमकी उपाधि ग्रहण की। पीछे उन लोगोंने दलबलके साथ आ कर उपत्यकाको जीता और खामतीमें राजधानी बसाई। इसी समयसे आहोमोंका प्रभाव बढ़ता गया तथा ये आहोम नामसे प्रसिद्ध हुए। आहोम देखो।

भामो नगरके उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पूर्वमें जो सब शान जातियां रहती हैं उनकी तथा चीनसीमान्तस्थित लौ जातिकी भाषाके साथ श्याम भाषाका बहुत कुछ संश्रव देखा जाता है। किन्तु यूनानको चीनभाषाके साथ लौ लोगोंकी भाषा नहीं मिलती। विस्तृत विवरण श्याम शब्दमें देखो।

शानजाति कर्मठ और बलवान् तथा इनकी नाक

शादी (सादी)—स्वनामप्रसिद्ध एक पारसी कवि । ये कवि-जगत्‌में उच्च आसन प्राप्त करने पर भी हाफिजका मुकाबला न कर सके । इनका असल नाम था शेख मसालह-उद्दीन । ११६४ ई०में सिराज नगरमें इनका जन्म और १२६२ ई०में मृत्यु हुई। पारस्यराज आबुविन अ'गोके राज्यकालमें ये मौजूद थे । राजाके नामको सार्थकता रखनेके लिये इन्हें शादी उपाधि दी गई।

बचपनसे शादीने उपयुक्त ज्ञान हासिल किया। ज्ञान-लाभके साथ साथ इनके हृदयमें दया और धर्म की प्रबल बाढ़ उमड़ आई । इस कारण इन्होंने दरवेशके वेशमें जीवनका अधिकांश समय बिताया था तथा प्रायः चौदह बार मक्काकी यात्रा की । हाफिज देखो।

शादी खाँ—एक अफगान-सरदार। मुगल-सम्राट् अकबर शाहके सेनापति अलीकुली खाँके साथ इनकी लड़ाई हुई थी।

शादी बे उजबक—अकबरशाहका एक सेनापति। पातशाहनामामें इसका नाम शादी खाँ शादीबेग और एक हजारी सेनानायक है। इसके पिताका नाम था नजर बे उजबक। इसने मतलब खाँके अधीन तारिखोंके विरुद्ध युद्ध कर बड़ा नाम कमाया।

शादीबेग सुजायत् खाँ—बादशाह शाहजहांका एक सेनापति। इसके पिताका नाम जानिस बहादुर था। शाहजहांके राज्यकालके ७वें वर्ष में शादी खाँ उपाधिके साथ इसने एकहजारी पद पाया। १२वें वर्षमें यह बाह्किराज नजर महम्मद खाँके पास भारतसम्राट्‌के दूत रूपमें गया। १४वें वर्षमें यह डेढ़ हजारी पद पर और ठट्ठाका शासनकर्त्ता नियुक्त हुआ। इसके कुछ समय बाद पैरात खाँकी मृत्यु होने पर यह दोहजारी मनसबदार और ठट्ठाका शासनकर्त्ता नियुक्त हुआ था। १९वें वर्षमें इसने राजकुमार मुरादबक्सके साथ बाह्कि और बदकसानकी ओर युद्ध-यात्रा की। २१वें वर्षमें जब राजा शिवरामको पदच्युति हुई, तब इसे काबुलका शासनकर्त्ता बनाया गया। दूसरे वर्ष यह राजपुत्र औरङ्गजेबके साथ कंधहार और बस्त जीतनेके लिये गया था। २३वें वर्षमें यह तीन हजारी पदातिक और ढाई हजारी अश्वारोही सेनानायक हुआ तथा इसे मर्यादा-सूचक पताका और डंका मिला। इसके दो वर्ष बाद अर्थात् सम्राट् शाहजहांके राज्यकालके ४५वें वर्षमें यह फिरसे कंधहार जीतनेको गया। सम्राट् शाहजहांने इसकी युद्धनिपुणता पर विमुग्ध हो काबुल आ इसे साढ़े तीन हजारी पदातिक और तीन हजार अश्वारोही सेनाका नायक बनाया। इस समय उन्होंने शादीबेगको सुजायत् खाँकी उपाधिसे भूषित किया था इसने फिरसे सम्राट्‌के २६वें वर्षमें दारासिकोके साथ कंधहार और रुस्तम खाँके साथ बस्तकी ओर युद्धयात्रा की। इसके कुछ समय बाद ही इसकी मृत्यु हुई।

शाद्वल (सं० त्रि०) शाद (नड़शादाड्ड्वलच् । पा ४।२।८८) इति ड्वलच् । १ हरित तृण या दूर्वासे युक्त, हरीभरी घाससे ढका हुआ, हराभरा। भरतने इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की है,—शादका अर्थ है नई घास। नई घास जहां रहती है, वही स्थान शाद्वल कहलाता है। "शादो नवतृणं विद्यतेऽत्र शाद्वला, शष्पवाचिन एव शाद शब्दाड् वलः स्यात् न तु पङ्कवाचिनोऽनभिधानात्" (भरत)

(पु०) २ दूब, हरी घास। ३ बैल, साँड़।

शाद्वलवत् (सं० त्रि०) शाद्वल अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। शाद्वलविशिष्ट, हराभरा। (पार० गृह्य ३।१)

शाद्वलाभ (सं० पु०) शाद्वलस्य आभाइव आभा यस्य। मन्त्रविष वृश्चिकभेद, एक प्रकारका हरा कीड़ा।

(सुश्रुत कल्पस्था० ८ अ०)

शाद्वलित (सं० क्ली०) शाद्वल-इतच्। शाद्वलरूपता हरा।

शाद्वलिन् (सं० त्रि०) शाद्वल मत्वर्थे इनि। शाद्वल-विशिष्ट, हराभरा। (रामायण ४।५।१६)

शान (सं० पु०) शाण, साण।

शान (अ० स्त्री०) १ तड़क भड़क, ठाट बाट, सजावट। २ चमत्कार, विशालता, महत्ता। ३ प्रतिष्ठा, इज्जत, मानमर्यादा। ४ गर्वीली चेष्टा, ठसक। ५ शक्ति, करामात, ऐश्वर्य।

शान—ब्रह्मराज्यवासी जातिविशेष। ये लोग तै या ती नामसे भी परिचित हैं। शिङ्गूचीन कह कर भी इनकी प्रसिद्धि है। उत्तर चीन और तिब्बत प्रान्तमें विशेषतः

२५॥ अक्षांशसे श्याम-उपसागरके उपकूल पर्यन्त १३॥० अक्षांशमें इनका वास देखा जाता है। मणिपुर नदीकी उपत्यकाभूमि, खेन्दयेन, इरावती, शालविन् और मेनम नदीकी शाखाप्रशाखाके किनारे इस जातिका वास है। श्यामदेशीय भाषामें इन्हें खे कहते हैं तथा लेयस, शान, आहोम और खामती नामक चार प्रधान विभागोंमें ये लोग विभक्त हैं। कहीं कहीं ये छोटी छोटी शाखामें विभक्त हो कर एक एक क्षुद्र वंशरूपमें गिने गये हैं। आज भी इरावतीके किनारेसे ले कर आनमराज्यकी पर्वतमाला पर्यन्त समस्त भूभाग शानजातिके अधिकृत है। चीनसीमासे श्यामोपसागर तीर पर्यन्त भूखण्डवासी समस्त शानजातिको यदि एकत्र सन्निवेशित किया जाय, तो पूर्व-एशियाकी एक बड़ी शक्तिमें इनकी गिनती हो सकती है।

ब्रह्मवासीको मध्यमें रख उत्तर पश्चिम, उत्तर, पूर्व और दक्षिण-पश्चिममें परिक्रम करनेसे आसाम और ब्रह्मपुत्रकी तीरभूमि, मणिपुरराज्य, यूनानप्रदेश, थाङ्क और कम्बोज आदि स्थानोंमें बहुसंख्यक शानजातिका वास देखा जाता है। ये लोग सबके सब बौद्धधर्मावलम्बी हैं, सभी बहुत कुछ सुसभ्य हैं, भाषा सबोंकी प्रायः एकसी है। परन्तु स्थानभेदसे भाषामें कुछ पृथकता देखी जाती है।

श्यामवासी शानजातिकी तरह अन्यान्य स्थानवासी शानजातिमें भी किंवदन्ती है, कि ये लोग किसी समय एक बलशाली जाति समझे जाते थे। ब्रह्मराज्यके उत्तर इनका राज्य भी था, किन्तु दैवदुर्विपाकसे ये लोग उस राज्यसे परिभ्रष्ट हो नाना स्थानोंमें खण्ड खण्ड भावमें विच्छिन्न हो गये हैं। कालधर्मसे मानो किसीके साथ किसीका सम्बन्ध नहीं है। प्रत्येक विभागमें एक एक सरदार है तथा कोई कोई राज्य सामन्तराजाके अधीन हो गया है। एकमात्र श्यामराज्य ही शानजातिकी अतीत स्वाधीनताकी रक्षा करता आ रहा है। उत्तरमें जितने सामन्तसरदार हैं, वे सभी इस समय अङ्गरेजराजके अधीन हैं। मुङ्-यु वे, मुपे लात्, मोने, लेग्या, येचिम्ने, मोरामियेत्, मुङ्-चेन, केङ्गमा मैङ्ग मैङ्ग, मैङ्ग, लेङ्ग-ये, केङ्ग हुङ्, केङ्ग-गङ्ग और केङ्ग खेन नामक स्थानवासी शान-सामन्त ब्रह्मराजको कर देते थे। उक्त स्थानोंमेंसे कुछ शालविन नदीके पूरबी और पश्चिमी किनारे अवस्थित हैं। कुर्या—उपत्यका; नामकाये या मणिपुर नदीतट, इरावतीके दक्षिण तीरस्थ भामो नामक स्थानमें मेनाम नदीके किनारे शानराज्य है। ये सब राज्य पर्वतके गभीर जङ्गलमें अवस्थित हैं तथा सहजमें इन पर आक्रमण नहीं किया जा सकता। मणिपुरीभाषामें शानजातिको कुशी या कयु कहते हैं।

श्यामराज्यका लेउसविभागमें एक शानराज्य है। यहांके अधिवासी उत्तर इरावतीके किनारे बसनेवाली सिंगफो नामक ब्रह्मजातिसे मिश्रित हैं, फिर भी दक्षिणके शानगण आज भी अपनेको छोट ले बतला कर गौरव प्रकट करते हैं। वे लोग प्रकृत लेउसवासी शानोंको बड़ेले मानते हैं। पहले ये लोग कम्बोजपतिके अधीन थे, पर १३५० ई०में स्वाधीन हो गये।

१३वीं सदीमें उत्तर-इरावती देशमें लौं नामकी एक जातिने अपनी प्रतिभासे नाना देशोंको फतह किया। मुङ्ग-गौङ्ग नगरमें उनकी राजधानी थी। १२२४ ई०में उन लोगोंने आसामको जीत कर आहोम राजवंशकी प्रतिष्ठा की थी। मेङ्कोङ्ग और मेनम नदीके मुहाने पर तथा यूनान प्रदेशके कुछ अंशोंमें इन आहोमोंका आदिवास था। मतान्तरसे उत्तर-पश्चिम भागके आहोम १२वीं सदीमें आसाम आये। इसी समय श्यामवासी श्यामराज्यमें चले गये। १२२८ ई०में पोङ्गराज चुकाफाने सबसे पहले आहोमकी उपाधि ग्रहण की। पीछे उन लोगोंने दलबलके साथ आ कर उपत्यकाको जीता और खामतीमें राजधानी बसाई। इसी समयसे आहोमोंका प्रभाव बढ़ता गया तथा ये आहोम नामसे प्रसिद्ध हुए। आहोम देखो।

भामो नगरके उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पूर्वमें जो सब शान जातियां रहती हैं उनकी तथा चीनसीमान्तस्थित लौं जातिकी भाषाके साथ श्याम भाषाका बहुत कुछ संश्रव देखा जाता है। किन्तु यूनानकी चीनभाषाके साथ लौं लोगोंकी भाषा नहीं मिलती। विस्तृत विवरण श्याम शब्दमें देखो।

शानजाति कर्मठ और बलवान् तथा इनकी नाक

चिपटी होती है। ये लोग चांदीके तथा नाना शिल्पपूर्ण पात्र बनाना जानते हैं। मन्द्राजके दक्षिण-पश्चिमस्थ शानप्रदेशमें टीन मिलता है। यहां तथा पागान जिलेमें लोहा भी पाया गया है।

शानदार (फा० वि०) १ भड़कीला, तड़क भड़कवाला, ठाट बाटका। २ चमत्कारपूर्ण, विशाल, भव्य। ३ गर्वीली चेष्टासे युक्त, ठसकवाला। ४ ऐश्वर्ययुक्त, वैभवपूर्ण।

शानपाद (सं० पु०) १ पारिपात्रपर्वत। इस पर्वतका विवरण हरिवंशके १३१ अध्यायमें विशेष रूपसे वर्णित है। २ चन्दन घिसनेका पत्थर।

शानवती—प्राचीन जनपदभेद। (भारत ३।२२।१६)

शानम्पुडि—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके नेल्लूर जिलेमें कन्दुकूर तालुकके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। ग्रामके पूरब नदीके किनारे सोमेश्वर स्वामीका प्राचीन मन्दिर है। पश्चिममें एक पर्वत पर बहुतेरी पत्थरकी मूर्त्तियां इधर उधर पड़ी हैं।

शानशिला (सं० स्त्री०) शानार्थं शिला। यह पत्थर जिस पर सान दिया जाता है।

शानशौकत (अ० स्त्री०) तड़क-भड़क, ठाट-बाट।

शानष्टेट—अंगरेजाधिकृत ब्रह्मराज्यका एक प्रदेश।

शाना (फा० पु०) १ कंघा, कंघी। २ मोढ़ा, कन्धा।

शानाम—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीमें रहनेवाली एक इतर जाति। ये लोग ताड़ी लगानेका काम करते हैं। ये भूतदेवताकी पूजा करते हैं।

शानी (सं० स्त्री०) इन्द्रवारुणी, इन्द्रायन।

शानैश्चर (सं० त्रि०) शनैश्चर अण्। शनैश्चर अथवा शनिग्रह-सम्बन्धी।

शान्त (सं० त्रि०) शम-क्त (वा दान्तशान्तेति। पा ७।२।२७) इति निपातितः। १ उपशमप्राप्त, जिसमें वेग, क्षोभ या क्रिया न हो, ठहरा हुआ, बंद। २ प्रासोपशम, कोई पीड़ा, रोग, मानसिक वेग आदि जो जाते न हो; बंद, मिटा हुआ। पर्याय—शमित, श्रान्त, जितेन्द्रिय। ३ जिसमें क्रोध आदिका वेग न रह गया हो, जिसमें जोश न रह गया हो, स्थिर। ४ जिसमें जीवनकी चेष्टा न रह गई हो, मृत, मरा हुआ। ५ जो चंचल न हो, धीर, सौम्य, गम्भीर। ६ मौन, चुप, खामोश। ७ जिसने मन और इन्द्रियोंके वेगको रोका हो, मनोविकाररहित, रागादि शून्य, जितेन्द्रिय। ८ उत्साह या तत्परतारहित, जिसमें कुछ करनेकी उमंग न रह गई हो, शिथिल, ढीला। ९ श्रान्त, थका हुआ। १० जो जलता या उद्दीप्त न हो। ११ विघ्नबाधारहित। १२ जिसकी घबराहट दूर हो गई हो। १३ अप्रभावित, जिस पर असर न पड़ा हो। १४ दुबला, दुबला, पतला।

(पु०) १५ काव्यके नौ रसोंमेंसे एक रस। इसका स्थायिभाव शम है, नायक उत्तम प्रकृतिका और कुन्देन्दु सुन्दरच्छाय अर्थात् सुन्दर आकृतिका है। नारायण इसके अधिष्ठाता देवता हैं। इस रसमें संसारकी अनित्यता, दुःख पूर्णता, असारता आदिका ज्ञान अथवा परमात्माका स्वरूप आलम्बन होता है, तपोवन, ऋषि आश्रम, रमणीय, तीर्थादि, साधुओंका सत्संग आदि उद्दीपन, रोमाञ्च आदि अनुभाव तथा निर्वेद, हर्ष, स्मरण, मति, दया आदि संचारी भाव होते हैं। शान्तको रस कहनेमें यह बाधा उपस्थित की जाती है, कि यदि सब मनोविकारोंका शमन ही शान्त है, तो विभाव, अनुभाव और संचारी द्वारा उसकी निष्पत्ति कैसे हो सकती है? इसका उत्तर यह दिया जाता है, कि शान्त दशामें जो सुखादिका अभाव कहा गया है, वह विषयजन्य सुखका है। योगियोंको एक अलौकिक प्रकारका आनन्द होता है जिसमें संचारी आदि भावोंकी स्थिति हो सकती है। नाटकोंमें आठ ही रस माने जाते हैं, शान्तरस नहीं माना जाता। इसका कारण यह कि नाटकमें अभिनय क्रिया ही मुख्य है, अतः इसमें 'शान्त' का समावेश नहीं हो सकता।

जहां सुख या दुःख राग या द्वेष, प्रिय या अप्रिय इत्यादि किसी भी तरहकी इच्छा नहीं रहती है तथा शमप्रधान होता है, वहां शान्तरस होगा। इस रसमें शान्तिप्रियता ही प्रधान कार्य है।

(साहित्यदर्पण ३य परि०)

साहित्यदर्पणमें देवविषयक रतिका एक उदाहरण दिया गया है। यथा—"अथ देवविषया रतिर्यथा—

"कदा वाराणस्यामिह सुधुनी रोधसि वसन्।
वसानः कौपीनं शिरसि निदधानोऽञ्जलिपुटम्॥

अये गौरीनाथ त्रिपुरहर शम्भो त्रिनयन।
प्रसीदेति क्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान्॥"

(साहित्यदर्पण ३ परि०)

कब मैं वाराणसीमें गङ्गाके किनारे कौपीनवास पहन कर मस्तकमें अञ्जलिपुटसे 'हे महादेव! मेरे प्रति प्रसन्न हो' कहते कहते सारा दिन निमिष कालकी तरह व्यतीत करूंगा।

१६ सह्याद्रिवर्णित राजभेद। (सह्या० ३४।२२)

शान्तक (सं० त्रि०) शम-क्त, स्वार्थे क। १ शान्त। २ शमताकारी। (पु०) ३ सारण जिलेमें सेवान तहसीलके अन्तर्गत एक बड़ा गांव।

शान्तकर्ण (सं० पु०) आन्ध्रवंशीय एक राजा। शातकर्णि देखो।

शान्तगतिका (सं० स्त्री०) बौद्ध रमणोभेद। (प्रज्ञापारमिता)

शान्तगुण (सं० त्रि०) शमगुणविशिष्ट।

शान्तता (सं० स्त्री०) शान्तस्य भावः तल्-टाप्। १ शांतका भाव या धर्म, शांति, शमन। २ नीरवता, खामोशी। ३ उपद्रव आदिका अभाव, हलचलका न होना। ४ रागादिका अभाव, विराग।

शान्तनव (सं० पु०) शन्तनोरपत्यं पुमान्, शांतनु-अण्। १ राजा शांतनुके पुत्र भीष्म। २ मेधातिथिका पुत्र।

शान्तनव आचार्य—उणादिसूत्र और फिट्सूत्रवृत्ति नामक व्याकरणके रचयिता।

शान्तनु (सं० पु०) द्वापर युगके इक्कीसवें चन्द्रवंशी राजा। ये प्रतीपके पुत्र और महाभारत-युद्धके प्रसिद्ध योद्धा भीष्म पितामहके पिता थे। शान्तनुकी स्त्री गङ्गादेवीके गर्भसे (गांगेय) की उत्पत्ति हुई थी। पर्याय—महाभीष्म, प्रातीप, प्रतीप, प्रतिप। (शब्दरत्ना०) विशेष विवरण शन्तनु शब्दमें देखो।

भागवतमें शान्तनु नामकी व्युत्पत्ति इस प्रकार लिखी है—जराजीर्ण व्यक्तिको हाथसे छूनेसे वह जवान हो जाता और बड़ी शान्ति पाता था, इसलिये उसका नाम शान्तनु हुआ।

२ क्षुधान्यविशेष। (सुश्रुत सूत्रस्था० ४६ अ०) ३ ककटिका, ककड़ी।

शान्तपल्लि (शैन्तापिल्ली)—मन्द्राजप्रदेशके विजगापट्टम जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। यह अक्षा० १८° २ ३०'' उ० तथा देशा० ८३° ४२' पू० समुद्रतीरवर्ती कोनाड़ ग्रामसे ५ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहां एक गण्डशैलशृङ्ग पर शांतपल्ली आलोकवर्तिका है जो १८४७ ई० की बनी है। समुद्रके किनारेसे साढ़े छः मीलकी दूरी पर रहनेसे भी समुद्रपृष्ठस्थ चौदह मील दूरवर्ती जहाजसे यह आलो या रोशनी दिखाई पड़ती है।

शान्तप्रकृति (सं० त्रि०) शांता प्रकृतिर्यस्य। शांत-स्वभावका।

शान्तभय—प्लक्षद्वीपके अन्तर्गत एक वर्ष।

(लिङ्गपु० ४६।४१)

शान्तमति (सं० पु०) १ देवपुत्रके एक पुत्रका नाम। (त्रि०) शांता मति र्यस्य। २ शांतबुद्धि, शिष्टप्रकृति।

शान्तरय (सं० पु०) यदुवंशीय एक राजा। ये धर्म-सारथिके पुत्र थे। इनका दूसरा नाम शांतरज था।

(भाग० ९।१७।१२)

शान्तरूप (सं० त्रि०) शांतप्रकृति, सरल स्वभावका।

शान्तवीर देशिकेन्द्र—एकाक्षरनिघण्टु के प्रणेता।

शान्तल देवी—होयसलवंशीय राजा विष्णुवर्द्धन (दूसरा नाम बीरगङ्ग)-की महिषी। इनका दूसरा नाम था लक्ष्मा देवी।

शान्तश्री (सं० पु०) प्रचण्डदेवका एक नाम।

(ललितविस्तर)

शान्तसुमति (सं० पु०) देवपुत्रके एक पुत्रका नाम।

(ललितविस्तर)

शान्तसूरि (सं० पु०) १ एक जैन-टीकाकार। २ आतङ्क-सारके रचयिता।

शान्तसेन (सं० पु०) यदुवंशीय एक राजा। ये सुबाहुके पुत्र थे। (भाग० १०।९०।६८)

शान्ता (सं० स्त्री०) १ अयोध्याके राजा दशरथकी कन्या और महर्षि ऋष्यशृङ्गकी पत्नी। दशरथने अपने मित्र अङ्गदेशके राजा लोमपादको अपनी कन्या शांता पोष्य-पुत्रिकाके रूपमें दी थी। २ रेणुका। ३ शमी, छिकर। पर्याय—शुभा, भद्रा, अपराजिता, जया,

विजया। ४ आमलकी, आंवला। ५ दूर्वा, दूब। ६ दक्षिण भारतमें प्रवाहित एक नदी। यह ताम्री नदीमें जा कर मिली है। (ताप्तीखण्ड) ७ एक गण्डग्राम। (दिग्विजयप्रकाश) ८ संगीतमें एक श्रुति।

शान्तात्मन् (सं० त्रि०) शान्तिः आत्मा स्वभावो यस्य। शान्तस्वभाव लिए, साधुप्रकृति।

शान्तानु—सह्याद्रिवर्णित एक राजा। (सह्या० ३३।८७)

शान्ताशान्ति—चम्पारण्यके अंतर्गत एक ग्राम।

(भविष्यब्र० ख० ४२।२०)

शान्ति (सं० स्त्री०) शम क्तिन्। १ कामक्रोधादि प्रशम, चित्तोपशम। नागोजीभट्टने शान्ति शब्दका अर्थ इस प्रकार किया है—विषयसे इन्द्रियका उपरम; शब्द स्पर्श आदि विषय इन्द्रियसे उपरत होने पर जो अवस्था होती है, उसे शान्ति कहते हैं। पर्याय—शमथ, शम, प्रशम, उपशम, प्रशान्ति, तृष्णाक्षय। क्रियायोगसारमें इसका लक्षण यों लिखा है—

"यत् किञ्चिद्वस्तु संप्राप्य स्वल्पं वा यदि वा बहु।
या तुष्टिर्जायते चित्ते शान्तिः सा गद्यते बुधैः॥"

(पद्मपु० क्रियायोगसा० १५ अ०)

अति अल्प या बहुत जिस किसी सामान्य वस्तुमें चित्तका जो परितोष होता है, उसे शान्ति कहते हैं। अधिक मिलने पर आनन्द नहीं और कम मिलने पर भी दुःख नहीं, चित्तका इस प्रकारका जो परितोष है, उसीका नाम शान्ति है।

गीतामें लिखा है—

"आपूर्य्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत् कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी॥"

(गीता २।७०)

जल जिस प्रकार सर्वदा परिपूर्ण और अचल भावमें अवस्थित महासमुद्रमें प्रवेश करके विलीन हो जाता है, उसी प्रकार जब कामना सभी पुरुषोंके हृदयमें प्रवेश कर वलीन होती है, तब वे शान्ति लाभ कर सकते हैं। कामकामी अर्थात् कामनापूर्ण व्यक्ति शान्तिको सुकोमल छायाको कभी नहीं पाते। चित्त जब कामनाशून्य होता है, क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त आदि दूर होते हैं, तब शान्ति मिलती है। विषयासक्तचित्तको शान्ति नहीं मिल सकती। जिसे शान्ति नहीं है, उसे सुख भी नहीं।

जब तक इंद्रियां विजित नहीं होतीं, तब तक आत्मविषयिणी बुद्धि उत्पन्न नहीं होती। इस आत्मज्ञानके उत्पन्न हुए बिना शान्तिलाभ नहीं होता। अशान्त व्यक्तिको सुखकी सम्भावना नहीं। जो शान्तिप्रयासी हैं, वे यदि पहले इन्द्रियसंयम कर भगवदुपासनामें चित्त निविष्ट करें, तो उन्हें सहजमें शान्तिलाभ होगा।

शङ्कराचार्यने अपने गीताभाष्यमें शान्ति शब्दका मोक्ष अर्थ स्थिर किया है।

२ धर्म द्वारा ग्रहवैगुण्य दुःस्वप्नादिसूचित ऐहिक अनिष्ट हेतु दुरित निवृत्ति। ग्रहादिके विगुण होनेसे जहां अनिष्ट होता है, वहां किसी दैव कर्मके अनुष्ठान द्वारा उस अनिष्टकी निवृत्ति होनेसे उसको शान्ति कहते हैं। ग्रहविरुद्ध होनेसे ग्रहोंकी पूजा, दान, स्तव, कवच, होम आदि द्वारा या तदधिष्ठात्री देवताकी पूजा और चण्डीपाठ तथा नारायणको तुलसी आदि दान करनेसे वैगुण्य शान्ति होती है। साधारणतः यह शान्ति स्वस्त्ययन नामसे प्रसिद्ध है। जिस प्रकार शरीरमें कवच धारण करनेसे शस्त्रका बाधक होता है, उसी प्रकार दैवोपघात व्यक्तिको शान्ति ही वारक है अर्थात् दैवविरुद्ध होने पर शान्ति करनेसे उसका प्रशमन होता है।

शान्तिकर्म विशुद्ध दिनमें करना होता है। किंतु जहां ग्रहादिके प्रबल प्रकोपवशतः कठिन पीड़ादि होती है, वहां मलमासमें भी शांतिकर्म कर सकते हैं। किन्तु मलमास होने पर भी विशुद्ध दिन देख कर शांति कर्म करना उचित है। यथाविहित शान्तिकर्मका अनुष्ठान करनेसे बालग्रह, भूतग्रह, राजभय, प्रबलतर शत्रु, दुःसह रोगाभिभव, दुःस्वप्न, ग्रहविरुद्ध आदि अति शीघ्र प्रशमित होते हैं। अतएव ग्रहादि विगुण होने पर यत्नपूर्वक उसकी शांति करना कर्त्तव्य है।

रघुनन्दनने ज्योतस्तत्त्वमें अद्भुत शांतिविधानका उल्लेख किया है। उन्होंने कहा है, कि प्रकृतिविपर्ययका नाम अद्भुत है अर्थात् जो अस्वाभाविक है, वही अद्भुत शब्दवाच्य है; यदि हठात् एक काक आ कर शरीर पर

बैठ जाय, गृहमें पेचकादि प्रवेश करे, गंधर्वनगरादिके दर्शन हो, तो उसे अद्भुत कहते हैं। देवगण मानवको अशुभ भाव अवगत करानेके लिये इसी प्रकार दिखलाया करते हैं। मानव उक्त सभी उत्पात देख कर अपना भावी अनिष्ट समझ आपस्तम्ब विधिके अनुसार शांति करें। विधिविधानसे शांति करने पर भावी अनिष्टका भय नहीं रहता।

रजस्वला स्त्रीगमन, गो, अश्व और भार्याका यमज संतान प्रसव या विजातीय प्रसव, काक, कङ्क, गृध्र, श्येन, वनकुक्कुट, रक्तपाद और वनकपोतका गृहप्रवेश अथवा मनुष्यका परिपतन, श्वेतवर्ण, इंद्रायुध या रात्रिकालमें इंद्रायुध, उल्कापात, दिग्दाह, सूर्योपमण्डल, चन्द्रोपमण्डल, गंधर्वनगरदर्शन, भूकम्प, धूमकेतु; रक्त, शस्त्र, वसा, अस्थि आदिका पतन, पेचक और वानरादिका गृहमें प्रवेश और अकालमें फल पुष्पादिका उद्गम और सात दिन तक वृष्टि होनेसे छन्दोगपरिशिष्टोक्त विधिके अनुसार शांत करना कर्त्तव्य है।

यदि इस प्रकार अद्भुत विपद् पर शांति न की जाय, तो गृहपतिकी मृत्यु या सर्वस्व नाश होता है। इस शांतिके विधानमें लिखा है, कि विपद् उपस्थित होने पर विशुद्ध दिनमें देवपूजादि समाप्त कर स्वस्तिवाचन और पीछे सङ्कल्प करे।

सङ्कल्प-सूक्तपाठ और स्वगृह्योक्त विधिके अनुसार अग्निस्थापन कर पीछे वरद नामक अग्नि स्थापनपूर्वक घृत द्वारा इस प्रकार होम करे, अद्भुताग्नये स्वाहा, ओं सोमाय स्वाहा, ओं विष्णवे स्वाहा, ओं वायवे स्वाहा, ओं रुद्राय स्वाहा; ओं वसवे स्वाहा, ओं मृत्यवे स्वाहा, विश्वेभ्यो देवेभ्यो स्वाहा। पीछे चरु द्वारा इनका फिरसे होम करना होता है। इस प्रकार होम हो जाने पर घृतपायसादि भोजन द्वारा ब्राह्मणोंको दक्षिणाके साथ परितोष करे।

दुःस्वप्न और अनिष्ट देखनेसे भी ब्राह्मणको घृत और काञ्चन दान तथा ब्राह्मण और ज्ञातिभोजन करानेसे शांति होती है। (कृत्यतत्त्व)

वैष्णवामृतमें व्यासवचनमें लिखा है, 'नमस्ते बहुरूपाय विष्णवे परमात्मने स्वाहा', इस मन्त्रसे भगवान् नारायणको तुलसी देनेसे सभी शान्ति होती है। तुलसी द्वारा नारायणकी पूजा ही महाशान्ति है। इससे सभी प्रकारकी विपद् दूर होती है। ग्रहयज्ञ और शान्तिक आदि कर्मोंकी कुछ भी आवश्यकता नहीं। एकमात्र तुलसी दानसे ही सभी शांति होती है।

यह जो शान्तिका विषय कहा गया, वह वैदिक शांति है। इसके सिवा तंत्रशास्त्रमें भी शांतिका उल्लेख देखनेमें आता है। तंत्रमें षट्कर्मस्थलमें शांतिका विधान है। वहां शांतिकर्मके लक्षणके सम्बन्धमें लिखा है, कि जिस कर्म द्वारा रोग, कुकृत्या और ग्रहदोष निवारण होता है, उसे शांतिकर्म कहते हैं।

पहले कहा जा चुका है, कि ज्योतिषोक्त शुभ दिन देख कर शांति कर्मका अनुष्ठान करना होता है। शुभ दिन ये सब हैं—रवि, सोम, बुध, बृहस्पति और शुक्र तथा उत्तराषाढ़ा, उत्तरफल्गुनी, उत्तरभाद्रपद, रोहिणी, चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, पुष्या, अश्विनी और हस्ता ये सब नक्षत्रयुक्त तथा रिक्ता भिन्न तिथिमें शुभलग्नमें चंद्र और ताराशुद्धि होनेसे शांतिकर्म करे।

आपत्कालमें चण्डीपाठ, वटुकभैरवादि स्तोत्रपाठ, स्वस्त्ययन, होम आदिसे जिस प्रकार ग्रहवैगुण्य शांति होती है, उसी प्रकार आयुर्वेद शास्त्रमें भी रोगादि शांतिके लिये ग्रहशांति, कवच धारण, तुलसीदान आदिकी व्यवस्था देखी जाती है। इसके सिवा ग्रहशांतिके लिये भौतिकाचारकी भी व्यवस्था है। सांपकी केंचुल, लहसुन, गुर्गामूल, सरसों, निम्बपत्र, बिड़ालकी विष्ठा, छागलोम, मेषपुच्छ, वच और मधु इनके धूपसे ग्रहशांति होती है तथा बालरोग दूर होता है।

३ भद्र, मङ्गल। ४ गोपीविशेष। (ब्रह्मवैवर्त्त-पु० प्रकृतिख० ६ अ०) (पु०) ५ वृत्ताईद्विशेष। ६ जिन चक्रवर्त्तीविशेष। ७ दशम मन्वन्तरीय चंद्र। (गरुड़पु० ८७ अ०) ८ देवपूजा आदिके बाद मंत्रपाठ-पूर्वक यजमानको पुष्पादि द्वारा जो आशीर्वाद दिया जाता है, उसे शान्ति कहते हैं।

देवपूजाके बाद शांति, तिलक और पीछे दक्षिणान्त करना होता है। शान्तोदकदान देखो।

९ षोड़शमातृकाविशेष। कुलकी रक्षा करनेवाली १६

मातृकादेवी हैं। नान्दीमुखश्राद्धमें पहले इनकी पूजा करके पीछे श्राद्ध करना होता है।

शान्तिक (सं० त्रि०) १ शान्ति-सम्बंधी, शांतिका। (पु०) २ शांतिकर्म।

शान्तिकर (सं० पु०) करोतीति कृ-ट, करः। शांति कारक, शांति करनेवाला। (भाग० ५।२२।१६)

शान्तिकरण (सं० क्ली०) शांतेः करणं। शांतिकर्म, शांतिकार्य। (कात्या० श्र० २६।७।५८)

शान्तिकर्मन् (सं० क्ली०) शांतार्थं कर्म। बुरे ग्रह, प्रेत-बाधा, पाप आदि द्वारा होनेवाले अमंगलके निवारणका उपचार। (भारत० प० २६।७।५८)

शान्तिकलामल—सह्याद्रि-वर्णित एक राजा। (सह्या० ३३।२८)

शान्तिकल्प (सं० पु०) अथर्ववेदका पांचवां कल्प।

शान्तिकाम (सं० त्रि०) शांतिं कामयते इति कम-णिङ्-अच्। शान्त्यभिलाषी, शांतिकी कामना करनेवाला। संस्कारतत्त्वमें लिखा है, कि जो श्री और शांतिकी कामना करते हैं, उन्हें ग्रहयज्ञ करना चाहिये।

शान्तिकुम्भ (सं० पु०) वह घट या घड़ा जो देवपूजादि-में प्रतिमाके सामने रखा जाता है। देवपूजादिके बाद इस कुम्भका जल ले कर शांति दी जाती है, इसलिये इसको शांतिकुम्भ या शांतिकलस कहते हैं।

शान्तिकृत् (सं० त्रि०) शांतिं करोतीति-कृ-क्विप्-तुक् च। शांतिकारक।

शान्तिगुप्त (सं० पु०) एक बौद्धाचार्यका नाम। (तारनाथ)

शान्तिगुरु (सं० पु०) एक बौद्धाचार्यका नाम।

शान्तिगृह (सं० क्ली०) शान्तेर्गृहं। यज्ञके अंतमें पाप तथा अशुभ आदिकी शांतिके लिये स्नान करनेका स्नानागार।

शान्तिजल (सं० क्ली०) शांत्यर्थं जलं। शांतिनिमित्त जल, वह जल जिससे पूजादिके बाद शांति की जाती है।

शान्तिद (सं० त्रि०) शांतिं ददातीति दा-क। १ शांति-दायक, शांति देनेवाला। (बृहत्संहिता ५८।३१) (पु०) २ विष्णु।

शान्तिदाता (सं० त्रि०) शांति देनेवाला।

शान्तिदायक (सं० त्रि०) शांति देनेवाला।

शान्तिदायिन् (सं० त्रि०) शांतिदेनेवाला।

शान्तिदेव (सं० पु०) एक बौद्धयतिका नाम।

शान्तिदेवा (सं० स्त्री०) वासुदेवकी पत्नी देवककी कन्या। (भागव० ९।२४।२२)

शान्तिनाथ (सं० पु०) जैनोंके एक तीर्थंकर या अर्हत्। जैन शब्द देखो।

हेमचंद्रके गुरु देवसूरिने शांतिनाथचरित्र नामक एक ग्रन्थ लिखा। उसके पीछे देवसूरिने प्राकृतसे संस्कृत भाषामें अनुवाद किया। शांतिनाथपुराणमें भी शांतिनाथका चरित्र वर्णित है।

शान्तिपर्व्व—महाभारतका बारहवां और सबसे बड़ा पर्व्व। इसमें युद्धके उपरांत युधिष्ठिरकी चित्त-शांतिके लिये कही हुई बहुत-सी कथाएं, उपदेश और ज्ञानचर्चा हैं।

शान्तिपात्र (सं० पु०) वह पात्र जिसमें ग्रह, पाप आदि-की शांतिके लिये जल रखा जाय।

शान्तिपाल—सह्याद्रि-वर्णित एक राजा। (सह्या० ३२।५१)

शान्तिपुर (सं० क्ली०) १ शांतिनिकेतन। २ नगरविशेष।

बङ्गालके नदिया जिलांतर्गत एक प्रसिद्ध नगर। यह अक्षा० २३° २५' उ० तथा देशा० ८८° ३०' पू०के मध्य श्रीचैतन्यचंद्रके लीलाक्षेत्र नवद्वीपग्रामसे दक्षिण भागी-रथीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ३० हजारसे ऊपर है।

बहुत पहले इस नगरने वस्त्रवाणिज्यमें प्रसिद्धि लाभ की थी। आज भी शांतिपुरकी धोती सर्वत्र प्रसिद्ध है। बङ्गाली बालक बालिका रेशमपाड़की शांतिपुरी साड़ी पहनना बहुत पसंद करती हैं। पहले नदिया जिलेके प्रायः सभी स्थानोंमें यह कपड़ा तैयार हो कर शांतिपुर-की हाटमें बिकता था। ईष्ट-इण्डिया-कम्पनीके शान्ति पुरमें कोठी खोलनेसे यह नगर वस्त्रवाणिज्यके केन्द्ररूपमें परिणत हुआ तथा जुलाहे शांतिपुरमें आ कर वस्त्र बिनने लगे।

श्रीचैतन्य महाप्रभु जब नवद्वीपमें वैष्णव धर्मका प्रचार कर रहे थे। उस समय वैष्णवाचार्य श्रीमद्-द्वैत गोस्वामी शान्तिपुरमें गङ्गाके किनारे वास करते थे। महाप्रभु उन पूज्यपाद गोस्वामीके दर्शन करनेको

इन्होंने शान्तिपुर आये। वैष्णवग्रन्थोंमें लिखा है, कि अद्वैत गोस्वामीके साथ रह कर महाप्रभु यहां हरिनाम संकीर्त्तनमें मस्त रहते थे। रासयात्राके उपलक्षमें शान्तिपुरमें आज भी उस धर्मप्रचारकी स्मृति अक्षुण्ण है। कार्त्तिकी पूर्णिमाके दिन शान्तिपुरके घर घरमें रासोत्सव होता है। मेला तीन दिन रहता है। बङ्गालके नाना स्थानोंके वैष्णव और अन्यान्य मनुष्य इस मेलेमें आते हैं। अद्वैत प्रभुकी वासभूमि होनेके कारण यह स्थान गौड़ीय वैष्णवोंके निकट एक तीर्थरूपमें गिना गया है। यहां गङ्गास्नान महापुण्यजनक है।

शान्तिपुराण—जैनपुराणभेद, सकलकीर्त्ति रचित शांतिनाथ पुराण।

शान्तिप्रद (सं० त्रि०) शांति देनेवाला।

शान्तिप्रभ (सं० पु०) एक बौद्धाचार्य। (तारनाथ)

शान्तिमन्त्र (सं० पु०) १ मंत्रविशेष, शांतिदानका मंत्र, इस मंत्रमें शांतिजल दिया जाता है। शान्त्युदकमान देखो। २ तन्त्रोक्त मंत्रविशेष। तंत्रसारमें यह मंत्र इस प्रकार लिखा है, यथा—अथ शांति मंत्रः।

"इमं पुत्रं कामयतः कामजानामिह हि।

"देवेभ्यः पुनाति सर्वमिदं नक्षत्रं शिवेशान्तिस्तारायै वेशवेभ्यस्तारायै रुद्रेभ्यः उमायैः शिवाय शिवयशसे। इत्यनेन कुशोदकेन शांतिं कुर्यात्।" (तन्त्रसार)

इस मंत्रसे कुशोदक द्वारा शान्ति करनी होती है।

शान्तिमय (सं० त्रि०) शांतिसे पूर्ण, शांतिसे भरा हुआ।

शान्तिरक्षित (सं० पु०) एक बौद्धाचार्य। (तारनाथ)

शान्तिवर्मा—कादम्बवंशीय दो नरपति। शांतिवर्मा १म राजा २य नागवर्माके बाद सिंहासन पर बैठे। राजा २य शान्तिवर्मा १०७५ ई०में विद्यमान थे। ये राजा २य जयवर्माके पुत्र थे, किंतु राजा जयवर्माके पौत्र २य कीर्त्तिवर्माके बाद सिंहासनके अधिकारी हुए। हांगले में इन लोगोंकी राजधानी थी। राजा २य शांतिवर्मा पश्चिम चालुक्य वंशीय राजा २य सोमेश्वर तथा ६ष्ठ विक्रमादित्यके अधीन मित्रराजरूपमें गिने जाते थे। उन्होंने पाण्ड्यवंशीय श्रियादेवीको ब्याहा था।

शान्तिवर्मा—सौन्दत्तीके रट्टवंशीय एक सामन्त राजा। ये राजा पिट्टुगके पुत्र थे। पिताके मरने पर ये सम्भवतः ९८० ई०में पिताके सिंहासन पर बैठे। पश्चिम चालुक्यराज २य तैलपके अधीन इन्होंने बड़ी वीरता दिखाई थी।

शान्तिवाचन (सं० क्ली०) ग्रह, ग्रंतबाधा, पाप आदिसे होनेवाला अमंगलको दूर करनेके लिये मन्त्रपाठ।

शान्तिवाचनीय (सं० त्रि०) शांतिवाचनप्रयोजनमस्य (अनुप्रवचनादिभ्यश्छः। पा ५।१।१११) इति छ। शांतिवाचन जिसे प्रयोजन हो, उसे शांतिवाचनीय कहते हैं।

शान्तिवाहन (सं० पु०) एक बौद्धराज। (तारनाथ)

शान्तिव्रत (सं० पु०) एक व्रत। (वराहपु०)

शान्तिशतक (सं० क्ली०) शिह्लन कविकृत श्लोकशतक। इसमें शांतिविषयक एक सौ श्लोक हैं।

शान्तिसदन (सं० क्ली०) शान्तिगृह देखो।

शान्तिषेण—एक विख्यात जैनसूरि। ये दुर्लभसेनसूरिके पुत्र, फूलभूषणके पौत्र और गुरुदेवसेनके प्रपौत्र थे। ये लोग लाटवागटोंके अंतर्भुक्त थे। राजा भोजदेवकी सभामें अम्बरसेनको और अन्यान्य तर्कयुद्धमें बुलाये गये पण्डितोंको शांतिषेणने परास्त किया था। इनके पुत्र विजयकीर्त्ति कच्छपघातवंशीय महाराजाधिराज विक्रमसिंहके सभापण्डित थे (११४५ सम्वत्)।

शान्तिसूक्त (सं० क्ली०) वैदिक मंत्रविशेष। महावामदेव्य ऋषि आदि वैदिक मंत्रको शांतिसूक्त कहते हैं। इस सूक्तमें शांतिजल देना होता है।

शान्तिसूरि (सं० पु०) एक प्रसिद्ध जैनग्रंथकार। इन्होंने उत्तराध्ययनसूत्रटीका और मानाङ्क विरचित वृन्दावनयमककी टीका लिखी। इनका दूसरा नाम था वादिवेताल और ये थारापद्रगच्छभुक्त थे। १०३९ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

शान्तिहोम (सं० पु०) शान्त्यर्थं होमः। वह होम जो शांतिके लिये किया जाता है। (मनु ४।१५)

मनुमें लिखा है, कि अमावस्या पूर्णिमा आदि पर्व दिनमें अनिष्ट निवृत्तिके लिये शांति होम करे।

शान्त्युदकदान (सं० क्ली०) शान्त्युदकस्य दानं। शांति जल देना। पूजा और होमादिके बाद शांतिमन्त्र पढ़ कर यजमानके ऊपर जो जल छिड़का जाता है उसे शान्त्यु

दूर शान्ति करते हैं। यह वैदिक और तान्त्रिक इन दोनों मन्त्रोंसे दिया जाता है। किन्तु अनेक स्थलोंमें तान्त्रिक मन्त्रसे ही शान्ति दी जाती है।

वैदिक शान्ति देनेके समय सामवेदी, यजुर्वेदी और ऋग्वेदीके पृथक् पृथक् मन्त्र हैं। महावामदेव्य ऋषि आदि सामवेदियोंका और 'ऋच' वाचं प्रपद्ये' आदि मन्त्र यजुर्वेदियोंका जानना होगा। किन्तु तान्त्रिक शान्तिमें सभी वेदियोंका एक ही मंत्र कहा गया है। वह मन्त्र इस प्रकार है—

"सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
वासुदेवो जगन्नाथस्तथा सङ्कर्षणो विभुः॥
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते।
आखण्डलोऽग्निर्भगवान् यमो वै निऋतिस्तथा॥
वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः।
ब्रह्मणा सहिता ह्येते दिक्पालाः पान्तु वः सदा॥
कीर्त्तिर्लक्ष्मी धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्षमा मतिः।
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिर्माया निद्रा च भावना॥
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु देवपत्न्यः समागताः।
आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधो जीवसितार्कजाः॥
एते त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः।
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः॥
ऋषयो मुनयो गावो देवमातर एव च।
देवपत्न्यो ध्रुवा नागा दैत्याश्चाप्सरसोऽङ्गनाः॥
अस्त्राणि सर्वशस्त्राणि राजानो वाहनानि [redacted]।
औषधानि [redacted] रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये॥
सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु धर्मकामार्थसिद्धये॥"

(तन्त्रसा०)

यह मंत्र पढ़ कर शांतिकलससे शांतिजल देना होता है।

शान्त्य (सं० स्त्री०) सान्त्व, अति मधुर। (अमरटीका भरत०)

शाम्पर्णि (सं० स्त्री०) शालपर्णिका, सारंगी।

शाप (सं० पु०) शपनमिति शप-घञ्। १ आक्रोश, अहितकामनासूचक शब्द, बददुआ। पर्याय—अकरणि, अजीवनि, अजननि, अभिषङ्ग, निग्रह, अभिसम्पात। २ धिक्कार, फटकार, भर्त्सना। ३ ऐसी शपथ जिसके न पालन करनेका कोई अनिष्ट परिणाम कहा जाय, बुरी कसम। ४ उपद्रव। (रामा० १।२६।२५) 'गुरुशापं भगवतोपद्रवं' (टीका) ५ जल। "यदीगं शापं नद्यो वहन्ति" (ऋक् १०।२८।४) 'यतीपं प्रतिकूलं शापं उदकं' (सायण)

शापग्रस्त (सं० त्रि०) शापेन ग्रस्तः। अभिशप्त, जिसे शाप दिया गया हो।

शापज्वर (सं० पु०) एक प्रकारका ज्वर जो माता, पिता, गुरु आदि बड़ोंके शापके कारण कहा गया है।

शापठिक (सं० पु०) मयूर, मोर।

शापनाशन (सं० पु०) मुनिभेद।

शापवचन (सं० स्त्री०) शापवाक्य।

शापभ्रष्ट (सं० पु०) शापेन भ्रष्टः। शाप द्वारा भ्रष्ट, वह जो शाप देनेसे नष्ट हो गया हो।

शापमुक्त (सं० त्रि०) जिसका शाप छूट गया हो, जिसके ऊपरसे शापका बुरा प्रभाव हट गया हो।

शापाम्बु (सं० पु०) वह जल जिसे हाथमें ले कर शाप दिया जाय।

शापायन (सं० पु०) शप-अश्वादित्वात् फञ् (पा ४।१।११०) मुनिविशेष, शाप ऋषिका गोत्रापत्य।

शापास्त्र (सं० पु०) शाप एव अस्त्रं यस्य। १ वह व्यक्ति जिसके पास अस्त्रोंके स्थान पर शाप ही हो। २ एक मुनिका नाम।

शापित (सं० त्रि०) शाप-प्राप्त, जिसे शाप दिया गया हो।

शापेट (सं० पु०) कुशजातीय तृणभेद। "नाड्यावा दक्षिणावर्त्तं शापेटं निखनेत्।" (कौशिकसू० १८)

शापेय (सं० पु०) २ एक वैदिक आचार्य। ३ उनको प्रवर्त्तित एक शाखा।

शापेयिन् (सं० पु०) १ शापेय शाखाध्यायी। २ याज्ञवल्क्यके एक शिष्यका नाम। (ब्रह्माण्डपुराण)

शापोत्सर्ग (सं० पु०) शापका उच्चारण, शाप छोड़ना, शाप देना।

शापोद्धार (सं० पु०) शापमुक्ति, शाप या उसके प्रभावसे छुटकारा।

शाफरिक (सं० पु०) शफरान् हन्तीति शफर (पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति । पा ४।४।३५) इति ठक् । मत्स्यघातक, मछुआ, धीवर ।

शाफाक्षि (सं० पु०) शफाक्षका गोत्रापत्य ।

शाफेय (सं० पु०) यजुर्वेदकी एक शाखा ।

शाबर (सं० पु०) शबरस्यापत्यं शबर (अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ् । पा ४।१।१०४) इति अञ् । १ शबरका गोत्रापत्य । २ शिवकृत तंत्रविशेष । ३ शबरस्वामिकृत भाष्यविशेष । शबराणामयं । ४ पाप, अपराध । ५ ताम्र, ताँबा । ६ अधिकार । ७ एक प्रकारका चंदन । ८ बुराई, हानि, दुःख । ९ लोध्र वृक्ष, लोधका पेड़ । (त्रि०) १० दुष्ट, पाजी ।

शाबरजम्बुक (सं० त्रि०) शबरजम्बु (कोपदेशे ठञ् । पा ४।२।११९) इति ठञ् । शबरजम्बुदेश-सम्बन्धी ।

शाबरभाष्य (सं० क्ली०) शाबरेण कृतं भाष्यं । शबरस्वामी कृत भाष्य । जैमिनिकृत मीमांसादर्शनके शबरस्वामीने जो भाष्य प्रणयन किया है, उसका नाम शाबरभाष्य है ।

शाबरभेदाख्य (सं० पु०) ताम्र, ताँबा ।

शाबरायण (सं० पु०) शबरस्य गोत्रापत्यं शबर (अश्वादिभ्यः फञ् । पा ४।१।११०) इति फञ् । शबरका गोत्रापत्य ।

शाबरि (सं० पु०) एक बौद्धयति । (तारनाथ) ।

शाबरिका (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी जोंक ।

शाबरी (सं० पु०) शबरोंकी भाषा, एक प्रकारकी प्राकृत भाषा ।

शाबरोत्सव (सं० पु०) शाबराणामुत्सवः । शबरजातिकृत उत्सवविशेष । कालिकापुराणमें लिखा है, कि महाष्टमीके दिन तथा नवमी तिथिको भवानी दुर्गादेवीको पूजा कर श्रवणा नक्षत्रयुक्त दशमी तिथिमें शाबरोत्सव द्वारा भवानीको विसर्जन करे ।

नट्टालादि नीच जाति अश्लील वाक्यादिका प्रयोग कर जो उत्सव करती है, वही शाबरोत्सव है । किस प्रकार शाबरोत्सव करना होता है, उसका विधान भी है—रागनिपुणा कुमारी और वेश्या तथा नर्त्तकोंको साथ ले कर शङ्ख, तुरी, मृदङ्ग और पटहका शब्द करते करते विभिन्न वस्त्रोंकी ध्वजा फहराना होगी तथा लावा और फूल, धूल और कीचड़ फेंक कर भगलिङ्गादि वाचक ग्राम्य शब्द उच्चारण और वैसे ही शब्दोंका गान तथा अश्लील वाक्योंका प्रयोग करते करते नाना प्रकारका उत्सव करे । ऐसे उत्सवका नाम ही शाबरोत्सव है । (कालिकापु० ६ अ०)

शाबल (सं० क्ली०) शङ्कर ।

शाबलीय (सं० पु०) शङ्करजन ।

शाबल्य (सं० क्ली०) १ शाङ्कर्य ।

"छन्दोम्नोऽद्य भुवशाबल्यं मुवः पद्मभयो मह्यम् ।"

(भाग० १०।२०।३४)

'शाबल्यं साङ्कर्य' । (स्वामी) २ कई रंगोंका मेल, शबलता, चितकबरापन । ३ एक साथ भिन्न भिन्न कई वस्तुओंका मेल ।

शाबलेया (सं० स्त्री०) कर्बूरवर्ण, चितकबरी । "इमाय कारिं यादसे शाबल्यां" (शुक्लयजुः ३०।२०) 'शाबल्यां शबलः कर्बूरवर्णः तदपत्यभूतां स्त्रियं' (महीधर)

शाबस्त (सं० पु०) राजा युवनाश्वका एक पुत्र । इसने शाबस्ती या श्रावस्ती नगरी बसाई थी ।

(भागवत ९।६।२१)

शाबस्ती (सं० स्त्री०) श्रावस्ती देखो ।

शाबाश (फा० अव्य०) एक प्रशंसा-सूचक शब्द, खुश रहो, वाह वाह, क्या कहना ।

शाबाशी (फा० स्त्री०) किसी कार्यके करने पर प्रशंसा, वाह वाही ।

शाब्द (सं० त्रि०) शब्दस्यायमिति शब्द-अण् । १ शब्दसम्बन्धी, शब्दका । "एको शाब्दोऽपरस्त्वार्थः" (दायभाग) २ शब्दमय, शब्दस्वरूप ।

"शब्दस्य हि ब्रह्मण एष पन्था
यन्नामभिर्ध्यायति धीर पार्थैः ।" (भाग० २।२।२)

३ शब्दशास्त्री, वैयाकरण ।

शाब्दत्व (सं० क्ली०) शब्दस्य भावः त्व । शब्दका भाव या धर्म, शब्दसम्बन्धित्व ।

"आरोप्यमाणमारोपायां शाब्दत्वे प्रथमं मतम् ।"

(साहित्यद० १०।६७३)

शाब्दबोध (सं० पु०) शाब्दः शब्दसम्बन्धी बोधः ।

२ शब्दार्थज्ञान। शब्दके उच्चारणसे जो अर्थबोध होता है, उसे शाब्दबोध या शब्दार्थज्ञान कहते हैं। न्यायके मतसे पदार्थज्ञान जन्य ज्ञान है। नैयायिकोंके मतसे शब्दार्थज्ञान स्थलमें पहले पदज्ञान, पीछे पदशक्तिज्ञान और उसके बाद शाब्दबोध अर्थात् पदार्थज्ञान जन्य ज्ञान होता है। कहीं कहीं लक्षणाशक्ति द्वारा भी शब्दार्थज्ञान हुआ करता है।

पदज्ञान करण, पदार्थज्ञान उसका द्वार, शाब्दबोध फल और शक्तिधी सहकारिणी है। पहले एक पद सुननेसे पद जन्य पदार्थका स्मरण होता है। पद जन्य पदार्थका स्मरण होनेसे शाब्दार्थका बोध होता है। शब्दशक्तिप्रकाशिका आदि न्याय ग्रंथोंमें इस शाब्दबोधका विषय विशेष रूपसे आलोचित हुआ है।

शब्दशक्ति देखो।

शाब्दिक (सं० पु०) शब्दं करोतीति शब्द (शब्द दर्दुरं करोति। पा४।४।३४) इति ठक्। १ शब्द शास्त्रवेत्ता, वैयाकरण। कविकल्पद्रुममें इन्द्र, चन्द्र आदि आठ आदिशाब्दिक कहे गये हैं।

(त्रि०) २ शब्द-संबंधी, शब्दका।

शाब्दी (सं० वि० स्त्री०) १ शब्द-संबंधिनी। २ केवल शब्दविशेष पर निर्भर रहनेवाली। (स्त्री०) ३ सरस्वती।

शाब्दीव्यञ्जना (सं० स्त्री०) साहित्यमें व्यञ्जनाके दो भेदोंमेंसे एक, यह व्यञ्जना जो शब्द विशेषके प्रयोग पर ही निर्भर हो अर्थात् उसका पर्यायवाची शब्द रखने पर न रह जाय।

शाम (सं० त्रि०) शम-अण्। शम-संबंधी, शमका।

शाम (हिं० स्त्री०) १ लोहे, पीतल आदि धातुका बना हुआ वह छल्ला जो हाथमें ली जानेवाली लकड़ियों या छड़ियोंके निचले भागमें अथवा औजारोंके दस्तेमें लकड़ीके फटने या घिसने छीजनेसे बचानेके लिये लगाया जाता है। (पु०) २ एक प्रसिद्ध प्राचीन देश। यह अरबके उत्तरमें है। कहते हैं, कि यह देश हजरत नूहके पुत्र शामने बसाया था। इसकी राजधानीका नाम दमिश्क है। आज कल यह प्रदेश सिरीया कहलाता है।

शाम (फा० स्त्री०) सूर्य अस्त होनेका समय, रात्रि और दिवसके मिलनेका समय, सांझ।

शामकरण (हिं० पु०) वह घोड़ा जिसके कान श्याम रङ्गके हों।

शामत (अ० स्त्री०) १ बदकिस्मती, दुर्भाग्य। २ विपत्ति, आफत। ३ दुर्दशा, दुरवस्था।

शामतज़दा (फा० वि०) कमबख्त, बदनसीब, अभागा।

शामती (अ० वि०) जिसकी शामत आई हो, जिसकी दुर्दशा होनेको हो।

शामन् (सं० क्ली०) सामगान।

(अमरटीकामें सारसुन्दरी)

शामन (सं० क्ली०) शमनमेव अण्। १ मारण, हत्या करना। २ शान्ति। (पु०) शमन-प्रज्ञादित्वात् अण्। ३ शमन, यम।

शामनगर—बङ्गालके चौबीस परगनेके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। श्यामनगर देखो।

शामनी (सं० स्त्री०) शमनस्य यमस्येयमिति शमन अण् ङीप्। १ दक्षिणदिक्, दक्षिण दिशा। इस दिशाके अधिपति यम माने गये हैं। २ शान्ति, स्वस्थता। ३ वध, हत्या। ४ समाप्ति, अन्त।

शामराज—सह्याद्रिवर्णित दो राजे। (सह्या० ३१।६।२३.४६)

शामल—सह्याद्रि वर्णित एक राजा। (सह्या० ३३।५६)

शामली—युक्तप्रदेशके मुजफ्फरनगर जिलेकी एक तहसील। भू परिमाण ४६१ वर्गमील है। शामली, थाना भावन, कन्धला, कैराना और बिड़ौली परगने ले कर यह उपविभाग गठित है। शामली सदरमें एक दीवानी और दो फौजदारी अदालत हैं। यमुना नदीकी पूर्वी खाल इस उपविभागके बीच हो कर बह गयी है।

शामा (हिं० पु०) एक प्रकारका पौधा। इसकी पत्तियां और जड़ फोड़े रोगके लिये लाभदायक मानी जाती हैं।

श्यामा देखो।

शामिक (सं० पु०) शमिक अपत्यार्थे अण्। शमिकका गोत्रापत्य। (पाणिनि ४।३।७४)

शामित्र (सं० क्ली०) १ पशुके मांस पकानेके निमित्त प्रज्वलित की हुई अग्नि। २ वह स्थान जहां ऐसी अग्नि प्रज्वलित की जाय। ३ यज्ञके लिये पशुकी हिंसा। ४ यज्ञपात्र। ५ यज्ञ।

शामियाना (फा० पु०) एक प्रकारका बड़ा तम्बू। इसमें

प्रायः ऊपरकी ओर लंबा चौड़ा कपड़ा होता है जो बाँसों पर तना रहता है। इसके नीचे चारों ओर प्रायः खुला ही रहता है, पर कभी कभी इसके चारों ओर कनात भी खड़ी की जाती है।

शामिल (फा० वि०) जो साथमें हो, मिला हुआ, सम्मिलित।

शामिल हाल (अ० पु०) जो दुःख सुख आदि सब अवस्थाओंमें साथ रहे, साथी, शरीक।

शामिलात (अ० स्त्री०) हिस्सेदार, साझा। शामिल देखो।

शामी (हिं० स्त्री०) १ लोहे या पीतलका वह छल्ला जो लकड़ियों या छड़ियों आदिके नीचेके भागमें अथवा औजारोंके दस्तेके सिरे पर उसकी रक्षाके लिये लगाया जाता है। इसे शाम भी कहते हैं। (वि०) २ शामदेश सम्बन्धी, शामदेशका।

शामीकबाब (हिं० पु०) एक प्रकारका कबाब जो मांसको मसालेके साथ कूटनेके उपरांत पीस कर गोलियां या टिकियोंके रूपमें बनाया जाता है।

शामील (सं० क्ली०) शम्याः विकारः (शम्याष्टलच्। पा ४।३।१४२) इति टलच्। भस्म, खाक, राख।

शामीली (सं० स्त्री०) स्रुक्, माला।

शामीवत (सं० स्त्री०) शमीवत् अपत्यार्थे अण्। शमीवतका गोत्रापत्य। (पाणिनि ५।३।११८)

शामीवत्य (सं० पु०) शमीवत् अपत्यार्थे यञ्। शमीवतका गोत्रापत्य। (पाणिनि ५।३।११८)

शामुल्य (सं० क्ली०) शरीरावच्छिन्न मलधारकवस्त्र, गलेमें पहननेका कोई कपड़ा। "परादेहि शामुल्यं" (ऋक् १०।८५।२९) 'शामुल्यं शामलमित्यर्थः, शामलं शारीरं मलं शरीरावच्छिन्नस्य मलस्य धारकं वस्त्रं परा देहि परात्यज। (सायण)

शामूल (सं० क्ली०) पशमी वस्त्र, ऊनी कपड़ा।

शामेय (सं० पु०) एक गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिका नाम।

शाम्ब—भगवान् श्रीकृष्णके पौत्र। ये श्रीकृष्णके शापसे कुष्ठरोगग्रस्त हुए थे। पीछे भगवान्‌के आदेशसे जब शाकद्वीपसे ब्राह्मण ला कर सूर्यकी पूजा कराई, तब ये मुक्त हुए। (वराहपु०)

शाम्बर (सं० त्रि०) शम्बर-अण्। १ शम्बर नामक दैत्यसे आगत। "रविः शाम्बरं वसु प्रत्यग्र गीष्म" (ऋक् ६।४७।२२) 'शाम्बरं शम्बरादसुरादागतं शाम्बरं हत्वा स्वधा दत्तं।' (सायण) २ शम्बरसम्बन्धी। ३ सांभर मृगका (पु०) ४ लोध्र वृक्ष, लोध।

शाम्बरशिल्प (सं० पु०) इन्द्रजाल, जादू।

शाम्बरिक (सं० पु०) जादूगर, मायावी।

शाम्बरिन् (सं० पु०) १ एक प्रकारका चन्दन। २ लोध्र, लोध। ३ मूषाकानी नामकी लता।

शाम्बरी (सं० स्त्री०) शम्बर-अण् ङीप्। १ माया, इन्द्रजाल। कहते हैं, कि शम्बर दैत्यने पहले पहल इसका प्रयोग किया था, इसी कारण इसका नाम शांबरी पड़ा। २ मायाविनी, जादूगरनी।

शाम्बविक (सं० पु०) शङ्खका व्यवसाय करनेवाला।

शाम्बुक (सं० पु०) शम्बुक, घोंघा। (शब्दरत्ना०)

शाम्बूक (सं० पु०) घोंघा।

शाम्भर (सं० स्त्री०) १ राजपूतानेकी एक झील जिसमें सांभर नमक होता है, सांभर झील। (पु०) २ सांभर नमक। ३ शम्भर ऋषिका अपत्य। ४ हरिणभेद। हरिण देखो।

शाम्भरायणी (सं० स्त्री०) शम्भर ऋषिकी अपत्य स्त्री।

शाम्भव (सं० क्ली०) शम्भोरयमेवेशाय इदं अण्। १ देवदारु। २ कर्पूर, कपूर। ३ शिवमल्ली, पशु। ४ गुग्गुलु, गुग्गुल। ५ एक प्रकारका विष। ६ शिवका पुत्र। ७ शैव, शिवोपासक। (त्रि०) ८ शम्भुसम्बन्धी, शिवका।

शाम्भवक्षेत्र—उत्कलके अन्तर्गत एक शैवतीर्थ। सम्भवतः एकाम्रक्षेत्र ही शाम्भवक्षेत्र कहलाता है। (उत्कलख० ४५।२।६) भुवनेश्वर देखो।

शाम्भवदेव (सं० पु०) एक प्राचीन संस्कृत कवि।

शाम्भवहि (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक एक ऋषि।

शाम्भवी (सं० स्त्री०) १ दुर्गा देवी। २ नील दूर्वा, नीली दूब।

शाम्मद (सं० क्ली०) साममेद।

शाम्य (सं० क्ली०) शम-यत्। १ शमका भाव। २ बन्धुत्व, भाईचारा। ३ शान्ति।

शाम्यप्रास (सं० पुं०) यज्ञकी वह्नि। (कात्या० ६।२४।७।

शायक (सं० त्रि०) शायक-सम्बन्धी।

शाय (सं० त्रि०) निद्रित, सोया हुआ।

शायक (सं० पु०) शाययति शो-णिच् ण्वुल्, यद्वा शेते सुप्तो रेति-शो-ण्वुल्। १ बाण, तीर, शर। २ खड्ग, तलवार। (अमरटीकामें स्वामी)

शायक (अ० वि०, १ शौक करने या रखनेवाला, शौकीन। २ इच्छुक, अभिलाषी।

शायण्टायन (सं० पु०) १ एक ऋषि। २ उनकी बनाई हुई शाखा।

शायद (फा० अव्य) कदाचित्, सम्भव है।

शायर (अ० पु०) वह जो शेर आदि बनाता हो, काव्य करनेवाला, कवि।

शायरा (अ० स्त्री०) काव्य करनेवाली।

शायरी (अ० स्त्री०) १ कविता करनेका कार्य या भाव। २ काव्य, कविता।

शायलिन (सं० पु०) एक वैदिक आचार्य।

शाया (अ० वि०) १ प्रकट, जाहिर। २ प्रकाशित, छपा हुआ।

शायिक (सं० पु०) वह जो शय्याके द्वारा अपनी जीविकाका निर्वाह करता हो।

शायित (सं० त्रि०) शी-णिच्-क्त। १ सुलाया या लिटाया हुआ। २ पतित, गिरा हुआ।

शायिता (सं० स्त्री०) शायिनो भावः शायिन् तल टाप्। शयन, सोना।

शायिन् (सं० त्रि०) शेते इति शी-णिनि। शयनकारी, सोनेवाला। यह शब्द प्रायः उपपदपूर्वक व्यवहार होता है। जैसे—प्रासादशायी, शय्याशायी इत्यादि।

शायिक (सं० त्रि०) शय्यया जीवति (वेतनादिभ्यो जीवति। पा ४।४।१२) इति ठक्। जो शय्याके द्वारा अपनी जीविकाका निर्वाह करता हो।

शार (सं० त्रि०) शृ-घञ्। १ कर्बुरवर्ण, चितकबरा। २ पीत, पीला। ३ नीले, पीले और हरे रंगका। (पु०) २ वायु, हवा। ३ हिंसन, हिंसा। ४ एक प्रकारका पासा। ५ अक्षर उपकरण। (स्त्री०) ६ कुश।

शारङ्ग (सं० पु०) शीर्घमें आगतीः शृ (शार्ङ्गादिभ्यश्च उण् १।१२६) इति अङ्गच्। १ चातक। २ हरिण। (शकुन्तला १ अ०) ३ हस्ती, हाथी। ४ भृङ्ग। ५ मयूर। (त्रि०) ६ कर्बुरवर्णविशिष्ट, चितकबरा।

शारङ्गक (सं० पु०) एक प्रकारका पक्षी।

शारङ्गधनुष (सं० पु०) १ शारङ्ग नामक धनुषसे सुशोभित अर्थात् विष्णु। २ कृष्ण।

शारङ्गपाणि (सं० पु०) १ हाथमें शारङ्ग नामक धनुष धारण करनेवाले, विष्णु। २ कृष्ण। ३ राम।

शारङ्गपानि (हिं० पु०) शारङ्गपाणि देखो।

शारङ्गभृत (सं० पु०) १ शारङ्ग नामक धनुष धारण करनेवाले, विष्णु। २ कृष्ण।

शारङ्गवन (सं० पु०) कुरुवर्ष नामक देश।

शारङ्गष्टा (सं० स्त्री०) १ काकजंघा। २ करजनी, गुंजा, घोंटली। ३ मकोय।

शारङ्गाष्टा (सं० स्त्री०) १ मकोय। २ लताकरञ्ज, कट करंज।

शारङ्गी (सं० स्त्री०) शारङ्ग-ङीष्। वाद्ययन्त्रविशेष, सारंगी नामक बाजा। विशेष विवरण सारङ्गी शब्दमें देखो।

शारङ्गोहर—वैष्णव-सम्प्रदायविशेष। वैष्णव-सम्प्रदाय देखो।

शारङ्गेष्टा (सं० स्त्री०) शारङ्गाष्टा देखो।

शारणिक (सं० पु०) रक्षाकर्त्ता, वह जो शरणमें आये हुए की रक्षा करता हो।

शारतल्पिक (सं० त्रि०) शरशायी, वह जो शरशय्या पर शयन करता हो।

शारदक (सं० त्रि०) शरत्समयोत्पन्न रोग या शस्य। (मध्यन्ता-दिभ्य ठक्। पा ४।३।६३) इति ठञ्। शरत् कालमें आक्रमणकारी।

शारद (सं० क्ली०) शरदि भवं शारद (सन्धिवेलाद्यृतु-नक्षत्रेभ्योऽण्। पा ४।३।१६)इति अण्। १ श्वेत कमल, सफेद पद्म। २ शस्य। (पु०) ३ कास। ४ बकुल, मौल-सिरीका वृक्ष। ५ हरिद्वर्ण मुद्ग, हरी मूंग। ६ पीत मुद्ग, पीली मूंग। ७ वत्सर, वर्ष, साल। ८ एक प्रकारका रोग। ९ मेघ, बादल। (त्रि०) १० शरत्काल सम्बन्धी, शरत्काल-का। ११ नूतन, नया। १२ अप्रतिभ। १३ लज्जाशील, लज्जावान्।

शारद्वण्डायनी (सं० स्त्री०) शारद्वण्डायन ऋषिकी भार्या।

शारदजल (सं० क्ली०) शारदं शरत्कालोद्भव जलम्। शरत्कालका जल।

शारदमल्लिका (सं० स्त्री०) शरत्कालभव। मल्लिका (रत्नमा०)

शारदमुद्ग (सं० पु०) हरित्मुद्ग, हरो मूंग।

शारदयावनाल (सं० पु०) शरत्कालभव यावनाल-विशेष। गुण—श्लेष्मकर, पिच्छिल, गुरु, शीतल, मधुर, वृष्य और बलपुष्टिदायक। (राजनि०)

शारदसिंह—कच्छपघातवंशीय एक राजा। ये बारहवीं सदीमें विद्यमान थे।

शारदा (सं० स्त्री०) शारद अण्-टाप्। १ सरस्वती। २ दुर्गा, भगवती।

"शरत्काले पुरा यस्मात् नवम्यां बोधिता सुरैः।
शारदा सा समाख्याता पीठे लोके च नामतः॥"

(तिथितत्त्व)

देवताओंने पहले शरत्कालमें नवमी तिथिको देवी भगवतीका बोधन किया था, इसलिये वे शारदा नामसे विख्यात हुई। ५ शारिवा, अनन्तमूल। ६ प्राचीन कालकी एक प्रकारकी लिपि। त्रिगर्त्तराज जयचन्द्रके राज्यकालमें कीरग्रामके राजानक लक्ष्मणचन्द्रने अपने राज्यके वैजनाथ मन्दिरमें इस लिपिमें एक प्रशस्ति उत्कीर्ण की थी।

शारदाम्बा (सं० स्त्री०) सरस्वती।

शारदिक (सं० क्ली०) शरद् (श्राद्धे शरदः। पा ४।३।१२) इति ठञ्। १ श्राद्ध। (पु०) शरद्। विभाषा रोगातपयोः। पा ४।३।१३) इति ठञ्। २ रोग, बीमारी। ३ आतप, शरत् ऋतुमें होनेवाला ज्वर। (वि० कौ०)

शारदिन् (सं० पु०) १ सप्तपर्णवृक्ष, छतिवन। २ कच्चट शाक। ३ अपराजिता। ४ अन्न या फल आदि।

शारदी (सं० स्त्री०) शारद ङीप्। १ तोयपिप्पली, जलपीपल। २ सप्तपर्ण, छतिवन। ३ कोजागर-पूर्णिमा। चान्द्राश्विन पूर्णिमाको शारदी पूर्णिमा कहते हैं। इस पूर्णिमा तिथिको कोजागरी लक्ष्मी पूजा करनी होती है। (त्रि०) ४ शरत्कालीन, शरत् कालका।

शरत्कालभव दुर्गापूजा सात्त्विक, राजसिक और तामसिक भेदसे तीन प्रकारकी है। दुर्गा शब्द देखो। ५ संवत्सरसम्बन्धिनी। 'यदिन्द्रशारदीरवातिरः'। (ऋक् १।१२१।४)

शारदीयमहापूजा (सं० स्त्री०) शारदीया महापूजा, शरत्कालीन दुर्गापूजा। शरत् और वसंत इन दोनों ऋतुमें दुर्गापूजा होती है। किंतु शरत्कालमें जो दुर्गापूजन होता है, उसे महापूजा कहते हैं। यह पूजा चतुःकर्ममयी है अर्थात् स्तवन, पूजन, होम और बलिदान पूजाका अङ्ग है। चान्द्राश्विनके शुक्लपक्षमें सप्तमी, अष्टमी और नवमी इन तीन तिथियोंमें उक्त पूजाका विधान है।

देवीपुराण, कालिकापुराण, वृहन्नन्दिकेश्वरपुराण आदिमें इस पूजाका विशेष विवरण आया है।

दुर्गा शब्द देखो।

शारद्य (सं० त्रि०) शरत्कालका, शरत् ऋतु-सम्बन्धी।

शारद्वत (सं० पु०) शरद्वत्-अपत्यार्थे अञ्। (पा ४।१।१०४) शरद्वतका गोत्रापत्य, कृप। (भारत)

शारद्वतायन (सं० पु०) शारद्वतका गोत्रापत्य।

शारभ (सं० त्रि०) शरभ-अण्। शरभ-संबन्धी।

शारवर (सं० क्ली०) जनपदभेद। (राजतर० ८।१८७८)

शाराव (सं० त्रि०) शरावे उद्धृतः शाराव (शरावोद्धृतमण-भेभ्यः। पा ४।४।१४) इति अण्। शरावमें उद्धृत अन्न। 'शरावे उद्धृतः शारावो मुक्तोच्छिष्ट ओदनं' (सिद्धान्तकौमु०)

शारि (सं० पु०) शृ हिंसायां इञ्। १ अक्षोपकरण, पासा आदि खेलनेकी गोटी। पर्याय—गुटिका, शार, खेलनी। (स्त्री०) (शृः शकुनौ। उण् ४।१२७) इति इञ्। २ शकुनिकाभेद। ३ युद्धार्थ गजपर्याण, लड़ाईके लिये हाथीकी पीठ परका हौदा। ४ व्यवहारान्तर, व्यवहारविशेष। ५ कपट, छल, धोखा। ६ एक प्रकारका गीत। ७ मैना।

शारिका (सं० स्त्री०) शारिरेव स्वार्थे कन्। १ पक्षि-विशेष, मैना नामकी चिड़िया। पर्याय—पीतपादा, गोराटी, गो किराटिका, सारिका, शारी, चित्रलोचना, शारि, मदनशारिका, शलाका। मैना देखो। २ वीणा

या सारंगी बजानेकी क्रिया। ३ सारंगी आदि बजानेकी कमानी। ४ दुर्गा देवी। ५ शारि देखो।

शारिका कवच (सं० पु०) दुर्गाका एक कवच जो रुद्रयामल तन्त्रमें है।

शारित (सं० त्रि०) चित्र विचित्र, रंगीन।

शारिपट्ट (सं० पु०) शतरंज या चौसर आदि खेलनेकी बिसात।

शारिप्रस्तर (सं० पु०) खेलनेका एक पत्थर।

शारिफल (सं० पु० क्ली०) शारीणां खेलनीनां फलम्। शारिपट्ट, शतरंज या चौसर खेलनेकी बिसात। पर्याय—अष्टापद, फलक, आकर्ष, शारिफलक, चिन्दुराग, अष्टपंक्ति। अष्टापद

शारिवा (सं० स्त्री०) १ श्यामलता, अनन्तमूल, सालसा। इसके पत्ते जामुनके पत्ते जैसे होते हैं। इसमें दूधके समान सफेद दूध होते हैं। यह दो प्रकारकी होती है, सफेद और काली। उत्कल—गुणाणान मूल। संस्कृत पर्याय—गोपी, श्यामा, अनन्ता, उत्पलशारिवा। अमरटीकामें भरतने लिखा है, पद्मश्यामलता। किसी किसीके मतसे नागजिह्वा, गोपी आदि तीन तथा अनन्तादि दो, यह पाँच श्यामलता है। किसीके मतसे अनन्तमूल।

पद्म श्यामलतायां नागजिह्वायामिति। केचित् गोपश्यादित्रयं श्यामलतायां अनन्तादि द्वयं अनन्तमूले इति केचित्। शुप् रक्षणे। (भरत)

"गोपी श्यामा गोपवल्ली गोपा गोपालिकापि च।" इति वाचस्पतिः। एकं वा शारिवामूलं सर्वव्रणविशोधनम्।' (वैद्यक)

गुण—स्वादु, स्निग्ध, शुक्रवर्द्धक, गुरु, अग्निमान्द्य और अरुचिनाशक, श्वास, कास, वमि और तृष्णानाशक त्रिदोषघ्न, रक्तप्रदर और ज्वरातिसार नाशक। २ अनन्ता, धमासा।

शारिशाका (सं० स्त्री०) सहस्त्रा पर्णमान प्राणिविशेष। (अथर्व ३।१४।५)

शारिशृङ्खला (सं० स्त्री०) शारीणां शृङ्खला यत्र। पाशकविशेष, जूआ खेलनेका एक प्रकारका पासा या गोटी। (शब्दरत्नावली)

शारिशृङ्ग (सं० पु०) जूआ खेलनेका एक प्रकारका पासा या गोटी।

शारी (सं० स्त्री०) शृ-इञ्, वा ङीष्। १ कुशा नामकी घास। २ शकुनिकाभेद, एक प्रकारका पक्षी। ३ सुश्र, काँटा। (पु०) ४ शतरंजकी गोट, गोंट।

शारीरक (सं० पु०) एक गाँवका नाम।

(राजतर० ३।३४६)

शारीर (सं० क्ली०) १ वृष, बैल। शरीरे भवः शरीर-अण्। (त्रि०) २ शरीरजात, शारीरदण्ड। वधदण्डको भी शारीर कहते हैं। व्यवहारशास्त्रमें विशेष अपराध पर शारीरदण्डका विधान है।

शास्त्रमें ब्राह्मणको शारीरदण्डका विधान नहीं है। ब्राह्मणको शारीर भिन्न अन्य दण्ड देना होता है।

२ शरीर-सम्बन्धीय दुःख। दुःख तीन प्रकारका है, आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। यह आध्यात्मिक दुःख फिर दो प्रकारका है, शारीर और मानस। वायु, पित्त और श्लेष्माकी विषमतासे जो दुःख होता है, उसे शारीरदुःख कहते हैं। अर्थात् रोग जन्य जो दुःख होता है, उसका नाम शारीर है।

शारीर दुःख ज्वर आदि रोगभेदसे अनेक प्रकारका है। जितने प्रकारके रोग हैं, सभी शारीर हैं।

सुश्रुतादि वैद्यकसंहितामोंमें शारीरविषय अधिकार करके एक शारीर वृत्तान्तप्रस्थान रूप अध्याय कहा है। अर्थात् सुश्रुतादि वैद्यक ग्रन्थोंमें शरीर सम्बन्धीय सभी विषय जहाँ कहे गये हैं, वहाँ उसे शारीरस्थान कहते हैं। शारीरसम्बन्धीय तपस्या।

देवता, ब्राह्मण, गुरु और प्राज्ञ व्यक्तियोंकी पूजा, शौच, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा इन सबोंका नाम शारीरतप है।

शारीरक (सं० क्ली०) शरीरमेव शारीरं कुत्सितत्वात् तन्निवासी शारीरको जीवस्तमधिकृत्य कृतोग्रन्थः शारीरक-अण्। १ वेदव्यासने जो वेदान्त प्रणयन किया है उसको शारीरकसूत्र कहते हैं। जीवका अधिष्ठान शरीर है, जीव इस शरीरमें रह कर नाना प्रकारका दुःख भोगता है, इसी कारण यह अति निन्दित है। शरीराधिष्ठित जीव शारीरक कहलाता है। यह शारीरक

सम्बन्धीय ग्रन्थ होनेके कारण इसका शारीरकसूत्र नाम हुआ है। इस सूत्रमें जीवके अधिष्ठानभूत शरीरको जिससे निवृत्ति हो, उसका विषय विशेष रूपसे वर्णित हुआ है। विशेषविवरण वेदान्त दर्शन शब्दमें देखो।

शारीरमेव शरीरकं तत भवं शरीरक-अण्। (त्रि०) २ शरीरमय, शरीरसे उत्पन्न।

शारीरकन्यायरक्षामणि (सं० पु०) शारीरक मीमांसाका एक भाष्य। यह शंकराचार्यका किया हुआ है।

शारीरकभाष्य—शङ्कराचार्यका किया हुआ ब्रह्मसूत्रका भाष्य।

शारीरकभाष्यवार्त्तिक (सं० क्ली०) वेदान्तसूत्रका एक भाष्य।

शारीरकभाष्यविभाग (सं० पु०) शारीरकसूत्रका एक भाष्य।

शारीरकमीमांसा (सं० स्त्री०) उत्तरमीमांसा, ब्रह्ममीमांसा, वेदान्तसूत्र।

शारीरकशास्त्रदर्पण (सं० पु०) वेदान्तदर्शनका एक भाष्य।

शारीरकसूत्र (सं० पु०) वेदव्यासका किया हुआ वेदान्त-सूत्र।

शारीरकोपनिषद् (सं० स्त्री०) एक उपनिषद्।

शारीरतत्त्व (सं० क्ली०) शारीरस्य तत्त्वं। शारीरस्थान, वह शास्त्र जिसमें शरीरके तत्त्वों और रचना आदिका विवेचन होता है।

शारीरविधान (सं० क्ली०) १ वह शास्त्र जिसमें इस बातका विवेचन होता है, कि जीव किस प्रकार उत्पन्न होते और बढ़ते हैं। २ वह शास्त्र जिसमें जीवोंके शरीरके भिन्न भिन्न अंगों और उनके कार्योंका विवेचन होता है।

शारीरव्रण (सं० पु०) एक प्रकारका रोग। यह वात, पित्त, कफ और रक्तसे उत्पन्न होता है। परन्तु रक्तके सम्बन्धसे द्विदोषज और त्रिदोषज होनेके कारण आठ प्रकारका हो जाता है—(१) वातव्रण, (२) पित्तव्रण, (३) कफव्रण, (४) रक्तव्रण, (५) वातपित्तजव्रण, (६) वातकफजव्रण, (७) कफपित्तव्रण और (८) सन्निपातज व्रण।

शारीरशास्त्र (सं० क्ली०) शारीरविधान देखो।

शारीरिक (सं० त्रि०) शरीर-ठक्। शरीर-सम्बन्धी, जिस्मानी। पर्याय—कालेवरिक, गात्रिक, वापुषिक, सांहननिक, वार्ष्मिक, वैग्रहिक, कायिक, दैहिक, मौर्त्तिक, तानविक।

शारुक (सं० त्रि०) शृणातीति शृ (लषपतपदस्थेति। पा ३।२।१५४) इति उकञ्। १ हिंसक, हिंस्र, हत्या या नाश करनेवाला। २ कष्ट देनेवाला।

शार्क (सं० पु०) १ शर्करा, चीनी। २ एक प्राचीन गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषिका नाम। (नागरखण्ड)

शार्कक (सं० पु०) दुग्धफेन, दूधका फेन। २ शर्करा पिण्ड, चीनीका ढेला। ३ गोश्तका टुकड़ा।

शार्कर (सं० पु०) शर्करास्त्यत्रेति शर्करा:(दशो लुविल-ची च। पा ४।२।१०५) इति अण्। १ शर्करान्वित देश, वह देश जहां चीनी बहुत होती हो। २ वह स्थान जो कंकरों और पत्थरोंसे भरा हो, कंकरीली या पथरीली जगह। ३ दुग्धफेन, दूधका फेन। सिकता (शर्कराभ्याञ्च। पा ५।२।१०४) इति अणि शर्करादिविशिष्टश्च। (काशिका०) ४ लोध्रवृक्ष, लोधका पेड़। (त्रि०) ५ शर्करा-सम्बन्धी। शर्कराया (शर्करादिभ्योऽण्। पा ५।३।१०७) इति अण्। ६ शर्करा सदृश। ७ शर्करायुक्त, शर्करायिशिष्ट।

शार्करक (सं० पु०) १ वह स्थान जो कङ्करों और पत्थरोंसे भरा हो, कङ्करीली या पथरीली जगह। २ वह स्थान जहां चीनी बहुत होती हो। (त्रि०) ३ कङ्करीला, पथरीला।

शार्करमद्य (सं० क्ली०) प्राचीन कालका एक प्रकारका मद्य जो चीनी और घीसे बनाया जाता था।

"शर्कराघातकीतोयकपित्थैः शार्करो मतः।"

इस मद्यका गुण—शीत, हृद्य, दीपन और मोहजनक (राजनि०) अन्य प्रकार शर्कराजात मद्यका गुण—मधुर, रुचिकर, दीपन और वस्तिशोधन।

(सुश्रुत सूत्रस्था ४५ अ०)

शार्कराक्ष (सं० पु०) शर्कराक्षका गोत्रापत्य।

शार्कराक्षि (सं० पु०) शर्कराक्षका प्रवर्त्तित गोत्र।

शार्कराक्ष्य (सं० पु०) शर्कराक्षका गोत्रापत्य।

शार्करिक (सं० पु०) १ शर्करावहुल देश, वह देश जहां

या सारंगी बजानेकी क्रिया। ३ सारंगी आदि बजानेकी कमानी। ४ कुर्सा देखो। ५ शारि देखो।

शारिका कवच (सं० पु०) दुर्गाका एक कवच जो रुद्रयामल तन्त्रमें है।

शारित (सं० त्रि०) नित चित्रित, रंगीन।

शारिपट्ट (सं० पु०) शतरंज या चौसर आदि खेलनेकी बिसात।

शारिप्रस्तर (सं० पु०) खेलनेका एक पत्थर।

शारिफल (सं० पु० क्ली०) शारीणां खेलनीनां फलम्। शारिपट्ट, शतरंज या चौसर खेलनेकी बिसात। पर्याय—अष्टापद, फलक, आकर्ष, शारिफलक, बिन्दुफलक, अक्ष-पंक्ती। अष्टापद

शारिवा (सं० स्त्री०) १ श्यामलता, अनन्तमूल, सालसा। इसके पत्ते जामुनके पत्ते जैसे होते हैं। इसमें दूधके समान सफेद दूध होते हैं। यह दो प्रकारकी होती है, सफेद और काली। उत्कल—गुआनान मूल। संस्कृत पर्याय—गोपी, श्यामा, अनन्ता, उत्पलशारिवा। अमर-टीकामें भरतने लिखा है, पञ्चश्यामलता। किसी किसीके मतसे नागजिह्वा, गोपी आदि तीन तथा अनन्तादि दो, यह पाँच श्यामलता है। किसीके मतसे अनन्तमूल।

पञ्च श्यामलतायां नागजिह्वायामिति। केचित् गोप-र्व्यादित्रयं श्यामलतायां अनन्तादि द्वयं अनन्तमूले इति केचित्। गुप् रक्षणे। (भरत)

"गोपी श्यामा गोपवल्ली गोपा गोपालिकापि च।" इति रत्नमाला। एकं वा शारिवामूलं सर्वव्रणविशोधनम्।" (वैद्यक)

गुण—स्वादु, स्निग्ध, शुक्रवर्द्धक, गुरु, अग्निमान्द्य और अरुचिनाशक, श्वास, कास, वमि और तृष्णानाशक, त्रिदोषघ्न, रक्तज्वर और उपद्रवातिसार नाशक। २ [illegible], [illegible]।

शारिवापत्र (सं० स्त्री०) [illegible] [illegible] वर्त्तमान पालि-[illegible]। (अर्व्वा० [illegible])

शारिस्कुल (सं० स्त्री०) [illegible] [illegible] [illegible]। पश्चिम-[illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] या [illegible]।

([illegible])

[illegible] (सं० पु०) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

शारी (सं० स्त्री०) शृ-इञ्, वा ङीष्। १ कुशा नामकी घास। २ शकुनिकाभेद, एक प्रकारका पक्षी। ३ युद्ध, कौड़ा। (पु०) ४ शतरंजकी गोट, गोंद।

शारीरक (सं० पु०) एक गाँवका नाम।

(राजतर० ३।३४६)

शारीर (सं० क्ली०) १ वृष, बैल। शरीरे भवः शरीर-अण्। (त्रि०) २ शरीरजात, शरीरदण्ड। वधदण्डको भी शारीर कहते हैं। व्यवहारशास्त्रमें विशेष अप-राध पर शारीरदण्डका विधान है।

शास्त्रमें ब्राह्मणको शारीरदण्डका विधान नहीं है। ब्राह्मणको शारीर भिन्न अन्य दण्ड देना होता है।

२ शरीर-सम्बन्धीय दुःख। दुःख तीन प्रकारका है, आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। यह आध्यात्मिक दुःख फिर दो प्रकारका है, शारीर और मानस। वायु, पित्त और श्लेष्माकी विषमतासे जो दुःख होता है, उसे शारीरदुःख कहते हैं। अर्थात् रोग जन्य जो दुःख होता है, उसका नाम शारीर है।

शारीर दुःख ज्वर आदि रोगभेदसे अनेक प्रकारका है। जितने प्रकारके रोग हैं, सभी शारीर हैं।

सुश्रुतादि वैद्यकसंहिताओंमें शारीरविषय अधिकार करके इस शारीर पृथक्स्थानवर्णन रूप अध्याय लिखा। अर्थात् सुश्रुतादि वैद्यक ग्रन्थोंमें शरीर सम्बन्धीय सभी विषय जहां कहे गये हैं, वहां उसे शारीरस्थान कहते हैं। शारीरसम्बन्धीय तपस्या।

देवता, ब्राह्मण, गुरु और प्राज्ञ व्यक्तियोंकी पूजा, शौच, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा इन सबोंका नाम शारीरतप है।

शारीरक (सं० क्ली०) शरीरमेव शारीरं कुत्सितत्वात् तन्निवासी शारीरको जीवस्तमधिकृत्य कृतोग्रन्थः शारीरक-अण्। १ वेदव्यासने जो वेदान्त प्रकाश किया है उसको शारीरकसूत्र कहते हैं। जीवका अधि-ष्ठान शरीर है, जीव इस शरीरमें रह कर नाना प्रकारका दुःख भोगता है, इसी कारण यह अति निन्दित है। [illegible] जीव शारीरक कहलाता है। यह शारीरक-

सम्बन्धीय ग्रन्थ होनेके कारण इसका शारीरकसूत्र नाम हुआ है। इस सूत्रमें जीवके अधिष्ठानभूत शरीरको जिससे निवृत्ति हो, उसका विषय विशेष रूपसे वर्णित हुआ है। विशेषविवरण वेदान्त दर्शन शब्दमें देखो।

शरीरमेव शरीरकं तत्र भवं शरीरक-अण्। (त्रि०) २ शरीरभव, शरीरसे उत्पन्न।

शारीरकन्यायरक्षामणि (सं० पु०) शारीरक मीमांसाका एक भाष्य। यह शंकराचार्यका किया हुआ है।

शारीरकभाष्य—शङ्कराचार्यका किया हुआ ब्रह्मसूत्रका भाष्य।

शारीरकभाष्यवार्त्तिक (सं० क्ली०) वेदान्तसूत्रका एक भाष्य।

शारीरकभाष्यविभाग (सं० पु०) शारीरकसूत्रका एक भाष्य।

शारीरकमीमांसा (सं० स्त्री०) उत्तरमीमांसा, ब्रह्ममीमांसा, वेदान्तसूत्र।

शारीरकशास्त्रदर्पण (सं० पु०) वेदान्तदर्शनका एक भाष्य।

शारीरकसूत्र (सं० पु०) वेदव्यासका किया हुआ वेदान्त-सूत्र।

शारीरकोपनिषद् (सं० स्त्री०) एक उपनिषद्।

शारीरतत्त्व (सं० क्ली०) शारीरस्य तत्त्वं। शारीरस्थान, वह शास्त्र जिसमें शरीरके तत्त्वों और रचना आदिका विवेचन होता है।

शारीरविधान (सं० क्ली०) १ वह शास्त्र जिसमें इस बातका विवेचन होता है, कि जीव किस प्रकार उत्पन्न होते और बढ़ते हैं। २ वह शास्त्र जिसमें जीवोंके शरीरके भिन्न भिन्न अंगों और उनके कार्योंका विवेचन होता है।

शारीरव्रण (सं० पु०) एक प्रकारका रोग। यह वात, पित्त, कफ और रक्तसे उत्पन्न होता है। परन्तु रक्तके सम्बन्धसे द्विदोषज और त्रिदोषज होनेके कारण आठ प्रकारका हो जाता है—(१) वातव्रण, (२) पित्तव्रण, (३) कफव्रण, (४) रक्तव्रण, (५) वातपित्तजव्रण, (६) वातकफजव्रण, (७) कफपित्तजव्रण और (८) सन्निपातज व्रण।

शारीरशास्त्र (सं० क्ली०) शारीरविधान देखो।

शारीरिक (सं० त्रि०) शरीर-ठक्। शरीर-सम्बन्धी, जिस्मानी। पर्याय—कालेवरिक, गात्रिक, वापुषिक, सांहननिक, वार्ष्मिक, वैग्रहिक, कायिक, दैहिक, मौर्त्तिक, तानविक।

शारुक (सं० त्रि०) शृणातीति शॄ (लषपतपदस्थेति। पा ३।२।१५४) इति उकञ्। १ हिंसक, हिंस्र, हत्या या नाश करनेवाला। २ कष्ट देनेवाला।

शार्क (सं० पु०) १ शर्करा, चीनी। २ एक प्राचीन गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषिका नाम। (नागरखण्ड)

शार्कक (सं० पु०) दुग्धफेन, दूधका फेन। २ शर्करा-पिण्ड, चीनीका ढेला। ३ गोश्तका टुकड़ा।

शार्कर (सं० पु०) शर्करास्त्यत्रेति शर्करा (शर्करा लुविलची च। पा ४।२।१०५) इति अण्। १ शर्करान्वित देश, वह देश जहां चीनी बहुत होती हो। २ वह स्थान जो कंकरों और पत्थरोंसे भरा हो, कंकरीली या पथरीली जगह। ३ दुग्धफेन, दूधका फेन। शिकता (शर्कराभ्यश्च। पा ५।२।१०४) इति अणि शर्कराविशिष्टश्च। (काशिका०) ४ लोध्रवृक्ष, लोधका पेड़। (त्रि०) ५ शर्करा-सम्बंधी। शर्करेव (शर्करादिभ्योऽण्। पा ५।३।१०७) इति अण्। ६ शर्करा सदृश। ७ शर्करायुक्त, शर्कराविशिष्ट।

शार्करक (सं० पु०) १ वह स्थान जो कङ्करों और पत्थरोंसे भरा हो, कङ्करीली या पथरीली जगह। २ वह स्थान जहां चीनी बहुत होती हो। (त्रि०) ३ कङ्करीला, पथरीला।

शार्करमद्य (सं० क्ली०) प्राचीन कालका एक प्रकारका मद्य जो चीनी और धौसे बनाया जाता था।

"शर्कराधातकीतोयकल्पितः शार्करो मतः।"

इस मद्यका गुण—शीत, हृद्य, दीपन और मोहजनक (राजनि०) अन्य प्रकार शर्कराजात मद्यका गुण—मधुर, रुचिकर, दीपन और वस्तिशोधन।

(सुश्रुत सूत्रस्था ४५ अ०)

शार्कराक्ष (सं० पु०) शर्कराक्षका गोत्रापत्य।

शार्कराक्षि (सं० पु०) शर्कराक्षका प्रवर्त्तित गोत्र।

शार्कराक्ष्य (सं० पु०) शर्कराक्षका गोत्रापत्य।

शार्करिक (सं० पु०) १ शर्करावहुल देश, वह देश जहां

या सारंगी बजानेकी क्रिया। ३ सारंगी आदि बजानेकी कमानी। ४ दुर्गा देवी। ५ शारि देवी।

शारिका कवच (सं० पु०) दुर्गाका एक कवच जो रुद्रयामल तन्त्रमें है।

शारित (सं० त्रि०) चित्र विचित्र, रंगीन।

शारिपट्ट (सं० पु०) शतरंज या चौसर आदि खेलनेकी बिसात।

शारिप्रस्तर (सं० पु०) खेलनेका एक पत्थर।

शारिफल (सं० पु० क्ली०) शारीणां खेलनीनां फलम्। शारिपट्ट, शतरंज या चौसर खेलनेकी बिसात। पर्याय अष्टापद, फलक, आकर्ष, शारिफलक, विन्दुफल, अष्टपदी। बिसात

शारिवा (सं० स्त्री०) १ श्यामलता, अनन्तमूल, सालसा। इसके पत्ते जामुनके पत्ते जैसे होते हैं। इनसे दूधके समान सफेद दूध होते हैं। यह दो प्रकारकी होती है, सफेद और काली। उत्कल—सुगन्धा मूल। संस्कृत पर्याय—गोपी, श्यामा, अनन्ता, उत्पलशारिवा। अमरटीकामें भरतने लिखा है, पञ्चश्यामलता। किसी किसीके मतसे नागजिह्वा, गोपी आदि तीन तथा अनन्तादि दो, यह पांच श्यामलता है। किसीके मतसे अनन्तमूल।

पञ्च श्यामलतायां नागजिह्वायामिति। केचित् गोपस्त्र्यादित्रयं श्यामलतायां अनन्तादि द्वयं अनन्तमूले इति केचित्। गुप् रक्षणे। (भरत)

'गोपी श्यामा गोपवधूः गोपा गोपालिकापि च।' इति वाचस्पतिः। एवं वा शारिवामूलं सर्वपणिनोपमम्।' (वैद्यक)

गुण—स्वादु, स्निग्ध, शुक्रवर्द्धक, गुरु, अग्निमान्द्य और अरुचिनाशक, श्वास, कास, वमि और तृष्णानाशक त्रिदोषघ्न, रक्तप्रद और ज्वरातिसारनाशक। २ शारिका, पनारा।

शारिशाका (सं० स्त्री०) शारिशाकाः वर्द्धमान शाखि-निर्गत। (अथर्व ३।१४।५)

शारिशृङ्खला (सं० स्त्री०) शारीणां शृङ्खला यत्र। पाशकविशेष, जूआ खेलनेका एक प्रकारका पासा या गोटी। (शब्दरत्नावली)

शारिशृङ्ग (सं० पु०) जूआ खेलनेका एक प्रकारका पासा या गोटी।

शारी (सं० स्त्री०) शृ-इञ्, वा ङीप्। १ कुश नामकी घास। २ शकुनिकाभेद, एक प्रकारका पक्षी। ३ युद्ध, कौशल। (पु०) ४ शतरंजकी गोट, गोटी।

शारीरद (सं० पु०) एक गांवका नाम। (राजतर० ३।३४६)

शारीर (सं० क्ली०) १ वृष, बैल। शरीरे भवः शरीर-अण्। (त्रि०) २ शरीरजात, शरीरोद्भव। कायदण्डको भी शारीर कहते हैं। धर्मशास्त्रोंमें विशेष अपराध पर शारीरदण्डका विधान है।

शास्त्रमें ब्राह्मणको शारीरदण्डका विधान नहीं है। ब्राह्मणको शारीर छोड़ अन्य दण्ड देना होता है।

२ शरीर-सम्बन्धीय दुःख। दुःख तीन प्रकारका है, आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। यह आध्यात्मिक दुःख फिर दो प्रकारका है, शारीर और मानस। वायु, पित्त और श्लेष्माकी विषमतासे जो दुःख होता है, उसे शारीरदुःख कहते हैं। अर्थात् रोगजन्य जो दुःख होता है, उसका नाम शारीर है।

शारीर दुःख ज्वर आदि रोगभेदसे अनेक प्रकारका है। जितने प्रकारके रोग हैं, सभी शारीर हैं।

सुश्रुतादि वैद्यकसंहिताओंमें शारीरविषय अधिकार करके एक शारीर पृथक्स्थानस्वरूप वर्णित हुआ है। अर्थात् सुश्रुतादि वैद्यक ग्रन्थोंमें शरीर सम्बन्धीय सभी विषय जहां कहे गये हैं, वहां उसे शारीरस्थान कहते हैं। ३ शरीरसम्बन्धीय अवयव।

देवता, ब्राह्मण, गुरु और प्राज्ञ व्यक्तियोंकी पूजा, शौच, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा इन सबोंका नाम शारीरतप है।

शारीरक (सं० क्ली०) शरीरमेव शारीरं कुत्सितत्वात् तन्निवासी शारीरको जीवस्तमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः शारीरक-अण्। १ वेदव्यासने जो वेदान्त प्रणयन किया है उसको शारीरकसूत्र कहते हैं। जीवका अधिष्ठान शरीर है, जीव इस शरीरमें रह कर नाना प्रकारका दुःख भोगता है, इसी कारण यह अति निन्दित है। शरीराधिष्ठित जीव शारीरक कहलाता है। यह शारीरक-

सम्बन्धीय ग्रन्थ होनेके कारण इसका शारीरकसूत्र नाम हुआ है। इस सूत्रमें जीवके अधिष्ठानभूत शरीरको जिससे निवृत्ति हो, उसका विषय विशेष रूपसे वर्णित हुआ है। विशेषविवरण वेदान्त दर्शन शब्दमें देखो।

शारीरमेव शरीरकं तत्र भवं शरीरक-अण्। (त्रि०) २ शरीरभव, शरीरसे उत्पन्न।

शारीरकन्यायरक्षामणि (सं० पु०) शारीरक मीमांसाका एक भाष्य। यह शंकराचार्यका किया हुआ है।

शारीरकभाष्य—शङ्कराचार्यका किया हुआ ब्रह्मसूत्रका भाष्य।

शारीरकभाष्यवार्त्तिक (सं० क्ली०) वेदान्तसूत्रका एक भाष्य।

शारीरकभाष्यविभाग (सं० पु०) शारीरकसूत्रका एक भाष्य।

शारीरकमीमांसा (सं० स्त्री०) उत्तरमीमांसा, ब्रह्ममीमांसा, वेदान्तसूत्र।

शारीरकशास्त्रदर्पण (सं० पु०) वेदान्तदर्शनका एक भाष्य।

शारीरकसूत्र (सं० पु०) वेदव्यासका किया हुआ वेदान्त-सूत्र।

शारीरकोपनिषद् (सं० स्त्री०) एक उपनिषद्।

शारीरतत्त्व (सं० क्ली०) शारीरस्य तत्त्वं। शारीरस्थान, वह शास्त्र जिसमें शरीरके तत्त्वों और रचना आदिका विवेचन होता है।

शारीरविधान (सं० क्ली०) १ वह शास्त्र जिसमें इस बातका विवेचन होता है, कि जीव किस प्रकार उत्पन्न होते और बढ़ते हैं। २ वह शास्त्र जिसमें जीवोंके शरीरके भिन्न भिन्न अंगों और उनके कार्योंका विवेचन होता है।

शारीरव्रण (सं० पु०) एक प्रकारका रोग। यह वात, पित्त, कफ और रक्तसे उत्पन्न होता है। परन्तु रक्तके सम्बन्धसे द्विदोषज और त्रिदोषज होनेके कारण आठ प्रकारका हो जाता है—(१) वातव्रण, (२) पित्तव्रण, (३) कफव्रण, (४) रक्तव्रण, (५) वातपित्तजव्रण, (६) वातकफजव्रण, (७) कफपित्तजव्रण और (८) सन्निपातज व्रण।

शारीरशास्त्र (सं० क्ली०) शारीरविधान देखो।

शारीरिक (सं० त्रि०) शरीर-ठक्। शरीर-सम्बन्धी, जिस्मानी। पर्याय—कालेवरिक, गात्रिक, वापुषिक, सांहननिक, वार्ष्मिक, वैग्रहिक, कायिक, दैहिक, मौर्त्तिक, तानविक।

शारुक (सं० त्रि०) शृणातीति शृ (लषपतपदस्थेति। पा ३।२।१५४) इति उकञ्। १ हिंसक, हिंस्र, हत्या या नाश करनेवाला। २ कष्ट देनेवाला।

शार्क (सं० पु०) १ शर्करा, चीनी। २ एक प्राचीन गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषिका नाम। (नागरखण्ड)

शार्कक (सं० पु०) दुग्धफेन, दूधका फेन। २ शर्करा-पिण्ड, चीनीका ढेला। ३ गोश्तका टुकड़ा।

शार्कर (सं० पु०) शर्करास्त्यत्रेति शर्करा:(देशे लुबिल-चौ च। पा ५।२।१०५) इति अण्। १ शर्करान्वित देश, वह देश जहां चीनी बहुत होती हो। २ वह स्थान जो कंकरों और पत्थरोंसे भरा हो, कंकरीली या पथरीली जगह। ३ दुग्धफेन, दूधका फेन। सिकता (शर्कराभ्याञ्च। पा ५।२।१०४) इति अणि शर्कराविशिष्टश्च। (काशिका०) ४ लोध्रवृक्ष, लोधका पेड़। (त्रि०) ५ शर्करा-संबंधी। शर्करेव (शर्करादिभ्योऽण्। पा ५।३।१०७) इति अण्। ६ शर्करा सदृश। ७ शर्करायुक्त, शर्कराविशिष्ट।

शार्करक (सं० पु०) १ वह स्थान जो कङ्करों और पत्थरोंसे भरा हो, कङ्करीली या पथरीली जगह। २ वह स्थान जहां चीनी बहुत होती हो। (त्रि०) ३ कङ्करीला, पथरीला।

शार्करमद्य (सं० क्ली०) प्राचीन कालका एक प्रकारका मद्य जो चीनी और घीसे बनाया जाता था।

"शर्कराधातकीतोयकथितैः शार्करो मतः।"

इस मद्यका गुण—शीत, रुच्य, दीपन और मोहजनक (राजनि०) अन्य प्रकार शर्कराजात मद्यका गुण—मधुर, रुचिकर, दीपन और वस्तिशोधन।

(सुश्रुत सूत्रस्था ४५ अ०)

शार्कराक्ष (सं० पु०) शर्कराक्षका गोत्रापत्य।

शार्कराक्षि (सं० पु०) शर्कराक्षका प्रवर्त्तित गोत्र।

शार्कराक्ष्य (सं० पु०) शर्कराक्षका गोत्रापत्य।

शार्करिक (सं० पु०) १ शर्करावहुल देश, वह देश जहां

मोठी बहुत होती है। २ वह देश या स्थान जो कंकरों और पत्थरोंसे भरा हो।

शार्करिल (सं० त्रि०) शर्करान्वित भूमिज, जो कंकरीली ज़मीन पर पैदा हुआ हो।

शार्करीधान (सं० पु०) प्राचीन कालका एक देश जो उत्तर दिशामें था।

शार्करीय (सं० पु०) शर्करायुक्त देश।

शार्वट (सं० त्रि०) शिव-सम्बन्धी। (अथर्व ७,५१०७

शाङ्गलोदि (सं० पु०) शृंगलोदिन (कद्वादिभ्यश्च। पा ४।१।१६) इति अपत्यार्थे इञ्। शृङ्गलोदिका गोत्रापत्य।

शार्ङ्ग (सं० क्ली०) शृङ्गस्य विकार शृङ्ग-अण्। १ विष्णुधनु, विष्णुके हाथमें रहनेवाला धनुष। २ धनुष, कमान। ३ आर्द्रक, अदरक, आदी। ४ सामभेद, एक प्रकारका साम। (लाट्या० १।६।६३) ४ मत्स्यपुराणवर्णित एक राजाका नाम। (हरिवं ३२।३६) (त्रि०) ५ शृङ्ग-सम्बन्धी, शृङ्गका।

शार्ङ्गक (सं० पु०) पक्षी, चिड़िया।

शार्ङ्गदत्त—धनुर्वेदके रचयिता।

शार्ङ्गदेव—संगीतरत्नाकरके प्रणेता। काश्मीरमें इनका आदि वास था। ये सोढलके पुत्र और भास्करके पौत्र थे।

शार्ङ्गदेव—गुजरातके अणहिल्लपाटके बाघेलवंशीय एक चौलुक्य राजा। ये अर्जुनदेवके पुत्र तथा २य कर्णदेवके पिता थे। १२७४ ई०में ये सिंहासन पर बैठे और १२९६ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

शार्ङ्गधन्वन् (सं० पु०) शार्ङ्गं धनुर्यस्य 'धनुषश्च नामनाप्रि इति अनङादेशः।' १ विष्णु। २ श्रीकृष्ण। ३ वह जो धनुष धारण करता हो, कमनैत।

शार्ङ्गधर (सं० पु०) धरतीति धृ-अच्, शार्ङ्गस्य धरः। १ शार्ङ्गभृत्, विष्णु। २ श्रीकृष्ण। ३ स्वनामख्यात चिकित्सासंग्रहकार।

शार्ङ्गधर—१ छन्दोमालाके प्रणेता। २ वीरचिन्तामणि, शार्ङ्गधर-पद्धति और शार्ङ्गधरसंहिता नामक सुप्रसिद्ध वैद्यकग्रन्थके रचयिता। ये दामोदर (किसी किसीके मतसे देवदेव)के पुत्र और राघवदेवके पौत्र थे। चौहान राज हम्मीरकी सभामें ये विद्यमान थे। ३ वैद्यवल्लभ या त्रिशती नामक ग्रन्थके प्रणेता। ये देवदासके पुत्र और वैकुण्ठाश्रमके शिष्य थे।

शार्ङ्गधर मिश्र—प्रश्नप्रकाश और विवाहपटल नामक ग्रन्थके प्रणेता। इनके सिवा इनके रचे और भी कई ज्योतिर्ग्रन्थके वचन निर्णयसिन्धु, संस्कारकौस्तुभ, अहल्याकामधेनु आदि ग्रन्थोंमें उद्धृत देखे जाते हैं।

शार्ङ्गधर (सेन)—लक्षणावलीविवृति नामकी न्यायमुक्तावलीकी टीका तथा सप्तपदार्थव्याख्या नामकी पदार्थचन्द्रिकाकी टीकाके रचयिता।

शार्ङ्गपाणि (सं० पु०) शार्ङ्गं पाणौ यस्य। १ धनुर्धारी। २ विष्णु। ३ श्रीकृष्ण।

शार्ङ्गपुर—गुजरात प्रान्तस्थ मालवराज्यके अन्तर्गत एक नगर। मालिक शारङ्गने यह नगर बसाया था। १४२३ ई०में गुर्जरपति १म अहमद शाहके पुत्र महम्मद खाँने शार्ङ्गपुरको अपने कब्जेमें किया। १४३८ ई०में मालवपति महमूद खिलजीने रणक्षेत्रमें सेनापति उमर खाँको मार कर अपने बाहुबलसे शार्ङ्गपुरका पुनः उद्धार किया।

शार्ङ्गभृत् (सं० पु०) शार्ङ्गं धनुः बिभर्त्ति भृ-क्विप् तुक् च। १ धनुर्धारी। २ विष्णु। ३ श्रीकृष्ण।

शार्ङ्गरव (सं० पु०) शृङ्गरवका गोत्रापत्य। कालिदासने शकुन्तलानाटकमें लिखा है, कि शकुन्तलाके साथ जो दो ऋषिकुमार राजा दुष्यन्तकी सभामें आये थे, उनका नाम शार्ङ्गरव और शारद्वतमिश्र था।

शार्ङ्गरविन् (सं० पु०) शार्ङ्गरवेण प्रोक्तमधीते यः शार्ङ्गरव (शौनकादिभ्यश्छन्दसि। पा ४।३।१०६) इति णिनि। शार्ङ्गरवप्रोक्त छन्दोऽध्येता।

शार्ङ्गरवी (सं० स्त्री०) शार्ङ्गरवकी स्त्री। (पाणिनि ४।१।१०४)

शार्ङ्गष्ठिक (सं० पु०) शुण्ठी समानवर्णा स्थावरविशेष, एक प्रकारका स्थावरविष जो देखनेमें सोंठके समान होता है।

शार्ङ्गष्टा (सं० स्त्री०) १ काकजङ्घा। २ घुंघची।

शार्ङ्गा (सं० स्त्री०) १ मदारवृक्ष। २ ...

शार्ङ्गायुध (सं० पु०) शार्ङ्गं आयुधं यस्य। १ श्रीकृष्ण।

२ विष्णु। ३ वह जो धनुष धारण करता हो, कमनैत।

शार्ङ्गिक (सं० पु०) शार्ङ्ग नामक पक्षिविशेष।

शार्ङ्गिन् (सं० पु०) शार्ङ्गमस्यास्तीति शार्ङ्ग-इनि। १ विष्णु। २ श्रीकृष्ण।

"स सेतुं बन्धयामास प्लवगैर्लवणाम्भसि।
रसातलादिवोन्मग्नं शेषं स्वप्नाय शार्ङ्गिणः॥"
(रघु १२।७०)

३ धनुर्धारी, कमनैत।

शार्दूल (सं० पु०) शृ-हिंसायां (खर्जिपिंजादिभ्य ऊरो लचौ। उण् ४।९०) इति ऊलच् प्रत्ययेन साधुः। १ व्याघ्र, चीता, बाघ। २ राक्षस। ३ शरभ नामक जन्तु। ४ एक प्रकारका पक्षी। ५ चित्रकवृक्ष, चीता नामक पेड़। ६ सह्याद्रिखण्डवर्णित एक राजाका नाम। (सह्या० २७।४५) ७ यजुर्वेदकी एक शाखा। ८ दोहेका एक भेद। इसमें छः गुरु और छत्तीस लघु मात्राएं होती हैं। ९ सिंह। (त्रि०) १० सर्वश्रेष्ठ, सर्वोत्तम। इस अर्थमें इसका प्रयोग केवल यौगिक शब्द बनानेमें उनके अन्तमें होता है। जैसे - नरशार्दूल, मुनिशार्दूल।

शार्दूलकन्द (सं० पु०) जङ्गली प्याज।

शार्दूलकर्ण (सं० पु०) त्रिशङ्कुका पुत्र।

शार्दूलललित (सं० क्ली०) एक प्रकारका वर्णवृत्त। इसका प्रत्येक पद अठारह अक्षरोंका होता है और उनका क्रम इस प्रकार है म+स+ज+स+त+स। इसका दूसरा नाम शार्दूललसित भी है।
(छन्दोमंजरी २ स्त०)

शार्दूललसित (सं० क्ली०) शार्दूललक्षित देखो।

शार्दूलवर्मन् (सं० पु०) मौखरिवंशीय एक राजा।

शार्दूलवाहन (सं० पु०) जैनियोंके अनुसार पचीस पूर्व जिनोंमेंसे एक जिनका नाम।

शार्दूलविक्रीडित (सं० क्ली०) १ एक प्रकारका वर्णवृत्त। इसका प्रत्येक चरण उन्नीस अक्षरोंका होता है और उनका क्रम इस प्रकार है म+स+ज+स+त+त+एक गुरु। (छन्दोमंजरी २ स्त०)

शार्दूलस्य विक्रीडितं। २ शार्दूलका विक्रीडित, बाघका खेल।

शार्यात (सं० पु०) वैदिक कालके एक प्राचीन राजर्षिका नाम। "आ स्मा रथं वृष पाणेषु तिष्ठसि शार्यातस्य" (ऋक् १।५१।१२) 'शार्यातस्य शार्यातनाम्नो राजर्षे' (सायण) (क्ली०) २ साममेद।

शार्व्व (सं० त्रि०) शर्व्व-अण्। शिव-सम्बन्धी, शिवका।

शार्व्वर (सं० क्ली०) १ अन्धतमस, घोर अंधकार। (त्रि०) शर्व्वर्या इदं शर्व्वरी-अण्। २ शर्व्वरी-सम्बन्धी, रातका। ३ घातुक।

शार्व्वरिन् (सं० पु०) वृहस्पतिके साठ संवत्सरोंमेंसे चौंतीसवाँ संवत्सर।

शार्व्वरी (सं० स्त्री०) रात्रि, रात।
(भरतधृत वाचस्पति)

शार्व्ववर्मिक (सं० त्रि०) शर्व्ववर्मा-सम्बन्धी।

शाल (फा० स्त्री०) एक प्रकारकी ऊनी या रेशमी चादर। इसके किनारे पर प्रायः बेल बूटे आदि बने होते हैं। इसका दूसरा नाम दुशाला है। विशेष विवरण नीचे देखो।

शाल (सं० पु०) शाल्यते प्रशंस्यते इति शाल-घञ्। १ मत्स्यभेद, एक प्रकारकी मछली। २ प्रकार, भेद। ३ एक नदीका नाम। ४ राजा शालिवाहनका एक नाम। ५ वृकके एक पुत्रका नाम। ६ धूना, राल। ७ स्वनामप्रसिद्ध वृक्षविशेष (Shorea robusta) शालका पेड़। संस्कृत पर्याय—सर्ज, कार्श्य, अश्वकर्णक, शस्यसम्बर, शङ्कुवृक्ष। (रत्नमाला) भारतके प्रायः सभी स्थानोंमें यह वृक्ष पैदा होते देखा जाता है। हिमालय पर्वतके पादमूलमें शतद्रु से ले कर आसाम तक प्रायः सभी जगहोंमें, पश्चिमी बंगालमें, छोटानागपुर विभाग तथा मध्यभारतमें शालवृक्षके घने जङ्गल हैं। ये सभी शालवन अधिकतर पार्वत्यप्रदेशमें ही हैं। समतलक्षेत्रमें भी कहीं कहीं विक्षिप्तभावमें शालवन दिखाई पड़ते हैं। कहीं कहीं शालवृक्ष आबाद हो कर निविड़ जङ्गलमें परिणत हो गये हैं। यह वृक्ष बहुत बड़ा होता है। यहां तक कि, कोई कोई वृक्ष तो इतना बड़ा होता है, कि वह ५०से ले कर १०० रुपये तकके मोलमें बिकता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है, इसलिये इससे मनुष्यसमाजका बड़ा उपकार होता है।

धोंमें बहुत होती है। २ यह देश या स्थान जो कंकरों और पत्थरोंसे भरा हो।

शार्करिल (सं० त्रि०) शर्करान्वित भूमिष, जो कंकरोंको स्थान पर पैदा हुआ हो।

शार्करीधान (सं० पु०) प्राचीन कालका एक देश जो उत्तर दिशामें था।

शार्करीय (सं० पु०) शर्करायुक्त देश।

शार्कोट (सं० त्रि०) शिव-सम्बन्धी। (भागवत ७,५।१०

शार्ङ्गलोदि (सं० पु०) शृङ्गलोदिन् (बाह्वादिभ्यश्च। पा ४।१।९६) इति अपत्यार्थे इञ्। शृङ्गलोदिका अपत्य।

शार्ङ्ग (सं० क्ली०) शृङ्गस्य विकार शृङ्ग-अण्। १ विष्णुधनु, विष्णुके हाथमें रहनेवाला धनुष। २ धनुष, कमान। ३ आर्द्रक, अदरक, आदी। ४ सामभेद, एक प्रकारका साम। (आर्ष० १।१।६३) ५ महाद्रिमध्यवर्ति एक राजाका नाम। (हरिवं० ३६।३६) (त्रि०) ५ शृङ्ग-सम्बन्धी, शृङ्गका।

शार्ङ्गक (सं० पु०) पक्षी, चिड़िया।

शार्ङ्गदत्त—धनुर्वेदके रचयिता।

शार्ङ्गदेव—संगीतरत्नाकरके प्रणेता। काश्मीरमें इनका आदि वास था। ये सोढ़लके पुत्र और भास्करके पौत्र थे।

शार्ङ्गदेव—गुजरातके अणहिलवाड़के वाघेलवंशीय एक चौलुक्य राजा। ये अर्जुनदेवके पुत्र तथा रामकर्णदेवके पिता थे। १२७४ ई०में ये सिंहासन पर बैठे और १२९६ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

शार्ङ्गधन्वन् (सं० पु०) शार्ङ्ग धनुर्यस्य 'धनुषश्च' धन्वन्तरित इति अन्वादेशः। १ विष्णु। २ श्रीकृष्ण। ३ यह जो धनुष धारण करता हो, कमनैत।

शार्ङ्गधर (सं० पु०) धरतीति धृ-अच्, शार्ङ्गस्य धरः। १ शार्ङ्गभृत्, विष्णु। २ श्रीकृष्ण। ३ स्वनामख्यात चिकित्साशास्त्रप्रवर्तक।

शार्ङ्गधर—१ छन्दोमालाके प्रणेता। २ धीरविलासादि, शार्ङ्गधरपद्धति और शार्ङ्गधरसंहिता नामक सुप्रसिद्ध वैद्यकग्रन्थके रचयिता। ये दामोदर (किसी किसीके मतसे देवदेव)के पुत्र और राघवदेवके पौत्र थे। कोटाम-राज हम्मीरकी सभामें ये विद्यमान थे। ३ वैद्यवल्लभ या त्रिशती नामक ग्रन्थके प्रणेता। ये देवराजके पुत्र और पैठुल्लाध्यमके शिष्य थे।

शार्ङ्गधर मिश्र—प्रश्नप्रकाश और विवाहपटल नामक ग्रन्थके प्रणेता। इनके सिवा इनके रचे और भी कई ज्योतिर्ग्रन्थके वचन निर्णयसिंधु, संस्कारकौस्तुभ, मुहूर्तकामधेनु आदि ग्रन्थोंमें उद्धृत देखे जाते हैं।

शार्ङ्गधर (सेन)—लक्ष्मणाचार्यविवृति नामकी न्यायसूत्रवृत्तिकी टीका तथा सप्तपदार्थव्याख्या नामकी पदार्थचन्द्रिकाकी टीकाके रचयिता।

शार्ङ्गपाणि (सं० पु०) शार्ङ्गं पाणौ यस्य। १ धनुर्धारी। २ विष्णु। ३ श्रीकृष्ण।

शार्ङ्गपुर—गुजरात प्रान्तस्थ मालवराज्यके अन्तर्गत एक नगर। मालिक शारङ्गने यह नगर बसाया था। १४३३ ई०में गुर्जरपति १म अहमद शाहके पुत्र महम्मद खाँने शार्ङ्गपुरको अपने कब्जेमें किया। १८३८ ई०में मालवपति महमूद खिलजीने इनके सेनापति उमार खाँको मार कर अपने बाहुबलसे शार्ङ्गपुरका पुनः उद्धार किया।

शार्ङ्गभृत् (सं० पु०) शार्ङ्गं धनुः बिभर्ति भृ-क्विप् तुगागम्। १ धनुर्धारी। २ विष्णु। ३ श्रीकृष्ण।

शार्ङ्गरव (सं० पु०) शृङ्गरवका गोत्रापत्य। कालिदासने शकुन्तलाग्रन्थमें लिखा है, कि शकुन्तलाके साथ जो दो ऋषिकुमार राजा दुष्यन्तको सभामें आये थे, उनका नाम शार्ङ्गरव और शारद्वतमिश्र था।

शार्ङ्गरविन् (सं० पु०) शार्ङ्गरवेण प्रोक्तमधीते या शार्ङ्गरव (शौनकादिभ्यश्छन्दसि। पा ४।३।१०६) इति णिनि। शार्ङ्गरवप्रोक्त छन्दोऽध्येता।

शार्ङ्गरवी (सं० स्त्री०) शार्ङ्गरवकी स्त्री।

(पाणिनि ४।१।७३)

शार्ङ्गवैरिक (सं० पु०) गुञ्जा समानवर्ण क्षुपविशेष, एक प्रकारका क्षुपविष जो देखनेमें गोटके समान होता है।

शार्ङ्गष्टा (सं० स्त्री०) १ काकजङ्घा। २ गुञ्जा।

शार्ङ्गष्टा (सं० स्त्री०) १ महाकरञ्ज। २ नताकरञ्ज।

शार्ङ्गायुध (सं० पु०) शार्ङ्गं आयुधो यस्य। १ श्रीकृष्ण।

२ विष्णु। ३ वह जो धनुष धारण करता हो, कमनैत।
शार्ङ्गिक (सं० पु०) शार्ङ्गक नामक पक्षिविशेष।
शार्ङ्गिन् (सं० पु०) शार्ङ्गमस्यास्तीति शार्ङ्ग-इनि। १ विष्णु। २ श्रीकृष्ण।

"स सेतुं बन्धयामास प्लवगैर्लवणाम्भसि।
रसातलादिवोन्मग्नं शेषं स्वप्नाय शार्ङ्गिणः॥"
(रघु १२।७०)

३ धनुर्धारी, कमनैत।
शार्दूल (सं० पु०) शृ-हिंसायां (शर्मिपिंजादिभ्य ऊरो लचौ। उण् ४।९०) इति ऊलच् प्रत्ययेन साधुः। १ व्याघ्र, चीता, बाघ। २ राक्षस। ३ शरभ नामक जन्तु। ४ एक प्रकारका पक्षी। ५ चित्रकवृक्ष, चीता नामक पेड़। ६ सह्याद्रिखण्डवर्णित एक राजाका नाम। (सह्या० २७।४५) ७ यजुर्वेदकी एक शाखा। ८ दोहेका एक भेद। इसमें छः गुरु और छत्तीस लघु मात्राएं होती हैं। ९ सिंह। (त्रि०) १० सर्वश्रेष्ठ, सर्वोत्तम। इस अर्थमें इसका प्रयोग केवल यौगिक शब्द बनानेमें उनके अन्तमें होता है। जैसे - नरशार्दूल, मुनिशार्दूल।
शार्दूलकन्द (सं० पु०) जङ्गली प्याज।
शार्दूलकर्ण (सं० पु०) त्रिशङ्कुका पुत्र।
शार्दूलललित (सं० क्ली०) एक प्रकारका वर्णवृत्त। इसका प्रत्येक पद अठारह अक्षरोंका होता है और उनका क्रम इस प्रकार है म+स+ज+स+त+स। इसका दूसरा नाम शार्दूललसित भी है।
(छन्दोमंजरी २ स्त०)
शार्दूललसित (सं० क्ली०) शार्दूलललित देखो।
शार्दूलवर्मन् (सं० पु०) मौखरिवंशीय एक राजा।
शार्दूलवाहन (सं० पु०) जैनियोंके अनुसार पचीस पूर्वा जिनोंमेंसे एक जिनका नाम।
शार्दूलविक्रीडित (सं० क्ली०) १ एक प्रकारका वर्णवृत्त। इसका प्रत्येक चरण उन्नीस अक्षरोंका होता है और उनका क्रम इस प्रकार है म+स+ज+स+त+त+एक गुरु। (छन्दोमंजरी २ स्त०)

शार्दूलस्य विक्रीडितं। २ शार्दूलका विक्रीड़ित, बाघका खेल।
शार्यात (सं० पु०) वैदिक कालके एक प्राचीन राजर्षिका नाम। "आ स्मा रथं वृष पाणेषु तिष्ठति शार्यातस्य" (ऋक् १।५१।१२) 'शार्यातस्य शार्यातनाम्नो राजर्षे' (सायण) (क्ली०) २ साममेद।

शार्व्व (सं० त्रि०) शर्व्व-अण्। शिव-सम्बन्धी, शिवका।
शार्व्वर (सं० क्ली०) १ अन्धतमस, घोर अन्धकार। (त्रि०) शर्व्वर्यां इदं शर्व्वरी-अण्। २ शर्व्वरी-सम्बन्धी, रातका। ३ घातुक।
शार्व्वरिन् (सं० पु०) वृहस्पतिके साठ संवत्सरोंमेंसे चौंतीसवां संवत्सर।
शार्व्वरी (सं० स्त्री०) रात्रि, रात।
(भरतधृत वाचस्पति)

शार्व्ववर्मिक (सं० त्रि०) शर्व्ववर्मा-सम्बन्धी।
शाल (फा० स्त्री०) एक प्रकारकी ऊनी या रेशमी चादर। इसके किनारे पर प्रायः बेल बूटे आदि बने होते हैं। इसका दूसरा नाम दुशाला है। विशेष विवरण नीचे देखो।
शाल (सं० पु०) शाल्यते प्रशंस्यते इति शाल-घञ्। १ मत्स्यभेद, एक प्रकारकी मछली। २ प्रकार, भेद। ३ एक नदीका नाम। ४ राजा शालिवाहनका एक नाम। ५ वृकके एक पुत्रका नाम। ६ धूना, राल। ७ स्वनामप्रसिद्ध वृक्षविशेष (Shorea robusta) शालका पेड़। संस्कृत पर्याय—सर्ज, कार्श्य, अश्वकर्णक, शस्यसम्बर, शङ्कुवृक्ष। (रत्नमाला) भारतके प्रायः सभी स्थानोंमें यह वृक्ष पैदा होते देखा जाता है। हिमालय पर्वतके पादमूलमें शतद्रु से ले कर आसाम तक प्रायः सभी जगहोंमें, पश्चिमी बंगालमें, छोटानागपुर विभाग तथा मध्यभारतमें शालवृक्षके घने जङ्गल हैं। ये सभी शालवन अधिकतर पार्व्वत्यप्रदेशमें ही हैं। समतलक्षेत्रमें भी कहीं कहीं विक्षिप्तभावमें शालवन दिखाई पड़ते हैं। कहीं कहीं शालवृक्ष आबाद हो कर निविड़ जङ्गलमें परिणत हो गये हैं। यह वृक्ष बहुत बड़ा होता है। यहां तक कि, कोई कोई वृक्ष तो इतना बड़ा होता है, कि वह ५०से ले कर १०० रुपये तकके मोलमें बिकता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है, इसलिये इससे मनुष्यसमाजका बड़ा उपकार होता है।

भारतके विभिन्न स्थानोंमें यह वृक्ष विभिन्न नामसे परिचित है। हिन्दुस्तानी—साल, साख, साखुआ, साखुनौर, धूना, डामर, (रजन—राल); बंगालमें—साल, साला; चीन—सागवान, सेहुरा; संथाल—सरजोम; भूमिज—सर्जि; गारो—बोल-साल; नेपाल—सखुआ; मेवाड़ा—सेगुवान; उड़िया—साल, सोरिंगी; मध्यप्रदेश—साल, सारा, रियाल; उत्तर पश्चिमप्रदेश—साल, सालसार, साखू, कोरीम; अयोध्या—कोरों, पंजाब—साल, सेराल, (रजन—राल अड़ं) गल-गगर, राल काला), धूना; बम्बई—साल, (रजन—राल'; कर्णाटक—कबु, (रजन—गुगल); मद्र—मल-जरीन, सिंगापुर—(रजन—दामर), तामिल—वेंगि-विलम्, तेलगू—गुगिलम्, (रजन—गुगल)—लाल, कोंदर; पारस—साले सोबाहकाज्यो।

शालवृक्षकी छालमें छिद्र कर देनेसे एक प्रकारका लासा निकलता है, वही लासा बाजारमें धूना या गुग्गुलके नामसे बिकता है। जिस समय यह वृक्षके छालसे बाहर निकलता है, उस समय उसका रंग सफेद रहता है; फिर पीछे क्रमशः सूख जाने पर यह ईषत् पाटल-धूसरवर्ण धारण करता है। देशी लोग गुग्गुल संग्रह करनेके अभिप्रायसे इस वृक्षकी जड़से ३।४ फीट ऊपर वृक्षपर ही चार पांच आघात करते हैं। पेड़के बड़े हो जाने पर उसमें अधिक आघात करने पर भी वृक्षकी उतनी क्षति नहीं होती। जेठके महीनेमें साधारण पेड़की छालमें छिद्र किया जाता है। १०।१२ दिन बाद जब ये सारे छिद्र लासेसे परिपूर्ण हो जाते हैं, तब लोग उसे निकाल लेते हैं और फिर उन स्थानोंके लासेसे परिपूर्ण होनेके लिये कुछ दिनों तक छोड़ देते हैं, उसके बाद धूना संग्रह करते हैं। इस तरह एक वृक्षसे साल भरमें तीन बार गुग्गुल संग्रह किया जाता है। पहली बारमें करीब पोने सेर गुग्गुल निकलता है। दूसरी बार कार्त्तिक मासमें और तीसरी बार फाल्गुन चैत वा माघ मासमें पहले आघातके एक सप्ताह ही लासा निकाला जाता है। पहली बारका लासा अधिक सुन्दर होता है तथा अधिक परिमाणमें निकलता भी है। पिछली बारका लासा उतना अच्छा नहीं होता और निकलता भी है बहुत कम। पहले भारतके गुग्गुल संग्रह करनेवाले नित्य ही वृक्षमें छिद्र कर देते थे और दूसरे दिन ही उन छिद्रोंसे लासा संग्रह कर लाते थे। इस तरह नित्य लासा संग्रह करनेसे जंगल शून्यप्राय होने लगा था। इससे देशी राजाओंकी भयंकर क्षतिकी सम्भावना देख कर अंग्रेज गवर्नमेण्टने वनविभागीय कानून पास कर इन शालके जंगलोंकी रक्षा करनेमें विशेष ध्यान दिया है। इससे भारतवर्षके जङ्गलोंका व्यापार सुरक्षित होने पर भी धूनेका व्यापार बिलकुल ही नष्ट हो गया है। इस समय सिंगापुरसे ही बम्बई तथा भारतके अन्यान्य स्थानोंमें धूनेकी आमदनी होती है। भारतके सुविस्तृत वनभागमें और कहीं भी धूनेकी खेती नहीं होती। यहांसे उपायोगितामें अपरिमित गुग्गुल प्राप्त होता है। मारवल साहबकी लिखावटसे जाना जाता है, कि सिलौता नदीके उत्तरस्थ जंगलके धनीको अब एक एकड़ धूना या गुग्गुल ३० से ले कर ४० वर्गफुट तक बढ़ गया है। वर्त्तमान समयमें जो गुग्गुल इस देशमें आता है, वह छोटे छोटे टुकड़ोंमें मिलता रहता है और उतना साफ नहीं होता। उसका गुरुत्व प्रायः १०९७ से ले कर ११२३ तक रहता है। इसमें किसी प्रकारका स्वाद नहीं होता। अग्नि-संयोगसे यह गल उठता है। अलकोहल और ईथरमें यह साधारण भावसे गलता है, किन्तु तारपीनके तेलमें रखनेसे तो पूरा भागमें गल जाता है। सालफ्यूरिक एसिडमें भी यह गल जाता है, किन्तु मिश्रित पदार्थ कुछ लाल दिखाई पड़ता है।

कपड़ेको साफ करने तथा रंगनेमें इसकी छाल बहुत व्यवहृत होती है। छोटानागपुरवासी और संथाल वासी इसकी छालके काढ़ेसे एक प्रकारका भाल और काला रंग तैयार करते हैं। अयोध्या विभागके वनविभागीय कप्तान ई० ए० हर्बीने साल भाउकी छालसे रंग तैयार करनेकी प्रणाली लिखी है। जिस चूल्हेमें काढ़ा उतारा जाता है, वह नीलवर्णके पाकमें प्रस्तुत करनेवाले कारागरोंके चूल्हेके समान होता है अथवा इन लोगोंके द्वारा जिस तरह ईखका रस उबाल कर गुड़ बनाया जाता है, ठीक उसी प्रकार इन वल्कलोंको उबाल कर रंग तैयार किया जाता है। इसका चूल्हा भी ठीक ईखका रस उबालनेके चूल्हे जैसा होता है। चूल्हेके एक भागके

छिद्रसे जलावनकी लकड़ी भीतरमें झोंकी जाती है और दूसरी ओरके छिद्रसे राख बाहर निकाली जाती है। ऊपरमें छालसे रस निकालनेके लिये हंडी रखी जाती है। उस चूल्हेके चारों ओर ही छाल और जलसे हंडियाँ भर दी जाती हैं। प्रायः डेढ़ घंटे तक उबाले जाने पर पानी लाल एवं गाढ़ा हो जाता है। इस प्रकार तीन हंडियोंका उबाला हुआ जल छान कर चौथी हंडी में फिरसे औंटा जाता है। पीछे इस शेषोक्त हंडीका जल लासाके समान गाढ़ा हो जाने पर हंडी उतार ली जाती है। इस तरह प्रायः १ मन छालमें ३।० सेर रंग-का काढ़ा तैयार होता है।

शाल वृक्षमें छोटे छोटे पुष्प गुच्छेमें लगते हैं। वैशाखके दारुण ग्रीष्ममें पार्वत्य प्रदेशमें इसकी गन्ध बहुत ही मनोरम होती है। कोल-रमणियाँ सन्ध्या समय अपने अपने जूड़ेमें शालपुष्प खोंस कर बड़े आनन्दसे गान गाती रास्ता चलती हैं। उस समय वायुके मधुर सुगन्धित सुमनोंकी मीठी सुगंध चारों ओर उड़ उड़ कर उस पथके पार्श्ववर्ती स्थानोंको आमोदित कर देती है। शालवृक्षके बीजमें भी एक प्रकारका तेल पाया जाता है। इन बीजोंसे तेल चुआनेमें अधिक कठिनता नहीं होती। आंच लगा कर बीजको सिद्ध कर देनेसे ही तेल बाहर निकल आता है।

वैद्यक शास्त्रमें धूनेको अजीर्ण और प्रमेहरोगमें विशेष उपकारी बताया है। धूनेके गुणोंका वर्णन यथास्थानमें किया गया है, इसलिये यह यहां नहीं लिखा गया। आगमें जलानेसे दुर्गन्धिका नाश होता है एवं उस स्थानकी वायु साफ हो जाती है। इसलिये जिस घरमें रोगी रहता है, उस घरमें धूने जलानेकी व्यवस्था है। भैषज्यतत्त्वमें धूने मिला कर प्रलेप देनेकी विधि देखी जाती है। काष्ठके ऊपर धूना और लासा अच्छी तरह मल कर एक प्रकारकी पालिश दी जाती है; इससे अति निकृष्ट काष्ठ भी देवदारु-सा प्रतीत होता है। संथालवासी औषधके लिये शालके पत्तोंका रस निचोड़ कर पीते हैं। सज्जेन मेजर रमसन एम डीका कहना है, कि धूनेमें कामोद्दीपनशक्ति है। कहते हैं—दो औंस धूना अच्छी तरह पीस कर गायके घीमें दश मिनट तक भूने। पीछे उस शीतल जलपूर्ण पात्रमें धीरे धीरे ढाले। उक्त जलके स्पर्शसे घृतमिश्रित धूनेका जो अंश जलके ऊपर तैरने लगे; उसे उंगलीसे निकाल कर एक दूसरे पात्रमें रखे। इसके बाद फिर उसमें जल दे कर उंगलीसे मथ कर साफ करे, इससे वह बिलकुल मुलायम हो जायगा। इस तरह बराबर एक घण्टे तक जल बदल बदल कर मथनेसे उक्त मिश्र पदार्थ मक्खनकी तरह वर्णयुक्त तथा मुलायम हो जायगा। उस घीका दिनमें दो बार एक सुपारीके परिमाणमें सेवन करना चाहिये। डाक्टर डबल्यू० एफ० टामसका कहना है, कि २० ग्रेन धूना-चूर्ण एक पाइंट उबाले हुए दूधमें मिला कर तथा उस दूधको कपड़ेमें छान कर पीनेसे शरीरमें कामशक्तिकी उद्दीपना होती है।

संथाल और छोटानागपुरवासी निम्न श्रेणीके लोग शालका बीज खाते हैं। पहले वे लोग इन बीजोंमें जली लकड़ीकी राख लगा २।३ घण्टे तक अच्छी तरह सिद्ध करते हैं। इसके बाद उन बीजोंको साफ जलमें अच्छी तरह धो कर महुआ फूलके साथ कूट देते हैं। अनन्तर उसे जलमें सिद्ध करते हैं। इस प्रकार वे एक ही दिनमें इतना खाद्य पदार्थ तैयार कर लेते हैं जो तीन चार दिन तक चलता है।

छालकी नीचेवाली शालकी लकड़ी उतनी मजबूत नहीं होती। यह दीर्घकाल स्थायी न हो कर शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। किंतु भीतरका सार भाग अत्यंत मजबूत और भारी होता है। यह सहजमें नष्ट नहीं होता, किंतु इस लकड़ीमें घून लगता है। शालकाष्ठकी छप्परकी कड़ियां आदि बनती हैं। इसकी लकड़ी चीर कर तख्ता, खिड़की, किवाड़ प्रभृति तैयार किये जाते हैं। छोटे छोटे शाल वृक्षोंके खम्भे पर्णकुटियोंमें लगाये जाते हैं। पके शाल चकोरके एक क्यूबिक फीटका वजन ५५ पौण्डके बराबर होता है। जलमें कुछ दिनों तक डुबो रखनेके उपरांत सुखा लेनेसे इसका काष्ठ सुदृढ बन जाता है। स्वर्णकार और कर्मकार अपनी भट्ठीमें शालवृक्षके कोयले जलाते हैं।

धूना प्रत्येक हिंदू गृहस्थोंके लिये बहुत ही आदर-

स्याह और इसीप्रकार वस्तु हैं। वणिक लोग इसे भारतके विभिन्न स्थानोंमें ले जाते हैं। घूमते घूमते हुए इसको, बनानेकी प्रवृत्ति भी देखी जाती है। कई जगहोंमें लोग शालवृक्षके पत्तोंका चमड़ा बना कर उस पर लिखा करते हैं। शालपत्तोंके दोनेमें तरल पदार्थ भी रखे जा सकते हैं। बंगालमें दूकानोंमें शालवृक्षके पत्तोंके दोनेका व्यवहार है।

शालका दूसरा नाम अश्वकर्ण है, यह बौद्धोंका बड़ा ही आदरणीय है। कारण, शाक्य बुद्धकी माताने लुम्बिनीके उद्यानमें स्थित एक पुष्पयुक्त शालवृक्ष धारण किया था। इस उद्यानके खंडहरमें चिह्नादि देखे जाते हैं। स्वयं भगवान् बुद्धदेवने शालवृक्षके नीचे निर्वाण लाभ किया था। कोई कोई मानभूमवासी शाल पत्र पर अभियोगिनी स्त्रियोंके नाम लिख जलमें डुबो देते हैं। फिर ४८ घण्टेके बाद उस पत्तेको जलसे बाहर निकाल कर जब किसी पत्तेका कोना घुने हुए देखते हैं, तब वे उसी पत्ते पर लिखे हुए नामकी स्त्रीको डायन साबित करते हैं।

२ शाल—पशमनिर्मित सुप्रसिद्ध ओढ़नेका वस्त्र विशेष। गुजराती, हिन्दी, पारसी और बंगला भाषामें यह ओढ़ना शाल नामसे ही विख्यात है। शाल-शालका पारसीक शब्द ही शालके व्यवहारका आदिस्थान है। पशमी शाल तैयार कर उसके ऊपर जिससमय देशी चादर ओढ़ कर राज्य जगत्‌के सभी स्थानोंमें भेजा जाता है। संसारके प्रायः सभी प्रदेश बहुतसे देशोंमें प्राचीन कालसे ही शालका व्यवहार होता आ रहा है। भिन्न भिन्न भाषाओंमें शाल शब्द भी भिन्न भिन्न आकारमें गृहीत होता है। यथा—फरासी—Chals, Chales, जर्मन—Schalen, इटालीय—Shanah, आरब—कारन शालून, पुर्त्तगाल—Chaleh, स्पेनिश—Schawlos, लाटिन—आशु चैनस एवं रुसिय—शाल् वस्त्र।

यहाँके लोगोंकी तरह चलनेके लिये शालका व्यवहार होता है। इंग्लैण्ड अधिवासियोंमें जिस तरह शाल व्यवहारका अधिक प्रचलन देखा जाता है, यूरोपके अन्यत्र वैसा नहीं देखा जाता।

विदेशोंमें भिन्न भिन्न स्थानोंसे शाल भेजे जाते हैं, मुसलदेश, रूस, अरब और फारसमें प्रायः शालके ८० लाख बैचित होते हैं। इसके अलावे दूसरे २० लाख अमेरिका, इटली और फ्रान्समें भेजे जाते हैं। फ्रान्सके लोग भारतीय शालके बड़े पक्षपाती थे। फ्रांस प्रुशियायुद्धके बादसे फ्रांसमें शालका प्रचलन बहुत कम गया। इस समय यूरोप और अमेरिकामें भी शालका व्यवहार बहुत कम गया है।

काश्मीरमें जिस समय शाल कारीगरीकी पराकाष्ठा दिखा रहे थे, यूरोपमें उस समय भी शाल-व्यवहारके निमित्त असाधारण अनुराग परिलक्षित होता था। पैसली (Paisly) नगरमें काश्मीरी शालका अनुकरण करके शाल तैयार किया जाता है। ३०।४० वर्ष पहले स्काटलैंडमें विवाहके समय कन्याको शाल ओढ़ा दिया जाता था। क्रमशः विवाहमें शालका व्यवहार विवाहकी एक प्रथामें परिणत हो गया। पैसलीमें कल द्वारा शाल तैयार किया जाता है। इससे यूरोपमें काश्मीरी शालका आदर और आमदनी बहुत कम गई है।

भारतवर्षमें शालका व्यवहार प्राचीनकालसे है। राजा और धनी लोग शालकी चादरकी तरह व्यवहार करते हैं। इस समय भी राजा महाराजाओंके महलमें प्राचीन कालके बहुमूल्य शाल देखे जाते हैं। वैसा शाल इस समय तैयार नहीं होता। एक शाल (१००००) दससे अधिक दाममें भी बिकता था। दिल्लीके मुगल बादशाह तथा बंगालके नवाब अपने अधीनस्थ कर्मचारियोंको पुरस्कार देने पर पुरस्कारमें शालखिलअत देते थे।

इस देशमें बहुत पहलेसे शालका व्यवहार होता आ रहा है। भारतमें प्रतिवर्ष प्रायः २० लाख रुपयेके शाल बिकते हैं।

यद्यपि यूरोप यद्यपि इस समय भारतको दबा रहा है, तथापि पशमशिल्पमें भारतवासियोंका आज भी ऊँचा गौरव है, विज्ञानबलसे बलिष्ठ यूरोपीय लोग इस शिल्पमें आज तक भी वैसा गौरव प्राप्त नहीं कर सके। भारतवर्षमें जैसा सुन्दर शाल तैयार होता है, यूरोपके शिल्पियोंसे अभी तक भी वैसा शाल तैयार

करनेकी योग्यता प्राप्त नहीं हुई। आधुनिक यूरोपीय वस्त्रशिल्पीयोंने विज्ञानके बलसे एवं नाना प्रकारके यन्त्रोंकी सहायतासे वस्त्रशिल्पकी जो उन्नति की है, कई सहस्र वर्ष पहले इस देशके निरक्षर या अल्पज्ञ जुलाहोंने उसकी अपेक्षा कहीं अधिक उन्नति कर दिखाई थी। इस सम्बन्धमें पाश्चात्य लेखकोंने कई जगहों पर इस देशके शिल्पियोंकी प्रशंसा की है। केवल शाल बुनने-में ही इन लोगोंने यश प्राप्त किया था, ऐसा नहीं। वर्णसौंदर्य एवं कलानैपुण्य प्रभृतिमें भी इन शिल्पियोंने बड़ी कुशलता दिखाई थी, यूरोपीय लेखक इसे भी मुक्त कण्ठसे स्वीकार करते हैं। यद्यपि यूरोपीय शिल्पी अच्छा शाल तैयार करने लगे हैं, तथापि काश्मीरी शाल-के समान सुन्दर शाल सारी दुनियेमें और कहीं तैयार नहीं होता।*

आइन अकबरीके पढ़नेसे ज्ञात पड़ता है, सम्राट् अक-बर शाल तैयार करनेके कार्य्य यथेष्ट उत्साह दिखाते थे। यहां तक, कि वे आप भी कभी कभी नमूना दिखा देते थे वे शालका व्यवहार करना पसन्द करते थे तथा चार प्रकारके शाल तैयार कराते थे। प्रथमतः तुज् आस्-शाल—यह धूसर या उजला होता था। यह जैसा कोमल, वैसा ही नरम और बारीक होता था। इस श्रेणीके शालमें शिल्पी लोग पहले रङ्ग नहीं दे सकते थे। किन्तु सम्राट् अकबर बहुत चेष्टा करनेके उपरांत इस श्रेणीके शालको भी रङ्गीन बनानेमें समर्थ हुए थे। द्वितीय श्रेणीके शालका नाम सफेद आलचे था, इसे लोग तेहदार भी कहते थे। सफेद और काले पशमीं-से दोनों रङ्गमें ही इस श्रेणीका शाल तैयार होता था।

* "From the neck and underpart of the body of the wool-goat is taken the fine flossy silk-like wool which is worked up into those beautiful shawls with an exquisite taste and skill, which all the mechanical ingenuity of Europe has never been able to imitate with more than partial success".

(The Cyclopaedia of India)

शिल्पी लोग इससे एक प्रकारका धूसर वर्णका शाल तैयार करते थे। अकबरके समयसे पहले तीन या चार रङ्गके शाल प्रस्तुत होते थे। इससे अधिक रङ्गोंका शाल नहीं देखा जाता था। किंतु अकबरके समयसे नाना प्रकारके रङ्गीन शाल तैयार होने लगे। तृतीय श्रेणीके शालके नाम जरदी, गुला-बातान, काशाही, कालघाई, धुन्धनमा छिट, आलचे और परजदार थे। इन सभी शालोंकी सृष्टि अकबरने ही की थी। चतुर्थ—कुरतेके लिये एक प्रकारका सुदौर्ज शाल तैयार होता था। अकबरने जोड़ा शाल व्यवहार करनेकी प्रथा चलाई।

आइन अकबरीके पढ़नेसे और भी पता चलता है, कि सम्राट्के उत्साहसे उस समय लाहोरमें प्रायः हजारसे भी अधिक तंतुशालाएं थीं। यहां जुलाहे लोग शालनिर्माण कार्य्यमें नियुक्त रहते थे। वे मयान् नामक एक प्रकारका नकली शाल तैयार करते थे। मयान् शाल रेशम और पशमसे तैयार होता था।

इस समय भी काश्मीरी शाल इस देशमें सुविख्यात है। १८२० ई०के पहले पञ्जाबके बहुत-से स्थानोंमें शाल तैयार होता था, किंतु उसके बादसे काश्मीर ही शालनिर्म्माणका सुप्रसिद्ध स्थान गिना जाता है। १८१६ ई०में काश्मीरमें भयानक दुर्भिक्ष पड़ा। उसी दुर्भिक्षसे पीड़ित हो कर शाल-बुननेवाले कारीगर लोग काश्मीर छोड़ कर अमृतसर, नूरपुर, दीननगर, तिलोकनाथ, जलालपुर, लुधियाना प्रभृति स्थानोंमें जा कर बस गये। अब भी इन सभी स्थानोंमें बहुतायतसे शाल तैयार होते हैं। पञ्जाबमें जितने प्रकारके शाल तैयार किये जाते हैं, उनमें अमृतसरी शाल सबसे अच्छा होता है। किंतु काश्मीरी शालके साथ अमृतसरी शालकी तुलना नहीं हो सकती। इसका प्रधान कारण यह है, कि पञ्जाबी शाल-बुननेवाले वैसा पशम संग्रह नहीं कर सकते, द्वितीयतः काश्मीरकी तरह अमृतसरमें शाल पर रङ्ग भी नहीं जमता। किसी किसीका कहना है—काश्मीरमें वहांके जलके किसी विशिष्ट रासायनिक गुण-से ही शाल पर ऐसा सुन्दर रङ्ग धरता है।

शालनिर्म्माणके सम्बन्धमें कोई बात कहनेके पहले

णीय और प्रयोजनीय वस्तु है। नाविक लोग इसे नावके छिद्रोंमें लगाते हैं। धूनेसे फूटी हुई हण्डी, कलसी प्रभृति भी जोड़ी जाती है। कई जगहोंमें लोग शालवृक्षके पत्तोंका पत्तल बना कर उस पर खाना खाते हैं। शाल पत्तोंके दोनेमें तरल पदार्थ भी रखी जा सकती है। कलकत्तेकी दूकानोंमें शालवृक्षके पत्तोंके दोनेका व्यवहार है।

शालका दूसरा नाम अश्वकर्ण है, यह बौद्धोंका बड़ा ही आदरणीय है। कारण, शाक्य बुद्धकी माताने शाक्यसिंहके जन्मके समय एक पत्रयुक्त शालदण्ड धारण किया था। इस उपाख्यानके संबंधमें चित्रादि देखे जाते हैं। स्वयं भगवान् बुद्धदेवने शालवृक्षके नीचे निर्वाण लाभ किया था। कोई कोई ग्रामवासी शाल पत्र पर प्रतिवेशिनी रमणियोंके नाम लिख जलमें डुबो देते हैं। फिर ४॥ घण्टेके बाद उस डालीको जलसे बाहर निकाल कर जब किसी पत्रको नीचे झुके हुए देखते हैं, तब वे उसी पत्ते पर लिखे हुए नामकी स्त्रीको डायन साबित करते हैं।

८ शाल—पशमनिर्मित सुप्रसिद्ध शीतवस्त्र विशेष। गुजराती, हिन्दी, पारसी और बंगला भाषामें यह शीतवस्त्र शाल नामसे ही विख्यात है। उत्तर-भारतका काश्मीर राज्य ही शालके व्यापारका आदिस्थान है। पशमसे शाल तैयार कर उसके ऊपर शिल्पमय रेशमी पाड़ जोड़ कर सभ्य जगत्‌के सभी स्थानोंमें भेजा जाता है। संसारके प्राच्य तथा प्रतीच्य बहुतसे देशोंमें प्राचीन कालसे ही शालका व्यवहार होता आ रहा है भिन्न भिन्न भाषाओंमें शाल शब्द भी भिन्न भिन्न आकारमें गृहीत होता है। यथा—फरासी—Chals, Chales, जर्मन—Schalen, इटालीय—Shanali, मालय—काइन रामबुत, पुर्तगाल—Chaleshn, स्पेनिस—Schanalos, तामिल - शालु वैगल एवं तेलेगू—शालु वलु।

सर्दीसे शरीरकी रक्षा करनेके लिये शालका व्यवहार होता है। दक्षिण एशियावासियोंमें जिस तरह शाल व्यवहारका अधिक प्रचलन देखा जाता है, यूरोप खंडमें उतना नहीं देखा जाता।

विदेशमें जिन जिन स्थानोंमें शाल भेजे जाते हैं, युक्तप्रदेश, स्वेज, अरब और पारस्यमें प्रायः सैकड़े ८० भाग प्रेरित होते हैं। इनके अलावे दूसरे २० भाग अमेरिका, फ्रान्स और चीनदेशमें भेजे जाते हैं। फरासी लोग भारतीय शालके बड़े पक्षपाती थे। फ्रान्स-प्रुसियायुद्धके बादसे फ्रांसमें शालका प्रचलन बहुत कम गया। इस समय यूरोप और अमेरिकामें भी शालका व्यवहार बहुत कम गया है।

काश्मीरमें जिस समय शाल व्यवसायी उन्नतिकी पराकाष्ठा दिखा रहे थे, यूरोपमें उस समय भी शाल-व्यवहारके निमित्त जनसाधारणका अनुराग परिलक्षित होता था। पैजली (Paisly) नगरमें काश्मीरी शालका अनुकरण करके शाल तैयार किया जाता है। २०।४० वर्ष पहले स्काटलैंडमें विवाहके समय कन्याको शाल ओढ़ा दिया जाता था। क्रमसे विवाहमें शालका व्यवहार विवाहकी एक प्रथामें परिणत हो गया। पैजलीमें कल द्वारा शाल तैयार किया जाता है। इससे यूरोपमें काश्मीरी शालका आदर और आमदनी बहुत कम गई है।

भारतवर्षमें शालका व्यवहार प्राचीनकालसे है। सम्भ्रांत और धनी लोग शालकी सम्पत्तिकी तरह रक्षा करते हैं। इस समय भी सम्भ्रांत राजा महाराजाओंके महलमें प्राचीन कालके बहुमूल्य शाल देखे जाते हैं। वैसा शाल इस समय तैयार नहीं होता। एक शाल १००००) रु०से अधिक दाममें भी बिकता था। दिल्लीके मुगल बादशाह तथा बंगालके नवाब अपने अधीनस्थ कर्मचारियोंको कृतकार्य होने पर पुरस्कारमें शालशिरोपा देते थे।

इस देशमें बहुत पहलेसे शालका व्यापार होता आ रहा है। औसतसे प्रतिवर्ष प्रायः २० लाख रुपयेके शाल बिकते हैं।

वस्त्र बुननेमें यूरोप यद्यपि इस समय अत्यन्त दक्षता दिखा रहा है, तथापि वस्त्रशिल्पमें भारतवासियोंका अब भी जो गौरव है, विज्ञानबलसे बलिष्ठ यूरोपीय लोग इस विषयमें आज तक भी वैसा गौरव प्राप्त नहीं कर सके। भारतवर्षमें जैसा सुन्दर शाल तैयार होता है, यूरोपके शिल्पियोंको अभी तक भी वैसा शाल तैयार

करनेकी योग्यता प्राप्त नहीं हुई। आधुनिक यूरोपीय वस्त्रशिल्पीयोंने विज्ञानके बलसे एवं नाना प्रकारके यन्त्रोंकी सहायतासे वस्त्रशिल्पकी जो उन्नति की है, कई सहस्र वर्ष पहले इस देशके निरक्षर या अल्पज्ञ जुलाहोंने उसकी अपेक्षा कहीं अधिक उन्नति कर दिखाई थी। इस सम्बन्धमें पाश्चात्य लेखकोंने कई जगहों पर इस देशके शिल्पियोंकी प्रशंसा की है। केवल शाल बुनने-में ही इन लोगोंने यश प्राप्त किया था, ऐसा नहीं। वर्णसौंदर्य एवं कलानैपुण्य प्रभृतिमें भी इन शिल्पियोंने बड़ी कुशलता दिखाई थी, यूरोपीय लेखक इसे भी मुक्त कण्ठसे स्वीकार करते हैं। यद्यपि यूरोपीय शिल्पी अच्छा शाल तैयार करने लगे हैं, तथापि काश्मीरी शाल-के समान सुन्दर शाल सारी दुनियेमें और कहीं तैयार नहीं होता*।

आइन अकबरीके पढ़नेसे ज्ञात पड़ता है, सम्राट् अक-बर शाल तैयार करनेके कार्य्य यथेष्ट उत्साह दिखाते थे। यहां तक, कि वे आप भी कभी कभी नमूना दिखा देते थे वे शालका व्यवहार करना पसन्द करते थे तथा चार प्रकारके शाल तैयार कराते थे। प्रथमतः तुज् आस्-शाल—यह धूसर या उजला होता था। यह जैसा कोमल, वैसा ही नरम और बारीक होता था। इस श्रेणीके शालमें शिल्पी लोग पहले रङ्ग नहीं दे सकते थे। किन्तु सम्राट् अकबर बहुत चेष्टा करनेके उपरांत इस श्रेणीके शालको भी रङ्गीन बनानेमें समर्थ हुए थे। द्वितीय श्रेणीके शालका नाम सफेद आलचे था, इसे लोग तेढ़दार भी कहते थे। सफेद और काले पशमों-से दोनों रङ्गमें ही इस श्रेणीका शाल तैयार होता था। शिल्पी लोग इससे एक प्रकारका धूसर वर्णका शाल तैयार करते थे। अकबरके समयसे पहले तीन या चार रङ्गके शाल प्रस्तुत होते थे। इससे अधिक रङ्गोंका शाल नहीं देखा जाता था। किंतु अकबरके समयसे नाना प्रकारके रङ्गीन शाल तैयार होने लगे। तृतीय श्रेणीके शालके नाम जरदी, गुला-पातान, काशाही, कालघाई, धुन्चनमा छिट, आलचे और परज्दार थे। इन सभी शालोंकी सृष्टि अकबरने ही की थी। चतुर्थ—कुरतेके लिये एक प्रकारका सुरोर्ध शाल तैयार होता था। अकबरने जोड़ा शाल व्यवहार करनेकी प्रथा चलाई।

आइन अकबरीके पढ़नेसे और भी पता चलता है, कि सम्राट्के उत्साहसे उस समय लाहोरमें प्रायः हजारसे भी अधिक तंतुशालाएं थीं। वहां जुलाहे लोग शालनिर्माण कार्य्यमें नियुक्त रहते थे। वे मयान् नामक एक प्रकारका नकली शाल तैयार करते थे। मयान् शाल रेशम और पशमसे तैयार होता था।

इस समय भी काश्मीरी शाल इस देशमें सुविख्यात है। १८२० ई०के पहले पञ्जाबके बहुत-से स्थानोंमें शाल तैयार होता था, किंतु उसके बादसे काश्मीर ही शालनिर्म्माणका सुप्रसिद्ध स्थान गिना जाता है। १८१६ ई०में काश्मीरमें भयानक दुर्भिक्ष पड़ा। उसी दुर्भिक्षसे पीड़ित हो कर शाल-बुननेवाले कारीगर लोग काश्मीर छोड़ कर अमृतसर, नूरपुर, दीननगर, तिलोकनाथ, जलालपुर, लुधियाना प्रभृति स्थानोंमें जा कर बस गये। अब भी इन सभी स्थानोंमें बहुतायतसे शाल तैयार होते हैं। पञ्जाबमें जितने प्रकारके शाल तैयार किये जाते हैं, उनमें अमृतसरी शाल सबसे अच्छा होता है। किंतु काश्मीरी शालके साथ अमृतसरी शालकी तुलना नहीं हो सकती। इसका प्रधान कारण यह है, कि पञ्जाबी शाल-बुननेवाले वैसा पशम संग्रह नहीं कर सकते, द्वितीयतः काश्मीरकी तरह अमृतसरमें शाल पर रङ्ग भी नहीं जमता। किसी किसीका कहना है—काश्मीरमें वहांके जलके किसी विशिष्ट रासायनिक गुण-से ही शाल पर ऐसा सुन्दर रङ्ग धरता है।

शालनिर्म्माणके सम्बन्धमें कोई बात कहनेके पहले

* "From the neck and underpart of the body of the wool-goat is taken the fine flossy silk-like wool which is worked up into those beauti ful shawls with an exquisite taste and skill, which all the mechanical ingenuity of Europe has never been able to imitate with more than partial success".

(The Cyclopaedia of India)

शालकी जड़ पशमकी बात ही कहनेकी आवश्यकता है। उत्तर-पश्चिमाञ्चलकी भिन्न भिन्न भेड़ोंके रोएं ही शालकी जड़ हैं। तिब्बत और स्पितिमें एक प्रकारका भेड़ होती है, यहां उसी भेड़के रोएंसे शाल तैयार किया जाता है। स्पितिकी भेड़के रोएंकी अपेक्षा तिब्बतकी भेड़के रोएं अच्छे होते हैं। काश्मीरके लादक विभागमें शालके पशमके लिये भेड़ पाली जाती हैं। ये भेड़ दो श्रेणीमें विभक्त हैं। एक प्रकारकी भेड़का आकार बहुत बड़ा होता है। उसके बड़े बड़े शृंग होते हैं। इस श्रेणीकी भेड़ राप्पूके नामसे विख्यात है। छोटी छोटी भेड़ तिल्लूके नामसे पुकारी जाती हैं। ये सब भेड़ पार्वत्य प्रदेशमें देखी जाती हैं। तिब्बतके तुम्रा, जालन्धर एवं शकचू प्रभृति स्थानोंमें इस प्रकारकी बहुत-सी भेड़ देखी जाती हैं। वर्त्तमान समयमें रुरुण नगर नामक स्थानमें साधारणतः उत्तम पशम होता है। खोतानका दक्षिणाञ्चल उत्तम पशमके लिये विख्यात है। एक वर्षमें सिर्फ एक बार पशम संग्रह किया जाता है। इन सभी भेड़ोंके रोएं पशम ही नहीं है। गर्दन और निम्न भागके पशमसे ही शाल तैयार किये जाते हैं। मोटे मोटे रोएंसे सूक्ष्म लोम अलग करके शालकरोंके पास भेजे जाते हैं। मोटे रोएंसे कम्बल तैयार होता है। तिब्बतसे पशम काश्मीर, नूरपुर, अमृतसर, लाहोर, लुधियाना, अम्बाला, शतद्रु-तटवर्त्ती रामपुर और नेपाल प्रभृति स्थानोंमें भेजा जाता है। उत्तम पशम 'लेना' एवं साधारण पशम 'वाल' कहलाता है।

काश्मीरमें पहले २॥॰ सेर पशम बिकता था। लादकसे काश्मीरमें प्रति वर्ष प्रायः तीन मन पशम आता है। प्रत्येक भेड़से प्रति वर्ष प्रायः आध सेर पशम प्राप्त होता है। लादकमें करीब ८०००० भेड़ पाली जाती हैं। प्रत्येक भेड़का मूल्य ४) रु० है। एक काश्मीरमें ही प्रायः ६० लाख रुपयेके शाल तैयार होते हैं। सिन्धु और साइफुक नदीके मध्यवर्त्ती उच्च स्थानोंमें भी पशम-उपयोगी भेड़ पाली जाती है।

शालनिर्माणके पहले पशम साफ किया जाता है। स्त्रियां ही साधारणतः पशम परिष्कार करती हैं। मैदेके साथ पशम मिला कर और उसे खूब मसल कर झाड़ देनेसे पशम बिल्कुल साफ हो जाता है। इसके बाद उस परिष्कृत पशमसे केशादि चुन कर अलग कर दिये जाते हैं; इससे शाल बहुत ही उत्तम बनता है और अधिक दाममें बिकता है। तत्पश्चात् चर्खे द्वारा पशमका सूता तैयार किया जाता है। खाश विशुद्ध पशम-सूतके आध सेरका दाम ४०) रु०से कम नहीं होता।

इकरंगा शाल तांत (करघे) में तैयार किया जाता है। किन्तु नाना प्रकारके रंगोंसे रंगे हुए विचित्र शाल सूई दे कर बुने जाते हैं।

जो शाल तांतसे तैयार होते हैं, वे ही तिलिवाला, तिलिकार, कानिकार या बिनौटके नामसे विख्यात है। सूई द्वारा काम किया हुआ शाल साधारणतः 'अमलीकार' कहलाता है। इसके अलावे दुशाला, रुमाल प्रभृति नामक शालके और भी भेद हैं। कुरते बनानेवाला शाल नाना प्रकारके रंगोंमें रंगा रहता है। शालका किनारा (पाड़) तैयार करनेमें भी एक विपुल व्यवसाय चलता है। कानीकार और अमलीकर शाल काश्मीरमें यथेष्ट तैयार होते हैं।

शाल प्रस्तुत करनेके समय कई श्रेणीके लोग कार्यमें नियुक्त रहते हैं। जैसे—नकाश, तारागुरु, तालीम गुरु इत्यादि। नकाशी शालका नमूना दिखाते हैं। तारा गुरु रंग और रंगीन सूतादिका परिमाण निर्देश करते हैं। तालीम गुरु ये सब विषय सांकेतिक भाषमें लिख कर जुलाहोंको दे देते हैं, वे उसीके अनुसार शाल बुनते हैं।

शालनिर्माण करनेमें जो काष्ठसूची व्यवहृत होती है, वह तोजी कहलाती है। तोजीमें चार प्रेन रंगीन सूता लगा रहता है।

दुशाला—दुशाले कई तरहके देखे जाते हैं। यथा—सफेद दुशाला, रंगीन किनारीदार, बीचमें फूलदार, कुंजदार। जिस शालकी लम्बाईके पाड़से चौड़ाईका पाड़ बड़ा रहता है, उसे 'शाहपसन्द' और जिसके चारों पाड़ समान होते हैं, उसे 'हरदार' कहते हैं। जिस शालका दोनों किनारा सूईसे काम किया रहता है, वह 'दुरूखा' कहलाता है।

साधारणतः सफेद, मुश्की (काला), गुलानार (Crimson), खाकिजि (Scarlet), उदा (Purple), फीरोजी, जिंगारी एवं जर्द (पीत) रङ्गके शाल देखनेमें आते हैं।

इनके अलावे कसंवा, चादर और रूमाल भी यथेष्ट परिमाणमें निर्म्माण किये जाते हैं। यूरोपीय लोग इस श्रेणीके शाल का बड़ा आदर करते हैं। वे पूराशाल व्यवहार करनेके पक्षपाती नहीं हैं, वे सिर्फ रूमाल ही अधिक पसन्द करते हैं। रूमालको छोड़ कर एक प्रकार का अर्द्ध परिमित शाल भी तैयार होता है जो आधा-बत् या 'पसि' कहलाता है। यह शाल भी दो प्रकारका होता है। जैसे—तेहरीयेल और दोहरीयेल। रामपुरी चादर आदि भी यूरोपमें शालके नामसे विख्यात है।

श्रीनगरके म्यूजियममें एक शाल है, जिसका दाम २२००० रु० है। इसके अतिरिक्त ३००से ले कर १०००० रुपये तक के मूल्यवान् शाल देखे जाते हैं।

१९०२-३ ई०में दिल्ली नगरमें जो शिल्प-सम्बन्धी प्रदर्शनी हुई थी, उसी प्रदर्शनीमें मेजर स्टूयार्ट पेच गड़फ़ेने एक शाल दिया था। उस शालमें श्रीनगरके महल, जनसाधारण, ह्रद, नदी, पर्वत और वृक्षादिके चित्र अंकित थे। प्रत्येक दृश्यके नीचे उसका परिचय सूचीकार्य्यमें लिखा था। महाराज सर रणवीर सिंहके समय उनके (राजाके) आदेशसे ही यह शाल तैयार किया गया था। वर्त्तमान भारत-सम्राट् जब श्रीनगर परिदर्शन करने गये थे, शायद उन्हींको उपहार देनेके लिये ही यह शाल तैयार कराया गया था। इस शालमें श्रीनगरका मानचित्र दिखलाया गया है, जिसे देख कर आसानीसे वे स्थान दिखाये जा सकते हैं।

शालक (सं० क्ली०) १ नाड़ीशाक, पटुआ। २ मसखरा दिल्लगीबाज, भांड़।

शालकटङ्कट (सं० पु०) १ महाभारतके अनुसार एक राक्षसका नाम। इसे घटोत्कचने मारा था। २ शाल और कटङ्कटमन्त्रविशेष।

शालकल्याणी (सं० स्त्री०) एक प्रकारका साग। यह चरकके अनुसार गुरु, रुक्ष, मधुर, विष्टम्भी, शीतवीर्य्य और पुरीषभेदक होता है। (चरक सूत्रस्था० २७ अ०)

शालग्राम (सं० पु०) विष्णुमूर्त्तिविशेष। गण्डकीसे उत्पन्न वज्रकीट कृत चक्रयुक्त शिला। गण्डकी नदीमें उत्पन्न वज्रकीट कर्त्तृक चक्रयुक्त जो शिलाखण्ड मिलता है, उसे शालग्राम शिला कहते हैं। इसके सिवा द्वारकोद्भव शिला भी शालग्राम-शिला कहलाती है। इस शिलामें भगवान् विष्णुकी पूजा करनी होती है। अन्य देवमूर्त्तिकी जिस प्रकार प्रतिष्ठा की जाती है, उस प्रकार इस शालग्राम-शिलाकी प्रतिष्ठा नहीं होती। इस शिलाका अभिषेक करके ही पूजन करना उचित है। शिलाके चक्रके लक्षणानुसार इस शिलाका भिन्न भिन्न नाम है। शालिग्राम-शिलामें सभी देवताओंकी पूजा होती है। इस शिलामें भगवान् विष्णु सर्व्वदा विराज करते हैं, इस कारण इसमें देवताका आवाहन और विसर्जन नहीं है।

शालग्रामकी उपासना भारतमें बहुत दिनोंसे चली आती है। भगवान्‌विष्णु शिलाचक्ररूपमें जगत् प्रकट हुए थे, यही पौराणिक उक्ति है। गण्डकीतीर या चक्रतीर्थ और द्वारका ही भगवान्‌की चक्ररूपी लीलाका उत्तम स्थान है। किस प्रकार भगवान् हरि इन दोनों क्षेत्रोंमें आविर्भूत हुए थे, उसका विवरण ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके जन्मखण्डमें इस प्रकारलिखा है,—

भगवान् हरिने छलसे शङ्खचूड़को मार कर शङ्खचूड़के वेशमें तुलसीके साथ सम्भोग किया। इस पर तुलसीने पीछे भगवान्‌को शाप दिया, 'हे नाथ! आप पाषाणहृदय और दयाहीन हैं, अतएव पाषाण सदृश हो कर इस पृथिवी पर अवस्थान करें।' तुलसीका यह वाक्य सुन कर नारायणने कहा, 'साध्वि! तुम्हारे शापका पालन करनेके लिये मैं गण्डकीके समीप शिलारूपी हो कर अनुष्ठान करूंगा। वज्रकीट, कृमि और दंष्ट्रगण वहां शिलाकुहरमें मेरा चक्र काटेंगे।

धर्मसंहितामें शालग्राम-शिलाकी उत्पत्तिका विषय अन्य प्रकारसे लिखा है,—भगवान् हिरण्यगर्भ स्वयं नारायण हैं। वे आदिमें वज्रकीटरूप धारण कर पृथिवी

पर भ्रमण करते थे। उन्हें सुवर्ण भ्रमररूपमें भ्रमण करते देख देवगण भ्रमररूप धारण कर उनके समीप गये। उस समय समस्त चराचर षड्ङ्घ्रिदलसे परिव्याप्त हो गया। हिरण्यगर्भने इस प्रकार भ्रमणशील भ्रमरोंसे विभ्रान्त हो वैनतेयासन जगत्पति विष्णुको देखनेके लिये शैलरूपमें जगत्के मङ्गलविधाता हरिको रोका। इस पर सहसा निरुद्वेग हो कर वे एक वृहत् गर्तमें घुस गये। उन्हें इस प्रकार गर्तमें प्रवेश करते देख भ्रमरोंने भी उनका अनुसरण किया, वे भी उस गर्तमें घुस गये। उसीसे शङ्खवत् वेश्मके साथ चक्राकार शिला उत्पन्न हुई।

मेरुतन्त्र ५म पटलमें शालग्रामोत्पत्ति प्रसङ्गक्रममें शालग्राम, शिलानिर्णय और माहात्म्य कीर्त्तित है। पुराकालमें गण्डकीने 'देवगण मेरे पुत्र हों' इस आकाङ्क्षासे तपस्या ठान दी। उनकी तपस्यासे प्रसन्न हो कर ब्रह्मा विष्णु महेश्वर वर देनेके लिये उनके पास आये। गण्डकीने उन्हें अपने पुत्ररूपमें पानेके लिये प्रार्थना की। त्रिदेवके इस प्रकार वर देनेमें अशक्त होने पर गण्डकी क्रुद्ध हो बोली, "तुम लोगोंने मेरी बार बार प्रतारणा की, इस कारण यहां कीटयोनि लाभ कर अवस्थान करो।" गण्डकीका इस प्रकार वाक्य सुन कर देवताओंने कहा, 'तुमने जिस प्रकार तपोबलसे उद्धत हो बिना विचारे हम लोगोंको शाप दिया, उसी प्रकार कर्मविपाकसे तुम भी जड़ प्रकृति कृष्णा नदी हो।' आपसके अभिशापसे वहां एक बड़ा कोलाहल पैदा हुआ। देवगण और गण्डकी सबके सब कांपने लगे और उन्होंने ब्रह्माको सम्बोधन कर कहा, 'ब्रह्मन्! क्रोधके आवेशमें आ कर परस्पर महाशापसे हम लोग पतित हो गये हैं। इसलिए इससे परित्राण पानेका उपाय अवश्य बतला दीजिये।' ब्रह्माने देवताओंके ये वचन सुन कर शङ्करसे कहा। शङ्करने जवाब दिया, "मैं संहारकारक हूं, तुम सृष्टिकर्त्ता हो और विष्णु सर्वजीवपालक हैं। विष्णु ही हम लोगोंमें अधिक बुद्धिमान् हैं। उन्हींसे पूछो, इस विषयमें वे क्या कहते हैं?"

महेश्वरकी यह उक्ति सुन कर विष्णुने कहा, 'गजानन! तुम सभी ध्यान दे कर सुनो। यहां मेरे गणसमूह, ब्राह्मण गण और गजमातङ्गरूपधारी शापग्रस्तगण यदि कार्यवशतः आ जायं, तो उन्हें मोक्षकी प्राप्ति होगी तथा वे दिव्यकलेवर धारण करेंगे। फिर उनकी मेदमज्जसमाव स्थूलदेह शीर्ण हो कर पाषाणान्तर्गत वज्रकीट प्रसव करेगी। आजसे गण्डकी पुण्यतोया और गङ्गाकी समान हुई। गिरिराजके दक्षिण गण्डकी पर्यन्त दशयोजन विस्तीर्ण भूमि धरातलमें महापुण्यक्षेत्र हुई। यहो त्रिलोकप्रसिद्ध चक्रतीर्थ है। इस चक्रतीर्थके अन्तर्गत शालग्रामगत देवगण अथवा द्वारावतीगत देवता जहां मिलेंगे, वहां मुक्ति अवश्य ही करतलगत होगी। इस भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी सर्वदेव-प्रीतिकरा गण्डकीका गर्भगत पाषाणखण्ड और उसके अन्तर्गत वज्रकीट ही उनका पार्थिव सुरपुत्र हैं।' इसके बाद ब्रह्माके कहनेसे विष्णु गण्डकीका माहात्म्य कीर्त्तन करते करते पूज्य शिलाका नाम निर्देश करने लगे। इसका साथ उन्होंने त्याज्य शिलाका भी वर्णादि भेद निरूपण कर दिया। (मेरुतन्त्र ५ पटल)

पूज्यशिला।

पद्मपुराण (पातालखण्ड १० अ०)में शालग्रामशिलार्च्चनप्रसङ्गमें विशेष विशेष रेखाविशिष्ट शिलाकी पूजार्हता उल्लिखित हुई है। ये सब शिलाएं स्वतन्त्र नामसे भी पुकारी जाती हैं।

मेरुतन्त्रमें भी पूज्य शालग्राम-शिलाका विषय वर्णित देखा जाता है—स्वीय वर्णा, अर्थात् शिलाका जो वर्ण तादृशी वर्णविशिष्ट शिला है, उसको ब्राह्मणादि वर्ण सुख लाभके लिये पूजा करे। स्निग्ध और कृष्णवर्ण शिला पूजनीय है। इस शिलाका पूजन करनेसे सिद्धिलाभ होता है। पीतवर्ण शिलाका पूजन करनेसे पुत्रकी प्राप्ति होती है। नीलवर्णशिलाके पूजनसे लक्ष्मीलाभ और समशिला सर्वार्थसाधिका होती है।

जिस शालग्रामशिला पर पद्मके साथ चक्र विद्यमान रहता है अथवा केवल वनमाला चिह्न पाया जाता है, उसका नाम लक्ष्मीहरि है। यह शिला गृहस्थोंको अभीष्ट फल देनेवाली है। जिस शालग्रामके चक्रयुक्त दो द्वार रहने

है अथवा जो शिला श्वेतवर्ण और दो समान चक्र-विशिष्ट है, वह वासुदेव कहलाती है, यह शिला पापनाशक है। पूर्व और पश्चाद्भागमें दो चक्र रहनेसे वह शिला सङ्कर्षण नामसे पूजित होती है। यह रत्न स्वरूप और सुशोभन है। गृही व्यक्ति यदि इस शिलाकी पूजा करे, तो अभीष्टलाभ होता है।

जिस शालग्राम शिलाका चक्र सूक्ष्म तथा छिद्र दीर्घ और विचलित है, अन्तः और बहिर्देश छिद्रयुक्त, वह प्रद्युम्न कहलाती है। यह पीतवर्ण और इष्टप्रदायक है। जो शिला नीलाभ, वर्त्तुल और अति सुन्दर होती, जिसके द्वारदेश पर दो रेखा रहती तथा पृष्ठदेश पद्मलांछित होता है, उसे अनिरुद्ध शिला कहते हैं। शिलाके पूर्व या पश्चाद्भागमें एक या दो चक्र रहनेसे वह शिला केशव कहलाती है। यह चतुष्कोण है। इस शिलाकी पूजा करनेसे सौभाग्यकी वृद्धि होती है। श्यामवर्ण, उन्नत चक्रविशिष्ट और दीर्घ रेखायुक्त तथा दक्षिण-देश पृथु शुषिर अर्थात् स्थूल गह्वरसमन्वित शिलाको नारायण कहते हैं।

जिस शिलाके ऊर्द्ध्वप्रदेशमें स्थापित अथच शिला-का तरह हरिद्वार दिखाई देता है, उसका नाम हरि है। वह शिलाचक्र भुक्ति और मुक्तिप्रद है। जो शिला पद्म और चक्रयुक्त, विल्वफलकी तरह आकृतिविशिष्ट, शुक्लाभ और पृष्ठदेशमें वृहत् शुषिर अर्थात् गर्त्तविशिष्ट है, वह परमेष्ठी कहलाती है। कृष्णवर्ण, सुशोभन दो चक्रयुक्त, मध्यदेशसे द्वारके ऊपर एक रेखासम्वलित शिलाका नाम विष्णु है।

नृसिंहलक्षणयुक्त शिला यदि गुड़ या लाक्षा सदृश वर्णविशिष्ट हो, उसमें स्थूल चक्र और द्वार पर सुशोभना रेखा रहे, उसे महानृसिंह कहते हैं। पूर्वोक्त लक्षण-युक्त शिला वनमालाविराजित, चार चक्र और बिन्दुयुक्त होनेसे लक्ष्मीनृसिंह कहलाती है। यह शुभप्रद है।

पूर्वोक्त वराहलक्षणयुक्त शिला भी इन्द्रनीलसदृश स्थूल, तीन रेखायुक्त तथा शक्ति, लिङ्ग और चक्र विषम हो, तो वह पृथ्वी-वाराह कहलाती है। वह यदि अङ्कुश और एक रेखायुक्त हो, तो वह गतराज्यप्रद होती है।

वर्ण स्वर्णसदृश, दीर्घाकृति, तीन बिन्दु विभूषित और कांसासे भी अधिक भारविशिष्ट है, वही मत्स्यशिला नामसे पुकारी जाती है। इस शिलाका पूजन करनेसे भुक्ति और मुक्ति लाभ होती है।

जिस शिलाका पृष्ठदेश वर्त्तुल और उन्नत तथा कौस्तुभ चिह्नित और हरिद्वर्ण होती है, वही कूर्माख्य शिला है। कूर्माकार, चक्राङ्कित और वृत्तयुक्त शिला भी कूर्मशिला कहलाती है। यह शिलाचक्र अभीष्टफल-प्रद है।

चक्रके समीप अंकुशाकार रेखा और बहु बिन्दु विद्यमान तथा पृष्ठदेश नीरद नीलवर्ण है, वह हयग्रीव कहलाती है। जो शिला हयग्रीवसदृश और दीर्घरेखायुक्त है, उसे सौम्य हयग्रीव कहते हैं।

मुख हयाकृति या पद्माकृति तथा मस्तक अक्षमाला-युक्त होनेसे उसको हयशीर्ष कहते हैं।

तिलवर्णाभ तथा एक चक्रयुक्त, ध्वजचिह्नित, द्वारके ऊपर सुशोभन रेखाविशिष्ट शिला वैकुण्ठ कहलाती है।

जो शिला वनमाला चिह्नित, पद्मकुसुमाकार, रेखा-पञ्चक शोभित होती है, उसका नाम श्रीधर है। अति ह्रस्व, वर्त्तुल, अतसीकुसुम सदृश वर्ण तथा बिंदुयुक्त शिला वामन है। अति ह्रस्व तथा ऊर्द्ध्व और अधोदेश चक्रसंयुक्त और महाद्युतिविशिष्ट शिला दधिवामन कहलाती है। यह शिला विशेष मङ्गलदायक है।

जो शिला श्यामवर्ण, महाद्युति है, जिसके वाम-पार्श्वमें चक्रविशिष्ट और दक्षिणमें एक रेखा रहती है, उसे सुदर्शन कहते हैं।

जो शिला नाना रेखायुक्त तथा जिसकी चक्रपंक्ति चक्राकार होती है, उसका नाम सहस्रार्जुन है। इसका पूजन करनेसे मङ्गल होता है। जिसके मध्यचक्र प्रति-ष्ठित है, जिसका वर्ण दूर्वा जैसा और द्वारदेश सङ्कीर्ण होता तथा जिसमें अनेक पीत रेखाएं होती हैं, उसे दामोदर कहते हैं। इस शिलाका पूजन करनेसे मंगल होता है। जिस शिलाके दो चक्र होते तथा विवर सूक्ष्म होता

यह भी दामोदर कहलाती है। दामोदर-शिलाके ऊद्ध्वं और अधोदेशमें चक्रवत् गर्त्त रहने तथा मुख नातिदीर्घ और लम्ब रेखायुक्त होनेसे उसको राधा दामोदर कहते हैं।

बहुवर्ण नाग-भोग-चिह्नित तथा अनेक चक्रयुक्त होनेसे उसे अनन्त कहते हैं। इसकी पूजा करनेसे समस्त अभीष्ट सिद्ध होता है। जिस शिलाके सभी ओर ऊद्ध्वं भाल्य दिखाई देता है, उसका नाम पुरुषोत्तम है। यह भी विशेष मंगलदायक है। जिस शिला पर शिरोगत लिंग रहता है, उसका नाम योगेश्वर है। इसकी पूजासे ब्रह्महत्यादि पापनाश और योग सिद्ध होता है।

पद्म और छत्र चिह्नयुक्त शिलाका नाम पद्मनाभ है। इसकी पूजा करनेसे दरिद्र धनवान् होता है। जिसके मध्यदेशमें दो पक्षके चिह्न होते और जिसमें एक सुदीर्घ रेखा होती, उसे गरुड़ कहते हैं।

जिस शिलाके उदरमें चार प्रस्फुट चक्र होते, वह जनार्दन है। जिसका उदर वनमाला चिह्नित तथा सूक्ष्म चार चक्रयुक्त होता है, उसका नाम लक्ष्मीनारायण है। शिला अर्द्धचन्द्राकृति होनेसे वह हृषीकेश है। इस शिलाकी पूजा करनेसे अभीष्ट और स्वर्गलाभ होता है।

कृष्णवर्ण, विन्दुयुक्त और वाम पार्श्वमें दो चक्रयुक्त शिलाका नाम भी लक्ष्मीनारायण है। यह शिला गृहस्थोंको अभीष्टदायक है। श्यामवर्ण, महाद्युति, वाम पार्श्वमें दो चक्र और दक्षिण पार्श्वमें एक रेखा रहनेसे उसे त्रिविक्रम कहते हैं।

कृष्णवर्णकी शिला यदि चक्रयुक्त या चक्रशून्य हो तथा उसमें यदि प्रदक्षिणावर्त्तरूपमें वनमाला चिह्न रहे, तो उसे कृष्ण कहते हैं। शिलाके मध्यदेशमें दो चक्र तथा पार्श्वदेशमें चार रेखा होनेसे वह चतुर्भुज कहलाता है। (मेरुतन्त्र)

त्याज्यशिला।

प्रयोगपारिजातमें त्याज्यशिलाकी आकृति कही गई है। पूजाकामी निम्नलिखित लक्षण देख कर उसे अग्राह्य कर दें। तिर्यक्चक्रा, बद्धचक्रा, क्रूरा, स्फोट भिन्नाग्रा, रुक्षा, कुरूपा, निष्ठुरा, कलहाख्या, कराला, विकटालिका, कपिला, विषमावर्त्ता, व्यालास्या, कोटरयुक्ता, भग्ना, महास्थूला, रुधिरानना, एकचक्रयुता, दर्दुरा, बहुचक्रा, अधोमुखी, लग्नचक्रा या चक्रद्वारा आवृतचक्रा, बहुरेखा समायुक्ता, भग्नचक्रा, दीर्घचक्रा, पंक्तिचक्रा, मस्तकास्या और अचिह्ना शिला सर्वतोभावमें वर्जनीया है।

इसके सिवा मेरुतन्त्रमें और भी कई निन्दित शिलाका परिचय पाया जाता है। धौत अंगारवत् शिलाको मेचकी कहते हैं। इसकी पूजा करनेसे यशकी हानि होती है। पाण्डु और मलिनवर्ण शिला निन्दनीया है। आर-वर्ण शिलाका पूजन करनेसे पुत्रहानि, धूम्राभ शिलासे बुद्धिहानि, रक्तवर्ण रोगदायिनी, वक्रशिला, दारिद्र्यकारिणी, स्थूलशिला आयुनाशिका और सिन्दुराभा शिला निन्दिता हैं, इस कारण उनका त्याग कर देना चाहिये।

चक्रादि चिह्नित शिला ही पूजामें प्रशस्त है। लांछन अर्थात् चिह्न व्यतीत शिलाकी पूजा करनेसे कोई फल नहीं होता। भग्नशिलाकी पूजा करनेसे विपत्ति, बहुचक्रयुक्त शिलाकी पूजा करनेसे अपमान, लक्षणहीन शिला पूजनेसे वियोग, बृहन्मुखयुक्त शिलापूजनेसे कलत्रनाश और बृहच्चक्रयुक्त शिलासे पुत्रनाश, संलग्न चक्रयुक्त शिलासे अतुल, बद्धचक्रयुक्त शिलासे पीड़ा, भग्नचक्र शिलासे दारिद्र्य, अधोमुखयुक्त शिलासे सर्वनाश, व्यालमुखयुक्त शिलासे कुष्ठादि रोग, विषम शिलासे विविध प्रकारकी आपद्, विकृतावर्त्तनाभि अर्थात् जिस शालग्राम शिला पर चक्रका आवर्त्त है और नाभि विकृत हो गई है, वैसी शिलाका पूजन करनेसे अनेक प्रकारका विकार होता है।

कपिल वर्ण, स्थूल चक्र और बृहन्मुखयुक्त शिला तथा जिस शिला पर तीन या पांच विन्दु होते हैं, उसे नृसिंह कहते हैं। यह शिला गृहस्थोंके लिये मंगलदायक नहीं है। इस शिलाका पूजन करनेसे गृहस्थ विपद्में पड़ता है। (मेरुतन्त्र)

उक्त जिन सब शिलाओंका लक्षण और पूजाफल कहा गया, उसकी अपेक्षा और भी अनेक प्रकारका शालग्राम-शिला दृष्टिगोचर होती है। ये द्वादश चक्रवर्गमें विभक्त हैं अर्थात् जो शिलाएं एकचक्रविशिष्ट हैं,

वे एकचक्र, जिनके दो चक्र हैं, वे द्विचक्र हैं। एतद्भिन्न जिनके भीतर तीनसे बारह तक चक्र देखनेमें आते हैं, उन्हें पर्यायक्रमसे उसी उसी संख्यक वर्गमें सन्निवेशित किया गया है। इस प्रकार एकचक्रवर्गमें १६ प्रकार, द्विचक्रवर्गमें ८८ प्रकार, त्रिचक्रवर्गमें ११ प्रकार, चतुश्चक्रवर्गमें १६ प्रकार, पञ्चचक्रवर्गमें ६ प्रकार, षट्चक्रवर्गमें ७ प्रकार, सप्तचक्रवर्गमें ६ प्रकार, अष्टचक्र वर्गमें ४ प्रकार, नवचक्रवर्गमें १ प्रकार, दशमचक्रवर्गमें ३ प्रकार, एकादशचक्रवर्गमें २ प्रकार, द्वादशचक्रवर्गमें १ प्रकार, और बहुचक्रवर्गमें और भी ८ प्रकारके शालग्राम निर्दिष्ट हैं। पुराणादिमें उन सब शालग्रामोंका लक्षण और नाम हैं। यहां एकचक्र क्रमसे उनका विवरण दिया जाता है—

१। वैकुण्ठ, मधुसूदन, सुदर्शन, सहस्रार्जुन, नरमूर्त्ति, राममूर्त्ति, लक्ष्मीनारायण, वीरनारायण, क्षीराब्धिशयन, माधव, हयग्रीव, परमेष्ठी, विष्वक्सेन, विष्णुपञ्जर, गरुड़, बुद्ध, हिरण्यगर्भ, पीताम्बर और पद्मनाभ नामधेय शिलाएं एकचक्राङ्कित हैं।

नीलवर्णाभ, ध्वजयुक्त, द्वारोपरि और पूर्णभागमें सर्पाकार, सुशोभन रेखा-विलम्बित शिला ही वैकुण्ठ कहलाती है। दूसरे पुराणमें शुक्लवर्णाभ, गुञ्जाकार और पुच्छरेखक शिलाको भी वैकुण्ठ कहा है। महाद्युतिमान् और महातेजशाली सर्व्ववर्णसमायुक्त शिला मधुसूदन पदवाच्य है। चक्रविवेक नामक ग्रन्थमें लिखा है, कि रक्त या कृष्णवर्ण स्थूल अथच छिद्रयुक्त शिला भी मधुसूदन है। यह सर्व्वसौभाग्यदायक है। शिरोदेशमें एकचक्र और मुखमें कृष्णवर्ण शिला सुदर्शन कहलाती है। किसी दूसरेका कहना है, कि श्यामवर्ण, वामपार्श्वमें गदा और चक्र तथा दक्षिणपार्श्वमें एक रेखा रहनेसे उसे सुदर्शन शिला कहते हैं। चक्रविवेकके मतसे वनमाला द्वारा वेष्टित, कदम्ब कुसुमाकार, पञ्च रेखासमन्वित, विन्दुत्रयसमायुक्त, चारुवर्ण और सुशोभन शिला ही सुदर्शन है। नाना रेखामय शिला सहस्रार्जुन कहलाती है। इसकी पूजा करनेसे नष्ट द्रव्य फिरसे मिल जाता है। तीसी फूलकी तरह वर्णविशिष्ट तथा पार्श्वदेशमें अक्षसूत्र अर्थात् अपमालाचिह्नयुक्त जो शिला हैं वह नरमूर्त्ति कहलाती है। तन्त्रमें उसका प्रकार बताया है। यथा—

"गोपुच्छसदृशी माला यद्वा सर्पाकृतिः शुभा।"

वदनमें चक्र और कृष्णवर्ण शिला राममूर्त्ति कहलाती है। यह पूजकको कवित्व दान करती है। एकचक्र, चतुर्वक्र वर्त्तुल, श्यामवर्ण, ध्वजवज्राङ्कुश चिह्नधारी, मालायुक्त विन्दुविशिष्ट, समुन्नतपृष्ठ और स्थूल शिला ही लक्ष्मीनारायण है। इस शिलाके दर्शन करते ही अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। कौस्तुभशोभन, वनमालाविभूषित, पाञ्चजन्य, गदा, पद्म और चक्रयुक्त, दीर्घ शिरेखाविशिष्ट तथा स्वर्णविलेपितगात्र शिलाचक्र ही वीरनारायण कहलाती है। वदनमें एक चक्रचिह्न, गात्रमें पञ्चायुध रेखा, चक्रके दोनों पार्श्वमें फणि और पङ्कज रेखा, सुवर्त्तुल, सुस्निग्ध और क्षीरसदृश कान्तिसमन्वित शिला ही क्षीराब्धिशयन नामसे प्रसिद्ध है। नाभिचक्र उन्नत और उज्ज्वल दो रेखा अथवा पद्मचिह्न युक्त तथा वनमालाविभूषित होनेसे यह माधव कहलाती है। वैश्वानर-संहितामें लिखा है,—मधुवर्ण, गदाकान्तिविलक्षित, सूक्ष्म और मध्यमें शोभनचक्रविशिष्ट होनेसे उसे माधवशिला कहते हैं। यह शिलाचक्र सौभाग्य और मोक्षदायक है। अङ्कुशाकार, कृष्णवर्ण, रेखासमन्वित अथवा श्याम दूर्वादलाकार, वामोन्नत और कपिञ्जल होनेसे यह हयग्रीव कहलाती है। सार्द्धचक्र, पृष्ठछिद्र और विन्दुमान्, पद्मवत् चक्रशाली तथा शुक्लाभ अथवा लोहिताभ होनेसे उसको परमेष्ठिशिला कहते हैं। विष्वक्सेन शिला अति स्थूल होती है। इसका दूसरा नाम दामोदर भी है। दीर्घाकार, कृष्णवर्ण और पंजराकृतिरूपलांछनविशिष्ट शिला ही विष्णुपञ्जर कहलाती है। यह सर्वकामप्रद है। श्याम, नील अथवा सितवर्ण स्वर्णवर्णकी दो तीन या चार लम्बी रेखा जिसमें रहती है, वह शिला गरुड़ नामसे पूजित होती है। अणुगह्वरसंयुक्त और चक्रहीन शिला निर्मोत बुद्ध कहलाती है। इसकी पूजा करनेसे परम पद लाभ होता है। ईषत् दीर्घ, मनोज्ञ, स्निग्ध और मधुपिङ्गलविग्रह हिरण्यगर्भ नामसे प्रसिद्ध है। इसके ऊपर स्फटिककी तरह दीप्तिविशिष्ट अनेक स्वर्णरेखाएं भी रहती हैं। एतद्भिन्न

पृष्ठ पार्श्वमें श्रीवत्साकार लांछन जो शिलामें है, वैसी वर्त्तुल और कृष्णवर्णकी शिलाको हिरण्यगर्भ कहते हैं। ऊर्द्ध्वचक्र बन्धुर द्वादशमुख, पीताभ और द्वार देश रेखात्रयविभूषित अथवा सचक्र, गोस्तनाकार और वर्त्तुल शिलाचक्र पीताम्बर देव कह कर पूजित होते हैं। भास्करवर्ण, पद्मयुक्त, लिङ्केशवद्वचक्र, अर्द्धचन्द्र-युक्त, वनमालाङ्कित और कण्ठमें श्रीवत्साङ्कित रहनेसे वह पद्मनाभ कहलाती है। इस शिलाकी प्रतिदिन तुलसीपत्र द्वारा पूजा करनेसे अति दरिद्रको भी राज्य-लाभ होता है।

२य या द्विचक्र।—गण्डकी नदीमें दो चक्रयुक्त जो सब शिलाएं पाई गई हैं उनकी संख्या सबसे अधिक है तथा साधारणतः पूजित होती हैं। वे सब शिला मत्स्य-कूर्मादि नामसे जनसाधारणमें परिचित हैं। नीचे उन सब शिलाओंका संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

मत्स्याकृतिकी तरह मुख और मुखकी तरह चक्रवि-शिष्ट, श्रीवत्स बिन्दु और मालायुक्त, दीर्घाकार, कृष्ण मूर्त्तिको ही मत्स्य कहते हैं। (वराहपुराण) ब्रह्म और पद्मपुराणके मतसे श्याम अथवा काञ्चनवर्ण, बिन्दुत्रयविभूषित, मत्स्यरूप, दीर्घ अथवा वामभागमें मत्स्यचिह्न रहनेसे वह मत्स्यमूर्त्ति कहलाती है। अग्नि-पुराण, ब्रह्माण्डपुराण और मत्स्य-सूक्तमें इसका प्रका-रभेद कहा गया है। पृष्ठभाग कूर्मकी तरह उन्नत वर्त्तुल, हरिद्वर्ण समाकीर्ण और कौस्तुभभूषित शिला ही कूर्ममूर्त्ति है। उन्नतपृष्ठ, पीतवर्ण, अति स्निग्ध, अधश्चक्र और द्वारदेशमें चक्रसमन्वित होनेसे वह वराह-मूर्त्ति कहलाती है। मतान्तरसे विपरीतस्थित चक्र, इन्द्र नीलनिभ वर्णविशिष्ट, स्थूल, त्रिरेखालांछित, अथवा अतसीकुसुमप्रभ वा नीलोत्पलनिभ, दीर्घाकार, दीर्घ-द्वारयुक्त, जर्जरतनु, पृष्ठोन्नत, दीर्घास्य, वामभागमें उन्नत चक्र, पृष्ठ पर रेखायुक्त और वराहाकार शिलाको वराहमूर्त्ति कहते हैं। अधश्चक्र, अतिकलस, स्वर्ण-दंष्ट्र और अंकुशाकार वदन होनेसे वह भूवराह होगी। पीताभ, सूक्ष्मरन्ध्र, चक्रसमन्वित सुन्दर दन्तसहित शिलाका नाम धरणीधर वाहर है। चक्र समन्वित और दक्षिण भागमें गोष्पद चिह्न रहनेसे उसे लक्ष्मीवराह जानना होगा। अतिविकटाकार, द्विचक्रविशिष्ट और विकट मूर्त्ति नृसिंह कहलाती है। इस प्रकार लक्षणयुक्त दीर्घ मुखी और केशराकार रेखायुक्त शिला भी नरसिंह नामसे पुकारी जाती है। पृथुचक्र, महामुख, तीन वा पञ्चबिन्दुयुक्त अथवा स्थूलचक्र, गुड़ लाक्षावर्ण, द्वारोपरि सुशोभन युग्मरेखा विशिष्ट होनेसे उसे कपिलनरसिंह कहते हैं। द्वारभाग पीतवर्ण और स्वर्णरेखायुक्त तथा मुखके समीप चक्र रहनेसे वह योगिनृसिंह शिला कहलाती है। दन्तशोभित दीर्घकन्दरविशिष्ट, मण्डपवत् चन्द्रयुक्त दक्षिणोन्नत मस्तक होनेसे उसे विदारनृसिंह कहते हैं। महोदर तथा मध्यस्थ चक्र उन्नत और समभावापन्न होनेसे उसे आकाशनरसिंह जानना होगा। बहुछिद्र, भीमवपु और स्वर्णवर्णका चक्र जिसमें रहता है, उसका नाम राक्षस नृसिंह है। इस शिलाको घरमें रखनेसे निश्चय ही अग्नि द्वारा गृहभस्म होगा। दो चक्र और दो मुख, द्वारा ऊर्द्ध्वाकृति तथा स्थूलदेह होनेसे उसको जिह्वा-नृसिंह जानना चाहिये। रन्ध्र सूक्ष्म, चक्र दो और वनमालाविभूषित होनेसे उसे ज्वालानृसिंह कहते हैं। जिस शिलामें दो स्थूल चक्रके मध्य रेखा रहती है तथा गालमें भी सुशोभना रेखा दिखाई देती है, फिर जिसमें कपिल-नरसिंहके लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं वह शिला महानृसिंह कहलाती है। विकृतास्य, वनमाला विभू-षित, वाम पार्श्वमें चक्र, कृष्णवर्ण और बिन्दुयुक्त होने से उसको लक्ष्मीनृसिंह कहते हैं। शिलाभाग कपीश और पृष्ठदेश सप्तफणाङ्कित रहनेसे वह अनन्तनृसिंह समझी जाती है।

इन्द्रनील सदृशाकार, वनमाला और अम्बुज द्वारा उज्ज्वल, ह्रस्व एवं वर्त्तुलाकृति शिला वामन कहलाती है। यह वामन मूर्त्ति तीसी फूलकी तरह और कुछ उन्नतमस्तकवाली होती है तथा उसका चक्र कुछ अस्पष्ट रहता है। यह कामप्रद है। रन्ध्र सूक्ष्म तथा कुक्षि बड़ी होती है। यह वामन दुर्लभ है। मता-न्तरसे स्पष्ट चक्र, दीर्घास्य, वृहद्गह्वर, वर्त्तुल, शिलाका मुख उन्नत वा उच्च अवस्थित, नाभि उन्नत और कृष्ण

रेखा द्वारा वेष्टित, फिर चक्रके दोनों पार्श्वमें स्तूपी पुष्पाकृति आदि चिह्न दिखाई देनेसे उसे वामन शिला जानना होगा। वामन मूर्त्तिश्वेतविन्दुयुक्त अथवा उज्ज्वल विन्दु द्वारा भूषित, अतसी कुसुमसदृश वर्णविशिष्ट या नीलरक्ताभ होनेसे उसको दधिवामन कहते हैं। पीतवर्ण तथा परशु, कोदण्ड और लाङ्गल चिह्न समन्वित शिला राममूर्त्ति है। इस राममूर्त्तिके फिर अनेक भेद देखे जाते हैं। परशु समन्वित, दूर्वादलकी तरह श्यामवर्ण, उन्नत तथा मध्यदेशमें चक्र रहनेसे वह परशुराम है। वह मूर्त्ति पीत चिह्नयुक्त वाम या दक्षिणमें चक्रयुक्त तथा पृष्ठ या पार्श्व भागमें दन्ताकार रेखा दिखाई देने पर भी वह जामदग्न्य कहलाती है। धनुर्वाणकी तरह रेखाकार अथवा दीर्घ, विन्दुयुक्त और नाभिचक्रमें बहु छिद्र रहनेसे उसे दाशरथि राम-शिला जानना चाहिये। जिसके ऊर्द्ध्वदेशमें चक्र, तूण, शार्ङ्ग धनु और शरचिह्न रहता है। उसका नाम कौशल्यानन्दन राम है। स्निग्ध, दूर्वाभ, चक्रशोभित तथा वह चक्र वाण, तूण और कार्मुक समायुक्त अथवा पृष्ठदेशमें दन्त और पार्श्वमें दो रेखा दिखाई देनेसे उसको रामचन्द्र कहते हैं। श्यामल और वर्त्तुलाकार शिला ही राघवराम-शिला है, वाणतूणीर और ज्याशोभित तथा कुण्डल और माल्यसमाहित शिला वीरराम कहलाती है। पृष्ठ भाग पर पांच रेखा तथा पार्श्वदेशमें धनुर्वाणचिह्नयुक्त विल्वफल सदृश शिला पुत्रद राम कहलाती है।

रक्त विन्दुयुक्त चक्रशोभित, दिव्याम्बरधारी, चाप और तूणीर संयुक्त और करालवदन शिलाका नाम विजयराम है। वर्त्तुल अथवा कुछ आयत तथा एक धनुर्युक्त और नीलाम्बुद प्रभाविशिष्ट शिलाको कोदण्डि राम कहते हैं। मूर्द्धदेशमें मालाचिह्न धनुर्वाण और पार्श्वमें खुरयुत शिला ही हयराम है। मुर्गेके अंडेकी तरह आभाविशिष्ट, श्यामल और उन्नत पृष्ठ तथा दो रेखासे युक्त और कोदण्डी लक्षण होने पर भी उसे हयराम कहेंगे। मुर्गेके अंडेकी तरह आकार, अधोचक्र, कुण्डलयुक्त द्वारदेशमें समान दो चक्र और कल्पवृक्षचिह्नित शिला सीताराम कहलाती है। मध्यमाकृति, वर्त्तुलाकार, शरतूणीरसमन्वित और दाण-

विक्षत तथा दूर्वादलश्यामल विग्रह रणराम नामसे परिचित है। मस्तक या जानुमें धनुर्वाणका चिह्न, पार्श्वमें खुर और नीलाम्बुद समप्रभ होनेसे उसको दुष्टराम कहते हैं। पृष्ठ भागमें पञ्चरेखा दोनों पार्श्वमें धनुर्वाण चिह्नित स्थूलअङ्ग, हरिलोचनमणिभगात्र अथवा दीर्घाकार, वृहद्द्वार, श्वेतलाङ्गल चिह्नित, पृष्ठ पर मुषलचिह्न नीलवर्ण उज्ज्वल प्रभाशाली और पृथुचक्र शिला वलराम कहलाती है। हल और मुषलरेखाङ्कित, शुक्लाभ, वनमालायुक्त, मधुवर्ण विन्दुविशिष्ट शिलाका नाम सङ्कर्षण-राम है। जिसके पृष्ठभाग पर पुष्कर चिह्न, इस प्रकार एकलग्न शिला अथवा जिसके सभी ओर ऊर्द्ध्वमुख देखा जाता है, वही शिला पुरुषोत्तम है। जिस शिलाकी देह चापाकृति है और जो विविध वर्णोंसे शोभित है, वही शिला महीधर कहलाती है। कृष्णवर्ण, पीत विन्दुयुक्त, कृशदेह, पार्श्वमें विन्दुयुक्त, द्वारतुल्य नाभिदेश, पृष्ठ कूर्माकार और दीर्घाकृति होनेसे वह शिला कृष्णमूर्त्ति नामसे पूजित होती है। उन्नतदेह, कृष्णाभ, निम्न और अधोदेश विन्दुयुक्त तथा दीर्घास्य होनेसे उस शिलाको बालकृष्ण कहते हैं। श्यामवर्ण, अति स्निग्ध, छत्राकार, सूक्ष्मद्वार, विन्दुयुक्त रक्तवर्ण रेखाविशिष्ट और शिर पर पद्मचिह्न रहनेसे वह गोपल मूर्त्ति नामसे प्रसिद्ध है। वह गोपालमूर्त्ति नातिस्थूल, नातिकृष्ण, वनमालायुत, श्रीवत्सलाञ्छन, दीर्घवक्त्रविशिष्ट और पार्श्वमें वेणुचिह्नाङ्कित होनेसे वह भूमि, धान्य और धनप्रद होती है।

अर्द्धश्याम और अर्द्धरक्ताकार, शङ्खचक्र धनु और शर चिह्न विशिष्ट तथा दीर्घ और सुषिरयुक्त होनेसे वह मदनगोपाल कहलाती है। जिस मदनगोपाल शिलाके वामपार्श्वमें पद्म तथा माला और कुण्डलादि चिह्न रहता है, वह मूर्त्ति पुत्र पौत्र और धन ऐश्वर्य देती है। उक्त प्रकारकी लक्षणाक्रान्त मूर्त्ति दीर्घाकार और सुरेखाविशिष्ट होनेसे उसको गोपाल जानना होगा। यदि शिला वर्त्तुल, मस्तक निम्नमुखी, दोनों पार्श्व रजतविन्दुयुक्त तथा दण्ड स्रक् और वेणु शोभित हों, तो वह गोवर्द्धन-गोपाल कहलाती है।

वंशीचिह्नसमायुक्त, स्निग्धगात्र, श्याम अथवा नाना

पृष्ठ पार्श्वमें श्रीवत्साकार लांछन जो शिलामें है, वैसी वर्त्तुल और कृष्णवर्णकी शिलाको हिरण्यगर्भ कहते हैं। ऊर्द्ध्वगचक्र सम्मुख द्वारशमुख, पीताभ और द्वार देश रेखात्रयविभूषित अथवा सचक्र, गोस्तनाकार और वर्त्तुल शिलाचक्र पीताम्बर देव कह कर पूजित होते हैं। नारंगवर्ण, पद्मयुक्त, निष्केशवद्धचक्र, अर्द्धचन्द्र-युक्त, वनमालाङ्कित और कण्ठमें श्रीवत्साङ्कित रहनेसे वह पद्मनाभ कहलाती है। इस शिलाकी प्रतिदिन तुलसीपत्र द्वारा पूजा करनेसे अति दरिद्रको भी राज्य-लाभ होता है।

२य या द्विचक्र।—गण्डकी नदीमें दो चक्रयुक्त जो सब शिलाएं पाई गई हैं उनकी संख्या सबसे अधिक है तथा साधारणतः पूजित होती हैं। ये सब शिला मत्स्य-कूर्मादि नामसे जनसाधारणमें परिचित हैं। नीचे उन सब शिलाओंका संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

मत्स्याकृतिकी तरह मुख और मुखकी तरह चक्रविशिष्ट, श्रीवत्स विन्दु और मालायुक्त, दीर्घाकार, कृष्ण मूर्त्तिको ही मत्स्य कहते हैं। (वराहपुराण) ब्रह्म और पद्मपुराणके मतसे श्याम अथवा काञ्चनवर्ण, विन्दुत्रयविभूषित, मत्स्यरूप, दीर्घ अथवा वामभागमें मत्स्यचिह्न रहनेसे वह मत्स्यमूर्त्ति कहलाती है। अग्नि-पुराण, ब्रह्माण्डपुराण और मत्स्य-सूक्तमें इसका प्रकारभेद कहा गया है। पृष्ठभाग कूर्मकी तरह उन्नत वर्त्तुल, हरिद्वर्ण समाकीर्ण और कौस्तुभभूषित शिला ही कूर्ममूर्त्ति है। उन्नतपृष्ठ, पीतवर्ण, अति स्निग्ध, अधश्चक्र और द्वारदेशमें चक्रसमन्वित होनेसे वह वराह-मूर्त्ति कहलाती है। मतान्तरसे विषमस्थित चक्र, इन्द्र नीलनिभ वर्णविशिष्ट, स्थूल, त्रिरेखालांछित, अथवा अतसीकुसुमप्रभ या नीलोत्पलनिभ, दीर्घाकार, दीर्घ-द्वारयुक्त, जर्जरितनु, पृष्ठोन्नत, दीर्घास्य, वामभागमें उन्नत चक्र, पृष्ठ पर रेखायुक्त और वराहाकार शिलाको वराहमूर्त्ति कहते हैं। अधश्चक्र, अतिकलस, स्वर्ण दंष्ट्र और अंकुशाकार वदन होनेसे वह भूवराह होगी। पीनाभ, सूक्ष्मरंध्र, चक्रसमन्वित सुन्दर दन्तसहित शिलाका नाम धरणीधर वराह है। चक्र समन्वित और दक्षिण भागमें गोष्पद चिह्न रहनेसे उसे लक्ष्मीवराह जानना होगा। अतिविवृतास्य, द्विचक्रविशिष्ट और विकट मूर्त्ति नृसिंह कहलाती है। इस प्रकार लक्षणयुक्त दीर्घ मुखी और केशराकार रेखायुक्त शिला भी नरसिंह नामसे पुकारी जाती है। पृथुचक्र, महामुख, ति या पञ्चविन्दुयुक्त अथवा स्थूलचक्र, शुद्ध लाक्षावर्ण, द्वारोपरि सुशोभन युग्मरेखा विशिष्ट होनेसे उसे कपिलनरसिंह कहते हैं। द्वारमान पीतवर्ण और स्वर्णरेखायुक्त तथा मुखके समीप चक्र रहनेसे वह योगिनृसिंह शिला कहलाती है। दन्तशोभित दीर्घकन्दरविशिष्ट, अण्डवत् चन्द्रयुक्त दक्षिणोन्नत मस्तक होनेसे उसे विदारनृसिंह कहते हैं। महोदर तथा मध्यस्थ चक्र उन्नत और समभावापन्न होनेसे उसे आकाशनरसिंह जानना होगा। बहुछिद्र, भीमवपु और स्वर्णवर्णका चक्र जिसमें रहता है, उसका नाम राक्षस नृसिंह है। इस शिलाको घरमें रखनेसे निश्चय ही अग्नि द्वारा गृहभस्म होगा। दो चक्र और दो मुख, द्वारा ऊर्द्ध्वाकृति तथा स्थूलदेह होनेसे उसको जिह्वा-नृसिंह जानना चाहिये। रन्ध्र सूक्ष्म, चक्र दो और वनमालाविभूषित होनेसे उसे ज्वालानृसिंह कहते हैं। जिस शिलामें दो स्थूल चक्रके मध्य रेखा रहती है तथा गालमें भी सुशोभना रेखा दिखाई देती है, फिर जिसमें कपिल-नरसिंहके लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं वह शिला महानृसिंह कहलाती है। विवृतास्य, वनमाला विभूषित, वाम पार्श्वमें चक्र, कृष्णवर्ण और विन्दुयुक्त होने से उसको लक्ष्मीनृसिंह कहते हैं। शिलागात्र कर्णोंध और पृष्ठदेश सप्तफणाङ्कित रहनेसे वह अनन्तनृसिंह समझी जाती है।

इन्द्रनील सदृशाकार, वनमाला और अम्बुज द्वारा उज्ज्वल, ह्रस्व एवं वर्त्तुलाकृति शिला वामन कहलाती है। यह वामन मूर्त्ति तीसी फूलकी तरह और कुछ उन्नतमस्तकवाली होती है तथा उसका चक्र कुछ अस्पष्ट रहता है। यह कामप्रद है। रन्ध्र सूक्ष्म तथा कुक्षि बड़ी होती है। यह वामन दुर्लभ है। मता-न्तरसे स्पष्ट चक्र, दीर्घास्य, ह्रस्वगह्वर, वर्त्तुल, शिलाका मुख उन्नत या उच्च अवस्थित, नाभि उन्नत और कुब्जत

रक्तवर्ण रेखा द्वारा आवृतदेह, चक्रविशिष्ट, किञ्चित् कपिल तथा सूक्ष्म अथवा स्थूल शिलाका नाम अधोक्षज शिला है। शालग्रामके शिखर या ऊपरमें शिवलिङ्गाकार चिह्न रहनेसे योगेश्वर मूर्त्ति नामसे उनकी पूजा होती है। एकचक्रादि शिला मूर्त्तिमें भी यदि यह लिङ्गचिह्न रहे, तो शिलाचक्र योगेश्वर कहलाता है। इसकी पूजा करनेसे ब्रह्महत्यापातक दूर होता है। इंद्रनीलाभ, वृत्तचक्र, महाबिल और सर्पफणा तथा पार्श्वरेखासमन्वित शिला उपेन्द्र कहलाती है। श्यामल, स्वल्पद्वार, चक्रसमन्वित, ऊर्द्ध्वमुख और अधोदेश विन्दुयुक्त होनेसे उसको हरिमूर्त्तिशिला कहते हैं। यह कामद, मोक्षद और धनद तथा सर्वपापनाशिनी है। केवल वनमाला, पद्म और चक्र चिह्न रहनेसे उसको लक्ष्मीहरि कहते हैं।

जिस शिलाके सर्वाङ्गमें स्वर्णाभ्रवर्ण विन्दु रहता है, वह यदि वर्त्तुल और ह्रस्वचक्र हो, तो उसे सप्तवीरश्रवस् कहते हैं। सुवर्णशृङ्गकी तरह द्युतिविशिष्ट, वर्त्तुल, स्निग्ध, केशर मध्यगत चक्र तथा पृष्ठरेखा और विंदुभूषित होनेसे गरुड़ध्वज कहलाती है। दो दंष्ट्राविशिष्ट विवरद्वय, समचक्र तथा दो पक्ष द्वारा शोभित होनेसे वह गरुड़शिला नामसे पूजित होती है। जो शिला स्थूल चिह्न तथा कलस द्वारा शोभित है, उसे वैनतेय कहते हैं। जिसका पृष्ठदेश सित, अरुण और असिताभ वर्णविशिष्ट है तथा जिस पर अक्षमालाकृति चिह्न दिखाई देता है, उस शिलाका नाम दत्तात्रेय है। जिस शिलाके पृष्ठसे कण्ठ पर्यन्त एक दो चार या पांच वलयाकार स्वर्ण रेखा रहती है तथा वह यदि श्याम, नील वा कृष्णवर्णकी हो, अथवा उसमें कुण्डलीकृत सर्पफणाका चिह्न दिखाई दे, तो वह शिला शेषमूर्त्ति कहलाती है। जिस शिलाके पार्श्व और समीपमें चार रेखा तथा मध्यदेशमें दो चक्र रहते हैं, उसका नाम चतुर्मुख शिला है। धनुकी तरह आकारविशिष्ट, चक्र और पद्मसमन्वित तथा नील और श्वेतवर्ण मिश्रित होनेसे उसको हंसमूर्त्ति कहते हैं। मयूरके गलेके सदृश वर्णविशिष्ट, स्निग्ध, वर्त्तुलाकार द्वारयुत, विलके मध्य चक्र, चक्रके दक्षिण पार्श्वमें भास्करमूर्त्ति तथा वराहरेखासमन्वित शिला परहंस नामसे प्रसिद्ध है। शरीरमें सर्पफणाचिह्न, एकचक्र और उसमें दो समान चक्र, दक्षिणकी ओर पद्मपत्रसदृश चिह्न तथा हेमवर्ण कला जिस शिलामें विद्यमान रहती है, वह शिला हैहयमूर्त्ति कह कर विदित है।

३। त्रिचक्रसमन्वित ग्यारह प्रकारकी शालग्राम शिला पाई जाती हैं। ये पुरुषोत्तम, शिशुमार, त्रिविक्रम, मत्स्यमूर्त्ति, अधोमुख, नृसिंह, बुद्ध, अच्युत, कल्कि, त्रिलोचन, लक्ष्मीनारायण और अनिरुद्ध नामसे प्रसिद्ध हैं। ऊपर इन नामोंसे वर्णित द्विचक्र शिलासे इनका लक्षण स्वतन्त्र है।

मध्यमें स्वर्णवर्णचक्र तथा मस्तकदेश वृहत् चक्रसमन्वित और अतसी कुसुमकी तरह विन्दुशोभित शिला पुरुषोत्तम कहलाती है। दीर्घकाय ईषत् गह्वर, सम्मुख भागमें दो और पृष्ठभागमें एक चक्र रहनेसे वह शिशुमार कहलाती है। गह्वरमें दो तथा उन्नतपुच्छ एक चक्रविशिष्ट शिलाका नाम भी शिशुमार है। त्रिकोणाकार और चक्रत्रय भूषित शिलाको त्रिविक्रम कहते हैं। यह भ्रमराभग सङ्काश ईषत् दीर्घ होती और पार्श्वमें कोदण्डलाञ्छन होता है। इसमें अश्वचक्र, विशालाक्षी तरह वर्णविशिष्ट मूर्द्धन्य और गर्भमें चक्र रहता है। कांस्य सदृश वर्ण, तीन परस्पर विच्छिन्न दीर्घरेखायुत, द्वारके मध्य दो चक्र तथा पुच्छभागमें एक चक्र, दक्षिणमें शकटाकृति चिह्न और वाममें रेखा रहनेसे मत्स्यमूर्त्ति जानी जाती है। सम्मुख, पार्श्व और पृष्ठमें जिस शिलाके तीन चक्र देखे जायंगे, वही अधोमुखनृसिंह कहलाती है। जिस शिलाके दोनों चक्षुगह्वर दो चक्रसे अङ्कित तथा शिर पुच्छ या ऊर्द्ध्वभागमें सिर्फ एक चक्र रहता है, उसको बुद्धमूर्त्ति कहते हैं। नीचेकी ओर दो और पश्चिमदेशमें एक चक्र और सूक्ष्म गह्वरविशिष्ट सुशीतल शिला हो अच्युत नामसे प्रसिद्ध है। हयाकार और त्रिचक्रलाञ्छित शिला कल्किमूर्त्ति है। एकद्वार और त्रिचक्रयुक्त शिला त्रिलोचन है। इसी प्रकार त्रिचक्रशोभित एक और प्रकारकी शिला है जिसे लक्ष्मीनारायण कहते हैं। कृष्णवर्ण, नाभिसमीपगत समद्वार चक्र, ऊर्द्ध्वमें सूक्ष्म चक्र और पार्श्वमें पुष्प चिह्न प्रकाशक चक्र रहनेसे वह अनिरुद्धशिला कहलाती है।

वर्ण समायुक्त और वनमालाविभूषित होनेसे उसको वंशीवदन या वंशी-गोपाल कहते हैं। अर्द्ध चन्द्र-निभानन, कृष्णवर्ण और दीर्घाकार शिलाको सन्तान-गोपाल कहलाती है। मुर्गेके अंडेकी तरह, वनमाला भूषित, श्रीधरमूर्त्तितुल्य तथा लाङ्गल, वेणु और कुण्डल चिह्नाक्रान्त शिला ही लक्ष्मीगोपाल है। द्वारदेश पर दो चक्र और लक्ष्मीसमन्वित, अथवा वज्रायुध रेखा विशिष्ट हिमांशुसदृश वर्ण और नाभिदेशमें चक्र रहनेसे वह शिला वासुदेव कहलाती है। सुवर्णवर्णरेखा और बिन्दुत्रयसमन्वित तथा हिरण्यवर्ण पद्मयुक्त होनेसे कालीयदमन कहते हैं। चक्र भाग अति शोभाशाली, असितवर्ण, नातिस्थूल, वनमालापरिवृत और पृष्ठदेशमें श्रीवत्सलाञ्छन रहनेसे वह स्यमन्तहारी है। रक्तवर्ण बिन्दुद्वययुक्त, श्यामवर्ण, दन्तिमुक्तोपम शिला ही चाणूर मर्दन कहलाती है। कृष्ण और नीलाम्बुद वर्णविशिष्ट शिलाका नाम कंसमर्दन है। बद्धचक्र होनेसे बुद्ध मूर्त्तिके साथ इसका सादृश्य है। अति रक्तवर्ण सूक्ष्मगर्त्त, स्पष्टचक्र, विपरासन, द्वारके ऊपर और पृष्ठ भाग पर कपालाकृति रेखा रहनेसे वह कल्किमूर्त्ति कह-लाती है। वराहपुराणके मतसे वह मूर्त्ति इन्द्रनील-निभ दीर्घाकार, वनमालाविभूषित और अङ्कुशाकारपदम, कृष्णवर्ण स्थूलचक्र, द्वारके ऊपर अथवा पृष्ठ भाग पर गदाकृति रेखायुक्त होनेसे उसको विष्णुमूर्त्ति कहते हैं। वराहपुराणमें अपराजित पुष्पकी तरह वर्णविशिष्ट, वनमाला और पद्मचिह्नयुक्त तथा वज्रायुधधर शिलाको विष्णुलक्षण कहा गया है।

सुदर्शनमूर्त्तिको लक्षणाक्रान्त अथच दो चक्रयुक्त शिला लक्ष्मीनारायण कहलाती है। नारायण शिला श्यामवर्ण, नाभिचक्र उन्नत, दीर्घ तीन रेखायुक्त, दक्षिणमें क्षुद्र छिद्र, एक पद्माङ्कित और दक्षिणावर्त्त तथा धनुर्लाञ्छनयुक्त होती है। मुषल, आयुध,माला, शङ्ख, चक्र और गदाङ्कित शिला कपिनारायण कहलाती है। तमालदलसङ्काश और स्वर्णवर्णलिप्त तथा शोणचक्र समन्वित शिलाएं नरनारायण कहते हैं। वर्त्तुल मूर्त्ति, रेखावृत, नीलरेखायुक्त, दीर्घास्य और पृथुचक्र होनेसे उसको स्वयम्भू शिला कहा गया है। मेघवर्ण, गोष्पदचिह्नशाली, छत्राकार, द्विचक्रविशिष्ट और मध्यमाकार शिला मधुसूदन नामसे प्रसिद्ध है। हयग्रीवसदृश, अङ्कुशाकार, चक्रके समीप रेखायुक्त, बहुबिन्दुसमन्वित तथा पृष्ठ पर नीलद्युति-लघुतिविशिष्ट द्विचक्र शिला भी हयग्रीव कहलाती है। केशव लक्षण शिला चतुष्कोण, श्यामवर्ण, वनमालान्वित सूक्ष्मचक्र और स्वर्णवर्ण बिन्दुविशिष्ट होती है। सूक्ष्मचक्र, पीतवर्ण या नीलाम्बुजनिभ शिला प्रद्युम्न कह कर पूजित होती है। ब्रह्मपुराणके मतसे वह नवीन नीरदप्रभ है।

ललाटदेश श्वेतनाग चिह्न और काञ्चनवर्ण ऊर्द्ध्व रेखा-समन्वित तप्त काञ्चनवर्णाभ शिला लक्ष्मीप्रद्युम्न कहलाती है। वराहपुराणमें लिखा है, कि जवाकुसुमसङ्काश, वन-मालाधर और धनुर्बाण तथा अजिन चिह्नयुक्त शिलाको भी लक्ष्मीप्रद्युम्न कहते हैं। इस प्रकार सूक्ष्मचक्रशाली तथा स्वर्ण और रौप्यरेखाविशिष्ट होनेसे वह अनिरुद्ध कहलाती है। वह अनिरुद्ध विग्रह पीताभ, वर्त्तुल, रेखात्रयपरिवृत, पद्मलाञ्छित अथवा पीताभ होती है। गोपीनाथ शिला वर्त्तुल, वकुलाकृति, पीतासनस्थ अथवा कृष्णवर्ण पुष्करयुक्त होती है। श्रीयुक्त, सूक्ष्मगह्वरविशिष्ट, श्यामलाभ निम्नाकृति शिरः, निम्नवृन्त और वर्त्तुल शिलाको श्रीधर कहते हैं। मध्यदेशमें चक्र, स्थूल, दूर्वाभ, सङ्कीर्णद्वार और पीतरेखायुत शिला दामोदर कह-लाती है। ऊपर और नीचेकी ओर चक्रवत् गर्त्त, मुख उतना बड़ा नहीं और मध्यमें लम्बरेखा रहनेसे उसको राधा-दामोदर कहते हैं। मुख और पृष्ठदेश मयूरके गलेकी तरह वर्ण, स्थूलचक्र, वृहदास्य और मालाचिह्नाङ्कित शिला लक्ष्मीपति कहलाती है। वह लक्ष्मी और सम्पत्ति-दायक है। वर्त्तुल, बहुचिह्नयुक्त, हृस्वचक्र, लोलस्तम्भ सन्निभ शिलाको चक्रपाणि कहते हैं। द्वारदेश पर चक्र और रक्तवर्ण शिला जगद्योनि कहलाती है। पीत और रक्त रेखाविमिश्रित, द्वार और वामभागमें चक्र, दक्षिण भागमें माला रहनेसे उसको यज्ञमूर्त्ति कहते हैं। पार्श्व या पृष्ठ पर दो नयनचिह्न दिखाई देनेसे उसको पुण्डरी-काक्ष शिला कहते हैं। इस शिलाको पूजा करनेसे सभी लोग वशीभूत होते हैं। अतिशय कृष्ण और

एकवर्ण रेखा द्वारा आवृतदेह, चक्रविशिष्ट, किञ्चित् कपिल तथा सूक्ष्म अथवा स्थूल शिलाका नाम अधोक्षज शिला है। शालग्रामके शिखर या ऊपरमें शिवलिङ्गाकार चिह्न रहनेसे योगेश्वर मूर्त्ति नामसे उनकी पूजा होती है। एकचक्रादि शिला मूर्त्तिमें भी यदि वह लिङ्गचिह्न रहे, तो शिलाचक्र योगेश्वर कहलाता है। इसकी पूजा करनेसे ब्रह्महत्यापातक दूर होता है। इंद्रनीलाभ, वृत्तचक्र, महाबिल और सर्पफणा तथा पार्श्वरेखासमन्वित शिला उपेन्द्र कहलाती है। श्यामल, स्वल्पद्वार, चक्रसमन्वित, ऊर्द्ध्वमुख और अधोदेश बिन्दुयुक्त होनेसे उसको हरिमूर्त्तिशिला कहते हैं। यह कामद, मोक्षद और अन्नद तथा सर्वपापनाशिनी है। केवल वनमाला, पद्म और चक्र चिह्न रहनेसे उसको लक्ष्मीहरि कहते हैं।

जिस शिलाके सर्वाङ्गमें स्वर्णावर्ण बिन्दु रहता है, वह यदि वर्त्तुल और ह्रस्वचक्र हो, तो उसे सत्यवीरभ्रंस कहते हैं। सुवर्णशृङ्गकी तरह द्युतिविशिष्ट, वर्त्तुल, स्निग्ध, केशर मध्यगत चक्र तथा पृष्ठरेखा और बिंदुभूषित होनेसे गरुड़ध्वज कहलाती है। दो रंध्रविशिष्ट विपर्यस्त, समचक्र तथा दो पक्ष द्वारा शोभित होनेसे वह गरुड़शिला नामसे पूजित होती है। जो शिला स्थूल चिह्न तथा कलस द्वारा शोभित है, उसे वैनतेय कहते हैं। जिसका पृष्ठदेश सित, अरुण और असिताभ वर्णविशिष्ट है तथा जिस पर अक्षमालाकृति चिह्न दिखाई देता है, उस शिलाका नाम दत्तात्रेय है। जिस शिलाके पृष्ठसे कण्ठ पर्यन्त एक दो चार या पांच वलयाकार स्वर्ण रेखा रहती है तथा वह यदि श्याम, नील या कृष्णवर्णकी हो, अथवा उसमें कुण्डलीकृत सर्पफणाका चिह्न दिखाई दे, तो वह शिला शेषमूर्त्ति कहलाती है। जिस शिलाके पार्श्व और समीपमें चार रेखा तथा मध्यदेशमें दो चक्र रहते हैं, उसका नाम चतुर्मुख शिला है। धनुषकी तरह आकारविशिष्ट, चक्र और पद्मसमन्वित तथा नील और श्वेतवर्ण मिश्रित होनेसे उसको [illegible]समुशि कहते हैं। मयूरके गलेके सदृश वर्णविशिष्ट, स्निग्ध, वर्त्तुलाकार द्वारयुत, बिलके मध्य चक्र, चक्रके दक्षिण पार्श्वमें भास्करमूर्त्ति तथा वराहरेखासमन्वित शिला परहंस नामसे प्रसिद्ध है। शरीरमें सर्पफणाचिह्न, एकचक्र और उसमें दो समान चक्र, दक्षिणकी ओर पद्मपत्रसदृश चिह्न तथा हेमवर्ण कला जिस शिलामें विद्यमान रहती है, वह शिला हैहयमूर्त्ति कह कर विदित है।

३। त्रिचक्रसमन्वित ग्यारह प्रकारकी शालग्राम शिला पाई जाती है। ये पुरुषोत्तम, शिशुमार, त्रिविक्रम, मत्स्यमूर्त्ति, अधोमुख, नृसिंह, बुद्ध, अच्युत, कल्कि, त्रिलोचन, लक्ष्मीनारायण और अनिरुद्ध नामसे प्रसिद्ध हैं। ऊपर इन नामोंसे वर्णित द्विचक्र शिलासे इनका लक्षण स्वतन्त्र है।

मध्यमें स्वर्णवर्णचक्र तथा मस्तकदेश बृहत् चक्रसमन्वित और अतसी कुसुमकी तरह बिन्दुशोभित शिला पुरुषोत्तम कहलाती है। दीर्घकाय ईषत् गह्वर, सम्मुख भागमें दो और पृष्ठभागमें एक चक्र रहनेसे वह शिशुमार कहलाती है। गह्वरमें दो तथा उन्नतपुच्छ एक चक्रविशिष्ट शिलाका नाम भी शिशुमार है। त्रिकोणाकार और चक्रत्रय भूषित शिलाको त्रिविक्रम कहते हैं। यह भ्रमराभग सङ्काश ईषत् दीर्घ होती और पार्श्वमें कोदण्डलाञ्छन होता है। इसमें अधश्चक्र, त्रिशालाकी तरह वर्णविशिष्ट मूर्द्धन्य और गर्त्तमें चक्र रहता है। कांस्य सदृश वर्ण, तीन परस्पर विच्छिन्न दीर्घरेखायुत, द्वारके मध्य दो चक्र तथा पुच्छभागमें एक चक्र, दक्षिणमें शरकृति चिह्न और वाममें रेखा रहनेसे मत्स्यमूर्त्ति जानी जाती है। सम्मुख, पार्श्व और पृष्ठमें जिस शिलाके तीन चक्र देखे जायगे, वही अधोमुखनृसिंह कहलाती है। जिस शिलाके दोनों वक्ष गह्वर दो चक्रसे अङ्कित तथा शिर पुच्छ वा ऊर्द्ध्वभागमें सिर्फ एक चक्र रहता है, उसको बुद्धमूर्त्ति कहते हैं। नीचेकी ओर दो और वहिर्देशमें एक चक्र और सूक्ष्म गह्वरविशिष्ट सुशीतल शिला ही अच्युत नामसे प्रसिद्ध है। हयाकार और त्रिचक्रलाञ्छित शिला कल्किमूर्त्ति है। एकद्वार और त्रिचक्रयुक्त शिला त्रिलोचन है। इसी प्रकार त्रिचक्रशोभित एक और प्रकारकी शिला है जिसे लक्ष्मीनारायण कहते हैं। कृष्णवर्ण, नाभिसमीपगत समद्वार चक्र, ऊर्द्ध्वमें सूक्ष्म चक्र और पार्श्वमें पुरचिह्न प्रकाशक चक्र रहनेसे वह अनिरुद्धशिला कहलाती है।

४र्थ या चतुश्चक्र—ये शालग्राम शिलाएं चार चक्राङ्कित हैं। लक्षणका व्यतिक्रम रहने पर भी इनके नाममें विशेष पृथक्ता नहीं है।

कैशाकार रेखासमन्वित, दीर्घमुख, वनमाला विराजित तथा बिन्दुयुक्त और चार चक्रविशिष्ट शिला लक्ष्मीनृसिंह कहलाती है। त्रिचक्रवर्गमें महानृसिंह शिलाके दूसरे जो जो लक्षण हैं, इसमें भी वही लक्षण देखे जाते हैं। शिवनाभियुत मस्तक या पृष्ठदेश हो तथा दो या तीन और एक या चार चक्र रहनेसे वह हरिहर कहलाती है। यह शिला सुख और सौभाग्यदायक है। कोदण्डधारी, कुक्कुट अण्डके सदृश आभावाली, श्यामल, उन्नतपृष्ठ, द्वारदेश पर बाणोपर चिह्न, रेखाद्वययुक्त तथा पार्श्वदेशमें धनुषकी तरह आकृति दिखाई देनेसे वह दशकण्ठकुलान्तक राम नामसे प्रसिद्ध होगी। बहुदन्तयुक्त, एक वक्त्रवाली और उसमें चार चिह्नसन्निविष्ट, वायुरथम, धनुर्बाणांकुश छत्रचामर-चिह्नसंयुक्त, वामोन्नत और वनमाला चिह्नधारी शिला सीताराम कहलाती है। चार चक्रविशिष्ट तथा तूण पूरित बाणचिह्नधारी शिलाका नाम रामचन्द्र है। एक द्वार या दो द्वारमें चार चिह्न और गोष्पदचिह्न रहनेसे अथवा वनमाला चिह्न नहीं दिखाई देनेसे उस शिलाको रघुनाथ शिला कहते हैं। पूर्वभाग और पश्चात् भागमें एक एक पद्म तथा मध्यभागमें चार चक्रचिह्न, वनमालाविभूषित, नीलवर्ण शिलाको जनार्दन कहते हैं। नवीननीरदोपम, वनमालारहित तथा एक द्वारमें चार चक्र, ऐसी शिलाका नाम लक्ष्मीजनार्दन है। दूसरी जगह कण्ठदेश श्रीवत्सचिह्नशोभित, वनमालान्वित, दक्षिणभागमें चार चक्र और गोष्पदचिह्न समन्वित शिला लक्ष्मीजनार्दन कहलाती है। चतुर्भुज, मण्डलाकार, चतुश्चक्र चिह्न वाली और नवमेघसदृश मूर्त्तिविशिष्ट शिलाका नाम चतुर्भुज मूर्त्ति है। चतुर्दंष्ट्र शिला चतुश्चक्र-समन्वित होनेसे पितामह कहलाती है। एकद्वारविशिष्ट, चतुश्चक्रयुक्त और छत्राकार शिला पुरुषोत्तम है तथा जिस शिलाके मध्यभागमें विवर और सुन्दर चक्र रहते हैं, उसे हरिमित मूर्त्ति जानना होगा। वदनमें दो चक्र और गह्वरमें दो, इस प्रकार चार चक्रान्वित शिलाके ऊपर यदि दो रेखा और उसके मध्य पद्म और छत्र चिह्न रहे तथा मूषल, असि, धनु, माला, शङ्ख, चक्र और गदाचिह्न दिखाई दे तो उसे लक्ष्मीनारायण कहेंगे। वाम और दक्षिण पार्श्वमें दो दो करके चक्र, मुखमें रक्तवर्ण दो कुण्डल, शङ्ख चक्र, गदा, शार्ङ्ग, बाण और कुमुदधारी तथा मूषल, ध्वज, श्वेतवर्ण छत्र एवं रक्तांशुकधारी शिला अच्युत नामसे परिचित है। वर्त्तुलाकार, क्षीर और ताम्र सवर्ण अथवा नील और श्वेत मिश्रित वर्ण, वदनमें एक और मध्यदेशमें चार चक्र और त्रिबिन्दु तथा चक्रके वाममें शंख और दक्षिणमें पद्मचिह्न रहनेसे वह पन्नगशायी नारायण शिला कहलाती है। शिवनाभियुत तथा पार्श्वमें, वाम या दक्षिणमें दो दो करके चक्र रहनेसे उसे शङ्करनारायण कहेंगे। इसका पूर्वार्द्ध शंख सदृश श्वेतवर्ण तथा पश्चिमार्द्ध श्यामल, अधोदेश रक्त बिन्दुयुक्त पद्मपुटसदृशचक्र और मस्तक पर शररेखा दिखाई देती है। इस शैवोक्त शिलाको चतुश्चक्रवर्गके अन्तर्गत गणना करनेसे कोई दोष नहीं होता।

५म या पञ्चचक्र। जिस शिलाके दोनों द्वार पर चार चक्र तथा वाममें एक चक्र रहे तथा उसमें बाण, तूणीर, चाप और मालाचिह्न दिखाई दे, तो उसे सीताराम कहेंगे। वनमालाङ्कित अथच पञ्चचक्रयुक्त शिला श्रीसहाय नामसे परिचित है। लक्ष्मीनारायण शिलाके दो द्वारके वाम और दक्षिण ओर चार चक्र रहते हैं तथा वह श्रीवत्सशंखचक्राढ्य और पार्श्व चम्पकपुष्पयुक्त होता है। कृष्णवर्ण, पञ्चचक्र, नातिस्थूल, वृहद्द्वार, उन्नत तथा मध्यभाग निम्न और पञ्चचक्रयुक्त होनेसे वह गोविन्द कहलाती है। पूर्व और पार्श्व भागमें एक एक पद्म तथा कृष्ण और नीलाम्बुद वर्णविशिष्ट, मध्यदेशमें एक चक्र तथा बाकी चार चक्र बिन्दुयुक्त होनेसे उसको कंसमर्द्दन जानना होगा। त्रिचक्रवर्गोक्त वासुदेव लक्षणाक्रान्त बिन्दुयुक्त शिला पञ्च चक्रान्वित होने पर भी वह वासुदेव कहलाती है। अग्निपुराणके मतसे चतुश्चक्रान्वित जनार्दन लक्षणाक्रान्त शिला पञ्च चक्रविशिष्ट होने पर भी उसको वासुदेव कहते हैं।

६ष्ठ या षट्चक्र। निम्नलिखित शालग्राम शिला पर छः चक्र देखे जाते हैं। उनके चक्रविन्यासका कोई

विशेष नियम निर्देश नहीं किया जाता। वर्ण, चक्र और अन्यान्य लक्षणोंसे ये शिलाएं श्रीमूर्त्ति, तारकब्रह्मसीताराम, राजराजेश्वर, रामचन्द्र, कल्किमूर्त्ति, प्रद्युम्न और अनन्तपुरुषोत्तम नामसे प्रसिद्ध है।

७म या सप्तचक्र। पट्टाभिराम, राजराजेश्वर, सर्वतोमुख नृसिंह, गदाधर, अनन्त और बलराम नामाभिधेय छः प्रकारकी शिलाएं सात चक्रयुक्त होती हैं। ये राज्य, सुख और सौभाग्यप्रद हैं।

८म या अष्टचक्र। नारायण चक्रपाणि पितामह पुरुषोत्तम तथा नवचक्रवर्णमें नराधिप शिला अति दुर्लभ हैं। एतद्भिन्न दशचक्रवर्णमें हृषीकेश, अनन्त विश्वरूप गोविन्द और दशावतार शिला, एकादशमें अनिरुद्ध तथा द्वादशमें सूर्य या द्वादशात्ममूर्त्ति शिला पाई जाती है।

इसके बाद बहुचक्रविशिष्ट शिलाका विषय लिखा जाता है। इन सब शिलाओंमें साधारणतः तेरहसे इक्कीस चक्र देखे जाते हैं। ऐसी बहुचक्रान्वित शिलाकी पूजा करनेसे गृहस्थका अशेष मङ्गल तथा चतुर्वर्ग फल लाभ होता है। इस वर्गमें उक्त अनन्त नाना वर्णयुत होते हैं, कभी कृष्णवर्ण, कभी नवीन नीरदप्रभ नीलसन्निभ वर्णविशिष्ट पाई जाती है। इसमें चौदहसे बीस चक्रचिह्न रहते हैं तथा बहुत-सी मूर्त्तियां सर्पफणा और वनमाला चिह्नयुक्त दक्षिणावर्त्त दिखाई देती हैं। अङ्कुशाकार, चक्र समीपगत रेखाविशिष्ट तथा पृष्ठदेश नीरद सदृश नीलवर्ण और बहुचक्रसमायुक्त होनेसे उसे हयग्रीव कहते हैं। जिस शिलाके बहुचक्र, बहुद्वार और बहुवर्ण देखे जाते हैं तथा जिसका उदर बड़ा होता है, वह शिला पातालनरसिंह कहलाती है। इसके तृतीय चक्रसे आरम्भ कर पार्श्वदेशमें क्रमशः दश चक्र विद्यमान रहते हैं। बहुचक्र, बहुद्वार और बहुरेखाविशिष्ट, बहुउदरयुक्त शिलाके अभ्यन्तरभागमें एक बड़ा चक्र रहनेसे वह बहुरूपी शिला कहलाती है। जिस शिलाके पुरोभागमें, पार्श्व और पृष्ठमें अनेक चक्र रहते हैं, उसे अधोमुख चक्रशिला कहते हैं। बहु-चक्राङ्कित, अनेक मूर्त्तिसमन्वित, पद्मचक्र और स्थूलपाद शिलाका नाम विश्वरूप है। इसके दो भेद हैं। शुक्लादि वर्ण शोभित तथा बहु गदा और चक्र द्वारा चिह्नित शिला पद्मनाभ कहलाती है। बीस या इक्कीस चक्र जिस शिलामें रहते हैं, उसका नाम विश्वम्भर है।

ऊपरमें वर्णित शिलाओंको छोड़ द्वारावती-क्षेत्रभव चक्र शिला या द्वारकाचक्र नाना वर्णोंका होता है। उनमेंसे कुछ पूज्य और कुछ त्याज्य है।

शालग्राम शिलाके पूजा-कालमें द्वारकाचक्र पूजाकी भी विधि है। इन दो शिलाओंका जहां एकत्र पूजन होता है, वहां मुक्ति अवश्यम्भावी है। गृही व्यक्ति वृद्धिकी कामनासे कभी भी एक शालग्राम शिलाकी पूजा न करें। एकचक्रशिला पूजा भी निषिद्ध है। दो चक्रयुक्त शिला ही पूजनीय है। ऐसी शिलाके साथ यदि द्वारावतीभव शिलाकी पूजा की जाय, तो पापमुक्ति होती है।

ऊपर शालग्राम शिलास्थित शिवलिङ्ग चिह्नका विषय कहा गया है। ये सब शिलास्थ लिङ्ग शिवनाभि, सद्योजात, वामदेव, ईशान, तत्पुरुष, सदाशिव, हरिहरात्मक, शिवनाभि, त्र्यम्बक, धूर्जटी, शम्भु, ईश्वर, मृत्युञ्जय, चन्द्रशेखर, और रुद्र नामसे परिचित है। इनके सिवा शालग्राम शिलामें श्रीविद्या, महाकाली और गौरी नाम्नी शक्तिके लक्षण तथा रवि और चन्द्रादि ग्रहलक्षण विद्यमान हैं। विस्तार हो जानेके भयसे उनका विवरण यहां पर नहीं दिया गया।

शालग्राम-शिलापूजाविधि।

शालग्राम शिलाकी प्रतिदिन पूजा करनी होती है। शालग्रामकी पूजा करनेसे सभी देवताओंकी ही पूजा होती है। स्नान और सन्ध्यादि समाप्त करके आसन पर बैठ आचमन करना होगा।

आचमनके विधानानुसार "ओं विष्णुः ओं विष्णुः ओं विष्णुः" इस मन्त्रसे तीन बार थोड़ा जल मुखमें डाल कर "ओं तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततं" इस मन्त्रसे चक्षु, कर्ण, नासिका आदि स्पर्श करे। आचमनके बाद सामान्यार्घ्य स्थापन करना होता है।

बाईं ओर जमीन पर एक चतुष्कोण रेखा खींच कर उसमें वृत्त बनाने तथा उसके मध्य त्रिकोण मण्डल

अङ्कित करे। पीछे "एते गन्धपुष्पे ओं आधारशक्तये नमः, एते गन्धपुष्पे ओं कूर्माय नमः, एते गन्धपुष्पे ओं अनन्ताय नमः, एते गन्धपुष्पे ओं पृथिव्यै नमः" इन चार मन्त्रोंसे गन्धपुष्प द्वारा पूजा करनी होगी।

पुष्प नहीं रहनेसे गन्ध और आतप तण्डुल ले कर "एते गन्धाक्षते ओं आधारशक्तये नमः" इत्यादि रूपमें पूजा करे। पीछे "फट्" इस मन्त्रसे कोशा (पंचपात्र) को प्रक्षालन कर जिन त्रिकोणमण्डलको अङ्कित कर उसकी पूजा की गई है, उसके ऊपर स्थापन करना होगा। पीछे नमः इस मन्त्रसे कोशामें जल तथा उसके अग्रभागमें गन्धपुष्प, बिल्वपत्र और गर्भशून्य त्रिपत्र दूर्वाके अर्घ्य स्थापन कर पूजा करनी होगी। "मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः, अं सूर्यमण्डलाय द्वादश कलात्मने नमः, ओं सोममण्डलाय षोड़श कलात्मने नमः" इस मन्त्र द्वारा अर्घ्यसे पूजा करनी होती है। इसके बाद जलशुद्धि करनी होगी। बादमें तर्जनीके अग्र द्वारा अङ्कुश मुद्रायोगसे यह जल आलोड़न कर,—

"ओं गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥"

इस मन्त्रसे तीर्थोंका आवाहन करे। अनन्तर गन्धपुष्पसे "ओं जलाय नमः" इस मन्त्रसे जलमें गन्धपुष्प देना होता है। बादमें वं इस मन्त्रसे धेनुमुद्रा प्रदर्शन करे और मत्स्यमुद्रा द्वारा यह जल आच्छादन कर उसके ऊपर दश या आठ बार प्रणवमन्त्र जप करना होगा। पीछे तीन बार उस जलको जमीन पर फेंक कर अपने मस्तक और सभी पूजोपकरण पर कुछ कुछ छिड़क देना होगा।

इस प्रकार जल शोधन करके आसनशुद्धि करनी होगी। आसनके नीचे त्रिकोणमण्डल बना कर आसनके ऊपर 'ओं ह्रीं आधारशक्ति कमलासनाय नमः' इस मन्त्रसे चन्दनयुक्त पुष्प रख दे। पुष्पके अभावमें "एते गन्धाक्षते" कह कर सचन्दन आतप तण्डुल दे। पीछे आसन पर हाथ रख कर यह मन्त्र पढ़ना होता है। यथा—

'ओं आसनमन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः सुतलं छन्दः कूर्मो देवता आसनोपवेशने विनियोगः।'

"ओं पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वञ्च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम्॥"

आसनशुद्धिके बाद कृताञ्जलि हो वाममें 'ओं गुरुभ्यो नमः, 'ओं परम गुरुभ्यो नमः ओं परापरगुरुभ्यो नमः, दक्षिणमें ओं गणेशाय नमः, ऊर्ध्वमें ओं ब्रह्मणे नमः, अधः ओं अनन्ताय नमः, मध्यमें ओं नारायणाय नमः' इस मन्त्रसे नमस्कार करे।

इसके बाद भगवान् सूर्यदेवको अर्घ्य देना होता है। रक्त पुष्प, बिल्वपत्र, दूर्वा और आतप तण्डुल तथा रक्त चन्दन इन्हें कुशीमें ले कर 'ओं नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे जगत्सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मदायिने इदमर्घ्यं ओं श्रीसूर्याय नमः।' यह कह कर सूर्यके उद्देशसे अर्घ्य देना होता है। पीछे इस मन्त्रसे सूर्यको प्रणाम करनेकी विधि है—

"ओं जवाकुसुमसङ्काशं काश्यपेयं महाद्युतिम्।
ध्वान्तारिं सर्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम्॥"

इसके बाद विघ्नापसरण करना होता है। यथा 'ओं नमः नारायण' इस मन्त्रसे चारों ओर दृष्टिपात करके ऊपरकी ओर ऊर्ध्वभागस्थ, 'अस्त्राय फट्' मन्त्रसे दक्षिण हस्त द्वारा मस्तकके ऊपर जल प्रोक्षण करके नभोमार्गस्थ तथा वामपादके गुल्फ द्वारा बाईं ओर जमीन पर तीन बार आघात करके भूतलस्थित सभी विघ्न दूर करे। इसके बाद ऊर्ध्व, अधः और मध्यस्थित सभी विघ्न दूर हो गये हैं, ऐसा समझना होता है। इसके बाद गन्ध और अक्षत नाराचमुद्रा द्वारा ग्रहण कर निम्न मन्त्र पाठ कर जमीन पर फेंक देना होगा—

"ओं अपसर्पन्तु ते भूताये भूता भुवि संस्थिताः।
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया॥"

पीछे मन ही-मन इस प्रकार चिन्ता करे, कि गृहमध्यस्थित सभी विघ्न दूर हो गये हैं।

इसके बाद गन्धादिकी पूजा करनी होती है। क्योंकि किसी द्रव्यकी पूजा न करके देवताको अर्पण करनेसे देवता उसे ग्रहण नहीं करते, यह असुरोंका भोग होता है। पहले 'यं एतेभ्यो गन्धादिभ्यो नमः' इस मन्त्रसे तीन बार जल प्रोक्षण करे। इसके बाद गन्धपुष्प ले

कर 'एते गन्धपुष्पे ओं' एतदधिपतये विष्णवे नमः, एते गन्धपुष्पे ओं एतद् सम्प्रदानेभ्यो नारायणादिभ्यो नमः, ओं एते गन्धपुष्पे ओं एतेभ्यो गन्धादिभ्यो नमः' इस मन्त्रसे एक एक गन्धपुष्प देना होगा।

इसके बाद शालग्रामशिलाको स्नान कराना होता है। शालग्राम-शिलामें घृत लगा कर ताम्रपात्रके ऊपर रख घण्टा बजाते बजाते इस मन्त्रसे स्नान कराना होगा।

"ओं सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात।
स भूमिं सर्वतः स्पृष्ट्वा अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥"

इसके सिवा वेदादि चतुष्टय मन्त्र, पुरुषसूक्त और श्रीसूक्त पाठ करके भी स्नान कराया जा सकता है। एतद् स्नानीयोदकं 'ओं नारायणाय नमः' यह कह कर जल देना होगा। पीछे नारायणको जलसे निकाल कर गमछेसे अच्छी तरह पोंछ पात्रमें ऊपर और नीचे एक एक सचन्दन तुलसी दे कर उन्हें पूजा स्थानमें रखना होगा।

इसके बाद पुष्प शोधन करके पूजा करनी होती है। पुष्पके ऊपर हाथ रख कर 'ओं पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पसम्भूते, पुष्पचयावकीर्णे हुं फट् स्वाहा' इस मन्त्रसे पुष्प शोधन करना होता है। भूतशुद्धि, मातृकान्यास, पीठन्यास आदि इसी समय करने होते हैं। किन्तु पूजास्थलमें ये सब न्यासादि नहीं करने होते, अगर किये जांय तो अच्छा ही होता है। क्योंकि शास्त्रमें लिखा है, कि भूतशुद्धिके विना पूजा निष्फल होती है।

अनन्तर गणेशपूजा करनी होती है, क्योंकि पहले गणेशपूजा किये बिना दूसरेकी पूजा नहीं करनी चाहिये। पहले गां, गीं, गूं, गैं, गैं, गौं, गः, इस मन्त्रसे करन्यास और अङ्गन्यास करके पूजा करनी होती है; यथा—गां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, गीं तर्ज्जनीभ्यां स्वाहा, इत्यादि। इसके बाद कूर्मामुद्राके योगसे एक पुष्प ले कर ध्यान करना होता है। ध्यान-मन्त्र इस प्रकार है—

"खर्वं स्थूलतनुं गजेन्द्रवदनं लम्बोदरं सुन्दरं
प्रस्यन्दन्मदगन्धलुब्धमधुपव्यालोलगण्डस्थलम्।
दन्ताघातविदारितारिरुधिरैः सिन्दूरशोभाकरं
वन्दे शैलसुतासुतं गणपतिं सिद्धिप्रदं कर्मसु॥"

इस मन्त्रसे ध्यान करके वह पुष्प अपने मस्तक पर रखना होगा। पीछे मानस उपचार द्वारा मन ही मन पूजा करके पहलेकी तरह कर और अङ्गन्यास कर फिरसे ध्यान पाठ करे और तब नारायणके मस्तक पर यह फूल चढ़ा दे। इसके बाद दशोपचारसे उसकी पूजा करनी होती है। 'एतद्पाद्यं ओं गणेशाय नमः' इस प्रकार अर्घ्य, मधुपर्क, आचमनीय, स्नानीय, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य इस दशोपचारसे पूजा करनी होती है। इसमें अशक्त होने पर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य इस दशोपचारसे भी पूजा की जा सकती है।

अनन्तर ओं गणेशाय नमः यह मन्त्र दश बार जप कर—

"ओं गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत् कृतं जपं।
सिद्धिर्भवतु मत्सर्वं त्वत्प्रसादात् सुरेश्वर॥"

इस प्रकार जप समाप्त करके निम्नलिखित मन्त्रसे प्रणाम करे।

"ओं देवेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकणारुणाः।
विघ्नं हरन्तु हेरम्बचरणाम्बुजरेणवः॥"

इसके बाद 'ओं शिवादिपञ्चदेवताभ्यो नमः, ओं आदित्यादि नवग्रहेभ्यो नमः' ओं इन्द्रादि दशदिक्पालेभ्यो नमः, ओं मत्स्यादि दशावतारेभ्यो नमः' इन सब देवताओंकी दशोपचार, पञ्चोपचार या केवल गन्धपुष्प द्वारा पूजा करके सूर्यपूजा करनी होगी। 'ओं श्रीसूर्याय नमः' इस मन्त्रसे पूजा करनी है। ध्यान इस प्रकार है—

"रक्ताम्बुजासनमशेषगुणैकसिन्धुं
भानुं समस्तजगतामधिपं भजामि।
पद्मद्वयाभयवरान् दधतं कराब्जै
र्माणिक्यमौलिमरुणाङ्गरुचिं त्रिनेत्रम्॥"

पूजाके बाद सूर्यदेवको पूर्वोक्त मन्त्रसे अर्घ्य दे कर प्रणाम करना होता है।

इसके बाद मूलपूजा अर्थात् नारायणपूजा करनी होगी। पहले नां नीं नूं नैं नौं नः इस मन्त्रसे करन्यास और अङ्गन्यास कर कूर्मामुद्रा द्वारा एक पुष्प ले कर इस मन्त्रसे नारायणका ध्यान करना होता है। ध्यानमन्त्र इस प्रकार है—

"ओं ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्त्ती
नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः।
केयूरवान् कनककुण्डलवान् किरीटी-
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः॥"

इस मन्त्रसे ध्यान करके यह पुष्प मस्तक पर रखे और उसके बाद मानसपूजा करे। मानसपूजाके बाद फिरसे कर और अङ्गन्यास कर ध्यान करे और पुष्पको नारायणके मस्तक पर चढ़ाये। पीछे नारायणकी पूजा करनी होती है, "एतत्पाद्यं ओं नारायणाय नमः, इदमर्घं ओं नारायणाय नमः, इदमाचमनीयं ओं नारायणाय नमः, इदं स्नानीयोदकं ओं नारायणाय नमः, एषः गन्धः ओं नारायणाय नमः, एतत् सचन्दनपुष्पं ओं नारायणाय नमः, एतत् सचन्दनतुलसीपत्रं ओं नमस्तेबहुरूपाय विष्णवे परमात्मने स्वाहा ओं नारायणाय नमः एष धूपः ओं नारायणाय नमः एषः दीपः ओं नारायणाय नमः, एतत् नैवेद्यं ओं नारायणाय नमः।"

पाद्यादि नारायणाय नमः न कह कर विष्णवे नमः कहनेसे भी पूजा होगी। इसके बाद ओं नारायणाय नमः यह मन्त्र १० या १०८ बार जप कर गुह्यातिगुह्य मन्त्रसे जप विसर्जन करे। पीछे निम्नलिखित मन्त्रसे प्रणाम करना होता है—

"ओं ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं
तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम्।
भृत्यार्त्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दं।
त्यक्त्वा सुदुस्त्यज सुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं
धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यं।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥
ओं पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसम्भवः।
त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष सर्वपापहरो हरिः॥
ओं नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः॥"

इसके बाद लक्ष्मी और सरस्वतीकी पूजा करनी होती है। ध्यान और आवाहन छोड़ और सभी देवताओंकी पूजा एक-सी है। लक्ष्मी और सरस्वती पूजाके बाद इच्छानुसार सभी देवताओंकी पूजा की जा सकती है। क्योंकि शालग्राम शिलामें सभी देवताओंकी पूजा होती है।

अनन्तर ओं कुलदेवतायै नमः, ओं सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः, ओं सर्वाभ्यो देवीभ्यो नमः, इस मन्त्रसे सभी देव और देवीके उद्देशसे पूजा कर कृताञ्जलि हो निम्नोक्त मन्त्रपाठ कर भगवान् विष्णुके उद्देशसे कर्म समर्पण करना होता है। मन्त्र इस प्रकार है—

"यत्किञ्चित् क्रियते देव मया सुकृतदुष्कृतं।
तत् सर्वं त्वयि संन्यस्तं त्वत्प्रयुक्तः करोम्यहम्॥"

इसके बाद—

"ओं मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं जनार्दन।
यत् पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे॥"

इस प्रकार प्रार्थना कर नारायणके उद्देशसे प्रणाम करनेके बाद पूजा समाप्त करनी होती है।

पूजाके बाद निर्माल्य-धारण और नारायण-चरणामृत पान करना कर्त्तव्य है। नारायणको अन्नादि भोग तथा रातको आरति करके शीतली देनी होती है। प्रति दिन इस नियमसे शालग्राम शिला पूजन करना होता है।

शालग्राम-पूजामाहात्म्य।

शालग्राम पूजा करनेसे नारायण प्रसन्न होते हैं। उसके फलसे कोटियज्ञ या कोटिगोदान करनेका फल लाभ हो कर कोटि पाप विनष्ट होते हैं। यहां तक, कि शालग्राममूर्त्ति स्मरण, तन्नामकीर्त्तन या दर्शन करनेसे भी पापमुक्ति होती है। एक वर्ष तक जो व्यक्ति शालग्रामपूजा, स्पर्श और दर्शन करता है, सांख्ययोगके बिना ही वह मोक्ष पाता है।

शालग्राम शिलाके सामने श्राद्ध, होम, दान आदि कार्यानुष्ठान सुप्रशस्त है। इस कारण सभी कृत्य शालग्राम शिलाके सामने किये जाते हैं। और तो क्या, शालग्राम शिलाके सामने देहत्याग करनेसे प्रेतात्मा विष्णुलोकको जाती है।

शालग्राम शिलाका नैवेद्य ग्रहण प्रशस्त और पुण्यप्रद है। स्त्री, बालक और शूद्रको शालग्राम शिलाका स्पर्श नहीं करना चाहिये। यदि वह भूलसे स्पर्श कर ले, तो पञ्चगव्य, पञ्चामृत आदि द्वारा नारायणका अभिषेक और पूजन करना होता है।

शालग्रामगिरि (स॑० पु०) शालग्रामस्य गिरिः। शालग्रामोत्पादक पर्व्वत। इस पर्व्वत पर शालग्रामशिला मिलती है, इस कारण इसको शालग्रामगिरि कहते हैं। वराहपुराणमें लिखा है, कि वराहदेवने कहा था, "शालग्राम पर्व्वत पर देव हर मेरे साथ मिल कर शिलारूपमें अवस्थान करते हैं तथा मैं भी वहां पर्व्वतरूपमें अवस्थित हूं। अतएव इस स्थानको सभी शिलाओंको मेरा स्वरूप जानना होगा। अतएव यहां चक्रचिह्नादिकी कोई आवश्यकता नहीं। सभी शिलाओंको यत्नपूर्व्वक पूजा करनी होगी।" (वराहपु० गोमेश्वरादि लिङ्ग महिमाध्याय) शालग्राम शब्द देखो।

शालङ्कटङ्कट (स॑० पु०) सुकेशी राक्षसका एक नाम। विद्युत्केशीकी भार्या शालङ्कटङ्कटाके गर्भसे इसका जन्म हुआ। (वामनपु०)

शालङ्कायन (स॑० पु०) शालङ्कस्यापत्यं शालङ्क (नड़ादिभ्यः फक्। पा ४।१।९९) इति फक्। १ विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम। २ नन्दी।

शालङ्कायनक (स॑० पु०) शालङ्कायनानां विषयो देश। (राजन्यादिभ्यो वुञ्। पा ४।२।५३) इति वुञ्। १ शालङ्कायन मुनियोंके रहनेका देश। २ शालङ्कायन।

शालङ्कायनजा (स॑० स्त्री०) शालङ्कायनकी पुत्री सत्यवती जो व्यासकी माता थीं।

शालङ्कायनजीवसू (स॑० स्त्री०) सत्यवती, व्यासकी माता।

शालङ्कायन (स॑० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक एक ऋषिका नाम।

शालङ्कायनिन् (स॑० पु०) शालङ्कायन प्रवर्त्तित शाखायुक्त शिष्य।

शालङ्कि (स॑० पु०) पाणिनि ऋषिका एक नाम।

शालङ्की (स॑० पु०) १ गुड़िया। २ कठपुतली।

शालज (स॑० पु०) शालाज्जायते जन-ड। शालमत्स्य, एक प्रकारकी मछली।

शालदोज (फा० पु०) वह जो शालके किनारे पर बेलबूटे आदि बनाता हो।

शालद्वय (स॑० क्ली०) [illegible] और पीतशाल।

शालन (स॑० क्ली०) १ [illegible] (पु०) २ [illegible] ([illegible])

शालनदी—उड़ीसा विभागमें प्रवाहित एक नदी। यह मयूरभञ्ज राज्यके मेघासनी पर्व्वतके दक्षिण ढालू प्रदेशसे निकली है। शालवन हो कर यह बहती है। इसलिये इसका नाम शाल नदी या शालकी हुआ है। इसके बाद यह टेढ़ो मेढ़ो हो कर घामराई नदीके मुहानेके पास आ मिली है।

शालनिर्यास (स॑० पु०) १ राल, धूना। २ शाल या सर्ज्ज नामका वृक्ष।

शालपत्तसमपत्री (स॑० स्त्री०) शालपर्णी। (पर्यायमुक्ता०)

शालपर्णिका (स॑० स्त्री०) १ मुरा नामक गन्धद्रव्य। २ एकाङ्गी नामकी ओषधि।

शालपर्णी (स॑० स्त्री०) शालस्य पर्णवत् पर्णमस्याः ङीप्। स्वनामख्यात क्षुपविशेष, सरिवन नामक वृक्ष (Desmodium Gangeticum) पर्याय—सुदला, सुपत्री, स्थिरा, सौम्या, कुमुदा, गुहा, ध्रुवा, विदारिगन्धा, अंशुमती, सुपर्णिका दीर्घमूला, दीर्घपत्रिका, वातघ्नी, पीतिनी, तन्वी, सुधा, सर्व्वानुकारिणी, शाकघ्नी, सुभगा, देवी, निश्चला, ब्रीहिपर्णिका, सुमूला, सुरूपा, शुभपत्रिका, सुपत्री, शालिपत्री, शालिदला, विदारी, सालपर्णी। (अमरटीका भरत) इसका गुण—ग्राहक, कफ और पित्तनाशक, गुरु, उष्ण, वातदोष, विषम ज्वर, मेह, शोफ और सन्तापननाशक। (राजनि०)

शालपर्ण्यादि (स॑० पु०) वैद्यकके अनुसार शालपर्णी आदि द्रव्य। जैसे—शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बीजबन्द और बेलसोंठ, इन चार द्रव्योंका नाम शालपर्ण्यादि है। (चक्रदत्त) पित्त, श्लेष्मा और अतिसार रोगमें यह बड़ा फायदा पहुंचाता है।

शालपुष्प (स॑० क्ली०) शालका फूल।

शालपुष्पभञ्जिका (स॑० स्त्री०) क्रीड़ाद्रव्यविशेष, खेलनेकी एक चीज।

शालवाफ (फा० पु०) १ वह जो शाल या दुशाले आदि बुनता हो, शाल बुननेवाला। २ एक प्रकारका रेशमी कपड़ा जो लाल रङ्गका होता है।

शालवाफी (फा० स्त्री०) दुशाले बुननेका काम, शालवाफका काम।

शालभ (सं० क्ली०) १ बिना सोचे विचारे उसी प्रकार आपत्तियोंमें कूद पड़ना जिस प्रकार पतङ्ग आग या दीपक पर कूद पड़ता है। (त्रि०) २ शलभ-सम्बन्धी, पतिंगोंका सम्बन्धी।

शालभञ्जिका (सं० स्त्री०) शालेन भज्यते निर्मीयते इति भञ्ज (ण्वुल् शिल्पिसंज्ञयोरपूर्वस्यापि। उण् २।३२) इति ण्वुल् टापि अत इत्वं। १ काष्ठादि निर्मित पुत्तिका, कठपुतली। (राजतर० २।६६) २ वेश्या, रंडी। (जटाधर) ३ क्रीड़ाविशेष, एक प्रकारका खेल।

शालभञ्जी (सं० स्त्री०) काष्ठादि निर्मित पुत्तिका, कठपुतली।

शालमत्स्य (सं० पु०) शिलिन्द नामक मछली।

शालमय (सं० त्रि०) शाल-मयट्। शालविकार, शाल-स्वरूप।

शालमर्कट (सं० पु०) दाड़िम वृक्ष, अनारका पेड़।

शालमर्कटक (सं० पु०) शालमर्कट देखो।

शालयुग्म (सं० पु०) दोनों प्रकारके शाल अर्थात् सर्ज वृक्ष और विजयसार।

शालरस (सं० पु०) शालस्य रसः। सर्जरस, राल, धूना।

शालव (सं० पु०) लोध्र, लोध।

शालवदन (सं० पु०) पुराणानुसार एक असुर। यह शाल्ववदन और शृगाल-वदन भी कहलाता है।

शालवाड़ी—बम्बई-प्रेसिडेन्सीके धारवाड़ जिलान्तर्गत एक नगर। यह धारवाड़से १६ कोस पूर्व-उत्तरमें स्थित है।

शालबर्डी—मध्यप्रदेशके बेरार राज्यान्तर्गत एक शैल। इसका कुछ अंश इलिचपुर जिलेमें कुछ बेतुलजिलेमें पड़ा है। पर्वतकी तराईमें माधनदीके तट पर शालबर्डी ग्राम है। यह अक्षा० २१° २६′ उ० तथा देशा० ७७° ५१′ पू०के बीच पड़ता है। यहां एक ठण्डे जलकी और एक गरम जलकी दो झीलें हैं। कहते हैं, कि यहां लवकुशका जन्म हुआ था।

शालबाई—ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत एक बड़ा गांव। अङ्गरेजोंके साथ मराठोंकी सन्धिके लिये यह प्रसिद्ध है। सालबाई देखो।

शालवानक (सं० पु०) १ विष्णुपुराणके अनुसार एक देशका नाम। २ इस देशका निवासी।

शालवाह—एक प्राचीन कवि।

शालवाहन—बाघेल वंशीय एक राजा।

शालवीन—दक्षिण-ब्रह्मके तानासारिम विभागके अन्तर्गत अङ्गरेजाधिकृत एक जिला। यह शालवीन पार्वत्य प्रदेश कहलाता है। पहले जब तक उत्तर-ब्रह्म अंगरेजराजके राज्यसीमाभुक्त नहीं हुआ था, तब तक यह उत्तरमें ब्रह्म सीमांतसे ले कर दक्षिण शालविन् नदी तक विस्तृत था। इसकी पूर्वी सीमामें शालवीन नदी और पश्चिमी सीमामें पौङ्गलौङ्ग पर्वतमाला विद्यमान है। सारा ब्रह्मराज्य अंगरेजोंके अधिकारमें आनेके बाद इस जिलेका बहुत हेर-फेर हुआ है। शालविन्, विलिन और यून-जा लिन नामकी तीन नदियां इस पहाड़ी अधित्यका भूमि हो कर बह गई हैं। शेषोक्त नदीके किनारे जिलेका सदर पापुन नगरी अवस्थित है। इस नदी और जिलेका विस्तृत विवरण शालविन् शब्दमें देखो।

शालवेत—बम्बई-प्रदेशके काठियावाड़ विभागका एक छोटा द्वीप। यह समुद्रतटसे २ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। मौवा बन्दरसे इसकी दूरी १७ मील और जाफराबादसे ८ मील उत्तर है। इस द्वीपकी लंबाई तीन पाव और चौड़ाई एक पाव होगी। यह जाफराबाद सामन्त राज्यके शासनभुक्त है। इसके दक्षिण और उत्तर दुर्गबाटिकाकी तरह प्राचीरादिके चिह्न भाग भी दिखाई देते हैं। उन्हें देखनेसे मालूम होता है, कि पश्चिम भारतके विख्यात जल-डाकुओंने एक समय यहां दुर्ग बना कर आत्मरक्षाका उपाय निर्धारण किया था। अधिक सम्भव है, कि पुर्त्तगीजोंने दीउ नगर अधिकारके बाद शालवेतको जीता और उसकी ओर अपना प्रभाव फैलानेकी चेष्टा की। पीछे १७२६ ई०में वसई नगरके अधःपतनके साथ पुर्त्तगीजोंका उत्तरोत्तर प्रभाव जाता रहा और उस समय वे शालवेतका परित्याग कर दीउकी रक्षामें लग गये।

शालवेष्ट (सं० पु०) शालस्य वेष्टो निर्यासः। शाल-निर्यास, धूना।

शालशाक (सं० क्ली०) नाड़ी शाक, पटुआ।

शालशृङ्ग (सं० क्ली०) दीवारका ऊपरी भाग, दीवारकी चोटी।

शालसार (सं० पु०) शालस्य सारः। १ द्रुम, वृक्ष, पेड़। २ हिंगु, हींग। ३ राल, धूना। ४ शाल साखू नामक वृक्ष।

शालसारादि (सं० पु०) वैद्यकोक्त शालादि द्रव्यगण। गण यथा,—शाल और पेयाशाल, दो प्रकारका करञ्ज, खदिर तथा दो प्रकारका चन्दन, भाटि अर्ज्जुन, भूर्ज्ज, लोध्रयुग्म अर्थात् श्वेत और रक्तवर्ण लोध, शिरीष, अगुरु, कालीय, पूग, पूतिक और कर्कट ये सब द्रव्य शालसारादिगण हैं। ये गण श्लेष्मदोषनाशक हैं। (सारकौमुदी)

शालसेट—बम्बई नगरके उत्तरमें स्थित एक द्वीप। यह बम्बई प्रेसिडेन्सीके थाना जिलेके उपविभागरूपमें परिगणित है। भूपरिमाण २४१ वर्गमील है। यहां बहुतसे गुहामन्दिर, चैत्य और बौद्ध विहारके निदर्शन पाये जाते हैं। सालसैट देखो।

शाला (सं० स्त्री०) शो (बाहुलकात् श्यते रपि कालन्। उण् ४।११७) इति उज्ज्वलदत्तोक्त्या कालन्। १ गृह, घर। २ शाखा, डाल। ३ स्थल, जगह। जैसे—पाठशाला, गोशाला। ४ इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्राके योगसे बननेवाले सोलह प्रकारके वृत्तोंमेंसे एक वृत्त। इसका तीसरा चरण उपेन्द्रवज्राका और शेष तीनों चरण इन्द्रवज्राके होते हैं।

शालाक (सं० पु०) १ झाड़, झंखाड़। २ वह अग्नि जो झाड़ झंखाड़ जला कर उत्पन्न की जाय। (शतपथब्रा० ३।६।२।१६)

शालाकाभ्रेय (सं० पु०) शालकाभ्र (शुभ्रादिभ्यश्च। पा ४।१।१२३) इति अपत्यार्थे ढक्। शलकाभ्रका गोत्रापत्य।

शालाकिन् (सं० पु०) १ अस्त्रवैद्य, वह जो अस्त्र चिकित्सा करता हो। २ नापित, नाऊ, हज्जाम। ३ भाला-बरदार।

शालाक्य (सं० पु०) शलाका (कुर्वादिभ्यो ण्यः। पा ४।१।१५१) इति अपत्यार्थे ण्य। १ शलाकाका गोत्रापत्य। २ वह चिकित्सक जो आंख, नाक, कान, मुंह आदिके रोगोंकी चिकित्सा करता हो। (क्ली०) ३ आयुर्वेदके अन्तर्गत आठ प्रकारके तन्त्रोंमेंसे एक। इसमें कान, आंख, नाक, जीभ, होंठ, मुंह आदिके रोगों और उनकी चिकित्साका विवरण है। (वैद्यकसंहिता २ अ०)

शालाक्यशास्त्र (सं० क्ली०) शालाक्य देखो।

शालाक्ष (सं० पु०) वैदिक कालके एक प्राचीन ऋषिका नाम। (आश्व० श्रौ० १२।१४।६)

शालाग्नि (सं० पु०) शालास्थित अग्नि, घरकी आग। (आश्व० श्रौ० २।२।५)

शालाङ्की (सं० स्त्री०) पुत्तलिका, पुतली, गुड़िया।

शालाङ्गार (सं० पु०) १ कर्मकार, शालाग्नि। २ साखूकी लकड़ीका अंगार।

शालाजिर (सं० पु०) शराव, मिट्टीकी तश्तरी या प्याली आदि।

शालाञ्चि (सं० स्त्री०) शाकभेद, शाञ्चि नामक साग।

शालातुरीय (सं० पु०) मुनिभेद, पाणिनि मुनिका एक नाम।

शालात्व (सं० क्ली०) शाला भावे त्व। शालाका भाव या धर्म।

शालाथल (सं० पु०) शालाथल ऋषिका गोत्रापत्य।

शालाथलेय (सं० पु०) शालाथल शुभ्रादित्वात् अपत्यार्थे ढक्। शालाथलका गोत्रापत्य। (पा ४।१।१२३)

शालाद्वार (सं० क्ली०) शालायाः द्वारं। घरका दरवाजा।

शालाद्वार्य (सं० त्रि०) गृह-द्वार-सम्बन्धी, घरके दरवाजेका।

शालानी (सं० स्त्री०) विदारी, शालपर्णी, सरिवन।

शालापति (सं० पु०) शालायाः पतिः। गृहपति, घरका मालिक।

शालामर्कटक (सं० क्ली०) १ चाणक्यमूल, बड़ी मूली। २ बालमूलक। (भावप्र०)

शालामुख (सं० पु०) १ धान्यविशेष, एक प्रकारका धान। २ घरका सामना, घरका अगला भाग।

शालामुखीय (सं० त्रि०) १ शालामुख-सम्बन्धी। २ गृह-द्वार सम्बन्धी। (शाङ्खा० श्रौ० ५।४।६)

शालामृग (सं० पु०) शालाया मृगः। १ शृगाल, सियार, गीदड़। २ कुक्कुर, कुत्ता।

शालार (सं० क्ली०) शालां ऋच्छतीति ऋ-अण्। १ हस्तिनख, हाथीका नाखून। २ सोपान, सीढ़ी।

३ परिखाद, पक्षियोंके रहनेका पिंजड़ा। ४ दीवारमें लगी हुई खूंटी।

शालातुरक (सं॰ पु॰) शलातुर (तदस्य स्थानमभिजनो वा ४।३।९०) इति छन्। शलातुर, ग्रामवासी पाणिनि मुनि।

शालायन (सं॰ पु॰) एक प्राचीन ऋषिका नाम।

शालायन (सं॰ पु॰) शालायनका गोत्रापत्य।

शालावती (सं॰ स्त्री॰) हरिवंशके अनुसार विश्वामित्रकी कन्याका नाम।

शालावृक (सं॰ पु॰ शालायां वृकः शालायां वा वृक इव। १ वानर, बंदर। २ कुक्कुर, कुत्ता। ३ शृगाल, सियार। ४ मृग, हरिन। ५ विडाल, बिल्ली।

शालाश्वालि (सं॰ स्त्री॰) शालस्वन्दवासी रमणी।

शालि (सं॰ पु॰ स्त्री॰) शालातीति शल-बाहुलकात् इञ्, रस्य लत्वं। कलमादि धान्य, षष्टिकादि धान्य। देशभेदसे इसके अनेक भेद हैं। वैद्यकमें इसके नाम और लक्षणादिका विषय इस प्रकार लिखा है—

शालिधान्य, व्रीहिधान्य, शूकधान्य, शिम्बिधान्य और क्षुद्रधान्य ये पांच प्रकारके धान्य हैं। इन सब धान्योंमें जो सब धान्य हेमन्तकालमें उत्पन्न होते हैं तथा कण्डन अर्थात् बिना छांटनेसे जो श्वेत वर्णके होते हैं, उन्हें शालिधान्य कहते हैं। इस शालिधान्यके नाम ये हैं—रक्तशालि, कलम, पाण्डुक, शकुनाहृत, सुगन्धक, कर्द्दमक, महाशालि, दूषक, पुष्पाण्डक, महिषमस्तक, दीर्घशूक, काञ्चनक, हायन और लोध्रपुष्पक आदि। देशभेदसे भिन्न भिन्न प्रकारके शालिधान्य हैं।

संस्कृत पर्याय—मधुर, दथन, व्रीहिश्रेष्ठ, सुवर्णित, धान्योत्तम, केदार, सुकुमारक। किसी किसी पुस्तकमें मधुर स्थानमें कलम पाठ देखा जाता है। गुण—मधुर, कषायरस, स्निग्ध, बलकारक, मलरोधक और मलका अल्पताकारक, लघुपाक, रुचिकारक, स्वरप्रसादक, शुक्रवर्द्धक, शरीरका उपचयकारक, ईषत् वायु और कफवर्द्धक, शीतवीर्य, पित्तनाशक और मूत्रवर्द्धक।

स्थानविशेषमें उत्पन्न शालिधान्यका गुण भी भिन्न भिन्न प्रकारका होता है। दग्धभूमिजात रस, लघुपाक, मलमूत्रनिःसारक, खेत जोत कर धान रोपनेसे जो धान उत्पन्न होता है, वह वायु और पित्तनाशक, गुरु, कफ और शुक्रवर्द्धक, मलका अल्पताकारक, मेधाजनक और बलवर्द्धक होता है। बिना जोते हुए खेतमें जो धान आपे-आप उत्पन्न होता है, उसका गुण कुछ तिक्त, मधुर, कषायरस, पित्तघ्न, कफनाशक, वायु और अग्निवर्द्धक तथा कटु और विपाक माना गया है।

वापितशालि—जो शालिधान्य एक खेतसे उखाड़ कर फिर दूसरे खेतमें रोपा जाता है, उसे वापितशालि कहते हैं। यह धान्य मधुर, कषायरस, शुक्रवर्द्धक, बलकारक, पित्तघ्न, कफवर्द्धक, मलका अल्पताकारक, गुरु और शीतवीर्य होता है।

अवापित शालिमें वापित शालिकी अपेक्षा कुछ कम गुण होता है। रोपितशालि—रोपे हुए धानको उखाड़ कर रोपनेसे जो धान होता है, उसे रोपितशालि कहते हैं। यह नई अवस्थामें शुक्रवर्द्धक और पुरानी अवस्थामें लघु होता है। अतिरोप्यशालि—रोप्यशालिको उखाड़ कर रोपनेसे जो धान होता है, उसका नाम अतिरोप्यशालि है। यह रोप्यशालिकी अपेक्षा अधिक गुणयुक्त और लघुपाक होता है।

छिन्नरूढ़शालि—शीतवीर्य, रूक्ष, बलकारक, कफनाशक, मलरोधक, ईषत् तिक्तसंयुक्त, कषाय रस और लघु होता है। शालि धान्योंमें रक्तशालि सबसे श्रेष्ठ है। यह धान्य बलकारक, त्रिदोषनाशक, चक्षु-हितकर, मूत्रवर्द्धक, स्वरप्रसादक, शुक्रवर्द्धक, अग्निकारक, पुष्टिजनक, पिपासा, ज्वर, व्रण, श्वास, काम और दाहनाशक माना गया है। महाशालि आदि रक्तशालिकी अपेक्षा अल्प गुणयुक्त होता है। (भावप्रकाश)

वाभटके मतसे—शालिधान्यके भिन्न भिन्न नाम हैं, यथा,—शालि, महाशालि, कलम, तूर्णक, [illegible], तारामुक्त, दीर्घशूक, रोध्रशूक, सुगन्धक, [illegible] और लवणीय। ये शालि निर्दोष हैं। गुण—[illegible], बलकर, कषाय, लघु, पथ्य, [illegible] और मूत्रवर्द्धक। (वाभट सूत्रस्था॰ ६ अ॰) सुश्रुतके [illegible] नाम—शालि, सुगन्धक, शकुनाहृत, [illegible], [illegible], कर्द्दमक,

महादूषक, पुष्पाण्डक, पुण्डरीक काश्मुमक, दीर्घशूक, हायनक, दूषक, महादूषक। (सुश्रुत सूत्रस्था० ४६ अ०) राजनिघण्टके मतसे शालिधान्य दश प्रकारका है। धान्य शब्दमें विशेष विवरण देखो।

२ गंधमृग, गंधविलाव। ३ रसालेक्षु, अत्यन्त रसयुक्त ईख। ४ कृष्णजीरक, काला जीरा। ५ पक्षी, चिड़िया। ६ वासमती चावल। ७ एक यक्षका नाम।

शालिक आचार्य—एक दार्शनिक। ये न्यायामृततरङ्गिणीके प्रणेता रामाचार्यके गुरु थे।

शालिकनाथ—एक प्राचीन कवि।

शालिकनाथ मिश्र—नयरत्न, प्रकरणपञ्चिका, प्रशस्तपाद्भाष्यव्याख्या और शवरभाष्यटीका नामक चार मीमांसा तत्त्वविषयक ग्रन्थके प्रणेता। ये प्रभाकरगुरुके शिष्य थे। चित्सुखने अपने मानसनयनप्रसादनी ग्रन्थमें इनका उल्लेख किया है।

ये महामहोपाध्याय उपाधिसे भूषित थे। प्रमाणपरायण नामक इनका लिखा एक और ग्रन्थ मिलता है।

शालिका (सं० स्त्री०) शालिरेव स्वार्थे कन्। १ विदारी कन्द। २ शारिका, मैना। ३ शालपर्णी। ४ घर, मकान।

शालिखा—कलकत्तेके दूसरे पारमें गङ्गाके किनारे अवस्थित एक नगर। यह कलकत्तेका ही अंश समझा जाता है, किन्तु हावड़ा इसका विचार-सदर है। यहां म्युनिसिपलिटी है। यह वाणिज्यका प्रधानस्थान है। यहां बहुत-से कल कारखाने और जहाज बनानेके डक हैं।

शालिगोत्र (सं० पु०) वैदिकाचार्यभेद, सम्भवतः शालिहोत्र।

शालिगोप (सं० पु०) धान्यक्षेत्ररक्षी, वह जो खेतोंकी विशेषतः धानके खेतोंकी रखवाली करता हो।

(रघु ४।२०)

शालिञ्च (सं० पु०) शाकविशेष, एक प्रकारका साग पर्याय—शालञ्च, शितसार, पत्रकेट, लौहसारक। वैद्यकके अनुसार यह चरपरा, दीपन तथा प्लीहा, ववासीर और कफपित्तका नाश करनेवाला माना गया है।

शालिञ्ची (सं० स्त्री०) शालिञ्च स्त्रियां ङीष्।

शालिञ्च देखो।

शालित (सं० त्रि०) शालयुक्त, शालिन्।

शालित्व (सं० क्ली०) १ युक्तत्व। २ शालियुक्तत्व।

शालिधान (हिं० पु०) वासमती चावल। यह धान जेठ मासमें बोया जाता है और अगहनके अन्त और पूसके आरम्भमें पक कर तैयार हो जाता है। इसे अगहनी या हैमन्तिक शालिधान्य भी कहते हैं। इसका पौधा मिट्टी तथा देशके अनुसार दो हाथसे ले कर तीन हाथ तक ऊंचा होता है। इसके पत्ते साधारण धानके समान होते हैं, पर उनकी अपेक्षा कुछ कड़े और चिकने होते हैं। यह छोटा और बड़ा दो प्रकारका होता है। भेद सिर्फ इतना ही है, कि छोटा पहले पकता है और बड़ा कुछ देरमें। यह धान बिना कुट हुए ही सफेद होता है और बहुत बारीक तथा सुन्दर होता है। चावलोंमें यह सबसे उत्तम माना जाता है।

विशेष विवरण शालि शब्दमें देखो।

शालिन् (सं० त्रि०) शालास्यास्तीति इनि। १ शालविशिष्ट। पदके अन्तमें यह शब्द होनेसे युक्तवाचक होता है। (जयदेव) २ श्लाघ्य, सराहने योग्य।

(भागवत ३।२४।१)

शालिनाथ—१ रसमञ्जरी नामक ग्रन्थके प्रणेता। ये वैद्यनाथके पुत्र थे। २ गीतगोविन्दटीकाके रचयिता।

शालिनी (सं० स्त्री०) १ ग्यारह अक्षरोंका एक वृत्त। इसमें क्रमसे एक मगण, दो तगण और अन्तमें दो गुरु होते हैं। दूसरा लक्षण—"मात्तौ गौ चेत् शालिनी वेदलोकैः।"

यह शब्द भी पहले अन्तमें होनेसे युक्त अर्थ समझा जाता है। यथा—गुणशालिनी, गुणविशिष्ट स्त्री।

२ पद्मकन्द, भसींड़। ३ मेथिका, मेथी।

शालिनीकरण (सं० क्ली०) न्यग्भावन, तिरस्कार, भर्त्सना। (त्रिका०)

शालिपर्णिका (सं० स्त्री०) शालपर्णी देखो।

शालपर्णी (सं० स्त्री०) शालेरिव पर्णानि यस्याः ङीष्। १ पृश्नपर्णी, पिठवन। २ मेदा नामक अष्टवर्गीय ओषधि। ३ माषपर्णी, वन उरदी। ४ शालपर्णी, सरिवन।

शालिपिण्ड (सं० पु०) नागभेद। (भारत आदिपर्व)

३ पक्षिपञ्जर, पक्षियोंके रहनेका पिंजड़ा। ४ दीवारमें लगी हुई खूंटी।

शालालुक (सं॰ पु॰) शलालु (चतुर्थ्यस्य शालालुनो-ऽन्यतरस्यां। पा ४।४।५) इति ठन्। शलालु, एक प्रकार-की गन्धद्रव्य।

शालावत् (सं॰ पु॰) एक प्राचीन ऋषिका नाम।

शालावत (सं॰ पु॰) शालावतका गोत्रापत्य।

शालावती (सं॰ स्त्री॰) हरिवंशके अनुसार विश्वामित्र-की कन्याका नाम।

शालावृक (सं॰ पु॰) शालायां गृहे शाखायां वा वृक इव। १ वानर, बंदर। २ कुक्कुर, कुत्ता। ३ शृगाल, सियार। ४ मृग, हरिन। ५ बिड़ाल, बिल्ली।

शालास्थलि (सं॰ स्त्री॰) शालस्थलवासी रमणी।

शालि (सं॰ पु॰ क्ली॰) शृणातीति शृ-बाहुलकात् इञ्, रस्य लत्वं। कलमादि धान्य, षष्टिकादि धान्य। देश-भेदसे इसके अनेक भेद हैं। वैद्यकमें इसके नाम और लक्षणादिका विषय इस प्रकार लिखा है—

शालिधान्य, व्रीहिधान्य, शूकधान्य, शिम्बिधान्य और क्षुद्रधान्य ये पांच प्रकारके धान्य हैं। इन सब धान्योंमें जो सब धान्य हेमन्तकालमें उत्पन्न होते हैं तथा कण्डन अर्थात् बिना छांटनेसे ही श्वेत वर्णके होते हैं, उन्हें शालिधान्य कहते हैं। इस शालिधान्यके नाम ये हैं—रक्तशालि, कलम, पाण्डुक, शकुनाहृत, सुगन्धक, कर्दमक, महाशालि, दूषक, पुष्पाण्डक, महिषमस्तक, दीर्घशूक, काञ्चनक, हायन और लोध्रपुष्पक आदि। देशभेदसे भिन्न भिन्न प्रकारके शालिधान्य हैं।

संस्कृत पर्याय—मधुर, ढव्य, व्रीहिश्रेष्ठ, नृपप्रिय, धान्योत्तम, केदार, सुकुमारक। किसी किसी पुस्तकमें मधुर स्थानमें कलम पाठ देखा जाता है। गुण—मधुर, कषायरस, स्निग्ध, बलकारक, मलकाठिन्य और मलका अल्पताकारक, लघुपाक, रुचिकारक, स्वरप्रसादक, शुक्रवर्द्धक, शरीरका उपचयकारक, ईषत् वायु और कफ वर्द्धक, शीतवीर्य, पित्तनाशक और मूत्रवर्द्धक।

स्थानविशेषमें उत्पन्न शालिधान्यका गुण भी भिन्न भिन्न प्रकारका होता है। दग्धभूमिजात शालि—कषाय रस, लघुपाक, मलमूत्रनिःसारक, रुक्ष और कफनाशक। खेत जोत कर धान रोपनेसे जो धान उत्पन्न होता है, वह वायु और पित्तनाशक, गुरु, कफ और शुक्रवर्द्धक, मलका अल्पताकारक, मेधाजनक और बलवर्द्धक होता है। बिना जोते हुए खेतमें जो धान आपे-आप उत्पन्न होता है, उसका गुण कुछ तिक्त, मधुर, कषायरस, पित्तघ्न, कफनाशक, वायु और अग्निवर्द्धक तथा कटु और विपाक माना गया है।

वापितशालि—जो शालिधान्य एक खेतसे उखाड़ कर फिर दूसरे खेतमें रोपा जाता है, उसे वापितशालि कहते हैं। यह धान्य मधुर, कषायरस, शुक्रवर्द्धक, बल-कारक, पित्तघ्न, कफवर्द्धक, मलका अल्पताकारक, गुरु और शीतवीर्य होता है।

अवापित शालिमें वापित शालिकी अपेक्षा कुछ कम गुण होता है। रोपितशालि—बोए हुए धानको उखाड़ कर रोपनेसे जो धान होता है, उसे रोपितशालि कहते हैं। यह नई अवस्थामें शुक्रवर्द्धक और पुरानी अवस्था-में लघु होता है। अतिरोप्याशालि—रोप्याशालिको उखाड़ कर रोपनेसे जो धान होता है, उसका नाम अति-रोप्याशालि है। यह रोप्याशालिकी अपेक्षा अधिक गुणयुक्त और लघुपाक होता है।

छिन्नरूढ़ाशालि—शीतवीर्य, रुक्ष, बलकारक, कफ-नाशक, मलरोधक, ईषत् तिक्तसंयुक्त, कषाय रस और लघु होता है। शालि धान्योंमें रक्तशालि सबसे श्रेष्ठ है। यह धान्य बलकारक, त्रिदोषनाशक, चक्षु-हितकर, मूत्रवर्द्धक, स्वरप्रसादक, शुक्रवर्द्धक, अग्निकारक, पुष्टि-जनक, पिपासा, ज्वर, व्रण, श्वास, कास और दाहना-शक माना गया है। महाशालि आदि रक्तशालिकी अपेक्षा अल्प गुणयुक्त होता है। (भावप्रकाश)

वाभटके मतसे—शालिधान्यके भिन्न भिन्न नाम हैं, यथा,—शालि, महाशालि, कलम, तूर्णक, शकुनाहृत, सारामुख, दीर्घशूक, रोध्रशूक, सुगन्धक, पतंग और तपनीय। ये शालि निर्दोष हैं। गुण—स्निग्ध, बलकर, कषाय, लघु, पथ्य, शीतल और मूत्रवर्द्धक। (वाभट सूत्रस्था॰ ६ अ॰) सुश्रुतके मतसे नाम—शालि, कलम, सुगन्धक, शकुनाहृत, महाशालि, शीतभीरुक, रोध्रपुष्पक, महिषमस्तक, कर्दमक, पाण्डुक,

महादूषक, पुष्पाण्डक, पुण्डरीक काञ्चुक, दीर्घशूक, हायनक, दूषक, महादूषक। (सुश्रुत सूत्रस्था० ४६ अ०) राजनिघण्टके मतसे शालिधान्य दश प्रकारका है। धान्य शब्दमें विशेष विवरण देखो।

२ गंधमृग, गंधविलाव। ३ रसालेक्षु, अत्यन्त रसयुक्त ईख। ४ कृष्णजीरक, काला जीरा। ५ पक्षी, चिड़िया। ६ वासमती चावल। ७ एक यक्षका नाम।

शालिक आचार्य—एक दार्शनिक। ये न्यायामृततरङ्गिणीके प्रणेता रामाचार्यके गुरु थे।

शालिकनाथ—एक प्राचीन कवि।

शालिकनाथ मिश्र—नयरत्न, प्रकरणपञ्चिका, प्रशस्तपादभाष्यव्याख्या और शवरभाष्यटीका नामक चार मीमांसा तत्त्वविषयक ग्रन्थके प्रणेता। ये प्रभाकरगुरुके शिष्य थे। चित्सुखने अपने मानसनयनप्रसादनी ग्रन्थमें इनका उल्लेख किया है।

ये महामहोपाध्याय उपाधिसे भूषित थे। प्रमाणपरायण नामक इनका लिखा एक और ग्रन्थ मिलता है।

शालिका (सं० स्त्री०) शालिरेव स्वार्थे कन्। १ विदारी कन्द। २ शारिका, मैना। ३ शालपर्णी। ४ घर, मकान।

शालिखा—कलकत्तेके दूसरे पारमें गङ्गाके किनारे अवस्थित एक नगर। यह कलकत्तेका ही अंश समझा जाता है, किन्तु हावड़ा इसका विचार-सदर है। यहां म्युनिसिपलिटी है। यह वाणिज्यका प्रधानस्थान है। यहां बहुत-से कल कारखाने और जहाज बनानेके डक हैं।

शालिगोत्र (सं० पु०) वैदिकाचार्यभेद, सम्भवतः शालिहोत्र।

शालिगोप (सं० पु०) धान्यक्षेत्ररक्षी, वह जो खेतोंकी विशेषतः धानके खेतोंकी रखवाली करता हो।

(रघु ४।२०)

शालिञ्च (सं० पु०) शाकविशेष, एक प्रकारका साग पर्याय—शालञ्च, शितसार, पत्रश्रेष्ठ, लौहसारक। वैद्यकके अनुसार यह चरपरा, दीपन तथा प्लीहा, ववासीर और कफपित्तका नाश करनेवाला माना गया है।

शालिञ्ची (सं० स्त्री०) शालिञ्च स्त्रियां ङीष्।

शालिञ्च देखो।

शालित (सं० त्रि०) शालयुक्त, शालिन्।

शालित्व (सं० क्ली०) १ युक्तत्व। २ शालियुक्तत्व।

शालिधान (हिं० पु०) वासमती चावल। यह धान जेठ मासमें बोया जाता है और अगहनके अन्त और पूसके आरम्भमें पक कर तैयार हो जाता है। इसे अगहनी या हैमन्तिक शालिधान्य भी कहते हैं। इसका पौधा मिट्टी तथा देशके अनुसार दो हाथसे ले कर तीन हाथ तक ऊंचा होता है। इसके पत्ते साधारण धानके समान होते हैं, पर उनकी अपेक्षा कुछ कड़े और चिकने होते हैं। यह छोटा और बड़ा दो प्रकारका होता है। भेद सिर्फ इतना ही है, कि छोटा पहले पकता है और बड़ा कुछ देरमें। यह धान बिना कुट हुए ही सफेद होता है और बहुत बारीक तथा सुन्दर होता है। चावलोंमें यह सबसे उत्तम माना जाता है।

विशेष विवरण शालि शब्दमें देखो।

शालिन् (सं० त्रि०) शालास्यास्तीति इनि। १ शालविशिष्ट। पदके अन्तमें यह शब्द होनेसे युक्तवाचक होता है। (जयदेव) २ श्लाघ्य, सराहने योग्य।

(भागवत ३।२४।१)

शालिनाथ—१ रसमञ्जरी नामक ग्रन्थके प्रणेता। ये वैद्यनाथके पुत्र थे। २ गीतगोविन्दटीकाके रचयिता।

शालिनी (सं० स्त्री०) १ ग्यारह अक्षरोंका एक वृत्त। इसमें क्रमसे एक मगण, दो तगण और अन्तमें दो गुरु होते हैं। दूसरा लक्षण—"मात्तौ गौ चेत् शालिनी वेदलोकैः।"

यह शब्द भी पहले अन्तमें होनेसे युक्त अर्थ समझा जाता है। यथा—गुणशालिनी, गुणविशिष्टा स्त्री।

२ पद्मकन्द, भसींड़। ३ मेथिका, मेथी।

शालिनीकरण (सं० क्ली०) न्यग्भावन, तिरस्कार, भर्त्सना। (त्रिका०)

शालिपर्णिका (सं० स्त्री०) शालपर्णी देखो।

शालपर्णी (सं० स्त्री०) शालेरिव पर्णानि यस्याः ङीष्। १ पृश्नपर्णी, पिठवन। २ मेदा नामक अष्टवर्गीय ओषधि। ३ माषपर्णी, वन उरदी। ४ शालपर्णी, सरिवन।

शालिपिण्ड (सं० पु०) नागभेद। (भारत आदिपर्व)

शालिपिष्ट (सं० पु०) शाले पिष्टमिव शुभ्रत्वात् । स्फटिक, बिल्लौर पत्थर ।

शालिभद्र—१ एक जैनाचार्य । ये जिनभद्र मुनि (११४८ ई०)के गुरु थे । २ काव्यालङ्कारटीकाके प्रणेता नमि (१०६३ ई०) के गुरु ।

शालिमञ्जरी (सं० पु०) एक ऋषिका नाम ।

शालिमूल (सं० क्ली०) हैमन्तिक धान्यमूल । (चरक)

शालिराट् (सं० पु०) हंसराज चावल ।

शालिवह (सं० त्रि०) १ शालावहनकारी । २ धान्यवहन कारी ।

शालिवाह (सं० पु०) धान्यवहनकारी वृष, वह बैल जो धान ढोता हो, लदनाका बैल । (रामा० २।३२।२०)

शालिवाहन (सं० पु०) शक जातिका एक प्रसिद्ध राजा । इसने 'शक' नामक सम्वत् चलाया था । टाडराजस्थानमें लिखा है, कि यह गजनीके राजा 'गज'का पुत्र था । पिताके मारे जाने पर यह पञ्जाब चला आया और उस पर अपना अधिकार जमा लिया । इसने शालिवाहनपुर नामक नगर भी बसाया था । इसकी राजधानी गोदावरीके किनारे प्रतिष्ठानपुरमें थी । कहीं कहीं इसका नाम सातवाहन भी मिलता है । कथासरित्सागरमें लिखा है, कि इसे सात नामक गुह्यक उठा कर ले चला करता था, इसीसे इसका नाम सातवाहन पड़ा । सातवाहन देखो ।

शालिशक्तु (सं० पु०) शालिधान्यकृत शक्तु, वह सत्तू जो बासमती चावलका बनता है । इसका गुण—मधुर, लघु, शीतल, ग्राही, रक्तपित्तनाशक, तृष्णा, छर्दि और ज्वरनाशक माना गया है ।

(चरक सूत्र २७ अ०)

शालिसूर्य (सं० क्ली०) एक गाँवका नाम । (भारत वनपर्व)

शालिहोत्र (सं० पु०) १ घोटक, घोड़ा । २ पुराणानुसार गोत्रप्रवर्त्तक एक ऋषिका नाम । (क्ली०) ३ नकुलकृत अश्ववैद्यक, नकुलका बनाया हुआ घोड़ों और पशुओं आदिकी चिकित्साका शास्त्र । ४ भोजकृत अश्ववैद्यक ।

शालिहोत्रमुनि—रेवतस्तोत्र और सिद्धयोगसंग्रहके रचयिता ।

शालिहोत्रायण (सं० पु०) शालिहोत्रका गोत्रापत्य ।

शालिहोत्री (सं० पु०) अश्ववैद्य, वह जो पशुओं और विशेषतः घोड़ों आदिकी चिकित्सा करता हो ।

शाली (सं० स्त्री०) १ कृष्णजीरक, काला जीरा । २ मेथिका, मेथी । ३ शालपर्णी । ४ दुरालभा । ५ बंगालमें प्रवाहित एक छोटी नदी ।।

शालीकि—एक प्राचीन आचार्य । बौधायनश्रौतसूत्रमें इनका उल्लेख देखनेमें आता है ।

शालीक्षुमत् (सं० पु०) शालि और इक्षुयुक्त क्षेत, वह खेत जिसमें शालि और ईख हो । (बृहत्सं० १६।१६)

शालीगनामी (शालग्रामी)—गण्डकी नदीके स्थानविशेषका नाम ।

शालीन (सं० त्रि०) शालाप्रवेशनमर्हतीति शाला (शालीनकौपीने अधृष्टाकार्ययो । पा ५।२।२०) इति खञ् प्रत्ययेन निपातनात् सिद्धं । १ जो धृष्ट या उद्दण्ड न हो, विनीत । (मार्कण्डेयपु० ४१।६) २ सलज्ज, लज्जालु, जिसे लज्जा आती हो । ३ सदृश, समान, तुल्य । ४ शाला-सम्बन्धी, शालाका । ५ सम्पत्तिशाली, धनवान्, अमीर । ६ अच्छे आचार-विचारवाला । ७ जो व्यवहारमें कुशल हो, दक्ष, चतुर । (पु०) ८ उत्कृष्ट धान्य, बढ़िया धान । (दिव्या ५५६।८)

शालीनता (सं० स्त्री०) शालीनस्य भावः तल्-टाप् । १ शालीन होनेका भाव या धर्म । २ लज्जा, लाज, शरम । ३ अधीनता । ४ नम्रता ।

शालीनत्व (सं० क्ली०) शालीनस्य भावः त्व । १ शालीन होनेका भाव या धर्म, अधृष्टता । २ शतपुष्पा, सौंफ । ३ सोआ नामक साग ।

शालीनीकरण (सं० क्ली०) शालीन कृ-अभूततद्भावे च्वि । नम्रीकरण ।

शालीना (सं० स्त्री०) मिश्रेयाख्य क्षुप, सौंफका पौधा ।

शालीन्य (सं० पु०) शालीन (कुर्व्वादिभ्यो ण्यः । पा ४।१।१५१) इति अपत्यार्थे ण्य । शालीनका गोत्रापत्य ।

शालीपुर—विशाल राज्यके अन्तर्गत एक प्राचीन गांव ।

(भविष्यब्रह्म०)

शालीय (सं० त्रि०) १ शाला या गृह-सम्बन्धी । २ शाल

अर्थात् शाल वृक्ष सम्बन्धी। (पु०) ३ एक वैदिक आचार्यका नाम।

शालु (सं० क्लो०) श्रणाति शीतागमे श्रृ बाहुलकात् ञुण्, रस्य लत्वं। (उण् १।५) १ कमलकन्द, भसींड़। (पु०) २ कषाय द्रव्य। ३ चोरक या भटेउर नामक ओषधि। ४ भेक, मेढक। ५ एक प्रकारका फल।

शालुक (सं० क्लो०) १ कुमुदादि मूल, भसींड़। २ जायफल।

शालुम्बा—राजपूतानेके उदयपुर राज्यान्तर्गत एक नगर। यहां चन्द्रावत राजपूतोंकी राजधानी थी। सालुम्बा देखो।

शालूक (सं० क्लो०) शाल (शलिमण्डिम्यो ऊकण्। उण् ४।४२) इति ऊकण्। १ कुमुदादि मूल, भसींड़। तैलङ्ग—आजिकाय। संस्कृत पर्याय—पद्मसूरण, शालु। गुण—शीतल, बलकर, पित्त, दाह और रक्तदोषनाशक, गुरु, दुर्जर, स्वादुपाक, स्तम्य, वात और कफवर्द्धक, संग्राही, मधुर और रुचिकर। (राजनि०)

भावप्रकाशके मतसे यह शीतवीर्य, शुक्रजनक, पित्तघ्न, दाहनाशक, रक्तदोषापहारक, गुरु, दुष्पाच्य, मधुर विपाक, स्तन्यजनक, वायुवर्द्धक, कफप्रदायक, धारक, मधुर रस तथा रुक्ष होता है। शालूकमूल भी इसी प्रकारका गुणयुक्त है।

अल्पविनोत्पन्न, अकालोत्पन्न, जीर्ण, व्याधियुक्त, कीट द्वारा भक्षित और अग्निजलादि द्वारा दूषित शालूक वर्जनीय है। (भावप्र०) २ मण्डूक, मेढक। ३ जातीफल, जायफल। (राजनि०) ४ एक प्रकारका रोग।

शालूकिनी (सं० स्त्री०) शालूक अस्त्यर्थे इनि। १ शालूकयुक्त भूमि। २ एक गांवका नाम। (पा ३।४।७) ३ एक तीर्थका नाम। (भारत वनप०)

शालूकेय (सं० पु०) शालूकका गोत्रापत्य। (पा ४।१।१२३)

शालूर (सं० पु०) शालते प्लुवेन गच्छतीति शल (खर्जिपिञ्जादिभ्यः ऊरोलचौ। उण् ४।९०) इति ऊर। भेक, मेढक।

शालूरक (सं० पु०) एक प्रकारका कीटाणु जो अंतड़ियोंमें पीड़ा उत्पन्न करता है।

शालेमिश्री—काबुल और काश्मीर आदि प्रदेशोंके वृक्षोंका गोंद या आटा। यह बड़ा कड़ा होता है। यह गरम जलमें गल जाता है। गुण—उष्ण, गुरु, आग्नेय, रुक्ष, शुक्रवर्द्धक, वर्णका औज्ज्वल्यकारक, कामवर्द्धक, धातुपोषक, मेध्य, हृद्य, कफ, यक्ष्मा, कास, श्वास, स्वरभेद, दुर्बल, उन्माद, अपस्मार, ऊरुस्तम्भ, शूल, मूत्ररोग, प्रमेह, उदरी, शोथ, वृद्धि, गलरोग, ग्रन्थि, अर्बुद, श्लीपद, विद्रधि, व्रण, कुष्ठ, विसर्प, विस्फोट, मुख, कर्ण, नेत्र, शिर, योनि और सूतिका इन सब रोगोंका नाशक। मतान्तरसे स्निग्धकारक, बालकका हितकर और पथ्य। (द्रव्यगुण)

शालेय (सं० पु०) शालीनां क्षेत्रं शालि (व्रीहिशाल्योर्ढक्। पा ५।२।२) इति ढक्। १ शाल्युद्भव क्षेत्र, शालि धानका खेत। २ मधुरिका; सौंफ। ३ मूली। (त्रि०) ४ शालसम्बन्धी, शाल वृक्षका। ५ शाला-सम्बन्धी, घरका।

शालेया (सं० स्त्री०) शालेय-टाप्। १ मिश्रेया, मेथी। २ सोआ।

शालै—एक जाति।

शालोत्तरीय (सं० पु०) शालोत्तरे ग्रामे भवः शालोत्तर-छ। पाणिनि मुनि, शालातुरीय। (त्रिका०)

शालोन—युक्तप्रदेशके रायबरेली जिलान्तर्गत एक नगर।

शाल्मल (सं० पु०) १ शाल्मलि वृक्ष, सेमलका पेड़। २ सात द्वीपोंमेंसे एक, शाल्मलि द्वीप। यह द्वीप क्रौञ्चद्वीपसे दूना है। (मत्स्यपु० १०० अ०) ३ मोचरस। ४ शाल्मलि देखो।

शाल्मलि (सं० पु० स्त्री०) स्वनामख्यात महातरु, सेमलका पेड़ (*Bombax malabaricum*)। उत्कल—बोनरो, तामिल—पुला, महाराष्ट्र—शाम्बरी। संस्कृत पर्याय—पिच्छिला, पूरणी, मोचा, स्थिरायु, दुरारोहा, शाल्मलिनी, शाल्मल, तुलिनी, कुक्कुटी, रक्तपुष्पा, कण्टकारी, मोचनी, चिरजीवी, पिच्छिल, रक्तपुष्पक, तूलवृक्ष, मोचाख्य, कण्टकद्रुम, रक्तोत्पल, रम्यपुष्प, बहुवीर्य, यमद्रुम, दीर्घद्रुम, स्थूलफल, दीर्घायु, कण्टकाढ्य। (भावप्रकाश)

इसके धड़ और डालियां कण्टकाकीर्ण होती हैं। इसकी लम्बी लम्बी डांडोंमें पंजेकी तरह पांच पांच या छः छः पत्ते लगे रहते हैं। फूल मोटे मोटे दलोंसे गठित बड़े बड़े और गहरे लाल होते हैं। फूलोंमें पांच दल होते हैं

और उनका घेरा बहुत बड़ा होता है। फाल्गुनके महीने-में इस पेड़के सारे पत्ते झड़ जाते हैं। उस समय यह इन्हीं लाल लाल फूलोंसे आच्छादित रहता है। जब फूलोंके दल भी झड़ जाते हैं, तब केवल ढोंडा या फल रह जाते हैं। इन फलोंके अन्दर अत्यन्त मुलायम रेशमकी तरह रूई होती है। इस रूईमें बिनौलेके-से बीज होते हैं। सेमलके ढोंडे या फलोंको निस्सारता भारतीय कवि पर-म्परामें बहुत पहलेसे प्रसिद्ध है। 'सेमर सेई सुवा पछताने' यह एक कहावत सी हो गई है। सेमलकी रूईका सूत तैयार नहीं किया जा सकता, इसलिये लोग इसे गद्दों तथा तकियोंमें भरते हैं। इसकी लकड़ी पानीमें खूब ठहरती है और नाव बनानेके काममें आती है। आयुर्वेदमें सेमल बहुत उपकारी ओषधि मानी गई है। यह मधुर, कसैला, शीतल, हलका, स्निग्ध, पिच्छिल तथा शुक्र और कफको बढ़ानेवाला कहा गया है। सेमलकी छाल कसैली और कफनाशक; फूल शीतल, कड़ुवा, भारी, कसैला, वात-कारक, मलरोधक, रूखा तथा कफ, पित्त और रक्तविकार को शान्त करता है। फलके गुण फूल होके समान हैं। सेमलके नये पौधे की जड़को सेमलका मूसला कहते हैं। कारण, कामोद्दीपक और नपुंसकताको दूर करनेवाला माना जाता है। सेमलका गोंद मोचरस कहलाता है। यह अतिसारको दूर करता है और बलको बढ़ाता है। इसके बीज स्निग्धताकारक और मदकारी होते हैं तथा कांटेमें फोड़े, फुंसी, घाव, छीप आदि दूर करनेका गुण होता है।

फूलोंके रङ्गके भेदसे सेमल तीन प्रकारका है—पहला साधारण लाल फूलोंवाला, दूसरा सफेद फूलोंका और तीसरा पीले फूलोंका। इनमेंसे पीले फूलोंका सेमल कहीं देखनेमें नहीं आता। सेमल भारतवर्षके गरम जंगलोंमें तथा बरमा, सिंहल और मलयमें अधिकतासे होता है।

शाल्मलिक (सं० पु०) शाल्मलि (बुन्छ्यकठजिलेति। पा ४।२।८०) इति कुमुदादित्वात् ठक्। रोहितक वृक्ष, रोहिड़ा।

शाल्मलिद्वीप—सात द्वीपोंमेंसे एक द्वीपका नाम। ब्रह्माण्डपुराण पढ़नेसे जाना जाता है, कि इस द्वीपमें बहुत-से शाल्मलिवृक्ष थे, इसीलिये यह शाल्मलिद्वीपके नामसे विख्यात हुआ है। इसी द्वीपके द्वारा इक्षुसमुद्र परिवेष्टित है। यहां श्वेत वर्षमें कुमुदपर्वत, लोहितवर्षमें उत्तमपर्वत, जीमूतवर्षमें बलाहकपर्वत, हरितवर्षमें द्रोण-पर्वत, वैद्युतवर्षमें कङ्कपर्वत, मानसवर्षमें महिषपर्वत एवं सुप्रभवर्षमें ककुद्पर्वत विद्यमान है। इन सप्तवर्षों-में योनी, तोया, वितृष्णा, चन्द्रा, शुक्ला, विमोचनी और निवृत्ति नामक सात प्रधान नदियां प्रवाहित होती हैं। इन सब नदियोंसे असंख्य शाखा-प्रशाखा नदियाँ निकली हैं। इसका आकार कुशद्वीपसे दूना है।

(ब्रह्माण्डपु० अनुषंग ५२ अ०)

शाल्मलिन् (सं० पु०) शाल्मल आश्रयत्वेनास्त्यस्येति इनि। गरुड़। (त्रिका०)

शाल्मलिनी (स्त्री०) शाल्मलि वृक्ष, सेमलका पेड़।

शाल्मलिपत्रक (सं० पु०) शाल्मलिपत्रमिव पत्रं यस्य। सप्तच्छद वृक्ष, सतिवन। (राजनि०)

शाल्मलिस्थ (सं० पु०) शाल्मलौ वृक्षे तिष्ठतीति स्था-क। गरुड़।

शाल्मली (सं० पु०) एक राजाका नाम।

(महा० १३।१६०)

शाल्मली (सं० स्त्री०) शाल्मलि कृदिकारादिति ङीष्। शाल्मलि वृक्ष, सेमलका पेड़। अमरटीकामें भरतने इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की है, 'शलति दैर्घ्यात् दूरं गच्छति शाल्मलिः शल अ गतौ नाम्नीति मलिन् वृद्धिः। इयो-रित्युक्ते स्त्रीपक्षे पाच्छोणादीति ङीपि शाल्मली च शाल्मलिश्चेति केचित् तन्मते विभाषया वृद्धिः।' (भरत)

शाल्मलीकण्टक (सं० पु०) स्वनामप्रसिद्ध कण्टकविशेष, सेमलका कांटा। यह व्यङ्गरोगनाशक होता है।

(वाभट उत्तर० ३२ अ०)

शाल्मलीकन्द (सं० पु०) शाल्मल्याः कन्दः। शाल्मलीकी जड़। पर्याय—चिरुल, वनवासक, वनवासी, मलहन, मलहन्ता। इसका गुण—मधुर, मलसंग्रह, रोध और जयकारक, शीतल, पित्त, दाह, शोक और सन्तापनाशक।

(राजनि०)

शाल्मलीकल्प (सं० पु०) वैद्यशास्त्रके अन्तर्गत चिकित्सा-कल्पभेद। (जयदत्त)

शाल्मलीफल (सं० पु०) शाल्मल्याः फलमिव फलं यस्य। १ तेजवल या तेजफल नामका वृक्ष। (क्ली०) २ सेमलका फल।

शाल्मलीफलक (सं० क्ली०) सुश्रुतके अनुसार काठकी वह पट्टी जिस पर रगड़ कर छुरे आदिकी धार तेज की जाती है। (सुश्रुत सूत्रस्था० ८, ६ अ०)

शाल्मलीवेष्ट (सं० पु०) शाल्मल्या वेष्टः। शाल्मली-निर्यास, सेमलका गोंद। पर्याय—पिच्छा, मोचरस, शाल्मलीवेष्टक, मोचस्राव, मोचनिर्यास; इसका गुण—शीतल, ग्राहक, स्निग्ध, बलकर, कषाय, प्रवाहिका, अग्नि सार, आम, कफ, पित्त, रक्तदोष और दाहनाशक। (भावप्र०)

शाल्मलीवेष्टक (सं० पु०) शाल्मलीवेष्ट देखो।

शाल्मलीसत्त्वनिर्यास (सं० पु०) मोचरस। (भैषज्यरत्ना०)

शाल्मलीस्थल (सं० क्ली०) शाल्मली द्वीप। शाल्मलिद्वीप देखो।

शाल्मल्या (सं० स्त्री०) शाल्मलिकी स्त्री अपत्य।

शाल्यपति (सं० पु०) एक ऋषिका नाम। (संस्कारकौ०)

शाल्व (सं० पु०) १ देशविशेष, शाल्वदेश। २ राजविशेष, एक राजाका नाम। ये सौभ राज्यके अधिपति थे। महाभारतमें लिखा है, कि जिस समय काशिराजकी लड़कियोंका स्वयम्वर हो रहा था, उस समय भीष्मने राजाकी कन्याओंको उनसे जबर्दस्ती छीन लाये थे। शाल्वराजने भीष्मके साथ युद्ध किया था; किंतु वे युद्धमें पराजित हुए। युद्धविजयके बाद काशिराजकी बड़ी लड़कीने कहा—"मैं पहले ही सौभराज्यके अधिपति शाल्वराजको अपना पति कर चुकी हूं, वे भी मनही मन मुझे स्त्रीरूपमें ग्रहण कर चुके हैं। मेरे पिताकी भी यही अभिलाषा थी। मैंने स्वयंवरमें उन्हींके गलेमें माला डाली। आप धर्मज्ञ हैं, इस समय सोच विचार कर धर्मानुसार कार्य करें।

भीष्मने उसका अभिप्राय समझ कर शाल्वराजके साथ उसका विवाह कर दिया। (भारत आदिप० १०२।१३ अ०)

शिशुपालके साथ शाल्वकी विशेष आत्मीयता थी। जब श्रीकृष्णने शिशुपालका वध किया, तब श्रीकृष्णको मार डालनेके अभिप्रायसे शाल्वराजने द्वारिकापुरीको घेर लिया। प्रद्युम्न प्रभृति यादवोंके साथ इसका घोर युद्ध हुआ। आखिर श्रीकृष्णने उसे यमपुर भेज दिया। (भारत वनप० १५-२० अ०)

शाल्वक (सं० त्रि०) शाल्वदेशभव।

शाल्वकिनी (सं० स्त्री०) रामायणके अनुसार एक प्राचीन नदीका नाम। (रामा० ६।१०६।४६)

शाल्वगिरि (सं० पु०) एक प्राचीन पर्वतका नाम। (पा ६।३।११७)

शाल्वण (सं० पु०) १ वह लेप जो फोड़ेको पकानेके लिये उस पर चढ़ाया जाता है, पुलटिस। २ चोया, भरता।

शाल्वसेनि (सं० पु०) शाल्वसेनी देखो।

शाल्वसेनी (सं० पु०) १ महाभारतके अनुसार एक प्राचीन देशका नाम। (भारत ६।६।६०) यह जनपद गोदावरी नदीके पश्चिममें अवस्थित था। पाश्चात्य भौगोलिकोंने इसे Salakenoi शब्दमें उल्लेख किया है। २ इस देशका निवासी।

शाल्वायन (सं० पु०) शाल्व राजाके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

शाल्विक (सं० पु०) एक प्रकारका पक्षी जिसे हुदहुद भी कहते हैं।

शाल्वेय (सं० पु०) १ एक प्राचीन देशका नाम। २ इस देशका निवासी। ३ इस देशका अधिपति।

शाल्वेयक (सं० पु०) शाल्वेय जनपदका रहनेवाला।

शाव (सं० पु०) शव्यते प्राप्यते इति शव-गतौ घञ्। १ शिशु, बच्चा, विशेषतः पशुओं आदिका बच्चा। २ श्मशान, मरघट। ३ मृतक, मुरदा। ४ भूरा रङ्ग। ५ सूतक जो किसीके मर जाने पर उसके सम्बन्धियोंको लगता है। (त्रि०) ६ शव-सम्बन्धी, शवका। (तिथितत्त्व)

शावक (सं० पु०) शाव एव स्वार्थे कन्। शाव, बच्चा, विशेषतः पशुओं आदिका बच्चा।

शावता (सं० स्त्री०) शावस्य भावः तल्-टाप्। १ शाव-

का भाव या धर्म, शावल्य, वच्चोपन। २ श्यामता।
शावर (सं० पु०) शबर-अण्। १ पाप, गुनाह। २ अपराध, कसूर। ३ लोध्र वृक्ष, लोधका पेड़। ४ शबर-स्वामिकृत भाष्य, मीमांसाभाष्य। ५ शिवकृत तन्त्र विशेष। (त्रि०) ६ शबर सम्बन्धी, शबरका।
शावरकरोध्र (सं० पु०) अग्निमेयज्ञापरसंज्ञक सनामख्यात लोध्र, पठानी लोध। (वाभट)
शावरचन्दन (सं० पु०) एक प्रकारका चन्दन।
शावरमेदाक्ष (सं० क्ली०) ताम्र, ताँबा।
शावरी (सं० स्त्री०) शूकशिम्बी, केवाँच।
शावशायन (सं० पु०) शवसका गोत्रापत्य।
शाश (सं० त्रि०) शश-अण्। शश-सम्बन्धी।
(याज्ञवल्क्य १।२५८)
शाशक (सं० त्रि०) शशकस्येदं शशक-अण्। शशक-सम्बन्धी।
शाशविन्दव (सं० त्रि०) शशविन्दुका अपत्य।
शाशविन्दवी (सं० स्त्री०) शशविन्दुकी लड़की।
शाशादनक (सं० त्रि०) शशादन (धूमादिभ्यश्च। पा ४।२।१२७) इति वुञ्। शशादन-देशवासी।
शाशिक (सं० पु०) १ एक प्राचीन देशका नाम। २ इस देशका निवासी।
शाश्वत् (सं० पु०) शाश्वत, नित्य, स्थायी।
शाश्वत (सं० त्रि०) शश्वद्भवं, शश्वत्-अण्। १ चिरस्थायी, जो सदा स्थायी रहे, कभी नष्ट न होनेवाला, नित्य।
"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।"
(राम.आद १।२।१५)
पारिभाषिक शाश्वत यथा—देवपूजा प्रभृति, ब्राह्मणोंके उद्देशसे दान, सद्गुणविद्या, सुहृद् और मित्र इन सबोंको पारिभाषिक शाश्वत कहते हैं।
(गरुड़पु० नीतिसा० ११६ अ०)
(पु०) २ वेदव्यास। ३ शिव। (भारत १३।१७।३२) ४ स्वर्ग। ५ अन्तरिक्ष।
शाश्वतिक (सं० त्रि०) शाश्वत, नित्य, स्थायी।
शाश्वती (सं० स्त्री०) पृथ्वी।
शाषमान (सं० पु०) एक वैद्यकशास्त्रके वेत्ता।
शाष्कुल (सं० त्रि०) मांसाशी, मांस या मछली खानेवाला, गोश्तखोर।
शाष्कुलिक (सं० क्ली०) शष्कुल समूहार्थे ठक्। शष्कुली-समूह।
शाष्पक (सं० त्रि०) शष्प (धूमादिभ्यश्च। पा ४।२।१२७) इति वुञ्। १ शष्पबहुल देश। २ शष्पबहुल देशस्थित।
शाष्पेय (सं० पु०) एक वैदिक आचार्यका नाम।
(पा ४।३।१०६)
शाष्पेयिन् (सं० पु०) शाष्पेय शाखाध्यायी।
शास् (सं० स्त्री०) १ शासन। २ आयुधविशेष।
"नेचिद्धि पूर्वीरभिसस्थि शासा" (ऋक् ७।४८।३)
'शासा शासनेन सक्रीयया क्षया यद्वा विशस्यते हिंस्यतेऽनेनेति शास् शब्द आयुधवाची तेन' (सायण)
शास (सं० पु०) शास घञ्। १ अनुशासन। २ स्तव, स्तुति।
"रातहव्याः प्रति यः शासमिन्वति" (ऋक् १।५४।७)
'शासं इन्द्रकर्त्तृकमनुशासनं यद्वा तस्य स्तुतिं शासु अनुशिष्टावित्यस्माद्भावे घञ्' (सायण)
शासक (सं० पु०) शास-ण्वुल्। १ शासनकर्त्ता, वह जो शासन करता हो। २ वह जिसके हाथमें किसी नगर, प्रान्त या देश आदिकी राजकीय व्यवस्था हो; हाकिम।
शासन (सं० क्ली०) शास ल्युट्। १ आज्ञा, हुक्म। पर्याय—अववाद, निर्देश, शिष्टि, शास्ति, आदेश, आदेशन, शास्त्र। (जटाधर)
"कुर्व्वीत शासनं राजा सम्यक्सारापराधतः।"
(मनु ८।२६२)
कुल्लूकने शासन शब्दका अर्थ दण्ड किया है, चोरी आदि कोई पाप करने पर राजा धर्मानुसार उसको शासन अर्थात् दण्ड दे।
२ राजदत्त भूमि, मुआफी। ३ लिखित प्रतिज्ञा, पट्टा, ठीका। ४ शास्त्र। शास्त्र द्वारा सभी लोग शासित होता है, इसीसे इसे शासन कहते हैं। ५ शास्ति, दण्ड, सजा। ६ इन्द्रिय-निग्रह। ७ किसी नगर, प्रान्त या देश आदिकी राजकीय [illegible] करनेका काम; हुकूमत। ८ वह परमाना या [illegible] द्वारा किसी व्यक्तिको

कोई अधिकार दिया जाय। ९ किसीके कार्यों आदिका नियंत्रण करना। १० किसीको अपने अधिकार या वशमें रखना।

शासनदेवता (सं० स्त्री०) जैनियोंकी एक देवी। (हेम)

शासनदेवी (सं० स्त्री०) जैनियोंकी एक देवी। (शब्दरत्ना०)

शासनधर (सं० पु०) धरतीति धरः शासनस्य धरः। १ राजदूत, पलची। २ शासक।

शासनपत्र (सं० क्ली०) वह ताम्रपत्र या शिला जिस पर कोई राजाज्ञा लिखी या खोदी हुई हो।

शासनवाहक (सं० पु०) १ राजदूत, पलची। २ आज्ञावाहक, वह जो राजाकी आज्ञा लोगोंके पास पहुंचाता हो। (कामन्दकीय १२।३)

शासनशिला (सं० स्त्री०) वह शिला जिस पर कोई राजाज्ञा लिखी हो।

शासनहर (सं० पु०) हरतीति हृ-अच्, शासनस्य हरः। १ राजदूत, पलची। २ आज्ञावाहक, वह जो राजाकी आज्ञा लोगों तक पहुंचाता हो।

शासनहारक (सं० पु०) १ राजदूत, पलची। (कामन्दकीय नीति १२।३) २ आज्ञावाहक, वह जो राजाकी आज्ञा लोगों तक पहुंचाता हो।

शासनहारिन् (सं० पु०) राजदूत, पलची। (रघु० ३।६८)

शासनी (सं० स्त्री०) शासन, स्त्रियां ङीप्। धर्मोपदेशकर्त्री, वह स्त्री जो लोगोंको धर्मका उपदेश करती हो।

"अकृणवन् मनुष्यस्याशासनी" (ऋक् १।३१।११)

शासनीय (सं० त्रि०) शास-अनीयर्। १ शासनार्ह, शासन करनेके योग्य। २ सुधारनेके योग्य। ३ दण्ड देनेके योग्य, सजा देनेके लायक।

शासित (सं० त्रि०) शास-क्त। १ कृतशासन, जिसका शासन किया जाय, शासन किया हुआ। २ दण्डित, जिसे दण्ड दिया जाय। (पु०) ३ प्रजा। ४ निग्रह, संयम।

शासितृ (सं० पु०) शास्-तृच्। १ शास्ता, शासनकर्त्ता। (मनु ७।१७) २ व्याख्याता। (मनु २।१५०)

शासिन् (सं० पु०) शास-णिनि। शासक, शासनकरनेवाला। इस शब्दका प्रयोग प्रायः यौगिक शब्द बनानेमें, उसके अन्तमें किया जाता है।

शास्तृ (सं० पु०) शासक।

शास्ति (सं० स्त्री०) शास-बाहुलकात् ति। (उण् ४।१७६) १ शासन। २ दण्ड, सजा।

शास्तृ (सं० पु०) शासु (तृन्तृचौ शंसीति। उण् २।९४) इति असंज्ञायामपि तृन् सच अनिट्। १ शासनकर्त्ता, शासक। पर्याय—देशक, शासिता।

"द्वौ शास्तारौ त्रिलोकेऽस्मिन् धर्माधर्मौ प्रकीर्त्तितौ॥" (अग्निपु० गणभेदनामाध्याय)

२ बुद्ध (अमर) ३ उपाध्याय, गुरु। ४ राजा। ५ पिता। (संक्षिप्तसार उणादि)

शास्तृत्व (सं० क्ली०) शास्तु र्भावः त्व। शास्ताका भाव या धर्म, शास्ताका कार्य, शासन, शास्ति।

शास्त्र (सं० क्ली०) शिष्यतेऽनेन शास (सर्व धातुभ्यष्ट्रन्। उण् ४।१५८) १ हिन्दुओंके अनुसार ऋषियों और मुनियों आदिके बनाए हुए वे प्राचीन ग्रन्थ जिनमें लोगोंके हितके लिये अनेक प्रकारके कर्त्तव्य बताए गये हैं और अनुचित कृत्योंका निषेध किया गया है अर्थात् वे धार्मिक ग्रन्थ जो लोगोंके हित और अनुशासनके लिये बनाये गये हैं।

हमारे यहां वे ही ग्रन्थ शास्त्र माने गए हैं जो वेदमूलक हैं। इनकी संख्या १८ कही गई है और नाम इस प्रकार दिये गये हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र, पुराण, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद और अर्थशास्त्र। इन अठारहों शास्त्रोंको अठारह विद्याएं भी कहते हैं।

मत्स्यपुराणमें शास्त्रकी उत्पत्तिका विषय इस प्रकार लिखा है—पहले देवताओंके पितामहने कठोर तपस्या आरंभ कर दी। उससे साङ्गोपाङ्ग वेद आदि शास्त्र आविर्भूत हुए। (मत्स्यपु० ३ अ०)

शास्त्रमें जो सब विधि और निषेध हैं, उनके अनुसार आचरण करना सबोंका कर्त्तव्य है। शास्त्रोक्त कर्म ही

विधेय है, शास्त्रनिषिद्ध कर्म सर्वतोभावसे वर्जनीय है। गीतामें लिखा है, कि जो शास्त्र विधिका परित्याग कर अपने इच्छानुसार कर्म करते हैं, वे सिद्धि और सुख कुछ भी नहीं पाते।

पद्मपुराणमें भी लिखा है, कि सर्वदा श्रुति, स्मृति और सदाचारविहित कर्मका आचरण करे। जो इसका अन्यथाचरण करते हैं, उन्हें नरक होता है। अतएव जो सब शास्त्र वेदविरुद्ध हैं, उनमें जो सब विधि कही गयी है, उसका परित्याग करना उचित है। स्वबुद्धिरचित शास्त्रमें मूर्खोंको प्रतारित किया गया है। वे इस असच्छास्त्रानुसार कर्म कर श्रेष्ठ मार्गसे भ्रष्ट और पीछे विनष्ट होते हैं। सुतरां असच्छास्त्र लोकनाशका कारण है। वेदविरुद्ध जो शास्त्र है, वही असच्छास्त्र है।

(उत्तरख० १७ अ०)

२ किसी विशिष्ट विषय या पदार्थ समूहके संबंधका वह समस्त ज्ञान जो ठीक क्रमसे संग्रह करके रखा गया हो, विज्ञान।

शास्त्रकार (सं० पु०) शास्त्रं करोतीति कृ 'कर्मण्युपपदे' इति अण्। शास्त्रकर्त्ता, वह जिसने शास्त्रोंका प्रणयन या रचना की हो।

शास्त्रकृत् (सं० पु०) शास्त्रं करोतीति कृ-क्विप् तुक् च। १ ऋषि। २ आचार्य। (त्रिका०) ३ शास्त्रकर्त्ता, शास्त्रप्रणेता।

शास्त्रगञ्ज (सं० पु०) कथासरित्सागर वर्णित शास्त्रज्ञ तोता पक्षी। (कथासरित्सा० ५६।२८)

शास्त्रगण्ड (सं० पु०) प्रघटावित्। (त्रिका०) द्वारा वलीमें इसका पाठान्तर छात्रगण्ड है।

शास्त्रचक्षुस् (सं० क्ली०) शास्त्रेषु चक्षुरिव। १ शास्त्रकी आंख अर्थात् व्याकरण। व्याकरण शास्त्रमें व्युत्पत्ति नहीं होनेसे किसी शास्त्रमें अधिकार नहीं होता, इसलिये व्याकरणको शास्त्रचक्षुः कहते हैं। शास्त्रमेव चक्षुः रूपकर्मधारयः। २ शास्त्ररूप चक्षु। (त्रि०) शास्त्रं चक्षुर्यस्य। ३ जिसे शास्त्ररूपी नेत्र प्राप्त हो, ज्ञानी, पण्डित।

शास्त्रचारण (सं० त्रि०) शास्त्रं चारयति प्रचारयति चार-णिच् ल्यु। शास्त्रदर्शी, जो शास्त्रोंका अच्छा ज्ञाता हो।

शास्त्रचिन्तक (सं० पु०) शास्त्रं चिन्तयतीति चिन्ति-ण्वुल्। शास्त्रचिन्ताकारी, वह जो शास्त्रकी आलोचना करता हो।

शास्त्रचौर (सं० पु०) शास्त्रज्ञ आचार्य।

शास्त्रज्ञ (सं० पु०) शास्त्रं जानातीति ज्ञा क। शास्त्रवेत्ता, वह जो शास्त्रका ज्ञाता हो।

शास्त्रतत्त्वज्ञ (सं० त्रि०) शास्त्रस्य तत्त्वं जानातीति ज्ञा-क। १ शास्त्रार्थदर्शी, जो शास्त्रके तत्त्वोंका अच्छा ज्ञाता हो। (पु०) २ गणक, ज्योतिषी।

शास्त्रतस् (सं० अव्य०) शास्त्र तसिल्। १ शास्त्रानुसार, शास्त्रके मोताबिक। २ शास्त्रसे। पञ्चमी या सप्तमीका अर्थ होनेसे तसिल् प्रत्यय होता है।

शास्त्रत्व (सं० क्ली०) शास्त्रस्य भावः त्व। शास्त्रका भाव या धर्म।

शास्त्रदर्शिन् (सं० त्रि०) शास्त्रं द्रष्टुं शीलमस्य दृश-इनि। शास्त्रज्ञ, जिसे शास्त्रोंका अच्छा ज्ञान हो।

शास्त्रदृष्ट (सं० त्रि०) शास्त्रे दृष्टः। जो शास्त्रमें दृष्ट हुआ हो।

"प्रत्यहं देशदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः।" (मनु ८।३)

शास्त्रदृष्टि (सं० पु०) शास्त्रमेव दृष्टिर्यस्य। १ वह जो शास्त्रोंका ज्ञाता हो, शास्त्रज्ञ।

"दिनं जगन्न होरान्च नविद्वः शास्त्रदृष्टयः॥"

(मार्कपु० १०६।३६)

(स्त्री०) २ शास्त्ररूप दृष्टि।

शास्त्रनेत्र (सं० त्रि०) शास्त्रमेव नेत्रं यस्य। शास्त्रचक्षु।

शास्त्रवक्तृ (सं० त्रि०) शास्त्रस्य वक्ता। शास्त्रोपदेष्टा, शास्त्रोंका उपदेश देनेवाला।

शास्त्रबुद्धि (सं० त्रि०) शास्त्रे बुद्धिर्यस्य। १ जिसको शास्त्रविषयक बुद्धि हो, शास्त्र जाननेवाला। (स्त्री०) २ शास्त्रविषयिणी बुद्धि। जो बुद्धि रहनेसे शास्त्र समझा जाता है, वही शास्त्रबुद्धि है।

शास्त्रमति (सं० त्रि०) शास्त्रे मतिर्यस्य। शास्त्रबुद्धि।

शास्त्रवत् (सं० अव्य०) शास्त्रतः, शास्त्रके अनुसार।

शास्त्रविद् (सं० त्रि०) शास्त्रं वेत्तीति विद्-क्विप्। शास्त्रदर्शी, शास्त्रोंका जाननेवाला।

शास्त्रविप्रतिषिद्ध (सं० त्रि०) शास्त्रेण विप्रतिषिद्धः। शास्त्रनिषिद्ध, जो शास्त्रमें निषिद्ध बताया गया हो।

शास्त्रशिल्पिन् (सं० पु०) शास्त्रं शिल्पमस्यास्तीति इनि। १ काश्मीरदेश। २ उस देशका निवासी। ३ भूमि, जमीन। (त्रिका०)

शास्त्रावर्त्तलिपि (सं० स्त्री०) ललितविस्तरके अनुसार प्राचीन कालकी एक प्रकारकी लिपि।

शास्त्रिक (सं० त्रि०) शास्त्रमस्यास्तीति शास्त्र तारकादित्वादितच् (पा. ५।२।३६)। शास्त्रयुक्त।

शास्त्रिन् (सं० त्रि०) शास्त्रं वेत्ति शास्त्र-इन्। १ शास्त्रवेत्ता, शास्त्रज्ञ। (पु०) २ एक उपाधि जो कुछ विश्वविद्यालयों आदिमें इसी नामकी परीक्षामें उत्तीर्ण होने पर प्राप्त होती है।

शास्त्रीय (सं. त्रि०) शास्त्र सम्बन्धी, शास्त्रका।

शास्त्रोक्त (सं० त्रि०) जो शास्त्रमें लिखे या कहेके अनुसार हो, शास्त्रोंमें कहा हुआ।

शास्य (सं. त्रि०) शास-ण्यत्। १ शासनीय, शासन करनेके योग्य। (मनु ८।१६१) २ शिक्षणीय, सुधारने योग्य। (ऋक् १।१८२।७) ३ दण्डनीय, दण्ड देनेके योग्य।

शाहंशाह (फा० पु०) बादशाहोंका बादशाह, बहुत बड़ा बादशाह, महाराजाधिराज।

शाहंशाही (फा० स्त्री०) १ शाहंशाहका कार्य या भाव, बादशाही। २ व्यवहारका खरापन।

शाह (फा० पु०) १ बहुत बड़ा राजा या महाराज। बादशाह देखो। २ मुसलमान फकीरोंकी उपाधि। (त्रि०) ३ बड़ा, भारी, महान्। इस अर्थमें इस शब्दका प्रयोग केवल यौगिक शब्द बनानेमें उनके आदिमें होता है।

शाह अब्बास (१म)—१ पारस्यके शाफई-वंशके सप्तम राजा। ये सुलतान सिकन्दर शाहके पुत्र थे। १५७१ ई०की २९वीं जनवरी सोमवारको इनका जन्म हुआ था। सोलह वर्षकी अवस्थामें १५८८ ई०में ये अपने पिताकी जीवितावस्थामें ही खुरासानके राजसामन्तों द्वारा राजसिंहासन पर बैठाये गये। सबसे पहले इन्होंने ही इस्पहान नगरमें पारस्यकी राजधानी स्थापित की। शाह अब्बासने शौर्य्यमें, वीर्यमें तथा शासनगौरवमें यथेष्ट प्रतिपत्ति लाभ की थी। इन्होंने अपने असाधारण प्रतापसे राज्यकी सीमाका विस्तार किया था। १६२२ ई०में इन्होंने अंग्रेजी सेनाके साथ मिल कर अरमस द्वीप पर अपना अधिकार जमाया। यह अरमस द्वीप १२२ वर्ष तक पुर्त्तगीजोंके अधीनमें रहा। शाह अब्बास अकबर और जहांगीरके समकालीन व्यक्ति थे। ४४ वर्ष राज्य करनेके बाद १६२९ ई०की ८वीं जनवरीको ये स्वर्गवासी हो गये। इनके बाद इनका पौत्र शाहसुफी गद्दी पर बैठे। शाह अब्बास कट्टर शिया थे।

२ उक्त १म अब्बासके प्रपौत्र भी शाह अब्बासके नामसे विख्यात हुए। १६४२ ई०के मई महीनेमें ये गद्दीके उत्तराधिकारी हुए। इस समय इनकी अवस्था प्रायः दश वर्षकी थी। इनके पिताके समय कन्दहार शहर इन लोगोंके हाथसे निकल गया था। द्वितीय शाह अब्बासने उस नगर पर फिर अपना अधिकार जमा लिया। इस समय इनकी अवस्था सिर्फ १६ वर्ष की थी। शाहजहांने इस शहर पर फिरसे अपना अधिकार जमानेकी बड़ी चेष्टा की, किन्तु उनका सारा प्रयास व्यर्थ हुआ। शाह अब्बासने प्रायः २५ वर्ष तक राज्य किया था। करीब ३४।३५ वर्षकी अवस्थामें १६६६ ई०की २६वीं अगस्त (पाँचवीं रबि-उल्-अव्वल, १०७७ हि०)को इनकी मृत्यु हो गई। इसके बाद इनका पुत्र सफी मिर्ज़ा (शाह सुलेमान) अपने पिताका उत्तराधिकारी हुआ।

शाह आलम—दिल्लीके मुगल-सम्राट्। ये अली गौहरके नामसे विख्यात थे। इनके पिताका नाम सम्राट् आलमगीर (२य) और माताका नाम जिन्नतमहल उर्फ विनाम-कुनवार था। १७२८ ई०की १५वीं जून (१७ जिकदा ११४० हि०)को इनका जन्म हुआ था। शाह आलम पितृविद्वेषी थे। पीछे अपने पिताके मन्त्री इमाद उल-मल्लिक गाजी द्वारा कारारुद्ध होनेके भयसे ये १७५८ ई०में दिल्ली छोड़ मुर्शिदाबाद चले गये। इस समय सिराजुद्दौलाका सौभाग्यरवि सदाके लिये अस्त हो गया था। मीरजाफरने सिराजुद्दौलाके सिंहासन पर अपना अधिकार जमा लिया था। शाह आलम मुर्शिदाबादसे विहार प्रदेशमें आ कर रहने लगे। उसी

समय उनके पिता शत्रु द्वारा मारे गये। यह सम्वाद पा कर शाह आलमने तुरत दिल्ली आ कर अपने पिताके सिंहासन पर अधिकार जमा लिया। १७५९ ई०की २५वीं दिसम्बरको ये गद्दी पर बैठे। इस समय उन्होंने शाह आलमकी उपाधि प्राप्त की। १७६४ ई०की २३ वीं अक्टूबरको बक्सरके युद्धमें शाह आलमके प्रधान मन्त्री सुजाउद्दौला हार खा कर भाग गये। शाह आलमने निरुपाय हो कर अंग्रेजोंकी अधीनता स्वीकार कर ली। १७६५ ई०की १२वीं अगस्तको अहमदाबाद आ कर इन्होंने इष्ट-इण्डिया कम्पनीको बङ्गदेशकी दीवानीका भार सौंप एक सनद लिख दी। इस समय बङ्ग, विहार और उड़िसाके करस्वरूप इनको इष्ट-इण्डिया कम्पनीसे वार्षिक सिर्फ २२ लाख रुपये मिलते थे। लार्ड क्लाइवने प्रति वर्ष सिर्फ २२ लाख रुपये कर देना स्वीकार कर इतने बड़े प्रदेशकी दीवानीकी सनद पाई थी। लार्ड क्लाइव जेनरल स्मिथको दिल्लीमें छोड़ कलकत्ता चले गये। शाह आलम केवल नामके लिये सम्राट् थे। ये जेनरल स्मिथके हाथकी पुतलीकी तरह सिंहासन पर बैठे थे। वास्तवमें जेनरल स्मिथ ही शासनकर्त्ता थे। शाह आलम अहमदाबाद नगरमें और जेनरल स्मिथ किसी गढ़में रहते थे। सम्राट्के राजभवनमें पूर्व प्रथाके अनुसार नौबत बाजा बजता था। उस नौबतकी आवाज जेनरल स्मिथको न सुहाती थी, इसलिये उन्होंने नौबत बजाना निषेध कर दिया। सम्राट् शाह आलमको बिना किसी आपत्तिके नौबत बजाना बन्द कर देना पड़ा, अतएव शाह आलम सिर्फ नामके लिये बादशाह थे। ये मरेठे दुश्मनोंके डरसे इलाहाबाद शहरमें अंग्रेजोंकी शरणमें जीवनकी घड़ियाँ बिता रहे थे। किन्तु इस तरह इलाहाबादमें जीवन बिताना उन्हें बुरा मालूम पड़ने लगा; इसलिये वे फिर १७७८ ई०में दिल्ली चले आये। इसके थोड़े ही दिनके बाद सहसा गुलाम कादिर खाँ नामक एक प्रबल पराक्रमी शत्रु द्वारा बन्दी हुए। गुलाम कादिर खाँने उनकी आँखें निकाल लीं। १८०६ ई०की १९वीं नवम्बरको शाह आलमकी मृत्यु हुई। शाह आलमे एक अच्छे कवि थे। उनके काव्यग्रन्थोंमें उनके नामकी कवितायें "आफताब" के नामसे उल्लिखित है। कुतुब शाहकी दरगाहके निकटवर्ती मोती मसजिदके पास बहादुर शाहकी समाधिके निकट शाह आलमकी समाधि है।

शाह आलम—कुतुब आलम नामक एक साधु फकीरका लड़का। इनका पहला नाम कुतुबुद्दीन सैयद बराउद्दीन था। इन्होंने भी पिताकी तरह फकीरी धारण कर पूरा यश कमाया था। इनके पितामहका नाम मुकदम जहानियन सैयद जलाल बुखारी था। कुतब गुजरातमें रहते थे। ये १४५३ ई०की ६ वीं दिसंबरको स्वर्गवासी हुए। अहमदाबादसे ६ मील दूर आज भी उनकी समाधि विद्यमान है। शाह आलम भी गुजरातमें ही वास करते थे। यहां उनकी भी समाधि है।

शाह अली महम्मद—"ताउजनियात् रहमानी" नामक ग्रन्थके लेखक। इस ग्रन्थमें सुफीके धर्म एवं तत्संक्रांत रहस्यपूर्ण पदार्थकी व्याख्या है।

शाह अली हजरत्—एक सैयदवंशीय धार्मिक मुसलमान। इन्होंने पारसी, अरबी और गुजराती भाषामें कई धर्मग्रंथोंकी रचना की। १५६५ ई०में अहमदाबादमें इनका स्वर्गवास हुआ।

शाह करक—एक प्रसिद्ध मुसलमान फकीर। इलाहाबादके अन्तर्गत करा नामक स्थानमें ये समाधिस्थ हुए। मुसलमान लोग इस फकीरके समाधिमन्दिरको अभी भी एक पवित्र स्थान मानते हैं। फिरिस्ता नामक ग्रन्थमें लिखा है, कि १२९६ ई०में सुलतान जलालुद्दीन फिरोजकी गुप्तहत्याके एक दिन पहले सुलतान अल्लाउद्दीनने इस फकीरके साथ भेंट की थी। फकीरने उस समय एक श्लोक बनाया था। उस श्लोकका अभिप्राय यह है—

"जो तुम्हारा शत्रु बन कर आयेगा, वह नौकाके ऊपर ही अपना मस्तक खो बैठेगा और उसके शरीरका अवशिष्टांश गंगाके गर्भमें चला जायगा।" फकीरकी यह भविष्यवाणी कुछ ही घंटेके अन्दर सत्य निकली। जिस राजाने अल्लाउद्दीनके विरुद्ध यात्रा की थी, उस राजाकी मृत्यु फकीरके कथनानुसार ही हुई। १२९६से १३१६ ई०के मध्य शाह करकका लोकान्तर हुआ।

शाह कासिम—एक सुशिक्षित मुसलमान साधु। १५८४ ई०में इनका परलोकवास हुआ। ख्वाजा अब्दुल रेहर-

की लिखी हुई विवरणीमें इनकी धार्मिक जीवनी लिखी है।

शाह कुली खाँ महरम—सम्राट् अकबर शाहके एक समर-सचिव। १५६८ ई०में उदयपुरके अधीनस्थ अमीरों-का दमन करनेके लिये ५००० सेनाका नायक बन कर सलीम और मानसिंहके साथ इन्होंने अजमेरकी यात्रा की थी। जहांगीर बादशाहने अपने ग्रंथमें एक जगह लिखा है, कि उनके राजत्वकालमें मिर्जा हाल्दोलकी सुलताना बेगम नाम्नी एक कन्याके साथ शाह कुली खाँ महरमका विवाह हुआ था। किन्तु मसिर उल् उमराव नामक ग्रन्थमें लिखा है, कि १६०० ई०में कुली खाँ महरम कराल कालके गालमें समा गये।

शाह कुदरत्-उल्ला—दिल्लीके एक सुप्रसिद्ध कवि। पारसी और उर्दू भाषामें इनके रचे हुए कई काव्यग्रंथ हैं। इन सब काव्य ग्रन्थोंमें "नतुए चाउल आफ़कार" और "दीवान" नामक दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। १७८२ ई०में ये मुर्शिदाबादमें आ कर बस गये। उक्त दीवान ग्रन्थमें २० हजार कवितायें हैं। १७९१ ई०में मुर्शिदाबाद नगरमें इनकी मानवलीला समाप्त हो गई।

शाहगञ्ज—१ युक्तप्रदेशके अन्तर्गत जौनपुर जिलेके खुताहन तालुकके अधीन एक शहर। यह अक्षा० २६° ३´ उ० एवं देशा० ८२° ४३´ पू०के मध्य विस्तृत है। फैजाबादकी पक्की सड़कके किनारे खुताहन शहरसे ८ मील उत्तर-पूर्वमें यह शहर अवस्थित है। अयोध्याके नवाब वजीर सुजाउद्दौलाने इस शहरको बसाया था। उनके प्रयत्नसे सबसे पहले यहां एक बाजार और प्रसिद्ध फकीर शाह हजरत् अलीको यादगारीके लिये एक मसजिद स्थापित हुई। शाहगंज इस अंचलके वाणिज्यका एक प्रधान केन्द्रस्थान है। जौनपुर जिलेमें सदरके सिवाय शाहगंजकी तरह सुप्रसिद्ध और कोई वाणिज्य-स्थल नहीं है। जौनपुर जिलेमें सदरके सिवाय शाहगंजकी तरह सुप्रसिद्ध और कोई वाणिज्य स्थल नहीं है। यह स्थान रूईकी आमदनीके लिये प्रसिद्ध है। यहां मंगलवार और शनिवारको हाट लगती है। यहां स्कूल, डाकघर, पुलिसस्टेशन, डिस्पेन्सरी और अयोध्या-रोहिलखण्ड रेलवेका स्टेशन है।

२ फैजाबाद जिलेमें और एक शाहगंज नामक शहर। यह शहर फैजाबादसे दश मील दूर मुगल सम्राट् द्वारा बसाया गया था। १८५७ ई०में राजा दर्शनसिंहने इस नगर पर अधिकार जमा कर यहां अपना दुर्ग और वासस्थान निर्माण किया था। इसका दूसरा नाम मकिमपुर है।

शाहगढ़—मध्यप्रदेशके अन्तर्गत सागर जिलेकी बान्दा तहसीलके अधीन शाहगढ़ नामक भूखण्डका प्रधान नगर। यह सागर शहरसे ४० मील उत्तर-पूर्वमें, अक्षा० २४° १६´ एवं देशा० ७६° पू०के बीच अवस्थित है। यह स्थान मण्डलके गौड़राजके अधीन था। १८५७ ई० तक यहां उक्त राजवंश रहते थे। यह शहर उच्च पर्वतश्रेणीके नीचे अवस्थित है। इसके चारों ओर हरे-भरे जंगल हैं, जो इसकी प्राकृतिक शोभा बढ़ा रहे हैं। नगरके पूर्व भागमें एक दुर्गके ध्वंसावशेषके मध्य इस समय भी प्राचीन राजप्रासाद दिखाई देता है। इस शहरके उत्तरांशमें बारेज, अमरमऊ, हीरापुर और टिगड़ा-में लोहेकी खान तथा कारखाना है। यहांसे लोहे गला कर कानपुर भेजे जाते हैं। यहां मंगलवार और शनिवारको हाट लगती है।

शाह जमाल—काबुल और कन्दहारके प्रसिद्ध राजा। इनके पिताका नाम तैमूर शाह था। सुप्रसिद्ध शाह अबदली इनके पितामह थे। पिताकी मृत्युके बाद १७९३ ई०में ये काबुलके सिंहासन पर बैठे। १७९६ ई०में दिल्ली पर चढ़ाई करनेका इरादा कर ये लाहोर आये, पर इधर इनके राज्य हीमें इनका भाई विद्रोही हो उठा, इसलिये लाचार हो कर इन्हें अपने देशको लौट जाना पड़ा। १८०० ई०में किरातनिवासी इनके भाई महम्मद-शाहने इन्हें अंधा कर बालाहिसाके जेलमें बन्द कर दिया। १८३९ ई०में जब वृटिश गवर्नमेण्टने शाह सुजा को काबुलकी गद्दी पर बिठाया, तब अफगानियोंने इसका खूब ही विरोध किया और शाह जमालको ही अपना राजा माना।

शाह जलाल—श्रीहट्टके एक विख्यात फकीर। श्रीहट्टमें इस समय भी इनकी समाधि और दरगाह है। कितने ही मुसलमान मौलवी इस दरगाहमें रहते हैं और नित्य

नैमित्तिक कार्यादि करते हैं। कपोत तथा और और कई प्रकारके पक्षी इस दरगाहमें वास करते हैं। मक्कामसजिद के पक्षी भी मुसलमान-समाजमें पवित्र माने जाते हैं।

शाहजहान्—दिल्लीके प्रसिद्ध सम्राट्। इनका दूसरा नाम शाहबुद्दीन महम्मद साहिब किरान सानी था। ये सम्राट् जहांगीरके तृतीय पुत्र थे। १५९२ ई०की ५वीं जनवरीको लाहोरमें इनका जन्म हुआ। बाल्यावस्थामें ये मिर्जा खुर्रमके नामसे पुकारे जाते थे। इनकी माताका नाम बालमती था। बालमती राजा उदयसिंहकी लड़की तथा जोधपुरके राजा मालदेवकी पोती थी। राजा सूरज सिंह इनके सहोदर भाई थे। शाहजहां अपने पिताकी मृत्युके समय दाक्षिणात्यमें वास करते थे। अपने ससुर आसफ खांकी चेष्टासे ये राजसिंहासन पर बैठे। १६२८ ई०की ५वीं फरवरीसे इन्होंने राज्य करना आरम्भ किया। भारतवर्षमें मुसलमान बादशाहोंके बीच इन्होंने धामाडम्बर प्रभृतिमें सबसे ऊंचा स्थान प्राप्त किया था। मयूरसिंहासनका निर्माण शाहजहांने ही किया था। इसके तैयार करनेमें जो मरकत आदि अमूल्य माणिक्य व्यवहारमें लाये गये थे, इस समय वैसे मणिमाणिक्य बिलकुल ही नहीं पाये जाते। मणितत्त्ववित् सुविख्यात पर्यटक टावरनेयर कहते हैं, कि मयूरसिंहासनका मूल्य ६५ लाख पाउंडसे किसी प्रकार कम नहीं हो सकता। इन्होंने दिल्लीमें शाह-जहानाबाद नामक एक नगर बसाया था। आगरेका ताजमहल भी इन्हींकी विश्वविख्यात प्रधानतम कीर्त्ति है। सारे यूरोप और एशियामें ऐसा महल और कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता। ताजमहल मोम् ताजमहल नामका अपभ्रंश है। मोम्-ताजमहल शाहजहांकी प्यारी स्त्रीका नाम था। उसीके नाम पर यह महल बनवाया गया था। शाहजहांने तीस वर्ष तक राज्य किया। १६५८ ई०की ६वीं जूनको इनके पुत्र आलमगीर औरंगजेबने आगरेके किलेमें इन्हें कैद कर लिया। ७ वर्ष ६ महीने कारागार वास करनेके बाद १६६६ ई०की २२वीं जनवरी सोमवारकी रातको इन्होंने अपनी मानवलीला शेष की। ताजमहलमें इनकी स्त्रीके मकबरेके पास ही इनकी देह दफनाई गई। मृत्युके समय इनकी अवस्था ७६ वर्ष ३ महीने १७ दिनकी थी। इनके चार लड़के और चार लड़कियां थीं। पुत्रोंके नाम दारासिकोह, सुलतान सुजा, आलमगीर और मुरादबक्स थे। आलमगीरने अपने भाई दारा और मुरादको मार डाला था। सुलतानसुजा आराकान चले गये और वहांके राजा द्वारा मार डाले गये। शाहजहांको पुत्रियोंके नाम मजुमन-आरा, गीति-आरा, जहानारा और रोशन-आरा थे।